रतन मेन्युअल आफ एजूकेशन

(विभिन्न विश्वविद्यालयों के नवीनतम स्वीकृत पाठ्यक्रमानुसार)

एवं बी० एड कक्षाओं के हेतु शिक्षार्थी को शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्तों, शिक्षा के उद्देश्यों, स्रोतों, शिक्षार्थी को दिये जाने वाले अनुभवों के संचय और संगठन करने के नियमों तथा शिक्षा के दार्शनिक आधारों की जानकारी कराने वाली पुस्तक]

सम्पादक

प्रो० नाथूराम शर्मा

एम० ए० (गणित, अंग्रेजी, अर्थशास्त्र एवं मनोविज्ञान) एम० टी०

[डा० राजेन्द्र प्रसाद स्वर्ण पदक विजेता]

भूतपूर्व प्राध्यापक, बलवन्त राजपूत प्रशिक्षण महाविद्यालय

आगरा-२

(द्वितीय संशोधित संस्करण १९६९-७०)

रतन प्रकाशन मन्दिर

पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता

प्रधान कार्यालय : [illegible], [illegible]-३

रतन मेन्युअल आफ एजूकेशन

(विभिन्न विश्वविद्यालयों के नवीनतम स्वीकृत पाठ्यक्रमानुसार)

[बी०टी एवं बी० एड कक्षाओं के हेतु शिक्षार्थी को शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्त शिक्षा के उद्देश्यों, स्रोतों, शिक्षार्थी को दिये जाने वाले अनुभवों के संचय और संगठन करने के नियमों तथा शिक्षा के दार्शनिक आधारों की जानकारी कराने वाली पुस्तक]

सम्पादक

प्रो० नाथूराम शर्मा

एम० ए० (गणित, अंग्रेजी, अर्थशास्त्र एवं मनोविज्ञान) एल० टी०

[डा० राजेन्द्र प्रसाद स्वर्ण पदक विजेता]

भूतपूर्व प्राध्यापक, बलवन्त राजपूत प्रशिक्षण महाविद्यालय

आगरा-२

(द्वितीय संशोधित संस्करण १९६९-७०)

रतन प्रकाशन मन्दिर

पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता

प्रधान कार्यालय : अस्पताल मार्ग, आगरा-३

निवेदन

प्रत्येक कार्य की सफलता साधक, साधन और साध्य के औचित्य तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध पर निर्भर रहती है। शिक्षण साधना में सफलता प्राप्त करने के लिए शिक्षकरूपी साधक ने अपने साध्य और साधनों का पूर्ण ज्ञान होना जरूरी है। इस साधना के साध्य-उद्देश्यों का निर्धारण शिक्षा दार्शनिक द्वारा होता है। अत: शिक्षक को शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्तों, शिक्षा के उद्देश्यों, स्रोतों, शिक्षार्थी को दिए जाने वाले अनुभवों के संचय और संगठन करने के नियमों या शिक्षा के दार्शनिक आधारों की जानकारी होना आवश्यक है। यदि शिक्षा का चरम उद्देश्य है शिक्षार्थी का सर्वांगीण विकास तो शिक्षक को ऐसे अनुभवों का संचय और संगठन करना होगा जो उसकी आवश्यकताओं, मूल प्रवृत्तियों, रुचियों, अभिरुचियों के अनुकूल हों। दूसरे शब्दों में, उसे बालकों के सामाजिक, शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक और व्यक्तित्व सम्बन्धी विकास में सहयोग देने के लिये उसकी भावनाओं, इच्छाओं, संवेगों, आन्तरिक विलक्षणताओं और साधारण प्रवृत्तियों का अध्ययन करना होगा। यदि शिक्षक चाहता है कि बालक के आचरण में उचित परिवर्तन हो तो इस परिवर्तन को उपस्थित करने वाली मनोवैज्ञानिक शिक्षण विधियों का उसे प्रश्रय लेना होगा। शिक्षा के चरम उद्देश्यों को लक्ष्यीभूत कर उत्तम से उत्तम शिक्षण विधियों का आश्रय लेता हुआ अध्यापक जब तक यह जान नहीं लेता कि उसके शिष्यों के आचरण में वांछित मात्रा और दिशा में परिवर्तन हुआ है या नहीं अर्थात् जबतक वह शैक्षणिक मापन के आधारभूत सिद्धान्तों अथवा मूल्यांकन की आधुनिकतम विधियों से परिचित नहीं होता तब तक उसे सफल शिक्षक नहीं कहा जा सकता।

शिक्षण कार्य की सफलता इस बात पर भी निर्भर रहती है कि साधनारत शिक्षक अपने निर्जीव एवं सजीव साधनों का संचालन अथवा संगठन किस प्रकार करता है। शिक्षण क्रिया एक सामाजिक क्रिया है जिसका सम्बन्ध एक ओर समाज की भिन्न-भिन्न सजीव इकाइयों—शिशु, बालक, किशोर और प्रौढ़ शिक्षार्थियों, शिक्षकों, विद्यालय प्रबन्धकों तथा निरीक्षकों से होता है; दूसरी ओर विद्यालय भूमि, उसकी साज-सज्जा और आवश्यक धनराशि से होता है। यदि उन्नतशील राष्ट्र का शिक्षा चाहता है कि शिक्षक के साधकों का अपकार अथवा विनाश न हो तो उसे शिक्षालयों के संगठन, संचालन और प्रशासन की समस्या सुलझानी होगी।

यही नहीं यदि वह भूतकालीन शिक्षा सम्बन्धी सफलताओं से लाभ उठाना चाहता है और असफलताओं से अपना बचाव चाहता है और यदि राष्ट्र के निर्माण के लिए शिक्षा योजनाओं का निर्माण करना अथवा उनको कार्यान्वित करना चाहता है तो उसे यह जानना होगा कि आधुनिक शिक्षा व्यवस्था का विकास किस प्रकार से हुआ है। समय के परिवर्तन के साथ-साथ शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, अध्यापन-विधियाँ, परीक्षा-प्रणालियाँ, गुरु-शिष्यों के सम्बन्ध किस प्रकार परिवर्तित होते रहते हैं। एक देश की शिक्षा व्यवस्था किस प्रकार अन्य देशों की शिक्षा व्यवस्था से प्रभावित होती है, इन सारी बातों का ज्ञान उसे शिक्षा के इतिहास के अध्ययन से ही उपलब्ध हो सकता है।

सक्षेपतः शिक्षण कार्य मे सफलता पाने के लिए शिक्षक को निम्नलिखित विषयो की जानकारी नितान्त आवश्यक है :

(१) शिक्षा सिद्धान्त ।
(२) शिक्षा मनोविज्ञान ।
(३) शैक्षणिक साख्यिकी ।
(४) शैक्षणिक मापन ।
(५) देश विदेश मे जन शिक्षा ।
(६) शैक्षणिक प्रशासन एव सगठन ।
(७) स्वास्थ्य शिक्षा ।

शिक्षा के महत्वपूर्ण तत्त्वो को एक सूत्र मे पिरोकर यह रतन मेन्युअल आफ एजूकेशन का सम्पूर्ण संस्करण इस तथ्य का प्रतिपादन करता है कि विषयवस्तु में अपूर्व सामञ्जस्य और समरसता है ।

इस पुस्तक के लेखक एव सम्पादक के रूप मे मैं उन सभी विद्वानो, समितियो, गोष्ठियो, आयोगो तथा प्रकाशको के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिनके विचारों अथवा प्रकाशित विषयवस्तु को जहाँ-तहाँ उद्धृत किया गया है । मैं उन सहयोगी लेखको का भी हृदय से आभारी हूँ जिन्होने इस कार्य मे मेरा हाथ बँटाया है । अन्त मे, मैं श्री पदमचन्द जैन, सचालक, रतन प्रकाशन मन्दिर को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ जिन्होने इस ग्रन्थ को प्रकाशित कर मुझ मे अपूर्व उत्प्रेरणा का सचारण किया है ।

२६ जनवरी, १६६८ **नाथूराम शर्मा**

विषय-सूची

भाग १

शिक्षा सिद्धान्त

पृष्ठ

भाग २

शिक्षा मनोविज्ञान

पृष्ठ

पृष्ठ

भाग ३

शैक्षणिक सांख्यिकी

पृष्ठ

पृष्ठ

भाग ४

शैक्षणिक मापन

भाग ५

देश विदेश में जन शिक्षा

पृष्ठ

पृष्ठ

भाग ६

शैक्षणिक प्रशासन एवं संगठन

पृष्ठ

पृष्ठ

भाग ७

स्वास्थ्य शिक्षा

पृष्ठ

शिक्षा के मूल सिद्धांत

अध्याय १
शिक्षा का स्वरूप

Q. 1. Discuss what is Education ? What is the difference between Education and Instruction ?

Ans. शिक्षा का हमारे जीवन में अत्यधिक महत्व है। प्राचीन काल से शिक्षा प्राप्त करने तथा प्रदान करने का कार्य चला आ रहा है। मानव जब से इस धरती पर अवतरित हुआ है, तब से ही वह किसी न किसी रूप से कुछ न कुछ सीखता आ रहा है। शिक्षा के माध्यम से ही वह असभ्यता से सभ्यता की ओर अग्रसर हुआ है। जंगली जीवन को त्याग कर वह सभ्यता के शिखर पर शिक्षा के द्वारा ही पहुँचा है।

शिक्षा का अर्थ (Meaning of Education)—समय-समय पर शिक्षा के ऊपर विद्वानों ने विभिन्न मत प्रकट किये हैं, परिणामस्वरूप शिक्षा के विषय में विद्वानों के मत में एकता नहीं है। इस प्रकार हम देखते हैं कि शिक्षा की निश्चित परिभाषा नहीं की जा सकती तथापि शिक्षा के वास्तविक अर्थ को समझ लेने के लिये विभिन्न मतों का अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

प्राचीन भारत में शिक्षा का अर्थ (Meaning of Education in Ancient India)—प्राचीन भारत में शिक्षा को 'विद्या' के नाम से पुकारा जाता था—'विद्या' शब्द का अर्थ ज्ञान से लगाया जाता था। ज्ञान को मानव जीवन के विकास के लिये उस काल में सर्वाधिक महत्व दिया जाता था। प्राचीन काल के ब्राह्मण ज्ञान के द्वारा इस लोक तथा परलोक दोनों का सुधार करने का प्रयत्न करते थे। परन्तु शिक्षा के द्वारा इस युग में मानव का सर्वांगीण विकास करने का प्रयत्न नहीं किया जाता था।

ग्रीक दृष्टिकोण (Greek's Concept of Education)—यूनान में शिक्षा को शारीरिक विकास का प्रमुख साधन माना जाता था। ग्रीक दार्शनिक प्लेटो तथा अरस्तू, दोनों ने अपनी शिक्षा योजना में शारीरिक विकास को प्रमुखता दी थी। परन्तु साथ ही [illegible] विकास को भी स्थान दिया था। प्लेटो के अनुसार "Education consists in giving to the body and soul all the perfection of which they are susceptible" इसी प्रकार आगे वह और भी अधिक स्पष्ट करते हुए लिखता है "I mean by Education that training which is given by suitable habits to the first instincts of virtue in children." अरस्तू के अनुसार शिक्षा का अर्थ "creation of a sound mind in a sound body" था। पेस्टालॉजी के अनुसार (According to Pestalozzi)—आधुनिक [illegible] शिक्षा शास्त्री पेस्टालॉजी के अनुसार "शिक्षा मानव की आन्तरिक शक्तियों और गुण [illegible] का सहज और [illegible] विकास है" (Education is defined as a natural, harmonious and progressive development of man's innate powers)। इस प्रकार पेस्टालॉजी के अनुसार शिक्षा मनुष्य की [illegible] शक्तियों का विकास करती है। ड्यूवी के अनुसार (According to Dewey)—ड्यूवी शिक्षा को अनुभव का [illegible] मानते हैं" (Education is the process of reconstruction and reorganisation of experience)।

रूईयर के अनुसार शिक्षा वह है जो विद्वान व्यक्ति के कार्यों में सामान्य व्यक्ति के कार्यों से अन्तर ला देती है। दूसरे शब्दों में शिक्षा शिक्षित व्यक्ति को अशिक्षित व्यक्ति में अलग करती है। टी० रेमन्ट (T. Raymont) के अनुसार "शिक्षा उस विकास का नाम है जो बचपन से प्रौढ़ावस्था तक होता है अर्थात् शिक्षा विकास का वह क्रम है, जिससे मनुष्य अपने को आवश्यकतानुसार भौतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक वातावरण के अनुकूल बना लेते हैं। महात्मा गान्धी ने शिक्षा की परिभाषा अपने अलग ढंग से की है। उनके अनुसार "शिक्षा से मेरा तात्पर्य है, बालक और मनुष्य की समस्त शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक शक्तियों का सर्वाङ्गीण विकास।" (By Education I mean an all round drawing out of the best in child and man—body, mind and spirit)। एक शिक्षा दार्शनिक को शिक्षा को अभिवृद्धि की प्रक्रिया (an eternal process of growth) मानता है[1] तो दूसरा शिक्षा का वातावरण के अनुकूलन (adjustment to environment) के रूप में देखता है और शिक्षा का कार्य व्यक्ति को वातावरण में उस सीमा तक व्यवस्थित करना मानता है जिस सीमा तक दोनों के लिये सन्तोषजनक लाभ प्राप्त हो सकें।[2] और तीसरा दार्शनिक शिक्षा समूह में परिवर्तन लाने की प्रक्रिया मानता है और कहता है कि शिक्षा चैतन्यरूप से एक नियन्त्रण प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन लाये जाते हैं और व्यक्ति के द्वारा समाज में।[3] शिक्षा के विषय में दी गई उपर्युक्त परिभाषाओं का अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि शिक्षा की कोई एक ऐसी परिभाषा नहीं है, जिस पर समस्त शिक्षा-शास्त्री एक मत हों। प्रत्येक ने अपने विचारों तथा दृष्टिकोण के अनुसार शिक्षा की परिभाषा दी है। इस विभिन्नता का प्रमुख कारण मानव व्यक्तित्व की गहनता है। किसी व्यक्ति की सामाजिक, बौद्धिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक क्षमताएँ दूसरे व्यक्ति की क्षमताओं से भेद रखती हैं, परिणामस्वरूप सोचने-विचारने में भी अन्तर आ जाता है। कोई विद्वान जीवन के किसी अंग को विशेष महत्व देता है तो कोई किसी अंग को। जीवन दर्शन की भिन्नता शिक्षा की परिभाषा में भी भिन्नता लाती है। इस प्रकार 'शिक्षा' शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया जाता है परन्तु अधिकांशतः 'शिक्षा' को दो अर्थों में लिया जाता है—(१) व्यापक अर्थ (Wider meaning), (२) संकुचित अर्थ (Narrower meaning)। नीचे हम शिक्षा के दोनों अर्थों पर प्रकाश डालेंगे।

(१) व्यापक अर्थ में शिक्षा (Wider meaning of Education)—व्यापक अर्थ में शिक्षा का कार्य जीवन भर चलता रहता है। मानव जन्म लेने से मृत्यु तक कुछ न कुछ सीखता ही रहता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि मानव का समस्त जीवन एक प्रकार से शिक्षा-काल है। वह जीवन में जिन व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है उनसे कुछ न कुछ सीखता ही रहता है। सुबोध अदावल के शब्दों में "शिक्षा के व्यापक अर्थ के अनुसार यह समस्त संसार शिक्षा-क्षेत्र है और प्रत्येक व्यक्ति बाल, युवा, वृद्ध, स्त्री, पुरुष सभी शिक्षार्थी हैं। वे सब जीवनपर्यन्त कुछ न कुछ सीखते रहते हैं। अतः व्यक्ति का सारा जीवन उसका शिक्षा-काल है। साथ ही प्रत्येक व्यक्ति जहाँ स्वयं दूसरों से कुछ सीखता है वहाँ दूसरों को भी कुछ न कुछ शिक्षा देता है।" जीवन की छोटी-छोटी घटनाएँ भी हमको शिक्षा देती रहती हैं। इसी प्रकार शिक्षा प्राप्त करने तथा प्रदान करने का कोई निश्चित स्थान नहीं है। शिक्षा व्यापक अर्थ में घर, बाजार, स्कूल तथा खेल-कूद के मैदान आदि समस्त स्थानों पर प्राप्त होती रहती है। जड़ प्रकृति भी मानव को शिक्षा प्रदान करती है।

(२) शिक्षा का संकुचित अर्थ (Narrower meaning of Education)—संकुचित अर्थ में शिक्षा का आदान-प्रदान विद्यालय की चहार दीवारी के मध्य में होता है। इस अर्थ में

1. Education is the eternal process of superior adjustment of the physically and mentally developed, free, conscious, human being to god as manifested in the intellectual, emotional, and volition environment of man."
2. The function of education is conceived to be, adjustment of man to environment to the end that the most enduring satisfaction may accrue to the individual and to the society. —*Bossing.*
3. Education is the consciously controlled process whereby changes in behaviour are produced in the person and through the person within the group. —*Brown.*

शिक्षा छात्र को एक निश्चित विधि के द्वारा प्रदान की जाती है। शिक्षा प्रदान करने वाले को अध्यापक के नाम से पुकारा जाता है तथा शिक्षा प्राप्त करने वाले को छात्र। शिक्षा का काल भी निश्चित तथा सीमित होता है। टी० रेमन्ट के सकुचित अर्थ में शिक्षा का अर्थ **"उन विशेष प्रभावों से समझते हैं जिनको समाज का वयस्क वर्ग जान-बूझ कर निश्चित योजना द्वारा अपने से छोटों पर तथा तरुण-वर्ग पर डालता है।"** इस प्रकार की शिक्षा छात्र को पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करने के लिये ही प्रेरित करती है। वह जीवन की वास्तविकताओं को भली प्रकार से नहीं समझ पाता है। शिक्षा का यह स्वरूप निर्देश तक ही सीमित रहता है। शिक्षा और निर्देश में अन्तर है। ऊपर हमने शिक्षा के दो रूप देखे—व्यापक तथा सकुचित। सकुचित अर्थ में बालक शिक्षा विद्यालय में जाकर प्राप्त करता है। वहाँ अध्यापक उस पर नियन्त्रण रखकर निश्चित विषयों का ज्ञान कराता है। इस प्रकार से ज्ञान प्रदान करने की क्रिया को ही निर्देश या अध्यापन (Instruction) कह कर पुकारते हैं। निर्देश के अन्दर बालक के आन्तरिक विकास को अधिक महत्व न देकर ज्ञान को ऊपर से थोपा जाता है। अध्यापक का प्रयत्न रहता है कि किसी न किसी प्रकार से बालक को पाठ्यक्रम में रखे गये विषयों को रटा दिया जाय चाहे उसकी समझ में कुछ आये अथवा नहीं। अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य परीक्षा में उत्तीर्ण होना है। परन्तु इस प्रकार की शिक्षा वास्तविक शिक्षा न होकर केवल बोझा मात्र होती है। बालक की रुचि तथा मानसिक स्थिति की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया जाता। बालक की प्रमुखता की उपेक्षा कर अध्यापक को ही अधिक महत्व प्रदान दिया जाता है। परन्तु शिक्षा और निर्देशन में पर्याप्त अन्तर है। शिक्षा को अंग्रेजी भाषा में एडूकेशन (Education) कहते हैं। अंग्रेजी का शब्द 'एडूकेशन' लेटिन भाषा के शब्द 'एडूकेटम' (Educatum) से बना है। 'एडूकेटम' का अर्थ होता है शिक्षित करना। E शब्द का तात्पर्य यहाँ पर आन्तरिक से और 'डूको' (Duco) का अर्थ 'आगे विकसित करने' से है। इस प्रकार एडूकेशन का अर्थ आन्तरिक विकास हुआ। वास्तव में शिक्षा का उद्देश्य बालक या मानव की आन्तरिक शक्तियों का पूर्ण विकास करना है। बालक स्वय अपने प्रयत्नों द्वारा अपनी अन्तर्निहित शक्तियों का विकास करता है तथा ज्ञान की खोज करता है। अध्यापक का कार्य तो केवल बालक को मार्ग दिखाने का है। इस प्रकार शिक्षा में अध्यापक को महत्व न देकर बालक को अधिक महत्व प्रदान किया जाता है। अध्यापक को बालक की रुचियों तथा मानसिक स्थितियों का पूरा-पूरा ध्यान रखना पड़ता है। बालक को स्वय ज्ञान प्राप्त करने की भी स्वतन्त्रता प्रदान की जाती है। परिणामस्वरूप इस प्रकार की शिक्षा में स्थिरता होती है और बालक आवश्यकता पर उसका प्रयोग भी कर सकता है।

शिक्षा की परिभाषा—उपर्युक्त विचारों का विश्लेषण करने के पश्चात् शिक्षा की सुनिश्चित परिभाषा डा० सुबोध अदावल के शब्दों में उल्लेख करते हैं 'शिक्षा वह सविचार प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति के विचार तथा व्यवहार में परिवर्तन तथा परिवर्द्धन होता है—उसके अपने और समाज के उन्नयन के लिये।'

शिक्षा के विभिन्न रूप और क्षेत्र

Q 2 Describe the various types of Education. State its scope.

Ans. शिक्षा-शास्त्रियों ने शिक्षा के निम्न स्वरूपों का उल्लेख किया है :

(१) नियमित या औपचारिक शिक्षा (Formal Education)।
(२) अनियमित शिक्षा (Informal Education)।
(३) प्रत्यक्ष शिक्षा (Direct Education)
(४) परोक्ष शिक्षा (Indirect Education)
(५) सामान्य शिक्षा (General Education)
(६) विशिष्ट शिक्षा (Specific Education)
(७) वैयक्तिक-शिक्षा (Individual Education)
(८) सामूहिक-शिक्षा (Collective Education)

शिक्षा के उपर्युक्त स्वरूपों का उल्लेख हम विस्तार से करेंगे :

(१) नियमित-शिक्षा (Formal Education)—नियमित शिक्षा बालक को व्यवस्थित तथा विधिवत् प्रदान की जाती है। शिक्षा की योजना पहले से बना ली जाती है।

दूसरे शब्दो मे नियमित शिक्षा मे पाठ्य-क्रम तथा नियमो आदि का निर्धारण पहले से ही कर लिया जाता है। बालको को जो ज्ञान प्रदान किया जाता है वह भी निश्चित होता है तथा अध्ययन काल का समय भी निश्चित रहता है। इस प्रकार की शिक्षा प्रदान करने वाली प्रमुख सस्था 'विद्यालय' है। जिसमे पाठ्य-क्रम, समय-चक्र तथा अनुशासन आदि की व्यवस्था मे शिक्षा प्रदान की जाती है। परन्तु नियमित शिक्षा का सबसे बडा दोष यह है कि शिक्षा पाठ्यक्रम से जकड़ी रहती है परिणामस्वरूप बालक अनुभवहीन हो जाता है।

(२) अनियमित-शिक्षा (Informal Education)—अनियमित-शिक्षा बालक समाज मे रहते हुए स्वत प्राप्त करता रहता है। इस प्रकार की शिक्षा मे कोई पूर्व आयोजन नही होता या अकृत्रिम तथा स्वाभाविक ढग से जो शिक्षा प्राप्त होती है उसे अनियमित-शिक्षा कहते हैं। अनियमित-शिक्षा का आरम्भ बालक के जन्म के पश्चात् से ही हो जाता है तथा यह क्रम जीवन-भर चलता रहता है। नियमित शिक्षा के समान अनियमित शिक्षा प्राप्त करने का कोई विशेष स्थान नही होता वरन् यह शिक्षा, घर-बाहर, खेल के मैदान मे, यात्रा करते समय तथा समारोह आदि मे भाग लेते समय प्राप्त होती रहती है। बालक के सम्पर्क मे आने वाले समाज के समस्त सदस्य उसके अध्यापक होते है। यह शिक्षा समय तथा पाठ्य-क्रम के बन्धन से मुक्त होती है। बालक पर समाज की अच्छी तथा बुरी बातो का प्रभाव पडता रहता है। साथ ही साथ बालक का अनुभव भी बढता रहता है। परन्तु किसी प्रकार की व्यवस्था तथा नियम के अभाव से इस प्रकार की शिक्षा की गति अत्यन्त मन्द होती-है।

(३) प्रत्यक्ष-शिक्षा (Direct Education)—प्रत्यक्ष शिक्षा में बालक के ऊपर अध्यापक के व्यक्तित्व का सीधा प्रभाव पडता है। बालक अध्यापक के सम्पर्क मे रहने के कारण उससे प्रभावित होता रहता है। अध्यापक बालक को निश्चित योजना या विधि के द्वारा ज्ञात करता है। अध्यापक का बालक के ऊपर पूर्ण नियन्त्रण रहता है।

(४) परोक्ष-शिक्षा (Indirect Education)—जब अध्यापक बालक के ऊपर प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डाल नही पाता तब उसे अप्रत्यक्ष साधनो का प्रयोग करना पडता है। इस प्रणाली के अन्दर शिक्षा किसी विशेष उद्देश्य को लेकर नही प्रदान की जाती है। बालक को अपनी इच्छानुसार शिक्षा प्राप्त करने की स्वतन्त्रता प्रदान की जाती है। अध्यापक के गुणो तथा आदर्शों का प्रभाव बालक पर परोक्षरूप से पड़ता रहता है।

(५) सामान्य शिक्षा (General Education)—जब शिक्षा सामान्य रूप से बालको को बिना किसी उद्देश्य के प्रदान की जाती है तब उसे सामान्य शिक्षा कहते है। इस प्रकार की शिक्षा बालक को सामान्य जीवन के लिये तैयार करती है। इसमे बालक को किसी विशिष्ट व्यवसाय की शिक्षा न प्रदान कर केवल जीवन को सुचारु रूप से चलाने के लिये प्राथमिक शिक्षा प्रदान की जाती है जिससे वह जीवन के प्राय. समस्त विभागो के लिये अपने को तैयार कर सके। इस शिक्षा मे बालक की सामान्य बुद्धि का विकास होता है।

[illegible] जब बालक [illegible] कहते हैं। [illegible] है। बालक को किसी विशेष विषय या व्यवसाय मे निपुण [illegible] डाक्टरी की शिक्षा इसके प्रमुख उदाहरण है।

(७) वैयक्तिक शिक्षा (Individual Education)—जब अध्यापक एक बालक को अकेले ही शिक्षा प्रदान करता है, तब उसे वैयक्तिक-शिक्षा कहकर पुकारते हैं। अध्यापक बालक की प्रत्येक रुचि का ध्यान रखकर शिक्षा प्रदान करता है। इस प्रणाली का सबसे बडा लाभ यह है कि बालक को शिक्षा अत्यन्त मनोवैज्ञानिक ढग से प्रदान की जाती है जिससे बालक को ज्ञान सरलता से आत्मसात हो सकता है। बालक को सर्वांगीण विकास की सुविधा इस प्रणाली मे पर्याप्त रहती है।

(८) सामूहिक शिक्षा (Collective Education)—सामूहिक-शिक्षा मे अनेकों बालकों को शिक्षा प्रदान की जाती है। इस प्रणाली मे एक साथ, एक ही स्थान पर कुछ

निश्चित विषयो की, अनेको बालको को शिक्षा प्रदान की जाती है। वर्तमान विद्यालयो मे अधिकांशत: इस प्रणाली को ही अपनाया गया है। इस व्यवस्था का सबसे बड़ा दोष यह है कि बालक की व्यक्तिगत रुचियो तथा योग्यताओ की उपेक्षा की जाती है। एक साथ अनेको बालको को पढ़ाने के कारण अध्यापक के लिये यह सम्भव नहीं कि वह प्रत्येक बालक पर ध्यान दे। परन्तु इस प्रणाली मे व्यय कम पड़ता है, इस कारण आधुनिक विद्यालयो मे इसका प्रचलन अत्यधिक है।

शिक्षा का क्षेत्र (Scope of Education)—मानव ने युगो से जो ज्ञान तथा अनुभव संचित किये हैं, उनका अध्ययन ही शिक्षा का क्षेत्र है। मुख्यरूप मे शिक्षा के पाठ्यक्रम को निम्न भागो मे विभाजित किया जा सकता है :

(१) सांस्कृतिक विषय—इसमे भाषा, धर्म, नीति, साहित्य तथा कला आदि विषय सम्मिलित किये जाते हैं।

(२) सामाजिक विषय—नागरिकशास्त्र, भूगोल, इतिहास, समाजशास्त्र तथा अर्थ-शास्त्र आदि विषय आते हैं।

(३) प्राणी-विज्ञान—इसके अन्तर्गत, मनोविज्ञान, वनस्पति शास्त्र, प्राणि शास्त्र, स्वास्थ्य-विज्ञान, शरीर-विज्ञान आदि विषय सम्मिलित किये जाते हैं।

(४) भौतिक-विज्ञान—भौतिक विज्ञान मे, भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र, भूगर्भ विद्या, ज्योतिष, तथा गणित आदि आते है।

शैक्षिक प्रक्रिया का स्वरूप

Q. 3. "Education is a bi-polar process in nature in which the personality of the Educator acts upon the educand." Discuss

Ans शिक्षा मे जब हम आदान-प्रदान के विषय मे सोचते हैं तो हमारा ध्यान अध्यापक तथा छात्र की ओर जाता है। अध्यापक का कार्य शिक्षा प्रदान करना है तथा छात्र का ग्रहण करना। दोनो मे से एक के अभाव मे शिक्षा का कार्य नही चल सकता। शिक्षा की आदान-प्रदान के लिये दोनो के पारस्परिक सहयोग की आवश्यकता है। इसी कारण एडम्स (Adams) ने शिक्षण की क्रिया को द्वि-मुखी प्रक्रिया (Bi-polar Process) के नाम से पुकारा है। अध्यापक तथा छात्रो के मध्य होने वाले आदान-प्रदान को ही हम शिक्षा कह सकते हैं। अध्यापक अपने ज्ञान-गौरव तथा आध्यात्मिक शक्तियो द्वारा छात्र को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप मे प्रभावित करता रहता है। एडम्स के समान डीवी भी शिक्षा के दो आधार मानते हैं। प्रथम मनोवैज्ञानिक आधार तथा दूसरा सामाजिक आधार। मनोवैज्ञानिक आधार का तात्पर्य उनके अनुसार, बालक का विकास मूल-प्रवृत्तियों को ध्यान मे रखकर करने से है, अर्थात् अध्यापक को बालक की मूल-प्रवृत्तियो और आन्तरिक शक्तियो से परिचित होना चाहिए। परन्तु डीवी (Dewey) सामाजिक आधार को अधिक महत्त्व देते हैं। उनके अनुसार समाज मे बालक का जन्म होता है और समाज मे ही वह अपना विकास करता है, अतः समाज में वह निष्क्रिय रहकर अपना विकास नही कर सकता। इस कारण यह आवश्यक है कि बालक को समाज के लिए प्रस्तुत किया जाए। परन्तु समाज के लिये बालक को जिस माध्यम से शिक्षित किया जा सकता है, वह माध्यम है पाठ्यक्रम। इस प्रकार कुछ विद्वान् शिक्षा को 'द्वि-मुखी प्रक्रिया' के स्थान पर 'त्रिमुखी प्रक्रिया' (Tri-polar) मानते हैं, अर्थात् शिक्षा के तीन अङ्ग हैं : शिक्षक, पाठ्यक्रम और बालक। नीचे तीनो का सविस्तार उल्लेख किया जायेगा :

शिक्षक—प्राचीनकाल मे शिक्षक को अत्यधिक महत्त्व प्रदान किया जाता था। शिक्षा मे मनोविज्ञान को महत्त्व न देने के कारण उस युग मे अध्यापक को ही शिक्षा का केन्द्र माना जाता था। अध्यापक अपनी इच्छा तथा रुचि के अनुसार शिक्षा प्रदान करता था। बालक की रुचियो तथा इच्छाओ को तनिक भी महत्त्व नहीं दिया जाता था। बालक अध्यापक द्वारा बताई गई बातो को आँख मींचकर स्वीकार कर लेता था चाहे उसकी समझ में कुछ बात आवे या नही। परन्तु वर्तमान युग मे अध्यापक को केवल मार्गदर्शक के रूप में स्वीकार किया गया है। उसका कर्त्तव्य बालकों को मार्ग दिखाना है।

पाठ्य-क्रम—बालक और शिक्षक के मध्य पाठ्य-क्रम के द्वारा ही सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है। पाठ्य-क्रम के द्वारा ही यह निश्चित किया जाता है कि बालक को क्या पढ़ना है तथा अध्यापक को क्या पढ़ाना है। प्राचीन काल में अध्यापक के पश्चात् पाठ्य-क्रम को ही अधिक महत्व प्रदान किया जाता था। शिक्षा का उद्देश्य उस युग में 'विद्या के लिए विद्या' माना गया था। अध्यापक का कार्य बालक को पाठ्य-क्रम रटा देना मात्र था। जो बालक अधिक से अधिक पाठों को याद कर लेते थे वे ही योग्य माने जाते थे। शिक्षा का प्रमुख ध्येय छात्रों के मस्तिष्क में पाठ्य-क्रम को अधिक से अधिक भर देना था। उस काल में पाठ्य-क्रम संकीर्ण था। धीरे-धीरे पाठ्य-क्रम का विस्तार होता गया और उसमें अनेक विषयों का समावेश स्वत हो गया। वर्तमान युग में पाठ्य-क्रम को बालकों की रुचियों तथा शक्तियों के विकसित करने के उद्देश्य से निर्धारित किया जाता है। राज्य की शासन प्रणाली का पाठ्य-क्रम पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। प्रजातन्त्रीय देशों का पाठ्य-क्रम, जनता के विकास के लिए निर्धारित किया जाता है, इसके विपरीत एकतन्त्रीय देशों में पाठ्य-क्रम का निर्धारण राज्य-हित को ध्यान में रखकर किया जाता है।

बालक—ऊपर हम उल्लेख कर चुके हैं कि प्राचीनकाल में बालक की अपेक्षा गुरु को अत्यधिक महत्व दिया जाता था। परन्तु मनोविज्ञान के शिक्षा में प्रवेश करने के साथ-साथ बालक का स्थान सर्वोच्च हो गया है। वर्तमान युग में बालक ही शिक्षा का केन्द्र है। अध्यापक अपना शिक्षण कार्य, बालक की रुचियों तथा मानसिक दशा को ध्यान में रख कर ही करता है। पाठ्य-पुस्तक, पाठ्य-क्रम तथा समय-चक्र, आदि सबके निर्धारण में बालक रुचियों, क्षमताओं तथा मनोवृत्तियों का ध्यान रखा जाता है। अध्यापक का कार्य केवल मार्ग दर्शन का ही रह गया है। उसका कर्तव्य है कि वह शिक्षण में इन प्रणालियों का प्रयोग करें जिससे बालक के व्यक्तित्व का अधिक से अधिक विकास हो सके।

शिक्षा के कार्य

Q. 4 Describe the functions of Education

Ans शिक्षा के कार्यों को हम निम्न भागों में विभाजित कर सकते हैं .

(१) व्यक्तित्व का विकास।
(२) प्राकृतिक शक्तियों का उत्थान।
(३) सामाजिकता की भावना जाग्रत करना।
(४) भावी जीवन के लिए तैयार करना।
(५) नैतिक गुणों को विकसित करना।
(६) संस्कृति की सुरक्षा।

(१) व्यक्तित्व का विकास—शिक्षा का प्रमुख कार्य बालक के व्यक्तित्व का विकास करना है। शिक्षा प्राप्त करने से व्यक्ति के व्यक्तित्व में अन्तर आता है और उसकी योग्यताओं का विकास होता है। शिक्षा के द्वारा वह अच्छी बातें सीखता है और बुरी बातों का परित्याग करता है। प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्री फ्रोबेल का कथन है कि "आन्तरिक शक्तियों का विकास ही शिक्षा है।" बालक की आन्तरिक शक्तियाँ शिक्षा के द्वारा ही जाग्रत होती हैं। शिक्षा के अभाव में वे सुप्त पड़ी रहती हैं परिणामस्वरूप बालक के व्यक्तित्व का विकास नहीं हो पाता।

(२) प्राकृतिक शक्तियों का उत्थान—बालक कुछ प्राकृतिक शक्तियों को लेकर इस संसार में आता है। यदि इन प्राकृतिक शक्तियों में सुधार न किया जाय तो बालक का आचरण पशुओं के समान रहता है। बालक की जन्मजात प्राकृतिक शक्तियों में शोधन शिक्षा के द्वारा ही सम्भव है। शिक्षा के द्वारा ही मानव पशुओं की प्रवृत्तियों को त्यागकर मानव आचरण अपनाता है।

(३) सामाजिकता की भावना जाग्रत करना—मानव सामाजिक प्राणी है, अत यह आवश्यक है कि उसे समाज के अनुकूल बनाया जाय। शिक्षा बालक में सामाजिकता की भावना जाग्रत करती है और उसे समाज के अनुकूल बनाती है। बालक विद्यालय में अपने साथियों के मध्य रहकर सामाजिक कुशलता प्राप्त करता है। वह सहयोग, सहनशीलता आदि

गुणों को अपने साथियों से सीखता है। वह देखता है कि सहयोग तथा त्याग के द्वारा बड़े-बड़े काम अत्यन्त सरलता के साथ हो जाते हैं। उसे ज्ञात होता है कि समाज से अलग रहकर उसका जीवन व्यर्थ है।

(४) भावी जीवन के लिए तैयार करना—शिक्षा के अन्य कार्यों में उसका कार्य बालक को भावी जीवन के लिए तैयार भी करना है। शिक्षा प्राप्त करके बालक इस योग्य होता है कि वह भविष्य में अपने पैरों के बल पर खड़ा होकर अपने रोटी-कपड़े की व्यवस्था कर सके। शिक्षा के माध्यम से बालक भिन्न-भिन्न व्यवसायों के योग्य बनते हैं। व्यापार, कृषि तथा प्रत्येक व्यवसाय में शिक्षा का महत्व रहता है। अशिक्षित व्यक्ति के समक्ष जीविकोपार्जन की समस्या बनी रहती है।

(५) नैतिक गुणों को विकसित करना—शिक्षा बालक के अन्दर सद्भावना, सत्य, प्रेम तथा त्याग की भावनाओं का विकास करती है। अध्यापक का सदा यह प्रयत्न रहता है कि उसके छात्र सदा सत्यपूर्ण मार्ग पर चलते रहें। अनेक उदाहरणों द्वारा बालक के मस्तिष्क में यह बात बैठाई जाती है कि सत्य की सदा विजय हुई है। इस प्रकार बालक के मस्तिष्क में आध्यात्मिकता तथा सद्भावनाओं का विकास होता है।

(६) संस्कृति की सुरक्षा—शिक्षा का अन्तिम कार्य संस्कृति की सुरक्षा करना तथा उसका प्रत्येक व्यक्ति से परिचय कराना है। मानव ने अपने विशाल अनुभवों द्वारा संसार में प्रगति [illegible] मानव अनुभवों से परिचित कराये। मानव के [illegible] के नाम से भी पुकारते हैं। शिक्षा का कार्य [illegible] पीढ़ी-दर-पीढ़ी उसे कायम भी रखना है जिससे [illegible] रहे।

अध्याय २

शिक्षा के उद्देश्य

Q 1 Describe briefly the different aims of Education in India ancient and modern and in the western countries during different periods, and state cleary what should be our aims in India to-day and the methods employed to achieve them

Ans. शिक्षा के अर्थ, क्षेत्र तथा उसकी प्रमुखता समझ लेने के पश्चात् यह आवश्यक है कि हम शिक्षा के उद्देश्यों पर भी विचार करें।

शिक्षा के उद्देश्य व महत्व—शिक्षा के उद्देश्यों को बिना निर्धारित किये शिक्षण का कार्य सफल नहीं हो सकता। एक विद्वान ने उद्देश्यों के महत्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि "An aim is a foreseen end that give direction to an activity or motivates behaviour" वास्तव मे प्रत्येक क्रिया और जीवन के क्षेत्र का कोई न कोई उद्देश्य रहता है। बिना निश्चित उद्देश्य के हम किसी भी कार्य में सफल नहीं हो सकते। अत शिक्षा को सफल बनाने के लिये यह आवश्यक है कि उसके उद्देश्यो के निर्धारण के विषय मे विचार किया जाय। एक अध्यापक जिसे शिक्षा के उद्देश्यो का तनिक भी ज्ञान नहीं है वह उस नाविक के समान है जिसे अपने लक्ष्य का पता नहीं है, उसकी नाव कहीं भी भटक कर पानी मे डूब सकती है। इस कारण यह आवश्यक हो जाता है कि शिक्षा के कार्य का उचित प्रकार से सचालन करने के लिए उसके उद्देश्यो को निर्धारित किया जाय। शिक्षण का कार्य आरम्भ करने से पूर्व यह आवश्यक हो जाता है कि यह जाना जाय कि कहाँ पर पहुँचना है और किस लक्ष्य की प्राप्ति करनी है। ब्रिटिश-कालीन शिक्षा का सबसे बड़ा दोष यह रहा कि उस युग मे उद्देश्यो को निश्चित करने का कभी भी प्रयत्न नही किया गया। शिक्षण का कार्य बिना किसी उद्देश्य के होता रहा। परिणामस्वरूप हमारी शिक्षा व्यवस्था हीन तथा लक्ष्यहीन होकर निष्क्रिय हो गई। फलत वर्तमान युग में भी विद्यालयो मे शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रो को यह ज्ञान नही है कि वे किस उद्देश्य से शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। इसी प्रकार अध्यापको को भी पता नही है कि वे अपने छात्रो को किस उद्देश्य से शिक्षा प्रदान कर रहे हैं। उद्देश्य विहीन होने के कारण अध्यापक तथा छात्र दोनो ही शिक्षा के प्रति उदासीन हैं।

शिक्षा मे जब उद्देश्यो का निर्धारण हो जाता है तब शिक्षक तथा छात्र दोनो ही उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिये उत्साहित हो जाते हैं। वे फिर निरुद्देश्य होकर इधर-[illegible] ते हैं। लक्ष्य प्राप्त करने की आकांक्षा उन्हें वहाँ तक पहुँचने के लिए प्रेरित. जिससे वे दृढता तथा आत्म-बल के साथ अपने कार्य करने मे लग जाते हैं। वास्तव मे रहित कार्य उदासीनता उत्पन्न करता है तथा उसके लिये किये गये प्रयत्न भी व्यर्थ हो। डीवी के अनुसार, "जो कार्य लक्ष्य का ज्ञान करके किये जाते हैं वे ही सार्थक होते हैं। क्रिया को उचित दिशा मे ले जाते हैं।

शिक्षा के उद्देश्यो में परिवर्तन

देशकाल और जीवन के आदर्शों एवं मूल्यों के अनुसार शिक्षा के उद्देश्यो मे परिवर्तन हुआ है। यूरोप, अमरीका, भारत आदि देशो मे जिन शिक्षा के उद्देश्यो को शिक्षको ने स्वीकार किया वे एक से नही हैं और न थे। इन उद्देश्यों के निर्माण मे सभी का हाथ रहा है। राजनीतिज्ञ, शासक, समाज सुधारक, लेखक, दार्शनिक आदि सभी लोगों ने शिक्षा के उद्देश्यो को अपने अपने विचार से प्रतिपादित करने का प्रयन्न किया है। जिस देश मे जैसा वातावरण रहा शिक्षा के उद्देश्य वैसे ही बने। जहाँ समाजवाद पल्लवित हुआ वहाँ शिक्षा के सामाजिक उद्देश्यो पर जोर दिया गया। जहाँ धार्मिक भाव की प्रबलता रही वहाँ शिक्षा के उद्देश्य आत्म बोध, वैयक्तिकता, बौद्धिक विकास से सम्बद्ध रहे। इसी प्रकार किसी देश मे किसी समय जैसे जीवन आदर्शों पर जोर दिया गया शिक्षा के उद्देश्य भी वैसे ही बन गये।

यूरोप में उद्देश्यों की परम्परा

प्राचीन काल मे :—प्राचीन यूनान मे आक्रमणकारियो का सदा भय बना रहता था। राज्य को आक्रमणकारियो से अपनी रक्षा करने के लिये शक्तिवान योद्धाओ की आवश्यकता रहती थी। अत वहाँ शिक्षा का उद्देश्य शारीरिक शक्ति को विकसित करना तथा अनुशासन की स्थापना था। स्पार्टा मे शिक्षा का उद्देश्य नागरिको मे देश-प्रेम उत्साह, तथा आज्ञापालन की भावना
[illegible] बना, प्रेम आदि भावनाओ
[illegible] जाती थी, जिससे नाग-
[illegible] परीत एथेन्स मे मुख और शक्ति का साम्राज्य था अत वहाँ शिक्षा के उद्देश्य रोम और स्पार्टा से भिन्न थे। नागरिको मे, स्वास्थ्य तथा शारीरिक सौन्दर्य के साथ-साथ उनमे चरित्र और सौन्दर्य भावना को भी विकसित करना था। दूसरे शब्दो में एथेन्स मे शिक्षा का उद्देश्य चरित्रवान् तथा गुणवान् नागरिको को उत्पन्न करना था। व्यक्तियो को अपना विकास करने की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की जाती थी।

मध्य युग में —ईसाई धर्म के प्रसार के साथ-साथ शिक्षा में धर्म का समावेश होता गया। शिक्षा की अधिकाश समस्याएँ धार्मिक सस्थाओ से सम्बन्धित रहती थी। अत. शिक्षा के उद्देश्यो मे धार्मिकता तथा नैतिकता को अधिक प्रधानता दी जाने लगी। आत्मसयम तथा शरीर को यातनाएँ देकर ईश्वर के प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाने लगा। परन्तु शीघ्र ही मार्टिन-लूथर ने धर्मान्धता तथा अन्ध-विश्वास के विरुद्ध आवाज उठाई। शिक्षा मे अन्धविश्वास तथा धर्मान्धता की भावना का विरोध होने लगा।

आधुनिक युग मे —मध्य युग मे बालक के व्यक्तित्व की पूर्ण उपेक्षा की जाती थी। विषयो को समझाने की अपेक्षा ऊपर से ठोक-ठोक कर भरा जाता था। इस प्रणाली के विरुद्ध सर्वप्रथम जान लाक तथा रूसो ने पग उठाए। उन्होंने बालक के व्यक्तित्व को प्रधानता दी। उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बालकों की विभिन्न शक्तियो का विकास कर उसे प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने की स्वतन्त्रता प्रदान करना है। बाद मे मनोवैज्ञानिक विचारधाराओ के प्रबलतम होने के साथ-साथ शिक्षा मे बालक का महत्त्व बढता ही गया (पैस्टालाजी ने शिक्षा का उद्देश्य बालक के व्यक्तित्व का विकास करना माना। प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री हरबार्ट ने शिक्षा का उद्देश्य 'चरित्र का निर्माण' स्वीकार किया।) औद्योगिक क्रान्ति के प्रभाव ने शिक्षा पर भी प्रभाव डाला। शिक्षा में व्यावसायिकता का प्रवेश होने लगा। परिणामस्वरूप शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को किसी विशेष व्यवसाय के लिये तैयार करना हो गया। आधुनिक यूरोप में शिक्षा, आध्यात्मिक तथा आदर्श-वाद से हटकर व्यावहारिकता तथा तत्कालीन आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये ही प्रमुख रूप से प्रदान की जा रही है। अमेरिका के प्रयोजनवाद (Pragmatism) ने आदर्शवाद के स्थान पर शिक्षा मे व्यावहारिकता तथा उपयोगिता को अधिक महत्व प्रदान किया। इस कारण शिक्षा का उद्देश्य पूर्व निश्चित मूल्यो के आधार पर आधारित न कर व्यक्तियो के अनुभवों पर ही निर्धारित करना उचित माना गया। इस विचारधारा के अनुसार शिक्षा इस उद्देश्य से प्रदान की जाय, जिससे बालक का विकास, उसकी रुचियो और क्षमताओ के आधार पर हो सके।

वर्तमान शताब्दी के प्रथम चरण मे यूरोप मे कुछ एकतन्त्रीय देशों ने शिक्षा को राष्ट्रीय भावनाओ को विकसित करने का माध्यम बनाया। एकतन्त्रीय देशो मे, जिनमे जर्मनी तथा इटली

प्रमुख है, राज्य के सुखसम्पन्नत्व को व्यक्ति से अधिक महत्त्व दिया। व्यक्ति की इच्छा तथा अधिकार नाम की कोई चीज नहीं है। राज्य की इच्छा ही सर्वोच्च इच्छा है। शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य देशभक्त तथा आज्ञापालक नागरिकों का निर्माण करना हो गया। इन भावनाओं के परिणाम-स्वरूप दो महायुद्ध हुए।

वर्तमान युग मे ससार के अधिकाश देशों ने जनतन्त्रात्मक प्रणाली को ही अपनाया है। अत शिक्षा की व्यवस्था तथा उद्देश्य का निर्धारण जनतन्त्र की आवश्यकताओं को ध्यान मे रखकर किया गया है। अब शिक्षा नागरिक को राज्य का आज्ञापालक दास बनाने के लिये नही प्रदान की जाती वरन् उसका सर्वाङ्गीण विकास करने के लिए की जाती है।

भारत में शिक्षा के उद्देश्यों की परम्परा

हिन्दू-युग :—हमारा देश आरम्भ से ही धर्मप्रधान रहा है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे धर्म की प्रधानता रहती थी। विवाह, जन्म तथा मरण तक के सस्कार धार्मिक कृत्यो के आधार पर किये जाते थे। *धर्म तथा शिक्षा के मध्य पूर्ण समन्वय किया गया था।* इस युग मे शिक्षा के उद्देश्य निम्न थे :—

(१) सासारिक जगत से चित्त को हटाकर आन्तरिक जगत की ओर ले जाना।

(२) आचरण तथा कार्यों को पवित्र बनाये रखने की शिक्षा देना।

(३) जीवन का चरम लक्ष्य मोक्ष प्राप्त करने के लिये जीवन की प्रत्येक क्रिया को नियन्त्रित रखना।

(४) चरित्र का निर्माण करना।

(५) जीवन के हर क्षेत्र मे व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास करना।

(६) छात्रों को वैदिक-साहित्य, यज्ञ तथा कर्मकाण्डो का ज्ञान कराना।

मध्य-युग में :—मध्य-युग मे भी शिक्षा के क्षेत्र मे धर्म की प्रधानता बनी रही। परन्तु मुसलमानों ने भारत मे शिक्षा का सगठन इस्लाम धर्म का प्रचार करने के लिए ही प्रमुखतया किया था। मध्य-युग मे शिक्षा के निम्न उद्देश्य थे :—

१. इस्लाम धर्म के अन्दर ज्ञान को अत्यधिक महत्व प्रदान किया गया है। हजरत मुहम्मद के अनुसार ज्ञान प्राप्त करना अमृत प्राप्त करने के समान है। अत. शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान प्राप्त करना था।

२ मुस्लिम शासक हमारे देश मे इस्लाम धर्म का प्रचार करना अपना मुख्य कर्त्तव्य समझते थे अत. शिक्षा के माध्यम द्वारा अपना कार्य सिद्ध करने का उन्होंने प्रयत्न किया। इस प्रकार शिक्षा का दूसरा उद्देश्य इस्लाम धर्म का प्रचार करना था।

३. भारतीय मुसलमानो को इस्लाम धर्म का ज्ञान कराना।

४. दरबार मे उच्च पद प्राप्त करना।

इस्लामी शिक्षा की प्रमुख विशेषता उसकी सांसारिकता थी। परिणामस्वरूप इस युग में शिक्षा जीवन के अधिक निकट आई।

आधुनिक युग में :—अंग्रेजी शासनकाल मे शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य ईस्ट इण्डिया कम्पनी के दफ्तरों मे काम करने के लिये क्लर्कों का निर्माण करना था। अत शिक्षा का उद्देश्य इस युग मे केवल सरकारी पद प्राप्त करना था। व्यावसायिक तथा टैक्नीकल शिक्षा की किसी भी प्रकार की व्यवस्था नही की गई थी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् शिक्षा के उद्देश्यों का [illegible] किया गया। माध्यमिक शिक्षा आयोग (मुदालियर-कमीशन) ने देश की सामाजिक आवश्यकताओं को ध्यान मे रखकर निम्न उद्देश्यों का निर्धारण किया :—

(१) प्रजातन्त्रात्मक नागरिकता की भावना का विकास करना (Development of the Citizenship)

(२) जीविकोपार्जन की क्षमता प्रदान करना (Improvement of Vocational efficiency) ।

(३) बालक के व्यक्तित्व का निर्माण करना (Development of Personality) ।

(४) नेतृत्व का विकास करना (Development of Leadership) ।

वर्तमान युग मे शिक्षा को जीवन से सम्बन्धित करने का विशेष प्रयत्न किया जा रहा है। देश मे विशाल कारखाने तथा उद्योगो की स्थापना की जा रही है परिणामस्वरूप टेक्नीकल शिक्षा (Technical Education) तथा व्यावसायिक-शिक्षा (Vocational Education) को विशेष महत्त्व प्रदान किया गया है।

शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य

सक्षेप मे शिक्षा के जिन उद्देश्यो की चर्चा साधारणत शिक्षाशास्त्री किया करते हैं वे हैं ·

(१) चरित्र निर्माण का उद्देश्य (Morality Aim)
(२) व्यक्तित्व के विकास का उद्देश्य (Individuality Aim)
(३) सामाजिक उद्देश्य (Social Aim)
(४) व्यावसायिक उद्देश्य (Vocational Aim)
(५) सर्वांगीण विकास का उद्देश्य (Harmonious Development Aim)
(६) शारीरिक विकास का उद्देश्य (Physical Development Aim)
(७) पूर्ण जीवन की तैयारी का उद्देश्य (The Complete Living Aim)
(८) अवकाश के सदुपयोग का उद्देश्य (Leisure Aim)
(९) ज्ञान के लिये शिक्षा का उद्देश्य (Knowledge Aim)

चरित्र निर्माण का उद्देश्य

Q 3. "The one aim, the sole aim of Education is morality." Discuss this statement, and offer concrete suggestions for achieving this aim in our schools.

Or

How far is it true to say that the main aim of education is the formation of character ? Discuss the role of school in forming the character of its pupils.

Ans. कुछ शिक्षा-शास्त्रियों के अनुसार शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बालक के चरित्र का विकास करना है। जर्मन विद्वान हरबार्ट (Herbart) इस सिद्धान्त के प्रमुख समर्थक हैं, उनके अनुसार व्यक्ति और समाज दोनों का कल्याण चरित्र के विकास मे ही सम्भव है। वे एक जगह पर कहते हैं कि 'शिक्षा के समस्त कार्य को एक ही शब्द मे प्रकट किया जा सकता है और वह शब्द है—"नैतिकता"' (The one and the whole work of education may be summened up in the concept—morality) वे शिक्षा को बालक मे नैतिक विकास करने का उत्तम साधन मानते हैं। उनके अनुसार मानव अपनी जन्मजात प्रवृत्तियो के आधार पर आचरण करता है जिससे समाज में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है। अत शिक्षा का उद्देश्य मानव प्रवृत्तियो को सुधारना होना चाहिए जिससे उसके आचरण मे नैतिकता आये। मानव जन्म से सदाचारी नही उत्पन्न होता है, उसके अन्दर कुछ न कुछ बुराइयाँ रहती हैं परन्तु यह शिक्षा का ही कार्य है जो उसके अन्दर *सदिच्छाएँ* उत्पन्न करती है। शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति के अन्दर सद्भावना, प्रेम तथा नैतिक गुणो का विकास किया जा सकता है। ये गुण ही समाज मे सुख और शान्ति की स्थापना करते है, तथा व्यक्ति को चरित्रवान बनाते हैं। परन्तु ये सब गुण शिक्षा के माध्यम से ही प्राप्त होते है अत हरबार्ट शिक्षा का प्रमुख ध्येय चरित्र-निर्माण ही स्वीकार करता है। हरबार्ट के अनुसार चरित्र का निर्माण करने के लिए यह आवश्यक है कि बालक की

रुचियों को शोधित तथा विकसित किया जाय। रुचियों के आधार पर ही बालक का आचरण बनता है, तथा रुचियों का निर्माण हमारे विचार करते हैं। इस कारण बालक की रुचियों और विचारों को सुधारा जाय जिससे बालक का आचरण शुद्ध बने। रुचियों और विचारों को पवित्र करने के लिए ज्ञान परम आवश्यक है, ज्ञान के अभाव में चरित्र का कभी भी उत्थान नहीं हो सकता अत. बालक के सदाचारी बनाने के लिए यह आवश्यक है कि बालको को वास्तविक और सत्य पूर्ण ज्ञान कराया जाय।

हरबार्ट का कथन है कि पाठ्य-क्रम मे उन विषयों को ही रखा जाय जो नैतिकता तथा सदाचार का प्रतिनिधित्व करते हैं। उनके अनुसार साहित्य और इतिहास इस दृष्टिकोण से सबसे उत्तम हैं। इन दोनों विषयों के आधार पर प्रदान की गई शिक्षा बालक को सदाचारी तथा चरित्रवान बना सकेगी। इतिहास और साहित्य बालकों की रुचियो का विकास करते हैं।

शिक्षा का उद्देश्य चरित्र-निर्माण अतीतकाल से ही स्वीकार किया गया है। प्राचीन भारत मे शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य चरित्र का निर्माण करना था। गुरु अपने व्यक्तित्व के प्रभाव द्वारा बालक के चरित्र का विकास करने का प्रयत्न करता था। शिक्षा का समस्त संगठन बालक के चरित्र का विकास करने के लिए किया जाता था। चरित्रवान् छात्रों को समाज आदर तथा स्नेह की दृष्टि से देखता था। वर्तमान युग मे भी हमारे देश के प्रमुख शिक्षा-शास्त्रियों ने समय-समय पर शिक्षा द्वारा चरित्र के निर्माण को अत्यधिक महत्व दिया है। देश के स्वतन्त्र होने के पश्चात् गांधीजी से एक बार प्रश्न किया गया कि स्वतन्त्र भारत मे शिक्षा का क्या उद्देश्य होगा? गांधीजी ने उत्तर दिया कि "चरित्र का निर्माण करना —मैं इस बात का प्रयत्न करूँगा कि विद्यार्थियो मे सत्यता, वीरता, साहस तथा त्याग के भाव उत्पन्न हों।" (Character-building —I would try to develop courage, strength, virtue, the ability to forget oneself in working towards great aims) आदर्शवादी विचारधारा के अन्दर भी शिक्षा में चरित्र निर्माण को विशेष स्थान प्रदान किया गया है। इस विचारधारा के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य "सत्यं, शिव, सुन्दरम्" (The Truth, The Goodness, The Beauty) माना गया है।

शिक्षा मे चरित्र-निर्माण के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए डा० सुबोध अदावल लिखते हैं—"शिक्षा मे चरित्र-निर्माण का उद्देश्य अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाता है।.......... उसके अन्तर्गत व्यक्ति का सम्पूर्ण विकास सम्भव है तथा उसमे व्यक्तिगत उन्नति के साथ-साथ समाज-सेवा तथा नैतिक आदर्श भी पनपते हैं। अपने देश की वर्तमान स्थिति को देखते हुए यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि देश और समाज का उत्थान व्यक्ति के चारित्रिक उन्नयन पर ही निर्भर है।" वे आगे लिखते हैं कि "जीवन के प्रत्येक अंग तथा समाज कार्य के प्रत्येक विभाग में लोगों के चरित्र का ह्रास ही आज बुरे परिणाम प्रकट कर रहा है। अतएव, शिक्षा द्वारा राष्ट्र के चरित्र को ऊँचे पर ले जाने की अविलम्ब आवश्यकता है।"

इस पर भी चरित्र-निर्माण के उद्देश्य को पूर्णरूप से स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि इस उद्देश्य के साथ ही साथ जीविकोपार्जन, शारीरिक तथा मानसिक विकास आदि उद्देश्य भी कम महत्वपूर्ण उद्देश्य नहीं हैं। दूसरे, कक्षा मे अध्यापक को चरित्र-निर्माण की शिक्षा प्रदान करने में अनेकों कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। केवल कोरे उपदेश बालकों को नीरस सदा मालूम लगते हैं। नैतिक गुणों का विकास करने के लिए किन विषयों को चुना जाय यह भी एक समस्या है। कुछ विद्वान किसी विषय को महत्व देते हैं तो कुछ किसी और विषय का। एम० के० अग्रवाल के अनुसार "नीति और धर्म की शिक्षा कब और कैसे हो, इस विषय पर बड़ा मतभेद है। उन्न दोनों के कारण चरित्र-निर्माण का उद्देश्य शिक्षा के एकमात्र उद्देश्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। पर इसमे कोई सन्देह नहीं कि चरित्र-निर्माण का उद्देश्य शिक्षा के अन्य कई उद्देश्यों से अधिक महत्वपूर्ण है।"

व्यक्तित्व के विकास का उद्देश्य

Q 4 Give brief outline of the educational philosophy of Nunn

Or

What do you mean by the term individuality ? Suggest the means by teacher can develop individuality among pupils ?

Or

What are the ground on which Sir Percy Nunn and others emphasize the development of individuality as an aim of education ?

Or

What do you understand by Nunn's aim of individuality ? How do the claims of society fit us with it ?

Ans इगलैण्ड के प्रसिद्ध मानवतावादी शिक्षक तथा व्यक्तिवादी दार्शनिक ने शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य व्यक्तित्व का विकास माना। उन्होंने अपनी पुस्तक Education . Its Data and First Principles में लिखा :

"The primary aim of all educational effort should be to help boys and girls to achieve the highest degree of individual development of which they are capable."

मानव कुछ शक्तियाँ लेकर जन्म लेता है। उनका प्रस्फुटन एव उत्तम विकास शिक्षा का परम उद्देश्य है। प्रत्येक व्यक्ति को उसके विकास के लिये पूर्ण अवसर मिलने चाहिये क्योंकि जब तक उसके व्यक्तित्व का विकास नहीं होगा अपने स्वतन्त्र प्रयास से नवीन एव उत्तम वस्तुओं का निर्माण करने मे समर्थ न हो सकेगा। ये नवीन और उत्तम वस्तुएँ नन महोदय के विचार से व्यक्ति के स्वतन्त्र प्रयास से ही ससार मे आती हैं इसलिये व्यक्ति को स्वतन्त्र अस्तित्व मिलना चाहिये।

नन महोदय व्यक्तित्व के विकास मे निम्नलिखित अर्थ निकालते हैं :

बालक कुछ प्रकृतिदत्त विशेषताओं को लेकर जन्म लेता है इन्हीं के कारण वह दूसरे बालकों से भिन्न होता है। शिक्षक का काम है इन प्रकृतिदत्त शक्तियों मे यथोचित परिवर्तन उपस्थित करना, उनको पूर्णता पर पहुँचाना। इन शक्तियों को पूर्णता पर पहुँचाने के लिये आवश्यक है पहले उन शक्तियों का पता लगाना जो बालक मे विद्यमान है। शिक्षक और शिक्षा सस्थाओं की जिम्मेदारी है इन शक्तियों का पता लगाना तथा उनको प्रस्फुटित करना तथापि इस प्रस्फुटन के लिये सभी प्रकार के साधनों को एकत्र करना तभी वे प्रकृतिदत्त शक्तियाँ पूर्णता पर पहुँच सकती हैं जिनको लेकर बालक जन्म लेता है।

यहाँ पर नन प्रत्येक बालक की शक्तियों को विकसित करने का सुझाव देते हैं। शिक्षक को चाहिये कि वह प्रत्येक बालक की रुचि और ग्रहण शक्ति का स्वतन्त्र रूप से अध्ययन करे और यथासम्भव उसकी प्रकृतियों के अनुकूल शिक्षा दे, उसके व्यक्तित्व को बनाने का प्रयत्न न करे वरन् उसे बिना रुकावट पैदा किये स्वत बढ़ने का अवसर दे, साथ ही उन दुष्प्रभावों से बालक की रक्षा करे जो उसकी प्रकृतिदत्त शक्तियों के विकास मे अड़चनें पैदा करते हों।

ये प्रकृति दत्त शक्तियाँ क्या हैं जिनको पूर्णता पर पहुँचाना शिक्षक का कर्तव्य नन महोदय ने माना है ? मूल प्रवृत्तियाँ, रुचियाँ, बौद्धिक शक्तियाँ और अन्य विशेष योग्यताएँ (Special talents) ही वे प्रकृति दत्त शक्तियाँ है जिनको शिक्षक का कर्तव्य है कि पूर्णता पर पहुँचावे। नन महोदय ने मन की विशेष शक्ति का उल्लेख नहीं किया। वे मन की उन स्वतन्त्र शक्तियों मे आस्था ही नहीं रखते थे जिनका प्रतिपादन सामर्थ्य मनोविज्ञान (Faculty Psychology) ने किया था। स्मरण शक्ति, तर्क शक्ति, अवधान शक्ति, निश्चय शक्ति आदि के विकास को उन्होंने अपनी शिक्षा मे कोई स्थान नहीं दिया। वे तो मन की प्रक्रिया के दो पहलुओं नीमी और होर्मी मे विश्वास करते थे। मन उन अनुभवों को सचित करने के लिये सदैव तैयार रहता है जिसका व्यक्ति अपने जीवन काल मे अनुभव करता है। मन की इस शक्ति को जिसकी सहायता से वह अनुभवों को तथा उनके प्रभावों को सुरक्षित रखता है नन ने नीमी (Mneme) की सज्ञा दी है।

मन की दूसरी शक्ति भी है जिसके कारण वह अपने अनेक अनुभवों मे से कुछ को चुन लेता है। यह प्रेरणा शक्ति ही नन महोदय के विचार से Horme है। इस शक्ति का प्रभाव मन के चेतन और अचेतन दोनों भागों पर पड़ता है। इस प्रेरणा शक्ति के कारण व्यक्ति का चेतन मन उदाहरणार्थ किसी वस्तु की प्राप्ति की इच्छा करता है और उसे पाने का प्रयत्न करता है और इसी प्रेरणा शक्ति के कारण मन बीमारी के कीटाणुओं से लड़ना, शरीर मे रक्त का परिभ्रमण कराना, भोजन पचाना और अन्य ऐसी ही क्रियाएँ करता है जिन्हें हम अनैच्छिक क्रियाएँ कहते है।

बालक को ये शक्तियाँ वंशानुक्रम से मिलती हैं और अनुकूल वातावरण के मिलने पर उनमें परिवर्तन एवं संशोधन होता है। लेकिन बालक में स्वतः प्रेरणा होती है अपनी प्राकृतिक योग्यताओं, प्रतिभाओं, शक्तियों को पूर्ण विकसित करने की। शिक्षा का उद्देश्य तो बालक को इस कार्य में सहायता मात्र करना है तभी नन महोदय ने कहा है कि शिक्षा का परम लक्ष्य बालक और बालिकाओं के व्यक्तित्व के उस विकास में योग देना है जिसके वे योग्य (Capable) हैं।

नन महोदय ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि व्यक्तित्व के विकास का अर्थ है वास्तविक पूर्णता अथवा आत्मानुभूति (Self-realisation)। प्रत्येक व्यक्ति पूर्ण अवसर मिलने पर स्वतन्त्र प्रयास से अपनी योग्यताओं को पूर्णता प्रदान कर सकता है। शिक्षक का तो केवल यही कार्य है कि वह उसके लिए पूर्ण अवसर प्रदान करे।

प्रश्न यह है कि क्या व्यक्ति समाज के बिना अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है? नन महोदय का कहना है कि व्यक्ति समाज में रहकर ही आत्मानुभूति अथवा आत्मबोध प्राप्त कर सकता है। व्यक्ति का विकास चूंकि सामाजिक वातावरण में ही होता है जहाँ पर उसे सामाजिक रुचियों और क्रियाओं में भोजन मिलता है इसलिये नन की व्यक्तिवादी दार्शनिक विचारधारा समाज की उपेक्षा नहीं करती, लेकिन समाज प्रत्येक बालक को इतनी स्वतन्त्रता अवश्य दे कि वह अपनी रुचियों अथवा प्रवृत्तियों के अनुकूल विकास मार्ग पर चलता रहे, उसके विकास में अड़चन अथवा बाधा न पहुँचाये नहीं तो बालक का विकास कुण्ठित हो सकता है। यहाँ पर प्रत्येक शब्द पर जोर देना है। प्रत्येक बालक की विभिन्न योग्यताओं और शक्तियों का विकास अलग-अलग ढंग से होना है। यदि व्यक्तिगत विभिन्नताओं (Individual Differences) को ध्यान में रखे बिना कोई सामान्य शिक्षा क्रम तैयार किया गया तो व्यक्ति का विकास सम्भव न हो सकेगा।

नन की इस विचारधारा में व्यक्ति विशेष को अधिक महत्व दिया गया है समाज को उतना नहीं। समाज का कल्याण इसी में है कि विभिन्न व्यक्तियों की योग्यताओं को अनुकूल वातावरण उपस्थित करके विकसित किया जाय। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि मनुष्य केवल अपना ही कल्याण देखे समाज के कल्याण की उपेक्षा करे। जिस समाज की सहायता के बिना व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर सकता उसके प्रति उपेक्षा भाव उसके लिये ही अहित-कर हो सकता है। जिन सामाजिक प्रथाओं, धार्मिक संस्थाओं और अनुशासन की कार्यवाहियों के बिना उसका व्यक्तित्व विकसित नहीं हो सके उनकी उन्नति में भी व्यक्ति को पूर्ण सहयोग देना होगा। समाज के प्रति व्यक्ति को अपने कर्तव्य निभाने होंगे। समाज सेवा व्यक्ति का कर्तव्य है—व्यक्ति द्वारा इस सेवा की प्राप्ति समाज का अधिकार है। समाज सेवा का कार्य भी तभी सम्भव है जब उसकी योग्यताएं पूरी तरह विकसित हो जायें।

इस प्रकार नन महोदय का व्यक्तिवादी दर्शन समाज के हितों की रक्षा करता है उन पर किसी प्रकार का आघात नहीं करता।

नन के व्यक्तिवादी दर्शन पर आधारित शिक्षा क्रम—नन ने कहा था कि व्यक्ति का शिक्षाक्रम ऐसा हो जो उसके व्यक्तित्व के विकास को पूर्णता प्रदान करे। यह शैक्षिक प्रयास कैसा हो? बालक को उसके व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिये कैसा पाठ्यक्रम दिया जाय? पाठन विधियाँ किस प्रकार [illegible] ...लय में ... संगठन ... महो-

दय ने अपने ग्रन्थ में अपने विचार व्यक्त किये हैं।

पाठ्यक्रम—नन के अनुसार पाठ्यक्रम के उन क्रियाओं को स्थान दिया गया जो मानव मेल के भावों को उत्तम ढंग से व्यक्त करती हों। ऐसी क्रियाएँ बाह्य जगत में सबसे अधिक मूल्य रखती हैं अतः पाठ्यक्रम में ऐसी क्रियाओं अथवा विषयों का समावेश हो जिनसे व्यक्ति को मानव सभ्यता की झलक मिल सके।[1]

1. [illegible]

मानव सभ्यता की झलक मिल सकती है साहित्य, संगीत, हस्तकला, विज्ञान तथा गणित से। मानव जाति का विकास प्रतिबिम्बित होता है इतिहास और भूगोल में अतः इन विषयों को महत्व दिया जाय। लेकिन विद्यालय कोई ऐसा स्थान नहीं जहाँ विषयों का ही ज्ञान प्राप्त किया जाता हो। वह ऐसा स्थान है जहाँ पर छात्रों को कुछ विशेष प्रकार की क्रियाएँ भी कराई जाती है। ये क्रियाएँ हैं सृजनात्मक अथवा रचनात्मक। अतः इन विषयों का ज्ञान रचनात्मक क्रियाओं द्वारा दिया जाय।

शिक्षण विधि—यदि बालक के व्यक्तित्व के विकास के लिये मानव सभ्यता की झलक [illegible] सबसे अच्छा तरीका है [illegible] करता है वरन् उसका [illegible] माजिक आदि सभी प्रकार के विकास के पहलुओं को पुष्ट बनाता है।

खेल और कार्य में अन्तर स्पष्ट करते हुए नन महोदय का कहना है कि खेल वह रचनात्मक क्रिया है जिसको करने वाला अपनी इच्छा से करता है और स्वेच्छा से करने के कारण आनन्द का अनुभव करता है। वह इस क्रिया में आनन्द की अनुभूति इसलिये भी करता है कि वह स्वतन्त्र है। इसके विपरीत जिस क्रिया में न स्वतन्त्रता हो, न इच्छा हो, न मन हो, वरन व्यक्ति के ऊपर बरबस लादी जाय वह क्रिया कार्य है।

शिक्षा खेल के माध्यम से दी जाय वह बालक के ऊपर बरबस लादी न जाय। तभी आत्म निर्माण और आत्माभिव्यक्ति सम्भव होगी।

विद्यालय संगठन—शिक्षा का क्रम ऐसा हो जिससे बच्चे का क्रमिक विकास हो सके और इसी क्रमिक विकास को ध्यान में रखकर विद्यालयों का संगठन किया जाय। वास्तव में क्रमिक विकास के निम्नांकित चार चरण हैं —शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था और प्रौढ़ावस्था। तीन चरण बालक के शारीरिक और मानसिक विकास से विशेष सम्बन्ध रखते हैं अन्तिम दो उसके [illegible] हमें [illegible] का [illegible] विकास- [illegible]। लेकिन [illegible] का रूप धारण कर ले। शिक्षा में ऐसी स्वतन्त्रता अवश्य दी जाय जिससे व्यक्ति विधि-विधानों के नियन्त्रण में रहकर कार्य करे। बालक को जैसा कि पीछे लिखा जा चुका है बाह्य बन्धनों से मुक्त होकर कार्य करने की स्वतन्त्रता हो लेकिन साथ ही साथ वह नियमों, सिद्धान्तों और व्यवस्थाओं के अधीन अपने को रखना सीखे। इसका अर्थ यह है कि बालक बाह्य नियन्त्रण के स्थान पर आत्म नियन्त्रण रखे।

शिक्षा में अनुशासन—स्वतन्त्रता और अनुशासन दोनों सहगामी वस्तुएँ हैं। अतः आत्म नियन्त्रण पर जोर देने वाले ये शिक्षा दार्शनिक दमनात्मक अनुशासन के हामी नहीं थे। ये शिक्षालयों में मुक्त्यात्मक शासन के पक्षपाती थे। अनुशासन का भार पूर्णत: अनुशासितों पर ही छोड़ [illegible]

अनुशासन और स्कूल आर्डर में अन्तर स्पष्ट करते हुए नन महोदय का कहना है कि

करना तब तक बहु प्रशंसित माना जाता है। परन्तु यहाँ पर भी उन द्वारा प्रतिपादित शिक्षा के व्यक्तिगत लक्ष्य सामाजिक लक्ष्य के बिना ही नहीं सार्थक हो है।

व्यक्तिवादी विचारधारा के गुण दोष — यह विचारधारा कि व्यक्ति को उसकी वैयक्तिक रुचियों और प्रवृत्तियों के अनुकूल शिक्षा दी जाय और पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ उसके व्यक्तित्व का विकास होने में सहायता केवल सहायता मात्र दें, नई नहीं थी। इस सम्बन्ध में रूसो ने ऐसी शिक्षा का प्रतिपादन किया है जिसमें विचार से व्यक्ति की शक्तियों का पूर्ण विकास ही शिक्षा का परम उद्देश्य था। प्राचीन भारतीय शिक्षा का स्वरूप व्यक्तिवादी ही था। गुरु कम से कम छात्रों को लेकर अपने गुरुकुल में ही उनके साथ निवास करते, प्रत्येक व्यक्ति पर पृथक ध्यान देकर उनके पूर्ण विकास के लिए अवसर प्रदान करता था। रूसो से पहले ही पहला व्यक्ति था जिसने बालक की शिक्षा व्यवस्था उसकी रुचि और स्वभाव के अनुकूल करने की योजना बनाई थी। बालक के लिए शिक्षा ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करे कि बालक का विकास स्वतः हो सके। पेस्टालॉजी ने भी इसी मत का प्रतिपादन किया और शिक्षा में मनोविज्ञान का महत्व स्वीकार करते हुए शिक्षा को बालक की रुचियों, प्रवृत्तियों, मौलिक शक्तियों के अनुसार देने का सुझाव दिया।

आधुनिक शिक्षा शास्त्री भी व्यक्तित्व के विकास को शिक्षा का परम लक्ष्य समझते हैं। वैयक्तिक विभिन्नताओं के आधार पर ऐसी शिक्षा का निश्चय किया जाता है जो बालकों को उनकी शक्तियों के अनुकूल बढ़ने का अवसर दे। यह सभी तरह मान लिया गया है। कोई एक ऐसा शिक्षालय बनाना भारी भूल है जिसमें वैयक्तिक विभिन्नताओं की उपेक्षा की जाय।

उग्र व्यक्तिवादी विचारधारा और उसके दोष—केवल बालक व्यक्तित्व को ही शिक्षा का परम उद्देश्य मान लें यह भी ठीक नहीं है। बालक का उसकी प्रवृत्तियों एवं रुचियों के अनुसार ही स्वतंत्र होने के लिए आवश्यकता से अधिक स्वतन्त्रता देना भी अनुचित है। इस विकास कार्य में स्वतन्त्रता देनी है स्वच्छन्दता नहीं, नहीं तो उसका एकांगी विकास होगा: सर्वांगीण नहीं। यदि हम बालकों की वैयक्तिक विभिन्नताओं को ही ध्यान में रखकर शिक्षा का क्रम स्थिर करें तो प्रत्येक बालक के लिये अलग-अलग शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी। ऐसा करने से उसमें सहानुभूति, सहयोग और अन्य सामाजिक गुण पल्लवित न हो सकेंगे जो उसके व्यक्तित्व के विकास के लिये आवश्यक हैं।

हो सकता है कि इस उग्र विचारधारा से उस पूँजीवाद को भी प्रोत्साहन मिले जिससे समाज का अहित हो।

उग्र व्यक्तिवादी विचारधारा व्यक्ति में ही सब कुछ मानती है। समाज तथा राज्य उसके कल्याण के लिये है। उसके मतानुसार व्यक्ति के विकास के लिये ही समाज, राज्य, धर्म और परिवार आदि संस्थाओं की स्थापना की गई है। व्यक्ति की दृष्टि से शिक्षा का यह उद्देश्य कि शिक्षा में व्यक्तिगत विभिन्नताओं को ध्यान में रखकर व्यक्ति की योग्यता को विकसित किया जाय, ठीक जचता है किन्तु समाज के हितों की रक्षा की दृष्टि से व्यक्तिवादी उग्र विचारधारा एकांगी प्रतीत होती है। यह मानते हुए भी कि व्यक्ति समाज की इकाई है और इस नाते व्यक्ति का विकास किया जाय तो परोक्ष रूप में समाज का कल्याण होगा। यह मानना पड़ेगा कि समाज की उन्नति से मनुष्यमात्र को लाभ होता है और समाज की हानि से उसे क्षति पहुँचती है। मनुष्य जो समाज की इकाई है समाज में ही फलता है। समाज से प्राप्त अधिकारों का भोग करता हुआ फलता फूलता है। व्यक्ति का जीवन ही समाज की देन है। ऐसी दशा में व्यक्ति के समाज के प्रति कुछ उत्तरदायित्व हैं। उसे समाज के आदेशों की रक्षा करनी है, समाज की आवश्यकताओं और माँगों को पूरा करना है, समाज की यथासम्भव सेवा करनी है। जिस समाज ने उसका भरण-पोषण किया है उस समाज को व्यक्ति कम से कम क्षति न पहुँचावे और यदि वह समाज के हितों के सामने अपने हितों को बलिदान कर सका, तो और भी अच्छा है।

अत शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति में ऐसी क्षमता पैदा करना भी होना चाहिए कि वह [illegible]ज का कल्याण कर सके।

1. The task of education is to bring out the best in each individual helping him to discover at the same time how his spiritual talents can be made consistent with the need and demand of the society.

सामाजिक तथा नागरिक उद्देश्य

Q 5. What are the Social aims of Education ?

Ans. शिष्य मे वैयक्तिक उद्देश्य के विपरीत कुछ शिक्षा शास्त्री शिक्षा का उद्देश्य बालक में सामाजिक कुशलता तथा सामाजिकता की भावना का उदय करना मानते है। इस मत के समर्थकों के अनुसार समाज का स्थान व्यक्ति से कहीं ऊँचा है। शिक्षा मे सामाजिक उद्देश्यों का जन्म हाल की ही घटना है। विश्व की राजनीति तथा नवीन राज्य प्रणालियों ने इस मत को मुख्यतया जन्म दिया है। प्राचीन काल मे शिक्षा के क्षेत्र मे व्यक्तिवाद का ही बोलबाला था। जनसाधारण राजनीति से दूर ही रहता था। राज्य की समस्त देखभाल का कार्य राज्य और उसके मन्त्रियों द्वारा किया जाता था। राज्य प्रशासन से जनता दूर नही रहती थी अत शिक्षा में सामाजिक उद्देश्यों की किसी ने कल्पना भी नही की।

आधुनिक राजनीति तथा जनतन्त्र की विचारधाराओं ने शिक्षा मे सामाजिकता की भावना को जन्म दिया। आज ससार के प्रत्येक देश का नागरिक राजनीति का क्रियाशील सदस्य है। वह देश की शासन प्रणाली मे किसी न किसी प्रकार भाग लेता है। प्रजातन्त्रात्मक देशो मे व्यक्तियों को विशाल और व्यापक अधिकार प्रदान किये गए है। अत यह आवश्यक है कि देश के नागरिक को इस योग्य बनाया जाय कि वह शासन मे उचित प्रकार से भाग ले तथा अपने अधिकारो का उचित प्रयोग करना समझे। यह कार्य केवल शिक्षा के माध्यम द्वारा ही किया जा सकता है। प्रजातन्त्रात्मक या समाजवादी देशो मे राज्य की शक्ति केवल एक शासक तथा सेना मे ही निहित नही रहती। देश का प्रत्येक नागरिक शक्ति का प्रतीक है तथा शासन का अग है।

वास्तव मे देखा जाय तो व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी है। वह समाज मे ही उत्पन्न होता है तथा समाज मे ही उसकी समस्त शक्तियों का विकास होता है। ऐसी दशा मे समाज के महत्व को कैसे भुलाया जा सकता है। प्रसिद्ध विद्वान रेमाण्ट (Reymont) के अनुसार "जो विद्वान व्यक्ति को समाज के ऊपर स्थान देते हैं, उनको स्मरण रखना चाहिए कि नि समाज व्यक्ति कोरी कल्पना है।……शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तिगत चरित्र-गठन के साथ-साथ बालक को सच्चा सामाजिक प्राणी तथा नागरिक बनाना है"। समाज की उन्नति तथा अवनति पर व्यक्ति की उन्नति तथा अवनति निर्भर करती है। समाज मे रहकर व्यक्ति अपनी विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करता है तथा विभिन्न विचारों के आदान-प्रदान द्वारा अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। प्रत्येक प्रकार की सुरक्षा उसको समाज के कारण ही प्राप्त होती है। इस प्रकार हम देखते है कि समाज व्यक्ति के लिये परम उपयोगी, लाभदायक तथा आवश्यक है। व्यक्ति का समस्त विकास समाज मे निहित है, अत व्यक्ति समाज का ऋणी है। व्यक्ति का कर्तव्य है कि आवश्यकता पड़ने पर समाज के लिये अपना सब कुछ त्याग दे। इस कारण यह आवश्यक हो जाता है कि शिक्षा की व्यवस्था इस प्रकार की हो जिससे समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सके। समाज की तत्कालीन आवश्यकताओं के अनुसार ही शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण किया जाय।

शिक्षा मे सामाजिक उद्देश्यों का प्रतिपादन सर्वप्रथम हर्बर्ट स्पेंसर (Herbart Spencer) ने किया था। उन्होंने सर्वप्रथम इस बात पर बल दिया कि शिक्षा इस प्रकार की हो, जिससे व्यक्ति अपना गुणमय जीवन व्यतीत कर समाज की सेवा कर सके। प्रमुखतया समाज के दो रूप पाये जाते है :—प्रथम रूप मे, समाज या राज्य व्यक्ति से अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। यह समाज का उग्ररूप है। इसको दूसरे शब्दों मे राष्ट्र समाजवाद (State-Socialism) के नाम से भी पुकारते है। समाजवाद का दूसरा रूप प्रजातन्त्रीय है, जिसमे व्यक्ति को स्वतन्त्रता प्रदान की जाती है और उससे यह आशा की जाती है कि वह अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाए हुए समाज की सेवा करे। यहाँ हम समाजवाद के दोनों रूपों का सक्षेप में उल्लेख करेंगे :—

(१) राष्ट्र समाजवाद (State Socialism) :—राष्ट्र समाजवादी राज्य को व्यक्ति से अधिक महत्व प्रदान करते है। उनके अनुसार, "व्यक्ति राष्ट्र के लिये है, राष्ट्र व्यक्ति के लिये नही"। राष्ट्र का अपना पृथक् अस्तित्व है, वह स्वतन्त्र सत्ता के रूप मे कार्य करता है। इसके

के प्रति जागरूक हो और देश के प्रति अपने उत्तरदायित्व को समझता हो।" "...इस प्रकार के नागरिक बनाना शिक्षा का काम है। अतएव बालकों की शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे उनके स्वतन्त्र व्यक्तित्व का विकास हो और अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार समाज अथवा राष्ट्र की सेवा कर सकें। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रजातन्त्रात्मक समाजवाद में व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के विकास का पर्याप्त अवसर रहता है। बालक के सर्वाङ्गीण विकास के लिए पाठ्य-क्रम में विभिन्न सामाजिक विषयों का समावेश किया जाता है, जिससे वे नागरिकता की शिक्षा प्राप्त कर सकें। विद्यालयों में सामाजिक वातावरण उत्पन्न किया जाता है तथा इस बात का प्रबन्ध किया जाता है कि विद्यालय और समाज दोनों एक दूसरे के निकट आ सकें।

डिवी (Dewey) और बागले (Bagley) ने उपर्युक्त उद्देश्य को दूसरे रूप में प्रतिपादित किया है। वे इसे सामाजिक कुशलता (Social efficiency) के नाम से पुकारते हैं। डिवी (Dewey) के मतानुसार शिक्षा द्वारा इस प्रकार का वातावरण उत्पन्न किया जाये जिससे प्रत्येक बालक पूर्व के तथा भावी अनुभवों को भली प्रकार समझ सके और अपनी ईश्वर-प्रदत्त शक्तियों को विकसित कर परिस्थितियों के योग्य अपने को बना सके। उनके अनुसार सामाजिक कुशलता का अर्थ व्यक्ति द्वारा सामूहिक क्रियाओं में भाग लेने की क्षमताओं को उत्पन्न करने से है।[1] वे लिखते हैं कि डिवी के अनुसार पाठ्य-क्रम का संगठन उन विषयों को रखकर किया जाय जो सामाजिक जीवन के लिए उपयोगी हो। जहाँ तक सम्भव हो विद्यालय में सामाजिक क्रियाओं को विशेष रूप से महत्व प्रदान किया जाय।

वर्तमान युग में अधिकांश विद्वान
इस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था में व्यक्तिगत
परन्तु नागरिकता के उद्देश्य पर अत्यधिक
केवल राजनीति के लिए ही तैयार हो सकेगा। जीवन के अन्य क्षेत्रों में उसका विकास शून्य रहेगा।

इस पर भी संसार के प्रजातन्त्रात्मक देशों में नागरिकता की शिक्षा पर विशेष रूप से बल दिया जा रहा है। शिक्षा का संगठन इस ढंग से करने का प्रयत्न किया जा रहा है जिससे बालकों में नागरिकता का विकास हो सके। इस प्रकार के शिक्षा के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए नागरिक में निम्न गुणों को विकसित करने का प्रयत्न किया जाता है :—

(१) **राजनैतिक उत्तरदायित्व पालन की क्षमता** —शिक्षा की व्यवस्था में उन प्रणालियों का प्रयोग किया जाता है जिससे बालकों में नागरिकता का विकास हो सके। उन्हें अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान कराया जाता है, जिससे वे राजनीतिक जीवन में उनका उपयोग ठीक प्रकार से कर सकें। मताधिकार का उपयोग भी इसी दृष्टिकोण से सिखाया जाता है।

(२) **सामाजिकता की भावना का विकास** —मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में पारस्परिक सहयोग से रहना एक कला है। इस कला का ज्ञान कराना भी शिक्षा का उद्देश्य है। शिक्षा द्वारा उनमें सहानुभूति, आपसी सहयोग तथा सदाचार की भावनाओं का विकास किया जाय। वे समाज के प्रत्येक सदस्य को अपने परिवार के सदस्य के समान समझें।

(३) **सामान्य ज्ञान** :—प्रजातन्त्र को सफल बनाने के लिये देश के प्रत्येक नागरिक को सामान्य शिक्षा प्रदान करना परम आवश्यक हो जाता है। सामान्य-ज्ञान का तात्पर्य नागरिक को प्राथमिक शिक्षा तथा व्यावसायिक-शिक्षा प्रदान करने से है। साथ ही समस्त पाठ्य-विषयों का परिचय कराना भी इसके अन्तर्गत आता है। इस प्रकार की शिक्षा प्राप्त किया हुआ नागरिक राज्य की नींव को अपने सहयोग द्वारा दृढ़ करता है। उसके ज्ञान का विकास होता है जिससे वह अपने उत्तरदायित्व को भली प्रकार समझता है।

(४) **शारीरिक तथा मानसिक विकास** :—सामाजिक शिक्षा केवल मानसिक पक्ष की ओर ही संकेत नहीं करती है। राष्ट्र के विकास के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति का मानसिक

1. "Social efficiency as an educational purpose should mean, cultivation of power to join freely and fully in shared and common activities."

तथा शारीरिक दोनों विकास एक साथ हो। शारीरिक विकास राष्ट्र की सुरक्षा के लिये आवश्यक है तथा मानसिक विकास राष्ट्र की समस्याओं को समझने तथा हल करने के लिए।

(५) व्यावसायिक कुशलता —राज्य द्वारा इस प्रकार की शिक्षा प्रदान की जाय जिससे बालक भावी जीवन में अपने पैरों पर खड़ा हो सके।

Q 6 Good citizenship rather than individuality should be the aim of education Examine critically the implication of this statement and give reasons of your views.

Or

What is meant by Education for citizenship ? Show how is it becoming more important in recent times and mention the steps you would take to inculcate citizenship in your pupils

Ans. प्रजातन्त्रात्मक समाजवादी देशों में सामाजिक उद्देश्यों में नागरिकता के विकास को ही विशेष महत्व दिया है। क्योंकि प्रजातन्त्र की रक्षा के लिए उत्तम नागरिकों की आवश्यकता होती है। यदि देश के नागरिक उत्तम होंगे तो देश अपने आप उन्नति करेगा। देश की उन्नति अथवा अवनति उसके नागरिकों के उत्तम अथवा निकृष्ट नागरिकों पर निर्भर है। अच्छे नागरिकों से हमारा आशय उन लोगों से है जो स्वतन्त्र चिन्तन कर सकें, जिनमें निर्णय लेने की शक्ति हो, जो सच्चरित्र हों, और अपने कर्तव्यों के प्रति सजग हों और राष्ट्र के प्रति अपने उत्तरदायित्वों को समझते हों तथा उनको पालन करने की सामर्थ्य हो।

वह शिक्षा जो हमें अपने कर्तव्यों के प्रति जागरूक बनाती है, अथवा जो हम में परस्पर सहयोग से काम करने की भावना का विकास करती है अवश्य उत्तम है लेकिन शिक्षा का उद्देश्य केवल नागरिकता का विकास ही नहीं होना चाहिये। यदि व्यक्ति की शिक्षा के इसी उद्देश्य की ओर अधिक ध्यान दिया गया तो वह राजनैतिक क्षेत्र के लिये तो अच्छा साबित हो सकता है लेकिन जीवन के अन्य क्षेत्रों में असफल होगा। उसका मानसिक, चारित्रिक, आध्यात्मिक आदि प्रकार का विकास भी तो आवश्यक है।

यदि हम नागरिकता की शिक्षा देंगे तो व्यक्ति को अपने देश के प्रति उत्तरदायी तो अवश्य बना सकते हैं लेकिन इससे उसमें संकुचित राष्ट्रीय भावना उदय हो सकती है। जिसके उत्पन्न होने पर व्यक्ति अन्य देशों और जातियों के साथ सहिष्णुता का भाव खो बैठता है, वह आँख मूंदकर राष्ट्र का अनुसरण करता है, राष्ट्र धर्म को ही अपना धर्म मानकर राष्ट्र पर ही सर्वस्व निछावर कर देता है। राष्ट्र के सच्चे देश भक्त होने में तो किसी को आपत्ति नहीं है किन्तु संकुचित राष्ट्रीयता अवश्य आपत्ति-जनक है। जिस राष्ट्र में बालक और बालिकाओं को यह सिखाया जाता है कि उनकी सबसे बड़ी भक्ति उस राज्य के प्रति है जिसके वे सदस्य हैं, और उनको वही कार्य करना है जो राज्य की सरकार उन्हें करने का आदेश देती है, तथा अन्य राष्ट्रों को उपेक्षा की दृष्टि से देखता है तो ऐसी संकुचित भावना मानवता का अहित कर सकती है। मातृ-भूमि के प्रति प्रेम की भावना को मजबूत करने में कोई दोष नहीं है किन्तु मानवता ही के कार्य की अवहेलना करना ठीक नहीं है।

व्यक्तिगत और सामाजिक उद्देश्यों का सामंजस्य

Q. 7. Differentiate between the Individual and social aims of Education What are their respective values and limitations ? How far is it possible to strike a balance between the two ?

Or

There is no opposition between the Individual and the social aims of Education. State with reasons how far you accept this view ?

Or

According to some thinkers the aim of Education is the full development of individuality whereas according to other the social development should be the highest aim in democracy. How should you reconcile these two ideologies ?

Or

The idea that main function of the school is to socialize pupils in no way contradicts the view that its true function is to cultivate individuality Elucidate the statement.

Ans. नन महोदय की व्यक्तिवादी विचारधारा का अध्ययन करने से स्पष्ट हो गया होगा कि जिस व्यक्तिवादी शिक्षा दर्शन का संकेत उन्होंने अपने ग्रन्थ Education : its Data and First Principles में किया है वह विचारधारा व्यक्ति को समाज से अधिक प्रधान स्थान देते हुये भी समाज के महत्व की अवहेलना नहीं करती। इस पुस्तक में उन्होंने व्यक्तित्व के विकास तथा सामाजिक उद्देश्यों के बीच आभासी खाई को पाटने का प्रयत्न किया है।

वे वैयक्तिकता (Individuality) के दो रूप मानते हैं—आत्माभिव्यक्ति (Self-Ex- [illegible] (S[illegible]) [illegible] नेद[1] ऐसी दशा है [illegible] ये अपनी आत्मा [illegible] रोकती है और [illegible] है।

आत्माभिव्यक्ति में आत्म प्रकाशन की भावना प्रबल रहती है। आत्म प्रकाशन करने वाला व्यक्ति स्वच्छन्द हो सकता है और अपने कार्यों से दूसरों को हानि भी पहुँचा सकता है और इसलिए यदि वैयक्तिकता (Individuality) के विकास से हमारा आशय आत्मप्रकाशन के विकास से ही है तब तो शिक्षक सामाजिक और व्यक्तिवादी उद्देश्यों में सामंजस्य स्थापित करना कठिन हो जायगा। किन्तु यदि व्यक्तित्व के विकास से हमारा आशय आत्मानुभूति (self-realisation) से है तो सामाजिक तथा वैयक्तिक दोनों उद्देश्यों में समन्वय स्थापित किया जा सकता है। ऐसा व्यक्ति जिसे आत्मबोध हो चुका है समाज सेवा में रत रहता है।

ऐसा व्यक्ति जो अपना जीवन समाज की सेवा के लिए अर्पित कर देता है आत्मबोध प्राप्त करता हुआ अपनी शक्तियों और योग्यताओं को पूर्णरूपेण विकसित कर लेता है। व्यक्तित्व का विकास इस प्रकार सामाजिक वातावरण में ही होता है। सामाजिक रुचियाँ और सामाजिक कार्य व्यक्ति की रुचियाँ और कार्य बन जाते हैं, रौस का भी यही मत है। उस सामाजिक वातावरण से हीन जिसमें व्यक्ति का विकास होता हो व्यक्तित्व का कोई अर्थ नहीं। ऐसा व्यक्तित्व कोई माने नहीं रखता जो सामाजिक वातावरण से पृथक सत्ता वाला है।[2]

बात भी सही है। व्यक्ति समाज का एक अंग है और समाज व्यक्ति से बनता है और ऐसे व्यक्तियों से जिनमें वैयक्तिक विभिन्नतायें होती हैं और जिन विभिन्नताओं के अनुकूल शिक्षा देने की सलाह व्यक्तिवादी शिक्षा दार्शनिक देते हैं। व्यक्ति नितान्त अकेला नहीं रह सकता। वह समाज के लिये है और समाज उसके लिये। न तो व्यक्ति ही समाज की अवहेलना कर सकता है और न समाज ही व्यक्ति की। व्यक्तियों का हित समाज का हित है, समाज का कल्याण व्यक्तियों का कल्याण है, इसलिये व्यक्ति का कर्तव्य है कि उस समाज की आवश्यकताओं और मांगों की पूर्ति करे अथवा उसकी संस्थाओं, परम्पराओं और रूढ़ियों की रक्षा करे जो समाज उसका भरण पोषण करता हुआ उसकी शिक्षा के लिये उचित व्यवस्था करता है।

व्यक्ति और समाज दोनों का यह अस्तित्व स्वीकार कर लिया गया तो बालक की शिक्षा में व्यक्तित्व और सामाजिक उद्देश्यों में भी समन्वय स्थापित करना होगा।

इस समन्वय अथवा सामंजस्य का अर्थ क्या है? बालक की शिक्षा के लिए हमें ऐसा शिक्षा क्रम तैयार करना होगा जिसमें न तो समाज ही इतना शक्तिशाली बन जाय कि वह व्यक्ति का शोषण कर उठे, और न व्यक्ति को इतनी स्वच्छन्दता ही दे दी जाय कि वह समाज के आदर्शों को आघात पहुँचाता हुआ उसकी मान्यताओं की अवहेलना करने के लिए उद्यत हो जाय।

---

1. Individuality is of no value and personality is a meaningless term apart from the social environment in which they are developed and made manifest—Ross : *Groundwork of Educational Theory*, p. 52.
2. आत्मबोध से बुद्ध लोगों का आशय है आत्मिक विकास। यह आदर्श प्राचीन भारतीय शिक्षा का था जिसमें शिक्षा की आत्मिक शक्ति के विकास पर विशेष ध्यान दिया जाता था। उस व्यक्ति में आत्मिक शक्ति मानी जाती थी जो महर्षि पुरुष और ईश्वर को समझ सके।

एकांगी दृष्टिकोण से देखना अनुचित है। सांस्कृतिक उद्देश्य बालक को अवकाश का उपयोग भले ही सिखा दे परन्तु उसे आत्मनिर्भर नहीं बना सकता।

व्यावसायिक या जीविकोपार्जन का उद्देश्य (Vocational Aim of Education)

वर्तमान युग में "जीविका की समस्या" मानव के समक्ष एक प्रमुखतम है। संसार का प्रत्येक प्राणी किसी न किसी व्यवसाय द्वारा अपना पेट भरता है। शिक्षा उसके इस कार्य में सहायक होती है अतः आधुनिक युग में जीविकोपार्जन के उद्देश्य को शिक्षा में उचित स्थान दिया गया है। शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति अपने को किसी न किसी व्यवसाय के योग्य बनाता है, जिससे कि वह स्वयं अपना तथा अपने परिवार का पालन-पोषण कर सके। अभिभावक अपने बालकों को विद्यालय इस उद्देश्य से ही भेजते हैं कि वे शिक्षा प्राप्त करके किसी न किसी व्यवसाय के योग्य अपने को बना सकें। जो शिक्षा व्यावसायिक उद्देश्य को पूरा नहीं करती वह व्यर्थ मानी जाती है। शिक्षा के इस उद्देश्य को विभिन्न नामों से पुकारा गया है। कुछ विद्वान् इसे 'दाल-रोटी' का उद्देश्य कहते हैं तो कुछ 'व्हाइट कालर' (White collar Aim) के नाम से पुकारते हैं।

वास्तव में शिक्षा में जीविकोपार्जन का उद्देश्य अत्यन्त व्यावहारिक तथा यथार्थवादी है। हम भावुकता तथा आदर्शवाद की तरंग में बहकर भले ही जीवन के आर्थिक पक्षों की अवहेलना करें परन्तु बिना पेट भरे हम जीवन में शान्ति पूर्वक कभी भी अपना विकास नहीं कर सकते। हमारे जीवन के आदर्श चाहे कितने भी उच्चतम हों, परन्तु जीविका की समस्या का हल हमें सर्व प्रथम करना ही होगा। बिना 'अर्थ' के जीवन की कोई भी समस्या का हल नहीं होता। गान्धी जी ने शिक्षा को आत्म-निर्भर बनाने के लिये 'बेसिक-शिक्षा' का आविष्कार किया था जिसमें बालक शिक्षा समाप्त करने तक जीविका कमाने योग्य हो सके। अमेरिका में इस उद्देश्य को पर्याप्त महत्त्व प्रदान किया गया है। वहाँ पर प्रत्येक विद्यालय में व्यावसायिक निर्देशन (Vocational Guidance) का आयोजन किया गया है।

इस पर भी शिक्षा में केवल व्यावसायिक उद्देश्य को स्वीकार नहीं किया जा सकता है। पेट की समस्या का प्रबन्ध तो पशु भी कर लेते हैं। फिर मानव की बात तो दूसरी है। हमारे देश में शिक्षा का उद्देश्य जीविकोपार्जन कभी नहीं माना गया। शिक्षा में, जीविकोपार्जन उद्देश्य भौतिकता की ओर ले जाता है, परन्तु जीवन का वास्तविक उद्देश्य भौतिक सुखों की प्राप्ति नहीं है। यदि शिक्षा का लक्ष्य केवल पेट भरने तक रखा जाय तो शिक्षा पूर्णतया महत्वहीन हो जावेगी शिक्षा को हम इतने संकीर्ण बन्धन में नहीं बाँध सकते। शिक्षा का अर्थ अत्यन्त व्यापक और विस्तृत है। यदि हम शिक्षा को व्यवसाय प्राप्त करने का उद्देश्य मान लेते हैं तो शिक्षा स्वयं साध्य न रह कर साधन बन जाती है।

जीविका उद्देश्य व्यक्ति को भौतिकवादी बनाता है। परिणामस्वरूप व्यक्ति भौतिक सुखों की प्राप्ति के लिये एक दूसरे से प्रतिद्वन्द्विता व स्पर्धा करते हैं। भले तथा बुरे प्रत्येक प्रकार के साधनों से प्रत्येक अधिक से अधिक धन अर्जित करने का प्रयत्न करता है। रेमट के अनुसार "इसमें सन्देह नहीं कि जीविका-अर्जन मनुष्य-जीवन का बड़ा महत्वपूर्ण अंग है और कोई भी शिक्षा-योजना उसके प्रति उदासीन नहीं रह सकती, परन्तु इसी को शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य बनाना नितान्त भ्रमपूर्ण धारणा है क्योंकि जीविका अर्जन हमारी वर्तमान सभ्यता के व्यापक जीवन का एक अंश मात्र ही है। ...... जीविकोपार्जन के कार्यों के अतिरिक्त अन्य किसी बात में जिस मनुष्य को रुचि नहीं है, वह निस्सन्देह मानसिक तथा नैतिक, दोनों क्षेत्रों में जीवन के निम्न स्तर पर ही रहेगा। उसके जीवन में सरसता, सम्पूर्णता तथा सम्पन्नता का अभाव रहेगा।" वास्तव में अवकाश का उपयोग करने की शिक्षा भी जीवन को सरल बनाने के लिये परम आवश्यक है।

सर्वाङ्गीण विकास (The Harmonious Development Aim)

कुछ विद्वान् शिक्षा का ध्येय बालक का सर्वाङ्गीण विकास मानते हैं। दूसरे शब्दों में शिक्षा इस प्रकार से दी जाय कि, बालक की शारीरिक, मानसिक, तथा कलात्मक शक्तियों का [illegible]

करते हैं। प्रसिद्ध विद्वान् पैस्टालाजी के अनुसार समाज का सम्पूर्ण विकास व्यक्तियों के सम्पूर्ण विकास के ऊपर आधारित रहता है। संसार में प्रत्येक व्यक्ति कुछ जन्म-जात या मूलप्रवृत्तियों को लेकर आता है। यदि इन जन्मजात-प्रवृत्तियों का सम-विकास किया जाय तो व्यक्ति का सभी सम-विकास हो सकेगा जिस से उसके जीवन में सन्तुलन आ सकेगा। यदि एक मूल-प्रवृत्ति के विकास की ओर ही ध्यान दिया गया तो व्यक्ति का विकास एकांगी हो जायेगा फलस्वरूप उसके जीवन का सन्तुलन बिगड़ जायेगा। सन्तुलनहीन व्यक्ति समाज के लिये उपयोगी नहीं सिद्ध हो सकता। अतः शिक्षा का संगठन इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर किया जाय जिससे बालक का सर्वांगीण विकास हो सके। शिक्षा इस प्रकार की न हो जो कि उसे केवल व्यवसायी या केवल कलाकार ही बना कर छोड़ दे, वरन् इसके विपरीत शिक्षा व्यक्ति की समस्त शक्तियों को समान दिशा में विकसित करने वाली होनी चाहिए। गान्धी जी का भी कथन था कि शिक्षा व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करने वाली होनी चाहिये जैसा कि वे लिखते हैं "By Education I mean an all-round drawing out the best in child and man—body, mind and spirit." आज हम देखते हैं कि भौतिक युग में अधिकांश व्यक्ति व्यावसायिक कुशलता प्राप्त करके अपने बौद्धिक स्तर को संकीर्ण बना लेते हैं। वे इस बात की तनिक भी चिन्ता नहीं करते कि जीवन में अन्य दिशायें भी हैं जिनमें मस्तिष्क के विकास की परम आवश्यकता है। विज्ञान के क्षेत्र में *रुचि लेने वाले व्यक्ति सौन्दर्य और कला की दुनिया से बहुत दूर रहते हैं।*

परन्तु इस पर भी शिक्षा में सर्वांगीण-विकास का उद्देश्य अत्यन्त कल्पनापूर्ण तथा अस्पष्ट है। व्यक्तित्व के सर्वांगीण-विकास से हमारा क्या तात्पर्य है इसकी व्याख्या भी अत्यन्त जटिल है। हमारे पास कोई भी ऐसा माप-दण्ड नहीं है जिसके आधार पर हम कह सकते हैं कि अमुक व्यक्ति का सर्वांगीण विकास हो गया। दूसरे सम-विकास के लिये विभिन्न प्रवृत्तियों को किस अनुपात में रखा जाय। हम विभिन्न प्रवृत्तियों को एक से अनुपात में नहीं रख सकते हैं। यदि हम ऐसा करते हैं तो संसार में व्यक्तिगत भिन्नता नाम की कोई वस्तु नहीं रहेगी। तीसरे संसार के महान् व्यक्तियों ने एक दिशा में अपनी शक्तियों को लगा कर सफलता प्राप्त भी की और संसार को बहुत कुछ दिया है।

शारीरिक-विकास का उद्देश्य (Physical Development Aim)

प्राचीन काल में कुछ देशों में शिक्षा का सर्वोत्तम उद्देश्य शारीरिक विकास करना माना गया था। ग्रीस के स्पार्टा राज्य में इस उद्देश्य को प्रमुखता दी गई थी। इस उद्देश्य के समर्थकों के अनुसार शिक्षा का महानतम उद्देश्य शारीरिक विकास करना है। प्राचीन काल में ग्रीस के राज्यों में शारीरिक विकास की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता था। राज्य का प्रमुख उद्देश्य कुशल तथा शक्तिशाली नागरिकों को शिक्षा देना था। पाठ्य-क्रम में खेल-कूद, व्यायाम आदि विषयों को सम्मिलित किया गया था। प्लेटो ने भी शिक्षा में शारीरिक-विकास को विशेष स्थान दिया है। रूसो बालक के अनुसार भी शिक्षा में शारीरिक विकास को महत्व देना परम आवश्यक है। रूसो बालक की शिक्षा में खेल-कूद तथा व्यायाम को अत्यधिक महत्व देता था। खेल-कूद तथा व्यायाम की शिक्षा द्वारा बालक का शारीरिक विकास होता है। रूसो शारीरिक विकास को अत्यधिक महत्व इस कारण देता था क्योंकि उसके अनुसार स्वस्थ व्यक्ति ही समाज में सफल हो सकते हैं। यदि शरीर स्वस्थ नहीं रहेगा तो मानसिक विकास भी सम्भव नहीं है। दुर्बल और अस्वस्थ व्यक्ति समाज के लिये भार होते हैं तथा उनका चरित्र भी दुर्बल होता है। दुर्बल और शक्तिहीन व्यक्तियों से बना राष्ट्र भी शक्तिहीन और दुर्बल होता है। इस प्रकार शारीरिक विकास के द्वारा राष्ट्र और व्यक्ति दोनों को लाभ होता है।

इस पर भी केवल शारीरिक विकास को शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य स्वीकार नहीं किया जा सकता। यदि हम शिक्षा को केवल शारीरिक विकास के लिये मानते हैं तो बालक का व्यक्तित्व एकांगी हो जायेगा। शारीरिक विकास के समान बालक की मानसिक शक्तियों का अत्यधिक महत्व है। वास्तव में उत्तम शिक्षा बालक के शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार के विकास रखती है। केवल शारीरिक विकास को महत्व देने का तात्पर्य समाज में शक्ति को ही सब कुछ स्वीकार करना है। समाज का प्रत्येक सदस्य शक्ति के आधार पर ही अपनी बात मनवाने का प्रयत्न करेगा।

पूर्ण जीवन की तैयारी का उद्देश्य (The Complete Living Aim)

जीवन की पूर्णता को भी शिक्षा शास्त्री शिक्षा का उद्देश्य मानते हैं। उनका तर्क है कि इस उद्देश्य को स्वीकार कर लेने से बालक के विकास मे एकांगिता नही रहती जैसा कि अन्य उद्देश्यों मे होता है। इस उद्देश्य के प्रमुख समर्थक हरबर्ट स्पेन्सर थे। उनका मत था कि "शिक्षा का अर्थ हमे पूर्ण जीवन के लिये तैयार करना है, और किसी भी शिक्षा-प्रणाली को विवेक-पूर्ण आलोचना करने का केवल एक ही मार्ग—यह देखना है कि इस उद्देश्य मे वह किस सीमा तक सफल होता है।" स्पेन्सर का मत था कि व्यक्ति का विकास जीवन के एक क्षेत्र मे न होकर सर्वांगीण होना चाहिये। उसने जीवन की समस्त क्रियाओं को पाँच भागो मे विभाजित किया है। ये क्रियाएँ निम्न हैं—

(१) आत्म-रक्षा से सम्बन्ध रखने वाली क्रियाएँ, जिनसे हमारा शरीर सुरक्षित रहता है। इन क्रियाओं में प्रवीण होने के लिये वह स्वास्थ्य-विज्ञान, पदार्थ विज्ञान, तथा शरीर विज्ञान को पाठ्य-क्रम मे स्थान देता है।

(२) दूसरे नम्बर पर स्पेन्सर उन क्रियाओं को रखता है जो जीवन को यथेष्ट रूप से सुरक्षित रखती हैं। इन क्रियाओं मे कुशलता प्राप्त करने के लिये छात्रों को भाषा विज्ञान, समाज विज्ञान, गणित, आदि विषयो को पढने की सलाह देता है।

(३) तीसरी वे क्रियाएँ होती हैं जिनका सम्बन्ध सन्तान उत्पत्ति या प्रजनन सम्बन्धी कार्यों से है। इन क्रियाओं को भली प्रकार से समझने के लिये, मनोविज्ञान, स्वास्थ्य-विज्ञान तथा बाल मनोविज्ञान आदि विषयो का अध्ययन करना आवश्यक है।

(४) चौथी क्रियाएँ हमारे सामाजिक तथा राजनैतिक जीवन से सम्बन्धित हैं। इस क्षेत्र मे सफल होने के लिये समाज-शास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास आदि का अध्ययन उपयोगी है।

(५) स्पेन्सर ने अन्त मे उन क्रियाओं का उल्लेख किया है जो अवकाश के समय से सम्बन्धित हैं। इन क्रियाओं के द्वारा व्यक्ति अवकाश का प्रयोग करता है। ऐसी क्रियाओं को प्रभावशाली तथा लाभदायक बनाने के लिये वह सगीत, कला तथा साहित्य के अध्ययन की आवश्यकता मानता है।

परन्तु स्पेन्सर के उपरोक्त मत की भी विद्वानो ने कडी आलोचना की है। विद्वानों का कथन है कि शिक्षा का यह उद्देश्य देखने मे जितना आकर्षक ज्ञात होता है उतना ही यह अव्यावहारिक तथा काल्पनिक है। स्पेन्सर ने शिक्षा का उद्देश्य जीवन की पूर्णता तो बताया परन्तु यह उसने स्पष्ट नहीं किया कि जीवन की पूर्णता है किस बात मे। प्रत्येक विद्वान् जीवन में पूर्णता का अर्थ अपने अनुसार लगा सकता है। दूसरे स्पेन्सर ने विषयो का चुनाव करते समय केवल उनकी उपयोगिता पर ही ध्यान दिया है। उसमे बाल-रुचि के पक्ष की पूर्ण अवहेलना की गई है जो कि पूर्णतया अमनोवैज्ञानिक है। साथ ही उसने आध्यात्मिक विकास करने वाले विषयो को पूर्णतया छोड़ दिया है। अपने पाठ्यक्रम मे उसने धर्म को कोई भी स्थान नही प्रदान किया है।

अवकाश का सदुपयोग (Eduation for leisure)—अवकाश का सदुपयोग करने की शिक्षा प्रदान करना भी कुछ विद्वानों के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए। शिक्षा हमको केवल कुशलता पूर्वक जीविका कमाने की ही क्षमता नही प्रदान करती वरन् हम उसके द्वारा अवकाश का सदुपयोग भी सीख सकते हैं। इस मत के प्रतिपादकों के अनुसार शिक्षा का वास्तविक कार्य अवकाश का उपयोग सिखाना है। अत. शिक्षा केवल उस वर्ग या समुदाय के लिए है जिसके पास अत्यधिक अवकाश है। यदि इस प्रकार के वर्ग को अवकाश का उपयोग नहीं सिखाया जायेगा तो वे अपने अवकाश के समय को बुरे कामों मे लगायेंगे। इस कारण शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्तियों को अवकाश का सदुपयोग सिखाना होना चाहिए। जिन मनुष्यो के पास अवकाश नहीं उनको शिक्षा की कोई आवश्यकता ही नही है।

वर्तमान युग मे इस उद्देश्य को कोई महत्त्व नही देता। यह उद्देश्य प्रजातन्त्र की विचारधारा के पूर्णतया विपरीत है। शिक्षा किसी एक वर्ग के लिए न होकर समस्त जाति

समाज के लिए है। मजदूर और किसान जो हर समय काम मे लगे रहते हैं, उन्हे हम शिक्षा महान् अधिकारो से वंचित नही कर सकते। प्रजातन्त्र की मॉग है कि शारीरिक श्रम करने व मजदूरो के लिए शिक्षा उतनी ही आवश्यक है जितनी कि पूंजीपनियों के लिये। दूसरे शिक्षा कार्य केवल अवकाश का सदुपयोग ही नहीं सिखाना है वरन् जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के लिए व्या को तैयार करता है।

शिक्षा ज्ञान के लिए (Knowledge Aim)—यह उद्देश्य कोई नया उद्देश्य न है। प्राचीन काल से ही विद्वानो के मतानुसार शिक्षा का प्रमुख ध्येय ज्ञान प्राप्ति रहा है बालक विद्यालयों में या गुरुओ के पास इसी उद्देश्य से जाया करते थे। जैसे-जैसे बालक का ज्ञा बढ़ता जाता है वैसे ही वह समाज के अनुकूल अपने को बनाता जाता है। ज्ञान के अभाव मे क भी व्यक्ति अपने को समाज के अनुकूल नही बना सकता। प्रसिद्ध दार्शनिक कोमेनियस (Come ius) इस मत का प्रमुख समर्थक था। उसका मत था कि अध्यापक का सर्व प्रथम कार्य बालक ज्ञान प्रदान करना है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यह उद्देश्य जीविकोपार्जन के उद्देश्य पूर्णतया विपरीत है। परन्तु शिक्षा को केवल ज्ञान प्राप्ति के लिए मानने मे अनेको कठिनाइ आती हैं। अधिकाश विद्वान् ज्ञान का अर्थ पुस्तकीय ज्ञान से लगाते हैं और वे बालक अधिक से अधिक पुस्तकीय ज्ञान प्रदान करने के पक्ष मे हैं। बालक को पुस्तकें अधिक अधिक रटने के लिये बाध्य किया जाता है। अधिकाश अध्यापक इस बात की चिन्ता न करते कि विषय बालक की रुचि के अनुकूल है या नही या बालक की समझ मे कुछ आ र है या नही। इस प्रकार बालक के ऊपर केवल ज्ञान थोपने का प्रयत्न किया जाता है। ज्ञान उपयोग भविष्य के लिए भी कुछ किया जा सकता है या नही इसको कही भी स्थान नही दि गया है।

अध्याय ३

शिक्षा के स्रोत

Q. 1 Discuss briefly the relation (as it ought to be) between the various agencies of Education, Formal and Informal. *(A U 1950)*

Or

What is meant by formal and informal agencies of Education ? Show why it has become more important in recent times to establish coordination between them *(A U. B T. 1958)*

Or

Distinguish between active and passive agencies of Education, giving examples *(P U. B T. 1957 Suppl.)*

Ans. शिक्षा को दो रूपो मे बाँटा जा सकता है प्रथम नियमित तथा दूसरी अनियमित।

नियमित शिक्षा (Formal Education) —नियमित शिक्षा बालक को व्यवस्थित तथा विधिवत् प्रदान की जाती है। शिक्षा के इस रूप मे शिक्षा की योजना पहले से बना ली जाती है, दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि नियमित शिक्षा मे पाठ्य-क्रम तथा नियम आदि का निर्धारण पहले से ही कर लिया जाता है। बालकों को जो ज्ञान प्रदान किया जाता है वह भी निश्चित रहता है और अध्ययन काल भी निश्चित रहता है। इस प्रकार की शिक्षा प्रदान करने वाली प्रमुख संस्था विद्यालय है। नियमित शिक्षा का सबसे बडा दोष यह है कि शिक्षा पाठ्य-क्रम मे जकड़ी रहती है परिणामस्वरूप बालक अनुभवहीन हो जाता है।

अनियमित-शिक्षा (Informal Education) —अनियमित शिक्षा समाज में रह कर बालक स्वत प्राप्त करता रहता है। इस प्रकार की शिक्षा मे कोई पूर्व आयोजन नही होता। दूसरे शब्दो मे हम कह सकते हैं कि अकृत्रिम तथा स्वाभाविक ढंग से जो शिक्षा प्राप्त होती है उसे अनियमित शिक्षा कहते हैं। इस शिक्षा का आरम्भ बालक के जन्म काल से ही हो जाता है। नियमित शिक्षा के समान अनियमित शिक्षा प्राप्त करने का कोई विशेष स्थान नही है; वरन यह शिक्षा घर, बाहर खेल के मैदान मे, यात्रा करते समय तथा समारोह आदि मे भाग लेते समय प्राप्त होती रहती है। बालक के सम्पर्क मे आने वाले समाज के सदस्य उसके अध्यापक होते हैं। यह शिक्षा समय तथा पाठ्य-क्रम के बंधन से मुक्त होती है। अब हमें यह देखना है कि शिक्षा प्रदान करने वाली कौन-कौन सी संस्थायें हैं। जो संस्थायें नियमित रूप से शिक्षा प्रदान करती हैं उन्हें हम नियमित संस्थायें कहते हैं उदाहरण के लिये विद्यालय। इस संस्था के विपरीत, घर, समाज, राज्य तथा धर्म अनियमित शिक्षा संस्थायें हैं इनमे विधिवत शिक्षा प्रदान करने की कोई व्यवस्था नही होती। इन शिक्षा संस्थाओ के प्रबन्ध के लिये कोई विशेष प्रयास की आवश्यकता नहीं होती। ये बालक के ऊपर अपना अप्रत्यक्ष प्रभाव डालती रहती हैं। शिक्षा प्रदान करने वाली संस्थाओं का विभाजन एक अन्य प्रकार से और किया जाता है—सक्रिय संस्थायें तथा निष्क्रिय संस्थायें।

समाज के लिए है। मजदूर और किसान जो हर समय काम में लगे रहते हैं, उन्हें हम शिक्षा के
महान् अधिकारों से वंचित नहीं कर सकते। प्रजातन्त्र की माँग है कि शारीरिक श्रम करने वाले
मजदूरों के लिए शिक्षा उतनी ही आवश्यक है जितनी कि पूंजीपतियों के लिये। दूसरे शिक्षा का
कार्य केवल अवकाश का सदुपयोग ही नहीं सिखाता है वरन् जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के लिए व्यक्ति
को तैयार करता है।

शिक्षा ज्ञान के लिए (Knowledge Aim)—यह उद्देश्य कोई नया उद्देश्य नहीं
है। प्राचीन काल से ही विद्वानों के मतानुसार शिक्षा का प्रमुख ध्येय ज्ञान प्राप्ति रहा है।
बालक विद्यालयों में या गुरुओं के पास इसी उद्देश्य से जाया करते थे। जैसे-जैसे बालक का ज्ञान
बढ़ता जाता है वैसे ही वह समाज के अनुकूल अपने को बनाता जाता है। ज्ञान के अभाव में कोई
भी व्यक्ति अपने को समाज के अनुकूल नहीं बना सकता। प्रसिद्ध दार्शनिक कोमेनियस (Comen
ius) इस मत का प्रमुख समर्थक था। उसका मत था कि अध्यापक का सर्व प्रथम कार्य बालक को
ज्ञान प्रदान करना है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यह उद्देश्य जीविकोपार्जन के उद्देश्य के
पूर्णतया विपरीत है। परन्तु शिक्षा को केवल ज्ञान प्राप्ति के लिए मानने में अनेकों कठिनाइयाँ
आती हैं। अधिकांश विद्वान् ज्ञान का अर्थ पुस्तकीय ज्ञान से लगाते हैं और वे बालक को
अधिक से अधिक पुस्तकीय ज्ञान प्रदान करने के पक्ष में हैं। बालक को पुस्तकें अधिक से
अधिक रटने के लिये बाध्य किया जाता है। अधिकांश अध्यापक इस बात की चिन्ता नहीं
करते कि विषय बालक की रुचि के अनुकूल है या नहीं या बालक की समझ में कुछ आ रहा
है या नहीं। इस प्रकार बालक के ऊपर केवल ज्ञान थोपने का प्रयत्न किया जाता है। ज्ञान का
उपयोग भविष्य के लिए भी कुछ किया जा सकता है या नहीं इसको कहीं भी स्थान नहीं दिया
गया है।

अध्याय ३

शिक्षा के स्रोत

Q. 1 Discuss briefly the relation (as it ought to be) between the various agencies of Education, Formal and Informal. *(A U 1950)*

Or

What is meant by formal and informal agencies of Education? Show why it has become more important in recent times to establish coordination between them *(A U. B T 1958)*

Or

Distinguish between active and passive agencies of Education, giving examples. *(P. U. B. T. 1957 Suppl.)*

Ans. शिक्षा को दो रूपों में बाँटा जा सकता है : प्रथम नियमित तथा दूसरी अनियमित।

नियमित शिक्षा (Formal Education) —नियमित शिक्षा बालक को व्यवस्थित तथा विधिवत् प्रदान की जाती है। शिक्षा के इस रूप में शिक्षा की योजना पहले से बना ली जाती है, दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि नियमित शिक्षा में पाठ्य-क्रम तथा नियम आदि का निर्धारण पहले से ही कर लिया जाता है। बालकों को जो ज्ञान प्रदान किया जाता है वह भी निश्चित रहता है और अध्ययन काल भी निश्चित रहता है। इस प्रकार की शिक्षा प्रदान करने वाली प्रमुख संस्था विद्यालय है। नियमित शिक्षा का सबसे बड़ा दोष यह है कि शिक्षा पाठ्य-क्रम में जकड़ी रहती है परिणामस्वरूप बालक अनुभवहीन हो जाता है।

अनियमित-शिक्षा (Informal Education) —अनियमित शिक्षा समाज में रह कर बालक स्वतः प्राप्त करता रहता है। इस प्रकार की शिक्षा में कोई पूर्व आयोजन नहीं होता। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि अकृत्रिम तथा स्वाभाविक ढंग से जो शिक्षा प्राप्त होती है उसे अनियमित शिक्षा कहते हैं। इस शिक्षा का प्रारम्भ बालक के जन्म काल से ही हो जाता है। नियमित शिक्षा के समान अनियमित शिक्षा प्राप्त करने का कोई विशेष स्थान नहीं है; वरन यह शिक्षा घर, बाहर खेल के मैदान में, यात्रा करते समय तथा समारोह आदि में भाग लेते समय प्राप्त होती रहती है। बालक के सम्पर्क में आने वाले समाज के सदस्य उसके अध्यापक होते हैं। यह शिक्षा समय तथा पाठ्य-क्रम के बंधन से मुक्त होती है। अब हमें यह देखना है कि शिक्षा प्रदान करने वाली कौन-कौन सी संस्थायें हैं। जो संस्थायें नियमित रूप से शिक्षा प्रदान करती हैं उन्हें हम नियमित संस्थायें कहते हैं उदाहरण के लिये विद्यालय। इस संस्था के विपरीत, घर, समाज, राज्य तथा धर्म अनियमित शिक्षा संस्थायें हैं इनमें विधिवत् शिक्षा प्रदान करने की कोई व्यवस्था नहीं होती। इन शिक्षा संस्थाओं के प्रबन्ध के लिये कोई विशेष प्रयास की आवश्यकता नहीं होती। ये बालक के ऊपर अपना अप्रत्यक्ष प्रभाव डालती रहती हैं। शिक्षा प्रदान करने वाली संस्थाओं का विभाजन एक अन्य प्रकार से और किया जाता है—सक्रिय संस्थायें तथा निष्क्रिय संस्थायें।

सक्रिय संस्थायें —जिन सस्थाग्रो मे उनके सदस्य एक दूसरे को प्रभावित कर स उन्हे सक्रिय सस्थायें कहते हैं। सक्रिय सस्थाग्रो के सदस्य ग्रापस मे विचारों का ग्रादान प्रदान करते है। उदाहरण के लिये परिवार के समस्त सदस्य ग्रापस मे बोलते चालते हैं तथ उठते बैठते हैं और एक दूसरे को प्रभावित करते रहते है। इसी प्रकार विद्यालय मे ग्रध्याप ग्रपने शिष्य को प्रभावित करता है, तथा शिष्य ग्रध्यापक से प्रश्नो के माध्यम से सम्पर्क स्थापि करता है।

निष्क्रिय सस्थायें —शिक्षा प्रदान करने की वे सस्थायें जो दूसरो को तो प्रभावित करत हैं परन्तु स्वय प्रभावित नही होती। उदाहरण के लिये रेडियो, ग्रामोफोन, टेलीविजन, चलचि समाचार-पत्र ग्रादि।

ग्रब हमे देखना है कि इस कथन मे कहाँ तक सत्य है कि 'व्यक्ति का निर्माण ग्रनियमि शिक्षा द्वारा ही हुग्रा है।' ग्रनियमित शिक्षा क्या है इसका उल्लेख हम पहले ही कर चुके हैं। बाल के ऊपर विद्यालय का इतना प्रभाव नही पडता जितना कि ग्रनियमित शिक्षा प्रदान करने वाल संस्थाग्रो का, क्योंकि विद्यालय मे बालक केवल पाँच छ घन्टे ही ग्रध्ययन करता है और शेष सम उसका घर तथा समाज के व्यक्तियों के मध्य मे व्यतीत होता है। बालक का जन्म परिवार मे होत है। वह जीवन की समस्त ग्रावश्यक क्रियाएँ ग्रपने परिवार मे ही सीखता है। माता पिता ग्राचरण का उस पर ग्रत्यधिक प्रभाव पडता है, माता पिता जैसा ग्राचरण करते हैं वैसा ग्राचरण बालक करते हैं। जिन परिवारो का वातावरण शान्तिमय तथा ग्रादर्शवादी होता है उन रहने वाले बालक भी सभ्य तथा ग्रध्ययनशील होते हैं।

परिवार के समान धार्मिक सस्थायें भी शिक्षा प्रदान करने का कार्य प्राचीन काल ही करती ग्रा रही हैं। धर्म के माध्यम से जनसाधारण ने पर्याप्त मात्रा मे ज्ञान की प्राप्ति क है। डा० सुबोध ग्रदावल के शब्दो मे "मानव जीवन मे धर्म का स्थान सदैव महत्त्वपूर्ण रहा है मनुष्य की ग्राध्यात्मिक शान्ति के लिए धर्म ने ग्रादिकाल से सफल प्रयत्न किये हैं,......वास्त मे सकल विश्व मे जो कुछ भी सत्य है, शिव तथा सुन्दर है मनुष्य को उसकी ग्रोर उन्मुख कराने का प्रयत्न धर्म ने ही किया है।" ससार के महान धर्म प्रवर्तक महान शिक्षक हुए हैं उन्होंने ग्रपने ज्ञान के माध्यम से ससार को सदा मार्ग दिखाया है। (धर्म का महत्त्व ग्रगले प्रश्न मे विस्तार से दिया है।)

शिक्षा मे परिवार का महत्व

Q 2. What is the influence of home Education on the *school* **Edu cation of the child in our country ? Describe what influence ought to be an** *suggest ways and means to achieve the same.* *(A. U. 1952*

Or

Discuss the contribution that can and should be made by the *hom* **in the development and education of the child** *(P U. B. T. 1953*

Or

Estimate the importance of home as an agency of Education. How ha the modern industrialization effected its relation to the school ? *(P U. B T. 1955*

Or

Discuss the place and importance of the home in the Education of child What steps would you take to ensure proper co-ordination between school an home for the healthy development of the child ? *(B. T 1958*

Ans परिवार का महत्व —परिवार मानव जाति का प्राचीनतम संघ है। बालक का लालन पालन से लेकर उसका सम्पूर्ण विकास परिवार के ग्रन्दर ही होता है। व्यक्ति की शैश ग्रवस्था में पालन-पोषण का कार्य जितनी ग्रच्छी तरह मे परिवार मे हो सकता है, उतन ग्रन्यत्र दुर्लभ है, क्यों कि माता पिता के ग्रतिरिक्त ग्रौर दूसरा व्यक्ति बालकों के प्रति स्वाभावि

प्रेम प्रदर्शित नहीं कर सकता। माता पिता अपने बालक के लालन पालन में एक आनन्द का अनुभव करते हैं। स्नेह, सहानुभूति, सेवा, सहयोग तथा आज्ञापालन और अनुशासन की भावना का उदय केवल कुटुम्ब के अन्दर ही होता है। बालक अपने स्वाभाविक सम्बन्धों का ज्ञान परिवार के अन्दर ही करता है। प्रत्येक परिवार में कुछ सदस्य होते हैं, इन सदस्यों के मध्य आदान प्रदान होता रहता है। आदान-प्रदान के द्वारा ही सामाजिकता की भावना का उदय होता है।

परिवार का शिक्षा में स्थान

(१) समस्त शिक्षा संस्थाओं में घर को प्राचीनतम संस्था कहा जा सकता है। घर के माता पिता बालक के प्रथम गुरु होते हैं। उनका प्रभाव बालक पर अत्यधिक पड़ता है। माँ बापों के उत्तम आचरण द्वारा बालक भी अपने आचरणों का निर्माण करता है। माँ बापों के पश्चात् बड़े भाई बहन तथा परिवार के अन्य सदस्य बालक को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार परिवार या घर में शिक्षा का वातावरण उत्पन्न हो जाता है जो बालक को अनजाने में प्रभावित करता रहता है।

(२) बालक के ऊपर घर का प्रभाव अत्यन्त दृढ़ होता है। यदि घर के सदस्य अर्थात् माता पिता बालक की, शिक्षा तथा विकास की ओर ध्यान नहीं देते हैं तो शिक्षक का कार्य अत्यन्त कठिन हो जाता है। ऐसी दशा में बालक का विकास ठीक दिशा में नहीं हो सकता।

(३) प्रत्येक परिवार का अपना निजी व्यक्तित्व होता है। परिवार का प्रत्येक सदस्य अपने परिवार की मान मर्यादा की रक्षा करना चाहता है। जो परम्परायें प्राचीन काल से चली आ रही हैं उनका पालन करना परिवार का प्रत्येक सदस्य अपना पावन कर्तव्य मानता है। यही भावना आगे चलकर बालक में सामाजिकता तथा राष्ट्रीयता की भावना का रूप धारण कर लेती है।

(४) बालक को अपनी विविध ज्ञानेन्द्रियों को शिक्षित करने का अवसर परिवार में ही मिलता है। समय पर उठना, समय पर खाना खाना, समय पर सोना आदि की आदतें परिवार में ही सीखता है।

(५) बालक को आत्म-प्रकाशन का अवसर सर्वप्रथम परिवार में ही मिलता है। वह अनेकों प्रकार से अपनी इच्छाओं को प्रकट करता है। यदि वह अच्छी बात की माँग करता है तो वह स्वीकार कर ली जाती है और यदि उसकी माँग दोषपूर्ण है तो उसकी अवहेलना की जाती है। इस प्रकार अच्छी बातों के प्रति अनुकरण करना तथा भावनाओं का प्रकाशन बालक परिवार में ही सीखता है।

(६) बालक में आत्मसम्मान तथा आत्मगौरव की भावना परिवार में ही उत्पन्न होती है क्योंकि यदि बालक अच्छा काम करता है तो उसके मातापिता उसका सम्मान करते हैं और उसे आदर के साथ प्यार तथा स्नेह प्रदान करते हैं।

(७) परिवार बालक की विभिन्न मूल प्रवृत्तियों का शोधन कर उसके व्यक्तित्व का विकास करता है। साथ ही परिवार में रहकर बालक विभिन्न संवेगात्मक अनुभव प्राप्त करता है। इन संवेगात्मक अनुभवों के माध्यम से ही बालक सीखता है।

(८) सर्वप्रथम भाषा का ज्ञान बालक को अपने परिवार में ही होता है। यदि माता पिता शुद्ध भाषा का प्रयोग करते हैं तो बालक भी शुद्ध भाषा बोलते हैं। शब्दों के उच्चारण का प्रभाव बालक पर अत्यधिक पड़ता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि परिवार बालक की शिक्षा का प्रमुख स्थल है। बालक का भविष्य बहुत कुछ परिवार के ऊपर ही निर्भर करता है। समय तथा आज्ञा पालन की शिक्षा बालक को परिवार में ही मिलती है। मेजनी के शब्दों में "The child learns the best lesson of citizenship between the kiss of the mother and cares of the father." बालक नागरिकता का सुन्दरतम पाठ माता के चुम्बन और पिता के दुलार में सीखता है। इसी कारण परिवार को नागरिकता की पाठशाला कहा गया है।

परिवार के कर्तव्य

(१) परिवार बालक की शिक्षा का प्रमुख स्थान है। उसके ऊपर परिवार का सब से अधिक प्रभाव पड़ता है अतः यह आवश्यक है कि माता पिता अपने परिवार का वातावरण शुद्ध तथा पवित्र बनाये रखें। कलहपूर्ण तथा अपवित्र परिवार के सदस्यों के लिये हानिकारक होता है।

(२) माता पिता का कर्तव्य है कि वे अपने बालकों की मूलप्रवृत्तियों का शोधन कर उन्हें सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करें। यदि परिवार के वातावरण में बालक की मूल प्रवृत्तियों के शोधन को महत्व प्रदान किया जाता है तो आगे चलकर बालक के व्यक्तित्व का विकास स्वतः होता रहेगा। जहाँ बालक की मूल प्रवृत्तियों की ओर ध्यान नहीं दिया जाता है वहाँ के बालक अत्यन्त उद्दण्ड विचारधारा के होते हैं।

(३) अभिभावकों को घर का निवास स्थान ऐसे स्थान पर रखना चाहिये जहाँ का वातावरण पूर्णतया शान्तिमय तथा पवित्र हो। संकीर्ण गलियों और बाजारों में बने मकान बालकों के स्वास्थ्य पर हानिकारक प्रभाव डालते हैं। भवन के प्रत्येक कमरे में पर्याप्त हवा-दार खिड़कियाँ हों। आसपास का वातावरण वायु-युक्त खुला हुआ होना चाहिये। आसपास यदि घास के मैदान का छोटा सा उपवन हो तो बहुत ही अच्छा है। स्वच्छता तथा प्रकाशमय वाता-वरण से बालक का हृदय प्रसन्न रहता है।

(४) घर के वातावरण के अतिरिक्त बालक के भोजन पर भी अभिभावकों को विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। बालक के शरीर का विकास सन्तुलित तथा पुष्टिकारक भोजन के ऊपर निर्भर करता है। अतः आर्थिक क्षमता के अनुसार अभिभावकों का कर्तव्य हो जाता है कि वे अपने बालकों को उनकी अवस्था के अनुसार पौष्टिक भोजन प्रदान करें। भोजन के अन्दर आवश्यक मात्रा में, शक्कर, चर्बी, श्वेतसार, प्रोटीन, विटामिन होनी चाहिये। चरपरे, मसालेदार भोजन की आदत बालकों को नहीं डाली जाय।

(५) घर के अन्दर बालक के सर्वांगीण विकास की चेष्टा की जानी चाहिये। अधिकांश परिवारों में बालक के एकांगी विकास की ओर ध्यान दिया जाता है। उदाहरण के लिये किसी परिवार में पढ़ने पर अधिक बल दिया जाता है तो किसी में खेलने पर। कुछ परिवार सांस्कृतिक कार्यों को अधिक महत्व प्रदान करते हैं। इस प्रकार की व्यवस्था से बालक का एकांगी विकास होता है। परन्तु परिवार का प्रयत्न बालक का सर्वांगीण विकास करने की ओर होना चाहिये। बालक को खेलने कूदने के साथ साथ पढ़ने-लिखने तथा सांस्कृतिक कार्यों की ओर भी उत्साहित करना चाहिये।

(६) बालक की कल्पनाशक्ति का विकास उसके बौद्धिक विकास के लिये परम आवश्यक है अतः माता पिता को चाहिये कि वे बालक को कल्पनाप्रधान कथा कहानियाँ सुना कर उनका मनोरंजन करें।

(७) परिवार के समस्त सदस्यों का कर्तव्य है कि वे अपने आचरण में पवित्रता, ईमानदारी तथा सत्यता बनाये रखें। परिवार के सदस्यों के चरित्र का बालक पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है। परिवार के नौकर बालकों को गन्दी गालियाँ तथा अन्य बातें सिखा देते हैं। माता पिता को इन सब बातों की ओर से सावधानी बरतनी चाहिये।

(८) माता पिता का कर्तव्य है कि वे अपने बालकों के लिये खेल कूद की पूरी व्यवस्था करें। शाम के समय बालकों को थोड़ा बहुत अवश्य खेलने दिया जाय।

(९) बालकों को व्यक्तिगत स्वच्छता का पाठ घर के अन्दर ही प्रदान किया जा सकता है। माँ बापों को चाहिये कि वे नित अपने बालकों के दाँत, मुख तथा शरीर की स्वच्छता का निरीक्षण करें। परिवार में सफाई की आदत पड़ जाती है तो वह जीवन भर काम आती है।

(१०) परिवार के वातावरण में कुछ बौद्धिकता का होना परम आवश्यक है। घर का एक पुस्तकालय होना चाहिए जिसमें प्रौढ़ साहित्य के अलावा बाल तथा शिशु साहित्य भी हो। बालकों को सुन्दर चित्र सम्बन्धित पसन्द होते हैं अतः कुछ चित्रावली पुस्तकों का रखना भी आवश्यक है। बालकों को अच्छे साहित्य को पढ़ने के लिये प्रोत्साहित किया जाय।

(११) बालक के अन्दर उत्तरदायित्व की भावना का विकास करने के लिए आवश्यक है कि बालक से घर के काम कराये जायें। जब बालक उत्तरदायित्वपूर्ण काम करने लगते हैं तो उनमें आत्मविश्वास की भावना का उदय होता है।

(१२) घर पर बालकों की व्यक्तिगत रुचियों की आवश्यकता की ओर भी ध्यान [illegible] क पर व्यक्तिगत रूप से [illegible] पता लगाएँ और उन्हें [illegible] "बालक अपने परिवार में [illegible] और फिर अपने वंशजों को यह पैतृक सम्पत्ति सुरक्षित तथा सवर्द्धित रूप में सौंप देता है। अतएव, परिवार का कर्तव्य है कि प्रत्येक बालक के निजत्व के विकास को प्रोत्साहित करते हुये भी उन सब में पारिवारिक आदर्शों तथा परम्पराओं की प्रतिष्ठा करे।"

विद्यालय और शिक्षा

Q 3 Though the schools are themselves the creation of society, the schools in turn become to a certain degree the causes of social progress. Discuss this statement with reference to the function of the school and its relation to the society. *(A U. B. T. 1958)*

Or

Discuss the role of the school as (a) creature of society and (b) a creator of society. *(A. U. B T. 1961)*

Or

Discuss with reference to the function of the schools and its relation to society "Though the schools are themselves the creation of society, the schools in turn become to a certain degree causes of social progress"

(L. T. 1955)

Ans. विद्यालय के जन्म का इतिहास—विद्यालय का जन्म परिवार की असमर्थता का सूचक है। परिवार में ही यदि शिक्षा सम्बन्धी समस्त कार्य हो जाते तो विद्यालयों की आवश्यकता ही नहीं पड़ती। प्रारम्भिक अवस्था में मानव का जीवन अत्यन्त असुरक्षित तथा अस्तव्यस्त था। मानव की संस्कृति इस युग में अत्यन्त साधारण रूप लिये हुये थी। बालक जो कुछ सीखता था वह निरीक्षण (observation), अनुकरण (imitation) आदि के द्वारा ही सीखता था। कला तथा सभ्यता का विकास भी अपना सरल रूप लिये हुये था। परन्तु बाद में भाषा, कला तथा संस्कृति का रूप जटिल होता गया। परिणामस्वरूप विद्यालय की आवश्यकता ज्ञात होने लगी जहाँ कि बालक को विभिन्न संस्कृतियों तथा कलाओं का ज्ञान कराया जाय। दूसरे सभ्यता के जटिल होने के साथ-साथ परिवारों के संगठन में भी परिवर्तन आने लगा। अब माता-पिता के पास इतना समय नहीं है कि वे अपने बालकों को स्वयं शिक्षा प्रदान करें। ऐसी दशा में बालक को विद्यालय भेजने के अलावा और कोई रास्ता ही नहीं रह जाता। यदि माता पिता शिक्षा देना भी चाहें तो उनमें इतनी योग्यता नहीं है कि वे अपने बालक को सब विषयों में पारंगत कर सकें। तीसरे घर के आसपास के दूषित वातावरण से मुक्ति दिलाने के लिए भी विद्यालय की आवश्यकता अनुभव हुई।

विद्यालय की आवश्यकता और महत्व

(१) घर की चहार दीवारी में रहकर बालक का दृष्टिकोण अत्यन्त संकीर्ण हो जाता है। वह केवल अपने तथा अपने परिवार तक की बात सोचता है। परन्तु विद्यालय में आकर दूसरे बालकों के सम्पर्क में आने से उसमें सामाजिकता तथा त्याग की भावना आती है। उसका दृष्टिकोण विस्तृत तथा व्यापक हो जाता है।

(२) वर्तमान युग में सभ्यता तथा संस्कृति का विकास इतना हो चुका है कि ज्ञान के भंडार प्रसार का भार केवल पारिवारिक संस्थाओं के ऊपर ही नहीं छोड़ा जा सकता। ज्ञान का विशाल [illegible] ज्ञान का कार्य विद्यालय ही कर सकता है।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

(८) विद्यालय [illegible] की संस्कृति के संरक्षण [illegible] होते हैं। [illegible] ही करता है।

विद्यालय के कर्तव्य

(१) विद्यालय किसी भी दशा में घर का स्थान नहीं ले सकते। अतः यह आवश्यक है कि घर और विद्यालय के बीच सम्पर्क बना रहे। विद्यालय का कर्तव्य है कि वह बालकों के अभिभावकों से सम्पर्क करे।

(२) वर्तमान युग में परिवार के उत्तरदायित्व के घटने के साथ-साथ विद्यालय का उत्तरदायित्व बढ़ता जा रहा है। अब विद्यालय का उद्देश्य केवल ज्ञान प्रदान करना ही नहीं होना चाहिए वरन् बालक का सर्वांगीण विकास करना है। विद्यालय को बालकों के मानसिक, शारीरिक तथा चारित्रिक विकास की ओर ध्यान देना चाहिये। केवल एकांगी विकास की ओर नहीं।

(३) विद्यालय के वातावरण को जहाँ तक सम्भव हो आकर्षक बनाया जाय। विद्यालय ऐसा हो जहाँ बालक उत्साह और प्रसन्नता के साथ जाय। विद्यालय में घर का वातावरण उत्पन्न करना परम आवश्यक है।

(४) बालकों के शारीरिक विकास की ओर भी ध्यान देना विद्यालय का परम कर्तव्य है। विद्यालय के चारों ओर का वातावरण ऐसा होना चाहिये कि जिससे प्रत्येक बालक स्फूर्ति का अनुभव करे। प्रत्येक कमरे में वायु तथा प्रकाश के आने जाने का प्रबन्ध हो। विद्यालय में खेल-कूद के लिये एक विशाल मैदान की परम आवश्यकता है। प्रातःकाल में व्यायाम की भी व्यवस्था की जाय।

(५) विद्यालय में बालकों को पर्याप्त काल तक ठहरना पड़ता है। ऐसी दशा में बालकों के लिए कुछ नाश्ते का प्रबन्ध अवश्य होना चाहिये। नाश्ते का प्रबन्ध हो जाने से बालक व्यर्थ की वस्तुओं से अपना पेट नहीं भरेंगे।

(६) बालक के चारित्रिक विकास के लिए विद्यालय को अपना वातावरण अत्यन्त शुद्ध तथा पवित्र बनाये रखना चाहिये। अध्यापक का कर्तव्य है कि वह बालकों के सामने चारि-

त्रिक आदर्श का उदाहरण प्रस्तुत करें। अध्यापकों के आचरण का बालक पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।

(७) बालकों को केवल नीरस ज्ञान प्रदान करने के साथ-साथ उनमें सौन्दर्यानुभूति जाग्रत करने का भी प्रयत्न किया जाय। इसके लिए विद्यालय का वातावरण भी कलात्मक होना ...क्षण की व्यवस्था करनी चाहिये। ... समय समय पर विद्यालय में

(८) देश की आवश्यकतानुसार विद्यालय का कर्तव्य है कि वह अपने यहाँ व्यावसायिक शिक्षा का भी प्रबन्ध करे। व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान करने के साथ साथ उन्हें उचित निर्देशन भी प्रदान किया जाय।

(९) प्रजातन्त्र को सफल बनाने के लिये विद्यालय का कर्तव्य है कि वह अपने यहाँ प्रबन्ध, अनुशासन, पाठ्यक्रम, तथा शिक्षण-प्रणालियों में जनतन्त्र के सिद्धान्तों को अधिक से अधिक महत्व दें।

विद्यालय और समाज – विद्यालय और समाज का घनिष्ठ सम्बन्ध है। विद्यालय की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य, समाज की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति करना है। विद्यालय में प्रदान की जाने वाली शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण भी समाज की आवश्यकताओं के अनुसार ही किया जाता है। एस० के० अग्रवाल के शब्दों में "शिक्षालयों की सहायता के बिना बालक अपने थोड़े से जीवन-काल में न तो समाज की अब तक की सभ्यता तथा संस्कृति का ज्ञान प्राप्त कर सकता है और न उनसे लाभ ही उठा सकता है। समाज संस्कृति के रूप इतने जटिल और पेचीदा होते हैं कि बालक उन्हें सरलता से ग्रहण नहीं कर सकता। शिक्षालय समाज की जटिलता तथा पेचीदापन को दूर करते हैं।" आगे और स्पष्ट करते हुए लिखते हैं "और बालकों के समक्ष केवल उन्हीं तथ्यों को सरल तथा शुद्ध रूप में प्रस्तुत करते हैं जो उनके विकास में सहायक हों।" वास्तव में विद्यालय समाज की अनेकों आवश्यकताओं की पूर्ति कर उसके विकास में अपना योग प्रदान करते हैं। विद्यालय और समाज के सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हुये डा० सरयू प्रसाद चौबे लिखते हैं "स्कूल को समाज से अलग करना बड़ा हानिकारक होगा, क्योंकि समाज से अलग होने पर वह व्यक्ति को उन मान्यताओं को शिक्षा दे सकता है जिनका जीवन से विशेष सम्बन्ध न होगा। सामाजिक रूप और आवश्यकताओं के अनुसार स्कूल में परिवर्तन होते रहना परम आवश्यक है।" अब प्रश्न उठता है कि विद्यालय और समाज के बीच सम्बन्ध कैसे स्थापित किये जायें। यदि हम निम्न उपायों का प्रयोग करें तो समाज को विद्यालय के निकट लाया जा सकता है —

(१) जहाँ तक सम्भव हो विद्यालय के पाठ्य-क्रम को समाज की आवश्यकताओं के आधार पर निर्धारित किया जाय। पाठ्य-क्रम में उन विषयों को सम्मिलित किया जाय जिनकी समाज को आवश्यकता है।

(२) पाठ्य-क्रम का लचकदार होना भी आवश्यक है। समाज में परिवर्तन होते रहते हैं। अत यह आवश्यक है कि समाज की आवश्यकताओं के अनुसार पाठ्य-क्रम में भी परिवर्तन किया जा सके।

(३) विद्यालय और समाज के मध्य अन्तर का प्रमुख कारण विद्यालयों का जीविकोपार्जन की क्षमता न उत्पन्न करना है। बालक शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् समाज में अपने को असहाय पाता है। इस कारण विद्यालय में व्यावसायिक शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहिये।

(४) विद्यालय के समारोह तथा अन्य कार्यक्रमों में समाज के विभिन्न व्यक्तियों को भाग लेने की सुविधा प्रदान की जाय। ऐसा करने से जनसाधारण में विद्यालय के प्रति प्रेम उत्पन्न होगा।

(५) विद्यालय की प्रबन्धकारिणी समिति में समाज के प्रौढ़ व्यक्तियों को भी स्थान दिया जाय।

(६) ... सामाजिक कार्य-क्रमों के लिये भी किया जाय।
... में अध्या समय कुछ सांस्कृतिक कार्यक्रम

(७) छात्रों के ग्रभिभावकों से ग्रधिक से ग्रधिक सम्पर्क स्थापित किया जाय।

शिक्षा में राज्य का महत्व

Q 4 Examine the role of the state in the Education of Indian children What steps can be taken to guard against the danger of uniformity and regimentation ? *(A U, B. T. 1957)*

Ans **राज्य की परिभाषा**—[illegible] हाब्स ग्रादि प्रसिद्ध है—मनुष्य को राज [illegible] बर्बर जीवन से उकता गया था। ग्रत [illegible] की रचना की गई। गार्नर के शब्दो मे "राज्य मनुष्यों के उस बहुसंख्यक समुदाय या संगठन को कहते है जो स्थायी रूप से किसी निश्चित भू-भाग मे रहता है, जिसकी ऐसी सगठित सरकार है जो बाहरी नियन्त्रण से पूर्ण ग्रथवा लगभग स्वतन्त्र है ग्रौर जिसकी ग्राज्ञा का पालन ग्रधिकाश जनता स्वभाव से करती है।" दूसरे शब्दो मे राज्य को हम समाज का सुसगठित रूप भी कह सकते हैं।

राज्य ग्रौर शिक्षा—राज्य ग्रौर शिक्षा के सम्बन्ध मे दो विचारधाराएँ प्रचलित हैं—प्रथम विचारधारा के ग्रनुसार राज्य का हस्तक्षेप शिक्षा के क्षेत्र मे ग्रधिक से ग्रधिक होना चाहिये। दूसरी विचारधारा के ग्रनुसार शिक्षा के क्षेत्र मे राज्य का ग्राधिपत्य पूर्णतया ग्रनुचित है। प्रथम विचारधारा के प्रतिपादक समष्टिवादी हैं तथा दूसरी विचारधारा के व्यक्तिवादी।

राज्य के पक्ष मे तर्क—कुछ विद्वानो के ग्रनुसार शिक्षा के क्षेत्र में राज्य का हस्त-क्षेप लाभदायक है। इन विद्वानो मे मैथ्यू ग्रार्नाल्ड, एडमंड बर्क, तथा कारलायल ग्रौर रस्क प्रसिद्ध हैं। इनके ग्रनुसार राज्य का कर्तव्य केवल रक्षा ग्रौर शान्ति स्थापित करना मात्र ही नही है। राज्य का कर्तव्य ग्रपने नागरिको को सुखी तथा धन सम्पन्न बनाने के साथ-साथ उन्हें शिक्षित भी करना है, इसके लिये राज्य का कर्तव्य हो जाता है कि वह देश के नागरिको के लिये नि शुल्क ग्रनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध करे। इस मत के समर्थकों का कथन है कि शिक्षा के क्षेत्र मे व्यक्तिगत सस्थाएँ बालक का हित न देखकर ग्रपना हित देखा करती हैं। व्यक्तिगत सस्थाग्रो का ग्रध्यापन स्तर भी निम्नकोटि का होता है। इसके विपरीत सरकारी सस्थाग्रो मे ये दोष नही पायें जाते। दूसरे राज्य को ही प्रमुख रूप मे शिक्षित व्यक्तियों की ग्रावश्यकता होती है। ग्रत राज्य को इस का ग्रधिकार होना चाहिये कि वह ग्रपने नागरिको की शिक्षा के रूप का निर्धारण करे। प्रजा-तन्त्रात्मक शासन प्रणाली मे राज्य एक प्रकार से समाज की इच्छाग्रों का प्रतीक होता है, ऐसी दशा मे उसके कार्य जनता के हित के विरुद्ध कैसे जा सकते हैं।

व्यक्तिवादियो के ग्रनुसार—उपर्युक्त विचारधारा के विपरीत कुछ विद्वानो के ग्रनुसार राज्य का शिक्षा क्षेत्र मे हस्तक्षेप पूर्णतया ग्रनुचित है। राज्य का शिक्षा के क्षेत्र मे नियन्त्रण उसके विकास को ग्रवरुद्ध कर देगा। शिक्षा का विकास सदा स्वतन्त्र वातावरण से होता है। राज्य के हस्तक्षेप के कारण शिक्षा के क्षेत्र मे राजनीति का प्रवेश हो जावेगा। दूसरे राज्य का नियन्त्रण बालक के व्यक्तित्व के विकास मे बाधा का कार्य करेगा। राज्य ग्रपनी ग्रावश्यकताग्रों के ग्रनुसार ही शिक्षा का सगठन करेगा परिणामस्वरूप बालक की रुचियो तथा इच्छाग्रो की ग्रवहेलना होगी। डा० सुबोध ग्रदावल के शब्दो मे "पूर्णतया राज्याधीन शिक्षा व्यवस्था मे बालक को ग्रात्म-विकास का कोई ग्रवसर नही मिलता। उसे प्राणहीन वस्तु के समान इच्छानुसार गढ लेना मानवीय नियमो के विरुद्ध है।"

इस पर भी शिक्षा के क्षेत्र मे राज्य के कुछ कर्तव्य तथा नियन्त्रण हैं जिनकी भी ग्रवहेलना नहीं की जा सकती। परन्तु शिक्षा के क्षेत्र में राज्य का पूर्ण नियन्त्रण ग्रावश्यक नही है। समाज द्वारा सचालित व्यक्ति व सस्थाग्रो को राज्य द्वारा हर प्रकार की सहायता मिलनी चाहिए। राज्य का कर्तव्य है कि वह समय-समय पर व्यक्तिगत सस्थाग्रो को सलाह, ध्यान ग्रादि की ग्रावश्यकतानुसार सहायता देता रहे।

शिक्षा के क्षेत्र मे राज्य के कर्तव्य—(१) राज्य का सर्वप्रथम कार्य, प्रायमिक शिक्षा को नि शुल्क तथा ग्रनिवार्य करना है। राज्य को स्वय एक राष्ट्रीय योजना का सचालन करना चाहिये।

(२) राष्ट्रीय-शिक्षा में जाति-पाँति, रंग, तथा धन आदि का भेद-भाव न हो। शिक्षा के क्षेत्र मे सबके साथ एकसा व्यवहार किया जाय।

(३) राष्ट्रीय-शिक्षा को देश की संस्कृति का प्रतीक होना चाहिये। उसमें देश के सामाजिक, दार्शनिक तथा सांस्कृतिक तत्वों की झलक स्पष्ट रूप से होनी चाहिये।

(४) देश की आवश्यकताओं के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार के विद्यालयों की स्थापना की जाय। उदाहरण के लिये—प्राथमिक माध्यमिक तथा व्यवसायिक आदि आदि।

(५) बेरोजगारी की समस्या को हल करने के लिए, राज्य मे भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यावसायिक विद्यालयों की स्थापना करनी चाहिए।

(६) *नागरिकों मे स्वतन्त्र चिन्तन, और विचार करने की आदत डालने के लिये राज्य* को पत्र-पत्रिकाओं तथा चल-चित्रों का सहारा लेना चाहिए।

(७) शिक्षा का स्तर शिक्षकों के स्तर पर निर्भर है, अत राज्य का कर्तव्य है कि वह अध्यापकों के प्रशिक्षण का प्रबन्ध स्वयं करे। अधिक से अधिक प्रशिक्षण विद्यालयों की स्थापना की जाय तथा अध्यापकों को पर्याप्त मात्रा में वेतन प्रदान किया जाय।

(८) *व्यक्तिगत संस्थाओं पर उचित नियन्त्रण रखा जाय।*

(९) राज्य का कर्तव्य है कि बालकों के शारीरिक विकास की ओर भी ध्यान दे। जन साधारण को सस्ता अच्छा अन्न मिलना चाहिए। दूध आदि पदार्थों में की जाने वाली मिलावट को रोका जाय। खेल कूद तथा सार्वजनिक व्यायाम आदि की क्रियाओं को विशेष महत्त्व प्रदान करना चाहिये।

(१०) प्राथमिक शिक्षा के अतिरिक्त राज्य को *प्रौढ़-शिक्षा का भी प्रबन्ध करना* चाहिए।

धर्म और शिक्षा

Q. 5 How far, and in what way, can religion assist the school as an effective agency of Education in a secular state? What precautions would you suggest while introducing religious education in school? *(A. U. T 1951)*

Or

Give your views on imparting religious instruction in the schools of free secular India. *(A. U. B T 1951)*

Ans. धर्म का सम्बन्ध मानव जीवन से अतीत काल मे ही चला आ रहा है। मानव संस्कृति को सुधारने का श्रेय जितना धर्म को रहा है उतना किसी को नहीं। वैदिक कालीन तथा बौद्ध-कालीन शिक्षा का एकमात्र आधार धर्म था। शिक्षा का अर्थ धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन, यज्ञों मे भाग लेना आदि कहलाता था। देश भर की समस्त धार्मिक संस्थायें शिक्षा प्रदान करने का कार्य करती थी। यूरोप के अन्दर भी शिक्षा प्रदान करने का कार्य मठ तथा चर्च करते थे। मध्य-काल मे भी शिक्षा संस्थायें मन्दिरों और मसजिदों से सम्बन्धित रहती थी। इस युग मे भी शिक्षा के समस्त पाठ्य-क्रम पर धर्म की स्पष्ट छाप पायी जाती थी। परन्तु मध्य युग मे धर्म ने संकीर्णता का रूप ले लिया परिणामस्वरूप आगे चलकर शिक्षा को धर्म से अलग करने के लिए आवाज उठने लगी।

धर्म का अर्थ—विद्वानों ने धर्म की विभिन्न प्रकार से व्याख्या की है। संकीर्ण अर्थ मे धर्म का तात्पर्य कुछ व्यक्ति केवल कर्म काण्ड तथा पूजा पाठ मे लगाते हैं। बुद्ध के अनुसार जन-सेवा ही धर्म है। ईसाई मत के अनुसार धर्म उस भावना का नाम है जो संसार के विभिन्न व्यक्तियों को प्रेम, सहानुभूति और सदाचार के पवित्र बन्धन मे बाँधती है। इस्लाम के अनुसार धर्म का तात्पर्य सर्वसाधारण को सदाचार की शिक्षा प्रदान करना है। भारतीय विचारधारा के अनुसार धर्म शब्द का अर्थ अत्यन्त व्यापक तथा गहन है। महाभारत के शान्ति-पर्व में धर्म का अर्थ "जो मनुष्य धारण करे वही धर्म है" (धारणात् धर्म इति आहु) इस प्रकार हिन्दुओं के अनुसार धर्म का सम्बन्ध प्रमुखतया मानव के कार्यों तथा कर्त्तव्यों मे है।

(७) छात्रों के अभिभावकों से अधिक से अधिक सम्पर्क स्थापित किया जाय।

शिक्षा में राज्य का महत्व

Q 4 Examine the role of the state in the Education of Indian children. What steps can be taken to guard against the danger of uniformity and regimentation ? *(A U., B. T. 1957)*

Ans राज्य की परिभाषा—कुछ समाज-शास्त्रियो के अनुसार, जिनमें प्लेटो, अरस्तू तथा हाब्स आदि प्रसिद्ध हैं—मनुष्य को राज्य की आवश्यकता का अनुभव इस कारण हुआ क्योंकि वह बर्बर जीवन से उकता गया था। अत बर्बर जीवन से सभ्यता की ओर अग्रसर होने के लिये राज्य की रचना की गई। गार्नर के शब्दों में "राज्य मनुष्यों के उस बहुसख्यक समुदाय या सगठन को कहते हैं जो स्थायी रूप से किसी निश्चित भू-भाग में रहता है, जिसकी ऐसी सगठित सरकार है जो बाहरी नियन्त्रण से पूर्ण अथवा लगभग स्वतन्त्र है और जिसकी आज्ञा का पालन अधिकाश जनता स्वभाव से करती है।" दूसरे शब्दो मे राज्य को हम समाज का सुसगठित रूप भी कह सकते हैं।

राज्य और शिक्षा—राज्य और शिक्षा के सम्बन्ध मे दो विचारधाराएँ प्रचलित हैं—प्रथम विचारधारा के अनुसार राज्य का हस्तक्षेप शिक्षा के क्षेत्र मे अधिक से अधिक होना चाहिये। दूसरी विचारधारा के अनुसार शिक्षा के क्षेत्र मे राज्य का आधिपत्य पूर्णतया अनुचित है। प्रथम विचारधारा के प्रतिपादक समष्टिवादी हैं तथा दूसरी विचारधारा के व्यक्तिवादी।

राज्य के पक्ष मे तर्क—कुछ विद्वानो के अनुसार शिक्षा के क्षेत्र मे राज्य का हस्तक्षेप लाभदायक है। इन विद्वानो मे मैथ्यू आर्नाल्ड, एडमड बर्क, तथा कारलायल और रस्क प्रसिद्ध हैं। इनके अनुसार राज्य का कर्तव्य केवल रक्षा और शान्ति स्थापित करना मात्र ही नही है। राज्य का कर्तव्य अपने नागरिको को सुखी तथा धन सम्पन्न बनाने के साथ-साथ उन्हे शिक्षित भी करना है; इसके लिये राज्य का कर्तव्य हो जाता है कि वह देश के नागरिको के लिये नि शुल्क अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध करे। इस मत के समर्थकों का कथन है कि शिक्षा के क्षेत्र में व्यक्तिगत सस्थाएँ बालक का हित न देखकर अपना हित देखा करती हैं। व्यक्तिगत सस्थाओ का अध्यापन स्तर भी निम्नकोटि का होता है। इसके विपरीत सरकारी सस्थाओं मे ये दोष नही पाये जाते। दूसरे राज्य को ही प्रमुख रूप मे शिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। अत राज्य को इस का अधिकार होना चाहिये कि वह अपने नागरिको को शिक्षा के रूप का निर्धारण करे। प्रजातन्त्रात्मक शासन प्रणाली मे राज्य एक प्रकार से समाज की इच्छाओ का प्रतीक होता है, ऐसी दशा मे उसके कार्य जनता के हित के विरुद्ध कैसे जा सकते हैं।

व्यक्तिवादियों के अनुसार—उपर्युक्त विचारधारा के विपरीत कुछ विद्वानो के अनुसार राज्य का शिक्षा क्षेत्र मे हस्तक्षेप पूर्णतया अनुचित है। राज्य का शिक्षा के क्षेत्र मे नियन्त्रण उसके विकास को अवरुद्ध कर देगा। शिक्षा का विकास सदा स्वतन्त्र वातावरण से होता है। राज्य के हस्तक्षेप के कारण शिक्षा के क्षेत्र मे राजनीति का प्रवेश हो जावेगा। दूसरे राज्य का नियन्त्रण बालक के व्यक्तित्व के विकास मे बाधा का कार्य करेगा। राज्य अपनी आवश्यकताओ के अनुसार ही शिक्षा का सगठन करेगा परिणामस्वरूप बालक की रुचियो तथा इच्छाओ की अवहेलना होगी। डा० सुबोध अदावल के शब्दो मे "पूर्णतया राज्याधीन शिक्षा व्यवस्था मे बालक को आत्म-विकास का कोई अवसर नहीं मिलता। उसे प्राणहीन वस्तु के समान इच्छानुसार गढ़ लेना मानवीय नियमो के विरुद्ध है।"

इस पर भी शिक्षा के क्षेत्र मे राज्य के कुछ कर्तव्य तथा नियन्त्रण हैं जिनकी भी अवहेलना नहीं की जा सकती। परन्तु शिक्षा के क्षेत्र म राज्य का पूर्ण नियन्त्रण आवश्यक नहीं है। समाज द्वारा सचालित व्यक्ति व सस्थाओ को राज्य द्वारा हर प्रकार की सहायता मिलनी चाहिए। राज्य का कर्तव्य है कि वह समय-समय पर व्यक्तिगत सस्थाओ को सलाह, ध्यान आदि की आवश्यकतानुसार सहायता देता रहे।

शिक्षा के क्षेत्र में राज्य के कर्तव्य—(१) राज्य का सर्वप्रथम कार्य, प्राथमिक ... को नि शुल्क तथा अनिवार्य करना है। राज्य को स्वयं एक ...
चाहिये।

(४) विद्यालय में धार्मिक शिक्षा प्रदान करते समय इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा जाय कि धार्मिक शिक्षा बाह्य आडम्बरों में न परिणत हो जाय।

(५) धार्मिक शिक्षा प्रदान करने में कट्टरता और संकीर्णता की भावना नहीं आनी चाहिये। बालकों को प्रमुख रूप से यह बताया जाय कि संसार के धर्मों का वास्तविक सार क्या है।

(६) छोटी कक्षाओं के बालकों को महापुरुषों की जीवन कथाएँ तथा धार्मिक कहानियाँ सुनाई जायँ। उच्च कक्षाओं के छात्रों को स्वयं मनन तथा विवाद करने का अधिकार दिया जाय।

(७) समय समय पर विद्यालय में महान धार्मिक पुरुषों के जन्म दिवसों का आयोजन किया जाय।

(८) धार्मिक शिक्षा जहाँ तक सम्भव हो अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से प्रदान की जाय। नीरस ढंग से प्रदान की गई धार्मिक शिक्षा छात्रों को अरोचक होती है।

(९) धार्मिक-शिक्षा यदि जीवन में सम्बन्धित करके प्रदान की जाय तो अति उत्तम है।

धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता

Q. 6 What are your views about imparting religious instruction in Indian schools ? Give arguments for your answer. *(Agra B T, 1961)*

Ans. धार्मिक शिक्षा के विषय में देश में आये हुए शिक्षा आयोगों ने अपने अपने मत प्रकट किये हैं। उन मतों का संक्षिप्त विवरण अपने मन से पूर्व करना आवश्यक होगा।

सन् १८८२ के हन्टर कमीशन ने साधारण पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षा की कठिनाई की ओर संकेत किया था। धार्मिक निरपेक्षता के सिद्धान्त के अनुसार किसी भी राजकीय विद्यालय में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जा सकती। जातीय और धार्मिक पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षा की स्वतन्त्रता देने के आधार पर एक ही पाठशाला में अनेक धर्मों की शिक्षा व्यवस्था में रखकर सर्व-धर्मावलम्बियों के धर्मों के आधारभूत सिद्धान्तों को एक पाठ्य पुस्तक तैयार करने की सिफारिश की थी किन्तु क्या इस प्रकार की कोई पाठ्य पुस्तक तैयार की जा सकती है जिसके विषय वस्तु से हिन्दू, मुसलमान और ईसाई तथा पारसी सभी लोग सहमत हों ?

इसके बाद धार्मिक शिक्षा पर महत्वपूर्ण मत सार्जेन्ट योजना ने प्रस्तुत किया। उसके अनुसार धार्मिक शिक्षा की मुख्य जिम्मेदारी परिवार और माता पिता की मानी जा सकती है। इसकी जिम्मेदारी उस समुदाय की अपेक्षा उस परिवार की होनी चाहिए जिसमें बालक उत्पन्न हुआ है।

भारतीय संविधान ने भी धार्मिक शिक्षा की ओर से निरपेक्षिता भाव प्रकट किया है। धारा १९ के आधार पर प्रत्येक नागरिक को किसी भी धर्म के मानने, उसका आचरण करने तथा उसके प्रचार करने की आध्यात्मिक स्वतन्त्रता है। धारा २१ के आधार पर किसी भी नागरिक से किसी भी धार्मिक संस्था अथवा किसी मत के लिये किसी प्रकार का कर नहीं लिया जा सकता। धारा २२ के अनुसार किसी भी राजकीय संस्था में किसी भी धर्म की शिक्षा नहीं दी जा सकती। विधान में उन संस्थाओं को धार्मिक शिक्षा देने की स्वतन्त्रता दे दी है जो किसी ट्रस्ट द्वारा स्थापित की गई थी, और जिनका उद्देश्य धार्मिक शिक्षा देना था और जो अब भारत सरकार के अधीन है। इसी धारा के अनुसार किसी भी नागरिक को जो ऐसी संस्था का सदस्य है जिसमें धार्मिक शिक्षा दी जाती है उसकी या उसके अभिभावक की आज्ञा के विपरीत किसी भी धार्मिक कृत्य में भाग लेने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

राज्य स्वयं किसी संस्था में धार्मिक शिक्षा नहीं दे सकता किन्तु ऐसी संस्था को जिसमें धार्मिक शिक्षा दी जाती है आर्थिक सहायता दे सकता है। भारतीय संविधान की इन धाराओं में धर्म से तात्पर्य धार्मिक कर्मकाण्ड और धार्मिक रूढ़ियों के पालन से है। धर्म के दार्शनिक सिद्धान्तों और धार्मिक रूढ़ियों में अन्तर है अतः धार्मिक सिद्धान्तों का अध्ययन किया जा सकता है किन्तु राजकीय पाठशालाओं में न तो धर्म के दार्शनिक सिद्धान्तों को ही और न धर्म के कर्मकाण्डों की

धर्म और शिक्षा का सम्बन्ध—पिछले पृष्ठों में हमने इस बात का उल्लेख किया था कि शिक्षा और धर्म के मध्य घनिष्ट सम्बन्ध है। दोनों का एक ही उद्देश्य है। वह है मानव का आध्यात्मिक तथा मानसिक विकास। महान धार्मिक आचार्य महान शिक्षा शास्त्री भी हुए हैं। महात्मा गान्धी ने 'यंग इण्डिया' (Young India) में धर्म और शिक्षा के सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हुए एक लेख में लिखा है 'यदि भारत आध्यात्मिक रूप से दिवालिया नहीं होना चाहता तो प्रत्येक युवक को भौतिक-शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक शिक्षा भी देनी होगी।" रोस का कथन है कि "It is through religion that the feet of youth can be set on to the absolute values—truth, beauty and goodness." श्री अरविन्द भी शिक्षा में धर्म को प्रमुख स्थान देते हैं। उनके अनुसार धर्म को महत्व देना प्रत्येक विद्यालय का आदर्श होना चाहिये। प्रसिद्ध विद्वान श्री बर्टन (Burton) धर्म और शिक्षा के सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं "Religion and Education are two natural allies. Both recognize and have to do with spiritual as over against an inclusive attention to the physical and material." इस प्रकार हम देखते हैं कि शिक्षा और धर्म में परस्पर घना सम्बन्ध है।

धार्मिक-शिक्षा की आलोचना—इस पर भी कुछ विद्वान धार्मिक-शिक्षा के विरोध में हैं। वे निम्न तर्क प्रस्तुत करते हैं—

(१) विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा प्रदान करने से अनेकों समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। प्रथम, विद्यालय में अनेकों धर्मों के छात्र अध्ययन करने आते हैं। यदि किसी एक विशेष धर्म की शिक्षा प्रदान की जाती है तो दूसरे धर्म वालों को आपत्ति हो सकती है। दूसरे, धार्मिक शिक्षा का क्या स्वरूप हो, इस पर विद्वानों में मतभेद है।

(२) धार्मिक शिक्षा कभी कभी उपदेश मात्र बनकर रह जाती है। बालक के आचरण किस ओर जा रहे हैं, इस बात की चिन्ता नहीं की जाती।

(३) यह आवश्यक नहीं कि धार्मिक व्यक्ति अपने आचरणों में भी पवित्र होगा। बहुत से व्यक्ति धर्म-प्रधान होते हुए भी अत्यन्त स्वार्थी होते हैं।

(४) धर्म के तत्व इतने गूढ़ तथा गम्भीर होते हैं कि सामान्य छात्र उनको नहीं समझ सकता।

(५) पाप-पुण्य की भावना बालक के मन में द्वन्द्व उत्पन्न करती है।

(६) धर्म बालकों को केवल भावुक बनाता है। धर्म के द्वारा हम बालक का वैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं बना सकते।

(७) धर्म प्रमुखतया व्यक्तिगत अनुभूति की वस्तु है। इसकी शिक्षा सामूहिक रूप में प्रदान करना अनुचित है।

इस पर भी धर्म के महत्त्व को नहीं भुलाया जा सकता। उपर्युक्त तर्क धर्म के विरुद्ध इस कारण दिये गए हैं क्योंकि मध्य युग में तथा वर्तमान युग में धर्म के नाम पर अनेकों अत्याचार किये गये। परन्तु अब पुनः शिक्षा शास्त्री धार्मिक शिक्षा के महत्त्व को स्वीकार करने लगे हैं। डॉ० राधाकृष्णन ने "विश्वविद्यालयीय आयोग" में वर्तमान युग में धार्मिक शिक्षा पर प्रकाश डालते हुए लिखा है "यदि हम केवल औद्योगिक तथा व्यावसायिक शिक्षा पर बल देकर आध्यात्मिक शिक्षा की उपेक्षा करेंगे तो सामाजिक बर्बरता तथा राक्षस राज्य के आने में कोई कसर न रह जायगी।" अतः विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा किसी न किसी रूप में प्रदान की जानी चाहिए। जिन विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा का प्रबन्ध है उन्हें निम्न सावधानियाँ बरतनी चाहिए:—

(१) धर्म की शिक्षा प्रदान करने के साथ साथ शिक्षा के अन्य अंगों की उपेक्षा न की जाय।

(२) धार्मिक शिक्षा प्रदान करने का तात्पर्य यह नहीं कि बालकों को परलोक का चिन्तक बना दिया जाय। उन्हें जीवन की वास्तविकता तथा यथार्थता से भी परिचित कराना आवश्यक है।

(३) धर्म को पाठ्य-क्रम का विषय बनाकर नहीं पढ़ाया जा सकता। इसके लिये आवश्यक है कि विद्यालय का वातावरण ही इस प्रकार का बनाया जाय कि बालक स्वयं अच्छे आचरणों की ओर आकर्षित हों।

(४) विद्यालय में धार्मिक शिक्षा प्रदान करते समय इस बात का विशेष रूप में ध्यान रखा जाय कि धार्मिक शिक्षा वाह्य आडम्बरों में न परिणत हो जाय।

(५) धार्मिक शिक्षा प्रदान करने में कट्टरता और संकीर्णता की भावना नहीं आनी चाहिये। बालकों को प्रमुख रूप से यह बताया जाय कि संसार के धर्मों का वास्तविक सार क्या है।

(६) छोटी कक्षाओं के बालकों को महापुरुषों की जीवन कथाएं तथा धार्मिक कहानियाँ सुनाई जायें। उच्च कक्षाओं के छात्रों को स्वयं मनन तथा विवाद करने का अधिकार दिया जाय।

(७) समय समय पर विद्यालय में महान धार्मिक पुरुषों के जन्म दिवसों का आयोजन किया जाय।

(८) धार्मिक शिक्षा जहाँ तक सम्भव हो अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से प्रदान की जाय। नीरस ढंग से प्रदान की गई धार्मिक शिक्षा छात्रों को अरोचक होती है।

(९) धार्मिक-शिक्षा यदि जीवन से सम्बन्धित करके प्रदान की जाय तो अति उत्तम है।

धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता

Q. 6 What are your views about imparting religious instruction in Indian schools ? Give arguments for your answer *(Agra B T 1961)*

Ans. धार्मिक शिक्षा के विषय में देश में आये हुए शिक्षा आयोगों ने अपने अपने मत प्रकट किये हैं। उन मतों का संक्षिप्त विवरण अपने मत से पूर्व करना आवश्यक होगा।

सन् १८८२ के हन्टर कमीशन ने साधारण पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षा की कठिनाई की ओर संकेत किया था। धार्मिक निरपेक्षता के सिद्धान्त के अनुसार किसी भी राजकीय विद्यालय में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जा सकती। जातीय और धार्मिक पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षा की स्वतन्त्रता देने के आधार पर एक ही पाठशाला में अनेक धर्मों की शिक्षा व्यवस्था में रखकर सर्व-धर्मावलम्बियों के धर्मों के आधारभूत सिद्धान्तों को एक पाठ्य पुस्तक तैयार करने की सिफारिश की थी किन्तु क्या इस प्रकार की कोई पाठ्य पुस्तक तैयार की जा सकती है जिसके विषय वस्तु से हिन्दू, मुसलमान और ईसाई तथा पारसी सभी लोग सहमत हों ?

इसके बाद धार्मिक शिक्षा पर महत्वपूर्ण मत सार्जेन्ट योजना ने प्रस्तुत किया। उसके अनुसार धार्मिक शिक्षा की मुख्य जिम्मेदारी परिवार और माता पिता की मानी जा सकती है। इसकी जिम्मेदारी उस समुदाय की अपेक्षा उस परिवार की होनी चाहिए जिसमें बालक उत्पन्न हुआ है।

भारतीय संविधान ने भी धार्मिक शिक्षा की ओर से निरपेक्षिता भाव प्रकट किया है। धारा १९ के आधार पर प्रत्येक नागरिक को किसी भी धर्म के मानने, उसका आचरण करने तथा उसके प्रचार करने की आध्यात्मिक स्वतन्त्रता है। धारा २१ के आधार पर किसी भी नागरिक से किसी भी धार्मिक संस्था अथवा किसी मत के लिये किसी प्रकार का कर नहीं लिया जा सकता। धारा २२ के अनुसार किसी भी राजकीय संस्था में किसी भी धर्म की शिक्षा नहीं दी जा सकती। विधान में उन संस्थाओं को धार्मिक शिक्षा देने की स्वतन्त्रता दे दी है जो किसी ट्रस्ट द्वारा स्थापित की गई थी, और जिनका उद्देश्य धार्मिक शिक्षा देना था और जो अब भारत सरकार के अधीन है। इसी धारा के अनुसार किसी भी नागरिक को जो ऐसी संस्था का सदस्य है जिसमें धार्मिक शिक्षा दी जाती है उसकी या उसके अभिभावक की आज्ञा के विपरीत किसी भी धार्मिक कृत्य में भाग लेने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता।

राज्य स्वयं किसी संस्था में धार्मिक शिक्षा नहीं दे सकता किन्तु ऐसी संस्था को जिसमें धार्मिक शिक्षा दी जाती है आर्थिक सहायता दे सकता है। भारतीय संविधान की इन धाराओं में धर्म से तात्पर्य धार्मिक कर्मकाण्ड और धार्मिक रूढ़ियों के पालन से है। धर्म के दार्शनिक सिद्धान्तों और धार्मिक रूढ़ियों में अन्तर है अतः धार्मिक सिद्धान्तों का अध्ययन किया जा सकता है किन्तु राजकीय पाठशालाओं में न तो धर्म के दार्शनिक सिद्धान्तों को ही और न धर्म के कर्मकाण्डों को

ही शिक्षा दी जा सकती है क्योंकि राज्य कानून की दृष्टि से सबको समान समझता है। प्रजातंत्रात्मक राज्यों में होना भी यही चाहिए।

गांधी जी ने भी वर्धा योजना में से धर्म की शिक्षा निकाल ही दी क्योंकि उनका यह विचार था कि जिस धर्म पर आजकल हम लोग आचरण करते हैं उससे एकता की अपेक्षा कलह बढ़ता है किन्तु गांधी जी उस सत्य को जो सब धर्मों में समान रूप से मिलता है पढ़ाने के लिए तैयार थे। यदि हमारे बच्चों में यह विश्वास दृढ़ हो गया कि उनका ही धर्म सत्य और उत्तम है तो धार्मिक शिक्षा में हानि होने का भय है। इस प्रकार की भावना के बढ़ने पर प्रत्येक समुदाय के लिए अलग-अलग स्कूल खोलने पड़ेंगे। यदि किसी स्कूल में धर्म के आधारभूत सिद्धान्तों का ही शिक्षण किया जाता है तो यही उचित धार्मिक शिक्षा मानी जा सकती है।

हमारा राज्य धर्म निरपेक्ष अवश्य है किन्तु इसका यह आशय नहीं कि अब कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसकी पूजा हम न करें। धार्मिक निरपेक्षता से हमारा प्रयोजन धार्मिक रूढ़ियों और धर्म के कट्टर सिद्धान्तों को राज्य में स्थान न देने से है। हिन्दू धर्म को हम धर्म न कह कर जीवन के दार्शनिक सिद्धान्तों का समूह कह सकते हैं क्योंकि उसमें इतनी अधिक सहिष्णुता और सहयोग की भावना है जिसके आधार पर हम सब धर्मावलम्बियों के साथ मिलकर रह सकते हैं। अतः इसके आधारभूत सिद्धान्तों को पढ़ा कर हम जनतंत्र की रक्षा कर सकते हैं।

राधाकृष्णन कमीशन ने १९४८ में इस बात पर अधिक जोर दिया कि यदि बालक को प्रारम्भ से ही जीवन के धार्मिक पहलू का ज्ञान न दिया गया तो वह पूर्ण रूप से विकसित न हो सकेगा। यदि इस क्षेत्र में नेतृत्व का भार परिवार और समुदाय पर छोड़ दिया जाय तो डर है कि
है। यदि हम इन
करना होगा।
धार्मिक शिक्षा के
होना जितना कि
अनुकरण की मूल प्रवृत्ति को जागृत कर धार्मिक निष्ठा उत्पन्न की जाय।

स्कूल का वातावरण ऐसा हो जिसमें बालक को संदेह और भ्रम उत्पन्न न हो। कहने का तात्पर्य यह है कि धार्मिक शिक्षा के लिए अध्यापक संगठित रूप से प्रयत्न करें। धार्मिक आचरण से अध्यापक का व्यक्तित्व भी अधिक प्रभावशाली होता है। सर माइकेल सैडलर का कहना है कि नैतिक शिक्षा के लिए जो धार्मिक शिक्षा का एक अंग माना जा सकता है शिक्षक का व्यक्तित्व ही अधिक से अधिक शक्तिशाली साधन है। वास्तव में यदि गुरु में विद्यार्थी का विश्वास है तो उसी को यह विश्वास में लेगा और गुरु की अल्प सलाह से वह सत्पथ पर आरूढ़ किया जा सकता है।

अध्यापकों के आदर्श के अतिरिक्त विद्यालय कुछ और प्रयत्न कर सकता है जिससे धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है —

(१) सामूहिक प्रार्थना एवं चिन्तन।
(२) धार्मिक सुधारकों का जीवन अध्ययन।
(३) धार्मिक सिद्धान्तों का तुलनात्मक अध्ययन।
(४) धार्मिक शिक्षा का समन्वित पाठ्य-क्रम।

प्राथमिक कक्षाओं में महान पुरुषों और धर्म प्रवर्तकों की जीवनियों का अध्ययन कराया जा सकता है। माध्यमिक एवं उच्च स्तरों पर धार्मिक सिद्धान्तों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। वर्तमान भारतीय वातावरण में संविधान की धाराओं को देखकर धार्मिक शिक्षा का निश्चित पाठ्य-क्रम भारतीय पाठशालाओं के लिए अभी सम्भव नहीं है। यद्यपि धार्मिक शिक्षा को वास्तविक रूप से सभी स्वीकार करते हैं और अब समय भी ऐसा आ गया है धार्मिक शिक्षा का माध्यमिक शिक्षा में स्थान है। इस विषय पर विचार किया जा सकता है सामूहिक प्रार्थना, धर्म चिन्तन, धर्म-सुधारकों के जीवन वृत्तों का अध्ययन, तथा भिन्न-भिन्न के तुलनात्मक अध्ययन पर ही इस समय बल दिया जा सकता है।

अध्याय ४

शिक्षा के दार्शनिक आधार

(Philosophical Bases of Education)

Q. 1. Education has no time to make an holiday till philosophical questions are once for all cleared (Herbart) Discuss

Ans कुछ शिक्षकों का मत है कि जब तक दार्शनिक लोग शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं का सामान्य हल ढूंढ नहीं लेते, जब तक सभी दार्शनिक शिक्षा के आदर्शों के विषय में एक मत नहीं हो जाते तब तक शिक्षा में दर्शन की बात सोचना व्यर्थ है। जब तक विभिन्न दार्शनिकों की शिक्षा सम्बन्धी विचारधाराओं में विभेद रहेगा तब तक शिक्षक को उनसे स्वतन्त्र होकर अपना कार्य करते रहना चाहिये ऐसा कुछ लोगों का मत है। ये विद्वान शिक्षा कार्य में दर्शन की बात सोचे बिना ही शिक्षक को अपना कार्य करते रहने का सुझाव देते हैं। बात भी कुछ-कुछ ठीक है क्योंकि जब तक हम यह निर्णय नहीं कर लेते कि जीवन का लक्ष्य क्या हो, [illegible] गया हो, तब तक दार्शनिकों की यह [illegible] और इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये [illegible]

लेकिन यह विचार कुछ संकीर्णता लिये हुए है। ऐसे विचारक शिक्षा और दर्शन को भिन्न समझते हैं। जो व्यक्ति ऐसा समझते हैं कि शिक्षण प्रक्रिया दर्शनहीन होने पर भी सुचारु रूप से चल सकती है गलती पर हैं। वे न तो दर्शन की प्रकृति को ही समझने का प्रयत्न करते हैं और न शिक्षा के स्वरूप को ही।[1] अतः शिक्षा और दर्शन के सम्बन्ध को ठीक-ठीक समझने के लिये उन दोनों का स्वरूप (nature) समझना होगा।

शिक्षा और दर्शन का स्वरूप और क्षेत्र

Q 2. Point out the nature and scope of the philosophy of Education.

Ans सत्य की खोज करना तथा वास्तविक स्वरूपों को समझना ही दर्शन है। दर्शन का सम्बन्ध सत्य के चिन्तन और विचार विमर्श से है। सत्य क्या है ? ईश्वर ही सत्य है जगत् मिथ्या है ? ब्रह्म क्या है ? मैं ही ब्रह्म हूँ। जीव का उद्देश्य क्या है ? आदि आदि प्रश्नों पर विचार विमर्श करना ही दर्शन है अतः तर्कपूर्ण, लगातार और विधिवत् चिन्तन करने की कला को दर्शन कह सकते हैं।

ग्लाकन नाम के एक व्यक्ति ने जब सुकरात (Socrates) से पूछा कि दार्शनिक कौन है तो उसने उत्तर दिया "सच्चे दार्शनिक वे हैं जो सच्चे ज्ञान के प्रेमी हैं। यह सत्य ज्ञान उन्हें उस निरन्तर प्रकृति का दर्शन कराता है जो उत्पत्ति और विकृति से प्रभावित नहीं होती।"[2] सच्चा

---

1. The belief that men may continue to educate without concerning themselves with philosophy, means a failure to understand the precise nature of education —*Gentile*.
2. "True philosphers are those who are lovers of the vision of truth which shows them the eternal nature not varying from generation and corruption"

ज्ञान क्या है ? सच्चा ज्ञान मनुष्य के जीवन के मूल्यों और उद्देश्यों से सम्बन्ध रखता है। चिन्तनशील व्यक्ति अपना जीवन यापन कुछ आदर्शों के अनुसार ही करता है। वह उस समाज के स्वरूप, मूल्य और प्रयोजन का अध्ययन करता है जिसमें वह रह रहा है। इस अध्ययन के बाद कुछ धारणाएँ बनाता है। ये धारणाएँ ही आदर्श हैं जिनके अनुकूल वह अपने जीवन को ढालने का प्रयत्न करता है। यही उसका जीवन दर्शन बन जाता है।

शिक्षा दर्शन का गत्यात्मक पक्ष है अर्थात् शिक्षा द्वारा ही हम उन आदर्शों की प्राप्ति करते हैं जिनको दर्शन ने निश्चित रूप दिया था। दर्शन की कला अर्थात् तर्क पूर्ण मनन और चिन्तन की कला एक ओर जीवन के आदर्शों का निर्माण करती है और दूसरी ओर शिक्षा उन आदर्शों की प्राप्ति के लिये साधन का कार्य करती है, अतः शिक्षा और दर्शन एक ही वस्तु के दो पहलू हैं, इसलिये रौस ने कहा है कि एक ही सिक्के के दो मोहरे हैं एक दूसरे से पृथक नहीं हैं अपितु एक दूसरे में निहित हैं।

जिस प्रकार दर्शन इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर देता है कि सत्य क्या है ? जीवन के शाश्वत मूल्य क्या हैं ? क्या सत्य पूर्व निश्चित है ? उसी प्रकार शिक्षा दर्शन ऐसे प्रश्नों का उत्तर देता है जिनका सम्बन्ध शिक्षा से है। शिक्षा क्या है ? शिक्षा के उद्देश्य क्या हैं ? इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये किस प्रकार का पाठ्यक्रम अपनाया जाय ? इत्यादि प्रश्नों का उत्तर शिक्षा दर्शन देता है।

शिक्षा और दर्शन का सम्बन्ध

Q 3 Philosophy and education the two sides of the same coin, present different views of the same thing —Ross.

Ans शिक्षा और दर्शन दोनों ने एक दूसरे को प्रभावित किया है। दर्शनशास्त्र ने भिन्न-भिन्न समयों पर भिन्न-भिन्न देशों में शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, पाठन विधियों का रूप निश्चित किया है। दर्शनशास्त्र के बिना शिक्षा कभी भी सही मार्ग पर चल नहीं सकती जब तक दर्शन का मार्ग निर्देशन न मिले।[1] जब तक दार्शनिक यह नहीं कह देता कि शिक्षा के अमुक अमुक उद्देश्य होने चाहिये और उन उद्देश्यों की प्राप्ति अमुक अमुक साधनों—पाठ्यक्रम और पाठन विधियों—द्वारा हो सकती है तब तक शिक्षा का रूप ही निश्चित नहीं हो सकता।

शिक्षा भी दर्शन को कम प्रभावित नहीं करती। वह दर्शन को क्रियाशील बनाती है। नई नई समस्याएँ पैदा कर दार्शनिकों को मनन और चिन्तन करने के लिये प्रेरित करती है। इस प्रकार नई नई समस्याओं का हल ढूंढ़ते ढूंढ़ते दार्शनिक नई नई विचार धाराओं को जन्म देता है। शिक्षा इस प्रकार दार्शनिक विचारों में परिष्कार और संशोधन पैदा करती है। दर्शन का विकास शिक्षा की इन समस्याओं के समाधान से होता है अतः रौस (Ross) का यह कथन कि दोनों एक ही वस्तु के दो पहलू हैं ठीक जँचता है।

दर्शनशास्त्र का शिक्षा के अंगों पर प्रभाव

Q 4 True education is practicable only to a true philosopher. (Spencer) Discuss the above statement.

Ans वास्तविक शिक्षा का संचालन वास्तविक दार्शनिक ही कर सकता है। शिक्षा के संचालन का अर्थ है शिक्षा के उद्देश्यों को स्थिर करना, उन उद्देश्यों के अनुकूल पाठ्यक्रम निर्धारित करना, पाठ्यक्रम को अधिकतम कराने के लिये उचित पाठनविधियों के विषय में मनन और चिन्तन करना, ऐसी ही अन्य शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं का समाधान करना सच्चे दार्शनिक द्वारा ही सम्भव है।

दर्शन और शिक्षा के उद्देश्य—शिक्षा एक सोद्देश्य क्रिया है। वह क्रिया जीवन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये की जाती है। जीवन के उद्देश्य भिन्न-भिन्न कालों में भिन्न भिन्न

1 The Art of education will never attain complete clearness in itself without philosophy. —*Fitche*

2. The process of education cannot go along right lines without the help of philosophy. —*Gentile*

देशो में भिन्न भिन्न ढग से निश्चित किये गये हैं। इन उद्देश्यो को निश्चित करने का काम शिक्षा दार्शनिको ने किया है। इन दार्शनिको मे माता-पिता, राजनीतिज्ञ, समाज सुधारक, शिक्षक आदि सभी वर्गों के लोग सम्मिलित हैं।

ये शिक्षा दार्शनिक काल विशेष मे मानव जीवन की आवश्यकताओ और मार्गों के अनुकूल जीवन के आदर्श और मूल्य निश्चित करते हैं। जीवन के आदर्शों और मूल्यो को शिक्षा के आदर्शों अथवा उद्देश्यो से सम्बद्ध किया जाता है। उदाहरण के लिये वर्तमान काल मे हमारे देश मे जबकि प्रजातन्त्रात्मक शासन को स्वीकृति मिल चुकी है जीवन की आवश्यकताएं एक दूसरे के सहयोग और सद्भाव से पूरी हो सकती हैं इसलिये शिक्षा का एक उद्देश्य देशवासियो को उत्तम नागरिक बनाना निश्चित किया गया है। प्राचीन भारत मे जबकि हम अध्यात्म पर जोर देते थे, जबकि हमारे जीवन का उद्देश्य आध्यात्मिक उन्नति था, तब शिक्षा का उद्देश्य भी आध्यात्मिक विकास ही था। उस समय का शिक्षक अपने शिष्य के धार्मिक शक्ति को विकसित करने के लिये धार्मिक शिक्षा पर जोर देता था, इस प्रकार सभी राष्ट्रों के विचारक अपने देश की आवश्यकताओ के अनुकूल जीवन के लक्ष्य निश्चित करते और उन लक्ष्यो की पूर्ति शिक्षा के द्वारा करने की चेष्टा करते हैं।

दर्शन और पाठ्यक्रम—विद्यालय मे दिये जाने वाले समस्त अनुभव पाठ्यक्रम के अग माने जाते हैं[1] विद्यालय के अन्दर ये अनुभव किस प्रकार के हो और किस प्रकार के न हो यह भी शिक्षा दार्शनिक ही निश्चित करता है। वह देश की आवश्यकताओं, आकाक्षाओं और आदर्शों को ध्यान मे रखकर पाठ्यवस्तु का सगठन और चयन करता है, वह उन्ही विषयों को पाठ्यक्रम में स्थान देता है जिनके अध्ययन से बालको मे अभीष्ट भावनाओ का विकास हो सके। यदि वह आत्मरक्षा को जीवन का मुख्य उद्देश्य मानता है तो पाठ्य-क्रम में भी ऐसे ही विषयो और क्रियाओ को स्थान देता है जो आत्म-रक्षा के साधन होते हैं। यदि वह शिक्षा का उद्देश्य बालक को अपनी प्रकृति और नैसर्गिक गुणो के अनुसार स्वतः विकसित होने मे सहायता देना मानता है तो पाठ्यक्रम से ऐसी वस्तु का सचय और संगठन करता है जिससे बालक को अपनी अभिरुचियों को स्वतन्त्रता पूर्वक विकसित करने का अवसर मिल सके (रूसो)। यदि वह शिक्षा का उद्देश्य बालक के व्यक्तित्व का स्वतन्त्र विकास इस प्रकार से करना मानता है कि उसे स्वर्गीय एकता अथवा ईश्वरीय शक्ति का बोध हो जाय तो ऐसा वातावरण प्रस्तुत करने और ऐसा पाठ्यक्रम बनाने का सुझाव देता है कि इस स्वर्गीय एकता का बोध बालक को होने लगे। इसलिये वह पाठ्यक्रम के सभी विषयो मे सम्बन्ध स्थापित करता है (फ्रोबेल)। यदि वह मानव को सम्पूर्ण जीवन के लिये तैयार करना शिक्षा का उद्देश्य मानता है तो उस सम्पूर्ण जीवन की प्राप्ति के लिये विभिन्न प्रकार के विषयो को पाठ्यक्रम में समाविष्ट करता है। उदाहरण स्वरूप आत्मरक्षा के लिये शरीर विज्ञान, जीविकोपार्जन के लिये भाषा, गणित, भूगोल, शिशु रक्षा के लिये गृहशास्त्र, बालमनोविज्ञान, सामाजिक और राजनैतिक क्षेत्रों में सफलता पाने के लिये इतिहास, समाजशास्त्र और अर्थशास्त्र; अवकाश के सदुपयोग के लिये साहित्य, सगीत और काव्य को पाठ्यक्रम मे समुचित स्थान देता है।

दर्शन और शिक्षण विधियां—सीखने का तरीका जिसको अध्यापक द्वारा अपनाये जाने पर शिष्य मे अभीष्ट परिवर्तन उत्पन्न हो जायें शिक्षण विधि कहलाती है। जीवन के आदर्शों की प्राप्ति किस प्रकार हो ? शिक्षा देने का कौनसा ऐसा तरीका है जिसको अपनाने से कम से कम समय, शक्ति और धन के व्यय द्वारा जीवन आदर्शों की पूर्ति हो ? इन प्रश्नो का उत्तर दर्शन ही देता है। जीवनादर्श शिक्षा के उद्देश्यो की रूपरेखा बनाते हैं। इन उद्देश्यो की प्राप्ति बिना किसी निश्चित विधि के सम्भव नहीं है। लक्ष्य को ध्यान मे रखकर ही तो आगे बढ़ा जाता है।

यदि लक्ष्य है बालक का विकास तो ऐसी विधियाँ अपनानी होंगी जिनसे अभीष्ट प्रकार का विकास सम्भव हो सके। यदि शिक्षा का उद्देश्य बालक की अपनी प्रकृति और नैसर्गिक गुण

---

1. "The curriculum may be defined as all the experiences that pupils have while under the direction of the school: both class-room as well as extra class-room activities, work as well as play"

के अनुकूल स्वतः विकसित होने में सहायता देता है तो शिक्षण विधि स्वानुभव द्वारा सीखने (learning by experience) अथवा करके सीखने (learning by doing) पर आधारित होगी।

शिक्षा के दार्शनिक आधारों (Philosophical Basis of Education) के अध्ययन की आवश्यकता—अतः हम देखते हैं कि दर्शन ही शिक्षा प्रक्रिया का सही मार्ग दिखाता है। दर्शन शास्त्र ही उसे अन्य शिक्षा की समस्याओं को सुलझाने में सहायता देता है। इसलिये फिक्टे (Fichte) का कहना था कि शिक्षा दर्शनशास्त्र की सहायता के बिना पूर्णता और स्पष्टता को प्राप्त नहीं कर सकती। यदि शिक्षा को दर्शन का मार्ग निर्देशन (Guidance) न मिले तो शिक्षक के भटक जाने में कोई सन्देह नहीं। वह शिक्षक जो यह विश्वास करता है कि दर्शनविहीन होने पर भी शिक्षण क्रिया उत्तम रीति से चल सकती है गलती पर है। बिना ठोस दार्शनिक आधार के शिक्षा व्यवस्था अथवा शिक्षा का ढाँचा निर्मित नहीं किया जा सकता।

शिक्षा के प्रधान दार्शनिक आधार हैं—

(१) आदर्शवाद

(२) यथार्थवाद

(३) प्रकृतिवाद

(४) प्रयोजनवाद

अगले अध्यायों में इन वादों की व्याख्या की जायगी।

Q 5. Why is it necessary for a teacher to understand the philosophical bases of education ?

[illegible] आधारित न हो जाय [illegible] चाहिये। जिस समय [illegible] नीचे दिये हुए दर्शन का ज्ञान होने पर ही वह शिक्षा की जटिलताएँ सुलझाई जा सकती हैं। वर्तमान भारत में शिक्षा की समस्याओं की बाढ़ सी आई हुई है और ये समस्याएँ दिन पर दिन जटिल होती जा रही हैं इसका कारण है कि हम उस आदर्शवादी और भौतिकवादी दार्शनिक विचारधाराओं के बीच समन्वय जो स्थापित नहीं कर पाये हैं जिन्होंने शिक्षा को अब तक प्रभावित किया है।

अतः यह आवश्यक है कि प्रत्येक शिक्षक शिक्षा सम्बन्धी विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं को समझे और जो दृष्टिकोण उचित हो उसे शिक्षा देते समय अपनावे। विभिन्न दार्शनिक मत-मतान्तरों की जानकारी होने पर ही वह उचित मार्ग चुन सकता है, प्रत्येक शिक्षाशास्त्री इस बात से सहमत है कि बिना दर्शन के शिक्षा एक जंजाल है। प्रत्येक शैक्षणिक समस्या का हल जीवनदर्शन से किया जाता है। जैसा जीवन दर्शन होता है वैसा ही मार्ग अपनाया जाता है। अतः कोई भी व्यक्ति जो बालक के विकास में सहायता देना चाहता है उसे शिक्षा दर्शन को समझना होगा।

आदर्शवादी दार्शनिक प्रकृति को व्यापक मन—विश्व चेतना अथवा ईश्वर—पर आधार मानकर उसकी कोई सत्ता स्वीकार नहीं करता जबकि प्रकृतिवादी दार्शनिक प्रकृति को सर्वोच्च सत्ता के रूप में स्वीकार करता है। आदर्शवाद की आध्यात्मिकता की ओर प्रवृत्ति है तो प्रकृतिवाद की भौतिक वाद की ओर। आदर्शवाद आन्तरिक अनुभवों पर जोर देता है तो प्रकृतिवाद बाह्य पर।

प्रयोजनवाद में इन दोनों विचारधाराओं का समन्वय है। यह प्रकृतिवाद की विधियों और आदर्शवाद के शाश्वत मूल्यों में विश्वास करता है। वह एक प्रकार का आदर्शवाद ही है "जिसमें आध्यात्मिक जीवन का प्रत्यक्ष ज्ञान सांसारिक जीवन के अनुभवों द्वारा प्राप्त होता है।"

अध्याय ५

शिक्षा में प्रमुख वाद—आदर्शवाद

आदर्शवाद क्या है

Q. 1. What is meant by Idealism ?

Ans. आदर्शवाद ऐसी विचारधारा है जो मूल्य (values) और आदर्श (ideals) के सर्व व्यापी होने मे विश्वास करती है। उसके मूल सिद्धान्त हैं ' आध्यात्मिक जगत ही सत्य, स्थायी और शाश्वत है भौतिक जगत मिथ्या, अस्थायी और मायाजाल हैं। जीवन के शाश्वत मूल्य हैं—सत्य, शिव, सुन्दर, केवल मानसिक जीवन ही ज्ञानन्द है, सच्ची वास्तविकता अध्यात्म मे है; परमसन मे जो कुछ वर्तमान है उसके अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु का अस्तित्व नही है और जो कुछ मन ससार को देता है वही वास्तविक है; मन का सम्बन्ध ईश्वर अथवा विश्व चेतना है हमारी मानसिक दृष्टि ही सत्य ज्ञान की प्राप्ति के लिये सहायक हो सकती है।

आदर्शवादी दार्शनिक कहता है कि व्यक्ति के अन्दर जो आध्यात्मिक शक्तियाँ हैं वही उसमे बौद्धिक, सांस्कृतिक, नैतिक और धार्मिक विकास मे सहायक होती हैं।

आदर्शवाद के आधारभूत तत्व

Q 2. Discuss the main features of Idealism.

Ans आदर्शवाद जिन दार्शनिक सिद्धान्तो पर आधारित है वे हैं—

(१) **आध्यात्मिक जगत ही सत्य और वास्तविक है**—आदर्शवादी दार्शनिक जगत के दो रूप लेता है—भौतिक और आध्यात्मिक। भौतिक जगत इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि आध्यात्मिक, वह तो आध्यात्मिक जगत् की प्रतिच्छाया मात्र है। ससार की रचना इन दोनो जगतो की क्रिया-प्रतिक्रिया के फलस्वरूप होती है। इस आध्यात्मिक जगत् को समझना ही जीवन का परम लक्ष्य है।

(२) **प्रकृति की अपेक्षा मनुष्य अधिक महत्वपूर्ण है**—चूंकि आध्यात्मिक जगत् ही अधिक महत्वपूर्ण है और चूंकि जीवन का लक्ष्य इस आध्यात्मिक ... है इसलिये जड़ प्रकृति की अपेक्षा जीवित मनुष्य ही अधिक महत्वपूर्ण है। ... आध्यात्मिक जगत् को समझने की शक्ति है और इस शक्ति के सहारे ... है। मनुष्य की यह शक्ति उसकी बुद्धि है। बुद्धि ही ... पशुत्व से ऊपर उठाती है। बुद्धि ... के बल पर ही वह वातावरण पर ... आचारशास्त्र, कला और ...

... तत्वों की अक्षुण्ण ...

... है विचार सत्य, वस्तु ... छाया ही भौतिक जगत् ... वास्तव में एक विचार

है पदार्थ नहीं क्योंकि [illegible] के भीतर [illegible] विचार है [illegible] इस व्यक्ति की [illegible] है जिनमें [illegible] नहीं होती है अथवा [illegible] है। [illegible] जगत् से उत्पन्न होते हैं, पदार्थ का [illegible] भौतिक जगत् से है।

(४) सत्यं शिवं सुन्दरम् के आध्यात्मिक शाश्वत मूल्यों की प्राप्ति मनुष्य का धर्म है—आध्यात्मिक मूल्य ही [illegible] नहीं होते हैं [illegible] वस्तुएँ बदलती हैं। इन मूल्यों की प्राप्ति ही जीवन का लक्ष्य है। ये मूल्य हैं सत्य (Truth) शिव (Goodness) और सुन्दर (Beauty)। मन की शक्तियाँ इन मूल्यों की प्राप्ति में सहायक होती हैं। मन जानता है, इच्छा करता है और इसे पूरा [illegible] क्रियाएँ करने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार जानना, इच्छा करना और पूरा क्रियाएँ करने की शक्तियाँ मानसिक शक्तियाँ हैं। जानने से ज्ञान की प्राप्ति होती है और ज्ञान से सत्य की। इसी प्रकार इच्छा करने से सुन्दरम् और इच्छित कार्य करने से शिव की। मनुष्य का मन इन तीनों क्रियाओं—सत्य की प्राप्ति के लिए जानना (Knowing), सुन्दरम् की प्राप्ति के लिए इच्छा करना (Feeling) और शिव की प्राप्ति के लिए क्रियाएँ करना (Willing)—स्वार्थवश नहीं करता। वह तो सत्य को सत्य के लिए, शिव को शिव के लिए, और सुन्दरम् को सुन्दरम् के लिये ही पाने की कोशिश करता है।

शिक्षा का अर्थात् मानव जीवन का परम लक्ष्य है पहले सत्य, शिव, सुन्दर की प्राप्ति, फिर सापेक्ष सत्य, शिव और सुन्दर की प्राप्ति और अन्त में निरपेक्ष सत्य, शिव और सुन्दर की प्राप्ति।

(५) मानव जीवन का उद्देश्य अनेकता में एकता का बोध प्राप्त करना है—यद्यपि संसार की विभिन्न वस्तुएँ भौतिक दृष्टिकोण से अनेक दिखाई देती हैं किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से उनमें एकता है। संसार की सभी वस्तुओं को एक सूत्र में बांधने वाली कोई विशेष शक्ति है जिसे हम ईश्वर अथवा चेतन तत्व कह सकते हैं। जीवन का उद्देश्य इस एकता का बोध प्राप्त करना है अतः शिक्षा का उद्देश्य भी अनेकता में एकता बोध की प्राप्ति है। इस ज्ञान के प्राप्त होने पर व्यक्ति पूर्णता को प्राप्त होता है।

(६) आदर्श व्यक्तित्व का विकास शिक्षा का परम उद्देश्य है—आदर्श व्यक्तित्व क्या है? इसके विषय में आदर्शवादियों में मतभेद है। कुछ के मतानुसार उस व्यक्ति को हम आदर्श व्यक्ति कह सकते हैं जिसने आत्म बोध अथवा आत्मानुभूति प्राप्त करली है। आत्म बोध का अर्थ है प्रकृति, पुरुष और ईश्वर को समझना। जिस मनुष्य ने इनको समझ लिया है वही परम सुखी है। यहाँ पर आत्माभिव्यक्ति और आत्म बोध में अन्तर समझ लेना जरूरी है। आत्माभिव्यक्ति (*Self expression*) में आत्म प्रकाशन का भाव रहता है। आत्माभिव्यक्ति आत्म बोध का प्रथम सोपान है। आत्म बोध का यह अर्थ नहीं है कि आत्म बोध प्राप्त व्यक्ति असामाजिक हो जाय। मनुष्य समाज में रहकर ही उन सामाजिक गुणों का विकास करता है और व्यक्ति-व्यक्ति के भेद को भूल जाता है। ऐसा ही व्यक्तित्व आदर्श व्यक्तित्व है।

आदर्शवादी दार्शनिक—शिक्षा के क्षेत्र में आदर्शवादी विचारधारा के पोषक थे प्लेटो (Plato), कमेनियस (Comenius), पेस्टालाजी (Pestalozi) और फ्रोबेल (Froebel)। प्लेटो को आदर्शवाद का प्रमुख प्रवर्तक माना जाता है। उसने शिक्षा द्वारा उक्त जीवन के लक्ष्यों की प्राप्ति की चर्चा अपनी पुस्तक रिपब्लिक (Republic) में की थी। अन्य दार्शनिकों ने भी प्लेटो की तरह शिक्षा के आदर्शों और उद्देश्यों की ही चर्चा अधिक की। लेकिन इस आदर्शवादी विचार धारा का पाठ्यक्रम, पाठन विधि, अनुशासन आदि सभी बातों पर भी कम प्रभाव नहीं पड़ा।

नीचे आदर्शवादी विचारधारा का शिक्षा पर प्रभाव किस सीमा तक पड़ा है उसकी व्याख्या की जायगी।

आदर्शवादी विचारधारा का शिक्षा पर प्रभाव

Q. 3 *What is the bearing of Idealistic philosophy on education?* **How far is our present system of education based on this philosophy?**

Or

Idealism has more to contribute to the aim and objectives of education than to its methods. Discuss.

Ans. आदर्शवाद ने शिक्षा के उद्देश्यों की जिस विस्तृत और उत्तम ढग से व्याख्या की है उस ढग से पाठ्यक्रम, शिक्षक शिष्य सम्बन्ध, अनुशासन, पाठन विधि पर नही।

आदर्शवादी शिक्षा के उद्देश्य आदर्श के मूल सिद्धान्तो पर आधारित हैं। यदि आध्यात्मिक जगत को ही सत्य और वास्तविक मान लिया जाय तो शिक्षा का उद्देश्य होगा बालक की आध्यात्मिक उन्नति। लेकिन आध्यात्मिक उन्नति तभी हो सकती है जब व्यक्ति जीवन के शाश्वत और चिरन्तन मूल्यो—सत्य, शिव, सुन्दर की प्राप्ति का प्रयत्न करे और विद्यालय ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करे कि जीवन के शाश्वत सत्य शिष्य को प्राप्त हो सकें।

चूंकि आदर्शवादी मनुष्य को ईश्वर की सर्वोत्तम कृति मानता है क्योंकि वह आध्यात्मिक और सास्कृतिक परम्पराओं को जन्म देता है इसलिये शिक्षा के उद्देश्य इन **आध्यात्मिक और सास्कृतिक परम्पराओं को सुरक्षित रखना है**। मनुष्य अपने मानसिक प्रयासो द्वारा जिस साहित्य, कला, सगीत, धर्म, और आचार-शास्त्र आदि का विकास करता है शिक्षा का कर्त्तव्य है उस सभी सम्पत्ति की सुरक्षा करे।

आदर्शवादी शिक्षा का तीसरा उद्देश्य है आत्म बोध (Self-Realisation)—आत्म बोध का अर्थ है अपने को समझना। जब व्यक्ति अपने को समझने लगता है तब उसका जीवन सुख, आनद और शान्तिमय हो जाता है। जब मनुष्य आत्मबोध प्राप्त कर लेता है तब वह आदर्श अवस्था (State of Perfection) को प्राप्त हो जाता है।

प्रत्येक मनुष्य को अधिकार है कि वह शिक्षा द्वारा इस आदर्श अवस्था को प्राप्त करे। प्रत्येक मनुष्य मे कुछ ऐसे दैवी गुण विद्यमान हैं जिनके विकसित होने पर वह इस आदर्शत्व को प्राप्त कर सकता है। अत शिक्षा का उद्देश्य है प्रत्येक बालक के उन गुप्त गुणो का विकास जिनके विकसित होने पर वह आदर्श अवस्था को प्राप्त कर सके।

आदर्शवादी शिक्षा का चौथा उद्देश्य है अनेकता मे एकता का दर्शन करना। ससार का सचालन विशेष नियम द्वारा होता है। वह नियम है अनेकत्व मे एकत्व का होना। वह एकत्व ईश्वर अथवा चेतन तत्व है। अनेकत्व मे इस एकत्व का ज्ञान बुद्धि और विवेक से सम्भव है। शिक्षा का उद्देश्य है इस एकत्व का बोध कराने के लिये बालक का उचित बौद्धिक विकास करना।

इन उद्देश्यो की पूर्ति के लिये आदर्शवादी दार्शनिकों ने जिस प्रकार के पाठ्यक्रम के चयन और सगठन की चर्चा की है वह नीचे दिया जाता है। यद्यपि आदर्शवादी दार्शनिक शिक्षा के उद्देश्यो को स्थिर करते समय एकमत से प्रतीत होते हैं परन्तु पाठ्यक्रम के निर्धारण करते समय उनमें कुछ मतभेद सा है।

आदर्शवादी पाठ्यक्रम—आदर्शवादी दार्शनिक पाठ्यक्रम मे बालक की क्रियाओ को उतना महत्व नही देते जितना कि मानव जाति के अनुभवो को। समस्त पाठ्यक्रम उनके विचार से मानव जाति के अनुभवो का भण्डार होना चाहिये। ये अनुभव मानव ने मानव के सम्पर्क मे आकर भौतिक जगत् मे प्राप्त किये है। अत पाठ्यक्रम मे विज्ञान तथा अन्य मानवीय विषयो का रखा जाना आवश्यक है। तभी शिक्षा द्वारा वे आध्यात्मिक और सास्कृतिक परम्पराएँ सुरक्षित रह सकेंगी जिनकी प्राप्ति अब तक मानव ने की है।

यदि शिक्षा का उद्देश्य बालक की आध्यात्मिक उन्नति है और इस अध्ययन के लिये उसे जीवन के शाश्वत मूल्यो सत्य, शिव और सुन्दरम् का आभास देना है तो उसे ऐसी क्रियाएँ करानी होगी अथवा ऐसे अनुभव देने होंगे जिनसे इन मूल्यो की प्राप्ति सम्भव हो। सत्य की प्राप्ति ज्ञान से होती है अत बालक का ज्ञान : विकसित करने के लिये बौद्धिक क्रियाएँ अथवा अनुभव देने होंगे। इसी प्रकार सुन्दर की प्राप्ति कलात्मक क्रियाओ से और शिव की प्राप्ति नैतिक क्रियाओं से सम्भव है। बौद्धिक अनुभवो मे भाषा, साहित्य, इतिहास, भूगोल, गणित और विज्ञान को, कलात्मक अनुभवो मे कला और सगीत को, नैतिक अनुभवो मे धर्म, नीति शास्त्र और आध्यात्म शास्त्र (Metaphysics) को स्थान दिया जाय यह प्लेटो का मत है।

लेकिन हरबार्ट कहता है कि यदि शिक्षा का चरम उद्देश्य मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति ही है तो पाठ्यक्रम से केवल उन्ही विषयो को स्थान देना चाहिये जो उसे इस प्रकार की उन्नति मे सहायता दे और चूंकि विज्ञान, भूगोल और गणित इस उन्नति मे किसी प्रकार सहायक नहीं होते इसलिये इनको पाठ्यक्रम मे कोई स्थान न दिया जाय।

रौस का मत इन दोनों आदर्शवादियों से कुछ भिन्न है। यह कहता है कि चूँकि मनु की आध्यात्मिक उन्नति उसकी शारीरिक उन्नति पर निर्भर है इसलिये पाठ्यक्रम में ऐसे विषय और क्रियाओं का भी समावेश होना चाहिये जिनका सम्बन्ध व्यक्ति की शारीरिक उन्नति से है ऐसे विषय स्वास्थ्य रक्षा और शारीरिक विज्ञान हैं।

नन महोदय, जिनके विचार भी आदर्शवादी हैं, शिक्षा द्वारा राष्ट्र की आध्यात्मि शक्ति को दृढ़ बनाना चाहते हैं, उसकी पूर्व सचित ज्ञान राशि की रक्षा करना चाहते हैं औ उसकी भावी उन्नति को प्राथमिकता देते हैं। इस प्रयोजन से वे पाठ्य-क्रम में एक ओर तो ऐस क्रियाओं अथवा अनुभवों के सचय एवं सगठन पर जोर देते हैं जो बालक को उसके पूर्वजों द्वार मानव मात्र की उन्नति के लिये किये गये प्रयत्नों से सम्बद्ध रखते हैं। और दूसरी ओर ऐस क्रियाओं को भी रखना चाहते हैं जो बालक को समाज की उन्नति में योगदान देने के लिये प्रेरि कर सकें। इस उद्देश्य से पाठ्यक्रम में इतिहास, संस्कृति, साहित्य, नीति शास्त्र, धर्म शास्त्र, कल विज्ञान, शारीरिक विज्ञान आदि विषयों के साथ सामाजिक अध्ययन, समाज शास्त्र को भी मह देते हैं।

आदर्शवाद और शिक्षक—शिक्षा कार्य के आदर्शवादी दार्शनिक शिक्षक का स्थान अ दार्शनिकों की अपेक्षा महत्वपूर्ण समझता है। वही अपने आदर्शों की अमिट छाप बालक के आचरण पर डालता है। वही बालक का पद पद पर मार्ग निर्देशन करता है। वही सत्य शिव सुन्दर की प्राप्ति के लिये उपयुक्त वातावरण का निर्माण करता है, बालक को प्रेरणा प्रदान करता है अत: शिक्षक ही बालक को आदर्श अवस्था (State of Perfection) तक पहुँचाने वाला है।

फ्रोबेल ने जिसे हम आदर्शवादियों में स्थान देते हैं अध्यापक को ही उस अनुकू वातावरण के बनाने की जिम्मेदारी सौंपी है जिसमें पलकर बालक पूर्णत विकसित होता है अध्यापक को वह उस अनुभवी माली की उपमा देता है जो बगीचे के प्रत्येक पौधे की रक्षा क व्यवस्था करता, उसके लिये उचित खाद और पानी देता और विकास और वृद्धि के लि अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा करता है। यद्यपि बालक में स्वत विकसित होने के लिये प्रकृतिजन शक्तियाँ और गुण वर्तमान हैं फिर भी अध्यापक द्वारा निर्मित वातावरण से ही उसका विका सम्भव है नहीं तो स्वाभाविक गुण और शक्तियों के होते हुए भी उसका विकास और वृद्धि कुण्ठि हो जायगी जिस प्रकार प्रतिकूल वातावरण मिलने पर पौधे का विकास और वृद्धि रुक जाते हैं

शिक्षक का महत्व इसमें भी है कि वह बालक को अनुशासित बनाये।

[illegible] का कहना है कि यदि बालक [illegible] मूल्यों की प्राप्ति नहीं कर सकत [illegible] यन्त आवश्यक है। लेकिन य अनुशासन कैसा हो? आदर्शवादी प्रभावात्मक (Impressionistic) अनुशासन पर जोर देता है।

प्रभावात्मक अनुशासन (Impressionistic Discipline) से उनका अर्थ है ऐसा अनु शासन जिसका आधार है अध्यापक के आदर्श जीवन, चरित्र, आचार विचार की बालक के जीवन प [illegible] होता है। वह अनुशासन स्थायी नहीं हो सकत [illegible] अनुशासित हो सकता है औ [illegible] र करता है। लेकिन अध्याप [illegible] मनियन्त्रण पर आवश्यक ब देता था।

प्रभावात्मक अनुशासन क्यों अधिक महत्वपूर्ण है और इसकी विशद व्याख्या "शिक्षा मे अनुशासन और स्वतन्त्रता" विषयक अध्याय में की जायगी। शिक्षालय व्यवस्था पर आदर्शवादि इस विचारधारा का इतना अधिक प्रभाव पड़ा है कि सभी शिक्षा शास्त्री प्रभावात्मक अनुशासन के दमनात्मक अथवा मुक्त्यात्मक अनुशासन से अधिक महत्वपूर्ण समझते हैं।

आदर्शवाद और शिक्षण विधियाँ—जिन उद्देश्यों की शिक्षा का लक्ष्य आदर्शवादी दार्श निकों ने माना है उनकी प्राप्ति के साधन क्या हों इसके लिये आदर्शवादियों ने किसी विशेष शिक्षण विधि का उल्लेख नहीं किया। सुकरात ने अपनी शिक्षण विधि में निगमन विधि पर जोर दिया औ फ्रोबेल ने खेल की प्रणाली को शिक्षा का उत्तम तरीका माना। अन्य आदर्शवादी दार्शनिक विधियाँ

के विषय में बिल्कुल शान्त से प्रतीत होते हैं उन्होंने जितना जोर शिक्षा के उद्देश्यों पर दिया है उतना जोर उनके उद्देश्यों की प्राप्ति के तरीकों पर नहीं दिया।

आदर्शवाद के गुण और दोष

Q 4. Evaluate the contribution of Idealism to education.

Ans गुण—(१) आदर्शवाद ने हमें एक ऐसा उत्तम दृष्टिकोण दिया है जो चिरन्तन, शाश्वत और स्थायी मूल्यों एवं आदर्श पर आधारित है। यदि हम उन मूल्यों और आदर्शों का अनुगमन करते रहते तो शिक्षा में इतनी समस्यायें ही उत्पन्न न होतीं। आज का व्यक्ति आध्यात्मिकता की ओर से हटकर घोर यान्त्रिकवाद और भौतिकवाद की ओर झुकता जा रहा है। आदर्शवाद की शिक्षा को सबसे महत्वपूर्ण देन यही है कि उसने चरित्रनिर्माण और आध्यात्मिकता के विकास को ही शिक्षा का चरम लक्ष्य माना है।

(२) प्रकृतिवाद हो अथवा प्रयोगवाद अथवा कोई और वाद शिक्षा के जिन उद्देश्यों का निर्धारण इस सम्प्रदाय ने किया है वे अपूर्ण और एकांगी हैं किन्तु आदर्शवाद ने व्यापक उद्देश्यों का उल्लेख किया है।

(३) आदर्शवाद ने शिक्षक के स्थान को शैक्षिक क्रिया में जो महत्वपूर्ण स्थान दिया है उसी के कारण आज शिक्षकत्व जीवित बचा हुआ है। अध्यापक ही समाज सुधारक और राष्ट्र निर्माता है और उसको शिक्षा में महत्वपूर्ण स्थान देने से ही समाज का कल्याण है यह भावना आदर्शवाद की शिक्षा क्षेत्र की अपूर्व देन है।

(४) स्व-अनुशासन और आत्मनियन्त्रण के जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन आदर्शवाद ने सर्वप्रथम किया था उसकी अनुशासन के लिये विशेष उपयोगिता है।

(५) आदर्शवाद ने बालक के व्यक्तित्व को जिस आदर भाव से देखा है उसी सम्मान से प्रकृतिवाद और प्रयोजनवाद ने भी देखा है।

दोष - आदर्शवाद के आलोचक इस सम्प्रदाय में निम्न अवगुण देखते हैं :—

(१) आदर्शवाद के उद्देश्य व्यापक होते हुए भी अमूर्त और दार्शनिक हैं प्राप्य और व्यावहारिक नहीं।

(२) आदर्शवादी शिक्षा जो आध्यात्मिक विकास को लक्ष्य मानकर चलती है आज के यान्त्रिक और भौतिकवादी युग के अनुकूल नहीं। आज का मानव वर्तमान की ओर देखता है भविष्य की ओर नहीं, भौतिक सुख व कल्याण को देखता है अभौतिक कल्याण को नहीं। उसकी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि रोटी, कपड़ा और मकान से होती है और आदर्शवाद इनको उपेक्षा की दृष्टि से देखता है अत युगानुकूल नहीं है।

(३) वह बालक के लिये पथ प्रदर्शन का काम तो कर सकता है : लेकिन उसका पूरी तरह नेता नहीं बन सकता। ऐसे कितने अध्यापक हमको उपलब्ध हो सकते हैं जो शैक्षिक प्रक्रिया मे बालकों का इस प्रकार का नेतृत्व कर सकें जैसा कि आदर्शवाद कहता है।

(४) आदर्शवाद जिन शिक्षण विधियों को अच्छा मानता है उनके दोष शिक्षा जगत के सम्मुख आ चुके हैं। अब तो खेल द्वारा शिक्षा, स्वशिक्षा, नाटक शिक्षा आदि मनोवैज्ञानिक विधियों को उत्तम माना जाता है।

(५) आदर्शवाद द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम भी अब अच्छा नहीं समझा जाता क्योंकि वह वर्तमान जीवन के अनुभवों से असम्बद्ध है।

अध्याय ६

प्रकृतिवाद और शिक्षा

प्रकृतिवाद का स्वरूप

Q 1 What is Naturalism in Education ?

Ans प्रकृतिवाद का आशय उन सभी शिक्षा प्रणालियों से है जो पाठशालाओं और पुस्तकों पर निर्भर न रहकर बालक के वास्तविक जीवन का अध्ययन करके उसे विकसित करने के लिये परिस्थितियां जुटाती हैं।

'Naturalism, as Adams points out, is a term loosely applied in Educational theory to systems of training that are not dependent on school and books but on the manipulation of the actual life of the educand.'

ये शिक्षा प्रणालियां प्रकृति के अनुसार बालकों की शिक्षा चलाने पर जोर देती हैं। पुस्तकों के माध्यम से किसी विषय अथवा वस्तु का प्राप्त ज्ञान प्राकृतिक नहीं होता। उसमें वह स्वाभाविकता नहीं होती जो ज्ञान प्रकृति का अनुसरण करने से प्राप्त होता है।

प्रकृतिवादी शिक्षा की विशेषताएँ हैं—

(१) पुस्तकीय शिक्षा का विरोध।

(२) प्रकृति की ओर लौटो।

(३) बालक ही प्रधान है विषय गौण है।

(४) बालक की प्रवृत्तियों, रुचियों और शक्तियों पर शिक्षा का मनोवैज्ञानिक आधार हो।

प्रकृतिवादी पुस्तकीय शिक्षा का विरोध करता है। चूंकि पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करने के लिये भाषा ज्ञान का विशेष महत्व है इसलिये यदि बालक को प्रकृति के अनुसार चलाना है तो पुस्तकीय ज्ञान का विरोध करना होगा।

बालक के समुचित विकास के लिए आवश्यक है कि प्रकृति की ओर लौटा जाय। समाज के दूषित और कृत्रिम वातावरण से दूर प्राकृतिक वातावरण में ही बालक का विकास हो सकता है इस विचार से प्रकृतिवादी दार्शनिक बालक को सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्ति देना चाहता है। समाज द्वारा स्थापित [illegible] समाज के साथ-साथ दूषित हो जाते हैं अतः बालक को शिक्षित करने के लिये इन [illegible] को कोई महत्व नहीं दिया जाय। प्रकृति ही सर्वश्रेष्ठ शिक्षक है अन्य शिक्षक की भी आवश्यकता नहीं। इस प्रकार प्रकृतिवादी दार्शनिक पाठशाला, पुस्तक, पढ़ाने वाले इन [illegible] का विरोध करता है।

शिक्षक और अन्य विषयों की अपेक्षा बालक ही प्रधान है अतः शिक्षा का केन्द्र बालक है [illegible]। [illegible] शिक्षा उसकी रुचियों, प्रवृत्तियों और योग्यताओं के अनुकूल हो। [illegible] बालक का सर्वांगीण विकास। लेकिन यह तभी सम्भव है जब बालक को स्वतन्त्र छोड़ दिया जाय। यदि उसके विकास में किसी प्रकार की बाधा डाल दी गई तो बालक के [illegible] विकास न होगा। यदि बालक को स्वतन्त्र रूप से बढ़ने के स्थान पर उसके विकास

मे बाधा पहुँचाई जायगी तो उसका विकास सन्तुलित न हो सकेगा। या तो वह छोटा विद्वान् (Young Savant) हो जायगा या बूढ़ा बालक (Old Child) अत उसकी आवश्यकताओं और योग्यताओं के अनुकूल ही शिक्षा के उद्देश्य, शिक्षण विधि और पाठ्य वस्तु का चयन और सगठन किया जाय तभी शिक्षा बाल केन्द्रित हो सकती है।

(४) बालक की मूल प्रवृत्तियो, शक्तियों और रुचियों के अनुकूल शिक्षा का कार्य-क्रम हो। यदि शिक्षा को बाल केन्द्रित बनाना है तो उसकी अन्त प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करना होगा अर्थात् पहले हमे जानना होगा कि उसकी मूल प्रवृत्तियाँ इच्छाएँ, रुचियाँ, सीमाएँ और शक्तियाँ क्या हैं और फिर उनके अनुकूल उसे विकसित होने का अवसर देना होगा। यदि बालक को बालक मानकर ही शिक्षा देना है तो बालक के मनोविज्ञान का अध्ययन करना होगा। इसका अर्थ यह है कि बालक के विकास की सभी अवस्थाओं—शैशव, बाल्य, किशोर, प्रौढ की विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करनी होगी तभी बालक का उचित विकास सम्भव है।

प्रकृतिवाद का शिक्षा सिद्धान्तों पर प्रभाव

Q. 2. What has been the contribution of Naturalism to educational thought ?

Ans प्रकृतिवाद ने शिक्षा को कई प्रकार मे प्रभावित किया है। उसने उद्देश्यो, पाठ्यक्रम, शिक्षा विधि, अनुशासन, स्कूल व्यवस्था आदि शिक्षा के सभी अगों पर अपनी अमिट छाप छोडी है।

प्रकृतिवाद और शिक्षा के आदर्श—शिक्षा मे प्रकृतिवादी विचार धारा के पोपक विचारकों मे मैकडूगल, लेमार्क, रूसो और नन के नाम उल्लेखनीय हैं। मैकडूगल ने शिक्षा का उद्देश्य मूल प्रवृत्तियों को रूपान्तरित करके समाजोपयोगी कार्यों मे लगाना बताया है। डारविन ने जीव विज्ञान के दो महत्वपूर्ण सिद्धान्तो—जीवन के लिए संघर्ष (Struggle for existence) —
समर्थ का अस्तित्व (Sur
प्राणी को जीवित रहने के
शेष का सामना हो जाता है। लेकिन लेमार्क के अनुसार वही व्यक्ति जीवित रहता है जो अपने आप को प्रकृति के अनुकूल बना लेता है। शिक्षा में लेमार्क का मत ही अधिक ग्राह्य है। लेमार्कवाद के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बालक को इस योग्य बनाना है कि वह अपने आपको परिस्थितियों के अनुकूल बना सके।

रूसो के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य है बालक को अपने प्राकृतिक गुणों के अनुसार स्वत विकसित होने मे सहायता देना। प्रत्येक बालक दूसरे बालक मे वैयक्तिक विभिन्नताएँ रखता है अत शिक्षा का उद्देश्य है वैयक्तिक विभिन्नताओं को ध्यान मे रखकर बालक के सभी प्रकार के विकास मे सहयोग देना।

नन भी व्यक्ति के स्वतत्र विकास पर अधिक जोर देते थे। उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य है वैयक्तिकता (Individuality) का विकास, और वैयक्तिकता का अर्थ है आत्मानुभूति अथवा आत्मबोध।

सक्षेप मे, सभी प्रकृतिवादी शिक्षादार्शनिक बालक के स्वाभाविक विकास पर जोर देते हैं। वे ज्ञान के उद्देश्य का विरोध करते हैं।

प्रकृतिवाद और पाठ्यक्रम—पाठ्यक्रम मे रखी गई पाठ्य वस्तु का चयन बालक की नैसर्गिक रुचि, योग्यता और स्वाभाविक क्रियाओं के आधार पर होना चाहिए। ज्ञान के लिए ज्ञान के सिद्धान्त मे विश्वास न करने के कारण यह विचारधारा पाठ्यक्रम मे अनावश्यक विषयवस्तु को रखने के विरोध मे है। केवल ऐसे ही ज्ञान को देने की व्यवस्था की जाती है जिससे बालक के स्वाभाविक विकास मे सहायता मिले।

उदाहरण के लिए साहित्य और सांस्कृतिक विषय महत्वहीन हैं क्योकि न तो उनका सम्बन्ध जीवन की रक्षा से है और न वे सहायता करते हैं बालक के स्वाभाविक विकास मे ही।

प्रकृतिवाद और विद्यालय व्यवस्था—प्रकृतिवादी दार्शनिक विद्यालय प्रबन्ध मे सभी प्रकार के बन्धनों के विरोधी हैं। बालक को समय चक्र बनाकर शिक्षा देना, उसे कठोर दमनात्मक

अध्याय ६

प्रकृतिवाद और शिक्षा

प्रकृतिवाद का स्वरूप

Q 1 What is Naturalism in Education ?

Ans प्रकृतिवाद का आशय उन सभी शिक्षा प्रणालियों से है जो पाठशालाओं और पुस्तकों पर निर्भर न रहकर बालक के वास्तविक जीवन को अध्ययन करके उसे विकसित करने के लिये परिस्थितियां जुटाती है।

'Naturalism, as Adams points out, is a term loosely applied in Educational theory to systems of training that are not dependent on school and books but on the manipulation of the actual life of the educand.'

ये शिक्षा प्रणालियां प्रकृति के अनुसार बालकों की शिक्षा चलाने पर जोर देती हैं। पुस्तकों के माध्यम से किसी विषय अथवा वस्तु का प्राप्त ज्ञान प्राकृतिक नहीं होता। उसमे वह स्वाभाविकता नहीं होती जो ज्ञान प्रकृति का अनुसरण करने से प्राप्त होता है।

प्रकृतिवादी शिक्षा की विशेषताएँ हैं—

(१) पुस्तकीय शिक्षा का विरोध।

(२) प्रकृति की ओर लौटो।

(३) बालक ही प्रधान है विषय गौण है।

(४) बालक की प्रवृत्तियों, रुचियों और शक्तियों पर शिक्षा का मनोवैज्ञानिक आधार हो।

प्रकृतिवादी पुस्तकीय शिक्षा का विरोध करता है। चूंकि पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करने के लिये भाषा-ज्ञान का विशेष महत्व है इसलिये यदि बालक को प्रकृति के अनुसार चलाना है तो पुस्तकीय ज्ञान का विरोध करना होगा।

बालक के समुचित विकास के लिए आवश्यक है कि प्रकृति की ओर लौटा जाय। समाज [illegible] हो सकता [illegible] है। [illegible] त [illegible] है

अत. शिक्षक की भी आवश्यकता नहीं। इस प्रकार प्रकृतिवादी दार्शनिक पाठशाला, पुस्तक, पढ़ाने वाले इन तीनों 'प' का विरोध करता है।

शिक्षक और पाठ्य विषयों की अपेक्षा बालक ही प्रधान है अत शिक्षा का केन्द्र बालक ही होना चाहिए। बाल केन्द्रित शिक्षा उसकी रुचियों, प्रवृत्तियों और योग्यताओं के अनुकूल हो। शिक्षा का उद्देश्य हो बालक का सर्वांगीण विकास। लेकिन यह तभी सम्भव है जब बालक को स्वतन्त्र छोड़ दिया जाय। यदि उसके विकास में किसी प्रकार की बाधा डाल दी गई तो बालक के लिये यह कार्य हितकर न होगा। यदि बालक को स्वतन्त्र रूप से बढ़ने के स्थान पर उसके विकास

विद्वान्
[illegible] ओं और
[illegible] सगठन

(४) बालक की मूल प्रवृत्तियों, शक्तियों और रुचियों के अनुकूल शिक्षा का कार्यक्रम हो। यदि शिक्षा को बाल केन्द्रित बनाना है तो उसकी अन्त प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करना होगा अर्थात् पहले हमे जानना होगा कि उसकी मूल प्रवृत्तियाँ इच्छाएँ, रुचियाँ, सीमाएँ और शक्तियाँ क्या हैं और फिर उनके अनुकूल उसे विकसित होने का अवसर देना होगा। यदि बालक को बालक मानकर ही शिक्षा देना है तो बालक के मनोविज्ञान का अध्ययन करना होगा। इसका अर्थ यह है कि बालक के विकास की सभी अवस्थाओं—शैशव, बाल्य, किशोर, प्रौढ की विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करनी होगी तभी बालक का उचित विकास सम्भव है।

प्रकृतिवाद का शिक्षा सिद्धान्तों पर प्रभाव

Q. 2. What has been the contribution of Naturalism to educational thought ?

Ans प्रकृतिवाद ने शिक्षा को कई प्रकार से प्रभावित किया है। उसने उद्देश्यो, पाठ्यक्रम, शिक्षा विधि, अनुशासन, स्कूल व्यवस्था आदि शिक्षा के सभी अंगो पर अपनी अमिट छाप छोडी है।

प्रकृतिवाद और शिक्षा के आदर्श—शिक्षा मे प्रकृतिवादी विचार धारा के पोषक विचारकों मे मैकडूगल, लेमार्क, रूसो और नन के नाम उल्लेखनीय हैं। मैकडूगल ने शिक्षा का उद्देश्य मूल प्रवृत्तियों को रूपान्तरित करके समाजोपयोगी कार्यों मे लगाना बताया है। डारविन ने जीव विज्ञान के दो महत्वपूर्ण सिद्धान्तों—जीवन के लिए सघर्ष (Struggle for existence) तथा समर्थ का अस्तित्व (Survival of the Fittest) की व्याख्या की। इन सिद्धान्तो के अनुसार प्रत्येक प्राणी को जीवित रहने के लिए सघर्ष करना पडता है और जो समर्थ होता है वह जीवित रहता है शेष का खात्मा हो जाता है। लेकिन लेमार्क के अनुसार वही व्यक्ति जीवित रहता है जो अपने आप को प्रकृति के अनुकूल बना लेता है। शिक्षा मे लेमार्क का मत ही अधिक ग्राह्य है। लेमार्कवाद के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बालक को इस योग्य बनाना है कि वह अपने आपको परिस्थितियो के अनुकूल बना सके।

[illegible]
विकसित हे [illegible]
शिक्षा का [illegible]
मे सहयोग देना।

नन भी व्यक्ति के स्वतन्त्र विकास पर अधिक जोर देते थे। उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य है वैयक्तिकता (Individuality) का विकास, और वैयक्तिकता का अर्थ है आत्मानुभूति अथवा आत्मबोध।

सक्षेप मे, सभी प्रकृतिवादी शिक्षादार्शनिक बालक के स्वाभाविक विकास पर जोर देते हैं। वे ज्ञान के उद्देश्य का विरोध करते हैं।

प्रकृतिवाद और पाठ्यक्रम—पाठ्यक्रम मे रखी गई पाठ्य वस्तु का चयन बालक की नैसर्गिक रुचि, योग्यता और स्वाभाविक क्रियाओं के आधार पर होना चाहिए। ज्ञान के लिए ज्ञान के सिद्धान्त मे विश्वास न करने के कारण यह विचारधारा पाठ्यक्रम मे अनावश्यक विषयवस्तु को रखने के विरोध मे है। केवल ऐसे ही ज्ञान को देने की व्यवस्था की जाती है जिससे बालक के स्वाभाविक विकास मे सहायता मिले।

उदाहरण के लिए साहित्य और सास्कृतिक विषय महत्वहीन हैं क्योंकि न तो उनका सम्बन्ध जीवन की रक्षा से है और न वे सहायता करते हैं बालक के स्वाभाविक विकास मे ही।

प्रकृतिवाद और विद्यालय व्यवस्था—प्रकृतिवादी दार्शनिक विद्यालय प्रबन्ध मे सभी प्रकार के बन्धनो के विरोधी हैं। बालक को समय चक्र [illegible] र दमनात्मक

अनुशासन मे रखना, वे पसद नहीं करते। उनके अनुसार शिक्षालय व्यवस्था स्वशासन के सिद्धान्तो पर कायम की जानी चाहिए।

इस प्रकार प्रकृतिवादी दार्शनिक विचारधारा का प्रभाव शिक्षा के सभी अगो पर पड़ा है। लेकिन उसने शिक्षा के उद्देश्यो की अपेक्षा शिक्षण विधियो पर विशेष जोर दिया है।

प्रकृतिवाद और शिक्षण विधियाँ—प्रकृतिवादी विचारधारा ने आधुनिक शिक्षणविधि के दो मूल तत्वो का—स्वानुभव द्वारा सीखने तथा करके सीखने—प्रतिपादन किया, डाल्टन, प्रोजैक्ट और मान्टेसरी प्रणालियाँ, गणित और विज्ञान की अनुपरिस्थिक प्रणाली, भूगोल की निरीक्षण विधि आदि का जन्म इसी विचारधारा की शिक्षा के अपनाने से हुआ। 'करके सीखने' के सिद्धान्त का प्रयोग 'खेल द्वारा शिक्षा' (Play way in Education) मे हुआ। योजना प्रणाली, पर्यटनविधि, वैगिक शिक्षा आदि मे इसी सिद्धान्त की झलक दिखाई देती है। अगले अध्याय मे इन विधियो का विस्तार रूप से उल्लेख किया जायगा।

प्रकृतिवाद और अनुशासन—प्रकृतिवादी दार्शनिक बालकों को अनुशासन में रखने के लिए प्राकृतिक दण्ड की व्यवस्था करते हैं। प्राकृतिक दण्ड का अर्थ है अपनी गलतियों के लिए प्रकृति द्वारा दिया गया दण्ड, उदाहरणस्वरूप अग्नि मे हाथ डालने से हाथ जल जाता है और बालक यह स्वय सीख लेता है कि ऐसा करने से ऐसा होगा। प्रकृति उसे स्वय यह सिखा देती है कि दुःख अथवा पीड़ा से बचने के लिये किस परिस्थिति मे वह क्या करे। बालक को शारीरिक दण्ड देना ठीक नही है। 'स्वाभाविक परिणामो द्वारा प्राप्त अनुशासन' अच्छा भी है और बुरा भी। अच्छा इसलिये है कि इस अनुशासन से बालक के साथ कोई अन्याय नही होता; बुरा इसलिये है कि कभी कभी प्रकृति बालक के द्वारा की गई गलती से अधिक दण्ड की व्यवस्था करती है। न तो प्रकृति का निर्णय न्यायपूर्ण ही होता है और न उपयुक्त ही।

प्रकृतिवाद और शिक्षक—यदि प्रकृति को ही बालक की सच्चा शिक्षक मान लिया जाय

व्यवस्था करता है। शिक्षक का काम तो केवल इतना ही है कि वह बालक के प्राकृतिक विकास के लिए उत्तम वातावरण पैदा करे, बालक के साथ सदैव प्रेमपूर्ण व्यवहार करे।

प्रकृतिवाद का मूल प्रवर्तक रूसो

Q 3 Describe the kind of Education which Rousseau suggests for the different stages of Emile's life. How far were his suggestions practicable ?
(A. U. B. T. 1952)

Or

Rousseau recommends a natural and Individualistic education for a *man* **but a passive and repressive training for a** *woman* **Explain this statement and say how far you agree with Rousseau's differentiation between the Education of a boy and a girl ?** *(A. U. B T 1953)*

Or

The outcome of all Rousseau's teaching seems that we should in every **way develop the child's animal or physical life. Retard his intellectual life, and ignore his life as aspiritual and moral being" Is this a correct estimate of Rousseau's Educational principles ?** *(A. U. B T. 1955)*

Or

Describe Rousseau's views on moral education and state how far we can adopt them for training the character of Indian youth ?
(A. U. 1950, P. U. B. T. 55.)

Or

Estimate critically the general principles of Rousseau's Negative Education. *(A. U. 1950, P. U. 1955)*

Ans. रूसो की जीवन गाथा तथा कार्य—रूसो का जन्म १६२२ ई० में जेनेवा (Geneva) नगर में हुआ था। यह युग अन्यन्त ही चालबाजी तथा धोखेबाजी का युग था। सुविधा सम्पन्न वर्ग जनसाधारण का हर प्रकार से शोषण करता था। विद्यालयों के अन्दर दमनात्मक अनुशासन का बोलबाला था। बालक की रुचि तथा शक्तियों की तनिक भी परवाह न करके शिक्षा ऊपर से बालक पर लाद दी जाती थी। ऐसे वातावरण में ही रूसो ने अपना बाल्यकाल व्यतीत [illegible]

जिक संस्थाओं के प्रति विद्रोह कर उठा। चार वर्ष तक उसने शिल्प का कार्य सीखा। कुछ काल तक उसने अध्यापक का भी कार्य किया परन्तु उसे सफलता नहीं प्राप्त हुई। २५ वर्ष की आयु में उसने साहित्य का गहन अध्ययन किया। धीरे-धीरे उसने लेख लिखने प्रारम्भ कर दिये। लेखन के क्षेत्र में उसे अपूर्व सफलता मिली।

१८ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में फ्रांस के शासक ने अपने अत्याचारपूर्ण कार्यों को चरम सीमा पर पहुँचा दिया था। निर्धन जनता का शोषण करके महलों की विलासिता दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। रूसो ने शोषण के विरुद्ध आवाज उठाई और अनेकों लेख साम्राज्य की नीति के विरोध में लिखे।

१७५० में उसकी पुस्तक "The Progress of the Arts and Sciences" के नाम से प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में समाज में हो रहे शोषण का सजीव चित्रण किया गया है। १७५२ ई० में उसकी दूसरी पुस्तक "The Origin of Inequality among Men" नामक पुस्तक का प्रकाशन हुआ। इसी प्रकार १७५६ में "The New Heloise" नामक प्रेम कथा प्रकाशित हुई। उसकी सबसे महत्वपूर्ण पुस्तक "Social Contract" थी। इस पुस्तक ने राजनीतिक जगत में हलचल मचा दी। परन्तु शिक्षा विषय पर उसकी प्रथम पुस्तक 'एमिल' (Emile) का प्रकाशन १७६२ ई० में हुआ। इस पुस्तक में 'एमिल' बालक तथा बालिका 'सोफिया' की शिक्षा व्यवस्था का उल्लेख पाँच भागों में किया गया है। नीचे हम रूसो द्वारा प्रतिपादित शिक्षा योजना का उल्लेख करेंगे।

शिक्षा योजना—'एमील' नामक पुस्तक के पाँच भाग हैं। प्रथम चार भाग के अन्दर, एमील की शैशवावस्था, किशोरावस्था तथा युवावस्था की शिक्षा योजना का उल्लेख किया गया है। पाँचवें भाग में बालिका सोफिया की शिक्षा व्यवस्था का वर्णन मिलता है।

प्रथम भाग (शैशव काल) :—प्रथम भाग इस प्रसिद्ध वाक्य से प्रारम्भ होता है "सृजन कर्ता के यहाँ से सभी वस्तुएँ अच्छे रूप में आती हैं परन्तु मनुष्य के सम्पर्क से वे दूषित हो जाती हैं।" इसी कारण रूसो एमील को स्कूल तथा समाज के कृत्रिम वातावरण से दूर हटाकर प्रकृति के प्रांगण में शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था प्रदान करता है। वहाँ पर उसे नागरिकता तथा व्यवसाय की शिक्षा प्रदान करने के बजाय उसे प्राकृतिक जीवन व्यतीत करने की शिक्षा प्रदान की जायगी। इस अवस्था में बालक के खिलौने तथा खेल की वस्तुएँ फूल तथा पेड़ों की टहनियाँ आदि होंगी। बालक को हर प्रकार की पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की जायगी।

दूसरा-भाग (बाल्य-काल—पाँच वर्ष से बारह वर्ष तक) :—इस अवस्था के बालकों को शिक्षा प्रदान करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा जायेगा कि बालक का शरीर विशेष रूप से शक्तिशाली तथा बलिष्ठ बन सके। परन्तु इस अवस्था में बालक की शिक्षा पूर्ण रूप से निषेधात्मक होगी जैसा कि उसने अपनी पुस्तक में उल्लेख किया है "बालक की इस अवस्था की शिक्षा निषेधात्मक होगी। उसे सत्यता तथा सद्गुणों के उपदेश नहीं दिये जायेंगे। बरन् हृदय को बुराई तथा मन को दूषित भावों से बचाना होगा" (The first education ought to be purely negative. It consists not at all in teaching virtue or truth, but in shielding the heart from vice and mind from the error) रूसो इस व्यवस्था का पूर्ण विरोधी था। उसने शिक्षा में किसी भी प्रकार की दण्ड व्यवस्था का विरोध किया है। बालक जो कुछ भी कुछ

करेगा प्रकृति उसे स्वयं दण्ड दे देगी। इस अवस्था में बालक की ज्ञानेन्द्रियों को दृढ़ करने का प्रयत्न किया जायेगा। उसे तैरना, भागना, कूदना तथा संगीत आदि की शिक्षा इसी उद्देश्य से प्रदान की जायेगी। भूगोल तथा इतिहास आदि विषयों को इस शिक्षा में कोई स्थान नहीं दिया जायेगा।

तीसरा भाग (किशोरावस्था—बारह वर्ष से पन्द्रह वर्ष तक) —इस अवस्था में बालक को शिक्षा प्रत्यक्ष रूप से प्रदान की जायेगी। उसके अन्दर के कौतूहल को जगाने के लिए उसका ध्यान प्रकृति की ओर आकृष्ट किया जायेगा। बालक को ठीक रास्ते पर लाने में शीघ्रता नहीं की जायेगी। बालक जो कुछ भी ज्ञान प्राप्त करेगा वह सब स्वाभाविक ढंग से ही करेगा। रोबिनसन क्रूसो की कथाएँ प्रमुख रूप में उसे अध्ययन करने के लिए प्रदान की जायेंगी।

चौथा भाग (युवावस्था—पन्द्रह वर्ष से बीस वर्ष तक) —युवावस्था तक बालक (एमील) का शारीरिक तथा मानसिक विकास हो चुका है। अतः अवस्था में उसे नैतिक शिक्षा प्रदान की जाय। इस अवस्था में उसे नागरिकता का पाठ पढ़ाया जा सकेगा और किसी व्यवसाय की शिक्षा भी प्रदान की जा सकेगी। युवा एमील को काम विज्ञान की भी शिक्षा प्रदान की जायेगी जिससे वह अपना दाम्पत्य जीवन ठीक प्रकार से व्यतीत कर सके। उसके अन्दर मानवता के प्रति प्रेम तथा दया की भावनाओं को उत्पन्न करने के लिये अस्पतालों, अनाथालयों तथा बन्दीगृहों को दिखाने ले जाया जायेगा। रूसो लिखता है "हमने उसके शरीर ज्ञानेन्द्रिय तथा बुद्धि को विकसित कर दिया है, अब उसे हृदय देना शेष रहा है" (We have formed his body, his senses and his intelligence, it remains to give him a heart) नैतिकता की शिक्षा का ज्ञान दूसरों के अनुभवों के द्वारा भी कराया जा सकता है।

पाँचवाँ भाग (स्त्री-शिक्षा) —'एमील' की भाँति रूसो ने सोफी की शिक्षा का कार्यक्रम प्रस्तुत किया। परन्तु स्त्री शिक्षा के प्रति रूसो के विचार अत्यन्त संकीर्ण ज्ञात होते हैं। रूसो के अनुसार स्त्रियों का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। वह स्त्री को पुरुष की प्राकृतिक आवश्यकताओं की पूर्ति मात्र समझता है। उसका कथन था कि अधिक शिक्षा स्त्रियों के लिए हानिकारक होती है। वह स्त्रियों को अकेले रहने देने के पक्ष में नहीं था। स्त्री को अपना जीवन साथी ढूँढ़ लेना चाहिए तथा जहाँ तक सम्भव हो अपने पति की आवश्यकताओं की पूर्ति करने का प्रयत्न करना चाहिए। इस विचारधारा के अनुसार वह स्त्रियों को सर्व प्रथम शारीरिक शिक्षा देने के पक्ष में है जिससे कि वे स्वस्थ माँ बन सकें तत्पश्चात सीने, पिरोने, काढ़ने तथा बुनने की शिक्षा प्रदान की जाय। नृत्य तथा संगीत की शिक्षा प्रदान करना भी आवश्यक है। वह लिखता है कि स्त्रियों की सम्पूर्ण शिक्षा पुरुषों के हितों से सम्बन्धित होनी चाहिये। उन्हें प्रसन्न करना, उनके लिये सहायक सिद्ध होना, उनका प्रेम पात्र बनकर उनसे सम्मानित होना, उनकी रक्षा करना, उनके जीवन को मधुर बनाना तथा उन्हें धैर्य देना यह स्त्रियों का परम धर्म तथा कर्त्तव्य है और बचपन से ही उन्हें इस योग्य बनाने की शिक्षा प्रदान की जाय। रूसो का मत है कि स्त्री को अपने पति के विरोध को धैर्य-पूर्वक सहन कर लेना चाहिये। नैतिक शिक्षा तथा धर्म के विषय में वह कहता है कि प्रत्येक स्त्री को अपने पति का तथा प्रत्येक कन्या को अपनी माँ का धर्म मानना चाहिए।

रूसो की शिक्षण प्रणाली—रूसो के अनुसार सर्वोत्तम शिक्षण-प्रणाली "स्वानुभव द्वारा सीखना" और "करके सीखने" की है। उसका कथन था कि बालक जिस ज्ञान को स्वयं करके तथा अनुभव द्वारा प्राप्त करता है वही ज्ञान सर्वोत्तम होता है। वह पुस्तक द्वारा प्रदान की गई शिक्षा का विरोधी था। उसका कथन था कि "बारह वर्ष तक एमील को किसी प्रकार की पुस्तकीय शिक्षा न दी जायेगी। वह यह भी नहीं जानेगा कि पुस्तक क्या वस्तु है।" वह स्पष्ट रूप से कहता है कि उसे पुस्तकों से घृणा है। केवल पुस्तकों में वह 'रोबिन्सन क्रूसो' (Robinson Crusoe) नाम की पुस्तक को ही महत्व देता है।

रूसो का विचार था कि बालक की विवेक शक्ति का जहाँ तक सम्भव हो विकास [illegible]। इस हेतु शिक्षा को रटने का साधन न बनाया जाय। शिक्षा को रटने से केवल स्मरण शक्ति का विकास होता है, विवेक तथा ज्ञान शक्ति का नहीं। बालक [illegible] निरीक्षण, अनुभव तथा परीक्षण का अवसर प्रदान किया जाय।

रूसो की निषेधात्मक शिक्षा—रूसो के अनुसार शिक्षा के दो रूप हैं—विधेयात्मक शिक्षा (Positive Education) और निषेधात्मक शिक्षा (Negative Education)। विधेयात्मक

शिक्षा उसके अनुसार वह शिक्षा थी जो कि उस काल मे प्रचलित थी जिसमे बालक की रुचियो तथा अस्तित्व को कोई महत्व नही दिया जाता था । बालक के ऊपर पुस्तको का बोझा लाद दिया जाता था । रूसो लिखता है "उस क्रूर शिक्षा के विषय मे हम क्या सोचें जो वर्तमान को अनिश्चित भविष्य पर बलि दे देती है बालक पर भाँति-भाँति के बन्धन लाद देती है, उस काल्पनिक सुख के लिए जिसका सम्भवत कभी भी उपभोग नही करेगा उसे दुखी बनाकर दी जाती है।" निश्चयात्मक शिक्षा के विरोधी होने के कारण वह उसके विपरीत दिशा मे अपने शिक्षा दर्शन का प्रतिपादन करता है । अपनी पुस्तक मे वह लिखता है "शिक्षा मे जितने प्रचलित सिद्धान्त हैं, उनके विपरीत कार्य करो, तभी तुम उचित काम कर सकोगे" (Take the reverse of the accepted practice and you will almost always do right—) रूसो के अनुसार निश्चयात्मक शिक्षा का सबसे बडा दोष यह है कि इसमे समय से पूर्व ही मस्तिष्क का विकास करने का प्रयत्न किया जाता है । बालक को बालक न मानकर प्रौढ माना जाता है । रूसो की निषेधात्मक शिक्षा का रूप निम्न प्रकार का था—

(१) पुस्तकीय शिक्षा का विरोध—रूसो पुस्तको को अभिशाप के रूप मे देखता था । वह लिखता है I hate books because they are curse to children They teach us talk only that which we do not know. इस प्रकार बालक पर पुस्तकीय ज्ञान न थोपा जाय ।

(२) समय खोना (Losing Time)—रूसो का कथन था कि बालक को तब तक शिक्षा न प्रदान की जाय जब तक कि उसके समस्त अग तथा ज्ञान इन्द्रियाँ पूर्णतया विकसित न हो जायें । वह समय के उपभोग के बजाय खोना उचित मानता था । उसका मत था कि मन के खाली रहने से उसका उचित विकास हो सकेगा । वह लिखता है "Exercise his body, his limbs, this senses, his strength but keep his mind idle as long as you can. बालक के व्यक्तित्व का विकास उसके स्वतन्त्र रूप से विचरण करने तथा खेलने कूदने से होता है ।

(३) नियमित तथा प्रत्यक्ष नैतिक शिक्षा का अभाव—रूसो नियमित शिक्षा का पूर्ण विरोधी था । उसके अनुसार बालक को नैतिक शिक्षा प्राकृतिक परिणामो के आधार पर ही सीखने दी जाय ।

(४) किसी प्रकार की आदत का होना—रूसो के अनुसार बालक के स्वाभाविक विकास के लिए आवश्यक है कि उसे किसी भी प्रकार की शिक्षा न प्रदान की जाय । यदि बालक को प्रारम्भ मे ही आदतो का दास बना दिया जायेगा तो उससे व्यक्तित्व का विकास न हो सकेगा । अत जहाँ तक हो सके बालको को किसी भी आदत के चक्र मे पडने न दिया जाय । वह लिखता है The only habit which the child should be allowed to form is to contract no habit at all," अपनी निषेधात्मक शिक्षा के विषय मे रूसो लिखता है—निषेधात्मक शिक्षा का तात्पर्य केवल आलस्य मे समय व्यतीत करना नही—यह शिक्षा गुण प्रदान नही करती वरन् दुर्गुणो से बचाती है । यह सच बोलना नही सिखाती वरन् झूठ से बचाती है ।

प्रकृतिवाद तथा आदर्शवाद का तुलनात्मक अध्ययन

Q. 4 What is meant by 'Idealism' in Education ? How far do you think our present system of Education is based on this philosophy ? (*L. T. 1959*)

Or

Consider the main difference between Naturalism and the idealistic philosophic Education

Ans प्रकृतिवाद का उद्भव आदर्शवाद की प्रतिक्रिया के रूप मे हुआ इसलिये प्रकृतिवाद और आदर्शवाद दोनो मे विशेष अन्तर है । ये अन्तर निम्नलिखित दिशाओ मे हैं—

(१) आदर्शवाद अधिक व्यापक है—प्रकृतिवाद निम्नस्तर की सृष्टि की व्याख्या करता है और केवल नैतिक क्षेत्र मे उसकी स्वतन्त्रता की व्याख्या करता है । किन्तु आदर्शवाद न केवल

की इच्छा जाग्रत कराना और उन्हें आदर्श अवस्था तक पहुँचाने मे सहायक होता है। उसी के द्वारा उन आदर्शों की स्थापना सम्भव है जिनका प्रतिपादन आदर्शवाद ने किया है।

लेकिन प्रकृतिवादी शिक्षा दार्शनिक अध्यापक का कर्त्तव्य केवल इतना मानता है कि वह बालक के स्वतन्त्र विकास के लिये ऐसा उचित वातावरण तैयार करे कि बालक स्वयं अनुभव और स्वयं क्रिया द्वारा ज्ञान प्राप्त कर सके। बालक स्वयं ही सीखता है। अध्यापक को अपने ज्ञान को बालक पर थोपने का कोई अधिकार नहीं।

प्रकृतिवाद के अनुसार अध्यापक में केवल पथ प्रदर्शक के गुणों का होना आवश्यक है लेकिन आदर्शवाद के मतानुसार अध्यापक ऐसा परिश्रमी व्यक्ति होना चाहिए जो बालकों के समुचित विकास में योगदान दे सके और उत्तम आचरण के लिए उसे प्रेरित कर सके।

(८) प्रकृतिवादी प्राकृतिक परिणामों द्वारा अनुशासन पर (Discipline by natural consequence) तथा आदर्शवादी प्रभावात्मक अनुशासन (Impressionistic Discipline) पर जोर देता है। प्रकृतिवादी कहता है कि जो बालक प्राकृतिक नियमों के प्रतिकूल चलता है उसे प्रकृति ही स्वयं दण्ड देती है। अतः बालक को किसी प्रकार का दण्ड न दिया जाय। बालक को न तो कठोर नियन्त्रण में ही रखना चाहिए और न उसको मारना पीटना ही चाहिए। लेकिन आदर्शवादी बालक को कड़े अनुशासन में रखने के पक्षपाती हैं। यह अनुशासन बाह्य तथा आन्तरिक दोनों प्रकार का होना चाहिए। अनुशासन का आरम्भ बाह्य रूप में हो परन्तु इसका अन्त आदत निर्माण तथा आत्म-नियन्त्रण द्वारा आन्तरिक रूप में हो। शिक्षक का आदर्श चरित्र उसका उत्तम आचार विचार, उसकी महान वृत्तियाँ तथा आदर्श बालकों के ऊपर अमिट छाप डालें लेकिन अध्यापक किसी प्रकार के दण्ड और दमन का सहारा न ले। आरम्भ में जब बालक आयु में छोटा हो उसे प्रकृतिवादियों की तरह स्वतन्त्र न छोड़ा जाय, नहीं तो उसमें स्वच्छन्दता की वृद्धि हो सकती है।

(९) प्रकृतिवादी पाठ्यक्रम में केवल उन्हीं क्रियाओं को स्थान देते हैं जो उनकी विभिन्न प्राकृतिक शक्तियों का विकास कर सके लेकिन आदर्शवादी उन सभी क्रियाओं को, अनुभवों, जीवन की परिस्थितियों, और आदर्श पाठ्य वस्तु को पाठ्यक्रम में स्थान देता है ताकि प्रत्येक विद्यार्थी कुछ विज्ञान, कुछ कला, कुछ व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त कर सके। प्रकृतिवादी पुस्तकीय ज्ञान की अवहेलना करता है लेकिन आदर्शवादी पुस्तकीय ज्ञान को महत्व देता है। वह प्रकृतिवादी के इस विचार से सहमत है कि बालक स्व अनुभव द्वारा सीखता है लेकिन वह इस बात को नहीं मानता कि पुस्तकीय ज्ञान अथवा दूसरे लोगों से प्राप्त ज्ञान का शिक्षा में कोई स्थान ही नहीं है।

(१०) प्रकृतिवादी भौतिक वातावरण को महत्व देता है आदर्शवादी भौतिक और मानसिक (Mental or cultural) दोनों प्रकार के वातावरणों को महत्व देता है। भौतिक वातावरण तो वस्तुओं का संसार (World of things) मात्र है जिसका सम्बन्ध पशु जगत से अधिक है मानव जगत से कम। मानव जगत के लिये तो सांस्कृतिक वातावरण अपेक्षित है, हाँ, साथ ही सामाजिक वातावरण भी आवश्यक है, मानव इस सभी सामाजिक वातावरण का स्वयं निर्माण करता है और भौतिक वातावरण को बदल देता है। इस प्रकार वह अपने लिये एक प्रकार का वातावरण तैयार करता है।

यह सभी सामाजिक वातावरण भौतिक वातावरण की अपेक्षा अधिक विस्तृत और स्थायी है। उदाहरण के लिये भौतिक वस्तुएँ टूटी फूटी जाती हैं नष्ट हो जाती हैं लेकिन मनोवैज्ञानिक वातावरण जिसमें सांस्कृतिक वस्तुएँ — सत्यम् शिवम् सुन्दरम् — का समावेश है अविनाशी है। अतः शिक्षा का उद्देश्य है कि बालकों को इस योग्य बनाये कि वह इस वातावरण की वस्तुओं को बालक बिना किसी कठिनाई के [illegible]। इसी सांस्कृतिक वातावरण की वस्तुओं को हस्तान्तरित करने की [illegible] शिक्षा द्वारा इस सांस्कृतिक पैतृक (Cultural Heritage) को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक ले जाया जाय।

[illegible] के [illegible] किया है। आदर्शवादी [illegible] है।
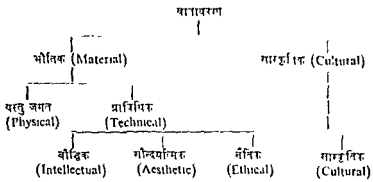
लेकिन भौतिक वातावरण की अपेक्षा सांस्कृतिक वातावरण पर ही अधिक जोर देता है। शिक्षा का लक्ष्य है बौद्धिक, सौन्दर्यात्मक, नैतिक और अन्य सांस्कृतिक गुणों का विकास जिसकी प्राप्ति सत्य, शिव, सौन्दर्य की साधना से हो सकती है। सत्य का सम्बन्ध है तर्कना अथवा बौद्धिक गुणों से, शिव का नैतिक गुणों से, और सुन्दर का सौन्दर्यात्मक गुणों से। इन तीन गुणों के साथ-साथ आदर्शवादी धर्म को भी लेता है लेकिन प्रकृतिवादी केवल प्राकृतिक आवश्यकताओं पर ही जोर देकर भौतिक जीवन को ही महत्व देता है।

शिक्षा में प्रकृतिवादी विचारधारा के गुण और दोष

Q. 15 Discuss the adequacy or otherwise of the naturalistic philosophy of education to meet the modern needs of education

Ans गुण—प्रकृतिवादी शैक्षिक विचारधारा का शिक्षाक्रम पर जितना प्रभाव पड़ा है उतना कदाचित् किसी अन्य विचारधारा का नहीं पड़ा। उसने आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान और समाज शास्त्र को जन्म दिया। मनोविज्ञान में भी उसने निरीक्षणात्मक तथा वस्तुनिष्ठ (Objective) अध्ययन विधियों को अपनाकर वैज्ञानिक प्रवृत्ति को जन्म दिया। व्यवहारवाद की उत्पत्ति भी प्रकृतिवाद से हुई प्रतीत होती है। शिक्षा के मनोवैज्ञानिक, वैज्ञानिक, समाजशास्त्रीय आधारों के मूल में प्रकृतिवादी दर्शन है।

प्रकृतिवादी दार्शनिक ही सबसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने शिक्षाशास्त्रियों का ध्यान विषय वस्तु [illegible]
के अनुरूप शि[illegible]
विकास की प[illegible]
एक बालक की आन्तरिक शक्तियों का विकास माना जाने लगा।

प्रकृतिवादी दर्शन ने शिक्षण विधियों में जो परिवर्तन उपस्थित किये हैं वे यहाँ उल्लेखनीय हैं, स्व अनुभव द्वारा ज्ञान प्राप्त करने, क्रिया सीखने के सिद्धान्तों पर आधारित ह्यूरिस्टिक, प्रोजेक्ट, बेसिक, डाल्टन, प्रणालियाँ प्रकृतिवादी दर्शन की ही देन हैं।

प्रकृतिवाद ने शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार की नींव डाली क्योंकि सबसे पहले प्रकृतिवाद के मूल प्रवर्तक रूसो ने 'एमील' में सहकारिता, सहयोग और सहानुभूति के गुणों को पैदा करने के लिये उसे समाज में रहकर सामूहिक शिक्षा का उपदेश दिया।

दोष—लेकिन प्रकृतिवाद एक आन्दोलन के रूप में जनता के सामने आया था अतः उसका प्रभाव शीघ्र ही न पड़ा। शिक्षा पर प्रभाव पड़ा लेकिन उसके पड़ने में समय लगा। साथ ही उसके द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को शिक्षा में ज्यों की त्यों नहीं लिया जा सका क्योंकि वे मूल रूप में अग्राह्य थे।

(i) प्रकृतिवाद द्वारा प्रतिपादित शिक्षा के उद्देश्य असन्तोषजनक थे। उत्तम आदर्शों का निर्णय तो आदर्शवादी दार्शनिकों ने ही किया था जिनका विरोध करना प्रकृतिवादियों ने अपना कर्त्तव्य समझा था।

(ii) प्रकृतिवाद ने पूर्व अर्जित ज्ञान, संस्कृति और आध्यात्मिकता की अवहेलना कर शिक्षा के प्रयोजन को अत्यन्त संकरा बना दिया। उद्देश्य का वह व्यापकत्व प्रकृतिवादी दर्शन में नहीं है जो आदर्शवादी दर्शन में है, केवल जीविकोपार्जन सम्बन्धी ज्ञान ही आवश्यक नहीं है उस संकीर्ण ज्ञान से परे भी कुछ और ज्ञातव्य वस्तुएँ हैं।

(iii) प्रकृतिवाद ने न तो निश्चित आदर्शों अथवा मूल्यों की स्थापना की और न उचित पाठ्यक्रम के निर्धारण की बात ही कही। बालक को उसकी रुचि के अनुकूल शिक्षा देने का अर्थ है किसी व्यवस्थित पाठ्यक्रम को न तैयार करना।

(iv) प्रकृतिवाद ने अनुशासन के क्षेत्र में जो विचारधारा प्रस्तुत की वह भी अमान्य थी। बालक को प्रकृति द्वारा दण्ड देने की बात अनुचित थी क्योंकि प्रकृति जो दण्ड देती है वह बालक द्वारा किये गये दुष्कर्म के अनुपात में नहीं होता।

बालक को स्वच्छन्द छोड़ना भी अच्छा नहीं प्रतीत होता।

इस प्रकार प्रकृतिवाद का यदि शिक्षा के किसी अंग पर स्वस्थ प्रभाव पड़ा है तो वह शिक्षण विधियों पर ही पड़ा है।

उपयोगी और लाभप्रद होते हैं और शेष को छोड़ते जाते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण जीवन प्रयोगशाला

है जो प्रयोग द्वारा सत्य सिद्ध की जा सकती है।

(४) व्यक्ति में अपनी परिस्थितियों को अनुकूल परिवर्तन लाने की शक्ति है—प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में उपस्थित होने वाली जटिलताओं पर अधिकार प्राप्त करने के लिये अपने वातावरण को भी बदल सकता है ऐसा प्रयोजनवादियों का विश्वास है। इस शक्ति के द्वारा वह अपने आपको वातावरण के अनुकूल बनाता है और अपनी आवश्यकतानुसार उसमें परिवर्तन उपस्थित करता है।

(५) क्रिया मुख्य है विचार गौण—प्रयोजनवादी दार्शनिक विचार को इतना महत्व नहीं देता जितना कि विचार को। क्रिया प्रधान है विचार गौण। क्योंकि क्रिया से ही ज्ञान की उत्पत्ति होती है। जीवन में ही वास्तविकता है और जीवन ही क्रियाओं का गुण है। इस प्रकार प्रयोजनवादी विचारधारा जीवन की व्यावहारिक क्रियाओं से ही विशेष सम्बन्ध रखती है उसकी परम्पराओं, रूढ़ियों, अन्धविश्वासों और बन्धनों से नहीं। वस्तुतः प्रयोजनवादी दर्शन जीवन की व्यावहारिक क्रियाओं से ही उत्पन्न हुआ माना जाता है।[1]

(६) व्यक्ति का सामाजिक जीवन ही महत्वपूर्ण है—मनुष्य सामाजिक प्राणी है अतः उसके जीवन की सफलता इस बात पर निर्भर रहती है कि वह समाज में रहकर किस सीमा तक सामाजिक कुशलता प्राप्त कर सकता है अर्थात् किस सीमा तक वह दूसरों पर अनाश्रित होकर अपनी जीविका स्वयं कमाकर अपने को समाजोपयोगी बनाता है।

प्रयोगवाद का शिक्षा पर प्रभाव

Q 2. Indicate the influence of pragmatism on modern educational thought.

Or

How has this school of thought influenced methods of teaching

Ans. शिक्षा पर जितना अधिक प्रभाव प्रयोजनवाद का पड़ा है उतना प्रभाव किसी और विचारधारा का नहीं पड़ा। शिक्षा की उपयोगिता और सार्थकता इसी में है कि वह मानव कल्याण के लिये हितकर हो। यदि शिक्षा मानव मात्र के कल्याण के लक्ष्य को लेकर चले तो उसका क्रम तथा रूप मानव जीवन को ध्यान में रखकर निश्चित किया जाय। जो शिक्षा वास्तविक जीवन की बदलती हुई आवश्यकताओं और मांगों को सन्तुष्ट नहीं कर सकती अथवा जो शिक्षा मानव कल्याण को ध्यान में रखे बिना ही दी जाती है वह व्यर्थ है। यदि कोई शिक्षा क्रम आज मानव कल्याण को लक्ष्य मानकर चलती है लेकिन कल उसमें इस लक्ष्य की पूर्ति नहीं हो पाती तो उस क्रम में परिवर्तन उपस्थित होना चाहिये।

इसका आशय यह है कि जीवन की परिवर्तनशील जटिलताओं के अनुसार हमें शिक्षा के रूप और क्रम बदलना होगा। आज के शिक्षा के उद्देश्य, पाठन विधि और पाठ्यक्रम में परिवर्तन लाने होंगे यदि वे कल हमारे वास्तविक जीवन की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने में असफल होते हैं।

प्रयोजनवादी इस विचारधारा ने शिक्षा जगत् में नई चेतना को उत्पन्न कर दी है। अब हम शिक्षा के क्षेत्र में रूढ़िवादिता, कूप मण्डूकता, अन्धविश्वास, परम्पराओं तथा प्राचीन आदर्शों को इतना महत्व नहीं देते जितना कि प्रयोग द्वारा अनुभव एवं सिद्धान्तों को मान्यता देते हैं। वे जीवन सत्यों, मूल्यों अथवा आदर्शों की खोज करने के लिए निगमन विधि का अनुसरण करते हैं। वे सीखने के क्षेत्र में Culture Epoc Theory में विश्वास करते हैं। बालक बाल्यावस्था के कुछ वर्षों में अपने पूर्वजों की उन सभी महत्वपूर्ण क्रियाओं को दुहराता है जिन्होंने सभ्यता के विकास

1. It arises out of actual living.

मे विशेष योगदान दिया है। इन क्रियाओं मे उन सभी क्रियाओं का समावेश है जो आधारभूत शिल्पो मे की जाती है अत प्रयोजनवादी बुनियादी शिल्पो को महत्वपूर्ण मानता है।

प्रयोजनवादी विचारधारा दर्शन पर शिक्षा के प्रभाव को मान्यता देती है। शिक्षा दर्शन को जितना प्रभावित करती है उतना अधिक दर्शन शिक्षा को प्रभावित नहीं करता। शिक्षा के प्रयोगो से दर्शन का जन्म होता है। शिक्षा दर्शन की उपज नहीं है अपितु दर्शन ही शिक्षा की उपज है।

प्रयोजनवाद और शिक्षा के उद्देश्य प्रयोजनवादी दार्शनिक आदर्शवादियो की तरह *शिक्षा के पूर्व निर्धारित उद्देश्यो को मान्यता नही देता। आदर्शवादी दर्शन शिक्षा के उद्देश्यों को* निर्धारित करता है लेकिन प्रयोजनवाद के अनुसार शिक्षा के उद्देश्यो का निर्धारण बालक द्वारा स्वय होता है। वह स्वय अपने मूल्य और आदर्श उत्पन्न करता है शिक्षा के पूर्व निर्धारित मूल्य आदर्श उस पर थोपे नही जाते। शिक्षा का यदि कोई उद्देश्य है तो यह यह कि बालक इस योग्य हो जाय कि अपने उद्देश्य स्वय निर्धारित कर सके। बालक मे यदि यह सामर्थ्य पैदा करनी है तो उसके मस्तिष्क को इतना साधन सम्पन्न बनाना होगा कि वह विभिन्न परिस्थितियो के अनुकूल अपने को बना सके। ऐसा साधन सम्पन्न मस्तिष्क भविष्य मे अपने जीवन के आदर्श अथवा लक्ष्य स्वय निश्चित कर लेगा।

अध्यापक का कर्तव्य है कि बालक की रुचियो, प्रवृत्तियो और आवेगो को इस प्रकार का मार्ग प्रदर्शन करे कि वह अपनी समस्याओ का स्वय समाधान कर सके।

प्रयोजनवाद और पाठ्यक्रम—*प्रयोजनवादी दार्शनिक किसी निश्चित रूपरेखा वाला* पाठ्यक्रम प्रस्तुत नही करता। वह पाठ्यक्रम निर्धारण करने के आधारभूत सिद्धान्तो का प्रतिपादन अवश्य करता है। *पाठ्यक्रम सगठन और पाठ्य वस्तु चयन के निम्नलिखित सिद्धान्त हैं :*

(१) चूंकि शिक्षा सविचार क्रिया है इसलिये उसमें रटने का कोई स्थान नही है अतः शिक्षा के पाठ्य विषयो के स्थान पर सोद्देश्य क्रियाओं को अधिक महत्व देना चाहिये।

(२) इन क्रियाओं का आधार बालक की आम रुचियाँ होनी चाहिये—बालक स्वभाव से वाद-विवाद, खोज, रचनात्मक कार्य और कला मे विशेष रुचि का प्रदर्शन करता है। इसलिये पाठ्यक्रम मे लिखने, पढने, गिनने, हाथ का काम करने और प्रकृति-विज्ञान का अध्ययन करने से *सम्बन्धित क्रियाओ का समावेश करना चाहता है।*

(३) भावी जीवन मे काम आने वाले उपयोगी अनुभवों का ही पाठ्यक्रम में समावेश हो—ये उपयोगी अनुभव भाषा, स्वास्थ्य विज्ञान शारीरिक प्रशिक्षण, इतिहास, भूगोल, विज्ञान,

(४) पाठ्यवस्तु मे सहसम्बन्ध हो—बालक को शिक्षित करने के लिये जिस प्रकार की *पाठ्यवस्तु का सचयन किया जाय वह सहसम्बन्धी हो। सम्पूर्ण ज्ञान एक है। ज्ञान की* इस एकता का आभास तभी मिल सकता है जब ज्ञान के विभिन्न अशो को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाय कि उनमे एकता का बोध हो सके। यदि पाठ्यक्रम मे रखे गये सभी विषय उपयोगी और सोद्देश्य क्रियाओ की सहायता से पढाये जायें तो उनमें सहसम्बन्ध स्थापित हो जायगा।

प्रयोजनवाद और अनुशासन—प्रयोजनवादी विचारधारा सामाजिक अनुशासन को ही महत्व देती है वैयक्तिक अनुशासन को नही। उनके विचार से बालक समाज मे रहकर सामाजिक क्रियाओ द्वारा सहयोग, सहानुभूति, सह-अस्तित्व के गुणो का अर्जन करता है। सामाजिक वातावरण मे रहकर वह आत्म नियत्रण सीखता है जो चारित्रिक नैतिक विकास के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

प्रयोजनवाद और शिक्षण विधियाँ—प्रयोगवादी विचारधारा अध्यापक द्वारा पूर्व निश्चित शिक्षण विधि के अपनाने के पक्ष मे नही। कोई विधि जो पहले से अपनाई जा रही है आवश्यक नही वर्तमान मे भी उपयोगी और सफल सिद्ध हो जाय। सफल शिक्षण विधि प्रायोगिक

होनी चाहिये। सच्ची शिक्षा सोद्देश्य क्रियाओं में मिलती है अतः शिक्षणविधि में केवल क्रियाओं और अनुभवों पर ही बल दिया जाता है।

'करके सीखना' और 'अपने अनुभव से सीखना' प्रयोगवादी दार्शनिक विचारधारा की शिक्षण पद्धतियों की देन है। इसका अर्थ यह है कि बालक को वास्तविक परिस्थितियों में रखकर वास्तविक समस्याओं को हल करने के लिये प्रेरित किया जाय।

विभिन्न विषयों को पढ़ाते समय उनको एक दूसरे से सहसम्बन्धित करने का प्रयास किया जाय। ज्ञान की एकता का आभास देने के लिये विषयों में उदग्र एवं क्षैतिज सहसम्बन्ध स्थापित किया जाय।

प्रयोजन से गुण और दोष

Q. 4 Evaluate pragmatism as a philosophy of education

Ans. गुण—(१) प्रयोगवाद ने शिक्षा को प्रोजेक्ट पद्धति (Project Method) की अपूर्व देन दी है।

(२) विचार की अपेक्षा क्रिया को प्रधानता दी है।

(३) विचार को व्यवहार के अधीन बताया है।

(४) शिक्षा दर्शन की नई नई बातों की ओर संकेत किया है जैसे प्रगतिशील *शिक्षा, क्रिया प्रधान पाठ्यक्रम, संगठित इकाई (integrated unit)।*

दोष—(१) आध्यात्मिक मूल्यों की अवहेलना की है।

(२) उपयोगिता और फल के आधार पर सत्य का निर्धारण दोषपूर्ण है।

(३) शिक्षा कोई निश्चित उद्देश्य नहीं बताता।

(४) अभ्यास और व्यवहार को ही अन्तिम यथार्थता मानता है।

(५) ज्ञान को कार्य तथा बुद्धि को संकल्प शक्ति के अधीन मानकर कई दुष्परिणाम निकल सकते हैं। तर्क कभी इच्छाओं और कामनाओं का गुलाम नहीं रह सकता।

प्रयोजनवाद और आदर्शवाद में अन्तर

Q. 5 Compare and contrast the position of the Idealistic and Pragmatistic philosophies of education specially with regard to the function of the school and its relation to society.

Ans. आदर्शवादी तथा प्रयोगवादी विचारधाराओं में निम्नांकित अन्तर हैं—

(१) आदर्शवादी शाश्वत सत्यों एवं मूल्यों में विश्वास करता है प्रयोगवादी पूर्व निर्धारित सत्यों एवं मूल्यों में विश्वास नहीं रखता क्योंकि परिस्थितियों के अनुसार सत्य एवं मूल्य बदलते रहते हैं। आदर्शवादी शिक्षा दार्शनिक कहता है कि जीवन के मूल्य और आदर्श सर्वव्यापी हैं वे कभी नष्ट नहीं होते और न उनका निर्माण ही होता है। ये मूल्य हैं सत्य, शिव, सुन्दर और आदर्शवाद का लक्ष्य है इन आध्यात्मिक सत्यों को पहचानना, उनका ज्ञान प्राप्त करना और अपने जीवन में उन को ढालना। लेकिन प्रयोगवादी दार्शनिक प्रमूर्त वस्तुओं, चिरन्तन सिद्धान्तों की पूर्णता में विश्वास नहीं करता। वह तथ्यों को उसी रूप में देखता है जिस रूप में वे हैं। उसके लिये सत्य का सदैव निर्माण होता है और वह कभी पूर्णता को प्राप्त नहीं होता। वह कहता है.

"जीवन के मूल्यों और आदर्शों की कसौटी उपयोगिता है अतः कोई भी सत्य तब तक स्वीकार नहीं करना चाहिये जब तक उसकी जाँच प्रयोग (Experiment) द्वारा न हो जाय।"

(२) आदर्शवादी शिक्षा के पूर्व निश्चित एवं पूर्व निर्धारित उद्देश्यों पर बल देता है प्रयोजनवादी शिक्षा के उद्देश्यों को पहले से निर्धारित करने के पक्ष में नहीं है। प्रयोगवादी शिक्षा का उद्देश्य नवीन मूल्यों की रचना करना है तथा शिक्षक का कर्तव्य शिक्षार्थी को ऐसे वातावरण में रखना है जिसमें रहकर वह नवीन मूल्यों का सृजन कर सके,[1] चूंकि शिक्षार्थी को ऐसे वातावरण

1. "The most general education aim of the pragmatist is just the creation of new values the main task of the educator is to put the educated into a position to develop values for himself."

में रखना है जिसमें रहकर वह स्वयं मूल्यों का निर्माण कर सके, इसलिये प्रयोगवादी शिक्षा को मानव केन्द्रित तथा सामाजिक प्रक्रिया मानता है जब कि आदर्शवादी शिक्षा को आदर्श केन्द्रित मानकर चलता है।

प्रयोगवादी सिद्धान्तों के प्रयोगात्मक रूप को अधिक आवश्यक समझता है और आदर्शवादी इसका विरोध करता है क्योंकि उसके मतानुसार अभ्यास और प्रयोग ही सब कुछ नहीं है। वह इस बात का भी विरोध करता है कि वह सत्य, शिव और सुन्दर को उपयोगिता की कसौटी पर कसकर जीवन के *मूल्यों के प्रति त्रुटि पूर्ण रवैया अपनाता है। यदि प्रयोगवादियों की बात* मान भी ली जाय तो 'ज्ञान की प्राप्ति ज्ञान के लिये' का कोई महत्व ही नहीं होगा और नैतिकता की शिक्षा देते समय भी यह देखना होगा कि कोई नैतिक सिद्धान्त ठीक है या नहीं। अन्त जब तक प्रयोजनवाद की पूर्ति आदर्शवाद से नहीं होगी तब तक आदर्शवाद और प्रयोगवाद के बीच खाई खुदी रहेगी।

(३) प्रयोगवाद क्रिया को अधिक महत्व देता है आदर्शवाद विचार को—यह अन्तर इन दोनों वादों द्वारा प्रतिपादित शिक्षण पद्धति, पाठ्यक्रम, अध्यापन कार्य आदि में दिखाई देता है, आदर्शवादी व्याख्या अथवा प्रश्नोत्तर विधि द्वारा पूर्व संचित ज्ञान राशि को बालक को देना *चाहता है किन्तु प्रयोगवादी उसी विधि को अच्छा समझते हैं जो सीखने वाले के अनुभवों* तथा क्रिया पर निर्भर हों। इस विधि में न तो व्याख्या की आवश्यकता है और न पुस्तकीय ज्ञान की वरन् इस विचारधारा के अनुसार सीखने की क्रिया का उत्प्रेरित करने के लिये बालक की आवश्यकताओं और रुचियों के अनुसार समस्यात्मक स्थिति पैदाकर चिन्तन के लिये बाध्य करना चाहिये। बालक समस्या की जानकारी प्राप्त करके उस कठिनाई का मूल कारण ढूँढता है, आवश्यक प्रदत्त इकट्ठे करता है और एक सम्भव अनुमान निश्चित कर समस्या के समाधान की खोज में प्रवृत्त होता है। समस्या का हल ढूँढने में गलती करता है। जो हल गलत मालूम पड़ते हैं उन्हें वह छोड़ देता है जो सही मालूम होते हैं उन्हें अपना लेता है। सीखने की यही प्रयोगवादी (Pragmatic) विधि है।

प्रयोगवादी विचारधारा शैक्षिक अनुभवों और यथार्थ जीवन के कार्यों से पैदा हुई समस्याओं को ही पाठ्यक्रम में स्थान देती है, आदर्शवादियों की तरह वे ज्ञान के लिये ज्ञान के सिद्धान्त को कोई मान्यता नहीं देते। वही ज्ञान बालक को प्राप्त करना है जो उसकी आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने में सहायक हो। ज्ञान की ग्राह्यता उसकी उपयोगिता पर निर्भर है।

पाठ्यक्रम में विषय वस्तु का चयन और संगठन करते समय प्रयोजनवादी दार्शनिक यह देखता है कि विषय वस्तु किस सीमा तक उपयोगी, बालक की रुचियों के अनुकूल, उनकी क्रियाओं और अनुभवों पर आधारित, तथा सह सम्बन्धित है।

(४) आदर्शवादी विचारधारा शिक्षक को जितना महत्व देती है प्रयोगवादी विचारधारा शिक्षक को उतना महत्व नहीं देती। प्रयोगवादी शिक्षा में अध्यापक को महत्व तो दिया जाता है लेकिन इतना नहीं जितना कि आदर्शवादी विचारधारा में। बालक में उत्तम सामाजिक आदर्शों का निर्माण कुशल, विवेकपूर्ण, और निपुण अध्यापक द्वारा ही सम्भव है ऐसा प्रयोजनवादी मानता है लेकिन आदर्शवादी विचारधारा के अनुसार तो बिना अध्यापक के सीखना ही सम्भव नहीं है। वही उन आदर्शों की प्राप्ति कराता है जिनका प्रतिपादन आदर्शवाद करता है। वही वास्तविक सत्य का मूर्त रूप है। वही ईश्वर का रूप है। वही सीखने की इच्छा जाग्रत करता है। वही बालक को पूर्णता प्राप्त करने में सहायक होता है।

(५) आदर्शवादी विचारधारा प्रभावात्मक अनुशासन का समर्थन करती है, लेकिन प्रयोजनवादी विचारधारा स्वानुशासन (Self-discipline) पर जोर देती है। प्रयोजनवादी बाह्य नियन्त्रण और दण्ड में विश्वास नहीं करते विद्यार्थी में अनुशासन की स्थापना आत्मनियंत्रण द्वारा सम्भव है और स्वतः सामाजिक विद्यार्थी में दिखाता है।

इस प्रकार ये दोनों विचारधाराएँ शिक्षात्मक क्रियाओं में मतभेद रखती हैं लेकिन यदि एक सम्प्रदाय दूसरे के गुणों को अपना ले तो उसी प्रकार और भी उत्तम सम्प्रदाय की सृष्टि हो सकती है जिस प्रकार आदर्शवाद और प्रकृतिवाद के दोनों का समाहार करने के लिये इस सम्प्रदाय का जन्म हुआ था।

(६) आदर्शवादी तथा प्रयोगवादी विचारधाराओं का अन्तर इस बात में है कि दोनों ने विद्यालय के स्वरूप की ओर कार्य को अलग-अलग ढंग से व्याख्या की है। आदर्शवादी दार्शनिक विद्यालय की स्थापना इसलिये करता है कि उसमें ऐसा उत्तम वातावरण बनता है जिसमे रहकर व्यक्ति को

(i) चिन्तन के लिये उचित प्रकार का पथ प्रदर्शन मिलता है।
(ii) समाज कल्याण के लिये शिक्षा मिलती है।
(iii) व्यक्ति मे सामाजिक गुणों का विकास होता है।
(iv) सांस्कृतिक गुणों के विकास के साथ साथ ईश्वर ज्ञान होता है।
(v) मनुष्य बनाया जाता है।

प्रयोजनवादी शिक्षा दार्शनिक विद्यालय को समाज का आवश्यक और महत्वपूर्ण अंग मानता है। अतः प्रगतिशील समाज के विद्यालय मे भी प्रगतिशीलता आनी चाहिये। उसे घर और समाज के वातावरण का सुन्दर आदर्श रूप प्रस्तुत करना चाहिये। उसमें पुस्तकीय शिक्षा की निष्क्रियता के स्थान पर सक्रियता (activity) का योग होना चाहिये।

प्रयोगवादी प्रमुख दार्शनिक ड्यूवी के मतानुसार विद्यालय मे निम्नांकित विशेषताएँ होनी चाहिये—

(१) उसमे मानव जाति द्वारा अर्जित संस्कृति का संक्रमण हो।
(२) उसको सामाजिक प्रगति और सामाजिक कल्याण की भावना से स्थापित किया जाय। यह तभी सम्भव है जब विद्यालय वृहद् समाज का लघु रूप हो और उन सभी क्रियाओं को स्थान दे जो समाजोपयोगी है। आदर्शवादी शिक्षा दार्शनिक विद्यालयों का निर्माण समाज कल्याण की भावना से करने की सलाह देता है लेकिन वह सामाजिक क्रियाओं के स्थान पर सामाजिक गुणों का विकास कराने की बात करता है। विद्यालय में ही सामाजिक गुण पैदा करने की सामर्थ्य है।
(३) विद्यालय बालक को विभिन्न सामाजिक अनुभव प्रदान करके उसके व्यक्तित्व का विकास करता है अतः विद्यालय में सामाजिक क्रियाओं को विशेष स्थान देना चाहिये।
(४) विद्यालय को परिवार की तरह प्रेम, सहानुभूति, दया और सम्मान पूर्ण वातावरण प्रस्तुत करना चाहिये और जो क्रियाएँ घर पर कराई जाती है उन सभी को विद्यालय के प्रांगण मे कराना चाहिये।
(५) विद्यालय मे सामाजिकता की भावना का ही विकास अधिक होना चाहिये तभी उसका व्यक्तिगत विकास सम्भव है।

ड्यूवी की शैक्षिक विचारधारा

Q 6. Give a brief account of Dewey's conception of education and show how do you agree with the view that growth is the only ideal of Education ?

Ans. ड्यूवी की शैक्षिक विचारधारा बड़ी क्रान्तिकारिणी विचारधारा है। ड्यूवी के विचार प्रगति, समाज और शिक्षा, जीवन और शिक्षा, आदि के विषयों पर अत्यन्त ही हलचल मचाने वाले हैं।[1]

शिक्षा और प्रगति—अब तक शिक्षा [illegible]
परिभाषित किया मानते चले आए थे। प्रगति व [illegible]
ड्यूवी के अनुसार प्रगति का न तो कोई उद्देश्य [illegible]
स्थान और परिस्थिति विशेष के अनुकूल बदलते [illegible]

1. All education proceeds by the participation of the individual in the social consciousness of the race." —Dewey

विभिन्न स्थितियो मे प्रगति के उद्देश्यो का रूप वैभिन्न पूर्ण होता है। शिक्षा का लक्ष्य ही प्रगति है।

शिक्षा और जीवन—शिक्षा जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है और बिना शिक्षा के जीवन की प्रगति सम्भव नहीं है। ड्यूवी के अनुसार शिक्षा ही जीवन है। वह जीवन के लिए तैयारी नहीं। इसका अर्थ यह है कि वे शिक्षा को जीवन से अलग नहीं मानते। वे तो चाहते हैं कि शिक्षालय मे वे सभी क्रियाएँ बालको से कराई जायें जिनका उपयोग उन्हे अपने जीवन मे करना होगा। उनके मतानुसार शिक्षा का स्वरूप ऐसा हो जो बालको की भावी सामाजिक जीवन की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट कर सके।

शिक्षा और समाज—यदि शिक्षा द्वारा बालको के सामाजिक जीवन की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करना है और शिक्षा के लक्ष्य प्रगति को प्राप्त करना है—तो शिक्षा को समाज की महत्वपूर्ण क्रिया मानना होगा। ड्यूवी का मत है कि समाज का उत्थान शिक्षा द्वारा ही सम्भव है। लेकिन यह शिक्षा सुसगठित होनी चाहिए और उसे सामाजिक वातावरण से ही देना चाहिए। व्यक्ति का विकास और समाज का उत्थान का एक ही तरीका है और वह यह कि मनुष्य जातीय सामाजिक जीवन मे क्रियाशील रहते हुए शिक्षा प्राप्त करे।

शिक्षा का उद्देश्य भी ऐसा ही हो कि व्यक्ति मानव जाति की सामाजिक प्रगति (Social consciousness) मे पूर्ण योगदान दे सके। सामाजिक कार्यों द्वारा बालक की शक्तियों को उत्तेजित कर उनका विकास करना ही सच्ची शिक्षा है।

जब व्यक्ति का विकास इस प्रकार की सच्ची शिक्षा द्वारा हो जायगा तब समाज की उन्नति तो होगी ही। व्यक्ति के कार्य सामाजिक कार्य होने हैं और उनका महत्व उनकी उपयोगिता पर निर्भर रहता है। व्यक्ति का वही कार्य उपयोगी है जो समाज की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करता है। दूसरे, समाज व्यक्ति के लिए ऐसे वातावरण का सृजन करता है जिसमे रहकर वह अपनी शक्तियों को विकसित कर समाजोपयोगी कार्य करने की शक्ति प्राप्त कर सके। अतः शिक्षा को समाज से पृथक नहीं किया जा सकता।

शिक्षा का रूप समाज के अनुकूल हो—यह विचार ड्यूवी की शिक्षा जगत को अपूर्व देन है। शिक्षालय समाज का लघुरूप हो और शिक्षा व्यक्ति को सामाजिक बनाने की प्रक्रिया हो। "समाज का अस्तित्व ही शिक्षा पर निर्भर है" ऐसा ड्यूवी का मत है। जिस प्रकार शारीरिक जीवन के लिए भोजन ग्रहण और प्रजनन की प्रक्रिया अत्यन्त आवश्यक है उसी प्रकार सामाजिक जीवन के लिए शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है।

What nutrition and reproduction are to the physiological life education is to social. जिस प्रकार प्रजनन की प्रक्रिया द्वारा जीवाश हस्तान्तरित होते रहते हैं और शारीरिक जीवन स्थायी बना रहता है उसी प्रकार शिक्षा द्वारा समाज के आचार-विचार, परम्पराएँ, विश्वास और आदर्श एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होते रहते हैं। इस हस्तान्तरण से वे जीवित बने रहते है और समाज स्थायित्व ग्रहण करता है।

शिक्षा और अनुभव—शिक्षा से तात्पर्य अनुभव को विकसित, परिवर्तित और परिवर्धित करना है।[1] वह अनुभव की आत्मानुभूति द्वारा अनुभव के लिए है। वह ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा नवीन अनुभवों का निर्माण और पुनर्गठन होता है।[2] ड्यूवी के इन कथनों मे विदित होता है कि वे शिक्षा द्वारा ही अनुभवों का निर्माण करना चाहते हैं। हमारे अनुभव जैसे-जैसे नई-नई समस्याएँ हमारे सामने आती हैं, बदलते जाते हैं, नई समस्याएँ हमे उनका समाधान करने के लिए प्रेरित करती हैं। पहले तो हम प्रत्येक समस्या के कई हल ढूंढते हैं फिर सही हल को चुन लेते हैं। इस प्रकार समस्याओं के आने पर हम उनके हल निकालने मे रत हो जाते हैं और इस प्रकार व्यवस्थापन (Adjustment) स्थापित कर लेते हैं। अत शिक्षा व्यवस्थापन के लिए है। जैसे-जैसे हम परिस्थितियों के साथ अनुकूलन स्थापित कर लेते हैं हमारे अनुभवों मे वृद्धि होती

1. "Education is of experience through self-experience and for experience" —*Dewey*

2. "Education is a process involving continuous reconstruction and reorganisation." —*Dewey*

जाती है, नए-नए अनुभवों की प्राप्ति होती है। इस प्रकार अनुभवों का नवनिर्माण और पुनर्गठन होता रहता है। नये अनुभव पुराने अनुभवों की रूपरेखा बदलते, परिमार्जित और संशोधित करते चलते हैं। यह कार्य जीवन भर चलता ही रहता है। इस प्रकार शिक्षा की प्रक्रिया जिसके मूल में अनुभवों का नवनिर्माण और पुनर्संगठन ही है जीवन भर चलती रहती है।

ड्यूवी का शिक्षादर्शन इस प्रकार सैद्धान्तिक क्षेत्र में बड़ा ही क्रान्तिकारी है।

ड्यूवी द्वारा प्रतिपादित शिक्षा के उद्देश्य

Q. 7. How does Dewey Pedagogy reconcile the claims of the individual with those of the society?

Or

According to Dewey complete living in the social world should be the aim of education. How can this aim be achieved?

Or

Discuss Dewey's views on education as a means of natural development and social efficiency?

Ans. ऊपर हमने ड्यूवी के शिक्षा-दर्शन का संक्षिप्त विवरण दिया है उससे स्पष्ट हो गया होगा कि शिक्षा के उद्देश्य क्या है? शिक्षा का उद्देश्य है व्यक्ति का विकास। इस विकास द्वारा समाज का उत्थान। इस प्रकार ड्यूवी शिक्षा द्वारा व्यक्तिगत तथा सामाजिक विकास दोनों का ही सामञ्जस्य प्रस्तुत करते हैं।

व्यक्तिगत विकास—ड्यूवी चाहते हैं कि शिक्षा द्वारा बालक की समस्त शक्तियों का विकास हो लेकिन यह विकास किस प्रकार हो? क्या वैयक्तिक विकास सम्बन्धी लक्ष्यों को पहले से ही निर्धारित कर लिया जाय? ड्यूवी इस मत के पक्ष में नहीं हैं कि वे शिक्षा द्वारा होने वाले व्यक्तिगत विकास की दिशा पहले से ही निश्चित कर लें। लक्ष्यों के पूर्व निर्धारित हो जाने पर बालकों की वैयक्तिक विभिन्नताओं की अवहेलना करनी पड़ेगी। प्रत्येक बालक अपनी आन्तरिक शक्तियों, मूल प्रवृत्तियों, रुचियों और अभिरुचियों के अनुसार दूसरे बालकों से भिन्न होता है। अत. उसकी शिक्षा ऐसी भी हो कि परिस्थितियों के अनुसार उनकी गुप्त शक्तियों का विकास करने में समर्थ हो। अत शिक्षा का उद्देश्य तात्कालिक है।

शिक्षा द्वारा हम उसे चिरन्तन और शाश्वत मूल्यों, जीवनादर्शों की प्राप्ति में सहयोग [illegible] चिरन्तन नहीं है। सत्य परिवर्तनशील है, आदर्श [illegible] उपयोगिता रखता है। अत यदि हम बालक [illegible] चाहते हैं, और यह चाहते हैं कि जीवन में सफलता हासिल करें तो हमें इस गतिशील जगत् में अपने विश्वासों और विचारों को समय, स्थान, और परिस्थिति के अनुकूल बनाना होगा।

शिक्षा का उद्देश्य है उन मूल्यों की प्राप्ति जो व्यक्ति के लिये तात्कालिक महत्व के हैं। साथ ही व्यक्तिगत रूप से शिक्षा का उद्देश्य है व्यक्ति को इस योग्य बनाना कि वह इन मूल्यों और अनुमानों की सत्यता की परख प्रयोग (Experiment) द्वारा कर सके। इस प्रकार ड्यूवी का शिक्षादर्शन प्रयोगवादी है। वह चाहते हैं कि बालक में शिक्षा द्वारा ऐसी शक्ति पैदा कर दी जाय कि किसी नवीन समस्या के प्रस्तुत होते ही वह उसका समाधान प्रयोग—परीक्षण द्वारा कर सके। वह चाहते हैं कि शिक्षा द्वारा विचारशील व्यक्ति का निर्माण हो और ऐसा विचारशील व्यक्तित्व कठिनाई के सामने आते ही उसका आभास पा सके, समस्या को समझ सके, उसका मूल्य निर्धारित कर सके, सम्भव अनुमानों का सृजन कर सके, तथा सही हल को ढूँढ कर प्रयोग में ला सके। ऐसा विचारशील व्यक्ति प्रगतिशील होगा।

प्रगतिशील व्यक्ति से उनका अभिप्राय उस व्यक्ति से है जिसमें ऐसी आदतों और स्थायीभावों का विकास हो चुका है जो अपने वातावरण पर काबू करके अपनी सम्भावनाओं की पूर्ति कर सकता है।

शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य—ड्यूवी का विचार है कि व्यक्तिगत विकास सामाजिक वातावरण से ही होता है। उदाहरण के लिए जब तक वह सामूहिक जीवन के कार्यों में सक्रिय भाग

विभिन्न स्थितियो मे प्रगति के उद्देश्यो का रूप वैभिन्न पूर्ण होता है। शिक्षा का लक्ष्य ही प्रगति है।

शिक्षा और जीवन—शिक्षा जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक है और बिना शिक्षा के जीवन की प्रगति सम्भव नहीं है। ड्यूवी के अनुसार शिक्षा ही जीवन है। वह जीवन के लिए तैयारी नही। इसका अर्थ यह है कि वे शिक्षा को जीवन से अलग नही मानते। वे तो चाहते हैं कि शिक्षालय मे वे सभी क्रियाएं बालको से कराई जायें जिनका उपयोग उन्हें अपने जीवन मे करना होगा। उनके मतानुसार शिक्षा का स्वरूप ऐसा हो जो बालको की भावी सामाजिक जीवन की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट कर सके।

शिक्षा और समाज—यदि शिक्षा द्वारा बालको के सामाजिक जीवन की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करना है और शिक्षा के लक्ष्य प्रगति को प्राप्त करना है—तो शिक्षा को समाज की [illegible] समाज का उत्थान शिक्षा द्वारा ही सम्भव है। [illegible] सामाजिक वातावरण से ही देना चाहिए। [illegible] तरीका है और वह यह कि मनुष्य जातीय सामाजिक जीवन में क्रियाशील रहते हुए शिक्षा प्राप्त करे।

शिक्षा का उद्देश्य भी ऐसा ही हो कि व्यक्ति मानव जाति की सामाजिक प्रगति (Social consciousness) मे पूर्ण योगदान दे सके। सामाजिक कार्यों द्वारा बालक की शक्तियों को उत्तेजित कर उनका विकास करना ही सच्ची शिक्षा है।

जब व्यक्ति का विकास इस प्रकार की सच्ची शिक्षा द्वारा हो जायगा तब समाज की उन्नति तो होगी ही। व्यक्ति के कार्य सामाजिक कार्य होते हैं और उनका महत्व उनकी उपयोगिता पर निर्भर रहता है। व्यक्ति का वही कार्य उपयोगी है जो समाज की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करता है। दूसरे, समाज व्यक्ति के लिए ऐसे वातावरण का सृजन करता है जिसमे रहकर वह अपनी शक्तियो को विकसित कर समाजोपयोगी कार्य करने की शक्ति प्राप्त कर सके। अतः शिक्षा को समाज से पृथक नहीं किया जा सकता।

शिक्षा का रूप समाज के अनुकूल हो—यह विचार ड्यूवी की शिक्षा जगत को अपूर्व देन है। शिक्षालय समाज का लघुरूप हो और शिक्षा व्यक्ति को सामाजिक बनाने की प्रक्रिया हो। "समाज का अस्तित्व ही शिक्षा पर निर्भर है" ऐसा ड्यूवी का मत है। जिस प्रकार शारीरिक जीवन के लिए भोजन ग्रहण और प्रजनन की प्रक्रिया अत्यन्त आवश्यक है उसी प्रकार सामाजिक जीवन के लिए शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है।

What nutrition and reproduction are to the physiological life education is to social. जिस प्रकार प्रजनन की प्रक्रिया द्वारा जीवाश हस्तातरित होते रहते हैं और शारीरिक जीवन स्थायी बना रहता है उसी प्रकार शिक्षा द्वारा समाज के आचार-विचार, परम्पराएं, विश्वास और आदर्श एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तानरित होते रहते हैं। इस हस्तातरण से वे जीवित बने रहते हैं और समाज स्थायित्व ग्रहण करता है।

शिक्षा और अनुभव— शिक्षा से तात्पर्य अनुभव को विकसित, परिवर्तित और परिवर्धित करना है।[1] वह अनुभव की आत्मानुभूति द्वारा अनुभव के लिए है। वह ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा नवीन अनुभवों का निर्माण और पुनर्गठन होता है।[2] ड्यूवी के इन कथनो से विदित होता है कि वे शिक्षा द्वारा ही अनुभवों का निर्माण करना चाहते हैं। हमारे अनुभव जैसे-जैसे नई-नई समस्याएं हमारे सामने आती हैं, बदलते जाते हैं, नई समस्यायें हमे उनका समाधान करने के लिए प्रेरित करती हैं। पहले तो हम प्रत्येक समस्या के कई हल ढूंढते हैं फिर सही हल को चुन लेते हैं। इस प्रकार समस्याओं के आने पर हम उनके हल निकालने मे रत हो जाते हैं और इस प्रकार व्यवस्थापन (Adjustment) स्थापित कर लेते है। अतः शिक्षा व्यवस्थापन के लिए है। जैसे-जैसे हम परिस्थितियो के साथ अनुकूलन स्थापित कर लेते है हमारे अनुभवों मे वृद्धि होनी

---

1. "Education is of experience through self-experience and for experience" —Dewey
2. "Education is a process involving continuous reconstruction and reorganisation." —Dewey

(८) रीकन्सट्रक्शन इन फिलोसफी (Reconstruction in Philosophy)
(९) एजूकेशनल एसेज (Educational Essays)

ड्यूवी के दार्शनिक विचार :—ड्यूवी का दर्शन प्रमुख रूप मे प्रयोगवादी और अनुभववादी है। उन पर जेम्स (James) और चार्ल्स पियर्स के विचारो का अत्यधिक प्रभाव पड़ा। वे किसी सत्य को उसके फल या निर्णय के द्वारा आंकते थे। उनके अनुसार सच्चा दर्शन वह है जो जीवन की क्रियाओ से सम्बन्धित है, वे किसी भी निश्चित तथा चिरन्तन तत्वो मे आस्था नही करते थे। उनका कथन था कि निश्चित तथा चिरन्तन तत्वो मे विश्वास करने का तात्पर्य मानसिक जिज्ञासा और विकास का अन्त करना है। मानव मे समाज मे ठीक प्रकार सफल जीवन व्यतीत करने के लिए अपने अनुभवो तथा बुद्धि की सहायता से जीवन से सम्बन्धित मूल्यो की रचना करनी होती है। इन मूल्यो को पूर्व निश्चित नही किया जा सकता क्योकि मूल्य, काल, व्यक्ति तथा परिस्थितियों के अनुसार एक दूसरे से भिन्न होते हैं। ड्यूवी की दर्शन सम्बन्धी विचार धारायें निम्न प्रमुख बातें प्राप्त करती हैं—

(i) जीवन मे प्राप्त होने वाले अनुभव को अत्यधिक महत्व देना।
(ii) जीवन से सबधित मूल्यो और सत्यो की शाश्वतता मे अविश्वास।
(iii) ज्ञान और क्रिया को एक ही मानना।
(iv) विकासवाद के सिद्धान्त मे आस्था। ससार का विकास हो रहा है अत शिक्षा के द्वारा मानव विकास को सुन्दरतम तथा सरल बनाना चाहिए।
(v) व्यक्ति और समाज के सबधो मे विश्वास। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, मानव का विकास सदा समाज के मध्य मे रहकर होता है।

ड्यूवी और शिक्षा [illegible] दूत बनकर आये। उन्होंने [illegible] शिक्षा अव्यावहारिक तथा [illegible] पुस्तकीय है। औद्योगिक क्रांति ने जो समाज मे परिवर्तन उत्पन्न कर दिये हैं उनसे उसका कोई मेल नही है। सम्पूर्ण विद्यालीय शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् भी बालक समाज मे अपने को असहाय पाता है। इस असहायता का प्रमुख कारण विद्यालयो मे प्रदान की जाने वाली शिक्षा का केवल पुस्तकीय तथा विचारात्मक होना है। ड्यूवी के शिक्षा सम्बन्धी विचारो को निम्न भागो मे विभाजित किया जा सकता है :—

(१) शिक्षा और जीवन :—अपनी प्रसिद्ध पुस्तक Democracy in Education मे अपने विचार प्रकट करते हुए लिखते हैं कि शिक्षा जीवन के लिये परम उपयोगी है। जीवन की प्रगति शिक्षा के ऊपर ही निर्भर है। वे शिक्षा को 'भावी जीवन के लिये तैयार करने' के सिद्धान्त को नहीं स्वीकार करते हैं। वे शिक्षा को ही जीवन मानते हैं। विद्यालय समाज का लघु रूप है। बालक वहाँ अध्ययन काल मे सामाजिक समस्याओं का हल खोजता है अत शिक्षा और जीवन मे कोई अन्तर नही रह जाता। विद्यालय मे उन कार्यों या क्रियाओं को विशेष रूप से महत्व देना चाहिए जो बालक के जीवन से सबधित हैं।

(२) शिक्षा बालक की रुचियों के अनुसार :—मनोवैज्ञानिक आधार पर बालक की शिक्षा उसकी मूल प्रवृत्तियो तथा शक्तियो के आधार पर प्रदान करनी चाहिए। जो शिक्षा बालक की रुचियो और शक्तियों को ध्यान मे रखकर प्रदान की जाती है वही शिक्षा उत्तम है।

(३) शिक्षा और अनुभव :—ड्यूवी के अनुसार शिक्षा अनुभवो का समूह है। हमारे समस्त सिद्धांत, आदर्श, तथा विचार अनुभवो के ही परिणाम हैं। अनुभव के माध्यम से ही हम नवीन बातो का ज्ञान करते हैं तथा वातावरण का विकास करते हैं। इस प्रकार अनुभव और शिक्षा एक ही वस्तु है।

(४) शिक्षा और समाज :—ड्यूवी 'मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है' के सिद्धान्त मे पूर्ण विश्वास रखता है। उसका कथन है 'जातीय सामाजिक जीवन मे क्रियाशील रहते हुए ही मनुष्य शिक्षा प्राप्त करता है। मानव का विकास समाज मे ही सम्भव है। वह एकान्त मे रहकर अपना विकास नहीं कर सकता। ऐसी दशा मे शिक्षा का सगठन इस ढग से किया जाना चाहिए जिससे कि बालक समाज का सक्रिय सदस्य रहकर उसमे भाग ले सके। वर्तमान

नहीं होता तब तक न तो उसकी बुद्धि का ही विकास सम्भव है, न उसका नैतिक विकास ही सम्भव है और न सामाजिक विकास ही।

व्यक्ति समाज का महत्त्वपूर्ण अंग है। वह समाज में पैदा होता, समाज में पलता पुसता और समाज में ही विकास को प्राप्त होता है। अतः शिक्षा का माध्यम समाज ही होना चाहिए। सामाजिक वातावरण में रहकर ही बालक अपना विकास और सामाजिक उन्नति में भाग ले सकता है।

यह सामाजिक उन्नति व्यक्ति द्वारा तभी हो सकती है जब वह सामाजिक कुशलता प्राप्त कर ले। सामाजिक कुशलता विकास का साधन है। जो व्यक्ति अपना जीवन यापन की कुशलता रखता है, जो अपना स्वार्थ का त्याग कर दूसरों की आर्थिक कुशलता में सहयोग दे सकता है, जो अपनी उन इच्छाओं को नियन्त्रित करता है जो व्यक्तिगत अथवा पारस्परिक सामाजिक उन्नति में बाधक हों। इस प्रकार सामाजिक कुशलता वाला व्यक्ति निम्न गुणों से सम्पन्न होता है :

(i) आर्थिक कुशलता (Economic Efficiency)
(ii) निषेधात्मक नैतिकता (Negative Morality)
(iii) स्वीकारात्मक नैतिकता (Positive Morality)

शिक्षा सामाजिक सेवा के लिए है। समाज की सेवा तभी हो सकती है जब व्यक्ति आत्महित को त्याग कर समाज हित को सर्वोच्च स्थान दे और व्यक्तिगत इच्छाओं और समाज हित के बीच द्वन्द्व उपस्थित होने पर समाज हित को पसन्द करे।

यह सामाजिक कुशलता (Social Efficiency) व्यक्ति में तभी मिल सकती है जब वह सामूहिक क्रियाओं में सक्रिय भाग ले।

ड्यूवी जगत को शिक्षा की देन

Q 8. Estimate Dewey's contribution to modern Educational thought about the matter and method of Education *(A U. B T. 1956)*

Ans प्रयोजनवाद की विचारधारा के जन्मदाता विलियम जेम्स की मृत्यु के पश्चात जान ड्यूवी (John Dewey) ने प्रयोजनवाद का अमरीका में प्रचार किया। ड्यूवी का जन्म १८५६ में Vermout नामक गाँव में हुआ था। उनके पिता बड़ी दूकान पर सामान बेचते थे। ड्यूवी ने उन्नीस वर्ष की अवस्था में 'वर्मांट यूनिवर्सिटी' से बी० ए० की डिग्री प्राप्त की। तत्पश्चात कुछ काल तक वे मिशिगन, शिकागो, और कोलम्बिया विश्वविद्यालयों में प्राध्यापक का कार्य करते रहे। उन्हें शिक्षा में विशेष रूप से रुचि थी। उन्होंने शिकागो में अपने विचारो को प्रतिपादित करने के लिए एक 'प्रोग्रेसिव स्कूल' (Progressive School) खोला। इस स्कूल में उन्होंने प्रयोजनवादी विचारधारा के अनुसार शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की। विद्यालय में भिन्न-भिन्न कक्षाओं के छात्रों की संख्या सीमित रखी गई और अध्यापकों को इस बात की स्वतन्त्रता प्रदान की गई कि वे शिक्षा में नूतन प्रणालियों का प्रयोग करें। शिकागो के पश्चात वे कोलम्बिया यूनिवर्सिटी में प्राध्यापक नियुक्त हो गये, यहाँ शिक्षा दर्शन पर समय-समय पर उन्होंने भाषण दिये। परिणाम-स्वरूप शीघ्र ही उनका यश संसार भर में फैलने लगा। उनके शिक्षा दर्शन की प्रमुख विशेषता शिक्षा में व्यावहारिकता को महत्त्व देना था। १९५२ में वे इस संसार से उठ गये।

शिक्षा शास्त्र और दर्शन पर उन्होंने अनेकों पुस्तकों की रचना की। प्रमुख पुस्तकों के नाम नीचे दिये जा रहे हैं :—

(१) दि स्कूल एण्ड दी चाइल्ड (The School and the Child)
(२) दि स्कूल एण्ड दी सोसाइटी (The School and the Society)
(३) स्कूल ऑफ टुमारो (School of Tomorrow)
(४) डेमोक्रेसी एण्ड एजूकेशन (Democracy and Education)
(५) रिकान्स्ट्रक्शन इन फिलासफी (Reconstruction in Philosophy)
(६) फ्रीडम एण्ड कल्चर (Freedom and Culture)
(७) हाऊ वी थिंक (How we Think)

युग में समाज में परिवर्तन होता है प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली को अपना लिया है अब शिक्षा के माध्यम से प्रजातंत्र को सफल बनाना परम आवश्यक है। विद्यालय में शिक्षा इस प्रकार से प्रदान की जानी चाहिए जिससे बालक अपने हित और समाज हित में कोई अन्तर न समझ सके। जहाँ तक सम्भव हो विद्यालय को आदर्शमय समाज का रूप प्रदान करना चाहिए। दूसरे विज्ञान और उद्योग ने समाज में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित कर दिये हैं। लोक का सामाजिक संगठन दिन प्रति दिन जटिल होता जा रहा है। बालक के सामने नित्य और कारखानों की बनी वस्तुएँ आती हैं, परन्तु बालक को इन वस्तुओं का ज्ञान नहीं कि ये वस्तुएँ कहाँ से आती हैं और कैसे बनती हैं। अतः शिक्षा का उद्देश्य बालक को सामाजिक परिवर्तनों के अनुकूल बनाना है।

(४) ड्यूवी और पाठ्यक्रम —पाठ्यक्रम निर्धारण में ड्यूवी उपयोगिता के सिद्धांत को सबसे अधिक महत्व देता है। उनके अनुसार पाठ्य-क्रम में केवल उन विषयों को महत्व देना चाहिए जो बालक के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकें। दूसरे, पाठ्यक्रम में निर्धारित विषयों में पारस्परिक सम्बन्ध भी होना चाहिए तथा आवश्यकतानुसार उनमें परिवर्तन भी किये जा सकें।

ड्यूवी के अनुसार पाठ्य-क्रम का आधार अनुभव भी होना चाहिए। पाठ्यक्रम के अन्दर वर्तमान अनुभव तथा क्रियाओं को भी स्थान दिया जाना चाहिए। उनके अनुसार अनुभव बालकों को क्रिया करने के लिए उत्साहित करते हैं तथा नूतन अनुभव ग्रहण करने पर पुरातन अनुभवों का पुनर्निर्माण करना है।

अन्त में वह पाठ्य-क्रम में उन विषयों को और सम्मिलित करने पर बल देता है जो बालक के जीवन से सम्बन्धित हैं। इसके लिए वह वर्तमान जीवन में काम में आने वाली क्रियाओं को पाठ्य-क्रम में सम्मिलित करने के पक्ष में है। विषय मुख्यतया जीवन से सम्बन्धित होना चाहिए। यदि विषय जीवन से सम्बन्धित होंगे तो उनमें एकता भी स्वयं आ जायेगी।

विद्यालय और शिक्षा

Q 9. "The school should be a laboratory of social experimentation in the best ways of living together" Give an account of Dewey's scheme for a practical application of this statement. **(*P. U. 1951*)**

Or

The school should be a laboratory of social experimentation in the best ways of living together How does the educational theory and practice of John Dewey fulfil this purpose of the school ? What is the special significance of this ideal to the Indian teacher today ? **(*A U, B T. 1955*)**

Ans. ड्यूवी की विद्यालय सम्बन्धी विचारधाराएँ शिक्षा के क्षेत्र में विशेष स्थान रखती हैं। उसने तत्कालीन विद्यालयों की तीव्र आलोचना की। अभी तक विद्यालयों को वह स्थान माना जाता है जहाँ कि केवल पुस्तकीय ज्ञान प्रदान किया जाता है। वर्तमान विद्यालयों का सबसे बड़ा दोष यह है कि वे अत्यन्त अपरिवर्तनशील तथा अप्रगतिशील हैं। औद्योगिक क्रान्ति ने तथा सामाजिक परिवर्तनों ने समाज का स्वरूप बदल दिया है। अतः विद्यालयों के कार्य क्रम में भी परिवर्तन करने की आवश्यकता है। वर्तमान विद्यालयों में यह कमी है कि वे तत्कालीन समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं करते हैं। इन विद्यालयों में अध्यापक केवल भाव रूप देना जानते हैं और छात्र निष्क्रिय होकर सुनता है, क्रिया को यहाँ कोई महत्त्व नहीं दिया जाता है। ड्यूवी के अनुसार बिना क्रिया के शिक्षा महत्त्वहीन है। अपने विचारों को कार्य रूप में परिणत करने के लिए उसने १८९६ में शिकागो में एक 'प्रयोगात्मक विद्यालय' (Laboratory School) की स्थापना की। इन विद्यालयों में तत्कालीन शिक्षा-प्रणाली का परित्याग कर अपने विचारों द्वारा विद्यालयों की व्यवस्था की। उन्होंने उद्योगों के माध्यम से शिक्षा प्रदान करने का प्रबन्ध किया। विद्यालय के सम्बन्ध में अपने निम्न शिक्षा सम्बन्धी विचार प्रकट किये —

(१) विद्यालय और घर में कोई अन्तर नहीं।—ड्यूवी के अनुसार 'विद्यालय वास्तव में परिवार का एक विस्तृत रूप होना चाहिए। जिस प्रकार का अनुशासन घर में बालक

को कभी-कभी प्राप्त होता है, उसी की अधिक पूर्णरूप मे उच्च साधनो द्वारा वैज्ञानिक ढग से विद्यालय मे स्थापना की जानी चाहिए।' उनके अनुसार बालक को जिस प्रकार स्नेह तथा दुलार घर पर मिलते है उसी प्रकार प्यार और स्नेह बालक को विद्यालय मे भी मिलना चाहिए।

(२) **विद्यालय और अनुभव** —ड्यूवी के अनुसार विद्यालय मे बालक क्रियाओ के माध्यम से नवीन अनुभव सीखता है। अत विद्यालय मे केवल मौखिक पुस्तकीय ज्ञान प्रदान करने के बजाय क्रियाओ के आधार पर शिक्षा प्रदान करनी चाहिए। क्रिया करने से बालक के सामने अनेको परिस्थितियाँ आती हैं जिनको हल करके वह अनेको अनुभव प्राप्त करता है।

(३) **विद्यालय को समाज का प्रतिबिम्ब होना चाहिये** —ड्यूवी का मत है कि विद्यालय को समाज का दर्पण होना चाहिए। जिस प्रकार समाज का स्वरूप परिवर्तनशील है उसी प्रकार विद्यालय को भी परिवर्तनशील होना चाहिए। विद्यालय जब समाज की आवश्यकता के अनुसार बदले तभी वे समाज का प्रतिबिम्ब बन सकेंगे। ड्यूवी का कथन है कि शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य प्रजातन्त्र को सफल बनाना है। अत विद्यालय का वातावरण भी प्रजातन्त्रात्मक होना चाहिए। विद्यालय मे प्रजातन्त्र का पाठ बडी ही सुविधा तथा सरलता के साथ पढाया जा सकता है। समाज मे होने वाली क्रियाओ को विद्यालय मे विशेष स्थान प्रदान करना चाहिए। असामाजिक क्रियाओं को विद्यालय मे स्थान देने मे कोई लाभ नही।

(४) **विद्यालय और व्यावसायिक शिक्षा** —ड्यूवी के अनुसार विद्यालय मे बालकों को व्यावसायिक शिक्षा अवश्य प्रदान की जाय। व्यवसाय वे ही हो जिनकी समाज को अत्यधिक आवश्यकता है। व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने से बालको को जीविका की समस्या का तो हल होगा ही परन्तु साथ ही वे क्रियाओ के माध्यम से नूतन अनुभव प्राप्त करेंगे। उसके अन्दर खोज की प्रवृत्ति का उदय होगा। इस प्रकार की शिक्षा द्वारा बालक और समाज दोनो का भला होगा।

(५) **विद्यालय और नैतिक शिक्षा** —ड्यूवी नैतिक और धार्मिक शिक्षा को व्यर्थ नही मानता परन्तु उपदेशों द्वारा बालक के ऊपर लादने के पक्ष मे नही है। उसके अनुसार बालक के अन्दर नैतिक गुणों का विकास सामूहिक और सहयोगपूर्ण जीवन के द्वारा ही किया जा सकता है। विद्यालय मे उन क्रियाओ को महत्व देना चाहिए जिससे बालक की गलत प्रवृत्तियो का शोधन (Sublimation) किया जा सके।

(६) **विद्यालय और अनुशासन** —ड्यूवी बाह्य अनुशासन को तनिक भी महत्व नहीं देता। उसके अनुसार अनुशासन बालक के ऊपर बाहर से नहीं लादा जा सकता। दण्ड तथा बाह्य नियन्त्रण के बजाय बालको मे सामाजिक अनुशासन की भावना उत्पन्न की जाय। बालको को सामूहिक क्रियाओ मे भाग लेने का अवसर प्रदान करना चाहिए। सामूहिक क्रियाओ मे भाग लेने मे वास्तविक अनुशासन का जन्म होता है। ड्यूवी का विश्वास था कि यदि बालक के समस्त कार्य सोद्देश्य होंगे और उनमे पारस्परिक सहयोग है तो उनका प्रभाव बालक के ऊपर अनुशासनात्मक पड़ेगा।

(७) **विद्यालय और अध्यापक** :—प्रकृतिवादियो के विपरीत ड्यूवी अध्यापक को शिक्षा मे उच्च स्थान देता है। उसके अनुसार अध्यापक ही बालक के अन्दर सामाजिक गुणो का विकास कर सकता है। अध्यापक ही विद्यालय में ऐसा वातावरण उत्पन्न करता है जिससे कि बालक अपने अन्दर की आन्तरिक शक्तियो को विकसित कर पाता है। परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि अध्यापक बालक को अपने पूर्ण नियन्त्रण मे रखे। अध्यापक का कार्य प्रमुख रूप से मार्ग दर्शन तथा बालक मे सामाजिक गुणों का विकास करना है।

इस प्रकार हम देखते है कि ड्यूवी का शिक्षा के क्षेत्र मे पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। वर्तमान युग की शिक्षा का स्वरूप बदलने तथा उसे जीवन के निकट लाने का श्रेय ड्यूवी को ही है, एस० के० कश्यान के शब्दो मे :"उन्होंने हमारे सामने विवेक के बल पर चलने' और "वैज्ञानिक प्रवृत्ति को अपनाने का सुझाव रखा। उन्होंने सर्वसाधारण की शिक्षा पर बल दिया। बालक की शिक्षा के लिये उसकी रुचियों और योग्यताओं का अध्ययन आवश्यक बतलाया।.......... शिक्षा मे स्वतन्त्रता, स्वशासन तथा स्व-व्यवस्था की भावना उत्पन्न करने का श्रेय उन्हीं को

अध्याय ८

शिक्षा का मनोवैज्ञानिक आधार

शिक्षा में मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति

Q 1. What do you mean by the term psychological basis of education ? Discuss the chief characteristics of this tendency in education

Ans शिक्षा में दर्शन का स्थान तो प्रमुख है ही लेकिन मनोविज्ञान का भी महत्व कम नही है। रूसो ने जिस दार्शनिक विचारधारा को शिक्षा में प्रतिपादित किया उसने मनोविज्ञान को शिक्षा का आधार माना। शिक्षा का केन्द्रबिन्दु अब पाठ्य-वस्तु के स्थान पर बालक होगा। बालक को बालक मान कर शिक्षा दी जाय यह विचार सबसे पहले रूसो ने दिया। बालक की शिक्षा उसकी मूल प्रवृत्तियों और रुचि के अनुसार हो इस उद्देश्य से उसकी प्रकृतिदत्त मूल प्रवृत्तियो, रुचियो, अभिरुचियो, योग्यताओ, बौद्धिक शक्तियो का अध्ययन आवश्यक हो गया। लेकिन चूंकि ये विषय मनोविज्ञान के विषय हैं अत बालक को शिक्षा देने से पूर्व उस की इन शक्तियों का अध्ययन जरूरी हो गया। शिक्षक के लिए अपने विषय के ज्ञान के साथ साथ बालक के मनोविज्ञान का ज्ञान भी आवश्यक समझा जाने लगा।

शिक्षा में अब वह प्रवृत्ति चल उठी जिसका आधार बालक का मनोविकास था। शिष्य की रुचियो, योग्यताओं, और अन्य प्रवृत्तियो को देख कर ही उसकी शिक्षा की व्यवस्था की जाने लगी, अन्य दार्शनिकों ने भी बालक को शिक्षा का केन्द्र मानकर उसकी वैयक्तिक विभिन्नताओं के अनुसार शिक्षा देने की बात कही। इस प्रकार शिक्षा में मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति का उदय और विकास हुआ।

मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति की विशेषतायें

(१) बाल केन्द्रित शिक्षा—शिक्षा का केन्द्र बालक होना चाहिए पाठ्य वस्तु नहीं। उसकी ही आवश्यकताओं, आयु, योग्यता, और रुचि को ध्यान मे रखकर पाठ्य-क्रम का सगठन किया जाय तथा ऐसी पाठन विधियाँ उपयोग मे लाई जायें जो उसकी रुचि के अनुकूल हों।

(२) बाल मनोविज्ञान पर जोर—'शिक्षा क्रिया के दो कर्म हैं व्यक्ति और वस्तु। शिक्षा दी जाती है व्यक्ति को, पाठ्य वस्तु तो उद्देश्यो की पूर्ति की साधनमात्र है। अत अध्ययन को बालक के ज्ञान की बडी जरूरत है। बालक के ज्ञान से हमारा तात्पर्य है बालक की रुचियों, मूलप्रवृत्तियों (instincts), अभिरुचियो (attitudes), और अन्य योग्यताओ (abilities) का ज्ञान। जब तक इन चीजों का ज्ञान अध्यापक को न होगा वह बालक को उसकी रुचि और आवश्यकता के अनुसार शिक्षा नहीं दे सकता है।

(३) शिक्षा को आन्तरिक शक्तियो और योग्यताओं का विकास मानना—यह प्रवृत्ति यह मानकर चलती है कि शिक्षा बाहर से थोपी नही जाती वह तो आन्तरिक क्रिया है जिसमे व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक, सामाजिक और व्यक्तित्व सम्बन्धी सन्तुलित विकास होता है। यह विकास दमन, कठोर अनुशासन से नहीं वरन् प्रेम और सहानुभूति से होता है।

(४) बालक की इन शक्तियों का विकास बाहर से नही होता भीतर से होता है। बालक का विकास वृक्ष के विकास की तरह है। जिस प्रकार छोटा सा बीज उपयुक्त वातावरण पाकर पूर्णत्व को प्राप्त होता है उसी प्रकार उपयुक्त वातावरण पाकर बालक की उन गुप्त शक्तियो का विकास होता है जो उसे जन्म से प्राप्त होती हैं। शिक्षक का कर्त्तव्य है कि वह उन गुप्त शक्तियो के विकास के लिये उचित अवसर प्रदान करे।

(५) विद्यालय के इस वातावरण मे प्रेम, दया और सहानुभूति का सचार हो। बालक का सारा मार्ग-दर्शन दयालुता से ओतप्रोत हो। बालक की कोमल भावनाओ पर किसी प्रकार का आघात न हो। उसके व्यक्तित्व का आदर किया जाय।

(६) शिक्षा बालक के विकास और वृद्धि के क्रम को ध्यान में रखकर ही दी जाय। जिस प्रकार प्रकृति मे वस्तुएँ एक निश्चित क्रम से बढ़ती हैं उसी प्रकार शिक्षा का क्रम बाल विकास की अवस्थाओ को ध्यान मे रखकर तैयार किया जाय।

(७) शिक्षण पद्धति मे सरल से कठिन की ओर वाल सिद्धान्त लागू किया जाय। जब तक बालक एक बात को अच्छी तरह समझ न ले तब तक आगे न बढ़ा जाय।

(८) निरीक्षण शिक्षा का आधार है इसलिये निरीक्षण को शिक्षा पद्धति मे उपयुक्त स्थान दिया जाय।

शिक्षण पद्धति—पैंस्टालजी ने जिस शिक्षण पद्धति को जन्म दिया उसे आन्शवास (Anschaung) कहते हैं। आन्शवास का अर्थ है ज्ञान की प्राप्ति अनुभव से होती है। अनुभव ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से होता है। ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान ही उपयोगी होता है इसलिये पैंस्टालजी ने अपनी शिक्षण पद्धति मे अनुभव और निरीक्षण को ही विशेष स्थान दिया।

बालक वस्तु का स्वयं निरीक्षण करे और निरीक्षण के आधार पर धारणायें बनावे और उनका वर्णन स्वय करे। पैस्टालजी का विचार था कि "प्रारम्भिक शिक्षण का आधार आकृति, संख्या और भाषा को बनाया जाय क्योंकि बालक पहले वस्तु को देखकर उसकी आकृति पहचानता है, फिर उसकी सख्या देखता है, फिर भाषा की सहायता से उसका नामकरण करता है।

अत उसने भाषा शिक्षण मे पुस्तकीय शिक्षा के स्थान पर मौखिक शिक्षा (oral teaching) पर जोर दिया। मौखिक शिक्षा का अर्थ है अपने अनुभव और निरीक्षण द्वारा प्राप्त ज्ञान को बालक वार्तालाप द्वारा अभिव्यक्त करे। गणित शिक्षण मे भी पैंस्टालजी ने एक नये शिक्षा सिद्धान्त को पुष्ट किया। शिक्षा प्रत्यक्ष पदार्थों से दी जाय। बालकों को अंक का वास्तविक ज्ञान करने के लिये बिन्दुओं, रेखाओ तथा वस्तुओ का प्रयोग किया जाय। इनको घटाकर, बढ़ाकर अथवा एकत्र करके गिनती, जोड, बाकी, गुणा, भाग आदि की साधारण गणितिक क्रियायें कराई जायें। इसी प्रकार सामाजिक विषयों का शिक्षण भी प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण मे पाई जाने वाली वस्तुओ द्वारा ही किया जाय। बालकों को घूमने, फिरने और निरीक्षण करने का अधिक से अधिक अवसर देकर सामाजिक विषयों—इतिहास, भूगोल, प्रकृति विज्ञान आदि की शिक्षा दी जाय।

इस प्रकार पैस्टालजी की शिक्षण पद्धति के मूल तत्त्व हैं मौखिक शिक्षा (Oral Teaching) और प्रत्यक्ष पदार्थों की शिक्षा (Object Lessons)।

पैस्टालजी के इन विचारो का स्वागत जर्मनी, इंगलैंड और अमरीका सभी देशों ने किया। जर्मनी ने उसकी शिक्षा पद्धति को ज्यों की त्यों स्वीकार कर लिया। इङ्गलैंड में उसकी प्रारम्भिक शिक्षा के सिद्धान्त को माना गया और शिक्षण कार्य प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्तियो द्वारा कराया जाने लगा। अमरीका मे उसकी शिक्षण पद्धति का प्रचार हुआ। इस प्रकार पैस्टालजी का प्रभाव सभी देशों पर पड़ा। उसके दो शिष्य हरबार्ट और फोबेल ने उसके विचारों को फैलाने मे विशेष सहयोग दिया।

पैस्टालजी की निम्न दो विचारधाराओं को हरबार्ट और फोबेल ने पुष्ट करने का प्रयत्न किया।

(१) अनुभव और निरीक्षण शिक्षा का आधार है। वातावरण के सम्पर्क में आकर
वित अनुभव संचित करता है। अध्यापक इस वातावरण को पैदा करने का एक मात्र साधन
अत अध्यापन पद्धति बालक की शिक्षा में महत्वपूर्ण है।

(२) बालक की मूल प्रवृत्तियो और जन्मगत शक्तियो का विकास ही शिक्षा है इसलिए
यापक का कार्य उन शक्तियो को स्वत विकसित करना है।

हरबार्ट ने पहली विचारधारा को अपनाया और फ्रोबेल ने दूसरी को।

हरबार्ट (Herbart)

**Q 3. Why is Herbart called the father of Educational Psychology ?
iscuss his contribution to education practice.**

Ans जिस मनोविज्ञान को शिक्षा का आधार बनाने का आदेश पैस्टालजी ने दिया था उसको
ाता से समन्वित करके हरबार्ट ने शिक्षा मनोविज्ञान को जन्म दिया। उसने विज्ञान का निरूपण
ाया जिसकी सहायता से बालक के व्यवहार एव आचरणो मे परिवर्तन उपस्थित किया जा सकता
। उसने बताया कि मनोविज्ञान की सहायता से ही पाठन विधियो मे सुधार लाया जा सकता है।

मनोविज्ञान की विषय वस्तु मानसिक क्रिया और मन के विषय मे उसने अपने निम्न
विचारो का प्रतिपादन किया। उससे पहले मानसिक प्रक्रिया की तीन पृथक पृथक अवस्थाएँ मानी
ानी थी—ज्ञान, संवेदना और क्रिया लेकिन हरबार्ट ने तीनो को पृथक पृथक न मानकर एक दूसरे
र आश्रित तीनों को एक ही मानसिक प्रक्रिया के अंग माना है। मन भी उसके विचार में अनेक
शक्तियो का योग नही है वरन् वह एक अविभाजित इकाई है।

जन्म के समय इस मन मे कुछ नही होता। वातावरण के साथ सम्बन्ध स्थापित करने
पर उसमे विचार और प्रत्यय उत्पन्न होते हैं। ये विचार अथवा प्रत्यय (Concepts) सभी प्रकार
के होते है, और सभी प्रत्यक्ष चेतना क्षेत्र मे जाने का प्रयत्न करते हैं। प्रत्येक प्रत्यय अपने से पहले
मन मे आये हुए प्रत्यय के साथ प्रतिक्रिया करता है। दो समान प्रत्यय मन मे स्थिर हो जाते हैं
दो विरोधी प्रत्यय एक दूसरे को चेतना क्षेत्र से बाहर निकालने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार
चेतना क्षेत्र मे समानता रखने वाले प्रत्यय ही स्थान प्राप्त कर पाते हैं। इस प्रकार पूर्व संचित
विचारो के समूह को पूर्वानुवर्ती ज्ञान (Apperceptic Mass) की संज्ञा दी गई है। जब नवीन
विचार इस पूर्वानुवर्ती ज्ञान से सम्बन्धित होता है तब ये नवीन विचार चेतना मे प्रकट होते हैं।

मानसिक प्रक्रिया के इस आधारभूत तथ्य को शिक्षण कार्य मे प्रयोग में लाने की
व्यवस्था हरबार्ट ने अपनी शिक्षण प्रणाली—पंचपदी—में की है। इस प्रणाली का मूलमन्त्र है पूर्व
संचित ज्ञान के आधार पर नवीन ज्ञान की स्थापना की जाय। यदि हम बालक को नवीन ज्ञान देना
चाहते है तो उसके पूर्व संचित ज्ञान को उभारना होगा तभी नवीन ज्ञान दिया जा सकता है। पंच
पदी की विस्तृत व्याख्या आगे प्रस्तुत की जायगी।

हरबार्ट ने शिक्षा मे अध्यापक के महत्व पर ही जोर दिया। अध्यापक ही इस प्रणाली
की सहायता से बालक के समुचित विचारों को विस्तृत, अव्यवस्थित विचारो को व्यवस्थित, क्रम
हीन विचारों को क्रमबद्ध कर सकता है। अध्यापक द्वारा इस प्रणाली का प्रयोग न करने पर
बालक का ज्ञान अव्यवस्थित और क्रमहीन होगा।

हरबार्ट बालक की जन्मजात योग्यताओं और शक्तियों मे विश्वास नहीं करते थे।
व्यक्तियों में जो शक्तियों तथा योग्यताओं के आधार पर इतने भेद दिखाई देते हैं उन सबका कारण
वातावरण की विभिन्नता तथा भेद है। इस प्रकार हम देखते है कि हरबार्ट शिक्षा के स्थान पर
अध्यापन अथवा निर्देश (Instruction) पर ही जोर देते थे। लेकिन शिक्षा को साध्य ही मानते थे
अध्यापन को वे साधन समझते थे। अध्यापन द्वारा बालकों मे न केवल नये नये विचार पैदा किए
जाते हैं, वरन् बालक मे अनुकूल रुचियाँ उत्पन्न की जाती हैं, जो उसे अच्छे कार्य करने के लिए
प्रेरित करती हैं। इन उत्तम रुचियों से चरित्र बनता है और चरित्र का निर्माण शिक्षा का उद्देश्य
है। इस प्रकार अध्यापन साधन है, शिक्षा साध्य।[1]

---

1. "Instruction and Education are distinguished as means and end: instruction without education would be means without end, education without instruction would be end without means."—*Doctrine of the Great Educators.*

हरबार्ट की यह मनोवैज्ञानिक शिक्षा प्रणाली जर्मनी के सभी विद्यालयों में उसी समय अपना ली गई। धीरे-धीरे इस प्रणाली का प्रचार संसार के सभी देशों में होने लगा। जहाँ जहाँ इस प्रणाली को अपनाया गया वहीं पर मानसिक क्रिया के आधार पर शिक्षा देने की व्यवस्था की गई।

हर्बार्टीय पञ्चपदी

Q. 4. Write a detailed description of Herbartian steps with their special features and usefulness.

Ans. समय-समय पर शिक्षा-शास्त्रियों ने पाठन की प्रक्रिया के विषय में अपने-अपने मत प्रकट किये हैं। हरबार्ट महोदय ने भी एक सामान्य पाठन-विधि का निर्माण किया है जिसमें सुनिश्चित वैज्ञानिक क्रमबद्धता है। वस्तुतः किसी सुनिश्चित वैज्ञानिक क्रमबद्धतायुक्त शिक्षण प्रणाली को ही हम अध्ययन-विधि के नाम से पुकारते हैं। हरबार्ट ने अपनी शिक्षण प्रणाली को चार पदों में विभाजित किया था—स्पष्टता (Clearness), सम्बन्ध (Association), आत्मीकरण (System) तथा प्रयोग (Application)। यदि बालक के सामने पाठ्यवस्तु को क्रमबद्ध रूप में रखना है तो उसके सामने रखे हुए विचारों का क्रम भी मानवीय मानसिक विकास के अनुकूल होना चाहिए। हरबार्ट के अनुसार बालक का मस्तिष्क दो प्रकार से काम करता है—विचारों को समझकर स्वीकार करना अथवा आत्मसात् किया; विचारों को ग्रहण कर लेने के बाद पुराने विचारों से उनका सम्बन्ध जोड़ना अथवा मनन (reflection)। आत्मसात् की क्रिया में उसने स्पष्टता और सम्बन्ध और मनन की क्रिया में आत्मीकरण और प्रयोग पर जोर दिया। इस प्रकार हरबार्ट के नियमित पद केवल चार थे।

स्पष्टता (Clearness) का अभिप्राय बालक को स्पष्ट विचार देने से है अत. हरबार्ट के शिष्य जीलर (Ziller) ने इस पद को दो भागों में बाँट दिया—प्रस्तावना (Preparation) और विषय प्रवेश (Presentation)। प्रस्तावना का प्रयोजन पुराने विचारों का विश्लेषण कर बालकों को नये पाठ के लिए तैयार करना और विषय प्रवेश का प्रयोजन पाठ्यक्रम के कुछ अंशों को क्रमबद्ध रूप में बालकों के सामने रखने से है। हरबार्ट के अन्य अनुयायियों ने इन पदों के नाम भी बदल दिये। अब ये पद निम्न प्रकार से हैं और हरबार्ट द्वारा उनका नामकरण संस्कार न किए जाने पर भी उनको हरबार्टीय ही कहा जाता है—

(१) प्रस्तावना (Preparation)
(२) पाठ्योपस्थापना (Presentation)
(३) तुलना (Comparison)
(४) सामान्य निर्धारण (Generalisation)
(५) प्रयोग (Application)

प्रस्तावना (Preparation)—कई प्रकार से बालक को नवीन पाठ ग्रहण करने के लिए तैयार करना ही प्रस्तावना का उद्देश्य रहता है। नये पाठ की तैयारी का अर्थ है बालक में नवीन ज्ञान को ग्रहण करने की उत्सुकता का जागरण। पाठ्यवस्तु विषय के पूर्व ज्ञान को उभाड़ना, ऐसी समस्या को उपस्थित करना जिसका हल पूर्व ज्ञान के आधार पर न हो सके, इस औत्सुक्य (Curiosity) को जागृत करने में मदद करते हैं। इस अवस्था में अध्यापक पोषण करता है कि उसी समस्या को हल किया जायगा। प्रस्तावना से नये पाठ का उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है और बालक यह जानने लगता है कि वह क्या सीखने वाला है। इस प्रकार प्रस्तावना के दो भाग होते हैं—पूर्व-ज्ञान का उद्बोधन और उद्देश्य कथन बालक की उत्सुकता में वृद्धिकर प्रस्तावना का उद्देश्य पूरा करता है।

पाठ्योपस्थापन (Presentation)—मूलपाठ को सुविधानुसार भागों (units) में बाँट कर शिक्षक क्रमानुसार इन अन्वितियों को बालकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है। मूल पाठ का शिक्षण करते समय अध्यापक को निम्न बातों का ध्यान रखना पड़ता है :—

(अ) मूलपाठ को अच्छी तरह समझाने के लिये बालक के पूर्व ज्ञान को प्रश्नों द्वारा [illegible] का उसके पूर्व ज्ञान से सम्बन्ध स्थापित करना।

(१) अनुभव और निरीक्षण शिक्षा का आधार है। वातावरण के सम्पर्क में आकर ...चित अनुभव संचित करता है। अध्यापक इस वातावरण को पैदा करने का एक मात्र साधन ,अत. अध्यापन पद्धति बालक की शिक्षा में महत्वपूर्ण है।

(२) बालक की मूल प्रवृत्तियों और जन्मगत शक्तियों का विकास ही शिक्षा है इसलिए ...ध्यापक का कार्य उन शक्तियों को स्वत विकसित करना है।

हरबार्ट ने पहली विचारधारा को अपनाया और फ्रोबेल ने दूसरी को।

हरबार्ट (Herbart)

Q. 3. Why is Herbart called the father of Educational Psychology? Discuss his contribution to education practice.

Ans जिस मनोविज्ञान को शिक्षा का आधार बनाने का आदेश पेंस्टालजी ने दिया था उसको शिक्षा से समन्वित करके हरबार्ट ने शिक्षा मनोविज्ञान को जन्म दिया। उसने विज्ञान का निरूपण किया जिसकी सहायता से बालक के व्यवहार एव आचरणो मे परिवर्तन उपस्थित किया जा सकता है। उसने बताया कि मनोविज्ञान की सहायता से ही पाठन विधियों में सुधार लाया जा सकता है।

मनोविज्ञान की विषय वस्तु मानसिक क्रिया और मन के विषय मे उसने अपने निम्न विचारो का प्रतिपादन किया। उससे पहले मानसिक प्रक्रिया की तीन पृथक पृथक अवस्थाएँ मानी जाती थी—ज्ञान, संवेदना और क्रिया लेकिन हरबार्ट ने तीनो को पृथक पृथक न मानकर एक दूसरे पर आश्रित तीनो को एक ही मानसिक प्रक्रिया के अग माना है। मन भी उसके विचार मे अनेक शक्तियों का योग नही है वरन् वह एक अविभाजित इकाई है।

जन्म के समय इस मन मे कुछ नही होता। वातावरण के साथ सम्बन्ध स्थापित करने पर उसमे विचार और प्रत्यय उत्पन्न होते हैं। ये विचार अथवा प्रत्यय (Concepts) सभी प्रकार के होते हैं, और सभी प्रत्यक्ष चेतना क्षेत्र मे जाने का प्रयत्न करते हैं। प्रत्येक प्रत्यय अपने से पहले मन मे आये हुए प्रत्यय के साथ प्रतिक्रिया करता है। दो समान प्रत्यय मन मे स्थिर हो जाते हैं दो विरोधी प्रत्यय एक दूसरे को चेतना क्षेत्र से बाहर निकालने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार चेतना क्षेत्र मे समानता रखने वाले प्रत्यय ही स्थान प्राप्त कर पाते है। इस प्रकार पूर्व संचित विचारो के समूह को पूर्वानुवर्ती ज्ञान (Apperceptic Mass) की सज्ञा दी गई है। जब नवीन विचार इस पूर्वानुवर्ती ज्ञान से सम्बन्धित होता है तब वे नवीन विचार चेतना मे प्रकट होते हैं।

मानसिक प्रक्रिया के इस आधारभूत तथ्य को शिक्षण कार्य मे प्रयोग मे लाने की व्यवस्था हरबार्ट ने अपनी शिक्षण प्रणाली—पचपदी—मे की है। इस प्रणाली का मूलमन्त्र है पूर्व संचित ज्ञान के आधार पर नवीन ज्ञान की स्थापना की जाय। यदि हम बालक को नवीन ज्ञान देना चाहते हैं तो उसके पूर्व संचित ज्ञान को उभारना होगा तभी नवीन ज्ञान दिया जा सकता है। पच पदी की विशेष व्याख्या आगे प्रस्तुत की जायगी।

हरबार्ट ने शिक्षा मे अध्यापन के महत्व पर ही जोर दिया। अध्यापक ही इस प्रणाली की सहायता से बालक के सकुचित विचारो को विस्तृत, अव्यवस्थित विचारो को व्यवस्थित, क्रम हीन विचारो को क्रमबद्ध कर सकता है। अध्यापक द्वारा इस प्रणाली का प्रयोग न करने पर बालक का ज्ञान अव्यवस्थित और क्रमहीन होगा।

हरबार्ट बालक की जन्मजात योग्यताओ और शक्तियों मे विश्वास नही करते थे। व्यक्तियों मे जो रुचियो तथा योग्यताओ के आधार पर इतने भेद दिखाई देते हैं उन सबका कारण अध्यापन की विभिन्नता तथा भेद हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि हरबार्ट शिक्षा के स्थान पर अध्यापन अथवा निर्देश (Instruction) पर ही जोर देते थे। लेकिन शिक्षा को साध्य ही मानते थे अध्यापन को वे साधन समझते थे। अध्यापन द्वारा बालको में न केवल नये नये विचार पैदा किये जाते हैं, वरन् बालक मे बहुमुखी रुचियाँ उत्पन्न की जाती हैं, जो उसे अच्छे कार्य करने के लिए प्रेरित करती हैं। इन उत्तम कार्यों मे चरित्र बनता है और चरित्र का निर्माण शिक्षा का उद्देश्य है। इस प्रकार अध्यापन साधन है, शिक्षा साध्य।[1]

---

[1] ... means and end : ... education without ... e Great Educators, p. ...

हरबार्ट की यह मनोवैज्ञानिक शिक्षा प्रणाली जर्मनी के सभी विद्यालयों में उसी समय अपना ली गई। धीरे-धीरे इस प्रणाली का प्रचार संसार के सभी देशों में होने लगा। जहाँ जहाँ इस प्रणाली को अपनाया गया वहीं पर मानसिक क्रिया के आधार पर शिक्षा देने की व्यवस्था की गई।

हर्बार्टीय पञ्चपदी

Q 4. Write a detailed description of Herbartian steps with their special features and usefulness.

Ans. समय-समय पर शिक्षा-शास्त्रियों ने पाठन की प्रक्रिया के विषय में अपने-अपने मत प्रकट किये हैं। हरबार्ट महोदय ने भी एक सामान्य पाठन-विधि का निर्माण किया है जिसमें सुनिश्चित वैज्ञानिक क्रमबद्धता है। वस्तुत. किसी सुनिश्चित वैज्ञानिक क्रमबद्धतायुक्त शिक्षण प्रणाली को ही हम अध्ययन-विधि के नाम से पुकारते हैं। हरबार्ट ने अपनी शिक्षण प्रणाली को चार पदों में विभाजित किया था—स्पष्टता (Clearness), सम्बन्ध (Association), आत्मीकरण (System) [illegible]

सम्बन्ध जोड़ना अथवा मनन (reflection)। आत्मसात् की क्रिया में उसने स्पष्टता और सम्बन्ध और मनन की क्रिया में आत्मीकरण और प्रयोग पर जोर दिया। इस प्रकार हरबार्ट के नियमित पद केवल चार थे।

स्पष्टता (Clearness) का अभिप्राय बालक को स्पष्ट विचार देने से है अत. हरबार्ट के शिष्य जीलर (Ziller) ने इस पद को दो भागों में बाँट दिया—प्रस्तावना (Preparation) और विषय प्रवेश (Presentation)। प्रस्तावना का प्रयोजन पुराने विचारों का विश्लेषण कर बालकों को नये पाठ के लिए तैयार करना और विषय प्रवेश का प्रयोजन पाठ्यक्रम के कुछ अंशों को क्रमबद्ध रूप में बालकों के सामने रखने से है। हरबार्ट के अन्य अनुयायियों ने इन पदों के नाम भी बदल दिये। अब ये पद निम्न प्रकार से हैं और हरबार्ट द्वारा उनका नामकरण संस्कार न किए जाने पर भी उनको हरबार्टीय ही कहा जाता है—

(१) प्रस्तावना (Preparation)
(२) पाठ्योपस्थापना (Presentation)
(३) तुलना (Comparison)
(४) सामान्य निर्धारण (Generalisation)
(५) प्रयोग (Application)

प्रस्तावना (Preparation)—कई प्रकार से बालक को नवीन पाठ ग्रहण करने के लिए तैयार करना ही प्रस्तावना का उद्देश्य रहता है। नये पाठ की तैयारी का अर्थ है बालक में नवीन ज्ञान को ग्रहण करने की उत्सुकता का जागरण। पाठ्यवस्तु विषय के पूर्व ज्ञान को उभाड़ना, ऐसी समस्या को उपस्थित करना जिसका हल पूर्व ज्ञान के आधार पर न हो सके, इस औत्सुक्य (Curiosity) को जागृत करने में मदद करते हैं। इस अवस्था में अध्यापक घोषणा करता है कि उसी समस्या को हल किया जायगा। प्रस्तावना से नये पाठ का उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है और बालक यह जानने लगता है कि वह क्या सीखने वाला है। इस प्रकार प्रस्तावना के दो भाग होते हैं—पूर्व-ज्ञान का उद्दीपन और उद्देश्य कथन बालक की उत्सुकता में वृद्धिकर प्रस्तावना का उद्देश्य पूरा करता है।

पाठ्योपस्थापन (Presentation)—मूलपाठ को सुविधानुसार भागों (units) में बाँट कर शिक्षक क्रमानुसार इन अन्विितियों को बालकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है। मूल पाठ का विकास करते समय अध्यापक को निम्न बातों का ध्यान रखना पड़ता है :—

(अ) मूलपाठ को अच्छी तरह समझाने के लिये बालक के पूर्व ज्ञान को प्रश्नों द्वारा उत्तेजित कर मूल पाठ का उसके पूर्व ज्ञान से सम्बन्ध स्थापित करना।

(१) अनुभव और निरीक्षण शिक्षा का आधार है। वातावरण के सम्पर्क में आकर व्यक्ति अनुभव संचित करता है। अध्यापक इस वातावरण को पैदा करने का एक मात्र साधन है, अतः अध्यापन पद्धति बालक की शिक्षा में महत्वपूर्ण है।

(२) बालक की मूल प्रवृत्तियों और जन्मगत शक्तियों का विकास ही शिक्षा है इसलिए अध्यापक का कार्य उन शक्तियों को स्वतः विकसित करना है।

हरबार्ट ने पहली विचारधारा को अपनाया और फ्रोबेल ने दूसरी को।

हरबार्ट (Herbart)

Q. 3. Why is Herbart called the father of Educational Psychology ? Discuss his contribution to education practice.

Ans. जिस मनोविज्ञान को शिक्षा का आधार बनाने का आदेश पैस्टालजी ने दिया था उसको शिक्षा से समन्वित करके हरबार्ट ने शिक्षा मनोविज्ञान को जन्म दिया। उसने शिक्षण का निरूपण किया जिसकी सहायता से बालक के व्यवहार एवं आचरणों में परिवर्तन उपस्थित किया जा सकता है। उसने बताया कि मनोविज्ञान की सहायता से ही पाठन विधियों में सुधार लाया जा सकता है।

मनोविज्ञान की विषय वस्तु मानसिक क्रिया और मन के विषय में उसने अपने निम्न विचारों का प्रतिपादन किया। उससे पहले मानसिक प्रक्रिया की तीन पृथक पृथक अवस्थाएँ मानी जाती थी—ज्ञान, संवेदना और क्रिया लेकिन हरबार्ट ने तीनों को पृथक पृथक न मानकर एक दूसरे पर आश्रित तीनों को एक ही मानसिक प्रक्रिया के अंग माना है। मन भी उसके विचार में अनेक शक्तियों का योग नहीं है वरन् वह एक अविभाजित इकाई है।

जन्म के समय इस मन में कुछ नहीं होता। वातावरण के साथ सम्बन्ध स्थापित करने पर उसमें विचार और प्रत्यय उत्पन्न होते हैं। ये विचार अथवा प्रत्यय (Concepts) सभी प्रकार के होते हैं और सभी प्रत्यय चेतना क्षेत्र में जाने का प्रयत्न करते हैं। प्रत्येक प्रत्यय आने से पहले मन में आये हुए प्रत्यय के साथ प्रतिक्रिया करता है। दो समान प्रत्यय मन में स्थिर हो जाते हैं दो विरोधी प्रत्यय एक दूसरे को चेतना क्षेत्र से बाहर निकालने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार चेतना क्षेत्र में समानता रखने वाले प्रत्यय ही स्थान प्राप्त कर पाते हैं। इस प्रकार पूर्व संचित विचारों के समूह को पूर्वानुवर्ती ज्ञान (Apperceptic Mass) की संज्ञा दी गई है। जब नवीन विचार इस पूर्वानुवर्ती ज्ञान से सम्बन्धित होता है तब वे नवीन विचार चेतना में प्रकट होते हैं।

मानसिक प्रक्रिया के इस आधारभूत तथ्य को शिक्षण कार्य में प्रयोग में लाने की व्याख्या हरबर्ट ने अपनी शिक्षण प्रणाली—पंचपदी—में की है। इस प्रणाली का मूलमन्त्र है पूर्व संचित ज्ञान के आधार पर नवीन ज्ञान की स्थापना की जाय। यदि हम बालक को नवीन ज्ञान देना चाहते हैं तो उसके पूर्व संचित ज्ञान को उभारना होगा तभी नवीन ज्ञान दिया जा सकता है। पंचपदी की विभिन्न अवस्था आगे प्रस्तुत की जायगी।

हरबर्ट ने शिक्षा में अध्यापक के महत्व पर ही जोर दिया। अध्यापक ही इस प्रणाली की सहायता से बालक के वांछित विचारों को विस्तृत, असम्बन्धित विचारों को व्यवस्थित, एवं हीन विचारों को कमजोर कर सकता है। अध्यापक द्वारा इस प्रणाली का प्रयोग में करने पर बालक का मन व्यवस्थित और समन्वित होगा।

हरबर्ट बालक की जन्मजात प्रवृत्तियों और शक्तियों में विश्वास नहीं करते थे। [illegible] इस प्रकार हम देखते हैं कि हरबर्ट शिक्षा के [illegible] निर्देश (Instruction) पर ही जोर देते थे। [illegible][1]

1 "Instruction and Education are distinguished as means and end [illegible]" [illegible] *Lectures of the Great Educators*, p. [illegible]

हरबार्ट की यह मनोवैज्ञानिक शिक्षा प्रणाली जर्मनी के सभी विद्यालयों में उसी समय अपना ली गई। धीरे-धीरे इस प्रणाली का प्रचार संसार के सभी देशों में होने लगा। जहाँ जहाँ इस प्रणाली को अपनाया गया वहीं पर मानसिक क्रिया के आधार पर शिक्षा देने की व्यवस्था की गई।

हर्बार्टीय पञ्चपदी

Q 4. Write a detailed description of Herbartian steps with their special features and usefulness.

Ans. समय-समय पर शिक्षा-शास्त्रियों ने पाठन की प्रक्रिया के विषय में अपने-अपने मत प्रकट किये हैं। हरबार्ट महोदय ने भी एक सामान्य पाठन-विधि का निर्माण किया है जिसमें सुनिश्चित वैज्ञानिक क्रमबद्धता है। वस्तुत किसी सुनिश्चित वैज्ञानिक क्रमबद्धतायुक्त शिक्षण प्रणाली को ही हम अध्ययन-विधि के नाम से पुकारते हैं। हरबार्ट ने अपनी शिक्षण प्रणाली को चार पदों में
[illegible] ystem)
[illegible] है तो
[illegible] चाहिए।
हरबार्ट के अनुसार बालक का मस्तिष्क दो प्रकार से काम करता है—विचारों को समझकर स्वीकार करना अथवा आत्मसात् क्रिया, विचारों को ग्रहण कर लेने के बाद पुराने विचारों से उनका सम्बन्ध जोड़ना अथवा मनन (reflection)। आत्मसात् की क्रिया में उसने स्पष्टता और सम्बन्ध और मनन की क्रिया में आलोकरण और प्रयोग पर जोर दिया। इस प्रकार हरबार्ट के नियमित पद केवल चार थे।

स्पष्टता (Clearness) का अभिप्राय बालक को स्पष्ट विचार देने से है अत हरबार्ट के शिष्य ज़ीलर (Ziller) ने इस पद को दो भागों में बाँट दिया—प्रस्तावना (Preparation) और विषय प्रवेश (Presentation)। प्रस्तावना का प्रयोजन पुराने विचारों का विश्लेषण कर बालकों को नये पाठ के लिए तैयार करना और विषय प्रवेश का प्रयोजन पाठ्यक्रम के कुछ अंशों को क्रमबद्ध रूप में बालकों के सामने रखने से है। हरबार्ट के अन्य अनुयायियों ने इन पदों के नाम भी बदल दिये। अब ये पद निम्न प्रकार से हैं और हरबार्ट द्वारा उनका नामकरण संस्कार न किए जाने पर भी उनको हर्बार्टीय ही कहा जाता है—

(१) प्रस्तावना (Preparation)
(२) पाठ्योपस्थापना (Presentation)
(३) तुलना (Comparison)
(४) सामान्य निर्धारण (Generalisation)
(५) प्रयोग (Application)

प्रस्तावना (Preparation)—कई प्रकार से बालक को नवीन पाठ ग्रहण करने के लिए तैयार करना ही प्रस्तावना का उद्देश्य रहता है। नये पाठ की तैयारी का अर्थ है बालक में नवीन ज्ञान को ग्रहण करने की उत्सुकता का जागरण। पाठ्यवस्तु विषय के पूर्व ज्ञान को उभाड़ना, ऐसी समस्या को उपस्थित करना जिसका हल पूर्व ज्ञान के आधार पर न हो सके, इस औत्सुक्य (Curiosity) को जागृत करने में मदद करते हैं। इस अवस्था में अध्यापक घोषण करता है कि उसी समस्या को हल किया जायगा। प्रस्तावना से नये पाठ का उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है और बालक यह जानने लगता है कि वह क्या सीखने वाला है। इस प्रकार प्रस्तावना के दो भाग होते हैं—पूर्व-ज्ञान का उद्बोधन और उद्देश्य कथन बालक की उत्सुकता में वृद्धिकर प्रस्तावना का उद्देश्य पूरा करता है।

पाठ्योपस्थापन (Presentation)—मूलपाठ को सुविधानुसार भागों (units) में बाँट कर शिक्षक क्रमानुसार इन अन्वितियों को बालकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है। मूल पाठ का शिक्षण करते समय अध्यापक को निम्न बातों का ध्यान रखना पड़ता है :—

(अ) मूलपाठ को अच्छी तरह समझाने के लिये बालक के पूर्व ज्ञान को प्रश्नों द्वारा उत्तेजित कर मूल पाठ को उसके पूर्व ज्ञान से [illegible]

(ब) मूल पाठ के प्रस्तुतीकरण में ऐसी कुशलता और सावधानी बरतना कि निरीक्षण अथवा तुलना द्वारा बालक नवीन अनुभवो को भली प्रकार ग्रहण कर सके।

(स) बालकों को यथासम्भव श्रम बनाना और उनकी मानसिक क्रिया को उत्तेजित करके स्वयं सीखने के लिये अवसर प्रदान करना।

तुलना एवं सामान्य निर्धारण (Comparison and Association)—यद्यपि ये दोनों पद पाठ्यीय स्थापना के साथ-साथ चलते हैं किन्तु उनकी अपनी निज की विशेषतायें हैं—

(i) तुलना में अध्यापक पाठो के तथ्यों को पूर्वाजित तथ्यो से तुलना करने, समानता-असमानता का बोध प्राप्त करने का अवसर देता है।

(ii) सामान्य निर्धारण में वह तुलना करने के उपरान्त किसी निष्कर्ष पर पहुँचता है। इस परिणाम की सहायता से सामान्य नियम निकालने का प्रयत्न करता है। बालक द्वारा निकाले गये नियमों के अपूर्ण या अशुद्ध होने पर अध्यापक उनको शुद्ध कर सकता है।

प्रयोग (application)—भिन्न-भिन्न तथ्यो एवं वस्तुओं की तुलना द्वारा जिन नियमों का निर्धारण बालको ने किया है, उन नियमो की विश्वसनीयता का प्रमाण तभी प्रस्तुत किया जा सकता है जब वे नियम अन्य स्थितियों में भी लागू हो सकें। अत. अध्यापक उन नियमो का प्रयोग करता है। प्रयोग से नियमो की सत्यता तो सिद्ध होती ही है, बालक के मन में नवीन ज्ञान स्थायी बन जाता है।

हरबार्ट की इस पञ्चपदी में आगमन (Inductive) और निगमन (Deductive) दोनो प्रणालियो का समन्वय प्रतीत होता है। पहले चारपद—प्रस्तावना, पाठ्योपस्थापन, तुलना और सामान्य निर्धारण—आगमन पद्धति से मेल खाते हैं और अन्तिम पद-प्रयोग—निगमन पद्धति से। इस प्रकार पञ्चपदी का आधार है वह स्वाभाविक प्रक्रिया जिससे ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

पञ्चपदी के गुण

इन पदों का अनुसरण करके बहुत से असावधान शिक्षक भारी भूलो से बच सकते हैं। पाठ सूत्र निर्माण में इसीलिए इन पदो का ही प्रयोग किया जाता है। कुछ पाठो मे इन का मूल रूप से प्रयोग किया जाता है कुछ में इन पदो को थोड़ा-बहुत परिवर्तित करके। हरबार्ट के अनुयायी तो पञ्चपदी को ही उपयुक्त शिक्षण प्रणाली मानते हैं और अन्य प्रणालियाँ उनके विचार से केवल अस्थायी महत्व की ही हैं।

अगले प्रकरण में हम पञ्चपदी के विपरिणामो पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।

हर्बार्टीय पञ्चपदी के दोष

Q. 5. 'In teaching certain subjects to *young children the logical order* **must be sacrificed to the psychological Discuss**

Or

***'The use of Herbartian steps has clamped educational method in such* a steel frame that teaching has become lifeless'. How far do you agree with this statement ? Give reasons** *(L. T. 1957)*

Ans यदि अध्यापन, वस्तु और छात्र के बीच सद्भाव उत्पन्न करना ही अध्यापन माना जाता है तब तो इस सद्भाव को उत्पन्न करने के लिए हर्बार्टीय सुनिश्चित वैज्ञानिक क्रम से चलना उपयुक्त माना जा सकता है किन्तु यदि अध्यापन का अर्थ अध्यापक द्वारा बालक का मार्ग प्रदर्शन लिया जाता है तो हर्बार्टीय पञ्चपदी को अध्यापन विधियों में इतना ऊँचा स्थान नहीं दिया जा सकता जितना कि अपने देश के प्रशिक्षण महाविद्यालयों में अब तक दिया गया है और दिया जा रहा है। अध्यापन-विधि के ... का निर्धारण साधारणतया हर्बार्टीय पदों के आधार

पर ही किया जाता है। जैसा कि पहले प्रकरण में समझाने का प्रयत्न किया गया था। कुछ पाठो में उन पदों का अक्षरशः प्रयोग तथा कुछ पाठो में उनके संशोधित रूपो को लागू किया जाता है। कुछ पाठो में इन पाँच पदों को उपपदों में विभक्त कर दिया जाता है और कुछ पाठो में पाँच पदो के स्थान पर तीन पदों का ही प्रयोग होता है किन्तु प्रयोग साधारणतः होता हर्बार्टीय पंचपदी का ही है। यही कारण है कि प्रशिक्षण महाविद्यालयो में जो अध्यापन-कार्य कराया जाता है वह नीरस और निर्जीव-सा मालूम पड़ता है। तभी तो कहा जाता है कि इस प्रणाली ने शिक्षा को लोहे की जंजीरो में जकड़ कर निर्जीव बना दिया है।

हर्बार्ट के अनुयायी पाठ्यवस्तु, छात्रो की रुचि एवं क्षमता तथा वातावरण का विचार कर पञ्चपदी के क्रम में थोड़ा बहुत परिवर्तन कर लिया करते हैं। उदाहरण स्वरूप हरबार्ट के बहुत से अनुयायी गद्य और पद्य दोनों प्रकार के पुस्तक-पाठो में उद्देश्य कथन के बाद मौन वाचन नहीं देते। कुछ सज्जन छात्रों के मौन वाचन से ही उपस्थापन आरम्भ कर देते हैं। किन्तु अनुगमन किया जाता है पूरी तरह हर्बार्ट का ही।

यह कहना कि चूंकि अपने देश के प्रशिक्षण महाविद्यालयो में जो अध्यापन परम्परा चल रही है उसको दृष्टि में रखकर छात्राध्यापकों के लिए अन्य आधुनिक प्रणालियों की चर्चा भी नहीं करनी चाहिए हर्बार्ट की पञ्चपदी में अन्ध भक्ति का प्रमाण नहीं तो और क्या है।[1]

हर्बार्ट की पञ्चपद प्रणाली में गुण हैं अवश्य किन्तु वह दोषो से खाली भी नहीं है। हर्बार्ट महोदय का विश्वास था कि यदि अध्यापन कार्य इन पदो के अनुसार किया जाय तो बालक में विभिन्न रुचियों का विकास होता है। रुचियो के विकसित हो जाने पर अच्छे-अच्छे आदर्शों का आविर्भाव होता है। फलतः चरित्र का निर्माण होता है। किन्तु ये पद बालक के चरित्र निर्माण में किस प्रकार योग देते है समझ में नहीं आता। अध्यापक शिक्षण के समय इस बात पर अधिक ध्यान देता है कि कहीं वह किसी पद को भूल तो नहीं गया। ऐसी परिस्थितियों में वह बालक की आवश्यकताओं एवं रुचियों को ध्यान में रखना भूल जाता है। जब रुचियों पर ध्यान ही नहीं दिया जाता तब रुचियों का विकास किस प्रकार हो सकता है।

हर्बार्टीय पञ्चपदी के दूसरे दोष को समझने पर ही रेमन्ट ने अपनी पुस्तक शिक्षा सिद्धान्त में प्रकाश डाला था। उसका कहना है "यदि पाठन की प्रक्रिया के विषय में सामान्य नियम बना भी लिए जायँ तो क्या उनका कोई व्यावहारिक मूल्य हो सकता है ?" सामान्य सिद्धान्त बना लेने से पाठन विधि यान्त्रिक क्रिया मात्र रह जाती है। अध्यापक अपनी मौलिकता खो बैठता है क्योंकि ऐसी दशा में उसको सोचने का अवसर ही नहीं रह जाता। पाठन-विधि में लचक नहीं रह जाती क्योंकि अध्यापक कई बार इस भ्रम के कारण कि पाठन-विधि में दोष न आ जाय पाठ्योपस्थापन के समय तुलना की आवश्यकता होते हुए भी तुलना नहीं करता। इस प्रकार अध्यापक इन पदो में इस प्रकार बँध जाता है कि अपने स्वतन्त्र विचारों को अध्यापन क्रिया में स्थान नहीं दे पाता। ग्लोवर का कहना है कि इन पदो के कारण पाठ एक स्थान पर ही जम जाता है, शिक्षक और बालक की स्वतन्त्रता सीमित हो जाती है और बच्चे भी निष्क्रिय हो जाते हैं।

हर्बार्ट का कहना है कि उसके नियमित पद (Formal steps) मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो पर आधारित हैं। "हमारा मानसिक जीवन भिन्न विचारो से ओत-प्रोत रहता है। उसमें एक विचार दूसरे की अपेक्षा अधिक चेतना में आना चाहता है। इस स्थिति का उचित उपयोग ही शिक्षक का कर्तव्य है। उसको जानना चाहिए कि नये विचारो का पुराने विचारो से एक सम्बन्ध होता है—चाहे समान, असमान या विरोधी। वह अध्यापन का आयोजन इस प्रकार करे कि वांछित विचार बालक की चेतना में अग्रगण्य रहें। इसलिए अध्यापक को नए पाठ के प्रधान विचारों और बालको के पुराने विचारो में सम्बन्ध स्थापित करना होगा। इस सम्बन्ध की स्थापना के लिए अध्यापक को इस विधि से पढ़ाना होगा कि बालक नये विचारो को अपने मस्तिष्क में रख सके। बालक को नया ज्ञान इस प्रकार दिया जाय कि उसे यह मालूम न हो कि वह पुराने ज्ञान का उत्तर विकास है।" ये सब बातें मनोवैज्ञानिक प्रतीत होती हैं, किन्तु इन पदो का पालन करते

---

1. कक्षा अध्यापन एवं पाठ सूत्र का निर्माण—श्री वंशीधरसिंह और भूदेवशास्त्री, गयाप्रसाद एण्ड सन्स

समय व्यावहारिक रूप में ग्रध्यापक के मानसिक स्तर, उनकी ग्रभिरुचि, ग्रथवा ग्रवधान पर कोई विशेष ध्यान नहीं देता फलत उसकी पाठन-विधि ग्रमनोवैज्ञानिक हो जाती है। हरबार्ट का मनोविज्ञान एक प्रकार से मानसिक यन्त्र विद्या के तुल्य है। उसमें ग्राधुनिक मनोवैज्ञानिक विचारधारा का ग्रभाव है।

ये पद मनोवैज्ञानिक इसलिए भी नहीं हैं कि बालकों को प्रश्न करने का ग्रवसर ही नहीं मिलता। उनका बौद्धिक विकास पर्याप्त मात्रा में हो जाता है। किन्तु उनकी तर्कशक्ति कुण्ठित हो जाती है। शिक्षा की दृष्टि से इस पञ्चपदी का यह सबमें बड़ा दोष माना जा सकता है क्योंकि शिक्षा तो शिक्षक ग्रौर विद्यार्थी दोनों को महत्व देती है न कि एक को।

ग्राज के लोकतन्त्र युग में यह ग्रावश्यक नहीं है कि शिक्षक लकीर का फकीर बना रहे। किसी भी विधि को ग्राधारभूत मानना ठीक नहीं है। शिक्षक को चाहिए कि जहाँ जैसा ग्रवसर मिले उसी प्रकार काम करे। वही साधन विधि काम में लावे जिससे उनकी तर्कशक्ति का विकास हो, ज्ञान की वृद्धि हो ग्रौर रुचियों के विकास के साथ चरित्र का निर्माण हो। 'पाठन विधि सतत परिवर्तनशील है' इस सिद्धान्त को ध्यान में रख कर ग्रध्यापक ग्रावश्यकतानुसार उसमें परिवर्तन लाने की चेष्टा करे। यदि वह ग्रावश्यकता समझे तो गोल्वर के कहने के ग्रनुसार "ग्रारम्भिक प्रश्न-विचारविमर्श वस्तु का वर्गीकरण—शीर्षक निर्धारण—छानबीन—ग्रभिव्यक्ति व्यावहारिक क्रियायें" इन पदों का ग्रनुगमन कर सकता है। रुचि भेद को ध्यान में रखकर ग्रन्य नवीन पदों का भी प्रयोग किया जा सकता है यदि शिक्षण में सजीवता लानी है। हरबार्ट ने ही स्वयं यही ग्रादेश दिया है। उसका कहना है कि उसके नियमित पद ग्रति ग्रावश्यक नहीं हैं क्योंकि उनके बिना भी काम चल सकता है। वे पाठन-विधि में सहायता ग्रवश्य प्रदान करते हैं किन्तु बहुत से सफल ग्रध्यापक उनके बिना भी काम चला सकते हैं ग्रौर ग्रच्छी तरह पढ़ा भी सकते हैं।

रस्क ने इन नियमित पदों की ग्रालोचना निम्नलिखित दो दृष्टिकोणों से की है—

(१) नियमित पद तभी सफल हो सकते हैं जब शिक्षक विद्यार्थी को कुछ ज्ञान प्रदान करना चाहता है। किन्तु उनका प्रयोग किसी कौशल में प्रवीणता प्राप्त कराने के लिये नहीं किया जा सकता।

(२) नियमित पाठों का उपयोग केवल उन्हीं पाठों में किया जा सकता है जो ग्रपने में पूर्ण हों। प्रत्येक पाठ में उनका प्रयोग करना भूल है।

फ्रोबेल (Froebel)

Q. 6. Discuss the contribution of Froebel to education thought and *practice.*

Ans. जैसा कि पहले कहा जा चुका है, फ्रोबेल ने पैस्टालजी की निम्नलिखित विचारधारा का पोषण किया :

"बालक की मूल प्रवृत्तियों तथा शक्तियों का स्वाभाविक विकास ही शिक्षा है। बालक जन्म से ही कुछ विशेषताग्रों को लेकर जन्म लेता है, ग्रध्यापक का कार्य तो उसके स्वाभाविक विकास में सहायता देना मात्र है।"

[illegible] — जिसका ग्रर्थ है कि विकास स्वत [illegible] व्यक्ति कुछ प्रेरणाग्रों को लेकर [illegible] रत करती रहती हैं। इस क्रिया- [illegible] शिक्षक का कर्तव्य है कि वह बालक को क्रियाशील बनाकर उसके स्वाभाविक विकास में सहयोग दे।

शिक्षा में क्रियाशीलता के सिद्धान्त का पोषण ही फ्रोबेल की शिक्षा जगत् को ग्रपूर्व देन थी। फ्रोबेल की शैक्षिक विचारधारा का साराश भी यही है कि उचित वातावरण पैदा करके बालक के स्वाभाविक विकास में सहयोग दिया जाय।

फ्रोबेल लीबनिज (Leibnitz) के इस विचार का पोषक था कि जिस प्रकार बीज में सम्पूर्ण वृक्ष निहित रहता है उसी प्रकार बालक में भी व्यक्ति का पूर्ण रूप छिपा रहता है। जिस

प्रकार उचित वातावरण मे पलकर स्वत पूर्ण वृक्षत्व को प्राप्त होता है उसी प्रकार बालक भी उचित वातावरण के मिलने पर पूर्ण मनुष्यता को प्राप्त होता है। फ्रॉबैल बालक की तुलना पौधे से करता है और विद्यालय की तुलना, जिसमे उपयुक्त वातावरण उपस्थित किया जाता है, बगीचे से देता है और शिक्षक की तुलना *माली से करता है। जिस प्रकार वृक्ष मे स्वाभाविक रूप से बढने* की शक्ति छिपी रहती है उसी प्रकार बालक मे भी स्वत· विकसित होने की शक्ति होती है।

इस शैक्षिक विचारधारा के अनुरूप फ्रोबेल का दर्शन था। शिक्षा का उद्देश्य बालक को उस ईश्वरीय शक्ति का बोध कराना है जो उसमे निहित है। अत. शिक्षा का क्रम ऐसा हो कि बालक को प्रकृति और ईश्वर का बोध हो सके। ईश्वर ही सम्पूर्ण विश्व के पीछे निहित एकता है। शिक्षा ऐसी हो कि बालक को ससार की सभी वस्तुओ मे उस एकता का दर्शन हो।

इस शैक्षिक विचारधारा पर उसके मौलिक मनोवैज्ञानिक विचारो की भी छाया दिखाई देती है। वह हरबार्ट की तरह मस्तिष्क के विकास को व्यक्ति और वातावरण के पारस्परिक क्रिया प्रतिक्रिया का परिणाम नही मानता। वह तो मस्तिष्क के आन्तरिक एव स्वतन्त्र विकास का पक्षपाती था।

अध्याय ६

शिक्षा का समाजशास्त्रीय आधार

शैक्षिक समाजशास्त्र

Q. 1. Define the term Educational Sociology. How is Sociology related to Education ?

Ans. शिक्षा मे समाजशास्त्रीय प्रवृत्ति का उदय वैसे तो हमारे समय से पहले ही हो [illegible] ने दशकों मे हुआ समझना [illegible] र समाजशास्त्र दोनों के [illegible] प्रकार से की है। कुछ उसे शिक्षा का समाजशास्त्रीय आधार मानते हैं, कुछ उसे सामाजिक शिक्षा मानते हैं। तो कुछ नैतिक और चारित्रिक शिक्षा का पर्यायवाची मानते हैं। शैक्षिक समाजशास्त्र पर लिखी गई पुस्तकों मे लेखक या तो समाज के दृष्टिकोण को या शैक्षिक दृष्टिकोण को प्रधानता देता है। एक बात ऐसी अवश्य है जिस पर दोनों के दृष्टिकोण मे सामान्यता दिखाई देती है और वह वह कि शिक्षा समाज की माँगों की पूर्ति करे क्योंकि प्राचीन काल से ही शिक्षा ने समाज की इन माँगों की उपेक्षा की है। लेकिन शैक्षिक समाजशास्त्र को समाजशास्त्र का अंग मानें अथवा शिक्षा का समाज तत्व वादी आधार ? यह बात विवादास्पद है। इतना अवश्य स्वीकार करना होगा कि वह समाजशास्त्र का अंग पहले है शिक्षा का अंग बाद मे। शैक्षिक समाजशास्त्र समाजशास्त्र की वह शाखा है जो समाज की सम्पूर्ण शैक्षणिक प्रक्रिया का अध्ययन करते हुए शिक्षा के विभिन्न अंगों को निर्धारित करती है ताकि व्यक्ति एक श्रेष्ठ सामाजिक प्राणी बन सके, वह व्यक्ति की प्रतिक्रियाओं का अध्ययन करती है जो वह दूसरे व्यक्तियों तथा सांस्कृतिक वातावरण के साथ किया करता है।

शैक्षिक समाजशास्त्र की व्याख्या पूरी तरह से तभी की जा सकती है जब हम यह समझ लें कि

(१) समाजशास्त्र क्या है ?
(२) शिक्षा क्या है ?
(३) समाजशास्त्र और शिक्षा का समन्वय किस प्रकार सम्भव है ?

समाजशास्त्र की परिभाषा—समाजशास्त्र समाज का वह विज्ञान है जो व्यक्ति एवं समाज सारे सम्बन्धों—वैयक्तिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय—की व्याख्या करता है, तथा पारस्परिक प्रभावों एवं परिणामों का अध्ययन करता है।[2] उसका सम्बन्ध समूह मे रहने

वाले व्यक्तियों के व्यवहार से होता है। वह मानवीय व्यवहार अथवा आचरण के उस पक्ष का अध्ययन करता है जिसका सम्बन्ध सांस्कृतिक, सामाजिक और वैयक्तिक सम्बन्धों से हो।[1] अन्य समाज विज्ञानों की तरह यह विज्ञान व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार का एक विशिष्ट पक्ष प्रस्तुत करता है। वह मनुष्य की सामाजिक जीवन के विषय में जानकारियाँ प्राप्त करता है, वह इन प्रश्नों का उत्तर देता है कि किस प्रकार सांस्कृतिक और भौतिक वातावरण मनुष्य के सामाजिक जीवन के रूप को निश्चित करते हैं, विभिन्न मानवीय समुदाय किस प्रकार संगठित और संचालित होते हैं, किस प्रकार विभिन्न संस्कृतियों की प्रतिकृतियाँ व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्माण करती हैं। इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिये वह भूगोल, अर्थशास्त्र, मानवशास्त्र (anthropology), राजनीति, इतिहास, मनोविज्ञान और दर्शन और शिक्षा से प्रदत्त एकत्र करता है। शायद इसीलिये समाजशास्त्र के जन्मदाता कामते ने उसे समाजविज्ञानों के टुकड़ों पर जीवित रहने वाला विज्ञान माना था।[2] यद्यपि समाजशास्त्र अन्य समाज विज्ञानों से अपनी विषय वस्तु ग्रहण करता है किन्तु उसकी स्वतन्त्र सत्ता है। उसकी अपनी समस्याएँ हैं। अपने खुद की कुछ विचारधाराएँ है और अपने खुद के कुछ सिद्धान्त हैं।

शिक्षा का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण

ब्राउन ने शिक्षा की परिभाषा देते हुए लिखा है कि शिक्षा चैतन्य रूप में एक नियन्त्रित प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन उपस्थित किये जाते हैं और व्यक्ति के द्वारा समाज में।[3] वास्तव में, शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है, सामाजिक प्रक्रिया का एक अंग है। इसलिये वह जिस तरह मनोविज्ञान, सामाजिक मनोविज्ञान, जीवविज्ञान को आधारभूत बातों का आश्रय लेकर अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन करती है उसी प्रकार शिक्षा की प्रक्रिया में समाजशास्त्र की मौलिक बातों को प्रश्रय दिया जाता है।

ओटोवे (Ottoway) ने भी शिक्षा के विषय में लगभग वही बात कही है। उनके अनुसार शिक्षा समाज में होने वाली वह क्रिया है जो समाज में निरन्तर चलती रहती है, और जिसके उद्देश्य तथा विधियाँ उस समाज की प्रतिकृति पर निर्भर रहती हैं जिसमें उसका सम्पादन होता है। रोसैक (Roucek) ने शिक्षा की व्याख्या करते हुए अपनी पुस्तक सोशियोलोजिकल फाउण्डेशन्स आव एडूकेशन में लिखा है कि शिक्षा वह सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा सामाजिक पैतृकता के महत्वपूर्ण अंश एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को सक्रमित किये जाते हैं। इस प्रकार वह एक ऐसी नियन्त्रित सक्रिय और सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति सामाजिक व्यवस्था से समजन स्थापित करता है और समकालीन सांस्कृतिक मानदण्डों के अनुसार आत्म-नियन्त्रण की शक्ति का सृजन करता है।[4]

---

1. "It is concerned primarily with the analysis of the processes that grow out of associations, in particular culture and personality. [illegible] cultural heritage."
2. "The science of leftovers—a science which picks up crumbs spilled from the groaning table of other social sciences."—*Augustus Comte*
3. "Education is the conciously controlled process whereby changes in behaviours are produced in the person and through the person within the group." —*Brown*
4. [illegible] ...Foundations of Education, N. York Thomas Y. Crowell Co. 1942.

समाजशास्त्र और शिक्षा का समन्वय किस प्रकार सम्भव है ? ऊपर समाजशास्त्र और शिक्षा की जो व्याख्या प्रस्तुत की गई है उसके अनुसार दोनों शास्त्रों का समन्वय प्रस्तुत किया जा सकता है—

समाजशास्त्र के अनुसार शिक्षा सामाजिक नियन्त्रण का साधन मात्र है जैसा कि रोसेक का मत है।

"Education is a means whereby an individual is shaped to fit the social order and to develop restraints in accordance with the culture patterns of his time"

व्यक्ति पर नियन्त्रण लगाने के लिये समाज शिक्षा के औपचारिक और अनौपचारिक स्रोतों का प्रयोग करता है।

उदाहरण के लिये वह चर्च की स्थापना करता है व्यक्ति पर अपने विश्वासों, विचारों तथा संस्कारों द्वारा नियन्त्रण स्थापित करने के लिये स्कूलों की स्थापना करता है व्यक्ति पर इसी प्रकार के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष नियन्त्रणों को आरोपित करने के लिये छात्रों के ऊपर स्वसम्मत आदर्शों को थोपकर, नैतिक और चारित्रिक शिक्षा के साधन उपलब्ध कर समाज ने अपने कुछ ऐसे नियन्त्रण लगा रखे हैं जो इतने प्रत्यक्ष नहीं हैं जितने कि सेना अथवा पुलिस के नियन्त्रण सामान्यतः हुआ करते हैं।

शिक्षा की प्रकृति पर यदि गौर से देखा जाय तो पता चलेगा कि यह वह विज्ञान है जिसका सम्बन्ध 'क्या है' की अपेक्षा 'क्या होना चाहिये' से अधिक है। इस अर्थ में शिक्षा वह व्यवहृत विज्ञान है जिसका सम्बन्ध समाज की संस्कृति को अक्षुण्ण बनाये रखने तथा उसको विकसित करने में अधिक है। ओटोवे का भी यही मत है। वे कहते हैं कि शिक्षा का कार्य समाज के सांस्कृतिक मूल्यों और व्यवहार की प्रतिकृतियों को उसके नवयुवकों तथा कार्यशील सदस्यों को समर्पित करना है।[1] इस प्रकार शिक्षा समाज की इस संस्कृति और सभ्यता की सुरक्षा करती है जिसके प्रतिमान व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रभावित करते रहते हैं और जिनका विश्लेषण समाजशास्त्र किया करता है।

डीवी ने शिक्षा के एक और महत्वपूर्ण कार्य की ओर इंगित किया है। शिक्षा में ही सामाजिक और अन्तर्मन भावनाओं द्वारा समाज के कल्याण, सुधार एवं उन्नति की रुचि पुष्पित और पल्लवित होती है। दूसरे शब्दों में, शिक्षा की प्रक्रिया द्वारा समाज के विकास, सुधार और उन्नति का मार्ग खुल जाता है। शिक्षा द्वारा वैयक्तिक हितों को तिलाञ्जलि देता हुआ साधारण से साधारण व्यक्ति भी अपने को समाज हित में लगाने के प्रयास करता है। समाज-हित की रक्षा के लिये वह अपने वातावरण का विरोध भी करता है तथापि अपने को समाज के अनुकूल भी बनाता है। इस प्रकार शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति समाज की उन्नति करता है, उसके विकास में सहायता देता है।

शिक्षा का जो दृष्टिकोण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है वह समाजशास्त्रज्ञ का दृष्टिकोण है। शिक्षा में सामाजिकतावाद को महत्व देने वाला शिक्षा दार्शनिक शिक्षा को जैसा कि पहले कहा जा चुका है चैतन्य रूप में नियन्त्रित प्रक्रिया मानता है जिसके द्वारा व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन उपस्थित किये जाते हैं। और व्यक्ति के द्वारा समाज में शिक्षा के चैतन्य रूप से नियन्त्रित प्रक्रिया होने का अर्थ है शिक्षा द्वारा प्राप्त होने वाले उद्देश्यों के प्रति शिक्षा स्रोतों की जागरूकता। व्यवहार में परिवर्तन उपस्थित करने का अर्थ है सामाजिक अन्तःक्रिया द्वारा समूह के व्यवहार में परिवर्तन उपस्थित करना। व्यवहार में परिवर्तन तो वैसे भी हो जाते हैं। उदाहरण के लिये बालक भाषा का अधूरा ज्ञान वातावरण से प्राप्त कर अपने व्यवहार में परिवर्तन उपस्थित कर लेता है। लेकिन यह परिवर्तन शिक्षा नहीं माना जा सकता। विद्यालय अपने सतत प्रयत्नों .., बालक के भाषा ज्ञान में जो वृद्धि और विकास उत्पन्न करता है वह भाषा की शिक्षा मानी

1. "One of the tasks of education is to hand on the cultural values and behaviour patterns of the society to his young and potential members."—*Ottaway*

जा सकती है। शैक्षिक समाजशास्त्री उस व्यवहार परिवर्तन को भी सीखने के अन्तर्गत स्थान नहीं देता जो व्यक्तिगत रूप से ही हो और सामाजिक वातावरण में जिसकी प्राप्ति न होती हो। सामाजिक अन्तःक्रिया के बिना शिक्षा का कोई अस्तित्व ही नहीं। ब्राउन के शब्दों में वही प्रक्रिया शिक्षा मानी जा सकती है जो व्यक्ति को सामाजिक अन्तःक्रिया में भाग लेने को बाध्य कर देती है।[1]

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से शिक्षा के कार्य

शैक्षणिक समाजशास्त्र (Educational sociology) के पिता ज्योर्ज पेन (George Payne) अपनी पुस्तक प्रिन्सीपल्स ऑफ एजुकेशनल सोशियोलॉजी में शिक्षा के इस सामाजिकतावादी स्वरूप की व्याख्या की है। उन्होंने शिक्षा के निम्नांकित तीन कार्यों का भी उल्लेख किया है—

(अ) परम्पराओं का संक्रमण।
(ब) नवीन सामाजिक ढाँचे का विकास।
(स) रचनात्मक एवं सृजनात्मक कार्य।

शिक्षा अथवा शिक्षा के अन्य साधनों की सहायता से एक पीढ़ी की परम्पराएँ मानदण्ड और आदर्श दूसरी पीढ़ी में संक्रमित होते रहते हैं। संक्रमण का यह कार्य लेने और देने वाली पीढ़ी में से कोई न कोई पीढ़ी किया करती है। यदि आने वाली पीढ़ी इन परम्पराओं को ज्यों की त्यों स्वीकार कर लेती है तो वह अनुकरण करती है और यदि बीतने वाली पीढ़ी आने वाली पीढ़ी को ये सामाजिक मानदण्ड स्वयं सौंपती है तो वह संक्रमण करती है। इस प्रकार शिक्षा का कार्य है अनुकरण और संक्रमण द्वारा एक पीढ़ी का दूसरी पीढ़ी के आदर्शों को ग्रहण करना।

लेकिन समाज की उन्नति और समाज का विकास तभी सम्भव है जब भूतकाल के आदर्शों, परम्पराओं और मानदण्डों का संक्रमण तो हो लेकिन इसलिये हो कि समाज के ढाँचे में परिवर्तन उपस्थित किया जा सके। नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ी के आदर्शों, मानदण्डों एवं परम्पराओं को ज्यों की त्यों स्वीकार ही न करे वरन् उनसे लाभ भी उठावे। नई पीढ़ी के रहन सहन के तरीकों में जब तक शिक्षा द्वारा सुधार नहीं होता तब तक शिक्षा की कोई उपादेयता नहीं मानी जा सकती।

गत १५-२० वर्षों में भारतीय समाज का ढाँचा ही बदल चुका है। पेशों के स्वरूपों में परिवर्तन आ गया है। नगरीय और ग्रामीण वातावरण में अन्तर उपस्थित हो गये हैं और हो रहे हैं। शिक्षा के माध्यम से न केवल हमें पुरानी पीढ़ी के आदर्शों का नवीन पीढ़ी में समावेश करना है वरन् नवीन समाज का भी सृजन करना है। यदि नवीन ढाँचे का निर्माण न हुआ तो वह सम्पूर्ण विकास और वृद्धि जो हमने विभिन्न क्षेत्रों में अब तक प्राप्त की है बेकार हो जायगी। यदि देश का सामाजिक जीवन रूढ़िगत ही रहा और उसमें अभिनव स्फूर्ति का संचार न हुआ तो कुछ ही काल में वह निर्जीव और निष्प्राण हो जायगा।

शिक्षा का महत्वपूर्ण कार्य जिसकी ओर पेन (Payne) ने संकेत किया है शिक्षितों के हृदय की विशालता और मन की निष्पक्षता का सृजन है। जब तक समाज के सभी सदस्यों में तर्कपूर्ण चिन्तन की क्षमता पैदा नहीं होगी तब तक वे नवीन प्रकार के वास्तविक समाज का सृजन नहीं कर सकेंगे, स्वप्नों की दुनिया में विहार भले ही करते रहें। शिक्षा का कर्तव्य है कि वह रचनात्मक और सृजनात्मक प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन दे।

शैक्षिक-समाज विज्ञान द्वारा प्रतिपादित पाठ्यक्रम तथा पाठन विधियाँ—शिक्षा के जिन कार्यों का उल्लेख किया गया है उनका सम्पादन उचित पाठ्यक्रम तथा पाठन विधियों के अपनाने से हो सकता है।

पाठ्यक्रम में रखी गई पाठ्य वस्तु का चयन शिक्षा के सामाजिक लक्ष्यों को ध्यान में रख कर किया जाय। समाज में जो परिवर्तन समय-समय पर उपस्थित होते रहते हैं उन परि-

1. That which makes for more effective participation in the total process of social interaction whether in terms of social economic health, or any other socially desirable human value is education".
—*Brown.*

वर्तनो की भांति विषय वस्तु हो। यह विषय वस्तु समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर चुनी जाय। जैसे-जैसे समाज की आवश्यकताएँ बदलती जायें नई पाठ्य वस्तु का समावेश और अनावश्यक पाठ्य वस्तु का निष्क्रमण होता जाय। इस प्रकार पाठ्यक्रम का लचीला होना आवश्यक है।

पाठ्य वस्तु में वे सांस्कृतिक मूल्य अवश्य रखे जायें जो समाज के उत्कर्ष के सूचक हों। उसमें ऐसी शैक्षिक क्रियाएँ अवश्य हों जिनका सामाजिक जीवन को सफल बनाने में हाथ रहता हो। वह बालकों में ऐसी प्रवृत्ति पैदा करे कि व्यक्ति जीविकोपार्जन के सभी सम्बन्धों को आदर की दृष्टि से देखे। पाठ्य वस्तु के कुछ अंश न केवल स्थानीय समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये हों वरन् वे विश्व समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सम्भव हों।

शिक्षण विधियाँ सामाजिक आदर्शों और मूल्यों को महत्व देने वाली हों। ऐसी विधियों में सामूहिक कार्यों, सामूहिक योजनाओं और सामूहिक प्रतिक्रियाओं का विशेष रूप से समावेश हो। जिससे बालकों में न केवल समाजोपयोगी गुणों वाला विकास हो सके वरन् उनमें जनतन्त्रीय भावनाएँ भी पैदा हो सकें।

ऐसी शिक्षण विधियों के उदाहरण हैं सामूहिक वाद विवाद, सेमीनार (गोष्ठी) और योजना प्रणाली। इन विधियों अथवा प्रणालियों की विशेषताएँ हैं—

- (i) वे कक्षाकक्ष के बाहर सामाजिक व्यवहार और सामाजिक आचरण पर बल देती हैं।
- (ii) वे व्यक्ति के सामाजिक व्यवस्थापन को लक्ष्य मानकर चलती हैं।
- (iii) वे कक्षा में सीखे गये ज्ञान और कला को सामाजिक परिस्थितियों में लागू करने का अवसर देती हैं।

शिक्षा में समाजशास्त्रीय प्रवृत्ति

Q. 2 What do you mean by the term 'Sociological tendency in *Education*'? Discuss the *important characteristics of Sociological tendency* in Fducation

Or

Discuss critically the contribution of Sociology to the present day theory and practice of education

Ans. शिक्षा में समाजशास्त्रीय प्रवृत्ति का स्वरूप—शिक्षा में समाजशास्त्रीय प्रवृत्ति से हमारा तात्पर्य उस प्रवृत्ति से है जिसके अनुसार हम शिक्षितों में सामाजिक गुणों की अभिवृद्धि करके व्यक्ति और समाज दोनों का कल्याण करने के उद्देश्य से शिक्षा प्रदान करते हैं। कुछ शिक्षाशास्त्री शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास मानते हैं तो कुछ समाज के विकास को शिक्षा का चरम उद्देश्य मानते हैं। शिक्षा जगत में इस प्रकार की द्विविधात्मक विचारधारा अनादिकाल से चली आ रही है। कभी तो व्यक्तिवाद की प्रधानता रही है और कभी सामाजिकतावाद की। लेकिन गत दो तीन दशकों में शिक्षा में समाजतत्व को उचित स्थान दिया जाने लगा है।

समाजशास्त्रीय इस प्रवृत्ति का विकास कैसे हुआ? इस प्रवृत्ति के मूल में कौन-कौन सी विशेषताएँ रही हैं जिन्होंने इसके विकास में योगदान दिया है। उन प्रवृत्तियों से इस प्रवृत्ति का क्या सम्बन्ध है?

शिक्षा में समाजशास्त्रीय प्रवृत्ति का विकास कैसे हुआ?

शिक्षा प्रकृतिवाद के मूल प्रवर्तक रूसो ने शिक्षा का उद्देश्य जनसाधारण की स्थिति में सुधार लाना निश्चित किया था। रूसो के अनुयायी पैस्टालजी, हरबार्ट और फ्रोबेल ने बालक के विकास पर जो महत्व दिया उसका चरम लक्ष्य भी समाज हित था। पैस्टालजी ने शिक्षा को समाज हित का साधन माना, हरबार्ट ने भी नैतिक विकास द्वारा लोक कल्याण को ही महत्व दिया। फ्रोबेल तो शिक्षा को जीवन का अभिन्न अंग मानकर शिक्षा के एक महत्वपूर्ण स्रोत को—विद्यालय को—समाज का लघु रूप मानता है।

शिक्षा में वैज्ञानिक प्रवृत्ति के मूल प्रवर्तक हरबार्ट स्पेन्सर तथा उनके अनुगामियों ने भी वैज्ञानिक तथा सामाजिक विषयों को महत्व दिया और इस प्रकार समाजशास्त्रीय प्रवृत्ति का पोषण किया।

शिक्षा दार्शनिकों के अतिरिक्त इस प्रवृत्ति के पोषण में सहयोग देने वाली अन्य बातें निम्नलिखित हैं :—

(अ) १८वीं शताब्दी की औद्योगिक क्रान्ति—इस क्रान्ति के दुष्परिणामों के फलस्वरूप विचारकों और लेखकों का ध्यान श्रमजीवियों तथा जनसाधारण की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए जाने लगा। उनका दृष्टिकोण अधिक सामाजिक होने के कारण शिक्षा क्षेत्र में भी समाजशास्त्रीय प्रवृत्ति को बल मिलने लगा।

(आ) १८वीं और १९वीं शताब्दी के प्रजातन्त्रात्मक शासन प्रणाली का विकास—विगत दो शताब्दियों में स्वतन्त्रता, समानता और सहयोग पर जोर देने वाली प्रजातन्त्रात्मक शासन-प्रणाली जगह-व-जगह प्रस्फुटित होने लगी और सभी देशों के राजनीतिज्ञों ने यह अनुभव किया कि यदि यह शासन प्रणाली को पल्लवित और पुष्पित होना है तो उसमें रस संचार करने वाली जन-शिक्षा के स्वरूप पर भी ध्यान देना आवश्यक होगा। शिक्षा का चरम उद्देश्य समाज हित माना जाने लगा। इस प्रकार शिक्षा में समाजशास्त्रीय प्रवृत्ति सुदृढ़ होती गई।

(इ) आगस्ट काम्टे की रचनाओं का प्रभाव—फ्रांस के महान् दार्शनिक आगस्ट काम्टे (August Comte) ने समाजशास्त्र (Sociology) को जन्म देकर शिक्षा समाजशास्त्रीय प्रवृत्ति को वेगवती बना दिया।

समाजशास्त्रीय प्रवृत्ति की मुख्य विशेषताएँ—सामाजिकतावादी प्रवृत्ति व्यक्तिवाद का विरोध करती है और व्यक्ति की अपेक्षा समाज के हित को अधिक ध्यान में रखती है। समाज हित को व्यक्ति के हित से अधिक ऊँचा स्थान देने वाली यह प्रवृत्ति इसलिये सामाजिक उन्नति को लक्ष्य मानकर चलती है। व्यक्ति समाज की अभिन्न इकाई है और व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह समाज की उन्नति में अपना सहयोग दे।

समाज की उन्नति में व्यक्ति तभी सहयोग दे सकता है जब

(i) वह शिक्षित हो।
(ii) वह सामाजिक जीवन के लिये तैयार हो।
(iii) सफल जीवन कायम कर सकने के लिये व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त हो।

अतः शिक्षा में समाजशास्त्रीय प्रवृत्ति समाज के प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा देने पर जोर देती है। प्रजातन्त्रात्मक शासन के स्थायित्व के लिए भी जनसाधारण के शिक्षित होने की आवश्यकता है। जनसाधारण तभी शिक्षित हो सकता है जब शासन अथवा राज्य शिक्षा का भार अथवा उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले। अतः शिक्षा को सामाजिक कार्य मानकर प्रत्येक प्रजातन्त्र अपने सदस्यों की शिक्षा की व्यवस्था करता है। प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षित करने के लिये शिक्षा में समाजशास्त्रीय प्रवृत्ति निम्न दो सिद्धान्तों का समर्थन करती है —

(क) सार्वजनिक शिक्षा का सिद्धान्त।
(ख) राज्य शिक्षा प्रणाली का सिद्धान्त।

व्यक्ति को सामाजिक जीवन के लिए तैयार करने के उद्देश्य से शिक्षा के कुछ विशिष्ट उद्देश्य निश्चित किये जाते हैं और उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विशेष प्रकार के पाठ्यक्रम का संगठन किया जाता है। अब बालक की आन्तरिक शक्तियों के विकास को शिक्षा का इतना अधिक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य नहीं माना जाता जितना कि बालक में सामाजिक गुणों तथा सामाजिक उत्तरदायित्वों को वहन करने की योग्यता का विकास माना जाने लगा है। व्यक्ति समाज के समस्त आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक कामों में भाग ले सकें अथवा अपने उत्तरदायित्वों का पालन कर सकें इस उद्देश्य से पाठ्यवस्तु में भी परिवर्तन लाया जाता है। पाठ्यक्रम सामाजिक आवश्यकताओं एवं सामाजिक जीवन पर अधिक जोर देता है। सामाजिक आवश्यकताओं के अनुकूल विषयों का चुनाव किया जाता है। साहित्यिक विषयों के स्थान पर व्यावहारिक विषयों पर अधिक जोर दिया जाता है। पाठ्यक्रम में विषयों की विभिन्नता को भी कम महत्त्व नहीं दिया जाता क्योंकि समाज

शास्त्री यह अच्छी तरह समझता है कि वर्तमान जटिल समाज के लिए इने गिने विषयों का पाठ्यक्रम में रखना ही काफी नहीं है सामाजिक जीवन के सभी पक्षों से सम्बद्ध विषयों का पाठ्यक्रम में रखना आवश्यक है।

व्यक्ति सामाजिक जीवन को सफलतापूर्वक बिता सके इस उद्देश्य से उसे व्यावसायिक शिक्षा का भी उचित प्रबन्ध किया जाता है।

शिक्षा और समाज की उन्नति तथा विकास—क्या विद्यालय समाज की समस्याओं को हल करने में हमारी सहायता कर सकता है ?[1] समाज की समस्याएँ व्यक्ति की दुष्प्रवृत्तियों का परिणाम नहीं होती वरन् कुछ सामाजिक शक्तियाँ इन समस्याओं को जन्म देती हैं। इन समस्याओं का हल भी व्यक्तिगत रूप से नहीं होता। मानव समुदाय उन समस्याओं को हल करने का प्रयत्न करता है। इस आशा से कि विद्यालय इन बुराइयों को दूर कर समाज के उत्थान में सहायता देगा। समाज विद्यालय की स्थापना करता है। समाज का प्रत्येक सदस्य–किसान और मजदूर, राजनीतिज्ञ और नेता, व्यापारी और दुकानदार—विद्यालय को सामाजिक प्रगति का साधन मानता है।

आदर्शवादी दार्शनिक के विचार से सामाजिक प्रगति विद्यालय द्वारा सम्भव है। लेकिन कुछ विचारकों का मत है कि सामाजिक प्रगति उन व्यक्तियों के द्वारा सम्भव होती है जो समाज के सदस्यों की विचारधारा और आदर्शों को मोड़ दिया करते हैं। विद्यालय में दी जाने वाली शिक्षा इस मोड़ में इतनी अधिक कारगर नहीं होती जितनी कि राजनैतिक क्षेत्रों, खानों, कारखानों, मिलों और फैक्टरियों, बाजार और धार्मिक स्थलों में प्रकट किए गए विचार कारगर होते हैं।

सामाजिक प्रगति क्या शिक्षा के औपचारिक स्रोतों के कारण ही होती है ? अथवा शिक्षा संस्थाओं का विकास सामाजिक प्रगति का परिणाम होता है ? इन प्रश्नों का उत्तर निश्चित रूप से नहीं दिया जा सकता। यदि यह भी मान लिया जाय कि शिक्षा के औपचारिक स्रोतों से सामाजिक प्रगति सम्भव नहीं है फिर भी ये स्रोत व्यक्ति में सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ लड़ने और सामाजिक बुराइयों से बचने की क्षमता तो पैदा करते ही हैं। इस प्रकार अपने सीमित दायरे में ही वे सामाजिक प्रगति में सहयोग दे सकते हैं। वे सामाजिक समस्याओं का हल ढूंढने में व्यक्ति की मदद करते हैं। वे ऐसे प्राप्य उद्देश्यों का निर्धारण करते हैं जो समाज सुधार में सहायक सिद्ध हो सकें। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पाठ्य वस्तु का चयन और संगठन करते हैं। आगे इस प्रश्न का विशद रूप से विवेचन किया जायगा।

सार्वजनिक शिक्षा का सिद्धान्त—शिक्षा में सामाजिकतावादी प्रवृत्ति ने सार्वजनिक शिक्षा के सिद्धान्त की पुष्टि की है। प्रजातन्त्र की सफलता के लिये भी सम्पूर्ण जनता की आर्थिक स्थिति का सम्पन्न होना तथा उसका शिक्षित होना आवश्यक है। प्रजातन्त्र में विश्वास रखने वाले विचारक अथवा समाज शास्त्री सभी प्रकार के लोगों को ज्ञानार्जन करने तथा पढ़ने लिखने का अवसर देने की संस्तुति करते हैं।[1] शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति का जन्म सिद्ध अधिकार है अतः आज का शिक्षा शास्त्री प्रौढ़ व्यक्तियों की शिक्षा को भी महत्व देता है साथ ही सभी अल्पवयस्कों के लिए अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा के प्रबन्ध करने की बात करता है। यदि बालकों की भी शिक्षा राज्य के भावी कल्याण के लिए आवश्यक है तो प्रौढ़ों की शिक्षा प्रजातन्त्र के वर्तमान अस्तित्व के लिए जरूरी है। श्री हुमायूँ कबीर कहते हैं कि यदि प्रजातन्त्र को सचमुच प्रभावकारी होना है एवं प्रत्येक व्यक्ति का अपना पूर्ण विकास की गारन्टी करना है तो शिक्षा को सार्वभौमिक तथा निःशुल्क होना चाहिए। यदि समाज का समृद्ध और विकासपूर्ण होना है तो राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति के लिए उचित प्रकार की एकरूप शिक्षा की व्यवस्था भी जरूरी है।

---

1. Every individual must receive that minimum of education which will lead to make him a sturdy, well balanced, participating and resourceful member of the society capable of doing a fair share of its work and of contributing to the making of those decisions which shape both domestic and foreign policies."—Education for a Free Society, Hood College Frederick Maryland June 1944.

राज्य शिक्षा-प्रणाली सिद्धान्त—शिक्षा मे सामाजिकतावादी प्रवृत्ति से प्रभावित होकर बाहरी नियंत्रण से पूर्ण रूप से मुक्त तथा सुसगठित सरकार से युक्त न्यूनसंख्यक अथवा बहुसंख्यक व्यक्तियों का समुदाय अपने सदस्यो की शिक्षा का पूर्णत. उत्तरदायी माना जाने लगा है । इसलिये राज्य शिक्षालयों की व्यवस्था करता है । बालको को पढ़ाने के लिए उनके ग्रभिभावकों को प्रेरणा देता है, उनकी शिक्षा के लिये ग्रावश्यक वित्त की व्यवस्था करता है, शैक्षिक सस्थाग्रों का ग्रावश्यक नियंत्रण करता है, ग्रध्यापको को प्रशिक्षित करने के लिये उचित प्रबन्ध करता है, शिक्षा क्षेत्र मे ग्रावश्यक खोजों को प्रोत्साहन देता है ग्रौर परिवारो ग्रौर शिक्षालयों मे सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करता है ।

अध्याय ११

शिक्षा में नवीन प्रवृत्तियाँ

Q 1 Discuss briefly some of the modern trends in educational theory and practice

Or

Examine some of the modern tendencies in education.

Ans. वर्तमान शिक्षा की नवीन प्रवृत्तियों, अथवा विशेषताओं का विशद् विवेचन तो इस प्रकरण का उद्देश्य नहीं है परन्तु उनका संक्षिप्त उल्लेख यहाँ पर अवश्य किया जायगा। कारण यह है कि इन प्रवृत्तियों के विषय में हम विस्तारपूर्वक वर्णन अध्यापन की विविध युक्तियों और पद्धतियों का अध्ययन करते समय करेंगे। यहाँ पर उन विशेषताओं की भूमिका मात्र प्रस्तुत की जा रही है। ये विशेषताएँ अथवा प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित हैं :—

(१) छात्र के व्यक्तित्व का महत्व।
(२) अध्यापक—एक मार्ग प्रदर्शक।
(३) प्रगतिशीलता।
(४) क्रिया प्रधानता।
(५) सामाजिक निपुणता।
(६) जनतांत्रिकता।
(७) निर्देशन।
(८) व्यक्तिगत तथा कक्षागत अध्यापक का महत्व।
(९) समन्वय एवं सहसम्बन्ध।
(१०) वस्तुगत परीक्षा पद्धति।

(१) छात्र के व्यक्तित्व का महत्व—आधुनिक शिक्षा पाठ्यवस्तु की अपेक्षा शिष्य को अधिक महत्व देती है क्योंकि पाठ्यवस्तु का चयन और संगठन छात्र के लिये होता है। शिष्य को अधिक महत्व देने का अर्थ है उसकी आवश्यकताओं, रुचियों, अभिवृत्तियों, क्षमताओं को ध्यान में रख कर पाठ्यवस्तु का चयन, संकलन और विभाजन किया जाय। उसकी विशेषताओं को ध्यान में रखकर ही क्रियाओं का संगठन और उचित उपस्थापन विधियों का प्रयोग किया जाय। संक्षेप में हमें अपनी शिक्षा को बाल केन्द्रित करना है। इस प्रकार की शिक्षा के समर्थक हैं फ्रोबेल, पेस्टालॉजी, हरबार्ट, माण्टेसरी, नन और पार्कहर्स्ट। शिक्षा बाल केन्द्रित हो, इस सिद्धान्त ने किंडरगार्टेन, माण्टेसरी, डाल्टन योजना आदि अध्यापन विधियों को जन्म दिया है।

(२) अध्यापक मार्ग प्रदर्शक के रूप में—अब अध्यापक कक्षा में अधिनायक की तरह काम नहीं करता। वह उनका साथी, मार्ग दर्शक, मित्र और दार्शनिक होता है, क्योंकि उनके साथ खेलता है, गलतियाँ करने पर मार्ग दिखाता है, मैत्रीपूर्ण व्यवहार करता है, उनके हित के लिये सदैव चिन्तित रहता है। वह उनको आत्मनिर्देशन देकर भावी जीवन के लिये तैयार करता है।

(३) प्रगतिशीलता—शिक्षा में प्रगतिशीलता से हमारा प्रयोजन शिक्षक की प्रगतिशील वृत्ति से है जिसके सहारे अध्यापक खोज और परीक्षण से विकास करता है। वह नये-नये प्रयोग

(experiments) करता है। शिक्षा की भिन्न-भिन्न समस्याओं को प्रयोगात्मक विधि से हल करने का प्रयत्न करता है। मान्टेसरी प्रणाली, डाल्टन योजना, किंडरगार्टन, प्रोजेक्ट प्रणाली, बटाविया, विनेटका और डिक्रोली अध्यापन विधियाँ सभी इस प्रगतिशीलता की ओर संकेत करती हैं।

(४) क्रिया प्रधानता—यदि शिक्षा बाल केन्द्रित होनी है तो बालक के स्वभाव, उसकी सामान्य प्रवृत्ति—खेल—को शिक्षा में उचित स्थान देना होगा। बालक स्वभाव से सक्रिय होता है। क्रियाशील रह कर ही वह बाह्य जगत के विषय में जानकारियाँ हासिल करता है। क्रिया से ही आत्माभिव्यक्ति करता है। वर्तमान शिक्षा का मूलमंत्र इसलिये 'करके सीखने' का बन गया है। आधुनिक शिक्षाशास्त्री बालक की क्रियाओं को उत्साहित अथवा संगठित करके उसके लिये नवीन ज्ञान की प्रगति के मार्ग को सुगम बना देना चाहता है। मान्टेसरी अथवा प्रोजेक्ट पद्धतियाँ इसी क्रियाशीलता के सिद्धान्त पर आधारित हैं। जिन पाठन विधियों में क्रियाशीलता नहीं है उनमें क्रियाशीलता लाने का प्रयत्न किया जाता है। आज खेल ही खेल में बालक को सब प्रकार की शिक्षा देने की आयोजना की जाती है। शिक्षा में 'प्ले वे' (Play way) क्रियाशीलता के इसी सिद्धान्त पर खड़ा हुआ है।

(५) सामाजिक निपुणता—आधुनिक शिक्षा का प्रधान उद्देश्य बन गया है। विद्यालय का कर्तव्य बालक की उन योग्यताओं और क्षमताओं का विकास करना है जिनको पाकर वह भविष्य में समाज में सुख से रह सके। बालक में इस प्रकार की सामाजिक निपुणता (social efficiency) लाने के लिये विद्यालय एक तो सामाजिक जीवन के साथ सम्पर्क स्थापित करता है। दूसरे ऐसी सामाजिक क्रियाओं का संगठन करता है जिनमें सामाजिक गुणों का विकास हो। शिक्षक संरक्षक संघों द्वारा समाज का विद्यालय के साथ निकटतम सम्पर्क स्थापित किया [illegible] पुस्तकालय का प्रयोग कर लाभान्वित [illegible] ाव करता है जिनसे उचित प्रकार की [illegible] ए के लिये पाठ्य सहगामिनी क्रियाएँ, छात्र परिषद्, खेलकूद परिषदें, स्वास्थ्य परिषदें, आदि जनतांत्रिक आयोजनों द्वारा बालक को समाज के निकट लाने का प्रयत्न किया जाता है।

(६) शिक्षा में जनतान्त्रिकता का प्रादुर्भाव—वर्तमान शिक्षा में उद्देश्य निश्चित करते समय, पाठ्यक्रम का चयन एवं संकलन करते समय, पाठन प्रणाली का चुनाव और अनुशासन व्यवस्था करते समय जनतांत्रिक सिद्धान्त का आश्रय लिया जाता है। बालकों की रुचि एवं क्षमता के अनुसार पाठ्यक्रम को बहुमुखी बनाया जा रहा है। बहुउद्देशीय स्कूलों की स्थापना के आधार में यही जनतांत्रिक भावना काम कर रही है। प्रोजेक्ट, डाल्टन और मोन्टेसरी शिक्षण पद्धतियाँ इसी सिद्धान्त को अपनाकर आगे बढ़ती हैं। जो बालक कक्षा में बढ़ नहीं पाता, उसके लिये सुधारात्मक (Remedial) शिक्षण की व्यवस्था कर शिक्षा में सभी के अधिकारों की रक्षा की जाती है।

पाठशाला संचालन और व्यवस्था में सभी का सहयोग पाने का प्रयत्न किया जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में यह स्वीकार कर लिया गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यता के अनुसार अपने आपको अधिक से अधिक विकसित करने का अधिकार है और जो व्यक्ति जितना अधिक असमर्थ है वह उतनी ही अधिक रक्षा और सहानुभूति का पात्र है।

(७) निर्देशन (Guidance)—आज के युग में शैक्षणिक और व्यावसायिक निर्देशन का महत्व बहुत बढ़ गया है। विभिन्न रुचियों, अभिरुचियों और योग्यता वाले छात्रों के लिये भिन्नात्मक पाठ्यक्रम निर्धारित कर दिया गया है। ये बालक किस किस पेशे को अख्तियार करेंगे इसकी बड़ी समस्या है, जब कभी बहुमुखी पाठ्यक्रमों में से किसी एक के चुनाव का समय आता है तब बालक को स्वभावतः बड़ी कठिनाई होती है। ऐसे समय पर उनका मार्ग निर्देशन आवश्यक हो जाता है नहीं तो वह गलत मार्ग चुनकर अपना और समाज का भी अहित कर सकता है। आज की शिक्षा में उस चुनाव के समय बालक के मार्ग दर्शन की व्यवस्था की जाती है।

(८) कक्षा प्रणाली तथा वैयक्तिक शिक्षण का समन्वय—वैयक्तिक अध्यापन और सामूहिक अध्यापन दोनों ही दोषपूर्ण हैं, अतः दोनों के दोषों का निराकरण करने के लिये दोनों

प्रणालियों का समन्वय किया जा रहा है। विनेटका, डिग्रोली, बटाविया ग्रौर गैरी प्रणालियों का जन्म इसी समन्वय को लेकर हुग्रा है। कक्षा-ग्रध्यापन करते हुए भी किस प्रकार ग्रध्यापक ग्रपने ग्रध्यापन को वैयक्तिक बना सकता है इसके लिये प्रयत्न हो रहे हैं।

(६) **समन्वय ग्रौर सहसम्बन्ध**—ग्राजकल के ग्रध्यापन मे विषयों के बीच समन्वय ग्रौर सहसम्बन्ध दोनो मे से एक न एक बात ग्रवश्य होती है। समन्वय ग्रौर सहसम्बन्ध क्या है, उनमे क्या सम्बन्ध है किस प्रकार जीवन से समन्वय स्थापित किया जाता है।

(१०) **वस्तुगत परीक्षा पद्धति**—ग्रध्यापक ग्रब ग्रपनी परीक्षाग्रो का निर्माण इस प्रकार करता है कि वे ग्रत्यन्त विश्वस्त, प्रयोज्य ग्रौर वैध हों। ग्राधुनिक वस्तुगत परीक्षाग्रो मे ये ग्रावश्यक गुण उत्पन्न किये जाते हैं। इनसे बालक की योग्यता, व्यक्तित्व ग्रौर निष्पादन का वस्तुगत परीक्षण हो जाता है।

समाहारक प्रवृत्ति

Q 2. What do you mean by Eclectic Tendency in Education? Show how the modern tendency in education is eclectic.

[illegible]

क्षण दिखाई देता है, ग्राधुनिक शिक्षा मे सभी प्राचीन ग्रादर्श ग्रौर वाद एक रूप हो गये है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली मे ग्रादर्शवाद, प्रकृतिवाद, प्रयोगवाद, सामाजिकतावाद, मनोविज्ञानवाद, ग्रौर विज्ञानवाद सभी वादो का सम्मेलन है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली ग्रादर्शवादी शिक्षा के उद्देश्य ग्रपनाकर एक ग्रोर व्यक्तित्व के विकास पर ज़ोर दे रही है दूसरी ग्रोर सामाजिकतावाद के सामाजिक विकास के उद्देश्य को भी सामने रखकर चलती है, व्यक्तित्व का विकास समाज हित के लिये किया जाता है। समाज के विकास के लिये व्यक्तित्व का विकास ग्रावश्यक होता है। व्यक्ति को स्वतन्त्र ग्रौर सफल नागरिक बनाने के लिये ग्रब व्यक्ति की शिक्षा मे व्यावसायिक ग्रौर टकनीकी शिक्षा को विशेष महत्व दिया जा रहा है। व्यक्तित्व के विकास के लिये शिक्षा मे सभी राष्ट्रों को केन्द्रीयकरण की ग्रावश्यकता महसूस हो उठी है ग्रतः शिक्षा सामाजिक कार्य बन गया है।

ग्राधुनिक शिक्षा ने प्रकृतिवाद से बाल केन्द्रित शिक्षा का सिद्धान्त ग्रहण किया है। ग्राज बालक के ग्रध्ययन पर जो बल दिया जा रहा है उसका एक मात्र कारण प्रकृतिवादी शिक्षा का वर्तमान शिक्षा पर प्रभाव ही है, ग्राज का बाल केन्द्रित पाठ्यक्रम, बाल केन्द्रित पाठशाला का संगठन ग्रादि सभी शैक्षिक विचार प्रकृतिवादी हैं।

मनोवैज्ञानिकवाद से शिक्षा ने एक ग्रोर हरबार्ट की पच पदी स्वीकार की है ग्रौर पाठ्यक्रम के संगठन के सिद्धान्त भी इसी वाद से उधार लिये गये हैं। दूसरी ग्रोर, बालक के प्रति सहानुभूति का सिद्धान्त, ग्रात्म क्रियाशीलता का सिद्धान्त, स्वानुभव से सीखने का सिद्धान्त लेकर शिक्षण विधियों मे परिवर्तन ग्रौर संशोधन उपस्थित किये हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्तमान शिक्षाक्रम में सभी कालों, देशो, शिक्षाशास्त्रियो की विचारधाराग्रो का समावेश है।

ग्राधुनिक शिक्षा मे कई विवाद ग्रस्त प्रश्नों का उत्तर मिल चुका है। व्यक्ति ग्रौर समाज के हितो के पहले जो प्रबल विवाद था वह ग्रब क्षीण हो चुका है। ग्राधुनिक शिक्षा मे न तो हम केवल व्यक्तित्व के विकास को ही ग्रौर न समाज के विकास को ही शिक्षा का चरम लक्ष्य मानते है। व्यक्तित्व के विकास के साथ-साथ उसमे नागरिकता का विकास भी करना चाहते हैं। "व्यक्तित्व का विकास सामाजिक वातावरण मे ही होता है" ऐसा ग्राधुनिक शिक्षा शास्त्रियों का मत है, ऐसे ही कुछ मत ग्रन्य शिक्षा शास्त्रियों के है :—

(१) शिक्षा व्यक्ति को समाज के ग्रन्दर रखकर उसकी सामाजिक चेतना का विकास करती है"। —रायबर्न

(ii) शिक्षा उन आदर्शों का समुच्चय है जिनसे व्यक्ति अपने आपको सामाजिक वातावरण के अनुकूल बनाता है। —जेम्स

(iii) शिक्षा व्यक्ति को मानव जाति की आध्यात्मिक सम्पत्ति के अनुकूल बनाती है। —बटलर

शिक्षा के क्षेत्र में दूसरा विवाद ग्रस्त प्रश्न था "क्या शिक्षा प्रयत्न और प्रयास का परिणाम है अथवा उसमें रुचि का ही विशेष महत्व है ?" पहले शिक्षा में इस बात पर जोर दिया जाता था कि यदि बालक को कुछ सिखाना है तो उसकी शक्तियों का विकास करना होगा। मानसिक शक्तियों के विकास के लिये बालक को प्रयत्न (Effort) करना पड़ता था इस कारण शिक्षा में रोचकता और आनंद का लोप होता जा रहा था लेकिन मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति ने इस विचारधारा में मोड़ पैदा किया। यह विचारधारा रुचि के अनुसार शिक्षा पर बल देने लगी। किन्तु आजकल न तो हम केवल प्रयत्न पर ही जोर देते हैं और न रुचि को सब कुछ मानते हैं। बालक की अवस्थाओं और रुचियों के अनुकूल शिक्षा की व्यवस्था तो करते ही हैं लेकिन लिखने पढ़ने के लिये बालक को प्रयास भी कराते हैं।

तीसरा विवादग्रस्त प्रश्न शिक्षा में स्वतन्त्रता और अनुशासन सम्बन्धी था। यदि बालक को अनुशासन में रखना है अर्थात् यदि उस पर नियन्त्रण रखना है तो शिक्षा में स्वतन्त्रता के सिद्धान्त का महत्व घट जायगा।

अब एक ओर तो बालक को उतनी स्वतंत्रता दी जाती है जितना आवश्यक है दूसरी ओर उसे आत्म नियंत्रण की शिक्षा देकर सच्चे अनुशासन में रहने के लिये भी उपदेश दिया जाता है। कठोर अनुशासन में रखने के स्थान पर बालकों को स्व-अनुशासन के लिये शिक्षित किया जाता है।

शिक्षा के क्षेत्र में पहले जो गंगा, यमुना और सरस्वती की धाराएँ अलग अलग बह रही थीं आज वे ही धाराएँ त्रिवेणी के रूप में समवेत रूप में बह रही हैं। यही शिक्षा की समाहारक प्रवृत्ति है।

आधुनिक शिक्षा की अन्य विशेषताएँ हैं—

(i) लचीला पाठ्यक्रम
(ii) वैज्ञानिक शिक्षा पद्धतियाँ
(iii) विभिन्न विषयों का समन्वय
(iv) शिक्षा में धार्मिक बंधनों से मुक्ति
(v) राज्य द्वारा शिक्षालयों की व्यवस्था
(vi) सभी पाठन प्रणालियों का समन्वय
(vii) शिक्षा का कार्य व्यवसाय के रूप में
(viii) शिक्षण कार्य के लिये विषय विशेषज्ञों का प्रशिक्षण और नियुक्ति
(ix) शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को सफल जीवन बनाने के योग्य बनाना।

प्रगतिशील विद्यालय

Q 3 Discuss the main features of the progressive school

(B. T. 1959)

Ans. प्रगतिशील विद्यालयों का जन्म परम्परागत स्कूलों की विरोधी प्रवृत्ति के कारण हुआ। परम्परागत स्कूलों में बालक को शिक्षा का केन्द्र मानकर विषय वस्तु ही शिक्षण प्रक्रिया का केन्द्र बिन्दु माना जाता था। बालक को विषय वस्तु में रुचि न रहते हुए भी उसका अध्ययन अनिवार्य रूप से करना पड़ता था। व्यक्तिगत विभिन्नता जैसी कोई वस्तु उन विद्यालय के संचालकों के सामने न थी। परम्परागत स्कूलों के इन दोषों का निराकरण करने के लिये प्रगतिशील विद्यालयों का जन्म हुआ।

प्रगतिशील शिक्षा का उद्देश्य है परम्परागत शिक्षा के दोषों को दूर कर शिक्षा के क्षेत्र में उन्नति करना। इन स्कूलों में पढ़ाई का तरीका परम्परागत स्कूलों से भिन्न ही रखा गया।

नीचे इन विद्यालयों की विशेषता दी जाती है जिनसे स्पष्ट हो जायगा कि प्रगतिशील विद्यालय किस प्रकार परम्परागत विद्यालयों के भिन्न है। प्रगतिशील शिक्षा और प्रगतिशील विद्यालयों का जन्म अमरीका में जॉन डीवी तथा फ्रांसीसी डवल्यू० पार्कर के विचारों के फलस्वरूप हुआ था।

(१) **शिक्षा में बालक के व्यक्तित्व का सम्मान**—प्रगतिशील विद्यालयों में बालकों के व्यक्तित्व का सम्मान किया जाता है। उनकी योग्यता, क्षमता, रुचि, और आवश्यकताओं का ध्यान में रखकर उनकी शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। बालक अपनी रुचि, इच्छा, और क्षमता के अनुकूल काम करता हुआ आगे बढ़ता है। उसे अपनी प्रगति करने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। वह अपनी गति से आगे बढ़ता है और अपने कार्य के लिये स्वयं उत्तरदायी होता है। इस प्रकार प्रगतिशील शिक्षा बालक को शिक्षा का केन्द्र मान कर चलती है। उसको जो शिक्षा दी जाती है वह बाल्यावस्था के मूल्यों को समझ कर दी जाती है, इस उद्देश्य से शिक्षा नहीं दी जाती कि वह अपने प्रौढ़ जीवन की तैयारी कर सके।

(२) **शिक्षा में क्रियाशीलता के सिद्धान्त का महत्व**—प्रगतिशील स्कूलों में बालक को क्रिया के आधार पर शिक्षा दी जाती है उसे निष्क्रिय रूप से शिक्षा देने का प्रयत्न नहीं किया जाता। वह जो कुछ सीखता है अपने अनुभवों के आधार पर सीखता है। इस प्रकार उसका ज्ञान पक्का, सार्थक और दृढ़ होता है। पर क्रिया के माध्यम से बालक आत्माभिव्यक्ति करने में सफल होता है। क्रियाशीलता पर इतना बल देने के कारण जर्मनी में इन प्रगतिशील विद्यालयों को क्रियाशील स्कूलों के नाम से पुकारा जाता है।

(३) **शिक्षा में व्यावहारिक ज्ञान पर बल**—पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा प्रत्येक प्रगतिशील विद्यालय बालकों को जीवनोपयोगी व्यावहारिक ज्ञान देने का प्रयत्न करता है। उनका पाठ्यक्रम जीवन के अनुभवों पर आधारित होता है। वे जो अनुभव क्रियाशील होकर प्राप्त करते हैं वे व्यावहारिक जीवन में उपयोगी सिद्ध होते हैं। उनको इस प्रकार जीवन की आवश्यकताओं के अनुकूल शिक्षा दी जाती है।

(४) **सामाजिक गुणों के विकास के लिये उपयुक्त साधनों का एकत्रीकरण**—बालक के व्यक्तित्व का विकास समाज में रहकर ही हो सकता है। इस तथ्य को मानकर प्रगतिशील शिक्षा के समर्थक अपने बालकों को सामाजिक वातावरण में रखने का उपाय ढूंढते हैं। समाज-केन्द्रों, पुस्तकालयों, बस्तियों आदि से निकट सम्पर्क स्थापित कर, सामाजिक कार्यों में भाग दिलाकर, सामाजिक संस्थाओं के सदस्य बन कर ये विद्यालय अपने बालकों में सामाजिक गुणों का सृजन करते हैं। बालकों को इस प्रकार की शिक्षा दी जाती है कि वे लोकतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था को समझ सकें, अपने कर्त्तव्यों और अधिकारों का ज्ञान उन्हें हो सके, अपने समाज की संस्कृति को समझ कर उसका विकास कर सकें।

(५) [illegible] बालक के मानसिक विकास [illegible] नैतिक और शारीरिक [illegible] सही रचनात्मक प्रवृत्ति को अवसर प्रदान किया जाता है।

(६) **अभिभावकों का सहयोग**—प्रगतिशील शिक्षा में अभिभावक का उतना ही महत्व है, जितना कि उसके विद्यालय में बालक का। इस विचार से अभिभावकों का पूरा-पूरा सहयोग प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। समय-समय पर उन्हें स्कूल में बुलाकर बालकों की प्रगति के सम्बन्ध में विचार विमर्श किया जाता है।

प्रचलित विद्यालयों और प्रगतिशील विद्यालयों में जो अन्तर है उस अन्तर को निम्न लिखित चार वस्तुओं से स्पष्ट किया जा सकता है :—

(१) अध्यापक
(२) अध्ययन कक्ष
(३) अध्ययन प्रणाली
(४) वातावरण निर्माण

(१) **अध्यापक**—प्रचलित विद्यालयों में अध्यापक जो कुछ बतलाता है छात्र उसे सत्य समझ कर ग्रहण कर लेते हैं किन्तु प्रगतिशील विद्यालय में अध्यापक की स्थिति एक मार्ग प्रदर्शक की

होती है जो छात्रों की आवश्यकताओं को समझ कर सही मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता रहता है। वह उनके विचार विनिमयों में, वाद-विवादों में उत्साहपूर्वक भाग लेता है। वह उन्हें सुझाव देकर उनके साथ सहयोग करता है। विचार विनिमय में इसका व्यवहार प्रजातन्त्रात्मक, सहानुभूतिपूर्ण और शिष्टाचारयुक्त होता है। *सम्पूर्ण कक्षा एक आदर्श मनोवैज्ञानिक समूह की तरह कार्य करती है* जिसमें प्रत्येक सदस्य अपने-अपने कर्तव्यों और अधिकारों को समझता है।

(२) अध्यापन कक्ष—प्रचलित विद्यालयों में प्रत्येक कक्षा के लिये अलग-अलग कमरा होता है और छात्रों के बैठने के लिये तीन या चार पंक्तियों में कुर्सियाँ या डैस्कें लगी रहती हैं। छात्र अपनी अपनी कुर्सियों पर बैठते हैं और अध्यापक अपनी मेज के पास खड़े होकर अध्यापन कार्य करता है। किन्तु प्रगतिशील विद्यालयों में छात्र और अध्यापक समान धरातल पर अर्ध-वृत्ताकार अथवा वृत्ताकार रूप में बैठते हैं। इस प्रकार अध्यापक कक्षा का एक सदस्य मात्र रहता है नेता नहीं। आवश्यकता पड़ने पर पूरी कक्षा अलग अलग टोलियों में बँट जाया करती है।

(३) अध्ययन प्रणाली—प्रचलित विद्यालयों में अध्ययन प्रणाली प्रश्नों और उत्तरों पर आधारित रहती है। अध्यापक प्रश्न पूछता है और छात्र उसका उत्तर देते हैं, किन्तु प्रगतिशील विद्यालयों में वाद-विवाद परिप्रश्न (discussion) के माध्यम से शिक्षा दी जाती है। इस वाद-विवाद में छात्र और अध्यापक टोलियों में बँट कर सोच विचार करके किसी समस्या का हल करते हैं। वाद-विवाद करने की कई योजनायें प्रचलन में हैं।

अनौपचारिक समूह योजना (The informal group plan) में अध्यापक और छात्र किसी स्थान पर बैठकर सामान्य रुचि के विषयों और समस्याओं के विषय में विनिमय करते हैं। प्रत्येक सदस्य उस विषय अथवा समस्या के विषय के बारे में जो कुछ जानकारी रखता है, समूह के सम्मुख प्रस्तुत करता है। प्रत्येक सदस्य शिष्टता के भीतर निर्भयतापूर्वक अपनी राय प्रकट कर सकता है और एक दूसरे की आलोचना और प्रत्यालोचना कर सकता है।

औपचारिक समूह योजना में ऐसे समूह संगठित होते हैं, जिनका सम्बन्ध सामाजिक जीवन से रहता है। सामाजिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाले कई प्रकार के क्लब, गोष्ठियाँ, परिषद, संघ आदि सभी बनाये जाते हैं। ये संगठन छात्रों के लिए बड़े लाभ के हैं। एक तो उन्हें इस प्रकार की औपचारिक समूह योजना से पाठ्यवस्तु पर अधिकार हो जाता है और दूसरे सामाजिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाली बहुत सी क्रियाओं से उनका व्यावहारिक परिचय हो जाता है। इन *गोष्ठियों अथवा परिषदों में तीन प्रकार के सम्वाद चला करते हैं।*

(1) Symposium
(2) Panel discussion
(3) Seminar

'सिम्पोजियम' में पूरी कक्षा के सामने बैठकर कुछ चुने हुये छात्र किसी विषय के अलग-अलग पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं और श्रोता प्रश्न करके इस सिम्पोजियम में भाग लेते हैं।

'पैनल डिस्कशन' में किसी निश्चित विषय पर विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार करने वाली टोलियों के प्रतिनिधि रहते हैं। ये प्रतिनिधि अपना-अपना पक्ष प्रस्तुत करते हैं किन्तु भाषण देने वाला कोई नहीं होता। श्रोताओं को भी अपना अपना दृष्टिकोण रखने का अवसर दिया जाता है।

'सेमीनर' में किसी समस्या का विश्लेषण किया जाता है। मुख्य समस्या का हल करने के लिए अवान्तर समस्यायें निश्चित की जाती हैं और इन अवान्तर समस्याओं को हल करने के लिये अलग-अलग समितियाँ बना दी जाती हैं। इसी प्रकार मुख्य समस्या का हल किया जाता है।

(४) *वातावरण-निर्माण—प्रगतिशील विद्यालयों में सहयोगपूर्ण और जनतान्त्रिक* वातावरण माना जाता है। अध्यापक और छात्र एक दूसरे के सहयोगी मालूम पड़ते हैं। अध्यापक के पास विशेष अधिकार होते हुए भी वह उनका प्रयोग नहीं करता। छात्र मतभेद प्रकट कर सकते हैं किन्तु उचित सम्मान के साथ। एक दूसरे के प्रति आदर की भावना, शिष्टता और स्नेह रहता है। इस प्रकार का वातावरण सामाजिक वातावरण कहलाता है। विद्यालय में होने वाली समस्त क्रियायें छात्रों में कुशलता पैदा करती हैं क्योंकि वे लगभग *ऐसी प्रक्रियायें होती हैं जो साधारण-*

तथा प्रत्येक समाज में चलती रहती है। छात्र सीखने सिखाने की प्रक्रिया में पूरी तरह साझीदार बन जाता है। अध्यापन पद्धति के इस समाजीकरण से छात्रों को अनेक लाभ होते हैं। वे प्रत्येक कार्य को स्वयं करके अपने अनुभव से सीखते हैं उनमें प्रारम्भ में शिक्षा की भावना उत्पन्न हो जाती है। प्रत्येक छात्र अपना उत्तरदायित्व समझने लगता है। उसे उत्तरदायित्व पूर्ण ढंग से सोचने और योजना बनाने का अवसर मिलता रहता है। उसकी स्वाभाविक रुचियों का विकास स्वतः होता रहता है और भावी जीवन की राजनैतिक और आर्थिक समस्याओं को हल करने के लिए तैयार हो जाता है। गुरु और शिष्य के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं, इस प्रकार प्रगतिशील विद्यालयों का समाजीकृत वातावरण प्रचलित विद्यालयों की अपेक्षा अधिक उत्तम होता है।

यद्यपि प्रगतिशील विद्यालय कई बातों में प्रचलित विद्यालयों से अधिक उत्तम मालूम पड़ते हैं, किन्तु उनमें भी कुछ कमियाँ हैं। इन विद्यालयों की शिक्षण पद्धति इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र, राजनीति, अर्थशास्त्र, स्वास्थ्य रक्षा और सामसामयिक मामलों के अध्ययन के लिये तो उपयोगी है। लेकिन भाषा, गणित और विज्ञान जैसे आधारभूत विषयों का अध्यापन प्रगतिशील विद्यालयों में नहीं हो सकता। कभी-कभी वादविवाद अथवा परिप्रश्न (discussion) इतने नीरस हो जाते हैं कि छात्रों के ज्ञान में किसी प्रकार की वृद्धि नहीं होती।

हमारे देश में इस प्रकार प्रगतिशील विद्यालयों की स्थापना नहीं हो पायी है। जैसे-जैसे शिक्षा में जनतान्त्रिक पद्धतियों का प्रचार एवं प्रसार होता जायगा वैसे-वैसे प्रगतिशील विद्यालयों की स्थापना होती जायगी। अभी तो हम ऊँचे स्तर पर डिस्कशन और सेमीनार किया करते हैं। आशा है कि शिक्षा मन्त्रालय के प्रयत्नों के फलस्वरूप अमरीका जैसी जनतान्त्रिक पद्धतियों का प्रचार होने लगेगा।

अध्याय १२

शिक्षा और नवीन पाठन विधियाँ

आत्मक्रियाशीलता का महत्व

Q 1. Write a note on the distinguishing features of the modern self-activity methods. Select one of these and discuss how far it can be used in our Higher Secondary Schools *(Agra B T. 1951)*

Ans. क्रियाओं के द्वारा ही बालक को अनुभवों की प्राप्ति होती है और क्रियाओं के द्वारा ही वे अनुभव जिनको बालक प्राप्त किया करते हैं ज्ञान में बदल जाया करते हैं। इस प्रकार धीरे-धीरे ज्ञान के क्षेत्र का विस्तार होता रहता है। ऐन्द्रिक अनुभवों को बालक ज्ञान रूप में बदलने के लिये दो सामान्य सिद्धान्तों का अनुगमन करता है।

(१) विशेष से सामान्य की ओर चलकर।
(२) अनुभव से तर्क की ओर बढ़कर।

सीखने की क्रिया जिनमें पहले सिद्धान्त का अनुगमन किया जाता है बिलकुल स्वाभाविक है। अनुभव पर जब मस्तिष्क की क्रिया होती है ज्ञान का आविर्भाव हो जाता है। अनुभव से धीरे [illegible] ने लगता [illegible] । दूसरों के [illegible] पूरी करके [illegible] कर लेने से बालक का मस्तिष्क सूचनाओं का संग्रहालय बन जाया करता है किन्तु उसके व्यक्तित्व का विकास तभी होता है जब वह उन्हें अपने अनुभव से स्वयं प्राप्त करता है।

सक्रियता का सिद्धान्त मनुष्य के स्वानुभव पर तो जोर देता ही है; वह दूसरों के अनुभवों को उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखता। वह मानव जाति के ज्ञान के उस सम्पूर्ण कोष को जहाँ तक [illegible] ना समय बालक के पास [illegible] समस्त क्रियाओं को दुहरा [illegible] बने उस सीमा तक ही उसे

शिक्षण विधियों में आधुनिक युग क्रिया प्रधानता को आवश्यक गुण मानकर चल रहा है। इसका कारण यह है कि आज शिक्षा बाल केन्द्रित हो गई है, विषय केन्द्रित नहीं। अब चूंकि बालक स्वभाव से ही सक्रिय होता है, सक्रिय होकर ही वह बाह्य विश्व को समझता है और उसी के द्वारा अपने को अभिव्यक्त करता है। क्रियाओं के सहारे वह बाह्य विश्व के सम्पर्क में आकर कई प्रकार के अनुभव प्राप्त करता है। इसलिए वर्तमान शिक्षा स्वयं 'करके सीखने' के सिद्धान्त में विश्वास करने लगी। आधुनिक' शिक्षालय बालोपयोगी क्रियाओं को उत्साहित एवं संगठित करके नवीन ज्ञान की प्राप्ति के मार्ग को सुगम बनाने में लगे हुए हैं। मॉन्टेसरी प्रणाली अथवा प्रोजेक्ट-पद्धति आदि क्रियायुक्त विधियों के पीछे यही दर्शन छिपा हुआ है। पाठन विधियाँ अपने स्वरूप में क्रियामय नहीं हैं उनको भी अधिक से अधिक सक्रिय बनाया जा रहा है।

क्रियाएँ साधारणतः दो प्रकार की होती हैं—कार्यशीलता तथा क्रियाशीलता। खेल और कार्यों में क्या अन्तर है इस पुस्तक के भाग २ में स्पष्ट किया जा चुका है। बालक की शिक्षा खेल को प्रधानता देती हुई चलती है। बालक की शिक्षा की उत्तम विधि [illegible] कार्य [illegible] पद्धतियों में निम्नलिखित पद्धतियों के साथ विचार जा सकता है —

(१) मॉण्टेसरी
(२) डाल्टन योजना
(३) ह्यूरिस्टिक
(४) योजना
(५) बेसिक
(६) [illegible] प्रणाली
(७) किण्डर गार्टन

किस प्रकार इन पद्धतियों में क्रियाशीलता को प्रधानता दी जाती है इसका ज्ञान तो हमें तभी हो सकता है जब हम उनका अलग अलग विवेचन करें। अगले प्रकरण में इन विभिन्न विधियों का विवेचन किया जायगा।

[illegible]
होना [illegible]
समस्य [illegible]
प्रकार [illegible]
देना होगा :—

(१) कार्यशील होने की इच्छा का दमन यथासम्भव न किया जाय।
(२) बालकों को कार्यशील होने के अवसर दिये जायें।
(३) बालक जिस आवश्यकता की अनुभूति करे उसकी पूर्ति करने की सुविधा दी जाय।
(४) शिक्षक बालकों की रुचियों, योग्यताओं और क्षमताओं के आधार पर क्रियाएँ उपस्थित करें।
(५) बालकों में सुरक्षा और आत्मविश्वास की भावना पैदा करने के लिए उनकी कार्यशीलताओं का सहानुभूति तथा मैत्रीपूर्ण स्वागत किया जाय।
(६) किसी प्रकार की क्रिया की योजना बनाते समय वे समस्त साधन उपलब्ध कर लिये जायें जिनकी आवश्यकता पड़ सकती है। किसी भी वस्तु के लिए अकारण प्रतीक्षा न करनी पड़े।
(७) आत्मकार्यशीलता को प्रेरित करने के लिये खेल और खेलभाव से अधिक कोई उपयोगी वस्तु नहीं है। खेल का अर्थ ही है कार्यशीलता। अतएव सभी विषयों को कम से कम निम्न कक्षाओं में खेलरूपी पद्धति से पढ़ाया जाय।
(८) समस्याओं के उपयोग करने से कक्षा में कार्यशीलता उत्पन्न होने लगती है अतः बालकों की आयु, बुद्धि और योग्यता के अनुकूल समस्यायें उनके सामने उपस्थित की जायें।

छात्रों में मानसिक तथा शारीरिक कार्यशीलता विकसित और उत्प्रेरित करने की सबसे अच्छी विधि योजना पद्धति है। इस पद्धति का विशद विवेचन तो अगले प्रकरण में किया जायगा। यहाँ उसकी संक्षिप्त रूप में, कुछ विशेषताओं का ही उल्लेख किया जा सकता है। योजना पद्धति में छात्रों के किसी एक उद्देश्य का उपयोग किया जाता है और उन्हें उस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। अपने उद्देश्य को पूरा करते-करते वे आवश्यक [illegible]
प्रकार [illegible]
उनकी [illegible]

उपयोग भी देखते चलते हैं। जिस विषय की शिक्षा प्राप्त करने के लिए उनसे कहा जाता है उसका व्यावहारिक मूल्य वे स्वय देख लेते हैं।

कार्यशीलता को उत्प्रेरित करने के लिए कुछ विधियो मे प्रतियोगिता को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। कार्य और खेल दोनो मे सामूहिक प्रतियोगिता का उपयोग किया जा सकता है। कक्षाओ और पूरी पाठशाला के लिये कार्यों की छोटी-छोटी प्रदर्शनियाँ नियोजित की जा सकती हैं। छात्रो की उत्तम रचनाओ और कृतियो को किसी उच्च स्थान पर रख कर छात्रों मे कार्यशीलता को प्रेरित किया जा सकता है।

छात्रो मे कार्यशीलता बनाये रखने के लिए उनकी ज्ञानेन्द्रियो के प्रसाधन पर भी ध्यान [illegible] जायगी [illegible] विकास [illegible] भी स्वय कार्यशील हो।

आत्मकार्यशीलता को विकसित करने वाली उपर्युक्त विधियो मे यही विशेषता होती है।

आत्मक्रियाशीलता (self activity) के विषय मे फ्रोबेल का कहना था कि वह बालक का सबसे बड़ा शिक्षक होता है इसी से बच्चा आत्मज्ञान प्राप्त कर सकता है। स्वभावत. प्रत्येक बालक अपने व्यक्तित्व की रक्षा करना चाहता है। यदि वह इस रक्षा मे सफल होता है तो उसकी स्वाभाविक प्रवृत्तियो का विकास हो जाता है। यह विकास ही उसका आत्मज्ञान है। यदि शिक्षा का एक उद्देश्य आत्मज्ञान भी है तो हमें फ्रोबेल के विचारो के अनुसार आत्मक्रिया पर बल देना होगा।

योजना पद्धति

Q 2 Explain the special features of project method and consider its suitability in Indian schools. *(A U. 1957)*

Ans प्रोजेक्ट प्रणाली का अर्थ—इस प्रणाली के निर्माता विलियम किलपैट्रिक (William Kilpatrik) के शब्दो मे "प्रोजेक्ट एक सोद्देश्य क्रिया है जिसे मन लगाकर सामाजिक वातावरण में किया जाय" (A project is a whole hearted purposeful activity proceeding in a social environment)। स्टीवेनसन (Stevenson) के अनुसार 'प्रोजेक्ट एक समस्यामूलक कार्य है जिसे स्वाभाविक परिस्थितियो मे पूरा किया जाय" (A project is a problematic act carried to competition in its natural setting)। उपर्युक्त परिभाषाओ से हम निम्न निष्कर्ष पर पहुँचते हैं :—

(१) प्रोजेक्ट को उद्देश्य पूर्ण होना चाहिए।
(२) प्रोजेक्ट ऐसी हो जो बालकों की समस्याओं की पूर्ति कर सके।
(३) प्रोजेक्ट मे बालक रुचि लें।
(४) प्रोजेक्ट का हल सामाजिक वातावरण मे ही किया जाय।

प्रोजेक्ट प्रणाली के सिद्धान्त

(१) क्रियाशीलता—बालक के अन्दर क्रियाशीलता स्वभाव मे ही होती है। बालको की क्रियाशीलता को प्रोत्साहन देना इस प्रणाली का प्रमुख सिद्धान्त है।

(२) रोचकता—प्रोजेक्ट प्रणाली में अध्यापक बालक के कार्यों में बाधा नहीं डालता परिणामस्वरूप बालक को अपना कार्य अत्यन्त रोचक ज्ञात होता है।

(३) प्रयोजनता—बालक किसी भी कार्य में तब आनन्द लेते हैं जब कि उन्हें उसका उद्देश्य या प्रयोजन ज्ञात हो जाय। उद्देश्य से बालक उत्साहित होते हैं। अत बालकों के सामने जो भी कार्य प्रस्तुत किया जाय उसका प्रयोजन होना चाहिये।

(४) [illegible] से जो भी कार्य कराया जाय वह [illegible] को पूरा भी वास्तविक तथा

(५) सामाजिकता तथा उपयोगिता—बालक समाज का अभिन्न अंग है। वह समाज से अलग रह कर अपने जीवन को सफल नहीं बना सकता अत. इस प्रणाली मे क्रियाओ के माध्यम से बालको को ऐसे अनेको अवसर प्रदान किये जाते हैं जिससे कि इनमे सामाजिक कुशलता का विकास हो। दूसरे, प्रत्येक बालक उपयोगी कार्य मे रुचि लेता है इस कारण उपयोगिता का ध्यान भी रखना आवश्यक हो जाता है।

(६) स्वतन्त्रता—इस प्रणाली मे बालक को कार्य चुनने की स्वतन्त्रता प्रदान की जाती है। अध्यापक बालक के ऊपर कोई भी कार्य ऊपर से नही थोपता।

प्रोजेक्ट के प्रयोग की अवस्थायें

(१) परिस्थिति का निर्माण करना—अध्यापक को बालक के सामने ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करनी चाहिये कि बालक समस्या या प्रोजेक्ट मे रुचि लेने लगे। समस्या मे रुचि उत्पन्न होने पर बालक उसे स्वय हल करने का प्रयत्न करेंगे।

(२) प्रोजेक्ट का चुनाव—प्रोजेक्ट चुनने का अधिकार बालको को प्रदान किया जाय। विभिन्न परिस्थितियो मे अध्यापक और बालको के सामने अनेको समस्याएँ आयेंगी। इन समस्याओ मे से किसी एक प्रोजेक्ट को चुनने के लिये बालको को वाद विवाद का अवसर प्रदान किया जायगा। वाद विवाद के पश्चात ऐसा प्रोजेक्ट चुना जायेगा जिसमे समस्त बालक रुचि लेते हैं। अध्यापक को भी कठिनाई आने पर बालको की सहायता करनी चाहिये। उसे देखना है कि कहीं बालक कठिन प्रोजेक्ट का चुनाव न कर लें।

(३) प्रोजेक्ट का कार्य-क्रम बनाना—प्रोजेक्ट का चुनाव करने के पश्चात उसे पूर्ण करने के लिये योजना बनाई जाती है। योजना बनाने मे बालको से सुझाव लिया जाता है। अध्यापक और बालक वाद-विवाद द्वारा योजना को तैयार करते हैं।

(४) कार्यक्रम को व्यावहारिक रूप देना—योजना के बनाने के बाद बालक उसकी पूर्ति मे लगेंगे। प्रत्येक छात्र को कार्य करने का अवसर प्रदान किया जाता है। अध्यापक बालक की रुचियो, क्षमताओ को ध्यान मे रखकर ही *कार्य का विभाजन करता है। अध्यापक किसी भी कार्य* को स्वय नही करते, समस्त कार्य बालक स्वय करते हैं उसका कार्य तो केवल मार्ग-दर्शन है।

(५) प्रोजेक्ट का निरीक्षण—प्रोजेक्ट पूर्ण कर लेने के पश्चात बालक अपने किये हुये कार्य का स्वय निरीक्षण तथा मूल्याकन करते हैं। ऐसा करने से उनमे निर्णयात्मक तथा आत्म आलोचना करने की प्रवृत्ति का विकास होता है। वे अपनी भूलो को स्वय देखते हैं तथा स्वीकार करते हैं। प्रत्येक बालक को आलोचना करने का पूर्ण अधिकार दिया जाता है।

इस पद्धति के सिद्धान्त और कार्य प्रणाली का ज्ञान देने के लिये निम्नलिखित उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं :—

प्रोजेक्ट प्राय दो प्रकार के होते हैं—सरल और बहुमुखी। सरल प्रोजेक्ट में एक ही प्रकार का कार्य रखा जाता है और बहुमुखी योजनाओं में कई प्रकार के कार्यों का सम्बन्ध रहता है। बाजार से सामान लाना एक ही कार्य है अत: यह प्रोजेक्ट सरल प्रोजेक्ट माना जायगा। स्कूल में पानी का प्रबन्ध करना कई कार्यों का मेल है इसलिए कार्यों की जटिलता होने के कारण योजना जटिल मानी जाती है। पार्सल भेजना एक ऐसी ही जटिल प्रोजेक्ट का उदाहरण है। इस प्रोजेक्ट के पूरा करने मे विद्यार्थी को वार्तालाप करने, इतिहास, भूगोल, भाषा, और अकगणित का ज्ञान प्राप्त करने तथा हाथ से कार्य करने और परिभ्रमण करके कई बातें सीखने का अवसर मिलता है।

स्टीन ने इस प्रोजेक्ट को उचित रूप से सचालित करने के लिए निम्न आदेश दिये हैं :—

पार्सल को एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजने के विषय में वार्तालाप प्रारम्भ कराया जाय जिससे बालक डाक सम्बन्धी अनेक बातें और भिन्न-भिन्न स्थानों के विषय में जानकारी कर सकें। भिन्न-भिन्न देशों के टिकटों पर अंकित चिन्हों से उन देशों की संस्कृति का इतिहास समझाया जाय। उन देशों के निवासियों के विषय में जानकारी दी जाय। जिन स्थानों पर पार्सल भेजने हैं उन स्थानों की भी मौलिक जानकारी दी जाय। मानचित्र पर वे स्थान मालूम किये जायें। बालक के निवास स्थान से पार्सल भेजे जाने वाले स्थान तक की दूरी, पार्सल ले जाने वाले आवागमन के साधनों का ज्ञान कराया जाय। पार्सलों को तुलवा कर उनका वजन निकलवाया जाय। वजन के हिसाब से कितने रुपये के टिकट लगेंगे उसकी गणना करायी जाय। इस प्रकार जोड़ बाकी गुणा का ज्ञान दिया जाय। पार्सलों पर भी लिखाने से भाषा का ज्ञान दिया जा सकता है। बालकों से अपने मित्रों के लिये पत्र लिखवाये जायें क्योंकि इन पत्रों को वे पार्सलों में रखकर भेज सकते हैं। हस्तकला (Craft) का ज्ञान पार्सल बनाने, उस पर कागज लपेटने, मोड़ने, काटने आदि के काम सिखाये जायें। इस प्रकार बालक बहुत से विषयों का ज्ञान प्रोजेक्ट के माध्यम से सीख लेंगे।

सरल प्रोजेक्टों के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :—

भाषा में—(१) किसी गेय पद की रचना
(२) एकांकी नाटक की रचना
(३) कविताओं का संकलन करना
(४) अन्य प्रदेशीय पत्र व्यवहार करना
(५) स्थानीय समाचार पत्र सम्पादन के लिये किसी राजनैतिक घटना के विषय में अपने विचार भेजना

गणित— (१) किसी भवन के निर्माण में ज्यामितीय सिद्धान्तों की खोज करना
(२) पारिवारिक आय-व्यय का चिट्ठा तैयार करना
(३) किसी संस्था या उत्सव के व्यय का आगणन

विज्ञान— (१) दैनिक उपयोग में आने वाले भौतिक एवं रासायनिक पदार्थों का विश्लेषण उदाहरणार्थ पाउडर, क्रीम, रंग के तत्वों का विश्लेषण।
(२) भारी पदार्थों को ऊपर उठाने, सरकाने के लिये काम में आने वाले यंत्रों का प्रयोग, उनके भीतर निहित सिद्धान्तों की व्याख्या।
(३) विद्यालय उपवन अथवा घर के बगीचे की वनस्पतियों का अध्ययन
(४) किसी आकस्मिक घटना से पीड़ित व्यक्ति के रोग, घटना, आदि की जानकारी और सिद्धान्तों की व्याख्या।

गृह शास्त्र (१) परिवार के लिये आवश्यक वस्तुओं की सूची बनाना, उनको बाजार से खरीद कर लाना, तथा उनका लेखा रखना।
(२) नव विवाहित दम्पति, नव जात शिशु, आदि के लिये आवश्यक कपड़ों की सूची तैयार करना। कुछ कपड़ों को सीने की विधियाँ सीखना।

योजना पद्धति के गुण और दोष

Q 4. Why is Project Method so little used in the sphere of education even though it is so scientific? Give details. (L. T. 1957)

Ans योजना-पद्धति इतनी वैज्ञानिक होते हुए भी शिक्षा के क्षेत्र में उसका बहुत कम प्रयोग किया जाता है। इसका मुख्य कारण है योजना पद्धति का अपनी परिसीमाओं से युक्त होना।

इस पद्धति में उपर्युक्त गुणों के होते हुए भी कुछ ऐसे दोष हैं जिनके कारण वह पूरी तरह कार्यान्वित नहीं की जा सकती। इस पद्धति की परिसीमाएँ और दोष नीचे दिए जाते हैं :—

(१) कुछ लोगों का कहना है कि इस प्रणाली के अनुसार काम करने से शिक्षा में कोई क्रम नहीं रह जाता। शिक्षा आकस्मिक रूप से ही दी जाती है। क्रमिक शिक्षा

में समय का अपव्यय होता है और बहुधा बालक भी रुचि नहीं लेते। कुछ विषयों को किसी प्रोजेक्ट के चारों ओर सम्बन्धित करके उनके कुछ अंशों को ही पढ़ाया जा सकता है। परन्तु उनका पूर्ण ज्ञान बालकों को देना असम्भव सा प्रतीत होता है क्योंकि प्रोजेक्ट कैसा भी हो उसमें सभी विषयों का पूर्णरूपेण सम्बन्ध नहीं दिखलाया जा सकता। इस प्रकार शिक्षा के अपूर्ण रह जाने की सम्भावना रहती है। बालकों का ज्ञान सुसंगठित नहीं रह पाता। यदि वे केवल अनुभव की हुई आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये ज्ञानार्जन करते हैं तो उन्हें किसी भी विषय का पूर्णरूपेण *ज्ञान नहीं हो सकेगा और बहुत सम्भव है कि ज्ञान की अपूर्णता सदा बनी रहे।* किन्तु ज्ञान का सुसंगठित रूप शिक्षा का प्रारम्भ नहीं है वरन् अन्त है। पहले तो सभी ज्ञान असंगठित और अपर्याप्त रहता है। विभिन्न समयों पर संचित किये ज्ञान को मस्तिष्क बाद में संगठित करता है। इसलिये यह धारणा कि प्रोजेक्ट पद्धति में ज्ञान में क्रमबद्धता नहीं रहेगी गलत मालूम पड़ती है। प्रासंगिक शिक्षा (incidental education) पर्याप्त नहीं होती—थाम्पसन का यह कथन असंगत प्रतीत होता है।

(२) परीक्षा में सफलता प्राप्त करने के लिये एक निश्चित पाठ्यक्रम का अभ्यास करना आवश्यक है। प्रोजेक्ट पद्धति में यह सम्भव नहीं, जबकि पूरी शिक्षा और परीक्षा प्रणाली को एकदम न बदल दिया जाय। प्रोजेक्ट पद्धति की परीक्षा सम्बन्धी यह कठिनाई उसको शिक्षालयों में उपयोग में लाने में बाधा पहुँचाती है।

(३) *स्कूलों में बड़े-बड़े प्रोजेक्टों का आयोजन नहीं किया जा सकता* क्योंकि इसके लिये हम बहुत से अध्यापकों की आवश्यकता होगी। सारे स्कूल का कार्यक्रम ही बदलना पड़ेगा। प्रोजेक्ट को पूरा करने के लिये स्कूल के सारे कार्य को अस्त व्यस्त कर देना पड़ेगा। प्रोजेक्ट पूरा करते समय उदाहरण के लिये जिस समय गुणा की आवश्यकता जोड़ और बाकी से पहले अनुभव होने लगे तब गुणा का सीखना अमनोवैज्ञानिक नहीं होगा। प्रोजेक्ट पद्धति के समर्थकों के अनुसार यह विचार भी गलत मालूम पड़ता है पाठ्यक्रम बालक के लिये है न कि बालक पाठ्यक्रम के लिये। यदि प्रोजेक्ट का आयोजन ठीक प्रकार से किया जाता है तो उससे पाठ्यक्रम की रूपरेखा *स्वयं निकल आवेगी और इस रूपरेखा पर सामान्य विषय मनोवैज्ञानिक ढंग से समंजित* किया जा सकता है। यदि प्रोजेक्ट पद्धति से पाठ्यक्रम पूरा नहीं होता और वर्ष के अन्त तक छात्र सभी विषयों की निर्धारित पाठ्यवस्तु का ज्ञान पैदा नहीं कर सकते तो कक्षा पाठ्य विधि और प्रोजेक्ट विधि का समन्वय किया जा सकता है। यदि स्कूल केवल प्रोजेक्ट पद्धति पर ही चलता जाता है तो निश्चय ही कुछ दोष उसमें हो सकते हैं, किन्तु उसका उचित प्रयोग करने में किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

(४) कुछ शिक्षकों ने इस पद्धति का सबसे बड़ा दोष यह बतलाया है कि किसी भी प्रोजेक्ट को पूरा करने के लिये विभिन्न प्रकार की सामग्री, पत्र, पुस्तकों आदि की जरूरत हो सकती है जिसके प्रबन्ध में अधिक व्यय हो सकता है, इसलिये कुछ विद्यालय इस प्रकार की पद्धति को अपनाने में कठिनाई का अनुभव करते हैं किन्तु वे भूल जाते हैं कि इस पद्धति का नियम तो यह है कि प्रोजेक्ट का सम्पादन स्वाभाविक वातावरण में पूरा किया जाना चाहिये। जो सामान या *सामग्री स्थानीय वातावरण में उपलब्ध हो सके उसी का सम्भव प्रयोग किया जाय।*

(५) कुछ विद्वानों का कहना है इस पद्धति में शिक्षक का स्थान गौण हो जाता है। उसका व्यक्तित्व और *ज्ञान निरर्थक हो जाता है, इसलिये अपना स्थान गौण न हो जाय इस भय* ... होती है। उनकी यह धारणा भी असंगत ... तो ऐसी परिस्थितियाँ उपस्थित ... जाती है। प्रत्येक अवसर पर बालक का पथ प्रदर्शन वही अध्यापक कर सकता है जिसका ज्ञान का भण्डार असीमित है। अध्यापक का तो यही कर्तव्य है कि बालक के कार्य का सचालन इस प्रकार से करे कि वह *समस्या का समाधान* निश्चित समय के अन्दर सुविधा और सफलतापूर्वक कर सके।

(६) लेखक के विचार से इस पद्धति का सबसे बड़ा दोष यह है कि उसमें व्यक्तिगत रुचियों और प्रवृत्तियों का ध्यान नहीं रखा जाता। यदि प्रत्येक बालक की रुचि अथवा प्रवृत्ति का ध्यान रखना है *तो प्रत्येक के लिए एक-एक प्रोजेक्ट देनी होगी।* विद्यालय के बहुसंख्यक विद्यार्थियों

के लिये प्रोजेक्ट कौन ढूंढ कर निकाले ? क्या ये प्रोजेक्ट सभी ढूंढ़ी जा सकती हैं ? क्या यदि अनन्त प्रोजेक्ट दी जाय तो विद्यालय मे प्रतिक्षण मचने वाला कोलाहल विद्यालय के वातावरण को दूषित करेगा ? और यदि ये सभी प्रोजेक्ट ढूंढ भी निकाली जायें तो क्या सभी बालको से सम्बन्धित समस्याओ पर ही आधारित होगी ? यदि नही तो बालको द्वारा प्रौढ़ व्यक्तियो की समस्याओ के हल की खोज करना अमनोवैज्ञानिक नहीं होगा ? इन दोनो का परिहार किस प्रकार किया जाय वह बालक को कठिन मालूम पडता है ।

(६) प्रोजेक्ट पद्धति मे बालक का उद्देश्य ज्ञान प्राप्त करना नही होता वरन् उससे किसी स्थूल वस्तु का निर्माण करना होता है जैसे खिलौना, टोकरी, फर्श आदि । इस उद्देश्य से प्रेरित बालक प्राय. इतनी जल्दबाजी करते हैं कि चीजो को खराब बना देते हैं । यदि प्रोजेक्ट पद्धति के साथ और विधियाँ भी जोड दी जायें तो यह कमी पूरी हो सकती है ।

(७) योजना पद्धति के प्रयोग के लिये विद्यालयो मे दक्ष अध्यापको का होना आवश्यक है इसके लिये एक निश्चित प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है । अतएव जब तक अध्यापको को प्रशिक्षित न किया जाय जो योजना पद्धति का सुचारु रूप से प्रयोग कर सकें तब तक इस पद्धति को अपनाने से लाभ के स्थान पर हानि हो सकती है । अध्यापक के सक्रिय और सचेत न रहने पर बालक अपनी योजना की गलत रिपोर्ट भी तैयार कर सकते हैं ऐसी परिस्थिति मे उन्हे नवीन ज्ञान मिल नही सकता ।

यह दोष योजना पद्धति का नही है अत: इसका निराकरण किया जा सकता है ।

(८) योजना पद्धति के ठीक प्रकार से चालू करने के लिये बालको को छोटे-छोटे समूहो मे विभक्त करना पड़ेगा । जब तक कक्षा मे विद्यार्थियो की सख्या कम नही की जायगी तब तक इस पद्धति का प्रयोग कठिन सा प्रतीत होता है ।

(९) इस पद्धति के आरम्भ करने से पूर्व यह भी देखना होगा कि बालक अपने उत्तरदायित्व को कहाँ तक निभा सकते हैं । जब तक विद्यालयों मे बालको मे उत्तरदायित्व को निभाने, और स्वतन्त्रता का सही अर्थ समझने की क्षमता पैदा नही हो जाती तब तक इस पद्धति को अपनाना ठीक नही मालूम पड़ता है ।

इन सब दोषो के होते हुए भी योजना पद्धति में अपने विशेष मौलिक गुण हैं उचित प्रोजेक्ट के चुनाव कर लेने पर और अन्य उपयोगी पद्धतियो अथवा प्रणालियो का इस पद्धति के साथ समन्वय कर देने पर इसके सभी दोष दूर किये जा सकते हैं । बालको मे आत्मकार्यशीलता (Self [illegible] [illegible] अवश्य किया [illegible] अपनाने पर [illegible]

प्रोजेक्ट पद्धति के गुण

हमारे देश के विद्यालयों मे [illegible] को सैद्धान्तिक ज्ञान अरुचिकर [illegible] कर प्रभाव नहीं पडने पाता । यदि [illegible] सामाजिक दक्षता (Social efficie[illegible] आत्मनिर्भरता, सहकारिता, विनय, [illegible] कम आंशिक रूप अपनाना होगा ।

इस पद्धति को अपनाने से कई लाभ होंगे क्योकि इसमे निम्नांकित गुण हैं —

(१) करके सीखने पर आधारित—योजना पद्धति मे बालको पर ऊपर से ज्ञान थोपा नही जाता । वे स्वय कार्य करके अपने अनुभव से सीखते हैं । बालको को विशेष समस्यापूर्ण परिस्थिति मे रखकर उन्ही से समस्याओ का हल ढुंढवाया जाता है ।

(२) योजना का सोद्देश्य होने के कारण स्वाभाविक अभिप्रेरणा का अवसर—पाठ को रोचक बनाने के लिये कक्षा-शिक्षण में अध्यापक को अनेक साधन जुटाने पड़ते हैं । विषयो को व्यावहारिक रूप से न पढ़ने के कारण विद्यार्थियों का मन ऊब जाता है किन्तु योजना

पद्धति को अपनाने से न तो पाठ को रोचक बनाने के लिए साधन जुटाने की आवश्यकता होती हैं और न मानसिक थकान ही पैदा होती है क्योकि समस्या के सप्रयोजन होने के कारण बालक को अभिप्रेरणा स्वत मिलती रहती है। बालकों को इस बात का ज्ञान रहता है कि उद्देश्य के पूर्ण हो जाने से उसको सफलता मिलेगी अन्यथा विफलता इसलिए वे उत्साह और लगन के साथ कार्य करते रहते हैं।

(३) **स्वतन्त्रतापूर्वक चिन्तन एवं कार्य करने का अवसर**—कक्षा शिक्षण मे बालक साधारणतया निष्क्रिय इसलिए भी रहते हैं कि उनको स्वतन्त्रापूर्वक सोचने विचारने और कार्य करने का अवसर नही मिलता। जो कुछ अध्यापक कहते हैं कक्षा शिक्षण विधि से बालक उनके कहने मात्र से मान लेते हैं। योजना पद्धति मे बालको को स्वय सोचने विचारने और कार्य करने की स्वतन्त्रता मिलती हैं। वे अपने तरीको से चिन्तन करते और निर्णय पर पहुँचने का प्रयत्न करते हैं।

(४) **शारीरिक श्रम के प्रति आदरभाव की जागृति**—समस्याओ को सुलझाने मे बालको को शारीरिक प्रयत्न और परिश्रम करना पड़ता है। हाथ से काम करके सीखने मे वे अपनी हीनता नही समझते। इस प्रकार श्रम की महानता, श्रमिको के प्रति आदर और सम्मान की भावना का जागरण होने लगता है। आधुनिक शिक्षा का यह बडा भारी दोप है कि शिक्षित व्यक्ति अपना काम अपने हाथो से नही करना चाहता। योजना पद्धति को अपनाने से यह दोप दूर हो सकता है।

(५) **सहयोग और सहकारिता की भावना का उदय**—योजना की पूर्ति मे दूसरो के साथ सहयोग से काम करने का अवसर मिलता है। ऐसा करने से उनमे सामाजिकता की भावना का उदय होने लगता है। नागरिकता के लिए आवश्यक गुण स्वत. उदित होने लगते हैं। बालक अपने उत्तरदायित्व को समझते हैं और उसे पालन करने का भरसक प्रयत्न करते हैं।

(६) **व्यक्तित्व सम्बन्धी** [illegible]
समय विद्यार्थियो मे धैर्य, सन्तुष्टि औ [illegible]
आने पर उन्हें घबराहट नही होती। [illegible]
निर्भरता का विकास होने लगता है। जिन योजनाओ मे एक समूह को मिलकर कार्य करना पडता है उनमे नेतृत्वो के गुणो का भी विकास होने लगता है। इस प्रकार उच्चकोटि के व्यक्तित्व के लिए जैसे-जैसे गुणो की आवश्यकता है उन सभी का विकास योजना को सम्पादित करने मे हो जाया करता है। कुछ विचारकों का मत है कि सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास योजना पद्धति से शिक्षण करने पर ही सकता है।

(७) **पाठ्यक्रम के सभी विषयों का उचित समन्वय**—योजना पद्धति विषयो के सह-सम्बन्ध (Co-relation) पर जोर देनी। है पाठ्यक्रम के समस्त विषयो—भूगोल, इतिहास, गणित, भाषा आदि—किस प्रकार समन्वित रूप से बालको के सम्मुख प्रस्तुत किये जाते हैं इसका संकेत पार्सल भेजने मे सम्बन्धित योजना (Project) के पूरा कराने के लिए किये गये आदेशो मे प्रस्तुत किया जा चुका है। पाठ्यक्रम भिन्न-भिन्न विषयो मे विभाजित नहीं किया जाता। साथ ही विषयो का सम्बन्ध जीवन की आवश्यकताओ से जोड़ दिया जाने पर योजना पूरी तरह रुचिकर हो जाती है।

मान्टेसरी और किन्डरगार्टन पद्धतियाँ

Q. 5. What is the place of play-way in the scheme of teaching ? Give examples.

(L. T. 1956)

Or

What place do you give to play-way in education ? Discuss its place in the modern developments in educational practice with special reference to Basic education.

(Agra B T. 1957)

Ans. खेल द्वारा शिक्षा देने की विधि

'खेल' वह क्रिया है जो हम अपनी इच्छा से स्वतन्त्रतापूर्वक आनन्द प्राप्ति के लिए करते है और जिसके द्वारा हमें आत्माभिव्यक्ति का पूरा-पूरा अवसर मिलता है। खेल के इस स्वरूप को

ध्यान में रखकर ही श्री हेनरी काल्डवेल कुक (Henry Caldwell Cook) ने अंग्रेजी भाषा और साहित्य पढ़ाने के लिये कक्षा कार्य में खेल की भावना को नाटक तथा वाद-विवाद के रूप में उपस्थित करने का आदेश दिया था। शिक्षा में खेल को महत्व देने का श्रेय श्री कुक महोदय को ही जाता है। अब प्ले वे (Play way) शब्द का अर्थ इतना व्यापक हो गया है कि किसी भी कार्य अथवा विषय को सीखने के लिए उसका सम्बन्ध रुचिकर वस्तुओं और क्रियाओं से स्थापित कर दिया जाता है। संसार के लगभग सभी देशों ने शिक्षा में खेल के महत्व को स्वीकार कर लिया है और शिक्षा की सभी प्रणालियाँ खेल द्वारा शिक्षा के सिद्धान्त पर बल देती है। खेल बालक की नैसर्गिक प्रवृत्ति है, यदि खेल की प्रवृत्ति का बालक की शिक्षा में समावेश कर दिया जाय तो बालक सहज ही में शिक्षा प्राप्त कर लेता है। इस सिद्धान्त पर फोबेल ने अपनी शिक्षा-पद्धति का निर्माण किया है। खेल द्वारा वह कठिन से कठिन कार्य कर डालता है। खेल द्वारा वह ऐसे अमूल्य पाठ सीखता है जिनको न वह गृहस्थ जीवन में ही और न पुस्तकों द्वारा ही सीख सकता है। अतः शिक्षा देने के लिए खेल द्वारा बालक की रुचि को कार्य में उत्तेजित किया जा सकता है। किसी भी कार्य को बालक के सामने खेल के रूप में उपस्थित करने पर वह अपनी रुचि स्वेच्छा और आनन्दपूर्वक उसे ग्रहण कर लिया करता है।

खेल द्वारा बालक का सम्पूर्ण विकास होता है। ग्रिफिथ महोदय का तो यह भी कहना है कि जो शिक्षा योजना खेल की व्यवस्था नहीं करती वह बालक के शारीरिक और मानसिक विकास में अड़चन डालती है।

"Play is the child's characteristic mode of behaviours and any system of education which hampers this natural direction for the expanding of energy endangers the health, mental and physical of the child."

खेल शिक्षा ही व्यावहारिक समस्याओं की कुञ्जी है। उसमें बालक की रचनात्मक प्रवृत्तियाँ स्पष्ट और बलवती हो जाती हैं। उसे सभी क्रियाओं में आनन्द आने लगता है। वस्तुतः जब कभी किसी क्रिया में आनन्द का समावेश हो जाता है तब वह क्रिया प्ले वे में ही की जाती है। इस विवरण से स्पष्ट हो गया होगा कि खेल का शिक्षा में क्या महत्व है। सभी शिक्षा विधि खेल के शिक्षात्मक मूल्य को स्वीकार करते हैं। उसकी उपयोगिता में किसी को भी सन्देह नहीं है। इस विधि की उपयोगिता इसलिए भी अधिक है कि वह पुष्ट और मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है। यह शिक्षा अरुचिकर क्रियाओं को भी रुचिकर बनाती है। सभी बातें बालक को रुचिकर प्रतीत होने लगती हैं। दूसरे खेल में बालक अपनी रुचि तथा गति से कार्य करता है और किसी प्रकार के बन्धन का अनुभव नहीं करता। स्कूलों में स्वतन्त्रता का अर्थ प्रबल करने के अवसर तथा प्रेरणा देना है। स्कूलों में इसलिए ऐसे कार्यों और योजनाओं की व्यवस्था की जाती है जो उनकी रुचियों को सम्बोधित करें तथा उन्हें बौद्धिक परिश्रम करने के लिए प्रेरित करें। स्वतन्त्रता का सिद्धान्त शिक्षा के उन अरोचक और नीरस ढंगों का विरोध करता है जो बालक को निष्क्रिय बैठाकर सुनने के लिये बाध्य करते हैं। खेल में वह अपने उत्तरदायित्व का अनुभव करता है और खेल के अच्छे तथा बुरे पल के लिये भी स्वयं को वही उत्तरदायी समझता है। वह कक्षा के सभी कार्यों में रुचि लेकर उनमें सक्रिय भाग लेता है। इस प्रकार खेल द्वारा शिक्षा रुचि, स्वतन्त्रता और उत्तरदायित्व के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है।

खेल और शिक्षा की नवीन पद्धतियाँ (Play and modern developments in Educational practice)

खेल की महत्ता को स्वीकार करने वाले शिक्षा शास्त्रियों ने अपनी अपनी योजनाओं में खेल को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। खेल को आधार मानने वाली प्रमुख पद्धतियाँ नीचे दी जाती हैं—

(१) किण्डर गार्टेन (Kindergarten Method)
(२) मॉन्टेसरी (Montessori Method)
(३) Project Method
(४) Dalton Plan
(५) Basic Education

आगे के पृष्ठो मे शिक्षा की इन नवीन प्रणालियों पर विशेष ध्यान दिया जायगा। अत: पाठको का अधिक समय नष्ट न करने के विचार से यहाँ पर हम इन विधियो के विषय मे सूक्ष्म विवेचन ही करेंगे।

किण्डर गार्टन पद्धति का मुख्य सिद्धांत करके सीखना (Learning by doing) है। बालको को क्रियाशील रखने के लिए यह शिक्षा पद्धति उपहारो (gifts), गीतो (songs) और व्यापारो (occupations) की व्यवस्था करती है जिनके साथ-साथ खेलते-खेलते बालक स्वय परिमाण, सख्या, रग, रूप, गिनती आदि का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। फ्रोबेल ने बालक की शिक्षा मे खेल को महत्वपूर्ण स्थान इसलिये दिया कि वह खेल मे विशेष रुचि रखता है वह उसी कार्य मे रुचि लेता है जिसको वह खेल समझता है इसलिये उस कार्य को भी करने और समझने मे सरलता होती है। खेल द्वारा बालक की आत्म क्रिया विकसित होती है और उससे व्यक्तित्व का विकास होता है। खेल ही सारी क्रियाओ का केन्द्र है। इसलिए किंडर गार्टन मे बच्चे काफी समय तक अनेकों खेलो मे व्यस्त रखे जाते हैं। जिनमे से सभी मनोरजक या रचनात्मक होते हैं। कल्पना शक्ति के विकास के लिए कल्पना प्रधान खेलो को समाविष्ट किया गया है। कुछ ऐसे भी खेलो का आयोजन किया जाता है जिनसे बालको मे सामूहिकता की भावना का उदय हो सके। इन खेलो मे सगीत-नाटक, नृत्य आदि क्रिया सम्मिलित की जा सकती हैं कुछ खेलो द्वारा व्यक्ति का विकास भी किया जाता है। कभी-कभी खेलो से गणित, इतिहास, भूगोल, भाषा आदि विषयो का भी ज्ञान दिया जाता है।

मॉन्टेसरी पद्धति का मुख्य सिद्धात उस स्वतत्रता पर आधारित है जो खेल मे बालक को मिला करती है। बालक का विकास ही उसकी स्वतत्रता पर निर्भर रहता है। इसलिए इसे खेल द्वारा शिक्षा देने के लिए कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों की शिक्षा पर बल दिया जाता है। इन इन्द्रियो की शिक्षा कुछ उपकरणो की सहायता से दी जाती है जिन्हे हम शिक्षोपकरण (Didactic apparatus) कहते हैं। इनसे खेलते-खेलते लिखना, पढ़ना, गिनती आदि का ज्ञान सहज मे ही हो जाता है।

योजना पद्धति मे भी खेल का सिद्धात स्पष्ट दिखाई देता है। बालको के सम्मुख कोई समस्या उपस्थित कर उसे पूरा करने के लिए उन्हें प्रोत्साहित किया जाता है। इन योजनाओ को पूरा करने मे उनको कई गुणो का प्रकाशन करना पड़ता है। खेल ही खेल मे कई प्रकार के कौशल और ज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं।

डाल्टन पद्धति से भी बालको के सामने कोई समस्या रख दी जाती है वे स्वतत्रतापूर्वक कार्य करके उस समस्या का हल ढूंढते हैं। उनके ऊपर किसी प्रकार का बन्धन नहीं होता और सीखने का उत्तरदायित्व उन्ही के कधो पर रहता है।

बेसिक शिक्षा मे तो किसी एक हस्तकला को ही किसी विषय का केन्द्र मानकर शिक्षा दी जाती है। जिस प्रकार बालक खेल मे अनेक वस्तुओ का निर्माण करते हैं ठीक उसी प्रकार बेसिक प्रणाली से बालक भाँति-भाँति की चीजें बनाना सीख जाते हैं। इनको बनाने मे बालको को खेलो की तरह आनन्द मिलता है और इन वस्तुओ से सम्बन्धित बातो का ज्ञान प्राप्त करते हैं। यह ज्ञान खेल के साथ इस प्रकार जोड दिया जाता है कि बालको को इसे ग्रहण करने मे किसी भी कठिनाई का सामना नहीं करना पडता।

आजकल स्कूल कार्य मे खेल की भावना को उत्तेजित करने के लिए बालचर सस्थाओ, समाज सेवाओं, नाटक आदि सास्कृतिक कृत्यो का आयोजन किया जाता है।

मान्टेसरी पद्धति

Q. 6. What is the Montessori system ? How far can it be considered useful in the education of small children ? How ?

(L. T. 1956, Agra B T. 1957)

Or

Discuss the basic principles of the Montessori system. How have they influenced school practice generally ?

(Punjab, 1955, 1956)

Or

Write a short note on Dr Maria Montessori and her contribution to the science and practice of education Criticize and evaluate her work.

(B. T. 1953)

Ans जीवन तथा कार्य—मान्टेसरी पद्धति की जन्म दात्री मेरिया मान्टेसरी का जन्म १८७० ई० में रोम के एक सम्भ्रान्त परिवार में हुआ था। २४ वर्ष की अवस्था में रोम के विश्व विद्यालय से डाक्टरी परीक्षा पास कर इन्होंने लूले, लँगड़े, बहरे तथा मंद बुद्धि वाले बच्चों की शिक्षा का कार्य भार सँभाला। अपने कठोर एवं सतत परिश्रम के पश्चात् उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि नवीन ढंग से शिक्षा देकर इस प्रकार के बालक भी अल्पकाल में ही शिक्षित, कार्य कुशल, सुसंस्कृत एवं योग्य बनाये जा सकते हैं। उन्होंने अपने इस अनुभव को साकार रूप देने का दृढ़ निश्चय कर के प्रयोगात्मक मनोविज्ञान (Experimental psychology) तथा सामाजिक मानव शास्त्र के गहन अध्ययन के आधार पर इस नवीन शिक्षा प्रणाली का सूत्रपात किया।

अपनी इस शिक्षा पद्धति के निर्माण से डा० मॉन्टेसरी ने 'एडवर्ड सेगिन' (Edward Seg[illegible]) की '[illegible]' ([illegible]) सर्गी (Sergi) की 'वैज्ञानिक शिक्षा [illegible] आश्रय लिया है। डा० मान्टेसरी ने [illegible] मो तथा मजाई आदि विद्वानों की [illegible] पेस्टालाजी के सिद्धान्तों से तो वे [illegible]

मॉन्टेसरी प्रणाली की उपादेयता को विचार कर इटली की सरकार ने डा० मॉन्टेसरी को 'बच्चों के घर' अथवा 'बालगृह' (Children's house) का अध्यक्ष नियुक्त किया। यहाँ उन्हें अपनी इस शिक्षण पद्धति को प्रयोगात्मक-मनोविज्ञान की कसौटी पर कसने, उसे अधिक सरल, स्पष्ट व पुष्ट करने का अवसर मिला। उन्होंने अपने प्रयोगों के परिणाम स्वरूप सिद्ध किया कि ६ वर्ष का मन्द बुद्धि बालक तथा ३ वर्ष का साधारण बालक एक जैसा होता है। उनकी इस पद्धति का प्रयोग ढाई अथवा तीन वर्ष से लेकर ६ अथवा ७ वर्ष तक के बालकों के लिये सराहनीय है, यद्यपि ११ वर्ष तक के बालकों को इस पद्धति के माध्यम से शिक्षा दी जा सकती है।

डा० मॉन्टेसरी ने इस नवीन शिक्षा प्रणाली को व्यापक एवं सफल बनाने के लिए यूरोप के कई देशों का भ्रमण किया। थियोसाफिकल सोसाइटी के तत्वावधान में उनके कई भाषण [illegible] शाखा भी खोल दी। उनकी [illegible] तथा कितने ही अन्य देशों [illegible] स्थान-स्थान पर मॉन्टेसरी स्कूल खुल गये हैं।

डा० मॉन्टेसरी ने अनेक पुस्तकों की रचना की है। परन्तु उनको अमर बनाये रखने के लिए निम्न पुस्तकों का नाम लेना अनिवार्य है :—

(१) दि मान्टेसरी मैथेड (The Montessori Method)
(२) रीकन्स्ट्रक्शन इन एजूकेशन (Reconstruction in Education)
(३) डिसकवरी आफ दी चाइल्ड (Discovery of the Child)
(४) चाइल्ड ट्रेनिंग (Child Training)
(५) सीक्रेट ऑफ दी चाइल्डहुड (Secret of the Childhood)

मॉन्टेसरी के शिक्षा सिद्धान्त—मॉन्टेसरी के शिक्षा सिद्धान्तों पर फ्रोबेल के शिक्षा सिद्धान्तों का गम्भीर प्रभाव पड़ा है। फ्रोबेल की किंडर-गार्टन-पद्धति के अनुरूप ही डा० मान्टेसरी ने भी शिक्षा प्रणाली में खेल पर ही बल दिया है। मॉन्टेसरी पद्धति में किंडर गार्टन जैसी दार्शनिक भावना निहित नहीं है वरन सरल, स्वतन्त्र, शक्तिशाली तथा उपयोगी है। यहाँ बालक आडम्बर रहित वातावरण में स्वतन्त्रतापूर्वक खेल खेलते एवं कार्य करते हुए शिक्षा प्राप्त करता है। मॉन्टेसरी प्रणाली की शिक्षा के सिद्धान्त निम्नलिखित हैं —

१. व्यक्तित्व का विकास—रूसो, पेस्टालॉजी तथा फ्रोबेल की भाँति डा० मॉन्टेसरी ने भी शिक्षा का अर्थ स्वाभाविक विकास ही लिया है। उनके विचार से बालक के व्यक्तित्व को

विकसित करना ही शिक्षा है। उन्होने बालक की उपमा बीज से दी है। जिस प्रकार बीज अपने मे पूर्ण है और जैसे ही उसे अनुकूल वातावरण सुलभ होता है, वह एक सम्पूर्ण वृक्ष का रूप ... [illegible] विकासशक्ति छिपी हुई है, अनुकूल

उनका कहना है—"बालक एक शरीर है जो बढता है तथा, आत्मा है जो विकास प्राप्त करती है...... विकास के इन दो रूपो को हमे न कुरूप बनाना चाहिये न दबाना चाहिये किन्तु उस समय के लिए प्रतीक्षा करनी चाहिये जब किसी शक्ति का क्रमानुसार प्रादुर्भाव हो।" शिक्षा के द्वारा व्यक्तित्व का विकास ही उनका प्रमुख लक्ष्य है।

[illegible] आत्मानुभूति बिना स्वतन्त्रता के सभव नही। फ्रोबेल ने भी इसी स्वतन्त्रता द्वारा ही बालक की आन्तरिक शक्तियो को अनुकूल शिक्षा देने से बालक मे आत्मसयम, आत्मनिर्भरता आदि गुण वृद्धि पाते हैं। अत प्रत्येक बालक को अपनी स्वतन्त्र गति से कार्य करने का पूर्ण अवसर मिलना चाहिये। बालक उठने, बैठने, खेलने, पढने आदि की क्रियाएँ स्वच्छन्दतापूर्वक करें। उन्हे दूसरा कोई आदेश न दे। इसमे स्वय अध्यापक भी निर्देश व मार्ग प्रदर्शन ही करता है न कि बाह्य हस्तक्षेप। डा० मॉन्टेसरी का विचार है कि बाह्य हस्तक्षेप बालोन्नति मे बाधक होता है। बालक को अवरोधों तथा प्रतिबन्धों से मुक्त पूर्ण स्वतन्त्रता का वातावरण मिलना चाहिये।

३ आत्मशिक्षा—आत्मशिक्षा का अर्थ स्वय नये ज्ञान की खोज करना तथा नई जानकारी प्राप्त करना है। बालक जिस ज्ञान को स्वानुभव से प्राप्त करता है, अधिक स्थायी होता है। अध्यापक बालको के लिये उचित वातावरण उत्पन्न कर देता है तथा बालक शिक्षा यन्त्रो का अपने ढङ्ग पर प्रयोग करके ज्ञानार्जन करते हैं। शिक्षा यन्त्रो का सही प्रयोग करने मे असमर्थ बालक बार-बार प्रयत्न करता है तथा अन्त मे वह अपनी गलती को सुधार लेता है। गलती के सुधारने मे वह दूसरे बालको की गतिविधियों एव चेष्टाओ का निरीक्षण भी करता तथा दूसरों से सहायता भी लेता है। ऐसा करना आत्म शिक्षा के सिद्धान्त के प्रतिकूल नहीं है। इस प्रकार बालक आत्मशिक्षण द्वारा आत्मविश्वास तथा अध्यवसाय आदि गुणो को सीखता है। डा० मॉन्टेसरी के अनुसार आत्मशिक्षा ही वास्तविक शिक्षा है।

४. ज्ञानेन्द्रियों की शिक्षा—डा० मॉन्टेसरी के विचार मे शिक्षा मे ज्ञानेन्द्रियों का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि ज्ञानेन्द्रियां ही ज्ञान प्राप्ति का प्रमुख साधन हैं। ज्ञानेन्द्रियो के शक्तिहीन होने से उनके द्वारा प्राप्त होने वाला ज्ञान अस्पष्ट एव अपूर्ण रहता है। तीन से सात वर्ष तक के बालक की ज्ञानेन्द्रियां अत्यन्त क्रियाशील होती हैं तथा इस समय ज्ञानेन्द्रियो की शिक्षा की उपेक्षा करने से बालक की उन्नति असन्तुलित एव कुण्ठित हो जाने की सभावना होती है। ज्ञानेन्द्रियों की उत्तम शिक्षा से ही बालक पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने एव मानसिक विकास करने मे समर्थ होता है।

५. खेल द्वारा शिक्षा—डा० मॉन्टेसरी का 'खेल द्वारा शिक्षा' का सिद्धान्त बड़ा महत्वपूर्ण है। उनका कथन है कि बालक मे स्वभाव से ही खेलने की प्रवृत्ति होती है। अत. बालकों के खेलो मे किसी प्रकार का हस्तक्षेप न करके उन्हें स्वतन्त्रतापूर्वक खेलने का अवसर देना चाहिये। अपने खेल मे बालक किसी का भी हस्तक्षेप नहीं चाहता। बालक अपनी इच्छानुसार खेलते हुये वर्णमाला, अक्षरलिपि, रेखा गणित आदि विषय सहज ही में सीख जाता है। साथ ही उसकी श्रवण-शक्ति, स्पर्श बोध, स्वाद, घ्राणबोध आदि की [illegible] एव परिष्कार तो होते ही हैं। इन खेलों तथा [illegible] खेलों मे बहुत कुछ अन्तर है। इन खेलों का मुख्य उद्देश्य बालक को शीघ्रातिशीघ्र पढ़ना लिखना सिखाना है। ४½ वर्ष की अवस्था में [illegible] बालक [illegible] लिखनी पढ़ना ही सीख जाते हैं, [illegible] का [illegible] किया जाता है। अत यह खेल बालकों के लिए बड़े उपयोगी हैं।

६ व्यावहारिक शिक्षा—मॉन्टेसरी प्रणाली मे बालकों को अन्य विद्यालयों की [illegible] ही नहीं दिया जाता परिन्तु शिक्षा का व्यावहारिक रूप देने का प्रयत्न किया जाता है। २½ वर्ष से ७ वर्ष तक के बालकों को अपने नाक, कान, दाँत, मुँह, हाथ तक

कपड़े आदि को स्वच्छ रखने की शिक्षा प्रदान कर दी जाती है। मॉन्टेसरी स्कूलों में अध्यापिका गूँगे बच्चे के प्रति घृणा का व्यवहार न करके प्रेमपूर्ण व्यवहार ही करती है। वह बालक से कहती है, "बेटा! जरा मेरे पास आओ। मैं तुम्हारे मुँह, हाथ, नाक तथा आँख धो दूँ और तुम्हें सुन्दर बना दूँ।" (शिक्षा सिद्धान्त डा० सरयू प्रसाद चौबे, पृष्ठ ५६७) यह सुन्दर भावना बालक के हृदय को हठपूर्वक आकर्षित कर लेती है। पेस्तालोजी के अनुसार बच्चे इन स्कूलों में रहते हुए "प्यार के घर" जैसा आनन्दानुभव करते हैं।

७ शिक्षा की मनोवैज्ञानिक विधि—मनोविज्ञान की अवहेलना करके कोई भी शिक्षा पद्धति सफल नहीं हो सकती है जो शिक्षा की मानसिक स्थिति, उसकी रुचि और आवश्यकता को ध्यान में रखकर दी जाती है अधिक उपयुक्त एवं प्रभावपूर्ण होती है। मनोवैज्ञानिक आधार पर शिक्षा देने से बालक की अनेक प्राकृतिक शक्तियों का उचित प्रयोग एवं विकास होता है।

८. बालक के व्यक्तित्व का आदर—मॉन्टेसरी पद्धति में बालकों के व्यक्तित्व को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। उनके साथ प्रेम का व्यवहार किया जाता है। बालकों के मन तथा हृदय पर आघात करने वाले व्यवहार को हेय समझा जाता है। वयस्कों के कार्य की भाँति ही उनके प्रत्येक कार्य का आदर किया जाता है। प्रेम, सहानुभूति तथा आदरपूर्ण वातावरण में बालक अपना समुचित विकास करता है।

९. पुट्ठों तथा अंगों की शिक्षा—डा० मॉन्टेसरी का विश्वास है कि बाद में दी जाने वाली शिक्षा के लिए पहले से पुट्ठों तथा अंगों को सधा देना चाहिये। उसके अभाव में उसे अंगों का उचित प्रयोग करने तथा काम करने में कठिनाई होगी। प्रारम्भिक शिक्षा में इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए ताकि बालक भली भाँति चलना, फिरना, दौड़ना सीख जायें। इससे उसमें आत्मनिर्भरता के गुण का समावेश होता है तथा वह छोटी आयु में ही सब कुछ करने में समर्थ हो जाता है।

शिक्षण सामग्री अथवा शिक्षोपकरण (Didactic Apparatus)—ज्ञानेन्द्रियों के विकास के हेतु मॉन्टेसरी ने अनेक शिक्षोपकरण बनाए, जिनका प्रयोग करके बालक खेल ही खेल में शिक्षा प्राप्त करता है। ये शिक्षोपकरण बड़े आकर्षक और रोचक हैं। कुछ शिक्षोपकरण निम्नलिखित हैं—

१. छोटे बड़े बेलन (Cylinders) जिन्हें बालक उपयुक्त लकड़ी में बने छेदों में रखने का प्रयत्न करता है।
२. विभिन्न माप के लकड़ी के गुटके जिनको बालक छेदों वाले तख्ते में यथास्थान बैठाने की चेष्टा करता है।
३. विभिन्न आकार के घन (Cubes) जिन्हें बालक ऊपर नीचे रखकर अनेक प्रकार के आकारों का सृजन करते तथा लघुत्व व गुरुत्व का अनुभव करते हैं।
४. आयताकार विविध आकार के डिब्बे जिनके प्रयोग से बालक चौड़ी सीढ़ियाँ बनाता है।
५. विविध प्रकार के रंगों की टिकियाँ जिनमें बालक रंगों को पहिचानता है।
६. लकड़ी के अक्षर जिन पर बालक हाथ फेर कर अक्षर ज्ञान प्राप्त करता तथा उनके योग से शब्द एवं वाक्य रचना सीखता है।
७. रेशमी, ऊनी, सूती, कोमल तथा बड़े कपड़ों के कुछ टुकड़े जिन्हें स्पर्श करके कपड़ों की जानकारी प्राप्त की जाती है।
८. विभिन्न खुरदरी और चिकनी वस्तुएँ, भिन्न भारों की लकड़ियाँ आदि जिनके स्पर्श से बालक भार, चिकनापन तथा खुरदरापन आदि का ज्ञान प्राप्त करता है।

इसके अतिरिक्त अनेकों प्रकार के खेलों की सामग्रियाँ होती हैं जिनका प्रयोग बालक समय-समय पर करते हैं। गुड़ियाँ, खिलौने, छोटे-छोटे बर्तन, मकान आदि ऐसे ही शिक्षोपकरण हैं। इन उपकरणों के प्रयोग में सावधानी की बड़ी आवश्यकता है। एक समय में एक प्रकार

के उपकरण से केवल एक ही ज्ञानेन्द्रिय सजग एवं क्रियाशील होनी चाहिये। डा० मॉन्टेसरी एक साथ कई इन्द्रियों के प्रयोग का निषेध करती हैं।

मॉन्टेसरी स्कूलों की शिक्षण प्रणाली—मॉन्टेसरी ने अपने शिक्षा सिद्धान्तों के अनुसार इस शिक्षण प्रणाली को तीन भागों में बाँटा है —

(१) कर्मेन्द्रियों की शिक्षा (Motor Education)
(२) ज्ञानेन्द्रियों की शिक्षा (Sense Education)
(३) प्रारम्भिक पाठ्य-विषय की शिक्षा।

(१) कर्मेन्द्रियों की शिक्षा—प्राय ३ से ७ वर्ष तक के बालकों का शिक्षण ही मॉन्टेसरी पाठशालाओं में होता है। अतः मॉन्टेसरी पाठशालाओं की अध्यापिकाएँ इन बच्चों की कर्मेन्द्रियों को शिक्षित करना तथा उनमें उचित सन्तुलन पैदा करना अपना प्रधान कर्तव्य मानती हैं। पाठशालाओं में बालकों से ऐसे कार्य कराये जाते हैं जिनके करने में बालक आनन्द का अनुभव करता हुआ अपनी कर्मेन्द्रियों को विकसित करता है तथा साथ ही साथ अनेक बातें भी सीख जाता है। मॉन्टेसरी पाठशाला का बालक हाथ-मुँह धोना, कपड़े पहिनना व उतारना, मेज कुर्सी को ठीक प्रकार से व उचित स्थान पर रखना, कमरा सजाना, वस्तुओं को सँभाल कर क्रम पूर्वक रखना, भोजन बनाना, भोजन परोसना, बर्तन साफ़ करना, अपने वस्त्र, शरीर एवं कक्षा की सफ़ाई करना, अपनी वस्तुओं की सफ़ाई करना, अपने कपड़ों में बटन लगाना आदि अनेक दैनिक कार्य सहज ही में सीख जाता है। इस प्रकार की शिक्षा बालकों को शिष्ट, सभ्य, सुसंस्कृत एवं व्यवहारकुशल बनाती है। शारीरिक व्यायाम के माध्यम से दी हुई शिक्षा बालक के स्वास्थ्य की वृद्धि करती है। मॉन्टेसरी पाठशाला का बालक इस प्रकार अपनी कर्मेन्द्रियों की शिक्षा द्वारा पूर्ण विकास को प्राप्त होता है।

(२) ज्ञानेन्द्रियों की शिक्षा—मॉन्टेसरी प्रणाली में पाठन विधि की अपनी निजी विशेषताएँ हैं। डा० मॉन्टेसरी ने बालक के सूक्ष्म अध्ययन के फलस्वरूप यह निष्कर्ष निकाला कि ऐन्द्रिय अनुभव ही बालक की शिक्षा का आधार है। उनके मतानुसार बालक को जितने अधिक ऐन्द्रिक अनुभव हों, दिये जायें।

उनके मतानुसार बालक—

(१) अधिकाधिक वस्तुएँ देखे।
(२) विविध वस्तुओं को इच्छानुसार स्पर्श करे।
(३) विविध प्रकार से विविध वस्तुओं की तुलना करे जैसे भारीपन और हल्कापन, बड़ापन तथा छोटापन मालूम करना आदि।

(४) हाथों को हिलाना डुलाना सीखे तथा उन क्रियाओं को सीखे जिनके द्वारा वह लिखता है। इससे वह हाथ की माँस पेशियों पर अधिकार प्राप्त करता है।

बालक को विविध ऐन्द्रिय अनुभव कराने के लिए ही मॉन्टेसरी ने विशेष शिक्षात्मक उपकरण का आविष्कार किया था। इन उपकरणों की विशेषता ही एक समय में एक उपकरण द्वारा एक इन्द्रिय शिक्षण की ओर बालकों का ध्यान आकर्षित करना है। आकार-प्रकार, वजन, मोटाई आदि में समान परन्तु विभिन्न रंगों वाली टिकियों एवं विभिन्न रंगों के ६४ कार्डों द्वारा बालक की नेत्रेन्द्रियों को शिक्षित किया जाता है। स्पर्शेन्द्रिय के विकास हेतु बालक एक ही रंग तथा आकार के चिकने, खुरदरे, ऊनी, मखमली कपड़ों का प्रयोग करते हैं और इस प्रकार खुरदरापन, चिकनाई तथा कोमलता आदि का ज्ञान प्राप्त करते हैं। श्रवणेन्द्रिय, स्वादेन्द्रिय, तथा घ्राणेन्द्रिय की शिक्षा की भी मॉन्टेसरी पद्धति में व्यवस्था की गई है। विभिन्न वाद्ययन्त्रों के प्रयोग द्वारा तथा बालू, पत्थर के टुकड़ों, अनाज के दानों तथा मोटी के विभिन्न प्रकार की [illegible] उत्पन्न करके श्रवणेन्द्रियों को शिक्षित किया जाता है। स्वादेन्द्रिय-प्रशिक्षण के लिए नमक, [illegible], खटाई आदि की शीशी तथा घ्राणेन्द्रिय प्रशिक्षण के लिए गन्ध प्रदान करने वाली [illegible] तथा इत्र से भरी शीशियाँ प्रयोग में लाई जाती हैं।

इसी प्रकार डा० मॉन्टेसरी ने समस्त ज्ञानेन्द्रियों के विकास पर बल दिया है। उनकी शिक्षण विधि की सफलता ज्ञानेन्द्रियों के विकास पर ही निर्भर है। ज्ञानेन्द्रियों की शिक्षा का महत्त्व समझाते हुए मॉन्टेसरी ने लिखा है, "ज्ञानेन्द्रियों की शिक्षा सम्बन्धी क्रियाओं का

यह ध्यान नहीं है कि बालकों को विभिन्न वस्तुओं के रूप, वर्ण और गुण का ज्ञान हो जाय वरन् उनसे हम उनकी ज्ञानेन्द्रियों को परिष्कृत करना चाहते हैं।" इनसे उनकी बुद्धि का विकास होता है।

(३) प्रारम्भिक पाठ्य विषय की शिक्षा—ज्ञानेन्द्रियों के प्रशिक्षण के बाद बालकों को लिखने पढ़ने तथा अंकगणित की शिक्षा दी जाती है। मान्टेसरी स्कूलों में बालू में खेलते समय बालक बालू पर या जमीन पर ही वर्णमाला के अक्षरों का अभ्यास व ज्ञान प्राप्त करते हैं। खुरदरे कागज अथवा गत्ते के बने अक्षरों पर बार-बार अँगुलियाँ फेरने से भी बालक की अँगुलियाँ सध जाती हैं तथा वह अक्षर सरलता से लिखना जान जाता है। लिखना जान लेने पर पढ़ना बालक स्वत: जान लेता है। लिखने, पढ़ने के पश्चात् बच्चे को मनोवैज्ञानिक ढंग से अंकगणित का ज्ञान करा दिया जाता है। गिनती सिखाने के लिए विभिन्न लम्बाइयों के डण्डों को काम में लाया जाता है। यह डण्डे लाल, नीले रंगों में अन्तर्विभाजित होते हैं जिन्हें लम्बाई के क्रम में रख कर बालक उनके लाल, नीले भागों को गिनना सीखते हैं। एक सेंटीमीटर तक के दस गुटकों द्वारा बालक अंकगणित के प्रथम चार सिद्धान्तों तथा किसी वस्तु के परिमाण आदि को भली-भाँति सीख जाता है। इसी प्रकार अन्य उपकरण भी बालकों को जोड़ना, गुणा, भाग आदि सिखाने में सहायक होते हैं।

इस प्रकार मान्टेसरी पाठशालाओं में सर्वप्रथम बालक लिखना व लिखने के कुछ अभ्यास के बाद अक्षर की ध्वनि का उच्चारण सीखता है। बालक के तीसरी कक्षा में पहुँचने पर उसे पढ़ने की शिक्षा दी जाती है। बालक यहाँ सब कुछ समझकर ही पढ़ता है, रटकर नहीं। यहाँ पर ही बालक जाने हुए अक्षरों को पट्टी एवं स्लेट पर लिख कर अभ्यास करते हैं। चौथी कक्षा में लिखने एवं पढ़ने के साथ ही साथ बालक अंकगणित आदि भी सीख लेते हैं। अपनी मनोवैज्ञानिक शिक्षा प्रणाली के फलस्वरूप ही मॉन्टेसरी प्रणाली का विश्व के अगणित देशों में तीव्र गति से प्रचार हो रहा है।

मॉन्टेसरी पद्धति की विशेषताएँ—डा० मॉन्टेसरी प्रसिद्ध शिक्षा विशारदों में प्रमुख स्थान रखती हैं। उनके सिद्धान्त और प्रयोग प्रशंसनीय हैं। उनकी शिक्षण विधि में निम्न विशेषताएँ पाई जाती हैं —

(१) डा० मॉन्टेसरी के अनुसार उनकी यह पद्धति वैज्ञानिक है। यह उचित भी है क्योंकि निरीक्षण (Observation), अनुभव (Experience) तथा प्रयोग (Experimentation) ही इस पद्धति के प्राण हैं।

(२) रूसो, पेस्टालजी तथा फ्रोबेल जैसे शिक्षा विशेषज्ञों के अनुसार ही डा० मॉन्टेसरी भी बालक की पूर्ण स्वतन्त्रता के पक्ष में हैं। उनके विचार से बालक के व्यक्तित्व का विकास स्वतन्त्र वातावरण में ही सम्भव है।

(३) अल्प आयु के बालकों के लिए यह पद्धति वरदान स्वरूप है। छोटे बालक स्वतन्त्रतापूर्वक शिक्षोपकरणों से खेलने में बड़ी रुचि दिखलाते हैं और वस्तुओं का मनमाने ढंग पर प्रयोग करके अपनी ज्ञानेन्द्रियों को साधते व विकसित करते हैं।

(४) बच्चों से माता के स्वर में न बोल कर मित्रतापूर्ण व्यवहार किया जाता है, जिससे बालकों में आत्मविश्वास तथा अनुशासनप्रियता के भाव जागृत होते हैं।

(५) इस पद्धति में प्रयोग किये जाने वाले शिक्षोपकरण पूर्ण मनोवैज्ञानिक, सरस, रोचक, आकर्षक तथा सरल हैं।

(६) यह पद्धति पूर्णरूपेण व्यावहारिक है। इसमें नित्य प्रति के व्यवहार एवं अनुभव सम्बन्धी कार्यों पर विशेष बल दिया जाता है। मांसपेशियों के प्रयोग का भी पूर्ण ध्यान रखा जाता है।

(७) शिक्षिका का स्थान बड़े महत्व का है। वह बालकों की निर्देशिका एवं मित्र बनकर बालकों को कार्य करने की प्रेरणा प्रदान करती है तथा कठिनाई के समय उनकी सहायता भी करती है।

(८) मॉन्टेसरी पद्धति में भाषा शिक्षण की प्रणाली अपूर्ण है। बालक पहले लिखना सीखता है तथा बाद में पढ़ना। आगे चल कर बालक लिखने पढ़ने का अभ्यास साथ ही साथ करता है। लिखने पढ़ने के लिए डा० मॉन्टेसरी द्वारा दिये गये अभ्यास क्रमानुसार एक दूसरे से सम्बन्धित हैं।

मॉन्टेसरी पद्धति के दोष—मॉन्टेसरी पद्धति यद्यपि साधारणतया लाभदायक है परन्तु उसके प्रचार में कुछ बाधाएँ भी हैं। भारत तथा अन्य अनेक सभ्य देशों में इस पद्धति का ज़ोरदार प्रचार हो रहा है परन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से इस पद्धति की कटु आलोचना की जाती है। मनोवैज्ञानिक इस पद्धति को किण्डर गार्टन पद्धति से अच्छा नहीं समझते। विलियम स्टर्न (William Stern) महोदय ने [illegible] (Psychology of Early Childhood) में [illegible] rick) महोदय ने अपनी पुस्तक [illegible] का गुण-दोष विवेचन किया है। इस पद्धति के दोष निम्नलिखित हैं :—

(१) सामाजिक भावना के विकास का अभाव—व्यक्तिवादी विचारधारा को लेकर चलने के कारण यह पद्धति जहाँ एक ओर व्यक्ति के विकास में योग देती है, वहाँ दूसरी ओर उनमें सामाजिक भावना का मूलोच्छेदन करती है। बालक अकेला खेल खेलता है। वह सामूहिक रूप से खेल खेलने का अवसर ही नहीं पाता। सामूहिक खेलों तथा कार्यक्रमों में भाग न लेने के कारण बालक सामाजिक गुणों से वंचित रह जाता है जिससे वह अच्छा नागरिक भी नहीं बन पाता।

(२) डा० मॉन्टेसरी की स्वयं शिक्षा की भावना वास्तव में महान व सुन्दर है परन्तु उसको सभी विषयों में लागू करना असम्भव है।

(३) मॉन्टेसरी पद्धति के शिक्षोपकरण अद्वितीय अवश्य हैं किन्तु वे कुछ निश्चित क्रियाओं के लिए ही सीमित होते हैं। स्टर्न महोदय के मतानुसार वे बालक के एकांगी बौद्धिक विकास में ही सहायक होते हैं। इन में बालक की आत्माभिव्यक्ति एवं स्वतन्त्र विचारधारा अविकसित एवं कुंठित रह जाती है। बालक द्वारा की गई क्रियाएँ उसे सामाजिक रुचियों से दूर रखती हैं।

(४) इस शिक्षा पद्धति में समन्वय द्वारा अनेक विषयों को पढ़ने की कोई व्यवस्था नहीं है।

(५) बालक इस पद्धति में पूर्ण अंशों से स्वतन्त्र नहीं है। वह विवश होकर शिक्षोपकरणों से खेलता है। *अन्य बालकों से बात न करने के कारण तथा अकेले व* चुपचाप काम करने व खेलने से बालक में स्वार्थ व अभिमान की भावना वृद्धि पाती है।

(६) इस पद्धति में वास्तविक, कल्पनात्मक एवं क्रियात्मक खेलों को कोई महत्व नहीं दिया जाता। डा० मॉन्टेसरी बालक की कल्पना शक्ति के प्रोत्साहन के विरुद्ध हैं। उनके विचार से व्यावहारिक शिक्षा में कथा, कहानी, नाटक तथा कलात्मक भावनाएँ कोई महत्व नहीं रखती। वास्तव में कल्पना का बालक के जीवन में बड़ा महत्व है। कल्पना के सहारे ही बालक अपनी मूल प्रवृत्तियों को संतुष्ट करके मानसिक ग्रन्थियों का निराकरण करते हैं। इसके अभाव में बालक के अन्दर अनेक भावना ग्रन्थियाँ जन्म लेकर बालक के विकास को रोकती हैं।

(७) जान एडम्स के अनुसार शिशु एवं बाल्यकाल में ज्ञानेन्द्रियों को प्रशिक्षित करने की बात केवल कोरी कल्पना है। मनोविज्ञान विशारद इस बात से सहमत नहीं कि ज्ञानेन्द्रियों [illegible] विकास में सहायक है या नहीं। दूसरे ज्ञानेन्द्रियों की शिक्षा का महत्व मन्द बुद्धि [illegible] लकों के लिए यह उतनी लाभप्रद नहीं। [illegible] एक महीने में प्राप्त होने वाले ज्ञान को [illegible]

(९) इस पद्धति में बालक [illegible] कार्य करना सीखते हैं। बालकों को वयस्कों के कार्य सिखाना मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के विपरीत है।

(१०) लिखने पढ़ने की दृष्टि से यह पद्धति वैज्ञानिक है, परन्तु मनोविज्ञानिक नहीं। इस पद्धति में अक्षर व शब्द से चलकर बालक वाक्य ज्ञान प्राप्त करता है परन्तु आधुनिक मनो-

विज्ञान किसी वस्तु के भागों को पृथक करके ज्ञान देने के विरुद्ध है। 'गैस्टाल्ट मनोविज्ञान' (Gestalt phychology) के अनुसार बालक को सम्पूर्ण वस्तु का ही ज्ञान कराना अभीष्ट है।

(११) मॉन्टेसरी पद्धति के अनुसार एक समय में एक ही ज्ञानेन्द्रिय को प्रशिक्षित किया जाता है। परन्तु जीवन में ज्ञानेन्द्रियाँ मिलकर साथ-साथ कार्य करती हैं। शिक्षा के क्षेत्र में इन्द्रियों को मिलकर काम करने का अभ्यास कराया जाना चाहिये। दूसरे, परीक्षण द्वारा डा० मॉन्टेसरी का वह विचार भी निराधार है कि ३ से ७ वर्ष तक के बालक में उच्चकोटि की मानसिक क्रियाओं का अभाव होता है। तीन वर्ष के बालक की भी मानसिक क्रियाएँ होती हैं। उसमें जिज्ञासा व कल्पना शक्ति भी पाई जाती है।

(१२) शिक्षात्मक उपकरणों तथा बालगृहों पर अत्यधिक व्यय किया जाता है जिससे यह शिक्षा मँहगी पड़ती है। भारत जैसे गरीब देश के लिए ऐसी शिक्षा पद्धति की योजना असम्भव ही है।

किण्डरगार्टन पद्धति की विशेषतायें

Q 7 Discuss the main features of Kindergarten system Give its merits and demerits

उत्तर—फोबेल के अनुसार अध्यापक का कार्य बालक को ज्ञान प्रदान करना नहीं है। ज्ञान तो बालक आकस्मिक रूप (Incidentally) में स्वयम् प्राप्त करता रहता है। अत. अध्यापक का कार्य उस वातावरण का निर्माण करना है जिसमें बालक को आत्माभिव्यक्ति (Self expression) का अधिकाधिक योग प्राप्त हो सके। इस प्रकार फ्रोबेल के अनुसार शिक्षा में आत्माभिव्यक्ति का प्रमुख स्थान है। फ्रोबेल के किण्डर गार्टन विद्यालयों में आत्माभिव्यक्ति निम्नलिखित रूपों में होती है

(१) गीत (Song)
(२) गति (Gesture)
(३) रचना (Construction)

सैद्धान्तिक रूप में आत्माभिव्यक्ति के उक्त रूप पृथक-पृथक प्रतीत होते हैं, परन्तु व्यावहारिक रूप में सब एक हैं। उदाहरणार्थ बालकों को कहानी, गीत रूप में सुनाई जाती है। बालक उसको गाते हैं तथा गति के समावेशन हेतु बालकों से उसका अभिनय करवाया जाता है। रचना के लिये, कहानी में आये पात्रों, स्थानों आदि के चित्र और मूर्तियाँ कागज, मिट्टी, बालू, आदि के द्वारा बनवाई जाती हैं।

शिक्षा प्रदान करने की वस्तुएँ—किन्डर गार्टन पाठशालाओं में बालकों को निम्नलिखित वस्तुओं के माध्यम द्वारा शिक्षा प्रदान की जाती है:—

(१) मातृ खेल तथा शिशु गीत (Mother's play and nursery songs)
(२) उपहार (Gifts)
(३) व्यापार (Occupation)

(१) मातृ खेल तथा शिशु गीत (Mother's play and nursury song) —एक छोटी सी पुस्तक होती है जिसमें लगभग पचास गीत होते हैं। गीत बच्चों की उम्र के अनुसार पृथक-पृथक होते हैं। इन गीतों द्वारा बालकों की ज्ञानेन्द्रियों का विकास होता है। इन गीतों द्वारा बालकों का सम्बन्ध उनकी आसपास की वस्तुओं से स्थापित करने का प्रयास किया जाता है। इन गीतों द्वारा बालकों का नैतिक विकास होता है। इनके द्वारा बालक और उसकी माता में एकता स्थापित होती है।

(२) उपहार (Gifts)—बालकों की ज्ञानेन्द्रियों के प्रशिक्षण तथा आत्मक्रिया (Self activity) को उभाड़ने के लिए फ्रोबेल ने उपहारों का सहारा लिया है। इन उपहारों में ६ उपहार प्रमुख हैं।

(अ) भिन्न-भिन्न रंगों तथा लाल, नीले, पीले, हरे आदि रंगों की उन की गेंदें। इन गेंदों द्वारा बालक रंग, आकार, गति, दिशा आदि का ज्ञान प्राप्त करते हैं।

(२) कड़ी वस्तु यथा लकड़ी आदि के बने गोल, घनाकार तथा बेलनाकार उपहार। इनकी सहायता से बालकों में समानता, असमानता, आकार आदि का ज्ञान दिया जाता है।

(ल) ग्राठ छोटे-छोटे घनो से बना एक बडा घन। इससे बालक विभिन्न प्रकार की रचनायें करता है।

(व) ग्राठ ग्रायताकार घनों का एक बडा घन। इससे भी बालकों की रचनात्मक प्रवृत्ति विकसित होती है।

(स) सत्ताईस छोटे-छोटे घनो से मिलकर बना घन। इसकी सहायता से बालक गणित ग्रादि का ज्ञान प्राप्त करता है।

(द) ग्रठारह बडे तथा नौ छोटे विषम चतुर्भुज (Oblongs) से बना घन। इसके द्वारा बालक ज्यामित का ज्ञान प्राप्त करता है।

(३) व्यापार (Occupations)—व्यापारो द्वारा बालको की ग्रात्माभिव्यक्ति (Self expression) होती है। बालको को व्यापार ग्रथवा कार्य तब प्रदान किये जाते हैं जब वह सभी उपहारों को पा चुकते हैं। व्यापारो ग्रथवा कार्यो द्वारा बालक पदार्थो को बदलने, दूसरा रूप देने तथा सुधारने का ज्ञान प्राप्त करते है। बालक लकडी, मिट्टी, कागज, बालू इत्यादि से विभिन्न प्रकार की वस्तुग्रो का निर्माण करते हैं। उपहारो की ग्रपेक्षा व्यापारो का ग्रधिक महत्व है। व्यापारो द्वारा बालको में सहयोग तथा प्रेम भावनायें उदय होती हैं। उनमे जिज्ञासा, ग्रात्मनियन्त्रण, निरीक्षण ग्रौर बुद्धि का विकास होता है।

गुण ग्रौर दोष

ससार की प्रत्येक वस्तु मे ग्रच्छाई तथा बुराई निहित होती है। इस विधि मे जहाँ ग्रनेक ग्रच्छाई हैं वहाँ दोषा की कमी नही है। इसके प्रमुख गुण ग्रौर दोष नीचे दिए जाते हैं :—

गुण—(१) इस विधि मे खेल द्वारा शिक्षा प्रदान की जाती है। ग्रत यह छोटे बच्चो को ग्रत्यन्त रुचिकर ग्रौर लाभदायक है।

(२) इस विधि मे विविध प्रकार के बालक को ग्रात्माभिव्यक्ति का ग्रवसर प्रदान किया जाता है। इससे बालकों के ग्रान्तरिक गुणो का विकास होता है। बालको मे ग्रात्मशक्ति तथा ग्रात्म विश्वास की भावना उत्पन्न होती है।

(३) इसमें बालक के व्यक्तित्व का ध्यान रखा जाता है। शिक्षक के भय के स्थान पर बालक की रुचियो की प्रधानता है।

(४) बालको को क्रिया द्वारा ज्ञानार्जन (Learning by doing) के द्वारा व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त होता है।

(५) बालक विद्यालय से प्रेम करने लगते हैं। विद्यालय के वातावरण की सरसता उनको विद्यालय की ग्रोर बरबस खींचती है।

(६) बालकों मे एकता की भावना का भी उदय होता है।

(७) बालकों मे नैतिकता तथा सामाजिकता ग्राती है।

दोष—(१) फ्रोबेल ने शिक्षा के दार्शनिक पक्ष का ग्रति पक्ष लिया है। ग्रल्प आयु वाले बालकों की बुद्धि उन दार्शनिक सिद्धान्तों को भला क्या समझ सकती है।

(२) बालकों को स्वतन्त्रता के नाम पर व्यापारों तथा उपहारों मे बाँध दिया जाता है।

(३) फ्रोबेल के दिए गए खेल तथा गीत सभी स्थानों ग्रौर सभी समयो के लिये उचित ही हों, ऐसी बात नहीं।

(४) कुछ विद्वानों के ग्रनुसार तो उपहार बिल्कुल व्यर्थ तथा समय नष्ट करने वाले हैं। बालक बचपन मे रग ग्रौर वस्तुग्रों के रूप का ज्ञान तो पाठशाला जाने से पूर्व प्राप्त कर लेते हैं। पाठशाला मे उन्हीं का ज्ञान देना कहाँ तक उचित हो सकता है।

(५) इस विधि से शिक्षा देने मे ग्रधिक धन व्यय होता है। ग्रत: गरीब देशों के तो बिल्कुल ग्रनुपयुक्त है।

ये त्रुटियाँ सुधारी जा सकती हैं। त्रुटियों का संशोधन कर इस विधि द्वारा शिक्षा प्रदान करने से छोटे बालकों की शिक्षा में आशातीत लाभ होता है। आज संसार के भिन्न-भिन्न देशों में यह पद्धति छोटे-छोटे बालकों की शिक्षा में कुछ संशोधन करके खूब अपनाई जा रही है, जो इसकी सफलता का प्रमाण है। आशा है निकट भविष्य में प्रार्थिक रूप से सम्पन्न हो जाने पर भारत में अनेक किण्डर गार्टन पाठशालायें खुल जायेंगी।

डाल्टन प्रणाली की विशेषताएँ

Q. 8. What was the genesis of the Dalton Plan Method ? Discuss the underlying principles Would you advocate the adoption of the plan in (a) our Junior high schools, (b) Higher Secondary schools ? What precautions and modifications would you suggest ? *(A. U B. T. 1952)*

Or

Explain the principles underlying the Dalton Plan How far is it suited to Basic schools in our country ? Discuss fully *(A U. B T. 1958)*

Ans. डाल्टन प्रणाली का आविष्कार अमेरिकन कुमारी हेलन पार्कर्स्ट (Helen Parkhurst) ने किया था। इस प्रणाली को कार्य रूप में परिणत १९२० में अमेरिका के मेसेच्यूट्स राज्य के डाल्टन (Dalton) नामक नगर में किया गया। कुमारी पार्कर्स्ट ने तीस छात्रों को पढ़ाने का कार्य प्रारम्भ किया था। उन्होंने इन छात्रों को पढ़ाने में नवीन प्रणालियों का उपयोग किया। उन्होंने बालकों की व्यक्तिगत भिन्नता को ध्यान में रखकर शिक्षा को बाल प्रधान बनाया। यह योजना पाठ्य-क्रम के परिवर्तन पर बल देकर विद्यालय के संगठन के विषय में नूतन विचार प्रस्तुत करती है।

डाल्टन प्रणाली के सिद्धान्त

(१) शिक्षा में पूर्ण स्वतन्त्रता—विद्यालय में बालकों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की जाती है। बालक पर किसी भी प्रकार का बन्धन नहीं लगाया जाय। वह अपनी रुचि तथा योग्यता के अनुसार चाहे जिस गति से कार्य करे। इस प्रणाली में समय-सारणी का कोई बन्धन नहीं रहता। तीव्र बुद्धि वाला बालक काम को शीघ्रता से कर सकता है तो उसको नया काम दे दिया जाता है। मन्द बुद्धि के बालकों को और अधिक समय प्रदान कर दिया जाता है।

(२) बाल प्रधान—इस प्रणाली में बालक को महत्व प्रदान किया है। शिक्षा के समस्त आयोजन बालक की रुचि तथा योग्यताओं के आधार पर किये जाते हैं। बालक को अपने व्यक्तित्व के विकास का पूर्ण अवसर प्रदान किया जाता है।

(३) व्यक्तिगत भेदों के अनुसार शिक्षा—इस योजना के अनुसार शिक्षा में व्यक्तिगत भेदों को महत्व दिया जाना चाहिए तथा व्यक्तिगत भेदों के आधार पर बालकों को अपना विकास करने का अवसर दिया जाय। तीव्र बुद्धि बालक को उसकी योग्यता के अनुसार बढ़ने दिया जाय तथा मन्द बुद्धि बालक को अपने बौद्धिक विकास के लिये विशेष समय प्रदान किया जाय।

(४) स्व प्रयास द्वारा शिक्षा—डाल्टन प्रणाली में स्व-प्रयास द्वारा बालक ज्ञान प्राप्त करता है। अध्यापक उसके किसी भी कार्य में हस्तक्षेप नहीं करता, उसका कार्य तो केवल मार्ग प्रदर्शन का रहता है।

(५) स्वाध्याय के लिए अवसर—वर्तमान विद्यालयों का सबसे बड़ा दोष यह है कि बालक की शिक्षा को घण्टे के बन्धन में बाँध दिया है। प्रत्येक विषय के लिए एक घण्टा होता है। बालक को इस बात की स्वतन्त्रता नहीं रहती कि वह अधिक देर तक उस विषय को पढ़ सके। इस प्रणाली में इस दोष को दूर किया गया है। डाल्टन प्रणाली में बालक को स्वाध्याय के लिए पर्याप्त अवसर दिया जाता है। बालक को इस बात की स्वतन्त्रता रहती है कि वह किसी विषय का चाहे जितनी देर तक पढ़ सके।

डाल्टन प्रणाली का कार्यक्रम

(१) ठेका (Contract)—डाल्टन प्रणाली में अध्यापक को वर्ष भर के कार्य क्रम की योजना बना लेनी पड़ती है। समस्त योजना को इस वर्ष भर के बारह महीने के हिसाब से बाँट

दिया जाता है। एक मास का कार्य बालक को सौंप दिया जाता है। दूसरे शब्दों में बालक को एक मास का काम ठेके रूप में सौंप दिया जाता है।

(२) निर्दिष्ट पाठ (Assignment)—मास भर के कार्य को दिनों के अनुसार इकाइयों में विभाजित कर दिया जाता है। सप्ताह भर के कार्य-क्रम को 'निर्दिष्ट पाठ' के नाम से पुकारते हैं। मास भर के निर्दिष्ट पाठ बालकों को अध्यापक ही लिख सकता है। प्रत्येक बालक अपनी बुद्धि की तीव्रता के अनुसार कार्य करता है। यदि किसी कार्य को दस दिन में कर सकता है तो वह उसे दस में ही पूरा कर देता है परन्तु अगले मास का कार्य तब ही दिया जाता है जब कि वह पिछला कार्य पूरा कर लेता है।

(३) प्रयोगशालाएं—इस प्रणाली में कक्षाओं के स्थान पर प्रयोगशालायें शिक्षण का स्थल होती हैं। प्रत्येक विषय की प्रयोगशाला होती है। विषय की प्रयोगशाला में उस विषय से सम्बन्धित सहायक सामग्री तथा उपकरणों को रखा जाता है। बालकों को प्रयोगशालाओं में अध्ययन करने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है।

(४) अध्यापक का कार्य—इस प्रणाली में विषय-विशेषज्ञ अध्यापक रखे जाते हैं। ये अध्यापक प्रयोगशालाओं में अपने विषय के उपयुक्त वातावरण बनाते हैं तथा छात्रों को हर प्रकार की सलाह देते हैं। वे प्रत्येक बालक की व्यक्तिगत कठिनाई को समझने का प्रयत्न कर उसे दूर करते हैं।

(५) वर्ग सम्मेलन—प्रभात की वेला में विद्यालय में अध्यापक तथा छात्रों का सम्मेलन होता है। सम्मेलन के अन्दर अध्यापक छात्रों को प्रमुख सूचनायें प्रदान करते हैं। सन्ध्या समय विमर्श सभा होती है जिसमें छात्र व्यक्तिगत कठिनाइयाँ अध्यापक के सामने प्रस्तुत करते हैं। आवश्यकतानुसार उन पर विचार किया जाता है।

(६) प्रगति का लेखा—ग्राफ पेपर (Graph Paper) पर छात्रों की प्रगति अंकित की जाती है। प्रगति का एक लेखा छात्र अपने पास रखता है जिससे उसे अपने किये कार्य का पता रहता है। दूसरा लेखा प्रयोगशाला में विषय विशेषज्ञ टाँग देता है जिस में वह अपने विषय में छात्र की प्रगति का अंकन करता है। तीसरा ग्राफ सम्पूर्ण कक्षा का होता है जिसमें समस्त छात्रों के सभी विषयों की प्रगति को अंकित किया जाता है।

डाल्टन प्रणाली की उपयुक्तता

Q. 5 How would you advocate the adoption of the Dalton Plan in Junior High schools and Higher Secondary schools of India? What precautions and modifications if any would you suggest? *(Agra B. T. 1951, 52, 59)*

Ans. जिस प्रकार मान्टेसरी पद्धति की उपयोगिता कक्षा १ से लेकर ४ तक के लिये अधिक है उसी प्रकार आठ वर्ष से लेकर १२ वर्ष तक के विद्यार्थी के लिए भी डाल्टन प्लान की उपयोगिता हो सकती है। बालक अपनी रुचि, योग्यता और गति के अनुसार शिक्षा ग्रहण करता है। वह कक्षा शिक्षण के दोषों से मुक्त रहता है उसे न तो दूसरे विद्यार्थियों की तीव्र गति के कारण स्वयं जल्दी करनी पड़ती है और न मन्द बुद्धि सहपाठियों के कारण ठहरना पड़ता है।

[illegible] की अनुपस्थिति के समय पूरा हो चुका है वह फिर न रह जाते हैं। डाल्टन-विधि से [illegible] देता है और काम करके अपनी कमी को पूरा कर लेता है।

बालक को पहले से यह ज्ञान रहता है कि उसे क्या-क्या काम करने हैं। ऐसी दशा में वह अपने कार्य को पूरा करने के लिये प्रयत्नशील रहता है। यदि उसे उचित प्रोत्साहन दिया गया तो वह सुस्त नहीं रहता क्योंकि वह जानता है कि उसको निश्चित कार्य करना है। डाल्टन पद्धति में प्रत्येक विषय के पूरे वर्ष के कार्यक्रम को छोटे-छोटे भागों में बाँट दिया जाता है। इसे निर्देशित पाठ (Lesson Assignment) कहते हैं। साल भर का कार्य ठेका (Contract), महीने का कार्य (Assignment), एक सप्ताह का कार्य पीरियड, और एक दिन का काम यूनिट (unit) कहलाता है।

यह आवश्यक नहीं कि एक दिन का काम एक दिन में ही पूरा किया जाय। किन्तु यह आवश्यक देखा गया है कि ७५% छात्र निर्देशित कार्य को उचित समय के भीतर कर लिया करते हैं। शेष छात्रों को उचित प्रोत्साहन एवं सहानुभूतिपूर्ण सहायता दी जाने पर वे भी अपने निर्देशित पाठों को पूरा कर सकते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि बालक अपने उत्तरदायित्व को समझता है।

उत्तरदायित्व को निभाने के कारण उसमें आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता, स्वावलम्बन आदि गुणों का विकास होने लगता है। स्वशिक्षा और आत्मप्रयत्न से बालक को अपने कार्य में आनन्द मिलता है। शिक्षा उसके लिये भारस्वरूप प्रतीत नहीं होती। उसके सर पर परीक्षा का भूत सवार नहीं रहता।

स्वतन्त्र वातावरण, रुचि के अनुकूल कार्य, आदि बातों के होने के कारण डाल्टन पद्धति में अनुशासन की समस्या उठती ही नहीं। बालक का विश्वास किया जाता है। विश्वास की यह भावना अनुशासन स्थापित करने में बड़ी सहायक होती है। अनुशासन स्थापित करने में बालक और अध्यापक का पारस्परिक सम्पर्क विशेष सहायक होता है। पथ प्रदर्शक और मित्र के रूप में अध्यापक बालक के साथ इतना घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर लेता है कि कक्षा में विनय की समस्या उठ ही नहीं सकती।

बालक में नेतृत्व शक्ति, व्यावहारिक कुशलता और बुद्धि का विकास करने के लिये यह पद्धति विशेष सहायक सिद्ध हुई है। यदि बालक इतिहास में अधिक रुचि रखता है तो उसे इस योजना से ऐसा अवसर मिल जाता है कि वह इतिहास का गहन अध्ययन कर सके क्योंकि उसे इस विषय की सभी पाठ्य पुस्तकें, प्रमाण पुस्तक और स्रोत प्रयोगशाला में मिल जाते हैं। वह स्वयं अन्वेषण कर सकता है।

इस प्रकार डाल्टन पद्धति में कई ऐसे गुण हैं जिनके कारण उसको भारतीय विद्यालयों में लागू कर देना देश के लिए हितकर होगा। देश को स्वतन्त्र नागरिकों की आवश्यकता है, ऐसे नागरिकों की जो अपने उत्तरदायित्व को समझते हों, जो अनुशासित जीवन बिता सकते हैं और देश की भावी उन्नति के लिए महत्वपूर्ण कार्यों में नेतृत्व ग्रहण कर सकते हों। कक्षा शिक्षण से ये गुण पैदा हो सकें कठिन सा प्रतीत होता है।

कुछ विद्वान् डाल्टन प्रणाली भारत के लिए अनुपयुक्त समझते हैं। उसके देश में लागू करने से उन्हें निम्नलिखित कठिनाइयाँ मालूम पड़ती हैं—

(१) पुराने शिक्षक जो साधारण कक्षा-शिक्षण विधि के अभ्यस्त हो गये हैं वे नये प्रयोगों को अच्छी दृष्टि से नहीं देखते। कदाचित् उन्हें भ्रम है कि डाल्टन प्रणाली के लागू किए जाने पर उनकी सत्ता को आघात पहुँचेगा। वे अपने को बालक के पथ प्रदर्शक के रूप में लेने को तैयार नहीं हैं। विद्यार्थियों को स्वतन्त्रता देने से उन्हें डर है कि अनुशासनहीनता की वृद्धि ही होगी। इसलिए पुराने शिक्षक इसे कार्य रूप में परिणत करने को तैयार नहीं हैं।

(२) कुछ लोगों को डर है कि बालक को जितना उत्तरदायित्व सौंपा जायगा वह उस उत्तरदायित्व को पूर्ण तरह से निभा नहीं सकेगा। सामान्यतः कुछ ऐसे बालक अवश्य कक्षा में मिलेंगे जिनमें उत्तरदायित्व को निभाने की शक्ति अंशमात्र भी न हो। यदि उचित प्रोत्साहन और सहानुभूतिपूर्ण प्रेरणा देने पर भी कुछ बालक अपने कार्य को न कर सकें तो उन्हें दूसरे स्कूलों में भेजा जा सकता है। ऐसा भी हो सकता है कि छात्र अपने निर्देशित पाठ (Lesson Assignment) को निश्चित समय में नहीं कर पाते। वे काम तो धीरे-धीरे करते हैं परन्तु करते पक्की तरह से हैं। निर्देशित पाठ को निश्चित समय में यदि बालक नहीं करता तो शिक्षकों को यह भी देखना होगा कि पाठ का अध्ययन किस प्रकार किया गया है।

(३) नये प्रयोगों को घृणा की दृष्टि से देखने वाले कुछ शिक्षकों का कहना है कि बालकों को पूर्ण स्वतन्त्रता देने से [illegible]
और भ्रष्टाचार से परिपूर्ण [illegible]
एवं सिद्धान्तों का प्रयोग [illegible]
बालकों में आ ही नहीं सकता।

(४) यदि यह पद्धति देश के स्कूलो मे चालू कर दी जाय तो खर्च ग्रधिक होगा क्योकि इस पद्धति के ग्रनुसार प्रत्येक विषय के लिये एक प्रयोगशाला, विषय विशेषज्ञ, उपयुक्त पुस्तकें, ग्रावश्यक शिक्षण यत्रों का ग्रायोजन करना होगा। ग्रभी देश मे बहुत से विद्यालय ग्रपने को धूप ग्रौर बरसात से बचाने मे ही ग्रसमर्थ हैं तब प्रयोगशालाग्रो के लिये बडी-बडी इमारतें कैसे बना सकते हैं। जो देश समृद्धिशाली है वे तो इस पद्धति का व्यय उठा सकते हैं किन्तु भारत जैसे निर्धन देश मे सभी सामग्रियो का इकट्ठा करना कठिन हो जायगा। यह बात ग्रवश्य ठीक है कि जब तक विद्यालय इस प्रकार की सभी सामग्री न जुटा लें तब तक कक्षा शिक्षण को तिलाजली न दें क्योकि ग्रावश्यक सामग्री के ग्रभाव से यह योजना सफल तो हो सकेगी। किन्तु जिन विद्यालयो मे विशेषज्ञ ग्रौर उचित सामग्री जुटाने की ग्रार्थिक दृष्टि से सुविधा है उनमे यह पद्धति लागू की जा सकती है।

(५) जिन विद्यालयो मे छात्रों की सख्या कम रखी जाती है वहाँ पर भी उपरलिखित ग्रवस्था मे यह पद्धति चालू की जा सकती है। किन्तु इस समय देश के निम्न तथा उच्च माध्यमिक विद्यालयों मे बालको की सख्या की तीव्र वृद्धि के कारण यह प्रयोग ग्रसम्भव सा प्रतीत होता है। यदि कक्षा मे तीस से लेकर ५० तक विद्यार्थी हैं तो उनकी ग्रोर वैयक्तिक रूप से ध्यान भी तो नही दिया जा सकता। प्रत्येक विद्यार्थी की रुचि ग्रौर प्रगति का विचार करना ग्रधिक दूर की बात मालूम पडती है। डाल्टन पद्धति मे सालाना तरक्की के सम्बन्ध मे बडे-बड़े नियमो का पालन किया जाता है। भारतीय ग्रभिभावक ग्रभी उसके लिये तैयार नही है। वे तो ग्रपने बालको को हर साल ग्रागे की कक्षा मे देखना चाहते हैं। इस प्रकार ग्रभिभावकों से सहानुभूति न मिलने के कारण देश मे डाल्टन पद्धति को सफलता मिलना कठिन है।

(६) रुचि ग्रौर प्रगति का विचार करना ग्रधिक दूर की बात मालूम पडती है।

(७) इस पद्धति मे प्रयोग की जाने वाली पुस्तको का भी निर्माण करना होगा जब तक ये सब सुविधाएँ पैदा न हो जायें तब तक डाल्टन योजना लागू करना बुद्धिमानी का काम न होगा।

ऊपर दी गई कठिनाइयों के ग्रतिरिक्त कुछ ऐसे दोष भी इस पद्धति मे हैं जिनके कारण इसको ग्रपनाने मे हिचकिचाहट होती है।

(ग्र) इस पद्धति मे लिखने का काम ग्रधिक रहता है ग्रौर बोलने का कम। बालको को मौखिक काय के लिये ग्रभ्यास नही मिलता जिसका बालक के विकास मे विशेष महत्व रहता है।

(ब) कभी-कभी ग्रपना उत्तरदायित्व ग्रनुभव न करने वाले विद्यार्थी दूसरो की नकल करके निर्देशित पाठ को पूरा कर लिया करते हैं। इससे मानसिक ग्रौर चारित्रिक ग्रवगुण उनमे ग्रा सकते हैं।

(स) बालकों के विषय विशेषज्ञों के ग्रधीन काम करने के कारण शिक्षा मे समन्वय ग्रौर ग्रानुबन्ध शिक्षा का सिद्धान्त लागू नहीं किया जा सकता। बहुत से कार्य जो प्रयोगशाला मे नहीं माने जा सकते वे उपेक्षा की दृष्टि से देखे जाते हैं। इन कार्यों के बिना सामूहिकता की भावना का उदय नही हो सकता।

डाल्टन प्रणाली मे इन दोषो ग्रौर कमियो के होने के कारण उसको ज्यो की त्यो ग्रपनाना ठीक नहीं मालूम पडता। किन्तु उसे परिवर्तित रूप मे ग्रपनाने का प्रयास किया जा *सकता है। स्थान तथा देश की ग्रावश्यकताग्रों को ध्यान मे रखकर परिवर्तन ग्रौर सशोधन किये* जा सकते हैं। कुछ विद्यालयों मे यह पद्धति ग्रांशिक रूप से ग्रहण की जा सकती है जहाँ धन की विशेष कठिनाई नहीं है। हम ग्रपने यहाँ के स्कूलों मे वैयक्तिक ग्रौर सामूहिक दोनो प्रकार के शिक्षण का प्रबन्ध कर सकते हैं। भाषा, गणित, सगीत ग्रादि विषयों मे डाल्टन पद्धति का ग्रनुकरण किया जा सकता है। इस प्रकार की शिक्षा मे न तो हमें धन की ग्रधिक ग्रावश्यकता होगी ग्रौर न ग्रधिक पुस्तकों ग्रौर यन्त्रों की व्यवस्था ही करनी पड़ेगी।

यदि हम स्वशिक्षा ग्रौर स्वतन्त्रता को महत्वपूर्ण मानने को तैयार हैं यदि हम बालक को उसका स्थान देकर उसकी योग्यता के ग्रनुसार शिक्षा देना स्वीकार करते हैं, तो हम डाल्टन पद्धति के उत्तम गुणों को ग्रपनाना पड़ेगा।

बेसिक शिक्षा प्रणाली

Q. 9. It is claimed that Basic Education has all the characteristics of good education. Is it a fact ? Support your answer with detail ? *(L. T 1957)*

Discuss some of the main principles of Wardha Scheme of Education and say how far it has influenced the technique of Primary Education

(L. T. 1955)

Ans. सन् १९३७ मे गाधी जी के नेतृत्व में वार्धा मे जिस शिक्षा सम्मेलन का आयोजन किया गया था उसमे निम्नलिखिति प्रस्ताव रखे गये थे —

(१) प्रत्येक बालक को सात वर्ष तक नि:शुल्क और अनिवार्य शिक्षण की व्यवस्था की जाय।

(२) शिक्षा का माध्यम मातृ-भाषा हो।

(३) किसी उत्पादक हस्तकला को केन्द्र मानकर शिक्षा दी जाय।

(४) शिक्षा स्वावलम्बी हो। इन प्रस्तावों को क्रियान्वित करने और शिक्षा की नई योजना बनाने के लिये शिक्षा का स्वरूप निश्चित किया गया। जनता की इस कमेटी की बैठकें वार्धा मे हुई। उनके फलस्वरूप शिक्षा का रूप निर्धारित किया गया था।

बेसिक शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्त

(१) सप्तवर्षीय नि:शुल्क अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा—भारत जैसे निर्धन देश की जनता अपने बालक और बालिकाओ की शिक्षा पर धन व्यय नहीं कर सकती इसलिये देश के प्रत्येक बालक और बालिका के लिये शिक्षा देने के लिये शिक्षा की योजना ऐसी होनी चाहिये कि शिक्षा सार्वजनिक होने के साथ-साथ नि:शुल्क भी हो। यदि ऐसा नहीं होता तो लोकतन्त्रवाद के युग मे भयावह स्थिति पैदा हो सकती है क्योंकि नागरिको के अशिक्षित बने रहने पर देश के शासन का उत्तरदायित्व कौन सँभालेगा। दूसरे लोकतन्त्रात्मक राज्यो मे प्रत्येक बालक को शिक्षा का अधिकार रहता है। यदि भारत अपने भावी नागरिको को इस अधिकार से वंचित रखता है तो वह उनके प्रति अन्याय करेगा। इन दोनो कारणों से राष्ट्र के कर्णधारो ने १४ वर्ष तक के बालकों की शिक्षा को अनिवार्य और नि:शुल्क करने के लिये बेसिक शिक्षा या वार्धा योजना की नींव डाली। बेसिक शिक्षा के इस प्रथम मूल सिद्धान्त को सभी शिक्षा शास्त्रियों ने समर्थन किया और देश की प्रगति के लिये अत्यन्त आवश्यक और महत्वपूर्ण बतलाया। इस सिद्धान्त के अनुसार कुछ राज्यों ने शिक्षा को अनिवार्य कर दिया है। जहाँ तक बालिकाओ का सम्बन्ध है उनके अभिभावक २ वर्ष की आयु के बाद उन्हें पाठशालाओं से हटा सकते हैं।

(२) मातृ भाषा द्वारा शिक्षा—संसार के सभी देशो मे मातृ भाषा द्वारा शिक्षा देने का प्रबन्ध किया जाता है। बालक जन्म से ही *मातृभाषा* बोलना सीखता है और *मातृभाषा द्वारा* अपने विचारो को सरलता से व्यक्त कर सकता है। इसलिये मातृभाषा द्वारा शिक्षा देने से उसकी शिक्षा की प्रगति तीव्र हो सकती है। विदेशी भाषा के द्वारा शिक्षा देने मे उसे कठिनाई हो सकती है। उसका काफी समय विदेशी भाषा को सीखने मे लगता है। अपनी संस्कृति और आदर्शों को जानने का अवसर ही नहीं मिल पाता। विदेशी भाषा के माध्यम से वह जो कुछ सीखता है वह भूल जाता है। यह भी सम्भव है कि उसके माध्यम से शिक्षा प्राप्त होने पर बालक के मानसिक विकास के स्थान पर मानसिक दासता का सृजन हो जाय। इन सब कारणो से मातृ भाषा द्वारा शिक्षा देना ही उत्तम प्रतीत होता है। इसलिए बेसिक शिक्षा मे मातृभाषा द्वारा शिक्षा देने की व्यवस्था की गई है। वार्धा योजना का यही महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। आशा की जाती है कि देश को एकता के सूत्र मे बाँधने के लिए तथा देश की भाषा एवं संस्कृति के विकास करने के लिए मातृभाषा के माध्यम से ही शिक्षा देनी होगी।

(३) शिक्षा स्वावलम्बी हो—बेसिक शिक्षा के इस सिद्धान्त से दो अर्थ निकाले जाते हैं—

(१) बालक अपनी शिक्षा समाप्त कर स्वावलम्बी बने।

(२) शिक्षा स्वयं स्वावलम्बी हो।

Ans. सन् १९३७ मे महात्मा गांधी के नेतृत्व मे वार्धा मे जो शिक्षा सम्मेलन हुआ उसमे भाग लेने वाले सभी शिक्षा मंत्रियो, शिक्षा विशेषज्ञो तथा विचारको ने किसी उत्पादक हस्तकला (Productive Handicraft) को केन्द्र मानकर शिक्षा देने तथा पाठ्यक्रम के सभी विषयो को हस्तकला से सबंधित करके पढाने पर जोर दिया। बेसिक शिक्षा के सिद्धातो मे किसी हस्तकला, कार्य, व्यवसाय अथवा उद्योग द्वारा शिक्षा देना एक महत्वपूर्ण सिद्धात माना गया। इस सिद्धात मे करके सीखने (learning by doing) और क्रिया द्वारा सीखने (learning through activity) ये दो सिद्धान्त-निहित माने गये हैं।

इस शिक्षा का आधार पूर्ण मनोवैज्ञानिक है। चूँकि बच्चे विषयो की अपेक्षा क्रियाओ मे रुचि लेते हैं इसलिये यह शिक्षा क्रिया केन्द्रित है और जब उस क्रिया का चुनाव बालको के वातावरण से किया जाता है तब वह क्रिया उनकी वैयक्तिक विभिन्नता और भिन्नात्मक रुचियो के ... ा है तो यह आशा की ... सीखता है इसलिए

पाठ्यक्रम के समस्त विषय किसी हस्तकला के चारो ओर केन्द्रित करके पढाये जाने का उद्देश्य मानसिक विकास के लिए हस्तकला का सहयोग प्राप्त करना है। यह हस्तकला किसी अतिरिक्त विषय के रूप में पढाई नही जाती वरन् एक केन्द्रित तत्व के रूप मे मानी जाती है और इसी पर सम्पूर्ण पाठ्यक्रम आधारित किया जाता है। हस्तकला को शिक्षा मे स्थान देने का प्रयोजन उस का शिक्षा कार्य के लिए उपयोग करना मात्र है उसमें कुशलता प्राप्त करना बेसिक शिक्षा का लक्ष्य नहीं है। उसको इस प्रकार वैज्ञानिक एव शास्त्रीय ढग से देना है कि बालक का बौद्धिक विकास हो। बालक अपने हाथ और बुद्धि के प्रयोग से ज्ञान प्राप्त कर सके। हाथ और बुद्धि की शिक्षा साथ साथ चल सके। हाथ के कार्य द्वारा कुछ उपयोगी उद्योग सीखने और शिक्षा प्राप्ति के उपरात वह उसी कार्य से अपनी जीविका पैदा करके आत्मनिर्भर हो जाय। यही बेसिक शिक्षा के लक्ष्य हैं।

आधारभूत कौशलो, कृषि, बढईगीरी, कातना, बुनना, चर्मकारी, उद्योगकला, कुम्भकारी, मछली पालना आदि मे से किसी कार्य को चुना जा सकता है किन्तु यह कार्य ऐसा होना चाहिये जो उस जनता के लिये उपयुक्त हो जिसकी सेवा के लिये विद्यालय की स्थापना की गई है।

हस्तकला अथवा कौशल का निर्वाचन बालक के प्राकृतिक तथा सामाजिक वातावरण के अनुकूल होना चाहिये। उसके स्थानीय वातावरण मे जिस कार्य, उद्योग अथवा व्यवसाय को प्रधानता दी जा रही हो उसी को केन्द्रीय विषय के रूप मे स्वीकार किया जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि उसी हस्तकला को चुना जाय जो शिक्षण का साधन बनने योग्य हो, जिसका शिक्षात्मक मूल्य अधिक हो, जो स्थानीय परिस्थितियो और वातावरण के अनुकूल होने के कारण केन्द्रीय कला के रूप में स्वीकार की जा सकती हो।

सभी शिक्षा विशारद इस बात को स्वीकार करते हैं कि बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास बौद्धिक शिक्षा के द्वारा नही हो सकता। क्रियात्मक विधियो के द्वारा शिक्षा दिये जाने पर ही बालको का व्यक्तित्व विकसित होता है। शिक्षा को शारीरिक, मानसिक, आत्मिक, बौद्धिक, अनुभवात्मक एव क्रियात्मक आदि सभी पहलुओ का विकास माना जाता है। हस्तकला केन्द्रित शिक्षा व्यक्तित्व के इन सभी पहलुओ को ध्यान मे रखकर चलती है। इसके माध्यम से बालक अपनी रचनात्मक प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति करता है जिसके फलस्वरूप एक योग्य और कुशल नागरिक बन सकता है। शिक्षा ग्रहण करने के साथ-साथ किसी कला मे निपुणता प्राप्त करके आत्मनिर्भर हो सकता है। सामूहिक रूप में परस्पर सहयोग के साथ हस्तकार्य करने के कारण जाति-पाँति और भेद-भाव की भावनाओ का शिकार नहीं होता, श्रम के प्रति आदर का भाव उत्पन्न होकर उसमे श्रमजीवियो के प्रति सम्मान और आदर भाव पैदा हो जाता है।

ज्ञान अपने स्वरूप मे अखण्ड है। समस्त विषयों को क्रियाकेन्द्रित बनाकर इस शिक्षा ने ... क्रम के विभिन्न ... कार की सम- ... केन्द्र माना ... है। बालक के प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण मे मुख्य स्थान हो। इस केन्द्रीभूत

कौशल से शिक्षा के विभिन्न विषय एक दूसरे के साथ तथा बालक के जीवन से सम्बन्धित हो जाते हैं। इस प्रकार बेसिक शिक्षा पूर्णत: समन्वित शिक्षा है क्योंकि बालक विभिन्न विषयों का ज्ञान अलग-अलग करके प्राप्त नहीं करता। उसका ज्ञान जीवन के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित हो जाता है। परिणामत: शिक्षा एकांगी न होकर वास्तविक तथा व्यावहारिक हो जाती है।

किसी हस्तकला को केन्द्र मानकर शिक्षा देने के सिद्धान्त की तीव्र आलोचना की गई है। कुछ विद्वानों का विचार है कि जबरदस्ती हस्तकला को बालकों के ऊपर लादकर क्रियाशीलता के नाम पर उसकी रुचि और स्वतन्त्रता का दमन किया जाता है। बालक की रुचि आरम्भ में इतनी विकसित नहीं होती कि वह कला को अपनी रुचि के अनुसार चुन सके। अत: उसके ऊपर कोई न कोई उद्योग लाद दिया जाता है जिसको वह आगे चलकर छोड़ भी नहीं सकता। इस प्रकार बेसिक शिक्षा बाल-केन्द्रित न होकर हस्तकार्य केन्द्रित हो गई है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी यह सर्वथा अनुचित है। आलोचकों का कहने का यह अभिप्राय है कि बालकों में रुचि विभिन्नता किशोरावस्था में उत्पन्न होती है अत: उसे किस प्रकार अपना जीविकोपार्जन करना है इसके निर्णय का भार उस पर इसी आयु में डालना चाहिये, उससे पहले नहीं। वस्तुत: बालक आरम्भ से ही अपने चुनाव जैसी कोई बात नहीं करता, वह तो जो कुछ उसके माता पिता करते हैं वही करता है। बेसिक शिक्षा बालक का सम्बन्ध घर से निरन्तर बनाये रखती है। यदि उसको पितृ-परम्परा से प्राप्त कौशल का ही अध्ययन करना पड़ता है तो हानि भी कुछ नहीं है। जो जो क्रियायें उनके वातावरण से ली जायेंगी उनके प्रति उनकी रुचि का होना स्वाभाविक है।

इस हस्तकला के सीख लेने पर जिसको शिक्षक उत्पादक मानकर चलता है क्या बालक आत्मनिर्भर बन सकेंगे? यह प्रश्न अत्यन्त ही महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। यदि इस कौशल के सीखने के बाद भी छात्र स्वावलम्बी नहीं बनते तो किसी कौशल के माध्यम से शिक्षा देना ही व्यर्थ है। शिक्षा को आत्मनिर्भर बनाने का विचार अव्यावहारिक एवं अनेक खतरों से भरा हुआ है। अव्यावहारिक इसलिए है कि विद्यार्थी जिन वस्तुओं का उत्पादन करते हैं वे उतनी अच्छी नहीं होतीं जितनी कि दक्ष कारीगरों द्वारा बनाई गई वस्तुएँ हुआ करती हैं। उनके उत्पादन में जितना धन व्यय होता है उन वस्तुओं को बेचकर उतना भी धन कमाया नहीं जा सकता। बहुत सी सामग्री कौशल को सीखने में नष्ट हो जाती है इसलिये बचत की कोई सम्भावना नहीं रहती। इसलिये यह आशा करना कि बुनियादी शिक्षा जिसे किसी उत्पादक कौशल के चारों ओर केन्द्रित मान कर दिया जाता है स्वावलम्बी हो सकेगी बिल्कुल कल्पना की वस्तु है। इस विषय में खतरे भी बहुत हैं। शिक्षा का सांस्कृतिक मूल्य नष्ट हो जायगा क्योंकि उत्पादन कार्यों पर अधिक बल देने से सांस्कृतिक और कलात्मक क्रियाओं को उपेक्षा की दृष्टि से देखा जायगा और हुआ भी ऐसा ही है। बेसिक विद्यालयों के शिक्षक तकली, चर्खा, हल एवं राष्ट्र भाषा में ही लगे दिखाई देते हैं। उनका ध्यान शायद ही कभी कलात्मक वस्तुओं की ओर जाता है। नीले आकाश, विमल प्रवाहिनी धाराओं, चमकते हुए सूर्य, कमलाच्छादित सरोवरों, रंग बिरंगे पर्णों से सजी हुई चिड़ियों से भरी हुई प्रकृति की ओर उनका ध्यान कदाचित ही जाता है। यदि कौशल की उत्पादकता पर थोड़ा बहुत भी ध्यान दिया जाता है तो शिक्षा का सांस्कृतिक मूल्य तो नष्ट हुआ समझना चाहिये क्योंकि उस दशा में योजना के आर्थिक पक्ष पर अधिक बल दिया जायगा। वह शिक्षा जिसमें बालक को अनुभव किए जाते हैं खेल न होकर भारस्वरूप हो जायगी। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी यह बात अनुचित ही होगी।

सम्पूर्ण शिक्षा को कौशल केन्द्रित करके व्यावसायिक और बौद्धिक शिक्षा का सन्तुलन नष्ट हो सकता है। दोनों का अर्न्तसम्बन्ध न तो पूरी तरह से विकसित ही हो पायेगा और न विभिन्न विषयों के अध्ययन में जो स्वाभाविक उत्साह और हृदय की जिज्ञासा स्वयं उत्पन्न हो जाती है पनप सकेगी। शिक्षा को कौशल-केन्द्रित करके [illegible] अनुभवी बढ़इयों, कुम्हारों, जुलाहों और चमारों के स्थान पर [illegible] बढ़ई, जुलाहे, कुम्हार और चमार पैदा हो सकेंगे।

यह [illegible] हस्तकौशल केन्द्रित [illegible] आधुनिक [illegible], वर्तमान युग के [illegible] जा रही है। [illegible]

क्या बेसिक शिक्षा में उन सभी आधारभूत कौशलों का समावेश किया जा सकता है ? क्या सभी कौशलों के लिये पृथक-पृथक अध्यापक और सामग्रियाँ नहीं जुटानी पड़ेंगी ?

इस योजना में न तो शारीरिक व्यायाम ही और न स्वास्थ्य को ही ध्यान में रखा गया है। यदि आधारभूत कौशल पर ही छात्र का ध्यान अधिक रहता है तो उसका दृष्टिकोण संकुचित हो सकता है क्योंकि वह स्वाध्याय करने के अवसर न मिलने पर अन्य पुस्तकों अथवा पत्र पत्रिकाओं को पढ़ेगा ही क्यों। डर इस बात का भी है कि अन्य प्रणालियों से पढ़ाये हुए एक ही आयु स्तर के बालकों में योग्यता विषयक विशेष अन्तर पैदा हो जायगा।

बेसिक शिक्षा में दोष होते हुए भी किसी हस्तकौशल को, शिक्षा का केन्द्र बना देने की बात तो उत्तम प्रतीत होती है। क्रिया द्वारा शिक्षा देना, मेल द्वारा शिक्षा देना और समन्वय के सिद्धान्त स्पष्ट दिखाई देते हैं। बालक और उसके वातावरण के महत्व को भी स्वीकार किया गया है। [illegible] हो और उसे प्राप्त [illegible] य ही यह शिक्षा कम [illegible] बागवानी, खेती, कताई, बुनाई के साधन सरलता से जुटाये जा सकते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि यह शिक्षा उत्तम सिद्धान्तों पर आधारित है। गुण और दोष सभी शिक्षण पद्धतियों में होते हैं। किन्तु सोचना हमें यह है कि अपने देश की वर्तमान परिस्थिति को देखकर इसमें गुण अधिक हैं या कम। यदि गुण अधिक हैं तो उसे ही सफल बनाने की चेष्टा करनी होगी और दोषों को दूर करना होगा। जैसे-जैसे यह योजना कार्यान्वित होती जा रही है वैसे-वैसे सभी दृष्टियों से इसमें परिष्कार किया जा रहा है। उदाहरण के लिये उत्तर प्रदेश की सरकार ने कृषि को बेसिक शिक्षा का मूल उद्योग मानकर ग्रामीण स्कूलों एवं जनता के बीच पारस्परिक सम्बन्ध को दृढ़ बना दिया है। अब गाँवों के सभी प्रारम्भिक और पूर्व माध्यमिक स्कूलों में उन्नत कृषि की शिक्षा दी जा रही है और साथ ही साथ स्थानीय उद्योगों में शिक्षा देने का प्रबन्ध भी किया गया है।

बेसिक शिक्षा में सहसम्बन्ध

Q. 11 Correlation of subjects in well designed curriculum with a single craft is impossible, and is far-fetched even with a plurality of crafts Craft should be just additional subject in the curriculum

State and substantiate your attitude to the above mentioned view.

(*Agra B. T. 1956*)

Ans विभिन्न विषयों के साथ केन्द्रवर्ती कौशल का समुचित सह-सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता। विभिन्न विषयों में सह-सम्बन्ध स्थापित करने के लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक विषय की जानकारी अथवा क्रिया दूसरे विषय की जानकारी अथवा क्रिया का आधार बन सके। यह तभी हो सकता है जब विभिन्न विषयों की जानकारी तथा क्रियाओं के चुनाव का आधार बालक का मानसिक विकास बनाया जाय। किन्तु कौशल केन्द्रित पाठ्यक्रम में उन कौशलों अथवा क्रियाओं को चुना जाता है जिनका आधार क्रियाओं की आवश्यकता होती है। बालक का मानसिक आधार कैसा है इस ओर ध्यान नहीं दिया जाता। अतः जब कभी कौशल केन्द्रित पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाता है तब विषयों में स्तरगत विषमता पैदा हो जाती है और सहसम्बन्ध नष्ट हो जाया करता है। यदि किसी तरह से कौशल केन्द्रित पाठ्यक्रम में सहसम्बन्ध स्थापित हो जाता है तो बालक का भौतिक और सामाजिक सहसम्बन्ध गड़बड़ी में पड़ जाता है।

बुनियादी शिक्षा में प्रायः हस्तकला को शिक्षा का केन्द्र मानकर उसके चारों ओर विभिन्न विषयों को केन्द्रित कर बालक को उनका ज्ञान देने की व्यवस्था की जाती है। सैद्धान्तिक रूप से तो यह उचित मालूम पड़ता है परन्तु व्यावहारिक रूप से ऐसे उद्योगों अथवा हस्तकौशलों का अभाव रहता है जिनके चारों ओर विभिन्न विषय केन्द्रित किये जा सकें।

बेसिक शिक्षा योजना में समन्वय की व्यवस्था अव्यावहारिक, अस्वाभाविक तथा अमनोवैज्ञानिक मालूम पड़ती है। विषयों को खींचतान कर हस्तकला से सम्बन्धित किया जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि समन्वय पूर्णरूपेण सफल नहीं हो सका है और पाठ्यक्रम की बहुत सी बातें छूट जाती हैं।

अध्याय १३

शिक्षा और समाज

(Education and Society)

समाज क्या है ?

Q 1. What do you mean by the term community or society ?

Ans **समाज की प्रकृति**—भारतीय समाज की प्रकृति का अध्ययन करने से पूर्व हमें यह जानना जरूरी है कि समाज क्या है ? समाज का पर्यायवाची शब्द है समुदाय। समुदाय अंग्रेजी के कम्यूनिटी शब्द का रूपान्तर है जिसका अर्थ है एक साथ सेवा करना। इस दृष्टि से जब कोई व्यक्ति समूह निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए किसी भू भाग में निवास करता है तो वह समूह, समाज या समुदाय कहलाता है। इस समूह में हम की भावना (We feeling) का प्राचुर्य होता है। "समुदाय या समाज का निर्माण करने के लिये जिन-जिन वस्तुओं की आवश्यकता होती है वे हैं उद्देश्य, विश्वास, आकांक्षाएँ, ज्ञान, एक सामूहिक बोध, एवं समझौता जिसे समाज शास्त्री सामाजिक ज्ञान की शिक्षा देते हैं।"[1] ऐसी वस्तुएँ ईंट आदि भौतिक वस्तुओं की भाँति एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक बाह्य रूप से नहीं पहुँच पाती। जिस संक्रमण की विधि से व्यक्ति एक सामूहिक बोध अथवा समझौते के सहगामी बनते हैं उसी के माध्यम से समान भावनागत एवं बौद्धिक मनोवृत्तियों की भी उपलब्धि होती है।

इस समाज अथवा समुदाय की संरचना के महत्वपूर्ण तत्व हैं उसके प्राकृतिक साधन, मानवीय साधन और मानव निर्मित साधन, मैकाइवर भी समुदाय के लिए रीतिरिवाज, परम्परा, रुचि और हितों की सम्पन्नता पर जोर देता है। यह वह प्राथमिक समूह है जिसकी आवश्यकताएँ और आकांक्षाएँ समान होती हैं।[2]

सामान्य तौर से इस समाज का वर्गीकरण निम्न प्रकार से होता है :—

(१) आकार की दृष्टि से (size)
(२) कार्य की दृष्टि से (function)
(३) सामाजिक जीवन की समीपता की दृष्टि से (Intimacy of social life)
(४) स्थान (locus) की दृष्टि से

आकार की दृष्टि से समाज सात तरह का होता है—देहात, झोपड़ियाँ, गाँव, कस्बा, छोटा नगर, मध्यम नगर, राजधानी। कार्य की दृष्टि से समाज कई उपवर्गों में बाँटा जा सकता है जैसे कृषक और अकृषक, खाद खोदने वाले, बढ़ई, चमार, सुनार आदि। सामाजिक समीपता की

1. "Men live in a community by virtue of things which have in common in order to form a community or society are aims, beliefs, aspirations, knowledge, a common understanding."
—Dewey *Democracy and Education*

2.

दृष्टि से मजदूर और मिल मालिक, जमींदार और किसान, आदि वर्गों में विभाजित किया जाता है।

समाज का वर्गीकरण जातियों, पेशा, धार्मिक आदर्शों के अनुसार भी होता है।

समाज प्रायः दो प्रकार का होता है उपसमाज (sub-community) जैसे ग्राम-पड़ोस और विशिष्ट समाज (super-community) जैसे विश्व के विभिन्न राष्ट्र।

समाज की जितनी भी परिभाषाएँ अब तक प्रस्तुत की गई हैं उन सभी में भौगोलिक और मनोवैज्ञानिक घटकों, धार्मिक क्रियाओं, और इकाई के रूप में कार्य करने की क्षमता पर जोर दिया गया है। बहुत से लेखक समाज को भौगोलिक सीमाओं के भीतर बाँधने की चेष्टा नहीं करते। उदाहरण के लिए बोगार्डस ने (Bogardus) ने विश्व समाज की भी चर्चा की है। लेकिन उसने समाज को भौगोलिक सीमाओं से युक्त इकाई माना है।[1] वह समाज में, निम्नांकित ७ तत्वों को प्रधानता देता है —

(१) व्यक्तियों का समूह (A population Aggregate)
(२) सीमित क्षेत्र (Delimitable Area)
(३) सामाजिक सम्पत्ति (Sharing a historical heritage)
(४) सेवारत संस्थाएँ (Service institutions)
(५) सहजीवन में भाग लेना (Participation in common life)
(६) स्थानीय एकता की चेतना (conciousness of local unity)
(७) सामाजिक समस्याओं के निदान के लिए साथ-साथ कार्य करने की क्षमता का अस्तित्व (Ability to act together)

दूसरे शब्दों में, समाज जैसी कोई पूर्णत्व प्राप्त इकाई (unity) नहीं है क्योंकि संकीर्ण अर्थ में विभिन्न समुदाय या समाज एक दूसरे का अतिक्रमण करते रहते हैं। लेकिन व्यापक अर्थ में समाज या समुदाय स्थानगत प्रत्यय नहीं है। उदाहरण के लिये 'भारतीय समाज' एक व्यापक प्रत्यय है क्योंकि यदि इस समाज का परिचय प्राप्त करना है तो सम्पूर्ण भारत राष्ट्र को पहचानना होगा। भारत की समग्र संस्कृति की जानकारी हासिल करनी होगी। उसके राष्ट्रीय इतिहास का अध्ययन करना होगा, उसके व्यापक आदर्शों, परम्पराओं, रीति रिवाजों को जानना होगा, भारतीय जनता से समग्र भेंट करनी होगी; आदि कार्यों द्वारा ही भारतीय जन-जीवन की झाँकी मिल सकती और पता चल सकता है कि भारतीय समाज की प्रकृति कैसी है।

विद्यालय की प्रकृति—विद्यालय एक प्रकार का विशिष्ट वातावरण है जिसका निर्माण समाज अपने सदस्यों के मानसिक एवं नैतिक संस्कारों को प्रभावित करने के लिए करता रहता है। जब समाज इतना जटिल और विषम हो जाता है कि उसके रीति रिवाज, परम्पराएँ और आदर्श लिखित रूप धारण करने लगते हैं। जब वह अपनी सीमाओं तथा वर्तमान से परे भी बातों पर निर्भर रहने लगता है, तब समाज को एक विशिष्ट वातावरण उत्पन्न करने की आवश्यकता पड़ती है। यह विशिष्ट वातावरण नवीन पीढ़ी की विभिन्न शक्तियों का पोषण करता है, बालक संस्कारों को शुद्ध एवं सुगठित बनाता है; एवं सामाजिक रीति रिवाजों को परिष्कृत करके उन्नत रूप प्रदान करता है।

समाज और विद्यालय का पारस्परिक सम्बन्ध

"समाज के [illegible] के लिये शिक्षा एवं उसके द्वारा ज्ञान प्राप्त करने व सीखने की आवश्यकता इतनी स्पष्ट है कि ऐसा लगता है कि मानो हम स्वयं सिद्ध बात को ही प्रस्तुत [illegible] रहे हों।" डीवी के इस कथन से [illegible] है। [illegible]

1. "A community is an organised way of life within a geographical area. It is in more detail a population aggregate inhabiting a delimitable area sharing a historical heritage possessing a set of basic service institutions, participating in a common life, conscious of local unity and able to act together in solving problems which involve the public's interest." —Cook & Cook : *A Sociological Approach to Education*

अस्तित्व को अटूट और अविच्छिन्न बनाये रखने के लिए समाज विभाजनकारी प्रयोग और
के माध्यम की स्थापना करता है। यह ऐसी क्रियाओं को महत्व देता है जो समाज के सद
शैक्षणिक मानी जाती हैं। समाज उसको प्रभावित करता है और उसके द्वारा प्रभावित है

भारतीय समाज का ढाँचा

Q 2 Discuss the nature of Indian Society Prepare a classificat Indian Society according to size, caste, occupation and social class

Ans. भारतीय समाज मूलतः ग्रामीण है। समय और परिस्थिति के अनुसार उसमें भिन्न वर्गों का उदय हुआ है। जाति, धर्म, पेशे और वर्ग की भिन्नता तो इस समाज में भी उत्पन्न हुई है। इस समय ग्रामीण समाज दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :—

(अ) कृषक वर्ग
(आ) अकृषक वर्ग

वे ग्रामीण जो नगर के बाहर खेती अथवा ग्रामों में निवास करते हुए कृषि का करते हैं अथवा ग्रामीण संस्कृति से शासित होते हैं कृषक वर्ग के सदस्य माने जा सकते हैं। इसके रीत वे ग्रामीण जो नगर के बाहर रहकर कृषि सम्बन्धी कार्य नहीं करते यद्यपि ग्रामीण सम पालित और पोषित रहते हैं। अकृषक वर्ग के सदस्य माने जा सकते हैं। व्यवसाय के अनुसार समाज का विभाजन नहीं किया जा सकता है। क्योंकि कृषि ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था से इतना सम्बन्ध है कि जो कृषक नहीं है वह ग्रामीण भी नहीं माना जाता। कृषि के अन्तर्गत अनेक साय सम्मिलित किये जा सकते हैं।

भारत में यद्यपि नगरीय और ग्रामीण संस्कृति के बीच कोई रेखा नहीं खींची जा क्योंकि दोनों प्रकार की संस्कृतियों में अनेक तत्वों का मिश्रण है अतः शुद्ध ग्रामीण और शु रीय संस्कृति का मिलना असम्भव सा है। फिर भी ग्रामीण और नगरीय समाज में भिन्नता भिन्नताएँ निम्न प्रकार की हैं :

(१) ग्राम में संयुक्त परिवार होते हैं नगरों में एकाकी परिवारों की प्रधानत ग्रामीण परिवार का नियन्त्रण अत्यन्त कठोर होता है और नगरीय प का नियन्त्रण सदस्यों पर कम होता है।
(२) ग्रामों में विवाह परिवारों में होता है नगरों में व्यक्तियों में विवाह मन और स्तर के अनुकूल होते हैं।
(३) ग्रामों में स्त्रियों की स्थिति निम्न स्तर की होती है क्योंकि पुरुष ही कृषि क समर्थ होता है नगरों में स्त्रियों की आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति इतनी न नहीं होती।
(४) गाँवों में पड़ोसी एक दूसरे की सहायता करने के लिए सदैव तैयार रहते हैं शहरों में लोगों का जीवन इतना अधिक मशीनवत् होता है कि आपस के सुख में कोई किसी की सहायता नहीं करता।
(५) गाँव में एक का दुःख सबका दुःख समझा जाता है शहर में अपना दुःख ही कुछ होता है दूसरे मरें तो मरता रहे।
(६) गाँवों में सामाजिक वर्ग भेद वश परम्परा से प्रभावित होते हैं इसलिये प्रथा की कठोरता दिखाई देती है शहर में वर्गों का आधार आर्थिक अ होता है।
(७) ग्रामीण समाज में परिवार और समुदाय इतने अधिक शक्तिशाली होते है परिवार अथवा समुदाय से बहिष्कार मृत्यु के समान माना जाता है। लें शहरों में सामाजिक नियन्त्रण कानून, पुलिस, कचहरी और जेल द्वारा निर्ि होता है।
(८) गाँव में वैयक्तिक सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ट होता है शहरों में जनसंख्या के आ व्यवसायों की भिन्नता एवं अर्थ की प्रधानता के कारण वैयक्तिक सम्बन्ध क जोर हो जाते हैं।

(९) ग्रामीण सामाजिक सम्बन्ध अधिक स्थायी होते हैं शहरो मे सामाजिक सम्बन्ध टूटते-फूटते रहते हैं।

(१०) ग्रामों मे सहयोग ही जीवन का आधार होता है। लेकिन शहरी समाज मे व्यक्तिगत स्वार्थों की चिन्ता अधिक होती है। इसलिये नगर प्रतिस्पर्धा के अखाडे बने रहते हैं।

(११) ग्रामीण समाज मे सघर्ष होता है छोटी-छोटी बातो पर और उसका प्रधान विषय होता है भूमि। शहरो मे सघर्ष का रूप अप्रत्यक्ष होता है।

(१२) ग्रामीण सस्कृति रुढिवादी होती है अत ग्रामीण व्यक्ति समाज मे किसी प्रकार का परिवर्तन नही लाना चाहता नगरीय समाज प्रगतिशील होता है वह प्राचीन बातो को छोडकर नवीन बातो को ग्रहण करता है।

(१३) गांवो मे व्यक्ति धर्म के नाम पर सब कुछ करने के लिये तैयार रहता है, शहरो मे धर्म का अर्थ अपनी सन्तुष्टि से लिया जाता है। इसलिए धर्म अथवा आचार शहरी जीवन को इतना अधिक प्रभावित नही करते।

(१४) ग्रामीण सभ्यता प्रकृति के अधिक निकट होती है शहरी सभ्यता प्रकृति से अधिक दूर। ग्रामीण जीवन सरल, स्वाभाविक और सीधा-साधा होता है शहरी जीवन आडम्बरपूर्ण और पूर्णत अप्राकृतिक एव कृत्रिम।

(१५) ग्रामो मे प्रधान व्यवसाय कृषि होता है, नगरो मे प्रधान व्यवसाय उद्योग होता है।

(१६) इस प्रकार ग्रामीण समाज और नगरीय समाज मे अतर है लेकिन शुद्ध ग्रामीण अथवा नगरीय समाज जिसमे उपरिलिखित विशेषताएँ हों बहुत कम पाया जाता है।

भारतीय समाज की अन्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(अ) भारत कृषि प्रधान देश है और कृषि की दशा भी इतनी अधिक शोचनीय है कि समाज मे अपनी तीन पचवर्षीय योजनाओ के बीत जाने के बावजूद कृषक वर्ग को हीन समझा जाता है। गाधी के रामराज्य के राजपथ चलते-चलते १५-१६ वर्ष बीत चुके तीन-तीन योजनाओं का निर्माण कर चुके किन्तु कृषक की दशा मे कोई परिवर्तन न हुआ।

(आ) भारतीय समाज वर्गवाद और जातिवाद का अखाडा बना हुआ है। हम ठाकुर हैं, कही ब्राह्मणो ने राज्य सम्हाला है? वह मुसलमान है इस प्रकार की विघटनकारी शक्तियां भारतीय समाज की एकता को छिन्न-भिन्न कर रही हैं।

(इ) भारतीय समाज का बहुत बडा भाग अशिक्षित है।

(ई) जो पढ़े लिखे लोग हैं उनमे बेकारी बहुत बढ़ी हुई है।

भारतीय समाज की सबसे प्रमुख विशेषता जिसकी ओर हुमायूं कबीर ने अपने एक लेख मे सकेत किया है। वह है विभिन्नताएँ एकता और एकता में विघटन। सम्पूर्ण भारतीय इतिहास मे एक ओर तो हम धर्म और सस्कृति के आधार पर एकता की प्रवृत्ति पाते हैं जबकि दूसरी ओर भाषा एव रीति-रिवाज एव आर्थिक और राजनीतिक कारणों पर विघटन की। भारतीय समाज बाहर से विभिन्न जातियो, धर्मों, भाषाओं और आध्यात्मिक विचारधाराओं का सकलन है। इस प्रकार उसमे विभिन्नता है लेकिन अन्दर से उसमे ऐसी एकता है जो अवसर आने पर स्पष्ट दिखाई देने लगती है।

भारतीय समाज के लिए शिक्षा का स्वरूप कैसा हो?—यदि भारतीय समाज की उस आन्तरिक एकता की रक्षा करनी है जो समय आने पर सतह पर आकर भारतीय समाज को विश्व के सामने उच्चासन पर बिठा देती है तो हमे शिक्षा की व्यवस्था ऐसी करनी होगी कि उसमे जातीयता, प्रान्तीय भावना, धार्मिक दृष्टिकोण, छुआछूत आदि बुराइयों को समाज से दूर किया जा सके शिक्षालय और शिक्षक के समस्त साधन जुटाने मे लग जायें जिनसे जनता व्यक्तिगत, जातिगत,

सम्प्रदायगत सकीर्णताम्रो से ऊपर उठ सके। ऐसी शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य होगा सम्पूर्ण भारतीय समाज मे एकता एव भाई चारे की भावना का विकास करना। शिक्षक समाज का नेता हो उसका सम्बन्ध नागरिको और अभिभावको के साथ मैत्रीपूर्ण हो। समाज के उत्सवो मे उसका विशेष योगदान हो। वह समाज विरोधी गतिविधियो से दूर रहे तभी भारतीय समाज का कल्याण कर सकेगा।

बालक के सामाजीकरण के निर्णायक घटक

Q. 3. Discuss the factors leading to the socialization of the child ?

Ans सामाजीकरण (socialization) क्या है ? वह शिशु जिसने पृथ्वी पर जन्म लिया है जन्म से ही मानव नही होता, उसमे मानवत्व आता है मानव समुदाय मे रहने के फलस्वरूप किसी निश्चित आयुस्तर उसका आचरण का रूप निश्चित होता है उसकी वर्तमान परिस्थितियों, पर्यावरण की विशेषताओं, और व्यक्तित्व के गुणो के विकास के स्तर के द्वारा धीरे-धीरे बालक अपने समय तथा स्थान की सस्कृति को स्वीकार करता है ; अपने मे व्यक्तित्व के सामाजिक गुणो का सृजन करता है, और समाज द्वारा सदस्यता स्वीकृत की जाती है। इस प्रक्रिया को जिसके फलस्वरूप *शिशु समाज की सदस्यता प्राप्त करके अधिकारी होता है सामाजीकरण की प्रक्रिया कहते हैं।* कुछ विद्वानो ने इस प्रक्रिया को acculturation की सज्ञा भी दी है। शिक्षा की इस सतत प्रक्रिया द्वारा सामाजिक पैतृक सम्पत्ति (social heritage) को बालक अपने जन्मकाल से ही आत्मसात् करता रहता है। समाज कैसा हो क्यों न हो यह प्रक्रिया अचेतन रूप से उसमे होती रहती है। व्यक्ति को पता भी नहीं चलता कि वह शिक्षित किया जा रहा है बालक जिस समय विद्यालय मे प्रवेश करता है उस समय वह अनौपचारिक रूप से बहुत कुछ सीख लेता है विद्यालय और समाज का प्रभाव कितना उस पर पडता है वह निश्चित नही किया जा सकता। विद्यालय मे होते हुए भी वह विद्यालय के बाहर अपने जीवन का एक बडा अश व्यतीत करता है अत. विद्यालयीय और अविद्यालयीय शक्तियाँ उसके जीवन को निरन्तर ही प्रभावित करती रहती हैं।

औपचारिक और अनौपचारिक रूप से प्राप्त इस प्रकार की शिक्षा समाज की परम्परागत सभ्यता की पीढ़ी-दर-पीढ़ी रक्षा करती है। बालक जिस समाज मे रहता है उसकी सभ्यता और सस्कृति से परिचय प्राप्त करता है, अपने पूर्वजों के अनुभवो से शिक्षा ग्रहण करता है, और इस प्रकार सामाजिक परम्परा की रक्षा करता है। समाज की दृष्टि से सामाजिक परम्परा और सुरक्षा तथा हस्तान्तरण (security and inheritance of social heritage) शक्ति की दृष्टि से सामाजिक परम्परा का व्यक्ति मे आत्मसात होना ही शिक्षा की प्रक्रिया का मुख्य उद्देश्य माना जाता है। सक्षेपत. अपने काल और स्थान की सस्कृति तथा सामाजिक परम्परा का आत्मसात् करने की प्रक्रिया का दूसरा नाम ही सामाजीकरण है।[1]

औपचारिक शिक्षा का अविकसित सामाजिक समुदायो मे प्राय अभाव होता है। असभ्य [illegible] ...ता ही साहचर्य प्रदान करती हैं [illegible] अथवा अन्त क्रिया के फलस्व- [illegible] बढा कर ही उसमे रीति- [illegible] करते हैं। अपने बड़े-बूढ़ों के साथ कार्य करते हुए अथवा उनकी क्रियाओ का अनुकरण करते हुए शिशु सामाजिक परम्पराओं को आत्मसात् कर लेता है। जैसे-जैसे समाज विकसित होता जाता है। काम धन्धे का स्वरूप भी विकसित होता जाता है अत: बच्चों की शक्तियो और वयस्कजनों के अर्जित गुणों के बीच अन्तर बढ़ता जाता है। बड़े बूढ़ों के द्वारा किये जाने वाले कार्यों के बच्चो की शक्तियों से परे होने के कारण बिना पूर्व प्रशिक्षण के कठिन और असम्भव प्रतीत होते हैं। सभ्यता की ऊँची सीढ़ी पर चढ़ता हुआ यह समाज अब शिशुओं को शिक्षा देने का भार विशेष लोगों को सौंप देता है। ये लोग औपचारिक शिक्षा देने का कार्य निश्चित स्थान पर, जिसे हम विद्यालय कहकर पुकारते है, देते है। इस प्रकार की

1. "Acculturation is the process by which the young internalize the culture [illegible]

...शिष्ट समाज द्वारा
... की परम्परा और
... लय और शिक्षकों
द्वारा ही सम्पन्न हो सकता है। किन्तु जब औपचारिक शिक्षा पूर्णतः किताबी और मृत हो जाने की आशंका होने के कारण दूसरों के साहचर्य में रहकर अविधिक शिक्षा द्वारा भी सामाजिक परम्पराओं का संक्रमण किया आवश्यक है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रत्येक समाज अपने अस्तित्व को सुरक्षित रखने के लिए विभिन्न प्रकार के सुनियोजित साधनों द्वारा अशिक्षित शिशु को अपने अर्जित गुणों और आदर्शों को सौंप कर एक सशक्त उत्तराधिकारी के रूप में प्रस्तुत करता है। शिक्षा की जिस प्रक्रिया द्वारा बालक को प्रामाणिक रूप में गढ़ा जाता है, सामाजीकरण की क्रिया कहलाती है। जिस प्रक्रिया द्वारा सामाजिक समुदाय अपने अल्प वयस्क सदस्यों को पाल पोसकर उनको सामाजिक आकार अथवा रूप प्रदान करता है उसके सामान्य घटक क्या हैं ? यह विचारणीय विषय है। वह कौनसा तरीका अथवा साधन है जिसके द्वारा बच्चे वयस्कजनों के दृष्टिकोण को ग्रहण करते हैं और वयस्क जन बच्चों को अपने मानसिक स्तर पर लाने का प्रयत्न करते हैं।

यह तरीका है—वातावरण की प्रतिक्रिया के माध्यम से कुछ विशिष्ट प्रतिफलों की प्राप्ति और ये साधन हैं इस वातावरण को बनाने वाले विभिन्न तत्व। वैसे तो वातावरण कई प्रकार का होता है लेकिन जो वातावरण बालक के सामाजीकरण में सहायता देता है सामाजिक वातावरण माना जाता है। उसके क्रियाकलाप दूसरों के क्रियाकलापों पर आधारित रहते हैं। वह जो कुछ करता है वह दूसरों की स्वीकृति और अस्वीकृति पर निर्भर रहता है। यह सामाजिक परिस्थिति बालक के व्यवहार में उसी प्रकार का परिवर्तन उपस्थित कर देती है जिस प्रकार मनुष्य के सम्पर्क में आकर बन्दर अपनी चेष्टाओं को बदल लेता है और विशिष्ट प्रकार की आदतें सीख लेता है उसी प्रकार सामाजिक वातावरण के प्रभाव से बालक भी अपने को उसके अनुकूल ढालने का प्रयत्न करता है। वह पहले पशु की तरह अशिक्षित होता है फिर बाद में सामूहिक क्रियाकलापों में भाग लेता हुआ, और अपनी मूल प्रवृत्तियों को परिष्कृत करता हुआ उन्हीं गुणों को अर्जित कर लेता है जिनको समाज मान्यता देता है। वातावरण की प्रतिक्रिया के माध्यम से पहले तो उसमें कुछ विशिष्ट आकांक्षाओं और विचारों का बीजारोपण होता है बाद में वह समाज का एक ऐसा सहयोगी सदस्य बन जाता है कि समाज की सफलता को अपनी सफलता और समाज की असफलता को अपनी असफलता समझने लगे। समाज के अन्य लोगों के अनुरूप पड़ी और उसके विचार और विश्वास बन जाते हैं और वह भी उतना ही ज्ञान अर्जित कर लेता है जितना कि समाज के संचित रहता है। ज्ञानार्जन का यह कार्य भाषा के माध्यम से होता है। प्रत्येक समाज की भाषा ऐसी ध्वनियों एवं संकेतों का संकलन है जो पारस्परिक रूप से बोधगम्य होती है।

बालक को शिक्षित करने के लिए हम वातावरण का नियंत्रण करते हैं। हम अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उपयुक्त वातावरण का निर्माण करते हैं। विद्यालय में हम ऐसे उपयुक्त वातावरण को प्रस्तुत करने का प्रयत्न करते हैं जो बालकों के मानसिक और नैतिक संस्कारों को प्रभावित करने के निश्चित उद्देश्यों को ध्यान में रखकर तैयार किया जाता है। ऐसे विद्यालयों का निर्माण उस समय और भी अधिक आवश्यक हो जाता है जब समाज-कोष का पर्याप्त अंश लिखित रूप धारण कर लेता है। समाज को अपने पीढ़ी दर पीढ़ी परम्परागत रूप से अर्जित ज्ञान को संक्रमित करने के ... उद्देश्यों की पूर्ति के लिए स्थायि... वातावरण तैयार करना जो सम... पीढ़ी संक्रमित करे, साथ ही वह इस वातावरण में ऐसे अवांछित तत्वों को दूर रखे जिनका बालक के मस्तिष्क पर अनुपयुक्त प्रभाव पड़ता हो। यदि विद्यालय को समाज के विकास में अपना योगदान देना है तो उसे इस वातावरण से संकुचित विचार, निर्जीव पुरातन परम्पराओं तथा अन्य भ्रष्ट तत्वों को दूर रखना होगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सामाजीकरण में सहायक घटक निम्न हैं—

(अ) समाज,
(ब) घर, और
(स) विद्यालय।

सामाजीकरण की प्रक्रिया में अध्यापक का कर्तव्य

Q 4 Discuss the Role of the teacher in the process of Socialisation

Ans. सामाजीकरण अथवा सांस्कृतीकरण (acculturation) की प्रक्रिया में अध्यापक बहुत अधिक पार्ट अदा करता है। शिक्षालय द्वारा देश और काल की संस्कृति का विकीरण तभी सम्भव है जब विद्यालय का प्रत्येक अध्यापक संस्कृति के केन्द्रों से देश में पश्चवर्ती अविकसित तथा असभ्य वर्गों तक संस्कृति के तत्वों का विकीरण करें। यद्यपि समाज द्वारा संस्कृति की खास-खास बातों का सक्रमण एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक अथवा एक स्थान से दूसरे स्थान तक अथवा एक वर्ग से दूसरे वर्ग तक करने का कार्य विद्यालय और उसके अध्यापकों को सौंपा गया है लेकिन हमें इस बात को सदैव याद रखना चाहिये कि सांस्कृतिक विशेषताएँ, गुण, विचार और आदर्श समाज के एक भाग से दूसरे भाग तक तभी सम्मिलित हो सकते हैं जब शैक्षिक संस्थाएँ अथवा वे व्यक्ति जो इस कार्य में लगे हुए हैं इस प्रकार कार्य करें कि सांस्कृतिक तत्व धीरे-धीरे लेकिन निश्चित रूप से समाज के सभी वर्गों तक पहुँच सकें। यह हो सकता है कि कोई विचार विश्वविद्यालय से समाज के निम्न वर्ग तक पहुँचने में दशियों वर्ष ले ले और वह राज्य के सभी विद्यालयों में फैलने से एक पीढ़ी का समय भी ले ले परन्तु विद्यालय की इन शक्तियों हमें विश्वास रखना होगा।

अध्यापक इस सक्रमण (diffusion) में कितना योगदान दे सकता है? वह उन नवीन विचारों का प्रतिनिधि होता है जो समाज में फैल रहे हैं। वह उस प्रकाश की तरह है जो अँधेरे में जाने वाले जहाजों का मार्ग निर्देशन करता है। वह उस नौका की तरह है जो डूबते हुए व्यक्तियों को सहारा देती है। वह जीवन के मूल्यवान तत्वों को हमारे सामने रखता है और हमें सकीर्ण वातावरण से निकाल कर विस्तृत वातावरण में रहने का अवसर प्रदान करता है। सामाजिक प्रगति के लिये वह उत्तरदायी है। उसमें वह शक्ति है जो समाज का नवनिर्माण कर सकती है। यदि बालकों को उपयोगी सूचनाएँ देने के स्थान पर अध्यापक इस बात में अधिक रुचि लेता है कि विद्यालय छोड़ने के बाद बालक क्या बनेगा, उसे क्या बनाना चाहिये, तब वह न केवल समाज का नवनिर्माण करने में ही अपना योगदान देगा वरन् बालकों के व्यक्तित्व का भी निर्माण करेगा जिसकी सूचनाओं के प्रशिक्षण से कहीं अधिक आवश्यकता है।

सामाजिक प्रगति में अध्यापक कितना योगदान दे सकता है और कितना नहीं यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। कुछ विचारकों का मत है कि अध्यापक को अपने छात्रों [illegible] हाथ बटाना चाहिये। इसका मतलब होगा [illegible] को समय-समय पर इस प्रकार अदलने [illegible] और अध्यापक शिक्षा शास्त्रियों द्वारा निर्धारित इन प्राप्य उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये भरसक प्रयत्न करता रहे।

सभी लोग इसे निर्विवाद रूप से मानने के लिये तैयार है कि वर्तमान समाज अथवा विश्व युगान्तकारी परिवर्तन चाहता है और यदि वह प्राचीन मूल्यों पर ही बल देता रहा तो हो सकता है विश्व अपना अन्त कर ले। इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा समय-समय पर नवीन विचारों एवं आदर्शों को प्रस्तुत करती रहे और अध्यापक उनके विकीरण में सहायता देता रहे। लेकिन क्या वर्तमान स्कूल में कार्य करने वाले अध्यापक से विश्व के नवनिर्माण की आशा की जा सकती है? क्या समाज अध्यापक को समाज-सुधारक के रूप में स्वीकार करने को तैयार है? क्या उन योजनाओं का समाज विरोध नहीं करेगा जिनको विद्यालय तैयार करता और जिनको अध्यापक पूरा करने में मदद करता है? क्या विद्यालय ही सामाजिक परिवर्तन का निर्णायक है? क्या उन शिक्षा-विशारदों को अधिक मूल्य नहीं चुकाना पड़ेगा जो समाज के नवनिर्माण की योजनायें बनाते हैं।

यह स्पष्ट ही है कि यद्यपि शिक्षक, शिक्षालय और शिक्षा-विशारद सामाजिक प्रगति में अपना-अपना योगदान दे सकते हैं किन्तु वे क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित नहीं कर सकते। ऐसे परिवर्तन न तो वे इस समय उपस्थित कर सकते हैं और न भविष्य में ही उनसे ऐसी आशा की जा सकती है। वे अपने शिष्यों में सामाजिक प्रगति के लिये जोश अवश्य पैदा कर सकते हैं वे परम्परागत आदर्शों की रक्षा कर सकते हैं और नवीन आदर्शों को प्रोत्साहन दे सकते हैं। लेकिन किसी प्रकार का murach पैदा नहीं कर सकते। उनसे हमें इतनी ही आशा करनी है

जितनी कि एक मनुष्य से की जा सकती है क्योंकि उनमे कोई ऐसी दैवी शक्ति नही है कि नव विश्व का निर्माण कर सके।

अगले प्रकरण मे विद्यालय द्वारा समाज मे परिवर्तन उपस्थित करने की चर्चा विशद रूप से की जायगी।

समाज का शिक्षा पर प्रभाव

Q. 5 How does the nature of Society affect Education ?

Ans शिक्षा की प्रकृति समाज की प्रकृति के अनुकूल होती है क्योंकि शिक्षा सामाजिक क्रिया है और सामाजिक प्रक्रिया होनी चाहिये। शिक्षा के विषय मे लिखने वाला कोई भी लेखक समाज के प्रभाव से बच नही सकता। समाज की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक दशाएँ शिक्षा का स्वरूप निश्चित करती हैं।

सामाजिक परिस्थितियाँ और शिक्षा—यदि समाज की प्रकृति प्रजातन्त्रात्मक है तो उसके द्वारा स्थापित विद्यालयों मे स्वतन्त्रता, समानता और सहयोग पर जोर दिया जाता है। यदि समाज की प्रकृति सामाजवादी है तो विद्यालय अपने शिक्षकों को राज्य की सेवा के लिये तैयार करते हैं। जैसा समाज होगा शिक्षा का स्वरूप भी वैसा ही होगा। यदि समाज शहरी है तो शिक्षा उसके अनुरूप होगी। यदि समाज ग्रामीण है तो शिक्षा का रूप ही दूसरा होगा।

समाज गतिशील है। निरन्तर विकास को प्राप्त होना हुआ इस समाज मे परिवर्तन ही परिवर्तन आते रहते हैं। ये परिवर्तन शिक्षा के स्वरूप को भी बदल देते हैं।[1]

उदाहरण के लिये स्वातन्त्र्योत्तर काल मे सामाजिक परिस्थितियो के बदलने के साथ-साथ माध्यमिक शिक्षा का स्वरूप भी बदल रहा है।

जैसे-जैसे सामाजिक परिवर्तन उपस्थित होते हैं, समाज अपने उद्देश्यो को बदलता है और शिक्षा के उद्देश्य भी उसी क्रम से बदल जाया करते हैं। उदाहरण के लिये स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व जब भारतीय समाज प्रजातन्त्रात्मक व्यवस्था पर आधारित नही था उस समय शिक्षा के उद्देश्य कुछ और थे और अब कुछ और हो गये हैं। अब तो बालक की शिक्षा मे जनतान्त्रिकता के विकास, नेतृत्व विकास और व्यक्तित्व के विकास पर विशेष जोर दिया जाने लगा है।

[illegible] होता है। यदि समाज ने [illegible] पना की है तो वह [illegible] धार्मिक, राजनैतिक [illegible] है जिससे समाज की

गतिशील समाज के साथ सामञ्जस्य स्थापित करने के लिये वह पाठ्यक्रम को भी गतिशील बना दे। समाज के स्रोतों और साधनों का उचित उपयोग करे। भाषण, भ्रमण, समाज सेवा शिविरो द्वारा समाज की गतिविधियो का ज्ञान करावे। बालकों के सामाजिक गुणों का विकास यथा सम्भव करे।

संक्षेप मे, विद्यालय समाज का वास्तविक प्रतिनिधि हो। आज देश ने प्रजातन्त्रात्मक शासन प्रणाली को अपना लिया है अतः भारतीय समाज जनतन्त्रीय हो गया है। ऐसी परिस्थिति मे आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय विद्यालय भी जनतन्त्रीय मूल्यों को महत्व दें और हमारे उपराष्ट्रपति की इस भविष्यवाणी को सच्ची करके दिखावें जो उन्होंने निम्न पदो मे व्यक्त की हैं :

"भविष्य मे हमारी समस्त शैक्षिक संस्थायें कर्मशील समाज का रूप धारण करेंगी। इन शैक्षिक संस्थाओं मे हमारे विद्यार्थियों को अनुभव करके खोज करने, कार्य करने की सभी सुविधाएँ उपलब्ध होंगी। यहाँ कर्म चरित्र का निर्माण करेगा, विद्यार्थी अपने जीवन द्वारा जीवन का

---

1. "Educational changes tend to follow social changes. —Ottaway : *Education and Society.*

निर्माण करेंगे। स्वस्थ जीवन व स्वस्थ कार्य इन संस्थाओं को सहयोग के आधार पर स्वस्थ बना-देगा। वहाँ सब मिलकर कार्य करेंगे। उनमें स्वअनुशासन की भावना जागृत होगी और वे पारस्परिक सहायता के भाव से प्रेरित होंगे।"

समाज की आर्थिक परिस्थितियाँ और शिक्षा पर उनका प्रभाव—यदि समाज प्रजातन्त्रात्मक है और उसकी आर्थिक दशा अच्छी है तो शिक्षा अनिवार्य और नि.शुल्क हो सकती है किन्तु यदि देश की आर्थिक दशा हीन है तो देश के प्रजातान्त्रिक होते हुए भी वह अपने सभी सदस्यों के लिए अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था नहीं कर सकता। इसी प्रकार यदि समाज मे पूँजीपतियों का बोलबाला है तो विद्यालयो का सचालन ही केवल उनके हाथ मे नही होता वरन् शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम और पाठनविधियाँ भी उनके द्वारा निश्चित की जाती हैं। शिक्षा विशेष वर्गों के लोगो की वस्तु बन जाती है किन्तु यदि समाज साम्यवादी है और मजदूर तथा निम्न वर्ग के लोगों को शासन मे अधिकार प्राप्त है तो शिक्षा सर्वसाधारण की वस्तु बन जाती है।

उद्योग प्रधान देशो मे उद्योग शिक्षा को प्रमुख विषय बनाया जाता है और कम उद्योग शील देशो मे व्यक्तित्व के विकास पर अधिक जोर दिया जाता है। इस प्रकार समाज की आर्थिक परिस्थितियाँ शिक्षा को प्रभावित करती है।

समाज की राजनैतिक परिस्थितियाँ और शिक्षा पर उनका प्रभाव—समाज मे जिस प्रकार का राजनैतिक दल सत्तारूढ होता है शिक्षा का सगठन अथवा सचालन उसके हाथ मे होने के कारण शिक्षा व्यवस्था का रूप भी वैसा ही होता है। उदाहरण के लिए स्वेच्छाचारी निरंकुश शासन मे शिक्षा का उद्देश्य होता है शासक की आज्ञा का पालन, अनुशासन, आत्म त्याग आदि भावनाओं का विकास। पाठ्यक्रम और शिक्षालयो का स्वरूप भी इन आदर्शों की रक्षा के अनुकूल ही होता है। नाजी, फासिस्ट और कम्यूनिस्ट शिक्षा व्यवस्था का रूप भी कुछ-कुछ ऐसा ही था। इसके विपरीत जिस देश मे प्रजातन्त्रात्मक शासन व्यवस्था होती है उसमे शिक्षा के उद्देश्य, शिक्षा पद्धति, पाठ्यक्रम, विद्यालय आदि का रूप ही कुछ और होता है।

उदाहरण के लिए प्रजातन्त्रात्मक शासन प्रणाली मे शिक्षा के उद्देश्य निम्न होते हैं—

(१) सर्व साधारण को शिक्षा के अवसर देना
(२) सामाजिकता की भावना पैदा करना
(३) विभिन्न रुचियों का विकास
(४) जनतान्त्रिक नागरिकता का विकास
(५) व्यावसायिक कुशलता का विकास
(६) व्यक्तित्व का विकास
(७) नेतृत्व का विकास

अध्याय १४

राज्य और शिक्षा

राज्य का स्वरूप

Q. 1 To what extent do the organisation and control in the schools of a democracy differ from those appropriate under other forms of govt. ?

Ans समाज और शिक्षालयों के सम्बन्ध की विवेचना तब तक पूर्ण नहीं हो सकती जब तक राज्य का शिक्षा पर प्रभाव निश्चित न किया जाय जो समाज का एक ही रूप है। राज्य वह समाज है जो निश्चित भूभाग में रहता है जिसकी एक ऐसी संगठित सरकार है जिसकी आज्ञा का पालन अधिकांश निवासी स्वाभाविक रूप से करते हों और जो पूर्ण रूप से बाहरी नियन्त्रण से मुक्त हो।[1] राज्य ऐसा ही समाज है जिसका निश्चित विधान होता है।[2] राज्य के सामान्य कर्तव्य का उल्लेख अध्याय ४ में किया जा चुका है और शिक्षा के क्षेत्र, उसकी क्या-क्या जिम्मेदारियाँ हैं यह भी बताया जा चुका है। प्रस्तुत प्रकरण में इस बात की विवेचना करना चाहते हैं कि जिस प्रकार व्यापक समाज शिक्षा को प्रभावित करता है उसी प्रकार राज्य शिक्षा को किस प्रकार प्रभावित करता है।

राज्य का शिक्षा पर प्रभाव अंकित करने के लिये हमें निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर मिल जाना चाहिये।

(i) राज्य की प्रकृति किस प्रकार शिक्षा की प्रकृति को निश्चित करती है? राज्य की राजनैतिक विचारधाराएँ शिक्षा को किस प्रकार प्रभावित करती हैं?
(ii) शिक्षा किस सीमा तक राज्य द्वारा नियन्त्रित होनी चाहिये?
(iii) जन शिक्षा में राज्य को क्या भाग लेना चाहिये?
(iv) शिक्षा का सम्पूर्ण भार केन्द्रीय शासन पर होना चाहिये अथवा स्थानीय शासन पर?

राज्य की प्रकृति का शिक्षा पर प्रभाव—राज्य मुख्यतः चार प्रकार का होता है —

(अ) बहुतत्ववादी (Pluralistic) राज्य
(आ) सर्वाधिकारवादी (Totalitarian) राज्य
(इ) राष्ट्रीय (National) राज्य
(ई) कल्याण-राज्य (Welfare) राज्य

ऐसा राजनैतिक समाज जो समाज के अन्य रूपों को भी नियन्त्रण और शासन की स्वतंत्रता का हामी हो बहुतत्ववादी राज्य कहलाता है। उदाहरण के लिए प्रजातन्त्रात्मक राज्य ऐसा ही एक बहुतत्ववादी राजनैतिक समुदाय है। इसके विपरीत न्यूनसंख्यक अथवा बहुसंख्यक व्यक्तियों का वह समुदाय जो शासन के एक ही रूप को मान्यता देता हो और अन्य विरोधी रूपों का दमन

---

1. "State is a community of persons permanently occupying a definite position of a territory independent and so of a foreign control and possessing an organised government to which the inhabitants render a habitual obedience." —*Garmer*
2. "The state is group with constitutions, ritual and symbols."—*Brown*

रता हो सर्वेन्द्रित (Totalitarian) राज्य कहलाता है। उदाहरण के लिये एकतन्त्रात्मक शासन प्रणालियाँ। इसी प्रकार की सर्वेन्द्रित संस्थाएँ हैं जातिवाद, साम्यवाद आदि।

बहुतत्ववादी राज्यों में लेसेज-फेयर (Laissez-faire) और वेल्फेयर (Welfare) राज्य प्रमुख हैं। प्रजातन्त्र राज्य में शासन की बागडोर नागरिकों के हाथ में होती है और प्रजातन्त्रवाद का उद्देश्य समस्त नागरिकों का सुखी जीवन बिताने का अवसर प्रदान करना है। ऐसे प्रजातन्त्रात्मक शासन जिसका मुख्य कार्य नागरिकों की रक्षा करना हो और जिसमें व्यक्ति कुछ निश्चित उद्देश्यों के लिये ही राज्य का अनुशासन स्वीकार करता है और बहुत से कार्यों में जैसे व्यापार, शिक्षा आदि में पूर्णरूपेण स्वतन्त्र हो जाता है लेसेज-फेयर राज्य कहलाता है। इसके विपरीत जिन राज्यों में शासन का कार्य न केवल नागरिकों की रक्षा करना होता है बल्कि उसके बहुत से कार्य भी होते हैं जिनमें व्यक्ति और समाज का दोनों का हित होता हो उनको Welfare State कहते हैं।

राज्य की जैसी प्रकृति होती है शिक्षा का स्वरूप भी वैसा ही होता है। दूसरे शब्दों में राज्य के विभिन्न रूप शिक्षा को विभिन्न प्रकार से प्रभावित करते हैं।

बहुतत्ववादी राज्य में नागरिकों की शिक्षा को विशेष महत्व दिया जाता है। उन्हें मनुष्य बनाने का प्रयत्न किया जाता है लेकिन एकतत्ववादी राज्यों में व्यक्ति की शिक्षा राज्य के अधीन होती है। उसकी शिक्षा नागरिकता की शिक्षा होती है मानव की शिक्षा का उसमें अभाव होता है। एकतत्ववादी राज्य अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये नागरिकों की शिक्षा देता है। ये उद्देश्य सांस्कृतिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक हो सकते हैं। शैक्षिक प्रक्रिया में यदि महत्व दिया जाता है तो राज्य को ही व्यक्तियों तथा उनके विकास को गौण स्थान दिया जाता है। बहुतत्ववादी राज्यों में व्यक्ति का विकास साध्य होता है एकतत्ववादी राज्यों में राज्य की उन्नति साध्य होती है व्यक्ति की शिक्षा साधन।

एकतत्ववादी राज्यों में चाहे वह स्वेच्छाचारी शासक के अधीन हो चाहे डिक्टेटर के अधीन, ये शिक्षा सम्बन्धी अन्तिम निर्णय शासन के अधीन होते हैं। बहुतत्ववादी राज्यों में ऐसे निर्णय अन्तिम रूप से जनता के हाथ में होते हैं। उदाहरण के लिये प्रजातन्त्रात्मक शासन व्यवस्था में शैक्षिक व्यवस्था अथवा राज्य की शिक्षा नीतियों की जनता आलोचना कर सकती है क्योंकि व्यक्ति को सम्मान दिया जाता है, किन्तु साम्यवादी और नाजी सरकार में जनता को ऐसा कोई अधिकार नहीं होता। Aristocracy और Oligarchy में भी जहाँ शासन सत्ता एक निश्चित वर्ग के हाथों में होती है शिक्षा व्यवस्था का रूप भी लगभग ऐसा ही होता है। शिक्षा उसी वर्ग की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं की पूर्ति करती है, साधारण जनता उससे वंचित रह जाती है। ऐसी व्यवस्था में दो प्रकार के विद्यालय कायम हो जाते हैं। एक तो वे जो साधारण जनता के लिये होते हैं और दूसरे वे जो शासक वर्ग के समाज के लिये प्राचीन यूरोप में, रूस में इसी प्रकार की शिक्षा व्यवस्था थी।

प्रजातन्त्र में शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम, विद्यालय प्रबन्ध, शिक्षण प्रणाली और अनुशासन [illegible] विस्तृत [illegible] किया जायगा। प्रजातन्त्रात्मक शिक्षा [illegible] किस प्रकार के [illegible] है उसका मूलमन्त्र है व्यक्ति का विकास। व्यक्ति ही [illegible] व्यक्ति की शिक्षा व्यक्ति के [illegible] है। [illegible] की जाती है।[1]

[illegible]

1 [illegible] should be treated always as an end. [illegible] no matter what [illegible] no matter what [illegible] 1950, [illegible]

स्रोतों को भी अवसर देता है। परिवार, चर्च, सभी का उचित सहयोग प्राप्त करता है। वह व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के लिये काफ़ी अवसर देता है।

राज्य का शिक्षा पर नियंत्रण—राज्य प्राचीन काल से ही शिक्षा के क्षेत्र मे हस्तक्षेप करता आया है। शिक्षा मे हस्तक्षेप राज्य ने क्यो किया ? अपने हित और सुरक्षा की रक्षा के लिये अथवा व्यक्ति के हित और विकास के लिये ? राज्य का रूप कैसा ही क्यों न हो चाहे वह एकतन्त्रात्मक हो अथवा प्रजातन्त्रात्मक चाहे वह साम्यवादी हो, चाहे वह लेसेज-फेयर हो या welfare state, राज्य ने शिक्षा के क्षेत्र मे हस्तक्षेप किया है और करता रहेगा। शिक्षा के क्षेत्र मे पब्लिक और प्राइवेट दोनो सेक्टरो ने कार्य किया है और करते रहेगे। कुटुम्ब, धर्म और राज्य इन तीन स्रोतो ने जन शिक्षा को आगे बढाया है। विचारणीय विषय यह है कि राज्य को किस सीमा तक शिक्षा पर नियत्रण करना चाहिये। बालक की शिक्षा का पूर्ण उत्तरदायित्व राज्य को ही सौंप देना चाहिये अथवा नही और यदि राज्य, कुटुम्ब और धार्मिक सस्थाओ के बीच सघर्ष हो तो क्या नीति बरती जाय। यदि शिक्षा का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व राज्य को ही सौंप दिया जाय तो क्या शिक्षा शासनारूढ़ व्यक्तियो के हाथ की कठपुतली नही बन जायगी ?

ऐसी दशा मे विद्यालयो के राज्य के लिए भी कठपुतली बनने की सम्भावना अधिक है क्योकि कुटुम्ब और धार्मिक सस्थाओ की तुलना मे राज्य अधिक शक्तिशाली समाज है। वह बालकों की शिक्षा अनिवार्य कर सकता है, उन माता, पिता अथवा कुटुम्बो को दण्ड दे सकता है जो उसकी शिक्षा नीतियो के पालन मे उनकी मदद नहीं करते। वह अन्य सस्थाओ मे कर वसूल कर सारी जनता की निःशुल्क शिक्षा व्यवस्था कर सकता है, इसलिये यह प्रश्न भी कम महत्व का नही है कि इन सस्थाओ की तुलना में राज्य को शिक्षा के क्षेत्र मे कितना तूल देना है।

इन प्रश्नो का उत्तर मिल सकता है यदि हम राज्य के रूपो पर फिर से दृष्टिपात करें।

बहुतत्ववादी शासन व्यवस्था के लेसेज-फेयर रूप मे सरकार शिक्षा के क्षेत्र से अपने को अलग रखती है और प्राइवेट सेक्टर ही शिक्षा के क्षेत्र मे कार्य करता है लेकिन समाजवादी शासन मे राज्य अपने स्कूलों का सगठन और सचालन करता है। अराजकतावादी शासन व्यवस्था मे भी शासन शिक्षा के क्षेत्रो मे कोई हस्तक्षेप नही करता क्योकि शासन का कोई अस्तित्व ही नहीं होता। समाज में केवल यह समझौता हो जाता है कि उसके अल्पवयस्क सदस्यो को शिक्षा का अधिकार है और वयस्क सदस्यो को शिक्षा देने का कर्तव्य है, शासन न तो माता-पिता को अपने बालको को शिक्षा देने के लिये बाध्य ही कर सकता है, ऐसी परिस्थितियो में ऐच्छिक सस्थाएँ शिक्षा कार्य मे सलग्न रहती हैं।

लेसेज-फेयर स्टेट मे भी लगभग यही दशा रहती है, यहाँ पर भी बालक कुटुम्ब, धार्मिक सस्थाओ और अन्य ऐच्छिक सस्थाओ पर अपनी शिक्षा के लिये निर्भर रहते हैं। लेसेज-फेयर राज्य का जन्म ही कुछ राज्यो के व्यापार और वाणिज्य के क्षेत्र मे अत्यधिक नियत्रण के फलस्वरूप हुआ था। शिक्षा पर भी ऐसी राजनैतिक व्यवस्था ने नियत्रण हटा लिया। व्यक्ति अपना हित स्वय कर सकता है। व्यक्ति द्वारा अपने हित की रक्षा करना प्रकृति का नियम है। शासन तो उसी समय व्यक्ति के कार्यों मे हस्तक्षेप कर सकता है जब व्यक्तिगत हितो मे सघर्ष होने लगता है।

शिक्षा मे लेसेज-फेयर के सिद्धान्त का अर्थ है बालक को अपने हित मे शिक्षा प्राप्त करने की पूर्ण स्वतन्त्रता व अधिकार देना। लेकिन क्या बच्चा अपनी इस स्वतन्त्रता का प्रयोग कर सकता है। किसी न किसी वयस्क व्यक्ति को अपने हितो की रक्षा के लिये बालक की शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी। यदि बालको की शिक्षा का कार्य समाज मे ऐसे वयस्क सदस्यो के हाथ मे चला जाता है तो कठिनाई होगी इस बात की कि प्राइवेट सस्थाओ द्वारा सगठित एव सचालित विद्यालय निम्न कोटि के होंगे। इसलिये लेसेज-फेयर सिद्धान्त के आलोचक कहते हैं कि यदि शिक्षा क्षेत्र मे व्यक्ति को इस प्रकार की स्वतन्त्रता दी जा सकती है तो अध्यापक को भी इस प्रकार की स्वतन्त्रता दी जा सकती है। अध्यापक पूर्ण रूप से इस बात का उत्तरदायी हो कि विद्यालय का पाठ्यक्रम या पाठ्यक्रम कैसे बनाया जाय। लेकिन अध्यापक से राज्य इस बात का वायदा अवश्य करा ले कि वह राज्य के हितो की भी रक्षा करेगा।

लेसेज-फेयर के कटु आलोचकों का कहना है कि शिक्षा के क्षेत्र मे राज्य को अधिक रुचि लेनी चाहिये। अपने नागरिको की शिक्षा की व्यवस्था करना अत्यन्त आवश्यक है, राज्य द्वारा शिक्षा पर किया गया खर्च लम्बे अर्से के लिये व्यापार मे लगाये गये धन के समान है, जिस

प्रकार अच्छे कामों के लिये लगाई गई पूँजी पूँजीपति को तत्काल ही लाभान्वित नहीं करती उसी प्रकार शिक्षा पर किये गये धन खर्च से फायदा दूसरी या तीसरी पीढ़ी से मिला करता है। यदि शिक्षा लम्बी अवधि के लिये लगाई गई पूँजी की तरह है तो राज्य इसकी व्यवस्था और संचालन प्राइवेट संस्थाओं के हाथ में कैसे छोड़े। प्राइवेट संस्थाओं के अपने निजी स्वार्थ हो सकते हैं। राज्य अपने सदस्यों के हितों की रक्षा के लिये संख्या में अधिक से अधिक तथा उत्तम से उत्तम प्रकार की शिक्षा का प्रबन्ध करे।

इस प्रकार का राज्य जो शिक्षा में विशेष रुचि लेता है सार्वजनिक शिक्षा के लिये अधिक से अधिक प्रयास करता है वह सभी प्रकार के विद्यालय खोलता है, उन सभी के लिये पाठ्यक्रम निश्चित करता है, निश्चित आयु स्तर के बालकों के लिये अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा का प्रबन्ध करता है, इस उद्देश्य से कि राज्य में सभी बालक शिक्षा ग्रहण करने का समान अधिकार मान सकें। *वह कानून पास करता है कि कोई भी उद्योग उस आयु स्तर के बालकों को* नौकरी पर न रखे। बालक अनिवार्य रूप से विद्यालय में उपस्थित रहें इस उद्देश्य से उनके अपने घर से लेने ले जाने की व्यवस्था करता है, विद्यालय में ही उनके मध्यान्हकालीन भोजन की व्यवस्था करता है। पाठ्य पुस्तक और अन्य सामग्री बिना पैसे लिये उनको प्रदान करता है। उनकी शारीरिक शिक्षा को ध्यान में रखकर मैडिकल परीक्षा लेता है। उनकी चिकित्सा की व्यवस्था करता है।

यही नहीं विद्यालय में अच्छे, सुन्दर और सुगठित शरीर वाले बालकों का ही प्रवेश हो इस उद्देश्य से परिवार नियोजन भी करता है, माता-पिता को बच्चों के लालन-पालन का प्रशिक्षण देता है, बच्चे के वातावरण को सुधारने का यथायोग्य प्रयत्न करता है, इस प्रकार welfare state अपने बालकों की शिक्षा को पूर्णरूपेण नियंत्रित करने का प्रयत्न करता है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है *कि जैसी राज्य की प्रकृति होगी है शिक्षा पर नियन्त्रण भी उसी प्रकार का होता है।*

जब यह नियन्त्रण सीमा का अतिक्रमण कर जाता है तब राज्य समाजवादी (Socialistic) या साम्यवादी (Communistic) रूप धारण कर लेता है। शिक्षा के लिये वह न तो *कुटुम्ब को ही और न धार्मिक संस्थाओं को ही उत्तरदायी समझता है। वह गम्भीर एवं जिम्मेदार* माता पिता पर बुरी तरह कर लगाकर समाज के सभी वर्गों के बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध करता है।

राज्य द्वारा शिक्षा के नियन्त्रण सम्बन्धी विचारधाराएं

Q. 2. What should be the nature of the state's interest in education ?

शिक्षा क्षेत्र में राज्य द्वारा नियन्त्रण के विषय में दो विरोधी विचारधाराओं का पोषण हुआ है, ये विचारधाराएँ हैं—

(अ) व्यक्तिवाद
(ब) समष्टिवाद

व्यक्तिवादी शिक्षा के क्षेत्र में राज्य द्वारा हस्तक्षेप नहीं चाहता समष्टिवादी शिक्षा को पूरी तरह राज्य के अधीन मान कर चलता है। एकविचारधारा के समर्थक है मिल, लोक और बेन्थम, दूसरी के समर्थक हैं रस्किन, कार्लायल, मैथ्यू आर्नल्ड और पिन्कविच। एक कहता है व्यक्ति पूर्ण रूपेण स्वतन्त्र है अपनी शिक्षा व्यवस्था के लिये[1]। दूसरा कहता है सार्वजनिक शिक्षा को राज्य किसी संस्था को हस्तान्तरित नहीं कर सकता।[2]

तीसरा मत मध्यमार्गी है। इस मत के समर्थक न तो पूर्णरूपेण व्यक्तिवादी मत को मानते हैं और न समष्टिवादी मत को ही। शिक्षा न तो राज्य के हस्तक्षेपपूर्ण मुक्त ही होनी

---

(1) In part which merely concerns himself his independence is of right absolute. Over himself, over his own body and mind individual is sovereign
—J. S. Mill

(2) Public education aiming to mould the future citizens is a mighty instrument which government cannot pass into

चाहिये और न पूर्णरूपेण नियन्त्रित ही । राज्य के साथ-साथ शिक्षा पर कुटुम्ब और धार्मिक सस्थाओं का भी नियन्त्रण होना चाहिए।

ऐसा बहुतत्ववादी शासन व्यवस्था (Pluralistic forms of Government) में सम्भव है। बहुतत्ववादी तो धार्मिक सस्थाओं को राज्य के अधीन होना ठीक नही समझते। स्वतन्त्र रूप से कार्य करती हुई धार्मिक सस्थाएँ अलौकिक बातों से सम्बद्ध विषयों की शिक्षा की उत्तरदायी मानी जाती है, और जहाँ तक शारीरिक, बौद्धिक सामाजिक, नैतिक और नागरिकता सम्बन्धी विषयो के शिक्षण की बात है राज्य और कुटुम्ब मे दोनो सस्थाएँ उत्तरदायी हैं। जिन वर्गों मे माता-पिता अपने बालकों की शिक्षा मे विशेष रुचि न लेते हो, बच्चो के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन कर सकने की जिनमे क्षमता न हो, उन वर्गों मे शिक्षा का भार राज्य को पूरी तरह सौंपा जा सकता है। वहाँ पर यदि राज्य हस्तक्षेप नही करता तो शिक्षा के आदर्शों और मान्यताओं का स्तर गिर सकता है। लेकिन सभी जगह पारिवारिक क्षेत्र मे राज्य का अनुचित हस्तक्षेप माता-पिता की अपने बालकों के प्रति उत्तरदायित्व की भावना को नष्ट कर देगा। राज्य के सापेक्षिक महत्व की मध्यम-मार्गी बात 'रे माण्ट' ने इस प्रकार की है

"राज्य का कार्य व्यक्ति और परिवार को विस्थापित करना नही है वरन् उनकी रक्षा तथा उन्नति करना है। उसका कर्त्तव्य है शिक्षा के क्षेत्र मे इन दोनो के अधिकारो की रक्षा करना, माता-पिता की अयोग्यता, शक्तिहीनता अथवा अन्य किसी कारणवश जब उनके द्वारा दी गई शिक्षा मे कमियाँ उत्पन्न होने लगें तब राज्य का हस्तक्षेप उचित माना जा सकता है।

यह देखना और यह मॉग करना कि प्रत्येक व्यक्ति अपने नागरिक और राष्ट्रीय कर्तव्यो को भलीभाँति समझे और उनका पालन करे, तथा बौद्धिक और नैतिक सस्कृति के निश्चित स्तरो की प्राप्ति करे राज्य का कर्तव्य है। दूसरे शब्दो मे राज्य शिक्षा के क्षेत्र मे हस्तक्षेप करे लेकिन उसका हस्तक्षेप सीमित हो। वह परिवार और अन्य सस्थाओं को इस कार्य मे पूरी-पूरी स्वतन्त्रता दे तथा उन्हीं के सहयोग के अपने शिक्षा सम्बन्धी कार्यों का सम्पादन करे।

ये कार्य हैं—

(१) **विद्यालयों की व्यवस्था**—चूंकि परिवार और धार्मिक सस्थाएँ सभी प्रकार के विद्यालयो की स्थापना करने मे असमर्थ होती हैं इसलिये राज्य को चाहिये कि वह प्राथमिक, माध्यमिक, तकनीक, एग्रीकल्चरल और महिला विश्वविद्यालय खोले ताकि राज्य के सभी नागरिको की आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके।

(२) **शिक्षा के लिये अर्थ की व्यवस्था**—प्राथमिक निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा के लिये राज्य को धन एकत्र करना है, माध्यमिक और उच्च शिक्षालयो को वित्तीय सहायता देनी है इस उद्देश्य से उसे टैक्स लगाने होंगे।

(३) **शैक्षिक सस्थाओं का आवश्यक नियन्त्रण**—जिन शैक्षणिक सस्थाओं की स्थापना अथवा वित्तीय पोषण राज्य कर रहा है उनका नियन्त्रण, निरीक्षण भी राज्य का कर्तव्य है नहीं तो इन सस्थाओं के विघटित होने का भी भय है।

(४) **शैक्षिक खोजों को प्रोत्साहन**—शिक्षा सम्बन्धी अन्वेषणों को प्रोत्साहित करने के लिये राज्य को आर्थिक व्यवस्था करनी होगी। ऐसी सस्थाओं का सगठन और सचालन भी स्वय ही करना होगा जो शैक्षणिक अन्वेषणों मे रत हों।

(५) **अपने बालकों को शिक्षा देने के लिये माता-पिता को प्रेरणा देना**—जो मातापिता शिक्षा के प्रति जागरूक नहीं है उन्हें प्रोत्साहित करना तथा प्रशिक्षित करना भी राज्य का कर्तव्य है।

(६) **परिवारों तथा विद्यालयों के बीच सम्बन्ध स्थापित करना।**

(७) **अध्यापकों को प्रशिक्षित करना।**

परिवार, धार्मिक संस्था और विद्यालय के कार्यों मे समन्वय

Q 3 How should the claims of other agencies be related to those of the states?

Ans. शिक्षा के क्षेत्र में परिवार धार्मिक सस्था और राज्य का उचित हस्तक्षेप हो, किसी एक सस्था का ही एकाधिकार नहीं। इस तथ्य की विवेचना करने के उपरान्त प्रश्न उठता है कि

अध्याय १५

विद्यालय और सामाजिक प्रगति

(School and Social Progress)

Q. 1. Though the schools are themselves the creation of society, the schools in turn become to a certain degree causes of social progress Discuss

Ans. समाज को शिक्षा की आवश्यकता

जीव जन्तु, व्यक्ति, समाज समुदाय अथवा वर्ग सभी अपने को जीवित रखने, मजबूत और स्थिर बनाने की अभिलाषा रखते हैं। जिस प्रकार जीवित रखने के लिये व्यक्ति को भोजन की आवश्यकता होती है उसी प्रकार समाज को शिक्षा की आवश्यकता होती है। शिक्षा समाज का भोजन है। जिस प्रकार व्यक्ति भोजन की खोज करता है, भोजन का प्रबन्ध करता है उसी प्रकार समाज शिक्षा का प्रबन्ध करता है, विद्यालयों की स्थापना करता है जिनके माध्यम से वह ज्ञान संचित राशि आदर्श पुंज और परम्पराओं का संरक्षण करता है और इस प्रकार जीवित रहता है। कुछ विद्वानों के मत से समाज की संस्कृति को आत्मसात् करना तथा उसे आगामी सन्तति तक पहुँचाना ही शिक्षा है। इस प्रकार शिक्षालय समाज को सतत जीवन प्रदान कर शाश्वत बनाने में सहायता करता है। समाज की परम्पराओं और सांस्कृतिक संरक्षण अन्य संस्थायें भी करती हैं लेकिन विद्यालय ही इस कार्य को सबसे उत्तम तरीके से सम्पन्न करता है। विद्यालय भी समाज-संस्कृति से उन्हीं तत्वों को चुन लेता है जो बालकों के व्यक्तित्व के निर्माण में सहायता दे सकें शेष तत्वों को छोड़ देता है। यदि विद्यालय उन सामाजिक परम्पराओं अथवा संस्कृति के तत्वों को जो हमारे पूर्वजों तथा विचारकों ने अर्जित किये हैं एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक हस्तान्तरण न कर सका तो समाज पुन आदिम स्तर को प्राप्त कर विनष्ट हो जायगा।[1] सामाजिक विकास और प्रगति तभी सम्भव हो सकती है जब विद्यालय सामाजिक सम्पत्ति की सुरक्षा और हस्तान्तरण में उचित योगदान दे।

उचित योगदान से हमारा आशय है उतना योगदान जितना कि परिवर्तनशील सामाजिक परिस्थितियाँ उससे आशा करती हों। जब तक समाज में जटिलताओं का विवर्धन नहीं होता जीवन के मूल्यवान तत्वों और आदर्शों की सुरक्षा कुटुम्ब, राज्य अथवा धार्मिक संस्थाएँ सुचारु रूप से करती रहती हैं किन्तु सामाजिक जटिलताओं की वृद्धि के साथ इन संस्थाओं के पास न तो इतना समय रहता है और न इतने साधन ही कि वे अपने शैक्षणिक कर्तव्यों का पालन कर सकें। इसलिए ऐसी परिस्थिति में विद्यालय का कर्तव्य हो जाता है समाज के मूल्यवान तत्वों और आदर्शों को विनष्ट होने से बचाना।

किन्तु क्या केवल विद्यालय के लिए यह सम्भव है कि वह जीवन के उन सब मूल्यवान् तत्वों और आदर्शों को नवीन पीढ़ी के सामने रख सके अथवा उन सब सामाजिक परम्पराओं का

---

1. "It would obviously be a great pity of any of these were to be lost through chance failure to teach them to the oncoming generation." — John S. Brubacher : *Modern Philosophy of Education*, McGraw Hill Co., 1950.

संरक्षण कर सके जिनको हमारे पूर्वजों और विचारकों ने सतत परिश्रम द्वारा अर्जित किया [illegible] वर्तमान विद्यालय [illegible] कि [illegible] नई पीढ़ी को सौंप [illegible] और [illegible] पीढ़ी का जो [illegible] के कारण [illegible] है ? क्या विद्यालय [illegible], परम्पराओं और आदर्शों को रूप में प्रस्तुत करने [illegible] कि वह समाज जिसके [illegible] प्रस्तुत करता है [illegible] से सम्बन्धित है ? इस प्रकार की अनेक कठिनाइयों विद्यालय के [illegible] यदि वह [illegible] सम्पत्ति (Social heritage) की सुरक्षा और संवर्धन करना चाहता है।

यद्यपि समाज ने विद्यालयों की स्थापना इस उद्देश्य से की है कि वह सभी [illegible] सम्पत्ति को विनाश होने से बचावें और आवश्यकता पड़ने पर उसे [illegible] करके उसकी रक्षा करें फिर भी जो दरारें पीढ़ी की [illegible] क्या वह उसे भी बचा सकती है ? इसलिये कुछ विद्वान यह सोचते हैं कि विद्यालय का कर्तव्य होना 'सामाजिक समूहों को शक्ति प्रदान करना और उनके नवनिर्माण करने के लिये नव-नवीन विचार प्रस्तुत करना'। दूसरे शब्दों में, विद्यालयों का काम है सांस्कृतिक [illegible] संरक्षण कम और समाज की प्रगति के लिये नवीन योजनाओं का निर्माण अधिक।

इस विचारधारा को मानने वाला शिक्षा दार्शनिक अध्यापक को महान नेता मानता है। इस नेता में समाज के निर्माण की सच्ची शक्ति विद्यमान है। वह शिक्षितों को सूचनाएँ देता है लेकिन इस उद्देश्य से कि वे सामाजिक विकास में अधिक रुचि लें। वह व्यक्तित्व का निर्माण करता है केवल इस उद्देश्य से कि समाज विकसित और उन्नत हो। प्रगतिशील शिक्षक समाज की प्रगति में विश्वास रखता है।

इस प्रकार के प्रगतिशील शिक्षाशास्त्री विद्यालय को ऐसा स्थान मानते हैं [illegible] सभी किस्म के सामाजिक प्रोग्राम बनाये जाते हैं, तथा समाज में नवनिर्माण के लिए [illegible] की योजनाएं तैयार की जाती हैं। विद्यालय को सामाजिक परिवर्तन का निर्णायक मानने [illegible] शिक्षा शास्त्री विद्यालय को राज्य की सरकार का उतना ही महत्वपूर्ण भाग मानते हैं [illegible] महत्वपूर्ण विधान सभा होती है। जिस प्रकार राज्य की नीतियों का निर्धारण विधान सभा [illegible] है उसी प्रकार समाज की नीति को निश्चित करने का अधिकार विद्यालय के हाथ [illegible] [illegible] के रूप में भी स्वीकार [illegible] [illegible] हो तो उनके विचार से राष्ट्र के हित [illegible] [illegible] संस्थाओं को सरकार से स्वाधीन बना दिया [illegible] तो विद्यालय अपने उन कार्यों का सफलतापूर्वक निर्वाह न कर सकेंगे जिनका उल्लेख हमने किया था। वे कार्य हैं—

(i) वांछित संस्कारों को सहज एवं सुगठित बनाना।
(ii) सम सामयिक रीतिरिवाजों को परिष्कृत करके आदर्श रूप प्रस्तुत कर
(iii) बालक को सहज रूप से प्रभावित करने वाले समाचारण वातावर[illegible] अपेक्षा अधिक विस्तृत, उदार तथा सन्तुलित वातावरण का निर्माण करन[illegible]

यदि विद्यालय सरकार के अधीन नहीं हैं तो एक राजनीतिक सत्ता के हट[illegible] पर जब दूसरी राजनीतिक सत्ता शासन को हथिया लेती है तब भी विद्यालय के स्वतन्[illegible] के कारण वह उस सामाजिक प्रवृति को निर्बाध रूप से आगे बढ़ाने में लगा रहेगा जिसको अपने हाथ में लिया है।

विद्यालय द्वारा समाज का नव निर्माण तभी सम्भव है जब अध्यापक में नेता के वे [illegible] गुण विद्यमान हों जो नवनिर्माण और जागृति के लिए आवश्यक होते हैं। प्राचीनकाल में [illegible] सुधार का कार्य सैनिक, राजनीतिज्ञ, व्यापारी और धर्म प्रचारकों के हाथ में रहा था अब समय [illegible] गया है जब इस क्षेत्र में अध्यापक अपना सहयोग दें। वह अनेक सामाजिक क्रियाओं, पाठ्य-वि[illegible] तथा पाठ्येतर क्रियाओं द्वारा सामाजिक प्रगति में योगदान दे सकता है।[1]

1. "Through the curriculum and methods of instruction the po[illegible] lies in their hands to take advantage of this strategic position in which th[illegible] find themselves." John, S. Brubacker: *Modern Philosophies of Educat[illegible]* 1950, p 192

सामाजिक विकास मे हाथ बटाने के लिये विद्यालय को पहले अपने और समाज के बीच स्थित खाई को पाटना होगा। आज शिक्षा, समाज की अनुगामिनी बनी हुई है जबकि उसे उसकी मार्गदर्शक होना चाहिये था। विद्यालय समाज के प्रति समीप आने के लिये पाठ्यक्रम मे परिवर्तन उपस्थित करे। समाज मे होने वाली धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक क्रियाओं को पाठ्यक्रम मे स्थान दिया जाय। इन क्रियाओ मे भाग लेने की क्षमता पैदा करना विद्यालय का उत्तरदायित्व हो। कोई भी कठिन पाठ्यक्रम बच्चों पर न लादा जाय क्योकि वर्तमान समाज का प्रमुख लक्ष्य परिवर्तन और विकास है। समाज की समस्याओं, उसकी गतियों तथा आदर्शों द्वारा विद्यालय अपने पाठ्यक्रम को गतिशील बनाने का प्रयास करें।

पाठ्यक्रम मे परिवर्तन के साथ-साथ ऐसी शिक्षा प्रणालियाँ अपनाई जायँ जो शिक्षकों के जीवन को प्रभावित कर सकें उनकी मूल प्रवृत्तियों का शोधन और मार्गान्तीकरण समान हित मे कर सकें और स्वतन्त्र चिन्तन, तर्कशक्ति तथा अन्य विशेष गुणों का सृजन करके व्यक्तियो को इस योग्य बना दे कि वे सामाजिक प्रगति मे हाथ बटा सकें।

पाठ्यक्रम मे परिवर्तन, शिक्षण पद्धतियों मे शोधन उतना ही आवश्यक है जितना कि समाज मे सास्कृतिक क्रियाओ में छात्रों को भाग लेने के लिये उत्प्रेरित करना। यदि विद्यालय समाज का केन्द्र बन जाय, यदि प्रौढ व्यक्ति विद्यालय मे ही आकर अवकाश के समय समाज की समस्याओ पर विचार विमर्श करते रहें, यदि विद्यालयो मे शैक्षिक और व्यावसायिक आदि दर्शनों की स्थापना हो, प्रौढ शिक्षा, ग्राम सर्वेक्षण, साहित्यिक कार्यक्रमो का केन्द्र यदि विद्यालय बन जाय तो विद्यालय सामाजिक प्रगति मे सही योगदान दे सकता है।

कुछ विद्वानो का मत है कि परिवार व्यवसाय, तथा धर्म की सहायता के बिना विद्यालय समाज परिवर्तन मे अधिक महत्वपूर्ण योग नही दे सकता। वे विद्यालयों को सामाजिक परिवर्तन का स्वामी नहीं दास मानते हैं और इस बात को दावे के साथ कह सकते हैं कि विद्यालय समाज का नेतृत्व नही कर सकता। उनकी दलीलें इस प्रकार हैं :—

(१) विद्यालय को कोई अधिकार नहीं है कि वह समाज राजनीति का विधान बनावे यह अधिकार तो राज्य की विधान सभा को ही होता है।

(२) विद्यालय समाज सुधार हेतु जिन योजनाओ को बनाने का प्रयास करता है उन योजनाओ का समाज विरोध भी कर सकता है और इस प्रकार भय इस बात का है कि समाज मे सामाजिक सघर्षों का सूत्रपात हो जाय।

(३) विद्यालय सामाजिक प्रगति के लिये जिन अध्यापको की नियुक्ति करता है वे नेतृत्व के उत्तरदायित्व को सम्हाल नहीं सकते।

(४) समाज मे परिवर्तन उपस्थित करने की शक्ति विद्यालयो मे इतनी अधिक नही है जितनी कि आर्थिक सस्थाओ मे, राजनैतिक शक्तियो मे, और सैनिक विजयो मे है।

यदि विद्यालय सामाजिक परिवर्तन उपस्थित नहीं कर सकता तो इतना अवश्य कर सकता है कि उन परिवर्तनो को रिक्त स्थानो की पूर्ति करे और उनको स्थायित्व दे। ब्लैडन ने अपनी पुस्तक शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन मे लिखा है कि मतपत्रों अथवा बन्दूक की गोलियो की सहायता से शासन मे जो परिवर्तन उपस्थित होते हैं उन परिवर्तनो को दृढता देने का काम शिक्षालयों का है। इस अर्थ मे शिक्षालय सामाजिक परिवर्तनो के स्वामी नहीं हैं वरन् उनके दास हैं, लेकिन कौन स्वामी है और कौन दास यह कहना अत्यन्त कठिन है इसीलिये बैगले ने शिक्षालयों को सामाजिक परिवर्तन का न तो स्वामी ही माना है और न दास ही। उनका कहना है कि विद्यालय यदि ऐसे युगान्तकारी परिवर्तन के समय कुछ कर सकता है तो केवल इतना ही कर सकता है कि वह सामाजिक अस्थिरता को कम करे और सामाजिक व्यवस्था मे सन्तुलन को बिगाड़ने वाली शक्तियो को इस प्रकार नियन्त्रित करे कि पुन सन्तुलन स्थापित हो जाय[1]।

---

1. "In times of rapid chan[illegible]
t[illegible]
d[illegible]
b[illegible]

क्या भारतीय विद्यालय सामाजिक प्रगति के उत्तरदायित्व को वहन करने में समर्थ हैं ? बिल्कुल नहीं क्योंकि न तो वे समाज के लघु और परिष्कृत रूप ही हैं और न उनमें सामाजिक समस्याओं के सुलझाने और सामाजिक प्रगति की ओर सक्रिय रूप से ध्यान देने का प्रयास ही किया गया है। ग्रामीण समाज तो विद्यालयों से अत्यन्त दूर हैं। ग्रामीण समाज तथा विद्यालयों में कोई समन्वय नहीं। ग्रामीण विश्वविद्यालय भी स्थापित किये गये हैं। लेकिन वे सभी ऐसे लोगों को प्रशिक्षण दे रहे हैं जो ग्रामीण जीवन की ओर वापिस नहीं आना चाहते और न ग्राम जीवन की ओर जाना ही चाहते हैं। गाँव का सारा शिक्षित वर्ग शहरों की ओर पलायन कर रहा है।

अध्याय १६

जनतंत्र और शिक्षा

जनतन्त्र में शिक्षा के उद्देश्य

Q. 1. Formulate the aims of Education in a democracy. Discuss critically. *(L. T. 1960)*

Or

Compare the aims of Education in a totalitarian state with aims of Education in a democratic state. *(P. U 1953)*

Or

If democracy is to be a stable form of Government of country, Education for democracy must be introduced and maintained at all costs Discuss this statement indicating briefly what you mean by Education for democracy and how it may be imparted. *(P. U 1954)*

Ans संसार के प्रमुखतम देशों ने प्रजातन्त्रात्मक शासन-प्रणाली को अपना रखा है। हमारे देश में भी जनतन्त्रात्मक शासन-प्रणाली को अपनाया गया है। फलस्वरूप शिक्षा के उद्देश्यों तथा संगठनों में पूर्व की अपेक्षा पर्याप्त परिवर्तन आ गया है। वर्तमान विद्यालयों में शिक्षा इसी उद्देश्य से प्रदान की जा रही है जिस से देश में जनतन्त्रात्मक प्रणाली सफल हो सके। जनतन्त्र और शिक्षा के सम्बन्धों पर प्रकाश डालने से पूर्व हमें जनतन्त्र का अर्थ तथा परिभाषाओं पर विचार कर लेना चाहिए।

प्रजातन्त्र का अर्थ—प्रजातन्त्र की परिभाषा विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से की है। लार्ड ब्राइस (Lord Bryce) के अनुसार प्रजातन्त्र एक ऐसे शासन का रूप है, जिसमें शासन की सत्ता किसी व्यक्ति या वर्ग में अवस्थित नहीं होती वरन सम्पूर्ण प्रजावर्ग में परिवेष्ठित होती है। (Democracy is the form of Government in which ruling power of a state is legally vested, not in any particular individual or class but in the members of the community as a whole) प्रजातन्त्र की सबसे प्रसिद्ध परिभाषा अब्राहम लिंकन (Abraham Lincoln) ने गेट्सबर्ग के प्रसिद्ध भाषण में दी थी "प्रजातन्त्र में प्रजा का, प्रजा द्वारा, प्रजा हितार्थ शासन होता है" (Government of the people, for the people and by the people) इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रजातन्त्र में शासन मुख्यतया जनता या जनता के प्रतिनिधियों द्वारा होता है।

हैण्डरसन ने प्रजातन्त्र की परिभाषा इस प्रकार दी है :—

प्रजातन्त्र दो मुख्य सिद्धान्तों पर आधारित है—(अ) मानव के व्यक्तित्व के मूल्य की अनन्तता, (ब) मनुष्य द्वारा अपने कार्य को सँभाल सकने की क्षमता में विश्वास।

Democracy is based on two assumptions : the infinite value and worth of human personality and the belief that men are capable of managing their own affairs in such a way as to promote the welfare of all and that, therefore they should have the freedom to do so.

ऊपर दी गई तीन परिभाषाओं से जनतन्त्र का अर्थ राजनैतिक दृष्टि से [illegible] है। ऐसे शासन में प्रत्येक नागरिक को उसके अधिकार प्राप्त करने का अवसर मिलता है और उसे कर्तव्यों के प्रति जागरूक किया जाता है।

परन्तु कुछ दार्शनिक जनतन्त्र को जीवन यापन की एक विशेष रीति मानते हैं क्योंकि यह जीवन यापन के प्रमुख अंगों को प्रभावित करता है। बायड बोड का ऐसा ही मत है। इस प्रकार जनतन्त्र का अर्थ हम राजनैतिक दृष्टिकोण से लेना ही पर्याप्त नहीं है। आर्थिक क्षेत्र में भी प्रत्येक व्यक्ति को समान अवसर प्राप्त हो। जनतन्त्र बिना भेद भाव के सभी को उन्नति के समान अवसर देता है। जनतन्त्र में सार्वजनिक हितों का विशेष ध्यान रखा जाता है और व्यक्तिगत स्वार्थों को सामाजिक नियन्त्रण द्वारा अनुशासित किया जाता है।

प्रजातन्त्र के सिद्धान्त

(१) व्यक्ति तथा राज्य —प्रजातन्त्र राज्य में व्यक्तित्व को पर्याप्त महत्व प्रदान किया जाता है। राज्य की समस्त क्रियायें व्यक्ति में केन्द्रित रहती हैं। उसके मानसिक, शारीरिक तथा आर्थिक विकास के लिये ही सारे कार्य किये जाते हैं।

(२) जनता का शासन —प्रजातन्त्र में शासन जनता के द्वारा किया जाता है अत नागरिकों का उत्तरदायित्व भी बढ़ जाता है। प्रजातन्त्र में नागरिक से अपने हित तथा अहित को समझने की आशा की जाती है।

(३) परिवर्तनशीलता —प्रजातन्त्र का आधार जनता की शक्ति है अत जनता के प्रतिनिधि आवश्यकतानुसार संविधान में परिवर्तन कर सकते हैं। प्रजातन्त्र राज्य में नागरिक का जीवन भी गतिशील होता है।

(४) समानता तथा भ्रातृभाव—प्रजातन्त्र में विधि के समक्ष सब को समान माना जाता है। देश भर के समस्त नागरिकों को एकसी स्वतन्त्रता तथा समानता प्रदान की जाती है। दूसरे, प्रजातन्त्र के नागरिकों से आशा की जाती है कि वे आपस में भ्रातृभाव बनाये रखें तथा पारस्परिक सहयोग और प्रेम से राष्ट्र निर्माण में अपना योग दें।

(५) विचारों की स्वतन्त्रता —प्रजातन्त्र में प्रत्येक नागरिक को अपने विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता रहती है। नागरिकों को इस बात का अधिकार मिलता है कि वह प्रशासन की पूर्ण आलोचना कर सकें। वाद-विवाद द्वारा शासन की बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न किया जाता है।

प्रजातन्त्र की सफलता के मुख्य घटक—शिक्षा

प्रजातन्त्र की सफलता शिक्षा के ऊपर निर्भर है। यदि देश का अधिकांश जनसमुदाय, निरक्षरता के अन्धकार में डूबा हुआ है, ऐसी दशा में प्रजातन्त्र की सफलता पर सन्देह किया जा सकता है। *जनतन्त्र की सफलता का प्रमुख आधार साक्षरता है। संसार के प्रमुख प्रजातन्त्रवादी* देशों में जनसाधारण में शिक्षाप्रसार की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। शिक्षित नागरिक ही शासन के उत्तरदायित्व को सँभाल सकता है। देश के समस्त नागरिक प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से शासन में भाग लेते हैं अत यह आवश्यक हो जाता है कि उनमें इतनी योग्यता उत्पन्न की जाय जिससे कि वे मतदान तथा शासन में योग देना सीख सकें। यह योग्यता केवल शिक्षा के माध्यम *से ही उत्पन्न की जा सकती है। वास्तव में जनतन्त्र की रक्षा जनतन्त्रात्मक शिक्षा के माध्यम से ही* की जा सकती है। जनतन्त्रात्मक देश में शिक्षा का स्वरूप भी जनतन्त्रीय आधार पर होना चाहिए तभी प्रजातन्त्र सफल हो सकता है। (A central task of democratic Education is to [illegible] a programme of de- [illegible] American Democracy)

[illegible] भेदभाव के देश के समस्त

प्रजातन्त्रात्मक शिक्षा का उद्देश्य :—प्रजातन्त्र में शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य जनसाधारण को प्रजातन्त्र के योग्य बनाना है। नीचे हम अन्य उद्देश्यों की चर्चा करेंगे :—

(१) **शिक्षा सर्वसाधारण को प्रदान करना** :—जनतन्त्रात्मक शिक्षा का प्रथम उद्देश्य देश की सर्वसाधारण जनता को शिक्षित करना है। जनतन्त्र की सफलता साक्षरता के ऊपर निर्भर है अतः राज्य का कर्त्तव्य है कि वह अपने समस्त साधनों को शिक्षा प्रसार में लगाये।

(२) **सामाजिकता की भावना पैदा करना** —विद्यालयों में पाठ्य-सहगामी क्रियाओं के माध्यम से बालकों में सामाजिकता की भावना भरने का प्रयत्न किया जाय। इन क्रियाओं से बालक एक-दूसरे के निकट आते हैं तथा उनमें पारस्परिक सहयोग की भावनाओं का उदय होता है। वे परस्पर मिलकर काम करना सीख जाते हैं जिससे कि वे भविष्य में समाज सहयोग तथा भ्रातृ भाव के आधार पर अपना योग प्रदान कर सकें।

(३) **विभिन्न रुचियों का विकास** —प्रजातन्त्रात्मक देशों की आवश्यकताएं भी भिन्न होती हैं अतः यह आवश्यक है कि विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये शिक्षा का आयोजन किया जाय। विद्यालय में विभिन्न क्रियाओं द्वारा बालकों की विभिन्न रुचियों को विकास करने का प्रयत्न करना चाहिए। बालकों में जितनी रुचियों का विकास किया जायगा उतना ही वे समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकेंगे।

(४) **जनतंत्रात्मक नागरिकता का विकास** —जनतन्त्रात्मक देश में नागरिक का उत्तरदायित्व और देशों की अपेक्षा अत्यधिक होता है। इस कारण शिक्षा के द्वारा इस प्रकार के नागरिकों को उत्पन्न किया जाय जो जनतन्त्रात्मक वातावरण में पूर्णतया अनुकूल हों। नागरिकों में भाषण तथा लेखन की स्पष्टता, अनुशासन, योग और सामाजिकता की भावनाओं का विकास करना परम आवश्यक है। इस प्रकार जनतन्त्रात्मक शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य प्रजातन्त्रात्मक नागरिकता का विकास करना है।

(५) **व्यावसायिक कुशलता का विकास** —जनतन्त्रीय शिक्षा का अन्य उद्देश्य नागरिकों में व्यावसायिक कुशलता की वृद्धि करना है। शिक्षा का संगठन इस प्रकार किया जाय जिससे वे शिक्षा समाप्ति के पश्चात् किसी व्यवसाय में लग सकें। पाठ्यक्रम में प्रमुखतया औद्योगिक विषयों को रखा जाय।

(६) **व्यक्तित्व का विकास** —बालक के व्यक्तित्व का विकास एक दिशा में न होकर सर्वाङ्गीण होना चाहिए। इस कारण पाठ्यक्रम में उन विषयों को रखा जाय जिसमें बालकों का साहित्यिक, सांस्कृतिक और कलात्मक विकास हो सके।

(७) **नेतृत्व का विकास** —प्रजातन्त्र की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि बालकों को नेतृत्व की शिक्षा प्रदान की जाय। आज का छात्र कल शासन की बागडोर सम्हालेगा अतः यह आवश्यक हो जाता है कि बालक को नेतृत्व की शिक्षा इस प्रकार दी जाय जिससे कि वे राजनीतिक, सामाजिक, औद्योगिक, तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में कुशलता के साथ नेतृत्व कर सकें।

जनतान्त्रिक भावना का विकास कब सम्भव है ?

किसी राष्ट्र के नागरिकों में जनतान्त्रिक भावना का विकास तभी सम्भव है जब हम शिक्षा क्रम में निम्नलिखित ६ मूल सिद्धान्तों को मान्यता दें :—

(१) व्यक्ति स्वतन्त्र है—उसे अपना निर्णय लेने की स्वतन्त्रता है और अपने कार्यों के लिये वही उत्तरदायी है। लेकिन इस स्वतन्त्रता का अर्थ यह नहीं है कि व्यक्ति पर कोई बन्धन नहीं है।

(२) समाज के प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार प्राप्त है—जब प्रत्येक व्यक्ति को अधिकारों की समानता मिल सकती है तब प्रत्येक व्यक्ति मनमानी नहीं कर सकता। प्रत्येक व्यक्ति वही काम कर सकता है जो दूसरे के काम में बाधक न हो। उसे अपने जीवन को अपनी योग्यताओं के अनुसार उत्तम से उत्तम बनाने का अधिकार है।

(३) **अधिकारों में कर्तव्य निहित है**—यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार प्राप्त है किन्तु उसके समाज, राष्ट्र अथवा देश के प्रति कुछ कर्तव्य भी हैं जिनका पालन लोक-कल्याण तथा अधिकार मात्र के लिए आवश्यक है।

(४) **पारस्परिक सहयोग द्वारा भी लोक-कल्याण सम्भव है**—लेकिन लोककल्याण तभी सम्भव है जब एक व्यक्ति दूसरे के साथ मिलकर कार्य करे।

(५) **पारस्परिक सहयोग के साथ साथ बौद्धिक स्वतन्त्रता आवश्यक है**—प्रत्येक व्यक्ति को वादविवाद करने की पूर्ण स्वतन्त्रता हो उसे अपनी सहमति देने का पूर्ण अधिकार हो।

"Everyone has the right to freedom of opinion : without interference and to seek, receive, impart information and ideas"

—The Universal Declaration of Human Rights

(६) **सबको विचार विमर्श करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है**—जनतन्त्र की सफलता के लिये आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति स्वचिन्तन द्वारा प्राप्त विचारों को दूसरे के समक्ष रखें और उसे इस बात की पूर्ण स्वतन्त्रता हो कि वह अपने मत को उस समय भी व्यक्त कर सके जब कि उसके विचार दूसरे से मेल न खाते हों।

अत यदि हम जनतन्त्र की सफलता चाहते है तो विद्यालय के इन सिद्धान्तों को मान्यता देनी होगी।

प्रजातन्त्रात्मक विद्यालयों का पाठ्यक्रम.—जनतन्त्रात्मक विद्यालयों के लिए पाठ्यक्रम का निर्धारण अत्यन्त सोच समझकर सावधानी के साथ करना चाहिये। जहाँ तक सम्भव हो पाठ्यक्रम प्रजातन्त्र की आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाला होना चाहिए। पाठ्यक्रम लचीला हो जिससे आवश्यकतानुसार उसमे हेर-फेर किया जा सके। सामाजिक भावनाओं का विकास करने वाले विषय प्रमुख रूप से पाठ्यक्रम मे सम्मिलित किये जायें। इन विषयों मे प्राकृत विज्ञान, कृषि विज्ञान, मातृभाषा तथा कला कौशल, इतिहास, नागरिक शास्त्र, भूगोल तथा स्वास्थ्य-विज्ञान उल्लेखनीय हैं। इन विषयों का शिक्षण इस ढग से किया जाय जिससे कि बालकों की अभिरुचियों का विकास अधिक से अधिक हो सके। क्रिया को प्रधानता देना भी आवश्यक है। सामाजिक कुशलता के साथ-साथ यह आवश्यक है कि छात्र जीविकोपार्जन का साधन प्राप्त करने मे भी समर्थ हो सके। अत पाठ्यक्रम मे टैक्नीकल विषयों का भी समावेश किया जाय।

जनतन्त्र और विद्यालय प्रबन्ध:—प्राचीन काल मे विद्यालयों मे प्रबन्ध का स्वरूप एकतन्त्रात्मक था। प्रधान अध्यापक ही विद्यालय का सर्वेसर्वा होता था। उसकी आज्ञा ही सब कुछ थी। प्रबन्ध का समस्त संचालन वह अपनी इच्छा के अनुसार करता था। अध्यापक तथा छात्रों के सहयोग की कोई बात भी नहीं सोचता था। परन्तु प्रजातन्त्र-प्रणाली अपनाने वाले देशों के विद्यालयों मे विद्यालय का प्रबन्ध पूर्णतया अध्यापक मण्डल, प्रधान अध्यापक तथा छात्रों के सहयोग से चलता है। पाठ्यक्रम का निर्धारण अध्यापकों द्वारा होता है। कक्षा-कार्य की योजनाओं, रचनात्मक कार्यों के सगठन आदि के क्षेत्रों मे अध्यापकों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्रदान की जाती है। अध्यापक के कार्यों की आलोचना प्रधान अध्यापक रचनात्मक दृष्टिकोण से ही करते हैं। इस प्रकार विद्यालय का प्रबन्ध सहयोग, प्रेम तथा सहकारिता के आधार पर ही चलता है।

प्रजातन्त्रवाद तथा अध्यापक:—प्रजातन्त्रात्मक शासन मे अध्यापक का विशेष स्थान होता है। समाज मे जनतन्त्रात्मक भावनाओं के विकास के लिये अध्यापक सबसे उत्तम तथा सरल साधन है। अध्यापक अपने छात्रों के माध्यम से समाज में जनतन्त्रात्मक विचारधाराओं का प्रतिपादन करता है। अध्यापक का विश्वास अनुक्रम की अपेक्षा वातावरण के प्रभाव में अधिक रहेगा। साथ ही अध्यापक बालक की व्यक्तिगत भिन्नता तथा विभिन्न अभिरुचियों के विकसित होने का पूर्ण अवसर देगा। वह अपने प्रयत्नों द्वारा बालकों को देश का उत्तरदायी नागरिक बनाने का प्रयत्न करेगा।

प्रजातन्त्र और शिक्षण-प्रणाली:—प्रजातन्त्रवादी शिक्षण मे, अध्यापक छात्र को क्रियाशील रहने की प्रेरणा देता है। अध्यापक छात्र को तर्क करने, प्रश्न करने आदि की पूर्ण

स्वतन्त्रता प्रदान करता है। छात्रों के ऊपर ज्ञान थोपा न जाकर मनोवैज्ञानिक प्रणालियों के आधार पर विषय समझाने की चेष्टा की जाती है। अध्यापक का कार्य केवल मार्ग-प्रदर्शन का है—वह प्राचीन काल की तरह बालकों को मारपीट कर विषय नहीं समझाता। प्रत्येक विषय इस ढंग से बालकों के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है कि अत्यन्त चाव तथा रुचि से कक्षा में अध्ययन करते हैं।

प्रजातन्त्रवाद और अनुशासन :—जिन विद्यालयों में जनतन्त्रात्मक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जाता है वहाँ अनुशासनहीनता का प्रश्न नहीं उठता और यदि उठता भी है तो उसका इलाज भी तुरन्त हो जाता है। कक्षा-समितियाँ तथा विद्यालय-परिषद् स्वयं निर्णय करके बालकों में फैली अनुशासनहीनता को कम करने में परम सहायक होती हैं। बालक स्वयं शासन में भाग लेते हैं अतः वे नियमों का उल्लंघन करना भी पसन्द नहीं करते। बालकों पर अनुशासन बाहर से न लादकर अन्दर से उत्पन्न किया जाता है—दूसरे शब्दों में विद्यालय में आत्मानुशासन पर विशेष रूप से बल दिया जाता है।

एकतन्त्रवादी-शिक्षा का स्वरूप :—जनतन्त्रात्मक शिक्षा का स्वरूप जब तक समझ में नहीं आ सकता जब तक एकतन्त्रवादी शिक्षा के स्वरूप की रूपरेखा प्रस्तुत न की जाय।

(१) राष्ट्रीय गौरव को अधिक महत्व देना :—एकतन्त्रवादी देशों में शिक्षा के माध्यम से राष्ट्र के गौरव का गान किया जाता है। जिन महापुरुषों ने राष्ट्र के निर्माण में योग दिया था उनका वर्णन पाठ्य-पुस्तकों में बढ़ा-चढ़ाकर किया जाता है। राष्ट्र के अधिनायक की जीवनगाथा को भी पढ़ाया जाता है और उसके प्रति श्रद्धा की भावना भरने का प्रयत्न किया जाता है।

(२) शिक्षा के द्वारा जातीयता के प्रति प्रेम उत्पन्न करना :—एकतन्त्रात्मक देशों में जाति को विशेष महत्व प्रदान किया जाता है। जर्मन वासियों का नारा था "जाति से परे प्रत्येक वस्तु निरर्थक है।" वे अपने इस सिद्धान्त का प्रसार शिक्षा के माध्यम से करते थे। बालकों को जर्मनी के जातीय गौरव के पाठ पढ़ाये जाते थे और उनको बताया जाता था कि वे संसार की सर्वश्रेष्ठ जाति हैं।

(३) शिक्षा पर राज्य का नियंत्रण :—एकतन्त्रात्मक देशों में शिक्षा पूर्णतया राज्य के अधीन रहती है। पाठ्यक्रम, शिक्षण-प्रणालियाँ, तथा पाठ्य-पुस्तकों आदि का निर्धारण राज्य स्वयं करता है।

(४) व्यापक तथा अनिवार्य शिक्षा :—एकतन्त्रात्मक देशों में शिक्षा समस्त नागरिकों के लिए राज्य की ओर से अनिवार्य की जाती है। देश भर के लिये निःशुल्क शिक्षा का प्रबन्ध करना राज्य अपना कर्त्तव्य समझता है।

(५) व्यावसायिक तथा औद्योगिक शिक्षा को महत्व :—राज्य की भौतिक उन्नति के लिए एकतन्त्रवादी देश व्यावसायिक तथा औद्योगिक शिक्षा को विशेष महत्व देते हैं। उच्च शिक्षा के पाठ्य-क्रम में व्यावसायिक शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। सैनिक-शिक्षा को भी अनिवार्य रूप से प्रत्येक [illegible] को लेना पड़ता है।

एकतन्त्रवादी शिक्षा की आलोचना—

(१) एकतन्त्रवादी देश व्यक्ति से अधिक राज्य को महत्व प्रदान करते हैं अतः व्यक्ति के स्वतन्त्र विकास का प्रश्न ही नहीं उठता।

(२) शिक्षा पर राज्य का नियन्त्रण रहने के कारण शिक्षा का उद्देश्य बालकों का मानसिक, शारीरिक तथा आध्यात्मिक उन्नयन होकर राज्य के प्रति श्रद्धा प्रकट करना मात्र रह जाता है।

(३) राज्य केवल एक ही संकीर्ण विचारधारा का प्रतिपादन करता है फलस्वरूप समाज तथा अध्यापक का दृष्टिकोण अत्यन्त संकीर्ण हो जाता है।

(४) शिक्षा के माध्यम से राजनीतिक सिद्धान्तों का प्रसार किया जाता है जिससे शिक्षा राजनीति का केवल प्रचार साधन बनकर रह जाती है।

जनतन्त्रीय शिक्षा का स्वरूप

Q 2 The future of Indian Democracy rests with our schools Discuss this and suggest practical ways in which schools can help in this direction.

Or

How far and in what ways can education help the realization of the democratic ideal ? What is the role of the teacher ?

Ans. हमारे देश ने अभी हाल में ही स्वतन्त्रता प्राप्त की है और राष्ट्र के कर्णधारों ने बहुत सोच-विचार के बाद जनतन्त्रीय व्यवस्था स्थापित की है। जैसा कि निम्नांकित संकल्प से प्रतीत होता है—

"हम भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने के लिये तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिये तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाली बन्धुता बढ़ाने के लिये दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस विधान सभा में आज तारीख २६ नवम्बर १६४६ ई० (मिति मार्ग शीर्ष सप्तमी, सम्वत् २००६ विक्रमी) को एतद् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

इस संकल्प से पता चल सकता है कि हमारे संविधान ने जनतन्त्र के सूत्रों—न्याय, स्वतन्त्रता, समानता और बन्धुता—को जितना महत्व दिया है, देश की शिक्षा इन्हीं सिद्धान्तों पर चले, सब लोगों को समान अधिकार मिलें, सभी वर्गों के बालकों को शिक्षा की समान सुविधाएँ दी जायें, हमारा यही उद्देश्य है।

लेकिन ऐसा कब हो सकता है तभी न जब जनता सुशिक्षित हो और जनतन्त्र को हृदय से स्वीकार करे। जनतन्त्र शक्ति के द्वारा विकसित नहीं किया जा सकता वह ऊपर से थोपने की वस्तु नहीं है। (I hold that democracy cannot be evolved by forcible methods. The spirit of democracy cannot be imposed from without. It has to come from within."—M. K. Gandhi.)

यह तभी सम्भव है जब तक भारतीय शिक्षा का आधार जनतन्त्रात्मक हो।

समस्त राजनैतिक संस्थाएँ भी जनतन्त्रात्मक व्यवस्था के आधार पर स्थापित हो चुकी हैं और यह प्रयास निरन्तर जारी है कि हम अपनी संस्थाओं को जनतन्त्रीय आधार पर ही पुनर्निमित करें। किसी भी जनतन्त्र में शिक्षा के उद्देश्य निम्नांकित हो सकते हैं —

(१) आत्मविकास (Self-realisation)
(२) मानव सम्बन्ध (Human Relations)
(३) आर्थिक परिपूर्णता (Economic Efficiency)
(४) नागरिक उत्तरदायित्व (Civic Responsibility)

पहले उद्देश्य की प्राप्ति के लिये प्रत्येक नागरिक को ज्ञान देना होगा, मातृ-भाषा द्वारा उसके विचारों का प्रकाशन वाणी द्वारा करना होगा। उसमें पढ़ने लिखने की शक्ति पैदा करनी होगी। स्वास्थ्य सम्बन्धी सभी बातों का आवश्यक ज्ञान देकर स्वास्थ्य सम्बन्धी अच्छी आदतें डालनी होंगी तथा अपने आश्रितों के स्वास्थ्य की रक्षा कर सकने की क्षमता पैदा करनी होगी। अवकाश के समय को सुखद तथा दुखद लाभप्रद तरीकों से बिताने का प्रयत्न करना होगा।

दूसरे उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मानवता का आदर करने, दूसरों के साथ सहयोग और सहकारिता भाव के साथ कार्य करने, कुटुम्ब के आदर्शों की रक्षा करने, कुटुम्ब की व्यवस्था में कौशल प्राप्त करने, कुटुम्ब में जनतन्त्रात्मक सम्बन्धों को स्थापित करा सकने की योग्यता पैदा करनी होगी।

आर्थिक परिपूर्णता लाने के लिए हमें प्रत्येक नागरिक को विभिन्न धन्धों के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी देकर अपने जीवन को

चुनने की क्षमता पैदा करनी होगी। अपने चुने हुए धन्धों में आवश्यक निपुणता पैदा कर उस व्यावसायिक निपुणता को कायम रखने, अपने धन्धे के सामाजिक महत्व को समझ सकने, अपने काम का ठीक-ठीक मापदण्ड बना सकने, आवश्यक वस्तुओं को कुशलतापूर्वक खरीद सकने की क्षमता पैदा करनी होगी।

नागरिक उत्तरदायित्वों का भली प्रकार पालन कराने के लिए हमें प्रत्येक बालक में विभिन्न सामाजिक प्रक्रियाओं को समझने, विभिन्न विज्ञापनों के बीच ठीक निर्णय दे सकने, अपने को विश्व समाज का सदस्य समझ सकने, नागरिकता के नियमों एवं कर्तव्यों को पालन कर सकने, जनतन्त्रात्मक सिद्धान्तों के प्रति भक्ति रखने, राष्ट्र सम्पत्ति की रक्षा करने, आदि की योग्यता पैदा करनी होगी।

की शिक्षा की ही व्यवस्था अमेरिका, इंगलैण्ड, फ्रांस, किया है। जनतन्त्रात्मक राष्ट्रों में शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति का अधिकार है अतः जनतन्त्रात्मक राज्यों में राज्य की ओर से, सभी प्रकार के व्यक्तियों (बालक और प्रौढ़ों) के लिए—गूंगों, बहरों, विकलांगों, शारीरिक और मानसिक कमी वाले व्यक्तियों की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया है। भारत इस दिशा में अन्य देशों से बहुत पीछे है।

जनतन्त्र में विद्यालय का महत्व

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए स्कूल क्या-क्या कर सकता है, इन बातों के लिए कुछ सुझाव पेश किये जाते हैं—

(१) बालकों की शिक्षा उनकी रुचियों और योग्यताओं के अनुरूप हो। बालकों के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास के लिए उचित वातावरण का आयोजन करना जनतन्त्रवादी शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है। बालक की घरेलू परिस्थितियों, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, मनोवैज्ञानिक विलक्षणताओं तथा अभिवृत्तियों को समझने पर उसकी शिक्षा व्यवस्था की जाय। बुद्धि परीक्षाओं द्वारा उसकी मानसिक योग्यता का अनुमान कर उसका उचित रूप से मानसिक विकास किया जाय।

(२) पाठ्य-क्रम का निर्धारण प्रजातन्त्र के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया जाय। क्रिया द्वारा शिक्षा के आदर्शों के अनुसार शिक्षकों को अपने कार्य को पूरा करना चाहिये, यदि वे चाहते हैं कि प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों के अनुकूल विद्यार्थी स्वयं ठीक निष्कर्ष पर पहुँच सकें। पाठ्य-क्रम में कृषि, प्रकृति निरीक्षण, उद्योग, मातृभाषा अध्ययन, विदेशी तथा प्रादेशिक भाषाओं का ज्ञान गणित, विज्ञान, भूगोल, नागरिक शास्त्र, इतिहास, स्वास्थ्य विज्ञान, विविध कलाओं का ज्ञान देना होगा।

(३) जनतन्त्रात्मक भावनाओं के प्रसार में अध्यापक को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाय। समाज के सभी भावी नागरिकों का सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूप से अध्यापक अपने आदर्श चरित्र, सुन्दर क्रियाकलाप, और सुन्दर जीवन से उन्हें प्रभावित कर शिक्षण करे। सब बालकों को विकास का समान अवसर दें, उनकी वैयक्तिक विभिन्नताओं को ध्यान में रखकर उनके विकास के उपकरण प्रस्तुत करें।

(४) शिक्षा पद्धतियाँ ऐसी हों जो विद्यार्थी को अन्वेषण करने के लिए स्वतन्त्र छोड़ दें। जनतन्त्रात्मक सिद्धान्तों के अनुसार कार्य करने के लिए शिक्षक को ऐसी शिक्षण प्रणालियाँ अपनानी करनी होंगी जो विद्यार्थियों को निरन्तर क्रियाशील रहने की प्रेरणा देती रहें, तथा उन्हें प्रश्न पूछने, तर्क एवं आलोचना करने का पूर्ण अधिकार दे सकें। अध्यापक को केवल पथ-प्रदर्शक रहकर ही शिक्षण करना है। इन शिक्षण विधियों में मान्टेसरी, डाल्टन, प्रोजेक्ट और ह्यूरिस्टिक आदि पद्धतियों के तत्व लिए जा सकते हैं।

(५) विद्यालयों का प्रबन्ध जनतन्त्रात्मक सिद्धान्तों पर आधारित हो। कक्षा-कार्य की योजना बनाने और रचनात्मक कार्यों का संगठन करने में अध्यापक एवं विद्यार्थियों को पूरी-पूरी स्वतन्त्रता हो। प्रबन्धकों एवं स्कूल के निरीक्षकों का इन कार्यों में हस्तक्षेप करना जनतन्त्रात्मक सिद्धान्तों के विपरीत है। अध्यापक के कार्य की आलोचना रचनात्मक तरीके से की जा

सकती है ध्वंसात्मक विधियों से नहीं। स्कूल के अधिकारियों में मित्रता और सहकारिता का भाव हो, तभी अध्यापक और अधिकारियों के बीच जनतन्त्रात्मक सम्बन्ध की वृद्धि हो सकती है। यदि अध्यापक को अपने कार्य में स्वतन्त्र छोड़ दिया जाय तो वह स्कूल के शासन और नीति में अपूर्व सहयोग दे सकता है, अपने कार्य में अधिक प्रौढ़ता प्राप्त कर अध्यापन कार्य भी अधिक सरलतापूर्वक सम्पादित कर सकता है।

(६) सामाजिक उत्तरदायित्वों की शिक्षा देकर बालकों में अनुशासन की समस्या को सुलझाया जाय। जनतन्त्रात्मक सिद्धान्तों के अनुसार कार्य करने से स्कूल में अनुशासनहीनता की समस्या उत्पन्न होगी ही नहीं यदि होती भी है तो उसका समाधान स्वतः हो जाता है क्योंकि विद्यार्थियों पर कोई कार्य उनकी इच्छा के विरुद्ध लादा नहीं जाता। स्कूल परिषद, कक्षा समितियाँ तथा स्कूल संसद में भाग दिलाकर बालकों को स्कूल के प्रशासन में भाग लेने की शिक्षा दी जा सकती है। इस प्रकार वे अच्छी तरह समझने लगते हैं कि वे स्कूल के समाज के सदस्य हैं। वे जिन नियमों का पालन करते हैं वे उन्ही के बनाए हुए नियम हैं। वे उन्हें बिना किसी विरोध के स्वीकार कर सकते हैं।

जनतन्त्र में अध्यापक का महत्व :—समाज की प्रगति तभी हो सकती है जब उसका नेतृत्व करने वाला अध्यापक नैतिक गुणों से सम्पन्न, सक्रिय, ईमानदार और व्यवहार कुशल हो उसका कर्त्तव्य है कि वह कक्षा में अथवा कक्षा के बाहर अपने शिष्यों में सामाजिकता की भावना का विकास करने के लिये उचित वातावरण तैयार करे, अपने बालकों को सामूहिक कार्यों में भाग दिलाकर उनके सहानुभूति, सहयोग, प्रेम, आदि गुणों का विकास करने की क्षमता उसमें हो। वह उन्हें उनके कर्त्तव्यों का ज्ञान कराकर देश प्रेम, देश भक्ति की भावनाओं का सचार कर सके संक्षेप में उसमे इतनी योग्यता हो कि छात्रों को उत्तम नागरिक बनाने की उसमे क्षमता हो।

जनतन्त्र में शिक्षण विधियाँ :—निष्क्रिय शिक्षण विधियों के स्थान पर जनतन्त्रात्मक शिक्षण प्रणालियों में ऐसी क्रियाओं को विशेष महत्व दिया जाता है जो क्रियाशीलता से ओतप्रोत होती हैं और बालक को सीखने के लिये पूर्ण स्वतन्त्रता देती हैं।

इस प्रकार शिक्षा एव जनतन्त्रात्मक सिद्धान्तो में एक घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित कर हम अपने जीवन का प्रत्येक क्षेत्र बली बना सकते हैं। शिक्षा के सहारे ही जनतन्त्रात्मक राज्य को फलने-फूलने का अवसर मिल सकता है। यदि जनता शिक्षित न हुई, उसमे बुद्धि और चरित्र की हीनता रही तो इसका प्रभाव सरकार पर भी पड़ेगा क्योंकि सरकार के सदस्य जनता के द्वारा निर्वाचित होते हैं। अतः जनतन्त्रात्मक सरकार को अपनी साधारण जनता के सांस्कृतिक विकास और शिक्षा पर विशेष ध्यान देना होगा और किसी निश्चित आयु तक शिक्षा निःशुल्क औरअनिवार्य करनी होगी।

अध्याय १७

राष्ट्रीयता, अन्तर्राष्ट्रीयता और शिक्षा

शिक्षा में राष्ट्रीय दृष्टिकोण

Q. 1 **What is meant by Internationalism in Education ? How far can you reconcile it with your concept of Patriotism ?** *(L. T. 1958)*

Or

In what ways can Education foster both nationalism and international understanding ? Explain fully. *(L. T. 1960)*

Or

How far do you accept Education for international understanding as an aim of Education ? What steps would you take to promote the spirit of internationalism in children ? *(L. T. 1959)*

Ans. शिक्षा में राष्ट्रीय दृष्टिकोण पर विचार करने से पूर्व यह देखा जाय कि राष्ट्र कहते किसे हैं ? कुछ व्यक्ति समाज, राज्य तथा राष्ट्र को एक ही मानते हैं परन्तु यह भूल है। राज्य और राष्ट्र में पर्याप्त अन्तर होता है। राज्य का आवश्यक गुण है प्रभुत्व शक्ति परन्तु राष्ट्र के लिए इस गुण की आवश्यकता नहीं। एक लेखक के अनुसार "राष्ट्र एक मानवी संगठन है। इसके अन्तर्गत एक अच्छी संस्या का होना अनिवार्य है। इसके सदस्यों में एकता और अपनेपन की भावना पाई जाती है। राष्ट्र में एक प्रकार की पारिवारिक भावना का व्यापक रूप देखने को मिलता है। इसके अतिरिक्त राष्ट्र में सांस्कृतिक, धार्मिक, भाषा सम्बन्धी, ऐतिहासिक आदि बातों की एकताएँ भी पाई जाती हैं।

राष्ट्रीयता की भावना का विकास—सुबोध अदावल के शब्दों में "जब एकत्व की भावना को लेकर छोटे-मोटे पारस्परिक भेद-भाव भुलाकर निर्दिष्ट भौगोलिक सीमा के भीतर सारे व्यक्ति सामूहीकरण की भावना से प्रेरित हो उठते हैं तब राष्ट्र का जन्म होता है। किसी राष्ट्र के उत्थान तथा सुदृढ़ता के लिए यह आवश्यक है कि राष्ट्रीय भावनाओं का विकास हो। अतः राष्ट्रीय भावनाओं को विकसित करने तथा राष्ट्र के नागरिकों में जागृति उत्पन्न करने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि शिक्षा को ही इस कार्य का माध्यम बनाया जाय।" कुछ राजनीतिज्ञ शिक्षा के द्वारा राष्ट्रीयता की भावनाओं का प्रसार करना ही शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य मानते हैं। उनके अनुसार शिक्षा की व्यवस्था इस प्रकार की होनी चाहिए कि जिसे प्राप्त करके प्रत्येक व्यक्ति जाति-भेद, प्रान्तीय-भेद तथा निजी-स्वार्थ का त्याग करके राष्ट्र को सुदृढ़ तथा गौरवशाली बनावे। यह स्पष्ट है कि जातीयता, साम्प्रदायिकता, तथा निजी स्वार्थ की भावना राष्ट्र की प्रगति के मार्ग में एक बाधा का कार्य करती है। जब तक व्यक्ति इन भावनाओं से मुक्त नहीं होंगे तब तक किसी राष्ट्र की नींव को सुदृढ़ करने की कल्पना करना ही व्यर्थ है। इस कारण शिक्षा ही एक ऐसा माध्यम रह जाता है जिसके द्वारा इस अप्रगतिशील भावना को नष्ट किया जा सकता है। एक विद्वान् लेखक के अनुसार "जो शिक्षा प्रान्तीयता, जाति-भेद को प्रश्रय देती है वह राष्ट्र-निर्माण पर कुठाराघात करती है। इसलिए, इतना ही पर्याप्त नहीं कि शिक्षा-क्षेत्र में जाति अथवा प्रान्त आदि के भेद को पूर्णतया अस्वीकृत किया जाय अपितु इस भावना का त्याग करने तथा इन सब भेद-भावों से ऊपर एक राष्ट्रीयता की भावना के निर्माण

का प्रयत्न भी किया जाए।" इस प्रकार हम देखते हैं कि शिक्षा के द्वारा जातिभेद तथा साम्प्रदायिकता की भावना का विनाश सरलता से किया जा सकता है।

राष्ट्रीयता की शिक्षा—कुछ देशों ने इस बात को भली प्रकार से अनुभव किया है कि शिक्षा के द्वारा राष्ट्रीय भावनाओं का विकास नागरिकों में सरलता से किया जा सकता है। रूस, जापान, इटली तथा जर्मनी इसके प्रमुख उदाहरण हैं। इन देशों ने शिक्षा के माध्यम से नागरिकों को राष्ट्र का एक शक्तिशाली अंग बनाया है। शिक्षा के द्वारा नागरिकों में राष्ट्रीय भावना भरी जाती है तथा शिक्षा का संगठन भी राष्ट्र की आवश्यकताओं के आधार पर ही किया जाता है। सर्वप्रथम राजनीतिज्ञ इस बात का प्रयत्न करते हैं कि शिक्षा के द्वारा नागरिकों में इस प्रकार की भावना भरी जाय कि वे राष्ट्र के लिए अपना सर्वस्व त्यागने को तैयार हो जायें। इस विचारधारा के समर्थकों के अनुसार "राष्ट्र के लिए व्यक्ति हैं, व्यक्ति के लिए राष्ट्र नहीं।" नागरिकों से इस प्रकार की आशा की जाती है कि वे राष्ट्र के हित के लिए अपने निजत्व तक की परवाह न करें। उनके सामने यह आदर्श रखा जाता है कि वे राष्ट्र के सामने किसी अन्य वस्तु को महत्व न दें। इस प्रकार की भावनाओं से प्रेरित होकर जो शिक्षा प्रदान की जाती है उसका सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि व्यक्तियों में पारस्परिक भेद-भाव, जातीयता तथा प्रान्तीयता की भावना समाप्त हो जाती है और समस्त नागरिक एक सूत्र में बँधकर राष्ट्र निर्माण के कार्य में अपना योग देते हैं। प्रत्येक नागरिक देश के प्रति कर्तव्य तथा उत्तरदायित्व को भली प्रकार समझता है तथा उसे पूरा करने का प्रयत्न करता है। इस विषय में एम० के० अग्रवाल लिखते हैं कि "इस प्रकार की शिक्षा राष्ट्र के निर्माण में अत्यन्त सहायक होती है क्योंकि राष्ट्र-हित का ध्यान रखकर उसकी व्यवस्था की जाती है। इससे राष्ट्र की आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक उन्नति होती है। देश के सभी नागरिक पारस्परिक भेद-भाव को छोड़कर एकत्व के सूत्र में बँध जाते हैं।......प्रत्येक नागरिक अपने स्वार्थ तथा इच्छा को छोड़कर राष्ट्र की सेवा के लिए सदैव तत्पर रहता है। फलतः राष्ट्र समृद्धिशाली, सुखी तथा सर्वशक्तिमान हो जाता है।" शिक्षा के इन लाभों के कारण इस विचारधारा के प्रतिपादक राष्ट्र की शिक्षा पर अपना पूर्ण नियन्त्रण रखते हैं।

प्रत्येक राष्ट्र की उन्नति का आधार अर्थ होता है। अतः राष्ट्र की आर्थिक स्थिति को दृढ़ करने के लिए व्यावसायिक शिक्षा को विशेष महत्व दिया जाता है। राष्ट्रीयता को महत्व देने वाले देश अपने यहाँ व्यावसायिक शिक्षा का विशेष रूप से प्रबन्ध करते हैं। औद्योगिक तथा तकनीकी विषयों को मानव शास्त्रों की अपेक्षा अधिक महत्व दिया जाता है। राष्ट्र की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए औद्योगिक तथा तकनीकी विद्यालयों की स्थापना की जाती है। परिणामस्वरूप राष्ट्र आत्म-निर्भर तथा समृद्धिशाली हो जाता है।

राष्ट्रीयता की शिक्षा का मूल्यांकन—इस पर भी राष्ट्रवादी शिक्षा को हम पूर्णतया दोषमुक्त नहीं कह सकते हैं। राष्ट्रवादी शिक्षा नागरिकों के दृष्टिकोण को अत्यन्त संकुचित तथा संकीर्ण बनाती है। इस प्रकार की शिक्षा के माध्यम से नागरिक को यह बताया जाता है कि 'केवल उनका देश ही उत्तम है' या 'मेरा ही देश, चाहे वह अच्छा या बुरा, मुझे प्रिय होना चाहिए'। नागरिकों में अन्य देश भक्ति की भावनाएँ भरी जाती हैं जैसा कि बरट्रेंड रसेल ने एक स्थल पर कहा है कि "बालक तथा बालिकाओं को यह शिक्षा दी जाती है कि उनकी सबसे बड़ी भक्ति या श्रद्धा उस राज्य के प्रति है जिसके वे नागरिक हैं और उस राज्य-भक्ति का धर्म यह है कि सरकार जैसा कहे वैसा होना चाहिए। उनको इसलिए झूठा इतिहास, राजनीति तथा अर्थशास्त्र समझाया जाता है कि वे अन्य राज्य-भक्ति के पाठ पर नुक्ताचीनी न करें।" इस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था में दूसरे देशों के अन्याय तथा अत्याचारों की गाथाएँ छात्र को सुनाई जाती हैं। दूसरे देशों की जातियों ने कला, संस्कृति तथा विज्ञान के क्षेत्र में क्या-क्या प्रगति की इसका ज्ञान छात्रों को न कराकर जातियों के मूर्खतापूर्ण कार्यों का ज्ञान कराया जाता है। परिणामस्वरूप उस राष्ट्र के नागरिक अपने को संसार का सर्वश्रेष्ठ नागरिक समझने लगते हैं और अन्य राष्ट्रों के प्रति उनमें घृणा की भावना उत्पन्न हो जाती है। इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि उग्र राष्ट्रीयता की भावना ने सदा युद्धों को जन्म दिया है। मुदालियर कमीशन (Mudaliar Commission) ने इस उग्र राष्ट्रीयता की भावना की बड़ी आलोचना करते हुए लिखा है "There is no more dangerous maxim in the world of today than "My country, right or wrong" The whole world is now so intimately interconnected that no nation can or dare live alone and the development of a sense of world citizenship has

शिक्षा द्वारा व्यक्ति को संकीर्ण एवं राष्ट्रीयता से ऊपर उठाना होगा और उसे इस दुर्भावना से बचाना होगा कि मेरा देश जो भी उचित अथवा अनुचित करता है ठीक है। जब तक ऐसा नहीं होगा जब तक एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के महत्व को स्वीकार नहीं करेगा। जब तक एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के प्रति पूर्वाग्रहों और मानसिक भयों को दूर नहीं करेगा तब तक अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना का विकास असम्भव है।

अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा के सिद्धान्त :—अन्तर्राष्ट्रीय भावनाओं के प्रसार के महत्व को समझ लेने के पश्चात अब यह आवश्यक हो जाता है कि इस बात पर विचार किया जाय कि ऐसे कौन से सिद्धान्त अपनाये जा सकते हैं जिनके द्वारा छात्रों में अन्तर्राष्ट्रीयता की भावनाओं को भरा जा सके।

(१) बालक तथा बालिकाओं को यह बताना परम आवश्यक है कि संसार में अनेक संस्कृतियाँ तथा राष्ट्र हैं। प्रत्येक राष्ट्र तथा संस्कृति में कुछ न कुछ अच्छी बातें होती हैं।

(२) शिक्षा इस ढग से प्रदान की जाय कि बालक स्वतन्त्रतापूर्वक सोचना सीख सके। यदि छात्र स्वतन्त्र रूप से विचार करने तथा निर्णय करने की आदत अपने अन्दर डाल लेंगे तो वे किसी तथ्य को स्वीकार करने से पूर्व उस पर अवश्य विचार करेंगे।

(३) छात्रों को इस बात की जानकारी अवश्य कराई जाय कि सहानुभूति तथा अहिंसा व्यक्तित्व के विकास के लिए श्रेष्ठ गुण है। बचपन में ही अहिंसा की भावना का मस्तिष्क में प्रवेश कर जाना भविष्य के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

(४) कुछ विद्वानों के अनुसार पाठ्यक्रम में विज्ञान को अवश्य स्थान दिया जाय। उनके अनुसार विज्ञान छात्रों के मस्तिष्क से संकीर्णता तथा अन्धविश्वास की भावना को नष्ट करके तार्किक दृष्टिकोण बनाता है।

(५) छात्रों को यह भी बताया जाय कि चाहे कोई देश छोटा हो या बड़ा, उसका इस संसार में कुछ न कुछ महत्व अवश्य है।

(६) बालकों को यह बात भली प्रकार समझा दी जाय कि संसार का प्रत्येक राष्ट्र किसी न किसी वस्तु के लिए दूसरे राष्ट्र पर निर्भर है। पारस्परिक निर्भरता का ज्ञान बालकों के दृष्टिकोण को व्यापक बनाने में सहायक होगा।

(७) संसार के विभिन्न प्रदेशों के निवासियों के रहन-सहन, उद्योग-धन्धे तथा रीति-रिवाज आदि का भी छात्रों को ज्ञान कराया जाय।

(८) विद्यालय का समस्त संगठन प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों पर आधारित होना चाहिए।

(९) अन्तर्राष्ट्रीय नागरिकता की शिक्षा को पाठ्य-क्रम में यथासंभव स्थान दिया जाय।

(१०) समय-समय पर विद्यालय में यू० एन० ओ० (U. N O) दिवस का आयोजन किया जाय। इस अवसर पर छात्रों को बताया जाय कि यू० एन० ओ० का क्या महत्व है।

(११) संसार के विभिन्न देशों में शिक्षा के ऊपर कभी-कभी विचार गोष्ठी का आयोजन किया जाय। एक देश के छात्रों को दूसरे देश में घूमने-फिरने के लिए प्रोत्साहित किया जाय। अध्यापकों के शिष्ट मण्डल भी विदेशों में भेजे जा सकते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना के विकास के लिए पाठ्यक्रम

भूगोल के माध्यम से छात्रों को यह बताया जाय कि संसार के विभिन्न निवासी किस प्रकार अपना जीवन व्यतीत करते हैं तथा अन्य देशों के सर्वसाधारण का जीवन कैसा है। वहाँ कौन-कौन के प्रमुख उद्योग पनप रहे हैं और किन-किन वस्तुओं का आयात होता है और किन का निर्यात।

इतिहास के शिक्षण में अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता है। अब तक इतिहास के अध्यापन के द्वारा नागरिकों में देश के प्रति अन्ध-भक्ति ही भरी जाती थी। परन्तु आजकल इतिहास का अध्ययन दूसरे देशों के सामाजिक तथा सांस्कृतिक अध्ययन के लिए किया जाता है। अध्यापक को चाहिए कि वह अपने देश की संस्कृति का ज्ञान कराते समय उसका विभिन्न देशों की संस्कृतियों से क्या सम्बन्ध है, इसका भी ज्ञान कराये।

भूगोल शिक्षण द्वारा विश्वबन्धुत्व की भावना का विकास :

भूगोल और इतिहास शिक्षण का महत्व इस बात मे अधिक है कि वह अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को हल करने मे विशेष सहायक हो सकता है और विश्वशान्ति मे विशेष सहयोग दे सकता है। यूनेस्को ने १९५० मे जो गोष्ठी भूगोल शिक्षा पर बुलाई थी उसका मत है "भूगोल शिक्षक का उद्देश्य बालको मे ऐसी मनोवृत्ति पैदा करना है जिसमे वे विश्व प्रेम और अन्तर्राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत हो सकें। जब बालक मानव मात्र के प्रति सहानुभूति, प्रेम, सद्भावना और मैत्री के भाव अपने मन में पैदा कर सकेंगे, जब वे अखिल विश्व को अपना कुटुम्ब मानने लगेंगे, समस्त राष्ट्रों को अपने राष्ट्र के समतुल्य समझने लगेंगे, सभी जातियो को अपनी जाति की तरह देखने लगेंगे, जब उनमे समस्त वसुधा को अपना घर समझने की इच्छा पैदा हो जायगी तब उनमे सच्चा विश्व बन्धुत्व होगा। लेकिन यह विश्वप्रेम विश्व की भौगोलिक, आर्थिक, मानवीय परिस्थितियों को समझे बिना सम्भव नहीं है।

अन्य देशो की भौगोलिक परिस्थितियो की कठिनाइयो और समस्याओ का ज्ञान हमे [illegible]

[illegible]

विकसित मानी जा सकती है जब उनमे विभिन्न जातियो, राष्ट्रों और देश के निवासियो के प्रति [illegible]

[illegible]

छोटी ही आयु से यह देखना होगा कि बालकों मे विदेशियो के प्रति पूर्वाग्रह जाग्रत हो जाय। हम साधारणत. व्यक्तिगत सामाजिक सम्पर्क के अभाव, सामाजिक दूरी, मिथ्या दोषारोपण रूढ़ियुक्तियों के कारण एक दूसरे को समझने में अपने को असमर्थ पाते हैं। फलत दूसरों के प्रति हमारे मन में पूर्वाग्रह (Prejudices) घर कर जाती है। भूगोल शिक्षण इन पूर्वाग्रहों को दूर करने मे सफलता प्राप्त कर सकता है।[1]

इतिहास शिक्षण और विश्वबन्धुत्व की भावना

वैसे तो सभी देश अपने बालकों को राष्ट्रीय इतिहास पढ़ाने की व्यवस्था करते हैं। लेकिन यदि इसका अध्ययन केवल राष्ट्रीय भावना के विकास के लिए ही किया जाता है तो इस प्रकार का शिक्षण उचित नहीं है। अपने देश के इतिहास का अध्ययन कराके हम अपने छात्रो मे राष्ट्रो की आन्तरिक निर्भरता के ज्ञान का प्रचार भी कर सकते हैं। हम उन्हें बता सकते है कि किस प्रकार भिन्न-भिन्न देशो मे राष्ट्रीय नीतियाँ निश्चित करते समय पड़ोसी देशो की परिस्थितियों को ध्यान मे रखना पड़ता है। यदि राष्ट्रीय इतिहास के साथ-साथ विश्व इतिहास का भी अध्ययन कराया जाय तो विश्वबन्धुत्व की भावना का विकास आसान हो जायगा। श्री एच० ए० एल० फिशर के मतानुसार 'राष्ट्रीय इतिहास की शिक्षण से पूर्व अथवा उसके साथ-साथ विश्व इतिहास की प्रमुख घटनाओ का अध्ययन आवश्यक है।' इसलिये सभी शिक्षकों का मत है कि राष्ट्रीय इतिहास का अध्ययन विश्व इतिहास की पृष्ठभूमि मे कराने मे बालको मे दूसरे राष्ट्र के प्रति प्रेम और सम्मान के भाव जाग्रत होंगे। जब तक राष्ट्रीय इतिहास की समस्याओं का विश्व-इतिहास पृष्ठभूमि मे न होगा तब तक छात्र उन समस्याओ को न तो अच्छी प्रकार से समझ ही सकेगा और न उनमें विश्व प्रेम जैसे उदात्त भावो का विकास ही हो सकेगा।

पाठ्यक्रम मे इतिहास और भूगोल के अतिरिक्त विश्व-साहित्य, कला, दर्शन, विज्ञान और मनोविज्ञान आदि ऐसे विषय रखे जायें जिनके विकास में विश्व [illegible]

दिया है। इनके अतिरिक्त निम्नलिखित क्रियाएँ इसी उद्देश्य से की

1. भूगोल शिक्षण की समस्या

(i) अन्तर्राष्ट्रीय खेल प्रतियोगिताओं में भाग लेने तथा उनमे रुचि लेने के लिए बालकों को उत्तेजित करना।

(ii) विश्व के महान् व्यक्तियों के जन्म दिन मनाकर उन देशो की कला और साहित्य के प्रति बालकों को आकृष्ट करना।

(iii) दूसरे देशो के पर्यटकों को विद्यालय मे आमन्त्रित कर उनके व्याख्यान कराना।

(iv) अन्य देशो पर आकस्मिक विपत्तियों के पड़ने पर चन्दे इकट्ठे करना।

(v) विभिन्न देशों के बालकों से लेखिनी मैत्री स्थापित करने के लिए बालकों को उत्साहित करना।

अत: अध्यापक पाठ्यक्रम मे स्थित विषयो तथा पाठ्यतर क्रियाओं की सहायता से अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना का विकास किया जा सकता है।

अध्याय १८

शिक्षा स्वतंत्रता और अनुशासन

शिक्षा स्वतन्त्रता और अनुशासन

Q 1. Discpline is not an external thing like order but something that touches to unmost springs of conduct. Explain by suitable examples, the implications of this statement.

Or

What is your concept of Discipline ?

Ans **अनुशासन का अर्थ**—अनुशासन वह साधन है जिसके द्वारा बालक नियमित [illegible] वह उन शक्तियों और [illegible] अर्थ में हम अनुशा- [illegible] लता है और जिसमे सुन्दर आदतो का विकास हो चुका है। अनुशासन का अर्थ व्यापक रूप से चरित्र निर्माण से लिया जा सकता है। अनुशासित व्यक्ति पर विद्यालय के समस्त उत्तम प्रभाव पडे होते हैं जो चरित्र निर्माण मे सहायक होते हैं अत अनुशासन का उद्देश्य बालक को सदाचारी, सभ्य बनाना है। बालक सदाचारी, सभ्य और सुसंस्कृत कब बन सकता है ? जब वह आत्म नियन्त्रण और आत्म सयम से अपनी उन मूल प्रवृत्तियों पर अधिकार पा ले जिसको स्वतन्त्र छोडे जाने पर उसमे दुराचरण की भावनाएं पैदा हो सकती हैं। आदर्शवाद और अनुशासन के व्यापक अर्थ की व्याख्या यही है। लेकिन व्याख्या तब तक पूरी नही मानी जा सकती जब तक अनुशासन पर विभिन्न शिक्षाशास्त्रियो के मतो की आलोचना न करली जाय। आदर्शवादी शिक्षा शास्त्री शिक्षक के व्यक्तित्व द्वारा बालक मे सदाचारिता, सभ्यता और सुसंस्कृतता के गुण पैदा करने की सलाह देता है। शिक्षक अपने आचरण, विचार और आदर्शों की छाप अपने शिष्य पर निरन्तर डालता रहता है। इस प्रकार अनुशासन की भावना शिक्षक द्वारा बालक पर डाले गये प्रभावो के फलस्वरूप पैदा होती है, उत्तम वातावरण, वैयक्तिक उदाहरण और प्रोत्साहन द्वारा बालक मे अच्छी और उत्तम भावनाओं का विकास होता है। शिक्षक बालक से प्रेम करता है, और बालक शिक्षक के प्रति श्रद्धा रखता है। प्रेम, सहानुभूति और श्रद्धा से ओतप्रोत विद्यालय का वातावरण बालक को अनुशासित बनाने मे सहायक हो सकता है।

इस दृष्टि से बालक पर बाह्य दबाव डालना उपयुक्त नही है, बालक पर तो विभिन्न दिशाओ से इतने प्रभाव पडने चाहिये कि वह स्वय अपने को सुधार ले और अनुशासित हो जाय। शिक्षा द्वारा यदि वह अनुशासित न हो सका तो उस पर उन आदर्शों, सत्यो तथा मूल्यो का कोई प्रभाव न पड सकेगा जिनकी प्राप्ति से उसका आध्यात्मिक विकास हो सकता है।

प्रकृतिवाद और अनुशासन—प्रकृतिवादी प्रकृति को ही उत्तम शिक्षिका समझता है। इसलिये बालक के अच्छे गुणों, आदतो और आचरणों के विकास के लिये न तो बाह्य दण्ड की

1. Discipline is the means whereby children are trained in orderlines, good conduct, and the habit of getting the best out of themselves
—Board of Education

व्यवस्था करता है और न शिक्षक के उत्तम प्रभाव की ही। प्रकृति ही बालक को स्वयं अनुशासन की शिक्षा दे सकती है। इसी स्वाभाविक परिणामों द्वारा अनुशासन के सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। अनुशासन स्थापित करने का सर्वोत्तम ढंग प्राकृतिक दंड है। प्राकृतिक दण्ड से हमारा आशय उस दण्ड से है जो व्यक्ति को अपने गलत कार्य अथवा दुष्कर्म के फलस्वरूप स्वतः मिलता है। यदि बालक आग में हाथ देता है तो उसका हाथ जलेगा ही। प्रकृति द्वारा दण्डित हो जाने पर वह आचरण में स्वयं परिवर्तन कर लेगा। प्रकृतिवादियों का कहना है कि इस प्रकार का अनुशासन बालक की शक्तियों को स्वतन्त्र रूप से विकसित होने का अवसर देता है।

लेकिन प्रकृति द्वारा अनुशासन की शिक्षा दोषरहित नहीं है। प्रकृति प्रायः बिना सकेत दिये ही दण्ड दे डालती है। इससे व्यक्ति को अपना आचरण सुधारने के लिये अवसर नहीं मिलता। कभी-कभी यह दण्ड व्यक्ति द्वारा की गई भूल का समानुपाती नहीं होता। छोटी सी भूल के लिये बड़ा दण्ड मिल सकता है अतः आचरण के सुधार का यह उत्तम साधन नहीं है।

प्रयोजनवाद और अनुशासन—नैतिक और चारित्रिक विकास, जो अनुशासन द्वारा प्राप्त होता है तभी हो सकता है जब व्यक्ति आत्म-नियन्त्रण के महत्व को समझे। इस आत्म-नियन्त्रण के पीछे अनुशासन समाज की स्वीकृति है। प्रयोजनवादियों का कहना है कि सच्चा अनुशासन समाज-स्वीकृत आत्मनियन्त्रण द्वारा आता है और उसकी प्राप्ति पाठशाला की स्वतन्त्र, सोद्देश्य, सामाजिक क्रियाओं द्वारा होती है।

इन क्रियाओं के माध्यम से बालक में उन गुणों का विकास होता है जो सदाचार और चरित्र निर्माण के लिये आवश्यक हैं। ऐसी क्रियाओं के सफल सम्पादन से ही उसमें सामाजिकता, स्वावलम्बन, सहयोग, आत्मनिर्भरता आदि सद्गुणों का विकास हो सकता है।

क्रियाओं के सफल सम्पादन के लिये दो बातों की आवश्यकता है रुचि और अनुशासन। दोनों बातें आपस में सह-सम्बन्धित हैं। यदि व्यक्ति में किसी कार्य को करने की रुचि पैदा हो गई है तो वह उसको पूरा करने में सारी शक्ति लगा देगा। इस प्रकार अपनी शक्ति का सदुपयोग करेगा। कार्य में भारी शक्ति लगाना ही अनुशासन है। अनुशासन का अर्थ है शक्ति का सदुपयोग।[1] अतः जोन डीवी के अनुसार रुचि अनुशासन की जड़ है। विद्यालय का वातावरण अत्यन्त रोचक बना कर बालकों की प्रत्येक क्रिया को सफलतापूर्वक सम्पादित करने के लिये प्रेरणा दी जा सकती है। रोचक क्रियाओं में बालक को अपना ध्यान और सहन शक्ति दोनों लगाने पड़ेंगे। यह सहन शक्ति अनुशासन का महत्वपूर्ण अंग है। अतः सच्चा अनुशासन रुचि का प्रतिफल है।

यहाँ पर यह ध्यान देने की बात है कि प्रयोजनवादी वैयक्तिक अनुशासन की अपेक्षा सामाजिक अनुशासन पर जोर देता है। वह सामाजिक जीवन के आधार पर अनुशासन की जड़ जमाना चाहता है, विद्यालय के सामूहिक जीवन में बालक की मूल प्रवृत्तियाँ परिस्कृत होती हैं और आचरण में सुधार होता है। एक दूसरे की सहायता और सहयोग से किया गया सोद्देश्य कार्य का बालक के ऊपर जो प्रभाव पड़ता है वह स्वयं सयामक (disciplinary) होता है।

अनुशासन और स्कूल आर्डर

Q 2 Discipline is not an external thing like orders but something that touches the unmost springs of conduct

Ans अनुशासन क्या है? इस प्रश्न का उत्तर ऊपर दिया चुका है। अनुशासन क्या नहीं है? अनुशासन स्कूल व्यवस्था जैसी कोई बाहरी वस्तु नहीं है वह तो आचरण के स्रोतों को प्रस्फुटित करने की अन्दरूनी वस्तु है। यह वस्तु आत्म नियन्त्रण, आत्म सयम अथवा कुछ भी हो सकती है जिससे सच्चरित्र का निर्माण होता है। दूसरे शब्दों में स्कूल व्यवस्था (School order) अनुशासन नहीं है।

विद्यालय में अच्छी से अच्छी व्यवस्था हो सकती है लेकिन अच्छी व्यवस्था अच्छे अनुशासन का पर्याय नहीं है। अच्छे अनुशासन में अच्छी व्यवस्था सन्निहित है।

1. "Discipline means power at command mastery of the resources available by carrying through the action undertaken."
—Dewey : Democracy and Education

अच्छी व्यवस्था का सम्बन्ध बालक के उस व्यवहार से है जो वह कक्षा मे अथवा स्कूल [illegible] कक्षा मे पूर्ण शान्ति की स्थापना [illegible] उसके कार्य व्यवस्थित ढग से [illegible] नही हो सकता है। व्यवस्था का [illegible]र्थ है वाह्य-वन्धन, लेकिन अनुशासन का अर्थ है आन्तरिक सयम। अनुशासन के लिये व्यवस्था [illegible]वश्यक हो सकती है लेकिन नितान्त आवश्यक नही।

प्रयोजनवादी भी इस मत को मान्यता देता है। वह बालको को शान्तिपूर्वक सुव्यवस्थित [illegible]ग से बैठे-बैठे कार्य करने के महत्व को स्वीकार करता है लेकिन इस व्यवस्था को साध्य नही [illegible]ानता, केवल साधन मानता है अनुशासन की प्राप्ति के लिये। इस प्रकार का वातावरण जिसमे [illegible]ालक शान्तिपूर्वक सुव्यवस्थित ढग से कार्य कर सकें, कार्य से रुचि लेने के फलस्वरूप [illegible]वन पैदा हो जाता है। यदि विद्यालय का सारा कार्यक्रम इतना अधिक रोचक हो कि [illegible]ालक उनमे लीन हो जाय तो अनुशासन-की समस्या उत्पन्न ही नही हो सकती।

पीछे दी गई व्याख्या से स्पष्ट हो गया होगा कि अनुशासन एक व्यापक विचार है और [illegible]कूल व्यवस्था एक सकुचित विचार है। अनुशासन का तात्पर्य बालक के वाह्य व्यवहार से नही है वरन् उसके आन्तरिक भावनाओं से है।

स्कूल अनुशासन (School order)

[illegible]

मे रखा जाता है।

यह मान लिया जाता है कि बालक स्वभाव से ही उद्दण्ड और पापी होता है। उसकी उद्दण्डता को कम करने का एक मात्र साधन दमन (repression) है। बालको के साथ सहानुभूति, दया और प्रेम का आचरण करने से दमनवादियो का विचार है कि बालक बिगड जायगा।

प्रभावात्मक (Impressionistic) शासन व्यवस्था मे भय और धमकियो को कोई स्थान नही दिया जाता। इसके विपरीत प्रेम और सहानुभूति द्वारा बालक के आचरण को सुधारा जाता है। अध्यापक अपने आचार-विचार, आदर्श पांडित्य और व्यक्तित्व की छाप अपने शिष्य पर डालने का प्रयत्न करता है। इस छाप अथवा प्रभाव (Impression) के द्वारा बालक की भावनाए परिस्कृत होती हैं। उसके आचरण मे सुधार आता है। बालक अपने आचरण मे जो सुधार लाता है उसका कारण अध्यापक का भय नहीं है वरन् उसकी अध्यापक के प्रति श्रद्धा और आदर भाव है। प्रभाववादी उत्तम स्कूल व्यवस्था के लिये बालक को दण्ड नही देता और न इतनी स्वतन्त्रता ही देता है कि वह उच्छृखल हो जाय। वह तो बालक के ऊपर अध्यापक के व्यक्तित्व की छाप डालकर उसे अनुशासित बनाने का प्रयत्न करता है।

मुक्तात्मक शासन व्यवस्था के अन्तर्गत बालकों को अपनी प्रकृति के अनुसार स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने की अनुमति दी जाती है। उसे इस बात का आभास दे दिया जाता है कि वह अपने ऊपर स्वय नियन्त्रण रखे। परिणाम का भय दिखाकर अथवा उदाहरण प्रस्तुत कर उसके स्वाभाविक कार्य मे बाधा नहीं पहुँचाई जाती। अध्यापक न तो उसका मार्ग दर्शन करता है और न भय दिखाकर उसे अपने आचरण मे परिवर्तन करने की प्रेरणा देता है। बालक प्रकृति से साधु होता है, पापी नही। इसलिये दण्ड क्यों ? वह इस योग्य है कि आत्म प्रदर्शन कर सके।

स्कूल अनुशासन के ये तीन रूप वास्तविक अनुशासन को पैदा करने मे अलग-अलग सीमाओ तक सफल होते हैं।

दमनात्मक स्कूल अनुशासन न तो प्रजातन्त्र के अनुकूल है और न वास्तविक अनुशासन पैदा करने मे सहायक ही। प्रजातन्त्रात्मक शासन व्यवस्था मे ऐसे समाज का निर्माण आवश्यक है जिसके सदस्य स्वत शासन कर सकें और स्वतन्त्र रूप से जीवन यापन कर सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति दमनात्मक स्कूल अनुशासन से नहीं हो सकती। दूसरे दमनात्मक स्कूल व्यवस्था बालकों के

हृदय मे विद्रोह की भावना पैदा करती है जिसका बुरा परिणाम न केवल व्यक्ति को ही भोग पडता है वरन् समाज को भी इसका कडवा फल चखना पडता है। शारीरिक दण्ड जिसको दम रमक व्यवस्था के प्रयोग में लाया जाता है शिक्षक और शिष्य दोनो को अहितकर हो सकता है।

मुक्त्यात्मक शासन व्यवस्था भी हमे वाछित फल नही दे सकती क्योकि प्रजातन्त्रात्म शासन प्रणाली मे भी व्यक्ति को पूर्ण स्वतन्त्रता नही दी जाती। कोई प्रजातन्त्र राज्य यह स नही कर सकता कि एक व्यक्ति अपने स्वतन्त्र आचरण द्वारा दूसरे व्यक्ति के कार्यो, अधिकारो अ सुविधाओ मे बाधा पहुँचाये। यदि व्यक्ति को पूर्ण रूप से स्वतन्त्र कर दिया जाय तो उसमे अवा नीय गुण अथवा दुर्गुण पैदा होने लगेंगे। यदि उसे आत्माभिव्यक्ति के लिए भी मुक्त कर दि जाय तो समाज के लिये उसकी क्या उपयोगिता होगी।

यदि कक्षा मे बालक पूर्णरूपेण मुक्त कर दिया जाय तो यह निश्चय है कि व्य व्यवस्था पर उसका अच्छा प्रभाव पडेगा। बालक स्वय व्यवस्थित रूप से कार्य करने लगेगा बन्धन जितने अधिक होते हैं उनको तोड़ने के उतने ही अधिक प्रयास होते हैं। बन्धन जितने क होते हैं उनको तोडने के लिये व्यक्ति उतना ही अधिक परिश्रम और प्रयास करता है।

स्कूल की प्रभावात्मक शासन व्यवस्था न केवल कक्षा मे ही अनुशासन स्थापित कर है वरन् वास्तविक अनुशासन भी पैदा करने मे समर्थ होती है। उसका सुन्दर प्रभाव कक्षा के वात वरण पर तो पडता ही है वरन् बालक का चरित्र भी आदर्श अध्यापक के आचार विचार से प्रभावि होता है। अनुकरणशील बालक अपने गुरुजनो के आदर्शो पर चलता हुआ वास्तविक अर्थ मे अनु शासित हो जाता है।

शिक्षा मे स्वतन्त्रता

Q 3 What is your concept of freedom in education ?

Q 4. How far is it antilectual to discipline ?

Ans वर्तमान अध्याय मे हम इस विवादग्रस्त प्रश्न का उत्तर देंगे कि शिक्षा का लक्ष अनुशासन माना जाय अथवा स्वतन्त्रता। अनुशासन का तो शिक्षा के साथ रूढ़िगत सम्बन्ध है प्राचीनकाल से ही शिक्षा का लक्ष्य अनुशासित व्यक्तित्व का विकास रहा है। सभी प्राचीन शिक्षा शास्त्रियो ने चाहे वे किसी देश के रहे हो, चाहे वे कैसे ही आदर्शों के पोषक रहे हो अनुशासन के लिये ही शिक्षा का आयोजन करने पर जोर देते थे। वे बालक की मूल प्रवृत्तियां को बदलने, उनके शोधन, और परिमार्जित लाने के लिए ही शिक्षा क्रम की व्यवस्था करते थे। इस कार्य मे वे बाह्य नियन्त्रण पर जोर देते थे। उनका विश्वास था कि बाह्य नियन्त्रण द्वारा ही बालक मे अनुशासन की भावना उत्पन्न हो सकती है। इस प्रकार वे इस विचारधारा के पोषक थे कि स्वतन्त्रता और अनु शासन दोनो ही विरोधी विचार है। यदि बालक को अपनी मूल प्रवृत्तियो के अनुसार कार्य करने के लिए पूर्ण रूपेण स्वतन्त्र कर दिया जाये तो अनुशासित जीवन बिताने के लिए उसमे सामर्थ्य पैदा न हो सकेगी, शिक्षक के बाह्य नियन्त्रण मे रह कर ही बालक उत्तम गुणों को सीखता है। इस प्रकार उसका व्यक्तित्व विकसित और समृद्ध होता है। शिक्षा मे अनुशासन और बाह्य नियन्त्रण की यह विचारधारा १६ वी शताब्दी के अन्त तक जोर पकडे रही लेकिन २० वी शताब्दी के प्रारम्भ से शिक्षा के लिए स्वतन्त्रता पर बल दिया जाने लगा। बालक को शिक्षित करने के लिए किसी प्रकार के नियन्त्रण की आवश्यकता नही है, उसे सीखने की प्रक्रिया मे पूर्ण स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये। कक्षा मे स्वतन्त्रतापूर्वक सोचने विचारने और कार्य करने का अवसर मिलना चाहिये, उसे खेल द्वारा शिक्षा देकर पूर्ण स्वतन्त्रता दी जाय। स्वतन्त्रता द्वारा ही आन्तरिक शक्तियो का विकास होता है। बालक की रुचियो और आन्तरिक शक्तियों के अनुकूल शिक्षा देने से उसमें आत्मसंयम, आत्मनिर्भरता आदि गुणो की वृद्धि होती है। बालक को अपनी स्वयं रुचि से कार्य करने का पूर्ण अवसर देना चाहिये, अध्यापक केवल मार्गदर्शक का कार्य करे, बालक की क्रियाओं मे किसी प्रकार का हस्त- क्षेप न करे। बाह्य कठोर अथवा नियन्त्रण बालक की उन्नति मे बाधक होता है; उसे तो कक्षाओं और क्रियाओं मे पूर्ण स्वतन्त्रता का वातावरण मिलना चाहिये। विद्यालय मे बालक को अपनी रुचि के कार्य के लिये अवसर दिये जायें। इस उद्देश्य मे समस्त शास्त्रियो का भी पूर्ण [illegible]।

इस प्रकार शिक्षा मे अनुशासन और स्वतन्त्रता सम्बन्धी दो विरोधी मत हमारे सामने विचार प्रस्तुत है और इन्हीं मत द्वय के विषय मे हम यह कह सकते है कि बालक को शिक्षा के लिये स्वतन्त्र

छोड़ दिया जाय अथवा उसे नियंत्रण में रखा जाय। लेकिन शिक्षा में स्वतन्त्रता और अनुशासन दोनों पूर्ण विरोधी विचारधाराएँ नहीं हैं।

स्कूल अनुशासन के विभिन्न रूपों की व्याख्या करते हुए पीछे यह बताया गया था कि दमनवादी अनुशासन जिसमें बालक पर पूर्ण नियन्त्रण रखा जाता है शिक्षकों के काम की वस्तु नहीं है। आधुनिक काल में इसका प्रयोग भी नहीं किया जा सकता। अनुशासन की शेष दो विधियाँ—मुक्त्यात्मक (Emana passionist Discipline) और प्रभावात्मक (*Impressionistic*) विद्यालय के लिये आवश्यक हो सकती हैं। सभी शिक्षाविदों का मत है कि विद्यालय में न तो हमें बालकों को इतनी स्वतन्त्रता दे देनी चाहिये कि वे स्वच्छन्द हो जायें और न शिक्षक द्वारा प्रभावात्मक स्कूल व्यवस्था का इतना अनुशीलन करना चाहिये कि बालकों का स्वाभाविक विकास रुक जाय। शिक्षक अपना अच्छा प्रभाव बालकों के आचरण पर डाले, लेकिन प्रत्यक्ष रूप से नहीं, परोक्ष रूप में डाला गया प्रभाव अधिक टिकाऊ होता है।

इन दोनों विधियों में अनुशासन पैदा करने में प्रभावात्मक विधि अधिक महत्वपूर्ण प्रतीत होती है। अनुशासन (Discipline) और अनुशासित (Disciplined) दोनों शब्दों की व्युत्पत्ति करने से पता चलेगा कि इनका सम्बन्ध शिष्य (Disciple) से अधिक है। शिष्यत्व (Discipleship) ही बालक को अनुशासन (Discipline) की ओर ले जाता है। जब एक शिष्य उसके चरणों में बैठकर शिक्षा ग्रहण करता है तब उसका अपरिपक्व मस्तिष्क परिपक्व मस्तिष्क वाले गुरु महोदय के आगे आत्महीनता के भाव से झुक जाता है तब उस परिपक्व मस्तिष्क से निकले हुए विचारों की अमिट छाप बालक के मस्तिष्क पर पड़ जाती है जिससे न केवल वह अपनी मूल प्रवृत्तियों में शोधन और परिमार्जन लाने को प्रयत्नशील होता है वरन् अपने उसके आदर्श चरित्र का अनुकरण करता हुआ उत्तम चरित्र का विकास करता है।

लेकिन क्या सभी गुरुजन इस योग्य हैं कि उनके आचरण आदर्श और व्यक्तित्व अनुकरणीय हों। इसलिये कुछ शिक्षाशास्त्रियों का मत है कि प्रत्येक शिक्षक को चाहिए कि यदि वह बालक में वास्तविक अनुशासन की भावना पैदा करना चाहता है तो विकासशील बालक की श्रद्धा और आदर भावना को समाज के महापुरुषों के आदर्श चरित्रों की ओर उन्मुख करे और अपने आचरण और व्यवहार द्वारा उन्हें इन आदर्शों का अनुकरण करने के लिये प्रेरणा दें। यदि नैतिक गुणों की शिक्षा देनी है तो अध्यापक अपना उदाहरण प्रस्तुत करे।

इस प्रकार प्रभावात्मक अनुशासन (*Impressionistic Discipline*) और शिक्षा सह-सम्बन्धित है। लेकिन जब बालक, अध्यापक अथवा अन्य आदर्श पुरुषों के चरित्र का अनुकरण करने के लिये उद्यत हो जाय तब अध्यापक को उसे स्वतन्त्रता भी दे देनी चाहिये। स्वतन्त्रता का अर्थ यह नहीं है कि बालक को स्वच्छन्दता दी जाय। स्वच्छन्दता, निरंकुशता और उद्दण्डता ये तीनों निम्न-कोटि की स्वतन्त्रताएँ हैं। सच्ची स्वतन्त्रता वह स्वतन्त्रता है जो व्यक्ति को विधि विधानों के नियन्त्रण में रहकर आचरण करने के लिए बाध्य करती है। रौस महोदय का कहना है कि जब किसी बालक के आदर्श स्थिर हो जायें, उसका चरित्र सुसंगठित हो जाय और इच्छा शक्ति दृढ़ हो जाय तब उसको उस प्रकार की स्वतन्त्रता दे दी जाय तो कोई हानि नहीं होगी। बालक में वह निम्न-कोटि की स्वतन्त्रताओं को त्याग कर ही अपनी इच्छा शक्ति पर अधिकार प्राप्त करता है, और सुन्दर चरित्र का गठन करता है। आत्म नियन्त्रण बिना सच्चरित्र का गठन नहीं हो सकता। बालक में ऐसा चरित्र न केवल अनुशासन का ही मार्ग प्रशस्त करता है वरन् सच्ची स्वतन्त्रता के उप-योगों का भी उद्घोष करता है। वह अच्छी तरह समझता है कि सच्ची स्वतन्त्रता आत्म नियन्त्रण में ही निहित है।

अध्याय १६

पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्त

Q. 1. What are the principles of Curriculum Construction? Evaluate the syllabus of any high school subject in the light of these.

(Agra, B.T. 1957)

Or

What are the principles of Curriculum Construction? Discuss fully the justification of the integrated approach as the basic principle of Construction of Curriculum.

(Agra, B.T. 1957)

पाठ्यक्रम के विषय में निम्न उद्धरण माननीय हैं :—

(1) "The Curriculum may be defined as all the experiences that pupils have while under the direction of the school: if individual both class room and extra class room activities, work as well as play. As such activities should promote the needs and welfare of the individual and society."

(2) "The curriculum in its broadest sense includes the complete school environment involving all the cources, activities, readings and associations furnished to the pupils in the school."

(3) "The curriculum is that which the pupil is taught. It involves

... its world.

(4) The curriculum should be viewed as various forms of activity that are grand expression of the human spirit and that are of the greatest and most permanent significance to the wide world. — P. P. Nunn

(5) The curriculum ...

— Crow & Crow

(6) ... taught in t... receives th... room, libra... contacts b... becomes t... and help ... Commisson.

विद्यालय मे दिये जाने वाले समस्त अनुभव चाहे वे कक्षा मे दिये जा रहे हों चाहे खेल के मैदान मे पाठ्यक्रम के ही अंग माने जाते हैं क्योंकि व्यक्तित्व के निर्माण मे उन सभी क्रियाओं का अपना-अपना भाग होता है। पाठ्यक्रम ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा अध्यापक बालक को जैसा बनाना चाहता है बन जाया करता है।

पाठ्यक्रम के अंग अथवा उपादान (Content of curriculum) जिनका उपयोग अध्यापक करके नई वस्तु (बालक) का निर्माण करता है वे सभी जानकारियाँ अथवा अनुभव हैं जिनका सुसगठित रूप भाषा, गणित, इतिहास, भूगोल और नागरिक शास्त्र आदि विषय मान जा सकते हैं। ये विषय और अन्य क्रियाएँ ही जब कतिपय सिद्धान्तों के सहारे एक क्रम मे सजा दी जाती हैं तब उनका सगठित रूप पाठ्यक्रम कहलाता है। वे सिद्धान्त जिनको ध्यान मे रखकर पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाता है नीचे दिये जाते हैं। पाठ्यक्रम के निर्माण से हमारा प्रयोजन पाठ्य पुस्तक चुनाव और समुचित क्रम से उनका सगठन करने से है।

इस ग्रन्थ के प्रथम भाग मे पाठ्यक्रम के चुनाव के विषय मे भिन्न-भिन्न दार्शनिक मत दिये गए थे। इस भाग मे हम उनके चक्कर मे न पडकर सभी मतभेदों का समन्वय करके पाठ्य-वस्तु के चुनाव और सगठन के सिद्धान्तों का उल्लेख करेंगे, जिनको कुछ शास्त्रियों ने स्वीकार कर लिया है। पाठ्यवस्तु का चुनाव सामाजिक परम्पराओं से किया जाता है। पाठ्यक्रम के स्रोत का आधार ही सामाजिक परम्परा है। सामाजिक परम्परा मे से किन-किन वस्तुओं का चुनाव करना है यह निम्नांकित सिद्धान्तों पर निर्भर रहता है—

(१) [illegible]
(२) [illegible]
(३) [illegible]
(४) जीवन तैयारी का सिद्धान्त (Principle of preparation for life)
(५) कार्यशीलता का सिद्धान्त (Activity principle)

अग्रदर्शी सिद्धान्त :—अपने दैनिक जीवन में हम देखते हैं कि जो व्यक्ति अपने आपको परिस्थितियों के अनुकूल नहीं बनाता वह पिछड जाया करता है और जो अपने को इनके अनुकूल बना लेता है वह अपने से अधिक योग्य अनेकों को पीछे छोड़ जाता है। पाठ्यक्रम में अब हमें ऐसी वस्तुओं का चुनाव करना है जिससे व्यक्ति इस जीवन की विभिन्न परिस्थितियों के साथ अनुकूलन स्थापित करने योग्य हो जाय। जब वह पाठशाला छोडे तब प्रगतिशील विचारों का व्यक्ति बनकर छोडे। भविष्य में जब उसे अधिक अवकाश मिले तब उसका उपयोग कर सके। इसलिये पाठ्यक्रम मे कला संगीत, हस्तकला, नाटक शास्त्र, साहित्य आदि पर ज़ोर दिया जाता है, कहने का तात्पर्य यह है कि बालक मे ऐसी मनोवृत्ति पैदा कर दी जाय जिससे वह रूढ़ियों और परम्पराओं का दास न बनकर अपने दृष्टिकोण को इतना लचीला बना ले कि नई से नई परिस्थितियों मे अपने आपको सम्भाले चला चल सके। वह अतीत के अनुभवों से लाभ उठाता हुआ परिस्थितियों को अपने अनुकूल बना सके और जब यह देखे कि परिस्थितियों में परिवर्तन असभव है तब अपने को उसके अनुकूल बना ले। पाठ्यक्रम मे पाठ्य वस्तुओं अथवा क्रियाओं का चुनाव इसी सिद्धान्त को ध्यान में रखकर किया जाता है।

परम्परा सरक्षा का सिद्धान्त—पाठ्यक्रम ऐसा हो जिसे पूरा करके बालक मे मानव जाति और अपने वर्ग विशेष की परम्परा को सरक्षित करने की आकांक्षा और योग्यता पैदा हो जाय। पाठ्य वस्तुएँ ऐसी हों जो उसको अपने समाज के वर्तमान सगठन, ज्ञानकोष, नैतिक मानदण्डों, सामाजिक सस्थाओं, गतिविधियों, उद्योग-धन्धों, प्राविधिक कौशलों, आदि बातों से पूर्ण परिचित करा दें साथ ही उसमें यह शक्ति पैदा करदे जिससे वह अपनी परम्परा के सरक्षणीय अश को ग्रहण कर सके और अपनी पीढ़ी में सक्रान्ति कर सके तभी परम्परा की अरक्षा हो सकती है।

परम्परा सरक्षा का यह सिद्धान्त सकेत करता है कि ऐसे विषय जिन्हें जाति के अनुभव ने प्रगति के लिये आवश्यक सिद्ध कर दिया है और जिनका जानना हर शिशु के लिये आवश्यक है, हमें पाठ्यक्रम में रखने होंगे। अतः हम पाठ्यक्रम में भाषा, गणित, भूगोल, विज्ञान, नागरिक शास्त्र, तथा स्वास्थ्य विज्ञान आदि विषयों को सम्मिलित करते हैं जिनका सम्बन्ध मानव जाति की व्यापक

ग्रावश्यकताग्रो के साथ रहना है। परम्परा सरक्षा का यह सिद्धान्त विषयों की ग्रोर ग्रधिक ध्यान देता है, बालकों की ग्रोर नही।

रचनात्मकता का सिद्धान्त—पाठ्यक्रम मे वे वस्तुएँ ग्रथवा क्रियाएँ रहनी चाहिए जिन से *बालकों की रचनात्मिका वृत्ति का विकास हो। नई वस्तु का निर्माण मानव का स्वभाव है।* ग्राधुनिक सभ्यता की समस्त वस्तुएं—लम्बी-लम्बी सड़कें, ऊँचे-ऊँचे भवन, बड़े-बड़े यन्त्र, रेल-गाड़ियाँ, मोटर ग्रौर हवाई जहाज ग्रादि—मानव की रचनात्मिक वृत्ति का ही परिणाम हैं। यदि रचनात्मिका वृत्ति इतनी महत्वपूर्ण है तो पाठ्यक्रम के निर्माण मे इस बात का ध्यान रखना होगा।

इस उद्देश्य से पाठ्यक्रम मे ऐसे विषय सम्मिलित करने होंगे जो छात्र की रचनात्मक प्रवृत्ति का उपयोग करने योग्य बना सके जिनके द्वारा उनकी कार्यशीलता तथा रुचियों का विकास हो सके। प्रारम्भिक स्तर मे भी यह वृत्ति इतनी बलवान होती है कि यदि उसका उपयोग नहीं किया जाय तो उनके जीवन भर के लिए कुण्ठित हो जाने का भय रहता है। इसी कारण शिक्षा शास्त्री समस्त पाठ्यवस्तु की किसी रचनात्मक क्रिया के चारों ग्रोर सगठित करना उचित समझते है। इसीलिये महात्मा गाधी ने बेसिक शिक्षा मे हस्तकला के माध्यम से शिक्षा देने की योजना प्रस्तुत की थी। प्रारम्भिक पाठशाला की ग्रवस्था ऐसा समय है जबकि शिशु सामग्री का उपयोग तथा वस्तुग्रों की रचना करने की इच्छा प्रकट करता है। ऐसा करके हम व्यक्ति के भावी सृजनात्मक जीवन का शिलान्यास करते है।

जीवन की तैयारी का सिद्धान्त—बालक पाठशाला मे जो कुछ करता ग्रौर सीखता है उसके द्वारा वह जीवन की तैयारी करता है। जीवन का विस्तार क्या है यदि इस विषय पर हम निश्चित मन हो जायँ तो हम निर्णय कर सकेंगे कि इस सिद्धान्त को कार्यान्वित करने के लिये हमे क्या करना होगा। जीवन विद्यमान क्षण के ग्रागे—भविष्य के निकटतम ग्रश से लेकर सुदूरवर्ती ग्रश तक फैला हुग्रा है। निकटतम भविष्य के लिए तो बालक को तैयार करना ही है। उसके सुदूर भविष्य के विषय मे भी हमें सोचना है। पाठ्यक्रम मे विषयों का चुनाव करते समय केवल यही नहीं देखने कि ये भविष्य मे वे उनके लिये उपयोगी होंगे, बल्कि यह भी देखते हैं कि जिस कक्षा मे वह इस समय है उस कक्षा की तैयारी भी सफलतापूर्वक कर ले। उसे जीविकोपार्जन के एक तरीके से परिचित कराने का प्रयत्न करते हैं। उसको निरीक्षण, परीक्षण, प्रयोग ग्रादि मानसिक क्रियाग्रों के प्रयोग मे सिद्धहस्त बनाने का प्रयत्न करते हैं। जीवन के पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक क्षेत्रों मे ग्रपने कर्तव्यों ग्रौर ग्रधिकारों का पालन कर सके इस प्रयोजन से उसमे ग्रात्मनिर्भरता, ग्रात्मसयम, नेतृत्व, कर्तव्यों एव ग्रधिकारों के प्रति जागरूकता, सहानुभूति, ग्रात्म-त्याग, सेवा-सहयोग ग्रादि गुणों का विकास करते हैं। उसमे ऐसी रुचियों का भी विकास करन का प्रयत्न करते हैं, जिससे वह ग्रवकाश के समय का लाभ उठा सके।

कुछ महानुभाव जीवन की तैयारी का ग्रर्थ व्यावसायिक शिक्षा से लेते हैं। यह सकुचित ग्रर्थ प्रतीत होता है। हम प्रारम्भिक ग्रौर माध्यमिक पाठशालाग्रों के पाठ्यक्रम को इसलिए व्यावसायिक बनाने का प्रयत्न नहीं करते। ये पाठशालाएँ ऐसे स्थान नहीं हैं जहाँ शिशु केवल *उन्हीं बातों की शिक्षा प्राप्त करता है जो उसे रोटी कमाने मे सहायता दे सकें।* प्रारम्भिक ग्रौर माध्यमिक कक्षाग्रों मे हमारे विचार से सामान्य पाठ्यक्रम पर ही जोर देना चाहिए ग्रौर व्यावसायिक शिक्षा का ग्रारम्भ उस स्तर पर किया जाना चाहिए जिस पर बालक की रुचियाँ ग्रौर प्रवृत्तियाँ स्पष्ट हो निश्चित हो जायें।

जीवन की तैयारी से हमारा तात्पर्य पूरी तरह भावी जीवन की तैयारी से भी नहीं है क्योंकि बालक स्वय बचपन के वातावरण मे ग्रधिक से ग्रधिक पूरी तरह रहकर भी वयस्क जीवन की तैयारी कर सकता है। यदि बालक को जीवन के लिए तैयार ही करना है तो हमें उसकी रुचियों, ग्रावश्यकताग्रों ग्रौर प्रतिभाग्रों को ध्यान मे रखना होगा। जहाँ तक बालक के वातावरण का प्रश्न है यह वातावरण भी भिन्न-भिन्न बालकों के लिए भिन्न-भिन्न हो सकता है। ग्रतः यदि पाठ्यक्रम एक सा कठोर होता है तो वह कृषिप्रधान, उद्योगप्रधान, नगर निवासी, ग्रामनिवासी, लड़के या लड़की के लिये ग्रपेक्षित वस्तु के चुनाव का ग्रवसर नहीं दे सकता। जो पाठ्यक्रम बहु-

विधिता नहीं होगा, जिसमे बालकों की आवश्यकताओं के सन्तुष्ट करने की क्षमता न होगी वह कठोर होने के कारण उन्हे जीवन के लिए तैयार न कर सकेगा।

सक्रियता का सिद्धान्त—पाठ्यक्रम को यथासम्भव क्रियामय होना चाहिए। उसमे दूसरों के अनुभवों को सकलित करने की अपेक्षा ऐसी क्रियाओं का समावेश होना चाहिए जिन्हें सम्पादित कर बालक स्वय अनुभव प्राप्त कर सके। इस सिद्धान्त का निरूपण सबसे पहले हैडो रिपोर्ट मे किया गया था। उसमे कहा गया था कि "पाठ्यक्रम निर्माण क्रियाओं और अनुभवों के रूप मे होना चाहिए न कि ज्ञान प्राप्त करने तथा तथ्यो के सकलन के रूप मे। अब तक मौखिक शिक्षा अथवा पुस्तको द्वारा शिक्षा प्राप्ति पर बल दिया जाता था किन्तु आधुनिक काल मे बालक की वास्तविक रुचियो उसकी व्यक्तिगत कार्यशीलताओं की ओर अग्रसर होने की सामान्य प्रवृत्ति दिखाई देती है। इसी सत्य को ध्यान मे रखकर ऐबट और वुड रिपोर्ट मे बालक के विद्यालय मे खेलने, अन्वेषण कर अनुभव प्राप्त करने, और शारीरिक रूप से कार्यशील रहने पर जोर दिया गया था। बालक को निर्देश की अपेक्षा स्वसचित अनुभव की अधिक आवश्यकता है। अत पाठ्यक्रम निर्धारित करते समय ऐसी क्रियाओं का सकलन किया जाय जिनके द्वारा शरीर और मस्तिष्क निश्चित रूप से कार्यशील बने रहे। कार्यशीलता मे शारीरिक और मानसिक दोनो प्रकार की कार्यशीलतायें समाविष्ट हैं अत हमे पाठ्यक्रम मे ऐसी क्रियाओं, ऐसे अनुभवों को सकलित करना होगा जिनका जीवन से सम्बन्ध हो। कभी-कभी पाठ्यक्रम मे ऐसे विषय रख दिये जाते हैं जिनका जीवन से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं होता। पाठ्यक्रम मे कार्यशीलता उपलब्ध करने के लिये हमे शिशु की आवश्यकताओं पर भी ध्यान देना होगा। हैरिसन महोदय का कहना है कि विषय सामग्री यद्यपि शिशु के अनुभव को विस्तृत करने का एक महत्वपूर्ण साधन है, तब भी उसका चयन, उसकी व्यवस्था शिशु की कार्यशीलताओं को सन्तुष्ट करने के लिए की जानी चाहिए।

विशेष स्तर पर पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्त

ऊपर जिन सिद्धान्तो की विवेचना की गई है वे सिद्धान्त पाठ्य वस्तु के चुनाव के विषय मे अध्यापक का मार्ग प्रदर्शन कर सकते हैं। पाठ्य वस्तु का चयन कर लेने के बाद यह आवश्यक हो जाता है कि उनका सगठन किस प्रकार किया जाय। विशेष स्तर पर किन-किन विषयो अथवा क्रियाओं का पाठ्यक्रम में समावेश किया जाय इसके लिए नीचे लिखी बातो पर भी ध्यान देना होगा। ये बातें शिक्षा-शास्त्रियों ने सिद्धान्तो के रूप मे उल्लिखित की हैं।

(१) व्यक्तिगत विभिन्नताओं का ध्यान—प्रत्येक स्तर पर उन्हीं पाठ्य पुस्तको का सकलन किया जाय जो उस स्तर के छात्रो की व्यक्तिगत विभिन्नताओं के अनुकूल हो, उनकी आवश्यकताओं, रुचियों और अनुभवों की दृष्टि से उचित हो। इसका अर्थ यह है कि पाठ्यक्रम लचीला [illegible] ओ [illegible] का

(२) प्रत्येक स्तर की पाठ्यवस्तु का पूर्व उत्तरवर्ती वस्तुओं से सम्बन्ध—किसी भी स्तर पर जो पाठ्यवस्तुएँ सकलित की जायें उनका सीधा सम्बन्ध उस स्तर से एक स्तर पूर्व और एक स्तर बाद से अवश्य होना चाहिए जिससे बालक एक कक्षा से दूसरी कक्षा मे जाते समय स्वय को विस्थापित सा महसूस न करे।

(३) सम्पूर्ण पाठ्यक्रम मे धारावाहिकता—इस सिद्धान्त का अर्थ यह है कि न केवल एक कक्षा से दूसरी कक्षा में जाते समय ही, वरन् स्कूल के समाज मे पदार्पण करते समय, अथवा एक विषय से दूसरे विषय का अध्ययन करते समय बालक को ऐसा न मालूम पड़े कि उसको विचित्र दुनिया मे रख दिया गया है। विद्यालय मे सम्पूर्ण पाठ्यक्रम मे इस प्रकार की धारावाहिकता का होना आवश्यक है।

(४) विषयों की सानुबन्धता—एक ही स्तर के विषयो को यथासम्भव रूप मे, इस प्रकार समन्वित किया जाय कि बालक के मन पर ज्ञान की अखण्डता का स्पष्ट प्रभाव हो जाय। ज्ञान एक है। इस सिद्धान्त की ओर भाग १ अध्याय ५ मे सकेत मात्र किया था। यहाँ 'ज्ञान' की एकता किस प्रकार पाठ्यक्रम के सगठन मे निश्चित की जा सकती है इस पर अगले प्रकरण मे विशद्

रूप से विचार करें। यदि एक ही स्तर पर दो विषयों में समन्वय (Integration) स्थापित न हो सके तो कम से कम उनमें सह-सम्बन्ध (Correlation) स्थापित कर इस प्रकार की जानकारियों और क्रियाओं की पुनरावृत्ति न करें।

(५) पाठ्य विषयों की संख्या निश्चित—किसी भी स्तर पर पाठ्य विषयों की भीड़ न लगा दी जाय। जिस स्तर का पाठ्यक्रम निश्चित किया जा रहा है, उस स्तर पर बालकों की आवश्यकता एवं उनके विषयों को ग्रहण करने की क्षमता पर भी ध्यान दिया जाय।

(६) पर्याप्त समय की व्यवस्था—जिस स्तर का पाठ्यक्रम निश्चित किया जाय उस स्तर पर जितना समय प्रदान कर दिया जाता है उसी समय के बीच पाठ्यवस्तु का पूरी तरह अध्ययन और अध्यापन हो जाना चाहिए। उदाहरण के लिये यदि पाठ्यक्रम दो वर्षों के लिए बनाया जा रहा है तो वह दो वर्षों में ही पूरा हो। किसी बात को सीखने के लिये प्रकृति एक निश्चित समय देती है। यह समय न तो अधिक होना चाहिए और न कम।

(७) पूर्ववर्ती तथा उत्तरवर्ती पाठ्य विषयों के साथ परिमाण सम्बन्धी अनुपात—प्रत्येक कक्षा के लिए पाठ्य विषयों का पहली और अगली कक्षा के विषयों के साथ ऐसा अनुपात हो कि कोई एक विषय उचित समय से अधिक समय न ले।

उपर्युक्त माध्यमिक कक्षाओं में किसी भी कक्षा के पाठ्यक्रम को इन कसौटियों पर कस-कर हम देख सकते हैं कि उनके संगठन में कहाँ तक इन उद्देश्यों का पालन किया गया है।

पाठ्यक्रम में समन्वय का अभिकरण

पाठ्य वस्तुओं को संगठित करने के कई तरीकों का उल्लेख शिक्षा-शास्त्रियों ने किया है। कुछ शिक्षा-शास्त्री पाठ्यक्रम में सह-सम्बन्ध (Correlation) पर जोर देते हैं कुछ केन्द्रीकरण (Concentration) और कुछ समन्वय (Integration) पर। पाठ्यक्रम संगठन के अन्तिम प्रकार पर ही यहाँ प्रकाश डाला जायगा। सह-सम्बन्ध और केन्द्रीयकरण पर अलग से प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जायगा।

समन्वय का अर्थ है कि भिन्न अथवा परस्पर विरुद्ध होती हुई वस्तुओं में अभेद और अविरोध की स्थापना करना। जान ड्यूई का कहना है कि पाठ्यक्रम में विभिन्न विषय सह सम्बन्ध रूप में नहीं वरन् समन्वित रूप में प्रस्तुत करने चाहिये। सहसम्बन्ध का अर्थ है एक ही स्तर पर दी जाने वाली जानकारियों और क्रियाओं में आवश्यक पुनरावृत्ति न करने के उद्देश्य से विभिन्न विषयों को परस्पर सम्बद्ध करना। ऐसा करने से छात्रों को विषयों की पारस्परिक निर्भरता और ज्ञान की अखण्डता का अनुभव हो जाता है। किन्तु ड्यूई इन विषयों के सम्बन्ध पर इतना बल नहीं देते। वे तो क्रियाओं पर ही विशेष बल देते हैं, जिनके सम्पादन से विषयों की विभिन्नता का ज्ञान भी नहीं होता।

उनका विचार है कि प्रत्येक व्यक्ति सप्रयोजन क्रियाएँ करता है। मानव-जीवन ही क्रियाओं का प्रवाह है जिनका आरम्भ जन्म के साथ और समाप्ति मृत्यु के साथ हुआ करती है। प्रयोजनाभिप्रेरित यह प्राणी किसी भी क्रिया का सफल संचालन करने के लिये उपयोगी जानकारियाँ प्राप्त करता है। ये जानकारियाँ उसे परम्परा से मिला करती हैं। एकत्र की गई इन जानकारियों की उपयोगिता अथवा अनुपयोगिता ज्ञान उसे सफलता और असफलताओं से होता है। इस प्रकार जीवन भर वह पुरानी जानकारियों में सुधार और नई जानकारियों का संकलन कर व्यवहार में परिवर्तन करता जाता है। किसी भी क्रिया को सफलतापूर्वक सम्पादित करते समय वह यह नहीं सोचता कि किस विषय का अध्ययन किया जा रहा है। उसे इस प्रकार का विषय विश्लेषण करने का अवसर ही नहीं मिलता। वस्तुत: प्रत्येक क्रिया सर्वविषयमयी होती है।

इसी विचार को ध्यान में रखकर ड्यूई ने विभिन्न विषयों को किसी सप्रयोजन क्रिया [illegible] पर बल दिया है। इसी विचार से प्रेरित होकर [illegible] और सभी विषयों को रख सकने की घोषणा की [illegible] के साथ अभिन्न होकर संगठित हो जाते हैं तब उनकी प्रत्यक्ष अनुभूति हो जाया करती है। इस प्रकार भिन्न अथवा विरुद्ध प्रतीत होने वाले विषयों में क्रिया के माध्यम से अभेद और अविरोध स्थापित किया जाता है। सह-सम्बन्ध और समन्वय

दोनो भिन्न-भिन्न विपयो मे भेद और वैपरीत्य को मानकर चलते हैं किन्तु सह-सम्बन्ध अध्यापक द्वारा स्थापित किया जाता है, समन्वय छात्र द्वारा। विपयो के सहसम्बन्ध स्थापित होने पर छात्र यह तो अवश्य जान लेता है कि ज्ञान एक है, किन्तु ज्ञान के प्रत्येक अंश (विषय) का क्या प्रयोजन है यह उसे मालूम नही हो पाता। विपयो मे समन्वय वह स्वय स्थापित करता है किसी क्रिया के माध्यम से क्योंकि उनके द्वारा दी गई जानकारियो को तात्कालिन सप्रयोजन क्रिया मे उपयोग मे लाता है। सह-सम्बन्ध अध्यापक की महत्ता स्वीकार करता है, समन्वय बालक की। इसलिये समन्वित पाठ्यक्रम को हम पूर्णतया एकीकृत बालकेन्द्रित पाठ्यक्रम (Completely unified child centered curriculum) भी कह सकते हैं।

समन्वित पाठ्यक्रम मे बालक के वर्तमान काल के प्रयोजनो को पूरा कराने वाली क्रियाओ का सगठन किया जाता है। उनसे सम्बन्धित जानकारियाँ प्रासगिक रूप मे यथास्थान आती हैं। आवश्यक जानकारियाँ और क्षमताएँ सप्रयोजन रूप मे उसके सामने आती हैं और उसके व्यक्तित्व के साथ समन्वित होती चलती हैं। सामाजिक परम्परा मे क्रियाओ का चुनाव बालक मे सामाजिक कुशलता पैदा करने के लिए किया जाता है।

इस पाठ्यक्रम का मनोवैज्ञानिक आधार काफी मजबूत है किन्तु एक बात की कमी इसमे विशेष रूप से खटकती है। जो कुछ हम जानते हैं उसका स्रोत हमारी क्रियाएँ ही नही होती दूसरो के अनुभव भी हुआ करते हैं। समन्वित पाठ्यक्रम दूसरो के अनुभव से लाभ उठाने का प्रयत्न नही करता। प्रत्येक विषय के व्यवस्थित ज्ञान की सुविधा भी नही देता। इस प्रकार बालक के ज्ञान मे कुछ रिक्त स्थान छूट जाते हैं। वह पाठ्यपुस्तको का बहिष्कार करता है और वह विषय-विशेषज्ञ अध्यापकों को पथ-प्रदर्शक के रूप मे माँग करता है। इसलिये इसका उपयोग प्राथमिक और निम्न माध्यमिक स्तर के लिये ही किया जा सकता है। अत सामान्य पाठ्यक्रम (Genral curriculum) के रूप मे ही इसकी उपयोगिता हो सकती है। उच्च स्तर पर इसे रखने के लिये इसके ऐच्छिक विषयो को भी स्थान देना पड़ेगा।

पाठ्यक्रम की सफलता इस बात पर भी निर्भर है कि वह किस सीमा तक जीवन से समन्वय स्थापित कर सका है। अगले प्रकरण मे इस तथ्य का स्पष्टीकरण किया जायगा।

सहसम्बन्ध

Q 2. What do you mean by the term 'Correlation of Studies'? Why do we need correlation of subjects? "Progressive teachers realise that the division of the curriculum into subjects is more or less conventional arrangement to meet the practical needs of the School, and that too sharp a line should not be drawn between one subject and other" Discuss

Ans. [illegible]

बीच इस प्रकार का सम्बन्ध स्थापित कर देने से बालको को ज्ञान की अखण्डता का अनुभव होने लगता है। बालक यह समझने लगता है कि विभिन्न विषय आपस मे एक दूसरे पर आश्रित हैं। एक विषय की जानकारी दूसरे विषय में प्रयोग मे आने से उस जानकारी पर बालक को अधिकार प्राप्त हो जाता है और पाठ्यवस्तु रोचक बन जाती है।

सह-सम्बन्ध के निम्नलिखित चार भेद हैं—

(१) एक विषय का दूसरे विषय के साथ सम्बन्ध।
(२) एक ही विषय के विभिन्न अंगो मे सम्बन्ध।
(३) विषयो का जीवन की समस्याओ के साथ सम्बन्ध।
(४) ज्ञान-प्रधान, अनुभूति-प्रधान और क्रिया-प्रधान वस्तुओं मे पारस्परिक सम्बन्ध।

भिन्न-भिन्न विषयो का आपस में क्या सम्बन्ध है इसकी व्याख्या उन विषयो की पाठन विधियो को प्रस्तुत करते समय की जायगी। उदाहरण के लिए भूगोल का सह-सम्बन्ध विज्ञान, गणित, अर्थशास्त्र, समाज अध्ययन आदि से स्थापित किया जा सकता है। जलवायु का अध्ययन

पढ़ाते समय बालकों को तापमान, हवा के दबाव, वर्षा, आदि का वैज्ञानिक ज्ञान दिया जा सकता है। इतिहास और देशान्तर रेखाओं के परिवर्तन से भिन्न भिन्न स्थानों में सूर्योदय और सूर्यास्त का समय निकालने के लिए गणित का ज्ञान दिया जा सकता है। किसी देश की भौगोलिक परिस्थितियों किस प्रकार उसकी सामाजिक दशा को प्रभावित किया करती है इसका ज्ञान भी साथ-साथ दिया जा सकता है। एक विषय का अन्य विषय से इस प्रकार का सह-सम्बन्ध क्षैतिज सह-सम्बन्ध (Horizontal Correlation) कहलाता है। अध्यापक दो या दो से अधिक विषयों के बीच सह-सम्बन्ध स्थापित करने के लिए कभी-कभी पूर्वनियोजित योजना बना लेता है और कभी-कभी यह सह-सम्बन्ध अकस्मात् स्थापित हो जाया करता है।

अध्यापक एक ही विषय की विभिन्न शाखाओं के बीच सम्बन्ध स्थापित करता हुआ पाया जाता है। बीजगणित पढ़ाते समय उसका सम्बन्ध रेखागणित अथवा अंकगणित से, अंकगणित पढ़ाते समय भिन्न का सम्बन्ध अनुपात से स्थापित किया जा सकता है। इस प्रकार का सह-सम्बन्ध उदग्र सह-सम्बन्ध कहलाता है।

बालक के लिए वह ज्ञान सार्थक (meaningful) नहीं माना जाता जो उसके जीवन की समस्याओं के सुलझाने या हल करने के लिए उपयोगी न हो। इसलिये जब कभी भी किसी तरह का ज्ञान दिया जाय उसका सम्बन्ध जीवन के अनुभवों से अवश्य स्थापित किया जाय। अगले प्रकरण में इस विचार को विस्तारपूर्वक समझाने का प्रयत्न किया जायगा।

प्राय यह देखा जाता है कि जिस व्यक्ति के व्यक्तित्व में ज्ञान, अनुभूति एवं क्रियाशीलता का समन्वय नहीं होता वह अन्य व्यक्तियों एवं समाज के साथ स्वस्थ सम्बन्ध स्थापित नहीं कर पाता। उसके मानसिक जीवन के इन तीन पहलुओं—ज्ञान, अनुभूति और क्रिया में से कभी कोई पहलू दूसरा अधिक उभर जाता है और कभी इतना अधिक दब जाया करता है कि वह उसके व्यक्तित्व को असन्तुलित बना दिया करता है। इसलिए अध्यापक का कर्त्तव्य है कि बालक के पाठ्यक्रम में पाठ्य वस्तुओं का संगठन इस प्रकार करे कि उससे ज्ञान-प्रधान, अनुभूतिप्रधान और क्रिया-प्रधान वस्तुओं में उचित प्रकार का सह सम्बन्ध स्थापित हो जाय।

शिक्षा में सह-सम्बन्ध की आवश्यकता

(१) **पाठ्यक्रम की कृत्रिमता को दूर करना**—भाषा, गणित, भूगोल, विज्ञान आदि विषयों को अलग-अलग करके पढ़ाने से पाठ्यक्रम में कृत्रिमता आ जाती है। विभिन्न विषयों का ज्ञान विभिन्न इकाइयों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। प्रकृति में हमें ऐसी बात नहीं मिलती। जीवन की समस्याओं को हल करने के लिए विभिन्न विषयों से सम्बन्धित ज्ञान की आवश्यकता होती है। इसलिए विषयों को सहसम्बन्धित करके पाठ्यक्रम की कृत्रिमता को दूर किया जा सकता है।

(२) **बढ़ते हुए पाठ्यक्रम के भार को कम करना**—विषयों को एक दूसरे से सहसम्बन्ध करके पढाने से विषयों का अनावश्यक भार कम हो जाता है। आजकल का जीवन जैसे-जैसे जटिल होता जा रहा है वैसे-वैसे हम पाठ्य-वस्तुओं की संख्या बढ़ाते जा रहे हैं। उदाहरणस्वरूप अभी हाल ही में समाज अध्ययन का विषय समाज की जटिलताओं को समझाने के लिए छोटी कक्षाओं के पाठ्यक्रम में रख दिया गया है। यदि अध्यापक निश्चित समय में सन्तोषजनक तरीके से सभी विषयों को पढाना चाहता है तो उसे अनावश्यक पुनरावृत्ति को रोकने के लिए भिन्न-भिन्न पाठ्य वस्तुओं को सहसम्बन्धित करना होगा।

(३) **विशेषज्ञ अध्यापकों द्वारा उत्पन्न की गई समस्याओं को हल करने के लिए**—प्रत्येक विषय का अध्यापक अपने विषय को इतना अधिक महत्व देता है और अन्य विषयों से उसका नाता तोड़कर इस प्रकार का शिक्षण करता है कि छात्र ज्ञान के समग्र रूप से अनभिज्ञ अपरिचित ही रह जाते हैं। वह यह जान नहीं पाता कि एक विषय दूसरे विषय पर क्या प्रकाश डाल सकता है, प्रत्येक विषय का अध्ययन उसके लिए कृत्रिम हो जाता है। ज्ञान को असम्बन्धित अंशों का समूह मात्र समझने लगता है। ज्ञान एक है, इसका आभास उसे नहीं होता। विशेषज्ञ अध्यापकों द्वारा इस प्रकार पैदा की गई अवस्था में सुधार करने के लिए हमें विषयों में सहसम्बन्ध स्थापित करना होगा। तभी सकीर्ण विशिष्टीकरण (Narrow specialisation) के दोषों से *शिक्षा* [illegible] किया जा सकता है।

(४) ज्ञान के समग्र रूप से परिचित कराना—सम्पूर्ण ज्ञान एक समवेत इकाई है। ज्ञान सम्बन्धित है, एक है और सम्पूर्ण विषय ज्ञान रूपी इकाई के विभिन्न अंग है। पाठ्यक्रम को विभिन्न विषयों में विभक्त करने का कारण केवल यह है कि हम पठन पाठन मे सुविधा उत्पन्न करना चाहते हैं। शिक्षा का उद्देश्य बालकों को ज्ञान की एकता से परिचित कराना है। इसलिए सम्पूर्ण विषयों में सहसम्बन्ध स्थापित करने की जरूरत है। अवयववादियों (gestalists) का कहना है कि हम वस्तुओं को समग्र रूप में देखते हैं। हमें अवयवी का (whole) ज्ञान पहले होता है अवयवों (parts) का बाद में। अतः मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी बालकों को ज्ञान दान इस प्रकार किया जाय कि उनमें विभिन्नता के स्थान पर समग्रता (Unity in diversity) ही दिखाई दे।

(५) समय की बचत करना और पाठ को रोचक बनाना—विषयों को सहसम्बन्धित करके पढ़ाने से समय की बचत तो होती है क्योंकि सहसम्बन्ध का एक उद्देश्य अनावश्यक पुनरावृत्ति को कम करना है, पाठ्यवस्तु भी रोचक बन जाती है। रुचि और सार्थकता मे घनिष्ठ सम्बन्ध है। वही वस्तु रोचक होती है जिसमें सार्थकता होती है और सहसम्बन्ध या समन्वय से वस्तुओं की सार्थकता में वृद्धि हो जाती है। इसलिए पाठ्य वस्तुओं का सहसम्बन्धित करना ही आवश्यक है।

विषयों के बीच उचित सह-सम्बन्ध किस प्रकार पैदा किया जाय ?

पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयों के बीच सह-सम्बन्ध स्थापित करते समय अध्यापकों को निम्नलिखित बातों पर ध्यान रखना चाहिए :—

(१) समन्वय बालक के मानसिक स्तर और विषय की प्रकृति के अनुकूल हो।

(२) किसी प्रसंग को पढ़ाते समय अध्यापक उससे सहसम्बन्धित सभी प्रकार की वस्तुओं का प्रयोग करे जिससे बालक विषय को पूरी तरह समझ सकें।

(३) प्रत्येक विषय की विभिन्न शाखाओं में यथासम्भव सहसम्बन्ध स्थापित किया जाय।

(४) विभिन्न विषयों का सामाजिक जीवन से सहसम्बन्ध स्थापित किया जाय।

(५) सैद्धान्तिक और व्यावहारिक ज्ञान मे भी सहसम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा की जाय।

जब तक ज्ञान के भिन्न-भिन्न अंगों मे पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित नहीं होगा तब तक शिक्षक शिक्षा का स्थानान्तर उचित मात्रा मे नहीं कर सकेगा। अतः पाठ्यक्रम मे जितने भी विषयों का समावेश किया जाय उनका पारस्परिक सम्बन्ध और परस्पराश्रिता शिक्षक और शिक्षित दोनों को मालूम हो। किसी विषय का अन्य विषयों के साथ क्या सम्बन्ध हो सकता है, इसका ज्ञान विषय की प्रस्तावना देते समय दिया जा सकता है। किन्तु समन्वय स्थापित करने में व्यर्थ की खींचा-तानी न की जाय। सहसम्बन्ध या समन्वय का प्रयोग साधन के रूप में हो, साध्य के रूप में नहीं।

जीवन के अनुभवों के साथ सह-सम्बन्ध

Q 3 Curriculum to be effective must integrate the life experiences of the child Discuss the statement and say how you would achieve this integration in the Junior High School *(L T 1955)*

Ans वर्तमान शिक्षा का बालक के वास्तविक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसका फल यह होता है कि वह अपने प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण में अनुकूलीकरण स्थापित नहीं कर पाता। अनुकूलीकरण के अभाव में वह अपना जीवन भली प्रकार नहीं व्यतीत कर सकता। पाठशाला का मुख्य उद्देश्य बालक के लिये समस्त प्रकार के अनुभव प्राप्त करने की सुविधाएँ उपलब्ध करना है जो उसे अपनी शक्तियों के स्वतन्त्र विकास करने तथा अपने वातावरण के साथ अनुकूलीकरण स्थापित करने के योग्य बना सकें। हमारा पाठ्यक्रम भी इसी प्रकार का हो कि बालक को वे सभी अनुभव मिल सकें जो उनके जीवन के लिये उपयोगी हैं।

अनुभव साधारणतया तीन प्रकार के होते हैं—व्यक्तिगत, सामाजिक और प्र-[illegible]। पाठ्यक्रम में ऐसी क्रियाओं को रखना आवश्यक है कि बालक को सभी प्रकार के अनु-

पढ़ाते समय बालकों को भारत, रूस के इतिहास, बर्मा, आदि का वैज्ञानिक ज्ञान दिया जा सकता है। [illegible] भूगोल और [illegible] का समय [illegible] ज्ञान दिया जा सकता है। किसी देश की भौगोलिक परिस्थितियाँ किस प्रकार उसकी सामाजिक दशा को प्रभावित किया करती है इसका ज्ञान भी [illegible] दिया जा सकता है। एक विषय के साथ दूसरे विषय का इस प्रकार का सह-सम्बन्ध क्षैतिज सह-सम्बन्ध (Horizontal Correlation) कहा जाता है। [illegible] दो या दो से अधिक विषयों के बीच सह-सम्बन्ध स्थापित करने के लिए [illegible] योजना बना लेता है और कभी-कभी यह सह-सम्बन्ध अकस्मात् स्थापित हो जाया करता है।

अध्यापक एक ही विषय की विभिन्न शाखाओं के बीच सम्बन्ध स्थापित करता हुआ चलता है। बीजगणित पढ़ाते समय उसका सम्बन्ध रेखागणित अथवा अंकगणित से, अंकगणित पढ़ाते समय भिन्न का सम्बन्ध अनुपात से स्थापित किया जा सकता है। इस प्रकार का सह-सम्बन्ध उदग्र सह-सम्बन्ध कहलाता है।

बालक के लिए वह ज्ञान सार्थक (meaningful) नहीं माना जाता जो उसकी जीवन की समस्याओं के सुलझाने या हल करने के लिए उपयोगी न हो। इसलिए जब कभी भी किसी तरह का ज्ञान दिया जाय उसका सम्बन्ध जीवन के अनुभवों से अवश्य स्थापित किया जाय। अगले प्रकरण में इस विचार को विस्तारपूर्वक समझाने का प्रयत्न किया जायगा।

प्राय यह देखा जाता है कि जिस व्यक्ति के व्यक्तित्व में ज्ञान, अनुभूति एवं क्रियाशीलता का समन्वय नहीं होता वह अन्य व्यक्तियों एवं समाज के साथ स्वस्थ सम्बन्ध स्थापित नहीं कर पाता। उसके मानसिक जीवन के इन तीन पहलुओं—ज्ञान, अनुभूति और क्रिया में से कभी कोई पहलू इतना अधिक उभर आता है और कभी इतना अधिक दब जाया करता है कि वह उसके व्यक्तित्व को असन्तुलित बना दिया करता है। इसलिए अध्यापक का कर्तव्य है कि बालक के पाठ्यक्रम में पाठ्य वस्तुओं का सगठन इस प्रकार करे कि उनमें ज्ञान-प्रधान, अनुभूतिप्रधान और क्रिया-प्रधान वस्तुओं में उचित प्रकार का सह-सम्बन्ध स्थापित हो जाय।

शिक्षा में सह-सम्बन्ध की आवश्यकता

(१) पाठ्यक्रम की कृत्रिमता को दूर करना—भाषा, गणित, भूगोल, विज्ञान आदि विषयों को अलग-अलग करके पढ़ाने से पाठ्यक्रम में कृत्रिमता आ जाती है। विभिन्न विषयों का ज्ञान विभिन्न इकाइयों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। प्रकृति में हमें ऐसी बात नहीं मिलती। जीवन की समस्याओं को हल करने के लिए विभिन्न विषयों से सम्बन्धित ज्ञान की आवश्यकता होती है। इसलिए विषयों को सहसम्बन्धित करके पाठ्यक्रम की कृत्रिमता को दूर किया जा सकता है।

(२) बढ़ते हुए पाठ्यक्रम के भार को कम करना—विषयों को एक दूसरे से सहसम्बन्ध करके पढ़ाने से विषयों का अनावश्यक भार कम हो जाता है। आजकल का जीवन जैसे-जैसे जटिल होता जा रहा है वैसे-वैसे हम पाठ्य-वस्तुओं की संख्या बढ़ाते जा रहे हैं। उदाहरणस्वरूप अभी हाल ही में समाज अध्ययन का विषय समाज की जटिलताओं को समझाने के लिए छोटी कक्षाओं के पाठ्यक्रम में रख दिया गया है। यदि अध्यापक निश्चित समय में सन्तोषजनक तरीके से सभी विषयों को पढ़ाना चाहता है तो उसे अनावश्यक पुनरावृत्ति को रोकने के लिए भिन्न-भिन्न पाठ्य वस्तुओं को सहसम्बन्धित करना होगा।

(३) विशेषज्ञ अध्यापकों द्वारा उत्पन्न की गई समस्याओं को हल करने के लिए—प्रत्येक विषय का अध्यापक अपने विषय को इतना अधिक महत्व देता है और अन्य विषयों से उसका नाता तोड़कर इस प्रकार का शिक्षण करता है कि छात्र ज्ञान के समग्र रूप से अनभिज्ञ अपरिचित ही रह जाते हैं। वह यह जान नहीं पाता कि एक विषय दूसरे विषय पर क्या प्रकाश डाल सकता है, प्रत्येक विषय का अध्ययन उसके लिए कृत्रिम हो जाता है। ज्ञान को असम्बन्धित अशों का समूह मात्र समझने लगता है। ज्ञान एक है, इसका आभास उसे नहीं होता। विशेषज्ञ अध्यापकों द्वारा इस प्रकार पैदा की गई अवस्था में सुधार करने के लिए हमें विषयों में सहसम्बन्ध स्थापित करना होगा। तभी सकीर्ण विशिष्टीकरण (Narrow specialisation) के दोषों से शिक्षा को मुक्त किया जा सकता है।

हो जाता है। वह जीवन के लिए तैयार हो जाता है। शिक्षा को बालक के वास्तविक जीवन से सम्बन्धित करने के लिए ही बालक की स्वाभाविक प्रवृत्ति और क्रियाशीलता को इतना महत्व दिया गया है कि उस हस्तकला को जिसे वातावरण में चुना गया है, शिक्षा का केन्द्र मान लिया गया है।

सहसम्बन्ध (Correlation) की व्याख्या करते समय हमने कहा था कि सह-सम्बन्ध ४ ... विषय की विभिन्न ... ोर अन्तिम पाठ- ... यह सह-सम्बन्ध ... ट में विद्यालयीय क्रियाओं को व्यावहारिक दृष्टि से उपादेय बना देता है। यदि सामाजिक कुशलता को शिक्षा का उद्देश्य मान लिया जाय तो इस छोटे से समाज के जीवन के चारों ओर संगठित करके ही विविध विषयों को संगठित करना सर्वोत्तम होगा।

केन्द्रीय पाठ्यक्रम और सकेन्द्रीयकरण

Q 4 Write short notes on core curriculum.

(*Agra B T 1960*)

केन्द्रीय पाठ्यक्रम अथवा कोर प्रधान पाठ्यक्रम के आधार में हरबार्टीय विद्वानों द्वारा प्रतिपादित केन्द्रीकरण का विचार स्थित है। केन्द्रीकरण वह प्रक्रिया है जो किसी एक विषय को केन्द्र में रखकर अन्य विषयों को उसके चारों तरफ संगठित करते हुए चलती है। एक केन्द्र के चारों ओर संगठित विषयों में परस्पर सहसम्बन्ध स्वाभाविक है क्योंकि अन्य सभी विषय केन्द्रीय विषय के किसी न किसी पहलू के स्पष्ट करने के लिये संगठित किए जाते हैं। केन्द्रीय विषय का चुनाव निम्न दो बातों को ध्यान में रखकर किया जाता है

(१) बालक की रुचि
(२) अध्यापक का उद्देश्य

जो अध्यापक जिस उद्देश्य की पूर्ति करवाना चाहता है उस उद्देश्य की पूर्ति जिस विषय से होती है उसी विषय को केन्द्रीय मानकर चला जाता है। उदाहरणस्वरूप यदि सम्पूर्ण शिक्षा का उद्देश्य अध्यापक के अनुसार चरित्र का निर्माण है और इस उद्देश्य की पूर्ति उसके विचार से इतिहास के शिक्षण से हो सकती है, तो इतिहास को ही विषयों का केन्द्र मानकर चला जा सकता है, इसी प्रकार यदि अध्यापक के विचार से शिक्षा का उद्देश्य बालक में व्यावहारिक कार्य कुशलता उत्पन्न करना है और यह कार्यकुशलता मान लीजिये अर्थशास्त्र के अध्ययन से प्राप्त हो सकती है तो अर्थशास्त्र को विषयों का केन्द्र माना जा सकता है। इसी प्रकार यदि कोई शिक्षा दार्शनिक सामाजिक कुशलता को शिक्षा का उद्देश्य मानकर चलता है और यदि वह समझता है कि यह कुशलता स्कूल के जीवन के चारों ओर विभिन्न विषयों को संगठित करने से प्राप्त होती है तो वह विद्यालय को समाज का सरलीकृत, परिष्कृत और संक्षिप्त रूप मानकर समस्त क्रियाओं को स्कूल जीवन के चारों ओर संगठित करेगा।

कभी-कभी जिस विषय में विद्यार्थी की रुचि होती है उसी विषय को केन्द्र में रखा मान लिया जाता है। ऐसी अवस्था में पाठ्यक्रम व्यापक क्षेत्रीय पाठ्यक्रम की भांति व्यक्तिगत एवं सामाजिक दोनों प्रकार के समन्वय स्थापित करता है।

केन्द्रीय पाठ्यक्रम (Core Curriculum) के विषय में एक मत और प्रचलित है। यह मत है श्री ई० एम० ड्रेवर का। केन्द्रीय पाठ्यक्रम से उनका तात्पर्य उस आधारभूत पाठ्यक्रम से है जिसका अध्ययन प्रत्येक बच्चे को जरूरी मालूम पड़े। यदि उस पाठ्यक्रम को न दिया जाय तो बालक के सामाजिक जीवन में भाग लेना कठिन हो जाय। इस आधारभूत पाठ्यक्रम में मातृभाषा, गणित और सामाजिक अध्ययन को महत्वपूर्ण स्थान देना होगा।

कोर करीक्यूलम में जिन विषयों को प्रमुख स्थान देना चाहिए वे हैं :—

भव मिल सकें। मनुष्य काम करता या करने की चेष्टा करता है, मनुष्य की प्रमुख हस्तकलायें क्या हैं, वह अन्न, वस्त्र और शरीर की रक्षा के लिए किस प्रकार की क्रियाएं सम्पादित करता है। इस प्रकार के कार्यशीलतापूर्ण प्रयासात्मक अनुभवों को प्रदान करने से व्यावहारिक समस्याओं के समाधान करने की कुशलता बालक में पैदा हो सकेगी। ज्ञानात्मक अनुभवों में वे अनुभव सम्मिलित किये जा सकते हैं जो मनुष्य को पहले से परम्परागत रूप में मिलते रहते हैं। साहित्य, विज्ञान, गणित, इतिहास और भूगोल आदि विषयों का समावेश ज्ञानात्मक अनुभव देने के लिये किया जाता है। अनुभूत्यात्मक अनुभवों में हम उन अनुभवों को सम्मिलित कर सकते हैं जिनको व्यक्ति कला, काव्य और संगीत के रूप में अभिव्यक्त करता है। पाठशाला का मूलोद्देश्य उन सभी प्रकार के अनुभवों को प्रदान करना है।

अब चूंकि पाठशाला समाज का लघु रूप है अतः उसका कार्य है अपने बालकों को उत्तम नागरिक बनाना। यह तभी हो सकता है जब शिशुओं को समाज के भीतर रहने का अनुभव दिया जाय और उसे भावी जीवन के लिए तैयार किया जाय। शिक्षा का अर्थ है बालक को ऐसे व्यक्ति के रूप में परिवर्तित करना जो अपने वातावरण में रहते हुए अपनी निज की क्रियाओं द्वारा [illegible] अपने बचपन के वातावरण [illegible] हो सके। पाठशाला का इस उद्देश्य की पूर्ति हो जाय। ताकि आगे चलकर अपने प्राकृतिक वातावरण के भीतर सफलतापूर्वक जीवन निर्वाह कर सके। पाठशाला को इस कार्य के लिये उन निपुणताओं में भी बालक को प्रशिक्षित करना होगा जो उसके जीवन को सम्पन्न बनाने और सामान्य जीवन में अपना उचित योगदान करने के योग्य बना देती है।

पाठ्यक्रम निर्माण करते समय जीवन के लिए तैयारी के सिद्धान्त पर विशेष बल देना होगा। शिक्षा विशारदों का कहना है कि यदि बालक को अपने प्राकृतिक एवं सामाजिक वातावरण से अनुकूलीकरण स्थापित करना है तो उसे जीवन के लिये तैयार करना होगा। जीवन की तैयारी से हमारा तात्पर्य जीवन के निकटतम अंश के लिए की जाने वाली तैयारी से है। बालक के लिए तो जीवन के अगले निकटतम अंश की तैयारी ही अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि उसमें जानकारी अनुभव तथा कल्पना के सीमित होने के कारण वह जीवन के सुदूरवर्ती अंशों को देख नहीं पाता। व्यावहारिक रूप से कक्षा ८ के छात्र के लिए अपनी कक्षा की तैयारी ही जीवन की तैयारी है। किन्तु विद्यालय के जीवन के बाद भी तो उसके सामने अनेक समस्यायें आवेंगी। उन विषम परिस्थितियों के लिये भी तो हमें उसे तैयार करना है इसलिये पाठ्यक्रम का निर्माण इस प्रकार किया जाय कि वह जीवन के निकटतम अंश की तैयारी के साथ-साथ जीविकोपार्जन के किसी एक प्रकार में कुशलता प्राप्त कर सके; निरीक्षण तुलना, सामान्य निर्धारण आदि के प्रयोग में सिद्धहस्त हो सके, आत्मनिर्भरता, आत्मसंयम, अवधान, नेतृत्व, व्यक्तिगत एवं सामाजिक अधिकारों और कर्त्तव्यों के प्रति जागरूकता, सहानुभूति, आत्म-त्याग, सहयोग, कष्ट सहने की शक्ति आदि विशेष गुणों से युक्त हो सके; उसमें ऐसी रुचियों का विकास हो सके जिनसे वह अपने अवकाश के समय उनका उत्तम विधि से उपयोग कर सके। पाठ्यक्रम में मातृभाषा, गणित, सामाजिक अध्ययन और सामान्य विज्ञान आदि का समुचित मात्रा में समावेश हो क्योंकि इनके बिना वह अपने समाज में काम चलाने की योग्यता पैदा नहीं कर सकता। जीवन की तैयारी से हमारा प्रयोजन यह नहीं है कि शिक्षा पूर्णतया व्यावसायिक हो और बालक को विद्यालय में प्रवेश करते ही उसकी व्यावसायिक शिक्षा पर जोर दिया जाय; इसलिए जूनियर स्कूलों की कक्षाओं में सामान्य पाठ्यक्रम (General Curriculum) की व्यवस्था की जा सकती है। व्यावसायिक शिक्षा का प्रारम्भ तो बालकों की रुचियों और प्रवृत्तियों के स्पष्ट और निश्चित होने पर ही हो सकता है।

गांधी जी ने बेसिक शिक्षा का एक मूलभूत सिद्धान्त 'शिक्षा का जीवन से सम्बन्ध' माना था। आधुनिक प्रारम्भिक और निम्न माध्यमिक शिक्षा प्राप्त बालक चूंकि अपने प्राकृतिक एवं सामाजिक वातावरण में सामजस्य स्थापित करने में असमर्थ पाता है इसलिए बेसिक प्रणाली में बालक के स्थानीय, प्राकृतिक तथा सामाजिक वातावरण से हस्तकला को चुनकर उसके माध्यम से ही शिक्षा देने की व्यवस्था की गई। इस प्रकार इस प्रणाली में बालक की शिक्षा उसके जीवन की परिस्थितियों से सम्बन्ध रखती है। अध्यापक का कार्य भी जीवन की वास्तविक परिस्थितियों में सम्पन्न होता है। इससे बालक को अपने भावी जीवन की समस्याओं और कठिनाइयों का ज्ञान

हो जाता है। वह जीवन के लिए तैयार हो जाता है। शिक्षा को बालक के वास्तविक जीवन से सम्बन्धित करने के लिए ही बालक की स्वाभाविक प्रवृत्ति और क्रियाशीलता को इतना महत्व दिया गया है कि उस हस्तकला को जिसे वातावरण में चुना गया है, शिक्षा का केन्द्र मान लिया गया है।

सहसम्बन्ध (Correlation) की व्याख्या करते समय हमने कहा था कि सह-सम्बन्ध ४ प्रकार का होता है। पहला एक विषय और दूसरे विषय के बीच, दूसरा एक ही विषय की विभिन्न शाखाओं के बीच, तीसरा अनुभूति प्रधान और प्रयास-प्रधान अनुभवों के बीच और अन्तिम पाठशाला कार्य और बाह्य जगत के बीच सहसम्बन्ध हुआ करता है। चौथे प्रकार का यह सह-सम्बन्ध बालक को विद्यालय एवं समाज की तात्विक एकता का दर्शन कराके उसकी दृष्टि में विद्यालयीय क्रियाओं को व्यावहारिक दृष्टि से उपादेय बना देता है। यदि सामाजिक कुशलता को शिक्षा का उद्देश्य मान लिया जाय तो इस छोटे से समाज के जीवन के चारों ओर सगठित करके ही विविध विषयों को सगठित करना सर्वोत्तम होगा।

केन्द्रीय पाठ्यक्रम और सकेन्द्रीयकरण

Q 4 Write short notes on core curriculum

(Agra B T 1960)

केन्द्रीय पाठ्यक्रम अथवा कोर प्रधान पाठ्यक्रम के आधार में हरबार्टीय विद्वानों द्वारा प्रतिपादित केन्द्रीकरण का विचार स्थित है। केन्द्रीकरण वह प्रक्रिया है जो किसी एक विषय को केन्द्र में रखकर अन्य विषयों को उसके चारों तरफ सगठित करते हुए चलती है। एक केन्द्र के चारों ओर सगठित विषयों में परस्पर सहसम्बन्ध स्वाभाविक है क्योंकि अन्य सभी विषय केन्द्रीय विषय के किसी न किसी पहलू के स्पष्ट करने के लिये सगठित किए जाते हैं। केन्द्रीय विषय का चुनाव निम्न दो बातों को ध्यान में रखकर किया जाता है

(१) बालक की रुचि
(२) अध्यापक का उद्देश्य

जो अध्यापक जिस उद्देश्य की पूर्ति करवाना चाहता है उस उद्देश्य की पूर्ति जिस विषय से होती है उसी विषय को केन्द्रीय मानकर चला जाता है। उदाहरणस्वरूप यदि सम्पूर्ण शिक्षा का उद्देश्य अध्यापक के अनुसार चरित्र का निर्माण है और इस उद्देश्य की पूर्ति उसके विचार से इतिहास के शिक्षण से हो सकती है, तो इतिहास को ही विषयों का केन्द्र मानकर चला जा सकता है, इसी प्रकार यदि अध्यापक के विचार से शिक्षा का उद्देश्य बालक में व्यावहारिक कार्य कुशलता उत्पन्न करना है और यह कार्यकुशलता मान लीजिये अर्थशास्त्र के अध्ययन से प्राप्त हो सकती है तो अर्थशास्त्र को विषयों का केन्द्र माना जा सकता है। इसी प्रकार यदि कोई शिक्षा दार्शनिक सामाजिक कुशलता को शिक्षा का उद्देश्य मानकर चलता है और यदि वह समझता है कि यह कुशलता स्कूल के जीवन के चारों ओर विभिन्न विषयों को सगठित करने से प्राप्त होती है तो वह विद्यालय को समाज का सरलीकृत, परिष्कृत और संक्षिप्त रूप मानकर समस्त क्रियाओं को स्कूल जीवन के चारों ओर संगठित करेगा।

कभी-कभी जिस विषय में विद्यार्थी की रुचि होती है उसी विषय को केन्द्र में रखा मान लिया जाता है। ऐसी अवस्था में पाठ्यक्रम व्यापक क्षेत्रीय पाठ्यक्रम की भांति व्यक्तिगत एवं सामाजिक दोनों प्रकार के समन्वय स्थापित करता है।

केन्द्रीय पाठ्यक्रम (Core Curriculum) के विषय में एक मत और प्रचलित है। यह मत है श्री ई० एम० हूँवर का। केन्द्रीय पाठ्यक्रम से उनका तात्पर्य उस आधारभूत पाठ्यक्रम से है जिसका अध्ययन प्रत्येक बच्चे को जरूरी मालूम पड़े। यदि उस पाठ्यक्रम को न दिया जाय तो बालक के सामाजिक जीवन में भाग लेना कठिन हो जाय। इस आधारभूत पाठ्यक्रम में मातृभाषा, गणित और सामाजिक अध्ययन को महत्वपूर्ण स्थान देना होगा।

कोर करीक्यूलम में जिन विषयों को प्रमुख स्थान देना चाहिए वे हैं :—

(१) स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा—बालक के शारीरिक विकास के लिए व्यायाम तैरना, नाचना, टीम के खेलों में भाग लेना आवश्यक है।

(२) कला-कौशल- किशोरावस्था में बालक जिस कला-कौशल सम्बन्धी क्रियाओं में भाग लेता है उनको पाठ्यक्रम में विशेष स्थान दिया जाय, उदाहरण के लिये बुनाई, जिल्द बाँधना लकड़ी और धातु का काम।

(३) इतिहास भूगोल नागरिक शास्त्र—सामाजिक भावना के विकास के लिये ऐसे विषयों को कोर-करीकुलम में स्थान दिया जाय जिनका सम्बन्ध मानव जीवन से हो।

(४) विज्ञान बालकों को इस बात का ज्ञान देने के लिये कि किस प्रकार वर्तमान युग में मानव ने प्रकृति की शक्तियों पर विज्ञान की सहायता से अधिकार पाया है विज्ञान का अध्ययन अवश्य कराया जाय।

(५) गणित—दैनिक जीवन में अत्यन्त उपयोगी इस विषय को कोर करीकुलम में इसलिये और रखा जा सकता है कि उसके अध्ययन से तर्कपूर्ण विचार करने की क्षमता का विकास होता है।

(६) भाषा—व्यक्तिगत और सामाजिक समस्याओं के हल के लिए, अपने विचारों के आदान-प्रदान के लिये, भाषा का इस पाठ्यक्रम में रखना बहुत जरूरी है।

केन्द्रीय पाठ्यक्रम में यदि विषय ऐसा है जो बालक की रुचियों के अनुकूल तथा अध्यापक के उद्देश्यों की पूर्ति करने वाला हुआ तब तो उसमें कई गुण उत्पन्न हो जाते हैं अन्यथा इसमें निम्नलिखित कमियाँ पैदा होने लगती हैं।

(१) बालक की प्रकृति और मनोवृत्ति पर ध्यान न देने से पाठ्यक्रम अमनोवैज्ञानिक हो जाता है।

(२) केन्द्रीय विषय का ज्ञान तो भली भाँति हो जाता है, परन्तु उसके चारों ओर स्थित अन्य विषयों में बालकों की जानकारी सीमित हो जाती है।

(३) केन्द्रीय पाठ्यक्रम का उपयोग उसी स्तर पर किया जा सकता है जिस स्तर पर बालकों में रुचि भिन्नता का विकास होने लगे।

(४) कोई भी विषय ऐसा नहीं है जिसका अन्य सभी विषयों के साथ समुचित समन्वय स्थापित किया जा सके। फलस्वरूप प्रत्येक स्तर पर बालक को जितनी जानकारी होनी चाहिये थी उतनी जानकारी नहीं होने पाती।

(५) ऊँची कक्षाओं में विषयों का विभाजन करके ही शिक्षा दी जा सकती है। यदि छोटी कक्षाओं में केन्द्रीय पाठ्यक्रम रखा जाता है तो आगे चलकर उच्च कक्षाओं में विषयों को विभाजित रूप से समझने में कठिनाई होती है।

केन्द्रीय पाठ्यक्रम में दोष भी हैं और गुण भी। छोटे बच्चों की शिक्षा में सकेन्द्रीकरण बहुत उपयुक्त मालूम पड़ता है परन्तु उच्च कक्षाओं में विभाजन से लाभ होता है। केवल वास्तविक सम्बन्ध स्थापित करने की आवश्यकता है। इसके बाद भी जब सकेन्द्रीकरण का समय आता है तो सकेन्द्रीकरण और भी लाभदायक होता है। इससे विशेषज्ञों की संकीर्णता दूर हो जाती है। जब हम अपनी भाषा को सीखकर विदेशी भाषा को सीखते हैं तो हमारी संकीर्णता दूर हो सकती है।

निम्न माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम का आदर्श रूप

Q 5. Enumerate the subjects that you as a Headmaster would include in the curriculum of a Junior High School in the order of their importance Discuss *their relative merits* *(Agra B, T. 1950)*

किसी भी स्तर का पाठ्यक्रम उस स्तर के बालकों की आवश्यकताओं, रुचियों, अनुभवों को ध्यान में रखकर निश्चित किया जाता है। बालकों का मानसिक विकास कितना हो गया है इसको भी ध्यान में रखकर पाठ्यवस्तु निश्चित की जाती है। जूनियर हाईस्कूल अथवा निम्न माध्यमिक विद्यालयों में छात्रों की अवस्था लगभग १२ वर्ष से १४ वर्ष तक होती है उनकी व्यक्तिगत एवं सामाजिक आवश्यकताएँ निम्नलिखित होती हैं—

(अ) सेलकूद (ब) स्वास्थ्य एवं सुरक्षा के नियमों से परिचय (स) भौतिक और सामाजिक जीवन की अधिक से अधिक जानकारी (द) अपनी नई जानकारियों का साथियों एवं अपने पूर्वजों के साथ आदान-प्रदान (य) अनुकरण करना और सामूहिकता की प्रवृत्तियों की सतुष्टी।

इस अवस्था तक आते-आते बालक की मानसिक और शारीरिक शक्तियाँ अधिक विकसित हो जाती हैं। वह अपने वातावरण में चाहे वह भौतिक हो या सामाजिक, पूर्ण परिचित हो जाता है। इस स्तर पर आकर उसमें रुचि भेद भी प्रकट होने लगते हैं, उसका शारीरिक विकास अत्यंत तीव्र गति से होने लगता है। लड़कों के स्वर में परिवर्तन, शारीरिक वृद्धि की बाढ़, लड़कियों में आवाज का माधुर्य और लज्जा भाव की वृद्धि, मानसिक शक्तियों की वृद्धि, नवीन आशाएँ, अभिलाषाएँ, उत्तेजना और आकांक्षाओं का उदय होने लगता है।

इन आवश्यकताओं और शारीरिक विकास क्रम को ध्यान में रखकर जूनियर हाईस्कूल के पाठ्यक्रम में निम्नलिखित विषयों को स्थान दिया जाता है।

(१) मातृभाषा—मातृभाषा को पाठ्यक्रम के भीतर एक प्रतिष्ठित स्थान देना होगा और यह स्थान आजकल जितना है, उससे अधिक श्रेष्ठ होना चाहिये। अपने भौतिक वातावरण और सामाजिक जीवन से सम्बधित जानकारियों और अनुभवों को अपने साथियों और बड़ों के साथ आदान-प्रदान के लिये मातृभाषा पर अधिकाधिक अधिकार अत्यन्त आवश्यक है। उसे भाषा पर इतना अधिकार अवश्य हो कि स्तरोपयुक्त गद्य और पद्य का वाचन कर सके, पढ़े हुये विषयों पर किये गये प्रश्नों का उत्तर सयत और शुद्ध भाषा में दे सके। अपने अनुभवों एवं विचारों को सरल भाषा में लिखकर प्रकट कर सके और अन्य सामग्री को एकान्त में पढ़कर उसका भाव ग्रहण कर सके। मातृभाषा का शिक्षण एक विषय के रूप में न किया जाय,' वह तो पूरे पाठ्यक्रम की आधारशिला है। प्रत्येक शिक्षक चाहे वह गणित पढ़ाता है अथवा विज्ञान मातृभाषा का शिक्षक होता है। मातृभाषा में सृजनात्मक कार्य को प्रोत्साहित देने के लिये भी विशेष रूप से प्रयत्न किया जाय।

प्रारम्भिक स्तर का बालक पढ़ने की यांत्रिक कला में कुशलता प्राप्त कर लेता है। इस स्तर पर बालक को स्वयं पढ़ने का अभ्यास कराना चाहिए और साहित्य और इतिहास के साथ भी सस्वर पाठों की आयोजना की जा सकती है। पढ़ने के साथ-साथ बालक को लिखने का कार्य भी देते रहना चाहिए। *६ वर्ष से लेकर १४ वर्ष तक मौखिक कार्य का स्थान लिखित कार्य ग्रहण* करता जाता है। इतिहास, भूगोल और साधारण कहानियों से बालक को जो अनुभव प्राप्त हो उनको लिखित रूप से प्रस्तुत करने के लिए उनको प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इस अवस्था पर अशुद्ध लिखे जाने वाले शब्दों, वाक्यांशों, वाक्यों और अनुच्छेदों की बनावटों पर नियमित शिक्षा देनी चाहिये। इस अवस्था में रचना का स्वच्छन्द रूप भी प्रस्तुत किया जा सकता है। विषय-वस्तु का निर्वाचन, छाँटना, क्रमबद्ध करना और सम्बद्ध कर निबंध का रूप देना आदि सभी बातें बालकों को सिखानी चाहिये। व्याकरण का पठन पाठन रचना के साथ किया जा सकता है।

मातृभाषा के साहित्य की ओर भी पाठ्यक्रम बनाने वालों का ध्यान जाना चाहिए। जूनियर हाईस्कूल की कक्षाओं में अध्यापक बालकों में साहित्य के प्रति रुचि उत्पन्न करा सकता है। प्रारम्भिक कक्षाओं की पाठ्य-पुस्तकों में गद्य और पद्य के उद्धरण मात्र रहते हैं किन्तु इस अवस्था पर बालकों को पूरी रचनाओं का अध्ययन कराया जा सकता है। इतिहास से सम्बन्धित साहित्यिक रचनाओं को चुना जा सकता है। इस प्रकार भाषा और इतिहास से सह-सम्बंध स्थापित किया जा सकेगा।

गणित—बालक प्रारम्भिक स्तर से ही संख्या, परिमाण, मात्रा, नाप-तौल आदि बातों में रुचि लेने लगता है। वह गणनात्मक अनुभव और जानकारियाँ प्राप्त करने लगता है अतः गणित की पाठ्यवस्तु को बालक के अनुभवों और जानकारियों के आधार पर ही विकसित किया जाना चाहिए। भाषा के बाद जूनियर हाईस्कूल में पाठ्यक्रम में गणित को दूसरा स्थान दिया जाना चाहिए क्योंकि उसकी रुचि और आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करना है परन्तु जो कुछ *गणित* पढ़ाई जाय उसका सम्बन्ध जीवन से हो। यदि ऐसा न हुआ तो पाठशाला छोड़ने पर उसको पढ़ाया

गया बहुत सा गणित स्वयं आ जायगा। गणित शिक्षण का उद्देश्य मानसिक प्रशिक्षण ही नहीं है, मानसिक प्रशिक्षण भी उसी समय स्थानान्तरित होता है जब दो परिस्थितियों में मौलिक तत्वों में समानता होती है। गणित का पाठ्यक्रम इतना रोचक नहीं बनाया जाय कि छात्रों को यह ऐसा मालूम पड़े जैसा कि जीवन की सब समस्याएँ। उनकी शिक्षा ऐसी हो जो जीवन के साधारण व्यवहार में उपयोगी सिद्ध हो सकती हो। इससे अधिक जूनियर हाईस्कूल में गणित की शिक्षा का उद्देश्य नहीं होना चाहिए।

गणित में साधारणतः अंकगणित, बीजगणित और रेखागणित की शिक्षा दी जाती है। गणित की इन तीनों शाखाओं में परस्पर सम्बन्ध स्थापित करने की चेष्टा अध्यापक को करनी चाहिए। जितनी समझदारी से बालक ने अंकगणित की शिक्षा पाई है उतनी ही सरलता से वह बीजगणित में सफलता प्राप्त कर सकता है। जूनियर हाईस्कूल में बीजगणित की व्यवस्थित शिक्षा दी जा सकती है। सरल प्रश्नों और समीकरणों का प्रयोग प्रारम्भ कर देना चाहिए ताकि नियमित शिक्षा बालकों को नीरस और अरुचिकर प्रतीत न हो। रेखागणित का ज्ञान क्रिया और ड्राइंग से सम्बन्ध किया जा सकता है। पाँचवीं-छठी कक्षाओं में प्रयोगों और मापों प आठवीं कक्षा में क्रियात्मक और सम्बन्धात्मक विधियों के साथ-साथ सैद्धान्तिक शिक्षा पर बल दि जा सकता है।

(३) सामाजिक अध्ययन (Social Studies)—यदि बालक को जीवन के लिए तैया करना है तो उसमे वे गुण उत्पन्न करने होंगे जो एक आदर्श नागरिक में होने चाहिए। ये गु सामाजिक अध्ययन के अध्यापन से प्राप्त हो सकते हैं। इस विषय का उद्देश्य ही बालक को उस भौतिक एवं सामाजिक वातावरण और व्यक्तिगत एवं सामाजिक अधिकारों और कर्तव्यों से परिचि कराना है। सामाजिक वातावरण का ज्ञान उसे इतिहास और अर्थशास्त्र के अध्ययन से, भौति वातावरण का ज्ञान भूगोल के अध्ययन से, और अधिकारों एवं कर्त्तव्यों का ज्ञान नागरिक शास के पठन-पाठन से दिया जा सकता है, किन्तु सामाजिक अध्ययन में इन सब विषयों का समन्वय होन चाहिये, सम्मिश्रण नहीं।

जूनियर हाईस्कूलों में इस समय इतिहास और भूगोल को अलग-अलग करके पढ़ा जाता है। इस समय बालक का संवेगात्मक विकास अधिक हो जाता है, इसलिये इतिहास की पढ़ा मनोवैज्ञानिक होनी चाहिये। रोचक कहानियों, रोमांचकारी वर्णनों का प्राधान्य होते हुए भी पाठ्य वस्तु ऐसी रखी जा सकती है जिसमें निर्णय और विचार की आवश्यकता हो। इस समय भारत क ही इतिहास जूनियर हाईस्कूल की कक्षाओं में रखा जाता है। इसमें मानसिक संकीर्णता आ सकत है अतः अन्य देशों के इतिहास का भी थोड़ा-बहुत ज्ञान दिया जा सकता है।

(४) सामान्य विज्ञान—सामाजिक अध्ययन के पठन पाठन से बालक अपने भौतिक औ सामाजिक वातावरण से परिचय प्राप्त करता है किन्तु प्राकृतिक वातावरण का ज्ञान उसे तभी हो सकता है जब उसको सामान्य विज्ञान की शिक्षा दी जाय। प्रत्येक नागरिक की सफलता इस बा पर भी निर्भर रहती है कि वह अपने चारों तरफ फैले हुए प्राकृतिक वातावरण का ज्ञान रखता या नहीं। सामान्यतया विज्ञान में हम उसे इसी प्रकार की जानकारी देना चाहते हैं। बच्चों क बागवानी और पशु पक्षियों को पालने की प्रेरणा देकर पेड़ पौधों और पशु-पक्षियों के विषय में का चलाऊ जानकारी दी जा सकती है। अंधविश्वासों से मुक्त करने के लिये उसे सूर्य, चन्द्र, वायु, वर्ष आदि के साधारण तथ्य समझाये जा सकते हैं।

(५) रचनात्मक और कलात्मक कार्य—६ वर्ष की अवस्था से ही बालक को निर्माण कार्य में आत्मसन्तोष मिलने लगता है। रचनात्मक और कलात्मक कार्यों से वे अपने अंगों को साध का प्रयत्न करते हैं। इस स्तर पर वे संगीत में विशेष रुचि लेते हैं।

इन रुचियों को ध्यान में रखकर हस्तकला कार्य को पाठ्यक्रम में विशेष स्थान देन चाहिए। पाठशालाओं को अप्रयोगिक-सैद्धान्तिक दिशा में अग्रसर होने से बचाने के लिये पाठ्यक्र में सृजनात्मक एवं रचनात्मक कार्यों पर जोर देना होगा। इस प्रकार के कार्यों के करने से वे भावी जीवन में जो अवकाश उन्हें मिलेगा उसका सदुपयोग कर सकेंगे। इन कार्यों का छात्रों के दैनि जीवन से विशेष सम्बन्ध रहना चाहिये।

(६) खेल-कूद और व्यायाम—जूनियर हाईस्कूलों के पाठ्यक्रम में खेलकूद और व्यायाम की उचित व्यवस्था होनी चाहिये। १२—१४ वर्ष का समय शारीरिक विकास का समय होता है। इसलिये पाठ्यक्रम में ऐसी शिक्षाओं का समावेश करना चाहिए जिनसे उनके अंग विकसित हो सकें, भावी जीवन में वे अपने शरीर का जिन-जिन विधियों से उपयोग करेंगे उनका पूर्वाभ्यास हो जाय। कष्ट सहने, सहयोग से कार्य करने, संघर्ष में पड़ कर न घबड़ाने की आदत पड़ जाय। इस स्तर की पढ़ाई भी खेल द्वारा संयोजित की जा सकती है, जिससे बालक आनन्द का अनुभव करता हुआ दुरूह विषयों का अध्ययन कर सकता है।

निम्न माध्यमिक स्तर पर पाठ्यपटल का वर्तमान स्वरूप

Q 6. What modifications could you suggest in the present Junior High School Syllabus ? Should there be any variations to suit the requirements of (a) urban and rural areas and (b) boy's and girl's school ? Give reasons for your views. *(Agra B T 1952)*

Ans निम्न माध्यमिक स्तर पर जो पाठ्यक्रम रखा गया है उस पाठ्यक्रम में जो दोष हैं उनकी ओर आचार्य नरेन्द्र देव कमेटी रिपोर्ट और मुदालियर कमीशन की रिपोर्ट में दृष्टिपात किया गया है। इस रिपोर्ट के आधार पर विभिन्न राज्यों ने कुछ संशोधन भी किये हैं, किन्तु अभी तक हमारे पाठ्यक्रम में निम्न कमियां हैं—

(१) पाठ्यक्रम में विषयों को प्रधानता मिली हुई है। बालक-बालिकाओं की रुचियों, आवश्यकताओं और योग्यताओं को कोई महत्व नहीं दिया गया है।

(२) पाठ्यक्रम ज्ञान प्रधान है, अनुभव प्रधान नहीं। उनमें तथ्यों, सूचनाओं, नियमों, परिभाषाओं का संकलन तो खूब है, किन्तु उनके व्यावहारिक प्रयोग की व्यवस्था नहीं के बराबर होती है।

(३) पाठ्यक्रम में उन गुणों को पैदा करने के लिए उचित साधनों की कमी है जिनकी आवश्यकता सफल जीवन बिताने के लिये पड़ती है। जैसे अच्छी-अच्छी आदतें, रुचियां, भावनाएं, नेतृत्व, परिश्रम शीलता, सहयोग, आज्ञापालन, आत्मविश्वास और शिष्टता।

(४) पाठ्यक्रम के जीवन केन्द्रित न होने के कारण उसमें बहुविधता नहीं है। कुछ बहु-उद्देशीय विद्यालयों में इस बहुविधता को लाने का प्रयास किया जा रहा है, किन्तु देश में उनकी संख्या अंगुलियों पर गिनी जा सकती है। यदि पाठ्यक्रम को ध्यान से देखा जाय तो उसमें ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के बालकों के लिए कोई भी अलग-अलग व्यवस्था नहीं की गई है। बालक और बालिकाओं के पाठ्यक्रम में कोई भेद नहीं है। सर्वत्र एक-सा पाठ्यक्रम मिलता है, चाहे पूर्वी पंजाब राज्य में आइये, चाहे पश्चिमी बंगाल में। नागरिक क्षेत्रों का पाठ्यक्रम नागरिक जीवन से और ग्रामीण क्षेत्रों का पाठ्यक्रम ग्रामीण जीवन से सम्बद्ध होना चाहिये।

(५) पाठ्यक्रम में सरसता का अभाव है। ललित कलाओं को गौण स्थान दिया गया है। साथ ही निर्धारित विषयों के बीच सह-सम्बन्ध और समन्वय का पूर्ण अभाव दिखाई देता है। फलतः पाठ्यक्रम में विषय अधिक दिखाई देते हैं।

(६) विविध स्तरों पर निर्धारित किया गया पाठ्यक्रम अपने में पूर्ण नहीं है अथवा निम्न स्तर का पाठ्यक्रम ऐसा नहीं है कि यदि छात्र आगे पढ़ना न चाहे तो उसे यह पाठ्यक्रम सामाजिक जीवन के लिये तैयार कर सके। फलतः यह होता है कि शिक्षा में अपव्यय की समस्या खड़ी हो गई है। किसी स्तर तक की पढ़ाई बालक के लिये व्यर्थ सिद्ध होती है।

इन सब कारणों से पाठ्यक्रम दूषित प्रतीत होता है। इन दोषों को दूर करने के उपाय हमने पहले प्रकरण में प्रस्तुत कर दिये हैं। निम्न स्तर की कक्षाओं के लिए आदर्श पाठ्यक्रम में कौन-कौन से विषय रखे जायें ताकि विषयों की भीड़ कम हो जाय, किस प्रकार उनमें सह सम्बन्ध स्थापित किया जाय। किस प्रकार विषयों को जीवन से सम्बन्धित [illegible] बातों पर प्रकाश डाला जा चुका है। यहाँ पर ऊपर दिये गये दोष का [illegible] प्रयत्न करेंगे।

यह प्रश्न कि ग्रामीण और नागरिक क्षेत्रों के लिए पाठशालाओं के लिये भिन्न भिन्न पाठ्यक्रम होने चाहिए या नहीं बड़े महत्त्व का प्रश्न है। सामान्य मत तो यह है कि दोनों प्रकार की पाठशालाओं के लिये केवल एक ही पाठ्यक्रम होना चाहिये, किन्तु कुछ विषयों में पाठशाला के वातावरण के अनुकूल परिवर्तन किया जा सकता है। ग्रामीण जूनियर हाईस्कूलों के लिए हमारे प्रान्त की सरकार ने कृषि को केन्द्रीय विषय बनाकर पाठ्यवस्तु का संगठन किया है। नागरिक क्षेत्रों के लिए जूनियर हाईस्कूलों के लिए उस व्यवस्था को अनिवार्य करने की स्वीकृति दे दी है जो उस क्षेत्र विशेष में अधिक प्रचलित है। व्यवस्था को पहले प्रत्येक पाठशाला के पाठ्यक्रम में चाहे वह ग्रामीण था या नागरिक समान स्थान दिया जाता था। इसी प्रकार सामाजिक अध्ययन की शिक्षा भी ग्रामीण और नागरिक दोनों प्रकार की पाठशालाओं में दी जा सकती है, किन्तु उनके सार तत्व में थोड़ी-बहुत भिन्नता करनी होगी। पाठ्यक्रम के लचीलेपन से हमारा यही प्रयोजन था। उदाहरणार्थ नगर के बालक को दाई से ले आकर उसके कर्तव्यों का ज्ञान कराना होगा। ग्राम के बालक को पशुपालन से सम्बन्धित सामान्य जानकारी देनी होगी। फिर भी सामान्य सिद्धान्तों में कोई अन्तर नहीं होगा जिनको ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाता है।

यह अत्यन्त अनुचित कार्य होगा यदि नगरों और ग्रामों के बीच पाठ्यक्रम को भिन्न रख-कर भेद उत्पन्न कर दिया जाय। ग्राम और नगर के बीच खाई को पाटना होगा। हम सभी एक देश के रहने वाले हैं अत: ऐसा कोई कार्य हमें नहीं करना है, जिससे हमारे छात्र दो भिन्न-भिन्न दलों में विभाजित हो जायें। पाठशाला का कार्य उत्तम नागरिक पैदा करना है—ग्रामीण अथवा शहरी नागरिक नहीं। आवश्यकता केवल इस बात की है कि विद्यालय का पाठ्यक्रम छात्रों के *वातावरण का पूरा-पूरा उपयोग करे। ग्राम्य शिक्षा और नागरिक शिक्षा जैसी दो वस्तुयें* नहीं हैं—

"ग्राम्य शिक्षा के सामान्य उद्देश्य उसी स्तर पर नागरिक शिक्षा के मूलोद्देश्यों से भिन्न नहीं होते। दोनों को चिन्ता रहती है कि छात्रों को अधिकतम व्यक्तिगत उन्नति और आत्माभि-व्यक्ति मिले। *दोनों का उत्तरदायित्व बालक और समाज के प्रति होता है, उस स्थानीय समूह* के प्रति नहीं जिसके बालकों को वे अलग-अलग शिक्षित करते हैं।"

—Thirteenth Year Book . National Society for the Study of Education.

यदि जो बालक गाव मे पैदा हुआ है वह जीवन भर गाव मे ही रहे और जो शहर मे पैदा हुआ है वह जीवन भर शहर ही मे रहे तब तो दोनों क्षेत्रों के लिये अलग-अलग पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की जा सकती है। किन्तु हमें इस बात की आशा नही करनी चाहिए। कम से कम इस प्रजातन्त्रात्मक युग मे जब सभी व्यक्तियों को समान अधिकार प्राप्त हैं। बालक बड़े होकर कहीं भी रहे उनका पाठ्यक्रम *सामान्य सिद्धान्तों के अनुसार होना चाहिए।*

दूसरा प्रश्न यह है कि क्या बालक और बालिकाओं का पाठ्यक्रम इस स्तर पर भिन्न होना चाहिये।

केन्द्रीय शिक्षा परामर्श परिषद् की नारी शिक्षा समिति ने इस विषय मे निम्न विचार प्रस्तुत किये हैं, उनका विचार है कि—

"बालकों के विद्यालयों के पाठ्यक्रम का बालिकाओं के विद्यालयों के पाठ्यक्रम से भिन्न होना आवश्यक नहीं है और न यह जरूरत है कि पाठ्यक्रमों की शिक्षा देने की पद्धतियाँ ही भिन्न हो।"

समिति का तो यह भी कहना है कि बालक और बालिकाओं की अलग-अलग पाठ-शालाओं की अपेक्षा सम्मिलित पाठशाला केवल आर्थिक कारणों से ही नहीं वरन् शैक्षणिक दृष्टि-कोण से भी अधिक उपयोगी है। नारी की मानसिक हीनता को दूर करने का केवल एक यही उपाय है कि नर और नारी दोनों को समान रूप से शिक्षा दी जाय और विशेषकर उच्च शिक्षा में विषयों में कोई अन्तर न किया जाय।

बालक और बालिकाओं की रुचियाँ समान हैं। उनका मानसिक विकास भी लगभग एक सी रफ्तार पर होता है तब उनके पाठ्यक्रमो में अन्तर करने की क्या आवश्यकता है? लिंग से मानसिक भेद नही पैदा होता। यह भेद तो बालक-बालक के बीच भी होता है। उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो में जब उनकी रुचियाँ कुछ-कुछ अलग हो जाती हैं तब उनके लिये दूसरे साधन उपस्थित किये जा सकते हैं, उदाहरण के लिए सामान्य विज्ञान के क्षेत्र में बालिकाओं के लिये गृहविज्ञान की ओर झुकाव दिया जा सकता है। कहने का आशय यह है कि दोनो के पाठ्यक्रम में थोड़ा बहुत अन्तर तो क्षम्य है किन्तु दोनो के लिए भिन्न-भिन्न पाठ्यक्रम का निर्धारण करना असंगत प्रतीत होता है।

ज्ञात से अज्ञात की ओर

यह भी एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि जो कुछ बालक सीखता है उसका आधार उसका पूर्ववर्ती ज्ञान होता है। उससे सम्बद्ध किये जाने पर नवीन ज्ञान आसानी से हृदयगम किया जा सकता है। अध्यापक का कर्तव्य है कि इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को ध्यान मे रखकर वह छात्र के पूर्ववर्ती ज्ञान को उभाडे और उसी के आधार पर नवीन ज्ञान उपस्थित करे। वह ज्ञात का अज्ञात से सम्बन्ध स्थापित कर ज्ञात की सहायता से अज्ञात की ओर अग्रसर होवे। दूसरे शब्दो मे इसी सिद्धान्त को इस प्रकार कहा जा सकता कि हमे विद्यालय मे अपने कार्य को शिष्यो के अनुभव से सम्बद्ध करना होना। उदाहरण के लिये भूगोल मे व्यापारिक वस्तुओ (Commercial Products) का उत्पादन एव वितरण पढाते समय हमे बालको के भोजन, वस्त्र आदि के सम्बन्धित ज्ञान को उभाडना होगा। गणित का कोई भी पाठ पढाने समय हमे उसकी सहायता करने वाले महत्वपूर्ण अशो, साध्यो, सिद्धान्तो को आंकना होगा। हमे पाठ की विषय-सामग्री इस प्रकार सजोनी पडेगी कि उसका पूर्ववर्ती भाग प्रत्येक रूप से अनुवर्ती भाग से सम्बद्ध हो जाय।

ऐसा करने का एक लाभ यह होगा कि छात्र उस पाठ मे रुचि लेने लगेंगे। रुचि और अवधान दोनो सम्बन्धित तथ्य हैं।[1] यदि किसी पाठ मे छात्र के अवधान को केन्द्रित करना है तो वह रुचिकर या आकर्षक होना चाहिए। आकर्षक वस्तुएँ न तो पूर्ण परिचित ही होती हैं और न पूर्ण अपरिचित। परिचित और नवीनता का अपूर्व समिश्रण तभी होना है जब अध्यापक इस सिद्धान्त को अध्यापन का आधार मानकर चला करता है।

सुगम से कठिन की ओर

जो पाठ्यवस्तु छात्र की दृष्टि से सुगम हो उस पाठ्यवस्तु को क्रमिक ढग से कठिन बनाया जाय। सुगमता और कठिनाई दोनो का अर्थ छात्र की दृष्टि से लेना होगा। बहुत सी बातें अध्यापक को सरल मालूम पडती हैं किन्तु अल्पवयस्क छात्र को वे ही बातें कठिन दिखाई देती हैं। उदाहरण के लिये अध्यापक के लिए एक सरल रेखा खीचना आसान कार्य है, किन्तु छात्र के लिये वही कार्य कठिनाई प्रस्तुत कर सकता है। छात्र किसी पशु का चित्र सुगमता से बना सकता है जिसे अध्यापक कठिन समझ सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि कभी-कभी वह वस्तु सरल नही होती जो तर्कात्मक दृष्टि से सरल होती है। यह कहा जा सकता है कि तार्किक दृष्टि से तो शब्द और अक्षरो से पढना प्रारम्भ करना चाहिए, किन्तु बालको के लिए शब्द और अक्षरो के स्थान पर वाक्यो से पढाई शुरू करना सरल मालूम पडता है। इस प्रकार किसी वस्तु की सरलता अथवा सुगमता बालक की मानसिक वृत्ति पर निर्भर रहती है।

जब पाठ बालको के लिये सरल या सुगम होता है तब उनको आत्मतुष्टि मिलती है। सरल प्रश्न हल करने के बाद छात्रो को आनन्द मिलता है वह आनन्द उन्हें कठिन की ओर ले जाने के लिये प्रेरित करता रहता है। वे सरल प्रश्नो को हल कर लेने के बाद कठिन प्रश्नों को करने मे जुट जाते हैं। यदि किसी कार्य के करने पर आरम्भ से ही कठिनाई मालूम पडती है तो निरुत्साह होने के कारण वे आगे बढ नहीं सकते।

अत हमारे पाठो को छात्रो के स्वर के अनुसार क्रमिक क्रम से सुगम की ओर मे कठिन की ओर अग्रसर होना चाहिए।

सरल से जटिल की ओर

इस सूत्र मे सरलता अथवा जटिलता से हमारा तात्पर्य मानसिक क्रिया की सरलता अथवा जटिलता है। बालक द्वारा किसी वस्तु का प्रत्यक्षीकरण सरल मानसिक क्रिया मानी जा सकती है, किन्तु जब वह उस वस्तु का विश्लेषण कर और उसके अनेक अमुर्त तत्व प्राप्त कर लेता है और इन तत्वो को जोडकर जब पुन यथार्थ का निर्माण कर लेता है, तब उसकी धारणा

---

१ देखिये भाग २, अध्याय ११

उस वस्तु के प्रति पेचीदा या जटिल हो जाती है। इस प्रकार उस वस्तु का विश्लेषण करना जटिल मानसिक क्रिया मानी जा सकती है।

यह सूत्र हमें इस बात की ओर संकेत करता है कि पहले हमें सरल बातों का, फिर जटिल बातों का ज्ञान देना चाहिए। छात्र के सामने पाठ्यवस्तु का वह रूप प्रस्तुत किया जाय जिसमें मानसिक क्रिया सरल हो, तत्पश्चात उसी वस्तु को इस रूप में प्रस्तुत किया जाय कि सम्बद्ध मानसिक क्रिया धीरे-धीरे जटिल होती जाय। उदाहरण के लिये इतिहास पढ़ते समय एक ही वस्तु पहले इस रूप में रखी जाय कि बालक का मस्तिष्क शीघ्र ही ग्रहण करले। बालक स्वभाव से कहानी और नाटक में रुचि रखता है। इतिहास के शिक्षण में एक ही पाठ्यवस्तु पहले कहानी के रूप में प्रस्तुत की जा सकती है फिर जब बालक उसका विश्लेषण करने के योग्य हो जाय तब उसी पाठ्यवस्तु से राष्ट्र और शासन आदि का ज्ञान दिया जा सकता है।

स्थूल से सूक्ष्म की ओर

स्पेन्सर महोदय का कहना था कि हमारे पाठ का प्रारम्भ स्थूल वस्तुओं से और उनका अन्त सूक्ष्म बातों में होना चाहिये। लगभग यही बात पैस्टालौजी ने कही थी, "बालकों को ऐसी वस्तुओं से शिक्षा देनी चाहिये जो उनके सम्पर्क में आती हों और जिनका सम्बन्ध उनकी रुचि, भावना और विचारों से हो। बालकों की शिक्षा सदा स्थूल वस्तुओं से होनी चाहिए, शब्दों, परिभाषाओं और नियमों से नहीं।" इस प्रसिद्ध अध्यापक ने जिसने शिक्षा में मनोवैज्ञानिक के महत्व को सबसे पहले स्वीकार किया था, इस सिद्धान्त पर इतना जोर क्यों दिया है? इसका कारण यह है कि बालक के ज्ञान का मूलाधार उसका इन्द्रियज अनुभव होता है। इन्द्रियज ज्ञान स्थूल पदार्थों से ही होता है इसीलिये शिक्षा में पहले स्थूल पदार्थों और तथ्यों का ज्ञान बालक को दिया जाना चाहिये। इसके बाद उनमें अमूर्त-चिन्तन और अमूर्त विचारों के मनन की योग्यता पैदा करनी चाहिये।

अल्पवयस्क बालकों की शिक्षा के प्रारम्भ से इसीलिये शिक्षाशास्त्री स्थूल पदार्थों का प्रयोग करवाते हैं और उनकी सहायता से सूक्ष्म बातों का ज्ञान देते हैं। उदाहरणार्थ भूगोल का शिक्षण प्रारम्भ में चित्रों, रेखाओं, मिट्टी के नमूनों से किया जाता है फिर धीरे-धीरे अमूर्त भावों की ओर बढ़ा जाता है। भाषा के शिक्षण में उदाहरणों का प्रयोग करके बालकों से उनके भीतर निहित नियमों को निकलवाया जा सकता है। प्रत्यक्ष ज्ञान के आधार पर ही बालक सामान्य प्रत्यय, सामान्य सिद्धान्त निकाल सकता है इसलिये शिक्षा को स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ना होगा।

विचारों की अनिश्चितता को दूर करना उनको निश्चित रूप देना शिक्षक का कार्य है। अतः वह छात्रों के सम्मुख पुष्ट एवं भली प्रतिमाओं को बनाने के लिये पदार्थों का आयोजन करें। उनको सजातीय और विजातीय वस्तुओं के बीच अन्तर बतावें। जिस वस्तु का ज्ञान कराना हो उसकी प्रतिमा, प्रतिरूप, चित्र आदि कक्षा में ले जाकर उस वस्तु के विषय में बालकों के विचारों को निश्चित रूप दें। अध्यापक की उन सभी युक्तियों का प्रयोग करें, जिनसे विचारों को पुष्टि मिल सकती है। इन युक्तियों का विवेचन अगले अध्याय में किया जा रहा है।

अनुभव से तर्क की ओर

बालक प्रतिदिन प्रातःकाल सूर्य को निकलता हुआ देखता है और सायंकाल छिपता हुआ। जाड़ों में पानी को जमता हुआ देखता है कि गर्मियों में उसे भाप बनकर उड़ता हुआ। कम्बल गर्म होता है, चद्दर ठंडी रहती है। इस प्रकार का ज्ञान अनुभूत ज्ञान माना जाता है जिसे बालक ने अपने निरीक्षण से प्राप्त किया है। किन्तु वह इस अनुभूत ज्ञान को वैज्ञानिक एवं तार्किक ढंग से विवेचना करके सिद्ध नहीं कर पाता। रात के बाद दिन, दिन के बाद रात आती है परन्तु क्यों? कम्बल गर्म होता है, चद्दर ठंडी होती है परन्तु क्यों? इसका ज्ञान उसे नहीं होता।

मानसिक प्रक्रिया के स्तर के अनुसार भी बालक पहले क्या, कब आदि प्रश्नों का उत्तर चाहता है और उनके उत्तरों को पाकर सन्तुष्ट हो जाता है। क्यों और कैसे इन प्रश्नों का उत्तर कुछ मानसिक विकास के उपरान्त वह चाहा करता है। अध्यापक का कर्त्तव्य है कि उस बालक को जिसने अनुभवयुक्त ज्ञान प्राप्त कर लिया है उसके ज्ञान को तर्कयुक्त भी बनाने का प्रयत्न करे क्योंकि जब तक यह ज्ञान तर्कपूर्ण न होगा तब तक सच्चा एवं निश्चित नहीं हो सकेगा।

इस कार्य मे अध्यापक को बालक के लिये निरीक्षण और परीक्षण की सुविधाओ का आयोजन करना होगा। इन विधियो से वह क्यो का उत्तर भी पाने लगेगा और परीक्षण द्वारा अपनी तार्किक शक्तियो का विकास भी कर सकेगा।

विशेष से सामान्य की ओर

इस सिद्धान्त सूत्र से हमारा तात्पर्य लगभग वही है जो कि 'स्थूल से सूक्ष्म की ओर' वाले सूत्र से था। अन्तर केवल इतना है कि इस सूत्र का प्रयोग छात्रों से नये-नये नियमों, सिद्धान्तों, लक्षणों और गुणों को निकलवाने मे किया जाता है। छात्रो को नियम सिखाने के दो तरीके हैं। एक तो यह कि उन्हें पहले नियम बता दिया जाय फिर उसके उदाहरण प्रस्तुत किये जायें। [illegible] वाया [illegible] नियम

विशेष बातो की सहायता मे हम अध्यापक सामान्य बातो की ओर ही अग्रसर हुआ करते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक बालक सीखता भी है। जब कई ठोस पहले हवा मे, फिर पानी में तौले जाते हैं और उनके भार मे अन्तर पाया जाता है तब निरीक्षण और परीक्षण द्वारा बालक स्वय इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि द्रव में डुबाने पर प्रत्येक ठोस पदार्थ के भार मे कमी आ जाती है। विज्ञान, गणित, भूगोल के कई नियम इसी प्रकार विशेष उदाहरण प्रस्तुत करके निकलवाये जा सकते हैं। इस पद्धति को आगमन पद्धति के नाम से पुकारा जाता है।

अध्यापक का कर्तव्य है कि वह व्याकरण, छन्द शास्त्र, अलकार, विज्ञान एव गणित आदि के पाठो मे इसी प्रक्रिया से नियम और लक्षण निकलवाये। नियम निकलवाने के उपरान्त कुछ उदाहरण देकर उन पर उस नियम का प्रयोग करावे जिससे छात्रो मे स्वय निकाले हुए नियम पर विश्वास हो जाय। इस प्रकार सत्यापन किये जाने पर कुछ अपवाद भी मिल सकते हैं। इन अपवादों के सहारे नये तथ्यो का उद्घाटन किया जा सकता है।

अनिश्चित से निश्चित की ओर

बालक के बौद्धिक विकास का क्रम अनिश्चित से निश्चित की ओर होता है। प्रारम्भ में उसका ज्ञान इन्द्रियज होता है, फिर वह प्रत्यक्षीकरण का सहारा लेकर प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करता है। किसी वस्तु के विषय मे जो ज्ञान वह इन्द्रियो के माध्यम से प्राप्त करता है, अपनी बुद्धि के अनुसार उसी ज्ञान के आधार पर उस वस्तु के विषय मे धारणाएँ बना लिया करता है। ये धारणाएँ उसकी कल्पना पर निर्भर रहती हैं। मन कल्पना के अपुष्ट होने पर विचार भी धुँधले और अनिश्चित ही होते हैं।

पूर्ण से अंश की ओर

इस पुस्तक के दूसरे भाग में प्रत्यक्षीकरण के अध्याय मे बतलाया गया था कि हम पूर्ण का प्रत्यक्षीकरण करते हैं, अश का नही। उदाहरण के लिये हम किसी वृक्ष को देखते हैं तो उसका पूरा चित्र ही हमारे सामने आता है। उस वृक्ष के अशो की ओर ध्यान बाद में आकृष्ट होता है। ज्ञान प्राप्त करने की यही स्वाभाविक मानसिक क्रिया है। अध्यापक का कर्तव्य है इस स्वाभाविक मानसिक क्रिया का अनुसरण करें।

प्रश्न यह उठ सकता है कि पूर्ण क्या है और अश क्या है? पूर्ण की व्याख्या करते हुए एक मनोवैज्ञानिक कहता है—

'Whole is not a mere aggregate but a definitely segregated independent pattern which possesses unity, coherence and meaning in itself above that implied by its parts. Conversely, a part is an element in the total situation which is essential to the meaning as a whole, but which loses its meaning when isolated from the whole."

पूर्ण का परिमाण व्यक्ति के ज्ञान के बढने के साथ-साथ बढ़ता जाता है। इस प्रकार किसी आयु-स्तर पर क्या पूर्ण होगा अध्यापक को पहले निश्चित करना है। उदाहरण के लिये

१० वर्ष के बालक के लिये 'पूर्ण' समस्त संसार नहीं है। उसका पूर्ण उसका प्रान्त हो सकता है। ६ वर्ष के बालक के लिये उसका पूर्ण उसका मुहल्ला या गाँव है। इसलिये बालक के 'पूर्ण' का ज्ञान कराने के बाद उसके अंश की जानकारी दी जानी चाहिये।

सीखने की क्रियायें अखण्ड और समग्र विधियों में दूसरी विधि उत्तम मानी जाती है। किसी भाषा का ज्ञान कराते समय हम उसको structure method से पढ़ाते हैं अथवा और शब्दों का ज्ञान बाद में देते हैं।

विश्लेषण से संश्लेषण की ओर

विश्लेषण से हमारा तात्पर्य पूर्ण का अध्ययन करके उसके विभिन्न तत्वों और भागों का अलग-अलग अध्ययन करने की क्रिया से है। उदाहरण के लिये मान लीजिये हमारे सामने एक समस्या है - यदि किसी त्रिभुज की दो भुजायें बराबर हों तो उसके दोनों कोण भी बराबर होते हैं। इस समस्या का विश्लेषण करने के लिये हमें देखना होगा कि हमको क्या दिया है और क्या सिद्ध करना है। जब हम यह निश्चित कर लेते हैं तो यह देख सकते हैं कि यह बात कब सिद्ध की जाती है। इस प्रकार उस समस्या के विभिन्न अंगों को अलग-अलग करके अध्ययन करते हैं। इसी प्रकार जब हम भूगोल का अध्ययन करते हैं तब सम्पूर्ण पृथ्वी के विषय में ज्ञान प्राप्त करते हैं तत्पश्चात् उसे भिन्न-भिन्न प्राकृतिक विभागों में विभक्त करके एक-एक विभाग का अलग अलग अध्ययन करते हैं। भूगोल और गणित जैसे विषयों में जिनमें पाठ्यवस्तु का विश्लेषण किया जा सकता है विश्लेषण से संश्लेषण की ओर बढ़ा जा सकता है। जब पूर्ण वस्तु के अंगों का विश्लेषण हो चुकता है तब प्रक्रिया उलट दी जाती है और अंगों का संश्लेषण करके पुनः पूर्ण को प्राप्त किया जाता है।

मनोवैज्ञानिक क्रम से चलो

वैसे तो ऊपर दिये गये सभी सूत्रों के आधार में मनोविज्ञान के सिद्धान्त निहित हैं फिर भी मनोवैज्ञानिक क्रम को सिद्धान्त सूत्र में विशेष स्थान दिया है। मनोवैज्ञानिक क्रम से हमारा तात्पर्य पाठ्यवस्तु को छात्रों की रुचि, आवश्यकता एवं क्षमताओं को ध्यान में रखकर प्रस्तुत करने से है। यदि पाठ्यवस्तु छात्रों की ग्रहण-क्षमता और उनके मानसिक विकास को ध्यान में रखकर प्रस्तुत की जाती है तो वह उनके द्वारा आसानी से समझ भी जाती है। जिस वस्तु में उनकी कुछ [illegible] प्रवृत्तियाँ सन्तुष्ट होती हैं वह वस्तु भी उनको रुचिकर होती है। बहुधा हम पाठ्यवस्तु को प्रस्तुत करते समय उसके तार्किक क्रम का ध्यान रखते हैं, मनोवैज्ञानिक क्रम का नहीं। उदाहरण के लिये व्याकरण का शिक्षण आरम्भ करते समय हम लिंग, वचन, काल आदि का बोध कराते हैं। इस [illegible] की तार्किकता परिलक्षित होती है किन्तु यह विधि मनोवैज्ञानिक नहीं है क्योंकि बालक की रुचि ऐसे प्रसंगों में नहीं होती। [illegible]

[illegible]

स्वाध्याय को प्रोत्साहन दो

[illegible]

[illegible]

परीक्षण की अनेक युक्तियों का प्रयोग करके उसे जाँचना पड़ेगा कि छात्र शक्ति भर परिश्रम करके स्वाध्याय से लाभ उठा रहे हैं अथवा नहीं। जिन छात्रों की प्रगति में किसी प्रकार की कमी दिखाई देगी उनको समुचित प्रेरणा, सहायता और प्रोत्साहन देना पड़ेगा।

प्रकृति का अनुसरण करो

इस सिद्धान्त सूत्र से हमारा तात्पर्य यह है कि हमें शिक्षा को बालक की प्रकृति के अनुसार सचालित करना है। जो शिक्षा बालक के प्राकृतिक विकास में सहायता न दे, जो उसके शारीरिक और मानसिक विकास को कुण्ठित करे ऐसी शिक्षा अमनोवैज्ञानिक और अस्वाभाविक है। विकास का प्राकृतिक क्रम ही मनोवैज्ञानिक है अत प्रकृति का अनुसरण करना शिक्षक का कर्तव्य है।

इन्द्रियों द्वारा शिक्षा दो

समस्त ज्ञान इन्द्रियों के माध्यम से हमें प्राप्त होता है। इसीलिये मॉन्टेसरी और फ्रोबेल ने इन्द्रियों के शिक्षण पर बल दिया था। अध्यापक का कर्तव्य है कि यदि वह चाहता है कि बालक ज्ञान को आसानी से प्राप्त कर सके तो उनकी इन्द्रियों को प्रशिक्षित करना होगा। इन्द्रियों को किस प्रकार प्रशिक्षित किया जा सकता है मॉन्टेसरी पद्धति पर प्रकाश डालते समय स्पष्ट कर दिया गया है। इस ग्रन्थ के भाग २ में भी इन्द्रिय प्रशिक्षण की व्याख्या की जा चुकी है। अत पिष्टपेषण करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

अध्याय २२

शिक्षण विधियाँ

Q. 1 'A large proportion of students fail to develope the necessary spirit of enquiry, balanced judgement, habit of application and capacity of striking new paths, which are the duties of some system of educational training

(Five Year Plan)

Comment on this statement, showing clearly how modern method of teaching can help in removing these defects *(Agra B. T 1955)*

Ans. गत अध्याय मे हमने अनेक सिद्धान्त सूत्रो की व्याख्या की थी जिनका उद्देश्य अध्यापक को इस बात की ओर संकेत करना था कि वह पाठ्य वस्तु का आरम्भ कहाँ से करे और अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए किस क्रम से अध्यापन कार्य मे अग्रसर होवे । प्रस्तुत अध्याय में उन शिक्षण विधियो का उल्लेख किया जायगा जो इन्ही सिद्धान्त-सूत्रो (maxiums of methodical procedure) पर निर्भर है और जिनके अनुसार शिक्षक को अपने कार्य मे अधिक से अधिक सहायता मिल सकती है ।

पचवर्षीय योजना मे कहा गया है कि आधुनिक शिक्षक जिन अध्ययन विधियों का प्रयोग अपने शिक्षण कार्य मे करते हैं वे विद्यार्थियो मे न तो अन्वेषण करने की आवश्यक भावना ही पैदा करते हैं और न नये ढगो और तरीको से सोचने की योग्यता का विकास ही करते हैं । इसलिये यदि हमे शिक्षा मे प्रगति करनी है तो आधुनिकतम शिक्षण विधियो का प्रयोग करना होगा ।

ये शिक्षण विधियाँ निम्नांकित हैं :—

(१) निगमन और आगमन विधि
(२) अन्वेषण विधि (Heuristic)
(३) प्रयोगात्मक विधि (Experimental)
(४) निरीक्षण विधि (Observation)

पहली दो विधियों की व्याख्या अगले प्रकरणो मे स्वतन्त्र रूप से की जायेगी । प्रस्तुत प्रकरण मे हम केवल प्रयोगात्मक और निरीक्षण विधि की विवेचना ही करेंगे ।

प्रयोगात्मक विधि

प्रयोगात्मक विधि मे छात्र अपने प्रयत्न और परिश्रम की सहायता से प्रयोग करके नवीन ज्ञान की प्राप्ति करता है । अध्यापक विद्यार्थी को सब बातें प्रयोग करके सीखने का अवसर देता है । यह विधि विज्ञान और सम्बन्धित विषयो मे अधिक प्रयोग मे आती है इसलिए इसकी विशेष व्याख्या तो 'विज्ञान शिक्षण' शीर्षक प्रपुस्तिका मे की जायगी । विज्ञान की शिक्षा तो प्रयोगों की सहायता के बिना कभी दी नहीं जा सकती । प्रयोगो को इसलिये विज्ञान शिक्षण का प्राण कहा गया है । वैज्ञानिक तथ्यो के उत्पादन के लिये प्रयोगो की आवश्यकता पडती है । प्रयोगों द्वारा ही छात्र स्वय निष्कर्ष निकाल लेते हैं । अध्यापक को निष्कर्ष उन पर थोपने की आवश्यकता नहीं पडती । जिज्ञासा जागृत हो जाने पर छात्र स्वय तथ्यों, नियमों और सिद्धान्तो की खोज प्रयोग के सहारे कर सकता है ।

'काम करके सीखने' के सिद्धान्त पर कई बार प्रकाश डाला जा चुका है। प्रयोगात्मक विधि मे काम करके सीखने के सिद्धान्त को मान्यता दी जाती है। प्रयोगो मे हमारी सभी इन्द्रियाँ क्रियाशील रहती हैं। अत जो सस्कार सभी इन्द्रियो के माध्यम से हमारे मस्तिष्क पर पडते हैं वे स्थायी बने रहते हैं।

प्रयोगात्मक विधि से अध्यापन करने के लिये उचित साज-सज्जा की आवश्यकता है। प्रयोगशालायें किस-किस तरह की होनी चाहिए इन सब बातो का ज्ञान अध्यापक को होना चाहिए। साथ ही उसे सभी तथ्यो की सत्यता की जाँच इस विधि से स्वय करनी चाहिए। जिस समय अध्यापक प्रयोग करे उस समय बालको को निरीक्षण और अवलोकन करने की सुविधा दी जानी चाहिए।

निरीक्षण विधि

जो ज्ञान छात्र स्वय अपने निरीक्षण द्वारा प्राप्त करता है वह चिरस्थायी होता है। अत उत्तम शिक्षण विधियो मे निरीक्षण विधि को भी ऊँचा स्थान दिया जाता है। शिक्षक बालको को कोई ज्ञान स्वय न देकर उन्हें निरीक्षण करने के लिए उत्साहित करता है। बालक स्वतन्त्र रूप से किसी वस्तु को देखता है। अवलोकन और निरीक्षण करते समय वह अपने विचार प्रकट करने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार निरीक्षण विधि से बालक मे अवलोकन, चिन्तन और स्वतन्त्र रूप से भाव प्रकाशन की आदत पड जाती है। विज्ञान और भूगोल के शिक्षण मे इस विधि का विशेष प्रयोग होता है।

निरीक्षण विधि का प्रयोग करते समय अध्यापक को कुछ बातो पर विशेष ध्यान देना चाहिए। जिन वस्तुओ को वह बालको को दिखलाना चाहता है, उनको स्वय पूरी तरह से जाँच ले और उस वस्तु को दिखलाने से पूर्व बालको का पथप्रदर्शन करे। उनकी जिज्ञासा तथा रुचि को उभाड़ देने के उपरान्त अभीष्ठ वस्तु को प्रस्तुत करे। निरीक्षण करते समय छात्रो को उन वस्तुओ को देखने, सूँघने की पूर्ण स्वतन्त्रता है। निरीक्षण करते समय निश्चित उत्तर वाले प्रश्न पूछकर बालको का ध्यान मुख्य-मुख्य बातो पर केन्द्रित करता रहे।

कभी-कभी प्रयोगात्मक और निरीक्षणात्मक विधियो का सम्मिश्रण भी किया जाता है। यदि अध्यापक आवश्यक समझे तो कई विधियो का एक साथ प्रयोग कर सकता है क्योंकि ये विधियाँ एक दूसरे की पूरक हैं।

आगमन और निगमन प्रणालियाँ

Q 2. What do you understand by Inductive and Deductive methods ? Explain with examples. Briefly estimate the value of two methods

(L. T 1945, 1958)

Or

Estimate the relative importance of the Inductive and Deductive methods now in teaching in schools *(Agra B. T. 1952)*

Or

What are the characteristics of the Inductive method of teaching ? Illustrate its application in the teaching of two school subjects

(Agra B T. 1957)

कभी-कभी हम सिद्धान्तो, परिभाषाओं, सूत्रों तथा नियमो का सीधा-साधा उपस्थापन कर दिया करते हैं, किन्तु यह तरीका इतना सफल और उपयोगी नहीं होता जितना कि वस्तुओं, घटनाओं, तथ्यो एव उदाहरणो को पहले प्रस्तुत करके उनके बीच मे सम्बन्धो का विश्लेषण कर देने के उपरान्त सिद्धान्तो, परिभाषाओ, सूत्रो और नियमो का निर्धारण। जब हम छात्रो के सम्मुख पहले तो बहुत से उदाहरण प्रस्तुत करें, फिर उन उदाहरणो की आपस मे तुलना करके कोई सामान्य नियम निकलवायें तो शिक्षण काफी सफल होता है। इस प्रकार की शिक्षण प्रणाली को आगमन प्रणाली कहते हैं। इस प्रणाली की सफलता का कारण यह है कि चिन्तन का स्वाभाविक ढग भी यही है। इसी प्रकार हमारे बच्चे दैनिक जीवन मे सीखते हैं। सब आयु के प्राणी—छोटे और बड़े—आगमन प्रणाली के सहारे किसी निर्णय पर पहुँचते हैं। निर्णय पर पहुँचने के लिये वैसे तो व्यक्ति को चिन्तन क्रिया के तीन स्तरो से गुजरना पडता है—दर्शन, तुलना और सामान्य

निर्धारण। किन्तु व्यक्ति धीरे-धीरे चिन्तन का अभ्यासी हो जाने पर यह जान नहीं पाता कि वह किस समय किस स्तर पर था। यह प्रक्रिया इतनी सहज भाव से है। पहले हम किसी समस्या का अनुभव करते हैं फिर उसकी जाँच करते हैं। जाँच करने के उपरान्त सब सम्बद्ध बातों अथवा तथ्यों का विश्लेषण करते हैं। उसके उपरान्त किसी सामान्य नियम पर पहुँचते हैं। उदाहरण के लिए मान लीजिए जब कोई स्त्री बाजार से लौट कर घर आती है तब वह देखती है कि उसका बच्चा बुरी तरह से रो रहा है। बच्चा क्यों रो रहा है? उसके रोने का क्या कारण हो सकता है? इस समस्या के निदान के लिए उसे कुछ सोचना पड़ता है। बच्चे को अच्छी तरह देखती है कि कहीं उसके चोट तो नहीं लगी है, वह भूखा तो नहीं है? वह उसके सारे शरीर की परीक्षा करती है। भोजन भी देती है किन्तु तब भी वह रोना बन्द नहीं करता। कदाचित् बच्चे के पेट में दर्द तो नहीं है। बच्चे को थोड़ा बाईकार्ब पानी में घोलकर पिला देती है। बच्चा रोना बन्द कर देता है। कई बार ऐसा होने पर वह सामान्य नियम का निर्धारण कर लेती है कि बच्चे के पेट में दर्द होने पर ही वह रोने लगता है। चिन्तन की इस क्रिया में उसने दर्शन, तुलना, सामान्य नियम-निर्धारण सोपानों का सहारा लिया है किन्तु उसे इन स्तरों का ज्ञान नहीं होता।

चिन्तन की यह प्रक्रिया बिल्कुल स्वाभाविक है। इसी के सहारे बालक अपना ज्ञान प्राप्त करता है। इस प्रक्रिया के अन्त में जो निर्णय प्राप्त होता है वह स्वयं का अपना ही होता है उसमें उसे कोई सन्देह नहीं होता और उसे रटने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

आगमन विधि खोज और अन्वेषण की विधि है जिसमें कुछ उदाहरणों का निरीक्षण और तुलना के बाद बालक किसी निष्कर्ष पर पहुँचता है। अध्यापक का कर्तव्य है कि वह किसी नियम को सीधे-सादे ढंग से बता देने की अपेक्षा समुचित प्रकार के उदाहरण छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत करे और आवश्यकता पड़ने पर उनसे ऐसे विश्लेषणात्मक प्रश्न पूछे कि वे ठीक प्रकार से विश्लेषण करते हुए उचित निर्णय पर पहुँच सकें, इस विधि का आश्रय अध्यापक ऐसे पाठों में कर सकता है जिनमें निर्णय और लक्षण निकलवाये जाते हैं, व्याकरण, छन्दशास्त्र, अलंकारशास्त्र, विज्ञान और गणित में नियमों की अधिकता होने के कारण आगमन पद्धति का प्रयोग किया जाता है।

मान लीजिये अध्यापक को अ + इ = ए इस सन्धि नियम का ज्ञान कराना है। अध्यापक श्यामपट्ट पर निम्नलिखित शब्द लिखेगा —

सुरेन्द्र, सुरेश, महेन्द्र, महेश

इसके उपरान्त निम्नलिखित प्रश्न करेगा —

प्रश्न	प्रत्याशित उत्तर
(१) प्रथम उदाहरण सन्धि विच्छेद करो।	सुर + इन्द्र
(२) ए वर्ण किन वर्णों के स्थान पर हो गया है।	र के अ, इन्द्र के इ के स्थान पर
(३) द्वितीय उदाहरण मे सन्धि-विच्छेद करो।	सुर + ईश
(४) ए वर्ण किन-किन वर्णों के स्थान पर हो गया है।	र के अ तथा ईश के ई स्थान पर
(५) तृतीय उदाहरण मे सन्धि-विच्छेद करो।	महा + इन्द्र
(६) ए वर्ण किन-किन वर्णों के स्थान पर हो गया है।	हा का आ और इन्द्र का इ के स्थान पर
(७) चतुर्थ उदाहरण मे सधि-विच्छेद करो।	महा + ईश
(८) ए किन-किन वर्णों के स्थान पर हो गया है।	हा के आ तथा ईश के ई स्थान पर
(९) प्रथम और द्वितीय शब्दो के खडो को देखकर बताओ अवर्ण किस प्रकार का है?	दोनों मे ह्रस्व अ है

(१०) और दोनो मे इकार किस प्रकार का है ?

प्रथम मे ह्रस्व, द्वितीय मे दीर्घ ।

(११) इन दोनो उदाहरणो से आप क्या नियम निकाल सकते हैं ?

यदि ह्रस्व अ वर्ण के बाद किसी भी प्रकार का इ हो तो दोनों मिलाकर ए हो जाते हैं ।

(१२) तीसरे और चौथे शब्दो के खडो को देखकर बताओ कि दोनो मे अवर्ण किस प्रकार का है ।

दोनों मे दीर्घ अ है ।

(१३) दोनो मे इकार किस प्रकार का है ?

तीसरे मे इकार ह्रस्व है और चौथे मे दीर्घ ।

(१४) इन दोनो उदाहरणो के आधार पर तुम क्या नियम निकाल सकते हो ?

दीर्घ आ के बाद किसी प्रकार का ई हो तो दोनो को मिला कर ए हो जाता है ।

(१५) अपने निकाले हुए दोनो नियमों को मिला कर एक नियम बनाओ ।

किसी प्रकार के अ के बाद किसी प्रकार का इ आ जाए तो मिला कर ए हो जाता है ।

इस प्रकार आगमन विधि के कई उदाहरण प्रस्तुत कर ऐसे विश्लेषणात्मक प्रश्न पूछना है कि विश्लेषण करता हुआ बालक स्वय उचित निर्णय पर पहुँच जाता है । आगमन विधि का गणित मे किस प्रकार प्रयोग किया जाता है, इस बात को एक और उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जायगा ।

मान लीजिये कि अध्यापक $(अ+ब)\times(अ+ब) = अ^2+२ अ ब+ब^2$ सूत्र को समझना चाहता है ।

अध्यापक निम्न उदाहरणो को छात्रो के सामने प्रस्तुत करता है । गुणा करो —

(१) $(अ+ब)\times(अ+ब)$

(२) $(य+र)\times(य+र)$

(३) $(क+२ख)\times(क+२ख)$

इन तीनो प्रश्नो का अलग-अलग उत्तर छात्रो से माँग कर उस उत्तर को प्रश्न के सामने निम्न प्रकार लिख देता है :—

$$(अ+ब)\times(अ+ब) = अ^2+२अ\times ब+ब^2$$
$$(य+र)\times(य+र) = य^2+२य\times र+र^2$$
$$(क+२ख)\times(क+२ख) = क^2+४कख+४ख^2$$
$$= क^2+२क\times २ख+(२ख)^2$$

इन तीन उदाहरणो के सामने आ जाने पर वह विश्लेषणात्मक प्रश्न पूछता है।

प्रश्न	प्रत्याशित उत्तर
(१) पहले प्रश्न के दोनो गुणनखण्डो के गुणनफल मे कितनी राशियाँ हैं ?	(१) तीन
(२) गुणनफल की प्रथम राशि और पहले गुणनफल के प्रथम राशि के साथ क्या सम्बन्ध है ?	(२) गुणनफल की तीसरी राशि पहले गुणनखण्ड की प्रथम राशि का वर्ग है ।
(३) गुणनफल की द्वितीय राशि का गुणनखण्ड की दोनों राशियो से क्या सम्बन्ध है ?	(३) गुणनफल की द्वितीय राशि गुणनखण्ड की दोनो राशियो के गुणनफल का दुगुना है ?
(४) गुणनफल की तीसरी राशि का गुणनखण्ड की दूसरी राशि से क्या सम्बन्ध है ?	(४) गुणनफल की तीसरी राशि गुणनखण्ड की तीसरी राशि का वर्ग है ।

अध्यापक किसी प्रकार के प्रश्न दूसरे और तीसरे उदाहरण के विषय मे पूछ कर निम्न प्रश्न पूछता है —

(१) तीनो गुणनफलो को देखकर बताओ कि गुणनखण्डो की दोनो राशियों और उसके बीच कौन-सा स्थायी सम्बन्ध-सूत्र काम करता हुआ दिखाई पडता है ?

$$(१३)\ (\text{प्रथम राशि}+\text{द्वितीय राशि})^2$$
$$=(\text{प्रथम राशि})^2+२\ \text{प्रथम}\times\text{द्वितीय राशि}+(\text{द्वितीय राशि})^2$$

इस प्रकार शिक्षण की आगमन विधि का अनुसरण करता हुआ अध्यापक विशेष से सामान्य की ओर प्रवृत्त होता है। यह विधि मनोवैज्ञानिक दृष्टि से स्वाभाविक होने के कारण सर्वोत्तम मानी जा सकती है। इस प्रकार प्राप्त किया गया ज्ञान सूक्ष्म, परिश्रम और बुद्धि से संकलित किया जाता है। इसलिए अधिक स्थायी होता है। किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने पर छात्र प्रसन्नता तथा सन्तोष का अनुभव करते हैं। इस प्रकार थार्नडाइक के नियम के प्रभाव के अनुसार भी यह ज्ञान उनके मस्तिष्क में पक्का हो जाता है। किन्तु ज्ञान प्राप्ति की गति अत्यन्त धीमी पड़ती है इसलिये इस प्रणाली का प्रयोग करते समय शिक्षक और विद्यार्थी दोनों को धैर्यपूर्वक कार्य करना पड़ता है।

निगमन विधि (Deductive)

अध्यापक सीधे-साधे किसी नियम का उल्लेख कर देता है और उस नियम को प्रस्तुत कर देने के बाद विभिन्न उदाहरणों पर लागू करता है। इस प्रकार उस नियम की सत्यता अथवा प्रामाणिकता निश्चित करता है। इस शिक्षण विधि में अध्यापक सामान्य से विशेष की ओर अग्रसर होता है। जिस स्थान पर आगमन विधि का अन्त होता है उसी स्थान से निगमन विधि का प्रारम्भ होता है। इस प्रकार दोनों विधियाँ एक दूसरे की पूरक क्रियाएँ हैं। चिन्तन की मानसिक क्रिया तभी पूरी मानी जाती है जब व्यक्ति दोनों क्रियाओं का सम्पादन कर लेता है। कुछ विद्वानों का यह कहना है कि आगमन निगमन विधि की विरोधी है। किन्तु उनका यह मत भ्रामक है। यह आगमन विधि की उलटी तो मानी जा सकती है, किन्तु विरोधी नहीं।

कक्षा शिक्षण में दोनों विधियों का मिश्रित रूप ही प्रयोग में आता है। अध्यापक आगमन विधि से जिस सामान्य नियम का निर्धारण कर लेता है, प्रयोग और अभ्यास कार्य द्वारा उसी नियम की सत्यता और प्रामाणिकता निश्चित करता है। उदाहरणार्थ यदि अध्यापक ने निम्नलिखित नियम का निर्धारण विशेष उदाहरण देकर कक्षा में करवा लिया है।

(पहली राशि + दूसरी राशि)^2 = (पहली राशि)^2 + २ पहली राशि × दूसरी राशि + (दूसरी राशि)^2

तो वह निम्नलिखित अभ्यास कार्य देकर इस नियम की सत्यता की जाँच करवा सकता है।

(i) (क + $\frac{१}{क}$)^2 = ?

(ii) (२क + ख)^2 = ?

(iii) (ग — २)^2 = ?

जब नियमों को सीधे साधे प्रस्तुत करने बाद के विभिन्न उदाहरणों पर लागू करते हुये दिखाया जाता है तब ज्ञान प्राप्ति की गति काफी तीव्र हो जाती है। उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिये साधारणतः यह विधि काम में लाई जाती है। छोटी कक्षाओं में यह जानना कठिन हो जाता है कि छात्र समझ कर नियमों का ज्ञान प्राप्त कर रहा है अथवा उन्हें केवल रटकर ही हृदयगम कर रहा है। इसलिये छोटी कक्षा के शिक्षण में इस विधि का प्रयोग नहीं किया जाता। वास्तविक शिक्षण में आगमन और निगमन दोनों विधियों का समन्वय हुआ करता है। हरबार्टीय पदों में दोनों विधियों का समन्वित रूप ही दृष्टिगोचर होता है। बात भी ठीक ही है क्योंकि आगमन विधि से नियम आदि की खोज ही होती है। निगमन विधि से उस नियम की सत्यता की परीक्षा हो जाती है। जब तक कोई नियम दोनों विधियों से सत्य सिद्ध नहीं हो जाती तब तक उसमें विश्वसनीयता नहीं आ पाती। इससे शिक्षा विशारदों ने शिक्षण में इन दोनों विधियों के समन्वय पर जोर दिया है। संक्षेप में दोनों विधियों की विशेषताओं का तुलनात्मक अध्ययन निम्न तालिका से किया जा सकता है।

आगमन विधि	निगमन विधि
(१) शोध और अन्वेषण के लिये।	प्रयोग और परीक्षण के लिए।
(२) शिक्षण की विधि।	अध्यापन और अध्ययन की विधि।
(३) छात्रों को सक्रिय बनाती है।	छात्रों को निष्क्रिय बनाती है।
(४) नियम, परिभाषाओं और सिद्धान्तों का छात्रों से स्वयं अन्वेषण कराती है।	नियुक्त परिभाषाओं और सिद्धान्तों की सत्यता को पुष्ट करती है।

(५) ज्ञान स्थायी होता है। ज्ञानराशि को भुलाया जा सकता है।

ह्यूरिस्टिक प्रणाली

Q. 3 Write a short essay on the Heurestic method of teaching. Bring out its merits and demerits *(L. T 1958)*

Ans ग्रीक भाषा के ह्यूरिस्को (*Heurisco*) शब्द से निर्मित 'ह्यूरिस्टिक' नाम की शिक्षण प्रणाली स्वयं खोजने पर जोर देती है। अध्यापक छात्रों को ऐसी परिस्थिति में रख देता है जिसमें वे प्रत्येक तथ्य को अध्यापक के मुख से सुनकर नहीं वरन् अपने ही स्वाध्याय और परीक्षणों के सहारे प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रणाली का श्री गणेश आर्मस्टोंग ने विज्ञान के क्षेत्र में किया था। धीरे धीरे यह प्रणाली इतनी लोकप्रिय हो गई कि इसका प्रयोग सभी विषयों के शिक्षण में होने लगा।

इस प्रणाली का उद्देश्य है छात्रों में विवेचन वृत्ति उत्पन्न करके सत्य के शोध में उनकी क्रियात्मक श्रद्धा जागृत करना। जब सारा ज्ञान अध्यापक द्वारा प्रस्तुत किया जाता है तब छात्र ज्ञान को बिना किसी मानसिक प्रयत्न के ग्रहण करते चले जाते हैं किन्तु इसमें अध्यापक उनको ऐसी परिस्थिति में रख देता है जहाँ पर उन्हें स्वयं परीक्षण और स्वाध्याय के सहारे ज्ञान के अंश खोजकर निकालने पड़ते हैं। वे पूर्ण परिस्थिति के विषय में क्या, कैसे, क्यों, किस मात्रा में आदि प्रश्नों की विवेचना करते हुये तथ्यों का अन्वेषण करते हैं। तथ्यों का स्वयं अन्वेषण करने से वे अधिक निश्चित, सत्य-प्रिय, सूक्ष्म निरीक्षक, चिंतक, परिश्रमी और आत्मशिक्षण में विश्वास करने वाले बन जाते हैं। इस प्रकार इस पद्धति का उद्देश्य है आत्म-शिक्षण की आधार शिला का निर्माण।

सभी छात्र किसी एक समस्या पर व्यक्तिगत रूप से कार्य करना आरम्भ करते हैं किन्तु उनको एक दूसरे से विचार-विनिमय करने, इधर-उधर आने जाने, पुस्तकालय, प्रयोगशाला संग्रहालय का उपयोग करने, अध्यापक से प्रश्न पूछने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। प्रत्येक छात्र अपने बौद्धिक स्तर के अनुसार तथ्यों का अन्वेषण करता है व और कुछ परिभाषायें और सिद्धांत निकालता है। जो बालक जितनी गहराई तक अथवा जितना अधिक सोच विचार कर किसी समस्या का अध्ययन कर सकता है वह उतनी ही प्रशंसा का पात्र होता है। साधारणतया चलने वाली कक्षा-प्रणाली में अध्यापक द्वारा तैयार की गई जानकारी ही दी जाती है किन्तु इस शिक्षण प्रणाली में छात्रों को स्वयं अन्वेषक बनकर काम करना पड़ता है। वे स्वयं ही नियमों, सूत्रों, परिभाषाओं, अपवादों, और तथ्यों की खोज करते हैं। अतः इस प्रणाली का प्रयोग उन सब विषयों में किया जा सकता है जिनमें पाठ मुख्यतया प्रयोगात्मक अथवा मुख्यतया सामान्य प्रत्यात्मक हों। पहले के पाठों में इस शिक्षण प्रणाली का रूप स्वाध्यात्मक तथा सामान्य प्रत्यात्मक पाठों में इसका रूप कुछ-कुछ हरबार्टीय-पदों के अनुसार होगा।

कहने का तात्पर्य यह है कि इस शिक्षण प्रणाली में यद्यपि बालक ही स्वयं तथ्य को अन्वेषण करता है, किन्तु अध्यापक की सहायता और उसके मार्ग-प्रदर्शन के बिना यह शिक्षा पद्धति सफल नहीं हो सकती। अध्यापक ही उनके सम्मुख समस्या उपस्थित करता है उनको उन स्रोतों से परिचित कराता है जिनकी जानकारी समस्या के विश्लेषण के लिये अत्यन्त आवश्यक है। उन स्रोतों को उचित प्रकार से प्रयोग करना सिखाता है, उनके प्रश्नों का उत्तर देता और वातावरण को उनके कार्य के अनुकूल बनाने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार वह छात्रों का पथप्रदर्शक, सहायक मित्र और सहयोगी के रूप में कार्य करता है। वह सक्रिय निरीक्षक की भाँति कार्य करता है। जहाँ पर छात्रों को कठिनाई होती है उनको तुरन्त सहायता प्रदान करता है। यदि छात्र समस्या का हल बिलकुल नहीं कर पाते तो उनको कभी-कभी प्रत्यक्ष रूप से भी हल देने की आवश्यकता पड़ जाती है। प्रश्नों और संकेतों द्वारा वह छात्रों को स्थान-स्थान पर अप्रत्यक्ष रूप से सहायता करता चलता है। इस उत्तरदायित्व को निभाने के लिये अध्यापक में निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक है :—

(अ) स्वाध्यायशीलता तथा परीक्षणप्रियता।
(ब) श्रम के प्रति प्रेम, धैर्य तथा दृढ़ता।
(स) प्रश्न करने और उत्तर देने की कला पर अधिकार।
(द) नवीन-नवीन स्रोतों के अवगाहन करने की प्रेरणा देने की शक्ति।

(य) सहानुभूतिपूर्ण वाणी और उत्साह पूरा करने वाला व्यवहार।
(फ) स्वभाव की मधुरता।
(य) विषय वस्तु पर अधिकार और बाल मनोविज्ञान का पूर्ण ज्ञान।

यहाँ पर यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि यदि इस शिक्षा प्रणाली का उद्देश्य बालकों के स्वयं अन्वेषण करने के लिये विवेचनात्मक वृत्ति का सृजन करना ही है तो क्या अध्यापक को छात्रों की इतनी अधिक सहायता देना अनिवार्य है। ह्यूरिस्टिक प्रणाली का प्रयोग करते समय शिक्षकों को यह समझ लेना चाहिए कि छात्रों को बहुत कम बातें बतलाई जायें। कोई भी व्यक्ति बिना किसी दूसरे की सहायता के अनुसंधान नहीं कर सकता, उसे दूसरों से किसी न किसी रूप में सहायता लेनी ही पड़ती है। अपने अनुभवों और दूसरों के मतों के आधार पर ही अनुसंधान करने की सामर्थ्य पैदा होती है। फिशर महोदय का कहना है कि "छात्रों को अन्वेषक की स्थिति में रखते समय हमें यह न भूल जाना चाहिये कि वे दूसरों की सम्मतियों की सहायता के बिना किसी प्रकार की खोज कर सकेंगे। यदि अन्वेषण कार्य में आवश्यकता पड़ने पर उनको तुरन्त सहायता न दी गई तो उनके निरीक्षण के परिणाम गलत हो सकते हैं।" इसलिए यदि शिक्षण प्रणाली को अपनाना है और उसमें सफलता प्राप्त करनी है तो अध्यापक को इस प्रणाली में विश्वास पैदा करना होगा। उसे अपने विषय पर अधिकार रखना होगा, अपने मस्तिष्क में विषय की समस्याओं का भंडार संचित करना होगा।

यदि यह शिक्षण प्रणाली उचित प्रकार से संचालित की जाय तो शिक्षा शास्त्रियों का कहना है कि इससे निम्नलिखित गुण और लाभ मिल सकेंगे —

(१) बौद्धिक, आत्मनिर्भरता और आत्मविकास का सृजन —इस शिक्षण पद्धति के अपनाये जाने पर छात्र, अध्यापक अथवा पाठ्यपुस्तकों द्वारा दी गई सूचनाओं को ज्यों की त्यों ग्रहण नहीं करता। वह बौद्धिक रूप से आत्मनिर्भर बनकर उनको ग्रहण करता है। किसी सिद्धान्त, नियम और तथ्य को तब तक नहीं मानता जब तक उनकी स्वयं परीक्षा नहीं कर लेता, वह स्वयं आलोचना, परीक्षण और निरीक्षण में प्रवृत्त होता है।

(२) वैज्ञानिक वृत्ति का सृजन—जब छात्र नये-नये रहस्यों की खोज करते हैं तब उन्हें निरीक्षण, परीक्षण, तुलना, और निर्णय आदि क्रियाओं एवं प्रक्रियाओं का प्रशिक्षण मिलता रहता है। इस प्रकार उनमें वैज्ञानिक ढंग से सोचने की प्रवृत्ति जाग्रत हो जाती है।

(३) ज्ञान का स्थायित्व—जिस बात को छात्र अपने अनुसंधान से ग्रहण करता है वह भली भाँति समझ ली जाती है और इस प्रकार प्राप्त ज्ञान स्थायी हो जाता है।

(४) कठोर परिश्रम करने की क्षमता का विकास—छात्र जब स्वयं किसी समस्या का हल ढूंढते हैं तब उन्हें स्वयं कठोर परिश्रम करना पड़ता है। साधारण कक्षा शिक्षण प्रणाली में छात्रों को किसी प्रकार का श्रम नहीं करना पड़ता। वे इतने सक्रिय भी नहीं होते, यह शिक्षण प्रणाली स्वयं कार्य करके सीखने (Learning by doing) पर बल देती है इसलिए छात्र श्रम के महत्व को समझने लगते हैं। अध्यापक भी कठोर श्रम से बच नहीं सकते क्योंकि समस्याओं के समाधान के लिये उन्हें भी सदैव तैयार रहना पड़ता है।

(५) छात्रों और अध्यापकों के क्षेत्र में घनिष्ठ सम्पर्क की स्थापना—आधुनिक शिक्षा प्रणाली का सबसे बड़ा दोष यह है कि छात्र और अध्यापकों के बीच का सम्पर्क स्थापित नहीं हो पाता किन्तु इस शिक्षण प्रणाली में अध्यापक को प्रत्येक छात्र के साथ और प्रत्येक छात्र को अध्यापक के साथ सम्पर्क स्थापित करना पड़ता है और यदि अध्यापक का व्यवहार सहानुभूतिपूर्ण रहा तो दोनों के बीच ऐसा सम्पर्क स्थापित हो सकता है जो जीवन भर चले।

(६) विभिन्न मानसिक शक्तियों का विकास सम्भव—समस्याओं को हल करने से तर्कशक्ति विकसित होती है, नवीन-नवीन रहस्यों की खोज करने से निरीक्षण, परीक्षण, तुलना और निर्णय का विकास होता है। तर्क और विचारशक्ति के विकास के लिये यह विधि अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इन शक्तियों का विकास होने का मुख्य कारण यह है कि इस शिक्षण प्रणाली में प्रयोग करने का अवसर पर्याप्त मात्रा में मिलता है। मानसिक शक्तियों के विकास का एक मात्र साधन है उनका समुचित प्रयोग। इस प्रयोग का अवसर इस शिक्षण पद्धति में अधिक से अधिक मात्रा में मिलता है।

इस विवेचन से स्पष्ट हो गया होगा कि यह प्रणाली कितनी लाभदायक सिद्ध हो सकती है यदि इसका हमारे विद्यालयों मे प्रयोग किया जाय। किन्तु इस प्रणाली के अपनाने में कुछ कठिनाइयाँ उपस्थित हो सकती हैं उन कठिनाइयों से बचाव करना होगा। यदि इस शिक्षण प्रणाली को प्रणाली के रूप में स्वीकार न किया जाय तो कम से शिक्षण की ऐसी अभिवृत्ति बनानी होगी, यदि वह चाहता है कि उसके बालकों में अन्वेषण की प्रवृत्ति जागृत हो। उसे ऐसी प्रणाली को [illegible]शिक रूप से ग्रहण करना होगा जिसकी विशेषताओं का उल्लेख देश के पंचवर्षीय योजना कमीशन ने किया है। उसका कहना है —

"A large proportion of students fail to develop the necessary spirit f enquiry, balanced judgment habit of application and capacity of striking ew paths which are the attributes of sound educational system."

आधुनिक शिक्षण पद्धतियों के इन दोषों का निवारण करने के लिए हमे ह्यूरिस्टिक [illegible]णाली जैसी प्रणालियों के सार तत्व को ग्रहण करना होगा।

इस प्रणाली की कमजोरियाँ हैं उनको ध्यान में रखकर नई शिक्षण पद्धति को अपनाना होगा।

दोष और कमियाँ—(१) किसी भी प्रणाली को सफलतापूर्वक चलाने के लिए आवश्यक सामग्री, उचित प्रकार की पाठ्यपुस्तकें और अध्यापक, पाठ्यक्रम और परीक्षा प्रणाली की आवश्यकता होनी है। जब तक देश की परिस्थिति ऐसी नहीं होती कि इन साधनों के जुटाने में कठिनाई न हो तब तक इस पद्धति का प्रयोग नहीं किया जा सकता।

(२) यह प्रणाली छोटी कक्षा के विद्यार्थियों के शिक्षण में प्रयुक्त नहीं हो सकती क्योंकि छोटे-छोटे बालकों का चिन्तन पहले प्रत्यक्ष ज्ञान के स्तर (Perceptional level) का होता है फिर कल्पना के स्तर का (Imaginational level)। सामान्य प्रत्ययात्मक स्तर का चिन्तन तो १५ या १६ वर्ष की अवस्था में विकसित होता है। जब तक छात्र सामान्य प्रत्ययात्मक चिन्तन के योग्य न हो जाय तब तक इस प्रणाली को शब्दश अपनाया नहीं जा सकता। छात्र के प्रत्यात्मक ज्ञान का कोष उपस्थित हो जाने से पूर्व ही यदि ऐसा किया जाता है जो अध्यापक को उसे सहायता देनी पड़ेगी। अत जब तक बालकों में आवश्यक स्वतन्त्र चिन्तन शक्ति का विकास न हो जाय तब तक इस प्रणाली को अपनाना ठीक प्रतीत नहीं होता।

(३) यदि स्वतन्त्र चिन्तन शक्ति के विकास के पूर्व ही छात्रों को नये तथ्य खोजने के लिये प्रोत्साहित किया जाता है तो कक्षा कार्य की प्रगति आशानुकूल नहीं होगी। जो तथ्य एव सिद्धान्त आज हमे सरल मालूम पड़ते हैं उन्हीं तथ्यों एव सिद्धान्तों की खोज में हमारे पूर्वजों ने हजारों वर्ष का समय व्यय किया था फिर अपने छोटे-छोटे बालकों से हम कैसे आशा कर सकते हैं कि ये सब अनुसधान कर सकेंगे।

(४) छात्रों से कुछ सीमित बातों के अन्वेषण की ही आशा की जा सकती है इसलिये इस प्रणाली के अपनाये जाने पर यह आशा करना कि समस्त सिद्धान्त छात्र स्वय खोज कर निकाल लेंगे दुराशा मात्र है। समय की कमी होने के कारण इस शिक्षण प्रणाली मे बालकों को पूरा-पूरा ज्ञान नहीं दिया जा सकता।

इन सब कमियों को ध्यान में रख कर ही हमें इस शिक्षण प्रणाली को अपनाना होगा।

ऊपर जिन-जिन शिक्षण विधियों की विवेचना की गई है उनकी विस्तृत और विशिष्ट रूप से व्याख्या भिन्न-भिन्न विषयों के शिक्षण के लिये लिखी गई प्रपुस्तिकाओं में जो इस ग्रन्थ के साथ सम्पादित किन्तु अलग से प्रकाशित की गई है की जायगी।

अध्याय २३

अध्यापन की युक्तियाँ

Q. 1. Most of the so-called teaching devices have no great utility ; a good teacher can and does do without them Criticise the statement and describe some of the devices that you used with advantage in your teaching practice. (*L. T. 1955*)

Or

Discuss the *relative importance of some of the teaching devices* you have been using in your teaching practice (*L. T. 1955*)

Or

What is the relative importance of narration, question and answer, and demonstration as teaching devices ? How do they help the teaching ? Give examples. (*B. T. 1958*)

Ans. युक्तियों का अर्थ और भेद—पाठ्यवस्तु को हृदयगम कराने के लिए अध्यापक कुछ क्रियाएँ करता है। इन क्रियाओं का विश्लेपण करने पर जो अध्यापन के विविध रूप हमको [illegible] रीतियाँ या शिक्षण [illegible] मानकर चलते हैं [illegible] जाता है। वास्तव में युक्तियाँ अध्यापन के विविध रूप ही हैं। उपादान भेद से युक्तियाँ दो प्रकार की होती हैं वाचिक और वस्तु रूप। वाचिक युक्तियो के दो प्रयोजन रहते हैं अध्यापन और धारणा मे सहायता करना। [illegible] भिन्न हैं। [illegible] करणों [illegible] चुना [illegible]

अध्यापन युक्तियो का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जाता है,—

(१) प्रश्नोत्तर (Questions and Answers)
(२) विवरण (Narration)
(३) वर्णन (Description)
(४) उद्घाटन (Exposition)
(५) व्याख्या (Explanation)
(६) विश्लेपण (Analysis)
(७) तुलना (Comparison)
(८) संशोधन (Correction)
(९) वाचिक उदाहरण (Verbal Illustration)

1. देखिये शिक्षा सिद्धान्त की रूपरेखा—शिक्षण की युक्तियाँ (Teaching devices) डी० एस० रावत, रस्तोगी एण्ड कम्पनी, मेरठ, १९६१

कुछ महानुभाव इन युक्तियो मे व्याख्या, उद्‌घाटन, विवरण, वर्णन, कहानी कहना, व्याख्यान और पुस्तक पाठ्य को महत्व देते हैं ।[1]

प्रश्नोत्तर तुलना और वाचिक उदाहरणो के विषय मे अगले दो अध्यायों मे लिखा जा रहा है अत हम उनका विश्लेषण नही करेंगे ।

विवरण (Narration)—किसी घटना या वस्तु-स्थिति को ज्यो की त्यो क्रम से कह डालना विवरण कहलाता है । इसके द्वारा पढने या सुनने वालों को घटना या वस्तुस्थिति की जानकारी हो जाती है । विवरण और वर्णन (description) मे अन्तर है । वर्णन मे घटना को आकर्षक बनाने के लिये उसे बढा-चढा कर कहते हैं, किन्तु विवरण मे किसी वस्तुस्थिति का शाब्दिक चित्र उपस्थित किया जाता है ।

विवरण का प्रयोग प्राय कहानी या घटना को सुनाने, इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र, व्यापार शास्त्र, अर्थशास्त्र और विज्ञान को पढ़ाने मे होता है । चूंकि वस्तुस्थिति का उल्लेख विवरण मे ज्यों का त्यो किया जाता है, इसलिये उसमे नीरसता आ जाती है । अध्यापक वक्ता होता है और छात्र निष्क्रिय श्रोता, इसलिये उसके ऊब जाने की सम्भावना अधिक रहती है । अत विवरण को रोचक बनाने के लिये अध्यापक को निम्नलिखित बातो पर ध्यान देना चाहिये —

(१) विवरण को रोचक बनाने के लिये बीच-बीच मे कहानियो, चुटकुलो और अभिनयो का पुट दिया जाय । समुचित प्रश्नो द्वारा छात्रो की कल्पना को उत्तेजित किया जाय ।

(२) सम्पूर्ण विवरण एक साथ न देकर उसे टुकडो मे बाँट दिया जाय । प्रत्येक खण्ड का निष्कर्ष और परिणाम छात्रो की सहायता से निकाल लिया जाय । विवरण इस प्रकार धीरे-धीरे चरम उत्कर्ष की ओर अग्रसर होता रहे, खण्डो का विभाजन इस प्रकार किया जाय कि सम्पूर्ण विषयवस्तु सुगमता से हृदयगम हो सके । इसके लिये सम्पूर्ण विवरण के भिन्न-भिन्न भागो मे श्रेणीबद्धता हो । उदाहरण के लिये घटना का विवरण देते समय उसके ये विभाग करने होंगे—कारण—उत्पत्ति—विकास—परिणाम ।

(३) विवरण देने का ढग मनोवैज्ञानिक और उपयुक्त हो । विवरण देते समय उतार चढाव के साथ बोलने पर नीरसता नहीं आती । निरतर बोलते रहने पर भी नीरसता आ सकती है । [illegible] बोलता है तो बालको मे थकावट आ [illegible]

[illegible] और न वे अत्यधिक शास्त्रीय ही बना दिए जायें । विवरण के बीच में प्रश्न पूछना या श्यामपट्ट का प्रयोग करना कभी नही भुलाया जाये ।

(४) विवरण की सफलता अध्यापक के अभ्यास और उसकी तैयारी पर निर्भर रहती है अत कक्षा मे पूरी तैयारी के साथ अध्यापक को जाना चाहिये ।

वर्णन—जैसा कि पहले कहा जा चुका है विवरण और वर्णन मे अन्तर केवल इतना है कि वर्णन में अध्यापक घटना या वस्तुस्थिति को बढ़ा-चढ़ाकर उसमे कल्पना का वर्ण (रग) भर-भर इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि श्रोता या पाठक के मन पर उस वस्तु का स्पष्ट चित्र अकित हो जाया करता है । किसी वस्तु, दशा, परिस्थिति और घटना का सांगोपांग चित्र बालक के मन पर [illegible] वस्तु रोचक तभी [illegible] होती है । किसी [illegible] नहीं पाती । अन [illegible]

(१) वस्तु उसी समय प्रस्तुत की जाय जब उसकी आवश्यकता हो ।
(२) कोई आवश्यक बात छोड़ी न जाय ।
(३) किस समय, किस क्रम से, कितनी मात्रा मे ये—तीनों बातें वर्णन की प्राण हैं ।

---

1. [illegible]

पर भी निर्भर रहता है। यदि दो विचार एक दूसरे के विपरीतार्थक होते हैं तो उनकी स्मृति मे आसानी से रखा जा सकता है। विलोमार्थक शब्दों से मूल शब्दों का अर्थ स्पष्ट नही होता। वह याद भी अच्छी तरह किया जा सकता है। प्रत्यक्ष ज्ञान भी हमे प्राय उन्ही वस्तुओं का शीघ्र ही होना है जो एक दूसरे से विपरीत गुण या भाव वाली होती है।

जब न तो पर्यायवाची शब्द ही मिलता है और न विलोम ही, ऐसी दशा में अध्यापक अर्थ कथन का सहारा ले सकता है, किन्तु अर्थ कथन करते समय शब्दावली मूल शब्द से कठिन न हो और मूल शब्द के स्थान पर ज्यो की त्यो जम सके। अर्थकथन मे वचन और कारक की समानता अवश्य होनी चाहिये।

जो शब्द अपने अर्थ मे अकेले ही प्रयुक्त होते हैं उनके लिये प्रयोग आवश्यक हो जाता है। किन्तु यह प्रयोग इस प्रकार का हो कि अनिर्वचनीय ढग से वह प्रयोग शब्द का अर्थ स्वय खोल दे और छात्र स्वय उसे ग्रहण कर सके। शब्दों का प्रयोग छात्रो की सुपरिचित परिस्थिति मे हो, परिस्थिति का ज्ञान न होने पर प्रवचन द्वारा परिस्थिति ज्ञान करा दिया जाय।

जिन शब्दो के अर्थों मे किसी प्रकार की शारीरिक क्रिया निहित रहती है उसकी व्याख्या के लिये अभिनय किया जा सकता है। अभिनय से हमारा तात्पर्य किसी भी क्रिया को दिखने से है। विदेशी भाषा के शब्दो की व्याख्या तो अभिनय से ही आसानी मे की जा सकती है।

जिन शब्दो का निर्माण किसी शब्द मे प्रत्यय जोडकर हो जाता है वे शब्द व्युत्पत्ति द्वारा आसानी से समझाये जा सकते हैं। जैसे सामाजिक, नैतिक, पौराणिक आदि शब्द समाज, नीति, पुराण आदि शब्दो मे इक प्रत्यय जोडकर बनाये गये हैं। ऐसा करने से बालक शब्द का अर्थ स्वत समझ जा सकता है।

कुछ शब्द ऐसे होते हैं जिनका विग्रह करने पर अर्थ स्पष्ट हो जाया करता है जैसे 'शिक्षण-कार्य'। इस समास युक्त पद मे दो पद हैं—शिक्षण और कार्य। दोनो पदों के सयोग से जो शब्द बनता है उसका अर्थ है शिक्षण का कार्य। कठिन शब्दो की व्याख्या मे इस प्रकार के विग्रह की भी आवश्यकता रहती है।

कुछ शब्द ऐसे भी होते हैं जिनमे दो शब्दो की सधि होती है। जब मिलने वाले दोनो शब्दो के मिलन को तोड दिया जाता है तो इस तोडने की प्रक्रिया को सधि विच्छेद कहते हैं। 'निरामिष' शब्द दो शब्दो के योग से बना है निः + आमिष। जब तक इस प्रकार का सधि विच्छेद नही किया जायगा तब तक उसका अर्थ स्पष्ट न हो सकेगा।

इस प्रकार भाषा-शिक्षण मे कठिन शब्दो, वाक्याशो, वाक्यो के अर्थ को इस प्रकार समझाकर प्रस्तुत करने की क्रिया की आवश्यकता पडने पर उनका प्रयोग भी किया जा सके व्याख्या (Exposition) कहलाती है।

विश्लेषण—किसी समस्या को उसके 'घटक अवयवों' मे विभक्त कर देना विश्लेषण कहलाता है। अध्यापन की यह युक्ति उन सभी पाठो मे प्रयोग मे आती है जिनमे किसी सश्लिष्ट वस्तु, द्रव्य, क्रिया, भाव, विचार, वाक्य, प्रश्न आदि को विश्लिष्ट करने की आवश्यकता पडती है। विश्लेषण की यह क्रिया प्रस्तावना के प्रश्नो से ही प्रारम्भ हो जाती है। पाठ्योपस्थापन के अवसर पर भी विश्लेषण निरन्तर चलता रहता है। विश्लेषण की इस युक्ति का प्रयोग भाषा का अध्यापक भाव विश्लेषण करते समय, गणित का अध्यापक विश्लेषणात्मक उपपत्ति देते समय और समाज अध्ययन का शिक्षक तुलना करते समय प्राय किया करता है।

विश्लेषण की क्रिया का सफलतापूर्वक निर्वाह तभी हो सकता है जब अध्यापक प्रश्नों की सहायता से पाठ्यवस्तु को ऐसे सरलतम घटक अवयवों में विभक्त कर सके जिनको छात्र आसानी से हृदयगम कर सके। विश्लेषण हो जाने के बाद प्रत्येक विश्लिष्ट अश का ग्रहण स्वत ही हो जाय इसी मे विश्लेषणयुक्ति की सफलता है।

तुलना—जब हम दो वस्तुओं या दो विचारो के साधर्म्य और वैधर्म्य की परीक्षा करते हैं तब हम अध्यापन की इस युक्ति का आश्रय लिया करते हैं।

नागरिक शास्त्र या समाज अध्ययन का शिक्षण बिना तुलना के अपने अध्यापन को

रोचक नहीं बना सकता। उसे बालकों के दैनिक जीवन से होने वाली घटनाओं को पाठ्यवस्तु में अध्येय वस्तुओं में समता या विषमता स्थापित करनी पड़ती है।

तुलना की यह युक्ति गणित, विज्ञान, भूगोल, व्याकरण आदि विषयों में भी अधिक सहायक होती है। इसलिये अध्यापक को इस युक्ति के विषय में आवश्यक बातें जानना जरूरी है। जिन वस्तुओं की तुलना वह कर रहा है, उनका उपस्थापन बिलकुल स्पष्ट होना चाहिये। यह तुलना छात्रों की सहायता से की जाय और तुलना के परिणामस्वरूप जो नियम निर्धारित किये जा सकें उन्हें एक-एक करके निर्धारित करने का प्रयत्न किया जाय। तुलना करते समय इतनी शीघ्रता न की जाय कि पिछड़े हुए छात्र और पिछड़ जायें। नियम निर्धारण के बाद उसका प्रयोग भी करा लिया जाय।

संशोधन (Correction) – संशोधन का उद्देश्य है छात्रों की त्रुटियों से रक्षा करना। लिखित और मौखिक दोनों कार्यों में संशोधन किया जाना आवश्यक है। त्रुटि जैसे ही दिखाई दे उसको दूर करने का प्रयत्न किया जाय किन्तु संशोधन में कटुता न आने पावे। त्रुटि करने वाले छात्र को अपनी अशुद्धि का ज्ञान हो जाना आवश्यक है। कक्षा में संशोधन कक्षा की सहायता से किया जाय व्यक्तिगत छात्रों की त्रुटियों का संशोधन उनको अलग बुलाकर किया जाय। संशोधन कर देने के बाद अभ्यास अवश्य करा दिया जाय नहीं तो संशोधन का कार्य बेकार हो जाता है। यदि कोई छात्र किसी त्रुटि को बार-बार करता है तो उसके कारण को खोजकर उसे दूर करने का प्रयत्न किया जाय।

धारण सहायक युक्तियों (Fixing Devices) का विवेचन अलग से किया जायगा यद्यपि वे भी अध्यापन की युक्तियाँ (Teaching devices) मानी जाती हैं।

धारण सहायक युक्तियाँ (Fixing devices)

Q. 2. Discuss the importance of some of the fixing devices that you might have used in practice teaching.

Ans. अर्थ और प्रकार—अध्यापन की जिन युक्तियों की विवेचना पहले अनुच्छेद में की गई है वे पाठ्यवस्तु को बोधगम्य बनाने में सहायक होती हैं किन्तु वे पढ़े हुए पाठ को मस्तिष्क में धारण करने के लिए छात्र की सहायता नहीं कर सकतीं। यह कार्य पुनरावृत्ति (Revision), अभ्यासकार्य (Drill), गृहकार्य (Home Work) और समीक्षा (Review) इन चार युक्तियों की सहायता से किया जा सकता है।

पुनरावृत्ति दो प्रकार की होती है लघु और समग्र। प्रतिदिन के कार्य के उपरान्त उसकी जो पुनरावृत्ति की जाती है उस लघु पुनरावृत्ति कहते हैं और कई दिन किसी एक पाठ का पढ़ने के बाद जो पुनरावृत्ति सम्पूर्ण पाठ के लिए की जाती है उसे समग्र पुनरावृत्ति कहते हैं। पुनरावृत्तियों का मुख्य उद्देश्य है छात्र [illegible] में बढ़े हुए पाठ की [illegible] का दर्शन कराना, और [illegible] मुख्य [illegible] के बीच [illegible] सम्बन्ध को दृढ़ता देना।

पुनरावृत्ति [illegible] छात्रों को [illegible] सोचने, उत्तर देने और [illegible] का अवसर देना चाहिए। [illegible] पाठ्यवस्तु की पुनरावृत्ति आरम्भ कर देता है [illegible] नहीं [illegible]। [illegible] अध्यापक को पुनरावृत्ति [illegible] देना चाहिए।

[illegible] पुनरावृत्ति की जा सकती है [illegible] पाठ्यवस्तु का [illegible] के बाद [illegible] किया करते हैं। [illegible] पुनरावृत्ति, [illegible]

[illegible]

[illegible]

जिस अभ्यस्त वस्तु को छात्रों ने पाठ के अन्तर्गत अच्छी तरह समझ लिया है, उस वस्तु के प्रति उनकी रुचि स्वतः जागृत हो जाती है और अध्यापक के प्रेरणा देते ही उसका अभ्यास करने की उपयोगिता का अनुभव करने लगते हैं। अध्यापक का कार्य इस समय घूम फिर कर उनकी अशुद्धियों और त्रुटियों का संशोधन करना तथा छात्रों को व्यक्तिगत सहायता देना होता है।

अभ्यास कार्य कराते समय अध्यापक को ध्यान रखना चाहिये कि अच्छी तरह से हृदयगम की हुई पाठ्यवस्तु पर अभ्यास कराने से उसके उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है अथवा अभ्यास कार्य को बालक भारस्वरूप मानने लगते हैं। अभ्यास कार्य में चूँकि छात्रों को अपना सारा ध्यान एकत्र करना पड़ता है अतः यह कार्य उतनी ही देर तक कराया जाय जितनी देर में छात्र ऊब न जायें। जिस वस्तु का अभ्यास कराया जा रहा है उसके कठिन और विशिष्ट (Special) स्थलों पर विशेष बल दिया जाय। अभ्यास कार्य कराने में धैर्य से काम लिया जाय। जल्दबाजी करने से अशुद्ध अभ्यास पड़ जाने और बुरी आदतों के बन जाने का डर बना रहता है। विशेष अध्ययन के लिये देखिये इसी ग्रंथ की गणित-शिक्षण सम्बन्धी प्रपुस्तिका।

गृहकार्य (Home Work)—अध्यापक ने जिस उद्देश्य को ध्यान में रखकर कक्षा में अध्यापन कार्य किया था उस उद्देश्य की पूर्ति कहाँ तक हो सकी है यह जानने के लिये वह अभ्यास कार्य करता है। साथ ही अपने श्रम की सफलता आँकने के लिए गृहकार्य भी देना है। यदि छात्रों ने उस पाठ्यवस्तु को ग्रहण कर लिया है जिस को वह ग्रहण कराना चाहता था तो वे गृहकार्य को ठीक तरह कर सकेंगे अन्यथा नहीं। गृह-कार्य कितना और किस प्रकार का दिया जाय ये दोनों प्रश्न गृहकार्य देने से पूर्व विचार करने योग्य हैं। यदि अध्यापक बिना विचारे गृह-कार्य देता है तो छात्रों में विद्या के प्रति अरुचि हो सकती है अतः गृहकार्य देते समय उसे कुछ विशेष बातों पर ध्यान देना चाहिये।

गृहकार्य की मात्रा इतनी अधिक न हो कि छात्रों के मन में यह भावना उत्पन्न हो जाय कि चूँकि उसको करना कठिन है इसलिए उसे करके ही क्या होगा। गृहकार्य छात्र के घर की अवस्था, बालक को मिलने वाली सुविधाओं, उसकी आयु, अपने पास उसके संशोधन के लिये प्राप्त अवकाश आदि को ध्यान में रखकर दिया जाय।

गृहकार्य ऐसा हो जिसे प्रत्येक छात्र बिना किसी की सहायता से कर सके अतएव व्यक्तिगत छात्र की रुचि, योग्यता आदि को ध्यान में रखकर निर्धारित किया जाय। उस कार्य में और पाठ के उद्देश्य में एकात्मकता हो। छात्र को दिये गये सभी विषयों के गृहकार्य में बहुत भिन्नता हो। सब विषयों में एक से गृहकार्य से बालकों में अरुचि (Freedom) पैदा हो जाती है। अतएव विद्यालय के संचालक और व्यवस्थापक को पहले से ही यह निश्चित कर लेना चाहिए कि प्रतिदिन किस विषय का गृहकार्य दिया जायगा और उसका रूप क्या होगा। प्रधानाध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह एक कक्षा के बालकों को सभी अध्यापकों के द्वारा दिये गये गृहकार्य का समन्वय (Co-ordination) करे और देखे कि वह ठीक समय में संशोधित हो रहा है या नहीं।

समीक्षा (Review)—जब कोई पाठ्यवस्तु छात्रों के सामने पूरी तरह से प्रस्तुत कर दी जाती है तब उसकी समीक्षा कर लेना आवश्यक हो जाता है। छात्रों की सहायता से की गई समीक्षा उनमें आत्मालोचन की भावना पैदा करती है। समीक्षा का अर्थ है, इस बात की अच्छी तरह से देख-भाल करना कितने पाठ पढ़ाये गये हैं और कितने शेष रह गये हैं, किस-किस पाठ को अधिक महत्व देना चाहिये था और किसको कम, कौन सी महत्वपूर्ण बात छूट गई और कौनसी अनावश्यक अनुचित रूप में सम्मिलित हो गई है। पढ़ाने में जो दोष रह गये हैं उनको किस प्रकार पूरा किया जाय। भविष्य के लिये क्या-क्या बातें ध्यान में रखी जायें। इस प्रकार की समीक्षा कर लेने में अध्यापक और छात्र दोनों को विशेष लाभ होता है।

अध्याय २४

प्रश्न और उत्तर

Q 1 What is the importance of questioning in teaching ? How do you differentiate between developing questions and testing questions ? Draw brief lesson plan showing the use of the two You may choose any topic and any class for purpose

(Agra, B T 1950, 1954, 59)

Or

Consider the value and limitations of the question and answer method of instruction

Ans. प्रश्नों का महत्व

अध्यापक को महत्वपूर्ण कार्यों मे सीखने की प्रेरणा देना तथा सोचने का निर्देशन करना मुख्य है। सभी आधुनिक शिक्षाशास्त्री इन दोनो कार्यों पर बल देते हैं। यदि अध्यापक को ये कार्य सफलतापूर्वक निभाने हैं तो उसे प्रश्नों का सहारा लेना पड़ता है क्योंकि प्रश्न ही उसके कार्य मे उद्दीपक (Stimulus) का कार्य कर सकते हैं। बिना उद्दीपक के प्रेरणा अथवा उत्तेजना मिल नहीं सकती। प्रश्न बालकों को उत्प्रेरित करते हैं और शिक्षा प्राप्ति की क्रिया का निर्देशन करते हैं।

बालक भी अपनी जिज्ञासा की मूल प्रवृत्ति का प्रकाशन प्रश्नो के माध्यम से ही करता है। उन प्रश्नो के उत्तरों से उसकी जिज्ञासा सन्तुष्ट होती है। इस प्रकार प्रश्नोत्तर विधि ज्ञान प्राप्त करने की प्रकृतिदत्त विधि मानी जा सकती है।

प्रश्न एक ऐसा साधन है जिसकी सहायता से शिक्षक बालक की रुचि, योग्यता, क्षमता आदि का ज्ञान प्राप्त कर उसके मस्तिष्क मे ज्ञान को व्यवस्थित ढङ्ग से जमाने का प्रयत्न कर सकता है।

अध्यापन कला मे प्रश्नो का महत्व सभी शिक्षा-विशारदो ने स्वीकार किया है। ग्रीस के प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात ने प्रश्नोत्तर विधि की ही अव्यवस्थित ज्ञान को व्यवस्थित करने के लिये जन्म दिया था। इसलिये प्रश्नोत्तर विधि को सुकराती विधि के नाम से भी पुकारा जाता है। प्राचीन भारतीय शिक्षा-प्रणालियों मे भी प्रश्नो का महत्व सभी ने स्वीकार किया था। आधुनिक युग मे भी उनके महत्व पर अनेक विद्वानो ने अपने विचार प्रकट किये हैं।

(१) पार्कर महोदय का कहना है कि प्रश्न आदत, कौशल, स्तर के बाहर समस्त शैक्षिक क्रिया के आधार हैं।

"The question is key to all educative activity above the habit skill level".

(२) सालमन महोदय का कहना है कि जो अच्छा प्रश्नकर्ता नही है वह चाहे अच्छा व्याख्याता बन जावे किन्तु अच्छा अध्यापक नहीं हो सकता।

(३) रेमण्ट महोदय का कहना है कि उत्तम प्रश्न करने की योग्यता प्राप्त करना प्रत्येक शिक्षक की आकांक्षा होनी चाहिये।

(४) मेकनी महोदय का कहना है अच्छे ढग से प्रश्न करने की प्रयत्नपूर्ण प्रक्रिया द्वारा एक प्रतिभा-सम्पन्न अध्यापक अपने शिक्षा-यात्री को अपरिचित प्रदेशो मे से होकर अभीष्ट लक्ष्य तक ले जा सकता है।

(५) रिस्क महोदय का कहना है कि अध्यापन की प्रभावशालिता अध्यापक की प्रश्न करने की क्षमता पर ही निर्भर रहती है क्योकि अध्यापक की प्रत्येक प्रक्रिया मे प्रश्नो को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है।

"In fact the effectiveness of teaching depends very much upon the ability of teacher to use questions effectively since they have a place in every type of teaching"

सभी विद्वान यह मानकर चलते हैं कि शिक्षण की निपुणता बहुत कुछ पूछे गये प्रश्नो तथा उनके बनाने के कौशल पर निर्भर रहती है क्योकि प्रश्न करना स्वय एक कला है। अध्यापन की जितनी भी अन्य युक्तियां हैं, जिनका उल्लेख 'अध्यापन की युक्तियाँ' नामक अध्याय मे किया जायगा, वे सब सफल तभी हो सकती हैं जब उन्हें प्रयोग करने वाला व्यक्ति प्रश्न पूछने मे कुशल हो। अध्यापन की युक्तियो से हमारा तात्पर्य उन सभी कक्षा मे होने वाले क्रियाकलापो से है जिनकी सहायता मे पाठ्यवस्तु छात्र द्वारा अपने मस्तिष्क मे धारण कर ली जाती है और जिनकी सहायता से उसका स्पष्टीकरण और दृढ़ीकरण होता है। ये युक्तियां हैं प्रश्नोत्तर, विवरण, वर्णन, उद्घाटन, व्याख्या, विश्लेषण, तुलना, संशोधन, वाचिक, उदाहरण, पुनरावृत्ति, अभ्यास, गृहकार्य और समीक्षा। यदि अध्येय वस्तु का स्पष्टीकरण और दृढ़ीकरण करना है तो छात्र मे जागरूकता और सक्रियता पैदा करनी होगी। यह तभी हो सकती है जब उससे प्रश्न पूछे जायें और उसके प्रश्नो का सन्तोषजनक उत्तर दिया जाय।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शिक्षण-क्रिया मे प्रश्नो का विशेष महत्व है। उनका महत्व इसलिये और बढ़ जाता है कि उनके पूछने के प्रयोजन भी अनेक हैं।

(१) छात्र के ध्यान को पाठ्यवस्तु पर जमाये रखना और उसे सदैव सक्रिय बनाना।
(२) बालक क्या जानता है ? क्या नही जानता ? उसकी अभिरुचि किधर है, इसका ज्ञान देना।
(३) पढाई हुई वस्तु को वह कहाँ तक समझ रहा है, इसकी जानकारी देना।
(४) क्या अवसर पड़ने पर अध्ययन की गई वस्तु का प्रयोग बालक कर सकेगा या नही, यह जानना।
(५) बालक की अभिव्यंजना, स्मृति, कल्पना आदि शक्तियो को विकसित करना।
(६) अध्यापक स्वय शारीरिक और मानसिक दृष्टि से सक्रिय रहे।
(७) बालक की कठिनाइयाँ किस स्थल पर हैं किस पर नही यह जानना।
(८) किसी महत्वपूर्ण समस्या और योजना को प्रस्तुत करना।
(९) शिक्षक अपने कार्य मे कहाँ तक सफल हुआ है, इसका ज्ञान प्राप्त करना।
(१०) बालक और शिक्षक दोनों को मूल पाठ से दूर चले जाने से बचाते रहना।
(११) पाठ को दुहराने तथा अभ्यास करने के लिये।

ये सब बातें अध्ययन और अध्यापक दोनों के दृष्टिकोणों से बड़े महत्व की हैं। अध्यापन और अध्यापन की प्रक्रियाओ मे प्रश्नो का इतना अधिक उपयोगी होने के कारण उनको शिक्षा विशारदो ने विशेष महत्व दिया है।

प्रश्नों के प्रकार एवं लक्षण

साधारणत प्रश्न दो प्रकार के होते हैं —

(१) परीक्षण प्रश्न (Testing questions)
(२) शिक्षण प्रश्न (Teaching questions)

रिस्क ने इन्ही को स्मृत्यात्मक (memory) और विचारात्मक (thought) प्रश्न के नाम से पुकारा है। पहला वर्गीकरण कक्षा मे प्रश्नो की उपयोगिता को ध्यान मे रखकर, दूसरा वर्गीकरण बालको की मानसिक प्रक्रिया को आधार बनाकर किया गया है।

परीक्षण प्रश्न (Testing Questions)

जिन प्रश्नो की सहायता से अध्यापक छात्र की जानकारी की परीक्षा करता है उनको परीक्षण प्रश्न कहते है। जानकारी की परीक्षा निम्नांकित तीन स्थलों पर की जाती है :—

(१) नवीन पाठ शुरू करने से पहले—प्रस्तावना प्रश्न
(२) पाठ के बीच मे—ग्रन्वेषण प्रश्न
(३) पाठ के ग्रन्त मे—पुनरावृत्ति प्रश्न

नया पाठ शुरु करने से पहले अध्यापक जानना चाहता है कि—

(१) ग्राज के पाठ के विषय मे छात्र पहले से क्या जानता है ?
(२) यदि पाठ पहले पाठ का चालू भाग है तो पहले दिन पढ़े हुये पाठ मे से कितना छात्र ने हृदयगम कर लिया है और कितना उसे करना है ?

यदि अध्यापक ज्ञात से ग्रज्ञात की ग्रोर चलना चाहता है तो इन दोनो प्रश्नो का उत्तर उसके पास होना चाहिये। पाठ की प्रस्तावना इसीलिये की जाती है कि ग्रध्यापक को पूर्ण ज्ञान का पता चल जाय। ग्रत इन प्रश्नों को प्रस्तावना प्रश्न कहते हैं।

प्रस्तावना प्रश्नो के उदाहरण—मान लीजिये कि छात्र यह जानते हैं कि सम्पूर्ण विश्व को कितने प्राकृतिक विभागो मे बाँटा जा सकता है और प्रत्येक विभाग मे जलवायु एव वनस्पति की साधारण स्थिति क्या रहती है तो अध्यापक लका द्वीप की भौगोलिक परिस्थितियों का ज्ञान करने के लिये प्रस्तावना में निम्न प्रश्न पूछ सकता है :—

(१) भूमण्डल के साल भर वर्षा वाले प्रदेश कौन से हैं ?
(२) एशिया के कौन द्वीप विषुवतरेखीय प्रदेश मे हैं ?
(३) भारत के दक्षिण मे कौन सा द्वीप इस प्रदेश का है ?

अन्वेषण प्रश्न—दूसरे प्रकार के परीक्षण प्रश्न पाठ के बीच-बीच मे किये जाते हैं। पाठ पढाते समय अध्यापक यह पता लगाना चाहता है कि जिस ग्रर्थ मे तथा जिस उद्देश्य से वह शब्दो, वाक्यों तथा अध्यापन सामग्री का उपयोग करता है उस उद्देश्य की पूर्ति हो रही है या नहीं। कही ऐसा तो नहीं है कि छात्रों को कोई कठिनाई हो रही हो, किन्तु सकोचवश उसे कह ही न पा रहे हो। इन प्रश्नो द्वारा यह भी ज्ञात हो जाता है कि छात्र पाठ मे ध्यान दे रहे हैं ग्रथवा नहीं। जो प्रश्न इन प्रयोजनो की सिद्धि करते हैं वे ग्रन्वेषणात्मक प्रश्न कहलाते हैं। ये प्रश्न विकासात्मक प्रश्नो के बीच मे छितरे हुये रहते हैं ग्रत उनके उदाहरण इस स्थल पर नही दिये जा सकते।

पुनरावृत्ति प्रश्न—पाठ के ग्रन्त मे किये जाने वाले प्रश्न पुनरावत्ति प्रश्न कहलाते हैं। साधारणतया वे पाठ के ग्रन्त मे ही किये जाते हैं, यदि पाठ एक ही ग्रन्विति मे पढाया गया है। किन्तु छात्रो की ग्रायु ग्रौर पाठ्यवस्तु की कठिनाई को ध्यान मे रखकर अध्यापक पुनरावृत्ति प्रश्न पाठ के मध्य मे भी कर सकता है। ग्रनेक ग्रन्विति वाले पाठो मे ऐसे पुनरावृत्ति प्रश्न पढाई हुई ग्रन्विति के बाद मे ही रखे जाते हैं। इन प्रश्नो से ग्रनेक खण्डो में बटी हुई पाठ्यवस्तु सुसम्बद्ध रूप मे दुहरा दी जाती है। ऐसा करने से दो लाभ होते हैं :—

(१) छात्रों को सम्पूर्ण वस्तु की एकता का ग्रन्दाजा लग जाता है।
(२) ग्रावृत्ति हो जाने से पाठ्यवस्तु छात्रों के मस्तिष्क मे जम जाती है।

जिन पाठो मे ग्रन्विति के ग्रत में श्यामपट्ट सक्षेप में बनाया जाता है उन पाठों मे श्यामपट्ट सक्षेप को विकसित करने वाले प्रश्न भी इसी श्रेणी मे रखे जाते हैं। चूंकि उनके उत्तर मिलने पर छात्र की पाठ्यवस्तु के ग्रहण की परीक्षा हो जाती है ग्रत: इस प्रकार के प्रश्न परीक्षण प्रश्न ही कहलाते हैं।

उदाहरण—मान लीजिये लका की भौगोलिक परिस्थिति दो ग्रन्वितियो मे पढ़ाई गई है।

(ग्र) लका की स्थिति, प्राकृतिक बनावट, जलवायु, वनस्पति, प्राकृतिक प्रदेश।
(ब) मानव जीवन ग्रौर उनके क्रियाकलाप।

इन दोनों अन्विनियों के अन्त में पृथक-पृथक ढंग से श्यामपट्ट सक्षेप तैयार करते समय जो प्रश्न पूछे जायेंगे वे प्रश्न के पुनरावृत्ति प्रश्न कहलायेंगे और छात्रों को सम्पूर्ण पाठ की एकता और दोनों खण्डों की परस्पराश्रिता का बोध कराने के लिये निम्न पुनरावृत्ति प्रश्नों को भी पूछा जा सकता है —

(१) लंका की स्थिति बताओ।
(२) इस द्वीप की प्राकृतिक रचना की विशेषताएं क्या हैं ?
(३) यहाँ का जलवायु कैसा है ?
(४) इस जलवायु और प्राकृतिक रचना का मानव जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है ?
(५) इस द्वीप की आयात और निर्यात क्या है ?

शिक्षा प्रश्न (Teaching Questions)

शिक्षण प्रश्नों को कुछ लोग प्रशिक्षण प्रश्न (Training Questions) और कुछ विकास प्रश्न (Developing Questions) भी कहते हैं। इनके द्वारा छात्रों को स्मरण करने, निरीक्षण करने, सोचने, विचारने, विवेचन करने, तुलना और परिणाम निकालने की प्रशिक्षा (Training) मिलती है, इसलिये इन प्रश्नों को प्रशिक्षण प्रश्न कहते है। इन प्रश्नों की सहायता से अध्यापक छात्रों को पूर्व ज्ञान के सहारे नवीन ज्ञान की ओर लेता चलता है और इस प्रकार उसके ज्ञान का विकास करता जाता है। इसलिये इन प्रश्नों को विकास प्रश्न भी कहते हैं।

विकास प्रश्नों का आयोजन है पाठ के विकास में छात्रों का सक्रिय सहयोग प्राप्त करना और उन्हें स्वयं सोचने तथा तथ्यों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए अवसर प्रदान करना। ऐसे प्रश्न पूछने से बालक स्वयं ज्ञान प्राप्त करने के लिए बाध्य हो जाते हैं। मूल पाठ के किसी तथ्य की जानकारी देने के लिए अध्यापक उस तथ्य से सम्बन्ध रखने वाले पूर्व ज्ञान को उभाड़ने का प्रयत्न प्रश्नों के माध्यम से करता है। उन प्रश्नों के उत्तरों के आधार पर ही कुछ और नये प्रश्न पूछकर वांछित तथ्य की जानकारी देता है। इस प्रकार प्रश्नों की सहायता से अध्यापक पाठ की मुख्य-मुख्य बातों को बालकों तक पहुँचाने की बराबर कोशिश करता रहता है। कहने का तात्पर्य यह है कि पाठ्यवस्तु के स्पष्टीकरण के लिये तथा कक्षा को एक तथ्य बिन्दु से दूसरे तथ्य बिन्दु की ओर ले जाने के लिये विकास प्रश्नों का प्रयोग किया जाता है उदाहरणार्थ जब अध्यापक अंकगणित या बीजगणित में एक नियम से दूसरे नियम की ओर ले जाते हुये, किसी देश की जलवायु तथा प्राकृतिक बनावट के आधार पर वहाँ की प्राकृतिक वनस्पति और मानव जीवन का ज्ञान कराने के लिए विकास प्रश्नों का उपयोग होता है। कभी-कभी अध्यापक पाठ के सभी तथ्यों को बालकों द्वारा निकलवाना चाहता है। यह उनकी भूल है। ऐसे ऐतिहासिक या भौगोलिक तथ्य जो बालकों द्वारा निकलवाये नहीं जा सकते, शिक्षक को स्वयं बतला देने चाहिये।

विकास प्रश्नों के पूछे जाने पर छात्र पाठ के ग्रहण में सक्रिय भाग लेता है। वह शिक्षक की बातों को ज्यों की त्यों स्वीकार नहीं कर लेता। कुछ सोचता है, निरीक्षण करता है, विवेचन करता है, तुलना करके निष्कर्ष निकालता है। उसका ध्यान पाठ की ओर केन्द्रित हो जाता है। इस प्रकार उसकी सभी मानसिक शक्तियों को प्रशिक्षण मिल जाता है। उसका ज्ञान स्थायी हो जाता है क्योंकि उस ज्ञान की प्राप्ति में उसने सक्रिय सहयोग दिया था। सत्य को स्वयं ग्रहण करने के लिए बालक के विचार और निरीक्षण को किसी विशेष धारा में प्रकाशित कर दिया जाता है। आगमन और निगमन (Inductive and Deductive) सश्लेषण और विश्लेषण (Analytic & Synthetic Method) विधियों में विकास प्रश्नों की ही बहुलता होती है। इन विधियों की सफलता भी इन्हीं प्रश्नों पर रहा करती है। प्रश्नों का प्रयोग विशेषतः विज्ञान, गणित, इतिहास, भूगोल, आदि के विषयों के शिक्षण में किया जाता है। साधारणतया ये प्रश्न प्रस्तावना और उद्देश्य कथन के उपरान्त पाठ्यवस्तु को छात्रों के सामने प्रस्तुत करने पर ही आरम्भ कर दिये जाते हैं।

उदाहरण के लिए अध्यापक निम्न प्रश्न का [illegible] में विकास प्रश्नों का जो रूप होगा, वह नीचे दिया [illegible]

प्रश्न—२५० रु० के छः महीने बाद २८० रु० देने पड़ते हैं। ब्याज की दर बताओ।

विकास प्रश्न	प्रत्याशित उत्तर
(१) क्या दिया है ?	२५० रु० मूलधन २८० रु० मिश्रधन ६ माह का समय
(२) क्या ज्ञात करना है ?	ब्याज की दर
(३) ब्याज की दर कब ज्ञात हो सकती है ?	जब १०० रु० का एक वर्ष का ब्याज मालूम हो।
(४) १०० रु० का एक वर्ष का ब्याज कब मालूम हो सकता है ?	जब निश्चित धन का निश्चित समय के लिये ब्याज मालूम हो।
(५) निश्चित धन का निश्चित समय के लिये ब्याज कब मालूम हो सकता है ?	(क) जब प्रश्न मे निश्चित धन, समय और ब्याज स्पष्टत दी हो। (ख) (अध्यापक द्वारा) प्रश्न में मूलधन, समय तो दिया है।
(६) ब्याज कब मालूम हो सकता है ?	जब मूलधन और मिश्रधन दिया हो।

प्रश्नों के प्रकार

Q 2 What are the different types of questions used in teaching ? Illustrate the utility of the various types by suitable examples.

(L. T. 1953)

"Question in class teaching" Discuss *(Agra B. T. 1950)*

Or

What are the different types of questions used in teaching ? Illustrate the utility of the various types of suitable questions. *(L. T 1954)*

Ans **प्रश्नों का महत्व**—शिक्षण मे प्रश्नों का अत्याधिक महत्व है। किसी विषय को स्पष्ट तथा बोधगम्य इन प्रश्नों के द्वारा ही करते हैं। प्राचीन शिक्षा-प्रणाली में प्रश्नों का विशेष महत्व था। शिष्य अपनी शंकाओं का समाधान प्रश्नों के माध्यम से करते थे। वर्तमान युग में भी प्रश्न पूछने का विशेष महत्व है। कुछ विद्वानों के अनुसार जिस अध्यापक पर प्रश्न पूछने नहीं आते वह अध्यापन कला से पूर्णतया अपरिचित है। रिस्क के अनुसार "वास्तव में अध्यापन की प्रभावशीलता अध्यापक के प्रश्न करने की क्षमता पर अत्यधिक निर्भर है, क्योंकि अध्यापन की प्रत्येक प्रक्रिया में प्रश्नों का स्थान है।" अब हमें यह देखना है कि प्रश्नों के क्या उद्देश्य हैं।

प्रश्न करने का उद्देश्य—

(१) प्रश्न करके बालकों की कठिनाइयों को सरलता से समझा जा सकता है।

(२) नया ज्ञान प्रदान करने के लिए, छात्रों का पूर्व ज्ञान जानना आवश्यक है और यह पूर्व ज्ञान का पता बालक से प्रश्न करके ही लगाया जा सकता है।

(३) बालक के ध्यान को पाठ या विषय वस्तु की ओर लगाये रखना।

(४) बालकों की कल्पना को उत्तेजित तथा उत्साहित करना।

(५) यह जानना कि बालक दिये गये ज्ञान का उचित प्रयोग कर सकता है या नहीं।

(६) बालकों की रुचियों का पता लगाना।

(७) यह जानना कि बालक पाठ ठीक प्रकार से समझ रहा है या नहीं।

प्रश्नों का वर्गीकरण—मानसिक प्रक्रिया के आधार पर प्रश्नों को दो भागों में बाँट सकते हैं—स्मृत्यात्मक प्रश्न—इनका उद्देश्य बालकों के पूर्व ज्ञान के विषय में पता लगाना तथा प्रदान किये गये ज्ञान की पुनरावृत्ति, जैसे—

(१) मुगलवंश की नींव किसने डाली ?
(२) भारतवर्ष में कपास कहाँ अधिक होती है ?

दूसरे प्रकार के प्रश्न होते हैं—विचारात्मक, इनका उद्देश्य बालकों की कल्पना शक्ति तथा सोचने की शक्ति का विकास करना है।

ऊपर हमने प्रश्नों को दो भागों में विभाजित किया परन्तु अध्यापकों की सुविधा के लिये प्रश्नों को निम्न भागों मे बाँटा जा सकता है —

(१) प्रस्तावनात्मक प्रश्न या भूमिका के प्रश्न—अध्यापक इन प्रश्नों के पाठ को आरम्भ करता है। इस प्रकार के प्रश्न करने का प्रमुख उद्देश्य बालक के पूर्व ज्ञान का पता लगाना है। इन प्रश्नों की भीड़ न लगाई जाय। जो प्रश्न लिये जावें वे सरल तथा छोटे हों। इस प्रकार के प्रश्नों का एक दूसरे से सम्बन्धित होना परम आवश्यक है।

(२) सम्बन्ध बताने वाले—ये प्रश्न, 'किसी विषय का दूसरे विषय से क्या सम्बन्ध है' बताने के लिये किये जाते हैं। उदाहरण के लिये—(१) शुद्ध वायु स्वास्थ्य के लिये क्यों आवश्यक है ?

(३) समस्या प्रश्न (Problem questions) - इन प्रश्नों को पाठ के आरम्भ या मध्य में, कहीं पर भी पूछा जा सकता है। इस प्रकार के प्रश्न करने का उद्देश्य बालक के सामने कोई समस्या उत्पन्न करना होता है। ये प्रश्न प्रमुखतया विज्ञान और गणित में किये जाते हैं।

(४) विचारात्मक प्रश्न—बालकों की विचार शक्ति को क्रियाशील करने तथा उन्हें किसी विषय पर विचार करने के लिये विचारात्मक प्रश्न लिये जाते हैं। इस प्रकार के प्रश्नों से बालक का ध्यान पाठ्य विषय में लग जाता है।

(५) विकासात्मक प्रश्न—किसी पाठ के विकास में छात्रों का सहयोग प्राप्त करने के लिये ये प्रश्न किये जाते हैं। इन प्रश्नों से सबसे बड़ा लाभ यह होता है कि छात्र स्वयं नवीन ज्ञान प्रस्तुत करता है। बालक प्रश्नों का उत्तर देने में तर्कशक्ति तथा विचारशक्ति का प्रयोग करते हैं।

(६) कारण पूछने वाले प्रश्न—इन प्रश्नों का उद्देश्य यह जानना है कि बालक विषय को ठीक प्रकार से समझ गया है या नहीं। उदाहरण के लिये—(१) पोरस की पराजय के क्या कारण थे ?

(७) आवृत्यात्मक या पुनरावृत्ति के प्रश्न—इन प्रश्नों का प्रयोग प्रमुखतया पाठ की समाप्ति पर किया जाता है। इनके माध्यम से पाठ के प्रमुख तथ्यों को दोहराया जाता है। इनका आधार पढ़ाया हुआ विषय होता है। दूसरे शब्दों में इन प्रश्नों का उद्देश्य प्रदान किये हुए ज्ञान को सुव्यवस्थित तथा दृढ़बद्ध करना है। उदाहरण के लिये—

(१) नूरजहाँ में कौन-कौन से गुण थे ?
(२) नूरजहाँ ने किस प्रकार अपने प्रभाव को शासन में बढ़ाया ?
(३) उसकी दलबन्दी के क्या परिणाम निकले ?

अच्छे प्रश्न के गुण:—

(१) प्रश्न उद्देश्यपूर्ण होने चाहिये। प्रश्न करते समय अध्यापक को यह ज्ञान रहना चाहिये कि प्रश्न किस उद्देश्य से किये जा रहे हैं।

(२) प्रश्न सरल, छोटे तथा पूर्णतया स्पष्ट हों।

(३) प्रश्न बालकों की कल्पना शक्ति को विकसित करने वाले होने चाहिए।

(४) जहाँ तक सम्भव हो ऐसे प्रश्न न किए जायें जिनका कि उत्तर 'हाँ' या 'ना' आए। उदाहरण के लिये "क्या तुमने अकबर का नाम सुना है ?"

(५) प्रश्नों का निश्चित होना परम आवश्यक है।

(६) प्रश्न बालकों की मानसिक योग्यता के आधार पर ही किये जायें।

(७) प्रश्न अधिक लम्बे न हों। लम्बे प्रश्न बालकों की समझ में नहीं आते।

(८) प्रश्न कक्षा के समस्त बालकों से समय-समय पर किये जायें।

(९) प्रश्न करने के पश्चात् बालक को विचार करने का पर्याप्त अवसर दिया जाय।

(१०) एक बार प्रश्न के पश्चात् उसको दोहराया न जाय। प्रश्न दोहराने से कक्षा में लापरवाही आती है।

(११) एक प्रश्न बच्चों से बारम्बार पूछना नहीं देना भी उसी प्रश्न को सरल ढंग से करना चाहिए।

प्रश्न पूछने की कला के आधारभूत तत्व

Q. 3. Although in modern conditions and with modern methods there is less need than formerly for teachers to be continually asking questions the art of questioning remains an important part of teaching techniques and hardly less important than the way of asking a question is the mode of dealing with the answers. Discuss. *(Agra B. T. 1951)*

Ans. रिन महोदय के मतानुसार अध्यापन का अर्थ है छात्र को निरीक्षण, विवेचन और तुलना द्वारा परिणाम निकालने के लिए क्रियाशील करना। अध्यापन कला में सभी शिक्षा विशारद प्रश्नों का महत्व स्वीकार करते हैं। समस्त शैक्षिक क्रिया का आधार प्रश्न पूछने की कला है अतः शिक्षक की कुशलता उसके प्रश्न पूछने की योग्यता पर निर्भर रहती है। एक अच्छा शिक्षक अवश्य ही प्रश्नकर्ता होता है किन्तु छात्रों से प्रश्न पूछने और उनके उत्तरों को ठीक प्रकार से स्वीकार कर पाठ को विकसित करने की कला में प्रत्येक शिक्षक निपुण नहीं हुआ करता। यदि शिक्षक इस कला में निपुणता और दक्षता प्राप्त करना चाहते हैं तो उन्हें निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना होगा।

(१) कक्षा में पूछे जाने वाले प्रश्नों का स्वरूप कैसा हो ?
(२) किस प्रकार के प्रश्न छात्रों से पूछे जायें ?
(३) प्रश्न पूछने का ढंग क्या हो ?
(४) बालकों के उत्तरों के प्रति अध्यापक की वृत्ति कैसी हो ?
(५) क्या छात्रों को प्रश्न पूछने को उत्तेजित किया जाय ? यदि छात्रों को प्रश्न पूछने के लिये प्रेरित किया जाय तो उनके प्रश्नों के प्रति अध्यापकों की वृत्ति कैसी होनी चाहिये।

ऊपर गिनाई गई बातों में से अन्तिम बात पर काफी प्रकाश डाला जा चुका है। प्रस्तुत प्रकरण में पहली पाँच बातों को स्पष्ट करने की चेष्टा की जाय।

प्रश्नों का स्वरूप कैसा हो ?

अच्छे प्रश्नों की विशेषतायें निम्नलिखित हैं—

(१) अच्छे प्रश्न बालकों की मानसिक क्रियाओं को जागृत कर उन्हें अवलोकन, स्मरण, विवेचन, निरीक्षण, सामान्य निर्धारण आदि कार्यों के लिये उत्तेजित करते हैं।

(२) अच्छे प्रश्न छात्रों की योग्यता के विचार से इतने सरल और स्पष्ट होते हैं कि सभी छात्र बिना किसी व्याख्या के उन्हें समझ लेते हैं। किन्तु वे इतने सरल भी नहीं होते कि छात्र बिना सोचे समझे उनका उत्तर दे सकें और इतने कठिन भी नहीं होते कि अत्यन्त प्रतिभा-सम्पन्न छात्र भी उनका उत्तर न दे सकें।

(३) अच्छे प्रश्न संक्षिप्त और सीधे होते हैं। लम्बे प्रश्नों को समझने और याद रखने में कठिनाई होती है इसलिये शिक्षक को अपना अभीष्ट साध्य करने के लिये कम से कम शब्दों में प्रश्न पूछने चाहिये। किन्तु कम से कम शब्दों का अभिप्राय यह नहीं है कि वे अधूरे हों। वे इतने छोटे हों कि छात्र उन्हें सरलता से याद रख सकें। प्रश्नों को संक्षिप्त और सीधे रूप में पूछने के लिये उनके आगे पीछे निरर्थक अंश न जोड़ा जाय। क्या तुम बता सकते हो ? कौन बतायेगा ? ये अंश निरर्थक हैं और वे प्रश्नों को लम्बा बना दिया करते हैं।

(४) अच्छे प्रश्न इतने नुकीले होते हैं कि उनका एक ही उत्तर मिल सकता है। प्रश्न के नुकीले होने के लिये उसमें दो गुण होने चाहिये (अ) उसका अर्थ निश्चित हो क्योंकि प्रश्न की अनिश्चितता उत्तर की अनिश्चितता की जननी होती है (ब) प्रत्येक प्रश्न को किसी निश्चित बात की ओर संकेत करना चाहिये। नीचे कुछ प्रश्न दिये गये हैं जो नुकीले नहीं हैं क्योंकि उनके उत्तर असीमित और अनेक मिल सकते हैं।

महाराणा प्रताप कौन थे ?
अकबर के विषय मे तुम क्या जानते हो ?
इस चित्र मे तुम्हे क्या दिखाई देता है ?
कुशल अध्यापक को ऐसे प्रश्नो से बचना चाहिये।

(५) अच्छे प्रश्न एक ही बात का उत्तर चाहते हैं। ऐसे प्रश्न जिनमे कई बातें एक साथ पूछ ली जाती हैं बालकों को चक्कर मे डाल देते हैं और उत्तरो को भी लम्बा बना देते हैं। भारतवर्ष पर किन-किन जातियो ने कब-कब आक्रमण किया ? इस प्रश्न वाक्य मे दो प्रश्न उलझे हुए हैं। ऐसे जटिल प्रश्न कक्षा मे पढाते समय न पूछे जायें।

(६) अच्छे प्रश्नो के उत्तर छोटे-छोटे वाक्यो मे दिये जा सकते हैं। कक्षा कार्य के लिये तो ऐसे ही प्रश्नो की आवश्यकता होती है। यदि लम्बे उत्तर वाले प्रश्नो को पूछना ही पडे तो उन प्रश्नो को छोटे छोटे प्रश्नों के रूप में बदल देना चाहिये।

(७) अच्छे प्रश्नो मे पुस्तकीय भाषा का प्रयोग नही किया जाता। ऐसे प्रश्न जिनकी भाषा पुस्तक से ली जाती है, छात्रो को सोचने विचारने की प्रेरणा नहीं देते। यदि कोई प्रश्न बालकों के मस्तिष्क को क्रियाशील बनाने और उनकी विचार शक्ति को विकसित करने मे सहायता नही देता तो वह प्रश्न व्यर्थ और हानिकारक माना जाना चाहिये क्योंकि वह बालको में रटने की प्रवृत्ति पैदा कर सकता है।

(८) प्रश्न प्रस्तुत प्रसग के साथ सम्बद्ध होने चाहिये ऐसा न होने पर बालको का ध्यान प्रस्तुत प्रसग से हट सकता है।

(९) प्रत्येक प्रश्न अपने उद्देश्य की पूर्ति करे। उदाहरण के लिये प्रस्तावना के प्रश्न बालकों के पूर्वार्जित ज्ञान का पता लगाकर नये ज्ञान का पूर्व ज्ञान से सम्बन्ध जोडें। विकास प्रश्न पाठ के विकास मे विद्यार्थियो का सक्रिय सहयोग प्राप्त करें। इसी प्रकार बोध प्रश्न यह पता लगाने का प्रयत्न करें कि विद्यार्थियों ने पठित वस्तु को ठीक-ठीक समझा है या नहीं और दिया हुआ ज्ञान उनके ज्ञान का अस्थायी अग बन गया है अथवा नहीं। इस प्रकार प्रत्येक प्रश्न का अपने स्थान पर अपना उद्देश्य होता है। प्रत्येक प्रश्न को इस उद्देश्य की पूर्ति करनी चाहिये।

प्रश्न कैसे न हों ?

(१) अच्छे प्रश्न बालको की मानसिक क्रियाओं को जाग्रत करते हैं, किन्तु बुरे प्रश्न ऐसा नही करते। जो प्रश्न बालको की विचार क्रिया को जाग्रत नहीं करते अथवा जो किसी शैक्षिक उद्देश्य की पूर्ति नहीं करते अनुचित कहलाते हैं। विचार क्रिया को जाग्रत न करने वाले प्रश्नो मे हां या नही, साकेतिक और प्रतिनिध्यात्मक प्रश्नों को सम्मिलित किया जा सकता है और निरर्थक और निष्प्रयोजन प्रश्नो में पुष्टिकारक, आलकारिक तथा इलिप्टीकल (Eleptical) प्रश्नो को स्थान दिया जाता है। निम्नलिखित प्रश्न जिनका उत्तर केवल हां या नहीं मे आता है विचारोत्तेजक न होने के कारण ठीक नही है—

(अ) क्या मुहम्मद तुगलक एक पागल बादशाह था ?
(ब) क्या लोकमान्य तिलक एक महापुरुष थे ?
(स) क्या पौधे रात को कार्बन-डाइआक्साइड छोडते है ?

इनका उत्तर अनुमान के सहारे भी दिया जा सकता है। अत कक्षा शिक्षण मे 'हां' या 'नही' प्रकार के प्रश्न त्याज्य हैं।

सांकेतिक प्रश्न (Suggestive questions) भी छात्रो को सोचने या स्मरण रखने की प्रेरणा नही देते। उनमे उत्तर की ओर स्पष्ट सकेत रहता है और बालको को उत्तर सोचने के लिये कोई प्रयत्न नही करना पडता।

(अ) तृतीय पचवर्षीय योजना कितने वर्ष तक चलेगी ?
(ब) पजाब केसरी लाला लाजपतराय को उनकी वीरता पर मुग्ध होकर देश ने किस उपाधि से उन्हें विभूषित किया ?

इन दोनो प्रश्नो मे उत्तरो का सकेत प्रश्न-वाक्य के पूर्व भाग में ही दे दिया गया है। ऐसे प्रश्न सांकेतिक प्रश्न कहलाते हैं।

(३) प्रतिध्वन्यात्मक प्रश्न (Echo questions)—किसी तथ्य को बता देने के बाद कभी-कभी अध्यापक उसी तथ्य पर आधारित प्रश्न पूछ लिया करता है। दिल्ली भारत का प्रमुख नगर है। देश के मध्य में स्थित होने के कारण यह देश की राजधानी भी है यह कहने के उपरान्त अध्यापक कहता है 'दिल्ली क्या है?' छात्रों ने जो कुछ अभी सुना है उसी के आधार पर वे उसका उत्तर दे देते हैं। उनको अपनी तर्कशक्ति या विचारशक्ति का प्रयोग करने का अवसर मिलता ही नहीं। ऐसे प्रश्न ध्यानहीन बालकों का ध्यान आकृष्ट करने के लिए ही पूछे जा सकते हैं, अन्यथा नहीं।

(४) पुष्टिकारक प्रश्न (Corroborative questions)—इन प्रश्नों का प्रयोजन अपने द्वारा कही हुई बात की पुष्टि करना होता है। अध्यापक कोई वक्तव्य देने के बाद पूछता है "है कि नहीं?" और अध्यापक के प्रभाव में आकर छात्र भी बिना सोचे समझे कह देते हैं 'हां साहब'। इसी प्रकार के पुष्टिकरण से यह निश्चित नहीं होता है कि बालकों ने कुछ समझा भी है या नहीं।

(५) आलंकारिक प्रश्न (Rhetorical questions)—ये प्रश्न भाषा को आलंकारिक और कथन को प्रभावशाली बनाने के लिये पूछे जाते हैं। ईमानदारी पर वक्तव्य देते समय यह कह देने से कि ईमानदारी से अच्छी नीति कौन सी हो सकती है, अपना वक्तव्य ही प्रभावपूर्ण बनता है। विद्यार्थियों से ऐसे प्रश्न के उत्तर की आशा नहीं की जा सकती है।

(६) चक्कर में डालने वाले प्रश्न (Tricky questions)—ये प्रश्न अध्यापक की योग्यता का प्रदर्शन तो करते हैं, किन्तु उनसे वास्तविक शिक्षणात्मक लाभ नहीं के बराबर होता है। वे लाभ के स्थान में हानि ही करते हैं क्योंकि उनसे बालकों में हीनता की भावना पैदा हो जाती है और उत्तर न मिलने पर समय का विनाश भी होता है।

(७) इलिप्टीकल प्रश्न—दिल्ली भारत वर्ष······क्या है? इस प्रश्न के वाक्य का अन्तिम शब्द छोड़ दिया है। बालक अन्तिम शब्दों को बतलाकर उसका उत्तर पूरा करता है। शिक्षक ही सारा कार्य करता है। छात्र का योग बहुत थोड़ा रहता है।

इलिप्टीकल प्रश्न अपने स्वरूप में अपूर्ण होते हैं और छात्रों को उस अपूर्णता की पूर्ति स्वयं करनी पड़ती है।

इन प्रश्नों के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी प्रश्न होते हैं जिनके पूछे जाने पर कक्षा में वाद-विवाद का वातावरण उपस्थित हो जाता है। पाठ की गति अवरुद्ध हो जाती है और अध्यापक अभीष्ट लक्ष्य से भ्रष्ट हो जाता है।

प्रश्न कैसे पूछे जायें ?

बुरे ढंग से पूछे जाने पर अच्छे प्रश्न भी कभी-कभी अभीष्ट उद्देश्य की पूर्ति नहीं करते। उनको पूछने पर अध्यापक को श्रम भी अधिक करना पड़ता है और अभीष्ट लाभ भी नहीं होता। इसलिए प्रश्न पूछने के ढंग का ज्ञान भी महत्वपूर्ण विषय है। प्रश्न पूछते समय निम्नांकित बातों की ओर ध्यान दिया जाय

(१) प्रश्न पूरी कक्षा को लक्ष्य करके पूछे जायें। किसी एक छात्र का नाम लेने के बाद पूछे गये प्रश्न अन्य छात्रों के ध्यान को विषय से हटा देते हैं, क्योंकि अन्य छात्र उस प्रश्न से उदासीन हो जाते हैं।

(२) वे बिल्कुल स्वाभाविक और बातचीत के स्वर में पूछे जायें।

(३) प्रश्न पूछने के बाद कक्षा को उत्तर सोचने के लिये अवसर दिया जाय।

(४) इसके बाद एक-एक छात्र से प्रश्न पूछा जाय।

(५) छात्रों को यह पता न लगने पावे कि प्रश्न अब किस छात्र को पूछा जायेगा।

(६) प्रश्न सहानुभूतिपूर्ण स्वर में, शान्ति, दृढ़ता और आत्मविश्वास के साथ पूछे जायें।

(७) प्रश्न पूछते समय वाणी में आवश्यक उतार चढ़ाव हो जिससे बालक उत्तर देने के लिये उत्तेजित हो जाय।

(८) जिस भाषा में एक बार प्रश्न पूछ लिया गया है, उसको बदला न जाय।

(९) वे इस स्वर में पूछे जायें जो कक्षा के उपयुक्त हो।

(१०) प्रश्न यथासम्भव दुहराये न जायँ।

(११) प्रश्नों की बौछार कक्षा पर न की जाय।

(१२) प्रयोजन के अनुकूल उनकी गति में धीमापन या तीव्रता हो। विकास प्रश्नों की गति धीमी तथा पुनरावृत्ति के प्रश्नों की गति तीव्र हो।

(१३) प्रत्येक छात्र को उसकी योग्यता के अनुरूप प्रश्न पूछे जायँ।

(१४) यदि कोई छात्र किसी प्रश्न का उत्तर देने में असमर्थ हो तो प्रश्न दूसरे छात्र से पूछा जाय।

(१५) प्रश्न समान रूप से कक्षा में बाँट दिया जाय।

(१६) एक ही तरह के प्रश्न न पूछे जायँ।

बालकों के उत्तरों के प्रति अध्यापक की वृत्ति कैसी हो ?

यदि अध्यापक कार्य में अच्छे प्रश्नों से अपनी रक्षा करता है और उचित ढंग से पूछता है तो उसका अध्यापन सफल हो सकता है, किन्तु अध्यापन की यह सफलता उसकी उस वृत्ति (attitude) पर भी निर्भर रहती है, जिससे वह छात्रों के उत्तरों को स्वीकार करता है। यदि अच्छे उत्तरों पर भी छात्रों को प्रेरणा न मिले और उनमें भय पैदा हो जाय तो अध्यापन निश्चय ही असफल हो जायगा। अध्यापक को ये उत्तर किस प्रकार स्वीकार करने चाहिए, इसके लिये कुछ सुझाव पेश किये जाते हैं।

(१) छात्रों के उत्तर धैर्य, सहानुभूति, दृढ़ता, शिष्टता के साथ स्वीकार किये जायँ।

(२) अच्छे उत्तरों की प्रशंसा की जाय।

(३) प्रत्येक शुद्ध उत्तर को अशुद्ध उत्तर देने वाले छात्रों से दुहरा लिया जावे।

(४ अशुद्ध उत्तर देने वाले छात्र पर क्रोध न दिखाया जाय क्योंकि अशुद्ध उत्तर के कई कारण हो सकते हैं।

(५) प्रशंसापूर्वक शब्दों या वाक्यांशों का प्रयोग उचित समय पर ही किया जाय।

(६) अशुद्ध उत्तरों को छात्रों की सहायता से ही शुद्ध किया जाय। किन्तु एकदम अशुद्ध उत्तरों को एकदम अस्वीकार कर दिया जाय और सहानुभूतिपूर्ण प्रेमभरी झिड़की भी दी जा सकती है।

(७) बेमन से उत्तर देने वाले छात्र को दण्ड देने की व्यवस्था की जा सकती है। ऐसे छात्र को बस देना अनुचित न होगा।

(८) शरारतपूर्ण और असंगत उत्तरों को कभी प्रोत्साहित न किया जाय और उत्तर देने की अशिष्ट और अहंकारपूर्ण शैली की निन्दा की जाय।

(९) छात्रों के उत्तरों को दुहराया न जाय।

(१०) पूरी कक्षा को उत्तर देने को प्रोत्साहित न किया जाय। प्रश्न का उत्तर वही छात्र दे जिससे प्रश्न पूछा जाय।

(११) साधारणतया उत्तर देने में विद्यार्थियों की सहायता न की जाय, किन्तु झिझकने वाले छात्रों की सहायता देकर उन्हें उत्तर देने के लिए उकसाया जाय।

क्या छात्रों को भी प्रश्न पूछने का अवसर दिया जाय ?

अध्यापन की सफलता इस बात पर भी निर्भर रहती है कि अध्यापक अपने छात्रों को जिस सीमा तक प्रश्न पूछने के लिये प्रेरित करता है और उनके प्रश्नों के प्रति उसका कैसा रुख रहता है। अध्यापक और अध्ययन एक ही प्रक्रिया के दो पक्ष हैं। जब तक अध्यापक [illegible] छात्र दोनों के ज्ञान का आदान-प्रदान नहीं चलता तब तक अध्यापन की क्रिया [illegible] है। इसलिये अध्यापकों को अपने छात्रों को प्रश्न पूछने का अवसर देना [illegible] के प्रति सुन्दर वृत्ति का प्रदर्शन करना चाहिये। [illegible] के उपरान्त ऐसा किया जाय तो अच्छा होगा। [illegible] प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष ढंग से भी [illegible] छात्र

अध्याय २५

उदाहरण
(Illustrations)

Q 1 What are the different types of illustrations advocated for use in schools ? Describe in detail their relative importance in the teaching of languages, physical sciences & social studies *(Agra B T. 1953)*

अर्थ और महत्व—उदाहरण का अर्थ है प्रकाश डालना, अत अध्यापन कार्य मे उदाहरण एक ऐसा उपकरण माना जाता है जिसकी सहायता से बालको के भाव स्पष्ट किये जाते हैं। यह उपकरण रुचि जागृत करता है। पाठ्यवस्तु को स्पष्ट करके उसे मनोरंजक तथा समझाने योग्य बनाता है, चिन्तन को सही मार्ग पर ले जाता है। मानसिक विकास की कमी के कारण सूक्ष्म बातों के समझने मे असमर्थ बालकों को सहायता करता है। सक्षेप मे उदाहरणो की उपयोगितायें निम्नांकित हैं।

(१) बाल-औत्सुक्य को जागृत कर पाठ्यवस्तु को रोचक एव आकर्षक बनाकर उसमें छात्रो के अवधान को स्थिर करना।

(२) अमूर्त भावो का मूर्त वस्तुओ की सहायता से, अज्ञात वस्तुओं को ज्ञात वस्तुओ की सहायता से पाठ को स्पष्ट करना।

(३) अधिकतम इन्द्रियों को उत्तेजित करके पाठ्य वस्तु को मस्तिष्क मे जमा देना।

(४) छात्रो मे निरीक्षण, परीक्षण, तुलना और निर्णय की शक्ति का विकास करना।

(५) वर्णन और व्यवस्था का विस्तार कम करके शिक्षक और शिक्षितो के समय की बचत करना।

(६) कल्पनाशक्ति को विकसित करना।

(७) खेल का सा वातावरण प्रस्तुत करके ज्ञानग्रहण मे नया उत्साह पैदा करना। सक्षेप मे उदाहरण बालक के मानसिक विकास मे सहयोग देते हैं क्योंकि उसके प्रयोग से बालको मे स्मरण, कल्पना, निरीक्षण, निर्णय, अवधान, आदि शक्तियो का विकास होता है। अत उनका उपयोग मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो पर आधारित है।

उदाहरण के प्रकार—उदाहरण दो प्रकार के होते हैं—वाचिक (Oral) और वस्तुरूप या प्रदर्शनात्मक।

वास्तविक उदाहरणो का प्रयोग उस समय होना [illegible] किसी विवरण, वर्णन,
अथवा व्याख्या को अधिक स्पष्ट [illegible] घटना का सजीव
चित्र बालक के मस्तिष्क पर [illegible] रेखा, तुलना [illegible]
दृष्टान्त [illegible] या व्याख्या [illegible]
[illegible] वाक्य [illegible]

(२) वाचिक उदाहरण बालको के पूर्व ज्ञान से सम्बन्धित हों और वे उनके योग्यतानुसार और आवश्यकताओं को ध्यान मे रख कर दिए जायें।

(३) उदाहरण स्पष्ट और सरल भाषा मे हों।

(४) प्रारम्भिक कक्षाओ मे उदाहरण घरेलू परिस्थितियो से चुने जायें।

(५) उदाहरण ऐसे हो जो पाठ को नीरस और शुष्क बातो को सरस और रोचक बना दें।

(६) लोकोक्तियो और जनश्रुतियों की भाषा मे कोई परिवर्तन न किया जाय।

(७) उदाहरण इस प्रकार प्रस्तुत किये जायें कि वे छात्रों की रुचि, ज्ञान एवं अनुभव के अनुरूप हों।

(८) उदाहरण के रूप मे दी गई कहानियो और जीवनियो मे आरम्भ, मध्य और अन्त पूर्णतया सगठित हो, और पाठ के विकास मे उनका महत्व निश्चित हो।

(९) प्रयोग से पूर्व उदाहरणों का चुनाव कर लिया जाय।

वस्तुरूप उदाहरणो का विशेष विवेचन आगे किया जायगा।

वस्तुरूप उदाहरणों का कक्षा कार्य में प्रयोग—क्यों ?

Q 2 Why should a teacher use usual aids in teaching as useful tools when required and not merely for the sake of class-room formality ? Discuss fully with suitable examples from your class room experience *[Agra B T 1959]*

Ans. अध्यापन-कार्य सम्पन्न करते समय कई बार ऐसा होता है कि अध्यापक सर्वश्रेष्ठ वाचिक उदाहरणो का प्रयोग करते हुए भी अपने भावो को स्पष्ट नही कर पाता। कमजोर और मन्दबुद्धि छात्रो मे तो वाचिक उदाहरण समझने की सामर्थ्य होती भी नही इसलिए पाठ की सूक्ष्म बातें उनकी समझ से परे की वस्तु बनी रह जाती हैं। मौखिक उदाहरणो के प्रयोग का आधिक्य होते ही बालको मे थकावट आ जाती है। इसलिए शिक्षक को अध्यापन के अन्य उपकरणो का आश्रय लेना पडता है। मनोवैज्ञानिक खोजो के आधार पर सिद्ध किया जा चुका है कि कुछ बालक किसी बात को देखकर, कुछ किसी बात को सुनकर, कुछ उसे क्रिया रूप मे परिवर्तित कर आसानी से सीख लिया करते हैं। इन दर्शन प्रधान (visile), श्रवण प्रधान (audile) और कर्म प्रधान (motile) छात्रो के लिये वाचिक उदाहरण के रूप में एक ही प्रकार की सामग्री जो उन्हें कर्णेन्द्रिय द्वारा ही उपलब्ध हो सकती है इतनी उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकती कि वह सामग्री जो उनकी विशेष इन्द्रियों द्वारा स्वीकृत की जा सकती है। कहने का तात्पर्य यह है कि दर्शन प्रधान छात्रो को हमे प्रदर्शनात्मक वस्तु रूप उदाहरणो का प्रयोग करना होगा, श्रवण प्रधान व्यक्तियो के लिए ऐसी सहायक सामग्री प्रस्तुत करनी होगी जो उनकी श्रवणेन्द्रिय से सघात कर सके। इसलिए श्रव्य दृश्य वस्तु रूप उदाहरणों का प्रयोग कक्षा कार्य के लिए अनिवार्य हो जाता है। इस आधार पर वस्तु रूप उदाहरणों को तीन वर्गों मे बाँटा जाता है—

(१) श्रव्य उपकरण
(२) दृश्य उपकरण
(३) दृश्य-श्रव्य उपकरण

ये उपकरण छात्रों की भिन्न-भिन्न इन्द्रियो को प्रेरित करते हैं और अध्यापक के विचारो को स्पष्ट बना देते हैं क्योंकि बालक जिस वस्तु को आँखो से देखते हैं उसके विषय मे कानो से सुनते भी हैं। जिस ज्ञान को बालक भिन्न-भिन्न इन्द्रियो के माध्यम से ग्रहण करता है—जिस वस्तु को वह आँखो से देखता है, कानो से सुनता है, हाथ से स्पर्श करता है, जीभ से रसास्वादन करता है, उस वस्तु के विषय मे प्राप्त किया हुआ ज्ञान स्थायी हो जाता है।

ज्ञान की पहली सवेदन और दूसरी सीढ़ी प्रत्यक्षीकरण है। ज्ञानवाही नाडियों के द्वारा अनुभूत उत्तेजना इन्द्रिय-ज्ञान को जन्म देती है। पूर्व अनुभवो और पूर्व सवेदनाओं के सस्कारो के आधार पर हमें किसी वस्तु का सही बोध हो जाता है जिसे हम प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं। प्रत्यक्ष ज्ञान के तीन पक्ष होते हैं—उपास्यक, प्रतिनिधात्मक और सम्बन्धात्मक। इन तीनों पक्षों के उपस्थित होने पर प्रत्यक्ष ज्ञान पक्का हो जाता है। यह होता तभी है जब बालक के सम्मुख वाचिक और वस्तु रूप उदाहरण प्रस्तुत किए जायें।

जटिल और गहन विचार को स्पष्ट करेगी, क्या वह पाठ को रोचक और मनोरंजक बनाने मे सहयोग दे सकेगी और उसका बालकों पर कैसा प्रभाव पड सकेगा। इन सब बातो का ज्ञान शिक्षक को अनुभव और अभ्यास से मिल सकेगा। उसे इस काय मे सफलता भी तभी मिल सकती है जब वह इन वस्तु रूप उदाहरणो की विशेषताओं से भी परिचित हो। प्रदर्शन सामग्री वह उत्तम मानी जाती है जो अध्यापक के उद्देश्यो की पूर्ति करे।

वस्तु रूप उदाहरणो की विशेषताएं क्या-क्या ?

अनुभव के आधार पर कहा जाना है कि वस्तु रूप उदाहरणो मे निम्न गुण होंने चाहिए।

(१) वह रुचिकर, सुन्दर, आकर्षक हो किन्तु इतनी सुन्दर न हो कि विद्यार्थी मूल पाठ को भूलकर उसकी सुन्दरता मे ही लीन हो जाय।

(२) वह वस्तु इतनी बडी हो कि कक्षा मे सभी बालक अपने-अपने स्थान पर बैठकर उसे देख सकें।

(३) वह आवश्यकता से अधिक चटकीली-भडकीली न हो।

(४) वह कौतूहल को जागृत करे किन्तु विनोद की वस्तु न बन जाय।

(५) चित्र या मानचित्र मे केवल आवश्यक वस्तु ही अंकित की जाय।

वस्तु रूप उदाहरणो के प्रकार

Q 3 Describe the various types of illustrative aids that could be use by a teacher in a class-room. *(L T 1954, B T 195*

Ans वस्तु रूप उदाहरण मुख्यतया दो प्रकार के होते हैं—आनेय और अभिनेय। आनेय वस्तु रूप उदाहरण भी तीन उपवर्गों मे बाँटे जा सकते हैं—श्रव्य, दृश्य, श्रव्य-दृश्य। यहाँ पर हम इन उपकरणो का सूक्ष्म विवेचन ही करेंगे। विशद् विवेचन के लिए देखिए इस ग्रंथ के वे पुस्तिकाएँ जो भूगोल, समाज अध्ययन और गणित आदि विषयो पर अलग से लिखी गई हैं।

दृश्य वस्तु रूप उदाहरणों के भेद

प्रदर्शनात्मक उदाहरण कई प्रकार के होते हैं—

(१) मूल वस्तुएं (Real objects)
(२) प्रतिकृतियाँ (Models)
(३) चित्र (Pictures)
(४) रेखाचित्र (Sketches)
(५) मानचित्र (Maps)
(६) ग्राफ (Graphs)
(७) चार्ट (Chart)
(८) सारणी (Table)

मूल वस्तु से हमारा तात्पर्य वास्तविक वस्तु से है। अवसर उपस्थित होने पर ... का प्रदर्शन अत्यन्त हितकर होता है क्योकि उसमे छात्रो को प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त होता है ... के निरीक्षण एव परीक्षण से बालको मे अवलोकन (Observation) की शक्ति का ... होता है। उनके देखने, छूने, सुनने, चखने से क्रमश दार्ष्टिक, ... और ... निर्माण होता है जो बालक की कल्पना शक्ति के विकास मे ... है, ... संग्रह विद्यालय के संग्रहालय मे होना चाहिए जिससे ... सके।

प्रतिकृति का उपयोग उस ... मे प्रस्तुत नही की जा सकती ... उपस्थित नहीं किया जा ... छोटी मूल वस्तु से ... उत्तम होती हैं ... अंग स्पष्ट ... आवश्यकता ... शक्ति से

कभी तो वे असाधारणता के कारण भी छात्रों का ध्यान स्वयं आकर्षित कर लिया करती हैं। प्रतिकृतियों की सहायता से अध्यापक भौगोलिक, ऐतिहासिक और वैज्ञानिक तथ्यों का ज्ञान छात्रों को सुगमता से करा सकता है। प्रतिकृतियाँ चित्र की अपेक्षा अधिक लाभदायक होती हैं क्योंकि उनमें लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई तीनों दिखाई पड़ती हैं। किन्तु वास्तविक वस्तुओं के नमूने कभी-कभी भ्रमात्मक भी सिद्ध हो सकते हैं अतः अध्यापकों को इन्हें प्रस्तुत करते समय मूल वस्तु के आकार का माप भी छात्रों को करा देना चाहिए ताकि वे मूल वस्तुओं के प्रति गलत धारणायें न बना लें।

चित्र का प्रयोग उस समय किया जाता है जब न तो मूल वस्तु ही उपलब्ध होती है और न उसकी प्रतिकृति ही। मूल वस्तुओं और उनकी प्रतिकृतियों का इकट्ठा करना कठिन होने के कारण चित्रों का प्रयोग बहुलता से किया जाता है, किन्तु ये चित्र मूल वस्तु के स्पर्श के विषय में कोई ज्ञान नहीं देते। तब भी ये बड़े उपयोगी और शिक्षाप्रद होते हैं। छोटी कक्षाओं में भाषा, भूगोल, इतिहास, विज्ञान बातचीत, प्रकृति निरीक्षण आदि विषयों में इनका प्रयोग सफलतापूर्वक किया जा सकता है। ये सरलता से मिल जाते हैं, कम खर्चीले होने के कारण उनका प्रयोग सभी अध्यापक कर सकते हैं, किन्तु उनके चुनाव में विशेष सावधानी की आवश्यकता है। चित्र बड़े-बड़े स्पष्ट, गहरे रंग के हों जिन्हें देखकर छात्र मूल वस्तु के आकार, रूप रंग परिमाण आदि से पूर्ण परिचित हो सकें। चित्रों में विशेष क्रिया और गति ही प्रदर्शित की जाय। आवश्यकता से अधिक जानकारी देने वाले चित्र इतने लाभप्रद नहीं होते जितने कि वे जिनमें केवल मुख्य बातें ही दिखाई जाती हैं। चित्र भ्रमात्मक न हों और यदि छोटी कक्षाओं में प्रत्येक छात्र को दिखाने के लिए चित्र इकट्ठे करने हों तो वे पोस्टकार्ड के साइज के हों और अधिक मात्रा में हों।

मानचित्र—प्रमुख ऐतिहासिक घटनाओं और भौगोलिक तथ्यों का प्रदर्शन करने के लिये मानचित्रों की आवश्यकता होती है। पर्याप्त मात्रा में विशाल मानचित्र जिनमें अंकित नाम तथा रेखायें कक्षा में स्पष्ट दिखाई दे सकें, कक्षा के लिये अच्छे माने जाते हैं। रंगों का प्रयोग मानचित्रों में कलात्मक ढंग से किया जाना चाहिये ताकि वे छात्रों का ध्यान स्वतः आकर्षित कर सकें।

रेखाचित्र—मूल वस्तु, प्रतिकृति, चित्र या मानचित्र के अभाव में अध्यापक अभीष्ट वस्तु की जो आकृति श्याम पट्ट पर आवश्यकता पड़ते ही खींच दिया करता है उसे हम रेखा चित्र कहते हैं। इसमें केवल वे वस्तुएँ ही दिखाई जाती हैं जो पाठ के लिये अत्यन्त आवश्यक होती हैं। किन्तु उनको खींचने का अभ्यास अध्यापक को होना चाहिये। रेखाचित्र बनाने की योग्यता प्रत्येक अध्यापक को होनी चाहिए।

दृश्य-श्रव्य उपकरण

अध्यापन के विभिन्न उपकरणों में आजकल जिन उपकरणों पर विशेष जोर दिया जाता है वे हैं दृश्य श्रव्य उपकरण, क्योंकि उनसे बालकों को दोनों इन्द्रियों का प्रयोग करना पड़ता है इसलिये इन उपकरणों की शिक्षा जगत में अधिक चर्चा होती है। इन उपकरणों में निम्नांकित उपकरण विशेष उल्लेखनीय हैं, किन्तु भारतीय शिक्षालयों में इनका उपयोग बहुत कम होता है। कारण स्पष्ट है और वह है देश की कमजोर आर्थिक अवस्था।

(१) सिनेमा
(२) रेडियो
(३) ग्रामोफोन
(४) मैजिक लेन्टर्न
(५) प्रक्षेपक यन्त्र

दूर देशों की स्थितियों, परिस्थितियों, मानव और उसके कार्यकलापों का ज्ञान सिनेमा द्वारा सुगमता से उपलब्ध हो सकता है। कक्षा-भवन में बैठकर हम वैज्ञानिक अनुसंधानों, भौगोलिक तथ्यों, उनके प्रभावों एवं ऐतिहासिक घटनाओं का साक्षात्कार कर सकते हैं। सिनेमा द्वारा बालकों का मनोरंजन भी होता है और शिक्षा भी। इन्द्रियों के माध्यम से जो शिक्षा दी जाती है वह स्थायी और प्रभावशाली होती है इसलिए शिक्षा में सिनेमा का एक महत्वपूर्ण स्थान है।

रेडियो—इस उपकरण की प्रभावशीलता सिनेमा से कम है क्योंकि वह हमारी कर्णेन्द्रिय को ही प्रभावित करता है, किन्तु उसके उपयोग से भी शिक्षा में क्रान्ति उपस्थित की जा

सकती है। नभ-वाणी से शिक्षा सम्बन्धी प्रोग्रामों का विशेष आयोजन शिक्षालयों के कार्य में सहायक सिद्ध होता है। विद्यालय में बैठे हुए उच्च कोटि के शिक्षकों, शिक्षा शास्त्रियों, कलाकारों, संगीतज्ञों, कवियों और राजनीतिज्ञों के विचारों को उनके मुख से सुनने का अवसर मिल जाता है। बालक बोलने की शैली में प्रशिक्षित हो जाते हैं। गाने-बजाने की ट्रेनिंग उनको उपलब्ध हो जाती है। देश-विदेश के मानवों तथा उनकी क्रियाओं में उन्हें रुचि उत्पन्न होने लगती है। उनका सामाजिक ज्ञान अधिक विस्तृत और व्यापक हो जाता है। यह एक सस्ता साधन है जिससे शिक्षा का प्रसार शीघ्रता और सरलता से होने लगता है।

ग्रामोफोन—संगीत में रुचि बढ़ाने के लिए भाषा की शिक्षा देने या उच्चारण की अशुद्धियों को दूर करने के लिए ग्रामोफोन का प्रयोग होता है।

जादू की लालटेन—जीवन के अन्य क्षेत्रों की भाँति विद्यालय ने विज्ञान के प्रवेश के साथ विदेशों में अध्यापक के लिए स्लाइडों, रीलों तथा लिंग्वाफोनों का प्रयोग होने लगा है। विभिन्न विषयों, क्रियाओं, खेलों, बीमारियों और उनसे बचने के उपायों, पशुपालन, वन रक्षा, स्वास्थ्य सम्बन्धी बातों का ज्ञान स्लाइड्स के द्वारा दिया जाता है। स्लाइड्स दिखाते समय उनको स्पष्ट करने के लिए उनकी व्याख्या भी की जाती है।

ये सब उपकरण अध्यापक के कार्य के पूरक हैं। उसकी कला के साधन मात्र हैं अतः *उनके प्रयोग में अति करने की आवश्यकता नहीं है।*

उपकरण के रूप में पाठ्यपुस्तक

Q 4 The text books may be regarded as strictly supplementary and subordinate to the teacher's lessons.

Or

Text books are not an end in themselves but a means to something else

Or

Discuss the above statements and point out what you consider to be the main function of text books in any scheme of teaching *(L T 1955, 1959)*

अध्यापन के प्रमुख उपकरणों में पाठ्यपुस्तक, उदाहरण और श्यामपट्ट का नाम गिनाया जाता है। पाठ्यपुस्तकें इस प्रकार शिक्षक के कार्य की परिपूरक मानी गई हैं। वे उसकी सहायता करने वाली *सामग्रियाँ हैं। वे अध्यापक के उद्देश्य की प्राप्ति में माध्यम मात्र हैं। अध्यापक का* उद्देश्य है बालक को ज्ञान, अनुभूति और कौशल प्रदान करना। पाठ्यपुस्तकें अध्यापक के उद्देश्य की पूर्ति में सहायक होती हैं।

प्राचीनकाल में पाठ्यपुस्तकों का दुरुपयोग किए जाने के कारण कुछ लोगों की यह धारणा बन गई है कि पाठ्यपुस्तकों ने शिक्षकों का स्थान ग्रहण कर लिया है। अच्छी से अच्छी पुस्तक भी सजीव शिक्षक का स्थान ग्रहण नहीं कर सकती। पाठ्यपुस्तक शिक्षा की अर्ध-सामग्री *प्रस्तुत करती है शेष सामग्री भी उदाहरण श्यामपट्ट आदि द्वारा प्रस्तुत की जाती है।* तब वह शिक्षक का स्थान कैसे ग्रहण कर सकती है। वे तो उसके कार्य की परिपूरक मात्र हो सकती है।

पाठ्यपुस्तक बालक के लिये पथ प्रदर्शिका है किन्तु उस पर निर्भर रहना भूल है। उसकी कमी शिक्षक को अपने ज्ञान से पूरी करनी होगी और उसके अतिरिक्त अन्य आवश्यक बाहरी पुस्तकों को पढ़ने के लिये शिक्षक को छात्रों से अनुरोध करना होगा। अध्यापक को भी केवल *पाठ्यपुस्तक पर ही निर्भर नहीं रहना है। अच्छा अध्यापक* पाठ्यपुस्तकों पर आश्रित न होकर उन्हें अपने आधीन कर लेता है। आजकल पुस्तकीय ज्ञान की बड़ी निन्दा की जाती है। आधुनिक शिक्षा-शास्त्री स्कूल में क्रियाशीलता लाने पर अधिक जोर देते हैं, पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करने पर कम। उनका कहना है कि बालक एक ही पुस्तक के दास न बन जायें। आवश्यकता पढ़ने पर वे विभिन्न पुस्तकों से ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करें और अपनी आलोचना शक्ति से सत्य और असत्य का निराकरण करें।

पाठ्यपुस्तक को साध्य मानने से हानियाँ

जब पाठ्यपुस्तकों को साध्य मान लिया जाता है तब अनेक हानियाँ उपस्थित होने लगती हैं। बालकों को केवल वही बतलाने से जो कि पुस्तक में लिखा हुआ है उनका दृष्टिकोण सकुचित हो जाता है और वे पाठ्य विषय में रुचि खो बैठते हैं। पाठ्यपुस्तकों को साध्य मानने से बालकों की प्रवृत्तियों और रुचियों पर कुठाराघात होने लगता है क्योंकि वे पाठ्यक्रम के उद्देश्यों, अध्यापन विधियों और परीक्षा के तरीकों को ऐसे जकड़ लेती हैं कि अध्यापक को स्वतन्त्र रूप से बालकों की रुचियों को सन्तुष्ट करने का अवसर नहीं मिलता। वे शिक्षक और बालक दोनों की भावनाओं को कुण्ठित कर देती हैं और उन पर विशेष महत्व दिये जाने के कारण शिक्षा में दोहराने और रटने का बोलबाला कायम हो जाता है और सोचने-विचारने का क्षेत्र सीमित हो जाता है। उनमें विषयों का व्यापक ज्ञान न होने के कारण बालकों या अध्यापकों में विस्तृत अध्यापन की रुचि का विनाश हो जाया करता है। बालक की विषय के अध्ययन में रुचि इस कारण से और भी नहीं आती कि पाठ्यपुस्तकों में न तो शैली की रोचकता होती है और न विषय की सुन्दरता ही क्योंकि उनकी रचना समस्त प्रकरणों की पूर्ति को ही ध्यान में रखकर की जाती है। इस सब कारणों से पाठ्यपुस्तकों के साध्य रूप में ग्रहण किये जाने पर छात्र और अध्यापक दोनों को अनेक हानियाँ होती हैं।

अब प्रश्न यह है कि शिक्षक का यह उपकरण या साधन किस प्रकार हो कि उसके उपयोग से न तो छात्रों की ही हानि हो सके और न अध्यापक की ही। आजकल इससे भयावह स्थिति क्या हो सकती है कि इन उपकरणों के निर्माण, प्रकाशन, गेटअप, चयन आदि पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया जाता।

इस उपकरण के आवश्यक गुण

अच्छी पाठ्यपुस्तक के गुण नीचे दिये जाते हैं जिनको ध्यान में रखकर अध्यापक को इस साधन का चुनाव करना चाहिए यदि हम उसके उपयोग में वांछित लाभ उठाना चाहते हैं—

(१) इसका लेखक अनुभवी और अपने विषय का पण्डित हो।
(२) इसकी सामग्री बालकों की मानसिक अवस्था, स्तर तथा योग्यता के अनुकूल हो, उसकी भाषा आयु वर्ग के अनुसार हो।
(३) वह बालकों को उत्तम और अच्छे अनुभव दे सके, उनमें चुने गए उदाहरण घरेलू वातावरण से सम्बन्धित हो।
(४) भिन्न-भिन्न रुचियों, अभिरुचियों और शक्तियों के छात्रों की पृथक्-पृथक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए उसमें सभी प्रकार के ज्ञान का समावेश हो।
(५) वह छात्र के चारित्रिक और नैतिक विकास में सहायक हो।
(६) उसकी पाठ्य सामग्री भली-भाँति सगठित और व्यवस्थित हो।
(७) लेखन शैली आकर्षक, छात्रों की रुचि, योग्यता और स्तर अनुकूल हो।
(८) उसमें आवश्यकतानुसार स्पष्ट, बड़े, एवं रंगीन चित्र रेखाचित्र, मानचित्र आदि हो।
(९) उसका गेटअप सुन्दर, कागज मजबूत, अनुकूल भार का हो।
(१०) उसका फौरमेट उपयुक्त हो।

शिक्षा मनोविज्ञान
(Educational Psychology)

अध्याय १

मनोविज्ञान एवं शिक्षा का सम्बन्ध

Q. 1. Discuss the relationship between Education and P...

१.१

मनोविज्ञान का
करना होगा जिनमें होकर इस विज्ञान को प्रवेश करना पड़ता है। प्राचीनकाल में यह विज्ञान अ
का विज्ञान[1] माना जाता था। 'मनोविज्ञान' अर्थात 'साइकोलजी' ग्रीक भाषा के दो शब्दों से
कर बना है जिसका अर्थ होता है आत्मा के विषय में विचार[2], किन्तु आत्मा के स्वरूप के विष
विचारकों में इतना अधिक मतभेद रहा कि लोगों ने इस व्याख्या को तिरस्कृत कर दिया। इस प्र
का विज्ञान जनता की बुद्धि से परे की वस्तु थी क्योंकि साधारण व्यक्ति आत्मा के विषय में
प्रकार का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। कालान्तर में आत्मा मनोविज्ञान के परे की विषय-
मानी जाने लगी। मनोविज्ञान के प्रसिद्ध पण्डित इस बात पर जोर देने लगे कि ऐसे मनोविज्ञान
कल्पना की जा सकती है जिसमें आत्मा सम्बन्धी विचार का अंश मात्र भी न हो।[3] इन विद्वानों
कहना था कि मानवीय आचरण और चेतना इस आत्मा से प्रभावित नहीं होती अत उसकी
वस्तु आत्मा के स्थान पर 'मन'[4] माना जाने लगा। इसीलिये उसका नाम मनोविज्ञान पड़ा।

मन का विज्ञान—यह मन भी आत्मा का समकक्षी हो था। आत्मा की तरह यह
शरीर से अलग सत्ताधारी अभौतिक पदार्थ माना जाता था। उस समय के मनोवैज्ञानिक इस
में अनेक शक्तियों का समूह मान कर चलते थे। इन शक्ति मनोवैज्ञानिकों का मत था कि
मन स्वतन्त्र शक्तियों का एक अजीब सगठन है किन्तु 'मन' वास्तव में क्या है, उसकी स्थिति
पर है इन प्रश्नों का उत्तर वे न दे सके। फलत मन आत्मा की तरह सूक्ष्म, अदृश्य
साधारण व्यक्ति की समझ से परे कोई अभौतिक वस्तु होने के कारण मनोविज्ञान की यह परि
भी अधिक दिन तक मान्यता न प्राप्त कर सकी। मनोविज्ञान को स्वतन्त्र विज्ञान बनाने के
में विद्वानों ने इसे चेतना[5] का विज्ञान कहा।

चेतना का विज्ञान—आत्मा और मन की अपेक्षा चेतना व्यक्ति के अधिक समीप की
थी क्योंकि उसका अध्ययन किया जा सकता था। प्रत्येक व्यक्ति कल्पना, संवेग, भावना आ
विषय में कुछ न कुछ अनुभव रखता है। उसे भय, क्रोध, प्रेम अथवा घृणा की अनुभूति होती
ये सभी वस्तुएं चेतना की वस्तुएं हैं। अन्तर्दर्शन विधि[6] से इसका अध्ययन किया जा सकता
यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो चेतना की इन बातों और भौतिक विज्ञान की कई अनुसन्धित बा
विशेष अन्तर प्रतीत नहीं होता। भौतिक शास्त्र के विद्यार्थी के लिये ध्वनि शक्ति का कम्पन मा
किन्तु मनोविज्ञान वेत्ता के लिये यही ध्वनि चेतना स्तर पर संगीत अथवा शोरगुल का रूप

---

१ Science of soul
२ Thought about soul
३ Principles of Psychology by William James
४ Mind
५ Consciousness
६ Introspection

कर लेती है। इसी प्रकार चेतना की बातो और दैहिक विज्ञान की बातो मे भी विशेष भेद नही दिखाई देता। जिन संवेगो[१] को दैहिक विज्ञान[२] का पण्डित मांसपेशियों, नलिका विहीन ग्रन्थियो, और स्वतन्त्र नाड़ी मण्डल की क्रियाओं का प्रतिफल मान कर चलता है मनोविज्ञान का विद्यार्थी उन्ही की चेतना की उथलपुथल[३] मानकर चलता है। ये सभी प्रतिक्रियाएं जिनकी अनुभूति हमारी चेतना को होती है मनोविज्ञान की अध्ययन वस्तुएं बन जाती हैं। इन सभी कारणो से विद्वानों ने मनोविज्ञान को चेतना विज्ञान कहा है।

व्यवहार का विज्ञान—मनोविज्ञान को 'चेतना का विज्ञान' मानने वाले विद्वान अनुभूति[४] और अन्तर्दर्शन पर जोर देते थे। इसलिये इस विज्ञान का क्षेत्र सीमित होता जा रहा था। यदि मनोविज्ञान को विज्ञानों की कोटि मे स्थान देना है तो उसकी विषय वस्तु अवश्य ही ऐसी होनी चाहिये कि जिसका बाह्य निरीक्षण हो सके। जब तक कोई विषय वस्तु पूरी तरह से प्रयोगों[५] की ... किसी विज्ञान की विषय वस्तु होने की अधिकारिणी नही मानी ... था

... था।

... क्यो

के प्रति मानव तथा पशु की सम्पूर्ण प्रतिक्रिया ही ... होती हैं। प्राण रक्षा और समायोजन सम्बन्धी। जीवन भी संघर्षपूर्ण परिस्थिति का ही उद्दीपक[८] है।

व्यवहारवादियो[९] का कहना था कि मनोविज्ञान व्यवहार का विज्ञान है। इसका अध्ययन प्रयोगशालाओं में उसी प्रकार किया जा सकता है जिस प्रकार अन्य भौतिक वस्तुओं का भौतिक प्रयोगशाला मे अध्ययन किया जाता है।[१०] व्यवहार के अध्ययन के लिये वैषयिक[११] निरीक्षण की विधि अपनाई गई और व्यवहारवादियों के प्रयास के फलस्वरूप मनोविज्ञान भी अन्य विज्ञानों की तरह विधेयात्मक[१२] बन गया किन्तु इसका क्षेत्र फिर भी प्रशस्त न हो सका।

विद्वानो ने यह अनुभव किया कि अनुभूति, जिसका खण्डन व्यवहारवादियो ने किया था, और व्यवहार, जिसका समर्थन उनका लक्ष्य रहा था, दोनो ही मनोविज्ञान के लिये आवश्यक तत्व हैं। दोनो एक दूसरे के विरोधी न होकर पूरक माने जाने लगे। अब मनोविज्ञान को व्यवहार का ऐसा समर्थक विज्ञान माना जाने लगा है जिसकी अभिव्यक्ति अनुभूति के माध्यम से होती है।

सभी अनुभूतियां प्राय आत्मगत होती हैं अत. एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की अनुभूतियों का निरीक्षण नही कर सकता। किन्तु वह दूसरो के व्यवहारो का वैषयिक निरीक्षण कर सकता है। लेकिन उसका विषयगत निरीक्षण तभी सार्थक सिद्ध हो सकता है जब वह उन व्यवहारो की

---

१ Emotion
२ Physiology
३ Stirred up state of consciousness
४ Experience
५ Experiments
६ Subjective
७ By behaviour is meant all forms of processes, adjustments, activities and expressions of the *organism* —Charles Skinner : *Educational Psychology.*
८ Stimulus
९ Behaviourist
१० Psychology is the positive science which studies the behaviour of man ... behaviour is regarded as an expression of ... *Psychology* :
११ Objective
१२ Positive

अनुभूति स्वयं करे। अन्य व्यक्तियों के सभी व्यवहारों को समझाने के लिये हमें अनुभूति का आश्रय लेना पड़ता है। अतः हमें मनोविज्ञान में अनुभूति और व्यवहार दोनों को महत्वपूर्ण स्थान देना होगा।

१.२ मनोविज्ञान की विषय वस्तु

मनोविज्ञान के स्वरूप की जो व्याख्या ऊपर प्रस्तुत की गई है उससे स्पष्ट हो गया होगा कि मनोविज्ञान की विषय वस्तु क्या हो सकती है। आत्मा, मन, चेतना, मानसिक प्रक्रियाएँ, अनुभूति और व्यवहार आदि इन सभी बातों का सम्बन्ध हमारे 'मनोजीवन' से रहता है।

मनोजीवन के दो भाग माने जाते हैं—आन्तरिक और बाह्य। आन्तरिक भाग को चेतना और बाह्य भाग को व्यवहार की संज्ञा दी जाती है। चेतना के सहारे हम भिन्न-भिन्न प्रकार की अनुभूतियाँ करते हैं। इस प्रकार अनुभूतियाँ और व्यवहार दोनों ही मानसिक जीवन में अटूट सम्बन्ध रखते हैं। उदाहरण के लिये जब मैं अपने को अपमानित हुआ देखकर अपमान करने वाले व्यक्ति पर क्रोध का प्रदर्शन करता हूँ तब मेरे मन में जो उत्तेजना होती है उसकी अनुभूति मुझे साफ-साफ होने लगती है। मेरे शरीर में जो परिवर्तन होते हैं उन परिवर्तनों को दूसरे व्यक्ति मेरा व्यवहार कहने लगते हैं। मनोविज्ञान इस प्रकार मेरी अनुभूति और मेरे व्यवहार दोनों का अध्ययन करता है।

ये अनुभूति और व्यवहार चेतन अवस्था में तो होते ही हैं उनका अस्तित्व उस समय भी दिखाई देता है जब हम सुप्तावस्था में होते हैं। हमारा मन इस प्रकार मुख्य रूप से दो स्तरों पर कार्य करता है—चेतन और अचेतन। मनोविज्ञान इस चेतन, अचेतन, अथवा अर्ध चेतन मन की प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है।

यही मन मनोविज्ञान की विषय वस्तु है। 'मन' से हमारा आशय उन सभी मानसिक क्रियाओं और मनोवृत्तियों से है जो हमारे व्यवहारों की दिशा निश्चित करती हैं। जिस प्रकार कमरे दरवाजे, खिड़कियाँ, सामान, बालबच्चे सभी को मिलाकर हम 'घर' कहते हैं इसी प्रकार चिन्तन, अनुभव, स्मरण, प्रत्यक्षीकरण, संवेदन आदि सभी मानसिक प्रक्रियाओं को मिलाकर 'मन' की संज्ञा दी जाती है।

मनोविज्ञान इन सभी मानसिक क्रियाओं का अध्ययन करता है जिनसे हमारे 'मन' का निर्माण होता है। आधुनिक मनोवैज्ञानिक आत्मा और मन के स्वतन्त्र अस्तित्व में विश्वास नहीं करता। इसमें कोई संदेह नहीं कि विचार करना दुःख, सुख, क्रोध, भय, घृणा, अथवा आत्मग्लानि का अनुभव करना, स्मरण अथवा विस्मरण करना, आदि मन की विविध क्रियाएँ हैं किन्तु मन कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो इन क्रियाओं से अलग कोई स्वतन्त्र सत्ता रखता हो। आधुनिक मनोवैज्ञानिक मन के इसी रूप की व्याख्या करने का प्रयत्न करता है।

१.३ शिक्षा का स्वरूप

शिक्षा प्रगतिशील विकास की वह प्रक्रिया है जो प्राणी के जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त [illegible]

शक्तियों के उपयोग से अपनी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करने लगता है। इस प्रकार उसका विकास होता है। यही नहीं आगे चलकर वृद्धि और विकास के ऐसे स्तर पर पहुँच जाता है कि वह दूसरों को भी विकास कार्य में सहायता देने लगता है। उनको अपने व्यवहार में परिवर्तन उपस्थित करने में मदद करता है। शिक्षा द्वारा उनकी आन्तरिक क्षमताओं को बाहर निकाल कर अनेक रूप में उन्हें विकसित करता है। इन सब परिवर्तनों को—विकास की इस प्रक्रिया को—हम शिक्षा शब्द से प्रतिबोधित करते है।

व्यक्ति के विकास से हमारा तात्पर्य केवल उन परिवर्तनों[1] से ही नहीं होता जो व्यक्ति में आयु की वृद्धि के साथ उत्पन्न हो जाते है किन्तु अनुकूलन की क्रिया से भी है जो व्यक्ति अपने भौतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक वातावरण के साथ स्थापित करता है। वातावरण की समस्त शक्तियाँ उसकी आन्तरिक शक्तियो पर प्रतिक्रिया करती है। इस अन्तः क्रिया के फलस्वरूप वह अपने में परिवर्तन लाने का प्रयत्न करता है। जब तक उसमें ये परिवर्तन उपस्थित नहीं हो जाते तब तक वह कुसमायोजित अथवा अविकसित माना जाता है। दूसरे शब्दों में यही कहा जाता है कि वह व्यक्ति अभी 'शिक्षित' नहीं है।

जो व्यक्ति अनुकूलन स्थापित करने की क्रिया में अन्य व्यक्तियो की सहायता करते हैं उनको शिक्षक तथा जिनकी सहायता की जाती है वे शिक्षार्थी तथा वे संस्थायें जिनमें विकास या अनुकूलन अथवा शिक्षा का यह क्रम चलता रहता है शिक्षण संस्थाएं कहलाती है। विद्यालय, समाज, गोष्ठी, चर्चा, आदि तत्व जो शिक्षा कार्य में लगे हुये है शिक्षा के स्रोत कहलाते है। ये स्रोत दो प्रकार के होते हैं नियमित[2] और अनियमित[3]। वे सभी व्यक्ति जो शिशुओं, बालकों, किशोरो, प्रौढ़ो को अपने वातावरण के साथ अनुकूलन स्थापित करने में सहायता करते हैं शिक्षक[4] कहलाते हैं। सकुचित अर्थ मे हम शिक्षकों की श्रेणी मे केवल उन व्यक्तियो को ही रखते हैं जो विद्यालयों मे शिक्षक, पर्यवेक्षक, प्रधानाध्यापक के पदो पर नियुक्त होते हैं।

इस संकुचित अर्थ में हम 'शिक्षा' शब्द का प्रयोग उस ज्ञान क्षेत्र के लिये करते है जो शिक्षण संस्थाओं, शिक्षार्थियों, शिक्षण विधियों और शिक्षा विशारदों की समस्याओं से सम्बन्धित रहता है। शिक्षा शास्त्र इन सभी समस्याओ का हल ढूंढने का प्रयत्न करता है और इस विषय में अत्यन्त शुद्ध, विश्वस्त और परीक्षित सूचनायें प्रदान करता है।

१ ४ शिक्षा मनोविज्ञान का स्वरूप

शिक्षा मनोविज्ञान एक ओर इस शिक्षा शास्त्र का अंग है दूसरी ओर मनोविज्ञान का।

शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षा शास्त्र का एक महत्वपूर्ण अंग उस सीमा तक माना जाता है जिस सीमा तक शिक्षा विशारदो की शिक्षा सम्बन्धी समस्याओ का हल ढूंढता है और शिक्षण[5] प्रक्रिया को समझाने का प्रयास करता है और उस सीमा तक वह मनोविज्ञान का अंग माना जाता है जिस सीमा तक वह शिक्षार्थियो की प्रकृति और व्यवहार का अध्ययन करता है। इस तथ्य को ध्यान मे रखकर हम शिक्षा मनोविज्ञान की परिभाषा निम्न प्रकार से स्पष्ट कर सकते हैं।

"शिक्षा मनोविज्ञान वह विज्ञान है जो उन व्यक्तियो के व्यवहार और प्रकृति का अध्ययन करता है जो शिक्षा प्राप्त कर रहे है।" 'व्यवहार' से हमारा आशय उन सभी क्रियाओ से होता है जिनका प्रदर्शन विद्यार्थी विद्यालय के वातावरण मे करता है और प्रकृति से हमारा तात्पर्य बालक की उन सभी योग्यताओ, गुप्त शक्तियो, अभिरुचियों, अभिवृत्तियों से होता है जिनका हम विषयगत निरीक्षण कर सकते हैं।

---

[1] Education is the consciously process whereby changes in behaviour are produced in the person and through the person in the group —*Brown*

[2] Formal

[3] Informal

[4] Educators

[5] Learning

शिक्षा मनोविज्ञान की जो परिभाषा ऊपर दी गई है उसमे शिक्षार्थी को ही शिक्षा का केन्द्र-बिन्दु माना गया है और बात भी ठीक मालूम पड़ती है किन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि हम शिक्षक को कोई महत्व नहीं देते। शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षित की अनुभूतियो और व्यवहार का शिक्षा परिस्थिति मे अध्ययन अवश्य करता है किन्तु वह शिक्षक को भी अछूता नहीं छोड़ता।

१.५ शिक्षा मनोविज्ञान तथा शिक्षाशास्त्र के अन्य अग

शिक्षा मनोविज्ञान किस प्रकार शिक्षा शास्त्र का एक महत्वपूर्ण अग है इस बात को व्याख्या करने के लिये हमें शिक्षाशास्त्र की विभिन्न शाखाओ पर दृष्टिपात करना होगा और यह देखना होगा कि वे आपस मे किस प्रकार शिक्षा मनोविज्ञान से अनुबन्धित[1] हैं।

शिक्षालय व्यवस्था और शिक्षा मनोविज्ञान—शिक्षालय व्यवस्था[2] की जिम्मेदारी प्रधाना
[illegible] ती है। इन सब
[illegible] तरह की सूचना
[illegible] प्रवृत्ति, आवश्य
कताओ, दक्षताओ और व्यवहारो का अध्ययन करता है। विद्यालय का अनुशासन, पाठ्य सहगामि क्रियाओं का सचालन, अध्यापन, निरीक्षण, पर्यवेक्षण कार्य, छात्रो और अध्यापको के बीच स्व सम्बन्धों का निर्णय तभी कर सकता है जब प्रशासक वर्ग उनकी आवश्यकताओ और योग्यताओं समुचित ज्ञान प्राप्त करें अन्यथा नही। विद्यालय सचालन की सफलता इसी बात पर निर्भर रहत है कि उसके सचालकों ने छात्रो की मनोवृत्ति का कैसा अध्ययन किया है।

शिक्षण विधियाँ और शिक्षा मनोविज्ञान—विभिन्न आयु स्तरों एव विभिन्न मानसि स्तरो के छात्रों को पढ़ाने मे काम आने वाली 'शिक्षण कला' शिक्षाशास्त्र की महत्वपूर्ण शाखा मान जाती है। 'शिक्षण कला' की सफलता विभिन्न वर्गों के लिये उपयुक्त पाठ्यक्रम के चयन, सगठ और निर्धारण पर ही निर्भर नहीं रहती वरन् इस बात पर भी निर्भर रहती है कि शिक्षक विभि रुचियों, योग्यताओं, अभिरुचियों, वाले विद्यार्थियों को शिक्षा देने के लिये किस प्रकार की पाठ विधियो का प्रयोग करता है और वह कक्षा मे विनय किस तरीके से स्थापित करता है। अध्याप जिस प्रकार अपनी विषय का गहन अध्ययन करता है उसी प्रकार वह अपने बालकों की प्रवृत्ति भी अध्ययन किया करता है। जो अध्यापक अपने बच्चो के मनोविज्ञान को नहीं समझता व अपने विषय का प्रकाण्ड पण्डित होने पर भी शिक्षण कला में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। ज अध्यापक अपने बच्चो की योग्यताओं का ज्ञान नहीं रखता वह अपने विषय की सभी पाठ विधियों[3] का सम्पूर्ण ज्ञान रखने पर भी कक्षा मे असफलता प्राप्त कर सकता है। शिक्षा मनोविज्ञा बालक के उन सभी आन्तरिक और बाह्य तत्वों का अध्ययन करने मे हमारी सहायता करता जो सीखने तथा सिखाने की सभी प्रक्रियाओं पर प्रकाश डालते हैं।

शिक्षादर्शन[4] और शिक्षा मनोविज्ञान—दर्शन अथवा 'फिलोसफी' शब्द का अर्थ है विद्व से प्रेम[5]। बस इसी अर्थ में हम 'शिक्षा दर्शन' शब्द का प्रयोग करते हैं। शिक्षादर्शन metaphysi की समस्याओं का हल ढूँढ़ता है, शिक्षा सम्बन्धी ज्ञान की प्रकृति और स्रोतो का पता चलाता शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्तो को तार्किक ढग से निश्चित करता है, शिक्षा के उद्देश्यों, विभि पाठ्य विषयों का शैक्षणिक महत्व, विद्यालय और समाज के बीच सम्बन्ध, विभिन्न शैक्षिक सिद्धान और दर्शनों की व्याख्या करता है। शिक्षा दार्शनिक शिक्षा एवं जीवन के उद्देश्यों की खोज कर है और निम्न प्रकार के प्रश्नों का उत्तर देने का प्रयास करता है।

---

१ Correlated
२ School administration
३ Teaching methods
४ Philosophy of Education
५ Love of wisdom (Phil—Sophia)

(१) विद्यालयों का काम क्या है ?
(२) विद्यालय तथा समाज का सम्बन्ध कैसा होना चाहिए ?
(३) विद्यालय के पाठ्यक्रम का स्वरूप क्या है ?
(४) अध्यापक को क्या कार्य करना चाहिये ?

किन्तु शिक्षा मनोवैज्ञानिक यह बताने का प्रयत्न करता है कि जिन उद्देश्यों का निर्धारण दार्शनिक ने किया है उनकी प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है। आज शैक्षिक दार्शनिक शिक्षा का एक उद्देश्य मानसिक विकास निश्चित किया है। इस विकास की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है इस बात का निर्देश शिक्षा मनोवैज्ञानिक करता है। वह बताता है कि यदि किसी बालक के हृदय में कोई मानसिक अन्तर्द्वन्द्व अथवा ग्रन्थि उत्पन्न हो गयी है तो उसकी किस प्रकार की चिकित्सा की जाय जिससे उसके मानसिक विकास में बाधा न पहुँचे। वह शिक्षक और अभिभावकों का मार्ग निर्देशन[१] करता है इस बात में कि उनके मानसिक अन्तर्द्वन्द्व अथवा ग्रन्थि को किस प्रकार सुलझाया जा सकता है।

यद्यपि शिक्षादर्शन और शिक्षा मनोविज्ञान एक दूसरे से भिन्न है फिर भी वे एक दूसरे को प्रभावित करते रहते हैं। शिक्षा दार्शनिक के अनेक सिद्धान्तों का प्रयोग शिक्षा मनोवैज्ञानिक करता है और शिक्षा मनोविज्ञान की अनेक खोजों के निष्कर्षों से प्रभावित होकर शिक्षा दार्शनिक अपने सिद्धान्तों में परिवर्तन और परिशोधन कर लिया करता है। प्लेटो से लेकर आधुनिक शिक्षा दार्शनिक मेरिया मोंटेसरी तक सभी दार्शनिकों ने अपने विचारों में शिक्षा मनोविज्ञान की खोजों के कारण परिवर्तन कर लिया है।

सक्षेप में—शिक्षा और मनोविज्ञान का सम्बन्ध निश्चित करने के लिये हमें निम्नलिखित बातों का अध्ययन करना होगा

(१) मनोविज्ञान का स्वरूप और उसकी विषय वस्तु
(२) शिक्षा का स्वरूप
(३) शिक्षा मनोविज्ञान का स्वरूप
(४) शिक्षा मनोविज्ञान का शिक्षादर्शन, पाठन विधि, शिक्षालय व्यवस्था से सम्बन्ध

Q. 2. What do you understand by the term Psychology. Give its various classifications

१.६ शिक्षा मनोविज्ञान मनोविज्ञान की शाखा के रूप में

यों तो मनोविज्ञान की अनेक शाखायें हैं और लगभग सभी शाखाओं से शिक्षा मनोविज्ञान ने अपने आधारभूत सिद्धान्त और नियम लिये हैं किन्तु हम केवल उन्हीं शाखाओं पर विचार करेंगे जिन्होंने शिक्षा मनोविज्ञान को विशेष रूप से प्रभावित किया है। ये शाखायें निम्नांकित हैं—

(१) सामान्य मनोविज्ञान
(२) दैहिक मनोविज्ञान
(३) प्रयोगात्मक मनोविज्ञान
(४) पशु मनोविज्ञान
(५) बाल मनोविज्ञान
(६) वैयक्तिक मनोविज्ञान
(७) तुलनात्मक मनोविज्ञान
(८) समाज मनोविज्ञान
(९) असामान्य मनोविज्ञान

सामान्य मनोविज्ञान तथा शिक्षा मनोविज्ञान—सामान्य मनोविज्ञान सामान्य दृष्टिकोण से व्यक्ति की मनोवृत्तियों का अध्ययन करता है और मानसिक प्रक्रिया के सामान्य नियमों का निर्धारण करता है। वह ध्यान, प्रत्यक्षीकरण, कल्पना, स्मृति, विचार और संवेग आदि मानवीय

---

[१] Guidance

मनोवृत्तियों की पूरी तरह व्याख्या करता है। इस प्रकार वह मानसिक जीवन की पूर्ण व्याख्या प्रस्तुत करता है। वह शरीरविज्ञान तथा समाज शास्त्र के बीच के मार्ग का अनुसरण करता हुआ व्यक्ति के व्यवहार को जानने का प्रयत्न करता है। शिक्षा मनोविज्ञान भी व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन करता है किन्तु सभी व्यक्ति उसके अध्ययन के विषय नहीं होते। वह केवल उन्हीं व्यक्तियों के व्यवहार का अध्ययन करता है जो शिक्षालयों में शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। वह सामान्य मनोविज्ञान की विधियों का भी प्रयोग करता है। अपनी खुद की कुछ विधियों का प्रयोग करता है। इन विधियों में मानसिक तथा शैक्षणिक मापन तथा अर्हापण की विधियां विशेष महत्व रखती हैं। इसलिए शिक्षामनोविज्ञान को सामान्य मनोविज्ञान की शाखा माना जा सकता है।

वास्तव में हम सामान्य मनोविज्ञान को मनोविज्ञान की शाखा नहीं मान सकते। ऊपर जिन शाखाओं का उल्लेख किया गया है वे सामान्य मनोविज्ञान की ही शाखाएँ हैं। सामान्य मनोविज्ञान और इन शाखाओं में केवल एक ही अन्तर है वह यह कि सामान्य मनोविज्ञान का महत्व सैद्धान्तिक है और इन शाखाओं का व्यावहारिक।

दैहिक मनोविज्ञान और शिक्षा मनोविज्ञान—मानव व्यवहार को समझने और उसकी व्याख्या करने के लिये मनोविज्ञों ने दैहिक विज्ञान के सिद्धान्तों का उपयोग किया है। वास्तव में दैहिक मनोविज्ञान का जन्म मन की विशेषताओं, चरित्र के शीलगुणों और व्यक्तित्व के विषय में मस्तिष्क के अन्दर की खोज करने के लिये हुआ था। कुछ समय पूर्व यह मान लिया जाता था कि मस्तिष्क के उभार इन गुणों की उपस्थिति के प्रमाण हैं, किन्तु शीघ्र यह विचार उखाड़ कर फेंक दिया गया क्योंकि इसमें कोई सार न था। अनेक प्रयोग मस्तिष्क पर किये गये, स्नायु मण्डल की क्रियाओं को समझने का वैज्ञानिक प्रयत्न किया गया।

दैहिक मनोविज्ञान के बहुत से प्रयोग शिक्षार्थी के विषय में महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्रदान करते हैं।

प्रयोगात्मक मनोविज्ञान तथा शिक्षा मनोविज्ञान—शिक्षा मनोविज्ञान ने अपने सिद्धान्त नेबनाने के लिये प्रयोगों का आश्रय ले लिया है। जिस विधि का सूत्रपात वुण्ड (Wundt) ने सन् १८७९ में जर्मनी में किया था उस विधि का मनोविज्ञान के क्षेत्र में इतना अधिक प्रचार हुआ कि मनोविज्ञान की एक अलग शाखा ही उत्पन्न हो गई जिसे हम प्रयोगात्मक मनोविज्ञान के नाम से पुकारते हैं। मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में मानव के किसी व्यवहार का व्यवस्थित अध्ययन यन्त्रों की सहायता से नियन्त्रित परिस्थिति में किया जाता है। मानव आचरण पर जिस किसी तत्व का प्रभाव देखा जाता है उसी को घटाया बढ़ाया जाता है। शेष तत्वों को ज्यों की त्यों रखा जाता है, प्रयोगात्मक मनोविज्ञान की यह विधि शिक्षा मनोविज्ञान भी अपनी प्रयोगशालाओं में करता है और बड़ी अधिक प्रतिपन्न एवं विश्वसनीय निष्कर्ष निकालने का प्रयास करता है। फलस्वरूप उसके प्रदत्त अब अधिक विश्वस्त हो गये हैं और वैज्ञानिक निष्कर्षों के कारण शिक्षा मनोविज्ञान की उपयोगिता और सार्थकता काफी बढ़ गई है।

पशु मनोविज्ञान तथा शिक्षा मनोविज्ञान—मनोविज्ञान की इस शाखा का प्रादुर्भाव शिक्षा मनोविज्ञान के उदय के साथ साथ ही हुआ। पशु मनोविज्ञान ने पशुओं पर प्रयोग करके सहज क्रियाओं, मूलप्रवृत्तियों तथा सीखने की मानसिक प्रवृत्तियों पर काफी प्रकाश डाला है। शिशुओं और बालकों के जीवन में भी इन सहज क्रियाओं और मूलप्रवृत्तियों का क्या महत्व है इस पर आगे प्रकाश डाला जायगा। यहाँ पर केवल इतना ही कहना पर्याप्त है कि पशु मनोविज्ञान की कई खोजों का प्रयोग शिक्षा मनोविज्ञान में किया जाता है। सीखने के नियमों का निर्धारण तो पशु मनोविज्ञानशालाओं में ही हुआ है।

बाल मनोविज्ञान और शिक्षा मनोविज्ञान—बाल मनोविज्ञान में गर्भावस्था में पड़े हुए [illegible] विकास काल में [illegible] एक बालक दूसरे [illegible] है, समूह में पड़ कर वह [illegible] प्रकार का [illegible] किया करता है, किस प्रकार अनुकरण, निर्देश और सहानुभूति आदि

सामान्य प्रवृत्तियों से उनके आचरण में परिवर्तन आ जाता है। इन सब बातों का अध्ययन सामान्य मनोविज्ञान और शिक्षा मनोविज्ञान दोनों करते हैं।

वैयक्तिक मनोविज्ञान तथा शिक्षा मनोविज्ञान—वैयक्तिक मनोविज्ञान से हमें भिन्न भिन्न व्यक्तियों में व्यवहार से असमानता और अन्तर का पता चलता है। व्यक्तियों में वैयक्तिक विभिन्नता किस प्रकार की होती है और कितनी मात्रा में वर्तमान रहती है इसका उल्लेख हमें वैयक्तिक मनोविज्ञान में मिलता है। वैयक्तिक मनोविज्ञान की खोजों के आधार पर ही आज हम शिक्षा में व्यक्तिगत विभिन्नताओं पर बल देने लगे हैं। भिन्न भिन्न रुचियों, योग्यताओं और अभियोग्यताओं वाले बालकों के लिए भिन्नात्मक पाठ्य क्रम का सृजन किया जाता है। उनके लिये अलग अलग पाठन विधियां निश्चित की जाती हैं। इस प्रकार शिक्षा मनोविज्ञान ने भी अपनी विधियों में भिन्नात्मक पद्धति का अनुसरण करना आरम्भ कर दिया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शिक्षा मनोविज्ञान का सामान्य मनोविज्ञान की भिन्न भिन्न शाखाओं से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

समाज मनोविज्ञान और शिक्षा मनोविज्ञान—मनुष्य सामाजिक प्राणी है। उसका अस्तित्व समाज पर निर्भर है। उसका व्यक्तित्व समाज में रहकर विकसित होता है। अतः समाज मनोविज्ञान समाज विकास तथा सामाजिक मनोवृत्तियों के महत्व की व्याख्या करता है। समूह में रहकर व्यक्ति कैसा व्यवहार करता है अथवा समूह का व्यक्ति पर क्या प्रभाव पड़ता है आदि आदि बातों का अध्ययन समाज मनोविज्ञान का विषय क्षेत्र है। सामूहिक शिक्षा की व्यवस्था करने के लिये शिक्षा मनोविज्ञान को सामाजिक मनोविज्ञान के अध्ययनों पर निर्भर रहना पड़ता है। इसी प्रकार सामाजिक मनोविज्ञान भी शिक्षा-मनोविज्ञान की कुछ बातों को ग्रहण करता है। अतः इन दोनों विज्ञानों के पारस्परिक सम्बन्ध की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

असामान्य मनोविज्ञान तथा शिक्षा मनोविज्ञान—असामान्य व्यक्तियों के व्यवहारों और अनुभवों का अध्ययन करके उनके कारणों की जांच करना, उनसे छुटकारा पाने के उपायों की खोज करना इस मनोविज्ञान का ध्येय है। असामान्य मनोविज्ञान ऐसे व्यक्तियों की मनोवृत्तियों का अध्ययन करता है जिनका व्यवहार असाधारण होता है। कई व्यक्ति जन्म से ही असामान्य मानसिक व्यवहार का प्रदर्शन करने लगते हैं, कई व्यक्तियों के व्यवहार में यह असामान्यता उनके जीवन काल में उपस्थित हो जाती है। असामान्य मनोविज्ञान उन व्यक्तियों का भी अध्ययन करता है जिनमें विलक्षण प्रतिभा होती है।

शिक्षा मनोविज्ञान विधि सामान्य बालकों की शिक्षा के नियमों तथा सिद्धान्तों का ही प्रतिपादन नहीं करता बल्कि सभी प्रकार के बालकों को ध्यान में रखकर किसी नियम को प्रकाश में लाता है। वह असामान्य बालकों के व्यवहारों का अध्ययन करने के लिये, प्रतिभाशाली और मन्द [illegible] आयोजन करने के लिये अथवा अपचारी, भगोड़े [illegible] लिये असामान्य मनोविज्ञान की विधियों और [illegible]।

Q 3 Discuss the scope of Educational Psychology

१७ शिक्षामनोविज्ञान का विषय विस्तार[1]

शिक्षा मनोविज्ञान की शिक्षक के लिये उपयोगिताओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिये हमें शिक्षा मनोविज्ञान की विषय वस्तु समझना होगा—

शिक्षा मनोविज्ञान के अन्तर्गत जिन जिन विषयों का अध्ययन किया जाता है सभी विषय शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र का निर्माण करते हैं। शिक्षार्थी की उन सभी अनुभूतियों एवं व्यवहारों का अध्ययन करने, शिक्षक की समस्याओं का हल ढूंढने और शिक्षित वर्ग के विषय में भविष्य कथन और मार्ग निर्देशन करने के कारण इस विज्ञान का क्षेत्र इतना अधिक विस्तृत है कि उसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती।

---

[1] Scope

शिक्षा

अध्ययन

क्रियात्मक

विकास किस प्रकार और किस सीमा तक किया जा सकता है, उसके संवेगात्मक एवं सामाजिक विकास के लिये किस प्रकार की परिस्थितियाँ उत्पन्न की जानी हैं, उसके मानसिक विकास में किस प्रकार का सहयोग देना है, उसकी बुद्धि, स्मृति, कल्पना, चिन्तन, और तर्क शक्तियों को किस तरह विकसित करना है, मूलप्रवृत्तियों का शोधन और विलयन करके, उत्तम स्थायी भावों को निर्मित करके, संवेगो का प्रशिक्षण करके उसके चरित्र का किस प्रकार विकास करना है, विकास के इन सभी पक्षों पर शिक्षा मनोवैज्ञानिक को दृष्टि रखनी पड़ेगी।

...ता तथा वातावरण का क्या प्रभाव पड़ता ...त होती है, उसका व्यक्तित्व किन किन ... चेतन मन वातावरण की वस्तुओं से किस प्रकार संवेदन और प्रत्यक्षीकरण करता है, किन किन वस्तुओं पर प्राणी अपना ध्यान और रुचि को केन्द्रित करता है, शिक्षण की प्रक्रिया किस प्रकार होती है, शिक्षा का स्थानान्तरण क्या है, स्मृति अथवा विस्मृति का स्वरूप कैसा है, इन सब बातों को शिक्षा की प्रक्रिया में क्या उपयोगिता है, अचेतन मन की क्रियाओं का उसके व्यवहार पर क्या प्रभाव पड़ता है, किन किन परिस्थितियों में व्यक्ति में मानसिक अन्तर्द्वन्द्व, भावनात्मक संघर्ष, मानसिक ग्रन्थियाँ, और कुसमंजन उत्पन्न हो जाते हैं, किस प्रकार इन विकारों से व्यक्ति की रक्षा की जा सकती है आदि सभी बातों का शिक्षा-मनोविज्ञान अध्ययन करता है।

शिक्षण क्रिया तब तक सुचारु रूप से नहीं चल सकती जब तक शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों ही शिक्षा-परिस्थिति[1] में अनुकूलन स्थापित नहीं कर लेते। शिक्षा कार्य के सफल सम्पादन के लिये न तो हमें विघटित व्यक्तित्व वाले उन अध्यापकों की आवश्यकता है जिनका मानसिक स्वास्थ्य बिगड़ चुका है और न हम ऐसे शिक्षार्थियों की संख्या में वृद्धि चाहते हैं जो शिक्षालय व्यवस्था, पाठ्यक्रम और पाठनविधियों से समंजन स्थापित न कर सकें। जिन विद्यार्थियों में इस प्रकार के अव्यवस्थापन के लक्षण दिखाई देने लगते हैं उनका उपचार कर हम शिक्षण क्रिया को सफल बनाने का प्रयास करते हैं। इसलिये हमारा विज्ञान अपचारी, मन्द बुद्धि, प्रतिभाशाली, पश्चवर्ती, भगोड़े और भग्नाशित छात्रों की समस्याओं का निदान भी करता है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है शिक्षा मनोविज्ञान का ध्येय है शिक्षार्थी व्यवहार, अनुभूतियों का अध्ययन और नियन्त्रण करना, उसके विषय में भविष्य कथन तथा उसका मार्ग निर्देशन करना। इस लक्ष्य को ध्यान में रखकर हम शिक्षार्थी की योग्यता, अभिरुचि, बुद्धि, और व्यक्तित्व के गुणों का विषयगत मापन करते हैं। मापन करने के उपरान्त उसके भविष्य के विषय में सूचना देते हैं और जीवन में सफलता देने के लिये उसका मार्ग निर्देशन करते हैं।

संक्षेप में, शिक्षामनोविज्ञान के विषय-विस्तार के अन्तर्गत निम्नलिखित विषयों का अध्ययन किया जाता है—

(१) बालक के शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक चारित्रिक विकास का क्रम
(२) सीखने की प्रक्रिया और नियम—ध्यान और रुचि, प्रेरणा, आदि को सीखने पर प्रभाव, सीखने का स्थानान्तर
(३) मानसिक मापन और मूल्यांकन के मूल तत्व बुद्धि, अभियोग्यता, निष्पत्ति और व्यक्तित्व का मापन, वैयक्तिक विभिन्नताएँ और मार्ग निर्देशन
(४) व्यक्तित्व का समायोजन और मानसिक स्वास्थ्य

शिक्षा मनोविज्ञान के विषय-विस्तार का स्पष्ट अनुमान शिक्षक वर्ग के लिये उसकी उपयोगिताओं से लगाया जा सकता है। जिनका उल्लेख अगले प्रकरण में किया जायगा।

---

[1] Learning situation

Q 4 Enumerate the practical uses of educational psychology to teachers and educators Give appropriate and concrete examples to illustrate the different uses or In what ways can knowledge of psychology be helpful to teacher in dealing with the problems of classroom.

१८ अध्यापक के लिये शिक्षा विज्ञान की उपयोगिता

टौमस फुलर ने अच्छे अध्यापक के गुण बताते हुए कहा था कि जिस तरह एक सफल अध्यापक अपने विषय का अध्ययन करता है उसी प्रकार और उसी गम्भीरता से वह अपने शिष्यों की प्रकृति का अध्ययन करता है। पैस्टालोजी का कहना था कि शिष्य के मन का अध्ययन अध्यापक का पहला काम है। जोन एडम्स कहा करता था कि पढ़ाना क्रिया के दो कर्म होते हैं एक तो वह जिसको सिखाया जाता है दूसरा वह जिसको शिक्षा दी जाती है। इसलिये अध्यापक के दो काम हैं अपने विषय का प्रकाण्ड पंडित होना, साथ ही अपने शिष्यों की प्रकृति का गहन अध्ययन करना। दूसरा कार्य अधिक महत्त्वपूर्ण है।

गर्भ में पड़े हुए न्यूनेट से लेकर किशोरावस्था प्राप्त व्यक्ति तक प्राणी में जो परिवर्तन होते हैं, उन परिवर्तनों को पैदा करने में जिन गुप्त शक्तियों, गुणों और अन्य प्रवृत्तियों का विशेष हाथ रहता है, एक बालक दूसरे बालक अथवा समाज के सम्पर्क में आकर जिस प्रकार की अन्तः क्रिया करता है, समूह में पड़कर जिस तरह व्यवहार प्रदर्शन करता है, इन सभी बातों का अध्ययन करना शिक्षक का कार्य है। शिक्षा मनोविज्ञान बालक के विषय में इस प्रकार की सूचनायें देने में अध्यापक की सहायता करता है।

एक समय था जब शिक्षा का केन्द्र बालक को मान कर विषय वस्तु को माना जाता था। उस समय लोग शक्ति मनोविज्ञान में विश्वास करते थे। शक्तियों को विकसित करना शिक्षा का उद्देश्य समझा जाता था इसलिये बालप्रकृति अथवा बाल मनोविज्ञान पर ध्यान न देकर नीरस एवं शुष्क ज्ञान को व्यक्ति के मस्तिष्क में ठूंसने का प्रयत्न किया जाता था। जब से मनोविज्ञान की प्रवृत्ति में परिवर्तन उपस्थित हुआ है तब से शिक्षा का केन्द्र बालक मान लिया गया है इसलिये शिक्षा की क्रिया बालक की योग्यता, क्षमता, गुप्तशक्ति, रुचि, अभिरुचि आदि को ध्यान में रखकर सम्पादित की जाती है। ये सभी विषय शिक्षा मनोविज्ञान से सम्बन्धित होने के कारण इस विज्ञान की उपादेयता और महत्ता निश्चित करते हैं।

शिक्षक वर्ग की अथवा यों कहिये कि शिक्षक जगत की जितनी भी समस्याएँ हो सकती हैं उन सबका समाधान, सबका निदान शिक्षा मनोविज्ञान करता है। उन समस्याओं की गिनती नहीं की जा सकती जिनका सामना प्रत्येक शिक्षक को अपने शिक्षण-काल में करना पड़ता है। उदाहरण के लिए एक बालक, जिसके माता पिता की आर्थिक दशा भी ठीक है, जिसमें कोई शारीरिक दोष नहीं है, जिसको घर में, समाज में, और विद्यालय में उत्तम वातावरण मिल रहा है जिसकी बुद्धि लब्धि भी अति-सामान्य है वह कक्षा-कार्य में सफलता क्यों नहीं प्राप्त कर पा रहा है अथवा क्यों वह अपनी कक्षा में पिछड़ रहा है? अमुक नाम धारी बालक पढ़ने समय सदैव क्यों परेशान किया करता है? क्या कारण है कि वह अपने से छोटे बच्चों को मौका पाते ही बुरी तरह पीट दिया करता है? वह क्यों कक्षा में प्रतिदिन अनुशासन की समस्याएँ उपस्थित करता रहता है? कक्षा में इस तरह के बालकों से अध्यापकों को पाला पड़ता है जिनके व्यवहार का समझना उनके लिए रहस्यपूर्ण विषय बन जाता है। कभी कभी ऐसे छात्र पढ़ाने को मिलते हैं जो प्रश्न पूछे जाने पर अपना संवेगात्मक सन्तुलन खो बैठते हैं। ऐसे बालक भी मिलते हैं जो चुगली के कारण न्यायालय द्वारा जेल के सीखचों में बन्द कर दिये जाते हैं।

* If you want to do full justice to the child you must know the child and for knowing him you must read psychology —*Pestalozzi*
* Verbs of teaching govern two accusatives one of the person, another of the thing —*John Adams*

अध्यापक के लिये सबसे महत्वपूर्ण बात है ऐसे समस्यापूर्ण बालकों को मनोवृत्ति अथवा मानसिक जीवन का अध्ययन करना। यह तभी सम्भव है जब वह उनके मानसिक जीवन के विषय में पूरी जानकारी देने वाले विषय मनोविज्ञान का अध्ययन करे।

यह जानने के लिये मानवीय व्यवहार को प्रभावित करने वाले तत्व कौन कौन हैं और यह समझने के लिये किन किन परिस्थितियों में पडकर एक विशेष बालक विशेष प्रकार का व्यवहार क्यों करता है, अध्यापक को शिक्षा मनोविज्ञान का अध्ययन करना होगा।

शिक्षा मनोविज्ञान के अध्ययन से उसे पता चल सकता है कि प्राणी किस प्रकार अपने वातावरण में अनुकूलन स्थापित करता है, सीखने की प्रक्रिया किस प्रकार होती है, शिक्षण की सफलता किन बातों पर निर्भर रहा करती है, कौन कौन तत्व सीखने में प्रगति को प्रभावित करते हैं। एक परिस्थिति में ही हुई बातें, ज्ञान के अंश, आदतें और अभिवृत्तियाँ किस प्रकार व्यक्ति को अन्य परिस्थितिओं में मदद करती हैं।

आधुनिक काल में मनोविज्ञान के क्षेत्र में जो खोजें निरन्तर हो रही हैं उनसे शिक्षा की अनेक समस्याओं का हल ढूँढा जा सकता है। आज का शिक्षा मनोवैज्ञानिक भी स्वतन्त्र रूप से अपने विषय की उन्नति में लगा हुआ है। वह कुत्ते, चूहे, बिल्लियों पर प्रयोग करता है किन्तु बहुत कम। वह अपने परीक्षण करता है उन व्यक्तियों पर जो शिक्षा संस्थाओं में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। इस प्रकार शिक्षा मनोवैज्ञानिक विद्यार्थियों और अध्यापक की व्यक्तिगत और पारस्परिक समस्याओं का हल ढूँढने में लगा हुआ है। मनोविज्ञान अथवा शिक्षा मनोविज्ञान अथवा शिक्षा मनोविज्ञान के इन अन्वेषणों से शिक्षा क्षेत्र में विशेष प्रगति दिखाई दे रही है। अध्यापकों को इस प्रगति का समुचित परिचय प्राप्त करना है।

आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञान की ये खोजें निम्नांकित क्षेत्रों में शिक्षा जगत को विशेष रूप से लाभान्वित कर रही हैं।

सीखना—मनोवैज्ञानिकों ने सीखने के जो नियम निश्चित किये हैं अथवा जिन अध्यापन विधियों का निर्माण किया है उनसे शिक्षा कार्य में विशेष सहायता मिली है। थोर्नडाइक का प्रभाव का नियम[1] पैवलभ का पुनर्योग[2] का सिद्धान्त, हल का[3] प्राथमिक पुनर्योग का सिद्धान्त टोलमैन[4] का ज्ञानात्मक सिद्धान्त सीखने की प्रक्रिया पर पर्याप्त प्रकाश डाल रहे हैं। सीखने के इन सिद्धान्तों एवं नियमों से अध्यापक वर्ग को विशेष सहायता मिल सकती है। सीखने की प्रक्रिया बीच बीच में मन्द क्यों पड जाती है? सीखने में पठारों का आना क्यों कर होता है? सीखने के इन पठारों को किस प्रकार कम किया जा सकता है? इन प्रश्नों का हल भी ढूँढा जा चुका है। अध्यापक शिक्षा मनोवैज्ञानिकों की इन खोजों से लाभ उठा सकता है।

ध्यान—शिक्षा मनोविज्ञान बतलाता है कि ध्यान का स्वरूप क्या है। बालक के ध्यान की क्या क्या विशेषताएँ हैं, छात्र अपना ध्यान किस प्रकार विषय वस्तु पर केन्द्रित कर सकता है? अध्यापक को किस प्रकार की सहायक सामग्री का उपयोग करना चाहिये अथवा किस प्रकार की पाठ विधि का अनुसरण करना चाहिये ताकि उसके छात्र उसके विषय में रुचि लेने लगें? यदि अध्यापक अवधान और रुचि का सम्बन्ध जानता है तो वह ऐसी विधि का अनुसरण करेगा, ऐसी दृश्य-श्रव्य सहायक सामग्री छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत करेगा ताकि छात्रों का ध्यान विषय पर स्वत: केन्द्रित हो जायगा।

संवेग स्थायीभाव और चरित्र—पहले उपदेशों द्वारा चारित्रिक गुणों को विकसित करने का प्रयत्न किया जाता था इसलिये ऐसी शिक्षा का प्रभाव बालकों पर नहीं पड़ता था। किन्तु जब से

---

[1] Thorndike's Law of Effect
[2] Pavlov's law of reinforcement
[3] Hull's Primary and secondary reinforcement theory
[4] Tolman's sign learning

के आधार पर विशिष्ट छात्रों की छाँट की जा सकती है। उदाहरण के लिये बुद्धि परीक्षाएँ देकर हम प्रतिभाशाली बालकों को ढूँढ़ निकाल सकते हैं। इसी प्रकार पश्चवर्ती[1] अथवा मन्द बालकों की खोज की जा सकती है। इन बालकों के लिये किस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था की जाय, बाल अपराधियों[2] को किस प्रकार पुनर्शिक्षित[3] और पुनर्व्यवस्थापित[4] किया जाय, प्रतिभावान् बालक को किस प्रकार का पाठ्यक्रम दिया जाय, इन सभी प्रश्नों का उत्तर शिक्षा मनोविज्ञान देता है। ऐसे बालकों की शिक्षा सामान्य विद्यालयों में नहीं दी जा सकती इस विचार धारा से प्रभावित शिक्षा मनोविज्ञान इन विशिष्ट बालकों के लिये विशेष प्रकार की शिक्षा और विशेष प्रकार के पाठ्यक्रम का प्रबंध करता है।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट हो गया होगा कि अध्यापक के लिए शिक्षा मनोविज्ञान के अध्ययन की क्या उपयोगिता है।

शिक्षा मनोविज्ञान में निम्न दो बातों पर विशेष प्रकाश डाला जाता है—

(१) कोई उद्देश्य पूरा हो सकता है अथवा नहीं

(२) उद्देश्य की किस सीमा तक पूर्ति हो सकी है।

शिक्षा के इस उद्देश्य की पूर्ति जिसे शिक्षादर्शन ने निश्चित किया है दो तरीकों से होती है

(१) शिक्षक के व्यक्तित्व के प्रभाव से

(२) ज्ञान के प्रयोग से।

शिक्षा मनोविज्ञान जो शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों की प्रकृति की गुत्थियाँ खोलता है शिक्षा-कार्य में अत्यन्त सहायक होता है। शिक्षक का व्यक्तित्व किस प्रकार शिक्षार्थी के व्यवहार पर अदृश्य छाप छोड़ता है इसका उल्लेख आगे किया जायगा। किन्तु यदि शिक्षक चाहता है कि उसका व्यक्तित्व बालक के व्यक्तित्व को प्रभावित करे तो उसे अपने शिष्य की मूलप्रवृत्तियों एवं अनुकरण तथा निर्देशन की सामान्य प्रवृत्तियों का अध्ययन करना होगा।

संक्षेप में—शिक्षण के विज्ञान के अध्ययन की शिक्षकों के लिये निम्नांकित उपयोगिताएँ हैं :

(i) अध्यापक को सम्यक दृष्टिकोण प्रदान करना।

(ii) अध्यापक को कक्षा में उचित शैक्षणिक वातावरण उपस्थित करने में मार्ग निर्देशन करना।

(iii) अध्यापक को छात्रों के साथ प्रेम, सम्मान और सहानुभूति के साथ व्यवहार करने की प्रेरणा देना।

(iv) अध्यापक को विषय वस्तु के चयन और संगठन में सहायता देना।

(v) उसे अपने तथा अन्य व्यक्तियों के व्यवहार को समझने में सहायता करना।

[illegible] देना।

[illegible]

Q. 5. Discuss the possible limits [illegible]

[illegible] और शिक्षण कार्य से सम्बन्धित सभी व्यक्तियों की समस्याओं का हल ढूँढ़ने का प्रयत्न करता है तब भी उसकी निम्नलिखित कुछ सीमाएँ हैं :

---

[1] Backward
[2] Delinquent
[3] Re-educate
[4] Rehabilitate
[5] Limitations

शिक्षा मनोविज्ञान तथा सामान्य मनोविज्ञान दोनो ही मे अनेक ऐसी विचारधाराएं (Schools) है जिनका समन्वय लाभकारी है। अभी तक शिक्षा मनोविज्ञान में ऐसे सिद्धान्तो का निर्णय नहीं हो सका है जो इन बिखरे हुए माला के दानों को एक सूत्र में पिरो सके। शिक्षा मनोविज्ञान को अभी एक न्यूटन की आवश्यकता है।

शिक्षा मनोविज्ञान की इस विचित्र प्रकृति के कारण वह अध्यापक को कोई ऐसा सिद्धान्त देने मे अभी तक असमर्थ है जिसका प्रयोग अध्यापक अपनी समस्याओं को सुलझाने में निस्सकोच भाव से कर सके। यही कारण है कि शिक्षक को अपनी समस्याओं का हल ढूंढने के लिये सभी मनोवैज्ञानिक परीक्षणो का अध्ययन करना पडता है। अध्यापक जब तक इन सभी परीक्षणों का अध्ययन नही करता, जो इस क्षेत्र मे निरन्तर हो रहे हैं, जब तक वह उस ज्ञान राशि के अखंड भण्डार को सचित करने का प्रयत्न नही करता जो प्रतिदिन जर्नल तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओं एव शोधपत्रो मे प्रकाशित होता रहता है, तब तक उसका कल्याण नही हो सकता।

यही नहीं शिक्षक को अपने कार्य मे सफलता प्राप्त करने के लिये, प्रधानाध्यापक को शिक्षालय की शिक्षा व्यवस्था और सगठन को सुचारूरूप से सम्पादित करने के लिये, प्रशासक वर्ग को विद्यालय का प्रशासन उचित ढग से करने के लिये न केवल शिक्षामनोविज्ञान का ही सहारा लेना होगा वरन् व्यावसायिक मनोविज्ञान, बाल मनोविज्ञान, व्यक्तिगत मनोविज्ञान, शायनिक मनोविज्ञान आदि उन सभी शाखाओ और प्रशाखाओं का अध्ययन करना होगा जिनका उल्लेख अनुच्छेद १ ६ में किया जा चुका है।

अन्त मे, शिक्षा मनोविज्ञान की सबसे अधिक महत्वपूर्ण परिसीमा यह मानी जाती है कि यह विज्ञान केवल इतना बता सकता है कि शिक्षा का कोई उद्देश्य कहाँ तक प्राप्य है। शिक्षा के उद्देश्य क्या होने चाहिये इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिये हमें शिक्षादर्शन का आश्रय लेना पड़ेगा। हमारा विज्ञान तो हमे केवल इतनी सूचना दे सकता है कि शिक्षा दार्शनिक द्वारा निर्धारित किस उद्देश्य की पूर्ति किस सीमा तक हो सकी है। शिक्षा मनोविज्ञान के अध्ययन के बिना शिक्षक को पता नहीं चल सकता कि वह अपने लक्ष्यो को प्राप्त कर सका है अथवा नहीं।

अध्याय २

शिक्षा मनोविज्ञान की विधियाँ

Q. 1. Write a critical essay on the methods of psychology.

or

What are the important methods of observing data in educational psychology ?

२·१ प्रस्तावना

शिक्षा मनोविज्ञान को समर्थक विज्ञानों की कोटि में रखा जाता है क्योंकि यह व्यक्ति की अनुभूतियों और व्यवहारों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये अनेक प्रकार से प्रदत्त एकत्र करता है, उनका वर्गीकरण करता है, परिकल्पनाओं[1] की सृष्टि करता है, उन परिकल्पनाओं का परीक्षण करके एक निश्चित और सामान्य नियम का निर्धारण करता है। उन सामान्यीकृत सिद्धान्त को भिन्न भिन्न परिस्थितियों में लागू करके एक व्यापक नियम[2] का निर्धारण करता है। यह तो सभी समर्थक विज्ञानों की सामान्य विधि है जिसका अनुशीलन शिक्षा मनोविज्ञान प्रायः किया करता है किन्तु इस सामान्य विधि के अतिरिक्त यह कुछ और भी विधियों का अनुसरण करता है। इन सभी विधियों का विवेचन प्रस्तुत अध्याय में किया जायगा।

शिक्षार्थी की अनुभूतियों एवं व्यवहारों के विषय में जानकारी प्राप्त करने की मुख्य दो विधियाँ प्रयुक्त की जाती हैं

(१) आत्मगत[3]

(२) विषयगत[4]

आत्मगत विधि जिसे मनोविज्ञान की भाषा में अन्तर्दर्शन कहा जाता है शिक्षार्थी की अनुभूतियों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये प्रयुक्त होती है और विषयगत विधि उसके व्यवहारों का मापन, परीक्षण और प्राक्कलन करने के लिये। विषयगत विधि एक नहीं है अनेक हैं। उनमें से कुछ विधियों का सूक्ष्म विवरण नीचे दिया जायगा। ये विधियाँ हैं—

(१) निरीक्षण[5]

(२) प्रयोग[6]

(३) तुलना[7]

(४) मनोविश्लेषण[8]

(५) रासायनिक[9] पद्धति

१ Hypotheses
२ Law
३ Subjective
४ Objective
५ Observation
६ Experimentation
७ Comparison
८ Psycho-analysis
९ Chemical

(६) विकासात्मक[1] पद्धति
(७) सांख्यिकीय[2] विधि
(८) मनोवैज्ञानिक पद्धति[3]

इन सभी विषयगत विधियों को तीन मुख्य श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है—प्रयोगात्मक, सहयात्मक, शयनिक। शेष विधियाँ इन्हीं पद्धतियों का परिवर्तित रूप मानी जा सकती हैं। इन तीनों विधियों में निरीक्षण के उद्देश्य और नियंत्रण की शर्तों को ही विशेष ध्यान में रखा जाता है। किसी समस्या के निदान के लिये उस विधि को अपना लिया जाता है जो उपयुक्त ठहरती है।

२.२ अन्तर्दर्शन[4]

व्यक्ति की मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन अथवा निरीक्षण दो प्रकार से किया जा सकता है। यह अध्ययन अथवा निरीक्षण या तो आत्मगत हो सकता है या बाह्य। जब व्यक्ति अपने मानसिक जीवन का अध्ययन स्वयं करता है, तब वह जिस विधि का अनुसरण करता है उस विधि को हम अन्तर्दर्शन की संज्ञा देते हैं।[5] मेरी अनुभूतियों[6] का स्वरूप क्या है? क्रोधावस्था में मुझे कैसी अनुभूति होती है? अपने विरोधी अथवा प्रतिद्वन्द्वी को सामने पाकर मेरे मन में क्यों उथल-पुथल होने लगती है? क्या मैं अपने संवेगों को रोक सकता हूँ? जब मैं इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर [illegible] प्रक्रियाओं का [illegible] किस प्रकार [illegible] कर उसकी [illegible] आती है। जब इन बातों की वह पुनरावृत्ति करता है तब उसको सीखने की प्रक्रिया के विषय में कुछ जानकारी प्राप्त होती है। जब हम किसी व्यक्ति के अचेतन मन में स्थित भावना, संघर्ष, अथवा मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों के विषय में ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं तब उसकी स्वतंत्र साहचर्य परीक्षा[7] लेते हैं। स्वतंत्र साहचर्य परीक्षा लेते समय उसे किसी शब्द की प्रतिक्रिया के रूप में अन्य ऐसा शब्द माँगा जाता है जो सबसे पहले उसके दिमाग में स्वतः आ गया हो। मान लीजिये यह शब्द 'सिर' है जिसका प्रतिक्रिया के रूप में अन्य कोई शब्द माँगा गया है। यदि व्यक्ति 'सिर' शब्द को सुनकर 'डण्डा' अथवा 'खून' शब्द प्रतिक्रिया के रूप में देता है तो अन्तर्दर्शन विधि से ही हम उसकी मानसिक प्रक्रिया के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। हो सकता है कि किसी ने उसके इतनी ज़ोर से कभी डण्डा मारा हो कि सिर से बहुत सा खून निकला हो तो स्वतंत्र साहचर्य के सहारे उसके मानसिक जीवन में जो घटना किसी समय घटी है उसका दर्शन हो सकता है।

[illegible]
करता है [illegible]
उमड़ [illegible]
वादी विचारधारा तो इसका पूरी तरह खण्डन करने पर उतारू हो गई थी। उस समय तो मनोविज्ञान पर भी यह आक्षेप कसा जाने लगा था कि वह पूर्णतः अन्तर्दर्शनात्मक हो गई है।

---

[1] Genetic
[2] Statistical
[3] Psycho-physical
[4] Introspection
[5] The genuin technique for investigating thought, images, feelings, sensations, perceptions has been to ask the subject to report on these experiences —*T. C. Andrews.*
[6] Experiences
[7] Free Association test

अनुभूति करते समय कुछ शारीरिक चेष्टाएँ करता है। कुछ ऐसी बातें कहता है जिससे उसकी मानसिक स्थिति का अनुमान लगाया जाता है। व्यक्ति की मानसिक स्थिति का अध्ययन करने के लिये उसके व्यवहारों का निरीक्षण करके हम जो अनुमान लगाते हैं उनकी उत्तम प्रकार से व्याख्या करते हैं। इस प्रकार निरीक्षण विधि मे निम्नांकित तीन प्रकार की क्रियाएँ करते है—

(१) मानसिक अनुभूतियों का प्रदर्शन करने वाले व्यवहारों का निरीक्षण

अन्य व्यक्तियों द्वारा अभिव्यक्त व्यवहार, जैसा कि प्रकरण १ १ मे बताया जा चुका है स्वत. निरर्थक होते हैं और उस व्यक्ति के लिये भी निरर्थक ही होते हैं जिसमे उनको समझने के लिए समृद्ध अनुभव की कमी होती है। अत निरीक्षण विधि की सफलता इस बात पर निर्भर रहती है कि निरीक्षण कहाँ तक अनुभव समृद्ध एव परिपक्व है। इस कारण निरीक्षण पद्धति मे विशेष कमियाँ हैं। उन प्रसीमाओं में से कुछ का उल्लेख नीचे किया जाता है—

(१) अध्यापक और बालक दोनो का मानसिक स्तर भिन्न होता है। इसलिये कम अनुभवी अध्यापक अपने छात्रो के व्यवहारो को देखकर उनकी मानसिक स्थिति का पता नही लगा सकते क्योंकि एक ही व्यवहार द्वारा कई मानसिक अनुभूतियो की अभिव्यक्ति होती है और कई व्यवहार एक ही मानसिक प्रक्रिया का प्रदर्शन करते हैं। इसलिये कभी-कभी तो अनुभवी निरीक्षकों को भी वास्तविक स्थिति का पता लगाना दुष्कर हो जाता है।

(२) जिस बालक के व्यवहार का निरीक्षण किया जाता है उसे जैसे ही यह ज्ञात होता है कि कोई व्यक्ति उसके आचरण की जाँच कर रहा है तो वह अपने व्यवहार मे परिवर्तन उपस्थित कर उसे कृत्रिम बना देता है, फलत निरीक्षण मे अशुद्धि आ जाती है।

(३) व्यवहारो के निरीक्षण में निरीक्षक की व्यक्तिगत मनोवृत्ति उनकी व्याख्या को प्रभावित कर देती है। प्राय यह देखा जाता है कि यदि विषयी[1] निरीक्षक का प्रियजन है तो उसके दोषों पर उसकी दृष्टि नहीं पड़ेगी, इसके विपरीत अप्रिय और अपरिचित विषयी के छोटे से छोटे दोष भी निरीक्षक के ध्यान को आकर्षित कर लेते हैं। तब तक निरीक्षण निष्पक्षभाव से नहीं किया जा जायगा तब तक उसमे वैज्ञानिकता की कमी बनी रहेगी।

(४) जिस समय निरीक्षक और निरीक्षित दोनों के स्तरो के बीच एक गहरी खाई रहती है उस समय निरीक्षक की व्याख्या सम्भवत. गलत हो जाय करती है।

(५) अनियन्त्रित निरीक्षण मे सभी प्रकार के मानव व्यवहारों की व्याख्या भी असम्भव प्रतीत होती है। ऐसे निरीक्षण मे जो निष्कर्ष प्राप्त होते हैं वे प्राय अवैध[2] होते हैं।

निरीक्षण विधि की इन कमियों और प्रसीमाओं के कारण हमे अपने बालकों के व्यवहार का अध्ययन करने के लिये दूसरी विधियों का प्रयोग करना पड़ता है।

२४ प्रयोगात्मक[3] विधियाँ

प्रयोग एक विशेष प्रकार का विषयगत निरीक्षण[4] है जो नियन्त्रित परिस्थिति मे किया जाता है। जिस व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन किया जाता है उसे प्रयोज्य अथवा विषयी कहते हैं जिस व्यवहार का विषयगत निरीक्षण किया जाता है उसको प्रभावित करने वाले कई तत्वों मे से केवल उस तत्व को परिवर्तित किया जाता है जिसका प्रभाव व्यक्ति के व्यवहार में देखा जाता है। अन्य शेष तत्वों को नियन्त्रण कर लिया जाता है, उदाहरण के लिये यदि मैं यह जानना चाहता हूँ कि दण्ड का सीखने की क्रिया पर क्या प्रभाव पड़ सकता है तो सीखने की क्रिया को प्रभावित करने वाले अन्य घटकों—अभ्यास, उत्प्रेरणा, पुरस्कार, बुद्धि, प्रतियोगिता आदि—को नियंत्रण में रखना होगा।

---

1 Subject
2 Not valid
3 Experimentation
4 Objective observation

प्रयोग के प्रतिष्ठित आकल्पन[1] में प्रत्येक तत्व को नियंत्रित किया जा सकता है। यदि वास्तव में निरीक्षण पूर्णतः नियंत्रित हो सकता है तो प्रयोगकर्ता को थोड़े से प्रदत्त[2] एकत्र करने पड़ते हैं। भौतिक विज्ञान में तो ऐसा करना आसान लगता है कि व्यवहारात्मक विज्ञानों[3] के सभी घटकों को अपनी इच्छानुसार नियंत्रित करना असम्भव सा प्रतीत होता है। प्राणी का व्यवहार बड़ा परिवर्तनशील है क्योंकि उस पर बाह्य एवं आन्तरिक घटकों का प्रभाव निरन्तर पड़ता रहता है। इसलिये प्रयोगकर्ता को प्रत्येक प्रयोग में कई निरीक्षण लेने पड़ते हैं और उनकी केन्द्रीय प्रवृत्ति का आकलन करना पड़ता है।

प्रत्येक प्रयोग में तत्वों पर नियंत्रण करने की बड़ी आवश्यकता होती है क्योंकि अनियंत्रित घटकों का प्रभाव प्रयोग के निष्कर्षों को अशुद्ध बना सकता है। लेकिन मनोविज्ञान ऐसा विज्ञान है जो सभी परिवर्त्यों को नियंत्रण में ला सकता है? हमारे विज्ञान की इस सीमा के कारण हमें अपने प्रयोगों को बार बार कई परिस्थितियों में दुहराना पड़ता है। कई बार कई दशाओं में इस प्रकार किये गये प्रयोगों से जब एक समान निष्कर्ष उपलब्ध होते हैं तब हम एक निश्चित सिद्धान्त का निर्माण करते हैं। प्रयोग करने के बाद ही हम किसी निश्चित वैज्ञानिक नियम का प्रतिपादन करते हैं। ये नियम सम्बन्धों का स्थापन करते हैं—ऐसे सम्बन्ध जो स्वतन्त्र एवं परतन्त्र चल-राशियों के बीच में निश्चित किये जा सकते हैं।

साधारणतः प्रयोग दो प्रकार के होते हैं—

(१) थैंत[4]

(२) घटक निर्णायक[5]

यदि प्रयोगकर्ता सीखने वाले के तनाव (स्वतन्त्र चलराशि) और सीखने की क्षमता के बीच (परतन्त्र चलराशि) थैंत सम्बन्ध निकालना चाहता है तो सीखने वाले के तनाव की मात्रा कम या अधिक करता है। यदि वह उन तत्वों को निश्चित करना चाहता है जिससे महत्वपूर्ण सम्बन्ध हो सकते हैं तो वह स्वतन्त्र चलराशि की मात्रा में कमी या बढ़ती नहीं करता, वह इस चलराशि की केवल दो मात्राओं का प्रयोग करके यह निर्णय देता है कि क्या इस चल राशि का परिवर्तन परतंत्र चलराशि पर कोई प्रभाव डाल सकता है। इस प्रकार के प्रयोग घटक निर्णायक कहलाते हैं।

इस प्रकार के प्रयोगों को किसी प्रयोगात्मक प्रोग्राम में सर्व प्रथम स्थान दिया जाता है। ये प्रयोग प्रश्न 'क्या' का उत्तर देते हैं जबकि थैंत सम्बन्धात्मक प्रकार के प्रयोग प्रश्न 'कैसे' का उत्तर देने के लिये किये जाते हैं।

परीक्षा नियंत्रण विधि

किसी मनोवैज्ञानिक परिकल्पना[6] की जाँच और व्याख्या करने के लिये कुछ और प्रयोग किये जाते हैं जिनमें परीक्षा अथवा वर्ग का नियंत्रण करते हैं। परीक्षा नियंत्रण विधि[7] में सामान्य तथा परिवर्तित दशाओं के मध्य निष्पादन[8] का निरीक्षण किया जाता है। दार्ष्टिक तीक्ष्णता[9] का अध्ययन हम दो अवस्थाओं के बीच कर सकते हैं—सामान्य प्रकाश और तेज प्रकाश में। यद्यपि

---

1. Classical design
2. Observations
3. Behavioural sciences
4. Functional
5. Factorial
6. Psychological hypothesis
7. Control-test method
8. Performance
9. Visual accenty

दोनों दशाओं में तीक्ष्णता का अन्तर कई बार देखा जाता है फिर भी प्रयोज्यों को बदला नहीं जाता और न दो प्रयोज्यों के भिन्न वर्गों पर ही प्रयोग किया जाता है। इस विधि को हम अन्तर की विधि[1] के नाम से भी पुकारा करते हैं। इस विधि का उपयोग उस समय किया जाता है जिस समय एक परिस्थिति से दूसरी परिस्थिति में कोई स्थानान्तर अथवा अभ्यास का प्रभाव होता दिखाई नहीं देता।

वर्ग नियंत्रण विधि

एक तत्त्व के प्रभाव को छोड़कर अन्य सभी समान तत्त्वों के प्रभाव से पूर्ण प्रयोज्यों के दो समान वर्गों का निरीक्षण करने के लिये वर्ग नियंत्रण प्रविधि का प्रयोग किया जाता है। उस तत्त्व की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति का प्रभाव देखा जाता है तब वह प्रयोग घटक-निर्णायक का हो जाता है। दो वर्गों के निष्पादन के बीच भिन्नता को परतंत्र चरराशि माना जाता *है क्योंकि वह उस तत्त्व पर निर्भर रहती है क्योंकि अन्य सभी तत्त्वों का प्रभाव लुप्त कर दिया* जाता है।

प्रयोजनों के जिन दो वर्गों पर प्रयोग किया जाता है उनकी प्रारम्भिक योग्यता में समानता रखी जाती है। इस शर्त को पूरा करने के लिये दोनों वर्गों की उन क्षमताओं का स्तर समान लिया जाता है जो निष्पादन को प्रभावित कर सकती है। अब चूँकि पूरी तरह से समानता रखने वाले दो वर्गों का मिलना असम्भव सी बात है, इसलिये प्रयोगकर्ता केवल उन्हीं विशेषताओं के हिसाब से दोनों वर्गों में समानता स्थापित करता है जो परतंत्र राशि को प्रभावित कर सकती है। मान लीजिये हम इस परिकल्पना को जांच करना चाहते हैं कि गद्यांशों को याद करने के अभ्यास से पद्य याद करने की योग्यता बढ़ जाती है। वर्ग नियंत्रण विधि का आकल्पन[2] समझाने के लिये पहले ऐसे प्रयोज्यों का वर्ग चुना जाता है जो रट करने की योग्यता में समजातीय होते हैं और जो एक दूसरे से बुद्धि के अनुसार भिन्न नहीं होते। तब सभी प्रयोज्यों की कविता याद करने की क्षमता को माप करने के लिये एक पूर्व-परीक्षा[3] दी जाती है। इन प्रयोज्यों में से समान क्षमता वाले प्रयोज्यों को दो वर्गों में बाँट दिया जाता है। इन दोनों वर्गों की कविता याद करने की क्षमता पर फलांकों का मध्यमान तथा प्रमाप विचलन लगभग समान होता है। इनमें से एक वर्ग को प्रयोगात्मक और दूसरे को नियन्त्रित वर्ग मान लिया जाता है। प्रयोगात्मक वर्ग को गद्य याद करने का अभ्यास दिया जाता है और नियन्त्रित वर्ग को ऐसा कोई अभ्यास नहीं दिया जाता। कुछ अभ्यास देने के उपरान्त दोनों वर्गों को कविता याद करने की क्षमता का मापन करने की परीक्षा दी जाती है। यह अन्तिम परीक्षा होती है।

मान लीजिये इस प्रयोग के बाद हमको निम्न प्रदत्त प्राप्त होता है—

पूर्व परीक्षा में प्राप्त कविता अंक	प्रशिक्षण गद्य	अन्तिम परीक्षा कविता
प्रयोगात्मक वर्ग ८८	—	१०८
नियन्त्रित वर्ग ८८	×	९०
		अन्तर १८

दोनों वर्गों की प्रारम्भिक क्षमता समान थी क्योंकि दोनों वर्ग के मध्यमान ८८ थे किन्तु प्रयोगात्मक वर्ग को प्रशिक्षण देने के फलस्वरूप अन्तिम परीक्षा में दोनों वर्गों में १८ अंकों का अन्तर मिलता है। यह प्रशिक्षण और अभ्यास के फलस्वरूप प्राप्त हुआ है क्योंकि प्रारम्भ में तो दोनों वर्ग समान योग्यता के थे। नियन्त्रित वर्ग का फलांक थोड़ा सा (२ अंक) बढ़ गया है इसका कारण यह प्रतीत होता है

[1] Method of Difference
[2] Design
[3] Fore test

कि पूर्व परीक्षा देने से नियन्त्रित वर्ग को थोड़ा सा अभ्यास मिल गया। इसलिये हम यह मान कर चल सकते हैं कि प्रयोगात्मक वर्ग का फलांक भी पूर्व परीक्षा के अभ्यास के फलस्वरूप २ अंक बढ़ सकता है। शेष १८ अंकों का अन्तर अभ्यास के प्रभाव को सूचित करता है।

इस नियन्त्रित विधि से पता चलता है कि गद्य याद करने के अभ्यास से कविता याद करने की योग्यता में वृद्धि हो जाती है। इस विधि का प्रयोग उस समय किया जाता है जब कोई मापनीय वस्तु समय के साथ परिवर्तनशील होती है। दूसरे शब्दों में यदि पूर्व परीक्षा में भी अभ्यास मापनीय वस्तु को प्रभावित कर देता है तो वर्ग नियन्त्रण विधि का प्रयोग किया जा सकता है।

वृद्धि और अधिगम[1] के अतिरिक्त अन्य सभी परिस्थितियों में वर्ग नियन्त्रण विधि प्रयुक्त होती है।

समविषयी युग्म विधि

किसी स्वतन्त्र राशि के प्रभाव का मूल्यांकन करने के लिये दो वर्गों का चुनाव कभी कभी दूसरे तरीके से भी किया जाता है। प्रयोगकर्त्ता प्रोज्यों को भिन्न भिन्न युग्म बनाता है और प्रत्येक युग्म के एक सदस्य के निष्पादन[3] की दूसरे सदस्य के निष्पादन से तुलना करता है। मान लीजिये हम यह जानना चाहते हैं कि निर्देशयोग्यता[4] पर बुद्धि का क्या प्रभाव पड़ता है तो हम आयु और लिंग के अनुसार दो ऐसे वर्गों का चयन करते हैं कि एक वर्ग का एक सदस्य दूसरे वर्ग के पहले सदस्य से आयु तथा लिंग में पूर्ण समता रखता हो किन्तु बुद्धि के अनुसार पहले वर्ग सदस्य का बुद्धि अंक ९० और उसके साथी का बुद्धि अंक १२५ है। इसी प्रकार अन्य सदस्यों में समता, आयु और लिंग के हिसाब से तथा बुद्धि के अनुसार विषमता रखी जाती है।

इन दोनों वर्गों को किसी भी निर्देश योग्यता—मापक परीक्षा देकर उनकी निर्देश योग्यता के फलांकों के बीच अन्तर ज्ञात किया जाता है। यदि पहले वर्ग की फलांकों का मध्यमान ३० और दूसरे वर्ग के फलांकों का मध्यमान ४६ है तो इस अन्तर की अर्थ सूचकता[5] ज्ञात कर ली जाती है।

इस विधि में नियन्त्रण के स्थान पर चुनाव को विशेष महत्व दिया जाता है।

प्रयोगात्मक विधियों की समीक्षा

प्रयोगात्मक विधियों में अन्य विधियों की तरह दोष निकालने का प्रयत्न किया गया है। यह प्रायः कहा जाता है कि वास्तविक मानवीय व्यवहार जिसका हम अध्ययन करना चाहते हैं, प्रयोगशालाओं में कृत्रिमता धारण कर लेता है। प्रयोग परिस्थिति में अपने को पाकर प्रयोज्य अपने आचरण में बनावटीपन स्वतः ले आता है। इस कठिनाई से बचाने के लिये प्रयोगकर्त्ता कई बार प्रयोग करते हैं। कोई भी व्यक्ति मानव-व्यवहार को साधारण अवस्थाओं में अध्ययन नहीं कर सकता जैसे ही हम व्यवहार का परीक्षण या प्रायोगात्मक अध्ययन आरम्भ करते हैं सामान्य स्थितियाँ असामान्यता प्राप्त कर लेती हैं इसलिये मनोवैज्ञानिक अपने विषय की परिसीमाओं को ध्यान में रखकर एक व्यवहार के सीमित स्वरूपों का चयन कर अध्ययन आरम्भ करता है। व्यवहार के इन सीमित पहलुओं का विश्लेषण करने के बाद ही वह व्यवहार का समन्वित चित्र उपस्थित करने में समर्थ होता है।

प्रयोगात्मक विधियों की कृत्रिमता पर कुछ मनोवैज्ञानिक आलोचकों ने बहुत अधिक जोर दिया है किन्तु उनका यह मत विशेष महत्व नहीं रखता। भौतिक शास्त्र जैसे पूर्ण विज्ञानों में भी पिण्डों की गति का अध्ययन शून्य में करते हैं। किन्तु क्या कोई बता सकता है कि उस शून्य का

---

[1] Matched pair technique
[2] Learning
[3] Performance
[4] Suggestibility
[5] Significance of difference of means
[6] See author's Book on Educational and Psychological Statistics, chapter 8.

अस्तित्व किस जगह है ? इस विचार से तो भौतिकशास्त्र के बहुत से प्रयोग भी कृत्रिम और बनावटी माने जाने चाहिये। यथार्थ बात तो यह है कि प्रत्येक विज्ञान अपने तथ्यों की सत्यता सिद्ध करने के लिये इस प्रकार का कृत्रिम वातावरण तो उपस्थित करता ही है जैसाकि मनोविज्ञान की प्रयोगशालाओं में प्राय उपस्थित किया जाता है।

प्रयोगात्मक विधियों की ऐसी ही कुछ आलोचनाएँ और की जाती हैं। उनमें से नीचे दो ऐसी आलोचनाओं का उल्लेख किया जा रहा है।

(१) शिक्षार्थियों के सभी अनुभूतियों और मानसिक प्रक्रियाओं पर प्रयोग नहीं किये जा सकते। कुछ चन्द बातें अवश्य ऐसी हैं जिनको प्रयोगों की विषय वस्तु बनाया जा सकता है। भावनात्मक संघर्षों का बुद्धि पर क्या प्रभाव पड़ता है इस प्रभाव को जानने के लिये निरीक्षण तो किया जा सकता है किन्तु कोई विशेष प्रयोग नहीं किया जा सकता। इस कमी को पूरा करने के लिये पशुओं पर प्रयोग किये जाते हैं और पशु मनोविज्ञान प्रयोगशालाओं से जो निष्कर्ष निकाले जाते हैं उनको व्यक्ति के लिये भी सत्य मान लिया जाता है।

(२) प्रयोगात्मक पद्धति में व्यक्ति का मानसिक प्रक्रियाओं पर निर्जीव पदार्थों की तरह नियन्त्रण नहीं किया जा सकता। उदाहरणार्थ, परीक्षार्थियों की मानसिक स्थिति पर बुद्धि परीक्षा लेते समय नियन्त्रण नहीं किया जा सकता। कुछ परीक्षार्थी तो अपने हठ-भाव के कारण परीक्षा में सहयोग देना भी पसन्द नहीं करते। कुछ भावनात्मक संघर्ष अथवा शारीरिक परेशानी के कारण अपनी बुद्धि का प्रदर्शन नहीं कर सकते। इस प्रकार प्रयोगों से प्राप्त प्रदत्त पूर्ण विश्वस्त और शुद्ध नहीं होते।

प्रयोगात्मक विधियों की इन परिसीमाओं के कारण व्यवहार का विषयगत अध्ययन करने के लिये मनोवैज्ञानिक अन्य विधियों का आश्रय लेता है।

२.५ भिन्नक विधियाँ[1]

मनोविज्ञान की जिन विधियों में वैयक्तिक विभिन्नताओं का ही अध्ययन किया जाता है उनको हम भिन्नक विधियाँ कहते हैं। इन विधियों में स्वतंत्र चल राशि का साभिप्राय परिवर्तन नहीं किया जाता, शोधकर्त्ता[2] अध्येय वस्तु से सम्बन्धित प्रयोज्यों को चुन लिया करता है। जिस बात को ध्यान में रख कर इन व्यक्तियों का चुनाव किया जाता है, वही स्वतन्त्र चलराशि मान ली जाती है। इस वस्तु पर अनुसंधाता का पूर्ण नियन्त्रण नहीं होता। जिस सीमा तक प्रयोगात्मक राशियाँ प्रयोगकर्ता द्वारा नियन्त्रित की जाती हैं उस सीमा तक वे भिन्नक विधियों का अनुसरण करने वाले अनुसंधान के द्वारा नियन्त्रित नहीं की जातीं। यद्यपि मानव व्यवहार का अध्ययन करने के लिये प्रयोगात्मक विधियाँ अधिक शुद्ध एवं सत्य मानी जाती हैं क्योंकि उनके निष्कर्षों का सत्यापन किया जा सकता है, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि कौनसी विधि अधिक अच्छी और उपयोगी है। भिन्नक विधियों की सबसे बड़ी उपयोगिता इसमें है कि जहाँ पर प्रयोगात्मक विधियाँ हमारी सहायता करने में असमर्थ होती हैं वहीं पर विधियाँ हमारी सहायता करती हैं।

इन विधियों के ४ मुख्य भेद माने जाते हैं—

(१) साहचर्यात्मक[3] विधि

(२) अन्वायाम तथा अनुप्रस्थ दैर्घ्य अभिगमन[4]

(३) सांख्यिकीय विधियाँ[5]

साहचर्यात्मक विधियाँ—मनोविज्ञान के क्षेत्र में जितने भी अध्ययन साहचर्य अथवा अनुबन्ध से सम्बन्ध रखते हैं वे सभी भिन्नक विधियाँ कहलाती हैं। इसलिये व्यक्तित्व, बुद्धि, तथा

---

[1] Defferantial methods
[2] Investigator
[3] Correlational
[4] Longitudinal and cross-sectional approaches
[5] Statistical methods

समान व्यवहार अभिरोध पर किये गए अनेक अध्ययनों[1] में साहचर्यात्मक विधियों का अनुसरण किया जाता है। मनोवैज्ञानिक व्यक्तियों को उसी रूप में देखता है जिस रूप में वे उसके सामने आते हैं। उनका उसी रूप में अध्ययन करता है। वह जब कभी उन पर परीक्षाएँ लागू करता है तब प्रयोगकर्ता की तरह परिस्थितियों को नियंत्रित करने का प्रयत्न नहीं करता। इसमें 'विषयी' एक दूसरे से व्यवहार प्रदर्शन में स्वाभाविक ढंग से भिन्न होंगे किन्तु उनमें सहविचरणशीलता[2] अवश्य होगी।

भविष्य कथन में सहायता मिलती है। इस कारण भी ये विधियाँ महत्त्वपूर्ण मानी जाती हैं। यदि बुद्धि और निष्पादन में सहसम्बन्ध की मात्रा काफी अधिक है तो बुद्धिमान व्यक्ति के विषय में इस भविष्य कथन में कोई त्रुटि नहीं हो सकती कि वह कक्षा में सफलता प्राप्त करेगा। यदि किसी उद्योग में कुछ श्रमिकों की बुद्धि, और व्यक्तित्व परीक्षाएँ ली जायें और इन परीक्षाओं के प्राप्तांक तथा उनकी उद्योग में सफलता के अनुसार की गई कोटियों[3] में ऊँचे सहसम्बन्ध गुणक मिलें तो इस उद्योग के लिये इन्हीं के द्वारा सफल एवं व्यक्तियों का चुना जा सकता है जिनकी बुद्धि अभिरुचि और व्यक्तित्व परीक्षाओं में ऊँचे अंक मिलते हैं क्योंकि यह देखा जा चुका है कि उद्योग में सफलता सामान्यतः उनको मिलती है जिनको बुद्धि तथा व्यक्तित्व परीक्षा में ऊँचे अंक मिलते हैं। इस प्रकार साहचर्यात्मक विधियाँ पूर्वकथन[4] में मनोवैज्ञानिकों की विशेष मदद करती हैं।

व्यक्ति का विकास वातावरण अथवा वंशानुक्रम से अधिक प्रभावित होता है। इसका ज्ञान प्राप्त करने के लिये हम ऐसे व्यक्तियों के मानसिक शारीरिक अथवा व्यक्तित्व सम्बन्धी विकास का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं जिनका वंशानुक्रम लगभग एक ही अथवा एकसा होता है। आनुवंशिकता एक ही होती है समरूपजों की[5] और वह एकसी होती है। युग्मजों की क्योंकि समरूपज एक ही फर्टीलाइज्ड सेल के दो भाग हो जाने पर पैदा होते हैं और युग्मज दो जीवकोषों के एक साथ फर्टीलाइज्ड होने पर उत्पन्न होते हैं। इन सारूप्य युग्मजों और सहोदर भ्रातृ सदृश युगलों[6] की बुद्धि लब्धियों के बीच साहचर्य गुणकों की गणना की गई है। यह देखा गया है कि सारूप्य युगलों के बीच साहचर्य गुणक ·९०, सहोदर युगलों के बीच ·७० और सगे भाई भाई के बीच ·५० और बाबा नाती के बीच ·१५ तक का सहसम्बन्धगुणक मिला है। इस तथ्य से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि व्यक्तियों में बुद्धि आनुवंशिकता से प्राप्त होती है। सारूप्य युगलों की बुद्धि लब्धियों के बीच जो सहसम्बन्ध गुणक है वह सहोदरों बीच बुद्धिलब्धि के सहसम्बन्ध गुणक से बहुत अधिक होने से यह आशय निकाला जा सकता है कि बुद्धि उसी मात्रा में वंशानुक्रम से प्राप्त होती है जिस मात्रा में शारीरिक विशेषताएँ वंशानुक्रम से प्राप्त होती हैं।

अन्वायाम तथा अनुप्रस्थ छेदीय अभिगमन—विकासक्रम को समझने के लिये मुख्यतः दो [illegible] अनुप्रस्थ छेदीय [illegible] मापन करने के [illegible] प्रयत्न करता है। विकास के क्रम को बदलने का कोई प्रयत्न नहीं किया जाता क्योंकि वह सामान्य प्रवृत्ति को ही जानना चाहता है। ऐसा करने के लिये वह दो तरीके अपनाता है।

अन्वायाम अभिगमन—जिसमें किसी व्यक्ति विशेष अथवा व्यक्तियों के वर्ग विशेष के विकास का किसी विशेष आयु में अध्ययन करता है। फिर कुछ समय बाद उसी व्यक्ति अथवा

---

[1] Studies
[2] Concomitant variation
[3] Ratings
[4] Prediction
[5] Identical twins
[6] Fraternal twins

व्यक्ति समूह के विकासात्मक परिवर्तन का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिये उसका पुनर्परीक्षा करता है। इस तुलनात्मक अध्ययन से यह पता चल जाता है कि पुनर्परीक्षण के समय कितने परिवर्तन पाये गये। उदाहरण के लिये अगर किसी बच्चे का विकासात्मक अध्ययन ५+ और ११+ पर किया जाय तो विभिन्न प्रकार के मानसिक और शारीरिक परिवर्तन देखे जा सकते हैं।

(ख) अनुप्रस्थ छेदीय अभिगमन—इस विधि द्वारा भिन्न भिन्न आयुस्तर वाले बच्चों के समुदायों मे शारीरिक और मानसिक विशेषताओं का अध्ययन किया जाता है। यह अध्ययन एक ही समय पर किया जाता है। किसी विशेष आयुस्तर वाले बालकों मे पाई गई विशेषताओं की तुलना की जाती है उ [illegible]
क्रम से ये विशेषताएँ [illegible]
कि १ वर्ष के बच्चों के [illegible]
परिवर्तन वर्तमान हैं। १½ वर्ष की आयुस्तर वाले बाल समुदाय की शारीरिक विशेषताओं का अन्दाजा लगाया जाता है। २ वर्ष के आयुस्तर वाले बालसमुदाय की विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। इन भिन्न भिन्न आयुस्तरों के बालकों के प्रमापों की तुलना करके उनके विकास क्रम के विषय मे निश्चित धारणाएँ बनाई जा सकती हैं।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट हो गया होगा कि भिन्नक और प्रयोगात्मक विधियों में क्या अन्तर है। प्रयोगात्मक विधि से हम मानसिक अथवा शारीरिक विकास के विषय में कोई जानकारी प्राप्त नही कर सकते। चूँकि आयु और मानसिक अथवा शारीरिक विकास दोनों इस प्रकार साथ-साथ चलते हैं कि न तो हम आयु को ही नियंत्रित कर सकते हैं और न विकास के विभिन्न क्रमों को ही। अनुसंधाता वस्तुओं को उसी रूप में ग्रहण करता है जिस रूप में वे उसको मिलती हैं और इन दोनों प्राकृतिक बातों के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है। इसी प्रकार अन्य प्रकार की वैयक्तिक विभिन्नताओं का लाभ प्राप्त करने के लिये वह भिन्नक विधियों का प्रयोग करता है। वह स्त्री और पुरुषों की शारीरिक शक्ति, कद, भार, बुद्धि आदि गुणों और विशेषताओं का तुलनात्मक अध्ययन करता है। अनुप्रस्थ छेदीय अभिगमन आजकल बड़ा ही महत्वपूर्ण तरीका हो गया है।

साख्यिकीय विधियाँ[3]—भिन्नक विधियों की आजकल साख्यिकीय विधियों में गिनती की जाती है क्योंकि उनमें साख्यिकी गणनाओं पर विशेष बल दिया जाता है। साख्यिकीय विधियों मे हम मुख्यतः तीन कार्य करते हैं (अ) कही से उपलब्ध अथवा एकत्र किये हुए प्रदत्त का कुछ केन्द्रीय वृत्तियों और विचरणशीलता के पदों मे वर्णन करते हैं। (ब) दो या दो से अधिक परिवर्त्य राशियों के बीच सम्बन्ध को किसी समीकरण द्वारा प्रदर्शित करते हैं। (स) और इस आंकिक प्रदत्त के सहारे कुछ निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न करते हैं।

अध्याय ३

वंशानुक्रम का वातावरण और शिक्षा

Q 1 How far is it necessary for the teacher to understand the mechanism of heredity ?

३ १ शिक्षा का उद्देश्य है बालक की शारीरिक और मानसिक वृद्धि तथा उसका सर्वांगीण विकास। उसकी शारीरिक, मानसिक तथा संवेगात्मक शक्तियों का विकास किस तत्त्वों पर निर्भर रहता है और कौन सी बातें उसके व्यक्तित्व के विकास मे सहयोग देती हैं इसका ज्ञान अध्यापक के लिये नितान्त आवश्यक है। विकास के इस कार्य मे आधुनिक सभी मनोवैज्ञानिक वंशानुक्रम और वातावरण का सापेक्षिक महत्व स्वीकार करते हैं। एक समय था जब मनोविज्ञानिकों के समक्ष यह समस्या थी कि इन दोनो मे से कौनसा तत्व व्यक्ति के विकास पर सबसे अधिक प्रकाश डालता है। कुछ विद्वान वातावरण को अधिक महत्त्व देते हैं और कुछ वंशानुक्रम को। व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, व्यक्तित्व सम्बन्धी विकास मे अथवा उसके समजन अथवा कुसमजन मे वातावरण और वंशानुक्रम मे से किसका अधिक प्रभाव पड़ता है इस तथ्य की विवेचना इस अध्याय मे की जायगी। वास्तव सत्य तो यह है कि वंशानुक्रम और वातावरण दोनो ही शिशु के व्यक्तित्व के विकास की आधार शिलाएँ है। दोनो का जो अच्छा या बुरा प्रभाव व्यक्ति के व्यक्तित्व पर पड़ता है उसका विश्लेषण नहीं किया जा सकता। तब भी वातावरण और वंशानुक्रम का शिक्षा के क्षेत्र मे सापेक्षिक महत्व स्थिर करने से पूर्व हम इन दोनो तत्वो का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे क्योंकि विकास क्रम को उचित रूप से समझने के लिये आनुवंशिकता और वातावरण का सम्बन्ध जानना आवश्यक है।

३ २ **वंशानुक्रम का अर्थ**—वैसे तो 'वंशानुक्रम' अथवा 'आनुवंशिकता' शब्द का प्रयोग कई प्रकार से किया जाता है किन्तु हम यहाँ पर इसका वैज्ञानिक अर्थ प्रस्तुत करने का प्रयत्न करेंगे। आनुवंशिकता वह जैव-वैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसके फलस्वरूप जीन्स के माध्यम से बच्चे का कद, रूप, रंग, बुद्धि आदि बातें थोड़ी अथवा अधिक मात्रा में उसके पूर्वजों से प्राप्त होती हैं।[1] आनुवंशिकता जीवरूप में ही वंशानुगत होती है।

ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि बालक के गुण, दुर्गुण, विशेषताएँ और कमजोरियाँ किसी निश्चित नियम से निर्णीत होती हैं। समान कारण समान परिणाम को जन्म देता है[2] प्राय देखा जाता है कि प्रत्येक बालक शरीर मे, रंग रूप मे, रुचि और आदतों मे अपने माता पिता के समान होता है। हृष्टपुष्ट तथा बलवान माता पिता के प्राय हृष्टपुष्ट और बलवान संतान पैदा होती है। दुर्बल माता पिता के दुर्बल सन्तान होती है। यहाँ पर यह जान लेना आवश्यक है कि यह आनुवंशिकता संतान को किस प्रकार प्राप्त होती है।

३ ३ **वंशानुक्रम की प्रक्रिया**[3]—व्यक्ति का जीवन एक जीवित कोष के रूप मे आरंभ होता है। इस कोष का निर्माण दो बीज कोषों[4] के सम्मिश्रण के फलस्वरूप होता है। पुरुष की ओर से

---

[1] (a) Heredity is the unique combination of genes.
(b) Heredity is what is biologically inherited

[2] Like begets the like

[3] Mechanism of heredity

[4] Germ cells

प्राप्त बीजकोष को हम शुक्रकोष स्पर्म[१] तथा नारी की ओर से प्राप्त बीजकोष को रजकोष
ओवम[२] कहते हैं। प्रत्येक रजकोष एवं शुक्रकोष में लगभग २४,२४ वंशसूत्र[३] होते हैं। प्रत्येक
वंशसूत्र में संख्या में कम कम ४० से लेकर १०० तक[४] जीवाणु पाये जाते हैं। ये जीवाणु जिनको
काफी शक्तिशाली अणुवीक्षण यन्त्र की सहायता से भी आसानी से देखा नहीं जा सकता जीन्स
कहलाते हैं। जब ये रजकोष और शुक्रकोष का संयोग होता है तब उनके इस सम्मिश्रण की क्रिया
को गर्भाधान[५] की प्रक्रिया की संज्ञा दी जाती है। जिस समय यह क्रिया समाप्त होती है तभी
प्राणी के जीवन का आरम्भ होता है। इस परिपक्व कोष[६] को जाइगोट[७] कहते हैं। संयोग के
फलस्वरूप साधारणतः नारी का एक ही बीजकोष परिपक्व होता है और एक ही बच्चे का जन्म होता
है किन्तु जब दो बीजकोष (रजकोष) परिपक्व हो जाते हैं तब जुड़वां बच्चे भी पैदा हो जाते हैं।

वे जीन्स जिनका उल्लेख किया गया है पैदा होने वाले व्यक्ति की विशेषताओं को निश्चित
करते हैं। प्राणी का विकास उसके गुण और अवगुण इन जीन्स में स्थित शक्तियों पर निर्भर रहते
हैं। यह जीन्स ही हैं जो निश्चित करते हैं कि पैदा होने वाला शिशु बुद्धिवान् होगा अथवा मन्द
बुद्धि। ये इस बात को निश्चित करते हैं कि उसका रूप, रंग, आकार, कद, भार कैसा होगा। परिपक्व
बीजकोष में पैदा होने वाले जीव के सभी गुण और विशेषताएं छिपी रहती हैं जो बाद में प्राणी
की वातावरण के साथ अन्तः क्रिया के फलस्वरूप विकसित हो जाया करती हैं। अनुमानतः प्रत्येक
जीन माता पिता की किसी निश्चित विशेषता का प्रतिनिधित्व करता है। यदि कद के लिये माता
का जीन कद के लिये पिता के जीन से संयोग करता है तो सन्तान भी ऊँचे कद की होती है। यदि
माता और पिता की योग्यता के प्रतिनिधि जीन आपस में संयोग करते हैं तो बालक बुद्धिमान
होता है। इस प्रकार वंशानुक्रम की प्रक्रिया के सहारे मातापिता की विशेषताएं उनके बालकों
संक्रमित होती रहती हैं। किन्तु किस जीन का किस जीन से संयोग होगा यह बात पूरी तरह भाग्य
पर निर्भर रहती है। प्रत्येक वंशसूत्र[८] बहु संख्यक जीन्स होने के कारण हजारों संचय[८] बन सकते
हैं। गणितज्ञों का कहना है कि एक रजकोष और शुक्रकोष के संयोग से १६,७०,२१६ प्रकार
भिन्न भिन्न विशेषताओं वाले बच्चे पैदा हो सकते हैं? कहने का आशय केवल इतना ही समझना
चाहिये कि बच्चा किस प्रकार का होगा, नर अथवा मादा, बुद्धिमान अथवा मन्द बुद्धि, लम्बा
अथवा नाटा, यह बात पूरी तरह से भाग्य पर निर्भर रहती है। कोष के परिपक्व[९] होने पर न
प्राणी की विशेषताएं सदा के लिये निश्चित हो जाती। दूसरे शब्दों में वंशानुक्रम की प्रक्रिया
कोष परिपक्व होते ही अन्त हो जाता है। इसके बाद जीन में जो कुछ परिवर्तन होता है उसको
वंशानुक्रम की प्रक्रिया के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता। बस यहीं से वातावरण का प्रभाव शुरू
हो जाता है।

यह जाइगोट आनुवंशिकता की प्रक्रिया के बाद दो कोषों में विभाजित हो जाता है, जिन्हें
वैज्ञानिक उनमें से एक कोष को जीवकोष[१०] और दूसरे को शरीर कोष[११] कहते हैं। इस जीवकोष
में मातापिता के जीन्स संक्रमित हो जाते हैं इसलिये यह जीवकोष ही वास्तव में आनुवंशिकता का

---

१ Sperm
२ Ovum
३ Chromosomes
४ According to Thomas these are 3000 genes in evevy chromosone.
५ Fertilisation of cells
६ Fertilised cell
७ Zygote
८ Combinations
९ Fertilisaeti
१० Germ
११

का हम वंशानुक्रम की निरन्तरता का सिद्धांत भी कह सकते हैं किन्तु इस नियम से कुछ विरोधा
सा रखते हुए शेष दो नियम और हैं। क्या कारण है कि समान माता पिता के बच्चे एक
से योग्यता में भिन्न होते हैं ? अथवा लम्बे कद के माता पिता के कभी-कभी नाटे कद की स
भी क्यों पैदा हो जाती है ? इन प्रश्नों का उत्तर शेष दो नियम देते हैं।

यद्यपि कुछ बालक एक ही घराने में जन्म लेते हैं, एकसा ही वातावरण उनको मिल
तब भी उनमें आपस में विभिन्नताएं पैदा हो जाती हैं। एक ही माता पिता के सभी बालक
ही गुण एक ही विशेषता के नहीं होते इसका एकमात्र कारण जीन-संयोग ठहराया जाता है।
किसी बच्चे के लिये माता और पिता के लम्बे कद के जीनों का संयोग होता है तो वह बड़े
पर लम्बे कद वाला हो जाता है इसके विपरीत यदि माता को नाटे कद के जीन पिता के
कद के जीनों से संयोग करते हैं तो शिशु बड़ा होकर नाटे कद का हो जाता है। इस प्रकार
ही माता-पिता से पैदा हुए दो बच्चों के कद में भिन्नता आ जाती है। बस इसी को हम वि
का नियम कहते हैं।

प्रतीपगमन का नियम बताता है कि बालकों में प्रायः उस विशेषता अथवा यो
की कमी होती है जिसमें उनके माता पिता अधिक श्रेष्ठ होते हैं और उस योग्यता की मात्रा
होती है जिसमें उनके माता-पिता निम्न कोटि के होते हैं। उदाहरणार्थ लम्बे कद वाले माता-
के बच्चे प्रायः उतनी लम्बाई के नहीं होते जितनी लम्बाई उनके माता पिता की थी और न
नाटे ही होते हैं जितने कि उनके माता पिता होते हैं। इस प्रकार संतान दोनों दिशाओं में प्र
गमन करती है।[1] ऐसा ज्ञात होता है कि प्रकृति दोनों ओर की अति (Extremes) को रोक
प्रयत्न कर रही है। सांख्यिकीय विधियों द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि लम्बे कद के
पिता के औसत से उनके बच्चों के कद का औसत कम या अधिक होता है। गैल्टन ने अप
अनुसंधान में यह देखा कि ७२" औसत कद वाले अंग्रेज पिताओं के पुत्रों का औसत कद ७०"
६६" औसत कद वाले अंग्रेजों के पुत्रों का औसत कद ६८ ३" था। उसने यह भी देखा कि
लड़कों का औसत कद ६६ १४" था। इस प्रदत्त के आधार पर बच्चों के कद में प्रतीपगम
प्रवृत्ति स्पष्ट दिखाई देती है।

वंशानुक्रम के सिद्धांत
(Theories of Evolution)

Q 3. Discuss how parental characteristics are transmitted to
offsprings What are the implications of theories of evolution of educ
theory ?

जैव-वंशानुक्रम से किस प्रकार पैतृक विशेषताएं अथवा योग्यताएं एक पीढ़ी से दूसरी
[illegible]

[illegible] में कुछ सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। ये सिद्धान्त
निम्न हैं—

मेण्डल का नियम[2]

यद्यपि जीन्स के माध्यम से एक पीढ़ी की जन्मजात विशेषताएं दूसरी पीढ़ी में स
होती रहती हैं कभी कभी ऐसा भी होता है कि पूर्वजों के गुण एक पीढ़ी में सुप्तावस्था में र
बाद भी दूसरी पीढ़ी में प्रकट हो जायें। इस बात को सिद्ध करने के लिये मेण्डल के नि

[1] In successive generations variants tend to move towards the averag
species of which they form a part.

[2] Mendal's Law

उल्लेख किया जाता है। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो मैण्डल का नियम प्रतीपगमन के नियम का एक विशेष रूप ही है।

मैण्डल ने दो प्रकार की मटर—एक छोटी और दूसरी बड़ी—लेकर उन दोनों के मिश्रण से वर्ण संकर जाति की मटर पैदा की। पहली पीढ़ी में दो विभिन्न नस्ल की मटरों को मिलाकर मिश्रित जाति की नस्ल पैदा की गई उसके बोने पर सभी मिश्रित जाति की मटर पैदा न होकर आधी मिश्रित जाति की और आधी शुद्ध जाति की मटर पैदा हुई। इस शुद्ध जाति की मटरों में एक चौथाई छोटी शुद्ध जाति की और एक चौथाई बड़ी शुद्ध जाति की थीं। दूसरी पीढ़ी में शुद्ध जाति की मटरों से शुद्ध जाति की मटरें पैदा हुईं और आधी मिश्रित जाति की मटरों से फिर आधी शुद्ध और आधी मिश्रित हुईं। इस तथ्य को निम्न चित्र द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है—
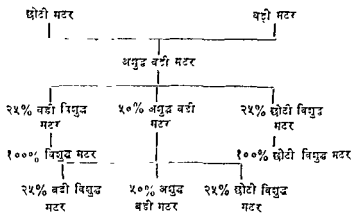
ऊपर दिये हुए वंशवृक्ष को देखने से पता चलता है कि

(१) छोटी मटर से छोटी मटर पैदा होती है बड़ी मटर से बड़ी मटर

(२) छोटी और बड़ी मटर मिलाकर बोने से छोटी मटर एकदम विलीन हो जाती है अर्थात इस पीढ़ी में छोटेपन का गुण एकदम लुप्त हो जाता है और बड़ेपन का गुण एकदम व्यक्त होने लगता है

(३) वर्ण संकर जाति की मटर में वर्ण संकरता का प्रभाव कम नहीं होता। ऐसी मटर बोने से २५% बड़ी और ५०% वर्णसंकर जाति की मटर पैदा होती है। दूसरे शब्दों में प्रकृति वर्णसंकरता में वृद्धि नहीं चाहती और यदि किसी प्रकार की वर्ण संकरता आ भी जाती है तो कालक्रम में वह लोप भी हो जाती है

अन्ततोगत्वा शुद्ध सन्तान ही जीवित रह जाती है। यही नियम जानवरों पर लागू होता हुआ देखा गया है।

मैण्डल ने इस प्रयोग से यह सिद्ध कर दिया है कि पूर्वजों के गुण एक पीढ़ी में सुप्त रहने के बाद भी दूसरी पीढ़ी में प्रकट हो सकते हैं। इस प्रकार अब यह मान लिया गया है बच्चे केवल अपने माता-पिता में पाये जाने वाले गुणों के अधिकारी ही नहीं होते वरन जो गुण उनके माता पिता के दिखाई नहीं देते परन्तु उनके पितामह और प्रपितामह में थे वे गुण भी उनमें संक्रमित हो सकते हैं। यह भी देखा गया है कि यदि समय से पहले जन्म लेने के कारण कुछ बच्चों का कद, जिनके माता-पिता का कद सामान्य से अधिक होता है, बाल्यावस्था में तो सामान्य से भले ही कम रहे किन्तु अपने जीवनकाल में जन्मजात कमी को दूर कर वे पारिवारिक गुण को पुनः प्राप्त कर लेते हैं।

(१) वीजमैन का सिद्धान्त[1]
(२) लेमार्क का सिद्धान्त[2]
(३) डारविन का सिद्धान्त[3]

वीजमैन का जीवसनातनता का सिद्धात और शिक्षा

वीजमैन का जीव सनातनता का सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि व्यक्ति इसी प्रकार के जीवकोष को अपनी भावी संतान को सौंपता है जिस प्रकार का जीवकोष उसने अपने माता पिता से पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त किया था । इस जीवकोष पर अर्जित कोई प्रभाव नही पड़ता । जैसा कि अनुच्छेद ३ ३ मे बताया जा चुका है कि कोष के परिपक्व[4] होते ही जाइगोट के दो भाग हो जाते हैं—जीवकोष और शरीर कोष। जीवकोष मे किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता । व्यक्ति बड़ा होने पर इसे उसी रूप मे अपनी अगली पीढ़ी को सौंप दिया करता है ।

वीजमैन के मतानुसार सन्तान अपने माता पिता से उन्हीं विशेषताओं को प्राप्त करती है जो उन्हें अपने पूर्व पुरुषों से मिला करती है । बच्चे मातापिता के उन गुणों को पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्राप्त नही करते जिन्हें वे अपने जीवन मे परिश्रम और शिक्षा के द्वारा अर्जित करते हैं । अपने इस सिद्धान्त के प्रतिपादन हेतु वीजमैन ने चूहो की एक पीढ़ी की पूँछ काट दी किन्तु उसने देखा कि दूसरी पीढ़ी के चूहे पूँछ रहित न थे । इस प्रयोग से उसने निष्कर्ष निकाला कि वस्तुत माता पिता के अर्जित गुणों का संक्रमण वंशानुक्रम द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी मे नही होता बल्कि उन्हीं गुणो की प्राप्ति शिक्षा के माध्यम से हो सकती है । अत. मातापिता का कर्तव्य है कि वीजमैन के इस सिद्धान्त को ध्यान मे रखकर अपने बालकों के उचित विकास के लिये आरम्भ से ही उचित शिक्षा का, और उत्तम वातावरण का प्रबन्ध करें ।

वीजमैन की यह बात कि मातापिता के अर्जित गुणों का वंशानुक्रम से संक्रमण नहीं होता शिक्षक के लिये विशेष महत्व रखती है । शिक्षक को यह बात समझ लेनी है कि जब तक वह बच्चों के लिये उचित शिक्षा व्यवस्था नहीं करता तब तक देश की सेवा नहीं कर सकता। उसे समझ लेना है कि संगीतज्ञ की सतान इसलिये संगीतज्ञ नहीं हुआ करती कि उसने अपने पिता से इस अर्जित संस्कार को जीव कोष मे ग्रहण कर लिया है । संगीतज्ञ का बालक यदि संगीतज्ञ हो गया है तो आनुवंशिकता के कारण नही वरन् वातावरण के कारण ऐसा हो सका है । यदि अर्जित संस्कारों अथवा योग्यताओ अथवा दक्षताओ का संक्रमण एक पीढ़ी से दूसरी मे सम्भव होता तो एक ही मां-बाप का सबसे छोटा लड़का हर दशा मे कुशल और चतुर होता। जैसे जैसे मातापिता का अनुभव आयु के साथ बढ़ता जाता है वैसे वैसे उनकी सबसे अन्तिम सन्तान मे इस अर्जित अनुभव का संक्रमण नहीं होता । जीव अर्जित संस्कारों से अप्रभावित रहते हैं ।

वीजमैन के सिद्धान्त की आलोचना

वीजमैन के सिद्धान्त का आंशिक विरोध मैकडूगल महाशय ने किया है । उन्होने चूहों पर प्रयोग करके यह बतलाया कि भावी सन्तति अपने पूर्वजों के अर्जित गुणों को वंशपरम्परा से प्राप्त कर लेती है क्योंकि किसी नई बात को सीखने मे दूसरी पीढ़ी उतना समय नहीं लगाती जितना पहली पीढ़ी के प्राणी लगाते हैं । इस प्रकार यदि पीढ़ी-दर-पीढ़ी किसी जाति के कुछ प्राणियों को शिक्षा मिलती रहे तो उन प्राणियों मे अन्य प्राणियों की अपेक्षा उस शिक्षा के ग्रहण करने की योग्यता अधिक हो जाती है । इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिये मैकडूगल ने चूहों पर निम्नलिखित प्रयोग किया था ।

उसने कुछ चूहों को किसी तालाब मे से पार जाने के लिये छोड़ दिया । पार उतरने के लिये दो रास्ते थे । एक रास्ता प्रकाशमय था और दूसरा अंधकारमय किन्तु प्रकाशमय रास्ते

[1] Weismaln's theory of the continuity of germ-plasm
[2] Lamarkism
[3] Darwinism
[4] Fertilisation of cells

जैसे प्राणियों के विकास में इस प्रकार के परिवर्तन केवल आक-
णों में भेद भी अनायास उत्पन्न हो जाता है। जो भेद प्राणी के
प्राणियों का विनाश करके स्वय भी विनष्ट हो जाते हैं किन्तु
लये लाभकारी होते हैं वे उस जाति के प्राणियों के जीवन की रक्षा
ने हैं। इसी तरह के भेद सन्तति मे बने रहते हैं। डारविन के कथना-
योग्यतम व्यक्ति ही जीवित रह सकते हैं अत ये सब प्रवृत्तियाँ जो
ण के अनुकूल बनाने की सामर्थ्य प्रदान करती हैं तथा जो इतनी
र्य मे अपन आपको स्थिर रख सके वे एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को
रविन के विचार से अर्जित प्रवृत्तियाँ वास्तव में भावी सतति को
प्राप्त नहीं है... ... की तरह डार्विन यह नही मानता कि जो भेद सन्तति में बने रहते हैं
उनके दो के पैदा करने मे प्राणी का कोई हाथ रहता है। वह प्राणी के स्थान पर वातावरण को
अधिक प्रभावशाली मानता है। वातावरण के प्रभाव के कारण ही किसी जाति मे भिन्नता उत्पन्न
होती है। डारविन के अनुसार जिराफ की गर्दन लम्बी इस लिये नहीं हुई कि जिराफ अपनी गर्दन
को लम्बा करना चाहता था किन्तु जिन जिराफो मे ऊँचे ऊँचे पेड़ों पत्तियों तक पहुँचने की शक्ति
थी वे तो बचे रहे शेष नष्ट हो गए। इस प्रकार वातावरण ने लम्बी गर्दन वाले जिराफों को
जीवित रखा। इन जिराफो की ग्रीवा का लम्बापन उनकी सन्तति मे सक्रमित होता रहा। इस
लिये जिराफों ने कोई गुण अर्जित नहीं किया और न उसे सक्रमित ही किया।

लैमार्क तथा डार्विनवाद का शिक्षा पर प्रभाव—लैमार्कवाद तथा डारविन-वाद ने शिक्षा
सिद्धान्त को विशेष रूप से प्रभावित किया है। आधुनिक शिक्षा शास्त्री लैमार्क की बात मानता
है डारविन की नहीं। वह शिक्षा को योग्यतम व्यक्ति के लिये ही सीमित नहीं रखता वह सभी को
शिक्षा देने का प्रबन्ध करता है। आज प्रत्येक राष्ट्र अपने सभी सदस्यों को शिक्षा देकर राष्ट्र के
लिये कुछ न कुछ करने योग्य बनाता है। उसका सदैव यही लक्ष्य रहता है कि व्यक्तियों की
योग्यता के अनुसार ऐसे अवसर प्रदान करे जिनका उपयोग करके वे अपना उचित स्थान जीवन
मे ग्रहण कर सकें।

डारविन का यह मत कि 'वातावरण व्यक्ति से अधिक शक्तिशाली है इसलिये वह जैसा
चाहता है कर लेता है' शिक्षा जगत मे मान्य नहीं है। व्यक्ति स्वय अपने को वातावरण के अनुकूल
बना लेता है। वह वातावरण का गुलाम नही है। उसमे अपने को वातावरण के अनुकूल और
वातावरण को अपने अनुकूल बनाने की क्षमता है। वह अनुकूलन स्थापित कर सकता है। वाता-
वरण के साथ इस प्रकार का अनुकूलन स्थापित कर सकना ही शिक्षा है। शिक्षा द्वारा व्यक्ति में वह
सामर्थ्य उत्पन्न हो जाती है जिसकी सहायता से वह अपने को वातावरण के अनुकूल बना लिया
करता है। इस प्रकार आधुनिक शिक्षा सिद्धान्त लैमार्क का अधिक ऋणी है डारविन का कम।

Q 4 What is your concept of socal heredity ?

"The importance of social heritage is as important as that of maternal Inheritance", Discuss

३·१० सामाजिक वंशानुक्रम अथवा दाय

पिछले अनुच्छेदों में जैव-वंशानुक्रम तथा वातावरण की विशद व्याख्या की जा चुकी
है। इस अध्याय को समाप्त करने से पहले सामाजिक वंशानुक्रम के विषय में अपने विचार प्रस्तुत
करने का प्रयास करेंगे।

पैतृक सम्पत्ति हमको प्राय दो प्रकार से उपलब्ध होती है—व्यक्ति से अथवा समाज से।
माता पिता अथवा अन्य पूर्वजों से वैयक्तिक पैतृक सम्पत्ति शारीरिक और मानसिक बनावट के
रूप में और सामाजिक पैतृक सम्पत्ति उस समाज से मिलती है जिस समाज मे हमारा पालन-पोषण
होता है। वैयक्तिक पैतृक सम्पत्ति जीन्स के माध्यम से और सामाजिक पैतृक सम्पत्ति अहश्य
सामाजिक तत्वों के माध्यम से हमको उपलब्ध हुआ करती है। सक्रमण की पहली प्रक्रिया को हम
जैव वंशानुक्रम और दूसरी प्रक्रिया को सामाजिक वंशानुक्रम कहते हैं।

हो सकता है। ऐसा व्यक्ति जिस समय लौटकर मनुष्य समाज मे आता है उसकी अवस्था एक अथवा बहरे व्यक्ति जैसी होती है जो हमारे इशारों को नहीं समझता; हमारी संस्कृति को जानता। इस प्रकार व्यक्ति के व्यवहार मे भिन्नता आ सकती है यदि उसको सामाजिक वशानुन मिले।

जिस प्रकार भिन्न भिन्न विशेषताओं के प्रतिनिधि जीन्स के सयोग से बालक के कद, रूप, आकार ग्रन्थि और संस्थान के प्रभावित होने पर वैयक्तिक विभिन्नताएँ पैदा हो जाती हैं उसी ार सामाजिक शिक्षा अथवा सामाजिक प्रशिक्षा के द्वारा भी वैयक्तिक विभिन्नताएँ पैदा की जा ती हैं। सामाजिक वशानुक्रम बस इसी बात पर प्रकाश डालता है।

सामाजिक वशानुक्रम को वातावरण का अग माना जाता है। कभी कभी वातावरण को सामाजिक वशानुक्रम की सज्ञा दी जाती है। इस वातावरण से जो हमें लाभ प्राप्त होते हैं तव मे एक प्रकार से उस अनियमित शिक्षा के लाभ हैं जो हमें अगोचर और अवश्य रूप से ाप्त होते रहते हैं।

Q 5 Discuss the role of environment and heridity in the education of child.

३ ११ वंशानुक्रम वातावरण और शिक्षा

यदि शिक्षा का उद्देश्य बालक की शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक और सवेगात्मक शक्तियों विकास करना है और यदि इनमें से बहुत सी वशानुक्रम और वातावरण से उपलब्ध होती हैं शिक्षक को उसकी शिक्षा मे इन दोनों तत्वों का महत्व स्वीकार करना होगा। दोनों ही एक े के पूरक तत्व हैं।

बालक इस जगत में कुछ मूल प्रवृत्तियों, सवेगों और सामान्य प्रवृत्तियों को लेकर पैदा होता उसका प्राकृत अथवा [illegible] शिक्षक के लिये उन सभी [illegible] अथवा परिशोधन उपस्थित [illegible] ोर विद्वान माता पिता से [illegible] जिस अध्यापक को है वह ी अपनी कक्षा में यह कहता हुआ नहीं पाया जाता, 'तुम्हारे पिता तो अत्यन्त बुद्धिमान हैं और बिल्कुल मदबुद्धि हो। तुम परिश्रम नहीं करते।' इस तरह की बातें बालकों में अध्यापक के विरोधी भावनाओं को जन्म देने लगती हैं क्योंकि इसमें बालक का दोष न होते हुए भी उस पारोपण किया जाता है, वशानुक्रम के समानता, विचलन और प्रतीपगमन के जिन नियमों ल्लेख ३.४ में किया गया है अथवा जिन सिद्धान्तों की व्याख्या की गई है उनकी जानकारी अध्यापक को बहुत आवश्यक है।

यही नहीं अध्यापक को बालक के प्राकृत व्यवहार का ज्ञान होना चाहिये उसकी बुद्धि, न, प्रवृत्ति और अभियोग्यता अथवा अभिरुचि का भी ज्ञान होना आवश्यक है, यदि वह उसका वेकास करना चाहता है। सक्षेप मे यही कहा जा सकता है कि बालक को जिन जिन गुणों ाप्ति जन्म लेते ही हो जाती है अध्यापक को उनका पूर्ण ज्ञान जरूरी है। अगले अध्यायों में मूल प्रवृत्तियों, सवेगों और अन्य वंशानुक्रम से प्राप्त विशेषताओं का उल्लेख करेंगे और देखेंगे कि ये गुण अथवा विशेषताएँ किस प्रकार विकसित की जा सकती हैं।

बालक के पूर्ण विकास के लिये उसके वंशानुक्रम की जानकारी हो ा भौतिक और सामाजिक वातावरण क्या है यह भी ज नना ब का जीवन दर्शन क्या है, परिवार की धारणाएँ अथवा ावरण सुन्दर है अथवा असुन्दर, परिवार के दाय जिसकी सहायता उसे प्राप्त होनी आवश्यक है अन्यथा ा योजना में

अध्याय ४

वृद्धि और विकास

४.१ शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य है व्यक्ति का सर्वांगीण विकास। किन्तु विकास से हमारा तात्पर्य क्या है और हम बालक में किस प्रकार का विकास चाहते हैं यह बात हमारे राष्ट्र की नीति, दर्शन और आवश्यकताओं पर निर्भर रहती है। जब तक अध्यापक को विकास, वृद्धि और परिपक्वता के बीच भेद, विकास और वृद्धि के सिद्धान्त, शारीरिक और मानसिक वृद्धि और विकास के क्रम का समुचित ज्ञान नहीं होगा तब तक वह बालक की शिक्षा में समुचित सहयोग न दे सकेगा अतः प्रस्तुत अध्याय में शिक्षा मनोविज्ञान के इन आधारभूत तत्वों का स्पष्टीकरण करने का प्रयास करेंगे।

Q. 1 Discuss the difference between maturation and development. What are chief aspects of development ?

४.२ विकास और परिपक्वन

आयु की वृद्धि के साथ शारीरिक एवं मानसिक पक्षों में क्रमबद्ध रूप से जो प्रगतिशील परिवर्तन होते रहते हैं, व्यक्ति की योग्यता और क्षमता में जो नई-नई विशेषताएँ उत्पन्न हो जाती हैं उन सबका एकत्रित स्वरूप विकास कहलाता है। यह विकास मुख्यतः सीखने पर निर्भर रहता है। शारीरिक और मानसिक पक्षों में जो परिवर्तन परिपक्वीकरण (maturation) के कारण होते हैं उन्हें हम वृद्धि कहते हैं। जन्म के बाद वृद्धि और विकास दोनों होते हैं क्योंकि वातावरण के प्रभाव में आकर प्राणी पर सीखने और परिपक्वीकरण दोनों का प्रभाव पड़ता है। बिना परिपक्वीकरण के सीखना सम्भव नहीं होता इसलिये विकास के ये दोनों मुख्य कारण माने जाते हैं। तब भी इन दोनों में विशेष अन्तर है।

परिपक्वीकरण का अर्थ है स्वाभाविक विकास। व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक गुणों में परिवर्तन उपस्थित होना है किसी प्रकार के प्रशिक्षण अथवा अभ्यास के कारण, तब यह परिवर्तन बिल्कुल स्वाभाविक होने के कारण कहलाता है। परिपक्वीकरण की यह क्रिया २१ वर्ष की आयु तक समाप्त हो जाती है क्योंकि शारीरिक योग्यताओं का जो कुछ स्वाभाविक रूप से परिवर्तन होना होता है वह इस आयु तक हो चुकता है। लेकिन विकास का क्रम जीवन पर्यन्त चलता रहता है क्योंकि व्यक्ति जीवन के अन्तिम क्षण तक सीखता ही रहता है।

अब चूँकि सीखने की क्रिया अर्जन करने की क्रिया है जो परिपक्वीकरण पर निर्भर रहती है इसलिये व्यक्ति का विकास परिपक्वीकरण और सीखने दोनों क्रियाओं के फलस्वरूप होना केवल सीखने की क्रिया के फलस्वरूप नहीं। विकास के लिये दोनों तत्व आवश्यक हैं।

विकास क्रम में परिपक्वीकरण तथा सीखने के प्रभाव का सापेक्षिक महत्व समयमज नियन्त्रण विधि (Co-twin control method) और पुनर्परीक्षण विधि (Re-examination method) से किया जाता है। पहली विधि में समयमज के एक वर्ग को प्रशिक्षित करते हैं दूसरे को प्रशिक्षित नहीं करते और कुछ समय के उपरान्त उनके परिवर्तनों का अंतर ज्ञात किया जाता है। दूसरी विधि में किसी व्यक्ति विशेष के विकास का अध्ययन किसी खास आयु में किया जाता है फिर कुछ समय बीत जाने पर व्यक्ति के विकास का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। विकास क्रम के अध्ययन करने का एक और तरीका अपनाया जाता है। भिन्न भिन्न आयु के बच्चों के समुदाय से प्राप्त शारीरिक और मानसिक विशेषताओं का अध्ययन किया जाता है और एक विशेष आयु में

पाई जाने वाली विशेषताओं को अंकित कर लिया जाता है। विकास क्रम में पाई जाने वाली वे विशेषताएँ उस आयु के लिए प्रमाण रूप से ग्रहण कर ली जाती हैं। विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने इस प्रकार के प्रमाण प्रत्येक आयुस्तर के लिये निश्चित कर दिये हैं जिनके सहारे हम किसी भी बच्चे के विकास की सामान्यता अथवा असामान्यता का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं।

प्राणियों के विकास मे वैयक्तिक विभिन्नताओं का कारण परिपक्वीकरण और सीखने की क्रिया की भिन्नता मानी जाती है। परिपक्वीकरण भले ही प्राणी के विकास को समान रूप से प्रभावित करे किन्तु प्रशिक्षण और अभ्यास व्यक्तियों को असमान रूप से प्रभावित करता है। इसी लिये उनमे वैयक्तिक विभिन्नताएँ उपस्थित हो जाती हैं।

विकासक्रम मे प्रायः ४ प्रकार के परिवर्तन होते हैं :—

(१) आकार में वृद्धि
(२) अनुपात मे परिवर्तन
(३) कुछ शारीरिक और क्रियात्मक विशेषताओं का लोप
(४) नई नई विशेषताओं की प्राप्ति।

शारीरिक विकास और वृद्धि की विवेचना करते हुए यह दिखाया जायगा कि आयु की वृद्धि के साथ आकार और अनुपात में किस प्रकार के परिवर्तन उपस्थित हो जाते हैं। नव जात शिशुओं के शारीरिक और मानसिक विकास के पक्षों मे कुछ ऐसी विशेषताएँ पाई जाती हैं जो बाद मे लुप्त हो जाती हैं, उनकी बहुत सी महत्वपूर्ण उद्देश्यहीन क्रियाएँ बाद मे गौण हो जाती हैं। उदाहरण के लिये ६ महीने की आयु के पहले वे घसिटकर चलते हैं ६ महीने की आयु के बाद घसिटकर चलना बंद कर देते हैं। उनके विपरीत धीरे धीरे वे नये नये कौशल सीखते जाते हैं। इस प्रकार का परिवर्तन जीवन भर चलता रहता है।

विकास की विशेषताएँ

विकास की निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख मनोवैज्ञानिकों ने किया है—

(१) विकास अनवरत होता है
(२) सामान्य से विशिष्ट प्रतिक्रिया की ओर होता है
(३) विकास का एक निश्चित ढाँचा अथवा प्रतिकृति होती है
(४) विकास में उत्पन्न सौन गुण एक दूसरे से सहसम्बन्धित होते हैं
(५) विकास के विषय में भविष्यवाणी की जा सकती है
(६) विकासक्रम मे उत्पन्न वैयक्तिक विभिन्नताएँ स्थायित्व ग्रहण कर लेती हैं

विकास का अनवरत क्रम—विकास क्रमिक होता है। धीरे-धीरे विभिन्न प्रकार के शील गुण एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा इस प्रकार विकसित होते रहते हैं। परिपक्वीकरण पर निर्भर होने के कारण वृद्धि और विकास मे आकस्मिकता नही पाई जाती। शारीरिक और मानसिक शीलगुणों की बीज शक्ति जीवन के आरम्भ मे ही वर्तमान रहती है और विशेष अवस्था आने पर विकास को प्राप्त हो जाती है। शैशवावस्था का विकास दूसरी अवस्था (बाल्यावस्था) के विकास को प्रभावित करता है। बाल्यावस्था का विकास किशोरावस्था को और विकास का यह क्रम निरन्तर चलता ही रहता है। अनुकूल वातावरण के मिलने पर विकास उचित रूप से होता है और प्रतिकूल वातावरण मे उसमे रुकावट भी आ सकती है।

विकास क्रम में प्रतिक्रिया का सामान्य से विशिष्ट की ओर अग्रसर होना—नवजात शिशु की प्रतिक्रियाएँ पहले सामान्यित (generalised) होती हैं बाद मे उनमे विशिष्टता आती है। उदाहरणार्थ विभिन्न प्रकार की उत्तेजनाओं के प्रति उनका सारा शरीर उत्तेजित हो जाता है। सम्पूर्ण शरीर के उत्तेजित होने पर सभी अंगों मे गतिशीलता होती है। ब्रिजेज के अध्ययन से पता चलता है नवजात शिशु में केवल सामान्य उत्तेजित अवस्था ही होती है। आनन्द, कष्ट, भय, क्रोध और घृणा की प्रतिक्रियाएँ बाद में उत्पन्न होती हैं।

विकास का एक निश्चित ढाँचा होता है—मानव शिशु के पहले मौलिक दाँत निकलते हैं फिर स्थायी दाँत। वह पहले घिसटकर चलता है बाद मे खड़े होकर। पहले बलबलाता है फि

शब्द उच्चारण करता है। इस प्रकार हर जाति के प्राणी के विकास का एक निश्चित ढाँचा होता है। व्यक्ति के शारीरिक विकास का जैसा निश्चित ढाँचा होता है वैसा ही उसका मानसिक, संवेगात्मक और सामाजिक विकास होता है। यह सम्भव है कि एक व्यक्ति विशेष प्रकार का विकासात्मक परिवर्तन दूसरे व्यक्ति की अपेक्षा पहले या बाद में हो किन्तु विकास की प्रतिकृति सभी व्यक्तियों में एक सी होती है।

सभी प्रकार के विकास एक दूसरे से सहसम्बन्धित होते हैं—व्यक्तियों का शारीरिक और मानसिक विकास किस प्रकार एक दूसरे पर निर्भर रहता है इसका उल्लेख आगे किया जायगा। वस्तुतः सभी प्रकार के विकास सामाजिक, सांवेगिक, सांस्कृ, चारित्रिक, और व्यक्तित्व सम्बन्धी शारीरिक और मानसिक विकास के पूर्णतः अनुबधित हुआ करते हैं।

विकास की पूर्वकथनीयता—विकास का उपरिलिखित विशेषताओं के कारण किसी सामान्य व्यक्ति के भविष्य में होने वाले विकास का पूर्वकथन किया जा सकता है।

शारीरिक वृद्धि और परिवर्तन

Q 2. Why is it necessary for a teacher to study the physical development of the child What physical changes occur in the child from infancy to adolescence.

४.३ शारीरिक वृद्धि तथा परिवर्तनों का शैक्षणिक महत्व—बालक की शिक्षा में सबसे अधिक महत्वपूर्ण, सबसे अधिक सहायक, सबसे अधिक प्रवचक और सबसे अधिक उपेक्षित उसकी शारीरिक वृद्धि और शारीरिक विकास रहा है। सबसे अधिक महत्वपूर्ण इसलिये कि उसके सम्पूर्ण शिक्षा काल में शिक्षकों को उसके स्वास्थ्य की चिन्ता करनी है। शिक्षा के लिये ये शारीरिक परिवर्तन सबसे अधिक सहायक इसलिये होते हैं क्योंकि वे शिक्षक के अनेक अवसर प्रस्तुत करते हैं। ये परिवर्तन शिक्षक को प्रवंचना में इसलिये डाल देते हैं कि बहुधा वह उन्हे अपने प्रयत्नों का परिणाम [illegible]

बालक का मानसिक, चारित्रिक एवं व्यक्तित्व सम्बन्धी विकास शारीरिकवृद्धि का परिणाम होता है। यदि हम भिन्न भिन्न व्यक्तियो के बौद्धिक विकास और उनकी शारीरिक वृद्धि के वक्रों का तुलनात्मक अध्ययन करें तो मानसिक वृद्धि पर शारीरिक वृद्धि का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देगा। बचपन से लेकर प्रौढावस्था तक होने वाले समस्त शारीरिक परिवर्तनों का अध्ययन करने से रुचियों, अभिवृत्तियो, आदतो, और अन्य चारित्रिक एवं व्यक्तित्व सम्बन्धी गुणो के क्रमिक विकास का पता चल सकता है। किसी समस्यापूर्ण अथवा अपराधी बालक के इतिहास के पीछे उसके शारीरिक परिवर्तन छिपे रहते हैं। उसके जीवन की समस्यायें शारीरिक परिवर्तनों की समस्यायें होती हैं। इस भौतिक जगत् मे जहाँ पर शारीरिक शक्ति और शरीर का आकार प्रकार बालक के सगी-साथियो के समूह मे उसकी स्थिति निर्धारित करते हैं, बडे होने पर उसके लिये ऐसा अनेक समस्यायें पैदा कर देते हैं जिनकी ओर उसके दीर्घवयस्क शिक्षको का ध्यान नही जाता। इन समस्याओ एव कठिनाइयो की ओर उनका ध्यान न जाना भी अस्वाभाविक नहीं है क्योंकि ये समस्यायें और कठिनाइयाँ जिनका सामना उनको स्वय अपने बाल्य-जीवन में करना पड़ा था प्रौढावस्था तक पहुँचते पहुँचते विस्मृत हो जाती हैं।

अतः हमे शिक्षा मनोविज्ञान का गहन अध्ययन करना है तो बालकों के उन शारीरिक परिवर्तनो का अध्ययन पहले करना होगा जिनका प्रत्यक्ष प्रभाव उनके भावी जीवन पर पड़ता है। इससे हमें निम्नलिखित दो लाभ होगे :—

(१) मनोवैज्ञानिक विकास की पृष्ठभूमि मे स्थित समस्त शारीरिक घटकों का ज्ञान प्राप्त हो सकेगा।

(२) उन विचित्र और कठिन मनोवैज्ञानिक समस्याओ का क्रमिक अध्ययन सम्भव हो जिनका सामना बालकों को अपनी शारीरिक वृद्धि और परिवर्तनों के कारण करना है।

इन शारीरिक परिवर्तनों में निम्नलिखित महत्वपूर्ण परिवर्तन सम्मिलित कर सकते हैं।

(१) आकार में वृद्धि
(२) भार में वृद्धि
(३) शक्ति और दक्षता का विकास
(४) आन्तरिक अंगों के परिवर्तन

व्यक्ति के जीवन के प्रथम बीस वर्ष जिन्हें वह विद्यालय के प्रांगण में व्यतीत करता है इन्हीं तत्वों मे परिवर्तन, विकास और वृद्धि के होते हैं। अतएव प्रत्येक शिक्षक का कर्तव्य बन जाता है उन घटकों का अध्ययन करे जो उनकी वृद्धि और विकास को प्रभावित करते हैं, उन परिस्थितियों का समायोजन करे जो उनके स्वस्थ विकास मे सहायक होती हैं, एवं उन कठिनाइयों का निराकरण करे जो विकास में बाधक सिद्ध हो सकती हैं। यदि उसे शिक्षा मनोविज्ञान के सिद्धान्तों को भली प्रकार समझना है तो शिक्षा के शारीरिक विकास और वृद्धि को सदैव ध्यान मे रखना होगा। उनकी भलाई के लिये जितने भी शैक्षणिक प्रोग्रामों का आयोजन किया जाता है उनकी व्यवस्था करने से पूर्व उनकी शारीरिक वृद्धि का अध्ययन करना होगा। उदाहरणार्थ मनोरंजन (Recreation), हस्तकला (Handicraft), संगीत और कला के प्रोग्रामों में उनकी बढ़ती हुई ऊँचाई, दक्षता और शक्ति का ध्यान रखना होगा, उनकी रुचियों और संवेगों को स्थिर बनाने के लिये उनके निर्गीय परिवर्तनों का अध्ययन करना होगा, सीखने की क्रिया को सफलता प्रदान करने के लिये उनकी शारीरिक वृद्धि के साथ सीखने की क्षमता के विकास को देखना होगा। इस प्रकार स्कूल की व्यवस्था में बालकों के शारीरिक परिवर्तन के साथ-साथ किस प्रकार के परिवर्तन उपस्थित किये जायें इसका अध्ययन प्रत्येक शिक्षक को करना होगा। बालकों के शारीरिक वृद्धि के साथ स्कूल की शैक्षणिक व्यवस्था और गतिविधियों में जब तक अनुकूलन स्थापित किया जायगा तब तक शिक्षक जगत को छात्रों के अनुशासनहीनता तथा सांवेदनिक असमवायता (Emotional disintegration) और अपने कार्यों में प्रभावहीनता एवं अपव्ययता का सामना करना पड़ेगा। यदि शिक्षक वर्ग इस बात को हृदयंगम कर सके कि शारीरिक विकास एवं शिक्षा सम्बन्धी प्रक्रियायें साथ-साथ ही चल सकती हैं तभी शिक्षा का सर्वांगीण स्वस्थ विकास उचित ढंग से हो सकता है और तभी प्रकृति भी शैक्षणिक प्रयत्नों को सफल बनाने मे सहयोग दे सकती है।

आकार में वृद्धि

किसी बालक की शारीरिक वृद्धि के विषय मे जानकारी प्राप्त करने के लिये सामान्यतः हम उसके भार एवं कद का अध्ययन करते हैं किन्तु यह वृद्धि किस प्रकार होती है अथवा इसका सम्बन्ध बौद्धिक, मानसिक, चारित्रिक, सामाजिक अथवा सांवेदनिक विकास से किस तरह का होता है यह जानने के लिए हमें सांख्यिकीय विधियों की सहायता लेनी पड़ती है। शैशवावस्था के आरम्भ से लेकर किशोर अवस्था के अन्त तक बालक एवं बालिकाओं के कद और भार मे किस प्रकार का परिवर्तन हुआ करता है इस तथ्य का अध्ययन करने के लिये कई प्रयास हुए हैं। एक प्रयास का फल नीचे दी गई तालिका से स्पष्ट किया जा रहा है—

आयु	भार में वृद्धि	कद में वृद्धि
१	१२	८५
२	५	४४
३	४५	३२
४	४	२८
५	४२	२४
६	४३	२१
७	४३	२
८	५	१६
९	५१	१६
१०	५२	१८

से कद और भार में कम वृद्धि को प्राप्त होते हैं। इस अवस्था में लड़कियों की शारीरिक शक्ति भी लड़कों से अधिक होती है। फलतः वे लड़कों के खेलों में भाग लेने की रुचि प्राप्त करती हैं।

इस अवस्था मे इतना अधिक आत्मविश्वास पैदा हो जाता है जो इस आयु से न तो पहले ही था और न बाद में होगा।

सम्पूर्ण बाल्यावस्था मे लड़कियाँ लड़कों को शारीरिक विकास के हिसाब से मात देती रहती हैं। ९ वर्ष की बालिका समवयस्क बालक से एक वर्ष अधिक बड़ी मालूम पड़ती है। लिंगीय परिपक्वन भी बालिकाओं मे बालकों से पहले होता है। उनका मानसिक विकास भी बालकों की अपेक्षा तीव्रवेग से होता देखा गया है। सामाजिक विकास की दर भी १४,१५ वर्ष की अवस्था तक लड़कों से अधिक ही रहती है। १६ वर्ष की लड़की शारीरिक एवं संवेदनिक विकास के हिसाब से स्त्री मालूम पड़ती है जब कि १६ वर्ष के किशोर मे अभी लड़कपन ही रहता है। लड़के और लड़कियों मे इस प्रकार की लिंगीय विभिन्नता का एकमात्र कारण है उनके कद और भार की वृद्धि में असमान गति। विद्यालय-व्यवस्था करने वाले व्यक्तियों के लिये ये विभिन्नतायें सामाजिक, नैतिक और शैक्षणिक समस्यायें उत्पन्न कर देती हैं। अतएव शिक्षक को उनका ज्ञान होना आवश्यक है।

शारीरिक वृद्धि अथवा शारीरिक ह्रास का प्रभाव बालक या बालिकाओं के बौद्धिक एवं मानसिक विकास पर भी पड़ता है। कुछ लोगों का विचार है कि पतले दुबले बालक बुद्धिमान होते हैं किन्तु खोजों के आधार पर यह सिद्ध किया जा चुका है कि जिन बालकों की शारीरिक वृद्धि उचित ढंग से होती है उनकी बुद्धिलब्धि भी सामान्य से अधिक ही होती है। टर्मन ने अपनी खोजों में प्रतिभावान बालकों को साधारण बालकों की अपेक्षा ३" तक ऊँचे कद तथा १० पौण्ड अधिक भार का पाया है। उनका यह भी विचार है कि जो बालक या बालिकायें तीव्र बुद्धि वाली होती हैं वे अपने से कम बुद्धि वाले बालक और बालिकाओं की अपेक्षा पहले ही लिंगीय परिपक्वन प्राप्त करती हैं। इसलिये यदि ऐसे बालकों को कक्षोन्नति देदी जाय तो उनके साथ अनर्थ नहीं होगा जैसा कि अतिरिक्त कक्षोन्नति के विरोधियों का मत है। जिन लोगों का यह विचार है कि पतले, दुबले और नाटे कद के बालक अधिक बुद्धिमान होते हैं उनके विचार में एक भ्रान्ति है। वे अधिक पढ़ने और अधिक ध्यान करने की क्षमता को बौद्धिक उन्नति समझ बैठते हैं। दुबले पतले बालकों से होता भी यही है। वे खेलने मे अथवा अन्य सामाजिक कार्यों मे भाग लेने की कमजोरी को छिपाने के लिये अधिक समय अध्ययन में बिताते हैं। इसके विपरीत हीन बुद्धि बालक उसी अवस्था मे अन्य बालकों की अपेक्षा कद मे ३" और भार मे ८ पौण्ड तक कम पाये जाते हैं। इस प्रकार शारीरिक वृद्धि और मानसिक विकास होने से सरल क्रमानुपात तक सम्बन्ध रहता है।

शारीरिक वृद्धि के आवश्यक ये तत्व—भार और कद-विस्तार जन समुदाय मे जिसके सदस्यों का चयन यदृच्छया पूर्वक किया गया हो सामान्य सम्भाव्य वक्र की तरह वितरित (Normally distributed) होते हैं। यदि हम एक ही अवस्था के हजारों बालकों के भार और कद का अध्ययन करें तो उनका वक्र सामान्य वक्र की तरह प्राप्त होगा। कुछ बालक अधिक सामान्य होगा और कुछ सामान्य और अधि सामान्य। कहने का तात्पर्य यह है कि किसी बालक को Underweight या Overweight कहने से पूर्व इस बात का ध्यान रखना होगा कि उसी अवस्था के अन्य बालक सामान्यतः कितने भार वाले हैं। इसलिये व्यक्तिगत बालक के स्वास्थ्य के विषय मे इस आधारभूत प्रश्न का उत्तर मिल जाना आवश्यक है कि उसका Normal weight या Normal height कितनी है। यदि माता और पिता दोनों ही नाटे कद के हैं तो बालक के नाटे कद या कम भार का होना चिन्ताजनक विषय नहीं होना चाहिये। आँकड़े भी इस बात की पुष्टि करते हैं कि जो बालक ऊँचाई और भार मे औसत मे कम होता है उसकी आयु भी अधिक होती है साथ ही स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है।

शारीरिक विकास तथा वंशानुक्रम और वातावरण

Q 2. What factors generally affect the physical development of the child? Discuss their relative importance of heredity and environment in this respect.

४.४ शारीरिक वृद्धि को प्रभावित करने वाले तत्व—६-१८ वर्ष तक की आयु व्यक्ति के जीवन का एक ऐसा समय होता है जब उसमें असाधारण शारीरिक परिवर्तन उत्पन्न होते हैं। ११ से १८ तक उसके आकार, रूप अंगो की बनावट, शक्ति और दक्षताओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित हो जाते हैं। इस विकास मे कौनकौन बातें सहयोग देती है? कौन कौन बातें विकास के मार्ग मे अवरोध पैदा कर देती हैं, इन प्रतिरोधों से व्यक्ति की रक्षा किस प्रकार की जा सकती है?

वंशानुक्रम निश्चित करता है कि सब व्यक्ति एक क्रमिक समन्वित और समान रूप से वृद्धि प्राप्त करते है, प्रतिकूल वातावरण भले ही इस विकास कार्य में बाधाएं उत्पन्न कर क्रम, समन्वय और समानता मे अन्तर उपस्थित कर दे किन्तु सामान्यत. वृद्धि अपने ढंग से चलती रहती है। इन आधारभूत सिद्धान्तो के अनुसार भार बढ़ता जाता है, शरीर की बनावट मे परिवर्तन उपस्थित होते हैं, शक्ति और योग्यता वृद्धि को प्राप्त होती है। शिक्षा की योजनाएं भी इन आधारभूत सिद्धान्तो के अनुसार बनाई जाती हैं क्योंकि यदि इन सिद्धान्तों का अनुसरण न किया जाय तो शिक्षा की योजनाएं विफल हो सकती हैं। उदाहरणार्थ किसी शिशु को चलना सिखाना उस समय तक असम्भव और हानिकारक सिद्ध हो सकता है जब तक उसकी मांसपेशियां तथा नाडी मण्डल इस शिक्षा के ग्रहण करने योग्य न बन जायें। अतिरिक्त भोजन किसी शिशु की सामान्य गति से होने वाली वृद्धि से अधिक वृद्धि नहीं कर सकता उसी प्रकार अतिरिक्त अभ्यास इन संस्थानों के परिपक्व होने से पूर्व व्यक्ति की अधिक उन्नति नही कर सकता परिपक्वन का ऐसा निश्चित स्तर होता है कि उस पर पहुँचने के बाद ही बालक पढ़ना लिखना बातचीत करना सीख पाता है उससे पहले नहीं।

यद्यपि वंशानुक्रम यह निश्चित करता है कि भिन्न भिन्न व्यक्तियों में समान रूप से ही शारीरिक विकास होता है। किन्तु फिर भी वैयक्तिक विभिन्नताएं होती हैं, कुछ लोग दूसरो की अपेक्षा स्वाभाविक रूप से ही ऊँचे कद के होते हैं। ऊँचे कद के व्यक्तियो के माता पिता भी ऊँचे कद के, भार मे अधिक बच्चो के माता पिता भी भार मे अधिक होते हैं। आँख और बालों का रंग, ठोडी, नाक और सिर की बनावट, रूप, शारीरिक शक्ति और दम पैतृक सम्पत्ति के रूप में बालकों को पूर्वजो से मिला करती हैं। कद के अनुसार पिता भाई और मादर भाई तथा एक ही साथ पैदा हुए समयजो के बीच सहसम्बन्ध की मात्रा क्रमश. ·४५, ५० और ६३ तक पाई गई है। पिता और पुत्र तथा भाई और भाई के बीच सहसम्बन्ध गुणक की मात्रा का ·५० होना घोषित करता है कि यह अन्तर भी जीववैज्ञानिक वंशानुक्रम का परिणाम है।

न तो शारीरिक वृद्धि ही और न व्यक्तित्व पूरी तरह वंशानुक्रम से निश्चित होता है। जिस वातावरण मे शरीर की वृद्धि होती है वह वातावरण भी मुख्य घटक है। बालक के पैदा होने से पूर्व माता के शरीर की अवस्था, उसकी बीमारी अथवा चोट से बालक के विकास को गर्भावस्था में ही अवरुद्ध कर सकती है, पैदा होते समय बालक को लगी हुई चोट उसके शरीर और दिमाग पर बुरा प्रभाव डाल सकती है, बादकी चोटें, बीमारियां, सिफलिस, क्षय अथवा पोलियो मे लाइटिस विकास को रोक सकती है।

भोजन और निवासस्थान की प्रकृति भी शारीरिक विकास पर प्रभाव डालती है।

प्रथम महायुद्ध के बाद जब फ्रांस की आर्थिक दशा बिगड गई तब बालकों का शारीरिक विकास एक दो वर्ष के लिये रुक गया और १९१८-२८ के बीच जर्मनी की आर्थिक दशा मे सुधार हुआ तब लगभग २०,००० बच्चो के एक सैम्पिल से पता चला कि उनका कद ३-४" पहले की अपेक्षा और भार २०-२१ पौण्ड बढ़ गया है। इसी प्रकार विद्यालयो मे शिक्षा प्राप्त करने वाले किशोरो की अपेक्षा उसी आयु के फैक्ट्री मे काम करने वाले किशोरो के कद मे औसतन अधिक अन्तर पाया गया है। दो-तीन कमरों वाले मकानों मे रहने वाले बच्चों की अपेक्षा एक ही कमरे वाले मकान मे रहने वाले बच्चों का कद बहुत कम पाया गया है। विद्यालय में अवकाश के समय जिन बच्चों को दूध और फलाहार की व्यवस्था की जाती है उनकी अपेक्षा उन बच्चों का कद और भार जिनके लिये इस प्रकार की कोई व्यवस्था सम्भव नही है कम ही देखा गया है। संक्षेप में,

यह कहा जा सकता है कि पुष्टिकर भोजन, सुन्दर और आरामदायक निवास स्थान बच्चों के [illegible] रहन [illegible] क्रोध [illegible] । साथ [illegible] क के [illegible] ता है।

फ्रांस और जर्मनी मे पहली लडाई के ठीक उपरान्त कुछ ऐसा विक्षोभ फैला कि साधारण जनता दुःखी और परेशान हो गई थी इसलिये उन देशो के बालकों का शारीरिक विकास और वृद्धि रुक गया। इंगलैण्ड मे भी गत शताब्दी के अन्त में घर के कठोर अनुशासन तथा अवदमन मे विश्वास करने वाली विद्यालय व्यवस्था ने बालकों के शारीरिक विकास और वृद्धि को रोक दिया था लेकिन वर्तमान शताब्दी के पहले दूसरे दसको मे ही बालकों का औसत कद और भार बढने लगा क्योकि न तो विद्यालयो मे ही कठोर अनुशासन और शारीरिक दण्ड की ही व्यवस्था की गई और न घरो मे ही बालको की इच्छाओ को अवदमनित किया गया। संक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि लम्बे अरसे तक रहने वाला मानसिक क्लेश, चिन्ता, क्रोध, मानसिक असन्तुलन, शारीरिक वृद्धि और विकास पर दुष्प्रभाव डालता है।

४.५ शारीरिक वृद्धि के सिद्धांत

(१) आयु मे जैसे-जैसे बालक विकास को प्राप्त होता है वैसे-वैसे उसके शरीर मे सख्यात्मक एव गुणात्मक परिवर्तन होते रहते हैं।

(२) यद्यपि हम प्राय यह कहा करते हैं कि वृद्धि का प्रभाव यह है सामान्यतया बालक आयु के साथ साथ इस प्रकार कद या भार या शारीरिक शक्ति में बढते हैं किन्तु प्रत्येक बालक को वृद्धि का ढांचा या स्वरूप अन्य बालक से सम्भवतया भिन्न हुआ करता है।

(३) किसी भी अग या गुण के विकास को दिखाने वाले वृद्धिवक्र भले ही समानता दिखला देते हैं किन्तु उनकी दर, आकार और परिवर्तनशीलता मे अन्तर हो सकता है।

(४) किसी अग की वृद्धि अपनी सीमाओं के भीतर क्रमिक होती है भले ही दूसरे अग किसी और तरह विकसित हो रहे हों। वृद्धि का यह क्रम गुप्त या प्रकट रूप से चलता रहता है और कुछ परिवर्तन तो एक दम दृष्टिगोचर हो उठते हैं।

(५) चूंकि शारीरिक वृद्धि पर बहुत सी वातावरण सम्बन्धी बातों का प्रभाव पडता है इसलिए विकास के इस कार्य मे शिक्षक सहायक सिद्ध हो सकता है। व्यक्ति को जैसा वातावरण सम्बन्धी उत्प्रेरणा या उद्बोधन मिलती है और जैसा Constitution उसे वशानुक्रम से प्राप्त होता है इन दोनों की अन्त क्रिया पर शिक्षणीयता निर्भर रहती है।

(६) परिपक्व होने (Maturation) की प्रक्रिया वृद्धि के भिन्न भिन्न स्तरो पर व्यक्ति के आचरण की सीमा निश्चित करती है। बाह्य उद्बोधक कितना ही अधिक क्यों न दिया जाय वृद्धि उस सीमा का अतिक्रमण नहीं कर सकती। इन परिपक्वता की सीमाओ मे आबद्ध होकर यदि उपयुक्त अनुकूलन स्थापित करने अथवा सीखने की स्थितियां उपस्थित की जायें तो बालक का पूर्ण विकास सम्भव है।

मानसिक वृद्धि और विकास

Q. 3. What do you mean by the term 'Mental Growth.' How does mental growth take place in the child ?

४.६ मानसिक योग्यता में वृद्धि—वृद्धि से हमारा तात्पर्य तीन बातो से होता है : (१) किसी अग के आकार और भार मे बढने से, (२) जीवकोषों के विभाजन से, (३) विशेष योग्यताओ (Capacities) की वृद्धि से। पहली दो प्रकार की बढोतरी का अध्ययन शारीरिक वृद्धि तथा अन्तिम प्रकार की बढोतरी को मानसिक वृद्धि की सज्ञा दी जाती है। शरीर के किसी अग के पूरे आकार और भार प्राप्त होने पर भी उसके भीतर कुछ ऐसे परिवर्तन होते रहते हैं जो उसे जटिल बनाते

में गतिमान होते हैं । वह यह जटिल होता जाता है । परिवर्तन की इस क्रिया को विकास क
जब कोई अंग या योग्यता पूर्ण विकास और वृद्धि को प्राप्त हो जाती है उस समय वह
(mature) कहलाती है । शारीरिक अंग या योग्यताएँ उस समय परिपक्व कहलाती हैं जब
में सबल होने लगती हैं ।

योग्यताओं में वृद्धि का क्रम ठीक उसी प्रकार का है जिस प्रकार का कद में वृद्धि क
होता है । १५ वर्ष का बालक ५ वर्ष के बालक से अधिक मानसिक कार्य कर सकता है
आयु के साथ साथ जिस प्रकार कद या भार में वृद्धि होती है उसी प्रकार मानसिक योग्यता
वृद्धि हुआ करती है । यह तो निरीक्षण से सामान्यतः ज्ञात हो सकता है किन्तु निरीक्षण
का अनुसरण कर हम निम्न प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकते

(१) क्या मानसिक योग्यता निश्चित नियम या गति से वृद्धि पाती है ?

(२) क्या कद में वृद्धि की तरह १८-२० वर्ष की आयु पर मानसिक योग्यता में भ
रुक आया करती है ।

(३) क्या किशोरावस्था में कद की तरह मानसिक योग्यताओं में एकाएक वृद्धि
लगती है ?

(४) क्या कद की तरह मानसिक योग्यता के हिसाब से लिंगीय विभिन्नताएँ हैं ?

(५) क्या शक्ति की तरह मानसिक योग्यता में भी मनुष्य स्त्रियों की अपेक्षा अ
विकसित होते हैं ?

(६) क्या मन्द बुद्धि बालकों की मानसिक वृद्धि पहले ही रुक जाती है या उनकी वृद्धि
दर अन्य बालकों की अपेक्षा कम होती है ?

शिक्षक के लिये इन प्रश्नों का विशेष महत्व है । इन प्रश्नों का उत्तर हमें तभी
सकता है जब हम मानसिक योग्यता को मापन करने वाले यंत्रों का प्रयोग करें ।

सामान्य बुद्धि परीक्षाओं के परिणामों या परीक्षाफलों से हम सामान्य बुद्धि के वि
में कुछ निष्कर्षों पर पहुँचते हैं ।

(१) बचपन और किशोरावस्था में मानसिक योग्यताओं में वृद्धि क्रमिक होती है । किशो
वस्था का कोई प्रभाव इस पर प्रतिलक्षित नहीं होता । लेकिन किशोरावस्था के उपरान्त मानि
वृद्धि की दर में ह्रास उत्पन्न होने लगता है । मनोविज्ञ अभी इस बात पर सहमत नहीं हो पाये
कि किस आयु पर मानसिक योग्यता में यह वृद्धि रुक जाती है । टर्मन कहता है कि साधा
व्यक्ति की मानसिक आयु औसतन १६ वर्ष होती है । कुछ मनोविज्ञ औसतन मानसिक आयु १३-
ही मानते हैं और कुछ २० वर्ष । आधुनिक मनोवैज्ञानिक २० को प्रौढ़ व्यक्ति की मानसि
आयु मानकर चलते हैं ।
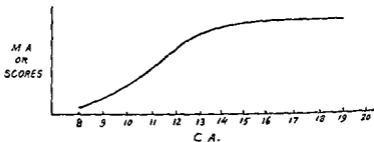
इस प्रकार का वक्र उस समय मिला जब एक ही समूह को हर एक वर्ष के बाद ६ वर्ष तक
सामूहिक बुद्धि परीक्षामाला दी गई (Weschler and Freeman) । १८-२० वर्ष की आयु के बाद
मानसिक योग्यता की वृद्धि की दर समान हो जाती है । किन्तु भिन्न-भिन्न परीक्षाओं से भिन्न-भिन्न

परिणाम निकले हैं अतः मानसिक वृद्धि के विषय में यह कथन पूर्ण सत्य एवं शुद्ध नहीं माना जा सकता कि मानसिक वृद्धि की दर १८-२० वर्ष पर रुक जाया करती है। आखिरकार प्रौढ़ावस्था में होता क्या है। जिस प्रकार कद और शक्ति बढ़ना बन्द कर देते हैं उसी प्रकार मानसिक योग्यता भी बढ़ना बन्द कर देती है। सारी प्रौढ़ावस्था में व्यक्ति सीखता है, समझता है, कार्य करता है किन्तु सीखने, समझने और कार्य करने की योग्यता में कोई वृद्धि नहीं होती। ऐसा भी हो सकता है वृद्धावस्था में पहुँच कर ये योग्यताएँ क्षीण होने लगें किन्तु यह प्रश्न कुछ जटिल है क्योंकि इस अवस्था में न केवल बौद्धिक योग्यता में ही कमी दिखाई देती है किन्तु उत्प्रेरणा भी कम हो जाती है। शिक्षक का सम्बन्ध इस अवस्था से कम रहता है अतः इस विषय में विहंगम दृष्टिपात ही पर्याप्त है।

लड़कियों की बुद्धि परीक्षा फलांक यह दिखलाते हैं कि किशोरावस्था प्राप्त होने पर उनकी मानसिक वृद्धि की दर तीव्र हो जाती है। किन्तु लड़का और लड़कियाँ मानसिक योग्यता के अनुसार एक दूसरे से भिन्न प्रतीत नहीं होते। अब प्रश्न यह है कि मानसिक योग्यता के अनुसार व्यक्तियों में विभिन्नताएँ किस प्रकार पैदा हो जाती हैं। क्या मन्द बुद्धि बालक योग्यता में बुद्धिमान बालकों की अपेक्षा अधिक धीमी गति से वृद्धि पाते हैं। उनकी वृद्धि अल्पकाल तक ही रहती है और फिर रुक जाती है।
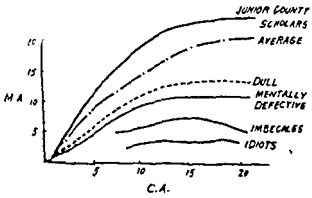
बर्ट ने प्रतिभाशाल से मन्द बुद्धि बालकों का और कुहलमैन ने ६३९ मन्द बुद्धि बालकों का अध्ययन ६ वर्ष तक किया और देखा कि बुद्धिमान और मन्द बुद्धि बालक मानसिक वृद्धि के अनुकूल एक दूसरे से प्रतिवर्ष भिन्न होते जाते हैं। ६ वर्ष की वास्तविक आयु पर इन दोनों प्रकार के बालकों में मानसिक आयु का अन्तर केवल ४ वर्ष का था किन्तु १८ वर्ष की आयु पर दोनों की मानसिक आयु में १८ वर्ष का अन्तर होगया। इसका मतलब यह है कि बुद्धिमान् बालक मन्द बुद्धि बालकों की अपेक्षा मानसिक योग्यता में अधिक तीव्र गति से वृद्धि पाते हैं। यह चित्र इस बात की ओर संकेत करता है कि मन्द बुद्धि बालकों की मानसिक योग्यता में वृद्धि पहले ही रुक जाती है। उनमें मानसिक योग्यता केवल १८ वर्ष की अवस्था में ही नीचे की ओर झुकने लगते हैं।

इस विषय में अन्तिम प्रश्न यह है कि क्या बुद्धिमान बालकों में भी एक बालक दूसरे की अपेक्षा तेज या धीमी रफ्तार से वृद्धि पाता है? यह देखा गया है कि जिन बालकों की मानसिक आयु किसी विशेष वास्तविक आयु पर समान थी उनकी कई वर्ष तक निरन्तर बुद्धि परीक्षा लेने पर उनके मानसिक योग्यता के वक्र भिन्न भिन्न मिले।

विशिष्ट योग्यता में वृद्धि—सामान्य बुद्धि परीक्षाओं के परीक्षणों के आधार पर मानसिक वृद्धि के विषय में जो सूचनाएँ मिलती हैं लगभग वैसी ही सूचनाएँ विशिष्ट बुद्धि

परीक्षाओं के परीक्षाफलों के आधार पर उपलब्ध हुई हैं। जब तक शारीरिक वृद्धि होती है तब तक सामान्य और विशिष्ट बुद्धि एकसे ही दर से वृद्धि पाती है। शारीरिक परिपक्वता आने पर उसमे भी परिपक्वता आने लगती है।

मानसिक वृद्धि का अध्ययन करने की विधियाँ—मानसिक योग्यताओं के वृद्धि, विकास और परिपक्वता का ज्ञान व्यक्तियों की भिन्न भिन्न आयु स्तरों पर परीक्षण करने से प्राप्त होता है। बुद्धि का स्वभाव जानने के लिये जिस प्रकार के यन्त्र की आवश्यकता पड़ती है उस यन्त्र का स्वरूप उन मानसिक योग्यता के स्वरूप पर निर्भर रहता है जिसके मापन या परीक्षण के लिये उसका निर्माण किया जाता है। जिस प्रकार डाक्टर अपने व्यक्तियों के कद या भार के मापने के लिये कुछ यन्त्रों का निर्माण करते हैं उसी प्रकार मनोविज्ञान भी मानसिक योग्यताओं के मापन के लिये यन्त्र प्रस्तुत करते हैं। एक ऐसा यन्त्र बीने प्रमापित बुद्धि परीक्षा है। इसके आधार पर मानसिक वृद्धि या विकास का अन्दाजा लगाया जाता है।

अध्याय ५

संवेगात्मक विकास

(Emotional Development)

Q. 1. What is an emotion ? Discuss its chief characteristics Why is necessary for a teacher to study the emotions of his child ?

६.१ सवेगो का स्वरूप

भय, प्रेम, क्रोध, आश्चर्य, लज्जा आदि ऐसे उद्वेग जिनकी अनुभूति पूर्णत आन्तरिक और

न्ति की मानसिक अवस्था

वह अवस्था है जिसकी

होने वाले तरह तरह के

द्वेगजनक परिस्थिति का

प्रत्यक्षीकरण, स्मरण और कल्पना इस प्रकार के परिवर्तनों और क्रियाओं के लिये व्यक्ति को प्रेरित करता है।

सवेग के द्वारा जो उथल-पुथल मन मे उत्पन्न होती है वह किसी विशेष अवस्था के कारण होती है। मानसिक उथल-पुथल के साथ-साथ शारीरिक हलचल भी होती है और शारीरिक हलचल सवेग को उग्र रूप देती है। जब हम साधारण मानसिक अवस्था मे होते हैं तब हमारे मन मे किसी प्रकार का क्षोभ नहीं होता किन्तु सहसा किसी व्यक्ति के द्वारा समाज मे हमारा अपमान किये जाने पर हमारे मन मे एक विचित्र उथल-पुथल मच उठती है, मानसिक उथल-पुथल के साथ साथ रक्त का सचार तीव्रगति प्राप्त कर लेता है, आँखें लाल हो जाती हैं, अग अग मे एक स्फुरण सा जाग्रत हो जाता है। ये शारीरिक परिवर्तन क्रोध के सवेग को तीव्र बना देते हैं। क्रोध के सवेग का अनुभव परिस्थिति के प्रत्यक्षीकरण से होता है। कभी-कभी बाद मे उसी परिस्थिति की कल्पना अथवा स्मरण से भी उसी व्यक्ति के प्रति क्रोध जाग्रत हो सकता है। भय, प्रेम, आश्चर्य, लज्जा आदि सवेगों की अवस्था मे भी इसी प्रकार की मानसिक अथवा शारीरिक उथल-पुथल पैदा हो जाती है।

५.२ संवेगो के लक्षण

संवेग के स्वरूप को समझने के लिये हमे उनके लक्षणो को समझना होगा। संवेगों की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं—

(१) आन्तरिक अनुभूति
(२) भावात्मक गुण
(३) क्रियात्मक प्रवृत्ति से सम्बन्ध
(४) शारीरिक परिवर्तन
(५) स्थिरता
(६) विस्तृत क्षेत्र

आत्मगत आन्तरिक अनुभूति—सवेग विशेष प्रकार की आत्मगत अनुभूति है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी मानसिक प्रवृत्तियों तथा रुचि के अनुसार विशेष अवस्था मे सवेग का अनुभव करता है और चूँकि भिन्न भिन्न व्यक्ति मनोभाव, मनोवृत्ति और रुचियों के अनुसार एक दूसरे से भिन्नता रखते हैं इसलिये उनके सवेगो में भी भिन्नता होती है। कभी-कभी तो एक ही अवस्था

के उत्पन्न होने पर दो व्यक्तियों के संवेग न केवल भिन्न वरन् एक दूसरे के प्रतिकूल भी हो सकते हैं। परीक्षा में एक दो अंक का कम अथवा अधिक प्राप्त होना दो विद्यार्थियों में प्रतिकूल तीव्र भावों को उत्पन्न कर सकते हैं। एक बालक तो एक दो अंक अधिक प्राप्त करने पर अति प्रसन्न और दूसरा अत्यधिक दुखी होता है। इस प्रकार उद्वेग आत्मगत होता है।

उद्वेग का दूसरा गुण उसकी आन्तरिक अनुभूति है क्योंकि कभी-कभी तीव्र संवेग के उत्पन्न होने पर भी व्यक्ति उसका प्रकाशन नहीं करता। एक दुखद सूचना को पाकर किसी व्यक्ति के मन में इतनी अधिक उथलपुथल मच सकती है कि वह खाना पीना भी भूल जाता है और उसे कई दिनों तक नींद नहीं आती किन्तु हो सकता है कि वह अपनी इस उथलपुथल को किसी को प्रकट न होने दे। वह अपने भावों को दूसरों से छिपाने में इतना अधिक कौशल दिखाता है कि उसके ऊपरी हावभावों से उसके संवेगों की तीव्रता का अन्दाज नहीं लगा सकते।

भावात्मक गुण—भय, क्रोध प्रेम, घृणा आदि संवेगों का विश्लेषण करने से हमें ज्ञात होता है कि इसका सम्बन्ध मन के उसी पहलू से है जिससे कि भाव का। सामान्यतः भाव से सम्बन्धित मानसिक पहलू को हम भावात्मक अवस्था कहते हैं। भावात्मक अवस्था के उत्पन्न होने पर व्यक्ति के मन में उथलपुथल नहीं मचती जैसी कि संवेगात्मक अवस्था में मचा करती है। वास्तव में भाव अथवा राग की पराकाष्ठा का नाम ही संवेग है। इसलिये भावों को संवेगों की आत्मा माना जाता है, भाव और संवेग में अन्तर केवल इतना है कि साधारण भाव में केवल संतोष अथवा असंतोष उपस्थित रहता है किन्तु संवेग में यही संतोष अथवा असंतोष उग्र रूप में सुख और दुःख में अथवा आनन्द और पीड़ा में परिणत हो जाता है। क्रोधावस्था में हम भावों से आच्छादित हो जाते हैं उस समय हमें शुभ अशुभ, हानि लाभ आदि का ज्ञान नहीं रहता। इस प्रकार क्रोध में भाव की तीव्रता वर्तमान रहती है। इसी प्रकार भय, घृणा, ईर्ष्या, कामुकता आदि की संवेगात्मक अवस्थाओं में भी भावमय हो जाते हैं।

संवेग कुछ भावों के उग्ररूप हैं किन्तु भाव और संवेग में विशेष अन्तर है। मनोवैज्ञानिकों ने भावों को केवल दो प्रकार का माना है सुखद और दुःखद किन्तु संवेग कई प्रकार के होते हैं उनमें से कुछ सुखद होते हैं और कुछ दुःखद। प्रेम, दया और करुणा सुखद संवेगों के उदाहरण हैं और क्रोध, भय, और घृणा दुःखद संवेगों के। भावावस्था में तो व्यक्ति सामान्य दशा में रहता है और उसकी सामान्य क्रियाओं में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित नहीं होती। भाव पूर्णतः आत्मगत होता है। और उसका ज्ञान दूसरों को तभी होता है जब भाव को अनुभव करने वाला उसे स्वयं ही व्यक्त करता है। संवेग में प्रायः इतनी अधिक तीव्रता होती है कि उसका प्रकाशन हो ही जाता है। संक्षेप में संवेग भाव का तीव्र रूप है।

क्रियात्मक प्रवृत्ति—प्रसन्नता अथवा दुःख भाव के उदय होने पर हम खाट से पड़े पड़े प्रसन्न अथवा दुःखी हो सकते हैं किन्तु संवेग में मानसिक उथलपुथल इतनी तीव्र होती है कि वह किसी न किसी क्रिया के रूप में प्रकट हो जाती है। क्रोध आने पर हम शत्रु पर आक्रमण करने को दौड़ पड़ते हैं। भय के उत्पन्न होते ही हम भयावह वस्तु से बचाव की बात सोचते हैं। बिना महावत के दौड़ते चिंघाड़ते हुए खूनी हाथी को देखकर अपनी जान बचाने के लिये किसी घर में छिपते, पेड़ पर चढ़ने अथवा इधर-उधर भागने की क्रिया में प्रवृत्त हो जाते हैं।

मूल प्रवृत्यात्मकता—मूलप्रवृत्तियों की व्याख्या करते हुए हमने कहा था कि प्रत्येक मूलप्रवृत्ति किसी न किसी संवेग से सम्बद्ध रहती है। मैक्डूगल ने प्रत्येक मूलप्रवृत्ति के पीछे एक संवेग को जोड़ दिया है जैसे पलायन-भय से, युयुत्सा-क्रोध से, निवृत्ति-घृणा से, पुत्रकामना-वात्सल्य से, उत्सुकता-आश्चर्य से, संग्रह-संग्रहभाव से, शरणागति-करुणा से, काम प्रवृत्ति-कामुकता से, दैन्य आत्महीनता से, आत्मप्रदर्शन-आत्माभिमान से, सामूहिकता-एकाकीपन के भाव से, [illegible] भूख से, रचना-रचनात्मक आनन्द से और हास-आमोदभाव से सम्बद्ध किये गये हैं। कुछ मूल प्रवृत्तियों का विश्लेषण करते समय यह कहा गया था कि प्रत्येक मूल प्रवृत्ति के तीन अंग होते हैं—ज्ञानात्मक, संवेगात्मक और क्रियात्मक। उदाहरण के लिये जिज्ञासा की मूल प्रवृत्ति का ज्ञानात्मक अंग है किसी रहस्य को न समझ सकना, रहस्य को न समझ सकने पर आश्चर्य का उदय होना जिज्ञासा

का सवेगात्मक पहलू है, आश्चर्य के उदय होने पर उसे जानने की कोशिश करने की क्रिया जिज्ञासा का क्रियात्मक पक्ष है। अत यदि सवेग और मूल प्रवृत्ति को हम अन्योन्याश्रित मानकर चलते हैं तो सवेग मे क्रियात्मकता का लक्षण स्वीकार करना होगा।

क्योंकि सवेग का जाता है अथवा मूल प्रवृत्ति छिपी रहती है जैसा कि अभी कहा गया है किन्तु इन सवेगो में सम्भवत. एक सवेग ऐसा भी है जिसका सम्बन्ध कई मूल प्रवृत्तियो से हो सकता है। बालक को उसको जिज्ञासा पूरी न होने दीजिये उसे क्रोध आ जायगा। उसकी सग्रह प्रवृत्ति को अवदमनित कर दीजिये वह क्रोधित हो जायगा, उसकी भोजन ढूंढने की मूलप्रवृत्ति को अवरुद्ध कर दीजिये वह लाल ताता हो जायगा। सक्षेप मे हम कह सकते हैं कि कई मूल प्रवृत्तियो के प्रकाशन मे बाधा मिलने पर एक या एक से अधिक सवेग उदय हो जाते हैं किन्तु उनके प्रकाशन मे सहायता मिलने पर एक और एक ही सवग का उदय होता है। सवेग के उत्पन्न होते ही व्यक्ति क्रियात्मक प्रवृत्ति का प्रदर्शन करता है।

शारीरिक परिवर्तन--किसी न किसी मनोवैज्ञानिक कारण के उत्पन्न होने पर जब सवेग का जन्म होता है तब व्यक्ति मे दो प्रकार के शारीरिक परिवर्तन दिखाई देते हैं-- आन्तरिक और बाह्य। प्रत्येक सवेग न केवल मानसिक प्रवाह पर सहसा आक्रमण करता है किन्तु वह सारे शरीर मे बिजली की तरह कम्पन पैदा कर देता है। रुधिर संचार, आमाशय, स्वेदप्रवाह, अश्रुप्रवाह, श्वासगति सभी शारीरिक क्रियाएँ प्रभावित हो जाती हैं। उदाहरण के लिये क्रोधावस्था के उत्पन्न होने पर रुधिर प्रवाह तीव्र गति से होने लगता है। स्वास की गति भी बढ जाती है, आँखें लाल हो जाती हैं, दांत जुड जाते हैं और मस्तिष्क में बल पड जाते हैं। आमाशय की क्रिया मन्द पड जाती है और यदि यह अवस्था लम्बी अवधि तक चलती रही तो व्यक्ति को मन्दाग्नि का रोग भी हो जाता है। ध्वनि गम्भीर और तेज हो जाती है। इसी प्रकार के अन्य शारीरिक परिवर्तन सभी सवेगों मे होते हैं।

सामान्यत सवेग परिस्थिति पर निर्भर रहते हैं। जब हम किसी विशेष परिस्थिति का निरीक्षण करते हैं तब हमारे मन मे विचार उत्पन्न होते हैं और विचारधारा के प्रवाह के साथ-साथ भाव उत्पन्न होते हैं और सहसा ही शारीरिक परिवर्तन उपस्थित हो जाते हैं। किन्तु कई मनोविज्ञ शारीरिक परिवर्तनों को इतना अधिक महत्व देते हैं कि सवेग सम्बन्धी शारीरिक प्रक्रिया को ही सवेग की जननी मान लेते हैं। उनका कहना है कि शारीरिक परिवर्तनो की अनुपस्थिति में किसी भी तरह का सवेग पैदा नही हो सकता। शारीरिक उथल पुथल ही सवेग का कारण होती है। ऐसे मनोवैज्ञानिको मे जेम्स और लैंग का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उनका कहना है कि बिना रुधिर सचार की तीव्र गति के, बिना हाँफने के, बिना आँखों के लाल होने के हमे किसी प्रकार क्रोध की अनुभूति नहीं होती। उनके कथनानुसार हम पहले शारीरिक क्रिया करते हैं तब हमे सवेग की अनुभूति होती है।

५.२ जेम्स-लैंग का यह सिद्धान्त सामान्य विचारधारा से पूर्णत भिन्न है। उनका कहना है कि अपमानजनक परिस्थिति के प्रत्यक्षीकरण होते ही शरीर मे आन्तरिक और बाह्य

को मिलती है वैसे ही अन्तरा-

है। इस सिद्धान्त के अनुसार

रिंगटन और कैनन आदि मनो-

दैहिक विद्वानो ने बिल्लियों और कुत्तों पर प्रयोग करके यह प्रमाणित कर दिया है कि अन्तरावयव सवेदना के अभाव में भी ये पशु सवेग की अनुभूति करते हैं। जेम्स ने अन्तरावयव सवेदना (Sensation) तथा सवेग (Emotion) को अभिन्न माना है किन्तु सवेदना ज्ञानात्मक और सवेग भावात्मक प्रक्रियायें हैं अतः उनका मत असगत प्रतीत होता है। कई ऐसे अकाट्य प्रमाण भी इस सिद्धान्त के विरोध में प्रस्तुत किये गये हैं जो कि उसकी सत्यता को अमान्य बना देते हैं। उदाहरण के लिये अंग शून्यता के कारण अन्तरावयव संवेदना के अभाव में भी लज्जा और भय के सवेगों का प्रदर्शन व्यक्ति करता है।

आने पर लगभग सभी वस्तुओं और व्यक्तियों के प्रति प्रेम की प्रतिक्रिया स्पष्ट हो जाती है। प्रारम्भ में सभी संवेग इसी तरह अस्पष्ट रहते हैं किन्तु क्रमशः आयु वृद्धि के साथ उनमें स्पष्टता आती जाती है। उनका विकास जैसा कि पहले कहा जा चुका है परिपक्वीकरण तथा सीखने के फलस्वरूप होता है।

प्रारम्भ में इस संवेग का क्षेत्र सीमित होता है किन्तु जो उनका सम्पर्क वातावरण के भिन्न-भिन्न प्राणियों अथवा वस्तुओं से बढ़ता जाता है वैसे ही उनके प्रेम का क्षेत्र भी विस्तृत हो जाता है। सर्व प्रथम बच्चों का सम्पर्क अपने परिवार के व्यक्तियों के साथ होता है। आयु के बढ़ने के साथ-साथ ज्यों-ज्यों उनका सामाजिक सम्बन्ध अन्य व्यक्तियों से बढ़ता जाता है उनका संवेगात्मक व्यवहार भी विकास को प्राप्त होता है। सम्पर्क में आने वाले जिन व्यक्तियों से उन्हें आनन्द की प्राप्ति होती है उनके साथ उनका प्रेम वर्धित होता रहता है। इसी प्रकार आयु वृद्धि के साथ उनकी प्रेम की सीमा इतनी अधिक बढ़ सकती है कि वे विश्व के प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित करने लगते हैं।

प्रेम का प्रकाशन—प्रेम संवेग का प्रकाशन बच्चे विभिन्न रूपों में करते हैं। जो व्यक्ति उन्हें प्यार से थपथपाते हैं उनके प्रति वे स्नेह की प्रतिक्रिया मुस्कराकर, गर्दन उठाकर, तथा हाथ पैर फैला कर करते हैं। जब समवयस्क बच्चे आपस में प्रेम करते हैं तब उस प्रेम का प्रकाशन उनके बीच स्थित मैत्री भाव से होता है। प्रौढ़ होने पर भी व्यक्ति इसी तरह की प्रतिक्रियाएँ करते हैं। आलिंगन चुम्बन, मुस्कराहट और हँसने की प्रतिक्रियाएँ बच्चों और सयानों में सघन रूप से दिखाई देती हैं।

प्रेम संवेग का उचित विकास कैसे?—प्रेम संवेग के विकास काल में माता पिता को अत्यन्त सावधान रहने की आवश्यकता होती है। बच्चों का प्रेम माता-पिता अथवा घर की वस्तुओं तक ही सीमित न रहे वरन् वे अवस्था तथा समय के अनुसार सभी व्यक्तियों और सभी पदार्थों से प्रेम करना सीखें नहीं तो उनका दृष्टिकोण संकुचित होने के कारण व्यक्तित्व अविकसित तथा उनका व्यवहार असामाजिक हो सकता है। दूसरी बात जिस पर माता पिता को सावधानी बरतनी है वह है किशोरावस्था में उत्पन्न होने वाले प्रेम के विषय में। इस अवस्था के किशोर और किशोरियों की यौन-अभिरुचि बढ़ जाती है। यौन विशेषताओं के प्रकट होने पर उनमें शारीरिक और सांवेगिक परिवर्तन स्पष्टतः दिखाई देने लगते हैं। पारस्परिक यौन-आकर्षण की वृद्धि के साथ विभिन्न रूपों में प्रेम की अभिव्यक्ति होने लगती है। कभी कभी सम यौन-आकर्षण भी होने लगता है जिसके फलस्वरूप वे आगे चल कर दूसरी यौनशाले व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित करना पसन्द नहीं करते और परिणाम यह होता है कि उनका जीवन अधूरा रह जाता है। अतः माता पिता को कम से कम इस संवेग के विकास में बालकों का समुचित रूप से निरीक्षण करना चाहिये।

किशोरावस्था में पारस्परिक स्नेह की अभिव्यक्ति को व्यक्ति और समाज दोनों उपयुक्त नहीं मानते। इसलिये उसके परिष्कार और संशोधन की आवश्यकता पड़ती है। प्रिय वस्तुओं और प्रिय व्यक्तियों को प्रियनाम से पुकारना, मित्रों, परिवार के घनिष्ठ सदस्यों पर विश्वास करना, उनके विश्वास का भाजन बनना आदि क्रियाएँ प्रेम की प्रतिक्रियाएँ मानी जाती हैं। इस संवेगात्मक व्यवहार पर प्रशिक्षण तथा अनुकरण का विशेष प्रभाव पड़ता है।

उचित संवेगात्मक विकास के लिये माता पिता को बालकों को संतुलित ढंग से प्यार करना चाहिये। अत्यधिक प्यार पाने के फलस्वरूप बालकों में आत्म निर्भरता की कमी हो जाती है और वे आगे चल कर जीवन की कठोर वास्तविकता का सामना करने में असमर्थता प्राप्त करते हैं। यदि बालकों को उचित प्यार नहीं मिलता तब भी उनका संवेगात्मक विकास अवरुद्ध हो जाता है। दोनों ही परिस्थितियाँ संवेगात्मक विकास के लिये हानिकारक सिद्ध होती हैं।

विद्यालय के प्रति बालकों में प्रेम का विकास कैसे हो?—जिस प्रकार परिवार में रह कर बालक को प्रेम की आवश्यकता होती है उसी प्रकार विद्यालय में भी बालक अपने गुरुजनों से प्रेम का व्यवहार चाहता है। जिन अध्यापकों में बालकों के प्रति अपार प्रेम और सहानुभूति होती है उनके प्रति बालकों के हृदय में अपार श्रद्धा होती है। यदि अध्यापक अपने संवेगों को

भय की प्रतिक्रिया सीखने का एक और तरीका है और वह है अनुकरण। अपने माता पिता, साथी तथा अन्य के भय की प्रतिक्रिया का वे अनुकरण करके स्वयं डरना सीख जाते हैं।

भय से हानि—भय शारीरिक दृष्टि से सबसे अधिक विनाशकारी संवेग है। भय की अवस्था में रुधिर का प्रवाह उसी प्रकार रुक जाता है जिस प्रकार शरीर के जम जाने पर। जो [illegible] हो जाती है। मनोदैहिक [illegible] और कण्ठ-मणि अपना ठीक [illegible] लगता है तो शरीर में बाहरी कीटाणुओं को रोकने की शक्ति नहीं रहती। इसलिये यदि हम बालक का उचित शारीरिक अथवा संवेगात्मक विकास चाहते हैं तो घर में, विद्यालय में, और जीवन की भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में भयावह दशाएँ उपस्थित नहीं करना है। यदि किसी कारणवश बच्चों में भय उत्पन्न भी हो गया है तो उसका उन्मूलन करना होगा।

भय दूर करने के उपाय—भय का उन्मूलन यद्यपि कठिन कार्य है तब भी इस दिशा में एम सी जोंस ने स्तुत्य प्रयत्न किये हैं। उन्होंने ३ महीने से लेकर ७ वर्ष की आयु तक के बच्चों के दिमाग से अर्जित भय को दूर करने का सफल प्रयास किया है। उन्होंने निम्नलिखित दो विधियों को अपना कर इस कार्य में सफलता पाई है

(१) सम्बद्ध प्रत्यावर्तित क्रिया।
(२) सामाजिक अनुकरण की क्रिया।

जिस प्रकार की क्रिया से भय का अर्जन हुआ है उसी प्रकार की सम्बद्ध प्रत्यावर्तित क्रिया के करने पर भय को छुड़ाया भी जा सकता है जिन वस्तुओं से बच्चा भयभीत होना सीख गया [illegible]

तो उसका बच्चा भी जिसने बिजली के कौंधने अथवा बादल की गर्जन से भयभीत होना सीख लिया है अब भयभीत होना छोड़ देगा।

५.६ क्रोध

Q. 4. In what situations a child expresses anger ? What is the effect on the child's physical and emotional development if he be kept constantly in anger-producing environment ?

अन्य संवेगों की तरह क्रोध भी एक महत्वपूर्ण विनाशकारी व्यापक संवेग है। कुछ मनोवैज्ञानिक तो इस संवेग को मूल संवेगों की श्रेणी में रखते हैं क्योंकि उग्रता की अवस्था में यह इतना अधिक तीव्र होता है कि क्रोधित जीव की बुद्धि ठिकाने नहीं रहती।

क्रोध के उदय होने के कारण—क्रोध की प्रतिक्रिया सीखने तथा परिपक्वीकरण दोनों से प्रभावित होती है ब्रिजेज (Bridges) का कहना है कि क्रोध ६ माह से कम आयु वाले बच्चे की प्रतिक्रियाओं में नहीं दिखाई देता। इस आयु में उनमें कष्ट की अनुभूति होती है क्रोध की नहीं। क्रोध की प्रतिक्रिया के लक्षण ६ माह की आयु के बाद स्पष्ट होने लगते हैं। डेनिस (Dennis) का भी यही मत है कि [illegible]
उत्पन्न होने [illegible]
कहना है कि [illegible]
वरन् क्रोध उत्पन्न करने के लिए एक विशेष अवस्था की जरूरत पड़ती है। जब प्राणी किसी ध्येय को प्राप्त करना चाहता है किन्तु किसी विषम परिस्थिति के कारण उस लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाता तो वह निराश हो जाता है। यह निराशा उसको उद्विग्न कर देती है। यही उद्वेग क्रोध के नाम से पुकारा जाता है। दूसरे शब्दों में प्रतिरोध, गति में बाधा, स्वाभाविक क्रिया की रुकावट, इच्छाओं का विरोध और दमन आदि बातें क्रोध की परिस्थिति उत्पन्न कर देती हैं, जब कभी भी किसी भी तरह की निराशा होती है तब क्रोध का संवेग तुरन्त उदय हो जाता है। खेलने कूदने

क्रोध का विषयान्तरण (Displacement of Anger)— जब किसी संवेग का मूल कारण पर उस संवेग का अन्तिम रूप में प्रदर्शन न हो और किसी वस्तु के प्रति उसका प्रदर्शन किया जाय तब वह संवेग विषयान्तरित माना जाता है। उदाहरणार्थ जब कोई अधिकारी अपनी पत्नी से झगड़ कर दफ्तर आता है तब वह अपने लिपिकों पर बिगड़ता है, फायलों को इधर-उधर फेंकता है। लिपिक उस क्रोध का प्रदर्शन अपने सहायक लिपिकों पर करते हैं। इस प्रकार सारा वातावरण क्रोधमय हो जाता है। क्रोध के विषयान्तरण का कारण मूल कारण से भयभीत होना है। चूँकि पत्नी पर उसी समय गुस्सा नहीं उतारा गया अथवा पत्नी की स्थिति क्रोध को उस पर प्रकट करने में बाधक थी इसलिये क्रोध के भाजन दूसरे व्यक्ति बने।

क्रोध का विषयान्तरण आसन्न वस्तुओं अथवा निकटतम व्यक्तियों पर भी होता है। उदाहरण के लिये हम पत्नी द्वारा बनाये गये भोजन पर क्रोधित होते हैं तो क्रोध का विषयान्तरण थाली और प्लेट पर करते हैं। इसी प्रकार जब बालक विद्यालय व्यवस्था से रोष प्रकट करते हैं तो वे कुर्सियों, बेंचों अथवा खिड़कियों के शीशों को तोड़ते फोड़ते दिखाई देते हैं। इस प्रकार क्रोध का विषय अध्यापक के स्थान पर विद्यालय का फर्नीचर हो जाता है।

क्रोध के प्रदर्शन की उपयोगिता— एक व्यक्ति जब क्रोधावेश में होता है तब वह अपने में सुधार लाने का प्रयत्न करता है। व्यक्ति इस आवेश में आकर अत्यन्त मनोयोग और अध्यवसाय के साथ कार्य में जुट जाता है। क्रोध के आवेश में बालक अपने मन विचारों और इच्छाओं को प्रकट करता है उनको ध्यान में रख कर अध्यापक उनके हित का साधन कर सकते हैं। लेकिन यदि बालक अपने क्रोध का प्रदर्शन नहीं करता तो अध्यापक अथवा अभिभावक उसकी असन्तुष्ट आवश्यकताओं का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। जब हम बालक को किसी प्रकार अपना क्रोध प्रकट करते हुए देखते हैं तब हम उसका कारण ढूँढने का प्रयत्न करते हैं। यदि उसके क्रोध का कारण हमारा ही कोई आचरण होता है तो हम उस आचरण को सुधारने का प्रयत्न करते हैं।

लेकिन क्रोध के परिणाम कभी-कभी अत्यन्त भयंकर भी होते हैं। व्यक्ति क्रोध के आवेश में आकर अपने मानसिक सन्तुलन को खो बैठता है और वह कभी-कभी दुष्कृत्य भी कर बैठता है, जब कोई व्यक्ति बार बार क्रोध की परिस्थिति में पड़ता रहता है तो उसका स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है और वह परिणामस्वरूप अपनी समस्याओं को हल करने का प्रयत्न नहीं कर पाता। चिड़चिड़ाहट व्यक्ति की चिन्तन शक्ति को क्षीण कर देती है। क्रोध के आने पर व्यक्ति की शक्ति का भी ह्रास और अपव्यय होता है।

क्रोध के अन्य सम्बन्धी संवेग—झगड़ालूपन (Pugnacity) और प्रतिशोधात्मकता (Vindictiveness) क्रोध के सम्बन्धी संवेग हैं। जब हम किसी व्यक्ति का व्यवहार लड़ाकू रूप में देखते हैं तब हम साधारणतः कहते रहते हैं कि उसे क्रोध आ रहा है। इसी प्रकार जब हम किसी को दूसरे से बदला लेते हुए देखते हैं तब भी यही समझा जाता है कि व्यक्ति क्रोधावेश में है। किन्तु झगड़ालूपन अथवा प्रतिशोधात्मकता क्रोध के परिष्कृत रूप हैं।

७.५ अवांछनीय संवेग से मुक्ति पाने के उपाय

5 Q. What methods you would emplly to remove the evil effects of undesirable emotions in your chilren? How will you proceed for proper emotional development of your children?

अगर कोई ऐसे संवेगों का प्रदर्शन किया जाता है जिससे दूसरों के व्यवहार पर अनिष्ट प्रभाव [illegible] हो जाता है उससे व्यक्तित्व [illegible] बच्चे के व्यक्तित्व के [illegible] और [illegible] होने लगते हैं [illegible] बालकों में [illegible] को विकसित [illegible] के [illegible] के लिए [illegible] बालक के [illegible] किया गया था। [illegible] ऐसे विधियों का उल्लेख किया जाएगा जो [illegible] संवेगों का निवारण कर सकें। वे विधियाँ निम्नांकित हैं—

(१) [illegible] (Conditioning)

(२) [illegible]

(३) [illegible]

(४) [illegible]

(५) [illegible]

(६) [illegible]

(७) [illegible]

[illegible] है और [illegible]।

[illegible] सहायता [illegible] किन्तु [illegible] बातों की [illegible] करते हैं। [illegible] बालक का [illegible] किया जाता है। ऐसा करने से उसका [illegible] जाता है।

ध्यान भंग विधि में बालक जिस वस्तु से डरता है उसके सामने होने पर उसका ध्यान अन्य उत्तेजनाओं की ओर आकृष्ट कर दिया जाता है। जिससे [illegible] बालक के [illegible] प्रकार के [illegible] उत्पन्न करने वाली वस्तु की ओर से ध्यान [illegible] कर लिया जाता है। ध्यान भंग करने में [illegible] उत्तेजनाएँ भी विशेष सहायक सिद्ध होती हैं।

मौखिक अपील विधि में बालक जिस पदार्थ अथवा परिस्थिति से भयभीत हो जाता है उसी के विषय में कहानियाँ सुनाकर बच्चों का कौतूहल उसके प्रति [illegible] कर दिया जाता है जिससे उसका भय खतम हो सकता है इस विधि में हम बच्चों का मजाक उड़ा कर उनके भय के संवेग का दमन करने का प्रयास करते हैं किन्तु बालकों का मजाक उड़ाने से उनमें हीनता का भाव उत्पन्न हो जाता है अतः इस विधि का प्रयोग बड़ी सावधानी के साथ किया जाता है।

अनभ्यास विधि में बच्चा जिस चीज से डरता है उसी को उससे बहुत दिनों के लिये अलग कर देते है और यह परिवर्तन बच्चे की मनोवृत्ति को बदल देता है जिससे फलस्वरूप वह जिस वस्तु से डरता था उसके बाद में भयभीत नहीं होता

५.८ बालकों के संवेगों की शिक्षा बालक अनेक प्रकार के संवेगों की अनुभूति करता है। कुछ संवेगों का उसके स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव पड़ता है कुछ का बुरा कुछ संवेग उसके व्यक्तित्व को बनाते हैं कुछ उसमें विकार उत्पन्न कर देते हैं बालक का मानसिक विकास विशेष सीमा तक संवेगात्मक विकास पर निर्भर रहता है बालकों का चरित्रगठन, किसी विषय के पढ़ने में रुचि तथा ध्यान की एकाग्रता बालकों के संवेगों की उचित शिक्षा पर ही निर्भर रहती है। जिन बालकों के संवेग उचित प्रकार से विकसित नहीं होते वे आगे चल कर अनेक भावनात्मक संघर्षों (Emotional Complexes) से पीड़ित रहते हैं। बालकों की शिक्षा व्यवस्था में विकास के [illegible] शारीरिक और मानसिक पहलू पर तो जोर दिया जाता है किन्तु उनके संवेगात्मक विकास पर [illegible] ध्यान नहीं देता। फल यह होता है कि हमें समाज में ऐसे व्यक्ति मिलते हैं जो अपनी बुद्धि [illegible] से जगत् में चकाचौंध पैदा कर देते हैं किन्तु उनमें संवेगात्मक स्थिरता अथवा परि[illegible] [illegible] होती। वे आयु और परिस्थिति के अनुकूल अपने संवेगों का प्रकाशन अथवा अनुभव कर [illegible]। जरा-सी कठिनाई के सामने आते ही धैर्य खो बैठते हैं। क्रोध के आवेश में आकर [illegible] काम कर चलते हैं जो उनके लिये शोभनीय नहीं होते। संकटावस्था में पड़कर बालकों जैसा व्यवहार करते रहने का तात्पर्य यह है कि हमारी शिक्षा प्रणाली में बौद्धिक एवं शारीरिक विकास की ओर तो सभी का ध्यान जाता है किन्तु संवेगात्मक विकास की ओर कोई ध्यान नहीं देता।

व्यक्ति का संवेगात्मक सन्तुलन अथवा संवेगात्मक स्थिरता (Emotional balance or stability) निम्नांकित तत्वों पर निर्भर रहती है—

(१) स्वास्थ्य
(२) आवश्यक उपकरणों की सुविधा
(३) सुरक्षित पारिवारिक जीवन
(४) सामाजिक सुविधा
(५) संवेगात्मक परिस्थितियों के नियंत्रण का प्रशिक्षण
(६) संवेगात्मक परिस्थितियों का लाभ

प्रथम, हृष्ट पुष्ट और स्वस्थ व्यक्तियों में क्रोध और भय आदि हानिकारक संवेगों का उदय बहुत कम होता है। यदि किसी कारण से क्रोध या भय उत्पन्न भी होता है तो उसे नियंत्रित करने की सामर्थ्य उनमें होती है अत: उनका संवेगात्मक सन्तुलन बिगड़ता नहीं।

वर्तमान जीवन से सन्तुष्ट बालकों में हीनता और अरक्षा की भावना उदय नहीं होती फलत: उनका संवेगात्मक विकास सामान्यरूप से होता रहता है।

सुरक्षित जीवन घर और परिवार के लोगों का बालक के प्रति उचित प्रेम, और स्नेह और ऐसा स्नेह जो न तो अधिक हो और न बहुत कम ही बालकों में संवेगात्मक विकास के लिए हितकर सिद्ध होता है।

यदि बालकों को समाज में आत्म प्रकाशन (Self expression) करने का उचित अवसर मिलता रहता है, यदि उनको समाज में सभी प्रकार की सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं जिनकी उनको आवश्यकता होती है अर्थात् यदि समाज उनकी मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं (Psychological needs) को सन्तुष्ट करता रहता है तो उनका संवेगात्मक विकास ठीक ढंग से चलता रहता है उनको बात बात पर भय, क्रोध, घृणा आदि संवेगों का अनुभव नहीं होता।

तीव्र संवेगों को उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों का यदि बालक के जीवन में नियंत्रण होता रहे, यदि उसे माता पिता के कलह, अथवा किसी भयावह परिस्थिति का सामना न करना पड़े तो उसका संवेगात्मक विकास उचित दिशा में होता रहेगा।

संवेगात्मक समसन्तुलन उस समय भी पैदा हो जाता है जिस समय व्यक्ति अज्ञानतावश क्रोध, भय, चिन्ता, आत्मग्लानि आदि विनाशकारी संवेगों का शिकार हो जाया करता है। अत: उनको यदि यह बता दिया जाय कि अमुक परिस्थिति में उनको क्रोध करने से क्या फायदा हो सकता है अथवा अमुक परिस्थिति में भयभीत होना निराधार है तब वे उन अहितकर संवेग के दुष्परिणामों से अपनी रक्षा कर सकते हैं। तभी हमको शान्ति मिल सकती है जो हमारी प्राचीन सभ्यता का मूल उद्देश्य था। हमारे पूर्वज शरीर और मन को स्वस्थ अवस्था में रखने के लिये संवेगों के संयम पर जोर देते थे। जो व्यक्ति कामनाओं और संवेगों के प्रविष्ट होने पर भी समुद्र की भाँति स्थिर रहता है वही परम शान्ति को प्राप्त करता है ऐसी हमारे ऋषियों और मुनियों की व्याख्या थी।[१]

ऊपर संवेगात्मक सन्तुलन अथवा संवेगात्मक स्थिरता पैदा करने के कुछ तत्वों का उल्लेख किया गया है किन्तु जब तक व्यक्ति में उचित स्थायी भावों की उत्पत्ति नहीं की जाती तब तक उसका संवेगात्मक विकास उचित प्रकार से नहीं होता।

---

[१] आपूर्यमाण चल प्रतिष्ठ समुद्राप: प्रविशन्ति यद्वत
तद्वत्कामा यंप्रविशन्ति सर्वे शान्तिमाप्नोति न कामकामी—गीता

प्रकार का सामाजिक व्यवहार नहीं देखा जाता। इस समय न तो वह सामाजिक ही होता है और न असामाजिक ही। इस समय उसकी सारी आवश्यकताएँ उसकी माता अथवा परिचारिका द्वारा पूरी की जाती हैं। सामाजिक व्यवहार का विकास सम्भवतः माता अथवा परिवार के प्रति की गई प्रतिक्रियाओं से आरम्भ होता है। धीरे-धीरे उसके सामाजिक सम्बन्धों का क्षेत्र विकसित होता है। वह मुस्करा कर अथवा अनुकरण करके अन्य व्यक्तियों से भी सम्बन्ध जोड़ता जाता है। बालक अपनी प्रसन्नता को दूसरों तक पहुँचाता है। दो तीन महीने की अवस्था में अन्य व्यक्ति उसमें और वह उनमें रुचि लेने लगता है। इस प्रकार दूसरों के प्रति चेतना (awareness of others) का विकास होता है। अब वह समझता है कि रोने के फलस्वरूप उनका ध्यान उसकी ओर आकृष्ट हो जायगा। एक बार जब वह उनका ध्यान आकृष्ट कर लेता है तो सम्बद्ध प्रत्यावर्तन से बार बार इस प्रयोग द्वारा वातावरण को अपने अनुकूल बना लेता है। चौथे महीने में खास व्यक्ति जो उससे बात करते हैं, उनके प्रति मुस्कराने लगते हैं। जब कोई व्यक्ति उसकी ओर ध्यान देता है तो वह आनन्दित होता है और साथ में खेलने पर हँसता भी है। ५ और ६ महीने की आयु में वह नम्र और रूखे स्वरों में अन्तर समझने लगता है। यह अन्तर उसकी भिन्न भिन्न प्रतिक्रियाओं से प्रकट होता है। नम्र शब्दों को सुनकर वह मुस्कराता है और रूखे शब्दों को सुनकर रोता है। ६ महीने की अवस्था में परिचित और अपरिचित व्यक्तियों के प्रति भिन्न भिन्न प्रतिक्रिया करता है। आठवें महीने में वह दूसरों की बोली का अनुकरण करने की चेष्टा करता है, दूसरों के हावभाव तथा अन्य सरल क्रियाओं की नकल करने का प्रयास करता है। दसवें महीने में वह दूसरों के साथ खेलने की इच्छा प्रकट करता है। एक साल की आयु में वह अस्वीकारात्मक प्रतिक्रिया का प्रदर्शन करता है। दो वर्ष की अवस्था में उसमें सहयोग की प्रतिक्रियाएँ देखी जाती हैं।

समवयस्कों से सम्बन्ध—२ वर्ष से लेकर ५ वर्ष की अवस्था तक बच्चे के सामाजिक सम्बन्धों का ब्रिजेज ने काफी अध्ययन किया है। दो वर्ष की आयु में वह वयस्कों पर आश्रित रहता है, २½ वर्ष की आयु में उसमें अवरोध के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। जैसे ही उसके माता अथवा पिता उसको सहायता देने के लिये कुछ काम करने लगते हैं वैसे ही वह कह उठता है 'मैं ही करूँगा'। वह आत्म निर्भर होना चाहता है। ४ वर्ष की आयु में सामाजिक तटस्थता दिखा देती है। ५ वर्ष की आयु में उसके व्यवहार में सहयोग और मैत्री भाव का प्रदर्शन होता है। इस अवस्था में वह सामूहिक खेलों में आनन्द लेना शुरू कर देता है। इस आयु के बच्चे पारस्परिक आनन्द के लिये एक दूसरे को सहयोग देना, दूसरों की मान्यता तथा अमान्यता पर ध्यान देने लगते हैं।

सामाजिक वर्गों से मेल—साधारण बालक एक ओर तो बड़े लोगों से सम्बन्ध स्थापित करता है, दूसरी ओर समवयस्कों के साथ। वह दोनों ही ओर आकर्षण का अनुभव करता है। अपनी उम्र के बच्चों के साथ खेल कर उनमें रुचि का प्रदर्शन करता है और बड़े लोगों से अपनी क्रियाओं की प्रशंसा चाहता है। वह अपने कार्यों तथा बयान के लेन दूसरों के लिये बड़ों की अनुमति चाहता है और ऐसा कार्य करने से झिझकता है जिसके करने के लिये उसे रोका जाता है। इस अवस्था में अनुकरण की प्रवृत्ति बढ़ जाती है। कुर्सी को गाड़ी के डिब्बे की तरह, लाठी को घोड़े की तरह प्रयोग करता है। वह वयस्क व्यक्तियों के कार्यों का अनुकरण करता है। ड्यूई के अनुसार अनुकरण ही उसके सामाजीकरण का प्रमाण है।

पूर्व शाळा-गीय अवस्था के बच्चों के सामाजिक विकास के क्रम में प्रायः देखा जाता है कुछ बच्चे दूसरों पर अपना प्रभुत्व दिखाते हैं और कुछ ऐसे भी होते हैं जो दूसरों की अधीनता स्वीकार कर लेते हैं। दूसरों पर प्रभुत्व दिखाने समय वे दूसरे से खिलौने छीनने की चेष्टा करते हैं और इस चेष्टा में सफलता भी प्राप्त करते हैं। वे दूसरे बच्चों से कार्य कराते, साथियों की आलोचना करते हुए पाये जाते हैं।

इस प्रकार शैशवावस्था में सामाजिक चेतना का विकास होता है। आरम्भ में बच्चा आत्म केन्द्रित होता है किन्तु धीरे-धीरे अन्य बच्चों और वयस्कों के सम्पर्क में आने के फलस्वरूप दूसरों

अपने समुदाय के प्रति बालकों का व्यवहार उनके पारिवारिक पोषण से निश्चित होता है। जिन बालकों पर बहुत अधिक प्रेम का प्रदर्शन किया जाता है वे स्वभावत उद्दण्ड सन हो जाते है और अपने समुदाय मे अनुकूलन स्थापित करने मे असमर्थ रहते है। ऐसे घरों से आने वाले बालक भी उग्र हो जाते हैं जहाँ माता पिता के सम्बन्ध अच्छे नही होते। वे अपने गैंग मे अत्यधिक स्वीकृति चाहते हैं इसलिये कभी-कभी साथियो द्वारा त्याग दिये जाते है। ऐसे घरो से आने वाले बालकों मे जिनके माता पिता बालकों को उचित निर्देशन देते हैं, सहयोग और सहकारिता की भावना का आधिक्य होता है। कभी-कभी ऊँचे घरानो के माता पिता अपने बच्चो को निम्न श्रेणी के बच्चों से मिलने के लिये रोकते हैं, ऐसी परिस्थिति मे न केवल बालको के सामाजिक *विकास मे बाधा पड़ती है परन्तु माता पिता से भी विरोध पैदा हो जाता है। कभी-कभी कुछ* नम्र चो मे जो माता पिता के मानदण्डो का विशेष विरोध नही कर पाते ऐसी हानिकारक वर्ग ना पैदा हो जाती है जो एक वर्गहीन समाज के लिये अत्यन्त हानिकारक सिद्ध होती है। नी-कभी प्रान्तीय धार्मिक, जातिगत भिन्नता इस प्रकार बालको की सामाजिक चेतना के विकास बाधक सिद्ध होती। फलत. बचपन से ही बच्चे सकीर्ण घरों का दीवारो मे बन्द कर दिये ते हैं। वर्ग वर्गान्तरो की सामाजिक दूरी करने का एक कारण यह भी है। अत जरूरत इस त की है कि बुद्धिमान शिक्षक विवेकपूर्ण निर्देशन द्वारा सामूहिक और सहयोगी सामुदायिक खेलो रा भिन्न जाति और धर्म के सामाजीकरण के अन्य अनेक अवसर प्रदान कर वर्ग हीन समाज का ज बोने का प्रयत्न करे।

• Q. 2. Give a general account of the social development of adolescence. /hat activities should a school prov de to ensure o, timu n social development?

६.४ किशोरावस्था मे सामाजिक चेतना का विकास

किशोरावस्था आरम्भ होते ही प्रत्येक बालक और बालिका अपने बनाये हुए अवरोधों मे पने आपको सीमित कर लेता है क्योंकि वह समझने लगता है कि वह समाज के अयोग्य है। समकी 'अहं' की वृत्ति जिसके कारण वह अब तक बाह्य समाज से सम्पर्क स्थापित करने की योग्यता खता था अन्तर्मुखी हो जाती है। इस समय निम्न आर्थिक-सामाजिक स्तर के किशोर अपने से उच्च स्तर वाले किशोर मे स्वतन्त्रतापूर्वक मिलने मे हिचकते है। छोटी अवस्था मे धनीमानी व्यक्ति अपने बच्चो को अपने से निम्न स्तर के बालको से मिलने नही देते बड़ी अवस्था मे धनीमानी वर्ग के लोग स्वय उच्चवर्ग के लोगों से मिलना पसन्द नही करते उनमे सहनशीलता और उदारता अपेक्षाकृत कम होती है इस कारण किशोरावस्था मे स्वतन्त्र सामाजीकरण के अवसरो मे और भी कमी आ जाती है।

अब विषम लिंग के प्रति आकर्पण का विकास होने लगता है। यद्यपि यह सामाजिक क्रिया है किन्तु भारत जैसे देश मे उसकी भी अपनी समस्याएँ होने के कारण किशोर का सामाजिक विकास उचित रूप से नहीं हो पाता। वह भावनात्मक सघर्ष और मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का शिकार हो जाता है क्योकि समाज उसको विषम लिंगीय व्यक्तियो से मिलने नहीं देता। इस सघर्ष को कम करने के लिये वह खेल के मैदान मे अथवा मुहल्ले की मण्डली में अपने गौरव को प्रदर्शन करने की ओर प्रवृत्त होता है। किशोर और किशोरी इस समय एक ऐसी अवस्था से गुजरते है जब वे एक दूसरे के प्रति अवास्तविक तिरस्कार की भावना का प्रदर्शन करते हैं।

किशोरावस्था के अन्त तक दल बनाने की प्रवृत्ति सभी बालको मे पाई जाती है। समूह ही उनका समाज होता है, यहीं पर वे अपने साहस और उदारता को प्रदर्शन करते हैं। इस समूह मे 'भीड़' भाव होता है क्योंकि प्रत्येक किशोर अपनी महत्ता का प्रदर्शन करना चाहता है।

प्रत्येक व्यक्ति दूसरे का अतिक्रमण करना चाहता है इसके परिणामस्वरूप उनके इस समूह मे कभी-कभी ऐसे कार्य भी देखे जाते हैं जिनको अकेले करने मे कोई भी व्यक्ति साहस नहीं कर सकता।

सामाजिक विकास की दृष्टि से यह काल बड़ा ही महत्वपूर्ण है। यदि शिक्षक अथवा अभिभावक उसके साथ सहानुभूति पूर्ण व्यवहार नहीं करते तो किशोरावस्था के आरम्भ मे पलायन

की प्रवृत्ति अथवा काल्पनिक संसार बनाने की प्रवृत्ति उसे असामाजिक बना सकती है। किशोर
समय लज्जाशील होता है अत अध्यापक को उसमे विश्वास उत्पन्न करने तथा अधिक सामाजि
प्राणी बनाने के लिये उचित अवसर प्रदान करना चाहिये। जिस समय किशोर मे अपना म
दिखाने तथा दूसरो का अनुकरण करने की भावना उत्पन्न हो जाती है उस समय अध्यापक
इस नवविकसित अह भावना को समाज-स्वीकृत उत्पादक मार्गों की ओर उन्मुख करता हो
यह कार्य समाज-सेवा शिविरो, स्काउटिंग कैम्पो के आयोजन में उसे उत्तरदायित्व पूर्ण पद दे
सम्पादित हो सकता है। किशोरावस्था के अन्तिम दो-तीन वर्षों मे व्यक्ति अपनी शक्ति का सदुपयो
नहीं करता इसलिये विद्यालय का कर्तव्य है कि इस समय उसे समाजोपयोगी कार्यों मे लगा
समाज का हित साधन करे। नवयुवक आन्दोलन का उद्देश्य और कार्य भी यही होना चाहिये कि
वे इस प्रकार के साधन और अवसर किशोरो के सामने प्रस्तुत करें जिनसे समाज सेवा के
प्रशस्त पथ पर वे आरूढ हो सकें।

६.५ सामाजिक विकास को प्रभावित करने वाले तत्व

जिस प्रकार शारीरिक और मानसिक विकास वंशानुक्रम और वातावरण से प्रभावित होता
है उसी प्रकार सामाजिक विकास भी एक ओर वंशानुक्रम से प्राप्त शारीरिक बनावट और परिपक्वता
पर निर्भर रहता है दूसरी ओर पारिवारिक और विद्यालयीय वातावरण, खेल तथा अन्य आनन्द के
साधन, क्लब, कैम्प और दल आदि पर निर्भर रहता है। शिक्षक और अभिभावकों का कर्तव्य है कि
जहाँ तक सामाजिक विकास वातावरण पर निर्भर रहता है वहाँ तक वे उसके लिये उत्तम से
उत्तम वातावरण को प्रस्तुत करने का प्रयत्न करें।

शारीरिक बनावट और स्वास्थ्य—शारीरिक दोष होने पर बालक का सामाजिक विकास
सामान्य गति से नही होता। अपने दोषो के कारण बालक अपने साथियों से अलग रहना चाहता
है। अन्य बालकों की तुलना में अपने को कम शक्तिशाली पाकर उसमें हीनता की भावना पैदा
जाती है। हीनता की यह भावना उसके सामाजिक विकास मे बाधा पहुँचाती है। समाय
अनुकूलता स्थापित न करने पर उसके व्यवहार में असामान्यताएँ पैदा हो जाती हैं।

स्वास्थ्य के बिगडने पर भी बालक के सामाजिक व्यवहार में दोष उत्पन्न हो जाते है
बीमार, कमजोर, और अस्वस्थ बालक प्राय जिद्दी, स्वार्थी और उद्दण्ड हो जाते हैं। इसके विप
स्वस्थ बालकों का सामाजिक विकास सामान्य ढग से होता है। वह वयस्को से सम्पर्क में प्र
दिखाई देता है अन्य बच्चो के साथ खेलने मे भी उसे संतोष और सुख की प्राप्ति होती है। इस
[illegible] है जिससे उनके सामाजिक विका
[illegible] वे अन्य
[illegible] पिता
[illegible] और नेतृ
द्वारा अच्छी तरह से किया जाता है समुदाय [illegible]
करने की योग्यता रखने के कारण अपने समाज में उच्च पद को प्राप्त करते हैं।

पारिवारिक वातावरण—परिवार के वातावरण में ही सर्वप्रथम बालक का सामाजीकरण
होता है। यहीं पर रह कर वे अन्य व्यक्तियों की तरह सोचना और कार्य करना सीखते हैं। सीखने
की इस क्रिया को दूसरा नाम ही सामाजीकरण है। वे जन्म से ही समाजीकृत नहीं होते। परिवार
विद्यालय और समाज में रहकर उन्हें सभी सामाजिक व्यवहार सीखने पडते हैं। अपनी सामाजिक
मूल प्रवृत्तियों के प्रकाशन के सहारे, जिसका उल्लेख पीछे अनुच्छेद में किया गया था, समाज के
सम्पर्क मे आकर सभी तरह की सामाजिक परिपाटियाँ, मान्य आचरण के सिद्धान्त, भाषा, हावभाव
संकेत, खाने पीने, चलने फिरने के ढग, परिवार और समाज की परम्परायें, संस्कृति की मान्यताएं
आदि बातें सीखते हैं यद्यपि समाजीकरण का यह कार्य उनके जीवन भर चलता रहता है किन्तु
सीखने की यह क्रिया का प्रारम्भ परिवार से ही होता है। परिवार ही प्रथम विद्यालय है जहाँ
बच्चों का सामाजीकरण आरम्भ होता है।

परिवार में बालक का स्वस्थ सामाजिक विकास माता-पिता तथा उसके अन्य सम्बन्धी वर्गों
के साथ सम्बन्ध पर निर्भर रहता है। यह सम्बन्ध यदि अत्यधिक प्यार का है तो बच्चे दूसरों

र आश्रित रहना सीख लेते हैं और यदि यह सम्बन्ध अत्यधिक शासन चाहे तो उनके व्यवहार मे कल्पता का ह्रास हो जाता है। परिवार मे बच्चो के जन्म के क्रम का काफी महत्व है। अकेले ार सबसे बड़े के लिये परिवार का वातावरण अनुकूल होता है और उसका सामाजिक विकास उचित ढग से होता है लेकिन जब उसके बाद दूसरा बच्चा परिवार मे आ जाता है तब इस बड़े च्चे के सामाजिक विकास मे बाधा पहुँचने लगती है। सबसे छोटे बच्चे को अधिक लाड प्यार मे लना पडता है। वह अपने को सभी पर आश्रित पाता है इसलिये उसका भी सामाजिक विकास चित ढग से नही होता। यही स्थिति बीच वाले बच्चे की होती है। परिवार के वयस्क सदस्य उके प्रति अधिक ध्यान नही दे पाते इसलिये वह अपनी रुचि अन्यत्र स्थिर करने की चेष्टा रता है।

परिवार मे बच्चों का सामाजिक विकास न केवल उसका, उसके माता पिता तथा अन्य म्बन्धी जनों से सम्बन्ध पर ही निर्भर रहता है वरन् परिवार की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति : भी निर्भर रहता है। जिन परिवारो मे बच्चो के पढने-लिखने, खेलने कूदने को अधिक सुविधाएँ ती हैं उन परिवारों के बच्चो का विकास उतना ही अच्छा होता है, सभ्य परिवारों के बच्चे नुकरण के द्वारा अपने पूर्वजों के मान्य सामाजिक व्यवहार को स्वत सीख लेते हैं।

विद्यालय का वातावरण बालक के सामाजिक विकास मे परिवार के अतिरिक्त शिशालय, रम्भिक विद्यालय अथवा नर्सरी स्कूल को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। यदि इन विद्यालयो अध्यापक अथवा अध्यापिकाएँ बालक के विकास का ज्ञान रखते हैं, यदि वे बच्चो के साथ हानुभूतिपूर्ण व्यवहार कर सकते हैं तो उनके बच्चों का सामाजिक विकास उचित ढग से ता रहता है। नर्सरी स्कूलों में बच्चों का सामाजिक विकास उन बच्चों से अधिक तेजी से होता जो स्कूल नहीं जा पाते। आधुनिक प्रगतिशील विद्यालयों मे भी जहाँ पर योग्य शिक्षक तथा र और आनन्द के पर्याप्त साधन मिलते हैं बालको का सामाजीकरण ठीक ढग से चलता ता है, उनमे समाज मे अनुकूलन स्थापित करने की क्षमता पैदा हो जाती है।

विद्यालय का सामाजिक वातावरण अध्यापक की मनोवृत्ति और कक्षा सचालन पर निर्भर ता है। यदि अध्यापक निरकुश मनोवृत्ति का है तो वह कक्षा मे कड़े से कड़ा अनुशासन स्थापित ना चाहेगा। वह वादविवाद के लिये कक्षा मे कोई अवसर नहीं देगा। ऐसे सामाजिक वातावरण बालकों का सामाजिक विकास अवरुद्ध हो जायगा। यदि अध्यापक दुर्बल मनोवृत्ति का है और ा मे उचित नियत्रण नहीं रख सकता तो बालकों मे उद्दण्डता और अनुशासनहीनता की स्नाएँ पैदा हो जायेंगी। यदि अध्यापक न तो निरकुश ही है और न दुर्बल मनोवृत्ति का न यदि वह सभी को प्रेम, सहयोग से कार्य करने का अवसर देता है और बच्चों के साथ ापूर्ण व्यवहार करता है तो उसके बालकों में उन्नत सामाजिक भावना का विकास ा है।

खेल - खेल सामाजिक विकास के लिये सर्वोत्तम साधन है। क्योंकि खेल से उनके व्यवहार भी विकास होता है। दूसरो के साथ सहानुभूति प्रकट करना, सहयोग देना, समुदाय के र्मों का पालन करना, नेतृत्व की शिक्षा प्राप्त करना, नेता की बात मान कर समुदाय के सगठन रक्षा करना आदि ऐसे व्यवहार हैं जिनकी समाज में आवश्यकता होती है। खेल के सिलसिले मे ों एव विचारों का आदान प्रदान होने से बोलचाल मे सामाजिक ढग से व्यवहार करने की ता पैदा हो जाती है। अन्य बच्चों के सम्पर्क मे आने पर उनके व्यवहार समान हो जाते हैं। के द्वारा वे सीख लेते हैं कि दूसरों के साथ उन्हें किस प्रकार का सामाजिक व्यवहार ना है।

क्लब, कैम्प और दल—क्लब, कैम्प और दल के सदस्यो मे अन्य बच्चों की अपेक्षा योग और सहकारिता की भावना की प्रबलता होती है क्योंकि इन सस्थाओं में रुचियों की एक े से [illegible] हैं [illegible] सिलसिले मे आने वाले बच्चों के [illegible] बन्धुत्व की भावना, मिलन- [illegible] हैं दल मे रहने वाले बालक

दल के नियमों और अनुशासन में रह कर अपना सामाजिक विकास करते रहते हैं। दल के सभी सदस्यों को दल के संगठन की रक्षा हेतु दल-नायक के आदेशों का पालन करना पड़ता है। यहाँ पर उन्हें वास्तविकता का सामना करना पड़ता है। इस प्रकार इन समुदायों में रह कर बालकों को अपने सामाजिक विकास में सहायता मिलती है।

सामाजिक नियम—समाज में प्रचलित नियमों तथा विश्वासों का प्रभाव बच्चों के सामाजिक विकास पर अधिक पड़ता है। समुदाय की प्रचलित रीतियाँ उनके व्यवहार का मार्ग निर्देशन करती रहती हैं। उनकी जीवन शैली का निर्माण सामाजिक नियमों के अनुकूल होता है। बालक पर उस सांस्कृतिक दाय का, समाज के उन रीतिरिवाजों और परम्पराओं का प्रभाव पड़ता है जिनमें रह कर वह जीवन यापन करता है। उदाहरण के लिये उच्च वर्ग के बालकों का सामाजिक विकास निम्न वर्ग के लोगों के बालकों के सामाजिक विकास से भिन्न होता है, गरीब घर में पैदा हुए बालक के खेल सम्भ्रान्त परिवारों के बालकों के खेलों से भिन्न होते हैं।

परिवार की आर्थिक दशा—कुटुम्ब की आर्थिक दशा भी बालकों के आचरण तथा व्यवहार की दिशा निश्चित करती है। गरीब घर का बालक इतना शिष्ट और संस्कृत आचरण का प्रदर्शन नहीं करता जितना कि धनी घर के बालक प्रायः करते हैं। गरीब घर के बच्चों के आचरण में रुक्षता होती है और धनी घर के बालकों में शिष्टता और नम्रता।

सामाजिक व्यवहार में वैयक्तिक विभिन्नताएँ—एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से भिन्न प्रकार का सामाजिक व्यवहार करता है। सामाजिक व्यवहार से इस प्रकार की वैयक्तिक विभिन्नताओं के कारण हैं व्यक्तियों की शारीरिक बनावटों में, परिवार की आर्थिक दशाओं में, समाज के नियमों में, विद्यालयों के वातावरण में अन्तरों का होना। इन वैयक्तिक विभिन्नताओं के मूल कारण हैं बालकों के शैक्षिक और पारिवारिक वातावरणों में भिन्नताएँ। कभी कभी एक ही परिवार में उत्पन्न और एक विद्यालय में शिक्षा प्राप्त बालकों के सामाजिक विकास में भिन्नता दिखाई देती है। इसका कारण उनका जैविक वंशानुक्रम (Biological Heredity) है।

बालकों में इस विभिन्नता के कारण उनको निम्न चार वर्गों में विभक्त किया जाता है झिझकने वाले बालक, सभी परिस्थितियों में अनुकूलन स्थापित करने वाले बालक, झगड़ालू और आक्रामक बालक, सावधान सामाजिक व्यवहार वाले बालक।

नेतृत्व (Leadership) के गुण

Q 3 What are the chief characteristics of a leader? How can a teacher become a successful leader of his class?

बालकों में नेतृत्व के गुणों का विकास स्वतः होता है। एक बालक दूसरे बालकों पर अपनी प्रभावशाली प्रकृति, अपेक्षाकृत अधिक शारीरिक बल, अथवा उत्तम आर्थिक दशा के कारण रौब जमाता है। अपनी इच्छा के अनुसार उन्हें कार्य करने को बाध्य करता है। इस प्रकार वह दूसरों पर छा जाता है। लेकिन किशोरों में ऐसा किशोर नेता नहीं बन पाता जो केवल रौब जमाना ही जानता हो। यदि कोई किशोर अपने विचारों को शान्तिपूर्वक दूसरों के समक्ष प्रकट करता है, उनके कल्याण और हितों को ध्यान में रख कर आचरण करता है और उनके साथ सहानुभूति दिखाता है तो वह उनका नेता बन सकता है। लेकिन नेता बनने के लिये बालकों और किशोरों में अन्य गुणों की भी आवश्यकता है। वे गुण हैं—

(१) नेता में सामान्य सदस्यों से विशेष योग्यता का होना।
(२) नेता का दूसरों के हितों का ध्यान रखना।
(३) सामूहिक कार्यों में रुचि का होना।
(४) कठिन परिश्रम करने की क्षमता का होना।
(५) आकर्षक व्यक्तित्व।
(६) उच्च आर्थिक और सामाजिक स्तर का होना।

अध्यापक चूँकि नेताओं का नेता होता है इसलिए उसमे इन सभी गुणों का होना अनिवार्य है। फिर भी उसमें निम्नांकित विशेषताएं होनी आवश्यक हैं—

(१) समस्यापूर्ण घटना मे उपस्थित होने पर उसमें आकुलता के चिन्हो का प्रगट न होना
(२) कक्षा के साथ सहयोग और सहानुभूतिपूर्ण आचरण का होना।
(३) नेतृत्व कर सकने योग्य बालकों को उचित अवसरों को प्रदान करना।
(४) बालकों के सुझावो का स्वागत करना और उन पर पूरा पूरा ध्यान देना।

अध्याय ७

मानसिक विकास के स्तर और किशोरावस्था

Q 1 What are the different stages of mental development ? Why is necesary for a teacher to study their characteristics

७.१ शिक्षक के लिये शिक्षार्थी के मानसिक विकास के विभिन्न स्तरों का जानना उतना ही आवश्यक है जितना कि उसे अपने विषय का ज्ञान होना आवश्यक समझा जाता है। शिक्षा में व्यक्ति के मानसिक विकास का अनुसरण करना पड़ता है क्योंकि वही शिक्षा उत्तमकोटि की मानी जा सकती है जो शिक्षार्थी के मानसिक विकास के अनुकूल हो। आप जिस प्रकार के व्यवहार की आशा एक छोटे शिशु से करते हैं उस प्रकार के व्यवहार की आशा वयस्क व्यक्तियों से नहीं कर सकते। इसलिये छोटे शिशु के व्यवहार में आप जैसा परिवर्तन उपस्थित करना चाहेंगे वैसा परिवर्तन कदाचित् प्रौढ़ व्यक्ति के व्यवहार में करना पसन्द न करें। अतः बालकों को शिक्षा देते समय स्थान-स्थान पर उनकी आयु तथा मानसिक विकास के अनुसार कार्य करना होगा।

७.२ मानसिक विकास के मुख्य स्तर डा० अर्नेस्ट जोन्स के अनुसार मानव विकास की निम्न लिखित चार मुख्य अवस्थाएँ होती हैं—

(१) शैशवावस्था—जीवन के पहले पाँच वर्ष
(२) बाल्यावस्था—५ से १२ वर्ष की आयु तक
(३) किशोरावस्था—१२ से १८ वर्ष की आयु तक
(४) प्रौढ़ावस्था—१८ वर्ष के बाद

सामान्य शिक्षा की दृष्टि से पहली तीन अवस्थायें महत्वपूर्ण हैं किन्तु सामाजिक शिक्षा में चौथी अवस्था को भी सम्मिलित किया जाता है। यद्यपि हमने इन अवस्थाओं के विषय में आयु-सीमाएँ दी हैं किन्तु निश्चित रूप से हम यह नहीं कह सकते कि कौन सी अवस्था किस आयु पर आरम्भ होती है। इन चार अवस्थाओं के अतिरिक्त पाँचवी अवस्था जिसका नियमित शिक्षा से सम्बन्ध नहीं के बराबर है वृद्धावस्था है। नियमित रूप से चलने वाली शिक्षा तो जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त चलती रहती है इसलिये यद्यपि शिक्षा के व्यापक अर्थ में प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था दोनों को सम्मिलित किया जाता है फिर भी विशेष महत्व केवल शैशव, बाल्य और किशोरावस्था को ही दिया जाता है।

Q 2 What are the chief characteristics of the infant ? How can the knowledge of these characteristics be helpful to the teacher ?

७.३ शैशवावस्थ और उसकी विशेषताएँ

शैशवावस्था ही सुन्दर जीवन निर्माण के लिये नींव के समान है इसलिये शिक्षा की दृष्टि से यह अवस्था विशेष महत्वपूर्ण मानी जाती है। एक महिला ने किसी मनोवैज्ञानिक से पूछा "महाशय मैं अपने पुत्र की शिक्षा कब आरम्भ करूँ? मनोवैज्ञानिक ने कहा आपके बच्चे की इस समय आयु क्या है? उत्तर मिला ५ वर्ष। श्रीमती जी आपने अपने बच्चे के जीवन के ५ अमूल्य वर्ष नष्ट कर दिये हैं। जाइए और उसकी शिक्षा की शीघ्र व्यवस्था कीजिये।" ठीक यही बात एडलर कहता था। उसका विचार था कि जन्म के कुछ मास पश्चात् ही यह निश्चित किया जा सकता है कि जीवन में उसका क्या स्थान है। बालक की शिक्षा की नींव शैशवावस्था में ही डाली जा सकती है।

एडलर और उसके साथी फ्रायड ने शैशवावस्था के महत्व पर विशेष प्रकाश डाला है। सम्पूर्ण फ्रायडियन मनोविज्ञान शिशु के कुसमंजन को व्यक्तित्व के विघटन का मुख्याधार मानकर चलता

है। इस तथ्य की विशद् व्याख्या हम अध्याय २५ में करने का प्रयत्न करेंगे। यहाँ केवल इतना कहना चाहते हैं कि यदि इस अवस्था में शिशु को उचित वातावरण, प्रेम, सहानुभूति और सुरक्षा न दी गई तो बड़े होकर उसमें अनेक भावनात्मक संघर्ष और मानसिक ग्रन्थियाँ पैदा हो जायेंगी जो शिक्षा कार्य में बाधक सिद्ध हो सकती हैं। शिशु की सामान्य विशेषताएँ जिनका उपयोग उसकी शिक्षा व्यवस्था में किया जा सकता है नीचे दी जाती हैं।

(१) उसका व्यवहार उसकी जन्मजात प्रेरणाओं और मूलप्रवृत्तियों पर आधारित रहता है। वह अपनी मूल प्रवृत्यात्मक इच्छाओं की सन्तुष्टि शीघ्र ही प्राप्त करना चाहता है। अतः उसकी शिक्षा व्यवस्था में उसकी आवश्यकताओं, इच्छाओं और मूलप्रवृत्तियों का ध्यान में रखना होगा। माता-पिता से उनकी मूलप्रवृत्तियों को सन्तुष्टि पहुँचाने वाले साधन जुटाने चाहिए क्योंकि अवदमन का परिणाम सदैव हानिकर होता है जैसा कि अनुच्छेद ८० में स्पष्ट रूप से समझाया जायगा।

कोई भी स्थिति जो हमारी इच्छाओं एवं आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के मार्ग में बाधा डालती है संवेग उत्पन्न कर देती है। संवेग से हमारा तात्पर्य होने वाली उस उथल पुथल से है जो हमारी इच्छाओं की असन्तुष्टि के फलस्वरूप जाग्रत हो जाती है। शिशु की इच्छाओं की बारबार असन्तुष्टि होने पर वे चिड़चिड़े और क्रोधी हो जाते हैं। मनोविश्लेषणवादियों का तो यह विचार है कि मनुष्य में बहुत से मानसिक विकार और भावग्रन्थियाँ उनके शैशवावस्था के संवेगों के दबने के कारण ही बनती हैं। यदि उसकी आवश्यकताएँ सन्तुष्ट न हुईं तो उसके मानसिक विकास का धक्का लगता है।

शैशवावस्था की इच्छाओं की असन्तुष्टि स्तनपान के छुड़ाये जाने से आरम्भ हो जाती है। जब बालक के दाँत निकलने लगते हैं तब जैसे ही वह स्तनपान करता है माँ को काट लेता है। माँ इस कष्ट से अपने को बचाने के लिये उसका दूध छुड़ाती है। शिशु समझ नहीं पाता क्योंकि उसे उस विशेष अधिकार से वंचित किया जा रहा है जो उसे जन्म से ही प्राप्त था। जब तक वह अकेला ही माता-पिता के प्रेम का केन्द्र रहता है तब तक तो प्रसन्न रहता है किन्तु जैसे ही उसके परिवार में कोई नया मेहमान उसका छोटा भाई अथवा बहिन पैदा होता है और उसकी माँ पर पूर्ण अधिकार जमा लेता है वैसे ही उसका प्रेम छिन जाने पर विशेष क्षोभ होता है। इस नये मेहमान को समस्त परेशानियों का कारण मानकर उसके प्रति घृणा और ईर्ष्या के संवेग पैदा कर लेता है। यदि उसके साथ किसी प्रकार का अन्याय किया जाता है तो निश्चय ही उसके संवेगों का दमन होने के कारण अन्तर्द्वन्द्व पैदा होने लगते हैं।

दूध छूटने पर शिशु व्यक्तिगत खेलों में रम जाता है। उसमें आत्मप्रेम की भावना उदय हो जाती है। मनोविश्लेषणवादियों की भाषा में उसका यह आत्म प्रेम नार्सिसिज्म[*] का रूप ग्रहण कर लेता है। यह वह अवस्था है जब शिशु के संवेग अपने विषय में स्थायीभाव का रूप ग्रहण कर लेते हैं।

(२) शैशवावस्था में आत्मप्रकाशन और रचना की मूल प्रवृत्तियाँ विशेष रूप से वेगवती हो जाती हैं—शिशु अपने खिलौनों से खेलता हुआ तोड़-फोड़ करता हुआ रचनात्मक प्रवृत्ति का प्रदर्शन करता है। इसलिये इस आयु में उसे अच्छे अच्छे खिलौने खेलने के लिये दिये जा सकते हैं। विशेषकर इस प्रकार के खिलौने जिनके द्वारा वह छोटे छोटे घरों, झोपड़ियों तथा अन्य वस्तुओं की रचना कर सके। आत्मप्रकाशन की मूल प्रवृत्ति शिशु की क्रिया में प्रकट होने लगती है। वह स्वतन्त्रता पूर्वक घर के एक कोने से दूसरे कोने तक दौड़ना पसन्द करता है। यदि उसकी इस स्वतन्त्रता में किसी प्रकार की बाधा डाल दी जाती है तो उसका उस पर बुरा प्रभाव पड़ता है। उसकी दबी हुई इच्छाएँ उसको जिद्दी बना देती हैं। बगीचे में खेलते समय वह गोद में उठा लिया जाता है। इस प्रकार की छोटी छोटी बातें जो शिशु की स्वतन्त्र क्रीड़ा में बाधा डालती हैं उसके विकास के लिये बहुत हानिकारक होती हैं।

---

[*] Narcissism ग्रीक कथानक के अनुसार नारसीसस एक ऐसा व्यक्ति था जो तालाब में अपना प्रतिबिम्ब देखकर अपने ऊपर ही मुग्ध हो गया था।

(१) शारीरिक विकास की स्थिरता के काल मे बालक की सभी शक्तियों में दृढ़ता और ठोसपन आता है। उसकी श्रवण एवं दृष्टि इन्द्रियाँ पूर्ण विकसित हो जाती हैं ? शारीरिक दक्षता के विकास मे प्रगति मन्थर हो जाती है। गति विकास[1] शिक्षा के दृष्टिकोण से विशेष महत्व का है। शैशवावस्था मे शिशु एक प्रकार के शारीरिक कौशल की प्राप्ति पर चित्त एकाग्र करता है किन्तु बाल्यावस्था मे वह अन्य श्रेष्ठतर कौशलों को सीखने की ओर उन्मुख होता है।

जैसे जैसे वह आयु मे बढ़ता जाता है व्यक्तिगत क्रियाओं की अपेक्षा समूह मे खेलना आरम्भ कर देता है। इस समय खेले गये खेल जीवन की भाँति अधिक वास्तविक होते हैं। कभी कभी बड़ी उम्र मे बालक अपने प्रारम्भिक कौशल मे उन्नति प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। शैशवावस्था मे वह यदि दौड़ने कूदने, ऊपर चढ़ने, धक्का देने में आनन्द लेता था तो अब समूह मे दौड़ने, ढाल पर फिसलने, तीन पहिये की साइकिल पर चढ़ने, साथियों के साथ सामूहिक खेलो मे लड़ने, झगड़ने, धक्का मार खेलने मे विशेष रुचि प्रगट करता है। वह अपनी क्रियाओं मे दक्षता का प्रमाण उपस्थित करना चाहता है। अपनी पिछली गतिवादी क्रियाओ का अतिक्रमण करना चाहता है। उसके खेलो की संख्या भी बढ़ जाती है।

(२) इस अवस्था में बालक का मूलप्रवृत्यात्मक व्यवहार भी उन्नत प्रकार का होता है। उसमे जिज्ञासा, रचना, संग्रह और सामूहिक प्रवृत्ति का उदय और पर्याप्त विकास हो जाता है। साथ ही अनुकरण की सामान्य प्रवृत्ति भी विकसित होने लगती है।

वह न केवल नई वस्तु और नई घटना को देखकर आश्चर्य प्रकट करता है अपितु पूर्ण खोज करना चाहता है और उसके मूल कारण को जानने की इच्छा करता है। अब वह केवल प्रत्यक्ष ज्ञान का ही अनुभव नहीं करता वरन् उसका अनुभव प्रत्ययों तथा स्मृति के आधार पर दिन प्रति दिन वृद्धि प्राप्त करता है। वह रचनात्मक कार्यों के करने में विशेष रुचि लेता है। लड़के औजारों की सहायता से वस्तुएँ बनाने मे और लड़कियाँ गुड़िया बनाने, कपड़े सीने, कढ़ाई करने मे आनन्द और सन्तोष प्राप्त करती हैं। वे टूटी फूटी वस्तुओं को जोड़ने, ठीक करने, खेल खेल मे घर बनाने, कागज के हवाई जहाज और खिलौने बनाने मे अपनी निर्माण शक्ति का प्रदर्शन करते हैं। इस अवस्था मे वस्तुओं के निर्माण के अतिरिक्त उनको एकत्र करने मे भी आनन्द लेते हैं। उनकी संचय शक्ति बढ़ जाती है। कुछ बालक पुस्तकों का, कुछ खेल कूद के सामान का, और कुछ कला सम्बन्धी वस्तुओं का संग्रह करते हैं। इस प्रकार के संग्रह से उनके ज्ञान का विकास होता है। इन सब कार्यों को अब अकेले नहीं करते। एक दूसरे को करने और एक दूसरे को सहयोग देने की भावना के उदय होने से समूह की सेवा के लिये अपने को न्यौछावर तक कर देते हैं। इस समूह के नियमों को पालन करने की भावना भी जाग्रत हो जाती है।

वैसे तो बालक में अनुकरण की सामान्य प्रवृत्ति ५-६ माह की आयु मे ही देखी जाती है। बाल्यावस्था मे उसका अनुकरण आविष्कार पूर्ण हो जाता है। अब वह न केवल देखी हुई घटनाओं का ही अनुकरण करता है वरन् उनमे अपने विचारों एवं बुद्धि के अनुसार परिवर्तन भी करने लगता है। इसका कारण यह है कि उसमे अब कल्पनाशक्ति का उदय होने लगता है। शैशवावस्था मे उसकी कल्पना तरंगमयी होती है किन्तु अब वह रचनात्मक हो जाती है। ४-६ वर्ष का बालक कल्पनाओं, तरंगो और मन की मौजों मे लीन रहता है किन्तु ७-११ वर्ष का बालक आविष्कारात्मक कल्पना का आश्रय लेने लगता है।[2]

(३) बाल्यावस्था मे बालक मे घूमने की प्रवृत्ति बढ़ने लगती है जिसका अधिकतम विकास किशोरावस्था मे होता है। बर्ट का कहना है कि ९ वर्ष तक कुछ बालकों मे आवारा घूमने बिना छुट्टी लिये पाठशाला से चले जाने, निरुद्देश्य इधर उधर घूमने की प्रवृत्ति पाई जाती है। व बालचर पद्धति के कार्यों मे विशेष रुचि इसलिये दिखाते हैं कि उनके घूमने की प्रवृत्ति उदय होने लगती है। अध्यापक को इस प्रवृत्ति का सदुपयोग करने के लिए प्रति सप्ताह नेचर स्टडी के लिय

[1] Motor development
[2] विशेष अध्ययन के लिये देखिए १८९

और छुट्टी के दिनों मे अच्छी इमारतों, ऐतिहासिक स्थानो को दिखाने के लिये बाहर ले जाना चाहिये। ऐसा करने से उनके घूमने की प्रवृत्ति सन्तुष्ट होगी और ज्ञान की वृद्धि भी।

(४) शैशवावस्था की अपेक्षा बाल्यावस्था में सांवेगिक परेशानियाँ अधिक नहीं होतीं। उसका संवेगात्मक जीवन अधिक स्थिर दिखाई देता है। संवेगात्मक अस्थिरता यदि आती है तो तभी जब वह बहुत जल्दी स्कूल भेज दिया जाता है। दिन के अधिकांश भाग मे अपने को कैद पाता है। विद्यालय मे प्रवेश पाने के बाद कुछ दिन तक वह सघर्ष मय और उद्विग्नतापूर्ण होते हैं। उसे ऐसा मालूम पड़ता है। उसे घर के सहानुभूतिपूर्ण वातावरण से जिसे वह जानता था और जिसमें उसने अपना पूर्ण आत्मविश्वास किया था बहिष्कृत कर दिया है। जब वह अपरिचित स्थान में अपरिचित व्यक्तियों के बीच रखा जाता है तब उसके छोटे भाई और बहिन आराम से घर पर रहते हैं यह विचार उसमे उद्वेग पैदा कर देते हैं। बालक के हृदय मे यह उद्वेग धीरे धीरे शांत होता जाता है जब वह अपने साथियो और अध्यापको के साथ समायोजन स्थापित कर लेता है। इस प्रकार वह विद्यालय जीवन मे व्यवस्थापन स्थापित कर आभासी प्रौढ़ता का प्रदर्शन करता है।

(५ बाल्यावस्था ऐसी अवस्था है क्योंकि नैतिकता की नींव पड़ना आरम्भ हो जाती है—सात आठ वर्ष की अवस्था तक उन प्रौढ़ व्यक्तियों की धारणाओ को मान्यता देता है जिनके साथ उसका सम्पर्क रहता है और जिनका वह सम्मान करता है। दस ग्यारह वर्ष की अवस्था में उसमे चिंतन शक्ति के अधिक विकसित होने के कारण स्वनिर्मित नियमो पर चलने की आदत बन जाती है वह समाज मे पाये जाने वाले नैतिक सिद्धांतों को ध्यान में रखकर अपने आचरण का ढांचा तैयार करता है। परम्परागत सामाजिक नियमो को मान्यता देने लगता है और उनके अनुसार आचरण करता है उदाहरण के लिये ११ वर्षीय बालिका को समाज लड़को से बातचीत करने से निषेध करता है तो वह इसी लिए लड़कों से बातचीत करने में संकोच प्रगट करती है।

समूह में रहकर वह समूह के नियमों का पालन करता है। दल द्वारा स्वीकृत नियमो को ही मान्यता देता है। अनमन अथवा दल के अन्य साथियों के भय से भयभीत वह कभी-कभी झूठ भी बोल सकता है पर उसमें झूठ बुलवाना चाहता है।

शैक्षिक कार्यक्रमों में शैशवावस्था की विशेषताओं का उपयोग—इन विशेषताओं का बालक की शिक्षा में उपयोग किया जा सकता है। चूंकि वह बाल्यावस्था में अत्यन्त क्रियाशील रहता है इसलिये उसकी शिक्षा का आधार क्रियात्मक कार्य होने चाहिये। ऐसे कार्यो से उसे वास्तविक ज्ञान मिल सकता है। वास्तविक ज्ञान की वृद्धि उस समय अधिक हो सकती जिस समय बालक का सम्पर्क विभिन्न मशीन वस्तुओं के साथ स्थापित किया जाता है। यदि बालक वस्तुओं को खोलकर देखना चाहता है तो उसे देखने की अनुमति दी जानी चाहिये। उसे वस्तुओं को उलट-पुलट कर देखने, उसकी आन्तरिक रचना का ज्ञान प्राप्त करने की छूट होनी चाहिए। इससे उसकी कौतूहल की मूल प्रवृत्ति भली प्रकार सन्तुष्ट हो सकेगी। प्रारम्भ में सरल वस्तुएं उसे देखने को दी जानी चाहिए जिनसे वह परिचित हो। बाद में मशीन और जटिल वस्तुओं की जानकारी दी जा सकती है।

उसकी शिक्षा में खेलों को प्रधानता होनी चाहिए। खेल का कार्य है स्वच्छन्द, रुचि और आनन्दपूर्वक किया [illegible]। इसलिये उसे स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने, सोचने और समझने का पूरा पूरा अवसर देना चाहिए। [illegible] उसकी इस स्वतन्त्रता से बालक [illegible] सामाजिक, मानसिक और शारीरिक विकास को प्रोत्साहन [illegible]। चूंकि बालक अपने [illegible] उचित [illegible] [illegible]

७.५ किशोरावस्था का जीवन में महत्व—व्यक्ति के जीवन में कैशोर बसन्त की तरह आता है जब कि उसे अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को पूरा कर सकने का अवसर मिलता है। महान पुरुषों की जीवनियों का अध्ययन करने से पता चलता है कि उन्होंने अपने जीवन का चरम उद्देश्य इसी अवस्था में निश्चित कर लिया था। किशोर जिस विशिष्ट अभिरुचि का प्रदर्शन इस अवस्था में करता है उसमें दक्षता की प्राप्ति अपने जीवन में कर लेता है। गांधी जी ने भारत को स्वतन्त्र करने, मालवीय जी ने मधुर भाषण से जनता का मन मुग्ध करने, और पंडित नेहरू ने भारत की सेवा करने का विचार इसी अवस्था में पक्का कर लिया था। इसीलिये हम कैशोर को व्यक्ति के जीवन का वसन्त मानते हैं यदि इस समय उसकी विशेषताओं, विलक्षणताओं, समस्याओं और प्रवृत्तियों पर उचित ध्यान न दिया गया तो कदाचित वह इतना फल और फूल न सकेगा जितना वह फल-फूल सकता है।

यह वह अवस्था है जब बाल्यकाल की कोमलता से व्यक्ति प्रौढ़त्व की परिपक्वता की ओर अग्रसर होता है। शिक्षा की दृष्टि से यह अवस्था सकटकालीन अवस्था मानी जाती है क्योंकि इसमें व्यक्ति का जीवन बनता अथवा बिगड़ता है। बनता है उसकी समस्याओं और उलझनों का निदान और समाधान होने पर, बिगड़ता है यदि वह अपनी कठिनाइयों में उलझ जाते हैं। यह वह अवस्था है जबकि बालक मूल प्रवृत्तियों की शक्तियों और सवेगों के वेग से युक्त, उन्नति के स्वप्नों और कल्पना के ससार में विचरण करता हुआ एक नवीन उत्साह, एक नवीन प्रेरणा के साथ नवीन जीवन में पदार्पण करता है। अतः उसके जीवन को प्रशस्त मार्ग पर डालने के लिये सबसे उत्तम काल यही माना जाता है।

यह वह अवस्था है जिसमें परिवर्तन ही परिवर्तन आते हैं। उत्तर बाल्यकाल में जो स्थिरता आई थी वह समाप्त हो जाती है। शारीरिक, मानसिक, सावेगिक व्यवस्थापन पुनः अस्त-व्यस्त हो जाता है।

७.६ किशोरावस्था का समय— बाल्यावस्था और प्रौढ़ावस्था के बीच की यह अवस्था सामान्यतः १२ वर्ष की आयु से २० वर्ष की आयु तक चलती रहती है। कुछ सामाजिक व्यवस्थाओं में यह अवस्था आती ही नहीं क्योंकि १३-१४ वर्ष की अवस्था में ही व्यक्ति को प्रौढ़ों की जिम्मेदारियाँ सौंप दी जाती हैं। उदाहरण के लिये पिछड़ी हुई जातियों में १३-१४ वर्ष की अवस्था में लड़के और लड़कियों की शादी कर उनको प्रौढ़ व्यक्तियों की श्रेणी में रख दिया जाता है। सभ्य और शिक्षित वर्गों में बालक को १८ वर्ष की अवस्था तक इस प्रकार की जिम्मेदारियाँ नहीं सौंपी जातीं। मानव जाति जितनी ही अधिक सभ्य और औद्योगिक होती जाती है, बाल्यावस्था और प्रौढ़ावस्था के बीच की अवस्था की अवधि उतनी ही लम्बी होती जाती है और किशोर की समस्याओं की सख्या भी उसी अनुपात में बढ़ती जाती है।

७.७ किशोरावस्था में शारीरिक परिवर्तन और उसके परिणाम— किशोरावस्था शारीरिक परिवर्तन की अवस्था है। कद और भार में बाल्यावस्था में वृद्धि की दर जो धीमी पड़ गई थी वह किशोरावस्था के आते ही वेग पकड़ने लगती है। पुनश्च यह परिवर्तन सब किशोर और किशोरियों में समान रूप से नहीं होता। कद और भार के अतिरिक्त उनके शरीर की बनावट में भी अन्तर आने लगता है। वे बेढंगे से दिखाई देने लगते हैं। लड़कों की दाढ़ी बढ़ने लगती है और लड़कियों की छाती और कूल्हे बढ़ने लगते हैं, मुँह पर मुँहासे निकल आते हैं, चहरा खुरदरा हो जाता है।

लड़कों के शुक्र-दर्शन और लड़कियों के रजोदर्शन होने लगता है। आवाज में भर्राहट और [illegible] ग्रन्थियों [illegible] बालक [illegible] और मादा [illegible] से सम्बन्धित होर्मोन होने के कारण लिंग की वृद्धि होने लगती है। छाती बढ़ने लगती है और आवाज में अन्तर उपस्थित हो जाता है। गोनेड से सम्बन्धित होर्मोन दो कार्य करता है एक ओर तो वह लिंगीय विशेषताओं को प्रकट करने में सहायता देता है दूसरे पिट्यूटरी से निकलने वाले होर्मोन को

७८ किशोरावस्था की प्रवृत्तियाँ

Q 4 Discuss the main psychological tendencies of an adolescent. How will you try to solve his sex problems.

किशोरावस्था में साधारणतः नीचे लिखी चार प्रकार की प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं।

(१) काम भावना।
(२) स्वतन्त्रता की भावना
(३) भ्रमण करने की प्रवृत्ति
(४) निर्भरता की प्रवृत्ति।

कामप्रवृत्ति—पिछले अनुच्छेद में कहा गया था कि किशोर में काम भावना का उदय निश्चित रूप से होने लगता है जिसका कारण ग्लैंड में सक्रिय हारमोन माना जा सकता है। हम फ्रायड के इस सिद्धान्त से कि शिशु प्रच्छन्न रूप में और बालक में अव्यक्त और सुप्त रूप में काम भावना वर्तमान रहती है सहमत हों या न हों पर यह अवश्य मानते हैं कि किशोरावस्था में बालक और बालिकाओं में कामप्रवृत्ति की शक्ति अत्यधिक बढ़ जाती है। इस समय किशोर और किशोरी में प्रजनन शक्ति का विकास हो जाता है। काम भावना का विकास किशोर में धीरे धीरे होता है और तीन प्रमुख अवस्थाओं पर प्रकट होता है। उसमें शिशु की तरह आत्मप्रेम, उत्तरबाल्यावस्था की तरह का समलिंगीय प्रेम और प्रौढ़ावस्था का विषम लिंगी प्रेम तीनों ही धीरे धीरे उदय होते हैं।

आत्मप्रेम (Auto Erotism) का प्रदर्शन अपने शरीर से प्रेम करने में होता है। कामभावना की तृप्ति के लिये वह अपने लिंग अवयव को स्पर्श करता है यह स्पर्श हस्तमैथुन जैसे अप्राकृतिक कार्यों तक पहुँच जाता है। किशोर और किशोरियाँ इस बुरी और घृणित आदत में फँस कर अपनी शक्ति का विनाश करती हैं। इस तरह की दुष्प्रवृत्ति एक प्रकार से स्वाभाविक और निरापद भी है। कामभावना के जाग्रत होने पर उसकी सन्तुष्टि का साधन न होने के कारण किशोर अपने तनाव को जो ग्लैंड्स के अत्यधिक स्राव के कारण उत्पन्न हो जाता है इसी तरह कम करता है। तनाव के कम करने का हस्तमैथुन के अतिरिक्त और कोई उपाय न होने से बहुत से मनोवैज्ञानिक हस्तमैथुन की क्रिया को स्वाभाविक मानने लगे हैं।[1]

हस्तमैथुन से जैसा कि हमने अभी बताया है शारीरिक शक्ति का विनाश होता है। इसलिये हम इसे पापमय प्रवृत्ति समझकर हेय, घृणित और निन्दित मानते हैं।

समलिंगी प्रेम (Homosex uality)—शिशु का आत्म प्रेम किशोर में किस प्रकार दिखाई देता है इसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है और यह भी कहा जा चुका है कि यह प्रेम समलिंगी प्रेम में परिवर्तित हो जाता है। पूर्व किशोर काल के प्रारम्भ में लड़के लड़कों को और लड़कियाँ लड़कियों से कितना ज्यादा अधिक पसन्द करते हैं। बेन्टाइन के मतानुसार ४०% लड़कों और ६५% लड़कियों में समलिंगीय प्रेम मिलता है यह समलिंगीय प्रेम कभी कभी अत्यन्त दृढ़ हो जाता है एक ही आयु के दो बालक इतने घनिष्ठ मित्र हो जाते हैं कि वे एक क्षण के लिये भी एक दूसरे से अलग रहना पसन्द नहीं करते। यह निस्वार्थ और सच्चा प्रेम उन्हें बड़े से बड़ा त्याग और बलिदान करने के लिये तत्पर कर देता है। ऐसे प्रेम के विकास में कभी बाधा उपस्थित नहीं करनी चाहिये। जो माता पिता अपने किशोर अथवा किशोरियों को अपने मित्रों से मिलने के लिये रोकते रहते हैं वे भयंकर भूल करते हैं। यदि बालकों को उचित शिक्षा न दी जाय और उनको अपने मित्रों से कदापि न मिलने दिया जाय तो उनकी काम प्रवृत्ति कुमार्ग पर अग्रसर हो सकती है।

समलिंगीय प्रेम की प्रवृत्ति उन शिक्षण संस्थाओं के बालक और बालिकाओं में अधिक पाई जाती है जिनमें सह शिक्षा की व्यवस्था नहीं होती। सह-शिक्षा प्रदान करने वाली संस्थाओं में

---

[1] Psychology of Sex—Havelock Ellis

व्यक्ति विपर्मलिंगी के प्रति आकर्षित हो जाता है और काम भावना को विपर्मलिंग के साथ स्थापित कर प्रवृत्ति-रूप से अभिव्यक्त किया जा सकता है। समलिंगीय प्रेम में किशोर किसी दूसरे किशोर अथवा अपने अध्यापक में किशोरी अन्य बड़ी किशोरी अथवा अपनी शिक्षिका के प्रति आकर्षित होती है। किशोर और किशोरियों में यह प्रवृत्ति बहुधा आकर्षण और अनुरक्ति तक ही सीमित रहती है। इस प्रवृत्ति का शारीरिक सक्रिय रूप माता-पिता और समाज के लिये कष्टजनक हो जाता है। जब इस प्रवृत्ति का शारीरिक सक्रिय रूप प्रौढ़ावस्था तक चलता रहता है तब तो व्यक्ति की दशा अत्यन्त शोचनीय हो जाती है।

विपर्मलिंगी प्रेम (Hetero Sexual Love)—ज्यों ज्यों किशोर की आयु बढ़ती जाती है उसका समलिंगीय प्रेम विपर्मलिंगीय हो जाता है। इसका विकास सामान्यतः उत्तर किशोरावस्था में होता है किन्तु कभी कभी किशोरावस्था के आरम्भ होते ही इस तरह का प्रेम उत्पन्न हो जाता है।

विपर्मलिंगीय प्रेम दो प्रकार का हो सकता है—शुद्ध प्रेम और कामवासना की तृप्ति मात्र के लिये प्रेम। पहले प्रकार का प्रेम उस समय उत्पन्न हो सकता है जिस समय किशोर और किशोरियों को स्वतन्त्रता पूर्वक मिलने दिया जाता है। कुछ विद्वानों को भय है कि इस प्रकार की स्वच्छन्दता अनुभव विहीन और काम भावना से उत्प्रेरित किशोर और किशोरियों के प्रेम को काम वासना के सन्तुष्ट करने वाले मैथुन में अन्त कर देगी किन्तु ऐसी अवस्था सदैव नहीं मिलती। किशोर और किशोरी यदि दूषित वातावरण में न पाले जायें तो शारीरिक सम्पर्क स्थापित करने से सदैव हिचकेंगे।

दोनों लिंग के छात्रों को यदि सामूहिक कार्यों में सहयोगी खेलों में भाग लेने की अनुमति दे दी जाय तो शायद अनुशासनहीनता की समस्या कुछ सीमा तक सुलझाई जा सकती है।

एक ओर तो प्रगतिशील मनोवैज्ञानिक हैं जो समाज के सब बन्धनों को तोड़ कर इस मूलप्रवृत्ति के सम्बन्ध में शिक्षा के क्षेत्र में नया युग आरम्भ करना चाहते हैं और दूसरी ओर प्राचीन शिक्षा प्रेमी हैं जो बालकों को शुद्ध और पवित्र वातावरण में रख कर काम प्रवृत्ति का विलयन कर देना चाहते हैं। इस काम प्रवृत्ति का परिवर्तन अथवा संशोधन किस प्रकार किया जा सकता है अनुच्छेद ६८ में समझाने का प्रयत्न किया जायगा। यदि आज हम किशोर को ब्रह्मचर्याश्रम के कठोर जीवन की व्यवस्था नहीं कर सकते तो उसकी काम की मूल प्रवृत्ति को अन्य उपयोगी कार्यों में लगा कर उनके हानिकारक रूप से जो सम अथवा विषम लिंगियों से शारीरिक सम्पर्क स्थापित करने में प्रकट होता है उसकी रक्षा कर सकें तो अच्छा होगा।

कुछ मनोविज्ञान के पण्डितों का मत है कि किशोर और किशोरी को काम सम्बन्धी शिक्षा देकर उनकी काम सम्बन्धी जिज्ञासा की पूर्ति कर देनी चाहिये क्योंकि उन्हें काम भावना के उचित और वास्तविक ज्ञान से वंचित रखने के कारण ही अनेक दुर्व्यसन उत्पन्न हो जाते हैं। यदि उनके लिए हम लिंग शिक्षा की उचित व्यवस्था करदें, उन्हें अप्रामाणिक सूत्रों द्वारा प्राप्त किए गए अशुद्ध ज्ञान पर निर्भर न रहने दें तो उनका विशेष कल्याण कर सकेंगे। अगले पृष्ठों में लिंग शिक्षा की समस्या, व्यवस्था और रीतियों का उल्लेख किया जायगा।

७९ सामाजिकता की भावना

Q 5 How will you help your adolescent to develop socially well? Give your own suggestions?

किशोरावस्था से पूर्व बाल्यावस्था अथवा शैशवावस्था में बालक प्रथम उन क्रियाओं को अधिक पसन्द करते हैं जो व्यक्तिगत अधिक होते हैं। किशोरावस्था में किशोर सामूहिक खेलों की ओर आकृष्ट होता है। वह व्यक्तिगत यश पाने के स्थान पर समूह की ख्याति के लिये प्रयत्न करता है। व्यक्तिगत प्रशंसा के स्थान पर सामूहिक प्रशंसा चाहता है। वह स्वार्थभावना का छोड़ कर परहित कार्यों में रत रहना अधिक पसन्द करता है। वह यह भी जानना चाहता है कि उसके साथी उसके विषय में क्या विचार रखते हैं इस प्रकार वह समाज में अभिन्न हुआ रहना नहीं चाहता।

किशोरावस्था वास्तव में सामाजिक व्यवस्थापन की अवस्था है। किशोर सामाजिक सम्बन्धो का ज्ञान प्राप्त करता हुआ, सामाजिक परिस्थितियो के साथ अनुकूलन स्थापित करने का प्रयत्न करता है।

घूमने की प्रवृत्ति—बालकों में घूमने की इच्छा का उदय होने लगता है किन्तु किशोरावस्था में यह प्रवृत्ति विशेष बल पकड लेती है। किशोर सामाजिक बधनों से ऊब कर अथवा विद्यालय के नीरस वातावरण से घबडा कर खुले मैदानो मे घूमना चाहता है। ऊँचे-ऊँचे पर्वतो पर चढना, कलकल नाद करती हुई नदियो मे तरना, प्रकृति के रम्य प्रागण मे किलोल करना, उसके स्वभाव की वस्तुएँ बन जाती है। यदि उसे उसी इच्छा के विरुद्ध भ्रमण करने की इस प्रवृत्ति का अवदमन किया जाता है तो उसमे 'आवारापन' की प्रवृत्ति पैदा हो जाती है।

इस प्रवृत्ति का प्रकाशन स्काउटिंग कैम्प में विशेषरूप से दिखाई देता है। किशोर जितना अधिक आनन्द मनोहर स्थलो की सैर करने मे प्राप्त करते है उतना आनन्द कदाचित उन्हे घर पर निष्क्रिय पडे रह कर आराम करने मे नही मिलता।

दूसरों पर आश्रित रहने की भावना—जिस प्रकार शिशु अपने प्रत्येक कार्य के लिये अपने मातापिता पर आश्रित रहता है उसी प्रकार दूसरो पर निर्भर रहने की प्रवृत्ति किशोरावस्था मे पुनः उत्पन्न हो जाती है। अब वह किसी आदर्श पुरुष अथवा नेता का अनुकरण करने लगता है। उसमे वीर-पूजा की भावना का प्रादुर्भाव दूसरो पर आश्रित रहने की प्रवृत्ति के कारण ही होता है।

किशोर की रुचियाँ

Q. 6. Analyse the interests of an adolescent How will you help him to develop his interests in sound lines ?

किशोरावस्था मे रुचियो का विकास तीव्र गति से होता है। ये रुचियाँ निम्नांकित क्षेत्राओ से सम्बन्धित रहती है।

(अ) खेल
(ब) पढने
(स) सिनेमा
(द) रेडियो
(य) वादविवाद
(र) व्यवसायिक रुचियाँ

खेल—लड़के और लडकियो के खेल सम्बन्धी रुचियो का लेहमैं और विटी[1] ने अपने देश के १५ वर्षीय किशोर और किशोरियो की जो सूची दी है उसका अंश नीचे दिया जाता है—

किशोर	किशोरी
बास्केट बौल	बास्केट बौल
फुटबौल	सामाजिक नृत्य में भाग लेना
बेसबौल	मोटर चलाना
मोटर चलाना	पियानो बजाना
टैनिस	स्पोर्ट्स का निरीक्षण
स्पोर्ट्स का निरीक्षण	डेट्स नियत करना
शिकार	पिकनिक जाना
सिनेमा जाना	सिनेमा जाना
बौक्सिंग	जिमनेसियम
पुस्तक पढ़ना	पुस्तक पढ़ना

१५ वर्ष की अवस्था मे किशोर और किशोरी सामूहिक खेलो मे सक्रिय भाग लेने लगता है

[1] The Psychology of Play activities; Lehman and Witht, Banes, N'York 1927, 242p.

जैसे फुटबॉल, बैसबॉल, बास्केट बॉल, सामाजिक नृत्य, पिकनिक आदि । विभिन्न मनोविनोद क्रियाओं में स्पोर्टस देखना, सिनेमा जाना, पुस्तकें पढ़ना । यह सब रही विदेश की बात ऐसी ही विशाएं हम आज देश के किशोरों में पाती हैं ।

यदि बचपन से लेकर किशोरावस्था के अन्त तक की रुचियों का पर्यवेक्षण किया जाय तो हमें दो विशेषताएं मिलेंगी ।

(१) ११-१५ वर्ष की आयु तक शारीरिक वृद्धि और विकास की तीव्र गति के साथ रुचियों में जटिलता और बौद्धिक गुण आता जाता है ।

(२) Leisure time Activites और यौन-सामाजिक रुचियां १८ वर्ष की आयु के बाद विकसित होने लगती हैं ।

पठन-पाठन सम्बन्धी रुचियां—किशोरावस्था में पुस्तकें पढ़ने की रुचि पैदा हो जाती है। किशोर और किशोरी साहसिक कहानियां, रोमांटी उपन्यास, प्रेम सम्बन्धी कहानियों का अध्ययन करना अधिक पसंद करते हैं । किन्तु किस स्तर पर किस प्रकार का पुस्तकें पढ़ने की रुचि पैदा होती है इसकी देश में कोई वैज्ञानिक खोज ऐसी नहीं हुई है जो यह निश्चित रूप से प्रमाणित कर सके । तब भी प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर यह कहा जा सकता है किशोर में जासूसी किस्से कहानियां पढ़ने की विशेष रुचि दिखाई देती है ।

बचपन से भी पढ़ने में रुचि होती है किन्तु बालक छोटी-छोटी बचपन की कहानियां पढ़ना चाहता है । उत्तर बाल्यावस्था में वह मशीन सम्बन्धी तथा साहसी किस्से कहानियों का अध्ययन करता है । किशोरावस्था में रोमांस में रुचि लेने लगता है । उसकी पाठन सम्बन्धी रुचियां सदैव यह प्रदर्शित नहीं करती कि वह क्या करना चाहता है किन्तु यह प्रदर्शित करती हैं कि वह क्या करना चाहता है और क्या कर नहीं सकता ।

सिनेमा सम्बन्धी रुचियां—नगरों में सिनेमाओं की बहुलता के कारण किशोर काफी बड़ी मात्रा में सिनेमा देखने में रुचि लेने लगे हैं । कुछ किशोर तो प्रति सप्ताह एक सिनेमा देखने के आदी हो गये हैं । इन चित्रपटों में से किशोर और किशोरियां प्रायः ऐसे चित्रपटों को पसंद करते हैं जिनमें रोमांस की मात्रा अधिक होती है । लड़कियां फिल्मी प्रेमीयों में और लड़के स्त्रियों व अभिनेत्रियों में रुचि दिखाते हैं । वे सिनेमा के पात्र और पात्री के साथ सम्बन्ध स्थापित कर आनन्द की अनुभूति करते हैं ।

किशोरावस्था की समस्यायें

Q 7 Analyse the problems that face an adolescent. How and why do these problems arise ? How will help the adolescent to solve them ?

मानव विकास की किशोर वह अवस्था है जिसमें शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और सांवेगिक व्यवस्थान पूर्णरूपेण अस्तव्यस्त हो जाता है । कीट्स के शब्दों में किशोरावस्था ऐसा समय है जब प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा उथल-पुथलमय, जीवन दर्शन अपूर्ण, आचरण अनिश्चित और जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है । जीवन की इस अस्थिरता का कारण घर, समाज और विद्या- [illegible] ये तीनों संस्थाएं उसकी आवश्यकताओं [illegible] टलता उत्पन्न कर देती हैं । फल यह होता [illegible] की मृत्यु दर जितनी होती है ठीक उसकी दुगुनी मृत्यु दर १५ वर्ष से लेकर २० वर्ष तक की आयु में पाई गई है । १५ वर्ष की आयु से कम आयु वाले बालकों में जितने मानसिक असन्तुलन अथवा मानसिक रोगों के लक्षण पाये जाते हैं ठीक उनके दस गुने मानसिक रोगों के लक्षण १५-२० वर्ष के किशोरों में देखे गये हैं[1] मानसिक अव्यवस्थापन का एक मात्र कारण है किशोर के प्रति माता-पिता गुरुजन और समाज के अन्य पुरुषों का अनौचित्यपूर्ण व्यवहार । नित्य नवीन प्रकार की समस्याओं का दबाव उस पर इतना अधिक होता

1 Frank.

(१) शारीरिक विकास तथा स्वास्थ्य
(२) सामाजिक व्यवस्थापन माता-पिता से सम्बन्ध
(३) लिंग और लिंग
(४) स्कूल कार्य, पाठ्यवस्तु तथा पाठन विधियों से सम्बन्धित
(५) शैक्षणिक एवं व्यावसायिक भविष्य
(६) आर्थिक दशा
(७) धर्म और नीति

शारीरिक परिवर्तन—यद्यपि ये समस्यायें अनेक है किन्तु उनका कारण एक है और वह यह कि उनको पैदा करने मे घर, विद्यालय और समाज तीनो सहायता देते हैं। किशोर की पहली समस्या जिसका सम्बन्ध शारीरिक विकास और स्वास्थ्य से सम्बन्धित है घर से ही आरम्भ होती है, उसके शरीर मे जो शारीरिक परिवर्तन उपस्थित होते है उनका ज्ञान किशोर को तो होता ही नही है प्राय उसके माता पिता और अन्य कुटुम्बी जनो को भी नही होता। शारीरिक परिवर्तन के साथ उसकी अभिरुचि और अभिवृत्तियो मे परिवर्तन उत्पन्न हो जाते है। ये परिवर्तन ही एक ओर उसमे चिन्ता और भय के लक्षण पैदाकर उसी के मानसिक सन्तुलन को बिगाड देते है, दूसरी ओर कम समझदार माता-पिता उसका ध्यान शारीरिक परिवर्तनो की ओर करके उसकी परेशानियो को बढा देते हैं। उसका यह ज्ञान कि वह दूसरों से भिन्न होता जा रहा है अथवा दूसरों की अपेक्षा अधिक बेढगा होता जा रहा है घर पर ही होता है। किशोर में अत्यधिक आत्म-चेतनता और आत्म-हीनता की भावना उसकी मानसिक परेशानियों को बढा देती है।

सामाजिक व्यवस्थापन—शारीरिक परिवर्तन उपस्थित होने पर किशोर सामाजिक व्यवस्थापन कैसे स्थापित करे यह उसकी दूसरी परेशानी होती है। अन्य बालको से भिन्नता का ज्ञान हो जाने पर न तो वह बालको के साथ रहना पसन्द करता है और न प्रौढ़ व्यक्तियो के साथ क्योकि वह उन की जिम्मेदारियों को अभी पूरा कर सकने की योग्यता नही पाता। फलतः वह अकेलेपन का अनुभव करता है। कल जिन बालको के साथ खेल रहा था, शरीर मे अचानक परिवर्तन उपस्थित हो जाने पर उनके साथ समायोजन स्थापित नही कर पता। बढती हुई दाढी और मूछे, लम्बी व पतली टागें, मुहासों से भरा हुआ मुँह, धडकती हुई तेज नाड़ी, शरीर की थकावट, मांसपेशियो की अशक्तता, किशोर के क्षोभ को बढाते चले जाते हैं। किन्तु इस क्षोभ की मात्रा उस समूह पर निर्भर रहती है जिसके बीच वह रह रहा होता है। यदि वह समूह किशोर के प्रति उदार है और उससे उतनी ही आशाएँ रखता है जितनी कि वह पूरी कर सकता हो तो किशोर उस समूह के साथ समायोजन स्थापित कर लेता है अन्यथा नहीं। किशोर को इतना ज्ञान अवश्य होता है कि वह आयु मे, शरीर मे वृद्धि पा रहा है किन्तु उसको समूह मे क्या स्थान मिल सकेगा इसका उसे कोई पता नहीं। यदि उसके माता पिता उसमे होने वाले परिवर्तनों को जानते है यदि वे उसके साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार कर सकते हैं, यदि वे उसके साथ मित्रवत् आचरण करने के लिये तैयार हैं तो वह कुटुम्ब मे सामाजिक व्यवस्थापन स्थापित कर लेता है। किन्तु ऐसे समझदार माता-पिता की सख्या अत्यल्प होने के कारण किशोर बहुधा मानसिक परेशानियों के कारण व्यग्र रहता है। उसके माता पिता तथा अभिभावक प्राय: ऐसे होते हैं जो न उसे प्रौढ़ मानने के लिये तैयार हैं और न बालक ही। ऐसी अवस्था मे पडा हुआ किशोर मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का शिकार हो जाता है। वह अपने को अरक्षित समझता है, निन्दा और तिरस्कार उसके लिए असह्य हो जाते हैं। माँ कहती है—'पहले वह कितना सुन्दर लगता था' अब कैसा हो गया है? चेहरे पर जो दाग पड गये हैं वे तो पड़ने ही थे, शरीर की जो आकृति बिगडनी थी वह बिगड ही चुकी है इसमे उसका दोष ही क्या है इन बातो को उसके माता-पिता नही समझते। इस प्रकार किशोर की समस्याओं का आरम्भ घर से होता है।

लिंगीय प्रेम—समाज भी उसकी आवश्यकताओं को सन्तुष्ट नही होने देता। काम भावना उदय के कारण वह विषम लिंगीय व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित करना चाहता है किन्तु समाज प्रकार के अवरोध प्रस्तुत करता है किशोर और किशोरी वैसे ही अपने शारीरिक परिवर्तनों

के कारण क्षुब्ध रहता है। भिन्न लिंगीय आकर्षण के उत्पन्न होने पर और समाज के विरोध करने पर उसका क्षोभ और भी बढ जाता है। [यदि समस्याओं का ध्यानपूर्वक विश्लेषण किया जाय तो किशोरावस्था की मुख्य समस्या लिंग से सम्बद्ध नहीं मिलेगी। १३-१४ वर्ष के किशोर और किशोरी अपने विषम लिंगीय व्यक्तियों के सामने आने पर अत्यधिक व्याकुलता का अनुभव करता है। इसलिए जहाँ विद्यालयो में सहशिक्षा की व्यवस्था है उनमें किशोरियाँ अपने को अरक्षित समझती हैं यदि उनमें स्त्री अध्यापिकाएँ न हो क्योकि लडको की अपेक्षा लडकियों को मातृभाव वाली स्त्री शिक्षिका की आवश्यकता होती है जो उनकी व्यक्तिगत समस्याओ को कौशल और सहानुभूति के साथ सुलझा सकें।

विद्यालय—विद्यालय भी साधारणत: किशोर की समस्याओं मे अभिवृद्धि ही करता है। वह उसकी सम्मान पाने की आवश्यकता की संतुष्टि नही कर पाता। अध्यापक माता-पिता की तरह कभी तो उसे बालक मानकर चलता है और कभी प्रौढ़ व्यक्ति की तरह उसके साथ आचरण करता है। विद्यालयो में अरुचिकर पाठ्यक्रम—ऐसा पाठ्यक्रम जो उसकी आवश्यकताओं के अनुकूल हो—किशोर में भगोड की प्रवृत्ति पैदा कर देता है। परीक्षाओं में असफलता सवेगात्मक अव्यवस्था का सामान्य कारण बन जाती है क्योंकि असफल होने पर उसके नव विकसित अहं को उपाघात मिलता है, अवरोध की अवस्था मे अनिच्छापूर्वक पुस्तकों को पढ़ना, उन विद्यार्थियो के साथ रहना, जिनको अभी तक अपने से छोटा समझते हुए नीची दृष्टि से देखता रहा था, उसके मानसिक सतुलन को बिगाड देता है। इस प्रकार उनकी कई समस्याएँ कक्षाकार्य, पाठ्यक्रम और पाठन विधियो से सम्बन्धित होती हैं।

धर्म और नीति—कभी-कभी घर और विद्यालय के नैतिक एवं धार्मिक मानदण्डों मे इसकी अधिक विषमता होती है कि किशोर इस उलझन मे फँसा रहता है कि वह क्या करे और क्या न करे। यह अन्तर्द्वन्द्व अरक्षा की भावना पैदा कर देता है। धर्मपरायण और सकुचित धार्मिक विचारों के मानने वाले परिवारों से आने वाले किशोर जाति भेद न मानने वाले विद्यालयों में तथा जाति-पाँति मे विश्वास न करने वाले परिवारों से आनेवाले किशोर मिशन स्कूलों तथा अन्य धार्मिक सस्थाओं में व्यवस्थापन स्थापित नहीं कर पाते। अत जब तक घर में व्यवहृत आचार, व्यवहार और आचरण के नियम विद्यालय के नियम से साम्य नहीं रखते तब तक किशोर के सामने नयी समस्याएँ बनी ही रहती हैं।

शैक्षिक भविष्य—१७-१८ वर्ष की अवस्था में किशोर की समस्याओ मे शैक्षणिक और व्यावसायिक भविष्य से सम्बन्धित समस्याएँ और जुट जाती हैं। अत. वह अपने पैरों पर खड़ा होना चाहता है। स्वतन्त्रता की आवश्यकता से प्रेरित होकर किशोर अपने भावी जीवन के विषय में विभिन्न तरह से व्यग्र दिखाई देता है। आधुनिक संघर्षमय स्थिति मे त्रस्त होकर और भी व्यग्र दिखाई देता है।

समस्याओं का समाधान—इन सभी समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। उसके माता-पिता, गुरुजन और अन्य साथी उसके सम्मान पाने, अहं की रक्षा करने, यौन प्रवृत्ति को सशोधित और परिमार्जित करने का सतत प्रयत्न करते रहें। विद्यालय का कर्त्तव्य है कि वह समाज और परिवार दोनों को किशोर और किशोरियों के साथ समायोजन स्थापित करने मे मदद करे। यदि किशोर असामान्य व्यवहार करता है तो विद्यालय उस असामान्य व्यवहार के कारणों को मालूम करे और किशोर की समस्याओं का हल ढूंढे जिससे वह अपना जीवन सुखपूर्वक बिता सके।

Q. 8 What is the aim and ime of getting the sex education.

७·१३ लिंग-शिक्षा

• किशोरावस्था की बहुत सी समस्यायें लिंग-सम्बन्धी होती हैं, क्योंकि इस अवस्था में जैसा कि पहले कहा जा चुका है किशोर के जीवन की अस्त-व्यस्तता काम भावना के अकस्मात् बेचैनी होने के कारण उत्पन्न हो जाती है। अनुभवी मनोवैज्ञानिकों का मत है कि किशोर और किशोरी को इस काम-प्रवृत्ति के उचित और वास्तविक ज्ञान से वंचित रखने के कारण उनमें कई दुर्व्यसन

किशोरावस्था में लिंग-शिक्षा—किशोरावस्था आरम्भ होने से पहले ही बालक और [illegible] का होना आवश्यक है [illegible] न तो लड़कियों को ही [illegible] चाहिये। लड़के स्वप्न-दोष को पाप अथवा रोग समझते हैं, उनकी यह धारणा तभी बन जाती है जब उनको ये सूचनाएँ दी नहीं जातीं।

प्रश्न यह है कि लिंग भेद सम्बन्धी, ये सूचनायें किसके द्वारा दी जायें। प्रजनन सम्बन्धी शरीर विज्ञान तथा उसके सामाजिक महत्व पर प्रकाश कौन डालें—अध्यापक, माता-पिता अथवा स्कूल के डाक्टर ? वैसे तो इस काम के लिये माता-पिता ही लिंग शिक्षा देने के उपयुक्त पात्र हैं, किन्तु यदि उनके प्रशिक्षण की जिम्मेदारी चिकित्सा विभाग एवं शिक्षा विभाग पर ही है यह तो [illegible]

इसलिये व्यक्तिगत रूप से शिक्षा देना ही अच्छा होगा।

किशोरावस्था की काम भावना सम्बन्धी सभी समस्याओं का हल किया जाना नितान्त आवश्यक है। ये समस्याएँ कैसे और क्यों पैदा होती हैं ? उनका निराकरण किस प्रकार किया जा सकता है ? काम की प्रवृत्ति का किस प्रकार शोधन किया जा सकता है ? किस प्रकार यह शक्ति दूसरे कार्यों में लगाई जा सकती है ? इन प्रश्नों का उत्तर दिया जाता है। अन्तिम दो प्रश्नों का उत्तर अनुच्छेद ६·७ और ६·८ में दिया जायगा। यहाँ पर यह कहना पर्याप्त है कि किशोर को साहित्य, कला, समाज सेवा में लगाकर कामप्रवृत्ति को शोधित रूप में प्रकाशित होने का अवसर दिया जाना चाहिये।

लिंग शिक्षा को चरित्र शिक्षा के साथ सम्बद्ध करके किशोर का नैतिक एवं चारित्रिक विकास भी किया जा सकता है। कुछ विद्वानों का मत यह है कि लिंग शिक्षा को नैतिक शिक्षा से पूर्णतः सम्बद्ध कर देना चाहिये नहीं तो किशोर की रुचि नियमित न होकर कामुकतापूर्ण हो जायगी। यदि वह यह समझ लेता है कि इन्द्रिय सस्पर्श, अवैध मैथुन, विषम अथवा समलिंगीय व्यक्तियों के साथ शारीरिक सम्बन्ध, नीच, गर्हित, अनैतिक और पापमय है तो वह लिंग-शिक्षा से उचित लाभ प्राप्त कर सकेगा।

लिंग शिक्षा का सह-सम्बन्ध यदि जीव विज्ञान, स्वास्थ्य रक्षा, शरीर विज्ञान, गृहशास्त्र, नागरिक शास्त्र और साहित्य के साथ स्थापित कर दिया जाय तो यह स्वाभाविक रूप से सभी को दी जा सकती है।

यह तो रहा लिंग शिक्षा के प्रति प्रगतिशील मनोवैज्ञानिकों का मत जो समाज के सब बन्धनों को तोड़कर काम भावना सम्बन्धी इस मूल प्रवृत्ति के सम्बन्ध में शिक्षा के क्षेत्र में नया युग आरम्भ करना चाहते हैं। दूसरी ओर ऐसे भी शिक्षा प्रेमी हैं जो बालकों को शुद्ध और पवित्र वातावरण में रखकर काम प्रवृत्ति सम्बन्धी किसी भी बात को बालकों के कान तक पहुँचाने को सहन नहीं कर सकते। हमारे विचार से यह ठीक है कि मनोविश्लेषण के नवीन अन्वेषण और व्याख्याएँ सही हैं, किन्तु समाज के पवित्र बन्धनों को और युगों की संस्कृति को एक साथ उखाड़कर फेंक देने से कहीं लाभ की अपेक्षा हानि न हो जाय, ऐसा हमको डर सा लग रहा है। हमारी समझ में यदि बालक को इस मूल प्रवृत्ति को उपयोगी कार्यों में लगाकर उसे हानिकारक रूप से अपना असर छोड़ने के लिये अवसर ही न दिया जाय। यदि बालकों को कठोर जीवन बिताने की आदत डाल दी जाय और ज्ञान प्राप्त करने के लिये वे भरसक प्रयत्न करते रहें तो यह काम की मूल प्रवृत्ति स्वतः विलीन हो जायगी। कदाचित् हमारे पूर्वजों ने ब्रह्मचर्याश्रम में कठोर जीवन की व्यवस्था इसी दृष्टि से की थी।

अध्याय ८

मूल प्रवृत्तियाँ और शिक्षा

Q. 1 what is the difference between instincts and reflexes? Why is necessary to stindy instincts of the child?

९८१ मूल प्रवृत्तियों और सहज क्रियाओं का शिक्षा मे महत्व

शिक्षा का मुख्य उद्देश्य है बालक के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास। दूसरे शब्दों में शिक्षा का लक्ष्य उसकी शक्तियों और प्रवृत्तियों को इस प्रकार से विकसित करना है कि वह अपने भौतिक, सामाजिक, और आध्यात्मिक वातावरण में अनुकूलन स्थापित कर सके।[1] प्रश्न यह है कि ये शक्तियाँ अथवा प्रवृत्तियाँ क्या हैं जिनका हमे विकास करना है?

मनोवैज्ञानिकों ने इन प्रवृत्तियों को दो वर्गों मे विभाजित किया है:

(अ) अर्जित प्रवृत्तियाँ

(ब) जन्मजात प्रवृत्तियाँ

बालक जिन जन्मजात प्रवृत्तियों को लेकर पैदा होता है वे हैं सहज क्रियाएँ—मूल प्रवृत्तियाँ, संवेग और बुद्धि की विशेषताएँ और अर्जित प्रवृत्तियों मे उसकी आदत, स्थायीभाव, चरित्र, विचार आदि को सम्मिलित किया जाता है। बालक के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करने के लिये इन जन्मजात और अर्जित प्रवृत्तियों का ज्ञान आवश्यक है। डाक्टर ईश्वरचन्द शर्मा ने अपनी पुस्तक 'शिक्षा मनोविज्ञान' में मूलप्रवृत्तियों के महत्व पर जो रूपक बाँधा है वह नीचे दिया जाता है—

"मूलप्रवृत्तियों का ज्ञान शिक्षक के लिये इतना आवश्यक तथा अनिवार्य है जितना कि एक सामुद्रिक जहाज के सचालक के लिये जहाज के इजन, उसकी वाष्प शक्ति तथा उसको आगे धकेलने का ज्ञान रखना आवश्यक होता है। मूल-प्रवृत्तियाँ बालक की अवगुंठित शक्तियाँ हैं जो उसकी हर क्रिया मे सहायक हो सकती हैं, किन्तु जिस प्रकार अज्ञान के कारण जहाज का संचालक जिसको कि जहाज के इजन तथा उसकी वाष्प शक्ति के प्रयोग का पूर्ण ज्ञान नहीं होता, अपने जहाज को किसी चट्टान से टकराकर नष्ट कर देता है, उसी प्रकार वह शिक्षक जिसको कि मूल-प्रवृत्तियों का ज्ञान नहीं, बालक रूपी जहाज को निर्बाध रूप से किनारे नहीं लगा सकता।"

प्राय. शिक्षक और अभिभावक बालक की कई मूल-प्रवृत्तियों का अवदमन करते हैं। कई मूल-प्रवृत्तियों के विषय में उनको कोई जानकारी नहीं होती। वे नहीं जानते कि ये शक्तियाँ किस समय प्रस्फुटित होती हैं और उनका किस समय विकास करना चाहिये। प्रस्तुत अध्याय में मूल-प्रवृत्तियों के सदुपयोग तथा शिक्षा में उनके महत्व की विवेचना की जायगी।

मूल-प्रवृत्तियाँ और सहज क्रियाएँ ऐसी गुप्त शक्तियाँ है जिनको साथ लेकर बालक जन्म लेता है। ये क्रियाएँ उसे सीखनी नहीं पड़तीं। उसका प्रारम्भिक जीवन उन्हीं पर आधारित रहता

1 अनुच्छेद १·३

है। किन्तु जैसे-जैसे उसकी आयु में वृद्धि होती है वैसे-वैसे वह इन जन्मजात क्रियाओं और प्रवृत्तियों की अपेक्षा अर्जित तत्वों और क्रियाओं के आधार पर व्यवहार करने लगता है। आयु-वृद्धि के साथ जन्मजात तत्वों की महत्ता कम और अर्जित तत्वों की महत्ता अधिक होती जाती है। यद्यपि सहज क्रियाएँ तथा मूल-प्रवृत्तियाँ आयुपर्यन्त मनुष्य के साथ रहती हैं, किन्तु बाल्यावस्था में ही इनका प्रभाव बालक के व्यवहार और आचरण पर अधिक पड़ता है। इसलिये यदि हम बालक के व्यवहार का अध्ययन करना चाहते हैं तो हमें इन क्रियाओं और मूल-प्रवृत्तियों का ज्ञान प्राप्त करना होगा।

८·२ सहज क्रियाएँ

हमारा जीवन जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त क्रियाओं का एक सुव्यवस्थित क्रम है। 'जब तक जीवन है तब तक क्रियाएँ हैं और जब तक क्रियाएँ हैं तब तक जीवन है।' ये क्रियाएँ मुख्यतया दो प्रकार की होती हैं—ऐच्छिक और अनैच्छिक। शिशु में अनैच्छिक क्रियाओं से जीवन का आरम्भ होता है। ऐच्छिक क्रियाओं का उदय उसके पूर्ववर्ती, अनुभव, विवेक और विचार पर निर्भर होने के कारण देर में होता है। अनैच्छिक क्रियाओं के भी चार भेद हैं—

(१) स्वच्छन्द क्रियाएँ
(२) तत्कालप्रेरित क्रियाएँ
(३) सहज क्रियाएँ
(४) मूलप्रवृत्यात्मक क्रियाएँ

जब कोई बाहरी वस्तु सहसा हमारे शरीर से टकराती है तो प्रकृति सहज क्रियाओं द्वारा हमारे जीवन की रक्षा करती है। जैसे ही हमारी आँखों में धूल का कण पहुँच जाता है आँखों से आँसू निकल आते हैं और कण घुलकर आँख से बाहर निकल आता है। इस प्रकार प्रत्येक बाह्य उद्दीपन[1] के सम्पर्क के कारण जीवन की रक्षा के लिये जो प्रतिक्रिया होती है उसे हम सहज क्रिया कह सकते हैं। तीव्र प्रकाश में आँखों की पुतली के छेद का संकुचित हो जाना, धुँधले प्रकाश में इस छिद्र का प्रसारित हो जाना, शिशु का रोना, हिचकी लेना, हमारा छींकना, खाँसना, मुँह में पानी आना आदि सहज क्रियाएँ हमारे जीवन की रक्षा करती हैं।

साधारण सहज क्रियाएँ स्वाभाविक उत्तेजना और स्वाभाविक विषय के द्वारा ही उत्पन्न होती हैं। उदाहरणस्वरूप, जब हमारे सामने भूखे होने पर स्वादिष्ट भोजन प्रस्तुत किया जाता है तो मुँह में पानी स्वतः आ जाता है। मुँह में भोजन के रखने पर लार का आना तो स्वाभाविक सहज क्रिया है, किन्तु स्वादिष्ट पदार्थों के आँखों के सामने प्रस्तुत किये जाने पर मुँह में पानी का आ जाना प्रत्यावर्तित सहज क्रिया मानी जायगी। इसका तात्पर्य यह है कि सहज क्रिया न केवल स्वाभाविक उत्तेजना के कारण ही पैदा होती है वरन् बनावटी उत्तेजना के द्वारा भी पैदा हो सकती है। वह पूर्ववर्ती अनुभव पर निर्भर हो सकती है और पूर्ववर्ती अनुभव के आधार पर परिवर्तित हो सकती है। सहज क्रियाओं का प्रत्यावर्तन किस प्रकार होता है इसका विशद उल्लेख अध्याय १६ में किया जायगा। यहाँ पर यह जान लेना पर्याप्त है कि सहज क्रियाएँ वातावरण के कारण परिवर्तित और नियमित होती हैं। कुछ [illegible] समस्त अर्जित क्रियाओं और व्यवहारों के आधार [illegible] अतः हम शिक्षक-वर्ग से आशा करते हैं कि वे इन [illegible] करें, तभी वे बच्चों के व्यवहार को अच्छी तरह समझ सकेंगे।

८·३ मूल प्रवृत्ति की परिभाषा

मूल-प्रवृत्तियाँ प्राणिमात्र की वे जन्मजात वृत्तियाँ हैं जिनके द्वारा वह बिना सीखे ही विशेष अवस्था में विशेष प्रकार की क्रिया करता है। मन की वे ऐसी वृत्तियाँ हैं जो हमारे क्रियात्मक,

---

[1] External stimuli.

भावात्मक और क्रियात्मक व्यवहार को विशेष रूप देती है। मैकडूगल ने मूलप्रवृत्ति की परिभाषा देते हुए लिखा है

"हम मूल प्रवृत्ति को एक ऐसी जन्मजात प्रवृत्ति कह सकते हैं जो कि एक विशेष प्राणी को किसी विशेष वस्तु से ध्यान देने के लिये प्रेरित करती है, उसकी उपस्थिति में उसको विशेष संवेगात्मक उत्तेजना तथा ऐसी क्रियात्मक प्रेरणा का अनुभव कराती है, जो कि उस वस्तु के सम्बन्ध में विशेष व्यवहार के रूप में व्यक्त होती है।"[1]

मूल प्रवृत्ति के कारण प्राणी किसी विशेष वस्तु को देखता है, उसका प्रत्यक्षीकरण करता है, यह मूल-प्रवृत्ति का ज्ञानात्मक अंग है। उस परिस्थिति का ज्ञान प्राप्त करने पर उसे विशेष प्रकार के संवेग की अनुभूति होती है, उस परिस्थिति की उपस्थिति से प्राणी का प्रभावित होना मूल प्रवृत्ति का भावात्मक अंग है। इस संवेग के उत्पन्न होने के फलस्वरूप वह किसी विशेष प्रकार की क्रिया में संलग्न हो जाता है। उपस्थित परिस्थिति से सम्बन्ध रखते हुए किसी विशेष प्रकार की क्रिया में लीन होने की प्रवृत्ति मूल-प्रवृत्ति का क्रियात्मक अंग माना जा सकता है। उदाहरण के लिये अपने सामने जीवित शेर को देखकर हम भयभीत होते हैं और किसी सुरक्षित स्थान की ओर रक्षा के लिये दौड़-कर भाग उठते हैं। शेर को देखकर भयभीत होने और भाग उठने की यह जन्मजात प्रवृत्ति सभी प्राणियों में होती है। इस प्रवृत्ति को सिखाए बिना सीखे ही विशेष अवस्था में प्रदर्शित किया करता है। ऐसी परिस्थिति में पड़कर हम जो व्यवहार करते हैं वह मूल प्रवृत्त्यात्मक व्यवहार कह-लाता है।

[illegible] मूल प्रवृत्ति और सहज क्रिया में अन्तर

यद्यपि मूलप्रवृत्तियाँ, प्राणियों तथा सहज क्रियाएँ सभी जन्मजात प्राणियों में होती हैं और दोनों ही अनैच्छिक क्रियाओं के भेद माने जाते हैं और दोनों ही जीवन रक्षा करने में सहायक होती हैं फिर भी इन दोनों में अन्तर है।

(१) सहज क्रिया में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता प्रत्यावर्तन भले ही होता हो। हमारे छींकने, पलक मारने, स्वादिष्ट भोजन पदार्थ के सामने आने पर मुँह में पानी आने की क्रियाओं में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता, ये क्रियाएँ आजीवन वैसी ही बनी रहती हैं जैसी कि छोटे शिशु में दिखाई देती हैं। किन्तु मूल प्रवृत्त्यात्मक क्रियाओं में परिवर्तन उपस्थित हो जाते हैं। अनुभव के द्वारा ये परिवर्तन विचारात्मक, तथा क्रियात्मक दृष्टिकोण से उत्पन्न होने लगते हैं। उदाहरणार्थ, जब शिशु को क्रोध आता है तब वह काटने के लिये दौड़ पड़ता है किन्तु बड़े होने पर ऐसा नहीं करता। अनुभव के सहारे उसके इस मूल-प्रवृत्त्यात्मक व्यवहार में क्रियात्मक परिवर्तन आ जाता है। जब पहले-पहल पक्षी बन्दूक के चलने की आवाज सुनते हैं तो वे प्राय उड़ जाते हैं लेकिन दूसरी बार बन्दूक चलाने वाले को देखकर ही उड़ जाते हैं। विचार के सहारे कि शिकारी कहीं बन्दूक न चला दे उनकी पलायन की प्रवृत्ति में अन्तर उपस्थित हो जाता है। सहज क्रियाओं में इस प्रकार का कोई परिवर्तन नहीं होता।

(२) मूल प्रवृत्तियाँ स्वच्छन्द होते हुए भी चेतन स्तर पर कार्य करती हैं किन्तु सहज क्रियाएँ अचेतन रूप से सम्पादित होती रहती हैं।

(३) मूल-प्रवृत्त्यात्मक क्रियाओं के कर लेने के बाद व्यक्ति को आनन्द और सन्तोष मिलता है। किन्तु सहज क्रिया के करने के बाद ऐसा आनन्द या सन्तोष प्राप्त नहीं होता। शेर के भय से

---

[1] [illegible] which determines an organisms to perceive [illegible] class and to experience in its [illegible] impulse to action which finds [illegible] in relation to that object
—AnOutline of Psycholosy

भागकर बचने के बाद आनन्द की प्राप्ति होती है, शिशु के माता पर कोधित होने पर उसे काट खाने में सन्तोष मिलता है।

(४) हमारी सभी सहज क्रियाएँ जीवन भर साथ रहती हैं किन्तु मूल-प्रवृत्यात्मक क्रियाएँ बीच में ही या तो समाप्त हो जाती हैं या शान्त हो जाती हैं। उनका उदय काल भी भिन्न-भिन्न आयु पर होता है किन्तु सभी सहज क्रियाएँ जन्म के साथ हममें उदय होती हैं और मृत्यु के साथ अन्त होती हैं।

(५) मूल प्रवृत्यात्मक क्रियाएँ मनोक्रिया के तीनों अगों का ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक प्रदर्शन करती हैं। उनका किसी न किसी संवेग के साथ निश्चित सम्बन्ध होता है किन्तु सहज क्रिया का सम्बन्ध किसी संवेग से नहीं होता।

(६) सहज क्रिया तात्कालिक होती है, ज्योंही कोई उत्तेजना किसी ज्ञानेन्द्रिय को उत्तेजित करती है त्योंही सहज क्रिया हो जाती है। ज्योंही आँख के सामने हवा का झोंका आता है आँख झप जाती है। किन्तु मूल प्रवृत्ति को अपने ध्येय की प्राप्ति के लिये देर तक कभी-कभी कुछ दिनों तक क्रियात्मक रूप का प्रदर्शन करना पड़ता है।

(७) सहज क्रियायें एक अग विशेष को कार्य करना पड़ता है किन्तु मूल प्रवृत्ति से प्रेरित व्यक्ति का समस्त अग क्रियाशील हो उठता है। छींक आने पर केवल नाक और मुँह मे क्रिया होती है किन्तु पलायन (भागने) की मनोवृत्ति के उत्पन्न होते ही सारा शरीर क्रियाशील हो उठता है।

इस प्रकार दोनों क्रियाएँ जन्मजात, अनैच्छिक और जीव की रक्षा में संलग्न होने पर भी एक-दूसरी से कई बातों मे भिन्नता रखती हैं।

८·५ (अ) मूल प्रवृत्ति और संवेग (Instincts and Emotions)

Q 2 How are instincts and emotions related? Explain with examples

मैग्डूगल द्वारा दी गई परिभाषा में विशेष प्रकार के संवेग की अनुभूति का उल्लेख किया गया है। संवेग व्यक्ति की एक प्रकार की हलचल की अवस्था है। जब यह अवस्था उत्पन्न होती है तब व्यक्ति की मांसपेशियों और ग्रंथि सम्बन्धी क्रियाओं मे हलचल होने लगती है। उदाहरण के लिये, क्रोध आते ही हमारी आँखें लाल हो जाती हैं और हाथ पैर फड़कने लगते हैं।

८·५ (ब) मूल प्रवृत्तियों के भेद

यद्यपि मनोवैज्ञानिकों में मूलप्रवृत्तियों की सख्या के विषय मे मतभेद है फिर भी आधुनिक शिक्षामनोविज्ञ मैग्डूगल की १४ मूलप्रवृत्तियों को ही मान्यता देता है। इन १४ मूलप्रवृत्तियों को हम तीन वर्गों में बाँट सकते हैं।

(अ) स्वत्व सम्बन्धी मूलप्रवृत्तियाँ।

(ब) समाज सम्बन्धी मूलप्रवृत्तियाँ।

(स) सन्तति से सम्बन्धी मूलप्रवृत्तियाँ।

इन सभी मूलप्रवृत्तियों का किसी न किसी प्रकार के संवेग से सम्बन्ध होता है। तालिका ८·५ में इन मूलप्रवृत्तियों के वर्ग और सम्बन्धित संवेग का विवरण प्रस्तुत किया गया है—

मूल प्रवृत्तियाँ और संवेग

मूलप्रवृत्तियाँ	वर्ग	संवेग
१. भोजन ढूँढने की प्रवृत्ति	स्वत्व सम्बन्धी	भूख
२. संग्रह की प्रवृत्ति	,,	संग्रहभाव
३. उत्सुकता की प्रवृत्ति	,,	आश्चर्य
४ पलायन (आत्मरक्षा) की प्रवृत्ति	,,	भय

मूल प्रवृत्ति	वर्ग	संवेग
५. विकर्षण की प्रवृत्ति	स्वत्व सम्बन्धी	घृणा
६. रचनात्मक प्रवृत्ति	,,	रचनात्मक आनन्द
७. लड़ने की प्रवृत्ति युयुत्सा	,,	क्रोध
८. हँसने की प्रवृत्ति	सामाजिक	प्रसन्नता
९. समुदाय में रहने की प्रवृत्ति	,,	अकेलेपन की भावना
१० आत्महीनता की प्रवृत्ति	,,	आत्महीनता
११. विनय की प्रवृत्ति	,,	करुणा
१२. आत्म-प्रकाशन की प्रवृत्ति	,,	उत्साह
१३. काम प्रवृत्ति	सन्तति सम्बन्धी	काम भावना
१४. अपत्य प्रवृत्ति	,,	स्नेह

प्रथम सात मूल प्रवृत्तियाँ आत्म रक्षा और आत्म विकास की क्रियाओं को प्रेरित करती हैं इसलिये हमने इनको स्वत्व सम्बन्धी मूलप्रवृत्तियाँ कहा है, भोजन ढूढ़ने, लड़ने और पलायन की प्रवृत्तियों से आत्म रक्षा होती है। उत्सुकता, विकर्षण रचना और संग्रह की प्रवृत्तियों से आत्म-विकास सम्भव होता है। समाज सम्बन्धी मूलप्रवृत्तियाँ हमें सामाजिक कार्य करने के लिये प्रेरित करती हैं। समुदाय में रहने और हँसने की प्रवृत्तियाँ, आत्महीनता और आत्म प्रकाशन की प्रवृत्तियाँ हमको सामाजिक प्राणी बना देती हैं। सन्तति सम्बन्धी प्रवृत्तियाँ केवल दो हैं—काम प्रवृत्ति और अपत्य प्रवृत्ति। वैसे तो सभी मूलप्रवृत्तियाँ मनुष्य के जीवन के लिये उपयोगी हैं। किन्तु जो मूलप्रवृत्तियाँ शिक्षक के दृष्टिकोण से अधिक महत्व रखती हैं उनका विशद विवेचन अगली पंक्तियों में किया जायगा। यहाँ पर मूलप्रवृत्तियों का संक्षिप्त विवरण ही पर्याप्त है।

(१) भोजन ढूंढने की मूलप्रवृत्ति[1]—यह प्रवृत्ति प्राणिमात्र के जीवन का आधार है और जीवन की रक्षा के लिये इसको सर्वप्रथम स्थान दिया जाता है। यह मूलप्रवृत्ति भोजन की गन्ध के कारण तथा आमाशय की विशेष अवस्था के कारण प्रेरित होती है। इस प्रकार यह मूलप्रवृत्ति भूख तथा भोजन ढूढने की क्रियाओं का आधार है। इसका संवेग भूख[2] माना जाता है।

(२) लड़ने[3] की मूलप्रवृत्ति—यह मूलप्रवृत्ति उस समय प्रेरित होती है जिस समय व्यक्ति की किसी क्रिया में बाधा डाली जाती है। जब हम बन्दर के बच्चे पकड़ते अथवा मारते हैं तब उसकी माता अथवा अन्य सम्बन्धी बन्दर लड़ने के लिये उद्यत हो जाते हैं, क्योंकि उनकी शिशु रक्षा की मूलप्रवृत्यात्मक क्रिया में बाधा पहुँचती है। यह प्रवृत्ति अपत्य प्रवृत्ति में बाधा डालने से प्रेरित होती है, अपितु मनुष्य अथवा अन्य प्राणी की किसी भी अन्य मूलप्रवृत्यात्मक क्रिया के बाधित होने पर प्रकाशित हो उठती है। जिस समय शिशु की स्वाभाविक प्रवृत्ति को रोका जाता है अथवा उसके खेल में बाधा डाली जाती है तो वह इस प्रवृत्ति का प्रदर्शन करता है। यदि मूलप्रवृत्ति का प्रकाशन उसे बार-बार करना पड़ता है तो शिशु क्रोधी और झगड़ालू स्वभाव का बन जाता है।

बालक के समुचित विकास के लिए युयुत्सा की मूल प्रवृत्ति का परिवर्तन किया जा सकता है।

(२) पलायन[4] की मूलप्रवृत्ति—यह प्रवृत्ति हमें हर तरह के भयोत्पादक विषयों और परिस्थितियों से दूर भाग जाने की प्रेरणा देती है। भयानक शब्द इस मूलप्रवृत्ति को उत्तेजित करता है।

सहसा गतिशील वस्तु हमारे ध्यान को आकर्षित कर लेती है। हम उसका प्रत्यक्षीकरण

---

1 Food Seeking instinct.
2. Hunger
3. Combat.
4. Combat.

करते हैं और आत्म रक्षा के लिये किसी न किसी कार्य में प्रवृत्त हो जाते हैं। इस प्रकार पलायन की प्रवृत्ति आत्मरक्षा की प्रवृत्ति को जाग्रत करती है।

(४) उत्सुकता[1] की मूलप्रवृत्ति—यह मूलप्रवृत्ति उस समय प्रेरित होती है जबकि कोई विचित्र अथवा आश्चर्यजनक वस्तु हमारे सामने प्रकट होती है। यही प्रवृत्ति हमें प्रत्येक नई वस्तु के प्रति पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिये प्रेरित करती है।

(५) विकर्षण[2] की मूलप्रवृत्ति—जिस प्रकार विचित्र और आश्चर्यजनक वस्तुओं के प्रति हम औत्सुक प्रकट करते हैं उसी प्रकार अवाञ्छनीय वस्तुओं के प्रति घृणा दिखाते हैं। विकर्षण की मूलप्रवृत्ति हमे ऐसी घृणित वस्तुओं को अस्वीकार करने के लिये प्रेरित करती रहती है। जैसे ही कोई दुर्गन्धयुक्त पदार्थ हमारे सामने आता है विकर्षण की मूलप्रवृत्ति जाग्रत हो जाती है और हम दूर हटने का प्रयत्न करते हैं।

(६) संग्रह[3] की मूलप्रवृत्ति—जिस प्रकार विकर्षण की मूलप्रवृत्ति अवाञ्छनीय वस्तुओं को फेंकने के लिये प्रेरणा देती है उसी प्रकार यह मूलप्रवृत्ति हमे वाञ्छनीय वस्तुओं के संग्रह करने के लिये प्रेरित करती है। हम प्राय भोजन और घर की सजावट की वस्तुओं को एकत्र करते हैं, क्योंकि ऐसा करने से आत्म रक्षा होती है। जब यह मूलप्रवृत्ति वेगवती हो जाती है तब संग्रह की हुई वस्तुओं की ईर्ष्यापूर्वक रक्षा करने की प्रवृत्ति उदय हो जाती है और हमको ईर्ष्यालु अथवा कृपण बना देती है।

(७) रचना[4] की मूलप्रवृत्ति—जिन वस्तुओं से हमारे जीवन की रक्षा होती है उनकी रचना करने के लिये यह प्रवृत्ति हमे सदैव प्रेरित करती है। हम अपने मकान बनाते हैं गर्मी, सर्दी और बरसात से शरीर की रक्षा करने के लिये।

(८) समुदाय में रहने की मूलप्रवृत्ति—आत्म रक्षा के लिये पशु समुदाय में रहना पसन्द करते हैं। मनुष्य भी इसी तरह जंगली जानवरों, प्रकृति के प्रकोपों से अपनी रक्षा करने के लिये समूह बनाकर रहता है। इस प्रकार समुदाय में रहने की मूलप्रवृत्ति हमें अन्य लोगों के साथ रहने के लिये प्रेरित करती है।

(९) हँसने की मूलप्रवृत्ति—जब हम किसी ऐसी वस्तु को देखते हैं जिसको देखकर न तो हमें क्रोध ही आता है, न सहानुभूति ही होती है और न घृणा ही तो हमे हास्य का अनुभव होता है। हँसने की प्रवृत्ति केवल मानवीय है। पशुओं में यह मूलप्रवृत्ति नहीं पाई जाती। जब हम किसी व्यक्ति को मूर्खतापूर्ण व्यवहार करते हुए अथवा अज्ञान से अपमानित होता हुआ देखते हैं तब हमे उस पर हँसी आने लगती है।

(१०) आत्म-प्रकाशन की मूलप्रवृत्ति—जब हम अपने से हीन व्यक्तियों के सम्पर्क में आते हैं तब अपनी श्रेष्ठता प्रकट करने की प्रवृत्ति स्वतः जाग्रत हो जाती है। हम अपनी बातों अथवा क्रियाओं से उन्हें प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं।

(११) आत्महीनता की मूलप्रवृत्ति—जिस प्रकार आत्म प्रकाशन की प्रवृत्ति का उदय उस समय होता है जब हमारे सामने हमसे निम्न कोटि के व्यक्ति उपस्थित होते हैं उसी प्रकार आत्म-हीनता की मूलप्रवृत्ति उस समय प्रस्फुटित होती है जिस समय हम स्वयं अपने से श्रेष्ठ व्यक्तियों के बीच में स्थित होते हैं। यह प्रवृत्ति हमें झुक जाने और नम्र होने के लिये प्रेरित करती है।

Q 3. What is the nature of human instincts ? Indicate their educational significance.

---

1 Curiosity.
2 Repulsion.
3. Acquisition.
4 Construction.

८.६ मानवीय मूलप्रवृत्तियों की विशेषताएँ

वैसे तो मूलप्रवृत्तियाँ सभी प्राणियों में दिखाई देती हैं, किन्तु मानवीय और पशु[illegible] मूलप्रवृत्तियों में अन्तर होता है। मानवीय मूलप्रवृत्तियों में जो विशेषताएँ होती हैं वे पशु[illegible] मूलप्रवृत्तियों में नहीं होतीं। यही कारण है कि मानव विकास इन मूलप्रवृत्तियों के परिव[illegible] शोधन, विलयन, मार्गान्तीकरण और अवदमन—के फलस्वरूप आरम्भ होता है और पशु[illegible] विकास—उनके व्यवहार में परिवर्तन—प्रायः सम्भव नहीं होता। जिन मूलप्रवृत्तियों के आधा[illegible] बालक का सर्वांगीण विकास किया जा सकता है, उनकी विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(१) मानवीय मूलप्रवृत्तियाँ परिवर्तनशील होती हैं।

(२) वे बाल्यावस्था में कम विकसित अथवा अविकसित होती हैं।

(३) मनुष्य की मूलप्रवृत्तियों में अस्थिरता होती है यदि किसी समय वे क्रियाशील हो[illegible] समय उनका प्रयोग न किया जाय तो बाद में वह विकसित नहीं होतीं।

यदि मानवीय मूलप्रवृत्तियों में ये विशेषताएँ न होतीं तो मनुष्य के व्यक्तित्व को वि[illegible] करने की न तो कोई आवश्यकता ही होती और न उपयोगिता ही। किसी भी प्राणी के [illegible] तरह के विकास के लिये यह जरूरी है कि उसमें कुछ परिवर्तनशीलता हो और वह पू[illegible] विकसित न हो।

मानवीय मूलप्रवृत्तियाँ परिवर्तनशील होती हैं—मनुष्य की मूलप्रवृत्तियाँ पशुओं [illegible] मूलप्रवृत्तियों की अपेक्षा इतनी अधिक परिवर्तनशील हैं कि उनको पूरी तरह से बदला जा सक[illegible] है। शिक्षा के फलस्वरूप कभी-कभी तो वे इतनी बदल जाया करती हैं कि बाद में वे आसानी [illegible] पहचानी नहीं जा सकतीं। बालक जब अपनी माता पर रोष प्रकट करता है तब वह उसे [illegible] नोचता है और मारने दौड़ता है लेकिन प्रशिक्षण के फलस्वरूप वही बालक बड़ा होने पर रोष प्र[illegible] करते समय ऐसी चतुराई का प्रदर्शन करता है कि देखने वालों को पता ही नहीं चल पाता कि [illegible] क्रोध में है या नहीं। शिक्षित मनुष्य अपने शत्रु पर जब रोष प्रकट करता है तब वह शत्रु से बद[illegible] लेने के लिये शत्रु की आलोचना करता है, कटाक्ष करता है। यदि उसे शासक वर्ग पर क्रोध आता [illegible] तो उस क्रोध का प्रदर्शन बम फेंककर अथवा उनकी हत्या करके रोष का प्रदर्शन नहीं करता [illegible] उसमें युयुत्सा[1] की मूल प्रकृति इतनी परिवर्तित हो जाती है कि वह शत्रु वर्ग से बदला लेने [illegible] लिये उनके कार्यालयों पर धरना देता है, आमरण उपवास की धमकी देता है, हड़तालों [illegible] आयोजन करता है, समाचार पत्रों में बुराइयों का प्रचार करता है। इस प्रकार के व्यवहार [illegible] देखकर ऐसा मालूम पड़ता है कि युयुत्सा की मूलप्रवृत्ति नष्ट हो गई है। किन्तु जैसा कि मैकडू[illegible] का विचार है कोई भी मूलप्रवृत्ति जिसका उदय व्यक्ति के जीवन में स्वत: होता है नष्ट न[illegible] होती और न उसमें एक-आध प्रवृत्ति को छोड़कर नई प्रवृत्तियाँ ही जन्म लेती हैं।[2] शैशवावस्[illegible] और बाल्यावस्था में तो मूलप्रवृत्तियाँ उसी रूप में दिखाई देती हैं जिस रूप में वे पशुओं में पा[illegible] जाती हैं किन्तु किशोरावस्था अथवा प्रौढ़ावस्था में समाज के आदर्शों के अनुसार व्यक्ति इन[illegible] परिवर्तन पैदा कर लेता है।

मूलप्रवृत्तियाँ अविकसित और कम विकसित होती हैं—यद्यपि शिशु अथवा बालक [illegible] मूलप्रवृत्तियाँ पशुओं की मूलप्रवृत्तियों के समान होती हैं, किन्तु पशुओं की अपेक्षा उनका रूप [illegible] तो पूर्णत: अविकसित होता है या कम विकसित। उदाहरण के लिए, पशु और पक्षियों के बच्[illegible]

---

1 Combat

2 The nature endowments of higher animals has not been swept away from th[illegible] [illegible] altogether new order [illegible] the higher animal [illegible] possibly some new

माता के गर्भ अथवा अण्डे के पर्त से बाहर निकलते ही चुगना आरम्भ कर देते हैं। उनमें भोजन ढूढने की मूलप्रवृत्ति[1] जन्म से ही पूर्णतः विकसित होती है। लेकिन मानवीय शिशु को कई दिन तक कई बार उसके मुँह में स्तन डालकर दूध पिलाना सिखाया जाता है। इस मूलप्रवृत्ति को सन्तुष्ट करने के लिये कई वर्षों की शिक्षा की आवश्यकता पड़ती है। दूसरे शब्दो मे, जिस तरह की विकसित मूलप्रवृत्तियो के साथ पशु अथवा पक्षी जन्म लेते हैं उस तरह की मूलप्रवृत्तियो के साथ मानवीय शिशु जन्म नहीं लेता। इसलिये उनमे परिवर्तन उपस्थित करने एवं उनको विकसित रूप देने की आवश्यकता होती है।

मानवीय मूलप्रवृत्तियाँ पशुओं की मूलप्रवृत्तियों की तरह दृढ नहीं होती और न इतनी विकसित ही होती हैं इसीलिये मानवीय शिशु का जैसा विकास हम करना चाहते हैं वैसा विकास उसकी जन्मजात शक्तियों, दक्षताओं और योग्यताओं को ध्यान में रखकर करने मे समर्थ होते हैं।

मानवीय मूलप्रवृत्तियों मे स्थायीत्व नहीं होता—शिक्षकों के लिये मानवीय मूलप्रवृत्तियों की तीसरी महत्वपूर्ण विशेषता इसमें है कि वे जो मूल प्रवृत्तियाँ बाल्यावस्था और किशोरावस्था मे प्रबल होती है। जिनको मानसिक जीवन के इन स्तरो पर विकसित किया जा सकता है, उनमें यदि उस अवस्था पर परिवर्तन न किया जाय, अथवा उनकी गुप्त शक्तियों का उपयोग उस समय न किया जाय तो परिणाम दु खद हो सकता है। मानवीय मूलप्रवृत्तियों की यह अस्थिरता[2] शिक्षक वर्ग को इस बात के लिये संकेत करती है कि उसे शिक्षार्थियों की मूलप्रवृत्तियों मे उस समय परिवर्तन लाना है जिस समय उनका उदय होता है अथवा जिस अवस्था मे उनमे प्रबलता होती है। उदाहरण के लिए है यदि रचनात्मक[3] मूलप्रवृत्ति ३ वर्ष की अवस्था मे उदित होती हैं तो इसी अवस्था से बालकों को ऐसी वस्तुएँ दी जायें जिनसे इस प्रवृत्ति का उचित विकास हो सके। इसी प्रकार यदि किशोरावस्था मे काम की मूलप्रवृत्ति प्रबल होती है तो उसकी अवहेलना न की जाय उसे उकसाने अथवा जाग्रत करने वाली बातों की चर्चा न की जाय और यथासम्भव इस मूलप्रवृत्ति के वेगवती धारा का मार्गन्तीकरण की विधि से अन्य रास्तो में डाल दिया जाय।

८७ मूल प्रवृत्तियो का विकास

विकास से हमारा आशय परिवर्तन से है। यदि हम बालक का नैतिक विकास करना चाहते हैं, यदि हम उसके चरित्र को विकसित देखना चाहते हैं तो हमको उसकी मूल-प्रवृत्तियो में परिवर्तन उपस्थित करना होगा।

शिशु अथवा बालक की मूलप्रवृत्तियों को परिवर्तित करने के लिए निम्नांकित दो विधियाँ प्रायः प्रयोग मे आती हैं :

(अ) रूपान्तर—मार्गान्तीकरण और शोध के माध्यम से

(ब) विरोधीकरण—दमन और निरोध के माध्यम से

इस प्रकार मूल-प्रवृत्तियों को विकसित करने के लिए शिक्षक जगत इन चार तरीकों का प्रयोग करता है-

(१) मार्गान्तीकरण (Redereion)

---

1 Food seeking instinct
2 Transctionness.
3 Constructioness,

(२) शोधन (Sublimation)

(३) अवदमन (Repression)

(४) विलयन (Inhiltion)

मार्गान्तीकरण—मार्गान्तीकरण का अर्थ है मूलप्रवृत्ति के मार्ग को विशेष दिशा की ओर मोड़ देना। इस रीति से न तो मूलप्रवृत्ति का दमन किया जाता है और न उसे पनपने से रोका ही जाता है, इसमें केवल मूलवृत्ति के लक्ष्य को बदल दिया जाता है,

मूलप्रवृत्ति के परिवर्तन की सबसे श्रेष्ठ विधि उसकी शक्ति के प्रवाह के मार्ग को बदल देना है। मानव मूलप्रवृत्ति की तुलना पहाड़ी नदी से की जा सकती है। जब पहाड़ी नदी को आगे बढ़ने के लिये कोई मार्ग नही मिलता तब अपने प्रवाह के लिए टेढ़े-मेढ़े अथवा अयोग्य मार्ग खोज लिया करती है अथवा अपने आप कोई नया मार्ग बना देती है। इसलिए चतुर इन्जीनियर नदी के पानी को उल्टे-सीधे रास्ते से समुद्र की ओर चले जाने की अपेक्षा नहरों के द्वारा खेतों की ओर बहाकर बन्जर देश को हरा-भरा कर दिया करते हैं। ठीक इसी प्रकार जब बालक की कोई मूल-प्रवृत्ति अनुचितमार्ग ग्रहण करने लगती है तो अभिभावक अथवा कुशल अध्यापक उस मूलप्रवृत्ति की शक्ति के प्रवाह के लिए उचित मार्ग ढूँढ़ लिया करते हैं।

मार्गन्तीकरण की इस विधि द्वारा मूल-प्रवृत्ति की प्रकाशन-पद्धति मे परिवर्तन उपस्थित कर दिया जाता है। उदाहरणस्वरूप, यदि किसी बालक मे युयुत्सा की मूल-प्रवृत्ति अधिक मात्रा में है तो इस मूल प्रवृत्ति के प्रकाशन के लिए उसको सेना में भरती कराके अपने राष्ट्र की रक्षा के लिए युद्ध क्षेत्र मे भेजा जा सकता है। यदि इस प्रकार इस मूलप्रवृत्ति का मार्गन्तीकरण न किया गया तो बालक अपना विनाश करता हुआ समाज का घातक शत्रु बन सकता है। युयुत्साकी इस मूल-प्रवृति के अत्याचारियों से निर्बलों और असहायों की रक्षा करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

इसी प्रकार सग्रह की मूल्य-प्रवृत्ति को यदि ठीक प्रकार से नियन्त्रित न किया जाय तो वह व्यक्ति को कृपण बना सकता है, किन्तु यदि ऐसे बालक को जिसमे सग्रह की मूलप्रवृत्ति अत्यधिक प्रबल है, ग्राम, नगर और देश के लिए अच्छी-अच्छी वस्तुओ के सग्रह करने के लिए उत्प्रेरित किया जाय तो उस बालक का भी हित हो सकता है और उस समाज का भी जिसका कि वह सदस्य है।

[illegible] का एक विशेष

[illegible]

न्तीकरण की विधि से मूल-प्रवृत्ति को उसी रूप मे व्यक्तिगत अथवा उच्च सामाजिक [illegible] सलग्न करने की चेष्ट की जाती है किन्तु शोधन में मूलप्रवृत्ति की असस्कृतता को एकदम दूर कर दिया जाता है और उसके रूप को बदल कर उसकी गुप्त ताकतों को दूसरे मार्गों द्वारा प्रकाशित किया जाता है। जिस प्रकार पानी को भाप मे बदलकर उसकी वाष्प शक्ति को मशीनो, इञ्जिनो और जहाजो में प्रयोग करके प्रकृति पर विजय प्राप्त की जाती है उसी प्रकार शोधन विधि से मूलप्रवृत्तियों के रूप को परिवर्तित करके बालक मे अद्वितीय शक्ति पैदा की जाती है, जिसका प्रयोग करने से वह अपना चरित्र उज्ज्वल कर सकता है।

युयुत्सा की मूलप्रवृत्ति का मार्गन्तीकरण किया जा सकता है और उसका शोधन भी। जिस बालक मे लड़ने की मूलप्रवृत्ति वेगवती दिखाई देती है, गणित का अध्यापक उसको गणित की समस्याओ से लड़ने के लिए प्रेरित कर सकता है और उसे गणित-शास्त्र का प्रकाण्ड विद्वान् बनाया जा सकता है।

यदि कोई मूलप्रवृत्ति ऐसी है जिसका मार्गन्तीकरण उसी रूप मे नहीं किया जा सकता तो उसका शोधन करना जरूरी हो जाता है। काम की मूलप्रवृत्ति को चूंकि उसी रूप में न तो देशहित और न व्यक्तिगत हित के लिए मार्गन्तीकरण किया जा सकता है इसलिए शिक्षक उसके रूप में परिवर्तन लाने का प्रयत्न करता है। उसकी निहित शक्ति को दूसरे कार्यों मे प्रयोग किया जाता

है । मूलप्रवृत्ति का यह शोध संगीत, चित्रकला, नाटक, कविता आदि क्रियाओं के माध्यम से होता है । जब व्यक्ति की सारी शक्ति इन क्रियाओं में लगादी जाती है तब उसकी प्रतिभा चमक उठती है, महाकाव्यों में लग जाने की इच्छा जाग्रत हो जाती है व्यक्ति का व्यक्तित्व निखर उठता है । काम प्रवृत्ति के शोधन से वह सूर, तुलसी और मीरा की तरह चिरस्थायी साहित्य और कला का निर्माता बन जाता है । इस तरह व्यक्ति के उच्छृंखल प्रेम को मौलिक रूप से जिसके प्रकाशन से समाज व्यवस्था का विनाश हो सकता है कविता द्वारा प्रकाशित करवाके व्यक्ति को समाजोपयोगी कार्यों में लगाया जा सकता है । कविता, संगीत और कला के प्रति उत्पन्न कर व्यक्ति की काम प्रवृत्ति शोधित की जाती है ।

काम की मूलप्रवृत्ति पर यदि शोधन विधि द्वारा उचित नियन्त्रण नहीं किया जाता तो व्यक्ति की दशा विक्षिप्त और भावनात्मक संघर्षों से पीड़ित मनोरोगी की तरह दयनीय हो जाती है । इस मूलप्रवृत्ति के अमनोवैज्ञानिक दमन से कभी-कभी व्यक्ति हठी, क्रूर और समाज का शत्रु बन जाता है ।

अवदमन—अवदमन का अर्थ है किसी मूलप्रवृत्ति को हिंसात्मक विधि से दबा देना । दूसरे शब्दों में, जब बालक की कोई मूलप्रवृत्ति उसे डरा-धमकाकर दबा दी जाती है तो उसका दमन हो जाता है । किन्तु अवदमन के द्वारा मूलप्रवृत्तियाँ सदा के लिए दबायी नहीं जा सकती, क्योंकि जिस समय उसका दमन किया जाता है उस समय तो वे अवश्य अदृश्य हो जाती हैं किन्तु वास्तव में वे बालक के अचेतन मन में गुप्त शत्रु की तरह छिपी रहती हैं और समय आने पर उसके चेतन व्यक्तित्व को प्रहार कर विघटित कर देती हैं । इसलिए आधुनिक मनोवैज्ञानिक अवदमन का विरोध करता है ।

मूल-प्रवृत्तियों के अवदमन के बुरे परिणामों पर फ्रायड तथा युग ने विशेष प्रकाश डाला है । उनके विचार से उद्दण्डता, दुराचार, दब्बूपन अथवा निराशापूर्ण अभिवृत्ति प्रायः ऐसे बालकों में दिखाई देती है जिनको सदैव अवदमन के वातावरण में रहना पड़ता है । मानसिक अन्तर्द्वन्द्व आत्म नियन्त्रण का अभाव, इच्छा शक्ति की निर्बलता, उचित और अनुचित की मीमांसा करने की अक्षमता आदि बातें मूलप्रवृत्तियों के अवदमन के फलस्वरूप ही पैदा हो जाती हैं ।

जिस प्रकार किसी घाटी के स्वाभाविक जल-प्रवाह को रोक देने से बाँध के पास जल इकट्ठा हो जाता है और उस बाँध को तोड़ डालने में पूर्ण समर्थ होने पर पूर्ववत् स्वच्छन्दगति से बहने लगता है, उसी प्रकार कड़े नियन्त्रण में रखा जाने वाले व्यक्ति नियन्त्रण के फन्दों को काटकर पूर्ववत आचरण करने लगता है । जिस प्रकार बाँध के मजबूत होने पर स्वच्छन्द जल प्रवाह रुक तो जाता है किन्तु उसका जल बाँध के नीचे से धीरे-धीरे चू-चूकर निकला करता है, उसी प्रकार अवदमन के फन्दों के अत्यधिक मजबूत होने पर व्यक्ति की मूलप्रवृत्तियाँ तो अवश्य दब जाती हैं किन्तु व्यक्ति उनको सन्तुष्ट करने के लिए कोई न कोई मार्ग अवश्य ढूँढ़ा करता है । वह समाज की दृष्टि से अपने आपको बचाकर अपनी मूलप्रवृत्तियों को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करता रहता है । जिस प्रकार बाँध के अत्यधिक मजबूत होने पर जब नदी का जल जरा भी चूकर बाहर नहीं निकल पाता और बाँध की निकटवर्ती भूमि बंजर हो जाती है उसी प्रकार नियन्त्रण के अत्यन्त कठोर होने पर व्यक्ति का भावी विकास अवरुद्ध हो जाया करता है । जिस प्रकार अनुभवी इंजीनियर जल-प्रवाह को रोकने के लिए घाटी पर बाँध नहीं लगाता वरन् उसके उद्गम स्थान पर जल के वेग को नियन्त्रित कर लेता है उसी प्रकार अनुभवी शिक्षक बालक की मूलप्रवृत्तियों को उनके उदय होते ही नियन्त्रित करता है उनका अवदमन नहीं करता ।

बहुधा यह कहा जाता है कि मूल-प्रवृत्तियों का ... के लिए हानि-
कारक होता है किन्तु इसका यह आशय नहीं कि उनको ... रूप से कार्य
करने के लिए स्वतन्त्र छोड़ दिया जाय । उन ... । यदि उनकी
मूल-प्रवृत्तियों को किसी ... के परिणाम बुरे
हो सकते हैं । यदि ... बुरे कार्य करने से

किसी प्रकार की हिचकिचाहट नहीं होती। जब तक उनको अनुशासन में रहने की शिक्षा नहीं दी जाती तब तक स्वअनुशासन की प्रवृत्ति उनमें जाग्रत नहीं हो सकती। आत्मनियन्त्रण व्यक्ति तभी सीखता है जब उसके व्यवहार को बाहरी व्यक्तियों द्वारा नियन्त्रित किया जाता है।

व्यक्ति मे आत्म नियन्त्रण की क्षमता उस समय उत्पन्न होती है जिस समय वह अपनी बुद्धि के बल से मूलप्रवृत्तियों में सुधार लाने का स्वयं प्रयत्न करता है। यदि यह सुधार व्यक्ति द्वारा स्वयं किया जाता है तो परिणाम सुखद होता है और यदि इस सुधार का कार्य किसी बाहरी शक्ति से होता है तो परिणाम सन्तोषजनक नहीं होता। दूसरे व्यक्तियों द्वारा जब उसकी मूलप्रवृत्तियों का दमनित किया जाता है तब उसमें भावना-ग्रन्थियाँ बनने की सम्भावना हो जाती है। इसलिये कुशल शिक्षक, अभिभावक को बालक के सामने ऐसी परिस्थितियाँ उपस्थित करने का प्रयत्न करना चाहिये जिनमे पड़कर वह स्वयं अपनी इच्छाओं को दमनित करने की चेष्टा करे। यदि विद्यालय में रहकर बालक अपनी मूल प्रवृत्तियों को नियन्त्रित करना अथवा दमनित करना सीख लेता है तो उसमे वह आत्म संयम और आत्म नियन्त्रण का भाव पैदा हो जायगा जो उसकी आजीवन सहायता कर सकेगा।

विलयन—विलयन का अर्थ है किसी मूलप्रवृत्ति को पनपने के अवसर से वंचित रखना। दूसरे शब्दो मे इसका अर्थ मूलप्रवृत्तियों का शोषण करना या सुला देना है। जब हम अपने बालक से कुसंगति मे पड़ने से किसी भी बालक से मिलने नहीं देते तो उसे सदैव अकेला रखकर उसकी समुदाय में रहने की प्रवृत्ति को सुला देते हैं। इसी प्रकार हठयोगी अपनी इच्छाओं को दबाकर उन्हे विलयत कर देते हैं।

विलयन दो प्रकार से होता है—निरोध और विरोध से। निरोध से मूलप्रवृति का विलयन करने के लिये उसे जाग्रत होने का अवसर ही नहीं दिया जाता। यदि कामभावना को जाग्रत अथवा उत्तेजित करने वाला कोई उपकरण वातावरण मे उपस्थित नहीं होता तो किशोर में यह मूलप्रवृत्ति या तो सुप्त रहेगी या स्वत. नष्ट हो जायगी। १३ वर्ष की अवस्था के बालक-बालिकाओं के लिये हम अलग-अलग विद्यालयों मे शिक्षा का प्रबन्ध करते हैं। कुछ मनोवैज्ञानिको का कहना है कि बालको के साथ विलयन की इस विधि का प्रयोग नहीं करना चाहिये क्योंकि जब वे किशोरावस्था को प्राप्त होगे तब अज्ञानतावश दुर्व्यसनों मे पड सकते हैं। उस समय माता-पिता के द्वारा विलयन विधि का प्रयोग असफल हो जायगा।

मूलप्रवृत्तियो के शोषण का दूसरा तरीका है—विरोध। पारस्परिक विरोधी मूलप्रवृत्तियों को एक साथ उत्तेजित करने से मूलप्रवृत्तियो मे परिवर्तन लाया जा सकता है।

युयुत्सा की मूलप्रवृत्ति को खेल की सामान्य प्रवृति से, काम की मूलप्रवृत्ति को भय और क्रोध की अवस्था उत्पन्न कर नियन्त्रित किया जाता है। जिस प्रकार दो विरोधी दलो के बल को कम करने के लिये उनको भिड़ा दिया जाता है उसी प्रकार दो प्रबल मूलप्रवृत्तियों को ऐसी परिस्थितियो में रखा जा सकता है कि वे एक दूसरे का विरोध कर सकें।

८६ मूलप्रवृत्तियाँ और शिक्षा

Q. 5 How does modern education utilise instincts in prompting intellectual and moral education ?

or

Describe the nature of the instinctive tendencies of courosity and ... in the development of children State how the two are taken ... The instinct of acquisitiveness ... u develop it so that the children ... Give examples.

बालक के व्यक्तित्व के विकास एव चरित्र-निर्माण के लिये उसकी मूलप्रवृत्तियों के सुधार रूप से परिवर्तन—शोधन और-विलयन—पर आधुनिक शिक्षाशास्त्री रौस और रौबैक दोनों ने बल

दिया है।[1] मैग्डूगल ने जिन १४ मूलप्रवृत्तियों का उल्लेख किया था उनमे से हम केवल ८ को ही शिक्षोपयोगी प्रवृत्तियाँ मानते हैं। ये मूल प्रवृत्तियाँ निम्नलिखित है—

(अ) उत्सुकता
(आ) रचना
(इ) द्वन्द्व
(ई) विनय
(उ) संग्रह
(ऊ) आत्म-प्रकाशन
(ए) काम
(ऐ) समुदाय में रहने की प्रवृत्ति।

उत्सुकता अथवा जिज्ञासा

शिक्षा के दृष्टिकोण से यह मूलप्रवृत्ति सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। इसी प्रवृत्ति को विकसित करके बालक को जिज्ञासु बनाने का प्रयत्न किया जाता है। प्रत्येक बालक के मन में नई वस्तु को जानने की उत्सुकता निरन्तर बनी रहती है। इस मूलप्रवृत्ति का उचित प्रोत्साहन और सम्यक परिवर्तन शिक्षक का मुख्य कर्तव्य माना जाता है।

शिशु में इस प्रवृत्ति का विकास उसकी चेतना से आरम्भ होता है। जैसे-जैसे उसे अपने आस-पास की वस्तुओं का ज्ञान होने लगता है वैसे-वैसे उन वस्तुओं के विषय में अधिकाधिक जानने की जिज्ञासा बालक में बढ़ती जाती है। चार-पाँच वर्ष की अवस्था में यह प्रवृत्ति इतनी प्रबल हो जाती है कि बालक प्रत्येक वस्तु के जानने की इच्छा करता है। वह अपने माता-पिता से अनेक प्रकार के प्रश्न पूछता है और जितने ही अधिक प्रश्नों का उत्तर उसे मिलता जाता है उतने ही अधिक प्रश्न वह पूछता जाता है। भाषाज्ञान की वृद्धि के साथ उसके प्रश्नों की संख्या में भी वृद्धि होती जाती है। आरम्भ में तो उसके प्रश्न सरल होते हैं किन्तु आठ दस वर्ष की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते उसके प्रश्नों में जटिलता आती जाती है। पहले तो क्या? का उत्तर माँगता है बाद में वह क्यों? और कैसे? का उत्तर भी माँगने लगता है।

इस प्रवृत्ति के जाग्रत होने के कारण किसी वस्तु को देखकर उसका समझ में न आना मात्र है। इसलिये किसी रहस्य को न समझना इस मूलप्रवृत्ति का ज्ञानात्मक अंग[1] माना जाता है। रहस्य के न समझ सकने पर व्यक्ति को आश्चर्य होता है। आश्चर्य का होना इस मूलप्रवृत्ति का भावात्मक अंग[2] है। उस वस्तु की परीक्षा करते हुए उसको जानने की इच्छा इसका क्रियात्मक अंग[3] है।

उपयोगिता—जिज्ञासा की प्रवृत्ति बालक की ज्ञान-वृद्धि में सहायक होती है। जिस बालक में नवीन वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त करने की जितनी अधिक उत्सुकता होती है वह उतना ही अधिक विद्वान हो जाया करता है। उत्सुकता की कमी प्रायः मन्द बुद्धि बालकों में जन्म से ही होती है। किन्तु कभी-कभी कठोर नियन्त्रण में रखे हुए बालकों में भी जिज्ञासा की मूलप्रवृत्ति का अभाव पाया जाता है। उत्सुकता के अतृप्त होने पर यह प्रवृत्ति सुप्त हो जाती है और ऐसा भान होता है कि बालक की बुद्धि कुंठित हो गई है। उत्सुकता की प्रवृत्ति का आधिक्य प्रतिभावान् बालकका एक विशेष

---

1 "The development of character consists in the sublimation of instincts" —Ross

"Character is an enduring disposition to inhabit instinctive impulses in accordance with a regulative principle." —Roback

2 Cognitive aspect.

3 Affective asp—

महत्व माना जाता है। बड़े-बड़े दार्शनिकों और वैज्ञानिकों की उत्सुकता इसी मूलप्रवृत्ति का परिष्कृत माना जा सकता है।

जिज्ञासा प्रवृत्ति के अवदमन की हानियाँ—जिज्ञासा की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन दिये जाने पर बालक आगे चलकर दार्शनिक, वैज्ञानिक और श्रेष्ठ अनुसन्धाता हो सकता है किन्तु उसे अवदमित किये जाने पर बालक का व्यक्तित्व विघटित हो जाता है। जब बालक ऐसे प्रश्न पूछ उठता है जिनका उत्तर देना सरल नहीं होता तब उसके माता-पिता उसे डाँटकर डपट देते हैं। इस तरह की डाँट डपट से बालक की कोमल मनोवृत्ति पर ठेस लगती है उसमें भावना ग्रन्थियाँ भी बन सकती हैं। उसके मन में भय उत्पन्न हो जाता है। पूछने योग्य बातों को पूछने में भी डरने लगता है। प्रौढ़ हो जाने पर भी यह आदत बनी रहती है। किसी के सामने कुछ कहने या कुछ पूछने में लज्जा प्रकट करता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है अवदमन के कारण कोई मूलप्रवृत्ति नष्ट नहीं होती वह अपनी सन्तुष्टि के लिये प्रकाशन का कोई न कोई रास्ता ढूँढ़ा करती है। जिन व्यक्तियों में उत्सुकता की मूलप्रवृत्ति अवदमित हो जाती है वे दूसरे व्यक्तियों की न जानने योग्य बातों को जानने की इच्छा प्रकट करते हैं। किसी के पत्र में क्या लिखा है? दो व्यक्तियों में क्या बातें हो रही हैं? यह जानने के लिये कभी-कभी वे इतने अधीर हो जाते हैं कि लुक-छिपकर यह मर्म जानने की भरसक कोशिश करते हैं। इस प्रकार उत्सुकता की मूलप्रवृत्ति के अवदमित हो जाने पर व्यक्तियों में अनेक दुर्गुण पैदा हो जाते हैं।

अभिभावकों का कर्त्तव्य—ऐसी दशा में बालक के माता-पिता को उसकी उत्सुकता की भूख को अवश्य शान्त करना चाहिये। जब वह उत्सुकतावश उनसे प्रश्न करे तो उसे डाँटडपट देने की अपेक्षा सन्तोषजनक उत्तर देना केवल बालक के लिये ही हितकर नहीं होता, बल्कि ऐसा करने से समाज का भी भला हो सकता है।

शिक्षक का कर्त्तव्य—बालक शिक्षक से अपनी उत्सुकता की भूख बुझाने के लिये बहुत कुछ आशा रखता है इसलिये शिक्षक को शिक्षा-व्यवस्था और शिक्षण विधियाँ इस प्रकार की बना लेनी हैं कि इस मूलप्रवृत्ति को अधिक से अधिक सन्तुष्टि और प्रोत्साहन मिल सके।

बालक की शिक्षा व्यवस्था उसकी जिज्ञासा प्रवृत्ति के विकास के अनुसार की जाय। छोटे-छोटे बच्चे रंगीन पदार्थों की ओर स्वतः आकर्षित होते हैं। सिनेमा, मैजिक लैन्टर्न आदि दृश्य-श्रव्य साधनों की सहायता से दी गई शिक्षा उनके मस्तिष्क पर संस्कार बनाती है। अतः छोटी कक्षाओं में इन साधनों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया जाय। जूनियर-हाई स्कूल की कक्षाओं में प्रकृति निरीक्षण को विशेष महत्व इसलिये दिया जाता है कि बालक इस अवस्था में ज्ञानेन्द्रिय सम्बन्धी जिज्ञासा की सन्तुष्टि चाहता है। वस्तु ज्ञान प्राप्त करने के बाद उसमें क्रिया-ज्ञान तथा गुण-ज्ञान की जिज्ञासा उत्पन्न होती है इसलिये अध्यापक उसकी कार्यकारण सम्बन्धी जिज्ञासा को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करे। यदि बालक की शिक्षा-व्यवस्था इस विधि से की गई तो बालक आगे चलकर निश्चय ही वैज्ञानिकों की तरह जिज्ञासु बन सकता है।

बालक के विकास की प्रारम्भिक अवस्था में जब उसकी जिज्ञासा बहुत गहराई तक नहीं जाती, उसके प्रश्न साधारण हुआ करते हैं। आयु की वृद्धि के अनुसार उसकी जिज्ञासा भी प्रौढ़ होती है अतः बालक की शिक्षा-व्यवस्था उसकी जिज्ञासा प्रवृत्ति के विकास के अनुकूल हो।

शिक्षक उत्सुकता की मूलप्रवृत्ति का लाभ उठाने के लिये अपनी शिक्षण विधियों में परिवर्तन [illegible] है। अपने विषय को रोचक बनाने के लिये बालकों की उत्सुकता को जाग्रत कर सकता [illegible] -रने के लिये उसे अपने छात्रों को नवीन वस्तुओं से परिचित करना होगा। किन्तु ध्यान [illegible] नवीन रूप में बालकों के समक्ष प्रस्तुत न की जाय क्योंकि जब तक वह [illegible] पूर्व-ज्ञान से सम्बन्धित न होगी तब-तक वह उनके ध्यान को आकर्षित न कर सकेगी। वस्तु कितनी ही नवीन क्यों न हो उसे इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है कि बालक को

यही अनुभूति हो कि यह उसके ज्ञान की अगली सीढ़ी है। इस सिद्धान्त पर चलकर पाठ में अध्यापक नूतन रुचि पैदा कर सकता है। दुहराये जाने वाले पाठों में भी कुछ न कुछ विशेष नई बातें रखकर पाठों को आकर्षक बनाया जा सकता है। परिचित से अपरिचित और ज्ञात से अज्ञात की ओर चलने वाले शिक्षण सूत्रों के मूल में यही मनोवैज्ञानिक तथ्य छिपा हुआ प्रतीत होता है।

रचना की मूल प्रवृत्ति

बालक की शिक्षा की दृष्टि से रचनात्मक मूल प्रवृत्ति का उसके जीवन में विशेष महत्व है। इस मूल प्रवृत्ति का लक्षण है बालक का कुछ न कुछ करते रहना अनेक वस्तुओं को छूना, उनको इधर-उधर उठाना, रखना, तोड़ना फोड़ना, कई वस्तुओं को मिलाकर एक नई वस्तु निर्माण करना इस मूल प्रवृत्ति के क्रियात्मक रूप हैं। यह प्रवृत्ति साधारणतः दो रूपों में प्रगटित होती है— ध्वंसात्मक और रचनात्मक। कुछ न कुछ बनाने और बिगाड़ने की उपयुक्त सामग्री की उपस्थिति इस प्रवृत्ति का ज्ञानात्मक अंग है। ऐसी वस्तु को सामने पाकर उसे बनाने या बिगाड़ने का भाव कृतिभाव[1] कहलाता है। वैसे तो बालक को १ वर्ष की अवस्था से ही ऐसी वस्तुओं की उपस्थिति का ज्ञान होने लगता है लेकिन जब तक उसमें क्रियात्मक विकास[2] उचित रूप से नहीं हो जाता तब तक इस प्रवृत्ति का प्रकाशन प्रबलता से नहीं होता।

उपयोगिता—रचनात्मक मूल-प्रवृत्ति बालक के जीवन के लिये अत्यन्त आवश्यक है। इस मूल-प्रवृत्ति के उचित प्रकाशन, प्रोत्साहन और परिवर्तन से बालक की मानसिक शक्तियों का विकास होता है; उसकी रचनात्मक कल्पना प्रबल होती है, सहानुभूति और हृदय की विशालता के गुणों का विकास होता है; जीवन सुखमय और आनन्दपूर्वक बीतता है।

पदार्थों के उठाने, तोड़ने-फोड़ने से बालक को अनेक वस्तुओं के आकार भाव एवं गुणों का ज्ञान प्राप्त होता है। बालक को वाह्य पदार्थों का ज्ञान जितना उन्हें छूने और उठाने से होता है उतना ज्ञान और किसी प्रकार से नहीं होता। यही कारण है कि मोंटेसरी ने २½ से ७ वर्ष के शिशुओं के इन्द्रिय-शिक्षा[3] देने के लिये शिक्षोपयोगी उपकरण के प्रयोग करने के लिये आदेश दिया था। इन्द्रिय शिक्षा को अतिरिक्त प्रत्यक्षीकरण के विकास के लिये भी रचनात्मक क्रियाओं का विशेष महत्व है।

रचनात्मक कार्यों से बालक की मानसिक शक्तियों का विकास तो होता ही है उसे अपनी शारीरिक शक्ति का अनुमान हो जाता है। अपनी शक्ति पर भरोसा होने पर बालक में आत्म विश्वास की भावना उत्पन्न हो जाती है।

रचनात्मक कार्यों में भाग लेने वाले बालकों की रचनात्मक कल्पना प्रबल हो जाती है। यह रचनात्मक कल्पना मानव समाज के लिये भी विशेष हितकर सिद्ध होती है क्योंकि रचनात्मक क्रियाओं से श्रेष्ठ समाज का सृजन होता है।

जो बालक स्वयं किसी न किसी रचनात्मक कार्य में संलग्न रहता है वह दूसरों के द्वारा बनाई हुई वस्तुओं को नष्ट करने की चेष्टा नहीं करता। उसमें दूसरों के साथ सहानुभूति पैदा हो जाती है। जिस व्यक्ति ने वस्तुओं के निर्माण में स्वयं परिश्रम किया है वह दूसरों के परिश्रम का मूल्य समझता है इसलिये दूसरों की वस्तुओं को नष्ट करने की चेष्टा नहीं करता। अतः यदि शिक्षक यह चाहता है कि बालकों में सद्भावना और सहानुभूति और सामाजिक गुणों का विकास हो जाय तो उसे उनमें रचनात्मक मूल प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करना होगा।

अवदमन के परिणाम—यदि शिक्षक अथवा अभिभावक बालकों की इस प्रवृत्ति का अवदमन करते हैं तो इस अवदमन के परिणामस्वरूप बालकों में आत्मविश्वास खो बैठते हैं। उनकी

---

[1] Constructiveness
[2] Motor development.
[3] Didactic apparatus

अवदमन के दुष्परिणाम—व्यक्ति में इस मूल प्रवृत्ति की अधिकता के कारण उसके उचित नियन्त्रण के अभाव में वह झगड़ालू हो जाता है। यदि आरम्भ से ही ऐसे बालक की युयुत्सा की मूल प्रवृत्ति को अवदमनित कर दिया जाता है तो आगे चलकर वह भीरु और कायर हो जाता है। जिन व्यक्तियों को युयुत्सा की मूल-प्रवृत्ति के प्रकाशन के लिये कोई मार्ग नहीं मिलता, वे अनेक मानसिक और शारीरिक रोगों के शिकार हो जाते हैं क्योंकि ऐसी दशा में अपने आप से ही लड़ने लगते हैं। आत्म भर्त्सना, आत्महत्या, इस मूल प्रवृत्ति के अनुचित अवदमन के परिणाम माने जा सकते हैं।

जो बालक अपने साथियों से लड़ने के कारण बार-बार पीटा जाता है वह ऊपर से सुशील और सभ्य दिखाई देता है किन्तु भीतर से अन्तर्द्वन्द्व से पीड़ित, दब्बू, कायर और निकम्मा हो जाता है।

शिक्षक का कर्तव्य—द्वन्द्व की मूलप्रवृत्ति के शोधन और मार्गान्तीकरण के विषय में अनुच्छेद ६·७ में पर्याप्त रूप से विवेचन किया जा चुका है। शिक्षकों का कर्तव्य है कि वे बालकों की द्वन्द्व प्रवृत्ति का दमन अथवा विलयन न करें उसे शोध अथवा मार्गान्तीकरण की विधि से परिवर्तित करके समाजोपयोगी कार्यों में लगाने की चेष्टा करें। उदाहरणस्वरूप बालकों को स्वार्थ के लिये लड़ने की भावना को प्रोत्साहन देने के स्थान पर कक्षा अथवा विशेष वर्ग के हित के लिये उन्हें प्रेरित करें। जो व्यक्ति युयुत्सा की मूल प्रवृत्यात्मक शक्ति को राष्ट्र, समाज अथवा नगर के अधिकारों की रक्षा में लगा देता है वही इस मूलप्रवृत्ति का सदुपयोग करता है।

बालक को अत्याचारी के विरुद्ध लड़ने के लिये प्रोत्साहित करना, जीवन-संग्राम में विजय प्राप्त करने के लिये उसे प्रेरणा देना, बालक में द्वन्द्व प्रवृत्ति के आधिक्य होने पर उसका खेलों की सहायता से शोधन करना, आदि कुछ ऐसी क्रियाएँ हैं जिनके द्वारा इस मूल प्रवृत्ति का सदुपयोग किया जा सकता है।

आत्म प्रकाशन की मूल प्रवृत्ति

आत्म प्रकाशन की मूल प्रवृत्ति का उदय उस समय होता है जिस समय हम अपने से हीन व्यक्तियों के सम्पर्क में आते हैं। ऐसी परिस्थिति में पड़कर हममें अपनी बातों अथवा क्रियाओं से उन पर प्रभाव डालने की वृत्ति स्वतः जाग्रत हो जाती है। जब हमको किसी वस्तु अथवा कार्य का प्रबन्ध करने का दायित्व सौंप दिया जाता है तब भी यह मूल प्रवृत्ति आत्म गौरव के रूप में प्रकट होती है। हम उस परिस्थिति पर प्रभुत्व जमाना चाहते हैं और अपने को प्रवीण दिखलाना चाहते हैं। जब हम किसी भी अन्य व्यक्ति के आदेश में अथवा उसके प्रभुत्व में रहना पसन्द नहीं करते तब भी इस मूलप्रवृत्ति का प्रकाशन करते हैं।

अवदमन—इस प्रवृत्ति का उदय शैशवावस्था में ही होने लगता है। शिशु दूसरों को आदेश देता है और प्रभुत्व भी दिखाता है। जब उसका आदेश नहीं माना जाता तब वह रोने लगता है, हाथ-पैर पटकता है। उसकी आत्म प्रकाशन की प्रवृत्ति को अवदमनित कर देने पर उसमें धृष्टता का दुर्गुण पैदा हो जाता है वस्तुतः धृष्टता अथवा माता-पिता के आदेश को न मानना आत्म प्रकाशन की प्रवृत्ति का दूसरा रूप ही है। उद्दण्डता, दुराचारता आदि दुर्गुणों का उदय न हो सके इसके लिये हमें इस प्रवृत्ति का अवदमन करने की अपेक्षा उसको प्रोत्साहन दिया जाय।

शिक्षक का कर्तव्य

शिक्षकों का कर्तव्य है कि आत्म प्रकाशन की मूल प्रवृत्ति को उचित प्रोत्साहन दें। प्रत्येक बालक को आत्म प्रकाशन का उचित अवसर प्रदान करें। उनके गृहकार्य का निरीक्षण करते समय उनकी प्रशंसा करें। यदि कोई बालक कक्षा-कार्य में प्रशंसा का पात्र न बन सके तो उसे खेलों में अथवा अन्य प्रतियोगिताओं में अपना प्रभुत्व एवं प्रवीणता दिखाने का अवसर दिया जाय। इस कार्य के लिये पाठ्यक्रम सहगामिनी भाषण प्रतियोगिता, वादविवाद, नाटक आदि क्रियाओं में आत्म प्रकाशन का उचित अवसर प्रदान किया जाय। किन्तु [illegible]

आत्म प्रकाशन को अधिक प्रोत्साहन देने से भी बालक का अहित हो सकता है। ऐसे बालक जिनकी बात-बात पर माता-पिता अथवा अध्यापकों द्वारा प्रशंसा की जाती है, आगे चलकर अभिमानी हो जाते हैं। कभी-कभी आत्मगौरव का प्रदर्शन करने के लिये व्यक्ति बहुत से दिखावे के कार्य करने लगता है। इसलिए आत्म-प्रकाशन की इस मूल-प्रवृत्ति का उचित रूप से प्रोत्साहन और नियन्त्रण किया जाना आवश्यक है।

काम की मूल प्रवृत्ति

काम की मूल-प्रवृत्ति विषमलिंगीय व्यक्ति के सामने आने पर उदय होती है। एक समय था जब काम की मूल-प्रवृत्ति को किशोरावस्था और प्रौढ़ावस्था तक ही सीमित माना जाता था किन्तु आज यह मूल परिभाषा उस संकुचित अर्थ को सूचित नहीं करती। शिशु के माता का दूध पीने की क्रिया, किशोर के सम अथवा विषमलिंगीय प्रेम, प्रौढ व्यक्ति का अपनी पत्नी से प्रेम, रचनात्मक कार्य, कविता, कला आदि का सृजन आदि सभी बातों को काम प्रवृत्ति के अन्तर्गत माना जाता है।

शैशवावस्था में यह प्रवृत्ति शिशु के आत्म प्रेम से सीमित रहती है। वह इस समय अपने अंगों और उसको सजाने वाली वस्तुओं से प्रेम करता है। बाल्यावस्था में यह प्रवृत्ति माता-पिता के साथ प्रेम करने में प्रकट होती है। पुत्र माता को पिता की अपेक्षा अधिक प्रेम करता है, पुत्री पिता को माता की अपेक्षा अधिक चाहती है। किशोरावस्था के आरम्भ में यह प्रवृत्ति समलिंगीय प्रेम के रूप में दिखाई देती है। इस समय बालक बालक से और बालिका बालिकाओं से ही प्रेम करती है। किशोरावस्था के अन्तिम चरण में अथवा प्रौढ़ावस्था के उदय होते ही प्रेम का रूप विषमलिंगीय हो जाता है। इस प्रकार काम की मूल-प्रवृत्ति मानसिक अवस्थाओं के अनुसार बदलती रहती है। उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो गया होगा कि काम-प्रवृत्ति का शैशवावस्था और बाल्यावस्था में अभाव नहीं रहता।

मनोविश्लेषणवादियों के मतानुसार समाज इस मूल-प्रवृत्ति का शैशवावस्था में ही अवदमन करता रहता है। माता-पिता प्रायः बालकों के काम-प्रवृत्ति सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर नहीं देते। बालक जिस समय नवजात शिशु के विषय में जानना चाहता है तो उसकी इस उत्सुकता को अनैतिक समझकर दबा दिया जाता है। किशोरावस्था में जब किशोर में काम सम्बन्धी शारीरिक परिवर्तन उपस्थित होते हैं तब माता पिता उसकी लिंग सम्बन्धी उत्सुकता का दमन कर देते हैं। ऐसे समय उसकी इस प्रवृत्ति को मार्गान्तीकरण अथवा शोधन की विधि से नियन्त्रित किया जाना चाहिये। खेलकूद, नाटक, कविता, संगीत आदि क्रियाओं द्वारा इस प्रवृत्ति में किस प्रकार परिवर्तन लाया जा सकता है। इसका विवेचन अनुच्छेद ६·७ में विस्तारपूर्वक किया जा चुका है।

किशोर को किस प्रकार की लिंग-शिक्षा देनी है इसका उल्लेख अध्याय २४ में किया जायगा।

८·१० मूल प्रवृत्ति सम्बन्धी आधुनिक विचारधारा

मूल प्रवृत्तियों का अनस्तित्व—आधुनिक शिक्षा-मनोवैज्ञानिक मूल प्रवृत्तियों का न तो अस्तित्व स्वीकार करते हैं और न उनको शिक्षा में वैसा महत्व ही देते हैं जैसा कि मैगडूगल ने दिया था। प्रयोगात्मक साक्ष्य ऐसा मिला है जिसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि बालकों में मूल प्रवृत्तियाँ बहुत कम हैं। जो कुछ हैं वे शुद्ध रूप में बालक में पाई नहीं जातीं। जब शुद्ध रूप में बालकों में नहीं मिलतीं तो उनमें परिवर्तन लाने की आवश्यकता ही क्या है। पहले किसी व्यवहार का कारण पता नहीं चल पाता था तो यह कह दिया जाता था कि वह मूल प्रवृत्ति है। जब बिल्ली को चूहा मारते हुए देखते हैं तो हम कह देते हैं कि शिकार करना उसकी मूल प्रवृत्ति है।

[illegible] कु (Kuo) महोदय ने अपने प्रयोगों से स्पष्ट कर दिया है कि यदि बिल्ली के बच्चे [illegible] के साथ पाला जाय तो वह बड़ा होकर उसका शिकार नहीं करता वरन् [illegible]

उसके साथ प्रेमपूर्वक खेलता है। इसी प्रकार की कई ऐसी खोजें हुई हैं जिनसे प्रवृत्तियों के [illegible]

जन्म लेते ही होता है।

जैविक और वातावरणीय तत्व ही व्यवहार के मूल प्रेरक—आधुनिक मनोवैज्ञानिक व्यवहार का कारण जैविक तत्वों की वातावरणीय तत्वों पर प्रतिक्रिया मानता है। वातावरणीय तत्वों के उपस्थित होने पर प्राणी ज्ञानेन्द्रियों और मांसपेशियों की सहायता से प्रतिक्रिया करता है। पैदा होते ही शिशु अपनी ज्ञानेन्द्रियों की सहायता से माँ के स्तनों को पकड़ जब उन्हें चूसता और दूध को निगलता है तब उसकी आवश्यकता की सन्तुष्टि होती है। इस प्रकार प्रत्येक प्राणी अपने को जीवित रखने के लिये वातावरण के साथ ऐसी ही प्रतिक्रियाएँ आरम्भ करता है। जैविक अभिप्रेरक उसे क्रियाएँ करने की प्रेरणा देते हैं। विभिन्न प्रेरणाओं के प्रभाव में आकर वह व्यवहार में परिवर्तन लाता है जो उसके जीवन की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करते हैं।

फिर क्या अध्यापक काम, जिज्ञासा, संग्रह, सामूहिकता आदि मूल प्रवृत्तियों के परिशोधन पर ध्यान न दे? भले ही हम मूल प्रवृत्ति को अपनी भाषा में प्रयोग न करें, भले ही उन प्रवृत्तियों को जिनको मैग्डूगल ने मूल प्रवृत्ति माना है जन्मजात न मानें परन्तु इन प्रवृत्तियों का शिक्षा में महत्व अवश्य स्वीकार करना होगा। कोई भी शिक्षक इन प्रवृत्तियों की अवहेलना नहीं कर सकता।

अध्याय ९

चरित्र का विकास

(Development of Character)

Q 1 What do you understand by character ? How is the knowledge of character psychology important to the teacher in helping him to form the character of his pupils ?

९·१ बालक की शिक्षा और चरित्र का विकास

बालक के सर्वांगीण विकास के लिये उसके शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक गुणों और विशेषताओं को तो विकसित किया ही जाता है, किन्तु साथ-साथ उसकी आदतों तथा स्थायी भावों के निर्माण और चरित्र के विकास पर भी जोर दिया जाता है। प्राचीन भारतीय एवं आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा दोनों ही शिक्षा शास्त्र चारित्रिक विकास को शिक्षा का चरम लक्ष्य मानकर चलते हैं। रौस कहता है 'चरित्र सम्पूर्ण शैक्षिक प्रयास का परम लक्ष्य है।'[1] इसी प्रकार कौन बैक चारित्रिक विकास को अध्यापक का सबसे महत्त्वपूर्ण और प्रथम जिम्मेदारी मानता है।[2] उसके इस दायित्व के सामने अन्य बातें गौण स्थान ग्रहण करती हैं। विद्यालय के प्रांगण के भीतर, घर और समाज के अन्दर भावी नागरिक के शिक्षण के लिये जो साधन प्रस्तुत किये जाते हैं उन सबका साध्य चरित्र निर्माण ही है।

शिक्षक के सामने सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि जिस वस्तु को शिक्षा दार्शनिक चरित्र मानकर चलता है और जिसके विकास को शिक्षा का चरम उद्देश्य मानता है वह आखिर है क्या ?

९·२ चरित्र क्या है ?

चरित्र एक ऐसी व्यापक संकल्पना[3] है जिसका प्रयोग भिन्न-भिन्न अर्थों में किया जाता है। चरित्र को कुछ महानुभाव बुद्धि, ज्ञान और सांवेगिक परिपक्वता से भिन्न नैतिक गुण मानकर चलते हैं। कुछ उसे आदतों का पुंज मानते हैं। कुछ विद्वान् उस व्यक्ति को चरित्रवान् कहते हैं जिसने यौनानंद की अनुभूति से विरक्ति पा ली है। किन्तु 'चरित्र' शब्द से यौनेच्छा की विरक्ति का ही बोध नहीं होता, मनुष्य की अन्य विशेषताओं का भी बोध होता है। कुछ विद्वज्जन चरित्र और व्यक्तित्व को एक ही मानकर चलते हैं किन्तु यह मत भी दोषपूर्ण प्रतीत होता है, क्योंकि चरित्रवान् व्यक्ति को उचितानुचित की मीमांसा करनी पड़ती है—

उचितमनुचितं कुर्वता कार्यं जात,
परिणिति अवधार्या यत्नत पण्डितेन।

किन्तु व्यक्तित्व सम्पन्न व्यक्ति को इस प्रकार की मीमांसा करने की आवश्यकता नहीं होती। व्यक्तित्व का पूर्ण विकास समाज में होता है किन्तु चरित्र का विकास स्थूल समाज से भिन्न रहकर भी हो सकता है। चरित्र व्यक्ति का एक अंगमात्र है। व्यक्ति के इस पक्ष में भी शीलगुणों[4]

---

1 Characters training is the good of all educative effort —Ross.
2 The higher peak among the educators responsibilities is the development of character —Cein back
3 Concept.
4 Traits

की सम्बद्धता और समन्वयता होती है इसलिये भ्रमवश हम चरित्र और व्यक्तित्व में अन्तरीकरण नहीं कर पाते। कभी-कभी हम आचरण को ही चरित्र मान लिया करते हैं। इस विचार-धारा के अनुसार जो मनुष्य समाज के आदर्शों के अनुकूल आचरण करता है वह मनुष्य चरित्रवान् माना जाता है। 'चरित्र' प्रत्यय की ये सभी व्याख्यायें अधूरी प्रतीत होती हैं, अत दोषपूर्ण प्रतीत होती हैं। क्योंकि चरित्र इनमें एक ही स्वत्व नहीं है सभी का सामजस्य मात्र है।

साधारण शब्दो में जिस व्यक्ति का प्रत्येक आचरण सामाजिक हित का साधन करने के कारण समाज के लिये मानदण्ड बन जाया करता है उसको हम चरित्रवान् कहते हैं। समाज के लिये उसी व्यक्ति का आचरण मानदण्ड बन सकता है जिसमे सभी प्रकार के शीलगुणो का अनुपम समन्वय हो। जिस व्यक्ति के सभी स्थायीभाव किसी विशेष आदर्श के प्रति संगठित हो जाते हैं उसी व्यक्ति को हम चरित्रवान् कहने लगते हैं। व्यक्ति का आचरण समाज के आदर्शों के अनुकूल तभी हो सकता है जब उसमें निम्नलिखित तीन बातें हो—

(१) बुद्धि

(२) क्रियाशीलता की शक्ति

(३) सवेगात्मक क्रियाप्रेरणा

ड्यूई के विचार से यदि किसी व्यक्ति मे इन तीनों में से कोई एक बात नहीं है तो वह समाज के आदर्शों के अनुकूल कार्य नही कर सकता। यदि व्यक्ति में क्रियाशीलता की कमी है तो वह कठिनाइयों के उपस्थित होने पर अपना व्यवहार समाज के आदर्शों के अनुकूल नही बना सकेगा। यदि उसमे बुद्धि की न्यूनता है तो विभिन्न परिस्थितियो के आने पर जिस प्रकार के सोच विचार की आवश्यकता पडती है वैसा चिन्तन करने में वह असमर्थ रहेगा। नैतिक बल के लिये सवेगात्मक क्रियाप्रेरणा की आवश्यकता होती है इसलिये इसकी कमी होने पर उसमें उचित और अनुचित, नैतिक और अनैतिकता का ध्यान न रह सकेगा। इसलिये ड्यूई बुद्धि, क्रिया शीलता की शक्ति और सवेगात्मक क्रियाप्रेरणा इन तीन बातो को चरित्र का मौलिक अग मानकर चलता है।

समाज के आदर्शों के अनुरूप व्यवहार-प्रदर्शन के लिये जिनशीलगुणों की आवश्यकता होती है उन सभी को सामान्यत चरित्र के अन्तर्गत समाविष्ट किया जाता है। इनमें से कुछ शीलगुण हैं—मानसिक दृढ़ता, सकल्प, इच्छा शक्ति, अभ्यास, विवेक आदि आदर्शों का ज्ञान और उनका अभ्यास। [illegible] लिये जो व्यक्ति अपने मानसिक सकल्प पर अटल [illegible] जिसको उत्तम आदतो का अभ्यास पड जाता [illegible] जिसमे समाज के आदर्शों—माता-पिता के प्रति श्रद्धाभाव, नगर राज्य और राष्ट्र के प्रति देश भक्ति, सच्चाई, ईमानदारी आदि नैतिक गुणों मे विश्वास—का ज्ञान तथा उनके पालन की भावना होती है ऐसे व्यक्ति को हम चरित्रवान् कहते हैं।

चरित्र शब्द को इस सूक्ष्म व्याख्या के उपरान्त हम चरित्र का आदत, स्थायी भाव, सकल्प, मूल प्रवृति से सम्बन्ध स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे क्योंकि तभी चरित्र की अच्छी तरह से व्याख्या की जा सकती है।

चरित्र निर्माण मे सहायक तत्त्व

Q. 2 What are the minute bases of character ? How would you as teacher procud to deal with them in forming the character of your children And/or.

What part is played by emotions in the development of character and/or

How are sentiments related to character and in what way do they differ from completes ?

---

[1] Traits

९·३ चरित्र के निर्माण में सहायक तत्व हैं—आदत, संवेग, स्थायी भाव, मूल प्रवृत्तियाँ, संकल्प शक्ति और स्वभाव

चरित्र और आदत—सैमुअल स्माइल्स ने चरित्र को आदतों का पुंज माना है।[1] चरित्र निर्माण में अरस्तू[2] ने भी आदतों के महत्व को स्वीकार किया है। इन विद्वानों के मतानुसार आदतें चरित्र को आधारशिलाएँ हैं। अच्छी आदतें सुचरित्र का निर्माण करती हैं बुरी आदतें चरित्र को बिगाड़ देती हैं। विचारात्मक, भावात्मक तथा क्रियात्मक आदतों के संगठन द्वारा चरित्र की नींव गहरी होती है। चरित्र इन विद्वानों के विचार से वह स्थायी मनोवृत्ति है जो निश्चित एवं स्थिर आदतों के आधार पर निर्मित होती है। इस विचारधारा में आंशिक सत्य अवश्य है पूर्ण सत्य नहीं जैसा कि पिछले अनुच्छेद में कहा जा चुका है। उत्तम आदतों के निर्माण के लिये व्यक्ति को इच्छाशक्ति की आवश्यकता पड़ती है; उसे उस विवेक और बुद्धि से काम लेना पड़ता है जिसको ड्यूई ने चरित्र का एक महत्वपूर्ण अंग घोषित किया है निकृष्ट और घृणित आदतों से हमारे चरित्र को धब्बा लगता है, क्योंकि वे हमारी इच्छा शक्ति और विवेक के प्रतिकूल जाती हैं। इच्छा शक्ति तभी बलवती होती है जब व्यक्ति अच्छी आदत डालने में अभ्यस्त हो जाता है। अत शिक्षक का कर्तव्य है कि वह शिशु में उत्तम आदतों के निर्माण और बुरी आदतों के विलोपन पर विशेष ध्यान दे।

चरित्र के निर्माण मे आजकल हम सामाजिक आदतों पर विशेष जोर देते हैं। आज्ञापालन सत्यवादिता, मितव्ययता, ईमानदारी, सहकारिता, समय की पाबन्दी आदि ऐसी आदतें हैं जो समाज के आदर्शों के अनुकूल ठहरती हैं। हार्ट शोर्न और मेने ने अपने अनुसन्धानों के आधार पर यह सिद्ध कर दिया है कि व्यक्ति सब परिस्थितियों में ईमानदार नहीं हो सकता, वह कुछ परिस्थितियों में भले ही ईमानदारी का प्रदर्शन करे। इसी प्रकार सब परिस्थितियों में आज्ञापालिता, सत्यवादिता, सहकारिता, और समय की पाबन्दी दिखाई नहीं जा सकती। जब तक इन बातों की आदतें स्थायित्व ग्रहण नहीं कर लेती तब तक वे चरित्र जैसी स्थायी मनोवृत्ति के सबसे अधिक महत्वपूर्ण अंग नहीं बन सकतीं। यदि हमें चरित्र में आदतों का महत्व स्वीकार करना है तो उत्तम और वांछनीय आदतों का इस सीमा तक अभ्यास करना होगा कि हमारे चरित्र के स्थायी अंग बन जायें।

आदतों के अभ्यास से हमारा तात्पर्य यह नहीं है इन प्रतिक्रियाओं को विवेकहीन पुनरावृत्ति मात्र ही करें। विवेक के साथ जो कार्य किया जाता है उसके सम्पादन से अच्छी आदतों का निर्माण होता है और यही आदतें आगे चलकर हमारे स्थायी भावों के आवश्यक अंग बन जाती हैं। मैक्डूगल का कहना है कि आत्मगौरव का स्थायी भाव जो सर्वश्रेष्ठ स्तम्भ है शिशु की आदतों से ही निर्मित होता है। यदि यह बात सत्य है तो अवश्य ही हमें बालकों में अच्छी आदतें डालनी होंगी। यदि हम बालकों के चरित्र का निर्माण करना चाहते हैं तो आत्मगौरव के स्थायीभाव तथा अन्य स्थायी भावों का निर्माण हमारा चरित्र उद्देश्य हो सकता है। उदाहरण के लिये, बालक में विद्यालय के कार्यों में सफाई से काम करने की आदत हो सकती है किन्तु स्वच्छता का वास्तविक, प्रेम पैदा करना जिससे स्वच्छता के स्थायीभाव का निर्माण हो सके, हमारे प्रयासों का लक्ष्य होना चाहिये।

९·४ चरित्र और स्थायी भाव

मैक्डूगल के विचार से 'किसी सामाजिक हित की रक्षा करने वाले आदर्श के प्रति सभी स्थायीभावों का समन्वय ही चरित्र है।' हमारे भिन्न-भिन्न स्थायी भावों के भिन्न-भिन्न आदर्श होते हैं किन्तु जब आत्मगौरव के स्थायीभाव को केन्द्र में रखकर सभी स्थायी भावों का समन्वय स्थापित

---

1 Character is the bundle of habits —*Samuel Smiles*

2 Virtue is a kind of habit. —*Aristotle*

किया जाता है तब आदर्श चरित्र का निर्माण होता है। इसके अतिरिक्त आत्मगौरव के स्थायीभाव की प्रधानता में स्थायीभावों की संख्या जितनी ही अधिक होगी चरित्र उतना ही अधिक दृढ़ निश्चित और स्थिर होगा। मैग्डूगल की इस विचारधारा का स्पष्टीकरण स्थायीभावों के सूक्ष्म विवेचन की सहायता से किया जायगा।

किसी व्यक्ति, वस्तु, संस्था, अथवा सूक्ष्म विचारों के प्रति भावों, संवेगों, और प्रेरणाओं के संगठित स्वरूप को स्थायी भाव कहा जाता है। वात्सल्य के स्थायीभाव में बच्चे के प्रति माँ-बाप का प्रेम[1] उसकी बाल्यकालीन स्मृतियाँ और भावी उन्नति के विचार संगठित रूप में दिखाई देते हैं। जिस वस्तु, संस्था या व्यक्ति के प्रति हमारे संवेग, विचार और भावनाएं संगठित होती हैं उसे हम स्थायीभाव का आश्रय कहते हैं। प्रस्तुत उदाहरण में बालक वात्सल्य के स्थायीभाव का आश्रय है। आश्रयों की विभिन्नता के कारण स्थायी भावों में भी विभिन्नताएँ उत्पन्न हो जाती हैं। संक्षेप में, स्थायीभाव निम्नलिखित हैं।

(अ) बौद्धिक
(ब) सौन्दर्यात्मक
(स) सामाजिक
(द) धार्मिक
(य) आत्म गौरव।

वैज्ञानिक सत्य, पाठ्यविषय और अध्ययन के क्षेत्र के प्रति प्रेम, बौद्धिक स्थायीभावों के काव्य, चित्रकला, एवं संगीत के प्रति प्रेम सौन्दर्यात्मक स्थायीभावों के न्याय, सत्य, ईमानदारी, दीन-दुःखियों की रक्षा, असहायों की रक्षा, माता-पिता, घर, स्कूल, नगर, देश और राष्ट्र के प्रति प्रेम, सामाजिक स्थायीभावों के, धर्म और ईश्वर के प्रति प्रेम, धार्मिक संस्थाओं और रीति रिवाजों के प्रति श्रद्धा, धार्मिक स्थायीभावों के उदाहरण हैं।

आत्मगौरव स्थायीभाव में 'आत्म' तथा उसकी आवश्यकताएँ केन्द्रित रहती हैं। आत्म से सम्बन्धित भावनाएँ, संवेग, व्यक्ति के अधिकार कर्तव्य, महत्वाकांक्षाएँ और निराशाएँ सम्मिलित रहती हैं। धन, वैभव, यश, कविता और सुरक्षा पाने की इच्छाएँ प्रेरणाओं का कार्य करती हैं। इस प्रकार आत्म गौरव के स्थायी भाव का निर्माण होता है।

इन्हीं सब स्थायीभावों के संगठित होने से व्यक्ति के आदर्श अथवा सिद्धान्त बनते हैं। चरित्रवान व्यक्ति इन स्थायीभावों, इन सिद्धान्तों, और आदर्शों की रक्षा के लिये अपना सर्वस्व लगा देता है। अपने आदर्शों की प्राप्ति के लिये उसके संकल्प में दृढ़ता होती है। वह जानता है कि कौनसा कार्य उचित और कौनसा अनुचित है। सामाजिक हित से सम्बन्धित आदर्शों के प्रति उसकी भावात्मक अनुरक्ति होती है। वह इस प्रकार अपने व्यवहार से तीन बातों का प्रदर्शन करता है—संकल्प की दृढ़ता, विवेक और आदर्शों के प्रति भावात्मक अनुरक्ति। नैतिक चरित्र के लिए तीन बातों का उल्लेख ड्रूवर ने किया था, इन्हीं तीनों बातों को [illegible] मैग्डूगल भी कहता है।

ड्रूवर और मैग्डूगल दोनों ही विचारकों की दृष्टि से चरित्र की परिभाषा निम्नलिखित शब्दों में दी जा सकती है—

"चरित्र किसी आदर्श के प्रति व्यक्ति के सभी स्थायीभावों का वह संगठन है जिसके उत्पन्न होने पर उसकी सभी क्रियाएँ समाज के नियमों और आदर्शों के अनुकूल चलती हैं।"

उत्तम चरित्र के लिए अच्छे स्थायीभावों की जरूरत होती है और अच्छे स्थायीभावों के लिये सन्तुलित संवेगों की आवश्यकता होती है। अतः अच्छे संवेगों का संगठन और नियन्त्रण उत्तम चरित्र के निर्माण के लिये आवश्यक होता है।

---

¹ Impulses.
² Tender emotion

मैग्डूगल महोदय के विचार से स्थायीभावों की उत्पत्ति मूल प्रवृत्तियों से होती है। उनका कहना है कि मूल प्रवृत्तियाँ ही स्थायीभावों को जन्म देती हैं। उदाहरणार्थ, परिवार के प्रति प्रेम का स्थायीभाव माता और बच्चे के पारस्परिक सम्बन्ध से शुरू होता है। माता में पुत्र कामना तथा सुरक्षा की मूल प्रवृत्तियाँ और पुत्र में दैन्य और शरणागति की मूल प्रवृत्तियाँ आपस में सम्बन्ध स्थापित कर लेती हैं। माता बच्चे की मूल प्रवृत्तियों को, बच्चा माँ की मूल प्रवृत्तियों को सन्तुष्ट करता है। दोनों में यह सम्बन्ध इतना दृढ़ हो जाता है कि माता में पुत्र के प्रति वात्सल्य का स्थायीभाव और पुत्र में माता के प्रति श्रद्धा और प्रेम का स्थायीभाव उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार सभी स्थायीभाव मूल प्रवृत्तियों पर आधारित होते हैं अतः यदि बालक के चरित्र का निर्माण करना है तो चरित्र और मूलप्रवृत्तियों का सम्बन्ध भी समझ लेना होगा।

८५ चरित्र, मूलप्रवृत्तियाँ और नैतिकता

ए०ए० रौबेक ने पुस्तक 'साइकोलाजी आव कैरेक्टर' में चरित्र की व्याख्या करते हुए लिखा था, "चरित्र व्यक्ति की वह स्थायी मनोवृत्ति है जो निश्चित आदर्शों को ध्यान में रखकर मूल प्रवृत्यात्मक प्रेरक तत्वों को विलम्बित करने में सदैव लगी रहती है।[1] रौबेक का यह कथन उतना ही और उसी सीमा तक सत्य है जिस सीमा तक सैमुअल स्माइल्स और मैग्डूगल की बात सही मानी जा सकती है। यदि आदर्श चरित्र की आधारशिलाएँ हैं, यदि स्थायीभाव चरित्र के मजबूत स्तम्भ हैं तो परिशोधित मूल प्रवृत्तियाँ जिन पर ये स्तम्भ खड़े हुए हैं, कन्क्रीट मानी जा सकती हैं। चरित्र रूपी इस दृढ़ दुर्ग के लिए इन तीनों वस्तुओं की विशेष महत्ता है।

कोई मूल प्रवृत्ति जितनी ही अधिक प्रबल होती है उसका परिशोधन एवं विलयन उतना ही अधिक आवश्यक हो जाता है। ऐसी प्रबल मूल प्रवृत्तियों के विलयन और परिशोधन से व्यक्ति में नैतिकता आती है और नैतिक गुणों के विनाश से व्यक्ति का चरित्र बनता है और उनके अवदमन से व्यक्ति की दशा दयनीय और असन्तोषजनक हो जाती है। उदाहरण के लिए, काम प्रवृत्ति के शोधन अथवा विलयन से व्यक्ति समाज सेवा, कला, साहित्य, आदि कामों में रुचि लेने लगता है, उनमें यौनेच्छा के प्रति विरक्ति का भाव उत्पन्न हो जाता है। ये बातें उसकी मनोवृत्ति में सुधार ला देती हैं। ऐसा व्यक्ति जिसने समाज के आदर्शों को ध्यान में रखकर मूल प्रवृत्यात्मक प्रेरणाओं पर विलयन की प्रक्रिया द्वारा विजय प्राप्त करली है चरित्रवान् व्यक्ति कहलाता है।

जिस व्यक्ति में विवेक या संकल्प की कमी होती है उसके सभी कार्य मूल प्रवृत्यात्मक होते हैं किन्तु विवेकशील और दृढ़ संकल्प वाला व्यक्ति अपनी मूल प्रवृत्तियों का निरोधीकरण करता है, उनके स्वरूप में परिवर्तन लाने का प्रयत्न करता है, यथासम्भव उनको परिशोधित करता है, परन्तु इन मूल प्रवृत्तियों का परिशोधन अथवा विलयन आसान कार्य नहीं है, व्यक्ति को इसके लिये अभ्यास करना पड़ता है नियन्त्रित करने की आदत डालनी पड़ती है।

मूल प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण करने की शक्ति व्यक्ति में तभी पैदा होती है जब उसमें संकल्प शक्ति[2] होती है।

८६ चरित्र और संकल्प शक्ति

किसी कार्य को विषम स्थिति में बहुत देर तक करने की क्षमता को संकल्प शक्ति कहते हैं। जिन व्यक्तियों में इस शक्ति की कमी होती है, जिनमें लगन और निष्ठा का अभाव होता है वे किसी कार्य को बहुत देर तक नहीं कर सकते हैं। जिन व्यक्तियों में संकल्प शक्ति की प्रबलता होती है, उनका चरित्र कम उतना ही दृढ़ होता है।

मैग्डूगल के मतानुसार संकल्प शक्ति क्रियात्मक चरित्र है। जे० एस० मिल का भी यही कहना है कि इच्छा शक्ति के अभ्यास का दूसरा नाम चरित्र है। बात भी सही है क्योंकि इच्छा

---

1 Character is an enduring Psychophysical disposition to inhabit instincture in accordance with a regulative principle—Psychology of character with a Survey of Temperament, —A. A. Roback

2 Will power.

शक्ति का अर्थ है आवेशों को रोकने की शक्ति। जिस प्रकार पशुओं में आवेशों को रोकने की शक्ति नहीं होती उसी प्रकार विवेकहीन व्यक्तियों में भी आवेशों को रोकने की ताकत नहीं होती। इच्छा शक्ति का उदय बालकों में विवेक के उदय के साथ होता है। विवेक के उदय के साथ उनमें पाशविक प्रवृत्तियाँ तथा भावावेश की मात्रा कम होती जाती है। भावावेश की मात्रा में कमी और इच्छा शक्ति में वृद्धि मनुष्य के खुद के प्रयत्न, और अभ्यास पर निर्भर रहती है। परन्तु अभ्यास के लिये उचित वातावरण की आवश्यकता पड़ती है। इसलिये बालक के चरित्र का निर्माण करने के लिये उसका वातावरण ऐसा बना दिया जाय, जिसमे वह स्वतन्त्रता का अनुभव करता हुआ अपनी सकल्प शक्ति को सक्रिय बनाने का प्रयत्न करता रहे।

चरित्र निर्माण के लिए संकल्प शक्ति की क्रियाशीलता आवश्यक है। यह क्रियाशीलता स्वतंत्र वातावरण में परिपुष्ट होती है। अच्छी आदतें भी बिना सकल्प शक्ति की सहायता से नहीं पड़ सकतीं, जिसका उदय स्वतन्त्र वातावरण में होता है।

६.७ चरित्र और स्वभाव

आदतों के निर्माण, मूल प्रवृत्तियों के परिशोधन, स्थायीभावों के विकास, सकल्प अथवा इच्छाशक्ति के अभ्यास, वातावरण और प्रशिक्षण के फलस्वरूप प्राप्त होता है। किन्तु चरित्र के आधार में कुछ जन्मजात वस्तुऐं भी हैं जिनको हम स्वभाव[1] कहते हैं। इस प्रकार चरित्र पूरी तरह शिक्षण के द्वारा नहीं बनता। मूलप्रवृत्तियाँ भी जो कि चरित्र पर प्रभाव डालती हैं जन्मजात होती हैं। स्वभाव की भिन्नता मनुष्य के अन्दर विशेष रसों की न्यूनाधिकता के कारण पैदा होती हैं। स्वभाव की वैयक्तिक विभिन्नताएँ चरित्र की विभिन्नताएँ पैदा कर देती हैं। हमारे शरीर में कुछ रसोत्पादक ग्रंथियाँ[2] ऐसी होती हैं जो हमारे चरित्र पर गहरा प्रभाव डालती हैं। मनुष्य की नैसर्गिक प्रवृत्तियाँ एवं पैतृकता की चरित्र को बनाने में विशेष महत्व रखती है।

इस प्रकार चरित्र उन आदतों तथा क्रियात्मक प्रवृत्तियों का सगठन है, जिनमें से कुछ वशानुक्रम पर और कुछ शिक्षण पर निर्भर रहती हैं। क्रियात्मक प्रवृत्तियों में मूलप्रवृत्तियाँ मुख्य हैं जो जन्मजात होते हुए भी सामाजिक शिक्षण के फलस्वरूप परिवर्तित और परिशोधित होकर चरित्र के अग बन जाती हैं।

अब चूंकि चरित्र जन्मजात और अर्जित दोनों प्रकार की प्रवृत्तियों पर निर्भर रहता है अतः चरित्र का शिक्षण अधिकतर मूल प्रवृत्तियों के शोधन स्थायी भावों के निर्माण, अच्छी रुचि तथा आदर्शों के ग्रहण करने पर निर्भर रहा है।

बालकों में नैतिक चरित्र का विकास करने के लिए विद्यालय के उत्तरदायित्व की व्याख्या करने के पूर्व चरित्र विकास का विभिन्न अवस्थाओं पर दृष्टि पात करना सगत प्रतीत होता है।

६.८ चरित्र विकास की विभिन्न अवस्थाएँ

Q. 1. What do you mean by the term of development of charactere discuss the different stages of character development. Is it a natural process?

सामान्यतः चरित्र का विकास भी उसी क्रम से होता है जिस क्रम से शरीर मानसिक शक्तियों और सवेगों का विकास हुआ करता है। चारित्रिक विकास के इस क्रम को मनोवैज्ञानिकों ने निम्नलिखित चार अवस्थाएँ बतलाई हैं; लेकिन ये अवस्थाएँ पूर्णत उन मानसिक अवस्थाओं की समकालीन नहीं होती जिनका उल्लेख अध्याय ५ में किया जा चुका है—

(अ) मूल प्रवृत्तियों द्वारा निर्धारित प्रति क्रियाओं की अवस्था
(ब) सुख दुःख के प्रलोभनों द्वारा निर्धारित प्रति क्रियाओं की अवस्था
(स) सामाजिक नियमों एवं आदर्शों द्वारा निर्धारित क्रियाओं की अवस्था
(द) परहित भावना से निर्धारित प्रतिक्रियाओं की अवस्था

---

1 Temperament.
2 Glanes.

चारित्रिक विकास का अन्तिम चरण व्यक्ति के जीवनकाल में उस समय आता है जब उसकी अधिकतर सभी क्रियाएँ परहित भावना से ओत-प्रोत रहती हैं। तभी दूसरों के हित में अपना हित, दूसरों के कल्याण में अपना कल्याण मानने वाले, त्याग एवं परोपकार की उदात्त भावनाओं से युक्त इस व्यक्ति के चरित्र का विकास अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है चूंकि वह समाज के अन्य व्यक्तियों से सम्पर्क स्थापित कर, समाज की दृष्टि में प्रशंसा का पात्र बनने की इच्छा रखता हुआ अपना सारा आचरण सामाजिक आदर्शों के अनुकूल नियन्त्रित कर लेता है इसलिये कुछ मनोवैज्ञानिक चारित्रिक विकास की इस स्थिति को सामाजिक अवस्था के नाम से भी पुकारते हैं।

६.६ चरित्र का निर्माण—विद्यालय और परिवार का उत्तरदायित्व

Q. 3 Describe from a psychological standpoint the development of character of a child. What should the home and school do for the proper development of character of the child ?

पिछले अनुच्छेद में कहा गया था कि चरित्र का विकास स्वतः होता है। इस तथ्य में आंशिक सत्य है। यह बात हम मानने के लिये तैयार है कि चारित्रिक शिक्षा देने समय नैतिक गुणों को ऊपर से थोपना लाभदायक सिद्ध नहीं होता और यह भी मानने के लिये प्रस्तुत हैं कि शरीर की वृद्धि और विकास की तरह चारित्रिक गुणों की वृद्धि और विकास होता है लेकिन उत्तम वातावरण रूपी उर्वर भूमि के मिलने और उत्तम चारित्रिक शिक्षण रूपी खाद के दिये जाने पर ही 'चरित्र' रूपी वृक्ष की वृद्धि और विकास हो सकता है। इस विकास के कार्य में विद्यालय भी अपना सहयोग प्रदान कर सकता है। इस कार्य का उचित रूप से सम्पादन करने के लिये अध्यापक अभिभावक को निम्नलिखित काम करने होंगे।[1]

(अ) मूलप्रवृत्तियों का संशोधन
(ब) स्थायीभावों का निर्माण
(स) आत्मगौरव के स्थायीभावों के चारों ओर उनका संगठन
(द) नैतिक उपदेश
(य) निर्देश
(फ) प्रोत्साहन
(ह) अभ्यास

६.६ (अ) मूलप्रवृत्तियों का संशोधन और नैतिकता

Q 4. What bearings unstincts have on character formation ? How can instincts be sublimated to give a good moral bent in children ?

अपने मौलिक रूप—मूल प्रवृत्तियाँ चरित्र के निर्माण में कच्ची ईंटों का कार्य करती हैं। चूंकि शिक्षक के सामने वे अपने स्वाभाविक रूप में आती हैं अतः उसका पुनीत कर्तव्य है कि उनमें यथेष्ट परिवर्तन पैदा करे, उन्हें ऐसे लक्षणों की ओर मोड़ दे जिन्हें समाज उत्तम समझा करता है। शिक्षा का सारा कार्यक्रम इन मूल प्रवृत्तियों को समाज के आदर्शों के अनुकूल परिवर्तित कर उनको शोधन विलयन अथवा मार्गान्तीकरण करना है।

मूल प्रवृत्तियों की असम्बद्धता को एकदम दूर करके अथवा उनके रूपों को परिवर्तित करके उनकी गुप्त शक्तियों को अन्य मार्गों से प्रकाशित होने का अवसर दिया जा सकता है। उदाहरणार्थ, युयुत्सा की मूलप्रवृत्ति को उसी रूप में प्रकाशित करने के लिये अध्यापक उसे देश और जाति की रक्षा के लिये इस सेवा के संगठन हेतु प्रयुक्त कर सकता है, इसी प्रकार धर्म की बातों में रत

1 The development of character consists in the sublimation of instincts, in the building up of sentiments, especially the moral sentiment, and in the welding of these into a strong self-"—Foundations of Educational Psychology—*Ross.*

कौतूहल[1] की मूलप्रवृत्ति को विज्ञान के आविष्कारों के लिये, पलायन[2] की मूल प्रवृत्ति को पाप और दुराचरण से दूर भागने के लिये, काम की मूल प्रवृत्ति को असहाय दीन दुखियों की रक्षा में लगाने के लिये प्रयोग किया जा सकता है।

किन्तु मूलप्रवृत्तियों के शोधन की एक सीमा होती है और उसी सीमा तक शोधन गुणकारी होता है। इस सीमा का अतिक्रमण व्यर्थ और दुखदायी हो सकता है। इसलिये मूल प्रवृत्तियों के शोधन से चरित्र का एकांगी विकास ही सम्भव है। चरित्र के चतुर्मुखी विकास के लिये स्थायी भावों का निर्माण करना होगा। अनुच्छेद ८·४ में शोधित मूल प्रवृत्तियों को चरित्र का आवश्यक तत्व मानकर व्याख्या की जा चुकी है और यह भी बताया जा चुका है कि मूलप्रवृत्तियाँ ही स्थायीभावों की जननी है इसलिये चरित्र के निर्माण में उनके शोध का विशेष महत्व तो है ही स्थायीभावों के निर्माण का उनसे भी अधिक महत्व है।

९९ (ब) स्थायी भाव और चरित्र निर्माण

Q. 5 How are sentiments related to character? What is a moral sentiment? Discuss the importance of moral instruction in the formation of character? How can it be imparted in the class teaching?

स्थूल पदार्थों और वस्तुओं के लिये स्थायी भावों का निर्माण करना इतना कठिन कार्य नहीं है जितना नैतिक गुणों के प्रति स्थायी प्रेम उत्पन्न करना है। हम अपने घर माता पिता, नगर, देश, विद्यालय, अध्ययन विषय, सौन्दर्यात्मक वस्तु, आदि स्थूल पदार्थों के प्रति प्रेम स्वतः उत्पन्न कर लेते हैं किन्तु सूक्ष्म नैतिक विचारों के प्रति प्रेम पैदा करने की जिम्मेदारी शिक्षक वर्ग की ही मानी जा सकती है। बालक का माता-पिता के प्रति प्रेम मूलप्रवृत्यात्मक प्रेम बाद में स्थायीभावों में स्वतः परिणित हो जाता है परन्तु सूक्ष्म विचारों एवं नैतिक गुणों के लिये तो बालकों में स्थायीभाव पैदा करने पड़ेंगे।

किसी भी स्थायीभाव का निर्माण करने के लिये हमें बालकों को संवेग-शिक्षा देनी होगी। उनके सामने ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करनी होंगी जिससे वे वांछित संवेगों का ही प्रदर्शन कर सकें। संवेगों को उभारने का कार्य देश-भक्ति के गीतों, ग्रामोद्धार-योजनाओं, समाज-सेवा के कार्यों की सहायता से हो सकता है। संवेगों का प्रशिक्षण व्यक्ति और समाज दोनों के लिये हितकर वस्तु है। सांवेगिक विकास पर उचित ध्यान न देने से व्यक्ति का जीवन भी अपूर्ण और विक्षिप्त रहता है, और समाज मे भी अव्यवस्था के चिन्ह उपस्थित हो जाते हैं। यदि अध्यापक मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कार्य करे तो बालको के स्थायीभाव का निर्माण करने मे सहायक सिद्ध हो सकता है।

९९ (स) स्थायीभावो का स्वरूप और विकास

Q 6 What is a sentiment? How is it formed? How would you as teacher develop sentiment of Patriotism in children?

स्थायीभाव-परिभाषा—जब किसी व्यक्ति, विषय, पदार्थ और विचार के प्रति हमारी मूलप्रवृत्तियाँ, भावनाएँ और सवेग बार-बार उमड़ते हैं तब वे इस विशेष व्यक्ति, विषय, पदार्थ और विचार में केन्द्रित हो जाते हैं। इस प्रकार सवेगों, प्रवृत्तियों एवं भावनाओं का आरोपण अथवा केन्द्रीयकरण स्थायी भाव का रूप ग्रहण कर लेता है। उदाहरणार्थ, किसी व्यक्ति विशेष के भिन्नता एक स्थायीभाव है उसके शोकातुर होने पर हम भी शोकातुर हो जाते हैं उसके अभ्युदय को देखकर हम भी प्रसन्न हो उठते हैं, उसके भाग्य परिवर्तन के साथ-साथ हम भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियो और सवेगो का अनुभव करते हैं। इस प्रकार मित्र के प्रति हमारे सभी भाव, सभी सवेग, मूलप्रवृत्तियाँ और विचार सगठित हो जाते हैं। इसी तरह जब हमें कोई बार-बार पीड़ा पहुँचाता है तो उसके प्रति हमारे मन मे घृणा का भाव उत्पन्न हो जाता है। जो हमें निरन्तर प्रेम करता है उसके प्रति श्रद्धा का भाव स्थायित्व ग्रहण कर लेता है। माता-पिता के प्रति प्रेम या

---

1 Curiosity.
2 Escape.

श्रद्धा का स्थायीभाव हममें इसी प्रकार उत्पन्न हो जाता है। माँ को सामने पाकर हमे प्रसन्नता होती है। माँ को छोड़ते हुए दुख होता है। माता के बीमार हो जाने पर भय और निराशा के संवेग उमड़ आते हैं। इस प्रकार एक ही व्यक्ति के प्रति जब हमारा स्थायीभाव दृढ़ हो जाता है तब उसके सान्निध्य से हममें कई संवेगों का उदय होता है। इसीलिये कहा जाता है कि ये स्थायी-भाव एक ओर तो संवेगो से उत्पन्न होते हैं दूसरी ओर वे अनेक संवेगों को उत्पन्न भी करते हैं।

स्थायीभावों, संवेगों और मूलप्रवृत्तियों में अन्तर—स्थायी भावों में यद्यपि हमारे संवेग अथवा मूलप्रवृत्तियाँ सन्निहित रहती हैं तब भी वे संवेग और मूलप्रवृत्तियो की अपेक्षा उच्च स्तर के होते हैं। पशु भी मूलप्रवृत्तियों का अनुभव करता है, उसे भी क्रोध, भय, और निराशा के संवेगों की अनुभूति होती है किन्तु पशु की मूलप्रवृत्तियाँ और संवेग किसी एक प्राणी अथवा पदार्थ पर केन्द्रित नहीं होते इसलिये साधारणतः उसमे स्थायीभाव का उदय नहीं होता। स्थायीभाव मे विचार और निर्णय का अधिक हाथ रहने के कारण उसकी अनुभूति मानव मात्र को ही हुआ करती है।

किसी व्यक्ति घटना अथवा परिस्थिति के विषय में किसी संवेग के अनुभव की बार-बार आवृत्ति होने पर जिस स्थायीभाव का निर्माण हो जाता है उसकी चेतना हमें निरन्तर नहीं रहती। दूसरे शब्दों में स्थायी भावों के लिये यह आवश्यक नहीं है कि जिनके प्रति उनका निर्माण हुआ है वे परिस्थितियाँ अथवा पदार्थ सदैव हमारे सामने मौजूद रहें। जिस आदर्श पदार्थ अथवा व्यक्ति के लिये प्रेम, अथवा श्रद्धा का स्थायी भाव हमारे मन में बन चुका है वह उसकी अनुपस्थिति मे भी बना रहता है।

मैग्डूगल ने किसी वस्तु के अनुभव द्वारा प्रेरित उसके प्रति स्थायी चेष्टापूर्ण अपवृत्ति को स्थायीभाव[1] की संज्ञा दी है। इन स्थायीभावों का मैग्डूगल मूल प्रवृत्तियों की उपज मानते हैं और यह बात भी ठीक है क्योंकि जिस प्रकार मूलप्रवृत्तियाँ हमें कार्य करने के लिये उत्प्रेरित करती रहती हैं उसी प्रकार स्थायीभाव भी हमे विशेष प्रकार की प्रतिक्रिया करने के लिये बाध्य कर देते हैं। अन्तर केवल इतना है कि मूल प्रवृत्तियाँ जन्मजात होती हैं और स्थायीभाव अर्जित होते हैं, वे सीखे जाते हैं और रचनाबद्ध किये जा सकते हैं। शिशुओं में स्थायीभाव निर्मित होने में देर लगती है इसलिये शिक्षक और माता-पिता को मूल प्रवृत्तियों और संवेगों का परिवर्तन, मार्गन्तीकरण और शोधन इस प्रकार करना पड़ता है कि उनमें स्वस्थ स्थायीभावों का निर्माण हो सके।

मूलप्रवृत्यात्मक स्थायीभाव—परिवार के प्रति, माता पिता के प्रति, देश के प्रति हमारे स्थायी भावों का उदय मूलप्रवृत्यात्मक सम्बन्धों के कारण होता है। परिवार के वयस्क सदस्यों में पुत्रकामना तथा सुरक्षा की मूलप्रवृत्तियाँ, बच्चों में शरणागति और दैन्यकी मूलप्रवृत्तियाँ उनके आपसी सम्बन्ध को दृढ़ बना देती हैं। माता-पिता और बच्चे एक दूसरे की मूलप्रवृत्यात्मक प्रेरणाओ की सन्तुष्टि करते हैं। दोनों के ये सम्बन्ध अत्यधिक मजबूत हो जाने पर उनमे प्रेम और श्रद्धा के स्थायीभावो का जन्म हो जाता है। मैग्डूगल की यह बात सत्य है कि सभी स्थायी भाव मूलप्रवृत्तियों पर आधारित होते हैं किन्तु जैसा हम पहले कह चुके हैं स्थायी भावों की कोटि मूलप्रवृत्तियों से उत्तम मानी जाती है। मूलप्रवृत्तियों के वशीभूत होकर हम किसी कार्य को बिना सोचे विचारे कर बैठते हैं। संवेगों के वश में भी आकर हम किसी कार्य को एकदम कर बैठते हैं किन्तु स्थायीभावों से अभिप्रेरित होकर कार्य सोच समझकर किये जाते हैं। वास्तव में हमारा चिन्तन काफी मात्रा तक स्थायीभावों से नियन्त्रित रहता है।

लगभग स्थायीभाव हमारे स्वभाव के अंग बन जाते हैं, और इस प्रकार हमारे विशेष प्रकार के विचारों के कारण हो जाते हैं। जिस व्यक्ति के प्रति हमारे मन में प्रेम अथवा श्रद्धा का स्थायी भाव होता है उसकी सभी बातें हमें अच्छी लगती हैं जिसके प्रति हमें घृणा और द्वेष का स्थायी भाव होता है उसकी सभी बातें हमे अरुचिकर प्रतीत होती हैं। स्थायी भाव इस प्रकार हमारे चिन्तन की दिशा को निश्चित कर देते हैं।

---

1 Sentiment is an enduring conative attitude towards some object induced by experiance of that object.

स्थायीभावों के भेद

मनोवैज्ञानिकों ने इन्हें कई प्रकार के वर्ग भेदों में विभाजित किया है किन्तु हम यहाँ पर केवल चार मुख्य वर्गों का वर्णन करेंगे —

(१) बौद्धिक स्थायीभाव।
(२) नैतिक अथवा सामाजिक स्थायीभाव।
(३) धार्मिक स्थायीभाव।
(४) सौन्दर्यात्मक स्थायीभाव।

बौद्धिक स्थायीभाव—वैज्ञानिक [illegible] साहित्यिक और [illegible] के [illegible] मनुष्य के मस्तिष्क में कुतूहलता और विचार शक्ति को जन्म देते हैं। वह जानना चाहता है कि अमुक बात क्यों है और अमुक बात क्यों नहीं। [illegible] वह [illegible] का [illegible] है और [illegible] का [illegible] करता है। इसी रूप और विधि से उसकी प्रवृत्तियाँ [illegible] हो जाती हैं। व्यक्ति के बौद्धिक जीवन में बौद्धिक स्थायीभावों का उदय [illegible] है जो [illegible] बन जाते हैं।

[illegible] सुन्दरता जैसे सूक्ष्म विचार के प्रति प्रेम, विज्ञान के प्रति रुचि और अध्ययन स्वाध्याय के प्रति आदर जैसे बौद्धिक स्थायीभाव भी उत्पन्न होते जाते हैं।

नैतिक और सामाजिक स्थायीभाव—सत्य, न्याय, ईमानदारी, आदि नैतिक गुणों के प्रति श्रद्धा का भाव ही एक स्थायीभाव कहलाता है। दीन दुखियों की रक्षा, असहाय लोगों और बच्चों के लालन पालन को [illegible] जब हम [illegible] हो जाते हैं तब वे नैतिक स्थायीभावों का रूप धारण कर लेती हैं। इसी प्रकार अपने मित्र, परिवार, नगर, देश, राष्ट्र के प्रति प्रेम और भक्ति स्थायीभाव का रूप ले सकती है यदि हमारे भाव आदर और प्रवृत्तियाँ इनकी ओर केन्द्रित हो जायें।

नैतिक और सामाजिक स्थायीभावों से हम उचित और अनुचित व्यवहार के प्रति निर्देश पाते हैं। जो व्यवहार हमारे नैतिक और सामाजिक जीवन के लिये उपयुक्त होते हैं उन्हें हम अनुचित तथा जो व्यवहार समाज और नैतिकता के अनुकूल होते हैं उनको उचित मानने लगते हैं। इस प्रकार हममें नैतिक और सामाजिक स्थायीभावों का उदय होता है।

धार्मिक स्थायीभाव—धार्मिक स्थायीभावों में धर्म, ईश्वर, धार्मिक रीतिरिवाजों, मान्यताओं, पुण्य क्षेत्रों, स्थानों के प्रति श्रद्धा और आदर की भावनाओं को सम्मिलित किया जाता है। इन वस्तुओं के प्रति हमारे संवेग, भाव और प्रवृत्तियाँ केन्द्रित हो जाती हैं। हमारा अन्तःकरण हमें धर्म की ओर आकर्षित करता है। हमें पुण्यकार्य करने की प्रेरणा मिलती है, हममें धार्मिक भावनाओं का संचार करता है। इस प्रकार धार्मिक स्थायीभावों का उदय होता है।

सौन्दर्यात्मक स्थायीभाव—काव्य, चित्रकला और संगीत के प्रति लगभग सभी व्यक्तियों को प्रेम होता है क्योंकि ये वस्तुएँ हमारे मन को आकर्षित कर लेती हैं। हमारी आँखों के सामने उनकी उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति में हमको आनन्द की प्राप्ति होती है। हमारे भाव, विचार और संवेग उन पर केन्द्रित हो जाते हैं। इस प्रकार उन वस्तुओं के प्रति हममें सौन्दर्यात्मक स्थायीभावों का प्रादुर्भाव होने लगता है।

स्थायीभावों के विकास का महत्व—इन सभी स्थायीभावों को मनुष्य के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है क्योंकि ये मानव की वैज्ञानिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक और कलात्मक उन्नति के आधारस्तम्भ हैं। उदाहरण के लिए, बौद्धिक स्थायीभावों के कारण ही हम इतनी वैज्ञानिक उन्नति कर पाये हैं। हमारे नैतिक स्थायीभावों के प्रसाद के रूप में हमें नैतिक और सामाजिक संस्थाएँ समाज सुधार के प्रयत्न, नैतिक शास्त्र और शिष्टाचार की आचार संहिताएँ उपलब्ध हुई हैं। हमारी धार्मिक संस्थाएँ—मन्दिर, गिर्जे गुरुद्वारे, चर्च और मस्जिदें हमको मिली हैं। हमारे धर्म संघ, धर्म प्रचारक, ऋषि, मुनि, तपस्वी, महात्मा, पादरि और पैगम्बर हमको हमारे धार्मिक स्थायीभावों के फलस्वरूप ही प्राप्त हुए हैं। संगीत, कविता, चित्रकला का इतना अधिक विकास

रे सौन्दर्यात्मक स्थायीभावों के कारण ही हुआ है। संक्षेप मे प्रत्येक स्थायीभाव का हमारे वन में अपना-अपना स्थान है।

६.८ स्थायीभावों का बाल्य जीवन मे महत्व

यदि हम अपने छात्रों का स्वस्थ विकास चाहते हैं तो शैशवावस्था से ही उनमें इन यायीभावों का सचार करना होगा। यदि हम उनके चरित्र या व्यक्तित्व का उचित विकास रना चाहते हैं तो हमे उनके सवेगो और मूल प्रवृतियो को उच्च आदर्शों पर केन्द्रित करना होगा। गों एव मूल प्रवृत्तियों को सुधारना होगा।

स्थायीभावो के निर्माण का उचित समय बाल्यावस्था मानी जाती है। अत. बालक के वन में सवेग और स्थायीभावो का महत्व सभी ने स्वीकार किया है। जिन बालको के सवेग यंत्रित नहीं होते, जिन बालको में अच्छे स्थायीभावों का प्रादुर्भाव नहीं होता उनका चरित्र भी च्छा नहीं होता। दुराचारी बालको मे न तो अपने कुटुम्बियों अथवा मित्रो के प्रति विशेष प्रेम ता है न उनके मन मे किसी विशेष विषय के लिए लगन ही होती है। जिस बालक के हृदय में ई उत्तम स्थायीभाव नहीं है उसके पास अपने मन को दुर्व्यसनो से रोकने के लिए कोई धन नहीं होता।

सवेगों का नियत्रण, परिशोधन और मार्गन्तीकरण उचित ढग से किया जा सकता है। प्रकार सवेगो को सुगठित करके उनको स्थायीभावो के निर्माण-कार्य में सहायता प्रदान की जा कती है। उदाहरण के लिये, इतिहास का पाठ पढ़ाते समय इतिहास का शिक्षक बालकों में यथा-ान क्रोध, घृणा और प्रेम का सचार कर सामाजिक स्थायीभावो को पुष्ट कर सकता है। इसी कार गणित और विज्ञान का अध्यापक आश्चर्य और आत्माभिमान के भाव को सचरित कर इन षयों के प्रति प्रेम उत्पन्न करके बौद्धिक स्थायीभावों का सृजन कर सकता है, देशभक्ति के यायीभाव को उत्पन्न करने के लिए पाठ्य वस्तु और पाठ्यक्रम सहगामिनी क्रियाएँ[1] इस प्रकार ठित और सचालित की जा सकती हैं कि बालकों में अपने विद्यालय, नगर और राष्ट्र के प्रति और भक्ति के स्थायीभाव परिपुष्ट हो सकें। देश की सम्पत्ति, उपज, उद्योग और व्यवसायों ज्ञान देकर, देश के श्रेष्ठतम वीरो की जीवनियाँ पढ़ा कर, देश के सम्मान की वृद्धि करने वाले तिकों, वैज्ञानिकों, सामाजिक और धार्मिक सुधारकों का परिचय देकर शिक्षार्थियो के हृदय मे भक्ति की अविरल धारा प्रवाहित की जा सकती है। इस प्रकार शिक्षण अनेक स्थायीभावों को लकों के हृदय में उत्पन्न उनके चरित्र का निर्माण कर सकता है, किन्तु चरित्र के निर्माण के लिये स्थायीभावों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थायीभाव नैतिक गुणों से सम्बन्ध रखता है।

नैतिक उपदेश (Moral Instruction)—नैतिक गुणों के विकास के लिए नैतिक उपदेशों व्यवस्था की जाती है। ये उपदेश दो प्रकार से दिये जाते हैं—प्रत्यक्ष तरीके से और अप्रत्यक्ष रीके से। हरबार्ट का विश्वास था कि नैतिक चरित्र के निर्माण के लिये इतिहास और साहित्य का ध्ययन आवश्यक है। इसी प्रकार अरस्तू सगीत के अध्ययन से मन के बुरे भावों का रेचनकर तिक गुणों का विकास करने पर जोर देता था। चरित्र का निर्माण करने के लिये धार्मिक रुचि ने व्यक्ति अब भी कथा-कहानियों मे वर्णित महान् पुरुषों के आदर्श चरित्र के अध्ययन पर जोर ते हैं। अब भी पाठ्य पुस्तकों में महान् पुरुषो की जीवनियाँ इसी उद्देश्य को ध्यान में रख कर कलित की जाती हैं। इतिहास साहित्य और अन्य सामाजिक विषयो का अध्ययन नैतिक गुणों उत्पन्न करने में निश्चय ही सहायक होता है। इतिहास के दृष्टान्त दर्शन और नीतिशास्त्र की रह प्रयोग में लाये जाते हैं। इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप से नैतिक गुणों का सृजन किया जा सकता है।

नैतिक शिक्षा की विधियाँ—उपदेश—नैतिक शिक्षा देते समय अध्यापक को इस बात का यान रखना चाहिये कि नैतिक गुण ऊपर से थोपे नहीं जा सकते। नैतिक शिक्षा की समस्या तनी आसानी से हल नहीं की जा सकती जितनी आसानी से अन्य समस्यायें हल की जा सकती हैं।

[1] Cocurricular activities.

नैतिक स्थायी भावों का सृजन इतनी सरलता से नहीं किया जा सकता जितनी सरलता से देशभक्ति व भौतिक वस्तु के प्रति प्रेम को पैदा किया जा सकता है। विज्ञान, गणित, भाषा के उत्तम से उत्तम शिक्षक मिल सकते हैं किन्तु नैतिक शिक्षा के लिये अध्यापक मिलना आसान बात नहीं है। चरित्र शिक्षा[1] की समस्या नैतिक शिक्षा की समस्या है। अध्यापक बालक की मूल प्रवृत्तियों का शोधन कर सकता है, *अन्य स्थायीभावों का निर्माण भी कर सकता* है किन्तु नैतिक स्थायीभावों का निर्माण कैसे करे यह तो बड़ी टेढ़ी खीर है। इसीलिये रूसो ने प्रत्यक्ष रूप से दी जाने वाली नैतिक शिक्षा का विरोध किया था।

कोरे नैतिक उपदेशों से लाभ के स्थान पर हानि होने की शत-प्रतिशत सम्भावना रहती है। इन उपदेशों को सुन कर बालकों में अभावात्मक निर्देश[2] के कारण बुराइयाँ उत्पन्न हो जाती है। वे उन्हीं कार्यों में संलग्न होजाते हैं जिनसे उनको रोका जाता है। ऐसे उपदेशों से वे अनायास ही अवांछनीय बातों का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं। वैज्ञानिक खोजों के आधार पर कहा जा सकता कि सदाचारी बालकों में नैतिक गुणों का ज्ञान सामान्य बालको की अपेक्षा अधिक होता है। मनुष्य आदर्शों की बात अधिक कह सकता है किन्तु आदर्शों के अनुकूल आचरण नही कर सकता अथवा बहुत कम कर सकता है। मनोवैज्ञानिक महाकवि का कहना है—

'पर उपदेश कुशल बहुतेरे।
जे आचरहिं ते नर न घनेरे॥'

यदि व्यक्ति नैतिक गुणों का ज्ञान रखने पर भी नैतिक आदर्शों के अनुकूल आचरण नहीं कर सकता तो हम उसे किस प्रकार चरित्रवान् कह सकते हैं। केवल नैतिक गुणों से बालकों को परिचित कर देना ही काफी नहीं है। नैतिक शिक्षा तब तक सार्थक सिद्ध नहीं हो सकती जब तक उसका देने वाला शिक्षक तथा उसको ग्रहण करने वाला शिक्षार्थी नैतिक गुणों के अनुकूल अपने आचरण में परिवर्तन पैदा नहीं कर लेता। साधारणतः लोगों का यह विश्वास बन गया है कि साहित्य और इतिहास के पाठों में छोटी-छोटी कहानियों द्वारा नैतिक गुणों की ओर संकेत करके बालकों के चरित्र का गठन किया जा सकता है किन्तु यह धारणा गलत है जब तक बालक उन नैतिक गुणों को अपने कार्यों में प्रदर्शित नहीं करते तब तक ऐसी शिक्षा व्यर्थ ही जाती है। क्रोनबेक के इस कथन[3] में सत्यता के अंश का आभास हमें उस समय होता है। जिस समय ऐसे बालकों को हम दूसरे को धोखा देते हुए पाते हैं जिनको उचित और अनुचित, सद और असद का ज्ञान दिया गया तो था किन्तु जिनके सामने ऐसी परिस्थितियाँ नहीं रखी गई थीं जिनमें रह कर उनमें इन नैतिक बातों के प्रति प्रेम का सचार हो सकता। एक मनोवैज्ञानिक ने कुछ विद्यार्थियो के नैतिक गुणों के ज्ञान की जब परीक्षा ली तब उन्होंने उसे बतलाया कि परीक्षक को धोखा देना पाप कर्म है और इस कार्य से विद्यार्थियों का हित भी नहीं होता, अत: धोखा देना व्यर्थ है किन्तु जब उस मनोवैज्ञानिक ने उन्हीं बालकों को धोखा देने की सुविधाएँ प्रस्तुत करदीं तब वे ही बालक ऐसा पापकर्म करते हुए पाये गये। इसलिये यदि बालकों के चरित्र का गठन ही करना है तो उन्हें प्रत्यक्ष नैतिक शिक्षा देने के साथ-साथ इन गुणों का अभ्यास करने के लिये उचित वातावरण प्रस्तुत करना होगा।

अप्रत्यक्षनिर्देश और नैतिक शिक्षा—नैतिक शिक्षा देने का दूसरा महत्वपूर्ण तरीका है अप्रत्यक्ष रूप से इन गुणों की शिक्षा देना।

---

1 Characetr education.

2 Negative suggestion.

3 Verba education runs a great risk of being verbalistic education. A pupil can learn the words without learning the sense, or without accepting the principle as his own verbal principles have only a surface influence unless the person uncorporates them into his ideal. —*Cronback*

अध्यापक बालकों के ईमानदारी, सचाई और न्याय सम्बन्धी कार्यों की स्वयं सबके सामने प्रशंसा करके, उनके बेईमानी, झूठ और अन्याय सम्बन्धी कुकर्मों की बुराई करके, उनके अच्छे आचरण को पुरस्कृत तथा बुरे आचरण को निन्दित करके ईमानदारी, सत्य-प्रियता और न्याय के प्रति बालकों में प्रत्यक्ष रूप से प्रेम उत्पन्न कर सकता है।

जिस प्रकार उपदेशों का प्रभाव चेतन मन पर पड़ता है उसी प्रकार निर्देश का प्रभाव व्यक्ति के अचेतन मन पर पड़ा करता है। वयस्क व्यक्तियों की अपेक्षा बालकों के मन पर निर्देश का स्वस्थ प्रभाव पड़ता है। अतः निर्देश द्वारा चरित्र का गठन किया जा सकता है। नैतिक शिक्षा के लिये बालक को प्रारम्भिक अवस्था में आप्त निर्देश और अनुकरण की सहायता ले सकते हैं किन्तु उसके व्यक्तित्व के विकसित होने के साथ-साथ हमें इन साधनों के प्रयोग में कमी करनी पड़ेगी क्योंकि सुविकसित चरित्र वाला व्यक्ति अपने विचारों एवं क्रियाओं में स्वावलम्बी होता है। वह बिना सोचे-समझे दूसरों का अनुकरण करना, उनके निर्देशों को स्वीकार कर लेना पसन्द नहीं करता। यदि अध्यापक अनुकरण के अयोग्य यन्त्र का प्रयोग करना चाहता है तो उसे शिक्षार्थी के सम्मुख ऐसे दृष्टान्त उपस्थित करने होंगे जो उनके लिये आदर्श हों। इन दृष्टान्तों का जितना गहरा प्रभाव बालक को मनोवृत्तियों पर उनके माता-पिता, अध्यापकों, मित्रों एवं साथियों का पड़ता है उतना गहरा प्रभाव अन्य किसी व्यक्ति का नहीं पड़ता। अतः उससे सम्पर्क रखने वाले इन सभी व्यक्तियों की क्रियाएँ उनके आचरण, उनके भाव, और आदर्श उच्चकोटि के होने चाहिये ताकि बालक उनका अनुकरण करके उत्तम चारित्रिक गुणों का विकास कर सकें।

अनुकरण और नैतिक शिक्षा—अनुकरण द्वारा चारित्रिक विकास में सहायता मिलती है क्योंकि बालक के सामने जैसा किया जाता है, जैसा कहा जाता है वह वैसा ही करता और कहता है। माता, पिता, गुरु, अथवा अन्य पूर्वजों को आदर्श मानकर उनका अनुकरण करता है। इसीलिये हमने कहा था कि जिन व्यक्तियों पर बालक के चरित्र के निर्माण का भार है वे अपने कार्यों में सदैव तर्क रखें। वे ऐसा कोई अनैतिक कार्य न करें जो बालक के चरित्र पर बुरा प्रभाव डाले। यदि अभिभावक और अध्यापक अपने व्यवहार और आचरण में सुधार करलें तो उनके बालक का आचरण और व्यवहार स्वतः सुधर जायगा। माता, पिता अथवा अन्य पूर्वजों के आचरण और व्यवहार से बालक के 'आदर्श स्व'[1] का निर्माण होता है। आगे चलकर इस 'आदर्श स्व' में परिवार के अन्य सदस्यों, बाहर के प्रौढ़ व्यक्तियों, सिनेमा के आदर्श पात्रों आदि की विशेषताओं का समावेश हो जाता है।

आत्म गौरव के स्थायी भाव का विकास और चरित्र—इस 'आदर्श स्व' के निर्माण के लिये बच्चे में आत्म गौरव का स्थायी भाव पैदा करना होगा। आत्म गौरव के स्थायी भाव से ही हमारे चरित्र का संगठन होता है। यह स्थायी भाव व्यक्ति को बुरे कार्य करने से रोकता है। जब उपदेशक अथवा शिक्षक किसी बालक से कहते हैं, "यह कार्य तो तुम्हारे योग्य नहीं है, इसे करके तुम अपने को गिरा रहे हो, तब वे उसके स्थायीभाव को जागृत करते हैं, जब हम स्वयं यह कहते हैं कि हमारे लिये यह निम्न स्तर का कार्य है। 'मैं अपने को इतना नीचा नहीं गिरा सकता' तब हम आत्म गौरव की रक्षा करते हैं।

इसी प्रकार जब बालक की प्रशंसा की जाती है तब वह अपने आत्म के प्रति गौरव अथवा सम्मान का अनुभव करता है। जिन कार्यों को करने से उसकी प्रशंसा होती है उनसे उसके आत्म गौरव की रक्षा होने पर आनन्द मिलता है किन्तु जिन कार्यों के करने में उसकी निन्दा होती है उनसे उसे दुख होता है क्योंकि उसके आत्म सम्मान को धक्का मिलता है। यदि लोग उससे कहते हैं तुम ईमानदार हो तो वह अपने को ईमानदार समझकर ऐसे कार्य करता है जिससे आत्म गौरव को ठेस न लगे। जब आत्म गौरव का भाव स्थायी हो जाता है तब बालक अन्य स्थायीभावों पर भी नियन्त्रण करने लगता है।

---

[1] Ideal self.

चरित्र निर्माण के लिये हमें इसी आत्म गौरव के स्थायीभाव को जाग्रत करना है और आत्म सम्मान की रक्षा की भावना का उदय करना है। यही बच्चे की शिक्षा का सार है।

चरित्र आत्म गौरव के स्थायीभाव का दूसरा नाम है। चरित्रवान व्यक्ति वह होता है जो आत्म सम्मान और संकल्प शक्ति से भरा हो, जो अपने सिद्धान्तों के अनुसार कार्य करता हो। इसीलिये चरित्र में मैक्डूगल ने आत्म गौरव के स्थायीभाव की महत्ता स्वीकार की है। जो व्यक्ति के आत्म सम्मान की भावना से ओत-प्रोत रहता है। वही अपने सिद्धान्तों पर अटल रहा करता है।[1]

६.१० चरित्र-परीक्षण[2]

Q 5. What is a test of character? Is it reliable and valid?

यद्यपि चरित्र की व्याख्या का शोधित मूल प्रवृत्तियों, श्रेष्ठ स्थायी भावों, उत्तम आदर्शों के आत्मगौरव के स्थायी भाव मे संगठन के रूप मे की गई है किन्तु जब हम उन सभी नैतिक और चारित्रिक गुणों का विश्लेषण करते हैं जो इस संगठन में वर्तमान है तब हमको चरित्र असम्बन्धित आदतों और शीलगुणों का योग मात्र प्रतीत होता है। जिस प्रकार व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक विकास के मापन के लिये सत्य, शुद्ध, विश्वस्त और प्रयोज्य यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है उसी प्रकार शिक्षा मनोवैज्ञानिक चारित्रिक गुणों के मापन के लिये कुछ विधियों का अनुसरण करता है। ये विधियाँ निम्नलिखित हैं—

(अ) मूल्यांकन विधि[3]

(ब) ज्ञान तथा मनोवृत्ति परीक्षण[4]

(स) निर्माण विधि[5]

मूल्यांकन विधि—चरित्र के विभिन्न पक्षों का अध्ययन मूल्यांकन विधि से किया जाता है। वह व्यक्ति जिसने बालक को विभिन्न परिस्थितियों में देखा है उसके चारित्रिक गुणों पर उसका [illegible] करता है परन्तु अधिकतर प्रयोगकर्ता हों [illegible] पर उनके चरित्र का मूल्यांकन करता [illegible] अध्यापकों एवं परिचितों की उसके विषय में सम्मतियों के आधार पर साधारणतः किया जाता है।

मनोवृत्ति निरीक्षण विधि—बालकों के ज्ञान तथा मनोवृत्ति के आधार पर उनके चारित्रिक गुणों की जानकारी प्राप्त की जाती है। उनसे नैतिकता, उदारता, आदि चारित्रिक गुणों के विषय में प्रश्न पूछे जाते हैं। प्रश्नों के उत्तरों से विभिन्न परिस्थितियों में ज्ञान का पता लगाया जाता है अथवा किसी चारित्रिक गुण के विषय में उनकी मनोवृत्ति का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। किन्तु चरित्र अध्ययन की यह विधि अपूर्ण है, क्योंकि ज्ञान सभी स्थलों पर चरित्र का द्योतक नहीं होता।

---

1 [illegible] impulses

2 Character testing.

3 Rating method.

4 Knowledge and attitude testing.

5 Performance method.

किन्तु इतना अवश्य मानना पड़ेगा कि इस विधि द्वारा बालकों के ज्ञान और व्यवहार पर अंशतः प्रकाश अवश्य पड़ता है।

निर्माण विधि—हार्टशोर्न और मे ने चरित्रमापन के लिये कुछ परीक्षाओं का निर्माण किया है जिनमें बालकों को संघर्षात्मक परिस्थितियों में डालकर उनकी चारित्रिक विशेषताओं का अनुमान लगाया जाता है। नीचे ईमानदारी और सहकारिता आदि गुणों के मापन की विधि दी जाती है। बालकों को कोई असम्भव कार्य करने के लिये दिया जाता है। यह कार्य बहुधा इतना कठिन होता है कि ९९% बालक उसे करने में असफल होते हैं। अतः यदि कोई बालक इस असम्भव कार्य को कर लेता है तो उसको अनुमानतः बेईमान मान लिया जाता है। बालकों को लगभग समान भार की गोलियाँ दे दी जाती हैं जिनके निचली सतह पर उनके भार अंकित कर दिये जाते हैं अथवा कुछ संकेत बना दिये जाते हैं जो उसके क्रम का बोधन करते हों। यदि कोई बालक इन लगभग समान भार वाली गोलियों को भार के अनुसार क्रम से सजाकर क्रमबद्ध कर लेता है तो यह अनुमान कर लिया जाता है कि उसने गोलियों की निचली सतह पर अंकित सूचना का लाभ उठाया है जिसका लाभ न उठाने की उसको चेतावनी दे दी गई थी।

ईमानदारी की जाँच करने के लिये अध्यापक कभी-कभी बालकों की किसी पाठ्यक्रम से निर्धारित विषय की परीक्षा लेता है। बालकों की उत्तर पुस्तिकाओं को जाँचने के बाद उनके प्राप्तांक अलग से एक कागज पर टीप लेता है। जाँचते समय उत्तर पुस्तिकाओं में किसी प्रकार का चिन्ह नहीं लगाया जाता और न उनमें अंक ही दिये जाते हैं। परीक्षा लेने के कुछ दिनों बाद वे उत्तर पुस्तिकाएँ लौटा दी जाती हैं और यह आदेश दे दिया जाता है कि दी गई अंकन कुंजिका[1] के अनुसार बालक ही अपनी-अपनी उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन करें। अधिक अंक पाने के इच्छुक कुछ बेईमान बालक अपनी उत्तर पुस्तिकाओं में आवश्यक संशोधन कर लिया करते हैं।

सहकारिता की भावना की जाँच करने के लिये भी ऐसा ही परीक्षण दो बार किया जाता है। पहली बार बालकों को आदेश दे दिया जाता है कि जो अधिकतम अंक प्राप्त करेगा उसको पुरस्कार दिया जायगा। इस पर अधिकतम अंक पाने वाले को पुरस्कृत कर दिया जाता है। दूसरी बार दूसरी परीक्षा ली जाती है इस पर यह आदेश दिया जाता है कि सभी बालकों के प्राप्तांकों का औसत निकाला जायगा किसी को व्यक्तिगत पुरस्कार नहीं दिया जायगा। इस बार जो भी बालक लगभग उतना ही प्रयत्न और परिश्रम करके अधिकतम अंक पाने की इच्छा का प्रदर्शन करता है उसमें सहकारिता की भावना विकसित हुई मानी जाती है।

चरित्र मापन की विधियों की वैधता और विश्वसनीयता—चरित्र-परीक्षण की ये विधियाँ चारित्रिक गुणों का इतना सत्य और विश्वस्त मापन नहीं कर सकतीं जितना कि बुद्धि मापक परीक्षाएँ किया करती हैं। कारण स्पष्ट है, बालक दो भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में सदैव एक से व्यवहार का प्रदर्शन बहुत कम करता है।

बालक प्रत्येक परिस्थिति में ईमानदारी का बर्ताव नहीं करता और न प्रत्येक परिस्थिति में बेईमानी का ही। दोनों परिस्थितियाँ सामान्यतया बालक के सामने भिन्न-भिन्न उद्देश्य लेकर आती हैं। फिर ईमानदारी जैसे चारित्रिक गुणों की भिन्न भिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न प्रकार से व्याख्या करते हैं। इसलिये चारित्रिक गुणों का मापन सरल काम भी नहीं है।

[1] Scoring Key

अध्याय १०

सामान्य प्रवृत्तियाँ—खेल

(General Innate Tendencies)

१०.१ बच्चे, सयाने और वयोवृद्ध व्यक्ति सभी खेल खेलते हैं। यही नहीं पशु-पक्षी भी प्रायः खेल खेलते देखे जाते हैं। इस प्रकार खेल खेलना प्राणी की स्वाभाविक और सार्वभौमिक क्रिया है। किन्तु इस क्रिया का मूलप्रवृत्तियों से अन्तर होने के कारण अलग से उल्लेख किया जाता है। इसको कई मनोवैज्ञानिक इसीलिये सामान्य प्रवृत्ति मानते हैं। जिसका प्रदर्शन व्यक्ति अथवा पशु-पक्षी कई प्रकार से करते हैं। इस प्रवृत्ति का सम्बन्ध किसी एक संवेग से न होने के कारण उसे मूलप्रवृत्तियों की कोटि में नहीं रखा जाता। मूलप्रवृत्तियों के उदय और प्रकाशन के लिये विशेष परिस्थितियों की आवश्यकता होती है किन्तु खेल के लिये ऐसी किसी परिस्थिति की जरूरत नहीं हुआ करती। इन सब कारणों से खेल को सामान्य प्रवृत्ति माना गया है।

खेल ऐसी प्रवृत्ति है जिसका व्यक्ति के जीवन में विशेष महत्व होता है। खेल खेलने से व्यक्ति का शारीरिक, सामाजिक, मानसिक, सांवेगिक और चारित्रिक विकास होता है इसलिये खेल की प्रवृत्ति को व्यक्तित्व के विकास में महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है।

१०·२ खेल का व्यक्ति के जीवन में महत्व

खेल खेलने से बालकों का शारीरिक विकास समुचित रूप से होता रहता है। रक्त परि-भ्रमण के सुचारुरूप से सम्पादित होने के कारण शरीर की मांस-पेशियाँ विकसित हो जाती हैं। अनावश्यक पदार्थों के शरीर के बाहर—पसीने के द्वारा—चले जाने से शरीर स्वस्थ हो जाता है। खेलों में भाग लेने से शरीर के अनावश्यक तनाव दूर हो जाते हैं और असामान्य-व्यवहार-प्रदर्शन की सम्भावनाएँ कम हो जाती हैं। विभिन्न अंगों और शरीर के विभिन्न भागों पर नियन्त्रण स्थापित होने के कारण शरीर की कर्मेन्द्रियाँ नियन्त्रित हो जाती हैं। इस प्रकार खेलों में नियन्त्रित रूप से भाग लेने वाले व्यक्तियों का शारीरिक विकास उचित क्रम से होता रहता है।

व्यक्ति के मानसिक विकास पर भी खेलों का स्वस्थ प्रभाव पड़ता है। खेलों में उसे विभिन्न वस्तुओं का प्रत्यक्षीकरण करना पड़ता है। तरह-तरह की समस्याएँ खेल खेलते समय उपस्थित हो जाती हैं। इन समस्याओं के हल ढूढ़ने के लिए खेलने वाले को चिन्तन क्रिया का सहारा लेना पड़ता है। साथियों के बीच विचारों का आदान-प्रदान करने से दृष्टिकोण व्यापक हो जाता है। इस प्रकार खेलों में भाग लेने से प्रत्यक्षीकरण, चिन्तन, तर्क आदि मानसिक क्रियाओं को विकसित होने में सहायता मिलती है।

साथ-साथ खेलने से सहयोग और सहकारिता की भावनाएँ उदय होती हैं, क्योंकि बिना [illegible] किये खेलों का खेलना ही सम्भव नहीं है। खेलों में सहानुभूति भी प्रकट करनी पड़ती है [illegible]ये खेलों में भाग लेने वाले स्वार्थ का परित्याग करना सीख लेते हैं। उन्हें अपने नायक के [illegible] और आदेशों का पालन करने के अनुशासन का निरन्तर सबक मिलता रहता है। सामाजिक जीवन की जिम्मेदारियों को अनुभव करने का प्रशिक्षण क्रीड़ा-स्थल में ही

मिलता है। इस प्रकार खेलों में भाग लेने वाले व्यक्ति का सामाजिक विकास उचित ढंग से होता रहता है।

खेल क्रोध, प्रसन्नता घृणा और सहानुभूति आदि संवेगों की अभिव्यक्ति का उत्तम साधन है, क्योंकि खेल के मैदान में बालक क्रोध पर नियन्त्रण करना, आनन्द के अवसर पर आनन्द की अभिव्यक्ति करना, दूसरों को दुःखी देखकर उनके प्रति सहानुभूति की भावना का प्रदर्शन करना, आवश्यकता पड़ने पर सावेगिक तनावों को दूर करना स्वतः सीख लेते हैं। इस प्रकार खेल के माध्यम से उनका सावेगिक विकास सम्भव हो जाता है।

खेल खेलने से चारित्रिक गुणों का प्रादुर्भाव भी होने लगता है। सद, असद, अच्छे और बुरे का विचार अवका होने पर खेलने वाले को नैतिक गुणों की शिक्षा मिलती रहती है।

इस सब कारणों से खेल व्यक्ति के जीवन के लिये बड़ी ही महत्वपूर्ण क्रिया है। यह ऐसी क्रिया है जिसका उद्देश्य इसी मे निहित रहता है। खेलना व्यक्ति का जन्मजात स्वभाव है। जिस प्रकार उसके लिये खाना-पीना आवश्यक है, उसी प्रकार खेलना भी जरूरी होता है। खेल मानव जीवन को प्रेरणा देने वाली शक्तियों में से एक है।

१०·३ क्रीड़ा का स्वरूप

Q. 1. What is the nature of play? Discuss it's chief characteristics. How does paly differ from work.

वह कार्य जो मानव जीवन के लिए इतना अधिक महत्वपूर्ण है, वह क्रिया जिससे व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और सावेगिक विकास सम्भव है, वस्तुतः है क्या? उसका स्वरूप क्या है? उसकी विशेषताएँ क्या हैं? इन प्रश्नों का उत्तर इस अनुच्छेद में देने का प्रयास किया जायगा।

(१) खेल की विशेषताएँ—खेल स्वच्छन्द[1] क्रिया है जिसका अपना ही लक्ष्य होता है। खेल खेल के लिये ही खेला जाता है। आनन्द और सन्तुष्टि की भावना जो खेल की क्रियाओं में सामान्यतः पाई जाती है खेल के लिये प्रेरक[2] का कार्य करती है। खेल का कोई अलग प्रयोजन नहीं होता है इसीलिये कुछ मनोवैज्ञानिक खेल की परिभाषा सुखद, स्वाभाविक, स्वतन्त्र और ध्येयहीन क्रिया के रूप में देते हैं। व्यक्ति खेल खेलता है किसी ध्येय की प्राप्ति के लिये नहीं वरन् वैसे ही खेलता है। उसके सामने कोई आर्थिक दृष्टिकोण नहीं होता उसका प्रयोजन खेल से आनन्द प्राप्त भी करना शायद नहीं होता। आनन्द तो उसका परिणाम होता है। वह खेलना चाहता है, खेलता है केवल इसलिये कि उसे खेल अच्छा लगता है। यदि वह किसी आर्थिक लक्ष्य से खेल खेलने लगता है तो वह खेल न होकर कार्य का रूप ग्रहण कर लेता है।

(२) खेल स्वच्छन्द क्रिया है क्योंकि उसमें कोई बाहरी दबाव नहीं होता। आन्तरिक प्रेरणा से प्रेरित होकर व्यक्ति खेल की क्रिया में संलग्न होता है। क्रीड़ा का सामान्य लक्षण स्वच्छन्दता अथवा स्वतन्त्रता है। खेलने वाला तब तक खेलता है जब तक उसकी इच्छा होती है और उस समय खेलना बन्द कर देता है जिस समय उसे खेल बन्द करने की आवश्यकता होती है। यदि खेल खेलते समय उसे कुछ नियमों का पालन भी करना पड़ता है तो वह खेल की सफलता के लिये ही उनको पालन करता है अन्यथा वे नियम बाहर से थोपे नहीं जाते। खेलने वाला उन नियमों के पालन की आवश्यकता की स्वयं अनुभूति करता है। इसलिये खेल को स्वच्छन्द क्रिया कहा गया है।

(३) खेल सुखद क्रिया है—क्योंकि उसमें हमारी रुचि की अनुकूलता विद्यमान रहती है। यह क्रिया सुखद इसलिये और है कि इसको करने की प्रेरणा अन्दर से मिलती है। जो कार्य बाह्य दबाव के कारण करना पड़ता है उसमें आनन्द प्राप्त नहीं होता है, किन्तु जिसके करने में आत्मा

[1] Spontaneous.
[2] Motive.

की प्रेरणा होती है वह अन्त:करण को सुख देती है। तुलसी का रामचरित ऐसी ही क्रिया का परिणाम था।

'स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा'

(४) ऐसी क्रिया जिससे आनन्द की प्राप्ति हो रचनात्मक होती है। बच्चे अथवा वयस्क व्यक्ति अपनी रचनात्मक कल्पना का प्रदर्शन खेल की इस स्वतन्त्र, स्वच्छन्द, सुखद क्रिया में करते हैं। बालक अपनी सीधी-सादी क्रियाओं को रचनात्मक कल्पना के द्वारा बड़े महत्व की बना देता है। यही बात प्रौढ़ व्यक्तियों में पाई जाती है, जिन्होंने स्वच्छन्द और स्वतन्त्र रूप से अपने अन्त:करण को सुख देने के लिये कल्पना के सहारे महत्वपूर्ण कृतियों का निर्माण किया है। ये रचनाएँ खेल ही खेल में[1] की गई थीं।

(५) साधारणत: जब हम बालकों को खेल खेलते देखते हैं तब कह उठते हैं कि वे व्यर्थ ही समय का नाश कर रहे हैं। किन्तु वास्तव में खेल खेलना समय को नष्ट करना नहीं है। खेल में व्यक्ति क्रियाशील होता है। क्रियाशीलता में समय का विनाश नहीं होता। जब बालक भागते, दौड़ते, वस्तुओं की खोज करते, समस्याओं का हल करते, कहानियाँ कहते या सुनते पाये जाते हैं तब उनकी इन्द्रियाँ कार्यशील रहती हैं, इसलिये खेल में वे समय को नाश नहीं करते। समय का सदुपयोग करते हैं।

(६) खेल फिर ऐसी क्रिया है जिसमें व्यक्ति ध्यान और रुचि को उतनी ही गहराई दिखाता है जितना कि अन्य गम्भीर कार्यों में दिखा सकता है। उदाहरण के लिये, बच्चे खेलों में इतने व्यस्त हो जाते हैं कि खेल के सामने सब कुछ भूल जाया करते हैं। यह बात तभी होती है जब कोई क्रिया अत्यन्त रुचिकर एवं ध्यानाकर्षक होती है।

खेल की परिभाषा देते हुए गुलिक[2] ने कहा था "स्वतन्त्रतापूर्वक स्वेच्छा से की हुई कोई भी क्रिया खेल कही जा सकती है।" ऐलिजाबेथ हरलौक[3] ने भी खेल को ऐसी ही क्रिया माना है जिसमें व्यक्ति की स्वेच्छा होती है, जिसे बाध्य नहीं किया जाता। ऐसी क्रिया में आनन्द की प्राप्ति होती है किन्तु उससे किसी प्रकार के प्रतिफल की आशा नहीं की जाती। व्यक्ति खेल खेलता है खेलने के लिये, किसी दूरस्थ उद्देश्य की प्राप्ति के लिये नहीं, खेल की जो व्याख्या ऊपर दी गई है उसमें खेल में तीन महत्वपूर्ण विशेषताओं की ओर संकेत किया गया है—

(अ) स्वतन्त्रता।

(ब) आनन्द।

(स) अन्त प्रेरणा।

रौस ने भी खेल की व्याख्या करते हुए इन तीन बातों पर ही अधिक जोर दिया है।

संक्षेप में, जो रचनात्मक क्रिया अबाध्य रूप से आनन्द की प्राप्ति के लिये आन्तरिक प्रेरणा से स्वतन्त्रतापूर्वक की जाती है उसे हम खेल कहते हैं। इस व्यापक परिभाषा के अनुसार जब एक कलाकार मग्न होकर अपनी कला की रचना करता है अथवा कवि स्वच्छन्दता से कविता करता है तो वह एक प्रकार से क्रीड़ा कर रहा है।

१०.४ क्रीड़ा और कार्य में अन्तर

खेल अथवा क्रीडा के स्वरूप और विशेषताओं का विवेचन कर देने के उपरान्त क्रीडा और

---

1 Spirit of play.

2 Play is what we do when we are free to do what we will
—L. H. Gulick, A Philosophy of Play, New York

3 "Play is such an activity which gives joy without any end resut in veiw: it is an activity which is voluntarily done"
—Elizabeth Hurlock, Child Developmep

कार्य में अन्तर आसानी से समझाया जा सकता है। वैसे तो क्रीड़ा और कार्य में विशेष अन्तर नहीं है। क्रीड़ा ही कार्य में तब तक परिवर्तित होती रहती है जब तक उसमें ऊपर दिये गये तीन विशेष गुण अथवा लक्षण लुप्त हो जाते हैं। तब भी खेल और कार्य में अन्तर समझ लेना जरूरी है। ये भेद निम्नांकित हैं—

(१) खेल का उद्देश्य खेल में ही निहित रहता है, उसका प्रयोजन वही होता है किन्तु प्रत्येक कार्य का कुछ न कुछ उद्देश्य होता है। यह उद्देश्य आर्थिक होता है अथवा किसी अन्य प्रकार का। व्यक्ति धनोपार्जन करने के लिये अथवा समाज में ऊँचा स्थान प्राप्त करने के लिए कार्य करता है किन्तु खेल में इस प्रकार का कोई उद्देश्य नहीं होता।

(२) कार्य को करते समय हमें बाह्य नियन्त्रण अथवा बाहरी दबाव का सामना करना पड़ता है। खेल में आन्तरिक नियन्त्रण के अतिरिक्त कोई नियन्त्रण नहीं होता। खेल में बालक स्वतन्त्रता की अनुभूति करता है किन्तु इस क्रिया को करते समय यदि उसे बाह्य आदर्शों को पालन करना पड़ता है तो यही क्रिया कार्य रूप में परिणित हो जाती है। संगठित खेलों में स्वतन्त्रता की मनोवृत्ति लोप हो जाने से वे कार्य रूप में परिणित हो जाते हैं।

खेल में प्रतिबन्ध होता है लेकिन अन्दरूनी ही होता है। खेल खेलने वाला जब अपने ऊपर विशेष जिम्मेदारी का अनुभव करता है तब उस उत्तरदायित्व को निभाने के लिये उसमें बरते जाने वाले नियमों को अपनी इच्छा से स्वीकार कर लिया करता है।

(३) खेल की क्रिया चूँकि आन्तरिक प्रेरणा के वशीभूत होकर ही की जाती है इसलिये खेलने वाले को आनन्द की प्राप्ति होती है किन्तु कार्य बाहरी दबाव के कारण किया जाता है इसलिये उसके करने से सुख अथवा सन्तोष अवश्य मिल सकता है किन्तु आनन्द नहीं मिल सकता।

(४) खेल खेलने में आनन्द पग-पग पर मिलता रहता है किन्तु काम करने में जो सुख प्राप्त होता है वह उसी समय मिलता है जिस समय काम का उद्देश्य पूरा हो जाता है।

(५) खेल खेलने वाले का ध्यान खेल में ही रहता है और काम करने वाले व्यक्ति का ध्यान काम और उसके परिणाम में बँट जाया करता है।

Q. 2. Examine critically the leading theories of play indicating your own preference

१०·५ खेल के सिद्धान्त

खेल का स्वरूप क्या है इसका तो लगभग सभी विद्वानों का एकमत है किन्तु खेल क्यों खेले जाते हैं? इस प्रश्न का उत्तर भिन्न-भिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न तरीकों से दिया है। खेल के विभिन्न पक्षों की व्याख्या करने के लिए भी मनोवैज्ञानिकों में मतैक्य नहीं है। यही कारण है कि खेल के विषय में कई सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। ये सिद्धान्त और उनके प्रतिपादकों के नाम निम्नलिखित हैं—

(१) अतिरिक्त शक्ति का सिद्धान्त[1]	शिलर-स्पेन्सर
(२) पुनंप्राप्ति का सिद्धान्त[2]	
(३) जीवन की तैयारी का सिद्धान्त[3]	कार्लग्रूस
(४) पुनरावृत्ति अथवा प्रव्यागम का सिद्धान्त[4]	स्टैनले हॉल

---

1 Surplus energy
2 Recreative.
3 Anticipatory.
4 Recapitulatory.

(५) रेचक सिद्धान्त[1]	अरस्तू
(६) मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त[2]	फ्रायड
(७) 'खेल ही जीवन है'[3]	ड्यूई
(८) मूल प्रवृत्यात्मक सिद्धान्त[4]	मैंक्डूगल
(९) सामाजिक विकास का सिद्धान्त[5]	पियाजे
(१०) क्षति-पूर्ति व्यवहार सिद्धान्त[6]	

अतिरिक्त शक्ति का सिद्धान्त

खेल आवश्यकता से अधिक शक्ति के प्रयोग का साधन है। अतिरिक्त शक्ति से शिलर का प्रयोजन उस शक्ति से है जो जीवन व्यवसाय में खर्च होने से बच रहती है। पशुओं और शिशुओं को भोजन प्राप्त करने के लिए अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता इसलिये उनमें बहुत-सी अतिरिक्त शक्ति बच जाती है। इस शक्ति का व्यय करने के लिये प्रकृति ने उन्हें खेलने की प्रवृत्ति प्रदान की है। जिस प्रकार सेफ्टी वाल्व द्वारा इंजन से आवश्यकता से अधिक इकट्ठी हुई भाप (शक्ति) इंजन की रक्षा के लिए बाहर निकाल दी जाती है उसी प्रकार बालक में जीवन शक्ति का संचय आवश्यकता से अधिक जब हो जाता है तब खेल के माध्यम से यह प्रबुद्ध शक्ति व्यय कर दी जाती है। बच्चों में इतनी अधिक शक्ति संचित होने का कारण यही है कि उन्हें व्यस्कों की तुलना मे स्वयं कोई कार्य नहीं करना पड़ता। फलत: उनकी अधिकांश शक्ति बची रहती है। उस शक्ति को बाहर निकालने के लिये वे वयस्कों की अपेक्षा अधिक खेल खेलते हैं। स्पेन्सर महोदय के विचार से बच्चों के खेलों की कोई अन्य उपयोगिता अथवा प्रयोजन नहीं होता।

इसमें कोई संदेह नहीं कि कुछ सीमा तक यह खेल का सिद्धान्त ठीक है किन्तु खेल के लिये इतनी व्याख्या ही पर्याप्त नहीं है। बालक की इंजन से उपमा नहीं दी जा सकती। इंजन जिस समय अतिरिक्त भाप को छोड़ देता है उस समय उसकी आकृति अथवा क्रियाओं में कोई वृद्धि अथवा विकास नहीं होता किन्तु जिस समय बालक खेल खेलता है उसका शारीरिक विकास और वृद्धि सम्भव होता है। सेफ्टी वाल्व द्वारा जो भाप छोड़ दी जाती है उसकी इंजन के लिये कोई उपयोगिता नहीं होती किन्तु खेल के माध्यम से जो अतिरिक्त शक्ति बालक बाहर निकाल देता है उससे उसके शरीर और मन दोनों को लाभ होता है। इसके अतिरिक्त इस सिद्धान्त के विरोध में यह तर्क उपस्थित किया जाता है कि बालक उसी समय खेल नहीं खेलता जब वह शक्ति के आधिक्य का अनुभव करता है वह उस समय भी खेल खेलता है जब अन्य कारणों से थके हुये होने से उसकी शक्ति क्षीण हो जाती है। अस्वस्थ और कमजोर बच्चे क्यों खेलते हैं? प्रबुद्ध शक्ति का यह सिद्धान्त इस बात की व्याख्या नहीं करता। यह सिद्धान्त इस प्रश्न का भी उत्तर नहीं देता कि बच्चे कोई खास खेल ही क्यों खेलते हैं और आयु विशेष में किसी खेल विशेष की ओर ही उनकी रुचि क्यों अधिक होती है, इन बातों से यह सिद्ध होता है कि अतिरिक्त शक्ति का यह सिद्धान्त खेल की व्याख्या पूरी तरह नहीं करता।

विश्राम अथवा शक्ति पुनर्प्राप्ति का सिद्धान्त—स्पेन्सर का कहना था बालक खेल इसलिये खेलता है कि उसमे अतिरिक्त शक्ति की मात्रा का आधिक्य हो जाता है। लेकिन वह पूरी तरह से थका होने पर भी खेलने में अपनी रुचि दिखलाता है। इसका मतलब तो यह है कि खेलने में अतिरिक्त शक्ति व्यय न होने की अपेक्षा शक्ति की वृद्धि और होती है।

---

[1] Cathartic.
[2] Psychonalytic
[3] Play is life.
[4] Instinctive
[5] Social Development.
[6] Compensatory behaviour.

विश्राम अथवा शक्ति की पुनः प्राप्ति के सिद्धान्त के अनुसार जब व्यक्ति थक जाता है तो क्षीण हुई शक्ति फिर से खेल के द्वारा प्राप्त हो जाती है। जब बालक अथवा प्रौढ़ व्यक्ति परिश्रम का कार्य करते करते थक जाते हैं तब क्रीड़ा ही उनको आनन्ददायक होती है। जीवन-संघर्ष में व्यक्ति जीवन की परेशानियों को कुछ समय को भूल जाना चाहता है इसलिये वह खेल खेलना चाहता है क्योंकि खेल उसके मनोरंजन का साधन बन जाता है, खेल के माध्यम से बालकों [illegible] है कि परिश्रम कर लेने के [illegible] अधिक अवसर मिलता है

इस सिद्धान्त में कुछ सत्य अवश्य है क्योंकि वह प्रौढ़ व्यक्तियों के खेलों की व्याख्या करता है। यह सिद्धान्त उन लोगों के खेलों पर लागू हो सकता है जो दिनभर परिश्रम से पीड़ित होकर मनोरंजन के लिए खेल खेलते हैं किन्तु शिशुओं की क्रीड़ाओं को जीवन की कठिनाइयों से बचने का साधन नहीं माना जा सकता। विश्राम के इस सिद्धान्त से यह पता नहीं चल पाता कि थका हुआ होने पर भी बालक खेल में इतना क्यों लगा रहता है। खेल की वैयक्तिक विभिन्नता का भी अनुमान इस सिद्धान्त से नहीं लगता। यह सिद्धान्त केवल इस बात की व्याख्या करता है कि कार्यभार से थक जाने वाले व्यक्ति खेल को खेला करते हैं।

जीवन की तैयारी का सिद्धान्त—क्रीड़ा बालक को जीवन के गम्भीर कार्य के लिये तैयार करने का स्वाभाविक साधन है। बालक अपनी खेल की क्रिया में वही काम करता है जो बड़ा होकर वह करेगा। बालकों का डंडे की घुड़ सवारी करना, बालिकाओं का मिट्टी के घर बनाना, गुड़ियों से खेलना आदि ऐसी क्रियाएँ हैं जिनमें उनके जीवन की तैयारी के प्रयत्न छिपे हुए हैं। कुछ महान् व्यक्तियों की जीवनियों का अध्ययन करने से पता चलता है कि बचपन में उन्होंने अपने खेलों में जो क्रियाएँ की थी उन्हीं क्रियाओं में आगे चलकर उनको दक्षता प्राप्त हुई। फ्लोरेंस नाइटेंगिल का बचपन में पीड़ितों की परिचर्या करना, न्यूटन का औजार बनाना, रानी लक्ष्मी बाई का घुड़ सवारी करना, आदि कुछ ऐसे ही व्यक्तियों के उदाहरण हैं जो सिद्ध करते हैं कि बालक और बालिकाएँ अपने बाल्य-काल में जो खेल खेलती हैं उनमें उनके भावी जीवन की तैयारी के प्रयत्न छिपे हुए हैं।

कार्लग्रूस का कहना है और यह वैज्ञानिक सत्य भी है कि जो प्राणी अपने जीवन का जितना ही अधिक समय खेल में व्यतीत करते हैं वे उतना ही अधिक सीखते हैं। मनुष्य को चूंकि बहुत कुछ सीखना होता है इसलिये उसका क्रीड़ा काल भी अन्य पशुओं की अपेक्षा अधिक होता है। जिस प्राणी का खेल का समय जितना ही अधिक लम्बा होता है उसकी शारीरिक और मानसिक शक्तियाँ उतनी ही परिपक्व हो जाती हैं। जिस प्राणी के जीवन की जिम्मेदारियाँ जितनी अधिक होती हैं प्रकृति उसे खेल खेलने का उतना ही अधिक अवसर देती है। जिस जाति के प्राणी जितने ही अधिक समय तक खेलते रहते हैं वे प्राणी जीवन की जिम्मेदारियों को निभाने के लिये उतने ही अधिक तैयार हो जाते हैं। उदाहरण के लिये, निम्न कोटि के जानवर अथवा कीट-पतंगों के बच्चों को खेलने का समय कम होता है वे जन्म लेने के कुछ समय बाद ही जीवन संग्राम में उतर आते हैं किन्तु मानव शिशु को कई वर्षों तक खेल खेलने की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि यदि वह ऐसा न करे तो जीवन संघर्ष के लिये उचित रूप से तैयार न हो सकेगा। मनुष्य जाति में भी यह देखा जाता है कि सभ्य जातियों के बालक अपने बचपन और किशोरावस्था के कई वर्ष खेल खेलने में व्यतीत करते हैं और असभ्य जातियों के बालक थोड़े समय तक खेलों में व्यस्त रहने के बाद जीवन की समस्याओं को सुलझाने में लग जाते हैं।

कार्लग्रूस का यह सिद्धान्त यह तो बताता है कि हम अनेक प्रकार के खेल क्यों खेलते हैं। वह यह भी बताता है कि किस प्रकार भिन्न-भिन्न प्रकार के खेल बालक के विकास में किस प्रकार सहायक होते हैं किन्तु यह सिद्धान्त यह नहीं बताता कि बालक खेल खेलते क्यों हैं? यह भी देखा जाता है कि आधुनिक सभ्यता में बच्चों के खेलों तथा वयस्क जीवन में की जाने वाली क्रियाओं में

अनुरूपता नहीं होती। बहुत-से बालक ऐसे भी खेल खेलते पाये जाते हैं जिनका वयस्क जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं होता। इस प्रकार खेल का यह सिद्धान्त भी खेल की सन्तोषप्रद व्याख्या करने में असमर्थ प्रतीत होता है। किन्तु जीवन संग्राम की तैयारी का यह सिद्धान्त एक महत्वपूर्ण शिक्षा सिद्धान्त की ओर संकेत करता है। वह सिद्धान्त यह है कि बालक के खेल में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न किया जाय। क्योंकि खेल से वह अपने विभिन्न अंगों और अवयवों पर अधिकार प्राप्त करता है, खेल से ही उसका शारीरिक और मानसिक विकास होता है अतः खेल-खेल में उसकी मनोवैज्ञानिक ढग से सहायता करनी चाहिये क्योंकि खेल द्वारा वे कई तरह की ऐसी बातें सीख लेते हैं जिनसे उनको अपने जीवन में काफी सहायता मिलती है।

कार्लग्रूस की खेल की व्याख्या विकासवाद के दृष्टिकोण से भी अपर्याप्त प्रतीत होती है। विकासवाद के अनुसार मनुष्य प्रकृति के विकास की अन्तिम सीढ़ी है अत. उसके जीवन मे मनुष्य को प्रौढ़ावस्था प्राप्त होने से पूर्व सब अवस्थाओं की पुनरावृत्ति करनी पड़ती है। कार्लग्रूस का सिद्धान्त शैशवावस्था की कुछ क्रीड़ाओं की व्याख्या करता है और प्रौढ़ एवं युवकों की क्रीड़ाओं को छोड़ देता है, वह केवल इसीलिये छोड़ देता है कि कार्लग्रूस ने खेल को विकासवाद के दृष्टिकोण से नहीं देखा था। यह काम किया गया स्टैनले हाल द्वारा।

पुनरावृत्ति का सिद्धान्त

स्टैनले हाल का कहना है कि बालक अपने बचपन के खेलों मे उन सब वृत्तियों का प्रदर्शन करता है जो कि उसके पूर्वजों ने अपने जीवन काल मे कार्यरूप में की हैं। सभ्यता के विकास में अनादिकाल से लेकर अब तक जितने भी अनुभव मानव जाति ने प्राप्त किये हैं बालक उन सब अनुभवों की पुनरावृत्ति खेलों में किया करता है। आखेट करना, मछली पकड़ना, पत्थर फेंकना आदि कुछ ऐसी क्रियाएँ हैं जिसका सम्बन्ध आदि पुरुषों से था। असभ्य मानव की बहुत-सी क्रियाएँ प्रदर्शित करने में आधुनिक बालक प्रवृत्त रहता है। बर्बर जातियों की अनेक क्रियाएँ उसके खेलों में दिखाई देती हैं।

स्टैनले हॉल के मतानुसार खेल वह साधन है जिसके द्वारा बालकों की पाशविक प्रवृत्ति की बुराइयाँ नष्ट हो जाती हैं और वे ऐसा रूप धारण कर लेती हैं जिनसे मानव जीवन पूर्णता को प्राप्त करता है। खेल के द्वारा अनैतिक मानसिक प्रवृत्तियाँ नैतिक बन जाती हैं। इस प्रकार खेलों के द्वारा बालक का चरित्र विकसित होता है।

पुनरावृत्ति के इस सिद्धान्त से यद्यपि कई प्रकार के खेलों की व्याख्या हो जाती है किन्तु अन्य सिद्धान्तों की तरह यह सिद्धान्त भी संतोषप्रद नहीं है, क्योंकि वह सब खेलों की व्याख्या नहीं कर पाता।

रेचक-सिद्धान्त

जिस प्रकार किसी रेचक के प्रयोग करने से शरीर का मल बाहर निकल जाया करता है उसी प्रकार खेल के माध्यम से मनुष्य की बहुत-सी प्रवृत्तियाँ प्रकाशित हो जाती हैं।

अन्ना फ्राइड और एम क्लीन (M. Klein)

(६) मनोविश्लेषणवादी सिद्धान्त (Psychoanalytic theory of Play)—मनोविश्लेषणवादी कहते हैं कि बालक मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों एवं अतृप्त इच्छाओं की अभिव्यक्ति के लिए खेल खेलते हैं। माता-पिता और गुरुजन के साथ बालकों का जैसा संवेगात्मक सम्बन्ध होता है उसकी अभिव्यक्ति खेल मे ही होती है। यदि यह सम्बन्ध सन्तोषप्रदत्त हुआ तो मानसिक अन्तर्द्वन्द्व पैदा होने पर वे खेलते-खेलते किसी वस्तु को माता-पिता अथवा गुरु का प्रतीक मानकर उसे तोड़ने की चेष्टा करते हैं। अचेतन रूप में इस प्रकार अपने से पूर्वजों के प्रति घृणा और अनादर की अभिव्यक्ति करते हैं। चित्रों के द्वारा भी इस प्रकार की दमनित इच्छाओं की सन्तुष्टि पाने की चेष्टा करते हुए बालकों को देखा गया है। कुछ खेलों में और कुछ बच्चों के खेलों में ही मानसिक अन्तर्-

द्वन्द्वों, मानसिक संघर्षों एवं मानसिक चिन्ताओं की अभिव्यक्ति देखी गई है। सभी बच्चों के खेल में यह बात दृष्टिगोचर नहीं होती।

(७) खेल ही जीवन है—डीवी (Dewy) का कहना है कि आन्तरिक उत्तेजना के कारण प्राणी अनवरत सक्रियता की स्थिति मे रहता है वस्तुत. क्रिया ही जीवन का सार है। डीवी का यह सिद्धान्त सभी अन्य सिद्धान्तो की अपेक्षा अधिक सन्तोषजनक प्रतीत होता है क्योंकि वह यह बतलाता है कि बच्चे क्यों खेल खेलते हैं। खेल बच्चों की स्वाभाविक क्रिया है जिसमे उन्हें आनन्द मिलता है और जिसके बिना उनका जीवन दूभर और नीरस हो सकता है। व्यापक होने के कारण डीवी का खेल सम्बन्धी यह सिद्धान्त सर्वमान्य है।

(८) खेल का मूल प्रवृत्यात्मक सिद्धान्त (Instinctive theory of Play)—मैग्डूगल ने खेल को जन्मजात प्रवृत्ति माना है। उनके मतानुसार उचित समय के पहले ही सहज प्रवृत्तियों के परिपक्व होने के कारण बच्चे खेलते हैं, जब ये मूल प्रवृत्तियाँ परिपक्व हो जाती हैं तब दूसरी उपयोगी क्रियाओं के लिए उनकी आवश्यकता होती है किन्तु इनके असमय परिपक्व हो जाने के कारण ही उनकी अभिव्यक्ति खेलने की क्रिया मे होती है। मैग्डूगल का यह सिद्धान्त भिन्न-भिन्न प्रकार के खेलने की समुचित व्याख्या नहीं कर सकता और आजकल जन्मजात प्रवृत्ति के सिद्धान्त पर भी अधिक जोर नहीं दिया जाता अतः यह सिद्धान्त अमान्य प्रतीत होता है।

(९) सामाजिकता—विकास सिद्धान्त—पियाजे तथा उसके अनुयायियों का कहना है कि खेलों के माध्यम से बच्चों का सामाजिक विकास होता है क्योंकि खेलों में भाग लेकर विभिन्न सामाजिक परिस्थितियों में अनुकूलन स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं। खेल की चार अवस्थाएँ होती हैं—पहली वह जबकि बालक आत्मकेन्द्रित होता है और अपने आप ही में सीमित होकर व्यक्तिगत खेलों मे लीन रहता है। दूसरी वह जब वह अपने दो-एक साथियों के साथ समायोजन स्थापित करने का प्रयत्न करता है। तीसरी अवस्था वह है जब ५-६ वर्ष का होने पर बालक अपने समूह में घुल-मिल जाता है। चौथी अवस्था में उसका सामाजिक विकास पूर्ण हो जाता है और उसके सभी खेल सामाजिक नियमों और परम्पराओं से निर्देशित होते हैं। इस प्रकार भिन्न-भिन्न खेल बालक के सामाजिक विकास में सहायक होते हैं। पियाजे का यह सिद्धान्त यह बात अच्छी तरह व्यक्त करता है कि बच्चे भिन्न-भिन्न खेलों को खेलते हैं।

१०·६ खेलो के प्रकार

Q. 3. What different kinds of play do children play? What are them characteristics?

खेलों को दो भागों में बाँटा जाता है—वैयक्तिक तथा सामूहिक। वैयक्तिक खेल दो प्रकार के होते हैं—शरीर सम्बन्धी और विषय सम्बन्धी। इसी प्रकार सामूहिक खेल भी दो प्रकार के होते हैं—अनुकरणात्मक और अनुकूलात्मक (adjustive)।

शरीर सम्बन्धी वैयक्तिक खेलों में रेंगना, खड़ा होना और चलना आदि क्रियाएँ शामिल की जाती हैं, ये खेल आठ महीने की आयु से २ वर्ष की आयु तक खेले जाते हैं। २ वर्ष की आयु के बाद बालक विषय सम्बन्धी खेलों में भाग लेता है। वह खिलौनों और निकटवर्ती वस्तुओं से खेलता हुआ उन्हें तोड़ता-फोड़ता और बनाता-बिगाड़ता है। खिलौनों को तोड़कर उनकी आन्तरिक बनावट को समझने का प्रयत्न करता है, उनको फिर से जोड़कर रचनात्मक प्रवृत्ति तथा आविष्कारात्मक कल्पना की वृद्धि करता है।

जब बालक ६ वर्ष का हो जाता है तब वह समूह में दिलचस्पी लेने लगता है। अतः उसके खेल अब सामूहिक बन जाते हैं। बड़ा होकर हाकी, फुटबाल जैसी सामूहिक क्रियाओं में भाग लेता है। इन क्रियाओं में कुछ तो ऐसी हैं जिनमें वह दूसरों का अनुकरण-मात्र करता है और कुछ ऐसी हैं जिनके अनुकूल वह अपने को बनाने का प्रयत्न करता रहता है।

कार्वयुस ने खेलों का विभाजन अपने सिद्धान्त के अनुसार किया है। उसके अनुसार खेल पाँच प्रकार के होते हैं—

(१) प्रयोगात्मक (Experimental)
(२) गतिशील (Movement)
(३) संघर्षात्मक (Conflucting)
(४) रचनात्मक (Constructive)
(५) मानसिक (Mental)

प्रयोगात्मक खेलों में बालक उत्सुकतावश सामने रखी हुई वस्तुओं को तोड़ता-फोड़ता है और चीजों को इधर-उधर रखकर या उन्हें तोड़-फोड़कर अपनी शक्ति को जानने का प्रयोग करता है। गतिशील खेलों मे वह इधर-उधर दौड़ता, नीचे-ऊपर आता-जाता तथा अन्य प्रकार की शारीरिक क्रियाएँ करता है जिससे उसके शरीर के अंग पुष्ट होते हैं। संघर्षात्मक खेलों में वह अपने साथियो के साथ प्रतिस्पर्द्धा का भाव प्रकट करता है। शतरंज, कबड्डी आदि में वह उनको पछाड़ने का प्रयत्न करता है। रचनात्मक खेलों में वह किसी प्रकार की वस्तु का निर्माण करता है। मिट्टी का घरोंदा तैयार करना, कागज की टोपी, नाव और खिलौने बनाना आदि क्रियाएँ रचनात्मक खेलों के उदाहरण मानी जा सकती हैं। इन क्रियाओं में वह दूसरों का अनुकरण करता है बाद मे अपनी बुद्धि के सहारे उनमें मौलिकता लाने का प्रयत्न करता है। मानसिक खेलों में शारीरिक क्रियाओ की इतनी आवश्यकता नहीं होती जितनी की बुद्धि और चिन्तन की पड़ती है। शब्द निर्माण करना, पहेलियो के उत्तर निकालना ऐसी ही मानसिक क्रियाएँ मानसिक खेलों की कोटि मे रखी जाती हैं।

१०७ बच्चों के खेल की विशेषताएँ

बच्चों के खेल में अपनी विशेषताएँ होती हैं। वयस्कों के खेल में विशेष बातें नहीं रहती क्योंकि उनके खेलने मे परिपक्वता के साथ सगठन आ जाता है। हरलॉक ने बच्चों के खेलों की विशेषताओं का उल्लेख इस प्रकार किया है—

(१) आरम्भ में बच्चों में केवल शारीरिक अवयवों की अनियमित गतियाँ होती हैं। तत्पश्चात परिपक्वीकरण के फलस्वरूप ये गतियाँ जटिल होती जाती हैं, क्रमश. नये-नये खेलों के प्रति रुचि बढ़ती जाती है। पहले वे ऐसे खेल पसन्द करते हैं जिनमें अधिक दौड़-धूप करनी पड़े तत्पश्चात नियमबद्ध खेलों की ओर आकृष्ट होते हैं। सांस्कृतिक मनोरंजन के प्रति रुचि का विकास काफी बाद मे होता है।

(२) आयु वृद्धि के साथ-साथ उनके खेलों की संख्या में कमी होती जाती है। ४-६ वर्ष की आयु मे खेलो की संख्या बहुत कम, ७-९ वर्ष की आयु में खेलों की संख्या बहुत अधिक और १०-१२ वर्ष की आयु में संख्या मे पुन कमी आने लगती है। १० वर्ष की आयु के बाद खेलों की संख्या मे कमी होने का कारण यह है कि अब बालक अपनी रुचि और योग्यता के अनुकूल किसी एक-दो खेल मे अधिक देर तक सलग्न रह सकता है।

(३) आयु की वृद्धि के साथ बालक पहले की अपेक्षा खेलों मे कम समय लगाते हैं। कम आयु के बालक हमेशा खेलते ही रहते हैं। जब वे पाठशाला जाना आरम्भ करते हैं तब वहाँ अध्ययन में अधिक समय देना पड़ता है। उन्हें घर का भी कुछ काम-काज करना पड़ता है फलस्वरूप खेल के लिए अवकाश की कमी आ जाती है। अतः वे किसी एक खेल को खेलकर ही सन्तोष और आनन्द प्राप्त कर लिया करते हैं।

बाल्यावस्था के खेल अवधाविधि होते हैं और किशोरावस्था में वे ही यथाविधि रूप धारण कर लेते हैं। बचपन में जहाँ कहीं जो कुछ भी उन्हें मिल जाता है उसी से खेलना आरम्भ कर देते हैं, खेलने के लिए उन्हें किसी प्रकार को तैयारी नहीं करनी पड़ती, खेलने मे यदि उनके कपड़े गन्दे हो जाते हैं तो इसकी उन्हें चिन्ता नही किन्तु बड़े होने पर उनके खेल यथाविधि हो जाते हैं। खेलने की स्वाभाविकता मे पर्याप्त कमी आ जाती है। वे समय विशेष पर ही विशेष पोशाक पहनकर विशेष स्थान मे खेल खेलते हैं। इस प्रकार खेलों में आयु वृद्धि के साथ-साथ औपचारिकता (unformality) मे कमी आती जाती है।

१०·८ खेल द्वारा शिक्षा

Q. 4. What do you mean by the term play-way in education? How have the education utilised the chief chacterctrics of play

Do you agree with the view that play-way in education leads to soft psychology?

खेल वह क्रिया है जो हम अपनी आन्तरिक प्रेरणा से स्वतन्त्रतापूर्वक आनन्द प्राप्ति के लिए करते हैं और जिसके द्वारा हमें आत्माभिव्यक्ति का पूरा-पूरा अवसर मिलता है। शिक्षा में खेल को महत्व देने का श्रेय श्री कुक महोदय[1] को जाता है। उन्होंने साहित्य का शिक्षण प्रक्रिया और वाद-विवाद द्वारा करने का आदेश दिया था। अभिनय एक प्रकार का खेल है। अभिनय द्वारा शिक्षा ही खेल द्वारा शिक्षा मानी जा सकती है। खेल द्वारा शिक्षा की रीति[2] (प्ले वे) का प्रयोग अब इतना व्यापक और विस्तृत होगया है कि किसी भी कार्य अथवा विषय को सीखने के लिये उसका सम्बन्ध रुचिकर वस्तुओं और क्रियाओं से स्थापित किया जाता है।

संसार के सभी देशों ने शिक्षा में खेल के महत्व को स्वीकार कर लिया है और शिक्षा की सभी प्रणालियाँ खेल द्वारा शिक्षा के सिद्धान्त पर बल देने लगी हैं क्योंकि खेल बालक की नैसर्गिक प्रवृत्ति है। इसलिये यदि खेल की इस स्वाभाविक प्रवृत्ति को बालक की शिक्षा में उचित स्थान दे दिया जाय तो बालक सहज ही में शिक्षा प्राप्त कर लेता है। इस सिद्धान्त पर फ्रोबेल ने अपनी शिक्षा पद्धति का निर्माण किया है। इसी सिद्धान्त पर मान्टेसरी, डाल्टन, प्रोजेक्ट और बेसिक प्रणालियों को आधारित किया गया है। खेल द्वारा बालक कठिन से कठिन कार्य आनन्द और उत्साहपूर्वक करता रहता है। खेल द्वारा उसकी रुचि को प्रोत्साहित करके अध्यापक उसे किसी भी तरह के कार्य करने के लिये उत्तेजित कर सकता है।

शिक्षा का उद्देश्य है—बालक का सम्पूर्ण विकास। खेल ही ऐसी क्रिया है जिससे बालक का सम्पूर्ण विकास सम्भव है। खेल द्वारा उसका शारीरिक, मानसिक, सांवेगिक, चारित्रिक विकास किस प्रकार होता है इसका उल्लेख अनुच्छेद ६·२ में किया जा चुका है। जो शिक्षा योजना खेल की व्यवस्था नहीं करती वह बालक के शारीरिक और मानसिक विकास में अड़चन डालती है[3]। इसलिये सभी शिक्षा-विशारद खेल के शिक्षात्मक मूल्य को स्वीकार करते हैं।

खेल द्वारा शिक्षा को मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित होने के कारण इतनी अधिक मान्यता दी जाती है। खेल खेल ही में की गई सभी क्रियाएँ बालक को रुचिकर प्रतीत होती हैं, जिन क्रियाओं में बालक को रुचि होती है उनकी ओर तो उसका ध्यान स्वतः आकृष्ट हो ही जाता है किन्तु शिक्षण की यह रीति अरुचिकर क्रियाओं को भी रुचिकर बना देती है।

दूसरे खेल में बालक अपनी स्वाभाविक गति से कार्य करता है, क्योंकि उसे अपने कार्य को सम्पादित करने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। स्वतन्त्रता का यह सिद्धान्त शिक्षा की उन आलोचक एवं नीरस पद्धतियों का विरोध करता है जो बालक को निष्क्रिय बना कर अध्यापक की बातों को शान्तिपूर्वक सुनने के लिये बाध्य कर देती हैं। खेल में बालक अपने उत्तरदायित्व को समझता और उसे निभाने का प्रयास करता है। खेल में की गई क्रिया के अच्छे और बुरे परिणामों के लिये वह अपने को जिम्मेदार समझता है। इस प्रकार खेल द्वारा शिक्षा रुचि, स्वतन्त्रता और उत्तरदायित्व के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित रहती है।

---

1 Henry Coldwell Cook.

2 Play way.

3 "Play is the child's characteristics mode of behaviour and any system of education which hampess the natural direction for the expanding of energy endangers the health, mental and physical of the child." —*Griffith*,

खेल खेल नहीं है वरन् बालकों को अनुशासित करने सिखाने की सर्वोत्तम विधि है। कुछ शिक्षाशास्त्रियों के विचार से खेल केवल मनोरंजन का साधन है। मनोरंजन के कार्यों में गम्भीरता नहीं होती इसलिये खेलों को शिक्षा में स्थान नहीं देना चाहिये। इस मत के विरुद्ध में कुछ महोदय का कहना है कि खेल द्वारा शिक्षा देने से शिक्षा को अधिक मनोरंजक बनाया जा सकता है। यदि हमें विद्यालय को आकर्षक और शिक्षा-कार्य को मनोरंजक बनाना है तो फ्रोबेल के कथनानुसार विद्यालय को ऐसा स्थान बनाना होगा जहाँ पर बालक उस रुचि और उत्साह के साथ आने की इच्छा प्रकट करें जिस रुचि और उत्साह के साथ वे खेल के मैदान में प्रायः जाया करते हैं।

एक ही काम बालक के लिये मनोरंजक हो सकता है और अमनोरंजक भी, किन्तु खेल में जो कार्य किया जाता है वह स्वयं मनोरंजक बन जाता है। अतः यदि शिक्षा को वास्तव में रुचिकर और मनोरंजक बनाना है तो उसे हमें खेल ही खेल में देने का प्रयत्न करना चाहिये। कार्य की मनोरंजकता अथवा अमनोरंजकता कार्य करने वाले की मन स्थिति पर निर्भर रहती है, इसलिये विद्यालय में बालक की मन स्थिति ऐसी बना दी जाती है कि जिस विषय को भी वह पढ़े आनन्द के साथ पढ़े, जिस किसी भी कार्य को करे उस उत्साह और रुचि के साथ करे जिस उत्साह और रुचि से वह किसी खेल में भाग लेता है।

खेल रचनात्मक क्रिया है—इसमें रचनात्मक प्रवृत्ति की प्रबलता दिखाई देती है। बालक जब किसी नई वस्तु का निर्माण कर लेता है तब उसको अपूर्व आनन्द की अनुभूति होती है। इसलिये यदि उसे प्रत्येक पाठ्य विषय इस प्रकार पढ़ाया जाय कि बालक की रचनात्मक प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिल सके तो अमनोरंजक विषय भी मनोरंजक बन सकते हैं। खेल खेल में बालकों को पढ़ना-लिखना, गणित की समस्याओं को हल करना, इतिहास और भूगोल के कठिन पाठों को याद कराना आदि आधुनिक शिक्षा का लक्ष्य बन गया है। आधुनिक शिक्षाशास्त्री अब एक ऐसी सार्वभौमिक पाठन विधि के निर्माण में लगा हुआ है जिसका अनुगमन करके सब विषय सब तरह के विद्यार्थियों को पढ़ाये जा सकें। आधुनिक शिक्षक शिक्षा में खेल को महत्व देने वाली जिन पद्धतियों का प्रयोग कर रहा है उनमें से कुछ अगले अध्याय में दी गयी हैं।

अध्याय ११

अन्य सामान्य मूल प्रवृत्तियाँ—अनुकरण, निर्देश और सहानुभूति

११.१ मनुष्य के जन्मजात संस्कारों में मूल-प्रवृत्तियों के अतिरिक्त कुछ और जन्मजात प्रवृत्तियाँ होती हैं जिनको मनोवैज्ञानिक सामान्य जन्मजात प्रवृत्तियाँ कहते हैं। इन जन्म जात प्रवृत्तियों में से 'खेल' की सामान्य प्रवृत्ति की विवेचना पिछले अध्याय में की जा चुकी है। प्रस्तुत अध्याय में अनुकरण, निर्देश और सहानुभूति का अध्ययन किया जायगा। वस्तुत: निर्देश और सहानुभूति अनुकरण की सामान्य प्रवृत्ति के ही भिन्न-भिन्न रूप हैं। जब व्यक्ति दूसरों की क्रिया का अनुकरण करता है, तब हम कहा करते हैं कि उसकी अनुकरण की प्रवृत्ति कार्य कर रही है। जब व्यक्ति दूसरों के विचारों का अनुकरण करता है तब हम कहते हैं वह उससे निर्देश ले रहा है और जब उनके भावों का अनुकरण करता है तब हम कहते हैं कि वह सहानुभूति का प्रदर्शन कर रहा है। इस प्रकार बालक के विकास में तीनों प्रकार के अनुकरणों को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। इस अध्याय में इन तीनों प्रकार की स्वाभाविक सामान्य प्रवृत्तियों का स्वरूप और उनकी शिक्षा में उपयोगिता का वर्णन किया जायगा।

११.२ अनुकरण की सामान्य प्रवृत्ति का स्वरूप

Q. 1. What is imitation ? Explain how is the tendency utilised in a good scheme of education without destroying the originality of the mind of the child ? Or throw some light on imitation and invention and their place in education

परिभाषा—अनुकरण का साधारण अर्थ है—नकल करना। नकल करने की यह प्रवृत्ति प्राय: सभी प्राणियों में पाई जाती है। यद्यपि चतुर पशु दूसरों की नकल करते हैं फिर भी अनुकरण की प्रवृत्ति मानवीय प्रवृत्ति मानी जाती है। सभी व्यक्ति जाने और अनजाने दूसरों की क्रियाओं का अनुकरण करते हैं। अनुकरण करने की क्रिया शैशवावस्था और बाल्यावस्था में ही विशेष रूप से दिखाई देती है। छोटा-सा बच्चा बोलना, चलना, कपड़े पहनना, आदि क्रियाएँ अपने परिवार के अन्य सदस्यों से अनुकरण करके सीखता है। इस समय वह दूसरों का अनुकरण जान-बूझकर नहीं करता। यद्यपि शैशवावस्था से ही वह नकल करना आरम्भ कर देता है फिर भी बाल्यावस्था प्राप्त होने पर भी उसका अनुकरण अस्पष्ट और अनायास ही होता है। आगे चलकर कुछ अनुकरणात्मक क्रियाएँ साभिप्राय और चेतन रूप ग्रहण कर लेती हैं। इस प्रकार दूसरे व्यक्तियों की क्रियाओं का चेतन और अचेतन स्तर पर नकल करना अनुकरण कहलाता है।

अनुकरण के रूप—यह अनुकरण खेल की तरह बालक के विकास की अवस्थाओं के अनुसार निम्नलिखित रूप ग्रहण करता है—

(१) सहज[1]
(२) स्वच्छन्द[2]

---

1 Reflex.
2 Spontaneous.

समझकर उसके दोषों का भी अनुकरण कर लेता है। इस प्रकार के अनुकरण में मानसिक गुलामी के लक्षण पाये जाते हैं। दूसरे प्रकार के साभिप्राय अनुकरण मे विवेक का अंश रहने के कारण व्यक्ति अपने आदर्श के गुणों का ही अनुकरण करता है।

अनभिप्रेत[1] अनुकरण में व्यक्ति किसी के व्यवहार की नकल करना तो नहीं चाहता लेकिन तब भी नकल कर लिया करता है। अज्ञात अनुकरण करने वाले को यह पता नहीं होता कि वह दूसरों का अनुकरण कर रहा है। कोई व्यक्ति जब दूसरों को हँसता हुआ देखकर हँसने लगता है तब उसको हँसी आने का कोई कारण नहीं होता। वह जिन लोगों के बीच मे रहता है उनकी चेष्टाओं एवं उनकी क्रियाओं का अनुकरण कर लेता है। जब ऐसा कर लेने पर उसका ध्यान उस अनुकरण की हुई बात की ओर आकर्षित कर लिया जाता है तब उसको चेतना होती है कि उसने अज्ञानतावश ही ऐसा किया है।

अनुकरण का स्वभाव पूरी तरह समझने के लिये उसके नियमों की व्याख्या की जानी चाहिये। ये नियम निम्नलिखित हैं—

अनुकरण के नियम

(१) अनुकरण की क्रिया ऊपर से नीचे की ओर होती है। जो लोग बल, विद्या, आयु और अनुभव मे हमसे बढ़े-चढ़े होते हैं हम प्रायः उन्हीं का अनुकरण करते हैं। शिक्षक जिस प्रकार की भाषा बोलता है, शब्दों का जैसा उच्चारण करता है, जिस प्रकार के हाव-भावों का प्रदर्शन करता है ठीक वैसे ही बातें उसके शिष्यों में पाई जाती हैं। इसलिये यदि अध्यापक चाहता है कि बालक अनुकरण द्वारा कोई बात सीख ले तो उसे अपने व्यवहार को अनुकरणीय बनाना होगा। यदि हम बालकों में ठीक समय पर काम करने, स्वच्छता से रहने, नम्रतापूर्वक बात करने आदि सदाचरणों की आदतें डालना चाहते हैं तो इन बातों का हमको स्वयं आदर्श बनना होगा।

(२) अनुकरण की क्रिया भीतर से बाहर की ओर होती है। जब कोई मनुष्य दूसरे मनुष्य का अनुकरण करता है तो यकायक वह ऐसा नहीं कर लेता। पहले उसके मन में संस्कार पड़ते हैं। बाद में वही संस्कार क्रियाओं द्वारा प्रकाशित होते हैं। अनुकरण के अनुसार किसी काम को करना काफी प्रयत्नों के बाद आता है। अध्यापक को इस नियम पर विशेष ध्यान देना होगा। यदि वह चाहता है कि उसके बालक शब्दों का उच्चारण, लिखना, पढ़ना और अनेक प्रकार की क्रियाएँ, कलाएँ और दस्तकारियाँ अनुकरण द्वारा सीख लें तो उसे उनके मन पर पहले संस्कार पक्के करने होंगे।

(३) अनुकरण संक्रामक होता है। यदि किसी बालक में कोई बुराई आ जाती है तो वह संक्रामक रोग की तरह कक्षा के सभी बालकों मे फैल जाती है। अन्य बालक अनभिप्रेत अनुकरण के माध्यम से स्वतः सीख लेते हैं। यदि अध्यापक यह चाहता है कि उसके छात्र अनुशासन मे रहें तो उसे अनुशासन भंग करने वाले किसी भी बालक के व्यवहार की अवहेलना नहीं करनी है। अनुशासन भंग करने वाले बालक के साथ पूर्ण मनोवैज्ञानिक तरीके से व्यवहार करके अनुशासनहीनता के लक्षणों को दूर करना होगा।

११.३ बालक की शिक्षा में अनुकरण का स्थान

बालक बहुत-सी जीवनोपयोगी बातें अनुकरण से सीखता है। शिक्षार्थी में अनुकरण की प्रक्रिया बहुत ही अचेतन ढंग से होती रहती है। अध्यापकों के बोल-चाल के ढंग, उनकी चाल-ढाल, उनके आदर्श और विचार धीरे-धीरे बालकों तक पहुँचते रहते हैं। बालक विद्यालय के वातावरण से जितना अधिक सीखता है उतना अधिक उन पुस्तकों से नहीं सीखता जिनका पठन-पाठन सचेष्ट होकर करता है।

---

[1] Unintentional.

बालकों के चरित्र-गठन के लिये अनुकरण एक प्रबल साधन बन जाता है। इसीलिये तो अकेला दृष्टान्त सदुपदेश का आधार भी बने तब भी प्रस्तुत किया जा सकता है जिससे बालक चरित्र आदि अच्छी बातों का अनुकरण कर सकें। अनुकरण के विषय में हमने ऊपर से नीचे की ओर जाने वाले नियम का अभी उल्लेख किया था। तात्पर्य है, अनुकरण सदैव ही ऊँचे स्तर से नीचे की ओर बढ़ता है। बालक जिनको अपने से बड़ा समझता है उनके गुणों को आत्मसात् कर लेता है इसलिये विद्यालय में उसके सम्मुख श्रेष्ठ व्यक्तियों के आदर्श प्रस्तुत करके उसके चरित्र का निर्माण किया जा सकता है।

कुछ शिक्षाशास्त्रियों का मत है कि शिक्षा में अनुकरण का कोई स्थान नहीं होना चाहिये क्योंकि अनुकरण बालक की मौलिकता का हनन करता है। किन्तु सत्य कुछ और ही है। संसार के बड़े से बड़े विचारक, कवि, लेखक, कलाकार, इत्यादि दूसरों का अनुकरण करके ही महानता को प्राप्त हुए हैं।[1] उदाहरण के लिये, शेक्सपीयर ने अपने नाटकों की सामग्री अन्य लेखकों के नाटकों से प्राप्त की थी, किन्तु शेक्सपीयर की मौलिकता में किसी प्रकार का हनन इस अनुकरण के कारण नहीं हो सका।

विलियम जेम्स ने मानव जाति की उन्नति में अनुकरण की महत्ता को पूरी तरह से स्वीकार किया है। उनके विचार से अनुकरण और आविष्कार मनुष्य समाज के दो पैर हैं जिन पर यह खड़ी हुई है।[2] हम यह मान सकते हैं कि अनुकरण के बाहुल्य से बालक की अन्वेषणात्मक शक्ति का ह्रास होता है किन्तु रचनात्मक प्रवृत्तियों का विकास अनुकरण पर ही निर्भर है—यह हमारा दृढ़ विश्वास है। रचनात्मक प्रवृत्ति के विकसित होने पर उसमें अन्वेषण की शक्ति स्वयं पैदा हो जाती है। अन्वेषण की शक्ति किसी को जन्म से ही उपलब्ध नहीं होती। न्यूटन अथवा आइन्स्टीन ने भी जो आविष्कार किये हैं उनका आधार भी अनुकरण ही था। संसार के जितने भी अन्य प्रतिभावान् व्यक्ति हुए हैं उन्होंने पहले-पहल दूसरों का ही अनुकरण किया था। बालक भी जैसे-जैसे उम्र में बढ़ता जाता है वैसे-वैसे वह अनुकरण की प्रवृत्ति को छोड़ता जाता है और स्वतन्त्र रूप से सोचना आरम्भ कर देता है। जिन बातों के विषय में वह सोच नहीं पाता उनको अनुकरण से सीख लिया करता है। कला में अथवा अन्यत्र अनुकरण करते-करते उसके विचारों में, चिन्तन में और तर्क में मौलिकता आ जाती है।

अनुकरण के लिये शिक्षा में जितना ही अधिक अवसर दिया जाता है शिक्षार्थी की मौलिकता का उतना ही अधिक विकास होता जाता है।[3]

अनुकरण और आविष्कार की यह व्याख्या शिक्षा में अनुकरण के महत्व को स्थिर करती है। मानव-समाज की उन्नति और रक्षा के लिये अनुकरण और आविष्कार दोनों ही आवश्यक तत्व हैं।

शिक्षा की दृष्टि से अनुकरण का महत्व इसलिये और भी अधिक है कि मनुष्य अपने जीवन में बहुत कुछ अनुकरण की प्रक्रिया द्वारा सीखता है। अनुकरण से सफल सीखने की क्रिया सम्पादित होती है, यह सीखना किस प्रकार स्थानान्तरित होता है। इसका विशद उल्लेख अध्याय १९ में किया जायगा। यहाँ पर इतना कहना पर्याप्त है कि बालक की इस प्रवृत्ति के द्वारा ही

---

1 The most original minds find themselves *only in playing the sedulous ape to others, who have gone before them along the same path of self-assertion.*
—*T. P. Nunn, Education its Data & Principles*

2 Imitation and invention are the two legs on which human race has historically walked.
—*William James Talks to Teachers.*

3 Imitation, first boclogical then reflective, is in fact the first stage in the creation of individuality and the richer the scope for imitation the richer the developed individuality be.
—*T. P. Nunn.*

शिक्षक उसे उन्नति के मार्ग पर ले जा सकता है। बालक में आदर्शानुकरण कर सकने की क्षमता उत्पन्न होते ही उसे सादर्श अनुकरण की विधि से, अन्यथा स्वच्छानुकरण, अभिनयानुकरण और साभिप्रायानुकरण की विधि से उसमें विकास लाया जा सकता है।

११.४ निर्देश[1] का स्वरूप

Q. 2. What is the nature of suggestion? How would you utilise this tendency in the education of the child?

अनुकरण के स्वरूप की व्याख्या करते हुए इस अध्याय के आरम्भ में कहा गया था कि निर्देश अनुकरण का ही एक रूप है। दूसरे की क्रियाओं की नकल को अनुकरण कहा जाता है और दूसरों के विचारों की नकल को निर्देश माना जाता है।

मेग्डूगल[2] के मतानुसार निर्देश आवाहन की एक प्रक्रिया है जिसमे निर्देश लेने वाला व्यक्ति निर्देश देने वाले व्यक्ति के विचारों की ज्यों की त्यों नकल करता है। इस प्रकार वह इच्छा न होते हुए भी अनजाने ही निर्देश देने वाले व्यक्ति के विचारों से प्रभावित हो जाता है। प्रभावित ही नहीं वह उसके विचारों को अपने विचार मान लेता है। इस प्रकार की स्वीकृति मे वह किसी प्रकार के तर्क से काम नहीं लेता। इसके विपरीत निर्देश देने वाला व्यक्ति सोच-समझकर अपनी बातें कहता है और निर्देश देते समय उसकी यह इच्छा रहती है कि उसकी बातें मान ली जायें। निर्देश लेने वाला व्यक्ति यह मानकर चलता है कि जो कुछ विचार वह दूसरों से ग्रहण कर रहा है वे सब उसी के हैं। वह इस बात की कल्पना भी नहीं करता कि वे विचार किसी बाह्य स्रोत से आ रहे हैं अथवा उसके ही हैं।

निर्देश को विशेष प्रकार का उद्दीपन[3] भी माना जा सकता है। निर्देश देने वाले व्यक्ति के हावभाव, चाल-ढाल, आचरण अथवा उसके विचार उद्दीपन का कार्य करते हैं। निर्देश लेने वाला व्यक्ति इन बातों का अनुकरण करता है। वह निर्देश लेने वाले व्यक्ति के शाब्दिक उद्दीपन से प्रभावित होता है। उसके कथन पर पूरा भरोसा करता है। किन्तु वही कथन संसूचन का कार्य करते हैं जिनको निर्देश लेने वाला व्यक्ति बिना सोचे-समझे तर्क की कसौटी पर कसे बिना ही ज्यों की त्यों मान लिया करता है उसकी तार्किक शक्तियाँ विलयित हो जाती हैं। यदि वह जरा भी सोच-विचार में पड़ गया तो संसूचन को वह स्वीकार न करेगा। इस विचार से निर्देश एक ऐसा उद्दीपन है जो मानसिक क्रियाओं से शिथिल कर दिया करता है।

निर्देश लेते समय व्यक्ति का सम्पूर्ण व्यक्तित्व क्रियाशील नहीं होता क्योंकि जब हम किसी के कहने के अनुसार कोई काम कर डालते हैं तब हमें जो पश्चाताप होता है वह इस बात की ओर संकेत करता है कि जिस बात को बिना विचारे मान लिया करते हैं उसे हम पूरे दिल से नहीं मानते। उस स्वीकृति में व्यक्तित्व का थोड़ा-सा भाग ही सम्मिलित रहता है। उदाहरण-स्वरूप किसी वस्तु को खरीदते समय प्रायः हम दुकानदार की बातों को सच्ची मान लेते हैं उस वस्तु के गुण-दोषों का निश्चय अपनी बुद्धि से नहीं करते। यदि हम चाहते हैं कि हमें बाद में पश्चाताप न हो तो थोड़ी देर उस दुकान से हटकर विचार करें तो अवरुद्ध विरोधी विचार हमारे सामने आ जायेंगे और हम वस्तु के गुण और दोषों का पूरा-पूरा निर्णय कर सकेंगे। दुकानदार का निर्देश तब हमारी तार्किक शक्तियों को अवरुद्ध न कर सकेगा।

---

1 Suggestion.

2 Suggestion is a process of communication resulting in acceptance with conviction of the communicated proportion in the absence of logically adequate grounds for its acceptance.
—*Mc Dougall, Introduction to Social Psychology.*

3 Reaction

4 Stimulus.

११.५ निर्देश के प्रकार

निर्देश की शक्ति कई बातों पर निर्भर रहती है। इन बातों को ध्यान में रखकर निर्देश के भेद किये जाते हैं। निर्देश ६ प्रकार के होते हैं—

(अ) प्रत्यक्ष[1] निर्देश
(अ) अप्रत्यक्ष[2] ,,
(इ) आप्त[3] ,,
(ई) आत्म[4] ,,
(उ) विरुद्ध[5] ,,
(ऊ) समूह[6] ,,

प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष निर्देश—अनुच्छेद ८·६ में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष तरीके से नैतिक उपदेश देने का उल्लेख किया गया था। उस सम्बन्ध में संकेत किया गया था कि जो उपदेश प्रत्यक्ष रूप से दिये जाते हैं उनकी ग्राह्यता विशेष नहीं होती। उपदेश एक प्रकार के निर्देश माने जा सकते हैं किन्तु वे प्रत्यक्ष हैं, अप्रत्यक्ष नहीं। अप्रत्यक्ष रूप से दिये गये उपदेशों में क्रियात्मकता होती है। अतः उपदेश मानने वाला स्वतः उनको मान लिया करता है। यही बात निर्देश के विषय में लागू होती है। अप्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत किये गये निर्देश की शक्ति और प्रभावशाली हो जाती है। प्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत किये गये निर्देश अशक्त और प्रायः प्रभावहीन होते हैं। प्रत्यक्ष निर्देशक ध्येय निर्देश लेने वाले के समक्ष स्पष्ट रहता है, निर्देश लेने वाला व्यक्ति उसे अच्छी तरह समझता और जानता है इसलिये प्रत्यक्ष निर्देश अशक्त और प्रभावहीन कहा गया है। अप्रत्यक्ष निर्देश का लक्ष्य गुप्त रहता है इसलिये वह श्रोता के ध्यान को स्वतः आकृष्ट कर लेता है। किन्तु कभी-कभी उसका लक्ष्य गुप्त होने के कारण उसके प्रति व्यक्ति की क्रिया देर से होती है।

आप्त निर्देश—साधारण व्यक्ति की बातें हम मानें या न मानें किन्तु महान कवियों, विद्वानों, आदर्श और प्रतिष्ठित पुरुषों की बातें कहावत और सूक्तियों का रूप ग्रहण कर लेती हैं। इन सूक्तियों को हम ज्यों की त्यों मान लेते हैं और अपने कथनों में अथवा लेखों में उनको उद्धृत करते हैं। इन व्यक्तियों के निर्देशों को हम आप्त निर्देश कहते हैं। क्योंकि आप्त पुरुषों की बातें ज्यों की त्यों ठीक उसी तरह से मान ली जाती हैं जिस तरह रोगी डाक्टर की बात मान लेता है। मन चिकित्सक के उपदेश, अध्यापक की आज्ञा, मातापिता के उपदेश, आप्त निर्देश के रूप में स्वीकार किये जाते हैं। यह निर्देश निर्देश लेने वाले को सदैव लाभदायक होता है। निर्देश देने वाले का उद्देश्य भी यही रहता है कि निर्देश लेने वाले व्यक्ति का हित हो अहित न हो।

आत्म निर्देश—जिस प्रकार व्यक्ति दूसरों के विचारों से प्रभावित होता रहता है उसी प्रकार वह अपने विचारों से भी प्रभावित होता है। जब वह दिन-रात यह सोचा करता है कि एक न एक दिन वह महान् व्यक्ति बनेगा, उसकी यह इच्छा कभी न कभी पूरी हो जाती है। उसका सम्पूर्ण व्यवहार इस इच्छा अथवा विचार से प्रभावित होता रहता है। वास्तव में यदि ध्यान से देखा जाय तो व्यक्ति दूसरों के विचारों से इतना अधिक प्रभावित नहीं होता जितना कि अपने

---

1 Direct
2 Indirect
3 Auto
4 Prestige.
5 Negative.
6 Mass.

विचारों से। इसलिये व्यक्ति के जीवन में तथा उसके विकास क्रम में आत्म-निर्देशन भी कम महत्वपूर्ण वस्तु नहीं है।

समूह निर्देश—कभी-कभी एक ही बात बार-बार कही जाने पर अधिक प्रभावशाली बन जाती है। जब एक ही बात कई व्यक्तियों द्वारा कही जाती है तब भी उसमें निर्देश योग्यता की वृद्धि हो जाती है। उदाहरण के लिये जब अध्यापक अथवा किसी समुदाय या संस्था का नेतृत्व करने वाला व्यक्ति बार-बार किसी बात को कहता है तब उसके अनुचर एवं उसका अनुगमन करने वाले व्यक्ति उसकी बात को ज्यों की त्यों मान लेते हैं। इसी प्रकार भीड़ में हम एक ही बात कई व्यक्तियों के मुख से सुनकर सत्य मान लेते हैं। भीड़ में निर्देश का विरोध भीड़ में भाग लेने वाले व्यक्तियों में से विरले ही कर सकते हैं, सभी नहीं। सारी यूनियन, कक्षा अथवा सभा जिस बात को कहती है उसका विरोध करने की क्षमता बहुत कम व्यक्तियों में होती है। इस प्रकार का निर्देश जो किसी समूह में हमको मिलता है समूह-निर्देशन कहलाता है।

जिस विचार को बालक अकेले में कभी अपनाने के लिये तैयार नहीं होता उसको समूह में रहकर तुरन्त मान लेता है। जब वह देखता है कि समूह का प्रत्येक व्यक्ति उस विचार को अपना-रहा है तो स्वयं भी बिना इच्छा के अपना लेता है, क्योंकि समूह में रहने पर वह अपने व्यक्तित्व को इतना अधिक महत्व नहीं देता जितना कि उस समूह को जिसकी सदस्यता उसने स्वीकार करली है। समूह में रहकर उसे समूह के निर्देश को स्वीकार करना पड़ता है।

विरुद्ध निर्देश—दूसरे व्यक्तियों की बातें हम सदैव नहीं मानते। दूसरे लोग जो विचार हमको देते हैं कभी-कभी हम उन्हीं विचारों के प्रतिकूल क्रियाएँ करते हैं। इस प्रकार जो निर्देश दिया जाता है उसको न मानना विरुद्ध निर्देश कहलाता है।

११'६ निर्देश योग्यता

अर्थ—निर्देश लेने वाला व्यक्ति निर्देश को कभी मानता है, कभी नहीं मानता। दूसरों की निर्देश को मान लेने या न मान लेने की क्षमता निर्देश योग्यता कहलाती है। कुछ व्यक्ति दूसरों की बातों को झट से मान लेते हैं और कुछ बिल्कुल मानने के लिये तैयार नहीं होते। ऐसे व्यक्ति दूसरों की हर बात का विरोध करते हैं। दोनों प्रकार के व्यक्तियों में तार्किक शक्तियाँ अवरुद्ध हो जाती हैं। जो बालक दूसरों की बात को बिना सोचे-समझे ज्यों की त्यों मान लेता है अथवा जो बालक दूसरों की बातों को सही होने पर भी मानने के लिये उद्यत नहीं होता उसमें अवश्य ही तार्किक शक्ति की कमी होती है।

निर्देश योग्यता मापन की विधियाँ और प्रयोग—प्रत्येक व्यक्ति में कितनी निर्देश योग्यता होती है उसकी मात्रा का मापन करने के लिये मनोवैज्ञानिकों ने कुछ प्रयोग किये हैं। इनमें सीशोर, ब्राउरेन और मन के प्रयोग विशेष उल्लेखनीय हैं। सीशोर परीक्षण में यह देखने का प्रयत्न किया जाता है कि किसी व्यक्ति पर निर्देश का प्रभाव पड़ता है या नहीं। व्यक्ति के हाथ में एक बिजली के तार का टुकड़ा पकड़ा दिया जाता है जिसका सम्बन्ध एक स्विच से होता है। यह स्विच व्यक्ति से छिपाकर अलग रखा जाता है, दूसरे तार से जुड़ा हुआ बल्ब उस व्यक्ति के सामने रखा होता है। जैसे ही इसकी बिजली की धारा इस बल्ब में प्रवाहित की जाती है बल्ब जल जाता है। साथ ही व्यक्ति के हाथ में जो बिजली के तार का भाग है वह भी विद्युत्युक्त हो जाता है। व्यक्ति को गरमी का अनुभव होने लगता है। अब उस तार से विद्युत प्रवाहित नहीं की जाती। बल्ब जलाने पर जब कभी प्रयोज्य से यह पूछा जाता है कि वह तार की गरमी अनुभव कर रहा है अथवा नहीं तभी वह यदि निर्देश-योग्य है तो तुरन्त कह देता है 'हाँ'। यद्यपि उसके तार में बिजली नहीं आती तब भी वह बल्ब के जलने मात्र पर निर्देशित हो उठता है और गरमी का अनुभव करने लगता है।

ब्राउरेन परीक्षण में व्यक्ति को एक चित्र दिखाकर उसके सम्बन्ध में ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं जो उसको निर्देश देने वाले होते हैं। यदि व्यक्ति में निर्देश योग्यता अधिक होती है तो इन प्रश्नों

का उत्तर नकार देता है। जिस व्यक्ति में विवेकशीलता अथवा तुरन्त निरीक्षण करने की शक्ति अधिक होती है वह निर्देश नहीं लेता।

इसी प्रकार के कई प्रयोग मन से बच्चों पर किये। इन प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकलता है कि कुछ व्यक्तियों में निर्देश योग्यता काफी अधिक और कुछ में बिल्कुल नहीं होती।

निर्देश योग्यता में विभिन्नताएँ—निर्देश लेने की क्षमता सभी व्यक्तियों में एकसी नहीं होती। स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक निर्देश योग्य होती हैं। बच्चे और किशोर व्यक्तियों में प्रौढ़ व्यक्तियों की अपेक्षा निर्देश क्षमता का आधिक्य होता है। जिस प्रकार अवस्था और लिंग निर्देश-योग्यता को प्रभावित करती है उसी प्रकार अज्ञानता, संवेग, बहिर्मुखता[1], सम्मोहन[2], थकावट आदि तत्व व्यक्तियों की निर्देश-योग्यता को प्रभावित करते रहते हैं।

भिन्न भिन्न व्यक्तियों में निर्देश योग्यता के अनुसार विभिन्नताओं के कुछ कारण नीचे दिये जाते हैं—

(१) व्यक्ति जितना ही अधिक अपने से बड़ों के सामने दैन्य भाव प्रकट करता है उतना ही अधिक निर्देश योग्य होता है।

(२) संवेगों और भावनाओं से प्रभावित व्यक्ति अधिक निर्देश योग्य हो जाता है। नेता लोग अपने साथियों के संवेगों तथा भावनाओं को उभारकर उनमें निर्देश योग्यता पैदा कर लेते हैं।

(३) बीमारी की अवस्था में रोगी की निर्देश योग्यता बढ़ जाती है।

(४) ध्यान के अभाव में अथवा सम्मोहन की अवस्था में सभी व्यक्ति निर्देश योग्य हो जाते हैं।

बालक में निर्देश योग्यता के विशेष कारण

२-३ वर्ष के बालक प्रायः निर्देश-अक्षम होते हैं। ६-७ वर्ष के बालक अत्यधिक निर्देश योग्य होते हैं। ७-११ वर्ष के बालकों में भावनात्मक आवेश और अन्य संवेग उत्पन्न करके उन्हें अधिक निर्देश योग्य बनाया जा सकता है।

बालकों में प्रौढ़ों की अपेक्षा निर्देश योग्यता के आधिक्य के मुख्य कारण उनमें अज्ञानता, अनुभव की कमी और आवेगात्मक अवस्था का होना है। अज्ञानता के कारण ही वे अपने से बड़े लोगों के विचारों को स्वीकार कर लेते हैं। कथा-कहानियों में दिये गये उपदेशों को वे झट से मान लेते हैं। उनमें इस अवस्था में अनुभव की कमी होती है। उनके पूर्वज जो कुछ कहते हैं वे सब बातें आगे चलकर सत्य होती हैं इसलिये वे यह निष्कर्ष निकाल लेते हैं कि जो कुछ बातें उनके माता-पिता कहेंगे वे सच्ची होंगी। अनुभव की वृद्धि के साथ यह निर्देश योग्यता कम होती जाती है।

११६ सहानुभूति

Q. 3 What do you mean by sympathy? Describe its kinds and utility to a teacher. How is it related to a group?

Ans जिस प्रकार अनुकरण वह प्रवृत्ति है जिससे हम दूसरे लोगों के कार्य करने के ढंगों को अपना लेते हैं उसी प्रकार सहानुभूति वह प्रवृत्ति है जिससे कि हम दूसरे के भावों को अपना लेते हैं। यदि हम किसी वक्ता की प्रशंसा करते हैं तो हम उसके बोलने व मंच पर खड़े होने की क्रियाओं का अनुकरण करते हैं। यही नहीं बल्कि हम उसके भावों को भी अपना लेते हैं और यही सहानुभूति है। इस प्रवृत्ति की क्रियाशीलता के लिये दो या दो से अधिक व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। यह प्रवृत्ति सभी चतुर पशु-पक्षियों और मनुष्यों में पाई जाती है।

1 Extraversion.
2 Hypnosis.

इसी प्रवृत्ति के कारण हम देखते हैं कि अपने किसी मित्र को दुःखी देखकर हम भी दुःखी हो जाते हैं।

सहानुभूति दो प्रकार की होती है—

(१) निष्क्रिय सहानुभूति (Passive Sympathy)

(२) सक्रिय सहानुभूति (Active Sympathy)

हम पहले निष्क्रिय सहानुभूति का वर्णन करेंगे। किसी व्यक्ति की अपने संवेग अथवा तीव्र भावना की अभिव्यक्ति की सामान्य प्रवृत्ति को जो वह इसलिए व्यक्त करता है कि जिससे उसी प्रकार के संवेग अथवा भावना का संचार दूसरे व्यक्तियों में हो सके, निष्क्रिय सहानुभूति कहते हैं। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि ऐसी सहानुभूति की प्रवृत्ति सहायता करने की भावना से युक्त हो, इस प्रकार की सहानुभूति के अनेक उदाहरण हैं। यदि हम किसी व्यक्ति को आनन्द के कारण हँसता हुआ देखते हैं तो हम भी हँसने लगते हैं, जबकि हम उस व्यक्ति के आनन्द का कारण नहीं जानते फिर भी हँसकर कुछ आनन्द का अनुभव प्राप्त करते हैं। छोटा बच्चा अपनी माँ को दुःखी देखकर अपने चेहरे पर दुःख के लक्षण प्रकट करता है, वह अपनी माँ के दुःख का कारण नहीं जानता और उसके दुःख को दूर करने में भी असमर्थ रहता है, परन्तु फिर भी सहानुभूति के कारण उसमें दुःख के लक्षण स्पष्ट दीखते हैं।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के दुःखों को देखकर दुःखित होता है और वास्तव में उसकी सहायता भी करना चाहता है, परन्तु दुःख की सीमा उस व्यक्ति को इतना निष्क्रिय बना देती है कि वह उसकी सहायता नहीं कर पाता। किसी व्यक्ति को घायल देखकर आपके मन में उसके प्रति सहानुभूति जाग्रत होती है और आप उसे सहायता करना चाहते हैं परन्तु उसकी चोटों को देखकर आप एकदम निष्क्रिय-से हो जाते हैं और सहायता करने में असमर्थ रहते हैं। यह भी निष्क्रिय सहानुभूति का उदाहरण है।

निष्क्रिय सहानुभूति के दो भेद हैं :

(१) दुःख, दर्द व भय से ओत प्रोत सहानुभूति

(२) आनन्द व उल्लासजन्य सहानुभूति

उपर्युक्त प्रकार की सहानुभूति भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न मात्रा में होती है। एक व्यक्ति हमारे आनन्द व सुख में हँस सकता है, परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि वह हमारे दुःखों में आँसू बहा सके। उसका विश्लेषण आगे भी हो सकता है। दुःख से भरी पूरी सहानुभूति बहुत कुछ दुःख की किस्म पर निर्भर करती है। एक व्यक्ति उस व्यक्ति के प्रति अधिक सहानुभूति प्रकट करता है जिसके मित्र की मृत्यु हो गई हो जबकि दूसरा व्यक्ति उस व्यक्ति के प्रति अधिक सहानुभूति प्रकट करता है जिसके धन की क्षति हो गई हो।

अब हम सक्रिय सहानुभूति का अर्थ समझने का प्रयत्न करेंगे। जैसा कि पहले कहा गया है कि निष्क्रिय सहानुभूति में एक व्यक्ति में संवेग या भावना के प्रकट होने पर दूसरे व्यक्ति में भी संवेग या भावना प्रकट हो जाती है, परन्तु इस प्रकार की सहानुभूति में सहायता करने की भावना विद्यमान नहीं रहती। सक्रिय सहानुभूति में सहायता करने की भावना विद्यमान रहती है। इसके अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं। बच्चे को संकट में देखकर माता-पिता उसकी सहायता करते हैं। उच्च श्रेणी के प्राणियों में रक्षा व सहायता की यह प्रवृत्ति अधिकतर माँ में होती है। पिता में भी सहायता करने की भावना दृष्टिगोचर होती है। एक पिता अन्य लोगों के प्रति कठोर हो सकता है परन्तु अपने बच्चे की वह सदा सहायता व रक्षा करता है। उसके प्रति वह सहानुभूति प्रकट करता है। उदाहरणार्थ, विश्वविख्यात हृदयहारा चार्ल्स एक स्नेही पिता था।

माता-पिता या प्रेमी सहायता करने की प्रवृत्ति के साथ विशिष्ट संवेग का अनुभव करते हैं जिसे वात्सल्य संवेग (tender emotion) का नाम दिया गया है। जब कोई व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की सहायता करना चाहता है तो वह उसके संवेगों का भी अनुभव करता है।

एक बात और ध्यान देने योग्य है। सहायता की भावना किसी प्रकार की प्रार्थना से ही जाग्रत होती है। बच्चे के रोने पर माँ सहायता के लिये दौड़ती है, आँखों में आँसू भरी स्त्री को देखकर हम उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करते हैं और उसकी सहायता का प्रयत्न करते हैं। सहायता करने की भावना रोने व चिल्लाने से उदय नहीं होती बल्कि चेहरे पर के अन्य प्रकार के लक्षणों से भी उदय होती हैं।

शिक्षा में निष्क्रिय सहानुभूति का महत्त्व

निष्क्रिय सहानुभूति का शिक्षा मे व्यापक महत्त्व है। यदि कविता पाठ में शिक्षक कविता में व्यक्त सवेग का रसास्वादन कर सकता है तो यह निश्चित है कि उस भावना का कुछ न कुछ अंश बच्चे भी अनुभव करेंगे, यदि बच्चे उस शिक्षक से प्रेम करते हैं। ललित कला की शिक्षा में शिक्षक की साहित्य, कला, सगीत आदि के सौन्दर्य के प्रति रुचि बडी महत्वपूर्ण स्थान रखती है। निष्क्रिय सहानुभूति के आधार पर ही हमारी नैतिक शिक्षा टिकी हुई है। अपने बड़े भाई की खाने के प्रति अरुचि देखकर बच्चा भी खाने से घृणा करने लगता है और इस प्रकार वह बुरी आदत सीख लेता है। यह स्पष्ट सहज अनुमान है कि किसी भी स्कूल के बच्चों मे तब तक नैतिक शिक्षा का प्रसार न होगा जब तक बच्चों और शिक्षकों में सामूहिक भावना का अभाव रहेगा। इसकी प्राप्ति के लिए शिक्षकों को अपने कार्य मे उत्साह व रुचि रखनी होगी।

भीड़ व समूह में निष्क्रिय सहानुभूति

एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में सवेगों के सहानुभूतिपूर्ण उपपादकत्व (induction) से ही इस बात की व्याख्या हो जाती है कि एक सवेग पूरी भीड़ मे किस प्रकार से शीघ्रतापूर्वक फैल जाता है, चाहे वह सवेग भय का हो अथवा क्रोध या आनन्द का। मैग्डूगल (McDougall) ने अपने समूह-मनोविज्ञान को सवेग के प्रत्यक्ष उपपादकत्व (Direct induction of emotion) के नियम पर आधारित किया है। जब कभी बहुत-से मनुष्य एकत्र हो जाते हैं तो उपपादकत्व (induction) द्वारा व्यक्तियों में उत्पन्न भय या उल्लास के सवेगों की पूरे भीड में फैलने की सम्भावना रहती है। ऐसा होने पर वह भीड (crowd) फिर भीड़मात्र न रहकर एक समूह (Group) की स्पष्ट विशेषताओं से युक्त हो जाती है।

सवेगो के इस उपपादकत्व के नियम से फ्रायड (Freud) महोदय सहमत नही हैं। उनका कहना है कि यदि व्यक्ति समूह के बन्धनो (Bonds) से पहले से सम्बद्ध नहीं है तो वह उस समूह मे से किसी एक व्यक्ति द्वारा विशेष सवेग के प्रदर्शन को स्वीकार नही करेगा, बल्कि उसे ठुकरा देगा। फ्रायड ने समूह को एक बडे परिवार की सज्ञा दी है जिसके सदस्य उसी प्रकार के बन्धनो से एक-दूसरे से जुडे रहते हैं, जिस प्रकार के सम्बन्धों से बच्चे अन्य लोगो से और अपने माता-पिता से बद्ध रहते हैं। ये बन्धन बाल्यावस्था मे ही दृष्टिगोचर होते हैं, जिनकी उत्पत्ति से बच्चा आत्मकेन्द्रित (self-centerd) दशा से अपने को मुक्त कर पाता है। बच्चे के इस आत्मकेन्द्रित होने की प्रवृत्ति को फ्रायड महोदय ने Narcissim कहा है। यह शब्द यूनानी शब्द (Narcissius) से बना है। यह एक युवक का नाम है जो अपनी फौव्वारे मे प्रतिबिम्बित प्रतिमा से प्यार कर उसको पकड़ने के लिए फौव्वारे में कूद पड़ा और मर गया।

बच्चा अपने माँ-बाप मे प्यार करने की वस्तु देखता है और इसी से उसका प्यार बाह्य वस्तुओं की ओर आकृष्ट होने लगता है। उसके प्रेम के बाह्य प्रदर्शन के साथ-साथ पिता बच्चे के लिए आत्मविकास के अचेत आदर्श का भी काम करता है।

इस स्थल पर समूह मनोविज्ञान की विषद विवेचना की जा सकती है। हम पहले ही वर्णन कर चुके हैं कि भीड पर प्रभाव डालने वाले मुख्य प्रतिकारक को मिमिसिस कहते हैं। मिमिसिस के अतिरिक्त भीड़ पैदा करने के अन्य प्रतिकारक भी हैं। हम पिछले एक अध्याय में चर्चा कर चुके हैं कि मानव-व्यवहार सामूहिक मूल प्रवृति (Gregarious instinct) द्वारा अत्यधिक प्रभावित होता है। हो सकता है कि पशुओं से अपनी रक्षा करने हेतु अपनी शक्ति

को बढाने के लिए उसने अपनी इस मूल प्रवृत्ति को विकसित कर लिया हो और आगे चलकर वह इसे शिकार में सहायता के रूप मे प्रयोग करता हो। परन्तु आजकल हमारी सभ्यता का ढाँचा पूर्णरूप से श्रम-विभाजन पर आधारित है। इसमें आवश्यक है कि प्रत्येक मनुष्य दूसरे को सहायता दे, अतः आधुनिक काल मे सामाजिकता की भावना अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

भीड एकत्रित होने में सामूहिकता की भावना ही मनुष्यों में प्रेरणा का सचार करती है। बहुत-से शहरों में लोग रविवार की शाम को किसी एक निश्चित सडक पर घूमते हैं। हम देखते हैं कि मनुष्यों के समूह एक जगह किनारे पर बैठकर गपशप करते हैं और स्त्रियों के समूह दूकानों के प्रवेश द्वार पर खडे रहते हैं। किसी दर्शक के लिए, हो सकता है कि यह बहुत ही साधारण मनोविनोद हो। परन्तु अपने मानव साथियों की अपार भीड को देखने मे टहलने वालों को जो आनन्द व सन्तोष मिलता है वह शोरगुल, धूल और भीड की अन्य असुविधाओं को भुलाने के लिए पर्याप्त है। मनुष्यों को अपने साथियों को उल्लास करते देखकर प्रसन्नता होती है। बिजली की रोशनी, सवारियों का आना-जाना, मानव कोलाहल, दुकानें, सिनेमा घर आदि एक बडे शहर को ससार का सबसे अधिक आकर्षण केन्द्र बना देते हैं और लोग उन्हें देखने के लिए भी एकत्रित होते हैं। कुछ लोग आपस में विचार-विनिमय करने हेतु तथा एक-दूसरे के अनुभवों से परिचित [illegible]

सकते हैं—

"There is a dense gathering of several hundred individuals at the Mansion House crossing at noon of every week-day; but ordinarily each of them is bent upon his own task, pursues his own ends, paying little or no regard to those about him But let a fire engine come galloping through the throng of traffic, or the Loard Mayers state coach arrive, and instantly the concourse assume in some degree the character of a psychological crowd. All eyes are turned upon the fire engine or coach, the attention of all is directed to the same object; all experiences in some degree the same emotion, and the State of mind of each person is in some degree affected by the mental processes of all those about him."[1]

मनशन हाउस (Mansion House) से सहस्र व्यक्ति सप्ताह के प्रत्येक दिन गुजरते हैं पर साधारणतया उनमें से प्रत्येक अपने कार्य में व्यस्त रहता है और अपने स्वय के उद्देश्य की पूर्ति में व्यस्त रहता है। एक-दूसरे के कार्यों की ओर देखने के लिए कोई चेष्टा नही करता। वे अपने कार्य को छोडकर दूसरो की ओर ध्यान नहीं देते। परन्तु यदि फायर इन्जिन उस भीड मे से गुजरता हुआ निकले या लार्ड मेयर की राज सवारी (Lord Mayer State Coach) उस भीड में से होकर निकले तो वह सारी भीड मनोवैज्ञानिक भीड़ मे परिवर्तित हो जाती है। दूसरे शब्दों मे मनुष्यों के सारे समूह में थोडी-सी मात्रा में मनोवैज्ञानिक भीड की विशेषतायें आ जाती हैं। सभी आँखें राजवारी या इन्जिन की ओर आकर्षित हो जाती हैं। सभी का ध्यान एक वस्तु की ओर खिच जाता है। थोडी-सी मात्रा में सभी लोग एक प्रकार के सवेग का अनुभव करते हैं। सभी लोगों की मानसिक दशा एक ही प्रकार की मानसिक प्रक्रिया द्वारा प्रभावित होती है।

१ McDougall: 'The Group Mind', pp 22-23.

सामूहिक मानसिक जीवन के लिए आधारभूत शर्त यह है कि समूह के सभी सदस्य साथ-साथ कार्य करें, विचार करें और अनुभव करें। हाँ, एक बात है कि पूरे समूह की विचारधारा, अनुभूति तथा कार्य उसके व्यक्तिगत सदस्यों की सामान्य विचारधारा, अनुभूति तथा कार्य से सर्वथा भिन्न होती है। यह सोचना कि समूह के विचार, अनुभव तथा कार्य उसके व्यक्तिगत सदस्यों के विचार, अनुभव तथा कार्यों का योग तथा औसत होता है, नितान्त भ्रम है और सर्वथा असत्य है।

किसी भी समूह में कार्य करने के लिए एक नेता होना चाहिए। नेता की अनुपस्थिति में विशाल एवं शक्तिशाली समूह भी अपेक्षित कार्य करने में असमर्थ होगा भले ही अपने उद्देश्यों की पूर्ति करने की शक्ति उसमें कूट-कूटकर भरी हुई हो। परन्तु उस समूह में यदि उपयुक्त नेता हुआ तो अपने व्यक्तिगत सदस्यों की अपेक्षा वह अच्छे या बुरे कर्म करने में सर्वथा सफल होगा। बहुत-से लेखकों ने समूह की चर्चा करते समय उसके दुर्गुणों को ही विशेष रूप से प्रकट किया है। दर्शकों के समारोह तथा समूह को देखकर यह स्पष्ट रूप से सिद्ध हो जाता है कि उसमें उपस्थित व्यक्तियों को व्यक्तिगत सामर्थ्य की अपेक्षा उस समूह की सामर्थ्य कितनी कम होती है।

अब हम समूह के व्यवहार की मुख्य-मुख्य विशेषताओं का वर्णन करेंगे—

(१) सम्पूर्ण समूह में खतरे की सम्भावना होते ही उसकी एकता दृढ़ हो जाती है। दूसरे समूह से संघर्ष होने पर समूह अपनी एकता की ओर सक्रिय रूप से सचेत हो जाता है। परिणामस्वरूप समूह के सदस्य एक-दूसरे के प्रति अधिक विनम्र हो जाते हैं।

(२) समूह की विशेषता यह भी है कि उसके सदस्य एक-दूसरे की मान्यता स्वीकार करने तथा उससे पहचान करने की आवश्यकता का अनुभव करते हैं। आपस की यह मान्यता तथा पहचान समूह की एकता को दृढ़ करती है तथा उसमें आनन्द की वृद्धि करती है। भिन्न-भिन्न समूह अपनी पहचान के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के साधन अपनाते हैं। राष्ट्रीय समूह अपनी बोलचाल से अपने को अलग रखते हैं, दूसरे शब्दों में राष्ट्रीय समूहों की पहचान उसकी बोलचाल की भाषा है। एक देश में ही प्रत्येक जिले की अपनी अलग बोली होती है और उनकी स्थानीय भाषा ही उन्हें दूसरों से अलग करती है।

(३) तीसरी महत्वपूर्ण विशेषता है समूह की वाणी के प्रति संवेदनशीलता। पशुओं में यह प्रक्रिया होती है जिसके अनुसार वह सम्पूर्ण समूह में मिलकर भय, शिकार, इच्छायें आदि प्रकट करता है।

मनुष्य में तीन दर्शनीय प्रवृत्तियाँ होती हैं जिनके द्वारा वह समूह की वाणी के प्रति संवेदनशील तथा प्रतिक्रियावादी होता है। और वे हैं—सहानुभूति, अनुकरण और निर्देश।

शिक्षकों की विशेष रुचि कक्षा, स्कूल, सोसाइटी, टीम और परिवार जैसे समूहों में होती है। उदाहरण के तौर पर नीचे फुटबाल टीम का उल्लेख किया जा रहा है।

स्कूल की फुटबाल टीम

(१) खिलाड़ी तथा टीम

(अ) अपनी टीम की विजय अथवा पराजय के समय खिलाड़ी की प्रतिक्रिया।

(ब) टीम के अन्य खिलाड़ियों के साथ उसका सहयोग।

(स) नैतिकता के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए उसके प्रयत्न।

(द) कैप्टेन, साथियों तथा खिलाड़ियों द्वारा की गई आलोचना के प्रति उसकी प्रतिक्रिया।

(२) टीम के कार्य तथा उसकी भावना

(अ) पराजय होने पर टीम का उल्लास।

(ब) अधिकारियों का टीम में स्थान।

(स) अग्रणीय तथा पिछड़े हुए साथियों के बीच सम्बन्ध।

(द) टीम की नैतिकता।

शिक्षक का कर्तव्य है कि सामूहिक जीवन को इस प्रकार सम्हाले रहे कि उसका नैतिक-स्तर गिरने न पाये। शिक्षक तथा विद्यार्थियों में अच्छे सम्बन्ध होने चाहिए, क्योंकि कक्षा के सम्बन्धों की आधारशिला यही है।

अन्तः क्रिया करना ही उनको सामूहिक बन्धन में बाँधने में सहायक सिद्ध हो सकता है।[1] समूह के सदस्य जितने ही एक-दूसरे पर निर्भर रहते हैं समूह उतना ही सगठित होता है।

इस प्रकार समूह के निर्माण मे अनुकरण, निर्देश, सहानुभूति, मूल-प्रवृत्ति और सदस्यों की एक-दूसरे पर निर्भर रहने की प्रवृत्ति विशेष कार्य करती है। इन सब प्रवृत्तियों में निर्देश का महत्व कई मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्रियो ने स्वीकार किया है जिनमे लीबिन, सिडिस, सिगेल और रौस मुख्य हैं। सिडिस ने तो यहाँ तक कहा है कि 'निर्देश समूह के लिये सीमेन्ट का काम करता है.......मनुष्य के अन्दर समूह का सदस्य बनने की योग्यता इसलिये है कि उनमें निर्देश योग्यता है।"[2]

Q. 2. What do you mean by 'Group Mind' and 'Group Behaviour ?' What are the educational implications of group behaviour ?

१२·३ समूहमन

समूहमन से मेग्डूगल का मतलब मानसिक अथवा प्रयोजनशील शक्तियो के सगठन से है और इस अर्थ में वह समाज के अन्दर एक 'सामूहिक मन'[3] की कल्पना करता है, क्योकि पिछले प्रकरण मे बताया गया था कि मैग्डूगल के विचार से समूह एक विशेष शक्ति के सगठन का रूप है जिसका अपना अलग ही जीवन है, अपनी अलग प्रवृत्तियाँ हैं। अनिवार्य रूप से एक सगठन है जिसको केवल मन की सहायता के ही समझा जा सकता है। वैयक्तिक मन इस सामूहिक मन की इकाइयाँ हैं और इनके आपसी सम्बन्धों से समूह मन समाज की सृष्टि होती है। समूह मन समूह के सदस्यो के मन का पुंज मात्र नहीं है। वह उन वैयक्तिक मनो का परिणामी माना जा सकता है।

समूह मन की तुलना किसी गतिशील पिण्ड पर विभिन्न दिशाओ में लगे हुए बलों के परिणामी बल[4] से की जा सकती है। जिस प्रकार पिण्ड पर लगे हुए भिन्न-भिन्न बल उसको परिणामी बल की दिशा में ले जाने के लिए प्रवृत्त करते हैं उसी प्रकार सामूहिक मन सम्पूर्ण समूह को एक निश्चित दिशा मे जाने के लिए बाध्य करता है। समूह में प्रत्येक व्यक्ति के मन की क्रियाओं का प्रभाव उसी प्रकार पड़ता है जिस प्रकार परिणामी बल की दिशा और परिमाण को निश्चित करने मे एक बल का असर पड़ा करता है। तब भी जब तक वह व्यक्ति किसी समूह का सदस्य रहता है तब तक उसे समूह की तरह सोचना, अनुभव करना और कार्य करना पड़ता है। समूह जिस तरह सोचता है जिस प्रकार की अनुभूतियाँ करता है, जिस प्रकार के कार्य करता है ठीक उसी प्रकार उसका प्रत्येक सदस्य सोचता है, अनुभव करता है और क्रियाएँ करता है। वह उस ढग से सोचना, अनुभव करना या क्रिया करना बन्द कर देता है जिस ढग से वैयक्तिक रूप से करता है। लीबिन का भी लगभग यही विचार है।

"जिस विशेष ढग से किसी समूह को बनाने वाले व्यक्ति अपने स्वभाव, बुद्धि और कार्य को छोड़कर उस समूह की तरह सोचते, अनुभव करते या कार्य करते हुए पाये जाते है वह ढग उनके व्यक्तिगत ढग से सर्वथा भिन्न होता है।"[5]

---

1 [illegible]

2 Psychology of Suggestion —Sidis, p. 310.

3 Group mind.

4 Resultant.

5 Psychology of the crowd.

सामूहिक मन का अस्तित्व—इसकी सत्ता समझाने के लिये वह तीन दलीलें पेश करता है—

(अ) वह कहता है कि समाज जिन वैयक्तिक मनो से बनता है वे एक-दूसरे में छिपे हुए हैं। उनके आपस के सम्बन्ध पूर्णतया आन्तरिक होते हैं। समाज को स्वय सामूहिक मन की सहायता से ही समझा जा सकता है।

(ब) किसी एक क्षण में समूह मे जितने भी वैयक्ति मन प्रवेश करते हैं वे समूह की सूक्ष्म और असख्य शक्तियो के द्वारा ढाले जाकर एक नया आकार ग्रहण करते हैं। समूह को मेग्डूगल इसीलिये शक्तियों की सगठित समष्टि मानकर चलता है, उसका अपना एक अलग ही जीवन है, अपनी अलग प्रवृत्तियाँ है।

[illegible] है वह कार्य उन कार्यों का योगमात्र नही [illegible] रते जब उनके बीच वह सम्बन्ध न होता [illegible] सकता है। "हरेक व्यक्ति समूह की हैसियत जो करता या सोचता है वह बहुत भिन्न होता है जो वह एकाकी व्यक्ति की हैसियत से सोचता है या करता है"[1] उदाहरण के लिए भीड़ मे पडकर व्यक्ति कभी एसे आचरण कर बैठते हैं जिसकी उससे आशा नहीं की जा सकती। दगे के समय एक जाति के व्यक्ति पिशाचो का का सा व्यवहार करने लगते है। यदि अकेले ऐसा कार्य करने की बात होती तो शायद ऐसा कार्य वे कभी न करते। समूह जैसा चाहता है वैसा ही कार्य वे करने लगते हैं।

वैयक्तिक मन की अपेक्षा यह सामूहिक मन उच्चतर स्तर पर भी कार्यशील रहता है परन्तु साधारण तौर से प्रायः यही देखा जाता है कि समूह में लोग तर्क और विवेक पर कम ध्यान देते हैं। वे भावनाओं से अधिक प्रेरित रहते हैं इसलिए समूह की भावना निम्न कोटि की होने के कारण समूह के मन का स्तर निम्न कोटि का ही होता है। यदि समूह शिक्षित व्यक्तियो से निर्मित होता है तो उनके मनोवृत्तियो की छाप समूह की मनोवृत्ति पर पड़ने के कारण सामूहिक मन का स्तर ऊँचा हो जाता है।

मेग्डूगल का कहना है कि उत्कृष्ट तरीके से सगठित समूह बुद्धि और नैतिकता के उस स्तर को प्राप्त कर लेता है जो उसके सदस्यों के स्तर से भी ऊँचा होता है, यहाँ तक कि सर्वोच्च सदस्यों के स्तर से भी ऊँचा होता है।[1]

इन दलीलो के आधार पर मैग्डूगल कहता है कि समूह अपने अवयवो के योगमात्र से से बढ़कर है और सामूहिक मन सब सदस्यों के मन का औसत न होकर कुछ और ही है।

मैग्डूगल द्वारा दी गई समूहमन की समीक्षा—मैग्डूगल सामूहिक मन की दो व्याख्याओ के बीच उलझा प्रतीत होता है। सामूहिक मन की एक व्याख्या करते समय वह व्यक्तियो के उस झुण्ड को समूह मानता है जिसके अन्दर दल की भावना[2] बहुत जबर्दस्त रूप मे विकसित हो जाती है। ऐसे समूह के प्रत्येक सदस्य में अन्य सदस्यो के साथ एक लम्बी अवधि तक सम्पर्क रहने के कारण समस्त समूह के हितों की रक्षा की दृढ़ भावना पैदा हो जाती है। फलत. पूरा का पूरा समूह एक मन से कार्य करता है। सब सदस्यों के बीच आपसी सम्बन्ध इतने घनिष्ठ हो जाते हैं कि उनके भाव, विचार और क्रियाएँ केवल एक और एक लक्ष्य की ओर उन्मुख रहती हैं। सामूहिक मन की व्याख्या करते समय वह यह मानकर नहीं चलता कि समूचे मन का ख्याल अनिवार्य रूप से हरएक सदस्यों के मन में मौजूद रहता है। इतना अवश्य मानता है कि समूह का जीवन ऐसे विचारो, रुचियों और मूल्यों से निर्धारित होता है जिनमे सामजस्यपूर्ण एकता रहती है और जो किसी एक वैयक्तिक मन की उपज नहीं होती।

---

[1] Group Mind, *McDougall*, pp. 28 29

[2] Esprit de Corps.

(व) मैग्डूगल द्वारा प्रतिपादित समूह मन के अस्तित्व को प्रामाणित करने के लिये एक दलील यह भी दी जा सकती है कि सामाजिक परम्पराएं, बौद्धिक और भौतिक संस्थाएं किसी एक मन की उपज नहीं है वरन् किसी समुदाय विशेष के मन की उपज ही मानी जा सकती है। सभी तो डीयो कहता है कि विद्यालय, संस्था, समुदाय विशेष ने अपनी परम्पराओं की रक्षा के लिये निर्मित की है यह संस्था किसी एक व्यक्ति के मन की उपज नहीं है।

दूसरी बात जिस पर मैग्डूगल जोर देता है वह यह है कि सामूहिक मन प्रत्येक अपने अव यवों से बढ़कर होता है, यह कथन हमें आपत्तिजनक प्रतीत होता है। जहाँ तक हम समझते हैं मैग्डूगल का इस कथन से यही तात्पर्य है कि एक अत्यधिक संगठित समूह जो निर्णय देता है वह निर्णय बुद्धि और नैतिकता की दृष्टि से उस निर्णय से श्रेष्ठ होता है जो उसके सदस्य और सबसे अच्छे सदस्य भी अकेले दे सकते है। किन्तु साधारण समूहों में यह बात नहीं देखी जाती। मैग्डूगल की बात उन्हीं समूहों के लिए सत्य प्रतीत होती है जो पूरी तरह से संगठित हो। पूर्णतः संगठित समूह वह समूह है जिसके सदस्यो को सामूहिक विचार-विमर्श की सभी सुविधाएं उपलब्ध होती हैं। ऐसे समूहो मे अलबत्ता यह सम्भावना अवश्य रहती है कि विचार-विमर्श से एक सदस्य दूसरे सदस्यो से कुछ न कुछ सीखेगा। ऐसी दशा में सभी व्यक्तियों के मन सहयोगपूर्वक कार्य करते रहते हैं।

आप

कोर

हिक सदस्य के रूपमे दिखाई देता है। जिन्सवर्ग के मतानुसार (अ) "समूह मन की कल्पना ने समाज पर एक ऐसी काल्पनिक एकता का बोझा पका दिया है जो उसमे नहीं है जिससे व्यक्ति को और छोटे-छोटे समूहो को तुच्छ माना जाने लगा है तथा समाज और व्यक्ति के हितो के बीच घोर विरोध पैदा हो गया है।"[1] (ब) सामाजिक मन का सिद्धान्त एक तन्त्र और कुलीनतन्त्र के वेश मे हमारे सामने आने का साधन बन जाता है" (स) सामूहिक मन का सिद्धान्त समूह को एक देवता का रूप दे देता है और उस पर एक ऐसी महिमा और शक्तिमत्ता का आरोप कर देता है जो व्यक्तियो को कर्तव्य का आदर्श देने वाले नैतिक नियम से भी वस्तु बन जाती है।

(द) समाज के इस प्रकार देवता बन जाने पर उसमें मौलिक और गहरी रूढ़िवादिता आ जाती है क्योंकि जब हम यह सोचने लगते हैं कि सामूहिक मन व्यक्ति के मन से बहुत ही श्रेष्ठ है तो उसके प्रति आज्ञाकारिता और पूजा का भाव उत्पन्न हो जाता है।"

जिन्सवर्ग के इन आरोपो और आरूपो मे सत्यता का अंश अवश्य है किन्तु सामूहिक मन का अस्तित्व तो माना ही जा सकता है क्योंकि भीड़, सम्प्रदाय, संघ और संस्थाओं के निर्माण में इसका विशेष हाथ रहता है। अगले अनुच्छेद मे इन समूहो की विशेषताओ का उल्लेख करते हुए सामूहिक मन का महत्व स्थिर करेंगे।

समूह मन को समझने के लिये विभिन्न प्रकार के समूहों के 'मन' और 'व्यवहार' की व्याख्या भी आवश्यक है।

१२·४ समूह के प्रकार

ड्रेवर ने समूह के निम्नलिखित भेदो का उल्लेख किया है—

(अ) भीड़[2]

---

1 "Social Psychology"—Ginsberg · The idea of group mind has thrust upon the society such an imaginary unity which is not there. The result is that there is a strong opartion believe the interests of the society and the individuals."

(ब) गोष्ठी[1]

(स) सम्प्रदाय[2] (समाज)

भीड़ की विशेषताएँ—भीड़ एक ऐसा समूह है जो थोड़ी देर के लिये बनता है और शीघ्र ही विलोप हो जाता है। भीड़ का निर्माण होने में कोई पहले से सोचा हुआ उद्देश्य निहित नहीं रहता। वह किसी रुचिकर साधारण घटना के हो जाने पर बन जाती है और रुचि के क्षीण होते ही उसका अस्तित्व खत्म हो जाता है।

भीड़ में पड़कर व्यक्ति जैसा कि पहले कहा जा चुका है ऐसा आचरण अपना लेते हैं जो साधारण व्यवहार से भिन्न होता है। अत्यन्त डरपोक और कायर व्यक्ति भीड़ में पड़कर बड़े दुस्साहस के कार्य कर बैठते हैं क्योंकि मनुष्यों की संख्या उनमें शक्ति प्रदान कर देती है।

भीड़ का व्यवहार सावेगिक होता है। एक मनुष्य का संवेग दूसरे मनुष्य की ओर स्थानान्तरित हो जाते हैं और प्रभावशाली व्यक्ति भीड़ के संवेगों को वांछित दिशा में मोड़ देने में समर्थ हो जाता है।

भीड़ में निर्देश और सहानुभूति की स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ विशेष क्रियाशील होती हैं जैसे ही ये प्रवृत्तियाँ आकरण सिद्ध होती हैं वैसे ही भीड़ छिन्न-भिन्न हो जाया करती है। भीड़ में समूहमन होता है लेकिन निम्नस्तर का। उसकी स्मृति बहुत ही क्षीण होती है।

गोष्ठी की विशेषताएँ—गोष्ठी ऐसा समूह है जिसमें सदस्यों का व्यवहार बौद्धिक और नैतिक रुचियों पर आधारित रहने के कारण भीड़ में पड़े हुए व्यक्तियों से उच्च स्तर का होता है। इसका निर्माण रुचि विशेष की सन्तुष्टि के लिए स्थायी रूप से होता है। उद्देश्य की प्रधानता के कारण व्यक्ति गोष्ठी की सदस्यता ग्रहण करते हैं। उसका समूहमन होता है जिसकी स्मृति क्षणिक नहीं होती, स्थायी रूप ग्रहण कर लेती है।

सम्प्रदाय की विशेषताएँ—समाज ऐसा समूह है जो दृढ़ बन्धनों से जकड़ा हुआ रहता है इसलिये अन्य समूह की अपेक्षा अधिक स्थायी होता है। इसका एक निश्चित उद्देश्य होता है जो *अनवरत एवं स्थायी होता है। क्लब का उद्देश्य इतना व्यापक नहीं होता जितना कि सम्प्रदाय का।* इस उद्देश्य का सम्प्रदाय के सदस्यों के सम्पूर्ण जीवन में सम्बन्ध रहता है। यह विवेक और बुद्धि से काम लेता है। उसके सदस्य उसके लक्ष्यों उद्देश्यों, एवं विचारों से परिचित होते हैं। संक्षेप में सम्प्रदाय की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(अ) स्थायित्व

(ब) सदस्यों में सामाजिक भावना का विकास

(स) विभिन्न आदर्श और उद्देश्य वाले दूसरे समूहों के साथ सम्पर्क और अन्तःक्रिया

(द) समूह की परम्पराओं की रक्षा

(य) समूह के सदस्यों के कर्त्तव्यों का समुचित विभाजन।

सम्प्रदाय में जितने भी व्यक्ति उसकी सदस्यता ग्रहण करते हैं वे आन्तरिक रूप से एक-दूसरे पर आश्रित और सम्बन्धित रहते हैं और उनके पारस्परिक सम्बन्धों से ही सामाजिक समष्टि का *निर्माण होता है। इस दृष्टि से समाज एक समष्टि है जिसका निर्माण* उसके भागों के पारस्परिक सम्बन्धों से होता है और जिसका प्रत्येक भाग शेष भागों से पारस्परिक सम्बन्ध रखकर जीवित रहता है। सम्प्रदाय एक जीवित वस्तु है जो नित्य विकसित होती रहती है। सम्प्रदाय अथवा समाज के अस्तित्व के विषय में इस सिद्धान्त को हम जीवशास्त्रीय सिद्धान्त[3] कहते हैं। यह सम्प्रदाय इतना अधिक जटिल होता है कि उसमें एकता के अन्दर एकता, समूह के अन्दर समूह

[1] Club.

[2] Community.

[3] Organic theory.

अत्यन्त विविधता के साथ रहते हैं और व्यक्ति के अपने समूह से सम्बन्ध अलग-अलग मामलो में अलग-अलग होते हैं। मनोवैज्ञानिक भाषा मे सम्प्रदाय व्यक्ति की तरह कार्य करता है उनका एक मन होता है।

सम्प्रदाय के लघु रूप संघ[1] और संस्थाएँ[2] होती हैं। संघ से हमारा तात्पर्य सामाजिक प्राणियो के उस समूह से है जो इस कारण एक दूसरे से सम्बन्ध रखते हैं कि उन्होने आपस में एक संगठन किया है, इस प्रयोजन से कि वे एक विशेष लक्ष्य या लक्ष्यो की प्राप्ति कर सकें। संघ का अस्तित्व किसी निश्चित लक्ष्यो को पूरा करने के लिये होता है। संघों की तरह संस्थाएँ भी सामाजिक प्राणियो के बीच रहने वाले सम्बन्धों के निश्चित और स्वीकृति प्राप्त रूप होते हैं। उदाहरण के लिए, राज्य एक संघ है और फौज एक संस्था। संस्थाएँ भी एक मन की उपज नहीं होती, बल्कि एक दूसरे से सम्बन्ध रखने वाले हजारो मनो की उपज होती हैं।

१२·५ विद्यालय मे सामूहिक मन पैदा करने की विधियाँ

Q 3. What factors contribute to make an educational institution a well organised group ?

विद्यालय भीड के समान नही है और न गोष्ठी के समान है। उसके सदस्य कुछ निश्चित लक्ष्य लेकर चलते हैं। ये लक्ष्य हैं—राष्ट्र की संस्कृति और सभ्यता को दूसरी पीढ़ी को सौंपना, कुशल नागरिको की शिक्षा इत्यादि-इत्यादि। इन लक्ष्यो की पूर्ति के लिये इस समूह मे स्थायित्व होना आवश्यक है।[3] यह स्थायित्व हमें तभी मिल सकता है जब विद्यालय के कर्मचारी-मण्डल प्रतिवर्ष उसी प्रकार का बना रहे। जिन विद्यालयों मे अध्यापको के नोकरी के सम्बन्ध में सुरक्षा की भावना रहती है वे विद्यालय के लक्ष्यों की पूर्ति में लगे रहते हैं। इस प्रकार इस समूह का अस्तित्व अविच्छिन्न बना रह सकता है।

यदि विद्यालय को आदर्श समूह बनाना है और उसके सामूहिक मन का विकास करना है तो उसके सदस्यो मे सामाजिकता की भावना का संचार करना होगा। उसका प्रत्येक सदस्य चाहे वह विद्यार्थी हो, चाहे अध्यापक अथवा व्यवस्थापिका सभा का सदस्य जब तक एक भावना से कार्य नहीं करेगा तब तक विद्यालय में आदर्श समूह की दूसरी विशेषता का उदय न हो सकेगा। अतः विद्यालय की सफलता के लिये उसके सदस्यो मे दल की भावना (Espirt de corps) को पैदा करना होगा। यह तभी हो सकता है जब प्रत्येक सदस्य अपनी-अपनी योग्यता और कर्तव्यों को ठीक प्रकार से समझें। जो बालक विद्यालय की गतिविधियों से दल की भावना[4] में भाग नहीं ले सकता तो उसकी सदस्यता विद्यालय के लिये व्यर्थ है। जो अध्यापक विद्यालय के आदर्शों को ऊँचा नहीं रख सकता वह भी विद्यालय के लिये अनुपयोगी है। कहने का अभिप्राय यह है कि

1 Association
2 Institutions.
3 For the formation of the community there must be some degree of continuity of the existence of the group.—Ross, *Foundation of Educational Psychology*.
4 Espirt de Corps

विद्यालय के सभी सदस्यो का मन एक होना चाहिए। सामाजिक भावना से सभी को ओतःप्रोत
[illegible] समुचित विकास करने के लिये
[illegible]। समय-समय पर विद्यार्थियो को
[illegible] उनको इस प्रकार की प्रेरणाएँ दे
सकता है जिससे वे अपने विद्यालय को उच्चतर बनाने मे सफल हो सकें। विद्यालय में रहकर वे इस प्रकार विद्यालय की.........[1] को ऊंचा कर सकते हैं। इसी बात को मनोवैज्ञानिकों ने सामूहिक, आत्मिक, स्थायीभाव के निर्माण की सज्ञा दी है। अध्यापक और विद्यार्थी के अतिरिक्त अभिभावक भी विद्यालय के सदस्य होते हैं। अत. उनका भी यह कर्तव्य है कि जिन उद्देश्यों को लेकर विद्यालय की स्थापना की गई है उसमे वे हाथ बटावें। अध्यापक-अभिभावक सघ (Parent-Teacher Association) इस काम को अच्छी तरह कर सकता है।

सामाजिक भावना के पूर्ण विकास के लिये यह आवश्यक है कि विद्यालय निरन्तर अन्य ऐसे विद्यालय अथवा सस्थाओं के सम्पर्क में आता रहे जिनके आदर्श और उद्देश्य उससे समानता रखते हैं। दूसरे के सम्पर्क मे आने से सहकारिता और सहयोग की भावना का उदय होता है। अत इस प्रकार का सम्पर्क सामूहिकता की भावना का विकास करता है। सामूहिकता की भावनाएँ उस समय अधिक उत्तेजित हो जाती हैं जिस समय एक विद्यालय दूसरे विद्यालय के साथ किसी न किसी तरह की उत्कृष्टता के लिये द्वन्द्व करता है। समूह में आत्मचेतना भी उसी समय उदय होती है जिस समय वह दूसरे समूहो से मित्रतापूर्ण प्रतिद्वन्द्वता का प्रदर्शन करता है। प्रतियोगिताओ के आयोजन से भिन्न-भिन्न विद्यालयो के बीच सामूहिक भावना और आत्म चेतना जाग्रत की जा सकती है। यदि ये प्रतियोगिताएँ मनोवैज्ञानिक ढग पर आयोजित की जाती हैं तो सामाजिक भावना का विकास तो होगा ही अपने विद्यालय के लिये बालको में अत्यधिक अनुराग पैदा हो सकता है। विद्यालय के भीतर भी इसी प्रकार की प्रतियोगिताएं आयोजित की जा सकती हैं किन्तु वे पूरी तरह मैत्रीपूर्ण होनी चाहिये।

प्रत्येक समूह की अपनी अपनी परम्पराएँ होती हैं। अपने-अपने मूल्य होते हैं। यदि विद्यालय मे सामूहिक मन का सृजन करना है तो विद्यार्थियों को उसकी प्राचीन परम्पराओ से अवगत कराना होगा। उन परम्पराओ की रक्षा के लिये प्रेरणा देनी होगी। साथ ही नवीन स्वस्थ परम्पराओं का निर्माण भी करना होगा। विद्यार्थियो का वार्षिक समारोह और पुराने विद्यार्थियों का सघ आदि ऐसे साधन हैं जिनसे समूह स्मृति सुरक्षित और स्थापित रह सकती है। कुछ विद्यालयो के पुराने विद्यार्थियों के सघ[2] इतने मजबूत और स्थायी रूप ग्रहण कर लेते हैं कि उनसे विद्यालय की परम्पराओं की रक्षा नियमित रूप से होती रहती है।

समुदाय मे समूहमन के विकास के लिये यह भी आवश्यक है कि प्रत्येक सदस्य अपनी-अपनी जिम्मेदारी को समझें। वैसे तो अध्यापक कक्षा का नेतृत्व करता है तब भी वह नेतृत्व की शिक्षा दे सकता है। प्रीफेक्ट, मानीटर, सघों के प्रधान और सेक्रेटरी आदि नेताओं का चुनाव कर सकता है। इस प्रकार प्रत्येक सदस्य को कुछ न कुछ उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य सौंपा जा सकता है। समूह का कार्य उचित ढग से चलाया जा सकता है।

---

[1] Tone.
[2] Old Boys Association.

अध्याय १४

सीखना

(Psychology of Learning)

सीखने की प्रवृत्ति

Q. 1. Discuss the nature of learing and its chief characteristics. How does ng differ from maturation.

प्रत्येक प्राणी को जन्म के साथ कुछ शक्तियाँ मिलती हैं। ये शक्तियाँ, जिनका उल्लेख कया जा चुका है, उसे जीवन-संघर्ष मे सफलता पाने मे सहायता देती हैं। जन्म लेते ही अपने आपको एक विशेष प्रकार के भौतिक और सामाजिक वातावरण मे घिरा हुआ है। उसकी कुछ आवश्यकताएं होती हैं जिनकी सन्तुष्टि इस वातावरण द्वारा ही हो सकती त्येक आवश्यकता आसानी से सन्तुष्ट नहीं हो जाती, उसके लिए प्राणी को प्रयत्न और रण से सघर्ष करना पड़ता है।

जीवन की आवश्यकताओ को सन्तुष्ट करने के लिए सामाजिक और भौतिक वातावरण के ाणी अनुकूलन स्थापित करने का प्रयास करता है। समायोजन स्थापित करने के इस प्रयत्न अपने व्यवहार में गत अनुभव की सहायता से ऐसा परिवर्तन लाना पड़ता है जिससे जीवन े उसे सफलता मिल सके। जीवन की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के लिए गत अनुभव ायता से व्यवहार में परिवर्तन लाने की प्रक्रिया को हम सीखना कहते हैं। व्यवहार का यह न ही उसको भौतिक और सामाजिक वातावरण के साथ समायोजन स्थापित करने मे क होता है। समायोजन कैसा होगा यह व्यक्ति की शक्तियो और वातावरण की प्रकृति पर रहता है। जब व्यक्ति अपने व्यवहार मे परिवर्तन उपस्थिति में पूरी तरह से सफल हो जाता नये ढग से अर्जित सस्कार पक्के हो जाते हैं।

प्रकृतिदत्त शारीरिक और मानसिक शक्तियो के आधार पर वातावरण के द्वारा जो क प्रस्तुत किये जाते हैं उनके प्रति की गई अनुक्रियाओं में परिवर्तन लाने की प्रक्रिया को कह सकते हैं। जन्म लेते ही प्राणी जैसा आचरण करता है दूसरे शब्दो मे, उसके सम्मुख त उद्बोधको (Stimulus) के प्रति जो अनुक्रियाएँ करता है उन्हें हम मौलिक क्रियाएँ कह हैं। उदाहरण के लिए माता के गर्भ से निकले हुए नवजात शिशु के लिए उसका अगूठा कोई अन्य पदार्थ उद्बोधक के रूप मे उपस्थित होता है। वह उसको अपनी मूलप्रवृत्ति- चूंकने की इच्छा—को सन्तुष्ट करने के लिए मुंह मे रखता है। अगूठे अथवा अन्य पदार्थ ने की अनुक्रिया उसकी आवश्यकता की सन्तुष्टि न कर सकने के कारण बाद मे छोड़ दी है और दूसरी अनुक्रिया अपना ली जाती है। उदाहरणस्वरूप मुर्गी का बच्चा जन्म लेते क पदार्थ पर अपनी चोच मारता है किन्तु उस पदार्थ, जिसे हम मनोविज्ञान की भाषा में

भोज्य-पदार्थ नहीं हैं। गत अनुभव के सहारे वह अपने आचरण में परिवर्तन दिखाता है। बाद में तो वह केवल खाद्य पदार्थों पर ही चोंच मारता है, अन्य पदार्थों को छोड़ देता है। यह वह अवस्था है जिसमे मुर्गी के बच्चे ने वातावरण के साथ अनुकूलन स्थापित कर लिया है। भौतिक अथवा *सामाजिक वातावरण के साथ अनुकूलन स्थापित करने की प्रक्रिया ही सीखना है।*

एवं अभिवृत्तियों को छोड़ देना आदि बातें सीखने के परिणामस्वरूप प्राप्त होती हैं। सीखने का यह क्रम निरन्तर चलता ही रहता है। इसलिए कहा जाता है कि समस्त जीवन ही सीखने से भरा हुआ है। प्राणी जीवन भर भौतिक अथवा सामाजिक वातावरण से सक्रिय सम्बन्ध मे लीन रहता है।

सीखने की क्रिया इस प्रकार क्रमिक रूप से होने वाले विकास कार्य की पर्यायवाची है। *यह ऐसा विकास कार्य है जिसका आदि तो है किन्तु अन्त नहीं।*

की क्रिया सोद्देश्य क्रिया है। संक्षेप मे 'सीखना' वह सोद्देश्य मानसिक प्रक्रिया है जिसमे प्राणी अपने भौतिक और सामाजिक वातावरण के साथ संघर्ष करता हुआ अपनी भौतिक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओ की सन्तुष्टि हेतु प्रकृतिदत्त शक्तियों, अनुकरण, बुद्धि, सूझ और गत अनुभवों की सहायता से नये अनुभव प्राप्त कर व्यवहार मे परिवर्तन लाने का आजीवन प्रयत्न करता रहता है। नये अ

वातावरण

निर्माण ह

मनोवैज्ञानि

जाता है

होता है और दूसरी ओर वर्तमान उद्बोधको और अनुक्रियाओ के बीच सम्बन्ध और भी परिपक्व होते जाते हैं।

सीखने की क्रिया की विशेषताएँ

संक्षेप मे, सीखने की प्रक्रिया की निम्नलिखित विशेषताएँ (Characteristics of learning) हैं—

(१) किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्राणी के व्यवहार मे परिवर्तन और परिवर्धन का होना सीखना है।

(२) अपनी शारीरिक और मानसिक प्रकृतिदत्त शक्तियों के आधार पर व्यक्ति जो प्रतिक्रियाएँ (responses) करता है उन मौलिक प्रतिक्रियाओं मे परिवर्तन लाने की प्रक्रिया को सीखना कहा जाता है। इस प्रकार उद्बोधक और प्रतिक्रिया के सम्बन्ध को निर्धारित करना सीखना है।

(३) अपनी समस्याओं और उलझनो को कम करने या दूर करने के लिए जिस प्रक्रिया का प्राणी को सहारा लेना पड़ता है, उस समय सीखने की क्रिया कहलाती है जब वह प्रक्रिया प्राणी के तनाव को कम कर दिया करती है।

(४) समस्त जीवन सीखने से भरा हुआ है। (all living is learning) प्रत्येक प्राणी निरन्तर वातावरण से सक्रिय सम्बन्ध में लीन रहता है। यह सक्रिय सम्बन्ध समायोजन का होता है।

(५) सीखना एक सार्वभौमिक प्रक्रिया है जो प्रत्येक प्राणी में प्रत्येक स्थान पर पाई जाती है [illegible]

[illegible]

उनको पहचानना कठिन हो जाता है।

(६) सीखने का कार्य विकास का कार्य है और ऐसा विकास जिसका अन्त ही न हो। जीवन के प्रत्येक पद पर अपने विकास के नये-नये रूप प्राप्त करता हुआ व्यक्ति सीखने से ही महाकार्यों में सफल हो जाया करता है।

इतनी व्याख्या के बाद सीखने की परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है कि सीखना वह *कार्य है जिसमे प्राणी वातावरण के सघर्ष में आकर उत्तेजना (stimulus) और प्रतिक्रिया* (response) के कारण अपनी बुद्धि (intelligence) और सूझ (insight) को नये अनुभवों को प्राप्त करने मे लगा देता है।

सीखना और प्रौढ़ता (Learning and Maturation)—व्यक्ति के विकास के दो पक्ष हैं—सीखना और प्रौढ़ता। दोनो ही व्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण हैं और दोनो का एक-दूसरे से अलग करना कठिन है। व्यक्ति में स्वाभाविक रूप से जो परिवर्तन पैदा होते हैं वे प्रौढ़ता के अन्तर्गत आते हैं और शिक्षा और वातावरण के कारण व्यक्ति मे जो परिवर्तन होते हैं वे सीखने की प्रक्रिया से सम्बन्ध रखते हैं। प्रायः सभी बालक एक निश्चित आयु पर बोलने लगते हैं उनके वातावरण मे कैसी ही भिन्नता क्यो न हो बोलने की यह शक्ति स्वतः आ ही जाती है। इसी प्रकार एक निश्चित आयु पर वह चलने लगता है। अतः चलने की शक्ति बालक मे प्रौढ़ता के कारण आती है। *साधारण भाषा मे हम कह लेते हैं कि बालक ने चलना अथवा बोलना सीख लिया है* लेकिन वह सीखा नहीं है चल सकने और बोल सकने की आरम्भ वृद्धि स्वयं होती है। यह सब प्रौढ़ता के कारण ही है लेकिन यदि बालक को उचित रूप से लिखने-पढ़ने की शिक्षा दी जाय तो वह लिखना-पढ़ना सीख लेगा अतः अभ्यास और शिक्षा के फलस्वरूप बालक सीखता है और स्वभाव की अभिवृद्धि के कारण वह प्रौढ़ता को प्राप्त होता है।

जिन कार्यों मे बालक की अभिवृद्धि स्वाभाविक रूप से होती है उन कार्यों पर जोर देना अथवा उनका बालक को विशेष अभ्यास कराना व्यर्थ होता है। जैसा कि मैकग्रो (Mcgrow) तथा [illegible]

[illegible]

गया, लेकिन २८ दिनो के बाद भी दोनो की योग्यता मे कोई *विशेष अन्तर नहीं दिखाई दिया।* इसका यह निष्कर्ष निकलता है कि जिन-जिन कार्यों मे बालक की अभिवृद्धि स्वतः होती है, उनमे बार-बार अभ्यास कराने से कोई लाभ नहीं होता।

[illegible]

सीखने की क्रिया और स्वाभाविक अभिवृद्धि दोनों सहगामी हैं। अतः सीखना और प्रौढ़ता दोनों ही साथ-साथ चलते रहते हैं अतः यदि किसी कार्य का अभ्यास सीखने वाले के स्तर का मानसिक व शारीरिक विकास ध्यान में रखकर दिया जाय तो वह विशेष उपयोगी और लाभदायक सिद्ध होता है।

Q. 2 What is the process of learning ? Discuss the different modes of learning.

भिन्न-भिन्न मनोवैज्ञानिकों ने सीखने की तीन विधियों पर जोर दिया है—

(१) अनुकरण से सीखना।

(२) सूझ से सीखना।

(३) क्रियात्मक सीखना—(अ) सम्बन्ध सहज क्रिया द्वारा। (ब) प्रयास व त्रुटि द्वारा।

(१) अनुकरण से सीखना (Learning by imitation)—

मनुष्य तथा उच्चकोटि के पशुओं में अनुकरण की सामान्य प्रवृत्ति होती है इसी प्रवृत्ति के सहारे वे बहुत-से व्यवहार सीखते हैं। पशुओं पर अनुकरण द्वारा सीखने में कई प्रयोग कोहलर और हेगार्टी ने किए। कोहलर ने शिम्पाजी के ऊपर परीक्षण करके देखा कि जब एक शिम्पाजी तीन बक्सों को एक साथ रख कर और उनके ऊपर चढ़कर छत से लटकते हुये केले को तोड़ रहा था तो शिम्पाजी ने जो इस दृश्य को देख रहा था बिना भूल किये ही अनुकरण द्वारा बक्सों पर चढ़कर छत से लटकता हुआ दूसरा केला तोड़ लिया। हेगार्टी ने कमरे में बन्द एक बन्दर के सामने पोली नली में केला डालकर छोड़ दिया। बन्दर एक घन्टे तक इस नली को इधर-उधर केला निकालने के लिए पटकता रहा। एक घन्टे के बाद यह बन्दर अनेक त्रुटियाँ और प्रयास करने के बाद नली में से केला निकालने में सफल हुआ। इस दृश्य को दूसरा बन्दर बैठा-बैठा देख रहा था। जब उस बन्दर के सामने यह समस्या (Problem) रखी गई तो उसने बिना प्रयास किए ही एक मिनट से कम समय में ही छड़ी की सहायता से केला निकाल लिया।

अनुकरण की यह प्रवृत्ति बन्दरों में ही नहीं कुत्तों में भी होती है। तोता भी इसी प्रवृत्ति के अनुसार कुछ शब्द याद कर लिया करता है। बालकों में तो इस प्रवृत्ति का प्राबल्य होता है। यदि अनुकरण करने की शक्ति मनुष्य में नहीं होती तो उसका जीवन कठिन हो जाता और प्रत्येक बात सीखने के लिए उसे प्रयोग करने पड़ते। उसके सीखने की क्रिया में अनुकरण का विशेष महत्व है। उसके व्यवहार का समाजीकरण (Socialisation) बहुत कुछ अनुकरण पर ही आधारित रहता है। यही अनुकरण उसे अन्वेषण की ओर अग्रसर करता है। तभी तो ड्रेवर ने कहा था कि अनुकरण और अन्वेषण मानव-जाति के विकास में साथ-साथ मिलकर काम करते हैं।

अनुकरण द्वारा शिशु या बालक किस प्रकार सीखता है? क्या इस प्रकार सीखी हुई विषय वस्तु का शिक्षान्तरण होता है? इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए मिलर और डोलार्ड के ४२ छोटे-छोटे बच्चों को एक परीक्षण का विषयी (subjects) बनाया। एक कमरे में दो कुर्सियों पर दो बक्स रख दिये गये। एक बच्चे को जिसको नेता मान लिया गया, यह बता दिया गया कि इन दोनों बक्सों में किस में मिठाई रखी है। बक्स में दो मिठाई के टुकड़े रख दिये गये और बच्चे से

को प्रयत्न करने पड़े। बाद में जब बक्सों की स्थिति बदल दी गई और दो के स्थान पर चार बक्स रख दिये गये तो ७५% बच्चों ने पहली बार ही सही-सही अनुकरण कर लिया। इस प्रकार अनुकरण द्वारा सीखने से प्राप्त ज्ञान का शिक्षान्तरण हो सकता है।

उचित प्रेरणा देने पर बालक अनुकरण कर बहुत-सी बातें सीख लेते हैं किन्तु जब तक वे किसी विशेष प्रतिक्रिया के लिए विरुद्ध (mature) नहीं हो तब तक सीखने की सम्भावनाएँ कम होती हैं। केवल निरीक्षण की सहायता से ही कोई बालक चलना नहीं सीख सकता। चलना सीखने से पहले उसमें चलने की क्षमता पैदा हो जाती है। इस प्रकार अनुकरण द्वारा किसी काम का सीखना तभी सम्भव हो सकता है जब उस काम की आधारभूत दक्षताओं को पहले से ही प्राप्त कर लिया जाय।

(२) सूझ द्वारा सीखना (Learning by Insight)—

जर्मन मनोवैज्ञानिक कोहलर ने थोर्न डाइक की प्रयोग विधि की आलोचना करते हुए यह बताया कि यदि सीखने वाले प्राणी के सामने पूर्ण परिस्थिति हो तो वह अन्तर्दृष्टि के सहारे साधनों एवं उनसे प्राप्त होने वाले उद्देश्यों के बीच सम्बन्ध को शीघ्र समझ लेता है और बिना अधिक भूल किए सफल व्यवहार सीख जाया करता है। थोर्न डाइक के परीक्षण अधिकतर पशुओं पर ही हुए थे और उनमें यह दिखलाया गया था कि कोई पशु किस प्रकार गतियुक्त दक्षता को सीखता है और अपने परिणामों के आधार पर सीखने के नियमों का निर्धारण किया गया था। किन्तु उनके परीक्षण की स्थिति ऐसी थी जिसमें समस्या का हल नहीं दिया जाता था। फलतः उनके पशु प्रत्यक्ष सम्बन्ध को पहिचानने में असमर्थ रहते थे। कोलर का कहना था कि थार्नडाइक ने जिन समस्याओं को पशुओं के सामने रखा वे अत्यन्त कठिन थीं। उदाहरण के लिए लीवर जिसके दबाने से दरवाजा खुल सकता था बिल्ली के सामने उस क्षेत्र में प्रस्तुत न था जिसका प्रत्यक्षीकरण उसे उस समय हो रहा था। ऐसी परिस्थिति में बिल्ली 'प्रयास और त्रुटि' का ही सहारा ले सकती थी। मनुष्य भी ऐसी दशा में पड़ने पर प्रयास और त्रुटि का सहारा लेता क्योंकि यदि उसे ऐसे कमरे में बन्द कर दिया जाता जिसके दरवाजे को एक बटन दबा कर ही खोला जा सकता है तो निश्चित ही वह अनियन्त्रित रूप से कई प्रयास करता और जो प्रयास दरवाजे को खोलने में सहायक होता वह उसी को सीख लेता। प्रायः मनुष्य 'त्रुटि और प्रयास' की विधि द्वारा ही नहीं सीखता। कोहलर के मतानुसार सीखने का सार खोज में निहित रहता है और इस खोज में अन्तर्दृष्टि का हाथ अधिक रहता है। अन्तर्दृष्टि या सूझ से उसका अभिप्राय उस योग्यता से है जिसके अनुसार प्राणी किसी विशेष परिस्थिति में अपने उद्देश्य और उस तक पहुँचने वाले साधनों के सम्बन्ध को समझ लेता है।

कोहलर और उसके अन्य साथियों ने थार्नडाइक के सीखने के सिद्धान्त को 'मनोवैज्ञानिक अणुवाद' कहकर पुकारा है क्योंकि प्रयास और त्रुटि द्वारा सीखना कुछ स्वतन्त्र स्वरों का

[illegible] ...को एक कटघरे ... ऐसे दो टुकड़े ... दोनों टुकड़ों ...कर बनाए गए

[illegible] बड़े बाँस से केले खींचे जा सकते थे। जब परीक्षण आरम्भ हुआ तब शिम्पाजी ने केले तक पहुँचने के अनेक प्रयत्न किए किन्तु जब वह एक बाँस की सहायता से केला न खींच सका तो हार कर बैठ गया। कुछ समय बाद जब वह दोनों बाँसों से खेल रहा था एकदम उसके दिमाग में एक बात आई। उसने सोचा कि यदि दोनों बाँस मिला दिए जायें तो वह अपने उद्देश्य की प्राप्ति कर सकता है। इस प्रकार कोहलर ने देखा कि किसी समस्या का हल एकदम ही सीखने वाले के दिमाग में आता है उसे प्रयास और त्रुटियाँ करने की जरूरत नहीं पड़ती। सीखने वाले के दिमाग में यकायक ऐसे विचार का आजाना जिससे समस्या हल हो सके अन्तर्दृष्टि का लक्षण कहा जा सकता है। ऐसे परीक्षणों के आधार पर कोहलर ने बतलाया कि प्राणी केवल प्रयास और त्रुटि हो से नहीं सीखता

अन्तर्दृष्टि से भी सीखा करता है। सूझ की सहायता से पूरी तरह सीखी हुई प्रतिक्रिया सीखने वाले के मस्तिष्क में एकदम आ जाती है। ऐसा प्रायः उस समय होता है जब सीखने वाला किसी सामान्य नियम या विधि को यकायक पा लेता है। उदाहरण के लिये तैरना सीखने वाला सीखने में उन्नति उस समय करता है जब यह साधारण बात उसके दिमाग में आ जाती है कि डुबकी लगाने से पहले गहरी सांस लेने से पानी के अन्दर काफी देर तक तैरा जा सकता है।

अवयववादियों के अनुसार अन्तर्दृष्टि सीखने का केन्द्रबिन्दु है क्योंकि प्रत्येक समस्या उसी समय हल हो जाती है जिस समय सीखने वाले को यह अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो जाती है और अन्तर्दृष्टि पाने का अर्थ है निहित सिद्धान्त (Principle), विधि और सम्बन्ध का ज्ञान हो जाना। यद्यपि बहुत-सी सूझ सीखने वाले में स्वयं आ जाती हैं किन्तु शिक्षक को बालकों में उस नियम या विधि या सम्बन्ध का संकेत बताके सूझ पैदा कर सकते हैं जिससे समस्या हल हो सकती है। अंग्रेजी भाषा के शिक्षकों को बालकों को यह बता देना चाहिये कि निबन्ध लिखने से पूर्व रूपरेखा तैयार करने से निबन्ध अच्छा बन सकता है। बालक में अपने अनुभव से प्राप्त सूझ इतनी स्पष्ट नहीं होती जितनी कि अध्यापक द्वारा दी गई सूझ हुआ करती है।

सूझ द्वारा सीखने का सिद्धान्त बालकों में बुद्धि को विकसित करने पर जोर देता है। बिना सोचे-समझे किए हुए प्रयत्न समय का नाश अधिक करते हैं, समस्या का हल कम। अतः कक्षा-कार्य में समझने पर जोर दिया जाय। अन्धे होकर बातों का रटना और पाठों की पुनरावृत्ति करना सीखना नहीं है। सूझ से किसी समस्या को हल करने पर वह हमेशा के लिए सीख ली जाती है। सीखने का यह सिद्धान्त परिस्थिति की पूर्णता पर अधिक जोर देने के कारण एक अनुपम शिक्षण विधि का सृजन करता है। भूगोल का अध्यापक हो या भाषा का, गणित का अध्यापक हो या विज्ञान का आज पूर्ण से अवयवों की ओर चलता है। (from wholes to parts)। इस प्रकार आधुनिक शिक्षा प्रणालियों में सूझ से सिखाने पर ही अधिक जोर दिया जाता है।

(३) क्रियात्मक सीखना (Associative learning)

क्रियात्मक सीखने के दो मुख्य प्रकार हैं: (अ) अनियन्त्रित प्रतिक्रियाएँ करके सफल क्रियाओं को दृढ़ बनाना, असफल क्रियाओं की अवहेलना करना (Trial and Error)। (ब) सम्बद्ध सहज

विधि से S—R के सम्बन्ध मजबूत होते हैं। दूसरी विधि से S—R में नये सम्बन्धों का निर्माण होता है।

(अ) सम्बद्ध-सहज क्रिया द्वारा सीखना (Learning by Conditioning), रूस में [illegible] प्राणी सम्बद्ध सहज [illegible] तेक्रियाओं पर निर्भर [illegible] परिवर्तन दो प्रकार से होता है—परिवर्तित उत्तेजना द्वारा (Conditioned stimulus) और परिवर्तित प्रतिक्रिया (Conditioned Response) द्वारा। अप्राकृतिक अथवा परिवर्तित उद्बोधक (Stimulus) द्वारा प्राकृतिक उद्बोधन का स्थान ग्रहण कर लेना सम्बन्ध-सहज क्रिया के मूल में निहित रहता है। इस प्रकार परिवर्तित उद्बोधक और अपरिवर्तित प्रतिक्रिया में सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। जिन-जिन परिस्थितियों में इस प्रकार का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है उनका सन् अध्ययन १९०३ से प्रारम्भ हुआ। सबसे पहले पावलोव ने यह देखा कि भूखे कुत्ते को भोजन देने से पहले ही भोजन खिलाने वाले नौकर के पैरों की आवाज सुनते ही उसके मुँह से लार आने लगती है। भोजन को देखकर मुँह में लार का आना स्वाभाविक है, किन्तु यदि कुछ दिन [illegible] भोजन के साथ-साथ घण्टी बजाई जाय तो घण्टी की आवाज को सुनकर लार का आ[illegible] माना जायगा।

कुत्ते का यह व्यवहार सीखा हुआ व्यवहार है क्योंकि केवल घण्टी की आवाजें सुनकर कुत्ते के मुँह से लार नहीं निकलती है।

यहाँ पर सीखने से पहले की परिस्थिति में,

प्राकृतिक उद्‌बोधक (Natural stimulus)	प्राकृतिक प्रतिक्रिया (Natural response)
भोजन	लार गिराना
घण्टी की ध्वनि	घण्टी की ओर देखना

सीखने (Conditioning) के बाद की परिस्थिति में, जब भोजन देने से ठीक ३० सेकिण्ड पहले से घण्टी बजाई जाय, तब कुछ कोशिशों के बाद,

प्राकृतिक उद्‌बोधक भोजन	(प्राकृतिक प्रतिक्रिया)
परिवर्तित उद्‌बोधक (घण्टी की ध्वनि)	लार गिराना

भोजन को मुँह में पाकर कुत्ते का लार गिराना एक सहज क्रिया (reflex action) है, जन्मजात है, अत प्राकृतिक है। भोजन जिसे मुँह में रखते अथवा देखते ही लार आने लगे प्राकृतिक उद्‌बोधक है किन्तु घण्टी को लार प्राप्त करने के लिये अप्राकृतिक उद्‌बोधक मानना होगा क्योंकि अगर किसी कुत्ते के सामने केवल घण्टी ही बजाई जाय तो वह भोंकने लगेगा, अथवा घण्टी की ध्वनि को उदासीनता से सुनेगा। अत लार गिराने की सहज क्रिया और घण्टी सुनने की क्रिया में कोई सम्बन्ध नहीं है किन्तु यदि कई बार भोजन देने से ठीक पहले घण्टी बजाई जाय तो कुत्ता कुछ दिनों के बाद घण्टी की आवाज सुनते ही लार गिराने लगेगा। इस प्रकार किसी उद्‌बोधक और प्रतिक्रिया के बीच अप्राकृतिक सम्बन्ध का स्थापित कर लेना सम्बद्ध सहज क्रिया द्वारा सीखना कहलाता है।

...को लोग असम्बद्ध उद्‌बोधक (Unconditioned stimulus or *U. C. S*) तथा उसकी प्रतिक्रिया को असम्बद्ध प्रतिक्रिया (Unconditioned response or U C R.) कहने लगे हैं। परीक्षण के प्रयोग में लाया हुआ विचित्र उद्‌बोधक जिससे प्रतिक्रिया का सम्बन्ध स्थापित कर लिया जाता है सम्बद्ध उद्‌बोधक (Conditioned stimulus or C. S) तथा वह प्रतिक्रिया सम्बद्ध प्रतिक्रिया (Conditioned Response or C. R.) कहलाती है।

सम्बद्ध प्रत्यावर्तन (Conditioning) पर अब तक जितने भी परीक्षण हुए हैं उनका सार नीचे दिया जाता है—

(१) आवश्यकता के कम होने के साथ-साथ सम्बद्ध प्रत्यावर्तन क्रिया द्वारा सीखने से उद्‌बोधक विशेष प्रतिक्रिया के बीच सम्बन्ध का निर्माण होता है।

(२) सम्बद्ध एवं असम्बद्ध उद्‌बोधकों को प्रस्तुत करने के बीच का समय सम्बद्ध *प्रत्यावर्तन* की मात्रा निश्चित करता है। यदि घण्टी बजाने और भोजन देने के बीच का समय (*Interval*) अथवा घण्टी बजाने और बिजली का धक्का देने के बीच का समय बहुत अधिक हुआ तो किसी प्रकार की सम्बद्ध प्रतिक्रिया नहीं होगी। घण्टी बजाने पर लार न गिरायी जायगी, अथवा घण्टी बजाने पर हाथ न हटाया जा सकेगा। किन्तु यदि यह समय बहुत कम हुआ तो कुछ कोशिशों

(Trials) के बाद सम्बद्ध प्रत्यावर्तन स्थापित हो जायगा। सम्बद्ध प्रत्यावर्तन (Conditioning) के लिए यह जरूरी है कि असम्बद्ध उद्बोधक को प्राकृतिक उद्बोधक से पहले प्रस्तुत किया जाय। जब प्राकृतिक उद्बोधक को पहले प्रस्तुत करते हैं अर्थात् बिजली का धक्का देने से पूर्व घण्टी नहीं बजाते, बाद मे बजाते हैं तब भी मनुष्य केवल घण्टी बजाने से हाथ हटाने का सम्बन्ध स्थिर कर लिया करते हैं। इस प्रकार के सम्बद्ध प्रत्यावर्तन को हम पश्चवर्ती सम्बद्ध प्रत्यावर्तन (backward conditioning) कहते हैं।

नीचे लिखी तालिका में प्रत्यावर्तन की मात्रा तथा समय का सम्बन्ध दिखालाया गया है जिसकी आंकिक सामग्री (data) एक प्रयोगशाला के परीक्षण के आधार पर प्राप्त हुई थी।

समय	सम्बद्ध प्रत्यावर्तन की मात्रा		
१/३ सैकिण्ड	१०%	१ सैकिण्ड	१५%
१/४ ,,	१५%	१½ ,,	१०%
० ,,	२०%	२ ,,	०%
१/४ ,,	२२%		
१/२ ,,	३५%		
३/४ ,,	३०%		

यह तालिका दिखाती है कि मनुष्यों मे पश्चवर्ती प्रत्यावर्तन होता है और एक ऐसा (time interval) होता है जिसमे सम्बद्ध प्रत्यावर्तन की मात्रा अधिकतम होती है।

(३) सीखने की क्रिया के आरम्भ मे प्राणी मे केवल सम्बद्ध उद्बोधकों के प्रस्तुत करने पर ही प्रतिक्रिया नहीं होती जिसका उपयोग पहले किया गया था किन्तु अन्य उद्बोधकों के प्रस्तुत करने पर भी वैसी ही प्रतिक्रियाएँ होने लगती है। अन्तर केवल इतना होता है कि सम्बद्ध प्रत्यावर्तन की मात्रा (amount of conditioning) अपेक्षाकृत कम हुआ करती है। जब कुत्ता किसी विशेष घण्टी की ध्वनि को सुनकर लार गिराने लगा तो यह देखा गया कि अन्य ध्वनियों के सुनने पर भी कुत्ते के मुँह में लार आने लग गयी। जिस शिशु ने काले पिल्ले को देख कर डरना सीख लिया है वह काली बिल्ली को देख कर भी भयभीत हो सकता है। इस प्रकार सीखने वाला उद्बोधकों का सामान्यीकरण (Stimulus Generalisation) कर लिया करता है।

किन्तु जैसे-जैसे सीखने की मात्रा अधिक होती जाती है सीखने वाला भिन्न-भिन्न उद्बोधकों में अन्तर अनुभव करने लगता है। यदि कुत्ते को एक मिनट मे १०० बार टिक-टिक करने वाले metronome को भोजन देने के साथ-साथ सुना कर लार गिराना सिखाया जाय और एक मिनट में १२० बार टिक-टिक करने वाले metronome को बजा कर भोजन न दिया जाय तो वह दोनों प्रकार की ध्वनियों मे अन्तर पहचानना सीख लेगा। सीखने वाले की इस प्रवृत्ति को उद्बोधक का अन्तरीकरण कहते हैं (stimulus differentiation)।

(४) जिस प्रकार सम्बद्ध उद्बोधक को असम्बद्ध उद्बोधक के साथ-साथ देने पर सम्बन्ध दृढ़ हो जाया करता है उसी प्रकार यदि इस अप्राकृतिक उद्बोधक के बाद प्राकृतिक उद्बोधक न दिया जाय तो प्रतिक्रिया का विलोपन (extinction) होने लगेगा। सम्बद्ध सहज क्रिया (conditioned reflex) स्थापित हो जाने पर अर्थात् केवल घण्टी की आवाज सुन कर लार गिराने की सहज क्रिया प्रारम्भ हो जाय तो यह क्रिया पुनः केवल घण्टी के बजाए जाने पर जारी रहेगी किन्तु कुछ समय बाद भोजन न मिलने पर उत्पन्न निराशा के कारण धीरे-धीरे लार गिराना बन्द होने लगेगा। अतः यदि लार का गिराना बन्द नहीं करना है तो घण्टी बजाने के बाद या साथ-साथ भोजन देना पड़ेगा। यह भोजन सम्बद्ध प्रत्यावर्तन को पक्का करने (reinforce) में सहायक होता है।

यद्यपि आज घण्टी के साथ-साथ भोजन न देने पर लार का गिराना रुक सकता है, किन्तु कल ऐसा हो सकता है कि यदि घण्टी बजाई जाय और भोजन न दिया जाय तो भी लार गिरने लगे। इसे हम प्रत्यावर्तित सहज-क्रिया का परावर्तन (spontaneous recovery) कहते हैं।

पावलाव ने अपने सारे परीक्षण कुत्तो पर किए किन्तु बेखटरेव ने मनुष्यो पर भी ऐसे ही परीक्षण किए। उसके बाद वाटसन ने छोटे-छोटे बच्चो पर इसी प्रकार के प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दिया कि बच्चे भयो को सम्बद्ध प्रत्यावर्तित प्रतिक्रिया द्वारा सीखते हैं। उसने यह भी दिखाया कि किस प्रकार ये भय दूर किये जा सकते हैं। यदि किसी बच्चे ने बिल्ली से भयभीत होना सीख लिया है तो उसके सामने मिठाई खाते समय अथवा माँ की गोद मे खेलते समय बिल्ली को दूर पर रखा जाय। कई बार ऐसा करने से और बिल्ली को धीरे-धीरे पास लाने से बच्चा बिल्ली से भयभीत होना बन्द कर देगा।

सम्बद्ध परावर्तित प्रतिक्रिया (conditioning) का शिक्षक के लिए विशेष महत्व है। जिस प्रकार कुत्ते के लिए प्रतिक्रिया को पक्का करने के लिए भोजन की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार यदि हम किसी बालक मे अच्छी आदतें डालना चाहते हैं तो पुरस्कार (reward) का प्रयोग करके उन्हे पक्का (reinforce) कर सकते हैं। बच्चो मे अच्छे कार्यों और पुरस्कार के बीच सम्बन्ध स्थापित को जाने पर उन्हे सदैव अच्छे कार्यों मे रुचि पैदा हो जाती है। गलती करने पर दण्ड उस गलती की सम्भावना को कम कर दिया करता है। दण्डनीय कार्य करने और दण्ड देने के बीच का समय (interval) बहुत ही कम होना चाहिए।

बच्चो मे किसी विषय के प्रति अरुचि ठीक उसी प्रकार पैदा हो जाती है जिस प्रकार बच्चो के साधारण वस्तुओ के प्रति भय। उदाहरण के लिए, यदि किसी बालक को अध्यापक कक्षा मे बार-बार उसके गलत उत्तर देने पर अनुचित ताडना देता है अथवा हँस पड़ता है, अथवा किसी प्रकार की ऐसी बात कह देता है जो उसको बुरी लग जाती है तो बालक उस विषय से घृणा करने लगेगा। ऐसा भी हो सकता है कि वह कक्षा से अध्यापक से, और विद्यालय से घृणा करने लगे। विद्यालय से भागने वाले बालकों मे भागने की प्रवृत्ति सम्बद्ध प्रत्यावर्त्तन द्वारा पैदा हो जाती है। किसी प्रकार का आचरण करते या कोई कार्य करने समय होने वाले सुखद या दुखद अनुभव उस आचरण अथवा कार्य से सम्बद्ध हो जाया करते हैं और फलस्वरूप जब कभी वह दुखद या सुखद अनुभूति पुन. होती है तभी वैसा ही आचरण या कार्य बालक किया करता है।

प्रयास एवं त्रुटि द्वारा सीखना
(Learning by Trial and Error)

बालक जैसे-जैसे आयु मे बढ़ता जाता है वह अनेक दक्षताएँ (skills) और गतिवाही क्रियाएँ (motor activities) सीखता जाता है। ये कार्य प्राय: प्रयास एवं त्रुटि द्वारा सीखे जाते हैं। जब वह तैरना सीखता है, उस समय उसे कई गलत हरकतें करनी पड़ती हैं। कुछ हरकतों को वह चुन लिया करता है, कुछ को छोड़ता जाता है अन्त मे कुछ महीनों बाद ठीक हरकतें याद कर लेता है। तैरना सीखने की पूरी अवधि मे वह प्रयास करता है, त्रुटियाँ करता है और इस प्रकार सही प्रतिक्रियाएँ सीख लिया करता है। सीखने की क्रिया धीरे-धीरे चलती है और तब तक चलती है जब तक प्राणी सन्तोष की एक सीमा पर नहीं पहुँच जाता। कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि सीखने की इस विधि को 'प्रयास एवं त्रुटि' न कहकर, सफल प्रतिक्रियाओं के चुनने से सीखना कहना चाहिए क्योंकि प्राणी सफल प्रतिक्रियाओं के चुनने से सीखता है न कि गलत प्रतिक्रियाओं की अवहेलना से।

सम्भवत. सबसे पहले 'प्रयास एवं त्रुटि' की विधि द्वारा सीखने का आभास लायड मोरगन ने दिया था। उन्होंने कुत्ते को लोहे के सीकचों से घिरे हुए घेरे के अन्दर बन्द कर दिया। कुत्ता बाहर निकलने के लिए अपने थूथने से हर एक सीकचे को ढकेलता रहा। बहुत देर बाद वह दरवाजे को ढकेलकर बाहर निकल सका। पशु किस प्रकार सीखता है इस पर अनेक परीक्षण

[illegible] जिसमे थार्नडाइक के प्रयोग उल्लेखनीय हैं। उनके परीक्षणों से यह निष्कर्ष निकलता है [illegible] प्राणी अनियन्त्रित प्रतिक्रियाएँ (random response) करके सफल क्रियाओं को दृढ़ बनाता है [illegible] उनकी भूखी बिल्ली, जब एक [illegible] एक चटखनी के दबने से खुल [illegible] (random) क्रियाएँ करती है— [illegible] है, उनके बीच मे होकर अपना [illegible] निकलती है। ऐसा करते-करते अनायास उसका पैर चटखनी पर पड़ जाता है और पिंजरा खुल जाने पर उसे भोजन मिल जाता है किन्तु वह पुन. बन्द करदी जाती है। भूखी होने के कारण फिर उसी प्रकार की अनियन्त्रित क्रियाएँ करती है। इस अनियन्त्रित प्रतिक्रियाओं की संख्या कम हो जाती है फलत पहले से थोड़े समय मे ही वह दरवाजा खोल लेती है। सीखने की क्रिया इस प्रकार एक आसान क्रिया नहीं है। कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि वह किसी दूसरी विधि से भी भाग निकलती है किन्तु जब वह देखती है कि यह तरीका असन्तोषजनक है तब वह उसे छोड़ देती है।

प्राणी के व्यवहार मे परिवर्तन लाने में चार वस्तुएँ काम करती हैं। प्रतिक्रियाएँ, उद्बोधक, प्रेरणा और पुरस्कार।

प्रतिक्रियाएँ—ये प्रतिक्रियाएँ अनियन्त्रित होती हैं। यदि प्राणी कुछ सीखना चाहता है तो सीखने के लिए अर्थात् नई स्थिति में पड़कर नयी प्रतिक्रिया करने के लिए यह आवश्यक है कि सीखने वालों के लिए यह प्रतिक्रिया काफी आसान हो। यदि ताले में ताली को मोड़ने की बात होती तो शायद बिल्ली कभी भी इस प्रतिक्रिया को न कर पाती और पिंजड़े से बाहर निकलना न सीख पाती।

उद्बोधक—सीखने के पहले तो प्राणी के सामने अनेक उद्बोधक हो सकते हैं किन्तु जैसे-जैसे प्राणी सीखता जाता है उन उद्बोधकों (stimulus) की संख्या भी कम होती जाती है। उदाहरण के लिए, पहले तो बिल्ली के सामने सींकचे, लीवर, छड़ आदि अनेक उद्बोधक थे, बाद मे वह लीवर को ही दबाकर बाहर निकल सकी।

प्रेरणा (motive)—बिना इच्छा के सीखना कम हुआ करता है। सीखने वाले को [illegible] [illegible] और साधारण दोनो होती [illegible] अत ऐसी प्रेरणा साधारणत: [illegible] [illegible]-प्रकाशन करने, आत्मप्रशंसा [illegible] [illegible] बाह्य मनुष्य मे पाई जाती है [illegible]

पुरस्कार (reward)—सीखने पर किए गए इन परीक्षणों के आधार पर कहा जा सकता है कि जो प्रतिक्रियाएँ आवश्यकताओं की सन्तुष्टि मे सहायक होती हैं वह प्रतिक्रियाएँ पक्की हो जाती हैं बाकी प्रतिक्रियाएँ छोड़ दी जाती हैं। यदि बिल्ली को खाना न दिया जाता तो शायद बिल्ली दरवाजा खोलना न सीखती। खाना पुरस्कार का काम करता है। प्रेरणाओं की जटिलता अथवा सफलता के अनुसार पुरस्कार भी जटिल अथवा सफल हुआ करते हैं। आत्म-प्रशंसा अथवा कटु आलोचना से सम्बन्धित भय से बचाव कुछ ऐसे ही पुरस्कार हैं जिन्हें हम जटिल कह सकते हैं।

[illegible] है, वह इस प्रकार प्रेरित होकर [illegible] की प्राप्ति होती है और कुछ [illegible] में होता है वे सीखती जाती है शेष की अवहेलना कर दी जाती है। 'त्रुटि और प्रयास' द्वारा सीखने की क्रिया को अनियन्त्रित (random) इसलिए और कहा जाता है कि इस विधि से सीखने वाला अन्तर्दृष्टि अथवा दूरदृष्टि से काम नहीं लेता। वह बिना समझे-बूझे याद करने वाले रट्टू तोते की तरह व्यवहार करता है।

पावलोव द्वारा प्रतिपादित सम्बद्ध प्रत्यावर्तित प्रतिक्रिया द्वारा सीखने और त्रुटि और प्रयास से सीखने मे विशेष अन्तर नहीं है। दोनों प्रकार के सीखने मे विशेष अन्तर नहीं है। दोनों प्रकार के सीखने की क्रिया में एकसे गुण मिलते हैं। सम्बद्ध प्रत्यावर्तन क्रिया द्वारा सीखने मे नये S-R के सम्बन्धों का निर्माण होता है और प्रयास तथा त्रुटि द्वारा सीखने में वर्तमान S-R के बीच सम्बन्ध गहरे हो जाते हैं—जिस प्रकार सम्बद्ध प्रत्यावर्तन (conditioning) मे समय विशेष महत्त्व रखता है उसी प्रकार त्रुटि और प्रयास द्वारा सीखने में भी प्रतिक्रिया और पुरस्कार की प्राप्ति के बीच का समय जितना ही कम होगा प्रतिक्रिया उतनी ही पक्की हो जायगी। जब किसी प्राणी ने त्रुटि और प्रयास द्वारा एक प्रतिक्रिया सीख ली है जिसका अन्त पुरस्कार प्राप्त मे होता है। पुरस्कार के न मिलने पर वही सीखी हुई प्रतिक्रिया का धीरे-धीरे लुप्तीकरण (Extinction) हो जाया करता है किन्तु कुछ समय बाद वही लुप्तप्राय प्रतिक्रिया पुन. प्रकट हो जाती है। जिन अवस्थाओं में मौलिक बात सीखी जाती है उन अवस्थाओं के आने पर उसी प्रकार का सीखा हुआ व्यवहार पुनः दिखाई देने लगता है। अवस्थाएँ जितनी ही अधिक समान होती हैं शिक्षान्तरण उतना ही अधिक होता है। सम्बद्ध प्रत्यावर्तित प्रतिक्रिया द्वारा सीखने मे इसी प्रकार से सामान्यीकरण *(stimulus generalisation) का उल्लेख किया गया था। यदि नई परिस्थिति मे पुरस्कार न* मिल सका तो सामान्यीकृत प्रतिक्रिया (generalised response) लुप्त हो जायगी और पहली पुरस्कृत प्रतिक्रिया बनी रहेगी। इस प्रकार दोनो प्रतिक्रियाओं में अन्तर बना रहेगा।

प्रयास एव त्रुटि द्वारा सीखने की व्यापकता—यद्यपि आरम्भ मे थार्नडाइक ने कुत्तों, बिल्लियों, चूहो और मछलियो पर प्रयोग द्वारा यह निश्चित किया था कि प्राणी किस प्रकार सीखते हैं किन्तु बाद मे बालको पर परीक्षणो द्वारा 'प्रयास तथा त्रुटि' की विधि द्वारा सीखने की क्रिया को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया। जिन बातों को बालक के माता-पिता प्रशंसित कर दिया करते हैं वे बातें सीख ली जाती हैं और जिनके लिए उनको दण्ड दे दिया जाता है वे बातें भुला दी जाती हैं। अध्यापकों और अभिभावकों का कर्त्तव्य है कि वे पहले इस बात को निश्चित करें कि कौन-कौनसी प्रतिक्रियाएँ उन्हें दण्डित और कौन-कौनसी पुरस्कृत करनी हैं *तभी* वे उनमे सुन्दर ढग का आचरण परिवर्तन कर सकते हैं। 'प्रयास और त्रुटि' द्वारा सीखने की क्रिया पशु और बालको मे ही नहीं पाई जाती, वह प्रौढ व्यक्तियो मे भी समानरूप से मि-ती है। हमारे सोचने की क्रिया मे 'प्रयास और त्रुटि' का अश सदैव रहता है। कोहलर के द्वारा प्रतिपादित सूझ द्वारा सीखने की विधि मे भी प्रयास और त्रुटि का प्रभाव किस प्रकार रहता है, आगे *समझाने की चेष्टा की जायगी।*

होती हैं और अन्तिम प्रि ... ...क्ति अधिक होती है। यदि नकारात्म ... ...धिक सशक्त हुआ तो वह सकारात्मक ... ...ये, यदि भूखे चूहे को भोजन और बिजली का धक्का एक साथ दिया जाय तो भोजन का प्रभाव कम हो जायगा, यदि बिजली का धक्का अत्यन्त तेज है।

प्रेरणा का सीखने की प्रक्रिया पर प्रभाव

Q 2. "Motivation is sin qua non of learning" Discuss What different types of motives do we employ to motivate our childrens behaviour ?

उत्साह (motivation) और सीखने मे घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह उत्साह पशुओं मे भूख, प्यास और पीडा मे पैदा होता है और मनुष्य मे सम्मान, धन और प्रशसा पाने की इच्छा से। पशुओ के सीखने मे जिन प्रेरक शक्तियो का प्रयोग किया जाता है वे कुछ सरल होती हैं और आसानी से नियन्त्रण मे लाई जा सकती हैं। मनुष्यो के सीखने मे जिन प्रेरक शक्तियो का प्रयोग किया जाता है वे कुछ-कुछ जटिल होती हैं। पशु प्रयोगशाला मे मनोवैज्ञानिक पशु की शारीरिक आवश्यकताओं (Biological needs) का प्रयोग करता है, किन्तु मानव प्रयोगशाला (Human Laboratories) में मनुष्य की इच्छाओ का सहारा लेता है।

१४.६ सीखने की प्रक्रिया मे प्रेरकों के तीन महत्वपूर्ण कार्य—सीखने की प्रक्रिया में प्रेरणाएँ प्राणी के व्यवहार को तीन प्रकार से प्रभावित करती हैं—

(१) आचरण परिवर्तन के लिए शक्ति प्रदान करना (Energising behaviour)—जिस प्रकार भूख, प्यास और पीडा की दशाएँ प्राणी की ग्रथियो और मांसपेशियो मे तनाव पैदा कर उसे नवीन आचरण करने के लिये प्रेरित करती हैं, उसी प्रकार प्रशसा, निन्दा, पुरस्कार, दण्ड, धन और भोजन पाने की इच्छाएँ भी व्यक्ति को सीखने के लिए प्रेरित करती हैं। इन इच्छाओ को सन्तुष्ट करने वाली वस्तुओ मे से सब एकसा प्रभाव नही डालतीं। कुछ वस्तुएँ (incentives) व्यक्ति अथवा पशु को अधिक शक्ति देती हैं और कुछ कम।

(२) आचरण के प्रकार का निश्चित करना (Determination of behaviour)—ये प्रेरक शक्तियाँ (motives and incentives) यह निश्चित करती हैं कि व्यक्ति कौन-सा काम करे, किस प्रक्रिया को अपनाये और किसे अवहेलना की दृष्टि से देखे। किसी लेख को पढ़ते समय व्यक्ति इन्ही शक्तियो के कारण कुछ बातों को ध्यान से पढता है और कुछ को छोड़ दिया करता है। भिन्न-भिन्न श्रोता लोगो के एक ही वक्त का अलग-अलग अर्थ निकालने का कारण उनके प्रेरणाओ की भिन्नता है। इन प्रेरणाओं के सहारे पहले सीखी हुई प्रतिक्रियाओं का उचित प्रयोग होता है। यदि हम चूहे को यह सिखा दें कि किस रास्ते से चलने पर पानी मिलता है और किससे चलने पर भोजन तो बाद मे भूखा होने पर चूहा उसी रास्ते को चुन लेगा जो उसकी भूख बुझा सकता है।

(३) प्रेरणाओं (motives) द्वारा आचरण के लक्ष्य का निर्देशन (Direction of behaviour)—जिस व्यक्ति मे प्रशसा पाने की उत्कट इच्छा होती है वह इस इच्छा की पूर्ति करने वाले लक्ष्यो पर अपनी शक्ति को केन्द्रित कर दिया करता है। इस प्रकार उसके व्यवहार मे परिवर्तन आ जाया करता है।

इस प्रकार उत्साह और प्रेरणा (motivation) का सीखने की प्रक्रिया से निकटतम सम्बन्ध है। तभी तो गेट्स का कहना है

"Motivation is sin qua non of learning."

१४.७ प्रेरण के प्रभाव को दिखाने वाला एक प्रयोग—Motives Drives और Incentives मिलकर किस प्रकार सीखने की मात्रा को प्रभावित करते हैं। इस बात की जाँच करने के लिये निम्नलिखित चार प्रकार से चूहों को भूल-भुलैया सिखाई गई:

(i) कम भूखे किन्तु पुरस्कृत
(ii) अधिक भूखे और पुरस्कृत
(iii) कम भूखे और अपुरस्कृत
(iv) अधिक भूखे और अपुरस्कृत

परीक्षण के अन्त में यह देखा गया कि जो चूहे भूखे थे और जिन्हें
भोजन दिया गया था उन्होंने निश्चित समय के बाद कम गलतियाँ कीं, उन
कम भूखे थे और जिन्हें भोजन दिया गया था या नहीं दिया गया। प्रेरणा ही पु
बना देती है और पुरस्कार सीखने को पक्का कर देता है।

प्रशंसा—जिस प्रकार पशुओं के लिये भोजन पुरस्कार का काम करता है
उत्साहवर्द्धक होती है। बड़े लड़कों पर प्रशंसा का अधिक प्रभाव पड़ता है। ल
की अपेक्षा प्रशंसा अथवा निन्दा का कम प्रभाव पड़ता है। मन्द बुद्धि बालकों पर
प्रभाव पड़ता है और प्रशंसा से अधिक उत्साह ग्रहण करते हैं। एक परीक्षा में
समूह की दूसरे बालकों की उपस्थिति में प्रशंसा की गई, दूसरे समूह को उनको
सबके सामने भला-बुरा कहा गया। तीसरे समूह की न प्रशंसा की गई और न उस
चार सप्ताह तक उन तीनों वर्गों की परीक्षा ली गई। परीक्षा के परिणाम नीचे
जाते हैं।

	प्रथम सप्ताह	द्वितीय	तृतीय
प्रशंसा पाया हुआ समूह	११	१६	१८
निन्दित समूह	११	१६	१४
उदासीन समूह	११	१४	१३

यद्यपि प्रथम सप्ताह में सब समूहों ने लगभग एक से ही अंक प्राप्त किये थे
आने वाले सप्ताहों में प्रशंसित वर्ग दोनों वर्गों से अधिक सीख सका। निन्दित वर्ग दूस
काफी सीख पाया किन्तु अगले सप्ताहों में सीखने की मात्रा उत्तरोत्तर कम होती चली

सफलता का ज्ञान—सफलता का ज्ञान भी सीखने में उत्साह (motivation)
करता है। उद्देश्य प्राप्ति के बीचों-बीच में यदि बालकों को आंशिक सफलता का ज्ञान
तो उनमें उत्साह का संचार होता रहेगा।

प्रतियोगिता—जिस प्रकार सफलता का ज्ञान सीखने के लिये प्रेरणा का काम
उसी प्रकार प्रतियोगिता चाहे वह व्यक्तिगत हो अथवा सामूहिक, मनुष्य को सीखने
उत्साह देती है। बालकों के सामने जितनी का पाठ अधिक देर तक सह सकने की
प्रतियोगिता की भावना से ही पैदा हो जाती है। सामूहिक और व्यक्तिगत प्रतियोगिता
का अन्तर मालूम करने के लिये एक परीक्षण किया गया जिसमें प्रतिशत लाभ इस प्रकार
हुआ।

सामूहिक प्रतियोगिता	१०९%
व्यक्तिगत प्रतियोगिता	११५%
नियन्त्रित समूह	१०२%

व्यक्तिगत प्रतियोगिता की भावना पर अधिक जोर देने से बालकों के व्यक्तित्व में
पैदा हो सकता है।

उत्तेजक अथवा [illegible] की सहायता से प्राणी के व्यवहार में परिवर्तन उपस्थित
का कोई [illegible] द्वारा सम्भव है, वह [illegible] कहलाती है। शिक्षक द्वारा बाल
बहुत से [illegible] उत्तेजक अथवा उद्दीपक को उचित समय प्रस्तुत करने की क्रिया
(Motivation) कहते हैं। यह क्रिया बालक को सीखी जाने वाली वस्तु के लिये

उत्पन्न करती है। उत्प्रेरणा द्वारा
समाज मान्यता देता है। स्वीकृत
का कार्य है। सफल शिक्षक अपने
उनकी आवश्यकताओं (Need) को सन्तुष्ट करता है ...
रोचक अथवा रुचिकर होती हैं। इस प्रकार वह शिक्षण-कार्य के रुचि (Interest) पैदा करता है। उनको प्रशंसा, पुरस्कार और प्रेम द्वारा तुष्टि प्रदान करता है। इस प्रकार शिक्षक सीखने वाले को प्रेरणा देता है।

उत्प्रेरणा दो प्रकार की होती है—

(१) *आन्तरिक प्रेरणा*

(२) *बाह्य प्रेरणा*

बाह्य प्रेरणा मे हम बाह्य प्रेरको का प्रयोग करते हैं लेकिन ये प्रेरक अप्राकृतिक नहीं होते। इन प्रेरको मे उतनी ही शक्ति होती है जितनी की आन्तरिक प्रेरको मे होती है। शिक्षा मे बाह्य अथवा आन्तरिक दोनो प्रकार की प्रेरणाओ का उपयोग करते है।

१४.८ बाह्य प्रेरणाओं के प्रकार—बाह्य प्रेरणा निम्न प्रकार की होती है—

(१) प्रशंसा तथा आरोप (Praise or Blame)

(२) प्रतिद्वन्द्वता (Rivalry)

(३) पुरस्कार तथा दण्ड (Reward and Punishment)

(४) उन्नति का ज्ञान (Knowledge of Progress)

(५) *श्रव्य दृश्य सामग्री*

(१) प्रशंसा तथा आरोप—जब इन उत्तेजको का प्रयोग उन व्यक्तियो द्वारा किया जाता है जो इसके अधिकारी होते हैं। उदाहरण के लिए, अध्यापक द्वारा छात्रों की प्रशंसा अथवा निन्दा से उन पर विशेष प्रभाव पड़ता है। प्रशंसा का कुशाग्र बुद्धि वाले बालको पर कम पड़ता है।

यदि हम आयु, लिंग और मानसिक योग्यता को ध्यान मे न रखें तो यह कहा जा सकता है कि प्रशंसा का प्रभाव सकारात्मक ही होता है। लेकिन Chase महोदय का कहना है कि निन्दा का प्रशंसा से अधिक प्रभाव पड़ता है, मुख्यतः बालकों पर। परन्तु हर्लोक का कहना है कि प्रशंसा अधिक प्रभावशाली प्रेरक है। सफल अध्यापक इन दोनो प्रेरको से यथासमय यथा-सम्भव प्रयोग करता है।

(२) प्रतिद्वन्द्वता (Rivalry)—बालको के अन्दर स्वाभाविक रूप से ईर्ष्या, जलन और प्रतिद्वन्द्वता की भावनाएँ होती हैं। किन्तु शिक्षालय मे इनका उपयोग ठीक प्रकार से करना होगा। यदि प्रतद्वन्द्वता को ही अधिक बल दिया जाय तो विद्यालय मे सामूहिकता की भावना का ह्रास होगा।

(३) पुरस्कार तथा दण्ड—प्रशंसा और आरोप के स्पष्ट रूपमात्र हैं। वे उत्तम प्रेरक भी हैं। दण्ड का अर्थ है कि पीड़ा पहुँचाना, इस उद्देश्य से कि उसके भावी व्यवहार मे उचित दिशा मे परिवर्तन आवे। शिक्षण में यह विशेष उपयोगी विधि है। बालक अध्यापक से डरता है भय उत्प्रेरक का कार्य करता है और बालक को सही मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करता है। लेकिन दण्ड की कठोरता और अन्यायता दण्ड के प्रभाव को क्षीण कर देती है। यदि बालक को कठोर दण्ड अनुचित रूप से दिया जाय तो बालक उसकी प्रतिक्रिया करेगा। वह भय के कारण आज्ञा-पालन करेगा तो सही, परन्तु वह आज्ञा का उल्लंघन भी कर सकता है।

(४) उन्नति का ज्ञान—जब बालक को पता चल जाता है कि वह उन्नति कर रहा है

वाले को नहीं होगा तब तक सीखी हुई सामग्री पक्की नहीं होगी, दूसरे शब्दों में सीखं
की मात्रा अभ्यास की मात्रा के अनुपात में नहीं होती। बहुत सी विषय वस्तु जिससे र
की रुचि वर्तमान हो, कम अभ्यास करने पर शीघ्र ही सीख ली जाती है और बहुतसी
अरुचिकर होने पर अधिक अभ्यास करने पर भी नहीं सीखी जाती। इस प्रकार सीखने
अभ्यास पर ही नहीं अन्य बातों पर भी निर्भर रहती है।

अभ्यास के नियम (Law of Exercise) का यह आशय कभी नहीं निकाला
है कि अभ्यास अथवा पुनरावृत्ति के कारण ही सीखना सम्भव होता है, सीखने के ऊपर
सभी प्रयोगों में यही बात सामान्य रूप से देखी जाती है कि सीखने वाला निरर्थक
क्रियाओं को कई बार दुहराता है। सफल क्रियाओं को तो सारे प्रयोग में दुहराने के
ही नहीं मिलता। निरर्थक और गलत क्रियाएँ दुहराये जाने पर पक्की नहीं होती
क्रियाएँ न दुहराये जाने पर भी पक्की हो जाती हैं। इसका अर्थ यह है कि पुनरावृत्ति
जब प्रभाव के नियम के साथ करता है, तभी सीखने की क्रिया आरम्भ होती है। अ
के नियम के साथ पुनरावृत्ति (Law of Frequency) के नियम का उल्लेख किया गया

अन्य बातें, जो अभ्यास के साथ-साथ सीखने में सीखने वाले की मदद कर
संस्कार की निकटता तथा प्राथमिकता। जो क्रिया अभी हाल ही में की जा चुकी
पुन. की जा सकती हैं क्योंकि उसके द्वारा बने संस्कार बिल्कुल ताजे होते हैं, पु
सम्भावना संस्कार की निकटता से तो निश्चित होती ही है, संस्कार की प्राथमिकता
बनाने में सहायक होती है, संस्कार की प्राथमिकता का अर्थ है कि यदि अन्य बातें समान
क्रिया पहले की जाती हैं और यदि उनसे विशेष पीड़ा अथवा असन्तोष न मिले तो
जाने की सम्भावना होती है।

तत्परता का नियम (Law of Readiness)—यह सामान्य अनुभव की बात
प्राणी स्वस्थ एवं किसी बात को सीखने के लिए तत्पर होता है तथा जब उसमें सीख
चाह होती है तब वह उस बात को शीघ्र ही सीख लेता है। यही बात थार्नडाइक ने
शब्दों में कही है :

"जब मानव किसी कार्य को करने के लिए तैयार होता है तब वह क्रिया आन
और जब वह सीखने के लिए तैयार नहीं होता तब वह दुःख हो जाता है।"[1]

यह चोध, क्षोभ अथवा असन्तोष उसे सीखने के लिए बाधा का कार्य करता है।
रीत सीखने की चाह और तत्परता किसी कार्य को सीखने, और करने में सन्तोषदा
उदाहरण के लिए साइकिल चलाना, तैरना, टाइप करना आदि क्रियाएँ उस समय
सीखी जाती हैं जिस समय सीखने वाला शरीर से स्वस्थ और मन से उत्सुक होता है।

सीखने की तत्परता को हम मन की उत्सुकता भी कह सकते हैं। मन क
अथवा मानसिक मेल (Mental set) सीखने की क्रिया में विशेष सहायक होती है।

जब प्राणी सीखने की धुन में हो लेकिन सीखने का उसे अवसर न दिया जाय।
होता है, अत. अध्यापक को यह देखना होगा कि बालक सीखने के लिये कब तत
मन की उत्सुकता रुचि पर निर्भर रहती है, अतः किसी पाठ्य वस्तु को सीखने
रोचक बनाना होगा। कक्षा में प्रश्न पूछते समय इस बात पर अवश्य ध्यान देना
बालक प्रश्नों का उत्तर देने के लिए तत्पर है भी या नहीं, नहीं तो प्रश्नों का पू
वैज्ञानिक होगा।

पुनर्योग मिलने पर। बस इसी तथ्य को हम हल का प्राथमिक पुनर्योग (Primary Reinforcement) का सिद्धान्त कहते हैं।

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते समय हल एक बात और कहता है जिसका उल्लेख किया जा चुका है। यदि घण्टी के बजने और धक्के के बजने के बीच का समय किसी प्रकार बढ़ा दिया जाय तो कूदकर निकल जाने की प्रतिक्रिया की शक्ति क्षीण हो जाती है। यदि यह समय २ सैकिण्ड के स्थान पर ३० सैकिण्ड कर दिया जाय तो बिजली का धक्का न देने पर घण्टी के बजाते ही जो कूदने की प्रतिक्रिया होती है, वह प्रतिक्रिया न हो सकेगी। घण्टी के बजने और कूदने की प्रतिक्रिया के बीच सम्बन्ध कमजोर हो जायगा। दूसरे शब्दों, में जिस आदत का निर्माण किया जाता है उसके निर्माण के लिये पुनर्योग न दिये जाने पर आदत की शक्ति क्षीण हो जाती है। आदत की शक्ति के इस प्रकार क्षीण होने की प्रवृत्ति को हल 'पुनर्योग के झुकाव' के नाम से पुकारता है।

प्रश्न का हल कर लेने पर वे आत्म तुष्टि चाहते हैं और जब तक उन्हें सन्तुष्टि नहीं मिल जाती, जब तक उनकी आवश्यकता कम नहीं हो जाती तब तक अपने माता पिता और अध्यापकों को चैन नहीं लेने देते। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि हम उनके व्यवहार में परिवर्तन लाना चाहते हैं, यदि हम उनमें अच्छी आदतें डालना चाहते हैं, और बुरी आदतें छुड़ाना चाहते हैं तो हमें उनके लिये सामयिक पुरस्कार और दण्ड की व्यवस्था करनी होगी। उनकी अशुद्धियों को तुरन्त ही ठीक करना होगा। मौखिक प्रश्नों के उत्तरों के सही होने पर उनको शाबासी देनी होगी और प्रश्नों के उत्तर गलत होने पर तुरन्त ही कह देना होगा कि उत्तर गलत है।

कभी-कभी सन्तुष्टि देने वाली परिस्थिति और प्रतिक्रिया के बीच में काफी समय लग जाता है तब भी व्यक्ति उस प्रतिक्रिया को सीख लिया करता है। उदाहरण के लिये $\frac{३}{८}+\frac{५}{१२}$ का सही योग प्राप्त करने और इस उद्बोधक के दिये जाने के बीच काफी समय बीत जाता है तब भी बालक साधारण भिन्न के इस प्रश्न को हल करने में समर्थ हो जाता है इसका कारण क्या है। हल इसे माध्यमिक पुनर्योग के सिद्धान्त से समझाने का प्रयत्न करता है। सीखने की यह क्रिया किस प्रकार होती है इसका विश्लेषण नीचे किया गया है.

(S_1) $\frac{३}{८}+\frac{५}{१२}$ → ल० स० = २४ (R_1) कोई पुनर्योग नहीं मिलता

(S_2) ८ तीया २४, ३ त्रिके ९ / २४ एकम २४ ५ एकम ५ → $\frac{९+५}{२४}$ (R_2) "

(S_3) $\frac{९+५}{२४}$ → $\frac{१४}{२४}$ (R_3) "

(S_4) $\frac{१४}{२४}$ → $\frac{७}{१२}$ (R_4) 'शाबास' प्राथमिक पुनर्योग

उद्दीपक, $\frac{३}{८}+\frac{५}{१२}$ 'को जोड़ो' को सामने आते ही बालक के मन में तनाव पैदा होता है। उसकी इच्छा होती है प्रश्न को सही हल करने की, किन्तु इस इच्छा की न तो तब तक पूर्ति होती है और न आवश्यकता की शक्ति में किसी प्रकार की कमी ही आती है जब तक उस $\frac{७}{१२}$ उत्तर के रूप में नहीं मिल जाता। क्रिया के बीच के पद सही होने पर भी उसे किसी प्रकार का पुनर्योग प्राप्त नहीं होता। पुनर्योग तभी मिलता है जब उसका उत्तर सही आ जाता है। ऐसी अवस्था में सीखने की क्रिया किस प्रकार होती है, इसके समझाने के लिये हल माध्यमिक पुनर्योग की बात करता है। उसका कहना है कि पहले जो S_1-R_1 का एक सम्बन्ध बन जाता है वह S_1-R_1 का सम्बन्ध S_2-R_2 के सम्बन्ध को पक्का कर देता है। इस प्रकार R_1, R_2 ... माध्यमिक स्तरों पर पुनर्योग प्राप्त करते जाते हैं। सम्बन्ध को पक्के करने वाले तत्व (reinforcing agent) ऐसी अवस्था में S_1-R_1, S_2-R_2, S_3-R_3, के बीच स्थापित सम्बन्ध माने जाते हैं।

अध्याय १६

सीखने के वक्र
(Curve of Learnings)

Q. What is meant by Curve of Learning? What different types of curves get in learnings and why?

सीखने की प्रगति का रेखाचित्रीय प्रदर्शन

उत्तर—किसी विषय या कौशल के सीखने मे सीखने वाला समान गति से उन्नति प्राप्त करता है। अभ्यास के साथ-साथ सीखने मे जो उन्नति होती है उसे एक वक्र द्वारा दिखाया जाता है। उदाहरण के लिए, यदि हम तार सीखने वाले की प्रगति का अध्ययन देखें तो नीचे कल्पित आंकिक सामग्री (data) उपलब्ध होगी।

अभ्यास सप्ताहों में	प्रगति अक्षर प्रति मिनट
४	३०
८	५५
१२	८०
१६	६५
२०	१००
२४	१०५
२८	११०
३२	१२०
३६	१३०
४०	१३५
	१३६
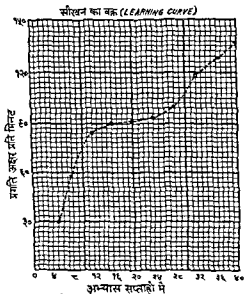
$$\text{Speed} = \frac{\text{Chagein plan}}{\text{time}}$$

१६·२ सीखने के वक्रों की विशेषताएँ—इस सामग्री को एक वक्र द्वारा प्रदर्शित करने के लिए क्षैतिज अक्ष (horizontal axis) के सहारे अभ्यास और ऊर्ध्वाधर अक्ष के सहारे प्रगति दिखायी जायेगी। सार सीखने का वक्र ऊपर चित्र में दिया गया है। किसी एक सीखने वाले के वक्र में निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं।

(१) इस वक्र में ऊपर उठने की प्रवृत्ति है अर्थात् सीखने वाला अभ्यास से कुछ न कुछ सीखता ही है।

(२) स्थान-स्थान पर वक्र में उतार चढ़ाव यह प्रदर्शित करते हैं कि सीखने वाले की रुचि, उत्साह और प्रेरणा सदैव समान नहीं रह सकी थी।

(३) किन्तु यदि सारी कक्षा के बालकों की आंकिक सामग्री को मिलाकर एक वक्र तैयार किया जाय तो उसमें इस प्रकार के उतार चढ़ाव (fluctuations) नहीं होंगे। यह वक्र कक्षा का क्रमिक विकास दिखा सकेगा।

(४) ऐसे वक्र के तीन रूप हो सकते हैं जो सीखने वाले की दशा, क्रिया के स्वरूप और सीखने की परिस्थितियाँ निश्चित करती हैं।

कभी-कभी उन्नति आरम्भ से ही तेजी से होने लगती है और कभी-कभी बहुत धीरे-धीरे।

(५) सीखने के वक्र में कभी-कभी कई महीनों तक कोई उन्नति दिखाई नहीं देती। कुछ स्थानों पर वक्र चौरस हो जाता है। जिस स्थान पर वह चौरस हो जाता है उससे ऊपर और नीचे वक्र में ढाल हुआ करता है। इन्हें हम Spuits कहते हैं।

(६) सूझ या अन्तर्दृष्टि आ जाने पर सीखने के वक्र में यकायक ढाल आ जाता है।

१६·३ सीखने के वक्रों के प्रकार—सीखने में उन्नति का प्रदर्शन, करने वाले वक्रों का रूप जैसा कि ऊपर कहा गया है तीन प्रकार का होता है—नतोदरता, उन्नतोदरता तथा मिश्रित वक्र।

(1) प्रारम्भिक धीमी प्रगति वाले अथवा नतोदर वक्र (Slow Initial Start)—सीखना शून्यावस्था से प्रारम्भ हो जाता है और समय के परिवर्तन के साथ सीखने की गति पहले धीमी फिर तेज हो जाती है।

जब सीखी जाने वाली विषय-वस्तु ऐसी हो जो कि सीखने वाले के लिए कठिन हो तो अभ्यास के आरम्भ में सीखने में प्रगति बहुत कम दिखाई देती है। जब कोई बालक पढ़ना सीखना आरम्भ करता है अथवा कोई प्रौढ़ व्यक्ति विदेशी भाषा का अध्ययन आरम्भ करता है तब कई सप्ताह तक तो किसी प्रकार की उन्नति होती हुई नहीं दिखाई देती। कुछ शब्दों के अतिरिक्त पढ़ना सीखने की योग्यताओं में किसी प्रकार का विकास नहीं होता है। इसके बाद एक दम उन्नति होती है सीखने में वक्र में ढाल आ जाता है क्योंकि जितना ही अधिक कोई सीखता है

उतनी ही अधिक आसानी से वह नई विषय वस्तु सीखने मे समर्थ होता है, और कुछ अधिक उन्नति थम जाती है। पढ़ना सीखने की योग्यता, शब्द भण्डार की वृद्धि, इतिहास, एवं गणित जैसे गूढ़ विषयों का ज्ञान इसी प्रकार बढ़ता है। जब तक शिशु १२ ... होता वह किसी प्रकार के शब्दों का ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाता। १ वर्ष की आयु के बाद ... शब्द भण्डार दिन प्रतिदिन बढ़ता जाता है। जब वह पूरी तरह से परिपक्व हो ... भण्डार में वृद्धि भी रुक जाती है।

आरम्भ मे प्रगति के धीमे होने के और भी कई कारण हो सकते हैं। यदि सीखी जाने वाली वस्तु के प्रारम्भिक तत्व कठिन हुए तो उनको हृदयगम करने में समय लगता है। सीखे जाने वाले काम का ढाँचा बनाना कठिन हुआ तब भी आरम्भ मे प्रगति कम दिखाई देती है। कभी-कभी आरम्भ मे ऐसी प्रतिक्रियाएँ सीखी जाती हैं जो बाद में सीखी जाने वाली क्रियाओं को सीखने मे सहायक होती है। इस दशा मे भी पहले सीखने की गति धीमी और बाद में तेज हो जाती है। देखो चित्र (अ) पृष्ठ १७७। ऐसे वक्र नतोदर (Concaves) वक्र कहलाते हैं।

(ii) प्रारम्भिक तीव्र प्रगति वाले वक्र (Rapid initial Start)—कभी-कभी सीखने की प्रगति अत्यन्त तेज होती है। कुछ समय तक यह तीव्र गति से चलने के बाद कम-सी जाती है। इसका यह आशय नहीं कि सीखने वाला आरम्भ कि अवस्थाओं मे ज्यादा अच्छी तरह सीखता है। आरम्भ में सीखने की उन्नति तीव्र होने के कई कारण हैं। ऐसी परिस्थिति में सीखना शून्यावस्था से आरम्भ नहीं होता। सीखने वाला कदाचित विषय वस्तु के कठिन भागों को पहिले ही अच्छी तरह सीख चुका होता है। ऐसी दशा मे पूर्व संचित संस्कार सीखने वाले के नये लक्ष्यों तक पहुँचने मे सहायक होते है। उदाहरणार्थ बीजगणित नये सिरे से सीखने मे तीव्र उन्नति का एक कारण यह भी है कि उसके जैसे तत्व अकगणित मे अच्छी तरह सीख लिए होते हैं।

ऐसे वक्र जिनमे पहले प्रगति तेज होती है फिर धीरे-धीरे कम होती है उन्नतोदर (Conve... वक्र कहलाते हैं।

प्रत्येक नये काम को सीखने वाला प्रखर रुचि और उत्साह से उस काम को आरम्भ करता है किन्तु बाद में वह रुचि और उत्साह कम हो जाने से सीखने की गति भी धीमी पड़ जाया करती है। देखो चित्र (ब)

(iii) मिश्रित वक्र—सीखने के कुछ वक्रों मे ऊपर दी गई दोनों विशेषताएँ आती हैं।

सीखने के वक्रों की अध्यापक को उपयोगिता—सीखने के वक्रो की उपयोगिता अध्यापक के लिये बहुत अधिक है सीखने के वक्र को देखकर अध्यापकों को यह सूचना मिलती रहती है कि सीखने की प्रगति कहाँ रुक रही है और पठार आते उसे क्या करना है। यदि सीखने की त्रुटि को आरम्भ से ही रोका जाय तो उनकी अनुपस्थिति मे बालकों की प्रगति यथा सम्भव रहेगी।

दो या दो से अधिक बालकों के सीखने की प्रगति का तुलनात्मक अध्ययन उनके सीखने के वक्रों को देखकर किया जा सकता है।

What is plateous of larning? why do we get plateous of learning? ... these plateous be avoided?

१६.४ सीखने के पठार (Plateous of Learning)—किसी कौशल या विषय को सीखने में सीखने वाला सदैव एक समान गति से नहीं चलता। कभी तो उसे परिश्रम और प्रयास का फल मिलता दिखाई देता है और कभी जितना श्रम वह करता है उससे कहीं कम सीखने में ... दृष्टिगोचर ...। उसे मालूम ऐसा पड़ता है कि उसकी प्रगति रुक गई है किन्तु यदि निराश ... के रुकने पर भी अभ्यास करता रहा तो कुछ समय बाद पुनः प्र... के ... करता रहा तो कुछ समय बाद पुनः प्रगति तीव्र हो जाती है। ... में दिया गया है उसे देखने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पहले

...ाह तक सीखने में उन्नति काफी तेज मालूम पडती है किन्तु १६ वें सप्ताह से लेकर २८ वें ...ाह तक उन्नति की दर में कमी हो जाती है। वक्र कुछ-कुछ चौरस सा हो जाता है। २८ वें ...ताह के बाद फिर प्रगति तीव्र हो जाती है। सीखने के वक्र का यह चौरस भाग पठार की तरह ...ने के कारण सीखने का पठार कहलाता है। जब अभ्यास करते-करते ऐसी अवस्था आ जाय कि ...खने वाले को किसी प्रकार की उन्नति न दिखाई दे और सीखने की प्रगति थमी हुई सी मालूम ...दे तब कहा जाता है कि वह सीखने के पठार पर है। जिस प्रकार पहाडी पर चढने वाले की ...ति बुरे रास्ते के कारण बीच-बीच में रुक जाया करती है उसी प्रकार सीखने वाले की प्रगति ...भी रुक जाया करती है। गति के रुकने पर हतोत्साह होना ठीक नहीं क्योंकि सीखने में पठार ...का आना स्वाभाविक है। सीखने की गति कभी-कभी तो महीनों तक रुकी पडी रहती है। पठार ... बाद गति प्राय तीव्र हुआ करती है। प्रत्येक प्रकार के ... आना अनिवार्य है अत शिक्षक का कर्तव्य है कि वह ...ाह न होने दे और उनके आने का कारण स्पष्ट कर ...सके।

पठार आने के कारण—सीखने में कभी-कभी प्रगति का रुक जाना कई कारणों से हो सकता है। परिपक्वता की कमी, थकान, अरुचि, गलत और अनुपयोगी विधि का प्रयोग, जटिल और कौशल के भिन्न-भिन्न अंगों में सन्तुलन की कमी, उत्तम प्रकार की प्रतिक्रिया को सीखने की इच्छा, उत्साह की कमी आदि पठार आने के कारण बतलाये गये हैं।

१—परिपक्वता की कमी (Lack of maturity)—किसी कौशल को सीखने के लिए शारीरिक अंगों और मानसिक शक्तियों के परिपक्व होने की आवश्यकता होती है। टंकन में कुशलता प्राप्त करने के लिए यह जरूरी है कि सीखने वाले की अंगुलियों में उतनी शक्ति अवश्य हो जितनी शक्ति की जरूरत हो। उसके हाथ का फैलाव भी काफी हो। यही कारण है कि टाइप सीखने वाला छोटा बच्चा एक सीमा तक टाइपिंग कर सकता है उसको पार करने के लिए उसे अधिक परिपक्व (mature) होने की जरूरत होगी।

(२) थकान और अरुचि (Fatigue and Boredom)—पठार के मुख्य कारणों में अरुचि को विशेष महत्व दिया जाता है और बात भी सत्य है क्योंकि अरुचि पैदा हो जाने पर सीखने में उन्नति रुक जाना नितान्त सम्भव है, किन्तु रुचि के तीव्र होने पर भी सीखने की गति थम जाया करती है। अतः लेखक के मतानुसार अरुचि पठार पैदा नहीं करती, पठार ही अरुचि पैदा कर दिया करता है। यदि निरन्तर अभ्यास करने पर भी उन्नति न दिखाई दी तो काम से अरुचि पैदा होने लगेगी। यदि ईमानदारी से काम करने पर भी कुछ प्रतिफल मिलता नजर न आवे तो अरुचि और निराशा पैदा हो ही जायगी। सीखने में पठार आ जाने पर जो निराशा या अरुचि पैदा हो जाती है उसे कम करने के लिये सीखने वाले का ध्यान उस उन्नति की ओर आकर्षित किया जा सकता है जो उसने अब तक प्राप्त करली है। निकट भूत की ओर देखने वाला विद्यार्थी ही उन्नति के रुक जाने पर निराश होगा ही। यदि उसके सामने भूतकाल में जितनी भी प्रगति उसने की है उसका लेखा रख दिया जाय तो शायद निराश नहीं होगा। किसी काम में रुचि की कमी जिन कारणों से हो जाती है उन कारणों को जानना भी अध्यापक का कर्तव्य है।

(३) गलत एवं अनुपयोगी विधि का प्रयोग (Use of inefficient or wrong methods)—सीखने में कभी-कभी पठार इसलिए भी आ जाते हैं कि सीखने वाला या तो अनुपयोगी पद्धति को अपनाकर काम करता है या गलत पद्धति को अपना लिया करता है। जब किसी पद्धति की उपयोगिता की अन्तिम सीमा आ जाती है तब वह पद्धति सीखने में अधिक उपयोगी नहीं रहती। अंगुलियों पर गिनना बालक के लिए नीची कक्षाओं में उपयोगी हो सकता है किन्तु आगे चलकर यह पद्धति अधिक उपयोग नहीं होती। जब तक वह अंगुलियों पर गिनकर जोड़ता रहेगा तब तक वह बहुअंकीय के जोड़ों में विशेष उन्नति न कर सकेगा। जितने समय तक वह इस अनुपयोगी

पद्धति को छोड़ने का प्रयास करेगा उतने समय तक उसकी प्रगति रुकी रहेगी और वह सीखने के पठार पर बना रहेगा। विदेशी भाषा सीखते समय जब तक सीखने वाला हर एक बात को अपनी मातृभाषा में अनुवाद करता रहेगा तब तक उसकी प्रगति इतनी अधिक न होगी। उसकी प्रगति तभी तीव्र हो सकेगी जब विदेशी भाषा मे ही सोचना आरम्भ कर देगा। कभी-कभी सीखने में पठार गलत पद्धति को अपनाने से भी पैदा हो सकते हैं। जब तक यह गलत पद्धति या बुरी आदत छोड़ी नहीं जायगी तब तक सीखने की प्रगति रुकी रहेगी। लिखते समय कभी-कभी विद्यार्थी गलत ढग से कलम पकड़ने की बुरी आदत सीख लेते हैं और पढते समय शब्दो पर अधिक जोर देने लगते हैं ऐसी अवस्थाओ मे उसके लिखने या पढ़ने की गति रुक जाती है। अध्यापक का कर्त्तव्य है कि ऐसी बुरी आदतें बालकों में न पड़ने दे। वह सस्वर वाचन कराते समय यह देखें कि बालक अपनी आँखो को पढ़ते समय इधर-उधर न मोड़ें और एक-एक शब्द करके न पढ़ें और मौन वाचन करते समय वे अपने होठो को न चलावें।

(४) सीखी जाने वाली प्रक्रिया के सरल भाग से जटिल भागों को सीखने का प्रयत्न—जिस समय सीखने वाला किसी कौशल या विषय के सरल भागो को सीख लेता है और जटिल तत्त्वों को सीखना आरम्भ करता है तब उसकी सीखने की प्रगति रुक जाती है। पढ़ना सीखते समय बालक अक्षर-ज्ञान प्राप्त करने के बाद जब शब्द-ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न करता है तब उसकी प्रगति कुछ समय के लिए रुक जाती है। तार सीखने वाला जब अक्षरो को इकाई मानकर तार भेजना सीख लेता है और शब्दों को इकाई मानकर तार भेजना आरम्भ करता है तब उसकी प्रगति कुछ-कुछ रुकी सी रहती है। 'Hunk and peck' पद्धति से टकन सीख लेने के बाद जब प्राणी Touch System से सीखना आरम्भ करता है तब भी यही अवस्था पैदा हो जाती है। पहले तो शायद रुकावट भी हो सकती है किन्तु काफी अभ्यास के बाद उन्नति महसूस हो सकती है। इस प्रकार कौशल के सामान्य स्तर से उच्च स्तर तक जाते समय पठार आ सकते हैं। कौशल या विषय की जटिलता पठार लाने में सहायक होती है।

यदि काम कठिन हुआ तो उन्नति रुक ही जायेगी। अध्यापक का कर्तव्य है कि वह यह देखे कि विषय के कौनसे भाग बालक को जटिल और कठिन मालूम पड़ रहे हैं। वह उसके लिखित कार्य, और परीक्षाफलों का विश्लेषण करके उसकी कठिनाइयों का पता चलावे। कक्षा में वह बालकों को प्रश्न पूछने को उत्साहित करे और उनकी कठिनाइयों को सहानुभूति पूर्ण दृष्टि से देखे। ऐसा करने से पठार की अवधि कम की जा सकती है।

(५) उत्साह की कमी (Lack of motivation)—कभी-कभी विद्यार्थी के सीखने की पद्धति भी ठीक होती है, तब भी उत्साह की कमी के कारण उन्नति रुक जाया करती है। जब बालक यह समझने लगता है कि उसको उसके अधिक प्रयत्न का प्रतिफल नहीं मिलेगा या उसके अभ्यास का कोई लाभ नहीं तब वह कठिन परिश्रम करना छोड़ देगा। ऐसी अवस्था मे अध्यापक का कर्त्तव्य है कि उसे और अधिक उन्नति करने के लिए प्रोत्साहित करे। जब उनको इस प्रकार की अभिप्रेरणा मिलती रहेगी तब उनकी उन्नति रुक न सकेगी।

पठारों का रोकना—सीखने में पठारो का आना स्वाभाविक है। उनको कम किया जा सकता है लेकिन उनका आना पूर्णतः रोका नहीं जा सकता। सीखने की क्रिया मे कितने समय तक कोई पठार रहेगा वह समय कम किया जा सकता है लेकिन यह तभी जब सीखने वाले को निरन्तर उत्साहित किया जाय और सीखने के लिए रुचि को यदि बढ़ाया न जा सके तो जैसा का तैसा अवश्य रखा जाय। सीखते समय जैसे ही पठार आये वैसे ही बालकों को अभिप्रेरित किया जाय जिससे उनकी उन्नति मे प्रगति हो सके। यदि सीखने का पठार सीखने की अनुपयोग विधि के कारण आया है तो उस विधि को छोड़ दिया जाय।

१६·४ क्या सीखने की प्रगति निरन्तर जारी रखी जा सकती है?—सीखने की प्रगति सदैव

पी नहीं रखा जा सकती। सीखने मे कहीं न कही पठार अवश्य आवेगा। दूसरे शब्दों में सीखने
एक निश्चित सीमा होती है। लेकिन यह सीमा शारीरिक अधिक है मानसिक कम। सीखने
शारीरिक सीमा (Physiological limit of learning) के विषय मे गेटस और उसके साथी
कों का विचार है कि यह सीमा वह योग्यता की मात्रा है जिसे कि प्रत्येक व्यक्ति उल्लघन
कर सकता क्योंकि जन्म से प्राप्त गतिवाही या मानसिक प्राप्त क्रियाओं की गति की सीमाएँ
श्चित होती हैं। उदाहरण लिये, टाइप राइटिंग सीखने की प्रगति हमारे स्नायविक माँस
यों और उनको नियन्त्रण करने की क्षमता पर निर्भर रहती है। यह क्षमता सीमित होती है
सीखने की सीमा सीमत होती है।

अध्याय १७

शिक्षा का स्थानान्तरण

१७.१ यद्यपि सीखने की प्रक्रिया आजीवन चलती रहती है और किसी सीखने अथवा शिक्षा का अधिक और विस्तृत एवं शिक्षा को यथार्थतः शिक्षा के उपयोगी बनाने के लिये हम चाहते हैं कि एक क्षेत्र में शिक्षा द्वारा जिस शक्ति का विकास किया जाय उसका उपयोग यथासम्भव अधिक से अधिक क्षेत्रों मे किया जावे। यदि विद्यालय मे दी गयी शिक्षा का जीवन की विभिन्न परिस्थितियों मे उपयोग नही किया जा सकता तो वह शिक्षा निश्चय ही अपर्याप्त अथवा प्रभावहीन होगी। यदि बालक को शिक्षा देनी है तो वह जीवन की विभिन्न परिस्थितियों मे उपयोग में ला सकने योग्य होनी चाहिये। हम अपने बच्चो को शिक्षा देते हैं इसलिये कि वे अपने जीवन को सफलतापूर्वक बिता सकें। शिक्षा का ढांचा इस प्रकार तैयार किया जाता है कि हमारे बच्चे भविष्य मे विभिन्न परिस्थितियों मे प्राप्त शिक्षा का उपयोग कर सकें। जिस रूप मे विभिन्न परिस्थितियां समाज मे उपलब्ध होती हैं ठीक उसी रूप मे उनका आयोजन विद्यालय मे नही किया जा सकता। यदि कक्षा की समस्यायें समाज की समस्याओं के अनुरूप होतीं तो शिक्षा पूर्णतः उपयोगी होती। इससे वर्तमान शिक्षा की उपयोगिता और उपादेयता इस बात पर निर्भर है कि किस सीमा तक व्यक्ति शिक्षा प्राप्त करने के बाद उससे लाभ उठा सकता है? वे विषय अथवा कौशल जिनका अभ्यास विद्यालय में करता है कहां तक उसके भावी जीवन मे काम आ सकते हैं? बालक में ईमानदारी से काम करने की जो आदत परीक्षा भवन में डाली गयी है उस आदत का वह जीवन में कहां तक उपयोग करता है? यदि बालक बड़ा होकर भूतकाल के अनुभवों से लाभ उठाता है तो यह माना जा सकता है कि शिक्षा का स्थानान्तर हो रहा है अन्यथा शिक्षा मे स्थानान्तरण की क्षमता नहीं है।

Q 1 What do you understand by Transfer of Trainnig?

१७.२ शिक्षा के स्थानान्तरण का अर्थ—यदि एक विषय के अध्ययन से प्राप्त संस्कार उसी विषय से सीमित न होकर अन्य विषयों एवं अन्य परिस्थितियों में उपयोगी सिद्ध हो, यदि वह ज्ञान अथवा कौशल जो एक परिस्थिति मे सीखा गया था दूसरी परिस्थिति में भी प्रयोग किया जा सके, यदि एक क्षेत्र में जिस शक्ति का सीखने की प्रक्रिया द्वारा विकास किया है उसका उपयोग दूसरे क्षेत्र मे भी हो सके तो हम कहते हैं कि शिक्षा का स्थानान्तरण होता है[1]। उदाहरण के लिये, यदि ज्यामिति के सुन्दर चित्र बनाने वाला छात्र उस सौन्दर्य और स्वच्छता की आदत का उपयोग भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में भी करता है तो यह कहा जा सकता है कि स्वच्छता की आदत का स्थानान्तरण हो रहा है।

---

1 Recognition, use and application to a given situations of knowledge, skils and habits that-are learnt in another situation is known or transfer-webster Dictionary

इसी प्रकार यदि व्याकरण पढ़ने से किसी विद्यार्थी के निबन्ध लिखने की क्षमता का विकास ता है तो शिक्षा का स्थानान्तरण माना जाता है। यदि एक परिस्थिति में सीखा गया ज्ञान, पड़ी ई आदत या अभिवृत्ति दूसरी परिस्थिति में व्यक्ति को सीखने के लिये सहायक सिद्ध होती है तो क्षा का स्थानान्तरण भावात्मक माना जाता है और यदि सहायक होने के स्थान पर विरोध पैदा रती है तो शिक्षा का स्थानान्तरण अभावात्मक।

(१) क्या एक परिस्थिति से दूसरी परिस्थिति मे शिक्षा का स्थानान्तरण स्वत होता है थवा उसके लिये प्रयत्न करना पड़ता है (२) यदि होता है तो शिक्षा के स्थानान्तरण की प्रमुख मस्यायें हैं—

१७ ३ स्थानान्तरण की समस्या का स्वभाव और विस्तार—किस सीमा तक और किस कार एक परिस्थिति मे सीखी हुई प्राप्त दक्षता, अवबोधन और अभिवृत्ति, दूसरी परिस्थिति में ो पहली परिस्थिति से भिन्न हो, दक्षता, अवबोधन और अभिवृत्ति को प्रभावित करती है। इस हत्वपूर्ण प्रश्न का उत्तर जिसकी प्राप्ति के लिये मनोवैज्ञानिक प्रयोग किये जाते हैं शिक्षा के क्षेत्र कहाँ तक उपयोगी है ? उदाहरण के लिये क्या गणित अथवा इतिहास मे कोई ऐसी विशेष गुप्त क्ति है जिसके कारण छात्रा मे ध्यान देने, तर्कपूर्ण चिन्तन करने, और स्मरण करने की योग्यता दा हो जाती है जो अन्य विषयो के अध्ययन से नहीं पैदा हो सकती ?

किस सीमा तक एक विषय मे प्राप्त ज्ञान, दक्षता, अवबोधन और अभिवृत्ति का उपयोग द्द-सम्बन्धित विषयों में हो सकता है ? क्या संस्कृत भाषा के अध्ययन से हिन्दी भाषा के शब्द ग्रह का विस्तार हो सकता है ? क्या शिक्षा मनोविज्ञान का अध्ययन अध्यापन पद्धतियों को समझने मे सहायक होता है और किस सीमा तक ? क्या जोड करने का अभ्यास बाकी के प्रश्नो को हल करने में सहायता देता है ? ये सभी शिक्षा के स्थानान्तरण की समस्यायें हैं और इनका समाधान प्रस्तुत अध्याय की विषय वस्तु है।

इन प्रश्नो का उत्तर देने के लिये कई शताब्दियो से शिक्षा विशारद और मनोवैज्ञानिक प्रयत्न करते चले आ रहे हैं। उनके प्रयत्नो के फलस्वरूप निम्नलिखित तीन सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया गया है—

(१) नियमित विनय का सिद्धान्त।
(२) तादात्म्य एव समानतत्वों का सिद्धान्त।
(३) सामान्यीकरण का सिद्धान्त।

Q 2 Discuss the theory of formal Discipline and experimental attack to it by William James

१७·४ नियमित विनय का सिद्धान्त—यह विचार कि लैटिन अथवा गणित में कोई ऐसी

का शक्त का विकास करता है। वक्त कहा करते थे कि गणित से चित्त को एकाग्र करने की शक्ति आती है। जानलौक का अनुमान था कि गणित का अध्ययन तर्क शक्ति का विकास करता है साहित्य का अध्ययन कल्पना शक्ति के शिक्षण मे सहायक होता है। इसी प्रकार अन्य विषय भी विभिन्न शक्तियों के विकास मे सहायक होते हैं। जानलौक ने ही तार्किक ढग से जिस सिद्धान्त का निर्माण और प्रतिपादन किया था वह शिक्षा के स्थानान्तरण के क्षेत्र में नियमित विनय के सिद्धान्त के नाम से प्रसिद्ध है। वस्तुत लौक ही पहला व्यक्ति था जिसको शक्ति मनोविज्ञान का प्रथम व्याख्याता माना जा सकता है।

शक्ति मनोविज्ञान में आस्था रखने वाला मनोविद मस्तिष्क को स्मृति, तर्क, विश्लेषण, निर्णय, और कल्पना आदि विभिन्न शक्तियों का योग मानते हैं। ये शक्तियाँ स्वतन्त्र और सुनिश्चित इकाई के रूप में हैं उनका कहना है कि जिस प्रकार शरीर के अंगों को पुष्ट करने के लिये व्यायाम की आवश्यकता पड़ती है उसी प्रकार इन विभिन्न और स्वतन्त्र शक्तियों को विकसित करने के लिये मानसिक व्यायाम[1] की आवश्यकता है। मानसिक शक्तियों का यह व्यायाम विषय विशेष के अध्ययन करने से हो सकता है। उदाहरण के लिये यदि छात्रों की बुद्धि को तीव्र करना है तो उन्हें गणित पढ़ाया जाय, यदि उनकी स्मृति को तीव्र बनाना है तो लैटिन सिखाई जाय। इस प्रकार शक्ति मनोवैज्ञानिक मानसिक शक्तियों के विकास को शिक्षा का उद्देश्य मान कर चलता है। वह विशेष विषयों की शिक्षा पर इतना अधिक बल नहीं देता जितना की मानसिक शक्तियों के विकास पर वह जोर देता है उनके *नियमित विनय पर अथवा अभ्यास पर।*

अंग्रेजी शब्द Formed के दो अर्थ लगाये जा सकते हैं—(१) यथानियम अथवा नियमित (२) यथारूप्य अत नियमित विनय से हमारा आशय ऐसे अभ्यास से लगाया जा सकता है जो यथा-नियम किया जाता है। फौर्मल शब्द का दूसरा अर्थ नियमित विनय के सिद्धान्त[1] में नियमित[2] शब्द इस बात का द्योतक है कि किसी कार्य का स्वरूप[3] उसकी विषय वस्तु से अधिक महत्वपूर्ण है। यदि कार्य का स्वरूप स्मरण करना है तो विषय-वस्तु कुछ भी क्यों न हो स्मरण शक्ति का विकास किया जा सकता है। इसी प्रकार यदि तर्क शक्ति का विकास करना है तो तर्क के स्वरूपों का अभ्यास करना ही काफी है। विषय वस्तु कुछ भी क्यों न हो अभ्यास हो शब्द का दूसरा अर्थ विनय से लिया जाता है। इस प्रकार नियमित विनय के सिद्धान्त से हमारा आशय उस विचार धारा से है जिसके मानने वाले किसी मानसिक शक्ति के विकास के लिये उसके अभ्यास पर बल देते हैं और यह दावा करते हैं जब वह शक्ति विकसित हो जाती है तब उसका उपयोग दूसरी परिस्थितियों में किया जा सकता है।

इस सिद्धान्त के पक्षपातियों का विचार है कि केवल कुछ चुने हुए विषयों का अध्ययन जो अनुशासिकीय उपयोगिता रखते हैं, छात्र को जीवन की सभी परिस्थितियों का सामना करने के योग्य बना सकता है, परन्तु आधुनिक शिक्षा शास्त्री इस विचार धारा का आमूल विरोध करते हैं। इसके कुछ कारण हैं जिनका उल्लेख अगले अनुच्छेद में किया जायगा।

१७·५ नियमित विनय के सिद्धान्त की आलोचना—जब से नियमित विनय के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया तबसे मानसिक शक्तियों के विकास को ही शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य माना जाने लगा। फलस्वरूप विषय-वस्तु के अध्ययन और अध्यापन का महत्व घट गया। विषय-विशेष की शिक्षा स्वयं लक्ष्य न रहकर लक्ष्य प्राप्ति का साधन बन गई। छात्र को अध्ययन में रुचि है अथवा नहीं इसकी ओर अध्यापक का ध्यान बिल्कुल न रहा। उसकी यह धारणा होगई कि यदि छात्र पढ़ना लिखना पसन्द करता है तो उत्तम है अन्यथा उसे पढ़ने के लिये बाध्य करना होगा यदि हम उसकी किसी मानसिक शक्ति को विकसित करना चाहते हैं। इस गलत धारणा का परिणाम यह हुआ कि बालक की शिक्षा व्यवस्था गलत मार्ग पर चलने लगी इसलिये शिक्षा शास्त्रियों ने नियमित विनय के इस सिद्धान्त की आलोचना शुरू करदी। यह आलोचना भी उचित ही थी क्योंकि :

(१) यह सिद्धान्त संख्या में सीमित और कम उपयोगी विषयों को पाठ्यक्रम में स्थान देता था। नियमित विनय के सिद्धान्त के आलोचकों का कहना है कि व्यक्ति को विभिन्न विषयों का ज्ञान होना आवश्यक है क्योंकि आजकल प्राकृतिक और सामाजिक विषयों का क्षेत्र इतना विस्तृत

Mental gymnastum.
Formal
Form.

व्यापक हो गया है कि इन विषयों की अवहेलना करना असम्भव और अहितकर प्रतीत ा है केवल तर्क, कल्पना और स्मृति आदि शक्तियो को तीव्र करने से ही व्यक्ति संघर्षमय ान में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता उसको जीवन मे सफलता पाने के लिये उन सभी विषयों ज्ञान जरूरी है जिनकी व्यावहारिक उपयोगिता है।

(२) नियमित विनय के सिद्धान्त मे विश्वास करने वालो ने व्यावहारिक उपयोगिता वाले विषयो के अध्ययन और अध्यापन का कार्य विलम्बित कर दिया उनको और अन्य शिक्षा ास्त्रियों को कई दशकों तक यह पता ही न चला कि इन विषयो के अध्ययन मे किस मानसिक क्ति का विकास हो सकता है।

(३) ये शिक्षा शास्त्री पाठ्यक्रम को उपयोगी और रोचक बनाने की ओर प्रयत्नशील ये क्योंकि उनका विश्वास था कि जो विषय जितना ही अरुचिकर होगा अनुशासन और अभ्यास दृष्टि से वह उतना ही महत्त्वपूर्ण होगा। इसलिये विद्यार्थियो के मस्तिष्क मे इने गिने विषयो ठूँसने की चेष्टा की जाती थी।

आधुनिक पाठ्यक्रम का निर्धारण किसी मानसिक शक्ति के विकास को ध्यान मे रखकर हीं किया जाता। जिन विषयों का समावेश अब पाठ्यक्रम मे किया जाता है वे सभी विषय ामाजिक अथवा व्यावहारिक महत्त्व रखते हैं और उन सबकी अपनी-अपनी उपयोगिता होती है। िसी एक विषय में अन्य विषयों की अपेक्षा किसी मानसिक शक्ति के विकास करने की ऐसी ोई विशेष शक्ति नहीं है जो दूसरों में वर्तमान न हो। जब से यह भी प्रमाणित कर दिया गया कि मस्तिष्क न तो विभिन्न और स्वतन्त्र शक्तियों का योग मात्र ही है और न उन शक्तियों ा अभ्यास द्वारा निश्चित रूप से विकास किया हो जा सकता है तबसे नियमित विनय सिद्धान्त ी जड़ ही खोखली हो गई है।

इस बात को सिद्ध करने के लिये कि एक स्थिति मे दी गई शिक्षा दूसरी स्थिति मे स्वतः स्थानान्तरित नही होती अथवा जिस शक्ति का सीखने की प्रक्रिया द्वारा विकास सम्भवतया होता है वह परिस्थिति में उपयोगी नहीं होती। सन् १८९० से सन् १९२८ ई० तक ९९ उल्लेखनीय प्रयोग किये गये जिनमें से ३२ प्रयोगों में स्थानान्तरण स्पष्ट रूप से दिखाई देता था, ४९ प्रयोगों में आंशिक रूप से, १२ प्रयोगों में उपेक्षणीय और शेष ५ प्रयोगो मे पूर्णत अनिश्चित था। इन प्रयोगों का सूक्ष्म विवेचन जिनके आधार पर सीमित स्थानान्तरण सिद्धान्त की विवेचना की जाती है, नीचे दिया जाता है।

१७·६ नियमित विनय के विरोध में किये गये प्रयोग—विलियम जेम्स ने यह सिद्ध करने के लिये कि स्मृति शक्ति का अनवरत अभ्यास की सहायता से विकसित होना सदैव सम्भव नहीं है। सन् १८९० ई० में अनेक परीक्षण किये। पहले तो वह यह जानना चाहता था कि याद करने का अभ्यास कहाँ तक स्मरण शक्ति को विकसित कर देता है। यद्यपि उसने जो प्रयोग किया त्रुटिपूर्ण था किन्तु तब भी उसके परीक्षण इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं।

विलियम जेम्स ने विक्टर ह्यूगो की एक रचना[1] से १५८ कविता की पंक्तियाँ याद कीं और उन्हें कंठाग्र करने में जो समय लगा उसे नोट किया। इसके बाद मिल्टन महाकवि के पैराडाइज लॉस्ट[2] को याद करने का अभ्यास किया। जब उसे याद करने का काफी अभ्यास होगया तब उसने विक्टर ह्यूगो की १५८ पंक्तियाँ फिर याद कीं और उसने देखा कि उसे पहले की अपेक्षा इस बार अधिक समय लगा। विलियम जेम्स ने ऐसा ही एक प्रयोग अन्य लोगों पर भी किया और वह इन प्रयोगों के परिणामों से इसी निष्कर्ष पर पहुँचा कि अभ्यास करने से स्मृति निश्चित रूपेण विकसित नहीं होती।

---

1 Satyr.

2 Paradise Lost.

विलियम जेम्स ने यह देखने के लिये कि स्मरण शक्ति को प्रशिक्षित किया जा सकता है अथवा नहीं जो परीक्षण किए उनकी सूचना भी करी थी। क्योंकि उसने [illegible] के भाषा की कठिनाई पर नियंत्रित नहीं किया। उसके अनुयायियों ने परीक्षणों को अधिक नियंत्रित कर दिया। उन्होंने समान योग्यता वाले दो सम समूह लिये। एक समूह को एक विशेष वस्तु कण्ठस्थ करने के लिए दी और दूसरे समूह को नहीं दी। कुछ समय बाद दोनों ही के अनेक परीक्षणों समूहों से विभिन्न पंक्तियों को कण्ठस्थ करने के लिये कहा गया। इन परीक्षणों में से कोई परीक्षणों में प्रयोगात्मक वर्ग ने नियंत्रित वर्ग की अपेक्षा पहले से अधिक निपुणता नहीं दिखाई। अतः यह कहा जा सकता है कि स्मरण करने की शक्ति का एक परिस्थिति से दूसरी स्थिति में स्थानान्तरण नहीं होता है। इस प्रकार के कई परीक्षण किये गये जिनमें [illegible] का परीक्षण विशेष उल्लेखनीय है।

सन् १९११ ई० में [illegible] ने गद्य, पद्य और तथ्य-वाक्यों को याद करने का प्रकार निर्देशों, निरर्थक शब्दों, कविता की पंक्तियों, और तथ्य-वाक्यों को याद करने की योग्यता पर देखा। उसे इस परीक्षण से ज्ञात हुआ कि कुछ परिस्थितियों में बिल्कुल भी स्थानान्तरण नहीं होता, कुछ परिस्थितियों में बहुत कम भावात्मक शिक्षान्तरण होता है और शेष में अभावात्मक शिक्षान्तरण।

इसी प्रकार के अन्य परीक्षण थार्नडाइक, ग्रीन, और ब्रिग्स ने किये। थार्नडाइक ने एक प्रयोग आयतों के सीखने पर किया। उसने देखा कि जिन व्यक्तियों ने विशेष नाप वाले आयतों के क्षेत्रफल का अनुमान करने का अभ्यास कर लिया था वे थोड़े से अधिक छोटे अथवा बड़े आयतों के क्षेत्रफलों का अन्दाजा ठीक तरह से न लगा सके। रेखांकित करने की क्षमता एक परि[illegible] के लिये प्रयोग नामक मनो-[illegible] रेखांकित करने में [illegible] करने को कहा। उसने भी यही देखा कि प्रयोगात्मक वर्ग संज्ञाओं और क्रियाओं को रेखांकित करने में नियंत्रित वर्ग की अपेक्षा अधिक असफल रहा। दूसरे शब्दों में यद्यपि दोनों वर्गों में संज्ञा और क्रिया शब्दों का ज्ञान पूरी तरह से समान था, फिर भी प्रशिक्षण के फलस्वरूप प्रयोगात्मक वर्ग ने पहली परिस्थिति में जो कुछ सीखा दूसरी परिस्थिति में वह उसकी मदद न कर सका अर्थात् शिक्षा का स्थानान्तरण हुआ किन्तु वह अभावात्मक अथवा नकारात्मक था।

ब्रिग्स ने सन् १९११ में नियमित विनय की परिकल्पना की आलोचना करने के लिये ऐसा ही नियन्त्रित परीक्षण किया। उसने प्रयोगात्मक वर्ग को नियमित व्याकरण (formal grammar) में तर्क करने की शिक्षा काफी समय तक दी किन्तु यह वर्ग नियन्त्रित वर्ग की अपेक्षा निम्न प्रकार के चिन्तन में अधिक प्रवीणता न दिखा सका—(i) दो वस्तुओं में क्या समानता अथवा क्या अन्तर है। (ii) परिभाषाओं की उपयुक्तता को किस प्रकार जांचा जा सकता है, (iii) किसी परिभाषा में क्या-क्या त्रुटियां हो सकती हैं।

एक ऐसे ही परीक्षण का उल्लेख विन ने किया है किन्तु उसके परिणाम भिन्न हैं। उन्होंने यह परीक्षण यह देखने के लिये किया कि कहाँ तक गणित की समस्याओं को हल करने की क्षमता का स्थानान्तरण अन्य तार्किक समस्याओं को हल करने में होता है। विन ने देखा कि उसका प्रयोगात्मक वर्ग नियन्त्रित वर्ग की अपेक्षा अधिक निपुणतापूर्वक तार्किक समस्याओं को हल करने में समर्थ हुआ। इस प्रकार निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि एक परिस्थिति से दूसरी परिस्थिति में शिक्षा का स्थानान्तरण स्वतः होता है अथवा नहीं।

अब प्रश्न यह उठता है कि कौन-सी बातें निश्चित करती हैं कि शिक्षा का स्थानान्तरण होगा अथवा नहीं? इस प्रश्न का उत्तर थॉर्नडाइक और जड ने दिया है।

Q 2. Discuss the Theory of Identical Elements. What are its educational implications ?

१७ ६ थार्नडाइक का तत्वों की समानता का सिद्धान्त[1]—दो परिस्थितियों में जितना ही अधिक साम्य होता है शिक्षा के स्थानान्तरण की मात्रा उतनी ही अधिक होती है। दो विषयों में तत्वों की जितनी अधिक समानता होती है एक विषय के अध्ययन के उपरान्त दूसरा विषय उतनी ही आसानी से सीखा जा सकता है। यदि कोई नई परिस्थिति किसी अन्य परिस्थिति से अनन्त और पूर्णत: समानता रखती है तो जो प्रतिक्रियाएँ एक परिस्थिति में सीखी जाती हैं वे दूसरी परिस्थिति में सीखने की प्रक्रिया को सहायता पहुँचाती है। उदाहरण के लिये इतिहास और भूगोल में कुछ तत्व समान होते हैं, उसी तरह अंकगणित और बीजगणित की कुछ प्रक्रियाएँ बिलकुल एक सी होती हैं इसलिये एक विषय के सीखने के बाद दूसरा विषय आसानी से सीखा जा सकता है। जिस सीमा तक दो परिस्थितियों में तत्वों की समानता होती है। उस सीमा तक शिक्षा का स्थानान्तरण होता है किन्तु ये समान तत्व क्या हैं ?

थार्नडाइक ने देखा कि जब एक व्यक्ति को दो कविताएँ एक के बाद दूसरी याद करने के लिये दी गयी जिनमें छन्दों और विचारों की समानता थी तो एक कविता के याद करने का प्रभाव दूसरी पर पड़ा और दूसरी कविता शीघ्र ही याद हो गयी। इस परीक्षण की सहायता से हम कह सकते हैं कि दो परिस्थितियों में तत्वों की समानता उस समय होती है जब उनके तथ्य[2] और प्रविधियाँ[3] समान होती हैं।

थार्नडाइक कहता है कि यदि शिक्षा में स्थानान्तरण होता है तब इन दो वस्तुओं का होना है। या तो वह ज्ञान जो हमने एक परिस्थिति में प्राप्त किया है दूसरी परिस्थिति प्राप्त किये जाने वाले ज्ञान को ग्रहण करने में सहायक होता है और या उन रीतियों का स्थानान्तर होता है जो दो परिस्थितियों में समान रूप से लागू होती है। उदाहरणार्थ ज्यामिति की साध्य को हल करने में पूर्व ज्ञान विद्यार्थी की सहायता करता है। चन्द बरदाई के समय का इतिहास वीरगाथाकाल की प्रवृत्तियों को समझने में सहायता करता है। यह ज्ञान का स्थानान्तरण है। किन्तु ज्ञान के स्थानान्तरण की मात्रा इस बात पर अधिक निर्भर रहती है कि कहाँ तक सीखने वाला दोनों परिस्थितियों में ज्ञान की समानता को पहचान सका है। यदि सीखने वाला पहली और दूसरी परिस्थिति में समानता का अंश नहीं पहचान पाता तो शिक्षा में स्थानान्तरण बहुत कम होता है।

थार्नडाइक ने अपने परीक्षणों से प्रमाणित किया कि व्यक्ति एक परिस्थिति से दूसरी परिस्थिति में विकसित स्मरण शक्ति को स्थानान्तरित नहीं करता वरन् याद करने की नयी विधियों, नये विचारों, और नई अभिवृत्तियों[4] को स्थानान्तरित करता है। किसी विषय को अथवा काव्य खण्ड को याद करते समय व्यक्ति कई तरीकों को अपनाता है, उसे गागाकर याद करता है, पूरी वस्तु को एक साथ पढ़कर याद करता है, या टुकड़े-टुकड़े करके याद करता है। अनुभव के बाद उसे ऐसा प्रतीत होने लगता है कि उसकी स्मरण शक्ति इतनी कमजोर नहीं है जितनी कि वह समझा करता था। अतः दूसरी परिस्थिति में आत्म-विश्वास उसकी सहायता करता है। आत्म-विश्वास अथवा आत्महीनता की भावना एक प्रकार से व्यक्ति की अभिवृत्ति है। अत: जब वह एक कविता को याद करके दूसरी कविता को याद करता है तब उसकी स्मरण शक्ति विकसित नहीं वरन् पहली कविता को याद करने में प्रयुक्त विधियाँ और उसे याद करने पर उत्पन्न आत्म-विश्वास दूसरी कविता को याद करने में विशेष सहायता प्रदान करता है।

---

1 Theory of Identical Elements.
2 Facts.
3 Techniques.
4 Attitudes.

१७.८ तत्वों की समानता का सिद्धान्त और शिक्षा—यदि शिक्षा में स्थानान्तर की मात्रा दोनों परिस्थितियों में तत्वों की समानता पर निर्भर रहती है तो विद्यालय में शिक्षा का आयोजन इस प्रकार किया जाय कि बालक जो कुछ विद्यालयीय परिस्थिति में सीखे जीवन में उसका प्रयोग कर सके। इस उद्देश्य से हमें विद्यालय में सीखने के ऐसे अनुभव[1] विद्यार्थी के सम्मुख प्रस्तुत करने होंगे जो जीवन की समस्याओं से समानता अथवा तादात्म्य रखते हों। यदि वे क्रियाएँ जो विद्यालय में कराई जाती हैं, विद्यालय से बाहर की जाने वाली क्रियाओं से समता रखती हैं तो विद्यालय में सीखी गयी अच्छी आदतों, आदर्शों, और समस्याओं को हल करने की विधियों का प्रयोग दैनिक जीवन में भी किया जा सकता है।

इस सिद्धान्त को ध्यान में रखकर जो कुछ भी विद्यालय में सिखाया जाय वह सार्थक हो और दैनिक जीवन में काम की वस्तु हो। थार्नडाइक का यह सिद्धान्त सीखने की विधियों की सजीवता[2] पर जोर देता है। वास्तविक जीवन में सीखने की जो विधियाँ साधारण व्यक्ति अपनाता है वैसी ही विधियाँ कक्षा कार्य में अपनाई जायें। यदि विद्यालय बालकों को भावी जीवन के लिये तैयार करना चाहता है तो उसे उन्हें जीवन की समस्याओं को स्वतन्त्र रूप में हल करने के योग्य बनाना होगा। यह तभी हो सकता है जब विद्यालय कक्षा में आने वाली समस्याओं को स्वतन्त्र रूप में हल करने की क्षमता पैदा करे। यह कार्य जितना ही जल्दी आरम्भ किया जा सके उतना ही अच्छा है।

यदि विद्यार्थी दो परिस्थितियों में समान तत्वों को स्वयं न ढूंढ सके तो उनको ढूंढने में सहायता दी जानी चाहिये। बालकों में दो परिस्थितियों में तादात्म्यता ढूंढने की क्षमता प्रायः नहीं के बराबर होती है। अध्यापक का कर्तव्य है कि वह उनमें इस प्रकार की शक्ति पैदा करे।

१७.९ तादात्म्य तत्वों के सिद्धान्त की आलोचना—यह सिद्धान्त जिसका प्रतिपादन थार्नडाइक ने किया था पूरी तरह मान्य नहीं है। जब दो परिस्थितियों में तत्वों की समानता होती है अथवा तादात्म्यता होती है तब पहली परिस्थिति में सीखी हुई वस्तु की दूसरी परिस्थिति [illegible]

आदत अथवा अभिवृत्ति दूसरी भिन्न परिस्थिति में भी सहायक हो। जब दो परिस्थितियों में तत्व समान होते हैं तब उनमें भिन्नता कैसी ? ऐसी दशा में नई स्थिति पुरानी स्थिति की पुनरावृत्ति मात्र मानी जा सकती है। उदाहरण के लिये यदि एक स्थिति में बालक ने ओवम[3] शब्द सीखा है जिसका अर्थ है अंडा तो दूसरी स्थिति में 'ओवल' के आने पर पहली स्थिति की पुनरावृत्ति ही होगी। लैटिन भाषा के ओवम शब्द को सीखकर अंग्रेजी भाषा का ओवल शब्द वास्तव में नया शब्द नहीं माना जा सकता है। उसी शब्द की पुनरावृत्ति का अभ्यास सा होता प्रतीत होता है। वस्तुतः ऐसी दशा में अंग्रेजी शब्द के मूल तत्व का दूसरी बार अभ्यास मात्र होता है। यह सीधी बात है कि अधिक अभ्यास करने से लाभ अवश्य होता है फिर स्थानान्तरण कैसा ?

[illegible] थार्नडाइक शिक्षा के स्थानान्तरण का सिद्धान्त [illegible] इस सिद्धान्त को एकदम अनावश्यक घोषित [illegible] सीखी हुई वस्तु का स्थानान्तरण नहीं होता वरन् एक बार और अभ्यास होता है।

आज हमें थार्नडाइक के समान तत्व सिद्धान्त की सत्यता और अस्तित्व दोनों में सन्देह है। दो क्षेत्र एकदम समान नहीं होते। यदि दो क्षेत्र एकदम समान नहीं हैं तो इस सिद्धान्त का प्रतिपादन व्यर्थ ही किया गया है और जब दो क्षेत्रों में समानता होती है तो अभ्यास का पुराना नियम

1. Learning Experiences.
2. Liflike.
3. Ovum.

ही दुहराया जाता है शिक्षा के स्थानान्तरण की नई व्याख्या नहीं की जा सकती। आधुनिक प्रयोगात्मक साक्ष्य भी यही प्रमाणित करता है कि वास्तव में कोई स्थानान्तरण नहीं होता दोनों स्थितियों की समानता सीखने वाले को अभ्यास का अवसर देकर सामान्वित करती है। जब पुरानी स्थिति के प्रकाश में नई स्थिति की व्याख्या की जाती है तब पुराना अनुभव उस स्थिति को नया अर्थ देता है।

अब प्रश्न यह है कि यदि परिस्थितियों के समान होने पर शिक्षा का स्थानान्तरण नहीं होता तो विद्यालयीय परिस्थिति में जिन आदतों का विकास किया जाता है उनका महत्त्व ही क्या है। जब आधुनिक शिक्षा शास्त्री यह देखता है कि नियमित विनय के सिद्धान्त की तरह थार्नडाइक का सिद्धान्त भी सन्देहास्पद है तो दूसरे सिद्धान्त की ओर झुकता है। उसके सामने शिक्षा के स्थानान्तरण की समस्या गौण हो जाती है और स्थानान्तरण की शिक्षा की समस्या उठ खड़ी होती है। वह चाहता है कि एक परिस्थिति में सीखी हुयी आदतें दूसरी परिस्थिति में लागू की जायें। इसलिये वह विद्यालय के वातावरण में सीखी हुई आदतों का सामाजिक वातावरण में प्रयोग करने की इच्छा प्रकट करता है। ऐसी स्थिति में विद्यालय और समाज की परिस्थितियाँ बहुत कुछ समान हो जाती हैं और जीवन की आधारभूत समस्याओं का हल कक्षा के वातावरण में ही ढूंढ लिया जाता है। यह स्थानान्तरण व्यक्ति को जीवन की मूल स्थितियों में संघर्षों को झेलने के लिये शक्ति प्रदान करता है। इस प्रकार स्थानान्तरण की समस्या का हल विद्यालय और जीवन के बीच सम्बन्ध जोड़कर किया जाता है। हम शिक्षा का स्थानान्तरण नहीं चाहते वरन् स्थानान्तरण की शिक्षा देना चाहते हैं।[1] आधुनिक मनोवैज्ञानिक शिक्षा के स्थानान्तरण में विश्वास न करते हुये भी इतना अवश्य मानते हैं कि जो कुछ विद्यालय में सीखा जाता है जीवन में उपयोगी हो सकता है। यदि विद्यालय की दशाएँ और परिस्थितियाँ जीवन की परिस्थितियों से समानता रखती हैं। विद्यालय के भीतर इस प्रकार जीवन का सम्प्रवेश किया जा सकता है विद्यालयीय शिक्षा को जीवन में लागू करने की आवश्यकता ही फिर क्या होगी ?

Q 3. Explain the Theory of Generalisations by Judd. Give Examples

१७·१०—जड का सामान्यीकरण का सिद्धान्त—यदि समस्याओं को हल करने की मूल स्थितियाँ समान हों तो एक प्रकार की समस्याओं को हल करने का अभ्यास दूसरी प्रकार की समस्याओं को हल करने में सहायता पहुँचाता है। किन्तु जड का विचार है कि जब तक दोनों स्थितियों में सामान्य नियम की खोज नहीं कर ली जाती तब तक शिक्षा का स्थानान्तरण नहीं होता। सामान्यीकरण की क्रिया उस समय पूरी हो जाती है जिस समय कोई व्यक्ति कई परिस्थितियों में लागू होने वाले नियम को पा लेता है। जड का कहना है कि विज्ञान का अध्यापन करते समय साधारणत. हम लोग विज्ञान के कुछ स्वतन्त्र अंशों को छात्रों को समर्पित करने में अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझते हैं। इसी प्रकार गणित का अध्ययन करते समय हम बीजगणित अथवा रेखागणित को अलग-अलग पढ़ाते और उनके बीच सहसम्बन्ध स्थापित करते हुए सामान्य सिद्धान्तों की विवेचना नहीं करते। जड के विचार से कार्यों में दक्षता, तथ्यों पर अधिकार और ग्रहण की हुई आदतें दो परिस्थितियों के बीच स्थानान्तरित नहीं होतीं जब तक उनमें सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जाता।[2] कई विशेष परिस्थितियों में सामान्य सम्बन्ध का अन्वेषण ही

---

1. Modern psychologists though not believing in the theory of transfer of training are yet agreed in its basic assumption that what is learnt in school can be useful in life provided the conditions resemble life. Life is thus brought to school rather than school taken out to life.

2. "According to this theory the developing of special skills, the mastery of specific fects, the achieving of particular habits and attitudes have little transfer value unless the skills, facts and habits are systematised and related to other situations in which they can be utilised "

सामान्यीकरण कहलाता है। संक्षेप में, सामान्यीकरण की क्रिया के आधार में सामान्य तत्वों
ढूंढने की क्रिया ही निहित रहती है। इसलिये जड और थार्नडाइक के सिद्धान्त समानान्
सिद्धान्त माने जाते हैं।

जड ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन अपने परीक्षणो के आधार पर किया था। यहाँ पर उ
परीक्षणो मे से एक परीक्षण का उल्लेख कर देना असगत न होगा। जड ने छोटे बच्चों के
समूह लिये जो लगभग सभी बातों मे समान थे। एक समूह को प्रकाश के आवर्तन का
नियम बता दिया गया कि एक द्रव से दूसरे द्रव मे जाते समय प्रकाश का आवर्तन हो जाता है
अब दोनो समूहो को पानी की सतह मे एक फुट नीचे रखे हुए किसी लक्ष्य पर निशाना लगाने
के लिये आदेश दिया गया। इस बार दोनो वर्गों की निशाना लगाने की कार्यक्षमता मे कोई अन्तर
नहीं दिखाई दिया। परन्तु जब लक्ष्य को पानी की सतह से केवल ८ इंच की दूरी पर रखा
गया [illegible] समझा दिये
गये थे [illegible] पदार्थ
ऊंचा [illegible]

इस सिद्धान्त की उपयोगिता भी शिक्षा के क्षेत्र में कम नहीं है। शब्द-विन्यास का
कराते समय यदि शिक्षक सामान्य नियमों की व्याख्या कर देता है तो शिक्षा का स्थानान्तरण
अधिक होता है। शब्दो को समान तत्वों के आधार पर वर्गों में विभक्त करने, एकसे उपसर्ग
और प्रत्यय वाले शब्दो को एक वर्ग मे रखने और एकसे उच्चारण वाले शब्दो को एक समूह में
डाल देने से सामान्य सिद्धान्तों की व्याख्या की जा सकती है।

Q 4 How does Transfer of Training occur and to what extent? Disc
its bearing on the organisation of the school curriculum.

१७.११ पाठ्य-विषयों का स्थानान्तर मूल्य—इससे पूर्व कि हम शिक्षा के स्थानान्
और पाठ्यक्रम तथा पाठन विधियो का सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करें और यह निश्
करने का प्रयास करें कि पाठ्यक्रम के सगठन के आधारभूत तत्व क्या हो सकते है हम उ
स्थानान्तरण मूल्य को निश्चित करने के लिये किये गये कुछ परीक्षणों का उल्लेख करेंगे।

भिन्न-भिन्न विषयों में शिक्षा का स्थानान्तरण होता है या नहीं? यदि होता है तो कि
सीमा तक? क्या यह स्वतः होता है? यदि स्वतः नहीं होता तो शिक्षा के स्थानान्तरण का क
उपाय हो सकता है? इन प्रश्नो का उत्तर पाने के लिये शिक्षा मनोवैज्ञानिक गत ५० वर्षों
प्रयत्नशील रहा है। थार्नडाइक और उसके अनुयायियो ने इस विषय में अनेक महत्त्वपूर्ण परीक्ष
किये हैं। इनमें से बहुत से परीक्षण भाषाओं, गणित, विज्ञान के स्थानान्तरण मूल्य को ज्ञात क
के लिये किये गये हैं। थार्नडाइक ने विद्यालय मे पढ़ाये जाने वाले सभी विषयो का तर्क श
और चिन्तन शक्ति को विकसित करने का सापेक्षिक महत्व ज्ञात करने का प्रयास किया है।

लैटिन अन्य विदेशी भाषाओं का शिक्षा-स्थानान्तरण—लैटिन अथवा अन्य विदेशी भाषा क
अध्ययन अंग्रेजी शब्द भण्डार की मात्रा में वृद्धि करता है, यह वृद्धि पूर्णतया उन शब्दों की होत
है जिनके मूल लैटिन भाषा के शब्द होते हैं और वृद्धि की मात्रा प्रयुक्त शिक्षण-पद्धति प
विशेषत: निर्भर रहती है। यह दिखाने के लिये थार्नडाइक और रूगर ने १९२३ में एक परीक्ष
किया। ऐसे कई और परीक्षण भी किये गये जिनमे कुहो० सी० का परीक्षण विशेष उल्लेखनीय है।
इन दोनो अनुसंधानाओं के सामने यह समस्या थी कि क्या एक वर्ग लैटिन अथवा फ्रांसीसी भाष
सीखने से अंग्रेजी शब्द समूह में वृद्धि होती है।

थार्नडाइक ने दो समतुल्य छात्र समूहों को अंग्रेजी शब्द समूह की परीक्षा दी। पहल
वर्ग उन विद्यार्थियों का था जो लैटिन सीखना आरम्भ करने वाले ही थे और दूसरा वर्ग उनक
जो लैटिन नहीं जानते और न लैटिन सीखना ही चाहते थे। अन्यथा दोनो वर्ग बुद्धि, आयु, शिक्ष
के अनुसार समान थे। पहले वर्ग को एक वर्ष लैटिन की शिक्षा दी गई और दूसरे वर्ग को [illegible]

शिक्षा से वंचित रखा गया। वर्ष के अन्त में दोनों वर्गों को अंग्रेजी शब्द-संग्रह की परीक्षा दी गई। प्रयोग के उपरान्त उन्हें निम्नलिखित प्रदत्त मिले—

तालिका १७.१०

	प्रयोगात्मक वर्ग	नियन्त्रित वर्ग
पहली परीक्षा में प्राप्तांकों का औसत	२१ ६	१६ ८
वर्ष के अन्त में परीक्षा के प्राप्तांकों का औसत	२८ ३	२० २
अन्तर	६ ७	३ ४

दूसरा वर्ग जिसने लैटिन नहीं सीखी थी उसके शब्द ज्ञान में लैटिन न सीखने वाले वर्ग की अपेक्षा अधिक वृद्धि हुई। यद्यपि बालकों के शब्द भण्डार में वृद्धि उनके अनुभव के बढ़ने पर भी होती है किन्तु यह वृद्धि पहले वर्ग के बालकों में अधिक देखी गई। इसका कारण यह था कि अंग्रेजी के बहुत से शब्दों का स्रोत लैटिन भाषा में ढूंढा जा सकता है। ऐसे शब्दों का ज्ञान उनको लैटिन के अध्ययन से प्राप्त हो गया और उन्हें सीखने में कोई प्रयत्न न करना पड़ा। अब प्रश्न यह है कि क्या शब्द-भण्डार में इस तरह की वृद्धि स्वतः होती है अथवा उसके लिये प्रयत्न करना पड़ता है?

प्रयोगात्मक साक्ष्य के आधार पर यही कहा जा सकता है कि लैटिन अथवा अन्य विदेशी भाषाओं का अंग्रेजी में स्थानान्तरण तभी सम्भव है जब उस भाषा का अध्यापक अपनी भाषा के शब्दों की ओर छात्रों का ध्यान आकर्षित करे जिनके मूल[1] अंग्रेजी भाषा में मिल सकते हैं। यदि अध्यापक का विशिष्ट उद्देश्य स्थानान्तरण के लिये शिक्षण[2] है तो शिक्षा में स्थानान्तरण की मात्रा अधिक होगी अन्यथा नहीं। इसका प्रमाण हमें हैरवस के परीक्षण से मिलता है जो उसी वर्ष किया गया था जिस वर्ष थार्नडाइक का परीक्षण चल रहा था। हैरवस ने एक ही कक्षा के एकसी आयु और बुद्धि के बालकों के दो समूह लिये। एक को लैटिन के व्युत्पत्तियों अथवा व्युत्पन्न शब्दों को पढ़ाने पर जोर दिया दूसरे को यों ही लैटिन सिखाई गई। एक वर्ष के बाद पहले वर्ग के विद्यार्थियों के शब्द भण्डार में ८ शब्दों की वृद्धि हुई और दूसरे वर्ग के छात्रों के शब्द भण्डार में केवल ४ शब्दों की। अतः यदि शिक्षा में स्थानान्तरण ही अध्यापक का उद्देश्य है तो स्थानान्तरण के लिये ही शिक्षण करे।

इसी प्रकार के अन्य परीक्षण यह देखने के लिये किये गये हैं कि विदेशी भाषा का अध्ययन किस सीमा तक अंग्रेजी सीखने के लिये सहायक होता है। वरनर[3] का प्रयोग इस दिशा में विशेष उल्लेखनीय है। विदेशी भाषा के सीखने से बुद्धिमान बालकों के अंग्रेजी शब्द भण्डार में वृद्धि अधिक मात्रा में होती है।

एक भाषा से दूसरी भाषा में शब्द भण्डार और रचना सम्बन्धी शिक्षा का स्थानान्तरण तो होता ही है यदि शिक्षक ऐसा चाहता है किन्तु क्या विदेशी भाषा सीखने से उस देश अथवा जाति की संस्कृति, रीतिरिवाज और परम्पराओं का ज्ञान भी स्थानान्तरित होता है? यद्यपि इस प्रश्न का उत्तर निश्चयात्मक रूप से नहीं दिया जा सकता तब भी जो कुछ प्रयोगात्मक साक्ष्य हमें अब तक उपलब्ध हुआ है उसके आधार पर केवल यही कहा जा सकता है कि विदेशी भाषा के शिक्षण करते समय यदि अध्यापक उस देश की संस्कृति का ज्ञान देता चले और उस देश के

[1] Derivatives
[2] Teaching for transfer
[3] Werner O H The influence of the study of modern foreign languages in the development of desirable abilities in English (1930).

विशेषताओं के विषय में महत्वपूर्ण बातें बताना चले तब तो शिक्षा का स्थानान्तरण होना नहीं यदि पर स्थानान्तरण के लिये शिक्षा पर ही विशेष बल देने से शिक्षा का स्थानान्तरण हो सकता है।

क्या विदेशी भाषा सीखने से तर्क शक्ति का विकास होता है ? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये जो प्रयोग किये गये हैं उनके आधार पर यही कहा जा सकता है कि उनके अध्ययन से शक्ति में किसी प्रकार की वृद्धि नहीं होती। विदेशी भाषा का अध्ययन इसलिये नहीं करना है उसके अध्ययन करने से किसी मानसिक शक्ति का विकास होगा वरन् इसलिये करना है कि भाषा अन्तर्देशीय विचार विनिमय के लिये अत्यन्त आवश्यक है। विदेशी भाषा सीखते समय व्याकरण के नियमों पर जोर देने से न तो तर्क शक्ति ही विकसित होती है और न उस भाषा अधिकार ही प्राप्त होता है इसलिये अध्यापक को विदेशी भाषा पढ़ाते समय उसके व्यावहारिक व्याकरण पर जोर देना चाहिये न कि औपचारिक[1] व्याकरण पर। अपनी भाषा में भी यही बात औपचारिक[2] व्याकरण के शिक्षण का प्रश्न है इसके अध्ययन से छात्रों में समझकर पढ़ने और शुद्ध लिखने की क्षमता पैदा नहीं होती।[3]

गणित में शिक्षा का स्थानान्तरण—गणित में किसी दक्षता पर अधिकार प्राप्त करने के लिये सबसे अच्छा तरीका यही है कि उसकी प्राप्ति के लिये नियमित रूप से अभ्यास किया जाय। किसी अन्य दक्षता का अभ्यास करके स्थानान्तरण की आशा करना व्यर्थ है।[4]

अर्थमैटिक के गणना सम्बन्धी प्रश्नों में अभ्यास करने से अंकगणितीय समस्याओं के हल करने की योग्यता नहीं पैदा होती। विष का परीक्षण इस तथ्य की व्याख्या करता है जो उसने १० वर्षीय ७२ बच्चों पर किया था। अंकगणित में तर्क करने की क्रिया पर उन्हें पहले एक परीक्षा दी। इस परीक्षा के फलांकों के आधार पर इन ७२ बच्चों को दो ऐसे वर्गों में विभाजित कर दिया जिनकी योग्यता समान हो जाय। इन वर्गों में से एक वर्ग ने १० दिन तक ३० मिनट प्रति दिन के हिसाब से गणना सम्बन्धी प्रश्नों को हल किया, दूसरे वर्ग ने कला का अभ्यास किया। १० दिन के बाद दोनों वर्गों को पुनः वैसी ही परीक्षा दी गई जो १० दिन पहले दी गई थी। इस परीक्षा में भी उनके फलांकों में कोई महत्वशील अन्तर नहीं दिखाई दिया। इससे यह निष्कर्ष निकला कि गणना सम्बन्धी प्रश्नों में अभ्यास करने से अंकगणितीय समस्याओं को हल करने की क्षमता पैदा नहीं होती।

[illegible] शिक्षण दिया जाता है तो उसका [illegible] र ने अंकगणित के स्थानान्तर की [illegible] आयु, समान मानसिक आयु, और [illegible] निम्न प्रकार के जोड़ के प्रश्न

४५+२३ ४५+२३+८ ५८+२७+२

---

1 F[illegible]tional
2 Formal
3 Starch Daniel Educational Psychology Macmillan New Yark, new ed 1927 568 pp. 112, 117
4 [illegible]

—Pressey & Robinson Psychology Harper & Bros., Revd. ed, 1944.

पहले वर्ग को केवल यह दिखा दिया गया कि इन प्रश्नों को किस प्रकार हल करते हैं। दूसरे वर्ग को सामान्य नियम निकालने में सहायता दी गई। उदाहरण के लिये उसे यह बता दिया गया कि संख्याओं को जोड़ते समय इस प्रकार लिखना चाहिये कि दायीं ओर का स्तम्भ सीधा रहे। तीसरे वर्ग को यह बताया गया कि इकाई को इकाई में, दहाई को दहाई मे ही जोड़ा जा सकता है लेकिन यह नहीं बताया गया कि जोड़ते समय स्तम्भ सीधे रखने चाहिये। अन्तिम वर्ग को जोड़ने का तरीका भी बताया, साथ ही कारण भी समझा दिया गया क्योंकि इकाई को इकाई में, दहाई को दहाई मे जोड़ते हैं। इस प्रकार के शिक्षण के बाद जब निम्न प्रकार के जोड़ के प्रश्नों को हल करने की योग्यता की जाँच की गई तो दूसरे वर्ग ने अधिक निपुणता का प्रदर्शन किया।

(१) ५८+३४७+२

(२) २०३+२८+४

यदि अध्यापक सामान्य सिद्धान्तों को समझा सकता है तो शिक्षा का स्थानान्तरण अधिक होता है अन्यथा नहीं। यह परीक्षण जड़ के सिद्धान्त की पुष्टि करता है। अकगणित मे जिस प्रकार सामान्य सिद्धान्तों के समझाने पर शिक्षा का स्थानान्तरण अधिक होता है उसी प्रकार बीजगणित में भी वे अध्यापन विधियाँ जो सिद्धान्तों और विधियों के सामान्यीकरण में अधिक महत्व देती हैं, शिक्षा के स्थानान्तरण के लिये अधिक उपयोगी होती हैं। इसलिये बीजगणित का अध्यापन करते समय सामान्य सिद्धान्तों और नियमों तथा साधारण प्रक्रियाओं पर जोर देते रहना चाहिये। किसी प्रश्न में जरा-सा परिवर्तन करने पर बालक उसको हल नहीं कर पाते इसका एकमात्र कारण यही है कि अध्यापक सामान्य नियमों का शिक्षण नहीं करते। थार्नडाइक ने (१९२४) देखा कि प्रदत्त में जरा सा परिवर्तन कर देने पर छात्रों को किस प्रकार की कठिनाई होती है। उसने अपने एक परीक्षण में जब (य+र) को वर्ग करने के लिये आदेश दिया तो ९४% छात्रों ने सही उत्तर दिये किन्तु जब ($य_1+र_1$) को वर्ग करने के लिए कहा गया तो केवल ७२% छात्र ही सही उत्तर दे सके। बालक प्राय. बीजगणित की भिन्नों का सरल करने में कठिनाई महसूस करते हैं क्योंकि उनको अकगणित की भिन्नों का पाठ पढ़ाते समय सामान्य नियमों का उल्लेख नहीं किया गया था।

इन परीक्षणों के आधार पर कहा जा सकता है कि गणित का शिक्षण इसी विषय तक सीमित रहता है और स्थानान्तरण की मात्रा विषय वस्तु की समानता एवं अध्यापक द्वारा स्थानान्तरण के लिये किये गये प्रयत्नों पर निर्भर रहती है। तत्त्वों के समान होने पर भी स्थानान्तरण से उतना अधिक लाभ नहीं होता जितना अभ्यास से होता है। यदि सामान्य नियम और विधियों का शिक्षण किया जाता है तो ऐसे दो क्षेत्रों में जहाँ इनकी प्रधानता होती है, स्थानान्तरण की मात्रा अधिक होती है।

विज्ञान के शिक्षण में स्थानान्तरण—क्या विज्ञान का शिक्षण छात्रों में वैज्ञानिक ढंग से सीखने और निरीक्षण करने की योग्यता पैदा कर देता है? क्या इसके अध्ययन से छात्र में वैज्ञानिक अभिवृत्ति उत्पन्न हो जाती है? क्या एक विज्ञान मे दूसरे विज्ञान में शिक्षा का स्थानान्तरण होता है? इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिये जो परीक्षण किये गये है उनका सक्षेप में उल्लेख करेंगे।

यदि छात्रों को विज्ञान पढ़ाते समय पाठन विधियों, सामान्य नियमों के निर्धारण करने के तत्त्वों का ज्ञान दे दिया जाय तो उनमें वैज्ञानिक ढंग से सोचने की योग्यता पैदा हो सकती है। मेरीडिथ ने २०, २० छात्रों की तीन कक्षाओं को विज्ञान से सम्बन्ध न रखने वाले २० शब्दों की परिभाषा देने के लिये कहा। इन परिभाषाओं का मूल्यांकन कर लिया गया। अब इन तीनों वर्गों को मैग्नैटिक प्रयोग करवाये गये। नियंत्रित वर्ग को प्रयोगों पर प्रश्न ही पूछे गये। प्रयोगात्मक वर्ग ने जो कुछ निरीक्षण किया उसके निष्कर्षों की विवेचना की और इस प्रकार वैज्ञानिक पदों की सन्तोषजनक परिभाषाएँ प्राप्त कीं। प्रशिक्षित वर्ग न केवल सूक्ष्म निरीक्षण के उपरान्त प्राप्त परिणामों की व्याख्या ही की वरन् सन्तोषजनक परिभाषा के गुण और दोषों को ... रखकर वैज्ञानिक पदों की परिभाषाएँ निश्चित कीं। तीन दिन तक ... तीनों वर्गों को पुनः दूसरे २० पदों की ... वर्गों की

अपेक्षा पढ़ने की अपेक्षा अधिक काम किया। इस परीक्षण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अध्यापन करते समय यदि अध्यापक नियमों पर अधिक जोर देता है तो शिक्षण का स्थानान्तरण होता है। छात्रों में वैज्ञानिक ढंग से सोचने और निरीक्षण करने की योग्यता तब पैदा होती है जब अध्यापक इस कार्य के लिये शिक्षण करता है।

विज्ञान का शिक्षण करते समय अध्यापक को उदार वैज्ञानिक अभिवृत्ति का विकास करने और वैज्ञानिक विधियों को अच्छी तरह समझाने की योग्यता पैदा करनी चाहिये। यदि वह वैज्ञानिक विधियों को समझाने पर जोर देता है; यदि वह उनके दृष्टिकोण की संकीर्णता और अन्ध-विश्वासों को दूर करने का प्रयत्न करता है, यदि वह उनमें निराधार निष्कर्ष निकालने की प्रवृत्ति को रोकता है तो वह अपने छात्रों में वैज्ञानिक अभिवृत्ति पैदा कर सकता है अन्यथा नहीं।

एक विज्ञान का अध्यापन दूसरे विज्ञान को सीखने में सहायता भी करता है और कठिनाई भी उपस्थित कर सकता है। फ्लाइड[1] और आशबोघ[2] का कहना है कि—

१७.१२ स्थानान्तरण और पाठ्यक्रम—पाठ्यक्रम का निर्धारण करते समय जो शिक्षा शास्त्री मानसिक अनुशासन में विश्वास करते हैं वे पाठ्यक्रम में उन विषयों को स्थान देते हैं जो मानसिक अनुशासन में सहायक होते हैं। लेकिन जो शिक्षा शास्त्री इस सिद्धान्त में विश्वास नहीं करते वे पाठ्यक्रम में उन्हीं विषयों को रखना पसंद करते हैं जिनसे बालकों की आवश्यकताओं की पूर्ति हो, वे ऐसी पाठ्यवस्तु का चयन करते हैं जो उनकी जीवन की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट कर सके। केवल इस कारण किसी विषय को पाठ्य क्रम में स्थान नहीं देते कि उसके अध्ययन से बालक की मानसिक शक्तियों का विकास होगा।

1. Floyd O. R. Genral science as preparation for study of biology, chemistry and physics, J. Ed. Res 1936, 26, 677-686.
2. Ashgaugh E. J. General science in 8 th grade or not ? Res. Bull 1930, 9, 503-507.

अध्याय १८

स्मृति और विस्मरण

१८·१ स्मृतिका महत्त्व

स्मृति मानवीय मानसिक क्रियाओं का केन्द्र बिन्दु है क्योंकि व्यक्ति का सम्पूर्ण मानसिक विकास उसकी स्मृति पर ही निर्भर रहता है। उदाहरण स्वरूप अच्छी स्मृति वाले व्यक्ति के चिन्तन की शैली उत्तम प्रकार की होती है क्योंकि तर्क और चिन्तन के लिये जिन साधनों की आवश्यकता होती है वे साधन स्मृति की सहायता से उसे सुलभ हो जाते हैं। वे सभी विचार, वे सभी प्रत्यय, वे सभी संस्कार जिनको व्यक्ति अपने अनुभव के आधार पर मानस पटल पर अंकित करता है, अच्छी स्मृति के कारण आवश्यकता पड़ने पर उसकी सहायता करते हैं। अपने पूर्व अनुभवों के सहारे ही व्यक्ति प्राय निर्णय किया करता है। इसीलिये स्मृति को मानव के मानसिक विकास का आधार माना जा सकता है। सीखने की क्रिया को स्मृति किस प्रकार प्रभावित करती है अध्याय १५ मे बताया जा चुका है। शिक्षक के लिये स्मृति के स्वरूप का अध्ययन क्यों आवश्यक है? शिक्षण को किस प्रकार स्थायित्व प्रदान किया जा सकता है? पाठ्यवस्तु को याद करने की विधियाँ क्या हैं? बालक प्राय याद की हुई वस्तु को क्यों भूल जाया करता है? विस्मृति को किस प्रकार रोका जा सकता है? ये कुछ ऐसी समस्याएँ हैं जिनकी जानकारी अध्यापक को होनी चाहिये।

Q. 1. What is memory? What chief his factors?

१८·२ स्मृति का स्वरूप

साधारणत: हम उस बालक की स्मृति को अच्छी मानते हैं जो पढ़ाये हुये पाठ को सुगमता से सीख लेता है और जिस वस्तु को सीख लेता है उसे लम्बी अवधि तक याद रख सकता है। यही नहीं आवश्यकता पड़ने पर वह याद की हुई वस्तु का पुनर्स्मरण भी कर सकता है। मनोवैज्ञानिकों ने स्मृति के स्वरूप की जो व्याख्या की है उसके दो पहलू हैं। वे स्मृति को एक ओर मानसिक शक्ति मानते हैं और दूसरी ओर मानसिक प्रक्रिया।

मानसिक प्रक्रिया के रूप में स्मृति—हमको ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से जो अनुभव प्राप्त होते हैं उनके कुछ संस्कार प्रत्यक्ष रूप से हमारे मन में रह जाया करते हैं। जितनी भी वस्तुएँ हम देखते, सुनते, स्पर्श करते अथवा सूँघते हैं उन सभी वस्तुओं के संस्कारों का भविष्य मे उसी क्रम से चेतना केन्द्र में आना जिस मानसिक प्रक्रिया के फलस्वरूप सम्भव होता है उस प्रक्रिया को स्मृति[1] कहा जाता है। इन संस्कारों को जो इस क्रिया के फलस्वरूप मस्तिष्क में पुन: जाग्रत होते हैं स्मृति[2] चिन्ह कहा जाता है। जिस प्रकार किसी वस्तु को प्लास्टिक पर रगड़ने से कुछ चिन्ह बन जाते और जिस प्रकार ये चिन्ह समय के साथ बदलते रहते हैं उसी प्रकार मस्तिष्क मे भी कुछ ऐसे ही चिन्ह[3] अंकित हो जाते हैं जो समय के साथ बदल जाते या फीके पड़ जाते हैं। ये

---

1 Remembering.
2 Memory Traces
3 Structural changes

स्मृति चिन्ह प्रत्यक्ष रूप से देखे नहीं जाते किन्तु किन्तु मस्तिष्क[1] की शंखक पालि (टेम्पोरल लोब)[2] को बिजली की धारा से उत्तेजित कर इनको फिर से जाग्रत किया जा सकता है। इस प्रकार की विद्युतीय उत्तेजना के द्वारा कभी-कभी वर्षों पहले सुने हुये गाने उसी क्रम से याद आने लगते हैं जिस ढंग से उनको याद किया गया था। मस्तिष्क में पड़े इन संस्कारों को धो दिया जाता है। स्टाउट कहता है कि स्मृति एक आदर्श पुनर्स्मरण है जो हमारे पूर्व अनुभवों को यथासम्भव उसी रूप में और उसी क्रम से जाग्रत करता है[3] एडवर्ड भी लगभग यही बात कहता है। उसके मतानुसार जो कुछ पहले सीखा जा चुका है उसको याद करने की प्रक्रिया स्मृति कहलाती है।

मानसिक शक्ति के रूप मे स्मृति—कुछ मनोवैज्ञानिकों ने स्मृति की व्याख्या मानसिक शक्ति के रूप मे की है। उदाहरण स्वरूप डम्विल कहता है कि स्मृति वह शक्ति है जिसकी सहायता से गत अनुभवों के कुछ अंश प्रतिमा के रूप में हमारी चेतना में पुनः जाग्रत हो जाते हैं।[4] वस्तुत ये प्रतिमाएँ जितनी अधिक स्पष्ट होती हैं स्मरण शक्ति भी उतनी ही अच्छी हुआ करती है। भिन्न-भिन्न ज्ञानेन्द्रियों से जो प्रतिमाएँ हमारे मस्तिष्क मे बनती हैं वे प्रतिमाएँ ही हमको भविष्य मे स्मृत हो जाती हैं। स्पीयरमैन भी स्मृति की व्याख्या शक्ति के रूप में करता है। उसके अनुसार समक्ष मे आने वाली घटनाओं का मस्तिष्क मे जो प्रभाव शेष रह जाता है उसका स्मरण हो जाना जिस मानसिक शक्ति के कारण होता है वह स्मृति कहलाती है।

प्रत्येक व्यक्ति मे अतीत के अनुभवों को याद करने की शक्ति होती है। मानव जीवन की सफलता इसी में है कि भूत के अनुभव आवश्यकता पड़ने पर पुनर्स्मृत हो जायें नहीं तो जीवन पशुवत हो जायगा। व्यक्तियों मे यह मानसिक शक्ति जन्म से प्राप्त होती है। वंशानुक्रम का हम पर विशेष प्रभाव पड़ता है जैसा कि आगे बताया जायगा किन्तु शैक्षणिक वातावरण उसे विकसित करके अधिक उपयोगी बना सकता है।

व्यक्ति को अच्छी स्मरण शक्ति वंशानुक्रम से प्राप्त होती है किन्तु उसकी अभिवृद्धि किसी भी मानसिक व्यायाम से नही हो सकती। विलियम जेम्स और थार्नडाइक के मतों की व्याख्या इस प्रसग मे पीछे की जा चुकी है। स्मरण शक्ति के पैतृक होने के कारण इस शक्ति के अनुसार वैयक्तिक विभिन्नताएं पायी जाती हैं। बुद्धि मापी परीक्षाओं अथवा स्मृतिमापी अन्य प्रयोगो की सहायता से जिनका उल्लेख आगे किया जायगा, व्यक्तियों के बीच स्मरण शक्ति के अनुसार विभिन्नताओं का अनुमान लगाया जा सकता है किन्तु इसका यह आशय नहीं कि शिक्षक बालक की स्मृति का विकास नहीं कर सकता। स्मरण शक्ति का विकास उसके सदुपयोग पर निर्भर रहता है। शिक्षालय अपने बालकों की स्मरण शक्ति का सदुपयोग करके उसका समुचित विकास कर सकता है किन्तु वैयक्तिक भेदों को लुप्त नहीं कर सकता। यह भी देखा गया है कि अभ्यास के कारण ये भेद और भी अधिक हो जाते हैं क्योंकि कुछ बालकों में पहले की अपेक्षा स्मरण शक्ति तीव्र और कुछ में कमजोर हो जाती है।

स्मृति का स्वरूप ठीक तरह से समझने के लिये इसके सभी अंगों की व्याख्या करनी होगी। स्मृति के अंगों की व्याख्या करते हुये रौस कहता है—स्मृति एक जटिल मानसिक प्रक्रिया है जिसमे सीखना, सीखी हुई सामग्री का मस्तिष्क में धारण करना और आवश्यकता पड़ने पर उसका पुनर्स्मरण करना ये तीन क्रियाएँ समाविष्ट रहती हैं।[5]

---

1. Brain.
2. Temporal Lobe.
3. [illegible]

१८'३ स्मृति के अंग—स्मृति की मानसिक प्रक्रिया वस्तुत. निम्नांकित स्तरों पर होती है—

(अ) सीखकर याद करना[1]

(आ) धारणा[2]

(इ) पुनर्स्मरण[3]

(ई) पहिचान[4]

किसी वस्तु को स्मरण करने के लिये सबसे पहले उसे सीखने की आवश्यकता होती है। फिर सीखी हुई बातों को मन मे धारण करना पड़ता है जो वस्तु हम किसी समय सीख लेते हैं उसे हम उसी समय धारण तो कर लेते हैं किन्तु कुछ समय बाद उसका पुनर्स्मरण नही कर पाते। कभी-कभी सीखी हुई वस्तु का पुनर्स्मरण नहीं होता किन्तु उसके आँखो के सामने आते ही वह वस्तु पहचान ली जाती है। इस प्रकार स्मृति की प्रक्रिया मे सीखना, धारण करना, पुनर्स्मृति करना और पहचानना ये चार क्रियायें सम्मिलित रहती हैं। दूसरे शब्दो में अच्छी स्मरण शक्ति के लिये धारणा, पुनर्स्मरण और पहचान इन तीन प्रशक्तियो की आवश्यकता होती है साथ ही इस बात की भी जरूरत होती है कि जो कुछ कक्षा मे पढ़ाया जाय सुगमता पूर्वक सीख लिया जाय। अगले तीन परिच्छेदों में धारणा, पुनर्स्मरण और पहचान स्मृति के इन तीनों अंगो की व्याख्या की जायगी।

Q 2. Discuss the nature of retention Describe briefly the factors affecting retention of learned material.

१८.४ धारणा शक्ति—मनुष्य की वह जन्मजात शक्ति जिसके कारण उसके मस्तिष्क पर पड़ा हुआ प्रत्येक संस्कार मस्तिष्क में ठहरा रहता है धारणा शक्ति कहलाती है। स्मरण शक्ति इस धारणा शक्ति पर निर्भर रहती है। इसलिये स्मरण शक्ति को जन्मजात कहा गया था। किसी बात को याद कर लेने के बाद धारणा शक्ति के द्वारा ही व्यक्ति सीखी हुई वस्तु को मस्तिष्क में बनाये रखता है। सीखते समय व्यक्ति का मस्तिष्क क्रियाशील रहता है किन्तु सीखने के पश्चात् सीखी हुई वस्तु को सुप्तावस्था और अचेतन अवस्था मे भी ज्यो की त्यो बनाये रखता है। मस्तिष्क में ये स्मृति चिन्ह स्थित रहते हैं और समय के बीतने के साथ उनमे परिवर्तन उपस्थित होते जाते हैं। किन्तु मनोविश्लेषणवादियों के विचार से किसी वस्तु को जिसको एक बार सीख लिया गया है भुलाया नहीं जा सकता। उनका कहना है कि स्मृति चिन्ह खो नहीं जाते और न मिट ही जाते हैं वरन् अचेतन मन में फेंक दिये जाते हैं जहाँ पर पहुँचकर चेतन मन मे तब तक नहीं आ सकते जब तक व्यक्ति पर सम्मोहन किया न की जाय। इतना सभी मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि सीखी हुई वस्तु मस्तिष्क मे बनी रहती है। किन्तु उसकी जितनी अधिक आवृत्तियाँ होती हैं, जितनी अच्छी तरह से उसे याद किया जा सकता है, वह वस्तु उतनी ही अधिक अवधि तक धारणा में स्थित रहता है।

यह धारणा शक्ति भिन्न-भिन्न व्यक्तियो मे भिन्न-भिन्न मात्रा में वर्तमान रहती है। किसी मे यह अधिक प्रबल होती है और किसी में कम क्योंकि अन्य जन्मजात विशेषताओं की तरह इसका संक्रमण होता है। धारणाशक्ति के अनुसार व्यक्तियों में विभिन्नताएँ पाई जाती हैं। न तो एक ही व्यक्ति की धारणा शक्ति सभी विषयो के लिये समान होती है और न सभी व्यक्तियों की धारणा शक्ति एक ही विषय के लिये समान होती है।

धारणा शक्ति की अभिवृद्धि के विषय में कुछ विद्वानों का मत है कि ११ वर्ष की अवस्था तक यह शक्ति बड़ी तेजी से बढ़ती रहती है किन्तु १६ वर्ष से २५ वर्ष की आयु तक इसमें वृद्धि की दर उतनी नहीं होती जितनी इस आयु से पहले होती है। २५ वर्ष की आयु के बाद

[1] Impression

[2] Retention.

[3] Recall or reproduction.

[4] Recognition.

इसमें वृद्धि नहीं होती वरन् उसमे शिथिलता आ जाती है। वृद्धावस्था तक पहुँचने-पहुँचते नाड़ी मंडल में विकार आ जाने के कारण इसमें भी विकार उत्पन्न हो जाते हैं। विलियम जेम्स का मत कुछ भिन्न है। वह कहता है कि बालक की धारणा शक्ति उसके जन्म के साथ आती है और अभ्यास के द्वारा उसमे परिवर्तन नहीं किया जा सकता किन्तु सदुपयोग द्वारा उसे लाभकारी अवश्य बना सकते हैं। यह मत कि धारणा शक्ति में परिवर्तन नहीं होता अधिक मान्य प्रतीत होता है। फिर भी हम विलियम जेम्स के मत का सम्मान करते हुये यह कह सकते हैं कि यदि बचपन में धारणा शक्ति प्रौढ़ावस्था की अपेक्षा अधिक बलवती होती है तो इस काल में बालक को ऐसी बातें सिखा देनी चाहिये जो उसको जीवन भर उपयोगी सिद्ध हों और यदि इस अवस्था मे विचार शक्ति अधिक प्रबल नही होती जैसा कि प्रायः माना जाता है तो उसके पाठ्यक्रम में ऐसी पाठ्य वस्तु रखी जा सकती है जिसके लिये उत्तम धारणा शक्ति की आवश्यकता है।

धारणा शक्ति को प्रभावित करने वाले तत्व—व्यक्ति की धारणा शक्ति कुछ परिवर्तनशील तत्वों पर निर्भर रहती है। सम्भवत: इन्ही तत्वो से प्रभावित होने के कारण भिन्न भिन्न व्यक्तियो की धारणा शक्ति मे विभिन्नताएँ होती हैं। धारणा को प्रभावित करने वाले तत्व निम्नांकित हैं—

(अ) मस्तिष्क के विकास की अवस्था।
(ब) व्यक्ति का स्वास्थ्य।
(स) यौन।
(द) विचार और तर्क।
(य) रुचि।

(अ) मस्तिष्क—जिस व्यक्ति का मस्तिष्क जितना अधिक विकसित होता है उसकी धारणा उतनी ही उत्तम कोटि की होती है। छोटे-छोटे बच्चो के मस्तिष्क का विकास उतना अच्छा नहीं होता जितना कि वयस्कों का होता है इसलिये उनकी धारणा शक्ति वयस्क व्यक्तियों की अपेक्षा कमजोर रहती है।

(ब) स्वास्थ्य—व्यक्ति के स्वास्थ्य का धारणा शक्ति पर विशेष प्रभाव पड़ता है। बुढ़ापे में अथवा व्यक्ति के रोगी हो जाने पर मस्तिष्क के सुचारु रूप से कार्य न कर सकने के कारण धारणा शक्ति कमजोर हो जाती है। सदा समय जबकि नाड़ी तन्तु श्रमित हो जाते हैं तब भी स्मरण शक्ति कमजोर हो जाती है। इस प्रकार व्यक्ति के स्वास्थ्य पर स्मरण शक्ति निर्भर रहती है।

(स) यौन—१४ वर्ष की आयु तक बालिकाओं का शारीरिक और मानसिक विकास बालकों की अपेक्षा द्रुत गति से होता है इसलिये लड़कियों की धारणा शक्ति लड़कों की अपेक्षा इस आयु तक अधिक सशक्त होती है।

(द) रुचि—जिस विषय, घटना, अथवा अनुभव में हमारी रुचि होती है उसको अधिक समय तक मस्तिष्क में बनाये रखा जाता है।

(य) विचार और तर्क—धारणा शक्ति के अन्तर्गत विचार का उतना ही महत्व है जितना कि रुचि का जब हम किसी समस्या पर विचार करते हैं, उस पर तर्क-वितर्क करते हैं तब यह मानसिक चिन्तन धारणा को सबल बना देता है। किसी नियम को जितनी अधिक बार दुहराया जाता है मन में संस्कार उतने ही पुष्ट हो जाते हैं। जिस विषय को जितनी अधिक शीघ्रता से सीखा जाता है उसकी धारणा मंद गति से सीखे हुए विषय की अपेक्षा अधिक होती है। इस प्रकार मानसिक चिन्तन, स्थिरीकरण का परिमाण और गति धारणा को पुष्ट बनाते हैं।

व्यक्ति की धारणा शक्ति मस्तिष्क के विकास, उसके शारीरिक स्वास्थ्य, लिंग, रुचि, मानसिक चिन्तन, आदि अनेक तत्वों पर निर्भर होने के कारण उसमें वैयक्तिक विभिन्नताएँ पाई जाती हैं।

Q 3. What is a retention curve ? How will you measure retention ?

धारणा वक्र[1]—जो विषय-वस्तु एक बार सीख ली जाती है। उसका समय कुछ अंश के बीतने पर विस्तृत हो जाता है। शेष अंश जो धारणा में बना रहता है उस अंश को बीते हुए समय के साथ सम्बन्ध दिखाने के लिये धारणा वक्र खींचे जाते हैं। ये वक्र स्पष्ट रूप से यह प्रदर्शित करते हैं कि जो वस्तु इस समय सीखी गई है उसका कितना प्रतिशत अंश ६ घंटे बाद, १२ घंटे बाद, १ दिन बाद, २ दिन बाद ··· ··· ··धारणा में स्थिर रह सकता है।

ईबिन्धौस[2] और बोरिया[3] ने जो अन्वेषण इस विषय में किये हैं उनमे प्राप्त आंकिक प्रदत्त नीचे दिये जाते हैं—

प्रयोग कर्ता का नाम	विषय[4] सख्या	घंटे बाद	घंटे	दिन	दिन	दिन	दिन
ईबिन्धौस	१	६	१२	२४	४८	७२	६६
		४४·२%	३५·८%	३३·७%	२७·८%	२५%	२४%
बोरिया	२०	६४·२%	५७·६%	५६·२%	५०·४%	४५%	४४%

मस्तिष्क में धारण की हुई मात्रा और समय के बीच जो सम्बन्ध होता है उसे निम्न समीकरण द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।

$$\text{धारणा} = \frac{१८४}{ई\ \text{लघु समय} + १८४}\ ^{5}$$
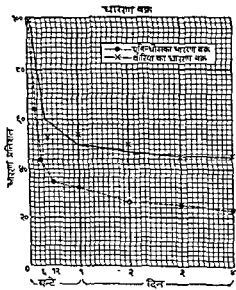
1 Retention Curves.
2 Ebbinghaus.
3 Boreas.
4 Subjects.
5 Ebbinghaus "On Memory"

ईबिंगहौस के वक्र अथवा सामग्री (data) को देखने से पता चलता है कि याद करने के ठीक बाद विस्मरण तीव्र होता है और जैसे-जैसे समय बीतता जाता है विस्मृति की तीव्रता कम होती जाती है। पहले २४ घंटों मे लगभग ६५% भुला दिया जाता है और केवल ३५% धारणा मे रह जाता है। दूसरे २४ घंटो के बाद वक्र क्षैतिज हो जाता है। एक सप्ताह के बाद ७५% भुला दिया जाता है और केवल २५% धारणा मे ही रहता है।

धारणा शक्ति का मापन[1]—सीखने के बाद किसी सामग्री का कितना अंश धारणा मे बना रहता है यह मालूम करने के लिये मनोवैज्ञानिकों ने भिन्न-भिन्न तरीकों का विकास किया है।

पुनर्स्मरण की विधि[2]—किसी विषय-सामग्री का हम तभी पुनर्स्मरण कर सकते हैं, जब वह हमारी धारणा मे हो। सीखी हुई बातों मे जितनी बातें हम आवश्यकता पड़ने पर याद कर सकते है, वे बातें हमारी धारणा-शक्ति की मात्रा का ज्ञान करा सकती हैं। लिखित अथवा मौखिक परीक्षाओ में हम पुनर्स्मरण-प्रश्न पूछ कर परीक्षार्थी की धारणा-शक्ति का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। उदाहरण के लिए यदि कोई बालक ५० सीखे हुए निरर्थक शब्दों में से २४ घन्टे बाद केवल २४ शब्द बता पाता है तो उसकी धारणा शक्ति २४/५०×१००=४८% मानी जायगी।

दुबारा सीखने की विधि[3]—यदि हम किसी पद्य को आज याद कर लें तो ६ महीने बाद शायद हमें उसकी कोई पंक्ति भी याद न रहे किन्तु एक बात निश्चित रूप से कही जा सकती है। वह यह है कि यदि उसी कविता को हमें पहले याद करने मे एक घन्टा लगा था तो ६ महीने बाद याद करने मे केवल २४ मिनट लग सकते हैं अथवा यदि पहले १० आवृत्तियों में वह याद हो सकी थी तो अब केवल ४ आवृत्तियों मे ही याद हो जाती है। इस प्रकार दुबारा सीखने मे समय एवं परिश्रम दोनों की बचत हो जाती है। इसलिए इस विधि को हम बचाने की रीति भी कहते हैं। यह बचत धारणा शक्ति के कारण होती है। इस बचत को भी प्रतिशत के रूप में प्रकट किया जाता है। उपर्युक्त उदाहरण में समय की बचत ६०—२४=३६ मिनट हुई और प्रतिशत बचत ३६/६०×१००=६०% होगी।

पुनर्निर्माण की विधि[4]—जिस क्रम मे कुछ बातें याद की गई थीं व्यक्ति को वह क्रम कितना याद है यह जानने के लिए उसे कुछ चित्र एक क्रम मे दिखाये जाते हैं। उन चित्रों को फेंट कर व्यक्ति को उन्हें उसी क्रम से सजाने का आदेश दिया जाता है।

पहिचान की विधि[5]—जिस विषय सामग्री को व्यक्ति ने पहले याद किया था, अथवा जिन चित्रों को उसने पहले देखा उनको वह ठीक-ठीक पहिचान सके यह जानने के लिए उसे पहिचान अथवा अभिज्ञान परीक्षा कहते हैं। प्रयोगशाला में व्यक्ति को सीखी हुई सामग्री के साथ अज्ञात सामग्री मिला कर दिखाई जाती है और उसे पहले सीखी हुई सामग्री को पहिचानने के लिए आदेश दिया जाता है। उदाहरण के लिए पूर्व परिचित कुछ चित्रों से मिला कर दिखाये जाने पर व्यक्ति के सही और गलत उत्तरों की संख्या निश्चित कर ली जाती है और निम्नलिखित सूत्र की सहायता से धारणा की प्रतिशत निकाली जाती है।

$$\text{धारणा प्रतिशत} = \frac{(\text{सही उत्तरों—गलत उत्तरों) की संख्या}}{\text{कुल चित्रों की संख्या}} \times १००$$

---

1 Measurement of retention.
2 Method of recall.
3 Relearning method.
4 Method of reconstruction.
5 Method of recognition.

पुनस्मरण की विधि से जो धारणा प्रतिशत निकलती है वह इस प्रतिशत से सदैव कम होती है क्योंकि पुनस्मरण करने में व्यक्ति को मानसिक प्रयत्न करना पड़ता है किन्तु अभिज्ञान क्रिया में स्मरणीय सामग्री सामने होती है।

Q. 4. What factors affect recall of the learned material ? Discuss with examples the various laws of Association.

१८·५ पुनस्मरण—स्मृति की प्रक्रिया का यह तीसरा पद है जिसमें सीखी हुई वस्तु को मानसिक चेतना में लाने का प्रयत्न किया जाता है। समय पड़ने पर मस्तिष्क में स्थित पुराने अनुभव या ज्ञान का चेतना में आना पुनस्मरण कहलाता है। हम जो कुछ याद करते हैं इसलिये याद करते हैं कि आवश्यकता पड़ने पर उसे फिर से प्रयोग में लाया जा सके। यदि सीखी हुई बातें समय पर याद नहीं आतीं तो इसका अर्थ होगा कि या तो सीखने की क्रिया ठीक ढंग से नहीं हुई या धारणा शक्ति में कुछ कमी है। इस प्रकार पुनस्मरण सीखने की क्रिया और धारणा शक्तिपर निर्भर रहता है। जिस पाठ को अच्छी तरह बालक ने सीख लिया है और उचित रूप से धारण कर लिया है तो आवश्यकता पड़ने पर उसे आसानी से पुनस्मृत किया जा सकता है। किन्तु कभी-कभी अच्छी तरह सीखी हुई सामग्री के धारणा के होते हुए भी विस्मृत हो जाती है। यह क्यों होता है ?

पुनस्मरण को प्रभावित करने वाले तत्त्व—भय, चिन्ता और आत्म चेतना के कारण व्यक्ति का संवेगात्मक सन्तुलन बिगड़ जाया करता है। रंगमंच पर पहुँचकर बहुत से व्यक्ति पूरी तरह से याद की हुई बातों को भी भूल जाया करते हैं क्योंकि भय, क्रोध, और शोक की अवस्था में पुनस्मरण के लिये सीखी हुई वस्तुयें साहचर्यात्मक सम्बन्ध एक दूसरे विचार को जकड़े रहते हैं। वे टूट जाते हैं। इसी कारण उद्वेग की दशा में व्यक्ति लगभग सभी बातों को याद कर लेता है। उस कक्षा के शान्त वातावरण में जहाँ प्रेम, सहानुभूति और सद्भावना की अविरल धारा बहती रहती है अनेक आवश्यक बातें शीघ्र ही पुनस्मृत हो जाती हैं किन्तु परीक्षा-भवन में जहाँ भय का वातावरण रहता है वहाँ हम सभी कुछ न कुछ भूल जाया करते हैं। यही बात उस समय लागू होती है जिस समय कम अनुभवी अमनोवैज्ञानिक ढंग का अनुसरण करने वाले शिक्षक कक्षा में भय और घृणा का वातावरण उपस्थित कर देते हैं। उन बातों को जो बच्चों की धारणा में होती हैं, भूल जाते हैं और अपनी स्मृति पर विश्वास खो बैठते हैं।

अतः यदि हम अस्वाभाविक विस्मृति को रोकना चाहते हैं, अथवा यदि हम बालकों के पुनस्मरण को अशक्त बन जाने से रोकना चाहते हैं तो हमें उनमें आत्मविश्वास पैदा करना होगा। बालकों में जितना ही अधिक आत्मविश्वास होगा याद की हुई बातों को वे उतनी ही आसानी से पुनस्मृत कर सकेंगे। अपनी शक्तियों में सन्देह की मनोवृत्ति ठीक उसी प्रकार घातक सिद्ध होती है जिस प्रकार भय, क्रोध और शोक की अवस्था मानसिक असन्तुलन पैदा कर पुनस्मरण को अशक्त बना देती है। सन्देह पैदा होने पर लज्जा और आत्मग्लानि के भाव अपने ऊपर क्षोभ पैदाकर पुनस्मरण की क्रिया में बाधाएँ उपस्थित कर देते हैं। 'आत्मनिर्देश'[1] भी जिसका उल्लेख अनुच्छेद १०·५ में किया जा चुका है आत्मविश्वास पैदा करता है। अत. बालकों में आत्म निर्देश जाग्रत करना, थोड़ा सा उत्तर देने पर उन्हें प्रोत्साहन करना, उनके किसी गलत उत्तर के लिये उन्हें निर्बुद्धि, निकम्मे आदि विशेषणों से विभूषित न करना आदि-आदि कुछ ऐसी बातें हैं जिनसे आत्म-विश्वास पैदा हो सकता है और पुनस्मरण का कार्य सुगम हो सकता है। कक्षा में अध्यापक को ऐसे विद्यार्थी पढ़ाने के लिए मिलेंगे जो अपनी संवेगात्मक परेशानियों के कारण उसके प्रश्नों का उत्तर न दे सकें। ऐसे छात्रों को इस कमी पर ताड़ना देना अथवा अन्य किसी प्रकार का असहानुभूतिपूर्ण व्यवहार प्रदर्शित करना उनकी परेशानियों को और भी अधिक तीव्र बना देगा। फलस्वरूप उनकी पुनस्मरण शक्ति और भी क्षीण हो जायगी।

पुनस्मरण को सशक्त बनाने में व्यक्ति की चेष्टाएँ और मानसिक प्रयत्न विशेष सहायक होते हैं। किन्तु मानसिक प्रयत्न के लिये उसे प्रेरणा मिलती रहनी चाहिये। प्रेरणा के साथ ही यदि

1 Auto suggestion,

व्यक्ति में फिर से याद करने की इच्छा प्रबल हुई तो पुनर्स्मरण को सशक्त बनाने में काफी सहायता मिल सकेगी। नये विचारों को प्रस्तुत करते समय यदि शिक्षक पुराने विचारों को उभारता चलता है और छात्रों को उन्हें लिख लेने के लिये प्रोत्साहित करता रहता है तो उसकी स्मृति का विकास होता है साथ ही साथ आत्म विश्वास भी पैदा होता है।

पुनर्स्मरण को अशक्त बनाने में साहचर्यात्मिक बाधा[1] का विशेष हाथ रहता है। जब हमें कोई वस्तु याद आती है तब उससे सम्बन्धित अन्य वस्तुएँ भी जो उससे समानता[2], सहचारिता[3], वैपरीत्य[4] रखती हैं स्मृत हो जाती हैं। किन्तु जब दो विपरीत और विरोधी विचार एक साथ चेतना के क्षेत्र में आने का प्रयत्न करते हैं तब उनमें संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। यह संघर्ष पुनर्स्मरण को कठिन बना देता है। पुनर्स्मरण में उत्पन्न इस प्रकार की बाधा को हम साहचर्यात्मिक बाधा के नाम से पुकारते हैं। ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति जितना ही अधिक पुनर्स्मरण करने का प्रयत्न करता है पुनर्स्मरण उतना ही कम होता है।

विचारों का साहचर्य पुनर्स्मरण में बाधा भी पहुँचाता है और उसकी सहायता भी करता है।

पुनर्स्मरण और विचारों का साहचर्य[5]—पुनर्स्मरण विचारों के साहचर्य पर भी निर्भर रहता है दो या दो से अधिक विचारों के बीच समानता, वैपरीत्य और सहचारिता होने पर एक विचार [illegible] की नवीनता[6] [illegible] संस्कारों के इस [illegible] है। साहचर्य के ये नियम दो प्रकार के हैं—प्राथमिक और गौण। साहचर्य के प्राथमिक नियम हैं समानता वैपरीत्य और सहचारिता। साहचर्य के गौण नियम हैं नवीनता, प्रबलता और आवृत्ति के।

(१) समानता का नियम (Law of similarity)—दो संस्कारों अथवा विचारों में समानता होने पर वे एक दूसरे को स्मरण कराने में सहायक होते हैं। किन्तु जब तक सीखने वाले को दो, व्यक्तियों, घटनाओं, परिस्थितियों, में समानता का ज्ञान नहीं कराया जाता तब तक एक को याद आते ही दूसरी याद स्वतः नहीं आ सकती। अतः कक्षा-कार्य में अध्यापकों को दो परिस्थितियों के बीच समानता के अंश पर प्रकाश अवश्य डालते रहना चाहिये। उदाहरण स्वरूप यदि गांधी और बुद्ध के व्यक्तित्व में समानता के अंश पर जोर दिया जाता है तो बुद्ध के याद आते ही गांधी का स्मरण स्वतः हो आता है।

(२) [illegible] का नियम (Law of Contrast)—[illegible] प्रकार समान वस्तुएँ, समान [illegible] उसी प्रकार दो वस्तुओं, [illegible] सहायक होता है। उदा- [illegible] की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट कर देती है।

(३) सहचारिता का नियम (Law of Contingency)—जब दो संस्कार अथवा अनुभव एक साथ ही स्मृति-पटल पर अंकित होते हैं तब एक के याद आने पर दूसरा संस्कार स्वतः याद आ जाता है। दो बातों का एक साथ स्मृति में आना इस बात पर निर्भर रहता है कि वे दोनों बातें

---

1 Associative interference.
2 Similarity
3 Contrast.
4 Contiguity.
5 [illegible] and association of ideas
6 [illegible]

किस सीमा तक एक ही समय और एक ही स्थान पर साथ-साथ मन पर अंकित हुई थी। दोनों की यह सहचारिता इस बात पर भी निर्भर रहती है कि हमने उन पर एक साथ कहाँ तक ध्यान दिया था। यदि हमने दो व्यक्तियों को एक साथ काफी देर तक देखा है तो सहचारिता अथवा सामीप्य एक के याद आने पर दूसरी की याद दिला देगा।

(४) नवीनता का नियम (Law of Recency)—उन दो संस्कारों में से जो अभी हाल ही में स्मृति पटल पर अंकित हुए हैं किसी एक के चेतना में उपस्थित होने पर दूसरा स्वतः स्मृत हो जाता है।

(५) आवृत्ति का नियम (Law of Frequency)—यदि एक विचार के साथ दूसरा विचार बार-बार चेतना में उपस्थित हुआ रहता है तो एक विचार के आने पर दूसरा विचार भी स्वतः आ जाता है।

(६) प्राथमिकता का नियम (Law of Primacy)—जो प्रभाव हमारे ऊपर सबसे पहले पड़ता है वह स्थायी रहता है। उदाहरण के लिये पहली बार किसी व्यक्ति को देखने पर उसकी जो अमिट छाप हमारे ऊपर पड़ती है वह सदा के लिये पक्की हो जाती है।

(७) प्रबलता का नियम (Law of Intensity)—जो विचार अति प्रबल होता है वह अधिक स्पष्टता के साथ मस्तिष्क पर जम जाता है और अत्यन्त आसानी के साथ स्मृति पटल पर आ जाता है।

[illegible] ण ही एक विचार दूसरे [illegible] ारों के इसी पारस्परिक [illegible]

१८.६ पहचान[1] (अभिज्ञान)—जिस वस्तु को पहले धारण कर लिया है उसके सामने आने [illegible] करने की क्रिया में गत अनुभवों का [illegible] व चेतना नहीं होती। जब किसी [illegible] कहीं देखा है या जाना है, तब [illegible] किन्तु जब हम किसी व्यक्ति से मिलते हैं और उसे अपने मित्र की तरह पहचानते हैं तब पहचानने की क्रियायें किसी व्यक्ति अथवा पदार्थ का पूरा परिचय प्राप्त करते हैं। इस प्रकार या पहचाना अभिज्ञान कहलाता है।

कभी-कभी पहचानने और पुनर्स्मरण की मानसिक प्रक्रियायें दोनों साथ-साथ होती हैं। जब किसी घटना को हम फिर से याद करते और यह जान लेते हैं कि यह हमारे भूतकाल का अनुभव है तब पुनर्स्मरण भी कहते हैं और पहचानने का प्रयत्न भी। लेकिन जब किसी पहाड़े को याद करते हैं तब इस प्रकार की पहचानने की मानसिक प्रक्रिया नहीं होती। इन दोनों मानसिक प्रक्रियाओं में विशेष अन्तर है। पहचानने की क्रिया पदार्थ के सामने आने पर आरम्भ होती है और पुनर्स्मरण की क्रियायें पदार्थ की खोज करनी होती है। पहचान की क्रियायें अ दिया जाता है और पुनर्स्मरण की क्रियायें पदार्थ की खोज करनी होती है, पहचान की क्रियायें अ दिया जाता है और उसे पहचानना होता है लेकिन पुनर्स्मरण की प्रक्रियायें अ को उद्बोधक के रूप में दिया जाता है और ब को याद करना पड़ता है। उदाहरण के लिए अभिज्ञान परीक्षण में प्रश्न निम्न प्रकार के होते हैं—

निम्नलिखित प्रश्न में चार वैकल्पिक उत्तर दिये गये हैं जिनमें से एक उत्तर सही है। उस सही उत्तर को ढूँढो और प्रश्न के दाईं ओर दिये गये कोष्ठक में उस उत्तर की संख्या लिख दो।

---

1 Recognition.

१०० रुपये का २ वर्ष का ५% ब्याज की दर से ब्याज होगा। ( )

(१) ५ रुपये

(२) ४ रुपये

(३) १० रुपये

(४) २ रुपये

इस प्रश्न का उत्तर १, २, ३, और ४ में से कोई हो सकता है, विद्यार्थी को सही उत्तर पहचानना है। पुनर्स्मरण की कठिनाई प्रश्न किये जाने पर उनका उत्तर ज्ञात करना पड़ता है जैसे—

यदि किसी संख्या में ५ में से ६ घटाने पर १० बचे तो वह संख्या क्या है ?

पहचान और पुनर्स्मरण के इन प्रश्नों को देखने से यह मालूम होता है कि पहचानने की क्रिया पुनर्स्मरण की क्रिया से आसान होती है। किसी व्यक्ति के नाम को याद नहीं कर पाते पर उनके नाम के सामने आने पर उसे झट पहचान लेते हैं, इस प्रकार पहचानने की क्रिया पुनर्स्मरण की प्रक्रिया से आसान प्रतीत होती है और होता भी यही है।

Q. 5. Discuss the various types of memory ? How is memory measured in laboratory ?

१८७ स्मृति के प्रकार—स्मृति चार प्रकार की होती है—

आदत जन्य एवं प्रतिमा संयुक्त स्मृति (Habit and image memory)—बर्गसन के अनुसार स्मृति के ये दो भाग किये जा सकते हैं। वास्तविक स्मृति में आत्म चेतना का अंश रहता है। वास्तविक स्मृति के कारण हम देश, काल एवं परिस्थिति का ज्ञान प्राप्त करते हैं किन्तु आदत-जन्य स्मृति में मस्तिष्क पर बहुत कम बल पड़ता है। बार-बार रटने से जो बात याद हो जाती है उसमें मस्तिष्क को बहुत कम काम करना पड़ता है। रटने से बातें याद हो जाती हैं किन्तु उनके संस्कार अच्छी तरह नहीं पड़ते।

(२) तर्क युक्त एवं रटने की स्मृति (Logical and rote memory)—कुछ मनोवैज्ञानिक रटने की प्रवृत्ति को तर्क पूर्वक समझने से अलग मानकर स्मृति को इन दो भागों में बाँटते हैं।

(३) निष्क्रिय और सक्रिय स्मृति (Passive and Active memory)—जब हमें किसी वस्तु को पुन: स्मृति पटल पर लाने में कोई विशेष मानसिक प्रयत्न नहीं करना पड़ता तब हम निष्क्रिय स्मृति का आश्रय लेते हैं। इस स्थिति में पुराने विचार स्वत: याद आ जाया करते हैं, किन्तु सदैव ऐसा नहीं होता। किसी अतीत काल के अनुभव को पुनर्स्मरण करने के लिए हमें प्रयत्न करना पड़ता है। पुनर्स्मरण अथवा अभिज्ञान के लिए जब इच्छाशक्ति अथवा चेष्टा का सहारा लेना पड़ता है तब हमारी स्मृति सक्रिय बन जाती है।

(४) तत्कालीन एवं स्थायी स्मृति (Immediate and permanent memory)—यदि कोई व्यक्ति कई वर्ष पहले सीखी हुई बातों को अब ज्यों की त्यों सुना दे, तो हम कहेंगे कि उसकी स्मृति स्थायी है। किन्तु यह बात सब लोगों पर लागू नहीं होती। कुछ लोगों की तत्कालीन स्मृति बहुत अच्छी होती है।

स्मृति की माप (Measurement of memory)—स्मृति-मापन का इतिहास इबिंगहॉस की रचना और मैमोरी (on memory) की प्रकाशन तिथि सन् १८८५ से आरम्भ होता है। इसके पहले मनोवैज्ञानिक केवल सीखने (learning) और भूलने (forgetting) के बीच अन्तर स्थापित करने का प्रयत्न कर रहे थे। उनका ध्यान इस ओर था ही नहीं कि कितना याद किया जाता है और कितना भुलाया जाता है। इबिंगहॉस ने सबसे पहले प्रयोगात्मक विधि का प्रयोग स्मृति-मापन में किया। उसने अपने आप को ही अपना विषयी (subject) बनाया और अपने ऊपर हजारों [illegible] (experiments) किये। अपने प्रयोगों में से विचलनशील अशुद्धियों (variable errors) को [illegible] कम करने के लिए ऐसी सामग्री का प्रयोग किया जो निरर्थक थी। अरस्तू के समय से अब [illegible] किसी भी व्यक्ति ने निरर्थक शब्दों (nonsense syllables) का प्रयोग नहीं किया था। यदि

इबिन्घोस ही था जिसने इन शब्दों का महत्त्व समझा और अपने प्रयोगों (experiments) में उनका प्रयोग किया।

उसके सामने सबसे बड़ी समस्या यह थी कि सीखी जाने वाली शब्दों की श्रेणी की लम्बाई को बदलने का याद करने पर क्या प्रभाव पड़ता है। उसने देखा कि निरर्थक शब्दों की एक जोड़ी, जैसे ZOT और KIM, एक बार पढ़ने से ही याद हो जाती है, और पूरी तरह ध्यान लगाकर याद करने से ४, ५, शब्दों का समूह भी तुरन्त याद हो जाता है। थोड़े बहुत अभ्यास के बाद ६, ७ शब्दों का समूह भी याद किया जा सकता है। किन्तु इससे अधिक शब्दों का समूह आसानी से याद नहीं हो सकता। एक समय में किसी व्यक्ति द्वारा अभ्यास से जितने शब्दों का समूह याद किया जा सकता है वह उसका स्मृति-विस्तार (memory span) कहलाता है। यदि वह शब्दों की सख्या बढ़ा दे तो उसे समय की मात्रा भी बढ़ानी पड़ेगी किन्तु समय की मात्रा में वृद्धि शब्दों की सख्या में वृद्धि से कहीं अधिक होती है। इस प्रकार के स्मृति-विस्तार पर अनेक प्रयोग आगे आने वाले मनोवैज्ञानिकों ने भी किये जिनमे कैटल और जैकब विशेष उल्लेखनीय हैं।

स्मृति-विस्तार

याद करने के बाद तु[illegible]

क्योंकि कुछ देर बीत जाने पर [illegible]

करने के लिए प्रयोगकर्ता (exp[illegible]

दिखलाता है। एक बार देख लेने के बाद व्यक्ति कितने शब्दों को ठीक-ठीक दुहरा सकता है इससे उसकी स्मृति की परीक्षा की जाती है। वह कितने शब्दों को ठीक दुहरा सकता है यह सख्या व्यक्ति की तात्कालिक स्मृति (immediate memory) पर निर्भर रहती है। यह स्मृति (immediate memory) उम्र के साथ-साथ बढ़ती है। जैसे-जैसे व्यक्ति अधिक अध्यवसायी होता जाता है उसकी तत्कालिक स्मृति अधिक होती जाती है। ड्रेवर का कहना है कि

सात वर्ष का बालक ६ अक्षरों से अधिक अक्षर वाले शब्दों को याद नहीं कर सकता। स्मृति का यह विस्तार धीरे-धीरे बढ़ता जाता है और २५ वर्ष की अवस्था पर अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है।

स्मृति-मापन मे निम्नलिखित रीतियाँ विशेष रूप से काम में लाई जाती हैं।

(१) सीखने के समय की विधि (Learning time method)—व्यक्ति के सामने बेलनाकार घूमने वाले पाइप पर निरर्थक शब्द एक-एक बार घुमाए जाते हैं। एक बार घुमा देने पर उससे शब्दों को दुहराने के लिए कहा जाता है। जब तक वह शब्दों को ठीक-ठीक दुहरा नहीं देता प्रयोग किया जाता है। जितने समय में व्यक्ति उन शब्दों को बिना गलती किये सुना सकता है वह समय उसका स्मृति विस्तार माना जाता है।

(२) उकसाने की विधि (Prompting and anticipation method)—इबिन्घोस ने १९०२ मे इस विधि को जन्म दिया था। इस विधि मे व्यक्ति को कुछ निरर्थक शब्दों की सूची याद करने को दी जाती है। भूल होने पर बीच-बीच में व्यक्तियों को उकसाया जाता है। ठीक-ठीक दुहराने के लिए उसे कितनी बार उकसाया गया यह बात उसकी स्मृति विस्तार का ज्ञान कराती है।

(३) बचाने की विधि (Saving method)—जब कोई व्यक्ति किसी कविता, निरर्थक शब्दों की सूची अथवा भूलभुलैयों को एक बार सीख लेता है तो दुबारा उसी तरह सीखने में जितने समय अथवा कोशिशों की बचत होती है उससे पता चल सकता है कि उस व्यक्ति का स्मृति विस्तार कितना है।

(४) पहिचानने की विधि (Recognition Method)—इस विधि में या तो यह देखा जाता है कि किसी एक उत्प्रेरक (stimulus) को किस शुद्धता के साथ पुन. पहिचाना जाता है या कितनी वस्तुएँ व्यक्ति पहिचान सकता है।

(५) पुनर्निमाण की विधि (Reconstruction method)—विषयियों को कुछ वस्तुएँ एक क्रम मे दिखा दी जाती हैं। पुन. उन वस्तुओं को उसी क्रम से सजाने के लिए आदेश दिया जाता है। स्पीयरमैन का साहचर्य गुणक निकाल कर उसका स्मृति विस्तार बताया जा सकता है।

१८·८ स्मृति विस्तार (Memory Span)—किसी वस्तु को याद कर लेने के पश्चात् ही उसको जितनी मात्रा का पुनस्मंरण किया जा सकता है, वह मात्रा स्मृति विस्तार कहलाती है।[1] इस प्रकार के पुनस्मंरण मे विस्मृति का कोई भी अश उपस्थित नहीं होता। इसकी माप के लिए निरर्थक शब्दों, अथवा अक समूहो का प्रयोग किया जाता है। शान्त वातावरण में सामान्य व्यक्तियों के निरर्थक शब्दो अथवा अको का एक समूह सुना दिया जाता है। सुनने के बाद वह जितने अक या शब्द पुनस्मंरण कर सकता है उतने शब्द और अक उसकी स्मृति-विस्तार को माप कहलाते हैं। नीचे की तालिका मे आयु और स्मृति-विस्तार में सम्बन्ध दिखाया गया है। प्रयोगों के आधार पर देखा गया है कि कालेज मे पढने वाले विद्यार्थियो का स्मृति विस्तार ८ अकों से अधिक नहीं पाया गया है। किण्डरगार्टन स्कूलो में अभ्यास के फलस्वरूप स्मृति-विस्तार ४·४ अक से ६·४ अक तक बढाया जा सका है किन्तु अभ्यास न होने पर स्मृति-विस्तार पुनः ४·७ हो गया। अत्यधिक अभ्यास करके कालेज के छात्र स्मृति-विस्तार मे २०% तक की वृद्धि कर सके हैं। सार्थक शब्दों के लिए स्मृति विस्तार १५ शब्द तक मिला है।[2]

स्मृति-विस्तार से अधिक अको को सीखने या याद करने मे अपेक्षाकृत अधिक समय लगता है। यदि मेरा स्मृति-विस्तार ८ अक हैं अर्थात् एक बार सुनने से ८ अंक आसानी से दुहराये जा सकते हैं तो ९ अको का पुनस्मंरण करने के लिए कई बार मुझे वह सूची सुननी होगी। अकों की सूची जितनी ही लम्बी होती है उतनी ही अधिक मात्रा में बाधा उत्पन्न हो जाती है।

आयु	२½	३	४½	७	१०
पुनस्मृंति अको की सख्या	२	३	४	५	६

Q. 6. Discuss the various methods of memorization. What methods would you employ to memorize a piece of poetry? Can memory of a child be improved?

स्मृति ऐसी मानसिक प्रक्रिया है कि यदि इसको उचित रूप से कार्यान्वित किया जाय तो समय और शक्ति दोनो की बचत होती है।

१८.९ सीखी हुई वस्तु को याद रखने के नियम[3] और विधियाँ—यदि हम चाहते हैं कि जो विषय-वस्तु हमने सीखी है वह हमारी स्मृति से बनी रहे तो हमें निम्नलिखित सिद्धान्तों अथवा नियमों पर ध्यान देना होगा। वे नियम स्मरण रखने के नियम[4] कहलाते हैं।

(अ) याद रखने की इच्छा[5]
(आ) याद करने के लिये व्यक्ति का मानसिक प्रयत्न[6]
(इ) याद की जाने वाली विषय वस्तु की सार्थकता और सगठनशीलता[7]

---

1 The memory span measures the amount of a given material that can be reproduced after a single reading —Wordsworth
2 Mark & Jack 1952.
3 Laws of memorization.
4 Principles or Laws of memorization.
5 Will to learn & will to remember
6 Mental Effort
7 Meaningfulness & organization of the material learnt

(ई) समग्र और खण्ड-खण्ड करके याद करने की विधि[1]
(उ) ······और विभक्त विधि द्वारा याद करने की विधि[2]
(ऊ) पुनरावृत्ति[3]
(ए) अत्यधिक याद करना[4]
(ऐ) पाठ में रुचि और ध्यान की एकाग्रता

(अ) **याद रखने की इच्छा**—जिस समय याद करने वाले के मन मे सीखने और याद रखने की इच्छा होती है उस समय उसको बहुत सी सामग्री आसानी से याद हो जाती है और बहुत समय तक वह याद बनी रहती है। अतः यदि हम यह चाहते हैं कि कोई वस्तु हमे सदैव याद रहे तो यह जरूरी है कि उसे सीखते समय निरन्तर यह सोचते रहें कि हमें वह वस्तु याद रखनी है। जब तक उस वस्तु को सीखने और याद करने की इच्छा हममें वर्तमान न होगी तब तक वह वस्तु स्मृति में चिरकाल तक टिक न सकेगी। प्रायः बहुत से विद्यार्थी जो वार्षिक परीक्षा में किसी विषय में अच्छे अंक प्राप्त कर लेते हैं थोड़े समय पश्चात् उस विषय को बिलकुल भूल जाते हैं क्योंकि जिस समय उस विषय वस्तु का अध्ययन करते हैं उस समय उनमे उसे याद रखे रहने की चाह नहीं होती।

(आ) **याद करने के लिये व्यक्ति का मानसिक प्रयत्न**—किसी सामग्री को सोच-समझकर उसके अर्थ और महत्व पर ध्यान देते हुये याद करने से याद करने के प्रयास निश्चय रूप से सफल होते हैं। यदि कोई पाठ बिना सोचे समझे रटकर याद किया जाता है तो वह हमारी स्मृति मे अधिक समय तक टिक नहीं सकता। उदाहरण के लिये यदि हम किसी व्यक्ति को अधिक समय तक याद रखना चाहते हैं तो उसे रटकर याद करने की अपेक्षा समझकर याद करना श्रेष्ठ होगा। कविता को याद करने से पहले उसका अर्थ समझना होगा।

किसी कविता के अर्थ को समझने के लिये हमें निम्नलिखित मानसिक प्रयत्न करने होंगे—

(क) सीखी या याद की जाने वाली कविता के भिन्न-भिन्न अंशों मे सम्बन्ध ढूढ़कर सारी कविता को एक सार्थक ढांचे[5] में ढालना होगा।

(ख) सीखी या याद की जाने वाली विषय वस्तु का पहले पढ़ी हुई या याद की हुई सामग्री से सम्बन्ध स्थापित करना होगा।

सीखते और याद करते समय मानसिक प्रयत्न अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि ये सरल बातें जिनको समझने में मानसिक प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती बड़ी जल्दी भुला दी जाती हैं किन्तु वे क्लिष्ट विषय जिनमें चिन्तन और मनन की आवश्यकता होती है स्मृति मे बहुत दिनों तक ठहरे रहते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि जिस विषय को याद करने में जितनी लगन और परिश्रम से कार्य करना पड़ता है वह उतनी ही देर मस्तिष्क में ठहरा रह सकता है।

(इ) **याद की जाने वाली विषय वस्तु की सार्थकता और संगठनशीलता**—विषय वस्तु जितनी ही अधिक सार्थक होती है उसका सीखना उतना ही अधिक सरल और सुविधाजनक होता है। सार्थक शब्दों की अपेक्षा निरर्थक शब्दों को याद करने में अधिक समय लगता है और याद किये जाने पर उनका विस्मरण भी तीव्र गति से होता है। सीखने के एक प्रयोग में २०० निरर्थक शब्द, गद्य और पद्य के रूप में रखे हुए २००, २०० शब्द दवीं कक्षा के ३३ विद्यार्थियों को याद करने के लिये दिये गये। उनको याद करने में जो औसत समय लगा वह निम्न तालिका द्वारा तुलनात्मक अध्ययन के लिए प्रस्तुत किया जाता है।

---

1 Whole & Part method
2 Spaced and Unspaced Learning
3 Repetition
4 Overlearning
5 Meaningful Pattern

सामग्री प्रकार का	समय मिनटों में
निरर्थक शब्द	६३
सार्थक शब्द गद्य के रूप में	२४
,, ,, पद्य के रूप में	१०

स्टैगनर और कारवोस्की[1] याद की जाने वाली सामग्री में सगठन पर अधिक महत्व देते हैं। उनके मतानुसार किसी विषय वस्तु की सार्थकता उसको सगठित कर सकने की योग्यता पर निर्भर रहती है। जो विषय वस्तु जितनी ही अधिक सगठनीय होती है उसको उतनी ही आसानी से याद कर लिया जाता है और काफी समय के लिये याद रखा जा सकता है। स्टैगनर और कारवोस्की ने देखा कि जो विद्यार्थी निबन्धात्मक परीक्षाओं के लिये तैयारी करते हैं वे नवीन प्रकार की परीक्षा में भी अंक प्राप्त करते हैं और उनके विपरीत जो विद्यार्थी केवल नवीन प्रकार की परीक्षा के लिये ही तैयारी करते हैं, वे निबन्धात्मक परीक्षाओं में असफलता प्राप्त करते हैं। इसका मुख्य कारण यह है कि निबन्धात्मक परीक्षा की तैयारी करने वाले छात्र विषय वस्तु को संगठित कर लेते हैं और नवीन प्रकार की परीक्षा की तैयारी करने वाले छात्र याद किये गये तथ्यों में विशेष सम्बन्ध स्थापित न कर सकने के कारण याद की गई सामग्री को शीघ्र भूल जाया करते हैं।

(ई) खण्डश. तथा समग्र विधि से याद करना—जिस पाठ को याद करना है उसे समग्र रूप से अथवा खण्ड-खण्ड करके याद किया जा सकता है। समग्र विधि से याद करते समय हम पूरी कविता को बार-बार पढ़ा करते हैं किन्तु खण्ड-खण्ड करके याद करते समय कविता की पहली ४—५ पंक्तियाँ याद कर ली जाती हैं उनके याद कर लेने के उपरान्त अगली ४—५ पंक्तियाँ याद की जाती हैं इस प्रकार याद करने का यह क्रम उस समय तक चलता रहता है जब तक पूरी कविता कण्ठाग्र नहीं हो जाती।

खण्डश: और समग्र विधि से याद करने की उपयोगिता का तुलनात्मक अध्ययन करने से पूर्व समग्र और खण्ड की व्याख्या आवश्यक प्रतीत होती है। समग्र कुछ स्वतन्त्र खण्डों का योग-मात्र नहीं है: उसमें सम्पूर्ण की सार्थकता, भाव की एकात्मकता और ढांचे की विशिष्टता होती है जो उसके खण्डों में नहीं पायी जाती। इसके विपरीत, खण्ड सम्पूर्ण परिस्थिति का एक अंग होता है और ऐसा अंग जो समग्र वस्तु को सार्थक बनाने में सहायक होता है किन्तु समग्र से अलग हो जाने पर स्वयं निरर्थक हो जाता है।[2]

याद करने की कौन सी विधि उत्तम है—खण्डश: अथवा समग्र यह जांच करने के लिये उडवर्थ ने एक व्यक्ति को किसी कविता के दो खण्ड जिनमें से प्रत्येक में २४० पंक्तियाँ थीं याद करने के लिये दीं। एक अंश को उसने समग्र विधि से और दूसरे को खण्ड-खण्ड करके याद

---

[1] Stagner & Karwoski

[2] Whole is not an aggregate but a definitely regregated independent pattern which possesses unity, coherence and meaning in itself above that implied by its parts. Conversely, a part is an element in a total situation which is essential to the meaning as a whole, but which loses its meaning when isolated from the whole.

। । दोनों विधियों से याद करने मे उसने जो समय लिया वह नीचे तालिका में अंकित किया । है—

याद करने की विधि	दिनों की संख्या	कुल समय मिनटों में
पंक्ति प्रतिदिन फिर सम्पूर्ण की आवृत्ति कविता को प्रतिदिन ३ बार आवृत्ति	१२ १०	४३१ ३४८
समय की बचत	२	८३

इस प्रयोग से पता चलता है कि समग्र विधि से याद करने में खण्डशः विधि से याद करने अपेक्षा समय कम लगता है। इसके कारण हैं—

(१) किसी कविता के खण्ड-खण्ड करके याद करने से उसका अर्थ नष्ट हो जाता है न्तु समग्र विधि से याद करने पर विषय सामग्री का अर्थ आसानी से हृदयगम किया जा सकता । प्रत्येक सम्पूर्ण कविता में विशेष अर्थ होता है जो उसके खण्डो मे नहीं होता। कविताओं को ण्ड-खण्ड करके याद करने पर उसके विचारों का तारतम्य टूट जाता है।

(२) खण्ड-खण्ड करके याद करने मे प्रत्येक खण्ड की कई बार आवृत्ति करनी पड़ती है। र यह होता है कि एक हो पद के बार-बार याद करने से पद के प्रथम और अन्तिम शब्दों मे क अनावश्यक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। यह अनावश्यक सम्बन्ध पाठ याद करने मे बाधक ता है। इस प्रकार याद की हुई सामग्री का जिस समय विस्मरण होता है उस समय पद का थम शब्द याद नहीं आता।

इस प्रकार खण्ड-खण्ड करके याद करने पर समय भी अधिक लगता है और याद की हुई ामग्री को विस्मृत होने की अधिक सम्भावना भी रहती है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि ण्डशः विधि पूर्णतः अनुपयोगी है। उसकी भी अपनी उपादेयता है।

छोटे-छोटे बच्चे कविता को थोड़ा-थोड़ा करके अधिक शीघ्रता से याद कर लिया करते । प्रौढ़ व्यक्तियों के लिये भी कविता के लम्बे होने पर उसे खण्ड-खण्ड करके याद करना अधिक ुविधाजनक होता है। यदि विषय-सामग्री इतनी अधिक लम्बी है कि उसे समग्र विधि से याद हीं किया जा सकता तब समग्र विधि से याद करने पर निराशा उत्पन्न हो सकती है, व्यक्ति आत्मविश्वास खो सकता है। स्मरण करने योग्य वस्तु की छोटी-छोटी सार्थक इकाइयाँ आसानी याद कर ली जाती है। प्रत्येक इकाई को पूरी तरह से याद करने पर याद करने वाले को अपनी शक्ति मे विश्वास पैदा हो जाता है। इस प्रकार आनन्द की अनुभूति करता हुआ व्यक्ति और भी अधिक मात्रा को याद करने मे समर्थ होता है। सफलता की भावना उसे उत्साहित करती रहती है।

कुछ मनोवैज्ञानिक पाठ को खण्डश विधि से याद करने के लिये एक और तर्क प्रस्तुत करते हैं। उनका कहना है कि चूँकि कविता का प्रत्येक अश समान रूप से याद करने में कठिन नहीं होता। अतः समग्र विधि से याद करने में कई सरल पदो की अनावश्यक आवृत्ति करनी पड़ती है। इससे समय का अपव्यय होता है।

साधारणतया समग्र रूप से याद करने की विधि उत्तम माना जाती है किन्तु कौन-सी विधि अधिक उत्तम है यह बात सीखने वाले के मानसिक विकास की स्थिति और विषय सामग्री के आकार निर्भर रहती है। यदि विषय सामग्री न तो अधिक छोटी और न अधिक बड़ी हो तो समग्र याद करने मे समय कम लगता है। पाइनर और स्मिडर के प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकलता पंक्तियों से कम आकार की कविताओं को समग्र विधि से याद करने में सुविधा होती मे की गई अन्य खोजों के अनुसार हम निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुँचते हैं—

विश्राम ले ले कर याद करने में भूत प्रभावी निरोधन और अन्य प्रकार की बाधाएं सीखने पर कम प्रभाव डालती हैं। जब दीर्घकालीन क्रमिक अध्ययन में एक संस्कार के पक्के हुए बिना ही दूसरा संस्कार थोप दिया जाता है तो दोनों संस्कारों के पक्के होने में बाधा पहुँचती है। इसके विपरीत विश्राम की अवधि में पहले सीखी हुई सामग्री पक्की हो जाती है।

इन प्रयोगों से विश्राम की उपयोगिता स्थिर की जा सकती है किन्तु याद करने के दो प्रयासों के मध्य विश्राम की अवधि कितनी लम्बी हो निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। यदि समय विभाग विधि[1] द्वारा पाठ याद किया जाता है तो विश्राम की अवधि अत्यंत लम्बी नहीं होनी चाहिए। पाठ्य वस्तु के सार्थक होने पर भी विश्राम की अवधि बहुत छोटी रखी जाय तो ही उत्तम होता है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि कठिन विषय-वस्तु विभक्त विधि द्वारा याद करने में विशेष लाभ होता है। विश्राम काल यदि एक दिन से कम रखा जाता है तो अभ्यास काल जितना ही अल्प होगा उतना ही अच्छा है। इसके विपरीत विश्राम काल के एक दिन से अधिक होने पर अभ्यास काल की अवधि बढ़ाई जा सकती है। समय विभाग विधि द्वारा सीखने के आरम्भ में पाठ की आवृत्तियाँ थोड़े-थोड़े समय के अन्तर पर और कालान्तर में आवृत्तियों के बीच विश्राम अवधि बढ़ायी जा सकती है।

१८·१० क्या स्मृति में सुधार सम्भव है?—स्मृति में सुधार हो सकता है लेकिन इस सुधार की सीमाएँ निश्चित हैं। सीखते समय यदि याद रखने की विधियों को ध्यान में रखकर याद किया जाय तो स्मृति में काफी मात्रा तक विकास होता है। किसी विषय का अध्ययन करते समय हम यदि याद करने के नियमों का अनुसरण करें तो एक बार पढ़ी हुई सामग्री स्मृति में बनी रह सकती है। उदाहरण के लिये यदि सीखी जाने वाली वस्तु हमारी रुचि के अनुकूल है, और हमें उसे याद रखने की प्रबल इच्छा है, और उस याद करने के लिए मानसिक प्रयत्न करने के लिये तैयार है, यदि याद की जाने वाली विषय-वस्तु का सार्थक संगठन है तो याद की गई वस्तु काफी सीमा तक मस्तिष्क में बनी रहती है।

Q 7. Discuss the nature of forgetting and its importance in education.

१८·११ विस्मृति का महत्व—विस्मरण मनुष्य के लिये अभिशाप भी है और वरदान भी। अभिशाप इसलिये कि जब आवश्यकता पड़ने पर हमें अपना पाठ याद नहीं आता तब हमें क्षोभ और आत्मग्लानि होती है। अपने याद किये हुए विषय को पुनर्स्मरण न कर सकने पर अपनी कमी महसूस करने लगते हैं। विस्मरण वरदान इसलिये है कि विस्मरण से सीखने वाले को आराम मिलता है क्योंकि यदि अधिकतम मात्रा याद कर लेने के बाद जब याद करने वाला और भी अधिक याद करना चाहता है तब उसके लिये पहले सीखी हुई बातों का भूल जाना आवश्यक है। विस्मरण इस प्रकार मनुष्य की सहायता करता है। विस्मरण को वरदान इसलिये और भी कहा जाता है कि यदि हम उन सब प्रकार के अनुभवों को याद रखें जो प्रतिदिन हमको होते रहते हैं, तो हमारा जीवन अत्यन्त कष्टमय हो जायगा क्योंकि इन अनुभवों में से कुछ अनुभव दुख दायी भी होते हैं।

विस्मृति का अर्थ—सीखी हुई सामग्री को पुनर्स्मरण करने की असफलता का नाम ही विस्मृति है। जब कोई व्यक्ति पूर्वपरिचित वस्तुओं को, पूर्व संचित संस्कारों को, याद करने की चेष्टा करने पर भी आवश्यकता पड़ने पर फिर से स्मृति में नहीं ला पाता तब हम कहते हैं कि उसको उन वस्तुओं अथवा संस्कारों का विस्मरण हो गया है। पहले जो वस्तु हमने याद कर ली है वह यदि धारणा में नहीं रहती अथवा यदि हम उसको सामने आने पर पहचान नहीं सकते तब भी यही कहा जाता है कि वह विस्मृत हो गई है। संक्षेप में, पूर्व संचित संस्कारों, और विचारों को धारणा में न रख सकना, सामने आने पर उन्हें पहचान न पाना, आवश्यकता पड़ने पर उनका पुनर्स्मरण न कर सकना विस्मरण है।

---

1 Spaced learning method.

Q. 8. What are the principal causes of forgetting? What part does Retroactive Inhibition take in the forgetting process? Explain with examples.

१८.१२ विस्मृति के कारण—अनुच्छेद १७.४ में इबिन्घौस और बोरिंग के प्रयोगों का वर्णन करते हुए कहा गया था कि याद करने के ठीक पश्चात् ही विस्मरण आरम्भ हो जाता है। पहले आधे घण्टे में ५०%, १ दिन के अन्दर ६७% और ६ दिन के अन्दर ७५% याद की हुई सामग्री विस्मृत हो जाती है किन्तु पूर्णतया विस्मृत नहीं होती। उसी आंकिक प्रदत्त के आधार पर इबिन्घौस का विस्मृति वक्र नीचे दिया जाता है।

विस्मृति रेखाचित्र
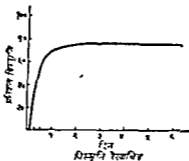
यह विस्मृति क्यों होती है? इबिन्घौस ने विस्मृति का मुख्य कारण समय बीतना माना था। आधुनिक मनोवैज्ञानिक विस्मृति के कई कारण प्रस्तुत कर सकते हैं।

विस्मृति के कारणों की व्याख्या करने के लिये हम उसके दो रूपों का उल्लेख करना आवश्यक समझते हैं। विस्मृति दो प्रकार की होती है—

(अ) सामान्य[1]
(ब) असामान्य[2]

सामान्य विस्मृति के कारण—(१) सीखने के सिद्धान्तों का पूरी तरह पालन न करना
(२) कम सीखना
(३) उपयोग की कमी
(४) बाधा
(अ) साहचर्यात्मक बाधा
(ब) पूर्व-प्रभावी निरोधीकरण
(स) रुचि की कमी
(द) ध्यान की कमी

असामान्य विस्मृति के कारण—(१) मनोवैज्ञानिक कारणों से उत्पन्न कारण—[illegible] [illegible] [illegible] [illegible] अध्याय १७.१६ में किया गया था। [illegible] [illegible] विस्मृति के [illegible] कारण हो सकते हैं।

(२) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

[1] Normal Forgetting
[2] Abnormal Forgetting

(आ) याद करते समय मानसिक प्रयत्न की कमी—यदि किसी पाठ को बिना सोचे समझे, माता-पिता अथवा गुरुओं के दबाव में आकर याद किया जाता है तो वह पाठ विस्मृत हो जाता है।

(इ) याद की जाने वाली वस्तु में सगठन-शीलता और सार्थकता की कमी—यदि याद की हुई सामग्री मे सगठन नहीं है अथवा यदि याद करने वाले के लिये उसमे सार्थकता नही है तो वह सामग्री कुछ समय बाद विस्मृत हो जाती है।

(ई) दुहराने की कमी—यदि याद की जाने वाली वस्तु को दुहराया नही जाता तो वह विस्मृत हो जाती है।

इन उपरोक्त कारणो के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिकों ने सामान्य और असामान्य विस्मृति के निम्नांकित अन्य कारणों का उल्लेख किया है :

(२) कम सीखना[1]—जब कोई पाठ याद कर लेने पर पूरी तरह सुनाया नही जा सकता तब यह कहा जाता है कि 'सीखना कम मात्रा' मे हुआ है। इसके विपरीत पाठ के पूरी तरह सुना दिये जाने पर भी यदि उसका और भी अधिक सार्थक और सोद्देश्य अध्ययन किया जाता है तब हम कहते हैं कि पाठ के सीखने में अति हो गई है। ऐसा सीखना अत्यधिक सीखना[2] कहलाता है। यदि कोई सामग्री सीख तो ली गई है किन्तु उसे पूरी तरह पढ़कर सुनाया नही जाता तो शीघ्र भुला दी जाती है। उसे सीखने में जितना समय लगता है उसका समय दिये जाने पर अत्यधिक सीखने की मात्रा ५०% और दुगुना समय दिये जाने पर १००% मानी जाती है। क्रुएगर[3] ने विस्मृति की जो मात्रा प्राप्त की वह चित्र सख्या १८.१२ मे प्रदर्शित की गई है।
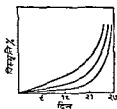
चित्र १८-१२ कम और अधिक सीखने का विस्मरण पर प्रभाव

क्रुएगर ने १२ एक सिलेबिल के १२ संज्ञा शब्द घूमते हुए स्मृति ढोल पर २ से० प्रति शब्द की गति से विषयी को दिखाये। जब तक विषयी उनको स्मृति से पढ़कर सुना सका तब तक जितने बार वे शब्द दिखाये गये उनकी आवृत्तियो की सख्या टोप ली गई। उस सख्या के डेढ़ गुनी और दुगुनी आवृत्तियाँ करके 'अत्यधिक सीखने' की क्रिया कराई गई। २,७,१४,२१,२८ दिन बाद यह जाँच की गई कि सामग्री का कितना प्रतिशत विस्मृत हो गया है। चित्र १८.१२ देखने से पता चलता है कि कम सीखी हुई सामग्री अधिक मात्रा मे विस्मृत होती है।

१८.१३ उपयोग की कमी के कारण स्मृति चिन्हों का क्षीण होना (Fading of Impressions)—बहुत से पाठ, अनेक उपयोगी कला यें, गणित के सूत्र, उपयोग न किये जाने पर विस्मृत हो जाया करते हैं। समय याद की हुई वस्तुओं को भुलाने में विशेष सहायता देता है। यदि स्मृति चिन्ह बार-बार दुहराकर पक्के नहीं किये जाते तो वे क्षीण हो जाते हैं। यही कारण है कि समय के साथ विस्मृति बढ़ती जाती है। उडवर्थ का कहना है कि जो स्मृति-चिन्ह पुनर्स्मरण के लिये

---

1 Under learning.

2 Over learning.

3 Krueger (1929)—Further Studies of the reading recitation Process in learning Arch, p., 5 N. W.

क्षीण और शिथिल होता है वही पहचान (अभिज्ञान) के लिये काफी सशक्त हो सकता है। पुनरावृत्ति द्वारा यदि इसे सक्रिय न किया गया तो वह कुछ समय बाद स्मृति-पटल से सदा के लुप्त हो जायगा। किन्तु कुछ मनोवैज्ञानिको का मत है कि स्मृति-चिन्ह पूरी तरह से लुप्त होते क्योंकि जब हम किसी बिल्कुल भूले हुए पाठ को दुबारा नये सिरे से याद करते हैं तब याद करने मे पहले की अपेक्षा कम समय लगता है। दूसरे शब्दों मे पाठ का कुछ अंश हम धारणा से अवश्य बना रहता है विस्मृति होती है किन्तु पूरी तरह नही।

विस्मृति की यह दर इस बात पर निर्भर रहती है कि स्मृति चिन्ह आरम्भ मे कितना प्र था और उस चिन्ह को क्षीण करने वाले प्रतिकारक के कितने बल और वेग से क्रियाशील थे।

१८.१४ साहचर्यात्मिक बाधा (Associative Blocking)—बहुत सी बातें हमारी च में वर्तमान होते हुए भी भुला दी जाती हैं। ऐसा मालूम होता है कि कोई चीज बीच मे आ बाधा उपस्थित कर देती है। बाधा वहीं पर होती है जहाँ एक ही प्रकार की दो स्मृतियाँ एक चेतना मे आने का प्रयत्न करती हैं। मस्तिष्क मे एक वस्तु का स्मरण आता है तब उससे सम्ब दूसरी वस्तु भी स्मृति मे आने की चेष्टा करती है बस यही संघर्ष उठ खड़ा होता है। यह विस्मृति का कारण बन जाता है। मान लीजिये आप पेस्तालोजी पुनरस्मृति करना चाहते हैं आपने अभी हाल मे पियाजे का नाम कहीं पढा है तो पियाजे और पेस्टालोजी मे साहचर्य होने कारण पियाजे शब्द बार-बार आपके मस्तिष्क मे आकर पेस्टालोजी को पुनरस्मृति करने में बा उपस्थित करता रहेगा। परिणाम यह होगा कि आप इस साहचर्यात्मिक बाधा के कारण पेस्टालो को फिर से याद ही न कर पायेंगे।

ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होने पर भलाई इसी में है कि हम कोई दूसरा काम करने में लग हो जायें। थोडी देर पश्चात अवरोध के क्षीण हो जाने पर वांछित वस्तु स्वतः याद आ जायगी।

१८.१५ भूतप्रभावी निरोधीकरण (Retroactive Inhibition)—जब स्मृति पटल एक प्रकार के संस्कार बन जाते हैं तब दूसरे संस्कार पहले संस्कारों को मिटाने का प्रय करते हैं। दूसरे शब्दों मे दूसरे संस्कारों की बाधा के कारण विस्मृति होती है विस्मृति उस समय सबसे कम होती है जब सीखने के फौरन बाद ऐसा अवकाश दे दिया जा है कि मस्तिष्क क्रियाशील नहीं होता। जब हम किसी बात को सीखने के फौरन बाद मस्ति को दूसरे कामों मे लगा देते हैं तो उस बात के याद रखने में अवश्य बाधा होगी। इसी कारण दि के समय रात की अपेक्षा विस्मृति अधिक पाई जाती है।

जेन्किन्स और डैलन बैक के विस्मृति पर किये गये प्रयोग सिद्ध करते हैं कि जाग्रत अवस्था मे दिन के समय की विस्मृति की मात्रा रात्रि के समय सुप्तावस्था मे विस्मरण की मात्रा से कहीं अधिक होती है। प्रयोगकर्ताओं ने कुछ व्यक्तियों को दिन के समय निरर्थक शब्दों की एक निश्चि सूची पूरी तरह याद करवाने के बाद पहले आठ घण्टे तक विस्मृत शब्दों की संख्या निश्चित की इसके उपरान्त रात के समय वैसे ही निरर्थक शब्दों को उन्हीं व्यक्तियों को अच्छी तरह याद करवा कर सुला दिया गया और एक-एक घण्टे बाद उन्हें जगाकर विस्मृत शब्दों की संख्या ज्ञात की गई। इस प्रयोग में उन्हें जो आंकिक प्रदत्त मिले वे तालिका में प्रदर्शित किये गये हैं।

तालिका

याद करने के निश्चित समय बाद	जाग्रतावस्था मे विस्मृत शब्दों की संख्या	सुप्तावस्था में विस्मृत शब्दों की संख्या
१ घण्टा	५	३
२ घण्टा	७.५	४½
३ घण्टा	८	४½
४ घण्टा	९	४½

जाग्रतावस्था में व्यक्ति का मस्तिष्क अन्य कई कार्यों में लगा रहने के कारण क्रियाशील रहता है इसलिये दिन में याद की हुई बहुत सी चीजें विस्मृत हो जाती हैं।

इस प्रकार एक संस्कार के बाद जब अन्य कई संस्कार मस्तिष्क में पहले संस्कार के परिपक्व होने से पहले ही बन जाते हैं तो पहला संस्कार क्षीण हो जाता है। इस प्रकार के भूतप्रभावी निरोधीकरण का कारण यह बताया जाता है कि मस्तिष्क में चिन्ह धीरे-धीरे पक्के होते हैं। यदि दूसरा चिन्ह पहले चिन्ह के पक्के होने से पूर्व ही थोप दिया जाता है तो वे दोनों चिन्ह एक दूसरे को स्मृत कराने में विशेष बाधा उपस्थित करते हैं। यह क्रिया ठीक उसी तरह होती है जिस तरह पिघले हुए मोम के तल पर चिन्ह बना देने के उपरान्त उस चिन्ह को पक्के होने से पूर्व ही दूसरा चिन्ह अंकित कर दिया जाने पर दोनों चिन्ह अस्पष्ट हो जाते हैं।

नये ज्ञान द्वारा पुराने ज्ञान को मस्तिष्क से बहिष्कृत कर देने के कारण इस मानसिक क्रिया को भूतप्रभावी निरोधीकरण कहते हैं। जिस प्रकार शिक्षा के स्थानान्तरण में एक परिस्थिति में सीखी वस्तु दूसरी परिस्थिति में सीखी जाने वाली वस्तु को सीखने में सहायता देती है उसी प्रकार वर्तमान काल में याद की हुई वस्तु भूतकाल में याद की हुई वस्तु को कभी-कभी विकसित कर देती है। इस विलयन या निरोधन की मात्रा दोनों वस्तुओं के बीच समानता के अंश पर निर्भर रहती है। याद की हुई दो वस्तुओं में समानता का अंश जितना ही अधिक होता है भूतप्रभावी निरोधीकरण के कारण विस्मृति की मात्रा उतनी ही अधिक पायी जाती है। मैकगिओक और मैकडोलैण्ड के इस दिशा में किये गये प्रयोग विशेष उल्लेखनीय हैं।

इन दोनों अनुसंधाताओं ने भूतप्रभावी निरोधीकरण की प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न विस्मरण की मात्रा निकालने के लिये कुछ व्यक्तियों को पहले कुछ विशेषण शब्द याद करवाये। इन व्यक्तियों को ६ वर्गों में विभाजित किया। पहले वर्ग को पर्यायवाची विशेषण, दूसरे वर्ग को विलोमार्थक विशेषण शब्द, तीसरे वर्ग को असम्बन्धित विशेषण शब्द, चौथे वर्ग को निरर्थक शब्द, पाँचवें वर्ग को अंक समूह और छठे वर्ग को विश्राम दिया गया। भूतप्रभावी निरोधीकरण के कारण उनमें जो विस्मरण हुआ उसकी प्रतिशत मात्रा प्रत्येक वर्ग के लिये तालिका में प्रदर्शित की गई है।

तालिका...... .. ..विस्मृति की मात्रा

वर्ग	दूसरे संस्कार का प्रकार	विस्मृति की मात्रा%
१	पर्यायवाची विशेषण	८८
२	विलोमार्थक विशेषण	८२
३	असम्बन्धित विशेषण	७८
४	निरर्थक शब्द	७४
५	अंक	६३
६	विश्राम	५४

एक के बाद याद की गई दूसरी वस्तु में समानता का जितना ही अंश अधिक होता है विस्मरण उतना ही अधिक होता है। पर्यायवाची विशेषण शब्द पूरी तरह से समान होने के कारण एक दूसरे को शीघ्र ही विस्मृत करा देते हैं। लेकिन अंक जिनका विशेषण शब्दों से कोई सम्बन्ध नहीं है पहले याद किये गये विशेषण शब्दों को कम संख्या में विस्मृत कराने में समर्थ होते हैं।

रोबिन्सन और जोस्ट ने भी लगभग इसी प्रकार के निष्कर्ष प्राप्त किये थे। भूतप्रभावी निरोधीकरण पर किये गये इन सब परीक्षणों से निम्नलिखित दो महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं—

(१) कुछ-कुछ समान वस्तुओं के लिये निरोधीकरण की मात्रा अधिक होती है। जोस्ट के शब्दों में समान शक्ति के दो साहचर्यों में पहले सीखा हुआ साहचर्य बाद में सीखे गये साहचर्य को विस्मृत करा देता है। लेकिन समान वस्तुओं में निरोधीकरण अवश्य होता है चाहे वह प्रतिगामी[1] हो अथवा अनुगामी।[2]

(२) यदि किसी पाठ को सीखने के उपरान्त विश्राम मिल जाय तो विश्राम के बाद विस्मृति की मात्रा बहुत कम होती है।

साधारण छात्र के लिये इस परिणाम की वास्तविक उपयोगिता यह है कि यदि सोने के पहले दिन में याद किये गये पाठ को एक बार दुहरा लेता है तो विस्मृति की मात्रा कम होती है। परीक्षा के समय बहुधा मानसिक प्रयत्न और परिश्रम प्राय निरर्थक चला जाता है क्योंकि पहले संस्कार पक्के न होने से पूर्व ही दूसरे संस्कार मस्तिष्क पर थोप दिये जाते हैं। इन दोनों नियमों के आधार पर कुछ मनोवैज्ञानिकों ने इनक्यूबेशन सिद्धान्त की स्थापना की है जिसके अनुसार सीखी हुई वस्तु को पक्का होने में विश्राम की आवश्यकता पड़ती है।

१८.१६ रुचि की कमी—हम प्राय. सीखे हुए उस अंश को भूल जाया करते हैं जो हमारी रुचि के प्रतिकूल होता है और उस अंश को याद रखते हैं जिसमें हमारी रुचि अथवा आकांक्षा निहित रहती है। कचहरी में गवाह जिस समय अपने सबूत पेश करता है उस समय वह ऐसे तथ्यों को जोड़ या घटा देता है जो उसकी रुचि के अनुकूल या प्रतिकूल होते हैं। इसलिये साक्षी रूप में प्रस्तुत किया गया कथन सदैव सत्य नहीं होता क्योंकि गवाह उन बातों को भूल जाता है जिनमें उसकी रुचि नहीं होती।

१८.१७ सीखते समय तनाव की कमी—ब्लूम ए.जी. गरनिक[3] सामान्य विस्मृति का एक और कारण प्रस्तुत करते हैं। उनका कहना है कि याद करते समय रुचि अथवा तनाव की कमी के कारण भी हम याद की हुई विषय वस्तु को भूल जाया करते हैं। इस सिद्धान्त[4] के प्रतिपादन के लिये उन्होंने कुछ विद्यार्थियों को २० कठिन प्रश्न हल करने के लिये दिये। इन प्रश्नों के साथ उन्होंने कुछ ऐसे प्रश्न भी मिला दिये जिनमें उन विद्यार्थियों की रुचि थी जिस समय वे उन प्रश्नों का उत्तर दे रहे थे उस समय के आधे भाग में उनको प्रश्न हल करने में विक्षोभ एवं बाधाएँ पहुँचाई गईं और शेष आधे भाग में उनको शान्तिपूर्वक काम करने की आज्ञा दी गई। इन बाधाओं के फलस्वरूप वे निरन्तर तनाव की स्थिति में बने रहे क्योंकि जिस समय वे प्रश्न हल कर रहे थे उस समय अपनी इच्छा की पूर्ति में किसी प्रकार की रुकावट नहीं चाहते थे। जब हमें अपनी इच्छा की पूर्ति में रुकावट होती है तब शरीर में तनाव[5] पैदा हो जाता है। प्रयोग के बाद यह देखा गया कि जिस भाग में उनको बाधाएँ पहुँचाई गई थीं अर्थात् जब तक वे तनाव की स्थिति में रखे गये थे तब तक जो कुछ उन्होंने हल किया उस अंश को वे बाद में कई दिनों तक भूल न सके।

जी गरनिक का कहना है कि जब तक हम अधिक तनाव की स्थिति में रहते हैं तब तक हमारा ध्यान विषय पर केन्द्रित रहता है। इसलिये याद की हुई सामग्री आसानी से विस्मृत नहीं होती। इसके विपरीत तनाव की कमी की अवस्था में याद की हुई विषय वस्तु भुला दी जाती है। परीक्षा काल में याद की हुई विषय वस्तु काफी समय तक स्मृति में बनी रहती है क्योंकि उस समय व्यक्ति तनाव की स्थिति में रहता है।

---

1. Retroactive.
2. Proactive.
3. Blum, A. Zei. Gernik.
4. Theory.
5. Tension.

१८.१८ असामान्य विस्मृति (Abnormal Forgetting)—असाधारण विस्मृति मे भूलने वाले का हाथ नहीं रहता। उसके संवेग-भय, घृणा, क्रोध आदि तथा भावना ग्रंथियाँ(oopmotional complexes) उसे याद की हुई वस्तु को चाहे जब विस्मृत करा सकते हैं। कभी तो हम कुछ बातो को स्वय भूल जाना चाहते हैं और कभी हमारा अचेतन मन हमे कुछ बातो को भुलाने मे मदद करता है। हमारा चेतन मन अदमन करता है अचेतन मन मे स्थित पाप भावनाओ को। इस प्रकार भी तो स्मृति रोग (Ropecall amnesia) हो जाता है।

१८.१९ संस्मरण (Reminiscence)—यहाँ पर विस्मृति और स्मृति से सम्बन्धित एक और विचार पर प्रकाश डालना असगत न होगा वह है संस्मरण का। सन् १९१३ मे बैलर्ड (Ballard) ने देखा कि कभी-कभी कुछ समय बीत जाने पर पुरानी भूली हुई स्मृतियाँ एक बार फिर स्पष्ट हो जाती हैं यद्यपि उनके पुनस्मरण का कोई प्रयत्न नहीं किया जाता। इस मानसिक क्रिया को हम संस्मरण के नाम से पुकारते हैं। इबिन्धौस ने भी लगभग यही बात कही थी। इबिन्धौस के मतानुसार पहले सीखी हुई वस्तु का अधिकाश भाग विस्मृत होता प्रतीत होता है। बैलर्ड के मतानुसार विस्मृत प्रतीत होती हुई बातें मस्तिष्क के तल मे चली जाती हैं और उपयुक्त परिस्थिति उपस्थित होने पर वे ऊपर आ जाती हैं। सम्भवत साहचर्य के नवीन उद्दीपक के प्राप्त होने पर पुरानी वस्तुएँ याद आ उठती हैं। इस प्रकार संस्मरण बाद के जीवन के अनुभवो का इतना अधिक नहीं होता जितना कि बाल्यावस्था के अनुभवों का होता है।

संस्मरण के कारण—कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि इस प्रकार का संस्मरण (Rehearsal) के कारण होता है लेकिन मैकगिओक और अन्य वैज्ञानिकों के प्रयोगो से यह मत पुष्ट नहीं होता। हल इसका कारण पुनर्स्मरण के (oscillation) मे मानता है। लेकिन कोई भी सिद्धान्त संस्मरण के साथ भी व्याख्या नही कर सकता।

अध्याय १६

संवेदना, प्रत्यक्षीकरण और निरीक्षण

१६.१ मनुष्य के सभी प्रकार के ज्ञान और शिक्षण का आधार संवेदना है। जैसे ही बालक जन्म लेता है उसमें संवेदन शक्ति आ जाती है। आयु की वृद्धि के साथ यह शक्ति बढ़ती जाती है और वह इस संसार को, जो उसके जन्म के समय केवल पहल-पहल[1] प्रतीत हुआ था, अधिकाधिक रूप से जानने का प्रयत्न करता है। इस संसार को जानना भी जरूरी है क्योंकि जब तक वह अपने वातावरण का ज्ञान प्राप्त नहीं करता तब तक जीवित नहीं रह सकता और यदि जीवित रहता है तो सुरक्षित नहीं रह सकता और यदि सुरक्षित भी रहे तो सुरक्षा चिरस्थायी नहीं होगी। अतः प्रकृति ने मनुष्यमात्र को ही नहीं सभी प्राणियों को उनकी अवस्था के अनुसार ज्ञानेन्द्रियाँ प्रदान की हैं जिनके माध्यम से वे अपने वातावरण का ज्ञान प्राप्त करते हैं और अपने व्यवहार को परिस्थितियों के अनुकूल बनाते हैं। अपने व्यवहार को परिस्थितियों के अनुकूल बनाना ही सीखना है।

ऐन्द्रिय ज्ञान ही हमारा सर्वप्रथम शुद्ध ज्ञान होता है। जब शिशु संसार में प्रवेश करता है इसी ज्ञान की सहायता से अनुभव का आरम्भ करता है। ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता जाता है उसका अनुभव पेचीदा और विस्तृत होता जाता है। उस निर्विकल्पक ज्ञान के सहारे, जो उसे इन्द्रियों के माध्यम से मिलता है, सविकल्पक ज्ञान प्राप्त करता है। ज्ञान की इन दोनों कोटियों का विवेचन प्रस्तुत अध्याय का लक्ष्य है जिनके कारण प्राणी वातावरण के साथ अनुकूलन स्थापित करता है।

Q 1. What is the nature of sensation ? How does it differ from perception and observation ?

१६.२ संवेदना अथवा ऐन्द्रिय ज्ञान—प्रकृति ने प्राणीमात्र को बाह्य जगत् से सम्पर्क स्थापित करने के लिये कुछ इन्द्रियाँ दी हैं। बाहरी जगत् की जब कोई वस्तु किसी भी इन्द्रिय से प्रतिघात करती है तब प्रतिघात के फलस्वरूप उत्पन्न उत्तेजना विशेष स्नायुओं की सहायता से मस्तिष्क तक पहुँचती है। मस्तिष्क का ऊपरी भाग जिसे कार्टेक्स कहते हैं उत्तेजित हो जाता है। इस कार्टेक्स का सावेदनिक क्षेत्र एक 'प्रतिक्रिया करता है इसी प्रतिक्रिया को दैहिक विज्ञान की भाषा में संवेदना कहते हैं। उदाहरण के लिए जब हमारे कानों के पर्दों से कोई ध्वनितरंग टकराती है तो वह ध्वनि उत्तेजना के रूप में ज्ञानवाही नाड़ियों द्वारा कार्टेक्स के ध्वनि सम्बन्धी क्षेत्र में पहुँच जाती है। यह उत्तेजना उस क्षेत्र के स्नायु कोष्ठों को जाग्रत करती है और हमें ध्वनि का ज्ञान होने लगता है। यदि हम यह जान न सकें कि यह ध्वनि किसकी है और उसे हम किसी गत अनुभव से तुलना करने में असमर्थ रहें तो इस प्रकार का ज्ञान सावेदनिक ज्ञान कहलायेगा। कान के पर्दों से ध्वनि तरंगों का टकराना, इस टकराने के फलस्वरूप कान के भीतरी

---

1 Blooming Buzzing Confusion—William James.

भाग में स्थित हथौड़े[1] का कम्पन और कम्पन के फलस्वरूप अर्ध-चन्द्राकार नलियों में तरल पदार्थ का तरंगित होना, श्रवण सम्बन्धी स्नायुओं का इस उथल-पुथल को मस्तिष्क तक ले जाना आदि सारी क्रियाएँ क्षण भर मे समाप्त हो जाती हैं।

इसी प्रकार नेत्र द्वारा दृष्टि सम्बन्धी ऐन्द्रिय ज्ञान प्राप्त होता है। इस ज्ञान की उत्तेजना द्वारा होती है अतः प्रकाश ही इस ज्ञान का उद्दीपन[2] है। जब प्रकाश किसी वस्तु पर तो उसकी किरणें प्रकाश तरंगों[3] के रूप मे नेत्रों में प्रवेश कर जाती हैं। वे आँख के ग में स्थित रेटिना पर गिरती हैं और उसमे विशेष रासायनिक परिवर्तन उपस्थित कर यह रासायनिक परिवर्तन दृष्टि-स्नायु के द्वारा मस्तिष्क के दाष्टिक केन्द्र[4] मे पहुँचाया जहाँ पर स्नायुकोष्ठों के परिस्फुटित होने पर उस उत्तेजना का बोध होने लगता है। भी क्षण भर मे हो जाती है।

शिक्षा मनोविज्ञान की दृष्टि से हमें दो प्रकार के ऐन्द्रिय ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है वह सावेदनिक ज्ञान जो श्रवण के माध्यम से हमें प्राप्त होता है और दूसरा वह ज्ञान जो से हमें मिलता है। जिस बच्चे को हम शिक्षा देना चाहते हैं उसको ज्ञान देने के यही वपूर्ण माध्यम हैं। ज्ञान के अन्य माध्यम हैं—त्वचा, जिह्वा और नाक। शिशु की शिक्षा र रूप ऐन्द्रिय ज्ञान प्राप्ति के लिये हमे इन ज्ञानेन्द्रियों की रक्षा और ऐन्द्रिय ज्ञान को विशेष ध्यान देना है।

१६.३ ऐन्द्रिय ज्ञान अथवा संवेदना के प्रकार—प्रकृति ने मनुष्यमात्र को पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ त: ऐन्द्रिय ज्ञान भी इन पाच ज्ञानेन्द्रियों के आधार पर प्राय पाच श्रेणियो मे विभक्त जाता है।

(अ) दृष्टि ज्ञान अथवा नेत्र सम्बन्धी ऐन्द्रिय ज्ञान[5]
(ब) श्रवण ज्ञान अथवा शब्द सम्बन्धी ऐन्द्रिय ज्ञान[6]
(स) घ्राण ज्ञान[7]
(द) जिह्वा सम्बन्धी ऐन्द्रिय ज्ञान[8]
(य) त्वचा सम्बन्धी ऐन्द्रिय ज्ञान[9]

दूसरे शब्दों में संवेदना पाच प्रकार की होती है दृष्टि, श्रवण, घ्राण, स्वाद और स्पर्श । आधुनिक मनोवैज्ञानिक इन पाँच प्रकार की संवेदनाओं के अतिरिक्त मांसपेशी सम्बन्धी [10] को भी विशेष महत्त्व देता है और त्वक् संवेदना को उष्ण, शीतल और भार सम्बन्धी त्रो में विभक्त करता है। शिक्षा मनोविज्ञान का उद्देश्य इन संवेदनाओं की सामर्थ्य को और उनके दोषों का ज्ञान प्राप्त करके यथोचित शिक्षा पद्धति द्वारा शिशुओं को शिक्षा

Hammer
timubus.
Light waves
Centre of Vision.
Visual Sensation.
Auditory or Sound "
Olfactory "
Gustatory
T

देना है। इससे पहले कि हम संवेदना शक्ति[1], ऐन्द्रिय ज्ञान के दोष और ज्ञानेन्द्रिय शिक्षण[2] पर अपने विचार प्रगट करें हम सवेदना के सामान्य लक्षणो पर प्रकाश डालना उपयुक्त समझते हैं। कुछ विद्वानो ने इन लक्षणो का सवेदना के विधायक तत्वो[3] के रूप मे भी उल्लेख किया है।

१९·८ सवेदना के लक्षण—ऐन्द्रिय ज्ञान अथवा सवेदना के निम्नांकित पांच लक्षण माने गये हैं।

(अ) प्रकार—ऐन्द्रिय ज्ञान अथवा सवेदना प्रत्येक प्रकार का सम्बन्ध किसी न किसी ज्ञानेन्द्रिय से होता है अत. ऐन्द्रिय ज्ञान का सर्वप्रथम लक्षण विशेष ज्ञानेन्द्रियों का होना माना जा सकता है। दूसरे शब्दो मे प्रत्येक ऐन्द्रिय ज्ञान का अपना प्रकार[4] होता है।

(ब) गुण[5]—एक सवेदना की प्रकृति दूसरी से भिन्न होती है। उदाहरण स्वरूप एक ही नीले रग की दो या दो से अधिक सवेदनाएँ हो सकती हैं जैसे गहरा नीला, हल्का नीला और आसमानी। यह छाया का भेद गुण सम्बन्धी भेद माना जाता है। इसी प्रकार एक ही ध्वनि ऊँचे अथवा नीचे स्वर पर सुनी जा सकती है। ध्वनि मे यह स्वर सम्बन्धी भेद गुणात्मक भेद कहलाता है।

(स) तीव्रता[6]—नीले रग की छाया मे भी भिन्नता हो सकती है। उसकी एक छाया उज्ज्वल हो सकती है दूसरी कुछ धुंधली। छाया का उज्ज्वलता अथवा धुंधलापन सवेदना की तीव्रता निश्चित करता है। यदि छाया उज्ज्वल है तो सवेदना अधिक तीव्र होगी और यदि छाया धुंधली है तो सवेदना कम तीव्र होगी।

(द) काल—प्रत्येक सवेदना कुछ-न-कुछ समय के लिये होती है। जब हम सुनते हैं तो कुछ-न-कुछ अवधि के लिये सुनते हैं, जब हम देखते हैं तो कुछ-न-कुछ अवधि के लिये देखते भी है। एक सी तीव्र ध्वनि जब हमारे कानों में अधिक समय तक स्थिर रहती है तब वह उस सवेदना से एक भिन्न प्रकार की ध्वनि पैदा करती है जो सवेदना उसी ध्वनि से हमारे कानों मे कम समय तक स्थिर रहने पर पैदा हो सकती है।

(य) विस्तार—सवेदना में उत्तेजित किये गये स्थान के विस्तार के अनुसार भी भिन्नता आ जाती है। गर्म पानी की उष्णता की सवेदना जब हम अपनी उगली को ही उसमें डालते हैं तब कुछ और होती है और जब पूरे हाथ को उसमें डालते हैं तब कुछ और।

सवेदना के भेद का ज्ञान उद्दीपन की तीव्रता के अनुपात पर निर्भर रहता है। उद्दीपन जितना ही प्रबल होता है संवेदना भी उतनी ही तीव्र होती है। हम तब तक किसी सवेदना का अनुभव नहीं कर सकते जब तक उद्दीपन उचित मात्रा में हमारी ज्ञानेन्द्रियों को उत्तेजित नहीं करता। उदाहरण के लिये यदि हम किसी व्यक्ति के हाथ पर एक कण रख दें तो उस किसी तरह का तरह सवेदन नहीं होता किन्तु उसके हाथ पर तोले भर का कोई भार रख दें तो उसे शट से भार का ज्ञान हो जायगा। उद्दीपन की वह थोड़ी-से-थोड़ा मात्रा जिसके कारण हमें किसी प्रकार की सवेदना हो सकती है सवेदना का प्रवेश द्वार[7] कहलाता है। उद्दीपन की प्रबलता जितनी अधिक होती जाती है, सवेदना की तीव्रता भी उतनी ही अधिक बढ़ती जाती

---

1 Acuity
2 Sense training.
3 Components of Sensation.
4 Kind.
5 Quality

है। किन्तु संवेदना की तीव्रता और उद्दीपन की तीव्रता में विशेष सम्बन्ध होता है। इस सम्बन्ध की खोज वेबर ने की थी।

इस सिद्धान्त के अनुसार जब किसी व्यक्ति के शरीर का आकार एक या दो इन्च बढ़ जाता है तब हमें उसके कद में वृद्धि का अनुभव नहीं होता किन्तु जब उसकी नाक आधी या चौथाई इन्च भी बढ़ जाती है तब उसकी वृद्धि का ज्ञान तुरन्त हो जाता है, इस प्रकार संवेदना के भेद का ज्ञान उद्दीपन की वृद्धि के अनुपात पर निर्भर रहता है।

Q 2. Explain the individual differences in Acuity of sensation How can senses be trained properly ?

१६.५ संवेदन शक्ति[1] में विभिन्नताएँ—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि ऐन्द्रिय ज्ञान बालक की शिक्षा का आधार है क्योंकि ऐन्द्रिय ज्ञान ही आगे चलकर प्रत्यक्ष ज्ञान तथा विचार का आधार बनता है। इस ऐन्द्रिय ज्ञान अथवा संवेदना का मानसिक विकास में महत्त्वपूर्ण स्थान होने के कारण मान्टेसरी जैसे शिक्षा विशारदों ने संवेदन शक्ति के विकास के लिये संवेदना को बालक की शिक्षा में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है।

मनोवैज्ञानिकों ने सिद्ध कर दिया है कि भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में संवेदन शक्ति भिन्न होती है। यों तो सामान्य बालक ऐन्द्रिय ज्ञान प्राप्त करने में सामान्य सामर्थ्य रखते हैं किन्तु कुछ बालक ऐसे भी होते हैं जिनकी संवेदन शक्ति दूसरों की अपेक्षा अधिक होती है। किसी में घ्राण शक्ति अधिक होती है और किसी में श्रवण शक्ति अधिक तीव्र। मनुष्यों में संवेदन शक्ति के अनुसार इस प्रकार की विभिन्नताएँ जन्मजात होती हैं। जब कोई व्यक्ति एक प्रकार की संवेदनशक्ति को खो देता है तब दूसरी संवेदन-शक्ति सम्भवत: प्रबल हो जाती है। जब किसी संवेदन-शक्ति का अत्यधिक प्रयोग किया जाता है तब वह तीक्ष्ण हो जाती है। सभ्य व्यक्तियों की अपेक्षा बर्बर जातियों की संवेदन-शक्ति तीव्र होती है क्योंकि उन्हें अपनी ज्ञानेन्द्रियों का अधिक उपयोग करना पड़ता है।

बालकों में संवेदन-शक्ति की परीक्षा के लिये कुछ विधियाँ प्रयोग में आती हैं। मान लीजिये हमें किसी बच्चे की दार्ष्टिक संवेदना की सामर्थ्य का अनुमान लगाना है। दृष्टिज्ञान की सामर्थ्य की परीक्षा के लिये बहुत से नकशे बनाये जाते हैं जिनमें बहुत बड़े बिन्दुओं से लेकर छोटे-छोटे बिन्दुओं की अलग-अलग संख्याएँ अंकित कर दी जाती हैं। उस नक्शे को दीवार पर टाँगकर बालक को कुछ दूर पर खड़ा कर दिया जाता है उसके पश्चात् मोटे-मोटे बिन्दुओं के समूह से आरम्भ करके छोटे से छोटे बिन्दु समूहों की संख्या बालक से पूछी जाती है। जहाँ तक बालक बिन्दुओं के समूह की संख्या ठीक-ठीक बताता जाता है वहाँ तक ही उसके दृष्टिज्ञान की सामर्थ्य की मात्रा निर्धारित की जाती है। बालकों की संवेदन-शक्ति का ज्ञान होना अध्यापक के लिये आवश्यक है। ऐसी परीक्षाओं से वह ऐन्द्रिय ज्ञान के दोषों का पता लगा सकता है।

१६.६ ऐन्द्रिय ज्ञान के दोष—बालक की शिक्षा पर ऐन्द्रिय-ज्ञान सम्बन्धी दोषों का बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। बालकों में पिछड़ापन अथवा अपराध की भावना का उदय कभी-कभी इन्द्रिय-दोष के कारण भी होता है। पूर्ण अन्धापन, एक आँख का अन्धापन, निकटवर्ती दृष्टि, दूरवर्ती दृष्टि, वर्णान्धता, अर्धबधिरता, पूर्ण बधिरता आदि ऐसे दोष हैं जिनका बालक के विकास पर न्यूनाधिक मात्रा में हानिकारक प्रभाव पड़ता है। पूर्ण अन्धे बालकों के लिये विशेष प्रकार के विद्यालयों की आवश्यकता होती है। दूरदृष्टि और निकटदृष्टि दोष विशेष ताल के चश्मों से दूर किये जा सकते हैं। वर्णान्धता जन्मजात होती है इसलिए उसकी कोई चिकित्सा नहीं की जा सकती। जब तक बालक के विषय में यह जानकारी नहीं मिल जाय कि वह वर्णान्ध है अथवा नहीं तब तक उसकी शिक्षा बेकार जा सकती है। पूरी तरह बहरे बालकों के लिये अलग से शिक्षालयों में शिक्षा की व्यवस्था की जाती है किन्तु अर्धबधिर बालकों की पहचान करना कठिन हो

[1] Acuity

शिक्षा बालक की परिस्थितियों एवं अनुभवों को ध्यान में रखकर दी जाय तो वह अवश्य ही उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

Q. 3 What do you understand by the term 'Perception'? How does it differ from sensation and observation?

१६·८ प्रत्यक्ष ज्ञान—इन्द्रियों के माध्यम से जो ज्ञान हमको मिलता है उसे ऐन्द्रिय अथवा निर्विकल्पक ज्ञान कहते हैं। यदि किसी ध्वनि के हमारे कानों के परदे से टकराने पर केवल यह मालूम पड़े कि वह कहाँ से आ रही है किन्तु हम यह न पहचान सकें कि वह ध्वनि किसकी है, अर्थात उसे किसी गत अनुभव से तुलना करने में असमर्थ रहें तो यह ज्ञान निर्विकल्पक ज्ञान होगा इसके विपरीत यदि हम अपनी स्मृति एवं गत अनुभव के आधार पर यह समझ लें कि सुनी हुई यह ध्वनि उस व्यक्ति की है जिसको हमने पहले कभी देखा है तो हमारा यह ज्ञान कहलावेगा। यही सविकल्पक ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाता है। इस प्रकार संवेदन अथवा निर्विकल्पक ज्ञान हमारे ज्ञान का प्रथम तथा प्रत्यक्ष अथवा सविकल्पक ज्ञान हमारे ज्ञान का दूसरा सोपान है।

[illegible] र आधा-
[illegible] नहीं होता

उद्दीपन के मिलने पर हमें संवेदना होती है। संवेदना का पुराने अनुभवों से तुलना करने पर प्रत्यक्ष ज्ञान होता है। इस प्रकार संवेदना का सम्बन्ध केवल ज्ञानेन्द्रियों से होता है और प्रत्यक्ष ज्ञान का सम्बन्ध मानसिक प्रक्रियाओं से। इसलिए संवेदना की प्रक्रिया सरल होती है और प्रत्यक्षीकरण की क्रिया जटिल।

नवजात शिशु में केवल संवेदन का ही ज्ञान होता है किन्तु जैसे-जैसे वह आयु मे बढ़ता जाता है उसके ऐन्द्रिय ज्ञान प्रत्यक्ष ज्ञान मे परिवर्तित होते जाते हैं। अनुभवों के सहारे उसका बाह्य जगत का ज्ञान जिसे वह इन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त करता है, निरर्थक से सार्थक होता जाता है। माँ के पैरों की आहट जो पहले उसके लिए निरर्थक थी, अनुभव के आधार पर सार्थकता ग्रहण करती जाती है। इसलिए प्रत्यक्ष ज्ञान इन्द्रिय ज्ञान और अर्थ का योग कहा जा सकता है।

किसी वस्तु का प्रत्यक्ष ज्ञान [illegible]
दनिक ज्ञान व [illegible]
हुआ है। और [illegible]
कोमलता का [illegible]
केवल इन विभिन्न संवेदनात्मक ज्ञानों के सहारे उस पदार्थ का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं हो सकता। इस पदार्थ के प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए हमें उस पदार्थ के विषय में पूर्व अनुभवों की सहायता लेनी होगी। वस्तु के प्रत्यक्षीकरण के लिए हमें उसकी पूरी तरह से अनुभूति करनी होती है।

यद्यपि प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया संवेदनाओं पर आश्रित रहती है किन्तु कोरी संवेदनाओं से ही वह कभी नियंत्रित नहीं होती। संवेदना जनित ज्ञान की प्राप्ति होते ही मस्तिष्क अपनी क्रियाएँ आरम्भ कर देता है। वह गत अनुभव का संगठन करता है और संगठन करने के बाद पूरे ढाँचे का हमे प्रत्यक्ष बोध कराता है। इसीलिए हमें किसी वस्तु के एक अंग का ही प्रत्यक्षीकरण नहीं होता पूरी वस्तु का प्रत्यक्षीकरण एक साथ होता है। अपने दुश्मन को क्रोध से सामने आता हुआ देखकर हमें उसकी लाल-लाल आँखों, चढ़ी हुई त्यौरियों, और उसकी ललकार का ही ज्ञान नहीं होता वरन् उसके क्रोध, उससे सम्बन्धित पूर्व अनुभूतियों का भी ज्ञान होने लगता है। उसकी लाल-लाल आँखें, चढ़ी हुई त्यौरियाँ क्रोध का प्रदर्शन करती हैं। उसके चेहरे को देखते ही हमारे सुप्त संस्कार जाग्रत हो जाते हैं। हमारे मन में भी क्रोध उमड़ आता है। इस प्रकार जब हमें अपने शत्रु का प्रत्यक्ष ज्ञान अथवा प्रत्यक्षीकरण होता है उस

[1] Pattern or Gestalt.

समय पूरी परिस्थिति का ही प्रत्यक्षीकरण होता है उसके अंशमात्र का नहीं।

प्रत्यक्षीकरण की इस मानसिक प्रक्रिया में हमे तीन बातें दिखाई देती है। जिस वस्तु का हमे प्रत्यक्ष ज्ञान होता है उसे पहले हम अपने सामने देखते हैं। उस वस्तु को देखकर कल्पना के सहारे उस वस्तु की अन्य विशेषताओं के बारे में सोचते हैं। उस वस्तु से सम्बन्धित अनुभूतियों के याद आने पर उसका सम्बन्ध अन्य वस्तुओं से स्थापित करते हैं। इस प्रकार प्रत्यक्ष ज्ञान के तीन पक्ष माने जाते हैं।

(अ) उपास्थक पक्ष,

(ब) प्रतिनिध्यात्मक पक्ष,

(स) सम्बन्ध पक्ष।

ऊपर के उदाहरण में दुश्मन के सामने आने पर जो ज्ञान हमे होता है। वह प्रत्यक्ष ज्ञान का उपास्थक पक्ष, शत्रु के मुख को देखकर कल्पना के सहारे क्रोध का विचार आना प्रत्यक्ष ज्ञान का प्रतिनिध्यात्मक पक्ष, और उस व्यक्ति से सम्बन्धित अनुभूतियों का याद आ जाना प्रत्यक्ष ज्ञान का सम्बन्धात्मक पक्ष माना जा सकता है। प्रत्यक्ष ज्ञान मे इस प्रकार स्मृति और कल्पना का अंश रहता है। स्मृति और कल्पना के बाहुल्य के कारण कभी-कभी भ्रम की उत्पत्ति होने लगती है।

Q 4 Explain the difference between Illusions and Hallucinations How will you remove these common erors or perception in your children ?

११.१ भ्रान्ति[1]—सभी उद्बोधको का प्रत्यक्षीकरण हमेशा ठीक नहीं होता। कोयल को कौवा, रस्सी को साँप और मुसम्मी को शतरा समझ लेना गलत प्रत्यक्षीकरण के उदाहरण हैं। वस्तुओं को जैसा हम चाहते हैं वैसा देखने और समझने लगते हैं। इस प्रकार वस्तुएँ कभी कभी विकृत और विघटित रूप में हमें दिखाई या सुनाई देती हैं। दूसरे शब्दों मे वस्तुओं का प्रत्यक्षीकरण कभी-कभी अशुद्ध और त्रुटिपूर्ण होता है। अशुद्ध और त्रुटिपूर्ण प्रत्यक्षीकरण को हम भ्रम अथवा भ्रान्ति कहते हैं।

भ्रान्ति वह ज्ञानात्मक मानसिक प्रक्रिया है जिससे किसी उद्बोधक का प्रत्यक्षीकरण अशुद्ध और त्रुटिपूर्ण हो जाता है। यद्यपि उद्बोधक की संवेदना ठीक होती है। फिर भी ज्ञानेन्द्रिय के उत्तेजित होने पर जो स्नायु प्रवाह मस्तिष्क मे पहुँचता है उसका अर्थीकरण अशुद्ध होता है, इस प्रकार की भ्रान्तियाँ सामान्यत. सभी लोगों को होती है। क्योंकि वे इन्द्रिय-जन्य होती हैं। ये भ्रान्तियाँ दो प्रकार की होती हैं—व्यक्तिगत और विश्वजनीन। जो भ्रान्ति व्यक्ति विशेष को होती है उसे व्यक्तिगत तथा जिसका अनुभव सभी लोगों को होता है विश्वजनीन कहलाती है। पान के पत्ते को पीपल का पत्ता समझना, मधु में गुड का स्वाद आना व्यक्ति विशेष का ही होता है किन्तु रेल की पटरियाँ सभी को दूर पर मिलती हुई दिखाई देती हैं। विश्वजनीन भ्रान्तियाँ सबको होती [illegible] अवश्य हो- कुछ न कुछ [illegible] इस प्रकार व्यक्तिगत [illegible] की भ्रान्तियाँ होती हैं [illegible]

विश्वजनीन भ्रान्तियों के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं। ये भ्रान्तियाँ विरोध, परिवय और प्रसग वश पैदा हो जाती हैं।

विरोध—नमकीन पदार्थ सेवन करने के बाद कम मीठा पदार्थ भी अधिक मीठा लगता है। इसी प्रकार नीचे दिये गये दो चित्रों में बड़े और छोटे वृत्तों के बीच में घिरे हुए दोनों वृत्त आकार में समान होने पर भी छोटे-बड़े दिखाई देते हैं।

---

1 Illusion.

परिचय—प्रूफरीडिंग करते समय प्रूफरीडर का परिचय ठीक शब्दों से होने के कारण वह अशुद्ध शब्दों को भी शुद्ध मान लिया करता है। विकृत को विकृत, वास्तविकता को वास्तविकता और उत्पत्ति को उत्पत्ति पढ़ लेना इसी प्रकार की भ्रान्तियों के उदाहरण हैं।

प्रसंग—यद्यपि दो रेखा अ ब और क ख लम्बाई में समान हैं किन्तु प्रसंग के कारण एक दूसरी से बड़ी दिखाई देती है।
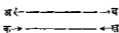
हमें भ्रान्तियाँ क्यों होती हैं ?—प्रत्यक्षीकरण में त्रुटियों के निम्न कारण हैं—

(१) इन्द्रिय दोष (Defect in the sense organs)

(२) गलत पड़ी हुई आदतें (Established Habits)

(३) पूर्ववर्ती ज्ञान और अनुभव (Previous Expesiences)

(४) निर्देश (Suggestion)

(५) बाह्य जगत की अनियमित स्थिति (Irregular conditions in the external world)

इन्द्रियों में दोष होने के कारण वस्तु जैसी है वैसी नहीं दीखती। कभी-कभी हम में प्रत्यक्षीकरण सम्बन्धी ऐसी गलत आदतें पड़ जाती हैं जिनको हम छोड़ते नहीं हैं। पूर्ववर्ती अनुभव हमें किसी वस्तु को गलत ढंग से देखने के लिये बाध्य करते रहते हैं। इस प्रकार प्रत्यक्षीकरण में दोष उत्पन्न हो जाते हैं।

अध्यापक का कर्तव्य है कि वह कक्षा में जब किसी विचार (concept) को बालकों के समक्ष प्रस्तुत करे तो वह उसका प्रत्यक्ष ज्ञान (percept) इतना अधिक पुष्ट बनावे कि विचार में किसी प्रकार का दोष न हो पावे। उदाहरण के लिये क्षेत्रफल एक विचार है। इस विचार को देने के लिये वह ऐसे क्षेत्रों के चित्र बालकों के समक्ष प्रस्तुत करे जिनमें क्षेत्रफल हो और साथ में ऐसे भी चित्र प्रस्तुत करे जिनमें क्षेत्रफल न हो।

१६·१० विभ्रान्ति (Hallucination)—भ्रान्ति किसी पदार्थ की संवेदना की त्रुटिपूर्ण अर्थीकरण की क्रिया के कारण उत्पन्न होती है किन्तु विभ्रान्ति केवल मन की उपज होती है। विभ्रान्ति के लिये किसी भी बाहरी वातावरण के पदार्थ की उपस्थिति की आवश्यकता नहीं होती। विभ्रान्तियाँ पूरी तरह कल्पनात्मक होती हैं और उनका एकमात्र कारण व्यक्ति की कल्पना बाहुल्य अथवा मन का उद्वेग होता है। भ्रान्ति कभी वातावरण जन्य और कभी विचार जन्य होती है किन्तु विभ्रान्ति सदैव विचार और कल्पना जन्य ही होती है। विभ्रान्ति में पड़ा हुआ व्यक्ति इस प्रकार के अनुभव प्राप्त करता है जिनके लिये बाह्य जगत में कोई भौतिक आधार ही नहीं होता। इसलिये इस प्रकार की विभ्रान्ति को मतिभ्रम की संज्ञा भी दी जाती है। यह मतिभ्रम अपने बिगड़े हुए रूप में मानसिक रोग का परिणाम होता है। यदि अंधेरी रात में किसी भयभीत व्यक्ति को सामने खड़ा हुआ कोई सूखे पेड़ का ठूँठ भूत दिखाई देने लगे तो यह उसका भ्रम या भ्रान्ति होगी किन्तु यदि किसी व्यक्ति को किसी तरह के भौतिक आधार के न होते हुए

भी भूत दिखाई देने लगे तो इसे हम उसका मानसिक रोग ही कह सकते हैं। यदि पुत्र की मृत्यु के शोक से पीड़ित व्यक्ति को अपना लड़का दूर पर जाता हुआ दिखाई देता है तो यह उसकी विभ्रान्ति ही है।

ये भ्रान्तियाँ विरोध, परिचय और प्रसग वश तो पैदा होती ही हैं। मनोवैज्ञानिकों ने इन भ्रान्तियों के कुछ और कारण प्रस्तुत किये हैं—

(१) वाह्य ससार की अनियमित स्थिति
(२) इन्द्रिय दोष
(३) आदतें
(४) पूर्व ज्ञान, वर्तमान रुचि
(५) निर्देश

Q. 5. What is observation? How will you develop the power of observation in your pupils?

१६·११ निरीक्षण—निरीक्षण की मानसिक प्रक्रिया मे निम्नलिखित तीन पदों का समावेश होता है।

(१) किसी पदार्थ को भली-भांति देखना
(२) उसकी उपयोगिता का ज्ञान प्राप्त करना
(३) अन्य पदार्थों से उसे सम्बद्ध करना

जिस वस्तु का हम निरीक्षण करते हैं उसमें हमें ध्यान को एकाग्र करना पड़ता है और ध्यान की एकाग्रता के लिये रुचि की प्रबलता की आवश्यकता पड़ती है। अन्य पदार्थों से सम्बद्ध करने के लिये हमें तर्क शक्ति का सहारा लेना पड़ता है। इस प्रकार निरीक्षण करते समय हम ध्यान की एकाग्रता, रुचि की प्रबलता, स्मृति, कल्पना और तर्क का आश्रय लेते हैं।

बालकों में पदार्थों को निरीक्षण करने की शक्ति प्रौढ़ों की अपेक्षा कम हुआ करती है क्योंकि उनमें न तो रुचियों का विकास ही इतना अधिक होता है जितना कि प्रौढ़ों का और न वे किसी वस्तु पर अपना ध्यान अधिक देर तक जमा पाते हैं।

जिन पदार्थों का हम निरीक्षण करते हैं उनका प्रत्यक्ष ज्ञान हमे पहले होता है अत. प्रत्यक्षीकरण और निरीक्षण में थोड़ा-सा अन्तर है। प्रत्यक्षीकरण में बाह्य सवेदनाओं की प्रधानता होती है, और निरीक्षण में मानसिक स्थिति की प्रबलता। रुचि, ध्यान और तर्क के बिना निरीक्षण और प्रत्यक्षीकरण मे विशेष अन्तर नहीं होता।

निरीक्षण के भेद—निरीक्षण को हेतु के आधार पर तीन प्रकारों में बाँटा गया है।

(अ) हेतुपूर्ण निरीक्षण
(ब) अहेतुक निरीक्षण
(स) हेतुसाधक निरीक्षण

यदि किसी (museum) का निरीक्षण इस प्रयोजन को ध्यान मे रखकर किया जाता है कि राजपूत और मुगलकला का अन्तर क्या है तो इस प्रकार का [illegible]

[illegible]

बैठ वाले मानसिक प्रयत्न करता है। वह अनेक नई-नई वस्तुओं का निरीक्षण करता है।

जब हम किसी विशेष उद्देश्य को ध्यान में रखकर पदार्थों का हेतुपूर्ण निरीक्षण करते हैं तब हमारा चित्त एकाग्र और रुचि प्रबल होती है किन्तु रात में सोते समय जब हमारी नींद किसी कोलाहल के होने पर टूट जाती है तब हमारा ध्यान बरबस उस विक्षोभ की ओर आकृष्ट हो जाता

है जब तक शान्ति के भंग करने वाले शोर का कारण नहीं जान लेते तब तक हमारा तनाव कम नहीं होता है। ऐसा अहेतुक निरीक्षण हमारे ध्यान को बरबस आकृष्ट करने पर भी हमारे जीवन के लिये अत्यन्त आवश्यक होता है क्योंकि वह अनेक सकटों से हमारी रक्षा करता है।

पदार्थों का हेतुसाधक निरीक्षण व्यक्ति उस समय करता है जिस समय वह नवीन परिस्थितियों के मध्य अपने को पाता है। किसी नये प्रान्त में भ्रमण करता हुआ व्यक्ति उस प्रान्त की सभी विशेषताओं से परिचय प्राप्त करना चाहता है। उसके मन में एक विशेष हेतु (प्रयोजन) न होते हुए भी वह अनेक प्रयोजनों की सिद्धि करता है।

१६.१२ बालकों में निरीक्षण शक्ति का विकास—विद्यालय मे जिस प्रकार हम छात्र में अनेक शक्तियों का विकास करने का प्रयत्न करते हैं उसी प्रकार उसके पदार्थों को भली-भाँति देखने, उनकी उपयोगिता का ज्ञान प्राप्त कराने और अन्य पदार्थों से देखे हुए पदार्थों का सम्बन्ध जोड़ने की शिक्षा देनी होगी। यह शक्ति काम करने से बढ़ती है किसी वस्तु को देखने मात्र से नहीं। इस मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के कारण प्रायमरी कक्षा का शिक्षक बालकों से हाथ से काम कराने पर जोर देता है क्योंकि उसका यह विश्वास बन गया है कि बालक जितना ही अधिक हाथ से कार्य करता है उसका प्रत्यक्ष ज्ञान उतना ही बढ़ता है और ध्यान भी उतना ही एकाग्र होता जाता है।

विद्यालयों में प्रकृति निरीक्षण और भ्रमण पर भी आजकल इसलिये अधिक बल दिया जाता है कि छात्रों में निरीक्षण शक्ति का विकास हो। इस प्रकार उनके ज्ञान की वृद्धि भी होती है और निरीक्षण करने की शक्ति का विकास भी।

चित्रों के निरीक्षण करने से भी उनमे निरीक्षण शक्ति का विकास होता है और विचार-शक्ति की वृद्धि भी शिशुओं को रगीन, चटकीले-भड़कीले चित्रों के देखने में विशेष रुचि होती है और यदि इन चित्रों में उनके माता-पिता, घर आदि के चित्र हों तो उनकी निरीक्षण शक्ति का विकास आसानी से किया जा सकता है।

अध्याय २०

अवधान और रुचि

२०·१ अवधान और रुचि का शिक्षा मनोविज्ञान में स्थान—प्रत्येक अध्यापक को कक्षा में अपने पाठकों के ध्यान को अपनी ओर आकर्षित करना होता है और स्वयं भी उसे कक्षा के बालकों की ओर अपना ध्यान देना पड़ता है। उदाहरण के लिए गणित की किसी समस्या का विश्लेषण करते समय यदि अध्यापक का ध्यान अपने बालकों की ओर नहीं है अथवा बालकों का ध्यान उसकी ओर नहीं है तो समस्या का विश्लेषण ठीक प्रकार से न हो सकेगा। यही बात अन्य विषयों के विषय में कही जा सकती है। अतः अध्यापक का मुख्य उद्देश्य पढ़ाते समय अपने शिष्यों का ध्यान अपनी पाठ्य वस्तु की ओर आकर्षित किये रखना है। अध्यापक की सफलता भी इसी बात पर निर्भर रहती है कि उसकी कक्षा के छात्र किस गम्भीरता से पाठ्य वस्तु की ओर अपना ध्यान लगा सकते हैं। यदि अध्यापक कक्षा कार्य में सफलता प्राप्त करना चाहता है तो उसे निम्नांकित बातों पर ध्यान देना होगा :

(१) ध्यान अथवा अवधान का स्वरूप क्या है ?

(२) कौन-सी बातें ऐसी हैं जो बालकों के अवधान को आकर्षित कर लेती हैं अर्थात् उनके अवधान के बहिरंग अथवा अन्तरंग प्रेरक क्या हैं ?

(३) अवधान और रुचि का क्या सम्बन्ध है ?

(४) कक्षा में अवधान के क्या कारण हो सकते हैं ?

(५) बालकों के अवधान की क्या विशेषताएँ हैं ? किसी विषय में उनका ध्यान आकर्षित करने के लिए शिक्षक को क्या करना पड़ता है ?

प्रस्तुत अध्याय में अध्यापक की इन्हीं समस्याओं का हल ढूँढने का प्रयत्न किया जायगा।

Q. 1. What is the general nature of Attention ? Explain its chief characteristics.

२०·२ अवधान का स्वरूप—अवधान एक जटिल मानसिक क्रिया है जिसमें किसी वस्तु पर अपनी चेतना को केन्द्रित करने की चेष्टा की जाती है। साधारणतः प्राणी के चारों ओर किसी समय अनेक उद्बोधक[1] होते हैं। उन उद्बोधकों में से कुछ को चुन लेता है और कुछ को छोड़ देता है। वातावरण का वह भाग जो किसी क्षण उसकी चेतना में रहता है चेतना का क्षेत्र[2] कहलाता है। उदाहरण के लिए परीक्षा-भवन में बैठे हुए परीक्षार्थी का चेतना क्षेत्र प्रश्न-पत्र, याद की हुई सामग्री, डेस्क, कुर्सी, अन्य परीक्षार्थी, निरीक्षक आदि उद्दीपनों का समूह मात्र होता है, किन्तु किसी एक क्षण वह इन सब बातों को अपनी चेतना में केन्द्रित नहीं कर सकता। जिस वस्तु पर किसी क्षण कोई व्यक्ति अपनी चेतना को केन्द्रित कर लिया करता है वह वस्तु अवधान

1 Stimuli.

2 Area of consciousness

की नाभि[1] कहलाती हैं। उस क्षण अन्य उद्दीपन चेतना के तट[2] में स्थित रहते हैं। कौनसा उद्दीपन किस समय चेतना के केन्द्र में रहता है और कौनसा चेतना के तट में। यह बात उद्दीपनों की विशेषताओं पर निर्भर रहा करती है। जो विषय एक क्षण केन्द्रीय चेतना में स्थित रहता है वही विषय दूसरे क्षण अस्पष्ट चेतना में चला जाता है। इस प्रकार अवधान का विषय प्रतिक्षण बदलता रहता है। जिस क्षण चेतना-क्षेत्र में स्थित किसी भी एक वस्तु या विचार के प्रति हम विशेष रूप से आकर्षित होते हैं उस क्षण उस वस्तु अथवा विचार को ही अपनी चेतना को एकाग्र करते हैं। ऐसी अवस्था में हमारा अवधान केवल उसी लक्ष्य में केन्द्रित हो जाता है और अन्य वस्तुओं और विचारों से वह हट जाया करता है।

ध्यान देने की अवस्था में व्यक्ति केवल एक ही उद्बोधक का चयन करता है। शेष उद्बोधकों को छोड़ दिया करता है। वह सभी पहलुओं पर एक सा ध्यान नहीं देता। यदि वह किसी विषय के सभी पक्षों पर ध्यान दे रहा है तो इसका यह आशय होगा कि उसका ध्यान किसी भी पहलू पर केन्द्रित नहीं है। व्यक्ति किन बातों पर ध्यान देता है और किन बातों को छोड़ देता है इसका अनुमान व्यक्ति की मानसिक अवस्था और रुचि के मालूम होने पर लगाया जा सकता है। उदाहरण के लिए व्यक्ति का जैसा दृष्टिकोण होता है किसी वस्तु में वैसी ही बातों पर उसका ध्यान जाया करता है। इसी प्रकार प्रूफरीडर का काम पुस्तक की भाषा और शब्दों की बनावट को देखना होता है इसलिए उसका ध्यान पुस्तक के भावों की ओर कभी आकर्षित नहीं होता। किन्तु जैसे ही वह पुस्तक के भावों की ओर अपना ध्यान आकर्षित करता है वैसे ही प्रूफरीडिंग अशुद्ध होने लगता है। जब कोई व्यक्ति एक वस्तु को छोड़ कर दूसरी वस्तु का चुनाव करता है तब वह अपनी प्रयोजनात्मक प्रवृत्ति[3] का प्रकाशन करता है। ध्यान की क्रिया में पहले से ही प्रयोजन की उपस्थिति रहती है और उन्हीं वस्तुओं पर हमारा ध्यान जाता है जो हमारे किसी न किसी प्रयोजन की सिद्धि करती हैं। अपने मतलब की बातें सभी को अच्छी लगती हैं इसलिए सभी लोग उन्हीं वस्तुओं की ओर आकृष्ट होते हैं जो उनके स्वार्थों की सन्तुष्टि करती हैं

बालकों की शिक्षा में ध्यान की इस विशेषता पर शिक्षकों को ध्यान देना होगा क्योंकि वे उसी बात को ध्यान से सुनते हैं जो उनके प्रयोजन की सिद्धि करती हैं। यही कारण है कि वे अध्यापक सफल नहीं होते जो अपने विद्यार्थियों के अवधान को उनकी मूल प्रवृत्ति, इच्छा, रुचि के प्रतिकूल आकृष्ट करने का प्रयास करते हैं।

अवधान के इस स्वरूप की व्याख्या का श्रेय विलियम जेम्स और एडवर्ड टिचनर को जाता है जिन्होंने सबसे पहले चेतना और अवधान का उपरोक्त सम्बन्ध समझाने का प्रयास किया था। मर्वेनशोटम और नेकर ने हमें बतलाया कि हमारा अवधान विचलित होता रहता है। नीचे दिये हुए घन को ध्यान पूर्वक देखने से पता चलता है कि कभी एक क्षण के लिए तल अ ब स द सामने आता दिखाई देता है तो कभी दूसरा तल सामने आता है।

[1] Focus.
[2] Margin of consciousness.
[3] Purposiveness.

को नाभि[1] कहलाती हैं। उस क्षण अन्य उद्दीपन चेतना के तट[2] मे स्थित रहते हैं। कौनसा उद्दीपन किस समय चेतना के केन्द्र में रहता है और कौनसा चेतना के तट मे। यह बात उद्दीपनों की विशेषताओं पर निर्भर रहा करती है। जो विषय एक क्षण केन्द्रीय चेतना मे स्थित रहता है वही विषय दूसरे क्षण अस्पष्ट चेतना मे चला जाता है। इस प्रकार अवधान का विषय प्रतिक्षण बदलता रहता है। जिस क्षण चेतना-क्षेत्र मे स्थित किसी भी एक वस्तु या विचार के प्रति हम विशेष रूप से आकर्षित होते हैं उस क्षण उस वस्तु अथवा विचार को ही अपनी चेतना को एकाग्र करते हैं। ऐसी अवस्था मे हमारा अवधान केवल उसी लक्ष्य मे केन्द्रित हो जाता है और अन्य वस्तुओं और विचारों से वह हट जाया करता है।

ध्यान देने की अवस्था में व्यक्ति केवल एक ही उद्बोधक का चयन करता है। शेष उद्बोधकों को छोड़ दिया करता है। वह सभी पहलुओं पर एक सा ध्यान नही देता। यदि वह किसी विषय के सभी पक्षों पर ध्यान दे रहा है तो इसका यह आशय होगा कि उसका ध्यान किसी भी पहलू पर केन्द्रित नहीं है। व्यक्ति किन बातों पर ध्यान देता है और किन बातों को छोड़ देता है इसका अनुमान व्यक्ति की मानसिक अवस्था और रुचि के मालूम होने पर लगाया जा सकता है। उदाहरण के लिए व्यक्ति का जैसा दृष्टिकोण होता है किसी वस्तु मे वैसी ही बातों पर उसका ध्यान जाया करता है। इसी प्रकार प्रूफरीडर का काम पुस्तक की भाषा और शब्दों की बनावट को देखना होता है इसलिए उसका ध्यान पुस्तक के भावों की ओर कभी आकर्षित नहीं होता। किन्तु जैसे ही वह पुस्तक के भावों की ओर अपना ध्यान आकर्षित करता है वैसे ही प्रूफरीडिंग अशुद्ध होने लगता है। जब कोई व्यक्ति एक वस्तु को छोड़ कर दूसरी वस्तु का चुनाव करता है तब वह अपनी प्रयोजनात्मक प्रवृत्ति[3] का प्रकाशन करता है। ध्यान की क्रिया मे पहले से ही प्रयोजन की उपस्थिति रहती है और उन्ही वस्तुओं पर हमारा ध्यान जाता है जो हमारे किसी न किसी प्रयोजन की सिद्धि करती है। अपने मतलब की बातें सभी को अच्छी लगती हैं इसलिए सभी लोग उन्हीं वस्तुओं की ओर आकृष्ट होते हैं जो उनके स्वार्थों की सन्तुष्टि करती हैं

बालकों की शिक्षा में ध्यान की इस विशेषता पर शिक्षकों को ध्यान देना होगा क्योंकि वे उसी बात को ध्यान से सुनते हैं जो उनके प्रयोजन की सिद्धि करती हैं। यही कारण है कि वे अध्यापक सफल नहीं होते जो अपने विद्यार्थियों के अवधान को उनकी मूल प्रवृत्ति, इच्छा, रुचि के प्रतिकूल आकृष्ट करने का प्रयत्न करते हैं।

अवधान के इस स्वरूप की व्याख्या का श्रेय विलियम जेम्स और एडवर्ड टिचनर को जाता है जिन्होने सबसे पहले चेतना और अवधान का उपरोक्त सम्बन्ध समझाने का प्रयास किया था। अर्बनश्कोट्स और नेकर ने हमे बतलाया कि हमारा अवधान विचलित होता रहता है। नीचे दिये हुए घन को ध्यान पूर्वक देखने से पता चलता है कि कभी एक क्षण के लिए तल अ ब स द सामने आता दिखाई देता है तो कभी दूसरा तल सामने आता है।

[1] Focus.
[2] Margin of
[3] Purposiveness.

अपनी चेतना के क्षेत्र में से जिस समय हम किसी एक वस्तु का चुनाव करते हैं उस समय शरीर के बहुत से अंग और अनेक ज्ञानेन्द्रियाँ उस वस्तु की ओर आकृष्ट हो जाती हैं। इसलिए कुछ मनोवैज्ञानिक शरीर के विभिन्न अंगों एवं ज्ञानेन्द्रियों को वस्तु के अनुकूल सचेष्ट करने की प्रक्रिया को ही अवधान कहते हैं। किन्तु शरीर के विभिन्न अंगों की इस प्रकार की तैयारी अवधान की क्रिया में सहायक ही होती है अवधान की क्रिया नहीं मानी जा सकती।

किसी व्यक्ति के गतिवाही अनुकूलन को देखकर निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि वह किस वस्तु पर अपना ध्यान एकाग्र कर रहा है। पशुओं और पक्षियों के गतिवाही अनुकूलन को देखकर भले ही हम यह स्पष्ट रूप से बता सकें कि उनका ध्यान किस ओर है किन्तु मनुष्य के विषय में उसके गतिवाही अनुकूलन को देखकर यह कहना कठिन होगा कि वह अपना ध्यान किस ओर लगा रहा है। शारीरिक अभियोजन ध्यान क्रिया में सहायता मात्र देता है। उदाहरणार्थ, जब हम किसी की बात सुनना चाहते हैं तो उसकी ओर मुँह मोड़ लिया करते हैं। इस प्रकार का शारीरिक अभियोजन तीन प्रकार का होता है—

(अ) ग्राहक अभियोजन[1]

(ब) आसन सम्बन्धी अभियोजन[2]

(स) मांसपेशी सम्बन्धी अभियोजन[3]

ज्ञानवाही नाड़ियों द्वारा उत्तेजना ग्रहण करने के लिए जो शारीरिक अभियोजन स्थापित किया जाता है उसे ग्राहक अभियोजन कहते हैं। चन्द्रमा पर ध्यान लगाते समय हमारी आँखें उसे एकटक होकर देखती हैं, किसी व्यक्ति की बात सुनने के लिए हमारी कर्णेन्द्रियाँ उसकी आवाज की तरफ मुड़ जाती हैं। इस प्रकार ज्ञानेन्द्रियाँ उत्तेजना ग्रहण करने के लिए तैयार हो जाती हैं।

किसी वस्तु पर ध्यान लगाते समय जो आसन सम्बन्धी शारीरिक क्रियाएँ की जाती हैं उनको आसन सम्बन्धी अभियोजन कहते हैं। हमारा सारा शरीर उसी दिशा में झुक जाया करता है जिस दिशा में कोई उद्बोधक आता है। मधुर संगीत सुनते समय हम अपना सिर हिलाने लगते हैं और मुख से 'वाह वाह' की ध्वनि भी करने लगते हैं।

किसी वस्तु को चेतना केन्द्र में लाने के लिए शरीर की मांस पेशियों में एक प्रकार का तनाव आ जाता है। वे पहले की अपेक्षा अधिक सचेष्ट हो जाया करती हैं। मांसपेशियों में तनाव उत्तेजना की प्रकृति पर निर्भर रहता है। अवधान की क्रिया में इस प्रकार की शारीरिक क्रिया मांसपेशी अभियोजन की क्रिया कहलाती है।

अवधान की क्रियाओं में तीन प्रकार की शारीरिक चेष्टाएँ सहायता देती रहती हैं।

अवधान की विशेषताएँ—संक्षेप में अवधान की निम्नलिखित विशेषताएँ हो सकती हैं—

(१) अवधान एक जटिल मानसिक क्रिया है जिसमें किसी वस्तु पर अपनी चेतना को केन्द्रित करने की चेष्टा की जाती है। इस मानसिक प्रयत्न में चेतना के क्षेत्र से एक क्षण में केवल वस्तु का ही चयन किया जाता है शेष वस्तुएँ छोड़ दी जाती हैं।

(२) अवधान की क्रिया में जिस वस्तु का चयन किया जाता है उसको प्रयोजनवश ही चुना जाता है। उसके चुनाव में हमारी रुचियाँ, स्थायीभाव, आदतें आदि विशेष सहयोग प्रदान करती हैं।

---

1. Receptor adjustment.
2. Postural adjustment.
3. Muscular adjustment.

(३) अवधान चंचल होता है। वह क्षण प्रतिक्षण विचलित होता रहता है।

(४) किसी वस्तु पर ध्यान लगाते समय शरीर के विभिन्न अंग और ज्ञानेन्द्रियाँ उसकी ओर आकृष्ट हो जाती हैं। इस प्रकार की शारीरिक क्रियाएँ अवधान की मानसिक क्रिया की सहायता ही करती हैं।

अब प्रश्न यह है कि अवधान की मानसिक प्रक्रिया में जिस वस्तु का हम चुनाव करते हैं उसमें ऐसी कौन-सी विशेषतायें होती हैं जो हमारा ध्यान उसकी ओर स्वत: आकृष्ट कर लेती हैं।

Q. 2 Explain with examples the external and internal factors of Attention. Give the educational significance.

२०·३ अवधान के प्रेरक तत्त्व—हमारी चेतना के क्षेत्र में जितने भी विचार अथवा विषय होते हैं वे सबके सब हमारे अवधान के अन्तर्गत नहीं आते। बहुत से विषय ऐसे होते हैं जिन पर हम लेशमात्र भी ध्यान नहीं देते। इसके विरुद्ध कुछ विषय और विचार ऐसे होते हैं जिन पर तुरन्त हमारा ध्यान चला जाता है। इन विषयों अथवा विचारों में कुछ ऐसी विशेषताएँ होती हैं जिनकी हम उपेक्षा कर ही नहीं सकते। इन विशेषताओं को हम अवधान का बहिरंग अथवा वस्तु-विषयक प्रेरक कहते हैं। शिक्षक के लिए इन विशेषताओं को जानना अत्यन्त जरूरी है जो छात्रों के अवधान को तुरन्त आकर्षित कर लेती है। अवधान के इन बहिरंग प्रेरकों अथवा दशाओं के अतिरिक्त कुछ ऐसी भी दशाएँ होती हैं जो स्वयं छात्रों में ही विद्यमान होती हैं जैसे रुचि, मूलप्रवृत्तियाँ, इच्छाएँ आदि। अवधान के इन प्रेरकों को अन्तरंग प्रेरक कहते हैं। इस प्रकार अवधान के प्रेरक तत्त्वों को हम दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं—

(१) अवधान के बहिरंग प्रेरक तत्त्व।[1]

(२) अवधान के अन्तरंग प्रेरक तत्त्व[2]

अवधान के बहिरंग प्रेरक तत्त्व

वस्तुगत वे विशेषताएँ और लक्षण जिनके कारण अनिच्छा होते हुए भी हमारा ध्यान वस्तु, उद्बोधकों और विषयों की ओर स्वत: आकर्षित हो जाता है निम्नांकित हैं—

(अ) तीव्रता

(आ) आकार, विपुलता और विस्तार

(इ) नवीनता

(ई) विलक्षणता

(उ) परिवर्तन

(ऊ) गति

(ए) पुनरावृत्ति

(ऐ) व्यवस्थित और निश्चित रूप

(ओ) सामाजिक लक्षण

(अ) तीव्रता—एक धीमी आवाज की अपेक्षा जोर की आवाज हमारा ध्यान अनिच्छा होते हुए भी आकर्षित कर लेती है। इसी प्रकार तेज गंध, गहरे रंग और तीव्र पीड़ा क्रमश: घ्राण, दृष्टि और त्वचा आदि ज्ञानेन्द्रियों को एकदम उत्तेजित करके हमारे ध्यान को आकर्षित कर लेते हैं क्योंकि इन प्रेरकों में तीव्रता अधिक होती है।

---

[1] External orobsome factors affecting attention

[2] Internal factors affecting attention.

है वह क्रिया जो बार-बार दुहराई जाती है कभी न कभी अवधान के क्षेत्र में प्रविष्ट यदि कमरे में कोई धीमी आवाज बार-बार होने लगे तो हम उसकी ओर सु हो जाते हैं किन्तु उसकी आवृत्तियों की संख्या बढ़ जाने पर हमारा ध्यान हट जाया करता है। जिस वस्तु का समाचार-पत्रों में बार-बार विज्ञापन होता रहत अवधान को आकर्षित कर लेती है। जिस पाठ को बार-बार दुहराया जाता है उ छात्रों का ध्यान आकर्षित हो जाता है।

(ऐ) रूप की निश्चितता—निश्चित रूप वाली वस्तुएं अनिश्चित रूप वा अपेक्षा हमारे अवधान को शीघ्र ही आकर्षित कर लेती हैं। चित्र में जिस वस्तु का नि आकार होता है, वह वस्तु हमारे अवधान में आ जाती है। जिस ध्वनि में एक होता है वह ध्वनि तीव्र न होते हुए भी हमारे ध्यान को आकर्षित कर लेती है। विशेष लय होती है शोरगुल होने पर भी आसानी से सुन लिया जाता है क्योंकि उ का संगठन होता है। हमारा मस्तिष्क संगठित पदार्थों को स्वतः चुन लेता है।

(ओ) सामाजिक लक्षण—हमारा सामाजिक वातावरण भी हमारे अवध निश्चित करता है। शिशुओं का अवधान विशेषकर उसी ओर आकर्षित होता है ि माता-पिता और सम्बन्धियों का ध्यान जाया करता है। धार्मिक कुल में उत्पन्न विषयों की ओर आकर्षित होता है।

अवधान के बहिरंग प्रेरक और शिक्षा

अध्यापक का सर्वप्रथम कर्त्तव्य है अपने विद्यार्थियों के अवधान को विषय आकर्षित करना। जो अध्यापक अपने बच्चों का ध्यान आकर्षित करने के लिये अव विषयक दशाओं पर ध्यान नहीं देता, वह शिक्षण-कार्य में सफलता प्राप्त नहीं कर स

शिक्षक के मुँह से एक ही बात को बार-बार सुनकर बालकों का मन ऊब परन्तु विषय-परिवर्तन होते ही उनका ध्यान एकदम आकर्षित हो जाता है। इसलिये को बालकों का ध्यान अपनी विषय-वस्तु की ओर आकर्षित करना है तो वह नवीनता का पुट रखना चले अथवा उसका पुनर्कथन बालकों पर कोई प्रभाव न बालकों में नई जानकारी प्राप्त करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है अतः उन्हें अ दिन के पाठ में कुछ न कुछ नवीनता का अवसर प्रस्तुत करना चाहिये।

कुशल वक्ता अपने श्रोताओं का और कुशल शिक्षक अपने छात्रों का ध्यान के लिये स्वर में परिवर्तन लाने का प्रयत्न करता है। कभी तो वे भाव के अनुमा बोलते हैं कभी भावावेश में आकर उच्च स्वर में बोलने लगते हैं। ऐसा करने से वे का ध्यान आकर्षित कर लेते हैं। इसके विपरीत उन अध्यापकों से छात्र शीघ्र ही सदैव एक ही लय में ध्वनि का उतार-चढ़ाव किये बिना ही पढ़ाते रहते हैं।

कभी-कभी कुशल अध्यापक अध्यापन कार्य करते समय विषय वस्तु में वि विषमता भी लाने का प्रयत्न करते हैं। कविता पाठ में [illegible]

[illegible]

कक्षा में पढ़ाते समय अनुभवी अध्यापक आवश्यकतानुसार भाव-भंगिमाएँ रहते हैं। वे गतिशील विधियों का प्रयोग कर अपने पाठों को आकर्षक बना लिया क

'माता' स्वयं हमारी आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के कारण रुचि का विषय बन जाता है। इसलिये कुछ मनोवैज्ञानिक स्थायीभावों को अर्जित रुचि कहते हैं। जितनी रुचि हम अन्य वस्तुओं में रखते हैं उतनी ही रुचि अपने आत्म'[1] में रखने लगते हैं।

ऊपर की व्याख्या के अनुसार रुचियों के तीन भेद किये जाते हैं—

(अ) जन्मजात रुचियाँ[2]

(ब) अर्जित रुचियाँ[3]

(स) आत्म गौरव से सम्बन्धित रुचियाँ[4]

जन्मजात रुचियाँ—ये रुचियाँ प्राय मूलप्रवृत्यात्मक होती हैं। अपनी शारीरिक रक्षा के लिये सभी प्राणी भयानक वस्तुओं से बचने का प्रयत्न करते हैं। भयानक वस्तु को देखते ही हमारा ध्यान उसकी ओर स्वत आकृष्ट हो जाता है क्योंकि हम सबमें आत्मरक्षा की भावना में पलायन की मूलप्रवृत्ति होती है। इसी प्रकार माँ की रुचि बालक में देखी जाती है क्योंकि प्रत्येक माँ में अपने बालक की रक्षा करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति हुआ करती है। वैज्ञानिकों को अपनी जिज्ञासा की मूलप्रवृत्ति को सन्तुष्ट करने के लिये वैज्ञानिक अन्वेषणों में रुचि होती है। इस प्रकार मूलप्रवृत्तियों और अन्य सामान्य प्रवृत्तियों को सन्तुष्ट करने वाली वस्तुओं में हमारी रुचि जन्मजात होती है।

अर्जित रुचियाँ—जो कार्य हम मूलप्रवृत्तियों तथा अन्य स्वाभाविक प्रवृत्तियों के सन्तुष्ट करने के लिये करते हैं उनमें हमारी रुचि जन्मजात होती है, किन्तु जिन कार्यों को हम अपनी आदतों या स्थायीभावों के कारण करते हैं उनमें हमारी रुचियाँ अर्जित होती हैं।

जब किसी संगीताचार्य का शिशु अपने पिता के संगीत की ओर ध्यान देता है तो ऐसा ध्यान उसकी जन्मजात रुचि पर रहता है किन्तु जब बड़ा होकर वह मनोविज्ञान की पुस्तकें पढ़ने में अवधान लगाता है तब वह मनोविज्ञान के अध्ययन के प्रति रुचि अर्जित कर लेता है। प्रत्येक अर्जित रुचि किसी न किसी स्थायीभाव से सम्बन्ध रखती है। संगीताचार्य के बालक की मनोविज्ञान में अर्जित यह रुचि उसके बौद्धिक स्थायीभाव से सम्बन्ध रखती है।

आत्मगौरव सम्बन्धी रुचियाँ—कभी-कभी हम ऐसी वस्तुओं के प्रति रुचि प्रगट करते हैं जो हमारे आत्मगौरव के स्थायीभाव को सन्तुष्ट करती है। विद्यार्थी किसी परीक्षा में रुचि इसलिये दिखाता है कि परीक्षा पास होने से उसे आत्मगौरव मिलेगा और उसमें असफल होने से आत्मगौरव को धक्का लगेगा। आत्मगौरव की रक्षा के लिये हम कष्टदायक क्रियाओं को भी सम्पादित करने में रुचि प्रदर्शित करते हैं और अपना ध्यान कठिन विषयों को भी सीखने में लगाते हैं।

रुचियों के इस वर्गीकरण के आधार पर अवधान का भी वर्गीकरण किया जा सकता है जन्मजात और अर्जित रुचियों से सम्बन्धित अनैच्छिक और ऐच्छिक दो प्रकार के अवधान होते हैं।

अनैच्छिक अवधान—जब किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिये स्वेच्छा से प्रयत्न करके किसी उद्बोधक को चेतना केन्द्र में लाने की मानसिक चेष्टा की जाती है तब इस प्रकार लगाया गया ध्यान ऐच्छिक अवधान कहलाता है किन्तु जब कोई उद्बोधक इतना अधिक तीव्र होता है कि वह स्वत बिना किसी प्रयत्न के ही चेतना केन्द्र में आ जाता है तब ऐसे अवधान को अनैच्छिक अवधान कहते हैं। ऐसे अवधान में इच्छा शक्ति की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि हम अपने

---

1 Self
2 Instinct Interests
3 Acquired Interests
4 Intrests connected with the master sentiment.

आप ही अवधान देने योग्य विषय अथवा विचार की ओर आकृष्ट हो जाते हैं। मान लीजिये हम अपने परीक्षा भवन में बैठे हुए किसी प्रश्नपत्र को हल कर रहे हैं सहसा हमारा कोई साथी खटखट की ध्वनि करने लगता है। हमारा ध्यान तुरन्त उसकी आवाज की ओर चला जाता है। उस आवाज की ओर ध्यान आकर्षित हो जाना अनैच्छिक अवधान है किन्तु प्रश्न-पत्र को हल करने की इच्छा से हम पुनः अपना ध्यान अपने कार्य की ओर आकृष्ट कर लेते हैं। यह ध्यान ऐच्छिक कहा जा सकता है।

अनैच्छिक अवधान दो प्रकार का होता है—अनैच्छिक बाध्य[1] और अनैच्छिक सहज[2]।

अनैच्छिक बाध्य अवधान—हमारी मूलप्रवृत्तियाँ रुचियों पर निर्भर रहती हैं। जिन वस्तुओं में हमारी मूलप्रवृत्यात्मक रुचि होती है वे वस्तुयें हमारा अवधान बलपूर्वक आकृष्ट कर लेती हैं। ऐसी वस्तुओं में हमारी वास्तविक रुचि नहीं होती।

अनैच्छिक सहज अवधान—वस्तुओं में वास्तविक रुचि होने के कारण अनैच्छिक सहज अवधान विकसित होता है। इस अवधान की प्रेरणा हमें किसी स्थायीभाव अथवा अर्जित रुचि द्वारा मिलती है। जिस समय बालक को किसी कार्य में विशेष रुचि होती है उस समय अनैच्छिक सहज अवधान का प्रदर्शन किया जाता है उसी प्रकार वह बालक जिसने किसी खेल के प्रति विशेष रुचि अर्जित कर ली है दूसरे बालकों को खेलते हुए देखकर तुरन्त उस खेल पर अपना ध्यान केन्द्रित कर लेता है। जिस प्रकार वह स्त्री जिसने गोद लिये किसी बच्चे के प्रति वात्सल्य का स्थायी भाव अर्जित कर लिया है उस बच्चे का रोना सुनते ही सब कार्य छोड़कर अपना ध्यान उसी ओर लगा देती है। इस प्रकार का ध्यान सहज अनैच्छिक अवधान कहलाता है। अनैच्छिक सहज अथवा बाध्य अवधान के लिये शक्ति की आवश्यकता नहीं होती है।

ऐच्छिक अवधान—जिस अवधान के लिये हमें इच्छा शक्ति की आवश्यकता होती है वह ऐच्छिक अवधान कहलाता है। इच्छा शक्ति के आधार पर हम प्रायः ऐसे विषयों का अध्ययन करते हैं जो हमें किसी प्रकार आकर्षक नहीं मालूम पड़ते और जिन्हें न तो हमारी मूल प्रवृत्तियों से ही प्रेरणा मिलती है और न स्थायीभावों से ही। जब व्यक्ति बाह्य प्रेरणाओं से प्रभावित होकर किसी वस्तु की ओर अपना ध्यान लगाता है तब उसका ध्यान ऐच्छिक कहा जा सकता है। यह वस्तु या विषय आकर्षक न होने पर भी ऐसा होता है जिसके अध्ययन किये बिना हमारा काम नहीं चल सकता। उसका हमारे जीवन में विशेष महत्त्व होता है क्योंकि उसके अध्ययन से हमारा जीवन बनता है अथवा उससे सफलता पाने से हमारे आत्मगौरव की रक्षा होती है। अतः जिन विषयों का हमें अपनी इच्छा-शक्ति के कारण अध्ययन करना पड़ता है उनमें अप्रत्यक्ष रूप से हमारी रुचि होती है।

यह इच्छा शक्ति वह शक्ति है जिससे व्यक्तित्व का निर्माण होता है। इस शक्ति से प्रेरित अवधान के पीछे हमारी आत्मगौरव सम्बन्धी रुचियाँ छिपी रहती हैं। अथवा यों कहिये कि आत्म-गौरव के स्थायीभाव में वह क्रियात्मक मनोवृत्ति रहती है जिसे हम रुचि कहते हैं।

संक्षेप में, मूल प्रवृत्यात्मक रुचियाँ अनैच्छिक बाध्य अवधान से घनिष्ठ सम्बन्ध रखती हैं। वास्तव में जैसा कि पहले कहा जा चुका है, रुचि और अवधान दोनों इस प्रकार एक दूसरे से सम्बन्धित और अन्योन्याश्रित हैं कि इन दोनों की अलग-अलग ढंग से व्याख्या नहीं की जा सकती। तभी मैक्डूगल ने कहा था कि रुचि गुप्त अवधान है और अवधान रुचि का क्रियात्मक रूप है।

Q 4 How does the relationship of interest and attention influence the methodology in education?

रुचि और अवधान के सम्बन्ध की शिक्षा में उपयोगिता—रुचि एक ऐसी प्रवृत्ति है जिसके

---

[1] Enforced Non-Volitional.

[2] Spontaneuos Non-Votitional.

कारण हम किसी कार्य में दत्तचित्त होकर उसे जारी रखना चाहते हैं, जिस कार्य में दत्तचित्त होकर हम उसे जारी रखना चाहते हैं वह कार्य उसमें रुचि होने से बड़ी सरलता से किया जाता है। कभी-कभी तो कठिन से कठिन कार्य भी रुचि होने के कारण सरल मालूम पड़ने लगता है और उसकी ओर आकृष्ट हो जाता है। रुचि न रहने पर वही कार्य अवहेलना की दृष्टि से देखा जाता है तुरुचि कर कार्यों से इसलिये हमारा अवधान स्वतः हट जाया करता है।

यदि हम शिक्षा में रुचि और अवधान की विशेषताओं तथा उनके पारस्परिक सम्बन्ध से लाभ उठाना चाहते हैं तो हमें तीन क्रियाएँ करनी होंगी—

(अ) अवधान की विशेषताओं—बहिरंग और अन्तरंग प्रेरकों—को ध्यान में रखकर शिक्षा-कार्य की व्यवस्था करनी होगी।

(ब) रुचि की विशेषताओं को ध्यान में रखकर मूलप्रवृत्यात्मक, अर्जित, और आत्मगौरव सम्बन्धी रुचियों को विकसित करना होगा।

(स) अवधान के विभिन्न स्वरूपों को बालक की शिक्षा के भिन्न भिन्न स्तरों पर प्रयोग में लाना होगा।

अनुच्छेद २०५ मे पहली क्रिया की व्याख्या की जा चुकी है। बालक की वास्तविक प्रत्यक्ष रुचि मूलप्रवृत्यात्मक होती है और वयस्क व्यक्तियों की प्रत्यक्ष रुचियाँ भी बहुत बड़ी संख्या में, मूलप्रवृत्यात्मक ही होती हैं। यदि बालकों मे मूलप्रवृत्यात्मक रुचियों का विकास करना है तो हमें सभी पाठ्य-विषयों को इस प्रकार से व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करना है जिससे बच्चों में मूल-प्रवृत्यात्मक रुचियाँ उत्पन्न हो जायें। जो बालक मोडल बनाने मे रुचि लेता है उसका ध्यान गणित के प्रमेयों की ओर आकृष्ट कर इस विषय को आसान किया जा सकता है। उसकी रचनात्मक मूलप्रवृत्ति को गणित की कठिन प्रमेयों को हल करने मे प्रयुक्त किया जा सकता है। ऐसे कार्यों मे, जिनमें आनन्द की अनुभूति लेशमात्र भी नहीं होती और जो केवल आत्मगौरव की सुरक्षा के लिये ही किये जाते हैं, बालको की रुचि जाग्रत की जा सकती है। आत्म सम्मान की रक्षा की भावना विज्ञान और गणित जैसे कठिन और तथाकथित नीरस विषयो की प्रेरणा दे सकती है।

शिक्षा के भिन्न स्तरो पर प्राथमिक, निम्न माध्यमिक, माध्यमिक, विश्वविद्यालयीय अवधान के उपरोक्त स्वरूपों का उपयोग किया जा सकता है। किण्डरगार्टन और मान्तेसरी विद्यालयों में अनैच्छिक बाध्य अवधान का, जो बच्चों की मूलप्रवृत्यात्मक रुचियो से सम्बन्धित है, उपयोग किया जा सकता है। शिशुओं और छोटे-छोटे बच्चों को उनकी मूलप्रवृत्तियों को सन्तुष्ट करने वाली वस्तुएँ दी जा सकती हैं। आत्म-प्रकाशन और औत्सुक्य की सन्तुष्टि के लिये अधिक से अधिक साधन जुटाये जा सकते हैं।

जैसे-जैसे बालक आयु मे बढ़ता जाय वैसे-वैसे उसके मानसिक विकास के स्तर के अनुकूल मूलप्रवृत्यात्मक रुचियो की सन्तुष्टि पर कम ध्यान दिया जाय। उसमें प्रशस्त अर्जित रुचियों, स्थायीभावों, और विशेषकर आत्मगौरव के स्थायीभाव को जाग्रत किया जाय। अध्ययन के प्रति प्रेम उत्पन्न करने के लिये सहज अनैच्छिक ध्यान की विशेषताओं का प्रयोग किया जाय। यदि अध्यापक इस आयु स्तर पर बालकों में बौद्धिक स्थायीभावों को जाग्रत कर उनके सहज अनैच्छिक अवधान का प्रयोग कर सका तो वह अपने छात्रों को नई-नई खोजों के लिये प्रेरित कर सकता है।

उच्च माध्यमिक अथवा विश्वविद्यालयीय स्तर पर विद्यार्थियों मे कठिन विषयों के प्रति प्रेम और रुचि जाग्रत की जा सकती है किन्तु ऐसा करने के लिये ऐच्छिक अवधान को प्रयोग में लाना होगा जो पूर्णतः इच्छा शक्ति पर निर्भर है। चरित्र के निर्माण के लिये भी इसी इच्छा-शक्ति को प्रबल बनाया जा सकता है।

संक्षेप मे, (१) बालको की मूलप्रवृत्यात्मक और अर्जित रुचियो को जाग्रत और विकसित किया जाय।

(२) बालक के विकास को ध्यान में रखकर शिक्षा-व्यवस्था की जाय क्योंकि भिन्न-भिन्न स्तरों पर भिन्न-भिन्न प्रकार की रुचि और अवधान का विकास हो सके।

(३) पाठ्य-वस्तु सार्थक, सोद्देश्य और बालकों के लिये उपयोगी हो।

(४) पाठ्य-वस्तु न तो अति नवीन हो और न अति पुरानी ताकि बालक की रुचि उसमें बनी रहे।

(५) पाठ्य-वस्तु पर अवधान को केन्द्रित करने का अभ्यास दिया जाय जिससे आदत पड़ जाने पर बालक अपना ध्यान कठिन से कठिन कार्यों में भी लगा सके।

(६) यदि कोई विषय ऐसा हो जिसमें आसानी से ध्यान न लग सके तो उसके अध्ययन में क्रियाशीलता पैदा की जाय। ऐसी पाठन विधियाँ अपनाई जायें जिनमे क्रियाशीलता का अंश प्रचुर मात्रा में हो। उदाहरण के लिये ज्यामित शिक्षण मे छात्र क्षेत्र को नापने, उसके क्षेत्रफल का प्राकलन करने, अगम्य स्थानों की दूरी, अथवा ऊँचाई ज्ञात करने मे जो रुचि लेते है वह साध्यों को सिद्ध करने में नहीं लेते क्योंकि इन क्रियाओं मे क्रियाशीलता की मात्रा अधिक होती है।

(७) जब बालक किसी ऐसे विषय में रुचि न लेता दिखाई दे जो उसके लिये विशेष महत्त्व रखता है तब उसे उसका महत्त्व समझा दिया जाय।

Q 3. Discuss critically the pragmatic, the artistic and fantastic thinking (imagination) of children, and state Montessorie; view on this subject

२१.८ कल्पना के भेद—पिछले अनुच्छेद मे कल्पना की जो व्याख्या प्रस्तुत की गई है उस मे निम्न बातो पर जोर दिया गया है .

(१) कल्पना ऐसी मानसिक प्रक्रिया है जिसमे स्मृति के सहारे प्रतिमाओ का पुनर्गठन और पुनर्संगठन होता रहता है।

(२) कल्पना में रचनात्मक अश अधिक होने के कारण विचारो का उत्पादन और मन की तरगों का निर्माण होता है।

कल्पना की इस द्विविधा प्रवृति के कारण हम उसके दो भाग कर सकते हैं—

(१) अनुकरणात्मक कल्पना।[1]

(२) रचनात्मक कल्पना[2]

अनुकरणात्मक कल्पना—अनुकरण की प्रवृत्ति के आधिक्य के कारण बालको मे इस प्रकार की कल्पना का आधिक्य पाया जाता है। यह निम्न स्तर की कल्पना है जिसका प्रयोग अध्यापक बालकों को दस्तकारी की शिक्षा देते समय अथवा कथा कहानी सुनाते समय अथवा काल्पनिक खेल खिलाते समय किया करता है। कहानी सुनते अथवा उपन्यास पढ़ते समय बालकों को नायक के चरित्र अथवा दृश्य की प्रतिमाएँ मिलती रहती हैं। वे उनको ग्रहण करते और मन में अनेक प्रकार की अनुकरणात्मक कल्पनाओ का सृजन करते रहते हैं।

काल्पनिक[3] खेलों मे भाग लेते समय वे कल्पना जगत् मे रहकर गाड़ी में सवार होते, नाव में सैर करते पालतू जानवरो का पालन-पोषण करते, लड़कियां भोजन बनाती और घर के काम काज करती है। इसी प्रकार जब शिशु तकिये पर बैठकर उसे घोड़ा बनाता है अथवा छोटी बालिका अपनी गुड़िया को वास्तव मे बीमार समझ कर उसकी परिचर्या करती है तो काल्पनिक खेलों के रूप मे कल्पना शक्ति का प्रदर्शन करती है। इसी प्रकार जब ११ वर्षीय बालक कुर्सियो और बेंचों को छात्रो का प्रतिरूप मानकर अध्यापक की तरह उन्हें पढ़ाने लगता है तब वह अनुकरणात्मक कल्पना का आश्रय लेता है।

अल्पवयस्क बालक गत अनुभवों की प्रतिमाओ को पहले अपनी मानकर ग्रहण करते हैं। और फिर उनका पुनरोत्पादन करते हैं इसलिए अनुकरणात्मक कल्पना प्राय: दो रूपो मे प्रकट होती है।

(अ) आदानात्मक[4]

(ब) पुनरोत्पादक[5]

रचनात्मक कल्पना[6]—बालक ने जो कुछ देखा है अथवा सुना है वह उसी का अनुकरण करता है किन्तु इन्जीनियर किसी भवन का निर्माण करने से पूर्व अपने संचित ज्ञान के सहारे एक योजना बना लेता है जिसमें उसके रचनात्मक कौशल का अश अधिक होता है। बालक की कल्पना अनुकरणात्मक होती है और इंजीनियर की कल्पना रचनात्मक। जब कोई व्यक्ति अपने मन में निरीक्षणों का पुनर्गठन करके ऐसे परिणाम निकालने का प्रयत्न करता है जो गत अनुभवो और पूर्व ज्ञान का प्रतिरूप न होकर स्वरूप में कुछ अधिक बढ़े हुए होते हैं तब वह रचनात्मक कल्पना

1 Imitative
2 Creative.
3 Makebelieve.
4 Receptive.
5 Reproductive.
6 Constructive Imagination.

का आश्रय लेता है। उसकी ये क्रियाएँ पूर्वानुभवों की प्रतिरूप न होने के कारण कल्पना के स्तर को ऊँचा उठा देती हैं।

रचनात्मक कल्पना के उदय के लिए आवश्यकता होती है किसी समस्या की उपस्थिति की। आविष्कारक, वैज्ञानिक, इन्जीनियर, अथवा किसी कलाकार के मन मे रचनात्मक कल्पना का उस समय उदय होता है जिस समय उनके सामने कोई समस्या उपस्थित होती और उनके मन में उस समस्या को हल करने की इच्छा उत्पन्न होती है। बहुत समय के बाद जब उन्हे उस समस्या का हल नही मिलता, प्रकाश और प्रेरणा का समय आता है जिसमे हल विद्युत की भाँति क्षण मात्र के लिए प्रकट हो जाता है। व्यक्तिको अन्तर्दृष्टि आती है और वह अपनी योजना के निर्माण में सफल हो जाता है। इस प्रकार रचनात्मक चिन्तन मे व्यक्ति निम्नलिखित चार अवस्थाओं से गुजरता है[1]—

(अ) तैयारी की अवस्था[2] अथवा समस्या का परिचय

(ब) चिन्तन काल[3]

(स) प्रेरणा या प्रकाश काल[4]

(द) निर्णय काल[5]

प्रगतिशील समाज को इस प्रकार के चिन्तन की बड़ी आवश्यकता है। विद्यालयों का कर्तव्य है कि शिक्षार्थियों में इस प्रकार की रचनात्मक कल्पना का विकास करें। उत्पादक विचार शक्ति, जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है किसी भाग्यशाली व्यक्ति की पैतृक सम्पति नहीं है। वह उन सबके लिए है जिनके पास प्रत्यक्ष प्रतिमाओ का एक बडा भारी संग्रह है और जो उस दुःखदायी चिन्तन काल के कष्ट झेलने के लिए तैयार रहते हैं जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है इस चिन्तन काल की अनुभूति लगभग सभी को होती है। जब कोई नया विचार हमारे मन मे आता है वह मन में उद्वेग की अवस्था पैदा कर देता है। हमारे मन मे अच्छे-अच्छे विचार आते हैं परन्तु उनको हम प्रकट नही कर पाते। विद्यालय का कर्तव्य है कि हमको अपने विचारो को स्पष्टतः व्यक्त करने का ज्ञान दे।

रचनात्मक कल्पना वाह्य नियत्रण से प्रभावित होती है और प्रभावित भी नहीं होती। आविष्कारक, इंजीनियर अथवा वैज्ञानिक की रचनात्मक कल्पना वाह्य नियत्रण से प्रभावित होती है। जो सामग्री अथवा उपकरण इन व्यक्तियों को मिल सकते है उन्ही के आधार पर वे अपनी कल्पनाओं का प्रयोग करते हैं। किन्तु कुछ कल्पनाएँ ऐसी भी होती हैं जो वाह्य नियत्रणो से प्रभावित नही होती। उपन्यास, कवि आदि कलाकारो की कल्पना की यही विशेषता है। इस विचार से रचनात्मक कल्पना के दो उपभेद किये जाते हैं—

(अ) कार्य साधक[6]

(ब) रसात्मक[7]

कार्य साधक रचनात्मक कल्पना—कार्य साधक रचनात्मक कल्पना भी दो प्रकार की होती है : व्यावहारिक और सिद्धान्त सम्बन्धी। प्रक्रियात्मक वैज्ञानिक की रचनात्मक कल्पना व्यावहारिक

---

1 Preparation Stage.
2 Period of Incubation.
3 Inspiration Period.
4 Revision Period.
5 Ribot 1939. Centenaire deth Ribot Agen. Imprimerie Moderne

ोती है। वह अपनी सीमाओं को ध्यान में रखकर कल्पना का आश्रय लेता है। उसका काम होता इंजिनों का निर्माण कर, पुल बनाना, आदि जिसकी समाज और राष्ट्र को व्यावहारिक उपयोगिता होती है। सैद्धान्तिक वैज्ञानिक की रचनात्मक कल्पना प्रयोगात्मक पक्ष से कोई सम्बन्ध नहीं खती है उसका सम्बन्ध सैद्धान्तिक पक्ष से ही होता है। शुद्ध गणितज्ञ और सैद्धान्तिक भौतिक ास्त्री क्रियात्मक पक्ष का आश्रय नहीं लेता।

रचनात्मक कल्पना—कवि, उपन्यासकार, कहानी लेखक आदि कलाकारों की कल्पना ात्मक होती है। इन व्यक्तियों की सौन्दर्यात्मक रुचि उन्हें नये नये लेख, कविता, कहानियाँ पन्यास आदि लिखने के लिये प्रेरित करती रहती है। इस प्रकार की कल्पना में कलाकार को ानन्द मिलता ही रहता है इसलिये इसको रसात्मक रचनात्मक कल्पना कहा जाता है। किन्तु ास अथवा आनन्द की अनुभूति व्यक्ति को उस समय भी होती है जिस समय वह हवाई किले नाता है। अतः रसात्मक रचनात्मक कल्पना के भी दो उपभेद किये जाते हैं।

(१) कलात्मक

(२) तरंगमयी,

कलात्मक कल्पना में कलाकार के ऊपर थोड़े बहुत प्रतिबंध अवश्य होते हैं किन्तु तरंगमयी कल्पना में तो व्यक्ति के ऊपर किसी प्रकार के नियंत्रण नहीं होते। जब कोई व्यक्ति मनोराज्य में भ्रमण करता है तब वह जो चाहता है वह सोचता है।

कलात्मक कल्पना के सहारे जो कुछ रचनाएँ तैयार की जाती हैं उनसे व्यक्ति को भी आनन्द की प्राप्ति होती है और समाज का भी हित होता है किन्तु तारंगिक कल्पना के सहारे जिस काल्पनिक संसार का निर्माण किया जाता है उससे न तो उसके निर्माता का ही हित होता है और न समाज का ही। नैराश्य के कारण जब किशोर दिवास्वप्नों में अपने आपको मग्न कर लेता है तब अपनी अपूर्णता को इस काल्पनिक संसार का निर्माण करके पूर्ण करने का प्रयत्न करता है किन्तु यह अपूर्णता और वह नैराश्य इस प्रकार के दिवास्वप्नों से कम नहीं होते।

Q 4. How does imagination during childhood differ from that during adolescence? What use would you make of this konwledge to plan creative activities?

२१.१ व्यक्ति में कल्पना का विकास—बालकों के जीवन में शैशवावस्था से लेकर प्रौढ़ावस्था तक कल्पना की प्रक्रिया भिन्न भिन्न स्तरों पर प्रगट होती है। जैसे-जैसे उनकी आयु बढ़ती जाती है वैसे-वैसे कल्पना के भिन्न-भिन्न रूप विकसित होते हैं।

दो-ढाई वर्ष की अवस्था में उनमें पूर्व अनुभवों की प्रतिमाओं को पुनर्मूर्त करने पुनरोत्पादन की क्षमता आने लगती है। वे अपने वातावरण की वस्तुओं का प्रत्यक्षीकरण उन संस्कारों के आधार पर करते हैं जो उनके पूर्व अनुभवों ने प्रतिमाओं के रूप में उसके मन में अंकित किये हैं। अतः उनमें स्मृति कल्पनाओं की प्रधानता होती है। ४-५ वर्ष की अवस्था में वे कहानियों में विश्वास करने लगते हैं इन्हीं कहानियों के अनुरूप वे प्रतिमाएँ बना लेते हैं। ६-७ वर्ष की अवस्था में जब उनकी इच्छाओं की संतुष्टि नहीं होती तब वास्तविक जगत् से हटकर कल्पना के जगत् में भ्रमण करने लगते हैं। वे जिस कहानी को उन्होंने अब तक अपनी दादी अथवा नानी से सुने हैं उसे तरंगमयी कल्पना में डुबने के लिये सहायता पहुँचाते हैं। शिशुओं के गीत उसे आनन्द देते हैं, परियों की कहानियाँ उसके हृदय में तरंगें उत्पन्न कर देती हैं। कहानियों से ही इस भाग में बालक और बालिकाएँ अपने नायक और नायिकाएँ चुन लेते हैं। अपने नायक और नायिकाओं का अनुकरण करते हुए [illegible] , सदयों [illegible] करने का प्रयत्न करते हैं। यही अवस्था लगभग

[illegible]

[illegible]तावरण से समायोजन स्थापित कर लेने [illegible] समाव-[illegible] में प्रवेश करने लगते हैं। उनकी रचनात्मक [illegible] थी।

किशोरावस्था में रचनात्मक कल्पना तारंगिक हो जाती है। किशोर बालक और बालिका अपनी कमियों और निराशा से घबड़ा कर दिवास्वप्नों में लीन हो जाते हैं। दिवास्वप्नों का देखना एक प्रकार की चिन्तन की क्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी असन्तुष्ट इच्छाओं की पूर्ति करता है अथवा नैराश्य से उसकी रक्षा करना चाहता है। कभी तो दिवास्वप्नों से अपने उद्देश्य की पूर्ति प्रत्यक्ष रूप से हो जाती है और कभी-कभी अप्रत्यक्ष तौर से, किन्तु दोनों अवस्थाओं में व्यक्ति को चिर शान्ति नहीं मिलती क्षणिक सन्तुष्टि भले ही मिल जाती हो। किशोर और किशोरियों में ये दिवास्वप्न १८ वर्ष की आयु तक दिखाई देते हैं।

प्रौढ़ावस्था तक पहुँचते-पहुँचते जब व्यक्ति अपने वातावरण से अनुकूलन स्थापित कर लेता है तब उसकी कल्पना में व्यावहारिकता के अंश की वृद्धि हो जाती है।

Q. 5. Discuss the value of imagination in child education in general and in the process of thinking in particular Discuss Montessori's views on this subject

२१ १० कल्पना का शिक्षा में उपयोग—कल्पना का विकास उसी प्रकार क्रमिक होता है जिस प्रकार अन्य प्रकार के विकास हुआ करते हैं इसलिये यदि बालक की शिक्षा में कल्पना के विकास पर कुछ ध्यान देना है तो शिक्षक को इस बात को ध्यान रखना चाहिये कि जब तक विद्यार्थी कल्पना के विशेष स्तर तक न पहुँच जाय तब तक उससे उच्च स्तर की कल्पना के विकास की आशा न की जाय। उदाहरण के लिये यदि बालक बहुत छोटा है तो उससे रचनात्मक कल्पना के कलात्मक रूप की आशा नहीं की जा सकती है और न व्यावहारिक कल्पना की ही उससे आशा की जा सकती है क्योंकि उसके विकास की अवस्था प्रौढ़ावस्था है। दूसरी बात जो शिक्षक को ध्यान में रखनी है वह यह है कि किसी भी प्रकार की कल्पना शक्ति का विकास सीमा से बाहर न किया जाय। उदाहरण के लिये बालक के जीवन में एक ऐसा समय आता है जब वह 'कल्पनात्मक विश्वास[1] में विशेष रुचि लेता है ऐसे समय यदि उसके सामने ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी जायें जिससे कि अत्यधिक मात्रा में कल्पनात्मक विश्वास में लीन रहने लगें तो उसके बौद्धिक विकास में अवरोध उत्पन्न हो सकता है।

कल्पना के निर्माण में प्रतिमाओं का विशेष हाथ रहता है इसलिये बालक के सामने पुष्ट और घनी प्रतिमाओं के बनाने का आयोजन किया जाय। बच्चों की प्रतिमाओं को घनी बनाने में दृश्य-श्रव्य उपकरण, विद्यालयों द्वारा आयोजित यात्राएँ आदि क्रियाएँ विशेष सहायक होती हैं। कक्षा-कार्य में रंगीन खड़िया, रंगीन चित्र और नमूने, आदि वस्तुओं का प्रयोग छोटे-छोटे बालकों को पढ़ाते समय विशेष रूप से किया जाय। छोटे बच्चों की कल्पना पुष्ट नहीं होती। इसलिये जिस विषय के अध्ययन में कल्पना-शक्ति का प्रयोग अधिक करना पड़ता हो, उस विषय के पढ़ाते समय ऐसे प्रत्ययों का प्रयोग किया जाय जिनसे बालक भली भाँति परिचित हों, उन्हें ऐसे चित्र दिखाये जायें जो उनकी प्रतिमाओं को पक्का बना सकें।

६-७ वर्ष के बच्चों में तारंगिक कल्पना का विकास होता है अध्यापक को इस विकास में कितना सहयोग देना चाहिये इस बात पर मनोवैज्ञानिकों एवं शिक्षा विशारदों में मतभेद है। मनोवैज्ञानिकों का एक वर्ग इस आयु के छोटे बच्चों की शिक्षा में किस्से कहानियों का समावेश करता है दूसरा वर्ग उसका विरोध करता है।

ड्रेवर कहता है कि यदि बच्चे की तरंगमयी कल्पना का विकास परियों के किस्से कहानियों के माध्यम से कर दिया जाय तो वह भविष्य में अच्छा कवि, चित्रकार और लेखक बन सकता है। ये कहानियाँ अधिक लाभदायक होती हैं क्योंकि न केवल वे उसकी कल्पना को विकसित ही करती हैं उसे नैतिक शिक्षण भी देती हैं। यही नहीं वास्तविक नैराश्यमय जगत् से हटा कर थोड़ी देर के लिये विश्राम और आनन्द देती हैं। इस अवस्था पर उसे अपनी माता और पिता का प्रेम नहीं मिलता जितना कि पहले मिला करता था क्योंकि अब उसके दो-तीन छोटे भाई और

[1] believe

बहिनों ने उस घर में हिस्सा बाँट लिया है दूसरे विद्यालय उसे नये साथियों और एक अजनबी प्रौढ़ व्यक्ति के साथ रहना पड़ता है जो उसकी आवश्यकता नहीं समझता। इस नैराश्य-पूर्ण इस जगत् में उसके लिये परियों की कहानियाँ ही विश्राम और शान्ति दे सकती हैं। ड्रेवर का विश्वास है कि परियों के इन किस्सों से बालक का अहित न हो सकेगा क्योंकि प्रौढ़ावस्था प्राप्त होने पर वह स्वयं वास्तविक और काल्पनिक बातों में अन्तर समझने लगेगा।

शिक्षा शास्त्री रस्क का भी यह मत है। "परियों की कहानियाँ मानव की साहित्यिक वंश परम्परा का निर्माण करती हैं और बचपन की अवस्था ही उनको जानने के लिए सबसे अच्छी है जिस समय विश्व की समस्यायें उसको अत्यधिक प्रभावित नहीं करतीं"

मान्टेसरी का मत इन विद्वानों का विरोधी है। उनका विश्वास है कि बालक की शिक्षा में काल्पनिक कहानियों का अत्यधिक प्रयोग किये जाने पर बच्चों में वास्तविक जगत् से भाग कर काल्पनिक जगत् में शरण लेने की लत पड़ जाया करती है। यद्यपि प्रत्येक बालक अद्भुत और विचित्र अप्सराओं तथा देवी-देवताओं की कहानियों को सुनने में विशेष रुचि लेता है। यद्यपि उसके जीवन में एक ऐसा काल आता है जब कि वह कल्पनात्मक विश्वास में विशेष आस्था रखता है। फिर भी मान्टेसरी का यही कहना है कि कल्पना का आधिक्य असंगत है क्योंकि यदि बालक को हर समय कल्पनात्मक विश्वास[1] और कल्पनात्मक कथा-कहानियों में व्यस्त रखा जाता है तो जीवन की वास्तविकता को कैसे समझेगा।

कुछ मनोवैज्ञानिक मांटेसरी की इस बात से सहमत प्रतीत नहीं होते। उनका कहना है कि बालक की शिक्षा उसकी प्रकृति के अनुकूल और मनो-विकास के स्वाभाविक क्रम की अनुगामिनी होनी चाहिये। जिस अवस्था में बालक काल्पनिक कल्पनाओं का आश्रय लेता है उस अवस्था में उसे ऐसा करने दिया जाय। उदाहरण के लिये यदि बालक को किशोर अवस्था में आप उसके मनोराज्य में भ्रमण करने का अवसर नहीं देंगे तो वह प्रौढ़ावस्था में अपनी इच्छाओं की सन्तुष्टि के लिये वास्तविक जगत् से पलायन कर काल्पनिक संसार का निर्माण करेगा और प्रौढ़ावस्था में दिवास्वप्नों में लीन रहने का तात्पर्य होगा व्यक्ति के स्वाभाविक विकास का अवरुद्ध हो जाना। इसलिए किशोरावस्था में अथवा बाल्यावस्था के आरम्भ में कल्पनाओं का दमन न किया जाय क्योंकि यह दमन उसे मनोरोगी, निराशावादी अथवा विक्षिप्त बना देगा। यदि जिस समय कि तार्किक कल्पनाओं का विकास होना चाहिये था उस समय बालक को ऐसी कल्पना के विकास का अवसर न दिया गया तो सम्भवतः वह अनेक प्रकार की कलात्मक कल्पनाओं के लाभ से वंचित रह जायगा। प्रत्येक शिक्षा योजना में ललित कलाओं को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है इसलिये तार्किक कल्पना का जो कलात्मक कल्पना से सम्बन्धित है विकास अपेक्षित है।

इस मतभेद के कारण बीच का मार्ग हमें ठीक जँचता है और वह यह है कि बालक के स्वास्थ्य विकास के लिये कल्पनात्मक विश्वास, और तार्किक कल्पना पर आवश्यकता से अधिक जोर न दिया जाय और वह जब जैसी अवस्था में प्रवेश करे तब और वैसी कल्पना के विकास का प्रबन्ध किया जाय।

रचनात्मक कल्पना के विकास का प्रश्न अत्यन्त सरल है क्योंकि इसका विकास प्रत्येक अवस्था में किया जा सकता है। किन्तु बालक को रचनात्मक कल्पना के उपयुक्त वस्तु सदैव पहुँचाना चाहिये। बालकों में कार्य-कारण और कलात्मक दोनों प्रकार की रचनात्मक कल्पनाओं का विकास किया जा सकता है। वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं, कारखानों, विद्युत उत्पादन स्थलों, कलाकारों का परिदर्शन इस कार्य में विशेष सहायक सिद्ध हो सकता है। इस प्रकार के भ्रमण से स्वच्छ-हार्दिक कल्पना का विकास हो सकता है। यदि विद्यालय के 'करके सीखना' के सिद्धान्त पर चल

[1] Make believe

दिया जाय तो कार्यसाधक कल्पना का उचित विकास हो सकता है। कविताओं, नाटकों उपन्यासों, और कहानियों के लिखने के लिए विद्यार्थियोंको उचित प्रोत्साहन देने, कवि सम्मेलनों, कविता प्रतियोगिताओ और निबंध प्रतियोगिताओ मे भाग लेने से इस उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है। छोटी कक्षाओं मे भी कलात्मक कल्पना का विकास किया जा सकता है। मिट्टी के खिलौने बनवाकर, उन खिलौनों को प्रदर्शिनी मे भेजकर बालको मे अपनी रचना के प्रति आत्मविश्वास की भावना जाग्रत की जा सकती है।

अध्याय २२

चिन्तन, तर्क, और समस्या का हल

(Thinking, Reasoning and problem Solving)

२२.१ प्रत्यक्षीकरण, कल्पना, निरीक्षण आदि मानसिक क्रियाओं की तरह चिन्तन, तर्क और समस्या व हल करने की क्रियाएँ भी मानसिक ही हैं। जैसा पीछे कहा जा चुका है प्रत्यक्षीकरण की मानसिक प्रक्रिया से हमें विचार अथवा प्रत्यय (concepts) मिलते हैं, जो चिन्तन की प्रक्रिया में सहायक होते हैं। इसी प्रकार कल्पना भी चिन्तन में सहायक होती है। यह चिन्तन क्या है? चिन्तन के भेद क्या हैं? चिन्तन, तर्क, और समस्या समाधान का पारस्परिक क्या सम्बन्ध है? बालकों में भिन्न प्रकार की चिन्तन क्रियाओं का कैसे विकास किया जा सकता है? आदि गम्भीर प्रश्नों का उत्तर इस अध्याय में दिया जायगा।

पहले हम चिन्तन के दो महत्वपूर्ण साधनों प्रत्यय (concept) तथा भाषा (language) पर विचार करेंगे?

Q 1 What is a concept? How is concept related to percept? Explainhow concepts are formed in children? Give examples.

२२.२ सामान्य प्रत्यय-स्वरूप—विचार शक्ति जो शिक्षा का एकमात्र आधार है शिशु में एकदम उत्पन्न नहीं होती। विचार और तर्क सर्वोच्च मानसिक प्रक्रियाएँ हैं जिनका विकास अन्य उच्च मानसिक प्रक्रियाओं की तरह क्रमिक नियमित रूप से होता है। इस विकास क्रम में प्रत्ययों का निर्माण होता है। प्रत्ययों[1] की सहायता से सामान्य प्रत्यय बनते हैं। आयु की वृद्धि के साथ न केवल वह सामान्य प्रत्ययों को जानता ही है वरन् एक सामान्य प्रत्यय का दूसरे सामान्य प्रत्यय के साथ सम्बन्ध जोड़ना भी सीख लेता है। इस प्रकार वह धीरे-धीरे और चिन्तन की मानसिक प्रक्रिया के उच्च शिखर पर पहुँचता है।

गम्भीर चिन्तन के लिए हमारे मस्तिष्क में वस्तुओं के बीच सम्बन्ध स्थापित करने वाले स्पष्ट प्रत्यय, यथार्थ सामान्य प्रत्यय, प्रत्यक्ष विचार-धारायें, और भाषा के मुख्य तत्त्व वर्तमान होने चाहिए क्योंकि इनके बिना चिन्तन सम्भव नहीं। प्रस्तुत अनुच्छेद में हम सामान्य प्रत्ययों के निर्माण विधि की व्याख्या करेंगे।

२२.३ सामान्य प्रत्यय किस प्रकार बनते हैं—शिशु का ज्ञान ऐन्द्रिय ज्ञान से आरम्भ होता है। ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता जाता है उसका ऐन्द्रिय ज्ञान प्रत्यक्ष-ज्ञान में परिवर्तित होता जाता है। वह जो कुछ देखता, सुनता, स्पर्श करता, सूघता और चखता है उसका अर्थ समझने लगता है। जब बालक किसी वस्तु को देखता है और उसका अर्थ समझ लेता है तब उसके मन में प्रतिमा-सी बन जाती है। भविष्य में जब कभी उस वस्तु का नाम लिया जाता है शिशु स्मृति के सहारे उस वस्तु का विशेष चित्र अथवा प्रतिमा बनती है यही उस वस्तु का प्रत्यय कहलाता है। प्रत्यय का निर्माण कैसे होता है इसका उल्लेख अध्याय १३ में किया जा चुका है। मान लीजिये कि बालक

[1] Concept

सबसे पहले एक मोटर देखता है उसके देखते ही मोटर का चित्र उसके मन मे अंकित हो जाता है। मोटर शब्द को सुनकर इस विशेष मोटर का चित्र खिच जाया करता है। मोटर का यही प्रत्यय है। प्रत्यय विचार क्रिया के विकास मे पहला चरण है। जब वह अनेक प्रकार के प्रत्ययो का अनुभव करता है, जब एक ही वस्तु का विभिन्न रूपो और विभिन्न निरीक्षण करता है तब उस वस्तु का प्रत्यय विशेष प्रत्यय नही रहता। वह उस प्रत्यय की प्रत्ययों से तुलना करता है। उनकी समानता और भिन्नता का अनुभव करता है। अन्त में सामान्य लक्षणो का विश्लेषण और संश्लेषण करके उनमें एकरूपता का ज्ञान प्राप्त करता है। जब वह उनकी एकरूपता देखकर नामकरण कर लेता है तब उस विशेष प्रत्यय का रूप बदलकर सामान्य हो जाता है। उदाहरणार्थ मान लीजिये इस बालक को किसी बडे शहर में से जाकर ऐसी अनेक प्रकार की मोटरों को देखने का अवसर मिलता है तो उसके मन में मोटर के अनेक प्रत्यय बनते हैं। इन प्रत्ययों की आपस में तुलना करता है। भिन्न-भिन्न प्रकार की मोटरों को देखकर जो प्रत्यय बनते हैं उनमे भिन्नता होते हुए भी कुछ-कुछ समानता दीख पड़ती है। समानता के विशेष लक्षणों को वह अलग कर लेता है। कई प्रत्ययो के बीच समान लक्षणों को अलग करने की क्रिया 'प्रत्याहार'[1] कहलाती है, इस प्रकार जिन पदार्थों में समान गुण होते हैं उनको एक श्रेणी मे रखकर उन सभी गुणों का विश्लेषण और संश्लेषण कर उनमें एकरूपता का अनुभव करता है। इस क्रिया को सामान्यीकरण[2] की क्रिया कहते हैं। जिन-जिन पदार्थों मे वह एक जातीयता, एकरूपता अथवा सामान्यता देखता है उनको एक विशेष नाम देता है। यह नाम देने की क्रिया नामकरण कहलाती है। नामकरण ऐसे शब्दों द्वारा किया जाता है जो उसके अर्थ का बोध कराते हैं' इस प्रकार सामान्य प्रत्ययो के निर्माण की क्रिया पांच पदो में होती है।

(१) निरीक्षण—एक जाति के सभी पदार्थों का अनुभव करना।

(२) तुलना—उन पदार्थों के विभिन्न गुणों का विश्लेषण करना और विभिन्न पदार्थों के समान एवं असमान गुणों की तुलना करना।

(३) प्रत्याहार—समान गुणों को पृथक करना।

(४) सामान्यीकरण—समान गुणो का संयोजन करना।

(५) नामकरण—पदार्थ को विशेष नाम से पुकारना।

जिस शब्द अथवा शब्द समूह से एक ही प्रकार के सभी पदार्थों अथवा गुणों का बोध होता है उसे सामान्य प्रत्यय कहते हैं। इस उदाहरण मे मोटरकार सामान्य प्रत्यय है जिससे बड़ी, छोटी, लाल, पीली, हरी छत वाली सभी मोटरकारों का बोध होता है। सामान्य प्रत्यय से किसी वस्तु, दशा, अथवा परिस्थिति विशेष के विषय में हुये सामान्य विचार प्राप्त होता है। यह विचार उस सार्थक शब्द या शब्द समूह से प्रदर्शित किया जाता है। यही शब्द उसकी भाषा का ढांचा तैयार करते हैं। जैसे-जैसे शब्द-भण्डार बढ़ता जाता है वैसे-वैसे बालक विचार क्रिया के उच्च-शिखर पर चढ़ता जाता है।

२३. सामान्य प्रत्ययों के प्रकार—सामान्य प्रत्यय दो प्रकार के होते हैं—वस्तु बोधक और गुण बोधक। मोटर, पंक्षि, पशु, पर्वत आदि सामान्य प्रत्यय वस्तुओं का बोध कराते है, सुन्दरता, धैर्य, और सौन्दर्य गुण बोधक प्रत्यय है।

बालकों में सामान्य प्रत्ययों का निर्माण—सामान्य प्रत्ययों के निर्माण के लिए, बालक के

---

1. Abstraction.
2. Generalisation.
3. [illegible]

तु का बोध कराते हों अथवा गुण का, पुष्ट संवेदना और स्पष्ट प्रत्यक्षीकरण की आवश्यक ती है। जब तक बालक प्रत्ययों का अनुभव नहीं करता जो उसे संवेदना और प्रत्यक्षीकरण नसिक क्रिया के फलस्वरूप प्राप्त होता है तब तक सामान्य प्रत्ययों का निर्माण नहीं हो सकता ब्दों को रट लेने से ही विचारों का निर्माण नहीं हुआ करता इसके लिये स्पष्ट प्रत्यक्षीकरण वश्यकता है। सामान्य प्रत्ययों के विकास में स्पष्ट प्रत्यक्षीकरण और पुष्ट का ज्ञान वश्यक है ही बच्चों के प्रश्न, उनकी रुचि और अवधान, और मस्तिष्की शारीरिक समन्वय[1] वशेष महत्व रखते हैं।

र तक अवधान केन्द्रित कर सकता है उस पदार्थ का प्रत्यक्ष ज्ञान उसे अधिक स्पष्ट हो जाता है व प्रत्यक्ष ज्ञान पर आधारित प्रत्यय ठीक तरह बन जाते हैं तब सामान्य प्रत्यय भी अधिक स्प हो जाते हैं।

बालक अपने वातावरण की वस्तुओं, दशाओं और परिस्थितियों का ज्ञान प्रश्नों के माध्य से प्राप्त करता है। जिज्ञासा की प्रवृत्ति जो उसे प्रश्न पूछने के लिये उत्प्रेरित करती रहती ३ वर्ष की अवस्था में ही उदय होने लगती है। इन प्रश्नों के उत्तरों से बालक वस्तुओं के वि में अपने विचार बनाता है और अपने प्रत्यक्ष ज्ञान[2] को पक्का करता है।

जब उसमें वस्तुओं के छूने, उठाने, तोड़ने फोड़ने की शक्ति आ जाती है तब उसका प्रत ज्ञान और अधिक बढ़ता है उसको वस्तुओं के चिकनेपन, कठोरता, घुलनशीलता आदि विशेषता का ज्ञान मिलता है। इस प्रकार उसके सामान्य प्रत्यय विकसित होते जाते हैं।

बालकों के सामान्य प्रत्ययों के विकास के सम्बन्ध में एक और बात विशेष रूप से उल्लि करनी है। कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि बच्चों के सामान्य प्रत्ययों का विकास भाषा के स साथ होता है और कुछ विद्वानों का विचार है कि भाषा के विकास से पहले ही सामान्य प्रत का विकास हो जाता है। पहला मत अधिक मान्य है क्योंकि यद्यपि बालक के मन में साम प्रत्ययों का आविर्भाव भाषा विकास से पूर्व होता है फिर भी उसके विकास में पूर्णता तभी आ है जब भाषा का विकास पूर्णता को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार सामान्य प्रत्ययों का विक भाषा के विकास के साथ-साथ चलता रहता है।

२२.५ बालक के जीवन में महत्वपूर्ण प्रत्यय—आयु के बढ़ने के साथ-साथ बालक जिन सामान्य प्रत्ययों का विकास होता है उनका संक्षेप में वर्णन नीचे दिया जाता है प्रत्यय —हैं

- (अ) आत्म[3] सम्बन्धी
- (आ) स्थान[4] सम्बन्धी
- (इ) समय सम्बन्धी
- (ई) आकार और रंग सम्बन्धी
- (उ) संख्या सम्बन्धी
- (ऊ) कार्य और कारण सम्बन्धी

---

[1] Motor Coordination.
[2] Percept.
[3] Self.
[4] Space.

(अ) आत्म—६ माह के शिशुओं को अपने विषय में विचार आने लगते हैं। वे पहले तो बिलकुल धुँधले और अस्पष्ट होते हैं किन्तु समय बीतने पर उनमें स्पष्टता आती है। २ वर्ष की अवस्था में अपने शरीर के अंगों को छूकर, और दर्पण में अपना मुख [illegible] होने लगती है। २½ वर्ष की अवस्था में उसे अपने बाल, मुँह, नाक और कान को संकेत द्वारा [illegible] की क्षमता आ जाती है। ४-५ वर्ष की अवस्था में वह अपने में रुचि लेने लगता है। अपने को दूसरों से अलग समझना, अपने चेहरे को सुन्दर और आकर्षक बनाने का प्रयत्न करना, ऐसी बातें हैं जो दिखलाती हैं कि उसका 'आत्म' का सामान्य प्रत्यय विकसित होता जा रहा है। बाल्यावस्था और किशोरावस्था में उसे न केवल बाह्य आत्म का ही ज्ञान होता है वह आन्तरिक आत्म[2] के विषय में भी अपनी धारणाएँ बनाने लगता है।

(आ) स्थान—बाहर-भीतर ऊपर, नीचे, दायें-बायें इन सामान्य प्रत्ययों के विषय में ज्ञान प्राप्त करने की योग्यता बालक के परिपक्व पर निर्भर रहती है। घर के अतिरिक्त कोई और भी स्थान है अथवा नहीं इसका ज्ञान बालक को तभी होता है जब उसे घर से बाहर ले जाया जाता है। दूरी का ज्ञान भी उसे धीरे-धीरे ही होता है। अनुभव की वृद्धि के साथ दूरी का ज्ञान स्पष्ट होता है। छोटे बच्चे के लिये १ मील दूरी का कोई अर्थ नहीं होता।

(इ) समय—शिशु वर्तमान में रहता है और वर्तमान में ही चिन्तन करता है। जब तक वह ३-४ वर्ष का नहीं हो जाता है 'कल' का सामान्य प्रत्यय उसकी समझ में नहीं आता और कल का अन्तर वह अपनी नींद के आधार पर करता है। ६ वर्ष की अवस्था प्राप्त होने पर दिनों के नाम क्रम से सीख पाता है। समय के बोलने का ज्ञान उसे तब तक नहीं होता जब तक वह घड़ी को देखना नहीं सीख लेता।

स्थान की तुलना में समय सम्बन्धी सामान्य प्रत्ययों के विकास में विलम्ब होने का कारण यह है कि स्थान के विषय में ज्ञान प्राप्त करने में स्पर्श, दृष्टि, और श्रवणेन्द्रियाँ उसकी सहायता करती हैं किन्तु ऐसी कोई सहायता काल के विषय में ज्ञान प्राप्त करने में उसे प्राप्त नहीं होती।

(ई) आकार और रंग—अपनी माँ और अन्य स्त्रियों में अन्तर बालक १ वर्ष की अवस्था तक पहचान नहीं पाता। ३ वर्ष की अवस्था के बाद उसके आकार सम्बन्धी प्रत्ययों का विकास होने लगता है। ४-६ वर्ष प्रधान रंगों को पहचान लेता है।

(उ) संख्या—वस्तु के कम, अधिक, छोटा, बड़ा, होने का ज्ञान ३-४ वर्ष की अवस्था में होता है। इन विशेषणों का प्रयोग बालक अपने बुजुर्गों के मुँह से सुनकर किया करता है। ४-५ वर्ष की अवस्था में १, २, और ३, इन संख्याओं का ज्ञान होने लगता है। यद्यपि १ से १० तक की संख्याएँ वह अच्छी तरह सुना सकता है किन्तु इन अंकों के बीच सम्बन्ध का उसे ज्ञान नहीं होता।

इन सामान्य प्रत्ययों के निर्माण और उचित विकास के लिये यह आवश्यक है कि बालक को यथासम्भव व्यक्तिगत अनुभव प्रदान किये जायें।

१२'६ चिन्तन और प्रत्यय निर्माण (Formation of concepts and thinking)—जैसे-जैसे शिशु में विभिन्न पदार्थों, वस्तुओं और गुण भेदों के प्रत्यय बनते [illegible] जाते हैं वह उनके विषय में सोचना आरम्भ कर देता है, मन में किसी विचार का आना दो सहसम्बन्धित प्रत्यय (related concepts) के कारण होता है। उदाहरण के लिये यदि बालक का समद्विबाहु त्रिभुज (Isosceles Triangle) और कोणों की समानता के दो प्रत्यय अच्छी तरह [illegible] किये जायें तो उनके बीच [illegible] सम्बन्ध होने के कारण मन में यह विचार उत्पन्न होता है "समद्विबाहु त्रिभुज के आधार कोण बराबर होते हैं।"

[illegible]
[illegible]

तरग में मन की उड़ान रहती है, किन्तु अन्य मनोवैज्ञानिकों की कल्पना में उत्पादक ... का प्राधान्य मानते हैं। इसलिए चिन्तन और कल्पना दोनों ही एक दूसरे से सम्बन्धित ... जाती हैं क्योंकि वह क्रिया जिसे हम चिन्तन कहते हैं कल्पना के द्वारा स्पष्ट की ... है और वह क्रिया जिसे हम कल्पना कहते हैं विचारों की सहायता से प्राप्त की जाती है। ... की क्रिया से सम्बन्धित करता हुआ कहता है कि दूरस्थ ... न वस्तुओं का प्रत्यक्ष ज्ञान होता है कल्पना करने समय

यह उत्पादक कल्पना यद्यपि निरर्थक मन की तरग से भिन्न होती है परन्तु फिर भी हमें ...दक कल्पना और मन की तरग इन दोनों में समता दिखाई देती है। क्योंकि अमूर्त विचार ...तेनो के कारण होते हैं। कुछ महान् आविष्कारक और वैज्ञानिकों का अपनी बाल्यावस्था और ...ोरावस्था में मनोराज्य में विहार करना सिद्ध करता है कि मन की तरग से उत्पादक कल्पना ... उत्पत्ति होती है। वास्तविक ससार से व्यथित और उद्विग्न पुरुष अपनी अपूर्णता को काल्पनिक ...र का निर्माण करके पूरा करता है। व्यक्ति किशोरावस्था में नैराश्य के कारण इस तरग-...ी कल्पना में डूब जाता है। व्यक्ति उस समय उचित रीति से मार्ग-निर्देशन मिल जाने पर ...ादक कार्यों में सलग्न रह कर अपना मार्ग प्रशस्त कर लेता है। केवल कुछ भाग्यशाली व्यक्तियों ... उत्पादक विचार शक्ति पर ही अधिकार नहीं है वरन् यह शक्ति उन सबके लिये है जिनके ...स प्रत्यक्ष प्रतिमाओं का एक अच्छा सग्रह है जो आपस में मिली हुई एक रूप हैं।

२१.७ कल्पना और स्मृति — कल्पना की व्याख्या प्रतिमाओं के पुनस्मरण और नवीन ...र्माण के रूप में की जाती है। भिन्न-भिन्न समयों पर हमारे मन पर जो सस्कार पड़ते हैं उनका ... के बल पर होता रहता है वुडवर्थ के मतानुसार कल्पना पूर्व ... से एक नये तत्व की रचना करती है। स्मृति में पूर्व प्राप्त अनु-... पुनस्मरण ही होता है किन्तु कल्पना की मानसिक क्रिया में कुछ ... दिया जाता है। कल्पना में इस प्रकार थोड़ी सी असत्यता अथवा ... अनुभवों को उसी रूप में पुन सगठित नहीं करते जिस रूप में ... इस प्रकार स्मृति से भिन्न शक्ति मानी जाती है क्योंकि स्मृति में ...ुराने अनुभवों की पुनरावृत्ति ही होती है। कल्पना का सम्बन्ध भविष्य से होता है किन्तु स्मृति ...का भूत से कल्पना में प्रत्यक्ष-ज्ञान नये ढग से चेतना के समक्ष आता है स्मृति में प्रत्यक्ष-ज्ञान का पुनस्मरण होता है। किन्तु बिना स्मृति के कल्पना की क्रिया सम्भव नहीं है।

एक प्रकार से कल्पना को स्मृति से आगे की कोई शक्ति माना जा सकता है। क्योंकि वह उदय नहीं होता है जब बालक में अपने अनुभवों को एकत्र करने की शक्ति आ जाती है। जिसमें धारण शक्ति नहीं है वह नई वस्तुओं की कल्पना करेगा भी कैसे ?

वुडवर्थ ने कल्पना को मानसिक कलापूर्ण रचना कहकर पुकारा है। बात भी ठीक है क्योंकि कल्पना करते समय हम पूर्ववर्ती अनुभवों को नया मौलिक रूप देकर इस ढग से प्रस्तुत करते हैं जिस ढग से हमने उसे कभी अनुभव नहीं किया था। हमारा पूर्व अनुभव कल्पना में नवीनता का आधार होता है। इस प्रकार वह मानसिक प्रक्रिया जिसमें पूर्ववर्ती अनुभव का नये ढग से प्रत्याह्वान करते समय नवीनता उत्पन्न कर दी जाती है, कल्पना कहलाती है।[2]

---

1. Imagination is thinking of remote objects-Mac Dougall.
2. Imagination is mental manipulation A product of imagination is composed of parts received at different times and recalled and recombined—Woodworth.

यदि कुछ प्रत्ययों का आपसी सम्बन्ध झूठा हो तो निष्कर्ष गलत निकल सकता है और विचार की क्रिया दोषपूर्ण हो सकती है, अतः अध्यापकों को, चाहे वे गणित पढ़ाने हों अथवा समाज अध्ययन, पहले तो अपने बच्चों को प्रत्यक्ष वस्तु ज्ञान (percept) के आधार पर प्रत्यय अथवा सकल्पना का सुन्दर निर्माण करना चाहिये फिर उनको सोचने के लिये प्रेरित करना चाहिये। इस प्रकार का चिन्तन सकल्पना युक्त चिन्तन (conceptual thinking) कहलाता है।

२२७ सामान्य प्रत्यय और भाषा—सामान्य प्रत्ययों का विकास भाषा के विकास के साथ-साथ होता है दूसरे शब्दों मे यह कहा जा सकता है कि भाषा के बिना प्रत्यय बन नहीं सकते और बिना प्रत्यय के भाषा का निर्माण नहीं हो सकता।

जब हम किसी सामान्य प्रत्यय का निर्माण अपने प्रत्यक्ष अनुभवों के विश्लेषण के आधार पर करते हैं तब शब्दों की सहायता से ही उसकी अभिव्यक्ति करते हैं। उदाहरणस्वरूप उदारता, धैर्य और शूरता आदि गुण बोध व सामान्य प्रत्ययों का अर्थ ही स्पष्ट नहीं हो सकता जब तक हम भाषा का प्रयोग न करें। इस प्रकार भाषा सामान्य प्रत्ययों के निर्माण के लिये आवश्यक है। यदि हमारे पास उचित शब्द-भण्डार नहीं है तो अपने विचारों को हम ठीक तरह से व्यक्त नहीं कर सकते।

यह भाषा और सामान्य प्रत्यय, जिनको बनाने मे वह सहायक होती है दोनों ही चिन्तन क्रिया के मुख्य साधन हैं। अतः यदि बालक मे शुद्ध ज्ञान पैदा करना है तो व्यक्तिगत अनुभव को बढ़ाने के साथ-साथ शब्द-भण्डार को भी विस्तृत करना होगा। भाषा विचारों को प्रगट करने का प्रमुख साधन है लेकिन शब्द-ज्ञान विचारों के प्रगटीकरण में बाधक हो जाता है।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि चिन्तन करते समय हमें उपयुक्त भाषा नहीं मिलती। किसी विचार को व्यक्त करने के लिये सर्दैव उपयुक्त शब्द मिल जाय यह असम्भव है।

Q 2. Explain the chief characterstics of thinking by children, what use can you make of these in the development of thinking in them

२२८ बालकों के चिन्तन के स्तर—बालकों की चिन्तन क्रिया प्राय तीन स्तरों पर होती है—

(अ) प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक स्तर पर (Perceptual Level)।

(आ) कल्पनात्मक स्तर (Imaginative Level)।

(इ) सामान्य प्रत्ययात्मक स्तर पर (Cnceptual Level)।

प्रत्यक्ष ज्ञानात्मक स्तर—शिशुओं का चिन्तन पहले अपने सामने उपस्थित पदार्थों से सम्बन्ध रखता है। वे उन्हीं वस्तुओं के विषय मे सोचते हैं जिन वस्तुओं के विषय में अपनी आँखों से देखते या सुनते हैं अथवा किसी अन्य प्रकार का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करते हैं उन्हीं के विषय में वे सोचने लगते हैं। वे वस्तुएँ ही उनके लिये समस्या उत्पन्न करती हैं। अनुपस्थित वस्तुओं के विषय में चिन्तन करने के लिये व्यक्ति को शब्दों की आवश्यकता पड़ती है और चूंकि ये शब्द शिशु के पास नहीं होते इसलिये उसका चिन्तन प्रधानतः प्रत्यक्षात्मक ही होना है।

कल्पनात्मक स्तर—चिन्तन का दूसरा स्तर कल्पनात्मक होता है। बालक मे कल्पनाओं का प्राधान्य होता है अत वह कल्पनात्मक चिन्तन का आश्रय लेता है। पुराने अनुभवों को प्रतिमाओं के रूप के मानस पटल पर लाना, इन प्रतिमाओं को विशेष शब्द अथवा शब्द-समूहों से सम्बन्धित करना एक प्रतिमा से दूसरी प्रतिमा को [illegible] लाता है। प्रायः
[illegible] लक इन पदार्थों
[illegible] प्रतिमाएँ और
[illegible] चिन्तन क्रिया में
सहायता देता है। जब-जब बालक का मानसिक विकास होता जाता है वह प्रत्यक्षात्मक और कल्पनात्मक विचारों का प्रयोग कम करता जाता है और प्रत्ययात्मक चिन्तन का प्रयोग अधिक करता जाता है।

सामान्य प्रत्ययात्मक स्तर—भाषा और बुद्धि के पूर्ण विकास होने पर उसका चिन्तन सामान्य प्रत्ययात्मक रूप ग्रहण कर लेता है। १५-१६ वर्ष की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते बालक उन सभी सामान्य प्रत्ययों का प्रयोग करने लगता जिनका प्रयोग साधारणतः प्रौढ़ व्यक्ति किया करते हैं।

बाल चिन्तन की अन्य विशेषताएँ—इस प्रकार चिन्तन का विकास अन्य विकासों की तरह क्रमिक होता है। बाल चिन्तन की अन्य विशेषताएँ नीचे दी जाती हैं।

(क) आत्म केन्द्रित—३-७ वर्ष की आयु में चिन्तन पूर्णतया आत्म-केन्द्रित रहता है। इस आयु-स्तर के बालक केवल अपने विषय में ही सोचते हैं *अन्य व्यक्तियों के विषय में नहीं।*

(ख) सर्वात्मवादी—इस आयु में वे सभी वस्तुओं को सजीव समझते हैं, बड़े होने पर इस प्रकार की प्रवृत्ति का ह्रास हो जाता है।

(ग) तार्किक-एक रूपता का अभाव—बाल चिन्तन तार्किक नहीं होता।

(घ) चिन्तन का स्वरूप सरल और साधारण होता है।

(ङ) आन्तरिक भाषण की प्रधानता—चिन्तन करते समय उनके बोलने की प्रवृत्ति देखी जाती है।

Q. 3 What do you mean by the term 'Reasoning.? How does reasoning ability develop in children ? Trace the development from infancy to adolescence.

२२६ तर्क और चिन्तन एवं तर्क क्रिया और तर्क शक्ति—यह जटिल मानसिक क्रिया है जिसका उपयोग उत्पादक विचार-क्रिया अथवा समस्या-समाधान में होता है। वुडवर्थ के शब्दों में तर्क मानसिक अन्वेषण की क्रिया है[1]। किसी समस्या का हल ही इस अन्वेषण का लक्ष्य होता है। यह खोज होती है उस सम्बन्ध की जो साध्य और साधन से ढूँढ़ा जा सकता है। किसी प्रमेय का हल ढूँढ़ने समय विद्यार्थी इस मानसिक अन्वेषण की क्रिया का आश्रय लेता है। वह जो कुछ सिद्ध करता है और जो दिया है इन दो बातों के बीच सम्बन्ध ढूँढ़ता है।

तर्क शक्ति को समस्याओं के हल ढूँढ़ने के लिये मन्त्रवत् प्रयोग में लाया जाता है। जिस समय हम अपने पूर्व अनुभवों को संगठित करके नया रूप देते हैं तब इसी तर्क शक्ति का उपभोग करते हैं। तर्क करने की क्रिया उस समय आरम्भ होती है जिस समय गत अनुभव के आधार पर नये ज्ञान की खोज की जाती है और जिससे हमारे उद्देश्य की पूर्ति होती है। इस क्रिया में व्यक्ति साधारणतः दो कार्य करता है।

(अ) गत अनुभवों एवं नये ज्ञान के बीच सम्बन्धों का प्रत्यक्षीकरण।

(ब) उपयुक्त साधनों का प्रयोग।

समस्या के समाधान में तर्क शक्ति के अतिरिक्त सूझ और अवबोधन भी हमारी सहायता करते हैं।

तर्क शक्ति का विकास—यदि बालक की तर्क शक्ति का विकास इसी अवस्था में कर दिया जाय तो वह जीवन की प्रत्येक समस्या का हल ढूँढ़ने की सामर्थ्य पैदा कर लेगा। इसलिये बालक की शिक्षा में तर्क शक्ति के विकास पर भी शिक्षक को विशेष ध्यान देना है। यहाँ पर उसे यह याद रखना है कि मनोविज्ञान उसको किसी प्रकार की विधि का ज्ञान प्रदान नहीं कर सकता जो प्रयोज्य और व्यावहारिक हो। बालकों में तर्क शक्ति का विकास चाहने वालों को स्वयं परिश्रम करना होगा।

अन्य शक्तियों और प्रवृत्तियों की भाँति तर्क शक्ति का विकास क्रमिक होता है। इस शताब्दी के आरम्भ में यह सोचा जाता था कि तर्कशक्ति बालक में एक विशेष अवस्था प्राप्त होने पर ही विकसित हो जाती है उससे पहले वह ज्ञान के कुछ अंशों को याद करने और

[1] ... is a mental exploration—Wordworth.

दक्षताओं को सीखने की क्षमता मात्र रखता है किन्तु आधुनिक मनोवैज्ञानिक अपने प्रयोगों के आधार पर इस मत का खण्डन करता है

प्रयोगात्मक साक्ष्य के आधार पर यह निश्चिय पूर्वक कहा जा सकता है कि तर्क शक्ति का विकास ३-४ वर्ष की अवस्था से ही आरम्भ हो जाती है। ३-४ वर्ष की अवस्था के बालकों में साधारण बातों को समझने की शक्ति होती है किन्तु उन बातों को अपने शब्दों में प्रगट नहीं कर सकते। उदाहरणार्थ वे भली भाँति समझते हैं कि यदि वे अपने खिलौने को जमीन पर फेंक दे या तोड़ डाले तो उनकी माता क्रुद्ध हो जायगी। इस अवस्था में ही वे वैसा ही आचरण अथवा व्यवहार का प्रदर्शन करने के लिये तैयार हो जाते हैं जैसा कि उनके माता-पिता उनसे आशा करते हैं। कुछ प्रयोगों के आधार पर यह भी कहा जा सकता है कि इस आयु में सिद्धान्तों को स्वयं ढूँढ निकालने और उनको नई अवस्थाओं में लागू करने की शक्ति उनमें आ जाती है। किन्तु उनके विचारों में प्रौढ़ व्यक्तियों के विचारों की सी परिपक्वता नहीं होती। यह परिपक्वता आयु की वृद्धि के साथ आती है।

६-१२ वर्ष के बालकों के तर्क करने की प्रक्रिया और प्रौढ़ व्यक्तियों के तर्क करने की प्रक्रिया में विशेष अन्तर नहीं होता। उसका हल में केवल अनुभवों की कमी और विचार शक्ति की अपरिपक्वता होती है। किसी समस्या का हल निकालते समय उसका सीमित ज्ञान और अनुभव उसकी तर्क क्रिया में बाधा पहुँचाता है। जब वह किसी समस्या को हल करना आरम्भ करता है तब उस समस्या के रूप को स्पष्टतः नहीं समझता और उससे क्या परिणाम निकाले जा सकते हैं यह भी उसे स्पष्ट ज्ञात नहीं होता। यद्यपि छोटे बच्चे समस्या का हल ढूँढने में इतने परिपक्व नहीं होते जितने कि प्रौढ़ पुरुष तब भी उनके विचार काफी तार्किक और उनके व्यवहार काफी तर्क सगत होते हैं। वे अपरिचित और एक दम नई परिस्थिति में पड़कर लगभग वैसी ही गलतियाँ करते है जैसी कि प्रौढ़ व्यक्ति किया करते हैं।

किशोरावस्था में पहुँचकर तर्क शक्ति में परिपक्वता आने लगती है, तर्क शक्ति अधिक विकसित होने लगती है। तर्क शक्ति के इस क्रमिक विकास को देखकर आधुनिक शिक्षा मनोवैज्ञानिक प्राइमरी कक्षाओं से ही बालकों में तर्क शक्ति के विकास के लिये समस्यापूर्ण परिस्थितियों को हल करने की प्रेरणा देने का आदेश देते हैं। उनका मत है कि शिक्षकों को इसी आयु स्तर में नियमित शिक्षण द्वारा तर्क शक्ति में सुधार लाने का प्रयत्न करना चाहिये। समस्या को हल करने की योग्यता के विकास के लिये प्रशिक्षण की उसी प्रकार आवश्यकता है जिस प्रकार अन्य दक्षताओं को सीखने के लिये। जिस प्रकार सीखने के लिये उत्साह, प्रेरणा और अभ्यास की आवश्यकता होती है उसी प्रकार तर्क करने की क्रिया में उत्साह, प्रेरणा और अभ्यास की जरूरत होती है।

Q. 4 Differentiate between Inductive and Deductive Reasoning processes Give examples.

२२·१० तर्क शास्त्र के अनुसार चिन्तन के प्रकार—तर्क शास्त्र के अनुसार चिन्तन दो प्रकार का होता है—निगमनात्मक और आगमनात्मक। जब किसी सामान्य प्रत्यय अथवा सिद्धान्त को विशेष प्रकार के अनुभवों को समझाने में काम में लाया जाता है तब चिन्तन का रूप निगमनात्मक किन्तु जब किसी विशेष प्रकार के अनुभवों से सामान्य व्यापक सिद्धान्त की खोज करने का प्रयत्न किया जाता है तब चिन्तन का रूप अन्वेषणात्मक अथवा आगमनात्मक होता है।

हम अपने चिन्तन में जिन सिद्धान्तों को काम में लाते हैं, वे सिद्धान्त ... हम स्वानुभूति के आधार पर अथवा दूसरों से सुनकर निश्चित कर लेते हैं। ...नुभवियों, महापुरुषों के सूत्र, आदि बातों को ...त्मक चिन्तन के लिये इन सिद्धान्तों का ज्ञान ... अर्थ है निष्कर्ष। ...लेने पहले वाक्य में ... निष्कर्ष पर हम पहुँचते

१. देशद्रोही अविश्वसनीय व्यक्ति होता है।

२. वह देशद्रोही है अतः उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। निगमनात्मक चिन्तन के लिये सिद्धान्त और सूत्रों का ज्ञान अपरिमित मात्रा में होना चाहिये क्योंकि जो व्यक्ति जितने ही अधिक व्यापक सिद्धान्तों का ज्ञान रखता है वह निगमनात्मक चिन्तन में उतना दक्ष हो सकता है।

आगमनात्मक चिन्तन का उद्देश्य व्यापक सिद्धान्त का अन्वेषण होना है। जब हम किसी भारी वस्तु को पानी मे डालते हैं तो उसका भार घट जाता है। यदि हम यह नहीं समझ पाते कि पानी में किसी वस्तु का भार किस नियम के अनुसार कम हो जाता है तब और प्रयोग करते हैं। विभिन्न आकार और भार की वस्तुओं को पानी और हवा मे तोलते हैं। इस वस्तु के भार में कमी और वस्तु के घनत्व का सम्बन्ध खोज निकालते हैं। इस प्रकार का चिन्तन आगमनात्मक होता है। इस चिंतन का अन्त सिद्धान्त निकालने में होता है।

आगमनात्मक चिन्तन मे हम निम्नलिखित पाँच क्रियाएँ करते हैं—

(अ) प्रदत्तों का एकत्रीकरण।

(ब) उनका वर्गीकरण।

(स) परिकल्पनाओं अथवा अनुमानों का निर्माण।

(द) परिकल्पनाओं की परीक्षा और उचित परिकल्पना की सत्यता का प्रमाणीकरण।

(य) नियम-निर्धारण।

Q. 5 What do you mean by 'Problem solving ? What part dcs Trial and Eror and 'Insight' take in solving a problem ? Explain with examples.

२२·११ चिन्तन और समस्या का समाधान—'चिन्तन' शब्द का प्रयोग कई अर्थों मे होता [illegible] आदि सभी अर्थों मे करते हैं [illegible] ढूँढने समय होता है। [illegible] जिसमे पड़कर व्यक्ति की पुरानी अभ्यस्त कार्य-प्रणाली असफल हो जाती है और उसे सुलझाने के लिए नई कार्य-प्रणाली अपनानी पड़ती है। व्यक्ति किसी उद्देश्य की प्राप्ति करना चाहता है कि उस उद्देश्य तक पहुँचने के लिए पूर्व-परिचित स्पष्ट रास्ता नजर नहीं आता। उस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए उसे नया रास्ता ढूँढना पड़ता है। जब यह मार्ग ढूँढ लिया जाता है तब वह समस्या का हल पा लेता है भले ही वह हल सबसे उत्तम हल न हो। चिन्तन की कोई ऐसी परिभाषा नहीं दी जा सकती जो पूर्णतया सन्तोषजनक हो। केवल इतना कहा जा सकता है कि चिन्तन की क्रिया उस समय आरम्भ हो जाती है जिस समय कोई समस्या उत्पन्न हो जाती है।

समस्या के उपस्थित होते ही हम उस, समस्यापूर्ण परिस्थिति से दूर होना चाहते हैं। ऐसा करने के लिए हम प्रयास और त्रुटि का आश्रय लेते हैं अथवा अन्तर्दृष्टि के सहारे हल ढूँढ लेते हैं। कभी-कभी बिना सीखे हुए कार्यों और आदतों के अनुसार हल ढूँढ लिया जाता है। जब हमारी साइकिल चलना बन्द कर देती है तो उस समस्यापूर्ण परिस्थिति से बचने के लिए कई तरीके अपनाते हैं। पहले स्मृतियों और अनुभूतियों का प्रयोग करते हैं, गत अनुभवों के साथ-साथ भाषा का भी प्रयोग करते हैं। इस प्रकार चिन्तन में हमें वह मानसिक अन्वेषण करना पड़ता है जिसका उल्लेख पीछे किया जा चुका है। मानसिक अन्वेषण का यह कार्य किसी न किसी लक्ष्य को ध्यान मे रखकर किया जाता है। इस प्रकार विचार क्रिया मे लक्ष्य का उदय, लक्ष्य प्राप्ति के लिए प्रारम्भिक चेष्टा, पुराने अनुभवों का स्मरण, उन अनुभवों और स्मृतियों का इस लक्ष्य प्राप्ति में प्रयोग और आन्तरिक भाषण ये पाँच पद सामान्यतः उपलब्ध होते हैं। उदाहरण के लिए जिस समय चलते-चलते साइकिल सवार की साइकिल के पहिये घूमना बन्द कर देते हैं उस समय लक्ष्य प्राप्ति का उदय होता है। वह चाहता है कि किसी तरह साइकिल चलना आरम्भ

कर दे। वह पहिये को इधर-उधर घुमाता है। पूर्ण परिस्थिति की परीक्षा करता है। कई प्रकार के प्रयत्न करता है। कई उपायों को सोचना आरम्भ कर देता है। गत अनुभवों को प्रयुक्त करता है। जब देखता है कि पहिया जाम हो गया है और कोन पर गोलियाँ कम गयी हैं तो पहिये को उल्टा चलाता है और तेल की कुप्पी में से थोड़ा-सा तेल उसमें डाल देता है और पहिया चलने लगता है ऐसा करने से पूर्व उसके मस्तिष्क में हल-चल मची रहती है तब वह आन्तरिक भाषण भी करता है। इसी भाषण के सहारे विचार क्रिया उस समय तक चलती रहती है जिस समय तक पहिया ठीक तरह से घूमना आरम्भ नहीं होता। आन्तरिक भाषण और समस्या का विश्लेषणात्मक परीक्षण उस समय भी होता है जिस समय कोई समस्या मौखिक रूप से व्यक्ति के सम्मुख प्रस्तुत की जाती है।

समस्यापूर्ण परिस्थितियों में से कुछ परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं जिनका समाधान हमारे दैनिक और व्यावहारिक जीवन के लिए आवश्यक होता है और शेष ऐसी होती हैं जिनमें हमारी उत्सुकता शान्त होती है। पहली प्रकार की समस्याएँ व्यावहारिक और दूसरी प्रकार की समस्याएँ बौद्धिक कहलाती हैं, बौद्धिक समस्याओं में चिन्तन की प्रक्रिया ठीक उसी प्रकार चलती हैं जिस प्रकार ऊपर दी गयी व्यावहारिक समस्याएँ। समस्या के हल करने के तरीके में अन्तर उसकी कठिनाई के अनुसार पैदा होता है। इसके अतिरिक्त समस्या के हल करने वाले की योग्यता और बौद्धिक स्तर के अनुसार भी उसके हल करने के तरीकों में अन्तर आ जाया करता है।

अब प्रश्न यह है कि समस्यापूर्ण परिस्थिति के उत्पन्न होने और हल के ढूँढ लेने के बीच कौन-कौन-सी क्रियाएँ हो सकती हैं।

समस्या के हल में त्रुटि और प्रयास का महत्व—त्रुटि और प्रयास की विधि कोई प्राणी उस समय अपनाता है जिस समय उसे किसी लक्ष्य की प्राप्ति करनी होती है। जिस समय वह 'प्रयास और त्रुटि' विधि को अपनाता है उस समय न तो किसी प्रकार की योजना का निर्माण करता है और न सब प्रकार की सूचनाएँ और गत अनुभवों को लक्ष्य की प्राप्ति में प्रयोग करता है। प्रयास और त्रुटि के विषय में अलक्जेण्डर बेन ने कहा था कि सभी कठिनाइयों के उपस्थित होने पर ऊँचे से ऊँचे बौद्धिक स्तर का व्यक्ति भी त्रुटि और प्रयास द्वारा समस्या-समाधान करता है।[1] पिल्सबरी ने भी तर्क की क्रिया को विचारात्मक त्रुटि और प्रयास की क्रिया माना था। इस प्रकार चिन्तन में त्रुटि और प्रयास का महत्व सभी मानते हैं। 'त्रुटि और प्रयास' की विधि से समस्या समाधान पर किये गये प्रयोगों से जो निष्कर्ष निकाले गये हैं उनमें से कुछ निष्कर्ष नीचे दिये जाते हैं—

(१) समस्याओं के हल करने में मनुष्य जिस प्रकार के 'प्रयास और त्रुटि' का प्रयोग करता है उसमें समय का दुरुपयोग नहीं होता और न यह विधि प्रज्ञावान् मानव के लिए अनुपयुक्त ही है।

(२) 'प्रयास और त्रुटि' से समस्या के समाधान के उन उपायों का निरसन हो जाता है जो ऊपर से तो ऐसे प्रतीत होते हैं कि समस्या के हल में सहायक होंगे किन्तु भीतर से बिल्कुल व्यर्थ होते हैं।

(३) प्रयास और त्रुटि से सूचनाएँ मिलती हैं जो समस्याजनक परिस्थिति के परीक्षण मात्र से नहीं मिल सकतीं।

(४) 'प्रयास और त्रुटि' की विधि प्राणी को कुछ न कुछ करने की मूलप्रवृत्यात्मक प्रवृत्ति को सन्तुष्ट करती है और समस्या के हल करने वाले को निष्क्रिय होने से रोकती है।

समस्या समाधान में अन्तर्दृष्टि का महत्व—'प्रयास और त्रुटि' की विधि से किसी समस्या का हल तब तक नहीं होता जब तक त्रुटियों को चैक करने का कोई तरीका समस्या समाधान करने

---

[1] "In all difficult operations for purposes or ends, the rule of trial and error is the grand and final resort"—Bain.

वारो व्यक्ति के पास नहीं हो। जिन त्रुटियों के करने से उसे सफलता अथवा पुनर्योग नहीं मिलता उनको वह त्याग देता है और समस्या को हल करने का ठीक तरीका ढूंढ लेता है; किन्तु यहाँ पर यह पूछा जा सकता है कि क्या वह समस्या और उसके हल के बीच जो सम्बन्ध है उसको प्रत्यक्ष ज्ञान भी प्राप्त करता है अथवा नहीं। दूसरे शब्दों मे क्या प्राणी को अपनी सफलता के मार्ग मे पड़ी हुई रुकावटों और लक्ष्यों की प्राप्ति मे सहायक तत्वों का प्रत्यक्षीकरण होता है। थार्नडाइक ने १८६८ मे अपने प्रयोगों के आधार पर यह कहा था कि साधन और साध्य के बीच सम्बन्ध को समस्या का हल करने वाली नहीं जान पाती। १६१६ परकोज ने चिम्पैंजी की कार्य पद्धति में अन्तर्दृष्टि का प्रमाण पाया[1] उसके चिम्पैंजी सही तरीके को याद रख सके साथ ही साथ उनका प्रयोग अन्य परिस्थितियो मे भी कर सके। कोहलर को १६१७ और १६२४ मे इसी प्रकार की समस्या समाधान अन्तर्दृष्टि के प्रयोग के प्रमाण मिले। रूगर ने मनुष्यों में भी समस्या का हल करते समय इसी प्रकार की अन्तर्दृष्टि के प्रमाण प्राप्त किये। जिस प्रकार पजिल बक्स (समस्या पूर्ण सन्दूक) मे से बाहर निकलने के लिये बिल्ली कुछ ही प्रयास और त्रुटियो के बाद रास्ता ढूंढ लेती है उसी प्रकार मनुष्य भी किसी समस्या के उस अंश का प्रत्यक्षीकरण कर लेता है जहाँ उसे सफलता मिलती है। इसको रूगर पश्चवर्ती अन्तर्दृष्टि के नाम से पुकारता है। यह पश्चवर्ती अन्तर्दृष्टि अगले प्रयास के लिये पूर्ववर्ती है और अन्य अनावश्यक प्रयास और त्रुटियो का निरसन कर देती है।

समस्या के समाधान मे अन्तर्दृष्टि भिन्न-भिन्न अंशों और स्तरों पर आती है। डन्कर ने १६३५ मे बतलाया कि किसी समस्या को हल करते समय व्यक्ति निम्न स्तर की अन्तर्दृष्टि उस समय प्रयोग मे लाता है जब वह पहले सीखे हुए सिद्धान्त नई समस्या हल करने में लाता है और जब वह उस सिद्धान्त का कारण ढूंढ लेता है तब उच्च स्तर की अन्तर्दृष्टि का प्रयोग करता है. वर्दीमीयर निम्न स्तर की अन्तर्दृष्टि को अन्तर्दृष्टि नहीं मानता। सच्ची सूझ वर्दी मीयर के मतानुसार उस समय आती है जिस समय समस्या समाधान करने वाला व्यक्ति परिस्थिति का पूर्ण निरीक्षण स्वय करता है और सूत्रो और सिद्धान्तों का विशेष प्रयोग नही करता। गत अनुभव वर्तमान अन्तर्दृष्टि मे उसी समय सहायक प्रतीत होता है जिस समय वह स्वयं अन्तर्दृष्टि पूर्ण होता है।

---

1 Reinforcement.

2 Productive Thinking—N. Y. Harper.

अध्याय २३

व्यक्तित्व–स्वरूप विकास और मापन

✓Q. 23.1 What is your concept of personality ? Discuss its nature.

प्रथम अध्याय मे शिक्षा के स्वरूप और उद्देश्य की व्याख्या करते हुए कहा गया था कि शिक्षा वह प्रगतिशील विकास की प्रक्रिया है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति अपने भौतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक वातावरण मे अनुकूलन स्थापित करता है। यह प्रक्रिया व्यक्ति के सर्वांगीण विकास को अपना चरम उद्देश्य मानकर चलती है। जो शिक्षा व्यक्तित्व के विकास मे सहायक नहीं होती वह वास्तव मे शिक्षा नही कहा जा सकती। शिक्षा मनोविज्ञान शिक्षक को व्यक्तित्व के विकास के आधारभूत नियमों से परिचित कराता है। यह व्यक्तित्व क्या है ? इसका विकास किस किस प्रकार होता है ? समुचित विकास के लिये अध्यापक क्या योगदान कर सकता है ? यदि बालक के व्यक्तित्व का समुचित विकास हुआ है तो किस मात्रा तक हुआ है ? व्यक्तित्व-मापन की विधियाँ क्या हैं ? यदि व्यक्तित्व का विकास उचित प्रकार से नहीं हुआ है अर्थात् यदि बालक मे अपने भौतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक वातावरण के साथ अनुकूलन स्थापित न कर सकने के कारण अपचारिता, भावनात्मक संघर्ष, मानसिक संघर्ष, कुण्ठाएँ और तनाव उत्पन्न हो गये हैं तो इनका निराकरण कैसे किया जा सकता है ? प्रस्तुत एवं अगले अध्यायों मे इन प्रश्नों की व्याख्या की जायगी।

२३'२ व्यक्तित्व का स्वरूप (Nature of Personality)

साधारण बोलचाल की भाषा मे व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग कई अर्थों मे होता है। जिस व्यक्ति का डीलडौल, मुखाकृति, रूपरंग, और वेशभूषा अच्छी होती है उसे अच्छे व्यक्तित्व वाला व्यक्ति कहते हैं। जो व्यक्ति अपनी बोलचाल और शिष्टाचार से हमें प्रभावित कर देता है वह भी अच्छे व्यक्तित्व वाला कहलाता है, जिसके आचरण मे निरालापन और अनन्यरूपता होती है वह व्यक्ति भी व्यक्तित्व वाला कहलाता है। यह व्यक्तित्व ही है जो एक व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति से भिन्न बना दिया करता है। साधारण बोलचाल की भाषा मे व्यक्तित्व शब्द के इन अनेक अर्थों के प्रयोग का कारण इस शब्द के इतिहास के पीछे छिपा हुआ है।

व्यक्तित्व (Personality) शब्द का उद्गम लैटिन भाषा के परसनेयर शब्द से माना जाता है। परसनेयर (Personare) का अर्थ है ध्वनि करने वाला, इसलिये परसनेलिटी शब्द वेष बदलते हुए किसी पात्र की प्रभावशाली ध्वनि को अभिव्यक्त करना है। कुछ समय के बाद परसनेलिटी का सम्बन्ध 'परसोना' (Persona) से जोड़ा गया। परसोना का अर्थ था झूठा दिखावा। ग्रीक थियेटरो मे पात्रजन मुख पर एक विशेष प्रकार के आवरण को पहनकर ऐसी आवाज का प्रयोग करते थे जो श्रोताओं एवं दर्शकों को प्रभावित कर सकती थी। उस समय दर्शकों को प्रभावित करने की शक्ति अभिनेता का व्यक्तित्व माना जाता था। इस प्रकार व्यक्तित्व का अर्थ उन गुण दोषों से स्थापित किया गया जिसके द्वारा पात्र अपने दर्शकों को प्रभावित करता था। बाद मे जब परसोना का सम्बन्ध पात्र से स्थापित किया गया तब परसनैलिटी को व्यक्ति का चरित्र समझा जाने लगा। व्यक्तित्व से साधारणतः हम निम्नलिखित दो अर्थ निकाला करते हैं। एक ओर वह व्यक्ति मे उसके शारीरिक सौन्दर्य आदि गुण, के कारण दूसरों को आकर्षित करने की योग्यता को उसके व्यक्तित्व में समाविष्ट करता है दूसरी ओर व्यक्ति के चारित्रिक गुणों को भी व्यक्तित्व के गुण मान कर चलता है। किन्तु एक मनोविज्ञ के लिये व्यक्तित्व न तो केवल बाह्य प्रदर्शन मे ही अन्तर्निहित है और न केवल आन्तरिक गुणों मे ही।

व्यक्ति के व्यक्तित्व में हम साधारणतः दो बातें सम्मिलित करते हैं :—

(अ) उसके समस्त गुण, शारीरिक और मानसिक विशेषताएँ, उसकी रुचि और स्वभाव जो कुछ उसके पास है।

(ब) व्यक्ति के व्यवहार का सम्पूर्ण ढाँचा जो सामाजिक एवं भौतिक जगत के साथ अन्त क्रिया करने के फलस्वरूप निर्मित होता है और जिसके कारण व्यक्ति के कार्य करने के ढंग और चिन्तन करने की शैली में निरालापन आ जाता है।[1]

आधुनिक मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व में व्यक्ति की उन सब विशेषताओं और आचरणों को सम्मिलित करता है जो समाज के साथ सम्पर्क रखने के फलस्वरूप उसमें बनते रहते हैं। ये विशेषताएँ अथवा विशिष्ट आचरण जब स्थायीरूप से उसमें पायी जाने लगती हैं तब वे उसके व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण अंग बन जाती हैं। उदाहरण के लिये ईमानदारी दृढ़ता संवेगात्मक स्थिरता खिन्नता, उदासीनता, उदारता और साहस आदि कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जिनके व्यक्ति में होने पर निरालापन आ जाता है। आलपोर्ट का भी यह मत है। वह कहता है "व्यक्तित्व व्यक्तियों की उन मनोदैहिक विशेषताओं का गत्यात्मक संगठन है जो वातावरण के साथ उनके अपूर्व अभियोजन को निर्धारित करती है।"[2]

आलपोर्ट की इस परिभाषा में जो उसने व्यक्तित्व की लगभग ५० प्रचलित परिभाषाओं के आधार पर तैयार की थी व्यक्तित्व के विकास में वातावरण के साथ व्यवस्थापन पर जोर दिया गया है। व्यक्तित्व किसी व्यक्ति की आदतों अभिवृत्तियों और विशेषताओं का एक अपूर्व प्रतिरूप (pattern) है प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व एक गत्यात्मक संगठन है क्योंकि वह निश्चित और स्थायी नहीं है। वह सदा निश्चित और स्थाई होता यदि उसके निर्धारण में वंशपरम्परा का ही अधिक हाथ होता लेकिन ऐसा नहीं है। वंशपरम्परा का व्यक्तित्व के विकास में कुछ सहयोग होता है किन्तु बहुत कम। व्यक्ति के प्रतिदिन के अनुभव, आदतें, अभिवृत्तियाँ और विशेषताएँ वातावरण के सम्पर्क में आकर बदलती रहती हैं और उसके व्यक्तित्व में परिवर्तन होता रहता है। व्यक्तित्व बदलता है— तथा यह शिक्षक के लिये विशेष महत्व रखता है।

डेशील का कहना है, "व्यक्तित्व व्यक्ति की उन प्रतिक्रियाओं का संगठन और व्यवहारों का समायोजित संकलन है जिसको व्यक्ति अपने साथियों के सम्पर्क में आकर प्रदर्शित किया करता है।"

इस व्यक्तित्व की अभिवृत्ति कैसे होती है? वुडवर्थ कहता है, "व्यक्तित्व व्यक्ति के व्यवहार की वह व्यापक विशेषता है जो उसके विचारों और उनको प्रगट करने के ढंग से उसकी अभिवृत्ति और रुचि से, कार्य करने के उसके ढंग से तथा जीवन के प्रति उसके दार्शनिक दृष्टिकोण से प्रगट होती है।" इस प्रकार मनुष्य के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति उसके व्यवहार से उसकी सामाजिक प्रतिक्रियाओं से, उसके कुटुम्ब, अपने व्यवसाय एवं पड़ोसियों के प्रति कर्तव्य सम्बन्धी दृष्टिकोण से होती है। इसलिये व्यक्तित्व को हम एक महत्वपूर्ण सामाजिक प्रत्यय मान सकते हैं।

रेक्सरौस भी यही बात कहता है। वह व्यक्तित्व को सामाजिक मान्यताप्राप्त गुणों का समूह मानता है।

उपर्युक्त विवेचन से व्यक्ति के व्यक्तित्व के विषय में हम निम्नलिखित तीन मुख्य तथ्यों पर पहुँचते हैं—

(१) प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व एक अपूर्व इकाई है क्योंकि जब वह अपने भौतिक और सामाजिक वातावरण के साथ समंजन स्थापित करता है तब यह समंजन ऐसा अपूर्व होता है कि वह दूसरों से समान होते हुए भी उसमें भिन्नता और निरालापन दिखाई देता है।

[illegible] 'ividual of those [illegible] to the environ-

[illegible] id reaction possi- [illegible] is the sum total [illegible] ell J. F. Fund-

(ii) प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व व्यवहार अथवा आचरण से सम्बन्धित एक अपूर्व संगठन एवं गतिशील ढांचा है और इस ढांचे मे भिन्न-भिन्न तत्वों के भिन्न-भिन्न मात्रा मे उपस्थित होने के कारण वैयक्तिक विभिन्नताएँ उत्पन्न होती रहती हैं।

(iii) व्यक्तित्व सामाजिक वैज्ञानिक और सांस्कृतिक प्रत्यय है।

यह ढांचा गतिशील इसलिये है कि उसमे आवश्यकतानुसार परिवर्तन होता रहता है किन्तु गतिशीलता होते हुए भी उसमे स्थिरता रहती है क्योंकि उसका सारतत्व सदैव समान रहता है।

गतिशील होने से हमारा आशय उसके नित विकसित होते रहने से है। व्यक्तित्व अपने विकास के प्रत्येक स्तर पर समाज और संस्कृति से प्रभावित होता रहता है अत व्यक्ति के विकास के लिये शिक्षा की उपादेयता निश्चित है।

Q. 23.3 How is personality a social concept ?

व्यक्तित्व का सामाजिक तत्व[1]

रैक्स रौक, डेशील और वुडवर्थ ने व्यक्तित्व की जो व्याख्या की है उसमे सामाजिक तत्व को ही विशेष प्रधानता दी गई है। इन तीनो मनोवैज्ञानिको द्वारा दी गई व्यक्तित्व की परिभाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने से पता चलता है कि जिस समय रैक्स रौक व्यक्तित्व मे समाज द्वारा मान्य और अमान्य गुणो के बीच सन्तुलन पर जोर देता है[2] उस समय डैशील व्यक्तित्व मे उन सभी व्यवहार और आचरण सम्बन्धी प्रवृत्तियो को सम्मिलित करता है जिनकी आवश्यकता व्यक्ति को सामाजिक अनुकूलन स्थापित करने के लिये पड़ा करती है। वुडवर्थकी परिभाषा के अनुसार भी व्यक्तित्व से उस व्यवहार का बोध होता है जो आवश्यक रूप से सही अथवा गलत न होने पर भी सम्पर्क मे आने वाले व्यक्तियो के प्रतिकूल और अनुकूल हो सकता है। ये सभी मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व के सामाजिक पक्ष पर ही बल देते हैं, वस्तुत. उस समाज से अलग किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व की कोई सत्ता नहीं है। जिस समाज का व्यक्ति सदस्य हुआ करता है व्यक्ति की जिस विशेषता अथवा निरालेपन को हम व्यक्तित्व कहते हैं वह समाज और व्यक्ति की अन्त क्रिया के फलस्वरूप उसे प्राप्त होता है[3] सबसे पहले एच कुली नामक समाजशास्त्री ने व्यक्तित्व के विकास में समाज के महत्व पर जोर दिया था। उसका कहना था कि व्यक्ति के शैशव से लेकर वार्धक्य तक व्यक्तित्व के विकास पर न केवल माता-पिता, भाई-बहन, का ही प्रभाव पड़ता है वरन् उसके व्यक्तित्व पर खेल के साथियों तथा अन्य व्यक्तियो की भी छाप पड़ती रहती है। समाज की विभिन्न इकाइयो का व्यक्ति के व्यक्तित्व पर किस प्रकार का और किस सीमा तक प्रभाव पड़ता है निश्चय पूर्वक नही कहा जा सकता। जब व्यक्ति एक वातावरण को छोड़कर दूसरे

[illegible]

समाज परिवर्तन से उनके व्यक्तित्व में महत्वपूर्ण परिवर्तन उपस्थित हो जाते थे। उन्होंने यह भी देखा कि जब इस प्रकार का स्थान परिवर्तन व्यक्तियों को बाध्य होकर करना पड़ता है तब कभी तो वे अति भयभीत और नम्र हो जाते हैं और असहाय अवस्था के कारण चिन्ताग्रस्त होकर कभी अति उग्र और विद्रोही स्वभाव वाले बन जाते हैं। इसी प्रकार अच्छे विद्यालयों मे शिक्षा ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों की मनोवृत्ति उत्तम, दृष्टिकोण अधिक नैतिक और उदार हो जाता है और निकृष्ट विद्यालयो मे शिक्षा पाने वाले छात्रों की मनोवृत्ति संकुचित, स्वभाव उग्र, और व्यक्तित्व विघटित हो जाता है।[4] कहने का तात्पर्य यह है कि व्यक्तित्व के विकास मे उस समाज का विशेष हाथ रहता है जिसके साथ व्यक्ति अन्त क्रिया करता है, इसलिये व्यक्तित्व को समाज और व्यक्ति की अन्त. क्रिया का परिणाम माना जा सकता है।

---

1. Social Aspect of personality 2. H cooley
3. The balance between socially approved and disapproved traits—Rex Rock.
4. 'Personality regers to behaviour which though not necessarily right or wrong is pleasing or offensive to other people favourable or unfavourable to the individual's standing with his fellows—woodwothe Psychology

कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि गर्भस्थ शिशु पर भी इस समाज की प्रतिक्रिया होने लगती है परन्तु उसका व्यक्तित्व गर्भावस्था में ही सामाजिक वातावरण से प्रभावित होने लगता है किन्तु यदि इस कथन को कोई विशेष मान्यता न भी दी जाय तब भी इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वह सामाजिक वातावरण जिसके सम्पर्क में शिशु आ जाता है शिशु पर सदैव अन्तः क्रिया करता है। जब तक अल्पवयस्क रहता है समाज उस पर क्रिया करता है। बड़े होने पर वह समाज पर क्रिया करने लगता है। वह समाज को प्रभावित करता है और समाज द्वारा प्रभावित होता है। उदाहरणस्वरूप कुछ व्यक्तियों के व्यक्तित्व में उद्दीपन की इतनी अधिक सामर्थ्य होती है कि उनका व्यक्तित्व उनके सम्पर्क में आने वाले सभी व्यक्तियों को प्रभावित करता रहता है। गांधीजी का व्यक्तित्व इसी प्रकार का था। दूसरों को प्रभावित करने की थोड़ी बहुत शक्ति सभी व्यक्तियों में होती है। कुछ में कम और कुछ में अधिक व्यक्ति और समाज के मध्य यह अन्तः क्रिया निरन्तर होती रहती है और व्यक्तित्व इसी अन्तः क्रिया का प्रतिफल होता है।

बालक के व्यक्तित्व के विकास पर पर्यावरण के दो मुख्य अंग—कुटुम्ब और पाठशाला की अमिट छाप पड़ती है।

कुटुम्ब का प्रभाव—बालक के प्रति माता-पिता, भाई-बहन तथा अन्य सदस्यों का अच्छा अथवा बुरा व्यवहार उसको प्रभावित करते रहते हैं। बालक जैसा कुटुम्ब के अन्य सदस्यों को करता हुआ देखता है वैसा ही सीखता है। यदि माता और पिता का संवेगात्मक सन्तुलन ठीक होता है तो बालक का भी संवेगात्मक सन्तुलन ठीक ही होता है।

पाठशाला का प्रभाव—पाठशाला के योग्य शिक्षक, सन्तोषजनक फरनीचर, अच्छी कक्षाओं की व्यवस्था, खुले क्रीडा स्थल बालकों के विकासमान व्यक्तित्व पर अच्छा प्रभाव डालते है। इसके विपरीत अयोग्य शिक्षक, असन्तोषजनक शिक्षा व्यवस्था, अरुचिकर विषय वस्तु एवं गलत पाठन विधियाँ उनके व्यक्तित्व पर बुरा प्रभाव डालती हैं।

कुटुम्ब और पाठशाला के अतिरिक्त समाज की अन्य संस्थाएँ व्यक्ति में अच्छे गुणों अथवा दुर्गुणों का विकास करते हैं।

Q 23.4 How is personality a biological concept ?

व्यक्तित्व का जैव तत्त्व[1]

व्यक्तित्व के निर्माण में केवल वातावरण का ही हाथ रहता है वरन् आनुवंशिकता भी व्यक्तित्व को प्रभावित करती है। आनुवंशिकता से व्यक्ति को शारीरिक और मानसिक विशेषताएँ प्राप्त होती हैं। शरीर का बाह्य रूप, उसका आकार-प्रकार, लम्बाई-चौड़ाई, रंग-रूप वाणी और बनावट, स्वास्थ्य और रोग, आन्तरिक रसोत्पादक ग्रन्थियाँ, आदि सभी बातें शारीरिक विशेषताओं में सम्मिलित की जाती हैं। उसकी मानसिक विशेषताओं में बुद्धि और रुचि तथा अन्य मानसिक शक्तियों का समावेश किया जाता है। व्यक्तित्व के विकास में इन शारीरिक और मानसिक विशेषताओं का क्या प्रभाव पड़ता है नीचे दिया जाता है।

आकार-प्रकार—जिस व्यक्ति का शरीर बाल्यकाल से ही हृष्ट-पुष्ट और लम्बा-चौड़ा होता है वह अपने को दूसरों से श्रेष्ठ समझने लगता है और आत्म प्रकाशन की प्रवृत्ति उसमें स्वभावतः उत्पन्न हो जाती है। इसके विपरीत अस्वस्थ शरीर वाला दुबला-पतला अथवा नाटे कद का व्यक्ति अपने में कमी का अनुभव करके हीनभाव विकसित कर लेता है। मोटा-ताजा व्यक्ति अधिकतर हँसमुख, क्रियाशील, बहिर्मुखी और मिलनसार होता है, वह समाज में अधिक प्रभावशाली होता है, क्योंकि वह समाज के साथ शीघ्र ही समायोजन स्थापित कर लेता है। इसके विपरीत दुबला-पतला व्यक्ति दूसरों को अधिक प्रभावित नहीं कर सकता। कभी-कभी वह अपनी कमी को पूरा करने के लिये अन्य विभिन्न गुणों का विकास कर लेता है और इस तरह भले ही वह समाज को प्रभावित करता रहे। अन्य गुणों के समान होते हुए शरीर का अच्छा आकार-प्रकार व्यक्ति के व्यक्तित्व को श्रेष्ठ बनाने में सहायक होता है। किन्तु शरीर का आवश्यकता से अधिक मुटापा, अथवा लम्बा-चौड़ा आकार व्यक्ति के लिए कभी-कभी अभिशाप हो जाता है। दूसरों के द्वारा मजाक किये जाने पर ऐसे व्यक्ति का संवेगात्मक सन्तुलन बिगड़ जाता है।

1. Biological as

शारीरिक रंग-रूप, वाणी और बनावट—आकर्षक मुखाकृति, सौन्दर्य रूप और व्यक्तित्व की विशेषताएँ मानी जाती हैं। इसके होने पर व्यक्ति प्रसन्नचित्त और सुखी दिख देता है लेकिन वह कुरूपता, जो बालक के शारीरिक दोषों के कारण उत्पन्न हो जाती है, बाल में दब्बूपन, दैन्य और हीनता की भावनाओं को जन्म देती है। इसी प्रकार वाणी का माधु भी व्यक्ति को समाज में व्यवस्थित बना देता है और वाणी की कर्कशता, अथवा तुतलाने व हकलाने की प्रवृत्ति व्यक्ति में क्षोभ और आत्मग्लानि पैदा कर देती है क्योंकि ऐसा व्यक्ति अ विचारों को व्यक्त करने में अपने आपको असमर्थ पाता है।

स्नायुमंडल का स्वास्थ्य—व्यक्तित्व के उचित विकास के लिये स्नायुमण्डल की द सामान्य होना आवश्यक है। उसकी क्रिया तथा रचना के दोषपूर्ण हो जाने पर व्यक्तित्व विकास में असामान्यताएँ उत्पन्न होने लगती हैं। स्नायुमण्डल के स्वास्थ्य पर हमारा शिक्ष प्रशिक्षण, भाषा विकास, संवेगात्मक अभिव्यक्ति, चिन्तन और मनन आदि सभी मानसिक क्रि व योग्यताएँ, क्षमताएँ व उपलब्धियाँ निर्भर रहती हैं। स्नायविक क्रियाओं में बाधा उपस्थित पर इससे शारीरिक एवं मानसिक विकार उत्पन्न हो जाते हैं जो वातावरण के साथ-साथ समु समायोजन स्थापित नहीं करने देते हैं। फलतः हमारा व्यक्तित्व विघटित हो जाता है।

शारीरिक रोग—शारीरिक रोगों का भी इसी प्रकार के व्यक्ति के व्यक्तित्व विशेष प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक शारीरिक व्याधि अपना पश्च प्रभाव व्यक्ति के व्यवहार पर छ जाती है। उदाहरण के लिए इनसिफालीटिस नामक रोग से छुटकारा पाने पर व्यक्ति का स्व चिड़चिड़ा, आवश्यकता से अधिक चचल और उत्तेजनशील हो जाता है। ऐसा व्यक्ति स बदलाया हुआ और अस्त-व्यस्त सा दिखाई देता है।

बुद्धि—प्रज्ञावान् व्यक्ति सामाजिक मान्य स्तरों और मापदण्डों के अनुकूल व्यव करके सामंजस्य स्थापित करता है। इसके विपरीत एवं निम्न बुद्धि स्तर का व्यक्ति अपने आ समाज में व्यवस्थित करने में असमर्थ पाता है। आनुवंशिकता द्वारा प्राप्त बुद्धि भी इस प्र व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रभावित करती रहती है। जिस बालक को जन्म से ही मानसिक दुर्बल मिलती है उसका व्यक्तित्व कुण्ठित हो जाता है। इसके विपरीत तीव्र बुद्धि अथवा प्रति सम्पन्न बालकों का व्यक्तित्व उत्तम रूप से विकसित होता रहता है। शर्त केवल यह है उन प्रारम्भ से ही उचित शैक्षणिक निर्देशन मिलता रहे।

अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ—आन्तरिक रसोत्पादक ग्रन्थियाँ व्यक्तित्व के विकास को क मात्रा में प्रभावित करती हैं। उनसे स्रवित रस जिसे हारमोन[1] कहते हैं व्यक्ति के शारीरि मानसिक और संवेगात्मक विकास के क्रम को निश्चित करता है। इन ग्रन्थियों में भिन्न भि प्रकार का रस निकल कर रक्त में मिल जाता है और वह व्यक्तित्व पर अलग-अलग तरह का प्र छोड़ता जाता है। इन ग्रन्थियों का प्रभाव व्यक्तित्व पर प्रत्यक्षरूप से तो नहीं पड़ता वरन् उ द्वारा शारीरिक, मानसिक और संवेगिक परिवर्तनों के उपस्थित हो जाने पर व्यक्ति के अनु एवं व्यवहारों में जटिलता आ जाती है। यह जटिलता व्यक्ति के व्यक्तित्व का रूप निर्धा करती है। इन अन्तःस्रावी ग्रन्थियों में से मुख्य ग्रन्थियाँ जो व्यक्तित्व पर प्रभाव डालत निम्नलिखित हैं—

(अ) पोषग्रन्थि[2]
(आ) गलग्रन्थि[3]
(इ) उपवृक्कग्रन्थि[4]
(ई) प्रजनन ग्रन्थियाँ[5]

पोष ग्रन्थि—खोपड़ी के आधार पर स्थित दो गोलार्धों में विभक्त पोषग्रन्थि जीवन लिये विशेष महत्व की है। वास्तव में यह जीवन संचालन का आधार है। इस ग्रन्थि के अधिक स होने पर शारीरिक विकास में असमानताएँ उत्पन्न हो जाती हैं अंग बेडौल और विषम अनु में विकसित होने लगते हैं। फलतः व्यक्ति उग्र हो जाता है दूसरों के साथ अनुकूलन स्था करने में उसे कठिनाई होने लगती है। यदि यह ग्रंथि आवश्यकता से कम मात्रा में क्रिया

1. Hormone 2 Pituitary 3. Thyroid, 4. Adrenal 5. Scr.

है। इन विद्वानों का मत है कि ये रस शारीरिक सगठन को अवश्य प्रभावित करता है किन्तु व्यक्तित्व का निर्माण निश्चित और प्रत्यक्ष रूप से नही करते। यदि मनुष्य के शारीरिक सगठन तथा व्यवहार में कुछ सम्बन्ध है तो अवश्य ही लुई बरमन की बात में सत्य का अंश होना चाहिये। अल्फ्रेड अडलर[5] का भी यही मत है कि शारीरिक दोषवाले व्यक्तियों का स्वभाव अत्यन्त उग्र हो जाता है और उनमे अपराध की भावना भी उत्पन्न होने लगती है। ये व्यक्ति हीनता की भावना ग्रंथि से पीड़ित होने के कारण अपनी कमियों की अपने असामान्य व्यवहार के द्वारा पूरा करने का प्रयत्न करते हैं। शारीरिक सगठन अप्रत्यक्ष रूप से हमारे व्यवहार को प्रभावित कर हमारे व्यक्तित्व का रूप निश्चित करता है। शारीरिक सगठन भी व्यक्तित्व पर जो प्रभाव डालता है। वह भी वास्तव मे सामाजिक ही है।

ऊपर की पक्तियो मे व्यक्तित्व की जो व्याख्या प्रस्तुत की गई है उससे तो यही प्रतीत होता है कि व्यक्ति का व्यक्तित्व सामाजिक, सांस्कृतिक और जीव विज्ञान सम्बन्धी तत्वो की अभिव्यक्ति मात्र है। वह मनुष्य की शारीरिक अवस्था तथा उसके सामाजिक आदान-प्रदान का परिणाम माना जा सकता है, न तो शारीरिक तत्व ही व्यक्तित्व का आधार है और न सामाजिक तत्व ही, क्योकि यदि शारीरिक तत्व ही व्यक्तित्व का आधार भूत निर्णायक होता तो सभी मनुष्यो का व्यक्तित्व एक सा होता। इसी प्रकार सामाजिक तत्व को भी व्यक्तित्व का एक मात्र निर्णायक नहीं माना जा सकता। यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति समाज के प्रति स्वतन्त्र प्रतिक्रिया करने के कारण एक निरालापन पैदा कर लेता है फिर भी शारीरिक तत्व की महत्ता भी कम नही की जा सकती।

23 5. How does personality develop from childhood to maturity ? What can the school do for the proper development personality.

व्यक्तित्व के विकास के भिन्न-भिन्न स्तर :

व्यक्तित्व के विकास से हमारा आशय व्यक्ति के जीवन-काल मे निरन्तर होने वाली उस अन्त क्रिया अथवा सामाजिक, भौतिक, आध्यात्मिक वातावरण मे अनुकूलन स्थापित करने वाली क्रिया से है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति में अनेक मनोदैहिक गुणो और विशेषताओ का अर्जन होता है। व्यक्ति अपने जीवनकाल के आदि से लेकर जीवनान्त तक किस प्रकार वातावरण के साथ अनुकूलन स्थापित करता है, किस प्रकार अनुकूलन स्थापित करने के लिये वह सघर्षों और भग्नाशाओं का सामना करता है। कौन-कौन अनुभव उसे सामाजिक, लड़ाकू या दब्बू बना देते हैं, इन प्रश्नो का उत्तर निश्चयपूर्वक नही दिया जा सकता क्योंकि व्यक्तित्व के विकास पर अभी जितनी भी खोजें हुई हैं उनके परिणाम और निष्कर्ष ऐसे नही हैं जिन पर पूर्णरूपेण विश्वास किया जा सके। व्यक्तित्व के विकास के विषय मे जितनी भी सूचनाएँ अब तक हमको मिली हैं वे असमान्य व्यक्तियों के व्यवहारों को देखकर ही मिल सकी है। अभी तक इस क्षेत्र मे वैज्ञानिक अनुसधानो की कमी रही है। यदि हम जीवन की विभिन्न दशाओ मे व्यक्तित्व के विकास का अध्ययन करना चाहते हैं तो हमे उन व्यक्तियो को उसके जीवन के विभिन्न स्तरो पर सघर्षात्मक परिस्थितियो मे रखकर उसके व्यक्तित्व मे होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन करना होगा। जो कुछ भी प्रयोगात्मक साक्ष्य हमे मिला है उसके आधार पर केवल यही कहा जा सकता है कि अन्य विशेषताओ की तरह व्यक्ति का व्यक्तित्व क्रमिक रूप मे विकसित होता रहता है। जीवन के एक स्तर की कमियाँ दूसरे स्तर मे पूरी होती रहती हैं। किस प्रकार शैशवावस्था की कमियाँ बाल्यावस्था, बाल्यावस्था की कमियाँ किशोरावस्था मे और किशोरावस्था की कमियाँ प्रौढ़ावस्था मे पूरी हो जाती हैं। इसका पता हमे तब तक नही चल सकता जब तक इन भिन्न-भिन्न स्तरो पर होने वाले परिवर्तनो पर दृष्टिपात न किया जाय।

शैशवावस्था मे व्यक्तित्व का विकास :

नवजात शिशु का व्यक्तित्व कैसा होता है ? इस प्रश्न का उत्तर कोई नही दे सकता। शर्ले गैसल और जूबेक ने इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न किया है। शर्ले ने २२ शिशुओं के

1. Louis Berman 2. Ross 3. Stagner 4. Kimball Young
5. Alfred Alder.

व्यवहार की वैयक्तिक विभिन्नताएँ देखने के लिये जन्म से लेकर २ वर्ष की अवस्था तक अध्ययन किया है और यह देखा कि बहुत से शिशुओं ने जो व्यवहार पहले सप्ताह में अर्जित कर लिया अथवा प्रदर्शित किया उनका वैसा ही व्यवहार २ वर्ष तक बना रहा। इस परीक्षण से उसने निष्कर्ष निकाला कि प्रत्येक बालक व्यक्तित्व का······ ······[1] लेकर जन्म लेता है। यह ······ उसके जीवन-काल में विकसित होकर उसके व्यक्तित्व के गुणों को निश्चित करता है। किन्तु अभी तक हमारे पास कोई प्रमाण नहीं है कि इस तरह का कोई ······वह अपने पूर्वजों से सक्रमित करता है। नम्रता, दृढ़ता, सत्यता, सामाजिकता अथवा क्रूरता के गुणावगुण जिनको शर्ले और गैसल ने अपने बच्चों में ६ वर्ष की अवस्था तक देखा था क्या वे उन्हें अपने वंशानुक्रम से उपलब्ध हुए थे। कुछ नहीं कहा जा सकता। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि नवजात शिशु के प्रारम्भिक अनुभव उसके संरक्षण की विधि, उसकी आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने का तरीका, यहाँ तक कि उसकी गर्भ से निकलते समय की कठिनाई अथवा सरलता उसके आगामी जीवन के आचरण और व्यवहार को निश्चित करती है।

शिशु के जीवन के प्रथम पाँच वर्ष उसके व्यक्तित्व के विकास के लिये विशेष महत्वपूर्ण होते हैं। वह जिन सहज क्रियाओं, सहज प्रवृत्तियों और क्षमताओं को लेकर जन्म लेता है वातावरण के सम्पर्क में आकर इनमें परिवर्तन, परिमार्जन और परिशोधन होता है। नवजात शिशु के रूप में न तो वह चल फिर सकता है न बोल ही सकता है और न किसी प्रकार का विशिष्ट सामाजिक व्यवहार ही कर सकता है। बाद में मानव समाज में पड़कर समाजीकरण की क्रिया के फलस्वरूप उसमें परिवर्तन होते रहते हैं। समाजीकरण की क्रिया के फलस्वरूप उसमें नई-नई विशेषताएँ प्रस्फुटित होती हैं व्यक्तित्व के नये-नये गुण उत्पन्न होते हैं। इनमें से कुछ गुण तो ३ मास की अवस्था तक पैदा हो जाते हैं किन्तु ५ वर्ष की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते उसके व्यक्तित्व के अनेक गुण स्थायित्व ग्रहण करने लगते हैं।

मैग्डूगल के मतानुसार इन्हीं पाँच वर्षों के अन्दर व्यक्तित्व में जो कुछ विघटन पैदा होना होता है वह भी पैदा हो जाता है। शिशु की मुख्य आवश्यकताएँ सुरक्षा और प्रेम से सम्बन्ध रखती हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति उसकी माता अथवा परिचारिका द्वारा की जाती है। व्यक्ति के व्यक्तित्व में ······ का उदय इन आवश्यकताओं की पूर्ति अथवा अपूर्ति पर निर्भर रहता है। यदि उसका दूध समय से पूर्व ही छुड़ा दिया जाता है तो उसमें संवेगात्मक संघर्ष उत्पन्न होने लगते हैं। जीवन में सबसे पहली इसी भग्नाशा[2] का सामना उसे इस समय करना पड़ता है। यदि इस अवस्था में शिशु की सुरक्षा और प्रेम की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि नहीं की जाती तो उसमें उग्रता, निराशावादिता और यथार्थता से पलायन की प्रवृत्ति पैदा हो जाती है। बोरिंग ने एक ऐसे ही प्रयोग का उल्लेख किया है जिसमें उन्होंने दूध छूटने के दुःखद अनुभव और अपने को सुरक्षित समझने की भावना के बीच सम्बन्ध स्थापित किया है। उनका कहना है कि जिन बालकों का दूध ६ से लेकर ६ महीने तक की आयु में छुड़ा दिया जाता है वे बालक अपने को उन बालकों की अपेक्षा कम सुरक्षित समझते हैं जिनको ६ महीने की अवस्था तक उनकी माताएँ अपने स्तनों से दूध पिलाती रही थीं। यह अरक्षा भावना शैशवावस्था में उदय हुई और २२ वर्ष की अवस्था में भी देखी गई। ६ मास से लेकर ६ मास की अवस्था तक जब बालक को दूध छुड़ा दिया जाता है तब वह अपने आपको अरक्षित मानने लगता है। फ्राइड के विचार से बालक के मन में चिन्ताओं का उदय माता की अनुचित देखभाल से होता है और यह उदय शैशवावस्था में होता है। बालकों को भले ही माता की इस उदासीनता की चेतना न हो किन्तु इस उदासीनता से उनके उचित विकास में बाधा पड़ने से अक्षमता पैदा हो जाती है।

कभी-कभी शिशुओं की अत्यधिक रक्षा के कारण भी उनमें व्यक्तित्व के विकार उत्पन्न होते हुए देखे गये हैं। हैविक और स्टीवेंस ने शिशुओं पर अत्यधिक प्रेम और सुरक्षा के दुष्परिणाम देखने का प्रयत्न किया है। ऐसे शिशुओं में आगे चलकर उन्होंने स्नायु रोग, उदासी, चिड़चिड़ापन और स्वार्थ की भावना का उदय होते हुए देखा है।

बचपन में व्यक्तित्व का विकास

शिशु के जीवन में दो स्थलों पर समस्याजनक परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं एक तो उस समय जबकि उसको माता का स्तनपान करने से रोका जाता है। दूसरे उस समय जब उसके नये भाई अथवा बहिन का जन्म होता है। इन दो अवस्थाओं में उसको ऐसा प्रतीत होता है कि उसका दुनिया में कोई नहीं है। यदि घर में माता-पिता का प्रेम इस समय उसको नहीं मिलता तो उसके व्यक्तित्व में कुछ विघटन पैदा हो जाता है। यह विघटन उस समय दूर होता है जब विद्यालय में प्रवेश पाने के बाद उसे अपने साथियों और अध्यापक अथवा अध्यापिका का पितृवत् अथवा मातृवत् स्नेह प्राप्त होता है।

जिस बच्चे को ५ वर्ष की अवस्था तक माता और पिता का अत्यधिक प्रेम[1] मिलता रहता है। विद्यालय में प्रवेश करते ही उसे ऐसी परिस्थिति का सामना करना पड़ता है जो उसके लिये अजीब प्रतीत होती है। उसे विद्यालय में न तो घर का सा प्रेम ही मिलता है और न घर की सी सुरक्षा ही। ऐसी अवस्था में अपने को पाकर वह अनुकूलन स्थापित करने में असमर्थ होता है। विद्यालय में प्रवेश पाने के कुछ दिनों पश्चात् ही उसे अपने साथियों के साथ सम्पर्क स्थापित करना पड़ता है। यदि वह नई परिस्थिति के अनुकूल अपने को ढाल सकता है तब तो उसके सामने कोई समस्या उपस्थित नहीं होगी। किन्तु यदि वह ऐसा न कर सका तो उसमें अपने साथी छात्रों से तिरस्कार मिलने पर भावना ग्रन्थियाँ बन सकती हैं। उसका सहयोग, सम्मान और प्रेम न पाने पर उग्रता और पलायन की भावनाओं का उदय हो सकता है। ऐसा बालक जिसके माता-पिता ने बड़े लाड़-प्यार से उसका पालन-पोषण किया है यह देखकर कि घर पर वह सर्वेसर्वा था यहाँ कुछ भी नहीं है अत्यन्त निराशित होता है। जब वह अपने साथियों द्वारा अपने को निन्दित अथवा अपमानित पाता है तब उसके लिये विषम परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है। यदि वह इस पर काबू कर सका तो ठीक है अन्यथा उसके व्यक्तित्व में विघटन के लक्षण उपस्थित होने लगते हैं।

यदि बालक उस समाज में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाता जिसमें वह रह रहा है तो उसमें पलायन की प्रवृत्ति पैदा हो जाती है। उदाहरण के लिये यदि किसी बालक के संगी-साथी अथवा अध्यापक उसको उसकी सुरक्षा और प्रेम की आवश्यकता को सन्तुष्ट नहीं पाते तो वह अपनी इन आवश्यकताओं की सन्तुष्टि अन्यत्र करने का प्रयत्न करता है। यदि पलायन अथवा दिवास्वप्नों में ही उसे सन्तुष्टि मिलती रहती है तो वह ऐसी प्रतिक्रियाओं को सीख लेता है। यदि बाह्य परिस्थितियाँ उसको उग्रतापूर्ण व्यवहार के पक्के होने के लिये अवसर प्रदान करती रही हैं तो उग्रता और आत्म गौरव की भावनाएँ उसमें घर कर लेती है। उदाहरण स्वरूप यदि किसी बालक को उसके माता-पिता अथवा अध्यापक उसके उग्रतापूर्ण कार्यों को देखकर ताड़ना न दें तो उग्रता उसके चरित्र का अंग बन जाती है।

किशोरावस्था में व्यक्तित्व का विकास

जैसा कि पहले कहा जा चुका है विकास की क्रिया निरन्तर चलने वाली क्रिया है क्योंकि शैशवावस्था की कमियाँ बाल्यावस्था में और बाल्यावस्था की कमियाँ किशोरावस्था में पूरी हो जाती हैं और जो कमियाँ किशोरावस्था में रह जाती हैं वे प्रौढ़ावस्था में आकर परिपूर्ण हो जाती हैं। इस प्रकार किशोरावस्था को हम किसी भी अवस्था से भिन्न नहीं मान सकते। यह अवस्था बाल्यकाल तथा प्रौढ़ावस्था के बीच संधि स्थल का कार्य करती है।

किशोरावस्था प्राप्त होते ही व्यक्ति आगे आने वाली परिस्थितियों के विषय में चिन्तन करना आरम्भ कर देता है। अब वह अपने को अधिक परिपक्व समझने लगता है। इसी अवस्था में उसके सामने अनेक समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं। माता-पिता से स्वतन्त्र होने की भावना का उदय, अपने पैरों पर आप खड़े होने का विचार, अपने जीवन-संगी की खोज और प्रौढ़ावस्था में ग्रहण करने योग्य जीवन दर्शन का चुनाव उसे इसी अवस्था में करना पड़ता है। उसके माता-पिता और अन्य सम्बन्धीजन उसकी स्वतन्त्रता, आत्मप्रकाशन और काम-भावना सम्बन्धी आवश्यकताओं को सन्तुष्ट नहीं कर पाते इसलिये उसकी ये समस्याएँ और भी जटिल हो जाती हैं। यदि उसे इस समय लिंग शिक्षा नहीं दी जाती तो उसको भारी मानसिक क्षति होने की सम्भावना रहती

है। काम-वृत्ति का उग्रतम रूप इसी अवस्था में प्रगट होता है क्योंकि यौन-सम्बन्धी अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ अनेक प्रकार के रस रग-रग में प्रवाहित करने लगती हैं। काम-भावना को दोषी भावना के कारण किशोर अन्य लोगों से इसके विषय में जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करता है किन्तु यह जानकारी अनुपा गलत होती है। वह व्यभिचार और अप्राकृतिक ढंग से काम-वासना को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करता है। काम वासना की प्रवृत्ति का अब दमन होने के कारण किशोर में बात-बात पर चिढ़ने, अश्लील व्यवहार करने, बुरे-बुरे स्वप्न देखने, गाली गलौज करने की बुरी आदतें पड़ जाती हैं।

किशोरावस्था में अपने पैरों पर खड़े होने और शिक्षा पूरी करने के बाद किसी व्यवसाय को अपनाने की आवश्यकता पड़ती है। आजकल प्रत्येक अच्छे पेशे के लिये उच्च शिक्षा और अनुभव की आवश्यकता पड़ती है। अतः जब तक उसे उच्च शिक्षा और अनुभव प्राप्त नहीं होते तब तक बेचैनी बनी रहती है। तब तक उसकी आशाएँ भग्न और इच्छाएँ अवदमनित होती रहती हैं। यदि इस समय उसे उचित शैक्षणिक और व्यावसायिक मार्ग निर्देशन नहीं मिलता तो उचित पद न मिलने पर हीनता और निराशा की भावनाएँ पैदा हो जाती हैं। इस आर्थिक कुव्यवस्थापन के फलस्वरूप वह अनुत्तरदायित्व पूर्ण व्यवहार प्रदर्शन करने लगता है। प्रौढ़ावस्था प्राप्त होने पर ये व्यवहार धीरे-धीरे लुप्त होने लगते हैं।

कभी-कभी किशोरावस्था उन बुराइयों, कमियों और अशक्तताओं का अन्त कर देती है, जो शैशवावस्था अथवा बाल्यावस्था से चली आ रही थी। उदाहरणस्वरूप जिस बालक को किसी शारीरिक दोष के कारण बाल्यावस्था में सम्मान नहीं मिल सका था वह किशोरावस्था में अपनी कक्षा में प्रथम आकर सम्मान प्राप्त कर सकता है, इस प्रकार बचपन में जो हीनता की ग्रन्थि बन जाती है उसका निराकरण किशोरावस्था में होने लगता है। इसी प्रकार व्यक्ति के जीवन में किशोरावस्था में जो तूफान आते हैं उनका बल और वेग व्यक्ति के प्रौढ़ हो जाने पर कम हो जाता है।

प्रौढ़ावस्था में व्यक्तित्व का विकास

प्रौढ़ावस्था प्राप्त होने पर व्यक्ति की जीवन नौका में अस्थिरता नहीं रहती। विवाह हो जाने पर काम-सम्बन्धी समस्याओं का हल उसे मिल जाता है। किसी पेशे अथवा व्यवसाय में लग जाने पर आर्थिक असमंजस का भी अन्त हो ही जाता है। अपने जीवन के आगामी २५-३० वर्ष की रूढ़िवादिता, सहनशीलता और उदारता के होते हैं।

वृद्धावस्था में व्यक्तित्व का विकास

व्यवस्थापन की समस्याएँ व्यक्ति को पुनः ५० वर्ष की आयु के उपरान्त घेरने लगती हैं क्योंकि अब उसका स्वास्थ्य बिगड़ने लगता है और धनोपार्जन की शक्ति कम हो जाती है। जिन व्यक्तियों की आर्थिक स्थिति अच्छी होती है अथवा जिन्हें पेंशन मिलती रहती है उनके पास वृद्धावस्था में कोई काम न रहने के कारण दूसरों के कार्यों में हस्तक्षेप करने की आदत पड़ जाती है।

इस प्रकार प्राणी के व्यक्तित्व के विकास का क्रम शैशवावस्था से वृद्धावस्था तक नियमित रूप से चलता रहता है।

व्यक्तित्व का विकास और शिक्षा :

शिक्षक के सामने सबसे बड़ी समस्या व्यक्तित्व के विकास की है। उससे आशा भी यही की जाती है कि जिस बालक की शिक्षा का भार उसे सौंपा गया है सुसगठित रूप से उसको व्यक्तित्व का विकास करने में सहयोग दे। प्रश्न यह उठ सकता है कि क्या वह व्यक्तित्व का विकास कर सकता है और यदि कर सकता है तो कैसे? इन प्रश्नों का उत्तर देना बड़ा कठिन है क्योंकि व्यक्तित्व के विकास का आधार एक नहीं है। व्यक्तित्व जैसा कि अनुच्छेद २०·३ में बताया गया था, जीव-विज्ञान-सम्बन्धी, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रत्यय है। शारीरिक रचना, नलिका विहीन ग्रन्थियाँ, समाज की प्रवृत्ति और देश की संस्कृति इन सभी बातों का व्यक्तित्व पर निरन्तर प्रभाव पड़ता रहता है। यदि शिक्षक इन सभी तत्वों को नियमित कर सके, उन पर नियन्त्रण स्थापित कर सके तो कदाचित् अपने शिष्य के व्यक्तित्व का वांछित दिशा में विकास कर सकेगा अन्यथा नहीं। शिक्षा में हमारे विचार से इतनी सामर्थ्य नहीं है कि उससे व्यक्ति को जैसा [illegible] बना सकें।

वाटसन की इस घोषणा को गत ५० वर्षों में भी उसके किसी व्यवहारवादी मनोविज्ञ अनुयायी ने सत्य सिद्ध करने का प्रयास नहीं किया कि हम बालक को विशेष प्रकार के वातावरण में रखकर और विशेष प्रकार की शिक्षा देकर जैसा चाहें बना सकते हैं।

भिन्न-भिन्न औषधियों के सेवन, समुचित भोजन और उचित व्यायाम से शारीरिक विकास को थोड़ा बहुत नियन्त्रित किया जा सकता है। किन्तु व्यक्तित्व के विशेष लक्षणों को किस प्रकार नियन्त्रित किया जाय। यह विकट समस्या प्रतीत होती है। व्यक्तित्व पर समाज और संस्कृति की चतुर्मुखी अन्त क्रिया होने के कारण उस पर इनका प्रभाव आँका नहीं जा सकता। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि अच्छे सामाजिक और सांस्कृतिक वातावरण में बालक को रखकर उसमे व्यक्तित्व के उत्तम गुणों का संचार किया जा सकता है। कई प्रयोगों में जो युग्मजों पर किये गये हैं उत्तम शिक्षा-दीक्षा का बालकों के व्यक्तित्व पर अच्छा प्रभाव देखा गया है। बालमनोविज्ञान के क्षेत्र में भी अनेक ऐसे प्रयोग किये गये हैं जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि स्वस्थ वातावरण और स्वस्थ शिक्षा व्यक्तित्व के विकास में सहायता दे सकते हैं।

यह कहना भी कि व्यक्तित्व पूरी तरह से परिस्थितियों पर ही निर्भर है भ्रान्तिपूर्ण प्रतीत होता है। यदि व्यक्तित्व का विकास स्वत होता है तो क्या प्रतिकूल परिस्थितियों के उपस्थित होने पर व्यक्तित्व के श्रेष्ठतम विशेषक[1] उत्पन्न हो सकते हैं? यह सभी मानते हैं कि उत्तम गुणों के विकास के लिये घर और विद्यालय के वातावरण में सुधार होना चाहिये। यह विचार कि व्यक्तित्व के विकास पर नियन्त्रण किया जा सकता है अब जोर पकड़ रहा है। माता पिता, शिक्षक और शिक्षा विशारद, धार्मिक और अन्य समाज सुधारक संस्थाएँ हजारों वर्षों से व्यक्तित्व के विकास के सिद्धान्तों को जाने बिना अपने बालकों के व्यक्तित्व के विकास कार्य में लगी हुई हैं।

वह शिक्षक जो बालक के व्यक्तित्व को विकसित करना चाहता है पहले तो यह समझ ले कि उसका प्रत्येक शिष्य एक अद्वितीय बालक है उसकी सामाजिक, भौतिक और सांस्कृतिक वातावरण में अनुकूलन स्थापित करने की शैली एक अद्वितीय शैली है अतः उनकी शैली का विरोध न करते हुए उसकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों में परिवर्तन, परिमार्जन और परिशोधन उपस्थित करे। उसके व्यवहार को विशेष मार्ग की ओर अग्रसर करते हुए व्यक्तित्व के विकास में उचित सहयोग प्रदान करे।

23 6 Discuss the different personality types as enumerated by various authors or psychologists.

व्यक्तित्व के प्रकार[2]

व्यक्तित्व की व्याख्या करते समय यह कहा गया था कि प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व एक अपूर्व इकाई[3] है क्योंकि जब वह अपने भौतिक और सामाजिक वातावरण से अनुकूलन स्थापित करता है तब यह समजन ऐसा विचित्र होता है कि दूसरों के समान होते भी उसमें भिन्नता और निरालापन दिखाई देता है। इस विचारधारा के अनुसार व्यक्तियों को उनके व्यक्तित्व के अनुसार अर्थात् यों कहिए कि उनकी जीवन शैली के अनुसार हम उन्हें कुछ प्रकारों में विभक्त कर सकते हैं। सामान्यतया हम देखते हैं कि यदि एक व्यक्ति चिन्ताशील है तो दूसरा प्रसन्नचित्त, एक दीर्घसूत्री है तो दूसरा गतिशील, एक की शैली विश्लेषणात्मक है तो दूसरे की संश्लेषणात्मक, एक सामाजिक है तो दूसरा शान्त और निर्जनता से प्रेम करने वाला है, इस प्रकार साधारण बोलचाल की भाषा में भी हम व्यक्तियों को उनके व्यवहार के अनुसार वर्गों में विभाजित करते हैं। मनोविज्ञान की भाषा में व्यक्तित्व के विभिन्न प्रकारों को निम्नांकित आधारों पर वर्गबद्ध किया गया है—

(१) शारीरिक द्रवों के आधार पर	(हिप्पोक्रेटस)
(२) शारीरिक रचना "	शैल्डन
(३) " गुणों "	
(४) जीवन शक्ति के केन्द्रीयकरण	जुंग
(५) जीवन दर्शन "	नीत्शे (Appollonian Dionysian) स्प्रैंगर

(६) सांस्कृतिक प्रकार

(७) जीव विज्ञान के अनुसार (Endocrine glands)
(८) मनोविश्लेषणवाद के अनुसार ग्रन्थि

व्यक्तित्व के [illegible] के लिए प्रकारों पर ध्यान देना उचित भी प्रतीत होता है [illegible]

इन व्यक्तित्व के प्रकारों के विषय में बड़े आश्चर्य की बात यह है कि उनका सूत्रपात जिन विद्वानों ने किया था मनोवैज्ञानिक नहीं थे। शारीरिक द्रवों के आधार पर व्यक्तित्व के प्रकारों का उल्लेख सबसे पहले हिप्पोक्रेटस ने किया। हिप्पोक्रेटस[1] (४०० ईसा से पूर्व) और उसके अनुयायी गैलन (१५० ई०) दोनों ही चिकित्सक थे। उन्होंने व्यक्तित्व को शारीरिक द्रवों पर आधारित माना। उनके अनुसार चार प्रकार के व्यक्तित्व हैं—कफ वाले,[2] काले पित्त वाले,[3] पीत पित्त वाले,[4] रुधिर वाले,[5] कफवाले व्यक्ति चेष्टाहीन धीमे, निर्बल और निरुत्साहित, काले पित्त वाले दुखी और निराशावादी, पीत पित्तवाले शीघ्र ही क्रोधित होने वाले, रुधिर वाले शीघ्र[illegible] करने वाले और प्रसन्न होते हैं।

हिप्पोक्रेटस के विचार से व्यक्तित्व के ये ४ प्रकार शरीर में विभिन्न रसों के प्रभाव के कारण उत्पन्न हो जाया करते हैं। जिस बात को हिप्पोक्रेटस ने ईसा से ४०० वर्ष पूर्व कहा था लगभग उसी बात को आधुनिक जीववैज्ञानिक भी कहता है। अन्तर केवल इतना है कि हिप्पोक्रेटस इन रसों का स्रोत यकृत मानता था और आधुनिक जीवविज्ञान वेत्ता इन रसों को नलिका विहीन ग्रंथियों की उपज मानते हैं।

हिप्पोक्रेटस के बाद सन् १९११ में विलियम जेम्स ही एक ऐसा मनोवैज्ञानिक था [illegible] को दो श्रेणियों में विभाजित करने का प्रयत्न किया। [illegible] में उसने प्रयोगवादियों[7] को रखा। आदर्शवादी [illegible] प्रयोगवादी व्यावहारिक दृष्टिकोण के।

मन चिकित्सा के क्षेत्र में हमने शारीरिक रचना के आधार पर क्रेशमर का वर्गीकरण ग्रहण किया है। क्रेशमर ने मानसिक रोगियों की विशेषताओं के अध्ययन के आधार पर व्यक्तियों को निम्नलिखित चार भागों में बाँटा है—

(अ) लेप्टोसोम या ऐसथेनिक—पतले दुबले अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक लम्बे।
(आ) पिकनिक—भार के अनुपात से कद में नाटे, शरीर में मजबूत और मोटे।
(इ) ऐथलेटिक—मोटे ताजे गठे हुए शरीर वाले अच्छे स्वास्थ्य के।
(ई) डाइस्प्लास्टिक—असाधारण शरीर वाले।

क्रेशमर का कहना था कि लेप्टोसोम प्रकार के व्यक्ति सोचने, कार्य करने और अनुभव करने में विषमताएँ रखते हैं और पिकनिक प्रकार के व्यक्ति संवेगों से अत्यधिक प्रभावित होते हैं।

शरीर की बनावट के अनुसार शैल्डन ने भी व्यक्तियों का वर्गीकरण किया है। यह वर्गीकरण निम्नांकित है—

(अ) ऐण्डोमोर्फिक—कोमल और गोल शरीर वाले।
(ब) मैसोमोर्फिक—हृष्टपुष्ट शरीर भारी और मजबूत, खाल पतली।
(स) ऐक्टोमोर्फिक—शक्तिहीन और उत्तेजनशील।

---

1. Hippocrates 2. Phlegmatic
3. Melancholic 4. Cholenc 5. Sanguine
6. Rationalistic. 7. *Empiricist.*
Endomorphic, Mesomorphic.

मनोविश्लेषणवादियों से हमने प्रथम ही वर्गीकरण प्राप्त किया है। इस वर्गीकरण का श्रेय फ्राइड को जाता है। फ्राइड का कहना है कि व्यक्तित्व की विशेषताएँ शिशु और बालक में उत्पन्न हो जाती हैं। इनका सम्बन्ध खास तौर से उसका दूध छुड़ाने नाम सम्बन्धी उत्तेजना से होता है। फ्राइड के अनुसार व्यक्तित्व के ये प्रकार निम्नलिखित हैं—

(१) ओरल[1]
(२) ऐनाल[2]
(३) फैलिक[3]

जुंग[4] के अनुसार जो दूसरा महान् मनोविश्लेषणवादी था हमको अन्तर्मुखी, बहिर्मुखी और उभयमुखी ये तीन प्रकार के व्यक्तित्व प्राप्त हुए।

" शुद्ध मनोवैज्ञानिकों में से बहुत कम ऐसे व्यक्ति हुए हैं जिन्होंने हमको व्यक्तित्व के प्रकारों के विषय में मौलिक तथ्य का उद्‌घाटन किया हो। विलियम जेम्स की बात हम पहले कह चुके हैं। दूसरे मनोवैज्ञानिक जिन्होंने व्यक्तित्व के प्रकारों का उल्लेख किया था रेट्न और बीने थे। मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में उनको जो व्यक्ति मिले उनको वे आत्म निष्ट[5] और वस्तु निष्ट[6] इन दो श्रेणियों में विभाजित किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि व्यक्तित्व के प्रकारों का उद्‌गम स्थान मनोविज्ञान न होकर आत्म दर्शन रहे हैं।

स्प्रेंगर[7] ने व्यक्तियों के जीवन दर्शन के आधार पर व्यक्तियों के ६ वर्ग बनाए—सैद्धान्तिक आर्थिक, सौन्दर्यप्रिय, सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक। उसका विश्वास था कि प्रत्येक व्यक्ति जिस वस्तु को जीवन में अधिक महत्व देता है उसी को जीवनभर वैसा ही महत्व देता रहता है। उसके विचार से सैद्धान्तिक व्यक्तित्व वाला मनुष्य बौद्धिक कार्यों में अधिक रुचि लेता है वह सत्य की खोज में लगा रहता है अतः वैज्ञानिक या दार्शनिक बन जाता है। आर्थिक व्यक्तित्व वाला व्यक्ति व्यवहार कुशल और भौतिक एवं शारीरिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि में लगा रहता है। इसी प्रकार अन्य प्रकार के व्यक्तित्व के व्यक्तियों की विशेषताओं को भी स्प्रेंगर ने उल्लेखित किया है।

औलपोर्ट और वर्नन (Vernon) ने स्प्रेंगर द्वारा प्रतिपादित वर्गों का अस्तित्व प्रमाणित किया है। इंजीनियरिंग तथा व्यापार क्षेत्र में काम करने वाले व्यक्ति आर्थिक, कवि साहित्यकार व सौन्दर्यप्रेमी पाये गये। पुरुष स्त्रियों की अपेक्षा अधिक सैद्धान्तिक, आर्थिक और राजनैतिक स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक सौन्दर्य प्रेमी, सामाजिक तथा धार्मिक मिली।

२१.७ व्यक्तित्व के प्रकारों की परिसीमायें :

ऊपर जितने भी प्रकारों का वर्णन किया गया है उनका व्यावहारिक महत्व कुछ भी हो, जैसा कि इस अनुच्छेद के प्रारम्भ में कह दिया गया है, किन्तु इस प्रकार का वर्गीकरण उचित और न्यायपूर्ण प्रतीत नहीं होता। इसके निम्नलिखित कारण हैं—

(१) व्यक्तियों का वर्गीकरण करना अत्यन्त कठिन है क्योंकि अधिकांश व्यक्ति साधारण वर्ग के होते हैं। व्यक्तित्व के इन प्रकारों में किसी न किसी विशेषता की अति दिखाई देती है। किसी विशेषता का उस मात्रा में एक व्यक्ति में पाया जाना जिस मात्रा में उसके सुझाव करने वाले ने उल्लेख किया है, असम्भव सा प्रतीत होता है। ऐसा कौन सा व्यक्ति है जिसमें अन्तर्मुखी अथवा बहिर्मुखी के सभी लक्षण मिलते हों। एक सामान्य व्यक्ति न तो पूरी तरह सिद्धान्तात्मक और न पूरी तरह से अर्थात्मक ही हुआ करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि व्यक्तित्व की प्रत्येक विशेषता न्यूनाधिक मात्रा में दृष्टिगोचर हो सकती है। अतएव एक प्रकार के दूसरे प्रकार के व्यक्तियों का मिश्रण असम्भव होता है। यही कारण है कि जिन जिन विद्वानों ने व्यक्तित्व का वर्णन करने के लिए प्रकारों का विचार प्रस्तुत किया, उनको स्पष्ट कहना पड़ा यह मानना पड़ा कि वे सभी वर्गों में न बँटे। इन वर्गों में बहुत से व्यक्तियों के व्यक्तित्व को सम्मिलित नहीं किया जा सकता था, बहुत से व्यक्तियों व

---

1 Oral   2 Anal   3. Phallic   4 Jung   5 Subjective
6. Objective   7. Edward Spranger—a German Psychologist

व्यवहारों को इन वर्गों में स्थान नहीं दिया जा सकता था। जंग ने यही त्रिया उसको बाद मे यह स्वीकार करना पड़ा कि अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी व्यक्तियों की भी अलग अलग किस्मे हो सकती हैं।

(२) कभी कभी किसी व्यक्ति के आदर्श, जीवनदर्शन और विचारधारा मे इतना अधिक परिवर्तन हो जाता है कि उसका व्यक्तित्व बदलकर दूसरा ही हो जाता है। प्रकारसिद्धान्त[1] यह मानकर चलता है कि व्यक्तियों के व्यवहार मे अनाम्य सगति होनी चाहिए जैसा कि स्प्रेंगर मानकर चलता है। यह विचार भ्रमात्मक है। साधारणत मनुष्य एक ही जीवन दर्शन का अनुगमन जीवन भर नहीं करता।

(३) इन प्रकारों मे ऐसी विशेषताओं का समावेश कर दिया गया है जो वास्तविक व्यक्तियों मे नहीं मिलती। ऐसा भी प्राय देखा जाता है कि जो व्यक्ति एकान्त से प्रेमी है वह बात-बात पर बिगड़ भी जाता है। व्यक्तित्व के प्रकार हमको भ्रान्तियों मे डाल सकते हैं। हम कहते है कि अमुक व्यक्ति अन्तर्मुखी है इसलिये समाज से दूर रहता है किन्तु क्या उसमे अन्तर्मुखता की वृत्ति सामाजिक परिस्थितियो के कारण पैदा नहीं हुई है। इसलिए व्यक्तित्व के प्रकारों मे अत्यधिक विश्वास करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

व्यक्तित्व के प्रकारो के सिद्धान्त मे परिसीमायें होते हुए भी उसकी कुछ उपयोगिता है। कम से कम व्यक्तित्व के निर्धारण मे अवश्य कुछ न कुछ सहायता मिलती है। सभी मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व के इन प्रकारो को व्यक्तित्व के गुणो की अथवा विशेषताओ की चरम सीमायें मानते हैं।

23 8 Discuss the various characteristics of Interoverted and Extraverted personality types

जूंग का वर्गीकरण [1]

जूग ने देखा कि कुछ व्यक्तियो की जीवन शक्ति उन्हे अपने पर अधिक ध्यान देने के लिये प्रेरित करती है अत उनके भाव अनुभव और चेतना अपनी ही ओर केन्द्रित रहते हैं और शेष व्यक्तियो को लिबिडो दूसरे व्यक्तियो और बाह्य जगत मे क्रिया करती है। व्यक्तियों की जीवनशक्ति के क्रियाशील होते समय अन्दर और बाहर की ओर मुख करने के कारण उसने उन्हे अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी की सज्ञा दी। अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी व्यक्तित्व की विशेषतायें नीचे दी जाती हैं।

अन्तर्मुखी—बाह्य जगत से प्रेम की कमी, आलोचना किए जाने पर अत्यधिक बुरा मानने की प्रवृत्ति, सवेगो का विरोध, बातचीत करते समय 'मैं, मेरा, और मुझको' का अत्यधिक प्रयोग, असफलताओ को बढा-चढ़ा कर वर्णन करने की आदत आदि अन्तर्मुखी व्यक्ति की विशेषताएं मानी जाती है। इस प्रकार के व्यक्ति को दूसरे के सामने सामने आने मे झिझक लगती है, हँसी-मजाक मे जी घबड़ा उठता है। ससार को प्रसन्न करने की उसे चिन्ता नहीं होती अतः वह कम सामाजिक होता है। वह व्यवहार कुशल भी नहीं होता। किसी कार्य को करने मे उसे डर लगता है। सासारिक बातो मे ठगा जाना उसके लिये बड़ा आसान है। उसमे एक कार्य मे दत्तचित होकर लगे रहने की प्रवृत्ति होती है अत वह एक विषय का विशेषज्ञ हो सकता है। वह काण्ट, न्यूटन और टैगोर की तरह विचारक होता है। समाज से दूर रहकर मनसा वाचा कर्मणा वह उन्मूलनवादी समाजसुधारक होता है क्योंकि वह जो कुछ सोचता है अथवा जो कुछ अनुभूतियाँ रखता है वे सब उसकी निजी होती हैं। यद्यपि उसका 'अहं' भाव प्रबल होता है किन्तु आवश्यक रूप से अहकारी नहीं होता। समाज के लोगों से अलग रहने वाला निर्जनता का यह प्रेमी स्वार्थी नहीं होता। भले ही वह व्यवहार कुशल क्यो न हो किन्तु वह समाज-सुधार और प्रगति मे पक्का विश्वास करने वाला होता है। उसकी सबसे बड़ी कमजोरी यही है कि वास्तविकता से दूर रहने के कारण कभी कभी स्वप्नों की दुनिया का निवासी हो जाता है।

---

1. Type theory.

बहिर्मुखी—बहिर्मुखी व्यक्ति के कार्य, भाव और विचार बाह्य जगत से निश्चित होते हैं। उसका ध्यान सदैव बाह्यसमाज की ओर लगा रहता है इसलिये आन्तरिक जीवन कष्टमय होता है। वह वातावरण के प्रभाव से शीघ्र प्रभावित होता है। अपने विचारों का निर्माण अपने सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों के विचारों से करता है। इस प्रकार वह अपने को वातावरण की आवश्यकताओं के अनुकूल व्यवस्थापित करने का प्रयत्न करता है।

वह यथार्थवादी होता है इसलिये कार्यकुशल होता है। समाज उसका सम्मान करता है इसलिये कि वह सबसे हिलमिलकर रहता है। वह सहयोगी होता है। समुदाय में पड़कर अन्य व्यक्तियों की आलोचनाओं से न घबड़ाने के कारण समाज में अनुकूलन स्थापित कर लेता है।

न तो वह अन्तर्मुखी व्यक्ति की तरह आत्म आलोचन और आत्म विश्लेषण में लगा रहता है और न अपनी असफलताओं पर अत्यधिक क्षोभ ही प्रगट करता है और न इतना अधिक चिन्ताग्रस्त ही होता है।

वह अवसरवादी होता है और विज्ञापन की सहायता से अपने विचारों से दूसरों को आक्रान्त करने का प्रयास करता है, फिर भी ऐसा व्यक्ति कोई ऐसा कार्य नहीं करता जिससे दूसरे लोग अप्रसन्न हों। जब उसे निम्नलिखित प्रश्नावली भरने को दी जाती है तब वह जिस प्रकार के उत्तर देता है, उनको रेखांकित कर दिया गया है—

	प्रश्न	उत्तर	
१.	क्या तुम सदैव अपने विषय में सोचते रहते हो ?	हाँ	नहीं
२.	क्या तुम अपने पास रहने वाले व्यक्तियों से हिल-मिलकर रहते हो ?	हाँ	नहीं
३.	क्या तुमको दूसरों के द्वारा निरीक्षण किया जाना अच्छा लगता है ?	हाँ	नहीं
४.	क्या तुम उस समय अच्छी तरह से काम करते हो जब तुम्हारी प्रशंसा की जाती है ?	हाँ	नहीं
५.	क्या तुम दूसरों से बातचीत करते समय कुछ सोचते रह जाते हो ?	हाँ	नहीं
६.	क्या आप समाज में रहना अधिक पसन्द करते हैं ?	हाँ	नहीं
७.	क्या आप चेष्टा करते हैं कि दूसरे लोग आप से सहमत हो जायें ?	हाँ	नहीं
८.	क्या आप इसलिए अधिक चिन्तित रहते हैं कि आपके विषय में अन्य व्यक्ति क्या सोचते हैं ?	हाँ	नहीं
९.	क्या आप अन्य व्यक्तियों को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं ?	हाँ	नहीं
१०.	क्या आप नये लोगों के बीच में भी आराम से रहते हैं ?	हाँ	नहीं
११.	क्या आप के मन को शीघ्र ही ठेस लग जाती है ?	हाँ	नहीं
१२	क्या आप जनता में भाषण देने की इच्छा रखते हैं ?	हाँ	नहीं
१३.	क्या आप अपने को दूसरों से हीन समझ कर चिन्तित रहते हैं ?	हाँ	नहीं
१४.	क्या आप प्रभावशाली और साधारण घटनाओं से शीघ्र चिन्तित हो जाते हैं ?	हाँ	नहीं
१५.	क्या आप सर्वप्रिय हैं और दूसरों को अपना मित्र बना लेते हैं ?	हाँ	नहीं

बाद में इस वर्गीकरण को व्यापक विशेष रूप से मान्यता दी जाती है। जो व्यक्ति इन दो वर्गों में नहीं आते उन्हें उभयमुखी वर्ग में रख दिया जाता है। उभयमुखी व्यक्ति की विशेषताएँ नीचे दी जाती हैं—

उभयमुखी—जो व्यक्ति एक समय अन्तर्मुखी जैसा और दूसरे समय बहिर्मुखी व्यक्ति जैसा आचरण करता है। उभयमुखी कहलाता है। ऐसे व्यक्ति एक परिस्थिति में अन्तर्मुखी वृत्ति और दूसरी परिस्थिति में बहिर्मुखी वृत्ति का प्रदर्शन करते हैं। उदाहरण के लिये एक व्यक्ति मित्रतापूर्ण व्यवहार का प्रदर्शन करता हुआ भी समाज से अलग रहना पसन्द कर सकता है। ऐसे व्यक्तियों को कुछ विद्वान विकासोन्मुख के विशेषण से भी सुशोभित करते हैं।

23 9 What is a personality trait? What traits would you like to develop in school children?

व्यक्तित्व के गुण

किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का वर्णन करने का एक तरीका है उसके व्यक्तित्व के प्रकार का उल्लेख करना, दूसरा तरीका है उन विशेषताओं का पता लगाना जो उसके व्यवहार में नियमित रूप से मिलती है। यदि कोई व्यक्ति किसी विशेष परिस्थिति में पड़कर किसी गुण का प्रदर्शन करता है तो वह गुण व्यक्तित्व का गुण नहीं माना जा सकता। यदि वह उस विशेषता का प्रदर्शन उन सभी स्थलों पर करता है जहाँ उसके प्रदर्शन की आवश्यकता है तो हम यह कह सकते हैं कि यह गुण उसके व्यक्तित्व का एक विशेषक (Trait)[1] है। किन्तु व्यक्ति से यह आशा करना कि वह उस गुण का उस समय भी प्रदर्शन करे जिस समय उसकी आवश्यकता नहीं है उचित नहीं प्रतीत होता। यदि वह इस गुण के प्रदर्शन करने से पूर्व परिस्थिति विशेष का विश्लेषण कर उसका वही प्रदर्शन करे जहाँ उसके प्रदर्शन की आवश्यकता है तो वह गुण उसके व्यक्तित्व का गुण होगा। *इस प्रकार व्यक्तित्व के गुण व्यक्ति के जीवन के अंग बन जाते हैं।*

ऑलपोर्ट—व्यक्तित्व के गुणों की परिभाषा देते हुए कहता है कि व्यक्तित्व के गुण वे निश्चयक प्रवृत्तियाँ[2] हैं जो हमें विशेष ढंग से व्यवहार करने के लिए प्रेरित करती रहती हैं। [illegible] व्यक्तित्व के गुणों में हमारे व्यवहार के गुणों में हमारे व्यवहार के विशेष [illegible] हमारे व्यवहार [illegible]

ऑलपोर्ट इन्हीं गुणों के गत्यात्मक संगठन को व्यक्तित्व मानता है [illegible] अनुसार ये गुण २४ हैं जिनको ५ निम्नलिखित वर्गों में बाँटा जा सकता है—

(अ) बुद्धि
(ब) गतिशीलता
(स) स्वभाव
(द) आत्मप्रकाशन
(य) सामाजिकता

इन प्रमुख गुणों के उपगुण नीचे दिये जाते हैं—

बुद्धि—(१) किसी कठिनाई का सामना करके उसे दूर करने की क्षमता
(२) स्मरणशक्ति
(३) दो वस्तुओं में पारस्परिक सम्बन्ध देखने की शक्ति
(४) रचनात्मक कल्पनाशक्ति
(५) निर्णय की विचार शक्ति
(६) नवीन परिस्थिति में अनुकूलन स्थापित करने की शक्ति

(ब) गतिशीलता (७) कार्य करने की क्षमता
(८) „ रीति
(९) अध्यवसाय की क्षमता
(१०) सामान्य चालक शक्ति

1. F [illegible]
2. [illegible]
ness to behave [illegible]
N. York, Holt, 1937.

(स) स्वभाव (११) संवेगात्मक दृढ़ता
(१२) संवेगात्मक उदारता
(१३) संवेगों को नियन्त्रित करने की शक्ति
(१४) मनोवृत्ति
(१५) अन्यवृत्तियों के प्रति व्यवहार
(द) आत्मप्रकाशन(१६) किसी कार्य को प्रारम्भ करने की शक्ति
(१७) अन्तदृष्टि
(१८) क्षति वहन करने की शक्ति
(१९) बहिर्मुखता
(२०) उग्रता और विनयशीलता
(य) सामाजिकता(२१) सामाजिक समायोजन
(२२) „ जीवन में भाग लेने की शक्ति
(२३) आत्म केन्द्रिता अथवा निस्वार्थता
(२४) चरित्र

वुडवर्थ के अनुसार निम्नलिखित परस्पर विरोधी व्यक्तित्व के १२ आधारभूत गुण हैं कैटल भी इन्हीं को मूल गुण[1] मानता है।

विशिष्ट गुण	विरोधीगुण
(१) मधुरभाषी, उदारचित, मिलनसार नम्र	अभिमानी, शुष्क, वैमनस्य रखने वाला कायर, लज्जाशील
(२) प्रज्ञावान, विश्वास पात्र, स्वाधीन	प्रज्ञाशून्य, अविश्वस्त, सकुचित-हृदय
(३) स्थिर-भाव, सत्यारूढ, साहसी,	अस्थिरभाव, भीरू, टालमटोली।
(४) गौरवशाली, प्रभावशील, अधिकार का उपयोग करने वाला	विनीत, आत्महीनता से युक्त
(५) शान्तिप्रिय, प्रसन्न, सामाजिक,	अशान्त, हताश, एकाकी, क्षुब्ध
(६) दयालु, भावुक, सहानुभूति रखने वाला	भावरहित, स्पष्टवादी
(७) प्रशिक्षित, सुलझा हुआ, सौन्दर्य प्रिय	गवार, असभ्य
(८) सत्यपरायण, कर्मठ, सहनशील, उत्तरदायित्व को समझने वाला,	असहिष्णु, उत्तरदायित्व न समझने वाला, दूसरों पर निर्भर
(९) हिम्मत वाला, निश्चिन्त दयावान	साहसहीन, दूसरों से कम मिलने वाला, आवश्यकता से अधिक होशियार, निरुत्साही
(१०) पूर्ण शक्ति से काम करने वाला, दत्तचित होकर काम करने वाला, जल्दबाज	उत्साह शून्य, रुक रुक कर काम करने वाला, हवाई किले बनाने वाला
(११) आवश्यकता से अधिक भावुक, शीघ्र उत्तेजित होने वाला	शीघ्र उत्तेजित न होने वाला सहनशील
(१२) सबसे मैत्री रखने वाला, दूसरों पर विश्वास रखने वाला	दूसरों पर शका करने वाला, शत्रुभाव रखने वाला।

1. Source traits

जब हम किसी व्यक्ति को किसी विशेष ढंग का व्यवहार करते हुए देखते हैं तब हम कहते हैं कि उसमें अमुक गुण है। इस प्रकार व्यक्ति के व्यवहार को देखकर उसके व्यक्तित्व का विशेषक निश्चित किया जाता है। किसी व्यक्ति में कोई व्यक्तित्व का कोई निश्चित विशेषक है या नहीं इसका ज्ञान हमें उसमें निम्न तीन बातों को देखकर होता है—

(अ) व्यक्ति कई समान परिस्थितियों में पड़कर क्या करता है?

(ब) वह किस प्रकार का व्यवहार प्रदर्शित करता है?

(स) किसी कार्य को किस अच्छाई से करता है?

उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति भिन्न-भिन्न भयावह परिस्थितियों में पड़कर अपनी जान को हथेली पर रखकर कार्य करता है, तो हम कहते हैं कि बहादुरी उसके व्यक्तित्व का गुण है, यदि कोई व्यक्ति सब परिस्थितियों में सोच विचार कर कार्य करता है तो हम कहते हैं कि विचारशीलता उसके व्यक्तित्व का गुण है और यदि वह अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा किसी कार्य को करनेमें विशेष बुद्धिमानी का प्रदर्शन करता है तो बुद्धिमानी को उसके व्यक्तित्व का गुण माना जाता है।

व्यक्तित्व के ये गुण व्यक्तित्वमापन में बड़ी सहायता देते हैं क्योंकि उनसे व्यक्तित्व का निरपेक्ष मापन कर सकते हैं। इन गुणों में कुछ ऐसे ही लक्षण[1] हैं जो उनको मापनीय बना देते हैं।

23 10. Can a personality trait be measured? Discuss the various methods of measuring personality traits!

व्यक्तित्व के गुणों[2] की मापनीयता

व्यक्तित्व के अनेक गुण ऐसे हैं कि जिनको श्रेणीबद्ध[3] किया जा सकता है। ये गुण ऐसी विशेषताएं हैं जिनकी भिन्न-भिन्न मात्राएं भिन्न भिन्न लोगों में वर्तमान होती हैं। यदि किसी विशेषता की मात्रा के अनुसार व्यक्तियों में विभिन्नता है तो उस विशेषता को एक सरल रेखा द्वारा प्रदर्शित कर सकते हैं। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न व्यक्तित्व के गुणों को जो श्रेणीबद्ध किये जा सकते हैं भिन्न-भिन्न सरल रेखाओं द्वारा प्रदर्शित कर सकते हैं। नीचे चित्र में तीन सरल रेखाओं द्वारा स्वच्छता, सामाजिकता और सहकारिता के तीन गुण प्रदर्शित किए हैं
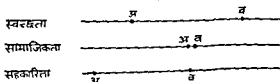
चित्र में तीनों गुणों को प्रदर्शित करने वाली सरल रेखाएं और दो व्यक्तियों की स्थितियाँ

इस चित्र से स्पष्ट प्रगट होता है कि व्यक्ति ब, अ की अपेक्षा अधिक सफाई से कार्य करता है किन्तु दोनों समान रूप से सामाजिक हैं। अ में सहकारिता का गुण बहुत ही कम मात्रा में है जबकि ब पर्याप्त मात्रा में अन्य व्यक्तियों के साथ सहयोग से कार्य कर सकता है। व्यक्ति किसी एक समय में कितनी मात्रा में किसी विशेषता का प्रदर्शन कर सकता है, उसका प्रदर्शन उस विशेषता को दिखलाने वाली सरल रेखा पर एक बिन्दु द्वारा किया जा सकता है। किसी व्यक्ति में किसी विशेषता की मात्रा के अनुसार उसकी स्थिति दिखाने के लिये उसे परीक्षाएं दी जा सकती हैं। यदि वह १०० परिस्थितियों में से ५० बार अपने कार्यों में स्वच्छता का प्रदर्शन [illegible] हैं। इसी प्रकार यदि [illegible] उसमें पूर्णतया असहमत है [illegible] ती है।

[illegible] है। उदाहरण के लिए [illegible] ऊपर के चित्र में

[illegible] Some Properties of Traits 3, Scalable 4, End points

व्यक्तित्वमापन की विधियाँ—व्यक्तित्व को मापने की विधियों को तीन वर्गों मे बाँटा जा सकता है।

(क) आत्मगत विधियाँ (Subjective Methods)
(ख) वस्तुनिष्ठ विधियाँ (Objective Methods)
(ग) प्रक्षेपण विधियाँ (Projective Methods)

(क) आत्मगत विधियाँ—

(i) जीवन कथा अथवा व्यक्ति का स्वय का इतिहास (Biography or self History)
(ii) व्यक्तिगत इतिहास (Individual History)
(iii) समक्षभेंट (Interview)
(iv) अभिज्ञापन प्रश्नावली (Inventory)

(ख) वस्तुनिष्ठ विधियाँ—

(i) नियन्त्रित निरीक्षण (Controlled Observation)
(ii) व्यक्तिगत गुणों का मूल्य निर्धारण (Appraisal of personal qualities)
(iii) शारीरिक परिवर्तन
(iv) मौखिक व्यवहार द्वारा व्यक्तित्व अध्ययन (Study of personality through verbal behaviour)

(ग) प्रक्षेपण विधियाँ—ये विधियाँ निम्न प्रकार की हैं—

(i) रोशा (Rorschach) परीक्षण
(ii) थीमेटिक अपर सेप्शन परीक्षा (Thematic apperception test)
(iii) खेल (Play Technique)
(iv) शब्द साहचर्य परीक्षा (Word Association Test)
(v) चित्र साहचर्य परीक्षा (Picture Association Test)
(vi) अभिनय प्रदर्शन परीक्षा (Dramatic representation Test)

इन सभी परीक्षाओं का उल्लेख शैक्षणिक मापन और मूल्यांकन में किया जायगा।

अध्याय [illegible]

मनोविश्लेषण और अचेतन मन

Q. 1 What is psychoanalysis? Discuss its scope and limitations?

Ans. मनोविश्लेषण से हमारा तात्पर्य उस मनोवैज्ञानिक विचारधारा से है जिसका प्रवर्तन वियना (Vienna) के विश्वविख्यात मनोविश्लेषक फ्रायड (Freud) ने किया था। इस मनोवैज्ञानिक विचारधारा का प्रारम्भिक रूप था मनोरोगियों की चिकित्सा। इस प्रकार मनोविश्लेषण में हम दो बातों का अध्ययन करते हैं :

(१) 'अचेतन' मन क्या है?

मनोरोगी के व्यक्तित्व का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किस प्रकार किया जा सकता है और उसके रोग की चिकित्सा की विधि क्या है?

'अचेतन मन' के विषय में फ्रायड और उनके अनुयायियों के विचारों का समूह मनोविश्लेषणवादी सिद्धान्तों की विषयवस्तु बनती है। इन सिद्धांतों का विचार था कि मानव-व्यवहार किसी न किसी प्रयोजन द्वारा निर्देशित हुआ करता है। मनुष्य के सारे व्यवहार विश्वास और विचार उस प्रयोजन से सदैव प्रभावित होते रहते हैं। अतएव यह जानने के लिये कि किसी व्यवहार के लिए व्यक्ति का क्या प्रयोजन छिपा हुआ है हमें उसके भूतकालीन अनुभवों का अध्ययन करना होगा। यही धारणा मनोविश्लेषणवादी सिद्धान्त के मूल में निहित रहती है। इसलिये प्रत्येक मनोविश्लेषक (Psychoanalyst) अज्ञात चेतना में छिपे हुए प्रयोजनों, इच्छाओं एवं अन्य कारणों को ढूंढ निकालने का प्रयत्न करता है। अज्ञात चेतना में छिपे हुए ये प्रयोजन या इच्छायें अथवा अन्य बातें कामभावना सम्बन्धी (sexual) होती हैं ऐसा फ्रायड का विचार था। फ्रायड के एक साथी एडलर (Adler) का कहना था कि अज्ञात चेतना में छिपे हुए प्रयोजन या इच्छायें शक्ति प्राप्त करने की अभिलाषा से परिपूर्ण होती है, काम भावना से युक्त नहीं होतीं। कुछ भी हो अज्ञात चेतना में छिपी हुई ये इच्छायें आवेगों से आप्लावित रहने के कारण चेतना स्तर पर आने का प्रयत्न सदैव करती रहती हैं किन्तु चेतन मन उनको बाहर आने की आज्ञा नहीं देता, क्योंकि वह सामाजिक रीतियों के अनुसार उन अवदमित इच्छाओं को निकृष्ट मानकर और भी अधिक अवदमन किया करता रहता है। चेतन एवं अचेतन मन में इस प्रकार के संघर्षों के उत्पन्न होने के कारण व्यक्तित्व में विघटन उत्पन्न होने लगते हैं और अज्ञात चेतनायें जो इस प्रकार बन जाती हैं व्यक्ति का जीवन भर पीछा नहीं छोड़ती।

फ्रायड का विश्वास था कि प्रत्येक व्यक्ति आनन्द भोगने की इच्छा से ऐसे आचरण करता है जिनमें उसे आनन्दानुभूति तो हो किन्तु पीड़ा न हो। बच्चे के आचरण में आनन्द-पीड़ा का यह सिद्धान्त सबसे अधिक लागू होता है। उसकी इच्छा होती है आनन्द प्राप्त करना [illegible] पीड़ा से बचते रहना। यदि परिस्थितियाँ इस बात के अनुकूल न हुईं तो वह उसके साथ [illegible] पैदा नहीं कर पाता। फलतः अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिये अच्छी व बुरी प्रतिक्रियायें [illegible] है। इन प्रतिक्रियाओं में अपराध और दुराचरण आदि भी दिखाई देते हैं। उसके कुसमंजन [illegible] maladjustment) पैदा करने के कुछ कारण हैं। वह अभी तक वास्तविकता को स्वीकार करने में असमर्थ होता है, अपनी कमियों एवं कमजोरियों का अन्दाजा नह[illegible] पाता, अतः

अपनी परिस्थितियों के साथ अनुकूलन स्थापित नहीं कर सकता। फलतः उसमें मनोरोग अथवा बाल अपराध के लक्षण उत्पन्न होने लगते हैं। बड़े होने पर ये उग्र रूप धारण कर उसके व्यक्तित्व को विघटित कर दिया करते हैं।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट हो गया होगा कि व्यक्तियों का मानसिक स्वास्थ्य किस प्रकार बिगड़ जाता है। यदि हम चाहते हैं कि मनुष्यों में मनोरोग पैदा न हों तो उनके बचपन से ही इन रोगों की रोकथाम करनी होगी। हम जिन रोगों को असाध्य समझ कर कह दिया करते थे कि वे वंशानुक्रम (heredity) से उन्हें मिले हैं। वे रोग अब मनोविश्लेषणवादी सिद्धान्त के अनुसार बचपन की भग्नाशाओं (frustrations) से पैदा होते हैं। बाल-अपराधियों के अपराधों का अध्ययन भी मनोविश्लेषणवादी सिद्धान्तों के आधार पर किया जाने लगा है।

व्यक्तित्व के अनेक विकारों का निदान एवं उनकी चिकित्सा मनोविश्लेषण पद्धति पर की जाती है :—

मनोविश्लेषणात्मक पद्धतियों (Psychoanalytic Methods) में तीन विधियाँ प्रयुक्त होती हैं :

(१) स्वतन्त्र साहचर्य परीक्षा।
(२) स्वप्न विश्लेषण।
(३) समक्ष भेंट।

स्वतन्त्र साहचर्य परीक्षा किस प्रकार से ली जाती है इसका विस्तृत उल्लेख आगे किया जायगा। यहाँ पर इतना ही कह देना पर्याप्त है कि स्वतन्त्र साहचर्य परीक्षा से व्यक्ति के अचेतन मन के विषय में जानकारी मिल सकती है यदि सहचारी शब्द असामान्य अथवा प्रतिक्रिया समय अधिक लगता है तो व्यक्ति के मन में स्थिति भय, प्रेम या घृणा आदि किसी संवेग से उस शब्द का सम्बन्ध होता है। फ्रायड और उसके अन्य साथी स्वतन्त्र साहचर्य परीक्षा के अतिरिक्त मोह निद्रा की सहायता से भी अज्ञात चेतना का रूप समझने का प्रयत्न करते हैं। मोह निद्रा में व्यक्ति अपनी उनसारी इच्छाओं का संकेत दे देता है जो अवदमित हो चुकी हैं। दोनों प्रकार के इन परीक्षणों में व्यक्ति असावधान सा रहता है अतः उसकी इच्छाएँ बिना किसी प्रतिरोध के बाहर निकल आती हैं, क्योंकि चेतन मन उस समय सुप्तावस्था में रहता है।

स्वप्न में भी उसका चेतन मन सोता रहता है इसीलिए स्वप्न में वह जो कुछ वस्तुयें देखता है उनके मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों, भावनात्मक संघर्षों एवं अवदमित इच्छाओं की प्रतीक होती है। इस प्रकार मनोविश्लेषणवादी इन स्वप्नों का विश्लेषण करके अथवा उसकी व्याख्या करके मनोरोगों का कारण ढूँढ लेता है। स्वप्नों की व्याख्या किस प्रकार की जाती है इसके लिए फ्रायड ने अपनी पुस्तक Interpretation of Dreams की रचना की है।

मनोविश्लेषकों की तीसरी विधि है मनोरोगी से समक्ष भेंट। इस प्रकार की भेंट का प्रयोजन होता है व्यक्ति की सुखद एवं दुःखद अनुभूतियों का ज्ञान प्राप्त करना। इन भेंटों में व्यक्ति से घुमा फिरा कर प्रश्न पूछे जाते हैं। मनोचिकित्सक प्रत्येक रोगी को अपनी राम कहानी कहने के लिए इस प्रकार उत्साहित एवं उत्प्रेरित करता रहता है कि उसमें ऐसी बातें भी स्पष्ट हो जाती हैं जिनको वह किसी प्रकार का महत्व नहीं देता, लेकिन जो व्यक्तित्व को विकृत करने में विशेष महत्वपूर्ण रही हैं। व्यक्तित्व की हिचकिचाहट दूर करने के लिए उसमें आत्मसम्मान की भावना पैदा करता है। समक्ष भेंटों के बाद कभी कभी वह स्वतन्त्र साहचर्य परीक्षा भी लेता है।

रोगी का निदान कर लेने के बाद चिकित्सक उपचार करना आरम्भ कर देता है। वह रोगी को उसके रोग का कारण नहीं बतलाता। वह धीरे धीरे अवदमित इच्छाओं को उभारता रहता है। मनोरोगी अपने भूले हुए अनुभवों में कुछ समय तक लीन रहता है. मनोविश्लेषक इस प्रकार व्यक्ति की अवदमित इच्छाओं को प्रकट करके आन्तरिक संघर्ष को कम कर देता है। किन्तु यह कार्य धीरे-धीरे होता है।

पिछले महायुद्ध के उपरान्त मनोविश्लेषण एवं मोहनिद्रा को विशेष महत्व दिया जाने लगा है क्योंकि युद्ध में मनोरोग से पीड़ित सैनिकों का निदान और उपचार करने में इनका अधिक प्रयोग किया गया है। आधुनिक मनोविश्लेषकों में से कुछ महानुभाव फ्रायड की परम्परा

को मानने के लिए तैयार नहीं है। वे हर मनोरोगी के लिये स्वतन्त्र-विश्लेषण या स्वतन्त्र साहचर्य परीक्षा का प्रयोग ठीक नहीं समझते वे तो उनके साथ मैत्रीपूर्ण वातावरण स्थापित करके उनके वर्तमान जीवन में अचेतन प्रेरणाओं एवं संवेगों का पता लगाने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार थोड़े से ही समय में रोग का निदान करने का प्रयत्न करते हैं।

मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त और पद्धतियाँ व्यक्ति के विकास में कमियों, असफलताओं का प्रभाव ढूंढने में सहायक होती हैं। वे इस कार्य में हमारा मार्ग प्रदर्शन करती हैं कि कुसमायोजित, अपराधी एवं विकट बालकों के साथ कैसा व्यवहार किया जाय। जो कार्य अन्तर्दर्शन से कठिनाई से हो सकता था वह मनोविश्लेषणात्मक पद्धतियों से आसान बन गया है। मनोविश्लेषणवादी के लिये चेतना हमारे मानसिक जीवन का कोई महत्वपूर्ण अंग नहीं है, वास्तविक अध्ययन का विषय अचेतन मन और इस अचेतन मन का स्वरूप अन्तर्दर्शन से नहीं जाना जा सकता। उसके ज्ञान के लिये मनोविश्लेषण की आवश्यकता पड़ेगी।

वर्तमान शिक्षा पर इस सिद्धान्त का विशेष प्रभाव पड़ा है। कभी-कभी हमारे बालकों का व्यवहार ऐसा अजीब हो जाता है कि उसको समझने का कार्य अन्तर्दर्शन से सम्पादित नहीं हो सकता, किन्तु मनोविश्लेषणात्मक पद्धतियों से उन सब आचरणों का कारण एवं उपचार सम्भव हो सकता है जिन पर अज्ञात चेतना का प्रभाव पड़ता रहता है। माता-पिता तथा अन्य सम्बन्धीजनों का बालक के साथ अमनोवैज्ञानिक व्यवहार किया जाने पर किस प्रकार की हानिकारक मानसिक ग्रन्थियाँ पैदा हो जाती हैं, उनको विद्यालीय जीवन में किस प्रकार दूर किया जा सकता है, यह सब जानने के लिए अध्यापक को मनोविश्लेषण के सिद्धान्तों एवं पद्धतियों का अध्ययन करना होगा। उसका शिष्य क्यों अपराध करता है? क्यों वह रोज अपना गृहकार्य घर पर भूल आता है। क्यों उसमें तुतलाने की आदत पड़ जाती है? क्यों वह कभी हठी, कभी चंचल और कभी उदण्ड हो जाता है? क्यों उसके साथ सहानुभूति दिखलाई जाय? इन प्रश्नों का उत्तर मनोविश्लेषण ही दे सकता है। मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्तों का प्रभाव शिक्षा पद्धतियों एवं शिक्षा दर्शन पर भी पड़ चुका है।

पहले जिस बालक को हम समस्यापूर्ण बालक कह दिया करते थे जो हमारे कार्य में बाधा उपस्थित-किया करता था, अब उसके प्रति भी हम सहानुभूति दिखाने लगे हैं। फ्रायड ने अपनी पुस्तक *Psychopathology of Everyday life* में इस बात की ओर संकेत किया है कि गलतियाँ करने में, गृह कार्य को घर पर ही भूल आने में, साफ-साफ लिखने की कोशिश करने पर भी लिखित कार्य को गन्दा कर देने में, अच्छी तरह याद किए हुए पाठ को भी भूल जाने में बालक इस तथ्य का प्रकाशन कर रहा है कि उसके स्वतन्त्र रहने की इच्छा का विद्यालय में अवदमन किया जा रहा है। अध्यापक एक निरकुश शासक की तरह उस पर अधिकार जमाये हुए हैं। वह उसकी स्वतन्त्रता का पद-पद पर हनन करता है। इस बात का विरोध बालक करता है, किन्तु प्रत्यक्ष रूप से नहीं। अप्रत्यक्ष भाव से वह विरोध करता है, अपनी उन परिस्थितियों का जो उसे स्वच्छन्द नहीं रहने देती।

विस्मृति क्यों होती है? इसका एक महत्वपूर्ण कारण भी मनोविश्लेषण प्रस्तुत करता है। हम आवश्यक पत्र लिखते हैं, परन्तु उन्हें लिखकर पत्रालय में डालना भूल जाते है, क्योंकि उनकी स्मृति दुखद भावनाओं को जागृत कर देती है अतएव अज्ञात चेतना उनको भुलाने में सहायक होती है। यदि बालक किसी काम को करना भूल जाता है तो मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त करता है कि इसमें बालक का दोष नहीं है क्योंकि विस्मरण का कारण बालक के मन की कोई अवदम-
... किशोर तो एक प्रकार के मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों की स्थिति में सदैव बना रहता
... होते हैं कि साधारण व्यक्ति
... इसीलिये नहीं कि माँ के गर्भ से
वह अपराधी भावना लेकर आता है ... प्रवृत्यात्मक इच्छाओं का अवदमन हो चुका है। ये अवदमनित इच्छाएँ ही उसे समाजविरोधी कार्य करने के लिये प्रेरित करती रहती हैं। प्रबल काम भावना उसे कई प्रकार के अपराध करने के लिए विवश करती है। आत्मगौरव पाने की मूल प्रवृत्ति दबा दी जाने पर अपना भयंकर प्रभाव समाजविरोधी कार्यों में दिखलाती है। उदाहरणार्थ चोरी करना साधारणतः अपराध माना जाता है, किन्तु यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो यह कृत्य अधिकार प्राप्त करने की मूलप्रवृत्ति के अवदमनित हो जाने पर

ही व्यक्ति द्वारा किया जाता है। जिन कर्मों को हम पाप कर्म समझते हैं वे वास्तव मे अचेतन मन की प्रक्रिया के फलस्वरूप किये जाते हैं अतएव यदि हम बालकों को इन समाजविरोधी कार्यों से दूर रखना चाहते हैं तो उनके मानसिक द्वन्द्वों को सुलझाना होगा, *अवदमित प्रेरणाओं का शोधन* करना होगा। तभी व्यक्तित्व का पुनर्व्यवस्थापन हो सकता है, दण्ड देने से काम न चल सकेगा। विद्यालय मे अनुशासन भंग होने के कई कारणों की तह में अवदमित इच्छाओं की स्थिति है। मनोविश्लेषण इस प्रकार हमारे समाज और विद्यालय को पवित्र, श्रेष्ठ, और उच्च आदर्श वाला बनाने मे सहायक हो सकता है।

अचेतन मन

Q 2. What is the unconscious ? Discuss its importance in the education of the child

व्यक्ति की ज्ञात चेतना (conscious self) की तरह अज्ञात चेतना (unconscious self) भी उसके व्यवहारों, आचरणों, और क्रियाओं को प्रभावित किया करती है। जब उसे किसी ऐसे विकट संवेगात्मक धक्के का सामना करना पड़ता है जिसमे उसकी मनोवृत्ति विकृत हो जाती है तब उसको स्वयं इस बात का पता नहीं रहता *कि इस परिवर्तन का कारण क्या है।* उस सांवेदनिक आघात के कारण उसकी चेतना में ऐसे विचार घर करे जाते हैं जो उसके समस्त मानसिक जीवन को बदल दिया करते हैं।

ये विचार अथवा अवदमित इच्छाएँ वस्तुत पूरी तरह विस्मृत नहीं होती, किन्तु अचेतन मे कहीं छिपकर ऐसी बैठ जाती है कि ज्ञात चेतना उनको ढूँढ ही नहीं पाती। मन की चेतनता अथवा अचेतनता से उसकी प्रक्रिया का बोध होता है। हमे किसी निश्चित क्षण पर कुछ निश्चित बातों का ही ज्ञान होता है। ये बातें हमारे चेतन मन मे रहती हैं। इस ज्ञात चेतना के क्षेत्र में हर समय कुछ और बातें भी रहती हैं जिनको हम आवश्यकता पड़ने पर याद कर लिया [illegible] चेतना मे बनी रहती हैं जिनको [illegible] जिनका सम्बन्ध हमारे संवेगात्मक [illegible] कोशिश करने पर भी याद नही [illegible] ुभव अचेतन मन मे भरे रहते हैं। उनका विस्मरण विस्मृति की साधारण प्रक्रिया के फलस्वरूप नहीं होता, वरन् वह इच्छाओं के अवदमन, मूल प्रवृत्तियों के निरोधीकरण और मानसिक संघर्षों अथवा अन्तर्द्वन्द्वों के कारण हुआ करता है जैसे-जैसे अवदमन या निरोधीकरण या संघर्ष बढ़ते जाते हैं, अचेतन मन मे स्थित इच्छाओं, भावनाओं की संख्या में भी वृद्धि होती जाती है।

अचेतन मन मे व्यक्ति की समस्त प्रेरणायें भरी रहती हैं जो अतृप्त अथवा कम तृप्त रही हो। यदि कोई स्त्री अपने प्रेमी व्यक्ति से मिलना चाहती है, किन्तु पिता की बीमारी के कारण वह इच्छा दब जाती है क्योंकि स्त्री बीमार पिता को छोड़कर अपने प्रियतम से मिलने नहीं जा सकती। समाज का यह विरोध उसकी इच्छा को दमनित कर देता है। ऐसी दमनित भावना स्त्री के दैनिक आचरण को प्रभावित करती रहती है। वह किसी से बात करते करते कुछ खोयी सी रह जाती है। रात मे सोते-सोते चल पड़ती है। यदि मानसिक संघर्ष तीव्र हुआ तो इसका प्रभाव उसके नाड़ी मण्डल पर या शरीर पर भी पड़ सकता है। उसे लकवा मार जाता है। मृगी आदि का रोग हो जाता है। किन्तु यह सब क्यों होता है, इसकी चेतना उसको नहीं होती। इस प्रकार अज्ञात चेतना व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करती रहती है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार ज्ञात चेतना।

अज्ञात चेतना अथवा अचेतन मन का स्वरूप समझने के लिए उसकी विशेषताओं पर ध्यान देना होगा। ये विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(१) ज्ञात चेतना की तरह अज्ञात चेतना (The unconscious) एक शक्ति है जो व्यक्ति के व्यवहारों को नियंत्रित करती रहती है।

(२) उसमे गतिशीलता है स्थिरता नहीं।

(३) अज्ञात चेतना का स्वरूप प्रत्यक्ष निरीक्षण अथवा अध्ययन से नहीं ज्ञात हो

बालकों में हीनता की भावनाग्रन्थि चेतन मन में उस समय रहती है कि जब वह आत्म-विश्वास खोकर अपने को दूसरों से हीन समझता है किन्तु जब वह दूसरों से हीन होने पर भी अपने को गौरवान्वित (superior) समझता है, आत्म प्रकाशन की इच्छा के पूरे न होने पर दूसरों पर आक्रमण करता है, स्थान-स्थान पर अहंकार दिखलाता है, तब हम कह सकते हैं कि उसकी हीनता की भावनाग्रन्थि अचेतन मन में स्थित है। यह ग्रन्थि अभिभावकों अथवा शिक्षकों में बार बार डाँट या फटकार मिलने, प्रत्येक कार्य में हतोत्साहित किए जाने से पैदा होती है। इसका प्रदर्शन शर्मीलेपन और एकान्त जीवन में मिलता है।

भावनाग्रन्थियों की तरह मानसिक अन्तर्द्वन्द्व भी दो प्रकार का होता है चेतन और अचेतन। जब व्यक्ति दो विरोधी संवेगात्मक तनावों के बीच स्थित होता है तब उसमें मानसिक अन्तर्द्वन्द्व पैदा हो जाता है। वह एक स्त्री से विवाह करे अथवा दूसरी से, वह अध्ययन करे अथवा छोड़ दे, किसी पड़ी हुई वस्तु को उठा ले या उसके स्वामी को लौटा दे, इस प्रकार की दो विरोधी परिस्थितियों में पड़ा हुआ व्यक्ति मानसिक अन्तर्द्वन्द्व का शिकार हो जाता है। यदि विरोधी शक्तियों का ज्ञान उसको रहता है तब तो उसका अन्तर्द्वन्द्व चेतन माना जाता है। व्यक्ति ऐसी दशा में अधिक प्रबल शक्ति की ओर आकृष्ट हो जाया करता है। किन्तु जब उसे यह मालूम नहीं रहता कि कौनसी दो शक्तियाँ उसे अपनी ओर खींच रही है अथवा किसी शक्ति की ओर वह आकृष्ट होवे, तब उसकी दशा दयनीय हो जाती है। उसका अन्तःकरण विरोधी प्रेरणाओं का युद्ध क्षेत्र बन जाता है।

अध्यापक का कर्तव्य है कि वह इन मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों के कारण, लक्षण, और उपचार का अध्ययन करे।

मानसिक स्वास्थ्य

Q. 3. What should the teacher do to keep his children mentally healthy ? Explain with examples.

Ans. हमें यह देखना है कि बालकों के मानसिक स्वास्थ्य के लिये अध्यापक को किनबातों को ध्यान में रखना चाहिये। आज के युग में अध्यापक का कार्य बालक को केवल विषयसम्बन्धी ज्ञान ही नहीं देना है कि अपितु उसके वैयक्तिक व्यवस्थापन को भी ध्यान में रखना है और यह शिक्षा का एक मुख्य उद्देश्य है। हमारे शिक्षा के युग में एक युग ऐसा भी था जबकि अध्यापक को बालक को केवल विषय पढ़ाने व समझाने की चिन्ता रहती थी। अध्यापक का कार्य था कि किसी न किसी प्रकार बालक के मस्तिष्क में नवीन बातों को ठूँस दे। यह तो मानसिक स्वास्थ्यविदों का कार्य था कि बालक के व्यवहार की चिन्ता करें। वे ही बालक के वैयक्तिक व्यवस्थापन की चिन्ता करते थे और इस बात का उत्तरदायित्व केवल उनके ही ऊपर था। उनको उन बालकों के प्रति चिन्ता होनी थी जो अधीनता, कायरता या भय आदि के लक्षण दिखलाते थे। धीरे-धीरे शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति होती गई। अध्यापकों ने बालक को केन्द्र मानकर पढ़ाना शुरू किया। वे अब केवल बालकों के विषय के बारे में ही उत्तरदायी नहीं समझे गये बल्कि उनका यह कर्त्तव्य भी हो गया कि वे बालकों के मानसिक स्वास्थ्य को भी भली-भाँति समझें और उसमें सुधार करें।

अध्यापक को बालकों के मानसिक स्वास्थ्य के प्रति सबसे पहले यह देखना चाहिये कि किसी प्रकार उनके वैयक्तिक विकास में बाधा न पड़े। इसके लिये अनेकों बातों का ध्यान रखना परम आवश्यक है। अध्यापक को चाहिये जहाँ तक हो सके बालकों को ऐसे अवसर प्रदान करे जिससे कि वे वास्तविकता का अनुभव कर सकें। परन्तु ऐसा करने से पहले हमें यह भली-भाँति देख लेना चाहिये कि यह वास्तविकता उस बालक के लिये अधिक कीमती सिद्ध न हो अर्थात् वास्तविकता इतनी कठोर नहीं होनी चाहिये कि बालक उसका सामना न कर सकने पर हताश होकर उसे छोड़ बैठे। इतना अवश्य है कि प्रारम्भ में वास्तविकता का सामना न करने में बालक को कष्ट होगा परन्तु अध्यापक का कर्त्तव्य है कि उसे धैर्य बंधाते रहें। एक बार यदि बालक ने वास्तविकता का अच्छी तरह अनुभव कर लिया तो वह बालक अपने जीवन में आने वाली दुर्लभ परिस्थितियों से सरलता से भयभीत न हो सकेगा। उसमें असुरक्षा की भावना का एक प्रकार दमन हो जावेगा जो कि अच्छे मानसिक स्वास्थ्य के लिये परम आवश्यक है। हमारे सम्मुख ऐसे अनेकों उदाहरण हैं। यदि बच्चों को कठिन परिस्थितियों का सामना करने का अवसर प्रदान किया जाता है तो कठिन परिस्थितियों से भयभीत नहीं होते।

बालकों के मानसिक स्वास्थ्य में अध्यापकों तथा माता पिता की चिन्ताओं का बुरा प्रभाव पड़ता है। चिन्तित रहना एक बुरे मानसिक स्वास्थ्य का संकेत है। जो अध्यापक या माता-पिता चिन्तित रहते हैं उनके विद्यार्थी या बच्चे भी चिन्तित रहते हैं। अध्यापकों या माता-पिता से चिन्ताओं का संक्रमण बच्चों में होता है। कभी-कभी अध्यापकों को बालकों के पास होने की चिन्ता रहती है, कभी इन्सपेक्टर के मुआइने की और कभी पैसे की। ऐसे अध्यापक के विद्यार्थी अवश्य ही चिन्तित रहते हैं। जब अध्यापकों में स्वयं ही असुरक्षा की भावना विद्यमान है तो उनके बालकों का मानसिक स्वास्थ्य अच्छा कैसे हो सकता है। इसलिये अध्यापकों को पहले अपनी चिन्ताओं तथा असुरक्षा की भावनाओं को दूर करना चाहिये। Stephens ने ठीक कहा है—

It is ovsious that teacher's own insecurity may readily prevent him from giving the student a measure of security. Extreme lack of security and anxiety is desperately infections. Children, especially prove to be affected by anxiety in parents or older associates, Children facing severe ordeals will often react more to the attitude of the parents than to the actual objective facts Even in the face of genuine tragedy such as the father's loss of a job or a serious financial reverse, the children will be more affected by the anxiety of the parents that by the objective misfortune

बालकों के मानसिक स्वास्थ्य के लिये अध्यापक को इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि किसी प्रकार उनमें हीनता की भावना न आये। बालकों में यह भावना तब उत्पन्न होती है जब समाज में उन्हें अस्वीकृति मिलती है। ऐसे बालकों में एक प्रकार का भय पैदा होता है कि समाज उन्हें स्वीकार नहीं करेगा। इस भय के कारण उनके व्यवहार में एक परिवर्तन आ जाता है। यदि कोई उनका अभिस्ताव करता है तो वे ओछेपन का व्यवहार करने लगते हैं। ऐसे बालक ह्रास प्रकृति के होते हैं। यदि कोई उनकी समालोचना भी करता है तो वे उसका यह अर्थ निकालते हैं कि उनकी तारीफ की गई। यदि बालक में हीनता की भावना अधिक बढ़ जाय तो उसको दूर करना दुर्लभ कार्य है। अध्यापक को चाहिये कि इस बात का निदान करे कि बालक में हीनता की भावना क्यों और कैसे आई। उसे बालक को बताना चाहिये कि उसमें किस प्रकार की हीनता की भावना आ गई और उसे दूर करने का उपाय करना चाहिये।

बालकों के मानसिक स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिये यह भी आवश्यक है कि उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति की जावे। अध्यापकों तथा माता-पिता को बालकों की आवश्यकताओं को भली भाँति समझना चाहिये। माता-पिता तथा अध्यापक मिलकर ही इस कार्य को कर सकते हैं। कभी-कभी यह आवश्यकता दैहिक होती है और कभी-कभी उच्च श्रेणी की होती है। दोनों प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति करना अनिवार्य है, जैसे बालक को माता के स्नेह की आवश्यकता होती है। यदि इस आवश्यकता की पूर्ति न हो सकी तो बालक में असुरक्षा की भावना आ जाती है जिसका कि मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

यदि बालकों को बार-बार परीक्षा में फेल किया जाय तो इसका भी उनके मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। हमें चाहिये कि बालक के फेल होने के कारण को भली-भाँति समझ सकें और उसकी कमियों को दूर करें ताकि उत्तीर्ण होकर वह बालक उत्साहित हो सके। बार-बार फेल होने से बालक हतोत्साहित हो जाता है और उसकी महत्त्वाकांक्षा का स्तर भी गिर जाता है। कभी-कभी असफलता की भावना बालक के लिये असहनीय हो जाती है और उसका संवेगिक तथा मानसिक समायोजन नहीं हो पाता। ऐसे ही बालक आत्महत्या भी किया करते हैं।

बालकों की रक्षा की भी एक सीमा होनी चाहिये। अध्यापक या माता-पिता को बालक की रक्षा सीमा से अधिक नहीं करनी चाहिये। देखने में आता है कि उन माता पिताओं के बच्चे आगे चलकर समस्या पैदा करते हैं जो अपने बालकों की आवश्यकता से अधिक रक्षा करते हैं। मान लीजिये कि आपके बच्चे ने एक दूसरे बच्चे को गाली दी। उस दूसरे बच्चे ने आपके बच्चे को पीटा तो आपको यही चाहिये कि अपने बच्चे का कोई अपराध न मानें और उस दूसरे बच्चे को डाँटने लगें। इसी प्रकार की बातों से बच्चे बिगड़ जाते हैं और उन्हीं के सामने उस दूसरे बच्चे को डाँटने लगें। आगे चलकर समस्या पैदा करते हैं।

बालकों को कभी ऐसी परिस्थितियों के साथ भी सभी निबटना चाहिये जो उनके लिए

[illegible]

की भावना को ठेस पहुँचती है जो कि बालक के लिये असहनीय हो जाती है। इसका यह अर्थ नहीं कि बालकों को प्रतियोगिता में भाग ही न लेने दिया जाय। यह तो अच्छा है कि प्रतियोगिता में भाग लेकर वह अपनी वास्तविक योग्यता के स्तर को समझ सके।

इस प्रकार हमने देखा कि अध्यापक को बालकों के मानसिक स्वास्थ्य के लिये अनेकों बातों पर ध्यान देना चाहिये।

Q. 4 What do you mean by the mental health of the teacher? How does a teacher become mentally ill? Give your suggestions for his mental health.

Ans मनोविज्ञान के अन्तर्गत अध्यापक बालकों की मानसिक प्रक्रियाओं का ही अध्ययन तो करता है, वह अपने व्यक्तित्व को भी समायोजित बनाने का प्रयत्न कर सकता है। आज का अध्यापक अपनी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि न कर सकने के कारण भग्नाशाओं का शिकार बना हुआ है, बालकों के लड़ाई-झगड़े, कक्षाकार्य का अत्यधिक भार, अन्य कार्यों का भार उस पर इतना अधिक लाद दिया गया है कि वह अपने को सँभाल नहीं पाता। वैयक्तिक समस्याएँ उसमें भावनात्मक संघर्ष पैदा कर देती है। विद्यालयीय समस्याएँ उनके जीवन को दूभर बना देती हैं। अन्य देशों में भी यही दशा है। उनमें प्रतिवर्ष ५% अध्यापक मानसिक चिकित्सालयों की शरण ग्रहण करते हैं, २०% अध्यापक अपना मनोविश्लेषण कराते हैं। भारत में भी ऐसे अध्यापकों की कमी नहीं है, जो रात भर सो नहीं पाते, जो जरा सी बात पर घबड़ा जाते हैं, जिनका व्यवहार बालकों के साथ पूर्णत असामाजिक होता है। बच्चों को बाल पकड़ कर खींच डालना, उनको घन्टों तक मुर्गा बनाकर खड़े रखना, उनकी नकल करना आदि कुछ ऐसी अशोभनीय बातें हैं जो यह दिखलाती हैं कि अध्यापक आपे से बाहर है अथवा उसका जीवन असन्तोषमय और व्यक्तित्व पूर्ण विघटित है।

जीवन अध्यापक के लिये इतना कटु क्यों हो गया है? इसके कुछ कारण नीचे दिये जाते हैं.

(१) काम का अत्यधिक भार।
(२) वेतन की कमी, और वेतन में महँगाई के अनुकूल वृद्धि की अप्राप्ति।
(३) सेवाकार्य से किसी भी समय अलग किये जाने की सम्भावना।
(४) दूसरों के भार वहन करने की अतिरिक्त जिम्मेदारियों का प्रकोप।
(५) विद्यालय प्रबन्धकारिणी समिति की निरकुशता और अध्यापकों में असंगठन।
(६) जनता की उनके साथ सहानुभूति का अभाव और उदासीनता की वृद्धि।
(७) अपरिपक्व बुद्धि वालों के साथ उनका चिर सम्पर्क।

ऐसे अध्यापक जिनकी शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि नहीं हो पाती, भग्नाशा के समुद्र में डूब जाते हैं। उनकी उचित प्रशंसा न तो समाज ही करता है और न [illegible]

[illegible] है।

ऐसे अध्यापक अपने कुसमंजन को बालकों में प्रक्षेप करते रहते हैं। विद्यार्थियों के कुसमायोजन का एकमात्र कारण इन अध्यापकों का कुसमायोजन (maladjustment) है, अतएव यदि हम विद्यार्थियों के जीवन को व्यवस्थित बनाना चाहते हैं, उनके जीवन में अनुकूलन स्थापित करना चाहते हैं तो अध्यापकों का जीवन सुसमायोजित (well adjusted) बनाना पड़ेगा। सुव्यवस्थित व्यक्तित्व वाले अध्यापकों के छात्रों का विकास उत्तम ढंग से होता है। अतएव यदि हम बालकों का उचित विकास चाहते हैं तो उनको शिक्षा देने वाले अध्यापकों के मानसिक स्वास्थ्य की ओर भी ध्यान देना होगा। अध्यापकों की सबसे बड़ी आवश्यकता है सम्मान और आदर की प्राप्ति इसलिये समाज और राष्ट्र को उसके सम्मान और आदर का प्रबन्ध करना होगा। शारीरिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिये [illegible] और [illegible] . वेतन में वृद्धि करनी होगी। [illegible]

[illegible] कार्य करने वाले

कर्मचारियों को दी जाती हैं। अध्यापक भी स्वयं अपना स्वास्थ्य सुधार सकता है, किन्तु समाज और राष्ट्र को उसके मानसिक स्वास्थ्य के सुधारने की जिम्मेदारी लेनी होगी।

यदि वह स्वयं अपने स्वास्थ्य को विकृत नहीं होने देना चाहता तो उसे निम्नलिखित कार्य करने होंगे

(१) उसे यह समझ लेना होगा कि दूसरों की आलोचनाओं से उसका सुधार हो सकता है, बिगाड़ होने की सम्भावना बहुत ही अल्प है।

(२) वह कुछ गहरे मित्र बनावे और 'संघशक्ति कलियुगे' के मूल मन्त्र की महत्ता स्वीकार कर किसी न किसी संघ का सदस्य बने जो उसकी सुरक्षा का साधन बन सके।

(३) अध्यापन कार्य में वह इतना व्यस्त रहे कि छोटी-मोटी समस्याएं उसे तंग न करें। विद्रोही भावनाओं को यथासम्भव दबाने का प्रयत्न करे।

(४) वह जैसा है वैसा ही अपने को दिखाने का निरन्तर प्रयत्न करे। वास्तविकता का सामना करने के लिये सामर्थ्य प्राप्त करे।

मानसिक अन्तर्द्वन्द्व

Q 5- What is a mental conflict? How do you know that a child is suffering from mental conflict? What can you do to resolve it?

Ans व्यक्ति के जीवन में कभी इस तरह के व्यवहार भी होते हैं जिनका वह स्वयं कारण नहीं समझ पाता। इस प्रकार के व्यवहार का कारण उसकी भावना ग्रन्थियां होती हैं। व्यक्ति की इच्छाएं कभी पूरी नहीं होती हैं। कभी उसे सफलता मिलती है और कभी असफलता। कलुषित वातावरण वश उसकी कुछ मूलप्रवृत्तियों का दमन होता है। इन इच्छाओं के प्रतिरुद्ध होने के कारण मन के अज्ञात भाग का निर्माण होता है। मन के इस अज्ञात भाग को ही हम अचेतन मन कहते हैं। इस प्रकार आजकल मन के दो मुख्य भाग माने जाते हैं—पहला चेतन मन और दूसरा अचेतन मन। चेतन मन बाह्य मन है और अचेतन मन आन्तरिक मन है। अचेतन मन के फिर दो भाग होते हैं। एक को प्रसुप्त कहते हैं और दूसरे को प्रतिहारी। फ्रॉयड के अनुसार प्रसुप्त मन शक्ति का केन्द्र है। वासना का उद्गार यहीं से होता है। इसके अवदमन से व्यक्तित्व का ह्रास होता है और शोधन से विकास। जब चेतन और अचेतन मन में किसी प्रकार का समझौता होता है तो विक्षुब्धता मिट जाती है। चेतन और अचेतन मन के झगड़े को ही हम मानसिक द्वन्द्व कहते हैं। मानसिक द्वन्द्व प्रत्येक व्यक्ति में होता है परन्तु भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में इसकी मात्रा भिन्न-भिन्न होती है। हम मानसिक द्वन्द्व के लिये तभी चिन्तित होने लगते हैं जब हमें उससे हानि की सम्भावना होती है। जिस प्रकार डाक्टर उसी रोगी के रोग के लिये अधिक सावधानी से दवादारू करता है जिसके लिये वह समझता है कि रोग हानिकारक है। उसी प्रकार मनोवैज्ञानिक भी उसी व्यक्ति के मानसिक द्वन्द्व को दूर करने का प्रयत्न करता है जिसके लिये वह समझता है कि वह द्वन्द्व हानिकारक होने वाला है।

प्रतिहारी मन व्यक्ति का नैतिक आदर्श होता है। यह आदर्श मन उचित और अनुचित का विचार कर व्यक्ति के कार्यों को संचालित करता है। प्रतिहारी मन चेतना के परे रहता है और वहीं से पहरेदार का कार्य करता है। यदि किसी स्मृति से व्यक्ति को दुःख होने की आशंका होती है तो उसे वह चेतना-सतह पर नहीं आने देता। प्रतिहारी मन का विकास शिक्षा का फल है। शिक्षा के अनुसार ही उसकी बनावट होती है। कभी-कभी प्रतिहारी आन्तरिक मन के प्रकाशन में बड़ी रुकावट डालता है। इस रुकावट से आन्तरिक मन की शक्ति और बढ़ जाती है। मानसिक द्वन्द्व का प्रारम्भ यहीं से होता है। मानसिक द्वन्द्व से व्यक्ति का दुरुपयोग होने लगता है तथा उसका कोई भी व्यवहार ठीक ढंग पर नहीं चलता। उसके व्यवहार में एक विक्षिप्तता आ जाती है। इसमें दबी हुई भावनाओं को अचेतन मन की शक्ति मिल जाती है।

यह मानसिक द्वन्द्व बड़ा ही कष्टदायक होता है। इसमें व्यक्ति की शक्ति का ह्रास हो जाता है। यदि इस प्रकार का द्वन्द्व न हो तो बची हुई शक्ति का प्रयोग अन्य कार्यों में किया जा सकता है। यदि विराम की गति बिना विघ्न के चलती तो अचेतन मन संगठित हो जाता। स्थायी भावों के उत्पन्न होने समय कुछ ऐसे प्रतिरोधी भाव व्यक्ति में आते हैं जिनका उनसे समझौता होना कठिन हो जाता है। व्यक्ति ... प्रतिरोधी भावनाग्रन्थियों के अस्तित्व को स्वीकार

नहीं करता है। क्योंकि उसे अपने मे उनकी उपस्थिति का भान ही नही होता है। इस स्थान पर मनोविश्लेषक का कार्य केवल इन भावना ग्रन्थियो से रोगी को परिचित करा देना होता है। यह परिचय ही रोगी के लिये दवा का काम करता है। हो सकता है कि व्यक्ति भावना ग्रन्थियों के अस्तित्व को माने या न माने, परन्तु वे अपना कार्य किया ही करती हैं। वे व्यक्ति के आदर्श से विघ्न उपस्थित करती हैं। व्यक्ति की पूरी मनोवृत्ति पर उनका प्रभाव पड़ता है। इस तरह से हमारे असाधारण व्यवहार का मुख्य कारण मानसिक द्वन्द्व ही होता है।

प्रत्येक प्राणी का यह स्वभाव है कि वह दुख से बचने की इच्छा रखता है। व्यक्ति परस्पर विरोधी भावनाओं के बीच समझौता करने की पूरी चेष्टा करता है। यह समझौता तभी सन्तोषजनक होता है जब विभिन्न परस्पर-विरोधी स्थायी भाव और भावना ग्रन्थियाँ मिलकर एक सुसंगठित रूप बनाती हैं। जब तक व्यक्ति मानसिक द्वन्द्व का निदान नहीं कर सकता तब तक उसका निराकरण नहीं हो पाता है। मनोविश्लेषण विभिन्न विधियों द्वारा अचेतन मन के रूप को व्यक्ति के सामने रखता है। व्यक्तित्व का विकास जितना सुसंगठित होगा उतना ही पक्का उसकी विरोधी भावनाग्रन्थियों और नैतिक आदर्श मे समझौता होता है। यदि यह समझौता हो गया तो व्यक्ति के व्यवहार में किसी प्रकार की असामान्यता न दिखलाई देगी।

कभी-कभी व्यक्ति के जीवन मे भावना-ग्रंथियाँ इतनी प्रबल होती हैं कि व्यक्ति के आदर्शों से उनका समझौता नही हो पाती। ऐसी स्थिति मे यह स्वभाविक है कि व्यक्ति मे मानसिक द्वन्द्व का आ जाना एक साधारण सी बात है। इस मानसिक द्वन्द्व के फलस्वरूप व्यक्तित्व के कई ऐसे छोटे-छोटे भाग हो जाते हैं जो नैतिक आदर्श व प्रधान व्यक्तित्व से भिन्न होते है। समय समय पर ये भाव प्रबल होकर व्यक्ति के व्यवहार पर पूरा नियन्त्रण रखते हैं। इन दो प्रकार के व्यक्तित्व में कोई सम्बन्ध नही होता है। ये एक दूसरे के कार्य से अनभिज्ञ रहते हैं। इसके अतिरिक्त कभी-कभी भावनाग्रन्थियाँ इतनी प्रबल नहीं होतीं कि वे दूसरे व्यक्तित्व का निर्माण कर सकें। ऐसी स्थिति में आत्मगौरव का स्थायीभाव उनका अवदमन कर देता है। इसका फल यह होता है कि वे व्यवहार में प्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डालने मे असमर्थ हो जाती हैं। परन्तु यह बात विशेष ध्यान देने की है कि अवदमन मे भावनाग्रन्थियो का नाश नहीं होता है। वे उन पर प्रभाव डाला करती हैं। इस प्रकार मस्तिष्क की एकता नष्ट हो जाती है। इस नियन्त्रण को रखने के लिये कुछ न कुछ मानसिक शक्ति को खर्च करना पड़ता है। ये अपने प्रकाशन के लिये रास्ता ढूंढते हैं। बहुत सम्भव है कि यह रास्ता प्रधान व्यक्ति के लिये किसी प्रकार की प्रत्यक्ष बाधा न उपस्थित करे। इस विधि से अतृप्त वासनायें कुछ सांकेतिक चेष्टाओं द्वारा प्रकट होती हैं। मनुष्य के बहुत से कार्य जैसे दाँतो से नाखून काटना, अकारण हँसते रहना आदि शारीरिक चेष्टाएँ अवदमनिय की हुई ऐसी इच्छाओं की द्योतक होती है जो इन सांकेतिक रूपों मे तृप्ति प्राप्त करने का प्रयत्न करती हैं। इसी प्रकार कुछ व्यक्ति जागृतावस्था मे ही सांकेतिक चेष्टायें किया करते हैं। यह ध्यान देने की बात है कि यदि व्यक्ति की ये सांकेतिक चेष्टायें बन्द कर दी जायें तो व्यक्ति अपने कार्य करने मे असमर्थ हो जायगा।

अभिभावकों और शिक्षकों की बालकों के प्रति अमनोवैज्ञानिकता के बारे में पाठकगण जानते हैं। डाँट-डपट कर बालक को आदत छुड़ाना एकदम असम्भव है। बालक को दण्ड देने से वह हठी हो जाता है। बालक की उद्दण्डता तथा अवज्ञा का कारण उसकी एक आन्तरिक बीमारी होती है, जिसका उपचार डाँट-डपट से कभी नहीं हो सकता। यह आन्तरिक बीमारी उसका मानसिक द्वन्द्व हैं। इस तरह के अनेकों और भी कारण होते हैं।

अधिकतर यह देखा जाता है कि जिस कुटुम्ब में अधिक बच्चे होते हैं उनमे दो एक मे तो मानसिक द्वन्द्व हो ही जाता है। अभिभावकों तथा शिक्षकों को बालक की भावनाओं का आदर करना चाहिये। उनकी चेष्टाओं और इच्छाओं के अवदमन का तात्पर्य उनके व्यक्तित्व को कुण्ठित करना होगा। बालकों में जो बुरी आदतें दिखलाई पड़ती हैं वे उनकी भावना ग्रन्थियों का ही परिणाम होती हैं। यदि मनोविश्लेषण द्वारा उन्हें उनकी भावनाग्रन्थियों से मुक्त कर दिया जाय तो उनकी बुरी आदतें अपने आप छूट जायेंगी। ऊपर हम कह चुके हैं कि व्यक्तित्व के विकास के लिये चेतन और अचेतन मन मे सामञ्जस्य स्थापित करना आवश्यक है।

बहुत से उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि बालकों की इच्छाओं का अवदमन करना घातक है। इससे मानसिक विकास रुक जाता है और बालक मे अनेकों रोग तथा दोष

था जाते हैं। मनोविश्लेषण से यह ज्ञात किया जा सकता है कि बालकों में डर एक बड़ कर बोलना अभिभावकों द्वारा उत्पन्न हो जाता है। जो अभिभावक बालकों पर अधिक रोक लगाया करते हैं, जो बालक की इच्छा पर भी ध्यान नहीं देते हैं, वे बालक के लिये भय का कारण हो जाते हैं। बालक उनसे सदा डरा करता है। इस तरह से बालक में भय की भावनाग्रन्थि पड़ जाती है जिससे उसका व्यवहार बदल जाता है।

इस तरह से उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि बालक का वातावरण सदा पवित्र तथा दोषमुक्त होना चाहिए। बालक को वातावरण से लड़ने और उस पर विजय प्राप्त करने के लिये उत्साहित करना चाहिये। अत्यधिक लाड़ प्यार दिखाने से उसका व्यक्तित्व नष्ट हो जाता है। इससे वह अपने को सबसे अधिक महत्वपूर्ण समझने लगता है।

Q 6. What is a substitute activity ? Describe such activities.

Ans मनुष्य की अनेक आवश्यकताएँ होती हैं जिनमे आत्मगौरव या आत्मसम्मान की आवश्यकता सबसे अधिक शक्तिशाली होती है। मूलप्रवृत्तियों के सिद्धान्त का एक परिणाम यह है कि जो मूलप्रवृत्यात्मक प्रतिक्रियाएँ अथवा आवश्यकताएँ व्यक्ति के आत्मगौरव के स्थायी भाव और सामाजिक तथा सांस्कृतिक क्रियाओं व रीति रिवाजों के सम्पर्क मे आती हैं, उनका मार्ग अवरुद्ध हो जाता है और उनसे सम्बन्धित शक्ति का प्रवाह अन्य भागों मे होकर फट पड़ता है या वह शक्ति अपने प्रकट होने के लिये अन्य मार्गों को निकाल लेती है। सर्वांगीण विकास के लिये यह महत्वपूर्ण है। इसके द्वारा आदिकालीन मूलप्रवृत्तियों के सन्तोष से सम्बन्धित संवेग अन्य क्रियाओं के रूपों से बद्ध हो जाते हैं जिनमे कुछ तो समाज द्वारा स्वीकृत तथा कुछ अस्वीकृत होते हैं। इस क्रिया को स्थानापन्न क्रिया कहते हैं। इस विचार की सम्भावना का श्रेय मैक्डूगल और फ्रायड को जाता है।

अब हम कुछ स्थानापन्न क्रियाओं का वर्णन करेंगे।

(१) शोधन (Sublimation)—इसके अनुसार जो प्रेरणा अथवा मूलप्रवृत्यात्मक प्रतिक्रियाएँ हमारे आत्मगौरव की भावना पर ठेस पहुँचाती हैं, उन्हें हम कुछ न कुछ मात्रा में पहिचान लेते हैं, मूल प्रेरणा के स्थान पर जो व्यवहार स्थानापन्न क्रिया के रूप में होता है, वह प्रथम तिरस्कृत व्यवहार से मिलता रहता है अथवा उसके समान होता है।

(२) अवदमन (Repression)—यह एक दूसरी स्थानापन्न क्रिया है। इसके अनुसार वह प्रेरणा जो हमारी आत्मनिष्ठा को ठेस पहुँचाती है उसे चेतना से अचेतना मे ढकेल दिया जाता है। यही अवाछनीय और दमन की हुई इच्छायें एक काल्पनिक भेष बदल कर सुन्दर और अच्छे छद्मवेष (guise) में चेतना के जगत में प्रवेश करने का प्रयास करती है।

अवदमन व्यक्ति के लिये बहुत लाभदायक है। कुछ समय के लिये यह दुःख दर्द को विस्मृत करने का अमोघ साधन है। तात्कालिक दुःख-दर्दों के निवाकरण करने के लिये रामबाण औषध होते हुए भी यह अन्य समस्याओं को जन्म देता है। सबसे दुर्भाग्य की बात यह है कि चेतना जगत से बहिष्कृत की गई इच्छा सदा के लिये समाप्त नहीं हो जाती। वह किसी न किसी घुमाव फेर से पुन प्रकट होती है। इस घूम कर प्रकट होने से इन दमन की हुई इच्छाओं को विभिन्न प्रकार से अभिव्यक्त किया जा सकता है। इस तरह से अपने आत्मसम्मान की रक्षा की जा सकती है। बहिष्कृत इच्छा से भेष बदलकर नाना प्रकार के विचित्र व्यवहारों की सृष्टि करती है। इसी से मनुष्य आत्मप्रशसा करने लगता है या डींग मारने लगता है या उसका व्यवहार असहनशील हो जाता है। अत अवदमन एक खतरनाक क्रिया है।

(३) समतोलन (Compensation)—इस क्रिया से यह तात्पर्य है कि किसी गुण की कमी को दूसरे गुण या विशेषता अथवा कार्य द्वारा पूर्ति करना। एक लडका जो पढने में अच्छा नहीं होता वह इसी कमी को खेल कूद में प्रवीण होकर पूर्ण कर लेता है। इसमे व्यक्ति अपनी कमजोरी या क्षति को पूरी तरह से समझता है और उसे पूर्ण करने के लिये उद्यत होता है। व्यक्ति उसी क्षेत्र मे प्रविष्ट होकर सफलता की कामना करता है जिसमें सफलता मिलने या उसमे प्राप्त सन्तोष की भावना अधिक रहती है। समतोलन उस समय खतरनाक सिद्ध होता है जब व्यक्ति अपनी कमजोरी व कमी को स्वीकार नहीं करता। हीन भावना को नष्ट करने के लिये इसका प्रयोग किया जा सकता है। किसी व्यक्ति को उसकी चिन्ता के वास्तविक कारण से दूर रखने के

लिये भी इसका प्रयोग किया जा सकता है। इस प्रकार के लाभ के होते हुए भी इसमें कुछ दोष हैं। हीन भावना से पीडित होकर कोई व्यक्ति आत्मप्रशसा, धोखा देना या औरों को नीचा दिखाने के अन्य उपायों की शरण लेता है। पर इनसे वह अपने को ही धोखा देता है न कि औरों को।

(४) कल्पना द्वारा समाधान (Solution by fancy)—यह एक चौथे प्रकार की स्थानापन्न क्रिया है। अनेको बार हम अपने कार्यों द्वारा विश्व को प्रभावित करने या अन्य व्यक्ति के जीवन की रक्षा के स्वप्न देखा करते हैं। यह कल्पना इच्छा पूर्ति के लिये की जाती है। कभी कभी हम विचारो मे ही कल्पना नही करते वरन् हमारे कार्य भी कल्पनापूर्ण होते हैं।

इस क्रिया द्वारा स्नेह तथा मैथुन की आवश्यकता पूर्ण हो जाती है। इससे स्नेह, प्यार आदर की विस्तृत कामना पूर्णरूपेण सन्तोष की सीमा को छू लेती है।

यह क्रिया अनिवार्य है। हमारे बहुत से असहनीय कष्ट व दुःख-दद इससे हल्के हो जाते हैं और फिर उन्हे हम सरलता से सह सकते है। इसकी अनुपस्थिति मे यथार्थता के अनुभव का सामना करना एक दुष्कर कार्य हो जाता है। यह भी उस अवस्था मे खतरनाक सिद्ध हो सकती है जबकि हम काल्पनिक जगत और यथार्थ जगत के भेद को ही न समझ सकें।

(५) न्याय सगत सिद्ध करना (Rationalisation)—इसके द्वारा हम अपनी की गई क्रिया अथवा कार्य को न्यायसगत बतलाने का प्रयत्न करते हैं। मान लीजिये हमारे पास रुपये नहीं हैं और मकान खरीदने के लिये हमने दस हजार रुपये कर्ज ले लिये। हम अच्छी तरह से जानते हैं कि हमसे भारी गलती हो गई है और यह भारी कर्ज अदा न कर पावेंगे। हम यह भी जानते हैं [illegible] से हम घर खरीदने [illegible] रण खोज निकालेंगे [illegible] को विदित होगा कि [illegible] हमारे आत्मभिमान की रक्षा करते हैं क्योकि इन कारणो से हम अपने को अनुत्तरदायी व्यक्ति नहीं समझते जो अपना पैसा पानी की तरह से बहाते हैं। किस सीमा तक यह युक्ति अनिवार्य है। परन्तु बालको मे आत्मसम्मान की रक्षा के इस साधन को हतोत्साहित किया जाना चाहिये।

(६) प्रक्षेप (Projection)—यह युक्ति बच्चो मे अधिक रूप से पायी जाती है। बहुधा हम उनको यह कहते सुनते है कि 'कलम ने यह किया" या "यह हमारे दोस्त की गलती है न कि हमारी"। जब हमारे आत्मसम्मान पर किसी अस्वीकृत प्रेरणा द्वारा धब्बा लगने को होता है तो हम उस प्रेरणा का प्रक्षेपण किसी अन्य व्यक्ति मे कर देते हैं।

प्रक्षेप से हमे सन्तोषजनक निराकरण नही मिलता बल्कि इसमे अधिक हानि हो ही सकती है।

(७) अभिज्ञान (Identification)—कभी-कभी हम इस सर्वविदित स्थानापन्न क्रिया का सहारा भी लेते है। सिनेमा देखने वाले सिनेमा की अभिनेत्रियो से अपना अभिज्ञान करते है और उपन्यास पाठक उपन्यास के नायक से अपना अभिज्ञान करते है। इस प्रकार से अभिनेत्री व नायक की प्रतिष्ठा को वे अपने मे ले लेते है। अभिनेत्री या नायक की सफलता मे वे अपने को ऊँचा उठा हुआ देखते है। वे इस तरह गौरवान्वित हो उठते है कि मानो उन्होंने ही उस सफलता को प्राप्त किया हो। अभिज्ञान कुछ मात्रा मे हानिरहित होता है, परन्तु अधिक मात्रा म यह भी हानिकारक होता है।

(८) रोग द्वारा समाधान (Solution through ailments)—आत्मगौरव की आवश्यकता और कार्य से पीछे हटने की आवश्यकता के मध्य सघर्ष का दूर करने के लिए बीमारियाँ सुविधाजनक उपाय है। रोगो या बीमारियो का यह प्रयोग बहुधा देखने मे आता है। जब बालको को कुछ कष्टदायक कार्यों को करने को कहा जाता है तो वे कुछ रोग धारण कर लेने की चेष्टा करते है ताकि उन कार्यों से छुटकारा मिल सके। साधारण कमजोरी, सिर दर्द, दिल की बीमारी या हाथ का लकवा ये इन रोगों के विभिन्न रूप हैं। ये रोग हमको कार्य से छुटकारा दिलाने के साथ-साथ और लोगो का ध्यान भी हमारी [illegible] करने के सुन्दर उपाय है। बीमार बच्चे की माँ उसकी अधिक [illegible] बीमार आदमी की भी अधिक देखभाल की जाती [illegible] है।

(६) प्रत्यागमन (Regression)—कभी-कभी बच्चे को सीखना कठिन लगता है। वह अनुत्तीर्ण हो सकता है और उसके अनुत्तीर्ण होने से संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं में भारी परिवर्तन देखने को मिलते हैं। इस दशा में वह या तो किसी स्थानापन्न क्रिया का सहारा लेता है या परिस्थिति से भागने का प्रयत्न करता है। हम सभी ने अपने मित्रों के सम्मुख अपने प्रथम भाषण में या मंच पर अभिनय आदि के अवसरों पर इन परिस्थितियों का अनुभव किया होगा। कभी-कभी ऐसे अवसरों का परिणाम यह होता है कि व्यक्ति सदा के लिये स्थाई रूप से इन परिस्थितियों से दूर हो जाता है। अपने विकास की इस अवस्था के बाद वह अपना विकास भी बन्द कर देता है। अब वह पुन बच्चा जैसा बन जाता है। जो बच्चा परीक्षा में असफल हो जाता है वह या तो आँखों से आँसू बहाना या छोटे बच्चों जैसी आदतें फिर विकसित करने लगता है। उदाहरण के रूप में नाखून काटना और बातचीत में बच्चों की रीति का प्रयोग करना आदि।

प्रत्यागमन बच्चों में ही नहीं होता बल्कि प्रौढ़ों में भी होता है। प्रत्यागमन के बहुत से रूप अनुपयुक्त होते हैं जो बच्चों के संवेगात्मक विकास में बाधा डालते हैं, उनकी शिक्षा में रोड़ा अटकाते हैं, और बाल अपराधों को उकसाते हैं।

अध्याय २५

बालापचार

What do you mean by juvenile deliquency ? Discuss its extent
lia.

१९ वीं शताब्दी के अन्त तक अपराधी बालकों को वही दण्ड दिया जाता था
को दिया जाता है क्योंकि कानून तोड़ने पर प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह बालक
के लिये पूरी तरह उत्तरदायी माना जाता था। फलतः बालक को भी उसी प्रकार
ण्ड दिया जाता था, जिस प्रकार का अपराध जितना प्रौढ़ व्यक्तियों को। कदाचित्
क्यों की तरह उचित अथवा अनुचित ज्ञान होने की सम्भावना की जाती
बाल मनोवैज्ञानिक यह मानने के लिये तैयार नहीं हैं। वह बालकों को उनकी
वातावरण की उपज मानकर चलता है। यदि बालकों में शिक्षणीयता है, यदि
शारीरिक, मनोवैज्ञानिक एवं व्यक्तित्व सम्बन्धी विकास इच्छानुकूल किया जा सकता
मानसिक योग्यता वाले व्यक्तियों की तरह अपराधों पर दण्डित नहीं किया
मनोविज्ञान भले ही इस प्रकार की विचारधारा लेकर चले किन्तु समाज तथा
न पुरानी विचारधारा को ही अपनाये हुए हैं। उनके अनुसार जो बालक देश
तो का उल्लंघन करता है, जो चोरी करता है, जुआ खेलता है, व्यभिचार
लिये अहितकर कार्यों में लगा रहता है, पुलिस द्वारा पकड़े जाने पर न्यायालय
है, ऐसा बालक बाल अपराधी कहलाता है, संक्षेप में १८ से २१ वर्ष से कम
जिनको न्यायालय दण्डित घोषित करता है, बाल अपराधी या अपचारी कहलाते
दृष्टिकोण से उस बालक को अपराधी माना जाता है जिसने आवश्यक रूप से
किये हैं जिनको यदि रोका न गया तो समाज का अहित हो सकता है।

र मनोवैज्ञानिक बाल अपराध को अपराध न मानकर उसे किशोर का विद्रोह
र विद्रोह करता है, वर्तमान परिस्थितियों से या अपने दूषित वातावरण से। वह
उस सामाजिक परिस्थिति के खिलाफ जो उसके मौलिक अधिकारों पर
है और जो उसकी आवश्यकताओं को सन्तुष्ट नहीं होने देती। वह विरोध करता
ता का, विद्यालय में अध्यापक का, समाज में समाज के ढाँचे और संगठन का
दोष हो सकता है तो केवल इतना ही हो सकता है कि वह ऐसी विषम परिस्थिति
ता के लिये समाज पर आक्रमण करता है और असफल होने पर उसमें बदल
र हो जाता है।

मक किस प्रकार के अपराध करते हैं उसका रूप और आकार नीचे दिए

	१०%
नय अवस्था पर से भाग जाना	१०%
से आवारा घूमना	२८%
धोखा	११%
अपराध	११%

दूसरों को धोखा देना	११%
जुआ खेलना	११%
सामुदायिक सम्पत्ति नष्ट करना	११%
बलात्कार करना	१०%
कत्ल	३%
शराब पीना	२%

बालकों में अपराध की प्रवृत्ति सबसे अधिक १४-१६ वर्ष की अवस्था में होती है। बालिकाओं में अपराध की प्रवृत्ति का प्रारम्भ ९-१० वर्ष की अवस्था से होने लगता है, अपराधी लड़कियों में १३ वर्षीय लड़कियों की संख्या अधिक पाई गई है। अपराध की प्रवृत्तियों के अनुसार लड़कियों में १३ वर्ष और लड़कों में १४-१६ वर्ष अपराध की अधिकतम आयु (peak age) मानी जाती है।

Q. 2. Explain the reasons of delinquency in children. How will you check it ?

Ans. बालकों में अपराध करने की प्रवृत्ति अनेक सामाजिक-मनोवैज्ञानिक प्रतिकारकों के उपस्थित होने के कारण पैदा होती है। इन सामाजिक मनोवैज्ञानिक (Socio-psychological factors) घटकों को मुख्य दो भागों में बाँटा जा सकता है

(१) व्यक्ति सम्बन्धी।
(२) वातावरण सम्बन्धी।

व्यक्ति सम्बन्धी घटकों में बालकों का मानसिक विकास, शारीरिक स्वास्थ्य, स्वभाव, स्थिरता अथवा अस्थिरता, जन्मजात अथवा अर्जित विशेषताएँ, चरित्र और आचरण आदि व्यक्तिगत बातें सम्मिलित की जाती हैं, किन्तु वातावरण सम्बन्धी घटकों में निम्नांकित तत्वों को सम्मिलित किया जाता है :

(१) पारिवारिक परिस्थितियाँ—माता-पिता का प्रेम और लड़ाई झगड़े, परिवार की भग्नावस्था आदि।
(२) सम्पर्क और संगति।
(३) आर्थिक और भौतिक वातावरण।
(४) कानून का पालन करने वाले व्यक्तियों का साथ।
(५) सामुदायिक संस्थाएँ और धर्म की कट्टरता।

अपराध के व्यक्तित्व सम्बन्धी कारण—शारीरिक दोष बालकों में हीनता की भावना पैदा कर देते हैं। अपनी कमजोरी या कमी की पूर्ति करने के लक्ष्य से अस्वस्थ, या नाटे और अधिक लम्बे कद वाले बालक अपनी अहं (ego) की रक्षा के लिये दूसरों पर अतिक्रमण करने लगते हैं। उनका मानसिक सन्तुलन बिगड़ जाता है। नलिकाविहीन ग्रन्थियों के आवश्यकता से अधिक या कम कार्य करने पर उनमें असाधारण आदतें पैदा हो जाती हैं। बालकों की मन्द बुद्धि और अपराधों में भी विशेष सम्बन्ध पाया गया है। टर्मन और गोडार्ड का कहना है कि मानसिक विकास की कमी और बुद्धि की दुर्बलता के कारण अधिकांश मंद बुद्धि बालक अपराधी हो जाते हैं। कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत इससे भिन्न भी है। किन्तु वे भी वातावरण की महत्ता को स्वीकार करते [illegible]

जाने पर उसमें तनाव पैदा हो जाते हैं। इन तनावों को कम करने के लिये वह समाज विरोधी आचरण करने लगता है। उसकी स्वाभाविक प्रेरणाओं का न तो मार्गान्तीकरण ही होता है और न शोधन ही। अतएव वह दुराचरण करने में प्रवृत्त हो जाता है।

पारिवारिक परिस्थितियाँ—घर की अवस्था, माता-पिता के आपसी सम्बन्ध, भाई बालक के प्रति व्यवहार आदि बातें उसके आचरण को प्रभावित करती रहती हैं

इसलिये कुछ विचारकों के अनुसार अपराधी भावना को गृह उद्योगों का उत्पादन माना गया है। उनके कथनानुसार अपराध करने का दोषी अपराधी स्वयं इतना नहीं होता जितना कि उसका परिवार तथा अन्य व्यक्ति जिनसे उसका सम्पर्क रहता है। दुराचारी बाप के दुराचारी पुत्र पैदा होता है, लापरवाह माता-पिता के बालक भी लापरवाह हुआ करते हैं। शिष्ट माता-पिता भी अपने बालकों के साथ ऐसा अमनोवैज्ञानिक आचरण करते है कि बालकों के आचरण बिगड जाते हैं। आदतें बिगड जाती हैं और अन्त मे उनका चरित्र बिगड जाया करता है। बेईमानी करने, चोरी करने और झूठ बोलने की आदत बालकों को जेब खर्च न देने के कारण पैदा हो जाती हैं। माता व पिता के आपसी झगडे बच्चों को असभ्य बना दिया करते हैं। जिन परिवारों मे माता और पिताजी के बीच प्रेम होता है, उनके बच्चों की देखभाल भी अच्छी ही होती है, किन्तु जिन परिवारों मे एक दूसरे के प्रति द्वेष, घृणा और अविश्वास होता है, उनमे अशान्ति रहने के कारण बालकों की उदासीनता की दृष्टि से देखा जाता है। ऐसे परिवार भग्न परिवार माने जाते है। माता-पिता के द्वेष के अतिरिक्त तलाक देने, किसी एक के परदेश जाने या मर जाने पर भी परिवार भग्न हो जाया करते हैं। माता और पिता के इस प्रकार अलग-अलग रहने से उनको न तो प्रेम ही प्राप्त होता है और न सुरक्षा की भावना को सन्तुष्टि ही मिलती है। उनकी आशायें भग्न और इच्छायें अवदमनित होती रहती हैं। समाज के द्वारा बहिष्कृत, असामान्य रूप से पालित पोषित, अव्यवस्थित ढग से शिक्षित माता-पिता के सम्पर्क से वंचित इन बालकों में समाज विरोधी कृत्य करने की भावना जाग्रत हो जाती है।

समाज से बहिष्कृत, माता-पिता के सानिध्य से वंचित इन बालकों को शरण देने वाली बस्तियां या दुराचार के अड्डे सब नगरों मे मिल सकते है। इन अड्डों के सम्पर्क से सीधे सादे स्वभाव के बालक भी दुराचरण करने लगते हैं। समाज और कानून इस प्रकार की कुसगति में पड़े बालकों को प्राय उदासीन भाव से देखा करता है। फलतः अपराध की भावना और भी प्रबल हो जाती है। एक खोज मे बालापराधियों का ६५% भाग गुण्डों, जुआरियों, व्यभिचारियों और शराबियों की सगति में पाया गया था।

बुरी सगति और बुरे घरों का प्रभाव बालकों के आचरण पर तो पडता ही है शिक्षा सम्बन्धी सस्थाओं, मिलों, फैक्ट्रियों, सिनेमा और नाचघरों का बुरा प्रभाव भी बालकों पर कम नही पडता।

विद्यालयों का असन्तोष पूर्ण जीवन, अध्यापकों का अमनोवैज्ञानिक व्यवहार, बालकों की आवश्यकताओं, रुचियों, और रुझानों की ओर ध्यान न देने वाला नीरस पाठ्यक्रम, अरुचिकर पाठन विधियाँ आदि बालकों को अभीष्ट बना देती हैं।

बाल-अपराधों को रोकने या कम करने के लिये सुझाव:

बालकों मे अपराध करने की प्रवृत्ति का उत्पन्न होना रोग के पैदा होने के समान है। इसलिये यदि हम अपराधों को कम करना चाहते हैं तो इस रोग के कारणों को दूर करना होगा। बाल-अपराध एक ऐसा सामाजिक कोढ है जिसके मूल मे विषम सामाजिक परिस्थितियाँ मानी जा सकती है। इन विषम सामाजिक परिस्थितियों का सुधार करने पर या वातावरण को सुन्दर बना दिये जाने पर, अपराध करने की प्रवृत्ति कम की जा सकती है।

दूसरे देशों मे बाल-अपराधों की रोकथाम करने के लिये चिकित्सालय खोले गये हैं, अपराध-विशेषज्ञों की समितियां बनाई गई हैं, और अपराधी किशोर की अभिवृत्ति और व्यवहार को परिवर्तित करने के लिये अर्ध सरकारी और सार्वजनिक सस्थाओं का प्रबन्ध किया गया है। अपने देश मे भी इन कार्यों को किया जा सकता है। खेद के साथ कहना पडता है कि अभी तक इस समस्या को सुलझाने का कोई मनोवैज्ञानिक कदम नहीं उठाया गया, दूसरे देशों की कोरी-नकल की गई है। अभी तक समाज और शासन दोनों उसी पुराने सिद्धान्त को मान कर चले आरहे हैं कि बाल अपराधी को अन्य अपराधियों की तरह ... चाहिये। समाज उसके कुकृत्य के लिये बालक से बदला लेना चाहता है अपना ... करता। यदि समाज बाल-अपराधों की संख्या को कम करना ... ससार को रहने की उत्तम जगह बनाना होगा ... की आवश्यकताओं ...

अध्याय २६

वैयक्तिक विभिन्नताएँ और मार्ग निर्देशन

(Individual Difference and Guidance)

२६·१ सबसे पहला व्यक्ति जिसने मनुष्य मात्र मे वैयक्तिक विभिन्नताओं की ओर अपने साथियों का ध्यान आकर्षित किया था वह था अफलातून। उसने ईसा से चार शताब्दी पूर्व ही समाज में कार्य करने वाले व्यक्तियों की उनके वर्गों के अनुसार शिक्षा देने की व्यवस्था की थी। वे वर्ग थे—कर्मकर, रक्षक और शासक। इसके बाद दूसरा विद्वान् जिसने वैयक्तिक विभिन्नताओं को शिक्षा कार्य में विशेष महत्व दिया था वह था क्विण्टीलियन। उसका कहना था कि शिक्षकों को उनकी व्यक्तिगत योग्यता तथा अभिरुचि को ध्यान में रखकर प्रशिक्षण दिया जाय।

भारत मे तो अति प्राचीन काल से ही वैयक्तिक विभिन्नताओं को ध्यान में रखकर वर्गों के लोगों को भिन्न-भिन्न प्रकार की शिक्षा दीक्षा की व्यवस्था की जाती थी। किन्तु भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में योग्यता, अभिरुचि, अभियोग्यता आदि विशेषताओं के अनुसार अन्तर भिन्न भिन्न होता है इस वैज्ञानिक तथ्य की जानकारी उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम भाग मे ही हुई। कैटल के व्यापक परीक्षणों के फलस्वरूप जो उसने वैयक्तिक विभिन्नताओं की मात्रा ज्ञात करने के लिये किये थे, निश्चित रूप से यह मान लिया गया कि व्यक्तियों की शिक्षा-दीक्षा और उनका शैक्षणिक और व्यावसायिक मार्ग निर्देशन उनकी वैयक्तिक विभिन्नताओं को ध्यान में रखकर ही किया जाना चाहिए।

बालकों की नियमित और अनियमित शिक्षा मे उनकी वैयक्तिक विभिन्नताओं का ज्ञान होना अत्यावश्यक है। वैयक्तिक विभिन्नताओं के ज्ञानाभाव में अधिकांश माता पिता अपने सभी बच्चों से एक प्रकार की दक्षता की आशा करते हैं और किसी बच्चे की असफलता पर उन्हें क्षोभ होने लगता है। वैयक्तिक विभिन्नताओं के ज्ञानाभाव मे जब वे अपने बच्चों के व्यवहार और योग्यताओं की तुलना करते हैं तो कुछ मे हीन भाव और दूसरों मे आत्मगौरव की भावना

. . . .

26.2 How does a child differ from the others ? Discuss various inter and intra-individual differences

वैयक्तिक विभिन्नताओं का स्वरूप—वैयक्तिक विभिन्नताएँ दो प्रकार की होती हैं। (अ) व्यक्तिगत[1] (ब) अन्तर्व्यक्तिगत[2] कोई दो व्यक्ति सर्वथा समान नहीं होते। शरीर की बनावट, रूपरंग, बुद्धि, प्रतिक्रिया समय, व्यक्तित्व की विशेषताओं मे व्यक्ति व्यक्ति मे भेद होता है। एक व्यक्ति नाटे कद का है तो दूसरा लम्बे कद का। एक जड़ बुद्धि है तो दूसरा प्रतिभाशाली, एक तेज है तो दूसरा सुस्त। जैसा कि पहले के अनुच्छेद मे कहा गया था कि प्रत्येक गुण के अनुसार व्यक्तियों की स्थितियाँ भिन्न होती हैं। एक ही गुण की मात्रा भिन्न भिन्न व्यक्तियों में

1. Inter individual differences. 2

भिन्न होती है। कुछ गुण तो सम्पूर्ण समुदाय में सामान्य सम्भाव्यता[1] वक्र की तरह वितरित होते हैं जिनकी एक ही भूयिष्ठिक[2] होती है और कुछ गुण ऐसे हैं जिनका वितरण द्विभूयिष्ठिक[3] और बहुभूयिष्ठिक[4] तरह का हो सकता है। उदाहरण के लिये एक विशाल जनसमूह में बुद्धि-ग्रकों का वितरण लगभग सामान्यसम्भाव्यता वक्र की तरह होता है और वर्ण-हर्पिता[5] का वितरण द्विभूयिष्ठिकी तरही होता है जैसा कि नीचे के चित्रों में प्रदर्शित किया गया है।
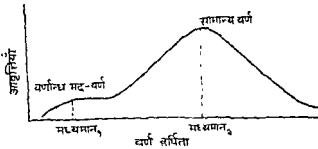
चित्र वर्णहर्पिता का वितरण

विशाल जनसमूह में वैयक्तिक विभिन्नताओं का परिमाण ज्ञात करने के लिये प्रमापीकृत मनोवैज्ञानिक परीक्षाएँ दी जाती हैं। इन परीक्षाओं के परीक्षाफलों के आधार पर निम्नलिखित दो सामान्य सिद्धान्त निश्चित किये गये हैं—

(१) अति निकृष्ट और सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति के प्राप्तांकों में अन्तर की विशालता पाई गई है। उदाहरण के लिये सर्वश्रेष्ठ और अतिनिकृष्ट बालक को भिन्न-भिन्न शैक्षणिक क्रियाओं में जो अंक किसी अनुसंधाता को उपलब्ध हुए वे तुलनात्मक अध्ययन के लिये नीचे दिये जाते हैं—

	अधिकतम प्राप्तांक	निम्नतम प्राप्तांक
सामान्य ज्ञान	१९	१
सुलेख	७३	१४
निबंध रचना	९०	३०
वाचन	९८	२०
तात्कालिक स्मृति	८८	१५
शब्द भण्डार	३४	४

(२) प्रत्येक परीक्षा के फलांक अपने मध्यमान के दोनों ओर समान रूप से वितरित होते हैं कुल फलांक मध्यमान से जितने कम होते हैं उतने ही फलांक मध्यमान से उतने ही अधिक होते हैं। उदाहरण के लिये निम्न तालिका सख्या को देखने से पता चलता है कि ९०० बालकों में से २·३ प्रतिशत बालकों के बुद्धि-अंक ६६-७५ के बीच में है तो उतने ही प्रतिशत बालकों के बुद्धि अंक १२६-१३५ के बीच में हैं। आगे के पृष्ठों में व्यक्तिगत भेदों का वर्णन विशद् रूप से किया जायगा।

मानसिक योग्यता में व्यक्तिगत भेद—व्यक्तियों में बुद्धि के अनुसार किस प्रकार वैयक्तिक विभिन्नताएँ होती हैं इसका उल्लेख अनुच्छेद ११·१२ में किया जा चुका है। बुद्धि अन्य गुणों की तरह scalable गुण है जिसके दो सिरे होते हैं एक सिरे पर ऐसे व्यक्ति स्थित होते हैं जो पूर्णतया जड और दूसरे सिरे पर ऐसे व्यक्ति होते हैं जो प्रतिभावान् होते हैं। बुद्धि-अंकों के अनुसार टर्मन ने जो वितरण प्राप्त किया था वह नीचे दिया जाता है

1. Normal 2. Mode 3 Bimodal 4. Multimodal 5. Colour senstivity.

तालिका : ६०० बिना चुने हुए बालकों के बुद्धि-अंकों का वितरण

बुद्धि अंक	प्रतिशत संख्या
१३६-१४५	·५५
१२६-१३५	२·३०
११६-१२५	६·००
१०६-११५	२३·१०
६५-१०५	३३·६०
८६- ६५	२०·१०
७६- ८५	८.६०
६६- ७५	२·३०
५६- ६५	·३३

टरमन का विचार है कि किसी विशेष आयु स्तर पर लगभग ६०% व्यक्तियों के मानसिक विकास की दर लगभग सामान्य होती है। १४% व्यक्तियों का मानसिक विकास सामान्य से अधिक होता है और १४% व्यक्तियों का विकास सामान्य से कम होता है। शेष व्यक्तियों में कुछ का मानसिक विकास बड़ी तेज गति होता है और शेष का बहुत ही धीमी गति से। मानसिक योग्यता के अनुसार व्यक्तिगत विभिन्नताओं को चित्र द्वारा प्रदर्शित किया गया है।
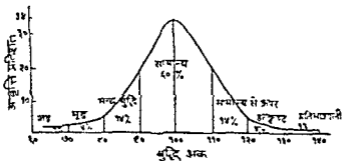
निष्पादन में व्यक्तिगत भेद—यदि किसी कक्षा के भिन्न-भिन्न बालकों के निष्पादन की तुलना करें तो उनके संकलित, अंग्रेजी और हिन्दी के प्राप्तांकों में विशेष अन्तर दृष्टिगोचर होगा। प्रत्येक विद्यालय की आठवीं कक्षा में ऐसे छात्र मिल सकते हैं जिनके ज्ञानोपार्जन करने की क्षमता १० वीं कक्षा के साधारण बालक के समान हो और कुछ छात्र ऐसे भी मिल सकते हैं जिनके सीखने की योग्यता छठी कक्षा के साधारण बालक से भी कम हो। इस प्रकार एक ही कक्षा के छात्रों में निष्पादन के अनुसार वैयक्तिक विभिन्नताएँ होती हैं।

लैंगिक विभिन्नताएँ—यौन भेद के कारण बालक और बालिकाओं के शारीरिक भेदों का उल्लेख अनुच्छेद १·४ में किया जा चुका है। बुद्धि के अनुसार यौनि के भेदों की व्याख्या ११·१४ अ में की जा चुकी है। शारीरिक विभिन्नताएँ बालक और बालिकाओं के बीच कई प्रकार के अन्तर पैदा कर देती हैं। उनके हितों के क्षेत्रों में अन्तर आ जाता है। उनकी रुचियाँ भिन्न हो जाती हैं और कभी-कभी उनके निष्पादन में भी भिन्नता पैदा हो जाती है। किन्तु बालक और बालिकाओं के निष्पादन का अन्तर उनके जन्मजात गुणों के कारण पैदा नहीं होता वरन् उस वातावरण के कारण पैदा होता है जिसमें उनकी शिक्षा-दीक्षा होती है। दोनों व [illegible] अलग संघों में प्रवेश करने के कारण उनमें स्वभाव तथा अन्य व्यक्तित्व सम्बन्धी गुणों में विशेष अन्तर आ जाता है। अनुसंधित शोधों के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

(१) लड़के लड़कियों की अपेक्षा अधिक स्थिर, उग्र, निरपेक्षी और अनाकुल स्वभाव के होते हैं।

(२) स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा अधिक स्नायुरोगी[1], चिन्तित और कुसमायोजित होती हैं, पुरुष स्त्रियों की अपेक्षा अधिक एग्रेसिव[2] होते हैं।

अभिरुचि और रुचि में भिन्नता—बालको की रुचियाँ भिन्न होती हैं। लेहमैन और विटी[3] ने अपनी खोज में देखा कि एक निश्चित आयु स्तर पर ५०% से कम बालक बहुत से खेलो में रुचि रखते थे। ८-९ वर्ष की आयु के ५% बालको ने १० से कम भिन्न-भिन्न खेलों में भाग लिया, और उसी आयुस्तर के ५% बालको ने ८० से भी अधिक खेलो में भाग लिया। इस प्रकार एक ही आयु स्तर के बालकों में खेले हुये खेलो की संख्या के अनुसार अन्तर पाया गया। माध्यमिक स्तर के बालको मे एथलेटिक्स, recreation और अन्य कई तरह की क्रिया-कलापों में भाग लेने की प्रवृत्ति पाई जाती हैं। रुचि के अनुसार वैयक्तिक भेद खेलो मे ही नही दिखाई देते वरन् पढ़ने में भी बहुत विभिन्नताएँ दिखाई देती है। कुछ लड़के कई प्रकार की पत्र और पत्रिकाओं के पढ़ने में रुचि रखते हैं तो कुछ बिल्कुल पढ़ते नही। रेडियो, सिनेमा, आदि के प्रति रुचि भी भिन्न-भिन्न बालको मे भिन्न-भिन्न मात्रा में होती है।

इसी प्रकार व्यक्तियो मे अभिरुचियाँ भी भिन्न-भिन्न होती है। विभिन्न संस्थाओं और समूहों के प्रति हमारी अभिरुचियाँ भिन्न होती है। अभिरुचि से हमारा आशय व्यक्ति की उस गुप्त शक्ति से है जो व्यक्ति को उचित शिक्षा और अभ्यास दिये जाने पर किसी शैक्षणिक प्रोग्राम अथवा व्यवसाय में भावी सफलता दिलाने मे सहायक हो सकती है। एक व्यक्ति में किसी विषय के प्रति अभिरुचि या रुझान होती है तो दूसरे में दूसरे विषय के प्रति।

व्यक्तित्व सम्बन्धी विभिन्नताएँ—मानसिक योग्यता, निष्पादन, रुचि, अभिरुचि के अतिरिक्त सैकड़ों ऐसी बातें हैं जिनमे व्यक्ति एक दूसरे से वैयक्तिगत भेद रखते हैं। एक ही आयु स्तर के बालको मे जितना बौद्धिक, शारीरिक, संवेगात्मक, चारित्रिक अथवा निष्पादन सम्बन्धी होता है उतना ही आत्मविश्वास, विश्वासपात्रता, अन्तर्दृष्टि, बहिर्मुखता, उग्रता, विनयशीलता,

बालक इतने चुस्त और गतिशील होते हैं कि शान्त नहीं बैठ सकते कुछ ऐसे उत्साह शून्य, रुकरुक कर काम करने वाले और सुस्त होते हैं कि अपने पाठ की ओर ध्यान भी नही देते।

संक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति एक दूसरे से कई प्रकार से व्यक्तिगत भिन्नताएँ रख सकते हैं। व्यक्तिगत भिन्नता मे विचलन शीलता और सामान्यता दोनो पाई जाती हैं अर्थात् यदि किसी जनसमूह का एक निश्चित गुण में मापन किया जाय तो उसमे सभी व्यक्ति एक दूसरे से गुण भिन्न मात्रा वाले होगे। कुछ साधारण रूप से अधिक योग्य और कुछ असाधारण रूप से बिलकुल अयोग्य तो होंगे ही किन्तु अधिकतर व्यक्ति मध्यमान के निकट होंगे।

वैयक्तिक विभिन्नताएँ इस प्रकार वंशानुक्रम से तो होती ही हैं किन्तु कभी-कभी अभ्यास, शिक्षण और अन्य प्रकार का वातावरण भी एक दूसरे व्यक्ति मे व्यक्तिगत भेद उत्पन्न कर देता है।

२९·२ (ब) **अन्तर्व्यक्तिगत विभिन्नताएँ**—व्यक्तिगत भेदों का पता चलाने के लिये बहुत से व्यक्तियों की एक विशेषता या गुण का अध्ययन करते हैं। व्यक्तियो के इस प्रकार के अध्ययन के ढंग को हम nomothemic उपागमन कहते हैं। इस प्रकार के अध्ययन मे हमारी रुचि एक की विचलनशीलता में होती है। हम यह जानना चाहते हैं कि एक विशेष गुण की भिन्न मात्राएँ किस प्रकार व्यक्तियो के विशाल समुदाय में वितरित हैं। व्यक्तिगत भेदों का

1. Neurotic 2. Aggressive 3. Lehman & Witty, *Psychology of play Activities Barnes* N. York 1927

ज्ञान प्राप्त करने के लिये दूसरा तरीका भी अपनाया जाता है। इसमे एक व्यक्ति की विशेषताओ का निश्चित एक समय पर अध्ययन कर व्यक्ति को समझने का प्रयत्न किया जाता है। इस प्रकार के अध्ययन को idiographic अध्ययन कहते हैं। इस तरीके मे एक व्यक्ति का अध्ययन उसमे पाई जाने वाली सभी विशेषताओ अथवा गुणो के अनुसार किया जाता है और यह ढूँढने का प्रयत्न किया जाता है कि किस प्रकार विभिन्न गुण एक ही व्यक्ति मे वितरित हैं।

अन्तर्व्यक्तिगत विभिन्नताओ की खोज करते समय हम यह जानना चाहते हैं कि एक व्यक्ति किन-किन गुणो मे श्रेष्ठतम, किन-किन गुणो मे निकृष्ट और किन किस गुणो मे सामान्य है।

जिस प्रकार एक गुण के अनुसार कुछ व्यक्ति सामान्य कुछ अधिसामान्य और कुछ अधसामान्य होते हैं उसी प्रकार एक मनुष्य कुछ गुणो मे अति श्रेष्ठ, कुछ मे सामान्य और कुछ मे अधिसामान्य होता है। प्रत्येक व्यक्ति मे विभिन्न गुणो के अनुसार अन्तर्व्यक्तिगत विभिन्नताएं होती हैं। पहले यह माना जाता था कि यदि एक व्यक्ति एक गुण मे श्रेष्ठ है तो अन्य गुणो मे [illegible] वह [illegible] ना [illegible] है उसको भावी शिक्षा और व्यावसायिक निर्देशन के लिये आवश्यक सूचनाएं दे सकते हैं।

मान लीजिये कि एक व्यक्ति दो पेशो अ और ब मे से किसी एक मे प्रवेश करना चाहता है। यदि पेशा अ मे योग्यता ब की अपेक्षा योग्यता क की अधिक मात्रा की और पेशे ब मे योग्यता क की अपेक्षा योग्यता ख की अधिक मात्रा की आवश्यकता होती है तो उसको क और ख योग्यताओ के मापन करने वाली परीक्षाओ मे जो अको का अन्तर मिला है उस अन्तर के आधार पर उसको व्यवसाय के चुनाव मे सहायता दी जा सकती है। यदि किसी व्यक्ति को संगीत मे चित्रकला की अपेक्षा अधिक रुचि है तो हम उसको संगीत लेने की राय दे सकते हैं।

प्राय. यह देखा जाता है कि संगीत मे रुचि को प्रदर्शित करने वाले अक और चित्रकला मे रुचि को प्रदर्शित करने वाले अको मे सहसम्बन्ध गुणाक काफी ऊँचा होता है इसलिये जो व्यक्ति संगीत मे सफलता प्राप्त कर सकता है उससे चित्रकला मे भी सफलता प्राप्त करने की आशा की जा सकती है। यदि इन दोनो योग्यताओ को प्रदर्शन करने वाले फलाकों के बीच अन्तर नगण्य हैं तो निर्देशन देने मे थोड़ा बहुत सोचना पड़ेगा। यदि दो विशेषताएं अथवा गुण असहसम्बन्धित है हो कुछ व्यक्तियों के लिये उनके फलाकों के अन्तर अर्थसूचक होने पर यह भविष्य कथन करने मे कि कौन व्यक्ति किस पेशे मे सफलता प्राप्त कर सकता है विश्वस्त हो सकता है।

Q. 26 3 What methods are employed to measure inter-individual differences ? Discuss their usefulness for guidence.

वैयक्तिक विभिन्नताओं का मापन

वैयक्तिक विभिन्नताओ का मापन करने के लिये हम निम्नलिखित विधियो और प्रविधियो का प्रयोग करते हैं—

(१) मनोवैज्ञानिक परीक्षाएं
(२) व्यक्तित्व, रुचि और अभिरुचि परीक्षायें
(३) व्यक्ति-इतिहास पद्धति
(४) विद्यालीय आलेख पत्र
(५) व्यक्ति के विषय मे जानकारी प्राप्त करने की अन्य विधियां

इन परीक्षाओ की विशद व्याख्या भाग तीन में की जायगी।

२६ ४ मनोवैज्ञानिक परीक्षायें—शैक्षणिक अथवा व्यावसायिक मार्ग निर्देशन[1] के लिये प्रत्येक बालक के भिन्न-भिन्न गुणो, योग्यताओ और अक्षमताओ के विषय मे विशिष्ट जानकारी प्राप्त करनी है। मानव प्रकृति की जटिलता और मापनयन्त्रो की वर्तमान अनुपयुक्तता के कारण व्यक्तियों की योग्यताओ के विषय में अति विश्वस्त जानकारी प्राप्त करना असम्भव सा प्रतीत

---

1. Educational & vocational guidance.

होता है। तब भी जो कुछ मनोवैज्ञानिक परीक्षाएं हमको विदेशों से अथवा देश के मनोवैज्ञानिकों से उपलब्ध हो सकती हैं उनकी सहायता से हम व्यक्तियों का मार्ग निर्देशन कर सकते हैं। जिन मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं की सहायता लिये बिना मार्ग निर्देशन कार्य नहीं चल सकता उनकी सूची नीचे दी जाती है।

(१) बुद्धि परीक्षायें
(२) व्यक्तित्व परीक्षाएं
(३) निष्पन्न परीक्षाएं
(४) अभियोग्यता परीक्षाएं[1]
(५) ट्रेड टेस्ट[2]
(६) रुचिमापी प्रश्नावली की सूची (Inventories)[3]

बुद्धि, व्यक्तित्व और निष्पन्न परीक्षाओं की व्याख्या पूर्व के अध्यायों में की जा चुकी है। प्रस्तुत अध्याय में हम केवल अन्तिम तीन प्रकार की परीक्षाओं—अभियोग्यता, ट्रेड और रुचि—का ही विस्तारपूर्वक उल्लेख करेंगे। इस प्रकार की परीक्षाओं की मार्ग निर्देशन में उपयोगिता पर भी विचार विमर्श किया जायगा।

२६·५ अभियोग्यता परीक्षाएं और मार्ग निर्देशन

अभियोग्यता से हमारा आशय व्यक्ति की उस प्रकृति या तत्परता से है जो उसे किसी निश्चित व्यवसाय अथवा कार्य में सफलता पाने के योग्य बनाती है। शर्त केवल यह है कि व्यक्ति को उचित अभ्यास और शिक्षा मिलनी चाहिए। वारेन ने अभियोग्यता की परिभाषा देते हुए लिखा है कि अभियोग्यता एक प्रकार की रूझान है जो प्रशिक्षण के फलस्वरूप ज्ञान और दक्षता प्राप्त करने और विशिष्ट प्रकार की प्रक्रिया सीखने में व्यक्ति की सहायता करती है।[4]

अंग्रेजी के शब्द ऐप्टीट्यूड का अर्थ हिन्दी में रुझान, प्रवणता, अभिरुचि और अभियोग्यता से लिया जाता है। हम अभियोग्यता से ही अभिबोधन करेंगे क्योंकि एप्टीट्यूड व्यक्ति की योग्यता का सूचक मानी गई है। अभियोग्यताएं दो प्रकार की होती हैं—सामान्य और विशिष्ट। इन दोनों प्रकार की अभियोग्यताओं का ज्ञान व्यक्ति को भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में रखकर लगाया जा सकता है, कुछ परीक्षाएं भी ऐसी तैयार की गई हैं जिनको व्यक्तियों पर लागू करने से उनकी अभियोग्यताओं का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है ये परीक्षाएं निम्न प्रकार की होती हैं—

(अ) सामान्य शैक्षिक अभियोग्यता परीक्षाएं
(आ) गायन सम्बन्धी ,, ,,
(इ) कला सम्बन्धी ,, ,,
(ई) मशीन सम्बन्धी ,, ,,
(उ) क्लर्कों के लिए ,, ,,
(ऊ) सामाजिक कार्यों की ,, ,,
(ए) पेशेवर प्रवणता परीक्षाएं

इन अभियोग्यता परीक्षाओं का उद्देश्य छात्रों और अन्य व्यक्तियों की अभिरुचि, अथवा गुप्त शक्ति का पता लगाना होता है। जब कोई बालक किसी विशेष कार्य में अभिरुचि का प्रदर्शन करता है, अथवा किसी पेशे की ओर रूझान दिखाता है तो प्रत्यक्षरूप से दिखाई देने वाली यह अभिरुचि अस्थायी और भ्रमात्मक भी हो सकती है। इसलिये व्यक्तियों की अभिरुचि अथवा झुकाव का पता लगाने के लिये उन्हें कई परिस्थितियों में देखा जाता है। कभी-कभी

1. Aptitude Tests
2. Trade tests
3. [illegible]
4. [illegible]

उसकी अभिरुचि का अन्दाजा लगाने के लिए उनका सर्वग्राही परीक्षण[1] किया जाता है। सर्वग्राही परीक्षाओं से यह अनुमान लगा लिया जाता है कि व्यक्ति किस मार्ग को पसन्द करता है। शैक्षणिक मार्गनिर्देशन में इस प्रकार की जाँच करने के लिए थर्स्टन की प्रारम्भिक योग्यता परीक्षा[2] का प्रयोग किया जाता है। इस परीक्षा से व्यक्ति की शाब्दिक, तर्क सम्बन्धी, अमूर्त-शक्ति, स्थानगत शक्ति, यांत्रिक तर्कशक्ति, सांख्यिक योग्यता, क्लर्की में दक्षता, भाषा को प्रवाहपूर्ण ढंग से प्रयोग करने की क्षमता आदि योग्यताओं का मापन होता है।

अभिरुचि अथवा अभियोग्यता परीक्षाएँ किसी विशेष कार्य के लिये उस योग्यता का मापन करती हैं जिनको प्रशिक्षित करके लाभ उठाया जा सकता है। इसलिये ये परीक्षायें ट्रेड परीक्षाओं से भिन्न होती हैं। ट्रेड परीक्षायें किसी विशेष कार्य के लिए व्यक्ति की प्रवणता का मापन करती है किन्तु अभियोग्यता परीक्षाएँ उसकी उस योग्यता का मापन करती हैं जो व्यक्ति में भावी सफलता के लिए जरूरी होती हैं।

अभियोग्यता स्वयं किसी कार्यक्रम में सफलता को निश्चित नहीं करती। वे तो कार्यक्रम प्रशिक्षण काल में मिल सकने वाली सफलता की ओर संकेत करती हैं। किसी कार्य अथवा पेशे में साफल्य करने के लिये सुखदायी सुअवसर की भी आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त और भी गुप्त तथ्यों की आवश्यकता होती है। किसी एक अभियोग्यता में व्यावसायिक अनुकूलता के लिए निम्नलिखित बातें सम्मिलित की जाती हैं।

(१) कुशलता प्राप्त करने की योग्यता, ज्ञान और सफलता की ओर स्वस्थ दृष्टिकोण।
(२) कुशलता प्राप्त करने तथा ज्ञान की अभिवृद्धि करने के लिए तत्परता।
(३) व्यवसाय में सन्तुष्टि।

संक्षेप में यह सकते हैं कि अभियोग्यता सम्भावित योग्यता तथा आशा के अतिरिक्त और कुछ भी है।

विशिष्ट अभिरुचि अथवा अभियोग्यता के परीक्षण के लिये कई प्रकार की परीक्षाओं का प्रचलन विदेशों में है। विशिष्ट अभियोग्यताओं और सामान्य अभियोग्यताओं का विभेद एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है। ड्रिल प्रैस ओपरेटर तथा स्कल्पटर के लिये हाथ से काम करने[3] की अभिरुचि की जरूरत होती है। किन्तु एक को मशीन सम्बन्धी सम्मान की अधिक जरूरत है तो दूसरे को कला सम्बन्धी अभिरुचि की।

इन अभियोग्यता परीक्षाओं के अतिरिक्त जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है कुछ और ऐसी परीक्षायें हैं जो विशिष्ट अभिरुचि का मापन करती हैं। स्थानाभाव के कारण यहाँ पर उन सब का विवरण देना समीचीन प्रतीत नहीं होता। उदाहरण के लिये कुछ ऐसी परीक्षाएँ नीचे दी जाती है :

(अ) शीशोर म्यूजिकल टैलेण्ट टैस्ट।
(ब) मेअओडरी आर्ट टेस्ट।
(स) वीने टेस्ट ऑफ मेकैनीकल काम्प्री हैंन्सन
(द) प्रोगनैस्टिक टेस्ट फौर नसिंग बाई मौस एण्ड हण्ट।
(य) एप्टीट्यूड टेस्ट फौर टीचिंग एबिलिटी बाई कोम्स एण्ड औरलीएन्स

अभिरुचि का पता लगाने के लिये इन अभियोग्यता परीक्षाओं के अतिरिक्त और भी कई परीक्षायें उपयोग में आती हैं। उदाहरण के लिए बुद्धि परीक्षा, ट्रेड परीक्षा और निष्पन्न परीक्षाएँ भी व्यक्ति की भावी सफलता की घोषणा करने में सहायक होती हैं।

यह इसलिये किया जाता है कि अभियोग्यता परीक्षाओं में अभी इतनी अधिक कमियाँ हैं कि वे निश्चित रूप से मार्ग-उपदेश की सहायता नहीं कर सकती। ये परीक्षायें अन्य परीक्षाओं की तुलना में अपर्याप्त और अविश्वस्त हैं। इस परिस्थिति के कई कारण हैं—

---

1. Omnibus testing
2. Thurston's Primary mental ability Test
3. Manual aptitude

(१) वे केवल यह बताती हैं कि कोई विद्यार्थी किस सीमा तक एक विशेष व्यवसाय में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए तैयार है किन्तु यह पता नहीं बता पाती कि परीक्षित तथा किसी व्यवसाय के लिये वास्तव में कितना महत्वपूर्ण है

(२) वे व्यक्ति की गुप्त ग्रभिरुचियों को प्रकट नहीं कर सकती। व्यक्ति की गुप्त ग्रभिरुचि का प्रकाशन तो उस समय होता है जिस समय वह किसी व्यवसाय में काम ग्रारम्भ कर देता है। जब तक किसी विशेष व्यवसाय के लिए व्यक्ति ग्रपने में ग्रभिरुचि उत्पन्न नहीं कर लेता तब तक उसकी योग्यताग्रों की सफल भविष्यवाणी नहीं की जा सकती।

(३) [illegible] जो सफ- [illegible] इस बात [illegible] में सफ-लता उसे नियमित ढंग से करने से, ग्रथवा रुचि से ग्रथवा परिश्रम से, ग्रथवा व्यक्तित्व के ग्रन्य गुणों के करने से मिलती है। बहुत से व्यवसाय ऐसे हैं जिनका विश्लेषण ही कठिन हो जाता है। फलस्वरूप महत्वपूर्ण तत्वों की ग्रोर परीक्षक का ध्यान ही नहीं जाता।

इन सब कारणों से ग्रभियोग्यता परीक्षाग्रों के ग्रतिरिक्त ग्रन्य परीक्षाग्रों का भी उपयोग मार्ग-निर्देशन में किया जाता है। ग्रभियोग्यता परीक्षाग्रों के परीक्षाफलों में तो हम केवल इतना बता सकते हैं कि क्या कोई व्यक्ति ग्रमुक व्यवसाय ग्रथवा ग्रध्ययन के लिये उपयुक्त है वे यह नहीं बता सकतीं किस पेशे के लिये वह निश्चयपूर्वक उपयुक्त है।

२६·६ **ट्रेड टेस्ट्स ग्रौर निर्देशन**—बुद्धि निष्पन्न ग्रौर ग्रभियोग्यता परीक्षायें केवल यह बताती हैं कि किसी विशेष पेशे की शिक्षा यदि व्यक्ति को दी जाय तो वह उससे सफलता प्राप्त कर सकेगा किन्तु ट्रेड टेस्ट हमें यह निश्चित करने में सहायक होता है कि वह किस पेशे के लिए तैयार है।[1] इसलिये कभी-कभी ग्रभियोग्यता परीक्षा देने के बाद व्यक्ति की ग्रभिरुचि जानने के लिए उसे ट्रेड टेस्ट भी दिया जाता है। ट्रेड टेस्ट के दो उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

(१) प्रो० रूरकी मेकैनीकल ऐप्टीट्यूड टेस्ट
(२) स्टेन्क्विस्ट मेकैनीकल ऐप्टीट्यूड टेस्ट

इन दोनों परीक्षाग्रों में ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं जिनमें व्यक्ति को मशीनों ग्रौर ग्रौजारों की जानकारी की जाँच की जाती है। सेना में इस प्रकार के ट्रेड टेस्ट ग्रधिक कार्य में लाये जाते हैं। इसकी उपयोगिता तो उस समय ग्रधिक होती है जब भिन्न-भिन्न व्यवसायों में व्यक्तियों को शीघ्र ही भेजने की ग्रावश्यकता होती है। जब ग्रचानक ही सेना के लिये कुशल व्यक्तियों की ग्रावश्यकता होती है तब ऐसे लोगों को तुरन्त चुनने के लिये जो काम जानते हों ग्रौर काम पर लगते ही उसे सफलतापूर्वक निभा सकें, ट्रेड टेस्ट दे दिये जाते हैं।

व्यापार परीक्षाएँ व्यवसायों के लिये योग्यताग्रों का माप करती हैं किन्तु ग्रभिरुचि परीक्षाएँ एक विशेष शिक्षा को प्राप्त करने की योग्यता का निश्चय करने के लिये तैयार की जाती हैं। ग्रभिरुचि परीक्षाएँ प्रशिक्षण के ग्रारम्भ में ग्रौर व्यापार परीक्षाएँ साधारणत प्रशिक्षण के बाद दी जाती हैं। जिन व्यवसायों में पूर्व प्रशिक्षण की विशेष ग्रावश्यकता नहीं होती उनमें संगठन की दृष्टि से व्यापार ग्रौर ग्रभिरुचि परीक्षाग्रों में कोई ग्रन्तर नहीं होता परन्तु उद्देश्यों में काफी ग्रन्तर रहता है।

बुद्धि परीक्षाएँ ग्रौर मार्ग निर्देशन

२६·७ मार्ग निर्देशन में हमारा सम्बन्ध व्यक्ति की विशिष्ट योग्यताग्रों की जाँच से होता है क्योंकि उसकी सामान्य योग्यता तो हमें उसके विषय में साधारण सा विचार दे सकती है कि कौन से पेशे उसके लिये उपयुक्त हो सकते हैं किन्तु विशिष्ट योग्यता निश्चयपूर्वक बता सकती है कि वह किस पेशे के लिये उपयुक्त है।

1. Trade tests measure the amount of a person's information about a trade or his skill in the performance of taste drawn from that trade.

मार्ग निर्देशन मे बुद्धि परीक्षाओं का प्रयोग साधारण तौर से सभी मार्ग निर्देशक करते है किन्तु उनका जितना प्रयोग किया जाना चाहिये वह नही किया जाता । साधारण मार्ग निर्देशक किसी बुद्धि परीक्षा मे प्राप्त अको को देखकर केवल यह बता दिया करता है कि व्यक्ति की सामान्य योग्यता क्या है ? व्यक्ति के विषय मे विशिष्ट प्रकार की सूचना प्राप्त करने के लिये उसे ग्राम योग्यता और रुचिमापी परीक्षाएं दी जाती हैं किन्तु बुद्धि परीक्षाओ का प्रयोग भी विशिष्ट योग्यताओ की जानकारी प्राप्त करने के लिये भी किया जा सकता है ।

बुद्धि अको को देखकर यह बता सकते हैं कि किसी व्यक्ति मे एक अमुक व्यवसाय के मूल तत्वों को सीखने की क्षमता है अथवा नही । वे यह भी बता सकते हैं कि अमुक छात्र किन-किन विषयो को सीखने की योग्यता रखता है या नही ।[1] अन्तिम तीस वर्षो मे इस विषय मे जो अध्ययन किये गये हैं वे निश्चयपूर्वक तो यह नही कहते कि भविष्य मे किसी बालक का निष्पादन क्या होगा । इतना अवश्य कहा जा सकता है कि जिन विद्यार्थियो के बुद्धि अक ऊँचे होते हैं उनके विभिन्न विषयो मे निष्पादन भी सामान्यत ऊँचा ही होता है । औसत बुद्धि वाला बालक जिसने [illegible] ो मे सफलता प्राप्त कर सकेगा या नहीं [illegible] ोर इजीनियरिंग मे जाने वाले छात्रो के [illegible] मात्रा ३५ तक देखी गई है किन्तु इस साहचर्य गुणक को देखकर हम निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि बुद्धि अक इन पेशो के लिये प्रशिक्षण हेतु चुने गये व्यक्तियो की भावी सफलता का भविष्य कथन करेंगे या नही। बुद्धि परीक्षाएं इन पेशों में प्रशिक्षण की सफलता का तो भविष्य कथन कर सकती है किन्तु इन पेशो मे सफलता का भविष्य कथन नहीं कर सकतीं ।

व्यवसाय मे सफल होने का अर्थ है अधिकतम उत्पादन । उद्योगपति को तो ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता है जो अधिकतम उत्पादन कर सकते हो, ऐसे व्यक्तियो की नही जो केवल सीमान्त उत्पादक ही हैं । अब प्रश्न यह है कि क्या बुद्धि परीक्षाएं किसी तरह भिन्न-भिन्न व्यवसायो मे सन्तोषजनक व्यवस्थापन की सूचना दे सकती हैं अथवा नही । कई पेशों के लिये बुद्धि अको और उत्पादन के बीच सह-सम्बन्ध गुणको की गणना करके देखा गया है कि बुद्धि और उत्पादन मे सह-सम्बन्ध है किन्तु अधिक ऊँचा नहीं । उदाहरण के लिये क्लर्कों के लिये ३५, मशीनरी के लिए ·१५ और बिक्री के काम के लिये ·२५ तक ऊँचा साहचर्य गुणक उपलब्ध हुआ है ।

यद्यपि प्रयोगात्मक साक्ष्य इस बात की ओर सकेत करता है कि जिस व्यक्ति का बुद्धि अक ऊँचा है वह अधिक उत्पादन करेगा और जिसका बुद्धि अक नीचा है वह कम उत्पादन करेगा फिर भी बुद्धि लब्धियां यह नहीं बता सकती कि वह किसी पेशे में प्रसन्न रहेगा या नही । जिन पेशो मे अधिक बुद्धि की आवश्यकता होती है और जिनमे काम कुछ जटिल होता है ऊँची बुद्धि लब्धि के व्यक्ति सन्तुष्ट रहते हैं । इसके ठीक विरोधी बात उन पेशों के लिये सत्य है जो सरल हैं ।

26 8. Discuss the importance of the knowledge of inter-individua differences of a teacher.

वैयक्तिक विभिन्नता और शिक्षा

शिक्षा का उद्देश्य है व्यक्तिगत छात्र की जन्मजात विशेषताओं का विकास । इसलिये प्रत्येक शिक्षार्थी के लिए उसकी व्यक्तिगत विशेषताओं के अनुसार शिक्षा देना विद्यालयो का परम कर्त्तव्य है । लेकिन व्यक्तिगत शिक्षा[2] देने के लिये हमे निम्नलिखित बातो की आवश्यकता होगी

(१) विश्वस्त और सत्य परीक्षाओं का निर्माण जिनसे बालकों की वैयक्तिक विभिन्नताओं का पता लगाया जा सके ।
(२) उन वैयक्तिक विभिन्नताओं के अनुकूल अवसरों को प्रदान करने की सुविधा ।
(३) उचित भौतिक और सामाजिक वातावरण का प्रस्तुतीकरण जो उनकी जन्म जात योग्यताओं को विकसित कर सकें ।

1. A test of an hour or less which can be given to a hundred children at once, predicts future educational success better than progress record of approximately eight years in school and nearly as well as the opinions of past teachers concerning conduct and ability—E. L. Thorndike.
2 Individualised instruction.

अध्याय २७

क्रियात्मक अनुसंधान

277. Explain the term Action Research as used in the field of Education How does it differ from additional research ?

'क्रियात्मक अनुसंधान' की व्याख्या अच्छी तरह से तभी की जा सकती है जब अनुसंधान और विशेषत शिक्षा के क्षेत्र मे अनुसंधान की प्रकृति को समझ लिया जाय ।

अनुसंधान—अनुसंधान की पद्धति उस क्रिया से सम्बन्ध रखती है जिसके द्वारा हम कुछ सामान्य नियमो का निर्धारण करते तथा किसी नूतन सत्य की स्थापना करते हैं । लेकिन ऐसा करते समय अपनी व्यक्तिगत धारणाओ को नियन्त्रित कर तर्क-सगत एव उद्देश्य-पूर्ण चिन्तन मे सलग्न होते हैं । इसीलिये अनुसधान शब्द की व्याख्या करते हुए वेबस्टर कोष में उसे दीर्घकालीन [illegible] खोज मे [illegible] ज्ञान का [illegible] । यह नवीन ज्ञान किसका ?

यह खोज की जाती है उन नवीन तथ्यों और उनके अर्थों की जिनकी प्राप्ति से नये ज्ञान की वृद्धि होती है । कुक (P. M. Cook) का कहना है कि 'अनुसधान से हमारा आशय है उस खोज से जो किसी समस्या को सुलझाने के लिये नवीन तथ्यो को ढूँढने के लिये की जाती है । लेकिन यह खोज इतनी सांगोपांग हो कि उसके द्वारा प्राप्त फल पूर्ण प्रामाणिक और समर्थनीय हों ।

वैसे तो प्रत्येक व्यक्ति नये तथ्यो की खोज करने के लिये विचार प्रक्रिया का आश्रय लेता है लेकिन अनुसधान मे विचार की प्रक्रिया कुछ अधिक सूक्ष्म और व्यवस्थित होती है इस विचार की प्रक्रिया में अनुसधान कर्ता विशेष यन्त्रो, उपकरणो और विधियो का प्रयोग करता है वह मौलिक चिन्तन करता हुआ किसी समस्या का समुचित हल ढूँढता है । क्रौफर्ड (C.C Crawford) ने अनुसधान प्रक्रिया मे निम्नलिखित पदो का समावेश माना है—जो विधिवत् चिन्तन के लिये आवश्यक हैं—

(१) समस्या का चुनाव और उसका सीमांकन ।
(२) समस्या के समाधान हेतु तथ्यों का सकलन ।
(३) आलोचनात्मक दृष्टि से उनका विश्लेषण ।
(४) सामान्यीकरण की क्रिया द्वारा विशेष सत्यो का निर्णय और निर्धारण ।

अनुसधान की प्रक्रिया मे कुछ विद्वान अन्तिम पद सामान्यीकरण को विशेष महत्त्व देते हैं ।

अनुसधान कर्ता और सामान्य व्यक्ति के चिन्तन कार्य में अन्तर केवल इतना होता है कि अनुसधान कर्ता अपनी कमियों को समझता है और उनको ध्यान में रखकर किसी विशेष तथ्य का निर्णय करता है । किन्तु सामान्य व्यक्ति ऐसा नही करता । वह अपनी कमियो और असमर्थताओं को स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं होता । उसके निर्णयो मे उसकी वैयक्तिक धारणाओं की छाया रहती है ।

(स) मूल्यांकन के लिये प्रयुक्त मानदण्ड ।
(द) न्यादर्श का रूप ।
(य) सामान्यीकरण ।
(फ) रूपरेखा ।
(ब) कार्यकर्त्ता ।

उद्देश्य की दृष्टि से—परम्परागत अनुसधान का उद्देश्य होता है चरम सत्यो की उपलब्धि । क्रियात्मक अनुसधान का उद्देश्य होता है विद्यालय की दैनिक गतिविधियो मे सुधार । अत क्रियात्मक अनुसधान का विद्यालयो से सीधा सम्बन्ध होता है जबकि परम्परागत अनुसधान का विद्यालयों से सम्बन्ध प्राय परोक्ष होता है, परम्परागत अनुसधान नवीन ज्ञान की खोजकर शिक्षण प्रक्रिया के सैद्धान्तिक को प्रबल बनाता है । लेकिन क्रियात्मक अनुसधान शैक्षणिक प्रक्रिया के व्यवहृत पक्ष को प्रबलता प्रदान करता है ।

समस्या की दृष्टि से—समस्या की दृष्टि से भी दोनो प्रकार के अनुसधानो मे अन्तर है, परम्परागत अनुसधान की समस्या का क्षेत्र व्यापक होता है क्रियात्मक अनुसधान की समस्या का क्षेत्र सकुचित । परम्परागत अनुसधान में शैक्षणिक समस्या व्यापकत्व धारण किये रहती है । अत उसका महत्व सामान्य होता है लेकिन क्रियात्मक अनुसधान मे समस्या विद्यालय से सम्बद्ध होने के कारण विशिष्ट हो जाती है ।

मूल्यांकन के मानदण्डो की दृष्टि से—दोनों प्रकार की खोजो का मूल्याकन करते समय जिन मानदण्डों का प्रयोग होता है उनमे भी अन्तर है, परम्परागत अनुसधान की सफलता इस बात से आँकी जाती है कि वह किसी सीमा तक नवीन ज्ञान की वृद्धि मे सहायक हुआ है । लेकिन क्रियात्मक अनुसधान की सफलता इस बात पर निर्भर रहती है कि उसके द्वारा प्राप्त निष्कर्ष विद्यालय की नित्य की कार्यप्रणाली मे कहाँ तक परिवर्तन अथवा सुधार लाने मे सहायक सिद्ध हो सके हैं ।

न्यादर्श की दृष्टि से—प्रत्येक प्रामाणिक खोज किसी विशिष्ट जनसमूह (Population) पर अथवा उसका प्रतिनिधित्व करने वाले न्यादर्श (Sample) पर की जाती है, यदि न्यादर्श मे जनसमूह के सभी गुण (Characteristics) वर्तमान हैं । तो जनसमूह के स्थान पर न्यादर्श को भी लिया जा सकता है । तभी खोज से प्राप्त निष्कर्ष विश्वस्त और वैध हो सकते हैं
[illegible] जाती है वे प्राय. जनसमूह प्रतिनिधि होते
[illegible] पय विद्यालय तक ही सीमित रहता है ।
[illegible] समुदाय (Population) के गुणो का
इतना अधिक प्रतिनिध्यात्मक (representative) नहीं हो सकता जितना कि परम्परागत अनुसधान मे होता है । क्रियात्मक अनुसधान मे न्यादर्श का आकार भी इतना बडा नही होता जितना कि परम्परागत अनुसधान में होता है ।

सामान्यीकरण की दृष्टि से—सामान्य नियम निर्धारण की दृष्टि से भी दोनों प्रकार के अनुसन्धानो मे विशेष अन्तर है । क्रियात्मक अनुसन्धान मे सामान्यीकरण की न तो आवश्यकता होती है क्योंकि उसका उद्देश्य किसी विशेष विद्यालय की कार्य प्रणाली मे सन्तोषप्रद अथवा प्रगति लाना मात्र होता है और न उसके द्वारा प्राप्त निष्कर्षों को अन्यत्र लागू किया जा सकता है । लेकिन परम्परागत अनुसन्धान का चरम लक्ष्य उन शैक्षणिक सिद्धान्तो एव विधियो प्रतिपादन होता है जिनकी प्रयुक्ति हो सके ।[1]

क्रियात्मक अनुसन्धान मे भी सामान्यीकरण हो सकता है [illegible] इसका रूप परम्परागत अनुसन्धान के सामान्यीकरण से भिन्न होता है । क्रियात्मक अ[illegible] सामान्यीकरण लम्बात्मक (Vertical) होता है परम्परात्मक मे पार्श्वीय (I[illegible] सामान्यीकरण से हमारा आशय है ऐसे सामान्य नियमों का [illegible] किये जा सकें । लम्बात्मक सामान्यीकरण [illegible] होती है पार्श्वीय

1. "The final [illegible] ciple and develop [illegible] conclude by

में सामान्यीकरण की दिशा वर्तमान की ओर अग्रसर होती है। उदाहरण के लिये यदि हम यह मान लें कि अगले वर्षों में भी छात्रों और अध्यापकों का समुदाय वैसा ही रहेगा जैसा कि इस वर्ष है तो इस वर्ष के छात्रों पर किये गये क्रियात्मक अनुसन्धान के निष्कर्ष भविष्य में आने वाले वैसे ही छात्रों पर लागू किये जा सकते हैं। लेकिन परम्परागत अनुसन्धान जो आज एक वृहत् जनसमुदाय के प्रतिनिध्यात्मक न्यादर्श पर किया जाता है उससे प्राप्त निष्कर्षों को किसी भी जनसमुदाय पर वर्तमान में ही लागू किया जा सकता है।

अनुसन्धान की सरचना (Design of Research)—की दृष्टि से प्रत्येक अनुसन्धान के लिये पहले उसकी कार्य प्रणाली निश्चित की जाती है। कार्य की रूप रेखा (design) अनुसन्धान का महत्वपूर्ण अंग है। यह रूप रेखा जितनी सोच विचार कर बनाई जाती है, और उसको जितनी अधिक सतर्कता से पालन किया जाता है, अनुसन्धान से प्राप्त फल उतना ही अधिक विश्वस्त और समर्थनीय होता है।

परम्परागत अनुसन्धान में कार्य की रूपरेखा का पूरी तरह पालन करना नितान्त आवश्यक है लेकिन क्रियात्मक अनुसन्धान में उसमें सुविधानुसार हेरफेर भी किया जा सकता है। अत. परम्परागत अनुसन्धान में रूपरेखा का कठोरतापूर्वक निर्वाह किया जाता है और क्रियात्मक अनुसन्धान में प्रारम्भिक रूपरेखा में परिवर्तन भी लाया जा सकता है।

अनुसन्धानकर्ता की दृष्टि से—परम्परागत अनुसन्धान में ऐसे कार्यकर्ताओं को आवश्यकता ही होती जिनका सीधा सम्बन्ध विद्यालय में हो। उनको प्रेरणा देने वाले तत्व है प्रतिष्ठा की प्राप्ति अथवा उपाधि का लोभ। अनुसन्धान अधिकारियों के अन्तर्गत कार्य करने वाले इन अनुसन्धान कर्ताओं का उद्देश्य क्रियात्मक अनुसधानकर्ताओं से ही भिन्न होता है। क्रियात्मक अनुसन्धान करने वाले लोग जिनमें शोधकर्ता अध्यापक, प्रधानाचार्य, प्रबन्धक निरीक्षक आदि सम्मिलित होते हैं व्यक्तिगत अथवा सामूहिक अथवा दोनों प्रकार से विद्यालय की कार्य प्रणाली को सुधारने के उद्देश्य से शोधकार्य में सलग्न होते है।

इस प्रकार दोनो प्रकार के अनुसधानो में मूलत कोई अन्तर न होते हुए भी बाह्यतः कुछ भिन्न अवश्य हैं।

क्रियात्मक अनुसन्धान का महत्व

27 2. Explain the importance of Action Research to a teacher in democracy.

यदि शिक्षा मे गतिशीलता लानी है, यदि शैक्षिक प्रक्रिया मे सञ्जीवनी और जागरूकता का सचार करना है तो अध्यापकों में यह विश्वास पैदा करना होगा कि उनके पास अनुसधान हेतु जो अवसर विद्यमान है उनका प्रयोग करके वे न केवल शिक्षण में सुधार ला सकते है वरन् इस कार्य द्वारा व्यक्तिगत प्रतिष्ठा भी बढ़ा सकते हैं। जब उनमें यह विश्वास पैदा हो जायगा तब वह स्वय अनुसधान करके परीक्षणों द्वारा प्राप्त फलो को चरितार्थ भी कर सकेंगे। भले ही इस प्रकार की खोजो से विशेष ज्ञान की वृद्धि न हो फिर भी अध्यापकों पर इसका जो प्रभाव पड़ेगा वह सर्वथा सराहनीय होगा।[1]

'क्रियात्मक अनुसधान' की यह प्रवृत्ति, जिसने द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद अमरीका में जन्म लिया, एक प्रतिक्रिया मात्र थी उन परम्परागत शिक्षण पद्धतियों के विरोध में जो ऊपर से शिक्षकों पर थोपी जाती थी। सबसे पहला व्यक्ति जिसने शिक्षा मे क्रियात्मक अनुसधान की इस प्रवृत्ति का श्रीगणेश किया वह कोरियर था। उसका विश्वास था कि जब तक शिक्षण कार्य में रत अध्यापक और प्रशासन अधिकारी अनुसन्धान कार्य में सक्रिय रुचि नहीं लेंगे, जब तक शिक्षण कार्य में नित्य उत्पन्न होने वाली समस्याओं का स्वय समाधान नहीं करेंगे, तब तक शिक्षण कार्य में वांछित सुधार लाना असम्भव एवं कल्पना मात्र रहेगा।

---

1. "To show that the teacher has opportunities for research which if secured will not only powerfully and rapidly develop the technique of teaching but will also react to vitalize and dignify the work of the individual teacher" —Buckingham Research for Teachers, 1926,

क्रियात्मक अनुसंधान की प्रवृत्ति के मूल मे बस यही धारणा थी कि शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षालयो और शिक्षकों की गतिविधियो में सुधार लाने का कार्य स्वय शिक्षक का ही है अनुसंधान विशेषज्ञो का नही। मौलिक अथवा परम्परागत अनुसंधान द्वारा प्राप्त नियमो और सिद्धान्तो का कार्यान्वियन तब तक सम्भव न था जब तक शिक्षक मे स्वय उनको ग्रहण करने की क्षमता न हो। यह क्षमता तभी पैदा हो सकती थी जब शिक्षक स्वय अनुसंधान-कार्य मे सक्रिय भाग ले।

चाहते हैं तो
। हमारी जो
रे लोग हमारी
समस्याओं का समाधान करते हैं और वह हल हमारे ऊपर थोपा जाता है तो उस हल को स्वीकार करें या न करें। यही कारण था कि मौलिक अनुसंधानो द्वारा प्राप्त फल शिक्षण कार्य को उतना प्रभावित न कर सके जितना उनसे आशा थी।

प्रजातन्त्रात्मक मूल्यो की रक्षा के लिये यह आवश्यक था कि विद्यालय में कार्य करने वाले सभी व्यक्तियो—शिक्षको, निरीक्षको, प्रबन्धको—को अपनी-अपनी क्रियाओ अथवा गतिविधियो मे सुधार और विकास लाने का समान अधिकार प्राप्त हो। वे स्वय अपनी कार्य पद्धतियो का मूल्याकन करें और उनमे अपेक्षित सुधार लाने की चेष्टा करें। परस्पर सहयोग के साथ कार्य करता हुआ प्रत्येक अध्यापक अथवा प्रबन्धक अथवा निरीक्षक अपनी-अपनी कार्य प्रणाली को वैज्ञानिक दृष्टि से आँकें और यह देखें कि विद्यालय मे जो कुछ वह कर रहा है शिक्षा के उद्देश्यों को किस सीमा तक सन्तुष्ट करने मे सहायक है, वह स्वय पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, अनुशासन, आदि से सम्बन्धित नित्य उत्पन्न होने वाली समस्याओ को सुलझाने का प्रयत्न करें और तभी वह प्रजातन्त्र से मिलने वाले अधिकारो का उपयोग कर सकेगा।

कोण से भी कम महत्व-
अधिक लाभ होता है।[1]
ते हैं तब हमको उतना
लाभ नही होता जितना कि स्वय खोज करने निष्कर्ष निकालते है। मौलिक अनुसंधान कर्ता सुझाव ही तो देता है लेकिन दूसरों के द्वारा दिये गये कितने सुझाव माने जाते हैं? यही कारण है कि परम्परागत अनुसंधानो के प्राप्त फल शोध पत्रो को सुशोभित करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं करते। शिक्षकों द्वारा किये गये क्रियात्मक अनुसन्धानों के परिणामों को लागू करने का तो प्रश्न ही नही उठता। यह कार्य तो स्वतः होता ही रहता है।

अध्यापकों की पेशेवर उन्नति के लिये आवश्यक है कि वे अनुसन्धान कार्य में स्वयं लगें। बहुत से शिक्षा विदो का मत है कि क्रियात्मक अनुसंधान ही शिक्षक, प्रबन्धक और निरीक्षक सभी की पेशेवर उन्नति का एकमात्र साधन है।

पेशेवर उन्नति (Professional growth) से हमारा आशय है शिक्षक द्वारा शिक्षण विधियों मे सुधार। यह तभी सम्भव है जब अध्यापक स्वय इस कार्य मे रुचि ले।

क्रियात्मक अनुसंधान के मुख्य पद

27 3 Explain the various steps involved in Action Research.

क्रियात्मक अनुसंधान एक प्रक्रिया है—ऐसी प्रक्रिया जिसका उद्देश्य दैनिक शैक्षणिक गतिविधियों मे सुधार लाना है। यह ऐसी प्रविधि है जिसका अनुकरण करने मे हम शिक्षण कार्य में नित्य उपस्थित होने वाली समस्याओ का हल ढूंढ सकते हैं। किसी समस्या का हल ढूंढने की क्रिया म सामान्यत जो पद होते हैं वही पद क्रियात्मक अनुसन्धान के हैं। ये पद निम्नांकित हैं—

---

1. Many educational observers see in action research one of the more promising avenues for teacher growth, professional improvement and development of a batter curriculum.

पद—१ समस्या की पहचान (Identification of the Problem)

पद—२ समस्या का परिभाषीकरण और सीमांकन (Defining and delimiting the problem)

पद—३ समस्या के समाधान के लिए क्रियात्मक उपकल्पनाओं का निर्माण (formulation of action hypothesis)

पद—४ क्रियात्मक उपकल्पना के लिए [illegible] का निर्माण (Development of a suitable design)

पद—५ क्रियात्मक उपकल्पना के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय (Final decision about an action hypothesis)

समस्या का चयन तथा मूल्यांकन — शिक्षण काल में प्रत्येक शिक्षक के सम्मुख कुछ न कुछ समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। लेकिन वही व्यक्ति इन समस्याओं के प्रति जागरूक रहता है जो

(i) अपने व्यवसाय में निष्ठावान है और अपने विद्यालय तथा राष्ट्र के हितों को अपना हित मानकर चलता है।

(ii) जो जिज्ञासु है और निरन्तर विकास की ओर बढ़ने के लिये सचेष्ट रहता है।

लेकिन शिक्षण काल में उपस्थित होने वाली समस्याओं के प्रति उनकी आँखें बन्द रहती हैं जिन्होंने महाकवि रवीन्द्रनाथ टागुर के शब्दों में जो कुछ सीखना था सो सीख लिया है और उनके लिये अब कुछ भी सीखना बाकी नहीं है। ऐसे शिक्षकों को अपनी कमियाँ और दोष स्वयं दिखाई नहीं पड़ते और न उनमें अपनी आलोचनाओं को सुनने का साहस ही होता है।

अतः पहले तो शिक्षक को यह मान लेना होगा कि शिक्षा क्षेत्र में अनेक समस्याएँ हैं और उनका समाधान उसी को करना है। बैस्ट का कहना है कि सारा विद्यालय समस्याओं से परिपूर्ण है लेकिन वही व्यक्ति इन समस्याओं को लाभप्रद प्रोजेक्ट्स में बदल सकता है जिसमें जिज्ञासा, कल्पना प्रधान मस्तिष्क और सामान्य बुद्धि वर्तमान है।[1] सामान्य बुद्धि का अध्यापक अथवा प्रधानाध्यापक यदि समस्याओं को ढूँढना आरम्भ करे तो उसे पग-पग पर समस्याओं के दर्शन होंगे। इन समस्याओं का सम्बन्ध निम्नांकित क्षेत्रों से है।

(i) शिक्षण से
(ii) परीक्षण से
(iii) पाठ्येतर क्रियाओं से
(iv) विद्यालय के संगठन और प्रशासन से

शिक्षण के क्षेत्र में भी अनेक प्रकार की समस्याएँ हैं। यदि हम बालकों को सही अर्थ में शिक्षा देना चाहते हैं तो अपनी शिक्षण विधि, पाठ्यवस्तु, सहायक सामग्री, अध्यापक, अध्यापित सम्बन्ध, आदि अनेक बातों को ध्यान में रखना होगा। ऐसा करने पर हमें निम्न प्रकार की ऐसी अनेक समस्याओं का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त होगा।

(i) पाठ्यवस्तु को व्यवस्थित करने की समस्या
(ii) उपयुक्त शिक्षण विधि की समस्या
(iii) उपयुक्त वातावरण उत्पन्न करने की समस्या
(iv) गृहकार्य तथा लिखित के जाँचने की समस्या

---

1 Many of the problems observed in the classroom, the school, or the community lend themselves to careful investigation perhaps they are of [illegible] ...nce. Tea- ... possessor ... problems ... Inc Engle- wood Cliffs [illegible]

(v) छात्र द्वारा प्रभावशाली ढग से अपने विचारो को व्यक्त करने की समस्या
(vi) छात्रो के कक्षा अथवा विद्यालय से भाग जाने की समस्या ।

बालक ने जो कुछ सीखा है उस पर उसका अधिकार हुआ है अथवा नही यह जानने के लिय परीक्षण आवश्यक है लेकिन यह परीक्षण किस प्रकार से हो; आन्तरिक अथवा बाह्य, परम्परागत अथवा नवीन प्रकार की वस्तुनिष्ठ परीक्षाओ द्वारा ?

बालको का उचित सामाजिक, सावेगिक और चारित्रिक विकास करने, उनमें प्रजातान्त्रिक गुणो—परस्पर सहयोग एव मैत्री भाव से कार्य करने की क्षमता आदि को विकसित करने की जिम्मेदारी विद्यालय पर है । इस उद्देश्य से किन-किन पाठ्येतर क्रियाओ को विद्यालय के प्रागण मे स्थान दिया जाय ? यदि छात्र अथवा अध्यापक इन क्रियाओ मे रुचि नही लेते तो किस प्रकार उनको ऐसा करने के लिये प्रेरणा दी जाय ? विविध प्रकार की पाठयक्रम सहगामिनी क्रियाओ द्वारा—वाद-विवाद प्रतियोगिता, अन्त्याक्षरी, प्रहसन, सास्कृतिक कायक्रमो द्वारा किस प्रकार अधिगम को उन्नति बनाया जाय ? किस प्रकार इन क्रियाओ से वाह्याडम्बर को दूर रखा जाय ? उनका सगठन करने के लिये किस प्रकार अपेक्षित साधन जुटाए जायें ?

इस प्रकार की अनेक समस्याएं प्रशासन और सगठन मे सम्बन्धित होती हैं । प्रशासनके अनेक जिम्मेदारियाँ हैं । उसे वि[illegible] सहयोगियो मे साथ-साथ कार्य करने की [illegible] रखना है; पुस्तकालय और वाचनालय मे पर्या[illegible] आकर्षक बनाना है । सभी विषयो के लिये विषय कक्षो का प्रवन्ध करना है, छात्रों और अध्यापको के बीच मानवीय सम्बन्धो की पुष्टि करना है, अध्यापक और अभिभावको के बीच मैत्री भाव पैदा करना है, विद्यालय के स्तर को ऊँचा उठाना है । यह कैसे किया जाय ? जिज्ञासु प्रशासक के लिये इस क्षेत्र मे समस्याओं का मानो भण्डार भरा है ।

इन समस्याओ मे से किसी भी समस्या को जो अति गम्भीर और समाधान-सम्भाव्य हो क्रियात्मक अनुसधान के लिये चुना जा सकता है । प्रश्न उठता है कि इनमे से कौन सी समस्या अति गम्भीर है और उसका समाधान अध्यापक द्वारा सम्भव है । क्रियात्मक अनुसधान के लिये चुनी गई समस्या में निम्नाकित बातो पर अवश्य ध्यान दिया जाय—समस्या मे विद्यालय की दृष्टि से निरालापन हो, उसका विद्यालय के अन्दर ही अध्ययन हो सके, और वह अनुसधानकर्ता के अधिकार क्षेत्र से बाहर न हो, उसको समाधान की आवश्यकता विद्यालय स्वय अनुभव करे और उसका वस्तुनिस्ठ विश्लेषण सम्भव हो,

समस्या का पारिभाषीकरण और सीमांकन (Definition and delimitation of the Problem)—समस्या के पारिभाषीकरण से हमारा आशय है समस्या का सागोपाग विश्लेषण और उसके स्वरूप का प्रत्यक्ष निर्णय । समस्या के स्वरूप का निर्णय होता है उसके लिये प्रयुक्त शब्दो मे एकार्थिता भाव द्वारा । यदि समस्या को इस प्रकार शब्द बद्ध किया जाय कि उसका अर्थ एक ही निकले तो समस्या के विषय में कोई विवाद उपस्थित नहीं हो सकता ।

समस्या के सीमाकन से हमारा आशय है उसको व्यापक क्षेत्र से सीमित क्षेत्र मे आबद्ध करना । उच्चतर माध्यमिक विद्यालय के छात्रो मे अधिकतर छात्र अंग्रेजी मे कमजोर होते हैं । छात्रो का अंग्रेजी में स्तर ठीक न होना एक समस्या है । लेकिन इससे व्यापकत्व है । इसी को क्रियात्मक अनुसधान हेतु सीमा बद्ध करने के लिये इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है । दिल्ली राज्य के ग्रामीण क्षेत्रीय राजकीय विद्यालयो मे छात्रो मे अंग्रेजी के स्तर का हीन होना ।

समस्या के समाधान के लिये क्रियात्मक उपकल्पनाओं का निर्माण (Formulation of Action Hypothesis)—उपकल्पना एक ऐसा कथन है जो [illegible] प्रकार से समस्या का समाधान सम[illegible] मानकर चलता है या यो कहिये कि [illegible] करता है । इस अनुमापन के आधार पर नये सिद्धान्तो का निर्माण करता है । उदाहरण के लिये दिल्ली राज्य के ग्रामीण राजकीय विद्यालयों के छात्रो मे अंग्रेजी का स्तर बहुत गिरा हुआ है । लगभग ७०% छात्र अंग्रेजी मे असफल होते हैं इसका कारण क्या है ? अनुसधानकर्ता इन कारणो का विश्लेषण करता है ।

(१) ग्रामीण क्षेत्रों के छात्रों का पारिवारिक वातावरण खराब है वह उन्हें अंग्रेजी पढने, अंग्रेजी बोलने और अंग्रेजी में अपने विचार व्यक्त करने के लिये कोई प्रेरणा नहीं देता।

(२) ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य करने वाले अंग्रेजी के अध्यापक असन्तुष्ट रहते हैं क्योंकि इन क्षेत्रों में किसी प्रकार के प्राइवेट ट्यूशन की सुविधा नहीं है। लड़के गरीब हैं अतः ट्यूशन कर नहीं सकते।

(३) ग्रामीण क्षेत्रों में कोई अंग्रेजी पढाने वाला अध्यापक रहना पसंद नहीं करता अतः वह दिल्ली शहर से प्रतिदिन ५०-६० मील बस यात्रा तो कर सकता है किन्तु ग्रामीण क्षेत्र में रहकर अध्यापन कार्य करना पसद नहीं करता।

(४) राजकीय विद्यालयों में अतिरिक्त कक्षाओं के लिये अध्यापक को कोई वित्तीय प्रतिफल नहीं मिलता।

ऐसे ही अनेक कारण हो सकते हैं जिनको इस समस्या के मूल में स्थित माना जा सकता है। इन कारण मूल तत्वों का विश्लेषण करने के बाद समस्या के समाधान हेतु उन उपकल्पनाओं का निर्माण किया जा सकता है जिनका परीक्षण अनुसंधानकर्ता सरलतापूर्वक कर सकता है। समस्या के कारणों का निराकरण करने से समस्या का हल हो सकता है इसलिये क्रियात्मक उपकल्पनाओं में इस बात का उल्लेख होता है कि समस्या के कारणों को किस प्रकार दूर किया जाय।

उपरोक्त समस्या के समाधान के लिये निम्नलिखित क्रियात्मक उपकल्पनाओं का निर्माण किया जा सकता है—

(१) यदि ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित विद्यालयों के कमजोर छात्रों के लिये छात्रावासों की व्यवस्था की जाय तो उनका अंग्रेजी में स्तर ऊँचा उठ सकता है।

(२) यदि ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित विद्यालयों के अंग्रेजी के अध्यापकों को उनके अतिरिक्त परिश्रम द्वारा अच्छे परिणामों के लिये प्रेरणा देने वाले उत्साहवर्धक साधन जुटाये जायें तो अंग्रेजी का स्तर ऊँचा उठ सकता है।

(३) यदि अंग्रेजी के अध्यापकों के लिये निःशुल्क आवास का प्रबन्ध किया जाय और रहने की उन्हें अन्य सुविधाएं प्रदान की जायें तो अंग्रेजी का स्तर ऊँचा उठ सकता है।

(४) यदि राजकीय विद्यालयों में अंग्रेजी के अध्यापकों को अतिरिक्त परिश्रम के लिये कुछ आकर्षक धनराशि दी जाय अथवा अन्य प्रकार के अन्य प्रलोभन दिये जायें तो छात्रों का अंग्रेजी का स्तर ऊँचा उठ सकता है।

इन क्रियात्मक उपकल्पनाओं को देखने से पता चलेगा कि उनके दो-दो भाग हैं—एक तो है क्रियात्मक पक्ष और दूसरा है लक्ष्यात्मक पक्ष। प्रत्येक कथन का पूर्वार्द्ध कहता है—"यदि ऐसा किया जाय" और उत्तरार्ध कहता है "तो ऐसा होगा।" कथन का पूर्वार्द्ध उपकल्पना का क्रियात्मक पक्ष है और कथन का उत्तरार्द्ध उपकल्पना का लक्ष्यात्मक पक्ष।

अच्छी क्रियात्मक उपकल्पनाओं में निम्न गुण होने चाहिए :

जो उपकल्पना सत्यापनशील हो, जिसकी सत्यता और असत्यता की परीक्षा की जा सके, जो उपकल्पना विद्यालय के कार्य पर विशेष प्रभाव डाल सके, और जो स्पष्ट शब्दों में अभिव्यक्त की जा सके, और जो उसकी क्षमताओं के अनुकूल हो, जिसका उद्देश्य अनुसंधानकर्ता को पूरी तरह से ज्ञात हो, जिसका अन्य क्रियाओं से नहीं के बराबर हस्तक्षेप हो, और पूर्व स्थापित सिद्धान्तों द्वारा समर्थित हो वही क्रियात्मक उपकल्पना अच्छी मानी जा सकती।

ऐसी उपकल्पनाओं का निर्माण ऐसे व्यक्तियों द्वारा सम्भव है जिनमें सृजनात्मक कल्पना का बाहुल्य, पैनी अन्तर्दृष्टि और गहन अनुभव हो। अनुसंधान कर्ता विद्यालय की प्रगति के प्रति संवेदनशील बह उस क्षेत्र में होने वाले नये-नये अनुसंधानों से पूर्णतः परिचित हो तभी वह अच्छी ... का निर्माण कर सकता है।

क्रियात्मक उपकल्पना के लिये आवश्यक रूपरेखा का निर्माण (Preparation of necessary design for action hypothesis)—क्रियात्मक उपकल्पना किस सीमा तक सत्य है, किस सीमा तक 'यदि ऐसा हो तो ऐसा होगा' इसका परीक्षण विद्यालय के अप्राकृतिक वातावरण में अर्थात् विद्यालयीय दैनिक क्रियाओं में हेर-फेर लाये बिना ही किया जाता है। यदि अनुसंधान कर्ता को किसी प्रकार की तैयारी की जरूरत होती है तो उसके उपयुक्त रूपरेखा निर्माण करने की ही होती है। अनुसंधानकर्ता एक ऐसी संरचना तैयार करता है जिसके आधार पर कार्यान्वियन हो सके। इस रूपरेखा में उसे जो-जो क्रियाएँ करनी पड़ती है अथवा वह जिन-जिन विधियों का अनुसरण करता है—उन सबका यथा विधि उल्लेख होता है।

यह रूप रेखा ही खोज की वह प्रविधि है जिसके अनुसरण करने से प्राप्त फलों में विश्वस्त और प्रामाणिकता आ सकती है। उपकल्पना की सत्यता का परीक्षण करने की यही सच्ची कसौटी है। यदि यह कसौटी विश्वसनीय है तो परिणाम अथवा निष्कर्ष भी विश्वस्त और वैद्य होंगे। इसीलिये स्टीफेन एम कोरे (Stephen M. Corey) ने क्रियात्मक उपकल्पना की परीक्षा हेतु निर्मित रूपरेखा के महत्व पर बल दिया है। वे कहते हैं "यदि उपकल्पना की रूपरेखा उत्तम कोटि की है तो अनुसंधान से प्राप्त निष्कर्ष भी उत्तम कोटि के होंगे।[1]

क्रियात्मक अनुसंधान के परिणामों का मूल्यांकन—रूपरेखा के अनुसार अनुसंधान का कार्यान्वियन करने के बाद जो निष्कर्ष अथवा परिणाम निकलते हैं उनके आधार पर ही उपकल्पना की सत्यता अथवा असत्यता की जाँच की जा सकती है। लेकिन जहाँ तक क्रियात्मक अनुसंधान का सम्बन्ध है ये परिणाम व्यापक और सामान्य घोषित नहीं किये जा सकते। यदि क्रियात्मक अनुसंधान से उसके उद्देश्य की पूर्ति हो गई तो इतना ही काफी है। पर यदि उस खोज के परिणामों को व्यापक जनसमूह (Population) पर लागू किया जा सका तो अवश्य ही उसकी उपयोगिता स्वीकार की जा सकती है।

क्रियात्मक अनुसंधानों द्वारा प्राप्त परिणामों का मूल्यांकन निम्नलिखित तरीकों से किया जाता है।

(१) निरीक्षण।
(२) मतसंग्रह।
(३) प्रश्नावली।
(४) साक्षात्कार।
(५) सांख्यिकीय विधियाँ।

अध्यापक अथवा प्रधानाचार्य विभिन्न परिस्थितियों में उन तथ्यों का वस्तुनिष्ठ निरीक्षण करता है जिनका आभास खोज द्वारा उसे मिला है। यह निरीक्षण या तो पूर्णत व्यवस्थित होता है अथवा अर्धव्यवस्थित अथवा बिल्कुल स्वतन्त्र। निरीक्षक विविध पक्षों का वस्तु निष्ठ निरीक्षण करता हुआ परिणामों की सत्यता स्थिर करता है।

मत संग्रह द्वारा अनुसंधानकर्ता विद्यालय के प्रधानाचार्य, अध्यापकों और छात्रों की सम्मतियाँ इकट्ठी करता है। कहीं मत देने वाले मतों की अभिव्यक्ति करते समय विशेष पक्षपात के शिकार न बन जाय। इस उद्देश्य से वह उनके मतों को अलग-अलग एकत्र करता है साथ ही प्रत्येक मत देने वाले व्यक्ति को एक ही बात पर अपनी मति देने के लिये आग्रह किया जाता है।

अन्य लोगों की धारणाओं का पता लगाने के लिये कभी-कभी प्रश्नावलियों का भी प्रयोग किया जाता है। प्रश्नावली के अन्तर्गत प्रयुक्त प्रश्न प्रायः छोटे और नुकीले होते हैं। अन्य लोगों की धारणाओं का पता लगाने का एक और तरीका है वह है छात्रों अथवा अध्यापकों के साथ साक्षात्कार और विचार विमर्श।

---

1. [illegible] —Stephen M. Corey.

शैक्षणिक सांख्यिकी

साख्यिकी की परिभाषा—साख्यिकी की परिभाषा देने से पूर्व हम कुछ अंग्रेज विद्वानों के विचारो को प्रगट करेंगे । बौले (Bowley) महोदय के अनुसार साख्यिकी वह विज्ञान है जो सामाजिक रचना को सम्पूर्ण मानकर उनके साथ प्रत्यक्षीकरण को नापता है ।[1] दूसरे स्थान में वे लिखते हैं कि साख्यिकी मध्यमान का विज्ञान है ।[2] बौले की ये दोनों परिभाषायें दोषपूर्ण हैं क्योंकि साख्यिकी का सम्बन्ध केवल सामाजिक शास्त्रों से ही नहीं है वरन् अन्य शास्त्रों एवं विज्ञानों से भी है । दूसरे, साख्यिकी में केवल औसत निकालने की विधि पर ही जोर नहीं दिया जाता, उसमें अन्य विधियों को भी महत्व दिया जाता है । वोडिंगटन के अनुसार साख्यिकी अनुमान और सम्भवताओं का विज्ञान है ।[3] किन्तु यह परिभाषा भी अधूरी है क्योंकि साख्यिकीय विधियों में सामग्री का संग्रह, लेखा चित्रण विधि से प्रदर्शन और विश्लेषण भी सम्मिलित किया जाता है ।

किंग (King) और लोविट (Lovit) की परिभाषा में और हमारी परिभाषा में कुछ साम्य है । अतः अपनी परिभाषा देने से पूर्व इसका उल्लेख और किया जाना संगत प्रतीत होता है । उनके अनुसार साख्यिकी वह विज्ञान है जो आंकिक तथ्यों के संग्रहण, वर्गीकरण और सारणीयन को गोचर घटनाओं की व्याख्या वर्णन और तुलना करने के लिए आधार मान कर उन पर विचार करता है ।

"The science of Statistics is the method of judging collective natural or social phenomenon from the results obtained by the analysis of enumeration or collection of estimates". —*King.*

संक्षेप में आकडा विज्ञान (Statistics) वह विज्ञान है जो—

१. *जटिल और अधिक संख्या में प्रस्तुत तथ्यों को सरल एवं सुविधाजनक रूप में उपस्थित करती है ।*

२. *वह इस प्रकार प्रस्तुत की गई सामग्री की तुलना करती है और उसके बीच सम्बन्ध स्थापित करती है ।*

३. *उनका प्रयोग भविष्य की स्थितियों के बारे में पूर्वानुमान करने के लिये करती है ।*

४. *इस विज्ञान की सहायता से जाना जा सकता है कि कोई प्रभाव अर्थ सूचक है अथवा नहीं ।*

1 2. Explain the significance of studying Statistical methods to

(a) Social Scientists
(b) Educators

हमारे विचार से साख्यिकी न तो शिक्षा-शास्त्र की तरह कोई शास्त्र ही है और न मनोविज्ञान की तरह कोई विज्ञान ही । वह तो वैज्ञानिक विधियों का समुच्चय मात्र है । प्रत्येक विज्ञान चाहे वह सामाजिक हो अथवा भौतिक अपने नियमों, तथ्यों और सत्यों की खोज करने के लिये स्वक्षेत्र सम्बन्धी आंकिक सामग्री का संग्रह करता है । किन्तु उस सामग्री का *व्यवस्थापन, चित्रण, विश्लेषण और व्याख्या किस प्रकार की जाय यह काम संख्या शास्त्र का है । साख्यिकी (Statistics) उन यन्त्रों और विधियों (methods) की खोज करती है जो समाजशास्त्रों के कार्य को सुगम बना दिया करती है ।*

शिक्षा और मनोविज्ञान में साख्यिकी का महत्व

हम पहले कह चुके हैं कि अंग्रेजी भाषा का statistics शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त होता है । देश की सामाजिक आर्थिक व्यवस्था के विषय में जो आकड़े इकट्ठे किये जाते हैं उनको तो हम समक (Statistics) कहते ही हैं, साथ ही उन आकड़ो के विश्लेषण और व्याख्या करने की विधियों को भी Statistics की ही संज्ञा दिया करते हैं । पहले अर्थ में इस शब्द का प्रयोग अधि

... measurement of social organisation regarde

प्राचीनकाल से ही चला आ रहा है। वित्त एव युद्ध सम्बन्धी मामलो को ठीक ढग से चलाने के लिए प्रत्येक सरकार (State) जन्म-मरण, आय-व्यय, आदि का लेखा-जोखा रखने के लिये आकड़े इकट्ठा करती है। अत. इन आकड़ो (Statistics) का सरकार (State) के कार्यों से घनिष्ट सम्बन्ध होने के कारण विशेष महत्व है। अब ग्रह-नक्षत्र वेत्ताओ, जीव-वैज्ञानिको (biologists) और कम्पनियो को भी इस प्रकार के आकड़ो की आवश्यकता का अनुभव होने लगा है। आधुनिक काल मे अर्थशास्त्र, व्यापार, उद्योग, कृषि, मनोविज्ञान एव शिक्षा के क्षेत्रो मे इस प्रकार की अधिक सामग्री इकट्ठी की जाती है, उनका निरूपण या चित्रण किया जाता है, और व्याख्या की शुद्धि एव वैधता के लिये उसका विश्लेषण किया जाता है। अर्थशास्त्री कई वर्षों तक दशनाक (Price Index Numbers) इकट्ठा करके उनके आधार पर भविष्य कथन (prediction) करता है, कृषि शास्त्री भूमि के भिन्न-भिन्न खण्डों (plots) पर भिन्न-भिन्न खादों का प्रयोग करके उपज की भिन्नता का अन्दाजा लगाता है; एक मनोवैज्ञानिक किसी व्यक्ति के व्यवहार का अध्ययन करने के लिये आकिक सामग्री इकट्ठा करता है और शिक्षाशास्त्री प्रामाणिक अथवा अध्यापक-निर्मित परीक्षाओं की विश्वसता (reliability), उनकी वैधता (validity) और प्रश्नो की विभेदकारिका (discrimination) का ज्ञान प्राप्त करने के लिये फलाक इकट्ठे करता है और उनका विश्लेषण करके उनकी व्याख्या करता है। सक्षेप मे कहा जा सकता है कि प्रत्येक शास्त्र या विज्ञान साख्यिकीय विधियो का सहारा लेता है।

मनोविज्ञान की प्रयोगशाला (laboratory) हो या विद्यालय का प्रागण, सब जगह साख्यिकीय विधियो की जरूरत पडती है। शिक्षा और मनोविज्ञान के क्षेत्रो मे व्यक्ति समूहो या व्यक्ति-विशेष के व्यवहार परिवर्तन की मात्रा का अध्ययन करने के लिये जिस विधि से आकिक सामग्री इकट्ठी की जाती है उसकी विवेचना प्रस्तुत पुस्तक का लक्ष्य नही है, क्योंकि निरीक्षणो (observations) का सग्रह किस प्रकार किया जाना है यह तो प्रयोगात्मक मनोविज्ञान का विषय है, और भिन्न-भिन्न परीक्षिका फलाको को किस प्रकार सकलित किया जाता है यह शैक्षणिक मापन की विषय वस्तु है। निरीक्षणो एव फलाकों (scores) का प्रदर्शन किस प्रकार किया जाय उनका विश्लेषण करने की क्या-क्या विधियाँ अपनायी जायें, और उनकी व्याख्या या अर्थ कथन किस प्रकार की जाय यह साख्यिकी की विषय-वस्तु मानी जा सकती है।

जिस आकिक सामग्री को शैक्षणिक मापन प्रस्तुत करता है अथवा जो प्रदत्त मनोवैज्ञानिक प्रयोगशालायें दिया करती हैं वे मूलरूप मे अपक्व (raw) होते हैं। सख्या शास्त्रज्ञ उन कच्चे निरीक्षणो या फलाकों को अपनी विधियो से पकाता है और तभी वे समाजशास्त्री के व्यवहारोपयोगी बन पाते हैं, इससे पहले नहीं। साथ ही संख्याशास्त्री शैक्षणिक मापनकर्ता और प्रयोगकर्त्ता (experimenter) दोनो व्यक्तियो को आकिक सामग्री के सग्रह करने के उत्तम ढग के लिए पथ प्रदर्शन भी करता है। इस प्रकार सन्याशास्त्री निम्नलिखित चार प्रकार के कार्य का ज्ञान कराता है।

(अ) आंकिक प्रदत्त का सग्रह (Collection of Numerical data)
(ब) उसका प्रदर्शन एव चित्रण (Representation)
(स) विश्लेषण (Analysis)
(द) व्याख्या (Interpretation)

अन्वेषकों द्वारा संकलित सामग्री का उपयोग कर लिया करता है। पहली प्रकार की सामग्री प्राथमिक और दूसरी प्रकार की द्वितीयक (secondary) कहलाती है। सामग्री किसी प्रकार की क्यों न हो उसमें निम्नलिखित तीन गुणों का होना जरूरी है।

(१) विश्वसनीयता (reliability)
(२) अनुकूलता (suitability)
(३) पर्याप्तता (adequacy)

किसी अनुसन्धान अथवा प्रयोग की सफलता के लिये संग्रहीत आंकिक प्रदत्त का विश्वसनीय होना अत्यन्त आवश्यक है। यह तब हो सकता है जब (१) संकलनकर्ता किसी ऐसे हित को लेकर न चला हो जिसको सिद्ध करने के लिये वह जानबूझ कर गलती कर उठे, (२) जब वह सामग्री संग्रहण में आवश्यक सावधानी एवं सचेत बरते, (३) जिस समय में वह प्रदत्त इकट्ठा कर रहा है वह समय सामान्य हो ताकि असामान्य कारणों द्वारा विशेष रूप से प्रभावित परिस्थितियाँ प्रदत्त को दूषित बनादें।

जिस समस्या का अध्ययन मनोवैज्ञानिक अथवा शिक्षा शास्त्री कर रहा है उसी समस्या के अनुकूल उसे सामग्री का संग्रहण करना होगा। यदि वह प्रयोग अथवा अनुसन्धान के उद्देश्य और क्षेत्र को ध्यान में रखे तो बेकार की सामग्री उसके पास इकट्ठी न हो सकेगी। प्रयोग अथवा अनुसन्धान के क्षेत्र को निश्चित कर लेने से एक लाभ हो सकता है कि वह पर्याप्त सामग्री एकत्र करने को प्रयत्नशील रहेगा।

इस प्रकार चुनी हुई सैम्पिल यद्यपि आकार में विशाल होने पर प्रतिनिध्यात्मक हो सकती है किन्तु सदैव पूर्ण विश्वस्त एवं उपयुक्त नहीं मानी जा सकती। क्योंकि यदि कोई व्यक्ति हाईस्कूल में अध्यापन के लक्ष्य जानने के लिये हजारों लाखों गणित के अध्यापकों को प्रश्नावलियाँ (questions) भेजकर प्रदत्त इकट्ठी करता है और उनमें से भी दैव-प्रचरण करता है तो यह निश्चय नहीं कि उसको अपनी समस्या के अनुकूल प्रदत्त मिल सके। यदि वह अनुभवी गणित के अध्यापकों से इस प्रकार की सूचना संग्रहण करे तो शायद उसे उत्तम प्रकार की उपयुक्त आंकिक सामग्री मिल सकेगी। अतः निदर्शन का चुनाव करते समय हमें अपनी उस समस्या का ध्यान रखना चाहिये जिसके हल करने के लिये प्रदत्त को ग्रहण किया जा रहा है।

समंकों का दुरुपयोग (Abuse of statistics)

अपने हित के लिये व्यक्ति समंकों एवं सांख्यिकीय विधियों का दुरुपयोग किया करता है। प्रचार कार्य में दक्ष व्यापारी, अथवा चुनाव को जीतने का इच्छुक नेता समंकों को जनता के समक्ष इस प्रकार प्रस्तुत करता है कि सत्य का गला घोंट दिया जाता है। जनता जानती है कि यह सब धोखा देने का प्रपंच मात्र है अतः अंकों पर आधारित सभी तर्कों पर वह अविश्वास प्रगट करने लगती है।

अतः समंकों की अविश्वसनीयता का वास्तविक कारण है उनको उपादान के रूप में प्रयोग करने वालों का हित साधन। यदि समंकों का संकलन करते समय व्यक्तिगत मत, अभिरुचि और पक्षपात को स्थान न दिया जाय तो उनसे झूठे परिणाम निकलने की सम्भावना बहुत कम हो जायगी। कभी-कभी संकलनकर्ता सांख्यिकीय रीतियों से अनभिज्ञ होने के कारण गलत समंक प्रस्तुत करता है। ऐसे समंकों द्वारा प्राप्त परिणामों के गलत होने पर लोगों में सांख्यिकी के प्रति विश्वास कम हो जाता है और जो दोष संकलनकर्ता को देना चाहिये वे दोष समंकों को देने लगते हैं। कुक और बैंटल के शब्दों में उनकी मनःस्थिति उस व्यक्ति की तरह होती है जो सत्य और असत्य में अन्तर न समझने के कारण हर बात पर सन्देह प्रकट करता है।

हमारे कहने का एकमात्र उद्देश्य यह है कि समंकों का संग्रहण निरपेक्ष भाव से किया जाय और उनका प्रस्तुतीकरण भी निष्पक्ष भाव से ही किया जाय। सांख्यिकीय सामग्री और रीतियाँ अनाड़ी के हाथ में भयंकर उपादान के तुल्य होती हैं। सांख्यिकी तो ऐसा विज्ञान है जिसका प्रयोगकर्ता कलाकार के समान चतुर व्यक्ति होना चाहिये। हमें समंकों का प्रयोग उस अन्धे के समान नहीं करना है जो बिजली के खम्भे से प्रकाश के स्थान पर सहारा लेने का प्रयत्न करता है। समंक (Statistics) मिट्टी के समान हैं जिनसे आप देवता या दानव जो चाहें बना सकते हैं।

अध्याय ३

आंकिक प्रदत्त का वर्ग विभाजन एवं सारणीकरण

(Classification and Tabulation of Statistical Data)

Q 3 1. How does a Variable differ from an Attribute ?

परिवर्त्य एवं विशेषणात्मक राशियां (Variables and Attributes)

साख्यिकीय विधियो का सम्बन्ध पूर्णत परिवर्त्य एव विशेषणात्मक राशियो से ही होता है। प्रत्येक मनोवैज्ञानिक जिस समय व्यक्तियो के आचरण का अध्ययन करता है उस समय उसे प्राय दो प्रकार के आंकिक प्रदत्त मिलते हैं —

(१) परिवर्त्य राशियों (Variables) से सम्बन्धित प्रदत्त—जब वह किसी व्यक्ति के प्रति चार समय या बुद्धि अक (intelligence quotient) या किसी विद्यार्थी के परीक्षा फलाको के विषय मे आंकिक सामग्री इकट्ठी करता है तब उसे इन चार राशियो से काम लेना पडता है।

(२) विश्लेषणात्मक राशियो (Attributes) से सम्बन्धित प्रदत्त—जब वह उपलब्ध जनसंख्या (population) मे यह देखना चाहता है कि कितने व्यक्ति अन्तर्मुखी हैं और कितने छात्र बहिर्मुखी अथवा यह जानना चाहता है कि कितने छात्र धनी घरानो से और कितने गरीब घरो से, तब भी वह कुछ आंकिक सामग्री इकट्ठी करता है। ऐसी दशा मे वह व्यक्तियों मे एक या एक से अधिक विशेषताओं की उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति का ज्ञान प्राप्त करता है।

अतएव साख्यिकीय विधियाँ इन दोनो प्रकार की आंकिक सामग्रियो का विश्लेषण (analysis) और व्याख्या (interpretation) करने का प्रयत्न करती हैं किन्तु दोनों प्रकार की आंकिक सामग्रियो की व्याख्या अथवा विश्लेषण तभी सम्भव है जब उनका वर्ग विभाजन (classification) और सारिणीकरण (Tabulation) उचित ढग से हो सके।

Q. 3.2 Differentiate between a Descrete and Continuous Variables. Give examples

परिवर्त्य राशियों के भेद (Kinds of Variables)

परिवर्त्य राशियाँ दो प्रकार की होती हैं—सतत (Continuous) एव खण्डित (Discrete)। बालको का कद अधिगम (achievement) परीक्षिकाओ मे उनके द्वारा प्राप्त फलाक (scores), मृत्यु दर (death rates), अध्यापको के वेतन, प्रयोज्य (subject) के द्वारा किसी दर्शनीय उद्दीपक के प्रति प्रतिचार-समय (reaction time) आदि ऐसी मापें हैं जो एक व्यक्ति से दूसरे तक बदलती रहती हैं। इन मापो का किसी निश्चित क्षेत्र मे प्रसरण समान रूप से होने के कारण उन्हे सतत् (Continuous) कहा जाता है, उदाहरणार्थ, व्यक्तियो का एक निश्चित प्रसार क्षेत्र (range) मे कुछ भी हो सकता है, वह भिन्नात्मक (fractional) भी हो सकता है और पूर्ण सख्यात्मक भी। इसके विपरीत, किसी विद्यालय मे बालकों की दैनिक उपस्थिति कभी भिन्नात्मक नहीं हो सकती, किसी नगर मे आत्महत्याओ की सख्या भी भिन्नात्मक रूप से प्रदर्शित नहीं की जा सकती। ऐसी चर राशियाँ जिनको केवल पूर्ण-सख्या मे ही प्रगट किया जाता है अविच्छिन्न राशियाँ कहलाती हैं। सतत् राशि पूर्णांक होने पर भी वास्तव मे पूर्णांक नहीं होती। जिस बालक का कद निकटतम इंच तक ७०" नापा बतलाया जाता है उसकी वास्तविक ऊँचाई ७०" नहीं है वरन् वह ६९·५" से लेकर ७०·४" तक कुछ भी हो सकती है। ६९·५" से ७०·४" तक की

दूरी ७०" का प्रसार क्षेत्र (range) माना जाता है। इसी प्रकार किसी परीक्षिका (test) के फलाक (scores) २५ से हमारा अभिप्राय २५ ही नही वरन् २४ ५ से लेकर २५'४६६...... तक के सम्पूर्ण प्रसार क्षेत्र से होता है। सुविधा के लिये प्रसार क्षेत्र २४ ५—२५'४ ही लिखा जाता है। अधिगम परीक्षिकाओं मे विद्यार्थियो द्वारा प्राप्त फलाकों (scores) ग्रौर प्रयोगकर्ता द्वारा किसी प्रयोज्य (subject) पर मानसिक थकान के परीक्षणो के फलाकों मे अन्तर हो सकता

७०"
↑
६९'५ ६९'६ ६९'७ ६९'८ ६९ ९ ७० १ ७० २ ७०'३ ७० ४९९
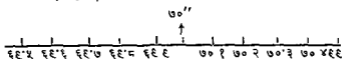
चित्र—७०" की वास्तविक सीमायें

है। दूसरे फलांक पूर्णाक ही हो सकते हैं भिन्नात्मक नही। मान लीजिये कि यदि प्रयोगकर्त्ता किसी व्यक्ति की मानसिक थकान (mental fatigue) परिमाप ज्ञात करना चाहता है ग्रौर इस कार्य के लिए वह उसको कुछ सख्याओं का लगातार योग निकालने का ग्रादेश देता है तो भिन्न-भिन्न प्रयासो (trials) मे वह जितने जोडजोड सकता है उन जोडों की सख्या पूर्णाक ही होगी, भिन्नात्मक नही हो सकती। ऐसी दशा मे उसका फलाक यदि किसी प्रयास मे १५ है तो उस १५ फलाक का अभिप्राय १५ ही होगा, १४ ५ ग्रौर १५ ४ के बीच की कोई अन्य राशि नहीं। ग्रतएव ये परिवर्त्य राशियां जिनके वर्ग-विस्तार की सीमायें भिन्नात्मक नहीं होतीं विच्छिन्न राशियां (discrete variable) कहलाती हैं।

Q 33 What is a class Intervel ? How would you classify a continoous variable ? Give examples

सतत् परिवर्त्य राशियो का वर्ग विभाजन (Classification of continuous variables)

क्रमागत विच्छिन्न परिवर्त्य राशियो के बीच इकाई का अन्तर रहता है ग्रत उनके वर्ग विभाजन की समस्या सख्याशास्त्रज्ञ के सामने नही ग्राया करती। वर्ग विभाजन की समस्या उसी समय ग्राती है जब चर राशि सतत् हुग्रा करती है। मान लीजिए किसी ग्रधिगम (achievement) परीक्षिका मे न्यूनतम एव अधिकतम फलाक क्रमश ० ग्रौर ५० है तो शून्य से लेकर पचास तक की दूरी को, जिसे हम प्रसार क्षेत्र कहते हैं, वर्गों मे बाँटने का कार्य को तभी पूरा कर सकते हैं जब हम यह निश्चित करलें कि इस दूरी के हमे कितने टुकडे करने हैं ग्रथवा यह तय करलें कि प्रत्येक टुकडे या वर्ग की उच्चतम तथा निम्नतम सीमायें क्या हैं। यदि हम प्रत्येक वर्ग का फैलाव १० फलाकों का मान लें प्रसार क्षेत्र ०-५० को हम चार प्रकार ग्र, ब, स, ग्रौर द वर्गों मे

(ग्र)	(ब)	(स)	(द)
० से ९'९९	०-१०	— '५ से ९'४९९	०-९
१० से १९'९९	१०-२०	९'५ से १९'४९९	१०-१९
२० से २९'९९	२०-३०	१९'५ से २९ ४९९	२०-२९
३० से ३९'९९	३०-४०	२९ ५ से ३९'४९९	३०-३९
४० से ४९ ९९	४०-५०	३९'५ से ४९'४९९	४०-४९

(ब)

० १० २० ३० ४० ५० ६० ७० ८० ९० १००

० ९'९९ १९'९९ २९'९९ ३९ ९९ ४९'९९ ५९'९९ ६९'९९ ७९'९९ ८९'९९ ९९'९९

(ग्र)
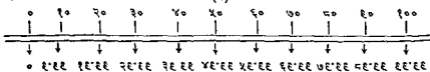
चित्र (२)

विभाजित कर सकते हैं। इन चार तरीकों मे पहले दो ग्रौर ग्रन्तिम दो तरीके समान ही हैं। ...े तरीके मे सबसे बड़ा दोष यह है कि क्रमागत दो वर्गों मे से प्रथम (ग्र) वर्ग की निम्नतम

सीमा द्वितीय वर्ग की उच्चतम सीमा का प्रारोहण (overlap) करती है अतएव जिस विद्यार्थी के फलांक १० हैं वह पहले वर्ग मे डाला जायगा या दूसरे मे वर्ग विभाजन (ब) को देखकर यह निश्चयपूर्वक नहीं बताया जा सकता। इन चारो विधियो मे (अ) और (स) विधियाँ उत्तम हैं क्योकि उनमे वास्तविक सीमाओ का निर्देश किया गया है किन्तु उन दोनों विधियों से प्राप्त वर्गों को ध्यानपूर्वक देखने से पता चलेगा कि उनकी उच्चतम और निम्नतम सीमाओ मे काफी अन्तर है। यह अन्तर मापो की वाछित शुद्धि-मात्रा के कारण पैदा हो गया है।

(अ) मे शुद्धि की मात्रा '०००···१ और (स) मे ०१ रखी गई है। इसी प्रकार यदि किसी विद्यार्थी-समूह के कद को निकटतम इच तक मापा गया है तो वर्गों का क्रम हो सकता है

५६$\frac{१}{२}$ से ५७$\frac{१}{२}$ इच तक
५७$\frac{१}{२}$ से ५८$\frac{१}{२}$ इच तक

किन्तु यदि उनका कद चौथाई इच तक मापा गया है तो वर्गों का क्रम होगा :

५६$\frac{७}{८}$ से ५७$\frac{७}{८}$ इच तक
५७$\frac{७}{८}$ से ५८$\frac{७}{८}$ इच तक

इसी प्रकार यदि व्यक्तियो का भार निकटतम पौण्ड तक लिया गया है तो वर्ग होंगे .

१४२-१४४
१४५-१४७
१४८-१५०

किन्तु यदि उनका भार अन्तिम पौण्ड तक लिया गया है तो वर्ग होंगे :

१४२ और १४५ से कम
१४५ और १४८ से कम
१४८ और १५१ से कम

Q. 3.4 What precautions would you keep in mind when classifying a continuous variable ?

वर्ग-विभाजन (classification) करते समय ध्यान में रखने योग्य बातें

उपर्युक्त विवेचन से पाठक इस भ्रम में पड़ सकता है कि आखिरकार वर्ग विस्तार लिखे किस प्रकार जायें ? वर्ग विस्तार कभी भी इस प्रकार न लिखे जायें जिस तरह (ब) में दिये गये हैं क्योंकि वर्गों की सीमाएं एक दूसरे को ढक लिया करती हैं।

यदि वेतन निकटतम रुपयो मे दिया गया है तो ऊपर के वर्ग विभाजन का सही रूप होगा :

रुपये
५०-९९
१००-१४९
१५०-१९९

किन्तु यदि वेतन रुपयो और पैसों मे दिया गया है तो वर्ग निम्न प्रकार लिखे जायें :

रुपये
५०·००-९९·९९
१००·००-१४९·
१५०·००-१९९·

कहने का तात्पर्य यह है कि वर्ग की दोनों
जायें। ऐसा करने से एक विशेष लाभ यह
कि मापन की शुद्धि किस सीमा
वर्गों के कुछ

	अवास्तविक सीमाओं वाले	वास्तविक सीमाओं वाले
	वर्ग	वर्ग
(क)	०-४	—'५ से ४'९९९
	५-९	४'५ से ९'९९९
	१०-१४	९'५ से १४'९९९
	× ×	× ×
(ख)	०-५	०-४'९९
	५-१०	५-९'९९
	१०-१५	१०-१४'९९
	× ×	× ×
(ग)	१२६-१३२	१२५'५-१३२'५
	११९-१२५	११८'५-१२५'५
	११२-११८	१११'५-११८'५

प्रसार क्षेत्र के वर्ग विभाजन करते समय दूसरी इस बात का विशेष ध्यान रखा जाय कि दो क्रमागत वर्ग कभी एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न न हो जायें जैसे कि नीचे वर्ग विभाजन से पता चलता है।

५० रु० से अधिक किन्तु १०० रु० से कम
१०० रु० से अधिक किन्तु १५० रु० से कम

Q. 3 5 Define the term 'Mid point of the class interval'. What will be the mid-point of the class interval 126-132

वर्ग का मध्यबिन्दु (midpoint of the class interval)

किसी वर्ग की उच्चतम एवं निम्नतम वास्तविक सीमाओं का ज्ञान होने पर उस वर्ग के मध्य बिन्दु की गणना आसानी से की जा सकती है। मान लीजिये हमको ०-४ वर्ग के मध्य बिन्दु को ज्ञात करना है तो इस वर्ग की निम्नतम सीमा —'५ होने के कारण मध्य बिन्दु होगा।

$$-\text{'५} + \frac{\text{वर्ग प्रसार}}{२}$$

$$= -\text{'५} + \frac{५}{२}$$

$$= -\text{'५} + \text{२'५}$$

$$= २$$

दूसरे शब्दों में, किसी वर्ग का मध्य बिन्दु = वर्ग की वास्तविक निम्नतम सीमा + (वर्ग प्रसार) का आधा।

उदाहरण—वर्ग १२६-१३२ का मध्य बिन्दु निकालिए।

क्रिया—वर्ग १२६-१३२ की वास्तविक निम्न सीमा है १२५'५ और प्रसार ७ है।

अत इस वर्ग का मध्यबिन्दु $= \text{१२५'५} + \frac{७}{२} = \text{१२५'५} + \text{३'५} = \text{१२९'०}$

यदि क्रमागत वर्ग हो जैसे कि

१२६-१३२
११९-१२५
११२-११८

तो किसी वर्ग के मध्य बिन्दु का मान उसकी वास्तविक उच्चतम और निम्नतम सीमाओं के योग का आधा होता है

जैसे कि १२६-१३२ का मध्य बिन्दु होगा $\frac{१२६+१३२}{२} = \frac{२५८}{२} = १२९$

Q. 3 6 Below are given the marks obtained by a class of 40 students in a spelling test. *Tabulate them in the form of a frequency distribution.*

35, 31, 37, 34, 39, 29, 36, 31, 34, 30,
33, 37, 32, 38, 36, 27, 33, 31, 34, 32,
34, 31, 32, 36, 29, 33, 35, 34, 33, 36,
33, 34, 35, 33, 30, 37, 31, 30, 33, 32

What will be the effect of incresing the class interval ?

आंकिक प्रदत्त का सारणीकरण (Tabulation of Data)

धारा ३.३ में किसी प्रसार क्षेत्र को वर्गों मे बाँट कर लिखने की विधियो का वर्णन किया गया था, इस धारा मे अव्यवस्थित अपक्व फलांक को व्यवस्थित रूप से तालिका बद्ध करने की सरलतम विधि का उल्लेख किया जायगा ।

मान लीजिये कि किसी कक्षा के ४० विद्यार्थियो को एक प्रामाणिक शब्द विन्यास (Spelling) परीक्षिका दी गई जिसमे कुल ५० कलमे (items) थीं । विद्यार्थियों को जो फलांक प्राप्त हुये वे नीचे दिये जाते हैं ।

तालिका ३ २ अ—४० विद्यार्थियो के अपक्व फलांक (raw scores)

३५, ३१, ३७, ३४, ३९, २९, ३६, ३१, ३४, ३०,
३३, ३७, ३२, ३८, ३६, २७, ३३, ३१, ३४, ३२,
३४, ३१, ३२, ३६, २९, ३३, ३५, ३४, ३३, ३६,
३३, ३४, ३५, ३३, ३०, ३७, ३१, ३० ३३, ३२.

इन अव्यवस्थित फलांको को देखकर कक्षा के विद्यार्थियो के अंग्रेजी भाषा के शब्द विन्यास विषयक ज्ञान के बारे मे पाठक कोई धारणा नही बना सकता किन्तु इन्ही प्राप्तांकों को यदि आरोही (ascending) या अवरोही (descending) क्रम से लिख दिया जाय तब वह प्रदत्त कक्षा के स्तर पर कुछ प्रकाश डाल सकता है । निम्न तालिका मे यही फलांक अवरोही क्रम से सजा दिये गये हैं ।

तालिका ३ २ ब

३९, ३८, ३७, ३७, ३७, ३६, ३६, ३६, ३६, ३५
३५, ३५, ३४, ३४, ३४, ३४, ३४, ३४, ३३, ३३
३३, ३३, ३३, ३३, ३३, ३२, ३२, ३२, ३१. ३१
३१, ३१, ३१, ३१, ३०, ३०, ३०, २९, २९, २७

किन्तु वह व्यवस्था जिसमे यह दिखाया जा सकता है कि कितने बार आवृत्ति हुई है अधिक उत्तम होती । तालिका ३ २ स मे इन्ही फलांकों को अवरोही क्रम से सजाया गया है किन्तु साथ ही उनको सारणीबद्ध भी कर दिया गया है तालिका ३ २ (अ) और (ब) में ये फलांक एक ढेर में पडे हुये थे किन्तु सारणी ३'२ (स) मे किसी विशेष क्रम से उनको वर्गों मे बाट दिया गया है । प्रत्येक वर्ग का विस्तार केवल एक अंक है । अधिकतम अंक ३९ और न्यूनतम अंक २७ होने के कारण अंकों का प्रसार क्षेत्र ३९.४९९—२६ ५=१३'९९९... अथवा लगभग १३ है क्योकि अंक ३९ की अधिकतम सीमा ३९'४९९···· और २७ की सीमा २६'५ है । (देखिये धारा ३ २) इस सारणी में प्रसार क्षेत्र १३ के १३ वर्ग बना दिये गये हैं किन्तु वास्तव मे कितने वर्ग बनाने चाहिये इसका उल्लेख धारा ३'७ मे किया जायगा ।

सारणी ३'२ अ के प्रथम स्तम्भ मे वर्गों को अवरोही क्रम से लिख दिया गया है । द्वितीय स्तम्भ में उनकी वास्तविक सीमायें दी गई हैं, तृतीय स्तम्भ मे किसी फलांक की जितनी बार आवृत्ति हुई है उस आवृत्ति का प्रदर्शन आवृत्ति चिह्नों (Tallies) से किया गया है। चौथे स्तम्भ मे उन आवृत्तियो की सख्या लिख दी गई है और अन्तिम स्तम्भ मे उन फलांकों को लिख दिया गया है जो उस वर्ग मे पडते हैं । सारणीकरण (Tabulation) क्रिया निम्न पदों मे की गई है :—

तालिका ३·२ म—आवृत्ति वितरण क्रिया का प्रदर्शन

<table>
<tr><th>फलांक SCORE</th><th>वर्गों की वास्तविक सीमायें</th><th>आवृत्ति चिन्ह (TALLIES)</th><th>आवृत्तियें</th><th>फलांक (RAW SCORES)</th></tr>
<tr><td>१</td><td>२</td><td>३</td><td>४</td><td>५</td></tr>
<tr><td>३६</td><td>३८·५—३६·४६</td><td>|</td><td>१</td><td>३६</td></tr>
<tr><td>३८</td><td>३७·५—३८·४६</td><td>|</td><td>१</td><td>३८</td></tr>
<tr><td>३७</td><td>३६·५—३७·४६</td><td>|||</td><td>३</td><td>३७,३७,३७</td></tr>
<tr><td>३६</td><td>३५·५—३६·४६</td><td>||||</td><td>४</td><td>३६,३६,३६,३६</td></tr>
<tr><td>३५</td><td>३४·५—३५·४६</td><td>|||</td><td>३</td><td>३५,३५,३५</td></tr>
<tr><td>३४</td><td>३३·५—३४·४६</td><td>|||| |</td><td>६</td><td>३४,३४,३४,३४,३४,३४</td></tr>
<tr><td>३३</td><td>३२·५—३३·४६</td><td>|||| ||</td><td>७</td><td>३३,३३ ३३,३३ ३३,३३ ३३</td></tr>
<tr><td>३२</td><td>३१·५—३२·४६</td><td>||||</td><td>४</td><td>३२,३२,३२,३२</td></tr>
<tr><td>३१</td><td>३०·५—३१·४६</td><td>||||</td><td>५</td><td>३१,३१,३१,३१,३१</td></tr>
<tr><td>३०</td><td>२६·५—३०·४६</td><td>|||</td><td>३</td><td>३०,३०,३०</td></tr>
<tr><td>२६</td><td>२८·५—२६·४६</td><td>||</td><td>२</td><td>२६,२६</td></tr>
<tr><td>२८</td><td>२७·५—२८·४६</td><td></td><td>X</td><td>X</td></tr>
<tr><td>२७</td><td>२६·५—२७·४६</td><td>|</td><td>१</td><td>२७</td></tr>
<tr><td>योग</td><td></td><td>४०</td><td>४०</td><td>४०</td></tr>
</table>

क्रिया के पद—(१) **वर्ग विस्तार के परिमाण का निर्णय**—यहां पर प्रत्येक अंक के लिये, एक-एक वर्ग निश्चित कर लिया गया है किन्तु किसी वर्ग का परिणाम कितना होना चाहिये इसकी व्याख्या धारा ३·७ में की जायगी।

(२) **अव्यवस्थित आंकिक प्रदत्त को प्रत्येक फलांक को किस वर्ग में डाला जाय** यह निश्चित करना। पहला फलांक ३५ है। यह पांचवें वर्ग (३४·५—३५·४६) में डाला जा सकता है अतः इसी वर्ग के सामने ३५ फलांक के लिए तीसरे स्तम्भ में एक आवृत्ति चिन्ह (/) और पांचवें स्तम्भ में उस फलांक को दर्ज किया जाता है साथ ही तालिका ३·२ अ के पहले फलांक ३५ को काट भी दिया जाता है। प्रत्येक फलांक के साथ यही क्रिया की जाती है। प्रत्येक वर्ग में जितने फलांक पड़ते हैं उनकी सख्या गिन ली जाती है और आवृत्ति स्तम्भ में उस सख्या को टीप दिया जाता है। सम्पूर्ण अव्यवस्थित आंकिक प्रदत्त के प्रत्येक अंक को सम्बन्धित वर्गों में विभाजित कर जिस तालिका का निर्माण किया जाता है उसे **आवृत्ति वितरण तालिका** (Frequency Table) कहते हैं क्योंकि यह तालिका आवृत्तियों के वितरण का स्वरूप निश्चित करती है। आवृत्ति चिन्हों [illegible] दिया जाता है। [illegible] है वैसे ही [illegible] र कर दिया [illegible] र) प्रस्तुत हो [illegible] है आवृत्ति-चिन्हों को गिनने में आसानी हो जाती है। यदि उन्हें अलग-अलग अंकित किया

[ज]ाता तो गिनने में समय भी अधिक लगता है और उलझन भी महसूस होती है। संगठनात्मक [इ]काइयों का प्रत्यक्षीकरण अवयववादियो (gestalists) के मतानुसार सदैव सुविधाजनक हुआ करता है।

सारणी बनाने मे कोई गलती न हो जाय इसके लिए निम्न कार्य अवश्य किये जायें.—

(१) जिस अंक के लिए आवृत्ति चिन्ह लगा दिया गया है उसको तालिका से काट दिया जाय और साथ ही अंतिम स्तम्भ मे दर्ज कर दिया जाय।

(२) अन्तिम स्तम्भ मे दर्ज किये गये फलाको को check कर लिया जाय।

(३) संकेत चिन्हो, आवृत्तियो, और पाचवें स्तम्भ में अंकित फलाको के योग को check कर लिया जाय।

सारणीकरण की उपयोगिता

आंकिक प्रदत्त को सारणी के रूप मे व्यवस्थित करके अपवत्र फलाको के विषय मे काफी सूचनायें उपलब्ध हो जाती हैं जो अन्यथा नही होती। सारणी ३·२ को देखते ही पता चलता है कि ३३ फलाक पाने वाले विद्यार्थियो की सख्या अधिक से अधिक है, २७-२८ या ३८-३६ फलाक पाने वाले विद्यार्थी बहुत कम हैं और ३१ से ३५ तक अंक पाने वाले विद्यार्थी आधे से भी अधिक हैं। फलाकों का वितरण इस प्रसार क्षेत्र मे काफी समान है।

सारणी ३ २ ब मे प्रत्येक फलाक के लिए एक-एक वर्ग बनाया गया है। ऐसा करने मे कठिनाई उस समय आ सकती है जब फलाको का प्रसार क्षेत्र अधिक लम्बा होता है। यदि अपवत्र आंकिक प्रदत्त में कम से कम फलाक ० और अधिक से अधिक फलाक ५० है तो ५० वर्ग बनाने पड़ेंगे और सारणी आवश्यकता से अधिक लम्बी हो जायगी। अतएव सारणी को छोटा करने के लिए प्रत्येक वर्ग का विस्तार बढ़ाना पडेगा। सारणी ३ २ (अ) मे प्रत्येक वर्ग का विस्तार एक अंक ही था। यदि प्रत्येक वर्ग मे दो-दो या पाच-पाच फलाक रखने पर वर्ग विस्तार के बढ़ाने के

सारणी ३·२ स-दो-दो फलाकों को एक वर्ग मे रखकर आवृत्तियो का वितरण

वर्ग विस्तार	आवृत्ति सख्या
३८-४०	१
३७-३८	४
३५-३६	७
३३-३४	१३
३१-३२	६
२६-३०	५
२७-२८	१

सारणी ३ २ द-पाच-पाच फलाकों को एक ही वर्ग मे रखकर आवृत्तियों का वितरण

वर्ग विस्तार	आवृत्ति सख्या
३६-४०	६
३१-३५	२५
२६-३०	६

साथ-साथ वर्गों की सख्या कम होती जाती है किन्तु एक वर्ग से दूसरे वर्ग की आवृत्तियों मे उतार-चढ़ाव अधिक अव्यवस्थित नहीं रहता। सारणी ३·२ (ब) मे क्रमागत वर्गों की आवृत्तियाँ घटती बढ़ती रहती है किन्तु ३·२ (स) और (द) मे पहले आवृत्तियाँ बढ़ती है फिर घटती हैं। वर्ग विस्तार के परिमाण के बढ़ने के साथ-साथ फलांकों की identity लुप्त हो जाया करती है अतएव यह जानना आवश्यक है कि किसी सारणी मे कम से कम कितने वर्ग रखे जा सकते हैं।

Q 3.7. What should be the size of a class interval? Explain the various viewpoints in determining the size of the class interval for a frequency distribution

वर्ग विस्तार का परिमाण (magnitude of c[illegible]

किसी सारणी [illegible]

निर्धारित नहीं किया

एक प्राप्तांक या निरीक्षण (observations) ही रखे जा सकते हैं और यदि वर्गों की संख्या न्यून-तम रखी जाय तो वर्ग विस्तार के अधिक लम्बा हो जाने के कारण उसमें पड़ी हुई आवृत्तियों की संख्या में अधिक हो जायेगी जैसा कि तालिका ३·२ व को देखने से पता चल सकता है। २५ विद्यार्थियों के अंक ३१ और ३५ के बीच में हैं और कितने-कितने हैं यह सूचना इस तालिका से नहीं मिल सकती। अतएव संख्या शास्त्रज्ञों का मत है कि वर्गों की संख्या १० से कम न होनी चाहिए और १५ से अधिक भी नहीं।[1] २५ विद्यार्थियों के अंक ३१ और ३५ के बीच कुछ भी हो सकते हैं और यदि उनके अपरिष्कृत प्राप्तांक (raw scores) अज्ञात हैं तो यह मानना ही पड़ता कि पच्चीसों विद्यार्थियों में से प्रत्येक के प्राप्तांक ३१-३५ वर्ग विस्तार के मध्यांक ३३ के बराबर हैं। ऐसा मानने पर गणना कार्य में त्रुटि आने की विशेष सम्भावना है। यदि तालिका ३·२ अ को ध्यानपूर्वक देखें तो पता चलेगा कि केवल ७ विद्यार्थियों के ही प्राप्तांक ३३ हैं, शेष १८ विद्यार्थियों के प्राप्तांक ३३ के दोनों ओर फैले हुए हैं। यदि ३३ से कम प्राप्तांक वाले विद्यार्थियों की संख्या और ३३ से अधिक प्राप्तांक पाने वाले विद्यार्थियों की संख्या ९, ९ है तब भी ३१ अंक पाने वाले ५ और ३५ अंक पाने वाले केवल ३ ही हैं साथ ही ३२ अंक पाने वाले ४ और ३४ अंक पाने वाले ६ हैं। ३३ प्राप्तांक के दोनों ओर आवृत्तियों का यह अनियमित वितरण वर्गीकरण की अशुद्धियाँ (errors of grouping) पैदा कर देता है। कहने का तात्पर्य यह है कि वर्गों की संख्या में इतनी कमी न कर दी जाय कि वर्गीकरण की अशुद्धियाँ बढ़ जायें। वर्गीकरण की अशुद्धियाँ [illegible] प्रत्येक वर्ग में आवृत्तियों की संख्या समान रूप से [illegible] है। किन्तु प्रायः ऐसा नहीं। प्रत्येक वर्ग में आवृत्तियाँ [illegible] धनात्मक और ऋणात्मक त्रुटियाँ (positive and negative errors) एक दूसरे के प्रभाव को कम कर देती हैं।

वितरण तालिका के वर्ग विस्तार का परिमाण ज्ञात करने के लिए कुछ विद्वान यह मान लेते हैं कि तालिका में वर्गों की निश्चित संख्या (साधारणतः १० या १५) रखनी है। अत: वर्ग विस्तार का परिमाण प्रसार क्षेत्र में उस संख्या का (१० या १५ का) भाग देने से प्राप्त हो सकता है।

$$\text{वर्ग विस्तार} = \frac{\text{फलांकों का प्रसार-क्षेत्र}}{\text{वांछित वर्गों की संख्या}}$$

उदाहरण के लिए यदि तालिका ३·२ के प्राप्तांकों को वर्गों का विस्तार निश्चित करना है तो प्रसार क्षेत्र १३ में अपेक्षित संख्या (५ या १०) का भाग देना होगा। किन्तु किसी फलांक श्रेणी में वर्ग विस्तार का परिमाण प्रसार क्षेत्र पर भी निर्भर नहीं रहता। यह तो इस बात पर भी निर्भर रहता है कि उसमें फलांकों (आवृत्तियों) की संख्या कितनी है और वे फलांक किस सीमा तक उस प्रसार क्षेत्र में समान रूप से प्रसारित हैं। आवृत्तियों की संख्या अधिक और उनका प्रसार क्षेत्र समनित रूप से फैला हुआ होने पर वर्गों की संख्या १० या १५ से ही अधिक बड़ी मानी जा सकती है। इस सिद्धान्त से अधिक विश्वस्त और वैज्ञानिक सिद्धान्त का उल्लेख वर्ग विस्तार के परिमाण के विषय में श्रद्धेय एच. ए. स्टर्जेस (H. A. Sturges) ने किया है। उनके मतानुसार

$$\text{वर्ग विस्तार} = \frac{\text{प्रसार क्षेत्र}}{१ + ३\cdot३२२ \text{ लघुगणक आवृत्ति संख्या}}$$

इस सूत्र के आधार पर वर्ग विस्तार का परिमाण ज्ञात करने के लिये उदाहरण ३·१ प्रस्तुत किया जाता है

उदाहरण ३·१. एक प्राइमरी विद्यालय की तीन कक्षाओं ३, ४, और ५ के ८५ विद्यार्थियों को भाटिया महोदय की बुद्धि परीक्षा माला दी गई। इन बच्चों को इस परीक्षा-माला में जो फलांक प्राप्त हुए वे निम्नलिखित हैं —

1. "A number of classes less than 10 leads to very appreciable inaccuracy and a number over 30 makes a somewhat unweidly table". *Yule and Kendal* Introduction to the Theory of Statistics-Charles Crefuri & Co, 1959, pp, 85.

३९, ३५, ५९, ६४, २० १५, ५०, ४५, ३०, ३६, १९, ५१, ४२, ३१, ३७
२२, ५२, ४३, ३२, ३८, २४, ५४, ३४, ३५, ३४, २४, ४५, ४०, २६, ४९
४१, ३०, २५, ४८, ५१, ३२, २६, ४९, ४३, ३२, २७, ४५, ४०, ३१, २९
४६, ४४, ३०, ३६, ३४, २६, ४७, ४१, ३७, २५, ४८, ४०, ३८, ४९, ४२
३८, ३०, ३१, २८, ४७, ४०, ३९, २९, ४६, ४१, ३५, २५, ४५, ४३, २८
३५, ३५, ३९, ३५, ३६, ३९, ३७, ३८, ३५, ३९,

आवृत्ति वितरण तालिका बनाइये ।

इन फलाको मे अधिकतम फलांक ६४ और न्यूनतम फलाक १५ है अत फलाको का प्रसार क्षेत्र ६४·५९—१४ ५=४९·९९=५० है ; आवृत्ति सख्या ८५ है अत स्टर्जेज (Sturges) के सूत्र के अनुसार

$$\text{वर्ग विस्तार का परिमाण} = \frac{\text{प्रसार क्षेत्र}}{१+३\ ३२२\ \text{लघुगणक आवृत्ति सख्या}}$$

$$= \frac{५०}{१+३\ ३२२ \times १{\cdot}९२९४}$$

$$= ७ \text{ लगभग}$$

७ का वर्ग विस्तार मानकर अवरोही क्रम मे पहला वर्ग (class) ५८-६४ हो सकता है क्योकि ६४ अधिकतम फलाक है किन्तु सदैव इसका अर्थ यह न निकाला जाय कि अधिकतम फलाक को ही पहले वर्ग की अधिकतम सीमा मानी जानी चाहिये । यह सीमा ६५ भी रखी जा सकती थी उस दशा मे पहला वर्ग विस्तार (class interval) होता ५९-६५ । अन्य वर्ग विस्तार ७-७ फलाक गिराकर तैयार किये जा सकते हैं । यदि ५८-६४ को पहला वर्ग मानें तो अन्य वर्ग निम्न सारणी मे अकित जैसे होगे । वर्ग ५८-६४ की वास्तविक सीमायें ५७·५ से ६४ ४ ही मानी जायेंगी जैसा कि धारा ३ २ मे बताया जा चुका है । समीकरण क्रिया के अन्य पद धारा ३·६ की तरह ही होंगे ।

आरोही क्रम मे सबसे पहला वर्ग विस्तार ९-१५ माना गया है किन्तु यदि पहला वर्ग १२ १८ लेते तो पहला अंक १५ इस वर्ग के मध्य मे पड़ जाता और जहाँ तक इस वर्ग का सम्बन्ध है यह फलाक इस वर्ग समान रूप से वितरित मान लिया जाता । किन्तु व्यवहार मे ऐसे वर्ग बनाना अत्यन्त कठिन हो जायगा जिनमे फलाकों का वितरण पूर्णरूपेण सम हो । सांख्यिकीय विधियों की यह सबसे बड़ी परिसीमा (limitation) मानी जा सकती है ।

सारणी ३·३—८५ विद्यार्थियो के भाटिया महोदय की बुद्धि परीक्षा माला मे प्राप्त फलाको का वितरण

फलांक	वर्गों की वास्तविक सीमायें	आवृत्ति सख्या
५८-६४	५७·५-६४·४	२
५१-५७	५०·५-५७·४	४
४४-५०	४३·५-५०·४	१४
३७-४३	३६·५-४३ ४	२१
३०-३६	२९·५-३६·४	२५
२३-२९	२२ ५-२९·४	१२
१६-२२	१५·५-२२·४	६
९-१५	८·५-१५·४	१
योग		८५

Q. 38. Do all the frequency distribution tables contain the class intervals of the same size ?

क्या वर्ग विस्तार सब वितरण तालिकाओं में समान रखे जाते हैं ?

अब तक जितने भी वर्गीकरण किये गये हैं उन सबमें वर्गों के विस्तार समान रखे गये हैं (देखिये सारणी ३ २ अ, ब, स, और द तथा ३ ३) इसका एकमात्र कारण यह है कि ऐसा करने से भिन्न-भिन्न वर्गों में पड़ी हुई आवृत्तियों की संख्या की तुलना की जा सकती है। कभी-कभी इस नियम का उल्लंघन किया जाता है। इसके दो कारण हैं—एक तो यह कि इस प्रकार के आंकड़ों से [illegible] जैसा कि कुछ राजकीय आंकड़ों में होता है। दूसरे [illegible] की आवश्यकता महसूस होती है। वितरण [illegible] ५ में दूसरे कारण से वर्गों के विस्तार भिन्न कर दिये गये हैं। यदि किसी महाविद्यालय (college) के अध्यापकों के वेतन का वितरण तैयार किया जाय तो यदि वर्ग में एक या दो ही आवृत्तियाँ पड़ती हैं उन आवृत्तियों की identity का पता स्वतः चल सकता है। चतुर पाठक यह शीघ्र ही जान लेगा कि कौन-कौन ऐसे व्यक्ति हैं जिनकी मासिक आय इतनी है जितनी तालिका में दिखाई गई है। इसलिये संख्या शास्त्रज्ञ खुले वर्ग विस्तार (open class intervals) बना दिया करते हैं, जैसे

(i) १००० रु० और ऊपर
(ii) ७० बुद्धि अंक से कम

तालिका ३ ४

मासिक आय	आवृत्तियाँ
१००० से ऊपर	१
५००-१०००	३
३००-५००	१५
१५०-३००	३७
१००-१५०	४६
५०-१००	१७
०-५०	२

तालिका ३ ५

आयु (वर्षों में)	स्कार्लेट ज्वर से पीड़ित व्यक्तियों की संख्या
०—	१
१—	७
२—	६
३—	७
४—	७
५—	२१
१०—	७
१५—	३
२०—	३
२५—	२
३०—	१
३५—	१
४० और अधिक	१

(स्रोत—इंग्लैण्ड और वेल्स के रजिस्ट्रार जनरल के सांख्यिकीय रिव्यू से)

Q 39. What do you mean by 'cross classification of two variables'. How will you show

(a) scores are an intelligence test
(b) Age
Of class of 85 boys in the same distribution table ?

वर्ग विभाजक तालिका (Classifier)

अधिक से अधिक १०० सदस्यो की सैम्पिल का वर्गीकरण करने के लिये तथा प्रत्येक सदस्य की अनुपस्थिति मालूम करने के लिये समस्त प्रदत्त को एक ऐसी तालिका में कोषबद्ध करते हैं जिसकी प्रथम क्षैतिज पंक्ति मे इकाई के अंक और प्रथम ऊर्ध्वधर स्तम्भ में दहाई या दहाई और सैकडे के अंक दर्ज करा दिये जाते हैं। नीचे की तालिका में उदाहरण ३'१ की आंकिक सामग्री प्रस्तुत की गई है। मान लीजिये अंक ६४ को कोषबद्ध करना है तो दहाई ६ और इकाई ४ वाले कोष मे एक आवृत्ति चिन्ह लगाना होगा। शेष आवृत्ति चिन्ह(Tallies)इसी तरह लगाये जा सकते हैं। इस तालिका से वह अंक भी ज्ञात हो सकता है जो वितरण के बीचो-बीच पडता है। इसे मध्यांक मान कहते हैं। इस प्रकार के वितरण से प्रत्येक अंक की अनुस्थिति भी ज्ञात की जा सकती है। अनुपस्थितियाँ विलोम क्रम मे कोषो मे लिख दी गई हैं। कुल अंक ८५ है बीचो-बीच का अंक ४३ वाँ होगा। ४३ वीं अनुपस्थिति फलांक ३७ की है। अतः ३७ मध्यांक मान कहा जा सकता है।

<table>
<tr><td></td><td colspan="10">इकाई</td><td></td><td></td></tr>
<tr><td>दहाई</td><td>०</td><td>१</td><td>२</td><td>३</td><td>४</td><td>५</td><td>६</td><td>७</td><td>८</td><td>९</td><td>योग</td><td>वर्ग</td></tr>
<tr><td>०</td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td></tr>
<tr><td>१</td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td>|
२</td><td></td><td></td><td></td><td>|
१</td><td>२</td><td>१०-१९</td></tr>
<tr><td>२</td><td>|
३</td><td></td><td>|
४</td><td></td><td>||
५ ५</td><td>|||
८</td><td>|||
११</td><td>|
१२</td><td>|
१४</td><td>||
१५ ५</td><td>१४</td><td>२०-२९</td></tr>
<tr><td>३</td><td>||||
१८ ५</td><td>|||
२२</td><td>|||
२५</td><td></td><td>||||
२८ ५</td><td>卌|
३४ ५</td><td>卌
४१</td><td>|
४४</td><td>|||
४६</td><td>卌
५०</td><td>३५</td><td>३०-३९</td></tr>
<tr><td>४</td><td>||||
५४ ५</td><td>|||
५८</td><td>||
६० ५</td><td>|||
६३</td><td>|
६५</td><td>||||
६७ ५</td><td>||
७० ५</td><td>||
७२ ५</td><td>||
७४ ५</td><td>|||
७७</td><td>२६</td><td>४०-४९</td></tr>
<tr><td>५</td><td>|
७९</td><td>||
८० ५</td><td>|
८२</td><td></td><td>|
८३</td><td></td><td></td><td></td><td></td><td>|
८४</td><td>६</td><td>५०-५९</td></tr>
<tr><td>६</td><td></td><td></td><td></td><td></td><td>|
८५</td><td></td><td></td><td></td><td></td><td></td><td>१</td><td>६०-६९</td></tr>
<tr><td>योग</td><td>१०</td><td>८</td><td>७</td><td>३</td><td>९</td><td>१४</td><td>१०</td><td>४</td><td>६</td><td>१२</td><td>८५</td><td></td></tr>
</table>

३'९ दो परिवर्त्य राशियो का संकर विभाजन (Cross classification of two variables)

एक ही परिवर्त्य राशि (variable) जैसे किसी ...

प्रदर्शित करते हैं इसकी व्याख्या धारा ३'१ से लेकर ३'८ तक की जा चुकी है। किन्तु कभी-कभी एक ही व्यक्ति या पदार्थ के विषय मे निरीक्षक (चाहे वह एक मनोवैज्ञानिक हो या एक शिक्षा-शास्त्री) दो या दो से अधिक गुणो के विषय मे आंकिक प्रदत्त इकट्ठे कर लिया करता है। उदाहरण के लिये जिस प्रकार वह किसी विद्यालय कक्षा के ८५ विद्यार्थियो के बौद्धिक स्तर के विषय मे जानकारी प्राप्त करने के लिए कोई प्रामाणिक बुद्धि परीक्षा देकर ८५ भिन्न-भिन्न फलांक प्राप्त कर सकता है उसी प्रकार वह उनकी आयु के विषय मे विद्यालय के आलेख-पत्रो से जानकारी हासिल कर सकता है। इस प्रकार प्रत्येक बालक के विषय मे दो सूचनायें मिल सकती हैं (१) प्रत्येक बालक की वास्तविक आयु (chronological age) क्या है ? (२) प्रत्येक बालक का बुद्धि परीक्षा मे प्राप्त फलांक कितना है ? अब प्रश्न यह उठ सकता है कि इन दो राशियों मे (आयु और बुद्धि) मे क्या सम्बन्ध है ? क्या ऊँची बुद्धि वाले बालकों की आयु भी ऊँची ही होती है या नही ? यह जानकारी तभी मिल सकती है जब ऊँची आयु और ऊँची बुद्धि वाले बालकों की आवृत्ति संख्या ज्ञात हो सके। यदि आयु के अनुसार इन सब बालको को वर्गों मे बांटा जाय और बुद्धि के अनुसार ८ वर्गों मे तो आयु और बुद्धि के अनुसार उन्हे ७ × ८ वर्गों मे बांटा जा सकेगा। ये ५६ वर्ग या कोष तालिका ३'६ मे गहरी रेखाओं से निर्मित चौखटे में बन्द कर दिये गये हैं।

इन ४६ कोष्ठों में एक कोष्ठ की तालिका के आकार-पूर्ति करने से है जिनमें निम्नलिखित है।

	१२—१३
५८—६४	

जिन-जिन बालकों की आयु १२ और १३ वर्ष के बीच है तथा जिनके प्राप्तांक ५८ से ६४ के बीच हैं वे सब इस कोष्ठ में डाले जायेंगे। ऐसे प्रत्येक बालक के लिये उसी प्रकार आवृत्ति चिह्न बनाया जायगा जिस प्रकार का चिह्न तालिका ३·२ और ३·३ में बनाया गया था।

उदाहरण ३·२—जिन ८५ विद्यार्थियों के बुद्धि सम्बन्धी प्राप्तांक उदाहरण ३·१ में दिये गये थे उन्हीं की आयु भी नीचे दी जाती है। आयु एवं बुद्धि का सह-सम्बन्ध प्रदर्शित करने के लिये वितरण तालिका बनाइए।

	प्राप्तांक	आयु		प्राप्तांक	आयु		प्राप्तांक	आयु
१	१५	६-७	३०			५८		
२	२४	६-३	३१	२०	८-५	५९	२६	९-३
३	३५	९-१	३२	२६	९-२	६०	३५	१०-२
४	३५	९-२	३३	३२	९-६	६१	४३	८-३
५	३५	९-२	३४	३६	९-१	६२	३८	८-४
६	३०	६-३	३५	३५	९-८	६३	४०	९-३
७	२२	९-३	३६	४९	१०-८	६४	४१	९-४
८	५९	११-२	३७	४५	१०-५	६५	३४	१०-४
९	६४	१२-३	३८	४६	१०-३	६६	४३	९-५
१०	५१	१०-६				६७	३९	९-३
११	२९	७-४	३९	१९	९-२	६८	३९	१०-४
१२	३६	९-३	४०	२५	१०-३	६९	३०	१०-४
१३	५२	११-३	४१	३४	१०-८	७०	३७	१०-५
१४	५४	११-७	४२	४४	१०-२	७१	३८	१०-८
१५	२७	८-५	४३	४७	१०-१	७२	३९	१०-९
१६	३१	९-४	४४	४८	११-२	७३	३२	१०-६
१७	५१	१२-३	४५	४९	११-३	७४	४३	१०-११
१८	५०	९-२	४६	४७	११-४	७५	४०	१०-१०
१९	४५	९-३	४७	४६	१२-७	७६	३२	१०-७
२०	४५	९-५	४८	४५	११-५	७७	४१	१०-३
२१	४९	१०-३	४९	३९	७-७	७८	३७	१०-४
२२	४८	१०-४	५०	४२	९-६	७९	४०	१०-५
२३	२६	९-४	५१	३७	९-७	८०	२८	१०-३
२४	३१	१०-८	५२	२५	१०-२	८१	३१	१२-२
२५	४२	१०-१	५३	२४	१०-१	८२	२५	११-२
२६	३०	१०-९	५४	३४	११-३	८३	३५	८-२
२७	३६	१०-२	५५	३४	११-२	८४	३६	९-२
२८	३८	११-२	५६	३०	११-३	८५	३५	१०-३
२९	२९	९-५	५७	४०	११-२			

आयु का प्रसार क्षेत्र = ६ वर्ष ३ मास से १२ वर्ष ३ मास
= ७ वर्ष

अत एक-एक वर्ष का विस्तार मानकर आयु को निम्न वर्गों में बाँटा जा सकता है। ६—, ७—, ८—, ९—, १०—, ११—, १२—ये वर्ग सह-सम्बन्ध प्रदर्शित करने वाली तालिका के ऊपरी चौखटे पर एक पंक्ति (raw) में लिख दिये गए हैं।

फलांकों का प्रसार क्षेत्र ५० है अतः स्टर्जेज के नियम के अनुसार उनके वर्ग तालिका ३·३ की तरह ही किये गए हैं। ये वर्ग तालिका के बायीं ओर अवरोही क्रम में प्रथम स्तम्भ में लिखा दिए गये हैं। यहाँ यह ध्यान रखने की बात है कि प्रथम पंक्ति में आयु के वर्गों को आरोही क्रम में ही लिखा गया है। यह अन्तर क्यों रखा गया है इसका उत्तर धारा में दिया जायगा।

फलांकों का पहला युग्म (१५, ६—७) उस कोष्ठ में पड़ सकता है जिसके dimentions ९—१५ और ६— हैं। अतः इस युग्म के लिये तालिका ३·६ में एक आवृत्ति चिन्ह (/) अंकित कर दिया गया है। इसी विधि से अन्य आवृत्ति चिन्हों को अंकित किया गया है। इन आवृत्ति चिन्हों को गिन कर जो तालिका बनेगी उसका स्वरूप नीचे दिया जाता है।

तालिका ३·६—आयु और बुद्धि का सह-सम्बन्ध प्रदर्शन हेतु
आयु X—परिवर्त्य राशि

आयु X - परिवर्त्य राशि

बुद्धि Y - परिवर्त्य राशि

आयु वर्षों में	६-	७-	८-	९	१०	११	१२-१३	योग
फलांक ५८—६४						|	|	२
५१—५७					|	||	|	४
४४—५०				|||	卌 ||	||||	|	१५
३७—४३			||	卌	卌卌||	|||		२३
३०—३६				卌卌||	卌卌	||	|	२५
२३—२९	|	|	|	卌	|||	|		१२
१६—२२			|	||				३
९—१५	|							१
योग	२	१	४	२७	३३	१३	४	८५

तालिका ३·६ (अ)

आयु

बुद्धि

	६—	७—	८—	९—	१०—	११—	१२—	योग
५८—						१	१	२
५१—					१	२	१	४
४४—				३	७	४	१	१५
३७—		१	२	५	१२	३		२३
३०—				१२	१०	२	१	२५
२३—	१	१	१	५	३	१		१२
१६—			१	२				३
९—	१							१
	२	२	४	२७	३३	१३	४	८५

दो परिवर्त्य राशियों के संकर विभाजन (cross classification) के फलस्वरूप जो तालिका प्राप्त होती है उसे विक्षेप तालिका (scatter graph) कहते हैं क्योंकि वह दो राशियों के माप-युग्मों के फैलाव या अपकीर्णता (scatter) का बोध कराती है। आवृत्ति वितरण तालिका और विक्षेप तालिका में अन्तर इतना है कि आवृत्ति वितरण तालिका केवल एक परिवर्त्य राशि के वितरण का स्वरूप निश्चित करती है और विक्षेप तालिका दो सह-सम्बन्धित राशियों के वितरण का। अध्याय ८ में ऐसी कई तालिकाओं का उल्लेख किया जायगा।

Q. 3.10 A teacher is interested in finding the relationship between neuroticism in pupils and their socio-economic status. How will you classify the following data obtained by him—

upper class neurotic 2
Total neurotic 84
Totel upper class 284
Total number of pupils 3042

विशेषकों के अनुसार वर्ग विभाजन (classification according to attributes)

कभी कभी किसी वैज्ञानिक अथवा शिक्षक को ऐसी आंकिक सामग्री का सामना करना पडता है जिसको परिमाण के अनुसार भिन्न-भिन्न वर्गों मे नही बांटा जा सकता। उदाहरण के लिए अपने विद्यालय के कितने विद्यार्थी किस आर्थिक व सामाजिक स्तर के हैं। इसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए वह उन्हें तीन वर्गों मे बांटा जा सकता है।

उच्चवर्ग
मध्यवर्ग
निम्नवर्ग

किन्तु यदि वह यह भी जानना चाहे कि इन विद्यार्थियो मे कितने स्नायुरोगी (neurotic) और कितने स्वस्थ मन वाले है तब उसे अपनी विद्यार्थी जनसख्या (population) को इस व्यक्तित्व के गुण के अनुसार दो-दो वर्गों मे बांटना होगा। जिस प्रकार धारा ३'६ मे दो राशियों के बीच सह सम्बन्ध निकालने के लिए सह सम्बन्ध तालिका तैयार की गई थी, उसी प्रकार दो विशेषको (attributes) के बीच साहचर्य देखने के लिए जो तालिका बनाई जाती है उसे साहचर्य तालिका (Association Table) या सयोग तालिका (Contingency table) कहते हैं। यदि एक विशेषक के अनुसार ३ वर्ग और दूसरी के अनुसार २ वर्ग बनाये जा सकें तो दोनों विशेषकों को ध्यान मे रखकर ३ × २ वर्ग या कोषो का निर्माण किया जा सकता है। सयोग तालिका का रूप निम्न तरह का होगा।

सामाजिक स्तर

	उच्चवर्ग	मध्यवर्ग	निम्नवर्ग	योग
स्नायुरोगी				
स्वस्थ मन				
योग				

प्रत्येक वर्ग के कितने बालक स्नायु रोगी और कितने स्वस्थ मन वाले हैं यह इस तालिका से मालूम हो सकता है। समाज मनोविज्ञान का ज्ञाता अपने जनपद की जनसख्या को पुरुष और स्त्री दो वर्गों मे बांट सकता है, प्रत्येक लिंग के व्यक्तियों को पुनः शिक्षित और अशिक्षित दो उपवर्गों मे बांटा जा सकता है, शिक्षित पुरुषों, अशिक्षित पुरुषों, शिक्षित स्त्रियां और अशिक्षित स्त्रियों को विवाहित और अविवाहित दो भागों मे बांट सकता है। इस प्रकार वह तीन विशेषकों (attributes) लिंग, शिक्षा और वैवाहिक स्थिति के अनुसार जन समुदाय का वर्गीकरण कर सकता है। किन्तु इस प्रकार का वर्गीकरण प्राय: अनिश्चित और संदिग्ध हुआ करता है। यद्यपि लिंग के अनुसार व्यक्तियों को दो निश्चित वर्गों मे बांटा जा सकता है किन्तु किस पुरुष को शिक्षित माना जाय और किसको अशिक्षित, किसको स्नायु रोगी माना जाय और

किसको स्वस्थ मन वाला निश्चितपूर्वक नही बताया जा सकता। अतः विशेषताओं के इस वर्गीकरण की अनिश्चितताओं को ध्यान में रखकर वर्गीकरण किया जाता है।

उदाहरण ३·३ किसी प्रदेश के समस्त विद्यालयो के ३,०४,२ बालकों को दो विशेषताओं के अनुसार अन्यापन और आर्थिक स्तर के अनुसार बाँटिये यदि अन्धे ८४, धनी २८२ और निर्धन अन्धे २ हैं।

दोनो विशेषताओं के २×२ वर्ग या कोष बनाये जा सकते हैं। प्रदत्त सामग्री घेरो मे बन्द कर दी गई है।

आर्थिक स्तर		अन्धापन	योग
	दोष युक्त दृष्टि	स्वस्थ दृष्टि	
धनी	(२)	(२८२)	२८४
निर्धन	८२	२६७६	२७५८
योग	(८४)	२९५८	(३०४२)

दोष युक्त दृष्टि वाले कुल बालक ८४ हैं और दोष युक्त दृष्टि वाले धनी बालक केवल २ हैं अत दोषयुक्त दृष्टि वाले निधन व्यक्ति ८२ होंगे। ३०४२ बालकों मे से ८४ बालक दोष युक्ति दृष्टि के है अत. स्वस्थ दृष्टि वाले ३०४२—८४=२९५८ बालक होंगे। २९५८ स्वस्थ दृष्टि के बालको मे २८२ धनी हैं अतः निर्धनो मे स्वस्थ दृष्टि वाले २९५८—२८२= २६७६ होंगे।

सक्षेप में

(१) वह आंकिक प्रदत्त, जिसमे किसी व्यक्ति समूह के विषय मे एक गुण सम्बन्धी सख्यात्मक मापें दी गई हैं, एक वितरण तालिका मे सजाई जा सकती हैं। इस तालिका को वितरण (frequency distribution table) कहते हैं।

(२) वितरण तालिका के वर्गों के मध्य बिन्दुओं की गणना निम्न सूत्र द्वारा की जा सकती है :—

$$\text{वर्ग का मध्य बिन्दु} = \text{वर्ग की निम्नतम सीमा} + \frac{\text{प्रसार क्षेत्र}}{२}$$

(३) वर्ग विस्तार का परिमाण निम्न सूत्र से निकाला जा सकता है।

$$\text{वर्ग विस्तार} = \frac{\text{प्रसार क्षेत्र}}{१ + ३\cdot२२२ \text{ लघुगणक भावृत्ति सख्या}}$$

(४) यदि किसी व्यक्ति समुदाय के विषय मे दो गुणों, जैसे कद और भार के विषय मे मापें दी जायें तो उनको एक तालिका मे सजाया जा सकता है, जिसे सह सम्बन्ध तालिका (correlation table) या विशेष तालिका कहते हैं।

(५) विशेषताओं (attributes) का वर्ग विभाजन सयोग तालिका (contingency table) द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।

अभ्यासार्थ प्रश्नावली

३ १. मनोभौतिक विज्ञान के एक प्रयोग मे जो गाल्टन बार पर किया गया था एक प्रयोज्य (*subject*) ने २०" की निश्चित दूरी के तुल्य ४० प्रयासों मे जो दूरियाँ

अध्याय ४

आंकिक सामग्री का लेखाचित्रण

(Graphical Representation)

Q. 41 Explain the usefulness of Tabulation for statistical analysis.

४१ आंकिक सामग्री को प्रदर्शित करने की विधियाँ—आंकिक सामग्री का विश्लेषण तथा व्याख्या तभी सम्भव है जब उस सामग्री का वर्गीकरण (classification) और सारणीकरण (Tabulation) किया जा सके। लेकिन यदि उस सामग्री को लेखाचित्रीय विधि से दिखा सकें तो यह विश्लेषण अधिक सुविधाजनक हो सकता है। लेखाचित्रीय विधि से प्रदर्शन करने से हमारा आशय है रेखाचित्रों, चार्टों और अन्य आकृतियों द्वारा आंकिक प्रदत्त को दिखाना। किसी बात को कहने अथवा प्रस्तुत करने की निम्नांकित तीन विधियाँ हैं—

(i) विवेचनात्मक प्रदर्शन (Text Presentation)
(ii) सारणीकरण (Tabulation Presentation)
(iii) लेखाचित्रण (Graphical Presentation)

विवेचनात्मक प्रदर्शन साधारण व्यक्तियों के लिये कठिन होता है। जिस आंकिक प्रदत्त को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है उसका आशय आसानी से समझ में नहीं आ सकता। नीचे एक उदाहरण दिया जाता है इस प्रदर्शन का—

"किसी परीक्षा में एक प्रश्न अनिवार्य था। १०० छात्रों में से ३० छात्र इस प्रश्न को हल ही नहीं कर सके। जिन बालकों ने उस प्रश्न को सही-सही हल किया उनमें से २ छात्र ऐसे थे जिनके कुल अंक ८५ से अधिक थे। इस प्रकार ७५ से अधिक अंक पाने वाले १२, ६५ से अधिक अंक पाने वाले २५, ५५ से अधिक अंक पाने वाले ४३, ४५ से अधिक अंक पाने वाले ७३, ३५ से अधिक अंक पाने वाले ८८, २५ से अधिक अंक पाने वाले ९९ और सभी बालक १५ से अधिक अंक पाने वाले थे।"

इसी प्रदत्त का सारणीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है

अंक	विद्यार्थियों की संख्या	अनिवार्य प्रश्न को सही हल करने वालों की संख्या
८५ से अधिक	२	०
७५ —	१०	१
६५ —	२४	२
५५ —	४३	६
४५ —	७३	१२
३५ —	८८	२६
२५ —	९९	३०
१५ —	१००	३०

स्तम्भाकृति बनानी है।

प्रश्नों की संख्या	सही हल करने वाले छात्रों की संख्या
०	१
१	१०
२	४५
३	१२०
४	२१०
५	२५२
६	२१०
७	१२०
८	४५
९	१०
१०	१

क्रिया—वर्गांकित पत्र पर दो अक्ष (axes) OX और OY लीजिये। OX के सहारे प्रश्नों की संख्या तथा OY के सहारे प्रश्नों की निश्चित संख्या को सही-सही हल करने वाले छात्रों की संख्या दिखानी है।

१ प्रश्न = ½ इंच
५० छात्र = एक इंच

नीचे चित्र में स्तम्भों (bars) की ऊँचाई छात्रों की संख्या दिखाती है। स्तम्भाकृति में प्रत्येक स्तम्भ की ऊँचाई आवृत्ति की संख्या की अनुपाती होती है। देखिये चित्र (३)।
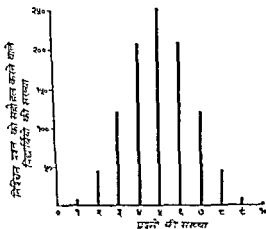
चित्र—३

सतत राशियों के विभिन्न मानों का रेखा चित्रण—किसी परीक्षा में छात्रों द्वारा प्राप्त प्राप्तांक एक सतत राशि है। किसी एक प्राप्तांक (Score) को पाने वाले कई छात्र हो सकते हैं। इस प्रकार प्राप्तांकों का आवृत्ति वितरण मिल सकता है। ऐसा ही एक आवृत्ति वितरण नीचे दिया जाता है, जिसका रेखा चित्रण करना है।
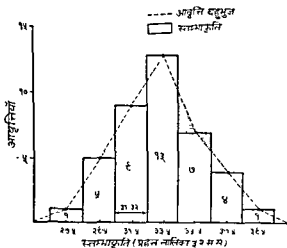
चित्र—५

परिवर्त्य राशि के खण्डित होने पर स्तम्भाकृति का प्रत्येक स्तम्भ रेखाकार होता है। अतः आवृत्तियाँ स्तम्भ (छड) की ऊँचाई की अनुपाती होती है किन्तु परिवर्त्य राशि के सतत होने पर प्रत्येक वर्ग की आवृत्ति स्पर्शाकृति के प्रत्येक आयताकार स्तम्भ के क्षेत्रफल की अनुपाती होती है। इस उदाहरण में प्रत्येक वर्ग की चौड़ाई समान ली गयी है। किन्तु आवृत्ति वितरण के वर्ग विचारों की चौड़ाई असमान होने पर भी प्रत्येक स्तम्भ को बनाते समय हमारा उद्देश्य यही रहता है कि भिन्न-भिन्न स्तम्भो द्वारा निरूपित आवृत्तियाँ उनके क्षेत्रफल के समानुपाती हों। चित्र ६ मे पहले स्तम्भ मे आवृत्ति १ और उसका क्षेत्रफल १० छोटे वर्ग दूसरे स्तम्भ मे आवृत्तियाँ ५ और क्षेत्रफल ५० छोटे वर्ग, तीसरे स्तम्भ मे आवृत्तियाँ ६ और क्षेत्रफल ६० छोटे वर्ग हैं। अतः आवृत्तियो की सख्या वर्ग के क्षेत्रफल के अनुपाती हैं।

चि
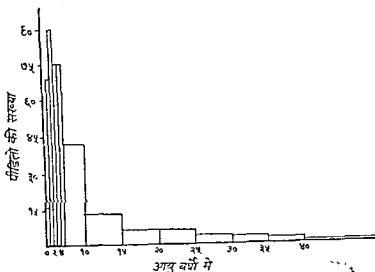
Q. 4.4 Show how in a histogram the areas of rectangles are proportional to frequencies in a class interval. Prepare a histogram of the following frequency distribution.

Age in Years.	Attacked by scarlet fever	Range of class Interval	No of Sufferers per Year
०—	१६	१	१६
१—	७०	१	७०
२—	८६	१	८६
३—	७४	१	७४
४—	७४	१	७४
५—१०	२१३	५	४२·६
१०—१५	७०	५	१४०
१५—२०	३०	५	६
२०—२५	३०	५	६
२५—३०	१७	५	३·४
३०—३५	१२	५	२·४
३५—४०	११	५	२·२
४०—४५	३१	३५	·६

क्रिया—यदि हम स्तम्भाकृति के प्रत्येक ग्रायताकार स्तम्भ का क्षेत्रफल तत्सम्बन्धी वर्ग मे पडी हुई ग्रावृत्ति संख्या के ग्रनुपाती रखना चाहते हैं तो स्तम्भ की ऊँचाई वर्ग विस्तार ग्रौर ग्रावृत्ति सख्या को ध्यान में रखकर निश्चित करनी पडेगी। पहले वर्ग की चौडाई १ वर्ष ग्रौर ग्रावृत्ति सख्या १३ ग्रत उस स्तम्भ की जो इन ग्रावृत्तियों का निरूपण करेगा ऊँचाई १६ के ग्रनुपाती मानी जा सकती है। इसी प्रकार ग्रन्तिम वर्ग की चौडाई ३५ वर्ष ग्रौर ग्रावृत्ति सख्या ३१ होने के कारण उस स्तम्भ की ऊँचाई $\frac{३१}{३५}$= ९ के ग्रनुपाती रखनी पडेगी तभी भिन्न भिन्न स्तम्भो के क्षेत्रफल समानुपाती हो सकेंगे। तालिका ४·४ व" को ग्रन्तिम पक्ति मे पीडित सख्या प्रतिवर्ष इसीलिये निकाली गई है।

Q. 4 5 Discuss the relative advantages of a histogram and a frequency polygon with examples.

स्तम्भाकृति ग्रौर आवृत्ति बहुभुज का तुलनात्मक ग्रध्ययन—चित्र ४, ५ ग्रौर ६ को देखने से पता चलता है कि स्तम्भाकृति एव ग्रावृत्ति बहुभुज मे ग्रावृतियो की संख्या निश्चित क्षेत्रफल द्वारा निरूपित की जाती है किन्तु ग्रावृत्ति बहुभुज मे प्रत्येक वर्ग के ऊपर जितना भाग रहता है वह भाग उस वर्ग की ग्रावृत्तियो का सही सही मापन नही देता ग्रौर न प्रत्येक वर्ग के किसी भाग की ग्रावृत्ति ही बहुभुज के तत्सम्बन्धी भाग से ठीक-ठीक निरूपित होती है क्योंकि उस वर्ग के दोनों ग्रोर के वर्गों मे ग्रावृत्तियां ग्रनियमित ढग से फैली रहती हैं। ये ग्रावृत्तियां यदि किसी नियम से फैली होती तो उस वर्ग के ऊपर बहुभुज का क्षेत्रफल ग्रावृत्ति सख्या का ग्रनुपाती होगा चित्र ४ मे वर्ग ३१-३२ से एक वर्ग ग्रागे-पीछे के वर्गों मे ग्रावृत्तियां इस प्रकार वितरित हैं कि ग्रावृत्ति सख्या ५ ग्रौर ९ का जो ग्रन्तर है वही ग्रन्तर ९ ग्रौर १३ का है इसलिये ३१-३२ वर्ग के ऊपर बहुभुज का भाग ठीक ९ ग्रावृत्तियो का निरूपण कर सकता है। ग्रत यदि हमारा लक्ष्य ग्रावृत्तियो का ठीक-ठीक निरूपण ही हो तो स्तम्भाकृति द्वारा ही ग्राकिक प्रदत्त का निरूपण करना चाहिये।

परन्तु स्तम्भाकृति से वितरण के ढाल का सही परिचय प्राप्त न हो सकने के कारण ग्रावृत्ति बहुभुज द्वारा प्रदत्त का निरूपण किया जाता है। वितरण के उतार-चढाव का परिचय ग्रावृत्ति बहुभुज या मरन्वित वक्र ही दे सकता है क्योंकि स्तम्भाकृति मे वर्गगत ग्रावृत्तियां एक वर्ग

वे दूसरे वर्ग में पहले एकदम बढ़ती हुई फिर एकदम घटती हुई दिखाई देती है (देखिये चित्र ८४ ब") जबकि वितरण बहुभुज या सरलित वक्र में यह चढ़ाव उतार की गति अधिक दिखाई देती है। बहुभुज की सबसे अधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह भी है कि एक ही चित्र में कई बहुभुज खींचे जा सकते हैं। इस प्रकार कई आवृत्ति वितरणों का तुलनात्मक लेखा चित्रण किया जा सकता है परन्तु एक ही चित्र में कई स्तम्भाकृतियों को खींच देने से बहुत सी खड़ी रेखायें उलझन पैदा कर सकती है।

Q. 4 6 Explain the method of smoothing a frequency polygon with an example. What is the difference beetween a frequency polygon and a frequency curve ?

आवृत्ति वक्र (Frequency Curve)

यदि किसी आवृत्ति वितरण के वर्ग-विस्तारों को छोटा कर दिया जाय और यदि सम्भव हो तो आवृत्तियों की संख्या में इतनी वृद्धि करदी जाय कि प्रत्येक नये वर्ग में पड़ने वाली आवृत्तियों की संख्या निश्चित एवं सीमित रहे तो आवृत्ति बहुभुज एवं स्तम्भाकृति दोनों ही सरलित वक्र का रूप धारण कर लेंगे। आवृत्ति वितरण तालिका को सरलित (Smooth) करने की क्रिया नीचे दिखाई गई है।

आवृत्ति वितरण तालिका को सरलित करने का ढंग—किसी आवृत्ति वितरण तालिका को सरलित करने के लिये मध्यमान (औसत) का प्रयोग करते हैं। मान लीजिए कि हमे निम्नांकित तालिका में सरलित आवृत्तियाँ ज्ञात करनी है।

	निरीक्षित	प्रत्याशित	
५८—६४	२	२	
५१—५७	४	६·२५	
४४—५०	१५	१४·२५	
३७—४३	२३	२१·५०	
३०—३६	२५	२१·२५	
२३—२९	१२	१३	
१६—२२	३	४·७५	
९—१५	१	१·२५	
कुलयोग	८५		

प्रत्येक वर्ग में पड़ने वाली आवृत्ति के दुगुने तथा उसके पड़ोसी वर्गों की आवृत्तियों के औसत को ही सरलित आवृत्ति कहते हैं। वर्ग ३०-३६ में पड़ने वाली प्रत्याशित आवृत्ति

=इस वर्ग में पड़ने वाली आवृत्ति का दुगुना और पड़ोसी वर्गों २३—२९ और ३७—४३ की आवृत्तियों का औसत

$=(२५\times२+२३+१२)\div४$

$=\frac{८५}{४}=२१·२५$

इसी प्रकार अन्य वर्गों की प्रत्याशित आवृत्तियाँ ज्ञात कर तृतीय स्तम्भ में दर्ज कर दी

गई हैं इनका सरलित वक्र चित्र ४'६ द में दिखाया जाता है। इस चित्र में ० वृत्त निरीक्षित आवृत्तियों को प्रदर्शित करते हैं।
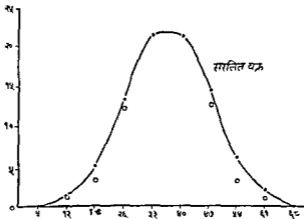
चित्र—७

Q. 4.7. Explain the method of preparing a cumulative frequency polygon or ogive.

संचयी एवं प्रतिशत संचयी आवृत्तियाँ

यदि अध्यापक यह जानना चाहता है कि उसके विद्यार्थियों की सख्या का अमुक प्रतिशत कितने अकों से कम या अधिक अक पाता है तो उसे आवृत्ति वितरण में पड़ी हुई आवृत्तियों को नये ढग से सजाना पड़ेगा।

मान लीजिये किसी प्राइमरी विद्यालय की कक्षा ३, ४ और ५ के ८५ विद्यार्थियो को भाटिया महोदय की बुद्धि परीक्षा माला देने पर एक अध्यापक को निम्न अक प्राप्त हुए।

३६, ३५, ५६, ६४, २०, १५, ५०, ४५, ३०, ३६, १६, ५१, ४२, ३१, ३७, २२, ५२, ४३, ३२, ३८
२४, ५४, ३४, ३५, ३४, २४, ४५, ४०, २६, ४६, ४१, ३०, २५, ४८, ५१, ३२, २६, ४६, ४३, ३२
२७, ४५, ५०, ३१, २६, ४६, ४४, ३०, ३६, ३४, २६, ४७, ४१, ३७, २५, ४८, ४०, ३४, ४६, ४२
३८, ३०, ३१, ४७, २८, ४०, ३६, २६, ४६, ४१, ३५, २५, ४५, ४३, ३६, ३५, ३५, ३६, ३५, ३६
३६, ३७, ३८, ३५, ३६,

इन अकों को आवृत्ति वितरण में सजाने पर उसे निम्न आवृत्ति वितरण तालिका मिल सकती है देखिये उदाहरण ३ १

फलांक	५८-६४	५१-५७	४४-५०,	३७-४३,	३०-३६,	२३-२६,	१६-२२,	६-१५
आवृत्ति	२	४	१५	२३	२५	१२	३	१

यह तालिका बतलाती है कि ५८'५ से ६४'४ तक फलाक (जो वर्ग ५८-६४ के वास्तविक सीमाक है) पाने वाले २ विद्यार्थी हैं, ५१'५ से ५७'४ तक फलाक पाने वाले ४ विद्यार्थी हैं, आदि आदि। किन्तु यदि वह यह जानना चाहता है कि अमुक अक से कम या अधिक अक पाने वाले कितने विद्यार्थी हैं तो इस प्रकार के ढग (arrangement) से अधिक उत्तम और सार्थक ढंग निम्नलिखित हो सकता है :

तालिका ४'७ (अ) ८५ फलांकों का संचयी आवृत्ति वितरण

६'५ से कम फलांकों की आवृत्ति		०	प्रतिशत	
१५'५	,,	१	आवृत्ति	१'१
२२'५	,,	४	,,	४ ८
२६ ५	,,	१६	,,	१८ ८
३६ ५	,,	४१	,,	४८ ०
४३'५	,,	६४	,,	७५'०
५०'५	,,	७६	,,	८२'६
५७ ५	,,	८३	,,	६७ ६
६४'५	,,	८५	,,	१००'०

इस ढग से आवृत्तियों को सजाते समय भिन्न-भिन्न वर्गों मे पडी हुई आवृत्तियों को क्रम से जोड लिया गया है। क्रम से जोडने के कारण ये आवृत्तियाँ सचयी आवृत्तियाँ कहलाती हैं। क्रमागत आवृत्तियों को सामूहित करने का कार्य तालिका के निचले छोर से किया गया है। यदि सचय करने का यह क्रम उलट दिया जाता तो निम्न प्रकार की सचयी आवृत्तियाँ उपलब्ध होती ·

तालिका ४'७ ब—८५ फलांकों का सचयी आवृत्ति वितरण

६४ ५ और उससे अधिक	सचयी आवृत्ति	प्रतिशत सचयी आवृत्ति
५८'५ और उससे अधिक	०	०
५१'५ ,, ,,	२	२
	६	७

विभिन्न प्रकार के सैद्धान्तिक आवृत्ति वक्र (Theoretical frequency curves) निम्नलिखित हैं.—

(१) प्रसामान्य आवृत्ति वक्र (normal frequency curve)
(२) विषम आवृत्ति वक्र (skew frequency curve)
(३) विषम बाहु आवृत्ति वक्र (extremely asymmetrical curve)
(४) अर्धबाहु आवृत्ति वक्र (u-shapes frequency curve)

प्रसामान्य आवृत्ति वक्र का विशेष विवरण अध्याय ८ मे दिया जायगा। यह वक्र अधिकतम आवृत्ति वाले परिवर्त्य राशि (variable) के मूल्य के दोनो ओर सममित (symmetrical) होता है। देखिये चित्र (१) विषम आवृत्ति परिवर्त्य राशि के किसी भी मूल्य से खीचे गये कोटि के दोनो ओर सममित नही होता। अधिकतम आवृत्ति वाले वर्ग के एक ओर आवृत्ति दूसरी ओर की आवृत्तियो की अपेक्षा अधिक तेजी से कम होती जाती है। यदि अधिकतम आवृत्ति वाले वर्ग के दाहिनी ओर आवृत्तियाँ कम शीघ्रता से छोटी होती जाती हैं तो वक्र को अनुलोम रूप से विषम कहा जाता है परन्तु यदि अधिकतम आवृत्ति वाले वर्ग के बाँयी ओर आवृत्तियाँ कम होती जाती हैं तो वक्र विलोमत विषम कहलाता है। देखिये चित्र (२,३)। विषम बाहु आवृत्ति वक्रों मे अधिकतम आवृत्ति वाला मूल्य एक कोने मे होता है और उसके दाँयी या बाँयी ओर की
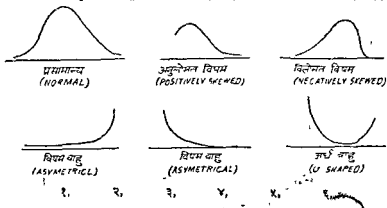
आवृत्तियाँ कम होती जाती हैं। देखिये चित्र (४, ५) अर्धवाहु विषमता वक्रों में अधिकतम आवृत्तियाँ चरराशि के बीच में कम से कम और दोनों ओर बढ़ती जाती हैं। देखिये चित्र (६)

४४'५ और उससे अधिक	२१	२३
३७ ५ ,,	४४	५१'७
३०'५ ,,	६६	८१'०
२३'५ ,,	८१	९५'३
१६'५ ,,	८४	९८'८
९'५ ,,	८५	१०० ०

अब यदि इस विद्यालय के अध्यापक महोदय यह जानना चाहते हैं कि उनके विद्यालय में विद्यार्थियों का कौनसा प्रतिशत अमुक अंकों से कम या अधिक अंक पा रहा है तो इन संचयी आवृत्तियों को संचयी प्रतिशत आवृत्तियों में बदल सकते हैं।

मान लीजिये संचयी आवृत्ति ४ की प्रतिशत संचयी आवृत्ति निकालनी है तो उसकी गणना निम्न प्रकार की जा सकती है।

∵ ८५ में ४ संचयी आवृत्ति है

$$\therefore \text{१०० में } \frac{४}{८५} \times १०० = ४'८$$

अन्य प्रतिशत इसी प्रकार निकाली गई है। तालिका ४'७ अ, और ४'७ ब के तीसरे स्तम्भों में प्रतिशत संचयी आवृत्तियाँ दर्ज कर दी गई हैं।

चित्र ६
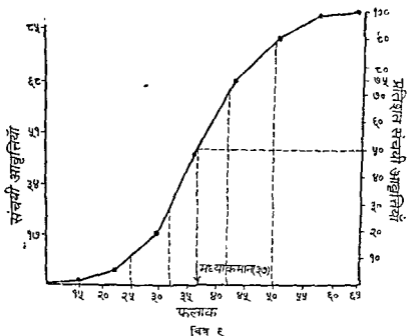
संचयी आवृत्ति बहुभुज अथवा वक्र बनाने की क्रिया के निम्नलिखित पद होगा :

(i) पहले की तरह दो अक्षों पर उचित पैमाना लिया जाय। X-अक्ष पर जो चर राशि दिखाई जाय उसके चर राशि के उन मानों को स्पष्ट रूप से दिखाया जाय जो किसी वर्ग की अन्तिम (ऊपरी) सीमाएँ प्रकट करते हों।

(ii) चूँकि Y-अक्ष पर सम्पूर्ण आवृत्तियाँ दिखानी हैं इसलिये Y अक्ष पर का पैमाना उनकी पूर्ण सख्या को ध्यान में रखकर चुना जायँ।

(iii) प्रत्येक वर्ग की अन्तिम सीमा और उस सीमा से कम अक पाने वाले छात्रो की सख्या वर्गांकित पर बिन्दुओ द्वारा अकित की जाय।

(iv) यदि इन बिन्दुओ को क्रम से मिलाया जाय तो S-आकार का वक्र अथवा बहुभुज मिलेगा।

चित्र ४·८ अ मे तालिका ४ ८ अ का प्रदत्त प्रदर्शित किया गया है। Y-अक्ष के समान्तर चित्र के दूसरी ओर प्रतिशत सचयी आवृत्तियाँ दिखाई गई हैं।

यदि इन आवृत्तियो को सरलित कर लिया जाय तो सरलित सचयी आवृत्ति वक्र मिल सकता है।

Q. 4 8 Discuss the usefulness of representing numerical data by means of an ogive

संचयी आवृत्ति वक्र (ogive) एवं उसकी उपयोगितायें

यदि तालिका ४·७ अ अथवा ४·७ ब की आंकिक सामग्री को लेखा चित्रीय ढग से निरूपित करें तो जो चित्र मिलेगा उसे सचयी (प्रतिशत सचयी) आवृत्ति वक्र कहेंगे क्योंकि इस चित्र मे सचयी अथवा प्रतिशत सचयी अथवा दोनो ही दिखायी गई है। आवृत्ति बहुभुज अथवा स्तम्भाकृति का चित्र खींचते समय प्रत्येक वर्ग के मध्य बिन्दुओं को क्षैतिज रेखा पर अंकित किया जाता है। अब चूँकि केवल १ विद्यार्थी ऐसा है जिसके फलाक १५·५ से कम हैं इसलिये क्षैतिज अक्ष पर १५ ५ और ऊर्ध्वाधर अक्ष के समान्तर १ आवृत्ति को प्रदर्शित करने वाली दूरी पर एक बिन्दु लगा दिया गया है। इसी प्रकार ४ विद्यार्थी ऐसे हैं जिनके फलाक २२·५ से कम हैं अतएव क्षैतिज अक्ष पर २२·५ और ऊर्ध्वाधर अक्ष से समानान्तर ४ आवृत्तियो को निरूपित करने वाली दूरी पर दूसरा बिन्दु लगा दिया गया है। इस प्रकार प्रत्येक क्रमागत सचयी आवृत्ति सख्या के लिये बिन्दु अंकित कर लेने के बाद उन्हें क्रम से मिला दिया जाता है। देखिये चित्र ४ ८ अ इसमे प्रतिशत एव वास्तविक आवृत्तियाँ दिखायी गई हैं इस प्रकार जो लेखाचित्र (graph) उपलब्ध होता है उसमे निम्नलिखित बातें बडी आसानी से पढी जा सकती हैं।

(१) अमुक फलाक से कम अक पाने वाले कितने अथवा (कितने प्रतिशत) विद्यार्थी उस वितरण में हैं जिसका निरूपण प्रतिशत सचयी वक्र करता है। चित्र मे देखकर यह पढा जा सकता है कि ३५ फलाक से कम अक पाने वाले ३४ विद्यार्थी (अथवा ४०% विद्यार्थी) हैं। ५५ फलाक से कम अक पाने वाले ६५% विद्यार्थी हैं, २३ से कम अक पाने वाले ५% विद्यार्थी हैं इत्यादि-इत्यादि। यदि कक्षा में १०० विद्यार्थी होते तो ३५ फलाक प्राप्त करने वाले विद्यार्थी की स्थिति ४० वीं, ५५ अक पाने वाली की ६५ वी, और २३ अक पाने वाली की ५ वी होती। जिस विद्यार्थी की कक्षा मे पाँचवी स्थिति है उससे कम अक पाने वाले ४% और अधिक अक पाने वाले ६५% विद्यार्थी हैं। इस विद्यार्थी की शताक श्रेणी (Percentile Rank) ५ मानी जायगी। इसी प्रकार जिस विद्यार्थी के फलाक ५५ हैं उसकी शताक श्रेणी (P.R.) ६५ मानी जायगी। व्यक्तियो की उनकी योग्यता के अनुसार जो श्रेणी मिलती है शताक श्रेणी कहलाती है यदि उनकी सख्या १०० हो। सैम्पिल मे यदि कुल व्यक्तियो की सख्या १०० से कम या अधिक है तो प्रतिशत सचयी वक्र से शताक श्रेणी पढ़ी जा सकती हैं।

(२) इस चित्र मे यह भी पता चल सकता है कि बीच के ५०% विद्यार्थियो के अकों का प्रसार क्षेत्र क्या है। २५% को निरूपित करने वाले बिन्दु से क्षैतिज अक्ष के समानान्तर रेखा खीचने पर जो वक्र से कटान बिन्दु मिलता है उसे क्षैतिज अक्ष पर डाला गया लम्ब इस अक्ष को [illegible] हैं। इसी [illegible], जिसका [illegible] ग्राओ के [illegible] बीच के [illegible]

(३) यदि हम यह जानना चाहे कि अमुक फलाक से अधिक कितने (अथवा कितने प्रतिशत) विद्यार्थी अक पा रहे हैं तो तालिका ४·७ ब का लेखा चित्रण किया जा सकता है।
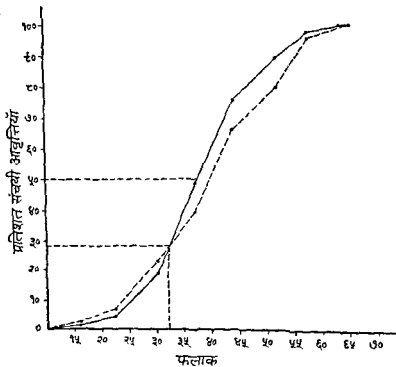
चित्र—४८ ब

Q. 49 What is a percentile norm? How can you read percentile norms from an ogive? Illustrate your method with an example.

शतांक प्रमाप और संचयी आवृत्ति वक्र (Percentile norms and ogive)

प्रतिशत संचयी आवृत्ति वक्रों का शैक्षणिक मापन एवं मनो-भौतिकशास्त्र (Psycho Physics) में अत्यधिक प्रयोग होता है। इन वक्रों की सहायता से शतांक प्रमापों की गणना बड़ी सरलता से की जा सकती है।

वे अंक या माप जिनको ध्यान में रखकर किसी व्यक्ति की योग्यता के सापेक्षिक स्तर का अनुमान लगाया जाता है प्रमाप कहलाते हैं। ये अंक अथवा प्रमाप उस समूह की लाक्षणिक योग्यता का प्रतिनिधित्व करते हैं। मान लीजिये कि किसी कक्षा के ८५ विद्यार्थियों के प्राप्तांकों का औसत ३७ अंक है तो ३७ से कम अंक पाने वाले विद्यार्थी योग्यता में अध: सामान्य (below normal) तथा ३७ से अधिक अंक पाने वाले अधि सामान्य (above normal) माने जा सकते हैं। अंक ३७ को ध्यान में रखकर उस कक्षा के अन्य किसी बालक की योग्यता का सापेक्षिक स्तर निश्चित किया जा सकता है। इसलिए अंक ३७ उस कक्षा का प्रमाप कहा जा सकता है। अंक ३७ फलांकों के वितरण को ५० : ५० के अनुपात में बाँटता है इसलिये इसे ५० वाँ शतांक प्रमाप कह सकते हैं। मान लीजिये किसी तरह उस कक्षा के विषय में निम्नलिखित जानकारियाँ और प्राप्त हो जायें।

फलांक				
२३	से कम पाने वाले	५%	विद्यार्थी हैं।
३१	,,	,,	२५%	,,
३७	,,	,,	५०%	,,
४३	,,	,,	७५%	,,
५०	,,	,,	९०%	,,
५५	,,	,,	९५%	,,

तो हम कक्षा के विद्यार्थियों की योग्यता का सापेक्षिक स्तर और अच्छी तरह मालूम किया जा सकता है। यदि किसी विद्यार्थी का फलांक २४ है तो हम इस सूचना के आधार पर कह सकते हैं कि उस से कम अंक पाने वाले ५ या ५ प्रतिशत से अधिक हैं, क्योंकि ५% विद्यार्थी तो २३ से कम अंक पाते हैं। अंक २३ को ५ वीं शताक श्रेणी कहा जा सकता है, अंक ३१ को २५ वीं शताक श्रेणी इत्यादि-इत्यादि। किन्तु २४ अंक पाने वाले विद्यार्थी की कौनसी शताक श्रेणी (Percentile Rank) है यह जानने के लिये उस कक्षा के विद्यार्थियों के फलाकों के आवृत्ति वितरण का सचयी आवृत्ति वक्र तैयार करना पड़ेगा। यदि हम ८५ विद्यार्थियों द्वारा प्रत्येक फलाक का शताक प्रमाप (Percentile norms) जानना चाहते हैं तो प्रतिशत सचयी आवृत्ति वक्र से जो चित्र ४८ में दिखाया गया है अमुक अंक से कम पाने वाला की प्रतिशत संख्या ज्ञात की जा सकती है किन्तु यदि इन विद्यार्थियों के समकक्ष सब विद्यार्थियों की जनसंख्या द्वारा प्राप्त फलाकों के शताक प्रमाप ज्ञात करना चाहें तो सचयी आवृत्ति वक्र को सरलित (Smooth) करके शताक प्रमाप (Precentile norms) ज्ञात की जा सकती है। किसी वक्र को सरलित करने की तीन निम्नलिखित विधियाँ हैं जिनका उल्लेख पीछे भी किया जा चुका है

(१) स्वतन्त्र रूप से हाथ से ही वक्र को चिक्कण बना देना।
(२) वक्रों को सरलित बनाने वाले यन्त्रों का प्रयोग करना।
(३) चलायमान (moving) औसतों का प्रयोग करना।

पहली दो विधियाँ सरल एवं यांत्रिक हैं अतः तीसरी विधि का प्रयोग कर किस प्रकार किसी वक्र को सरलित बनाया जाता है इसकी विवेचना उदाहरण ४·६ में की जायगी। किसी क्रम से आई हुई ३, ५, ७ आवृत्तियों का औसत लिया जा सकता है। किन्तु प्रस्तुत उदाहरण में ३, ३ आवृत्ति संख्याओं का ही औसत निकाला जायगा।

उदाहरण ४·६ तालिका ४·७ अ में दिये गये प्रतिशतों को सरलित प्रतिशतों में बदलिये और सरलित सचयी आवृत्ति वक्र खींचकर फलांक ५ से लेकर ६५ तक सब फलाकों के लिये शताक प्रमापों की गणना कीजिये।

तालिका ४·६ अ सरलित आवृत्तियाँ

८·५ से कम फलांक पाने वालों की % संख्या		०	सरलित % आवृत्तियाँ
१५·५	„	०	२·०
२२·५	„	१·१	८·२
२९·५	„	४·८	२३·८
३६·५	„	१८·८	४७·२
४३·५	„	४८·०	७२·०
५०·५	„	७५·०	८८·५
५७·५	„	९२·१	९५·८
६४·५	„	९७·९	९९·६
७१·५	„	१००·०	—

[illegible] आवृत्तियों ०, १·१, और ४·८ का औसत $\frac{० + १·१ + ४·८}{३}$ = २·० है,

[illegible] आवृत्तियों का औसत $\frac{१·१ + ४·८ + १८·८}{३}$ = ८·२ है, इस प्रकार

[illegible] औसत [illegible] ४·६ अ के [illegible] में दर्ज कर दिये गये हैं। [illegible]

मे दी गई %आवृत्तियो को चित्र ४·६ मे प्रदर्शित किया गया है। इस चित्र से किसी अमुक अक से कम से कम अक पाने वालो को प्रतिशत सख्याएँ तालिका ४·६ ब मे दी गई हैं।

चित्र—११

तालिका ४ ६ ब शतांक प्रमाप (Percentile norms)

शताश	प्रमाप फलाश	शताश	प्रमाप फलाश	शताश	प्रमाप फलाक	शताश	प्रमाप फलाक
१	१३	२६	३१	५१	३७	७६	४५
२	१५	२७	३१	५२	३७·५	७७	४५
३	१६	२८	३१ ५	५३	३७·५	७८	४५·५
४	१७	२९	३१·५	५४	३८	७९	४५·५
५	१८	३०	३२	५५	३८	८०	४६
६	१९	३१	३२	५६	३८·५	८१	४६ ५
७	२०	३२	३२·५	५७	३८·५	८२	४७
८	२१	३३	३३	५८	३९	८३	४७ ५
९	२१·५	३४	३३·५	५९	३९·५	८४	४८
१०	२२	३५	३३·५	६०	४०	८५	४८·५
११	२३	३६	३४	६१	४०·५	८६	४९
१२	२४	३७	३४	६२	४१	८७	४९·५
१३	२४·५	३८	३४·५	६३	४१	८८	५०
१४	२५	३९	३४·५	६४	४१	८९	५०·५
१५	२५ ५	४०	३५	६५	४१·५	९०	५१·५
१६	२६	४१	३५	६६	४१·५	९१	५२
१७	२६·५	४२	३५·५	६७	४१·५	९२	५३·५
१८	२७	४३	३५·५	६८	४२	९३	५४·५
१९	२७·५	४४	३५·५	६९	४२·५	९४	५५
२०	२८ ५	४५	३५·५	७०	४३	९५	५६·३
२१	२९	४६	३६	७१	४३	९६	५७·५
२२	२९·५	४७	३६	७२	४३·५	९७	५९·५
२३	३०	४८	३६	७३	४३·५	९८	६२
२४	३०·५	४९	३६·५	७४	४४·०	९९	६४
२५	३०·५	५०	३६·५	७५	४४ ५	१००	६५

३७

तालिका ४·६ ब अथवा चित्र ४·६ से किसी भी फलाक का शताश प्रमाप बताया जा सकता है सरलित प्रतिशत सबधी वक्रो की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं :—

तीनो विद्यालयो मे छात्रो के सगठन का चित्रण प्रदत्त चित्र १० मे प्रदर्शित किया गया है
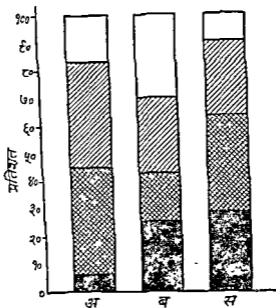
चित्र—४ १०

Q. 4 11. How will you represent the relationship between two variables graphically. Explain with examples.

किसी एक परिवर्त्य राशि (variable) के भिन्न-भिन्न मानो का प्रदर्शन आवृत्ति वक्रो की सहायता से किया जाता है। किन्तु कभी-कभी प्रयोग अथवा अनुसधान मे दो परिवर्त्य राशियों के बीच सम्बन्ध प्रदर्शित करने वाली आकिक सामग्री भी उपलब्ध हो सकती है। उदाहरणस्वरूप, वास्तविक आयु एक (CA) परिवर्त्य राशि है जिसका मान भिन्न-भिन्न बालको के लिये अलग-अलग होता है। इसी प्रकार मानसिक आयु (M.A.) भी दूसरी परिवर्त्य राशि है जो उन्ही बालकों के लिये भिन्न-भिन्न मान रखती है। इन दोनो प्रकारो की आयु के बीच सम्बन्ध दिखाने के लिए जो चित्र खींचा जा सकता है उसे विक्षेप चित्र (Scatter Diagram) कह सकते हैं। यह चित्र दोनों परिवर्त्य राशियो के साथ साथ घटने या बढ़ने की प्रवृत्ति का चित्रण करता है।

मान लीजिये किसी कक्षा के विद्यार्थियो की वास्तविक (C.A.) और मानसिक आयु (M A.) महीनो मे निम्नलिखित है .

विद्यार्थी	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५
वास्तविक आयु	१२३	११७	११९	१२५	१३९	११७	१२५	१५२	१२४	१२७	१४३	१४७	१५०	१३४	१३०
मानसिक आयु	१९०	१२०	१८१	१७०	१७१	१६२	१४५	१४४	१४०	१४९	१६४	१५८	१५४	१५९	१८८

विद्यार्थी	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०
वास्तविक आयु	१३०	१३७	१६१	१११	१३७	१२६	१३८	१२९	१३६	१३९	१२२	१२८	१५०	१४८	१३७
मानसिक आयु	१४८	१३३	१३५	१५८	१६१	१३३	१३५	१५२	१६०	१५१	१७५	१५०	१४०	१२३	१२४
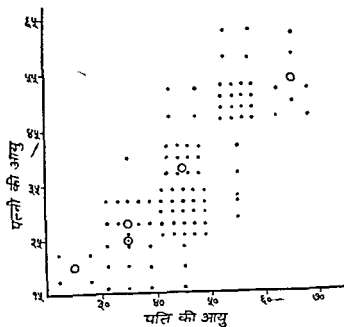
चित्र—४·११ (ब)

पति की आयु

	२०—	३०—	४०—	५०—	६०—	योग
१५—	५	९	३			१७
२५—		१०	२५	२		३७
३५—		१	१२	२		१५
४५—			४	१६	५	२५
५५—				४	२	६
योग	५	२०	४४	२४	७	१००

३. स्तम्भाकृति (histogram) उन दशाओं में खींची जा सकती है जब वर्ग विस्तार समान लम्बाई के नहीं होते या आवृत्तियाँ एक वर्ग से दूसरे वर्ग में तेजी से बदलती रहती हैं। यदि आवृत्तियों का वितरण क्रमिक हो तो आवृत्ति बहुभुज उपयुक्त रहता है।

४. जब वर्ग विस्तार बहुत ही छोटा एवं आवृत्तियाँ बहुत अधिक हो जाती हैं, तब *आवृत्ति बहुभुज या स्तम्भाकृति आवृत्ति वक्र (frequency curve)* का रूप ले लेते हैं।

५. व्यवहार में आने वाले बहुत से आवृत्ति वितरण निम्नलिखित आवृत्ति वक्रों द्वारा निरूपित किये जा सकते हैं :

प्रसामान्य (normal), विषम (skew) मामूली विषम (moderately skew), विषमबाहु (extremely asymmetrical) अर्धबाहु आवृत्तिवक्र (U shaped)।

६. सचयी और प्रतिशत सचयी आवृत्ति वक्रों की सहायता से प्रतिशत तमकों एवं किसी विद्यार्थी की प्रतिशत तमक अनुस्थिति का आगणन किया जा सकता है।

७ चार्ट एवं रेखाचित्र आकार के अनुसार तीन प्रकार के खींचे जा सकते हैं—

(१) एकविमा (one dimensional)
(२) द्विविमा (two dimensional)
(३) त्रिविमा (three dimensional)

८. एक परिवर्त्य राशि का चित्रण लेखाचित्रीय विधियों से तो किया ही जाता है, दो परिवर्त्य राशियों के सम्बन्ध का प्रदर्शन भी रेखाचित्रों से किया जा सकता है। ऐसे रेखाचित्र को विक्षेप चित्र (Scatter diagram) कहते हैं।

अभ्यासार्थ प्रश्नावली ४

१. समाजशास्त्र सम्बन्धी प्रदत्त के निर्वाचन एवं निरूपण में चार्ट, ग्राफ और रेखा चित्रों (diagrams) की उपयोगिताओं का उल्लेख कीजिए।

[आगरा, समाजविज्ञान (Sociology), १९५४]

२. निम्न दशाओं में लेखाचित्रीय निरूपणों की उपयोगिताओं का उदाहरण सहित उल्लेख कीजिये।

(अ) खण्डितराशि की आवृत्तियाँ, स्वभाव (temperament), लिंग, अथवा भाषा सम्बन्धी प्रदत्त।

(ब) सतत परिवर्त्य राशि से सम्बन्धित आवृत्तियाँ।

[आगरा, एम. एड., १९५९]

३. सारणी, चित्र तथा बिन्दु रेखा (graph) द्वारा समकों के प्रदर्शन के सापेक्षिक गुणों (advantages) की तुलना कीजिए। उदाहरणों की सहायता से अपने उत्तर का स्पष्टीकरण कीजिये। [आगरा, बी कॉम, १९६०]

४. द्विविमा (two dimensional) चित्रों की सहायता से दो परिवारों के मासिक व्यय का प्रदर्शन कीजिए—

व्यय की मदें	परिवार अ आमदनी ४०० रु० प्रतिमाह	परिवार ब आमदनी ६०० रु० प्रतिमाह
भोजन	१२०	१६०
कपड़ा	८०	१००
मकान किराया	६०	१२०
शिक्षा	४०	८०
ईंधन	२०	४०
विविध	४०	६०

५. चित्र द्वारा चावल म्रौर गेहूँ के देशनाको का निरूपण कीजिये—

म्रप्रैल	मई	जून	जुलाई	म्रगस्त	सितम्बर	म्रक्टूबर	नवम्बर	दिसम्बर	जन०	फर०	मार्च
४१०	४०५	४१०	४५५	४६०	५१०	४६०	४७५	४६५	४५०	४७०	५०५
४००	३५०	३६५	४१५	४२०	४१०	४३०	४७०	५०५	५३०	५२५	५४५

[म्रागरा, म्रर्थ०, १६५७]

६. दो कुटुम्बो के व्यय का लेखा नीचे दिया जाता है। एक सुन्दर चित्र द्वारा इस लेख का निरूपण कीजिये—

भोजन	३०	६०
वस्त्र	७	३०
मकान किराया	८	४०
शिक्षा	३	२५
म्रन्य खर्चे	५	१५
बचत	४	२०

७. स्तम्भ लेखाचित्र (histogram) म्रावृत्ति बहुभुज एव म्रावृत्ति वक्रो का म्रन्तर बतलाइये। यदि वर्ग विस्तार समान न हो तो इनको किस प्रकार खीचा जा सकता है।

[म्रागरा, बी. ए, १६५६]

मध्यमान (Mean)

यदि किसी चर राशि के n भिन्न भिन्न मान निम्नलिखित हो

$x_1, \quad \dots \quad x_2 \quad \dots \quad x_n$

तो उन n मानो का मध्यमान (Mean) इन मानो के योग में n का भाग देने से प्राप्त होता है। सक्षेप में,

$$\overline{X} = \frac{x_1 + x_2 + \dots + x_n}{n} = \frac{\Sigma X}{n} \qquad \dots\dots २$$

उदाहरण : (५.२ ग्र) तालिका ३ २ में ४० विद्यार्थियो के प्राप्तांकों का मध्यमान निकालिये।

इस उदाहरण मे चर राशि है परीक्षा फलाक (raw scores), इस चर राशि के ४० भिन्न-भिन्न मान हैं ग्रत उनका मध्यमान उन फलाकों के योग मे ४० का भाग देने से मिल सकता है।

$$\therefore \text{ मध्यमान} = \frac{\text{फलाको का योग}}{४०} = \frac{१३३०}{४०} = ३३ २५$$

मध्यमान के विशेष गुण (properties of mean)

मध्यमान में कुछ ऐसी विशेषतायें हैं जिनके कारण उसका उपयोग ग्रांकिक प्रदत्त के विश्लेषण एव व्याख्या मे ग्रन्य केन्द्रीयमानों की ग्रपेक्षा से ग्रधिक होता है। मध्यमान की कुछ विशेषतायें निम्नलिखित हैं :—

(१) मध्यमान से ग्रन्य मानो के विचलनो का योग शून्य होता है। मान लीजिये किसी चर राशि के ५ मान निम्नलिखित हैं ·

६, ८, ९, ११, १४

इनका मध्यमान है ९'६, इस मध्यमान से इन मानो के ग्रन्तर क्रमश. हैं

—३ ६,—१.६,—'६,+१.४,+४ ४

इन ग्रन्तरो को विचलन (deviations) कहते हैं

इन विचलनो का जोड शून्य है क्योंकि धनात्मक विचलनो का योग है +५'८ ग्रौर ऋणात्मक विचलनो का योग है—५ ८

(२) मध्यमान के ग्रलावा चलराशि के ग्रन्य किसी मान से भिन्न-भिन्न मानों के विचलनो का योग शून्य नही होता ग्रौर विचलनो के वर्गों का योग मध्यमान से लेने पर ही न्यूनतम होता है जैसा कि तालिका ५'१ मे दिखाया गया है

तालिका ५'१—मध्यमान से कम या ग्रधिक मान का ग्रन्य मानो से विचलन

चलराशि x	प्रत्येक मान का विचलन ९ से d	d^2	प्रत्येक मान का १३ से विचलन d′	d^2	प्रत्येक मान का ९'६ मध्यमान से विचलन d	d^2
६	—३	+९	—७	४९	—३'६	२'१६
८	—१	+१	—५	२५	—१'६	२'५६
९	+०	०	—४	१६	— '६	'३६
११	+२	४	—२	४	+१'४	१ ९६
१४	+५	२५	+१	१	+४४	१.३६६
—४८	Σd=+३	३९	Σd′=—१७	९५	Σx=०	३७'४०

चलराशि X के पांच मानो का ग्रौसत ९'६ है। ९'६ से कम ग्रौर ग्रधिक मान

लीजिये दो सख्यायें ८, १३ हैं। ८ से प्रत्येक मान के विचलन का योग +३ और १३ से वि-
चलनों का योग —१७ है।

किन्तु ८·६ से विचलनों का योग शून्य है। यदि इन मानों का मध्यमान ८ या १३ म
लिया जाय तो वास्तविक मध्यमान (True Mean) ८·६ और कल्पित मध्यमान (assume
mean) ८ या १३ मे जो सम्बन्ध है वह निम्न प्रकार से लिखा जा सकता है

$$८·६=८+\frac{३}{५}$$

$$८·६=१३-\frac{१७}{५}$$

अतः वास्तविक मध्यमान=कल्पित मध्यमान+औसत विचलन

$$\therefore \quad \overline{x} \quad = \text{Assumed Mean} + \frac{\Sigma d}{n} \quad \cdots \quad ($$

Q. 53. Calculate the true Mean from the following data

118, 108, 107, 102, 100, 122, 115, 115, 100, 97
119, 112, 112, 103, 93, 110, 109, 109, 95, 89
110, 108, 108, 98, 90

२५ विद्यार्थियों के बुद्धि अंक नीचे दिये जाते हैं बुद्धिअंक १०० को कल्पित मध्यम
मानकर वास्तविक मध्यमान (True Mean) की गणना करनी है

११८,१०८,१०७,१०२,१००,१२२,११५,११५,१००,९७,११९,११२,११२,१०३,९३,
११०,१०९,१०९,९५,८९,११०,१०८,१०८,९८,९०

यदि १०० को इन अंकों का काल्पनिक मध्यमान ले लिया जाय तो १०० से विच
d के मान निम्नलिखित होंगे।

+१८,+८,+७,+२, ०,+२२,+१५,+१५,०,—३,+१९+१२,+१२+
—७,+१०,+९,—५—११,+१०+८+८—२,—१०

$\Sigma d=$ १८७—३८=१४९

अत मध्यमान$=१००+\frac{१४९}{२५}$

$=१०५·९६$

Q 54. Explain the difference between a simple and weighted mean.

मध्यमानों के प्रकार (Kinds of Arithmetic Mean)

मध्यमान दो प्रकार के होते हैं और भारित (Weight
धारा संख्या ५·२ और ५·... गणना की गई है वह साधा
मध्यमान है प्रतिमन, ८००० मन १६
६० ... तो प्रतिमन विक्रय मूल्य
औसत सकता क्योंकि औसत प्र
हुए गुड़ की मात्रा मालूम ह

यौगिक प्रतिमान विक्रय मूल्य = $\frac{\text{कुल विक्रय मूल्य}}{\text{कुल माल कुल}}$

$$= \frac{१०,००० \times ११ + ८००० \times ११.५० + ४००० \times १२.२०}{१०,००० + ८००० + ४०००} \text{ रु०}$$

$= ११.४०$ रु०

यदि मुख्य प्रतिमान को X_1, X_2 ...... से तथा वर्गों की संख्या को $f_1, f_2 ......$ से प्रदर्शित करें तो

$$\text{यौगिक } X = \frac{f_1 X_1 + f_2 X_2 + ...}{f_1 + f_2} = \frac{\Sigma f X}{\Sigma f} = \frac{\Sigma f X}{N} \qquad ...... ६$$

ठीक इसी सूत्र का प्रयोग लम्बे तरीके का प्रयोग कर किसी आवृत्ति वितरण तालिका से मध्यमान निकालने के लिए किया जाता है।

Q 5·5 When do we use the long method of calculating mean from a grouped data? Explain with examples

वर्गबद्ध वितरण से मध्यमान की गणना (Calculation of mean from grouped data)

विस्तृत विधि (long method)—मध्यमान की गणना करने के इस तरीके का प्रयोग उस समय किया जाता है जब

(अ) वितरण तालिका में आवृत्ति संख्या कम होती है,
(ब) वितरण विषम होता है और वर्ग विस्तार समान लम्बाई के नहीं होते,
(स) चलराशि खण्डित (discrete) होती है।

इस दशा में प्रयुक्त सूत्र है $\overline{X} = \frac{\Sigma f X}{N}$ जबकि f किसी वर्ग में पड़ी हुई आवृत्तियों की संख्या और X उस वर्ग का मध्य बिन्दु तथा N कुल आवृत्ति संख्या है। इस तरीके से मध्यमान निकालने के लिये तीन उदाहरण नीचे दिये जाते हैं। उदाहरण ५.५ अ में दिखाया गया है कि आवृत्ति संख्या के कम होने पर लम्बे तरीके से किस प्रकार मध्यमान निकाला जाता है। उदाहरण ५.५ ब में वितरण के विषम और वर्ग विस्तारों के असमान होने पर इस तरीके का प्रयोग दिखाया गया है। उदाहरण ५.५ स में खण्डित चलराशि ली गई है।

उदाहरण ५.५ अ—तालिका ३.२ (स) में दिये गये ४० विद्यार्थियों के प्राप्तांकों के वितरण का मध्यमान निकालिये।

क्रिया के पद निम्नलिखित हैं।

(१) प्रत्येक वर्ग के केन्द्र या मध्य बिन्दु (midpoint) की गणना—धारा ३.५ के अनुसार वर्ग का मध्य बिन्दु=वर्ग की वास्तविक निम्नतम सीमा+प्रसार क्षेत्र का आधा अतः पहले वर्ग ३६-४० का मध्य बिन्दु = ३८.५ + $\frac{२}{२}$ = ३९.५ इसी प्रकार दूसरे वर्ग (३७–३८) का मध्य बिन्दु ३७.५ है। अन्य मध्यबिन्दु निम्न सारणी में इसी प्रकार दर्ज कर दिये गये हैं।

(२) यह कल्पना करके कि प्रत्येक वर्ग में पड़े हुये सब f फलांक उस वर्ग के मध्यांक (मध्य बिन्दु X) के बराबर हैं उस वर्ग में पड़े हुए फलांकों का योग fX निकालना

(३) ΣfX का मान ज्ञात करना

$\overline{X} = \frac{\Sigma f X}{N}$ सूत्र से मध्यमान की गणना

सारणी ५·२ लम्बे तरीके से मध्यमान की गणना विधि दिखाने के लिये

फलाक	आवृत्ति संख्या f	वर्ग का मध्य बिन्दु X	वर्ग मे पड़े हुए समस्त अको का कल्पितयोग fX	वर्ग मे पड़े हुए समस्त अको का वास्तविक योग
३९—४०	१	३९.५	३९·५	३९
३७—३८	४	३७·५	१५०·०	१४९
३५—३६	७	३५·५	२४८·५	२४९
३३—३४	१३	३३·५	४३५.५	४३५
३१—३२	९	३१.५	२८३·५	२८३
२९—३०	५	२९·५	१४७·५	१४८
२७—२८	१	२७.५	२७.५	२७
योग	N= ४०		ΣfX= १३३२	१३३०

$$\overline{X}=\frac{\Sigma fX}{N}=\frac{१३३२}{४०}=३३·३ \text{ अक}$$

$$\overline{X}=\frac{\Sigma X}{N}=\frac{१३३०}{४०}=३३·२५ \text{ अक}$$

वर्गीकरण के कारण प्रत्येक वर्ग मे पड़े हुए समस्त अको का कल्पित योग वास्तविक योग से भिन्न होता है (देखिये सारणी ५·२ के अन्तिम दो स्तम्भ) क्योकि कल्पित योग निकालने के लिये यह कल्पना (assumption) करनी पडती है कि प्रत्येक वर्ग मे पड़े हुए सब फलाक वर्ग के मध्य बिन्दु या मध्याक के बराबर हैं। इस कल्पना के कारण मध्यमान ३३·३ आया है जबकि वास्तविक मध्यमान ३३·२५ ही है।

यह वितरण तो काफी सममित है (symmetrical) इसी कारण वर्गीकरण के कारण मध्यमान के मानो मे अन्तर अत्यन्त सूक्ष्म आया है। वितरण के अधिक विषम होने पर यह अन्तर और अधिक हो सकता है।

उदाहरण ५·५ ब—स्कारलैट ज्वर से पीडित होकर मृत्यु को प्राप्त व्यक्तियों की वितरण तालिका नीचे दी जाती है। उस औसत आयु की गणना कीजिये जिस पर पहुँचकर आमतौर से व्यक्तियों को मृत्यु का सामना करना पड़ता है।

आयु	ज्वर से पीडित व्यक्तियों की सख्या f	वर्ग का माध्यमिक मान x	x
०—	१	·५	·५
१—	७	१·५	१०.५
२—	९	३·५	२२.५
३—	७	२·५	२४·५
४—	७	४·५	३१.५
५—	२१	७·५	१५७·५
१०—	७	१२·५	८७·५
१५—	३	१७·५	५२·५
२०—	३	२२·५	६७·५
२५—	२	२७·५	५५·०
३०—	१	३२·५	३२·५
३५—	१	३७·५	३७·५
४०—और ४० से अधिक	१	४२·५	४२·५
योग	N= ७०		ΣfX= ६२२·०

मध्यमान (आयु) $= \frac{\Sigma fX}{N} = \frac{६२२}{७०} =$ ८·८८ वर्ष (सन्निकटतः शुद्ध)। ऐसे वितरणों में जिनमें वर्ग विस्तारों की चौड़ाई कभी कम या कभी अधिक हो जाती है, विषम होने के कारण यह कल्पना किसी वर्ग की कि समस्त आवृत्तियाँ उसके मध्य बिन्दु पर केन्द्रित है निराधार एवं असत्य होती है। वितरण के विषम होने पर यह कल्पना मध्यमान के मान में त्रुटि पैदा कर देती है। अतः इनके मध्यमानों का मूल्य सन्निकटतः ही शुद्ध होता है पूर्णतः नहीं।

कभी-कभी कुछ वितरणों में एक या दोनों छोरों पर अनिश्चित वर्ग विस्तार रख दिये जाते हैं। ऊपर की तालिका में अन्तिम वर्ग विस्तार ४०— और ४० से अधिक का है। ऐसी हालत में इस वर्ग का मध्य बिन्दु क्या लिया जाय निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। यदि हम यह मान लें जैसा कि ऊपर मान लिया गया है कि इस अनिश्चित वर्ग विस्तार की चौड़ाई उससे ठीक पहले के वर्ग-विस्तार की चौड़ाई के समान ही है तब भी त्रुटि हो सकती है। ऐसे खुले हुए वर्गों में जितने भी माप पड़े उनका योग तरेन्र में दे दिया जाय तो मध्यमान लगभग सही और शुद्ध निकल सकता है।

उदाहरण ५·५ (ख)—२८३ गर्भवती स्त्रियों में से जितनी स्त्रियों के गर्भपात भिन्न-भिन्न समयों पर हुए उनका आवृत्ति वितरण नीचे दिया जाता है। उस समय का मध्यमान ज्ञात कीजिये जब किसी गर्भवती स्त्री के गर्भपात का भय हो सकता है। यह आंकिक प्रदत्त बाइमेट्रिका (Biometrika) से लिया गया है।

सप्ताह X	गर्भपात होने वाली स्त्रियों की संख्या f	fX
४	३	१२
५	७	३५
६	१०	६०
७	१३	९१
८	१४	११२
९	२९	२६१
१०	२२	२२०
११	२१	२३१
१२	१८	२१६
१३	२८	३६४
१४	१६	२२४
१५	१९	२८५
१६	१०	१६०
१७	१३	२२१
१८	१४	२५२
१९	८	१६२
२०	४	८०
२१	२	२१
२२	१०	२२०
२३	४	९२
२४	४	९६
२५	३	७५
२६	४	१०४
	६	१६२
	१	२८
	२८३	३७८४

मध्यमान समय $= \frac{३७८४}{२८३}$ सप्ताह = लगभग १४

Q. 5 6 Explain the short method of calculating arithmetic mean from grouped data

वर्गबद्ध तालिका से मध्यमान (Mean) के गणना की सरल विधि (Short method)

अवर्गबद्ध सामग्री मे मध्यमान की गणना करते समय यह बतलाया गया था कि वास्तविक मध्यमान कल्पित मध्यमान और विचलन के औसत के जोड के बराबर होता है।

$$\overline{X} = \text{Assumed mean} + \frac{\Sigma d}{N}$$

जहाँ पर d कल्पित मध्यमान से प्रत्येक प्राप्तांक का विचलन है।

वर्गबद्ध श्रेणी मे आवृत्तियों के समावेश के कारण इस सूत्र मे थोडा सा परिवर्तन हो जाता है Σd के स्थान पर Σfd रख दिया जाता है। गणना क्रिया के पद उदाहरण ५·६ की सहायता से समझाये जायेंगे।

उदाहरण ५ ६—तालिका ३·२ की तालिका के वर्गबद्ध फलाको का मध्यमान ज्ञात कीजिए।

तालिका ५ ६ सरल विधि (Short method) से मध्यमान की गणना

फलाक	वर्ग का मध्य बिन्दु	विद्यार्थियों की सख्या	कल्पित मध्यमान ३३·५ से मध्यबिन्दु का विचलन	
Scores	midpoint	f	d	fd
३९-४०	३९·५	१	+६	+ ६
३७-३८	३७·५	४	+४	+१६
३५-३६	३५·५	७	+२	+१४+(३६)
३३-३४	३३·५	१३	०	०
३१-३२	३१·५	९	—२	—१८
२९-३०	२९·५	५	—४	—२०
२७-२८	२७ ५	१	—५	—६(—४४)
		n=४०		Σfd=—८

$$\overline{X} = A.M + \frac{\Sigma fd}{N}$$

$$= ३३·५ + \frac{—८}{४०}$$

$$= ३३·५ — ·२$$

$$= ३३·३$$

गणना क्रिया के पद—(१) प्रत्येक वर्ग के केन्द्रीय मान की गणना सूत्र,

केन्द्रीय मान=वर्ग की निम्नतम वास्तविक सीमा+$\frac{\text{प्रसार क्षेत्र}}{२}$। पहले वर्ग ३९—४० की निम्नतम सीमा ३८·५ और प्रसार क्षेत्र २ अंक, अतः केन्द्रीय मान=३८·५+३=३९·५ इसी प्रकार दूसरे वर्ग ३७—३८ का केन्द्रीय मान ३७·५ है।

मध्यमान (आयु) $= \frac{\Sigma fX}{N} = \frac{६२२}{७०} =$ ८·८८ वर्ष (सन्निकटतः शुद्ध)। ऐसे वितरणों मे जिनमे वर्ग विस्तारो की चौड़ाई कभी कम या कभी अधिक हो जाती है, विषम होने के कारण यह कल्पना किसी वर्ग की कि समस्त आवृत्तियाँ उसके मध्य बिन्दु पर केन्द्रित है निराधार एवं असत्य होती है। वितरण क विषम होने पर यह कल्पना मध्यमान के मान मे त्रुटि पैदा कर देती है। अत इनके मध्यमानो का मूल्य सन्निकटत. ही शुद्ध होता है पूर्णत' नहीं।

कभी-कभी कुछ वितरणों मे एक या दोनो छोरो पर अनिश्चित वर्ग विस्तार रख दिये जाते हैं। ऊपर की तालिका मे अन्तिम वर्ग विस्तार ४०— और ४० से अधिक का है। ऐसी हालत में इस वर्ग का मध्य बिन्दु क्या लिया जाय निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। यदि हम यह मान लें जैसा कि ऊपर मान लिया गया है कि इस अनिश्चित वर्ग विस्तार की चौड़ाई उससे ठीक पहले के वर्ग-विस्तार की चौड़ाई के समान ही है तब भी त्रुटि हो सकती है। ऐसे खुले हुए वर्ग मे जितने भी माप पड़े उनका योग संकेत मे दे दिया जाय तो मध्यमान लगभग सही और शुद्ध निकल सकता है।

उदाहरण ५·५ (स)—२८३ गर्भवती स्त्रियों मे से जितनी स्त्रियों के गर्भपात भिन्न-भिन्न समयों पर हुए उनका आवृत्ति वितरण नीचे दिया जाता है। उस समय का मध्यमान ज्ञात कीजिये जब किसी गर्भवती स्त्री के गर्भपात का भय हो सकता है। यह आंकिक प्रदत्त बाइमेट्रिका (Bimetrica) से लिया गया है।

सप्ताह X	गर्भपात होने वाली स्त्रियों की संख्या f	fX
४	३	१२
५	७	३५
६	१०	६०
७	१३	९१
८	१४	११२
९	२९	२६१
१०	२२	२२०
११	२१	२३१
१२	१८	२१६
१३	२८	३६४
१४	१६	२२४
१५	१९	२८५
१६	१०	१६०
१७	१३	२२१
१८	१४	२५२
१९	८	१५२
२०	४	८०
२१	२	२१
२२	१०	२२०
२३	४	९२
२४	४	९६
२५	३	७५
२६	४	१०४
२७	६	१६२
२८	१	२८
योग	२८३	३७८४

गर्भपात होने का मध्यमान समय $= \frac{३७८४}{२८३}$ सप्ताह = लगभग १४

Q. 5 6 Explain the short method of calculating arithmetic mean from grouped data

वर्गबद्ध तालिका से मध्यमान (Mean) के गणना की सरल विधि (Short method)

अवर्गबद्ध सामग्री से मध्यमान की गणना करते समय यह बतलाया गया था कि वास्तविक मध्यमान कल्पित मध्यमान और विचलन के औसत के जोड़ के बराबर होता है।

$$\bar{X} = \text{Assumed mean} + \frac{\Sigma d}{N}$$

जहाँ पर d कल्पित मध्यमान से प्रत्येक प्राप्तांक का विचलन है।

वर्गबद्ध श्रेणी में आवृत्तियों के समावेश के कारण इस सूत्र में थोड़ा सा परिवर्तन हो जाता है Σd के स्थान पर Σfd रख दिया जाता है। गणना क्रिया के पद उदाहरण ५.६ की सहायता से समझाये जायेंगे।

उदाहरण ५.६—तालिका ३.२ की तालिका के वर्गबद्ध प्राप्तांकों का मध्यमान ज्ञात कीजिए।

तालिका ५.६ सरल विधि (Short method) से मध्यमान की गणना

प्राप्तांक	वर्ग का मध्य बिन्दु	विद्यार्थियों की संख्या	कल्पित मध्यमान ३३.५ से मध्यबिन्दु का विचलन	
Scores	midpoint	f	d	fd
३९-४०	३९.५	३	+६	+ ६
३७-३८	३७.५	४	+४	+१६
३५-३६	३५.५	७	+२	+१४+(३६)
३३-३४	३३.५	११	०	०
३१-३२	३१.५	९	−२	−१८
२९-३०	२९.५	५	−४	−२०
२७-२८	२७.५	१	−६	−६(−४४)
		N=४०		Σfd = −८

$$\bar{X} = A.M + \frac{\Sigma fd}{N}$$

$$= ३३.५ + \frac{-८}{४०}$$

$$= ३३.५ - .२$$

$$= ३३.३$$

गणना किया है पद—(१) प्रत्येक वर्ग के केन्द्रीय स्थान की गणना सूत्र,

केन्द्रीय स्थान = वर्ग की निम्नतम वास्तविक सीमा + $\frac{\text{इकाई अंक}}{२}$। जैसे

वर्ग ३९—४० की निम्नतम सीमा ३८.५ और इकाई अंक २ है, तब केन्द्रीय स्थान = ३८.५ + $\frac{२}{२}$ = ३९.५ इसी प्रकार दूसरे वर्ग ३७—३८ का केन्द्रीय स्थान ३७.५ है।

क्रिया के पद—

(१) यह निश्चयपूर्वक देख लेना कि प्रत्येक वर्ग समान चौडाई का है या नहीं।
(२) कल्पित मध्यमान का चुनाव धारा ५·६ की तरह।
(३) कल्पित मध्यमान वाले वर्ग से अन्य वर्गों का विचलन निकालना—यदि ३३·५ का कल्पित मध्यमान ले लिया जाय तो ३३-३४ वर्ग से ३५-३६ वर्ग १ वर्ग अधिक होने के कारण तीसरे स्तम्भ से विचलन x=+१ लिखा गया है। x के अन्य मान इसी प्रकार लिख दिये गये हैं।
(४) चौथे स्तम्भ से f.×x का मान निकाला गया है प्रत्येक वर्ग की आवृत्ति को उससे सम्बन्धित विचलन से गुणा करके। इन सब fx गुणनफलों का योग Σfx=−४ है।
(५) *मध्यमान के सूत्र में Σfx, i, और Assumed Mean का स्थानापन्न करके मध्यमान की गणना करना।*

इस विधि को Step deviation method भी *कहते हैं क्योंकि मध्यमान वाले वर्ग से* अन्य वर्गों या Step का विचलन देखा जाता है।

Q. 5.8 How will you average averages ? Explain with an example.

मध्यमानों के औसत की गणना (Averaging averages)

यदि किसी चलराशि के n मापों की श्रेणी दो श्रेणियों के योग के बराबर हो तो पहली श्रेणी के मध्यमान की गणना अवयवी श्रेणियों के मध्यमानों की सहायता से की जा सकती है। *यदि पहली श्रेणी में N_1 माप और दूसरी में N_2 माप हों और यदि उनके मध्यमान* क्रमश. M_1 और M_2 हों तो दोनों श्रेणियों के योग वाली श्रेणी का मध्यमान M निम्न सूत्र में मिल सकता है

$$M = \frac{N_1M_1 + N_2M_2}{N_1 + N_2} \cdots (६)$$

यही कार्य दो से अधिक श्रेणियों के लिये भी किया जा सकता है।

उदाहरण ५·८ : यदि ७७४९ अंग्रेजों की एक सैम्पिल में से इंगलैंड, स्काटलैण्ड, वेल्स और आयरलैण्ड में पैदा हुए व्यक्तियों की संख्या तथा उनके औसत भार निम्नलिखित हों तो समस्त ब्रिटिश द्वीप समूह के इन व्यक्तियों का औसत भार ज्ञात करो।

	व्यक्तियों की संख्या (N)	मध्यमान भार (M)
इंगलैंड	५५५२	६७ ३१
स्काटलैण्ड	१२१२	६८ ५५
वेल्स	७३८	६६·६२
आयरलैण्ड	२४७	६७·७८
योग	७७४९	

$$\text{अंग्रेजों के समस्त सैम्पिल का औसत भार} = \frac{५५५२ \times ६७·३१ + १२१२ \times ६८५५ + ७३८ \times ६६·६२ + २४७ \times ६७·७८}{७७४९}$$

Q. 5.9 Define median. How will you find the median of a continuous or a *discrete variable from this definition ?*

मध्यांक माप की परिभाषा

किसी चल राशि के समस्त मापों को अवरोही या आरोही क्रम से सजाने के उपरान्त जो बिन्दु उस श्रेणी को इस प्रकार दो बराबर भागों में बाँट देता है कि उससे कम अथवा अधिक मान परिमाण वाले ठीक ५०% होते हैं वह बिन्दु मध्यांक माप (median) कहलाता है। मान लीजिये किसी कक्षा के पाँच विद्यार्थियों के प्राप्तांक निम्नलिखित हैं :

६६, ८०, ६५, ७२, ७०

इनको आरोही क्रम में सजाने पर अंकों की इस भांति श्रेणी प्राप्त होती है :

६५, ६६, ७० ७२, ८०

इस श्रेणी का बीचों-बीच का अंक ७० है। यह अंक ऐसा है जो इसे दो बराबर भागों में विभाजित कर देता है। ५०% अंक ७०·० से कम और ५०% ७०·० से अधिक माने जा सकते हैं क्योंकि २½ प्राप्तांक तो ७०·० से अधिक है और २½ प्राप्तांक ७०·० से कम है और स्वयं ७०, ७० नहीं है किन्तु ६९·५ से लेकर ७०·५ तक के प्रसार क्षेत्र का सूचक है जैसा कि चित्र ३.१ और ५.१ में दिखाया गया है। अतः बिन्दु ७०·० इस क्षेत्र के भी दो बराबर भाग करता है आधा प्राप्तांक ७०·० से अधिक माना जा सकता है। इस प्रकार प्राप्तांक ७०·० से कम या अधिक प्राप्तांकों की संख्या २½ अर्थात् कुल प्राप्तांकों की आधी है।

अब चूँकि मध्यांक मान ७० स्वयं उस बिन्दु का सूचक बनता है जो प्रसार क्षेत्र ६९·५—७०·५ को दो बराबर भागों में बाँटता है अतः मध्यांकमान सतत परिवर्त्य राशि (Continuous variable) के पैमाने पर वह बिन्दु है जो इस राशि के भिन्न-भिन्न मापों के सम्पूर्ण वितरण को ठीक दो बराबर भागों में बाँट दिया करता है।

चित्र ५.१—मध्यांक मान ७० का स्थान

यदि उपरोक्त श्रेणी में ५ प्राप्तांकों के स्थान पर निम्नलिखित ६ प्राप्तांक होते :

६५, ६६, ७०, ७२, ८० ८४

तो इनका मध्यांक मान ७० और ७२ के बीचों-बीच का प्राप्तांक होगा और यह प्राप्तांक

दोनों प्राप्तांकों ७० और ७२ का मध्यमान $\left(\frac{७० + ७२}{२} = ७१ \right)$ होता है। ध्यानपूर्वक देखने से

पता चल सकता है कि यह प्राप्तांक ७१ भी चर राशि का ऐसा बिन्दु है जो ६ प्राप्तांकों को दो वर्गों में बाँट देता है क्योंकि ३ प्राप्तांक इससे परिमाण में कम और ३ प्राप्तांक इससे परिमाण में अधिक है।

अतएव सतत परिवर्त्य राशि (continuous variable) के n मापों (measures) का मध्यांक मान (median) इन मापों को अवरोही या आरोही क्रम से सजाये जाने पर दो

बराबर भागों में इस प्रकार बाँट देता है कि $\frac{n}{2}$ माप इससे कम और $\frac{n}{2}$ माप इससे अधिक

होते हैं।

परिवर्त्य राशि (variable) के खण्डित (discrete) होने पर मध्यांक मान की उपर्युक्त परिभाषा में थोड़ा सा परिवर्तन कर दिया जाता है। ऐसी राशि के भिन्न-भिन्न मानों को आरोही या अवरोही क्रम से सजा देने पर जो मान इन सब मानों के बीचों-बीच होता है वही मान मध्यांक मान (median) कहलाता है। यह मान परिवर्त्य राशि के सतत (continuous) पर बीचों-बीच भी होता है और उसके दोनों ओर ५०%, ५०% मान भी स्थित रहते हैं किन्तु परिवर्त्य राशि के खण्डित (discrete) होने पर मध्यांक मान बीचों-बीच तो स्थित रहता है किन्तु श्रेणी को इस प्रकार नहीं बाँट सकता कि ५०% मान उससे कम परिमाण वाले हों और ५०% अधिक परिमाण वाले। इस तथ्य को एक उदाहरण की सहायता से स्पष्ट किया जायगा।

...s Bulbosus एक ऐसा पौधा है जिसके फूलों में ५ पत्रदलों से लेकर १० पत्रदल मिलते हैं। २२३ फूलों के एक सैम्पिल में १३३ फूल ऐसे थे जिनमें ५ पत्रदल मिले इस ...८ ५, ६, ७, ८, ९, १० पत्रदल वाले फूलों की संख्या नीचे दी जाती है :

तालिका ५.७

पत्रदलो की सख्या	फूलो की सख्या
५	१३३
६	५५
७	२३
८	७
९	२
१०	३
योग	२२३

२२३ फूलो मे बीचों बीच का फूल $\frac{२२३+१}{२}$ = ११२ वाँ हो सकता है। ११२ वें फूल मे पत्र दलो की सख्या ५ है। अत इस बीचो-वीच के फूल में पत्रदलो की सख्या ५ को पत्रदलो ... रण ... ससे ... हैं और १३३वें फूल के भी पत्रदल इतने ही हैं।

खण्डित परिवर्त्य राशि के मध्याक मान निकालने की गणना करने के लिये हमे बीचो-बीच (middle most) की माप का परिमाण ज्ञात करना होता है। यदि मापो की सख्या n विषम है तो बीचो-बीच की माप $\frac{n+१}{२}$ वीं होगी और यदि n सम है तो बीचों-बीच के दो माप $\frac{n}{२}$ वाँ और $\frac{n}{२}+१$ वाँ होंगे। तालिका ५.७ में फूलो की कुल सख्या २२३ होने पर बीचों-बीच $\frac{२२३+१}{२}$ = ११२ वाँ है किन्तु फूलो की सख्या २२२ होने पर बीचों-बीच के फूल दो होंगे १११वें और ११२ वें ऐसी दशा में १११ वें और ११२ वें फूलो के पत्रदलो के औसत को मध्याक मान माना जायगा। यहाँ पर दोनों फूलों के पत्रदल पाँच-पाँच हैं अत. मध्याक मान पाँच ही होगा।

Q 5 10 How will you determine the median in a frequency distribution table? Calculate median for the distribution

Raw score	५८-६४	५१—	४४—	३७—	३०—	२३—	१६—	९—१५
Frequency	२	४	१५	२३	२५	१२	३	१

आवृत्ति तालिका से मध्याक मान की गणना—सतत चार राशि को मध्याक मान की गणना करते समय आवृत्ति वितरण के किसी एक छोर से लगभग आधी आवृत्तियों $\left(\frac{N}{२}\right)$ को गिन लिया जाता है। तत्पश्चात् चल राशि के उस मान को निकालने का प्रयत्न किया जाता है जो वितरण को दो बराबर भागों में बाँट दे अर्थात् ५०% माप उससे परिमाण में कम और ५०% माप उससे परिमाण में अधिक हो। तालिका ५.८ मे मध्याक मान निकालने की क्रिया दी गई है। क्रिया के पद निम्नलिखित हैं :—

टिप्पणी :—

यदि सचयी श्रावृत्तियाँ ऊपर तथा नीचे से गिनने पर मध्यांकमान$\left(\frac{N}{२}\text{वीं श्रावृत्ति}\right)$ एक ही वर्ग में नहीं पड़ता तो कठिनाई पैदा हो सकती है जैसे तालिका ५'६ अ में यदि ऊपर से सचयी श्रावृत्तियाँ देखें तो $\frac{N}{२}$ वी अर्थात् २० वी श्रावृत्ति ११४—११६ वर्ग में पड़ती है और नीचे से सचयी श्रावृत्तियाँ गिनें तो वह वर्ग १०५—१०७ मे पड़ती है। अब चूंकि प्रत्येक श्रेणी का मध्यांक मान केवल एक ही होता है क्योंकि एक ही बिन्दु उस श्रेणी को दो बराबर भागों में बाँट सकता है, इसलिये इस श्रावृत्ति वितरण के रूप को इस प्रकार बदलना पड़ेगा कि २० वीं श्रावृत्ति एक ही वर्ग मे पड़े। दूसरा रूप तालिका ५'६ ब मे दिखाया गया है।

मध्यांक मान की गणना जब श्रावृत्ति वितरण के कुछ वर्गों में श्रावृत्तियाँ शून्य होने पर बीचों-बीच वाला माप एक ही वर्ग मे नहीं पड़ता।

तालिका ५'६ अ

वर्ग बुद्धि अक	श्रावृत्ति सख्या	सचयी श्रावृत्ति नीचे से गिनने पर	सचयी श्रावृत्ति ऊपर से गिनने पर
१२०—१२२	६	४०	६→
११७—११८	४	३४	१०
११४—११६	१०	३०	२०
१११—११३	०	२०	२०
१०८—११०	०	२०	२०
१०५—१०७	४	२०	२४
१०२—१०४	०	१६	२४
६६—१०१	१०	१६	३४
६६— ६८	६	६→	४०

तालिका ५ ६ ब

परिवर्तित वर्ग	परिवर्तित श्रावृत्ति सख्या	ऊपर से गिनने पर	नीचे से गिनने पर
१२०—१२२	६	↓ ६	४०
११७—११६	४	१०	३४
१११—११६	१०	२०	३०
१०५—११०	४	२४	२०
१०२—१०४	०	२४	१६
६६—१०१	१०	३४	१६
६६— ६८	६	४०	६→

२० वीं श्रावृत्ति वर्ग १११—११६ और १०५—११० में पड़ती है अतः मध्यांक मान ११०.५ होगा।

Q 5 11. Define a Mode. What is the mode of the Scores
32, 43, 15, 18, 26, 23, 22, 26, 27, 14, 18, 26, 25, 26, 27
How will you find out the mode for classified data ? Give an example

बहुलांक मान (mode)

किसी चलराशि के मापों के वितरण का वह मान जिसके आसपास अधिक से अधिक निरीक्षित माप (Observations) केन्द्रित रहते हैं बहुलाक मान (mode) कहलाता है। यह मान वितरण में अधिक से अधिक बार आता है। उदाहरणार्थ यदि किसी कक्षा के १५ विद्यार्थियो को किसी प्रश्न पत्र में निम्नलिखित फलांक प्राप्त हुये हो .

३२, ४३, १५, १८, २६, २३, २२, २६, २७, १४, १८, २६, २५, २६, २७,

तो वह फलाक जिसके आस-पास अन्य फलाको को केन्द्रित होने की प्रवृत्ति दिखाई देती है इन फलाकों को आरोही या अविरोधी क्रम से सजाने पर मालूम किया जा सकता है। उदाहरणस्वरूप, क्रम से इन मापो को सजाने पर निम्न श्रेणी प्राप्त होती हैं।

१४, १५, १८, १८, २२, २३, २५, २६, २६, २६, २६, २७, २७, ३२, ४३

इस श्रेणी में २६ अक अन्य अको की अपेक्षा अधिक से अधिक बार आने के कारण बहुलाक मान है। अन्य माप इस मान के दोनों ओर केन्द्रित होने की प्रवृत्ति रखते हैं।

फलाको की अ-वर्गबद्ध श्रेणी को देखकर सही बहुलाक मान आसानी से ज्ञात किया जा सकता है किन्तु वर्ग बद्ध श्रेणी से बहुलाक मान का प्राक्कलन मात्र ही हो सकता है।

तालिका १

Raw Score	३९	३८	३७	३६	३५	३४	३३	३२	३१	३०	२९	२८	२७
Frequency	१	१	३	४	३	६	७	४	५	३	२	०	१

तालिका २

Raw Score	३९—४०	३७—३८	३५ - ३६	३३—३४	३१—३२	२९—३०	२७—२८
Frequency	१	४	७	१३	६	५	१

तालिका १ को देखकर बताया जा सकता है कि ३३ अक बहुलाक मान है क्योंकि उसकी आवृत्ति सब अको से अधिक है किन्तु तालिका २ में फलाकों का स्वत्व (identity) लुप्त हो जाने के कारण निश्चय रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि किस अक की आवृत्ति अधिक से अधिक बार हुई है। वर्ग ३३-३४ में १३ आवृत्तियां हैं और १३ या १३ से अधिक आवृत्तियाँ अन्य किसी वर्ग में नही हैं अत इस वर्ग को बहुलांक मान वाला वर्ग (modal class) माना जा सकता था और इसके मध्य बिन्दु ३३ ५ को बहुलाक मान। परन्तु यह कल्पना कि वर्ग ३३-३४ में पड़े हुए समस्त फलाक ३३ ५ ही है सर्वथा त्रुटिपूर्ण है अत इस वितरण के बहुलांक मान का सही प्राक्कलित मान ३३·५ के अतिरिक्त और भी हो सकता है। यदि इस बहुलांक मान

मानों मे अन्तर आ जाता है। वितरण में विषमता के अधिक न होने पर इन तीनों मानों का आपसी सम्बन्ध निम्न सूत्र एवं चित्र ५'२ द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है।

Mode—Mean = 3 (Median—Mean)

अथवा Mode = 3 Mdn—2Mean

y

x

Mean Median Mode

y=3x
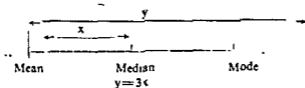
सामान्य विषमता वाले वर्गों मे बहुलांक मान की गणना मध्यमान और माध्यांक मान मालूम होने पर इस सूत्र की सहायता से की जा सकती है। Mode = ३ × ३३ — २ × ३३'३ = ९९ — ६६ ६ = ३२'४

Q. 5 13 Define a Geometric Mean. Explain how to calculate G M. with examples. When do we use G M ?

गुणोत्तर मध्यमान (Geometric mean)

यदि किसी चर राशि के भिन्न-भिन्न माप निम्नलिखित हों

$X_1, X_2, X_3 \ldots\ldots \ldots . Xn$

तो उनका गुणोत्तर मध्यमान G निम्न सूत्र से ज्ञात किया जाता है :

$$G = \text{Antilog} \frac{\log X_1 + \log X_2 + \ldots \ldots + \log Xn}{n} \quad (१०)$$

उदाहरण क्रमांक ९३, १०४, ६२, ३९, २४, ८९, १९, ९२, २३, ७३,
५'१३ (अ) ८६ ८१ ८९ ८३ २१ ४७ १६ ३३ ४८ १४

का गुणोत्तर मध्यमान निकालो

X	log	X	log
९३	१'९६८४८	८३	१'९१९०८
१०४	२'०१७०३	२१	१'३२२२२
६२	१'७९२३९	४७	१'६७२१०
३९	१'५९१०६	१६	१'२०४१०
२४	१'३८०२१	३३	१'५१८५०
८९	१'९४९३९	४८	१'६८१२०
१९	१'२७८७५	१४	१'१४६१०
९२	१'९६३७९	G = प्रतिलघु	३५'१८११ / २०
७३	१'३६१७३		
७३	१'८६३३२		
८६	१'९३४५०		
८१	१'९०८४९		
८९	१'९४९३९		
१७	१'०११००		

गुणोत्तर मध्यमान का प्रयोग देशनांकों (Index numbers) के बनाने की गणना में होता है। उदाहरण ५'१४ व में इसका प्रयोग स्पष्ट किया गया है। उदाहरण ५'१३ (ब) निम्न वर्ग सारणी से गुणोत्तर मध्यमान निकालिये।

Q. 5·14. Present a comparative view of the three central tendencies—Maen, Medien and Mode as regards,

(a) Familiarity of the concept (b) Algebraic treatment.
(c) Need for classification (d) Effect of unequal intervals

मध्यमान, मध्याकमान एवं बहुलाक मानों की विशेषतायें—केन्द्रीय मानो का तुलनात्मक अध्ययन जिन बानो को ध्यान मे रखकर किया जाता है वे निम्नलिखित हैं।

(१) प्रत्यय की परिचायिकता (Familiarity of the Concept)

मध्यमान समस्त केन्द्रीय मानो मे सबसे अधिक प्रयोग मे आने वाला माध्य (average) है। कभी-कभी तो ऐसी परिस्थितियो मे भी प्रयुक्त होना है जहाँ पर इसका आशय सदिग्ध हो जाता है। मध्यमान से कम प्रयोज्य माध्य मध्याकमान (median) माना जा सकता है। यह विचार (concept) अधिक बोधगम्य है क्योकि इससे ज्ञात होने पर हमे मालूम पड सकता है कि कितनी कलमे (items) मान मे इसके अधिक और कितनी कम हैं। यद्यपि बहुलाक मान (बहुवारी mode) का प्रत्यय कम प्रयोग मे आता है किन्तु समझ में आसानी से आ सकता है।

(२) बीजगणितीय प्रयोग्यता (Algebric treatment)

मध्यमान (Arithmetic mean) पर बीज गणितीय प्रयोग किये जा सक्ते हैं।

(अ) यदि किसी श्रेणी में X_1 X_2 ····· X_n n पद है तो मध्यमान X का मान निम्न सूत्र से प्राप्त होता है

$$X = \frac{\Sigma X}{N}$$

इस सूत्र मे तीन पद हैं, $\bar{X}$, ΣX, N इनमे से किसी दो के ज्ञात होने पर तीसरा मालूम किया जा सकता है।

(ब) यदि एक श्रेणी का समानान्तर मध्यमान (arithmetic meam) $\bar{X_1}$ दूसरी का $\bar{X_2}$ हो और उनमे पदो की संख्यायें क्रमश. n_1, n_2 हो, तो दोनो श्रेणियो का सम्मिलित मध्यमान निम्न सूत्र से मिल सकता है।

$$M = \frac{X_1N_1 + X_2N_2}{N_1 + N_2}$$

किन्तु न तो मध्याकमान और बहुलाकमान पर ही इस प्रकार के बीजगणितीय प्रयोग किये जा सकते हैं। अर्थात् दो श्रेणियो के मध्याकमान या बहुलाक मान ज्ञात होने पर उनकी सम्मिलित श्रेणी का मध्याकमान या बहुलाक मान ज्ञात नही हो सकता।

(३) प्रदत्त के वर्गीकरण की आवश्यकता

समानान्तर मध्यमान की गणना प्रदत्त को वर्गबद्ध किये बिना ही की जा सकती है किन्तु माध्य का बहुलाक मान की गणना करने से पूर्व प्रदत्त सामग्री का वर्गीकरण आवश्यक हो जाता है। इस माध्य (average) की सगणना क्रमबद्ध अको array, आवृत्ति वितरण एव ΣX और N के मान ज्ञात होने पर भी की जा सकती है। जब इसकी गणना आवृत्ति वितरण से की जाती है तब मध्यमान X का मान अवर्गबद्ध श्रेणी से प्राप्त $\bar{X}$ के मान के लगभग तुल्य होता है। आवृत्ति वितरण जितनी ही अधिक समाविष्ट होता है अवर्गबद्ध एव वर्गबद्ध श्रेणियो से आगणित मध्यमानो के विभिन्न मान समतुल्य होते हैं।

मध्याकमान (median) की गणना करने के लिये प्रदत्त को वर्गों मे विभाजित करना पड़ता है। यदि आकिक प्रदत्त को आवृत्ति वितरण मे वर्गबद्ध भी नही किया गया है तब इसका मान बिना उन्हें क्रमबद्ध किये ज्ञात नही हो सकता। यदि आवृत्ति वितरण के उस वर्ग मे जिसमे मध्याकमान पड़ता है आवृत्तियाँ समान रूप मे वितरित नही हैं तब इसका मान वास्तविक मान से भिन्न हो सकता है।

बहुलाकमान गणना आवृत्ति वितरण या क्रमबद्ध अको array से ही की जा सकती है। लेकिन यह ध्यान रखने की बात है कि आवृत्ति वितरण से आगणित बहुलाक मान सही नहीं

निकलता। बहुलांकमान को निकालने के लिये आवृत्ति वक्र को मसृणित बनाना होता। इस मसृणित वक्र का उच्चतम बिन्दु (maximum ordinate) ही बहुलांक मान को बता सकता है।

(४) मानों पर असमान वर्गों का प्रभाव—मध्यांकमान की गणना वर्गों के समान या असमान होने पर सही-सही की जा सकती है। जब आवृत्ति वितरण दशमलवयुक्त विषम हो उस समय वर्गों को असमान कर लिया जाता है। ऐसे विषम आवृत्ति वितरणों से प्राप्त मध्यमान अपेक्षाकृत से अधिक असमानों से प्राप्त किये हुआ करते हैं।

मध्यांकमान की गणना वर्गों के असमान होने पर भी आसानी से की जा सकती है। किन्तु प्रथम दशमक या प्रथम चतुर्थक के कोई वर्ग में पड़ने के कारण उसका मान ठीक निकलता नहीं होता है। बहुलांक मान पर भी वर्गों (Classes) के विस्तार की असमानता का प्रभाव पड़ता है। यदि बहुलांकमान वाले वर्ग के दोनों ओर के वर्ग समान चौड़ाई के न हुए तो बहुलांकमान का अनुमान वास्तविक न हो सकेगा।

(५) खुले वर्गों का मानों पर प्रभाव—यदि आवृत्ति वितरण में एक या दो अनिश्चित वर्ग उपस्थित हों, तो मध्यमान X की गणना ठीक तरह से नहीं की जा सकती क्योंकि ऐसे अनिश्चित वर्ग के लिये मध्य बिन्दु (mid-point) क्या हो निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। मध्यांकमान या बहुलांकमान की गणना पर ऐसे अनिश्चित वर्गों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। J. U. L. इन कारणों से आवृत्ति वितरणों से बहुलांकमान प्रायः एक छोर पर माना जाता है, किन्तु उसे हम केन्द्रीय प्रवृत्ति का मान नहीं कह सकते।

(६) न्यूनतम अथवा अधिकतम मानों (Extreme values) मध्य के मान पर प्रभाव—यदि किसी श्रेणी में एक या दो पद अत्यन्त विशाल या अत्यन्त छोटे हैं तो उनकी विशालता या लघुता का प्रभाव समानान्तर मध्यमान पर अधिक पड़ता है। मध्यांकमान या बहुलांकमान पर बिल्कुल भी नहीं पड़ता। नीचे दी गई श्रेणी को देखिये।

१२, १४, १५, १५, १६, १८, १९

इसका मध्यमान १५.५७, मध्यांकमान १५.५० और बहुलांकमान १५ है। अब इन ७ पदों में एक पद ३० और जोड़ दिया जाय तो मध्यमान १८.६२, मध्यांकमान १५.५० और बहुलांकमान १५ ही रहेगा। बहुलांकमान पर प्रभाव उस समय पड़ सकता है जब जोड़ी गई संख्या या पद १६ होता क्योंकि उस दशा में १६ की दो आवृत्तियाँ हो जाती हैं। Extreme values के प्रभाव के कारण मध्यमान कभी-कभी असामान्य मान्य (average) हो जाता है। अतएव ऐसी दशा में आवृत्ति वितरण के केन्द्रीयमान का उल्लेख करते समय न केवल मध्यमान की ही गणना की जाय वरन् मध्यांकमान एवं बहुलांकमान की भी गणना की जानी चाहिये, और यदि सम्भव हो तो आवृत्ति वक्र भी खींचकर दिखा दिया जाय।

यदि किसी श्रेणी में विजातीय (hetrogeneous) पदों के आने की आशंका है तो मध्यमान के स्थान पर मध्यांकमान की गणना की जाय, यदि हमको केवल यह मालूम हो कि किसी श्रेणी में (extreme values) की संख्या कुछ है तो मध्यांक मान का ही प्रयोग किया जाय, मध्यमान का नहीं। यदि किसी श्रेणी के पदों का प्रसार-क्षेत्र अत्यन्त विशाल हो तो किसी भी मध्यमान की गणना ठीक प्रतीत नहीं होती।

(७) विश्वसनीयता (reliability)—अध्याय ६ में देव न्यादर्श के मध्यमानों की विश्वसनीयता पर विचार किया जायगा। यहाँ पर इतना कहना काफी है कि मध्यमान मध्यांकमान अथवा बहुलांकमान की अपेक्षा अधिक विश्वस्त (reliable) होती है।

(८) गणितीय विशेषताएँ—समानान्तर मध्यमान की दो प्रमुख विशेषतायें निम्नलिखित हैं जिनके कारण उसका प्रयोग प्रसरण (dispersion) की मापों की गणना करने में किया जाता है।

यदि श्रेणी के प्रत्येक पद की विचलन (deviation) मध्यमान से x के तुल्य हो तो $\Sigma x = 0$ और $\Sigma x^2 =$ लघुतम (minimum) मध्यमान का प्रयोग कई सांख्यिकीय विधियों में किया जाता है, और मुख्यतः निरीक्षित प्रदत्त का प्रसामान्य वक्र में समायोजन (fit) करते समय किया जाता है। प्रामाणिक अंकों की गणना भी मध्यमान को मूल बिन्दु मानकर की जाती है।

संक्षेप में

(१) आवृत्ति वितरणों के केन्द्रीयमान तीन हैं जिनका प्रयोग अधिक से अधिक होता है :—

मध्यमान, मध्यांकमान, बहुलांकमान

(२) किसी चल राशि के n मानों का मध्याकमान $\overline{X} = \frac{1}{N} \Sigma x$ होता है, जब कि

$\Sigma X = X_1 + X_2 + \cdots\cdots + Xn$

(३) वास्तविक मध्यमान = कल्पित मध्यमान + औसत विचलन

$$\overline{X} = \text{Assumed mean} + \frac{\Sigma d}{n},$$

$$\overline{X} = \text{Assumed mean} + \frac{\Sigma fd}{n},$$

$$\text{और } \overline{X} = A.M + \frac{\Sigma fx}{N}।$$

किसी मान का कि वर्ग के मध्य बिन्दु का

d कल्पित मध्यमान से विचलन है। यदि चलराशि का कोई मान कल्पित मध्यमान से बड़ा है तो d का मान धनात्मक और छोटा है तो ऋणात्मक होगा, वस्तुत

d = चलराशि का मान — कल्पित मध्यमान

x कल्पित मध्यमान से वर्ग विस्तार के पदो मे विचलन है। यदि कोई वर्ग कल्पित मध्यमान वाले वर्ग से अधिक मध्य बिन्दु वाला है तो विचलन धनात्मक, अन्यथा ऋणात्मक लिया जाता है। i वर्ग विस्तार की चौडाई मानी जाती है।

(४) यदि दो श्रेणियो के मध्यमान M_1 और M_2 तथा उनकी आवृत्ति सख्यायें

क्रमश N_1 और N_2 हो तो दोनों श्रेणियो के योग का मध्यमान $M = \frac{N_1M_1 + N_2M_2}{N_1 + N_2}$

(५) विच्छिन्न परिवर्त्य राशि के भिन्न-भिन्न मापो का मध्याकमान (median) उस बीचो बीच का माप होता है। किन्तु सतत परिवर्त्य राशि के मापो का मध्यांक उन मापो की श्रेणी को इस प्रकार बाँट देता है कि ५०% माप उससे अधिक मान वाले होते हैं।

मध्याक मान की गणना के लिये निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है।

$$Mdn = l_1 + \frac{N/2 - F}{f} i$$

$$= l_2 - \frac{\frac{N}{2} - F'}{f}।$$

(६) मध्याकमान की गणना लेखा चित्र विधि से भी की जा सकती है।

(७) यदि किसी आवृत्ति वितरण को सर्वोत्तम अन्वायुक्त वक्र (closest fit) मे विकसित कर सकें तो उस वक्र के उच्चतम बिन्दु का भुज (abscissa) बहुलाकमान होगा। सरल शब्दों मे किसी चर राशि के मापों का वह मान जिसके आसपास अधिक से अधिक मान केन्द्रित रहते हैं बहुलाकमान या भूयिष्ठिक कहलाता है।

(८) मामूली विषम वक्रों मे

बहुलाकमान = मध्यमान — ३ (मध्यमान — मध्यांकमान)

(९) यदि किसी राशि के N मान क्रमश निम्नलिखित हों।

$X_1 \quad X_2 \quad X_3 \quad X_4 \cdots\cdots X_n$

	०	१	२	३	४	५	६	७	८	९	
०—९	२		४		३	१			१	१	१२
१०—१९	५	३		४		२			१		१५
२०—२९		१	७	८	१०	५		४	३	२	४०
३०—			३	५	१०	२		१		१	२२
४०—			४	३	२		२				११
											१००

[आगरा, एम० ए०, अर्थशास्त्र १९६०]

५.७ साख्यिकीय मे किन-किन औसतो का प्रयोग होता है ? किसी अच्छे औसत के गुणों का उल्लेख कीजिये। प्रत्येक माध्य का प्रयोग किन-किन अवस्थाओं मे होता है, समझाकर लिखिये। निम्न वितरण से मध्यमान, मध्याकमान एव बहुलाकमान की गणना कीजिये।

प्राप्ताक	१०—	२५—	४०—	५५—	७०—	८५—१००
आवृत्तियाँ	६	२०	४४	२६	३	१

[आगरा, एम० ए०, अर्थशास्त्र १९५७]

५.८ निम्न प्रदत्त सामग्री से मध्यमान एव मध्याकमान की गणना कीजिये। दोनो माध्यो की तुलना कीजिये।

मासिक आय १५ से अधिक	लेकिन २० से कम	आवृत्ति सख्या
२० ,,	२५ ,,	१
२५ ,,	३० ,,	७
३० ,,	३५ ,,	२१
३५ ,,	४० ,,	२७
४० ,,	४५ ,,	४२
४५ ,,	५० ,,	५४
५० ,,	५५ ,,	३४
५५ ,,	६० ,,	१४
६० ,,	६५ ,,	९
		१

[आगरा, एम० ए०, सोशिओलॉजी, १९५४]

५.९ मध्यमान, मध्याकमान, व बहुलाकमान की गणना कीजिये। सरलतम विधि का प्रयोग करिये

(१) फलाक	आवृत्ति	(२) फलाक	आवृत्ति
७०	२	९०	२
६८	२	८५	२
६६	३	८०	४
६४	४	७५	८
६२	६	७०	६
६०	७	६५	११
५८	५	६०	९
५४	४	५५	७
५२	२	५०	५
५०	३	४५	०
४८	१	४०	२

[आगरा, एम० ए० सोशियोलॉजी, १९५३

५.१० बी० ए० की परीक्षा में इतिहास एव राजनीतिशास्त्र लेने वाले १५ विद्यार्थियों ने निम्न अ प्राप्त किये, आपको किस विषय में उनके ज्ञान का स्तर ऊँचा मालूम पड़ता है ?

इतिहास	४२	२४	३८	२५	३०	४५	५८	५०	४०	६२	५५	५४	५२	४७	४३
राजनीतिशास्त्र	४६	२०	४१	४३	२५	५४	४७	३६	३०	६१	५०	६३	४५	५६	५८

[ग्रागरा, एम० ए०, गणित १९५५]

५.११ किसी क्षेत्र मे १० कुटुम्बो की मासिक ग्राय नीचे दी जाती है। मध्यमान, ज्यामितीय तथा व्युत्क्रम मध्यमानो की गणना कीजिये। कौनसा ग्रौसत (माध्य) उत्तम माना जा सकता है।
८५, ७०, १५, ७५, ५००, २०, ४५, २५०, ४०, ३६।

[ग्रागरा, एम० ए०, ग्रर्थशास्त्र १९५५]

५.१२. किसी माध्य की ग्रावश्यक विशेषताग्रो का उल्लेख कीजिये। क्या मध्यमान, मध्यांकमान एव ज्यामितीय मध्यमान मे ये ग्रावश्यक गुण मौजूद है ?

निम्नप्रदत्त से मध्यमान, माध्यका, ग्रौर बहुलाक मान की गणना कीजिये। गणना मे वर्ग विस्तार के पदो मे विचलन विधि (step deviation method) का प्रयोग किया जाय

वर्ग का मध्य बिन्दु	१५	२०	२५	३०	३५	४०	४५	५०	५५
ग्रावृत्ति	२	२२	१९	१४	३	४	६	१	१

[ग्रागरा, एम. ए. गणित, १९५६]

५.१३ निम्न ग्रावृत्ति वितरण तालिका से मध्यमान, माध्यिका, ग्रौर बहुलांक मान की गणना कीजिये

प्राप्ताक	३०-३४	३५-३९	४०-४४	४५-४९	५०-५४	५५-५९	६०-६४	६५-६९	७०-७४	७५-७९	८०-८४
ग्रावृत्तियां	२	२	३	६	८	११	१७	२३	२९	३९	७२
प्राप्तांक	८५—	९०—	९५—	१००—	१०५—	११०—	११५—	१२०—	१२५—	१३०—	१३५
ग्रावृत्तियां	४१	२८	२१	१५	१०	९	७	४	२	१→	

[एल. टी, १९४५]

५.१४. किसी विद्यालय के १५० विद्यार्थियों द्वारा परीक्षा मे प्राप्त ग्रक (marks) नीचे दिये गये हैं। माध्यका (median) ग्रौर भूयिष्ठिक (mode) ज्ञात करो।

प्राप्ताक	०-१०	१०-२०	२०-३०	३०-४०	४०-५०
ग्रावृत्ति	८	१६	२८	६०	३८

[इण्टर, कृषि १९६१]

५.१५. निम्न सारणी मे किसी कक्षा के ७५ विद्यार्थियों के प्राप्ताक दिये हैं। समा- ग्रान्तर माध्य ज्ञात करो

प्राप्ताक	०-५	५-१०	१०-१५	१५-२०	२०-२५	२५-३०	३०-३५	३५-४०
ग्रावृत्ति	२	५	७	१३	२१	१६	८	३

[इण्टर कृषि, १९६१]

५.१६. केन्द्रीय मान के ग्रावश्यक गुणों का उल्लेख कीजिये। किन-किन दशाग्रो में ज्यामितिक मध्यमान, ग्रौर हरात्मक मध्यमान मध्यमान से ग्रधिक उपयोगी सिद्ध होता है।

[एम. कॉम १९६१]

५.१७ २० जोडी बालकों को जिनकी शैक्षणिक योग्यता समान थी दो समूहो में बाँटकर धारणा पर एक प्रयोग किया गया। पहले वर्ग के २० बालको को ४० शब्द याद कराये गये ग्रौर याद कर लेने के बाद सुला दिया गया। दूसरे वर्ग के बालको को ४० शब्द याद करवाकर जगा हुग्रा रखा गया। ग्राठ घण्टे के बाद उनकी परीक्षा ली गई ग्रौर निम्न प्रदत्त एक ग्रवधि में पाये गये। इस प्रदत्त के ग्राधार पर ग्राप किस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं ?

क्रिया	
सोना	जगना
१८	१४
१२	८
१५	१०
१६	६
१४	८
१५	१०
१५	६
१७	११
१८	१३
१३	६
१६	१०
१६	१४
२०	१६
१७	८
१४	८
१०	८
१४	६
१५	१०
१३	११
६	८

५.१८. मध्यमान, मध्यका, और बहुलाक मान की विशेषताओं का तुलनात्मक विवेचन कीजिये। सामाजिक प्रदत्त को ध्यान में रखकर उनकी उपयोगिताओं पर प्रकाश डालिये। १३ व्यक्तियों की वार्षिक आय नीचे दी जाती है। उनका मध्यमान एवं मध्याकमान ज्ञात कीजिये।

२६०, ५३०, ४१०, ७१००, ४४६०, ६४०, ३२०, ६६०, ११११०
११२०, ६८००, २११०, ७२०

[M. S. W., १९६०]

५.१९. किसी परीक्षा में ५० विद्यार्थियों ने जो अंक पाये उनका वितरण नीचे दिया जाता है। मध्याकमान निकालिये।

१०—१५	१५—२०	२०—२५	२५—३०	३०—३५	३५—४०	४०—४५	योग
७	६	१४	१८	११	६	४	५०

[बनारस, बी. कॉम, १९४८]

५.२०. किसी कक्षा के ३५ विद्यार्थियों के अंक नीचे दिये जाते हैं। इनकी मध्यमान निकालिये

३०	२६	२८	२५	२३	२१	२०
२६	२६	२८	२४	२३	२१	२०
२६	२६	२७	२४	२२	२७	१६
२६	२५	२७	२४	२२	२०	१६
२८	२५	२६	२४	२१	२०	१८

अब मध्यमान को प्रत्येक अंक से घटाइये और इन विचलनों को जोड़िये।

अध्याय ६

आवृत्ति वितरणों की विचलनशीलता, विषमता और ककुदवक्रता

Q. 6.1 Enumerate the different characteristics of a frequency distribution.

किसी प्रदत्त सम्ख्यात्मक प्रदत्त (numerical data) के विषय में विशेष जानकारी हासिल करने के लिये उसे आवृत्ति वितरण तालिका में सजाकर एक निश्चित रूप दिया जाता है, किन्तु जब तक उस सामग्री का प्रतिनिधित्व करने वाले किसी मान की गणना न कर लिया जाय और यह न देख लिया जाय कि अन्य मान किसी सीमा तक उस केन्द्रीय मान के दोनों ओर फैले हुये हैं, दूसरे, जब तक यह न देख लिया जाय कि उस केन्द्रीय मान के दोनों ओर वितरण कहाँ तक सममित (symmetrical) है और अन्त में, जब तक यह ज्ञात न हो जाय कि बहुलांक मान के आसपास अन्य मान किस मात्रा तक एकत्रित हो गये हैं तब तक उस वितरण के विषय में पूरी जानकारी नहीं हो सकती। अतः किसी आवृत्ति वितरण के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त करने के लिये उसकी निम्नलिखित चार प्रवृत्तियों पर ध्यान देना पड़ता है—

(१) केन्द्रीय मान (central tendency)
(२) विचलनशीलता (variability)
(३) विषमता (skewness)
(४) ककुद वक्रता (kurtosis)

प्रत्येक आवृत्ति वितरण में ये चार प्रवृत्तियाँ सदैव क्रियाशील रहती हैं। उसके अंकों की पहली प्रवृत्ति होती है किसी निश्चित अंक की ओर झुके रहने की, जिसे हम श्रेणी का केन्द्रीय मान कह सकते हैं। दूसरी प्रवृत्ति होती है उस केन्द्रीय मान पर बहुत से अंकों के इकट्ठे हो जाने की। इस प्रवृत्ति के कारण उस वितरण का आकार ककुद जैसा हो जाने के कारण इस प्रवृत्ति को ककुद वक्रता की संज्ञा दी जाती है। शेष अंक उस केन्द्रीय मान से कम या अधिक रहने की प्रवृत्ति दिखलाते हैं, उनका फैलाव कभी अधिक होता है कभी कम। अंकों की फैलाव की इस सम्भावना को विचलनशीलता के नाम से पुकारा जा सकता है। ये अंक मध्यमान के दोनों ओर समान रूप से फैले हुये हैं अथवा असमान रूप से, इस प्रवृत्ति के कारण वह सम या विषम हो जाता है। विषमता की यह प्रवृत्ति कुछ वितरणों में अधिक होती है और कुछ में कम।

अतः दो आवृत्ति वितरणों के केन्द्रीय मानों के समान होने पर भी दोनों की तुलना नहीं की जा सकती क्योंकि दोनों वितरण अन्य बातों में भिन्न हो सकते हैं। उदाहरणार्थ श्रेणी अ और ब के मध्यमानों का मान २० होने पर भी अंकों का प्रसार क्षेत्र भिन्न है, केन्द्रीय मान २० के दोनों ओर अन्य अंकों का प्रसरण और एकत्रीकरण भिन्न है, साथ ही श्रेणी अ सममित है और ब विषम।

						मध्यमान	प्रसार क्षेत्र
श्रेणी अ	१०	१५,	२०,	२५,	३०	२०	२०
श्रेणी ब	०	२०,	२०,	२०,	४०	२०	४०

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि आवृत्ति-वितरणों के विश्लेषण के लिये माध्यो (Variability, skewness and kurtosis of frequency distributions) की गणना

के साथ-साथ उनकी विचलनशीलता (variability of measures) विषमता (skewness) और ककुद वक्रता (kurtosis) के मापों की गणना का ज्ञान आवश्यक है।

Q. 6 2 Enumerate and explain the different measures of variability.

विचलनशीलता की मापें (measures of variability)

श्रेणी अ में अधिकतम और न्यूनतम अंकों का अन्तर ३०—१०=२० और श्रेणी ब में यह अन्तर ४०—०=४० है। यह अन्तर अंकों का प्रसार क्षेत्र कहलाता है। प्रसार क्षेत्र जितना अधिक होता है उसकी विचलनशीलता उतनी ही अधिक मानी जाती है।

प्रसार क्षेत्र के अतिरिक्त अन्य मापें जो आवृत्ति वितरण की विचलनशीलता का परिचय दे सकती हैं निम्नलिखित हैं:-

(१) अन्तश्चतुर्थक प्रसार क्षेत्र (Inter quartile range)
(२) चतुर्थांश विचलन (व्यत्यय) (Quartile Deviation)
(३) मध्यक विचलन „ (Mean Deviation)
(४) प्रामाणिक या प्रमाप विचलन (Standard Deviation)

ये मापें विचलनशीलता की निरपेक्ष माप कहलाती हैं। विचलनशीलता की सापेक्ष मापों का उल्लेख धारा ६.१२ में किया जायगा।

Q. 6,3 What is Range ? Explain its limitations.

प्रसार क्षेत्र (Range)

आवृत्ति वितरण में चर राशि के न्यूनतम एवं अधिकतम मान का अन्तर प्रसार क्षेत्र कहलाता है। तालिका ३.२ अ में न्यूनतम प्राप्तांक २७ और अधिकतम प्राप्तांक ३६ है अतः प्रसार क्षेत्र ३६-२७=१२ है। न्यूनतम और अधिकतम प्राप्तांको की यह दूरी ऐसी है जिसके अन्दर सब प्रतिशत प्राप्तांक शामिल किये जा सकते हैं।

यदि आवृत्ति वितरण के किसी छोर पर अनिश्चित वर्ग (class) नहीं है तो उसका प्रसार क्षेत्र का मान ऊपर के छोर वाले वर्ग की उच्चतम सीमा तथा नीचे के छोर वाले वर्ग की निम्नतम सीमा के अन्तर के बराबर होता है। सारणी ३.३ में प्रसार क्षेत्र ६४.४—८.५=५५.९ या लगभग ५६ है क्योंकि ऊपर के छोर वाले वर्ग की वास्तविक उच्चतम सीमा ६४.४ और नीचे के छोर के वर्ग की वास्तविक निम्नतम सीमा ८.५ है। एक या दोनों छोरों के वर्गों के अनिश्चित होने पर प्रसार क्षेत्र कितना हो सकता है निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता है। सारणी ३.४ में एक ऐसे ही अनिश्चित या खुले वर्ग का उदाहरण दिया गया है।

अब चूँकि प्रसार क्षेत्र का मान दो extreme cases पर निर्भर रहता है अतः एक ही असाधारण पद के आने पर प्रसार क्षेत्र का मान बदल सकता है। इसी कारण प्रसार क्षेत्र का प्रयोग असमान्तर और खण्डित प्रदत्त (Broken data) में सर्वथा अवांछनीय है इसकी दूसरी कमी यह भी है कि किसी वितरण में प्रसार क्षेत्र के मालूम होने पर भी इस वितरण के आकार का पता नहीं चल सकता क्योंकि उस क्षेत्र के भीतर आवृत्तियां किस प्रकार वितरित है इसकी सूचना यह प्रसार क्षेत्र नहीं दे सकता। अतएव विचलन शीलता के अन्य मापों की आवश्यकता पड़ती है। प्रसार क्षेत्र से ही सम्बन्धित दो मापें और भी हैं—अन्तश्चतुर्थक प्रसार क्षेत्र (Inter Quartile Range) और १०-९० प्रतिशतात्मक प्रसार क्षेत्र। जिस क्षेत्र में बीच की ५०% आवृत्तियाँ अन्तर्लीन रहती हैं उस क्षेत्र को अन्तश्चतुर्थक तथा जिसमें बीच की ८०% आवृत्तियाँ रहती हैं उसे १०-९० प्रतिशतात्मक अथवा १-९ दशमक प्रसार क्षेत्र कहते हैं।

Q 6.4 (a) What do you mean by Inter Quartile Range ? Calculate it for the data

अन्तश्चतुर्थक प्रसार क्षेत्र (Inter Quartile Range)

वर्ग	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]
f	२	४	१५	२१	२५	१३	[illegible]	[illegible]

जिस प्रकार मध्याकमान चर-राशि (variable) के पैमाने पर एक ऐसा बिन्दु माना जाता है जो उस पैमाने को इस प्रकार बाँटता है कि ५०% आवृत्तियाँ उस बिन्दु से एक ओर और ५०% आवृत्तियाँ दूसरी ओर स्थित रहती हैं उसी प्रकार प्रथम या तृतीय चतुर्थक एक ऐसा बिन्दु है जो पैमाने को ऐसे दो भागो मे बाँटता है कि एक ओर २५% आवृत्तियाँ और दूसरी ओर ७५% आवृत्तियाँ स्थित रहती हैं। उदाहरण के लिये यदि किसी आवृत्ति-वितरण मे ४० आवृत्तियाँ हो तो पहला चतुर्थक सतत राशि की १० वीं माप और तीसरा चतुर्थक ३० वीं माप होगी। तालिका ३·२ क मे प्रथम चतुर्थक ३१ और तृतीय चतुर्थक ३५ है क्योंकि एक चौथाई मापें ३१ से कम हैं और तीन चौथाई मापें ५५ से कम हैं इन दोनो चतुर्थकों के बीच की दूरी (३५—३१=४) अतश्चतुर्थक प्रसार क्षेत्र कहलाती है। वर्ग बद्ध तालिका से अन्तश्चतुर्थक क्षेत्र मान ज्ञात करने के लिए प्रथम और चतुर्थको का मालूम करना होगा। जिस प्रकार मध्याक मान की गणना अन्तर्वेशन (Interpolation) की गई थी उसी प्रकार प्रथम और तृतीय चतुर्थक की गणना भी अन्तर्वेशन विधि से की जायगी। यदि कुल आवृत्ति सख्या N और जिस वर्ग मे N/4 वी माप पडती है उस वर्ग से एक वर्ग कम तक सचयी आवृत्ति F, तथा उस वर्ग की आवृत्ति सख्या f हो तो प्रथम चतुर्थक Q, का मान निम्न सूत्र से मिल सकता है।

$$Q_1 = l + \frac{N/4 - F}{f}\text{।}$$

इसी प्रकार $Q_3 = l + \frac{3N/4 - F}{f}$।

उदाहरण ६·४—सारणी ३·३ मे ८५ विद्यार्थियो पर लागू की गई भाटिया महोदय की बुद्धि परीक्षणता से प्राप्त फलांको का वितरण दिया गया हैं। इन ८५ विद्यार्थियो मे बीच के ५०% विद्यार्थियों के अधिकतम और न्यूनतम अकों का प्रसार क्षेत्र क्या होगा ?

बीच के ५०% विद्यार्थियों या मापों मे अधिकतम माप आवृत्ति वितरण का तृतीय चतुर्थक और न्यूनतम माप प्रथम चतुर्थक है।

क्रिया—

	चरराशि फलांक	आवृत्ति	चरराशि के लघुतम मान से उच्चतम मान की ओर गिनने पर	
	६-१५	१	१ माप	१५·५ फलाक से कम है
	१६-२२	३	४ ,,	२२·५ ,,
	२३-२६	१२	१६ ,,	२६·४ ,,
Q_1	३०-३६	२५	४१ ,,	[illegible] ,,
Q_3	३७-४३	[illegible]		
	४४-५०			
	५१-५[illegible]			

$$= ३०·९७$$

$$\frac{3N}{4} = ६३\frac{३}{४}$$

$$Q_3 = ३६·५ + \frac{६३\frac{३}{४} - ४१}{२३} \times ७$$

$$= ४३·४$$

$$Mdn = ३६·५ + \frac{३}{२५ \times २} \times ७$$

$$= ३६·५ + ·४२ = ३६·९२$$

८५ की चौथाई = २१¼ की माप २९·५ से अधिक है और ३६·५ से कम है किन्तु कितनी अधिक है यह ३० – ३६ वर्ग में (२१¼ – १६) मापों को अन्तर्वेशन (interpolation) से पता चल सकता है। ३० – ३६ वर्ग में २५ मापें हैं जो ७ फलांकों में बटी हुई हैं। अत ५¼ मापों के लिए फलांकों की संख्या = $\frac{७}{२५} \times ५\frac{१}{४}$

$$= \frac{७}{२५} \times \frac{२१}{४} = १·४७ \text{ फलांक}$$

अत २१¼ वीं माप का सम्बन्धी फलांक = २९·५ + १·४७ = ३०·९७ फलांक ३०·९७ श्रेणी का प्रथम चतुर्थक है।

अब ८५ की तीन चौथाई = ६३¾ की माप ३६·५ से अधिक (और ४३·५ से कम) है किन्तु कितनी अधिक है यह वर्ग ३७—४३ में अन्तर्वेश करके पता चल सकता है। वर्ग ३७—४३ में २३ मापें हैं जो ४१ मापें ३६·५ से कम हैं।

अत. (६३¾—४१) = २२¾ की माप के लिए २२¾ × $\frac{७}{२३}$ = ६·९ फलांक और चाहिए।
अत ६३¾ की माप का सम्बन्धी फलांक = ३६·५ + ६·९ = ४३·४ होगा।
फलांक ४३·४ तृतीय चतुर्थक है।
बीच के ५०% विद्यार्थियों के बुद्धि परीक्षा में फलांक ३०·९७ से अधिक और ४३·४ से कम होंगे।

अन्तश्चतुर्थक प्रसार क्षेत्र = (४३·४० — ३०·९७) = १२·४३

इस कक्षा के ८५ विद्यार्थियों के फलांकों का प्रसार क्षेत्र (Range) ६४·४ — ८·५ = ५५·९ या लगभग ५६ हैं किन्तु अन्तश्चतुर्थक प्रसार क्षेत्र केवल १२·४३ है। दूसरे शब्दों में शत प्रतिशत फलांक ५६ के दायरे में प्रसारित है किन्तु ५०% फलांक केवल १२·४३ फलांकों की दूरी में ही फैले हुए है। लेखाचित्रीय विधि से भी प्रथम एवं चतुर्थकों का मान ज्ञान किया जा सकता है। देखिये धारा ४·८। वहाँ पर भी बीच के ५०% विद्यार्थियों के फलांक लगभग ३१ और ४३·४ के बीच फैले हुए दिखाये गये थे।

Q. 6·4 Calculate 10—90 Percentile Range for the data given above.

१०-९० प्रतिशततमक (शतांक) प्रसार क्षेत्र (10-90 Percentile Range)

मध्यांकमान एवं चतुर्थकों (*Quartiles*) की तरह प्रतिशततमक (*Percentiles*) या शतांक भी परिवर्त्यराशि (*variable*) के पैमाने में निश्चित बिन्दु है। जिस प्रकार वितरण में मध्यांक मान से कम मान वाली परिवर्त्य राशि की ५०% मापें होती हैं उसी प्रकार प% मापें 'प' वें शतांक या प्रतिशततमक से कम मान वाली मानी जा सकती है। मध्यांकमान, प्रथम चतुर्थक और तृतीय चतुर्थक क्रमश ५० वें, २५वें और ७५वें प्रतिशततमक माने जाते हैं।

प वाँ शतांक निकालने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है।

$$\text{प वाँ शतांक} = l + \frac{\frac{P}{१००} \times N - F}{f} \, i \quad \text{—(१३) यह बीज गणितीय सूत्र}$$

अंकगणितीय विधि से अन्तर्वेश करने का सरल और संक्षिप्त रूप है।

लेखाचित्रीय ढंग से भी इसके मान का प्राक्कलन किया जा सकता है। १०—९० शताक प्रसार क्षेत्र की गणना हेतु P_{10} और P_{90} की गणना करनी होगी। उनका उत्तर १०—९० शताक क्षेत्र होगा। इन शताकों के मानों की गणना उदाहरण ६·४ में दिखाई जायगी।

उदाहरण ६·४ सारणी ३·३ के आवृत्ति वितरण का १०—९० शताक क्षेत्र ज्ञात कीजिए।

क्रिया :—

	फलाक	आवृत्ति	सचयी आवृत्ति
	९-१५	१	१
	१६-२२	३	४F
प/१० →	२३-२९	१२ f	१६
	३०-३६	२५	४१
	३७-४३	२३	६४F
प/९० →	४४-५०	१५-f	७९
	५१-५७	४	८३
	५८-६४	२	८५
	योग	८५	

क्रिया के पद

(१) ८५ का १०%=८·५

(२) ८·५वी माप २३-२९ वर्ग में है।

(३) F=४, l=२२·५, f=१२

(४) $\frac{प}{१००} \times N - ४ = ८·५ - ४ = ४·५$

(५) १०वीं शताक $२२·५ + \frac{४·५}{१२} ७$

सूत्र (१३) के अनुसार

=२२·५+२·६

=२५·१

इसी प्रकार ८५ का ९०%=७७·५

७७·५वी माप वर्ग ४४—५० में पडती है

अत l=४३·५, f=१५, F=६४

और ९०वां शताक$=४३·५ + \frac{१३·५}{१५} ७$

=४३·५+६·३

=४९·८०

∴ १०—९० शताक प्रसार क्षेत्र=४९·८०—२५·१

=२४·७

[illegible] और उनके [illegible] ाधि से भी [illegible] उदाहरण [illegible], है। प्रथम एव तृतीय चतुर्थ की गणना की इस तरह चित्र से $प_{10}$ और $प_{90}$ का भी मान पढ़ा जा सकता है। यहाँ पर $प_{10}$=२५ और $प_{90}$=५०। अतएव अन्तश्चतुर्थक प्रसार क्षेत्र की गणना की तरह १०—९० प्रतिशततमक प्रसार क्षेत्र भी लेखा चित्रीय विधि से निकाला जा सकता है।

एक ही वितरण के लिये तीनों प्रकार के प्रसार क्षेत्रों का तुलनात्मक अध्ययन तालिका ६·४ से दिये गये आंकड़ों से किया जा सकता है—

तालिका ६·४

	दूरी	सीमायें	प्रतिशत आवृत्ति
अन्तश्चतुर्थक प्रसार क्षेत्र	१२·४३	३०·९७ से ४३·४ तक	५०%
१०—९० शताक क्षेत्र	२४·७	२५·१ से ४९·८ तक	८०%
पूर्ण प्रसार क्षेत्र	५६	८·५ से ६४·४ तक	१००%

और Mdn—Q प्रसार क्षेत्र में आवृत्ति सख्या ५०% से कुछ कम या अधिक होती है। इसलिये चतुर्थांश विचलन वितरण की विचलनशीलता का माप तो है ही वह उसकी विषमता की भी परीक्षा कर सकता है। (देखिये उदाहरण ६·१६)

कमियाँ (१)—चतुर्थांश विचलन वितरण की समस्त सामग्री का उपयोग नहीं करता, क्योंकि उसका मान बीचोबीच की आवृत्ति सख्याओं से ही निकाला जा सकता है। चर राशि के मान प्रथम एव तृतीय चतुर्थकों के बीच किस प्रकार प्रसारित है केवल इसी बात की सूचना विचलनशीलता की यह माप दे सकती है, शेष मापों का प्रसरण किस प्रकार का है यह सूचना इससे नहीं मिल सकती। इस कमी को पूरा करने के लिये हमें विचलनशीलता के अन्य मापों की आवश्यकता होगी।

(२) चतुर्थांश विचलन की दूसरी परिसीमा (limitation) यह भी है कि इसका उपयोग दो वितरणों के तुलनात्मक अध्ययन के लिये नहीं हो सकता, क्योंकि दो वितरणों के प्रथम और तृतीय चतुर्थक समान होने पर भी उनकी आवृत्तियों का प्रसार भिन्न हो सकता है।

(३) इस विचलन पर किसी भी प्रकार की बीजगणितीय क्रिया नहीं की जा सकती जैसी कि प्रा० विचलन पर की जा सकती है (देखिये धारा ६·११) उदाहरणार्थ दो वितरणों के चतुर्थांश विचलन के बीच कोई सम्बन्ध नहीं होता।

Q. 6.7 Define the term Mean Deviation Explain the methods of Calculating it from :

(a) ungrouped data.
(b) grouped data—*equal intervals*
(c) ,, —*unequal intervals.*

मध्यक विचलन (Mean Deviations)

चतुर्थांश विचलन की गणना करते समय मध्यांकमान से अन्य मानो का अन्तर या विचलन नहीं निकाला जाता। अत विचलनशीलता के इस सूचनांक को अन्य मापों से मध्यांकमान के विचलन की प्रमाप नहीं कह सकते। अत हमें विचलनशीलता के ऐसे प्रमाप की आवश्यकता है जो केन्द्रीय मान से अन्य मानो के विचलन को ध्यान में रखे। मध्यांक विचलन और प्रमाणिक विचलन ऐसे माप हैं।

मध्यक विचलन—किसी श्रेणी में मध्यमान अथवा मध्यांकमान से अन्य मानों के विचलनो का औसत मध्यकविचलन कहलाता है। विचलनो का औसत निकालते समय उनके चिन्हों की उपेक्षा करदी जाती है। कुछ विद्वान इसे औसत विचलन भी कहते हैं क्योंकि यह विचलन यह सूचना देता है कि कोई फलाक केन्द्रीयमान से औसतन कितना विचलित हो सकता है। ये विचलन मध्यांक मान से निकाले गये विचलनो का औसत मध्यमान से निकाले गये विचलनो के औसत से सदैव कम होता है। (देखिये उदाहरण ६·७ अ)। सम वितरणों में दोनों केन्द्रीय मानो के बराबर होने के कारण यह मध्यक विचलन अपरिवर्तित रहता है।

प्राप्ताकों या मापों की वर्ग रहित श्रेणी से मध्यांक विचलन की गणना करने के लिये निम्नसूत्र का प्रयोग किया जाता है

$$\text{मध्यांक विचलन} = \frac{\Sigma |d|}{n} \qquad \cdots\cdots १५$$

Σ | d | का अर्थ है विचलनो के चिन्हों की उपेक्षा करके उनका योग। चिन्हों की उपेक्षा इसलिये की जाती है कि यदि ऐसा न किया जाता तो मध्यमान से विचलनो का योग शून्य हो जाता क्योंकि वह अपने से छोटे मानो से उतना ही विचलित होता है जितना कि अपने से बडे मानो से। उदाहरण ६·७ में यह स्पष्ट किया गया है कि मध्यांकमान से विचलनों का औसत मध्यमान से विचलनो के औसत से कम रहता है।

उदाहरण ६·७ अ—दस बालकों की ऊँचाइयाँ (कद) ५७, ५३, ५४, ५५, ५४, ५४ ५६, ५५, ६२, ६०, हैं। इनका औसत विचलन निकालिये—

क्रिया :—

पद	मध्यमान ५६ से विचलन d	|d|	मध्यांकमान ५५ से विचलन (d)
५७	+१	१	२
५३	—३	३	२
५४	—२	२	१
५५	—१	१	०
५४	—२	२	१
५४	—२	२	१
५६	०	०	१
५५	—१	१	०
६२	+६	६	७
६०	+४	४	५
योग ५६०	०	Σ|d| =२२	Σ|d| =२०

मध्यमान से औसत विचलन $=\frac{२२}{१०}=२.२$

मध्यमान से औसत विचलन $=\frac{२०}{१०}=२$

दो श्रेणियों के औसत विचलनों के ज्ञात होने पर उन दोनों के पदों (terms, scores) की विचलनशीलता में अन्तर का अन्दाजा लगाया जा सकता है। यदि आवृत्ति वितरण लगभग सामान्य और समामान्य है तो ५७.५% आवृत्तियाँ मध्यमान+औसत विचलन, और मध्यमान—औसत विचलन, के प्रसार क्षेत्र में आवेष्टित रहती हैं। ऊपर के उदाहरण में मध्यमान ५६ और औसत विचलन २.२ है अतः ५६+२.२ और ५६-२.२ के बीच लगभग ७०% आवृत्तियाँ हैं क्योंकि वितरण सम नहीं है। इस प्रकार वितरण की विषमता की जाँच भी मध्यक विचलन से की जा सकती है।

वर्गबद्ध श्रेणियों या आवृत्ति वितरणों से औसत विचलन निकालने के लिये भी निम्न सूत्र का प्रयोग होता है।

$$\text{औसत (मध्यक) विचलन} = \frac{\Sigma f|d|}{n}$$

यदि d आवृत्ति वितरण के मध्यमान या मध्यांकमान से प्रत्येक वर्ग के मध्यबिन्दु का विचलन है। उदाहरण ६.७ (ब) में औसत विचलन की गणना वितरण के मध्यमान ७२.६५ से की गई है। मध्यमान ७२.६५ मध्यमान वाले वर्ग का मध्यबिन्दु भी है अतः अन्य वर्गों के मध्य बिन्दुओं से ७२.६५ के विचलनों में दशमलव अंक विद्यमान नहीं हैं। उदाहरण ६.७ में औसत विचलन निकालने का दूसरा तरीका दिया गया है। यह औसत विचलन परिगणना शक्ति के प्रत्येक अंक से प्रभावित होता है और मध्यमान तथा केन्द्रीयमान के बीच अन्तर की सूचना देता है किन्तु चिन्हों की उपेक्षा करने के कारण विशेष सार्थकता इसमें नहीं है।

उदाहरण ६.७ ब—निम्नलिखित वर्गान्तर में औसत विचलन की गणना कीजिये।

क्रिया—

वर्ग	आवृत्ति संख्या f	x	fx	वर्ग का केन्द्रीय बिन्दु	मध्यमान से केन्द्रीय विक्रय विचलन | d |	f | d |
९२—९३·९	१	७	७	९२·९५	१५	१५
९०—	२	६	१२	९०·९५	१३	२६
८८—	४	५	२०	८८·९५	११	४४
८६—	१३	४	५२	८६·९५	९	११७
८४—	१८	३	५४	८४·९५	७	१२६
८२—	२२	२	४४	८२·९५	५	११०
८०—	३५	१	३५	८०·९५	३	१०५
७८—	५२	०	०	७८ ९५	१	५२
७६—	५८	—१	—५८	७६·९५	१	५८
७४—	६२	—२	१२४	७४·९५	३	१८६
७२—	३९	—३	—११७	७२·९५	५	१९५
७०—	१७	—४	—६८	७०·९५	७	११९
६८—६९९	४	—५	—२०	६८·९५	९	३६
योग	३२७		—१६३			११८९

$$\text{मध्यमान} = ७८·९५ - \frac{१६३ \times २}{३२७}$$

$= ७७·९५$ लगभग

$$\text{औसत विचलन} = \frac{११८९}{३२७} = ३·६४$$

उदाहरण ६·७—किसी कक्षा के ३६ विद्यार्थियों को ५३ अक के प्रश्न पत्र में जो अक मिले उनका आवृत्ति वितरण नीचे दिया जाता है। मध्यमान से औसत विचलन निकालो।

प्राप्तांक	आवृत्ति	वर्ग का मध्य बिन्दु		अन्य केन्द्र बिन्दुओं के ३१ से विचलन में		संचयी आवृत्ति		
	f	x	xf	d	fd			
४८—५०	१	४९	४९	६	६		१७·५	१७·५
४५—	२	४६	९२	५	१०		१४·५	२९·०
४२—	१	४३	४३	४	४		११·५	११·५
३९—	३	४०	१२०	३	९		८·५	२५·५
३६—	३	३७	१११	२	६		५·५	१६·५
३३—	६	३४	२०४	१	६ (४१)		२·५	१५·०
३०—	५	३१	१५५	०	०		·५	२·५
२७—२९	४	२८	११२	१	४	१५	३·५	१४·०
२४—	६	२५	१५०	२	१२	११	५·५	३९·०
२१—	३	२२	६६	३	९	७	९·५	२८,५
१८—	१	१९	१९	४	४	२	१२·५	१२·५
१५—	०	१६	०	५	०	१ ↑	१५·५	
१२—	१	१३	१३	६	६ (३५)	१		१८·५	१८·५
योग	३६		११३४		७६			२३०·०

क्रिया के पद (१) मध्यमान की गणना :—मध्यमान $= \frac{११३४}{३६} = ३१\frac{१}{२}$

(२) मध्यमान वाले वर्ग के मध्य बिन्दु ३१ से अन्य वर्गों के मध्य बिन्दुओं के विचलन d की गणना (देखो स्तम्भ पांचवां)

(३) fd की गणना (देखो स्तम्भ छठवां) fd का योग=७६ i क्योंकि ऋणात्मक विचलनों का योग ३५ i और धनात्मकों का ४१ i है जबकि i वर्ग विस्तार है i=३

(४) वास्तविक मध्यमान ३१½ से कम मान की आवृत्तियां १८·३ हैं क्योंकि १५ आवृत्तियां २९·५ से कम है और ५ आवृत्तियां ३ अंकों को घेरती हैं∴२ अंकों को ३·३ आवृत्ति घेरेंगी और ३१½ से अधिक मान की आवृत्तियां ३६—१८·३=१७·७ होंगी।

(५) मध्यमान ३१½ के बजाय ३१ लिया है इसलिये विचलन जो शेष और जोड़ने हैं=½ (१८·३—१७·७) i=·३i

(६) कुल विचलन=७६ i +·३ i=७६·३ i—७६.३×३
=२२८·९ प्राप्तांक लगभग

(७) औसत विचलन $= \frac{२२८·९}{३६} =$ ६·३६ प्राप्तांक

Q. 6·8 Explain the Concept of 'Standard deviation'. Why do we calculate it ?

प्रामाणिक (प्रमाप) विचलन (Standard Deviation)

यदि हम परिवर्त्य राशि (variable) के मध्यमान से भिन्न-भिन्न मानों के विचलनों के चिन्हों की उपेक्षा न भी करना चाहें तो उन विचलनों का वर्ग करने पर उन सब को धनात्मक बनाया जा सकता है। इस प्रकार विचलनशीलता के अन्य मान की कल्पना की जा सकती है किन्तु चूंकि उन विचलनों का वर्ग कर दिया गया है इसलिये उन मापों के वर्गों के औसत का वर्गमूल लेना पड़ेगा। इस तरह जो संख्या प्राप्त होगी उसे हम प्रामाणिक या प्रमाप विचलन की संज्ञा देंगे।

उदाहरण के लिये यदि २०" की दूरी के बराबर दूरी गैल्टन बारपर adjust करने में किसी प्रयोज्य ने १० प्रयासों में निम्नलिखित माप दी हैं—

१९·९, २०·१, १९·७, १९·४, २०·३, १९·३, २०·९, १९·८, २०·७, २०·२

तो प्रत्येक माप का औसत माप २०" से विचलन निम्नलिखित होगा।

—·१, +·१, —·३, —·६, +·३, —·७, +·९, —·२, +·७, +·२

और इन विचलनों का वर्ग करने पर निम्न वर्ग संख्यायें मिलेंगी

·०१, +·०१, ·०९, ·३६, ·०९, ·४९, ·४९, ·०४, ·४९, ·०४

जिनका औसत $\frac{१·९८}{१०} =$ ·१९८

प्रा० वि० $= \sqrt{·१९८}$
= ·४४ लगभग

```
        ·४४
    ४ | ·१९८०
      | १६
   ८४ |  ३८०
      |  ३३६
```

संक्षेप मे यदि चल राशि के n भिन्न भिन्न मान निम्नलिखित और उनका मध्यमान $\bar{X}$ हो

$$X_1, X_2, X_3 \cdots\cdots$$

और यदि प्रत्येक मान का $\bar{X}$ से विचलन निम्नलिखित हो

$$x_1 \;\; x_2 \;\; x_3 \cdots\cdots$$

तो प्रामाणिक विचलन $= \sqrt{\frac{\Sigma x^2}{n}}$

उदाहरण ६.८—१२ लडको की एक कक्षा की बुद्धि का मापन भाटिया बैटरी से किया गया। उनके प्राप्तांक निम्नलिखित थे। इन प्राप्तांको का प्रामाणिक विचलन निकालिये

२८, ३१, ४०, ३४, ३२, २६, ३८, ३६, ३४, ४०, ४२, ३६

इन अंको का औसत ($\bar{X}$ मध्यमान) $= \frac{४२०}{१२} = ३५$

३५ से इन अंकों का विचलन क्रमश निम्नलिखित हैं

—७,—४,+५,—१,—३,—९,+३,+१,—१,+५,+७,+४

इन विचलनो का वर्ग

४९, १६, २५, १, ९, ८१, ९, १, १, २५, ४९, १६ = २८२

प्रा० वि० $= \sqrt{\frac{२८२}{१२}} = \sqrt{२३.५} = ४.८५$

Q. 6.9. Explain with examples the different methods of calculating S. D. from ungrouped data.

(अ) वर्गबद्ध श्रेणी और प्रामाणिक विचलन

वर्ग रहित श्रेणियो से प्रा० वि० निकालने की तीन विधियाँ अपनाई जाती हैं जिनमें प्रयुक्त सूत्र निम्नलिखित हैं—

(प) प्रा० वि० $= \sqrt{\frac{\Sigma x^2}{n}}$ यदि $x = X - \bar{X}$

(ब) प्रा० वि० $= \sqrt{\frac{\Sigma X^2}{n} - \left(\frac{\Sigma X}{n}\right)^2}$ यदि X चर राशि के भिन्न-भिन्न मान हैं

(स) प्रा० वि० $= \sqrt{\frac{\Sigma d^2}{n} - \left(\frac{\Sigma d}{n}\right)^2}$ यदि d = X—Assumed Mean

उदाहरण ६.९ (अ) निम्न प्राप्तांकों का प्रा० वि० ज्ञात कीजिये

६०, २८, २१, २५, ३५, १६, १०, ५३, ४३, १५

३६, १८, ४५, ३६, ३८, २९, २८, ४९, ७०, ४४

क्रिया :—

प्राप्तांक	मध्यमान ३७·७५ से विचलन x	x^2
६०	२२·२५	४९५·०६२५
५८	२०·२५	४१०·०६२५
२१	—१६·७५	२८०·५६२५
२५	—१२·७५	१६२·५६२५
३५	— २·७५	७·५६२५
१६	—२१·७५	४७३·०६२५
३०	— ७·७५	६०·०६२५
५३	१५·२५	२३२·५६२५
४३	५·२५	२७·५६२५
१५	—२२·७५	५१७·५६२५
३९	१·२५	१·५६२५
१८	—१९·७५	३९०·०६२५
४५	७·२५	५२·५६२५
३९	१·२५	१·५६२५
३८	·२५	·०६२५
२९	—८·७५	७६·५६२५
२८	—९·७५	९५·०६२५
४९	+११·२५	१२६·५६२५
७०	३२·२५	१०४०·०६२५
४४	६·२५	३९·०६२५
योग ७५५	०	४४८९·७६००

$$\text{प्रा० वि०} = \sqrt{\frac{४४८९·७६}{२०}}$$

$$= १४·९६$$

इस विधि से प्रा० वि० की गणना करने में विशेष कठिनाई होती है क्योंकि x के वर्गों को बिना वर्गों की तालिका के निकाला नहीं जा सकता। गणना अधिक होने के कारण इस विधि का प्रयोग कम किया जाता है। यदि २० विद्यार्थियों के प्राप्तांकों के स्थान पर अधिक विद्यार्थी होते तो गणना और भी कठिन हो जाती थी। उदाहरण ६·६ ब में दूसरे सूत्र का प्रयोग किया गया है।

प्रामाणिक विचलन ज्ञात करने की सरल विधि

उदाहरण ६·६ (ब) उसी सामग्री से प्रामाणिक विचलन निकालो—

X	X^2
६०	३६००
५८	३३६४
२१	४४१
२५	६२५
३५	१२२५
१६	२५६
३०	९००
५३	२८०९
४३	१८४९
१५	२२५
३९	१५२१
१८	३२४
४५	२०२५
३९	१५२१
३८	१४४४
२९	८४१
२८	७८४
४९	२४०१
७०	४९००
४४	१९३६
योग ७५५	३२९९१

$$\text{प्रा० विचलन} = \sqrt{\frac{\Sigma X^2}{n}\left(\frac{\Sigma X}{n}\right)^2}$$

$$\sqrt{\frac{३२९९१}{२०}\left(\frac{७५५}{२०}\right)}$$

$$= \sqrt{२२४\cdot४९}$$

$$= १४\cdot९६$$

इस विधि से भी अधिक सरल एवं संक्षिप्त विधि उदाहरण ६·६ (स) में दिया गया है

प्रामाणिक विचलन ज्ञात करने की सरलतम एवं संक्षिप्त विधि—

उदाहरण ६·६ (स) उदाहरण ६·८ अ में दी गई सामग्री से प्रा० वि० निकालिये।

क्रिया के पद—

(१) प्राप्तांकों का मध्यमान उन्हें जोड़कर निकाल लेना। यह मध्यमान ३७$\frac{३}{४}$ है।

(२) ३७·७५ के समीप किसी पूर्णांक को ही कल्पित मध्यमान ले लेने से कम गणना करनी पड़ेगी और गलती का भी पता चल सकेगा।

अत कल्पित मध्यमान ३७ लिया।

(३) d की गणना और Σd निकालना Σd+१५ और यह सही है क्योंकि वास्तविक मध्यमान ३७$+\frac{१५}{२०}$ है।

(४) सूत्र प्रा. वि. $\sqrt{\frac{\Sigma d^2}{n}-\left(\frac{\Sigma d}{n}\right)^2}$ मे प्राप्त मानों का स्थानापन्न करने से

$$\text{प्रा. वि.} = \sqrt{\frac{४५०१}{२०}-\left(\frac{१५}{२०}\right)^2}$$

$$= \sqrt{२२४\cdot४८}$$

$$= १४\cdot९६$$

प्राप्तांक X	कल्पित मध्यमान ३७ से प्राप्तांक का विचलन X—A=d	विचलन वर्ग d^2
६०	२३	५२९
५८	२१	४४१
२१	—१६	२५६
२५	—१२	१४४
३५	—२	४
१६	—२१	४४१
३०	—७	४९
५३	१६	२५६
४३	६	३६
१५	—२२	४८४
३९	२	४
१८	—१९	३६१
४५	८	६४
३९	२	४
३८	१	१
२९	—८	६४
२८	—९	७२
४९	१२	१४४
७०	३३	१०८९
४४	७	४९
योग ७७५	$\Sigma d=१५$	$\Sigma d^2=४५०१$

Q 6 10. Explain with examples the different methods of calculating S. D. from a grouped data Why do we apply sheppard's correction here ?

प्रामाणिक विचलन—वर्गबद्ध आंकिक सामग्री

प्रामाणिक विचलन के गुणों, महत्व एव परिसीमाओं की विवेचना करने से पूर्व हम वर्गबद्ध सामग्री से प्रामाणिक विचलन ज्ञात करने की तीन विधियों का उल्लेख करेंगे।

वर्ग बद्ध प्रदत्त में आवृत्ति सख्याओं का समावेश हो जाता है अतः धारा ६·६ के प्रथम और तृतीय सूत्र के रूप निम्नलिखित होंगे प्रा० वि० $=\sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{n}}$ और $\sqrt{\frac{\Sigma fd_i^2}{n}-\left(\frac{\Sigma fd}{n}\right)^2}$*

---

* शैपार्ड का शुद्धिकरण—अवर्गबद्ध सामग्री (raw date) का सारणीकरण करने पर प्रदत्तों की identity लुप्त हो जाती है क्योंकि एक वर्ग में पड़ी हुई आवृत्तियाँ वर्ग के मध्य बिन्दु पर केन्द्रित मान ली जाती हैं। फलत. मध्यमान और खासतौर में प्रामाणिक विचलन की गणना में अशुद्धि आ जाती है। इस अशुद्धि की मात्रा को कम करने के लिये शैपर्ड ने प्रा० वि० का निम्न शुद्धिकृत सूत्र का उल्लेख किया है

$$\sigma^2=\sigma_1-\frac{h^2}{१२}$$

जिसमे σ वास्तविक प्रा० वि० σ_1 वर्गबद्ध प्रदत्त से प्राप्त प्रा० वि० और σ वर्ग विस्तार है यदि वर्गों की संख्या १० से अधिक हुई तो यह शुद्धिकरण व्यर्थ होता है पर N के १००० से अधिक और वर्ग के १० से कम होने पर इसका प्रयोग किया जाए।

उदाहरण ९·१० (अ) दम्पतियों में से केवल पत्नियों की आयु का वितरण नीचे दिया जाता है। प्रा० वि० की गणना कीजिये।

आयु (वर्षों में)	आवृत्ति f	वर्ग का मध्य विन्दु x	fx	मध्यमान ४८ से वर्ग के मध्य विन्दु का विचलन x	x^2	fx^2
२०—२९·९९	२	२५	५०	—२३	५२९	१०५८
३०—३९·९९	१५	३५	५२५	—१३	१६९	२५३५
४०—४९·९९	१५	४५	६७५	— ३	९	१३५
५०—५९·९९	१०	५५	५५०	+ ७	४९	४९०
६०—६९·९९	८	६५	५२०	+१७	२८९	२३१२
७०—७९·९९	३	७५	२२५	+२७	७२९	२१८७
योग	५३		२५४५			८७१७

$$\text{प्रा० वि०} = \sqrt{\frac{८७१७}{५३}} = \sqrt{१६४·४७} = १२·८३$$

क्रिया के पद—

(१) मध्यमान की गणना—वर्ग के मध्य विन्दुओं को निकालकर कीजिये यहाँ मध्यमान ४८ है

(२) ४८ मध्यमान से प्रत्येक वर्ग के मध्यबिन्दु का विचलन x ज्ञात करना

(३) प्रत्येक वर्ग के लिये x^2 का मान निकालना (देखिये छटवाँ स्तम्भ)

(४) fx^2 की गणना कीजिये (देखिये सातवाँ स्तम्भ)

(५) सूत्र प्रा० वि० $= \sqrt{\frac{\Sigma fx^2}{n}}$ में Σfx^2, और n का स्थानापन्न कीजिये।

चूँकि यह विधि काफी जटिल है अत उदाहरण ९·१० ब में सरल विधि का उल्लेख किया जायगा।

उदाहरण ९·१० (ब) प्रामाणिक विचलन की गणना सरल विधि से :—उदाहरण ९·१० अ के प्रदत्त का प्रा० वि० निकालिये।

क्रिया :—प्रत्येक वर्ग के मध्य बिन्दु की गणना कीजिये। किसी वर्ग के मध्य बिन्दु को कल्पित मध्यमान (assumed mean) लेकर अन्य वर्गों के मध्य बिन्दुओं से उसका विचलन (deviation) निकालिये। माना कल्पित मध्यमान ४५ है तो पहले वर्ग २०—३० के मध्यबिन्दु २५ का विचलन d—२० होगा। d^2 के वर्गों की गणना कीजिये तत्पश्चात् fd^2 का मान निकालिये।

अन्त में सूत्र $\sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N} - \left(\frac{\Sigma fd}{N}\right)^2}$ का प्रयोग कीजिए।

वर्ग	ग्रावृत्ति f	वर्ग का मध्य बिन्दु x	कल्पित मध्यमान से मध्य बिन्दु का विचलन x—A=d	fd	विचलन वर्ग d^2	fd^2
२०—	२	२५	—२०	—४०	+४००	+८००
३०—	१५	३५	—१०	—१५०	+१००	+१५००
४०—	१५	४५	०	०	०	०
५०—	१०	५५	+१०	१००	१००	१०००
६०—	८	६५	+२०	१६०	४००	३२००
७०—	३	७५	+३०	९०	९००	२७००
	५३			१६०		९२००

प्रा० विचलन $=\sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N}-\left(\frac{\Sigma fd}{N}\right)^2}$

$=\sqrt{\frac{९२००}{५३}-\left(\frac{१६०}{५३}\right)^2}$

$\sqrt{१७३·५८-(३)^2}=\sqrt{१६४·५८}$
$=१२·८३$

उदाहरण ६ १० स प्रामाणिक विचलन की गणना (step-deviation method) वर्ग विस्तार के पदो मे

क्रिया—(i) ग्रावृत्ति वितरण के बीच (centre) मे किसी वर्ग के मध्य बिन्दु को मूल बिन्दु (शून्य) मान लो

(ii) इस बिन्दु से अन्य वर्गों की दूरियाँ x वर्ग विस्तार के पदो (in terms of *class interval*) लिखो।

(iii) प्रत्येक वर्ग की ग्रावृत्ति f को उसकी दूरी x से गुणा करो २x(—२) =—४ (देखो चौथा स्तम्भ)

(iv) तीसरे ग्रौर चौथे स्तम्भ मे प्रविष्ठित सख्याग्रो को गुणा कर fx^2 निकालो (—२) (—४)=+८ (देखो पाँचवाँ स्तम्भ)

(v) सूत्र $i\sqrt{\frac{\Sigma fx^2}{N}-\left(\frac{\Sigma fx}{N}\right)^2}$ मे प्राप्त मानो को स्थानापन्न करो

(vi) प्रश्न शुद्ध हल किया गया है या नही इसके लिये चार्लियर चैक (charlier check) विधि का उपयोग करो।

$\Sigma f(x+१)^2=\Sigma(fx^2+२fx+१)$
$=\Sigma fx^2+२\Sigma fx+\Sigma f$
१७७ $=९२+२\times१६+५३$
$=९२+३२+५३$
$=१७७$

वर्ग	आवृत्ति f	मध्याकमान वाले वर्ग से प्रत्येक वर्ग का विचलन x	fx	fx^2	x+१	$(x+१)^2$	$f(x+१)^2$
२०—	२	—२	—४	८	—१	१	२
३०—	१५	—१	—१५	१५	०	०	०
४०—	१५	०	०	०	१	१	१५
५०—	१०	+१	+१०	१०	२	४	४०
६०—	८	+२	+१६	३२	३	९	७२
७०—	३	+३	+ ९	२७	४	१६	४८
	Σf=५३		Σfx=१६	$\Sigma fx^2=$ ९२			१७७

$$\text{प्रा० वि०} = i\sqrt{\frac{\Sigma fx^2}{n} - \left(\frac{\Sigma fx}{n}\right)^2}$$

$$= १०\sqrt{\frac{९२}{५३} - \left(\frac{१६}{५३}\right)^2}$$

$$= १०\sqrt{१.७३५८ - .०९}$$
$$= १०\sqrt{१.६४५८}$$
$$= १२.८३$$

Q. 6·11 What is the significance of the standard deviation to an investigator ? Explain its advantages and limitations.

प्रामाणिक विचलन का महत्व और उससे सम्बन्धित कुछ प्रमेय

अब तक विचलनशीलता (variability) के जितने भी माप (measures) प्रस्तुत किये गये हैं उनमे प्रामाणिक विचलन (standard deviation) विशेष महत्व का स्थान रखता है क्योंकि इसका सम्बन्ध प्रसामान्य वक्र और उसके गुणों (properties) से होने के कारण इस माप का प्रयोग अनेक सांख्यिकीय परिमितियों की विश्वसनीयता (raliability of parameters) की गणना में किया जाता है। (देखिये अध्याय ९) किसी श्रेणी के प्रसारण (dispersion) की सबसे अच्छी एवं उपयोगी माप यही मानी जाती है क्योंकि यह माप (measurse) उस दूरी को प्रदर्शित करती है जो श्रेणी के मध्यमान से दोनों ओर के प्रसार क्षेत्र में लगभग दो तिहाई (६८·२७%) पदों (items) को सम्मिलित कर सके। यदि श्रेणी के पदांकों का वितरण मध्यमान के दोनों ओर समामित है और उसको चित्रित करने पर आवृत्ति वक्र लगभग प्रसामान्य वक्र की तरह मिलता है तो ± २ प्रा० वि० के प्रसार क्षेत्र में ६८·२७% मध्यमान ± २ प्रा० वि० के प्रसार क्षेत्र में ९५·४५% और मध्यमान±३ प्रा० वि० के प्रसार क्षेत्र मे ९९·७३% आवृत्तियां आवृत्त (included) रहती है। चित्र ६·११ में इस कथन की पुष्टि की गयी है। उदाहरण ६·११ में दिये गये वितरण का मध्यमान ४२·५ है अतः मध्यमान ± १२·८३ अथवा २९·६७ और ५५·३३ के बीच लगभग १५+१५+५=३५ आवृत्तियां है जो कुल आवृत्तियों ५३ की लगभग $\frac{३५}{५३}$×१००=६७% है। इसी प्रकार मध्यमान±२ प्रा० वि०=४२·५±२५·६६ अर्थात् १६·८४ और ६८·१६ के बीच में लगभग १+१५+१५+१०+८=४९ आवृत्तियां स्थित है, जो कुल ५३ आवृत्तियों की $\frac{४९}{५३}$×१००=९२% है। यद्यपि यह वितरण काफी विषम है तब भी वह प्रसामान्य वक्र से मिलता-जुलता है।
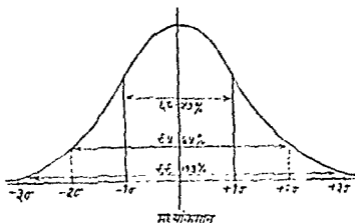
चित्र ६·११ प्रसामान्य वक्र में मध्यमान से ± १σ, ± २σ, ± ३σ, के बीच में पड़ी आवृत्तियों का प्रतिशत

मध्यमान से भिन्न-भिन्न दूरियों के बीच जो आवृत्तियाँ प्रसामान्य वक्र में मिल सकती है उनका विवरण तालिका ६·११ में दिया जाता है। किसी श्रेणी का प्रा० वि० मात्रा में जितना ही अधिक होता है उसकी विचलनशीलता उतनी ही ऊँची मानी जाती है किसी श्रेणी के भिन्न-भिन्न माप जितने ही अधिक समान या एक रूप या सजातीय (homogeneous) होते हैं उस श्रेणी का प्रा० वि० उतना ही कम होता है। उदाहरणस्वरूप जिस कक्षा के विद्यार्थियों के प्राप्तांकों का प्रा० वि० जितना ही कम होता है उस कक्षा के विद्यार्थियों के प्राप्तांको में उतनी ही सजातीयता (homogenity) होती है। यदि किसी विद्यार्थी का प्राप्तांक कक्षा के मध्यमान से उस कक्षा में प्रा० वि० के तिगुने से अधिक या कम हो तो वह विद्यार्थी उस कक्षा के लिये विजातीय माना जा सकता है।

प्रा० वि० और उच्च विचलनशीलता की अन्य मापों के बीच जो सम्बन्ध होते हैं उनका उल्लेख धारा ६·१४ में दिया जायगा।

तालिका ६·११—प्रसामान्य वक्र में मध्यमान से ±xσ के बीच पड़ी आवृत्तियों का प्रतिशत

मध्यमान से दूरी X	आवृत्ति%	मध्यमान से दूरी X	आवृत्ति%
·१	७·९६	१·६	८९·०४
·२	१५·८६	१·७	९१·०८
·३	२३·५८	१·८	९२·८२
·४	३१·०८	१·९	९४·२६
·५	३८·२९	१·९६	९५·००
·६७४५	५०·००	२·०	९५·४५
·७	५१·६०	२·२	९७·२२
·८	५७·६२	२·३	९७·८६
·९	६३·१८	२·४	९८·३६
१·०	६८·२६	२·५	९८·७६
१·१	७२·८६	२·६	९९·०६
१·२	७६·९८	२·७	९९·३०
१·३	८०·८६	२·८	९९·४८
१·४	८३·८४	२·९	९९·६२
१·५	८६·६४	३·०	९९·७३

प्रा० वि० के विषय में निम्नलिखित चार सिद्धान्त (theorems) उल्लेखनीय हैं :—

१. यदि दो स्वतन्त्र राशियो X, और Y के प्रामाणिक विचलन क्रमश σx और σy हो तो राशि (x±y) का प्रामाणिक विचलन $\sigma x \pm y = \sqrt{\sigma x^2 + \sigma y^2}$

२. यदि दो निदर्शनों के प्रा० वि० σ_1 और σ_2 हो तो उसके सयुक्त सेम्पिल या उसके उत्पत्ति मूलक समुदाय (population) का प्रा० वि० $\sqrt{\frac{n_1\sigma_1^2 + n_2\sigma_2^2}{n_1 + n_2}}$ होगा।

(३) यदि $x = a + b + c$ तो $\sigma x^2 + \sigma a^2 + \sigma b^2 + \sigma c^2$

(४) किसी भी श्रेणी मे मापो के मध्यमान से विचलनो के वर्गों का योग किसी अन्य मान से विचलनो के वर्गों के योग से कम होता है।

प्रामाणिक विचलन की दो कमियाँ उल्लेखनीय हैं। (१) जिनको साम्यिकी का ज्ञान न हो उनको समझ मे प्रा०वि० का आशय नही आ सकता (२) चूंकि extreme मानो से प्रा० वि० अत्यधिक प्रभावित हो जाता है अत. ऐसी श्रेणी मे जिनमे extreme values है। इसका प्रयोग भ्रमात्मक सिद्ध होगा।

(५) प्रमाप विचलन का सर्वोत्तम प्राक्कलन (best estimate of the standard deviation).

किसी विशाल समुदाय का प्रमाप विचलन निकालने के लिये उस समुदाय का अनन्त अधिक से अधिक सदस्यो का होना अनिवार्य है। किन्तु सेम्पिल के सदस्यों की सख्या अधिक न होने पर भी हम उस समुदाय प्रमाप विचलन का सर्वोत्तम प्राक्कलन ज्ञात कर सकते हैं। प्रमाप विचलन का यह मान निम्न सूत्रो द्वारा दिया जा सकता है

$$S = \sqrt{\frac{\Sigma(X - \bar{X})^2}{N - 1}}$$

$$= \sqrt{\frac{\Sigma(X - A)^2}{N - 1} - \frac{(\Sigma(X - A))^2}{N(N - 1)}}$$

$$= \sqrt{\frac{\Sigma X^2}{N - 1} - \frac{(\Sigma X)^2}{N(N - 1)}}$$

$$= i\sqrt{\frac{\Sigma f x^2}{n - 1} - \frac{(\Sigma f x)^2}{n(n - 1)}}$$

उदाहरण—१०० फलाकों के निम्न वितरण से प्रमाप विचलन के सर्वोत्तम प्राक्कलन की गणना कीजिए।

फलाक	आवृत्ति f	वर्ग का मध्य बिन्दु	विचलन x	fx	fx²
०- ९	२	४.५	—४	—८	३२
१०-१९	४	१४.५	—३	—१२	३६
२०-२९	६	२४.५	—२	—१२	२४
३०-३९	१७	३४.५	—१	—१७	१७
४०-४९	२६	४४.५	०	०	०
५०-५९	२०	५४.५	१	२०	२०
६०-६९	११	६४.५	२	२२	४४
७०-७९	६	७४.५	३	१८	५४
८०-८९	५	८४.५	४	२०	८०
९०-९९	३	९४.५	५	१५	७५
	१००			४६	३८२

यदि विचलनशीलता के गुणक का मान ३५% से अधिक है तो वह उचित औसत नहीं माना जा सकता। यदि वह ५% से कम है तो प्रदत्त विचलनशील नहीं है।

Q. 6 13. Explain the term Probable Error. Find the P. E. of the following scors

19 9, 20·1, 19 7, 20 3, 19 4, 20 6, 19 8, 20 7, 20 2, 19 3.

सम्भाव्य त्रुटि (Probable Error)

मनोभौतिक विज्ञान (Psycho-physics) में बहुत-सी ऐसी मापो (measurements) का सामना करना पड़ता है जहाँ भिन्न-भिन्न व्यक्ति एक ही अचल मात्रा (quantity) की भिन्न-भिन्न मापें दिया करते हैं। उदाहरण के लिये यदि २०" लम्बी दूरी को गैल्टन बार पर उपस्थित किया जाय तो एक ही व्यक्ति भिन्न-भिन्न प्रयासो में उसे भिन्न-भिन्न लम्बाइयों के बराबर समायोजित (adjust) करता है। इसी प्रकार यदि किसी उत्तर-पुस्तिका को १०० परीक्षकों से जँचवाया जाय तो भिन्न-भिन्न परीक्षक एक ही उत्तर पुस्तिका मे भिन्न-भिन्न अंक देते हैं। भिन्न-भिन्न व्यक्ति एक ही अचल वस्तु की जो मापें देते हैं वे कहाँ तक विश्वस्त हैं यह निश्चित करने के लिए एक और विचलनशीलता के माप की आवश्यकता है। यह माप सम्भाव्य त्रुटि (Probable Error) के नाम से प्रसिद्ध है। सम्भाव्य त्रुटि वह मान है जिससे अधिक ५०% त्रुटियाँ होती हैं।

Probable Error is that amount which in a given case is exceeded by the errors of one half the observations.

उदाहरण के लिये २०" की दूरी को एक प्रयोज्य ने १० प्रयासों मे समायोजित (adjust) करने का प्रयत्न किया उसके प्रयत्नों की १० मापें (observations) निम्नलिखित थी।

१९·९, २०·१, १९·७, २०·३, १९·४, २०·६, १९·८, २० ७, २०·२, १९·३

इन मापो (observations) की त्रुटियाँ (errors) निम्नलिखित थी —

—·१, +·१, —·३, + ३, —·६, +·६ —·२, +·७, +·२, —·७

आरोही क्रम से सजाने पर ये त्रुटियाँ निम्नलिखित होंगी .

—·७ —·६ —·३ —·२ —·१ +·१ + २ +·३ + ६ + ७

वह त्रुटि जो इस सैंपिल मे ठीक ५०% त्रुटियों से कम है ·२ और +·३ के बीच में कोई सख्या हो सकती है। अत. इस श्रेणी का Probable error ·२ से अधिक और +·३ से कम कोई सख्या है।

अब चूंकि किसी श्रेणी का सम्भाव्य मान (Probable value) उसका मध्यमान माना जा सकता है इसलिये सम्भाव्य त्रुटि की गणना करने के लिए त्रुटियाँ मध्यमान से ही ली जाती हैं। समस्त मापो (observations) को आवृत्ति वितरण मे सजा लेने पर मध्यमान के दोनो ओर सम्भाव्य त्रुटि के बराबर दूरी के बीच ५०% मापें आवृत्त रहती हैं। यदि किसी चर राशि की मापें सम्भाव्यता वक्र (normal curve) की तरह वितरित हों तो उसके वितरण का चतुर्थांश विचलन सम्भाव्य त्रुटि के बराबर होता है।

विचलनशीलता की इस माप का प्रयोग पहले भौतिकशास्त्र एव खगोल विद्या मे किया जाता था किन्तु अब इसका प्रयोग अर्थशास्त्र और शिक्षा क्षेत्र मे भी होने ... इन क्षेत्रो मे सम्भाव्य त्रुटि का अर्थ सम्भाव्य विचलन से लिया जाता है और ... ऐसे ही वितरणों में की जाती है जो सम भाव्य नियम ... णों में इसका प्रयोग नहीं किया जाता। ऐसे ... है।

सम ... , के बीच एक

नित्य ...

Q. 6·14. How are different measures of variability related to each other?

विचलनशीलता के मापों के बीच सम्बन्ध (Relation between different measures of variability)

विचलनशीलता की भिन्न-भिन्न मापें एक दूसरे से सम्बन्धित होती हैं लेकिन यह सम्बन्ध सम सम्भाव्य वक्रों (normal curves) या उनसे मिलते-जुलते वक्रों में ही लागू हो सकता है। तालिका ६·१४ अ में ये सम्बन्ध दिये जाते हैं।

तालिका ६·१४ अ प्रामाणिक विचलन और अन्य विचलनों का सम्बन्ध

चतुर्थांश विचलन = ·६७४५ प्रामाणिक विचलन
मध्यक विचलन = ·७९७९ प्रामाणिक विचलन
चतुर्थांश विचलन = ·८४५३ मध्यक विचलन
प्रामाणिक विचलन = १·२५३३ मध्यक विचलन
मध्यक विचलन = १·१८३० चतुर्थांश विचलन
प्रामाणिक विचलन = १·४८२६ चतुर्थांश विचलन

नीचे तालिका ६·१४ ब में विचलनशीलता की भिन्न-भिन्न मापों, इनके केन्द्र एवं वह प्रसार-क्षेत्र दिया गया है जिसमें लगभग सभी आवृत्तियाँ घिरी रहती हैं

तालिका ६·१४ ब

विचलनशीलता की माप	केन्द्र	९९.५ प्रतिशत सख्या का प्रसार-क्षेत्र
चतुर्थांश विचलन	मध्याकमान	·८
मध्याक विचलन	मध्यमान	७½
प्रा० वि०	,,	६
सम्भाव्य त्रुटि	,,	८

Q 6·15. Explain the different measures of skewness based on
(a) Pearsonian concept of skewness
(b) Percentiles and Quartiles
(c) Third moments
Give examples

वितरण वक्रों की विषमता की मापें (Measures of skewness of frequency distributions)

केन्द्रीयमान के दोनो ओर आवृत्तियों का वितरण सममित हो सकता है या असममित। उदाहरण के लिये, सही और समभार के ६ सिक्को को एक साथ ६४ बार फेंकने पर यह देखा गया है कि केवल १ बार सब सिक्के पीठ के बल गिरे किन्तु ६ बार सिक्के पीठ के बल और १ सिक्का सिर के बल गिरा। ये आवृत्तियाँ तालिका ६·१५ में दी गई हैं —

तालिका ६·१५—६ सिक्कों को एक साथ ६४ बार फेंकने पर सिर पाने की आवृत्तियाँ

सिर पाने की सख्या	सिर पाने की आवृत्तियाँ
०	१
१	६
२	१५
३	२०
४	१५
५	६
६	१
	६४

इन आवृत्तियों को देखने से पता चलता है कि वे सफलता संख्या ३ के दोनों ओर समान रूप से अपकीर्ण हैं। ऐसे आवृत्ति वितरण को सममित और उसके वक्र को सम वक्र कहते हैं।

उदाहरण ५·५ ब में जो तालिका दी गई है उसका मध्यमान ८·८ वर्ष है। इस आयु में दोनों ओर जो आयु उस तालिका में दी गई है उन पर पीड़ित व्यक्तियों की संख्यायें सममित नहीं हैं। इसका कारण यह है कि स्कारलेट ज्वर से छोटे बच्चे अधिक पीड़ित हुए और वयस्क व्यक्ति कम। यह आवृत्ति वितरण विषम है जिसमें विषमता की मात्रा काफी अधिक है। विषम वक्रों में कुछ वक्र तो इतने विषम होते हैं जितना यह किन्तु बहुधा ऐसे विषम वक्र अधिक संख्या में नहीं मिलते। इस वक्र में विषमता दायीं ओर है अतः इसको दक्षिणायत विषम वक्र कहते हैं। कुछ वक्रों में विषमता बायीं ओर भी होती है उन्हें वामायत विषमता वाले वक्र कहते हैं। दक्षिणायत विषमता वाले वक्र समाज विज्ञानों (Social Sciences) से सम्बन्धित अन्वेषणों में अधिक मिलते हैं। वामायत और दक्षिणायत वक्रों को क्रमशः ऋणात्मक एवं धनात्मक विषमता वाले वक्र भी कहते हैं।

पिछली धाराओं (sections) में आवृत्ति वितरणों के केन्द्रीयमानों की गणना विधियाँ और उनके दोनों ओर अन्य मापों के फैलाव की मात्रा के मापन के तरीकों का वर्णन किया जा चुका है। विचलनशीलता के गुणक केवल इतनी सूचना देते हैं कि किस मात्रा तक चर राशि के भिन्न-भिन्न माप केन्द्रीयमान के दोनों ओर प्रसारित हैं। अब यह भी जानना आवश्यक है कि भिन्न-भिन्न माप केन्द्रीयमान के दोनों ओर समान रूप से प्रसारित हैं या असमान रूप से। यदि ये मापें समान रूप से प्रसारित नहीं है तो उस विषमता की माप क्या हो सकती है। धारा ६·६ और ६·७ में आवृत्ति वितरणों की विषमता की माप की ओर संकेत किया गया था। विषमता की मापें वास्तव में केन्द्रीयमान और विचलनशीलता की मापों पर ही आश्रित हैं। इन मापों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है:—

(१) पीयार्सन (Pearson) की विषमता की मापें।
(२) चतुर्थांश एवं प्रतिशतात्मक अथवा शतांशीय मापों पर आश्रित मापें।
(३) तृतीय घूर्ण (moment) पर आश्रित मापें।

बहुत से वितरणों के मध्यमान और बहुलांकमान में अन्तर रहता है। इस अन्तर को पियार्सन विषमता की स्थूल माप मानता है। उनके अनुसार आवृत्ति वितरण के पूर्णतया सममित होने पर मध्यमान, मध्यांकन तथा बहुलांकमान बराबर होते हैं अतः उनकी विषमता शून्य कही जा सकती है। आवृत्ति वितरणों में मध्यमान और बहुलांकमान में अन्तर जितना ही अधिक होता है उनकी विषमता उतनी ही अधिक मानी जाती है। किन्तु विषमता की इस स्थूल माप की उपयोगिता अधिक नहीं है क्योंकि—

(१) अनेक आवृत्ति वितरणों में बहुलांकमान की गणना कठिन एवं अशुद्ध होती है। अतः विषमता की यह माप सही सही नहीं निकाली जा सकती।

(२) यदि बहुलांकमान की गणना आसान भी हो तब भी इस स्थूल मान का प्रयोग ऐसे दो वितरणों के तुलनात्मक अध्ययन में नहीं किया जा सकता जिनका विचलन समान होता है। अतः ऐसे वितरणों की तुलना करने के लिये विषमता की सापेक्ष माप निकालनी पड़ेगी। मध्यमान और बहुलांकमान के अन्तर को प्रामाणिक विचलन से भाग देने पर जो संख्या प्राप्त होती है उसे विषमता गुणक कहा जाता है।

$$\text{विषमता गुणक} = \frac{\text{मध्यमान} - \text{बहुलांकमान}}{\text{प्रा० वि०}}$$

यदि दो वितरणों में मापों की इकाइयाँ भिन्न-भिन्न हैं तब दोनों में विषमता-गुणकों की तुलना करने से यह पता चल सकता है कि कौनसा वितरण अधिक विषम है और कौन सा

कम विषम। यदि किसी वितरण का बहुलांकमान आसानी से ज्ञात न हो सके तो उसकी विषमता की मात्रा निम्न सूत्र से निकाली जाती है।

$$\text{विषमता गुणक} = \frac{३(\text{मध्यमान} - \text{मध्यांकमान})}{\text{प्रा० वि०}}$$

क्योंकि थोड़े से विषम वितरण के लिये

$$\text{मध्यमान} - \text{बहुलांक मान} = ३\,(\text{मध्यमान} - \text{मध्यांकमान})$$

इस सूत्र का उल्लेख धारा ५·१२ में किया जा चुका है। विषमता गुणक का मान इस सूत्र से +३ या —३ के बीच कुछ भी हो सकता है। मध्यमान के मध्यांकमान से अधिक होने पर यह गुणक धनात्मक तथा मध्यमान के मध्यांकमान से कम होने पर यह गुणक ऋणात्मक होता है।

उदाहरण—६·१५ (अ) किसी आवृत्ति वितरण का मध्यमान ७७·६५ और बहुलांकमान ७५·६५ तथा प्रामाणिक विचलन ४·५१ अंक है तो उसकी विषमता की माप बतलाइये।

$$\text{क्रिया—विषमता गुणक} = \frac{\text{मध्यमान} - \text{बहुलांकमान}}{\text{प्रा० वि०}}$$

$$= \frac{७७·६५ - ७५·६५}{४·५१}$$

$$= \frac{२·००}{४·५१} = +·४$$

यदि इस वितरण का मध्यांकमान ७७·३८ होता और बहुलांकमान ज्ञात न होता तो

$$\text{विषमता गुणक} = \frac{३\,(७७·६५ - ७७·३८)}{४·५१} = +·१८$$

दोनों विधियों से विषमता गुणकों में थोड़ा बहुत अन्तर अवश्य आता है किन्तु यह मान दोनों दशाओं में ३ से काफी कम है अतः वितरण अधिक विषम माना नहीं जा सकता।

उदाहरण—६.१५ (ब) निम्नलिखित आवृत्ति वितरण की विषमता की मात्रा ज्ञात करो।

वर्ग	आवृत्ति	x	fx	fx²	संचयी आवृत्ति
२०—२९·९	२	—२	—४	८	२
३०—३९·९	१५	—१	—१५	१५	१७ F
४०—४९·९	१५ f	०	०	०	३२
५०—५९·९	१०	+१	१०	१०	४२
६०—६९·९	८	+२	१६	३२	५०
७०—७९·९	३	+३	९	२७	५३
	५३		१६	९२	

इस वितरण में प्रत्येक वर्ग की वास्तविक निम्नतम सीमा वही है जो लिखी गई है।

$$\text{मध्यमान} = ४५ + \frac{१६}{५३} \times १०$$

$$= ४५ + ३\frac{१}{५३}$$

$$=४८\frac{१}{५३}$$

$$N/२=२६.५$$

$$\text{मध्याकमान} =४०+\frac{२६.५-१७}{१५}\times१०$$

$$=४०+\frac{९.५\times१०}{१५}$$

$$=४०+६.३३$$

$$४६.३३$$

$$\text{प्रा० वि०}=१०\sqrt{\frac{९२}{५३}-\left(\frac{१६}{५३}\right)^2}$$

$$=१२.८२$$

$$\text{विषमता गुणक}=\frac{३\ (\text{मध्यमान}-\text{मध्याकमान})}{\text{प्रा० वि०}}$$

$$=\frac{३\ (४८.०२-४६.३३)}{१२.८२}=\frac{३(१.६९)}{१२.८२}=\frac{५.०७}{१२.८२}=+.४$$

Q. 6 16. When it is difficult to find mode of a distribution, what method would you adopt to calculate its skewness ?

Give examples

बहुलाकमान तथा विषमता

कुछ आवृत्ति वितरणों में शुद्ध बहुलाकमान निकालने की कठिनाई के कारण बौले (Bowley) महोदय ने वितरणों की विषमता की माप ज्ञात करने के लिये प्रथम और तृतीय चतुर्थक तथा मध्याकमान के बीच सम्बन्ध का प्रयोग करने का सुझाव दिया है। सम वितरणों में दोनों चतुर्थक मध्याकमान से बराबर दूरी पर स्थित रहते हैं। किन्तु विषम वितरणों में ऐसी बात नहीं मिलती। दक्षिणायत विषमता वाले वितरणों में तृतीय चतुर्थक मध्याकमान से प्रथम चतुर्थक की अपेक्षा अधिक दूरी पर तथा वामायत विषमता वाले वक्रों में प्रथम चतुर्थक तृतीय चतुर्थक की अपेक्षा मध्याकमान से अधिक दूरी पर स्थित होता है। देखो चित्र अ, ब, स—

Q_1 Mdn Q_3 — सम वितरण
शून्य विषमता वाले वितरण

Q_1 Mdn Q_3 — दक्षिणायत विषम वितरण
धनात्मक विषमता वाले वितरण

Q_1 Mdn Q_3 — वामायत विषम वितरण
ऋणात्मक विषमता वाले वितरण

सम या शून्य विषमता वाले वितरणों में

$$Mdn-Q_1=Q_3-Mdn \text{ अथवा } Q_3-Mdn-(Mdn-Q_1)=0$$

$$\text{अथवा } Q_3+Q_1-2\ Mdn=0$$

किन्तु दक्षिणायत या धनात्मक विषमता वाले वितरणों में

$$Q_3 - Mdn > Mdn - Q_1$$

अथवा $Q_3 + Q_1 - 2\ Mdn > 0$

इसी प्रकार वामायत या ऋणात्मक विषमता वाले वितरणों में

$$Q_3 + Q_1 - 2\ Mdn < 0$$

इस प्रकार $Q_3 + Q_1 - 2\ Mdn$ विषमता की स्थूल माप कही जा सकती है।

किसी वितरण के लिये यह सख्या जितनी ही अधिक होगी उसकी विषमता उतनी ही अधिक होती है। विषमता की सापेक्ष माप ज्ञात करने के लिये इस सख्या को चतुर्थांश विचलन से भाग दे देते हैं। इस प्रकार—

$$\text{विषमता की माप } SkQ = \frac{Q_3 + Q_1 - 2\ Mdn}{\frac{Q_3 - Q_1}{2}}$$

विषमता की इस माप का अधिक से अधिक मान $+2$ और कम से कम मान -2 होता है।

उदाहरण—६·१६ ८५ विद्यार्थियों को भाटिया साहब की बुद्धि परीक्षा माला में जो अक प्राप्त हुए उन अको के आवृत्ति वितरण की विषमता की मात्रा निकालो।

उदाहरण—६·४ से $Q_1 = ३०·६७$, $Q_3 = ४३·४$, $Mdn = ३७·६०$

$$SkQ = \frac{४३·४० + ३०·६७ - २(३७·६०)}{\frac{४३·४० - ३०·६७}{२}}$$

$$= \frac{७४·३७ - ७५·२०}{६·२१} \qquad = -\frac{\overset{१२४३}{·८३}}{६·२१}$$

$$= -·१$$

Q 6·17. How is skewness of a distribution related to the position of its percentiles ?

प्रतिशततांमकों या शताशीय मानों पर आधारित विषमता की माप

प्रथम और तृतीय चतुर्थको की गणना में वितरणों के उपरी और निचले एक चौथाई भाग की उपेक्षा की जाती है, अतः SkQ विषमता का इतना अधिक सुग्राहक माप नहीं कहा जा सकता जितना कि १० वें और ९० वें प्रतिशततमको पर आधारित विषमता का गुणक हो सकता है क्योंकि यह प्रसार क्षेत्र बीच की ८०%जनसख्या को ध्यान में रखता है। यदि वितरण सम है तो मध्याकमान से ९० वें शततांशीयमान की दूरी और मध्यांकमान से १० वें शततांशीयमान की दूरी दोनो बराबर होगी। किन्तु वितरण के दक्षिणायत या वामायत होने पर इन दूरियों में अन्तर आ जायगा।

धारा ६·१६ की तरह—

$P_{90} + P_{10} - 2\ Mdn > \leq 0$ यदि वितरण दक्षिणायत या वामायत विषम

$$\text{विषमता गुणक की सापेक्षमाप} = \frac{P_{90} + P_{10} - 2\ Mdn}{P_{90} - P_{10}}$$

उदाहरण ६·१७—यदि $P_{10} = २१·५$ $P_{10} = ४०·६$ $Mdn = ३१·३$

$$\text{तो } Sk_p = \frac{२१\cdot५ + ४०\cdot६ - २ \times ३१\cdot३}{४०\cdot६ - २१\cdot५}$$

$$= \frac{६२\cdot४ - ६२\cdot६}{१९\cdot४} = -\cdot०१$$

Q. 6·18. What is the third moment of a distribution ? How is skewness of a distribution related to the third moment ? Explain with examples.

तृतीय घूर्ण पर आधारित विषमता की माप

किसी चर-राशि के भिन्न-भिन्न मानों के मध्यमान से उन मानों के विचलनों का औसत श्रेणी के सम या विषम होने पर प्रत्येक दशा में शून्य होता है किन्तु उन विचलनों के घनों का औसत श्रेणी के सम होने पर शून्य किन्तु विषम होने पर शून्य नहीं होता। देखिए तालिका ६·१८

तालिका ६·१८ तृतीय घूर्ण की गणना

सममित श्रेणी	x	x^3	विषम श्रेणी	x	x^3
५	—१०	—१०००	६	—६	—२१६
१०	— ५	— १२५	१३	—२	— ८
१५	०	०	१५	०	०
२०	५	+ १२५	१८	३	+ २७
२५	१०	+१०००	२०	५	+१२५
७५	०	०	७५	०	— ७२

मध्यमान से धनों का औसत तृतीय घूर्ण कहलाता है और निम्न सूत्र से प्रगट किया जाता है।

$$\mu_3 = \frac{\Sigma fx^3}{n}$$

किन्तु यदि कल्पित मध्यमान वाले वर्ग से अन्य वर्गों के विचलन वर्ग विस्तार के पदों में d' हो तो

$$\mu_3 = \frac{\Sigma fd'^3}{n} - \frac{3\,\Sigma d'}{N} \frac{\Sigma fd'^2}{N} + 2\left(\frac{\Sigma fd'}{N}\right)^3$$

और तृतीय घूर्ण में प्रामाणिक विचलन के घन का भाग देने से विषमता का सापेक्ष गुणक निकाला जा सकता है।

अत सापेक्ष विषमता गुणक $\frac{M'_3}{\sigma 3}$

इसकी गणना धारा ६·१९ के उदाहरण के साथ की जायगी।

Q. 6·19. Explain the term Kurtosis. How will you measure the *Kurtosis of a distribution ?*

वितरणों की ककुदवक्रता (Kurtosis)

. . . . की अपेक्षा अधिक चपटे और कुछ अधिक कुब्बदार . . . भाटिया साहब ने अपनी बुद्धि परीक्षा माला में . . . वितरण इस प्रकार था।[1]

1. Performance Tests of Intelligence By C. M. Bhatia, pp. 66.

बुद्धि लब्धि
१२५— १२०—११५— ११०—१०५— १००— ९५— ९०—८५— ८०— ७५— ७०—
आवृत्तियाँ
१४ २७ ४४ ५० ७५ १०१ ९७ ६४ ५३ ३६ २४ २४

इस वितरण का वक्र सम सम्भावित वक्र की अपेक्षा अधिक चिपटा है। इसके विपरीत सारिणी ९·३ में दिया हुआ वितरण जो उसी बुद्धि परीक्षा को एक प्राइमरी पाठशाला के ८५ विद्यार्थियों के प्राप्तांकों से सम्बन्धित है उसका रूप निम्नलिखित है—

प्राप्तांक ९— १६— २३— ३०— ३७— ४४— ५१— ५८
आवृत्तियाँ १ ३ १२ २५ २३ १५ ४ २

सम सम्भावित वक्र से अधिक नुकीला दिखाई देता है। वितरण वक्रों के अधिक चिपटे या नुकीलेपन की प्रवृत्ति को ककुदवक्रता (Kurtosis) कहते हैं।

सम सम्भावित वक्रों की तुलना में चिपिट या कूट ककुद्मी वक्रों का रूप क्या होगा चित्र ९·१९ में दिखाया गया है।

शतांशीय मानों के पदों में ककुद वक्रता की माप निम्न सूत्र से दी जाती है।
ककुद वक्रता की माप—

$$= \frac{\text{चतुर्थांश विचलन}}{\text{१०—९० शतांशीय प्रसार क्षेत्र}}$$

इस गुणक का मान ·२६३ से अधिक होने पर वितरण चिपिट ककुद्मी तथा ·२६३ से कम होने पर कूट ककुद्मी कहलाता है। सम सम्भावित वक्रों को मध्य ककुद्मी वक्र कहते हैं।

ककुद वक्रता की माप ज्ञात करने के लिये वितरण के मध्यमान से प्रत्येक के अन्य मानों के विचलनों के चतुर्थ घातों का औसत निकाला जाता है।

$$\mu_4 = \frac{\Sigma fx^4}{n} \text{ और कल्पित मध्यमान}$$

मानें कहीं से अन्य वर्गों के मध्य बिन्दुओं का विचलन वर्ग विस्तार के पदों में d' हो तो

$$\mu_4 = \frac{\Sigma fd'^4}{N} - 4\frac{\Sigma fd'}{N}\,\frac{\Sigma fd'^3}{N}$$

$$+ 6\left(\frac{\Sigma fd'}{N}\right)^2 \frac{\Sigma fd'^2}{N} - 3\left(\frac{\Sigma fd'}{N}\right)^4$$

ककुद वक्रता की सापेक्ष माप होती है।

$$\frac{\mu^4}{\sigma^4}$$

चित्र ९·१९

इस माप को β_2 भी कहते हैं; चिपिट ककुद्मी वक्रों के लिये $\beta_2 < ३.०$ होता है और कूट ककुद्मी वक्रों के लिए $\beta_2 > ३.०$ और सम सम्भावित वक्रों के लिए $\beta_2 = ३.००$ होता

आवृत्ति वितरण की विषमता और ककुद वक्रता का ज्ञान प्राप्त किये बिना हम उससे किसी प्रकार निष्कर्ष (statistical Inference) नहीं निकाल सकते क्योंकि हमारे बहुत से निष्कर्ष प्रसामान्य वक्रो के लिये सत्य होते हैं अन्य वक्रो के लिये नहीं। (देखिये अध्याय ६)

इस अध्याय के अन्त मे हम पाठको का ध्यान शिक्षा क्षेत्र मे अति प्रचलित एक प्रत्यय की ओर देंगे जिसका आभास अध्याय ४ मे दिया जा चुका है। वह है प्रतिशततमक अनुपस्थिति या शताक श्रेणी (Percentile Rank, P. R.)। यदि कोई विद्यार्थी अपनी कक्षा में ६०% विद्यार्थियों से अच्छा है तो हम कहते हैं उसकी प्रतिशततमक अनुस्थिति ६० है। किसी अक की प्रतिशततमक अनुस्थिति प्रतिशत सचयी वक्र से किस प्रकार ज्ञात की जा सकती है इसका उल्लेख धारा ४'८ मे किया जा चुका है।

सक्षेप मे

१. किसी भी समक माला के आवृत्ति वितरण के समझने के लिये उसके माध्य (average), अपकिरण (dispersion) और विषमता (skewness) का ज्ञान होना आवश्यक है।

२ अपकिरण या विचलनशीलता की माप निम्नलिखित है :—
प्रसार-क्षेत्र, अन्तश्चतुर्थक प्रसार-क्षेत्र, १०—६० प्रतिशततमक प्रसार क्षेत्र मध्यक विचलन, प्रामाणिक विचलन, चतुर्थांश विचलन।

३. अन्तश्चतुर्थक प्रसार क्षेत्र मे बीच की ५०% १०—६० प्रतिशततमाक प्रसार क्षेत्र मे बीच की ८०% आवृत्तियों का समावेश रहता है। अन्तश्चतुर्थक प्रसार क्षेत्र $=Q_3-Q_1$

४. किसी श्रेणी के मध्याकमान अथवा मध्यमान से उसके भिन्न-भिन्न मानो के अन्तरो (विचलनों) का औसत मध्यक विचलन (mean deviation) कहलाता है। मध्याकमान से मध्यक विचलन मध्यमान से मध्यक विचलन की अपेक्षा सदैव कम होता है।

५. यदि किसी परिवर्त्यराशि के N भिन्न-भिन्न मान निम्नलिखित हो
$x_1\ x_2,\ x_3 \dots\ x_n$
और मध्यमान से उनके विचलन क्रमश $d_1\ d_2\ d_3 \cdots\ d_n$ हो तो मध्यक विचलन

$$= \frac{1}{N}[\Sigma d]$$

प्रामाणिक विचलन $=\sqrt{\frac{\Sigma d^2}{N}}$

६. वर्गबद्ध प्रदत्त मे प्रामाणिक विचलन निकालने के लिये निम्नलिखित सूत्रो का प्रयोग किया जाता है।

$$(१)\ \sqrt{\frac{\Sigma f d^2}{N}}$$

$$(२)\ i\sqrt{\frac{\Sigma f x^2}{N}-\left(\frac{\Sigma f x}{N}\right)^2}$$

७. वर्गबद्ध श्रेणियो मे यदि N १००० से अधिक हो तो शैपार्ड की शुद्धि का प्रयोग किया जाता है। परिशुद्धीकृत प्रामाणिक विचलन यदि σ_1 मान लिया जाय और प्राप्त विचलन σ हो तो

$$\sigma_1=\sqrt{\sigma^2-\frac{h^2}{१२}}$$ जिसमे h वर्ग विस्तार की लम्बाई है।

८. पीयर्सन का विषमता गुणाक $=\frac{\text{मध्यमान—बहुलाकमान}}{\text{प्रामाणिक विचलन}}=\frac{३\ (\text{मध्यमान—मध्याकमान})}{\text{प्रा॰ वि॰}}$

बौले का ,, $=\frac{Q_1+Q_3-2M_i}{2Q}$

Q. 6.20. Explain the meaning of Percentile Rank. Calculate the P. R. **of a pupil who gets 55 marks in the distribution.**

C.	58—	51—	44—	37—	30—	23—	16—9
f.	2	4	15	23	25	12	3 1

उसी प्रदत्त की सहायता से हम शताक श्रेणी या प्रतिशततमक अनुस्थिति की गणना विधि करेंगे। मान लीजिये प्रदत्त सामग्री निम्नलिखित है—

८'५ से कम अक पाने वाले विद्यार्थी		०
१५'५	,,	१
२२'५	,,	४
२९'५	,,	१६
३६'५	,,	४१
४३'५	,,	६४
५०'५	,,	७९
५७'५	,,	८३
६४'५	,,	८५

३५ अक से कम पाने वाले विद्यार्थियों की प्रतिशत सख्या क्या है ?

यह अक ३५ वर्ग विस्तार २९'५—३६ ५ में पड़ता है जिसमे २५ व्यक्तियों के अक पड़ते हैं। २९'५ से कम अक पाने वालो की सख्या १६ है। अत ३५ अक को इस वर्ग विस्तार में अन्तर्वेश करना होगा।

३५—२९'५=५'५ अक

७ अक बँटे हुए हैं २५ व्यक्तियो मे

५'५ ,, $\frac{२५}{७}$ × ५'५ = १९'६४ व्यक्ति

= २० लगभग।

१६ व्यक्तियो के अक तो २९'५ से कम हैं ही

२० और व्यक्ति ऐसे हैं जिनके अक ३५ से कम हैं

∴ ३६ व्यक्तियो के अक ३५ से कम होगे

∵ ८५ मे ३६ व्यक्तियो के अक ३५ से कम हैं

∴ १०० मे $\frac{३६}{८५}$ × १००..... ३५ से कम है

= ४२%

इसी आंकिक गणना को बीजीय सूत्र द्वारा सक्षिप्त रूप दिया जा सकता है।

$$PR = \frac{१००}{N}\left[F + \frac{(X - l_1)f}{t}\right]$$

जिसमे N और F क्रमश. कुल एव सचयी आवृतियों की सख्यायें हैं, X वह फलाक है जिसकी प्रतिशत तमाक अनुस्थिति ज्ञात करनी है, l_1 उस वर्ग की निम्नतम सीमा है जिसमे X फलाक पड़ता है और f और t उस वर्ग की आवृति एव विस्तार।

उदाहरण ६.२०—यदि ८५ विद्यार्थियो के फलाकों का आवृति वितरण निम्नलिखित हो तो ५५ फलाक पाने वाले विद्यार्थी की कक्षा में प्रतिशत तमाक अनुस्थिति ज्ञात कीजिये।

प्राप्तांक	आवृत्ति	संचयी आवृत्ति
५८—६४	२	
५१—५७	४	
४४—५०	१५	७९
३७—४३	२३	६४
३०—३६	२५	४१
२३—२९	१२	१६
१६—२२	३	४
९—१५	१	१
	८५	

क्रिया —

$N = ८५$

$X = ५५$

$F = ७९$

$l_1 = ५०·५$

$f = ४$

$i = ७$

$$PR = \frac{१००}{८५}\left[७९ + \frac{५५ - ५०·५}{७} \times ४\right]$$

$$= \frac{१००}{८५}\left[७९ + \frac{४·५ \times ४}{७}\right]$$

$$= \frac{१००}{८५}\left[७९ + \frac{१८·०}{७}\right]$$

$$= \frac{१००}{८५}\left[७९ + २·५७\right]$$

$$= \frac{८१५७}{८५} = ९५·८ = ९६ \text{ लगभग}$$

५५ से कम अंक पाने वाले ९६ प्रतिशत छात्र इस कक्षा में हैं। लेखाचित्रीय विधि से इन विद्यार्थियों का प्रतिशत लगभग ९६ था।

[न्यूटन की अन्तर्वेशन (Interpolation) विधि से इसकी गणना धारा १०·३ में की जायगी।]

अभ्यासार्थ प्रश्न

९·१ मध्य, अपकिरण, और विषमता (averages dispersion and skewness) किसी भी समंक माला के आवृत्ति वितरण के समझने में एक दूसरे की सहायता करते हैं। (आगरा, बी०काम०, १९६०)

९·२ निम्न तालिका से चतुर्थक विचलन, माध्य विचलन (average deviation) और विषमता गुणक निकालिये।

ऊँचाई इंचों में	५८	५९	६०	६१	६२	६३	६४	६५	६६
विद्यार्थियों की संख्या	१५	२०	३२	३५	३३	२२	२०	१०	८

(आगरा, बी०काम०, १९६०)

९·३ २४ पारियों में खिलाड़ी अ और ब ने निम्न फलांक पाये। इन अंकों के आधार पर बताइये कौनसा खिलाड़ी सदैव समान रूप में अच्छा खेलता है ?

(अ) ७४, ७५, ७८, ७८, ७२, ७३, ७९, ७८, ८१, ७६, ७२, ७२
७३, ७४, ७०, ७८, ७९, ८०, ८१, ७४, ८०, ८५, ७१, ७३

(ब) ८९, ८४, ८०, ८८, ८९, ८५, ८६, ८२, ८२, ७९, ८६, ८०
८२, ७६, ८६, ८९, ८७, ८३, ८०, ८८, ८६, ८१, ८४, ८७

(आगरा, एम०ए० गणित, १९६०)

६·४ चतुर्थक, मध्यमान और प्रा० विचलन की गणना कीजिये।

प्राप्तांक	३५—	३६—	३७—	३८—	३९—	४०—	४१—४२
आवृत्ति संख्या	१४	२०	४२	५४	४५	१८	७

(आगरा, एम० ए०, गणित १९५८)

६·५ मध्यमान, मध्यांकमान एवं उन पर आधारित अपकिरण (dsipersion) के गुणकों (coefficients of variation) की गणना कीजिये

आकार	४	६	८	१०	१२	१४	१६
आवृत्ति	२	४	५	३	२	१	४

(आगरा, एम०ए०, अर्थशास्त्र १९५४)

६·६ "जब तक किसी आवृत्ति वितरण की विचलनशीलता की माप ज्ञात न हो तब तक उसका कोई भी माध्य महत्व नहीं रख सकता" स्पष्ट कीजिये।
निम्न प्रदत्त का प्रा० वि० निकालिये।

प्राप्तांक	आवृत्ति
१५—२०	१
२०—	७
२५—	२१
३०—	२७
३५—	४२
४०—	५४
४५—	३४
५०—	१४
५५—	६
६०—	१

[आगरा एम०ए०, (Sociology)]

६·७ ३·६ से प्राप्त आवृत्ति वितरण का मध्यमान प्राम णिक विचलन एवं प्रतिशत तमक निकालिये। (एल० टी०, १९५७)

६·८. निम्न फलांकों का प्रा० वि० और मध्यमान ज्ञात कीजिये और बताइये कि कितने प्रतिशत फलांक मध्यमान से ± प्रा० वि०, ± २ प्रा० वि० और ± ३ प्रा० वि० के प्रसार क्षेत्र में स्थित नहीं है।

९४, ९५, ९६, ९३, ८७, ७९, ७३, ६९, ६८, ६७
७८, ८२, ८३, ८६, ९५, १०३, १०८, ११७, १३०, ९७

(आगरा, एम० ए० गणित, १९५६)

६·९. ५०० व्यक्तियों के कद नीचे दिये जाते हैं उनका औसत कद एवं प्रा० वि० निकालिये।

कद ऊँचाई में	६०	६१	६२	६३	६४	६५	६६	६७	६८	६९	७०	७१	७२	७३	७४	७५
आवृत्ति	१	२	१	९	१७	४३	७१	९४	८९	८०	५४	२६	७	४	१	१

(दिल्ली, एम० ए०, १९५९)

६·१०. निम्न श्रेणी से मध्यांकमान अस्सीवां प्रतिशततमक ९४ फलांक का शतांक माप (Percentile Rank) निकालिये।

फलांक	७३	७८	८३	८८	९३	९८	१०३	१०८	११३	११८	१२३	१२८	१३३
आवृत्ति	३	१०	१८	२७	४३	४०	३५	२६	२२	११	६	१	१

(एल० टी०, १९५५)

६·११. निम्नलिखित दो वर्गों के लिये विषमता गुणकों की गणना कीजिये।

प्राप्तांक	वर्ग अ	वर्ग ब
५५—	१२	२०
५८—	१७	२२
६१—	२३	२५
६४—	१८	१३
६७—७०	११	७

(आगरा, अर्थ० एम० ए०, १९५४)

६·१२ कार्ल पीयर्सन का विषमता गुणक निकालिये :

अंक	विद्यार्थियों की संख्या
०—से अधिक	१५००
१०— "	१४००
२०— "	१०८०
३०— "	९८०
४०— "	७६०
५०— "	७००
६०— "	३००
७०— "	१४०
८०— "	०

(आगरा एम० काम० १९६०)

६·१३. प्रश्न ३·११ में दिये गये प्रदत्त में बहुलांकमान, और तृतीय चतुर्थक तथा चतुर्थांश विचलन निकालिये। (एल०टी०, १९५४)

६·१४. निम्नलिखित आवृत्ति वितरण में मध्यमान तथा प्रामाणिक विचलन निकालिये।

बुद्धि लब्धि	६०—	७०—	८०—	९०	१००	११०	१२०—	१३०—	१४०-१४९
आवृत्तियाँ	२	५	७	३१	४१	२३	६	३	१

(एम०टी०, १९५४)

६·१५. नीचे आठ विद्यार्थियों के प्राप्तांक दो परीक्षाओं में जो उनको मिले दिये जाते हैं। इन प्रदत्तों की समीपता (closeness) की विवेचना कीजिये।

विद्यार्थी	१	२	३	४	५	६	७	८
अ	४०,	१३,	१६,	२८,	४२,	४६,	१७,	३५
ब	३३,	१६,	१८,	११,	३०,	३०,	२०	१०

(एम०ए०, मनोविज्ञान, आगरा १९६०)

६·१६. निम्न प्रदत्त के मध्यमान और प्रा० वि० की गणना कीजिये।

आयु	९५-९९	१००-	१०५	११०-	११५-	१२०-	१२५-	१३०-	१३५-	१४०-	१४५-	१५०-१५५
आवृत्तियाँ	३	७	११	३५	२३	८	६	३	०	२	१	१

(एम०ए०, मनोविज्ञान, १९६०)

६·१७. इसी वितरण में १० वें, ७५ वें, और ८३ वें शतांशमानों की गणना ...

(एम०ए०, मनोविज्ञान, १९

६'१८. निम्न प्रदत्त को आवृत्ति वितरण मे बदलिये Q और SD का मान निकालिये।

५६, ४८, ७१, ५०, ६६, ४८, ६५, ५७, ५३, ६७, ५३, ७६
८२, ६६, ६६, ४७, ५३, ६६, ७१, ४७, ५७, ६१, ६४, ६१
६१, ५६, ६४, ६०, ४७, ६७, ६०, ६२, ३७, ६१, ५५, ४३
६२, ५१, ७६, ७३, ५४, ६५, ५१, ५०, ५०, ४७
५७, ६३, ५७, ७०, ८१ (एम०ए०, मनोविज्ञान, १९५६)

६'१९. निम्न प्राप्तांको का मध्यमान, माध्यका, प्रा० वि० निकालिये

१४८, २४३, २२७, १७१, २१५, १६६, २३३, २०५, १७६, १६६,
१९७, १९९, १४७, १६२, १८६, १७३, ३२१, १८७, २१५, १६८,
१५६, २०३, १९६, १६७, १८६ (बी० टी०, १९५७)

६ २० निम्न वितरण का प्रमाप विचलन निकालिये

८५—	२
८०—	१
७५—	४
७०—	६
६५—	१३
६०—	२६
५५—	१९
५०—	१२
४५—	८
४०—	३
३५—	२
३०—	१

अध्याय ७

सह-सम्बन्ध और सहचारिता

(Correlation and Association)

Q. 7·1 Explain the terms Correlation and Association. How are two variables correlated ?

सामान्यत प्रत्येक शिक्षक अपने बालकों की विशेषताओं का मापन अथवा मूल्यांकन दो प्रकार से करता है। एक ओर वह किसी विद्यार्थी समूह को उसकी बौद्धिक परिपक्वता (Mental maturity) अथवा वास्तविक आयु के अनुसार वर्गों में बांटता है, दूसरी ओर उसी समूह को सामाजिक स्तर एवं मानसिक स्वास्थ्य के अनुसार मयोग तालिका में सजाता है। दोनों अवस्थाओं में वह जानना चाहता है कि दो परिवर्त्य राशियों या दो विशेषता (attributes) में क्या सहसम्बन्ध है; आयु के बढ़ने या घटने के साथ क्या मानसिक परिपक्वता बढ़ती या घटती है और क्या उच्च वर्ग वाले बालक अधिकतर स्नायु रोगी (neurotic) होते हैं ?

जब एक परिवर्त्य राशि (आयु) के घटने या बढ़ने के साथ यदि दूसरी परिवर्त्य राशि (मानसिक परिपक्वता) घटती या बढ़ती है तो हम कहते हैं कि दोनों राशियाँ सहसम्बन्धित (correlated) हैं। इसी प्रकार उच्च वर्ग वालों में स्नायु रोगियों (neurotics) की प्रतिशत सख्या उच्च वर्ग वालों में स्वस्थमन (normals) वालों की प्रतिशत सख्या से अधिक होती है तब हम कहते हैं कि उच्च सामाजिक स्तर और स्नायुरोगिता (neurosis) दोनो सहचारी (associated) विशेषक (attributed) हैं। इस प्रकार दो राशियाँ सहसम्बन्धित होती हैं और दो विशेषक सहचारी।

सहसम्बन्धित (Correlated variables) राशियाँ

दो चर राशियाँ सहसम्बन्धित होती हैं यदि एक के घटने बढ़ने के साथ-साथ दूसरी राशि भी घटती या बढ़ती है। उदाहरण के लिये १० छात्रों की आयु तथा उनके प्राप्तांकों का सम्बन्ध देखिए।

विद्यार्थी	प्राप्तांक	x	आयु (महीनों में)	y
१	११५	—२१·८	७६	—३२·२
२	१२४	१२·८	७५	—३६·२
३	११५	— १·८	१०६	— ३·२
४	११५	— १·८	११०	— १·२
५	११५	— १·८	११०	— १·२
६	११०	— ६·८	१११	— ०·२
७	१२०	—१६·८	१११	— ०·२
८	१३६	+२२·२	११४	+२६·८
९	१३४	+२७·२	१४७	+३५·८
१०	१३१	+१४·२	१२६	+१४·८
	११६·८			

पीयर्सन[1] को दिया जाता है। इन्होने देखा कि किसी व्यक्ति समुदाय को दो योग्यताओं में मापित किये जाने पर जो अकयुग्म (pair of scores) मिलते हैं उनमे प्राय. सरल रेखात्मक (linear relationship) सम्बन्ध होता है। उदाहरणस्वरूप किसी वर्गाकित पत्र पर यदि हम तालिका ७.२ के अक युग्मो को चित्रित (Plot) करें तो इस प्रकार प्राप्त १० बिन्दुओं में होकर एक रेखा गुजर सकती है। इस प्रकार के सम्बन्ध को सरल रेखात्मक सम्बन्ध कह सकते हैं। दूसरी बात जो कार्ल पीयर्सन ने देखी वह यह थी कि एक गुण मे औसत (मध्यमान) से (कम) अक पाने वाले व्यक्तियो का एक बड़ा समुदाय दूसरे गुण मे भी मध्यमान से कम अक प्राप्त करता है और एक गुण मे मध्यमान से अधिक अक पाने वाले बहुत कम व्यक्ति दूसरे गुण मे उसके मध्यमान से कम अक प्राप्त करते हैं। तालिका ७.२ से पता चलता है कि बुद्धि परीक्षा मे ७ व्यक्ति मध्यमान ३६.८ से कम अक पा रहे हैं और वही सात व्यक्ति दूसरे गुण (आयु) मे आयु के मध्यमान १११.२ से कम आयु वाले हैं। पहले गुण (बुद्धि) मे मध्यमान से अधिक अक पाने वाले शेष तीन व्यक्तियों में कोई भी व्यक्ति आयु में आयु के मध्यमान से कम नहीं है। इसी तालिका के तीसरे और छठवें स्तम्भो को देखकर पता चलता है दोनो राशियों के मध्यमानो से प्रत्येक मान के विचलन x, और y या तो ऋणात्मक है या धनात्मक। इन दोनो विचलनों x और y का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिये और दोनों को समान इकाई मे बदलने के लिये x मे σx से y में σy से भाग दिया जा सकता है। यदि दोनो परिवर्त्य राशियो मे अनुकूल सहसम्बन्ध ऊँचा

या अधिक है तो $\frac{x}{\sigma x}$ के धनात्मक होने पर तत्सम्बन्धी $\frac{y}{\sigma y}$ भी धनात्मक होगा और $\frac{x}{\sigma x}$ के

ऋणात्मक होने पर तत्सम्बन्धी $\frac{y}{\sigma y}$ भी ऋणात्मक होगा। अत दोनो राशियो $\frac{x}{\sigma x}$ और $\frac{y}{\sigma y}$ के

गुणनफलो $\left(\frac{xy}{\sigma x \sigma y}\right)$ का मध्यमान धनात्मक होगा।

इस दशा में $\frac{\Sigma xy}{N\sigma x\sigma y}$ के धनात्मक अधिकतम सख्या होने के कारण कार्ल पीयर्सन ने

इस व्यजक को ऊँचे अनुकूल सहसम्बन्ध का सूचक मान लिया। तभी से N अक युग्मो मे सहसम्बन्ध की मात्रा प्रकट करने के लिये व्यजक (Expression)

$$\frac{\Sigma xy}{N\sigma x\sigma y}$$

की गणना की जाती है और इस राशि को परिघात सहसम्बन्ध गुणाक कहते हैं।

Q 73. What is the product moment method of finding correlation coefficient? Explain the different methods of finding it with examples of grouped & ungrouped data

सहसम्बन्ध गुणाक—यदि दो राशियो के बीच सरल रेखात्मक सम्बन्ध हो और दोनों राशियो के आवृति वितरण सममित एवं एक कुब्ज वाले मध्य ककुदी (maso kurtic) हो तो उनके बीच सहसम्बन्ध सूचक (Index) निम्नलिखित गुणक होगा.

$$\frac{\Sigma xy}{N\sigma x\sigma y}$$

---

1. Karl Pearson—Grammar of Science, page 77. (Adam & Char' Black, London, 1900)

जिसमे Σ योग का चिन्ह, N संख्या युग्मो (pair of scores) की संख्या, x पहली चर राशि के मध्यमान x से उसके भिन्न-भिन्न मानों का विचलन, y दूसरी चर राशि के मध्यमान y से उसके भिन्न-भिन्न मानो का विचलन तथा σx और σy X और Y राशियों के प्रामाणिक विचलन है। इस गुणाक को अंग्रेजी के अक्षर r से लिया जाता है। r का मान $-1\cdot0$ और $+1\cdot0$ के बीच कुछ भी हो सकता है।

सहसम्बन्ध गुणकों के भिन्न-भिन्न सूत्र (Different formulae for product moment correlation coefficient)

(१) यदि प्रदत्त सामग्री अव्यवस्थित (ungrouped) है जैसी कि तालिका ७·२ या तालिका ३ ६ मे दी गई है तो गणना की सुविधा को ध्यान में रखकर निम्न सूत्रो का प्रयोग किया जाता है

यदि दोनो राशियों के मध्यमान पूर्णांक हैं तो

(अ) $$r = \frac{\Sigma xy}{\sqrt{\Sigma x^2}\ \sqrt{\Sigma y^2}}$$

यदि एक या दोनो राशियो के मध्यमान पूर्णांक नही हैं तो

(ब) $$r = \frac{\frac{\Sigma xy}{N} - \frac{\Sigma x'}{N}\ \frac{\Sigma y'}{N}}{\sqrt{\frac{\Sigma x'^2}{N} - \left(\frac{\Sigma x'}{N}\right)^2}\ \sqrt{\frac{\Sigma y'^2}{N} - \left(\frac{\Sigma y'}{N}\right)^2}}$$

जिसमे x', y' किसी मान का कल्पितमान लेकर विचलनो की मात्रायें हैं,
यदि कैलकुलेटिंग मशीन आसानी से मिल सकती है तो

(स) $$r = \frac{N\ \Sigma xy - \Sigma x \Sigma y}{\sqrt{N\Sigma x^2 - (\Sigma x)^2}\ \sqrt{N\Sigma y^2 - (\Sigma y)^2}}$$

जिसमे X और Y दोनों राशियों के भिन्न-भिन्न मान है।

(२) यदि प्रदत्त वर्गबद्ध है तो हम r की गणना के लिये निम्न सूत्र का प्रयोग करते हैं। इस सूत्र का अंश सह प्रसरण (Covariation) की मात्रा बतलाता है। हर मे दोनो राशियो x और y के प्रमाप विचलन लिखे गये हैं।

(द) $$r = \frac{\frac{\Sigma fxy}{N} - \frac{\Sigma fx}{N} \cdot \frac{\Sigma fy}{N}}{\sqrt{\frac{\Sigma fx^2}{N} - \left(\frac{\Sigma fx}{N}\right)^2}\ \sqrt{\frac{\Sigma fy^2}{N} - \left(\frac{\Sigma fy}{N}\right)^2}}$$

ऊपर जो चार सूत्र सहसम्बन्ध गुणाक की गणना के लिये दिये गये हैं ये सब एक ही सूत्र $\frac{\Sigma xy}{N\sigma x\sigma y}$ के परिवर्तित रूप हैं। इनका प्रयोग उदाहरण ७·४ अ, ब, द, में किया जाता है।

उदाहरण ७·४ अ अव्यवस्थित अंक सामग्री (दोनों राशियों के मध्यमान पूर्णांक)

१२ विद्यार्थियों के दो परीक्षाओं में फलांक नीचे दिये जाते हैं। सहसम्बन्ध गुणक की गणना कीजिये

विषय	अंक												योग
गणित	२८	३१	४०	३४	३२	२६	३८	३६	३४	४०	४२	३९	४२०
विज्ञान	५६	६०	६२	६५	६६	६८	६७	७१	७३	७७	७७	७४	८१६

क्रिया—

विद्यार्थी गणित और विज्ञान के फलांको को X, और Y मानकर

	X	Y	x=X—३५	y=Y—६८	xy	x^2	y^3
१	२८	५६	—७	—१२	८४	४९	१४४
२	३१	६०	—४	— ८	३२	१६	६४
३	४०	६२	+५	— ६	—३०	२५	३६
४	३४	६५	—१	— ३	+ ३	१	९
५	३२	६६	—३	— २	+ ६	९	४
६	२६	६८	—९	०	०	८१	०
७	३८	६७	+३	— १	— ३	९	१
८	३६	७१	+१	+ ३	३	१	९
९	३४	७३	—१	+ ५	— ५	१	२५
१०	४०	७७	+५	+ ९	४५	२५	८१
११	४२	७७	+७	+ ९	६३	४९	८१
१२	३९	७४	+४	+ ६	२४	१६	३६
योग	४२०	८१६	०	०	२२२	२८२	४९०

$\overline{X} = \frac{४२०}{१२} = ३५$

$\overline{Y} = \frac{८१६}{१२} = ६८$

$\Sigma xy = २२२$

$\Sigma x^2 = २८२$

$\Sigma y^2 = ४९०$

$$\therefore r = \frac{२२२}{\sqrt{२८२ \times ४९०}}$$

$= \cdot५७$

$$\text{और } \sigma y = \sqrt{\frac{२९२}{१२}}$$

$= ४\cdot७९$

$$\sigma y = \sqrt{\frac{४९०}{१२}}$$

$$= ६·४$$

उदाहरण ७·४ ब अव्यवस्थित अंक सामग्री (किसी भी राशि का मध्यमान भिन्नात्मक)

१२ विद्यार्थियों के दो परीक्षाओं में प्राप्तांक नीचे दिये जाते हैं। सहसम्बन्ध गुणक की गणना कीजिये।

गणित	३८ ३१ ४० ३४ ३२ २६ ३८ ३६ ३४ ४० ४२ ४६
विज्ञान	५६ ६० ६२ ६५ ६६ ६८ ६७ ७१ ७३ ७७ ७७ ८०

क्रिया—गणित और विज्ञान के फलांकों को X, Y मान लो तथा मध्यमान X और Y के ३५$\frac{७}{१२}$ और ६८$\frac{६}{१२}$ होने पर कल्पित मध्यमान (assumed mean) ३५ और ६८ लेकर विचलन x, y की गणना करो।

ये विचलन चौथे एवं पाँचवें स्तम्भ में दिये गये हैं। इसकी सहायता से xy, x^2, और y^2 की गणना करो।

विद्यार्थी	X	Y	x X—३५	y Y—६८	x y	x^2	y^2
१	३८	५६	—७	—१२	८४	४९	१४४
२	३१	६०	—४	— ८	३२	१६	६४
३	४०	६२	+५	— ६	—३०	२५	३६
४	३४	६५	—१	— ३	३	१	९
५	३२	६६	—३	— २	६	९	४
६	२६	६८	—९	०	०	८१	०
७	३८	६७	+३	— १	— ३	९	१
८	३६	७१	+१	३	३	१	९
९	३४	७३	—१	५	— ५	१	२५
१०	४०	७७	५	९	४५	२५	८१
११	४२	७७	७	९	६३	४९	८१
१२	४६	८०	११	१२	१३२	१२१	१४४
योग	४२७	८२२	७	६	३३०	३८७	५९८

$$r = \frac{\frac{\Sigma xy}{N} - \frac{\Sigma x}{N} \cdot \frac{\Sigma y}{N}}{\sqrt{\frac{\Sigma x^2}{N} - \left(\frac{\Sigma x}{N}\right)^2} \quad \sqrt{\frac{\Sigma y^2}{N} - \left(\frac{\Sigma y}{N}\right)^2}}$$

$$= \frac{\frac{३३०}{१२} - \frac{७ \times ६}{१२ \times १२}}{\sqrt{\frac{३८७}{१२} - \left(\frac{७}{१२}\right)^2} \quad \sqrt{\frac{५९८}{१२} - \left(\frac{६}{१२}\right)^2}}$$

$$= \frac{२७'५ - '११६}{७'०४ \times ५'६४} = + '६६$$

और $\overline{X}$ = ३५'५८ $\overline{Y}$ = ६८'५ σx = ५'६४ σy = ७'०४

उदाहरण ७'४ स आयु को ध्यान मे रखकर १०० दम्पतियों का विवरण नीचे दिया गया है, सहसम्बन्ध गुणक की गणना कीजिये।

पति की आयु X

	y/x	२०—	३०—	४०—	५०—	६०—
पत्नी की आयु Y	१५—	५	६	३		
	२५—		१०	२५	२	
	३५—		१	१२	२	
	४५—			४	१६	५
	५५				४	२

क्रिया के पद :—

(१) पति की आयु को X और पत्नी की आयु को Y मान लीजिये और धारा ६'१० के उदाहरण स की तरह X और Y के प्रामाणिक विचलनों की गणना कीजिए। X का कल्पित मध्यमान ४०—४६'६ के वर्ग का मध्यबिन्दु, तथा Y का कल्पित मध्यमान ३५—४४'६६ के वर्ग का मध्यबिन्दु लेकर वर्ग विस्तार (class interval) के पदों में विचलन (step deviations) लिखकर Σfx, Σfx^2, Σf_2y, Σf_2y^2 का मान निकालिए।

(२) Σfxy का मान निकालने के लिये प्रत्येक कोष्ठ के लिये x और y के विचलनों का गुणा निकालिये। उस गुणनफल को कोष के एक कोने मे टीप दीजिए। उदाहरण के लिये सबसे ऊपरी कोने के कोष के लिए x = —२, y = —२, ∴ xy = ४
इस गुणनफल xy को उस कोष की आवृत्ति f से गुणा करने पर उस कोष के लिए fxy का मान निकाला जा सकता है। सब कोषों की fxy को जोड लीजिए। यह जोड दोनों ओर से समान आना चाहिए। इस प्रश्न मे Σfxy ७२ है।

(३) सूत्र
$$r = \frac{\frac{\Sigma fxy}{N} - \frac{\Sigma fx}{N} \cdot \frac{\Sigma fy}{N}}{\sqrt{\frac{\Sigma fx^2}{N} - \left(\frac{\Sigma fx}{N}\right)^2}\sqrt{\frac{\Sigma fy^2}{N} - \left(\frac{\Sigma fy}{N}\right)^2}}$$

मे मानों को रखकर r का मान निकालिए।

पति की भ्रायु X

Y/X	२०—	३०—	४०—	५०—	६०—	f'	y	f'y	f'y²	f'xy
१५	(४) ५ (२०)	(२) ६ (१८)	० ३ ०			१७	−२	−३४	६८	३८
२५		(१) १० (१०)	० २५ ०	(−१) २ (−२)		३७	−१	−३७	३७	८
३५		० १ ०	० १२ ०	० २ ०		१५	०	०	०	०
४५			० ४ ०	१६	(२) ५ (१०)	२५	१	२५	२५	१०
५५				(२) ४ (८)	(४) २ (८)	६	२	१२	२४	१६
f	५	२०	४४	२४	७	१००		३४	१५४	७२
x	−२	−१	०	१	२					
fx	−१०	−२०	०	२४	१४	+८				
fx²	२०	२०	०	२४	२८	६२				
fxy	२०	२८	०	६	१८	७२				

$$r = \frac{७२ + ·०८ \times ३४}{\sqrt{·६१३६}\sqrt{१·३२४४}} = \frac{·६६२८}{१·१} = +.६३$$

भ्रौर $\overline{X}$ = ४५ ०८ $\overline{Y}$ = ३६·६६ σx = ६·५ σy = ११·२

सह सम्बन्ध गुणक का जो मान वर्गबद्ध श्रेणी से प्राप्त होता है वह उस मान से थोडा सा भिन्न होता है जो भ्र वर्ग बद्ध श्रेणी से निकाला जाता है। प्रत्येक कोष मे भ्रावृत्तियो के समान रूप से वितरित होने पर यह भ्रन्तर उत्पन्न हो जाया करता है। प्रत्येक कोष के वास्तविक मध्यमान भ्रौर तत्सम्बन्धी वर्ग के मध्य बिन्दु के मान में थोडा बहुत भ्रन्तर सदैव रहता है। यदि X भ्रौर Y दोनों राशियो का वितरण समयित है तो ये त्रुटियाँ एक दूसरे के प्रभाव को कम कर देती हैं किन्तु थोडी बहुत त्रुटि सहसम्बन्ध गुणक के मान मे भ्रा ही जाती है। भ्रनुभव बतलाता है कि यदि . दिशा में १२ वर्ग विस्तार लिए जा सकें तो यह त्रुटि कम हो जाती है।

Q. 7. 5 What does correlation coefficient denote—covariation or causation ? How will you interpret the different value of correlation coefficient obtained between two variables ?

सहसम्बन्ध गुणक की व्याख्या (Interpretation of correlation coefficient)

धारा ७·४ और ७·५ मे दो परिवर्त्य राशियो के बीच सह सम्बन्ध गुणक निकालने की विधि का उल्लेख किया गया था किन्तु यह गुणक क्या सूचित करता है और यदि सह सम्बन्ध की मात्रा का सूचक (index) है तो उसकी व्याख्या किस प्रकार की जाय इन प्रश्नों पर प्रकाश डालना आवश्यक है।

सह सम्बन्ध गुणक दो चल राशियों के बीच कार्य कारण के सम्बन्ध को कभी प्रगट नही करता वह तो सहचरण (covariation) की माप होने के कारण केवल इतनी सूचना दे सकता है कि एक राशि के घटने बढ़ने के साथ साथ दूसरी राशि कितनी घटती बढ़ती है। दो परिवर्त्य राशियो के एक साथ घटाव-बढ़ाव का कारण तो किसी उभयनिष्ट कारक मे ढूंढा जा सकता है, जो दोनो चर राशियों को अनुकूल या प्रतिकूल दिशा मे प्रभावित किया करता है।

उदाहरण ७· अ और ब मे गणित और विज्ञान के फलाको के बीच सह सम्बन्ध गुणक का मान ·५७ और ·६६ मिला है। इस ऊँचे सह सम्बन्ध का कारण यह नही है कि गणित का ज्ञान विज्ञान मे सफलता को प्रभावित करता है। इसका कारण यह भी हो सकता है कि गणित और विज्ञान लेने वाले अधिकाश बालकों का बुद्धि अक ऊँचा हो। दूसरे शब्दो मे यह तीसरा घटक बुद्धि माना जा सकता है जो दो परिवर्त्य राशियो के सहसम्बन्ध को ऊँचा कर देता है। ऐसें कई और घटको की खोज की जा सकती है जो दो विषयो को अलग अलग प्रभावित करके उनके बीच ऊँचा सहसम्बन्ध पैदा कर दिया करते हैं। वंशानुक्रमवादियो (hereditarians) का मत है कि दो बालको मे रक्त का सम्बन्ध जितना ही अधिक घनिष्ठ होगा उनकी मानसिक परिपक्वता भी उतनी ही सह सम्बन्धित होगी। अत वे सगे भाई बहिनो के बुद्धि अको (I.Q.) मे चचेरे भाई बहिनो के बुद्धि अकों की सहसम्बन्ध गुणक की अपेक्षा ऊँची सहसम्बन्ध गुणक देखकर यह नतीजा निकाल बैठते हैं कि वंशानुक्रम ही अत्यन्त प्रभावशाली कारक है। इस निष्कर्ष मे त्रुटि इसलिए है कि सगे भाई बहिनो के बुद्धि अको के बीच ऊँचा सहसम्बन्ध होने का और भी कारण हो सकता है। अतः सहसम्बन्ध गुणक की व्याख्या करते समय विशेष सावधानी की आवश्यकता है।

कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि जिस उत्पत्ति मूलक समुदाय (parent population) से दो चरण राशियो के भिन्न-भिन्न माप लिये गये हैं। उस समुदाय मे उन दोनों राशियो के बीच कोई सह सम्बन्ध न होने पर भी किसी विशेष सैम्पिल मे ऊँचा सह सम्बन्ध गुणक वैसे ही मिल गया हो। कोई सह सम्बन्ध गुणक कितना विश्वस्त हो सकता है इस बात की विवेचना धारा ६·१४ मे की जायगी। यहां पर यह कह देना काफी है कि किसी एक सैम्पिल में ऊँचा सह सम्बन्ध गुणक पाकर पाठक को निश्चय पूर्वक यह न कह देना चाहिये कि दोनों परिवर्त्य राशियाँ सह सम्बन्धित हैं।

यदि ऐसा ही सहसम्बन्ध गुणक उसे दूसरी स्वतत्र सैम्पिलो मे भी मिले तो वह कह सकता है कि

(१) दो राशियो का सहसम्बन्ध नीचा है यदि सहसम्बन्धगुणक ० और +·४ के मध्य मे है

(२) „ „ „ पर्याप्त है „ „ +·४ और +·७० „

(३) „ „ „ ऊँचा है „ „ +·७ और +१·० „

किन्तु सर्वत्र बिना सोचे समझे सह सम्बन्धगुणक का मान +·७५ देखकर कह देना कि ... ात्मक और त्रुटिपूर्ण है। सह सम्बन्ध ... सब मानों मे सामजस्य (agreement) ... का पता तो प्रसरण तालिका (scatter ... का स्वरूप क्या है उनका उत्पत्तिमूलक समुदाय (parent population) मे क्या सह सम्बन्ध है इसको बिना जाने यदि हम यह कह दें कि अमुक सह सम्बन्ध गुणक ऊँचा नहीं है तब भी त्रुटि होने की सम्भावना है। उदाहरण के लिये

राशियाँ पूर्णतः सहसम्बन्धित हैं। ऐसी दशा में X—राशि के किसी मान के लिये Y राशि का एक और केवल एक ही मान प्राप्त हो सकता है।

तालिका ७·६ अ

पूर्णतः अनुकूल सहसम्बन्ध

X	Y
१	४
२	७
३	१०
४	१३
५	१६

$r = +१.\ \bar{x} = ३\ \ \bar{y} = १०$
$\sigma x = \sqrt{२}\ \ \ \sigma = ३\sqrt{२}$
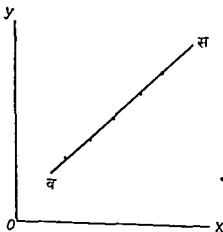
चित्र ७·६ अ

X और Y के इन मानों को वर्गांकित पत्र पर प्रकाशित (plot) करके यदि इस प्रकार प्राप्त पाच बिन्दुओं को मिला दिया जाय तो एक रेखा क ख मिलेगी। उस रेखा से भी X के किसी मान के लिये Y का एक और केवल एक ही मान प्राप्त होगा। X और Y के इन मानों को ध्यानपूर्वक देखने से यह नियम या सूत्र मिल सकता है कि Y का कोई मान X के तिगुने से १ अधिक है।

अत: X और Y के इस सम्बन्ध को निम्न प्रकार लिखा जा सकता है—

$$Y = ३X + १.$$

X और Y का यह सम्बन्ध सरल रेखा क ख का समीकरण कहलाता है।

तालिका ७·४ अ और चित्र ७·६ ब को देखने से पता चलता है कि X के मान के बढने पर Y का मान अधिकाशत. बढ़ता है किन्तु सदैव नहीं इसीलिये सहसम्बन्धगुणक r का मान ५७ मिला है। X और Y के इन मानो को चित्र ७ ६ ब मे देखकर पता चलता है कि कोई एक ऐसी रेखा नही है जो इन सब बिन्दुओं में होकर गुज़र सके। साथ ही X के एक मान ४० के लिये Y के दो मान ६२ और ७७ है और Y के एक मान ७७ के लिये X के दो मान ४० और ४२ है।
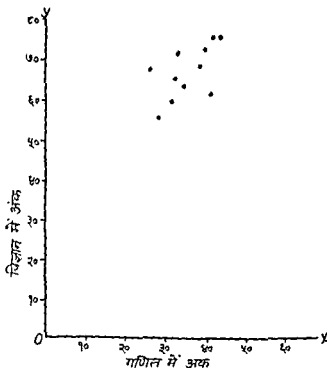
चित्र ७ ६ ब

X के ज्ञात होने पर Y का कौन सा मान लिया जाय अथवा Y के मालूम होने पर X का कौन सा मान लिया जाय यही प्राक्‌लन (estimation) का विषय है। X के ४० होने पर Y के इन मानों में से किस मान को सर्वश्रेष्ठ मान माना जाय यह समस्या केन्द्रीय मान की समस्या है। साधारण तौर से इन मानो के मध्यमान को Y का प्रतिनिध्यात्मक मान माना जाता है। अतः X के किसी मान X_1 के लिये Y के जितने भी मान हो सकते हैं उनका मध्यमान $\overline{y_1}$ लिया जा सकता है इस प्रकार जो मान मिलेंगे वे निम्नलिखित होंगे।

X राशि	X_1	X_2	X_3	X_4
Y राशि के मध्यमान	$\overline{y_1}$	y_2	$\overline{y_3}$	$\overline{y_4}$

उदाहरणार्थ तालिका ७·४ से

पति की आयु X

Y पत्नी की आयु	२०—	३०—	४०—	५०—	६०—
१५—	५	६	३	—	—
२५—	—	१०	२५	२	—
३५—	—	१	१२	२	—
४५—	—	—	४	१६	५
५५—	—	—	—	४	२

यदि पति की आयु २५ वर्ष है तो पत्नी की आयु वर्ग १५—२४ का मध्यबिन्दु २० होगी।

अत यदि X_1=२० तो $\overline{Y}_1$=२० इसी प्रकार यदि पति की आयु ३५ वर्ष है तो पत्नी की आयु निम्न वितरण की मध्यमान होगी।

१५—	६
२५—	१०
३५—	१
	२०

जो कि गणना द्वारा २६ वर्ष है। अत यदि

X_2=३५ तो $\overline{y_2}$=२६

इसी प्रकार

X_3=४५ तो $\overline{y_3}$=३३ ८

X_4=५५ तो $\overline{y_4}$=४१·२

X के किसी मान के लिये Y का सर्वश्रेष्ठ मान $\overline{y}$ तथा Y के किसी मान के लि X के सर्वश्रेष्ठ (most probable) मान $\overline{x}$ तालिका ७·६ ब में दिये जाते हैं। इस तालिका क अन्तिम पक्तियो को देखने से पता चलता है कि २५ वर्षीय पति की पत्नी की औसतन आयु २ वर्ष, ३५ वर्षीय पति की पत्नी की औसत आयु २६, ४५ वर्षीय पति की पत्नी की औसत आ ३३ ८ वर्ष है।

इसी प्रकार तालिका के अन्तिम स्तम्भ बताते हैं कि २० वर्षीय पत्नियो के पति ३३' वर्ष के है और ३० वर्ष की स्त्रियों के पति औसतन ४२'९ वर्ष के हैं।

$$X - \overline{X} = r \frac{\sigma x}{\sigma y} (Y - \overline{Y})$$

चित्र ७'६ स

इन दोनों समीकरणो को जो x का मान ज्ञात होने पर y का सर्वश्रेष्ठ सम्भाव्य मान (most probable value) और y का मान ज्ञात होने पर x का most probable value) दे, अवगति समीकरण (regression equation) कहते हैं। उन दो रेखाओ को जिनकी ये समीकरणें हैं अवगति रेखायें (regression lines) कहते हैं।

व्यजक $r \frac{\sigma y}{\sigma x}$ और $r \frac{\sigma x}{\sigma y}$ को अवगति गुणक (regression coefficient) कहते हैं।

उदाहरण ७'६ अ उदाहरण ७ ४ स मे दिये गये पति और पत्नियों की आयु के बीच सहसम्बन्ध गुणक +'६३ है। निम्न प्रदत्त के आधार पर अवगति रेखाओं की समीकरण ज्ञात कीजिये और उनकी सहायता से किसी ४७ वर्षीय पति की पत्नी की औसत आयु तथा ३७ वर्षीय पत्नी के पति का औसत आयु निकालिये।

	मध्यमान	प्रा० विचलन	ज्ञात राशि
पति की आयु X	४५'०८	६'५	४७
पत्नी की आयु Y	३६'६६	११'२	३७

X का मान ज्ञात होने पर Y का औसतन मान निकालने के लिये अवगति समीकरण निम्नलिखित है।

$$Y - \overline{Y} = r \frac{\sigma y}{\sigma x} (X - \overline{X})$$

$r, \sigma x, \sigma y, \overline{X}, \overline{Y}$ के ज्ञात मान इसी समीकरण मे स्थानापन्न करने पर

$$Y - ३६'६६ = '६३ \frac{११'२}{६'५} (X - ४५'०८)$$

उदाहरण ७·७—निम्न प्रदत्त से x के प्राक्कलन का प्रामाणिक विचलन निकालना है और उनकी व्याख्या करनी है।

यदि σx=८·५, r=+·६३

यहां पर

$$Sx=८·५\sqrt{१-·६३^2}$$
$$=८·५\sqrt{१-·३९६९}$$
$$=८·५\sqrt{·६०३१}$$
$$=८·५\times·७७६$$
$$=७·३७$$

और

$$Sy=११·२\sqrt{१-·६३^2}$$
$$=११\times·७७६$$
$$=८·६६$$

जिस प्रकार किसी आवृत्ति वितरण में प्रामाणिक विचलन के लिये धारा ६·११ में कहा गया था कि प्रसार क्षेत्र M±३σ के बीच शत प्रतिशत आवृत्तियाँ स्थित रहती हैं उसी प्रकार यह कहा जा सकता है कि अवगति रेखा से ±3Sy की दूरी पर खींची गई समान्तर रेखाओं के बीच शतप्रतिशत आवृत्तियाँ या बिन्दु स्थित होंगे। लगभग दो तिहाई आवृत्तियाँ अवगति रेखा से ± 2Sy की दूरी पर खींची गई समानान्तर रेखाओं के बीच स्थिति होगी। यदि कुछ आवृत्तियाँ इस प्रसार क्षेत्र से बाहर हो तो इसका तात्पर्य है वितरण समपित मममित (normal) नहीं है।

इसी प्रकार Sx की व्याख्या की जा सकती है।

३७ वर्षीय पत्नी के पति की औसतन आयु ४३·६२ वर्ष है और पति की आयु के प्राक्कलन का प्रामाणिक विचलन ७·३७ वर्ष है अत यह आशा की जाती है ४३·६२±७·३७ वर्ष के प्रसार क्षेत्र में ६६·२८% पत्नियों की आयु स्थित होगी और शतप्रतिशत व्यक्तियों की आयु ४३·६२±७·३७×३ २१·४२ और ६५·६४ वर्ष के बीच में होगी।

प्रामाणिक विचलनों से सम्बन्धित इन कथनों में निश्चितता का अंश अधिक नहीं रहता प्रत्याशा का अंश अधिक रहता है। इस सैम्पिल में १०० सदस्य थे। यदि ऐसी ही दूसरी सैम्पिल सौ दम्पतियों की ली जाती तो परिणाम भिन्न मिल सकते थे। सैम्पिल में सदस्यों की संख्या बढ़ा देने से परिणाम और सही निकल सकते हैं किन्तु अनिश्चितता का अन्त नहीं किया जा सकता।

Q. 7 8. What are the limitations of the correlation coefficient found by Product Moment method ? Explain the usefulness of finding correlation, coefficient by rank difference method :

Pupil	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
Marks in Maths	28	31	40	34	32	26	38	36	34	40	42	46
Marks in Science	56	60	62	65	66	68	67	71	73	77	77	80

अनुस्थिति सह सम्बन्ध गुणक (Rank Correlation Coefficient)

दो चर राशियों के बीच सह-सम्बन्ध की मात्रा का Index ज्ञात करने के लिये जिस विधि का प्रतिपादन कार्ल पियर्सन ने किया था उसका प्रयोग सभी हो सकता है जब दोनों राशियों

की माप निश्चित हो। यह दो परिवर्त्य राशियो में एक राशि भी ऐसी हुई जिसका मापन निश्चय पूर्वक न किया जा सके तो कार्ल पियर्सन की विधि से काम न चल सकेगा। टैनिस के खिलाडियो की योग्यता, युवतियो का सौन्दर्य, संगीतज्ञो का गायन ग्रथवा वादन ऐसी परिवर्त्य राशियो के कुछ उदाहरण हैं जिनका मापन निश्चिय पूर्वक नही किया जा सकता क्योंकि खेल के हिसाब से खिलाडियो को, सौन्दर्य के हिसाब से युवतियो को गायन की मधुरता के विचार से संगीतज्ञो से निश्चित ग्रक नही दिये जा सकते केवल उन्हें स्थानाक्रम से एक श्रेणी मे रखा जा सकता है। यदि सौन्दर्य प्रतियोगिता मे भाग लेने वाली महिलाग्रो को दो तीन निरीक्षक उनके सौन्दर्य को देखकर ग्रक भी दें तो उनके ग्रको मे विशेष ग्रन्तर दिखाई देगा क्योंकि इस प्रकार का मापन पूर्णतः वैषयिक ग्रथवा ग्रात्मनिष्ठ (subject) होता है। इसी प्रकार मान लीजिये किसी कक्षा के विद्यार्थियो की गणितिक एवं गायन सम्बन्धी योग्यता के बीच सह सम्बन्ध ढूँढना है। प्रत्येक योग्यता चाहे वह विशिष्ट (specific) हो या सामान्य (general) चल राशि मानी जा सकती है क्योंकि यह एक बालक से दूसरे में भिन्न होती है। यदि एक ग्रध्यापक इस कक्षा के बालको को दोनो योग्यताग्रो मे ग्रक देकर सह सम्बन्ध गुणक प्रोडक्ट मैथड से निकालने का प्रयत्न करता है तो वह सह सम्बन्ध गुणक काफी मात्रा तक ग्रध्यापक के मनोभाव, धारणा एव सयोग पर निर्भर रहने के कारण दोनो राशियो मे वास्तविक सम्बन्ध का प्रतीक न होगा।

यदि खिलाडियो, युवतियो, गायको या विद्यार्थियो को उनकी योग्यता के स्थानक्रम से सजा दे तो यह कठिनाई कम हो सकती है परन्तु पूरी तरह दूर नहीं हो सकती क्योंकि ग्रब भी दो परीक्षको के विचारो मे ग्रन्तर हो सकता है किन्तु यह ग्रन्तर इतना गभीर नही होगा जितना कि उनको अक देने मे हो सकता है। स्थानक्रम से सजाते समय उस व्यक्ति को प्रथम ग्रनुस्थिति दी जाती है जो मापनीय योग्यता में सर्वश्रेष्ठ होता है।

ग्रन्य व्यक्तियों को इसी प्रकार ग्रनुस्थितियाँ दी जाती हैं।

मान लीजिये कि किसी ग्रनुभवी परीक्षक ने १० विद्यार्थियों को उनकी गणितिक एवं संगीत सम्बन्धी योग्यता के विचार से निम्नलिखित ग्रनुस्थितियाँ दी हैं

विद्यार्थी	गणितिक योग्यता	गायन सम्बन्धी योग्यता	ग्रनुस्थिति ग्रन्तर
क	१	६	—५
ख	२	५	—३
ग	३	१	२
घ	४	४	०
ङ	५	२	३
च	६	७	—१
छ	७	८	—१
ज	८	१०	—२
झ	९	३	६
ञ	१०	९	१

क को गणित मे सर्वश्रेष्ठ योग्यता के कारण प्रथम ग्रनुस्थिति किन्तु गायन मे उसे

ग्रनुस्थितियाँ उतनी ही ग्रधिक सह सम्बन्धित होगी। प्रत्येक विद्यार्थी की दोनो राशियो को समान ग्रनुस्थिति मिलने पर ही ग्रन्तर शून्य ग्रा सकते हैं पूर्ण ग्रनुकूल सह सम्बन्ध के लिये ये ग्रन्तर होंगे ? ग्रौर पूर्ण प्रतिकूल सह सम्बन्ध के लिये ग्रन्तर ग्रधिकतम ग्रौर शून्य सहसम्बन्ध के ये ग्रन्तर न ग्रधिक छोटे ग्रौर न ग्रधिक बडे होंगे। इस प्रकार इन ग्रन्तरो को देखकर भी । मात्रा का ग्रन्दाजा लगाया जा सकता है किन्तु सहसम्बन्ध की गणना के लिये ग्रधिक

सगत गुणक निम्नलिखित है जिसमे n विद्यार्थियों की सख्या, d अनुस्थितियो का अन्तर और Σ जोड का चिन्ह है

$$\rho\ (\text{रो}) = १ - \frac{६\ \Sigma\ d^2}{n^3 - n}$$

अनुस्थिति सह सम्बन्ध का यह गुणक जिसको स्पीयरमैन की देन कहा जाता है परिघात गुणन सह सम्बन्ध से निकाला जा सकता है। इस गुणक का मान निकालने की विधि नीचे दी जाती है।

Q. 7.8 Calculate the Spearman's Correlation Coefficient from the data given below.

(i) Observed Values

7	4	2	3	1	10	6	8	9	5	11	15	14	12	13

Real Values

1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15

(ii) Marks in Maths

28	31	40	34	32	26	38	36	34	40	42	46

" Science

56	60	62	65	66	68	67	71	73	77	77	80

उदाहरण ७'८ म भिन्न-भिन्न शेड (shade) वाले वृत्ताकार १५ पटलो को एक व्यक्ति ने निम्न प्रकार से सजाया

७, ४, २, ३, १, १०, ६, ८, ९, ५, ११, १५, १४, १२, १३

किन्तु उनका वास्तविक क्रम निम्नलिखित था

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५

तो दोनो क्रमो मे सह सम्बन्धगुणक निकालिये।

वास्तविक क्रम	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	योग
निरीक्षित क्रम	७	४	२	३	१	१०	६	८	९	५	११	१५	१४	१२	१३	
अन्तर	—६	—२	१	१	४	—४	१	०	०	५	०	—३	—१	२	२	०
(अन्तर)²	३६	४	१	१	१६	१६	१	०	०	२५	०	९	१	४	४	११७

$$\rho = १ - \frac{६ \times ११८}{१५^३ - १५} = १ - \frac{७०८}{३३७५ - १५} = १ - \frac{७०८}{३३६०}$$

$$= १ - ·२१$$

$$= + ·७९$$

अनुस्थिति सह सम्बन्ध निकालने का यह तरीका इतना सूक्ष्म एवं सरल है कि इस तरीके ने परिमाणगुणन सम्बन्ध का स्थान छीन लिया है किन्तु इसका प्रयोग केवल सरलता को ध्यान में रखकर करना खतरे से खाली नहीं है। साथ ही छोटी-छोटी सैम्पिलों से जहाँ पर व्यक्तियों की संख्या n कम हो वहाँ तो इस विधि का प्रयोग सुविधाजनक मालूम पड़ता है, किन्तु n के बड़े होने पर विधि भी आपत्तिजनक हो जाती है। छोटी सैम्पिलों में इस विधि का उपयोग आपत्तिजनक मालूम पड़ता है इसलिये कि उस सैम्पिल की समसम्भाव्यता (normality) के विषय में कुछ निश्चित मत नहीं दिया जा सकता।

उदाहरण ७·८ व उदाहरण ७·४ में १२ विद्यार्थियों के फलांक जो उन्हें गणित और विज्ञान की दो परीक्षाओं में प्राप्त हुये थे नीचे दिये जाते हैं। अनुस्थिति सह सम्बन्ध गुणक की गणना कीजिये।

विद्यार्थी	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
गणित फलांक	२८	३१	४०	३४	३२	२६	३८	३६	३४	४०	४२	४६
विज्ञान ,,	५६	६०	६२	६५	६६	६८	६७	७१	७३	७७	७१	८०

क्रिया—(१) किसी विषय में अनुस्थिति निकालने के लिये सबसे बड़े फलांक को ढूँढ़ो। गणित में यह अंक ४६ है अतः ४६ के समान १ अनुस्थिति ही पड़ी। ४६ से कम अंक ४२ है अतः ४२ के सामने २ अनुस्थिति लिख दो। ४२ से कम अंक ४० है किन्तु तालिका को ध्यानपूर्वक देखने से पता चलता है कि अंक ४० दो विद्यार्थियों को मिला है अतः तीसरी और चौथी अनुस्थिति को दो जगह बराबर-बराबर बाँटने पर ४० अंक पाने वाले प्रत्येक विद्यार्थी को ३·५, अनुस्थिति दी जानी चाहिये। यदि ४० अंक तीन विद्यार्थियों को मिले होते तो तीसरी, चौथी और पाँचवी अनुस्थितियाँ ३ व्यक्तियों में बराबर बाँटी जाती इस दशा में व्यक्ति को

$\frac{३+४+५}{३} = ४$ अनुस्थिति देना न्याय होता।

(२) दोनों अनुस्थितियों को निकालने के बाद उनके अन्तर d एवं d के वर्ग की गणना की जाती है।

(३) Σd^2 का मान सूत्र $\rho = १ - \frac{६ \left[\Sigma d^2 + \frac{१}{१२}(m^3 - m)\right]}{n^3 - n}$ में रखकर सह सम्बन्ध गुणक की गणना की जा सकती है। देखिये तालिका ७ ८ ब

तालिका ७·८ ब

गणित एवं विज्ञान की परीक्षाओं में प्राप्त फलांकों के बीच अनुस्थिति सह सम्बन्ध की गणना विधि का प्रदर्शन

विद्यार्थी	गणित अंक	विज्ञान अंक	गणित में अनुस्थिति	विज्ञान में अनुस्थिति	गणित और विज्ञान की अनुस्थितियों का अन्तर	अन्तर का वर्ग
१	——	५६	१	१२	१	१·००
२	३१	६०	१०	११	१	१·००
३	४०	६२	३·५	१०	६·५	४२·२५
४	३४	६५	७·५	९	१·५	२·२५
५	३२	६६	९	८	१	१·००
६	२६	६८	१२	६	६	३६·००
७	३८	६७	५	७	२	४·००
८	३६	७१	६	५	१	१·००
९	३४	७३	७·५	४	३·५	१२·२५
१०	४०	७७	३·५	१·५	२०	४·००
११	४२	७७	२	१·५	·५	·२५
१२	४६	८०	१	१	०	·००
योग						१०५.००

यहाँ पर $\frac{१}{१२}(m^3-m) = \frac{१}{१२}[२^3-२+२^3-२+२^3-२] = \frac{१}{१२}[२४-८]$

$$=\frac{१६}{१२}=१\ ३$$

$$P=१-\frac{६\ (१०५+१\cdot३)}{१२^3-१२}=१-\frac{६३८}{१७१६}=+\cdot६४$$

उदाहरण ७·४ अ में r = +·५७ मिला था। P का मान ·६४ मिला है। इस अन्तर का एक विशेष कारण यह भी है कि यह विधि प्रदत्तों के वास्तविक स्वरूप का प्रयोग नहीं करती।

Q. 7.10. Explain the terms partial and multiple correlation Give examples. Illustrate the difference between these terms.

आंशिक सह सम्बन्ध (Partial Correlation)

सह सम्बन्ध गुणक की व्याख्या करते समय धारा ७·५ में यह कहा गया था कि यह गुणक दो परिवर्त्य राशियों के बीच कार्य कारण सम्बन्ध को प्रगट नहीं करता वह तो केवल इस बात की सूचना देता है कि एक राशि के घटाव-बढ़ाव के साथ दूसरी राशि कितनी घटती-बढ़ती है। सह सम्बन्ध गुणक केवल सहचरण (covariation) की मात्रा का ज्ञान कराता है। इन दोनों राशियों के सहचरण का कारण किसी तीसरे या चौथे कारक (factor) में ढूँढ़ा जा सकता है। यदि गणित और विज्ञान के फलांकों में ऊँचा सह सम्बन्ध है तो इसका यह आशय नहीं है कि गणित का ज्ञान ही विज्ञान में साफल्य को प्रभावित करता है। दोनों राशियों में सहचरण का कारण तीसरी राशि बुद्धि की उपस्थिति में देखा जा सकता है। अतः जो ऊँचा सह सम्बन्ध दो राशियों में मिला है उसका कारण बुद्धि का अनुकूल प्रभाव हो सकता है। कभी-कभी तो तीसरे

कारक के प्रभाव के कारण दो राशियों के बीच सह सम्बन्ध गुणक उतना नहीं ग्राता जितना ग्राना चाहिये था। यदि किसी प्रकार इस तीसरे घटक का प्रभाव कम कर दिया या लुप्त कर दिया जाय तो दो परिवर्त्य राशियो में वास्तविक सह सम्बन्ध की मात्रा का ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

मान लीजिये कि हम ग्रपनी कक्षा के विद्यार्थियो की दो योग्यताग्रो—जैसे उनके कद ग्रौर शारीरिक शक्ति—मे सह सम्बन्ध ढूंढ़ना चाहते हैं। यदि ग्रन्य किसी बात का ध्यान किये बिना हम उन लड़को मे से प्रत्येक के कद ग्रौर शारीरिक शक्ति का मापन कर लें ग्रौर सह सम्बन्ध गुणक निकाल लें तो इस सम्बन्ध गुणक को देखकर कद ग्रौर शारीरिक शक्ति के बीच वास्तव में वह क्या ग्रौर कितना होना चाहिये ये निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते क्योकि कद बढ़ता है जैसे-जैसे ग्रायु बढ़ती है ग्रौर शारीरिक शक्ति भी बढ़ती है वैसे-वैसे ग्रायु बढ़ती है। ग्रत. कद ग्रौर शारीरिक शक्ति के बीच वास्तविक सह सम्बन्ध गुणक निकालने के लिये हमे ग्रायु के कारक को लुप्त करना होगा। इस घटक का प्रभाव क्षीण करने के लिये एक ही ग्रायु वाले लडको का सैम्पिल लेना होगा। उन लडको की शारीरिक शक्ति ग्रौर कद के बीच सम्बन्ध गुणक शायद वास्तविक सह सम्बन्ध का प्रदर्शन कर सकता है यदि ग्रन्य कोई घटक उन दोनो राशियों को साथ साथ प्रभावित न करता हो। यदि शारीरिक शक्ति को X_1, कद को X_2, ग्रायु को X_3 शारीरिक शक्ति ग्रौर कद के बीच सह सम्बन्ध गुणक r_{12}, शारीरिक शक्ति ग्रौर ग्रायु के बीच r_{13}, कद ग्रौर ग्रायु के बीच r_{23} मान लें तो ग्रायु के प्रभाव को क्षीण करने के बाद शारीरिक शक्ति ग्रौर कद मे जो सह सम्बन्ध गुणक होगा वह $r_{12.3}$ माना जा सकता है

इस $r_{12.3}$ का मान निम्न सूत्र की सहायता से निकाला जा सकता है

$$r_{12.3} = \frac{r_{12} - r_{13}\, r_{23}}{\sqrt{(1-r_{13}^2)(1-r_{23}^2)}}$$

नीचे दो उदाहरण ग्रांशिक सह सम्बन्ध की गणना दिखाने के लिए दिए जाते हैं—

उदाहरण ७·६ (ग्र) यदि X_1 = शारीरिक शक्ति $\quad r_{12}$ = ·८३५
X_2 = कद $\quad r_{13}$ = ·६६२
X_3 = ग्रायु $\quad r_{23}$ = ·७१४

$$\text{तो } r_{12.3} = \frac{\text{·८३५} - \text{६६२} \times \text{·७१४}}{\sqrt{(\text{१} - \text{·६६२}^2)(\text{१} - \text{७१४}^2)}}$$

$$= \frac{\text{·३६२३३२}}{\text{·५२४}} = \text{६९०}$$

(ब) यदि कद X_1, भार $= X_2$, ग्रायु $= X_3$ ग्रौर r_{12} = ८९७, r_{23} = ·७०१, r_{13} = ·७१४ तो ग्रायु का प्रभाव क्षीण करके कद ग्रौर भार मे सह सम्बन्ध को निकालिये

$$r_{12.3} = \frac{\text{·८९७} - \text{·७०१} \times \text{७१४}}{\sqrt{\text{१} - \text{७०१}^2}\ \sqrt{\text{१} - \text{·७१४}}}$$

$$= \frac{\text{·८९७} - \text{·५०० ५१४}}{\sqrt{\text{१} - \text{·४९१४०१}}\ \sqrt{\text{१} - \text{·५०९७९६}}}$$

$$= \frac{\text{·३९६४८६}}{\sqrt{\text{·२४८२१७२६४१९६}}}$$

$$= \frac{\text{·३९६४८६}}{\text{·४९८}} = \text{·७९४}$$

इन दोनो उदाहरणों मे देखने से पता चलता है कि $r_{12\cdot3}$ का या r_{12} से कम हो गया है इसका कारण है X_3 के प्रभाव का लुप्त हो जाना। इस प्रकार का सह सम्बन्ध आंशिक कहलाता है। यदि X_3 न तो X_1 और न X_2 को प्रभावित करे तो X_1 और X_2 के बीच जो सह सम्बन्ध होगा वह पूर्ण होगा

गुणित सह सम्बन्ध (Multiple Correlation)

साधारण सह सम्बन्ध के अध्ययन मे दो परिवर्त्य राशियो के बीच सहचरण की मात्रा निकालने का प्रयत्न किया गया था, आंशिक सह सम्बन्ध की विवेचना करते समय भी दो राशियो के बीच सह सम्बन्ध की मात्रा आंकी गई थी किन्तु घटको को स्थिर मान लिया गया था। कभी [illegible]

गुणक घनात्मक मिलेंगे। यदि बुद्धि का वस्तुओ के रूप को स्मरण रखने और धन निर्माण करने की योग्यताओ से सम्बन्ध निकालना हो तो बुद्धि को एक राशि मानना होगा और शेष के समूह को दूसरी। इसी प्रकार किसी देश मे आत्महत्याओं की सख्या उस देश की प्राकृतिक दशा, व्यक्तियो की औसत आयु, पुरुषो का प्रतिशत, आर्थिक व्यवस्था का रूप, आदि अनेक घटकों का प्रभाव पडता है। अत यदि इन कारकों का प्रभाव आत्महत्याओ की सख्या पर देखना हो तो साधारण सह सम्बन्ध के सिद्धान्तों का काम नही चलेगा। इस अवस्था में गुणित सह सम्बन्ध की आवश्यकता पड़ती है।

यदि X_2 और X_3 दो राशियो का तीसरी राशि X_1 पर प्रभाव की मात्रा देखनी है तो $R_{1(23)}$ की गणना करनी होगी जिसका सूत्र नीचे दिया जाता है

$$R_{1(23)} = \frac{\sqrt{r_{12}^2 + r_{13}^2 - 2r_{12}\, r_{13}\, r_{23}}}{1 - r_{23}^2}$$

नीचे गुणित सह सम्बन्ध की गणना के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है

उदाहरण यदि X_1 = बी मे परीक्षा मे फलाक
X_2 = स्मृति परीक्षा मे फलाक
X_3 = धन निर्माण परीक्षा मे फलाक
और r_{12} = ·४१, r_{13} = ·५०, r_{23} = ·१६ तो

$$\text{गुणित सह सम्बन्ध } R_{1(23)} = \frac{\sqrt{\cdot४१^2 + \cdot५०^2 - २ \times \cdot४१ \times ५० \times \cdot१६}}{1 - \cdot१६^2}$$

$$= \frac{\sqrt{१६८१ + \cdot२५०० - \cdot०६५०}}{१ - \cdot०२५६}$$

$$= \frac{\cdot५६}{\cdot९७४४}$$

$$= +\cdot६०$$

सहसम्बन्ध निष्पत्ति (Correlation ratio)

७·४ मे सहसम्बन्ध गुणक (r) के विषय मे लिखते हुए कहा गया था कि यदि राशियो के बीच सरल रेखात्मक सम्बन्ध हो और दोनों राशियो के आवृत्ति वितरण एक शु वाले मध्यक की वक (maso Kurtik) हो तो उनके बीच सहसम्बन्ध का सूचक पीयर्सन का r गुण होता है किन्तु कभी-कभी हमें ऐसी दो राशियाँ मिलती हैं जिनके बीच सम्बन्ध सरल रेखात्मक होकर वक्रात्मक (curviliar) होता है। अत: हमें उनके बीच सहसम्बन्ध निकालने के लिए दू

ही गुणक की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार का वक्रात्मक सम्बन्ध जो दो परीक्षाओं के फलांको के बीच हो सकता है निम्न चित्र मे दिखाया गया है।

परीक्षा अ	परीक्षा ब
१	१
२	४
३	६
४	७
५	८
६	८
७	७
८	६
९	४
१०	१

चित्र ७.१०
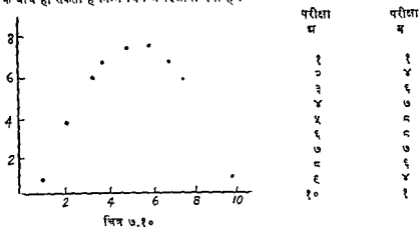
परीक्षा अ और ब के फलांको के बीच जो सम्बन्ध है वह सहसम्बन्ध निष्पत्ति द्वारा सूचित किया जाता है। यह निष्पत्ति सह सम्बन्ध गुणक r से निम्नलिखित बातो मे भिन्न होती है।

(१) यह ० और १ के बीच मे कोई मान ग्रहण कर सकती है और कभी ऋणात्मक नही होती।

(२) इसके ज्ञात होने पर दोनो राशियो के बीच कोई प्रवगति समीकरण जैसी समीकरण नही लिखी जा सकती।

(३) y चल राशि की x पर सहसम्बन्ध निष्पत्ति और x राशि की सहसम्बन्ध निष्पत्ति y पर भिन्न होती है क्योंकि

$$\eta_{yx} = \frac{\text{प्रमाप विचलन स्तम्भो को मध्यमानो का}}{\text{प्रमाप विचलन } y \text{ का}}$$

$$\eta_{xy} = \frac{\text{प्रमाप विचलन पत्तियो के मध्यमानो का}}{\text{प्रमाप विचलन } x \text{ का}}$$

चूँकि η_{yx} और η_{xy} दोनों सहसम्बन्ध निष्पत्तियो के निकालने की विधि एक ही है अतएव केवल η_{yx} को गणना विधि समझाने पर प्रयत्न किया जायगा। क्रिया के पद नीचे दिये जाते हैं।

(१) सहसम्बन्ध गुणक तालिका तैयार करना

(२) सम्पूर्ण वितरण के लिये Σfy और Σfy^2 की गणना करना

(३) प्रत्येक स्तम्भ की आवृत्तियों का योग निकालना

$\Sigma y_0, \Sigma y_1, \Sigma y_2 \ldots$

(४) इन योगो का वर्ग निकालना $(\Sigma y_0)^2 \; (\Sigma y_1)^2 \cdots\cdots$

(५) प्रत्येक वर्ग को तत्सम्बन्धित आवृत्ति संख्या से भाग देना $\frac{(\Sigma y)^2}{no}$ इत्यादि

(६) $\frac{(\Sigma y)^2}{no}$ जैसी सख्याओ को जोड़ना

(७) $\frac{(\Sigma fy')^2}{N}$ की गणना करना

(८) निम्न सूत्र में इनके मानों को स्थानापन्न करना

$$\eta^2yx \; \frac{\frac{(\Sigma y_o')^2}{n_o}+\frac{(\Sigma y')^2}{n_1}+\cdots \quad -\frac{(\Sigma fy')^2}{N}}{\sigma y^2}$$

नीचे इन पदों के अनुसार X और Y के बीच सहसम्बन्ध निष्पत्ति निकाली गई है—

Y	X												
	०	१	२	३	४	५	६	७	८	f	y	fy	fy²
४'०—			१	१	१	२				५	८	४०	३२०
३'५—		१	१	१	४	५	४	२		१८	७	१२६	८८२
३'०—		४	३	१	६	३	२	६	२	२७	६	१६२	९७२
२'५—		३	२		२	२	१	३	०	१३	५	६५	३२५
२'०—	४	३	२		०			३	३	१५	४	६०	२४०
१'५—	८	६			१				५	२०	३	६०	१८०
१'०—	६								९	१५	२	३०	६०
'५—	३								११	१४	१	१४	१४
'०-'४	१								१	२	०	०	०
n	२२	१७	९	३	१४	१२	७	१४	३१	१२९		५५७	२९९३

	०	१	२	३	४	५	६	७	८
Σy	५५	७६	५१	२१	८५	७९	४५	७७	९८
(Σy)²	३०२५	५७७६	२६०१	४४१	७२२५	६२४१	२०२५	५९२९	९६०४

$$\Sigma y_0 = ५५ = ४\times ४+८\times ३+६\times २+३\times १+१\times ०$$
$$= १६+२४+१२+३$$
$$\Sigma y_1 = ७६ = १\times ७+४\times ६+३\times ५+३\times ४+६\times ३$$
$$= ७६$$

$$\frac{(\Sigma y)^2}{n} = \frac{३०२५}{२२}+\frac{५७७६}{१७}+\frac{२६०१}{९}+\frac{४४१}{३}+\frac{७२२५}{१४}$$
$$+\frac{६२४१}{१२}+\frac{२०२५}{७}+\frac{५९२९}{१४}+\frac{९६०४}{३१}$$
$$= २८११'६६$$

$$\eta^2yx = \frac{२८११'६६-\frac{(५५७)^2}{१२९}}{२९९३-\frac{(५५७)^2}{१२९}} = .५१११$$

$$\therefore \eta yx = '७१$$

Q 7.11. When are two attributes said to be independent or associated ? Explain with examples.

दो गुणों का सहचर्यात्मक सम्बन्ध (Association of two attributes)

जिस प्रकार किसी वैरियेबल के मानों के विषय में दो या अधिक चरों में सम्बन्ध—जैसे भार और कद मानसिक और वास्तविक आयु के बीच सह-सम्बन्ध निकाला जा सकता है उसी प्रकार उन मानों के गुणों के (attributes) के विषय में साहचर्य (association) की मात्रा निश्चित की जा सकती है। मान लीजिए किसी वैरियेबल के मानों के विषय में उनके दो गुण अ और ब की जानकारी इकट्ठी की गई है और यह देखा गया है कि कुछ व्यक्तियों या वस्तुओं जिनमें से कुछ में 'अ' गुण विद्यमान है उनमें 'ब' गुण भी है। यदि 'अ' गुण वाले मानों में 'ब' गुण वालों का प्रतिशत 'अ' गुण वालों में 'ब' गुण से हीन व्यक्तियों के प्रतिशत से अधिक या कम है तो 'अ' और 'ब' को गुण सहचारी (associated attributes) कहे जाते हैं किन्तु यदि दोनों प्रतिशत बिल्कुल बराबर हैं तो दोनों गुण स्वतन्त्र (independent) माने जाते हैं। शिशुओं में व्यक्तित्व के विकास का अध्ययन करने वाले एक मनोवैज्ञानिक ने यह देखा कि ४२ शिशुओं की एक वैरियेबल में से २० शिशुओं को माँ ने अपना दूध पिलाया उनमें से केवल ९ शिशु बड़े होकर सामान्य व्यवहार वाले बने और शेष २२ शिशुओं में जिनको बाहरी दूध पीने को दिया था २१ शिशु असामान्य (abnormal) व्यवहार के हुए। प्रश्न यह है कि माँ के अपने दूध पिलाने से बच्चों का बड़े होकर व्यवहार सामान्य रहता है। यदि माँ का दूध पीने वालों में सामान्य व्यवहार या व्यक्तित्व वालों का प्रतिशत माँ का दूध न पीने वालों में सामान्य व्यक्तित्व वालों के प्रतिशत से अधिक है तो यह कहा जा सकता है कि माँ के अपना दूध पिलाने से बच्चे बड़े होकर सामान्य या उत्तम व्यवहार का प्रदर्शन करेंगे। स्तन से दूध न पीने वालों में असामान्य व्यक्तित्व वालों की संख्या कितनी है यह जानने के लिये धारा ३.१० की तरह द्विधा विभाजन (dichotomisation) करना होगा। संयोग तालिका ७·११ में वर्ग विभाजन की इस विधि का प्रदर्शन किया जा रहा है—

संयोग तालिका ७·११

	दूध पिलाने की रीति		
व्यक्तित्व का विकास	माता के स्तन से B	बोतल से β	
सामान्य A	९	१	१०
असामान्य α	११	२१	३२
	२०	२२	४२

दिया हुआ प्रदत्त रेखांकित कर दिया है शेष अंकों की गणना सरल है। माँ के स्तनों से दूध पीने वालों में सामान्य व्यक्तित्व वालों का प्रतिशत $\frac{९}{२०} \times १०० = ४५\%$ माँ के स्तन से दूध न पीने वालों में सामान्य व्यक्तित्व वालों का प्रतिशत $\frac{१}{२२} \times १०० = ४.५\%$ है। अतः माता के स्तनों से दूध पीने वाले साधारणतया अच्छे व्यक्तित्व के पुरुष होते हैं। इसी प्रश्न को दूसरी तरह से भी हल किया जा सकता है। सामान्य व्यक्तित्व वालों में माँ के स्तन से दूध पीने वालों का प्रतिशत यदि असामान्य व्यक्तित्व वालों में माँ के स्तन से दूध पीने वाले के प्रतिशत से अधिक है तभी यह कहा जा सकता है कि सामान्य व्यक्तित्व और माता के स्तनों से दूध पीना दोनों गुण (attributes) सहचारी हैं।

प्रस्तुत उदाहरण में, सामान्य व्यक्तित्व वाले ६० व्यक्तियों में से ६ ने अर्थात् ६०% ने माता का दूध पिया है और असामान्य व्यक्तित्व वाले ३२ व्यक्तियों में से केवल ११ ने अर्थात् $\frac{११}{३२} \times १०० = ३४·३\%$ ने अपने माता का स्तनपान किया है। अतः पुन हम देखते हैं कि सामान्य व्यक्तित्व और माता द्वारा अपने शैशव काल में दोनों सहचारी गुण (attributes) हैं।

इसी समस्या को गणितीय ढग से निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है। यदि सामान्य व्यक्तित्व को A, असामान्य व्यक्तित्व को α, माँ के स्तनपान को B माँ के न स्तनपान को β से प्रदर्शित किया जाय तो

चिन्ह (A) द्वारा सामान्य व्यक्तित्व वाले पुरुषों की सख्या का निरूपण किया जावेगा।

(α)	"	असामान्य	"
(B)	"	स्तन से दूध पीने	"
(β)	"	" " न पीने	"
(AB)	"	सामान्य एव स्तन से दूध पीने	"
(Aβ)	"	" " न पीने	"
(αB)	"	असामान्य व्यक्तित्व एव स्तन से दूध पीने वाले	
($\alpha\beta$)	"	" " न पीने वाले	"

और तालिका ७·११ का रूप निम्नलिखित होगा।

भावात्मक या अभावात्मक

दोनों गुण A और B में साहचर्य होने के लिये निम्न inequalities सत्य होनी चाहिये

$$\frac{(AB)}{(A)} \gtrless \frac{(\alpha B)}{(\alpha)}$$

$$\text{अथवा} \quad \frac{(AB)}{(B)} \gtrless \frac{(A\beta)}{(\beta)}$$

जिसमें > अपेक्षाकृत बड़े तथा < अपेक्षाकृत छोटे का चिन्ह माना जाता है। किन्तु दोनों गुण और B के आपस में स्वतन्त्र होने के लिये

$$\frac{(AB)}{(A)} = \frac{(\alpha B)}{\alpha} \quad \text{अथवा} \quad \frac{(AB)}{(B)} = \frac{(AB)}{(\beta)}$$

$$\text{अब यदि } \frac{(AB)}{(A)} = \frac{(\alpha B)}{(\alpha)}$$

$$\text{तो} \quad \frac{(AB)}{(A)} = \frac{(\alpha B)}{(\alpha)} = \frac{(AB)+(\alpha B)}{(A)+(\alpha)} = \frac{(B)}{N}$$

$$\text{अत} \quad (AB) = \frac{(A)\,(B)}{N}$$

दो गुणों के सहचारी न होने पर (AB) का मान $\frac{(A)\,(B)}{N}$ होना चाहिए किन्तु

सहचारी होने पर (AB) का मान $\frac{(A)(B)}{N}$ से छोटा या बड़ा हो सकता है। यदि (AB)—

सैम्पिल ऐसी हो सकती है जिसमे सफलता और प्रशिक्षण महाविद्यालयों मे शिक्षा पाने के बीच साहचर्य दिखाई देता हो किन्तु और सैम्पिलो मे यह बात न मिले।

उदाहरण ७·११ (स) पशुओ के टीका लगाने के एक प्रयोग मे देखा गया कि २० पशुओं मे से १६ को टीका लगाया गया जिनमे से ६ मर गये या रोग से बेहद पीडित रहे किन्तु जिनको टीका नहीं लगाया गया उनमे से ८ मर गये। इस सैम्पिल के आधार क्या निष्कर्ष निकाला जा सकता है ?

क्रिया —टीका लगे हुए १६ पशुओं मे से ६ मर गये टीका लगे हुए पशुओ मे

मरने वालो की सख्या का प्रतिशत $\frac{६}{१६} \times १०० = २१\%$

टीका न लगे हुए ११ पशुओ मे से ८ मर गये

टीका न लगे हुए पशुओ मे मरने वालो की सख्या $= \frac{८}{११} \times १००$

$= ७२\%$

दूसरे प्रकार से—टीका लगाने को A, तथा बचने को B गुण मानकर दी हुई आंकिक सामग्री का वर्ग विभाजन करने पर निम्न तालिका मिलती है

	टीका लगाना (A)	टीका न लगाना	योग
बीमारी से बचना (B)	१३ (AB)	३	१६(B)
,, मर जाना	६	८	१४
योग	१६ (A)	११	३० (N)

यदि टीके का लगाना और बीमारी से बचना दोनो गुण स्वतन्त्र है

तो $(AB) = \frac{(A)\ (B)}{N}$

किन्तु $\frac{(A)\ (B)}{N} = \frac{१६ \times १६}{३०} = १०$ लगभग

$\therefore$ (AB) = १३   टीका लगने से पशु बच सकते हैं।

गुण A और B दोनो स्वतन्त्र नहीं हैं किन्तु ऐसी बात और सैम्पिलों मे न होने पर यह निष्कर्ष असत्य हो सकता है अत इस सैम्पिल की विश्वसनीयता की परीक्षा करनी होगी।

Q 7 12 When would you expect complete association or disassociation between two attributes ? What are their measures then ?

पूर्ण भाव अथवा अभाव साहचर्य (Complete association or Disassociation)

पिछली धारा मे जो आंकिक सामग्री दी गई थी उसकी सयोग तालिका ७ ११ को देखने से पता चलता है कि बोतल से दूध पीने वाले २२ बच्चो मे केवल एक बच्चे का ही व्यक्तित्व सामान्य है किन्तु यदि एक भी बच्चे का व्यक्तित्व सामान्य न होता तो माँ के स्तन से दूध न पीने वाले २२ मे से सबके सब बच्चो का व्यक्तित्व सामान्य होने के कारण बच्चे की माता के दूध न मिलने और उसके असामान्य व्यक्तित्व मे पूर्ण धनात्मक साहचर्य माना जाता अथवा माता के दूध न पिलाने तथा सामान्य व्यक्तित्व के बनने मे पूर्ण अभावात्मक साहचर्य माना जाता।

दूसरे शब्दो में,

यदि सब सामान्य व्यक्तित्व वाले (A) बच्चो को माँ का दूध पीने को मिला होता, साथ ही सब माँ के दूध पीने वाले बच्चो (B) के व्यवहार मे असामान्यता न होती तो यह

जा सकता था कि माता के दूध पीने वाले बच्चे सामान्य व्यवहार का प्रदर्शन करते हैं और दोनों गुणों A और B में पूर्ण भाव साहचर्य है। ऐसी दशा में तालिका ७·११ का रूप यह होता

	A मां का दूध	B बोतल का दूध	
सामान्य	१०	०	१० (A)
असामान्य	०	३२	३२ (α)
	१०	३२	४२

पूर्ण अभाव साहचर्य के लिये यह कहा जा सकता है कि यदि सामान्य व्यक्तित्व वालों (A) में से किसी को भी बोतल से दूध नहीं मिला, साथ ही असामान्य व्यक्तित्व वालों में से किसी को भी मां का दूध नहीं मिला है तो सामान्य व्यक्तित्व A और बोतल से दूध मिलने B के बीच पूर्ण अभाव साहचर्य है।

पूर्ण भाव साहचार्य की माप + १, पूर्ण अभाव सहचार्य की माप — १ और पूर्ण स्वतन्त्रता की माप शून्य मानी जाती है।

Q. 7·13. What is the coefficient of association between two attributes. Give examples to illustrate its computation

साहचर्य गुणक (Coefficient of Association)

दो गुणों में साहचर्य की मात्रा +१ से अधिक नहीं मानी जा सकती और न —१ से कम। अतएव ऐसे हमें गुणक की आवश्यकता है जिसका मान भाव साहचर्य (positive association) के लिये ० से +१ तक कुछ भी मिल सके और अभाव साहचर्य (negative association) के लिये ० से —१ तक सीमित रहे। ऐसा एक गुणक निम्नलिखित है

$$Q = \frac{(AB)(\alpha\beta) - (A\beta)(\alpha B)}{(AB)(\alpha\beta) + (A\beta)(\alpha B)}$$

गुण A, और B, के स्वतन्त्र होने पर Q का मान शून्य, A और B में पूर्ण भाव साहचर्य होने पर Q का मान +१, तथा पूर्ण अभाव साहचर्य होने पर Q का मान —१ आता है। Q की गणना दिखाने के लिये नीचे तीन उदाहरण दिये जाते हैं

उदाहरण ७·१३ (अ) १—५ वर्षीय शिशुओं के स्वास्थ्य एवं भोजन व्यवस्था के विषय में किये गये एक अनुसंधान में निम्न आंकिक प्रदत्त मिले। क्या इस प्रदत्त सामग्री के आधार पर यह कहा जा सकता है कि माता-पिता की आर्थिक दशा बालकों के शारीरिक विकास पर प्रभाव डालती है?

	निर्धन माता पिता B	धनी माता-पिता B
सामान्य से कम भार A	७५%	२३%
सामान्य से अधिक α	५%	४२%

(आगरा, एम०कॉम०, १९५७)

क्रिया—भार को A, और आर्थिक दशा को B से प्रदर्शित करने पर

$(AB) = ७५\%$
$(A\beta) = २३\%$
$(\alpha B) = ५\%$
$(\alpha\beta) = ४२\%$

$$\therefore Q = \frac{७५ \times ४२ - २३ \times ५}{७५ \times ४२ + २३ \times ५} = \frac{६०७}{६५३} = ·९३$$

Q का मान .६३ यह दिखलाता है कि निर्धन माता-पिता के बच्चो का भार सामान्य से साधारण तौर पर कम रहता है।

उदाहरण ७'१३ व ७५ से ऊपर की आयु वाले १६१६६२ व्यक्तियों में १७०१ अधे और १०६८ मानसिक विकार वाले व्यक्ति थे। इनमें से मानसिक विकृति वाले अधे व्यक्ति केवल ६ थे। मानसिक विकार एव अन्धेपन साहचर्य गुणक की गणना कीजिए।

क्रिया .—दिये हुए प्रदत्त के आधार पर निम्नलिखित सयोग तालिका बनाई जा सकती है :—

	अन्धे	न-अन्धे	योग
मानसिक विकार वाले	६	१०८१	१०६०
न-मानसिक विकार वाले	१६६२	१५८६१०	१६०६०२
योग	१७०१	१५९९९१	१६१६६२

$$Q=\frac{\text{६}\times\text{१५८६१०}-\text{१६६२}\times\text{१०८१}}{\text{६}\times\text{१५८६१०}+\text{१६६२}\times\text{१०८१}}$$

$$=\frac{\text{१४२१२१०}-\text{१८२१०४२}}{\text{१४२१२१०}+\text{१८२१०४२}}$$

$$=\frac{-\text{३६६७६२}}{\text{३२५८१४२}}=-\text{०.११}$$

Q का मान—'११ दिखलाता है कि ७५ वर्ष से ऊपर की आयु वाले अन्धे व्यक्तियों में मानसिक विकार की कमी होती है

उदाहरण ७'१३ स निम्न प्रदत्त से A और B गुणों के बीच साहचर्य गुणक की गणना कीजिये (AB)=२५६, (Aβ)=४८, (αB)=७६८ (αβ)=१४४

क्रिया $$Q=\frac{(AB)(\alpha\beta)-(A\beta)(\alpha B)}{(AB)(\alpha\beta)+(A\beta)(\alpha B)}=\frac{\text{२५६}\times\text{१४४}-\text{७६८}\times\text{४८}}{\text{२५६}\times\text{१४४}-\text{७६८}\times\text{४८}}$$

$$=\text{०}$$

Q 7·14 What is Partial Association ? Find Partial association between A & C when

(A)=682 (AB)=248 (B)=850
(C)=689 (AC)=307 (BC)=363
(ABC) 128

आंशिक साहचर्य (Partial association)

जिस प्रकार आंशिक सह सम्बन्ध गुणक की विवेचना करते समय कहा गया था कि दो परिवर्त्य राशियों (variables) के बीच सह सम्बन्ध किसी तीसरी परिवर्त्य राशियों (variables) के बीच सह सम्बन्ध किसी तीसरी परिवर्त्य राशि का उन दोनों राशियों से सहसम्बन्धित होने के कारण कम या अधिक हो सकता है और यदि उस राशि को स्थिर करके उसका प्रभाव दूर कर दें तो दोनों राशियों के आंशिक सह सम्बन्ध की गणना की जा सकती है वैसे प्रकार दो गुणों के बीच साहचर्य गुणक (coefficient of association) ऊँचा होने का कारण उन दोनों गुणों का तीसरे गुण से साहचर्य का ऊँचा होना हो सकता है। यदि तीसरे गुण को स्थिर कर दिया

जाय तो दोनों गुणों के बीच जो साहचर्य होगा वह आंशिक साहचर्य कहलायेगा। ऐसी दशा में हमें A और B गुणों का C के समान उत्पत्ति मूलक समुदायों में साहचर्य देखना होगा। तभी हम यह कह सकते हैं कि A और B गुणों में वास्तव में साहचर्य है। यदि हम देखते हैं कि विशाल जनसमुदाय में बीमारी से बचाव (A) और टीका लगाने (B) में साहचर्य है तो यह साहचर्य इस कारण भी हो सकता है कि जो टीका लगवाते हैं वे धनी व्यक्ति होने के कारण टीका लगवाने को अधिक अच्छी निगाह से देखते हों साथ ही वे निर्धन व्यक्तियों की अपेक्षा स्वास्थ्य रक्षा के नियमों पर अधिक जोर देते हों। फलतः जो टीका लगवाते हों वे अधिक संख्या में बीमारी से बच जावें। इसके विपरीत जो टीका नहीं लगवाते हों वे निर्धन एवं गंदे वातावरण में रहने के कारण बीमारी से पीड़ित रहें। टीके लगवाने की उपयोगिता की जांच करने के लिये तीसरे गुण निर्धनता (C) को स्थिर करना (partial out) पड़ेगा। अतः बीमारी से बचाव (A) और टीका लगवाने (B) के बीच साहचर्य इन भिन्न समुदायों (sub-universes) में देखना पड़ेगा

(i) (C) धनी
(ii) (not C) निर्धन

A और B का साहचर्य धनी लोगों या निर्धन व्यक्तियों में आंशिक साहचर्य कहलाता है और धनी और निर्धन समस्त जनसमुदाय में साहचर्य सम्पूर्ण या योग साहचर्य (Total Association) कहलाता है।

उदाहरण १०,००० बालकों में तीन प्रकार के दोष पाये गये (A) शारीरिक वृद्धि सम्बन्धी (B) स्नायु रोग और (C) बुद्धिहीनता

(A) १८२ (AB) २४८
(B) ८५० (AC) १०७ (ABC) → १२८
(C) ६८९ (BC) ३६३

क्या शारीरिक वृद्धि सम्बन्धी विकारों का बुद्धि पर प्रभाव पड़ता है ?

क्रिया—A और C में साहचर्य निम्नलिखित तीन प्रकार से देखा जा सकता है

(i) समस्त जनसमुदाय में

$$\text{बुद्धिहीनों का सम्पूर्ण समुदाय में प्रतिशत} = \frac{६८९}{१०,०००} \times १०० = ६·८९\%$$

$$\text{,, ,, शरीर से कमजोर बालकों में प्रतिशत} = \frac{१०७}{१८२} \times १०० = ४५\%$$

स्नायु रोगियों के समुदाय में

$$\text{(ii) स्नायु रोगियों में बुद्धिहीनों का प्रतिशत} = \frac{३६३}{८५०} \times १०० = ४२·७\%$$

$$\text{स्नायु रोगी एवं शरीर से कमजोर व्यक्तियों में बुद्धि हीनों का प्रतिशत} = \frac{१२८}{२४८} \times १०० = ५१·६\%$$

(iii) स्नायु रोग से मुक्त व्यक्तियों के समुदाय में,

स्नायु रोग से मुक्त बालकों की संख्या (β कुल बालकों में स्नायु रोग से पीड़ितों की संख्या को घटाने से प्राप्त हो सकती है। १०,०००—८५०=९१५०

स्नायु रोग से मुक्त एवं बुद्धिहीनों की संख्या (βC) बुद्धि हीनों की संख्या में से स्नायु बुद्धिहीनों की संख्या घटा देने पर मिल सकती है अत βC=६८९—३६३=३२६

$$\text{स्नायु रोग से मुक्त व्यक्तियों में बुद्धिहीनों की संख्या} = \frac{३२६}{९१५०} \times १०० = ३·६\%$$

स्नायु रोग से मुक्त किन्तु शरीर के कमजोर व्यक्तियो मे बुद्धिहीनो की सख्या $= \frac{(A\beta C)}{(A\beta)}$

$$= \frac{-(ABC)+(AC)}{(A)-(AB)}$$

$$= \frac{३०७-१२८}{६८२-२४८} = \frac{१७९}{४३४}$$

$$= ४१ २\%$$

इन तीनो तुलनात्मक अध्ययनो के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

१. सम्पूर्ण समुदाय मे शारीरिक बुद्धि मे कमी एव बुद्धि की हीनता मे काफी साहचर्य है।

२ स्नायु रोगियो के उप समुदाय में शरीर के कमजोरी और बुद्धिहीनता के बीच साहचर्य अधिक महत्वपूर्ण नही है।

३ स्नायु रोग से मुक्त उप-समुदाय में शरीर के कमजोर व्यक्ति बुद्धि से हीन अधिक हैं।

Q. 7 15 What different Indices of association in contingency tables would you like to compute. Compute X^2, C & T for the table.

Mathemetical Table

	Above	Normal	Below
Above	44	22	4
Intelligence Norm	265	257	178
Below	41	91	98

संयोग तालिकाओं में साहचर्य की गणना (Association in Contingency Table)

किसी व्यक्ति समुदाय में दो गुणो A और B की उपस्थिति या अनुपस्थिति को ध्यान मे रखकर उनको चार वर्गों मे बाँटा जा सकता है। इस प्रकार जो तालिका बनती है उसे साहचर्य तालिका (association table) कहते हैं किन्तु यदि किसी गुण को दो से अधिक भागो मे विभाजित करें तो स्वतन्त्र वर्गों [illegible]
सार तीन वर्ग उत्तम, मध्यम औ [illegible]
उनको उत्तम, मध्यम और निकृष्ट [illegible]
सकता है। इस प्रकार जो ता[illegible] निम्नलिखित होगा। यदि A गुण के p भाग और B के q भाग किये जायें तो तालिका बनेगी उसके p×q कोष होंगे। इस तालिका को संयोग तालिका (contingency) तालिका कहते हैं।

निष्पत्ति	बुद्धि			
	उत्तम	मध्यम	निकृष्ट	योग
	B_1	B_2	B_3	
उत्तम A_1	(A_1B_1)	(A_1B_2)	(A_1B_3)	(A_1)
मध्यम A_2	(A_2B_1)	(A_2B_2)	(A_2B_3)	(A_2)
निकृष्ट A_3	(A_3B_1)	(A_3B_2)	(A_3B_3)	(A_3)
योग	(B_1)	(B_2)	(B_3)	N

जिस प्रकार दो गुणो के स्वतन्त्र होने पर साहचर्य तालिका मे निम्न समीकरणों से (AB) और $(\alpha\beta)$ आदि के प्रत्याशित मानो की गणना की जा सकती है।

$$(AB)=\frac{(A)(B)}{N}, \qquad (\alpha\beta)=\frac{(\alpha)(\beta)}{N}$$

उसी प्रकार दो गुणो के स्वतन्त्र होने पर प्रत्याशित आवृत्तियो के मान भी निकाले जा सकते हैं। इस बात की सम्भाव्यता (probability) कि कोई सदस्य स्वतन्त्र रूप से प्रथम स्तम्भ मे पड़े $\frac{B_1}{N}$ है और इस बात की सम्भावकता कि वही सदस्य प्रथम पंक्ति मे पड़े $\frac{A_1}{N}$ है। अत: किसी व्यक्ति के प्रथम पंक्ति वाले प्रथम स्तम्भ में पड़ने की सम्भाव्यता $\frac{A_1B_1}{N_2}$ होगी। अत. N व्यक्तियो मे से $\frac{NA_1B_1}{N_2}$ व्यक्ति $=\frac{A_1B_1}{N}$ प्रथम कोष मे पड़ेंगे। दो गुणो के पूर्णतया स्वतन्त्र न होने पर किसी भी कोष के निरीक्षित (observed) और प्रत्याशित (expected) आवृत्ति (frequency) मे सदैव अन्तर रहता है। यदि इस अन्तर को δ मान लिया गया तो

पहले कोष के लिये

संयोग की माप $=\delta_1=f_o-f_c$

$$=(A_1B_1)-\frac{(A_1)(B_1)}{N}$$

सब कोषों के लिये इन सब अन्तरो का योग शून्य होता है। अतएव यदि हम गुण A और B मे साहचर्य निकालना चाहते हैं तो हमे δ के चिन्हों की या तो उपेक्षा करनी होगी जैसी कि मध्यक विचलन (mean deviation) की गणना मे की गई थी या उनका वर्ग करके ऋणात्मक चिन्हों से छुटकारा पाना होगा जैसा कि प्रामाणिक विचलन की गणना मे दिया गया था। तभी किसी संयोग की माप की गणना कर सकेंगे।

$$\text{यदि } X^2=\Sigma\frac{\delta^2}{f_c} \text{ अर्थात् } \Sigma\frac{(f_o-f_c)^2}{f_c} \text{ मान लें}$$

तो X^2 का मान दोनों गुणों की स्वतन्त्रता की माप कहा जा सकता है। यदि X^2 का शून्य आता है तो निश्चय ही दोनों गुण स्वतन्त्र होंगे। गुणों की स्वतन्त्रता के सूचक निम्न- ...हो सकते हैं।

$$C = \sqrt{\frac{X^2}{N+X^2}}$$

$$\phi = \sqrt{\frac{X^2}{N}}$$

$$T = \frac{\sqrt{\frac{X^2}{N}}}{[(p-1)(q-1)]^{\frac{1}{4}}}$$

जिसमे N समुदाय के व्यक्तियो, p और q दो गुणों के विभाजनो की सख्या है।

उदाहरण ७.१५—गणितिक योग्यता और बुद्धि के अनुसार १००० विद्यार्थियो की निम्न प्रकार से ३ × ३ सयोग तालिका मे वितरण किया गया। कार्ल पियार्सन के सयोग गुणक (Coefficiency of contingent) की तुलना कीजिए। गणित या बुद्धि की योग्यता के वितरण के विषय मे किसी प्रकार की सूचना नहीं है। सम्भवतया वह normal नही है।

बुद्धि A	गणितक योग्यता B			योग
	उत्तम	मध्यम	निष्कर्ष	
उत्तम	४४	२२	४	७० (A_1)
मध्यम	२६५	२५७	१७८	७००(A_2)
निकृष्ट	४१	९१	९८	२२० (A_3)
	३५० (B_1)	३७० (B_2)	२८० (B_3)	१००० N

यदि दोनों गुणों को स्वतन्त्र मान लिया जाय तो जो प्रत्याशित आवृत्तियाँ मिलेगी वे निम्न तालिका मे प्रदर्शित की जाती हैं।

बुद्धि	गणितिक योग्यता			
	उत्तम	मध्यम	निकृष्ट	योग
उत्तम	२४ ५	२५.९	१९.६	७०
मध्यम	२४५.०	२५९.०	१९६.०	७००
निकृष्ट	८०.५	८५.१	६४.४	२३०
योग	३५०	३७०	२८०	१०००

क्योंकि प्रत्याशित

$$(A_1B_1)=\frac{(A_1)(B_1)}{N}=\frac{७०\times ३५०}{१०००}=२४·५$$

$$(A_1B_2)=\frac{(A_1)(B_2)}{N}=\frac{७०\times ३७०}{१०००}=२५·९$$

$$\text{और}\ (A_1B_3)=\frac{(A_1)(B_3)}{N}=\frac{७०\times २८०}{१०००}=१९·६$$

इसी प्रकार अन्य आवृत्तियों की गणना की गई है।

$$X^2=\frac{(४४-२४·५)^2}{२४·५}+\frac{(२२-२५·९)^2}{२५·९}+\frac{(४-१९·६)^2}{१९·६}$$

$$+\frac{(२६५-२४५)^2}{२४५}+\frac{(२५७-२५९)^2}{२५९}+\frac{(१७८-१९६)^2}{१९६}$$

$$+\frac{(४१-८०·५)^2}{८०·५}+\frac{(९१-८५·१)^2}{८५·१}+\frac{(९८-६४·४)^2}{६४·४}$$

$$=९६·१४$$

$$C=\sqrt{\frac{९६·१४}{९६·१४+१०००}}=\sqrt{\frac{९६·१४}{१०९६·१४}}=\text{प्रतिलघु}[\tfrac{१}{२}(\text{लघु } ९६·१४-\text{लघु } १०९६·१४)]$$

$$=\text{प्रतिलघु}[\tfrac{१}{२}(१·८३२५-३·०२८९)]$$

$$=\text{प्रतिलघु}[\tfrac{१}{२}(२·८१०६)]$$

$$=\text{प्रतिलघु}[१-४०५३]$$

$$=२५४१$$

C का मान शून्य तभी हो सकता है जब दोनों गुण (attributes) पूर्ण स्वतन्त्र हैं किन्तु इसका मान १ कभी नहीं हो सकता क्योंकि X^2+N हमेशा X^2 से बड़ा रहेगा। इसका मान गुणों के वर्गीकरण पर अधिक निर्भर रहता है। (देखिये यूल और कैंडिल थ्योरी आफ स्टेटिस्टिक्स पृष्ठ ६६) इसलिये ५×५ वर्ग विभाजन के लिये C का उपयोग उपयुक्त बैठता है। इससे कम के लिये ठीक नहीं बैठता। इस दोष से बचने के लिये शुप्रो (Tschuprow) के गुणक T की गणना की जा सकती है।

$$T=\sqrt{\frac{\frac{X^2}{N}}{\{(p-1)(q-1)\}}}=\sqrt{\frac{\frac{९६·१४}{१०००}}{(२\times२)\}}}=\sqrt{\frac{९६·१४}{१०००\times२}}$$

$$=\sqrt{\frac{४८·०७}{१०००}}=\sqrt{·०४८०७}$$

$$=·२२$$

प्रस्तुत उदाहरण में T का मान C से कम आता है किन्तु सदैव ऐसी बात नहीं रहती। दोनों मूल्य इस बात का संकेत करते हैं कि बुद्धि और निष्पादन दोनों गुण सहचारी हैं।

टिप्पणी—अब तक जितनी भी सयोग तालिकाओ (Contingency Tables) का उल्लेख किया गया है, वे सब दो ऐसे गुणो के विषय मे थी जिनको कोष बद्ध ही किया जा सकता था। दो ऐसी सयोग तालिकाएँ भी मिल सकती हैं जिनमे एक गुण विशेषात्मक और दूसरा सख्यात्मक हो। नीचे लिखी तालिकाओ को ध्यान से देखने से पता चलता है कि जिन दो विधियो से दो गुणो (attributes) मे साहचर्य की परीक्षा की गई थी उन्ही विधियो से इन तालिकाओ मे प्रदर्शित दो गुणो के बीच सम्बन्ध की जांच की जा सकती है। दूसरे शब्दों मे साहचर्य के सिद्धान्तो का उपयोग केवल गुणात्मक वर्गीकरण मे ही नही किया जा सकता, सख्यात्मक वर्गीकरण से भी इसका उपयोग किया जा सकता है। इसी प्रकार साहचर्य और सहसम्बन्ध दोनो एक ही चीज के दो [illegible] प्रसामान्य न होने [illegible] है कि प्रसामान्य [illegible]

तालिका ७'१६ अ

कक्षा कार्य	बुद्धि लब्धि				
	८०-९०	९०-१००	१००-११०	११०-१२०	योग
उत्तम	३	१२	१४	११	४०
मध्यम	४	१५	१७	२	३८
निकृष्ट	७	३	१२	—	२२
योग	१४	३०	४३	१३	११०

तालिका ७ १६ ब

पिता का पेशा	बालको की बुद्धि लब्धि				
	८०-९०	९०-१००	१००-११०	११०-१२०	योग
अध्यापक	७	११	१२	१०	४०
डाक्टर	३	९	१४	८	३४
वकील	३	६	९	१२	३०
अन्य	३	४	७	११	२५
योग	१६	३०	४२	४१	१२९

भौतिक विज्ञान में श्रेणी

रसायन शास्त्र		D	C	B	A
	A	१	०	३	६
	B	२	५	५	१
	C	३	३	१	२
	D	४	३	०	१

सक्षेप मे,

१. दो परिवर्त्य राशियो के साथ-साथ घटने-बढ़ने के गुण को सह सम्बन्ध कहते हैं। सहसम्बन्ध की गणना कई प्रकार से की जाती है।
   (अ) कार्ल पियार्सन की विधि से
   (ब) स्पीयर मैन की विधि से

२. यदि दो राशियों के बीच सहसम्बन्ध रेखात्मक हो और वे राशियाँ प्रसामान्य वक्र की तरह वितरित(normally distributed) हों तो उनके बीच सहसम्बन्ध का सूचक

$$r = \frac{\Sigma xy}{N\sigma x\sigma y}$$

जिसमें x और y दोनों राशियों के मध्यमानों से विचलनों की मात्रायें हैं σx और σy उनके प्रामाणिक विचलन हैं।

३. अव्यवस्थित सामग्री के लिये r के इस मान को निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात किया जा सकता है।

$$r=\frac{\Sigma xy}{\sqrt{\Sigma x^2 \Sigma y^2}} \qquad \text{यदि } x=X-\overline{X}, y=Y-\overline{Y}$$

$$=\frac{\frac{\Sigma x'y'}{N}-\frac{\Sigma x'}{N}\frac{\Sigma y'}{N}}{\sqrt{\frac{\Sigma x'^2}{N}-\left(\frac{\Sigma x'}{N}\right)^2}\sqrt{\frac{\Sigma y'^2}{N}-\left(\frac{\Sigma y'}{N}\right)^2}} \qquad \text{यदि } x'=X-AM,\ y'=Y-AM$$

४. प्रदत्त सामग्री के वर्गबद्ध होने पर

$$r=\frac{\frac{\Sigma fxy}{N}-\frac{\Sigma fx}{N}\frac{\Sigma fy}{N}}{\sqrt{\frac{\Sigma fx^2}{N}-\left(\frac{\Sigma fx}{N}\right)^2}\sqrt{\frac{\Sigma fy^2}{N}-\left(\frac{\Sigma fy}{N}\right)^2}}$$

५. सह सम्बन्ध गुणक +१ से कभी अधिक नहीं हो सकता और न −१ से कम ही हो सकता है। यदि r=±१ तो दोनों परिवर्त्य राशियाँ पूर्णतः सह सम्बन्धित मानी जाती हैं, धनात्मक चिन्ह भाव सह सम्बन्ध (positive correlation) ऋणात्मक चिन्ह अभाव सह सम्बन्ध का सूचक होता है। r=o होने पर दोनों राशियाँ स्वतन्त्र मानी जाती हैं।

६. एक राशि के मान के ज्ञात होने पर दूसरी राशि का मान अवगति समीकरणों (regression equations) की सहायता से निकाला जा सकता है। X और Y राशियों के सर्व सम्भाव्य मानों (most probable values) की गणना करने के लिये निम्न समीकरणों का क्रमश प्रयोग होता है

$$x-\overline{X}=r\frac{\sigma y}{\sigma x}(y-\overline{Y})$$

$$\text{और} \qquad y-\overline{Y}=r\frac{\sigma y}{\sigma x}(x-\overline{X})$$

७. गुणक $r\frac{\sigma x}{\sigma y}$ और $r\frac{\sigma x}{\sigma y}$ अवगति गुणक कहलाते हैं। इनका गुणनफल r^2 के तुल्य होता है।

८. ये अवगति समीकरणें इस प्रकार की दो रेखाओं का निरूपण करती हैं जिनमें प्राक्कलित मानों की त्रुटियों के वर्गों का योग न्यूनतम हुआ करता है। अन वे उत्तम अन्वायुक्त रेखायें भी कहलाती हैं।

x और y के प्राक्कलनों (estimate) के प्रामाणिक विचलन $Sx=\sigma x\sqrt{1-r^2}$ और $Sy=\sigma y\sqrt{1-r^2}$

९. स्पीयरमैन के अनुस्थिति सह सम्बन्ध गुणक (rank correlation coefficient) का मान निम्न सूत्र से निकाला जाता है

$$\rho = १ - \frac{६\Sigma d^2}{n(n^2 - १)}$$

जिसमे d एक ही सदस्य की दो विषयो मे अनुस्थितियो का अन्तर तथा n सैम्पिल में सदस्यो की सख्या है।

१०. यदि तीन राशियाँ आपस में सह सम्बन्धित हो तो एक राशि का प्रभाव कम करने या लुप्त करने के लिये जो सह सम्बध निकाला जाता है उसे आंशिक सह सम्बन्ध कहते हैं। राशि ३ को स्थिर करके आंशिक सह सम्बन्ध $r_{12\cdot3}$ का माप निम्न सूत्र द्वारा मिल सकता है।

$$r_{12\cdot3} = \frac{r_{12} - r_{13}\, r_{23}}{\sqrt{(१ - r_{13}^2)(१ - r_{23}^2)}}$$

११. दो गुणो में साहचर्य निकालने के निम्न सूत्र का प्रयोग होता है।

$$\frac{(AB)}{(A)} \gtrless \frac{(\alpha B)}{(\alpha)} \quad \text{या} \quad \frac{(AB)}{(B)} \gtrless \frac{(A\beta)}{(\beta)}$$

और साहचर्य गुणक $= \dfrac{(AB)\ (\alpha\beta) - (\alpha B)\ (A\beta)}{(AB)\ (\alpha\beta) + (\alpha B)\ (A\beta)}$

इस गुणक का मान -१ और $+१$ के मध्य रहता है।

अभ्यासार्थ प्रश्नावली ८

७·१ साख्यिकी में दो प्रश्न पत्रों में ११ विद्यार्थियो ने निम्नलिखित अक पाये। इन अको की सहायता से कार्ल पियार्सन का सहसम्बन्ध गुणाक निकालिये। उसकी प्रामाणिक त्रुटि की भी गणना कीजिये

प्रथम प्रश्नपत्र	८०	४५	५५	५६	५८	६०	६५	६८	७०	७५	८५
द्वितीय „	८२	५६	५०	४८	६०	६२	६४	६५	७०	७४	९०

७·२ य और र दो परिवर्त्य राशियों में सह सम्बन्ध की गणना कीजिये

य	१	३	५	७	८	१०
र	८	१२	१५	१७	१८	२०

[आगरा, एम० एस-सी०, गणित, १९५८]

७·३ ४० विद्यार्थियो की अनुस्थितियाँ गणित एव विज्ञान मे नीचे दी जाती हैं अनुस्थिति सह सम्बन्ध गुणाक की गणना कीजिये

विद्यार्थी
१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २०
गणित २८ ५ २५ २·५ ९·५ २८ ५ १९·५ ३१·५ ३८ १३·५ २८·५
३८ १ ३८ ९·५ ३३·५ २२·५ ३६ ५ १६ ५ ३८
विज्ञान २६·५ २४ १ २ २९ ३८ ३९ ६ ७·५ ११·५
१९.५ ४ ३१·५ ५ १५ ३१·५ २९ १३ १९·५ ३७
विद्यार्थी २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३०
३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४०
गणित ३१·५ ५ ११·५ २८·५ २५ १६·५ २५ २१ १३ ५ १६·५
१९·५ ५ १६·५ ३३ ५ ११ ५ ७ ५ ७·५ ३५ २२·५ २·५
विज्ञान ३५ २१ ३३ १५ २२ २९ २६·५ २४ ३६ १७·५
४० ९ १७ ५ ३४ ११ ५ ३ १५ २४,७·५,१०

७·४ १५ विद्यार्थियों के ज्यामिति और अंकगणित में निम्नलिखित आंकिक प्रदत्त के आधार पर अनुस्थिति सहसम्बन्धी गुणक की गणना कीजिये।

विद्यार्थी	अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ए	ऐ	ओ	औ	अ	अ.	क	ख	ग
अंकगणित	८	१०	६	१५	३	२०	२१	५	१०	१४	८	१६	२२	१६	६
ज्यामिति	३	१२	८	१३	२०	६	१४	११	४	१६	१५	१०	१८	२३	२

(एल० टी०, १९५६)

७·५. निम्नलिखित तालिका मे बीस विद्यार्थियो के अंक दो विषयो मे दिये गये हैं। इन अंकों के आधार पर सहसम्बन्धित गुणक की गणना कीजिये—

विद्यार्थी

अ ब स द य फ ह ज इ क ल य न प र स ट उ ब ल ग घ च छ

विषय १

४७ ७९ ६८ ७६ ५३ ५७ ६५ ६७ ६३ ६० ७८ ७२ ८० ६१ ५९ ६६ ५५ ६५ ६४ ६२

विषय २

३७ ६८ ६२ ६६ ४६ ६३ ६० ५९ ५६ ५० ७१ ६६ ६४ ५७ ५१ ५५ ४३ ५८ ५४ ४१

(एल० टी०, १९५८)

७·६. २५ विद्यार्थियों के बुद्धिलब्धि तथा सुलेख के अंकों का विवरण नीचे दिया जाता है। इस आंकिक सामग्री के आधार पर रेंक विधि से साहचर्य गुणक निकालिये।

विद्यार्थी	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३
सुलेख अंक	७५	५८	५५	५०	४०	६२	५७	५३	४९	३८	६१	५७	५३
बुद्धि अंक	११८	१०८	१०७	१०२	१००	१२२	११५	११५	१००	९७	११९	११२	११२

विद्यार्थी	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५
सुलेख अंक	४८	३६	५९	५६	५१	४७	३५	५९	५६	५०	४६	२४
बुद्धि अंक	१०३	९३	११०	१०९	१०९	९५	८९	११०	१०८	१०८	९८	९०

(आगरा, बी० टी०, १९६०)

७·७. निम्न प्रदत्त की सहायता से पियार्सन का सहसम्बन्ध गुणक निकालिये और परिणाम की व्याख्या कीजिये।

परिवर्त्य राशि र	परिवर्त्य राशि य						
	५-९	१०-१४	१५-१९	२०-२४	२५-२९	३०-३४	३५-३९
७०-७९						१	१
८० ९९					१	३	२
५०-५९				२	५	७	
४०-४९			१	४	३		
३०-३९		२	३	६	२		
२०-२९	१	२	२	२			
१०-१९	२	१	१	१			

(आगरा, एम० एड०, १९५९)

७.८. निम्न प्रदत्त से r की गणना कीजिये। य और र राशियों के वर्गों के मध्य बिन्दु दिये गये हैं।

र	य								
	९४.५	९६.५	९८.५	१००.५	१०२.५	१०४.५	१०६.५	१०८.५	११०.५
२९.५			४	३		४	१		१
५९.५	१	३	६	१८	६	९	२	३	१
८९.५	७	३	२६	१६	४	४	१		१
११९.५	५	९	१०	९	२		१	२	
१४९.५	३	५	८	१		१			
१७९.५	४	२	३	१					
२०९.५	४	४		१					
२३९.५	१	१							

७.९. पियार्सन के सहसम्बन्ध गुणक की परिभाषा दीजिये। सहसम्बन्ध तालिका से r का मान निकालने का सूत्र सिद्ध कीजिये।

	य			
र	१६—	१८—	२०—	२२-२४
१०	२	१	१	
२०	३	२	३	२
३०	३	४	५	६
४०	२	२	३	४
५०		१	२	२
६०		१	२	१

(आगरा, एम० ए०, गणित, १९५६)

७.१०. निम्न सारणी मे r की गणना कीजिये।

	य						
	६७	७२	७७	८२	८७	९२	९७
र							
९२				१	२	३	१
८७			१	३	८	१	५
८२	४	४	६	४	९	१	
७७	३	३	७	६	४		
७२	२	३	५	६	१	१	
६७	३	२					
६२	१						

(आगरा, गणित, एम० ए०, १९६०)

७.१० लगभग ५ वर्ष वाले ३८४ बालकों के भार एवं ऊँचाइयाँ निम्न प्रसार मे दिये गये हैं। सहसम्बन्ध गुणक निकालिये।

	भार						योग
	२४-	२६-	३४-	३६-	४४-	४६-३५	
४५-४७			१		२		३
४२-४४			४	३५	२१	५	६५
३६-४१		५	८७	६०	७	१	१६०
३६-३८	१	१८	७२	८			६६
३३-३५	५	१५	५				२५
३०-३२	२						२

(एल० टी०, १६५६)

७'१२. निम्नलिखित तालिका से १०० विद्यार्थियो के भार ग्रौर कद मे सहसम्बन्ध गुणाक निकालिये।

कद/भार	८०-	६०-	१००-	११०-	१२०-	योग
५०	१	३	७	५	२	१८
५५	२	४	१०	७	४	२७
६०	१	५	१२	१०	७	३५
६५		३	८	६	३	२०
योग	४	१५	३७	२८	१६	१००

(बी० कॉम, इलाहाबाद, १६४०)

७'१३. विद्यार्थियो के ग्रायु ग्रौर बुद्धि परीक्षा में प्राप्त ग्र को के बीच सहसम्बन्ध निकालिये।

	ग्रायु				
फलाक	१८	१६	२०	२१	योग
२००	४	४	२	१	११
२५०	३	५	४	२	१४
३००	२	६	८	५	२१
३५०	१	४	६	१०	२१
योग	१०	१६	२०	१८	६७

(ग्रागरा, बी० कॉम, १६

७'१४. विद्यार्थियों ने दो विषयो मे जो ग्र क प्राप्त किये उनमे सहसम्बन्ध निका

A/B	११	१६	२१	२६	३१	योग
१					१	१
६	१	१	८	७	१	१८
११	१	२	४	१४	४	२५
१६			७	१३	६	२६
२१			२	४	१	७
२६			१			१
३१				१		१
योग	२	३	२२	३६	१३	७६

(बम्बई, बी० कॉम, १६

७·१५. ५२ विद्यार्थियों को आयु के अनुसार जो अंक मिले उनमे सहसम्बन्ध निकालो।

आयु	१६	१८	२०	२२	योग
१०	२	१	१		४
२०	३	२	३	२	१०
३०	१	४	५	६	१८
४०	२	२	३	४	११
५०		१	२	२	५
६०		१	२	१	४
योग	१०	११	१६	१५	५२

(अलीगढ़, एम० ए०, १९४१)

७·१६. एक सौन्दर्य प्रतियोगिता मे ७० प्रतिद्वन्द्वियो को तीन निर्णायको ने निम्नलिखित स्थान दान किये।

प्रथम	१	६	५	१०	३	२	४	९	७	८
द्वितीय	३	५	८	४	७	१०	२	१	६	९
तृतीय	६	४	९	८	१	२	३	१०	५	७

अनुस्थिति सहसम्बन्ध निकालकर बताइये कि कौन-कौन निर्णायको के सम मिलते हैं।

(इलाहाबाद, एम० ए०, १९५२)

७·१७. X, और Y के मानो से दो अवगति समीकरणो को ज्ञात करो—

X	१५२	११४	१३८	१५४	१४४	१५३	१४१	११७	१३६	१५४
Y	१९३	३००	४१४	५६४	६७६	५४९	३२०	४८३	४८१	६५९

(आई० ए० एस०, १९५१)

७·१८. साख्यिकी के दो प्रश्नों मे ११ विद्यार्थियों ने निम्न अंक प्राप्त किये सहसम्बन्ध गुणक अवनति समीकरणें निकालो।

प्रश्न-पत्र I ८०, ४५, ५५, ५६, ५८, ६०, ६५, ६८, ७०, ७५, ८५, (६५)
II ८२, ५६, ५०, ४८, ६०, ६२, ६४, ६५, ७०, ७४, ९०, (७०)

(IA & A E, १९४५)

७·१९. सहसम्बन्ध और अवनति समीकरणों मे क्या सम्बन्ध है? निम्न प्रदत्त से सहसम्बन्ध की गणना कीजिये और n=६·२ पर y का मान निकालिये—

x	१	२	३	४	५	६	७	८	९
y	९	८	१०	१२	११	१३	१४	१६	१५

(आई० ए० एस०, १९५५)

७·२०. विशेष तालिका एव अवनति से आप क्या समझते है। दो अवनति समीकरणों के मिलने का कारण बताइये। उत्तर प्रदेश के १००० पुलिस के सिपाहियो के भार और कद दिये गये हैं—

$\bar{X}=६८$, $\bar{Y}=१५०$ $r=·६०$
$\sigma x=२·५०$ $\sigma y=२०$

२०० पौंड वाले का भार, ५ फीट वाले का कद निकालो—

(पी० सी० एस०, १९५३)

७·२१. हाईस्कूल परीक्षा मे अंग्रेजी और गणित के अंकों में विषय में निम्न समक दिये गये हैं।

७·२५. बी०ए० परीक्षा मे २५०० विद्यार्थियो के इतिहास और संस्कृत मे जो फलांक थे उनका वितरण नीचे दिया जाता है सहसम्बन्धगुणांक एवं उनके सम्भाव त्रुटि निकालिये

	इतिहास				
संस्कृत	०-२०	२०-४०	४०-६०	६०-८०	योग
०-२०	३२	८८	१५	—	१३५
२०-४०	४५	४३६	२००	४	६८५
४०-६०	१६	५००	३९८	२५	९३९
६०-८०	—	१०५	५३२	४०	६७७
८०-१००	—	८	४०	१६	६४
योग	९३	११३७	११८५	८५	२५००

(आगरा, एम० कॉम०, १९६०)

७·२६. उत्तर प्रदेश के तीन शहरो मे शिक्षा और अपराध की प्रवृत्ति के बीच साहचर्य देखने के लिए किये गए एक अनुसंधान से निम्न प्रदत्त मिले तीनो शहरों मे अपराध की भावना और शिक्षा के बीच साहचर्य की मात्रा का मापन कीजिये

	कानपुर	इलाहाबाद	आगरा
कुल	२४४	१८४	२३०
शिक्षित	४०	४७	३३
शिक्षित अपराधी	३	२	३
अशिक्षित अपराधी	४०	२०	२४३

(आगरा, एम० कॉम, १९६०, १९५४)

७·२७ निम्न तालिका मे ४५ व्यक्तियों के वेतन और आयु का सम्बन्ध प्रकट किया गया है आयु और वेतन मे सहसम्बन्ध की मात्रा निश्चित कीजिये।

आयु/वेतन	६०—	७०—	८०—	९०—	१००-११०
२०-३०	४	३	१	—	—
३०-४०	२	५	२	१	—
४०-५०	१	२	३	२	१
५०-६०	—	१	३	५	२
६०-७०	—	—	१	१	५

(आगरा, एम० कॉम०, १९५४)

७·२८ भ्रमात्मक साहचर्य से आप क्या समझते है ? बेकारी और शिक्षा मे साहचर्य निकालिये यदि

	ग्रामीण	शहरी
कुल पुरुषों की संख्या (लाखों में)	२५	२००
शिक्षित पुरुष	१०	४०
बेकार बैठे पुरुष	५	१२
शिक्षित एवं बेकार पुरुष	३	४

(आगरा, एम० कॉम०, १९५४)

७·२९ अवनति (regression) से आप क्या समझते है ? दो अवनति समीकरणों की किस्म क्यों होती है ? दो वस्तुओ के मान निम्नलिखित है

(अ) ११० ११३ ११८ ११८ १२० १०५ ११० ११५ १४०
(ब) १२५ १११ १२७ ११५ ११६ १४३ १४७ १३५ १६०

(अ) का मान बताओ जब (ब) का मान १४५ है (आगरा, एम० कॉम०, १९५५)
(आगरा, एम० ए०, १९६०,)

७·३० (अ) किसी परीक्षा में ७२० विद्यार्थी सम्मिलित हुए। उनमे से ४६५ ने

७·४४ क्या ग्रन्धापन ग्रौर गजापन सहचारी गुण हैं निम्न प्रदत्त की सहायता से विवेचना कीजिये—

कुल जनसंख्या	१६, २६, ४०००
गजे	२४४४१
ग्रधे	७६२३
गजे ग्रन्धे	२२१

(ग्रागरा, एम०ए० गणित, १६५६)

७·४५ दो ग्रायु-वर्गों (age groups) में पागलपन ग्रौर ग्रन्धेपन में सम्बन्ध देखने के लिये निम्न सामग्री इकट्ठी की गई। क्या इस प्रदत्त के ग्राधार पर ग्राप यह मकते हैं कि एक वर्ग दूसरे वर्ग से ग्रधिक समजन (adjustment) प्राप्त कर लेता है।

	ग्रायु वर्ग १५-२५	ग्रायुवर्ग ७५ से ऊपर
कुल संख्या	२७०,०००	१६०,२००
ग्रन्धे	१०००	२०००
पागल	६०००	१०००
पागल ग्रन्धे	१६	६

(ग्रागरा, एम०ए०, ग्रर्थ०, १६५५)

७·४६ दो गुणों के सहचारी होने से ग्राप क्या समझते हैं। शिक्षा ग्रौर नौकरी के बीच साहचर्य गुणांक निकालिए—

	नौकरी शुदा	बेकार
ग्रशिक्षित	५६६७	४३२
हाईस्कूल से कम शिक्षा प्राप्त	५७२	६६
हाईस्कूल से ग्रधिक शिक्षा प्राप्त		

(ग्रागरा, एम०कॉम०, १६६१)

७·४७ स्त्री, पुरुष, लड़के ग्रौर लड़कियों ने १५ कुरीतियों को जो ग्रनुस्थितियाँ दीं उनके ग्रौसत नीचे दिये जाते हैं। क्या इस प्रदत्त के ग्राधार पर यह कहा जा सकता है कि लड़कों ग्रौर लड़कियों की ग्रनुस्थितियों में लड़के ग्रौर पुरुषों की ग्रनुस्थितियों की ग्रपेक्षा साहचर्य ग्रधिक है ?

कुरीतियाँ	पुरुष	लड़के	लड़कियाँ
१	१	२	२
२	२	१	४
३	५	३	१
४	४	४	३
५	३	५	७
६	६	७	६
७	८	६	८
८	७	८	११
९	९	१०	५
१०	१०	९	१०
११	१२	१४	९
१२	११	१३	१२
१३	१५	११	१३
१४	१४	१२	१४
१५	१३	१५	१५

७.४८ निम्नलिखित दो श्रेणियो मे दो परिवर्त्य राशियो का सम्बन्ध दिखाया गया है। सह सम्बन्ध गुणक की गणना कीजिये और यह बतलाइये कि सह सम्बन्ध के इस सूचक की सीमाये क्या है।

य ११ ६ ११ १७ १८ १६ १६ १८ १६ १२
र २१ १७ २० ३८ ३८ ४० ४२ ४६ ४० ३८

(M. S. W. १९६०)

७.४९ सह सम्बन्ध और अवगति (regression) से आप क्या समझते हैं, किसी वर्ष की हाईस्कूल परीक्षा मे प्राप्त अंको के विश्लेषण के आधार पर निम्न प्रदत्त मिला

अंग्रेजी मे प्राप्तांको का मध्यमान ३९.५, प्रा० वि० १०.८
$r = .42$
गणित " " ४७.६ १६.६

दोनो अवगति समीकरणो को निकालिये और जिस विद्यार्थी के अंग्रेजी मे अंक ५० थे उसके प्रत्याशित अंकगणित मे निकालिये

(बी०एम०-सी० १९६०)

७.५० एक सह सम्बन्ध गुणक तालिका मे निम्नलिखित अवगति समीकरण मिली

x, y, के मध्यमानो एव x और y के बीच r की गणना करो तथा $\frac{\sigma x}{\sigma y}$ का मान निकालो

$y = .516\,x + 33.73$
$x = .512\,x + 32.52$

७.५१ एक विद्यार्थी समूह को शाब्दिक एव अशाब्दिक परीक्षाएँ दी गई निम्न प्रदत्त के आधार पर अवगति समीकरण बताइये (Score form),

	शाब्दिक	अशाब्दिक
मध्यमान	१२०.०	८०.०
प्रा० वि०	७ ५	९.५

$r = .55$

७ ५२ निम्न प्रदत्त के आधार पर r की गणना कीजिये

भार पौण्डो मे (X)

ऊँचाई इंचो मे	२४—	२९—	३४—	३९—	४४—	४९—
४५-४७			१		२	
४२—			४	३५	२१	५
३९—		५	८७	९०	७	१
३६—	१	१८	७२	८		
३३—	५	१५	५			
३०—	२					

(एम० ए०, मनोविज्ञान, १९५९)

७.५३ निम्न प्रदत्त से r निकालिये

य १८, २४, १६, १९, २५, २६, २८, २०, २२, २१
र १४४, १५०, १३६, १४३, ११७, ११६, १४१, १४६ १४८, १४१

(बी० टी० १९५

७ ५४ अर्थशास्त्र और गणित मे १० विद्यार्थियों को निम्न ranks दिये गये निकालिये

ग्रर्थ	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
गणित	६	५	१	४	२	७	८	१०	३	९

(कलकत्ता, १९४७)

७ ५५ निम्नलिखित समीकरण एक ही समूह का निरूपण करती है उनकी कौन कौन सी विशेषताएँ समान हो सकती हैं :—

य+र=५, य+र=१, य+र=ग, य+र=−३, य+र=क

७.५६ एक सूत्र लिखिये जिससे अन्य असमान वर्ग विस्तारों पर निरीक्षणों का अन्वेशन कर सकते हैं ?

य	३	७	९	१०
र	१६८	१२०	७२	६३

य = ६ तो र का सर्व सम्भाव्य मान बताइये।

निम्न प्रदत्त की सहायता से Coefficient of association निकालिये

७.५७ Vakedr से सह सम्बन्ध मात्रा की गणना कीजिये

विद्यार्थी		१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
परीक्षा	ग्र	६५	८५	६४	७८	६०	७०	८३	५५	५०	७२	५९
	ब	७५	६६	५८	८२	५८	८०	८०	७१	५८	५५	६८

अध्याय ८

कुछ सैद्धान्तिक वितरण वक्र-द्विपद

समसम्भावित t, X^2, और Z वितरण

Q. 8.1 What is a theoretical distribution? How is it obtained? Explain by means of examples.

सैद्धान्तिक वितरण (Theoretical Distributions)

(i) द्विपद (Binomial Distribution)
(ii) समसम्भावित (Normal Distribution)
(iii) t Distribution
(iv) X^2 Distribution
(v) Z Distribution
(vi) F Distribution

उदाहरण के लिए किसी सिक्के को उछालने पर वह चित्त अथवा पट्ट गिरता है ऐसे ही यदि कुछ सिक्के एक साथ उछाले जायें तो कुछ चित्त गिरेंगे और कुछ पट्ट। कितने सिक्के चित्त गिरेंगे और कितने पट्ट बार-बार उछाले जाने पर इस प्रकार प्राप्त विवरण सैद्धान्तिक वितरण होगा क्योंकि उसकी गणना किसी सिद्धान्त पर आधारित होगी। इस सिद्धान्त को द्विपद सिद्धान्त कहते हैं।

Q. 8.2 Explain the circumstances under which a Binomial Distribution is obtained A test containing to True-False items is administered to 1024 boys How many boys will get 70% or more marks through mere guessing

द्विपद वितरण (Binomial Distribution)

यदि किसी नये समरूप वृताकार (unbiased) सिक्के को उछाल दिया जाय तो या तो पृथ्वी पर गिरते समय वह सिर के बल चित्त गिरेगा या पीठ के बल (पट्ट) गिरेगा। अतः चित्त या पट्ट गिरने की सम्भाव्यताएँ (probabilities) क्रमशः $\frac{1}{2}$ और $\frac{1}{2}$ होंगी। इसी प्रकार यदि दो सिक्कों को एक साथ उछाला जाय तो निम्नलिखित चार दशाओं में से एक दशा अवश्य मिलेगी।

या तो (अ) दोनों सिक्के चित्त (सिर के बल) गिरेंगे — H.H.
अथवा (ब) एक सिक्का चित्त और दूसरा पट्ट गिरेगा — H.T.
अथवा (स) एक सिक्का पट्ट और दूसरा चित्त गिरेगा — T.H.
अथवा (द) दोनों सिक्के पट्ट गिरेंगे — T.T.

$\frac{1}{4} = (\frac{1}{2})^2$

$2 \cdot (\frac{1}{2})^2$

के विस्तार करने पर प्राप्त पद होंगे

$$\left(\frac{1}{2}+\frac{1}{2}\right)^2$$

इसी प्रकार यदि तीन (unbiassed) सिक्के एक साथ गिराये जायें तो शून्य, एक, दो और तीन सिक्के एक साथ चित्त पडने की सम्भाव्यतायें निम्नलिखित होगी :

$(\frac{1}{2})^3$, $3(\frac{1}{2})^3$, $3(\frac{1}{2})^3$, $(\frac{1}{2})^3$,

जो व्यजक $(\frac{1}{2}+\frac{1}{2})^3$ के विस्तार के पद होगे

क्योंकि ८ दशायें प्राप्त होगी उनके साकेतिक स्वरूप निम्नलिखित हो सकते हैं—

HHH, HTT, THT, TTH, HHT, HTH, THH, TTT

इसी प्रकार यदि n सिक्कों को एक साथ उछाला जाय तो

शून्य, एक, दो, ... n सिक्को के चित्त पडने की सम्भाव्यतायें द्विपद $(\frac{1}{2}+\frac{1}{2})^n$ के विस्तार के $(n+1)$ पद होगे

$$(\tfrac{1}{2})^n,\ {}^nC_1\,(\tfrac{1}{2})^n\ {}^nC_2\,(\tfrac{1}{2})^n\ \ldots {}^nC_n\,(\tfrac{1}{2})^n$$

यह सिक्के पूरी तरह समरूप या वृत्ताकार (homogenious circular) न होते तो उनके चित्त गिरने की सम्भाव्यता $\frac{1}{2}$ न होकर $\frac{1}{3}$ या कुछ और हो सकती है । मान लीजिये कि यह सम्भाव्यता (Probability) p है तो पट्ट गिरने की सम्भाव्यता $1-p$ या q होगी । ऐसी दशा मे शून्य, एक, दो या तीन ... सिक्को के एक साथ चित्त गिरने की सम्भाव्यतायें द्विपद $(q+p)^n$ के निम्न पद होगे

$$q^n+{}^nC_1\,q^{n-1}\,p+{}^nC_2\,q^{n-2}\,p^2+\cdots+{}^nC^r\,q^{n-r}\,p^r+\cdots+q^n$$

द्विपद वितरण का प्रयोग शिक्षा के क्षेत्र मे किस प्रकार होता है इसको उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया जायगा ।

उदाहरण ८.२ यदि किसी सत्य-असत्य दशा प्रश्ना वाली परीक्षिका को १०२४ ऐसे विद्यार्थियो को दिया जाय जिनको विषय की जानकारी नाम मात्र की भी न हो तो ७०% से अधिक अक पाने वाले विद्यार्थियो की सख्या बताइये ।

सत्य-असत्य प्रश्न को कोई विद्यार्थी, जिसे उस विषय का ज्ञान बिलकुल नही है, या तो सत्य पर निशान लगाया या असत्य पर अतएव किसी प्रश्न को सही करने की सम्भाव्यता $\frac{1}{2}$ है। अत दस प्रश्नो वाली परीक्षा में शून्य, एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ नौ और दसो प्रश्नो को सही करने की सम्भाव्यतायें (Probabilities) निम्न द्विपद के विस्तार करने पर मिल सकती हैं

$$\left(\frac{१}{२}+\frac{१}{२}\right)^{१०}$$

१०२४ विद्यार्थियो मे से कितने शून्य, एक, दो ... प्रश्नों को सही करेंगे उनकी संख्या निम्न द्विपद के विस्तार करने पर मिल सकती है

$$१०२४\left(\frac{१}{२}+\frac{१}{२}\right)^{१०}$$

ये सख्यायें या आवृत्तियां निम्न वितरण मे लिखी जा सकती हैं

सही प्रश्नो की सख्या	विद्यार्थियो की सख्या
०	१
१	१०
२	४५
३	१२०
४	२१०
५	२५२
६	२१०
७	१२०
८	४५
९	१०
१०	१

७०% या ७०% से अधिक अंक पाने वाले विद्यार्थी वे होंगे जिनके ७, ८, ९, १० प्रश्न सही हो अत. उनकी सख्या = १२० + ४५ + १० + १
= १७६

दूसरे शब्दो मे १७% विद्यार्थियो को ७०% अंक मिल जायेंगे भले ही वे विषय की बिल्कुल भी जानकारी न रखते हो यदि इस आवृत्ति वितरण को चित्र द्वारा प्रदर्शित करें तो एक सम आवृत्ति वक्र मिलेगा जिसमें मध्यमान, मध्यांकमान, और बहुलांकमान सब समान दिखाई देंगे। गणना करने पर भी इस तथ्य की पुष्टि की जा सकती है। देखिये चित्र ८'१

इस वितरण का मध्यमान np और प्रामाणिक विचलन $\sqrt{npq}$ होता है। प्रस्तुत उदाहरण में सही प्रश्नो का मध्यमान M = १० $\frac{१}{२}$ = ५ और प्रामाणिक विचलन $\sigma = \sqrt{१० \cdot \frac{१}{२} \cdot \frac{१}{२}}$ = $\sqrt{२'५}$ = १'५८ है M ± ३σ = ५ ± १'५८ × ३ = ९'७४, ०'२६ के बीच लगभग १००% आवृत्तियां स्थित हैं। M ± २σ अर्थात् ५ ± ३ १६ या ८'१६ और १ ८४ के बीच
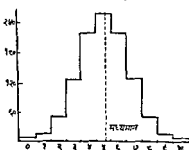
यदि चित्र ८ १ को सरलित (Smooth) किया जाय तो उसका रूपचित्र ८ २ जैसा होगा।

चित्र ८'१

Q 8 3 Show how a normal distribution is an approximation of a binomial. Explain the assumptions underlying it. Explain also the terms Normal Durate and Probability Integral.

सम सम्भाव्य वितरण (Normal Distribution)

यदि परीक्षिका के प्रश्नो की सख्या १० के स्थान पर २० कर दी जाय तो शून्य, एक, दो ···· बीस प्रश्नों को सही करने की सम्भाव्यतायें (Probabilities) निम्न व्यजक के विस्तार द्वारा दी जा सकती हैं

$$\left(\frac{१}{२}+\frac{१}{२}\right)^{२०} = \frac{२}{२^{२०}} \left[१+२०+१९०+११४०+४८४५+१५५०४+\ldots\right]$$

चित्र ८ २ मे देखने से पता चलता है कि इन आवृत्तियों को प्रदर्शित करने वाला वक्र काफी सरलित smooth) और समर्मित है किन्तु $(\frac{१}{२}+\frac{१}{२})^{१०}$ के विस्तार मे पदो को प्रदर्शित करने वाला वक्र इतना सरलित नहीं है। द्विपद के घातांक की सख्या बढ़ा देने पर वक्र और अधिक सरलित हो सकता है। इस सरलित वक्र को सम-सम्भाव्य वक्र (normal) कह सकते हैं।

यदि द्विपद का रूप निम्नलिखित भी हो

$$(p+q)^n$$

और जिसमे n का मान अनन्त और $\frac{q-p}{\sqrt{npq}}$ अत्यन्त छोटी सख्या हो तो द्विपद वितरण (binomial distribution) आवृत्ति-बहुभुज का ऐसा ही रूप भी समर्मित और सरलित होगा जिसे हम सम सम्भावित वक्र (normal) कह सकते है।

मध्यमान को मूलबिन्दु मानकर इस वक्र का समीकरण निम्नलिखित होगा

$$y = \frac{N}{\sigma\sqrt{2\pi}} e^{-\frac{x^2}{2\sigma^2}}$$ और यदि मध्यमान को मूलबिन्दु न माना जाय

तो उसका समीकरण $y = \frac{N}{\sigma\sqrt{2\pi}} e^{-\frac{(x-M)^2}{2\sigma^2}}$ होगा।

इस तालिका को देखने से पता चल सकता है कि यदि $z=$ १'६ अर्थात् $\frac{x-M}{\sigma}=$ १'६

हो तो z=∞ और z= १'६ के बीच पड़ा हुआ क्षेत्रफल ६७'१२८% होगा । यदि z= १'६६ हो तो इस तालिका में अन्तर्वेश (Interpolate) करना पड़ेगा । अन्तर्वेशन विधि नीचे दी जाती है।

z के मान १'६ पर क्षेत्रफल = ६७'१२८%
'१ के लिये अन्तर = ५६७%
∴ '०६ " " = '३५८२%
z के मान १'६६ के लिये क्षेत्रफल = ६७'१२८ + '३५८
= ६७'४८६ = ६७'५० लगभग

Q. 8'4. Explain the Properties of Normal Distribution.

सम सम्भाव्य वितरण की विशेषतायें (Properties of normal distributions)

(१) सम सम्भाव्य वितरणों के आवृत्ति वक्र देखने में (frequency curves) घण्टाकार होते हैं जिनकी ककुद वक्रता सामान्य होती है न तो वे अधिक चिपटे और न नुकीले होते हैं।

(२) सम सम्भाव्य वितरणों के मध्यमान, मध्यांकमान और बहुलांकमान तीनों समान रहते हैं।

(३) इन वितरणों के प्रामाणिक विचलन, मध्यक विचलन और चतुर्थांश विचलन (सम्भाव्य त्रुटि) में विशेष सम्बन्ध होता है। देखिये (६'१४)। उदाहरण स्वरूप

प्रामाणिक विचलन = १'२५३३ मध्यक विचलन ।
= १'४८२६ चतुर्थांश विचलन ।
चतुर्थांश विचलन (Q or PF) = '६७४५ प्रामाणिक विचलन ।

(४) मध्यमान, मध्यांकमान तथा बहुलांकमान के समान होने के कारण वक्र और वितरण सममित (Symmetrical) होते हैं।

(५) इन वक्रों की ककुद वक्रता की माप $\beta_2=$ ३ के बराबर होती है।

सम्भाव्य वक्रों (normal curves) को अंग्रेजी भाषा के normal विशेषण से आभूषित

मध्यमान और मध्यांकमान से १ प्रा० वि० की दूरी पर स्थित कोटियों के बीच किसी माप के पड़ने की सम्भाव्यता '३४१३४ है क्योंकि ३४'१३४% क्षेत्रफल इन कोटियों के बीच आवेष्ठित है। सम सम्भाव्यता वक्रों में भिन्न-भिन्न कोटियों के बीच कितने प्रतिशत क्षेत्रफल आवृत रहता है यह तालिका (८'१) से ज्ञात किया जा सकता है।

Q 8'5 Explain some of the applications of the properties of normal curve to educational practice with appropriate examples.

सम्भाव्यता वक्रों की उपयोगिता (Applications of Normal Curve)

सम्भाव्यता वक्रों की विशेषताओं का उपयोग निम्नलिखित उदाहरणों की सहायता से स्पष्ट किया जायगा।

उदाहरण ८'५ (अ)—यदि किसी प्रामाणिक परीक्षा को १००० बालकों पर लागू करवा कर उनके प्राप्तांकों का औसत १४'४० और प्रामाणिक विचलन $\sigma=$ २'५० हो तो बताइये कि कितने प्रतिशत विद्यार्थियों के अंक

(१) १२ और १६ के बीच में हैं ?
(२) १८ से अधिक किन्तु ८ से कम हैं ?
(३) १५ से अधिक पाने की क्या सम्भाव्यता (probability) है ?

(१) इस प्रश्न में मध्यमान ($\bar{X}$) = १४'४० अंक प्रा० वि० (σ) = २'५० अंक है,

अत अंक १२ (x) के लिये (normal deviate) $=\left(\frac{x-\overline{X}}{\sigma}\right)=\frac{१२-१४\cdot४०}{२\cdot५०}=-\cdot६४$

∴ मध्यमान तथा z = −·६४ के बीच आवेष्टित क्षेत्रफल का प्रतिशत कुल का

= २२·५७५
+·३२२९ × ४
= २२·५७५ + १·२९१६
= २३·८६६६

अंक १६ के लिये normal deviate $z=\frac{१६-१४\cdot४०}{२\cdot५०}=+\cdot९६$

मध्यमान तथा z = +·९६ के बीच आवेष्ठित क्षेत्रफल का प्रतिशत

= ३१·५९४ + २ ५४० × ·६
= ३१·५९४
+ १·५२४०
= ३३ ११८०%

अत z = −·६४ और z = +·९६ के बीच क्षेत्रफल = २३·८६६
+ ३३·११८
= ५६·९८४%

दूसरे शब्दो मे यह भी कह सकते हैं कि १२ और १६ के बीच के अक किसी बालक को मिलें इसकी सम्भाव्यता ·५६९८४ है।

(२) अंक १८ का normal deviate $=\frac{१८-१४\cdot४०}{२\cdot५०}$

$=\frac{३\cdot६०}{२\cdot५०}=+१\cdot४४$

या z = +१·४४

∴ मध्यमान तथा अंक १८ के बीच आवृत्तियो का प्रतिशत = ४१·९२४
+·५५८०
= ४२·४८२

∴ १८ से अधिक अंक पाने वालो का प्रतिशत अर्थात् z = +१·४४ से दायीं ओर का क्षेत्रफल = ५० − ४२·४८२
= ७·५१८%

अंक ८ का normal deviate $z=\frac{८-१४\cdot४०}{२\cdot५०}=\frac{-६\cdot४०}{२\cdot५०}=२\cdot५६$

मध्यमान १४·४० और ८ के बीच क्षेत्रफल अर्थात् z के लिये क्षेत्रफल
= ४९·३७९
+·०९३०
= ४९·४७२

∴ ८ से कम अंक पाने वालो की प्रतिशत संख्या = ५० − ४९·४७२
= ·५२८%

(४) १५ से अधिक अंक पाने की सम्भाव्यता = १५ से अधिक अंक पाने वालो प्रतिशत संख्या का १०० वाँ भाग

और मध्यमान B से लो =±·६σ=±१·२σ, =±१·८σ, =±२·४σ, =±३·०σ की दूरी पर हम चिन्ह लगाने पड़ेंगे ।

चित्र ८ १
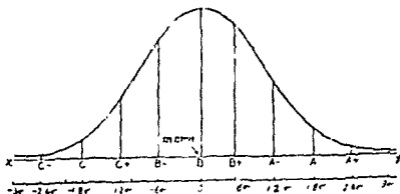
B और B+ पर खड़ी की गई कोटियां (ordinates) के बीच आवृत्ति सख्या = २२·२७ क्योंकि normal deviate z = + ६ के लिये संख्या २२·५७% है देखिये तालिका (८·१)

इसी प्रकार normal deviate z = + १·२ और मध्यमान के बीच आवृत्ति सख्या = ३८·४९

∴ कोटि B+ और A— के बीच पड़ी हुई आवृत्ति सख्या = ३८·४९ — २२·५७ = १५ ९२%

इसी प्रकार, कोटि A— और A के बीच पड़ी हुई आवृत्ति सख्या = ४६·४१ — ३८·४९ = ७·९२%

कोटि A और A+ के बीच पड़ी हुई आवृत्ति सख्या = ४९·१८ — ४६·४१ = ३ ७७%

A+ और Y के बीच आवृत्ति सख्या = ४९·८६ — ४९ १८ = ·६८%

अत. वर्ग श्रेणी A+ मे पड़ने वाले विद्यार्थियों की प्रतिशत सख्या ·६८%

A	३·७७
A—	७·९२
B+	१५·९२
B	२२·५७ + २२·५७ = ४५·१४
B—	१५·९२
C+	७·९२
C'	३·७७
C—	·६८

किसी विद्यार्थी समूह को वर्ग श्रेणियो मे विभाजित करते समय तीन बातो पर ध्यान देना आवश्यक है। यदि समूह की सख्या काफी बडी नही है, यदि वह इच्छा पूर्वक चुना नही गया है, और यदि उन पर लागू की गई उसी क्षेत्र से सम्बन्धित परीक्षा के प्राप्तांकों का वितरण normal वक्रों जैसा नहीं है तो सामान्य वक्र पर आधारित यह श्रेणी विभाजन भी उचित नही हो सकता।

उदाहरण (८·५ क)—यदि परीक्षा के प्राप्तांको के अनुसार किसी विद्यार्थी वर्ग को ५ समूहों मे बांटना हो तो प्राय. उस भाग को जो सीमा को M±२·५σ या M±३σ के बाहर पडते , सम्भाव्यता वक्र (normal curve) के भाग को छोड दिया जाता है। तत्पश्चात् इस प्रकार क्षेत्र

५ बराबर भागो मे बाँट दिया जाता है। ये भाग क्रमश. अ, ब, स, द, य श्रेणियो को सूचित करते है। ५ भागो को सूचित करने वाले ६ मान निम्नलिखित हों।

$\mu-२\cdot५\sigma \quad \mu-१\cdot५\sigma \quad \mu-\cdot५\sigma \quad \mu+\cdot५\sigma \quad \mu+१\cdot५\sigma \quad \mu+२\cdot५\sigma$

यदि $z=\frac{x-\mu}{\sigma}$ मान लिया जाय तो ये मान निम्नलिखित होगे।

—२ ५, —१ ५, — ५ +·५, +१·५, +२ ५

इन वर्ग विस्तारो (intervals) के बीच मे पडा हुआ सम्भाव्यता वक्र का क्षेत्रफल क्रमश ६%, २४%, ३८% २४%, ६% होगा।

अब चूँकि ये प्रतिशतो का योग १०० नही है अत शेष २% को सीमान्त वर्ग विस्तारो मे बाँटा जा सकता है अत अ ब स द य और इन ५ श्रेणियो मे क्रमश ७, २४, ३८, २४ और ७ प्रतिशत विद्यार्थी रखे जा सकते हैं।

Q 8 6 What is a standard score ? Why is it more useful in comparing like achievement of two or more pupils Discuss the uses of various standard scores

प्रामाणिक फलाक (Standard scores)

शैक्षणिक तथा अन्य मनोवैज्ञानिक परीक्षाओ का कोई विशेष अर्थ नही होता और न हम उनकी सहायता से एक विद्यार्थी की योग्यता, बुद्धि, अधिगम या व्यक्तित्व के किसी गुण की तुलना दूसरे विद्यार्थी से ही कर सकते हैं। कक्षा मे किसी विद्यार्थी की सापेक्षिक स्थिति क्या है, इस प्रश्न का उत्तर कक्षा के समस्त विद्यार्थियो के कच्चे फलाक (raw scores) नही दे सकते। इस कार्य के लिये प्रतिशततमक अनुस्थितियाँ (Percentile rank) जिसका उल्लेख धारा ५·१६ मे किया गया था यद्यपि शैक्षणिक जगत् मे अधिक प्रयोग में आती हैं किन्तु उसमे सबसे बडा दोष यह है कि वे एक सैम्पिल से दूसरी सैम्पिल मे इस प्रकार विचलित रहती हैं कि उनका मध्यमान अशुद्ध हो जाया करता है। अत एक विद्यार्थी की तुलना दूसरे से करने के लिये अथवा भिन्न-भिन्न विषयो मे प्राप्तांकों को जोड सकने के लिये कुछ अन्य अर्जित (derived) अथवा प्रामाणिक फलाको की गणना की जाती है।

जब किसी फलाक को मध्यमान से ऊपर या नीचे प्रामाणिक विचलन के पदो मे प्रगट किया जाता है तब वह फलाक प्रामाणिक फलाक कहलाता है। ये फलाक चार प्रकार के होते हैं

(१) z फलाक
(२) Z फलाक
(३) σ फलाक
(४) T फलाक

८ (1) z फलाक

यदि किसी परीक्षिका मे एक विशाल समुदाय द्वारा प्राप्त फलाको का औसत $\overline{X}$ तथा प्रामाणिक विचलन σ हो तो जिस विद्यार्थी को x फलाक मिले हैं उसका प्रामाणिक z फलाक होगा।

$$z=\frac{x-\overline{X}}{\sigma}$$

यह सख्या सम्भाव्यता वक्र का normal deviate z ही है।

उदाहरण स्वरूप, यदि किसी परीक्षा मे समस्त प्राप्ताको का मध्यमान ५०, प्रामाणिक विचलन ७ हो तो उस विद्यार्थी का प्रामाणिक z फलाक जिसका कच्चा फलाक ४० है निम्नलिखित होगा।

$$z=\frac{४०-५०}{७}=-\frac{१०}{७}=-१\cdot४३$$

अब २७·५ का z फलाक = ५० + १०(—२·१६)
= ५०—२१·६ = २८ १

२९·५ का z फलाक = ५० — १४ ४ = ३५ ६

अन्य z फलाक तालिका के पाचवें स्तम्भ मे दर्ज किये गये हैं।

अक २७, २८, २९ आदि के लिये z फलाक इसी प्रकार निकाले जा सक्ते हैं।

z या Z फलाको की गणना करते समय यह मान लिया जाता है कि कच्चे फलाको का वितरण सम सम्भाव्यता वितरण जैसा है किन्तु फलाको के वितरण प्राय विषम हुआ करते हैं अत इन प्रामाणिक फलाकों के स्थान पर एक अन्य फलाक की गणना की जाती है जिसे T प्रामाणिक फलांक कहते हैं। अत वितरण के सम होने पर T और Z फलाक समान हो जाया करते हैं।

Z फलाक की तरह T फलाक का मध्यमान भी ५० और प्रामाणिक विचलन १० माना जाता है। गणना विधि नीचे दी जाती है

वर्ग	आवृत्ति सख्या	वर्ग का मध्यबिन्दु	सचयी आवृत्ति	प्रत्येक मध्यबिन्दु से नीचे सचयी आवृत्ति सख्या	प्रतिशत सचयी आवृत्ति	T फलाक तालिका ८·२ मे देखकर
२७—२८	१	२७ ५	१	१/२ = ५	१ २५	२७
२९—३०	५	२९ ५	६	१ + ५/२ = ३ ५	८·७५	३६
३१—३२	९	३१ ५	१५	६ + ९/२ = १०·५	२६ २५	४३
३३—३४	१३	३३·५	२८	१५ + १३/२ = २१ ५	५३·५०	५१
३५—३६	७	३५ ५	३५	२८ + ७/२ = ३१·५	७८·७५	५८
३७—३८	४	३७ ५	३९	३५ + ४/२ = ३७	९२ ५०	६५
३९—४०	१	३९·५	४०	३९ + १/२ = ३९·५	९८·७५	७३

T और Z फलाको को देखने से पता चलता है कि वे लगभग समान हैं।

तालिका ८·२

सचयी प्रतिशत आवृत्तियां तथा T फलांक

सचयी प्रतिशत आवृत्ति	T फलाक	सचयी प्रतिशत आवृत्ति	T	सचयी प्रतिशत आवृत्ति	T
००३२	१०		२५		४१
	११		२६		४२
	१२		२७		४३
	१३		२८		४४
	१४		२९		४५
	१५		३०		४६
	१६		३१		४७
	१७		३२		४८
	१८		३३		४९
	१९		३४		५०
	२०		३५		५१
	२१		३६		५२
	२२		३७		५३
	२३		३८		५४
	२४		३९		५५
			४०		५६

अब २७·५ का z फलाक = ५० + १०(—२·१६)

= ५० — २१·६ = २८·१

२९·५ का z फलाक = ५० — १४·४ = ३५·६

अन्य z फलाक तालिका के पाचवें स्तम्भ मे दर्ज किये गये हैं।

अक २७, २८, २९ आदि के लिये z फलाक इसी प्रकार निकाले जा सकते हैं।

z या Z फलाको की गणना करते समय यह मान लिया जाता है कि कच्चे फलाको का वितरण सम सम्भाव्यता वितरण जैसा है किन्तु फलाकों के वितरण प्राय विषम हुआ करते हैं अत: इन प्रामाणिक फलाको के स्थान पर एक अन्य फलाक की गणना की जाती है जिसे T प्रामाणिक फलाक कहते हैं। अत: वितरण के सम होने पर T और Z फलाक समान हो जाया करते है।

Z फलाक की तरह T फलाक का मध्यमान भी ५० और प्रामाणिक विचलन १० माना जाता है। गणना विधि नीचे दी जाती है

वर्ग	आवृत्ति सख्या	वर्ग का मध्यबिन्दु	सचयी आवृत्ति	प्रत्येक मध्यबिन्दु से नीचे सचयी आवृत्ति सख्या	प्रतिशत सचयी आवृत्ति	T फलाक तालिका ८·२ से देखकर
२७—२८	१	२७·५	१	१/२ = ·५	१·२५	२७
२९—३०	५	२९·५	६	१ + ५/२ = ३·५	८·७५	३६
३१—३२	९	३१·५	१५	६ + ९/२ = १०·५	२६·२५	४३
३३—३४	१३	३३·५	२८	१५ + १३/२ = २१·५	५३·५०	५१
३५—३६	७	३५·५	३५	२८ + ७/२ = ३१·५	७८·७५	५८
३७—३८	४	३७·५	३९	३५ + ४/२ = ३७	९२·५०	६५
३९—४०	१	३९·५	४०	३९ + १/२ = ३९·५	९८·७५	७३

T और Z फलाको को देखने से पता चलता है कि वे लगभग समान है।

तालिका ८·२

सचयी प्रतिशत आवृत्तियाँ तथा T फलाक

सचयी प्रतिशत आवृत्ति	T फलाक	सचयी प्रतिशत आवृत्ति	T	सचयी प्रतिशत आवृत्ति	T
·००३२	१०		२५		४१
	११		२६		४२
	१२		२७		४३
	१३		२८		४४
	१४		२९		४५
	१५		३०		४६
	१६		३१		४७
	१७		३२		४८
	१८		३३		४९
	१९		३४		५०
	२०		३५		५१
	२१		३६		५२
	२२		३७		५३
	२३		३८		५४
	२४		३९		५५
			४०		५६

प्रतिशततम को एवं प्रामाणिक फलांकों के बीच सम्बन्ध स्पष्ट करने के लिये चित्र (८.४) प्रस्तुत किया जाता है—

विभिन्न प्रतिशततमकों और तत्सम्बन्धी सिग्मा σ दूरियों को निम्न तालिका में दिखाया गया है —

प्रतिशततम	९९	९५	९०	८०	७०	६०	५०	४०	३०	२०
सिग्मा σ दूरी	२.३३	१.६४	१.२८	.८४	.५२	.२५	०	-.२५	—.५२	—.८४

प्रतिशततम	१०	५	१
सिग्मा σ दूरी	—१.२८	—१.६४	—२.३३

चित्र ८.४
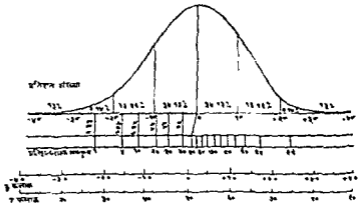
Q. 8.9. How can two ranks be made more comparable ? Explain the method of converting ranks given by a set of examiners to a number of pupils into composite normal scores.

संयुक्त सम्भाव्य फलांक (Composite Normal Scores)

८.९ म मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं में विद्यार्थियों को मनुस्थिति क्रम से सजाया जाता है किन्तु दो क्रमागत मनुस्थितियों के अन्तर समान होने पर भी उनसे सम्बन्धित फलांकों में अन्तर समान नहीं होता। मान लीजिये कि दस अध्यापकों को प्रयोगात्मक परीक्षा में निम्नलिखित अंक प्राप्त हुए—

९० ७८, ३५, ६५, ८२, ७३, ५२, ६२, ४०, ५८

इन फलांकों के अनुसार उनको दस मनुस्थितियाँ दी जा सकती हैं। अधिकतम ९० अंक पाने वाले को एक और न्यूनतम अंक ३५ पाने वाले को दसवीं मनुस्थिति दी जायगी। अन्य मनुस्थितियाँ और उनसे सम्बन्धित अंक नीचे दिये जाते हैं—

अंक	९०	७८	३५	६५	८२	७३	५२	६२	४०	५८
मनुस्थिति	१	३	१०	५	२	४	८	६	९	७

काफी सोचता है और ऊँची अनुस्थिति पाने वालो मे योग्यता का अन्तर कम किन्तु बीच के विद्यार्थियो की योग्यता का अन्तर कम होता है।

तालिका ८·३

प्रतिशत स्थितियो और सम्भाव्य (normal) गुणाको मे सम्बन्ध

प्र० स्थिति	गु०	प्र०स्थिति	गु०	प्र० स्थान	गु०	प्र०	गु०	प्र०	गु०	प्र०	गु०
१००	०										
९९·९१	१	९३ १९	२१	६७·४८	४१	४७·९८	५१	१४ २५	७१	१·४२	९१
९९·८०	२	९२·४५	२२	६५·७५	४२	४५·९७	५२	१३ ११	७२	१·११	९२
९९·६८	३	९१·६७	२३	६३·८५	४३	४३ ९७	५३	१२·०४	७३	·९७	९३
९९·५५	४	९०·८३	२४	६१ ९४	४४	४१·९७	५४	११·०३	७४	·७८	९४
९९·३९	५	८९ ९४	२५	५९ ९९	४५	४०·०१	५५	१०·०६	७५	·६१	९५
९९·२२	६	८८ ९७	२६	५८·०३	४६	३६·०६	५६	९·१७	७६	·४५	९६
९९·०३	७	८७·९६	२७	५६·०३	४७	३५·१५	५७	८ ३३	७७	·३२	९७
९८·८२	८	८६ ८९	२८	५४·०३	४८	३३·२५	५८	७ ५५	७८	·२०	९८
९८·५८	९	८५·७५	२९	५२ ०२	४९	३२·४२	५९	६·८१	७९	·०९	९९
९८·३२	१०	८४ ५६	३०	५० ००	५०	३०·६१	६०	६ १४	८०	००	१००
९८ ०४	११	८३ ३१	३१			२८·८६	६१	५ ५१	८१		
९७ ७२	१२	८१·९९	३२			२७·१५	६२	४ ९२	८२		
९७·३७	१३	८० ६१	३३			२५·४८	६३	४ ३८	८३		
९६·९९	१४	७९·१७	३४			२३ ८८	६४	३ ८८	८४		
९६·५७	१५	७७·६८	३५			२२ ३२	६५	३ ४३	८५		
९६·११	१६	७६·१२	३६			२०·९३	६६	३ ०१	८६		
९५·६२	१७	७४ ५२	३७			१९ ३९	६७	२ ६२	८७		
९५·०८	१८	७२·८५	३८			१८ ०१	६८	२ २८	८८		
९४·४९	१९	७१·१४	३९			१६·६९	६९	१ ९८	८९		
९३· ९	२०	६९ ३९	४०			१५ ४८	७०	१ ९	९०		

प्रतिशत अनुस्थिति और नोर्मल (normal) गुणाको के इस सम्बन्ध का प्रयोग कई परीक्षको द्वारा किसी विद्यार्थी वर्ग को दी गई कई श्रेणियाँ (ratings) को सामूहित करने मे किया जाता है। यदि ५ विद्यार्थियो को तीन परीक्षक वर्ग श्रेणियाँ दें तो निश्चय ही उनकी सम्मतियो मे भिन्नता होगी। ऐसी अवस्था मे किस विद्यार्थी को प्रथम अनुस्थिति दी जाय यह समस्या विकट हो जाती है।

इस समस्या का सुलझाव तभी सम्भव है जब प्रत्येक परीक्षक द्वारा दी गई अनुस्थितियो को सामान्य (normal) गुणाक मे बदल दिया जाय। किसी विद्यार्थी द्वारा प्राप्त उन गुणाको का औसत गुणाक उसकी अनुस्थिति को निश्चित कर सकता है। नीचे उदाहरण ८·६ ब मे Composite normal scores निकालने की विधि दी गई है।

उदाहरण ८·६ ब तीन परीक्षक क ख, ग ने विद्यार्थियो मे अ आ इ ई उ ऊ को जो श्रेणियाँ दी वे तालिका के द्वितीय स्तम्भ मे दी गई हैं। कुछ विद्यार्थियो के विषय मे परीक्षक ख, और ग ने कोई सम्मति नहीं दी है और सम्मतियाँ भी भिन्न-भिन्न हैं ऐसी दशा मे किस विद्यार्थी को प्रथम अनुस्थिति दी जाय।

१ परीक्षक	२ परीक्षार्थी	३ R	४ प्रतिनिध्यात्मक अनुस्थिति	५ प्रतिशत अनुस्थिति	६ सामान्य गुणाक
क प्रथम	अ	१	५	८ ३३	७७
	आ	२	१ ५	२४ ९९	६३
	इ	३	२ ५	४१·६५	५४
	ई	४	३ ५	५८ ३१	४६
	उ	५	४ ५	७२ ९७	३७
	ऊ	६	५·५	९१·६३	२३
ख द्वितीय	अ	—	—	—	—
	आ	२	१ ५	४९·८	५०
	इ	—	—	—	—
	ई	२	·५	१६·६	६९
	उ	—	—	—	—
	ऊ	३	२ ५	८३ ०	३१
ग तृतीय	अ	२	१·५	३७·५	५६
	आ	—	—	—	—
	इ	१	·५	१२ ५	७३
	ई	—	—	—	—
	उ	३	२ ५	६२ ५	४४
	ऊ	४	३ ५	८७ ५	२७

परीक्षार्थी	प्रथम परीक्षक	द्वितीय	तृतीय	योग	औसत	अनुस्थिति
अ	७७		५६	१३३	६७	१
आ	६३	५०		११३	५७	४
इ	५४		७३	१२७	६४	२
ई	४६	६९		११५	५८	३
उ	३७		४४	८१	४१	५
ऊ	२३	३१	२७	८१	२७	६

क्रिया के पद—

(१) तीनों परीक्षकों द्वारा दी गयी अनुस्थितियों को उदाहरण ८ ६ अ की तरह सामान्य गुणाकों में परिवर्तन (देखिये तालिका का छठा स्तम्भ)

(२) उन सामान्य गुणाकों के औसत गुणाक की गणना (देखिये तालिका ८·६ ब")

(३) अनुस्थितियों का औसत गुणाकों के अनुसार सजाना।

(४) यदि दो गुणाक भाग्यवश समान आ जायं तो सामूहिक अनुस्थिति देते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखा जाय।

(अ) यदि किसी विद्यार्थी को दूसरे से अधिक परीक्षकों ने जांचा है तो उसे दूसरे के समान गुणाक होने पर भी ऊँची अनुस्थिति दी जाय।

(ब) यदि दो परीक्षकों की अनुस्थितियाँ लगभग बराबर हों तब भी उस विद्यार्थी को ऊँची सामूहिक अनस्थिति दी जा सकती है।

Q. 8·10. Why is normal distribution sometimes known as normal curve of error?

What is meant by the term 'a normally distribution trait'?

सम्भाव्यता वितरण अथवा त्रुटि वितरण (normal Distribution)

को हमने द्विपद-वितरण का परिवर्तित रूप कहा था (देखिये धारा ८·३) किन्तु गौस (Gauss) महोदय ने देखा कि त्रुटियों का वितरण भी इसी प्रकार का होता है। यदि हम किसी विषयी (subject) से उसके दायीं या बायीं ओर २०" की दूरी को रखकर उसके बराबर दूरी को adjust करने का आदेश दें तो वह प्रत्येक प्रयास में कुछ न कुछ त्रुटि अवश्य करेगा क्योंकि उसकी चक्षु-इन्द्रियाँ दूरी मापने की इतनी सुग्राहक परिशुद्ध, और सत्य यंत्र नहीं हैं। मापन में ये त्रुटियाँ कई कारणों से पैदा हो जाती हैं और प्रत्येक कारण त्रुटि में कमी या बढ़ोतरी पैदा कर देता है

फलत. ऋणात्मक और धनात्मक दिशा में त्रुटियों के पैदा होने के समान अवसर होते हैं। त्रुटियों के इस वितरण का रूप होता है

$$y = \frac{१}{\sigma\sqrt{२\pi}} e^{-\frac{n^2}{२\sigma^2}}$$

इसी प्रकार शैक्षणिक जगत् में भी परीक्षण करते समय अनेक कारणों से मापन में त्रुटियाँ आ जाती हैं। ये त्रुटियाँ सैम्पिल के चुनाव के कारण, परीक्षार्थियों के अविश्वसन या अवैध होने के कारण अथवा निरीक्षण और judgment के दोषपूर्ण कारण पैदा हो जाती है। अतः मापन के फलस्वरूप जो अंक मिलते हैं वे normally distributed होंगे की आशा की जा सकती है किन्तु उनकी यह प्रत्याशा कहाँ तक उचित और न्याय्य है यह तभी जाना जा सकता है जब प्राप्तांकों के वितरण को normal cuorve fit करके देख लिया जाय। कोई आवृत्ति वितरण कहाँ तक normal curve of error को अच्छी तरह fit कर सकता है यह जाँचने के लिए उदाहरण ८'१५ प्रस्तुत किया जायेगा।

कभी-कभी शोध कार्य में रत विद्वज्जन बिना यह देखे ही कि उनका प्रदत्त normally distributed है या नहीं यह मान लेते हैं कि उनका वितरण ऐसा है और अपने निष्कर्षों में इस वितरण की विशेषताओं को लागू करने लगते है। यह उनकी भूल है। यह मान लेना कि व्यक्तित्व का कोई विशेषक (trait) normally distributed है गलत है। बुद्धि को लोग भट से normally distributed कह दिया करते हैं किन्तु भिन्न-भिन्न वर्गों के व्यक्तियों के बुद्धि के वितरण सम, विषम चिपिट ककुब्नी या कूट ककुब्नी सभी तरह के मिले हैं। यदि वे सब व्यक्ति जिनका कद नापा गया है एक ही आयु और एक ही रंग के हों तो यह आशा की जा सकती है कि उनके कद का वितरण normal होने पर यह आशा करना कि उनके भार का वितरण भी normal होगा गलत है। किसी गुण या व्यक्तित्व के विशेष गुण (Trait) का वितरण normal उस दशा मे ही सकता है जब वह जनसंख्या या समूह जिससे कोई सैम्पिल ली गई है समरस (homogeneous) है। किन्तु शैक्षणिक या मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में ऐसी समरस पोपूलेशन (homgenous population) का मिलना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

यदि किसी परीक्षा के फलांकों का वितरण normal भी मिल जाता है तो इसका यह आशय नहीं कि परीक्षा उत्तम है या वह वस्तु जिसका मापन वह परीक्षा कर रही है normally distributed है। प्रत्येक परीक्षक यह चाहता है कि उसकी परीक्षा के प्रश्न ऐसे हों कि ५०% विद्यार्थी मध्यमान से कम और ५०% मध्यमान से अधिक प्राप्त कर सकें। परीक्षा के प्रश्नों के कठिनाई के अनुसार सजाने पर फलांकों के वितरण की सममितता या विषमता निर्भर रहती है। अत. फलांकों के वितरण की सममित होना इस बात का प्रमाण माना जा सकता है कि परीक्षक ने प्रश्नों को कठिनाई के अनुसार ठीक तौर से सजा कर रखा था वह इस बात का प्रमाण नहीं है कि मापनीय गुण या योग्यता normally distributed है। फलांकों के वितरण का सम या normal distributed होने का यह भी आशय नहीं कि परीक्षा उत्तम है क्योंकि फलांक या कोई अन्य परिवर्त्य राशि की भिन्न-भिन्न मापें तभी पूरी तरह normally distributed हो सकती है जब उनमे मापन के दोष अधिक से अधिक हो या वह विद्यार्थी समूह जिस पर वह लागू की गई है अधिक से अधिक heterogeneous हो या निरीक्षक अथवा मूल्यांकन के दोष अधिक से अधिक है।

अनुभव के आधार पर यह भी देखा गया है परीक्षा के अति सरल या अति कठिन परीक्षा के प्रमाणित होने शुद्ध एवं वैध होते हुए भी उसे लागू करने के तरीके के दोष युक्त होने, और जिस समूह को वह दी गई है उस समूह के प्रतिनिध्यात्मक न होने पर फलांकों का वितरण normally distributed नहीं होता।

Q. 8 11. **An intelligence test was administered to 1000 students randomly selected from a population The distribution of their scores is given below.**

0—	10—	20—	30—	40—	50—	60—	70—	80—	90—	
6	28	88	180	247	260	133	42	11	5	1000

Is intelligence normally distributed in the population ?

सम्भाव्यता वक्र का अन्वायुक्त करना (Fitting normal distribution to a data)

प्रकरण ४.६ मे इस बात की ओर संकेत किया गया था कि यदि किसी आवृत्ति वितरण के वर्ग विस्तारों का आकार अत्यन्त छोटा कर दिया जाय और साथ आवृत्तियो की सख्या मे इतनी वृद्धि कर दी जाय कि प्रत्येक वर्ग मे पड़ने वाली आवृत्तियो की सख्या निश्चित एव सीमित रहे तो स्तम्भावृत्ति (histogram) का रूप सरलित वक्र सा हो जाता है। यह सरलित वक्र सम्भाव्यता वक्र होगा। यदि आवृत्ति वितरण प्रदर्शित करने वाली सैम्पिल किसी विशाल (normal population) से ली गई है तो population का प्रदर्शन इस परिस्थिति में इस सैम्पिल से हो सकता है यदि इसकी सख्या काफी बड़ी है।

उदाहरण—निम्न तालिका मे दी गई सैम्पिल की आवृत्तियो को स्तम्भाकृति से तो दिखाया जा सकता है उन पर normal curve भी फिट किया जा सकता है।

वर्ग	आवृत्ति	$z=\frac{x-४७.५}{१५.१}$	A% सचयी आवृत्ति	आवृत्ति	अन्वायुक्त आवृत्ति
०—९.९५	६५	—२.४९	.६४	.६४	६
१०—१९.९५	२८	—१.८२	०३.४४	२.८०	२८
२०—२९.९५	८८	—१.१६	१२.३०	९.८६	८९
३०—३९.९५	१८०	— .५०	३०.८५	१८.५५	१८६
४०—४९.९५	२४७	.१६	५६.३६	२५.५१	२५५
५०—५९.९५	२६०	.८२	७९.३९	२३.०३	२३०
६०—६९.९५	१३३	१.४९	९३.१९	१३.८०	१३८
७०—७९.९५	४२	२.१५	९८.४२	५.२३	५२
८०—८९.९५	११	२.८१	९९.७५	१.३३	१३
९०—९९.९५	५	३.४७	९९.९७	.२८	३
	१०००				१०००

N=१०००
M=४७.५
σ=१५.१

normal curve का समीकरण

$$y=\frac{N}{\sqrt{२\pi\sigma}}\, e^{-\frac{१}{२}\left(\frac{x-M}{\sigma}\right)^2}$$

अर्थात्
$$y=\frac{१०००}{\sqrt{२\pi १५.१}}\, e^{-\frac{१}{२}\left(\frac{x-४७.५}{१५.१}\right)^2}$$

x=६०.५ से बायीं ओर क्षेत्रफल निकालने के लिये normal deviate

$$z = \frac{x - M}{\sigma} = \frac{६१ - ८०५}{१२.१}$$

$= -२.४६$

तालिका ८.१, से $z = -२.४६$ तो A=.००६९

इसी प्रकार अन्य वर्ग सीमाओं के लिए A का मान निकाल कर ऊपर तालिका के चौथे स्तम्भ में लिख दिये गये हैं जो संचयी आवृत्तियां हैं। इनकी सहायता से स्तम्भ ५ में आनुमानिक प्रतिशत आवृत्तियां ज्ञात की गई हैं। वास्तविक तथा प्रत्याशित आवृत्तियों की तुलना करने से ज्ञात होता है कि बुद्धि का वितरण normal है।

Q. 8·12. How does t—distribution differ from the normal ? Discuss its properties and usefulness to an educator.

t—वितरण और उसकी विशेषताएं

आवृत्तियों की संख्या बड़ी न होने पर प्रत्येक वितरण सम सम्भाविक (normal) हो जाता है। यदि अन्य बातें स्थिर रहें आवृत्तियों की संख्या छोटी (तीस से कम) होने पर यह normal नहीं रहता वरन् उसमें t-distribution की विशेषताओं का प्रयोग किया जाता है क्योंकि z ratio का sampling distribution अब normal नहीं रहता।

प्रसामान्य वक्र (normal curve) की विशेषताओं का अध्ययन करते समय मान लिया जाता है कि उत्पत्तिमूलक (parent population) की प्रमाप विचलन (Standard Deviation) हमको ज्ञात है। किन्तु प्रयोगशाला में कार्य करने वाले को सदैव इस प्रमाप विचलन का मान नहीं मालूम होता। प्रयोगशाला में जो सैम्पिलें मिला करती है वे आकार में छोटी होती हैं और प्रसामान्य वक्रों का प्रयोग इन छोटी सैम्पिलों के लिए किया नहीं जा सकता, इसलिए ऐसे वितरण की आवश्यकता पड़ती है जो छोटी सैम्पिलों के लिये उपयोगी हो और जिसमें उत्पत्तिमूलक के समुदाय के प्रमाप विचलन से σ अथवा मध्यमान की आवश्यकता न पड़े। उत्पत्तिमूलक समुदाय से भिन्न-भिन्न सैम्पिलों के प्रमाप विचलन भिन्न-भिन्न होंगे किन्तु उस समुदाय (population) के प्रमाप-विचलन के ज्ञात न होने पर सैम्पिल के मानों के आधार पर हम उसका प्राक्कलन कर सकते हैं। धारा ६.११ में बतलाया गया था कि यदि n संख्या वाली सैम्पिल का मध्यमान $\overline{x}$ और भिन्न-भिन्न माप x हो तो प्राक्कलित प्रमाप विचलन $\sqrt{\frac{1}{n-1}\Sigma(x-\overline{x})^2}$ होगा।

इस प्राक्कलित प्रमाप विचलन को ध्यान मे रखकर हम निम्नलिखित t-ratio प्राप्त कर सकते हैं।

$$t = \frac{\overline{x} - M}{\sigma M}$$

जिसमें $\overline{x}$, M सैम्पिल तथा पोपूलेशन के मध्यमान (means) है और σM मध्यमानों का प्रमाप विचलन अथवा प्रमाणित त्रुटि (Standard Error) है।

यह ratio निम्नलिखित z ratio की ही समकक्षी है।

$$z=\frac{x-M}{\sigma}$$

अन्तर केवल इतना है कि z ratio मे प्रयुक्त हर σ उत्पत्तिमूलक समुदाय (population) से लिया गया है और इस प्रयुक्त ratio मे प्रयुक्त हर मध्यमान की प्रामाणिक त्रुटि है जो सैम्पिल से प्राक्कलित किये गये प्रमाप विचलन से ज्ञात की गई है। चूँकि मध्यमान की प्रामाणिक त्रुटि $\frac{\sigma}{\sqrt{n}}$ होती है। अत मध्यमान की प्रामाणिक त्रुटि का प्राक्कलित मान निम्नांकित होगा।

$$\frac{\sqrt{\frac{1}{n-1}\Sigma(x-\bar{x})^2}}{\sqrt{n}}=\frac{\sqrt{\Sigma(x-\bar{x})^2}}{\sqrt{n(n-1)}}$$

यदि किसी परिवर्त्य राशि (कद, फलांक आदि) के एक सैम्पिल मे भिन्न-भिन्न मान निम्नलिखित हों।

$$x_1, x_2, x_3, \ldots\ldots x_4 n$$

और $\bar{x}=\frac{1}{n}\Sigma x$, $\sigma=\frac{1}{n-1}\Sigma(x-\bar{x})^2$, एवं $t=\frac{\bar{x}-m}{\frac{\sigma}{\sqrt{n}}}$ जिसमे m उस परिवर्त्य राशि का उत्पत्तिमूलक समुदाय (population) का मध्यमान (mean) हो तो

t का वितरण भिन्न-भिन्न सैम्पिलो के लिये निम्न समीकरण द्वारा मिल सः

$$y=\frac{y_o}{\left(1+\frac{t^2}{n-1}\right)\frac{n}{2}}$$ जिसमे n—1=degree of

को सूचित करती है।

यदि सैम्पिल मे चर राशि के मानो की सख्या n अनन्त हो तो

$$y=y_o e^{-\frac{t^2}{2}}$$

यह समीकरण प्रमामान्य वक्र (normal curve) का समीकरण है। आकार बड़े हो जाने पर t और z ratio एक ही राशियाँ हो जाती हैं।

t वक्र और सम्भाव्य वक्र के रूपों मे n के भिन्न-भिन्न मानो के f- , अथवा विषमता होती है चित्र ८'५ (अ, ब, स) मे दिखाई गई है।

t—वितरण की विशेषतायें निम्नलिखित हैं।

१. यह वितरण वक्र t=0 अथवा मध्यमान m के दोनो ओर

अर्थात् t के भिन्न-भिन्न मानों का मध्यमान शून्य तथा प्रमाप विचलन $\sqrt{n}$

यहाँ पर कोटि y_0 का मान $\Gamma\left(\frac{n}{2}\right) / \Gamma\left(\frac{n-1}{2}\right)\sqrt{n-1}\sqrt{\pi}$ है।

२. t के मान के बढ़ने पर $\frac{1}{\left(1+\frac{t^2}{n-1}\right)}$ का मान कम हो जाता है और अनन्त होने पर वह शून्य हो जाता है।

३. t-वितरण वक्र normal curve से अधिक चिपटा होता है। अतः उसे चि कुकुदमी वक्र (Leptokurtic) वक्र भी कहते हैं।

४. n के भिन्न-भिन्न मानो के लिए t तालिकायें बनाई गई हैं जि $\frac{t}{\sqrt{n-1}}=-\infty$ से t के किसी मान के बीच स्थित क्षेत्रफल दिखाया गया स्थानाभाव के कारण वे तालिकायें उद्धत नही की जा सकेंगी। एक ऐसी ता (८·१२) है जिसका उपयोग अध्याय ६ में किया जायगा।

५. इस वितरण की खोज १६ वी शताब्दी में की जा चुकी थी। १६०२ में W. Gosset ने पुन. इसकी खोज की और उसे मुद्रामान Standard से प्रका किया। उसने बताया कि यदि अज्ञात प्रमाप विचलन वाली normal populat मे ५, ५ सदस्यों की ली गई सैम्पिलो के मध्यमान से, प्रमाप विचलन S t-ratio की गणना की जाय तो t का वितरण वक्र normal वक्र से भि होगा लेकिन सदस्यो की संख्या १२३ ली जाय तो t का वितरण वक्र norr हो जायगा।

इस प्रकार t का Sampling distribution ν पर निर्भर रहता है। यह degree freedom है। जब कभी N व्यक्तियों की एक sample ली जाती है और किसी एक statis का प्रयोग population value को प्राक्कलित करने के लिये किया जाता है तब एक degree freedom* होती है।

यदि किसी सैम्पिल मे दो statistic प्राक्कलित की जाती है तब २ स्वतन्त्रता के अ नष्ट हो जाते हैं।

तालिका ८·१२ मे १%, ५%, १% सम्भाव्यताओ तथा भिन्न-भिन्न स्वतन्त्रता अ (degrees of freedom) के लिये t के मान दिये गये गए हैं।

* In general the degrees of freedom of a computed statistic indicate th number of factors from which the statistic is computed which can be change independently without changing the value of the statistic."

—*The design of Social Research, Russell L. Ackoff*

तालिका ८'१२ t की तालिका ν के भिन्न-भिन्न मानों के लिये

सम्भाव्यतायें (Probabilities)

स्वतन्त्रता मत्त	'०५	'०१	'००१
०			
१	१२'७०६	६३'६५७	६३६'६१९
२	४'३०३	९'९२५	३१'५९८
३	३'१८२	५'८४१	१२'९४१
४	२'७७६	४'६०४	८'६१०
५	२ ५७१	४'०३२	६'८५९
६	२'४४७	३'७०७	५'९५९
७	२'३६५	३'४९९	५'४०५
८	२'३०६	३'५५५	५'०४१
९	२'२६२	३'२५०	४'७८१
१०	२'२२८	३'१६९	४'५८७
११	२'२०१	३'१०६	४'४३७
१२	२'१७९	३'०५५	४'४३७
१३	२'१६०	३'०१२	४'३१८
१४	२'१४५	२'९७७	४'२२१
१५	२'१३१	२'९४७	४'१४०
१६	२'१२०	२'९२१	४'०७३
१७	२'११०	२'८९८	४'०१५
१८	२'१०१	२'८७८	३'९६५
१९	२'०९३	२'८६१	३'९२२
२०	२'०८६	२'८४५	३'८८३
२१	२'०८०	२'८३१	३'८५०
२२	२'०७४	२'८१९	३'८१९
२३	२'०६९	२'८०७	३'७९२
२४	२'०६४	२'७९७	३'७६७
२५	२'०६०	२'७८७	३'७४५
२६	२'०५६	२'७७९	३'७२५
२७	२'०५२	२'७७१	३'७०७
२८	२'०४८	२'७६३	३'६९०
२९	२'०४५	२'७५६	३.६५९
३०	२'०४२	२'७५०	३'६४६
४०	२'०२१	२'७०४	३'५५१
६०	२'०००	२'६६०	३'४६०
१२०	२'९८०	२'६१७	३'३७३
∞	१'९६०	२'५७६	३'२९१

Q. 8.13. Define X^2 and discuss the properties of X^2 test.

X^2 वितरण और उसकी विशेषतायें (The Properties of X^2—Distribution)

सांख्यकीय प्रदत्त सामग्री दो प्रकार की होती है—गुणात्मक (qualitative) और संख्यात्मक (Quantitative) परिवर्त्य राशियों के मान और विशेषताओं के मान संख्यात्मक होने पर भी गुणात्मक कहे जाते हैं। परिवर्त्य राशियों के भिन्न-भिन्न मानों की आवृत्ति तालिकायें

बताई जाती हैं और विशेषताओं से सम्बन्धित प्रश्न तालिका की संयोग तालिकायें (Contengency tables)। इन तालिकाओं में भिन्न भिन्न वर्गों (classes) और भिन्न-भिन्न कोष्ठों (Cells) में जो आवृत्तियाँ रखी जाती हैं वे निरीक्षण के परिणाम स्वरूप प्राप्त होने के कारण निरीक्षित (observed) आवृत्तियाँ कहलाती हैं। अध्याय ५, ६, ७ में जिन आवृत्ति वितरणों की विवेचना की गई थी उनकी आवृत्तियाँ निरीक्षणों या प्रयोगों से प्राप्त हुई थीं। किन्तु कुछ ऐसे भी वितरण होते हैं जिन्हें इस अध्याय के प्रारम्भ में हमने सैद्धान्तिक कहा है। उदाहरण स्वरूप यदि किसी ६ तल वाली गोटी (dice) को उछालें तो १, या २, या ३, या, ४, या ५ या ६ अंक आने की सम्भावना समान है। इसी प्रकार ४ और ५ और ६ अंक आने की सम्भावना ½ है। अतः १०२४ बार १२ dice को एक साथ उछालने पर ४ या ५ या ६ अंक आने की संख्यायें या आवृत्तियाँ निम्न प्रकार से मिलनी चाहिए।

$$१०२४\left(\frac{१}{२}+\frac{१}{२}\right)^{१२} = १०२४\left(\frac{१}{२^{१२}}+१२\cdot\frac{१}{२^{१२}}+\frac{१२\times ११}{१\times २}\cdot\frac{१}{२^{१२}}+\cdots\cdots\right)$$

अर्थात् यह आशा की जाती है कि ०, १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२ गोटों के एक साथ चित पड़ने की संख्यायें (आवृत्तियाँ) निम्नलिखित हैं।

१, १२, ६६, २२०, ४९५, ७९२, ९२४, ७९२, ४९५, २२०, ६६, १२, १

इन आवृत्तियों को प्रत्याशित आवृत्तियाँ (expected frequencies) कहते हैं। किन्तु यदि हम वास्तव में यह काम करें तो इस प्रकार का आवृत्तियों का वितरण कभी न मिल सकेगा। एक प्रयोग (experiment) में १२ सिक्कों को जो पूरी तरह सम भार एवं समान आकार और कुशल खिलाड़ी के द्वारा १०२४ बार एक साथ उछाले गये थे ०, १, २, ३, ……१२ सिक्कों के एक साथ चित पड़ने की आवृत्तियाँ निम्नलिखित थीं।

०, ७, ६०, १९८, ४३०, ७३१, ९४८, ८४७, ५३६, २४७, ७१, ११ निरीक्षित एवं प्रत्याशित आवृत्तियों में सदैव अन्तर रहता है।

यदि प्रत्याशित एवं निरीक्षण से प्राप्त आवृत्तियाँ क्रमशः f_e और f_o हों तो निम्न राशि को x^2 कहा जाता है।

$$X^2=\frac{\Sigma(f_o-f_e)^2}{f_e}$$

भिन्न-भिन्न सैम्पिलों के लिए X^2 के मान भी भिन्न-भिन्न होते हैं। यदि f_o और f_e लगभग समान हों तो X^2 का मान लगभग शून्य हो जाता है। f_o और f_e में भिन्नता होने पर X^2 का मान शून्य से अधिक एवं धनात्मक होता है। भिन्न-भिन्न सैम्पिलों के लिए X^2 के भिन्न-भिन्न मानों का वितरण एक वक्र द्वारा दिया जा सकता है जिसकी समीकरण निम्नलिखित है—

$$y=y_o\, e^{-\frac{X^2}{2}}\, x^{\nu-1}$$

इस समीकरण में ν degrees of freedom की संख्या है। $\nu=$ १, ६ और १७ होने पर X^2—वक्र के रूप चित्र (८·१३) में दिये जाते हैं। ये वक्र $X^2=0$ से $X^2=\infty$ तक फैले हुए हैं।

X^2 statistic का प्रयोग किसी सैम्पिल (sample) में प्रत्याशित और निरीक्षित आवृत्तियों के अन्तर की महत्वशीलता ज्ञात करने के लिये होता है। साथ ही इसका प्रयोग इस परिकल्पना (hypothesis) की जाँच करने के लिये भी किया जाता है कि दो न्यादर्श (sample) एक (homogeneous) समुदाय (population) से लिये गये हैं अथवा नहीं।

X^2—वक्र n के भिन्न-भिन्न मानों के लिए
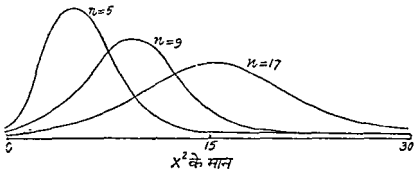
चित्र ८·१५

यदि ν का मान १ है तो $y = y_0 e^{-\frac{X^2}{2}}$ यह समीकरण सामान्य वक्र के समीकरण हो जाती है ν का मान १ से अधिक होने पर वक्र एक कुब्बवाला (one humped type) हो जाता है। यदि वक्र की आधार रेखा X^2 को प्रदर्शित करें तो $X^2=0$ पर वक्र X^2—अक्ष को स्पर्श करेगा और $X^2 = \nu - 1$ पर वक्र की ऊँचाई X^2—अक्ष से अधिकतम हो जाती है इसके बाद इसकी ऊँचाई गिरने लगती है। ν के अत्यधिक बढने पर पूर्णतया समर्मित बन जाता है। ν के ३० से अधिक होने पर $\sqrt{2X^2}$ के भिन्न-भिन्न मान $\sqrt{2\nu-1}$ के दोनो ओर समर्मित ढग मे वितरित रहते हैं और उनका प्रामाणिक विचलन १ होता है।

ν के भिन्न-भिन्न मानो के लिये X^2 के किसी मूल्य X^2 के लिये जितना क्षेत्र $X^2 = X^2_0$ और $X^2 = \infty^2$ के बीच अवेष्टित रहता है उसे कलन (Integral) की भाषा मे निम्न सूत्र से प्रकट किया जा सकता है।

$$\int_{X^2=X_0^2}^{X^2=\infty} y_0 e^{-\frac{X^2}{2}} X^{\nu-1} \, dX$$

और वक्र द्वारा आवेष्टत सम्पूर्ण क्षेत्रफल निम्न व्यंजक द्वारा प्रकट किया जा सकता है:

$$\int_{X^2=0}^{\infty} y_0 e^{-\frac{X^2}{2}} X^{\nu-1} \, dx$$

अत X^2 के किसी मान X^2 पाने की सम्भाव्यता (Probability) निम्नलिखित होगी।

$$P = \int_{X^2}^{\infty} y_0 e^{-\frac{X^2}{2}} X^{\nu-1} \, dX \Bigg/ \int_{0}^{\infty} y_0 e^{-\frac{X^2}{2}} X^{\nu-1} \, dX$$

यदि $X^2 = ३०$ और $\nu = ५$ तो इनका मान स्थानापन्न पर P का मान निम्नलिखित होगा।

$P = \cdot००००१५$

इसका अर्थ यह है कि १००००० सैम्पिलों में से केवल १५ सैम्पिल ऐसी हैं जिनमें X^2 का मान ३० या ३० से अधिक हो सकता है।

इसी प्रकार X^2 = ३० और ν = १० के लिए
P = ·[illegible]

[illegible] १०० [illegible] X^2 [illegible] है। X^2 और ν के मान [illegible] P [illegible] नहीं है [illegible] Tables for Statisticians & Biometricians Part I [illegible] P के [illegible] ·०१, ·०५, ·००१ [illegible]

X^2—test की [illegible] (Applications)

Q. 8 13. (a) 12 Coins are thrown 1024 times and the frequencies of getting 0, 1, 2, heads are given below

0	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
1	12	66	220	495	792	924	792	495	220	66	12	1

Are coins biassed ?

तालिका ८·११

चित पड़ने वाले सिक्कों की संख्या	प्रत्याशित आवृत्ति संख्या f_e	वास्तविक आवृत्ति संख्या f_o	$X^2 = \frac{(f_o - f_e)^2}{f_e}$	
०	१	०	१·००००	
१	१२	७	२·०८३३	
२	६६	६०	·५४५५	
३	२२०	१९८	२·२०००	d·f = ν उन कोष्ठों की संख्या जिनको स्वतन्त्र रूप से भरा जा सकता है।
४	४९५	४३०	८·५३५४	= १२ − १ = ११*
५	७९२	७३१	४·६९८२	X^2 = ३३·८१०४
६	९२४	९४८	·६२३४	PL ·००१है
७	७९२	८४७	३·८१९४	
८	४९५	५३६	३·३९६०	
९	२२०	२५७	६·२२२७	
१०	६६	७१	·३७८८	
११	१२ } १३	११ } ११	·३०७७	
१२	१	०		
			३३·८१०४	

X^2 का यह मान ३३·८१०४ या इससे अधिक १००० सैम्पिलो मे से केवल १ में ही मिल सकता है। अतः fact और theory मे सामजस्य बहुत कम मालूम पड़ता है। इसके दो कारणो मे से एक न एक कारण हो सकता है।

(१) उछाले गए सिक्के biased हो सकते हैं।

या (२) sampling technique मे कोई दोष हो सकता है।

---

* degrees of freedom की सख्या इस बात पर निर्भर रहती है कि कितने restrictions प्रदत्त पर रखे गये हैं। यदि आवृत्तियो का कुल योग ही एकसा रहता है तो d·f = (n—1) [illegible] आवृत्तियों का योग मध्यमान तथा प्रामाणिक विचलन मे ही रहता है तो d·f = (n—3)

उदाहरण ८·१३ ब—५४ विद्यार्थियों को एक गणित की परीक्षा दी गई जिसके फलांकों का आवृत्ति वितरण नीचे दिया जाता है। यह मानकर कि गणित की योग्यता इस विद्यार्थी समूह में normally distributed है। प्रत्येक वर्ग में कितनी कितनी आवृत्तियों की आप आशा कर सकते हैं गणना करके निकालिये। यह भी देखिये कि फलांकों का यह आवृत्ति वितरण कहाँ तक normally distributed है।

१	२	३	४	५	६
फलांक	आवृत्ति संख्या	वर्गों मध्य बिन्दु	normal deviate z का मान	$\frac{Z^2}{2}$ का मान	प्रत्याशित आवृत्ति संख्या
४४-४७	०	४५	—२·६३	·०३१४८	·३
४८-	२	५०	—२·१३	·१०३४७	१·१
५३-	३	५५	—१·६३	२६४८९	२·९
५८-	५	६०	—१·१३	·५२८१२	५·७
६३-	९	६५	— ६२	·८२५१४	८·९
६८-	१०	७०	— ·१२	·९९२८३	१०·७
७३-	१२	७५	— ३८	·९३०२४	१० १
७८-	७	८०	·८८	·६७९८६	७·३
८३-	२	८५	१·३९	३८०५८	४·१
८८-	३	९०	१ ८९	·१६७६२	१·८
९३-	१	९५	२·३९	·०५७५०	·६
९८-	०	१००	२ ८९	·०१५३६	·२
			·०		
योग	५४				५·३७

१. इस वितरण में

$$\overline{X} = ७१·२०$$
$$\sigma = ९·९५$$

२. (normal) वक्र की समीकरण

$$y = \frac{N_1}{\sqrt{२\pi\sigma}} e^{-\frac{z^2}{२}}$$

क्योंकि $N = ५४ = \frac{५४५५}{९·९५ \times २·५१} e^{-\frac{z^2}{२}}$

$$i = ५ = १०·८१ e^{-\frac{z^2}{२}}$$

$\sigma = ९·९५$

१. $\because z = \frac{X - \overline{X}}{\sigma}$

x = किसी वर्ग का मध्य बिन्दु
x = ४५ के लिये

$$\therefore z = \frac{४५ - ७१·२०}{९·९५}$$

$$= \frac{-२६\cdot२०}{९\cdot९५}$$

$= -२\cdot६३$

(देखो स्तम्भ ४)

४. यदि $z = -२\cdot६३$

तो $e^{-\frac{z^2}{2}} = \cdot०३१५$

देखो तालिका ८·१ का चौथा स्तम्भ

५. $१०८१\ e^{-\frac{z^2}{2}} = १०\cdot८१ \times \cdot०३१५$

$= \cdot३$

अन्य कोटियों की गणना इसी प्रकार है।

यह देखने के लिये कि दिया हुआ आप्ररत्त किसी सीमा तक normal curve को करता है हमे X^2—test लगाना पड़ेगा।

वर्ग विस्तार	आवृत्ति संख्या निरीक्षण से प्राप्त	आवृत्ति संख्या प्रत्याशित			
	f_o	f_e	$f_o - f_e$	$(f_o - f_e)^2$	$\frac{(f_o - f_e)^2}{f_e} = X^2$
४३—	०	·३			
४८—	२ } ५	१·१ } ४ ३			
५३—	३	२·९	·७	·४९	·०११
५८—	५	५ ७	·७	·४९	·०८६
६३—	९	८·९	·१	·०१	·००१
६८—	१०	१०·७	·७	·४९	·०४६
७३—	१२	१०·१	१·९	३·६१	·३५७२
७८—	७	७·३	·३	·०९	·०१२३
८३—	२	४·१	२·१	४·४१	१·०७६
८८—	३	१·८	१ ४	१·९६	·७५४
९३—	१ } ४	·६ } २·६			
९८—	०	·३			
	५४	५३·७			२ ३४३५

N, M, σ के मान ज्ञात होने के कारण ३ स्वतन्त्र degrees कम हो गई

$\therefore r = ८ - ३ = ५$

$X^2 = २\cdot३४३५$

तालिका $P > \cdot०५$

X^2 का २·३४३५ मान या इससे अधिक मान ८०% सैम्पिलों में मिल सकता है।

अतः fact और theory में सामञ्जस्य अधिक निश्चित है। प्रदत्त फलांक निश्चय ही normally distributed हैं। अगले प्रश्न में प्रत्याशित आवृत्तियों की गणना का दूसरा तरीका प्रस्तुत किया जायगा।

उदाहरण ८·१३ म १००० बालकों की बुद्धि और गणितिक योग्यता के अनुसार

३ × ३ सयोग तालिका में निम्न प्रकार से विभाजित किया जाय तो बुद्धि और गणितिक योग्यता के साहचर्य की मात्रा ज्ञात करो।

	गणित			
बुद्धि	उत्तम	मध्य	निकृष्ट	योग
उत्तम	४४	२२	४	७०
माध्यम	२६५	२५७	१७८	७००
निकृष्ट	४१	९१	९८	२३०
योग	३५०	३७०	२८०	१०००

धारा ७·१५ मे इस तालिका से X^2 का मान ६९·१४ प्राप्त हुआ था और यह परिकल्पना की गई थी कि दोनो गुण स्वतन्त्र हैं।

स्वतन्त्र भ श d $f = (३-१)(३-१) = ४$ के लिये ५% स्तर पर $X^2 = ११·०७$
१% „ $X^2 = १५·०८$

∴ $X^2 = ६९·१४$ के लिये सम्भाव्यता (Probability) ·०१ सेभी कम होगी। अतः यह परिकल्पना कि दोनो गुण स्वतन्त्र हैं अमान्य है।

यदि $v > ३०$, तो व्यजक $\sqrt{२ \times २} - \sqrt{२n - १}$ को normal deviate जिसमें विचलन एक है P की गणना की जा सकती है।

तालिका ८·१३. X^2 के मान सम्भाव्यता P = ·०१, ·०५, ·००१ के लिये सम्भाव्यतायें

v	·०५	·०१	·००१	·९९	·९५
१	३ ८४१	६·६३५	१०·८२७	.०००१५७	·००३९३
२	५ ९९१	९ २१०	१३·८१५	·०२०१	·१०३
३	७·८१५	११·३४१	१६·२६८	·११५	·३५२
४	९·४८८	१३·२७७	१८.४६५	२९७	·७११
५	११·०७०	१५ ०८६	२०·५१७	·५५४	१ १४५
६	१२·५९२	१६·८१२	२२·४५७	·८७२	१ ६३५
७	१४·०६७	१८·४७५	२४ ३२२	१ २३९	२·१६७
८	१५·५०७	२०·०९०	२६·१२५	१·६४६	२ ७३३
९	१६ ९१९	२१·६६६	२७·८७७	२·०८८	३·३२५
१०	१८·३०७	२३·२०९	२९·५८८	२·५५८	३·९४०
११	१९·६७५	२४·७२५	३१·२६४	३·०५३	४·५७५
१२	२१·०२६	२६·२१७	३२·९०९	३·५७१	५·२२६
१३	२२·३६२	२७·६८८	३४·५२८	४ १०७	५ ८९२
१४	२३·६८५	२९·१४१	३६·१२३	४·६६०	६ ५७१
१५	२४ ९९६	३० ५७८	३७·६९७	५ २२९	७ २६१
१६	२६ २९६	३२·०००	३९·२५२	५·८१२	७ ९६२
१७	२७ ५८७	३३·४०९	४०·७९०	६·४००	८·६७२
१८	२८·८६९	३४·८०५	४२ ३१२	७ ०१५	९ ३९०
१९	३०·१४४	३६·१९१	४३·८२०	७ ६३३	१० ११७
२०	३१·४१०	३७·५६६	४५·३१५	८·२६०	१० ८५१
२१	३२·६७१	३८·९३२	४६·७९७	८ ८९७	११ ५९१
२२	३३·९२४	४०·२८९	४८·२६८	९·५४२	१२ ३३८
२३	३५·१७२	४१·६३८	४९·७२८	१०·१९६	१३ ०९१
२४	३६·४१५	४२·९८०	५१·१७९	१०·८५६	१३ ८४८
२५	३७·६५२	४४·३१४	५२·६२०	११ ५२४	१४ ६११
२६	३८·८८५	४५ ६४२	५४·०५२	१२·१९८	१५ ३७९
२७	४०·११३	४६·९६३	५५·४७६	१२·८७९	१६·१५१
२८	४१·३३७	४८ २७८	५६·८९३	१३·५६५	१६ ९२८
२९	४२·५५७	४९·५८८	५८·३०२	१४·२५६	१७ ७०८
१०	४३·७७३	५०·८९२	५९·७०३	१४·९५३	१८·४९३

Q. 8·14. Show how X^2—test is applied to find.—
(a) Whether two samples are taken from the same population.
(b) Whether two attributes are associated or independent.

X^2 Test की अन्य प्रयुक्तियाँ

X^2 test का उपयोग कभी-कभी सजातीय (homogeneity) का माप करने के लिये भी किया जाता है। दो या दो से अधिक आवृत्ति वितरण एक ही सजातीय जन-समुदाय से चुनी गई है अथवा नहीं, इस प्रकार की समस्याओं का हल X^2—test को प्रयुक्त करके किया जा सकता है। नीचे दो उदाहरण दिये जाते हैं जिनमें यदि a और a' भिन्न-भिन्न वर्गों में पड़ी हुई आवृत्तियों और n_1 और n_2 आवृत्तियों का योग हो तो

$$X^2=\frac{1}{\bar{p}\,\bar{q}}\ \Sigma(ap-n\bar{p})=\frac{१}{\bar{p}\,\bar{q}}\left(\Sigma\frac{a^2p}{T}-n\bar{p}\right)$$

$$p=\frac{a}{a+a'}$$

$$\bar{p}=\frac{n_1}{n_1+n_2}$$

उदाहरण ८ १४ अ—नीचे दो आवृत्ति विस्तार दिये जाते हैं क्या वे दोनों एक ही सजातीय समुदाय के लिये माने जा सकते हैं।

वर्ग विस्तार	a'	a	T	$\frac{a^2}{T}$
०—१०	७१	२२	९३	४·२०४२९८
११—	६८	८	७६	·८४२१०४
२१—	६६	१४	८०	२·४५०००
३१—	४७	१२	५९	२·४४०६८०
४१—	५१	३	५४	·१६६६५०
५१—	३९	१३	५२	३·२५०००
६१—	४३	३	४६	१·९५६२६१
७१—	३९	१४	५३	३·६९८११४
८१—	३३	१२	४५	३·१९९९९२
९१—	१८	१०	२८	३·५७१४३०
योग	४७५	१११	५८६	२५·७७९५२९

$$\bar{p}=\frac{४७५}{५८६}=\cdot ८१०५८ \qquad \bar{q}=\cdot १८९४२$$

$$X^2=\frac{१}{\cdot ८१०५८\times\cdot १८९४२}\left[२५\cdot ७७९५२९-१११\times\cdot १८९४२\right]$$

$=२०\cdot ९६$

$\nu=९ \quad P<\cdot ००१$

अन्तर महत्वशील है।

उदाहरण ८·१४ ब—एक शहर के १० विद्यालयों के कक्षा ८ के विद्यार्थियों को एक प्रमाणीकृत परीक्षा दी गई है। उस परीक्षा का एक प्रश्न का विश्लेषण करने पर पता चला कि भिन्न विद्यालयों में उसको सही करने का प्रतिशत भिन्न-भिन्न था। क्या इस विश्लेषण के

आधार पर यह कहा जा सकता है कि शहर के विद्यालयों मे विद्यार्थियों का निष्पादन सजातीय (homogeneous) नहीं है ?

विद्यालय	सही प्रश्न करने वालो की सख्या (a)	गलत करने वालो की सख्या	कुल योग T	$\frac{a^2}{T}$
अ	१६	६५	८१	३·१६०५
ब	११	३१	४२	२·८८१०
स	३४	४२	७६	१५·२६०५
द	६	१६	२८	२·८६२६
य	४५	६२	१०७	१८·६२५२
फ	१८	४१	५६	५·४६१५
ह	२३	१३	३६	१४·६६४४
ज	३२	६२	६४	१०·८६३६
क	२०	२३	४३	६·३०२३
ल	५	१५	२०	१·२५००
योग	२१३	३७३	५८६	८४·७०१६

$$\overline{p} = \frac{२१३}{५८६} = \cdot३६३४८$$

$$X^2 = \frac{१}{\overline{p}\ \overline{q}} \left(\Sigma\frac{a^2}{T} - n\overline{p} \right)$$

$$= \frac{१}{\cdot३६३४८ \times \cdot६३६५२} \left(८४\cdot७०१६ - २१३ \times \cdot३६३४८ \right)$$

$= ३१\cdot४७$

$\nu = ६$

$P < \cdot०१$

स्कूलो मे अन्तर महत्वशाली है, वे सजातीय नहीं हैं ।

८·१४ द—प्रतिशतो की महत्वशीलता X^2—वितरण की Properties का प्रयोग करके (significance of percentages using the properties of X^2 distribution) कभी-कभी हमें उत्पत्ति मूलक जनसख्या मे किसी विशेषता (Attribute) को पाने की प्रतिशत सख्या ज्ञात होती है अथवा कम से कम उसकी प्रत्याशा कर सकते हैं। जैसे ६·७ अ मे यह आशा की जाती है कि प्रत्येक गृहस्थी में स्त्री पुरुषो का अनुपात ५० . ५० का होगा या किसी सिक्के के उछालने पर यह माना जा सकता है कि उसके चित या पट गिरने का अनुपात ५० · ५० होगा । ऐसी दशा में दो प्रकार के प्रदत्त हमें मिल सकते हैं—

(१) प्रत्याशित (expected) आवृत्तियाँ (fe)
(२) निरीक्षित (Observed) आवृत्तियाँ (fo)

अत धारा ८·१३ मे दिये गये X^2—वितरण की विशेषताओं का प्रयोग किया जा सकता है।

उदाहरण ६·८ अ—यदि ४० अध्यापक परिवारो में स्त्रियो की प्रतिशत संख्या है तो क्या प्रत्याशित ५०% से यह अन्तर सैम्पलिंग के fluctuations के कारण दूसरे शब्दो में ज्ञात यह अन्तर अन्य सैम्पिलो में न मिल सकेगा ?

	प्रत्याशित आवृत्तियाँ	निरीक्षित आवृत्तियाँ		
	fe	fo	fo—fe	$\frac{(fo-fe)^2}{fe}$
स्त्री	२०	२२	२	४/२०
पुरुष	२०	१८	२	४/२०
		X^2=·४०	v=१	

तालिका ८·१३ से $P >$ ·०५

X^2=·४० या ·४० से अधिक होने पर ५% से अधिक सैम्पिलो मे ऐसी बात मिल सकती है कि स्त्रियो का अनुपात ५५% हो। अत अध्यापक गृहस्थियो मे यह बात असामान्य नहीं मालूम पड़ती ।

यदि किसी सैम्पिल के आधार पर समस्त अध्यापक वर्ग मे स्त्री और पुरुषो का अनुपात ज्ञात करना हो तो निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग किया जा सकता है ।

$$X^2 = \frac{\left(a - \frac{p}{q} b\right)^2}{\frac{p}{q} N}$$

a=पहला घटक (factor) मिलने की सख्या =२२
b=दूसरा घटक........................ =१८
p=पहला घटक मिलने का प्रत्याशित अनुपात =अज्ञात
q=दूसरा घटक........................ =—p
N=कुल सख्या सैम्पिल सदस्यों की

$$\text{अत.}\quad X^2 = \frac{\left(२२ - \frac{p}{q}\ १८\right)^2}{\frac{p}{q} \cdot ४०}$$

v =१, ·०५ विश्वास तल पर X^2=३·८४१ है

$$\therefore ३·८४१ = \frac{४८४ - ७९२\frac{p}{q} + ३२४\ \frac{p^2}{q^2}}{४०\frac{p}{q}}$$

$$\therefore ३·८४१ \times ४०\frac{p}{q} = ४८४ - ७९२\frac{p}{q} + ३२४\ \frac{p^2}{q^2}$$

$$३२४\ \frac{p^2}{q^2} - ९२९\ \frac{p}{q} + ४८४ = ०$$

$$\frac{p}{q} = \frac{९२९ \pm \sqrt{८६६३०४१ - ६२७२६४}}{६४८}$$

$$=\frac{९२९\pm४८५}{६४८}=\frac{४४४}{६४८} \text{ या } \frac{१४१४}{६४८}$$

$$\therefore \text{ यदि } \frac{p}{q}=\frac{४४४}{६४७}$$

$$\frac{p}{p+q}=\frac{४४४}{१०९२}$$

$$p=\frac{४४४}{१०९२}=\cdot४$$

$$\text{यदि } \frac{p}{q}=\frac{१४१४}{६४८} \therefore \frac{p}{p+q}=\frac{१४१४}{२०६२}=\cdot६६$$

अतएव ६५% काल्पनिक सम्भाव्यता इस बात की है कि पूर्ण समुदाय में स्त्रियों का अनुपात ४ और ·६६ के बीच में हो।

इसी प्रकार विश्वास तल ·०१ पर भी स्त्रियों के अनुपात तथा सीमायें ज्ञात की जा सकती हैं।

उदाहरण—अध्यापकों के किसी विशाल जनसमुदाय में से ६० व्यक्तियों की एक न्यादर्श चुनी गई ३६ व्यक्तियों ने किसी प्रस्ताव को स्वीकार किया शेष ने अस्वीकार कर दिया। क्या आप इस प्रदत्त के आधार पर यह कह सकते हैं कि प्रस्तावों को स्वीकृत अथवा अस्वीकृत करने वाले व्यक्तियों की सख्या में ५० : ५० का अनुपात था ?

यदि यह मान लिया जाय कि प्रस्तावों को स्वीकृत अथवा अस्वीकृत करने वालो का अनुपात ५० : ५० का है तो $X^2=२\cdot४$ क्योंकि

निरीक्षित	३६	२४
प्रत्याशित	३०	३०

$$X^2=\frac{६^2}{३०}+\frac{६^2}{३०}=\frac{७२}{३०}=२\cdot४$$

तालिका ८·१३ से, $\nu=१$ $P=\cdot०५$ $X^2=३\cdot८४१$

$P=\cdot०१$ $X^2=६\cdot६३५$

$\therefore P>\cdot०५$ अतः यह परिकल्पना कि अनुपात ५० : ५० का है अमान्य नहीं है।

उदाहरण ८·१४ स—पशुओं में टी० बी० रोकने के लिये टी० बी० के टीके की उपादेयता का परीक्षण करने के लिये निम्न प्रदत्त इकट्ठा किया गया इस समीकरण को ध्यान में रख कर बताओ क्या टीके से टी० बी० रोकी जा सकती है ?

	पीड़ित	न पीडित	
टीका लगाये गये	१२	२६	३८
टीका न लगाये गये	१६	६	२२
	२८	३२	६०

(I. A. S.

टीका लगे हुए पशुओं में से न पीड़ितों का प्रतिशत $= \frac{२६}{३८} \times १०० = ६८\cdot४\%$

टीका " " " पीड़ितों " " $= \frac{६}{२२} \times १०० = २७\cdot३\%$

अतः टीका लगे हुए पशुओं का एक बड़ा प्रतिशत रोग से पीड़ित न हो सका। अतः यह कहा जा सकता है कि टीके से टी० बी० रोकी जा सकती है। किन्तु यह साहचर्य निदर्शन के उच्चावचलन के कारण भी हो सकता है। दूसरी सैम्पिलों मे शायद यह साहचर्य न मिले अतः यह कल्पना करके कि दोनों गुण (attributes) स्वतन्त्र हैं निम्न प्रदत्त मिलना चाहिये

	पीड़ित	न पीड़ित
टीका लगे हुए	१७·७	२०·३
टीका न लगे हुए	१०·३	११·७

$$\therefore X^2 = \Sigma \frac{(fo-fe)^2}{fe} = \frac{(१२-१७\cdot७)^2}{१७\cdot७} + \frac{(२६-२०\cdot३)^2}{२०\cdot३}$$

$$+ \frac{(१६-१०\cdot३)^2}{१०\cdot३} + \frac{(६-११\cdot७)^2}{११\cdot७}$$

$$= (५\cdot७)^2 \left[\frac{१}{१७\cdot७} + \frac{१}{२०\cdot३} + \frac{१}{१०\cdot३} + \frac{१}{११\cdot७}\right]$$

$= ६\cdot३६७$

स्वतन्त्रता द्वारा d. f $= १$

$X^2 = ३\cdot८४$ ५% स्तर के लिये

$X^2 = ६\cdot६३५$ १% ......

$\therefore X^2 = ६\cdot३६७$ ... सम्भाव्यता $P < \cdot०१$

अतः दोनों गुणों के स्वतन्त्र मान लेने पर ऐसी सैम्पिल ... सम्भाव्यता ·०१ से भी कम है। अतः यह निश्चित है कि दोनों गुण स्वतन्त्र नहीं हैं ... टीका लगाने से रोग से बचाव हो सकता है।

... तालिकाओं की cell en...

(३) मध्यक विचलन =·७६७८८०
चतुर्थांश विचलन= ६७४५०

(४) मध्यमान से ±३ प्रामाणिक विचलन की दूरी पर लगभग ९९·७३% आवृत्तियाँ स्थित रहती है, मध्यमान से ±२·५८ प्रा० वि० ९९% और मध्यमान से ±१·९६

(५) प्रा० वि० की दूरी पर ९५% आवृत्तियाँ घिरी रहती हैं।

(६) यदि किसी सैम्पिल का मध्यमान ५० प्रा० वि० १० और सख्या १०० हो तो, ४० और ६० से कम फलाक पाने वाले व्यक्तियों का प्रतिशत बताइये।
(आगरा, एम० एड०, १९५९) (१५·८७, ८४·१३)

(७) (अ) प्रमामान्य वक्र के गुणों का प्रयोग करते हुए निम्नलिखित ५ प्रश्नो का प्रमाप मूल्य (scale value) निकालिये यदि उनको सही हल करने वाले व्यक्तियों का प्रतिशत इस प्रकार हो।

प्रश्न सही हल करने वालो की प्रतिशत सख्या
१————९०
२————८०
३————५०
४————४०
५————१०

(आगरा, एम० एड०, १९५९)

(ब) Z के गुणाक से आप क्या समझते है ? जिस वितरण का मध्यमान २० और प्रा० वि० ५ है उससे Z गुणाक निकालने की विधि का वर्णन कीजिये।

(८) प्रमामान्य सम्भाव्य तालिका (normal probability) क्या है। इसकी सहायता से किसी सैम्पिल की भिन्न-भिन्न आवृत्तियों के लिये इकाई प्रा० वि० के पदो मे प्रमाप (scale values) किस प्रकार ज्ञात किये जाते हैं और यदि प्रा० वि० एक मान लिया जाय तो किसी बिन्दु से ऊपर या नीचे आवृत्तियाँ किस प्रकार निकाली जाती हैं। (आगरा, एम० एड०, १९६०)

(९) (अ) एक व्यक्तित्व के गुण को पाँच वर्ग श्रेणियो मे विभाजित किया गया है। विद्यार्थियो के किसी समूह का कौन-कौन सा प्रतिशत अ, ब, स, द, य इन पाँच श्रेणियो मे रखा जा सकता है।

(ब) प्रान्त के समस्त प्राथमिक विद्यालयों को जूनियर बेसिक विद्यालयो मे परिवर्तित कर दिया जाय इस मत पर ३६ विद्वानो से राय मांगी गयी। १८ विद्वानो ने इस राय के पक्ष मे अपना मत दिया, ९ ने विपक्ष मे और ९ ने उपेक्षापूर्ण उत्तर दिया। क्या ये प्रत्याशित से अर्थ सूचक अन्तर रखती हैं ?
(दिल्ली, एम० एड०, १९५९)

अभ्यासार्थ प्रश्नावली ८

१. कुल आवृत्तियो मे से कितने प्रतिशत आवृत्तियाँ माध्यमान से एक और दो गुनी प्रमाप विचलन के बीच स्थिर रहती हैं ?

२. किसी चलराशि की दैव निदर्शन प्रमाप विचलन+१·९६ गुना मिलने की क्या आवश्यकता है ?

३. प्रमाप विचलन १·२७ और १·३३ गुने के बीच कितना प्रतिशत, १·३५ प्रमाप कितने के ऊपर कितना प्रतिशत,—१·३ प्रमाप विचलन से ऊपर कितना, और २·१ प्रमाप विचलन से नीचे कितना क्षेत्रफल स्थित है ?

४. किसी माप का-२·५ प्र० वि० और ३·१ प्र० वि० के बीच पड़ने की कितनी सम्भाव्यता है ?

५. $\frac{x}{\sigma}$ का मान १·५ से ग्रधिक पाने की क्या सम्भाव्यता है ?

६. क्षेत्रफल का सबसे नीचे का १२·१% भाग काटने वाली कोटि की लम्बाई ज्ञात करो।

७. प्रसामान्य की तरह वितरित किसी क्षेत्रफल का मध्यमान १३·५ ग्रौर प्र० वि० ३·६ है तो १५, ग्रौर ८ ग्रंक पाने की सम्भाव्यता बताग्रो। कौनसा ग्रंक ५% से ग्रधिक लड़को को न मिलेगा।

८. यदि किसी प्रसामान्य वितरण का प्रमाप विचलन १ ग्रौर १५ या १५ से ग्रधिक ग्रंक पाने की सम्भाव्यता ·१३८ हो तो प्रत्याशित बताग्रो।

९. किसी वितरण का मध्यमान ३७·६ है। उनकी ९५% मानें २७·८ ग्रौर ४७·४ के बीच में स्थित हैं तो ·०१ ग्रौर उससे भी कम सम्भाव्यता वाले ग्रंक की गणना करो।

१०. यदि कोई विद्यार्थी ८ प्रश्न वाली सत्य ग्रसत्य वैकल्पिक परीक्षा को हल करने के लिये एक सिक्का फेंककर उसका उत्तर देता है। जब उसका सिक्का सिर के बल पड़ता है तो प्रश्न को सही मान लेता है ग्रन्यथा ग्रसत्य।

(१) ८ प्रश्नों को सही करने की सम्भाव्यता क्या होगी ?
(२) ६ या ६ से ग्रधिक प्रश्नो को सही करने की सम्भाव्यता क्या होगी ?

१२. ४ विकल्प वाली १ परीक्षा मे ४ प्रश्न हैं। केवल भाग्य के ग्राधार पर ही कितने प्रतिशत विद्यार्थी ३ प्रश्नों को सही करेंगे।

१३. यदि किसी परीक्षा के ग्रंक सम्भाव्यता वितरण में हों जिसका ८० मध्यमान, १२ प्रमाप विचलन हो तो कितने प्रतिशत माप

(१) ६८,८६,६५,५० से ऊपर
(२) ६८,८६,११०,६२ से नीचे
(३) ६८-१०४,६८-६२,५६-६८,६८-६४ के बीच मे होंगे।

१४. नीचे दिये गये साख्यिकी के ग्राधार पर बताग्रो कि कितने सीमा के बीच ९५% ग्रौर ९९% माप होंगी।

					९५%	९९%
(ग्र)	मध्यमान	२५	प्रमाप विचलन	५	±९·८०	±१२९०
(ब)	,,	३०	,,	७	±१३·७२	±१८·६
(स)	,,	५०	,,	६	∓११·७६	±१५·४८
(द)	,,	४२	,,	४·५	± ८·८२	∓११·६१

१५. किसी परिवर्त्य राशि की ग्रावृत्तियाँ नीचे तालिका मे दी जाती हैं। यह वितरण लगभग प्रसामान्य है इसको निकालिये ग्रौर x=५० तथा x=६० के बीच कितनी ग्रावृत्तियाँ पड़ सकती हैं गणना कीजिये

परिवर्त्य राशियाँ	ग्रावृत्तियाँ
४० से कम	३०
४० से ग्रधिक किन्तु ५० से कम	३३
५० ग्रौर ५० से ग्रधिक	३७

[ग्रागरा, बी० एस-सी०, १९६०]

१६. काई square test (X^2) क्या है ? इसकी उपयोगिताएँ लिखिए।
कार ड्राइविंग की दो परीक्षाग्रों मे प्रारम्भिक ग्रौर ग्रन्तिम ग्रसफल ग्रौर सफल विद्यार्थियो का वितरण नीचे दिया जाता है क्या दोनो परीक्षाग्रों मे साहचर्य है

	प्रारम्भिक	
	पास	फेल
अन्तिम पास	६०५	१३५
फेल	१६५	६५
१	३·८४	६·६४
२	५·९९	९·२१
३	७·८२	११·३४
४	९·४९	१३·२८

[कलकत्ता, एम० ए०, गणित १९४६]

१७. दो विद्यार्थी A और B को १०५ विद्यार्थियों में ६ परीक्षाओं में निम्न ranks मिले। यदि सब परीक्षाओं के परिणामों को मिला दिया जाय तो A और B में किसको उत्तम अनुस्थिति दी जायगी। परिकल्पनाओं को स्पष्ट रूप से लिखिये

परीक्षा	Rank A	Rank B
१	३	५
२	२	३
३	४	३
४	५	१
५	४	२
६	२	३

[कलकत्ता, एम० ए०, १९४७]

१८. आठवीं कक्षा के दो sections के विद्यार्थियों को एक प्रमापीकृत परीक्षा दी गई। पहले section के ९०% और दूसरे section के ७०% विद्यार्थियों ने एक विशेष हल किया। क्या दोनों वर्गों में अन्तर महत्वशील है।

[X^2=१२·५०
P=·०१ अन्तर महत्वशील]

१९. १०० समान I. Q. बालकों को दो कक्षाओं में बराबर-बराबर अंग्रेजी पढ़ाने की दो विधियाँ अलग-अलग लागू की गई। वर्ष के अन्त में परीक्षा में ६०% से अधिक या कम अंक पाने वालों की संख्या नीचे दी जाती है।

	६०% से अधिक अंक पाने वाले	६०% से कम अंक पाने वाले
पहली विधि	४०	१०
दूसरी विधि	३०	२०

कौन सी विधि उत्तम है [उत्तर X^2=४·७६=पहली]

२०. कॉलेज, हाईस्कूल और मिडिल स्कूल विद्यार्थियों को सामान्य ज्ञान की एक परीक्षा में A, B, C, तीन ग्रेड दिये गये। कॉलेज के ९५ छात्रों में ५० छात्रों ने A grade पाया। इस प्रकार अन्य संख्यायें नीचे दी जाती हैं—

	ग्रेड			
	A	B	C	योग
कालेज	५०	१५		
हाईस्कूल	६०			
मिडिल	१०			

अध्याय ९

सैम्पिल परामितियों की विश्वसनीयता और उनके अन्तरों की अर्थ सूचकता

Q. 9·1 (a) What is the problem of statistical Inference? How can you infer the properties of the population from a randomly selected sample.

(b) Explain the terms standard Error, critical Ratio, sampling Distribution, Confidence level.

सांख्यिकी का वर्णनात्मक दृष्टिकोण (Statistical Inference)

प्रत्येक समाज-वैज्ञानिक व्यक्तियो अथवा वस्तुओ के विषय मे सामान्य बातो की जानकारी प्राप्त करने के लिये संख्या में सीमित व्यक्ति अथवा वस्तु समूह का अध्ययन करता है।

जनसंख्या का समान रूप से सदस्य होता है। अत इस सैम्पिल में पड़े हुए व्यक्तियों के व्यवहारो या वस्तुओं के गुणो मे उस उत्पत्तिमूलक समुदाय के विषय मे सामान्यीकृत जानकारी हासिल की जा सकती है। किन्तु किसी सैम्पिल मे जितने भी व्यक्ति पड सकते हैं उनके गुणों या व्यावहारो में आपसी विभिन्नतायें होने के कारण उनके किसी सामान्य तत्व का उत्पत्ति मूलक समुदाय के उसी तत्व से सामंजस्य स्थापित होने की सम्भावना पूर्णत भाग्य पर ही निर्भर रहती है। मान लीजिये कि कोई शिक्षा शास्त्री अपने प्रदेश के समस्त ११ वर्षीय बालको की मानसिक आयु का औसत जानना चाहता है। प्रत्येक ११ वर्षीय बालक का विधिवत बुद्धि परीक्षण समय, शक्ति धन आदि साधनों की दृष्टि से दुष्कर प्रतीत होता है अत वह १०-१० बालको का एक ऐसा समूह चुन लेता है जिसमे पडने की सम्भावक्ता या अवसर (Chance) उस समुदाय के प्रत्येक सदस्य को समान होता है। इस प्रकार जितनी भी सैम्पिलें चुनी जायेंगी इन सबके मध्यमान, प्रतिशत अथवा प्रामाणिक विचलन अलग-अलग होंगे। ऐसी दशा मे किस सैम्पिल के मध्यमान बुद्धि अंक को समस्त प्रदेश के बालको के बुद्धि अंको का औसत माना जाय यह समस्यापूर्ण विषय है।

हमारी सैम्पिल जितनी अधिक बडी होगी अर्थात् उसमें सदस्यो (आवृत्तियो) की संख्या जितनी अधिक होगी, और उत्पत्ति मूलक समुदाय के प्रत्येक सदस्य को चुने जाने का जितना ही अधिक अवसर मिलेगा सैम्पिल से प्राप्त मध्यमान सम्पूर्ण जन समुदाय का उतना ही अधिक प्रतिनिधित्व कर सकेगा। ऐसी दशा मे सैम्पिल के मध्यमान को जन समुदाय का मध्यमान माना जा सकता है किन्तु चूंकि सैम्पिल के सभी सदस्यो का चुनाव पूरी तरह भाग्य पर ही निर्भर है इसलिये हमे ऐसी भी सैम्पल मिल सकती है जिसके दसो बालक बुद्धि से हीन हों और ऐसी भी सैम्पिल मिल सकती है जिसके सभी बालक अति प्रखर बुद्धि के हों। इस प्रकार की दो सैम्पिलो का मिलना असम्भाव्य (Improbable) नही है जिस प्रकार ब्रिज के खेल में पूरे चौके मे सभी इक्के आ सकते हैं उसी प्रकार ऐसी दो सैम्पिलें भी मिल सकती हैं। अन्य जितनी भी सैम्पिल ली जायेंगी उन सबके मध्यमान इन दो सीमाओं (extremes) के बीच कहीं भी स्थित हो सकते हैं। मान लीजिये कि हमने ऐसी १०० सैम्पिलें ली हैं तो उनसे १०० मध्यमान मिल सकते हैं इन

मध्यमानों का वितरण Sampling distribution कहलाता है। ऐसी एक वितरण तालिका ९'१ में दिया गया है। लेखक ने कलकत्ता राजकीय महाविद्यालय के मार्ग-निर्देशन विभाग (Guidance Bureau) के प्रार्थना पत्रों से उन १०,१० विद्यार्थियों के फलांकों की १०० सैम्पिलें इकट्ठी कीं जिनको निर्देशक महोदय की प्रामाणिक बुद्धि परीक्षा दी गई थी। एक सैम्पिल ऐसी थी जिसका मध्यमान ४५ अंक तथा दो सैम्पिल ऐसी थीं जिनके मध्यमान अंक ५८, ५८ थे। शेष सैम्पिलों के मध्यमान इन दो सीमाओं के बीच में थे।

तालिका ९'१

१०,१० विद्यार्थियों के फलांकों के मध्यमानों का वितरण

फलांक	आवृत्ति संख्या
४५—	१
४६—	२
४७—	३
४८—	६
४९—	४
५०—	१०
५१—	२०
५२—	२३
५३—	१४
५४—	८
५५—	५
५६—	१
५७—	१
५८—	२
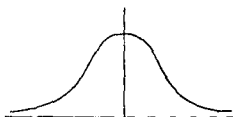
चित्र ९'१ (अ) १०० मध्यमानों का वितरणवक्र (Sampling distribution of means)

चित्र ९'१ को देखने से पता चलता है कि मध्यमानों का वितरण वक्र लगभग सामान्य (normal) जैसा है। साथ ही इसका प्रसरण इतना अधिक नहीं है जितना कि किसी एक सैम्पिल का हो सकता है। यदि १०० सैम्पिलों के स्थान पर १००० सैम्पिलें ली गई होतीं तो वक्र और भी अधिक normal हो जाता। तालिका ९'१ के आवृत्ति वितरण का मध्यमान ५१'६२ अंक और प्रामाणिक विचलन २'२७५ अंक है। मध्यमानों के ५१'६२ अंक को सम्पूर्ण जनसंख्या का औसत मान सकते हैं। Sampling Distribution का प्रामाणिक विचलन प्रामाणिक विभ्रम (Standard Error) कहलाता है। सैम्पलिंग वितरण के normal होने के कारण निम्नलिखित प्रसार क्षेत्र में लगभग ६८% सैम्पिलों के मध्यमान स्थित हैं।

$M \pm \sigma M = ५१{\cdot}६२ \pm २{\cdot}७५$ $\quad$ $(५१{\cdot}६२ \pm ३ \times २{\cdot}२७५)$

और सैम्पिल १००% सैम्पिलों के मध्यमान $M \pm 3\sigma M$ के बीच मिल सकते हैं।

अर्थात् ५१'६२±६'८२५ या ४५ और ५८ के बीच लगभग सब सैम्पिलों के मध्यमान हैं। अतः यदि किसी सैम्पिल का मध्यमान ४५ से कम या ५८ से अधिक है तो यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि वह सैम्पिल उत्पत्तिमूलक जन समुदाय (population) से नहीं ली गई।

काष्ठा निष्पत्ति (Critical Ratio)—यदि जनसंख्या मध्यमान $\overline{M}$ और मध्यमानों के वितरण का प्रामाणिक विचलन σM हो तो जितनी भी सैम्पिलें उसमें चुनी जायेंगी उनके का मान निम्न प्रसार क्षेत्र में अवश्य स्थित होगा।

$$M \pm 3\sigma M$$

यदि किसी सैम्पिल का मध्यमान $\overline{X}$ है तो शतप्रतिशत सैम्पिलों में

$$\overline{X} = M \pm ३\sigma M$$

$$\therefore \quad \overline{X} - M = \pm ३\sigma M$$

या $\frac{\overline{X} - M}{\sigma M} = \pm ३$

और ९५% सैम्पिलों में $\overline{X} = M \pm १.९६\sigma M$

$$\therefore \quad \frac{\overline{X} - M}{\sigma M} = \pm १.९६$$

और ९९% सैम्पिलों में $\overline{X} = M \pm २.५८\ \sigma M$

$$\therefore \quad \frac{\overline{X} - M}{\sigma M} = \pm २.५८$$

व्यंजक $\frac{\overline{X} - M}{\sigma M}$ को काष्ठा निष्पत्ति (Critical ratio) कहा जाता है। यदि यह काष्ठा निष्पत्ति (critical ratio) $\pm$१.९६ से कम होती है तो ९५% दशाओं मे विश्वास किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में केवल ५% सैम्पिलों के मध्यमान ही भिन्न होने के कारण ५% विश्वास तल पर काष्ठा निष्पत्ति (critical ratio) का मान $\pm$१.९६ मिल सकता है। इसी प्रकार १% विश्वास तल (confidence level) पर काष्ठा निष्पत्ति $\pm$ २.५८ होती है।

काष्ठा निष्पत्ति के २.५८ से अधिक होने पर १% विश्वास तल पर सब सैम्पिलों के मध्यमान उत्पत्ति मूलक समुदाय के मध्यमान से भिन्न माने जा सकते हैं। सैम्पलिंग वितरण का प्रा० वि० जितना ही कम होता है शतप्रतिशत सैम्पिलों के मध्यमानों का प्रसार क्षेत्र उतना ही छोटा हो जाता है क्योंकि यह प्रसार क्षेत्र (M$\pm$३σM) प्रामाणिक विभ्रम पर निर्भर रहता है। यदि σM का मान २.२७५ से अधिक होता तो प्रसार क्षेत्र भी बढ़ जाता इसके विपरीत σM का मान २.२७५ से कम होने पर प्रसार क्षेत्र कम हो जाता और अधिक विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि हमारी सैम्पिल उसी उत्पत्तिमूलक जनसख्या (Parent population) से ली गई है। अतएव सैम्पलिंग वितरण के प्रामाणिक विचलन या प्रामाणिक विभ्रम (standard error) को सैम्पिल की विश्वसता (reliability) का माप कहा जाता है।

उदाहरण ९.१ (अ) यदि मध्यमानों के सैम्पलिंग distribution का मध्यमान ५१.६२ और उसका प्रमाणिक विचलन २.२७५ हो तो इस वितरण के पूर्णत. normal होने पर ५७ से अधिक मध्यमान वाले सैम्पिल पाने की क्या सम्भाव्यता (probability) होगी?

यदि सैम्पलिंग वितरण पूर्णत normal है तो उसका मध्यमान $\overline{X} = ५१.६२$ और $\sigma = २.७५$ होने पर ५७ के लिये normal deviate

$$z = \frac{X - \overline{X}}{\sigma} = \frac{५७ - ५१.६२}{२.२७५} = \frac{५.३८}{२.२७५} = २.४$$

अतः किसी सैम्पिल का मध्यमान ५७ या ५७ से अधिक पाने की सम्भाव्यता normal वक्र मे $z = २.४$ से दायीं ओर का क्षेत्रफल होगा। तालिका ८.१ से $z = २.४$ के लिए वितरण के मध्यमान और $z = २.४$ के बीच का क्षेत्रफल है

.४९१८०

अतः $z = २.४$ से दायी ओर का क्षेत्रफल $= .५०००० - .४९१८०$

$= .००८२$

अतः ५७ या ५७ से अधिक किसी सैम्पिल का मध्यमान पाने की सम्भाव्यता .००८२ है। दूसरे शब्दो मे १०,००० सैम्पिलों में ८२ ऐसी सैम्पिल होगी जिनका मध्यमान ५७ या ५७ से अधिक होगा।

उदाहरण ९'२ (ब) यदि मध्यमान के किसी सैम्पिल वितरण मध्यमान शून्य और प्रा० वि० σ है तो उस सैंपिल के मध्यमान का मूल्य कितना होगा जिसमे अधिक मध्यमान वाले सैम्पिल १०० में एक हैं।

चूँकि उस मध्यमान से अधिक मध्यमान वाले सैम्पिल १०० मे एक हैं ∴ उस मध्यमान से कम मध्यमान वाले सैम्पिल ९९ हैं

∴ उनकी सम्भावना (probability) = '९९

तालिका ९'१ को देखने से पता चलता है कि

सभाव्यना '९९१८० के लिये z = २'४

'९८९२८   z = २'३

'९९०००   ००२५२ का अन्तर है z में '१ के लिये

'९८९२८   '०००७२ ' ''' z मे '०३ के लिये

———

०००७२   ∴ यदि सभाव्यना ९९ है तो z = २'३३

$$\therefore \quad \frac{X-\bar{X}}{\sigma} = २\text{'}३३$$

$$\therefore \quad \frac{X-०}{\sigma} = २\text{'}३३ \text{ क्योंकि } \bar{X} = ०$$

$$\therefore \quad X = २\text{'}३३\sigma$$

Q. 9·2. *State the formula for the standard Error of the Mean Explain with examples how it can be used*

(a) *to find the range between which sample means may be*

(b) *to find whether a sample has been drawn from a population with known parametes.*

सैम्पिलो के मध्यमानों का प्रामाणिक विभ्रम (Standard Error of Sample Means)

धारा ९'१ मे मध्यमानो के एक सैंपलिंग वितरण का उल्लेख किया गया था और इस बात की ओर सकेत किया गया था कि उसका मध्यमान उत्पत्ति मूलक समुदाय (Parent population) का मध्यमान माना जा सकता है और उस सैंपलिंग वितरण का प्रामाणिक विचलन मध्यमानों का प्रमाणिक विभ्रम।

यदि वह उत्पत्तिमूलक समुदाय जिससे कोई सैम्पिल लिया है अनन्त सदस्यो वाली अथवा निश्चित आकार की होने पर उसमें से किसी सैम्पिल के चुन लेने के बाद सदस्यो को replacement कर दिया जाता है तो उसके सैम्पिलों के मध्यमानो का प्रामाणिक विभ्रम निम्नलिखित होगा।

$$= \frac{\sigma P}{\sqrt{N}}$$

जबकि σP समुदाय का प्रामाणिक विचलन और N सैम्पिल सदस्यों की सख्या है।

यदि अन्य सैम्पिलें इसी प्रकार चुनी जायें तो उनका मान $M \pm \frac{3\sigma P}{\sqrt{N}}$ के मध्य कुछ भी हो सकता है।

यदि सदस्यों को चुन लेने पर उनका replacement नहीं होता तो population के आकार के निश्चित होने पर मध्यमानो का प्रामाणिक विभ्रम $\frac{N-n}{N-1} \quad \frac{\sigma^2}{n}$ होगा।

उदाहरण ९'२ (स) यदि समस्त उत्तर प्रदेश के बी० टी० कक्षा में छात्रो की औसत

आयु २४·५ वर्ष और प्रामाणिक विचलन ३·५ वर्ष हो तो इस प्रदेश के किसी प्रशिक्षण महाविद्यालय के १०६ बी० टी० छात्रों की आयु के औसत का प्रसार क्षेत्र कितना होना चाहिए ?

$$\sigma P = ३·५$$

$$\therefore १००, १०० \text{ की सैम्पिलों के मध्यमानों का प्रा० वि०} = \frac{\sigma P}{\sqrt{१००}} = \frac{३·५}{१०} = ·३५ \text{ वर्ष}$$

चूंकि उत्पत्ति मूलक समुदाय का मध्यमान २४·५ है इसलिये उससे ली गई सैम्पिलों के मध्यमानों का वितरण normal माना जा सकता है जिसका मध्यमान २४·५ वर्ष और प्रा० वि० ·३५ वर्ष है।

अत २४·५±३×·३५ प्रसार क्षेत्र मे सब सैम्पिलों के मध्यमान पड सकते हैं दूसरे शब्दों मे २२·४५ और २५·५५ के बीच किसी भी प्रशिक्षण महाविद्यालय के विद्यार्थियों की आयु का औसत हो सकता है।

उदाहरण ६·२ (ब) यदि किसी प्रशिक्षण महाविद्यालय के १०० विद्यार्थियों की औसत आयु २१ वर्ष हो तो क्या यह प्रशिक्षण महाविद्यालय उत्तरप्रदेश के महाविद्यालयों मे से एक माना जा सकता है जिसमे औसत आयु २४·५ वर्ष है और प्रामाणिक विचलन ३·५ वर्ष है।

यदि उत्पत्तिमूलक समुदाय का मध्यमान = २४·५ वर्ष
प्रा० विचलन = ३·५ वर्ष

$$\text{तो सैम्पिलों का प्रा० विभ्रम} = \frac{३·५}{\sqrt{१००}} = ·३५ \text{ वर्ष}$$

जिस सैम्पिल का मध्यमान २१ वर्ष है उसके लिये

$$\text{काष्ठा निष्पत्ति (Critical ratio)} = \frac{२१ - २४·५}{·३५}$$

$$= \frac{-३·५}{·३५} = -१०$$

काष्ठा निष्पत्ति २·५८ से अधिक होने पर सैम्पिल का मध्यमान उत्पत्तिमूलक समुदाय के मध्यमान से भिन्न माना जा सकता है। अत यह सैम्पिल उत्तरप्रदेश के विद्यार्थियों से नहीं ली गई है। दूसरे शब्दों मे यह कहा जा सकता है कि सैम्पिल और उत्पत्तिमूलक समुदाय के मध्यमानों मे अन्तर अर्थ सूचक (significant difference) है।

Q 9 3 How will you estimate the population mean from sample values ? Estimate the population mean when for a sample

$N = 100,$
$\bar{X} = 60$
$\sigma = 20$

Explain with the helps of this example the concept of fiducial limits.

उत्पत्ति मूलक समुदाय के मध्यमान और प्रामाणिक विचलन के ज्ञात न होने पर सैम्पिलों के मध्यमानों का प्रा० विभ्रम

उदाहरण ६·२ (अ) और (ब) के प्रश्नों मे उत्पत्ति मूलक समुदाय (parent population) का मध्यमान एव प्रामाणिक विचलन ज्ञात था किन्तु ये दोनों हमको साधारणत अज्ञात रहते हैं। किसी सैम्पिल के मध्यमान और प्रामाणिक विचलन की सहायता से उत्पत्ति मूलक समुदाय के मध्यमान और प्रामाणिक विचलन की सहायता से उत्पत्तिमूलक समुदाय के मध्यमान और प्रामाणिक विचलन का अन्दाजा लगाना सदैव हमारा लक्ष्य रहता है। उदाहरणार्थ हम जानना चाहते हैं कि यदि हमे किसी प्रतिनिध्यात्मक विद्यार्थी समूह के बुद्धि अक या भार या कद का

यौगिक मालूम हो तो समस्त विद्यार्थी समुदाय के बुद्धि अंक का भार का वजन का औसत क्या होगा।

यदि सैम्पिल में सदस्यों की संख्या N हो तो उपलिखित समुदाय के प्रामाणिक विचलन का प्राक्कलित मान $\sqrt{\frac{\Sigma x^2}{N-1}}$ होगा जबकि x सैम्पिल के प्रत्येक मान का उसके मध्यमान से विचलन है।

अतः सैम्पिल के मध्यमानों का प्रामाणिक विभ्रम $\sigma M = \frac{\sqrt{\frac{\Sigma x^2}{N-1}}}{\sqrt{N}}$

$$= \sqrt{\frac{\Sigma x^2}{N(N-1)}} = \frac{\sqrt{\frac{\Sigma x^2}{N}}}{\sqrt{N-1}} = \frac{\sigma}{\sqrt{N-1}} \text{ क्योंकि } \sqrt{\frac{\Sigma x^2}{N}} = \sigma$$

दूसरे शब्दों में मध्यमान का प्रामाणिक विभ्रम $= \frac{\text{सैम्पिल का प्रामाणिक विचलन}}{\sqrt{N-1}}$

उदाहरण ६·३ कक्षा ८ के १०० विद्यार्थियों के एक समूह को निजियन की बुद्धि परीक्षा दी गई जिसके फलांकों का मध्यमान ६० और प्रा० विचलन २० अंक था।

कक्षा ८ के समस्त विद्यार्थी समुदाय का यदि यही परीक्षा दी जाय तो उनके फलांकों का मध्यमान कितना होगा।

माना समस्त समुदाय का मध्यमान फलांक = M अंक
सैम्पिल का मध्यमान = ६० अंक
प्रा० विचलन = २० अंक

१०० सदस्य वाली सैम्पिलों के मध्यमानों का प्रा० विभ्रम $\sigma M = \frac{\sigma}{\sqrt{N-1}}$

$$= \frac{\sigma}{\sqrt{१०० - १}} = \frac{२०}{\sqrt{९९}} = २ \text{ लगभग}$$

यदि सैम्पिलों के मध्यमान समस्त विद्यार्थी समुदाय के मध्यमान के दोनों ओर normally distributed है तो 1% विश्वास तल पर क्रान्तिक निष्पत्ति

$$\frac{\bar{X} - M}{\sigma M} = \pm २·५८$$

$$\therefore \frac{६० - M}{२} = \pm २·५८ \text{ चूंकि } \sigma M = २, \bar{X} = ६०$$

$$६० - M = \pm ५·१६$$
$$M = ६० \pm ५·१६$$

अत समस्त समुदाय का मध्यमान फलांक ६५·१६ और ५४·८४ के बीच में कुछ हो सकता है और ऐसा होने की काल्पनिक सम्भाव्यता (fiducial probability) ·९९ है।

५४·८४ और ६५·१६ को काल्पनिक विश्वास सीमाएं (fiducial Confidence limits) कह सकते हैं।

Q. 9 4. Derive a formula for the standard Error of the difference of two sample means in the following cases :
(a) When the samples are drawn from the same population
(b) When the samples are drawn from two different population.

दो स्वतन्त्र किन्तु बड़ी सैम्पिल-मध्यमानो के अन्तर की अर्थ सूचकता (Significance of difference of two independent-big sample means)

यदि उत्पत्ति मूलक समुदाय (parent population) का प्रामाणिक विचलन σP हो तो उससे ली गई सैम्पिलो के मध्यमानो का प्रामाणिक विभ्रम

$$\sigma M = \frac{\sigma P}{\sqrt{N}}$$

होता है जबकि सैम्पिल मे सदस्यो की सख्या N हो।

अत: यदि एक सैम्पिल मे सदस्यो की सख्या N_1 है तो उस सैम्पिल के मध्यमान का प्रा० वि० $\sigma M_1 = \frac{\sigma P}{\sqrt{N_1}}$ होगा इसी प्रकार दूसरी सैम्पिल के मध्यमान का प्रा० वि० $\sigma M_2 = \frac{\sigma P}{\sqrt{N_2}}$ होगा

धारा ६'११ मे बताया जा चुका है कि दो स्वतन्त्र चल राशियों X, y के अन्तरो का प्रा० विचलन होता है

$$\sqrt{\sigma_1^2 + \sigma_2^2}$$

इस नियम के अनुसार दो स्वतत्र सैम्पिलो के मध्यमानो के अन्तर का प्रामाणिक विचलन (या विभ्रम) होगा

$$\sqrt{\frac{\sigma P^2}{N_1} + \frac{\sigma P^2}{N_2}}$$

अथवा $\sigma P \sqrt{\frac{1}{N_1} + \frac{1}{N_2}}$

यदि दोनो सैम्पिले एक ही उत्पत्ति मूलक समुदाय से ली गई हैं तो दोनो सैम्पिलों के मध्यमानो M_1 और M_2 के अन्तर का मध्यमान शून्य होगा।

मध्यमानो के अन्तरो का एक सैम्पलिंग वितरण मिल सकता है जिसका मध्यमान (Mean) शून्य और प्रामाणिक विचलन $\sigma M_1 - M_2$ होगा

$$\sqrt{\frac{1}{N_2} + \frac{1}{N_2}}$$

दो सैम्पिलों के अन्तर के लिये काप्ठा निष्पत्ति होगी:

$$\frac{(M_1 - M_2) - 0}{\sigma M_1 - M_2} = \frac{M_1 - M_2}{\sigma M_1 - M_2} = \frac{M_1 - M_2}{\sigma P \sqrt{\frac{1}{N_1} + \frac{1}{N_2}}}$$

यदि यह निष्पत्ति १'९६ से बड़ी है तो ५% विश्वास तल पर यदि २'५८ से बड़ी है तो १% विश्वास तल पर इस परिकल्पना को सदेह की दृष्टि मे देख सकते हैं कि दोनो सैम्पिल एक ही विशाल समुदाय से लिये गये हैं। यह ध्यान रखना चाहिए कि σP का मान हमको सदैव

दो स्वतन्त्र सैम्पिलें जो एक ही अथवा दो भिन्न-भिन्न उत्पत्तिमूलक समुदायो से ली गई हैं महत्वशील अन्तर वाली होती हैं या नही इसकी विवेचना पीछे को जा चुकी है किन्तु कभी-कभी दो ऐसी सैम्पिलें मिल जाया करती हैं जो किसी न किसी तरह सहसम्बन्धित हो जाती हैं। एक परीक्षा के किसी रूप को दो बार या उसके समानान्तर रूप को दूसरी बार लागू किये जाने पर जो फलाक श्रेणियाँ (series of scores) मिलेंगी वे सहसम्बन्धित होगी। फलाको के बीच सह सम्बन्ध होने पर भी उनके मध्यमानो और प्रामाणिक विचलनो मे भिन्नता हो सकती है। अनेक प्रकार के घटक अनेक मध्यमानो मे अन्तर पैदा करने में निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं। उनमे से एक कारण अन्तरिम काल मे अध्यापको द्वारा दिया गया शिक्षण भी हो सकता है। यदि अन्य कारण इस अन्तरिम काल मे निष्क्रिय रहे तो क्या प्रशिक्षण के कारण दो समयो पर दी गई एक ही परीक्षा के फलाको मे अन्तर अर्थसूचक या महत्वशील हो सकता है। ऐसी अवस्था मे दो मध्यमानो के अन्तरो का प्रामाणिक विभ्रम होगा —

$$\sigma M - M_2 = \sqrt{\sigma_1^2 + \sigma_2^2 - 2\sigma_1 \sigma_2 r_{12}}$$

σ_1, σ_2 और r_{12} दोनों राशियो के मध्यमान तथा r_{12} दोनो के बीच सह सम्बन्ध गुणक है।

यदि दोनो सैम्पिलो के मध्यमानो के बीच अन्तर अर्थ सूचक नही है और यदि दोनो सैम्पिलो में सदस्यो की सख्या ३० से अधिक है तो काष्ठा निष्पत्ति

$$\frac{M_1 - M_1}{\sigma M - M_2}$$

का मान ५% विश्वास तल पर १·९६ से कम होगा तथा १% विश्वास तल पर यह मान २·५८ से कम होगा।

$M_1 - M_2$

उदाहरण ६·५ (अ) किसी परीक्षा के दो समानान्तर रूपो मे ·६ का सहसम्बन्ध गुणक था दोनो रूपों के समयान्तर से ६५ विद्यार्थियो की एक कक्षा पर लागू किया गया। प्रथम रूप के फलाकों का मध्यमान ४५ दूसरे का ५० अक माना गया। यदि उनका प्रामाणिक विचलन ६ और ५ अक हो तो इस प्रदत्त सामग्री के आधार पर आप यह कह सकते हैं कि कक्षा ने अन्तरिम काल मे विशेष उन्नति की है।

$M_1 = ४५ \qquad \sigma_1 = ६ \qquad \sigma M_1 = \frac{\sigma_1}{\sqrt{६४}} = \frac{६}{८} = ·७५$

$M_2 = ५० \qquad \sigma_2 = ५ \qquad \sigma M_2 = \frac{५}{\sqrt{६४}} = ·६३$

$$\sigma M_1 - M_2 = \sqrt{\sigma_1^2 + \sigma_2^2 - 2r_1\sigma_1\sigma_2}$$
$$= \sqrt{(·७५)^2 + (·६३)^2 - २ \times ·६० \times ·७५ \times ·६३}$$
$$= ·६३$$

काष्ठा निष्पत्ति $= \frac{M_1 - M_2}{\sigma M_1 - M_2} = \frac{४५ - ५०}{·६३} = \frac{-५}{·६३} = -८$

यह निष्पत्ति तो २·५८ से काफी बड़ी है अत फलाकों के मध्यमानो मे अन्तर महत्वपूर्ण है वह निश्चय ही (sampling fluctuations) के कारण पैदा नहीं हुआ है। दूसरे शब्दों मे कक्षा ने अन्तरिम काल मे निश्चय ही शैक्षणिक प्रगति की है।

उदाहरण ६·५ (ब) यदि दो शिशु-समूहों की जिनकी औसत आयु तथा आयु का प्रामाणिक विचलन समान या भिन्न भिन्न वातावरणों मे पालने पर निम्नलिखित भार में अन्तर

मिला हो तो क्या इस प्रदत्त के ग्राधार पर ग्राप कह सकते हैं कि दूसरा वातावरण पहले से ग्रच्छा है ?

	समूह १	समूह २
शिशु संख्या	१२५	१३७
मध्यमान भार	५१·४२ पौण्ड	५४·३८ पौण्ड
भार का प्रामाणिक विचलन	६·२४ पौण्ड	७·१४ पौण्ड
भार और ग्रायु मे सहसम्बन्ध	·३०	

इस दशा मे, $\sigma M_1 - M_2 = \sqrt{(\sigma M_1^2 + \sigma M_2^2)(1 - r^2)}$

$$= \sqrt{\left\{ \frac{(६·२४)^2}{१२४} + \frac{(७·१४)^2}{१३६} \right\} (१ - ·३०^2)}$$

$= ७६$

$\therefore$ क्राप्टा निष्पत्ति $= \frac{५४·३८ - ५१·४२}{·७६} = ३·७५$

क्राप्टा निष्पत्ति २·५८ से काफी बड़ी है ग्रत दोनो सैम्पिलो मे ग्रन्तर महत्वशील है।

Q. 9·6 (a) How on the basis of a small sample can you say that it has been drawn from a population with given mean.

(b) Two samples values are given below

X=63, 65, 68, 69, 71, 72

Y=61, 62, 65, 66, 69, 69, 70, 71, 72, 73

Are the sample means significantly different ?

(ग्र) सैम्पिल मध्यमानो की विश्वसनीयता (सैम्पिल मे सदस्यों की संख्या कम होने पर)
(Reliability of sample means when n is small)

जब किसी प्रसामान्य (normal) उत्पत्ति मूलक समुदाय को विशाल ग्राकार का प्रतिनिध्यात्मक सैम्पिल चुना जाता है तब उस जैसी ग्रन्य सैम्पिल के मध्यमानो का वितरण प्रसामान्य (normal) ही होता है ऐसी समस्त सैम्पिलो के मध्यमानो का मध्यमान उत्पत्तिमूलक समुदाय के मध्यमान के बराबर तथा प्रामाणिक विचलन

$$\frac{\sigma}{\sqrt{N}}$$

के बराबर होता है। किन्तु n के छोटे होने पर न तो सैम्पिल मध्यमानो का वितरण ही प्रसामान्य (normal) होता है ग्रौर न उनके प्रामाणिक विभ्रम की गणना ऊपर के सूत्र से की जा सकती है। n के छोटे होने पर सैम्पिल-मध्यमानो का वितरण normal वितरण से मिलता-जुलता सा कुछ ग्रधिक नुकीला ग्रौर मध्यमान के दोनो ग्रोर लगभग समामित होता है। इस वितरण को t—वितरण कहते हैं।

$$t = \frac{\overline{X} - M}{\frac{\sigma}{\sqrt{N}}}, \quad \overline{X} = \frac{\Sigma x}{N} = \text{सैम्पिल की ग्रौसत}$$

$S^2 = \overline{\sigma^2} = \frac{1}{N-1} \Sigma(x - \overline{X})^2 =$ सैम्पिल मे उत्पत्ति मूलक समुदाय का ग्रानुमानित प्रा० वि०

t निष्पत्ति ग्रौर z निष्पत्ति मे ग्रन्तर केवल इतना है कि सैम्पिल के माध्य का विच-

सन उत्पत्तिमूलक समुदाय के माध्य से σ के पदों मे ज्ञात करने के स्थान पर S के पदों में ज्ञात किया जाता है जबकि s सैम्पिल से प्राक्कलित प्रमाप विचलन की मात्रा है किसी एक observation के लिये z ratio $\frac{(x-M)}{\sigma}$ और t ratio $\frac{(x-M)}{s/\sqrt{N}}$ तथा माध्यम के लिये z ratio

$\frac{(\bar{x}-M)}{\sigma\sqrt{N}}$ तथा t ratio $\frac{(\bar{x}-M)}{s/\sqrt{N}}$ होती है।

t—वितरण वक्र की विशेषताओं का उल्लेख धारा ८'१२ मे किया जा चुका है। प्रत्येक सैम्पिल के लिये t के भिन्न-भिन्न मान मिलेंगे। N के मानों के अनुसार ५% और १% विश्वास तलों पर t के जो मान मिल सकते हैं उनको तालिका ६'१ मे दिया जा रहा है। यह तालिका ८'१२ तालिका का एक अश मात्र है ν स्वतन्त्रता-अश मात्र है।

दो सैम्पिलों के मध्यमानों की तुलना करने के लिये t का मान निम्नलिखित होगा

$$t = \frac{\bar{X}-\bar{y}}{\sigma_{\bar{X}-\bar{y}}}$$

जबकि $\bar{X} = \frac{1}{n_1}\Sigma X,\ \bar{y} = \frac{1}{n_1}\Sigma y$

उस समुदाय के प्रा० वि० का प्राक्कलन जिससे दोनों सैम्पिलें ली गई हैं

$$S^2 = \bar{\sigma}^2 = \frac{1}{n_1+n_2-2}\left[\Sigma(-\bar{X})^2 + \Sigma\ (y-\bar{y})^2\right]$$

$$\sigma_{\bar{X}} = \frac{\bar{\sigma}}{\sqrt{n_1}}\quad \sigma_{\bar{y}} = \frac{\bar{\sigma}}{\sqrt{n_2}}$$

$$\therefore \sigma_{\bar{X}-\bar{y}} = \bar{\sigma}\sqrt{\frac{1}{n_1}+\frac{1}{n_2}}$$

$$\therefore t = \frac{\bar{X}-\bar{y}}{\sqrt{\frac{\Sigma(X_1-\bar{X})^2+\Sigma(y-\bar{y})^2}{n_1+n_2-2}\left(\frac{1}{n_1}+\frac{1}{n_2}\right)}}$$

अतएव जब कभी population को प्रमाप विचलन (S. D) अज्ञात रहता है अथवा उसको माना नहीं जा सकता तब t निष्पत्ति का ही प्रयोग किया जाता है।

जब दो सैम्पिलें ऐसी दो उत्पत्ति मूलक समुदायों से ली जाती हैं जिनका प्रमाप विचलन भिन्न-भिन्न होता है तब उनके मध्यमानों की तुलना करने के लिये cochram-cox विधि का उपयोग किया जाता है। इस विधि को उदाहरण ६'६ ज मे समझाया जायगा।

n के भिन्न-भिन्न मान लिये

सारिणी ८·१ १% ५% विश्वास स्तर पर t के मान

n	P = ·०१	P = ·०५	v	P = ·०१	·०५
१	६३·६६	१२·७१	२१	२·८३	२·०७
२	९·९२	४·३०	२२	२·८१	२·०६
३	५·८४	३·१८	२३	२·८०	२·०६
४	४·६०	२·७८	२४	२·७९	२·०५
५	३·७१	२·५७	२५	२·७८	२·०४
६	३·५०	३·४५	२६	२·७७	२·०४
७	३·३६	२·३६	२७	२·७६	२·०४
८	३·२५	२·३१	२८	२·७६	२·०३
९	३·१७	२·२६	२९	२·७५	२·०२
१०	३·११	२·२३	३०	२·७२	२·०२
११	३·०६	२·२०	३५	२·७१	२·०१
१२	३·०१	२·१८	४०	२·६९	२·००
१३	२·९८	२·१६	४५	२·६८	२·००
१४	२·९५	२·१४	५०	२·६६	१·९९
१५	२·९२	२·१३	६०	२·६५	१·९९
१६	२·९०	२·११	७०	२·६४	१·९८
१७	२·८८	२·१०	८०	२·६३	१·९८
१८	२·८६	२·०९	९०	२·६२	१·९८
१९	२·८४	२·०८	१००	२·६२	१·९७
२०	२·८३	२·०७	१२०	२·६१	१·९७

उदाहरण ८·६ (घ) किसी विशाल जनसमूह से १० व्यक्तियों को random क्रम से चुना गया और उनका कद इंचों में निम्नलिखित पाया गया

६३, ६६, ६६, ६७, ६८, ६९, ७०, ७०, ७१, ७१

क्या इस प्राकिक प्रदत्त के आधार पर कहा जा सकता है कि उत्पत्तिमूलक समुदाय का औसत कद ६६" था ?

ऊँचाई के अनुसार उत्पत्ति मूलक समुदाय normal होना चाहिये अत जो सैम्पिल इस समुदाय से ली जायगी आकार में छोटी होने के कारण उसका सैम्पिलिंग वितरण t— वितरण वक्र की तरह होगी।

$$=\bar{X}\frac{\Sigma x}{N}=\frac{६३+६६+६६+६७+६८+६९+७०+७०+७१+७१}{१०}$$

$$=६७·८"$$

$$\sigma=\sqrt{\frac{१}{९}(४·८^२+१·८^२+१·८^२+·८^२+२^२+१·२^२+२·२^२+२·२^२+३·२^२+३·२^२)}$$

$$=३·०१$$

$$\text{मध्यमान की प्रामाणिक त्रुटि} = \frac{\sigma}{\sqrt{N}} = \frac{३\cdot०१}{\sqrt{१०}}$$

$$\therefore \text{ t ratio } \frac{\overline{X} - M}{\text{प्रा० त्रुटि}}$$

$$t = \frac{६७\cdot८ - ६६}{\frac{३\cdot०१}{\sqrt{१०}}} = १\cdot८६$$

यहाँ पर d f_1 $\nu = १० - १ = ९$ क्योंकि मध्यमान से अन्य मानो के विचलन १० है चूंकि उनका योग सदैव शून्य होता है अत. ९ विचलनों को स्वतन्त्रतापूर्वक निश्चित किया जा सकता है।

तालिका ६ १ से d f = ९ के लिये

$\because$ १% विश्वास तल पर t = ३'१७

और $\therefore$ ५% ,, t = २'२६

$\therefore$ t = १'८६ के लिये सम्भाव्यता '०५ से अधिक होगी

अतः सैम्पिल के मध्यमान ७'८ का ६६ से अन्तर महत्वशील नहीं है।

उदाहरण ६'६ (क) ६ यद्दाच्छिक (random) क्रम से चुने गये विद्यार्थियों के प्राप्तांक एक परीक्षा में ६३, ६५, ६८, ६६, ७१ और ७२ क्रम से चुने हुए १० अन्य विद्यार्थियों के प्राप्तांक ६१, ६२, ६५, ६६, ६६, ७०, ७१, ७२ और ७३ थे। क्या दोनो सैम्पिलो के मध्यमान प्राप्तांकों ६६, मे अन्तर अर्थसूचक हैं।

$$\text{पहली कक्षा का माध्य} = \frac{६३+६५+६८+६६+७१+७२}{६}$$

$$= \frac{४०८}{६} = ६८''$$

$$\text{दूसरी कक्षा का माध्य} = \frac{६१+६२+६५+६६+६६+६६+\cdots\cdots+७३}{१०}$$

$= ६७'८''$

दो माध्यों का अन्तर $\overline{X} - \overline{Y} = ६८ - ६७'८ = -'२''$

मध्यमानो के अन्तरो का प्रा० वि० $= \sigma \overline{X} \; \overline{y}$

$$= \sqrt{\frac{1}{n_1 + n_2 - 2}(\Sigma(x - \overline{X})^2 + \Sigma(y - \overline{y})^2 \left(\frac{1}{n_1} + \frac{1}{n_2}\right)}$$

$$= \sqrt{\frac{१}{१४} \times \frac{१६}{१६०}[(-५)^2 + (-३)^2 + (३)^2 + (०)^2 + (९'८)^2 + \cdots]}$$

$= २'००८$

$$t = \frac{\overline{X} - \overline{y}}{\sigma \overline{X} - \overline{y}} = \frac{'२}{२'००८} = '०९९१, \; \nu = n_1 + n_2 - 2$$

$= १४$

क्योंकि दोनों समूहों की d f क्रमशः ५ और ९ है।

$$\text{तो अन्तरों का प्रा० वि०} = \sqrt{\frac{P_1 Q_1}{N_1} + \frac{P_2 Q_2}{N_2}}$$

$$\sigma P_1 - P_2$$

यदि P_1 और P_2 अत्यत छोटे नही हैं और N_1 और N_2 काफी बड़े हैं तो $P_1 - P_2$ के मान भिन्न-भिन्न सैम्पिल-युग्मो के लिए normal विकरण की तरह वितरित होंगे जिनका मध्यमान शून्य प्रामाणिक विचलन होगा

$$\sqrt{\frac{P_1 Q_1}{N_1} + \frac{P_2 Q_2}{N_2}}$$

किन्तु यदि दोनो सैम्पिलो के प्रतिशतों से जनसंख्या का प्रतिशत आँका जा सकता तो समस्त उत्पत्ति मूलक जनसंख्या का P निकालने के लिये निम्न सूत्र का प्रयोग किया जायगा

$$\overline{P} = \frac{N_1 P_1 + N_2 P_2}{N_1 + N_2} \quad \therefore \quad \overline{Q} = १०० - \overline{P}$$

$$\text{अत अन्तरो के प्रतिशत का प्रारम्भिक विचलन} = \sqrt{\overline{P}\,\overline{Q}\left(\frac{1}{N_1} + \frac{1}{N_2}\right)} \text{ होगा}$$

उदाहरण ९'९ (अ) एक ही विद्यालय की एक ही कक्षा के दो विभागों (section) को जिसके विद्यार्थियो का बौद्धिक एवं अधिगम स्तर लगभग समान था एक अध्यापक ने दो भिन्न विधियो से पढाना आरम्भ किया। अन्य प्रकार के समस्त वातावरण को यथासम्भव समान रखने का प्रयत्न करने के [illegible] ४५ विद्यार्थियो में से ११ और दूसरे विभाग के [illegible] यो में क्या अन्तर इतना ही था कि एक पाठन [illegible]

$$\text{पहली क० section मे सफल बालको का प्रतिशत} = \frac{३४००}{४५} = P_1$$

$$= \frac{४६००}{५०} = P_2$$

$$P_1 - P_2 = \frac{३४००}{४५} - \frac{४६००}{५०}$$

$$= ७५\cdot६ - ९२ = १६\cdot४\%$$

$$\sigma P_1 - P_2 = \sqrt{\frac{३४००}{४५} \times \frac{११००}{४५} \times \frac{१}{४५} + \frac{४६००}{५०} \times \frac{४००}{५०} \times \frac{१}{५०}}$$

$$= ७\cdot४४\%$$

यदि दोनो सैम्पिल एक ही उत्पत्ति मूलक समुदाय से ली गई मान ली जायें

तो P_1 और P_2 का यह अन्तर १६'४% पाने की सम्भाव्यता तालिका ८'१ से ज्ञात की जा सकती है—

$$\text{normal deviate} = \frac{\overline{X} - M}{\sigma}$$

$$= \frac{P_1 - P_2}{\sigma P_1 - P_2} = \frac{१६\cdot४}{७\cdot४४} = २\cdot२$$

z = '२२ तो मध्यमान शून्य और z = २ २ के बीच ४८'६१०% वक्र का क्षेत्रफल प्रावेष्टित है अत: १'३६०% उससे बाहर है

अत १०० ऐसी सैम्पिल युग्मो मे अर्थात् १०० ऐसे परीक्षणों में १'४ परीक्षणों मे यह अन्तर १६'४% का मिल सकता है ।

१% विश्वास तल पर तो यह अन्तर इतना अर्थ सूचक नहीं है किन्तु ५% विश्वास तल पर अवश्य अर्थ सूचक है ।

यदि समस्त समुदाय में सफल होने वाले विद्यार्थियो का प्रतिशत दोनो सैम्पिलो में सफल होने वाले विद्यार्थियो के प्रतिशतो से आँका जा सकता है तो वह

$$\text{प्रतिशत} \quad \overline{P} = \frac{N_1P_1 + N_2P_2}{N_1 + N_2}$$

$$= \frac{४५ \times \frac{३४००}{४५} + ५० \times \frac{४६००}{५०}}{४५ + ५०} = ८३'३\%$$

$$\overline{Q} = १६'७\%$$

$$\text{अत समस्त समुदाय में प्रतिशतो के अन्तरों का प्रा० विभ्रम} = \sqrt{\frac{PQ}{N_1} + \frac{PQ}{N_2}}$$

$$= \sqrt{८३'३ \times १६'७ \left(\frac{1}{४५} + \frac{1}{५०}\right)}$$

$$= ७'६८$$

$$\text{normal deviate} = \frac{P_1 - P_2}{\sigma P_1 - P_2} = \frac{१६'४}{७ ६८} = २'१६$$

पुन: यह अन्तर पाने की सम्भाव्यता १३६ के बराबर है

अतएव ऐसे प्रश्नों को दोनो प्रकार में से किसी तरह से किया जा सकता है ।

Q. 9.8 (a) Given sample r how will you calculate population $\overline{r}$

(b) A sample of 67 pairs of values of two variables gives correlation coefficient as '908. How reliable is this r given population $\overline{r}$ = o.

सहसम्बन्ध गुणक r की विश्वसनीयता—अध्याय ७ में दो या दो से अधिक राशियों के बीच जितने भी सहसम्बन्ध गुणक निकाले गये थे कि वे एक ही सैम्पिल के लिये थे उदाहरणार्थ ६७ दम्पतियों की आयु में सहसम्बन्ध गुणक '६०८ मिला था । दूसरे ऐसे ही ६७ दम्पतियों के सैम्पिल में सहसम्बन्ध गुणक '६०८ से कम या अधिक हो सकता है और सम्पूर्ण प्रदेश के दम्पतियों की आयु के बीच का सहसम्बन्ध होगा यह भी निश्चित नहीं है । भिन्न सैम्पिलों के लिये r के मान भिन्न भिन्न होते हैं । ऐसी दशा मे दो प्रकार के प्रश्न पूछे जा सकते हैं—

(१) सैम्पिल r के ज्ञात होने पर population का $\overline{r}$ क्या होगा ?

(२) ऐसी ही अन्य सैम्पिलो मे r के मान '६०८ मिलेंगे ?

पहले प्रश्न का अन्तर निम्न सूत्र की सहायता से किया जा सकता है । यदि N जोड़ियों की संख्या r उनके बीच सहसम्बन्ध गुणक है तो $\overline{r}^2 = \frac{r^2(N-1)-1}{N-2}$
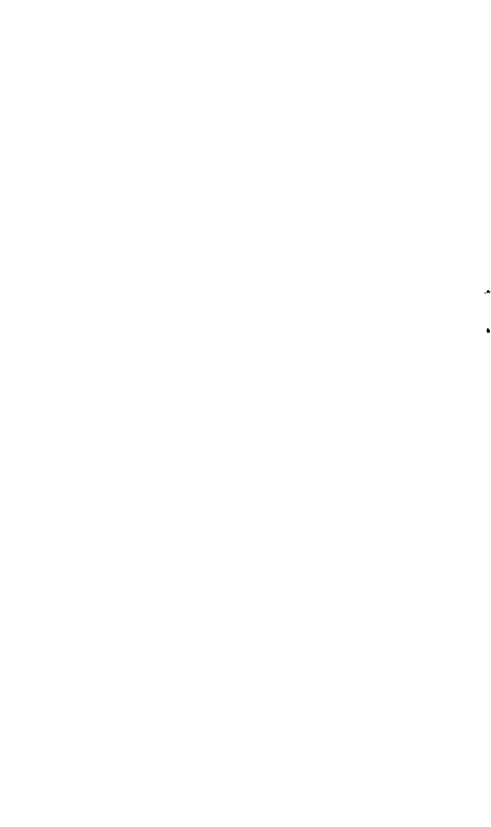
Q. 9.9 A sample gives r='908, n=67. Is this value of the coefficient significant?

सैम्पिल सहसम्बन्ध गुणक की अर्थसूचकता (Significance of semple r)

यदि हम यह जानना चाहते हैं कि किसी सैम्पिल का सहसम्बन्ध गुणक अर्थ सूचक है अथवा नहीं तो यह परिकल्पना लेकर चलेंगे कि उसके उत्पत्ति मूलक समुदाय (Parent population) में सहसम्बन्ध गुणक का मान शून्य है।

यदि प्रदत्त सामग्री के आधार पर इस परिकल्पना में सदेह हुआ तो सैम्पिल का सहसम्बन्ध गुणक महत्वशील माना जायगा। लेकिन n का मान छोटे होने पर t-distribution और n का मान बड़ा होने पर normal distribution का प्रयोग करना होगा।

प्रश्न—क्या ६७ दम्पत्तियों के बीच प्राप्त r का मान '९०८ महत्वशील है ?

(१) ६७ को बड़ी सैम्पिल मानने पर

$$r = '९०८, \sigma r = \frac{१}{\sqrt{N-१}} = \frac{१}{\sqrt{६६}}$$

यदि उत्पत्तिमूलक में $\bar{r}$ का मान शून्य है तो सैम्पिलों के r इस प्रकार normally distributed होंगे जिसका मध्यमान ०, और प्रा० वि० $\frac{१}{\sqrt{६६}}$ होगा।

अत. सैम्पिल r='९०८ के लिये normal deviate z का मान

$$z = \frac{r-\bar{r}}{\sigma r} = \frac{'९०८-०}{\frac{१}{\sqrt{६६}}} = ७'२$$

तालिका ८'१ से z=७'२ तो P='०००००००१

अत. १००% ऐसी सैम्पिलों में r का मान ० से भिन्न आवेगा। अत इस सैम्पिल में सह-सम्बन्ध गुणक अर्थ सूचक माना जा सकता है।

(ii) ६७ को छोटी सैम्पिल मानकर, यदि सैम्पिल छोटी है और N का मान छोटा है तो प्रमामान्य वक्र (normal curve) की विशेषताओं का उपयोग करने की अपेक्षा (t-distribution) की विशेषताओं का उपयोग किया जा सकता है।

इस दशा में $t = \frac{r-\bar{r}}{\frac{\sqrt{1-r^2}}{\sqrt{N-m}}}$ जबकि N सैंपिल सदस्यों की संख्या तथा m constants की संख्या है।

यदि ६७ को छोटी संख्या माना जाय तो t-test लागू किया जा सकता है।

यहाँ पर $t = \frac{'९०८}{\frac{\sqrt{१-('९०८)^२}}{\sqrt{६७-२}}}$ क्योंकि r='९०८, r=०, N=६७ और constants २ है।

$= २४$ लगभग

$\nu = ६७-२ = ६५$ t=२४ तो P<'००१ (तालिका ८'१२ से)

अत यदि यह परिकल्पना की जाय कि उत्पत्तिमूलक समुदाय में सह-सम्बन्ध शून्य है तो इस सैम्पिल के डटा से पता चलता है कि उसका r महत्वशील है। इसका अर्थ यह है कि यह सैम्पिल उस population से नहीं निकाली गई जिसमें $\bar{r}$ का मान शून्य है।

उदाहरण ९·१०ब—यदि ३९ सदस्यो की एक सैम्पिल का r_1=·८१७३ और दूसरा ६७ सदस्यो की सैम्पिल का r_2= ७५०० तो क्या दोनो के r मे अन्तर अर्थ सूचक है ?

r_1= ८१७३

$$\therefore Z_1 = \frac{1}{2} \text{ लघु } \frac{१+·८१७३}{१-·८१७३} = १·१५१२९ \text{ लघु} \frac{१·८१७३}{·१८२७}$$

$$= १·१४८६$$

Z_2=·९७३०

$$\therefore \quad Z_1 - Z_2 = १·१४८६ - ·९७३० = ·१७५६$$

$$\sigma Z_1 - Z_2 = \sqrt{\sigma Z_1^2 + \sigma Z_2^2} = \sqrt{\frac{१}{६४} + \frac{१}{३६}}$$

$$= ·२१०२$$

$$\text{काष्ठा निष्पत्ति} = \frac{Z_1 - Z_2}{\sigma Z_1 - Z_2} = \frac{·१७५६}{·२१०२} = ·८४ < १·९६$$

अतः अन्तर अर्थ सूचक नहीं है।

उदाहरण ९·१५स—पाँच विद्यार्थियों पर एक गति और परिशुद्धता का प्रयोग किया गया और सह सम्बन्ध गुणक—·६ मिला था। क्या इस प्रदत्त से यह पता चलता है कि गति और परिशुद्धता में सहसम्बन्ध है ?

$$r = -·६ \quad zr = -·६९ \quad \sigma zr = \sqrt{\frac{१}{N-३}} = \sqrt{\frac{१}{२}} = ·७१$$

$$rp = ० \quad zrp = ०$$

$$CR = \frac{-·६९-०}{·७१} = -·९$$ अतः यह परिकल्पना कि rp = ० सही मालूम पड़ता है। और जो सहसम्बन्ध गुणक मिला है वह accidental है।

तालिका ९·१५ r और z का सम्बन्ध

r	z	r	z	r	z	r	z	r	z
·२५	·२७	·४२	·४५	·५९	·६८	·७६	१·००	९१५	१·५६
·२६	,२७	·४३	·४६	·६०	·६९	·७७	१·०२	·९२०	१ ५९
·२७	·२८	·४४	·४७	·६१	·७१	·७८	१·०५	·९२५	१·६२
·२८	·२९	·४५	·४८	·६२	·७३	·७९	१·०७	·९३०	१·६६
२९	·३०	·४६	·५०	·६३	·७४	·८०	१·१०	·९३५	१·७०
·३०	·३१	४७	·५१	·६४	·७६	·८१	१·१३	·९४०	१·७४
·३१	·३२	·४८	·५२	·६५	·७८	·८२	१·१६	·९४५	१·७८
·३२	·३३	·४९	·५४	·६६	·७९	·८३	१·१९	·९५०	१·८३
·३३	·३४	·५०	·५५	·६७	·८१	·८४	१·२२	·९५५	१·८९
·३४	·३५	·५१	·५६	·६८	·८३	·८५	१·२६	·९६०	१·९५
·३५	·३७	·५२	·५८	·६९	·८५	·८६	१·२९	·९६५	२·०१
·३६	·३८	·५३	·५९	७०	·८७	·८७	१·३३	·९७०	२·०९
·३७	·३९	·५४	·६०	७१	·८९	·८८	१·३८	·९७५	२·१८
·३८	·४०	·५५	·६२	·७२	·९१	·८९	१·४२	·९८०	२·३०
·३९	·४१	·५६	·६३	·७३	·९३	·९०	१·४७	·९८५	२·४४
·४०	·४२	·५७	·६५	·७४	·९५	·९०५	१·५०	·९९०	२·६५
·४१	·४४	·५८	.६६	·७५	·९७	·९१०	१·५३	·९९५	२·९९

Q. 9·11. How can Fisher's z distribution be used to find the mean of sample correlation coefficients.

सहसम्बन्ध गुणकों का मध्यमान—कभी-कभी कुछ विद्वान कई सैम्पिलों के r के भिन्न-भिन्न मानों को जोड़कर उनका श्रौसत निकाल लेते हैं किन्तु इस प्रकार का श्रौसत निरर्थक है क्योंकि r के भिन्न-भिन्न समान अन्तर वाले मानों के लिये सहसम्बन्ध में अन्तर समानता का सूचक नहीं होता। जब तक यह निश्चित न हो जाय कि भिन्न-भिन्न सैम्पिलों के मध्यमान प्रा० वि० और आकार बराबर तब तक उनके स० गु० का श्रौसत निकालना त्रुटि रहित नहीं हो सकता। यदि श्रौसत निकालना ही पड़े तो भिन्न-भिन्न r के मानों को z में बदल दिया जाय। उन z का श्रौसत निकालकर उस z को r में परिणित किया जा सकता है। तालिका ९·१५ इसी कार्य में सहायता प्रदान कर सकती है।

उदाहरण १ यदि दो सैम्पिलों के स० गु० क्रमश: ·८१७३ और ·७५०० हों तो उनका श्रौसत स० गु० क्या होगा ?

$$r_1 = ·८२ \qquad z_1 = १·१६$$
$$r_2 = ·७५ \qquad z_2 = ·९७$$

$$\therefore \ \bar{z} = \frac{१·१६ + ·९७}{२} = १·०६$$

$$\therefore \ \bar{r} = ·७६$$

संक्षेप में

(१) साधारण निदर्शन की अवस्था में किसी सैम्पिल में किसी गुण के प्रतिशत के मान को उत्पत्ति मूल्य समुदाय में उसी गुण के प्रतिशत माना जा सकता है।

(२) यदि उत्पत्ति मूलक समुदाय (parent population) में p किसी गुण के पाने की निष्पत्ति हो तो सैम्पिल में उसी निष्पत्ति के पाने की प्रामाणिक त्रुटि निम्नलिखित होगी।

$$\sigma p = \sqrt{\frac{pq}{n}}$$

(३) अन्य सैम्पिलों में इस गुणक के पाने की निष्पत्ति p' का मान $p \pm 3\sigma p$ के बीच होगा।

(४) किसी सैम्पिल के मध्यमान, प्रामाणिक विचलन, सहसम्बन्ध गुणक आदि मापों को उस सैम्पिल की परिमितियाँ (parameters) कहते हैं। किसी परिमिति के सैम्पिल वितरण (sampling distribution) की आकृति का ज्ञान होने पर हम उस परिमिति को सर्व सामान्य मापों का अन्दाजा लगा सकते हैं। कई परिमितियों के सैम्पलिंग वितरण प्रसामान्य वक्र की तरह होने के कारण उस परिमिति की प्रामाणिक त्रुटि के तिगुने के प्रसार क्षेत्र में अन्य सैम्पिल परिमितियाँ स्थिति मानी जा सकती हैं।

(५) यदि सैम्पिल साधारण है तो किसी बड़ी सैम्पिल की कोई परिमिति उत्पत्ति मूलक समुदाय (parent population) की परिमिति मानी जा सकती है। और उस सैम्पिल की उस परिमिति के मान से परिमिति की प्रामाणिक त्रुटि की गणना की जा सकती है।

भिन्न-भिन्न परिमिति के लिये प्रामाणिक त्रुटियाँ नीचे दी जाती हैं।

$$\text{मध्यमान} \quad \sigma_M = \frac{\sigma p}{\sqrt{N}} = \frac{\sigma}{\sqrt{N-1}}$$

मध्यांक मान $\sigma M = \frac{\sigma p}{\sqrt{N}}$ १'२५३३१ $= \frac{\sigma}{\sqrt{N-1}}$ १ २५३३१

प्रामाणिक विचलन $\sigma\sigma = \frac{\sigma p}{\sqrt{2N}} = \frac{\bar{\sigma}}{\sqrt{2N}} \therefore \bar{\sigma} = \sqrt{\frac{\Sigma (x-\bar{X})^2}{N-1}}$

सहसम्बन्ध गुणक $\sigma r = \frac{1-r p^3}{\sqrt{N}}$

जिसमे σ p, σ उत्पत्ति मूलक समुदाय और सैम्पिल के प्रामाणिक विचलन है।

(७) दो सैम्पिलो के अन्तरो के सैम्पलिंग वितरण प्रसामान्य वक्रों की तरह ही होते हैं अत उनके परिमितियो के अन्तरो की प्रामाणिक त्रुटि की सहायता से [illegible] (S[illegible] of d[illegible]fference) का माप प्राप्त किया [illegible]

मिल सकती हैं।

$$\sigma p_1 - p_2 = \sqrt{\sigma p_1^2 + \sigma p_2^2} \quad \sigma M_1 - M_2 = \sqrt{\sigma M_1^2 + \sigma M_2^2}$$

$$\sigma_{\sigma_1 - \sigma_2} = \sqrt{\sigma_{\sigma_1^2} + \sigma^2_{\sigma_2^2}}$$

(८) दो सैम्पिलों के परिमितियो के अन्तर और उनके अन्तरो को प्रामाणिक विचलन मे एक निष्पत्ति होती है जिसे काष्ठा निष्पत्ति (critical ratio) कहते हैं। यदि काष्ठा निष्पत्ति ±१'९६ से कम हैं तो ५% विश्वास तल पर कहा जा सकता है कि उनका अन्तर अर्थ सूचक (Significant) नहीं है और यदि वह ±२ ५८ से कम है तो १% विश्वास तल (confidence level) पर कहा जा सकता है कि अन्तर अर्थ सूचक नही है। यदि वह ±३ से अधिक है तो अन्तर निश्चय ही अर्थ सूचक माना जायगा।

अभ्यासार्थ प्रश्नावली

९'१ सांख्यिकीय अर्थ सूचकता (Statistically significance) से आप क्या समझते हैं? १०० पदो की दो सैम्पिलो में निम्न सूचनायें मिली। इनके आधार पर आप क्या निष्कर्ष निकालते हैं?

मध्यमान	प्रामाणिक विचलन
२०	३
१२	४

(आगरा एम० कौम० १९५५)

९,२ सैम्पलिंग त्रुटि (sampling error) पर टिप्पणी लिखिये—

(आगरा, एम० कौम० १९५६, १९५८)

गेहूँ के १०० खेतो के एक सैम्पिल के उत्पादन का मध्यमान २ ५० पौण्ड प्रति एकड़ और प्रा० वि० १०० पौण्ड था। १५० ऐसे ही खेतो के उत्पादन का मध्यमान २२० पौण्ड और प्रा० वि० १२ पौण्ड था। यदि समस्त जिले के खेतो के उत्पादन का प्रा० वि० ११ पौण्ड हो तो क्या दोनो खेतो के उत्पादन के मध्यमान मे अन्तर अर्थ सूचक है।

९'३ नीचे दिये गये प्रदत्त से मध्यमान की प्रामाणिक त्रुटि ज्ञात कीजिये। यह प्रदत्त उस दैव निदर्शन-अनुसंधान उपलब्ध हुआ था जिसमे किसी वर्ग की औसत आय निकालने का प्रयत्न किया गया था।

आय रुपयो में	१०से कम	२०से कम	३०से कम	४०से कम	५०से कम	६०से कम	७०से कम	८०से कम
वर्ग के सदस्यो की सख्या	५०	१५०	३००	५००	७००	८००	९००	१०००

(इलाहाबाद, एम० कौम० १९५१)

९·११ हैज़े के फैलने पर कुछ विद्यार्थियों को टीका लगाया जा सका कुछ को नहीं, क्या टीका हैज़े को रोक सकता है ।

	पीड़ित	बच गए	योग
टीका लगाया	३१	४६९	५००
टीका न लगाया	१८५	१३१५	१५०० x^2=१४६४ Yes.
	२१६	१७८४	२००

$\left(\begin{array}{l} x^2 = ३·८४ \text{ d. f} = १ \\ ५\% \end{array}\right)$ (I. A. S. 1941)

९·१२ कार्ल पीयर्सन के एक memoir से निम्न तालिका ली गई है । क्या पिता और पुत्र की आँखों का रंग सहधारी है ।

[५% x^2=३·८४, d.f]

पुत्र	
काली	भूरी
२३०	१४८
१५१	४७१

r^2=१३३·३७ Yes

(R. A. S. १९४२)

९·१३ ८ पिग लिटर में पुरुषों की संख्या नीचे दी जाती है यदि पुरुषों और स्त्रियों का वितरण सम हो तो x^2 का मान fo^2 की परीक्षा करने के लिये निकालिये । (Punjab M. A. 1946)

No	०	१	२	३	४	५	६	७	८
f	०	५	९	२२	२५	२६	१४	४	१

९·१४ १००० विद्यार्थियों की सामान्य (बुद्धि योग्यता) और गणितीय योग्यता के बीच सहचरण ज्ञात कीजिए ।

	उत्तम	मध्यम	निकृष्ट
उत्तम	४४	२२	४
मध्यम	२६५	२५७	१७८
निकृष्ट	४१	६१	९८

(पंजाब एम० ए० १९४५)

९·१५ ११ विद्यार्थियों को एक परीक्षा में निम्न अंक मिले । १ महीने बाद दुबारा जब वही परीक्षा आई तो जो अंक मिले वे दूसरे स्तर में दिये गये हैं । क्या इसी बीच में अभ्यास या अनुभव का प्रभाव पड़ा है ?

विद्यार्थी	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११
प्रथम	२३	२०	१९	२१	१८	२०	१८	१७	२५	१६	१९
द्वितीय	२४	१९	२२	१८	२०	२२	२०	२०	२३	२०	१७

९·१६ १७, ५१ नम्बर का चना ६ प्लोट पर और प्रति एकड़ जो पैदावार हुई वह नीचे दी जाती है । दोनों पैदावारों के औसत में जो अन्तर है उसकी व्याख्या कीजिये ।

[t=१·४७६, P=·२, d-f ५]

खेत	१७ नं०	५१ नं०
१	२०·५०	२४·८६
२	२४·६०	२६·३९
३	२३·०६	२८·१९
४	२९·९८	३०·७५
५	३०·३७	२९·९७
६	२३·८३	२२·०४

(I. A. S. १९५१)

९·२४ (अ) किसी सैम्पिल के ९ सदस्यों की मापें निम्नलिखित थी। जिस समुदाय (Population) से ये सदस्य लिये गये थे उसका मध्यमान ४७·५ था। क्या सैम्पिल के मध्यमान का समुदाय के मध्यमान से महत्वपूर्ण अन्तर है ?

४५, ४७, ५०, ५२, ४८, ४६, ५३, ५१

[d. f. = ८, t = १.८, P = ·६४५ t = १.६ P = ·६५३]

(ब) दो स्वतन्त्र सैम्पिलो के मान निम्नलिखित थे क्या उनके मध्यमानो का अन्तर महत्वपूर्ण है।

अ ६ ११ १३ ११ १५ ९ १२ १४

ब १७ १२ १० ९ ८ १०

[d. f. १३, t = १·२, P = ·८७४, t = १ ३ P = ·८९२]

(आगरा, एम०ए०, गणित १९५६)

९.२५ किसी दैव निर्देशन विधि (random sampling method) से ६५" औसत कद वाले समुदाय से १० व्यक्ति चुने गये जिनका कद नीचे दिया जाता है। क्या सैम्पिल और समुदाय के मध्यमानों मे अन्तर अर्थसूचक है ?

६३, ६३, ६४, ६५, ६६, ६९, ७०, ७०, ७१

[d. f. ९, t = २·२६२ ५% विश्वास तल पर]

(आगरा, गणित १९५७)

९·२६ फिशर महोदय के z test की परिभाषा दीजिये। इसका प्रयोग किस प्रकार किया जाता है ? एक विषयी के २५ readings मे प्रा० वि० १ ३४ तथा दूसरे विषयी के ३० readings मे प्रा० वि० ·९८ मिला। दोनो प्रा० वि० मे अर्थ सूचकता की गणना कीजिये।

(आगरा, बी० एस-सी० १९५६)

९·२७ किसी शहर अ के ९०० विद्यार्थियों मे २०% और दूसरे शहर ब के १६०० विद्यार्थियो मे १८·५% किसी विशेष रोग से पीडित मिले। क्या प्रतिशतो का अन्तर महत्वशील है ?

(आगरा, गणित १९६०)

९ २८ एक परीक्षा ५ कला और ५ विज्ञान के विद्यार्थियो को दी गई। दोनो के अंको के वितरण नीचे दिये जाते हैं।

कला	२१, १६, १८, २३, १९
विज्ञान	१६, १४, १८, १५, १६

क्या इस न्यादर्श के आधार पर आप कह सकते है कि कला के विद्यार्थी विज्ञान के विद्यार्थी से अच्छे हैं ?

९·२९ Identical और Fraternal युग्मजो रोजानफ (Rosanoff) ने मानसिक हीनता के लिये Concordance के आधार पर निम्न प्रदत्त एकत्र किया। यदि प्रदत्त सही, समजातीय और randomly selected हो तो इतना अन्तर किस सम्भाव्यना के साथ प्राप्त किया जा सकता है।

Nuclear	Concordant	Not concordant
Identical	११५	११
Fraternal	१२८	११२

६ ३० (ग्र) यदि १० जोडी मापो के लिये r का मान '८८ ग्राता है क्या समुदाय में r का मान शून्य माना जा सकता है ?

(ब) यदि r='३३ हो तो क्या ग्राप Mill Hypothesis को ग्रमान्य कहेंगे ? क्यों ?

(द) Mill hypothesis को ग्रमान्य कहने से पूर्व ५० जोडी मापो के लिये r का मान कितना होना चाहिये ?

(द) यदि r='२५ ग्रौर '५५ हो तो Mill Hypothesis को ग्रमान्य कहने के लिये कितने जोडी मापो को लेना उचित होगा ?

शैक्षणिक मापन एवं मूल्यांकन

(Educational Measurement and Evaluation)

अध्याय १

शैक्षणिक मापन के आधारभूत तत्व

Q. 1. What do you understand by educational measurement ? Discuss the utility of measurement and evaluation in education.

Or

Write an Essay on Measurement in Psychology and Education on the following points —

(i) Meaning of such measurement and how it differs from measurements in Physical sciences.

(ii) Techniques of measurement which have been employed in various fields

(iii) Accuracy and truthfulness of measures.

(iv) Concept zero point and units of measure

Or

Write an essay on the psychological and educational measurement highlighting some of the chief problems, both theoretical and practical which are inherent in the process.

Or

What do you mean by scales of measurement ? Describe briefly the important types of scales, bring out their points of merits and demerits.

Ans. "यदि मापन के सारे यन्त्र तथा साधन इस प्रकार से लुप्त कर दिये जाएँ तो आधुनिक सभ्यता बालू की दीवार की तरह ढह जायगी।" रौस (Ross) महोदय के इस कथन में सत्यता का कितना अंश है, इस बात का ज्ञान हमें उस समय होता है, जिस समय हम मानव

[illegible]

नियाँ, पैमाने तथा घड़ियाँ उसके जीवन का अंग बन चुकी हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि मापन ने आधुनिक युग में व्यक्ति के जीवन में विशेष स्थान प्राप्त कर लिया है।

किसी भौतिक पदार्थ के गुण अथवा अभिलक्षण के परिमाण को मात्रात्मक मूल्य (quantitative value) देने की क्रिया को मापन कहा करते हैं। इस क्रिया में किसी वस्तु के गुणों को उचित इकाई (unit) में प्रकट करते हैं, किन्तु मूल्यांकन अधिक विस्तृत और व्यापक क्रिया है। इस क्रिया में उन सब मूल्यों (values) का समावेश किया जाता है जो परीक्षण की व्यक्तिगत (subjective) मूल्यांकन तथा व्यक्ति निरपेक्ष (objective) विधियों द्वारा प्राप्त होती हैं। मूल्यांकन करते समय उन सब प्रतिकारकों (factors) पर विचार किया जाता है जो एक बालक के विकास को प्रभावित करते हैं। इनमें से कुछ प्रतिकारक ज्ञान की प्राप्ति, निष्पादन (achievement), रस ग्रहण (appreciation), अवबोधन (understanding) तथा अन्य व्यक्तियों के प्रति अभिव्यक्ति, आदि हैं। इनमें से कुछ को शुद्ध विधियों द्वारा नापे जा सकते हैं किन्तु कुछ गुण ऐसे भी हैं जिनके मापन में गहरे विश्लेषण की आवश्यकता होती है। समस्त गुणों के मापन के बाद उस बालक की बुद्धि और विकास का पूरा चित्र खींचा जा सकता है। यही मूल्यांकन है।

शिक्षाशास्त्री प्राप्य आधार सामग्री (data) को ध्यान मे रखकर आलोचनात्मक परीक्षण (critical examination) करता है तब उसे शैक्षणिक दार्शनिक (educational philosopher) कहा जा सकता है, किन्तु जब वह शिक्षा सम्बन्धी समस्याओ को हल करने मे विशेष दक्षता प्राप्त करने के लिये प्रयोगशाला मे वैज्ञानिको की तरह नियन्त्रित (controlled) अथवा अनियन्त्रित (uncontrolled) निरीक्षण द्वारा आधार सामग्री (data) उपलब्ध करता है और उस आधार सामग्री का विश्लेषण करने के बाद उसमे परिणाम निकालता है, तब वह वैज्ञानिक बन जाता है। इस प्रकार शिक्षाशास्त्री एक स्थान पर दार्शनिक और दूसरे स्थान पर वैज्ञानिक भी हो सकता है। परन्तु दार्शनिक और वैज्ञानिक एक दूसरे पर आश्रित होते हैं। प्रत्येक कुशल वैज्ञानिक नई बातो की खोज मे दर्शन का उपयोग करता है और प्रत्येक कुशल दार्शनिक उस आधार सामग्री (data) का सहारा लेता है जो वैज्ञानिक तैयार करता है। इस प्रकार विज्ञान और दर्शन एक दूसरे के सहायक हैं। अत शिक्षा दर्शन और विज्ञान दोनो हो सकती है। फलस्वरूप शिक्षा मे भी मापन का प्रयोग उसी सीमा तक हो सकता है जिस सीमा तक विज्ञान मे। यद्यपि शिक्षा उस प्रकार का विज्ञान नही है जिस प्रकार के विज्ञान भौतिक तथा रसायन शास्त्र आदि हैं, तब भी आधुनिक शिक्षा-वैज्ञानिक (Educational Scientist) अपने मापन-यन्त्रो और साधनो को उतना ही अधिक शुद्ध, सत्य, विश्वसनीय तथा सुग्राहक (sensitive) तथा व्यक्ति निरपेक्ष बनाने मे प्रयत्नशील हैं जितना कि आधुनिक भौतिक शास्त्रज्ञ।

मापन तथा मूल्यांकन की शिक्षा-कार्य में आवश्यकता—शैक्षणिक मापन (educational measurement) कोई नया विचार नही है। अनादिकाल से अध्यापक अपने विद्यार्थियो के प्रयत्नों के परिणाम जानने के लिए परीक्षाएँ लेता आ रहा है, यह जाँच करने के लिए कि उसके बालक किस प्रकार और कैसी उन्नति कर रहे हैं। अपनी शिक्षण विधि मे क्या क्या दोष हैं, यह जानने के लिए भी अध्यापक न जाने कब से इन परीक्षाओं का महत्व अनुभव करता चला आया है। आधुनिक काल में तो इन परीक्षाओ का महत्व इतना अधिक बढ गया है कि प्रत्येक भावी अध्यापक अथवा शिक्षु (trainee) से आशा की जाती है कि वह अपने प्रशिक्षणकाल (training period) मे मापन एव मूल्यांकन के यन्त्रों का निर्माण एव प्रयोगविधियो का सम्यक् ज्ञान [illegible] के क्षेत्र मे बीसवी [illegible] मापन (measur- [illegible] विद्यार्थियो की बुद्धि [illegible]। उन्नीसवी शताब्दी [illegible] के दोषो को दूर करने के प्रयत्न मे व्यक्ति निरपेक्ष (objective) परीक्षाओं का निर्माण हुआ। यह प्रयत्न प्रतिक्रियात्मक (reactionary) था। जब इस प्रकार की व्यक्ति निरपेक्ष (objective) परीक्षाओं का प्रचलन यूरोप तथा अमरीका मे उच्चतम सीमा तक पहुँच गया तब उनका ध्यान शिक्षा सम्बन्धी कुछ ऐसे परिणामों के मापन (measurement) की ओर गया जिनको व्यक्ति निरपेक्ष (objective tools) यन्त्रों से मापना कठिन और असम्भव हो रहा था। शिक्षा मे यह प्रगति मापन की प्रगति के नाम से पुकारी जाती है। किन्तु अभी हाल मे कुछ शिक्षाशास्त्रियो और मनोवैज्ञानिको का ध्यान मूल्यांकन (evaluation) की ओर आकर्षित हो गया है। वे अनुभव करने लगे है कि लिखित परीक्षाएँ विद्यार्थियों के आचरण परिवर्तनो (behavioural changes) एव उद्देश्यो (objectives) का मापन तो करती ही हैं, किन्तु वे उनका सर्वांङ्गीण विकास का चित्र खींचने मे सर्वथा असमर्थ हैं। अत ऐसे साधनो की आजकल आवश्यकता है जिनकी सहायता से शिक्षक विद्यार्थियो का पूरा चित्र खीचने मे सफल हो सकें। इन साधनो मे हम आलेखपत्रो (records), समक्षकारो (inter- [illegible] [illegible] (rating scales), मनोलेखो (indivi- [illegible] e histories) को सम्मिलित कर सकते हैं। [illegible] गया है इसका एक विशेष कारण है। आज [illegible] gist) बालक की मानसिक उन्नति का ही अध्ययन नही करना चाहता, वह यह भी जानना चाहता है कि सम्पूर्ण बालक (whole child) का रूप कैसा है अतएव आजकल शिक्षा-क्षेत्र मे मूल्यांकन (evaluation) का महत्व दिन पर दिन बढ़ता चला जा रहा है।

बुद्धि क्या है। हम उसी व्यक्ति को बुद्धिमान् मानते हैं जिसका व्यवहार जटिल और नूतन परिस्थितियो के सामने आने पर समस्या-समाधान में सन्तोषजनक होता है। इस प्रकार शैक्षणिक मापन में मापी जाने वाली सभी विशेषताएँ आचरणात्मक ही होती है। व्यक्ति का आचरण चूंकि प्रतिक्षण बदलता रहता है इसलिये आचरणात्मक विशेषताएँ स्थिर न होने के कारण कठिनाई से मापी जा सकती हैं।

(५) शैक्षणिक विशेषताओं की विभाओं का अज्ञान होना—हम कमरे का घनफल ज्ञात कर सकते हैं क्योंकि उसकी लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई का सही सही मापन किया जा सकता है, कमरे की लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई उसकी विभाएँ हैं, छात्र का कद, भार, आयु का मापन कर सकते हैं क्योंकि इन वस्तुओं की विभा (dimension) का ज्ञान हमें होता है। लेकिन बुद्धि अथवा व्यक्तित्व की विभाएँ क्या हैं? निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

इन्हीं सब कारणों से शैक्षणिक मापन उतना शुद्ध नहीं होता जितना कि भौतिक मापन होता है। जब तक किसी विशेषता की व्याख्या स्पष्ट रूप से नहीं की जा सकती है, जब तक उसकी विभाओं (dimensions) का अनुमान सही सही तौर से नहीं लगाया जा सकता, तब तक उसका मापन ही नहीं हो सकता। किसी वस्तु की विभाओं का अन्दाजा लगा लेने के बाद ही उसका वर्गीकरण किया जा सकता है। उसको श्रेणीबद्ध (grading) किया जा सकता है और उसे एक निश्चित अंक (score) दिया जा सकता है।

मापन की क्रिया तभी सम्पादित की जा सकती है जब मापनीय वस्तु में निम्नलिखित पाँच गुण हों—

(अ) उस वस्तु की मापनीय विभाएँ विशेष वर्ग में व्यापक रूप से उपलब्ध हों।

(ब) मापनीय विभाओं की अनुभूति ऐन्द्रिक और स्थूल हो ताकि उनका निरीक्षण हो सके।

(स) मापनीय वस्तु की विभाओं में यदि उपरोक्त गुण न हों तो कम से कम उनका आभास तो मिल सके।

(द) मापनीय वस्तु की प्रत्येक विभा ऐसी हो कि उसमें विचलनशीलता बिलकुल न हो।

(य) मापनीय वस्तु ऐसी हो कि दो असम्बन्धित, तथा निरपेक्ष निरीक्षकों द्वारा उसका मूल्यांकन किये जाने पर समतुल्य अंक मिल सकें।

लेकिन शैक्षणिक मापन में मापी जाने वाली सभी वस्तुएँ ऐसी हैं जिनमें ऊपर दिये गये पाँच गुण बहुत ही कम मात्रा में उपलब्ध होते हैं।

Q. 3. Discuss the place of written and oral tests in educational measurement.

Ans लिखित परीक्षाओं के भाग तथा उप विभाग निम्न चित्र द्वारा समझाये जा सकते हैं.
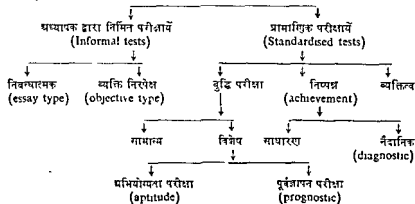
मौखिक परीक्षायें—मौखिक परीक्षाओं का प्रयोग कक्षाओं में तथ्यों के ज्ञान (factual knowledge) के प्रत्यास्मरण (recall) के लिये किया जाता है। प्रत्येक अध्यापक पूर्व ज्ञान के परीक्षण तथा सिद्धान्तों के अवबोधन हेतु मौखिक प्रश्नों का सहारा लेता है। इन प्रश्नों के उत्तरों का मूल्यांकन करने के बाद परीक्षक विद्यार्थी के विषय में अपना मत स्थिर कर लेता है। यद्यपि आजकल भी साक्षात्कार (interview) में मौखिक परीक्षा ही ली जाती है और यद्यपि यह परीक्षा वास्तविक शिक्षण में बहुत उपयोगी है, तब भी यह दोषों से खाली नहीं है। इसके निम्न कारण हैं—

(१) ये परीक्षायें सब विद्यार्थियों के लिये न्यायसंगत (just) नहीं हैं।

(२) *कुछ अत्यन्त लज्जाशील विद्यार्थी अपने ज्ञान तथा योग्यता का प्रदर्शन इन* परीक्षाओं में नहीं कर पाते।

(३) इन परीक्षाओं के परिणामों में आत्मनिष्ठता (subjectivity) की मात्रा अधिक आ जाती है अर्थात् परीक्षक जिस बालक से रुष्ट होता है उसके अच्छे उत्तर भी निकृष्ट कोटि के प्रतीत होते हैं। इसके विपरीत जिससे वह प्रसन्न होता है उसके निकृष्ट कोटि के उत्तर भी बहुत अच्छे लगते हैं।

(४) ये परीक्षायें विद्यार्थी तथा परीक्षार्थी का समय भी अधिक लेती हैं, साथ ही *उसके उत्तरों का कोई लिखित प्रमाण शेष नहीं रह पाता, फलतः परीक्षक इस बात का निर्णय* नहीं कर पाता कि विद्यार्थी को किस स्थल पर कठिनाई थी। तब भी मौखिक परीक्षायें अब तक इतनी अधिक प्रचार में हैं, इसके कई कारण हैं। कभी-कभी तो मौखिक-परीक्षाओं के बिना काम ही नहीं चल पाता। विदेशी भाषा के शब्दों के उच्चारण और वाक्प्रतियोगिता का परीक्षण मौखिक रूप से ही हो सकता है। किसी लिखित परीक्षा में विद्यार्थी ने अमुक गलती क्यों की, इसके कारण का पता उससे मौखिक प्रश्न पूछे जाने पर ही चल सकता है, किन्तु विद्यार्थी की निष्पत्ति नापने के लिये ये सर्वथा अनुपयोगी हैं। इस काम के लिये तो लिखित परीक्षायें ही उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं।

लिखित परीक्षायें—इस प्रकार की परीक्षाओं का निर्माण, लेने की विधि तथा उनके परिणामों की व्याख्या (interpretation) इस पुस्तक का मुख्य विषय है, अतः उनका यथास्थान विशद् विवेचन किया जायगा। यहाँ पर उनका सूक्ष्म वर्णन पर्याप्त होगा। लिखित परीक्षायें दो प्रकार की होती हैं—

(१) अध्यापक द्वारा निर्मित परीक्षायें (Informal tests)

(२) प्रामाणिक परीक्षायें (Standardised tests)

इन दोनों प्रकारों में अन्तर केवल इतना है कि दूसरे प्रकार की परीक्षायें प्रयोगों द्वारा संशोधित एवं परिवर्धित होती रहती हैं अतः इनके प्रश्नपत्रों में ही प्रश्न (Items) शेष रह जाते हैं जो सब प्रकार की कसौटियों पर ठीक उतरते हैं। इनका उल्लेख आगे किया जायगा। इन परीक्षाओं की एक और विशेषता यह है कि इनके निर्माणकर्त्ता हस्तपुस्तिका (mannual) में परीक्षा लेने तथा उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन करने तथा परिणामों की व्याख्या करने के लिये विशेष आदेश प्रस्तुत करते हैं। परिणामों का निर्वाचन (interpretation) करने में मान स्तर (norms) विशेष सहायक सिद्ध होते हैं।

अध्यापक द्वारा निर्मित परीक्षायें दो प्रकार की होती हैं—

१—*व्यक्ति निरपेक्ष परीक्षायें (Objective type tests)*

२—निबन्धात्मक परीक्षायें (Essay type tests)

इन दोनों प्रकारों की परीक्षाओं के निर्माण करने की विधियाँ एवं इनका तुलनात्मक अध्ययन आगे के अध्यायों में वर्णित किया जायगा।

प्रामाणिक परीक्षायें अपने क्षेत्र निष्पन्न, बुद्धि और व्यक्तित्व के अनुसार प्रायः तीन वर्गों में बाँटी गयी हैं। निष्पन्न परीक्षाओं से आशय उन परीक्षाओं से है जो विद्यार्थियों की [illegible] योग्यता का परीक्षण करती हैं। गणित, हिन्दी, अंग्रेजी के शब्द विन्यास आदि के [illegible] का मापन ऐसी ही परीक्षायें करती हैं। ऐसी परीक्षायें भारत में तैयार की जा

चुकी हैं, उनमे से कक्षा ८ के विद्यार्थियो के लिये कुछ परीक्षाओं के निर्माण करने का श्रेय श्री बलवन्त राजपूत प्रशिक्षण महाविद्यालय को भी प्राप्त है। बुद्धिपरीक्षाओं का प्रयोजन भी निष्पन्न मापन ही है लेकिन यह निष्पन्न भिन्न प्रकार का होता है। विद्यार्थी के सीखने की सामर्थ्य का मापन ही बुद्धिपरीक्षा का लक्ष्य होता है, परन्तु निष्पन्न परीक्षा का लक्ष्य विद्यार्थी ने क्या सीखा है इसका मापन है। अत: बुद्धिपरीक्षायें बालक की शैक्षणीयता (educability) तथा निष्पन्न परीक्षायें स्वयं शिक्षा (education) का परीक्षण करती हैं।

बुद्धि तथा निष्पन्न परीक्षायें भी व्यक्तित्व से भिन्न नहीं होती क्योंकि बुद्धि तथा निष्पादन दोनों को व्यक्तित्व के दो स्वरूप माना जा सकता है, किन्तु व्यक्तित्व के अन्य स्वरूपों का मापन केवल इन निष्पन्न तथा बुद्धिपरीक्षाओं से नहीं हो सकता अत: इस कार्य के लिये परीक्षक प्रश्नावली (questionnaire), समक्षकार (interview), नियन्त्रित निरीक्षण (controlled observation) आदि का सहारा लेता है।

Q 4 Enumerate the various tools of measurement and evaluation.

Ans जैसा कि पहले कहा जा चुका है मूल्यांकन करते समय व्यक्ति की किसी विशेषता के विषय मे हम अपनी धारणा बनाते हैं। किसी पूर्व निर्धारित मापदण्ड के हिसाब से उस गुण अथवा विशेषता का मूल्यांकन करते हैं।

मूल्यन निम्नांकित विधियों से किया जा सकता है—

(अ) लिखित तथा मौखिक परीक्षाओं से परीक्षण (Testing)
(आ) निरीक्षण (Observation)
(इ) समक्षभेंट (Interview)
(ई) चैकलिस्ट (Checklist)
(उ) प्रश्नावली (Questionnaire)
(ऊ) वर्गश्रेणी (Ranking)
(ए) इतिवृत्तात्मक आलेख (Anecdotal Records)
(ऐ) सामूहिक वादविवाद (Group discussion)
(ओ) स्टेनोग्राफिक रिकार्ड (Stenographic Record)
(औ) संचयी आलेख (Cumulative Record Card)

निरीक्षण मापन किया जाता है केवल लिखित व मौखिक परीक्षाओं और निरीक्षण से। लिखित और मौखिक परीक्षाओं के लिये परीक्षण यन्त्रो की जरूरत पड़ती है किन्तु निरीक्षण के लिये ऐसे यन्त्रो की जरूरत नहीं होती। यन्त्र परीक्षण का माध्यम मात्र होता है। निरीक्षक को ऐसे किसी माध्यम की आवश्यकता नहीं होती, निरीक्षक बालक की किसी विशेषता को प्रत्यक्षरूप से देख लेता है और किसी माध्यम की जरूरत होती है तो वह माध्यम है निरीक्षक की इन्द्रियाँ। परीक्षक बालक के विशेषता या गुण का ज्ञान प्राप्त करने के लिये बालक द्वारा परीक्षा मे पाये गये अंकों का निरीक्षण करता है।

समक्षभेंट—व्यक्ति से उसके जीवन वृत्त को सुनकर उसकी समस्याओं और कठिनाइयों को समझकर उसके अतीत के अनुभवों का ज्ञान प्राप्त कर आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञ उसके व्यक्तित्व जैसे किसी गुण या विशेषता के विषय मे अपनी धारणा बनाता है।

प्रश्नावली—समक्ष भेंट की तरह किसी व्यक्ति के विषय मे जानकारी प्राप्त करने का एक तरीका है जिसमे प्रश्न मौखिक न पूछ कर लिखित रूप मे पूछे जाते हैं। परीक्षार्थी को आदेश दिया जाता है कि वह अपनी अनुक्रियाओं (responses) को उसी प्रश्नपत्र पर अंकित कर दे जो उसे दिया गया हो। इन प्रश्नों का लिखित उत्तरों से व्यक्ति के विषय में अधिक विश्वस्त सूचनाएँ समानरूप से स्थाई बनाई जाती हैं, समक्ष भेंट में एक व्यक्ति की तुलना दूसरे व्यक्ति से नहीं कर सकते क्योंकि उनका कोई लेख परीक्षक के पास शेष नहीं रह जाता। प्रश्नावलियाँ सामूहिक रूप से भी दी जाती हैं इसलिये समक्ष भेंट में जितना समय नष्ट होता है उससे बहुत कम समय प्रश्नावलि में होता है।

वर्गश्रेणी—विद्यार्थियों के विभिन्न विशेषताओं के मूल्यन में बाँधी होता है। किसी गुण की मात्रा के अनुसार उनका श्रेणी विभाजन होता

परिस्थितियों मे भी प्रसन्नचित रहता है, दूसरा व्यक्ति जरा जरा सी बात पर संवेदात्मक सन्तुलन खो बैठता है। तीसरा व्यक्ति ऐसा भी हो सकता है जो न तो अधिक प्रसन्न रहता है और न अधिक दुखी। जिन परिस्थितियों मे उसे प्रसन्नचित रहना चाहिये उनमें प्रसन्नचित्त रहता है और जिनमें दुखी होना चाहिये उनमे वह दुखी रहता है। इस प्रकार परिस्थितियों की समता अथवा विषमता के अनुसार चित्त की प्रसन्नता को तीन श्रेणियो मे विभाजित किया जा सकता है। यदि पहले व्यक्ति को अ श्रेणी दी जा सकती है तो दूसरे को 'स' और तीसरे को जो इन के बीच मे पड़ता है 'ब' श्रेणी दी जा सकती है।

चैक लिस्ट—निरीक्षण द्वारा व्यक्तियो के विषय मे किसी गुण पर जानकारी संचित करने के लिये जांच सूची तैयार की जाती है। छात्रों की शैक्षणिक प्रगति सम्बन्धी कुछ पक्षों की जांच जांचसूची से होती है। मान लीजिये हम यह देखना चाहते हैं कि कार्य करने की उत्तम आदतों का विकास बालक मे हुआ है अथवा नही तो हम निम्नलिखित बातो मे उसकी प्रगति का अवलोकन कर सकते हैं—

(i) कार्य मे ध्यान देना।
(ii) आदेशों का पालन करना।
(iii) लिखित कार्य मे शुद्धि का ध्यान रखना।
(iv) गृह कार्य को नियमित रूप से कर सकना।

यह चैकलिस्ट कक्षा विशेष के लिये तैयार की जा सकती है और व्यक्ति विशेष के लिये भी।

इतिवृत्तात्मक आलेख (Anecdotal Record)

चैकलिस्ट की तरह एनैक्डोटल रिकार्ड से व्यक्ति के विषय मे निरीक्षण द्वारा प्राप्त जानकारियों को एकत्र किया जाता है किन्तु मे आलेख पत्र विशेषताओं को इतने अधिक वर्गों मे विभाजित नही करते जितनी श्रेणियों मे चैकलिस्ट अथवा वर्ग श्रेणी मे विशेषताओं को प्राय विभाजित किया जाता है।

इस आलेख पत्र की एक प्रतिलिपि नीचे दी जाती है—

विद्यार्थी का नाम
निर्देश—नीचे व्यक्ति के विषय मे कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों पर सूचनाएँ एकत्र करने के लिये स्थान दिया गया है। बालक के निरीक्षण आचरण को संक्षेप मे वर्णन करो, मूल्यांकन न करो। प्रत्येक प्रतिवेदन का दिनांक भी अंकित करो—
शारीरिक विकास—
संवेगात्मक विकास—
चारित्रिक विकास—
सामाजिक विकास—

इस आलेख पत्र मे शिक्षक बालक के आचरण को यथातथ्य चित्रण करता है इसलिये सबसे उत्तम एनैक्डोटल आलेख सवाक् चलचित्र माना जाता है जिसमे बालक के आचरण का स्पष्ट चित्र खींचा जा सके।

संचयी आलेख पत्र—यह ऐसा आलेख है जिसकी सहायता से विद्यार्थियों की प्रगति, विद्यालय के वातावरण से उनका सामञ्जस्य, उनके अनुभव तथा विकास का पूरा-पूरा पता लग सके। यह आलेखपत्र छात्रों की योग्यताओं, अभियोग्यताओं और व्यक्तित्व के विषय मे पूरी-पूरी जानकारी प्रस्तुत करता है। यह आलेख बालकों की मानसिक, शैक्षणिक, शारीरिक और व्यक्तित्व सम्बन्धी विकास की कहानी प्रस्तुत करता है। यह आलेख सच भी इसलिए कहलाता है कि इस के विकास की कहानी उत्तरोत्तर क्रम मे अंकित की जाती है। उदाहरणार्थ मानसिक विकास की जानकारी प्राप्त करने के लिये मानसिक परीक्षाओं के परिणाम निम्न तालिका मे अंकित किये जाते हैं—

शाब्दिक	मानसिक परीक्षा का नाम	प्रतिशत विकास	अशाब्दिक मानसिक परीक्षा का नाम	प्रतिशतविकास
१९५९				
१९६०				
१९६१				
१९६२				
१९६३				
१९६४				

Q. 5 Discuss the functions of Measurement

Ans. परीक्षाओं के कार्य

व्यक्तियों में परीक्षाओं में वैयक्तिक विभिन्नताएँ होती हैं। एक व्यक्ति किसी कार्य को अच्छी तरह कर सकता है, किन्तु दूसरा व्यक्ति उसको उतनी सुचारुता से सम्पादित नहीं कर पाता जितनी सुचारुता से पहला व्यक्ति उस कार्य का सम्पादन कर सकता है। इस प्रकार की वैयक्तिक विभिन्नताओं का ज्ञान प्राप्त करने का एकमात्र साधन है परीक्षण।

परीक्षण के अन्य कार्य भी हो सकते हैं जो वैयक्तिक विभिन्नताओं से सम्बन्धित रहते हैं -

(१) पूर्वकथन (Prediction)
(२) तुलना (Comparison)
(३) निदान (Diagnosis)
(४) अन्वेषण (Research)

पूर्वकथन—भविष्य में अमुक दो व्यक्तियों के कार्यों में किस प्रकार की भिन्नता होगी, इसका भविष्य कथन परीक्षणों के आधार पर किया जा सकता है। मान लीजिये कि हम दो व्यक्तियों के उत्तर समय (Reaction Time) का परीक्षण करते हैं। एक व्यक्ति का प्रकाश के लिये उत्तर समय १८२.२ मिली सैकिण्ड तथा उसी आयु के दूसरे व्यक्ति का २५०.३ मिली सैकिण्ड है तो प्रश्न यह है कि इस भिन्नता का क्या आशय निकाला जा सकता है। उत्तर समय का अन्तर बताता है कि एक व्यक्ति अच्छा मोटर ड्राइवर हो सकता है दूसरा उस कार्य में असफलता प्राप्त करेगा। इसी प्रकार यदि एक व्यक्ति का किसी बुद्धिपरीक्षा के अनुसार बुद्धि अंक ११८ और दूसरे का बुद्धि अंक १२८ है तो इस परीक्षण के आधार पर कहा जा सकता है कि भविष्य में दूसरा व्यक्ति पहले व्यक्ति की अपेक्षा शिक्षा में अधिक प्रगति कर सकता है।

विद्यार्थियों को किस कक्षा में रखा जाय अथवा उनको किस प्रकार का पाठ्यक्रम दिया जाय यह प्रबन्धकों, शिक्षकों एवं पर्यवेक्षकों के लिए सभी जगह समस्या का विषय बन गया है। परीक्षण इस कार्य में उनकी सहायता करता है। जिन विद्यार्थियों की योग्यता समान होती है, जिनकी आयु समान होती है और जिनकी शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ समान होती हैं उनको हम लगभग एक ही वर्ग में रखने का प्रयत्न करते हैं, पर समानता या अन्तर हमें परीक्षण के आधार पर ही ज्ञात होता है, इसमें सन्देह नहीं। विद्यार्थियों की रुचि, कुशलता, निपुणता, योग्यताओं का वैयक्तिक मापन करके उनको वर्गों में विभाजित किया जाता है, यह किया स्थिति (placement) और श्रेणीकरण (grading) के नाम से विख्यात है।

विद्यार्थियों के निष्पादन के परीक्षण के आधार पर हम भविष्य कथन कर सकते हैं कि उनमें से जो इन परीक्षाओं में सफल हुए हैं, कितने प्रतिशत छात्र अंत की परीक्षा में सफल हो सकेंगे।

[illegible] (diagnostic tests) के परिणामों के आधार पर हम [illegible] विद्यार्थियों [illegible] सकते हैं।

परीक्षाओं [illegible] इस बात को भी बता सकते हैं कि अमुक व्यक्ति [illegible] (aptitude) [illegible] (emotional maturity) [illegible] और [illegible] (prediction) [illegible] कर सकते हैं।

इस प्रकार मानसिक परीक्षाओं का प्रयोग [illegible] के लिए [illegible] किया जाता है। [illegible] परीक्षा [illegible] (achievement) का ज्ञान [illegible] रुचियों (interests) या व्यक्तित्व (personality) का, उनकी [illegible] भावी सफलता [illegible] बुद्धिपरीक्षाएँ व्यक्तियों के भावी जीवन पर प्रकाश डाल सकती हैं। इस कार्य को हम प्रकथन (prediction) के नाम से पुकारते हैं।

परीक्षा का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य है विद्यार्थियों की योग्यतानुसार उनका श्रेणी विभाजन (gradation) तथा उचित कक्षा में उनका स्थापन (placement)। किसी बालक को किस कक्षा में प्रवेश दिया जाय, कोई बालक किसी विशेष पाठ्यक्रम के उपयुक्त है या नहीं इन बातों की जानकारी उन पर दी गई परीक्षाओं के परिणाम ही दे सकते हैं। समान योग्यता वाले बालकों को किस प्रकार चुना जाय जिससे उनकी एक ही कक्षा बनाई जा सके, इत्यादि प्रश्नों का उत्तर तभी मिल सकता है जब हम समान आयु वाले सब बालकों पर एक ही परीक्षा लागू करें और देखें कि कौन-कौन बालक एक सी ही योग्यता रखते हैं।

तुलना (Comparison) — प्रत्येक परीक्षा का एक उद्देश्य यह भी है कि उसके फलों के आधार पर दो व्यक्तियों, दो कक्षाओं, दो अध्यापन प्रणालियों की तुलना की जाय। प्रमापीकृत परीक्षाओं से तो जिनके प्रमाप (norm) तैयार कर लिये गये हैं, भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की आपस में तुलना की जा सकती है, मान लीजिए कि किसी बुद्धिपरीक्षा का प्रमाप १०० है तो किसी व्यक्ति के अंक ९५ आते हैं उसे हम सामान्य से नीचे तथा जिसके अंक १०५ आते हैं उसे सामान्य से ऊपर रख सकते हैं। इस प्रकार भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के बीच अन्तर अथवा समानता ज्ञात करके उनकी तुलना की जा सकती है। जो बात हमने बुद्धिपरीक्षाओं के विषय में कही है वही निष्पादन परीक्षाओं के विषय में कही जा सकती है। आजकल गणित, विज्ञान, अंग्रेजी, समाज अध्ययन में ऐसी प्रमापीकृत निष्पादन परीक्षाएँ तैयार की जा चुकी हैं जिनके प्रमापों को देखकर भिन्न-भिन्न बालकों, भिन्न-भिन्न कक्षाओं, भिन्न-भिन्न अध्यापन प्रणालियों की तुलना की जा सकती है। कभी कभी हम इन परीक्षाओं से वर्ष भर की अवधि में किसी भी समय बालकों ने कैसी प्रगति की है उसकी तुलना कर सकते हैं। इस प्रकार शिक्षक अपनी कक्षा की उन्नति का पता समय-समय पर चला सकता है।

प्रत्येक परीक्षक परीक्षा लेते समय यह जानना चाहता है कि एक बालक दूसरे बालक की तुलना में कैसा उतरता है। एक विद्यालय के किसी कक्षा के बालकों की योग्यता का दूसरे विद्यालय के उसी कक्षा के बालकों की योग्यता से तुलना करने से हम अध्यापकों की योग्यता की तुलना कर सकते हैं, उनकी शिक्षा प्रणालियों की तुलना कर सकते हैं। इस प्रकार अध्यापन कार्य में उन्नति की जा सकती है। खराब शिक्षा विधियों को छोड़ा जा सकता है, अकुशल अध्यापकों को पुनः प्रशिक्षण (in service training) देकर शिक्षा में सुधार किया जा सकता है। एक अध्यापक भी पाक्षिक, अर्द्ध वार्षिक और वार्षिक परीक्षा फलों के आधार पर अपनी कक्षा की आवधिक उन्नति का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। परीक्षा फलों का इस प्रकार तुलनात्मक अध्ययन शिक्षण को उन्नतिशील बना ही सकता है, किन्तु परीक्षाओं से एक और महान कार्य की सिद्धि हो सकती है। वह कार्य है निदान (diagnosis) का।

निदान (Diagnosis)—जिस प्रकार चिकित्सा में निदान महत्वपूर्ण क्रिया है उसी प्रकार शिक्षा में भी निदान तथा उसका उपचार शिक्षण का महत्वपूर्ण कार्य है। शिक्षक बालकों में सीखने के कठिनाई के स्थल तथा उनके कारण जानने का प्रयत्न इन्ही नैदानिक परीक्षाओं के आधार पर कर सकता है। कभी-कभी वह साफल्य परीक्षाओं अथवा बुद्धिपरीक्षाओं से भी निदान कार्य कर लिया करता है। किन्तु बालकों की विशिष्ट कठिनाइयों का पता नैदानिक परीक्षाओं से ही चल सकता है। निदान किसी भी प्रकार का क्यों न हो विशिष्ट होता है। बालक मौनवाचन क्यों सफलतापूर्वक नहीं कर सकता ? क्यों वह जोड़ने में अशुद्धियाँ कर दिया करता है ? क्यों वह किसी विषय से घबड़ाता है ? इन प्रश्नों का उत्तर विशिष्ट प्रकार की नैदानिक परीक्षाओं के परीक्षाफल ही दे सकते हैं। किसी कमी अथवा अयोग्यता का कारण जान लेने पर उसका उपचार किया जा सकता है। अतएव औपचारिक शिक्षण तभी हो सकता है, जब प्रमापीकृत नैदानिक परीक्षाओं का निर्माण हो जाय। कुछ नैदानिक परीक्षाएँ बालकों की भावनात्मक कमजोरियों का पता लगाने का भी प्रयत्न करती हैं। इस प्रकार आधुनिक युग में शैक्षणिक निदान शैक्षणिक मापन का भी एक अंग बन गया है।

विद्यार्थी अपने शिक्षण काल में किन-किन स्थानों पर कठिनाइयों की अनुभूति करता है, कौन-कौन सी बातें ऐसी हैं जो उसे सीखने में विशेष कठिनाई पैदा कर रही हैं, इन बातों का ज्ञान हमें निष्पन्न (achievement) परीक्षाओं में तो चलता ही है किन्तु कठिनाई के स्थलों का ज्ञान हमें प्राप्त करने के लिए एक विशेष प्रकार की परीक्षाओं का भी निर्माण किया जाता है जिन्हें हम नैदानिक परीक्षाएँ (diagnostic tests) कहते हैं। निदान का अर्थ है, किसी कठिनाई के कारण का ज्ञान उपलब्ध करना। केवल इतना जान लेना ही काफी नहीं है कि विद्यार्थी भाषा पाठ में मौनवाचन सफलतापूर्वक नहीं कर सकता। वह मौनवाचन का ठीक तरह से क्यों सम्पादन नहीं कर सका, इसका क्या कारण है, उस कारण का निवारण किस प्रकार हो सकता है अर्थात् उसका उपचार क्या होगा, अध्यापक के लिए यह भी जानना आवश्यक होता है। अत नैदानिक परीक्षाएँ उपचारात्मक (remedial) शिक्षण का मार्ग निर्देशन करती हैं। किसी कठिनाई के दूर करने का क्या उपाय हो सकता है ? क्या विद्यार्थी भावनात्मक संघर्ष से पीड़ित है जो उसकी सफलता में बाधक का कार्य कर रहा है ? इन प्रश्नों का उत्तर अध्यापक को प्राप्त करना है।

अन्वेषण तथा शोध (Research)—मनोवैज्ञानिक अथवा शैक्षणिक शोधकार्यों में मापन के बिना काम नहीं चल सकता। सामान्यत प्रत्येक शोधकार्य मापने पर आधारित रहता है और अपने को वैज्ञानिक कहलवाने के लिए प्रत्येक शोधकर्त्ता मापन का आश्रय लेता है। समाज मनोविज्ञान का क्षेत्र हो अथवा प्रयोगात्मक मनोविज्ञान का, सभी स्थलों पर शोधकार्यरत विद्वज्जन व्यक्तियों के गुणों का मापन करते हैं और उनके परिणामों के आधार पर अपने निष्कर्ष निकालते हैं।

परीक्षा के जिन कार्यों का उल्लेख ऊपर किया गया है उनकी विशद् व्याख्या तभी सम्भव है जब भिन्न-भिन्न प्रकार की परीक्षाओं का वर्णन किया जा चुका हो, यहाँ पर हम उन कार्यों का सूक्ष्म विवेचन ही कर पा रहे हैं, विशद् विवेचन के लिए इस पुस्तक के अगले पृष्ठों का अध्ययन नितान्त आवश्यक है।

मापन के लाभ

१ **मापन शिक्षण में सुधार करता है**—बालक के आचरण (behaviour) में वांछित परिवर्तन उपस्थित करने की प्रक्रिया को शिक्षा कहते हैं। प्रभावशाली शिक्षा वही है जिसके द्वारा परिवर्तनों की उपलब्धि हो। शिक्षण के फलस्वरूप बालक के आचरणों में वांछित परिवर्तन उपस्थित हुए हैं या नहीं इसकी जाँच तो परीक्षण द्वारा ही हो सकती है अत परीक्षण और मापन शिक्षण में सुधार ला सकता है यदि विद्यालय के आचार्य और प्रधानाचार्य निरन्तर इस बात की खोज करते रहें कि शिक्षण के फलस्वरूप ऐसे परिवर्तन उपस्थित हुए हैं या नहीं जिनको उत्पन्न करना शिक्षण संस्थाओं का कार्य है।

२ **मापन शिक्षा के प्राप्य उद्देश्यों के चयन में सहायता करता है**—हमारे देश के बहुत से अध्यापक अपने विषय के अध्यापन के प्राप्य उद्देश्यों को जाने बिना ही शिक्षण कार्य कर रहे हैं। यदि किसी विषय के शिक्षण की योजनाबद्ध बनाना है तो उसके शिक्षण के फलस्वरूप

प्राप्य परिणामों अथवा उद्देश्यों के प्रति हमें जागरूक होना पड़ेगा। उस विषय के शिक्षण के प्राप्य उद्देश्यों को पहले से ही निश्चित करना होगा। मापन इस कार्य में हमारी सहायता करेगा क्योंकि किसी विषय का कोई भी शुद्ध और वैध प्रश्नपत्र तैयार नहीं किया जा सकता जब तक उसके शिक्षण के प्राप्य उद्देश्य हमारी नजर में न हों। शैक्षणिक मापन अध्यापक को इस बात की प्रेरणा देता है कि वह अपने शिक्षण के उद्देश्यों को पहले तो निर्धारित करे और फिर उनके अनुसार अध्यापन कार्य करे।

३. मापन विषय वस्तु तथा अध्यापन विधि के चुनाव में सहायता करता है—मान लो कि मुझे कक्षा ८ के लिए विज्ञान विषय के अन्तर्गत पढ़ाई जाने वाली विषयवस्तु का चयन करना है। यदि मैंने निश्चित कर लिया है कि विज्ञान शिक्षण का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य ज्ञान की प्रयुक्ति (application of knowledge) है तो मैं अपने छात्रों में कुछ महत्वपूर्ण वैज्ञानिक सिद्धान्तों (principles) को सामान्य स्थूल कार्यों में लागू करने की योग्यता का विकास करूँगा। मापन मेरी सहायता कर सकता है यह जानने में कि मेरे बच्चे कौन-कौन से वैज्ञानिक सिद्धान्तों की जानकारी रखते हैं और उस जानकारी को किन-किन स्थूल परिस्थितियों में लागू कर सकते हैं।

मापन की सहायता से शैक्षणिक विधियों में भी सुधार उपस्थित किया जा सकता है। मान लो मैं यह जानना चाहता हूँ कि कक्षा ७ को अंग्रेजी पढ़ाने का सबसे बढ़िया तरीका क्या है यदि मैं Structural Approach और Translation Grammar Method दोनों से दो अलग-अलग सैक्शनों में पढ़ाई आरम्भ करूँ और वर्ष के अन्त में मापन यंत्रों द्वारा यह देख लूँ कि कौन सा sector अधिक अंग्रेजी सीख सकता है तो मैं अपनी उत्तम पाठन-विधि को चुन सकूँगा।

४. मापन शिक्षण के पर्यवेक्षण तथा विद्यालय के प्रशासन में सहायक होता है—मापन की प्रक्रिया अध्यापकों को अपने बालकों का अध्ययन करने के लिए प्रोत्साहित करती है। जब कोई अध्यापक उत्तम मापन यंत्रों का निर्माण करता है तब वह यह जानने की कोशिश करता है कि उस विषय के अध्यापन के उद्देश्य क्या हैं, उन उद्देश्यों का शिक्षा के व्यापक उद्देश्यों से क्या सम्बन्ध है। प्रशासक भी मापन के परिणामों को देखकर यह जान लेता है कि शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक हो रही है। वह यह भी जान सकता है कि किसी विशेष अध्यापन विधि अथवा पाठ्यक्रम में क्या कमी है? जिसके अनुशीलन से उचित परिणाम नहीं मिल रहे हैं। पर्यवेक्षक (Superviser) से जान सकता है कि अमुक विषय वस्तु के साथ अमुक छात्र की प्रतिक्रिया कैसी होती है? क्योंकर अमुक छात्र अमुक स्थल पर कठिनाई का अनुभव करता है? किसी कठिनाई को दूर करने के लिए क्या किया जा सकता है?

५. मापन द्वारा शैक्षणिक प्रयासों में समायोजन स्थापित हो सकता है—यदि किसी विद्यालय के सभी अध्यापक शिक्षण के सामान्य उद्देश्यों को स्पष्ट रूप में दृष्टिगत रखते हैं तो कोई वजह नहीं कि उनके शैक्षणिक प्रयासों में समायोजन स्थापित न हो। यदि गणित, इतिहास, नागरिकशास्त्र के अध्यापक अपने-अपने विषयों के अध्यापन के प्राप्य उद्देश्य की जानकारी रखें और यह समझ लें कि अन्य विषयों के शिक्षण के प्राप्य उद्देश्यों तथा अपने विषय के शिक्षण के प्राप्य उद्देश्यों में क्या सम्बन्ध है तो उनके शैक्षणिक प्रयासों में समायोजन स्वयं स्थापित हो जायगा। विषयों के अध्यापन के प्राप्य उद्देश्यों का निर्धारण मापन प्रक्रिया के सहारे से ही अच्छी तरह से हो सकता है।

मापन का इतिहास

Q. 6. Trace briefly the history of E. M. and comment on its present status of theory and practice or Describe in brief the history of important psychological tests.

Ans. यद्यपि अति प्राचीन काल से ही व्यक्तित्व तथा निष्पादन (achievement) के मापन का कार्य आरम्भ हो गया था, तथापि मानव ने अपने साथियों की योग्यता तथा मानव में विभिन्नता का पता बहुत पहले ही लगा लिया था तब भी १९वीं शताब्दी से पूर्व इस क्षेत्र में कोई विशेष प्रगति दिखाई न दी। वैज्ञानिक अथवा मनोवैज्ञानिक मापन (psychological measurement) की प्रगति का इतिहास १९वीं शताब्दी के आरम्भ से शुरू होता है।

प्रस्तुत अध्याय में हम मौखिक और लिखित, बुद्धि और अभियोग्यता, व्यक्तित्व और निष्पादन के मापन के लिए जो परीक्षाएँ तैयार की गई हैं उनके इतिहास पर दृष्टिपात करेंगे।

मौखिक परीक्षाओं का सबसे अधिक प्राचीन विवरण हमें ओल्ड टैस्टामेन्ट में मिलता है। कहा जाता है कि ग्लैडाइट्स ने अपने दुश्मन इफरे माइट्स की मौखिक परीक्षा लेकर उनको उसमें असफलता प्राप्त होने पर प्राणदंड दिया था। इसके बाद यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक सुकरात ने मौखिक परीक्षा प्रणाली का सूत्रपात किया। सुकरात की प्रश्न पूछने की पद्धति आज की शिक्षण प्रणालियों में अपना ली गई है।

सबसे पहली लिखित परीक्षाएँ ईसा से २२०० वर्ष पूर्व चीन में ली जाती थीं। यह देश अपने लोक-सेवा-आयोगों से ऐसे व्यक्तियों का चुनाव करता था जो लिखित परीक्षाओं में दिये गये प्रश्नों पर विस्तृत निबन्ध लिख सकते थे। इस प्रकार निस्संकोच भाव से यह कहा जा सकता है कि लिखित परीक्षाओं का इतिहास मौखिक परीक्षाओं की तरह काफी पुराना है।

बुद्धि परीक्षाओं का इतिहास

वैसे तो प्रज्ञा शब्द का प्रयोग बुद्धि के पर्यायवाची शब्द के रूप में भारत में कई शताब्दियों से होता चला आ रहा है, किन्तु प्रज्ञा क्या है, उसकी प्रकृति का रूप कैसा है यह जानने की भारत में अधिक चेष्टा नहीं की गई है। १९वी और २०वी शताब्दी में बुद्धि का स्वरूप समझने का प्रयत्न इगलैंड, फ्रास और अमरीका में नियमित ढग से हुआ। इगलैंड में सबसे पहला व्यक्ति गाल्टन था जिसने जनता का ध्यान 'बुद्धि' और बुद्धिमान की ओर आकर्षित किया। गाल्टन के शिष्य कार्ल पीयर्सन ने सहसम्बन्ध गुणक निकालने की जिस विधि का आविष्कार किया उस विधि का प्रयोग करके बाद के मनोवैज्ञानिकों ने बुद्धि का स्वरूप समझने का प्रयत्न किया।

सन् १९०४ में इसी सहसम्बन्ध विधि का प्रयोग करके स्पीयरमैन ने बुद्धि के दो प्रतिकारकों का उल्लेख किया। मानसिक योग्यता में कौन से दो तत्व सम्मिलित हैं उनकी खोज करने के लिए जिस गणितीय एवं सांख्यिकी विधि का प्रयोग उन्होंने किया वह विधि प्रतिकारक विश्लेषण के नाम से प्रसिद्ध हुई। सन् १९१२ में उन्होंने अन्य मानसिक प्रतिकारकों का ज्ञान भी दिया। स्पीयरमैन ने यह बतलाया कि किसी भी परीक्षा में बालकों को जो अंक प्राप्त होने हैं, उन पर दो बातों का प्रभाव पड़ता है —

(१) बालक की सामान्य योग्यता का (General ability)

(२) शिष्ट योग्यता का (Specific ability)

इसके बाद थोमसन ने यह बताया कि मस्तिष्क बहुत सी स्वतन्त्र शक्तियों का योग है और विद्यालय की प्रत्येक परीक्षा इन शक्तियों को सम्मिलित अवश्य करती है। आजकल इगलैंड के मनोविज्ञ खासकर थामसन तथा उनके अनुयायी बुद्धि के सामान्य घटक (general factor) तथा सामूहिक घटक (group factor) को ही मान्यता देते हैं।

फ्रांस में भी बुद्धि का स्वरूप समझने तथा बुद्धिमापी परीक्षाओं का निर्माण करने का प्रयत्न किया गया किन्तु इगलैंड, फ्रांस तथा अमरीका में ये प्रयास एक दूसरे पर आश्रित थे, बुद्धिमापी परीक्षाओं का निर्माण करने का सर्वप्रथम श्रेय फ्रांस को जाता है। सन् १९०५ ई० में वहाँ के एक विद्वान् को मानसिक योग्यता में हीन बालकों की बुद्धिमापन का आदेश मिला। यह थे बीने। बीने ने सबसे पहले साइमन की सहायता से एक ऐसी वय मापिनी तैयार की जिससे किसी भी बच्चे की मानसिक आयु का अन्दाजा लगाया जा सकता है। सन् १९०८ में इस बुद्धि माप दंड का पहला संशोधन हुआ। सन् १९१० में दूसरा। सन् १९१२ में मानसिक आयु तथा वास्तविक आयु में सम्बन्ध स्थापित करने के लिए स्टर्न (Stern) ने निम्न सूत्र का उल्लेख किया।

$$\text{मानसिक लब्धि} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{वास्तविक आयु}} \times १००$$

टरमैन (Terman) ने 'मानसिक लब्धि' शब्द को परिमार्जित करके उसे 'बुद्धि लब्धि' का रूप दिया।

अमरीका में भी बुद्धिमापी परीक्षाओं का आविर्भाव लगभग १८८३ ई० से हुआ।

बच्चों की मानसिक योग्यता का मापन करने के लिए डाक्टर बिने ने कुछ प्रमापीकृत परीक्षाओं का निर्माण किया। सन् १८९० ई० में 'मानसिक आयु' का प्रयोग सबसे पहले कैटल (Cattle) ने किया उन्होंने जिन परीक्षाओं का निर्माण किया उनमें विश्वसनीयता तथा वैधता (सप्रमाणिता) की कमी थी। १९१० तक अमरीका में इस क्षेत्र में कोई सराहनीय कार्य नहीं हुआ किन्तु बीने की बुद्धिमापिनी परीक्षा के प्रकाशित होते ही इस बुद्धिमापिनी के कई संशोधन और संस्करण अमरीका निवासियों ने कर डाले। गोडार्ड, कुहलमन, और टर्मन ने बीने-साइमन परीक्षण का प्रयोग अमरीकी बालकों पर किया और १९१६ और १९२० में बुद्धिमापक के दो प्रमापीकृत संस्करण प्रकाशित हो गये।

सन् १९१७ में अमरीका को सामूहिक बुद्धिपरीक्षाओं की आवश्यकता हुई। यर्की (Yerkes) महोदय ने अपने साथियों की मदद से १५,००,००० सैनिकों को सामान्य बुद्धि स्तर के आधार पर वर्गीकरण करने की आवश्यकता की सन्तुष्टि सामूहिक बुद्धिपरीक्षाओं के निर्माण द्वारा की। इन मनोवैज्ञानिकों के सामने समस्या थी कि कितनी जल्दी ऐसे व्यक्तियों का चुनाव किया जाए जो भिन्न-भिन्न नौकरियों के लिए उपयुक्त हों। फलस्वरूप दो प्रकार की सामूहिक परीक्षाओं का निर्माण हुआ, आर्मी अल्फा और आर्मी बीटा। दूसरी परीक्षा का रूप अभाषीय था और उसका निर्माण उन व्यक्तियों के लिए किया गया था जो विदेशी होने के कारण अंग्रेजी से अनभिज्ञ थे। सेना में इन परीक्षाओं का प्रयोग तो हुआ ही, आगे चलकर सामान्य जनता के लिये भी उनका प्रयोग होने लगा।

इस शताब्दी के तीसरे दशक में जब इंगलैंड में मानसिक रचना सिद्धान्त (Theory of mental structure) पर स्पीयरमैन तथा थामसन में वाद-विवाद चल रहा था अमरीका में श्री थर्स्टन (Thurston) ने बतलाया कि मानसिक योग्यताओं (mental abilities) की संख्या सीमित है। ये योग्यताएँ हैं—

(१) शाब्दिक (Verbal)
(२) सांख्यिक (Number)
(३) शाब्दिक मुखरता (Word Pluenty)
(४) दैशिक प्रेक्षण (Space perception)
(५) साहचर्यस्मृति (Associative memory)
(६) प्रातिबोधिक गति (Perceptual Speed)
(७) तर्क (Reasoning)

आजकल सभी प्रकार की बुद्धि परीक्षाएँ तैयार की जा रही हैं। शाब्दिक और अशाब्दिक, व्यक्तिगत और सामूहिक, सामान्य तथा विशिष्ट सभी प्रकार की परीक्षाएँ तैयार हो चुकी हैं।

भारत में बुद्धिपरीक्षाओं को प्रयोग करने का सर्वप्रथम श्रेय लाहौर के डाक्टर सी० एच० राइस को जाता है। १९२१ ई० में उन्होंने भारतीय बीनेकरण [illegible] को प्रकाशित किया जो बीने की बुद्धिमापिनी परीक्षा पर आधारित थी। इस परीक्षा में अंक प्रदान करने का तरीका बिल्कुल नया था। परीक्षा में प्राप्त अंकों को सीधे ही मानसिक आयु में बदला जा सकता था। परीक्षा के लिए जिन प्रमापों का प्रयोग किया गया था वे ५ वर्ष से लेकर १६ वर्ष की आयु के १०७० बालकों पर प्रमापित की गई थी। यद्यपि यह परीक्षा पंजाब के बालकों पर प्रमापीकृत की गई थी, तब भी उसका प्रयोग सभी हिन्दुस्तानी बोलने वाले क्षेत्रों में किया जा सकता था।

सन् १९२७ में जे मोरे ने जो इविंग क्रिश्चियन कालेज, इलाहाबाद के थे भारतीय वातावरण के अनुकूल गूढ़ शाब्दिक समूह परखें तैयार की जिनका प्रकाशन हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी तीनों भाषाओं में किया गया। इन परीक्षाओं में कुछ सामग्री भारतीय वातावरण और संस्कृति के [illegible] होने के कारण इन परीक्षाओं में परिवर्तन और संशोधन किये गये। उदाहरणस्वरूप [illegible] से रचित चित्रों के स्थान पर भारतीय जीवन से सम्बन्धित चित्रों को स्थानान्तर

आजकल इलाहाबाद ब्यूरो ऑफ साइकोलोजी बुद्धिपरीक्षाओं के निर्माण में काफी योगदान दे रही है। किन्तु इतने बड़े देश के लिये बुद्धिपरीक्षाओं के निर्माण का कार्य अभी सन्तोषजनक नहीं है? डा० सोहनलाल, प० झा, डाक्टर जलोटा तथा डाक्टर कामत द्वारा निर्मित बुद्धिपरीक्षाएं विशेष उल्लेखनीय हैं।

इगलैंड तथा यूरोप के अन्य देशों में सामूहिक बुद्धिपरीक्षाओं का निर्माण सन् १९१७ के बाद तीव्र गति से हुआ। स्कॉटलैंड में मोरे हाउस के डाइरेक्टर टामसन तथा उनके साथियों ने विद्यालयों के विद्यार्थियों के लिये एक सामूहिक बुद्धिपरीक्षा का निर्माण किया। टामसन तथा बर्ट ने नार्थम्बरलैंड टैस्ट्स नामक सामूहिक बुद्धिपरीक्षाओं का निर्माण किया। इन परीक्षाओं का इगलैंड में L. E. A. द्वारा अधिक प्रयोग किया गया। अब भी इनका प्रयोग —११+' के विद्यार्थियों को भिन्न प्रकार के विद्यालयों में भेजने के लिए किया जाता है।

व्यक्तित्व परीक्षाओं का संक्षिप्त इतिहास

बहुत ही प्राचीन काल से मानव ने अपने साथियों के स्वभाव, व्यक्तित्व, चरित्र आदि का अध्ययन आरम्भ कर दिया था, किन्तु वह विधि जिसका अनुशीलन प्राचीन मानव किया करता था न तो इतनी विश्वस्त थी और न इतनी क्रमिक ही जितनी कि व्यक्तित्व मापन की आधुनिक विधियाँ हो सकती हैं।

व्यक्तित्व मापन की जिन विधियों का सामान्यत प्रयोग आजकल होता है, उसमें निम्न विधियों को सम्मिलित किया जाता है

(१) प्रक्षेपी विधियाँ
(२) वर्ग श्रेणियाँ
(३) प्रश्नावलियाँ
(४) समक्ष भेंट

यहाँ पर इन विधियों का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत किया जायगा।

व्यक्तित्व परीक्षाओं का आरम्भ १९वीं शताब्दी के अन्त में क्रेपलिन तथा सम्नर के प्रयासों के फलस्वरूप हुआ था। उन्होंने सबसे पहले शब्द साहचर्य परीक्षाओं का सूत्रपात किया। १८७९ में गाल्टन ने भी स्वतन्त्र साहचर्य परीक्षा का निर्माण किया। १९०५ में जुंग ने व्यक्तियों के अचेतन मन का मनोविश्लेषण करने के लिये १०० शब्दों की एक सूची तैयार की जिससे उसने व्यक्तियों के भावनात्मक संघर्षों का पता लगाने की चेष्टा की। केन्ट तथा रोजानफ ने १९१०-११ में दूसरी ऐसी ही शब्दसूची तैयार की। १९११ में प्रेसी ने X—O परीक्षा का निर्माण किया। इसी वर्ष रोशा ने अपनी मसि चिन्ह परीक्षा को प्रमापीकृत किया। मॉरगन और मरे ने १९३५ में टी ए टी. नामक परीक्षा को जनता के सम्मुख रखा। इस प्रकार वर्तमान शताब्दी में व्यक्तित्व परीक्षाओं का विकास बड़ी तीव्र गति से हुआ।

वर्गश्रेणी—व्यक्तित्व मापन के लिये सन् १८८३ ई० में मानसिक शक्ति के मापनार्थ गाल्टन ने वर्गश्रेणी का प्रयोग किया। इसके उपरान्त अमरीका निवासी मनोवैज्ञानिकों ने सन् १९१७ में नेतृत्व करने वाले अफसरों का चुनाव करने के लिये मैन-टू-मैन स्केल का आविष्कार किया। सन् १९२३ में फ्रायड (Freud) की लेखाचित्रीय वर्गश्रेणी प्रकाश में आई। आजकल वर्गश्रेणियों का प्रयोग कई व्यक्तियों के तुलनात्मक अध्ययन के लिये किया जाता है।

प्रश्नावली—इस विधि के प्रचलन का श्रेय भी गाल्टन को जाता है। आजकल जो प्रश्नावलियाँ प्रयोग में आती हैं उन सबका निर्माण गाल्टन की प्रश्नावली के आधार पर ही किया

[illegible] निम्नलिखित प्रश्नावलियाँ मुख्य मानी जा सकती हैं—

(१) हॉर्ट की सामाजिक अभिवृत्ति मापक प्रश्नावली (१९२३)
(२) वाटसन की मानसिक स्थिति मापक प्रश्नावली (१९२५)
(३) लाइकर्ट की नीग्रो लोगों के प्रति अभिवृत्ति मापन की प्रश्नावली (१९३२)
(४) बोगार्डस की 'सामाजिक दूरी मापिनी' (१९३३)

ऊपर जिन व्यक्तित्वमापक प्रश्नावलियों का उल्लेख किया जा चुका है उनमें हैथवे और मेकिन्लेकी एम एम पी आई, मौड्स्ले की एम पी. आई; बर्नेन्टर की परसनैलिटी इन्वेन्टरी, विशेष उल्लेखनीय है।

साफल्य परीक्षाओं का इतिहास

सबसे पहली निष्पादन परीक्षा ईसा से २२०० वर्ष पहले चीन देश में ली गई थी। इसका उल्लेख पहले किया चुका है।

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यभाग मे लिखित निष्पादनमापी परीक्षाओं का प्रयोग आरम्भ हुआ। होरेसमन ने इस दिशा मे विशेष प्रयास किये। उनका यह मत था कि प्रश्नपत्रों मे प्रश्नो की सख्या पर्याप्त मात्रा मे हो तथा प्रश्नो को यथासम्भव प्रमापीकृत किया जाय। यह बात १८४५ की थी। इसके बाद स्कूलो और कालेजो मे लिखित परीक्षायें ली जाने लगी। १८६५ के लगभग ही स्कूलो के अध्यापक यह अनुभव करने लगे कि उनके द्वारा निर्मित परीक्षाओ मे आत्म-निष्ठता (subjectivity) आ जाती है और वे परीक्षाये विश्वस्त भी नही होती। इस ओर लोगो का ध्यान गया, इस शताब्दी के अन्त तक शिक्षाशास्त्रियो का यह निश्चित मत हो गया कि निबन्धात्मक परीक्षायें आत्मनिष्ट और अविश्वस्त होती हैं, उनके सुधार अपेक्षणीय हैं।

अत शिक्षाविद इन परीक्षाओ मे सुधार लाने का प्रयत्न करने लगे। १९०८ और १९०९ मे थौर्नडाइक ने लिखित परीक्षाओ को प्रमापीकृत करने का आदेश दिया। अगले तीस वर्षों मे लगभग सभी शैक्षिक विषयो मे नवीन प्रकार की प्रमापीकृत परीक्षाओं का निर्माण हुआ।

पिछले दो दशको मे अमरीका निवासियो का ध्यान अर्हापण अभिगमन की ओर अधिक जाने लगा है। आज का युग अर्हापण (evaluation) का युग है।

अध्याय २

मापन यन्त्रों के आवश्यक गुण

Q 1. What are the different characteristics of a good test ?

Ans उत्तम परीक्षा वह मानी जा सकती है जो केवल वही कार्य करती है, जिसके करने के लिए उसका निर्माण हुआ है। परीक्षा के गुण संक्षेप में नीचे दिये जाते हैं। प्रत्येक मनोवैज्ञानिक व्यक्तियों की बुद्धि, निष्पादन और व्यक्तित्व के मापन करने के लिए जिन यन्त्रों का आविष्कार करना है उन यन्त्रों में निम्नलिखित गुण अथवा विशेषताएँ होनी चाहिये

(१) विश्वसता (Reliability)
(२) तन्मापिता, वैधता या शुद्धता (Validity)
(३) व्यक्तिनिरपेक्षता, वास्तविकता अथवा वस्तुनिष्ठता (Objectivity)
(४) विभेदकारिता (Discrimination)
(५) व्यवहारगम्यता (Usability)
(६) व्यापकत्व (Comprehensiveness)

परीक्षा विश्वस्त होनी चाहिये—वे बातें जो किसी परीक्षिका को अमुक विद्यार्थी वर्ग पर प्रथम बार लागू किये जाते समय जिस सीमा तक प्रभावित करती हैं यदि दूसरी बार भी लागू किये जाने पर उसी सीमा तक प्रभावित करती रहे अर्थात् प्रत्येक बार यदि वह परीक्षा उसी ढंग से व्यक्तियों की बुद्धि, निष्पादन, अभियोगिता, अभिवृत्ति, अभिरुचि अथवा व्यक्तित्व का मापन सयत ढंग से करती रहे तो उस परीक्षा को हम विश्वस्त मानते हैं। पूर्णत विश्वस्त परीक्षा किसी विद्यार्थी समूह को बार-बार दिये जाने पर सदैव एक से ही अंक देती है। इस साधारण सिद्धान्त को ध्यान में रखकर परीक्षा की विश्वसता निश्चित की जाती है।

परीक्षा शुद्ध अथवा तन्मापी होनी चाहिये—ऐसी परीक्षा सही रूप से उसी वस्तु का मापन करती है जिसके मापनार्थ उसका निर्माण किया जाता है। यह जरूरी नहीं है कि एक विश्वस्त परीक्षा वैध भी हो। उदाहरण के लिए यदि किसी अच्छी घडी को २० मिनट आगे बढा दिया जाता है तो उसके द्वारा सूचित समय विश्वसनीय होगा, परन्तु स्टैण्डर्ड समय में उस घडी द्वारा दिया गया समय वैध नहीं होगा। इस प्रकार घडी के विश्वस्त होने पर वह वैध नहीं मानी जायगी। यही हाल परीक्षा का भी है। माना कि गणित की परीक्षा का विद्यार्थियों से गणित के सिद्धान्तों को दैनिक जीवन में लागू करने की योग्यता का मापन करने के लिए निर्माण किया गया है, यदि यह परीक्षा स्मरणशक्ति अथवा तथ्यों को लिखने की योग्यता का मापन करती है, किन्तु उस योग्यता का मापन नहीं करती जिसके लिए इसका निर्माण किया गया था, तो यह परीक्षा तन्मापी अथवा शुद्ध नहीं मानी जायगी।

परीक्षा वैषयिक, वस्तुनिष्ठ अथवा व्यक्तिनिरपेक्ष (objective) होनी चाहिये—इसका मतलब यह है कि परीक्षा के फलाकों पर न तो परीक्षक के हाव-भाव का ही प्रभाव पड़े और न परीक्षार्थी की मानसिक स्थिति का। यदि परीक्षा ऐसी है जिसके जाँच करने वाले एक ही निर्णय पर पहुँचते हैं, तो वह परीक्षा व्यक्ति निरपेक्ष मानी जा सकती है। परीक्षा का आधार पूर्णरूपेण वैषयिक होना चाहिये, व्यक्तिनिष्ठ (subjective) नहीं।

परीक्षा विभेदकारी हो—कोई भी परीक्षा तभी विभेदकारी हो सकती है जब उसका निर्माण इस प्रकार किया जाय कि वह छात्रो की बुद्धि, निष्पादन व्यक्तित्व के सूक्ष्म अन्तरों को भी प्रकट कर सके।

बुद्धि अथवा निष्पादन परीक्षा का प्रत्येक प्रश्न ऐसा हो कि तीव्र तथा मन्द बुद्धि छात्रों मे विभेद बना सके। ऐसी परीक्षा मे मन्द बुद्धि छात्र तीव्र बुद्धि छात्रो की अपेक्षा कई प्रश्नो को गलत हल करेंगे अथवा छोड देंगे। यदि मन्द बुद्धि बालको की तरह तीव्र बुद्धि बालक भी इस परीक्षा के कुछ प्रश्नो को छोड देते अथवा गलत हल करते है तो परीक्षा विभेदकारी नहीं मानी जा सकती।

परीक्षा व्यापक होनी चाहिये—यदि परीक्षा विद्यालय में पढाई गई समस्त सामग्री की जाँच कर सकती है तब तो यह विद्यार्थियो के लिए न्याय्य मानी जा सकती है, अन्यथा नहीं। इसका आशय यह है कि परीक्षा मे सम्पूर्ण क्षेत्र से प्रश्नो का चुनाव किया जाय। यदि परीक्षा पूर्ण-रूपेण व्यापक है तो वह तद्विषयक सभी क्षेत्रो से प्रश्नो का चुनाव कर लेगी जिनका चुनाव किया जाना आवश्यक है।

परीक्षा व्यवहारगम्य हो—व्यवहारगम्य परीक्षा से हमारा प्रयोजन ऐसी परीक्षा से है, जिसको आसानी से छात्रसमूह पर सचालित किया जा सके, आसानी से उनकी उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन किया जा सके और आसानी से उनके फलांकों की व्याख्या भी की जा सके।

परीक्षा की विश्वसता

Q 2 What is meant by the reliability of a test? What are the methods of judging reliability? *(L. T. 1956)*

Ans वे बातें जो किसी परीक्षा विशेष को विद्यार्थी समूह पर प्रथम बार लागू करते समय उसे जिस सीमा तक प्रभावित करती हैं यदि दूसरी बार भी उस वर्ग पर लागू करने पर पुन उसी सीमा तक उसे प्रभावित करती रहे अर्थात् प्रत्येक बार यदि वह परीक्षा उसी ढग से विद्यार्थियो के निष्पादन, बुद्धि, अभियोग्यता या व्यक्तित्व का मापन सतत ढग से करती रहे तो यह परीक्षा पूर्णत विश्वस्त कहलायेगी। अत विश्वस्त परीक्षा की प्रमुख विशेषता उसकी सगति (consistency) मानी जा सकती है। ऐसी परीक्षा एक ही विद्यार्थी समूह को बार-बार लागू किये जाने पर लगभग एक से ही अक देती है। इस सिद्धान्त को ध्यान मे रखकर किसी परीक्षा की विश्वसनता (reliability) की मात्रा निश्चित की जा सकती है। विश्वसनता की यह मात्रा विश्वसनता गुणक (reliability coefficient) के नाम से पुकारी जाती है।

विश्वसता गुणक निकालने की विधियाँ—यदि किसी परीक्षा के लगभग समान दो स्वरूप किसी एक विद्यार्थी समूह पर लागू किये जायें और उनके परीक्षाफलो में ऊँचा सहसम्बन्ध गुणक हो तो वही परीक्षा अति विश्वस्त मानी जायगी। ऐसी परिस्थिति मे परीक्षा के स्वरूप में अधिक कम अक पाने वाला विद्यार्थी दूसरे स्वरूप मे भी कम अक पाता है और पहले स्वरूप में अधिक अक पाने वाला व्यक्ति दूसरे स्वरूप मे भी अधिक अक पाता है। संक्षेप मे, दोनो रूपों के परीक्षाफल सहचारी होते हैं। यदि दोनो रूपों के देने पर प्राप्तांको की दो श्रेणियों (series) के बीच अनुस्थिति साहचर्य गुणक (rank correlation coefficient) काफी ऊँचा (लगभग +.७ के बीच इससे अधिक) मिले तो वह परीक्षा विश्वस्त मानी जायगी। यह विधि समानान्तर परीक्षण (parallel form method) विधि कहलाती है क्योंकि परीक्षा की विश्वसनता का अन्दाजा उसके दो समानान्तर रूपों (parallel forms) को देने से प्राप्त प्राप्तांकों के बीच सहसम्बन्ध गुणक निकालने से लगाया जाता है। इस विधि का प्रयोग Terman ने Binet की परीक्षा के संशोधित संस्करण में किया था। १९३७ में टर्मन और मैरिल ने बीने की बुद्धिमापिनी के दो समान्तर रूप L और M इसलिए तैयार किये थे कि एक के परिणामों की तुलना दूसरे के परिणामों से की जा सके।

यदि प्रामाणिक परीक्षा के बनाने वाले के पास धन और समय का अभाव उसे उस परीक्षा के दो रूप (forms) तैयार करने में बाधा डालता है, तो उसे अपनी परीक्षा की विश्वसनता की जाँच करने के लिए दूसरा उपाय सोचना पड़ेगा। यदि वह किसी परीक्षा के दूसरे ऐसे समानान्तर रूप का निर्माण नहीं कर सकता जो एक से ही उपविषयों या क्षेत्रों, एक से ही उद्देश्य

और एक से ही आचरण परिवर्तनो का मापन कर सके, तो अपनी परीक्षा को पुन उसी वर्ग को देकर देख ले कि दो बार दी गई उसी परीक्षा के दो परीक्षाफलो की श्रेणियो (series) मे किसी मात्रा तक साहचर्य है। यदि साहचर्य की मात्रा पर्याप्त है तो उसकी परीक्षा काफी विश्वस्त मानी जायगी। किन्तु यह निष्कर्ष तभी निकाला जा सकता है जब दो बार उसी परीक्षा को लागू करने के मध्य का समय इतना अधिक अवश्य होना चाहिए कि विद्यार्थी उन प्रश्नो को भूल जावे जो [illegible] विधि पुनर्परीक्षा (tost re- [illegible] समय दो परिकल्पनाएँ कर

(१) दुवारा परीक्षा देने समय समस्त विद्यार्थी वर्ग परीक्षा के प्रश्नो (items) को पूरी तरह भूल चुका है।

(२) विद्यार्थियो के निष्पादन, अभियोग्यता या बुद्धि के स्तर मे कोई अन्तर नही हुआ है। इसलिए पहली परीक्षा और पुन परीक्षा लेने के बीच का समय काफी बढा दिया जाता है ताकि अभ्यास का प्रभाव लुप्त हो जावे।

पहली बार पूछे गये प्रश्नो को पूरी तरह व्यक्ति भूल जाय इस उद्देश्य से Kelly ने रौशा के व्यक्तित्व-परीक्षण मे हलके बिजली के धक्के देने की आयोजना की है। (देखो अध्याय ७) ऐसी परिस्थिति मे व्यक्ति को यदि पहले पूछे गये प्रश्नो की पूरी तरह विस्मृति हो जाय तो पुनर्परीक्षा विधि सर्वोत्तम मानी जा सकती है। किन्तु दूसरी बार भी कुछ न कुछ प्रश्न स्मृति पटल पर अकित बने रहते हैं। ये प्रश्न इस बार के परीक्षाफल को दूषित कर सकते है अथवा व्यक्ति के आयु एव विचारो के परिपक्व हो जाने पर गुणाको मे सुधार दिखाई दे सकता है किन्तु स्थानान्तर अथवा परिपक्वता का प्रभाव सब व्यक्तियो मे दूसरी बार परीक्षा देने से आ सकता है तब भी दोनो बार के परीक्षाफलो मे साहचर्य गुणक स्वत ही ऊँचा आ सकता है। अत किसी परीक्षा की विश्वसनता ज्ञात करने के लिए परीक्षक एक और विधि का उपयोग करता है। वह है अर्ध विच्छेद परीक्षाविधि (split-hay method)। यदि परीक्षक यह भी नही चाहता कि किसी परीक्षा के दो समान्तर रूप तैयार करे और यह भी नही चाहता कि एक ही रूप दुवारा लागू करके अपने परीक्षाफल को दूषित बना ले, तो वह परीक्षा मे आन्तरिक सगति (internal consistency) ज्ञात करने का प्रयत्न करता है। एक ही परीक्षा के दो भाग किये जाते हैं जब अभ्यास के प्रभाव के कारण पुन परीक्षा नही दी जा सकती या जब समान्तर रूप वाली परीक्षिका उपलब्ध नही होती जैसा कि व्यक्तित्व परीक्षा सम्बन्धी प्रश्नावली मे (personality tests) या अभिवृत्ति (attitude) अनुमाप या करण परीक्षाओ (performs tests) मे होता है। ये दोनो भाग परीक्षा के दो समानान्तर रूपो (parallel forms) का कार्य कर सकते है। किसी परीक्षा मे दो भाग कई प्रकार से किए जा सकते हैं किन्तु निम्नलिखित दो तरीके अधिक प्रचलन मे हैं—

(क) सम और विषम सख्या वाले प्रश्नो के उत्तरो की दो श्रेणियाँ बनाना।

(ख) प्रश्न सख्या १, ४, ५, ८, ९, १२, १३,··· और प्रश्न सख्या २, ३, ६, ७ १०, ११, ··· के उत्तरो की अलग अलग दो श्रेणियाँ बनाना।

प्रत्येक विद्यार्थी को सम और विषम प्रश्नो मे जो अक मिलते हैं उनकी दो श्रेणियो (series) मे जो सहसम्बन्ध गुणक है वही परीक्षा की आन्तरिक सगति का सूचक होता है। इस विधि का मुख्य लाभ यह है कि एक ही अवसर पर परीक्षा की विश्वसनीयता निश्चित करने के लिए इष्ट प्रदत्त मिल जाते हैं इसलिए परीक्षा मे सचालन की परिस्थिति मे विभिन्नता होने के कारण जो दोष आ सकते हैं उनसे यह विधि मुक्त रहती है। इस साहचर्य गुणक के ऊँचे होने पर परीक्षा की आन्तरिक सगति (internal consistency) ऊँची मानी जाती है। यह समान प्रभाव नही डालता। परिपक्वता सब व्यक्तियो के लिये समान नही होती, अत इसके कारण होने वाली प्रगति भी समरूप नही होती और न स्थानान्तर का प्रभाव ही सब पर एक सा ही पडता है। किन्तु यह सगति तो परीक्षा के आधे भाग से सम्बन्ध रखती है अत स्पीयर मैन और ब्राउन ने पूरी परीक्षा की आन्तरिक सगति का अन्दाजा लगाने के लिए एक सूत्र का सुझाव दिया है जो नीचे दिया जाता है—

$$R = \frac{2r}{1+r}$$

यहाँ पर R सम्पूर्ण परीक्षा का [illegible] साहचर्य गुणांक तथा r परीक्षा के आधे भाग का [illegible] गुणांक है। उदाहरण के लिए यदि दो भागों के बीच r का मान ·६ है तो सम्पूर्ण परीक्षा का R ·७५ होगा। परीक्षा जितनी अधिक प्रश्नों वाली होती है वह उतनी ही अधिक विश्वसनीय हो जाती है।

बहुत से शिक्षाशास्त्री इस सुझाव को मानने के लिए तैयार नहीं हैं क्योंकि [illegible] प्रभावित करता है यह प्रभाव परीक्षा के दोनों विभागों पर होने के कारण विश्वसनीयतागुणांक को और भी ऊँचा कर सकता है। यद्यपि किसी परीक्षा की विश्वसनीयता निकालने में इस विधि से समय तथा परिश्रम की विशेष बचत होती है किन्तु [illegible] के कथनानुसार यह विधि अधिक विश्वसनीय नहीं है। अतः कुछ शिक्षाशास्त्री स्पीयरमैन-ब्राउन के इस सूत्र का प्रयोग न करके एक दूसरे ही सूत्र का प्रयोग करते हैं जिसे रुलॉन का सूत्र कहा जाता है। यह सूत्र नीचे दिया जाता है—

$$R = 2\left(1 - \frac{\sigma_1^2 + \sigma_2^2}{\sigma^2}\right)$$

यहाँ पर R सम्पूर्ण परीक्षा का आन्तरिक संगति का मापक है, σ_1 और σ_2 परीक्षा के दो भागों के प्रामाणिक विचलन (S. D.) हैं तथा σ पूर्ण परीक्षा के प्राप्तांकों का।

इस प्रकार प्राप्त साहचर्य गुणांक, जो आन्तरिक संगति का सूचक है, समानता गुणांक (coefficient of rational equivalence) के नाम से पुकारा जाता है। रिचार्डसन ने भी इस प्रकार के समानता गुणांक के कई आगणन (estimate) दिए हैं जिनमें से विशेष प्रचलन में आने वाला निम्नलिखित सूत्र है—

$$R = \frac{n}{n-1}\left(1 - \frac{\Sigma pq}{\sigma^2}\right)$$

यहाँ पर R सम्पूर्ण परीक्षा का विश्वसनीयतागुणांक, n परीक्षा में लिये गए प्रश्नों (items) की संख्या तथा p किसी एक प्रश्न को हल करने वाले विद्यार्थियों की संख्या का अनुपात (proportion) और q उस प्रश्न को हल न कर सकने वाले व्यक्तियों की संख्या का अनुपात माना गया है। प्रत्येक प्रश्न (item) को कितने प्रतिशत विद्यार्थियों ने हल किया है और कितने प्रतिशत ने नहीं, यह जानने के लिये item analysis की प्रक्रिया करनी पड़ती है। यदि ५ विद्यार्थियों में से ३ विद्यार्थियों ने किसी एक प्रश्न को सही हल कर दिया है तो $p = \frac{3}{5} = ·६$ और q ·४ होगा। पहले प्रश्न के लिए pq का मान ·२४ होगा। इस प्रकार प्रत्येक प्रश्न के लिए pq का मान निकाला जा सकता है। इन मानों का योग Σ pq होगा।

σ का मान अध्याय ·· में प्रश्न · की तरह निकाला जा सकता है। इस सूत्र का प्रयोग केवल तभी किया जाय जब प्रश्न पत्र के सब प्रश्न (items) एक ही सामान्य मूलतत्व का मापन करें। यदि प्रश्न पत्र में विभिन्न योग्यताओं के मापनार्थ प्रश्नों (items) का समावेश किया गया है तो इस सूत्र का प्रयोग कभी न किया जाय अन्यथा इस प्रकार प्राप्त विश्वसनीयतागुणांक भ्रमात्मक होगा।

किसी प्रामाणिक परीक्षा का विश्वसनीयता गुणांक (reliability coefficient) कितना होना चाहिए इस बात का निर्णय परीक्षा के प्रयोजन पर निर्भर रहता है। कोई भी परीक्षा कितनी ही [illegible] न हो, पूरी तरह विश्वसनीय नहीं हो सकती, अतः विश्वसनीयतागुणांक कभी +१·० नहीं हो [illegible]। किसी परीक्षा के विश्वसनीयतागुणांक के ऊँचे होने का तात्पर्य यह नहीं कि वह आदर्श या उत्तम या प्रयोज्य परीक्षा है। कभी-कभी कम प्रश्नों वाली और कम विश्वसनीयतागुणांक रखने वाली परीक्षा [illegible] विश्वसनी- [illegible] प्रमापिता की [illegible]

Q. 3 What is meant by validity of a test ? What are the methods of judging the validity of a test ? *(L T 1957)*

Ans किसी परीक्षा की तन्मापिता का अर्थ—किसी परीक्षा की तन्मापिता से हमारा तात्पर्य उस गुण से है जिस गुण के कारण वह परीक्षा उसी वस्तु का मापन करती है जिसके मापार्थ उसका निर्माण या चुनाव किया जाता है। तन्मापी शब्द बना है दो शब्दों से तद् और मापी। तद् का अर्थ है उसी का, अत तन्मापी का अर्थ हुआ उसी का मापन करने वाला। यदि कोई परीक्षा उन्हीं उद्देश्यो या आचरण परिवर्तनो (behavioural changes) का मापन करती है जिनको ध्यान मे रखकर इसका निर्माण किया गया है तो वह निस्सदेह तन्मापी होगी। यदि ऐसा

स्थान पर बालक की स्मरणशक्ति का ही मापन करती है तो वह तन्मापी नही कही जा सकती। साधारण अध्यापक जब किसी परीक्षा के प्रश्नपत्र का निर्माण करता है तब इस बात का ध्यान नही रखता कि वह किस उद्देश्य का मापन करना चाहता है अत उसकी परीक्षा प्राय तन्मापी नही हुआ करती। आजकल विद्यालयों मे जैसी परीक्षाएँ दी जाती हैं वे बालक के प्रत्यास्मरण को ही जाँच सकती हैं, अन्य किसी योग्यता को नही।

अत हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यदि कोई परीक्षा तन्मापी है तो वह केवल कुछ निश्चित लक्ष्य या लक्ष्यो के लिए ही तन्मापी है, अन्य प्रयोजनो या लक्ष्यों की पूर्ति मापन के उस यत्र से नही हो सकती। उदाहरण के लिये यदि एक परीक्षा एक विद्यालय के आठवी कक्षा के बालको की योग्यता, ज्ञान या निष्पादन (achievement) का सत्य, शुद्ध और वैध मापन करती है तो यह जरूरी नही कि वह अन्य विद्यालयो के कक्षा ८ के बालकों की योग्यता, ज्ञान या निष्पादन का मापन भी उसी सत्यता और शुद्धता के साथ कर सके क्योंकि दोनों विद्यालयो के अध्यापको के उद्देश्य सम्भवत भिन्न हो सकते हैं अथवा दोनों विद्यालयो के विद्यार्थियो के मानसिक स्तरो मे अन्तर हो सकता है। ऐसी परिस्थिति मे कोई भी प्रामाणिक परीक्षा सब विद्यार्थियो के लिए तन्मापी नही मानी जा सकती। अत अध्यापक को किसी प्रामाणिक परीक्षा का चुनाव करना है तो वह उसी परीक्षा को चुने जिसके निर्माण करते समय उन्हीं उद्देश्यो को ध्यान मे रखा गया था जो उसके अध्यापन के उद्देश्य थे और जिसका प्रमाणीकरण ठीक उसी स्तर के बालको पर किया था जिस स्तर के बालको का शिक्षण वह स्वय कर रहा है। ऐसी प्रामाणिक परीक्षा के न मिल सकने पर वह स्वय ऐसी परीक्षा का निर्माण कर सकता है जो उसके उद्देश्यो का उचित व वैध मापन कर सकती है।

तन्मापिता अथवा शुद्धि को प्रभावित करने वाले तत्व—

किसी परीक्षा की तन्मापिता निम्नलिखित तत्वों पर निर्भर रहती है—

(अ) जिस वस्तु का मापन करना है उसका स्वरूप निश्चित करना तन्मापिता के लिये आवश्यक है। मान लीजिये हमे एक तन्मापी बुद्धि परीक्षा तैयार करनी है तो बुद्धि का स्वरूप तय करना होगा, बुद्धि के मूल तत्व मालूम करने होंगे। और इन तत्वों को इस प्रकार निर्धारित करना होगा कि उनका मापन किया जा सके। तत्वों का निर्धारण प्रदर्शित आचरणों के पदो मे होगा। इसी प्रकार यदि हम ईमानदारी की परीक्षा तैयार करना चाहते हैं तो उन तात्विक आचरणों को ढूँढना होगा जिसमे ईमानदारी का प्रदर्शन किया जा सकता है।

(आ) आचरणों का प्रदर्शन प्राय कृत्रिम परिस्थितियो मे होता है इसलिये यदि परीक्षा को बिल्कुल शुद्ध बनाना है तो प्राकृत आचरणों का परीक्षण करना होगा। उदाहरण के लिये यदि हम बालक की गणित सिद्धान्तों को दैनिक जीवन मे प्रयुक्त करने की क्षमता का मापन करना चाहते हैं तो हमें दैनिक जीवन के विभिन्न कार्यकलापो मे व्यस्त इस बालक के आचरणों का निरीक्षण अथवा परीक्षण करना होगा। अथवा यदि किसी बालक की ईमानदारी का परीक्षण करना चाहते है तो ऐसी परिस्थितियों मे उसकी परीक्षा करनी होगी जो कृत्रिम न हो।

(इ) यदि परीक्षा मापनीय वस्तु की सभी महत्वपूर्ण विमाओं (demensions) का मूल्यन उचित मात्रा में करती है तब भी वह तन्मापी कही जा सकती है। उदाहरण के लिये निबन्ध लिखने की योग्यता की जाँच करने के लिये निम्नलिखित तीन बातों का परीक्षण करना जरूरी है :—

(i) वाक्य, वाक्यांश और मुहावरों का प्रयोग।
(ii) वाक्य-रचना का रूप।
(iii) कण्डिकाओं का संगठन।

ये तीनों निबन्ध लेखन की योग्यता की विभाएँ मानी जा सकती हैं। अब यदि कोई परीक्षा निबन्ध लेखन की योग्यता की जाँच करने के लिये बनाई जाती है तो वह तन्मापी तभी हो सकती है जब वह इन तीनों विभाओं को उचित रूप से मापन कर सके।

(ई) परीक्षा की शुद्धि इस बात पर भी निर्भर रहती है कि किस सीमा तक अ-पूर्व सूचित चल राशियाँ परीक्षाफलों को प्रभावित करती हैं।

उदाहरण के लिये निबन्ध लेखन की परीक्षा के परिणाम यदि बालकों में बुद्धि अथवा रटने की शक्ति अथवा, उदाहरण के अन्त में प्रभावित होते हैं तब भी परीक्षा तन्मापी नहीं कही जा सकती क्योंकि ये तत्व बाह्य तथा असंगत होता है जिनका मापन नहीं किया जा रहा है। इसी प्रकार वह गणित की परीक्षा भी तन्मापी नहीं कही जायेगी जिसमें वाचन-योग्यता की व्यापक जरूरत पड़ती हो।

तन्मापिता की माप

कोई परीक्षा किस सीमा तक निश्चित उद्देश्यों का मापन करती है यह सीमा उस परीक्षा की [illegible] विशेष महत्वपूर्ण [illegible] यह कि यदि [illegible] इस प्रकार प्राप्त प्राप्तांकों की श्रेणी और किसी अन्य पूर्व परिचित शुद्ध परीक्षा को किसी कक्षा के उन्हीं विद्यार्थियों पर लागू करने से प्राप्त प्राप्तांकों की श्रेणी के बीच यदि काफी ऊँचा सह सम्बन्ध गुणक है तो यह कल्पना की जा सकती है कि प्रस्तावित परीक्षा उसी गुण या उद्देश्य का मापन करती है जिस गुण या उद्देश्य का मापन अन्य शुद्ध परीक्षायें कर रही थीं। वे परीक्षायें कसौटी (criterion) के नाम से पुकारी जाती हैं।

कसौटियाँ (Criteria)

जिस प्रकार सोने की शुद्धता का ज्ञान प्राप्त करने के लिये सुनार कसौटी का प्रयोग करता है उसी प्रकार शिक्षा मनोविज्ञ परीक्षा की शुद्धता की परख करने के लिये कुछ कसौटियों का प्रयोग करता है। यदि कोई परीक्षा उस कसौटी पर खरी उतरती है तो वह शुद्ध मानी जाती है अन्यथा नहीं। उसी कसौटी पर कस कर जिस प्रकार अनुभवी सुनार यह भी बता देता है कि सोने की शुद्धि की मात्रा कितनी है उसी प्रकार परीक्षा की शुद्धि की मात्रा भी निकाली जाती है। परीक्षा की शुद्धि की मात्रा को शुद्धि गुणक (validity) कहते हैं।

कसौटी के रूप में प्रयुक्त होने वाली परीक्षाएँ, यंत्र अथवा अन्य वस्तुएँ निम्नांकित हैं —

(क) बुद्धि परीक्षाओं के लिये—(i) आयु
(ii) बीने या वैश्लर की बुद्धि परीक्षा
(iii) प्रमापीकृत बुद्धि परीक्षामाला
(iv) परीक्षार्थियों को अच्छी तरह जानने वाले व्यक्तियों की सम्मतियाँ।
(v) विद्यालय के निष्पन्न

(ग) निष्पन्न परीक्षाओं के लिये—(i) उसी विषय में निष्पन्न का मापन करने वाले अन्य प्रमापीकृत परीक्षाएँ
(ii) विषय अध्यापक द्वारा दी गई वर्ग श्रेणियाँ

(iii) भावी साफल्य के मापक यंत्र
(iv) बुद्धि परीक्षा।

(ग) व्यक्ति परीक्षाएं—(i) व्यक्ति के विषय में अन्य व्यक्तियों की धारणाएं

(घ) अभियोग्यता परीक्षाएं—(i) प्रशिक्षण के बाद व्यक्ति का निष्पन्न।

यदि किसी व्यक्ति के गुण अथवा विशेषता का मूल्यांकन करने वाली किसी कसौटी के रूप में ली गई परीक्षा और प्रस्तावित परीक्षा के बीच सह सम्बन्ध की मात्रा अधिक है तो प्रस्तावित परीक्षा *शुद्ध अथवा तन्मापी मानी जाती है। अतः किसी परीक्षा की तन्मापिता ज्ञात करने* के लिये उसकी कसौटी खोजनी पड़ेगी। उस परीक्षा को तथा प्रस्तावित परीक्षा को किसी छात्र समूह पर लागू करके प्राप्तांक निकालने होंगे और प्राप्तांकों की इन दो श्रेणियों के बीच सह-सम्बन्ध गुणक तन्मापिता अथवा शुद्धि गुणक होगा।

जिस प्रकार परीक्षा का विश्वसनीयता गुणक कभी भी १ के बराबर नहीं होता उसी प्रकार तन्मापिता गुणक भी १ से कम ही होता है। मान लीजिये कि ५ विद्यार्थियों को प्रस्तावित परीक्षा तथा विद्यालीय कार्य में निम्नलिखित अनुस्थितियां (ranks) मिलती हैं।

छात्र	प्रस्तावित परीक्षा में अनुस्थिति	विद्यालय में अनुस्थिति		
क	१	३	२	४
ख	२	२	१	
ग	३	२	१	
घ	४	४	०	
ङ	५	५	०	

$$\text{तन्मापिता गुणक} = १ - \frac{६ \times ८}{१२०} = ६$$

यदि क और ग की अनुस्थितियां उलट दी जायें तो दोनों परीक्षाओं में पूर्ण सह सम्बन्ध होगा और तन्मापिता गुणक १ होगा। तन्मापिता गुणक १ के जितना ही अधिक पास होता है परीक्षा उतनी ही तन्मापी या शुद्ध मानी जाती है। किन्तु अधिक से अधिक शुद्ध तन्मापी परीक्षा का तन्मापितागुणक ·७० या ·८० के लगभग हो सकता है इससे अधिक नहीं। यदि किसी परीक्षा *का तन्मापिता गुणक ·७० से कम है तो इसका यह आशय नहीं कि वह परीक्षा शुद्ध नहीं है।*

यदि कसौटी के रूप में काम आने वाली परीक्षा स्वयं शुद्ध नहीं है तो प्रस्तावित परीक्षा तन्मापिता की मात्रा क्या होगी निश्चयपूर्वक नहीं बताया जा सकेगा। फिर भी मनोमितिज्ञों ने कसौटी के रूप में प्रयुक्त होने वाली परीक्षा की विश्वसनीयता अथवा शुद्धि के विषय में संदेह होने पर निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग करने का आमन्त्रण किया है।

$$\text{प्रस्तावित परीक्षा का तन्मापिता गुणक} = \frac{\text{दोनों परीक्षाओं का सहसम्बन्ध गुणक}}{\text{दोनों परीक्षाओं के विश्वसनीयता गुणकों का ज्यामितिक मध्यमान}}$$

तन्मापिता के प्रकार (Types of Validity)

परीक्षा की वैधता, शुद्धि अथवा तन्मापिता निकालने की यह विधि अनुभव पर आधारित होने के कारण अनुभव जन्य (Empirical) कहलाती है। यह साधारण से अनुभव की बात है कि यदि कोई शुद्ध परीक्षा किसी दूसरी परीक्षा से पूर्ण सहचारिता रखती है तो दूसरी परीक्षा भी शुद्ध होगी।

किसी प्रस्तावित परीक्षा की शुद्धि की मात्रा निकालने की क्रिया निम्न सोपानों में सम्पादित होती है।

(i) कसौटी के रूप में ली जाने वाली परीक्षा का चुनाव।
(ii) कसौटी और प्रस्तावित परीक्षा के बीच सहसम्बन्ध गुणक का होना।

कसौटी के रूप मे दी जाने वाली परीक्षा यथासाध्य विश्वस्त और पक्षपात से मुक्त होनी चाहिये। कुछ परीक्षाओं के लिये तो अभी तक उक्त कसौटी का पता नहीं चल पाता है जैसे विभिन्न विषयों में निष्पादन परीक्षाएँ। अब चूँकि परीक्षा के लिये उपयुक्त कसौटी का चुनाव कठिन हो जाता है इसलिये परीक्षा की तन्मापिता निकालने की यह पहुँच दोषपूर्ण प्रतीत होती है। इसलिये आधुनिक शिक्षा मनोविज्ञ अनुभवजन्य तन्मापिता को विशेष महत्व नहीं देता क्योंकि यह तन्मापिता एक या भिन्न विधि का आश्रय लेती है जिसमें तर्क की मात्रा कम है।

ऐसी तन्मापिता जिसका सम्बन्ध तर्क से अधिक रहता है तार्किक तन्मापिता (logical validity) कहलाती है। जब किसी परीक्षा का निर्माण उन प्राप्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिये किया जाता है जिनकी उपलब्धि शिक्षा का उद्देश्य है तब हम कहते हैं कि परीक्षा तर्क-सगत वैधता है। किसी भी विषय का शिक्षण माध्यमिक स्तर पर क्यों किया जाता है? क्योंकि उस विषय के शिक्षण से कुछ प्रयोजनों की सिद्धि होती है। बस ये प्रयोजन ही उस विषय के शिक्षण के प्राप्य उद्देश्य है। उदाहरणार्थ नागरिकशास्त्र के शिक्षण का एक उद्देश्य है नागरिक-शास्त्र के तथ्यों और सिद्धान्तों से छात्रों को परिचित कराना। इस उद्देश्य से शिक्षक बालकों को न्यायपालिका, विधानमण्डल, पचायत, लोकमत, शासन के प्रकार आदि उप विषयों की जानकारी देता है। अब यदि नागरिकशास्त्र के शिक्षण के फलस्वरूप ज्ञान सम्बन्धी उद्देश्य की पूर्ति हो सकी है तो छात्र निम्नलिखित तरीकों से आचरण परिवर्तनों का प्रदर्शन करेगा।

(i) उपयुक्त तथ्यो को चुन सकता है।
(ii) तथ्यों और सिद्धान्तो के बीच अन्तर बता सकता है।
(iii) नागरिकशास्त्र के तथ्यों के आधार पर विवेचन कर सकता है।
(iv) किसी मुख्य प्रत्यय की जानकारी रखता है।
आदि आदि

यदि कोई परीक्षा इन आचरण परिवर्तनों का परीक्षण कर सकती है तो वह शुद्ध वैध अथवा तन्मापी है अन्यथा नहीं। तन्मापी परीक्षा के एक प्रश्न को उदाहरण के रूप में नीचे दिया जाता है। उप विषय है प्रजातन्त्र। वह कक्षा जिसके लिये यह प्रश्न तैयार किया गया है ८ वीं कक्षा है।

प्रश्न—प्रजातन्त्रात्मक शासन प्रणाली की विशेषताओं के बारे में कुछ कथन नीचे दिये जाते हैं। यदि कोई कथन प्रजातन्त्र के सामान्य विचार की पुष्टि करता हो तो उस कथन के सामने 'अ' लिख दो किन्तु यदि वह कथन विरोध मे जाता है तो 'ब' लिखो और यदि उस कथन का प्रजातन्त्रात्मक शासन से कोई सम्बन्ध ही न हो तो 'स' लिखो।

(१) सभी मनुष्य सभी प्रकार से समान नहीं होते इसलिये जनतन्त्रात्मक विचारधारा अप्राकृतिक है।
(२) प्रजातन्त्रात्मक शासन जनता के प्रति उत्तरदायी होता है।
(३) प्रजातन्त्रात्मक शासन किसी गुट मे नही पडता।
(४) एक उदार तानाशाह भी प्रजातन्त्रीय शासन व्यवस्था कायम कर सकता है।

तर्क सगत वैधता का माप के लिये कोई भी तरीका नहीं बनाया जा सकता। यह मालूम करने के लिये कि कोई परीक्षा कितनी वैध है उसको कई योग्य तथा अनुभवी व्यक्तियों को दिखाया जाता है, उनसे सम्मतियाँ ली जाती हैं कि वह परीक्षा उन आचरण परिवर्तनों का मापन करती है अथवा नहीं तभी उस परीक्षा को तर्क सगत ढग से तन्मापी माना जाता है।

सक्षेप मे किसी परीक्षा की तन्मापिता दो प्रकार की होती है :—

(अ) अनुभवजन्य (Empirical or statistical)
(आ) तार्किक (logical)

मनोमिति पर लिखी गई कुछ पाठ्यपुस्तकों मे कई और तरह की तन्मापिताओं का उल्लेख मिलता है जैसे पाठ्य विषय सम्बन्धी तन्मापिता (Curricular Validity) और भविष्य कथन सम्बन्धी तन्मापिता (Predictive Validity)। किसी सापल्य परीक्षा (Achievement Test) की शुद्धि इस बात पर भी निर्भर रहती है कि परीक्षा किस सीमा तक पाठ्यक्रम सम्बन्धी दृष्टिकोण को ध्यान मे रखकर बनाई गई है। ऐसी परीक्षा को तैयार करने वालों का प्रयत्न यह

रहता है कि पाठ्यपुस्तकों को भिन्न-भिन्न संस्थाओं की रिपोर्टों और परीक्षण विशेषज्ञों के निर्देशनों को ध्यान में रखकर ही परीक्षा का निर्माण किया जाय। इस प्रकार परीक्षा में शुद्धता लाने का प्रयास किया जाता है।

यदि कोई परीक्षा किसी योग्यता के सम्बन्ध में सफल भविष्यवाणी कर सकती है तब भी वह शुद्ध मानी जा सकती है। यदि कक्षा ७ में प्रथम श्रेणी में आने वाला विद्यार्थी एक वर्ष बाद कक्षा ८ में होने पर पुनः प्रथम श्रेणी में आता है तो कक्षा ७ में ली गई परीक्षा भविष्य कथन सम्बन्धी वैधता (Predictive Validity) रखेगी।

इस प्रकार किसी परीक्षा की वैधता, शुद्धता, या तन्मापिता निम्न प्रकार की होती है :

(१) अनुभव वैधता (Empirical Validity)
(२) तर्कसगत वैधता (Logical Validity)
(३) पाठ्य विषय सम्बन्धी वैधता (Curricular Validity)
(४) भविष्यकथन सम्बन्धी वैधता (Predictive Validity)

यदि कोई परीक्षा किसी ऐसी परीक्षा से अधिक सहसम्बन्धित होती है जिसकी वैधता ज्ञात है तो यह कहा जाता है कि यह पहली परीक्षा में अनुभवजन्य वैधता वर्तमान है। दूसरी परीक्षा मानदण्ड का कार्य करती है। विद्यालयों में पढ़ाये जाने वाले विषयों की परीक्षाओं की अनुभवजन्य वैधता निकालने के लिये हम लोग शिक्षकों द्वारा दिये गये अकों को मानदण्ड मान लिया करते हैं। परन्तु विद्यार्थियों को शिक्षकों द्वारा दिये गये अक प्राय असन्तोषजनक होते हैं क्योंकि उन अकों पर कई तत्वों का अवाछनीय प्रभाव पड़ता है जिनका परीक्षा के ध्येय से कोई सम्बन्ध नहीं होता। इस प्रकार के अकों पर विद्यार्थियों की सफलता, कक्षा में उपस्थिति, कक्षा में व्यवहार, कार्य करने की विधि, सामान्य मानसिक योग्यता आदि का भी प्रभाव पड़ता है। फलत यह कसौटी दोषपूर्ण हो जाती है।

किसी साफल्य परीक्षा की शुद्धता इस बात पर भी निर्भर रहती है कि वह किस सीमा तक पाठ्यक्रम विषय सम्बन्धी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर बनाई गई है। यदि ऐसा है तो परीक्षा में पाठ्यविषय सम्बन्धी वैधता है। परीक्षा की शुद्धता के लिये परीक्षा निर्माता पाठ्य-पुस्तकों, भिन्न-भिन्न संस्थाओं की रिपोर्टों, परीक्षा विशेषज्ञों के मार्ग निर्देशनों को ध्यान में रखकर परीक्षा का निर्माण करते हैं। इस प्रकार परीक्षा करने में तन्मापिता अथवा शुद्धता लाने का प्रयत्न किया जाता है।

Q 4. What do you mean by objectivity of a test? How will you measure objectivity of a given test?

Ans - यदि किसी परीक्षा की उत्तर-पुस्तिकाओं को जांचने पर दो परीक्षकों के द्वारा दिए गये अकों में विशेष अन्तर न हो अर्थात् यदि वे अक आपस में सहसम्बन्धित होते हैं तो उन परीक्षकों के जांचने की रीति व्यक्ति निरपेक्ष (objective) मानी जायगी। यदि उनकी अकन [illegible]

इस प्रकार उनके मूल्याकन में व्यक्तिनिष्ठता आ जायगी। यह मूल्याकन व्यक्ति के भाव (mood) पर निर्भर होने के कारण व्यक्तिनिरपेक्ष नहीं माना जा सकता। व्यक्तिनिष्ठ होने के कारण वह परिशुद्ध सगत और विश्वस्त नहीं हो सकता क्योंकि गुण अथवा स्वभाव का मापन जितना ही अधिक व्यक्तिनिरपेक्ष होगा उतना ही अधिक वह परिशुद्ध, सगत एव विश्वसनीय होगा। यही कारण है कि व्यक्ति निरपेक्ष परीक्षायें या परीक्षण विधियाँ अधिक विश्वस्त (reliable) हुआ करती हैं। किन्तु वर्ग श्रेणियों में ([illegible]
कारण विश्वसनता (reliability) [illegible]
विधियों के अत्यन्त व्यक्तिनिरपेक्ष [illegible]
शुद्ध होने हैं।

निबन्धात्मक [illegible] की [illegible] उनकी मूल्याकन विधि का होना है। परीक्षक को जैसा [illegible] न किया करता है। फलस्वरूप

भिन्न-भिन्न परीक्षक एक उत्तरपुस्तिका का मूल्यांकन भिन्न-भिन्न प्रकार से करते हैं। इसी कारण किसी एक उत्तर को एक परीक्षक प्रथम श्रेणी के अंक देता है तो दूसरा द्वितीय या तृतीय श्रेणी के। परीक्षकों की शारीरिक एवं मानसिक अवस्थाओं का भी अंकनविधि पर विशेष प्रभाव पड़ता है। इन सब कारणों से निबन्धात्मक परीक्षायें प्रातीतिक या व्यक्तिनिष्ठ हो जाया करती हैं। किन्तु परीक्षा की प्रातीतिकता अथवा व्यक्तिनिरपेक्ष सापेक्ष पद हैं। कोई भी प्रामाणिक परीक्षा का निर्माता कितना ही प्रयत्न क्यों न करे परीक्षा में से प्रातीतिकता के अंश का पूर्णत अन्त नहीं कर सकता।

यदि हम चाहते हैं कि परीक्षक के व्यक्तिगत निर्णय का प्रभाव उसके मूल्यांकन पर न पड़े तो परीक्षा के प्रश्नों का स्वरूप ऐसा होवे कि जितने भी परीक्षक किसी भी उत्तरपुस्तिका को देखें तो एक ही अंक दें। इस कार्य में परीक्षण कुन्जी (scoring key) विशेष सहायता प्रदान करती है। इसका कार्य मूल्यांकन के स्तर को एक सा बना देना है।

व्यक्ति निरपेक्ष गुणक—कोई परीक्षा किस सीमा तक व्यक्ति निरपेक्ष मानी जा सकती है इसका मापन भी सांख्यिकीय ढंग से किया जाता है। किसी कक्षा के विद्यार्थियों की उत्तर-पुस्तिकाओं को दो भिन्न-भिन्न परीक्षकों के द्वारा जँचवाये जाने पर जो दो अंक सूचियाँ मिलती हैं उनके बीच सहसम्बन्ध गुणक व्यक्ति निरपेक्ष गुणक कहा जाता है।

निबन्धात्मक परीक्षाओं के खिलाफ जो आवाज चारों तरफ उठाई जा रही है उसका कारण यह है कि उनका मूल्यांकन आत्मगत होता है। निबन्धात्मक प्रश्नों के उत्तरों पर भिन्न-भिन्न परीक्षक भिन्न-भिन्न अंक देते हैं। परीक्षक की शारीरिक और मानसिक अवस्था में उनके हाव भाव, आदि सभी बातें मूल्यांकन क[illegible] उत्तरपुस्तिकाओं को जाँचता जाता है उसकी मनोवृत्ति [illegible] एक ही उत्तरपुस्तिका देखने समय [illegible] परीक्षार्थी के दिमाग में ठीक विचार [illegible] यदि यही उत्तरपुस्तिका जाँचने [illegible] परिवर्तन हो जाता है और परीक्षक कहता है "अरे इसने तो कुछ लिखा ही नहीं नम्बर [illegible] पर दिये जायें" यह कहते हुये उस उत्तर को काट देता है। निबन्धात्मक परीक्षाओं में परीक्षक की मनोवृत्ति, हावभाव आदि में परिवर्तन होने के कारण मूल्यांकन दोषयुक्त हो जाता है।

यदि परीक्षा को विश्वस्त और न्याय्य बनाना है तो प्रश्न पूछने और उत्तर जाँचने में परिवर्तन करना होगा। उत्तरपुस्तिकाओं के मूल्यांकन में प्रातीतिकता को कम करने या दूर करने के लिये ऐसे प्रश्न तैयार किये जाते हैं जिनका उत्तर संक्षिप्त रूप में (एक शब्द या सही के निशान से) दिया जा सकता है। मान लीजिए हमें छठवीं कक्षा के छात्रों की फसलों को काटने और बोने के समय के विषय में जानकारी की जाँच करनी है। यदि हम उनको निम्नलिखित प्रश्न दें—

'अपने प्रान्त की सभी फसलों के बोने और काटने के समय में जो आप जानते हों लिखिये'।

तो एक ही छात्र की उत्तरपुस्तिका का मूल्यांकन दो या दो से अधिक परीक्षकों द्वारा भिन्न-भिन्न प्रकार से किया जायगा। इसी विषय वस्तु की जानकारी परीक्षण निम्नलिखित प्रश्नों से किया जाय तो दो या दो से अधिक परीक्षकों के मूल्यांकन में कोई अन्तर नहीं होगा।

प्रश्न—नीचे कुछ ऋतुओं के नाम दिये जाते हैं भिंडिया जिस ऋतु में पैदा होता है उस ऋतु के सामने सही का निशान लगाओ। अनुमान मत लगाओ।

(१) मानसून
(२) वर्षा
(३) जाड़ा
(४) गर्मी

ऐसे प्रश्नों का उत्तर सही के संकेत से अथवा एक दो शब्दों में दिया जाता है इसलिये परीक्षक के हावभाव या मनोवृत्ति का उनके मूल्यांकन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। इस प्रकार के प्रश्न जिनके उत्तरों के मूल्यांकन पर व्यक्ति के हावभाव का कोई असर न पड़े व्यक्ति निरपेक्ष (objective) प्रश्न कहलाते हैं। ऐसे प्रश्नों के भेद और उदाहरण आगे दिये जायेंगे।

जो परीक्षाएँ व्यक्ति निरपेक्ष नहीं होती वे विश्वस्त भी नहीं होती । अत परीक्षा की विश्वसनीयता उसकी व्यक्तिनिरपेक्ष (objectivity) या व्यक्तिनिष्ठा (subjectivity) पर निर्भर रहती है ।

यहाँ पर यह याद रखना चाहिये कि व्यक्तिनिरपेक्ष अथवा व्यक्तिनिष्ठा परीक्षा के रूप पर निर्भर नहीं होती । निबन्धात्मक परीक्षायें भी व्यक्तिनिरपेक्ष बनाई जा सकती हैं और नवीन प्रकार की परीक्षाएँ भी व्यक्तिनिष्ठ हो सकती है । यदि निबन्धात्मक परीक्षाओं के प्रश्न बनाने और उत्तरों के जांचने में परिवर्तन कर दिया जाय तो वे भी उतना ही व्यक्तिनिरपेक्ष हो सकती हैं जितनी कि नवीन प्रकार की परीक्षायें होती है ।

यदि हम चाहते हैं कि परीक्षक के व्यक्तिगत निर्णय परीक्षा के मूल्यांकन को किसी प्रकार प्रभावित न करे तो हमें प्रश्नों का स्वरूप ऐसा बनाना होगा कि जितने भी परीक्षक उत्तर-पुस्तिका का मूल्यांकन करें वे सभी एक से ही अंक दें । मूल्यांकन के कार्य में सहायता देने के लिए उत्तर की एक कुञ्जी छापी जाय और सभी परीक्षक इसी कुञ्जी की सहायता से अंक दें ।

व्यक्ति निरपेक्ष परीक्षा प्रश्नों के रूप—यदि परीक्षा को पूरी तरह से व्यक्ति निरपेक्ष बनाना हो तो सोच समझकर बनाये गये निम्न प्रकार के प्रश्न व्यक्ति निरपेक्ष होते हैं —

(अ) सत्य असत्य परीक्षा
(आ) पूर्ति परीक्षा
(इ) बहुवरण परीक्षा
(ई) उत्तर मिलाने वाली परीक्षा

इन परीक्षाओं के एक-एक उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

१. सत्य असत्य परीक्षा

यदि नीचे दिया गया कथन सही हो तो 'स' के चारों ओर और यदि वह असत्य हो तो 'अ' के चारों ओर घेरा खींचो ।

स अ नगरपालिका की व्यवस्था में मेयर को कोई अधिकार नहीं होता ।

२ वाक्य पूर्ति परीक्षा

राम के विपक्ष में मुन्शिफ ने फैसला दिया है । राम को इसकी अपील करनी है ।
राम ''''' '' ''न्यायाधीश के यहाँ अपील कर सकता है ।

३ वरण परीक्षा

नीचे जो कथन दिया गया है उसकी पूर्ति जिस कथन से हो सके उसके आगे सही का निशान लगाओ ।

—(अ) न तो दक्षिण पश्चिम मानसून और उत्तर पूर्वी मानसून ही इस रेगिस्तान से गुजरते हैं ।
—(आ) दक्षिण पश्चिमी मानसून जो अरब सागर से आते हैं किसी पहाड़ के न होने के कारण पानी नहीं बरसाते ।
—(इ) उत्तर पूर्वी मानसून जो इस रेगिस्तान से गुजरते हैं सूखे होते हैं और रेगिस्तान को सूखा बना देते हैं ।
—(ई) बंगाल की खाड़ी से उठे हुये मानसून यहाँ तक आते-आते अपनी सारी नमी पहले ही गिरा देने के कारण यहाँ पानी नहीं बरसा सकते ।

४ उत्तर मिलाने वाली परीक्षा

उत्तर प्रदेश की कुछ फसलों के नाम और उनके काटने के समय नीचे दिये गये हैं जो फसल जिस समय काटी जाती हो समय के सामने रिक्त स्थान में उस फसल के अक्षर को लिखकर सूचित कीजिए ।

अ ब
—~) -- काटने का समय
अक्टूबर—

(ग)　अलसी　　　　　　　　　अप्रैल—
(घ)　उरद　　　　　　　　　मार्च—
(ङ)　कपास　　　　　　　　सितम्बर—
(च)　गेहूँ
(छ)　चावल

Q. 5. What do you mean by a comprehensive test ? How far is sampling adequacy a criterion for a good test ?

Ans. परीक्षा का व्यापकत्व—निबन्धात्मक परीक्षाओं में जितने भी प्रश्न चुने जाते हैं वे सम्पूर्ण पाठ्यक्रम का प्रतिनिधित्व नहीं करते। फल यह होता है कि सम्पूर्ण विषय का आधा भी ज्ञान इन परीक्षाओं से मापा नहीं जा सकता। ये परीक्षायें समय भी अधिक लेती हैं और ज्ञान राशि का बहुत कम अंश माप सकती हैं। इन परीक्षाओं में जितने प्रश्न दिये जाते हैं उनमें से कुछ प्रश्नों को ही छात्रों को हल करना होता है। थोड़े से प्रश्नों वाली ये परीक्षायें अधिक प्रश्नों वाली परीक्षाओं से कम विश्वसनीय होती हैं। किसी परीक्षा में जितने ही अधिक प्रश्न होते हैं परीक्षा उतनी ही विश्वसनीय हो सकती है।

उत्तम परीक्षाओं में प्रश्नों का चुनाव इस प्रकार किया जाता है कि प्रत्येक महत्वपूर्ण उपविषय से बानगी के प्रश्न इसमें ले लिए जाते हैं। यदि किसी परीक्षा से यह जाँच करनी है कि छात्र किन-किन गणितिक सिद्धान्तों, प्रत्ययों अथवा प्रक्रियाओं की जानकारी रखता है तो उन सभी सिद्धान्तों, प्रत्ययों और प्रक्रियाओं से नागरिक के रूप में प्रश्न चुनने होंगे। ये प्रश्न सम्पूर्ण विषय क्षेत्र का निरूपण करने वाले होने चाहिए। यदि ऐसा नहीं है तो निम्नलिखित विषम परिस्थिति उत्पन्न हो सकती है।

मान लीजिये दो विद्यार्थियों को 'अ' और 'ब' बीजगणित की एक परीक्षा दी जाती है। जिसमें १० उपविषय हैं। अ ने सम्पूर्ण विषय का पूरी तरह से सम्पादन किया है केवल एक उपविषय को छोड़कर किन्तु ब ने एक दो चुने हुये विषय का ही अध्ययन किया है, "इन दोनों छात्रों को बीजगणित की जो परीक्षा दी जाती है उसमें केवल दो प्रश्न हैं। 'अ' ने जिस उपविषय को छोड़ दिया था उस पर एक प्रश्न पूछा गया है। 'ब' ने जिस उपविषय को तैयार किया था उस पर भाग्यवश प्रश्न पूछ लिया गया है। यद्यपि 'अ' 'ब' से ६ गुना अधिक ज्ञान रखता है फिर भी दोनों छात्र ५०% अंक प्राप्त करते हैं। ऐसी परीक्षायें जिनमें प्रश्नों की बानगी उपयुक्त नहीं होती छात्रों के लिये न्याय्य नहीं होती क्योंकि जिस विद्यार्थी ने जिस प्रश्न को छोड़ दिया था वही प्रश्न परीक्षा में पूछ लिया गया है। दूसरे विद्यार्थी के लिए भी परीक्षा न्याय्य नहीं है क्योंकि उसका तुक्का लग गया है। वास्तव में उसे असफल होना चाहिए था किन्तु ५०% अंक पाने पर वह सफल घोषित किया जा सकता है।'

शिक्षा के क्षेत्र में यदि इस प्रकार की जुआ बाजी बन्द करनी है तो परीक्षाओं को अधिक प्रतिनिधायी और व्यापक बनाना होगा। दो प्रश्नों की अपेक्षा कई प्रश्न पूछने होंगे। उदाहरण के लिए यदि १० प्रश्न प्रश्नपत्र में रखे जाते तो 'अ' को ६०% और 'ब' को १०% अंक मिलते यह परीक्षा अधिक न्याय्य होती क्योंकि प्रत्येक छात्र को उसके प्रयत्नों के अनुकूल फल मिलता।

अब प्रश्न उठ सकता है कि परीक्षा में कितने प्रश्न, और अधिक रखे जा सकते हैं। यदि प्रत्येक उप विषय पर दो दो प्रश्न पूछे जाते तो 'अ' को फिर भी ६०% और ब को १०% अंक मिलते। इसका अर्थ यह है कि परीक्षा की लम्बाई आवश्यकता से अधिक बड़ी कर देने पर छात्रों के मूल्यांकन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। कभी कभी किसी परीक्षा में प्रश्नों की संख्या आवश्यकता से कम होने पर भी वह उपयोगी हो सकती है। एक शयनिक मनोविद के हाथ में १०-१५ प्रश्न वाली बुद्धि परीक्षा उसके लिये उपयोगी होगी और १५ से अधिक प्रश्न वाली परीक्षा कम उपयोगी।

कुछ प्रमापीकृत परीक्षाएँ लघुकाय और दीर्घकाय दोनों ही रूपों में तैयार की जाती हैं। दीर्घकाय परीक्षा का प्रयोग उस अवस्था में होता है जिस अवस्था में परीक्षक के पास परीक्षा लेने के लिए समय होता है। किन्तु लघुकाय परीक्षा भी जिसके प्रश्नों का चुनाव इस प्रकार किया गया है कि वह सम्पूर्ण विषय वस्तु का निरूपण करती है, अधिक न्याय्य और विश्वसनीय होती है।

Q 6 How can a test be made more usable ?

Ans जब तक कोई परीक्षा व्यवहार में लाने योग्य न हो तब तक उसकी उपयोगिता ही क्या होती है ? यदि कोई परीक्षा परीक्षक का अधिक समय लेती है, राष्ट्र की धनराशि का व्यर्थ विनाश करती है, तो वह परीक्षा उपयोगी नहीं मानी जा सकती भले ही वह पूर्णतया शुद्धता मापी और विश्वस्त क्यों न हो। फिज़ीकल बैलेन्स (Physical balance) से कौन व्यापारी अनाज तौलेगा ? परीक्षा की उपयोगिता और श्रेष्ठता उसकी व्यवहार गम्यता पर निर्भर रहती है ।

किसी परीक्षा को व्यवहार्य बनाने के लिये उसमें निम्नलिखित विशेषतायें होनी चाहिये :—

(१) परीक्षा तैयार करने की लागत की उपयुक्तता ।
(२) परीक्षा लेने की सुविधा ।
(३) अंकन की सुविधा ।
(४) परीक्षा फल की व्याख्या की सुविधा ।

भारत जैसे निर्धन देश के लिये कम लागत की प्रमापीकृत परीक्षाओं के तैयार करने की आवश्यकता है। यदि एक एक प्रमापीकृत परीक्षा के तैयार करने में सरकार छः छः हजार रुपया तो केवल एक अन्वेषण सहायक पर खर्च करे और फिर भी उसकी कोई उपयोगिता नहीं तो इसके बराबर शैक्षिक भ्रष्टाचार क्या हो सकता है ? देश की एक बड़ी सम्मानित प्रशिक्षण संस्था को गणित में निष्पन्न परीक्षायें कक्षा ८ के छात्रों के लिये तैयार करने के लिये हजारों रुपया दिया जाता है, हो सकता है वह परीक्षा पूर्ण विश्वस्त हो, शुद्ध और तन्मापी हो किन्तु क्या उस संस्था की पड़ौसी संस्थायें अथवा माध्यमिक विद्यालय उस परीक्षा का कभी उपयोग कर सकते हैं। अल्मारियों में बन्द उन परीक्षाओं की प्रतिलिपियों के ऊपर सेर सेर धूल चढ़ी हुई है। क्यों ? वह चीज सामान्य शिक्षक के लिये नहीं है। है न ? उत्तर मिलता है उस परीक्षा को प्रयोग करने की शिक्षा महाविद्यालय ने अनुमति नहीं दी है।

परीक्षा प्रयोजन किया गया है किन्तु वह भी गलत क्योंकि उसमें Answer sheets अलग से नहीं दी जाती। फल यह होता है कि एक प्रतिलिपि को एक से अधिक छात्र प्रयोग नहीं कर सकता ।

परीक्षा की श्रेष्ठता उसकी लागू करने की सुविधा पर भी निर्भर रहती है। परीक्षा देने के आदेशों की जटिलता, परीक्षा पत्रों को समझने की कठिनाई, आदि बातें परीक्षा के मूल्य को गिरा देती हैं। बीने की बुद्धि परीक्षा सबसे अधिक तन्मापी बुद्धि परीक्षा मानी जाती है किन्तु उसको देने के लिये कुशल परीक्षकों की आवश्यकता पड़ती है। एक ही छात्र की बुद्धि का मापन कई घंटों के परिश्रम के बाद सम्भव हो पाता है। इस प्रकार परीक्षा लेने की असुविधा उसको अव्यवहारगम्य बना देती है। जिन परीक्षाओं की कुंजियाँ (Scoring keys) सरल, स्पष्ट और सूक्ष्म नहीं होतीं उनका अंकन करना असुविधाजनक हो जाता है। अंकन की सुविधा न केवल कुंजी (Scoring key) पर ही निर्भर रहती है वरन् उत्तरों को एक स्तम्भ में अंकित अथवा मशीन द्वारा उत्तरों का मूल्यांकन कर सकने की सम्भावना पर भी निर्भर रहती है।

यदि परीक्षा को अध्यापक के लिये उपयोगी बनाना है तो उसकी उसकी हस्त पुस्तिका (manual) अवश्य दी जानी चाहिये। हस्तपुस्तिका परीक्षा फल की व्याख्या में विशेष सहायक होती है इसलिये उसमें निम्नांकित बातें होनी चाहिये —

(१) परीक्षा के प्रयोजनों, विशेष बातों तथा लाभों का उसमें उल्लेख हो।
(२) परीक्षा किस प्रकार प्रमापित की गई है, इसका वर्णन हो ताकि अध्यापक यह समझ सके कि परीक्षा में कितना विश्वास करना है ।
(३) परीक्षा देने के उसमें स्पष्ट, सूक्ष्म और पूर्ण आदेशों का उल्लेख हो, परीक्षा में कुल कितना समय लगाना है अथवा भिन्न भिन्न परीक्षाओं में कितना कितना समय लगाना है इसका संकेत अवश्य हो।
(४) उत्तर पुस्तिकाओं का अंकन तरीका सरल होने पर भी इस तरीके को स्पष्ट शब्दों में हस्त पुस्तिका में लिख दिया जाए।

(४) प्रश्न की व्याख्या करने के तरीके का भी उल्लेख किया जाय।
(५) परीक्षा व [illegible] दोनों के [illegible] निर्देश [illegible] प्रदान किया जाय।

Q. 7 On what various factors does the reliability of a test depend?

Ans किसी परीक्षा की विश्वसनीयता उसकी यथार्थता (validity), वस्तुनिष्ठता (objectivity) और व्यापकता (comprehensiveness) पर निर्भर रहती है।

विश्वसनीयता और यथार्थता यदि कोई परीक्षा यथार्थ है तो उसमें विश्वसनीयता अवश्य हो सकती है किन्तु यदि वह केवल विश्वसनीय है तो यथार्थ नहीं हो सकती। जो परीक्षा केवल उसी वस्तु का मापन करती है जिसके मापन के लिए उसका निर्माण हुआ है तो वह निश्चय उसी वस्तु का मापन करती रहेगी। पर एक पूर्ण यथार्थ परीक्षा विश्वसनीय हो सकती है किन्तु यदि वह केवल विश्वसनीय ही है अर्थात उसको किसी विद्यार्थी वर्ग को बार बार दिये जाने पर प्राप्तांक-श्रेणियों में ऊँचा सहसम्बन्ध गुणांक उपलब्ध होता है तो यह निश्चय नहीं कि वह उसी उद्देश्य का मापन भी करती जिसके मापन के लिए उसका निर्माण हुआ है। इसलिये विश्वसनीय होने पर भी कोई परीक्षा यथार्थ नहीं हो सकती। विश्वसनीयता यथार्थता का एक अनन्य अंग है यथार्थता से अलग विश्वसनीयता की कोई सत्ता नहीं।

विश्वसनीयता और व्यक्तिनिष्ठता—जो बातें, चाहे वे परीक्षक में हों या परीक्षार्थी में, समय समय पर बदलती रहती है वे किसी भी परीक्षा की विश्वसनीयता को प्रभावित कर सकती है। जिन प्रश्नों का मूल्यन परीक्षक के भाव, उसकी शारीरिक अथवा मानसिक स्थिति, अथवा अन्य प्रासंगिक बातों पर निर्भर रहता है वे प्रश्न बहुधा व्यक्तिनिष्ठता के शिकार हो जाते हैं। भिन्न भिन्न अवसरों पर एक ही प्रश्न कभी सही और कभी गलत (score) कर दिया जाता है। परीक्षार्थी भी किसी एक प्रश्न पत्र को एक समय गम्भीरतापूर्वक और उसी प्रश्न पत्र को दूसरे समय उदासीनतापूर्वक हल कर सकता है अत उसके अङ्क उसके निष्पन्न का सच्चा मापन नहीं कर सकते।

विश्वसनीयता और व्यापकत्व—किसी परीक्षा की विश्वसनीयता उसकी व्यापकता पर भी निर्भर रहती है। मापन में अशुद्धि के आने के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं—

१ प्रश्नों की बानगी का ठीक-ठीक चयन न होना
२ प्रश्नों का प्रतिनिध्यात्मक न होना
३ प्रश्नों का अति सरल या अति कठिन होना

इन कारणों के अतिरिक्त यदि परीक्षा में व्यापकत्व की कमी हुई तब भी वह कम विश्वस्त हो जायगी। यदि कोई परीक्षा विद्यार्थियों द्वारा अर्जित ज्ञान के सम्पूर्ण अशों, दक्षताओं एवं तथ्यों का परीक्षण न कर सकी तो वह व्यापक नहीं मानी जा सकती। किसी विषय का कोई प्रश्नपत्र उसी दशा में पर्याप्त माना जा सकता है जब उसमें समस्त उपविषयों की बानगियाँ (samples) मौजूद हों। जब तक प्रश्नों की संख्या पर्याप्त नहीं होगी परीक्षा विश्वस्त नहीं मानी जाती। अत किसी परीक्षा की व्यापकता उसकी विश्वसनीयता की एक अवस्था (condition) है।

Q 8 What do you understand by the term 'discriminative value of a test'? Discuss the procedure to analyse a test item

Ans यदि कोई परीक्षा अच्छे और बुरे विद्यार्थियों में अन्तर बतला सके तो वह विभेदकारी कहलाती है। परीक्षिका में विभेदकारिता की यह शक्ति उसके प्रत्येक प्रश्न (item) की विभेदकारिता पर निर्भर रहती है। यदि किसी प्रश्न को सब परीक्षार्थी सही हल कर सकें तो वह प्रश्न उनकी योग्यता या निष्पादन में अन्तर की सूचना नहीं दे सकेगा। और वह प्रश्न निष्पादन में अन्तर की सूचना दे सकता है जिसे कमजोर विद्यार्थी हल कर ले किन्तु चतुर विद्यार्थी उसे हल करने में असमर्थ रहें। यदि कमजोर विद्यार्थी उसे हल कर सकें तो वह प्रश्न सदिग्ध होने के कारण विभेदकारी नहीं कहा जा सकता। किसी प्रश्न (item) की विभेदकारिणी शक्ति का अन्दाजा लगाने के लिए परीक्षक उत्तरपुस्तिकाओं को प्राप्तांकों के अनुसार तुलनात्मक वर्गों में विभाजित करता है। प्रत्येक वर्ग की उत्तर पुस्तिकाओं में उत्तरों को मिलाना और प्रश्न में प्रत्येक वर्ग के कितने % बालकों ने उस प्रश्न को सही किया है उस प्रतिशत की तुलनात्मक

व्याख्या करता है। Item analysis की यह प्रक्रिया किस प्रकार की जाती है उसका उल्लेख नीचे किया जायगा।

किसी प्रस्तावित परीक्षा के पहिले प्रारूप को काफी बड़े विद्यार्थी समूह पर लागू करने पर जिन विद्यार्थियों के प्राप्तांक काफी ऊँचे होते हैं उनको उच्च वर्ग में और जिनके प्राप्तांक बहुत कम होते हैं उनको निकृष्ट वर्ग में रखा जाता है। उच्च वर्ग में २५% एव निकृष्ट वर्ग में २५ प्रतिशत और शेष ५०% मध्य वर्ग में रखे जाते हैं। केवल उच्च और निकृष्ट वर्ग के विद्यार्थियों के प्रश्नों (items) का विश्लेषण किया जाता है। प्रत्येक प्रश्न दोनों वर्गों के कितने विद्यार्थियों ने सही हल किया, कितनों ने उसे गलत हल किया और कितनों ने उसे छोड़ दिया, इसकी सूचना इकट्ठी कर ली जाती है। मान लीजिए कि १ प्रश्न के उत्तरों का विश्लेषण करने पर निम्नलिखित सूचना मिली.

प्रश्न	उच्च वर्ग २५%				निकृष्ट वर्ग २५%		
	सही	गलत	छोड़ा		सही	गलत	छोड़ा
१	७	१०	८		९	१२	४

उच्च वर्ग के ७% विद्यार्थियों ने तथा निकृष्ट वर्ग के ९% विद्यार्थियों ने उसे सही हल किया है। अब प्रश्न यह है कि क्या इन दो प्रतिशतों में अन्तर अर्थसूचक है? अन्तर की अर्थसूचकता की गणना करने के लिए चरमनिष्पत्ति (C. R.) निकाली जाती है।

$$CR = \frac{p_1 - p_2}{\sqrt{\frac{p_1 q_1}{n_1} + \frac{p_2 q_2}{n_2}}}$$

p_1 और p_2 प्रश्न को सही करने वाले प्रथम और निकृष्ट श्रेणियों के विद्यार्थियों का अनुपात है, q_1 और p_2 प्रश्न को सही न करने वाले व्यक्तियों का अनुपात है। n_1 और n_2 दोनों वर्गों के विद्यार्थियों की सख्या है। पहली item के लिए C. R. का मान इन राशियों के मान को रख कर निकाला जा सकता है :

$$CR = \frac{.३६ - .२८}{\sqrt{\frac{.३६ \times .६४}{२५} + \frac{.२८ \times .७२}{२५}}}$$

$$= .६\sqrt{\frac{.०८ \times ५}{१२०}} = \frac{.४}{.६ \times ११} = \frac{४}{.६६} < १$$

∵ C R का मान २.९६ से कम है अत प्रश्न p_1 और p_2 का अन्तर महत्वशील नहीं है। अत प्रश्न १ विभेदकारी नहीं है। ऐसे प्रश्नों को पहले try out के बाद प्रस्तावित परीक्षा से अलग कर दिया जाता है अथवा उसकी भाषा को बदल कर सदिग्धता को दूर करने का प्रयत्न किया जाता है।

अध्याय २

निष्पन्न परीक्षाएँ

(Achievement Tests)

Q 1 What are the different types of teacher made tests ? What two most important things should a teacher keep in mind before preparing such tests ?

Ans कोई भी अध्यापक अपने विद्यार्थियों की जाँच करने अथवा कक्षा की कठिनाइयों का ज्ञान प्राप्त करने, अथवा अपनी पाठन विधि की सार्थकता एवं प्रभावशालीनता का पता लगाने, अथवा विद्यार्थी को अभिप्रेरित करने के लिए जिन परीक्षाओं का निर्माण किया करता है उनको हम दो भागों में बाँट सकते हैं —

१—निष्पन्न परीक्षाएँ (achievement tests)
२—नैदानिक परीक्षाएँ (diagnostic tests)

निष्पन्न परीक्षाओं के दो रूप होते हैं :—परम्परागत निबन्धात्मक परीक्षाएँ तथा नवीन प्रकार की निरपेक्ष (objective) परीक्षाएँ। निष्पन्न परीक्षाएँ बालक के सापेक्षिक निष्पादन (achievement) का पता लगाती हैं और नैदानिक परीक्षाएँ उसके कठिनाई के स्थलों का। निष्पादन परीक्षायें (achievement tests) केवल इस बात का ज्ञान देती हैं कि विद्यार्थी किसी विषय में कितना ज्ञान प्राप्त कर चुका है। अतः इनको ज्ञान परीक्षा भी कहते हैं। वे विद्यार्थी के निश्चित विषय क्षेत्र में सफलता का मूल्यांकन भी करती हैं अतः उन्हें कुछ महानुभाव साफल्य परीक्षायें भी कहते हैं।

साफल्य अथवा निष्पन्न परीक्षा के परीक्षाफलों के आधार पर कक्षा के विद्यार्थियों की कक्षा में अनुस्थिति (rank) ज्ञात की जा सकती है। इस परीक्षा में बालक द्वारा प्राप्त अंक उसकी स्थिति का ज्ञान करा सकते हैं। कभी कभी हम प्राप्तांकों के अनुसार बालकों को श्रेणियों में भी विभाजित कर दिया करते हैं। ३३% से कम अंक पाने वाले विद्यार्थी को प्रायः असफल तथा ३३% से ४५% तक अंक पाने वाले विद्यार्थी को तृतीय श्रेणी का और ४५% से ६०% तक पाने वाले विद्यार्थी को द्वितीय श्रेणी में डाल दिया करते हैं। इस प्रकार का श्रेणी-विभाजन अत्यधिक दोषपूर्ण है।

विद्यालय के किसी भी विषय में निष्पन्न परीक्षा तैयार करने से पूर्व अध्यापक को दो बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए

(१) क्या मापन करना है ? (What to measure ?)
(२) किस प्रकार का मापन करना है ? (How to measure ?)

अतः किसी भी विषय में परीक्षा तैयार करने के पूर्व हमें यह सोचना होगा कि हमको किस बात का मापन करना है। किसी भी विषय को पढ़ाना प्रारम्भ करने से पूर्व हम अपने उद्देश्यों को निश्चित कर लिया करते हैं। उदाहरण के लिये गणित पढ़ाने वाला अध्यापक विद्यार्थियों को गणित सम्बन्धी प्रत्ययों या तथ्यों (concepts) का ज्ञान देना चाहता है, बालकों में जीवन में काम आने वाली बातों के लिये तैयार करना चाहता है और वह यह भी चाहता

है, कि उसके बालक शीघ्रतापूर्वक प्रश्नों का सही सही उत्तर निकाल सकें। इस प्रकार उसके तीन उद्देश्य होते हैं —

(१) ज्ञान (Knowledge)
(२) दक्षता (Skill)
(३) प्रयोग (Application)

इसी प्रकार रसायन-विज्ञान का शिक्षक बालकों को सिद्धान्तों एवं तथ्यों का ज्ञान देना चाहता है। पारिभाषिक शब्दों से उनको अवगत कराना चाहता है। किसी रासायनिक क्रिया को समीकरण के रूप में प्रकट करने की दक्षता पैदा करना चाहता है, साथ ही वह यह भी चाहता है कि बालक रासायनिक सिद्धान्तों को दैनिक जीवन में प्रयोग भी कर सकें। इस प्रकार प्रत्येक विषय के पढ़ाने के लिए कुछ निश्चित उद्देश्य होते हैं। यदि उन उद्देश्यों की प्राप्ति हो सकी है तो कहाँ तक इसका ज्ञान हमें परीक्षाफलों से मिल सकता है। अतएव हम उस विषय में परीक्षा की आवश्यकता का अनुभव करते हैं।

क्या मापन करना है? इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिये हमें तीन निम्नलिखित क्रियायें करनी पड़ती हैं —

(१) अपने विषय में अध्यापन के उद्देश्यों को निर्धारित करना।

(२) पाठ्यक्रम का विश्लेषण करना, यह जानने के लिये कि कहाँ तक हमारे उद्देश्य पाठ्यक्रम से सम्बन्धित हैं।

(३) विद्यार्थी के निष्पादन (achievement) को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक प्राप्य उद्देश्य की व्याख्या करना। किसी उद्देश्य की पूर्ति में विद्यार्थी के व्यवहार में क्या परिवर्तन हुआ है या हो सकता है यह निश्चित करना।

कैसे मापन करना है, इस प्रश्न का उत्तर हमें तभी मिल सकता है जब हम यह जान लें कि मापन यन्त्र की विशेषताएँ क्या होनी हैं और उनको किस प्रकार बनाया जाता है ताकि उसके द्वारा सही और शुद्ध मापन किया जा सके।

किसी भी मापन यन्त्र की निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं—

(१) मापन यन्त्र या परीक्षा सत्यमापी होनी चाहिए अर्थात् यह उसी वस्तु का मापन करे जिसके मापन के लिए उसका निर्माण किया जा रहा है। उदाहरणार्थ यदि कोई परीक्षा प्रयोग (application) के मापन के लिये बनाई जाय किन्तु दक्षता (skill) का मापन करे तो वह परीक्षा सत्यमापी (Valid) नहीं मानी जायगी।

(२) परीक्षा विश्वसनीय हो अर्थात् जितने बार वह परीक्षा किसी विद्यार्थी समूह को दी जाय उतने बार उनके परीक्षाफलों में ऊँचा सहसम्बन्ध हो।

(३) परीक्षा व्यक्ति विशेष (परीक्षक) के हाव-भाव से प्रभावित न हो, वह जहाँ तक हो सके व्यक्ति निरपेक्ष (objective) हो।

(४) परीक्षा ऐसी हो जो सम्पूर्ण विषय क्षेत्र के ज्ञान का मापन करती हो अर्थात् वह व्यापक (comprehensive) हो

(५) परीक्षा में यह गुण भी हो कि वह अच्छे विद्यार्थियों को बुरे विद्यार्थियों में से चुन सके अर्थात् उसमें विभेदकारिता (discrimination power) भी हो।

(६) परीक्षा व्यवहारगम्य हो।

ऐसी परीक्षा का निर्माण किस प्रकार किया जाय इसके लिए कुछ विशेष बातों का ध्यान रखना जरूरी है—

(१) परीक्षा के प्रश्न संदिग्ध (ambiguous) न हों। प्रत्येक प्रश्न किसी न किसी उद्देश्य का मापन करता हो।

(२) प्रत्येक प्रश्न में हल करने के आदेश सही और पूर्ण हों। भाषा की भूलें और अशुद्धियाँ परीक्षा की विश्वसनीयता या सत्यमापिता को प्रभावित कर सकती है।

और सामान्य निष्पन्न में कोई अन्तर नहीं है। लेकिन विशिष्ट निष्पन्न परीक्षाएँ जो किसी विशिष्ट क्षेत्र में बालकों के निष्पादन का मापन करती हैं सामान्य अभियोग्यता परीक्षाओं से भिन्न होती हैं क्योंकि ये परीक्षाएँ विशिष्ट क्षेत्र जैसे गणित, इतिहास, भूगोल, समाज अध्ययन आदि विषयों में छात्रों द्वारा प्राप्त ज्ञान और कौशल का परीक्षण करती है और ऐसे ज्ञान और कौशल का परीक्षण करती है जो विशिष्ट प्रकार के प्रशिक्षण के फलस्वरूप बालकों को प्राप्त होता हो, ज्ञान का निष्पन्न अथवा निष्पादन होता कब है ? निष्पन्न होता है तीन दशाओं में :—

(अ) सीखने के अवसर मिलने पर
(आ) सीखने के लिये क्षमता होने पर
(इ) सीखने के लिये तत्परता होने पर

निष्पन्न परीक्षाएँ केवल इस बात का ही परीक्षण नहीं करती कि बालक ने किसी विशिष्ट क्षेत्र में कितना ज्ञान अथवा सफलता प्राप्त की है, वरन् ये ज्ञात बात की जाँच करती हैं कि सीखने वाला सीखने की कितनी क्षमता और तत्परता रखता है।

निष्पादन की विमायें (Dimensions of Achievement) क्या हैं ?

विद्यालय में विशिष्ट क्षेत्रों में प्रशिक्षण के फलस्वरूप छात्रों ने क्या-क्या उपार्जन किया है ? इस उपार्जन का आकार प्रकार कैसा है ? अर्थात् निष्पन्न की विमायें क्या है ? निष्पन्न परीक्षक के सामने सबसे पहला प्रश्न यही उठता है कि वह किस वस्तु का मापन करे। जिस प्रकार किसी आयताकार पिण्ड का मापन करने के लिये हम उसकी लम्बाई, चौडाई और ऊँचाई को नाप लेते है उसी प्रकार निष्पन्न का मापन करने के लिये हमें किन-किन चीजों का मापन करना है। उदाहरण के लिये यदि भूगोल में निष्पादन का मापन करना चाहते हैं तो हमें किन-किन बातों की जाँच करनी है ?

निम्न भिन्न विषयों में निष्पादन के तत्व निम्नलिखित हैं—

(१) कौन-कौन से प्रत्यय, तथ्य और नियम बालक ने सीख लिये हैं ?
(२) कितने तथ्य उसने सीखे है ?
(३) वह उन तथ्यों का सगठन कैसे करता है।
(४) वह कितने शब्द प्रति मिनट टाइप कर सकता है ?
(५) शब्दों की मौलिक लेखन में, अर्थ बताने में, वह कितनी गलतियाँ करता है।

इस प्रकार निष्पन्न की ६ विमायें (dimensions) मानी जाती है—

(१) प्रत्ययों, तथ्यों और नियमों का अभिज्ञान
(२) प्रत्ययों, तथ्यों और नियमों की सख्या
(३) प्रत्ययों, तथ्यों और नियमों का सगठन
(४) प्रत्ययों, तथ्यों और नियमों का समय
(५) प्रत्ययों, तथ्यों और नियमों का वेग
(६) प्रत्ययों, तथ्यों और नियमों की अशुद्धि

इन क्रियाओं का मापन कैसे हो ?

यदि हम निष्पादन का सफल मापन करना चाहते हैं तो हमें बालक की उन मानसिक प्रक्रियाओं को ध्यान में रखकर इसका मापन करना होगा जिनकी सहायता से उसने विशिष्ट ज्ञान अथवा कौशल का उपार्जन किया है। ज्ञान अथवा कौशल की प्राप्ति शिक्षक द्वारा व्याख्यान श्रवण अथवा पुस्तक पठन से नहीं होती वरन् इसके लिये बालक कुछ मानसिक प्रयत्न करता है।

उदाहरण के लिये समानान्तर रेखाओं के विचार को हृदयगम करने के लिये वह निम्न प्रकार के मानसिक प्रयत्न करता है—

(i) समानान्तर और असमानान्तर खिची हुई रेखाओं में अन्तर की पहचान करता है।
(ii) प्रकृति में समानान्तर रेखाओं के उदाहरण ढूँढता है।
(iii) समानान्तर रेखाओं की उपयुक्त परिभाषा दे सकता है।
(iv) समानान्तर रेखा की परिभाषाओं में त्रुटियाँ बता सकता है।

किसी भी विषय के ज्ञान को अर्जित करने से पूर्व वह उस विषय के प्रमुख प्रत्ययों, तथ्यों और सामान्य नियमों को सीखता है, उनको अपने अनुभव से सम्बद्ध करता है, नई परिस्थितियों में उनको प्रयुक्त करता है। इस प्रकार ज्ञान तथा कौशल की प्राप्ति और ज्ञान की प्रयुक्ति ये तीन प्रमुख उद्देश्य बन जाते हैं। उस विषय के शिक्षण के इन प्राप्य उद्देश्यों की विस्तृत व्याख्या [illegible] ने माध्यमिक विद्यालयों में पढ़ाये जाने वाले सभी विषयों के इस शिक्षण के लिये लिखी हुई पुस्तकों में की है। पाठक उन पुस्तकों को देखकर लाभान्वित हो सकते हैं।

Q 3. Discuss the Importance of Achievement Testing to a Teacher.

Ans. अति प्राचीन काल से शिक्षक और शिक्षालय का प्रथम उत्तरदायित्व अपने शिष्यों की निष्पत्ति का मूल्यांकन रहा है। प्रत्येक देश में छात्रों के विभिन्न विषय का ज्ञान तथा दक्षताओं का मापन अथवा मूल्यांकन करने की प्रथा सदियों से चल गई है। जैसे-जैसे शिक्षा के उद्देश्यों में संशोधन एवं परिवर्तन होता जा रहा है। वैसे-वैसे मापन और मूल्यांकन के विषय में विद्वानों के विचार भी बदलते जाते हैं, यद्यपि हम भारतीय अध्यापक पहले की तरह अब भी अपने छात्रों की शैक्षणिक प्रगति का मूल्यन करने के लिये कुछ परीक्षाओं का निर्माण करते और उन्हें अपने छात्रों पर लागू करते हैं फिर भी शिक्षा के उद्देश्यों में परिवर्तन के साथ-साथ मूल्यांकन और मापन के विचारों में परिवर्तन उपस्थित हो गया है। खेद की बात केवल इतनी है कि जब कि सभी समुन्नत देश अपने भावी नागरिकों की शिक्षा को अत्यन्त महत्वपूर्ण मानकर सभी तरह के मौलिक प्रयोगों में लगे हुए हैं हम भारतवासी या तो विदेशी पौधों को अपनी जलवायु में लगाने का प्रयास करते हैं या परम्परा से प्राप्त रूढ़ियों में इस प्रकार जकड़े हुए हैं कि हम प्राचीन बातों को छोड़ना पसन्द ही नहीं करते। उदाहरणार्थ अमरीका के प्रभाव में आकर बाहर से हमने शिक्षा के आधुनिक चरम उद्देश्यों को प्रधानता दे रखी है और भीतर से हमारी शिक्षा का ढाँचा ज्यों का त्यों बना हुआ है। हम परम्परागत परीक्षाओं को छोड़ना चाहते हैं जो हमारी शिक्षण विधियों और पाठ्यक्रमों की रूप रेखा निश्चित करती है। यदि हम शिक्षा के उन चरम उद्देश्यों को प्राप्त करना चाहते हैं जिनका उल्लेख मुदालियर कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में किया है तो हमें मूल्यांकन और मापन की नवीन विचारधारा को अपनाना होगा। संक्षेप में न केवल हमें ज्ञान और दक्षताओं का मापन ही करना होगा किन्तु उन योग्यताओं, अभिवृत्तियों, रुचियों के विकास का भी मूल्यांकन करना होगा जिनके विकसित होने पर माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति हो सकेगी। हमें प्रत्येक विषय के प्राप्य उद्देश्यों और आचरण परिवर्तनों को निश्चित करना होगा। यदि किसी वस्तु का मापन करना चाहते हैं तो उसकी विभाओं (dimensions) को स्थिर करना होगा निष्पन्न की विभायें क्या हो सकती हैं ? इसका ज्ञान प्राप्त करना होगा।

प्राप्य उद्देश्यों और आचरण परिवर्तनों को ध्यान में रखकर परीक्षण पदों का निर्माण करना होगा। उन परीक्षण पदों का प्रतिनिध्यात्मक न्यादर्श तैयार करना होगा जो छात्रों के निष्पन्न का यथा योग्य मापन कर सके। परीक्षाफलों की व्याख्या के आधार पर शिक्षण विधियों और पाठ्यक्रम का मूल्यांकन करना होगा।

निष्पन्न का मापन करने वाली इन परीक्षाओं के परीक्षाफलों से अध्यापक को ऐसी सामग्री मिल सकती है जिसके सहारे वह समस्त शिक्षण योजना का निर्माण कर सकता है। उदाहरण के लिये छात्रों का कक्षाओं में वर्गीकरण, उनका शैक्षिक तथा व्याख्या में मार्ग निर्देशन, शिक्षण विधियों का मूल्यन, सीखने के अनुभवों का विकास, उनकी आवश्यकताओं और क्षमताओं के अनुकूल पाठ्य वस्तु का चयन और संगठन, छात्रों की अयोग्यताओं और अशक्तताओं का निदान, उनकी सीखने में कठिनाइयों का निराकरण, औपचारिक शिक्षण आदि सभी कार्यों में इस सामग्री का प्रयोग वह कर सकता है। यदि इस सामग्री का प्रयोग करने में अध्यापक चतुराई से काम लेता है तो वह कई महत्वपूर्ण शैक्षणिक समस्याओं का निदान और हल कर सकेगा और शिक्षा के चरम उद्देश्यों की प्राप्ति की ओर अग्रसर हो सकेगा।

ऐसी निष्पन्न परीक्षाओं के निर्माण करने से पूर्व हमें जाँची जाने वाली विषय वस्तु का आलोचनात्मक विश्लेषण करना होगा। परीक्षण पदों का सफल चुनाव करना होगा और यदि निष्पन्न परीक्षा का प्रमापन करना पड़ा तो उसके प्रमाप भी निश्चित करने होंगे।

अभी हमारे देश में प्रमापीकृत निष्पन्न परीक्षाओं का आरम्भ भी नहीं हुआ है। डेव्सी ने कुछ प्रयास इस दिशा में किये हैं किन्तु जो कुछ प्रमापीकृत परीक्षायें तैयार की गई हैं वे सभी

दोष मुक्त है। उनका उपयोग न तो कोई शिक्षक अपने छात्रों के निष्पादन के परीक्षण के लिये कर सकता है और न कोई माध्यमिक शिक्षा परिषद ही उनको मान्यता देने के लिये तैयार है। उनकी उपयोगिता प्रदर्शिनी में रखी हुई लकड़ी बूची मूर्तियों की सी है। इससे अधिक और चिन्ता का विषय क्या हो सकता है कि जिस समय इंग्लैण्ड अमरीका में ऐसी कई प्रकार की निष्पन्न परीक्षा मालाओं तथा परीक्षाओं का निर्माण और प्रयोग हो रहा हो हमारे देश में उनका पूर्ण अभाव हो। अमरीका में प्रकाशित पत्रिकाओं, प्रकाशकों के सूची पत्रों और मानसिक मापन की वर्ष पुस्तकों का अवलोकन करने से आपको पता चलेगा कि प्रत्येक विषय पर उस देश में कितनी प्रमापित निष्पन्न परीक्षाओं का निर्माण हो चुका है। उदाहरण के लिये गणित की कुछ प्रमापीकृत निष्पन्न परीक्षाओं की सूची नीचे दी जाती है—

परीक्षा	कक्षा
(१) कैलीफोर्निया निष्पन्न परीक्षा माला (१६३३-५१)	कक्षा १ से कक्षा १४ तक
(२) सहकारी विद्यालय और महाविद्यालय योग्यता परीक्षाएँ	कक्षा १० से १४ के लिये
(३) आयोग आधारीय दक्षताओं की परीक्षा (१६४०-४१)	कक्षा ३—५ } के लिये ५—६ }
(४) आयोग की शैक्षणिक विवरण की परीक्षा	गणनात्मक चिन्तन (सामान्य गणित)
(५) मीट्रो पोलीटन निष्पन्न परीक्षाएँ (१६३१-५०)	कक्षा १ से ६ तक प्रत्येक कक्षा के लिये अलग-अलग उपपरीक्षण
(६) स्टैनफोर्ड निष्पन्न परीक्षा (१६५६)	प्रारम्भिक कक्षाओं के लिये परीक्षामालायें
(७) अंकगणित में म्यूनिसिपल बैटरी नेशनल निष्पन्न परीक्षा (१६३८-३६)	समस्या में, गणनात्मक प्रश्न कक्षा ३ से ८ के लिये
(८) सहकारी बीजगणित परीक्षा	हाईस्कूल के लिये
(६) गणित में व्यावहारिक परीक्षाएँ (समस्या १—६)	कक्षा ४ से ६ तक
(१०) यक्टन फर्स्टईयर बीजगणित परीक्षा	कक्षा ६ से १३ तक
(११) स्लैंडर अंकगणित परीक्षा	कक्षा ६—१३ तक

[illegible]

Q. 4. Describe the various steps in the construction of attainment tests.

Ans. परीक्षा निर्माण के मुख्य सिद्धान्त —

किसी परीक्षा के निर्माण की प्रक्रिया को निम्नलिखित चार पदों में विभाजित किया जा सकता है :—

(१) परीक्षा की योजना तैयार करना (Planning of the test)।
(२) परीक्षा की तैयारियाँ (Preparation of the test)।
(३) परीक्षा का लागू करना (Trying out of the test)।
(४) परीक्षाफल का मूल्यांकन एवं व्याख्या (Evaluation of the test results)।

परीक्षा का नियोजन

किसी भी सन्तोषजनक मापन-यन्त्र का निर्माण आसान कार्य नहीं है। इसके निर्माण में काफी शक्ति और समय व्यय होते हैं। लेकिन अध्यापक के पास समय, शक्ति और धन की कमी

की महत्ता पर अधिक ध्यान देना है और उसकी कठिनाई पर कम। प्रश्नपत्र के प्रारम्भिक प्रारूप में प्रश्नों की संख्या अन्तिम प्रारूप की अपेक्षा कुछ अधिक रखी जाती है, ताकि खराब प्रश्नों को प्रश्नपत्र से अलग किया जा सके। प्रश्नों को तैयार करने के कुछ समय बाद उनमे से आपत्तिजनक प्रश्नों को हटाने के लिए उनका संशोधन करना चाहिए। इस संशोधन का प्रयोजन भाषा के दोषों का दूरीकरण है। कभी-कभी प्रश्नों की भाषा प्रायः इतनी दूषित हो जाती है कि वे संदेहपूर्ण हो जाते हैं। वे एक से अधिक अर्थ देने लगते हैं। प्रश्नों के इन भिन्न-भिन्न अर्थों के लिए भिन्न-भिन्न उत्तरों के सही होने के कारण प्रश्नपत्र में अविश्वसनीयता पैदा हो जाती है। कभी-कभी प्रश्नों की भाषा में ऐसे सांकेतिक शब्द आ जाते हैं। जिनको हम specific determiners कह सकते हैं। इन शब्दों के पढ़ते ही प्रश्न का उत्तर निश्चित हो जाता है। प्रश्नों की भाषा पाठ्यपुस्तक की भाषा से जहाँ तक हो न मिले। यदि ऐसा किया गया तो विद्यार्थियों में रटने की आदत पड़ जायगी, जो शिक्षा का लक्ष्य नहीं है। प्रश्नों की भाषा न तो इतनी कठिन हो कि विद्यार्थी उन्हें समझ ही न सकें और न ऐसी हो कि प्रश्न पढ़ते ही उत्तरों का पता चल जाय।

आरम्भ में सरल प्रश्न रखने का एक और कारण यह है कि ऐसे प्रश्नों का विद्यार्थियों की मानसिक अवस्था पर स्वस्थ प्रभाव पड़ता है। इसके विपरीत यदि कठिन प्रश्न ही आरम्भ में रख दिए जायेंगे तो चतुर से चतुर विद्यार्थी भी उनके कठिन होने के कारण निराश हो सकता है। यदि प्रश्नपत्र के केवल अन्त में ही इन कठिन प्रश्नों को रखा जाय तो केवल योग्य विद्यार्थी उन तक पहुँच सकते हैं और उनको हल कर सकते हैं। ये प्रश्न विशेष योग्यता वाले अच्छे विद्यार्थियों के अन्तर को प्रदर्शित कर सकते हैं। यदि विद्यार्थियों को अपने उत्तर प्रश्नपत्र में ही अंकित करने हों तो इसमें उत्तरों के लिये सुविधाजनक स्थल निश्चित होना चाहिए। नवीन प्रकार का परीक्षा के प्रश्न-पत्रों में यह स्थान प्रश्न के दाईं अथवा बाईं ओर होता है। इस स्थान की दाईं ओर रखने में विद्यार्थी को उत्तर देने में सुविधा होती है, किन्तु बाईं ओर रखने से परीक्षक को मूल्यांकन में सहायता मिल जाती है। पूर्ति परीक्षाओं (completion test) में रिक्त स्थान यदि एक स्तम्भ में हुये तो अंकन सुविधाजनक हो जाता है और अशुद्धि की भी सम्भावना कम हो जाती है। बहुनिर्वाचन (multiple choice) परीक्षा में यह स्थल एक स्तम्भ में होने से परीक्षार्थी को भी सुविधा होती है, उसका उत्तर देने में कम समय व्यतीत होता है, और अंकन भी मशीन द्वारा किया जा सकता है।

विद्यार्थियों को प्रश्न हल करने के लिए जो आदेश दिये जायें वे इतने स्पष्ट, सूक्ष्म और पूर्ण हों कि कमजोर से कमजोर बालक भी यह समझ सके कि उसे क्या करना है, भले ही वह उनका सही उत्तर न दे सके। उसे बता दिया जाय कि उत्तरों को कहाँ और किस प्रकार लिखा जायगा। यदि विद्यार्थी ऐसे है कि उनको नवीन प्रकार की परीक्षाओं का कोई अनुभव नहीं है तो उन्हें कुछ ऐसे प्रश्न और उनके सही उत्तरों की बानगी दिखा देनी चाहिये जो उन्हें अन्य प्रश्न हल करने में सहायक हो सकें। इस कार्य में श्यामपट का प्रयोग भी लाभप्रद सिद्ध हो सकता है। जब विद्यार्थी आदेशों को भली प्रकार समझने लग जावें तो उन आदेशों को और भी सूक्ष्म किया जा सकता है। निम्नलिखित आदेश उदाहरण के लिए उन विद्यार्थियों को दिया जा सकता है जो प्रश्नों के इस रूप से अपरिचित हैं।

आदेश—नीचे भौतिक विज्ञान से कुछ कथन दिये जाते हैं। यह निश्चय करो कि वह सत्य हैं अथवा असत्य। दाईं ओर कथन के सामने एक खाली कोष्ठक बना दिया गया है। यदि कथन सत्य है तो कोष्ठक में 'स' और यदि कथन असत्य है तो 'अ' लिख दो। इस परीक्षा के लिए तुमको दस मिनट दिए जाते हैं। जितने प्रश्न तुम्हारे सही होंगे उस संख्या में से गलत प्रश्नों की संख्या घटाकर जो संख्या बचेगी वह तुम्हारा प्राप्तांक होगा। एक उदाहरण नीचे दिया जाता है उसका अध्ययन करो। कोष्ठक में सही-सही उत्तर लिख दिये गये हैं।

(i) सत्य तुला की दोनों भुजाएँ लम्बाई में बराबर और समरूप होती हैं। (स)
(ii) भाप का गुप्त ताप ८० कैलोरी होता है। (अ)

पहला कथन सत्य होने के कारण कोष्ठक में (स) और दूसरा कथन असत्य होने के कारण (अ) लिख दिया गया है। जब विद्यार्थी इस प्रकार की परीक्षाओं से परिचित हो जायें तो आदेश और भी सूक्ष्म किए जा सकते हैं।

प्राथमिक प्रारूप (First Draft) का विद्यार्थियों के किसी समूह पर लागू करना (Trying out)—किसी परीक्षा के प्राथमिक प्रारूप लागू करने का एकमात्र प्रयोजन अच्छे प्रश्नों का चुनाव है। इस कार्य के लिये जो परीक्षा दी जाती है वह बालकों को स्वाभाविक वातावरण में दी जानी चाहिए। जिस सन्तोष और सुविधा के साथ कोई विद्यार्थी किसी प्रश्न को अपने कमरे में बैठ कर हल कर सकता है उस सुविधा और सन्तोष के साथ अपरिचित कमरे में बैठ कर तथा परीक्षा के भय से डर कर नहीं कर सकता। अपनी कक्षा में ही प्रश्नपत्र के प्राथमिक रूप को हल करने के विरोध में कुछ लोगों का कहना है कि ऐसा करने से विद्यार्थियों में नकल करने की प्रवृत्ति बढ़ जायगी। इस नकल की प्रवृत्ति को रोकने के लिए विद्यार्थियों को कक्षा में काफी स्थान होने पर अलग-अलग बैठाया जा सकता है अथवा प्रश्नपत्रों को इस प्रकार बाँटा जा सकता है कि प्रश्नों के एक प्रकार को हल करने वाला विद्यार्थी उसी प्रकार प्रश्न को हल करने वाले विद्यार्थी के पास न बैठा हो। यह तभी सम्भव है जब प्रश्नपत्र में दो तीन प्रकार के प्रश्न हों और एक प्रकार के प्रश्न अलग-अलग कागजों पर छपे हुए हों।

परीक्षा को पहली बार लागू करने में समय की उदारता बरतनी चाहिए क्योंकि यदि ऐसा न किया गया तो बहुत से विद्यार्थी प्रश्न-पत्र के अन्तिम प्रश्नों को हल न कर सकेंगे जिनको वे यदि समय अधिक दिया जाता तो आसानी से हल कर सकते थे। लेकिन कितना समय दिया जाय यह परीक्षा के प्रयोजन, विद्यार्थी के अनुभव और उसकी योग्यता पर निर्भर रहता है। यदि परीक्षा का प्रयोजन विद्यार्थी की कमजोरी का पता लगाना है तो अधिक समय देना होगा। अधिक योग्यता वाले विद्यार्थियों को कम समय देने से भी काम चल सकता है। लिन्क्विस्ट के कहने के अनुसार प्रश्नपत्र के सारे प्रश्नों को हल करने में ७५% से ९०% विद्यार्थियों को जो समय लगता है वह आदर्श समय माना जा सकता है।

परीक्षाफलों की व्याख्या

उत्तरों के मूल्यांकन के विषय में यह कह देना काफी है कि अंकन प्रणाली इतनी सरल हो कि कोई भी व्यक्ति उत्तर पुस्तिकाओं को जाँच सके। प्रत्येक प्रश्न के लिए केवल एक अंक देने की पद्धति बहुत कुछ ठीक है। प्रश्नों को उनकी कठिनाई के अनुसार कम या अधिक अंक देने से अंकन विधि में जटिलता आ जाती है और लाभ भी कुछ नहीं होता। यदि सब प्रश्नों के अंक समान भी हों तब भी कक्षा के विद्यार्थियों का अनुस्थिति क्रम लगभग वही होगा जो उस समय होता जब कि भिन्न भिन्न प्रश्नों के लिए भिन्न भिन्न अंक दिये गये हों। प्रश्नपत्र के प्राथमिक प्रारूप में से दोषपूर्ण प्रश्नों के हटा देने पर जो रूप शेष रह जाता है वह प्रश्नपत्र का आदर्श प्रारूप (Final Draft) कहा जा सकता है। पूर्व पृष्ठों में परीक्षा के जिन गुणों का संकेत किया गया है, यदि वे गुण इस प्रारूप में आ सकें तो परीक्षा आदर्श हो जायगी। केवल ये ही परीक्षाएँ शिक्षण और परीक्षण में सहायक सिद्ध हो सकती हैं।

परीक्षक जिस परीक्षा में तन्मापिता, विश्वसनीयता और व्यवहारगम्यता न ला सका हो और जिस परीक्षा में ये गुण नहीं हों तो उस परीक्षा का संशोधन और परिवर्तन करना जरूरी है। किसी भी परीक्षा को कितनी सावधानी से क्यों न तैयार किया जाय यह मान लेना औचित्यपूर्ण नहीं होगा कि परीक्षा में यह गुण विद्यमान है ही। किसी परीक्षा की तन्मापिता (validity) केवल इस बात से ही निश्चित नहीं की जा सकती कि वह कितनी विभेदकारी (discriminatory) है। जो प्रश्न ऋणात्मक अथवा शून्य विभेदकारिता रखते हों उनको प्रश्नपत्र से हटा देना ही लाभदायक है। प्रश्नपत्र में प्रश्नों की कमी होने पर उनकी भाषा में परिवर्तन करके उन्हें तन्मापी (valid) बनाया जा सकता है। यदि परीक्षक परीक्षार्थियों से उन प्रश्नों की आलोचना भी करवा सके जिनको उन्होंने हल किया है तो यह आलोचना उन प्रश्नों के सुधार और परिवर्तन में विशेष सहायक सिद्ध होगी। स्वयं विद्यार्थियों से प्रश्नों व भाषा की त्रुटि आदि जैसे प्रश्नों के दोषों को पूछने से विद्यार्थियों में परीक्षण के प्रति अनुकूल अभिवृत्ति जागृत हो सकती है। यदि हो सके तो इस परीक्षाफल की तुलना किसी दूसरे परीक्षाफल से भी की जा सकती है। कभी कभी विद्यार्थियों को जो अनुस्थितियाँ इस परीक्षाफल के आधार पर मिली हैं उनको परीक्षा देने से पहले अध्यापक ने विद्यार्थियों को जो अनुस्थितियाँ दी थीं उनसे तुलना करने पर परीक्षा की तन्मापिता जाँच की जा सकती है। इस कार्य में अनुस्थिति सहसम्बन्धगुणांक अध्यापक को विशेष सहायता देगा। कभी-कभी अध्यापक को यह भी देखना पड़ता है कि उसकी परीक्षा विश्वसनीय है अथवा नहीं। अध्या-

पकों द्वारा निर्मित ग्ररीतिक (informal) परीक्षाओं के विश्वसनीयता गुणक परीक्षा के उत्तम या निकृष्ट होने की सूचना देते है। इन परीक्षाओं के विश्वसनीयता गुणक केवल अर्धविच्छेद पद्धति से ही निकाले जा सकते हैं। यदि परीक्षा मे आन्तरिक संगति है तो स्पीयरमैन, ब्राउन के सूत्र की सहायता मे विश्वसनीयता गुणक ही काफी ऊँचा होगा।

किसी विषय मे अरीतिक परीक्षा तैयार करने मे तीन काम करने पडते हैं—परीक्षा का नियोजन, परीक्षा का लागू करना और परीक्षाफल की जाँच। अन्तिम दो कामों को तो आदर्श प्रश्नपत्र तैयार करने लिए कई बार करना पडता है। प्रामाणिक परीक्षाएँ तैयार करने वाले सज्जन इन अन्तिम तीनों क्रियाओं को कम से कम दो बार करते हैं तभी उनकी परीक्षा प्रामाणिक हो पाती है। यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक अध्यापक इस अध्याय मे दिये गये सुझावों का पूरी तरह से पालन नहीं कर सकता किन्तु यदि वह एक वर्ष मे केवल एक ही प्रश्नपत्र के निर्माण का प्रयत्न करे तो *यह प्रश्नपत्र शिक्षक समाज के लिये एक मूल्यवान देन होगी।*

Q. 5 What principles govern the construction of an achievement test? Enumerate the precautions that you would observe.

Ans निष्पन्न परीक्षाएँ दो प्रकार की होती हैं—अध्यापक निर्मित और प्रमापीकृत। ये निष्पन्न परीक्षा किस प्रकार तैयार की जा सकती है इसके सामान्य सिद्धान्तों की जानकारी प्रत्येक अध्यापक को आवश्यक है। इसके तीन कारण हैं—

(१) व्युपरी परीक्षाएँ जिनका प्रयोग अध्यापक करता है वे पहले प्रकार की होती हैं और जिनका प्रयोग Vocational guidance officer करता है वे दोनों प्रकार की (प्रमापीकृत और अध्यापक निर्मित) होती हैं।

(२) ग्रबंधात्मक परीक्षाएँ जिनका प्रयोग अध्यापक करता है वे इतनी अधिक अविश्वस्त और अवैध हैं कि उनसे सभी को असन्तोष है साथ ही नवीन प्रकार की परीक्षाओं का प्रयोग करने मे भी वह दक्ष नहीं हैं।

(३) वैसे तो देश मे अभी तक प्रमापीकृत परीक्षाओं का निर्माण कम ही हुआ है फिर भी वे न तो उतनी अधिक प्रचलन मे हैं और न उतनी सन्तोष पूर्ण ही हैं।

इन सभी कारणों से प्रत्येक अध्यापक को निष्पन्न परीक्षाओं के निर्माण करने के सामान्य सिद्धान्तों की जानकारी आवश्यक प्रतीत होती है।

निष्पन्न परीक्षा तैयार करने की विधि—इन परीक्षाओं के तैयार करने की समग्र क्रिया को हम निम्नांकित चार पदों मे विभक्त कर सकते हैं—

(१) परीक्षा की योजना तैयार करना
(२) परीक्षा पदों का लिखना
(३) परीक्षण के पदों की उपयुक्तता, वैधता की जाँच करना
(४) परीक्षा का मूल्यांकन करना

परीक्षा की योजना तैयार करना—किसी भी विषय मे अच्छा अध्यापक का निर्माण काफी शक्ति और समय की अपेक्षा करता है। यह प्रश्नपत्र घण्टे दो घण्टे मे तैयार नहीं हो सकता *इसके लिए भिन्न-भिन्न परीक्षक पदों की आवश्यकता पड़ती है उनके सुझाव के लिये उसे वर्ष पर्यन्त* सचेत रहना पडता है। इसलिए यदि किसी भी विषय मे उत्तम प्रश्नों का निर्णय करना है तो या तो इसे व्यक्तिगत रूप से इस कार्य के लिए निरन्तर सचेत रहना होगा या किसी क्षेत्र के भी विद्यालयों के सभी अध्यापकों को इस कार्य मे सहयोग प्रदान करना होगा। यह कार्य इस प्रकार सम्भव है—

(i) प्रत्येक विद्यालय के सभी अध्यापकों मे अपने विषय के अध्यापन के प्राप्य उद्देश्यों का निर्धारण
(ii) एक केन्द्रीय संस्था द्वारा उनका चुनाव
(iii) प्रत्येक प्राप्य उद्देश्य की उनके specifications के पदों मे व्याख्या
(iv) परीक्षण पदों का निर्माण और उनका मूल्यांकन

किसी भी विषय में प्रश्न-पत्र की योजना बनाते समय तीन बातों का ध्यान रखना होगा

(i) प्राप्य उद्देश्य जिसका मापन करना है

(ii) प्रयोजन जिसके लिये परीक्षा तैयार करनी है

(iii) दशाएं जिनके अन्तर्गत परीक्षा देनी है

कोई परीक्षा विषय शिक्षक के प्राप्य उद्देश्य का मापन करती है या नहीं यह देखने के लिये उस विषय के प्रश्न का तैयार करने से पूर्व उसकी Table of specification या blue print तैयार कर ली जाती है। यह Blueprint निम्न प्रकार की होती है,—

Objects / Contents	Knowledge				Application				Skill			
Topics	Essay	Short Ans	Object		Essay	Short Ans	Objective		Essay	Objective	Short Ans	
T_1				5				3				0
T_2												
T_3												

इस blueprint की विशेषताएं हैं—

(१) विषय शिक्षण के सभी मुख्य परिमाणों (outcomes) के लिये उचित स्थान दिया जा सकता है।

(२) विषय वस्तु के विभिन्न अंशों पर कितना-कितना जोर देना है इसका स्केल मिल जाता है।

(३) प्रश्नों के रूप किस प्रकार के होंगे यह भी पता लग जाता है।

इनके अतिरिक्त परीक्षा की योजना बनाते समय उसके प्रयोजन को भी ध्यान में रखना आवश्यक होगा। यदि वह परीक्षा बालकों की कठिनाइयों के स्थलों की जानकारी प्राप्त करने के लिये ली जाती है तो उसका रूप उस परीक्षा से भिन्न होगा जो उनको कक्षोन्नति के लिये दी जाती है। पहली प्रकार की परीक्षा जिसे वैधानिक परीक्षा कहते है एक दो उपविषयों पर ली जायगी और उसमें details अधिक होंगी। दूसरी प्रकार की परीक्षा केवल बालकों के सामान्य निष्पन्न को नापने की कोशिश करेगी। वैधानिक परीक्षा में परीक्षण पदों की कठिनाइयों के स्तर अथवा उनकी विभेदकारिता उतनी महत्वपूर्ण नहीं होगी जितनी कि अन्य साफल्य परीक्षाओं में।

प्रश्न-पत्र की योजना तैयार करते समय अन्तिम और काफी महत्वपूर्ण बात है उन दशाओं की जानकारी प्राप्त करना जिनके अन्तर्गत वह दी जायगी।

ये दशाएं हैं—परीक्षण के लिये मिलने वाला समय, परीक्षा को पुनः लागू करने की सुविधा, परीक्षक को तैयार करने में लगने वाला खर्च, उन बालकों की आयु तथा योग्यता जोड़ लेंगे।

परीक्षा को तैयार कर लिखना—प्रश्न-पत्रों को बनाने से पूर्व निम्नलिखित सुझावों को ध्यान में रखना आवश्यक है।

(१) जैसे-जैसे किसी विषय का शिक्षण चल रहा हो वैसे-वैसे परीक्षण पदों को लिखते जाना। अतः प्रशिक्षण संस्थाओं का कर्तव्य है कि वे प्रशिक्षार्थियों से unit plan या daily plan बनाते समय इस बात की प्रेरणा देवें कि वे प्रतिदिन ऐसे परीक्षण पदों की रचना करती रहें जिनको परीक्षा में लिया जाना आवश्यक है। Unit plan और Daily Plan की रूप-रेखा नीचे दी जाती है।

Unit Plan :

Content	Objectives	Activities by the Teacher	Activity by the pupil	Teacher's Aids	Evaluate Process

Daily Plan

Content	*Objectives with Specification*	*Activiteis and Relative Specification*	*Method*	*Evaluation process, Types of Questions ... 3 and 4*

ऐसा करने से प्रश्न-पत्र मे कोई भी महत्वपूर्ण बात छूट न सकेगी ।

(२) प्रश्न-पत्र में एक से अधिक प्रकार के परीक्षण पदो का प्रयोग किया जाय। इसलिए Blue print में निबन्धात्मक, लघु उत्तर वाली तथा वैधानिक परीक्षण पदो का १ २ २ का अनुपात रखा गया है । एक से अधिक प्रकार के परीक्षण पदो के होने से परीक्षार्थी के लिए परीक्षा रुचिकर हो जाती है ।

(३) प्रश्न-पत्र मे बहुत से परीक्षण ऐसे हों जिनकी कठिनाई का स्तर ५० से अधिक न हो अर्थात् वह पद ऐसा हो जिसे ५०% ही कर सकें, सामान्य स्तर का बालक केवल ५०% अंक पावे ।

(४) प्रश्न-पत्र के प्रथम प्रारूप में (Preliminary draft) परीक्षण पदों की संख्या अन्तिम प्रारूप मे रक्खे जाने वाले परीक्षण पदो की अपेक्षा अधिक हो ताकि उनमे से खराब पदो को निकाला जा सके । खराब पद वे हैं जो विभेदकारी नही होते और जिनके कठिनाई का स्तर ० या १०० होता है अतः पहले प्रारूप में २५ से ४०% अधिक पद तैयार किये जायें ।

(५) परीक्षा बनाने के कुछ समय बाद उसका संशोधन किया जाय । संशोधन करते समय Blue print को ध्यान में रखा जाय । ऐसा करने से परीक्षा के प्रश्न पत्र की बहुत सी कमियाँ दृष्टिगोचर होने लगेंगी । परीक्षण पदो की भाषा संदिग्धात्मक हो सकती है, उनके उत्तर सम्भवतः वे नही मिल सकते जिसको परीक्षापत्र बनाने वालों ने सोच रखा है ।

(६) सभी परीक्षण पद जो एक प्रकार के हों एक खण्ड मे रखे जायें । Essay type एक खण्ड मे, short answer type दूसरे में और Objective test item तीसरे में । Objective test item में भी पूर्ति परीक्षा अन्य अन्य निर्वाचन परीक्षा पदों को अलग-अलग खण्डों मे ही रखा जाय ।

(७) परीक्षा पदों को उनकी कठिनाई के स्तर के अनुकूल सजाया जाय । अतः सरल पद पहले और कठिन पद बाद मे रखे जायें । इसका मनोवैज्ञानिक कारण है । कमजोर छात्र कठिन पद को पहले ही देखकर घबड़ा जायगा तथा निराश होकर प्रश्न-पत्र को छोड़ देगा । कठिन पद यदि परीक्षा के अन्त में आता है तो अधिक योग्य छात्र ही उस तक पहुँच पावेंगे । परीक्षण पदो की कठिनाई के स्तर का ठीक ठीक ज्ञान तो इस प्रश्न-पत्र के लागू करने के बाद ही लगाया जा सकता है किन्तु फिर भी Ad hoc difficulty value का अन्दाज लगा लिया जाय तो अच्छा है । परीक्षण के बाद मे संशोधन में यह कार्य अधिक अच्छे ढंग से किया जा सकता है ।

(८) Objective test Item मे निम्नांकित बातों पर ध्यान आवश्यक हो जाता :

(अ) Objective Test Item के उत्तरों में कोई विशेष क्रम न हो । छात्र ऐसे क्रम को तुरन्त पहचान लेता है उदाहरण के लिए यदि Multiple

(२) परीक्षा के लिये काफी समय दिया जाय। यदि बालको को निर्धारित समय से और भी अधिक समय की आवश्यकता हो तो उन्हे इतना समय अवश्य दिया जाय। कितना समय आवश्यक है यह तो बालको की योग्यता पर निर्भर रहेगा या परीक्षा के उद्देश्य पर। उदाहरण के लिये यदि परीक्षा का उद्देश्य है बालकों की कठिनाइयो के स्थलो की जाँच जैसा कि वैज्ञानिक परीक्षाओं मे होता है तो उन्हे सामान्य निष्पन्न परीक्षाओ से अधिक समय दिया जा सकता है यदि परीक्षा मे केवल ऐसे प्रश्न ही पूछे गये हैं जो बालको के ज्ञान का ही परीक्षण करते हैं उनकी उच्चतर मानसिक प्रक्रियाओ का परीक्षण नहीं ऐसे तो उसमे कम समय दिया जा सकता है। गिलफ्रिस्त के अनुसार उतना समय दिया जाय जितने समय मे कक्षा के ७५% से अधिक बालक सभी परीक्षण पदो को हल कर सकें।

(३) मूल्यांकन विधि अत्यन्त सरल हो।

(४) मूल्यांकन सरल करने से पूर्व scoring key तैयार कर ली जाय और मूल्यांकन के नियम निश्चित कर लिये जायें।

प्रश्न पत्र का मूल्यांकन (Evaluation of the test)

प्रश्नपत्र का मूल्यांकन दो बातो को ध्यान मे रखकर किया जाता है

(१) परीक्षा कितनी वैध, विश्वस्त, विभेदकारी या वैषयिक है अर्थात् छात्र मे आदर्श मापन यन्त्र की विशेषताएँ किस मात्रा तक वर्तमान हैं।

(२) परीक्षा देने वालों के उत्तरो का स्वरूप कैसा है अर्थात् विद्यालयो मे विषय का शिक्षण किस प्रकार चल रहा है। उत्तम प्रकार के प्रश्नपत्र ही यह सूचना विश्वस्त रूप से दे सकते हैं अत प्रश्नपत्र का मूल्यांकन उत्तम मापन से भावी कसौटियों को ध्यान मे रखकर ही किया जाना है।

Q 6 Explain the new type tests with suitable examples.

Ans. नवीन प्रकार की परीक्षाओं के मुख्य-मुख्य प्रकार नीचे चित्र मे दिखाए गए हैं
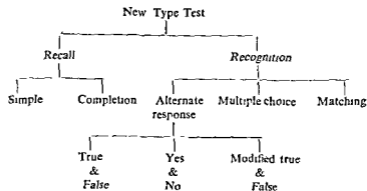
नवीन प्रकार की परीक्षाएँ (new type tests) दो मुख्य वर्गों मे बाँटी जा सकती है—प्रत्यानयन (recall) परीक्षायें तथा अभिज्ञान (recognition) परीक्षायें। प्रत्यानयन परीक्षाओ को दो उपवर्गों मे बाँटा जा सकता है—साधारण प्रत्यानयन (simple recall) और पूर्ति परीक्षा। अभिज्ञान (recognition) परीक्षायें तीन प्रकार की हो सकती हैं—वैकल्पिक उत्तर वाली परीक्षाएँ (alternate response), बहुवरण (multiple choice) परीक्षायें और उत्तर मिलाने वाली (matching type) परीक्षाएँ। परीक्षण क्षेत्र मे केवल इन परीक्षाओ का ही अधिक प्रचलन होता है। कुछ और ऐसी परीक्षायें भी हैं जिनका प्रचार कम हो गया है। अत उनका अध्ययन नहीं किया जायगा।

साधारण प्रत्यानयन परीक्षायें—इस प्रकार की परीक्षाओं मे सीधे प्रश्न पूछे जाते हैं और विद्यार्थियो को उनका उत्तर केवल एक शब्द अथवा संख्या मे लिखना पड़ता है। कभी-

कभी उस किसी पूर्ति को पूरा करना, या किसी चित्र को भरना या, एक शब्द में ही उसको लिखना पड़ता है। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी अपने दिमाग से [illegible] देता है। वह अपने उत्तर [illegible] नहीं चुनता कि [illegible] परीक्षक उसके सामने प्रस्तुत करता है। ऐसे प्रश्न निबन्धात्मक प्रश्नों से केवल उत्तर की लम्बाई के विचार से भिन्न होते हैं।

साधारण प्रत्यास्मरण (simple recall) परीक्षाओं के उदाहरण नीचे दिए जाते हैं।
उदाहरण १

नीचे ज्यामिति में प्रयोग आने वाले कुछ पद दिए जाते हैं। प्रत्येक पद की परिभाषा दिए हुए स्थान पर केवल एक वाक्य में लिखिए

(१) वृत्त ....
(२) [illegible] चतुर्भुज ....
(३) समानान्तर रेखा ....
(४) विषमबाहु त्रिभुज

उदाहरण २ नीचे लिखे हुए प्रश्नों का सही उत्तर खाली जगह में भरो।

(१) [illegible] किस इकाई में प्रगट किया जाता है? [ ]
(२) न्यूटन के बाद दो मुख्य आविष्कार क्या थे? [ ]

इन प्रश्नों में सदिग्धता न आने पाए इस प्रयोजन से केवल सीधे प्रश्न पूछे जायें। पाठ्य पुस्तक की भाषा के प्रश्नों को कम से कम स्थान दिया जाय। प्रश्न इस प्रकार शब्दबद्ध किए जायें कि उनका एक ही सही उत्तर हो सके। उत्तर देने के लिए खाली स्थान उतना ही छोड़ा जाय जितना कि आवश्यक है। यह खाली स्थान उत्तर-पुस्तिका के केवल दाईं या बाईं ओर एक स्तम्भ में ही रखा जाय।

सीधे प्रश्न विद्यार्थियों में ठीक ढंग से विषय को अध्ययन करने की आदत डालते हैं और यथासम्भव उनमें अनुमान लगाने की प्रवृत्ति को रोकते हैं। गणित और विज्ञान के प्रश्नपत्रों [illegible] ज्ञान का परीक्षण करने के लिये भी [illegible] भी तथ्यों की प्रधानता होती है। [illegible] उत्तरों का मूल्यांकन परीक्षक की आत्मनिष्ठता के कारण कठिन हो जाया करता है। यह असुविधा उस समय मूल्यांकन में आ जाती है जिस समय प्रश्नों के बनाने में पूरी सावधानी नहीं रखी जाती है और इस बात पर ध्यान नहीं दिया जाता कि प्रश्नों का उत्तर एक ही हो। दूसरा दोष इस प्रकार की परीक्षाओं में यह भी है कि इनके द्वारा बालक के अवबोधन (understanding) का पूरा परीक्षण नहीं हो पाता।

पूर्ति परीक्षायें (Completion type)—इस प्रकार के प्रश्नों में कोई शब्द या वाक्यांश छोड़ दिया जाता है। विद्यार्थी अपने प्रत्यानयन (recall) से इन रिक्त स्थानों को भरता है। प्रत्येक रिक्त स्थान के लिए एक एक अंक दिया जाता है। ऐसे प्रश्न बनाते समय परीक्षक के सामने निम्नलिखित तीन समस्यायें रहती हैं—(१) कथनों को किस प्रकार शब्दबद्ध किया जाय कि प्रत्याशित उत्तर मिल सके। (२) प्रत्याशित उत्तर पाने के साथ ही साथ किस प्रकार की भाषा लिखी जाय कि विद्यार्थियों को उत्तर का कोई संकेत ही न मिल सके। (३) इन प्रश्नों को किस प्रकार रक्खा जाय कि उनके उत्तरों का मूल्यांकन आसानी से हो सके। इन समस्याओं के हल में नवीन परीक्षकों की सहायता के लिए कुछ सुझाव नीचे दिए जाते हैं :—

(१) कथनों में किसी प्रकार की अनिश्चितता नहीं आनी चाहिए। निम्नलिखित कथन में रिक्त स्थान इस प्रकार छोड़ा गया है कि उसको कई प्रकार से भरा जा सकता है।

महात्मा गाधी .... में पैदा हुए थे। इस रिक्त स्थान में न जाने जन्म स्थान को भरना है अथवा जन्म तिथि को अथवा उस परिस्थिति को जिसमें गाधी जी का जन्म हुआ था।

भाषा के तनिक परिवर्तन से प्रश्न का उत्तर निश्चित किया जा सकता है। कभी कभी एक ही कथन में बहुत से प्रधान शब्दों को लुप्त कर देने से भी उत्तरों में अनिश्चितता आ जाती है और अर्थ अस्पष्ट हो जाता है जैसे :—

------मे------का भाग देने से---प्राप्त होता है। कथनो के इस प्रकार अपूर्ण होने से निहित अर्थ का आभास भी नही मिल सकता। इस प्रश्न को पढकर यह मालूम नहीं हो सकता कि यह प्रश्न साधारण भाग का है अथवा शैक्षणिक मापन अथवा मानसिक मापन का। इस प्रश्न को निम्न प्रकार से संशोधित किया जा सकता है—

वास्तविक आयु मे----का भाग देने से बुद्धि लब्धि प्राप्त होती है।

(२) यद्यपि बहुत से प्रधान शब्दो के लुप्तीकरण से कथन का अर्थ अस्पष्ट हो जाता है तब भी केवल एक या दो प्रधान शब्दो के लिए रिक्त स्थान छोड़ना चाहिए।

(३) रिक्त स्थानो की लम्बाइयां एक सी हो, नही तो रिक्त स्थान के छोटे और बड़े होने से विद्यार्थी को उत्तर का संकेत मिल सकता है। प्रत्याशित उत्तर की भाषा मे व्याकरण सम्बन्धी संकेत भी नही होने चाहिए।

(४) रिक्त स्थानो मे केवल एक ही उत्तर रक्खा जा सके इस ओर परीक्षक का ध्यान आकर्षित किया जा सकता है। यदि एक से अधिक शब्द उस रिक्त स्थान की पूर्ति के लिए आवश्यक प्रतीत हो तो उन सब को परीक्षण कुंजी मे लिख दिया जाय।

वैकल्पिक उत्तर वाली परीक्षायें—इस प्रकार की परीक्षा मे दिए गए प्रश्नो के दो सम्भव उत्तर हो सकते हैं। ये उत्तर हाँ या नही, सही या गलत, सत्य या असत्य, समान या असमान मे दिये जाते हैं। पाठ्यविषय के प्रत्येक अंग का परीक्षण थोड़े मे समय मे ही किया जा सकता है। उत्तरो के मूल्यांकन का पूर्ण निरपेक्ष होने के कारण ये प्रश्न आदर्श परीक्षा के अनुकूल होते हैं किन्तु अनुमान की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देने के कारण इन प्रश्नों के पूछने मे संशोधन और परिवर्तन कर दिया जाता है। कभी कभी इन प्रश्नो की संख्या बढाने और उन्हे सावधानी से तैयार करने मे परीक्षा अधिक विश्वसनीय बनाई जा सकती है। कुछ शिक्षाशास्त्रियों का यह सुझाव है कि ऐसे प्रश्न कम से कम ५० और अधिक से अधिक ७५ होने चाहिये। यदि ये प्रश्न शिक्षण कार्य मे प्रयोग किए जायें तो उनकी संख्या और भी कम रक्खी जा सकती है। किन्तु परीक्षण कार्य के लिए तो अधिक प्रश्नो का होना आवश्यक है। वैकल्पिक उत्तर वाले ये प्रश्न अरीतिक (Informal) परीक्षाओं मे रक्खे जा सकते हैं किन्तु प्रामाणिक (standard) परीक्षाओं से इनका एक प्रकार से बहिष्कार सा कर दिया गया है। इसका कारण यह है कि यद्यपि ५० से अधिक वैकल्पिक उत्तर वाले प्रश्न रखने से परीक्षा विश्वसनीय अवश्य हो जाती है, किन्तु परीक्षा लम्बी होने से अधिक व्यवहारगम्य नही रहती। इन प्रश्नो का प्रयोग प्रामाणिक परीक्षाओं मे केवल उन्ही स्थानो पर किया जाता है जहाँ पर दूसरी प्रकार के प्रश्न नही बन सकते।

वैकल्पिक परीक्षा के प्रश्नो के भिन्न-भिन्न रूपो के कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं :—

उदाहरण १—सत्य असत्य परीक्षा—नीचे कुछ कथन सत्य हैं और कुछ असत्य। यदि कथन सत्य हो तो दिए हुए कोष्टक मे '+' बनाइए और यदि असत्य हो तो '०' बनाइये। अनुमान न लगाइए क्योंकि ऐसा करने से प्रत्येक गलत उत्तर के लिए दो अंक तथा छोड़े हुए उत्तर के लिए केवल एक अंक काटा जायगा। नीचे दो प्रश्न आपके लिए हल कर दिए गए हैं —

१ (अ) कलकत्ता कर्क रेखा पर स्थित है। (०)
(ब) भारत का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम १८५७ मे हुआ था। (+)

उदाहरण २—**हाँ और ना परीक्षा** (Yes or No)—नीचे कुछ प्रश्न दिये जाते हैं। प्रत्येक प्रश्न को सावधानी से पढ़ो। यदि उत्तर हाँ मे हो तो खाली जगह मे 'हाँ' और यदि उत्तर नहीं मे हो तो 'न' लिख दो। अनुमान न लगाओ। दो प्रश्न आपके लिए हल कर दिये गये हैं।

क्या आप कुहरे मे स्पष्ट देख सकते हैं। (न)
क्या रुपया शिलिंग के बराबर होता है। (न)

उदाहरण ३—समान असमान परीक्षा (Same and opposite)—नीचे बाईं ओर शब्दो के कुछ जोड़ दिये गये हैं। यदि जोड़े के दोनों शब्द लगभग समान अर्थ वाले हो तो समान शब्दो के नीचे रेखा खींच दीजिए और यदि जोड़े के दोनों शब्द विरुद्ध अर्थ वाले हो तो असमान के नीचे रेखा खींच दीजिए। पहले दो प्रश्न आपके लिए हल कर दिए गये हैं।

Catch-hold [समान—असमान]
Sell-buy [समान—असमान]

उदाहरण ४- संशोधित सत्य असत्य परीक्षा (Modified True & False)—इस प्रकार की परीक्षा में विद्यार्थी को सत्य कथनों पर सही का निशान लगाने और असत्य कथन को शुद्ध बनाने वाले शब्द को रेखांकित करने तथा शब्द को बदलने के लिए आदेश दिया जाता है जिससे कथन सत्य हो जाए। कभी-कभी विद्यार्थी से कथन के सत्य अथवा असत्य होने का कारण भी पूछ लिया जाता है।

नीचे कुछ कथन दिए गए हैं उनमें से कुछ सत्य हैं और कुछ असत्य। यदि कथन सत्य है तो 'स' के आगे गोला और यदि असत्य है तो 'अ' के आगे गोला खींचिए। किन्तु इस हालत में उस शब्द को रेखांकित कीजिए जिसके कारण कथन में असत्यता आ जाती है किन्तु 'अ' के आगे उस शब्द को लिखना है जिसके कारण कथन सत्य हो जाता है। एक प्रश्न नीचे दिया गया है।

औरंगजेब की मृत्यु सन् १६०७ में हुई थी। (स) (अ) १६०७ में १७०७।

(अ) को घेरे में इसलिए बन्द कर दिया गया है क्योंकि कथन असत्य है और अ के आगे १६०७ लिख दिया गया है जिसके कारण कथन असत्य हो जाता है।

वैकल्पिक उत्तर वाले प्रश्नों के विषय में बहुधा यह कहा जाता है कि इनको बनाना बड़ा सरल होता है, किन्तु बात ऐसी नहीं है। कथन की भाषा ऐसी होनी चाहिये कि न तो उसका अर्थ ही अस्पष्ट हो और न अनावश्यक संकेत ही मिल सकें। इस कार्य में विशेष अनुभव और दक्षता की आवश्यकता होती है। इन प्रश्नों के बनाने के लिए कुछ सुझाव नीचे दिये जाते हैं :—

(१) जहाँ तक हो सके प्रश्न की भाषा में specific determiners न रखे जायें। ऐसे शब्दों के उदाहरण सदैव, कोई नहीं, कभी नहीं, कुछ, कभी-कभी आदि हैं। इनमें से कुछ शब्दों के कथन में आ जाने के कारण कथन सत्य और कुछ शब्दों के कारण असत्य हो जाता है।

(२) प्रश्न में पूछी हुई बात बिल्कुल स्पष्ट होनी चाहिये। यदि मुख्य बात वाक्य के अन्त में आती है तो परीक्षार्थी पर उसका स्वस्थ मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। नकारात्मक कथनों को जहाँ तक हो सके परीक्षा में न रखा जाय।

'बबूल की लकड़ी फर्नीचर बनाने के लिए अच्छी नहीं होती' के स्थान पर 'बबूल की लकड़ी फर्नीचर बनाने के लिये खराब होती है', कथन का यह रूप शायद विशेष प्रभावशाली होगा।

(३) कथनों में द्विअर्थात्मक शब्दों का प्रयोग भी नहीं करना चाहिये, क्योंकि भिन्न-भिन्न विद्यार्थी ऐसे कथनों के भिन्न-भिन्न अर्थ लगा सकते हैं। अपरिचित अथवा ठेठ साहित्यिक भाषा का प्रयोग भी इन कथनों में नहीं करना चाहिये क्योंकि प्रत्येक विद्यार्थी से यह आशा नहीं की जा सकती है कि वह उस भाषा को समझ सके। यदि विद्यार्थी उस कथन को समझ ही नहीं सकता तो उसका उत्तर ही क्या देगा।

(४) कथन इतना लम्बा भी न हो कि उसके भाव को समझने में कठिनाई पैदा हो। कभी-कभी साधारण अर्थ वाले शब्दों का प्रयोग कथन को अनिश्चित बना देता है।

शेरशाह सूरी की मृत्यु के थोड़े वर्ष बाद दिल्ली की गद्दी मुगल बादशाहों के हाथ में आ गयी। इस कथन में 'थोड़े' शब्द आने से कुछ अनिश्चितता सी आ जाती है। ऐसे कथनों की भाषा बदल देनी चाहिये।

(५) जिन स्थानों पर उत्तरों को लिखना है वे एक ही स्तम्भ में होने चाहिये।

बहुनिर्वाचन परीक्षायें (Multiple choice items)—इस प्रकार की परीक्षा के प्रश्न बहुधा पाँच उत्तर वाले होते हैं। इन पाँच उत्तरों में से केवल एक ही उत्तर बिल्कुल सही अथवा सर्वश्रेष्ठ होता है। प्रश्न कभी-कभी सीधे और कभी-कभी अधूरे कथन वाले होते हैं। लेकिन प्रत्येक दशा में कम से कम पाँच उत्तरों में से सही उत्तर का चुनाव करना पड़ता है। बहुनिर्वाचन परीक्षा के कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं :—

उदाहरण १—८४ फीट लम्बी किसी खेत की भुजा को कागज पर १०½" की एक रेखा द्वारा प्रदर्शित किया गया है। बताओ एक फीट बराबर कितने इंच ? इस प्रश्न के ५ सम्भव उत्तर नीचे दिये गये हैं। सही उत्तर का अक्षर कोष्ठक में लिख दिया गया है।

उत्तर अ १/३ (ब)
ब १/२
स १/५
द ३/४
य १/४

उदाहरण २—नीचे लिखे वाक्यों में एक स्थान छोड़ दिया गया है। उस स्थान की पूर्ति अ, ब, स, द, य, उत्तरों में से किसी एक से की जा सकती है। जो उत्तर सही हो उसे कथन के सामने कोष्टक में लिखिये।

सूरदास के पद पढ़ने में बहुत—लगते हैं

अ	ब	स	द	य
कटु	छोटे	बड़े	सरस	सरल

इस प्रकार की परीक्षा के प्रश्नों की लिनक्युस्ट ने काफी प्रशंसा की है। प्रामाणिक परीक्षाओं में से बहुवरण परीक्षा का विशेष प्रचलन होने के कई कारण हैं जिनमें से कुछ नीचे दिए जाते हैं।

(१) ये प्रश्न विद्यार्थी की निर्वाचन करने, दो या दो से अधिक वस्तुओं में अन्तर बतलाने और सीखी हुई वस्तुओं के ज्ञान को लागू करने की योग्यता की समुचित जाँच कर सकते हैं।

(२) इन प्रश्नों का मूल्यांकन मशीन द्वारा किया जा सकता है।

(३) बहुनिर्वाचन परीक्षाओं का प्रयोग न केवल निष्पन्न परीक्षाओं में ही किया जाता है किन्तु नैदानिक परीक्षाओं में इस प्रकार के प्रश्नों से अध्यापक गलत चुनावों को देकर विद्यार्थी की कमजोरियों का पता चला सकता है कि किसी विद्यार्थी ने कोई गलत उत्तर क्यों चुना। बाद में इसका उपचार किया जा सकता है।

(४) इस परीक्षा में अनुमान लगाने की प्रवृत्ति परीक्षाफल को उतना प्रभावित नहीं कर पाती जितना वैकल्पिक परीक्षाफल को।

यद्य बहुवरण परीक्षाएँ परीक्षण के लिए लाभदायक हैं किन्तु परीक्षक को इसके दोषों पर भी विशेष ध्यान देना चाहिये और उनसे प्रश्नपत्र को बचाने का प्रयत्न करना चाहिये। ऐसे प्रश्नों का प्रयोग उस दशा में कभी नहीं हो सकता जबकि केवल एक या दो ही उत्तर किसी प्रश्न के मिल सकते हैं। कभी-कभी ऐसे प्रश्नों का निर्माण करना कठिन हो जाता है। इस कमी से बचने के लिये परीक्षक बहुत ही बुरे या बहुत ही अच्छे उत्तर चुनने का आदेश दे सकता है। बहुवरण परीक्षा के कुछ और रूप हैं जिनके उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

(क) सम्बन्ध परीक्षा—नीचे शैक्षणिक मापन में प्रयोग आने वाले शब्द दिये जाते हैं। उनके सामने पाँच-पाँच ऐसे शब्द दिये गये हैं जिनका उनमें से एक से घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिस शब्द में घनिष्ठ सम्बन्ध आपको दिखाई दे उस शब्द को ढूँढ़ो और उसके सांकेतिक अक्षर को कोष्ठक में लिख दो। एक प्रश्न आपके लिए हल कर दिया गया है।

चतुर्थांश विचलन—(अ) मध्यांक मान, (अ)
(ब) मध्यमान
(स) ज्यामितीय मध्यमान
(द) हरात्मक मध्यमान
(य) भारित समानान्तर मध्यमान

(ख) सादृश्यवाची परीक्षा—नीचे लिखे प्रश्न के पहले दो भागों में सम्बन्ध निश्चित करो। इस सम्बन्ध को तीसरे और चौथे भाग में लागू करो। तीसरा भाग तो तुम्हें दिया गया है किन्तु चौथा भाग पाँच वस्तु अ, ब, स, द, य में से चुनना है। जिस वस्तु को चुनना है उसके सांकेतिक अक्षर को कोष्ठक में लिख दो। एक प्रश्न आपके लिए हल कर दिया गया है।

४ : २० :: १० : ? (अ) २० (ब) १६ (स) ८ (द) ५ (य) ३

टिप्पणी—इस प्रकार का प्रश्न गणित के समानुपात के रूप में होता है। विद्यार्थी प्रश्न के पहले दो भागों में सम्बन्ध ढूँढ़ कर उसी सम्बन्ध को तीसरे चौथे भाग में लागू करने की

[illegible] करता है। [illegible] किया जा सकता है। [illegible] के लिए एक और उदाहरण दिया जाता है।

[illegible] (३)

(अ) [illegible] (ब) [illegible] (स) [illegible]

प्रश्नों को मिलाने की परीक्षा (Matching type test) —इस परीक्षा में [illegible] सामग्रियाँ दी जाती हैं। एक सामग्री में इस प्रकार [illegible] होता है कि [illegible] स्थापित हो जाय। एक सूची में [illegible] दूसरी सूची में [illegible] मिलाना होता है। यह परीक्षा बहुचयन परीक्षा का एक रूप ही मानी जा सकती है। [illegible] परिवर्तन से बहुचयन परीक्षा को इस रूप में ही बदला जा सकता है।

उदाहरण —बाईं ओर नीचे स्तम्भ (१) में कुछ आकृतियों के नाम दिये गये हैं और दाहिनी ओर स्तम्भ (२) में उनके चित्र। चित्रों की संख्या उनके नामों से अधिक दी गई है। प्रत्येक नाम के सामने उस नाम से सम्बन्धित आकृति की संख्या [illegible] दिये हुए कोष्ठक में लिखनी है।

स्तम्भ १	स्तम्भ २	स्तम्भ ३
आकृतियों के नाम	आकृतियों के चित्र	उत्तर
(१) वर्ग	(१)	(१)
(२) अधिक कोण त्रिभुज	(२)	( )
(३) आयत	(३)	( )
(४) समकोण त्रिभुज	(४) Δ	( )
(५) समद्विबाहु त्रिभुज	(५)	( )
	(६)	( )
	(७)	

इस उदाहरण में दो वस्तुएँ दी गई हैं जिनमें [illegible] सम्बन्ध स्थापित किया गया है इस प्रकार की दो सम्बन्धित वस्तुएँ निम्न प्रकार की हो सकती हैं

(अ) घटना और तिथि
(ब) कार्य और कारण
(स) समस्या और उनके हल
(द) पारिभाषिक पद और उनकी परिभाषायें
(य) नियम और उनके उदाहरण
(फ) यन्त्र और उनका प्रयोग

Matching type की इस परीक्षा में एक दोष अवश्य है। इस परीक्षा से विद्यार्थी के अवबोधन का परीक्षण नहीं हो सकता क्योंकि सही उत्तरों में अनेक विद्यार्थियों को तिर जाया करते हैं। यदि इस प्रकार के प्रश्न सावधानी से न बनाये गये तो यह परीक्षा विद्यार्थियों का बहुत सा समय भी नष्ट कर सकती है। अतः इन दोषों से बचने के लिये कुछ सुझाव दिये जाते हैं।

(१) प्रत्येक परीक्षा में केवल एक ही प्रकार की सामग्री दी जाय। ऊपर जिन सामग्रियों का उल्लेख किया गया है उनकी मिलावट न की जाय। यहाँ का तात्पर्य यह है कि केवल एक स्तम्भ में घटनायें ही घटनायें दी जानी चाहिए और दूसरे में केवल तिथियाँ ही तिथियाँ।

(२) परीक्षा अधिक लम्बी न हो। जहाँ तक हो सके दोनों स्तम्भ एक ही पृष्ठ पर मुद्रित किए जाएँ इससे विद्यार्थी को उत्तर ढूँढ़ने में आसानी होगी।

(३) उत्तरों की सूची किसी विशेष क्रम से ही सजायी जाय। यदि उस सूची में तिथियाँ दी गयी हैं तो उनको अनुतिथि क्रम से रक्खा जाय; यदि उत्तरों में शब्द दिये गये हैं तो उनको वर्णक्रम से सजाया जाय।

(४) उत्तरों की सूची प्रश्नों की सूची से अधिक लम्बी हो क्योंकि यदि पाँच प्रश्नों के पाँच ही उत्तर दिये गये हैं तो चार उत्तर सही ढूँढने के बाद पाँचवें प्रश्न के उत्तर को ढूँढना

ही नहीं पड़ेगा। ऐसी परीक्षा में कम से कम पाँच प्रश्न और अधिक से अधिक १५ प्रश्न होने चाहिये।

Q 7. **Analyse the various abilities that the new type and old traditional type test are intended to measure separately.**

Ans शैक्षिक विषय वस्तु का मापन निम्न दो प्रकार की परीक्षाओं से होता है—

(अ) पहली प्रकार की ऐसी परीक्षाएँ होती हैं जिनमें व्यक्ति को उत्तर देने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है।

(ब) दूसरी प्रकार की ऐसी परीक्षाएँ होती हैं जिनमें व्यक्ति परीक्षक के निर्दिष्ट आदेशों के अनुसार उत्तर देता है।

पहले प्रकार की परीक्षाओं मे व्यक्ति किसी विषय पर निबंध लिखता है, अथवा किसी चित्र का निर्माण करता है, अथवा किसी ऐसे कार्य को पूरा करता है जिसमें वह स्वतंत्र होता है। इसमें वह अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन करता है पूर्ण रूप से स्वतंत्र होकर, व्यक्ति के निष्पन्न [illegible] होने के कारण परम्परागत [illegible] विधि से होता है किन्तु [illegible] न अथवा चार दशकों से उनका प्रयोग अवांछनीय माना जाने लगा है मुख्यतः उस समय से जब बैलार्ड (Ballard) का न्यू इक्जामिनर (New Examiner) प्रकाशित हुआ था। इस परीक्षण विधि को किस प्रकार अधिक विश्वस्त बनाया जा सकता है इसका उल्लेख आगे किया जायगा। दूसरी प्रकार की परीक्षण विधि मे जो अधिक विश्वस्त और वैध है व्यक्ति को उत्तर देने के लिये स्वतंत्रता नहीं दी जाती। इस प्रकार की परीक्षाएँ तकनीकीतौर से ऑबजैक्टिव टैस्ट (Object Tests) कहलाती हैं।

स्वतंत्र उत्तर वाली परीक्षाएँ (Free Response Items)—उन परीक्षाओं मे प्रयुक्त किये जाने वाले परीक्षण पदों के कुछ उदाहरण विभिन्न क्षेत्रों से नीचे दिये जाते हैं निष्पन्न (Achievement) के क्षेत्र से :

(१) उस आयत की लम्बाई और चौड़ाई निकालो जिसकी लम्बाई, चौड़ाई से १ फीट अधिक हो और जिसकी विकर्ण ५ फीट हो।

(२) अकबर को महान् क्यों कहते हैं ?

(३) अपनी बहिन के लिये फ्रोक तैयार करो।

(४) ६"×८" आकार का एक आलेखन तैयार करो जो साड़ी के बोर्डर के उपयुक्त हो।

निष्पादन के क्षेत्रों मे तो इन स्वतंत्र उत्तर वाले (Free Response Items) परीक्षण पदों का प्रयोग होता ही है अन्य क्षेत्रों मे भी ऐसे ही पदों का प्रयोग होता है। उदाहरणार्थ व्यक्तित्व परीक्षण मे भी ऐसे ही स्वतंत्र उत्तर वाले परीक्षण पदों का प्रयोग होता है। रोशा (Rorschach) का मसि चिन्ह परीक्षा (Ink Blot Tests) मे व्यक्ति को पूर्ण स्वतंत्रता होती है कि वह जैसा उत्तर देना चाहे दे। स्वतंत्र साहचर्य परीक्षण (Free Association Test) में भी व्यक्ति उद्बोधक शब्दों (Stimulus words) को सुनकर अपने मन में आये हुए विचारों को मौखिक अथवा लिखित रूप में व्यक्त करता है। निष्पादन और व्यक्तित्व परीक्षण के क्षेत्रों के अतिरिक्त इन परीक्षण पदों का प्रयोग बुद्धि परीक्षण मे भी होता है लेकिन व्यक्तित्व मापन और निष्पादन के इन दोनों क्षेत्रों मे ही इन परीक्षाओं का प्रयोग अधिक होता है।

निर्दिष्ट उत्तर वाली परीक्षायें (Guided Response Tests)—इस प्रकार के परीक्षण पदों मे परीक्षक विशेष निर्देश देता है और उन निर्देशों (Directions) के आधार पर परीक्षार्थी (Testee) उत्तर देता है। यह कहा जाता है कि वैषयिक परीक्षाएँ (Objective Tests) उन मानवीय त्रुटियों (Personal Equation) से बचते रहते हैं जो मूल्यांकन में प्रायः हुआ करती हैं।

लेकिन प्रयोगात्मक साक्ष्य (Experimental evidence) के सहारे यह कहा जा सकता है कि वैषयिक परीक्षाओं (Objective Tests) के अंकन (Scoring) में उतनी ही त्रुटियाँ परीक्षक (scorer) करता है जितनी कि निबन्धात्मक परीक्षाओं में नवीन प्रकार की। इन परीक्षाओं (New Type Tests) के बनाने में अथवा उनको छात्रवर्ग पर लागू करने (administer) में, वह आत्मगतभाव (Subjective element) से उतना ही प्रभावित रहता है जितना कि वह निबन्धात्मक परीक्षाओं के निर्माण अथवा उनको छात्र वर्ग पर लागू करने में। अत. यह कहना कि नवीन प्रकार की परीक्षाएँ वैषयिक (Objective) हैं और परीक्षक के आत्मगत भाव (subjective element or personal equation) से सर्वथा अछूती और अप्रभावित होती हैं, मिथ्या प्रचार है। इसलिये हमारे विचार में शैक्षिक विषय वस्तु (classroom instruction) के अधिग्रहण का मापन एक ओर तो स्वतन्त्र उत्तर वाली परीक्षाओं से होता है और दूसरी ओर निर्दिष्ट उत्तर माँगने वाली परीक्षाओं से। निर्दिष्ट उत्तर (guided response) वाली परीक्षाओं में छात्र के समक्ष हम विशेष उद्बोधक (Stimulus) प्रस्तुत करते हैं और यह उद्बोधक एक विशेष प्रक्रिया (response) चाहता है। इस प्रक्रिया के करने अथवा उत्तर के देने में छात्र निम्न प्रकार की क्रियायें करता है—

(१) कई सम्भव उत्तरों में से एक ऐसे उत्तर को चयन (*selection*) करता है जो अत्यन्त उपयुक्त अथवा सर्वश्रेष्ठ हो। इस प्रक्रिया में वह अभिज्ञान की मनोवैज्ञानिक क्रिया का आश्रय लेता है।

(२) पूछे गये प्रश्न का प्रत्यास्मरण (recall) के आधार पर यथायोग्य उत्तर देता है।

(३) उद्बोधकों के रूप में दी गई वस्तुओं का उस निश्चित क्रम से संयोजन करता है जिसका निर्देश परीक्षक ने दिया है।

इन मानसिक क्रियाओं के आधार पर इन निर्दिष्ट प्रक्रिया वाले प्रश्नों को निम्न तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं—

(१) अभिज्ञान परीक्षापद (Recognition Type Items)
(२) प्रत्यास्मरण परीक्षणपद (Recall Type Items)
(३) वर्गीकरणात्मक परीक्षणपद (Classification Type Items)

अभिज्ञानात्मक परीक्षण पद (Recognition type items)—छात्र प्रश्न के साथ दिये गये कई उत्तरों में से सही उत्तर को पहिचानने की कोशिश करता है। इन उत्तरों के कई विकल्प (alternatives) होते हैं। ये विकल्प दो होते हैं अथवा दो से अधिक। अत. इस श्रेणी के परीक्षण पदों को निम्न दो उपवर्गों में विभक्त किया जा सकता है.

(अ) दो विकल्प वाले परीक्षण पद (alternate choice)—सत्य असत्य (true false type), हाँ नाँ (yes—no type), परिवर्तित सत्य असत्य (modified true and false type)

(ब) कई विकल्प वाले परीक्षण पद (multiple choice items matching type)

इन पदों के उदाहरण नीचे दिये जाते है : ये उदाहरण शैक्षिक मापन (Educational rement) के क्षेत्र से लिये गये हैं—

सत्य असत्य (True and False Items)

निर्देश—यदि निम्न कथन सत्य है तो उसके सम्मुख लिखे गये T को वृत्त में आवृत्त कीजिए अन्यथा F को वृत्त में आवृत्त कीजिए।

कथन—मध्यगा (median) का चतुर्थांश विचलन (Quartible Deviation) से वही सम्बन्ध है जो मध्यमान (mean) का प्रमाप विचलन (Standard deviation) से। T F

हाँ और न प्रकार (Yes or No Type)

निर्देश (Directions)—यदि निम्न कथन सत्य हो तो हाँ (yes) को और असत्य हो तो ना (No) को वृत्त से आवृत्त कीजिये।

कथन (Statement)—मध्यमान विचलन (Mean Deviation) मध्यमान से लिये गये विचलनों का मध्यमान होता है। हाँ ना

बहु वैकल्पिक परीक्षण पदों के नमूने—

निर्देश—नीचे एक कथन दिया जाता है जो अधूरा है उस कथन की पूर्ति कई विकल्पों से की जा सकती है। सही विकल्प को चुनो और उसके आगे सही का चिन्ह अंकित करो

कथन—Mean Deviation is shortest when

(1) measured from the median
(2) " " the mean
(3) " " the mode

इस परीक्षण पद में तीन विकल्प हैं और व्यक्ति को सही विकल्प का चुनाव करना है। इन विकल्पों की संख्या जितनी ही अधिक होगी चुनाव करने में उतनी ही अधिक कठिनाई होगी और व्यक्ति के निष्पादन (achievement) का मापन उतना ही अधिक विश्वस्त हो सकेगा।

बहुवैकल्पिक परीक्षण पदों का दूसरा रूप है—Matching Type जिसमें दो स्तम्भों (columns) में दो प्रकार की सम्बन्धित विषय वस्तु होती है और परीक्षार्थी को एक को दूसरे के प्रति match करने का आदेश दिया जाता है।

प्रत्यास्मरणात्मक (Recall Type Items) परीक्षण पद—इन परीक्षण पदों में परीक्षक छात्र के सामने जो उद्बोधक (stimulus) प्रस्तुत करता है, उसका उत्तर छात्र अपने प्रत्यास्मरण (recall) से देता है अतः ऐसे परीक्षण पदों से व्यक्ति की स्मृति का मापन अधिक होता है, समझने की शक्ति (Understanding) का कम। ऐसे पदों के नमूने नीचे दिये जाते हैं—

निर्देश—रिक्त स्थान की पूर्ति करो

(i) Mean Deviation $= \frac{?}{N}$

(ii) when will the M. D. be shortest ?

ऊपर जो दो परीक्षणपदों (Test Items) के नमूने दिये गये हैं उनमें से एक में कथन की पूर्ति की गई है और दूसरे में लघु उत्तर (short answer) मांगा गया है। लेकिन दोनों प्रश्नों का उत्तर देते समय छात्र केवल प्रत्यास्मरण का आश्रय ही है। प्रत्यास्मरण का आश्रय वह उस समय भी लेता है जब उसे किसी वस्तु के अंगों के नाम बताने पड़ते हैं। इस क्रिया को अंग्रेजी में लेबिल लगाना कहते हैं, जैसे :

निर्देश—नीचे भारतवर्ष का चित्र दिया जाता है इस चित्र में बिन्दुओं से भारत के कुछ प्रसिद्ध स्थान दिखाये गये हैं इन स्थानों के नाम लिखो—

वर्गीकरणात्मक परीक्षण पद (Arrangement of Elements)—इस प्रकार के परीक्षण पदों में छात्रों को विशेषक्रम से तथ्यों को सजोना पड़ता है। उदाहरण के लिये नीचे कुछ ऐसे ही प्रश्न दिये जाते हैं जिनमें छात्र को अव्यवस्थित तथ्यों को क्रम में सजाना होगा—

(१) समकोण त्रिभुज में कर्ण पर का वर्ग शेष दो भुजाओं पर के वर्गों का योग होता है। इस तथ्य से सम्बद्ध संख्याओं को Pythagoras Numbers कहते हैं ३, ४, ५, ऐसे ही तीन Pythagoras Numbers हैं। निम्न संख्याओं के समूहों में सम्बद्ध तीसरी Pythagoras संख्या बताओ।

(१) ५, १२ (२) ७, २४ (३) ११, ६०

(ii) नीचे विद्युत सर्किट के विभिन्न भाग दिखाए गए हैं। उनको इस प्रकार संजोओ कि एक सर्किट बन जाय।

ो को पूर्ण वर्ग बनाओ।
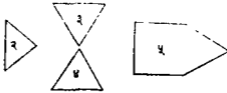
वाले परीक्षण पद (Essay Type Items)—शैक्षिक निष्पादन . के क्षेत्र में स्वतन्त्र उत्तर वाले परीक्षा पदों को Essay Type उपयोग लेख लिखने की योग्यता, पाठ्य वस्तु को ग्रहण करने की -tand and assimilate the subject-matter) विषय वस्तु का की क्षमता (ability to organise and evaluate the matter होता है।

ो योग्यता का प्रदर्शन होता है पत्रकारिता (Journalism) में । मौलिक रचनाओं का निर्माण करने की क्षमता का मापन किया जा ।, वाले परीक्षण पदों से ही।

उचित ढांचों (structures) का प्रयोग करने की योग्यता, विराम की spelling का वैध (valid) और विश्वस्त (reliable) मापन t items) से हो सकता है फिर भी लिखी हुई विषयवस्तु को सगठित मापन निबन्धात्मक परीक्षाओं से ही सम्भव है।

उच्च स्तरों पर पुस्तकों में वर्णित विषयवस्तु को आत्मसात (assimi-ल्यांकन (evaluate) करने की क्षमता का विकास शिक्षा का एक महत्व-माना जाय तो इस योग्यता का मापन करने के लिये हमें निबन्धात्मक ।। होगा। शिक्षा के निम्न स्तरों पर भी इस योग्यता का विकास है अत निम्न कक्षाओं में भी निबन्धात्मक परीक्षाओं का प्रयोग किया परीक्षाएँ बालकों को इस बात की प्रेरणा देती हैं कि याद की हुई वस्तु । में अभिव्यजित किया जाय।

: कहा जा सकता है कि निबन्धात्मक परीक्षा पद बालको में शिक्षा आचरण परिवर्तनों (behavioural changes) का मापन कर सकने .ment) वैषयिक परीक्षा पदों (Objective Test Items) से कदापि ध्यान परीक्षाओं को हमें छोड़ना नहीं है उनमे सुधार लाना हमारा यह याद रखना है कि जिन मानसिक प्रक्रियाओं का मापन वैषयिक Test Items) से ही अच्छी तरह से हो सकता है उनके मापन के लिये े करता है। ये मानसिक प्रक्रियाएँ हैं—

। अकों का प्रत्यास्मरण (Recall of facts, terms, concepts, iples processes)

। व्याख्या (Interpretation of the data)

ो की प्रयुक्ति (Application of the principles)

का प्रयोग (Use of skill)

ज्ञानात्मक प्राप्य उद्देश्यों (Knowledge objectives), प्रयुक्ति सम्बन्धी ion objectives) और कौशल सम्बन्धी उद्देश्यों (Skill objectives) तो हमें इन नवीन प्रकार की परीक्षाओं का प्रयोग करना होगा। दूसरे बिखरे हुए अशों को (Fragmentary bits of Knowledge) का ही हमे निर्दिष्ट उत्तर वाले परीक्षण पदों का प्रयोग करना होगा लेकिन किसी विषय की व्याख्या करे तो उसमे ज्ञान के बिखरे हुए अशों को

एकत्र करने तथा उन्हें सगठित स्वरूप देने की क्षमता का मापन करना होगा। हमें यह देखना होगा कि उसने किस सीमा तक विषयवस्तु का तुलनात्मक अध्ययन किया है, वह कहाँ तक विषयवस्तु का उचित विश्लेषण उपस्थित कर सकता है, और उसमें निष्कर्ष पर पहुँचने की कितनी क्षमता है। यह तो केवल निबन्धात्मक परीक्षण पदो से ही सम्भव है वैषयिक परीक्षण पदो से नही।

When items selected from a large number are to be brought to bear in a central topic, when they are to be compared and evaluated and from the procedure an inference is to be drawn the essay question is more effective than the short answer type.

सक्षेप मे निबन्धात्मक परीक्षण पदों से मापने योग्य व्यापक प्राप्य उद्देश्य हैं—

(१) Functional Information व्यावहारिक जानकारियाँ।
(२) Certain aspects of thinking चिन्तन विधियाँ।
(३) Study Habits अध्ययन करने की उचित आदतें
(४) Ability for sustained exposition of large ideas
विचारो को व्यापक एव विस्तारपूर्वक व्यक्त करने की क्षमता।

अब यदि हम परीक्षा प्रणाली मे सुधार चाहते हैं तो सबसे पहले हमे यह याद रखना होगा कि किस प्रकार के परीक्षण पदो का प्रयोग कहाँ करें ? हमें किसी विशेष परीक्षण पद का प्रयोग—चाहे वह essay type item हो अथवा objective type item—वहीं करना है और उसी योग्यता का मापन करने के लिये करना है जिसका मापन वह कुशलतापूर्वक कर सकती है।

जिस प्रकार नवीन प्रकार के परीक्षण पदो का वर्गीकरण उनके द्वारा मापी गई मानसिक योग्यताओ के आधार पर किया गया था उसी प्रकार निबन्धात्मक परीक्षण पदो का वर्गीकरण भी जिन व्यापक (broad) शैक्षिक (educational objectives) का मापन करने के लिये उपयुक्त है उनको ध्यान मे रखकर ही किया जा सकता है। उदाहरण के लिये यदि हम छात्रो मे Functional Information का मापन करना चाहते हैं तो हमे निम्न प्रकार के निबन्धात्मक परीक्षण पद प्रयोग में लाने होंगे—

(१) चयनात्मक प्रत्यास्मरण सम्बन्धी प्रश्न (*Selective Recall Test items*) उदाहरण—शैक्षिक मापन के क्षेत्र मे उन दो मुख्य चरणों का उल्लेख कीजिये जिनका प्रादुर्भाव शताब्दी के प्रथम दो दशको में हुआ है।

(२) मूल्यांकनात्मक प्रत्यास्मरण (Evaluative Recall Test Items)—उदाहरण उन तीन व्यक्तियों के नाम सकारण बताइये जिन्होंने बुद्धि परीक्षण के क्षेत्र मे विशेष कार्य किया हो।

(३) विशेष आधार पर तुलनात्मक अध्ययन (Comparative Study)—नवीन तथा परम्परागत परीक्षा छात्रों की study habits पर कैसा प्रभाव डालती है, तुलनात्मक विवेचन कीजिये।

(४) सामान्य तुलनात्मक अध्ययन—नवीन तथा परम्परागत परीक्षा पदो के गुण तथा दोषों की निम्नांकित आधारों पर व्याख्या कीजिए :—

(1) Reliability of grading or scoring
(2) Possibility of the guessing or baffling
(3) [illegible]
(4) [illegible]
(5) [illegible]
(6) Cost of administration
(7) Labour required in scoring
(8) Attitude of pupils towards each type of test
(9) Intellectual pleasure an[illegible] derived by the teacher from constructing and scoring

(५) वर्गीकरण करने की क्षमता—नीचे नवीन प्रकार की परीक्षा का एक परीक्षण पद दिया गया है बताओ यह पद किस प्रकार का है ?

आदेश—नीचे कुछ राज्यों के नाम दिये गये हैं। प्रत्येक राज्य की किस प्रकार की शक्ति का विकास अधिक हुआ है। प्रत्येक राज्य के अंकों को दिये गए रिक्त स्थान में लिखिये।

क—यदि उसमें जल विद्युत शक्ति अधिक उपयोग में आती है।
ख—यदि उसमें कोयला अधिक मिलता है।
ग—यदि उसमें जल विद्युत के साधन अधिक हो किन्तु खनिज शक्ति अधिक उपयोगी है।
घ—यदि उसमें जल विद्युत के साधन कम हो किन्तु खनिज शक्ति अधिक हो।

१	आंध्र	६	बम्बई
२.	आसाम	७	मद्रास
३.	पश्चिमी बंगाल	८	मैसूर
४	बिहार	९	पंजाब
५	मध्यप्रदेश		

निबन्धात्मक परीक्षा पदों (Essay Type Test Items) में जिन अन्य योग्यताओं का मापन हो सकता है वे हैं—

(अ) पक्ष तथा विपक्ष में निर्णय लेने की क्षमता—उदाहरण के लिए जूनियर हाई-स्कूल का छात्र निबन्धात्मक परीक्षाओं में नवीन प्रकार की परीक्षाओं की अपेक्षा अच्छे अंक प्राप्त करता है ?

(ब) कार्य-कारिणी सम्बन्ध की स्थापना करने की क्षमता—उदाहरण के लिए गत ३०-४० वर्षों के अन्दर नवीन प्रकार की परीक्षाओं के क्षेत्र में इतना अधिक विकास क्यों हुआ है ?

(स) विश्लेषण करने की क्षमता—यदि B. Ed. के लिये मूल्यांकन तथा परीक्षण पर प्रश्न-पत्र तैयार करना हो तो आप किन किन शैक्षणिक उद्देश्यों (Educational objectives) का मापन करेंगे ?

(द) उदाहरण देने की क्षमता
(य) नवीन परिस्थिति में सिद्धान्तों को लागू करने की क्षमता
(र) विवेचन करने की क्षमता
(ल) आलोचना करने की क्षमता
(व) रूपरेखा बनाने की क्षमता
(ज) तथ्यों को संगठित करने की क्षमता
(झ) नवीन समस्याओं को सोचने की क्षमता
(ञ) दो वस्तुओं के बीच सम्बन्ध स्थापित करने की क्षमता।

Q. 8 Discuss the uses and limitations of the essay type. What suggestions will you give to improve the old essay type test?

Ans नवीन प्रकार की परीक्षाओं की तुलना में निबन्धात्मक परीक्षायें नहीं ठहर सकती क्योंकि इन परीक्षाओं में कई दोष ऐसे हैं जिनके कारण लोगों की उनके प्रति अरुचि सी हो गयी है। किन्तु उनमें कुछ ऐसे गुण भी हैं जिनके कारण उनका प्रयोग परीक्षण क्षेत्र में अब तक होता चला आया है। हम इन परीक्षाओं के दोष तथा उन दोषों को दूर करने के उपायों पर विचार करेंगे और यह देखेंगे कि ये परीक्षायें किस प्रकार ऐसी बनाई जायें कि वे उन वस्तुओं का ठीक ठीक मापन कर सकें जिनका वे मापन कर सकती हैं।

निबन्धात्मक परीक्षाओं के दोष

निबन्धात्मक परीक्षायें उस वस्तु का शुद्ध मापन नहीं कर पाती जिसके मापन के लिये इनका निर्माण किया जाता है। इसके कई कारण हैं।

$$\cdot ६ = \frac{\text{न} \times ७}{१+(\text{न}-१)७}$$

(३) विद्यार्थियों के भिन्न भिन्न निबन्धात्मक प्रश्नों के उत्तर देने का स्तर भी बदलता रहता है। कोई भी विद्यार्थी एक विषय में वर्ष भर में जितने भी निबन्ध लिखता है वे एक से ही गुण वाले नहीं होते। अतः विद्यार्थी निबन्धात्मक प्रश्नों के उत्तर में अपनी सारी विशेषताओं और गुणों को नहीं दिखला सकता। यदि वह इन निबन्धात्मक प्रश्नों को अवकाश के समय हल करता है तो सम्भव है कि वह अपने समस्त गुणों और विशेषताओं का प्रदर्शन कर सकता।

(४) निबन्धात्मक परीक्षाओं के अविश्वसनीय होने का अन्तिम कारण वर्नन ने परीक्षकों के अंक देने के स्तरों में भिन्नता बतलाया है। इस दोष को दूर करने के लिये उसने अंक देने की प्रामाणिक विधि का सुझाव दिया है। यदि हम निबन्धात्मक परीक्षाओं को नवीन प्रकार की परीक्षाओं के समान ही विश्वसनीय बनाना चाहते हैं तो हमें अंक देने के नियम और कुंजियाँ पहले से तैयार कर लेनी चाहिये। प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि निबन्धात्मक प्रश्नों की परीक्षण कुंजियों के प्रयोग करने से विश्वसनीयता गुणांक ९८ तक ऊँचा उठ गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि साधारणतः निबन्धात्मक परीक्षाओं में आदर्श परीक्षा के तीन गुणों—वस्तुनिष्ठता, विश्वसनीयता तथा निरपेक्ष—का अभाव पाया जाता है। किन्तु इनमें कुछ गुण भी हैं जिनका उल्लेख नीचे किया जाता है

निबन्धात्मक परीक्षाओं की उपयोगिता

संशोधित निबन्धात्मक परीक्षाओं की विश्वसनीयता भी उसी मात्रा में बढ़ाई जा सकती है जितनी कि नवीन प्रकार की परीक्षाओं में आवश्यक है। व्यवहारवादियों के अनुसार भी निबन्धात्मक परीक्षायें एक विशेष स्थान रखती हैं। इनके प्रश्नपत्रों को श्यामपट पर लिखकर परीक्षा पर कम से कम खर्च किया जा सकता है। इन परीक्षाओं में प्रश्नपत्रों को तैयार करने में भी समय कम लगता है। लेकिन समय की यह बचत इस प्रकार की उत्तर पुस्तिकाओं को जाँचने में लगाये गये समय के मुकाबले में कहीं अधिक होती है। निबन्धात्मक परीक्षाएँ एक विशेष प्रयोजन के लिये लाभदायी होती हैं। कुछ मानसिक क्रियायें ऐसी हैं जो केवल निबन्धात्मक परीक्षाओं के द्वारा ही मापी जा सकती हैं, नवीन प्रकार की परीक्षाओं से नहीं। यद्यपि इस बात पर बहुत कम प्रयोग किये गये हैं कि किन किन मानसिक क्रियाओं की जाँच निबन्धात्मक परीक्षाओं द्वारा हो सकती है, तब भी ऐसा प्रतीत होता है कि निम्नलिखित चार क्रियाओं का वे सफलतापूर्वक मापन कर सकती हैं।

(१) चिन्तन
(२) अध्ययन क्षमता और परिश्रम करने के स्वभाव
(३) सामाजिक दर्शन
(४) कार्यात्मक जानकारी

ज्ञान के प्रत्यास्मरण (recall) के लिये केवल नवीन प्रकार की परीक्षाओं (new type tests) का निर्माण किया जा सकता है, किन्तु ज्ञान को नई-नई परिस्थितियों में लागू करने की योग्यता का मापन करने के लिए हम निबन्धात्मक परीक्षाओं का सहारा लेना होगा। प्रत्यास्मरण (recall) तथा अभिज्ञान (recognition) स्तर पर विद्यार्थियों के ज्ञान का मापन नवीन प्रकार की परीक्षाओं से किया जा सकता है किन्तु प्रयुक्ति (application) स्तर पर ज्ञान का मूल्यांकन केवल निबन्धात्मक परीक्षा द्वारा ही सुचारु रूप से किया जा सकेगा। ज्ञान के निर्वचन (interpretation) तथा मूल्यांकन (evaluation) स्तर पर हम निबन्धात्मक परीक्षाओं का ही प्रयोग कर सकते हैं। छोटी कक्षाओं में जहाँ पर अभिज्ञान (recall) अथवा प्रत्यास्मरण (recognition) पर अधिक जोर दिया जाता है वहाँ नवीन प्रकार की परीक्षायें विशेष लाभप्रद सिद्ध हो सकती हैं किन्तु उच्च कक्षाओं में जहाँ ज्ञान का निर्वचन (interpretation) और प्रसार (application) ही विशेष महत्व रखता है वहाँ निबन्धात्मक परीक्षाओं का प्रयोग किया जाता है। यही कारण है कि ऊँची कक्षा के विद्यार्थी निबन्धात्मक परीक्षाओं को अधिक पसन्द करते हैं।

निबन्धात्मक परीक्षाओं का विशेष प्रयोजन यह भी है कि वे विद्यार्थियों में अध्ययन करने की आदत डाल देती हैं। यदि विद्यार्थी को यह पता चल जाय कि उसकी परीक्षा निबन्धात्मक होगी तो वह अपने पाठों की रूपरेखा बनायेगा, ज्ञान के भिन्न भिन्न अंगों में सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश करेगा और अध्ययन की ऐसी विधियों को अपनायेगा जो उसके लिये लाभदायक सिद्ध होंगी। किन्तु यदि उसको यह पता चल जाय कि उसकी परीक्षा नवीन प्रकार की व्यक्ति निरपेक्ष परीक्षा (new type objective test) होगी तो इसमें सन्देह नहीं कि वह ज्ञान के विशिष्ट भागों पर ही जोर देगा। उनका सश्लेषण करने की प्रवृत्ति उसमें न होगी फलतः अध्ययन करने की अच्छी

जिन प्रयोजनों की सिद्धि के लिये नवीन प्रकार की परीक्षाएँ उपयोगी प्रतीत होती हैं उन प्रयोजनों के लिये निबन्धात्मक परीक्षाएँ उपयोगी नहीं हैं। किसी भी परीक्षा में उसकी उपयुक्तता अन्तर्निहित नहीं होती। यह उपयुक्तता तो परीक्षा लेने वाले की बुद्धि और कौशल पर निर्भर रहती है। यदि निबन्धात्मक परीक्षा में कोई दोष भी है तो उसका सुधार भी किया जा सकता है।

निबन्धात्मक परीक्षाओं में संशोधन करने के कतिपय सुझाव

अब तक जितने भी अन्वेषण इन परीक्षाओं के सम्बन्ध में किए गए हैं वे ऋणात्मक दिशा में ही हुए हैं। निबन्धात्मक परीक्षाओं की सारी यह आलोचना उनके असंशोधित रूपों के दोषों को दिखाने के लिए की गई है। किन्तु इन दोषों का किस प्रकार परिहार किया जा सकता है इस पर बहुत कम आलोचकों का ध्यान आकर्षित हो सका है। इन कटु आलोचनाओं का यही लाभ हो सकता है कि उनको ध्यान में रख कर हम इन निबन्धात्मक परीक्षाओं का सुधार कर सकते हैं।

जिस प्रकार परीक्षक के लिए यह जानना आवश्यक है कि इन परीक्षाओं का प्रयोग किया जाय उसी प्रकार यह भी जानना आवश्यक है कि उनका प्रयोग कहाँ कहाँ किया जाय। बुद्धिमानी इसी में है कि जिन मानसिक क्रियाओं का ये परीक्षायें अच्छी तरह से मापन कर सकती हैं उन्हीं का मापन इनके द्वारा किया जाय। वीडमैन (*Weidemann*) ने इन परीक्षाओं के ग्यारह निम्नलिखित रूपों का उल्लेख किया है

(१) क्या ? कौन ? कब ? कहाँ ? कौन सा ?
(२) सूची बनाइए।
(३) रूपरेखा तैयार कीजिए।
(४) वर्णन कीजिए।
(५) निम्नलिखित दो वस्तुओं में विरोध बतलाइए।
(६) निम्नलिखित वस्तुओं की तुलना कीजिए।
(७) समझाकर लिखिए।
(८) निम्नलिखित कथनों के भाव का विस्तार कीजिए।
(९) निम्नलिखित कडिका (paragraph) को संक्षिप्त रूप में प्रकट कीजिए।
(१०) विवेचना कीजिए।
(११) अर्हापण कीजिए (evaluate)।

प्रश्नों के उपरिलिखित कुछ रूप तो प्रत्यभिज्ञान (recall) का ही मापन करते हैं। किन्तु बहुत से रूप विचारों के संगठन करने, उनमें सम्बन्ध स्थापित करने और नयी परिस्थितियों में सिद्धान्तों और नियमों को लागू करने की योग्यताओं पर विशेष बल देते हैं। इन योग्यताओं के ...न में नवीन प्रकार की परीक्षायें सर्वथा अनुपयुक्त सिद्ध हुई हैं।

यदि कोई प्रश्न उपरिलिखित ढंगों में से किसी ढंग से न पूछा जा सके तो उसे नवीन प्रकार के परीक्षा के प्रश्नों के रूप में रक्खा जा सकता है। जब तक किसी प्रश्न का उद्देश्य अथवा प्रयोजन स्पष्ट रूप से निश्चित न हो तब तक उसे न तो नवीन प्रकार की और न परम्परागत परीक्षा में ही सम्मिलित किया जा सकता है। निबन्धात्मक परीक्षायें निम्नलिखित दो परिस्थितियों में सत्य और शुद्ध मापन देती हैं। एक ओर तो इनका प्रयोग विद्यार्थियों की निबन्ध

रचना के कौशल अथवा सम्पादकीय योग्यता की जाँच करने के लिए किया जा सकता है और दूसरी ओर इनका प्रयोग विचारों को संगठित करने तथा ज्ञान को आत्मसात करने की योग्यता का परीक्षण करने में होता है।

मापन यन्त्रों के लक्षणों का उल्लेख करते हुए कई बार यह बतलाया जा चुका है कि विद्यार्थियों के ज्ञान का शुद्ध और सत्य परीक्षण प्रश्नपत्र के व्यापक और विस्तृत होने पर किया जा सकता है। विद्यार्थियों के ज्ञान के शुद्ध और सत्य परीक्षण के विषय में शिक्षाशास्त्रियों का एक महत्वपूर्ण सुझाव यह है कि प्रश्नपत्रों में विवेचनात्मक प्रश्नों की संख्या बढ़ा दी जाय। इन प्रश्नों के उत्तर सूक्ष्म रूप से एक या दो पंक्तियों में देने का आदेश दिया जाय और प्रत्येक दशा में प्रश्नों का निर्माण इस प्रकार हो कि उनके उत्तर सीमित और संक्षिप्त हों। वे केवल उसी विशिष्ट उद्देश्य का मापन करें जिनके मापन के लिए उनका निर्माण किया जा रहा है। उदाहरण के लिए यदि हम विद्यार्थियों के १८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम के विषय में अर्जित ज्ञान का मापन करना चाहते हैं तो अपने प्रश्न को निम्न प्रकार से शब्दबद्ध करना होगा—

सन् १८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम के कारण, डलहौजी की अपहरण नीति, सिपाहियों के साथ अत्याचार और हिन्दू राजाओं के प्रति अनाचार पर, प्रकाश डालते हुए लिखिए।

प्रश्नों [illegible]

यह मत है कि इस [illegible]

उनको डर है कि [illegible]

करने की योग्यता का मापन नहीं हो सकेगा। किन्तु ऐसा करने से निबन्धात्मक परीक्षा अधिक विश्वसनीय और तन्मापी बनाई जा सकती है। कुछ लोगों की यह धारणा है कि निबन्धात्मक प्रश्नपत्रों का निर्माण बहुत ही सरल काम है। परन्तु बात यह नहीं है। यदि हमारी परीक्षा स्मरण शक्ति (memory) के मापन के अतिरिक्त अन्य किसी मानसिक योग्यता का मापन भी कर सकती है तो उसके निर्माण में हमें लगभग उतना ही समय व्यय करना पड़ेगा जितना कि हम नवीन प्रकार की परीक्षा के निर्माण में करते हैं।

निबन्धात्मक परीक्षा को विश्वसनीय और व्यक्ति निरपेक्ष (reliable and objective) बनाने के लिए परीक्षक और परीक्षार्थी दोनों के दृष्टिकोण से विचार करना होगा। विद्यार्थियों को उत्तर देने के आदेश स्पष्ट दिए जायें। उनको समझा दिया जाय कि उन्हें स्वच्छ लिखना है। यदि उनका उत्तर पढ़ा ही नहीं जा सकता तो सही भी नहीं माना जा सकता। वे उत्तरों में अपने विषय के अनुकूल भाषा का प्रयोग करें। ऐसे किसी शब्द का प्रयोग न करें जिसका अर्थ उन्हें स्पष्ट न हो। वे प्रत्येक प्रश्न को सावधानी से पढ़ें और उसके आदेशों के अनुसार कार्य करें। इस काम में असावधानी बहुधा हानिकारक सिद्ध होती है। इस प्रकार के सुझाव विद्यार्थियों को लाभप्रद होते हैं। तभी वे अपनी योग्यता का ठीक प्रदर्शन कर सकते हैं।

निबंधात्मक परीक्षाओं का मूल्यांकन

परीक्षक के दृष्टिकोण से भी मूल्यांकन की विधि में परिवर्तन और संशोधन नितान्त आवश्यक प्रतीत होता है। निबन्धात्मक परीक्षाओं के उत्तरों को हम केवल श्रेणीबद्ध (grade) कर सकते हैं, किन्तु निलेखन (Score) नहीं कर सकते। उत्तर पुस्तिका का अंकन करने के लिए कोक्रन (Cochran) और वीडमैन (Weidemann) ने कुछ सुझाव दिए हैं जो इस प्रकार हैं—

(१) किसी भी प्रश्न के उत्तर का मूल्यांकन करने से पहले उस प्रश्न के उत्तर को कुछ कापियों में से पढ़ कर विचार बना लेना चाहिये कि किस प्रकार के उत्तर उन कापियों में भिन्न सकते हैं।

(२) द्वितीय प्रश्न को जांचने से पहले प्रथम प्रश्न समस्त उत्तर पुस्तिकाओं में जाँच लेना चाहिए। ऐसा करने से एक लाभ तो परीक्षक के लिए यह होता है कि उसके लिए उत्तरों की तुलना करना आसान हो जायगा और वह उन्हें सुविधापूर्वक श्रेणीबद्ध कर सकेगा। दूसरा लाभ यह भी होगा कि एक ही प्रकार के प्रश्न का उत्तर दिमाग में रखने से अंकन कार्य (marking) आसान हो जायगा, समय की भी बचत होगी और मूल्यांकन शुद्ध हो सकेगा।

(३) जिस तरह नवीन प्रकार की परीक्षाओं के लिये परीक्षण कुंजी तैयार की जाती है उसी प्रकार निबन्धात्मक परीक्षाओं के लिए भी प्रत्येक प्रश्न के उत्तरों के संकेतों की सूची

तैयार की जा सकती है। प्रत्येक उत्तर को पढ़ते समय इन सब संकेतों को ध्यान में रखना आवश्यक हो जाता है, ताकि उत्तरों का अंकन न्यायसंगत हो सके।

(८) किसी भी निबन्धात्मक प्रश्न-पत्र में ऐच्छिक प्रश्न न रक्खे जायँ क्योंकि वे निर्लेखन (scoring) में कठिनाई पैदा करेंगे।

(५) सिम्स ने अंकन के विषय में एक बार सुझाव दिया है। उनका कहना है कि प्रत्येक प्रश्न को देखने के बाद उत्तर पुस्तिकाओं को उन्हें तीन या पाँच श्रेणियों में विभाजित करना चाहिए। जो उत्तर अन्युत्तम गुणात्मक (quantitative value) वाले हों उन्हें एक समूह में इकट्ठा कर लेना चाहिए। ऐसे उत्तर लगभग १०% ही सकते हैं। अन्य प्रकार के उत्तर और उनके सम्भव प्रतिशत निम्न तालिका में दिये जाते हैं—

उत्तरों के प्रकार	प्रतिशत
अन्युत्तम कोटि के उत्तर	१०%
उत्तम कोटि के उत्तर	२०%
औसत दर्जे के उत्तर	४०%
निकृष्ट कोटि के उत्तर	२०%
अति निकृष्ट कोटि के उत्तर	१०%

ये प्रतिशत सम्भावित सामान्य वितरण (normal distribution) में पड़ी हुई आवृत्तियों के अनुसार निश्चित किये गए हैं। क्योंकि प्रत्येक योग्यता normally distributed मानी जाती है। साधारणतः यह देखा जाता है कि किसी गुण वाले लगभग १० प्रतिशत व्यक्ति अन्युत्तम कोटि के होते हैं। आदर्श परीक्षाओं के परीक्षाफलों के वितरण बहुधा सामान्य वक्र में मिलते जुलते पाए जाते हैं। किन्तु सभी परीक्षायें तो आदर्श नहीं होतीं। इसलिए सिम्स का यह सुझाव कुछ सीमा तक माना जा सकता है। इस सुझाव के पालन करने से एक लाभ अवश्य होगा कि एक प्रश्न का उत्तर दूसरे प्रश्नों के उत्तर के अंकन को प्रभावित न कर सकेगा। उत्तरों के इस वर्गीकरण का एक लाभ यह भी है कि एक से गुण (quality) वाले उत्तरों को आसानी से ढूंढा जा सकता है।

(६) उत्तर पुस्तिकाओं को इस प्रकार श्रेणी में बाँट देने के पश्चात् जब किसी दूसरे प्रश्न का उत्तर देखना आरम्भ किया जाय तो सारी उत्तरपुस्तिकाओं को इस प्रकार फेंट दिया जाय कि यह पता न चल पाए कि पहले प्रश्न का उत्तर अमुक विद्यार्थी ने कैसा दिया था, नहीं तो परीक्षक उस विद्यार्थी को दूसरे प्रश्न में अच्छे अंक दे सकता है, जिसने पहला प्रश्न सन्तोषजनक किया था। इसके विपरीत यदि उसके पहले प्रश्न का उत्तर निम्न कोटि का हुआ तो दूसरे प्रश्न के उत्तर में भी कम अंक मिलने की ही सम्भावना है। यदि परीक्षक इन सुझावों के अनुसार उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन करें तो कदाचित् निबन्धात्मक परीक्षाएँ भी उतनी ही वस्तुनिष्ठ एवं विश्वसनीय हो सकती हैं जितनी कि नवीन प्रकार की परीक्षायें।

निबन्धात्मक परीक्षाओं के अंकन विधि में और भी संशोधन हो सकते हैं किन्तु खेद का विषय यह है कि अब तक इस ओर बहुत कम शिक्षाशास्त्रियों का ध्यान आकर्षित हुआ है। इस क्षेत्र में विशेष आन्दोलन की आवश्यकता है। निष्पादन (achievement) के इस मापन-यन्त्र पर प्रत्येक व्यापार निर्भर रहा है और भविष्य में भी निर्भर रहेगा। निश्चय ही इस यन्त्र में कुछ त्रुटियाँ हैं जिनकी खोज परम आवश्यक है। प्रत्येक शिक्षक और शिक्षाशास्त्री का यह कर्तव्य है कि इस कार्य में सहयोग देकर इस यन्त्र को और अधिक शुद्ध, सत्य और [illegible] बनाने का प्रयत्न करे।

निबन्धात्मक परीक्षाएँ तैयार करते समय ध्यान रखने योग्य बातें—जिन योग्यताओं का मापन निबन्धात्मक परीक्षाएँ कर सकती हैं उनका मापन नवीन प्रकार की वैषयिक परीक्षाएँ (Objective Test) नहीं कर सकतीं। यदि अच्छे ढंग की निबन्धात्मक परीक्षाएँ तैयार करनी हैं तो उनको तैयार करते समय यह ध्यान अवश्य रखा जाय कि प्रत्येक परीक्षण पद एक ही योग्यता का मापन करे दूसरे का नहीं और यदि एक से अधिक योग्यता का मापन करे तो उसे नवीन प्रकार के परीक्षण पदों में बदल दिया जाय। उदाहरण के लिए नीचे दिया गया प्रश्न पाँच विभिन्न योग्यताओं का मापन करता है—

उस आयत की परिमिति ज्ञात करो जिसकी लम्बाई चौड़ाई से १ फीट अधिक है तथा जिसका विकर्ण ५ फीट का है।

(अ) प्रदत्त को छाँटने की योग्यता
(ब) ज्ञातव्य को निकालने की योग्यता
(स) शब्दों में व्यक्त सम्बन्ध को प्रतीकों में प्रकट करने की क्षमता
(द) समीकरण हल करने की क्षमता
(य) सही उत्तर आँकने की क्षमता।

यदि इन सभी योग्यताओं का मापन करना है तो इस उद्देश्य से हमें ५ भिन्न-भिन्न प्रश्न तैयार करने होंगे। इसका अर्थ यह है कि निबन्धात्मक परीक्षण पदों के उपयोग सामान्यत अंग्रेजी लेख अथवा सम्पादकीय लेखों के लिखाने से कर सकेंगे अथवा किसी ज्ञान प्रधान विषय के उच्च स्तरीय ज्ञान के परीक्षण के लिए करेंगे क्योंकि ऐसी ही परिस्थितियों में व्यावहारिक ज्ञान चिन्तनस्वरूप, अध्ययन-कौशल, विचारों की विस्तृत और व्यापक-अभिव्यक्ति, लेख द्वारा व्यक्तित्व-प्रशेरण का मापन हो सकता है।

यदि निबन्धात्मक परीक्षण पदों को अधिक विश्वस्त बनाना है तो निम्नलिखित बातों का ध्यान में रखना चाहिए—

१ प्रश्नों की संख्या बढ़ा दी जाय और व्याख्या की मात्रा कम कर दी जाय।

२ छात्रों को इस बात का प्रशिक्षण दिया जाय कि इन परीक्षण पदों का उत्तर किस प्रकार दिया जाता है।

यदि प्रश्नपत्र में टिप्पणी के रूप में निम्नलिखित आदेश दे दिये जाएँ तो छात्रों को इन परीक्षण पदों को ठीक ढंग से हल करने का प्रशिक्षण मिल जायगा।

(१) उत्तर साफ-साफ लिखो
(२) विषय के अनुरूप भाषा का प्रयोग करो
(३) गणनात्मक कार्य अथवा उत्तरों के संकेत हाशिये पर अंकित कर लो
(४) किसी प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व यह भली भाँति समझ लो कि उसमें क्या पूछा गया है।
(५) प्रत्येक प्रश्न के भिन्न-भिन्न भागों का उत्तर अलग-अलग दो उत्तरों को मिलाने का प्रयास न करो।
(६) प्रश्नों का उत्तर घुमा-फिरा कर न दो।
(७) अगले प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व दुहरा लो।

३ परीक्षण पद इतना स्पष्ट हो कि छात्र वही उत्तर दे जो उत्तर वांछित हो। प्रश्न को स्पष्ट बनाने के लिये उसमें संकेत और निर्देश पूर्णत स्पष्ट होने चाहिये। नीचे एक ही प्रश्नों को तीन प्रकार से शब्दबद्ध किया गया है लेकिन तीसरा तरीका सर्वोत्तम है—

(क) Describe the Bill of Rights
(ख) Describe the events that make the Bill of Rights a part of our basic national law
(ग) Describe the development of Bill of Rights stating first its origin in England, its relation to other documents and how it became attached to the constitution.

इस प्रश्न का पहला स्वरूप अत्यन्त संदिग्ध है और तीसरा रूप इतना अधिक स्पष्ट कर दिया गया है कि विद्यार्थी को उत्तर के सभी आवश्यक संकेत मिल चुके हैं। यदि किसी प्रश्न के पूछने का एक मात्र उद्देश्य यह हो कि छात्र उसके उत्तर में दिये जाने वाले सभी आधारों को जानता है अथवा नहीं तब प्रश्न में सभी आवश्यक संकेत देना ठीक नहीं है। लेकिन ऐसे संकेतों में लाभ अधिक होता है हानि कम। एक तो प्रश्नों की संख्या बढ़ जायगी और उत्तरों की लम्बाई कम हो जायगी लेकिन यह निश्चित है कि यदि प्रश्न में अधिक संकेत दिये जाते हैं तो छात्रों की विषयवस्तु को संगठित करने तथा उसकी अभिव्यक्ति करने की क्षमता नष्ट हो जायगी।

(४) प्रश्न पत्र में किसी प्रकार की प्रश्न चुनने की सुविधा न दी जाय—यदि परीक्षा लेने का एक मात्र उद्देश्य छात्रों की योग्यता का तुलनात्मक अध्ययन है तो प्रश्नपत्र में कई विकल्पों का देना न्यायसंगत प्रतीत नहीं होता। यदि प्रश्नपत्र में दिये गये प्रश्न एक सी कठिनाई के होते तो विकल्पों का देना न्यायोचित कहा जा सकता था किन्तु किसी प्रश्नपत्र में रखे गये सभी प्रश्न एक सी कठिनाई के कभी हो नहीं सकते। कभी-कभी तो यह देखा गया है कि चतुर छात्र कठिन प्रश्नों को चुनकर इसलिए हल करते हैं कि उनको हल करने में उन्हें परीक्षक हल्के हाथ से अंक देगा। इस प्रकार वे अधिक अंक पा लेते हैं जिससे उनके अधिगम का सही-सही मापन नहीं हो सकता। अतः प्रश्न पत्र के सभी प्रश्नों को हल करने का आदेश दिया जाय।

(५) इन प्रश्नों को उनकी कठिनाई के अनुसार इस प्रकार सजो लिया जाय कि निश्चित अवधि के अन्दर सभी प्रश्नों का सन्तुलित उत्तर दिया जा सके। प्रश्नपत्र में प्रश्नों को कठिनाई के अनुसार सजोने का कार्य अनुभव के आधार पर ही किया जाय।

(६) प्रत्येक प्रश्न पत्र को कुछ लड़कों को देकर यह देख लिया जाय कि किस प्रश्न को उन्होंने अच्छी तरह समझ लिया है और किस प्रश्न की भाषा सन्देहपूर्ण है। किसी प्रश्न की भाषा सन्दिग्धात्मक होने पर उसको बदल दिया जाय।

(७) प्रश्न पत्र में नवीन प्रकार की वैधानिक परीक्षा पद, लघु उत्तर वाले परीक्षण पद तथा निबन्धात्मक परीक्षा पद विशेष अनुपात में रखे जायें।

(८) यदि निबन्धात्मक परीक्षाओं द्वारा व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति सम्बन्धी योग्यता का मापन करना है तो छात्रों को परीक्षापदों में किसी प्रकार के संकेत न दिये जायें। प्रत्येक प्रश्न एक समस्या के रूप में छात्रों के समक्ष आवे और छात्र उसका अर्थ अपने ढंग से निकाले और अपने विचारों की पुष्टि करने का प्रयत्न अपने ढंग से करे।

निबन्धात्मक परीक्षाओं के मूल्यांकन की कठिनाइयाँ—निबन्धात्मक परीक्षाओं के उत्तरों का मूल्यांकन करते समय कुछ ऐसी कठिनाइयाँ अवश्य आती हैं जिनका निराकरण सम्भव नहीं है। ये कठिनाइयाँ हैं —

(अ) छात्रों द्वारा उत्तरों के आकार का बढ़ाया जाना—प्रत्येक छात्र उत्तरों के आकार को सत्य असत्य, और अर्ध सत्य बातों का मिश्रण करके बढ़ा देने की प्रवृत्ति रखता है। ऐसी दशा में उत्तरों का श्रेणी बद्ध करने का कार्य कठिन हो जाता है।

(ब) कभी-कभी किसी प्रश्न का अर्थ वह नहीं लिया जाता जो अर्थ परीक्षक लेता है। परीक्षक तथा परीक्षार्थी दोनों के द्वारा लिए गये अर्थ ठीक हो सकते हैं। यदि किसी प्रश्न का अर्थ परीक्षार्थी के अनुसार ठीक लगाया गया है। तब उसके उत्तर का श्रेणीबद्ध करना कठिन हो जायगा।

(स) उन दो उत्तरों का श्रेणीबद्ध करना भी कठिन कार्य हो जायगा जिसमें से एक में तथ्यों का संयोजन युक्ति संगत है लेकिन कम तथ्यों का समावेश किया गया है और दूसरे में सभी तथ्यों को समाविष्ट किया गया है किन्तु उनका संयोजन तर्कसंगत नहीं है।

(द) निश्चित अवधि के अन्दर छात्र कितने प्रश्नों का उत्तर दे सकता है यह निर्णय करना भी कठिन ही है।

Q 9 Discuss the merits and demerits of the new type tests What are the things which they cannot measure and which the essay type tests can measure ?

Ans निबन्धात्मक परीक्षाओं के दोषों को दूर करने के लिए सबसे पहले अमेरिका में नवीन प्रकार की परीक्षाओं का प्रचलन हुआ। थॉर्नडाइक महोदय के प्रयत्नों के फलस्वरूप यूरोप में भी लोगों का ध्यान नई प्रकार की परीक्षाओं की ओर गया। किन्तु उनके प्रचार पर विशेष

ध्यान नहीं दिया गया। अन्तिम कुछ वर्षों में इन परीक्षाओं के दोष अमरीका में भी प्रकाश में आने लगे हैं। ये नीचे दिये जाते हैं।

नवीन प्रकार की परीक्षाओं के गुण और दोष

(१) निबन्धात्मक परीक्षाओं के प्रश्नपत्रों में अधिक से अधिक दस बारह प्रश्न होते हैं। अतः ऐसे प्रश्नपत्रों के छापने में व्यय बहुत कम होता है। किन्तु नवीन प्रकार की परीक्षाओं में प्रश्न अधिक होने के कारण छपाई का व्यय बहुत बैठता है। खर्च को कम करने का एकमात्र उपाय यह है कि नवीन प्रकार के प्रश्नपत्रों के उत्तरों के लिए अलग सादे कागज पर प्रबन्ध हो। ऐसा करने से प्रश्नपत्रों का बार-बार प्रयोग में लाया जा सकता है।

(२) नवीन प्रकार के प्रश्नपत्र बनाने में बहुत अधिक समय और शक्ति व्यय होती है। उनके बनाने के लिए कुशल और अनुभवी व्यक्तियों की आवश्यकता होती है। किन्तु उस समय का अपव्यय उत्तर पुस्तिकाओं के जाँचने में लगाये गये समय की बचत से कम ही होता है। निबन्धात्मक परीक्षा के बनाने में अधिक से अधिक एक घंटा लगता है। और कभी-कभी तो प्रधान अध्यापक महोदय अपने अध्यापक को आठ-आठ प्रश्नपत्र एक या दो दिन के अन्दर तैयार करने का आदेश देते हैं। अध्यापक भी जिस असावधानी से उन प्रश्नपत्रों को बनाते हैं, उससे पाठकगण परिचित ही हैं। किन्तु नवीन प्रकार की परीक्षा के प्रश्नपत्रों को बनाने के लिए जैसा कि पूर्व पृष्ठों में संकेत किया था पूरा एक वर्ष लगता है। तीस घंटे से कम समय में कोई नवीन प्रकार का प्रश्नपत्र तैयार नहीं किया जा सकता। लेकिन इस प्रकार की उत्तर पुस्तिकायें दो मिनट में कम से कम एक के हिसाब से जाँची जा सकती हैं, परन्तु निबन्धात्मक परीक्षा की उत्तर पुस्तिका एक घंटे में केवल दो जाँची जा सकती हैं, जैसा कि हाई स्कूल परीक्षा के प्रत्येक परीक्षक ने अनुभव किया होगा। यदि अध्यापक के पास किसी विषय में पढाने के लिए पाँच विद्यार्थी हैं और दूसरे अध्यापक के पास उसी विषय को पढ़ाने के लिए विद्यार्थियों की संख्या ५० हो तो पहले अध्यापक को नवीन प्रकार की परीक्षा तैयार करने में प्रति विद्यार्थी अधिक समय लगेगा। कुछ भी हो यदि हमे ज्ञान के अभिज्ञान (recognition) और प्रत्यायन (recall) स्तर पर विद्यार्थियों की योग्यता का परीक्षण करना है तो इतना समय खर्च करना ही पड़ेगा। अच्छा तो यह है कि जब जब ऐसे प्रश्न अध्यापक के सामने आवें वह उनको लिखता जाय। इस प्रकार वर्ष भर सतर्क रहने से नवीन प्रकार के प्रश्नों को संकलित कर प्रश्नपत्र आसानी से बनाया जा सकता है।

(३) अभिज्ञान (recognition) परीक्षाओं में जहाँ पर एक विद्यार्थी को दिए हुए उत्तरों में से एक सर्वश्रेष्ठ उत्तर चुनना होता है, अनुमान लगाकर किसी भी सही उत्तर को प्राप्त किया जा सकता है। यदि उत्तरों का निर्वाचन वैकल्पिक हुआ तो किसी प्रकार का ज्ञान होने पर भी वह ५०% अंक प्राप्त कर सकता है और यदि निर्वाचन की संख्या ४ हुई तो २५% अंक प्राप्त कर सकता है।

यदि परीक्षक वैकल्पिक उत्तर वाले प्रश्नपत्र को तन्मापी और विश्वसनीय बनाना चाहता है तो उसके स्थान पर बहुनिर्वाचन प्रश्नों का प्रयोग करे क्योंकि इस प्रकार के प्रश्न अधिक विश्वसनीय होते हैं लेकिन बहुवरण परीक्षा वाले इतने अधिक नहीं ... जा सकते जितने कि वैकल्पिक उत्तर वाले। अन विश्वसनीयता की मात्रा बढ़ाने के ... शेष रह जाता है और वह यह है कि परीक्षक साफ-साफ इस बात का आदेश दे ... लगाने पर उनके अंक काट लिए जाएँगे।

(४) नवीन प्रकार की ... को छोटी उम्र के बच्चों के सामने ... बातें बहुधा असत्य कथन को ... कम है क्योंकि जितने भी प्रयोग ... वैकल्पिक उत्तर वाले प्रश्नों की ... अपनी उत्तर पुस्तिका ... करते हैं।

... है कि वे योग्यता के ... बहुधा ज्ञान के प्रयो... विश्लिष्ट करके उनका

निरपेक्षभाव से मूल्यांकन तो कर सकती हैं किन्तु उन तत्वों को पुनः इकट्ठा करके संश्लेषण नहीं कर सकती। इस प्रकार के विश्लेषण में योग्यता के बहुत से महत्त्वशाली अंगों की अवहेलना कर दी जाती है। जैसा कि पहले संकेत किया जा चुका है, नवीन प्रकार की परीक्षायें परम्परागत परीक्षाओं के समान घटनाओं के निर्वचन तथा ज्ञान का संगठन करने और उसको विशेष रूप देने की योग्यता का मापन नहीं कर सकतीं। इन परीक्षाओं में किसी विषय के केवल प्रारम्भिक ज्ञान की आवश्यकता होती है। विद्यार्थी कुछ इने-गिने तथ्यों को याद कर लेता है। उसका सम्पूर्ण अवबोधन नहीं कर पाता। फल यह होता है कि उसमें रटने की आदत अपेक्षाकृत अधिक बढ़ जाती है।

इस प्रकार की आलोचना में सत्य का अंश अवश्य है किन्तु यदि नवीन प्रकार की परीक्षाएँ बालकों के अवबोधन का मापन नहीं कर सकती तो परम्परागत परीक्षाएँ भी ऐसा करने में पूर्ण रूप से सफल नहीं कही जा सकती क्योंकि यह प्रायः देखा गया है कि निबन्धात्मक परीक्षा देने वाला ज्ञान विद्यार्थी को सुसंगठित और मौलिक चिन्तन करते हुए बहुत कम पाया गया है। प्रश्नों का उत्तर देते समय जितने भी विचारों का प्रत्यानयन (recall) वह कर सकता है, उनको एक-एक करके अपने निबन्ध में लिखता जाता है। उसका उत्तर कोई मौलिक कृति नहीं कही जा सकती। परम्परागत परीक्षाओं की तुलना में नवीन प्रकार की परीक्षायें कम से कम इस बात के इस विचार से तो श्रेष्ठतर हैं ही कि वे केवल सम्बद्ध और सुसंगत ज्ञान पर ही बल देती हैं, असम्बद्ध और असंगत ज्ञान के अंशों पर नहीं। निबन्धात्मक प्रश्न-पत्र का उत्तर देते समय परीक्षार्थी सब प्रकार के सम्बद्ध अथवा असम्बद्ध ज्ञान को अपने उत्तर में उगलने का प्रयत्न करता है। नवीन प्रकार की परीक्षाएँ उसे ऐसा करने से रोकती रहती हैं, नवीन प्रकार की परीक्षाएँ कहा जाता है कि केवल प्रत्यास्मरण पर जोर देती हैं और निबन्धात्मक परीक्षायें चिन्तन और अवबोधन पर, किन्तु प्रत्यास्मरण में भी किसी न किसी प्रकार का चिन्तन सम्मिलित रहता है। अतः नवीन प्रकार की परीक्षाएँ यद्यपि केवल प्रत्यास्मरण (recall) का ही मापन करती हैं और यद्यपि वे विवेचनात्मक तथा तुलनात्मक प्रश्नों को स्थान नहीं देतीं तब भी वे कई उच्चतर मानसिक क्रियाओं पर बल दे सकती हैं। इस प्रकार की परीक्षाएँ ही यदि निष्पादन (achievement) का एकमात्र मापन यंत्र रहीं तो सम्भव है कि बालकों की भाषा पर बिल्कुल अधिकार न रहे। निबन्धात्मक परीक्षाओं में कम से कम बालक कुछ भाषा सीखता तो है। भले ही वह भाषा पर अधिकार प्राप्त न कर सके। किन्तु नवीन प्रकार की परीक्षाओं में तो वह भाषा का प्रयोग कभी न करने के कारण उसे सीख ही न सकेगा। उस पर अधिकार करना तो दूर रहा।

(६) यद्यपि हमने एक स्थान पर बहुवरण परीक्षाओं की भूरि-भूरि प्रशंसा की है तब भी इस प्रकार के प्रश्नों का एक बड़ा दोष यह है कि परीक्षार्थी गलत उत्तरों का निरसन (elimination) करने के बाद सही उत्तर को आसानी से प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार परीक्षा की सम्भाविता में कमी आ जाती है। कभी कभी प्रश्नों में सही उत्तरों का संकेत प्रश्न में ही मिल जाता है। इस आवश्यक संकेत का उदाहरण नीचे दिया जाता है। निम्न प्रश्न में कोष्ठक के बाहर एक शब्द है, और कोष्ठक के अन्दर पाँच शब्द हैं। इन पाँच शब्दों में से केवल एक शब्द बाहर वाले शब्द का विलोम है, उस शब्द को ढूँढ़ो और उसकी संख्या सामने कोष्ठक में लिखो।

असम्भव (अनहोनी, सम्भव, अन्धेर, अनुकूल, विपरीत) असम्भव का विपरीत अर्थ वाला शब्द सम्भव हो सकता है जिसका संकेत दोनों शब्दों के तुरन्त से मिल सकता है। नवीन प्रकार की परीक्षाओं की इन कमियों का कारण परीक्षक के अनुभव की कमी हो सकती है। कोष्ठक में सम्भव के स्थान पर शक्य अथवा सम्भाव्य रखने पर परीक्षा प्रश्न कुछ अधिक सम्भावी हो सकता था।

(७) नवीन प्रकार की परीक्षाओं को निरपेक्ष (objective) परीक्षायें कहा जाता है, केवल इसलिए कि उनमें आत्मनिष्ठता (subjectivity) का अंश बहुत कम होता है। कोई भी विचारशील इस बात को मानने के लिए कभी तैयार न होगा कि इन परीक्षाओं में आत्मनिष्ठता का अंश बिल्कुल नहीं होता। हाँ, वे निबन्धात्मक परीक्षाओं से कम आत्मनिष्ठ होती हैं। किस प्रकार की परीक्षा में किस प्रकार के प्रश्न रखे जायें, कौन सी युक्ति का प्रयोग किया जाय, परीक्षा के विषय का क्षेत्र कितना विस्तृत हो, इन प्रश्नों का उत्तर निरपेक्ष भाव से नहीं दिया जा सकता। यही कारण है कि इन नवीन प्रकार की परीक्षाओं में भी आत्मनिष्ठता आ ही जाती है।

कभी एक ही विषय पर एक ही कक्षा के लिये दो भिन्न-भिन्न परीक्षकों के नवीन प्रकार के परीक्षा प्रश्न तैयार किये और उनको उसी कक्षा के विद्यार्थियों पर लागू किया गया तो इस प्रकार प्राप्त प्राप्तांकों की दो श्रेणियों में सहसम्बन्ध गुणक + ५ से अधिक न मिल सका। यहाँ तक कि प्रामाणिक परीक्षाओं के परीक्षाफलों में भी जो एक ही विषय पर तैयार की गई और विद्यार्थियों के एक [illegible] ·६८ से अधिक नहीं पाया गया। कभी-कभी [illegible] त्पर्य यह है कि परीक्षक अकन-विधि में से [illegible] है किन्तु वह प्रश्नों को बनाते समय उसका बहिष्कार करने में कभी भी सफल नहीं हो सकता।

गुण और दोषों के इस विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कोई भी परीक्षा आदर्श परीक्षा का स्थान ग्रहण नहीं कर सकती। यदि हम किसी कक्षा के विद्यार्थियों की योग्यता के मापन की आदर्श कसौटी तैयार करना चाहते हैं तो इस प्रकार की दोनों परीक्षाओं और विषय अध्यापक के आयगणन का उपयोग करना होगा।

Q. 10. "Till there is no progress in the objectives and learning experiences the improvement in examination is not possible" Discuss.

Ans मापन का उद्देश्य विद्यार्थियों के अर्जित ज्ञान का मूल्यांकन करना ही नहीं है, इसका लक्ष्य शिक्षण प्रणाली में सुधार करना है। इन दोनों लक्ष्यों की पूर्ति तभी हो सकती है जब उस सब ज्ञान की जाँच की जाय जो पढ़ाया गया है, और जो ज्ञान जाँचा जाता है, वह सब पढ़ाया गया हो। दूसरे शब्दों में परीक्षा लेने से पहले हमें यह स्पष्ट ज्ञान हो कि किस किस बात की परीक्षा लेनी है, कितना ज्ञान किस रूप में बालकों को दिया जा चुका है जिसकी जाँच करनी है, बालकों के कौन-कौन से आचरणात्मक परिवर्तन हो चुके हैं जो उनकी प्रगति के सूचक हैं और जिनको हमें परीक्षा की सहायता से देखना है कि उनमें वे परिवर्तन हुए भी हैं या नहीं। अगर वे परिवर्तन नहीं हुए हैं तो क्यों नहीं हो सके। सम्पूर्ण शिक्षा का उद्देश्य ही बालकों में आचरण परिवर्तन (behavioural changes) का लाना है। यदि ये परिवर्तन बालकों के लिए लाभदायक बनते हैं तो उनको सीखने के अनुभव उन्हें किसी ठीक क्रम से दिये जाने चाहिये। यदि उन्हें उचित अनुभव समुचित ढंग के न दिये गये तो परीक्षा ही किस काम की। समुचित ढंग का आशय यह है कि शिक्षक किसी शैक्षणिक कार्यक्रम को बनाते समय उस कार्यक्रम के लक्ष्यों को अवश्य ध्यान में रखे।

शिक्षण के उद्देश्यों का सविन्यसन निम्नलिखित ६ बातों पर निर्भर करता है —

(१) समाज की प्रकृति तथा उसकी आवश्यकताएँ।
(२) बालक की आवश्यकताएँ।
(३) शिक्षा दर्शन तथा राष्ट्र का दार्शनिक दृष्टिकोण।
(४) शिक्षा मनोविज्ञान।
(५) विशेषज्ञों के मत।
(६) पाठ्यविषय की प्रकृति।

प्रत्येक शिक्षक को किसी भी विषय के शिक्षण का आरम्भ करने से पूर्व यह देखना है कि उसके देश में कौन कौन से आर्थिक, सामाजिक अथवा राजनैतिक परिवर्तन हो रहे हैं और ये परिवर्तन उसके भावी नागरिकों को किस प्रकार प्रभावित कर रहे हैं। वह कौन-कौन से ऐसे आचरण परिवर्तन अपने बालकों में लावें जो प्रस्तुत कठिनाइयों तथा समस्याओं के हल को ढूँढने में उनकी सहायता कर सकें। अध्यापक यह भी देखें कि राष्ट्र की सेवा, उपयुक्त पेशे के चुनाव तथा विद्यार्थियों की उन्नति के लिए देश में कौन-कौन से साधन उपलब्ध हैं। दूसरे शब्दों में समाज की क्या आवश्यकतायें हैं और उन आवश्यकताओं की पूर्ति भारतीय युवक किस प्रकार कर सकते हैं। इन सब बातों पर ध्यान रख कर अध्यापक को अपने विशिष्ट उद्देश्यों का निर्माण करना होगा।

दूसरा आधार जिस पर हमें शिक्षण के उद्देश्यों को निश्चित करना पड़ेगा, बालकों की आवश्यकतायें हैं। हमें देखना होगा कि उनकी क्या क्या अभिरुचियाँ हैं? उनकी आवश्यकताएँ कौन-कौन सी हैं? जब वे माध्यमिक विद्यालय में प्रविष्ट हुए थे तब उनके विकास का क्या स्तर था? किस प्रकार का विकास शिक्षक उनमें पैदा करने का प्रयत्न करे जो उनके लिए हितकारी सिद्ध हो सके?

बालकों की आवश्यकताओं के अतिरिक्त तीसरी बात जो उद्देश्यों की खोज में सहायक सिद्ध हो सकती है, राष्ट्र की दार्शनिक नीति है। देश में कौन-कौन से दार्शनिक अथवा सांस्कृतिक मान (values) ऐसे हैं जिन पर देश जोर देता है। भारतीय मानव तथा भारतीय समाज में क्या सम्बन्ध हो सकता है।

शैक्षणिक उद्देश्यों को स्थिर करने के लिये शिक्षा मनोविज्ञान का अध्ययन अध्यापक की सहायता कर सकता है। किस उद्देश्य की पूर्ति के लिए बालक किसी पाठ्यवस्तु को मानसिक अथवा शारीरिक विकास के किस स्तर पर सीख सकता है। उस उद्देश्य की पूर्ति के लिये कैसी सामग्री, कैसी सुविधाएँ अथवा कौन सी शैक्षणिक प्रविधियाँ आवश्यक हैं? इन प्रश्नों का उत्तर शैक्षणिक मनोविज्ञान दे सकेगा।

अन्त में पाठ्य विषयों की प्रकृति भी लक्ष्यों को स्थिर किया करती है। भौतिकशास्त्र पढ़ाने के उद्देश्य संगीत अथवा चित्रकला पढ़ाने के उद्देश्यों से भिन्न होने चाहिए क्योंकि दोनों विषयों की प्रकृति भिन्न है। अतः भिन्न भिन्न प्रकृति वाले विषयों के शिक्षण के विशिष्ट उद्देश्य भी भिन्न-भिन्न होने चाहिये। कभी-कभी शिक्षण के उद्देश्य शिक्षण विशेषज्ञों के मतों पर भी स्थिर किये जाते हैं।

अर्हापण, उद्देश्य आचरण-परिवर्तन और सीखने के अनुभव में सम्बन्ध

जहाँ तक पाठ्य-विषयों के परीक्षण का सवाल है, वहाँ तक हम उन उद्देश्यों का मूल्यांकन अथवा अर्हापण (evaluation) करते हैं, जिनको ध्यान में रख कर हमने अध्यापन कार्य आरम्भ किया था। ये समस्त उद्देश्य बालकों में कुछ आचरण परिवर्तन लाने के लिये स्थिर किये जाते हैं, ये आचरण-परिवर्तन सीखने के अनुभवों (learning experiences) पर निर्भर रहते हैं और सीखने के अनुभव उद्देश्यों के ऊपर आधारित रहते हैं जो कि बालकों को सीखने के अनुभव देते समय उन्हें उद्देश्यों पर आधारित करना पड़ता है।

शिक्षा क्षेत्र में यही सम्बन्ध अर्हापण-शिक्षण अभिगमन (evaluation teaching approach) के नाम से प्रसिद्ध है। सफल शिक्षण एवं सफल अर्हापण के लिये आवश्यक है कि अध्यापक उद्देश्यों को स्थिर करे, उन उद्देश्यों को आचरण परिवर्तनों में तोड़े, उन आचरण परिवर्तनों की सहायता से सीखने के अनुभव स्थिर करे और अन्त में इन सीखने के अनुभवों का मूल्यांकन करे।

जूनियर हाई स्कूल में पढ़ाये जाने वाले महत्वपूर्ण अनिवार्य विषयों हिन्दी और गणित के विशिष्ट उद्देश्यों, आचरण परिवर्तनों, सीखने के अनुभवों (learning experiences) और उनको मूल्यांकन करने के लिये आवश्यक अर्हापण यन्त्रों (evaluation tool) पर अब प्रकाश डाला जायगा।

हिन्दी—इस कक्षा के विद्यार्थियों के लिए हिन्दी भाषा पढ़ाने के निम्नलिखित कुछ उद्देश्य हो सकते हैं

(१) प्रभावशाली अभिव्यक्ति।   (२) शुद्ध लिखना और बोलना।
(३) साहित्यिक अभिरुचि पैदा करना।

यदि हमारे शिक्षण के इन उद्देश्यों की पूर्ति हो सकती है तो बालकों के आचरण में परिवर्तन होने चाहिये। नीचे की तालिका में प्रत्येक उद्देश्य के सामने कुछ आचरण परिवर्तन दिये जाते हैं —

	उद्देश्य (objectives)	आचरण परिवर्तन (behavioural changes)
१	प्रभावशाली अभिव्यक्ति	(अ) वाक्यों में से शुद्ध अथवा अशुद्ध शब्दों को छाँट लेना। (आ) लगभग समान रूप वाले शब्दों या वाक्यों के प्रयोग द्वारा अन्तर स्पष्ट करना।
२	शुद्ध लिखना और बोलना	(क) शब्दों में अशुद्धि की पहचान कर सकना। (ख) वाक्यों में शब्दों को यथास्थान रख सकना ताकि अर्थ स्पष्ट हो सके। (ग) वाक्यों को शुद्ध कर सकना।

३. साहित्यिक अभिरुचि पैदा करना ।
(क) कवियों और लेखकों की जीवनी के विषय में पूर्ण ज्ञान ।
(ख) काव्य का रसास्वादन कर सकना ।

नीचे इन आचरण परिवर्तनों की जाँच करने के लिये कुछ प्रश्न दिये जाते हैं। प्रश्न के आरम्भ में इस आचरण परिवर्तन की सख्या दी गई है जिसका मापन वह प्रश्न कर सकता है।

१ नीचे कुछ अपूर्ण वाक्य दिये गये हैं। वे जिन शब्दों में पूर्ण हो सकते हैं, उनको अ, ब, स, द, अक्षरों में नीचे लिख दिया गया है। प्रत्येक वाक्य जिस शब्द से पूर्ण किया जा सकता है उसका प्रतीक-अक्षर वाक्य के दाईं ओर दिये गये रिक्त स्थान में लिखिये। पहला प्रश्न आपके लिये हल कर दिया गया है

विद्यार्थी को सदैव अपने——के सुधार का ख्याल रखना चाहिये। (ब)

(अ)	(ब)	(स)	(द)
स्वभाव	आचरण	शिष्टत्व	मनोविकार

२ (क) नीचे कुछ शब्दों के जोड़े दिये जाते हैं। प्रत्येक जोड़े में एक शब्द शुद्ध है और दूसरा अशुद्ध। तुम्हें शुद्ध शब्द का प्रतीक-अंक जोड़े के सामने कोष्ठक में भरना है। पहले प्रश्न को हल कर दिया गया है। चूँकि पुरस्कार शब्द सही है अत कोष्ठक में २ लिख दिया गया है।

	१	२	
(i)	पुरष्कार	पुरस्कार	(२)
(ii)	सन्मुख	सम्मुख	
(iii)	निरोग	नीरोग	
(iv)	श्राप	शाप	
(v)	उपरोक्त	उपर्युक्त	

३ (क) नीचे कुछ प्रश्न दिये जाते हैं। यदि आपका उत्तर हाँ में हो तो 'हाँ' के चारो ओर घेरा खीच दीजिये यदि उत्तर न में हो तो 'नहीं' के चारों ओर घेरा खींच दीजिये। पहला प्रश्न आपके लिये हल कर दिया गया है। चूँकि कबीर को कुशल कवि न कह कर खरा उपदेशक ही कहा जा सकता है। अत 'हाँ' के चारो ओर घेरा खीच दिया गया है —

(१) क्या कबीर को एक कुशल कवि न कह कर खरा उपदेशक कहना उपयुक्त होगा ? (हाँ) नहीं

(२) क्या सूर ने निर्गुण ब्रह्म की उपासना ही अपना प्रधान लक्ष्य रखा था ?

(३) क्या लक्ष्मण की सेवा भरत के त्याग से महान थी ?

(४) क्या श्री रामचन्द्र शुक्ल की रचनाओं में उर्दू शब्दों की भरमार है ?

गणित

विशिष्ट उद्देश्य—(१) बालकों को गणितीय सबोधो (concepts), पदों (terms) और प्रक्रिया से परिचित करना।

(२) गणितीय चिन्हों तथा प्रतीकों की व्याख्या करना, गणितीय यन्त्रों का प्रयोग कराना, ऊँचाई, दूरी, भार, तापक्रम आदि को माप सकना। रेखाचित्रों को खीचना और पढ़ना और उनकी व्याख्या करवाना। गणितीय तालिकाओं का पढ़वाना।

(३) गणितीय सवादों और प्रक्रियाओं का दैनिक जीवन में प्रयोग गणितीय समस्याओं को हल करवाना, मानवीय इकाइयों का प्रयोग करवाना।

पहला उद्देश्य ज्ञान (knowledge) की वृद्धि, दूसरा दक्षताओं (skills) की उत्पत्ति और तीसरा गणित के दैनिक जीवन में उपयोग (application) से सम्बन्धित है।

ज्ञान (knowledge) सम्बन्धी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति होने पर बालक के निम्न-लिखित आचरण परिवर्तन हो सकते हैं :—

(१) वह पदों (terms) के अर्थ को समझता है।
(२) वह पारिभाषिक शब्दों में समता और विषमता को पहचान सकता है।
(३) वह सम्बन्ध व अर्थ को समझता है।
(४) वह भिन्न भिन्न सम्बन्धों में अन्तर और समानता की पहचान कर सकता है।
(५) वह परिभाषाओं में अशुद्धि बता सकता है और उन्हें शुद्ध कर सकता है।
(६) वह गणितीय प्रक्रियाओं को समझा सकता है।

किसी एक गणित के सम्बोध (concept) उदाहरणार्थ, निधि को देने के लिये अध्यापक निम्नलिखित सीखने के अनुभव (learning experiences) प्रस्तुत कर सकता है:

(१) वह विद्यार्थियों को उन परिस्थितियों की सूची बनाने का आदेश दे सकता है जिसमें कोई बिन्दु दी हुई शर्तों के अनुसार गति करता है।

(२) अध्यापक निधि का सम्बोध (concept) समझाने के लिये भिन्न भिन्न उदाहरण प्रस्तुत कर सकता है।

(३) बालक दैनिक जीवन से ऐसी परिस्थितियों को ढूंढे जहाँ पर निधि का प्रयोग होता है।

यह जानने के लिए कि बालक निधि के सम्बोध से परिचित हो गए हैं अथवा नहीं हम उन्हें निम्न प्रकार के प्रश्न पूछ सकते हैं

(४) एक बिन्दु क किसी रेखा य व के सहारे इस प्रकार गति करता है कि इसकी स्थिति दो बिन्दु य और र से सदैव समान रहती है। यह बिन्दु य व और नीचे लिखी हुई किसी रेखा का कटान बिन्दु हो सकता है। जिस रेखा का कटान बिन्दु हो सकता हो उसकी संख्या कोष्ठक में लिखो।

(i) य र रेखा के य बिन्दु पर लम्ब
(ii) य र रेखा के र बिन्दु पर लम्ब
(iii) य र रेखा का लम्ब-अर्धक
(iv) य र को व्यास मानकर खींचा गया वृत्त।

दक्षताओं (skills) से सम्बन्धित आचरण परिवर्तन निम्नलिखित हो सकते हैं। यदि कोई विद्यार्थी गणितीय यन्त्रों को प्रयोग करता है तो उसे यह जानना चाहिए कि कब और कहाँ भिन्न-भिन्न यन्त्रों का प्रयोग किया जा सकता है। उन यन्त्रों की सहायता से परिणामों का किस प्रकार सत्यापन किया जा सकता है, नये यन्त्रों को किस प्रकार तैयार किया जा सकता है। यदि उसने गणितीय प्रक्रियाओं में दक्षतायें प्राप्त कर ली हैं तो वह भिन्न-भिन्न प्रकार के आगणन आसानी से कर सकता है।

इन आचरण परिवर्तनों की जाँच करने के लिए निम्न प्रकार के प्रश्न दिये जा सकते हैं

(१) अ और ब किसी काम को क्रमश. ८ और ६ दिनों में कर सकते हैं। यदि वे साथ-साथ उस काम को आरम्भ करें तो कितने दिनों में कर लेंगे? नीचे उत्तर दिये जाते हैं जो आप ठीक समझो उनकी संख्या कोष्ठक में लिखो।

(i) ८+६ दिन
(ii) $\frac{1}{8}+\frac{1}{6}$ दिन
(iii) $1\div(\frac{1}{8}+\frac{1}{6})$ दिन
(iv) १—(८+६) दिन
(v) इनमें से कोई नहीं

(२) निम्नांकित प्रक्रिया को पूरा करो और सही उत्तर की संख्या प्रश्न के सामने कोष्ठक में लिख दो।

भौतिक जगत में निर्देश बिन्दु प्राय शून्य होता है। गज, मीटर, जैसे सभी पैमानों का प्रामाणिक बिन्दु शून्य हुआ करता है किन्तु बुद्धि, प्राय योग्यता आदि निष्पादन शून्य से आरम्भ नहीं होते क्योंकि थोड़ी बहुत बुद्धि तो जड़ में भी होती है, थोड़ी बहुत अभियोग्यता अथवा थोड़ी बहुत निष्पादन सभी का होता है। जिस प्रकार लम्बाई समय और भार के मापन में हम परम शून्य से मापन आरम्भ करते हैं उसी प्रकार शैक्षणिक मापन में भी ऐसे ही निर्देश बिन्दु से मापन आरम्भ करते हैं। इस निर्देश बिन्दु को प्रमाप कहते हैं।

जब कोई परीक्षा किसी छात्र समूह को दी जाती है तब उनकी उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन करने पर हमें कुछ अंक मिलते हैं। ये अंक कच्चे फलांक (raw score) कहलाते हैं। किसी छात्र को मिलने वाले कच्चे फलांक उन अनेक प्रश्नों के सही उत्तरों का योग होता है जो किसी प्रश्न पत्र में रखे जाते हैं। मान लीजिए भौगोलिक तथ्यों की जानकारी की जाँच करने के लिये एक परीक्षा एक कक्षा को दी जाती है जिसमें ५० प्रश्न उसी ढङ्ग के हैं जिस ढङ्ग के प्रश्न प्रकरण २.४ में दिये गये थे। मान लीजिये कि रामस्वरूप ने ऐसे ३३ प्रश्न सही-सही हल किये हैं। उसको मिलने वाले अंक ३३ होंगे। साधारण भाषा में ३३ को प्राप्तांक कहा जाता है।

यह फलांक औसत अंकों से कम है या अधिक ? क्या ३३ कक्षा के विद्यार्थियों के अंकों का औसत ही तो नहीं है ? यदि कक्षा के विद्यार्थियों के श्रेणीअंकों को आरोह अथवा अवरोह क्रम बना दी जाय तो कहीं यह अंक बीचों बीच में तो नहीं पड़ता है ? बीचों बीच में पड़ने वाले अंक से जिसे सांख्यिकी की भाषा में मध्यमान कहते हैं, यह अंक थोड़ा है या कम ? इस प्रकार चिन्तन करता हुआ अध्यापक इस कच्चे फलांक की व्याख्या करता है। सम्पूर्ण कक्षा के विद्यार्थियों के अंकों का औसत *अथवा मध्यांक मान ही वह अंक है जिसके साथ इस कच्चे फलांक की तुलना की जाती है।* मध्यमान अथवा मध्यांक मान ही निर्देश बिन्दु कहलाता है क्योंकि इसको ध्यान में रखकर ही कक्षा के छात्रों की स्थिति का अन्दाज लगाया जाता है।

यदि किसी परीक्षा को किसी ऐसे विशाल जनसमूह पर लागू किया जाय जिसके सदस्यों का चुनाव विशेष ढंग से किया गया है और उनकी उत्तर पुस्तिकाओं का मूल्यांकन करने के उपरान्त प्राप्त अंकों का औसत अथवा मध्यांक मान निकाल लिया जाय तो यह औसत या मध्यांक मान उस समूह के लिये प्रमाप कहलायगा। संक्षेप में प्रमाप वह निर्देश बिन्दु है जिसका सम्बन्ध विशेष ढंग से चुने हुए समूह के प्राप्तांकों के अध्ययन से होता है। विशेष ढंग से चुना हुआ यह समुदाय प्रमापण समुदाय (Standardisation Sample) कहलाता है और वह परीक्षा जिसका प्रमाप निर्धारित किया जा चुका है प्रमापीकृत परीक्षा (Standardised Test) कहलाती है।

विशेष ढंग से चुना हुआ यह समुदाय न्यादर्श चरित समुदाय होता है। चयन अथवा [illegible] । मान लीजिये हमें अपने प्रान्त के [illegible] में प्रवेश लेना चाहते हैं तो सभी [illegible] कि प्रत्येक बालक को चुने जाने की सम्भावना समान हो, जब किसी बुद्धि परीक्षा को ऐसे हजारों बालकों पर लागू करके उनके अंकों का औसत (मध्यमान) अथवा मध्यांक मान निकाल लिया जाता है तब इस प्रमापीकृत बुद्धि परीक्षा को अपने प्रान्त में किसी भी ११ वर्षीय बालक को देकर उसकी स्थिति ज्ञात की जा सकती है और यह बताया जा सकता है कि वह बालक अन्य बालकों की अपेक्षा अधिक प्रतिभावान है अथवा कम प्रतिभावान।

लगभग सभी क्षेत्रों में परीक्षाओं का प्रमापीकरण किया जाता है ताकि तुलनात्मक अध्ययन में उनका उपयोग किया जा सके। ये क्षेत्र हैं —

(i) बुद्धि (Intelligence)
(ii) अभियोग्यता (Aptitude)
(iii) रुचि (Interest)
(iv) अभिवृत्ति (Attitude)
(v) निष्पादन (Achievement)

इन क्षेत्रों से सम्बद्ध प्रमापीकृत परीक्षाओं का उल्लेख अगले अध्याय में किया जायगा।

Q. 2 What norms do we prepare when standardising a test. Discuss the uses and limitations of different norms

Ans परीक्षाओं के प्रमापन के पद

ज्ञान अथवा स्वभाव की योग्यताओं अथवा अन्य कौशल गुणों की जाँच के लिये जो परीक्षा तैयार की जाती है उसका प्रमापन निम्न पदों में किया जाता है—

(१) जाँची जाने वाली वस्तु का आलोचनात्मक विश्लेषण।

(२) प्रश्नों का चयन और प्रश्न पत्र का निर्माण

(३) उस कक्षा या आयु के विस्तृत समुदाय पर परीक्षा को प्रथम बार लागू करना।

(४) विभेदकारी शुद्ध व्यक्ति निरपेक्ष प्रश्नों का चयन और परीक्षा के अन्तिम रूप का निर्माण।

(५) परीक्षा की प्रमापों का ज्ञात करने के लिये परीक्षा को न्यायदर्श वरित समुदाय पर लागू करना। इस पुस्तिका में दिये गये आदेशों के अनुसार परीक्षा दिये जाने पर प्राप्त अंकों को आयु अथवा कक्षा के अनुसार सजाना और उनका योगफल या मध्यांक मान निकालना।

(६) यह निश्चित करना कि परीक्षा कितनी शुद्ध और विश्वस्त है, परीक्षा के अन्य प्रारूपों का किस प्रकार तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है? किस तरह के और प्रमाप तैयार किये जा सकते हैं? इन प्रमापों की व्याख्या और प्रयोग किस प्रकार किया जा सकता है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है प्रमापीकृत परीक्षाओं में प्रमापों को विशेष महत्व दिया जाता है। ये प्रमाप निम्नलिखित हैं—

(i) आयु प्रमाप, जैसे मानसिक आयु, शैक्षणिक आयु, वाचन-आयु
(ii) कक्षा प्रमाप,
(iii) प्रतिशततमक
(iv) प्रामाणिक अंक

मापनीय विषय वस्तु का आलोचनात्मक विश्लेषण, प्रश्नों का चयन और प्रश्न-पत्र का निर्माण करने की विधियों का उल्लेख यथास्थान किया जायगा। अगले प्रकरणों में इन प्रमापों की विशद् रूप से व्याख्या प्रस्तुत की जायगी।

आयु प्रमाप (Age norm)—किसी परीक्षा को न्यायदर्श वरित समुदाय पर लागू करने के उपरान्त भिन्न-भिन्न आयु के बालकों के प्राप्तांकों के मध्यमान अथवा मध्यांक मान ही उस परीक्षा के आयु प्रमाप कहलाते हैं। आयु प्रमाप की गणना-विधि नीचे दी जाती है।

परीक्षा को विभिन्न आयु स्तर के बालकों को दिया जाता है। प्रत्येक आयु स्तर के बालकों की उत्तर पुस्तिकाओं को छाँट लिया जाता है। यदि परीक्षा ६ वर्ष से लेकर १० वर्ष तक के बालकों को दी गई है तो ६, ७, ८, ९, १०, वर्ष के बालकों की उत्तर पुस्तिकाओं को छाँटकर उनका मूल्यांकन कर लिया जाता है। जिन बालकों की आयु ५½ और ६½ वर्ष के बीच में होती है उनकी आयु ६ वर्ष मान ली जाती है। ६ वर्ष के सभी बालकों के प्राप्तांकों को जोड़कर उनकी संख्या का भाग दे दिया जाता है। यह अंक जो इस प्रकार प्राप्त होता है ६ वर्षीय बालकों के लिये प्रमाप कहलाता है।

नीचे दी गई तालिका में कुछ काल्पनिक प्रदत्त दिये गये हैं जिनसे विभिन्न आयु प्रमापों की गणना की जा सकती है। यदि इस परीक्षा में ४० नवीन प्रकार के व्यक्ति निरपेक्ष प्रश्न (New type objective tests) दिये गये हैं → भिन्न-भिन्न अंक पाने वाले बालकों की काल्पनिक संख्याएँ ऐसी हो सकती हैं जैसी कि ता[illegible] र दिखाई गई हैं।

अंक	आयु वर्षों में				
	६	७	८	९	१०
४०					१
३९					२
३८					२
३७				१	३
३६				२	३
३५			१	३	५
३४			२	५	६
३३		१	३	८	७
३२		२	४	९	७
३१	१	२	६	१०	६
३०	३	३	७	९	५
२९	४	५	६	८	३
२८	६	३	४	५	३
२७	४	२	३	३	२
२६	३	२	२	२	२
२५	१	१	१	१	१
आयु प्रमाप	२८	२९	३०	३१	३२½

६ वर्षीय बालकों का आयु प्रमाप २८, ७ का २९, ८ का ३०, ९ का ३१ है इन प्रमापों को देखने से यह पता चलता है कि निम्न आयुस्तरों के लिये आयु प्रमाप कम हुआ करते हैं और ऊँचे आयुस्तरों के लिये आयु प्रमाप ऊँचे होते हैं। तालिका को देखने से यह भी पता चलता है कि यद्यपि ६ वर्षीय बालकों का आयु प्रमाप २८ अंक है और ७ वर्षीय बालकों का २९ फिर भी ८ वर्ष के कई बालक ऐसे हैं जिनका प्राप्तांक ७ वर्षीय बालकों के आयु प्रमाप २८ से भी कम है और ७ वर्ष के कई बालक ऐसे हैं जिनका प्राप्तांक ८ वर्षीय आयु प्रमाप २९ से भी अधिक है।

इस तालिका से आयु प्रमाप की निम्न तालिका तैयार की जा सकती है।

आयु	प्रमाप
६	२८
७	२९
८	३०
९	३१
१०	३२½

ऐसी तालिका प्रमापीकृत परीक्षा की हस्तपुस्तिका (manual) में अवश्य दर्ज की जाती है क्योंकि इसकी सहायता से प्राप्तांकों का तुलनात्मक अध्ययन अथवा उनकी व्याख्या की जाती है। मान लीजिये मोहन स्वरूप ७ साल का है और उसे इस परीक्षा में ३१ अंक मिलते हैं और यह परीक्षा बुद्धि का मापन करती है तो हम इस तालिका को देखकर यह कह सकते हैं कि मोहन स्वरूप की मानसिक आयु ९ वर्ष है क्योंकि ९ वर्षीय बालकों के आयु प्रमाप (३१) के बराबर उसने इस बुद्धि परीक्षा में अंक प्राप्त किये हैं। इसी प्रकार यदि कोई बालक जिसकी आयु १० वर्ष है लेकिन परीक्षा में वह केवल २८ अंक प्राप्त करता है तो उस बालक की मानसिक आयु ६ वर्ष मानी जायगी।

यदि यह परीक्षा बालकों की शब्द भण्डार के ज्ञान की परीक्षा होती तो मोहन स्वरूप की शब्द भण्डार की समानान्तर आयु ९ वर्ष और [illegible] [illegible] की ६ वर्ष मानी जाती। इसी

[illegible] की जाती है।

[illegible]

(१) आयु प्रमाप [illegible] है।
(२) [illegible]
(३) [illegible]
(४) आयु प्रमाप [illegible] की तुलना में [illegible] है।

कक्षा प्रमाप (Grade Norm) वास्तविक कक्षाओं में बालकों की विभिन्न स्थिति की जांच करने के लिए कक्षा प्रमापों का प्रयोग होता है। आयु प्रमापों की तरह ही इनकी रचना की जाती है। [illegible] निम्नलिखित है:

(i) कक्षा २ से लेकर ७ तक के बालकों को कोई निष्पत्ति परीक्षा (achievement test) दी जाती है।
(ii) कक्षा २, ३, ४, ५, ६, और ७ के बालकों की प्राप्त [illegible] को अलग अलग इकट्ठा किया जाता है और उनके प्राप्तांकों का मध्यमान निकाल लिया जाता है। प्रत्येक कक्षा के लिये उस कक्षा के प्राप्तांकों का मध्यमान उस कक्षा का प्रमाप कहलाता है।

कक्षा प्रमापों की व्याख्या तथा प्रयोग करने के लिए अध्यापक किसी छात्र के प्राप्तांकों की तुलना इन कक्षा प्रमापों से करता है। मान लीजिये किसी काल्पनिक टेस्ट में निम्न कक्षा प्रमाप मिलते हैं।

कक्षा	प्रमाप
२	१०
३	१४
४	१७
५	१९
६	२१
७	२४

यदि मोहन जो कक्षा ५ में पढ़ रहा है २४ पद प्राप्त करता है जो ७वीं कक्षा के बालकों का औसत प्राप्तांक है तो यह कहा जा सकता है कि मोहन अपनी कक्षा के साधारण बालकों से अधिक महनती लड़का है वह ५ वीं कक्षा की पढ़ाई जाने वाली पाठ्य वस्तुएँ अच्छी तरह समझ सकता है और कोशिश करे तो ७वीं कक्षा की पाठ्य वस्तु भी उसके लिये बोधगम्य हो सकती है।

यदि उसी कक्षा के आगे किसी बालक को इस परीक्षा में २० अंक मिलते हैं उसका कक्षा प्रमाप क्या होगा ? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये इन अंकों को वर्गांकित पत्र पर अंकित करना होगा और उस पर लेखाचित्र बनाकर उस चित्र से यह पढ़ा जा सकता है कि २० अंक पाने वाले ५ वीं कक्षा के इस बालक का कक्षा प्रमाप क्या है अर्थात् किस कक्षा के बालक के समान उसका निष्पादन माना जा सकता है। अन्तर गणना की क्रिया से भी २० अंक पाने वाले बालक की कक्षा स्थिति ज्ञात की जा सकती है। दोनों विधियों से ५½ कक्षा आती है इसका अर्थ यह है कि कक्षा ५ का यह बालक निष्पादन से उस बालक के समान है जिसने कक्षा ५ में उससे ६ महीने अधिक शिक्षा ग्रहण की है।

आयु प्रमाप तथा कक्षा प्रमाप की कमियाँ—यदि एक ही आयु वाले बालकों की योग्यता की तुलना करनी हो तो न तो आयु प्रमाप और न कक्षा प्रमाप ही हमारी सहायता कर सकता है।

७ वर्षीय मोहन स्वरूप की तुलना हम अन्य बालकों से कर सकते हैं जो ८, ९ या १० वर्ष के हैं किन्तु मोहन स्वरूप जैसा अन्य ९९ बालक भी यदि[1] ७ वर्ष हुए है तो उनकी तुलना आपस में कैसे की जायगी ? समान आयु अथवा इसी कक्षा के विद्यार्थियों में आपस में तुलना प्रतिशततमक के अनुस्थिति पदों में की जाती है।

प्रतिशततमक अनुस्थिति (Percentile Rank)—मान लीजिये १०० विद्यार्थी किसी दौड में भाग ले रहे है। एक विद्यार्थी सबसे तेज दौडता है और दौड में प्रथम आता है। वह ९९ विद्यार्थियों से दौड में अच्छा है इसलिये उसकी प्रतिशततमक अनुस्थिति ९९ है। दौड में दूसरी स्थिति पर आने वाला विद्यार्थी ९८ विद्यार्थियों से अच्छा है अर्थात् उसकी प्रतिशततमक अनुस्थिति ९८ वी है। पहले और दूसरे विद्यार्थी के बीच में कितनी ही दूरी क्यो न हो उनकी प्रतिशततमक अनुस्थिति मे कोई अन्तर नहीं आ सकता। जो विद्यार्थी सबसे पीछे है उसके पीछे और कोई दौडने वाला विद्यार्थी नहीं है इसलिये उसकी प्रतिशततमक अनुस्थिति शून्य मानी जायगी। बस यही बात हमे शैक्षणिक परिस्थितियों मे मिलती है लेकिन प्रतिशततमक अनुस्थिति की गणना मे थोडा सा अन्तर है।

एक ही आयु अथवा एक ही कक्षा के छात्रों के बीच वैयक्तिक इतनी अनन्त विभिन्नताएँ होती हैं कि एक छात्र सबसे आगे निकल जाता है और एक छात्र सबसे पिछड जाता है। बीच के विद्यार्थियों की अनुस्थिति कैसे निकालें यह समस्या है।

मान लीजिये किसी कक्षा मे १०० विद्यार्थी हैं जिनके अंको का वितरण निम्न तालिका द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। इसमे ६ छात्र ऐसे हैं जिनके अंक २४½ से अधिक किन्तु २५½ से कम हैं इसलिये २५ अंक के आगे ६ आवृत्ति लिखी गई है। इसी प्रकार ८ छात्र ऐसे हैं जिनके अंक ३४½ और ३५½ के बीच मे हैं। केवल १ छात्र ऐसा है जिसके अंक ३९½ और ४०½ के बीचमे हैं।

१	२	३	४
अंक	आवृत्ति	संचयी आवृत्ति	प्रतिशततमक अनुस्थिति
४०	१	१२०	९९.६
३९	३	११९	९५
३८	५	११६	९८
३७	६	१११	८७.५
३६	६	१०२	८२
३५	८	९३	७५
३४	१३	८५	६५
३३	१४	७२	५५
३२	१०	५८	४५
३१	९	४९	३७½
३०	९	४०	३०
२९	७	३२	२३
२८	७	२५	१८.३
२७	६	१८	१२.५
२६	६	१२	१०
२५	६	६	२.५
	१२०		

"Age or grade norms locate the pupil in terms of age or grade groups but not necessarily with pupils of his own age and grade" Devis Baron & Harold W. Bernard : Evaluation Techniques for Classroom Teachers, Mc Graw Hill Book Co., 1958.

इन १२० छात्रों में से एक छात्र ऐसा है जिसको ४० अंक मिले हैं जो सबसे अधिक है इसलिये उसकी प्रतिशततमक अनुस्थिति ९९ से अधिक है १०० की भांति मानली जाती है। १२०

छात्रों में ११९ छात्र ३९½ से कम अंक पाने वाले हैं इसलिये १०० छात्रों में $\left(\frac{११९}{१२०} \times १००\right)$

या ९९.१ छात्र उससे पीछे माने जा सकते हैं। अब यदि ४० अंक पाने वाले छात्र की प्रतिशततमक अनुस्थिति (९९.१+.५=९९.६) १०० है तो ३५ अंक पाने वाले छात्र की प्रतिशततमक अनुस्थिति क्या होगी ? ३४½ अंक से कम पाने वाले छात्र १२० में ८५ हैं १०० में से

$\frac{१०० \times ८५}{१२०} = \frac{४२५}{६}$ =७१ छात्र ३४½ से कम अंक पावेंगे ३४½ से ३५ तक अंक पाने वाले ४

छात्र हैं ∴ ७५ छात्र ३५ से कम अंक पाने वाले हो सकते हैं अतः वह छात्र जिसके अंक ३५ हैं ७५ वीं अनुस्थिति वाला होगा। इसी प्रकार कुछ छात्र जिनके अंक २५ हैं ३ छात्र कम अंक

पाने वाले हैं इसलिये २५ अंक पाने वाले छात्र की प्रतिशततमक अनुस्थिति $\frac{३}{१२०} \times १००$ =

२.५ वीं होगी।

चौथे स्तम्भ में अन्य प्रतिशततमक अनुस्थितियाँ इसी प्रकार निकाली गई हैं।

यदि किसी विद्यार्थी को इस परीक्षा में ३३ अंक मिलते हैं तो उसकी प्रतिशततमक अनुस्थिति ५५ होगी। यह सूचना कि किसी छात्र को ३३ अंक मिले हैं कोई अर्थ नहीं रखती किन्तु यह सूचना कि १०० विद्यार्थियों में ५५ विद्यार्थी उससे कम अंक पाने वाले और ४५ विद्यार्थी उससे अधिक अंक पाने वाले हैं अधिक सार्थक प्रतीत होती है। प्रतिशततमक अनुस्थिति मालूम होने पर छात्रों की सापेक्षिक योग्यता का ठीक-ठीक अनुमान लगाया जा सकता है। जिस विद्यार्थी की प्रतिशततमक अनुस्थिति ५५ है उस छात्र से कम अंक पाने वाले ५५% छात्र हैं इस कथन से यह अर्थ निकाला जाय कि उसको ५५% विषय वस्तु याद है अथवा उसने ५५% प्रश्नों का उत्तर ठीक-ठीक लिखा है।

५५ प्रतिशततमक अनुस्थिति वाला अंक (३३) वह बिन्दु है जो वितरण को इस प्रकार बाँटता है कि ५५% छात्र उससे कम अंक पाने वाले और शेष उससे अधिक अंक पाते हैं। अतः प्रतिशततमक अनुस्थिति १०० छात्रों के काल्पनिक समुदाय में एक निश्चित प्रमाप माना जा सकता है।

प्रतिशततमक अनुस्थितियों को सापेक्षिक मापन की इकाइयाँ माना जा सकता है जिस प्रकार इन्ची टेप पर प्रत्येक इन्च का निशान बराबर-बराबर दूरी पर लगाया जाता है, उसी प्रकार कुछ-कुछ ये अनुस्थितियाँ लगाई जाती हैं

निम्न वितरण तालिका में ०, १०वें, ४०वें और ५०वें प्रतिशततमक निकाले गये हैं।
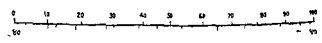
0 10 20 30 40 50 60 70 80 90 100

80 — 95

अंक	आवृत्ति
१९५-१९९	१
१९०-१९४	२
१८५-१८९	४
१८०-१८४	५
१७५-१७९	८
१७०-१७४	१०
१६५-१६९	६
१६०-१६४	४
१५५-१५९	४
१५०-१५४	२
१४५-१४९	३
१४०-१४४	१
	५०

०वी प्रतिशततमक १३९.५ अंक है क्योंकि कोई भी विद्यार्थी १३९.५ से कम पाने वाला नहीं १०वां प्रतिशततमक १५२.०, ४०वां प्रतिशततमक १६९.५ और ५०वां प्रतिशततमक १७२ है।

यदि प्रतिशततमकों और प्राप्तांकों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो एक विचित्र बात मिलेगी। आवृत्ति वितरण के मध्य में प्रतिशततमकों का समान अन्तर तत्सम्बन्धी प्राप्तांकों के अन्तर से भिन्न होता है, जैसे

प्रतिशततमक		प्राप्तांक
P_0	=	१३९.५
P_{10}	=	१५२.०
P_{40}	=	१६९.५
P_{50}	=	१७२.०

वितरण के एक छोर पर P_0 और P_{10} के बीच १० प्रतिशततमकों का अन्तर है और प्राप्तांकों के बीच १२.५ किन्तु वितरण के मध्य में P_{40}, P_{50} प्रतिशततमकों का अन्तर १० होते हुए भी प्राप्तांकों के बीच अन्तर केवल २.५ का ही है इसका मतलब यह है कि प्रतिशततमक अनुस्थिति का प्रदर्शन करने वाले पैमाने दोनों छोरों पर अधिक चौड़े और बीच में सकरे होते हैं। इस परिस्थिति को निम्न चित्र द्वारा दिखाया जा सकता है।
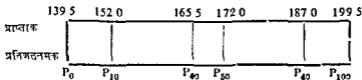
प्राप्तांकों तथा प्रतिशततमकों के समान अन्तर के बीच इस विषमता का कारण है अंकों के वितरण की विशेषता। प्राप्तांक प्राय इस प्रकार वितरित होते हैं कि अधिक ऊँचे और अधिक नीचे अंक पाने वाले छात्रों की संख्याएँ अपेक्षाकृत कम होती हैं और बीच के अंक पाने वाले छात्रों की संख्या बहुत अधिक होती है। जैसा कि ऊपर दी गई वितरण तालिका को देखने से पता लग सकता है।

शैक्षणिक मापन की इस समस्या का हल दूसरे प्रकार के प्रयोग से किया जा सकता है। वह है प्रामाणिक अंक। *प्रामाणिक अंकों के (Standard Scores) किसी विद्यार्थी की विशाल समुदाय अथवा कक्षा में क्या स्थिति है इसका पता प्रतिशततमक अनुस्थिति से तो चल ही सकता है प्रामाणिक अंक भी छात्र की कक्षा में स्थिति का ज्ञान दे सकता है।*

भी वही विशेषताएँ होती हैं जो प्रमाणित प्राप्तांकों की होती हैं। किन्तु विशेष बिन्दु ५० होता है। इन प्राप्तांकों को ८ प्रकार कहते हैं।

शिक्षा प्रक्रिया में शैक्षिक उद्देश्य के निर्माण में छात्रों की उपलब्धि और प्रगति को प्राप्त करने के लिए कुछ मानक परीक्षाओं का प्रयोग किया गया है। शैक्षिक मूल्यांकन और मापन के कार्य में इन प्रमापों की उपयोगिता इसलिए अधिक मानी जाती है कि उनकी सहायता से विशिष्ट आयु और कक्षा के छात्रों की योग्यता का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

Q. 3 Describe the steps of constructing a standardised test

Ans अध्याय ३ में अध्यापक निर्मित परीक्षाओं की विवेचना करते हुए बतलाया गया था कि ऐसी परीक्षाओं को तैयार करने का कार्य तीन चरणों में किया जाता है :

(१) परीक्षा की तैयारी (Preparation of the test)
(२) परीक्षा प्रश्नों का चुनाव (Selection of the test items)
(३) परीक्षा का निर्वचन एवं परख (Testing the test)

किन्तु प्रमापीकृत परीक्षाओं में प्रमापीकरण (standardisation) ही एक ऐसा तत्त्व है जो प्रमापीकृत परीक्षा को अनौपचारिक व्यक्ति निरपेक्ष (informal objective test) परीक्षा से भिन्न बना देता है। यद्यपि किसी परीक्षा के प्रमापीकरण में लगभग वही क्रियायें की जाती हैं जो किसी भी व्यक्ति निरपेक्ष (objective) परीक्षा के निर्माण के लिए की जाती हैं, किन्तु प्रमापीकृत परीक्षाओं के निर्माण के लिए परीक्षा की तैयारी, परीक्षा प्रश्नों का चुनाव एवं परीक्षा का निर्वचन अधिक सावधानी से किया जाता है। विषय सामग्री के आलोचनात्मक विश्लेषण में अधिक सावधानी बरती जाती है और प्रश्नों के निर्माण में यह अच्छी तरह से देख लिया जाता है कि वे पूर्णतः तत्त्वपरक (valid), विश्वस्त (reliable), व्यक्ति निरपेक्ष (objective), विभेदकारी (discriminating) और व्यवहारगम्य (usable) हैं या नहीं। अध्यापक निर्मित परीक्षाओं में प्रश्नपत्र एवं परीक्षाफल का इतना कठिन सांख्यिकीय विश्लेषण नहीं किया जाता जितना कि प्रमापीकृत परीक्षाओं के निर्माण में। अध्यापक निर्मित अनौपचारिक (informal) परीक्षाओं एवं प्रमापीकृत परीक्षाओं में यही सबसे बड़ा अन्तर है। दूसरा अन्तर जो इतना अधिक महत्वपूर्ण नहीं माना जाता वह है परीक्षा के प्रमापों (norms) का निर्धारण। ये प्रमाप हैं आयु, कक्षा, प्रतिशततमक एवं प्रमाणिक प्राप्तांकीय प्रमाप (Age, grade, percentile and standard score norms)। ये प्रमाप किस प्रकार निश्चित किये जाते हैं आगे बतलाया जायगा। किसी परीक्षा के परिणामों का निर्वचन (interpretation) करने के लिए हमें इन प्रमापों की आवश्यकता पड़ती है। किन्तु किसी अनौपचारिक (informal) परीक्षा के भिन्न-भिन्न प्रमापों का निर्धारण कर लेने के बाद वह परीक्षा प्रमापीकृत नहीं मानी जा सकती। प्रमापीकृत परीक्षा (standardised test) तैयार करने के लिये निम्नलिखित चार क्रियाएँ करनी पड़ती हैं

(१) जाँची जाने वाली विषयवस्तु का आलोचनात्मक विश्लेषण (Critical analysis of the subject matter to be tested)
(२) प्रश्नों का संचयन (Construction of test items)
(३) परीक्षा का पहली बार लागू करना (First Try-out of the test)
(४) परीक्षा का अन्तिम बार लागू करना (Second Try-out)
(५) प्रमापों का निर्धारण (Determination of age, grade, percentile norms)

विषयवस्तु का विश्लेषण—जो व्यक्ति किसी प्रमापीकृत परीक्षा के निर्माण का बीड़ा उठाता है उसे दो प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है :

(क) उन विद्यार्थियों की योग्यता का परीक्षण कैसे करे जिनको उसने कभी पढ़ाया ही नहीं है ? (ख) अपनी परीक्षा में किस प्रकार की विषयसामग्री का समावेश करे कि वह वैध (valid) बन सके ? एक अध्यापक उन बालकों की योग्यता का परीक्षण कर सकता है जिनको वह पढ़ाता है किन्तु प्रमापीकृत परीक्षा का निर्माण करने वाला न तो यह जानता है कि जिन बालकों की योग्यता का मापन करना चाहता है उनके अध्यापकों ने किन-किन उद्देश्यों को लेकर उनका अध्यापन आरम्भ किया था। वह यह भी नहीं जानता कि किस विद्यालय में किस उप-विषय पर अधिक महत्व दिया गया था और किस पर कम। वैसे तो उसे उन उद्देश्यों तथा महत्वपूर्ण उप-विषयों का ज्ञान होना जरूरी है, यदि वह [illegible] तत्त्वमापिता (validity) का अंश पर्याप्त

मात्रा में लाना चाहता है किन्तु अपनी परिसीमाओं (limitations) को ध्यान में रखकर वह विषय वस्तु के क्षेत्र का चुनाव उस कक्षा में पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों, अध्यापकों द्वारा बनाए गये प्रश्न पत्रों और शिक्षा परिषदों द्वारा निर्धारित पाठ्य-क्रमों का विश्लेषण करने के उपरान्त ही करता है। यदि भाग्यवश विषय ऐसा हुआ जिसके उद्देश्यों और जिसमें शिक्षण के परिणामों पर उस विषय के अधिकांश अध्यापक सहमत हों तो उस विषय की वस्तु का चुनाव अपेक्षाकृत सरल हो जाया करता है। अंकगणित, बीजगणित तथा रेखागणित आदि विषयों में प्रमापीकृत परीक्षाओं का निर्माण अधिक आसानी से किया जा सकता है क्योंकि उनके शिक्षण के सामान्य या विशिष्ट उद्देश्यों के विषय में कभी दो मत नहीं हो सकते। जिन-जिन विषयों में कोरे तथ्यों पर अधिक जोर दिया जाता है उन-उन विषयों में प्रमापीकृत तत्सम्बंधी परीक्षाओं का निर्माण आसानी से किया जा सकता है, किन्तु जिन विषयों के ज्ञान के अंश, दक्षतायें एवं परिणाम जिस सीमा तक अनिश्चित होते हैं उनमें प्रमापीकृत परीक्षाओं का निर्माण उसी हद तक कठिन हो जाता है क्योंकि उनका तत्मापीकरण (validation) वैसा ही दुरूह और जटिल बन जाया करता है।

विषय कोई भी क्यों न हो प्रामाणिक परीक्षा का निर्माण करने से पहले परीक्षक उस विषय के शिक्षण के उद्देश्यों एवं शिक्षा के परिणामों का निश्चय करने में निम्नलिखित क्रियाएँ करता है

(१) वह उस कक्षा में अगली और पिछली कक्षाओं के पाठ्य-क्रमों का विश्लेषण करता है जिस कक्षा के निष्पादन (achievement) का मापन वह करना चाहता है।

(२) वह उस देश, प्रान्त अथवा जनपद के समस्त विद्यालयों में उन कक्षाओं में पूछे गए प्रश्नपत्रों का सूक्ष्म विश्लेषण करता है जिसके लिए प्रमापीकृत परीक्षा का निर्माण करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली है।

(३) वह उसी विषय में उसी कक्षा के योग्य अन्य प्रमा[illegible] विश्लेषण करता है।

इस विश्लेषण के द्वारा परीक्षक [illegible] जाने योग्य विषयवस्तु का निर्धारण तो स्वयं कर सकता है किन्तु उन विशिष्ट [illegible] एवं आचारगत परिवर्तनों का स्वरूप कैसे स्थिर करे जिनका वह मापन करना [illegible]। इन उद्देश्यों को वह अकेला निश्चित नहीं कर सकता, उनका निर्धारण किया जाता है उस विषय के पढ़ाने वाले सब अनुभवी शिक्षकों की उन गोष्ठियों (seminars) के द्वारा या उन कर्मशालाओं (workshops) के द्वारा जहाँ कुशल अध्यापक किसी विशेषज्ञ (expert) के निर्देशन में काफी बहस के बाद निश्चित मत स्थिर करने में समर्थ होते हा। किसी विषय के पठन-पाठन के जिन उद्देश्यों पर समस्त अध्यापक एक मत हों उन्हीं उद्देश्यों के मापनार्थ किसी प्रामाणिक परीक्षा का निर्माण किया जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि किसी जनपद का अध्यापक-वर्ग बीजगणित के अध्यापन के लिए निम्नलिखित उद्देश्य स्थिर करता है, तो इन्हीं उद्देश्यों के मापन के लिए परीक्षा का निर्माण सरल होगा :

(क) बीजगणित के पदों, सम्बोधों एवं गुणकों का ज्ञान
(ख) समस्याओं के हल करने की क्षमता
(ग) यांत्रिक आगणन की दक्षता

इन उद्देश्यों के अतिरिक्त बीजगणित के अध्यापन के अन्य उद्देश्य भी हो सकते हैं किन्तु उन उद्देश्यों का मापन दूसरी परीक्षा द्वारा हो सकता है। कोई भी प्रामाणिक परीक्षा समस्त उद्देश्यों का मापन नहीं कर सकती, वह तो उन्हीं उद्देश्यों का मापन कर सकती है जिनके मापनार्थ उसका निर्माण किया जाता है।

प्रश्नों का संचयन (Selection of test items)—परीनिष्ठ अथवा प्रामाणिक परीक्षा के प्रश्नों के निर्माण और चुनाव की विधियाँ लगभग एक सी ही होती हैं। अतः परीनिष्ठ अध्यापक निर्मित परीक्षाओं के निर्माण के लिए जो आदेश अध्याय में दिए गये थे वही आदेश यहाँ दिए जा सकते हैं किन्तु विषय का पिष्टपेषण न हो, अतः परीक्षा निर्माण के उन सिद्धान्तों का जिनकी विवेचना उस अध्याय के प्रश्न १ में की जा चुकी है, अथवा प्रश्नों (items) के स्वरूपों का विवेचन जो प्रश्न २ में किया गया था पुनः नहीं किया जायगा। यहाँ इतना कहना काफी है कि प्रश्नपत्र को अधिक विश्वस्त बनाने के लिए प्रत्यास्मरण (recall) और पूर्ति (completion) परीक्षाओं को विशेष स्थान न दिया जाय क्योंकि उनके उत्तर किसी भी प्रकार से दिए जा सकते हैं। प्रश्नों में

भी वही विशेषतायें होनी हैं जो प्रामाणिक प्राप्तांकों की होती हैं। किन्तु निर्देश बिन्दु ५० होता है। इन फलांकों को ८ फलांक कहते हैं।

पिछले प्रकरणों में शैक्षणिक उद्देश्य के हिसाब से छात्रों की प्राप्ति और प्रगति को प्राप्त करने के लिए कुछ सार्थक तरीकों का उल्लेख किया गया है। शैक्षणिक मूल्यांकन और मापन के कार्य में इन प्रयोगों की उपयोगिता इसलिए अधिक मानी जाती है कि उनकी सहायता से विशिष्ट आयु और कक्षा के छात्रों की योग्यता का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

Q. 3. Describe the steps of constructing a standardised test

Ans अध्याय ३ में अध्यापक निर्मित परीक्षाओं की विवेचना करते हुए बतलाया गया था कि ऐसी परीक्षाओं को तैयार करने का कार्य तीन पदों में किया जाता है :

(१) परीक्षा की तैयारी (Preparation of the test)
(२) परीक्षा प्रश्नों का चुनाव (Selection of the test items)
(३) परीक्षा का निर्वचन एवं परख (Testing the test)

किन्तु प्रमापीकृत परीक्षाओं में प्रमापीकरण (standardisation) ही एक ऐसा तत्व है जो प्रमापीकृत परीक्षा को अरीतिक व्यक्ति निरपेक्ष (informal objective test) परीक्षा से भिन्न बना देता है। यद्यपि किसी परीक्षा के प्रमापीकरण में लगभग वही क्रियायें की जाती हैं जो किसी भी व्यक्ति निरपेक्ष (objective) परीक्षा के निर्माण के लिए की जाती हैं, किन्तु प्रमापीकृत परीक्षाओं के निर्माण के लिए परीक्षा की तैयारी, परीक्षा प्रश्नों का चुनाव एवं परीक्षा का निर्वचन अधिक सावधानी से किया जाता है। विषय सामग्री के आलोचनात्मक विश्लेषण में अधिक सावधानी बरती जाती है और प्रश्नों के निर्माण में यह अच्छी तरह से देख लिया जाता है कि वे पूर्णतः तन्मापी (valid) विश्वस्त (reliable), व्यक्ति निरपेक्ष (objective), विभेदकारी (discriminating) और व्यवहारगम्य (usable) हैं या नहीं। अध्यापक निर्मित परीक्षाओं में प्रश्नपत्र एवं परीक्षाफल का इतना कठिन सांख्यिकीय विश्लेषण नहीं किया जाता जितना कि प्रमापीकृत परीक्षाओं के निर्माण में। अध्यापक निर्मित अरीतिक (informal) परीक्षाओं एवं प्रमापीकृत परीक्षाओं में यही सबसे बड़ा अन्तर है। दूसरा अन्तर जो इतना अधिक महत्वपूर्ण नहीं माना जाता वह है परीक्षा के प्रमापों (norms) का निर्धारण। ये प्रमाप हैं आयु, कक्षा, प्रतिशततमक एवं प्रमाणिक प्राप्तांकीय प्रमाप (Age, grade, percentile and standard score norms)। ये प्रमाप किस प्रकार निश्चित किये जाते हैं आगे बतलाया जायगा। किसी परीक्षा के परिणामों का निर्वचन (interpretation) करने के लिए हम इन प्रमापों की आवश्यकता पड़ती है। किन्तु किसी अरीतिक (informal) परीक्षा के भिन्न-भिन्न प्रमापों का निर्धारण कर लेने के बाद वह परीक्षा प्रमापीकृत नहीं मानी जा सकती। प्रमापीकृत परीक्षा (standardised test) तैयार करने के लिये निम्नलिखित चार क्रियाएँ करनी पड़ती हैं

(१) जाँची जाने वाली विषयवस्तु का आलोचनात्मक विश्लेषण (Critical analysis of the subject matter to be tested)
(२) प्रश्नों का सचयन (Construction of test items)
(३) परीक्षा का पहली बार लागू करना (First Try-out of the test)
(४) परीक्षा का अन्तिम बार लागू करना (Second Try-out)
(५) प्रमापों का निर्धारण (Determination of age, grade, percentile n...

विषयवस्तु का विश्लेषण—जो व्यक्ति किसी ...
बीड़ा उठाता है उसे दो प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना
(क) उन विद्यार्थियों की योग्यता का परीक्षण
ही नहीं है ? (ख) अपनी परीक्षा में किस प्रकार की
(valid) बन सके ? एक अध्यापक उन बालकों की
पढ़ाता है किन्तु प्रमापीकृत परीक्षा का निर्माण
की योग्यता का मापन करना चाहता है :
अध्यापन आरम्भ किया था। वह यह
अधिक महत्व दिया गया था और ...
विषयों का ज्ञान होना जरूरी है,

मात्रा में लाना चाहता है किन्तु अपनी परिसीमाओं (limitations) को ध्यान में रखकर वह विषय वस्तु के क्षेत्र का चुनाव उस कक्षा में पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों, अध्यापकों द्वारा बनाए गये प्रश्न पत्रों और शिक्षा परिषदों द्वारा निर्धारित पाठ्य-क्रमों का विश्लेषण करने के उपरान्त ही करता है। यदि भाग्यवश विषय ऐसा हुआ जिसके उद्देश्यों और जिसमें शिक्षण के परिणामों पर उस विषय के अधिकांश अध्यापक सहमत हों तो उस विषय की वस्तु का चुनाव अपेक्षाकृत सरल हो जाया करता है। अंकगणित, बीजगणित तथा रेखागणित आदि विषयों में प्रमापीकृत परीक्षाओं का निर्माण अधिक आसानी से किया जा सकता है क्योंकि उनके शिक्षण के सामान्य या विशिष्ट उद्देश्यों के विषय में कभी दो मत नहीं हो सकते। जिन-जिन विषयों में कोरे तथ्यों पर अधिक जोर दिया जाता है उन-उन विषयों में प्रमापीकृत तन्मापी परीक्षाओं का निर्माण आसानी से किया जा सकता है, किन्तु जिन विषयों के ज्ञान के अंश, दक्षतायें एवं परिणाम जिस सीमा तक अनिश्चित होते हैं उनमें प्रमापीकृत परीक्षाओं का निर्माण उसी हद तक कठिन हो जाता है क्योंकि उनका तन्मापीकरण (validation) वैसा ही दुरूह और जटिल बन जाया करता है।

विषय कोई भी क्यों न हो प्रामाणिक परीक्षा का निर्माण करने से पहले परीक्षक उस विषय के शिक्षण के उद्देश्यों एवं शिक्षा के परिणामों का निश्चय करने में निम्नलिखित क्रियाएं करता है

(१) वह उस कक्षा से अगली और पिछली कक्षाओं के पाठ्य-क्रमों का विश्लेषण करता है जिस कक्षा के निष्पादन (achievement) का मापन वह करना चाहता है।

(२) वह उस देश, प्रान्त अथवा जनपद के समस्त विद्यालयों में उन कक्षाओं में पूछे गए प्रश्नपत्रों का सूक्ष्म विश्लेषण करता है जिसके लिए प्रमापीकृत परीक्षा का निर्माण करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली है।

(३) वह उसी विषय में उसी कक्षा के योग्य अन्य प्रम[illegible] विश्लेषण करता है।

इस विश्लेषण के द्वारा परीक्षक [illegible] जाने योग्य विषयवस्तु का निर्धारण तो स्वयं कर सकता है किन्तु उन विशिष्ट [illegible] एवं आचारण परिवर्तनों का स्वरूप कैसे स्थिर करे जिनका वह मापन करना [illegible]। इन उद्देश्यों को वह अकेला निश्चित नहीं कर सकता, उनका निर्धारण किया जाता है उस विषय के पढ़ाने वाले सब अनुभवी शिक्षकों की उन गोष्ठियों (seminars) के द्वारा या उन कर्मशालाओं (workshops) के द्वारा जहाँ कुशल अध्यापक किसी विशेषज्ञ (expert) के निर्देशन में काफी बहस के बाद निश्चित मत स्थिर करने में समर्थ होते हैं। किसी विषय के पठन-पाठन के जिन उद्देश्यों पर समस्त अध्यापक एक मत हों उन्हीं उद्देश्यों के मापनार्थ किसी प्रामाणिक परीक्षा का निर्माण किया जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि किसी जनपद का अध्यापक-वर्ग बीजगणित के अध्यापन के लिए निम्नलिखित उद्देश्य स्थिर करता है, तो इन्हीं उद्देश्यों के मापन के लिए परीक्षा का निर्माण सरल होगा

(क) बीजगणित के पदों, सम्बोधों एवं गुणकों का ज्ञान
(ख) समस्याओं के हल करने की क्षमता
(ग) यान्त्रिक मापगणन की दक्षता

इन उद्देश्यों के अतिरिक्त बीजगणित के अध्यापन के अन्य उद्देश्य भी हो सकते हैं किन्तु उन उद्देश्यों का मापन दूसरी परीक्षा द्वारा हो सकता है। कोई भी प्रामाणिक परीक्षा समस्त उद्देश्यों का मापन नहीं कर सकती, वह तो उन्हीं उद्देश्यों का मापन कर सकती है जिनके मापनार्थ उसका निर्माण किया जाता है।

प्रश्नों का संचयन (Selection of test items)—अनौपचारिक अथवा प्रामाणिक परीक्षा के प्रश्नों के निर्माण और चुनाव की विधियाँ लगभग एक सी ही होती हैं। अतः अनौपचारिक अध्यापक निर्मित परीक्षाओं के निर्माण के लिए जो आदेश अध्याय में दिए गये थे वही आदेश यहाँ दिए जा सकते हैं किन्तु विषय का पिष्टपेषण न हो, अतः परीक्षा निर्माण के उन सिद्धान्तों का जिनकी विवेचना उस अध्याय के प्रश्न १ में की जा चुकी है, अथवा प्रश्नों (items) के स्वरूपों का विवेचन जो प्रश्न २ में किया गया था पुनः नहीं किया जायगा। यहाँ इतना कहना बाकी है कि प्रश्नपत्र को अधिक विश्वसनीय बनाने के लिए प्रत्यास्मरण (recall) और पूर्ति (completion) परीक्षाओं को विशेष स्थान न दिया जाय क्योंकि उनके उत्तर किसी भी प्रकार से दिए जा सकते हैं। प्रश्नों में

मात्रा में लाना चाहता है किन्तु अपनी परिसीमाओं (limitations) को ध्यान में रखकर वह विषय वस्तु के क्षेत्र का चुनाव उस कक्षा में पढ़ाई जाने वाली पुस्तकों, अध्यापकों द्वारा बनाए गये प्रश्न पत्रों और शिक्षा परिषदों द्वारा निर्धारित पाठ्य-क्रमों का विश्लेषण करने के उपरान्त ही करता है। यदि भाग्यवश विषय ऐसा हुआ जिसके उद्देश्यों और जिसमें शिक्षण के परिणामों पर उस विषय के अधिकांश अध्यापक सहमत हों तो उस विषय की वस्तु का चुनाव अपेक्षाकृत सरल हो जाया करता है। अंकगणित, बीजगणित तथा रेखागणित आदि विषयों में प्रमापीकृत परीक्षाओं का निर्माण अधिक आसानी से किया जा सकता है क्योंकि उनके शिक्षण के सामान्य या विशिष्ट उद्देश्यों के विषय में कभी दो मत नहीं हो सकते। जिन-जिन विषयों में कोरे तथ्यों पर अधिक जोर दिया जाता है उन-उन विषयों में प्रमापीकृत तन्मापी परीक्षाओं का निर्माण आसानी से किया जा सकता है, किन्तु जिन विषयों के ज्ञान के अंश, दक्षतायें एवं परिणाम जिस सीमा तक अनिश्चित होते हैं उनमें प्रमापीकृत परीक्षाओं का निर्माण उसी हद तक कठिन हो जाता है क्योंकि उनका तन्मापीकरण (validation) वैसा ही दुरूह और जटिल बन जाया करता है।

विषय कोई भी क्यों न हो प्रामाणिक परीक्षा का निर्माण करने से पहले परीक्षक उस *विषय के शिक्षण के उद्देश्यों एवं शिक्षा के परिणामों का निश्चय करने में निम्नलिखित क्रियाएँ* करता है

(१) वह उस कक्षा में अगली और पिछली कक्षाओं के पाठ्य-क्रमों का विश्लेषण करता है जिस कक्षा के निष्पादन (achievement) का मापन वह करना चाहता है।

(२) वह उस देश, प्रान्त अथवा जनपद के समस्त विद्यालयों में उन कक्षाओं में पूछे गए प्रश्नपत्रों का सूक्ष्म विश्लेषण करता है जिसके लिए प्रमापीकृत परीक्षा का निर्माण करने की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली है।

(३) वह उसी विषय में उसी कक्षा के योग्य अन्य प्रमापी[illegible] परीक्षाओं का विश्लेषण करता है। [illegible] संख्या का निर्धारण

इस विश्लेषण के द्वारा परीक्षक पूर्वकितना निश्चित किया जाय

कर सकता है किन्तु उन विशिष्ट उद्देश्यों [illegible] को दी गई निर्देशों में क्या सुधार किया जाय

वह मापन कर[illegible] सकता है [illegible]

(vii) परीक्षण पदों में अधिक overlap न हो

प्रथम tryout करने के बाद ये क्रियाएँ करने से परीक्षण में संशोधन किया जा सकता है। और एक प्रतिनिध्यात्मक छात्र वर्ग पर वह परीक्षा फिर लागू की जा सकती है Trial Administration के लिए और उसके अनुकूल प्रमाप तैयार किये जा सकते हैं।

शैक्षणिक मापन के अन्य क्षेत्रों में प्रमापीकृत परीक्षाएँ तैयार करना इतना आसान नहीं है। उदाहरण के लिए प्रमापीकृत बुद्धि परीक्षाएँ तैयार करने के लिए प्रशिक्षण और अनुभव की आवश्यकता होती है जो न तो साधारण अध्यापक के पास है न साधन मनोमितिज्ञ (Psychometric) के पास है। इसी प्रकार अभिरुचि, अभियोग्यता, व्यक्तित्व आदि के मापने के लिए भी प्रमापीकृत परीक्षाओं का ही उपयोग किया जाता है।

यदि प्रमापीकृत परीक्षाओं का प्रयोग करना है तो अध्यापक किन-किन बातों पर ध्यान दे ?

यदि उसे प्रमापीकृत परीक्षाओं को ही प्रयोग करना पड़ता है तो वह उस परीक्षा के manual को ध्यान से पढ़े और देखे कि परीक्षा की विश्वस्तता, वैधता और प्रयोजन कितनी है उस परीक्षा के विषय में उसको बनाने वाला और उसके आलोचक क्या कहते हैं ?

वह परीक्षा किस वर्ग पर लागू की गई थी जिस पर लागू करने के बाद उसके प्रमाप निकाले गये थे। क्या वह वर्ग उनके छात्र वर्ग के समान है या नहीं ?

Q 5 What do you mean by Education Quotient and Attainment quotient ? What are their limitations ?

Ans. यदि किसी निष्पत्ति परीक्षा को किसी कक्षा के विद्यार्थियों पर लागू किया जाय और अलग अलग आयु के विद्यार्थियों के प्राप्तांकों का औसत निकाला जाय तो यह औसत उस

आयु के लिए प्रमाप माना जायगा। उदाहरण के लिए यदि सब ११ वर्षीय बालकों के प्राप्तां का औसत ४५ है तो ४५ अंक का आयु प्रमाप ११ वर्ष माना जायगा। जिस किसी बालक प्राप्तांक ४५ होंगे उसकी वास्तविक आयु कुछ भी क्यों न हो किन्तु शैक्षणिक आयु ११ वर्ष मानी जायगी। यदि उसकी वास्तविक आयु १० वर्ष है तो शैक्षणिक लब्धि (E Q

$= \frac{\text{शैक्षणिक आयु}}{\text{वास्तविक आयु}} \times १००$ होगी। प्रस्तुत उदाहरण में E. Q का मान $\frac{११}{१०} \times १००$=

११० होगा।

शैक्षणिक आयु में मानसिक आयु का भाग देकर प्राप्त भजनफल को १०० से गुण करने पर निष्पादन लब्धि (Attainment Quotient) मिलता है। इन दोनों लब्धियों के सूत्र नी दिये जाते हैं—

$$E\ Q = \frac{E\ A}{CA} \times १००$$

$$A\ Q = \frac{E\ A}{MA} \times ११०$$

शैक्षणिक आयु, शैक्षणिक लब्धि और निष्पादन लब्धियों में विशेष कमियाँ होने के कारण अब उनका प्रचलन कम होता जा रहा है। एक से उद्देश्यों को मापने वाली दो समानान्त प्रामाणिक परीक्षाओं में किसी विद्यार्थी को जो दो भिन्न शैक्षणिक आयु मिल सकती है उनक तुलना नहीं की जा सकती है। कभी-कभी शैक्षणिक आयु बहुत से तत्वों को इस प्रकार मिला देई है कि दो विद्यार्थियों के बीच योग्यता में कोई विशेष अन्तर नहीं मालूम पड़ता, यद्यपि उनमें ए एक विद्यार्थी एक विषय में और दूसरा विद्यार्थी दूसरे में उत्तम हो सकता है किन्तु शैक्षणिक लब्धि इस अन्तर को प्रकट नहीं करती।

अवस्था के बालकों के लिए तो किया जा सकता है क्योंकि उनकी शैक्षणिक प्रगति आयु पर अधिक निर्भर रहती है। १५ वर्ष की आयु के बाद बालक की शैक्षणिक प्रगति के अन्य प्रतिकारकों से प्रभावित होने के कारण इन प्रमापों का प्रयोग नहीं किया जाता।

इन कमियों के होते हुए भी आयु प्रमापों का प्रयोग शिक्षक, शिक्षाशास्त्री, समपुरेष्टा और मनोवैज्ञानिक कर सकता है। किसी बालक का E. Q. या A Q ज्ञात होने पर शिक्षक किसी भी या कई विषयों में एक बालक की तुलना दूसरे बालकों से कर सकता है। यदि किसी देश में पाठ्यचर्या (curriculum) की भिन्नता के कारण भिन्न-भिन्न प्रान्तों में एक ही कक्षा के विद्यार्थियों की योग्यता का स्तर अलग-अलग हुआ तो किसी प्रामाणिक परीक्षा को देकर भिन्न भिन्न प्रान्तों के बालकों की योग्यता का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। उसी परीक्षा के परिणामों के आधार पर एक प्रान्त के बालक का प्रवेश दूसरे प्रान्त के विद्यालय में किया जा सकता है।

निष्पादन लब्धि में भी अपनी निजी कमियाँ हैं पर उसका प्रयोग भी सीमित मात्रा में किया जाता है। मन्द विद्यार्थियों को औसत दर्जे की निष्पादन लब्धि मिल जाया करती है क्योंकि निष्पादन लब्धि (A Q) में निष्पादन की तुलना मानसिक आयु से करने के कारण मन्द विद्यार्थियों को अधिक अनुभवों का लाभ मिल जाया करता है। इस बात को समझने के लिए एक उदाहरण पेश किया जाता है।

	M A	E. A.	C. A.	A Q
मन्द बुद्धि बालक	८	८.५	११	१०६
कुशाग्र बुद्धि बालक	१०	९	८	९०

जिस बालक की वास्तविक आयु ११ वर्ष है और मानसिक आयु ८ वर्ष ही है वह मन्द बुद्धि होने पर भी अधिक A Q प्राप्त करता है क्योंकि A Q के लिए E A मे M A का भाग दिया जाता है। इसके विपरीत कुशाग्र बुद्धि बालक जिसकी वास्तविक आयु ८ वर्ष और मानसिक आयु १० वर्ष है, पहले बालक से अधिक E A होने पर भी कम A Q प्राप्त करता है।

निष्पादन लब्धि की दूसरी कमी उसकी विश्वसता की कमी मानी जा सकती है। इसका मुख्य कारण यही है कि गणना मे मानसिक और शैक्षणिक आयु प्रमापो का प्रयोग किया जाता है *जो स्वय अधिक विश्वस्त नही माने जा सकते।*

तीसरे, निष्पादन लब्धि की गणना मे कई प्रकार के विभ्रम (errors) आ सकते हैं।

(i) चिकित्सात्मक (Medical) निदान का सम्बन्ध शारीरिक परेशानियों से है लेकिन शैक्षणिक निदान में हम उन सब घटकों का विश्लेषण करते हैं जो शिक्षण की सामान्य प्रक्रिया में बाधा उपस्थित करते हैं। यहाँ न केवल शैक्षणिक घटनाओं का ही विश्लेषण नहीं करते वरन् शारीरिक घटनाओं का भी विश्लेषण करते हैं। उदाहरण के लिये Medical diagnosis में दृष्टि की तीक्ष्णता या कमजोरी को देखने के लिये कुछ ऐसी परीक्षाओं का ही प्रयोग होता है जिनमें आँख की दृष्टि तथा बीमारी का पता लगाया जा सके किन्तु पढ़ने की निर्योग्यता (disability) का अनुमान लगाने के लिये न केवल दृष्टि की तीक्ष्णता तथा आँखों की कमजोरी का ही ज्ञान प्राप्त करना होता है वरन् और बातों का भी अध्ययन करना होता है। उदाहरण के लिये जब आँख के तारे तथा मांस पेशियों का असन्तुलन होता है तथा शब्दों का प्रत्यक्ष ज्ञान कठिन हो जाता है फलस्वरूप पढ़ते समय शब्दों का प्रत्यास्मरण कठिन और देर से होता है। इसी प्रकार जब कोई व्यक्ति suspenopsia या alternative vision से पीड़ित होता है तब शब्द का अभिज्ञान गलत हो जाता है यद्यपि दैनिक कार्य में यह रोग किसी प्रकार की अड़चन नहीं डालता किन्तु पढ़ते समय इसके कारण रुकावट अवश्य पैदा हो जाती है। कभी कभी बालक शब्दों को उल्टे क्रम से पढ़ जाता है या शब्दों के अक्षर को उलट देता है। क्यों ? इसका कारण है हाथ और आँख की ambidexterity जैसे कि left-handed बालक में righteyeness होती है या right-handed बालक में left eyeness होती है।

(ii) medical diagnosis में हम निश्चयरूप से पता लगा सकते हैं कि कौन सी बीमारी जीवाणु के कारण पैदा होती है। कौनसी शारीरिक व्यथा या वेदना किस कारण से उठ खड़ी होती है और उसका क्या उपचार है। इन प्रश्नों का उत्तर निश्चयात्मक रूप से दिया जा सकता है किन्तु शैक्षणिक निदान की प्रक्रिया इतनी सरल नहीं है। शैक्षणिक निदान करने वाले के समक्ष ऐसी समस्या होती है जिसका हल वह निश्चयपूर्वक नहीं दे सकता क्योंकि उसको ऐसे जटिल और मिश्रित आचरण का विश्लेषण करना पड़ता है जिसके कारणों की व्याख्या आसानी से नहीं की जा सकती। आप उस गलती को पकड़ सकते हैं जिसको बालक पढ़ते या लिखते या किसी प्रश्न को हल करते समय करता है किन्तु उस आचरण के भीतर जो मानसिक क्रिया चल रही है उसका विश्लेषण आसानी से नहीं किया जा सकता।

(iii) चिकित्सात्मक निदान (medical diagnosis) का सम्बन्ध नियन्त्रित परिस्थितियों से होता है लेकिन शिक्षण के निदान का सम्बन्ध ऐसी चल वस्तु से है जो नित्य बदलती रहती है। यह वस्तु है शैक्षणिक अनुभव का प्रभाव जो प्रत्येक व्यक्ति पर भिन्न-भिन्न प्रकार से पड़ता है। अध्यापक एक ही विधि से किसी पाठ्य वस्तु को कक्षा के समक्ष प्रस्तुत करता है किन्तु कक्षा के विभिन्न छात्रों पर उसी पाठ्य वस्तु का प्रभाव भिन्नात्मक होता है यह वैभिन्य उनके अनुभव, योग्यता और आयु के कारण उत्पन्न हो जाता है।

शैक्षणिक निदान का आधार क्या है ? यदि हम किसी बालक की कमजोरियों या अयोग्यताओं का ठीक-ठीक अनुमान लगाना चाहते हैं तो हमें उस व्यक्तिगत बालक के विषय में सभी प्रकार की जानकारी प्राप्त करनी होगी। हमें उन कमजोरियों या निर्योग्यताओं के कारणों की जानकारी होनी चाहिये, उनके चिन्ह तथा उनके दूर करने के उपायों का पूर्ण ज्ञान होना चाहिये।

दुर्भाग्य की बात है कि सीखने की निर्योग्यता के ठीक-ठीक कारण हमें अब तक नहीं ज्ञात हो पाये हैं। इनमें से कुछ कारण ये हैं—

(i) मानसिक हीनता
(ii) शारीरिक हीनता

(iii) पाठ्य वस्तु की अनुपयुक्तता
(iv) पाठन विधियों का दोषपूर्ण होना

लेकिन किसी विशेष विद्यार्थी का निश्चित कारण क्या है यह हम अभी तक नहीं जान पाये हैं। इसलिए शैक्षणिक निदान medical निदान की अपेक्षा कठिनतर प्रक्रिया मानी जाती है।

सीखने में कठिनाइयों का निदान ठीक-ठीक न करने का एक कारण और भी है वह यह कि हमारे पास अभी तक एक वैध, शुद्ध और विश्वसनीय मापन यन्त्र भी नहीं है जैसे कि डाक्टरों के पास होते हैं। उदाहरण के लिये यदि बुद्धि को सीखने की योग्यता मान लिया जाय तो ऐसी बुद्धि परीक्षाएँ, जो केवल सीखने की योग्यता का मापन करती हैं, क्या निश्चय रूप से किसी ज्ञान के विषय में स्थिर राय दे सकती हैं। यदि किसी व्यक्ति का बुद्धि अंक सामान्य से कम है तो हम साधारण तौर से यह कह दिया करते हैं कि उसके सीखने की क्षमता कम होगी लेकिन इसका अर्थ यह नहीं है कि मन्द बुद्धि बालकों को वह ज्ञान और दक्षता नहीं दी जा सकती जो सामान्य बालकों को दी जा सकती है।

इसी प्रकार निष्पत्ति के क्षेत्र में भी हमारे पास कोई ऐसी विश्वस्त और वैध परीक्षाएँ नहीं हैं जिनके द्वारा हम बालकों की निष्पादन सम्बन्धी प्रगति का ठीक-ठीक अनुमान लगा सकें।

चूँकि बुद्धि और निष्पत्ति परीक्षा सीखने में कठिनाइयों का पता नहीं लगा सकती इसलिये नैदानिक परीक्षाओं का निर्माण होने लगा है जिनका प्रयोग आधुनिक निदान करने वाला शिक्षक (diagnostion) करता है। इन परीक्षाओं का क्षेत्र न केवल ज्ञान तथा दक्षता तक ही सीमित है वरन् रुचि, व्यक्तित्व आदि तक भी फैलने लगा है।

सीखने में कठिनाई उपस्थित होने के कारण

Q 2 Why does the average child perceive difficulties in learning? What type of difficulties does he perceive?

Ans किसी विषय को सीखने में बालक कठिनाइयों का क्यों अनुभव करता है ? इस प्रश्न का उत्तर अत्यन्त कठिन है क्योंकि सीखने को प्रभावित करने वाले तत्व अनेक हैं। इन तत्वों को हम सुविधानुसार निम्नलिखित चार वर्गों में बाँट सकते हैं—

(अ) बालक का शारीरिक तथा मानसिक ढाँचा
(ब) बालक की बौद्धिक साज-सज्जा।
(स) शिक्षा व्यवस्था का रूप।
(द) वातावरण सम्बन्धी तत्व तथा उनके प्रति अनुक्रिया (Respond) करने का वैयक्तिक तरीका।

(अ) बालक का शारीरिक तथा मानसिक ढाँचा (Child's physical and mental make-up)—सीखने की प्रक्रिया सीखने वाले की मानसिक तथा शारीरिक दशा पर निर्भर रहती है। स्वस्थ बालक का मस्तिष्क भी स्वस्थ होता है अतः कक्षा में पढाई जाने वाली विषय वस्तु को वह शीघ्र ही ग्रहण कर लेता है। इसके विपरीत स्नायु मंडल में लगी हुई चोट, मानसिक हीनता, नशीली वस्तुओं का सेवन, भोजन में विटॅमिन की कमी, नलिका विहीन ग्रन्थियों का सदोष रस-निष्क्रमण सीखने में बाधक होते हैं।

(ब) बालक की बौद्धिक साज सज्जा—बुद्धि क्या है ? इसकी व्याख्या कई प्रकार से की गई है लेकिन सामान्यतः यह वह वस्तु है जिसकी सहायता से व्यक्ति तर्क पूर्ण चिन्तन करता है, नई परिस्थितियों में समायोजन स्थापित करता है, सम्बन्धों की व्याख्या करता है। व्यावहारिक दृष्टि से जो व्यक्ति अधिक बुद्धिमान होता है वह सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक सीखता है और एक ही पाठ्य वस्तु को जल्दी सीख लेता है। इसके विपरीत, जिस व्यक्ति में बुद्धि की कमी होती है, कम सीखता है और देर से सीखता है। बुद्धि की यह कमी मानसिक अथवा शारीरिक विकास में हीनता के कारण उत्पन्न हो जाती है। बुद्धि की कमी सामान्य तथा विशिष्ट बुद्धि की कमी के रूप में दिखाई देती है। सामान्य बुद्धि में ऊँचा होने हुए भी कभी कभी बालक

पढ़ने लिखने मे पिछड़ जाता है। कुछ बालकों मे बुद्धि अंक के ऊँचा होने पर भी निष्पादन (achievement) कम हो जाता है।

(स) **शिक्षा व्यवस्था का स्वरूप**—शिक्षा व्यवस्था के अनौचित्य पूर्ण होने पर भी बालक सीखने में कठिनाइयों का अनुभव करता है, विषय वस्तु का अधिगम करने में बालक कठिनाइयों का अनुभव क्यों न करे,

(१) यदि शैक्षणिक विषय वस्तु अपूर्ण, अरुचिकर, और अनावश्यक हो,
(२) यदि शिक्षण विधियाँ दोष पूर्ण और अनुपयुक्त हों,
(३) यदि शिक्षा बालकों की वैयक्तिक विभिन्नताओं को ध्यान में रख कर न दी जाती हो,
(४) यदि सीखते समय अध्यापकों के द्वारा कोई मार्ग निर्देशन न किया जाता हो,
(५) यदि छात्र और अध्यापकों के बीच वैयक्तिक तथा सामाजिक सम्बन्ध बिगड़े हुए हों,
(६) यदि अध्यापक उन तत्वों की जानकारी ही न रखे जो सीखने में कठिनाइयों का अनुभव करते हैं और जानते हुए भी कठिनाइयों को दूर करने का प्रयत्न ही न करे।

(द) **वातावरणीय तत्व** (Environmental Factors)—कभी कभी सगति का असर भी बालक पर इतना अधिक पड़ता है जिसके कारण वह पिछड़ जाता है, विद्यालय से बाहर के तथा घर के ऐसे दूषित तत्वों से बालक की रक्षा करनी होगी जो उसे पढ़ने लिखने में बाधा पहुँचाते हैं।

शैक्षणिक निदान की प्रक्रिया

Q 3 Discuss the various process involved in educational diagnosis

Ans शैक्षणिक निदान की प्रक्रिया को निम्नलिखित पाँच महत्वपूर्ण पदों मे विभक्त कर सकते हैं। ये पद हैं—

(क) उन छात्रों की खोज करना जो विद्यालय में व्यवस्थापन पाने में कठिनाई का अनुभव कर रहे हैं।
(ख) ऐसे बालक जिन जिन स्थलों पर कठिनाइयों का अनुभव कर रहे हैं उन स्थलों की खोजबीन करना।
(ग) ऐसी कठिनाइयाँ सीखने में क्यों हुई इसके सभी सम्भव कारणों का विश्लेषण करना।
(घ) इन अशुद्धियों को दूर करने के सुझाव पेश करना।
(ङ) अन्य बालक भविष्य में ऐसी गलतियाँ करें ही न, इसकी रोकथाम के लिये उपायों को ढूँढना।

शैक्षणिक निदान चाहने वाले बालकों की खोज कैसे की जाय ?—इस बारे के लिये कुछ सुझाव नीचे दिये जाते हैं—

(१) जिन जिन बालकों का निष्पन्न (achievement) असन्तोषजनक है उनको Achievement survey test और बुद्धि परीक्षाएँ (Intelligence Test) देकर छाँट लिया जाय।

(२) इन बालकों में से जिनका निष्पादन (achievement) उनके बौद्धिक स्तर (Intellectual level) से अधिक गिरा हुआ दिखाई दे उनका अध्ययन किया जाय। लेकिन यह ध्यान रखा जाय कि चूंकि बुद्धि परीक्षाएँ तथा निष्पन्न परीक्षाएँ एक ही वस्तु का मापन करती है इसलिये केवल उन्हीं बालकों का अध्ययन किया जाय जिनका निष्पादन (achievement) किसी विशेष विषय में सामान्य निष्पादन (General achievement) से बहुत ही कम हो।

(३) जिन बालकों को निदान (diagnosis) की आवश्यकता है उनका चुनाव शिक्षक समुदाय बिना किसी बुद्धि अथवा निष्पन्न परीक्षा की सहायता के ही कर सकता है।

इस बालक ने ऐसी गलती क्यों की इसका कारण भी देखना होगा। इन कारणों का अन्दाज या तो वैसे ही लगाया जा सकता है, या बालक के साथ समक्ष भेंट की जा सकती है।

(४) **उपचारात्मक विधियों का सुझाव**—यदि कई बालकों ने एक ही गलती की है तो समूह में उसका उपचार किया जा सकता है। किन्तु यदि अशुद्धि व्यक्तिगत है तो उसका उपचार भी व्यक्तिगत ही होना चाहिये। उपचारात्मक विधियाँ के सुझाव सभी नैदानिक परीक्षाओं में दिये जाते हैं। जैसे जब कोई बालक लेख लिखते समय Spelling सम्बन्धी कुछ अशुद्धियों को करते रहने का आदी हो जाता है तब इस बुरी आदत को छुड़ाने के लिये नीचे लिखी हुई बातें ध्यान में रखकर उपचार की व्यवस्था की जाती है

(क) misspelt words को एक एक करके लो।

(ख) बालक को इनकी spelling ठीक करने के लिये पर्याप्त समय दो।

यद्यपि प्रत्येक नैदानिक परीक्षा में ऐसी ही सामान्य उपचारात्मक विधियों का उल्लेख होता है फिर भी उनका आश्रय लेते समय अनुभवी अध्यापक को निम्नलिखित कुछ बातों का ध्यान अवश्य रखना चाहिये :—

(१) अधिक प्रतिभावान् बालक के साथ कोई भी उपचारात्मक विधि इतनी सफल नहीं हो सकती जितनी कि न्यून बुद्धि वाले बालक के साथ हो सकती है।

(२) बुद्धि हीन बालक की अशुद्धियों को ठीक करने का कोई भी तरीका सफल नहीं हो सकता।

(३) बुद्धिमान् बालकों की गलत आदतों को छुड़ाने में समय अधिक लगता है, अतः धैर्य से काम लेना होगा।

(४) यदि उपचारात्मक कार्य पर्याप्त मात्रा में किया जाने पर भी कोई प्रगति न दिखाई दे तो प्रोग्राम को ही बदल दो।

(५) **अशुद्धियों को रोकथाम करने के उपायों की खोज**—यदि हम चाहते हैं कि बालक किसी विषय को सीखने में गलतियाँ करे ही न तो हमें व्यापक दृष्टिकोण से अध्यापन करना होगा। यदि हम बालक का विद्यालय में असमजन (maladjustment) कम करना चाहते हैं तो बहुमुखी योजना तैयार करनी होगी। हमें विद्यालय की परिस्थितियों में सुधार करना होगा, पाठ्यक्रम में सशोधन उपस्थित करना होगा, विभिन्न योग्यता वाले बालकों के लिए उपयुक्त पाठ्यक्रम का चुनाव करना होगा, ऐसी परीक्षायें तैयार करनी होंगी जिनकी सहायता से यह देखा जा सके कि बालक किसी विषय विशेष को सीखने के लिये प्रस्तुत है या नहीं, अभियोग्यता परीक्षाओं का निर्माण चुनाव करना होगा, prognostic tests देकर यह देखना होगा कि बालक अधिक abstract विषयों को सीखने के लिये प्रस्तुत है या नहीं।

Q 4. What is a diagnostic test ? How does it differ from an achievement test ?

Ans कोई विद्यार्थी किस स्थल पर विद्या प्राप्त करने में क्या कठिनाई अनुभव कर रहा है, इस कठिनाई का क्या कारण हो सकता है और यह कठिनाई किस प्रकार दूर की जा सकती है, इन प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए अध्यापक को निदान (diagnosis) की आवश्यकता होती है। शैक्षणिक निदान का सम्बन्ध विद्यार्थियों की व्यक्तिगत योग्यताओं अथवा निर्योग्यताओं की जाँच से ही नहीं वरन् उनकी निर्योग्यताओं, कमजोरियों और कठिनाइयों की चिकित्सा से बहुत अधिक माना जा सकता है। जिस प्रकार एक सफल चिकित्सक किसी रोगी की चिकित्सा करने से पूर्व उसके रोग का निरीक्षण करता है, जिस प्रकार वह रोग का कारण ज्ञात करने के लिए व्यक्तिनिरपेक्ष यन्त्रों का सहारा लेता है, जिस प्रकार वह रोगी का पूरा इतिहास तैयार करके अन्य रोगियों से उस रोग के लक्षणों की तुलना करके चिकित्सा आरम्भ करता है, उसी प्रकार सफल अध्यापक भी सबसे पहले यह ज्ञात करता है कि कौन-कौन से बालक विषय को सीखने में कठिनाई का अनुभव कर रहे हैं, उनके कठिनाई के स्थल कौन-कौन से हैं, यह जानने के लिए चिकित्सक की तरह विषयगत (objective) यन्त्रों का प्रयोग करता है। इन कठिनाइयों अथवा निर्योग्यताओं के स्वभाव को समझने के बाद वह उन कारणों को जानने के लिए उन बालकों का अध्ययन करता है जो ऐसी कठिनाइयाँ अनुभव कर रहे हैं। कभी तो वह इन कठिनाइयों का कारण शारीरिक

की समझ में वह विषय-वस्तु आयी है अथवा नही इसके ज्ञात करने के लिए वह नैदानिक परीक्षा का निर्माण करता है। निष्पन्न परीक्षाओं की अपेक्षा ये परीक्षायें समय-समय पर उन कठिनाइयो को ज्ञात करने के लिए दी जाती हैं जिनका अनुभव शिक्षण काल मे विद्यार्थी स्वयं करता है। अतः नैदानिक परीक्षायें निष्पन्न परीक्षाओ की अपेक्षा पूर्ण और व्यापक होती हैं। निष्पन्न परीक्षायें विद्यार्थियो के बड़े से बड़े समूह को दी जा सकती है किन्तु नैदानिक परीक्षाओ का उपयोग विद्यार्थियो के छोटे से समूह के लिए ही किया जाना चाहिए क्योकि इनका संयोजन औपचारिक है, केवल निष्पन्न मापन ही नही।

नैदानिक तथा निष्पन्न परीक्षाओं मे अन्य अन्तर निम्नलिखित हैं—

(क) **उद्देश्यों की भिन्नता**—निष्पन्न (achievement) परीक्षायें केवल इस बात की जाँच करती हैं कि बालक का किसी विषय विशेष मे कितना ज्ञान है। उस विषय मे बालक की स्थिति (status) क्या है इसका ज्ञान उसके द्वारा प्राप्त एक ही अंक से लगाया जा सकता है लेकिन नैदानिक परीक्षायें सीखने मे आने वाली कठिनाइयों की खोज करने के लिए दी जाती हैं।

(ख) **प्राप्तांकों की विशेषता**—निष्पन्न परीक्षा मे प्राप्त अंकों की व्याख्या नैदानिक परीक्षा मे तो एकाकी अंक ही विशेष महत्व रखता है किन्तु नैदानिक परीक्षाओ मे भिन्न-भिन्न परीक्षण पदो के सही-सही उत्तरो का प्रतिशत अधिक महत्व रखता है, जिस परीक्षा के परीक्षण पदो के सही-सही उत्तरो के प्रतिशत पर अथवा आंशिक प्राप्तांक (part score) पर जितना अधिक महत्व दिया जाता है परीक्षा उतनी ही अधिक नैदानिक हो जाती है। उदाहरण के लिए यदि कोई परीक्षा अंग्रेजी शुद्ध लिखने की योग्यता का मापन करने के लिए तैयार की जाय और इस योग्यता को निम्न अंगो में बाँट दिया जाय—

(i) ability to spell
(ii) ability to capitalize
(iii) ability to punctuate
(iv) ability to write correct grammatical forms
(v) ability to use correct usage

और इन सभी अंशो के लिए अलग-अलग आंशिक फलांक (partial score) दिये जायँ तो यह परीक्षा नैदानिक महत्व की अधिक होगी।

(ग) **परीक्षण पदों के सैम्पिल (Sample) का व्यापकत्व**—निष्पन्न परीक्षाओ मे परीक्षण पदो का सैम्पिल इतना अधिक व्यापक और संगठन इतना अधिक भद्दा होता है कि व्यक्तिगत छात्र का मार्ग निर्देशन नही करती। छात्रो के शैक्षणिक अनुभवो का मार्ग दिखाने के लिए तो नैदानिक परीक्षाएँ ही विशेष सहायक सिद्ध हो सकती हैं।

(घ) **अवधि की निश्चितता**—नैदानिक परीक्षाएँ एक निश्चित अवधि के उपरान्त यह विश्लेषण करने के लिए दी जाती हैं कि बालक किस विषय को सीखने मे कहाँ-कहाँ कठिनाइयो का अनुभव कर रहा है।

नैदानिक परीक्षाओ के उदाहरण देने से पूर्व निदान के आधार पर प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है। किसी भी निदान की आधारशिला विश्लेषण हुआ करती है। यदि मौनवाचनात्मक बोध का निदान करना है तो विश्लेषण द्वारा यह दिखाया जा सकता है कि इस योग्यता मे निम्नलिखित तत्व सम्मिलित हैं

(१) शब्दों के अर्थों का ज्ञान।
(२) वाक्यो के अर्थ निकालने का ज्ञान।
(३) विचारों को क्रमबद्ध रखने की क्षमता।
(४) सम्पूर्ण पाठ मे महत्वपूर्ण सामग्री को ढूंढ निकालने की योग्यता।

इसी प्रकार गुणा करने की योग्यता को निम्नलिखित अंशों मे विभक्त किया जा सकता है—

(१) जोड़ लगाने की योग्यता।
(२) हासिल को ठीक संख्या मे जोड़ने की योग्यता।
(३) गुण्य और गुणक का ठीक-ठीक प्रयोग।
(४) गुणा की शुद्ध पद्धति को अपनाने की योग्यता।

पाठक स्वय किसी भी विषय सम्बन्धी किसी योग्यता का इसी प्रकार विश्लेषण कर सकते हैं। किन्तु यह मानना पड़ेगा कि सफल शिक्षण के लिए विस्तृत निदान की आवश्यकता है। किसी विषय के इन विशिष्ट भागों पर नैदानिक सामग्री तैयार की जा सकती है और जब तक अध्यापक उन स्थलों का पता न लगा ले जिन पर उसके बालकों का पूर्ण अधिकार होना चाहिए तब तक न तो उसका शिक्षण ही सफल हो सकता है और न वह बालकों की कठिनाइयों का उपचार ही कर सकता है। अतः नैदानिक परीक्षाओं के परिणामों को ध्यान में रखकर ही उपचारात्मक शिक्षण किया जा सकता है।

कुछ Diagnostic परीक्षाओं के उदाहरण

(1) Compass Diagnostic Test in Arithmetics

Grades	Time Minutes	Test	Contents
	२७	१	Addition of whole numbers
	२८	२	Subtraction
	३१	३	Multiplication
	६०	४	Dursion
	५०	५	Addition of mixed
	४०	६	Subtraction
	३०	७	Multiplication
	४०	८	Dursion
	४५	९	Addition multiplication subtraction decimal
	४०	१०	Division
	२५	११	Addition and subtraction of denommate
	३०	१२	Multiplication and Dursion
	५४	१३	Mensuration
	३८	१४	Basic facts of percentage
	४८	१५	Interest and business forms
	२५	१६	Definitions, rules and Vocabulary of Arith.
	३५	१७	Problem analysis, Elements
	३०	१८	Problem Analysis
	२०	१९	General Prob scale El
	२०	२०	Ad.

(१) इस नैदानिक परीक्षा मे प्रत्येक प्रकार का इतना सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है कि प्रत्येक पद पर प्रश्न की सख्या काफी अधिक है उदाहरण के लिए Test मे पूर्णांक सख्याओं का योगफल जाँचा गया है। इस परीक्षा के ५ भाग हैं पहले भाग के ७० आधारभूत योगफल सम्बन्धी सत्य है। दूसरे अक मे ६६ दसवें स्थान के जोड़ हैं, भाग तीन मे १३ पद हैं जो इस ७ प्रकार की सख्याओं के स्तम्भ के जोड़ मे सम्बन्ध रखते हैं। चौथे और पांचवें भाग मे २० पद इसी प्रकार के हैं किन्तु वे अधिक कठिन है।

(२) बुसवैल (Buswell) और जोन (John) की अकगणित की परीक्षा आधारभूत क्रियाओं का वैधानिक परीक्षण करती है। यह व्यक्तिगत परीक्षा है जिसमे परीक्षक एक बालक के अंकगणित की प्रक्रियाओं की जानकारी का परीक्षण करता है। उसका मुख्य उद्देश्य है—बालक की गलतियों के कारण ढूंढना। ये गलतियां निम्न प्रकार की होती हैं —

(i) दो दो अंकों के योग मे गलती
(ii) गिनने मे गलती
(iii) हासिल को बाद मे जोड़ना
(iv) हासिल उतारने की गलती
(v) हासिल को भूल जाने की गलती

(vi) हासिल को जोड में लिख देना
(vii) हासिल के जोडने का गलत तरीका
इस प्रकार की १८ गलतियाँ ढूंढी गई हैं।

बालक किस प्रकार सोचता है ? उनके सोचने के ढग में क्या अशुद्धियाँ हैं ? कुछ दिन यह देखने के लिए वुशवेल और जोन की परीक्षा दी जाती है।

बीजगणित मे इसी प्रकार की कुछ नैदानिक परीक्षायें अध्यापक द्वारा तैयार की जा सकती हैं। एक परीक्षा का प्रतिरूप जो कक्षा ६ के बालको को दिया जा सकता है, नीचे दिया जा रहा है। इसका उपयोग केवल विद्यार्थियों के कुछ समूह पर लागू करने के लिए ही नही होता किन्तु व्यक्तिगत विद्यार्थियो की कमजोरियो के जानने के लिए भी किया जा सकता है। इस कार्य के लिए एक चार्ट तैयार किया जाता है, जिसे तालिका ६.१ मे दिखाया गया है।

नैदानिक परीक्षा : बीजगणित

विद्यार्थी का नाम — कक्षा—
विभाग— दिनांक—

नीचे कुछ समीकरण दी जाती हैं, उनसे य का मान बताओ। उत्तर केवल उत्तर के स्तम्भ में लिखने हैं —

प्रश्न	उत्तर	गणना स्थल
(१) य + ५ = ३६ य =	(१)	
(२) ५य + ३ = २३ य =	(२)	
(३) ३य + १$\frac{७}{८}$ = ६$\frac{१}{१०}$ य =	(३)	
(४) ३य + ·७ = ४३ य =	(४)	
(५) ·०१य + ८ = १६ य =	(५)	
(६) ३य — १६ = ४ य =	(६)	
(७) ·३य — ·४य = ५ य =	(७)	
(८) ·१५य — ६ = ७य — ६ य =	(८)	
(९) १५ + ५ = ८ — ४य य =	(९)	
(१०) ४य + ३ = ७य + २ य =	(१०)	
(११) $\frac{य}{२}$ — $\frac{२य}{३}$ = ४ य =	(११)	
(१२) १२ + $\frac{५}{८}$य = ७ य =		
(१३) (य — २)²		

प्रत्येक बालक को कठिनाइयाँ उसके सामने भिन्न भिन्न स्तम्भो मे लिखे हुये प्रश्नो से मालूम हो सकती हैं। उदाहरण के लिये मनीशचन्द्र समीकरण मे घटाने की क्रिया को नहीं जानता। दशमलव भिन्न के जोड़ अथवा घटाने की उसमे कमजोरी है। समीकरण के पक्षान्तर सम्बन्धी ३ प्रश्नो मे उसके तीनों प्रश्न गलत हैं और वर्ग समीकरण के पाँचो प्रश्नो मे से उसका कोई प्रश्न ठीक नहीं है। ऐसा मालूम पड़ता है कि जिस समय यह उपविषय कक्षा मे पढ़ाया गया था उस समय वह अनुपस्थित रहा हो। अत इस विद्यार्थी को सबसे अधिक उपचारात्मक शिक्षण की आवश्यकता है, नहीं तो कक्षा मे पिछड़ जायगा। अजयकुमार ने केवल दो गुणनखण्डों के गुणा करने मे गलती की है, वह गुणा करना जानता है लेकिन यह गलती दुर्भाग्यवश हो गयी प्रतीत होती है। रामप्रकाश ने इस उपविषय को अच्छी तरह से समझ लिया है। सम्पूर्ण कक्षा के विषय मे ही यह चार्ट हमे कुछ सूचनायें देता है। केवल ६३% विद्यार्थी ही जटिल वर्ग समीकरण को हल कर सके हैं। अत अध्यापक को ऐसी जटिल वर्ग समीकरणो पर भविष्य मे और अधिक जोर देना चाहिये। दशमलव भिन्न के प्रश्नो को हल करने मे भी विद्यार्थी कमजोर हैं, अत दशमलव भिन्न पर भी दो एक पाठ जरूरी मालूम पड़ता है।

Q 5. What use can a teacher make of diagnostic testing to improve instruction ?

Ans इस प्रकार की नैदानिक परीक्षायें जो अध्यापक स्वयं अपने बालकों की कमजोरियों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए तैयार कर सकता है, अत्यन्त उपयोगी हो सकती हैं। ब्रैल महोदय का कहना है कि ७५% कमजोर विद्यार्थी इन परीक्षाओं की सहायता से ढूँढे जा सकते हैं। केवल २५% विद्यार्थी ही ऐसे होंगे जिनकी कमजोरियों अथवा कठिनाइयों का पता न लग सके। यदि अध्यापक कक्षा में किसी प्रकार की नकल न होने दे तो शायद वह १०% और विद्यार्थियों की कमजोरियों का पता चला सकता है। यह उसका धर्म है कि इन कमजोरियों का पता चलाने के बाद वह उनके कारणों का भी पता लगाये।
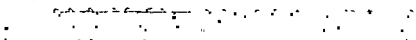
व्याख्या का कार्य तो अध्यापक स्वयं कर सकता है। एक नैदानिक परीक्षा में किसी विद्यार्थी को क्यों कम अंक मिले, इसका कारण अध्यापक को स्वयं ढूँढना है। कदाचित विद्यार्थी बीजगणित से घृणा ही करता हो, इसीलिये उसे इस नैदानिक परीक्षा मे कम अंक प्राप्त हुये हैं। ऐसा भी हो सकता है कि अध्यापक की पाठन-विधि में ही दोष हो, जिसके कारण सम्पूर्ण विद्यार्थी किसी विशेष प्रश्न को हल न कर सके हो। यदि ऐसा है तो उसे अपनी पाठन-विधि में सुधार करना होगा। अध्यापक को अपनी कक्षा के सबसे कमजोर विद्यार्थियों पर अपेक्षाकृत अधिक ध्यान देना है। वह ऐसे बालकों से समश भेंट कर सकता है। उनके घर आकर उनके माता पिता के साथ विचार विमर्श कर उनकी कठिनाइयों को दूर कर सकता है। लेखक ने अब स्वयं बीजगणित मे अत्यन्त कमजोर एक बालक से एकान्त में समश भेंट की तो उसने बतलाया कि वह एलजबरा को ओलभगड़ा समझता है। किसी विषय के प्रति इस प्रकार का घृणा भाव जब एक बालक मे पैदा हो जाय तो अध्यापक का यह धर्म है कि उसे अधिक रुचिकर बनाने का प्रयत्न करे। वह ऐसे अनुसंधेय बालकों का अध्ययन (case study) भी कर सकता है, यदि उसके पास समय है। इस अध्ययन मे वह उनके सामाजिक कुसमायोजन (maladjustment) के कारण ढूँढ सकता है। शैक्षणिक कठिनाइयों में कुछ शारीरिक दोष, कुछ मानसिक दोष, कुछ घर की समस्यायें और कुछ भावना सम्बन्धी कारण को मग कर सकते हैं। इस प्रकार के अध्ययन कुछ प्रगतिशील देशो मे अब भी किये जा रहे हैं। पाठक इन अध्ययनों के नमूने ऐरी डे बेकर और बर्निंग सी लैण्ड' की 'इन विहाफ ऑफ नॉन रीडर्स' (in behalf of non-readers) शीर्षक पुस्तक मे देख सकता है।

उपचार के लिये विषय का विश्लेषण आवश्यक है। इसका आशय यह न समझ लिया जाय कि प्रत्येक नैदानिक परीक्षा केवल विश्लेषणात्मक ही होती है। एक नैदानिक परीक्षा के लिए किसी विषय के भिन्न अंगो का विश्लेषण तो आवश्यक है ही उसके दोष के कारण स्थापित करना भी कम जरूरी नहीं। कौनसापन की नैदानिक परीक्षा मे यदि स्थाई दोष,

पाठ्य वस्तु और प्रधान विचार निकालने की योग्यता से कोई सम्बन्ध स्थापित न हो सका तो परीक्षा नैदानिक न होकर केवल निष्पत्यात्मक ही रह जायगी।

अध्यापक के लिए नैदानिक परीक्षाओं के कुछ और उपयोग नीचे दिये जाते हैं :—

(१) चूंकि नैदानिक परीक्षायें एक ओर परीक्षित विषय में विद्यार्थी की योग्यता की कमियों की जाँच करती हैं इसलिए अध्यापक को इस बात का निश्चय करने में काफी सहायता मिलती है कि उसकी शिक्षा कहाँ तक सफल अथवा असफल रही है और उसने विद्यार्थियों की दशा जानकर उस पाठ्यविषय को किस सीमा तक पढ़ाने में सहायक सिद्ध हुई है।

(२) बहुत से अध्यापक यह नहीं जानते कि अमुक विद्यार्थी की कौन-कौन सी कठिनाइयाँ हैं, अतः वे उस विषय अथवा उस विषय को बार-बार पढ़ाते हैं। वे किसी प्रकरण को बार बार पढ़ाने में शक्ति और समय का अनावश्यक अपव्यय करते हैं। इसका कारण यह है कि वे विषय का विश्लेषण नहीं कर पाते। यदि वे विद्यार्थियों की दुर्बलताओं का निदान कर सकें तो उनकी कठिनाइयों को दूर करने का प्रयत्न भी करेंगे। उदाहरण के लिये यदि बालक गणित सम्बन्धी किसी समस्या को समझने में कठिनाई का अनुभव कर रहा है तो इसका आशय यह नहीं कि कठिनाई उस समस्या को समझने में है अथवा बालक में समस्या को समझने की शक्ति नहीं है। अनुपात के प्रश्न में बालक भिन्नों को सरल करने में कठिनाई का अनुभव कर सकता है। भिन्नों के गुणा और भाग में गलती कर सकता है, यदि अध्यापक इन वस्तुओं का सही विश्लेषण कर सका तो वह उसकी दुर्बलताओं को दूर कर सकता है अन्यथा नहीं।

(३) साधारणतया अध्यापकों में विषयों के विश्लेषण करने की उचित योग्यता न होने के कारण वे विश्लेषणात्मक परीक्षायें तैयार नहीं कर सकते। अतः नैदानिक परीक्षा किसी भी विषय के आवश्यक तत्वों का विश्लेषण करके उनके सामने परीक्षा की सामग्री प्रस्तुत कर सकती है।

(४) ये परीक्षाएँ अध्यापकों को इन आवश्यक तत्वों के अनुक्रमों तथा प्रतिक्रियाओं की कठिनाइयों से अवगत करा देती हैं।

(५) अध्यापक इन परीक्षाओं की सहायता से प्रतिक्रियाओं का क्रम बन्धन कर सकता है और विद्यार्थी भी यह समझ लेता है कि शिक्षा की कौन-कौन सी महत्त्वपूर्ण आवश्यकतायें ऐसी हैं जिन पर उसे जोर देना है।

(६) यदि नैदानिक परीक्षायें अध्यापक को शिक्षण कार्य में सहायता दे सकती हैं तो उनमें कुछ विशेषतायें होनी चाहिये। ये परीक्षायें यदि पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग बना दी जायें तो वे किसी विषय को पढ़ाने के मुख्य उद्देश्यों को स्पष्ट कर सकती हैं। विद्यार्थी की मानसिक प्रक्रियायें किस प्रकार की हैं, वह किन-किन स्थलों पर गलती कर सकता है, यदि इन बातों पर ये परीक्षाएँ प्रकाश डाल सकीं और वे उन गलतियों को दूर करने के साधनों का संकेत दे सकीं, यदि इन परीक्षाओं में कुछ प्रश्न ऐसे हुए जो कठिन तत्वों की पुनरावृत्ति करते रहें, जिससे बालक से उन तत्वों की विस्मृति न हो, यदि वे विद्यार्थियों की उन्नति निरपेक्ष भाव से प्रदर्शित कर सकीं और यदि वे अनुक्रमों के यान्त्रिक स्वरूपों पर ही जोर न देकर उन उच्चतर योग्यताओं पर भी ध्यान दे सकीं जिनकी आवश्यकता सम्बन्धात्मक तर्क और समस्या समाधान में पड़ती है तो वे अपने प्रयोजनों तथा उद्देश्यों की पूर्ति कर सकेंगी।

उत्तम नैदानिक परीक्षाओं की विशेषताएँ—यदि कोई नैदानिक परीक्षा साधारण अध्यापक तथा छात्र के लिए उपयोगी सिद्ध होती है तो उनके निम्नलिखित गुण या विशेषताओं का समावेश होना चाहिये।

(i) नैदानिक परीक्षाओं के पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग होना चाहिये।
(ii) शिक्षा के मुख्य प्राप्य उद्देश्यों के अनुरूप होना चाहिए।
(iii) वे इतनी विश्लेषणात्मक हों कि किसी प्रक्रिया के अंशों का पूर्ण विश्लेषण उपस्थित कर सकें।
(iv) उनका आधार ऐसा सत्य हो जो प्रयोगों के फलस्वरूप प्राप्त हुआ है।
(v) ये सीखने वाले की मानसिक प्रकिया के स्वरूप को खोलकर रख दें ताकि अशुद्धि के स्थलों का पता लग सके।

(vi) पुस्तक अशुद्धि के लिये विशेष उपचार का सुझाव दें।
(vii) उनको इस प्रकार तैयार किया जाय कि वे कठिन तत्वों की पुनरावृत्ति करके विस्मृति को रोक सकें और सीखने की गलतियों को पहचान सकें।
(viii) बालकों की उन्नति का वैषयिक रूप में परीक्षण कर सकें।

यदि शैक्षणिक निदान को उपचार से सम्बन्धित कर दिया जाय तो निश्चय ही विद्यार्थियों को बहुत लाभ होंगे। प्रयोगों के आधार पर यह सिद्ध किया जा चुका है कि शैक्षणिक निदान और उपचारात्मक शिक्षण केवल हस्तलेखन, शब्द विन्यास और गणित जैसे विषयों में ही उपयोगी नहीं होते बल्कि अन्य विषयों में भी वे उपयोगी सिद्ध हुए हैं। स्टोन ने गणित में तर्क शक्ति की योग्यता में सुधार करने के लिए प्रयोगात्मक अध्ययन के आधार पर बतलाया है कि नैदानिक परीक्षायें ५ वें और छठे कक्षा के विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त लाभप्रद हैं। इस तथ्य का अन्वेषण उन्होंने विद्यार्थियों के दो समुदायों पर प्रयोग करके किया। एक वर्ग को जिसे नियंत्रक समूह (controlled group) कहा जा सकता है, उन्होंने किसी प्रकार की नैदानिक परीक्षायें नहीं दीं। उनका गणित का शिक्षण साधारण ढंग से चलता रहा, किन्तु दूसरे वर्ग को जिनका बौद्धिक स्तर (intelligence level) पहले वर्ग के समान ही था, पाँच सप्ताह तक प्रतिदिन, अधिक से अधिक ४० मिनट तक, गणित की नैदानिक परीक्षायें दी गयीं। इन पाँच सप्ताह के अन्दर दूसरे वर्ग की तर्क शक्ति में ६ गुनी वृद्धि पायी गयी। यह वृद्धि क्षणिक न थी। एक साल के बाद भी दूसरा वर्ग नियन्त्रक वर्ग की अपेक्षा दुगुने से ६ गुने तक अधिक अंक पाता रहा। इस प्रकार हम देखते हैं कि नैदानिक परीक्षायें और उपचारात्मक शिक्षण विद्यार्थी समाज के लिये लाभप्रद हैं। खेद केवल इतना ही है कि भारत में ऐसी परीक्षाओं की ओर बहुत कम ध्यान गया है। शिक्षामन्त्रालय का यह कर्त्तव्य है कि जिस प्रकार वह निष्पत्ति परीक्षाओं के निर्माण के लिये कतिपय प्रशिक्षण संस्थाओं को सहायता दे रही है उसी प्रकार नैदानिक परीक्षाओं के निर्माण के लिये भी कुछ प्रबन्ध करे। कदाचित् ऐसा करने से शिक्षक वर्ग को मार्ग-दर्शन मिल सकेगा और शिक्षा का स्तर भी कुछ अधिक ऊँचा उठ सकेगा।

Q. 6. What do you understand by remedial teaching? What place do you assign to diagnostic testing and remedial teaching in reading and arithmetic?

Ans जिस प्रकार किसी रोग का कारण जान लेने पर जब तक उसका उपचार नहीं किया जाता, तब तक उसका निदान भी सार्थक नहीं होता, उसी प्रकार विद्यार्थियों की अशुद्धियों का ज्ञान तथा उनके कारणों की खोज व्यर्थ होगी यदि उसका कोई उपचार न किया जाय। निदान के बाद औपचारिक शिक्षण अनिवार्य हो जाता है।

वाचन और अंकगणित ये दो क्षेत्र ऐसे हैं, जिनमें बालक प्राय कठिनाइयों की अनुभूति करते हैं। प्रारम्भिक अथवा माध्यमिक विद्यालयों के अध्यापकों के सम्मुख यह सबसे बड़ी समस्या बनी रहती है कि उनके विद्यार्थियों का वाचन शुद्ध नहीं होता। यह समस्या केवल आजकल और भी कठिन इसलिए बन गई है कि न तो विद्यार्थी अपनी मातृभाषा पर ही अधिकार करना चाहता है और न अंग्रेजी पर ही। अंग्रेजी को विदेशी भाषा समझकर चिन्ता नहीं करता और हिन्दी को मातृभाषा समझकर, क्या हिन्दी भी सीखने की वस्तु है, इस प्रकार की गलत अभिवृत्ति (attitude) प्राय ८०% विद्यार्थियों में पाई जाती है। फल यह होता है कि वाचन में रुकावट पड़ती है, विलम्बन होता है। विलम्बन (retardation) उसके व्यक्तित्व को विघटन कर देता है। बालक अनेक ऐसी क्रियाएँ अपनाने लगता है जिन्हें हम स्वरक्षा की प्रतिक्रियाएँ (escape mechanisms) भी कहते हैं।

वाचन में सुधार करने के लिए अध्यापक का पहला कर्तव्य यह है कि वह उन विद्यार्थियों को छाँट ले जिनको वाचन की कठिनाई है। वह उनको वाचन करते समय गौर से देखे, उनके रुझान का पता लगावे, भिन्न-भिन्न स्तरों के उपयुक्त पुस्तकों को उन्हें देवे। यदि हो सके तो मौनवाचन (silent reading) की प्रामाणिक परीक्षाएँ देवे। ऐसा करते समय वह उनको यह महसूस न होने दे कि वे विद्यार्थी अन्य विद्यार्थियों की तुलना में निकृष्ट हैं। अत. विशेष वाचन कक्षाएँ औपचारिक नहीं कही जा सकतीं।

Q. 8. Write a note on Prognostic Tests.

Ans बालक की कमजोरियों का निदान करने तथा उनको दूर करने के बाद आता है prognostic-prediction of the probable outcome of condition इस प्रकार निदान का अन्त होता है Prognostic जब कोई बालक अंकगणित सीखने में कमजोर होने के साथ-साथ बुद्धि में भी क्षीण हो तो क्या उसे अधिक सामान्यीकृत गणित (बीजगणित ज्यामिति) का अध्यापन कराया जाय ? इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये Prognostic Test का निर्माण किया जाता है ये परीक्षाएं बालक की बीजगणित या ज्यामिति सीखने में standing की भविष्यवाणी करती हैं। यदि बीजगणित और ज्यामिति में सफलता की भविष्यवाणी करने वाली पद परीक्षा, बुद्धि परीक्षा और अंकगणित की निदान परीक्षा बालक के विषय में एकसी जानकारी दें तो Prognostic Test को भी उपयुक्त माना जा सकता है।

बीजगणित में कई Prognostic Test तैयार किये गये हैं एक है Lee का Prognostic Test of Algebraic Ability , दूसरा है Orleans का। दूसरे test में निम्न भाग हैं –

(१) एक पदीय व्यंजकों के स्थानापन्न
(२) घातांकों का प्रयोग
(३) घातांकों का सर्वीकरण
(४) घातांक युक्त एकपदीय व्यंजकों में स्थानापन्न
(५) सजातीय विजातीय पद
(६) सम्बन्धों का प्रदर्शन
(७) धनात्मक और ऋणात्मक चिन्ह वाले पद
(८) समस्याएँ

प्रत्येक भाग की एक क्रिया समझा दी जाती है और फिर उस पर प्रश्न पूछे जाते हैं उदाहरण के लिए (१) में

पाठ—क² = क × क
प्रश्न—यदि क = ३ तो क² = ३² = ३ × ३ = ९
प्रश्न—४² = ?
प्रश्न—क² का क्या अर्थ है ?

यदि बालक प्रश्नों का उत्तर देने में कठिनाई हो तो पाठ को फिर देखो और प्रश्न को हल करो।

अध्याय ७

बुद्धि परीक्षण

(Intelligence Testing)

Q 1 Can Intelligence be measured ? Discuss the nature of Intelligence.

Ans बुद्धि की प्रकृति तथा उसके आयाम (Nature and Dimensions)—वैबस्टर शब्द कोश में बुद्धि की परिभाषा इस प्रकार दी गई है

"The capacity for knowledge and understanding especially as applied to the handling of novel situations : the power of meeting a novel situation successfully by adjusting one's behaviours to the total situation."

इस परिभाषा में बुद्धि को ऐसी क्षमता अथवा शक्ति माना गया है, जिसे व्यक्ति नूतन परिस्थितियों में समायोजन स्थापित करने में लगाता है। बुद्धि अथवा प्रज्ञा शब्द का प्रयोग हम लोग साधारण बोलचाल की भाषा में कई अर्थों में करते हैं। 'क' कैसा बुद्धिमान बालक है ? 'क' 'ख' से अधिक बुद्धिमान है। उसका दिमाग कैसा बढ़िया है ? 'ग' का बौद्धिक विकास अभी नहीं है। इन वाक्यों का विश्लेषण करने पर प्रश्न उठते हैं—क्या बुद्धि वास्तव में कोई शक्ति है ? क्या इसका सम्बन्ध मस्तिष्क (brain) से है ? क्या वह कोई विकास शील वस्तु है ? बुद्धि की इतनी अधिक परिभाषाएँ क्यों दी जाती हैं ?

जिस मानसिक तत्व के कारण बालकों के सीखने की क्षमता में अन्तर उपस्थित हो जाता है, जिस तत्व के कारण उनकी स्मृति में भिन्नता दिखाई देती है, जिस तत्व के कारण किसी समस्या को हल करने में वैयक्तिक अन्तर दिखाई देता है उस कारण को समझाने के लिये जो हम अर्थ (explanation) उपस्थित करते हैं, उस अर्थ (explanation) को ही बुद्धि की संज्ञा दी जाती है। दूसरे शब्दों में, बुद्धि एक ऐसा मानसिक तत्व है जिसके कारण दो बालकों को एक ही वस्तु पढ़ाई जाने में उसे समझने में अन्तर आ जाता है, जिसके कारण ही दो व्यक्तियों की स्मरण शक्ति में भिन्नता दिखाई देती है, जिसके कारण ही दो व्यक्ति एक ही समस्या को हल करने में अलग-अलग योग्यता का प्रदर्शन करते हैं। संक्षेप में बुद्धि एक अर्थ है (explanation) जिसे अंग्रेजी में construct के नाम से पुकारा जाता है।

वैयक्तिक विभिन्नताओं का अर्थीकरण भिन्न-भिन्न विद्वान भिन्न-भिन्न तरीकों से करते हैं इसलिये बुद्धि जो केवल अर्थ (construct) मात्र है भिन्न-भिन्न मतों में आच्छादित दिखाई देता है। इसीलिये बुद्धि की अनेक परिभाषाएँ दी जाती हैं।

अब चूँकि बुद्धि वैयक्तिक विभिन्नताओं का एक अर्थ मात्र है अतः उसकी कोई भौतिक सत्ता नहीं है। भौतिक सत्ता न होने के कारण उसके आयाम (dimensions) भी भौतिक नहीं हैं, वे तो केवल कुछ गुण मात्र हैं। जो विशेष लक्षण, समस्या समाधान, चिन्तन, आदि में एक व्यक्ति को दूसरे से भिन्न बना देते हैं बुद्धि के आयाम (dimensions) कहे जाते हैं। उदाहरण के लिये एक व्यक्ति दूसरे की अपेक्षा सीखी हुई वस्तु को धारणा में अधिक देर तक रख सकता है अथवा एक व्यक्ति दूसरे की अपेक्षा नूतन समस्या का हल तुरन्त ढूंढ लेता है अथवा एक व्यक्ति दूसरे की अपेक्षा अधिक तर्कपूर्ण चिन्तन कर सकता है तो वैयक्तिक विभिन्नता के ये लक्षण—जिन्हें हम स्मृति, समस्या समाधान की शक्ति, अथवा तर्क पूर्ण चिन्तन कह सकते हैं बुद्धि की विमाएँ (dimensions) मानी जा सकती हैं।

इन आयामों का अवलोकन इन्द्रियों से नहीं होता लेकिन बालक के आचरण को देखकर उनके अस्तित्व का आभास अवश्य लगा सकते हैं। जिस प्रकार किसी कमरे की लम्बाई को हम

देख सकते हैं उसी प्रकार किसी बालक को किसी नूतन समस्या को हल करते हुए देखकर यह निष्कर्ष निकाल लेते हैं कि उसमे समस्या को हल करने की शक्ति वर्तमान है। इस प्रकार बुद्धि के अन्य आयामो अथवा विशेष लक्षणो का अनुमान व्यक्ति के कार्य अथवा आचरणों (behaviours) को देखकर लगा लेते हैं।

यदि बुद्धि के इन आयामो (dimensions) अथवा विशेष लक्षणो (properties) का निर्धारण कर लिया जा सकता है तो बुद्धि का मापन किया जा सकता है।

बुद्धि के आयामों का निर्धारण (Sources for finding dimensions of intelligence)—बुद्धि के अन्तर्गत किन-किन गुणो अथवा विशेष लक्षणो का समावेश हो सकता है इसका पता निम्नलिखित तीन स्रोतों से लग सकता है—

(अ) बुद्धि विषय का सिद्धान्त (Theories of Intelligence)
(आ) बुद्धि परीक्षाओं के स्वरूप
(इ) बालचाल की भाषा

बुद्धि विषयक सिद्धान्तो की व्याख्या भिन्न-भिन्न मनोवैज्ञानिको ने भिन्न-भिन्न प्रकार से की है।

इसका उल्लेख आगे किया जायगा। यहाँ पर केवल कुछ विद्वानो के मत प्रस्तुत किये जाते हैं।

बुद्धि विषयक सिद्धान्त और बुद्धि के आयाम

थर्स्टन ने घटक विश्लेषण (Factor Analysis) की सहायता से कई प्रकार की बुद्धि परीक्षाओ द्वारा जाँचे गये बुद्धि के सामान्य लक्षणो का विश्लेषण किया है और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि बुद्धि मे कुछ मूलभूत तत्व है जिनको प्राथमिक मानसिक योग्यता माना जा सकता है। ये मानसिक योग्यताएँ (Praimary mental abilities) निम्नलिखित हैं—

(i) Spatial
(ii) Perceptual
(iii) Verbal Relations
(iv) Memory
(v) Words
(vi) Inductions
(vii) Reasoning
(viii) Deduction

स्टोडार्ड (Stoddard) ने भी इसी प्रकार की कुछ विशेषताओं का उल्लेख किया है जिन्हे हम बुद्धि के आयाम अथवा लक्षण मान सकते हैं। लेकिन इन आयामो तक पहुँचने का उनका तरीका भिन्न है। थर्स्टन (Thurston) ने जिस समय घटक विश्लेषण (Factor Analysis) का आश्रय लेकर बुद्धि के ६ विशेष लक्षणों का पता लगाया है उसी समय स्टोडार्ड ने तर्क एवं निरीक्षण के आधार पर बुद्धि के अन्दर निम्नलिखित योग्यता को समाविष्ट किया है—उनके अनुसार बुद्धि वह मानसिक योग्यता है जो ऐसी क्रियाओं का सफलतापूर्वक सम्पादित करने मे व्यक्ति की मदद करती है जिन्हे कठिन, जटिल, सूक्ष्म, सप्रयोजन, सामाजिक मौलिक माना जा सकता है।[1]

कार्य की कठिनाई का अनुमान उस कार्य को ... को प्रतिशत से लगाया जाता है। कार्य की ... विविधता से नापी जाती है.
economy से है.
मौलिक ढग से

... करने वाले लोगों ... ने उपकार्यों की ... का सम्बन्ध ... कार्य को जब व्यक्ति ... है।

1. ... are characterised ... ptiveness to a goal.

बीने तथा स्पीयर मैन की विचारधारा उपरोक्त दोनों विचारधाराओं से अलग है। बीने बुद्धि को व्यक्ति का अविभाज्य अंग मानता है।

"Integral is more or less an integral aspect of individual".

स्पीयर मैन बुद्धि में केवल दो अंगों का ही समावेश होना मानता है। पहले अवयव (factor) को वह g तथा दूसरे को s कहकर पुकारता है। बुद्धि के सामान्य तत्व g का प्रयोग वह समान रूप से सभी परिस्थितियों में करता है लेकिन विशिष्ट तत्व का प्रयोग वह विशेष परिस्थितियों में ही करता है।

बुद्धि परीक्षाएं तथा बुद्धि के आयाम (Intelligence and dimensions of *Intelligence*)—बुद्धि परीक्षाओं में पूछे जाने वाले प्रश्नों को देखकर बुद्धि के सामान्य लक्षणों अथवा आयामों (dimensions) का पता लगाया जा सकता है। उदाहरण के लिये अल्पवयस्क छात्रों की बुद्धि का मापन करने के लिये ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं जिनमें बालकों से पशुओं, घरेलू वस्तुओं, ज्यामित शक्लों, में विभेद बताना पड़ता है। अतः ऐसी परीक्षाएं विभेदीकरण की योग्यता को बुद्धि का एक लक्षण (property) मानती है।

इसी प्रकार बीने तथा वैश्लर की बुद्धि परीक्षाओं में ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं जिनका सम्बन्ध बालक की प्रत्यास्मरण (recall) शक्ति से होता है। क्योंकि उसे कुछ अंक समूह सुनाकर उन्हें दुहरवाया जाता है। इस प्रकार बुद्धि का एक लक्षण है प्रत्यास्मरण (recall)। लगभग सभी बुद्धि परीक्षाओं में सम्ख्यात्मक अथवा चित्रात्मक, अथवा शाब्दिक कुछ ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं जिनके एक-एक उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

(i) ३ का ६ में वही सम्बन्ध है जो क का ···· से है?

(ii)
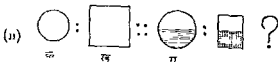
(ii) सिर का टोपी में वही सम्बन्ध है जो पैर का··· से है।

इन परीक्षण पदों में बालक पहले दो पदों में सम्बन्ध ढूँढ़ता है और इस सम्बन्ध को *अन्य दो परिस्थितियों में लागू करता है, इस मानसिक क्रिया को सामान्यीकरण (generalisation)* कहते हैं। अतः ऐसे परीक्षण पदों से पता चलता है कि बुद्धि की एक विशेषता *सामान्यीकरण* (generalisation) है।

ऐसी ही तीसरी बुद्धि सम्बन्धी विशेषता जिसका मापन बुद्धि परीक्षाएं करती हैं समस्या समाधान (Problem solving) से सम्बन्ध रखती है।

बोलचाल की भाषा में बुद्धि के आयामों की खोज—साधारण व्यक्ति बुद्धिमान् बालक के विषय में प्रायः यह कहते हुए सुने जाते हैं। बच्चा बड़ा तेज है। वह जल्दी सीख लेता है। वह तो बड़ा critical है इत्यादि इत्यादि। बोलचाल की भाषा में भी इस प्रकार बुद्धि के लक्षणों का पता लगाया जा सकता है।

इन तीनों स्रोतों से बुद्धि के लक्षणों अथवा आयामों का पता लगाया जा सकता है जिनका मापन किया जा सकता है। लेकिन इन लक्षणों की सूची तो बड़ी लम्बी होगी। सर्व सम्मति से मान्य लक्षणों की सूची क्या होनी चाहिये इसका प्रयास अभी तक नहीं हुआ है। तब भी कुछ लक्षण ऐसे हैं जिनको सभी उच्च कोटि के मनोवैज्ञानिकों ने मान्यता दी है। ये लक्षण हैं :

(i) Recall (immediate or delayed)

...ion)

... arithmetic *manipulation*)

(v) Abstraction (both verbal and numerical, inductive and deductive reasoning classification, rule stating).

Q 2 Discuss the various theories of intelligence. Which of them do you accept ? Give reasons

Ans. बुद्धि के सिद्धान्त—बुद्धि के संगठन के विषय मे निम्नलिखित सिद्धान्तो का प्रतिपादन हुआ है

(अ) थोर्नडाइक (Thorndike) का बहुघटक (multi-factor) सिद्धान्त
(ब) थर्स्टन (Thurston) का प्राथमिक योग्यताओ का सिद्धान्त
(स) स्पीयरमैन (Spearman) का द्विघटक (two factor) सिद्धान्त
(द) थौमसन का वर्गघटक सिद्धान्त (Group factor theory)
(य) स्टर्न का एक घटक सिद्धान्त (Unifactor theory)

(१) थोर्नडाइक का बहुघटक सिद्धान्त—थोर्नडाइक ने बुद्धि को निम्नाकित मानसिक प्रक्रियाओ का समूह माना है—अवधान, धारणा, प्रत्यास्मरण, अभिज्ञान, चयनात्मक विचार, सामान्यीकरण, आकर्षण (abstraction), सगठन, निगमन-आगमन तर्क, ज्ञान और अधिगम (Learning) ये सभी मानसिक योग्यताएँ एक दूसरे से स्वतन्त्र हैं और बुद्धि के ढाँचे मे अलग-अलग महत्व रखती हैं।

वह बुद्धि के चार स्वतन्त्र स्वरूप (aspects) मानता है ऊँचाई (Height), चौडाई (breadth), क्षेत्रफल अथवा आयतन, गति। बुद्धि की ऊँचाई से उसका आशय है व्यक्ति मे क्रम से सजाई गई क्रियाओ को सफलतापूर्वक हल करने की शक्ति। जो व्यक्ति ऐसी क्रियाओ को जितनी ही अधिक कर सकता है उसमे बुद्धि की ऊँचाई उतनी ही अधिक होती है। बुद्धि की चौडाई से उसका आशय है कार्यों की उस विभिन्नता से जो किसी स्तर पर कोई व्यक्ति हल कर सकता है। बुद्धि के क्षेत्रफल अथवा आयतन से उसका आशय है क्रियाओ की उन कुल सख्याओ से जिन्हें व्यक्ति हल कर सकता है और गति से आशय है उत्तर देने की तेजी से।

जिस प्रकार बालू के ढेर में ऊँचाई, चौडाई और घनफल होता है उसी प्रकार बुद्धि मे भी ऊँचाई, चौडाई और घनफल होता है। इसलिये थोर्नडाइक के इस सिद्धान्त को (Sand Theory) भी कह कर पुकारा जाता है। वह बुद्धि की परिभाषा निम्न शब्दो मे देता है—

Intelligence is the ability to succeed in certain tasks

बुद्धि का मापन इसलिये वह कुछ कार्यों (tasks) के सैम्पिल की सहायता से करता है जिनको पूरा करने मे बौद्धिक शक्ति की आवश्यकता होती है और यह शक्ति प्राय दो स्तरो पर कार्य करती है।

निम्न स्तर पर कार्य करने वाली इस शक्ति का प्रयोग विचारो के साहचर्य, सूचनाओ के परिग्रहण मे होता है और उच्च स्तर पर कार्य करने वाली इस शक्ति का उपयोग प्रत्यर्पण (abstraction), सामान्यीकरण (Generalisation), प्रत्यक्षीकरण (Perception) आदि मानसिक प्रक्रियाओ मे होता है। बुद्धि के ये दोनो स्तर बाह्य बुद्धि (Surface Intelligence) से सम्बन्ध रखते हैं लेकिन आन्तरिक बुद्धि (Super Intelligence) की बनावट कुछ भिन्न है।

बुद्धि मे वैयक्तिक विभिन्नताओं का उल्लेख करते हुए थोर्नडाइक कहता है कि बुद्धि की उत्तमता सम्बन्ध निर्माण (Connection formation) की उत्तमता पर निर्भर रहती है। सम्बन्ध निर्माण की प्रक्रिया शारीरिक है

Connections are physiological mechanisms whereby a nerve stimulus is conducted to and excites action in specific nerve cells, muscles and glands

(२) थर्स्टन (Thurston) का प्राथमिक योग्यताओं का सिद्धान्त—थोर्नडाइक ने कई योग्यताओ के समूह को बुद्धि माना था लेकिन थर्स्टन का कहना है कि बुद्धि का सगठन थोडी सी, ७ अथवा ६, योग्यताओ के समूह से बना है। ये सभी योग्यताएँ (abilities) एक दूसरे से भिन्न तथा स्वतन्त्र हैं। पहले इन योग्यताओं को जो एक दूसरे से स्वतन्त्र होती थी faculties कहकर पुकारा जाता था लेकिन थर्स्टन ने उनको प्राथमिक मानसिक योग्यता माना है। थर्स्टन ने थोर्नडाइक की बहुत सी मानसिक योग्यताओ को थोडी सी योग्यताओं के अन्तर्गत स्थान दिया है।

(३) स्पीयरमैन का द्विघटक सिद्धान्त (Spearman's two factor theory)—स्पीयरमैन के मतानुसार व्यक्ति की सभी मानसिक योग्यताओं को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। घटक विश्लेषण (factor analysis) की सहायता से यह इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि प्रत्येक कार्य के लिये सामान्य और विशिष्ट दो प्रकार की योग्यताओं की आवश्यकता होती है। उदाहरण के लिये गणितज्ञ में सामान्य तथा गणित के लिए विशिष्ट योग्यता वर्तमान होती है। कभी-कभी एक ही व्यक्ति में कई विशिष्ट योग्यताएँ होती हैं किन्तु उन सभी विशिष्ट योग्यताओं में से एक न एक प्रमुख होती है।

पहली योग्यता, जिसे स्पीयरमैन सामान्य घटक g factor कहता है, यद्यपि भिन्न-भिन्न लोगों में भिन्न-भिन्न होता है फिर भी एक ही व्यक्ति में स्थिर रहता है। यदि कई प्रकार की सहसम्बन्धित योग्यताओं के परीक्षण के लिये परीक्षाएँ (Tests) तैयार किए जायें तो उन सभी परीक्षाओं को हल करने में इस सामान्य घटक की आवश्यकता पड़ेगी।

दूसरी प्रकार की मानसिक योग्यता, जिसे स्पीयरमैन विशिष्ट घटक (S factor) के नाम से पुकारता है, एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में भिन्न-भिन्न मात्रायें वर्तमान होती हैं। इस प्रकार किसी व्यक्ति की बुद्धि का मापन करते समय उसकी सामान्य तथा विशिष्ट दोनों प्रकार की योग्यताओं का मापन करना पड़ता है।

जब दो या दो से अधिक विशिष्ट योग्यताएँ एक दूसरे को आच्छादित (Overlap) कर लेती हैं तब उनसे मिलकर Group factors बनते हैं जैसा कि थौमसन (Thomson) का विचार है। लेकिन स्पीयरमैन का पहले तो यही मत था कि किसी एक मानसिक कार्य को सम्पन्न करने में केवल दो प्रकार की योग्यताओं की ही आवश्यकता होती है :—

(अ) सामान्य योग्यता अथवा g factor की निश्चित मात्रा की, जो दूसरी मानसिक क्रियाओं में भी उपयुक्त हो सकती है।

(ब) विशिष्ट योग्यता अथवा S factor की निश्चित मात्रा की, जो केवल उसी मानसिक कार्य के लिये जरूरी है अन्य मानसिक कार्यों के लिये उसकी कोई आवश्यकता नहीं होती।

बाद में, अवश्य स्पीयरमैन ने यह स्वीकार कर लिया कि उन घटकों (factors) को जिनके कारण कुछ Tests के बीच ऊँचे सह सम्बन्ध गुणक आते हैं न केवल दो वर्गों में ही बाँटा जा सकता है वरन् विशिष्ट घटकों को भी वर्गों (groups) में विभक्त किया जा सकता है।

(४) स्टर्न का एक घटक सिद्धान्त (Unifactor theory)—स्टर्न का कहना था कि बुद्धि में केवल एक ही योग्यता (अथवा घटक) होती है अधिक नहीं।

बुद्धि विषयक इन सभी सिद्धान्तों का प्रतिपादन सहसम्बन्धगुणक (Correlation) के सिद्धान्त को आधार मान कर किया गया है, जब दो या दो से अधिक मानसिक योग्यताओं की जाँच करने के लिये तैयार की गई परीक्षाओं को किसी विद्यार्थी समूह पर लागू किया जाता है तब उनमें प्राप्तांकों के बीच सहसम्बन्ध देखा गया है, कुछ परीक्षाओं में इन प्राप्तांकों के बीच ऊँचे सहसम्बन्ध गुणक क्यों मिलते हैं इसका कारण है किसी सामान्य घटक की उपस्थिति और दो या दो से अधिक परीक्षाओं में नीचे सहसम्बन्ध गुणक मिलने का कारण है विशिष्ट योग्यताओं की उपस्थिति।

इन सहसम्बन्ध गुणकों का विश्लेषण ही घटक विश्लेषण (factor analysis) कहलाता है। नीचे स्पीयरमैन, हौल जिन्जर (Holzinger) तथा थर्स्टन (Thurston) द्वारा प्राप्त घटक विश्लेषण के परिणामों की तालिका बद्ध किया जाता है।

तालिका ब

	d	b	e	a	f	c
d	×	·७२	६३	५४	४५	३६
b	·७२	×	५६	४८	४०	३२
e	·६३	·५६	×	४२	३५	२८
a	·५४	·४८	४२	×	३०	२४
f	४५	·४०	·३५	·३०	×	२०
c	·३६	·३२	·२८	·२४	२०	×
योगफल	२.७०	२·४८	२·२४	१·९८	१.७०	१·४०
g Factor का प्रभाव Saturation or loading	.९	·८	·७	६	५	४

स्पीयरमैन ने दूसरी विशेष बात यह कही कि सह सम्बन्ध गुणांकों को hierarchical order में रखने के बाद यह देखा जायगा कि इन सह सम्बन्ध गुणांकों के बीच एक विशेष सम्बन्ध प्रकाश होगा जिसे समीकरण द्वारा निम्नलिखित विधि से प्रकट किया जा सकता है

$$\frac{r_{ed}}{r_{eb}} = \frac{r_{ad}}{r_{ab}} \left[\frac{६३}{५६} = \frac{५४}{४८} \right]$$

जहाँ पर r_{cd} परीक्षा c और d के बीच सह-सम्बन्ध गुणांक है, r_{cb} परीक्षा c और b के बीच सह-सम्बन्ध गुणांक है इत्यादि इत्यादि।

इसी सम्बन्ध को tetrad difference कहा जाता है, दूसरे शब्दों में,

$$r_{ed}\, r_{ab} - r_{ad}\, r_{eb} = ०$$

$$[६३ \times ४८ - ५४ \times ५६ = ०]$$

इसी प्रकार के कई tetrad differences लिये जा सकते हैं और वे सभी शून्य होंगे, परीक्षणों के सहसम्बन्ध गुणांकों के बीच के hierarchical order होने का कारण क्या है? स्पीयरमैन का मत है कि चूँकि सभी परीक्षणों के इन कार्यों में एक ही सामान्य तत्व की आवश्यकता पड़ती है इसलिये किन्हीं दो परीक्षणों के सम्बन्ध में सहसम्बन्ध गुणांक ऊँचा होता है और अन्य परीक्षणों में इसी क्रम से घटता है। इसका अनुभव है कि कुछ परीक्षणों के बीच

सहसम्बन्ध गुणक बहुत नीचा भी होगा जिन परीक्षाओं के बीच ऊँचा सहसम्बन्ध गुणक है उनको हल करने के लिए किसी सामान्य योग्यता अथवा बुद्धि के सामान्य घटक (g Factor) की जरूरत होगी और जिनके बीच नीचा सहसम्बन्ध गुणक है उनको हल करने के लिये विशिष्ट योग्यता अथवा S factor की जरूरत होगी।

दूसरा प्रश्न उठता है कि इन परीक्षाओं में कितना कितना g Factor वर्तमान है अथवा g Factor का कितना अंश परीक्षा a को हल करने के लिये आवश्यक है, कितना अंश परीक्षा b को हल करने के लिये आदि आदि। तालिका ब को देखने से पता लगता है कि चूँकि परीक्षा d के सहसम्बन्ध गुणक अन्य परीक्षाओं के साथ ऊँचे हैं इसलिये यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि d परीक्षा में g का प्रभाव जितना अधिक है उतना प्रभाव g का अन्य परीक्षाओं पर नहीं है। यदि पहले स्तम्भ को ध्यान से देखा जाय तो कुछ संख्या सभी सहसम्बन्ध गुणकों में समापवर्त्य है।

·७२, ५३, ५४, ४५, ·२६

वह बड़ी से बड़ी राशि जिसका भाग इन सभी में जा सकता है ·९ है अत परीक्षा *d* पर g Factor के प्रभाव की मात्रा ९ है इसी प्रकार अन्य परीक्षाओं पर *g factor* के प्रभावों (Saturations) की मात्राएँ ८, ·७, ·६, ५, और ४ हैं।

तीसरा प्रश्न है-क्या इन Saturations अथवा loadings का सह सम्बन्ध गुणकों से भी कोई सम्बन्ध होता है ? यदि पहली तथा दूसरी परीक्षा के बीच सह सम्बन्ध गुणक को r_{12} मान लिया जाय, तथा पहली और दूसरी परीक्षा के g factor की loadings को r_{12} और $r_{2}g$ तो

$$r_{12} = r_{1}g \times r_{2}g$$

जैसा कि $\quad$ ·७२ = ९ × ८

चौथा प्रश्न उठता है कि tetrad difference शून्य क्यों होते हैं ? यदि सहसम्बन्ध गुणकों की तालिका को hierarchical order में सजा लिया जाय तो स्पीयरमैन का कहना था कि tetrad differences शून्य अवश्य आवेंगे। Tetrad differenes के शून्य आने का एक मात्र कारण है एक सामान्य घटक की सभी परीक्षाओं में उपस्थिति।

लेकिन बाद में यह देखा गया कि correlation matrix को hierarchical order में सजा लेने पर भी tetrad differences शून्य नहीं आये तब लोगों को शक हुआ कि सभी परीक्षाओं में एक ही सामान्य घटक उपस्थित नहीं है।

थर्स्टन ने स्पीयरमैन के इस विचार को गणितीय विधियों से पुष्ट किया और कहा कि यदि किसी Correlation matrix में सभी Tetrad differences शून्य हो जायँ तो सभी परीक्षाओं पर g Factor का प्रभाव मानना पड़ेगा। लेकिन यदि correction matrix के second order का minor ही शून्य हो तो एक g Factor होता है, लेकिन यदि कई *orders* का minor शून्य हो तो कई Factor होंगे। उदाहरण के लिये ५ वें order के minor के शून्य होने पर ४ Factors होंगे। यह देखने के लिये कि matrix में किस order का minor शून्य है उसका centroid method से घटक विश्लेषण किया जाता है।

थर्स्टन की देन (Contribution of Thurston to Mental measurement)—स्पीयरमैन के द्विघटक सिद्धान्त को अस्वीकार देकर थर्स्टन ने मानसिक मापन के क्षेत्र में फैली हुई गड़बड़ी को समाप्त सा कर दिया। उससे पहले लोगों का विचार था कि बुद्धि में अनेक योग्यताओं का समावेश है किन्तु उसने घटक विश्लेषण की सहायता से अनेक योग्यताओं में से कुछ सामान्य प्राथमिक योग्यताओं को ढूँढ निकाला जो बुद्धि परीक्षाओं में पाई जा सकती हैं। उसका विश्वास है प्रत्येक व्यक्ति की मानसिक योग्यता की माप मान निर्देशांकों (Indices) द्वारा सूचित की जा सकती है और यदि किसी व्यक्ति को शैक्षणिक मार्ग निर्देशन (guidance) देना चाहते हैं तो इन मानों निर्देशांकों (Indices) को पहले देखना होगा जो बुद्धि की प्राथमिक योग्यताओं (Primary Mental Abilities) से सम्बन्ध रखती हैं।

उनके आधार पर तैयार किया गया पार्श्व चित्र (Profile) व्यक्ति को शैक्षणिक अथवा व्यावसायिक मार्ग निर्देशन देने में सहायक सिद्ध होगा। जब हम किसी व्यक्ति को व्यावसायिक मार्ग निर्देशन देते हैं तब हमें यह जानना होगा कि

(अ) किसी देश में किस प्राथमिक योग्यता का कितना अंश वर्तमान है।
(ब) व्यक्ति विशेष में इस प्राथमिक योग्यता का कितना अंश वर्तमान है ?
बस इसी आधार पर व्यक्ति को व्यावसायिक मार्ग निर्देशन दिया जा सकता है।

Q 4 Can the g factor be measured ?

Ans यदि यह मान लिया जाय कि बुद्धि सामान्य मानसिक योग्यता या g घटक है तो हमें ऐसी बुद्धि परीक्षाओं का निर्माण करना होगा जिनमें परीक्षा माला का प्रत्येक उपपद g घटक के साथ ऊँचा सहसम्बन्ध रखे और उसका सम्बन्ध विशिष्ट घटक s से बहुत कम हो। जब जब ऐसी परीक्षा मालाओं का निर्माण हुआ है तब तब उनसे यही पता चला है कि सामान्य योग्यता का आयु के साथ विकास होता है। पहले १२ वर्षों में यह योग्यता तेजी से बढ़ती है और १२ वर्ष के करीब उसके विकास की गति मंदी पड़ जाती है। १५ वर्ष की आयु में उसमें स्थिरता सी आ जाती है। लेकिन किस आयु स्तर पर वह पूर्ण रूप से स्थिर हो जाती है निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

इस g घटक को मानसिक आयु के पदों में व्यक्त किया जाता है। मानसिक आयु क्या है आगे बताया जायगा।

Q 5 Describe the various types of General Intelligence Tests

Ans सामान्य बुद्धि परीक्षाओं का वर्गीकरण निम्नांकित कसौटियों (Criteria) पर किया गया है :—

(अ) रूप के अनुसार
(ब) मुख्य तत्व (Content) के अनुसार
(स) माध्यम के अनुसार
(द) भाषा के प्रयोग के अनुसार
(य) परीक्षा लेने की विधि के अनुसार

(अ) रूप के अनुसार वर्गीकरण—सामान्य बुद्धि परीक्षाओं का वर्गीकरण रूप के अनुसार निम्नलिखित प्रकार से किया जाता है :—

(१) शक्ति और गति परीक्षाएँ (Speed and Power Tests)
(२) बहुरूपी और उपरूपी परीक्षाएँ (Omnibus and Sub-Tests)

शक्ति और गति परीक्षा

शक्ति परीक्षाओं में परीक्षण पद कठिनाई के अनुसार सजाये जाते हैं किन्तु उत्तर देने का समय निश्चित नहीं होता। रैवन (Raven) की प्रोग्रेसिव मैट्रिसेज (Progressive Matrices) शक्ति परीक्षा का एक उदाहरण है। इस परीक्षा में ५ पुस्तक और प्रत्येक पुस्तक में १२-१२ परीक्षण पद हैं।

गति परीक्षाओं में सभी परीक्षण पद समान कठिनाई के होते हैं लेकिन उनको हल करने का समय पूर्व निर्धारित होता है, कुछ परीक्षणों में यह समय इतना कम दिया जाता है कि उनको हल करने वाला व्यक्ति उस समय में सभी पदों को हल नहीं कर सकता। ऐसी परीक्षाओं से बालक की कार्य करने की गति का पता लगाया जाता है।

गति और शक्ति परीक्षाओं में किसी व्यक्ति को पूरे पूरे अंक नहीं।
पूर्णांक (Perfect score) ... होते हैं। ...
यह है कि यह बताना कठिन है कि किसे ...
अथवा कठिनाई के और ...
कठिन गति परीक्षाओं में ...
यह ही नहीं पाता।

...
किया गया है।
दूसरी ओर ...

परीक्षाओं से सुस्त चाल से चलने वाले किन्तु ठीक ठीक काम करने वाले छात्रों की बुद्धि का मापन उचित प्रकार से नहीं हो सकता। लेकिन प्राय ऐसा देखा गया है कि जो छात्र प्रश्नों का हल तेजी से करता है उसमें बुद्धि की मात्रा भी अधिक होती है।

बहुपदीय तथा उपपदी परीक्षाएँ—बहुपदीय परीक्षाएँ वे परीक्षाएँ हैं जिनको हल करने का समय निश्चित होता है। समग्र परीक्षा एक ही साथ बैठकर हल करनी पड़ती है लेकिन उपपरीक्षा के प्रश्नों को चार-पाँच छोटे-छोटे समूहों में बाँट दिया जाता है जिनको उपपद (Sub-tests) कहते हैं। प्रत्येक उपपदीय परीक्षा के लिये तीन मिनट से ६ मिनट तक का समय दिया जाता है। पिजियन (Pedgeon) की परीक्षा ऐसी ही चार छोटी छोटी उपपरीक्षाओं का समूह मात्र है।

(ब) मुख्य तत्व के अनुसार—परीक्षाओं का वर्गीकरण मुख्य Content के अनुसार किया जाता है —

(i) शाब्दिक (Verbal)
(ii) अशाब्दिक (Nonverbal)
(iii) चित्रात्मक (Pictorial)
(v) परिमबोधक (Spatial)

शाब्दिक परीक्षाएँ (Verbal Intelligence Tests)—जिस परीक्षा के परीक्षण पदों में Content शाब्दिक होता है उसे शाब्दिक परीक्षा कहते हैं। शाब्दिक परीक्षाओं में भाषा का प्रयोग ही अधिक होता है। जो बालक प्रयुक्त भाषा का ज्ञान रखता है वही उस बुद्धि परीक्षा के प्रश्नों का उत्तर दे सकता है। इसका अर्थ यह है कि शाब्दिक परीक्षाओं में शाब्दिक तत्व की प्रधानता होती है। इन परीक्षाओं में वाचन दक्षता (Reading skill), वर्गीकरण की क्षमता (Classification), सादृश्य सम्बन्ध स्थापन की शक्ति(Analogy) आदि योग्यताओं का मापन होता है। उदाहरण के लिये नीचे दिये गये परीक्षण पदों को ध्यान से देखो—इन सभी परीक्षा पदों में Content शाब्दिक है।

अशाब्दिक बुद्धि परीक्षाएँ (Non-verbal Intelligence Tests)—अशाब्दिक बुद्धि परीक्षाओं का उपयोग निम्न परिस्थितियों में होता है—

(अ) उन व्यक्तियों की बुद्धि परीक्षा लेने के लिये, जिनको न तो किसी भाषा का ही ज्ञान है अथवा जो विदेशी भाषा का ज्ञान रखते हैं, अशाब्दिक बुद्धि परीक्षाएँ दी जाती हैं।

(आ) उन बालकों की बुद्धि का मापन करने के लिये जिनकी मानसिक योग्यता का मापन शाब्दिक बुद्धि परीक्षाओं से नहीं हो सकता।

(इ) सैनिक चयन के लिये ऐसी अशाब्दिक बुद्धि परीक्षाओं का उपयोग होता है क्योंकि सैनिक चयन भिन्न-भिन्न भाषा भाषी व्यक्तियों में किया जाता है।

(ई) जिस देश में कई भाषाएँ बोली जाती हैं उस देश के भिन्न भाषाभाषी लोगों की बुद्धि परीक्षण के लिये अशाब्दिक बुद्धि परीक्षाओं का ही उपयोग होता है।

अशाब्दिक बुद्धि परीक्षाओं के परीक्षापद प्राय आकृतियाँ और चित्र होते हैं जिनसे लगभग उन्हीं योग्यताओं का मापन होता है जिनका मापन शाब्दिक परीक्षाओं से होता है। उदाहरण के लिये वर्गीकरण करने तथा सादृश्य सम्बन्ध (Analogy) ढूँढने के लिये निम्न प्रकार के परीक्षा पद दिये जाते हैं :

(1) नीचे जो चित्र दिये गये हैं उनमें से एक चित्र ऐसा है जो अन्य चित्रों में मेल नहीं खाता उसे ढूँढो

लिखित आदेशों को समझ ही सकता है और न एक साथ समूह में बैठकर परीक्षण में भाग ले सकते हैं उनका अवधान विस्तार बहुत थोड़ा होता है। अतः सामूहिक बुद्धि परीक्षण उन आवश्यकताओं के प्रतिकूल है।

...द्यालयों में शिक्षा प... है—सैनकर्ड वें

इन परीक्षाओं में परीक्षण पद प्रायः guided response items हैं किन्तु फिर वह अपनी इच्छानुसार जैसा उत्तर चाहता है देता है।

Q 6 Discuss the relative advantages and disadvantages of In-dividual and Group tests

Ans सामूहिक तथा व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षाओं में गुण और दोष दोनों हैं। एक के दोष हैं दूसरे के गुण हैं और एक के जो गुण हैं दूसरे के वही दोष हैं। पहले व्यक्तिगत परीक्षाओं गुण और दोषों की व्याख्या की जायगी फिर सामूहिक परीक्षाओं की।

व्यक्तिगत परीक्षाओं के दोष—ये दोष निम्नलिखित हैं :

(i) परीक्षा लेने में अधिक समय का लगना,
(ii) " " धन या खर्च होना,
(iii) व्यक्तिगत परीक्षाओं को लागू करने वाले व्यक्ति के लिये प्रशिक्षण (Training) की आवश्यकता।
(iv) व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षा अव्यावहारिक होना।

व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षा के गुण हैं :—

(i) व्यक्तिगत परीक्षा सामूहिक परीक्षा की तुलना में अधिक शुद्ध है।
(ii) इसका प्रयोग उपचार के लिये भी हो सकता है क्योंकि व्यक्तिगत रूप बालक के आचरण का निकट से अध्ययन किया जा सकता है। यह अध्यापक बालक के भावात्मक अनुकूलन (emotional adjustment), उत्प्रे (motivation), कार्य पद्धति, रुचियों की प्रतिकृति (pattern of interes आदि आदि को समझने में अध्यापक की सहायता करता है।
(iii) व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षाएँ उन बातों (factors) के दूषित प्रभाव से रहती हैं जिनका प्रभाव सामूहिक बुद्धि परीक्षाओं पर पड़ता है। आदेशों गलत अर्थ निकालना, रुचि को खो देना, भावात्मक अवरोध का उत्पन्न ह सामूहिक बुद्धि परीक्षाओं में प्राय देखा जाता है किन्तु व्यक्तिगत बुद्धि प क्षाओं में इन तीनों बातों के लिये कोई स्थान ही नहीं है।
(iv) आठ वर्ष से कम आयु के बालकों, कुसमायोजित[1] अथवा मानसिक रूप हीन व्यक्तियों की बुद्धि का मापन व्यक्तिगत रूप से ही अच्छी तरह से सकता है।

(v) वैयक्तिक परीक्षा को परीक्षार्थी की व्यक्तिगत विशेषताओं के अनुसार करता है। इन व्यक्तिगत विशेषताओं में से कुछ विशेषतायें हैं :—

(क) नकारात्मकता (negativism)
(ख) ध्यान का हटाना (scattering of attention)

---

1. "Distraught persons who really require professional psychia service were less often identified as such by the counsellors w talked with them intimately about their problems than examiners who administered the individual performance tests so had a chance to observe them under exceptionally reveal circumstances."

भाषा का प्रयोग नहीं के बराबर होता है। उदाहरण के लिए बहरे व्यक्तियों की बुद्धि परीक्षा लेते समय उनको आदेश इशारा से दिये जाते हैं। चार्ट या डायग्राम ब्लैकबोर्ड या कोई संकेत (gesture) द्वारा उनको आदेश समझाये जाते हैं। परीक्षण पदों में चित्र डायग्राम और अभाषिक सहित होते हैं अभाषिक परीक्षा पेपर पेंसिल या क्रिया परीक्षा हो सकती है। पेपर पेंसिल टेस्ट में उत्तर देते समय व्यक्ति कोई निशान लगाता है क्रिया परीक्षा में वह कोई कार्य करता है।

(ब) परीक्षा लेने की विधि के अनुसार—परीक्षायें साधारणतः दो प्रकार से दी जाती है। जब हम किसी बुद्धि परीक्षा की सहायता से एक बार ही में एक से अधिक व्यक्तियों की बुद्धि का परीक्षण करते हैं तब वह बुद्धि परीक्षा सामूहिक बुद्धि परीक्षा कहलाती है। इसके विपरीत यदि कोई परीक्षा एक बार में एक ही व्यक्ति की बुद्धि का मापन कर सकती है तब वह बुद्धि परीक्षा वैयक्तिक कहलाती है। सामूहिक बुद्धि परीक्षण पूरे समूह का एक साथ होता है वैयक्तिक बुद्धि परीक्षण समूह को बनाने वाले व्यक्तियों का अलग-अलग होता है। उदाहरण के लिए बीने की बुद्धि परीक्षण एक बालक का अलग-अलग करके दी जाती है। किन्तु विनन की बुद्धि परीक्षा कितने ही विशाल समूह को एक साथ दी जा सकती है।

सामूहिक परीक्षाओं से किसी भी समूह की योग्यताओं का मूल्यांकन एक साथ किया जाता है। उस सम्पूर्ण समूह को एक साथ एक ही प्रकार का आदेश दे दिया जाता है। यह आदेश मौखिक अथवा लिखित दोनों ही प्रकार का हो सकता है। सम्पूर्ण परीक्षा अथवा उसके उपभाग को हल करने का समय बता दिया जाता है। इसी समय में सभी को वह परीक्षा अथवा उपभाग पूरा करना पड़ता है।

सामूहिक परीक्षायें शाब्दिक और अशाब्दिक दोनों प्रकार की हो सकती हैं। वे बहुपदी अथवा उपपदी भी हो सकती हैं। वे व्यक्तियों के बुद्धि के अतिरिक्त रुचि, व्यक्तित्व, आदि गुणों का भी मापन करती हैं। सामूहिक बुद्धि परीक्षाओं के परीक्षण पद (multiple choice items) होते हैं और समस्त परीक्षा ४० मिनट से लेकर २ घंटे तक में पूरी की जा सकती हैं। परीक्षण पदों में कुछ विशेष प्रकार के ही परीक्षण पद प्रयोग में आते हैं—Arithmetic reasoning, naming, synonyms, completing series, analogis, content अधिकतर Numerical या verbal होता है। उत्तर प्रदेश की मनोविज्ञान शाला ने ऐसी कई सामूहिक बुद्धि परीक्षाओं का निर्माण किया है जिनका प्रयोग जिला मनोवैज्ञानिक प्रायः किया करते हैं। व्यक्तियों की रुचि का पता लगाने के लिए कई रुचि परिसूचियों तथा व्यक्तित्व के शीलगुणों का मापन करने के लिए व्यक्तित्व परिसूचियाँ (Personality Inventories) का प्रयोग होता है।

वैयक्तिक बुद्धि परीक्षाएँ—(१) जब परीक्षक को समूह को आदेश देने में कठिनाई होती है अथवा (२) जब उसे कुछ क्रियाएँ स्वयं करके दिखानी पड़ती हैं तब वह व्यक्तियों का बुद्धि परीक्षा अलग-अलग करके करता है। (३) अथवा परीक्षक उसके कार्य करने के तरीके, उसके व्यवहार, व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताओं का निरीक्षण और अध्ययन करना चाहता है। (४) अथवा वह देखना चाहता है कि कोई व्यक्ति किसी परीक्षण को कितने समय में हल कर सकता है तथा वह उस परीक्षा को समूह में नहीं दे सकता क्योंकि प्रत्येक परीक्षण पद को हल करने की शक्ति सब व्यक्तियों की एक सी नहीं होती। कुछ व्यक्ति एक ही प्रश्न को शीघ्र हल कर लेते है, दूसरे अटके ही रह जाते हैं। जब परीक्षक सभी व्यक्तियों का समय जो वे किसी एक परीक्षण पद को हल करने में लगाते है नोट नहीं कर पाता तब वह परीक्षा को व्यक्तिगत रूप से देना ही अच्छा समझता है।

कुछ वैयक्तिक बुद्धि परीक्षाएँ मौखिक रूप में ली जाती हैं तो कुछ लिखित रूप में। कुछ में ठोस वस्तुओं का प्रयोग करना पड़ता है कुछ में एक न एक क्रिया करनी पड़ती है।

वैयक्तिक परीक्षाएँ न केवल बुद्धि का ही मापन करती हैं वरन् व्यक्तित्व के शीलगुणों का भी मूल्यांकन करती हैं। वैशलर की बुद्धि परीक्षा बुद्धि के और व्यक्तित्व के शील गुणों का मापन करती है।

वैयक्तिक बुद्धि परीक्षाओं का उपयोग कम उम्र वाले बच्चों की मानसिक क्षमताओं तथा विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करने के लिए किया जाता है क्योंकि छोटे बच्चे न तो

लिखित आदेशों को समझ ही सकता है और न एक साथ समूह में बैठकर परीक्षण में भाग ही ले सकते हैं उनका अवधान विस्तार बहुत थोड़ा होता है। अतः सामूहिक बुद्धि परीक्षण उनकी आवश्यकताओं के प्रतिकूल है।

वैयक्तिक बुद्धि परीक्षाओं की संख्या अपेक्षाकृत बहुत कम है। विद्यालयों में शिक्षा पाने वालों के लिए अमरीका में केवल वैयक्तिक बुद्धि परीक्षाओं का प्रयोग होता है—सैनफर्ड बीने, वैशलर इन्टेलीजेंस स्केल फॉर चिल्ड्रन (WISC), भारत में भाटिया बैटरी।

इन परीक्षाओं में परीक्षण पद प्राय guided response items हैं किन्तु फिर भी वह अपनी इच्छानुसार जैसा उत्तर चाहता है देता है।

Q 6 Discuss the relative advantages and disadvantages of Individual and Group tests

Ans सामूहिक तथा व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षाओं में गुण और दोष दोनों हैं। एक के जो दोष हैं दूसरे के गुण हैं और एक के जो गुण हैं दूसरे के वही दोष हैं। पहले व्यक्तिगत परीक्षाओं के गुण और दोषों की व्याख्या की जायगी फिर सामूहिक परीक्षाओं की।

व्यक्तिगत परीक्षाओं के दोष—ये दोष निम्नलिखित हैं

(i) परीक्षा लेने में अधिक समय का लगना,
(ii) " " धन का खर्च होना,
(iii) व्यक्तिगत परीक्षाओं को लागू करने वाले व्यक्ति के लिये प्रशिक्षण (Training) की आवश्यकता।
(iv) व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षा अव्यावहारिक होना।

व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षा के गुण हैं :—

(i) व्यक्तिगत परीक्षा सामूहिक परीक्षा की तुलना में अधिक शुद्ध है।
(ii) इसका प्रयोग उपचार के लिये भी हो सकता है क्योंकि व्यक्तिगत रूप से बालक के आचरण का निकट से अध्ययन किया जा सकता है। यह अध्ययन बालक के भावात्मक अनुकूलन (emotional adjustment), उत्प्रेरण (motivation), कार्य पद्धति, रुचियों की प्रतिकृति (pattern of interests) आदि आदि को समझने में अध्यापक की सहायता करता है।
(iii) व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षाएं उन बातों (factors) के दूषित प्रभाव से मुक्त रहती हैं जिनका प्रभाव सामूहिक बुद्धि परीक्षाओं पर पड़ता है। आदेशों का गलत अर्थ निकालना, रुचि का खो देना, भावात्मक अवरोध का उत्पन्न होना सामूहिक बुद्धि परीक्षाओं में प्राय देखा जाता है किन्तु व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षाओं में इन तीनों बातों के लिये कोई स्थान ही नहीं है।
(iv) आठ वर्ष से कम आयु के बालकों, कुसमायोजित[1] अथवा मानसिक रूप से हीन व्यक्तियों की बुद्धि का मापन व्यक्तिगत रूप से ही अच्छी तरह से हो सकता है।
(v) वैयक्तिक परीक्षा को परीक्षार्थी की व्यक्तिगत विशेषताओं के अनुसार लागू करता है। इन व्यक्तिगत विशेषताओं में से कुछ विशेषतायें हैं :—

(क) नकारात्मकता (negativism)
(ख) अवधान का हटना (scattering of attention)

---

1. "Distraught persons who really require professional psychiatric service were less often identified as such by the counsellors who talked with them intimately about their problems than by examiners who administered the individual performance tests and so had a chance to observe them under exceptionally revealing circumstances."

(ग) आत्म विश्वास की कमी (lack of self confidence)

यदि बालक [illegible] (negativism) से पीड़ित है अर्थात् वह बात का उत्तर देता ही नहीं है तो चतुर परीक्षक किसी [illegible] प्रश्न का उत्तर पूछने की अपेक्षा [illegible] का उत्तर मांग लेता है जो कार्य प्रधान होते हैं। यदि बालक का ध्यान अन्यत्र हट जाता है तो वह उसे ध्यान को आकृष्ट करने का प्रयत्न करता है। यदि बालक में आत्म विश्वास की कमी होती है तो बालक से [illegible] पूछ कर उसको उत्साहित करते रहता है। यदि बालक को भाषा का समझने में कठिनाई होती है तो वह उसको बार बार समझाता भी जाता है। यदि परीक्षण इस [illegible] बालक में [illegible] की कमी हो जाती है तो वह [illegible] से उत्तेजित करता रहता है। यदि बालक में भावात्मक [illegible] के कारण उत्तर [illegible] हो जाते हैं तो वह तुरन्त परीक्षण [illegible] बन्द कर देता है और परीक्षा का कार्य स्थगित कर दिया जाता है। इस प्रकार वैयक्तिक परीक्षाओं में बालक की बुद्धि का परिणाम अपेक्षाकृत वैधानिक (valid) और विश्वस्त (reliable) होता है।

सामूहिक बुद्धि परीक्षाओं के गुण और दोष—ऊपर के विवेचन से स्पष्ट हो गया होगा कि व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षाओं की तुलना में सामूहिक बुद्धि परीक्षायें उतनी सही नहीं यदि परीक्षा की शुद्धता और विश्वसनीयता ही हमारा मुख्य उद्देश्य है। फिर भी आदेशों को स्पष्ट करने के लिये प्रत्येक सामूहिक परीक्षा में समझाने का उल्लेख कर दिया जाता है और उनका उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है। छात्रों का उचित मात्रा में पूर्व अभ्यास (pre-exercises) दिया जाता है। चतुर परीक्षक यहाँ भी सावधानी से देखता रहता है कि कहीं किसी बालक का ध्यान परीक्षा से उचाट तो नहीं रहा है। यदि उसे पता चल जाता है कि किसी बालक का ध्यान परीक्षा से हट गया है तो वह तुरन्त उसके पास जाकर उससे पूछ के उत्तेजित करता है। आवश्यकता पड़ने पर चेतावनी भी देता है कि समय कम रह गया है जल्दी करो।

सामूहिक बुद्धि परीक्षाओं में प्रखर आत्म चेतना वाले बालकों की बुद्धि का मापन भी ठीक प्रकार से हो ही नहीं पाता। वे अपनी बुद्धि का यथार्थ परिचय देते ही नहीं। सामूहिक परीक्षाओं में बालक परीक्षक को पूरा पूरा सहयोग भी नहीं दे पाते इसलिये उनकी बुद्धि परीक्षा विश्वस्त नहीं हो पाती।

समूह में बैठकर परीक्षा देते समय बालकों में धोखा (cheating) देने की प्रवृत्ति जाग्रत हो जाती है। चतुर परीक्षक परीक्षा के प्रश्नों को इस प्रकार बाँटते हैं कि पास-पास बैठने वाले कोई भी दो छात्र एक से ही प्रश्नों का उत्तर नहीं दे पावें। एक बालक को परीक्षा का A रूप तथा दूसरे बालक को परीक्षा का B रूप दिया जाता है। इस प्रकार से धोखा देने की प्रवृत्ति रोकी जा सकती है।

यद्यपि वैयक्तिक बुद्धि परीक्षायें सामूहिक बुद्धि परीक्षाओं से अधिक विश्वस्त और शुद्ध होती हैं फिर भी सामूहिक बुद्धि परीक्षायें अधिक प्रयोज्य (usable) होती हैं क्योंकि उन्हें लागू करने के लिये न तो प्रशिक्षित अध्यापक की आवश्यकता होती है और न अधिक समय और धन की जरूरत होती है।

सामूहिक बुद्धि परीक्षाओं में व्यक्ति या निष्पादन (achievement) पाठन योग्यता (reading ability) पर अधिक निर्भर रहता है। जो बालक पढ़ने में तेज (accelerated readers) होते हैं। उनके सामूहिक बुद्धि परीक्षाओं में व्यक्तिगत परीक्षाओं की अपेक्षा १२ प्रज्ञांक (I. Q.) अधिक मिलते हैं और जो बालक पढ़ने में पिछड़ जाते हैं उनके इन परीक्षाओं में व्यक्तिगत परीक्षाओं की तुलना में I. Q. कम मिलते हैं। यद्यपि इस कथन में कुछ दोष हैं फिर भी पाठन योग्यता का प्रभाव सामूहिक परीक्षाओं द्वारा प्राप्त प्रज्ञांक पर अवश्य पड़ता है।

चूँकि व्यक्तिगत परीक्षा में एक-एक प्रश्न अलग-अलग करके पूछा जाता है इसलिए बालक का ध्यान परीक्षक की ओर निरन्तर लगा रहता है और बालक सदैव इस बात की चेष्टा करता रहता है कि जैसे ही प्रश्न पूछा जाय वह उसका उत्तर दे लेकिन सामूहिक परीक्षा में ऐसी दशा का अभाव होने के कारण अवधान प्रायः विचलित हो ही जाता है।

व्यक्तिगत परीक्षाओं में परीक्षा पद प्रायः स्वतन्त्र उत्तर (free response) चाहते हैं और सामूहिक परीक्षाओं के प्रश्न निर्दिष्ट उत्तर माँगते हैं। स्वतन्त्र उत्तर बालक के विषय में जो जानकारियाँ दे सकते हैं निर्दिष्ट उत्तर उतनी जानकारियाँ दे ही नहीं सकते।

सामूहिक तथा व्यक्तिगत परीक्षाओं में अन्तर के कारण सामूहिक तथा व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षाओं के बीच यह अन्तर कुछ और कारणों से भी पैदा हो गया है

(i) व्यक्तिगत परीक्षाएँ भौतिक रूप से दी जाने के कारण बालक का अधिकतम सहयोग माँग लेती हैं लेकिन सामूहिक बुद्धि परीक्षाएँ छोटी छोटी पुस्तिकाओं में छपी होने के कारण जब बालकों को समूह में दी जाती हैं तब परीक्षक के साथ न्यूनतम सम्पर्क माँगती हैं।

(ii) व्यक्तिगत परीक्षा का प्रश्न अलग-अलग प्रस्तुत किया जाता है और छात्र को पता नहीं होता कि उसका उत्तर उसे कितने समय में देना है लेकिन सामूहिक परीक्षा का समय सीमित होता है और बालक यह जानता है कि उसे किस परीक्षा अथवा उप परीक्षा को कितने समय में देना है।

(iii) व्यक्तिगत परीक्षा में बालक को पूर्ण स्वतन्त्रता होती है कि कैसा उत्तर दे। वह स्वतन्त्र रूप से प्रश्न का उत्तर चुनता है लेकिन सामूहिक बुद्धि परीक्षा में वह अभिज्ञान के आधार पर दिये हुये उत्तरों में से सही उत्तर का चुनाव करता है।

Q 7. Discuss the basic principles of selection of items for an intelligence test

Ans. बुद्धि परीक्षा के परीक्षण पदों का चुनाव

प्रत्येक परीक्षक बुद्धि परीक्षा बनाते समय विषय वस्तु का चयन बुद्धि के लक्षणों को ध्यान में रखकर करता है। उदाहरण के लिए बीने ने बुद्धि का जैसा स्वरूप समझा था वैसे ही उसने बुद्धि परीक्षा तैयार की। उसने बुद्धि परीक्षा में निम्नांकित बातों को नापने का प्रयास किया—

(अ) स्मृति (memory)
(ब) भाषाबोध (language comprehension)
(स) सूचनाएँ (Information)
(द) स्वतन्त्र साहचर्य (free association)
(य) संख्यात्मक ज्ञान (number mastery)
(फ) रचनात्मक कल्पना (constructive imagination)
(ह) प्रत्ययों की तुलना करने की शक्ति (ability to compare concept)
(ज) अंशों को पूर्णता में बाँधने की शक्ति (ability to bind fragments into whole)
(भ) सूक्ष्म बातों को समझने की शक्ति (ability to understand abstract terms)

इसी प्रकार अन्य विद्वानों ने बुद्धि का जैसा स्वरूप समझा वैसा ही बुद्धि परीक्षाओं का निर्माण किया।

दूसरे परीक्षण पद चुनते समय यह ध्यान रखा जाय कि उनकी वस्तु विषय (content) ऐसी हों जिनके साथ परिचय की मात्रा निश्चित संस्कृति (culture) के लोगों के साथ समान हो। बुद्धि परीक्षाओं से वातावरण (environment) तथा अधिगम (learning) के प्रभाव को न्यूनतम करने के लिये प्रत्येक परीक्षा पद की विषय वस्तु इस प्रकार की रखी जाती है कि एक से पले-पोसे साथी व्यक्तियों के लिए वह समान कठिनाई, अथवा परिचय की हो। वह वस्तु सभी के लिये समान रूप से परिचित अथवा अपरिचित होती है। समान रूप से परिचित विषय वस्तु के उदाहरण हैं—अपने शरीर के अंगों को बताना, मनुष्य की आकृति खींचना, चित्र में खोये हुए भागों को ढूँढना, समान रूप से अपरिचित वस्तु के उदाहरण हैं—निरर्थक शब्दों (nonsense syllable) से बनी अप्राकृतिक भाषा का सीखना, भूल भुलैया बनाना। इस सिद्धान्त के अनुसार बालक के शब्द भण्डार (vocabulary) अथवा अंकगणित के प्रश्नों को हल करने की शक्ति का परीक्षण बुद्धि परीक्षाओं से नहीं करते और न बुद्धि परीक्षा में ऐसे प्रश्न रखते हैं जिनका सम्बन्ध शब्द भण्डार (vocabulary) अथवा गणितिक दक्षता (mathematical ability) से हो।

आर्थिक, शैक्षणिक स्थिति वाले विद्यालयों से चुनना होगा। यही नहीं इन बालकों में लड़के और लड़कियों का अनुपात देश की स्कूल जाने वाली जनसंख्या के पाये जाने वाले लड़कों और लड़कियों के अनुपात में होना चाहिए। उनका चुनाव देश की विभिन्न भौगोलिक परिस्थितियों के अनुसार होना चाहिए। देश में पाये जाने वाले विभिन्न सामाजिक और आर्थिक स्थिति वाले लोगों के अनुपात के अनुसार इस पोपूलेशन में बालकों को लेना होगा। उदाहरण के लिए किसी देश की जनसंख्या को आर्थिक स्थिति के अनुसार निम्न वर्गों में बाँटा जाय और उनका प्रतिशत दूसरे स्तम्भ के अनुसार हो तो प्रतिनिध्यात्मक सैम्पिल में भी बालकों का वही अनुपात होना चाहिए।

सामाजिक आर्थिक वर्ग	प्रतिशत पूर्ण जनसंख्या में	सैम्पिल में प्रतिशत (लगभग)
१. Professional	३	३
२ Semi professional	५	५
३ Clerical	१५	१५
४ Farmers	१५	१५
५ Semi skilled trades	३०	३०
६. Slightly skilled trades	१८	१८
७ Urban day labourers	१०	१०
८ Rural day laboures	४	४

प्रतिनिध्यात्मक सैम्पिल (representative sample) में विभिन्न कक्षाओं में पढ़ने वाले बालकों में से जिस आयु के लिए परीक्षा तैयार की जा रही है उस आयु वाले बालकों की प्रतिशत का भी ध्यान रखा जा सकता है। उदाहरण के लिए यदि १२-१६ वर्ष की आयु के बालकों के लिए कोई बुद्धि परीक्षा बनानी है और किसी देश के विद्यालयों में १२-१६ वर्ष के बालक विभिन्न कक्षाओं में निम्न अनुपात से पढ़ रहे हैं तो प्रतिनिध्यात्मक सैम्पिल में भी यही अनुपात रखना होगा।

कक्षा	प्रतिशत	सैम्पिल में प्रतिशत (लगभग)
८	३	३
९	३२	३२
७	४४	४४
५	१५	१५
४	५	५
३	१	१

प्रमापों का निर्धारण (Determination of Norms)—प्रमापीकृत बुद्धि परीक्षाओं में निम्नलिखित प्रमापों की गणना की जाती है :—

(अ) मानसिक आयु (mental age)
(ब) असमान इकाइयों का कच्चा प्राप्तांक (point score)
(स) समायोजित समान इकाई वाला प्रामाणिक प्रमाप (standard score)

पहले दो प्रमाप लगभग एक से हैं क्योंकि कच्चे प्राप्तांक को मानसिक आयु में बदल कर मानसिक आयु की गणना की जा सकती है, वास्तव में केवल दो ही प्रमाप अधिक प्रचलित हैं—असमान इकाइयों की मानसिक आयु और समान इकाइयों की प्रामाणिक प्रमाप। यदि किसी बुद्धि परीक्षा के परिणामों की व्याख्या करनी है तो यह व्याख्या सुविधा के विचार से मानसिक आयु के पदों में की जा सकती है। दूसरे इस व्यवस्था में किसी भी सांख्यिकीय परिकल्पना का प्रयोग नहीं करना पड़ता। प्रामाणिक प्रमापों में सिग्मा स्कोर और T स्कोर का प्रयोग होता है।

इसका उपयोग इस परिकल्पना को आधार मानकर करते हैं कि सम्बन्धित जनसमुदाय में बुद्धि अंक का वितरण सामान्य (normal) है। यह कोई नहीं कह सकता कि यह परिकल्पना

बुद्धि परीक्षाओं के अस्तित्व का एक और कारण यह हो सकता है कि वे निष्पन्न परीक्षाओं की तुलना में अधिक रोचक होती हैं। यदि कोई बालक neuroticism अथवा boredom अथवा low teaching के कारण किसी विषय में रुचि नहीं लेता तो उसके मानसिक विकास का पता लगाने के लिये निष्पन्न परीक्षा के स्थान पर बुद्धि परीक्षा ही उपयुक्त होगी। प्रत्येक बुद्धि परीक्षा इस बात का परिचय देती है कि बालक में शैक्षणिक अभियोग्यता (Scholastic aptitude) कितना है और कैली के विचार से शैक्षणिक अभियोग्यता का प्रदर्शन निष्पादन (achievement) में होता है।

कैली का तो यह दावा है कि एक ही व्यक्ति की बुद्धि तथा निष्पन्न में कोई अन्तर होता ही नहीं। वे इस बात को मानने के लिये तैयार भी नहीं हैं कि बुद्धि परीक्षाएँ इस अन्तर को स्पष्ट रूप से बता भी सकती हैं या नहीं। वे इतना अवश्य स्वीकार करते हैं कि संगीत, स्पैलिंग, हैण्डराईटिंग (hand writing) आदि विशिष्ट प्रकार के क्षेत्रों में निष्पादन (achievement) बुद्धि से अलग है। संगीत विषयक योग्यता तथा बुद्धि में अलग अलग तत्वों का समावेश आवश्यक है किन्तु सामान्य बुद्धि तथा सामान्य निष्पन्य दोनों में कोई अन्तर नहीं है।

Q. 10. How will you test the intelligence of children in a group? Give examples of items used in these tests.

Ans शिक्षण संस्थाओं में छात्रों के चुनाव के लिये अथवा सेना में उपयुक्त कर्मचारियों के

. . .

इन सामूहिक परीक्षाओं के प्रकाशन के बाद सभी देशों में सामूहिक बुद्धि परीक्षण की उपयोगिताओं को ध्यान में रखकर बुद्धि परीक्षाएँ तैयार की गई।

माध्यम के अनुसार ये सामूहिक बुद्धि परीक्षाएँ दो वर्गों में बाँटी जा सकती हैं —

(i) शाब्दिक
(ii) अशाब्दिक

भारत में कई शाब्दिक सामूहिक बुद्धि परीक्षाओं का निर्माण हुआ है। मनोविज्ञानशाला इलाहाबाद ने १२, १३, १४ वर्ष की अवस्था के बालकों तथा प्रौढ़ व्यक्तियों की बुद्धि की परीक्षा लेने के लिये कई सामूहिक बुद्धि परीक्षाएँ तैयार की हैं। इनका प्रयोग उत्तरप्रदेश में डिस्ट्रिक्ट साइकालजिस्ट करते रहते हैं जिनका कार्य अपने जिलों के विद्यालयों के छात्रों का मार्ग निर्देशन होता है।

अन्य शाब्दिक सामूहिक बुद्धि परीक्षाएँ डा० जलोटा, डा० सोहनलाल और डा० मेनरी की हैं। डा० मेनरी ने सबसे पहले सन् १९२७ में भारतीय परिस्थितियों के अनुसार एक सामूहिक बुद्धि परीक्षा तैयार की थी किन्तु उसमें कुछ विषयों की योग्यता का मापन करने वाले प्रश्नों को भी सम्मिलित कर दिया गया। डा० सोहनलाल और डा० जलोटा के कार्य अत्यन्त प्रशंसनीय हैं।

सामूहिक बुद्धि परीक्षाओं के परीक्षण पद भाषा और अंकगणित सम्बन्धी ज्ञान की जाँच करते हैं। इन परीक्षण पदों के रूप और उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

सादृश्य—सफेद का काले से वही सम्बन्ध है जो अच्छे का—से है।

समानता—नीचे शब्द समूह से भिन्न वर्ग में पड़ने वाले शब्द को रेखांकित करो—

कुत्ता, गाय, भैंस, मुर्गी, घोड़ा

पर्याय—कोष्टक के बाहर जो शब्द दिया है उसका पर्यायवाची कोष्ठक के भीतर जो कई शब्द दिये हैं उनमें ढूँढो और रेखांकित करो

वार्धक्य—शैशव, किशोरावस्था, प्रौढ़ावस्था, बुढ़ापा

तुलना—आयु में सबसे छोटा कौन है?
यदि अ ब से बड़ा है, स ब से छोटा है

क्रम (Series)—नीचे लिखी संख्याओं की श्रेणी में अगली संख्या बताओ
१ ८ २७ ६४

अशाब्दिक बुद्धि परीक्षाओं में जिनका प्रयोग हमारे देश में अधिक होता है तीन परीक्षाएं मुख्य हैं —

(अ) भिजन की अशाब्दिक बुद्धि परीक्षा
(आ) रैवन का प्रोग्रेसिव मेट्रिसज
(इ) लन्दन की औद्योगिक मनोविज्ञान की राष्ट्रीय संस्था की अशाब्दिक परीक्षा

भिजन की अशाब्दिक बुद्धि परीक्षा में चार प्रकार के परीक्षण पद हैं—

(१) प्रत्यक्ष ज्ञान सम्बन्धी
(२) समानता
(३) सादृश्य
(४) आकृतिक्रम

इन सभी परीक्षण पदों में आकृतियों अथवा चित्रों का प्रयोग किया गया है। प्रत्यक्ष ज्ञान सम्बन्धी परीक्षण पद का रूप निम्नांकित है—

नीचे आकृति को देखो

१	२	३
८	६	४
७	६	५

और बताओ कि निम्न आकृतियों में कौन-कौन से अंक लिखे जा सकते हैं—

समानता सादृश्य और आकृतिक्रम के परीक्षण पद लगभग वैसे ही होते हैं जैसे कि शाब्दिक सामूहिक परीक्षा में प्रयोग में आते हैं।

Q 11. Explain the concepts of mental age (M A) and Intelligence quotient (I Q) Which is more important to a teacher ? What precautions should be kept in mind when using I Q ?

Ans मानसिक आयु (Mental age)—बुद्धि परीक्षाओं के फलांकों की व्याख्या करने के लिये मानसिक आयु का प्रयोग होता है। यह एक आयु प्रमाप है जिसकी सहायता से छात्रों की मानसिक परिपक्वता के स्तर का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। सामूहिक शाब्दिक और अशाब्दिक अथवा वैयक्तिक बुद्धि परीक्षाओं में प्राप्त अंकों को आयु के अनुसार वर्ग बद्ध कर लिया जाता है। मान लीजिये परीक्षा 'अ' ७ से लेकर १३ वर्ष के १००० छात्रों को दी गई है। इस परीक्षा में आयु ७, ८, ९, १०, ११, १२ और १३ के छात्रों के अंकों को अलग अलग छाँट लिया जाता है। उनका औसत अंक उस आयु का आयु प्रमाप होता है, उदाहरणार्थ यदि ८ साल के सभी बच्चों के अंकों का औसत अंक २७ है तो २७ आयु प्रमाप कहा जायगा। इस प्रकार अन्य आयुओं के लिये मान लीजिये निम्न औसत अंक मिले हैं।

आयु	आयु प्रमाप
७	२६
८	२७
९	२९
१०	३०
११	३२
१२	३३
१३	३५

यदि १२ वर्षीय बालक चन्द्रप्रकाश को इस परीक्षा में ३० अंक मिलते हैं तो उसकी मानसिक आयु १० वर्ष मानी जायगी क्योंकि यह ३० अंक उन बालकों के अंकों का औसत है जिनकी आयु १० वर्ष है।

प्रज्ञांक (I. Q.)—मानसिक आयु (Mental Age) और वास्तविक आयु (Chronological Age) का अनुपात ही प्रज्ञांक है अतः

$$\text{प्रज्ञांक} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{वास्तविक आयु}}$$

$$\text{I. Q.} = \frac{\text{M.A}}{\text{C.A.}}$$

सुविधा के लिये इस अनुपात को १०० से गुणा करके दशमलव चिन्ह को हटा दिया जाता है। यदि किसी बालक की मानसिक आयु १३ वर्ष तथा वास्तविक आयु १४ वर्ष हो तो

$$\text{I. Q.} = \frac{१३}{१४} \times १०० = ९३$$

मानसिक आयु (M.A.) का प्रज्ञांक (I. Q.) से अधिक महत्वपूर्ण होना—प्रज्ञांक की तुलना में मानसिक आयु की उपयोगिता अध्यापक के लिये अधिक होती है यद्यपि प्रज्ञांक का प्रयोग मानसिक आयु की अपेक्षा अधिक हुआ करता है। मानसिक आयु का बौद्धिक विकास से वही सम्बन्ध होता है जो कक्षाप्रमाप का निष्पादन (achievement) से होता है। किसी बालक की मानसिक आयु के ज्ञात होने पर अध्यापक उसके निष्पन्न की आशा कर सकता है। उनके लिये अपेक्षित पाठ्यक्रम की व्यवस्था कर सकता है, उसके सीखने में उत्पन्न कई समस्याओं का हल कर सकता है। यद्यपि वह बालक जिसकी मानसिक आयु १० वर्ष तथा वास्तविक आयु १२ वर्ष है मानसिक विकास के अनुसार १० वर्षीय बालकों के समान बुद्धि रखता है फिर भी वह उनसे अन्य बातों में भिन्न हो सकता है। उसकी रुचियाँ, अनुभव, सामाजिक और शारीरिक विकास उनसे भिन्न हो सकती हैं अतः उस बालक के लिये शैक्षणिक प्रोग्राम किस प्रकार का हो यह सोचते समय उसे मानसिक आयु के साथ-साथ इन बातों को भी सोचना होगा।

प्रज्ञांक की अपेक्षा मानसिक आयु अध्यापक के लिये अधिक महत्वपूर्ण है, नीचे लिखे कुछ उदाहरणों से स्पष्ट हो सकता है।

(i) किसी छात्र का प्रज्ञांक १०० है उसकी वास्तविक आयु ५½ वर्ष है और इसलिये [illegible]

तैयार है या नहीं। प्रज्ञांक का ज्ञान हमें इस कार्य में कोई सहायता नहीं करता।

(ii) किसी छात्र 'ब' का प्रज्ञांक ९० है। बीमारी के कारण वह एक वर्ष बाद विद्यालय में प्रवेश लेता है उसकी वास्तविक आयु ७½ वर्ष है, इसलिये उसकी मानसिक आयु ६ वर्ष ९ महीने होंगे। यदि आप को अ और ब के प्रज्ञांक ही मालूम हो तो उनकी वाचन उद्यतता के विषय में आप क्या कहेंगे? आप कह सकते हैं कि 'अ' 'ब' से अधिक सफल होगा। लेकिन यह बात गलत है क्योंकि 'ब' की मानसिक आयु अ से अधिक है इसलिये 'ब' पढ़ना सीखने के लिये अधिक तैयार है।

(iii) किसी छात्र स का प्रज्ञांक १२६ है उसकी वास्तविक आयु ६⅓ वर्ष है इसलिये उसकी मानसिक आयु ८ साल होगी। इसका मतलब यह है कि इस बालक को सामान्य बालकों की अपेक्षा अच्छा पाठ्यक्रम देना होगा।

बालक के प्रज्ञांक का ज्ञान ही उतना आवश्यक नहीं है जितना कि मानसिक आयु का ज्ञान। मानसिक आयु की जानकारी के साथ-साथ अध्यापक को उस मानसिक परीक्षा में पूछे

[illegible] बुद्धि परीक्षा [illegible] ... मानसिक आयु [illegible] ... प्रज्ञांक [illegible] ... [illegible]

[illegible] किसी बालक का [illegible] १०० है १०० बार [illegible] बुद्धि परीक्षा [illegible] उसका प्रज्ञांक ९८ [illegible] बार १०० और १०८ के बीच में [illegible] और ११० [illegible] ९६ से लेकर ११२ तक कुछ भी हो सकता है। अब बुद्धि परीक्षाओं की [illegible] परिवर्तनशील हो तो फिर बुद्धि परीक्षाओं का करना ही क्या ?

प्रज्ञांक का प्रयोग करते समय अध्यापक को यह ध्यान रखना चाहिये कि यह केवल वर्तमान योग्यता को ही सूचित करता है। उसको किसी बुद्धि परीक्षा से फिर बच्चे [illegible] से निकाला जाता है पर यदि इस बुद्धि परीक्षा में [illegible] परिवर्तन है तो प्रज्ञांक भी परिवर्तित ही होगा। वैसे ही समानान्तर बुद्धि परीक्षा में [illegible] अधिक ऊँचे [illegible] सकता है और प्रज्ञांक ऊँचा हो सकता है। इस परीक्षा के [illegible] को [illegible] तरह [illegible] सकता है और कुछ का बहुत बुरी तरह [illegible] इस बुद्धि परीक्षा के वे प्रश्न जिनसे उसने अति- [illegible] किया है उसकी कुछ योग्यताओं के विषय में ज्ञान आवश्यक दे सकती है। प्रज्ञांक तो एक [illegible] प्रकट करता है बालक की योग्यताओं के विषय में कोई लाभदायक जानकारी हमें नहीं दे सकता।

कुछ लोगों का विचार है कि चूँकि प्रज्ञांक स्थिर रहता है इसलिये जो बुद्धि परीक्षा आज से दस वर्ष पूर्व ली गई थी वह भी आज काम में आ सकती है। यदि दस वर्ष पूर्व किसी बालक का प्रज्ञांक ११२ था तो आज भी उसका प्रज्ञांक ११२ ही होगा। यह बात भी ठीक नहीं मालूम पड़ती। प्रज्ञांक पूर्ण तरह स्थिर नहीं रहती। समानान्तर बुद्धि परीक्षाओं के आधारों से निकाले गये प्रज्ञांक भी भिन्न पाये गये हैं। कभी-कभी तो १० अंकों का अन्तर देखा गया है। एक ही परीक्षा जब कई वर्षों के बाद ली जाती है तब प्रज्ञांकों में अन्तर आ जाता है। इसलिये प्रज्ञांकों की स्थिरता में आवश्यकता से अधिक कभी विश्वास न किया जाय।

किसी प्रज्ञांक की बात करते समय उस बुद्धि परीक्षा का उल्लेख अवश्य किया जाय जिससे वह प्रज्ञांक ज्ञात किया गया है। दो परीक्षाएँ भले ही बुद्धि का मापन करती हों किन्तु एक से निकाला गया प्रज्ञांक दूसरी परीक्षा से निकाले गये प्रज्ञांक से सर्वथा भिन्न होता है क्योंकि दोनों परीक्षाएँ सभी एकसी मानसिक योग्यताओं का मापन नहीं करतीं। 'अ' का प्रज्ञांक एक बुद्धि परीक्षा से ११५, दूसरी में ९५ और तीसरी में १०२ हो सकता है; यदि किसी एक बालक के मानसिक विकास की दर देखनी ही है तो उसे एक ही बुद्धि परीक्षा के समतुल्य रूपों का प्रयोग जैसे-जैसे वह बालक आयु में बढ़ता जाय, किया जाय।

अपने बालकों द्वारा बुद्धि परीक्षाओं में प्राप्त अंकों का निरीक्षण करने के बाद अध्यापक को उनके भौतिक, सामाजिक और आर्थिक वातावरण का भी अध्ययन करना चाहिये क्योंकि ये वातावरणीय परिस्थितियाँ भी सीखने की योग्यता को प्रभावित करती हैं। जैसे-जैसे वातावरण में परिवर्तन उपस्थित होते जाते हैं सीखने की क्षमता बढ़ती जाती है। बहुतसी बुद्धि परीक्षाएँ मध्यम और उच्च वर्ग के बच्चों के लिये अधिक उपयुक्त होती हैं क्योंकि उनमें पूछे गये प्रश्न इन वर्गों के वातावरण और संस्कृति से अधिक सम्बन्धित होते हैं। इसलिये बुद्धि परीक्षाओं को देते समय और उनसे प्राप्त अंकों की व्याख्या करते समय इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि कहीं बुद्धि परीक्षा किसी वर्ग के छात्रों के लिये ऐसी तो नहीं है कि उनके परीक्षण न्याय्य ही न हों।

Q. 12 Discuss the points of difference and similarities between the concepts of M. A. and I Q. Can pupils be classified on the basis of I. Q s ?

Ans. यद्यपि सभी पहलुओं से मानसिक आयु बुद्धि लब्धि से अधिक उत्तम प्रमाण है।

बुद्धि लब्धि अथवा प्रज्ञांक को ज्ञात करना—बुद्धि परीक्षा के फलांकों की व्याख्या

$$\text{बुद्धि लब्धि} = \frac{\text{मानसिक आयु}}{\text{वास्तविक आयु}} \times १००$$

किन्तु प्रत्येक बुद्धि परीक्षा की हस्त पुस्तिका में एक ऐसी प्रदश्य दी जाती है जिसमें कच्चे फलांकों और बुद्धि अंकों का सम्बन्ध प्रदर्शित किया गया हो। किसी छात्र के कच्चे फलांकों के ज्ञात होने पर आप उसके बुद्धि अंकों को इस तालिका की सहायता से तुरन्त बता सकते हैं, उसकी मानसिक आयु की गणना की आवश्यकता नही पड़ती।

मानसिक आयु और बुद्धि अंक मे अन्तर—(१) मानसिक आयु मानसिक विकास का स्तर बताती है, बुद्धि अंक मानसिक विकास अथवा परिपक्वता का वेग बताती है। जिस प्रकार किसी गाडी की चाल निकालने के लिए चली हुई दूरी मे समय का भाग देते है उसी प्रकार बुद्धि लब्धि निकालने के लिए मानसिक आयु मे वास्तविक आयु (समय) का भाग देते है।

(२) मानसिक आयु अनुस्थिति को सूचित करती है। मानसिक आयु केवल यह बता सकती है कि जिस छात्र की बुद्धि परीक्षा ली जा चुकी है उस छात्र को मानसिक विकास के स्तर के अनुसार कहाँ अनुस्थिति दी जा सकती है। इसके विपरीत बुद्धि लब्धि बुद्धि के पैमाने पर लगा हुआ एक निशान है। साधारण पैमाना शून्य से अधिक होता है चाहे वह समय का पैमाना हो जैसे घडी, चाहे वह लम्बाई नापने का पैमाना हो जैसे इन्ची टेप। इनका निर्देशन बिन्दु शून्य होता है ठीक उसी प्रकार बुद्धि लब्धि का निर्देश बिन्दु १०० होता है। १०० प्रज्ञांक उस व्यक्ति का माना जाता है जिसकी मानसिक आयु और वास्तविक आयु समान होती है। ऐसे व्यक्ति को सामान्य बुद्धि का व्यक्ति मानते हैं। दूसरे शब्दो मे उसके मानसिक विकास की दर अथवा वेग सामान्य है। इसके विपरीत यदि किसी व्यक्ति की मानसिक आयु उसकी वास्तविक आयु से अधिक है तो इसका यह आशय निकाला जा सकता है कि वह व्यक्ति सामान्य से अधिक वेग से परिपक्व होता जा रहा है और फलस्वरूप उसकी बुद्धि लब्धि १०० से अधिक होगी। इसी प्रकार सामान्य से कम बुद्धि वाले बालकों की बुद्धि लब्धि १०० से कम होगी अत मानसिक विकास के अनुसार व्यक्तियों को निम्न पैमाने पर कहीं स्थान मिल सकता है।

···५० ६० ७० ८० ९० १०० ११० १२० १३० १४० १५०

यह पैमाना अजीब ढंग का बना है। इसके दोनो छोरो पर डैश डैश डैश लगा दिये गये हैं। इसका तात्पर्य है कि ऐसा भी व्यक्ति हो सकता है जिसकी बुद्धि लब्धि १० के लगभग हो या १६० के लगभग कुछ हो। इतना निश्चय है कि कोई व्यक्ति ऐसा नही होता जिसका प्रज्ञांक शून्य हो अथवा २०० हो। बीने की बुद्धि परीक्षा जब हजारों ऐसे बालकों को दी गई जिनका वर्गण सामसम्भाविक रूप में किया गया था तब उनके प्रज्ञांक कम से कम ५२ और अधिक से अधिक १४८ मिले। और जितनी भी बुद्धि परीक्षाएँ अब तक बनाई गई हैं वे इस प्रकार तैयार की गई हैं कि उन सब के प्रज्ञांक लगभग इसी प्रसार क्षेत्र मे वितरित बने रहे।

बुद्धि अंक के आधार पर व्यक्तियों का वर्गीकरण—जिस बालक की मानसिक परिपक्वता की दर सामान्य से कम है उसका आचरण सामान्य बालक से भिन्न होगा। वह बहुत सी बातों को सिखाये जाने पर न सीख सकेगा इसलिए ऐसे बालकों की जितनी मानसिक आयु वास्तविक

माना जा सकता। ६-७ वर्ष की अवस्था मे निकाले गये प्रज्ञांक से स्थिरता अधिक होती है। अत यद्यपि प्रज्ञांक मे स्थिरता होती है फिर भी यह कभी न सोच लेना चाहिए कि ३ वर्ष की अवस्था पर जो I. Q. होगा वही ६ वर्ष की अवस्था पर भी होगा।

(४) यदि प्रज्ञांक सामूहिक बुद्धि परीक्षा मे निकाला गया है तो उस प्रज्ञांक को किसी बालक के बौद्धिक विकास के विषय मे कुछ धारणा बनाने से पूर्व वह देख लेना चाहिए कि कही यह प्रज्ञांक छोटी आयु मे दिये गये सामूहिक परीक्षण पर तो आधारित नही है। सामूहिक बुद्धि परीक्षाएं जो छोटी कक्षाओं मे दी जाती हैं प्राय Verbal intelligence का ही मापन करती हैं उनमें reading पर अधिक जोर दिया है अत जो बालक reading मे कमजोर होते हैं इन परीक्षाओं द्वारा अपनी बुद्धि का ठीक-ठीक परिचय नही दे पाते।

प्रज्ञांक मे स्थिरता इसलिए और भी नही होती कि बुद्धि परीक्षा में निष्पादन छात्र के स्वास्थ्य और अभिवृद्धि पर निर्भर रहता है, जैसे ही इन बातो म सुधार या अवह्रास होता है वैसे ही प्रज्ञांक मे सुधार अथवा अवह्रास दिखाई देने लगता है। प्रज्ञांक और मानसिक आयु स्थिर नही होता क्योंकि बुद्धि मे वृद्धि की दर उस वेग से नही होती बुद्धि परीक्षा तैयार करने वाला जिस वेग की आशा करता है। यह भी निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता कि प्रज्ञांक मे विचरणशीलता की मात्रा कितनी होगी। हाँ इतना अवश्य कहा जा सकता है कि यदि किसी छात्र के प्रज्ञांक मे ५ अक का अन्तर दिखाई दे तो कोई चिन्ता की बात नहीं है और यदि १५ अक से अधिक अन्तर दिखाई दे तो उस अन्तर की व्याख्या अवश्य की जाय क्योंकि यदि दूसरे रूप की परीक्षा को उसी प्रकार दिया जाय तो १०० मे से ९९ हालतो मे बुद्धि लब्धि अधिक से अधिक १५ पाइन्ट कम या अधिक होगी। यह अन्तर मापन क्रिया के फलस्वरूप प्राप्त हो जाते हैं। लेकिन वातावरण या भावात्मक सामंजस्य मे एकदम परिवर्तन पैदा हो जाय तो प्रज्ञांक मे अन्तर १५ पाइन्ट से भी अधिक पाया गया है। लेकिन ५० प्रज्ञांक वाला बालक न तो सामान्य हो सकता है और न १३० प्रज्ञांक वाला बालक सामान्य हो सकता है।

मानसिक आयु और प्रज्ञांक दोनो ही १४-१५ वर्ष की आयु के बालको की मानसिक परिपक्वता के विषय मे सूचना देते हैं, प्रौढ़ो की बुद्धि लब्धि उनसे निकाली नही जा सकती।

प्रज्ञांक के विषय मे यह कहा जाता है कि बच्चों के माता पिता को उनके बच्चो का प्रज्ञांक न बताया जाय क्योंकि वे प्रज्ञांक का अर्थ कुछ और ही लगाते हैं। यदि उनसे यह कह दिया जाय कि आपके बच्चे का प्रज्ञांक ९० है तो वे अत्यन्त चिन्तित हो जायेंगे और यदि उनसे यह कह दिया जाय कि उनके बच्चे का प्रज्ञांक १०० है तो वेहद आत्मश्लाघा करेंगे।

अन्त मे एक बात पर और अध्यापक को ध्यान देना होगा। यदि वह 'अ' के ११५ प्रज्ञांक को देखकर यह कहे कि वह 'ब' से जिसका प्रज्ञांक १०० है गणित अथवा विज्ञान मे अधिक सफलता पायेगा तो वह बडी भारी भूल करेगा। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि एक कक्षा जिसका औसत प्रज्ञांक ११५ है दूसरी कक्षा मे जिसका प्रज्ञांक १०५ है गणित मे अच्छा निष्पादन दिखा सकेगी। इस प्रकार स्पष्ट है। साध्य कहता है कि १० व्यक्तियों के अकों का मध्यमान १०० व्यक्तियों के मध्यमान से अधिक छोटा होता है। इसी तर्क से यह कहा जाता है कि १ व्यक्ति का प्रज्ञांक ३०-४० व्यक्तियो के प्रज्ञांको के औसत से अधिक परिवर्तन होने के कारण अध्यापक के लिए कम महत्वपूर्ण होगा। इसलिए एक बालक के प्रज्ञांक को देखकर उसके विषय मे भविष्य कथन करना खतरे से खाली नही होगा।

Q. 13. Discuss the uses of Intelligence Testing to a teacher

Ans बुद्धि परीक्षाएं बुद्धि का मापन करने के लिये उत्तम यन्त्र हैं किन्तु उनकी श्रेष्ठता उनके उपयोग पर निर्भर रहा करती है, यदि किसी परीक्षा का ठीक उपयोग किया जाता है अथवा उसके परिणामो का ठीक-ठीक विवेचन किया जाता है तो यह यन्त्र अध्यापक वर्ग के लिये विशेष लाभदायक सिद्ध होता है। यदि इन यन्त्रो को सावधानी से चुनकर उन्हें विधिवत् छात्र वर्ग पर लागू किया जाय और उनसे छात्रो द्वारा प्राप्त अकों को ठीक-ठीक विश्लेषण किया जाय तो उनसे अर्थ सूचक और महत्वपूर्ण बालको की मानसिक योग्यताओ के विषय मे महत्वपूर्ण तथ्य ज्ञात हो सकते हैं।

यदि अध्यापक का प्रमुख कर्तव्य सीखने की क्रिया में कार्य प्रदर्शन करना है तो उसे अपने प्रत्येक छात्र को उसकी योग्यताओं का उत्तम से उत्तम उपयोग करने के लिये सुविधाएँ प्रदान करनी होंगी। उसे अपनी मानसिक योग्यताओं का उपयोग करने की सहायता देनी होगी। अब चूँकि सब विद्वान् यही मानते हैं कि बुद्धि परीक्षाओं से सीखने की क्षमता के विषय में उपयुक्त जानकारियाँ मिलती हैं इसलिये सफल अध्यापक सबसे पहले इन परीक्षाओं की उपयोगिताओं को जानना पसन्द करते है। ये परीक्षाएँ बालकों को गणित, हिन्दी, विज्ञान आदि विषय सीखने की क्षमता का अन्दाज लगाने में उसकी सहायता करती हैं। नई कक्षा और नये छात्रों के विषय में इस प्रकार का ज्ञान अत्यन्त ही आवश्यक है।

बुद्धि परीक्षाएँ न केवल भिन्न भिन्न विषयों को सीखने की क्षमता का ज्ञान देने में शिक्षकों की मदद करती हैं वरन् सीखने से सम्बन्धित असफलताओं को विश्लेषित करने में भी उसकी सहायता करती हैं। क्या विद्यार्थी 'अ' अंकगणित में और अधिक तेज प्रगति दिखा सकता है? क्या विद्यार्थी इतना सुस्त है कि कुछ सीख ही नहीं सकता? क्या विज्ञान उसके लिये इतना दुरूह विषय है कि वह कक्षा में चल ही नहीं सकता? क्या विद्यार्थी 'ब' की गणित के लिये अभिवृत्ति इसलिये बिगड़ गई है कि उस स्तर पर कार्य नहीं कर सकता जिस स्तर पर उससे कार्य करने के लिये आशा की जाती है। इस प्रकार की गई जटिल शैक्षणिक समस्याएँ अध्यापक के सामने आती हैं और इन समस्याओं को हल करने में उसकी सहायता बुद्धि परीक्षायें तो करती ही हैं अन्य प्रकार की परीक्षाओं का भी उसे आश्रय लेना पड़ता है। लेकिन यदि छात्रों की दी गई बुद्धि परीक्षाओं के फलांकों का विश्लेषण सावधानी से किया जाय तो उसकी सीखने से सम्बन्ध रखने वाली कई समस्याओं का निदान किया जा सकता है। शिक्षा की समस्याओं का यदि वह अधिक विश्लेषण करना चाहता है तो उसे भिन्न अभिरुचि (Differential aptitude) देने होंगे। वह संख्यात्मक चिन्तन, अंकगणितीय तर्क, शाब्दिक और आन्तरिक्षिक विवेक का सफल मापन जिन परीक्षाओं से हो सकता हो, उनके परीक्षाफलों से छात्र की उन विशिष्ट प्रकार की अशक्तताओं और अक्षमताओं का अन्दाजा लगाया जा सकता है जो उसकी प्रगति में बाधक हो सकती हैं।

बुद्धि परीक्षायें छात्रों को विभिन्न कक्षाओं में रखने, उनका वर्गीकरण करने में अध्यापक को सहायता करती हैं। एकसी वास्तविक आयु किन्तु भिन्न भिन्नमानसिक स्तर वाले छात्रों को एक ही कक्षा में रखने से उनका शिक्षण उचित रूप से नहीं चल पाता इसलिये छात्रों के वर्गीकरण का प्रश्न उठता है। [illegible] ही छात्रों का वर्गीकरण करना ठीक नहीं [illegible] पर निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते कि छात्र [illegible] से सफलता बुद्धि पर ही निर्भर नहीं रहती, किसी विषय में रुचि अथवा अभिरुचि भी उस विषय को सीखने की मात्रा को प्रभावित करती है। अन्य तत्वों के विशेष प्रभाव के कारण प्राय ऐसा देखा जाता है कि ११० से कम प्रज्ञांक वाले छात्र विद्यालय में सफल और १६० से ऊपर प्रज्ञांक वाले छात्र असफल हो जाते हैं। तब भी बुद्धि की कुशाग्रता अथवा शीघ्रता का प्रदर्शन प्रज्ञांक ही कर सकता है। अतः छात्रों का वर्गीकरण करते समय उनके प्रज्ञांकों, विशिष्ट रुचियों तथा अन्य योग्यताओं की जानकारी अवश्य होनी चाहिये।

जब छात्रों का वर्गीकरण उनकी मानसिक योग्यता, रुचि और अभिरुचि के आधार पर कर लिया जाय तब अध्यापक उनकी योग्यता की भिन्नता को ध्यान में रखकर शैक्षणिक कार्य की व्यवस्था करे, कक्षा की योग्यता का प्रसार क्षेत्र अधिक होने पर उसे अपनी पाठन विधियों में भी परिवर्तन करना होगा। भिन्न-भिन्न मानसिक योग्यता वाले छात्रों के लिये भिन्न-भिन्न शैक्षणिक विधियों, और सहायक सामग्रियों की आवश्यकता पड़ेगी। कक्षा के छात्रों की बौद्धिक योग्यता समरूप होने पर उनके शैक्षिक प्रोग्राम, शिक्षण विधियों तथा अन्य [illegible] का रूप ही भिन्न होगा।

बुद्धि परीक्षाओं की प्राथमिक कक्षाओं के अध्यापकों के लिये उपयोगिताएँ

जैसे ही बालक किसी भी विद्यालय में प्रवेश करता है वैसे ही उसकी बुद्धि विषयक क्षमता को मापना भी आवश्यक हो [illegible] है। बुद्धि परीक्षाओं द्वारा [illegible] बुद्धि [illegible]

सरल अकगणितीय क्रियाओं के सफलतापूर्वक करने की क्षमता है। यदि बुद्धि का अर्थ हम इसी प्रकार स्वीकार कर लें तो बुद्धि परीक्षाओं की उपयोगिता ऐसे बालकों का चुनाव करने में प्रत्यक्षत स्पष्ट ही है जिनको विद्यालय मे लिखने, पढने तथा अकगणित सिखने के लिये भरती किया जाता है।

हमारे यहाँ यह प्रथा सी है कि बालक को ६ वर्ष का होते ही विद्यालय मे दाखिल करने का विचार शुरू हो जाता है। यद्यपि साधारण तौर से बालक विद्यालय मे ५ से ७ वर्ष तक के प्रसार क्षेत्र मे प्रवेश पाते हैं फिर भी एक ही कक्षा मे एक ही आयु स्तर के बालकों का बौद्धिक विकास भिन्न प्रकार का होता है। उनकी मानसिक आयु मे जितना बडा अन्तर होता है उतना बडा अन्तर उनकी वास्तविक आयु मे भी नही होता। यदि अन्य किसी शहर के सभी हाई-स्कूलों और इन्टरमीडियेट कालेजों मे छात्रों की वास्तविक आयु और मानसिक आयु की गणना करें तो मानसिक आयु मे प्रसार क्षेत्र लगभग इस प्रकार का होगा—

	मानसिक आयु का प्रसार क्षेत्र
कक्षा १—	(४) ४ वर्ष से ८ वर्ष
६—	(८) ८ वर्ष—१६ वर्ष
१०—	(१०) १३ वर्ष—२३ वर्ष

पहली कक्षा मे ही कुछ विद्यालयों की कक्षाओं मे मानसिक आयु का प्रसार क्षेत्र इससे भी अधिक हो सकता है यदि बालक की पहली कक्षा मे ही मानसिक आयु २ साल है तो वह क्या सीख सकेगा क्योंकि लिखना पढना, और अकगणित की क्रियाओं का सीखना तभी सम्भव है जब उसकी मानसिक आयु कम से कम ६ वर्ष की हो। यदि पढने लिखने की सामग्री का चयन ठीक प्रकार से किया जाय तभी वह बालक जिनकी मानसिक आयु ५ वर्ष है लिखना पढना सीख सकता है। नही तो आगे की कक्षाओं मे उन्नति प्राप्त करने मे कठिनाई होगी। कभी कभी कक्षा १ मे ही ऐसे छात्रों का प्रवेश हो जाता है जिनकी वास्तविक आयु ६ वर्ष से कम होती है और मानसिक आयु ८ वर्ष से भी अधिक। यदि ऐसे बालकों को कक्षोन्नति निरन्तर दी जाती है तब उनका शैक्षणिक विकास ठीक प्रकार से चलता है अन्यथा उनकी शिक्षा में दोष आ जाता है, इसके विपरीत जिन बालकों की मानसिक आयु ६ वर्ष से कम होती है उनको किंडर गार्टेन मे ही रखना उचित होता है। अत कक्षा १ के अध्यापक के लिये इन बुद्धि परीक्षाओं की उपयोगिताएँ अनेक हैं। उनके आधार पर वह अपने बालकों की reading readiness का पता लगा सकता है। कभी-कभी कम मानसिक आयु वाले बालकों के माता-पिता उनकी reading readiness को अपने सतत प्रयत्नों के फलस्वरूप बढा दिया करते हैं। उदाहरण के लिये वे उनके प्रश्नों का उत्तर देते रहते हैं, उनको कहानियाँ पढकर सुनाते रहते है इससे उनका शब्द भण्डार विस्तृत हो जाता है और इस प्रकार मानसिक आयु कम होने पर भी वे पढने लिखने के लिये तत्पर हो जाते हैं।

बालकों को उन विषयों के चुनाव में निर्देशन देने मे सहायता देना जिनके अध्ययन के लिये उनमें विशेष क्षमता है—

जिस पाठ्य-क्रम को लेकर कोई बालक सफलता पा सकता है उस पाठ्यक्रम का निश्चय [illegible]

विषयों मे भी औसत दर्जे के अक मिलते हैं और जो लडके बुद्धि परीक्षाओं मे सामान्य से नीचे रहते हैं उनको उन विषयों को सीखने मे कठिनाई का ही सामना करना पडता है। नीचे तालिका मे कुछ विषयों का बुद्धि परीक्षाओं से सहसम्बन्ध दर्शाया गया है—

विद्यालय	विषय	सहसम्बन्ध गुणक
प्राइमरी तथा अपर प्राइमरी	निबन्ध, पढना डिक्टेशन, अकगणित कठिन प्रश्न	·५ से ६ तक

हाईस्कूल	गणित	·५
	हिन्दी विषय	
	भूगोल	
	भौतिकशास्त्र	·७०

यह जानने के लिये कि हाईस्कूल में विभिन्न वर्गों को पढ़ने वाले छात्रों का प्रसार कितना है और किसी वर्ग में सफलता पाने के लिए कितना प्रसार चाहिए, यह सारणी बताती है।

Q. 14 Discuss the salient features of Binet's intelligence test and describe the methods of administering it. How will you interpret the scores ?

Ans. बीने की बुद्धि परीक्षा की प्रमुख विशेषतायें बताओ। यह परीक्षा किस प्रकार लागू की जाती है और परीक्षा फल की व्याख्या किस प्रकार की जाती है ?

सामान्य परिचय—बीने की बुद्धि परीक्षा ऐसी व्यक्तिगत परीक्षा है जिसमें परीक्षण पदों का चुनाव बालकों की उम्र को ध्यान में रखकर किया जाता है। ये परीक्षण पद जिस आयु के बालकों के लिए चुने जाते हैं उस आयु से कम आयु वाले बालक उन परीक्षण पदों का उत्तर नहीं दे सकते। विशेष आयु के इन प्रश्नों का उत्तर सामान्य बुद्धि के बालक ही दे सकते हैं। अल्प-सामान्य बुद्धि वाले बालकों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे उनका उत्तर सही दे सकें। बीने के सभी प्रश्न मौखिक ढंग से ही पूछे जाते हैं। जिस प्रकार समक्ष भेंट में हम समक्ष भेंट किये जाने वाले व्यक्ति से मौखिक प्रश्न पूछते हैं उसी प्रकार जिन बच्चों अथवा व्यक्तियों को बीने की बुद्धि परीक्षा दी जाती है उनसे मौखिक प्रश्न पूछ कर उनका उत्तर मांगा जाता है। बीने की परीक्षा को प्रामाणिक समक्ष भेंट का एक रूप माना जाता है।

यह परीक्षा ३ वर्ष से लेकर १५ वर्ष तक के बालकों की बुद्धि का मापन करने के लिये तैयार की गई है। ३ वर्ष की आयु के लिये जैसे प्रश्नों का चुनाव किया गया है उनका रूप नीचे दिया जाता है .

(१) अपनी आँख, कान और मुँह दिखलाओ।
(२) मैं जिन दो अंकों को बोलूँ उनको गिनाओ।
(३) इस चित्र में तुम जिन जिन वस्तुओं को देखते हो उनके नाम बताओ।
(४) अपने कुटुम्ब बताओ।
(५) एक वाक्य को बोलते हुए इसे दुहराओ।

बीने की परीक्षा के संशोधन—बीने की इस परीक्षा के संशोधन लगभग सभी उन्नतिशील देशों के मनोवैज्ञानिकों ने अपनी अपनी संस्कृति को ध्यान में रखकर किया। सबसे महत्वपूर्ण संशोधन जो अमरीका में हुआ टरमैन का है। टरमैन के इस संशोधन से ३ वर्षीय बालकों की बुद्धि का मापन करने के लिये जो प्रश्न पूछे गये हैं वे नीचे दिये जाते हैं।

(१) अपनी आँख, कान, नाक, मुँह, मे से किन्हीं तीन को संकेत द्वारा दिखलाओ।
(२) (चाबी, बन्द चाकू, पैंसिल, घड़ी और पैसा) कुछ परिचित वस्तुओं को दिखाकर इनमें से किन्हीं तीन का नाम बताओ।
(३) (एक चित्र दिखाते हुए) इस चित्र में किन्हीं तीन चीजों के नाम बताओ।
(४) (६, ७ शब्दों का वाक्य बोलते हुए,) इस वाक्य को दुहराओ ?
(५) तुम लड़के हो या लड़की ?

भारत, इंगलैण्ड का और स्केन्डीनेविया में भी बीने की बुद्धि परीक्षा के संशोधित एवं परिवर्तित रूपों का प्रयोग वहाँ के अग्र सामान्य बालकों की योग्यता के परीक्षण के लिये होता है।

बीने की परीक्षा लागू करने का तरीका—बीने की बुद्धि परीक्षा एकान्त में ली जाती है। शान्ति पूर्ण वातावरण में, जो सभी प्रकार के विक्षोभ से मुक्त हो, परीक्षार्थी बालक को बैठा दिया जाता है। उसके सामने एक मेज पर एक एक करके चित्र या वस्तुएँ दिखाई जाती और प्रश्न पूछे जाते हैं। परीक्षक निरपेक्ष भाव से बालक के उत्तरों को सुनता जाता है। प्रश्न पूछते समय वह किसी प्रकार का सन्तोष अथवा असन्तोष प्रगट नहीं करता। यदि बालक प्रश्न को दुहरवाना चाहता है तो उन प्रश्नों को दुहराया जाता है जिनको दुहराने का आदेश परीक्षा में दिया जाता है, वह भी निश्चित समय के बीतने पर ही। प्रश्नों का उत्तर सीमित समय के अन्दर ले लिया जाता है। आवश्यकता पड़ने पर उनके उत्तरों का कुछ अंश टीप भी लिया जाता है।

साधारणतः बालक की जो वास्तविक आयु होती है उससे एक दो वर्ष पीछे के प्रश्न पूछे जाते हैं। उदाहरणार्थ यदि मोहन की आयु ७ वर्ष है तो पहले उससे ५ वर्ष की आयु के प्रश्न पूछे जायेंगे। जब तक वह किसी निश्चित आयु के सभी प्रश्नों का उत्तर देने में अपने को असमर्थ घोषित न कर दे तब तक उत्तरोत्तर क्रम से प्रश्न पूछे जाते हैं। टर्मन के संशोधन में प्रतिवर्ष के लिये ६ प्रश्न हैं। अब यदि कोई बालक ६ प्रश्नों में से २ प्रश्न सही सही बता देता है तो उसको ४ महीने का श्रेयम् दिया जाता है।

परीक्षा में पूछे गये प्रश्नों से प्राप्त उत्तरों की व्याख्या—मान लीजिये मोहन ने उसे दी गई इस परीक्षा में निम्न लिखित तालिका के अनुसार प्रश्नों का सही सही उत्तर दिया है—

वर्ष	पूछे गये प्रश्नों की संख्या	श्रेय	सही उत्तरों की संख्या	प्राप्त श्रेय
५	६	२	६	
६	६	२	६	आधारीय आयु
७	६	२	४	८
८	६	२	२	४
९	६	२	१	२
१०	६	२	०	०
कुल				१४ महीने

चूंकि मोहन ने ६ वर्ष तक के सभी प्रश्नों का सही उत्तर दिया है इसलिये उसकी आधारीय मानसिक आयु ६ वर्ष मानी जाती है। अन्य आयु के प्रश्नों से कुछ का सही उत्तर देने के कारण उसे कुछ श्रेयम मिलना चाहिये यह श्रेय १४ महीने का है।

अतः मोहन की मानसिक आयु ६ वर्ष १४ माह अथवा ७ वर्ष २ माह मानी जा सकती है।

मानसिक आयु—जैसा कि पीछे बताया जा चुका है मानसिक आयु इस बुद्धि परीक्षा का आयु प्रमाप है। मानसिक आयु से हमारा आशय बालक की मानसिक शक्ति की परिपक्वता से है। जैसे-जैसे बालक की वास्तविक आयु बढ़ती जाती है वैसे वैसे उसका मानसिक विकास बढ़ता जाता है। मानसिक आयु उसकी मानसिक परिपक्वता का स्तर निश्चित करती है।

मानसिक आयु का सम्बन्ध बुद्धि लब्धि से किस प्रकार स्थापित किया जाता है अथवा उनकी क्या उपयोगिताएं हैं इसका उल्लेख आगे किया जायगा।

Q. 4. Describe the Stanford Binet revisions and discuss their uses and limitations.

Ans बीने की बुद्धि परीक्षा का अन्तिम संशोधन जिसका प्रयोग छोटे-छोटे बालकों की बुद्धि का परीक्षण करने में होता है १९३७ में संशोधन टर्मन और मैरिल ने किया था। यह संशोधन दो समानान्तर रूपों में प्रकाशित हुआ है। १२९ प्रश्नों को २० आयु स्तरों में विभाजित किया गया है

आयुस्तर	प्रश्नों की संख्या
२	६
२½	६
३	६
३½	६
४	६
४½	६
५	६
६	६
७	६

८	६
९	६
१०	६
११	६
१२	६
१३	६
१४	६
१५ सामान्य प्रौढ़ स्तर	८
१६ अधि प्रौढ़ स्तर प्रथम	६
१७ " " द्वितीय	६
१८ " " तृतीय	६

बीने की परीक्षा मे संशोधन करने वाले इन अमरीकी विद्वानो का विचार है कि बुद्धि का विकास २ वर्ष से ५ वर्ष की अवस्था तक बड़ी तेजी से होता है इसलिये मानसिक परिपक्वता के स्तर का पता लगाने के लिये मानसिक मापन थोड़े-थोड़े समय बाद होना चाहिये। ५ वर्ष से १४ वर्ष तक यह विकास लगभग समान गति से होता है इसलिये प्रत्येक वर्ष के लिये अलग अलग परीक्षायें तैयार की गई है। १४ वर्ष के बाद मानसिक विकास मे रुकावट आने लगती है और यह रुकावट धीरे-धीरे आती है इसलिये प्रौढ़ स्तर को ४ भागों मे बांटा गया है—सामान्य, अधि प्रौढ़ स्तर, प्रथम द्वितीय और तृतीय।

मानसिक योग्यताएं और यह संशोधन

बीने की परीक्षा का यह संशोधन छोटे बच्चो से लेकर प्रौढ़ व्यक्तियों तक उनकी विभिन्न मानसिक योग्यताओं का मापन और मूल्यांकन करती है। २ वर्ष से लेकर ४ वर्ष तक के बच्चों में परिचित पदार्थों के प्रस्तन (manipulation) और तर्क करने की शक्ति किस मात्रा तक विकसित हुई है यह देखने के लिए गुटकों की सहायता से डिजाइन तैयार करवाये जाते हैं। वर्गाकार और वृत्ताकार आकृतियों की नकल करवाई जाती है। ज्यामितीय आकृतियों को नापकर तुलना करना, दी हुई आकृतियों से भिन्न आकृतियों को पहचानना, हाथ और आंख के बीच समन्वय स्थापित करना, आदि कार्य करने का आदेश दिया जाता है। २ वर्ष के बच्चों को जो प्रश्न पूछे जाते हैं वे साधारणतः सरल और ५ वर्ष के बच्चों को पूछे जाने वाले प्रश्न कुछ जटिल होते हैं [illegible] का नाम पूछा जाता है तो ५ वर्ष के [illegible] हुये पदार्थों के बीच अन्तर और समा- [illegible]

४ वर्ष से ८ वर्ष के बालकों से भिन्न प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं। इस आयु स्तर पर बालकों में अपनी भाषा को समझने की योग्यता, व्यावहारिक निर्णय और सामान्य ज्ञान की परीक्षा की जाती है। सामान्य ज्ञान की परीक्षा मे उनमें ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं जिनमें उनके इस ज्ञान की जांच की जाती है कि किसी विशेष परिस्थिति में पड़कर वे क्या करेंगे।

इस परीक्षा मे प्रश्नों का विश्लेषण करने से पता चलता है कि यह बालकों में निम्न लिखित योग्यताओं का मापन करती है —

(अ) आंख और हाथ का समन्वय।
(आ) स्मृति।
(इ) सरल अंकगणितीय ज्ञान।
(ई) भाषा सम्बन्धी योग्यता।

किन्तु जैसे जैसे आयु में वृद्धि होती है इन योग्यताओं के मापनार्थ प्रश्नों में जटिलता आती जाती है। उदाहरण के लिये स्मृति का मापन करने के लिये सभी आयु के बालकों से प्रश्न पूछे जाते हैं, वस्तुओं, चित्रों, अंकों, ज्यामितीय शक्लों, शब्दों, वाक्यों, कविता अथवा लेखों के अंशों को फिर से याद रखने और पहचान सकने की योग्यता की जांच की जाती है। छोटी आयु के बालकों में साधारण ज्ञान की परीक्षा सरल अंकगणितीय समस्याओं का हल करवा के की जाती है और बड़े बालकों के साधारण ज्ञान की परीक्षा अंकगणितीय तर्क और विभिन्न विधियों में सूत्रों का निर्माण करने की योग्यता की जांच करती है। भाषा पर अधिकार की मात्रा की जान-

कारी प्राप्त करने के लिये ५ वर्ष से ८ वर्ष के बालकों से ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं जो भाषा के समझने की योग्यता का मापन करते हैं, ६ वर्ष से १६ वर्ष तक के बालकों में शब्दों के अर्थ बताने, वाक्य पूर्ति करने, टूटे फूटे वाक्यों को ठीक करने, कहावतों को प्रयोग करने की योग्यता का मापन किया जाता है। असम्बन्धित शब्दों को एक साथ कह डालने, शब्दों को वाक्यों में प्रयोग करने, किसी अक्षर से आरम्भ होने वाले शब्दों को निश्चित समय के अन्दर कह डालने की योग्यता की भी जाँच की जाती है।

शयनिक समक्ष भेंट—बीने की बुद्धि परीक्षा शयनिक समक्ष भेंट की तरह प्रयोग में आती है। बीने की बुद्धि परीक्षा लेने वाला कुशल मनोवैज्ञानिक बालक के विषय में ऊपर दी गई मानसिक योग्यता के अतिरिक्त कई अन्य प्रकार की बहुमूल्य सूचनायें भी प्राप्त करता है। वह बालक के कार्य करने के ढंगों तथा समस्याओं को हल करने के तरीकों और उसके आत्म विश्वास और अवधान का भी अध्ययन करता है। इस प्रकार यह परीक्षा एक तरह से शयनिक समक्ष भेंट का काम करती है जिसमें बालक की कमियों और कठिनाइयों का अनुमान लगाया जाता है।

शैक्षिक अभिरुचि—इस परीक्षा में रखे गये भाषा सम्बन्धी प्रश्नों से बालक की शैक्षिक अभिरुचि का पता लगाया जाता है। किन्तु उसका प्रयोग उन बालकों की बुद्धि का मापन करने के लिए नहीं किया जाता जिनमें **भाषा सम्बन्धी बातों को समझने और प्रकट करने की अयोग्यता** होती है अथवा जिनमें अशाब्दिक योग्यतायें वर्तमान होती हैं। उनकी मानसिक योग्यता का मापन अभाषिक (non language) परीक्षाओं से किया जाता है। यद्यपि इस परीक्षा का प्रयोग शैक्षिक अभिरुचियों का पता लगाने के लिये किया जाता है किन्तु उनकी भिन्न अभिरुचि का मापन इस परीक्षा की सहायता से नहीं किया जाता। इस परीक्षा की तीसरी कमी है प्रौढ व्यक्तियों की मानसिक योग्यता के मापन में इस परीक्षा की अनुपयुक्तता। यह परीक्षा प्रौढ व्यक्ति के लिये इतनी रुचिकर भी नहीं होती जितनी कि बालकों के लिये हो सकती है। इस कमी को पूरा करने के लिये वैशलर की बुद्धि परीक्षा का निर्माण किया गया है।

टर्मन मैरिल संशोधन की समीक्षा—क्या यह बुद्धि परीक्षा अन्य बुद्धि परीक्षाओं से उत्तम है? इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक नहीं है। लगभग सभी लोगों का यही विश्वास है कि यह सबसे उत्तम बुद्धि परीक्षा है। कुछ लोगों का विचार है कि इस संशोधन के बाद और भी संशोधन होंगे। उनके Objective निम्नलिखित हैं—

(१) इसका प्रमापीकरण बहुत ही कठिन, असम्भव और Rigid है।

(२) इसमें Vocabulary को इतना अधिक महत्व दिया गया है कि वह छात्रों के लिये दुस्तर हो जाता है। अच्छे बालकों से किसी शब्द की परिभाषा माँगना ठीक नहीं जँचता क्योंकि चतुर बालक तो उसी परिभाषा को देने की कोशिश करेगा जो शब्द कोश में दी गई है और चूँकि शब्द कोश की परिभाषा प्राय उसकी जीभ पर नहीं होती इसलिये इस प्रश्न का उत्तर देने में असमर्थ होगा। ऊँची उम्र की सभी परीक्षायें शाब्दिक योग्यता (Verbal Comprehension) से अत्यन्त लदी हुई हैं अतः वे व्यक्ति जिनमें यह योग्यता नहीं होती इस परीक्षा से कम अंक पाते हैं।

(३) इस परीक्षा को लागू करने का तरीका भी ठीक नहीं है क्योंकि जब किसी बालक को यह परीक्षा दी जाती है तब उसकी आधारीय आयु अज्ञात होने के कारण परीक्षक को या तो पिछली परीक्षा देनी पड़ती है या आगे की परीक्षायें देनी होती हैं इसका बालक पर बुरा प्रभाव पड़ता है। Nervous बालकों के लिये तो यह काम torture हो जाता है।

(४) इस परीक्षा में कभी कभी दो दो basal ages मिलती हैं उदाहरण के लिये कोई बालक १० साल की परीक्षा के सभी प्रश्नों को हल कर लेता है फिर १२ वर्ष की परीक्षा प्रश्न को भी हल कर लेता है। आधारीय आयु की अनेकता का मुख्य कारण है मानसिक आयु एक वर्ष से अगली वर्ष के लिये बहुत कम बढ़ती है इसलिये ११ वर्ष की परीक्षा के सभी प्रश्न नहीं हल नहीं कर पाता है और १० और १२ के सभी प्रश्न हल कर लेता है।

(५) यह परीक्षा प्रौढ व्यक्तियों की बुद्धि का मापन करने के लिये उपयुक्त नहीं है क्योंकि यदि २५ वर्ष के किसी व्यक्ति को यह परीक्षा दी जाती है तो उसकी प्रज्ञांक निकालने के लिए १६ वर्ष कर दिया जाता है अतः १५ वर्ष के बाद १० वर्ष का अर्थ Hypothetical हो जाता है।

विद्वानों के दूसरे objection का उत्तर देते हुए Termen ग्रौर Merriate का कहना है कि चूंकि abstract thinking के लिये शब्दों का प्रयोग ही करना पड़ता है इसलिये इस परीक्षा में Verbal शाब्दिक तत्व की प्रधानता रखी गई है। Vocabulary का परीक्षण करने के लिये जो शब्द रखे गये हैं उनका मूल प्रयोजन Vocabulary Test नहीं है लेकिन उसके शब्द ज्ञान के ग्राधार पर उसके मानसिक विकास की जानकारी प्राप्त करना है।

(६) भिन्न भिन्न वास्तविक ग्रायु पर I.Q. का विचलन (SD) भिन्न है। उदाहरण के लिये २½ वर्ष पर २०.६, ६ वर्ष पर १२.५ ग्रौर १२ वर्ष पर २० है। इसका मतलब यह है कि जिस ६ वर्ष के बच्चे का IQ ११२.५ है वह उस १२ वर्षीय बच्चे के बराबर होगा जिसका IQ १२० है।

(७) यह बुद्धि परीक्षा differential aptitutes का मापन करने में ग्रसमर्थ है। इसके कई कारण हैं।

(ग्र) एक सी तरह के परीक्षण पद सभी ग्रायु स्तरों पर recur नहीं करते।

(ग्रा) प्रत्येक प्रकार के परीक्षण पदों की सख्या इतनी कम है कि विभिन्न items groups पर व्यक्ति के निष्पादन के विषय मे व्यक्तिगत जानकारी प्राप्त नहीं की जा सकती।

(इ) ग्रब यदि किसी व्यक्ति का निष्पादन दो प्रकार की items—spatial orientation ग्रौर स्मृति पर देखा जाय तो उस निष्पादन मे ग्रन्तर नहीं के बराबर मिलेगा।

(ई) किसी परीक्षण पद को देने से उसके द्वारा परीक्षित मानसिक क्रिया का ग्रन्दाजा लगाना कठिन हो जाता है, यदि इन items का factor analysis करे तो g factor ही मिलेगा। इसका कारण यह था कि इस स्केल का निर्माण g factor के Contribution को ग्रधिकतम रखने के लिये किया गया था ग्रौर group factors या विभिन्न योग्यताग्रों के contribution को न्यूनतम रखने के लिए।

(८) Scoring technique खराब है। कई परीक्षण पद ऐसे हैं जिनके कई उत्तर हो सकते हैं लेकिन जिन उत्तरों को Scoring technique मे रखा गया है उनको ही स्वीकृत माना जाता है।

Q 15 Discuss the salient features of the Wechsler Bellevue Intelligence Test.

Ans. सन् १९३९ मे वैश्लर ने ऐसी बुद्धि परीक्षा का निर्माण किया जो १० वर्ष से ग्रधिक ग्रायु वाले सभी व्यक्तियों तथा मुख्यतया प्रौढ़ व्यक्तियों की बुद्धि का मापन कर सके। प्रौढ़ व्यक्तियों की बुद्धि परीक्षा लेने का यह पहला प्रयास था। बुद्धि से वैश्लर का ग्रभिप्राय उस व्यापक समग्र मानसिक शक्ति से था जो सोद्देश्य कार्य करने, तर्क पूर्ण चिन्तन करने, ग्रौर वातावरण के साथ प्रभावपूर्ण ग्रनुकूलन स्थापित करने मे प्रयुक्त होती है।[1]

वैश्लर की बुद्धि परीक्षा की विशेषता

(१) यह परीक्षा व्यक्तिगत (individual test) होते हुए भी सामूहिक परीक्षाग्रों के से रूप वाली है। इसमे १० उप पद हैं ग्रौर एक प्रतिस्थापना योग्य (Substitute) परीक्षा है। सम्पूर्ण परीक्षा के दो ग्रंग हैं। पहले ग्रंग मे सूचना (General information), *सामान्य बोध* (General comprehension), ग्रंक विस्तार (Digit span), ग्रंकगणितीय तर्क (Arithmetical reasoning), समानता (analogy) ग्रौर शब्दकोष सम्बन्धी (Vocabulary) प्रतिस्थापन परीक्षा है। इस परीक्षा का दूसरा ग्रंग करण परीक्षा (Performance) है जिसमे ५ उपपद (Subtests) हैं—चित्र संयोजन (Picture co-ordination), चित्र पूर्ति (Picture completion) ब्लोक डिजाइन (Block design), वस्तु संग्रहण (Object assembly) ग्रौर ग्रंक चिह्न (digit symbol)।

(२) प्रत्येक उपपद (Subtest) के परीक्षण पद कठिनाई के ग्रनुसार सजोये गये हैं ग्रौर वे ऐसे हैं कि व्यक्ति ग्रपने दैनिक जीवन के ग्रनुभव से उत्तर दे सकता है। प्रत्येक उपपद

1. Intelligence is the aggregate or global capacity of the individual *to act* purposefully, to think rationally and to deal effectively with his *environment.*

कित हैं—

आंकिक तर्क, चित्र संयोजन, ब्लौक डिजायन, वस्तु संग्रहण और अंक प्रतीक।

(३) प्रत्येक उप पद का मूल्यांकन (scoring) करने के बाद उसका भारित फलांक (weighted score) ज्ञात किया जाता है। इन भारित फलांकों को जोड़कर परीक्षा में प्राप्तांक दो प्रकार से घोषित किया जाता है—एक को शाब्दिक फलांक (Verbal score) कहते हैं और दूसरे को कृत फलांक (performance score), तीसरा घोषित फलांक पूर्ण फलांक (total score) कहलाता है। इन तीन फलांकों से सम्बन्धित तीन प्रज्ञांक (I Q.) निश्चित किये जाते हैं। लेकिन प्रज्ञांक (I Q) निकालने का तरीका ही विलक्षण है।

$$\text{प्रज्ञांक (I Q.)} = \frac{\text{वास्तविक अंक}}{\text{उस आयु का प्रत्याशित मध्यमान अंक}}$$

इस प्रज्ञांक की विशेषता है कि वह अपने आयु वर्ग में पड़े व्यक्ति की सापेक्ष स्थिति का पता लगा सकता है।

इस परीक्षा की अन्य विशेषताएँ निम्नांकित हैं —

(i) परीक्षा में प्राप्त फलांक प्रामाणिक फलांक (Standard score) में बदला जाता है।

(ii) आयु की वृद्धि के साथ बुद्धि का क्षय होता है और इस क्षय की मात्रा कितनी होती है इसका अनुमान वैश्लर की बुद्धि परीक्षा से लग सकता है। उदाहरण के लिए, प्राप्तांक ७० का प्रज्ञांक (I Q) क्रमागत आयु स्तरों के लिये बढ़ता जाता है किन्तु ३५ वर्ष की आयु के बाद वृद्धि की यह मात्रा कम होती जाती है •

आयु	प्राप्तांक ७० के प्रज्ञांक I Q.	वृद्धि
२०	८०	
२५	८३	३
३०	८६	३
३५	८६	३
४०	९१	२
४५	९३	२
५०	९५	२
५५	९७	

(iii) उप पदों में प्राप्त फलांकों के आधार पर यह पता लगाया जाता है कि कोई व्यक्ति किस क्षेत्र में कमजोर और किस क्षेत्र में सशक्त है।

परीक्षा में पूछे गये परीक्षण पदों का रूप—नीचे परीक्षा के उपपदों में पूछे गये परीक्षण पदों के विषय में सामान्य जानकारी दी जाती है।

(क) सामान्य सूचना (General Information)—इस उपपद में २५ प्रश्न हैं जिनके उत्तर सामान्य सभी प्रौढ़ व्यक्तियों द्वारा दिये जा सकते हैं। व्यक्ति के व्यावहारिक ज्ञान (Practical orientation) और मानसिक विकास के स्तर (intellectual level) में सहसम्बन्ध होता है इसलिये ये प्रश्न उसकी बुद्धि का मापन कर सकते हैं।

(ख) सामान्य बोध (General Comprehension)—व्यावहारिक निर्णय (practical judgement) और सामान्य ज्ञान (common sense) का परीक्षण करने के लिये स्टेन पढ़े-लिखे की बुद्धि परीक्षा जैसे किन्तु प्रौढ़ लोगों की रुचि के अनुकूल १० परीक्षण पद रखे गये हैं। प्रत्येक परीक्षण पद इस बात की जाँच करता है कि किस स्थिति में व्यक्ति कैसा आचरण करेगा?

के लिए तालिकाएँ तैयार की गई हैं जिनमे विभिन्न आयु स्तरो पर विभिन्न अन्तरालों का प्रयोग किया गया है। ये अन्तराल हैं .

१०—१४½	३ माह
१५—१६	१ वर्ष
१७—१६	३ वर्ष
२०—४६	५-५ वर्ष

प्रज्ञांक (I Q) के साथ-साथ प्रवणता गुणक (Efficiency Quotient) भी निकाला जाता है जिसका सूत्र है

$$E\ Q = \frac{I\ Q}{IQ \text{ of } 20\text{-}24 \text{ age group}}$$

वैश्लर की बुद्धि परीक्षा की तन्मापिता (Validity) और विश्वस्तता (Reliability)— चूँकि वैश्लर ने बुद्धि को वातावरण के साथ अनुकूलन स्थापित कर सकने वाली सामूहिक शक्ति माना है इसलिये प्रयोगात्मक साध्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह परीक्षा उसी वस्तु का मापन करती है जिसका मापन करने के लिये इसका निर्माण किया गया है। व्यक्ति की जीवन के विभिन्न व्यापारो मे सफलता तथा उसके द्वारा वैश्लर की बुद्धि परीक्षा मे प्राप्त फलाको के बीच ऊँचा सहसम्बन्ध मिला है इसलिये यह कहा जा सकता है कि यह परीक्षा तार्किक ढग से तन्मापी (logically valid) है।

यद्यपि वैश्लर ने अपनी बुद्धि परीक्षा का वैधकरण (Validation) किसी अन्य परीक्षा अथवा अध्यापकों की सम्मति पर आधारित नही किया था फिर भी जब उसको अध्यापकों की सम्मति रूपी कसौटी पर कसा गया तो सहसम्बन्धगुणक + ४३ और + ५२ के बीच मिला जो इस बात का प्रमाण है कि यह बुद्धि परीक्षा सीखने की क्षमता (Capacity to learn) का मापन करती है।

परीक्षा के ६ उपदों का घटक विश्लेषण (Factorial analysis) करने पर यह पता चला है कि Verbal factor की loading अधिक है। दूसरे घटक (factors) कृत्य (performance), स्मृति (memory) और तर्क (reasoning) मिले हैं। इसका अर्थ यह है कि इस परीक्षा में कई ऐसे घटकों का समावेश है जिनको बुद्धि के लक्षण माना गया है।

वैश्लर की परीक्षा की समीक्षा—इस परीक्षा ने बुद्धि परीक्षण मे जो रिक्त स्थान था उसकी पूर्ति की। १६३६ से पूर्व निर्मित सभी बुद्धि परीक्षाएँ स्कूली बालकों के लिये ही तैयार की गई थी। उनका प्रमापीकरण (Standardisation) भी स्कूली बालकों पर ही हुआ था अत उन परीक्षाओं मे प्रयुक्त विषय वस्तु (Content) ऐसी न थी जो प्रौढ व्यक्तियो के लिए भी रोचक होती। विषय वस्तु के अरोचक होने के कारण प्रौढ व्यक्तियों की बुद्धि का मापन उन परीक्षाओं से नही हो सकता था क्योंकि जब तक परीक्षित व्यक्ति परीक्षा मे रुचि नहीं लेता वह अपनी विशेषताओं अथवा योग्यताओं का प्रदर्शन नही कर सकता। १६३६ से पूर्व निर्मित सभी बुद्धि परीक्षाएँ गति (Speed) पर जोर देती थी और प्रौढ व्यक्ति गति पर अधिक ध्यान नहीं देता। उसमे गति का तत्व (Speed factor) बहुत कम होता है इसलिये ये परीक्षाएँ उसके लिये अनुपयुक्त थी। वैश्लर की बुद्धि परीक्षा ने इस रिक्त स्थान की पूर्ति की।

यह बुद्धि परीक्षा मनोचिकित्सकों के बड़े लाभ की है क्योंकि इसका निर्माण अमरीका के प्रसिद्ध अस्पताल बेलेवी मे किया गया था। उसका उपयोग चिकित्सकीय (Clinical) कार्यों के लिये ही अधिक किया जाता है। परीक्षा के परिणामों से Pathological Conditions को ढूँढने का प्रयास किया जाता है।

लेकिन चूंकि इस बुद्धि परीक्षा का निर्माण करते समय परीक्षा निर्माण के सिद्धान्तों का ध्यान नही रखा गया इसलिये इसमे कुछ दोष भी हैं। ये दोष निम्नलिखित हैं—

(i) सैम्पिल छोटी और कम प्रतिनिध्यात्मक है।
(ii) विलक्षण प्रमापों का प्रयोग किया गया है।

पिन्टनर पैटरसन बुद्धि परीक्षा मे सैगिन, हीले और नौक्स इन तीनो मनोवैज्ञानिको की परीक्षाओं का सम्मेल किया गया है उसमे कुल मिलाकर १५ कार्यों का समावेश है जिनको पूरा करने मे बालक की गति और शुद्धि दोनो का मापन होता है। कुछ कार्यों का मूल्याकन उनमे लगाये गये समय के आधार पर तथा अन्य कार्यों का मूल्याकन की गई अशुद्धियो के आधार पर होता है। यह परीक्षा अन्य तीन परीक्षाओ से अधिक विश्वस्त और प्रामाणिक थी। जो कार्य बालक को पूरे करने होते हैं उनमे से कुछ नीचे दिये जाते हैं—

(i) Mare and Fowl—एक घोडी तथा उसका बच्चा और कुछ मुर्गियाँ एक चित्र मे दिखाई गई हैं इस चित्र से कुछ अश काट लिये गये हैं। बालक को इन अशो का पूरा करना पडता है।

(ii) Saguin Form Board

(iii) Five Figure Form Board—पाँच ज्यामितीय आकृतियो मे से प्रत्येक आकृति को दो या तीन भागो मे बाँट दिया गया है। छात्रो को उन टुकडो की सहायता से छेद पूरे करने पडते हैं।

(iv) Two Figure Form Board

(v) Cousin Form Board—आपस मे मिलती जुलती आकृतियो मे छेद कर दिये गये हैं। छात्र को इन छेदो को अशो से भरना पडता है।

(vi) Manikin—लकडी की बनी मनुष्य की आकृति टुकडे टुकडे कर दिये गये हैं। छात्र उन टुकडो को जोडकर आकृति पूरा करता है।

(vii) Features profile—लकडी से बनी मनुष्य के चेहरे की आकृति को कई टुकडों मे विभक्त कर दिया गया है जिन्हें बालक निश्चित समय मे जोडता है।

(य) पोटियस मेज टैस्ट (Porteus Maze test) मे ३—१५ वर्ष के बालकों की बुद्धि का मापन करने के लिये विभिन्न कठिनाई वाली भूलभुलैयाँ दी जाती हैं। बालक कागज से पैंसिल की नोक उठाये बिना ही प्रवेश द्वार से घुस कर निष्कासन द्वार से बाहर निकलता है। उसे आदेश दे दिया जाता है कि वह न तो किसी लाइन को क्रौस ही करे और न किसी गलत रास्ते को ही अपनाये। कुशाग्र बुद्धि वाले बालक समय की चिन्ता किये बिना ही सीधे से सीधा रास्ता अपनाने का प्रयत्न करते है। यह परीक्षा बालक मे सूझ (Insight) की शक्ति तथा उसकी सयोजन शक्ति (Planning capacity) का मापन करती है। जैसे ही बालक गलती करता है उसे रोककर दूसरी समान कठिनाई की Maze दे दी जाती है। यदि इस बार भी गलती करता है तो इस स्तर पर असफलता अकित की जाती है लेकिन दुबारा गलती को शुद्ध नही करने दिया जाता।

(फ) कोज की घन निर्माण (Koh's Cube Construction) परीक्षा मे एक एक घनाकार टुकडो से, जिनकी सतह लाल, नीली, सफेद, लाल सफेद और नीली पीली होती है, एक कार्ड पर छपे डिजायनो के अनुसार घनाकार टुकडो को सजाकर डिजायन तैयार करता है। यदि वह निश्चित समय से पूर्व ही डिजायन तैयार कर लेता है तो उसे विशेष अक मिल जाता है।

Q 17 Explain how you will test the intelligence of a child of 11 years with the Bhatia's Battery ?

Ans भाटिया की बुद्धि परीक्षा माला कुछ परीक्षाओ का समूहमात्र है जो ११ से १६ वर्ष के बालको एव बालिकाओ की बुद्धि को नापने के लिये तैयार की गई है। इस परीक्षामाला मे ५ परीक्षाएँ सम्मिलित की गई हैं

(१) कोज ब्लोक टैस्ट (Koh's Block test)
(२) एलेक्जैण्डर्स पास एलोग टैस्ट (Alexander's pass Along test)
(३) पैटर्नड्राइ ग टैस्ट (Pattern Drawing test)
(४) तात्कालिक स्मृतिमापी परीक्षा (Immediate Memory test)
(५) चित्रपूर्ति परीक्षा (Picture Completion test)

इन परीक्षाओ मे बालक अपनी विश्लेषणात्मक एव सश्लेषणात्मक शक्ति का परिचय देता है। प्रत्येक परीक्षा दो पदो मे विभाजित रहती है। पहले सरल भाग की प्रत्येक item को पूरा करने

क्षेत्र में सबसे पहली प्रमापयिक बुद्धि परीक्षा थी आर्मी बीटा जो विदेशी तथा अंग्रेजी से भिन्न भाषा भाषी अथवा अशिक्षित सिपाहियों की बुद्धि का परीक्षण करने के लिए तैयार की गई थी। इस परीक्षा का उपयोग उन सभी सिपाहियों की बुद्धि का मापन करने के लिए किया गया था, जिनका प्राप्तांक एक निश्चित अंक से नीचे था।

आर्मी बीटा की विशेषताएँ—इस परीक्षा में दिए जाने वाले निर्देश gesture, fantomime और demonstration के माध्यम से दिये जाते थे। परीक्षक इन आदेशों के देने के साथ-साथ वह कार्य भी करता जाता था जो उसे परीक्षा काल में करने पड़ते थे। इस परीक्षा का ढाँचा बिल्कुल वैसा ही था जैसा कि आर्मी अल्फा का था क्योंकि इसका प्रयोग आर्मी अल्फा की पूर्ति परीक्षा के रूप में किया गया था।

इस परीक्षा में परीक्षण पदों को निम्न सात उपपदों में विभक्त किया जा सकता है—

(अ) Maze—पोटियम की भूलभुलैइयों की तरह परीक्षण पद कठिनाई के अनुसार सजाये जाते हैं।
(ब) Cube Analysis—प्रत्येक ढेर में लगे घनों की संख्या ज्ञात करनी पड़ती है।
(स) Digit symbol—एक कुंजी (key) में दिए गए code के अनुसार प्रत्येक अंक के स्थान पर उचित संकेत (symbol) प्रतिस्थापित करना पड़ता है।
(द) Number checking—३ से ११ अंक वाली दो-दो संख्याओं को ढूंढना पड़ता है।
(य) Picture completion—चित्र के खोए हुए भागों को ढूंढना पड़ता है।
(स) Geometric construction
(ह) X—O series

यह परीक्षा गति को अधिक महत्व देती है। इन सभी उप परीक्षाओं का समय सीमित है। ये परीक्षाएँ Perceptual speed और Spatial orientation का मापन करती हैं।

पिन्टनर-पैटरसन टैस्ट—दूसरी प्रमापयिक परीक्षा पिन्टनर पैटरसन टैस्ट (Pintner Patterson Non-Language Test) थी। इसका निर्माण बहरे व्यक्तियों अथवा ऐसे छात्रों की बुद्धि का मापन करने के लिए किया गया था जिनका भाषा सम्बन्धी पिछड़ापन इस सीमा तक पहुँच गया था कि उनकी बुद्धि का मापन किसी भी शाब्दिक परीक्षा द्वारा नहीं हो सकता था। इस परीक्षा में भी निर्देश या तो मौखिक रूप से दिए जाते हैं अथवा pantomime के रूप में। इस परीक्षा के परीक्षण पद बहु निर्वाचन (multiple choice) वाले हैं जैसा कि नीचे दिए गए पदों से ज्ञात हो सकता है—

(१) चित्र खींचना (Figure drawing)—उस रेखा को चुनो जो यह दिखावे कि यदि बाईं ओर दी गई आकृति में वह डाल दी जाय तो उस आकृति के दो ऐसे भाग हो जायें जो दाईं ओर दिखाए गए हों।

(२) व्युत्क्रम आरेखन (Reverse drawing)—बाईं ओर दो आकृतियाँ समरूपी हैं लेकिन दूसरी आकृति पलट दी गई है और एक रेखा उसमें से गायब कर दी गई है। दी हुई चार रेखाओं से उस रेखा को ढूँढो।

(३) प्रतिकृति सश्लेषण (Pattern synthesis)—यदि बाईं ओर खींची गई दो आकृतियाँ एक दूसरे के ऊपर रख दी जायें तो दाईं ओर दी गई चार आकृतियों में से कौन सी आकृति बनेगी।

अन्य परीक्षण पद गति क्रम (movement sequence), मैनीकिन (manikin) और पेपर फोल्डिंग से सम्बन्ध रखते हैं।

अशाब्दिक बुद्धि परीक्षाओं की समीक्षा—यदि अशाब्दिक बुद्धि परीक्षाओं का विश्लेषण किया जाय तो यह पता चलेगा कि ये सामान्यत दो बातों का मापन करती हैं। ये दो बातें हैं—

(अ) Spatial
(ब) Perceptual

लेकिन ये शाब्दिक परीक्षाओं का स्थान नहीं ले सकती क्योंकि न तो तर्क शक्ति का मापन कर सकती हैं न प्रत्यय निर्माण (concept formation) शक्ति का ही।

संस्कृति के प्रभाव से विहीन बुद्धि परीक्षाओं का महत्व—अशाब्दिक बुद्धि परीक्षाओं का निर्माण इसलिए हुआ था कि भिन्न-भिन्न संस्कृतियों में पाले पोसे गए व्यक्तियों की बुद्धि का तुलनात्मक अध्ययन सम्भव हो सके। लेकिन इन अमापीय बुद्धि परीक्षाओं में भी भिन्न-भिन्न संस्कृतियों का प्रभाव दिखाई पड़ने लगा। उदाहरण के लिए आर्मी बीटा परीक्षा में चित्र पूर्ति के लिए ऐसी वस्तुएँ रखी गईं जो अन्य संस्कृतियों में पाले पोसे जाने वाले व्यक्तियों के लिए अपरिचित थी, अत आवश्यकता है संस्कृति के प्रभाव से विहीन परीक्षाओं के निर्माण की।

अनेक परीक्षाएँ ऐसी बनाई गईं जिनको संस्कृति के प्रभाव से विहीन रखने का प्रयास किया गया फिर भी वे पूरी तरह से इस प्रभाव से स्वतन्त्र न रह सकी। कोई भी व्यक्ति *Culture* free vacuum में साँस नहीं लेता। अत यह सोचा गया कि यदि किसी परीक्षा को संस्कृति के प्रभाव से पूर्णत स्वतन्त्र बनाना है तो परीक्षा की विषय वस्तु ऐसी होनी चाहिए जो सभी संस्कृतियों में मिलती जुलती हो। यह कार्य भले ही सैद्धान्तिक रूप से सही हो किन्तु व्यावहारिक रूप में कठिन है।

कोई भी परीक्षा विशेष सांस्कृतिक प्रभाव से पूरी तरह मुक्त नहीं रह सकती भले ही उसमें सभी संस्कृतियों के सामान्य तत्वों का समावेश क्यों न किया जाय। अत यह विचार आया कि cross culture test तैयार किए जायें।

संस्कृति स्वतन्त्र परीक्षाएँ (Cross culture Test) के कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं—

(i) International Group Test by Dodd 1926
(ii) Leeter International Performance Scale—Proteus
(iii) Culture free Test of Intelligence—Cattell
(iv) Progressive Matrices—Raven
(v) Navy Northwestern Matrices Test
(vi) Semantic Test of Intelligence—Harvard.

अध्याय ८

अभियोग्यता परीक्षण

(Measurement of Aptitudes)

Q 1 Define the term 'Aptitudes'. How are aptitudes related to other abilities ?

Ans अभियोग्यता का अर्थ (Meaning of Aptitude)—प्रत्येक शक्ति अथवा योग्यता [illegible]

कभी भले ही न किया हो। किन्तु किसी विशेष परिस्थिति मे पडकर उस योग्यता का प्रकाशन करने लगते हैं जो इन कार्यों के लिये आवश्यक हैं। इन कार्यों के लिए प्रशिक्षण मिलने पर ये योग्यताएँ प्रस्फुरित होने लगती हैं।

वे गुप्त योग्यताएँ जो औपचारिक अथवा अनौपचारिक प्रशिक्षण मिलने पर अभ्यास के फलस्वरूप प्रस्फुटित होने लगें अभियोग्यताएँ कहलाती हैं।

जिन व्यक्तियों मे गुप्त शक्तियाँ होती हैं वे प्रशिक्षण पाने पर जीवन मे सफलता प्राप्त करते हैं और जिन व्यक्तियो मे ये गुप्त शक्तियाँ नहीं होतीं अभ्यास और प्रशिक्षण पाने पर भी असफल होते हैं। अभियोग्यता का सम्बन्ध भविष्य से होता है इसलिये वह क्षमता (Capacity) से भिन्न होती है जिसका सम्बन्ध केवल वर्तमान से ही होता है। अत अभियोग्यता मे निम्नांकित दो तत्वों की प्रधानता होती है—

(अ) जिस कार्य के लिये व्यक्ति मे अभियोग्यता है उसमे भावी सफलता पाने की सम्भावना।

(ब) उस अभियोग्यता के विकास और प्रस्फुटन के लिये प्रशिक्षण एव अभ्यास की आवश्यकता।

इन दोनो बातों को ध्यान मे रखकर बिंघम ने अभियोग्यता की परिभाषा निम्न प्रकार से दी है।[1]

"अभियोग्यता वह तत्परता अथवा सामान है जिसकी किसी कार्य अथवा देश मे सफलता पाने के लिये आवश्यकता होती है और जिसका प्रस्फुटन अभ्यास तथा प्रशिक्षण द्वारा सम्भव होता है।"

इस परिभाषा मे इस बात पर बल दिया गया है कि अभियोग्यता भावी सफलता की द्योतक है। जिस पेशे अथवा कार्य के लिये व्यक्ति मे अभियोग्यता है उस कार्य अथवा पेशे मे व्यक्ति वर्तमान मे पूर्ण कुशल नहीं है। कौशल तो अभी आना है—प्रशिक्षण और अभ्यास के उपरान्त।

---

1. [illegible] ded as symp- [illegible] some (usually [illegible] the ability to [illegible] —Bingham.

व्यक्ति में गुप्त शक्ति वर्तमान है किसी विषय को सीखने अथवा किसी कार्य को करने की। इस गुप्त शक्ति की अभिव्यक्ति होती है अभियोग्यता में।[1]

व्यक्ति में जिस कार्य को करने की गुप्त शक्ति वर्तमान है उस कार्य को सीखने या पूरा करने में उसे आनन्द की प्राप्ति होती है और वह कार्य रोचक प्रतीत होता है इसलिये अभियोग्यता और अभिरुचि समानार्थी प्रत्यय मालूम होते हैं।

अभियोग्यता परिभाषा का विश्लेषण—अभियोग्यता को एक प्रकार की वर्तमान अवस्था माना गया है लेकिन इस परिभाषा में यह निश्चित रूप से नहीं कहा गया है कि योग्यताएँ या वह गुण व्यक्ति को प्रकृति से मिला है अथवा उसने अपने अनुभव के आधार पर अर्जित किया है। यह धारणा कि अभियोग्यताएँ प्रकृतिदत्त होती हैं ठीक नहीं प्रतीत होती। व्यक्ति की प्राकृतिक रुचि अथवा सामान्य क्या है निश्चित रूप से नहीं बताया जा सकता। यदि किसी प्रकार उसकी प्रकृतिदत्त अभियोग्यता का मापन भी कर लिया जाय तो मार्ग निर्देशन (Vocational and Educational Guidance) में उसकी उपयोगिता भी क्या है? मार्ग निर्देशक तो केवल यह जानना चाहता है कि व्यक्ति वर्तमान में कैसा है और इस ज्ञान के सहारे यह अनुमान लगाना चाहते हैं कि भविष्य में वह कैसा बनेगा।

अभियोग्यताएँ केवल गुप्त शक्तियाँ ही नहीं होतीं। वे गुप्त शक्ति के अतिरिक्त कुछ और भी होती हैं। यदि व्यक्ति 'अ' में कार्य 'क' के लिये अभियोग्यता है तो इसका अर्थ है उसमें उस कार्य को कर सकने की क्षमता का रहना, और उस कार्य के लिये उसमें तत्परता का होना। विघम के कथनानुसार हम किसी व्यक्ति में उस समय अभियोग्यता मानेंगे जिस समय उसमें निम्नलिखित दो प्रकार की तत्परताएँ हों—

(अ) कार्य में दक्षता प्राप्त करने की तत्परता
(ब) उस दक्षता का उपयोग करने के लिये कार्य में विशेष रुचि विकसित करने की तत्परता।

कार्य में दक्षता पाने के लिये वही व्यक्ति तत्पर माना जा सकता है जिसका शारीरिक, मानसिक और भावात्मक गठन कार्यानुकूल हो। साथ ही उसमें उस कार्य के लिये विशेष रुचि विकसित करने की तत्परता भी होनी चाहिये।

इस परिभाषा में अभियोग्यता का सम्बन्ध योग्यता से स्थापित किया गया है। योग्यता से हमारा तात्पर्य होता है कार्य करने की शक्ति; जिस कार्य के लिये हमें अभियोग्यता होती उस कार्य को पूरा करने के लिए हममें शक्ति विद्यमान होनी चाहिये। कार्य को पूरा करने की शक्ति का अर्थ है—उस कार्य के लिये आवश्यक शारीरिक और गतिवाही क्रियाओं को सम्पन्न करने, जटिल मानसिक क्रियाओं को पूरा करने, धैर्य और मन की एकाग्रता से काम करने, उचित निर्णय लेने, समस्याजनक परिस्थिति में पड़कर उसका हल ढूंढ सकने की शक्ति। इस परिभाषा में योग्यता शब्द का व्यापक अर्थ लिया गया है कोई विशेष अर्थ नहीं लिया गया। यहाँ पर योग्यता से हमारा आशय न तो किसी गुप्त शक्ति (potentiality) से ही है, न वास्तविक शक्ति (actual power) से ही और न किसी प्रकृतिदत्त शक्ति से ही और न किसी अर्जित शक्ति से (acquired power)। मनोवैज्ञानिकों ने योग्यता के तीन भेद किये हैं—

(क) अर्जित शक्ति (Proficieacy)
(ख) गुप्त शक्ति (Capacity)
(ग) भावी योग्यता (Capability)

किसी कार्य में अभ्यास के फलस्वरूप विशेष दक्षता प्राप्त कर लेने से अर्जित शक्ति (proficiency) उपलब्ध होती है, जब व्यक्ति किसी योग्यता के विकास की सीढ़ी पर होता है तब कहा जाता है कि उसमें कार्य करने की भावी योग्यता (Capability) है, जब व्यक्ति में कोई ऐसी शक्ति विद्यमान होती है जो उचित अवसर मिलने पर प्रस्फुटित हो जाय तब कहा जाता है कि उसमें गुप्त शक्ति (Capacity) विद्यमान है।

---

1. His aptitude is however a present condition deemed to be indicative of his potentialities. —Bingham.

अभियोग्यता में न तो पूरी तरह अर्जित शक्ति (proficiency) का भाव है, न गुप्त शक्ति (Capacity) का और न भावी योग्यता (Capability) का ही। वह तो व्यापक अर्थ में योग्यता का पर्यायवाची है।

अभियोग्यता कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो व्यक्ति के पास हो अथवा जिस पर व्यक्ति अधिकार प्राप्त कर सकता हो। यह तो ऐसा विशेष गुण है अथवा गुणों का समूह है जो व्यक्ति की विशेषताओं का सूचक होता है। वह तो व्यक्तित्व का अभिन्न अंग है।[1]

Q 2 Discuss the fundamental assumptions underlying the measurement of Aptitudes

Ans अभियोग्यताओं (aptitudes) को हमने गुप्त शक्तियों का रूप माना है। ये गुप्त शक्तियाँ तभी प्रस्फुटित होती हैं जब व्यक्ति को प्रशिक्षण प्राप्त होता है। इन गुप्त शक्तियों में तीन विलक्षणताएँ हैं—

(अ) किसी व्यक्ति में सभी गुप्त शक्तियाँ समान रूप से सशक्त नहीं होतीं।
(आ) इन गुप्त शक्तियों के अनुसार वैयक्तिक विभिन्नताएँ होती हैं।
(इ) ये वैयक्तिक विभिन्नताएँ अपरिवर्तित रहती है और गुप्त शक्तियों की अन्तर्व्यक्ति विभिन्नता स्थिर रहती है।

(अ) अभियोग्यताओं की अन्तर्व्यक्ति विभिन्नता (Intra-individual differences of aptitudes)—कोई भी व्यक्ति सभी गुप्त शक्तियों में पूर्णतः सशक्त नहीं होता। वह कुछ में अधिक सशक्त होता है कुछ में कम। इस प्रकार की विभिन्नता अन्तर्व्यक्ति विभिन्नता कहलाती है। ये अन्तर्व्यक्ति विभिन्नताएँ कभी-कभी इतनी अधिक होती हैं कि व्यक्ति की सर्वोत्तम और सबसे निकृष्ट गुप्त शक्तियों का अन्तर बहुत अधिक होता है। यदि यह अन्तर त्याज्य होता तो व्यक्ति किसी भी काम को अपना सकता था और उसमें उचित अवसर पाने पर सफलता प्राप्त कर सकता था।

(ब) अभियोग्यता सम्बन्धी वैयक्तिक विभिन्नताएँ (Individual Difference in Aptitudes)—गुप्त शक्तियों के हिसाब से व्यक्ति एक दूसरे से भिन्न होते हैं क्योंकि न तो उन्हें जन्म से समान गुप्त शक्तियाँ प्राप्त होती हैं, और न उन गुप्त शक्तियों का विकास ही समान रूप से हो पाता है। इसलिए विभिन्न लोगों के लिए भिन्न-भिन्न पेशों का अपनाना आवश्यक हो जाता है।

इन वैयक्तिक विभिन्नताओं का प्रसार क्षेत्र (range of individual differences) इस प्रकार का होता है कि यदि किसी गुप्त शक्ति का पैमाना तैयार किया जाय तो ६८% व्यक्ति उस गुप्त शक्ति में औसत दर्जे के होंगे और शेष व्यक्ति या तो मध्यमान से कम या अधिक योग्यता वाले होंगे। दूसरे शब्दों में, कोई भी गुप्त शक्ति ऐसी नहीं है जो किसी व्यक्ति में पूर्णतः विद्यमान हो अथवा विद्यमान न हो। वह कुछ लोगों की शक्ति से कम और कुछ की शक्ति से अधिक होती है। ये गुप्त शक्तियाँ या तो normally distributed होती हैं या symmetical या bimodal, कुछ positively और कुछ negatively skewed होती हैं।

यदि कोई व्यक्ति किसी पेशे में अथवा शैक्षणिक योजना में भावी सफलता पाना चाहता तो उसे उस पेशे या कार्य को चुनना होगा। जिस पेशे अथवा कार्य के लिए आवश्यक अभियोग्यता की मात्रा उसमें उस पेशे में सफलता पाने वाले सामान्य व्यक्तियों से अधिक है।

अब चूँकि व्यक्ति में अन्तर्व्यक्ति (Intra individual) विभिन्नताएँ होती हैं इसलिए प्रश्न उठता है कि वह किस कार्य को अपनाये ताकि उसमें सफलता एवं सम्मान पा सके। मानलो व्यक्ति 'अ' की सभी गुप्त शक्तियों का मापन किया गया है और ये गुप्त शक्तियाँ है गणित, भाषा, हाथ की पकड़, शारीरिक शक्ति सम्बन्धी। इन शक्तियों में से कुछ में वह औसत से अधिक सशक्त और कुछ में औसत से कम सशक्त। लेकिन यह प्रयोगात्मक माध्य के आधार पर सिद्ध हो चुका

1. "Aptitude refers to those qualities characterising a person's ways of behaviour which serve to indicate how well he can learn to meet and solve certain specified kinds of problems .. Aptitude is an integral aspect of him as a person—an aspect of personality." —Binyham

है कि उसकी सर्वश्रेष्ठ और सबसे निकृष्ट शक्ति के बीच अन्तर सामान्यतः काफी बड़ा होता है ।[1]

इसका अर्थ यह है कि जब तक व्यक्ति को अपनी उस शक्ति का पता नहीं लगता जिससे वह शक्तियों की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ एवं सशक्त है तब तक वह किसी पेशे में समायोजन स्थापित ही नहीं कर सकता । समुपदेष्टा (Counseller) का कर्तव्य है कि वह व्यक्ति की उस गुप्त शक्ति को उससे बताए जिसमें वह सर्वश्रेष्ठ है और जिसके विकास के उचित अवसर मिल जाने पर वह जीवन में सफलता पा सकता है ।

यह गुप्त शक्ति जिसमें कोई व्यक्ति अधिक श्रेष्ठ होता है भविष्य में भी उसी स्तर पर बनी रहती है अर्थात् यदि किसी व्यक्ति में अध्यापकी करने की गुप्त शक्ति इस समय वर्तमान है और यदि प्रशिक्षण का अवसर मिल जाय तो यह शक्ति और प्रबल हो जायगी । प्रशिक्षण के उपरान्त भी उस शक्ति की प्रबलता अन्य गुप्त शक्तियों की अपेक्षा अधिक रहेगी । यह गुप्त शक्ति यद्यपि समय के परिवर्तन के साथ कम बढ़ हो सकती है किन्तु उसमें परिवर्तन निश्चित सीमाओं के भीतर ही होता है ।

अभियोग्यता परीक्षण की यह मुख्य उपकल्पना (hypothesis) सदैव माननी पड़ेगी कि व्यक्ति विशेष की अभियोग्यताएँ स्थिर होती हैं । उदाहरण के लिए यदि आज व्यक्ति 'क' में अध्यापकी करने की शक्ति का प्राचुर्य तथा प्रशासकीय कार्य करने की क्षमता का अभाव है तो यह कभी सम्भव नहीं है कि वर्ष दो वर्ष बाद ये योग्यताएँ एक दूसरे का स्थान ग्रहण कर लें । समय बीतने के साथ परिवर्तन हो सकता है लेकिन यह परिवर्तन अधिक नहीं होगा ।

अतः अभियोग्यताओं का परीक्षण करते समय निम्नलिखित तीन बातों को ध्यान में रखना होगा :

(अ) किसी व्यक्ति विशेष की सभी गुप्त शक्तियाँ समान रूप से सशक्त नहीं होतीं ।
(आ) इन गुप्त शक्तियों के हिसाब से व्यक्तियों में आपस में विभिन्नताएँ होती हैं ।
(इ) इन गुप्त शक्तियों में अन्तर करीब-करीब स्थिर होते हैं ।

Q 3. Discuss the vital factors involved in 'Aptitude' which have to be measured while measuring aptitudes.

Ans. अभियोग्यता के घटक—जिस गुप्त शक्ति के कारण व्यक्ति किसी कार्य अथवा पेशे में सफलता पा सकता है, यदि उनका विश्लेषण किया जाय तो निम्नलिखित तीन तत्व दिखाई देंगे—

(अ) बुद्धि
(ब) रुचि
(स) कार्य अथवा पेशेवर विलक्षणताएँ

पेशेवर अथवा शैक्षणिक अभियोग्यताओं का एक महत्वपूर्ण घटक है बुद्धि । किसी शैक्षणिक कार्य में सफलता पाने के लिए व्यक्ति में सामान्य बुद्धि (General intelligence) और शैक्षणिक अभियोग्यता की आवश्यकता होती है, इसी प्रकार किसी पेशे में सफलता पाने के लिये भी व्यक्ति में सामान्य बुद्धि तथा पेशेवर अभियोग्यता (vocational aptitudes) होने चाहिये ।

सामान्य बुद्धि का पेशों की सफलता में विशेष सम्बन्ध होता है, इसका साक्ष्य है—

(i) अलग-अलग पेशों में काम करने वाले लोगों के औसत बुद्धि अंकों में अन्तर ।
(ii) एक ही पेशे में अलग अलग प्रज्ञाक वाले लोगों के ।

मिलने वाली सफलता की मात्रा की भिन्नता । उदाहरण के लिए जब Army general classification test भिन्न-भिन्न पेशे वाले लोगों को दिया गया तब उन पेशों को अपनाने वाले लोगों के औसत अंक इस प्रकार आये :

---

1. An average person's best capacities exceed his poorest by nearly twice as much as his poorest are above zero —Hull

लेक्चरार	१२६	शीट मैटल वर्क्स	१०७
अध्यापक	१२४	मशीन चलाने वाला	१०४
वकील	१२४	बढई	१०१
मुख्य लिपिक	१२२	ड्राइवर	६८
ड्राफ्टमैन	१२०	रसोइया	६६
क्लर्क	११६	मजदूर	६३
सेल्समैन	११५	नाई	६३
स्टोर मैनेजर	११५	खान खोदने वाला	८७
इलैक्ट्रीशियन	१०६	किसान का नौकर	८६

ऊपर की तालिका का अध्ययन करने से यह तथ्य प्रकट होगा कि एक पेशे से दूसरे पेशे मे बुद्धि अको या अकों के औसत मे भिन्नता होगी। इसका अर्थ यह है कि भिन्न-भिन्न पेशों में सफलता पाने के लिये न केवल भिन्न-भिन्न प्रकार की शिक्षा की ही जरूरत होती है वरन् भिन्न-भिन्न मात्रा में बुद्धि की भी आवश्यकता होती है।

इसके अतिरिक्त यदि एक ही पेशे को अपनाने वाले व्यक्तियों की बुद्धि का मापन किया जाय तो उन सभी व्यक्तियो के बीच बुद्धिगत विभिन्नताएँ मिलेंगी। ऊपर की तालिका मे यद्यपि अध्यापकों का औसत अक १२४ और सेल्समैनो का ११५ दिया गया है। फिर भी बहुत से सेल्स-मैन अनेक अध्यापकों से बुद्धि मे श्रेष्ठ होंगे। अत. सदुपदेष्टा (counseller) को अपनी सम्मति देते समय अपने ग्राहक (client) से निम्नलिखित प्रश्न पूछना होगा।

क्या तुम ऐसे पेशे मे जाना चाहोगे जिसमे तुम बुद्धि के हिसाब से अन्य लोगो की तुलना मे अधिक श्रेष्ठ हो अथवा क्या तुम ऐसे पेशे मे जाना पसंद करोगे जिसमे तुम सामान्य बुद्धि वाले हो अथवा क्या तुम ऐसे पेशे को पसन्द करोगे जिसमे काम करने वाले अन्य लोगों की अपेक्षा तुम कम बुद्धिमान हो।

जिन लोगो मे आत्म विश्वास की कमी हो उनको ऐसे पेशो मे जाने की राय दी जा सकती है जिनमे काम करने वाले अन्य लोगो की अपेक्षा वे अधिक बुद्धिमान हैं, इसके विपरीत जिन लोगो मे आत्म विश्वास का आधिक्य होता है वे उन पशो में भी सफलता पा सकते हैं जिनमे अन्य लोग उनसे अधिक प्रज्ञावान् हैं। लेकिन यदि किसी व्यक्ति मे किसी पेशे के लिये उपयुक्त प्रज्ञा की कमी है तो वह पेशा कभी अपनाना नही चाहिये। यही कारण है कि इन्जीनियरिंग, अध्यापकी, वकालत, डाक्टरी के पेशेवर विद्यालय (Professional schools) जब प्रशिक्षणार्थियों का चुनाव करते हैं तब उनकी बुद्धि का मापन अवश्य करते हैं और यह देख लेते हैं कि अमुक व्यक्ति आवश्यक बौद्धिक योग्यता से कम योग्यता तो नही रखता नहीं तो उस पर प्रशिक्षणार्थ किया गया व्यय व्यर्थ जायगा।

रुचि—किसी पेशे मे भावी सफलता पाने के लिये व्यक्ति मे उसके प्रति रुचि या सम्मान होना चाहिये। यदि व्यक्ति 'क' पेशे 'ख' मे लग जाने की प्रवृत्ति ही नहीं रखता तो वह उसमे सफलता कैसे पा सकता है। किसी काम मे लग जाने की प्रवृत्ति ही रुचि है।[1] रुचि की प्रबलता ही शैक्षणिक और व्यावसायिक योजनाओ के लिये आवश्यक है।

बिंघम (Bingham) ने इसीलिये रुचि को अभियोग्यता अथवा अभिरुचि का प्रधान तत्व माना है। उसका कहना है कि यदि अन्य बातें समान रहे तो वह व्यक्ति ही जो किसी पेशे मे विशेष रुचि रखता है उस पेशे मे प्रशिक्षण पाने का अधिकारी है।

यह रुचि क्या है? उसकी प्रकृति क्या है? और उसका मापन कैसे होता है इन प्रश्नों का उत्तर आगे दिया जायगा। लेकिन इतना अवश्य निश्चित है कि अभियोग्यता परीक्षण के लिये जिस प्रकार बुद्धि परीक्षण आवश्यक है उसी प्रकार रुचि परीक्षण भी नितान्त आवश्यक है।

पेशेवर विलक्षणताएँ—किसी पेशे मे सफलता पाने के लिये जिस प्रकार उस पेशे के लिये नितान्त आवश्यक बौद्धिक योग्यता और रुचि अपेक्षित होती हैं उसी प्रकार उस पेशे की

1. An interest is a tendency to become absorbed in an experience and to continue it. It is the nature and strength of these tendencies which have meaning for educational and vocational plans.

विलक्षणताओं का अध्ययन भी करना पड़ता है। यदि कोई व्यक्ति किसी पेशे में सफलता पाना चाहता है तो उनमें उसी से सम्बन्धित अभियोग्यता (Vocational Aptitude) होना चाहिए।

पेशों के आधार पर पेशेवर अभियोग्यताओं का वर्गीकरण नीचे दिया जाता है :—

(१) Mannual Aptitude
(२) Mechanical Aptitude
(३) Clerical Aptitude
(४) Professional Aptitude
(५) Scholastic Aptitude

Q. 4. What is the main principle of measuring aptitudes ?

Ans अभियोग्यता परीक्षण का मूलभूत सिद्धान्त—चूंकि किसी कार्य अथवा पेशे के लिये हमारी अभियोग्यता योग्यताओं की वह वर्तमान अवस्था है जिसके कारण प्रशिक्षण मिलने की सुविधा प्राप्त होने पर भावी साफल्य मिल सकता है। अभियोग्यता परीक्षण करते समय हम व्यक्ति उन योग्यताओं अथवा विशेषताओं का मापन करते हैं जो उसमें इस समय वर्तमान होती है। यह परीक्षण हमें यह बता सकता है कि व्यक्ति इस समय या भविष्य में प्रशिक्षण के फलस्वरूप क्या क्या कर सकता है और किस प्रकार कर सकता है।

अभियोग्यता परीक्षण में ऐसे उद्बोधकों का एक ऐसा सैम्पिल प्रस्तुत किया जाता है जो व्यक्ति की वर्तमान विशेषताओं का मापन करे। इन उद्बोधकों के प्रति व्यक्ति जैसी अनुक्रियाएं करता है उन अनुक्रियाओं के ढाँचे के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि व्यक्ति की भावी योग्यताएं क्या हो सकती हैं और किन-किन स्थलों पर भविष्य में वह सफलता प्राप्त कर सकता है।

अभियोग्यता परीक्षण व्यक्ति की वर्तमान अवस्था की जाँच करता है और भविष्य के लिये अनुमान लगाता है व्यक्ति की भावी शक्तियों का आकलन (estimate) वर्तमान शक्तियों के आधार पर किया जाता है।

अत अभियोग्यता परीक्षण में अभियोग्यता का प्रत्यक्ष मापन नहीं होता उसका आकलन मात्र किया जाता है।[1]

अभियोग्यता परीक्षण में दूसरी मूलभूत बात यह है कि व्यक्ति की वर्तमान योग्यताओं को देखकर उसकी योग्यताओं की तुलना उन लोगों से की जाती है जो किसी पेशे विशेष में सफलता प्राप्त कर चुके हैं। उदाहरण के लिये यदि हमें विज्ञान वर्ग के लिये शैक्षणिक अभियोग्यताओं का परीक्षण करने के लिये कोई परीक्षा तैयार करनी है तो उन योग्यताओं का मापन करेंगे जो विज्ञान में सफलता दिला सकती हैं और बालकों द्वारा प्राप्त अंकों की तुलना विज्ञान वर्ग में सफलता पाने वाले बालकों द्वारा इसी परीक्षण में प्राप्त अंकों से करेंगे। इस परीक्षा के परीक्षण पद (items) विज्ञान की निष्पत्ति (achievement) परीक्षा की तरह नहीं होते लेकिन उनके उत्तरों से यह जानकारी अवश्य हासिल की जा सकती है कि व्यक्ति में उस वस्तु को परिग्रहण करने की कितनी क्षमता है। व्यक्ति की वर्तमान योग्यता का मूल्यांकन कई प्रकार से किया जाता है और उस योग्यता के आधार पर उसकी सफलता का अनुमान लगाया जाता है।

Q 5 Describe some manual aptitude tests and discuss as to what they measure

Ans हस्तकौशल सम्बन्धी पेशों में आवश्यक योग्यताओं का विश्लेषण

हाथों की सहायता से रोटी कमाने का काम साधारणतः सभी लोग करते हैं लेकिन कुछ पेशे ऐसे हैं जिनमें हस्तकौशल (manual skill) की ही आवश्यकता पड़ती है। ये पेशे हैं—

---

1 "The aptitude tests do not directly measure future accomplishments They measure present performance. The test data is simply a means of estimating those potentialities The estimate is necessarily in terms of probabilities."

(अ) Assemblers
(ब) Inspectors
(स) Artisans
(द) Craftsman
(य) Dentist
(र) Surgeons
(ल) Portrait Painters

Manual occupations मे हाथ से किए जाने वाले काम की प्रकृति अन्य पेशो में हाथ से किये जाने वाले काम से भिन्न होती है। इसके अतिरिक्त इन पेशो मे कुछ और योग्यताओ अथवा कौशलों की आवश्यकता होती है जैसे गतिवाही संयोजन (motor co-ordination); दाष्टिक और श्रवण सम्बन्धी विभेदीकरण (discrimination) जैसी कि सफेदी करने वालो और जुलाहो मे मिलती है। कलात्मक योग्यता जैसा कि रंगरेज मे होती है, संगीत के प्रति रुचि जैसी कि हारमोनियम ठीक करने वालो मे होती है, शरीर विज्ञान की जानकारी जैसी कि चीर फाड करने वाले सर्जन मे होती है। ऐसी ही अनेक योग्यताएँ manual occupations मे सफलता पाने में सहायक होती हैं।

Manual occupations मे कुछ ऐसे भी शामिल किये जा सकते है जिनके लिए न तो विशेष हस्त-कौशल की जरूरत होती है और न अंगुलियों को तेजी से चलाने की, न शारीरिक शक्ति की ही। उदाहरण के लिए वह मिल मजदूर, जिसे केवल चलती हुई मशीन को देखना ही देखना है, अपने कार्य मे किसी हस्तकौशल के न होते हुए भी सफल हो सकता है यदि उसमे समय की पाबन्दी हो। समय की पाबन्दी, ईमानदारी, विश्वासपात्रता आदि कुछ ऐसे भी गुण हैं जो कुछ पेशो मे हस्त-कौशल की अपेक्षा अधिक महत्व रखते हैं।

कुछ manual occupation ऐसे भी हैं जिनमें शारीरिक शक्ति की अत्यधिक मात्रा मे आवश्यकता पडती है। ऐसे पेशो मे वही व्यक्ति सफलता प्राप्त कर सकता है जिसकी भुजाओ मे बल हो, और पैरों की पिण्डलियो मे भार वहन करने की शक्ति हो। लोहे और इस्पात के कारखानों में काम करने वालो, खानों मे काम करने वालो, भारी उद्योगो (heavy industries) मे काम करने वालो को इसी शारीरिक शक्ति की जरूरत होती है।

शारीरिक शक्ति के अतिरिक्त इन कार्यों मे बुद्धि की भी आवश्यकता होती है। बहुत से शिक्षित व्यक्ति इन पेशो मे इसलिए प्रवेश कर जाते हैं कि उनके सुपरवाइज़र, फोरमैन, सुपरि-न्टेण्डेण्ट होने की अधिक सुविधाएँ होती हैं।

हस्तकौशल सम्बन्धी पेशों के लिए अभियोग्यता परीक्षाएँ—जिन कार्यों मे केवल शारीरिक शक्ति की ही आवश्यकता होती है उन कार्यों के लिए किसी भी परीक्षण की आवश्यकता नहीं होती। शारीरिक श्रम की अभियोग्यता (aptitude for heavy manual labour) के परीक्षण के लिए किसी भी प्रामाणिक परीक्षा की आवश्यकता नही होती। लेकिन बैंच पर बैठे-बैठे बड़ी तेजी से अंगुली चलाने अथवा शरीर के अन्य अंगो की गति करने की जिन पेशो मे जरूरत होती है, ऐसे पेशो मे सफलता की घोषणा करने वाली कुछ मुख्य परीक्षाओं का उल्लेख नीचे किया जाता है। ये परीक्षायें हैं—

(अ) Kemble's Pegboard or Matchboard
(ब) O'Connor's Finger Dexterity Test
(स) Tweezer Dexterity Test.
(द) Minnisota Manual Dexterity Test.
(प) Minnisota Spatial Relations Test
(फ) Steadiness Tests

(अ) **Kembles Pegboard**—एक पट पर कुछ छेदो की कतारें तैयार की गई हैं जिनमे व्यक्ति को सूइयाँ अथवा दियासलाई की तीलें घुसेड़नी पडती है वह भी कभी दायें हाथ से, कभी बायें हाथ से और कभी दोनों हाथो से अदल-बदल कर, इस काम को करने का समय भी निश्चित कर दिया जाता है।

(ब) **O'Connor's Finger Dexterity Test**—इस परीक्षा मे एक प्लेट मे १०० छेद कर दिये जाते है। प्रत्येक छेद इतना चौड़ा होता है कि २-३ पिन उसमे आ सकें। १०० पिनों मे से

भी सुलझाना पड़ता है। व्यक्ति को तुरन्त निर्णय लेना पड़ता है कि किसी विशेष अवसर पर क्या क्या काम करने पड़ते हैं और कैसे-कैसे करने हैं। समस्या समाधान के साथ साथ गणितिक, शाब्दिक और मशीन संचालन सम्बन्धी बुद्धि की भी आवश्यकता होती है।

मशीन संचालन सम्बन्धी जितनी योग्यताओं की जरूरत Skilled Trades में होती है उतनी योग्यताओं की जरूरत हाथ से काम करने वाले (Manual occupations) में नहीं होती। बुद्धि के अतिरिक्त ये योग्यताएँ हैं

(i) शक्ल का प्रतिबोधन (sense of form)
(ii) तीन विभा (Three dimensional) वाले ढाँचे (Structure) को समझने की शक्ति
(iii) स्थान सम्बन्धी बातों का प्रत्यक्षीकरण
(iv) मशीन सम्बन्धी कौशल (Mechanical ingenuity) और अन्वेषण करने की शक्ति
(v) Engineering aptitude
(vi) Manipulative intelligence
(vii) Practical intelligence

स्किल्ड ट्रेडस (Skilled Trades) में सफलता पाने के लिये व्यक्ति को मुख्यत तीन प्रकार की योग्यताओं की जरूरत होती है —

(अ) हस्तकौशल सम्बन्धी अभियोग्यताओं (Manual aptitudes)
(ब) मशीन संचालन सम्बन्धी अभियोग्यताओं (Mechanical aptitudes)
(स) बुद्धि (abstract intelligence)

मशीन संचालन सम्बन्धी अभियोग्यता परीक्षण (Mechanical Aptitude Tests)

इस अभियोग्यता का परीक्षण दो प्रकार की परीक्षाओं द्वारा होता है, वे हैं—

(i) कृत्य परीक्षाएँ (Performance tests)
(ii) लिखित परीक्षा (Paper pencil test)

कृत्य परीक्षाओं मे स्टैनक्विस्ट असैम्बली टैस्ट (Stenquist Assembly Test) और मिनीसोटा असैम्बली टेस्ट (Minnisota Assembly Test) प्रमुख है। स्टैन क्विस्ट असैम्बली टेस्ट में १० मशीनरी सम्बन्धी वस्तुओं को तोड़ फोड़ कर रख दिया जाता है। इसी प्रकार मिनीसोटा असैम्बली टैस्ट में ३३ ऐसे ही कार्य करने पड़ते हैं। ये Mechanical intelligence का मापन करती हैं।

वे बालकों के लिये अधिक विश्वस्त हैं और व्यक्तियों के लिये कम। जिस व्यक्ति को इन वस्तुओं से पूर्व परिचय होता है उसे परीक्षाओं में अच्छे अंक मिल जाते हैं अत उनके फलांक उसकी Mechanical intelligence का विशुद्ध मापन नहीं करते।

लिखित परीक्षाओं में निम्न दो प्रकार की योग्यताओं का मापन होता है :

(अ) वस्तुओं का वरिम प्रतिबोधन (Ability to perceive spatial relations of objective)

(ब) इन वरिम सम्बन्धों के विषय में सोचने की योग्यता (Ability to think of these spatial relations)

लिखित परीक्षाओं में उल्लेखनीय परीक्षाएँ हैं—

(i) Minnisota Paper Form Board
(ii) Mac Quarries Test of Mechanical Ability
(iii) O'Rourkes Mechanical Aptitude Test

(१) Minnisota Paper Form Board—इस परीक्षा में आकृतियों के अभिज्ञान (recognition) की गति का परीक्षण होता है। कोई व्यक्ति वरिम (Space) सम्बन्धी समस्याओं को कितनी तेज़ी से हल कर सकता है इस योग्यता का परीक्षण करने के लिये Army Beta के Geometrical construction Test से परीक्षण पद लिये गये हैं। इसका प्रयोग परीक्षा माला (Battery) की एक परीक्षा के रूप में किया जाता है।

भी सुलझाना पड़ता है। व्यक्ति को तुरन्त निर्णय लेना पड़ता है कि किसी विशेष अवसर पर क्या क्या काम करने पड़ते हैं और कैसे-कैसे करने हैं। समस्या समाधान के साथ साथ गणितिक, शाब्दिक और मशीन संचालन सम्बन्धी बुद्धि की भी आवश्यकता होती है।

मशीन संचालन सम्बन्धी जितनी योग्यताओं की जरूरत Skilled Trades में होती है उतनी योग्यताओं की जरूरत हाथ से काम करने वाले (Manual occupations) में नहीं होती। बुद्धि के अतिरिक्त ये योग्यताएँ हैं :

(i) शक्ल का प्रतिबोधन (sense of form)
(ii) तीन विभा (Three dimensional) वाले ढाँचे (Structure) को समझने की शक्ति
(iii) स्थान सम्बन्धी बातों का प्रत्यक्षीकरण
(iv) मशीन सम्बन्धी कौशल (Mechanical ingenuity) और अन्वेषण करने की शक्ति
(v) Engineering aptitude
(vi) Manipulative intelligence
(vii) Practical intelligence

स्किल्ड ट्रेडस (Skilled Trades) में सफलता पाने के लिये व्यक्ति को मुख्यतः तीन प्रकार की योग्यताओं की जरूरत होती है —

(अ) हस्तकौशल सम्बन्धी अभियोग्यताएँ (Manual aptitudes)
(ब) मशीन संचालन सम्बन्धी अभियोग्यताएँ (Mechanical aptitudes)
(स) बुद्धि (abstract intelligence)

मशीन संचालन सम्बन्धी अभियोग्यता परीक्षण (Mechanical Aptitude Tests)

इस अभियोग्यता का परीक्षण दो प्रकार की परीक्षाओं द्वारा होता है, वे हैं—

(i) कृत्य परीक्षाएँ (Performance tests)
(ii) लिखित परीक्षा (Paper pencil test)

कृत्य परीक्षाओं में स्टैन्क्विस्ट असेम्बली टैस्ट (Stenquist Assembly Test) और मिनीसोटा असैम्बली टैस्ट (Minnisota Assembly Test) प्रमुख हैं। स्टैन क्विस्ट असैम्बली टैस्ट में १० मशीनरी सम्बन्धी वस्तुओं को तोड़ फोड़ कर रख दिया जाता है। इसी प्रकार मिनीसोटा असैम्बली टैस्ट में ३३ ऐसे ही कार्य करने पड़ते हैं। ये Mechanical intelligence का मापन करती हैं।

ये बालकों के लिये अधिक विश्वस्त हैं और व्यक्तियों के लिये कम। जिस व्यक्ति को इन वस्तुओं से पूर्व परिचय होता है उसे परीक्षाओं में अच्छे अंक मिल जाते हैं अतः उसके फलांक उसकी Mechanical intelligence का विशुद्ध मापन नहीं करते।

लिखित परीक्षाओं में निम्न दो प्रकार की योग्यताओं का मापन होता है :

(अ) वस्तुओं का वरिम प्रतिबोधन (Ability to perceive spatial relations of objective)
(ब) इन वरिम सम्बन्धों के विषय में सोचने की योग्यता (Ability to think of these spatial relations)

लिखित परीक्षाओं में उल्लेखनीय परीक्षाएँ हैं—

(i) Minnisota Paper Form Board
(ii) *Mac Quarries Test of Mechanical Ability*
(iii) O'Rourkes Mechanical Aptitude Test

(१) Minnisota Paper Form Board—इस परीक्षा में आकृतियों के अभिज्ञान (recognition) की गति का परीक्षण होता है। कोई व्यक्ति वरिम (Space) सम्बन्धी समस्याओं को कितनी तेजी से हल कर सकता है इस योग्यता का परीक्षण करने के लिये Army Beta के Geometrical construction Test से परीक्षक पद लिये गये हैं। इसका प्रयोग परीक्षा माला (Battery) की एक परीक्षा के रूप में किया जाता है।

अब निम्नलिखित प्रश्न के उत्तर दो । इन चित्रो की जोडी किस काम के लिये प्रयोग मे आती है—

(१) नट जोडने के लिए
(२) बक्स मे बोर्ड जडने के लिए
(३) दरवाजा लगाने के लिए

Q 7. Analyse the abilities that are required for clerical aptitudes and describe some of the clerical aptitude tests

Ans. लिपिकीय अभियोग्यता के मुख्य घटक—लिपिक का काम कागज-पत्रो से ही अधिक रहता है। वह तैयार करता है—memo, correspondence और records जिनका सम्बन्ध कागज पत्रो से ही होता है। पत्रो पर अंकित होते हैं शब्द, चिन्ह और संख्यायें। लिपिक उनको पढता है, तुलना करता है, नकल करता है, पढने के बाद निर्णय देता है। वह काम करता है निम्न यन्त्रो से—

(अ) Slide Rules
(ब) Typewriters
(स) Duplicators
(द) Calculating machines
(य) Cabinets
(फ) Card Indices
(ह) Telephones

उसे कभी तो टेलीफून पर बात करनी होती है, कभी पर्यवेक्षको को स्वागत करना पडता है, वस्तुओ का क्रय-विक्रय करना पडता है, अपने से निम्नतर वर्ग के लोगो के काम की देखभाल तथा पर्यवेक्षण करना पडता है। उसे सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य जो करना पडता है वह है अपनी फाइल (file) का बुद्धिमानी से निबटारा करना।

सक्षेप मे, लिपिकीय कार्य मे सफलता पाने के लिए व्यक्ति मे निम्नलिखित योग्यताओ का होना आवश्यक है—

(१) प्रत्यक्षीकरण सम्बन्धी योग्यता (Perceptual ability) इस योग्यता की आवश्यक पत्राकित शब्द और संख्याओ को एक ही दृष्टि से समझ लेना।

(२) बौद्धिक योग्यता (Intellectual Capacity) पत्र व्यवहार मे ठीक निर्णय लेने, शब्दो एवं सकेतो का अर्थ तुरन्त समझने के लिये बौद्धिक योग्यता की आवश्यकता होती है।

(३) मानसिक कार्य करने की क्षमता (Ability to perform mental manipulations) संख्याओं का जोडना, घटाना, गुणा करना, आदि तभी सुचारुरूप से चल सकता है जब व्यक्ति मौखिक रूप से ही गुणा-भाग कर सके।

(४) गतिवाही योग्यता (Motor ability) तेजी से काम करनेवाली चुस्त अंगुलियाँ और हाथ जिनकी सहायता से भिन्न-भिन्न यन्त्रो से शीघ्रता से ठीक काम किया जा सके।

लिपिकीय अभियोग्यता परीक्षाओ मे इन्ही योग्यताओ का मापन होता है। ये साधारणत. लिखित परीक्षायें होती हैं जिनमे व्यक्ति की मानसिक चुस्ती, तीक्ष्ण बुद्धि और शैक्षणिक अभियोग्यता का मापन हो सके। ये परीक्षायें दो प्रकार की होती हैं :

(१) विशिष्ट (Specific)
(२) सामान्य (General)

सामान्य लिपिकीय अभियोग्यता का मापन शाब्दिक बुद्धि परीक्षणों की तरह ही किया जाता है लेकिन विशिष्ट लिपिकीय अभियोग्यता परीक्षण के लिए [illegible] accounting, proof reading आदि लिपिकीय कार्यो की [illegible]

भी मापन होता है। यहाँ पर एक मिनेसोटा लिपिकीय परीक्षा का उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है

मिनेसोटा लिपिकीय परीक्षा—वैयक्तिक अथवा सामूहिक रूप से दी जाने वाली यह लिपिकीय परीक्षा व्यक्तियों द्वारा अंकों तथा नामों की तुलना करने की क्षमता का मापन करती है यह परीक्षा उन योग्यताओं का विश्लेषण नहीं करती है जिनका प्रयोग अनेक लिपिकीय कार्यों में हुआ किया करता है

(i) Routine card sorting
(ii) Stenotyping
(iii) Stenography
(iv) Filing
(v) Cashiering
(vi) Computing
(vii) Book keeping
(viii) Accounting

यह परीक्षा लिपिकीय योग्यता का मापन करने के लिए अधिक शुद्ध प्रमाणित हुई है क्योंकि लगभग लिपिक वर्ग द्वारा इस परीक्षा में प्राप्तांकों का औसत सामान्य जनता के औसत पद से कहीं अधिक पाया है, इसका अर्थ यह है कि इस परीक्षा में प्राप्त प्राप्तांक व्यक्ति के पूर्व अनुभव अथवा पूर्व प्रशिक्षण पर निर्भर नहीं रहता और न अधिक बुद्धिमान व्यक्ति ही इसमें ऊँचे पद पा सकता है। अतः यह परीक्षा लिपिकीय अभियोग्यता का ही मापन करती है।

इस परीक्षा में जैसा कि पहले कहा जा चुका है दो उप परीक्षाएँ (Subtests) हैं—संख्यात्मक तुलना की परीक्षा (Number Comparison Test), नामात्मक तुलना की परीक्षा (Name Comparison Test)। जब जब दो नाम अथवा संख्याएँ एकसी दिखाई दें तभी व्यक्ति को सही का निशान लगाना पड़ता है। उनके भिन्न दिखाई देने पर उसे कोई निशान नहीं लगाना पड़ता।

यह परीक्षा निश्चित समय में दी जाती है अतः यह शुद्धि (Accuracy) और वेग (Speed) दोनों का मापन करती है।

Q 8. Single test of aptitude can give a correct picture of the aptitudes possessed by a person ? Discuss Describe the salient features of Differential Aptitude Test Battery.

Ans द्वितीय महायुद्ध से पूर्व विभिन्न पेशों के उपयुक्त व्यक्तियों के चयन के लिये जो अभियोग्यता परीक्षाएँ तैयार की गईं उनका एक दूसरे से कोई सम्बन्ध न था। उदाहरण के लिये Skilled Trades के लिये तैयार की गई अभियोग्यता परीक्षाएँ (Mechanical Aptitude Tests) हाथ से काम करने वाले पेशों (manual occupations) के लिये तैयार की गई परीक्षाओं से भिन्न थीं। दो एक ही परीक्षाएँ ऐसी थीं जिनमें दोनों प्रकार की अभियोग्यताओं का मापन किया गया था। लेकिन इनमें से कोई एक परीक्षा ऐसी न थी जिसको देने पर व्यक्ति की अभियोग्यताओं का पता लग सके। व्यावसायिक निर्देशन (Vocational guidance) के क्षेत्र में प्रयुक्त हो सकने वाली कोई भी उपयुक्त परीक्षा न थी जिससे व्यक्ति की गुप्त शक्तियों का स्पष्ट चित्रण हो सके।

इस समय व्यावसायिक निर्देशन के समक्ष दो समस्याएँ थीं—(१) किसी विशेष पेशे के लिये किन किन परीक्षाओं को मिलाकर परीक्षा माला (battery) तैयार की जाय ताकि उस काम आने वाली महत्वपूर्ण योग्यताओं का मापन हो सके।

(२) यदि कई अभियोग्यता परीक्षाओं को मिलाकर एक परीक्षा माला तैयार भी कर ली जाय तो उसका उपयोग कैसे किया जाय क्योंकि उन परीक्षाओं का प्रमापीकरण (Standardisation) अलग-अलग प्रतिनिध्यात्मक सैम्पिलों पर किया गया था और इसलिये उनके प्रमापों में समानता न थी।

इन दोनो समस्याओ का हल तभी हो सकता था जब एक ऐसी परीक्षा माला तैयार की जाय जिसमे विभिन्न पेशो में काम आने वाली सभी महत्वपूर्ण योग्यताओ का मापन हो सके और उन्हें एक ही सामान्य जनसमूह पर लागू करके प्रमापित (Standardise) किया जाय।

भिन्नक अभियोग्यता परीक्षा माला (Differential Aptitude Test Battery) ने इस अभाव की पूर्ति कर दी है।

भिन्नक अभियोग्यता परीक्षा माला की विशेषताएँ—इस परीक्षा माला मे निम्नलिखित उप परीक्षिकाएँ (Subtests) हैं।

(१) Verbal Reasoning
(२) Numerical Ability
(३) Abstract Reasoning.
(४) Space Relations.
(५) Mechanical Reasoning.
(६) Clerical Speed and Accuracy.
(७) Language usage—Spelling.
(८) Language usage—Sentences.

इन उप परीक्षिकाओ के परीक्षण पदो का एक एक नमूना दिया जाता है।

(१) Verbal Reasoning—इस शाब्दिक तर्क परीक्षा मे अनुमान लगाने की प्रवृत्ति की मात्रा न्यूनतम कर दी गई है। वह शब्द ज्ञान (Vocabulary) की परीक्षा नही है। वह इस बात की परीक्षा है कि व्यक्ति शाब्दिक प्रत्ययो (Verbal Concepts) को किस प्रकार प्रयोग मे लाता है। पदो मे तर्क की कठिनाई धीरे-धीरे बढाई गई है। एक पद का नमूना देखिये

नीचे दिये गये कथन मे रिक्त स्थानो की पूर्ति कीजिए। केवल उन्ही शब्दो का चुनो जो नीचे दो स्तम्भों मे दिये गये हैं।

१ २ ३ ४

......is to water as eat is to.....

१ Continue	A Drive
२ Drink	B Enemy
३ Foot	C Food
४ Girl	D Industry

(२) सांख्यिक योग्यता (Numerical Ability)—इस परीक्षा मे साधारण संकलन तथा व्यकलन (Subtraction and addition) से लेकर घनमूल निकालने की जटिल प्रक्रियाओ से युक्त प्रश्नो को पूछा गया है। कुछ परीक्षण पद तो विशुद्ध गणनात्मक दक्षता का मापन करते हैं, कुछ गणितिक सम्बन्धो का बुद्धिमानी से प्रयोग कर सकने की योग्यता का। कुछ परीक्षण पदों मे अगणनीय तर्क पर भी जोर दिया गया है। एक परीक्षण पद नीचे दिया जाता है।

सही उत्तर को चुनो

जोडो	१३+१२
A	१४
B	२५
C	१६
D	५६
E	उनमे से कोई नही

(३) सूक्ष्म चिन्तन (Abstract Reasoning)—इस परीक्षा मे सूक्ष्म आकृतियो अथवा चित्रो का प्रयोग कर व्यक्ति की तर्क शक्ति का मापन करती है। उसे ऊपर दी गई दो परीक्षाओं को अशाब्दिक पूरक परीक्षा माना जा सकता है। एक परीक्षण पद का नमूना देखिये।

नीचे बाईं ग्रोर चार स्थानों में एक रेखा की भिन्न भिन्न दशाएँ दिखाई गई हैं पाँचवाँ स्थान रिक्त छोड़ दिया गया है। इस स्थान में रेखा की जो स्थिति हो उस स्थिति को दाईं ग्रोर की स्थितियों में से छाँटो।

(४) वरिम प्रतिबोधन (Space Relations) सम्बन्धी परीक्षा—इस परीक्षा में व्यक्ति की कल्पना शक्ति का मापन होता है। यहाँ पर तीन विमात्मक पदार्थ को द्विविमात्मक चित्र द्वारा दिखाया जाता है। एक परीक्षण पद का नमूना देखिये।

बाईं ग्रोर एक पदार्थ का द्विविमात्मक (Two-dimensional) चित्र दिखाया गया है। दाईं ग्रोर चार चित्र ऐसे खींचे गये हैं जिनमें से एक का सम्बन्ध बाईं ग्रोर के चित्र से है। वह चित्र छाँटो।
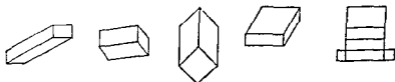
(५) मशीनी तर्क (Mechanical Reasoning)—इस उपपरीक्षा में दैनिक जीवन में काम ग्राने वाली mechanial devices का उदाहरण देकर यह पूछा जाता है कि उस स्थिति में कौनसा सिद्धान्त लागू हो रहा है। एक नमूना नीचे दिया जाता है।

नीचे चित्र में बाईं ग्रोर एक पट AB दिखाया गया है बिन्दु A ग्रौर B पर दो बल ऊपर की ग्रोर लगे हुए हैं। इस पट पर कोई भार P रखा है। बताग्रो किस स्थान पर ग्रधिक भार होगा।

A
B
C
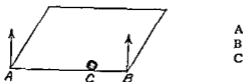
(६) लिपिकीय वेग ग्रौर शुद्धि परीक्षा (Clerical Speed and Accuracy)—लिपिकीय ग्रभिवृत्ति परीक्षायें प्रयुक्त mumber comparison ग्रौर name comparison परीक्षाग्रों की तरह ग्रकों ग्रौर ग्रक्षरों के सचय प्रस्तुत किये जाते हैं। व्यक्ति को उनमें से एक से क्रम सचयों (Permutations) को ढूंढना पड़ता है। एक परीक्षण पद नीचे दिया है।

ग्रक्षर A B, C, D इत्यादि में से दो-दो के सचय नीचे दिये जाते हैं।

AB क्रम सचय को इनमें से ढूंढो ग्रौर उनके नीचे रेखा खींचो

AB	AC	AD	AE	AF
aA	aB	BA	Ba	Bb
AD	DA	BD	DB	AB

(७) भाषा के प्रयोग की परीक्षा (Language usage—Spelling)—ऐसे शब्दों को छाँटना पड़ता है जिनकी Spelling गलत होती है। एक परीक्षण पद देखिये।

नीचे कुछ शब्द बाईं ओर दिये जाते हैं। उनकी स्पैलिंग ठीक है अथवा गलत। आपको यही देखना है। यदि स्पैलिंग गलत हो तो गलत (Wrong) के नीचे निशान लगाओ और यदि सही हो तो सही के नीचे।
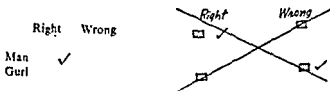
(८) भाषा के प्रयोग की परीक्षा (Language Usage—Sentences)—इस परीक्षा में व्यक्ति भाषा की अशुद्धियाँ, विराम चिह्नों की गलतियाँ को ढूंढता है। एक परीक्षण पद देखो।

नीचे एक वाक्य लिखा गया है उसके पाँच भाग कर दिये गये हैं। जिन भागों में भाषा की गलती हो उनको ढूंढो और दाईं ओर अंकित करो।

Aint we / going to the / office , next week / at ale
A B C D E

A	B	C	D	E

D A T की समीक्षा—इस परीक्षा से शैक्षणिक अभियोग्यता (Scholastic Aptitude) का मापन शुद्ध और विश्वस्त रूप से हो सकता है। विद्यालय में सफलता पाने के लिये जिन योग्यताओं की आवश्यकता होती है उन सभी योग्यताओं का मापन इस अभियोग्यता परीक्षा से किया जा सकता है। इस परीक्षा के उपपदों (Subtests) में प्राप्त फलांकों और विद्यालय के पाठ्य विषयों—अंग्रेजी, गणित, समाजशास्त्र, विज्ञान, आशुलिपि आदि के साथ ऊँचे सहसम्बन्ध गुणक (Correlation Coefficients) प्राप्त हुए हैं। Verbal Reasoning Test का टंकन (Typewriting) को छोड़कर सभी विषयों के साथ, Numerical Ability का गणित के साथ, Spelling Test का आशुलिपि के साथ, Mechanical Reasoning का विज्ञान के साथ, Clerical Speed and Accuracy का टंकन के साथ ऊँचा सहसम्बन्ध मिला है।

व्यावसायिक (Vocational) निर्देशन (guidance) में इस परीक्षा माला की क्या उपयोगिता है निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता लेकिन इतना अवश्य माना जा सकता है कि शैक्षणिक निर्देशन में यह परीक्षा अत्यंत उपयोगी साबित हुई है।

यह परीक्षा एक ही प्रतिनिध्यात्मक सैम्पिल पर प्रमाणीकृत की गई है और परिणामों की व्याख्या के लिये अत्यधिक उपयोगी सिद्ध हुई है।

परीक्षा को लागू करने की सुविधा को ध्यान में रखकर कभी कभी अलग अलग परीक्षा मालाएँ तैयार की जाती हैं जो भिन्न भिन्न प्रयोजनों के लिये लाभकर सिद्ध होती हैं। उदाहरण के लिये [illegible]

[illegible] परीक्षामाला का प्रयोग Mechanical Aptitude का मापन करने के लिये किया जाता है।

परीक्षा का प्रमापण ८ १२ आयु वर्ग के ४७००० लड़कों पर जो अमरीका के विभिन्न राज्यों में फैले हुए हैं, किया गया है। परीक्षा के प्रतिशततमक (percentiles) और प्रामाणिक फलांक (Standard Scores) तैयार किये गये हैं।

किसी एक बालक को पूर्ण परीक्षा में जो अंक मिलते हैं उनको देखकर उसके शैक्षणिक एवं व्यावसायिक जीवन की योजना बनाई जा सकती है। उदाहरण के लिये यदि किसी बालक 'म' को भिन्न भिन्न परीक्षाओं में निम्नलिखित अंक मिलें तो उसका पार्श्व चित्र (Profile) तैयार

अध्याय ६
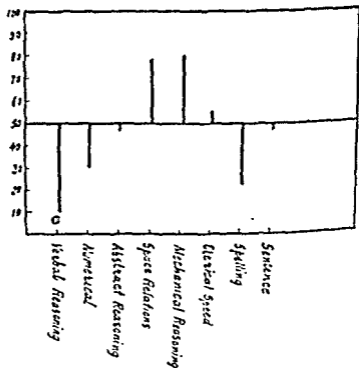
रुचि एवं अभिवृत्ति परीक्षण

(Measurement of Interests and Inventories)

Q 1. Define an 'Interest'. How can interests of a person be measured ?

Ans. रुचि की परिभाषा—किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा कार्य में ध्यान देने, उसके द्वारा आकर्षित होने, उसे पसन्द करने और उससे सन्तोष लाभ करने की प्रवृत्ति को रुचि कहते हैं।[1] किसी कार्य में रुचि का प्रदर्शन होता है उस कार्य में अवधान को सतत रूप से लगाये रखने की प्रवृत्ति द्वारा। जिस कार्य में हमारी रुचि होती है उसको करने में हमें उत्साह और आनन्द की अनुभूति होती है और शारीरिक तथा मानसिक थकान होने पर भी हम उस कार्य में लगे रहने की प्रवृत्ति दिखाते हैं। अत. रुचि का एक लक्षण है ध्यान की एकाग्रता और कार्य में अनवरत ढंग से लगे रहने की प्रवृत्ति। किसी कार्य में रुचि होने का अर्थ है उस कार्य को स्वेच्छा से चुनकर अथक रूप से उसमें दत्तचित्त रहना। स्वेच्छा से चुनने का अभिप्राय है उसकी ओर आकर्षित होना।

रुचि का दूसरा लक्षण है उसकी तीव्रता। यह मानसिक प्रवृत्ति इतनी अधिक तीव्र होती है जिस कार्य में हमारी रुचि होती है उसको करने का अवसर मिलते ही उसमें विभोर हो जाते हैं, ध्यान उस पर पूरी तरह जम जाता है और हमारी इच्छा हो जाती है कि हम निरन्तर उस कार्य में लगे रहें। हमारी शारीरिक गतियाँ और मुखाकृति उस वस्तु पर पूर्णत केन्द्रित हो जाती हैं और अन्य उद्योगों से जो इस कार्य में बाधक होते हैं हमारी दृष्टि फिर जाती है।

रुचि का तीसरा लक्षण है रोचक कार्य से आनन्द की प्राप्ति। इस प्रवृत्ति के प्रकाशन में हमें आनन्द की अनुभूति होती है। रोचक कार्यों में आनन्द तथा अरोचक कार्यों के प्रति घृणा स्वत उत्पन्न हो जाती है। जिन कार्यों के प्रति घृणा होती है उनको करने में दुख की अनुभूति होती है जिन कार्यों में लगाव होता है उनको करने में सुख और सन्तोष की प्राप्ति होती है।

रुचि की चौथी विशेषता है स्थिरता (Stability)। यदि आज हम किसी कार्य में रुचि लेते हैं और यदि यह रुचि परिपक्व है तो कल भी उस कार्य में रुचि लेते रहेंगे। कुछ लोगों का मत है कि अनुभव, ज्ञान और आयु की वृद्धि के साथ रुचियों में परिवर्तन होता है किन्तु रुचियों के परिपक्व हो जाने पर उनमें स्थिरता आ जाती है। स्ट्रोंग (Strong) का कहना है कि यद्यपि कुछ रुचियों में परिवर्तन होता है लेकिन रुचियों के ढाँचे (pattern) में कोई अन्तर नहीं आता। व्यक्ति की रुचि प्रतिकृति लगभग एकसी बनी रहती है उसमें काफी मात्रा में स्थायित्व होता है।

रुचियों के मापन का प्रश्न—यदि हम किसी व्यक्ति की रुचियों की प्रतिकृति की जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें निम्नांकित तरीके अपनाने होंगे—

(१) उससे स्वयं यह पूछना होगा कि वह भिन्न-भिन्न क्रियाओं अथवा कार्यों में रुचि लेता है। यह कार्य समक्ष भेंट (Interview) से सम्पन्न हो सकता है।

(२) उसके व्यवहार का निरीक्षण (Observation) करके यह ज्ञात करना होगा कि वह भिन्न-भिन्न कार्यों में दर्शाचित्त रहता है।

---

1 We difine interest in an object, a person, an activity or a field of occupation as a tendency to give attention to it, to be attracted by it, to like it, to find satisfaction in it.

(३) विभिन्न क्षेत्रों ग्रथवा स्कूली विषयो मे उसका निष्पन्न (achievement) देखना होगा और निर्णय करना होगा कि वह किन-किन क्षेत्रों ग्रथवा विषयों में रुचि लेता है।

(४) उसके ग्रध्यापकों ग्रथवा सुपरवाइजरों से पूछना होगा कि उसकी रुचियाँ क्या हैं क्योंकि यही व्यक्ति उसकी रुचियों के विषय मे ग्रधिक जानकारी रखते हैं। उनकी सम्मतियाँ, उनकी रुचि प्रतिकृति के विषय में शुद्ध जानकारी दे सकेगी।

(५) रुचियो की प्रतिकृति का ज्ञान प्राप्त करने के लिये योजनाबद्ध रुचि पत्रियाँ (Interest Inventories) तैयार करनी होगी।

इस प्रकार रुचियों के विषय मे जानकारी प्राप्त करने के लिये समक्षभेंट, निरीक्षण, निष्पन्न परीक्षा, सम्मतियाँ ग्रौर रुचि परीक्षाग्रो की सहायता लेनी होगी।

रुचियो का प्रत्यक्ष तथा ग्रप्रत्यक्ष मापन रुचि परीक्षणों द्वारा होता है। उनका प्रत्यक्ष मापन करने वाली परीक्षाएँ व्यक्ति को ऐसी परिस्थितियों मे डाल देनी हैं जिनमें व्यक्ति की विभिन्न रुचियों का प्रत्यक्ष प्रदर्शन होता है। उनका ग्रप्रत्यक्ष मापन करने वाली परिस्थितियाँ रुचिपत्रो, समक्षभेंट ग्रथवा प्रश्नावलियाँ हैं। लेकिन क्या समक्षभेंट ग्रौर प्रश्नावलियों के माध्यम से व्यक्ति विषयक सूचनाएँ ग्रधिक विश्वस्त होती हैं? सम्भवत नही। ग्रत. रुचि मापन का ग्राधारभूत सिद्धान्त होगा -

"व्यक्ति ग्रपने विषय मे क्या कहता है उस पर विश्वास न करो ग्रौर यह देखो कि वास्तव मे वह किन-किन कार्यों मे रुचि लेता है। उसे उन कार्यों की जानकारी कराग्रो जिनको सामान्यत: पसन्द करता है ग्रौर फिर उसे ग्रवसर दो उन कार्यों मे भाग लेने का जिनको वह ग्रधिक पसन्द करता है। यदि यह सम्भव न हो तो दूसरे तरीकों को ग्रपनाग्रो।"

इन तरीको में वैषयिक रुचि परीक्षाएँ (Objective Measures of Interest) विशेष स्थान रखती हैं। ये रुचि परीक्षाएँ दो प्रकार की होती हैं —

(ग्र) समूचना सम्बन्धी परीक्षाएँ (Information Tests)
(ब) रुचि पत्रियाँ (Interest Blanks and Inventories)

संसूचना सम्बन्धी परीक्षाग्रों के पीछे एक परिकल्पना होती है ग्रौर वह यह कि हम जिस क्षेत्र मे विशेष रुचि रखते हैं उस क्षेत्र के विषय मे ग्रत्यधिक जानकारियाँ ग्रथवा ससूचनाएँ इकट्ठी कर लेते हैं। O' Rourkes Mechanical Aptitudes Test के पीछे यही परिकल्पना काम करती है जिसमे यह मान लिया गया है कि जो व्यक्ति मशीनी कलपुर्जों की ग्रधिक जानकारी रखता है वही मशीनरी सम्बन्धी कार्यों मे विशेष रुचि लेता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति सगीत मे विशेष रुचि लेता है वह सगीत विषय की काफी जानकारियाँ इकट्ठी कर लेता है। इस जानकारी को दैनिक जीवन के ग्रनुभवों के ग्राधार पर ही एक करता है उस क्षेत्र मे प्रशिक्षण पाकर नही। यद्यपि ऐसी परीक्षाएँ व्यक्ति की रुचियों का ग्रप्रत्यक्ष मापन करती हैं फिर भी वे ग्रधिक विश्वस्त ग्रौर विशुद्ध होती हैं।

Q 2 Discuss the importance of Interest Inventories in educational guidance.

Ans रुचि पत्रियाँ ग्रौर निर्देशन में उनका महत्व (Inventories and their importance in guidance)—रुचि पत्रियो मे व्यक्ति ग्रपने विषय में जो कुछ कहता सुनता है उसके ग्राधार पर उसकी रुचि का ग्रनुमान लगाया जाता है उसके कथन से उसकी रुचियो का सकेत मात्र मिलता है। किन्तु उसकी वास्तव मे रुचियाँ क्या हैं इसका परिज्ञान रुचि पत्रों से नही होता। रुचि पत्री तो व्यक्ति की रुचियों के ढाँचे का रूप बना सकती है। रुचि पत्रियो (Interest Inventories) ग्रौर रुचि प्रश्नावलियों (Interest questionnaries) मे ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं जिनके उत्तरों से पता चल सके कि व्यक्ति किन-किन कार्यों मे विशेष रुचि रखता है ग्रौर किन-किन कार्यों में नहीं।

ये दोनों प्रकार की रुचि परीक्षाएँ लिखित रूप मे दी जाती हैं, ग्रत व्यक्ति के कार्यों का प्रत्यक्ष निरीक्षण करके जो रुचि मापन किया जाता है उससे परीक्षण की यह विधि भिन्न है। इनसे तो हम केवल यह जान पाते हैं कि व्यक्ति ग्रपने विषय मे क्या कहता है।

रुचि पत्रियाँ इसलिये इतनी अधिक शुद्ध और विश्वस्त नहीं होती जितनी की सम्सूचना सम्बन्धी परीक्षाएँ। रुचि मापन के उस यन्त्र में, जिसमें व्यक्ति स्वयं अपने विषय में सूचना दे, तीन प्रकार की अशुद्धियाँ आने की सम्भावना है।

(अ) सूचना सम्बन्धी अशुद्धि (Information Error)
(आ) सामान्यीकरण सम्बन्धी अशुद्धि (Generalisation Error)
(इ) अभिधारणा सम्बन्धी अशुद्धि (Prevarication Error)

मान लीजिए कि आपने किसी व्यक्ति से यह पूछा कि आपको पढ़ाने में रुचि है या नहीं और यदि वह, यह जाने बिना कि अध्यापकी में क्या-क्या कार्य करने पड़ते हैं, उत्तर दे कि मुझे इस कार्य में कोई रुचि नहीं है तो उसके इस उत्तर से सूचना सम्बन्धी अशुद्धि मानी जावेगी।

मान लीजिए वह व्यक्ति अध्यापकी के विषय में जानकारी रखता है, उसने किसी प्रशिक्षण संस्था में अध्यापकी का प्रशिक्षण भी लिया है किन्तु जिस विद्यालय में पूर्व प्रशिक्षण के लिये छात्रों को पढ़ाया था उसमें कुछ कारणों से उसको अध्यापकी से घृणा हो गई और फलस्वरूप उसको यह कार्य रुचि कर नहीं लगता तो उसका यह उत्तर कि वह अध्यापकी में रुचि नहीं रखता 'सामान्यीकरण सम्बन्धी दोष' से युक्त होगा।

मान लीजिए किसी से आप पूछते हैं कि तुम्हें अध्यापकी में रुचि है या नहीं और वह सोचने लगता है कि समाज अध्यापकों को कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं देता, उनके प्रति कोई न्याय भी नहीं करता। ऐसा सोचकर उसका यह उत्तर कि उसे अध्यापकी में रुचि नहीं है 'अभिधारणा सम्बन्धी दोष' से युक्त माना जायगा। क्योंकि इस कार्य के प्रति उस व्यक्ति के मन में पहले से ही बुरी धारणायें बन गई हैं। ये पूर्वाग्रह (Prejudices) उसके उत्तरों को प्रभावित कर देंगे और उनके होने पर व्यक्ति उस कार्य में रुचि रखने पर भी यही उत्तर देगा कि वह उसमें रुचि नहीं रखता।

यद्यपि रुचिपत्रियों में ये दोष हैं फिर भी वे व्यक्ति विशेष और परीक्षक दोनों के लिए दो प्रकार की उपयोगितायें रखती हैं

(अ) प्रेरणात्मक
(ब) सूचनात्मक

जिस समय व्यक्ति किसी रुचिपत्री का उत्तर देता है वह उस समय आत्म-आलोचन और आत्म-विश्लेषण (Self analysis or self criticism) करता है। उत्तम रुचि पत्रियाँ व्यक्ति विशेष को अपनी रुचियों के विषय में सोचने की प्रेरणा देती हैं। वे उसे इस बात को सोचने का अवसर देती हैं कि वह निर्णय करे कि कौन कौन से कार्य, अथवा कौन कौन से विषय उसको रुचिकर लगते हैं, और कौन कौन से कार्य अरुचिकर ? कैसे व्यक्तियों से उसे प्रेम है और कैसे व्यक्तियों से उसे घृणा ? किन पेशों को वह आदर की दृष्टि से देखता है और किन पेशों को घृणा की दृष्टि से ? उसके भावी जीवन की योजनायें क्या हैं और वह क्या कर सकता है ? अच्छी रुचि पत्रियाँ व्यक्ति के समक्ष शैक्षणिक, व्यावसायिक, और वैयक्तिक रुचियों का ऐसा अपूर्व सामञ्जस्य उपस्थित करती हैं कि व्यक्ति अपनी सभी प्रकार की रुचियों का क्रम बहुरूप से अन्वेषण कर सकता है, वे उसे उन रुचियों की ओर पुन आकृष्ट कराती हैं जिनको वह विस्मृत कर चुका था। वे उसे उन कार्यों में रुचि लेने के लिए विवश करती हैं जिनके प्रति पहले रुचि तो थी किन्तु वह रुचि सुप्त हो चुकी थी। इस प्रकार रुचि पत्रियाँ व्यक्ति विशेष के लिए प्रेरणात्मक महत्व रखती हैं।

रुचिपत्रियों की व्यक्ति के लिए दूसरी उपयोगिता है सूचनात्मक। रुचिपत्री व्यक्ति की रुचियों के ढाँचे को खोलकर रख देती है जो अन्य किसी तरीके से उपलब्ध ही नहीं हो सकती थी। ऐसी रुचिपत्रियाँ हैं—

(a) Mines Analysis or Work Interest
(b) Strong's Vocational Interest Blank
(c) Bingham's Aids to Vocational Interview

ये रुचिपत्रियाँ विभिन्न क्षेत्रों में काम करने वाले सफल लोगों की रुचियों के ढाँचों के साथ व्यक्ति विशेष की रुचियों के ढाँचे की समानता अथवा असमानता देखने का अमूल्य अवसर

(३) विभिन्न क्षेत्रो अथवा स्कूली विषयों में उसका निष्पन्न (achievement) देखना होगा और निर्णय करना होगा कि वह किन-किन क्षेत्रों अथवा विषयों में रुचि लेता है ।

(४) उसके अध्यापकों अथवा गुरुजनों से पूछना होगा कि उसकी रुचियाँ क्या हैं क्योंकि यही व्यक्ति उसकी रुचियों के विषय में अधिक जानकारी रखते हैं। उनकी सम्मतियाँ, उनकी रुचि प्रतिकृति के विषय में शुद्ध जानकारी दे सकेगी ।

(५) रुचियों की प्रतिकृति का ज्ञान प्राप्त करने के लिये योजनाबद्ध रुचि पत्रियाँ (Interest Inventories) तैयार करनी होंगी ।

इस प्रकार रुचियो के विषय मे जानकारी प्राप्त करने के लिये समक्षमेंट, निरीक्षण, निष्पन्न परीक्षा, सम्मतियाँ और रुचि परीक्षाओं की सहायता लेनी होगी ।

रुचियो का प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष मापन रुचि परीक्षणों द्वारा होता है। उनका प्रत्यक्ष मापन करने वाली परीक्षाएँ व्यक्ति को ऐसी परिस्थितियों में डाल देती हैं जिनमें व्यक्ति की विभिन्न रुचियों का प्रत्यक्ष प्रदर्शन होता है। उनका अप्रत्यक्ष मापन करने वाली परिस्थितियाँ रुचिपत्रो, समक्षमेंट अथवा प्रश्नावलियाँ हैं। लेकिन क्या समक्षमेंट और प्रश्नावलियों के माध्यम से व्यक्ति विषयक सूचनाएँ अधिक विश्वस्त होती हैं ? सम्भवत नहीं । अत. रुचि मापन का आधारभूत सिद्धान्त होगा .

"व्यक्ति अपने विषय में क्या कहता है उस पर विश्वास न करो और यह देखो कि वास्तव मे वह किन-किन कार्यों मे रुचि लेता है। उसे उन कार्यों की जानकारी कराओ जिनको सामान्यत पसन्द करता है और फिर उसे अवसर दो उन कार्यों मे भाग लेने का जिनको वह अधिक पसन्द करता है। यदि यह सम्भव न हो तो दूसरे तरीको को अपनाओ।"

इन तरीको मे वैषयिक रुचि परीक्षाएँ (Objective Measures of Interest) विशेष स्थान रखती हैं। ये रुचि परीक्षाएँ दो प्रकार की होती हैं —

(अ) ससूचना सम्बन्धी परीक्षाएँ (Information Tests)

(ब) रुचि पत्रियाँ (Interest Blanks and Inventories)

संसूचना सम्बन्धी परीक्षाओं के पीछे एक परिकल्पना होती है और वह यह कि हम जिस क्षेत्र में विशेष रुचि रखते हैं उस क्षेत्र के विषय मे अत्यधिक जानकारियाँ अथवा ससूचनाएँ इकट्ठी कर लेते हैं। O' Rourkes Mechanical Aptitudes Test के पीछे यही परिकल्पना काम करती है जिसमें यह मान लिया गया है कि जो व्यक्ति मशीनी कलपुर्जों की अधिक जानकारी रखता है वही मशीनरी सम्बन्धी कार्यों मे विशेष रुचि लेता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति संगीत मे विशेष रुचि लेता है वह सगीत विषय की काफी जानकारियाँ इकट्ठी कर लेता है। इस जानकारी को दैनिक जीवन के अनुभवों के आधार पर ही एक करता है उस क्षेत्र मे प्रशिक्षण पाकर नही। यद्यपि ऐसी परीक्षाएँ व्यक्ति की रुचियो का अप्रत्यक्ष मापन करती हैं फिर भी वे अधिक विश्वस्त और विशुद्ध होती हैं।

Q 2 Discuss the importance of Interest Inventories in guidance.

Ans रुचि पत्रियाँ और निर्देशन मे उनका महत्व (" ... in guidance)—रुचि पत्रियो मे व्यक्ति अपने विषय मे जो ... पर उसकी रुचि का अनुमान लगाया जाता है उसके कथन से है। किन्तु उसकी वास्तव मे रुचियाँ क्या हैं इसका ... तो व्यक्ति की रुचियो के ढांचे का रूप बना सकती है। और रुचि प्रश्नावलियो (Interest quest ... पता चल सके कि व्यक्ति किन-किन कार्यों मे ... मे नही।

ये दोनों प्रकार की रुचि ... का प्रत्यक्ष निरीक्षण करके जो रुचि ... है। इनसे तो हम केवल यह जान

रुचि पत्रियाँ इसलिये इतनी अधिक शुद्ध और विश्वस्त नहीं होती जितनी की सम्पूर्ण सूचना सम्बन्धी परीक्षाएँ। रुचि मापन के उस यत्र में, जिसमें व्यक्ति स्वय अपने विषय में सूचना दे, तीन प्रकार की अशुद्धियाँ आने की सम्भावना है।

(अ) [illegible]
(आ) [illegible]
(इ) [illegible]

मान लीजिए कि आपने किसी व्यक्ति से यह पूछा कि आपको पढ़ाने में रुचि है या नहीं और यदि वह, यह जाने बिना कि अध्यापकी में क्या-क्या कार्य करने पड़ते हैं, उत्तर दे कि मुझे इस कार्य में कोई रुचि नहीं है तो उसके इस उत्तर से सूचना सम्बन्धी अशुद्धि मानी जावेगी।

मान लीजिए वह व्यक्ति अध्यापकी के विषय में जानकारी रखता है, उसने किसी प्रशिक्षण सस्था में अध्यापकी का प्रशिक्षण भी लिया है किन्तु जिस विद्यालय में पूर्व प्रशिक्षण के लिये छात्रों को पढ़ाया था उसमें कुछ कारणों से उसको अध्यापकी से घृणा हो गई और फलस्वरूप उसको यह कार्य रुचि कर नहीं लगता तो उसका यह उत्तर कि वह अध्यापकी में रुचि नहीं रखता 'सामान्यीकरण सम्बन्धी दोष' से युक्त होगा।

मान लीजिए किसी से आप पूछते हैं कि तुम्हें अध्यापकी में रुचि है या नहीं और वह सोचने लगता है कि समाज अध्यापकों को कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं देता, उनके प्रति कोई न्याय भी नहीं करता। ऐसा सोचकर उसका यह उत्तर कि उसे अध्यापकी में रुचि नहीं है 'अभिधारणा सम्बन्धी दोष' से युक्त माना जायगा। क्योंकि इस कार्य के प्रति उस व्यक्ति के मन में पहले से ही बुरी धारणायें बन गई हैं। ये पूर्वाग्रह (Prejudices) उसके उत्तरों को प्रभावित कर देंगे और उनके होने पर व्यक्ति उस कार्य में रुचि रखने पर भी यही उत्तर देगा कि वह उसमें रुचि नहीं रखता।

यद्यपि रुचिपत्रियों में ये दोष हैं फिर भी वे व्यक्ति विशेष और परीक्षक दोनों के लिए दो प्रकार की उपयोगितायें रखती हैं

(अ) प्रेरणात्मक
(ब) सूचनात्मक

जिस समय व्यक्ति किसी रुचिपत्री का उत्तर देता है वह उस समय आत्म-आलोचन और आत्म-विश्लेषण (Self analysis or self criticism) करता है। उत्तम रुचि पत्रियाँ व्यक्ति विशेष को अपनी रुचियों के विषय में सोचने की प्रेरणा देती हैं। वे उसे इस बात को सोचने का अवसर देती हैं कि वह निर्णय करे कि कौन कौन से कार्य, अथवा कौन कौन से विषय उसको रुचिकर लगते हैं, और कौन कौन से कार्य अरुचिकर ? कैसे व्यक्तियों से उसे प्रेम है और कैसे व्यक्तियों से उसे घृणा ? किन पेशों को वह आदर की दृष्टि से देखता है और किन पेशों को घृणा की दृष्टि से ? उसके भावी जीवन की योजनायें क्या हैं और वह क्या कर सकता है ? अच्छी रुचि पत्रियाँ व्यक्ति के समक्ष शैक्षणिक, व्यावसायिक, और वैयक्तिक रुचियों का ऐसा अपूर्व सामजस्य उपस्थित करती हैं कि व्यक्ति अपनी सभी प्रकार की रुचियों का क्रम बद्धरूप से अन्वेषण कर सकता है, वे उसे उन रुचियों की ओर पुन आकृष्ट कराती हैं जिनको वह विस्मृत कर चुका था। वे उसे उन कार्यों में रुचि लेने के लिए विवश करती हैं जिनके प्रति पहले रुचि तो थी किन्तु वह रुचि सुप्त हो चुकी थी। इस प्रकार रुचि पत्रियाँ व्यक्ति विशेष के लिए प्रेरणात्मक महत्व रखती हैं।

रुचिपत्रियों की व्यक्ति के लिए दूसरी उपयोगिता है सूचनात्मक। रुचिपत्री व्यक्ति की रुचियों के ढाँचे को खोलकर रख देती है जो अन्य किसी तरीके से उपलब्ध ही नहीं हो सकती थी। ऐसी रुचिपत्रियाँ हैं—

(a) Mines Analysis of Work Interest
(b) Strong's Vocational Interest Blank
(c) Bingham's Aids to Vocational Interview

ये रुचिपत्रियाँ विभिन्न पेशों में काम करने वाले सफल लोगों की रुचियों के ढाँचों के साथ व्यक्ति विशेष की रुचियों के ढाँचे की समानता अथवा असमानता देखने का अमूल्य अवसर

प्रदान करती हैं। स्ट्रांग का मत है कि प्रयोगात्मक साक्ष्य इस बात की पुष्टि करता है कि दो भिन्न पेशों में काम करने वाले व्यक्तियों की रुचि प्रतिकृतियों (Interest patterns) में विशेष अन्तर होता है। कुछ पेशों के लिए रुचियों के ये क्षेत्र एक से (overlap) हो सकते हैं लेकिन दो पेशों की रुचि प्रतिकृतियों की समानता इस Overlap की मात्रा निश्चित करती है।

रुचिपत्रियाँ व्यक्ति को निश्चयपूर्वक यह जानकारी दे सकती हैं कि अमुक व्यक्ति को किन पेशों के लिए शैक्षणिक अथवा व्यावसायिक योजना बनानी चाहिए क्योंकि इन रुचिपत्रियों को लेकर निम्न दो साक्ष्य मिले हैं—

(अ) किसी क्षेत्र में ऊँचे अंक प्राप्त करने वाले छात्र को जब उसी क्षेत्र में प्रशिक्षण दिया गया तब उनको उस क्षेत्र में अपूर्व सफलता मिली।

(ब) जब ये किसी पेशेवर स्कूल में प्रशिक्षण पाने वाले छात्रों को दी गईं तब यह देखा गया कि किसी विशेष पेशे में प्रशिक्षण पाने वाले छात्रों के अंक उसी पेशे से सम्बन्धित रुचिपत्री के प्रश्नों के उत्तर में अधिक आये।

इस प्रकार रुचिपत्रियाँ पेशेवर योजना के विषय में व्यक्ति विशेष को अमूल्य राय दे सकती है।

Q 3. Describe the Salient Features of some important Inventories used in testing interests and their limitations

Ans रुचि परीक्षण—रुचियों की तुलना करने के लिए कुछ प्रमापीकृत रुचि परीक्षाओं का निर्माण किया गया है। इन परीक्षाओं में व्यक्ति विशेष अथवा व्यक्ति समूह को एक-एक प्रश्नावली दी जाती है। परीक्षार्थियों को उन कार्यों अथवा पेशों के आगे एक चिह्न लगाना पड़ता है जिनको करने में उन्हें आनन्द की अनुभूति होती है। जिन-जिन कार्यों को कोई व्यक्ति पसन्द करता है उसको देखकर उसकी रुचियों की प्रकृति (Interest Patterns) का अनुमान लगाया जाता है। ये रुचि परीक्षाएँ निम्नलिखित क्षेत्रों में व्यक्तियों की रुचियों का मापन करती हैं :

(१) पेशों में
(२) शैक्षणिक विषयों में
(३) पाठ्येतर और विनोदात्मक क्रियाओं में
(४) सामाजिक और वैयक्तिक कार्यों में

कुछ रुचि परीक्षाएँ निम्नलिखित हैं.

(अ) कैलीफोनिया टैस्ट आव परसनैलिटी ?
(आ) ह्वाट आई लाइक टू डू (What I like to do)
(इ) स्ट्रांग की रुचि पत्री (Strong's Vocational Interest Blank)
(ई) ली और थॉर्प की ओकूपेशनल इन्ट्रेस्ट इनवेन्टरी (Lee & Thorpe)
(उ) कूडर का प्रीफेरेंस रिकार्ड (Kuder's Preference Record)
(ऊ) मनोविज्ञानशाला इलाहाबाद की रुचि पत्री
(ए) थर्स्टन की रुचिपत्री
(ऐ) डनलप का एकेडैमिक प्रीफेरेन्स ब्लैंक

कैलीफोर्निया टैस्ट आव परसनैलिटी—इस रुचि परीक्षा में व्यक्ति की वैयक्तिक तथा सामाजिक रुचियों, निष्क्रिय और सक्रिय कार्य कलापों का अध्ययन किया जाता है। एक प्रश्न नीचे दिया जाता है।

नीचे कुछ कार्य अथवा रुचियों का उल्लेख किया गया है। जिस कार्य को करना आप अधिक पसन्द करें उस कार्य के आगे लिखे 'य' अक्षर को वृत्त से आवृत्त कीजिए और जिस कार्य को आप वास्तव में करते हो उसके आगे लिखे हुए 'क' अक्षर को वृत्त से आवृत्त कीजिए।

१ कहानी पढ़ना	य	क
२. इतिहास की पुस्तिका पढ़ना	य	क
३. सिनेमा जाना	य	क
४. किसी क्लब की क्रियाओं में भाग लेना	य	क
५. कक्षा में मानीटर होना	य	क

मैं क्या करना चाहता हूँ ?

इसी प्रकार की एक रुचिपत्री निम्न माध्यमिक कक्षाओं के छात्रो के लिए तैयार की गई है। इसका नाम है "मैं क्या करना पसन्द करता हूँ ?" इसका निर्माण बच्चो की रुचियों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए किया गया है। एक प्रश्न नीचे दिया जाता है।

१. मलाई की बर्फ खाना	नहीं	१	हाँ
२. जाली मे घूमना	नहीं	१	हाँ
३. तम्बू मे रात को सोना	नहीं	१	हाँ

इस रुचिपत्री के बनाने वाले मनोवैज्ञानिक का दावा है कि यह रुचि पत्री पाठ्यक्रम के निर्माण, शैक्षणिक सामग्री के चयन, छात्रों के बीच वैयक्तिक विभिन्नताओं के अध्ययन, छात्रों के लिए उपयोगी, शैक्षिक, विनोदात्मक प्रोग्रामो के नियोजन मे अध्यापको की विशेष सहायता दे सकती है।

स्ट्राग की रुचिपत्री—इस रुचिपत्री के भिन्न-भिन्न रूप स्त्री पुरुषो, लडके लडकियो सभी के लिए अलग-अलग तैयार किए गए हैं। प्रत्येक रूप मे ४२० प्रश्न हैं। यह परीक्षा आठ भागो में बटी हुई है। पहले भाग में परीक्षण पद व्यवसायो से सम्बन्ध रखते हैं। असमानताओ के परीक्षण पदों का सम्बन्ध निम्नांकित क्षेत्रों मे है—

भाग (२) मे स्कूल के पाठ्य पटल के अन्तर्गत रखे गए कुछ विषय, अंकगणित, कला कृषि और बीजगणित।

भाग (३) में मनोरंजन तथा खेलकूद से सम्बन्धित कार्य कलाप जैसे गोल्फ, टैनिस, और मछली पकडना।

भाग (४) मे व्यावसायिक क्रियाकलाप जैसे घडीसाजी करना, रेडियो सैट तैयार करना।

भाग (५) मे विभिन्न प्रकार के व्यक्तियो की व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताओं—जैसे रुपया उधार लेना, अत्यन्त ऊर्जस्विता दिखाना, अत्यधिक गतानुगतिक अथवा प्रगतिशील होना।

प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देते समय परीक्षार्थी अपनी पसन्द (L), नापसन्द (D) और उदासीनता (I) का प्रदर्शन करता है। शाब्दिक सामूहिक परीक्षा होने के कारण उच्चमाध्यमिक स्तर के छात्रों अथवा शिक्षित व्यक्तियो को दी जाती है।[1] कठिन शब्दों मे प्रयोग के कारण उसका उपयोग निम्न माध्यमिक छात्रो की रुचि प्रतिकृति का परीक्षण करने में नहीं होता। परीक्षार्थी के उत्तरो का ढांचा देखकर यह पता लगाया जाता है कि पत्री भरने वाले व्यक्ति की रुचि किस व्यवसाय मे सफल व्यक्ति की रुचियों से मेल खाती है। अलग अलग पेशों के लिए अलग-अलग रुचि प्रतिकृतियों के होने के कारण यह रुचिपत्री परीक्षार्थी की व्यक्तिगत रुचि का सही और विश्वस्त मापन करती है।

स्ट्राग की रुचिपत्री A, B, WA, WB, इन चार रूपो (forms) मे है। रूप A और WA उन पुरुषो और स्त्रियो के लिए हैं जो स्कूली शिक्षा पा चुके हैं। रूप B और WB उन लडकों और लडकियो के लिए है जो अभी विद्यालयो मे शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। रूप A और B में जिन पेशो पर अधिक महत्व दिया गया है वे निम्नलिखित हैं·

(i) Physicist, Mathematician, Engineer, Chemist, Physician, Dentist, Psycholog[illegible]
(ii) [illegible]
(iii) [illegible]
(iv) [illegible]
(v) Y. M. C. A Secretary, Personal manager, School superintendent
(vi) Office worker, Purchasing agent, Accountant
(vii) Public accountant.

निर्लेखन (Scoring)—स्ट्राग की रुचिपत्री का निर्लेखन अलग-अलग पेशो के लिए किया जाता है। स्टैन्सिलो (Stencils) की सहायता से १५ मिनट मे एक पेशे के लिए रुचिपत्री का निर्लेखन किया जा सकता है। निर्लेखन (Scoring) के बाद प्राप्त अंको को A, B, और C इन तीन वर्ग श्रेणियों मे बदल दिया जाता है। वर्ग श्रेणी A का अर्थ है व्यक्ति की रुचियां उन लोगो जैसी

है जो उस पेशे में लगे हुए हैं अत: वह व्यक्ति उस कार्य में आनन्द लेगा और सफलता प्राप्त करेगा। बी श्रेणी B का अर्थ है कि वह व्यक्ति उस पेशे में लगे हुए व्यक्तियों जैसी रुचियाँ रखता है और यदि वह उस पेशे को चुन ले तो सफल हो जाय। सी श्रेणी C का अर्थ है उस व्यक्ति की रुचियाँ उस पेशे से मेल नहीं खाती अत: वह उस पेशे में सफलतापूर्वक [illegible] नहीं कर सकता। B वर्ग श्रेणि B+ हो सकती है लेकिन C श्रेणी A नहीं हो सकती भले ही C वर्ग श्रेणी वाला व्यक्ति उस पेशे के लिए प्रशिक्षण पा ले और भले ही उसके पास सभी योग्यताएँ भी क्यों न हों।

विभिन्न पेशों के लिए व्यक्ति विशेष की वर्ग श्रेणियों (ratings) का अध्ययन करने पर बहुत रोचक जानकारियाँ मिल सकती हैं। यदि किसी व्यक्ति की B वर्ग श्रेणियाँ इन पेशों में हैं—science, language, social business, service और उसकी A वर्ग श्रेणि Journalism और teaching में है तो ऐसा हो सकता है कि वह architecture का अध्यापक हो जाए अथवा किसी पत्रिका का सम्पादक।

इस रुचिपत्री की विशेषता यही है कि वह किसी प्रकार की योग्यता का मापन नहीं करती वह तो किसी विशेष पेशे को अपनाने वाले व्यक्तियों की रुचियों से सादृश्य अथवा असादृश्य का मापन करती है। यह तो केवल इतना बतलाती है कि यदि व्यक्ति को उचित प्रशिक्षण मिल जाय तो वह उस कार्य में सफल होगा जिसमें उसे A वर्ग श्रेणि मिली है।

ली (Lee) और थार्प (Thorpe) की व्यावसायिक रुचिपत्री

इसमें के अनुसार वे विषय में इस रुचिपत्री में स्ट्रांग की रुचिपत्री से बिल्कुल भिन्न प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं। परीक्षार्थी के सामने रखे गये दो कार्यों में से एक कार्य को चुनने का आदेश दिया जाता है।

- आप प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं के लिए लेख लिखेंगे अथवा किसी बड़ी फर्म के लिए बिक्री की पॉलिसियाँ सम्पादित करेंगे?
- आप घर-घर में पान या तरकारी बेचते फिरेंगे अथवा किसी स्टोर में वस्तुओं को बण्डल में बाँधते रहेंगे?

कूडर की रुचिपत्री—इस रुचिपत्री में कुल १६८ प्रश्न समूह हैं। प्रत्येक प्रश्न समूह में तीन पद हैं (Triad form)। तीनों परीक्षण पदों का सम्बन्ध अलग अलग व्यवसायों से है। परीक्षार्थी उस पद को संकेत करता है जिसको वह सबसे अधिक पसन्द करता है अथवा वह उसको सूचित करता है जिसको वह सबसे कम पसन्द करता है। एक प्रश्न उदाहरणार्थ नीचे दिया जाता है—

आदेश—निम्न कार्य समूह को ध्यान से पढ़ो। इन व्यवसायों में से जो व्यवसाय आपको सबसे अधिक रुचिकर मालूम हो उसे सामने गोले को सुई से छेद दो, और उस व्यवसाय को भी सुई से छेद दो जो आपको सबसे कम पसन्द हो।

	पसन्द	नापसन्द
(क) लोहे के कारखाने में काम करना	O	O
(ख) अखबारों में सुधारात्मक लेख प्रकाशित करना	O	O
(ग) सिंचाई के तरीकों की जानकारी प्राप्त करना	O	O

रुचिपत्री के कुछ ऐसे भी form हैं जिनमें pin punch के स्थान पर machine से scoring होता है। कुछ form vocational हैं कुछ personal कूडर की रुचिपत्री में इस प्रकार की रुचियाँ मानी गई हैं।

(i) बाह्य कार्यों में रुचि जैसे खेती करना, बाग लगाना (Outdoor)
(ii) यांत्रिक (Mechanical) रुचि जैसे रेल, हवाईजहाज आदि मशीनों के पुर्जों को सुधारना।
(iii) गणनात्मक (Computational) रुचि जैसे बहीखाता तैयार करना।

1. "The [illegible] one source of data [illegible]

(iv) वैज्ञानिक (Scientific) रुचि जैसे डाक्टरी, इन्जीनियरिंग आदि के कार्यों मे रुचि लेना।
(v) प्रभावात्मक रुचि जैसे बीमा आदि का एजेन्ट होना ।
(vi) कलात्मक रुचि जैसे मकान, पण्डाल, सजाना, फोटोग्राफी आदि मे रुचि लेना।
(vii) साहित्यिक—लेखकीय, सम्पादकीय कार्य करना।
(viii) संगीतालय—संगीतज्ञों की संगति।
(ix) समाजसेवा कार्यों मे रुचि।
(x) लिपिक कार्यों मे रुचि।

मनोविज्ञानशाला इलाहाबाद की रुचिपत्री—यह रुचिपत्री कूडर की रुचिपत्री को आधार मानकर बनाई गई है। इसमें ८० परीक्षणपद १० भागो मे बटे हुए हैं। प्रत्येक परीक्षणपद मे निम्नलिखित अंक लिख दिए गए हैं।

२ १ ०

जो व्यक्ति किसी व्यावसायिक क्रिया को सबसे अधिक पसन्द करता है उसके सामने लिखे हुए इन अकों में से २ को गोले से घेर देता है और जिस व्यावसायिक क्रिया को वह बिल्कुल पसन्द नही करता उसे ० सूचित करता है। इस रुचिपत्री का प्रयोग उत्तर प्रदेश मे हाईस्कूल और इन्टर के छात्रों की रुचि ज्ञात करने के लिए किया जाता है।

ऊपर जितनी भी रुचिपत्रियो का उल्लेख किया गया है वे सभी पर्याप्त मात्रा मे विश्वस्त पाई गई हैं। इन रुचिपत्रियो से १७ वर्षीय छात्रों से लेकर प्रौढ व्यक्तियों की रुचियो के ढाँचे का सही-सही अनुमान लगाया जा सकता है। किन्तु इन रुचिपत्रियो का प्रयोग करते समय उनकी कुछ परिसीमाओं को भी ध्यान मे रखना चाहिए।

रुचिपत्रियों की परिसीमायें—इन रुचिपत्रियो मे छात्रों द्वारा दिए गये प्रश्नो के उत्तर उनकी वर्तमान मानसिक अवस्था का चित्रण करते हैं। भविष्य में इस मानसिक अवस्था के परिवर्तित होने के साथ-साथ उनकी रुचियों का ढांचा भी बदल सकता है। भविष्य मे नई-नई बातो मे रुचि उत्पन्न हो सकती है, पुरानी बातो मे रुचि का ह्रास हो सकता है। इसलिए किसी रुचिपत्री द्वारा किसी छात्र की रुचियों का आज जो ढाँचा है वही कल बदल सकता है।

दूसरे, जितनी भी रुचिपत्रियाँ अब तक प्रकाशित हुई हैं उनमें प्रत्येक प्रकार की रुचि का समावेश नहीं हो पाया है। अत इन रुचिपत्रियो मे छात्रों द्वारा प्राप्त फलाक केवल इतना बता सकता है कि रुचिपत्री में दिए गये रुचियो के ढाँचे मे से अमुक रुचि प्रकृति उसके लिए उपयुक्त है किन्तु यह फलाक यह नही बता सकता कि वास्तव मे उसकी सबसे अधिक रुचि किस कार्य या व्यवसाय मे है।

तीसरे, ये रुचिपत्रियाँ व्यक्तियों की गुप्त रुचियों के विषय मे कोई सूचना नहीं दे पातीं। किसी कार्य मे रुचि का प्रस्फुटन अथवा विकास उस कार्य मे सलग्न होने के उपरान्त ही होता है पहले नहीं। किसी कार्य अथवा व्यवसाय मे आज का परिचय कल उसी कार्य या व्यवसाय मे रुचि उत्पन्न कर सकता है।

यद्यपि रुचिपत्रियाँ छात्रो की वास्तविक रुचियो का ज्ञान देने मे अपने को असमर्थ पाती हैं फिर भी वे अध्यापक के हाथ मे ऐसे यन्त्रो का काम करती हैं जो कई प्रकार से उपयोगी हों। माध्यमिक विद्यालयो के छात्रो की रुचियो [illegible] ने जो बीडा उठाया है उसका फल यह हुआ [illegible] व्यावसायिक मार्ग प्रदर्शन कर सकते हैं। य [illegible] नियुक्ति हो जाय जो इस प्रकार का मार्ग [illegible] बहुत से अपव्यय को रोक सकेंगे।

Q. 4. Discuss the contribution of Thurston in the field of Interest testing

Ans रुचिपत्रियाँ तैयार करने वाले सभी मनोवैज्ञानिको ने व्यावसायिक रुचियो मे विविध रूपों को अलग-अलग मानकर रुचि परीक्षण किया। यद्यपि कूडर ने रुचियों को १० व्यापक वर्गों मे बाँटा लेकिन फिर भी रुचियों की अनेकता का आभास उसकी रुचिपत्री से मिला। रुचियों

(२) थर्स्टन का शैडूल बहुत कम समय में व्यक्ति की रुचि सम्बन्धी जानकारी दे सकता है क्योंकि उस इससे केवल ७२ पेशों को ही जाँचना पड़ता है लेकिन स्ट्रांग की रुचिपत्री में उसे १०० पेशों, ५० मनोरंजन सम्बन्धी कार्यों, ३६ स्कूली विषयों, ४२ अन्य क्रियाओं, ५३ व्यक्तियों की विशेषताओं को जाँचना पड़ता है।

(३) स्ट्रांग की रुचिपत्री का मूल्यांकन करने में समय भी अधिक लगता है।

(४) लेकिन स्ट्रांग की रुचिपत्रों के परिणामों की व्याख्या आसान है जबकि थर्स्टन के शैडूल के परिणामों की व्याख्या कठिन और जटिल है।

(५) स्ट्रांग की रुचिपत्रों भरवाने के बाद यदि व्यक्ति की समक्षभेंट (Interview) करें, तो व्यक्ति के विषय में उपयोगी सूचनायें प्राप्त होंगी।

Q 5. Explain the term attitude. How is it related to interest Explain some of the methods of studying attitudes.

Ans अभिवृत्ति—विषयों, पदार्थों, व्यक्तियों, पशुओं, पक्षियों, संस्थाओं, जातियों, धर्मों और प्रथाओं के प्रति वह प्रवृत्ति अथवा पूर्व प्रवृत्ति जो हमें विशिष्ट प्रकार से उनके साथ अनुक्रिया करने के लिए बाध्य करती है अभिवृत्ति कहलाती है। ये वस्तुयें प्रत्येक व्यक्ति के समक्ष बाह्य उत्प्रेरण के रूप में प्रस्तुत होती हैं। उनके प्रति व्यक्ति की अनुक्रियायें उसकी अनुभूतियों के रूप में प्रकट होती हैं। बीजगणित के प्रति हमारे बच्चों की अभिवृत्ति अच्छी नहीं है। हमारे कुछ बच्चे विद्यालय आने में डरते हैं। हम चीनियों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं, किसी चीनी या कम्यूनिस्ट का नाम सुनते ही हमारा खून खौल उठता है। इस प्रकार कुछ विषयों, पदार्थों, व्यक्तियों और संस्थाओं के प्रति अनुक्रिया करने की हमारी प्रवृत्ति घृणा भाव का प्रदर्शन करती है। हम अपने घर को प्रेम करते हैं, अपने देश के लिए मरने मिटने के लिये तैयार हो जाते हैं, अपने गुरुओं के सामने आते ही हमारी आँखें उनके सम्मान में अवनत हो जाती हैं।

अभिवृत्तियों का स्वरूप—अंग्रेजी भाषा का शब्द (attitude) कई अर्थों में प्रयुक्त होता है और अब तक इस मनोवैज्ञानिक प्रत्यय का कोई अर्थ निश्चित नहीं हो पाया है। लेकिन यदि अभिवृत्तियों का मापन हमें करना है तो अभिवृत्तियों की परिभाषा और स्वरूप निश्चित करना होगा। अभिवृत्ति का शाब्दिक अर्थ है विशेष वृत्ति। मन की वह विशेष वृत्ति जो किसी व्यक्ति, पदार्थ, परिस्थिति, संस्था या विचार के प्रति हमारा आचरण का रूप निश्चित करती है जिसके कारण हम इन वस्तुओं के प्रति अपनी कोई विशेष धारणा अथवा विचार बना लेते हैं अभिवृत्ति कहलाती है। हमारी चीनियों के प्रति अभिवृत्ति रोषमयी है क्योंकि उन्होंने हमारे देश पर आक्रमण किया है। हमारी अभिवृत्ति बीजगणित के प्रति विचार युक्त हो सकती है क्योंकि वह इतना सूक्ष्म और सामान्यीकृत है कि हम उसको समझ नहीं पाते, हमारी अभिवृत्ति किसी विद्यालय के प्रति खराब हो सकती है क्योंकि उस विद्यालय में आये दिन अनुशासनहीनता की समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं, हमारी अभिवृत्ति अहिंसा परमोधर्म इस विचार के प्रति उत्तम हो सकती है क्योंकि यह अहिंसा ही प्राणियों का महान् धर्म है। इस प्रकार किसी वस्तु, व्यक्ति, सामान्य विचार के प्रति हमारे भाव स्थाई हो जाते हैं जिन्हें अंग्रेजी में sentiments कहते हैं, अथवा किसी व्यक्ति के प्रति घृणा, क्रोध, वैमनस्य के भाव हमारे दिल में घर कर जाते हैं जिन्हें हम भावनात्मक संघर्ष कहते हैं। इस प्रकार हम अभिवृत्तियों में उन सभी स्थाई भावों (sentiments) को सम्मिलित करते हैं जिनका उल्लेख मैकडूगल ने अपनी रचनाओं में किया है साथ ही उन सभी भावना ग्रंथि को भी सम्मिलित करते हैं जिनका उल्लेख चिकित्सा मनोवैज्ञानिक किया करते हैं।

इन अभिवृत्तियों की अर्थात् स्थाई भावों और भावनात्मक साधनों की विशेषता यह है कि वे मनुष्यों द्वारा रेडीमेड वस्त्रों की तरह स्वीकार किये जाते हैं और पहने जाते हैं। आवश्यकता पड़ने पर उन वस्त्रों को जिस प्रकार छोटा बड़ा किया जा सकता है उसी प्रकार उन अभिवृत्तियों में जिन को हमने अपने माता, पिता, गुरुजनों अथवा समाज के अन्य सदस्यों से स्वीकार कर लिया है, कभी-कभी परिवर्तन भी ले आते हैं। लेकिन वे सभी उधार ली हुई वृत्तियाँ ही हैं। उदाहरण के लिये हम चीनियों से घृणा करते हैं क्योंकि हमारा राष्ट्र उनसे घृणा करता है। हम बीजगणित से घृणा करते हैं क्योंकि वह विषय हमारे माता-पिता को अथवा अन्य किसी मित्र को रुचिकर

नहीं था, हम महाशय ग्र को फूटी आंखों से भी नहीं देखना चाहते क्योंकि हमारे पिताजी उनके सख्त खिलाफ हैं। इस प्रकार ग्रभिवृत्तियाँ दूसरों से सीखी जाती हैं।

ग्रभिवृत्तियों का स्वरूप समझने के लिए यह भी जानना ग्रावश्यक है कि उनकी ग्रभिव्यंजना कैसे होती है। ग्रभिवृत्तियां का प्रदर्शन हम दो प्रकार से करते हैं—

(ग्र) ग्राचरण द्वारा।
(ब) कथन द्वारा।

लेकिन यह याद रहे कि इस प्रदर्शन मे बहुधा असंगति ही होती है। हम दूसरो को दिखाते तो यह हैं कि ग्रमुक व्यक्ति से हमे घृणा है लेकिन भीतर ही भीतर हम उसे प्यार भी करते हैं। हम पाकिस्तान के रवैये को दिखाने के लिये तो बुरा कहते हैं किन्तु (गद्दार होने के कारण) मन ही मन सोचते हैं कि पाकिस्तान जो कुछ कर रहा है ठीक ही कर रहा है। इस प्रकार हमारे कहने ग्रौर करने में भी काफी ग्रन्तर होता है। ग्रत ग्रभिवृत्तियो का मापन करते समय ग्रभिवृत्तियो के प्रदर्शन के तरीकों पर भी ध्यान रखना होगा। यदि हम किसी व्यक्ति की ग्रभिवृत्तियो का मापन करना चाहते हैं तो उसके कथनों से उसकी ग्रभिवृत्तियों का ग्रन्दाजा नहीं लगा सकते लेकिन सभी ग्रभिवृत्ति परीक्षाएँ इन कथनों को ही महत्त्व देती हैं वे व्यक्ति के ग्रन्त मे कितनी गहराई तक प्रवेश करती हैं ग्रथवा नही निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। इस बात को ध्यान मे रखकर ग्रभिवृत्ति परीक्षए को विश्वस्त बनाने के लिये परीक्षक सैम्पलिंग का ग्राकार बढा देता है। दूसरे शब्दो मे किसी व्यक्ति, वस्तु ग्रथवा सस्था के प्रति व्यक्ति के सामान्य विचार व्यक्तिगत धारणा का परिचय प्राप्त करने के लिये परीक्षक सीधे सादे प्रश्न नहीं पूछता वह यह नहीं पूछता कि तुम ग्रास्तिक हो ग्रथवा नास्तिक, तुम स्कूल को घृणा करते हो या प्रेम। वरन् वह धर्म ग्रथवा विद्यालय के प्रति व्यक्ति ग्रथवा बालक की ग्रभिवृत्ति जानने के लिए कई प्रश्न पूछता है। उदाहरण के लिए वह पूछ सकता है—ग्रापने कौनसी धार्मिक पुस्तकों का ग्रवलोकन किया है? ग्रापकी ईश्वर के ग्रस्तित्व के विषय में क्या धारणा है? क्या ग्राप देवी की पूजा मे विश्वास रखते हैं या नहीं? कहने का ग्राशय यह है कि यदि ग्रभिवृत्तियों का मापन करना है तो चूंकि उनका मापन कथनो द्वारा ही हो सकता है इसलिये ऐसे कथन की सख्या बढानी होगी। जो व्यक्ति के ग्राचरणों का भी रूप निर्दिष्ट कर सकें। यहाँ पर एक बात याद रखनी है वह यह कि ग्रभिवृत्ति परीक्षाएँ जिनमे कथनों के उत्तरों से ही ग्रभिवृत्ति का मापन किया जाता है ग्राचरणों से सह-सम्बन्धित पाई गई हैं।

ग्रभिवृत्तियो की एक ग्रौर विशेषता है जो उनको मापनीय बनाने मे सहायता देती है। ग्रभिवृत्तियाँ सामान्यत दो प्रकार की होती हैं एक विमात्मक (unidimensional) ग्रौर द्विविमात्मक। वस्तुग्रों के प्रति राम की ग्रभिवृत्ति ग्रधिक उपयुक्त हो सकती है ग्रौर श्याम की ग्रभिवृत्ति कम उपयुक्त। इस प्रकार राम ग्रौर श्याम को ग्रभिवृत्ति-मापिनी (attitude scale) पर दो निश्चित स्थानों पर रख सकते हैं जो शून्य के एक ही ग्रोर होंगे। लेकिन यदि राम उस वस्तु को प्रेम करता है ग्रौर श्याम उसे घृणा तो यह ग्रभिवृत्ति प्रेम-घृणा द्विविमात्मक मानी जा सकती है। इतना निश्चित है कि किसी विशेष ग्रभिवृत्ति के ग्रनुसार दो व्यक्तियों को एक सीधी रेखा पर दो निश्चित स्थान दिये जा सकते हैं। यदि ऐसा है तो ग्रभिवृत्तियों का मापन हो सकता है। ग्रभिवृत्तियों की इस विशेषता का उपयोग परीक्षण पद तैयार करने में किया गया।

Q. 6. How are interests and attitudes related? Why is it necessary to develop proper interests and attitudes in children?

Ans. ग्रभिवृत्तियाँ (Attitudes) की विशेषताएँ

जिस प्रकार कुछ पदार्थों, व्यक्तियों, कार्यकलापों, पेशों में दत्तचित्त हो जाने की हमारी प्रवृत्ति होती है, ग्रौर उस प्रवृत्ति के कारण हम ग्रपना ध्यान उसमें केन्द्रित कर देते हैं, उसकी ग्रोर ग्राकृष्ट होने ग्रौर उसके साथ सम्पर्क स्थापित करने में ग्रानंद की ग्रनुभूति करते हैं, उसी प्रकार कुछ पदार्थों, व्यक्तियों, विषयों ग्रौर संस्थाग्रों के प्रति तो हमारी भावनाएँ उत्तम कोटि की होती हैं ग्रौर उनको हम ग्रादर एवं सम्मान की दृष्टि से देखते हैं ग्रौर कुछ के प्रति हमारी भावनाएँ विकृत होती हैं। यही भावनाएँ हमारी ग्रभिवृत्तियाँ (attitudes) हैं। किसी वस्तु के प्रति हमारी

अभिवृत्ति वह प्रवृत्ति होती है जिसके अनुसार हम उस वस्तु के प्रति अनुक्रिया करते हैं।[1] ये प्रवृत्तियाँ कुछ वस्तुओं के प्रति अधिक तीव्र होती हैं कुछ के साथ कम तीव्र। उनकी कुछ के साथ अधिक सयुजता (valency) होती है कुछ के साथ कम।

इस प्रकार प्रत्येक अभिवृत्ति मे तीन लक्षण होते हैं

(अ) उस वस्तु की उपस्थिति जिसके प्रति हमारी भावनाएँ उत्पन्न होती हैं।
(ब) भावनाओं का अधिक और कम तीव्र होना (Intensity of the feeling)
(स) भावनाओं का सयुज होना (Valency direction of the feeling)

वे वस्तुएँ जिनके प्रति हमारी अभिवृत्तियाँ विकृत होती हैं निम्नांकित हैं—

(i) कुछ देश, धर्म, और जातियाँ
(ii) कुछ पेशे
(iii) विद्यालय तथा कुछ अध्यापक

अभिवृत्तियों और रुचियों में अन्तर और समानता—अभिवृत्तियाँ और रुचियाँ दोनो ही किसी पदार्थ, वस्तु, व्यक्ति, संस्था आदि के प्रति जाग्रत होती हैं लेकिन दोनो मे अन्तर है। ये अन्तर निम्नांकित दिशाओं मे हैं —

(i) अभिवृत्ति और रुचियाँ दोनो ही किसी वस्तु, पदार्थ, व्यक्ति के प्रति उत्पन्न भावनाओ का चित्रण करती हैं फिर भी दोनो मे अन्तर है। रुचियाँ व्यक्ति के बाह्य एवं आन्तरिक जगत् से सम्बन्ध रखती हैं लेकिन अभिवृत्तियो का सम्बन्ध व्यक्ति के बाह्य जगत् से ही होता है।

(ii) जबकि रुचियाँ केवल भावात्मक या उदासीन होती हैं अभिवृत्तियाँ भावात्मक, अभावात्मक और उदासीन तीनों हो सकती हैं।

रुचियों और अभिवृत्तियों का अध्ययन क्यों ?

बुद्धि और अभियोग्यता के होते हुए भी यदि छात्र मे कक्षा कार्य के प्रति उत्तम अभिवृत्तियो (attitudes) अथवा विषयों के प्रति रुचि नही है तो अधिगम (Learning) की मात्रा निश्चित रूप से कम होगी। विषयों मे रुचि छात्रो को सीखने के लिये उत्प्रेरणा देती है। विद्यालय, गृहकार्य, अध्यापक और पढ़ाये जाने वाले विषयो के प्रति अच्छी अभिवृत्तियाँ शिक्षा के उद्देश्यो की पूर्ति मे सहायक होती हैं। इसके विपरीत इन वस्तुओ और व्यक्तियो के प्रति छात्रो की विकृत अभिवृत्तियाँ विद्यालय और शिक्षा के प्रति तटस्थता, अनेक विद्रोह की भावना पैदा कर देती हैं फलस्वरूप शिक्षा के चरम उद्देश्यों की प्राप्ति मे बाधा होती है। अत अध्यापक के लिये छात्रो की बुद्धि और अभियोग्यता का परीक्षण जितना आवश्यक और महत्वपूर्ण है रुचि और अभिवृत्तियो का मापन उससे कम महत्वपूर्ण नही है।

छात्रों की रुचियो और अभिवृत्तियो का महत्व अध्यापक के लिये इतना अधिक क्यो है ; इसके दो कारण हैं :—

(अ) रुचियाँ और अभिवृत्तियाँ बालक के निष्पन्न और सीखने के तरीके दोनो को ही प्रभावित करती हैं।

(आ) अभिवृत्तियों का विकास शिक्षा का उद्देश्य माना जाता है। बालक उन बातों को याद रखते हैं जिनमे उनकी रुचि होती है और उन बातो को भूल जाते हैं जो उनके लिये अरुचिकर होती हैं। अरुचि शिक्षण कार्य को प्रभाव विहीन बना देती है। गणित, विज्ञान, समाज अध्ययन, नागरिकशास्त्र, इतिहास, भूगोल, सभी विषयों का शिक्षण केवल इसीलिये नही किया जाता कि बालक इन विषयो से सम्बन्धित तथ्यो, सिद्धान्तो और प्रत्ययों की जानकारी प्राप्त कर लें अथवा कुछ विशेष दक्षता अर्जने में विकसित कर लें वरन् इसलिये भी किया जाता है कि वे उत्तम अभिवृत्तियो और रुचियो का विकास कर

1. "An attitude is a tendency to react in a certain way towards a designated class of stimuli"

(२) आत्म प्रतिवेदन (Self-Report)—व्यक्ति कहता कुछ है करता कुछ है अत निरीक्षण विश्वस्त यन्त्र नहीं। अभिवृत्तियों का परीक्षण करने से पहले उन वस्तुओं, पदार्थों, व्यक्तियों, संस्थाओं, धर्मों और रूढ़ियों की जानकारी प्राप्त करनी होगी जिनके प्रति हमारे बालकों की अभिवृत्तियाँ बिगड़ी या सुधरी हुई हैं। मान लीजिये हम अपने बालकों की बाह्य क्रियाओं (Out door activities) के प्रति अभिवृत्ति का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं तो हमें ऐसे परीक्षण पद तैयार करने होंगे जिनके उत्तरों से उस अभिवृत्ति की मात्रा (degree) और तीव्रता (direction) का पता लगा सके। इस कार्य के लिये आत्म प्रतिवेदन और अभिवृत्ति अनुमापों का प्रयोग किया जाता है। आत्म प्रतिवेदन में बालक से उसके विषय में रिपोर्ट माँगी जाती है। एक प्रश्न नीचे दिया जाता है।

मैं बाहर मैदानों और जंगलों में भ्रमण करना पसंद करता हूँ
(i) हमेशा
(ii) प्राय.
(iii) कभी-कभी
(v) कभी नहीं

हमेशा	प्राय	कभी कभी	कभी नहीं

इस प्रश्न में चार उत्तर माँगे गये हैं इन उत्तरों को निम्न विधि से आंकिक मूल्य दिये जा सकते हैं।

	१	२	३	४
अथवा—	—२	—१	+१	+२

कभी कभी ऐसे प्रश्न भी पूछे जाते हैं जिनके उत्तर हाँ और नहीं में माँगे जाते हैं। ऐसी दशा में हाँ को १ और नहीं को शून्य ० मूल्य दिया जाता है।

(३) समक्षभेंट (Interview)—अभिवृत्ति मापन का एक उत्तम तरीका है। व्यक्ति की अभिवृत्ति के विषय में यद्यपि समक्षभेंट से काफी महत्वपूर्ण जानकारियाँ उपलब्ध हो सकती हैं और अभिवृत्ति मापन अधिक शुद्ध और विश्वस्त हो सकता है फिर भी चूँकि समक्षभेंट का परिणाम अंकों में व्यक्त नहीं किया जा सकता इसलिये लोगों की रुचि इस ओर बहुत कम है। यह तरीका अत्यधिक प्रचलन में इसलिये भी नहीं है कि व्यक्ति की अभिवृत्ति का सन्तोषजनक मूल्यांकन थोड़े बहुत प्रश्नों से हो ही नहीं सकता। लेकिन यह कमी तभी दूर हो सकती है जब मौखिक रूप से पूछे जाने वाले प्रश्नों के उत्तर अलग से टीप लिये जायें और उनका फिर मूल्यांकन कर लिया जाय।

(४) सम्मति प्रकाशन (Tests of Opinion)—चूँकि अभिवृत्ति और सम्मति दोनों को कभी कभी पर्यायवाची माना जाता है इसलिये अभिवृत्ति का मापन सम्मति प्रकाशन द्वारा भी किया जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी सम्मति का प्रकाशन प्रश्नों के उत्तरों के माध्यम से देता। ये प्रश्न [illegible] होते हैं। [illegible] इन भाव- [illegible] कुछ प्रश्न नीचे दिये जाते हैं

(१) यदि आप नीचे बाईं ओर अंकित पेशों में काम करने वाले व्यक्तियों से पूरी जानकारी रखते हों तो उनके साथ आप कैसा सम्बन्ध रखेंगे। इस सम्बन्ध को सूचित कीजिए—

पेशा	सम्बन्ध
बस ड्राइवर अध्यापक सैनिक क्लर्क	मित्रवत् आचरण करना। अपने घर आमंत्रित करना। अपने क्लब का सदस्य बनाना। अपने गहरा दोस्त बनाना। कुछ ध्यान न देना।

(२) अध्यापक अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक कठोर होते हैं—सत्य-असत्य पहले प्रश्न के उत्तरों से कई व्यक्तियों के प्रति उत्तर देने वाले व्यक्ति की भावनाओं का मापन होता है। परीक्षार्थी के उत्तरों में उनके प्रति उत्पन्न अभिवृत्ति की दिशा और तीव्रता दोनों का पता लग सकता है। ऐसे परीक्षण पद Social distance का मापन करने के लिये प्रयोग में आते हैं। जिनके प्रति हमारी अभिवृत्तियाँ स्वस्थ होती हैं उन्हीं से हम गहरे सम्बन्ध रखते हैं।

दूसरे प्रश्न के उत्तर में बालक की अध्यापक वर्ग तथा विद्यालय के प्रति भावनाओं की दिशा का अनुमान लगाया जा सकता है। ऐसे ही अनेक परीक्षण पदों की सहायता से विद्यालय के प्रति छात्रों की अभिवृत्ति की तीव्रता का अनुमान लगाया जा सकता है।

सम्मति प्रकाशन के लिये परीक्षण पदों का चुनाव—किसी पदार्थ, वस्तु, व्यक्ति, संस्था के प्रति हमारी भावनाओं का सही-सही चित्रण हमारे कथनों में तभी हो सकता है जब हमसे उत्तम प्रकार के प्रश्न पूछे जायें। हम में से कुछ लोगों की सम्मतियाँ किसी वस्तु के प्रति अत्यधिक अतिरंजित होती हैं। या तो वे उनके प्रति अत्यन्त विरोधी भावना का प्रकाशन करते हैं या अत्यधिक सम्मेल भावना का। सम्मति प्रकाशन (Tests of Opinion) तैयार करते समय सबसे पहले इन्हीं लोगों की सम्मतियाँ एकत्रित की जाती हैं। उदाहरण के लिये यदि हमें ऐसी परीक्षा तैयार करनी हो जिससे विद्यालय के प्रति छात्रों की अभिवृत्ति का मापन हो सके तो हमें या तो भगोड़ों (Truants) से सम्मतियाँ एकत्र करनी होंगी या विद्यालय में प्रथम आने वाले छात्रों से जब एक ही वस्तु के प्रति अभिवृत्ति का मापन करना हो तो उसी वस्तु के विषय में बिगड़ी (Unfavourable) तथा सुधरी हुई (favourable) सभी प्रकार की सम्मतियाँ इकट्ठी कर लेनी होंगी। ऐसी सम्मतियों को सत्य-असत्य अथवा हाँ-ना के रूप में बदलना होगा। यदि इस प्रकार के ५० प्रश्नों में कोई व्यक्ति 'क' ४० प्रश्नों का उत्तर भावात्मक दिशा में देता है तो उसकी अभिवृत्ति उस वस्तु के प्रति सुधरी हुई मानी जायगी और यदि दूसरा व्यक्ति 'ख' ५० में से १० प्रश्नों का ही भावात्मक दिशा में उत्तर देता है तो उसकी अभिवृत्ति बिगड़ी हुई मानी जायगी।

सम्मति प्रकाशन (Opinionnaire) के देने पर प्राप्त फलांकों की व्याख्या—जब किसी छात्र समूह को कोई Opinionnaire दिया जाता है तो उनके उसमें अलग अलग फलांक आते हैं। यदि इन फलांकों का प्रतिशततमक अनुस्थितियाँ (Percentile Rank) निकाल ली जायें तो उन में से पास वाली अनुस्थितियों में विभेद करना कठिन हो जाता है। दो भिन्न प्रतीय अनुस्थितियों में अन्तर की व्याख्या तो की जा सकती है लेकिन पार्श्ववर्ती अनुस्थितियाँ जैसे P_{75} और P_{70} में क्या अन्तर होगा निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

जब कभी वर्ग विशेष की सम्मति माँगने का प्रश्न हो तब पहले प्रकार का प्रश्न, जिसमें श्रोता की कई पेशों के प्रति वृत्ति का मापन किया गया है, उपयुक्त होता है। प्रत्येक प्रश्न (item) का वर्ग विशेष जैसा उत्तर देता है ऐसे उत्तरों की गणना ज्ञात करके वर्ग विशेष की अभिवृत्ति का अनुमान लगाया जाता है।

(५) थर्स्टन अनुमाप अभिवृत्तियों की तीव्रता का मापन करने के लिये थर्स्टन ने अभिवृत्ति अनुमाप (attitude scales) तैयार करने का सुझाव दिया है। इस अनुमाप में कई कथन होते हैं। किसी पदार्थ या वस्तु के विषय में से कुछ एकदम अनुकूल अथवा कुछ एकदम प्रतिकूल होते हैं। ये कथन अनुकूलतम को सर्वोच्च श्रेणी में रखते हुए रखे जाते हैं। साम्यवाद के प्रति अभिवृत्ति का मापन करने के लिये ऐसे अनुमाप थर्स्टन ने तैयार किये जिसका एक अंश नीचे दिया जाता है।

A (१) साम्यवाद हमारी वर्तमान आर्थिक समस्याओं का हल सुझा सकता है।
F (२) साम्यवाद के गुण और दोष दोनों को ही परिलक्षित किया जाता है।
K (३) पूँजीपति यदि साम्यवादियों को गोली से उड़ा दे तो यह बात न्यायोचित होगी।

इस प्रकार के अनुमाप युद्ध, नीग्रो, सिनेमा, भाषण की स्वतन्त्रता, चर्च आदि बातों के प्रति अभिवृत्तियों का मापन करने के लिए तैयार किये जा चुके हैं। बच्चों की अभिवृत्तियों का मापन करने के लिए रैमर्स (Remmers) और उनके सहयोगियों ने अनेक अभिवृत्ति अनुमाप तैयार किये हैं। अध्यापक के लिए आवश्यकता इस बात की है कि वह उन अभिवृत्तियों के अन्तर्गत अनुमापों का सूक्ष्म रूप [illegible] जिनका उल्लेख इस अध्याय के प्रारम्भ में किया जा चुका है।

Q 8. Discuss the steps of preparing Thurston's Attitude scales

Ans. अभिवृत्ति अनुमाप (Attitude scales)—एक विमात्मक पैमाने (unidimensional scale) पर व्यक्ति की आपेक्षिक (relative position) दिखाने के लिए अभिवृत्ति अनुमाप तैयार किये जाते हैं। किसी वस्तु, पदार्थ, संस्था अथवा व्यक्ति के लिए हमारी अभिवृत्ति की तीव्रता (intensity) कितनी है यह नापने के लिए अभिवृत्ति अनुमाप विशेष सहायक यन्त्र है। इन अनुमापों को तैयार करने के निम्नलिखित चार तरीके हैं—

(अ) थर्स्टन (Thurston) की विधि
(ब) लाइकर्ट (Likert) की विधि
(स) गुटमैन (Guttman) का scalogram analysis
(द) लैजर फील्ड (Lazarfeld) का Latent structure analysis

थर्स्टन की विधि—थर्स्टन ने मनोभौतिक विधियों (Psycho-physical methods) का प्रयोग करके अभिवृत्ति अनुपरक बनाने के एक-एक तरीका की खोज की है जो अपने में विलक्षण और अपूर्व है। उसने तथा उसके साथियों ने ३० से अधिक अभिवृत्ति अनुमाप तैयार किये हैं जिनमें से मुख्य अभिवृत्ति अनुमापों का सम्बन्ध साम्यवाद (communism), नीग्रो, चाइनीज, शारीरिक दण्ड (capital punishment), धार्मिक संस्थाओं, रीतिरिवाजों (practices), विवादग्रस्त विषयों (issues) से है।

एक अभिवृत्ति अनुमाप के कुछ पद नीचे दिये जाते हैं

ATTITUDE TOWARD COMMON SCALE NO 6 FORM A

Prepared by L. L. Thurston

Put a check mark √ if you agree with the statement.
Put a cross × if you disagree with the statement.

1. Both the [illegible]
3. [illegible]
5. [illegible]
7. [illegible]
9. [illegible]
11. [illegible]
15. [illegible]
17. [illegible]
19. [illegible] trial.

ऐसी अभिवृत्ति पत्रियाँ War, Negro, Law, Germans, Constitution of U S Prohibition, Munroe Doctrine, Freedom of Speech, Honesty in Public Office, Public ownership, Unions, The Treatment of criminals के प्रति अभिवृत्ति मापन के लिये तैयार की गई है।

ऐसे अभिवृत्ति अनुमापों (attitude scales) को तैयार करने के लिए निम्नांकित चार क्रियाएँ करनी पड़ती हैं—

(अ) जिस वस्तु के प्रति अभिवृत्ति अनुमाप तैयार करना है उसके प्रति लोगों की धारणाओं का संग्रहण।
(आ) उन धारणाओं का जजों द्वारा ११ वर्गों मे छाँटना।
(इ) जजों द्वारा दी गई ११ वर्ग श्रेणियों (ratings) का सांख्यिकीय विश्लेषण।
(ई) धारणाओं की उपयुक्तता (relevance) का परीक्षण।
(उ) धारणाओं का अन्तिम चुनाव (selection of statements)।
(ऊ) अभिवृत्ति अनुमाप का लागू करना (administration)

(ग्र) धारणाओं ग्रथवा कथनों का संग्रह—जिस वस्तु, सस्था, ग्रथवा विचार के प्रति ग्रभिवृत्ति ग्रनुमाप तैयार करना होता है उसके प्रति सभी प्रकार की भावनाग्रो को एक करना पडता है। उनसे सभी सम्बद्ध लोगों को सम्मतियाँ माँगी जाती हैं। सभी प्रकार की भावनाग्रो, सम्मतियो, ग्रभिधारणाग्रो की सूची तैयार कर ली जाती है। इनमे से कुछ तो उस वस्तु के प्रति भावात्मक उग्रभाव को सूचित करती हैं ग्रौर कुछ ग्रभावात्मक उग्रभाव को ग्रर्थात् कुछ कथन तो उस वस्तु के बिल्कुल विरोधी होते हैं ग्रौर कुछ उसका पक्ष लेते हैं, इनमे से कुछ सम्मतियाँ न तो पूरी तरह से भावात्मक ही होती हैं ग्रौर न ग्रभावात्मक ही, वे मध्यममार्गी होती हैं।

(ग्रा) कथनों को छांटने के लिए जजों के पास प्रेषित करना—प्रत्येक कथन एक एक कागज पर लिख लिया जाता है ग्रौर लगभग ३०० जजो के पास एक लिफाफे मे भरकर उन कथनो को भेज दिया जाता है। जजो को निम्नलिखित ग्रादेश दे दिये जाते हैं।

"ग्राप कृपा करके प्रत्येक कथन (Statement) को ध्यान से पढ़ें। जिस कथन से चर्च की ग्रत्यन्त प्रशसा की जा रही हो तो उसे A वर्ग श्रेणी (rating) दें, ग्रौर जिस कथन से चर्च की बहुत कडी निन्दा की जा रही हो उसे K वर्ग श्रेणी दें। ऐसे कथनो को जिनमे चर्च की न तो प्रशसा ही, न निन्दा ही मालूम पडती हो उनको बीच की वर्ग श्रेणी दें। इन सभी कथनों को जो ग्राप के पास भेजे जा रहे हैं इस प्रकार सजा दें कि उनका क्रम प्रशसा के ग्रनुसार ग्रारोही ग्रथवा ग्रवरोही हो। ग्रापको जो वर्ग श्रेणि उचित महसूस हो वह वर्ग श्रेणी दें ग्रपने निर्णय ग्रथवा भावना से Sorting का यह कार्य प्रभावित न किया जाय"।

(इ) जजों द्वारा दी गई वर्ग श्रेणियों का विश्लेषण—प्रत्येक जज इन ग्रादेशों के ग्रनुसार सभी कथनों को ११ विभिन्न वर्ग श्रेणियो मे विभक्त करता है। प्रत्येक कथन की पुन जाँच की जाती है कि उन जजों मे से कितने प्रतिशत लोगो ने उसको A वर्ग श्रेणी दी है ग्रौर कितनो ने B वर्ग श्रेणी, इत्यादि-इत्यादि।

मान लीजिए कि कथन 'क' को जजो द्वारा जो वर्ग श्रेणियाँ दी गई हैं उनकी प्रतिशत ग्रावृत्तियाँ नीचे दी जाती हैं—

वर्ग श्रेणी (rating)	प्रतिशत
A	१५
B	४०
C	३०
D	१०
E	३
F	२
G	०
H	०
I	०
J	०
K	०

१५% जजो ने उस कथन को A वर्ग श्रेणी दी है, ४०% जजो ने उसे B श्रेणी दी है, इत्यादि-इत्यादि।

यदि वर्ग श्रेणि A को १, B को २, C को तीन इत्यादि मान (value) दिये जायें तो इस तालिका मे कथन 'क' की Scale value ज्ञात की जा सकती है। यह Scale value माध्यका (median) होगी।

ऊपर के ग्रावृत्ति वितरण मे median निकालने पर Scale value १.८ ग्राती है।

वर्ग श्रेणी का मान (value)		प्रतिशत आवृत्ति	संचयी आवृत्ति
A	१	१५	१५
B	२	४०	५५
C	३	३०	८५
D	४	१०	९५
E	५	३	९८
F	६	२	१००
G	७	०	१००
H	८	०	१००
I	९	०	१००
J	११	०	१००
K	१०	०	१००

$$\text{Median} = १ + \frac{५० - १५}{४०} \qquad Q_1 = १ + \frac{२५ - १५}{४०}$$

$$= १ + \frac{३५}{४०} \qquad = १ + \frac{१}{४} = १\ २५$$

$$= १ + \frac{७}{८} \qquad Q_3 = २ + \frac{७५ - ५५}{३०}$$

$$= १\ ८ \qquad = २ + \frac{२}{३} = २\ ६६$$

$$Q = \frac{Q_3 - Q_1}{२} = \frac{२\ ६६ - १\ २५}{२} = \frac{१\ ४१}{२} = \ ७$$

इसी प्रकार अन्य कथनों की scale value ज्ञात की जा सकती है। मान लीजिए कि दूसरे कथन की Scale value ६ ७ है तथा उसके लिए Q का मान ३ ६ है तो इसका आशय यह होगा कि कथन 'क' धर्म के प्रति स्वस्थ अभिवृत्ति का परिचायक है और कथन 'ख' धर्म के प्रति न तो अस्वस्थ अभिवृत्ति का परिचायक है और न स्वस्थ अभिवृत्ति का ही। उसके लिए व्यक्ति की अभिवृत्ति neutral सी है। यदि किसी कथन की स्केल वेल्यू (Scale value) ११ के लगभग आती तो उसके विषय में कहा जा सकता था कि वह धर्म के प्रति अस्वस्थ अभिवृत्ति का परिचायक है।

कथन 'क' के लिए दिये गये अनुमानों की विचलनशीलता केवल ७ है और कथन 'ख' के लिए उसकी मात्रा ३ ६ है। इसका अर्थ यह है कि पहले कथन के विषय में सभी निर्णायकों (judges) की सम्मतियाँ मेल खाती हैं किन्तु कथन 'ख' के लिए ऐसी बात नहीं। चूँकि कथन 'ख' के विषय में विभिन्न निर्णायकों के मतों में विचलनशीलता पर्याप्त मात्रा में है इसलिए उसे त्याज्य (reject) समझा जा सकता है। मतों में विचलनशीलता की यह मात्रा जो Q से सूचित की जाती है अस्पष्टता (ambiguity) की माप मानी जाती है।

(२) कथनों की उपयुक्तता अथवा सुदृढ़ता (relevance) की जाँच—जिन कथनों को निर्णायकों ने सफलतापूर्वक interpret किया है उनको छाँट देने के बाद जो कथन शेष रह जाते हैं उनमें से प्रत्येक को सुदृढ़ता की कसौटी पर कसा जाता है। व्यक्तियों के किसी प्रतिनिधित्वपूर्ण समूह (representative sample) को ये कथन देकर प्रत्येक व्यक्ति से यह आदेश किया जाता है कि वह उन कथनों को [illegible] से प्रत्येक से सहमत है या नहीं। सम्पूर्ण परीक्षण में प्रत्येक व्यक्ति को [illegible] प्राप्त कर लिए जाते हैं। जो व्यक्ति कथन से सहमत होता है उसे १ अंक और जो असहमत होता है उसे ० अंक दे दिया जाता है। इन अंकों का आवृत्ति वितरण (Frequency Distribution) तैयार कर ली जाती है और फिर यह निश्चित किया जाता है कि प्रत्येक वर्ग विस्तार (Class interval) के कितने प्रतिशत व्यक्तियों ने किसी एक कथन से अनुकूल सहमति प्रकट की है।

मान लीजिए कि कथन 'अ' के लिए प्राप्त आँकड़े निम्नलिखित तालिका में प्रदर्शित किये गये हैं।

कथन 'अ'

मापनी विस्तार	सहमति की आवृत्तियाँ Yes	कुल आवृत्तियाँ Total	असहमति की आवृत्ति (No)
८५-८६	५०	१५०	१००
८०-	२०	१८०	१६०
७५-	६०	२५०	१९०
७०-	५०	३३०	२८०
६५-	१०	२००	१९०
६०-	०	२२०	२२०
५५-५६	१०	१७०	१६०
	२००	१५००	१३००

इस तालिका में r_{bis} ज्ञात कर लिया जाता है जिसका सूत्र है—

$$r_{bis} = \frac{M_{yes} - M_{no}}{\text{S D Total}} \times \frac{\frac{M_{yes}}{N} \cdot \frac{M_{no}}{N}}{\text{height of the normal ordinate}}$$

यदि r_{bis} अर्थ सूचक (significant) नहीं होता तो कथन को bis परीक्षा में स्थान नहीं दिया जाता।

(ई) **कथनों का अन्तिम चुनाव** (Final Selection of Statements)—इस प्रकार प्रत्येक कथन के विषय में निर्णय की सम्मति विचलनशीलता और प्रत्येक कथन के r_{bis} की अर्थ-सूचकता देखकर कथन को अभिवृत्ति अनुमाप (attitude scale) के अन्तिम प्रारूप (*final draft*) में स्थान दिया जाता है।

इस अभिवृत्ति अनुमाप का समानान्तर रूप (parallel form) तैयार करके पुन उसी वर्ग पर लागू करके अनुमाप की विश्वस्तता (reliability) ज्ञात की जाती है।

(उ) **अभिवृत्ति अनुमाप का लागू करना** (administration)—प्रत्येक कथन जो अभिवृत्ति अनुमाप में स्थान पाता है कुछ न कुछ scale value रखता है। जब कोई अभिवृत्ति अनुमाप किसी व्यक्ति पर लागू की जाती है और यह देखा जाता है कि उसकी अभिवृत्ति उस वस्तु विशेष के प्रति कैसी है तब व्यक्ति उस अनुमाप से दिये गये प्रत्येक कथन में सहमति अथवा असहमति प्रगट करता है। जिन जिन कथनों से वह सहमति प्रगट करता है उनकी scale values की मध्यमान (median) व्यक्ति की अभिवृत्ति की तीव्रता का मापक होतो है।

मान लीजिये किसी अभिवृत्ति अनुमाप में कुल १० कथन हैं और किसी व्यक्ति ने ७ पर सही का निशान लगाया है जिनकी scale values हैं

१ ३, ३ ७, ३'८, ४'५, ७'८, ८ २, १०'७ इन scale values की *median* ४'५ है जो व्यक्ति की अभिवृत्ति की मात्रा को सूचित करती है।

थर्स्टन द्वारा तैयार की गई अभिवृत्ति अनुमापों की परिसीमाएँ (Limitations of Thurstonian Attitude scales)—

(१) इन अनुमापों के तैयार करते समय यह अभिकल्पना कर ली जाती है कि किसी वस्तु के प्रति व्यक्ति की अभिवृत्ति की ऐसी मापिनी (scale) तैयार की जा सकती है जिसके अन्तरालों (intervals) की समता हो। दूसरे शब्दों में, अभिवृत्ति की वर्ग श्रेणियाँ A, B, C... K इस पैमाने पर स्थित हैं और क्रमागत वर्ग श्रेणियों के बीच अन्तराल समान लम्बाई के हैं।

फार्नवर्थ (P. R. Farnworth) ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि निर्णायकों
मत में इन वर्ग श्रेणियों (ratings) के बीच अन्तराल में काफी अन्तर है।

(२) इन अनुमापों को तैयार करते समय यह मान लिया जाता है कि निर्णायकों
सम्मति वर्ग श्रेणी (rating) को प्रभावित नहीं कर सकेगी।[1] लेकिन क्या यह सत्य है ? कोई
निर्णायक (judge) कितना ही निष्पक्ष क्यों न हो, कथनों को विभिन्न ढेरों (piles) में रखते सम
अपनी सम्मति का प्रदर्शन तो करता है।

Q 9 Discuss the steps of preparation of Likert's Attitude scales

Ans लाइकर्ट (Likert) की अभिवृत्ति अनुमाप (attitude scale) तैयार करने
निर्णायकों की सहायता नहीं ली जाती क्योंकि सन् १९३२ से १९५२ तक कई मनोवैज्ञानिकों ने य
दिखाने का प्रयत्न किया है कि निर्णायकों की सम्मति उनके sorting को प्रभावित कर देती है

लाइकर्ट विधि—लाइकर्ट थर्स्टन की तरह किसी वस्तु, व्यक्ति, अथवा संस्था के प्र
अभिवृत्ति सूचक कथनों की सूची तैयार करके उनमें से आन्तरिक संगति (internal consistency
के आधार पर चुनता है।

इन सभी कथनों को एक पुस्तिका में छपवाकर परीक्षा के रूप में बहुत बड़ी जनसंख
पर लागू किया जाता है और प्रत्येक कथन का पूर्ण प्राप्तांक के साथ सहसम्बन्ध गुणांक ज्ञात कि
जाता है। जो कथन कसौटी (criterion) को सन्तुष्ट करता है उसको अनुमाप में स्थान दि
जाता है शेष कथनों को छोड़ दिया जाता है।

प्रत्येक कथन का उत्तर सामान्यतः निम्न ५ श्रेणियों में देना पड़ता है —

	श्रेणी	अंक (Score)
S A	Strongly agree	५
A	Agree	४
U	Undecided	३
D	Disagree	२
S D	Strongly disagree	१

किसी कथन से व्यक्ति या तो पूरी तरह सहमत होगा या पूरी तरह असहमत या उ
अनिश्चय होगा। किसी कथन को सुनकर कुछ लोगों की अनुक्रिया उसके विरोध में होगी तो कु
लोगों की अनुक्रिया उसके पक्ष में। उदाहरण के लिए निम्न कथन को सुनकर कुछ लोग तो उस
विरोध करेंगे और उससे पूर्णतः असहमत होंगे।

"सफलता भाग्य पर अधिक निर्भर रहती है वास्तविक योग्यता पर कम।"

लाइकर्ट विधि की अभिवृत्ति अनुमाप का नमूना Cork, Leeds और Cattell द्वा
तैयार की गई एक अभिवृत्ति सूची (Attitude Inventory) Minnesota Teacher Invento
है। इसमें १५० कथन हैं जो छात्र और अध्यापक के बीच पाये जाने वाले सम्बन्धों के विषय
है। इन कथनों में से प्रत्येक कथन के विषय में व्यक्ति की भाव (feeling) ज्ञात की जाती है।
अभिवृत्तिसूची (Attitude Inventory) को पूरा करने के लिए जो निर्देश दिये गये हैं वे
प्रकार है

1 If the scale is to be regarded as valid, the scale values of the statemen
should not be affected by the opinions of the people who help
construct it. until experimental evidence may be forthcoming
shall make the assumption that the scale values of the statements a
independent of the attitude distribution of the readers who sort t
statements.

—Thurstone's Measurement of Attitu

"इस पत्री का कोई भी प्रश्न न तो सही है और न गलत। प्रत्येक कथन के विषय आपकी क्या राय है उसको अंकित करो। प्रत्येक कथन को ध्यान से पढ़ो और निश्चित करो कि आपकी कैसी राय है। यदि आप उस कथन से पूरी तरह सहमत हैं तो S A. को, यदि आप कथ से सहमत हैं किन्तु पूरी तरह से नहीं तो A को, यदि आप अनिश्चित हैं तो U को और यदि आप कथन से असहमत हैं तो D को और पूर्णत असहमत हैं तो S D को काला कर दो।

सामान्य तौर से प्रत्येक कथन सही है इस बात का ध्यान रखो। यदि कोई कथन किसी अध्यापक अथवा छात्र के विषय में सही हो तो सोच विचार कर निशान लगाओ। मानलो कथन "छात्र आज्ञाकारी होते हैं।" इस कथन को S A, A, U, D और S D में से कौन सी श्रेणी में यह देखने के लिए यह सोचो कि कितने छात्र आज्ञाकारी आपने पाये हैं इसी आधार पर अपनी सम्मति दो।

इस पत्री को भरने का कोई प्रतिबन्ध नहीं है प्रत्येक प्रश्न का उत्तर दो।

कुछ कथन नीचे दिये जाते हैं

(i) Students are obedient
(ii) Teaching work is never fatiguing.
(iii) *It is difficult to understand small children*

लाइकर्ट तथा थर्स्टन की अभिवृत्ति अनुमापों में अन्तर

Likert तथा Thurston की अभिवृत्ति अनुमापों में काफी अन्तर है।

(१) थर्स्टन की अनुमाप बहुत ही शुद्ध मापिनी (refined scale) है प्रत्येक कथन को उसकी favourableness की मात्रा के अनुसार सजाया गया है इसलिये मापिनी के मूल्याकन (Scoring) का तरीका भी अधिक शुद्ध (refined) है। इस मापिनी से व्यक्ति वस्तु के प्रति अभिवृत्ति की दिशा (direction) तथा तीव्रता (intensity) दोनों का ही परिचय मिलता है। इसके विपरीत Likert Type Inventory में व्यक्ति को जो प्राप्तांक मिलेगा वह किसी निश्चित दिशा में अभिवृत्ति का सूचक मात्र होगा। प्रत्येक उत्तर को स्केल पर निश्चित मान न देने के कारण समान भार दिया जाता है।

(२) थर्स्टन की मापिनी में प्रमापों की कोई आवश्यकता नहीं है किन्तु लाइकर्ट की पत्री (Inventory) में प्रमापों की आवश्यकता है।

(३) लाइकर्ट की पत्री में व्यक्ति को जो अंक मिलते हैं वे कुछ दोषों से परिपूर्ण होते हैं उन अंकों के आधार पर दो व्यक्तियों की अभिवृतियों का तुलनात्मक अध्ययन नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए यदि 'क' को ७५ अंक मिले हैं, 'ख' को ५० अंक और 'ग' को २५ अंक तो इसका यह आशय नहीं है कि क की अभिवृत्ति ख की अपेक्षा उतनी ही तीव्र है जितनी कि 'ख' की अभिवृत्ति 'ग' की अपेक्षा तीव्र है।

(४) लाइकर्ट की पत्री एक विमात्मक (Unidimensional) नहीं है उसको देखकर यह नहीं बताया जा सकता कि वह किस वस्तु का मापन कर रही है।

अध्याय १०

व्यक्तित्व परीक्षाएँ

Q 1 Discuss the different techniques of testing personality

Ans. बुद्धि परीक्षाओं के समान व्यक्तित्व-परीक्षाओं का भी अपना अलग इतिहास है। पहले किसी व्यक्तित्व के विषय मे अपनी राय देते समय हमारी धारणाएँ आत्मगत हुआ करती थी, *किन्तु अब कई प्रकार की ऐसी व्यक्तित्व परीक्षाओ का निर्माण हो गया है जिनसे व्यक्ति* के विषय मे अप्रानीतिक (objective) धारणाएँ मिल सकती हैं। जिस प्रकार बुद्धि परीक्षाएँ बुद्धि का स्वभाव निश्चित करती हैं उसी प्रकार व्यक्तित्व परीक्षायें भी व्यक्ति की प्रकृति पर प्रकाश डालती हैं। व्यक्तित्व के मापन (assessment) के लिए जिन परीक्षाओ का निर्माण होता है उनमे [illegible] विशेष प्रयोजन को सिद्ध करती [illegible] तरह कुछ कागज [illegible] hniques) की कुछ [illegible] परीक्षायें व्यक्तिगत और सामूहिक हैं।

व्यक्तित्व मापन की विधियाँ (Methods of personality measurement)—व्यक्तित्व मापन में जिन प्रविधियों का प्रयोग आजकल साधारणत होता है उनको ५ वर्गों मे बाँटा जा सकता है

(१) समक्षकार (Interview)
(२) वर्गश्रेणी (Rating scale)
(३) प्रश्नावलियाँ (Questionnaire)
(४) प्रक्षेपी विधियाँ (Projective techniques)
(५) प्रत्यक्ष निरीक्षण (Direct observation of behaviour)

वैसे तो ये विधियाँ लगभग वही हैं जिनका प्रयोग व्यक्तित्व के आगणन (estimation) के लिये शताब्दियो पूर्व हुआ करता था। वे विधियाँ थी—व्यक्ति से उसके विषय में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रश्नों का पूछना। व्यक्ति के विषय मे अन्य व्यक्तियो से जानकारी प्राप्त करना, और व्यक्ति के व्यवहार का प्रत्यक्ष निरीक्षण करना।

(१) समक्षकार (Interview)—व्यक्ति से उसके जीवनवृत्त को सुनकर, उसकी समस्याओ और कठिनाइयों को समझकर, और उसके अतीत के अनुभवो का ज्ञान प्राप्त कर आधुनिक मनोवैज्ञानिक उसके व्यक्तित्व के विषय मे अपनी धारणायें बनाता है। वह उसको अपनी सब बातों के कह डालने के लिये उत्साहित करता है और इस प्रकार उसके व्यक्तित्व का पूरा चित्र अपने मस्तिष्क मे बना लेता है। बच्चो के व्यक्तित्व का ज्ञान प्राप्त करने के लिए वह उनके माता-पिता से उनके विषय मे जानकारी प्राप्त करता है।

व्यक्ति के बोलने का ढग, उसकी चिन्तापूर्ण चिनवन और सवेगात्मक प्रतिक्रियायें दक्ष मनोवैज्ञानिक को इस विषय में उसकी आत्मकहानी मे भी अधिक सूचनायें देती हैं। किन्तु सभी मनोवैज्ञानिक इतने कुशल नहीं होते कि दस पाँच मिनट मे किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का परीक्षण समक्षकार विधि से कर सकें। यह कौशल अनुभव में ही प्राप्त होता है, सीखा नही जाता। कोई भी कुशल समक्षकार (interviewer) यह नहीं बता सकता कि उसने किस प्रकार दक्षता को प्राप्त किया है। यह तो उसके अनवरत प्रयोग का प्रतिफल है। वह जिन परिणामों पर पहुँचता है वे

परिणाम बताए नहीं जा सकते। दूसरे एक ही व्यक्ति के विषय में दो समाकारक के विचार दूसरे से प्राय. भिन्न होते हैं। अतः व्यक्तित्व मापन में अन्य विधियों की आवश्यकता होती है।

(२) वर्ग श्रेणी (Rating scales)—विद्यार्थियों या अन्य व्यक्तियों की व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषताओं के मूल्यन में वर्गश्रेणियों का प्रयोग वे अध्यापक या अन्य व्यक्ति करते हैं जो विद्यार्थियों से भलीभांति परिचित होते हैं। प्रत्येक विद्यार्थी को किसी गुण की मात्रा के अनुसार कोई श्रेणी दी जाती है। जिस अध्यापक ने बालक को भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में देखा है, वह बता सकता है कि बालक जरा सी कठिनाई के आने पर हताश हो जाता है, अथवा कुछ प्रयास करने के बाद हताश होता है अथवा प्रत्येक काम को पूरी तरह करने की कोशिश करता है और उसे तभी छोड़ता है जब उसे अपनी गलती मालूम पड़ जाती है अथवा वह किसी भी दशा में हाथ में लिए हुए कार्य को नहीं छोड़ता उसमें डटा ही रहता है। इस प्रकार वह बालक में अध्यवसाय की मात्रा का अनुमान लगा सकता है। अध्यवसाय की भिन्न-भिन्न मात्राओं को ध्यान में रखकर एक वर्ग श्रेणी बनाई जाती है। व्यक्ति में किसी भी गुण का श्रेणी विभाजन करने के लिए एक रेखा को ३, ५, या ७ बराबर भागों में बांट दिया जाता है और विभाजन बिन्दुओं पर अक्षर अ, ब, स, द, य आदि लिख दिए जाते हैं। ये अक्षर क्रमश: अत्युत्तम, उत्तम, औसत, निकृष्ट, अतिनिकृष्ट कोटियों को प्रदर्शित करते हैं। परीक्षक यदि बालक को अत्यन्त अध्यवसायी समझता है तो वह अ पर सही का निशान लगा देता है, यदि वह उसे औसत कोटि का समझता है तो 'स' पर निशान लगा देता है। इसी प्रकार वह बालक को अन्य व्यक्तित्व सम्बन्धी गुणों (traits) में श्रेणीबद्ध करता है। किसी बालक के व्यक्तित्व का प्रदर्शन करने के लिए व्यक्तित्व मनोलेख (personality profile) तैयार किया जाता है जिसका नमूना नीचे दिया जाता है।

यह लेखा चित्र बतलाता है कि वह बालक सदैव प्रसन्न चित्त रहता है, बड़ा ईमानदार है किन्तु उसमें साहस या दूर दृष्टि की कमी मालूम पड़ती है।

व्यक्तित्व मनोलेख (personality profile)

विद्यार्थी का नाम······ कक्षा··· · विद्यालय······

गुण	य,	द,	स,	ब,	अ,
ईमानदारी					
प्रसन्नचित रहने की आदत					
दूर दृष्टि					
साहस					
सामाजिकता की भावना					
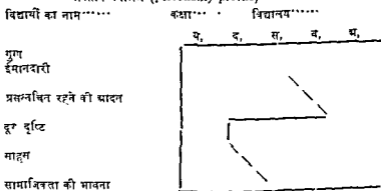
वर्ग श्रेणी बनाने की एक और विधि है जिसका प्रयोग बहुत किया जाता है। व्यक्तित्व के किसी एक गुण को लेकर एक प्रश्न लिख दिया जाता है जैसे "क्या बालक बहुधा निराश रहता है ?" परीक्षक उस शब्द के ऊपर निशान लगा देता है जिसमें बालक की विशेषता की मात्रा बताई जा सकती हो। इस प्रकार परीक्षक (rater) बालक को उसके गुण के अनुसार उचित श्रेणी में रख देता है। बाद में यह वर्ग श्रेणी के परिणाम को अंकों में बदल दिया जाता है। जैसे यदि हमें उसकी ईमानदारी पर ही रेटिंग (rating) करनी है तो निम्न प्रकार का पैमाना बनाया जा सकता है—

क्या बालक ईमानदार है ?

बिल्कुल बेईमान	कभी-कभी बेईमान	औसत	बहुत ईमानदार	सदैव ईमानदार
(१)	(२)	(३)	(४)	(५)

इस पैमाने को १ से ५ तक अंकों में बदल दिया गया है किन्तु यदि परीक्षक (rater) चाहे तो १ से ९ अंकों तक का पैमाना बना सकता है।

ऊपर जिन दो वर्ग श्रेणी बनाने की विधियों का उल्लेख किया गया है वे केवल एक बालक के व्यक्तित्व का मापन करती हैं। श्रेणी विभाजन की तीसरी विधि से बालकों के एक समूह को भिन्न-भिन्न श्रेणियों में रखने का प्रयत्न करते हैं। कक्षा का कोई व्यक्ति बहुत ही उग्र हो सकता है और दूसरा बहुत ही नम्र। इन दोनों प्रकार के लोगों के बीच में स्वभावों की उग्रता के अनुसार कमी या बढ़ोतरी हो सकती है। कक्षा-अध्यापक अपनी कक्षा के बालकों को किसी [illegible] (rank order) में सजा सकता है बशर्ते उसने वह गुण सब [illegible] विषय-अध्यापक (subject teacher) [illegible] है। वर्ग श्रेणियों की सबसे बड़ी आवश्यकता यही है कि परीक्षक (rater) ने परीक्षार्थी को प्रत्येक परिस्थिति में देखा हो। यदि ऐसा नहीं है तो परीक्षा दूषित हो सकती है। वर्ग श्रेणी-विभाजन के दोषपूर्ण हो जाने के और भी कारण हैं —

१—कुछ परीक्षक बहुत कठोर और कुछ बहुत दयालु होते हैं। अति कठोर परीक्षक एक भी विद्यार्थी को परीक्षित गुण में अत्युत्तम कोटि का नहीं मानते। अत उनके श्रेणी-विभाजन अविश्वस्त [illegible] औसत दर्जे के [illegible] होते हैं। यदि [illegible] *नियम के अनुसार श्रेणी विभाजन करना है तो शायद उसका श्रेणी विभाजन शुद्ध (valid)* और विश्वस्त (reliable) हो सकता है। उन्हे प्रत्येक श्रेणी में कम से कम या अधिक से अधिक जितने बालक डालने हैं उनकी संख्या नीचे दी जाती है

	अत्युत्तम (अ)	उत्तम (ब)	औसत (स)	निकृष्ट (द)	अति निकृष्ट (य)
	२	२३	५०	२३	२
अथवा	५	२५	४०	२५	५

२—परीक्षक जिस विद्यार्थी को एक गुण में उत्तम मानता है दूसरे गुण में भी हैलो-इफैक्ट (halo effect) के कारण उसे उत्तम मान लिया करता है। यदि वह बालक को अत्यधिक साहसी मानता है तो उसे काफी ईमानदार भी मान लेता है। किन्तु वस्तुत. ऐसा नहीं होता। *वैयक्तिक विभिन्नताओं की विवेचना करते समय इस बात का उल्लेख किया गया था।* सब गुणों में कोई भी व्यक्ति समान नहीं होता। यदि वह एक गुण में उत्तम श्रेणी का है तो दूसरे गुण में सदैव उत्तम कोटि का नहीं होता।

इस हैलो के प्रभाव को कम करने का एक उपाय यह है, परीक्षक जितने लोगों का श्रेणी विभाजन (rating) करना चाहता है उन सबको एक गुण में जाँच कर ले फिर दूसरे गुण के *अनुसार उनका श्रेणी विभाजन करे।*

३—इस प्रकार का श्रेणी विभाजन (rating) विश्वसनीय (reliable) नहीं होता क्योंकि व्यक्ति के माता-पिता, अध्यापक, मालिक, और साथी सभी एक ही गुण में उसे अलग-अलग श्रेणियाँ दिया करते हैं। कभी-कभी एक ही परीक्षक एक ही बालक को भिन्न-भिन्न समयों पर किसी एक विशेष गुण में भिन्न-भिन्न श्रेणियाँ देते पाया गया है। इस प्रकार श्रेणियाँ *(rating scales) व्यक्तित्व मापन की विश्वसनीय (reliable) परीक्षाएँ नहीं मानी जा सकती।*

प्रश्नावलियाँ

किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व को जानने का एक यह भी तरीका है कि परीक्षक उस व्यक्ति [illegible]

अपनी अपनी प्रतिक्रियाएँ उसी पत्र पर जिस पर प्रश्न लिखे हुए हैं अंकित कर दे। इन प्रतिक्रियाओं (उत्तरों) से व्यक्ति के विषय में समक्षकार से कहीं अधिक विश्वस्त सूचनाएँ मिल सकती हैं और

१२. क्या आप किसी कार्य की योजना बनाने की अपेक्षा उसे कर डालना पसन्द करते हैं ? ... ... हाँ ? ना
१३. क्या आप ऐसी बातों की कल्पना करते रहते हैं जो कभी सम्भव न हो ? ... हाँ ? ना
१४. क्या आप सामाजिक अवसरों (सभा, सोसाइटी आदि···) में पीछे रहना चाहते हैं ? ... . हाँ ? ना
१५. क्या आप अपनी बीती बातों पर सोचा करते हैं ? ... ... हाँ ? ना
१६. क्या आपको एक मस्त पार्टी में पूर्ण रूप से मिल जाने में कठिनाई होती है ? ... ... हाँ ? ना
१७. क्या आप किसी कारण के बिना दुःखी अनुभव करते हैं ? हाँ ? ना
१८. क्या आप आवश्यकता से अधिक सावधान रहते हैं ? .. हाँ ? ना
१९. क्या आप प्राय यह अनुभव करते हैं कि आपने किसी बात का निश्चय करने में बहुत देर लगा दी ? .. .. हाँ ? ना
२०. क्या आप लोगों से मिलना चाहते हैं ? ... हाँ ? ना
२१. क्या आपको प्राय चिन्ता के कारण नींद नहीं आती ? .. हाँ ? ना
२२. क्या आप अपनी जान पहिचान गिने चुने लोगों तक ही सीमित रखना पसन्द करते हैं ? ... . हाँ ? ना
२३. क्या आप अक्सर किन्हीं पाप भावनाओं के कारण दुःखी होते हैं ? हाँ ? ना
२४. क्या आप प्राय अपने काम को बड़ी गम्भीरता से करते हैं ? हाँ ? ना
२५. क्या आप छोटी-छोटी बातों पर बुरा महसूस करते हैं ? ... हाँ ? ना
२६. क्या आप बहुत से सभा और सोसाइटियों में जाना पसन्द करते हैं ? हाँ ? ना
२७. क्या आप अपने को बहुत ही बेचैन व्यक्ति समझते हैं ? ... हाँ ? ना
२८. क्या आप सामूहिक कार्यों में नेता बनना पसंद करते हैं ? ... हाँ ? ना
२९. हाँ ? ना
३०. ? हाँ ? ना
३१. हाँ ? ना
३२. क्या आपसे कोई बात कही जाने पर आप उसका उत्तर एकदम दे देते हैं ? ... . हाँ ? ना
३३. क्या आप भूतकाल के सुखद अनुभवों पर विचार करने में अधिक समय लगाते हैं ? ... ... हाँ ? ना
३४. क्या आप अपने को खुश मिजाज समझते हैं ? ... हाँ ? ना
३५ क्या आपने प्राय अपने को बिना कारण उदासीन या थका अनुभव किया है ? ... ... हाँ ? ना
३६ क्या आप सामाजिक मंडली में चुप रहना पसन्द करते हैं ? हाँ ? ना
३७. किसी कठिनाई को पार कर लेने के बाद क्या आप अक्सर यह सोचते हैं कि आपने वह नहीं किया जो आपको करना चाहिये था ? ... हाँ ? ना
३८. क्या आनन्द प्रमोद के समय आप खूब आनन्द उठा सकते हैं ? ... हाँ ? ना
३९. क्या आपके मन में इतने विचार आते हैं कि आप सो नहीं सकते ? .. हाँ ? ना
४०. क्या आप ऐसा काम पसन्द करते हैं जिसमें अधिक ध्यान लगाना पड़े ? ... ... हाँ ? ना
४१. क्या कभी आपको किसी बार बार आये हुए बेकार के विचार ने परेशान किया है ? ... ... हाँ ? ना
४२. क्या आप अपने कार्यों को प्राय लापरवाही से करते हैं ? ... हाँ ? ना
४३. क्या आपको बहुत से विषयों की छोटी छोटी बातें परेशान कर देती हैं ? .. हाँ ? ना
४४. क्या दूसरे लोग आपको मस्त व्यक्ति समझते हैं ? ... हाँ ? ना
४५. क्या आप बहुधा निराश रहते हैं ? ... हाँ ? ना
४६. क्या आप अपने को बहुत बातून मानते हैं ? हाँ ? ना
४७. क्या आपको कभी इतनी परेशानी होती है कि आप देर तक कुर्सी पर नहीं बैठ सकते ? ... ... हाँ ? ना

१२. क्या आप किसी कार्य की योजना बनाने की अपेक्षा उसे कर डालना पसन्द करते है ? ... ... हाँ ? ना
१३. क्या आप ऐसी बातों की कल्पना करते रहते हैं जो कभी सम्भव न हों ? ... हाँ ? ना
१४. क्या आप सामाजिक अवसरों (सभा, सोसाइटी आदि) में पीछे रहना चाहते हैं ? ... ... हाँ ? ना
१५. क्या आप अपनी बीती बातों पर सोचा करते हैं ? ... ... हाँ ? ना
१६. क्या आपको एक मस्त पार्टी में पूर्ण रूप से मिल जाने में कठिनाई होती है ? ... ... हाँ ? ना
१७. क्या आप किसी कारण के बिना दुखी अनुभव करते हैं ? ... हाँ ? ना
१८. क्या आप आवश्यकता से अधिक सावधान रहते हैं ? ... हाँ ? ना
१९. क्या आप प्राय यह अनुभव करते हैं कि आपने किसी बात का निश्चय करने मे बहुत देर लगा दी ? ... ... हाँ ? ना
२०. क्या आप लोगों से मिलना चाहते हैं ? हाँ ? ना
२१. क्या आपको प्राय चिन्ता के कारण नींद नहीं आती ? .. हाँ ? ना
२२. क्या आप अपनी जान पहिचान गिने चुने लोगों तक ही सीमित रखना पसन्द करते हैं ? ... . हाँ ? ना
२३. क्या आप अक्सर किन्ही पाप भावनाओं के कारण दुखी होते हैं ? .. हाँ ? ना
२४. क्या आप प्राय अपने काम को बडी गम्भीरता से करते हैं ? हाँ ? ना
२५. क्या आप छोटी-छोटी बातों पर बुरा महसूस करते हैं ? ... हाँ ? ना
२६. क्या आप बहुत से सभा और सोसाइटियों में जाना पसन्द करते हैं ? हाँ ? ना
२७. क्या आप अपने को बहुत ही बेचैन व्यक्ति समझते हैं ? .. हाँ ? ना
२८. क्या आप सामूहिक कार्यों में नेता बनना पसद करते हैं ? हाँ ? ना
२९. क्या आप अक्सर अकेलापन महसूस करते हैं ? .. हाँ ? ना
३०. क्या आपको भिन्न लिंग वाले व्यक्तियों (मर्द या औरत) के सामने शर्म लगती है ? हाँ ? ना
३१. क्या आप स्वप्नों की दुनिया में रहना पसन्द करते हैं ? .. हाँ ? ना
३२. क्या आपसे कोई बात कही जाने पर आप उसका उत्तर एकदम दे देते हैं ? ... ... हाँ ? ना
३३. क्या आप भूतकाल के सुखद अनुभवों पर विचार करने में अधिक समय लगाते हैं ? ... ... हाँ ? ना
३४. क्या आप अपने को खुश मिजाज समझते हैं ? ... हाँ ? ना
३५. क्या आपने प्राय अपने को बिना कारण उदासीन या थका अनुभव किया है ? ... ... हाँ ? ना
३६. क्या आप सामाजिक मडली में चुप रहना पसन्द करते हैं ? हाँ ? ना
३७. किसी कठिनाई को पार कर लेने के बाद क्या आप अक्सर यह सोचते हैं कि आपने वह नहीं किया जो आपको करना चाहिये था ? ... हाँ ? ना
३८. क्या आनन्द प्रमोद के समय आप खूब आनन्द उठा सकते हैं ? ... हाँ ? ना
३९. क्या आपके मन में इतने विचार आते हैं कि आप सो नहीं सकते ? .. हाँ ? ना
४०. क्या आप ऐसा काम पसन्द करते हैं जिसमें अधिक ध्यान लगाना पड़े ? ... ... हाँ ? ना
४१. क्या कभी आपको किसी बार बार आये हुए बेकार के विचार ने परेशान किया है ? ... ... हाँ ? ना
४२. क्या आप अपने कार्यों को प्राय लापरवाही से करते हैं ? ... हाँ ? ना
४३. क्या आपको बहुत से विषयों की छोटी छोटी बातें परेशान कर देती हैं ? ... हाँ ? ना
४४. क्या दूसरे लोग आपको मस्त व्यक्ति समझते हैं ? ... हाँ ? ना
४५. क्या आप बहुधा निराश रहते हैं ? ... हाँ ? ना
४६. क्या आप अपने को बहुत बातून मानते हैं ? ... हाँ ? ना
४७. क्या आपको कभी इतनी परेशानी होती है कि आप देर तक कुर्सी पर नहीं बैठ सकते ? ... ... हाँ ? ना

उत्तरों की स्थिति (location) सम्बन्धी निर्लेख (scores) इस बात पर प्रकाश डालते हैं कि व्यक्ति उस समस्या से समाधान करने में प्रयत्नशील है या नहीं। यदि वह ऐसे उत्तर देता है जिनके लिए उसे कई W (scores) मिलते हैं, तो यह समझा जाता है कि व्यक्ति समस्या का समाधान करने में पूरी तरह प्रयत्नशील है। ऐसे व्यक्ति सिद्धान्तवादी अधिक होते हैं। इसके विपरीत यदि उत्तरों में D scores (details) का आधिक्य है तो उसमें समस्या को टुकड़ों में बाँटने की आदत मालूम पड़ती है और वह अधिक व्यवहारकुशल माना जाता है।

रंगीन वस्तुओं का काम है भावनाओं को उत्तेजित कर देना। इसी कारण कुछ धब्बों में रंगों का समावेश कर दिया गया है। जिन व्यक्तियों के उत्तरों में रंग (Colour, C) की प्रधानता होती है उसमें संवेगात्मक अस्थिरता (emotional instability) पाई जाती है। जिन व्यक्तियों के उत्तरों में चटकीले रंग की अनिश्चित शक्लों का बाहुल्य होता है उनमें आवेगजन्य उन्मत्तता और आत्मनिरक्ति (egocentricity) अधिक मिलती है।

बहुत से व्यक्ति इन मसिचिह्नों में चलते फिरते जीव देखते हैं। जिस व्यक्ति के उत्तरों में गति (Movement M) की प्रतिशत मात्रा अधिक होती है उसमें कल्पना शक्ति की प्रधानता मानी जाती है। गति सूचक निर्लेखों (M) का नितान्त अभाव विषयी में स्वतः स्फुरित विचारों का निरोधीकरण सूचित करता है।

विषय (subject) के उत्तरों की व्याख्या करने के कुछ संकेत ऊपर दिये गये हैं, किन्तु अनुभवी एवं प्रशिक्षित परीक्षक इन उत्तरों तथा उनके विभिन्न संगठनों का अलग-अलग अर्थ निकालते हैं। इस कारण मसिचिह्न परीक्षा की व्याख्या काफी कठिन होती है। इस विवेचन के आधार पर केवल इतना कहा जा सकता है कि यह परीक्षा कुछ सीमित प्रश्नों का उत्तर दे सकती है। उदाहरण के लिए व्यक्ति किसी समस्या को हल करने का किस प्रकार प्रयत्न करता है ? उसमें अपने विचारों को संगठित करने, एवं सूक्ष्म निरीक्षण करने की कितनी शक्ति है, वह अपनी इस शक्ति का कहाँ तक प्रयोग करता है ? उसमें अपने आवेगों पर नियन्त्रण प्राप्त करने की योग्यता है अथवा नहीं ? क्या उसे जीवन में आन्तरिक शक्ति (internal peace) मिल सकी है या नहीं ?

तुलनात्मक परीक्षणों के आधार पर रौशा की मसिचिह्न परीक्षा को विश्वसनीय (reliable) माना जाता है। बैन (Behn) की मसिचिह्न परीक्षा और रौशा की मसिचिह्न परीक्षा के परिणामों (results) में ऊँचा सहसम्बन्ध गुणक पाया गया है। इस प्रकार समानान्तर परीक्षा क्रिया (parallel test method) में इस परीक्षा की विश्वसनीयता आँकी जा सकती है। कैली (Keley) ने पुन परीक्षा विधि (test-retest method) से विश्वसनीयता आँकने का प्रयत्न किया है। वह पुन परीक्षा लेने से पूर्व विषयी को बिजली का हल्का सा धक्का देता है जिससे विषयी अपने पहिले दिये हुए उत्तरों को भूल जाया करता है। इस परीक्षा का सत्यापिता (validity) गुणक निकालने के लिए किस कसौटी का प्रयोग किया जाय, यह समस्या विकट है किन्तु परीक्षा के निर्लेखों (scores) की व्याख्या (interpretation) के परिणामों की तुलना जब-जब विषयी से पूर्ण परिचित व्यक्ति की रिपोर्ट से की गई है तब यही पता चला है कि मसिचिह्न परीक्षा उसी वस्तु का मापन करती है जिसके मापन के लिए इसका निर्माण किया गया है।

रौशा कि मसिचिह्न परीक्षा का प्रयोग मनोरोगियों के व्यक्तित्व का मापन करने के लिए तो किया ही गया था, किन्तु अब इसका प्रयोग कई और क्षेत्रों में भी किया जाने लगा है क्योंकि यह परीक्षा थोड़े से समय में ही व्यक्ति के विषय में अनेक बहुमूल्य सूचनायें देती है। डाक्टर, अध्यापक, समुपदेष्टा (counsellor) और समाज सेवी यथास्थान इस परीक्षा का उपयोग करते हैं और इससे लाभ उठा रहे हैं।

(२) टी० ए० टी०

रौशा की मसिचिह्न परीक्षा जैसी एक और व्यक्तित्व परीक्षा का निर्माण मौरगन और मरे ने सन् १६३५ में किया जिसे टी० ए० टी० कहते हैं। इन महानुभावों ने ऐसे २० चित्रों को प्रकाशित किया था जो दर्शक की कल्पना शक्ति को उत्तेजित करते हैं। बाद में इन चित्रों की संख्या बढ़ाकर ३० कर दी गई। आजकल प्रत्येक देश में इन चित्रों को अपनी संस्कृति और वातावरण को ध्यान में रखकर adopt किया गया है। प्रत्येक चित्र रौशा के मसिचिह्न की तरह अनिश्चित और सदिग्ध (ambiguous) होता है और प्रत्येक विषयी (subject) उद्दीपक के रूप में काम

करने वाला इस संदिग्ध चित्र को देखकर अपने व्यक्तिगत अनुभव से कहानी (Theme) बनाने का प्रयत्न करता है। कहानी बनाने के लिए व्यक्ति जिस सामग्री का संगठन करता है उस सामग्री में उद्दीपन के तत्कालीन प्रतिबोधन (understanding) और इन प्रतिबोधनों से सहसम्बन्धित चेतन अथवा अचेतन मन से निकली हुई कल्पनाएँ मिली रहती हैं। इन कल्पनाओं में चेतन अथवा अचेतन मन के आवेग, भावना संघर्ष (emotional conflicts), ग्रह की रक्षा की प्रवृत्तियाँ (impulses) छिपी रहती है। चित्रों को देखकर विषयी (subject) जिस प्रकार की कहानियाँ कहता है उनकी व्याख्या करने के बाद T. A. T. का कुशल अनुभवी परीक्षक विषयी की व्यक्ति सम्बन्धी विशेषताओं को निकालने का प्रयत्न करता है।

टी० ए० टी० प्रयोग में आने वाले ३० चित्र ऐसे हैं जो स्त्री और पुरुष दोनों को दिखाए जाते हैं और १० चित्र ऐसे हैं जो स्त्रियों के लिए और शेष १० चित्र केवल पुरुषों के लिये रखे गए हैं।

पहले १० चित्रों में जो वस्तुएँ दिखाई गई हैं उनका उल्लेख नीचे किया जाता है —

(१) बेला बजाता हुआ एक बालक।

(२) एक देहातिन जिसके हाथ में कुछ किताबें, एक दूसरी स्त्री उसकी ओर निगाह गढ़ाए हुए और कुछ दूर पर खेत में काम करता हुआ एक किसान।

(३) सीधी कुहनी पर सिर थामे हुए फर्श पर पड़ा हुआ एक बालक जिसके समीप ही एक पिस्तौल रखी हुई है।

(४) नीचा सिर किये हुए सीधे हाथ को सिर पर रखे हुए तथा बाँये हाथ से दरवाजा थामे हुए एक स्त्री।

(५) भागते हुए एक पुरुष को कन्धे से पकड़ने का प्रयत्न करती हुई एक स्त्री।

(६) अधखुले दरवाजे की देहरी पर खड़ी एक प्रौढ़ स्त्री।

(७) सोफा पर बैठी हुई एक युवती जो एक बुड्ढे की ओर ताक रही है और बुड्ढा उससे कुछ कहना चाहता है।

(८) अपनी ठोड़ी पर हाथ रखे हुए एक औरत न जाने क्या देख रही है।

(९) सैनिक पोशाक में घास पर लेटे हुए चार व्यक्ति।

(१०) सभ्रान्त व्यक्ति के कन्धे पर सिर रखे हुए एक युवती।

इसी प्रकार की वस्तुएँ अन्य बीस चित्रों में दिखाई गई हैं। परीक्षा आरम्भ करते समय परीक्षक निम्न प्रकार का आदेश विषय (subject) को देता है—आपको कुछ चित्र दिखलाये जायेंगे। चित्र में देखकर आपको यह बतलाना है कि कौन-कौन सी घटनायें इस चित्रित घटना से पहले हुई होंगी और उसके बाद क्या हुआ होगा? जिन व्यक्तियों को चित्र में तुम देखते हो उनके विचार या भाव (feelings) इस समय क्या हैं। जब विषयी (subject) अपनी कल्पना शक्ति के सहारे चित्र की थीम (theme) बनाने लगता है तब परीक्षक या तो उसके कथनों को साथ ही साथ टीपता जाता है या बाद में उनको लिख लेता है। प्रत्येक चित्र को देखकर उसके विषय में कहानी बनाने में जितना समय व्यक्ति लेता है उसको भी अंकित कर लिया जाता है।

उत्तरों की व्याख्या करने से पूर्व किसी प्रकार के निर्लेखन (scoring) की जरूरत नहीं होती। व्यक्ति अपने विचारों, अभिवृत्तियों (attitudes) और भावों (feelings) को कहानी कहने के बहाने प्रकट करता रहता है। विषयी उस चित्र में चित्रित नायक या नायिका के साथ अपना एकात्मक (identity) स्थापित करके उसके भावों, विचारों और अभिवृत्तियों का प्रकाशन करता है। विषयी की आवश्यकताएँ चाहे वह प्राथमिक (vicerogenic) हों या गौण (psychogenic), नायक की आवश्यकताओं के बहाने प्रकट की जाती है। जो बातें विषयी की आवश्यकता का अभिहनन करती हैं वे बातें चित्र के नायक में प्रक्षेपित कर दी जाती हैं। इस प्रकार विषयी कुटुम्बियों की अपने प्रति उपेक्षापूर्ण दृष्टि, अपने दुर्भाग्य, प्रतिद्वन्द्वी की स्थिति, आदि का कहानी में संकेत देता है।

कथानकों की व्याख्या करते समय हैरीमन और रौटर विषयी की पृष्ठभूमि उसकी आयु, पेशे, शिक्षा, धर्म, उसके बच्चों की अवस्था, लिंग आदि का ज्ञान प्राप्त करने पर भी बल देते हैं। विषयी के माता-पिता की अवस्था, उनका दाम्पत्य प्रेम, उसका निवास स्थान आदि का

ज्ञान भी व्याख्या मे सहायता देता है। बच्चो के व्यक्तित्व-व्यवस्थापन की जाँच करने के लिए Children's Apperception Test का प्रयोग किया जाता है।

अब प्रश्न यह है कि क्या टी० ए० टी० व्यक्तित्व का मापन कर सकती है और यदि कर सकती है तो उस मापन मे कितना विश्वास किया जा सकता है ? इस परीक्षा की तन्मापिता (validity) की जाँच समस्कारो (interviews), आत्मकथाओ (autobiographies) और अन्य प्रक्षेपी विधियो से तुलना की जाती है और विश्वसनीयता (reliability) गुणाक निकालने के लिए पुनर्परीक्षा (test-retest method) या अर्द्ध विच्छेद विधि (split-half method) का प्रयोग किया जाता है किन्तु इस काम मे कुछ टैकनीकल परेशानियाँ हैं।

टी० ए० टी० प्रयोग विद्यालयो के छात्र और छात्राओं के व्यक्तित्व व्यवस्थापन (personality adjustment) का ज्ञान प्राप्त करने, मानसिक रोगियो (mental patients) का निदान (diagnosis) करने, सेना के लिए अफसरो का चुनाव तथा साहित्यिक व्यक्तियो की आत्मकथाओ के अध्ययन करने मे किया जाता है।

(३) शाब्दिक साहचर्य परीक्षाएँ

शाब्दिक साहचर्य परीक्षाओ का प्रयोग सन् १८७६ मे गैल्टन ने सबसे पहले व्यक्तित्व-मापन के लिए किया था किन्तु इस विधि का विशेष विकास १६१० के बाद ही हुआ। व्यक्तित्व मापन में इन परीक्षाओ का प्रयोग आजकल नहीं किया जाता। शाब्दिक साहचर्य परीक्षाओं के कई रूप प्रचार मे हैं—

१—स्वतन्त्र शब्द साहचर्य परीक्षा (Free word Association Test)
२—प्रेसी की क्रास आउट परीक्षा (Pressey's x-o Test)
३—अपूर्ण वाक्य परीक्षा (Incomplete sentence Test)

स्वतन्त्र शब्द साहचर्य परीक्षाओं मे ५० से १०० उद्दीपन (stimulus) शब्द को सुनकर विषयी (subject) द्वारा दिए स्वाभाविक प्रयुत्तरो (reactions) का अध्ययन किया जाता है। कुछ उद्दीपन शब्दो मे विषयी की भावनाओ और संवेगो को जाग्रत करने की शक्ति होती है। ये शब्द उसके व्यक्तित्व पर प्रकाश डाल सकते हैं।

प्रेसी का क्रास-आउट परीक्षा का प्रयोग भी विषयी की भावनाओ को उत्तेजित करने के लिए किया जाता है। इस परीक्षा के दो रूप हैं, एक रूप का प्रयोग प्रौढ़ व्यक्तियों के लिए और दूसरे का प्रयोग बालको के लिए होता है। पहले रूप मे चार छोटी-छोटी परीक्षायें और दूसरे रूप मे ३ परीक्षायें होती हैं। प्रत्येक परीक्षा मे १२५ शब्द होते हैं और एक पक्ति मे ५ शब्द लिखे जाते हैं, जैसे—

Drink,	choke,	first,	unfair,	white,
Disgust,	fear	sex,	suspicion	water

परीक्षक परीक्षा लेने से पूर्व विषयी को निम्नलिखित आदेश देता है :—

१—उस शब्द को काट दो जिसे आप अति अप्रिय समझते हों और उस शब्द को घेरे मे बन्द कर दो जो आपको अति प्रिय मालूम पड़े।

२—उस शब्द को काट दो जो तुम्हे अधिक परेशान करता है।

कटे हुए एव घेरे मे डाले हुए शब्दों की संख्या से परीक्षार्थी की भावनाओ का पता चल सकता है।

अपूर्ण वाक्य (Incomplete sentence Test)—इस परीक्षा मे कुछ वाक्यांश दिये जाते हैं। परीक्षार्थी उनको पूरा करने का प्रयत्न करता है। इस प्रक्रिया मे वह अपने भावो एव विचारो को अनजाने ही प्रक्षेपित कर दिया करता है। कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :—

(१) मेरी असफलता......
(२) अन्य व्यक्तियों मे......
(३) मेरी माता ने......
(४) अच्छा होता कि मैं

शाब्दिक साहचर्य परीक्षाएँ व्यक्तित्व के किसी गुण का प्रकाशन नहीं करतीं वे तो सम्पूर्ण व्यक्ति के विषय मे सूचनाएँ देती हैं। ये परीक्षाएँ विश्वसनीय होने पर भी प्रातीतिक (subjective) होती हैं क्योंकि परीक्षक सहचारी शब्द (associated word) से जो आशय निकालता है वह उसकी रुचि पर निर्भर रहता है।

(४) प्रत्यक्ष निरीक्षण

व्यक्तित्व के मापन मे प्रत्यक्ष निरीक्षण पर भी बल दिया जाता है। बालकों या अन्य व्यक्तियों के व्यक्तित्व का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कुशल एव अनुभवी अध्यापक या अन्य परीक्षक अपने विषयी के आचरण का निरीक्षण करते हैं। कुछ निरीक्षण नियन्त्रित और कुछ अनियन्त्रित होते हैं। बालकों को उनकी रुचियो, अभिवृत्तियो, अचेतन इच्छाओ और अवरुद्ध आवश्यकताओं के विषय मे जानकारी पाने के लिए मिट्टी, बालू, खिलौने, तकिए, रग, स्लेट, बत्ती आदि ऐसी वस्तुएँ दे दी जाती हैं। इन वस्तुओं से खेलते समय बालक जिस प्रकार की भावभङ्गिमायें दिखलाता है, रगो से कागज पर किस प्रकार का चित्र बनाया करता है, तकिए को अपना विरोधी व्यक्ति मान कर किस प्रकार मारता पीटता है, ये सब बातें उसके व्यक्तित्व-व्यवस्थापन (personality adjustment) पर प्रकाश डालती हैं। इन खेलो मे स्थाई लेखा रखने के लिये

व्यक्तित्व परीक्षा का महत्व—यदि गुणो (traits) को ठीक तरह मापन किया जा सके तो व्यक्तित्व के विकास की समस्या को अच्छी प्रकार सुलझाया जा सकता है। व्यक्तित्व परीक्षाओ से यह समझ में आ सकता है कि व्यक्तित्व क्या है। जिस प्रकार बुद्धि परीक्षाओ से यह ज्ञात हो सकता है कि बुद्धि क्या है? व्यक्तित्व परीक्षण के परिणामों को व्यक्ति के व्यवस्थापन (adjustment) के अध्ययन के काम मे लाया जाता है। व्यक्ति की कमियो को देख कर उसके विकृत सन्तुलन का पता लगाया जा सकता है और उन कारणो को दूर किया जा सकता है जो उसके सन्तुलन को बिगाड दिया करते हैं। जिन व्यक्तियों को मनश्चिकित्सा की आवश्यकता है उनका पता शीघ्र ही लगाया जा सकता है। प्रशासको (administrators) की नियुक्ति करते समय उनकी व्यक्तित्व परीक्षाएँ ली जाती हैं क्योंकि उनसे उनके व्यक्तित्व के उन गुणो का अन्दाजा लग सकता है जो अपने कार्य भार को वहन करने मे सहायक होते हैं।

निर्देशन (guidance) कार्य मे भी इन व्यक्तित्व परीक्षाओ का प्रयोग किया जाता है। अवाछनीय विशेषताओं (traits) के जान लेने पर व्यक्ति उन्हे दूर करने का प्रयत्न कर सकता है और ऐसे आचरण का अपने मे विकास कर सकता है जो उसे उसके पेशे मे सहायता दे सकें किन्तु कोई भी व्यक्तित्व परीक्षा ऐसी नही है जो किसी पेशे मे किसी व्यक्ति की सफलता का आभास दे सके।

व्यक्तित्व परीक्षण का सबसे अच्छा उपाय यह है कि जितने प्रकार से व्यक्तित्व का परीक्षण हो सकता है, किया जाय, और जितनी विधियों का उल्लेख ऊपर किया गया है उनका उपयोग किया जाय।

अध्याय ११

संचयी आलेखपत्र

Q. 1. What is a cumulative record card? What type of information does it give? What use can be made of such an information?

Ans. संचयी आलेखपत्र एक ऐसा आलेख है जिसकी सहायता से विद्यार्थियों की प्रगति, विद्यालय के वातावरण में उनका सामंजस्य तथा उनके अनुभव तथा विकास का पूरा पूरा ज्ञान हो सकता है। यह आलेखपत्र उनकी योग्यताओं, अभिरुचियों और व्यक्तित्व के विषयों में भी यथायोग्य जानकारी दे सकता है। बालकों की मानसिक, शैक्षणिक, एवं आध्यात्मिक प्रगति का चित्रण कुछ निश्चित वर्षों तक करने के कारण इस आलेखपत्र को संचयी आलेखपत्र के नाम से पुकारा जाता है। यदि इसे केवल एक वर्ष के लिए ही तैयार किया जाता है तो शायद इसमें आलिखित सूचनाएँ गलत और भ्रमात्मक हो सकती हैं क्योंकि एक व्यक्ति का निर्णय पूर्णतः प्रानीतिक (objective) नहीं हो सकता। अतः किसी आलेखपत्र में जब तक कम से कम ५ वर्ष तक कम से कम दस पाँच व्यक्तियों द्वारा दी गई सम्मतियाँ सचित न की जा सकें तब तक बालक के विकास का पूरा चित्र प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। बालकों के विकास का वास्तविक लेखा जोखा रखने के लिए आलेखपत्रों को कई वर्ष तक कई अध्यापकों द्वारा भरा जाने का दूसरा कारण यह भी है कि बालक प्रायः एक दिशा में उन्नति करते हैं तो कभी उसी दिशा में अवनति। अतः उनकी प्रगति के विषय में पूरी एवं विश्वसनीय जानकारी प्राप्त करने के लिए आलेखपत्रों को कई वर्षों तक भिन्न भिन्न अध्यापकों द्वारा भरा जाना चाहिए।

अब प्रश्न यह उठता है कि कम के कम कितने वर्षों तक जानकारियाँ इकट्ठी की जायें जिनका अध्ययन शैक्षणिक अथवा व्यावसायिक समुपदिष्टा (counsellor) को बालकों के उचित मार्ग प्रदर्शन में सहायता प्रदान कर सके। भारत में एक महानुभाव ने आलेखपत्रों के लिए तीन वर्षों का समय निश्चित किया है और जूनियर हाई स्कूल के बालकों के विषय में सूचनाएँ इकट्ठी करने का आदेश दिया है क्योंकि इन कक्षाओं के बालकों पर बाहरी परीक्षाओं (external examinations) का दूषित प्रभाव नहीं पड़ पाता। लेखक का मत है कि इन आलेखपत्रों में उच्चतर माध्यमिक शिक्षा काल में होने वाली सम्पूर्ण प्रगति का चित्रण होना चाहिए क्योंकि हाई स्कूल की परीक्षा के उपरान्त विद्यार्थियों का एक बड़ा समूह शैक्षणिक तथा व्यावसायिक मार्ग प्रदर्शन की आशा करता है और इसी समय वह भिन्न भिन्न पेशों में प्रवेश करता है। बसु महोदय का आलेख पत्र बालकों के शैक्षणिक मार्ग प्रदर्शन में सहायता अवश्य कर सकता है, किन्तु उनके व्यावसायिक मार्ग-प्रदर्शन में उतनी सहायता नहीं कर सकता और न कक्षा ८ के बालकों को किसी व्यवसाय की आवश्यकता ही महसूस होती है।

किसी आलेखपत्र का रूप तैयार करने से पूर्व इस बात का निश्चय कर लेना आवश्यक प्रतीत होता है कि उसमें कौन-कौन से गुण हों जिनके होने से वह यथासम्भव तत्मापी (valid) एवं विश्वसनीय (reliable) बन सके। मापन के अन्य यंत्रों की भाँति किसी आलेखपत्र की विश्वसनीयता (reliability) इस बात पर भी निर्भर रहती है कि बालकों [illegible]
को इकट्ठा करने के लिये अध्यापक कितनी सावधानी [illegible]
बालकों के विषय में प्राप्त करना चाहता है

किसी अन्य अध्यापक से सुनकर जो जानकारियाँ प्राप्त हों उनका सत्यापन (verify) कर लिया जाय। जानकारियाँ, इकट्ठी करते समय यदि किसी प्रकार का वैयक्तिक अभिनति (bias) अथवा रुचियां (likes) या अरुचियों (dislikes) को स्थान दिया गया तो अवश्य ही आलेखपत्र अविश्वसनीय हो जायगा। आलेखपत्र की विश्वसनीयता उसके व्यापकत्व पर भी निर्भर रहती है। अतः इसमें पूर्ण व्यापकत्व (comprehensiveness) लाने के लिए यह आवश्यक है कि वह प्रगति विवरण (progress report) की तुलना में अधिक सूचनायें देने में समर्थ होवे। शिक्षणकाल में होने वाली बालकों की सामाजिक, शारीरिक, मानसिक, तथा भावनात्मक अभिवृद्धि का संक्षिप्त एवं क्रमिक इतिहास का दूसरा नाम ही सच्चा आलेखपत्र है। अत्यन्त सूक्ष्म एवं अधूरे विवरण देने वाले पत्र भी प्राय अनुपयोगी होते हैं। बालकों ने जिन-जिन समस्याओं का सामना किया है और जिन-जिन समस्याओं को वे आसानी से हल कर चुके हैं उनका भी उल्लेख आलेखपत्रों में होना चाहिये। उनकी शैक्षणिक अथवा व्यावसायिक योजनाएँ क्या हैं। उन्होंने किन-किन महत्वाकांक्षाओं को लेकर अध्ययन आरम्भ किया है? उनके पढ़ने के उद्देश्य अथवा प्रयोजन क्या हैं? इन सब प्रश्नों का उत्तर आलेखपत्रों को देखकर मिल जाना चाहिए तभी वह व्यापक (comprehensive) हो सकेगा।

आलेखपत्र न तो अतिप्रातीतिक (over objective) ही हो और न अति-अप्रातीतिक (over subjective)। इन आलेखपत्रों के बनाने में मध्यमार्ग का अनुसरण किया जाय। पूर्णतया अप्रातीतिक आलेखपत्र भी नीरस एवं निर्जीव हो जाया करते हैं।

आलेखपत्रों को प्रयोज्य (usable) बनाने के लिए उनके लिए मोटे कागज का प्रयोग किया जाय ताकि वे कई वर्षों तक सुरक्षित बने रह सकें। केवल एक मोड़ वाले आलेखपत्र प्राय सुविधाजनक हुआ करते हैं। इनमें प्रविष्टियां (entries) छोटे छोटे अक्षरों में न की जायें नहीं तो कुछ समय बाद वे अस्पष्ट हो सकती हैं।

आदर्श सच्ची आलेखपत्रों में इस प्रकार मापन अथवा अर्हमापन के यन्त्रों के सभी लक्षण यथासम्भव लिए जा सकते हैं।

आलेखपत्रों में दी गई सूचनाएँ

आलेखपत्रों को व्यापक बनाने के लिए उनमें विद्यार्थियों की आर्थिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि, वैयक्तिक इतिहास, स्वास्थ्य, व्यक्तित्व, बुद्धि विशेषी योग्यता और कौशल, शैक्षणिक प्रगति, विभिन्न परीक्षाओं के परिणामों, पाठ्य-क्रम को सहायता पहुँचाने वाले (Co-curricular activities), शिक्षा सम्बन्धी योजना तथा व्यावसायिक महत्वाकांक्षाओं का उल्लेख किया जाना चाहिए।

बालकों के विषय में साधारण जानकारी का सूक्ष्म लेखा उपस्थिति तथा फीस रजिस्टर से प्राप्त किया जा सकता है। विद्यार्थी का नाम, जन्म दिनांक, पिता अथवा संरक्षक का नाम व पता, अन्तिम विद्यालय जिसमें शिक्षा पाई हो, विद्यालय छोड़ने की तिथि व कारण का संक्षिप्त उल्लेख आलेखपत्र के शुरू में ही कर देना चाहिए। आलेखपत्रों में इकट्ठी की जाने योग्य अन्य जानकारियां नीचे दी जाती हैं —

उपस्थिति—उपस्थितियां दो प्रकार की होती हैं सम्भव उपस्थिति (possible attendance) और वास्तविक उपस्थिति (actual attendance)। पहली प्रकार की उपस्थिति विद्यालय खुलने की मीटिंगों की संख्या प्रदर्शित करती है, दूसरी प्रकार की उपस्थिति बालक की वास्तव में उपस्थित रहने की मीटिंग की संख्या की सूचक होती है। यदि बालक लम्बी अवधि तक अनुपस्थित रहा है तो उसका भी विवरण तथा उसकी अनुपस्थिति का कारण दिया जाना चाहिए। ऐसी अनुपस्थिति बालक की शैक्षणिक प्रगति में बाधक होती है। कभी-कभी इसका दुष्परिणाम उसके परीक्षाफल में ढूंढा जा सकता है। यदि किसी विद्यालय में वर्ष भर की कुल मीटिंग की संख्या ४०० है और कोई ३२० मीटिंगों में ही उपस्थित रहता है तो उसकी अनुपस्थिति का कारण अवश्य ढूंढना चाहिए। [illegible] के विषय में यदि अनुपस्थितियों को तीन भागों में बाँट दिया जाय तो और भी अच्छा है

(१) अस्वस्थ होने के कारण अनुपस्थिति।
(२) देरी से (लेट) आने के कारण अनुपस्थिति।
(३) [illegible] प्रकार की

विद्यालय मे उत्तरदायित्व का पद जो विद्यार्थी ने ग्रहण किया हो—प्रत्येक बालक मे कुछ न कुछ गुण अवश्य होते हैं जिनका प्रदर्शन वह यथावसर करना चाहता है। आत्म-अभिव्यक्ति (self-expression) की यह भावना कभी उसे कक्षा मे मॉनीटर, किसी टीम का कप्तान, किसी परिषद् का मन्त्री, छात्रावास का प्रबन्धक अथवा समाज का सेवक बना दिया करती है। अत प्रत्येक बालक के विषय मे इन बातों का भी उल्लेख होना चाहिए।

विद्यार्थी की सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि

माता-पिता की सामाजिक तथा आर्थिक दशा बालक के शैक्षणिक विकास पर प्रभाव डालती है। प्राय. अच्छे घरानों के बच्चों की शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध उचित ही होता है। गरीब घरों के बच्चों के सामने आर्थिक सकट सदैव बना रहने के कारण उनकी शिक्षा का यथोचित प्रबन्ध नही होता। यदि बालक अपने माँ बाप का इकलौता बेटा हुआ तो उसकी शिक्षा का विकास उस बालक की शिक्षा के विकास मे भिन्न होगा जिसके कई भाई और बहिनें हैं। माता-पिता प्राय सबसे बड़े या सबसे छोटे बालक की शिक्षा पर अधिक ध्यान देते है और बीच के बालकों पर कम।

अत: बालक का घर मे क्या स्थान है, इसका भी ब्यौरा आलेखपत्र मे होना चाहिए। कभी कभी कुछ विद्यार्थी अपना खर्च चलाने के लिए ट्यूशन अथवा किसी के यहाँ नौकरी भी कर लेते हैं। यदि इन बातों का भी उल्लेख सचयी आलेखपत्रों मे हो तो उनके विषय मे उनके मालिकों से अन्य और जानकारियाँ भी प्राप्त की जा सकती हैं।

शारीरिक स्वास्थ्य सम्बन्धी विवरण—अध्यापकों को अपनी-अपनी उपस्थिति पंजियों (attendance registers) मे प्रत्येक बालक की ऊँचाई और भार अकित करने पड़ते हैं, किन्तु उनका कोई उपयोग नही किया जाता। अत इस सूचना को सचयी आलेखपत्रों मे ही भरा जाना चाहिए जिससे प्रत्येक बालक के शारीरिक विकास तथा अभिवृद्धि का पूरा चित्र सदैव सामने बना रहे। बालकों के रोगों तथा रोगों के कारणों का पता विद्यालय के औषधालय के अध्यक्ष से चल सकता है। प्रत्येक कक्षा-अध्यापक का कर्तव्य है कि वह औषधालय के अध्यक्ष से इस प्रकार की स्वास्थ्य-सूचना निरन्तर लेता रहे।

बालकों की अभिरुचियाँ—भिन्न-भिन्न बालकों की भिन्न-भिन्न रुचियाँ होती हैं। किसी की रुचि खेल मे अधिक होती है तो किसी की वाद विवाद मे। कोई कविता करने का शौकीन होता है तो कोई स्काउटिंग मे भाग लेकर समाज सेवा कार्य मे अभिरुचि रखता है। इन अभिरुचियों का लेखा आलेखपत्र मे होना आवश्यक है। इनके खोजने का काम भी अध्यापक अथवा क्रीड़ा-अध्यक्ष का ही है जिनके सम्पर्क मे बालक प्राया करता है। इन अभिरुचियों को साहित्यिक, सामाजिक, विनोदात्मक, रचनात्मक, कलात्मक तथा मानसिक वर्गों मे बाँटा जा सकता है।

बालकों की योग्यताओं तथा निर्योग्यताओं का विवरण—कुछ बालकों मे वाक्शक्ति अथवा तर्कशक्ति की, कुछ मे पर्यवेक्षण शक्ति अथवा भावना की प्रधानता होती है। कोई बालक अधिक शर्मीला होने के कारण अथवा भावना ग्रंथियों के पड़ जाने मे पढ़ने मे कमजोर हो जाता है। शैक्षणिक विकास के अवरुद्ध होने पर वह पश्चवर्ती (backward) भी हो सकता है। भावना ग्रंथियों के कारण उसकी मानसिक तथा आध्यात्मिक प्रगति रुक जाती है। अध्यापकों का यह कर्तव्य है कि बालकों की इन निर्योग्यताओं अथवा कुसमायोजन (maladjustment) के चिन्हों अथवा कारणों की खोज करे और उन्हें दूर करने का यथासम्भव प्रयत्न करे। आलेखपत्रों मे इनको अकित करने मे यह पता चल सकता है कि शिक्षणकाल मे बालक इन्हे दूर कर सका है या नहीं। बालक के विषय मे जिन विद्यालयों मे सचयी आलेखपत्रों का प्रचलन अभी तक नहीं हुआ है उनमे प्रधान अध्यापक, कक्षा-अध्यापक, क्रीड़ा अध्यक्ष, स्काउट मास्टर और साहित्य परिषदों के प्रधान, बालकों को आवश्यकता पड़ने पर प्रमाणपत्र देते है। इन प्रमाणपत्रों मे भिन्न-भिन्न विशेषणों का प्रयोग किया जाता है उनमे वस्तुनिष्ठता (objectivity) नहीं होती। ये विशेषण बहुधा सोच समझ कर नहीं दिए जाते। अत यदि विद्यालय वास्तव मे बालकों का हितैषी है तो वह उनके व्यक्तित्व गुणों का पूर्ण मनन करके पथप्रदर्शन करे। ज्यों-ज्यों व्यक्ति बालकों के सम्पर्क मे आवें वे उनके गुणों अथवा दुर्गुणों को निरन्तर नोट करते रहें। वर्ष के अन्त मे वे सब मिल-कर यह निश्चय कर लें कि प्रत्येक बालक के व्यक्तित्व के कौन कौन से गुण विद्यमान है और किस सीमा तक। उदाहरण के लिए यदि कोई बालक कठिनाइयों के बार-बार पड़ने पर भी अध्यवसाय को नहीं छोड़ता तो उसे उत्तम कोटि का अध्यवसायी माना जा सकता है। अन्य श्रेणी के बालक

कठिनाई आने पर आरम्भ किए हुए कार्य को छोड़ दिया करते हैं। निकृष्ट कोटि के उत्तरदायी बालक कठिनाइयों के भय से कोई कार्य शुरू ही नहीं करते। इसी प्रकार व्यक्तित्व के अन्य निम्नलिखित गुणों का श्रेणी विभाजन किया जा सकता है। उत्तम कोटि के व्यक्ति को 'अ', मध्यम कोटि के व्यक्ति को 'ब' और निकृष्ट कोटि के व्यक्ति को 'स' अक्षरों से आलेखपत्र में सूचित किया जा सकता है।

विद्यार्थी का विद्यालय के प्रति दृष्टिकोण—बालक विद्यालय को प्रेम करता है, अथवा नहीं, उसके दैनिक जीवन से पता लगाया जा सकता है। कभी-कभी कम अनुभवी अध्यापकों की असावधानी से बालक बालकों में भावना ग्रन्थियाँ पड़ जाती हैं। वे विद्यालय से अथवा कक्षा से अथवा किसी विषय से घृणा करने लगते हैं। इससे उनका मानसिक विकास रुक जाया करता है। इसलिये अध्यापकों का यह कर्त्तव्य है कि वे इस प्रकार की भावना ग्रन्थियों का कारण ढूँढ निकालने का प्रयत्न करें। बालक किस विषय से अधिक प्रेम करता है? क्या इस प्रेम का कारण उस विषय के अध्यापक का प्रभावशाली व्यक्तित्व है? अथवा वह इस विषय को अपने भावी जीवन में प्रयोग करना चाहता है? वह किस विषय में रुचि नहीं दिखलाता? और क्यों? इन सब बातों का उल्लेख करना आवश्यक है। बालक के भविष्य के विषय में उसके माता पिता की क्या इच्छाएँ हैं? अथवा वह स्वयं क्या बनना चाहता है, इसका पता उसके प्रिय विषय से चल सकता है।

स्थानीय तथा सार्वजनिक परीक्षाओं का परिणाम—बालक ने भिन्न-भिन्न विषयों में कितना ज्ञान पैदा कर लिया है उसका निष्पादन (achievement) किस प्रकार का है, इसका पता उसके परीक्षाफलों से चल सकता है। उसने कौन-कौन से विषय लिए हैं, उन विषयों में भिन्न भिन्न परीक्षाओं में उसे कितने कितने अंक मिले हैं। इसका उल्लेख प्रतिवर्ष किया जाना चाहिये। किसी विषय में बालक की योग्यता का मूल्यांकन करने के लिये कुछ अध्यापक उसे निम्न कोटियों में से किसी एक में रखने का प्रयत्न करते हैं —

(१) अत्यन्त उच्चकोटि, उसके अंक ७५% से १००% तक हों।
(२) उच्चकोटि, यदि उसके अंक ५०% से ७४% तक हों।
(३) औसत कोटि, यदि उसके अंक ३०% से ४६% तक हों
(४) निम्नकोटि, " ३०% से कम हों।

इन कोटियों का प्रदर्शन सुविधा के लिये क्रमश अ, ब, स और द अक्षरों से किया जाता है किन्तु इस प्रकार का श्रेणी विभाजन बालकों की विभिन्नता को इतना स्पष्ट नहीं कर सकता जितना कि प्रतिशत क्रम। प्रतिशतियाँ भी पच्चीस में चौथा, बत्तीस में दसवा, ४० में दूसरा, इस प्रकार से दिखाई जा सकती हैं।

अब प्रश्न उठता है कि क्या दो विद्यालयों के एक ही कक्षा के दो विद्यार्थियों की प्रतिशतियाँ समान होने पर उनकी योग्यता में समानता हो सकती है? सम्भवतः नहीं क्योंकि दोनों विद्यालयों में दी गई परीक्षाओं के प्रश्नों में भिन्नता हो सकती है, अथवा उत्तर पुस्तिकाओं के जाँचने वाले परीक्षकों की अंकन प्रणाली में भिन्नता हो सकती है। इन कमियों का निराकरण तभी हो सकता है जब देश भर में भिन्न-भिन्न विषयों में प्रामाणिक परीक्षाओं के देने का प्रचार हो जाय। किन्तु ऐसा समय अभी दूर ही है। उस समय तक तो अध्यापकों द्वारा निर्मित श्रर्वनिक परीक्षाओं के अंकों पर ही सन्तोष करना होगा। यदि स्थानीय परीक्षाओं के अंकों को ही आलेख पत्रों में भरना है तो अर्धवार्षिक दोनों परीक्षाओं के अंकों का समावेश होना जरूरी है।

बालक का मानसिक विकास—सचयी आलेखपत्र बनाने वाले एक सज्जन ने इनमें मानसिक विकास को प्रदर्शित करने वाले बुद्धिलब्धि (I. Q.) को अनुपयुक्त ठहराया है। भले ही बुद्धि अंक में दोष क्यों न हो, भले ही भारत में ऐसी प्रमापीकृत बुद्धिपरीक्षाओं की कमी क्यों न हो किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि बालक के मानसिक विकास का लेखा आलेखपत्र में कहीं और किसी प्रकार भी न किया जाय। ऐसी बुद्धिपरीक्षायें भारत के लिए प्रमापीकृत की जा रही हैं। उनका उपयोग यथासम्भव किया जा सकता है।

प्रधान-अध्यापक की सम्मति—प्रत्येक आलेखपत्र में प्रधान-अध्यापक की बालक के विषय में जो सम्मति रही हो इसका तो लेखा जोखा होना चाहिये, साथ ही यदि कक्षा-अध्यक्ष तथा क्रीड़ा अध्यक्ष की सम्मति के लिए भी स्थान दिया जा सके तो उत्तम होगा।

संचयी आलेख पत्र का नमूना नीचे दिया जाता है :—

संचयी आलेखपत्र

विद्यार्थी का नाम.......................कक्षा ....
जन्म दिनांक.........
पिता/संरक्षक का नाम..........
पता ......
वर्तमान विद्यालय का नाम.........
अन्तिम विद्यालय जिसमें शिक्षा पाई हो..........
प्रवेश दिनांक.........
प्रवेश पंजी संख्या.........
विद्यालय छोड़ने की तिथि ....
विद्यालय छोड़ने का कारण..........

(क) विद्यार्थी की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि

घर की परिस्थिति (आर्थिक)
माता पिता का पेशा
माता पिता की आर्थिक दशा
रहन सहन का स्तर
लड़के का पेशा (यदि कोई हो तो)

विद्यार्थी का घर में स्थान (सामाजिक)

माता पिता का बालक के प्रति व्यवहार

(ख) शारीरिक स्वास्थ्य सम्बन्धी विवरण

वर्ष	ऊँचाई	भार	छाती की नाप	कोई भयंकर रोग जिससे पीडित हुआ हो	अन्य शारीरिक दोष	स्वास्थ्य की दशा

(ग) अभिरुचियाँ

वर्ष	साहित्यिक	कलात्मक	रचनात्मक	विनोदात्मक	सामाजिक	मानसिक

(छ) उपस्थिति

वर्ष		उपस्थिति	अस्वस्थ अनुप०	दरस ध्यान की अनु०	अन्य अनुप०	कुल योग	ल० अनु० का कारण
१९६२	प्र० टर्म						
	द्वि० टर्म						
१९६३	प्र० टर्म						
	द्वि० टर्म						
१९६४	प्र० टर्म						
	द्वि० टर्म						
१९६५	प्र० टर्म						
	द्वि० टर्म						
१९६६	प्र० टर्म						
	द्वि० टर्म						

(ज) विद्यालय के प्रति दृष्टिकोण

वर्ष	प्रिय पाठ्य विषय	अप्रिय पाठ्य विषय	वर्तमान शै० अभि०	बालक की महत्वाकांक्षा	मातापिता की इच्छाएं	शिक्षक का मत
१९६२						
१९६३						
६४						
६५						
६६						

(झ) स्थानीय तथा सार्वजनिक परीक्षाओं का परिणाम

वर्ष / विषय	१९६२ प्र०	द्वि०	योग	१९६३ प्र०	द्वि०	योग	१९६४ प्र०	द्वि०	योग	१९६५ प्र०	द्वि०	योग	१९६६ प्र०	द्वि०	योग
री															
जी															
णित															
तेहास															
गोल															
ज्ञान															
ता															
गीन															
य वि० १															
२															
३															
४															
र्ण योग															
क्षा में अनु०															

(ञ) मानसिक परीक्षाओं के परिणाम

सामूहिक मानसिक परीक्षा का नाम	प्राप्तांक	व्यक्तिगत मानसिक परीक्षा का नाम	बुद्धिलब्धि

(ट) सम्मतियाँ

वर्ष	कक्षा अध्यापक की सम्मति	हस्ताक्षर	खेल अध्यापक की सम्मति	हस्ताक्षर	प्र. अध्यापक की सम्मति	हस्ताक्षर
१९६२						
१९६३						
१९६४						
१९६५						
१९६६						

Q 2. What difficulties and problems a teacher has to face in preparing a cumulative record card ? Discuss its utility to him.

Ans जिन जिन समस्याओं का सामना कक्षा अध्यापक को आलेखपत्र भरते समय करना पड़ता है उनका उल्लेख वेंडल (Wendell) महोदय ने अपनी पुस्तक 'क्यूमुलेटिव रिकॉर्ड' में किया गया है। उनमें से जिन-जिन समस्याओं का सामना भारतीय शिक्षक को शायद करना पड़ेगा वे नीचे दी जा रही हैं :—

(१) क्या विद्यार्थी की चरित्रहीनता के विषय में भी किसी घटना का वर्णन आलेखपत्र में किया जाय ? यदि नहीं तो क्यों नहीं ? आलेखपत्र को कौन भरे या भरने में कौन-कौन सहायता दे ?

(२) आलेखपत्रों को रखने का कौनसा स्थान निश्चित किया जाय ? क्या अन्य अध्यापकों को भी उन्हें देखने की अनुमति दी जाय ?

(३) क्या बालकों को भी आलेखपत्र भरने अथवा देखने की आज्ञा दी जाय ?

(४) इन आलेखपत्रों के भरने, अथवा भरे हुए आलेखपत्रों की व्याख्या करने के लिए क्या शिक्षक वर्ग को प्रशिक्षित किया जाय ?

(५) क्या जो-जो सामग्रियाँ बालक के विषय में उपलब्ध की गई हैं वे विश्वसनीय हैं ? क्या वे उचित तथा शुद्ध हैं ? क्या इन विवरणों को देखकर बालक का हित चाहने वाले कोई लाभ [illegible] सकते हैं ? क्या उनके तैयार करने में जितना समय खर्च हुआ है उसका पूरा-पूरा प्रतिफल है ? क्या कुछ गुण ऐसे भी हैं जिन पर आलेखपत्र प्रकाश नहीं डालता ? यदि हैं तो [illegible] किस प्रकार किया जाय और उनका उल्लेख कहाँ किया जाय ?

आलेखपत्र भरने में कठिनाइयाँ—इन समस्याओं के अतिरिक्त आलेखपत्र भरते समय [illegible] को निम्नांकित कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

(१) इनके भरने में शिक्षक तथा प्रधान अध्यापक के ऊपर लिपिकीय कार्य बढ़ जाने [illegible] से न तो अध्यापक और न प्रधान अध्यापक ही इन आलेखपत्रों को रखने में रुचि लेते हैं।

(२) बालको के अनेक गुणो का मूल्यन अति आत्मगत (over-subjective) होने के कारण वे अविश्वसनीय हो जाते हैं, अत: उनका रखना उपयोगी नही प्रतीत होता।

(३) प्रत्येक बालक के विषय में इतनी अधिक व्यापक और विस्तृत सूचनाओं की आवश्यकता ही क्या है, यह सोचकर अध्यापक इनके भरने मे प्राय अरुचि दिखलाते है।

(४) भिन्न भिन्न अध्यापकों की सम्मतियाँ भिन्न-भिन्न होती है। अत जब तक कोई प्रामाणिक एवं निश्चित विधि नहीं अपनाई जायगी तब तक इस दिशा मे कोई प्रगति नही हो सकेगी।

(५) यदि अध्यापक किसी बालक के विषय में उसके प्रतिकूल कोई विवरण (report) लिख देता है, तो उसके माता पिता उस अध्यापक को बाद मे तंग कर सकते हैं, इस भय से कोई अध्यापक किसी बालक के विषय में प्रतिकूल सम्मति नही देता।

(६) विद्यालयों में इन आलेखपत्रो को सुरक्षित रखने के साधनो की कमी है। उनकी देख-भाल के लिए एक लिपिक की आवश्यकता है जो शिक्षा-विभाग के नियमो के अनुसार नहीं रखा जा सकता। शिक्षा-विभाग इस ओर ध्यान नही देता।

(७) विद्यालयो मे शिक्षक-विद्यार्थी अनुपात अत्यन्त ही असन्तोषजनक है। एक शिक्षक जिसकी कक्षा में ५० विद्यार्थी हो, भला किस प्रकार इन आलेखपत्रो को भर सकता है।

इन समस्याओ को हल करने के तथा इन कठिनाइयो के दूर करने के लिए कुछ सुझाव नीचे दिये जाते हैं :—

(१) सचयी आलेखपत्रो को यथासम्भव शुद्ध और सत्य बनाने का प्रयत्न किया जाय। बालकों को भी उनका प्रयोजन समझा दिया जाय।

(२) कक्षा मे अधिक विद्यार्थी होने के कारण अध्यापक न घबडावें। यदि वह आलेखपत्रों के भरने में सावधानी और ठीक ढंग का प्रयोग करेगा तो कदाचित् उसका भार हल्का हो सकता है। आलेखपत्र अध्यापक के लिए भारस्वरूप न बनें।

(३) जितनी भी सूचनायें अन्य विद्यालयो, सामाजिक संस्थाओ और बालक के भावी स्वामियो के काम आ सकती हैं उनको इस प्रकार आलेखपत्र में दर्ज किया जाय कि उनका अधिक से अधिक उपयोग और लाभ उठाया जा सके। तात्पर्य यह है कि आलेखपत्र को सजीव बनाने का प्रयत्न किया जाय।

(४) जहाँ तक हो सके आलेखपत्र मे निरर्थक और अधूरी सूचनायें न दी जायें।

(५) जिन-जिन बातो को गोपनीय रखना है उन्हे एक लिफाफे मे बन्द रखा जाय।

(६) पहले से ही यह निश्चय कर लिया जाय कि कौन इन आलेख पत्रो को भरेगा और यह आधार सामग्री को कब और कैसे इकट्ठा किया जायगा ? सामग्री की शुद्धि की जाँच करने के लिए अध्यापको की एक कमेटी बनाई जा सकती है।

(७) आलेखपत्रों को ऐसे स्थान पर रखा जाय जहाँ सब लोग—अध्यापक, अभिभावक, प्रधानाध्यापक—देख सकें। जिस कमरे में उन्हे रखा जाय उसकी देखभाल के लिए एक लिपिक की आवश्यकता है जो यह नोट करता है कि कौनसा आलेखपत्र कब और किसने उसको उसके स्थान से हटाया। इनका सुरक्षित रखना विद्यालय का बडा ही आवश्यक कार्य है।

सचयी आलेखपत्रों का उपयोग

यदि अध्यापक वर्ग को विद्यार्थियो की वास्तव मे सच्ची सहायता करनी है तो उसका यह कर्तव्य है कि वह उन्हे भली प्रकार जाने। अपने विद्यार्थियो के विषय मे पूर्ण जानकारी प्राप्त करना तथा उस जानकारी से बालक का मार्ग प्रदर्शन करना अध्यापक का परम कर्तव्य है। आलेखपत्र अध्यापक की सहायता कई प्रकार से कर सकते हैं। उनमे दी गई सामग्री अध्यापको के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियो को भी उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इनको देखकर अध्यापक को बालक की वैयक्तिक समस्याओ (तथा सम्पूर्ण कक्षा की सामूहिक समस्याओ) का पता चल सकता है। इन आलेखपत्रों के कुछ उपयोग नीचे दिये जाते हैं :

(१) नैदानिक तथा उपचारात्मक कार्यों के लिए बालक अथवा बालको के समूह की आवश्यकताओ का निर्णय करने मे सहायता देना।

(२) पाठ्यक्रम के चुनाव में उनकी रुचियों, अभिरुचियों तथा विद्यालय के प्रति दृष्टिकोण को देखकर बालकों की सहायता करना ।

(३) बालक के रुभान का पता लगा कर व्यावसायिक योजना बनाने में सहायता करना ।

(४) माता-पिता को मार्ग दिखलाने में सहायता देना ।

(५) विद्यालयों तथा भावी मालिकों को व्यक्तियों के विषय में आवश्यक सूचनायें देना ।

(६) योग्यता के अनुसार बालकों का वर्गीकरण करने में सहायता देना ।

(७) शैक्षणिक अनुकूलन (educational adjustment) में अध्यापकों को सहायता देना ।

(८) स्वास्थ्य सम्बन्धी मार्ग-प्रदर्शन ।

(९) अनुसंधेय व्यक्तियों के अध्ययन (case-study) में सहायता देना ।

भाग ५

देश विदेश में जन शिक्षा

अध्याय १

वैदिककालीन शिक्षा का स्वरूप

Q. 1. Discuss the system of education in the Vedic period

Ans. काल परिचय—वैदिक काल का विस्तार सामान्यतः २५०० ई० पूर्व से ५०० पूर्व तक माना जाता है। इस सम्पूर्ण काल में शिक्षा का लक्ष्य परम सत्य तथा सदाशिव के की प्राप्ति ही रहा और इस लक्ष्य में ३००० वर्ष तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ अतः हम समस्त काल की शिक्षा की विवेचना एक साथ कर सकते हैं। इस काल में वेदों की प्रधानता । ब्राह्मण से लेकर स्मृतियों तक सभी ग्रन्थ वेदों को परम प्रमाण मानकर लिखे गये। इन ग्रन्थों में वेद प्रतिपादित ज्ञान सूत्रों, कर्मकाण्डों और व्यवहार मर्यादाओं की ही व्याख्या विवेचना हुई। वेद की इस प्रधानता के कारण ही इस सम्पूर्ण काल को वैदिक काल की दी गई है। तब भी सुविधा के लिये इस काल को विभिन्न रचनाओं के आधार पर तीन कालों में विभाजित किया जाता है।

१—ऋग्वेद काल
२—ब्राह्मणिक काल
३—उपनिषद् काल।

कुछ इतिहास लेखकों ने इस काल को 'ब्राह्मण काल' कहा है क्योंकि इस काल में माज एवं शिक्षा व्यवस्था दोनों में ब्राह्मणों की प्रधानता थी किन्तु चूँकि प्रधानता वेद की ही अतः इस काल को वैदिक काल ही कहना समीचीन होगा।

शिक्षा के उद्देश्य—प्रत्येक देश अथवा काल की शिक्षा का उद्देश्य उस देश अथवा ल की आवश्यकतायें निश्चित करती हैं। अतः वैदिक कालीन शिक्षा के उद्देश्य स्थिर करने के ये हमें उस काल की शिक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं का अध्ययन करना होगा। ये आवश्यकतायें म्नलिखित थीं। वैदिक काल की जनता अपने समाज की स्थिरता एवं विकास के लिये हती थी कि उसके प्रत्येक सदस्य का जीवन सरल एव पवित्र हो। उसकी वृत्ति आस्तिक हो और ह स्वय वर्णाश्रम धर्म को श्रद्धा के साथ पूरा करे। उसकी मनोवृत्ति में निवृत्ति हो और यम यमादि को मानता हुआ वह सर्वभूत हित में लगा रहे। इस आवश्यकता को ध्यान में रखकर दिक समाज ने अपनी शिक्षा का पहला लक्ष्य अपने राष्ट्रीय आदर्शों के अनुरूप स्वस्थ-चरित्र का र्माण माना था इस स्वस्थ चरित्र का निर्माण तभी हो सकता था जब व्यक्ति का सर्वांगीण कास हो। अतः वैदिक शिक्षा का दूसरा महत्वपूर्ण उद्देश्य था—शारीरिक, मानसिक और ाध्यात्मिक तीनों दृष्टियों से व्यक्तित्व का अधिकतम समन्वित विकास। आर्य जाति आत्मा के ावागमन पर शुरू से ही जोर देती आ रही थी। इस आवागमन से मुक्त होना मनुष्य योनि की फलता का चिह्न माना जाता था। ब्रह्म अटल है। इस ब्रह्म की परम शक्ति में लीन होना ावागमन से मुक्ति प्राप्त करने का एकमात्र साधन है। अतः आन्तरिक रचना के अनुसार बाह्य स्तुओं का अधिक ज्ञान व्यर्थ एव मानव को जंजाल में फाँसने वाला हो सकता है। अतः आर्यों ी शिक्षा प्रणाली मनुष्य के लिये एक ही सर्वोच्च लक्ष्य लेकर चलती थी और वह था ब्रह्म ान अथवा आत्मज्ञान की प्राप्ति। इस ज्ञान की प्राप्ति वेद की ऋचाओं के नियमानुसार पाठ

करते रहने तथा उनके अर्थ पर ध्यान देते रहने और चित्तवृत्ति का निरोध करते रहने से हो सकती है। इस प्रकार वैदिक शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक विकास था। यह शिक्षा बालक की एकांगी अभिवृद्धि की नहीं अपितु सर्वांगीण विकास का सुग्रवसर देती थी।

वैदिक काल के २००० वर्षों के इतिहास का अध्ययन करने से पता चलता है कि वैदिक साहित्य मे दिन प्रतिदिन विकास एव वृद्धि होती जा रही थी। वेद और वैदिक साहित्य का उपयुक्त अश लुप्त न हो जाय अत वैदिक कालीन जनता चाहती थी कि कम से कम उस अश का प्रत्येक व्यक्ति ग्रहण, रक्षण एव सक्रमण करने मे सहयोग दे। इस आवश्यकता को ध्यान मे रखकर *उस समय के शिक्षाशास्त्रियों ने शिक्षा का चौथा महत्वपूर्ण उद्देश्य निश्चित किया था*—और वह था वेद, वैदिक साहित्य, यज्ञ विधियो तथा आध्यात्मिक रहस्यो की रक्षा और उनका सक्रमण। उस समय का शिक्षाशास्त्री यह अच्छी तरह जानता था कि शिक्षा का अभिप्राय उन सस्कारो का सक्रमण होता है जिनकी रक्षा करने से कोई जाति जीवित रह सकती है। इसलिये प्रत्येक पीढ़ी ने शिक्षा की क्रिया द्वारा अपनी आने वाली पीढी को जान बूझकर स्वसचित संस्कार देती रहती है जिससे वह उन्नति और विकास के उस स्तर को स्थिर रख सके जो उसने अबतक प्राप्त किया है। इसलिये उस समय की शिक्षा का उद्देश्य बालको मे अपनी परम्परा को जीवित रखने तथा उसे विकसित करने की महत्वाकांक्षा का उत्पादन था।

अन्त मे, वैदिक काल की जनता चाहती थी कि उसका प्रत्येक सदस्य अपनी रुचि एव *योग्यता के अनुरूप एक जीविका का साधन चुन सके और अपनी सारी ताकत से उसका निर्वाह और* विकास करे। वह यह भी चाहती थी कि प्रत्येक व्यक्ति शरीर और मन से स्वस्थ होकर अपने प्रतिद्वन्द्वियो एव शत्रुओ के साथ सफलतापूर्वक संघर्ष कर सके। उसमे प्रतिदिन बढती हुई राजसत्ता की निरंकुशता पर नियन्त्रण शक्ति पैदा हो जाय। इस बात को ध्यान मे रखकर उस समय के शिक्षा-शास्त्रियों ने शिक्षा का आधार जीवनोपयोगी भी बना लिया था और उनकी शिक्षा का एक उद्देश्य यह भी स्थिर किया था कि व्यक्ति मे सामाजिक, आर्थिक एव राजनीतिक क्षमता का विकास हो।

सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि वैदिक कालीन शिक्षा के निम्न उद्देश्य थे।

(१) व्यक्तित्व का समन्वित विकास।
(२) सचित सस्कारो और परम्पराओ की रक्षा।
(३) जीवनोपयोगी क्षमता का विकास।

ऋग्वैदिक काल मे शिक्षा का लक्ष्य इतना उच्च रखा गया था कि जनसाधारण के लिये उस तक पहुँचना असम्भव नहीं तो दुष्कर अवश्य था। उच्चतम ज्ञान की प्राप्ति आसान कार्य नहीं था अत. उत्तर वैदिककाल मे शिक्षा के क्षेत्र मे उछलकर छत पर पहुँचने की अपेक्षा सीढ़ी लगाकर पहुँचना श्रेष्ठ समझा गया और सामान्य जनसाधारण को व्यावहारिक शिक्षा का कार्य समझाने के लिये शिक्षा को अधिक जीवनोपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया। इस प्रकार, शिक्षा का एकाकीपन समाप्त कर आध्यात्मिक लक्ष्यो के साथ भौतिक लक्ष्यो को भी स्वीकार कर लिया गया। शिक्षा के उद्देश्य अब दो मार्गो मे बँट गये—प्रेय और श्रेय। प्रेय लक्ष्य का उद्देश्य सासारिक उन्नति, सम्पन्नता, ऐश्वर्य और आनन्द की प्राप्ति थी। प्रेय की प्राप्ति के दो साधन थे—कर्म और धर्म। कर्म मे श्रम और व्यवसाय पर और धर्म मे वर्णाश्रम की सीमा मे अपने को बाँधकर सार्वजनिक कर्त्तव्य करने पर जोर दिया जाता था। दूसरा महान् उद्देश्य था श्रेय। श्रेय का साधन था उपासना और सयम द्वारा आत्मा की शुद्धि कर उस परम सत्य को प्राप्त करना जिसको ऋग्वेद काल मे परम लक्ष्य माना गया था। किन्तु समस्त वैदिक काल में शिक्षा के उद्देश्यो मे विशेष परिवर्तन न हुआ।

शिक्षा के इन उद्देश्यो की प्राप्ति के लिये जो प्रणाली प्रचलित थी उसे हम गुरुकुल प्रणाली कहते हैं। इस प्रणाली की मुख्य विशेषतायें निम्नलिखित थी।

गुरुकुल प्रणाली की विशेषतायें

(१) व्यक्तिवादी शिक्षा का आयोजन—व्यक्ति ही प्राचीन गुरुकुल शिक्षा का केन्द्र माना *जाता था इसलिये इस बात पर ही सबसे अधिक बल दिया जाता था कि उसके व्यक्तित्व का* पूर्ण विकास हो। विश्व मे जो शाश्वत सत्य है उसकी प्राप्ति से ही व्यक्तित्व का विकास *हो सकता*

है इस विचारधारा से प्रेरित यह गुरुकुल प्रणाली बाह्य ज्ञान के विषयों पर अधिक महत्व न देकर आत्म ज्ञान पर ही विशेष बल देती थी। उसका लक्ष्य था ऐसे पूर्ण विकसित पुरुष को जन्म देना जो अपने भीतर छिपे हुए महान् तत्व का दर्शन कर सके।

(२) दीक्षा संस्कारों पर विशेष बल—गुरु के पास लाया गया प्रत्येक शिष्य कुछ रूढ़ियों के अनुसार ही दीक्षित हो पाता था। किसी शिष्य को स्वीकार करना गुरु की इच्छा पर निर्भर रहता था। जो शिक्षार्थी शिष्य रूप में स्वीकार किया जाता उसे कई नियमों एवं संस्कारों में होकर गुजरना पड़ता था। इन सभी संस्कारों को सामूहिक रूप से उपनयन कहते थे। बालक के विषय में पूर्ण जानकारी गुरु को दी जाती थी, जिस प्रकार माता बालकों को गर्भ में धारण कर जन्म देती है ठीक उसी प्रकार गुरु भी शिष्य को अपना मानकर द्विज अथवा पुनर्जन्मा बनाता था। उपनयन का अर्थ है पास लाना। अतः इस संस्कार द्वारा बालक को अपने पास लाकर गुरु उसको विद्या देता था। जब तक वर्ण व्यवस्था जाति व्यवस्था में परिवर्तित न हुई तब तक तो बिना किसी भेदभाव के उपनयन संस्कार सभी वर्णों का होता रहा किन्तु बाद में केवल द्विजों का ही उपनयन संस्कार किया जाने लगा।

उपनयन संस्कार के बाद बालक ब्रह्मचारी माना जाता था। आचार्य कुल में रहने के कारण उसे आचार्यकुल वासी अथवा अन्ते वासी भी कहा जाता था। ब्रह्मचारी को निम्नलिखित आदेशों का पालन करना पड़ता था।

संध्योपासन तथा भोजन से पूर्व शुद्ध जल से आचमन, निरन्तर कर्मशील रहकर धर्माचरण, आचार्य के अधीन रहकर वेदाध्ययन, क्रोध, असत्य भाषण, आठों प्रकार के मैथुनों, गाने बजाने, नाचने, इत्र सुरमा लगाने, हजामत, माँस तथा रूखे पदार्थों का भोजन, मादक द्रव्यों का सेवन, बैल, घोड़ा, हाथी और ऊँट की सवारी करना, अत्यन्त खट्टे, तीखे, कसैले, नमकीन, दस्तावर पदार्थों के सेवन का बहिष्कार; मेखला और दण्ड का धारण, शिक्षाचरण, अग्निहोत्र के लिये समिधाओं का संग्रहण, आचार्य की सेवा, विद्योपार्जन तथा इन्द्रिय निग्रह ये उसके नित्य के कर्म थे।

इस प्रकार प्राचीन गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में ब्रह्मचर्य को विशेष महत्व दिया जाता था। सम्पूर्ण शिक्षा वास्तव में ब्रह्मचर्य की ही शिक्षा थी। आध्यात्मिक आधार रखने वाली गुरु सेवा ही ब्रह्मचारी का परम धर्म था। ब्रह्मचारियों को गुरुकुल में बने रहने की तीन अवधियाँ थीं। जो ब्रह्मचारी २४ वर्ष तक गुरुकुल में रहता था, वसु कहलाता था जो ३६ वर्ष तक गुरु सेवा में लगा रहता था उसे रुद्र तथा जो ४८ वर्ष तक विद्याध्ययन करता था उसे आदित्य कहते थे। इस अवधि तक गुरुकुल में विद्याध्ययन करने के उपरान्त ब्रह्मचारी का समावर्तन संस्कार हुआ करता था। तब उसे स्नातक की उपाधि दी जाती थी। समावर्तन संस्कार के साथ उसकी शिक्षा समाप्त हो जाती थी और विद्यार्थी शक्तिभर गुरु को दक्षिणा भेंटकर जीवन के क्षेत्र में उतरा करता था।

(३) पाठ्यक्रम—वैदिककाल में यद्यपि धार्मिक शिक्षा पर बल दिया गया था तब भी यह कहना कि शिक्षा धार्मिक ही रही पूरी तरह गलत है। उस समय भी आध्यात्मिक और लौकिक दोनों प्रकार की विद्याओं का समावेश पाठ्यक्रम में किया गया था। पाठ्यक्रम में जिन विषयों का समावेश किया गया था उनकी सूची नीचे दी जाती है—

चारों वेद, इतिहास और पुराण, व्याकरण, अर्थशास्त्र, शकुनविद्या, भूगर्भविद्या, तर्कशास्त्र, आचार शास्त्र, भौतिकी, ब्रह्म विद्या, प्राणीशास्त्र, सैन्य विज्ञान, ज्योतिष, सर्प विद्या, शिल्प विज्ञान, संगीत शास्त्र एवं आयुर्वेद।

बाद में वेदों की विभिन्न शाखाओं, ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यकों, उपनिषदों, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, व्याकरण, छन्द, दर्शन, धर्मशास्त्र अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान आदि को भी पाठ्यक्रम में स्थान दिया गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वेदों के अध्ययन और मनन पर विशेष बल दिया जाता था। इन्हीं को अच्छे ढंग से पढ़ने और समझने के लिये प्रत्येक विद्यार्थी को प्रेरित किया जाता था। वेदों को समझने के लिए वेदांगों की अभिवृद्धि की गई। वेदांग ६ थे। शिक्षा, छन्द, व्याकरण, निरुक्त, कल्प और ज्योतिष। साथ ही व्यावहारिक शिक्षा में गोपालन, युद्धविद्या, आदि का समावेश था।

ग्रारम्भ में तीनों वर्णों को—ब्राह्मण, क्षत्रिय ग्रौर वैश्य—एक ही प्रकार की शिक्षा दी जाती थी किन्तु ज्यो-ज्यो जाति व्यवस्था दृढ होती गई उनकी शिक्षा में भी अन्तर आता गया। धार्मिक ग्रन्थो का पठन-पाठन ग्रौर धार्मिक कृत्यो का ज्ञान ब्राह्मणों ने, राजनीति ग्रौर सैनिक शिक्षा का भार क्षत्रियो ने, तथा गोपालन, ललित कलाग्रो, कृषि तथा व्यापार का कार्य-भार वैश्यो ने अपने कन्धो पर लिया। इस प्रकार तीनो वर्णों की शिक्षा का पाठ्यक्रम भी बदल गया।

(४) ग्रध्यापन विधि—प्राचीन गुरुकुल प्रणाली की ग्रध्यापन विधि की निम्न विशेषतायें थी—

मौखिक—इस काल की ग्रध्यापन विधि मुख्यतया मौखिक थी। शिक्षा पद्धति में तीन क्रियाग्रो का समावेश होता था—श्रवण, मनन ग्रौर निदिध्यासन। ग्रध्ययन के समय विद्यार्थी गुरु के वचन को ध्यानपूर्वक सुनते थे। गुरु के उच्चारण को सुनकर शिष्य भी तदनुसार उच्चारण करते थे ग्रौर यही उच्चारण धीरे-धीरे ग्रन्थो के पाठ में बदल जाता था। मौखिक रूप में ही ग्रन्थो के ग्रर्थ एवं भाष्य बालकों के सामने प्रस्तुत किये जाते थे। बालक गुरु वचनो को गुरु मुख से सुनकर वस्तु का मनन तथा निदिध्यासन करते थे। पाठ समाप्त होने पर विद्यार्थी गुरु से प्रश्न पूछते ग्रौर वे उनका उत्तर देते थे। इस प्रकार ग्रध्यापन में प्रश्नोत्तर प्रणाली ही प्रचलित थी। ये प्रश्न जिज्ञासा की शान्ति के लिये दोनों पक्षो से किये जाते थे। तर्क की भी व्यवस्था थी। शिष्य गुरु से तथा ग्रपने सखाग्रो से तर्क कर सकता था जिससे एक दूसरे के विचारो को सुनकर दोनों ग्रपनी कमियों को दूर करने का उपक्रम कर सकें।

ग्रागमन ग्रौर निगमन प्रणाली का प्रयोग—सदेहात्मक वस्तु के निर्णय में इस प्रकार तर्कशास्त्र की उपनय एवं निगमन विधियो का प्रयोग होता था।

सक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि ग्रध्यापन की कई महत्वपूर्ण विधियो का प्रयोग उस समय होता था। उपस्थापन, प्रश्नोत्तर, चिन्तन, वादविवाद ग्रौर स्वाध्याय विधियों का विशेष प्रचलन था। वैदिक साहित्य में स्वाध्याय पर इतना ग्रधिक बल दिया गया कि उस समय ग्रनेक पुस्तकें लिखी जाने लगीं। सम्पूर्ण शिक्षा प्रणाली व्यक्तिगत थी जिससे गुरु ग्रौर शिष्य एक दूसरे के व्यक्तित्व को पहचानते ग्रौर एक दूसरे की विचारधारा का सम्मान करते थे, प्रायः गुरु का व्यक्तित्व शिष्य के व्यक्तित्व पर ग्रावरण बन कर छा जाता था ग्रौर गुरु के सम्पूर्ण ज्ञान को पाकर जीवनादर्श पा जाता था।

(५) परीक्षा प्रणाली—प्राचीन गुरुकुलो में ग्राजकल के समान परीक्षा प्रणाली न थी। गुरु प्रतिदिन जो पढ़ाते थे, उसे ग्रगले दिन प्रत्येक विद्यार्थी से सुनते थे। पूर्ण सन्तुष्ट होने पर ही ग्रगला पाठ शुरू किया जाता था। इस प्रकार प्रत्येक छात्र की व्यक्तिगत योग्यता की ग्रोर ध्यान दिया जाता था। बीच-बीच में गुरु ग्राश्रम के विद्यार्थियो को दो दलो में बाँट देते थे ग्रौर उनके बीच शास्त्रार्थ चला करता था ग्रौर कभी-कभी दो गुरुकुलो के छात्रो में भी परस्पर शास्त्रार्थ हुग्रा करता था। प्रत्येक विद्वान को सदैव शास्त्रार्थ के लिये प्रस्तुत रहना पड़ता था। उसे कोई भी शास्त्रार्थ के लिये ग्राह्वान कर सकता था ग्रौर उसे एकत्रित विद्या का परिचय देना पड़ता था। इस प्रकार उसके ज्ञान की परीक्षा होती थी। प्रत्येक विद्वान की विद्या उसकी भिक्षा पर ग्राधार करती थी।

(६) गुरु शिष्य सम्बन्ध—पिता ग्रौर पुत्र के गम्भीर ग्रौर सुदृढ़ सम्बन्ध से भी गम्भीरतर सम्बन्ध गुरु शिष्य का माना जाता था। पिता पुत्र का जनक कहलाता था, ग्रौर गुरु शिष्य को पुनर्जन्म देता था। माता के समान गुरु शिष्य को ज्ञान गर्भ में धारण कर 'द्विज' ... था ग्रतः जनक की ग्रपेक्षा गुरु का स्थान ऊँचा माना जाता था। वैदिक साहित्य में पुत्र को ... की ग्रात्मा रूप तथा शिष्य को ग्राचार्य का उत्तर रूप माना है। जिस प्रकार पुत्र ग्रपने ... से सम्पूर्ण शारीरिक, मानसिक एवं भौतिक विशेषताग्रों को पैतृक सम्पत्ति से ग्रहण करता ... ग्राचार्य भी ग्रपना सम्पूर्ण ज्ञान एवं तप शिष्य के सम्मुख प्रस्तुत करता था। जिस ... पिता ग्रपने पुत्र के विषय में यही ग्राकांक्षा करता है कि वह उनसे ग्रधिक गुणी ग्रौर ... ग्रशस्वी हों। उसी प्रकार गुरु भी ... सम्पूर्ण विश्व को ग्रपनी विद्या ग्रौर तप में ... था इस समय वह भी ग्राकांक्षा करता था कि उसका शिष्य उसे पराजित करे ग्रौर भावी ... प्रत्येक दृष्टि से ग्रधिक समुन्नत हो।

शिष्य भी गुरु को पिता और माता से बढ़कर मानता था। वह यह अच्छी तरह समझता था कि पिता ने तो उसे शरीर देकर मनुष्य ही बनाया है किन्तु गुरु उसे मनुष्यत्व से ऊपर उठाकर देवत्व की ओर ले जा रहा है। वह गुरु के प्रति वास्तविक श्रद्धा और प्रेम करता था। वह अपना सर्वस्व गुरु की सेवा में अर्पित करने के लिए तैयार रहता था। अति विनम्र भाव से वह हाथ में ईंधन लिए गुरु के समीप दीक्षार्थ पहुँचता और प्रतिज्ञा करता था कि वह गुरु की यज्ञशाला की अग्नि को सदा प्रज्वलित रखेगा और गुरु इस प्रतिज्ञा पर, उसकी सेवा भावना पर प्रसन्न होकर उसे अपने सरक्षण मे अपना लेता और अपने परिवार के सदस्य के रूप मे अंगीकार कर लेता था।

गुरुकुल मे प्रवेश करने के बाद गुरु शिष्य के प्रत्येक व्यवहार के लिए उत्तरदायी हो जाता था। उसके मानसिक, नैतिक और शारीरिक विकास के लिए वह पूरा ध्यान रखता था। उसके भोजन, वस्त्र और निवास औषधि, सेवा-सुश्रूषा, मनोरजन आदि की व्यवस्था ठीक उसी प्रकार करता जिस प्रकार माता-पिता अपने पुत्र के लिये करते हैं। शिष्य गुरु परिवार मे आकर वस्तुत. उसके पुत्र के समान ही हो जाता था। इस प्रकार प्राचीन गुरुकुल परिवार और समाज के मध्यवर्ती सगठन थे। उनमे बालको को परिवार का प्यार तथा समाज का सघर्ष दोनो मिल जाते थे।

गुरु का कर्त्तव्य केवल पढाना ही न था उसका धर्म था कि वह प्रत्येक छात्र को सदाचारी बनावे, उनके आचरण की रक्षा करे, उसका चरित्र गठन करे। श्रोत्रिय तथा ब्रह्मज्ञानी ऋषि को चाहिए कि वह अपनी शरण मे आय हुए शिष्य को जिसने अपने मन को शुद्ध तथा इन्द्रियो को सयमित कर लिया है, तत्वज्ञान तथा सत्यदर्शन की शिक्षा दे ताकि वह शिष्य उस पर ब्रह्म, सदाशिव, परमसत्य, अविनाशी के दर्शन प्राप्त कर सके।

शिष्य के भी निश्चित कर्त्तव्य होते थे। जिनका पालन करना उसका धर्म होता था। ये कर्त्तव्य दो प्रकार के थे—बाह्य व्यावहारिक तथा आन्तरिक आध्यात्मिक। बाह्य व्यावहारिक कर्त्तव्य चार प्रकार के थे। भिक्षाटन, अग्निरक्षण, गोपालन और स्वाध्याय। आन्तरिक आध्यात्मिक कर्त्तव्यो में उच्चतम ज्ञान को जीवन का लक्ष्य बनाने और उसकी प्राप्ति के लिए सदा प्रयत्न, गुरुसेवा, योग, उपासना सम्मिलित किये जाते थे। इस प्रकार शिष्य अपने कर्त्तव्यो का पालन करता हुआ गुरुगृह में निवास करता था। यही नहीं समावर्तन सस्कार के बाद भी वह अपने गुरु के प्रति कृतज्ञता अनुभव करते हुए उसकी विद्या-परम्परा को जीवित रखने का प्रयत्न करता रहता था।

इस प्रकार शिक्षा सावास प्रणाली के अनुसार दी जाती थी। इस गुरु परिवार मे गरीब और अमीर साथ-साथ रहते और विद्याध्ययन करते थे। वहाँ ऊँच नीच का कोई भेदभाव न था। इस प्रकार गुरुकुलो का सामाजिक जीवन भ्रातृभाव से परिपूर्ण था। सुदामा और कृष्ण का भ्रातृ प्रेम इसका साक्षी है।

(७) शिक्षा सस्थायें—ऋग्वेद काल मे गुरुकुल ही शिक्षण सस्था थी किन्तु उत्तर वैदिक काल मे अनेक विद्याओ के विकास और वृद्धि के साथ शिक्षण सस्थाओ के भिन्न रूप हो गये—शाखा, चरण, परिषद, कुल या गोत्र। इन सस्थाओ के अतिरिक्त तीन प्रकार की शालायें भी उत्तर वैदिक काल में थी जिनमे विद्वान पण्डित और ऋषिमुनि पढ़ाते, तर्क करते और वेदो के गूढार्थों का विश्लेषण करते थे। ये थी गुरुगृह पाठशाला के रूप मे, शास्त्रार्थ केन्द्र, और महासभायें।

गुरुकुलों के पोषण के लिये अनेक नृपति उनसे गाँव के गाँव लगा देते थे। इसके बदले गुरुकुल को न तो कुछ अर्थ ही और न कर ही भुगतान करना पडता। ऐसी बस्ती को ब्रह्मपुरी कहते थे। गुरुकुलो के अतिरिक्त अनेक तीर्थ स्थानो और शहरो मे अनेक प्रतिष्ठित विद्वानो ने अपने गृहो में ही विद्या केन्द्र खोल रखे थे। इन नगरो मे काशी, काची, तक्षशिला तजौर, पाटलिपुत्र, नासिक, और मिथिला प्राचीन विद्या क्षेत्र थे। वैदिक युग मे विद्या की सबसे महत्वपूर्ण सस्था परिषद् थी। सामाजिक, धार्मिक, तथा राजनीतिक विषयो पर विचार करने को परिषद् की बैठकें समय-समय पर होती थीं। राजा और प्रजा दोनो को इन परिषदो का निर्णय मानना पडता था। [illegible] 'स्थ तथा वानप्रस्थ तीनों धर्मों के [illegible] मुद मुकर्जी के मतानुमार इन परि-

संक्षेप में वैदिक कालीन शिक्षा की विशेषतायें निम्नलिखित थीं :—

(१) शिक्षा नगर के कोलाहल तथा अशान्तिपूर्ण वातावरण से दूर गुरुकुलों में जो विलासिता से कोसों दूर रहते थे, दी जाती थी।

(२) बालक गुरु के परिवार का अंग बनकर रहता था अतः उसकी सुरक्षा की आवश्यकता सदैव सन्तुष्ट रहती थी।

(३) शिक्षा से व्यक्ति का सर्वांगीण विकास सम्भव था क्योंकि बालकों को बचपन से ही गुरुकुलों में पहुँचकर अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए पर्याप्त समय मिल जाता था। ब्रह्मचर्य और तप की सहायता से उनके शरीर, मन एवं आत्मा इन तीनों का प्रशिक्षण एवं विकास चलता रहता था। गुरु शिष्य सम्पर्क के गहरे होने से गुरु के व्यक्तित्व की छाप बालक पर निरंतर पड़ती रहती थी।

(४) शिक्षा बालक की रुचि, क्षमता और समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर दी जाती थी अतः वह उसे इस लोक के लिए पूरी तरह तैयार करती थी।

(५) कक्षायें छोटी होती थीं अतः गुरु की पर्याप्त देख रेख बालकों को मिल जाया करती थी।

(६) प्रकृति की गोद में शिक्षा मिलती थी अतः बालक में आध्यात्मिकता, सरलता एवं उदात्तता स्वतः उत्पन्न हो जाया करती थी।

(७) ऊँची से ऊँची शिक्षा के लिये किसी प्रकार का शुल्क नहीं देना पड़ता था।

(८) शिक्षा जीवन भर चलती रहती थी। चरक और परिव्राजक इस प्रकार की शिक्षा में विशेष सहायक सिद्ध हुए।

(९) कुपात्र को विद्यादान न देने के कारण शिक्षा में दुरुपयोग, अस्थिरता आदि की समस्यायें ही उपस्थित न थीं।

अध्याय २

बौद्धकालीन एवं मध्यकालीन शिक्षा का स्वरूप

Q. 1. Discuss the aims of education during the Vedic, Budhist and Muslim period. How do these differ from aims in modern period?

(*L. T. 1954*)

What changes were brought about by the moghuls in the prevailing system of Education?

(*B. T. 1950*)

Ans. भूमिका.—किसी काल की शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण या तो समाज की आवश्यकताओं पर निर्भर रहता है अथवा शिक्षा संचालकों की जरूरतों पर। अतः किसी भी काल की शिक्षा के उद्देश्यों को समझने के लिये उसकी सामाजिक आवश्यकताओं का अध्ययन करना होता है। वैदिक काल की शिक्षा के उद्देश्य क्या थे और वे किस प्रकार उस काल की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे इस तथ्य की विवेचना पहले अनुच्छेद में की जा चुकी है।

बौद्धकालीन शिक्षा के उद्देश्य तथा शिक्षा-व्यवस्था

बौद्धकालीन शिक्षा का सम्बन्ध उस समय की सामाजिक एवं धार्मिक दशा के साथ था। उस समय वैदिकधर्म ब्राह्मणधर्म में बदल चुका था। चारों ओर यज्ञों की धूम थी। हिंसा, यज्ञों का अनुष्ठान और दम्भ चारों ओर फैले हुए थे। सामाजिक क्षेत्र में ब्राह्मणों की प्रधानता थी। स्त्रियों और शूद्रों के साथ दुर्व्यवहार प्रारम्भ हो गया था। इस सामाजिक एवं धार्मिक दशा की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप जैन और बौद्ध धर्मों का आविर्भाव हुआ। धर्म में भोग पूर्ण स्वर्ग की जगह पर मोक्ष एवं निर्वाण को प्रमुख स्थान दिया गया। इसके लिये अहिंसा, तपस्या और सदाचार को महत्त्व दिया जाने लगा। वैदिक धर्म के विकारों से उदासीन जनता तथा भारतवर्ष ने वैदिक धर्म के विरोधी धर्मों को अपनाना प्रारम्भ कर दिया। इन धर्मों में बौद्ध धर्म बड़ी तीव्रता से फला-फूला। राज्याश्रय पाकर इसका प्रचार कार्य तेजी से चलने लगा।

बौद्धधर्म के प्रचार धर्म होने के कारण प्रचारकों के प्रशिक्षण एवं उनके पालन पोषण की आवश्यकता समाज एवं राष्ट्र को होने लगी। इसलिए ऐसी शिक्षा प्रणाली का उदय हुआ जो इस आवश्यकता की पूर्ति कर सकती थी, यह शिक्षाप्रणाली अथवा शिक्षाव्यवस्था प्रचार कार्य के लिये हो जाती थी। घर घर मठों, संघों एवं सुसंगठित शिक्षा संस्थाओं में दी जाने लगी, गुरुकुलों और गुरुगृहों अथवा आश्रमों में यह काम नहीं हो सकता था। प्रचार कार्य में वही शिक्षा प्रणाली सफल हो सकती है जिसमें जनतान्त्रिकता का पुट हो। वैदिक शिक्षा विशुद्ध व्यक्तिवादी थी किन्तु बौद्धकालीन शिक्षा जनतान्त्रिक हो गई क्योंकि उसमें श्रमण को बीस वर्ष की आयु के बाद अपने उपाध्याय को चुनने तथा उपसम्पदा के उपरान्त उपाध्याय के विरुद्ध मत को प्रकट करने का अधिकार मिल चुका था। वैदिक शिक्षा जीवन को पूर्ण बनाने के लिये थी किन्तु बौद्धकालीन शिक्षा जीवन पर इतना महत्त्व नहीं देती थी जितना कि धर्म प्रचार पर।

इस प्रकार जाति पाँति का भेद-भाव मिटाकर अपने धर्म का प्रचार जनसाधारण के हृदय देकर सभी अवस्था, वर्ग, जाति तथा स्त्री-पुरुषों को शिक्षित करने का उद्देश्य लेकर बौद्ध शिक्षा

का सूत्रपात हुआ। उसने जीवन का लक्ष्य ठहराया निर्वाण और मोक्ष। इसकी प्रगति का एक मात्र साधन निश्चित किया गया—अहिंसा तथा पवित्र जीवन। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये जिस शिक्षा व्यवस्था या शिक्षा प्रणाली का अनुगमन किया गया वह लगभग वैदिक कालीन शिक्षा के समान ही थी। वैदिक युग की शिक्षा की भाँति बौद्ध युग में भी शिक्षा का आरम्भ संस्कारों से ही होता था। ये संस्कार थे पवज्जा और उपसम्पदा। उपनयन संस्कार की तरह आठ वर्ष की आयु में बालक को मठ या संघ में प्रवेश मिलता था। सिर मुड़ा कर पीले वस्त्र पहने हुए वह विद्यार्थी बुद्ध, धर्म और संघ की शरण आने की घोषणा करता और उपाध्याय से प्रार्थना करता कि वे उसको अपना शिष्य स्वीकार करें। वैदिक काल के ब्रह्मचारी की तरह यह श्रमण अपना जीवन व्यतीत करता हुआ संघ में शिक्षा ग्रहण करता था। इस संस्कार के १२ वर्ष बाद उसका उपसम्पदा संस्कार होता। इस संस्कार के बाद वह पूर्ण भिक्षु बन जाता था। उसे अपने उपाध्याय चुनने की इस समय स्वतन्त्रता मिल जाती थी। उसे अब वृक्ष के नीचे रहने, भिक्षा-पात्र में एकत्रित किये गये भोजन को प्राप्त करने, माँगे हुए वस्त्रों से शरीर ढँकने तथा औषधि रूप में गो मूत्र सेवन करने का व्रत लेना पड़ता था। उपाध्याय के साथ रहता हुआ अब विद्याध्ययन करता था। बौद्ध शिक्षा व्यवस्था में गुरु शिष्य सम्बन्ध लगभग वही रहा जो वैदिक काल में था; उपाध्याय की सर्व प्रकार से सेवा करना, उसके साथ भिक्षा माँगने जाना, उसकी सेवा सुश्रूषा करना शिष्य के कर्त्तव्य थे। इस प्रकार उपाध्याय भी उसे अपने पुत्र की तरह सुरक्षा प्रदान कर उसे आध्यात्मिक और मानसिक शिक्षा देता था। वह उच्च नैतिक जीवन का आदर्श प्रस्तुत कर उसके जीवन को उच्चतर बनाने का प्रयत्न करता था।

वैदिक कालीन शिक्षा की तरह बौद्ध कालीन शिक्षा में धार्मिक तथा लौकिक विषयों का समावेश किया गया था धार्मिक विषयों को पढाने का उद्देश्य भिक्षुओं को निर्वाण प्राप्त करने की योग्यता प्रदान करना था। यह पाठ्यक्रम भिक्षु और भिक्षुणियों के लिये था। उन्हें बौद्ध धार्मिक साहित्य—त्रिपिटक आदि—का अध्ययन, मठों और विहारों के निर्माण का व्यावहारिक ज्ञान, विहारों को दिये गये दान का लेखा-जोखा रखना सिखाया जाता था। लौकिक पाठ्यक्रम का उद्देश्य सामान्य स्त्री-पुरुषों को उचित नागरिक बनाना तथा उन्हें अपने भावी जीवन के लिये तैयार करना था। अतएव इस पाठ्यक्रम में विविध प्रकार के कला-कौशल, शास्त्रार्थ, सारथी विद्या, धनुर्विद्या, मंत्रविद्या, चित्रकारी, मशीन और चिकित्सा शास्त्र मुख्य थे। इस प्रकार शिक्षा सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दोनों प्रकार की थी।

वैदिक काल में जिन अध्यापन विधियों का प्रयोग किया जाता था लगभग वे ही विधियाँ अब भी जारी रहीं। शिक्षा का स्वरूप मौखिक था। वह प्राय: प्रवचन या व्याख्यानों द्वारा दी जाती थी। प्रवचन प्रणाली के अतिरिक्त बौद्ध शिक्षा क्रम में व्याख्या प्रणाली, प्रश्नोत्तरविधि, और वाद-विवाद की रीति को प्रमुख स्थान दिया गया। कहीं कहीं पुस्तकाधारित अध्ययन विधि भी चालू थी। इसके अतिरिक्त भिक्षुगण देशाटन, प्रकृतिनिरीक्षण, ज्ञान विनिमय, पाठचर्चा द्वारा अपने ज्ञान की वृद्धि करते थे। अध्ययन का माध्यम संस्कृत और जनभाषा दोनों रहे। बौद्ध साहित्य तथा लौकिक विषयों का अध्ययन जनभाषा के माध्यम से तथा वैदिक साहित्य, शास्त्र एवं विषयों का अध्ययन संस्कृत से चलता रहा।

इस काल की शिक्षा व्यवस्था जातीय धार्मिक एवं लौकिक पक्षपात से ऊपर उठी हुई थी। उसने शिक्षा के क्षेत्र में अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क को प्रधानता दी। लोक भाषा को प्रोत्साहन देकर अध्यापन कार्य को बढ़ावा दिया। साथ ही संगठित शिक्षण स्थानों को जन्म दिया जो यूरोप की मठीय शिक्षा, मुस्लिम काल की मकतब प्रणाली एवं हिन्दुओं की मन्दिरीय शिक्षा को प्रेरणा देते रहे।

[illegible] शिक्षा के उद्देश्य तथा शिक्षा व्यवस्था

भारत में मुस्लिम शासन की नींव १२ वीं शताब्दी के अन्त में पड़ चुकी थी। उस समय दो शिक्षा प्रणालियाँ प्रचलित थीं—वैदिक और बौद्ध। मुस्लिम शासकों की आवश्यकताओं की पूर्ति ये प्रणालियाँ नहीं कर सकती थी अतः उन्होंने न केवल नवीन शिक्षा प्रणाली को दिया वरन् पुरानी शिक्षा प्रणालियों की जड़ को भी खोखला कर दिया। जिस प्रकार वर्तमान शिक्षा का जन्म बौद्ध प्रचार की भी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के लिये हुआ था उसी

प्रकार मुसलिम शिक्षा प्रणाली का जन्म मुस्लिम शासकों की सामान्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये हुआ।

उनकी आवश्यकतायें थी —

(१) अपने सैनिक साथियों के लिये सम्मान पूर्ण जीविका की व्यवस्था।
(२) उनको इस बात का आश्वासन कि वैसी ही सम्मान पूर्ण जीविका उनकी आगे आने वाली सन्तति के लिये भी मिलेगी।
(३) भावी सन्तति के निर्माण के लिये इस्लाम धर्म के अनुकूल जीवन बिताने की व्यवस्था।

राज्य स्थापन तथा धर्म प्रचार के इच्छुक इन शासकों के लिये अपने सैनिक साथियों को सन्तुष्ट रखने और उनकी संख्या को निरन्तर बढ़ाने के लिये यही जरूरी था कि उनकी शिक्षा व्यवस्था इस प्रकार करें कि उपरिलिखित आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। वे चाहते थे कि उनकी भावी सन्तति में राज्य की रक्षा एवं संचालन की योग्यता उत्पन्न हो जाय। वे यह भी चाहते थे कि उनके साथी उनसे सदैव प्रसन्न रहे। यह तभी हो सकता था जब वे उनके संवेगों की अपील करते रहते। उनके साथियों में वही शासक योग्य माना जाता था जो मकतब बनवाकर उनके ऊपर विद्यालय स्थापित मृत आत्मा को विद्यार्थियों एवं अध्यापकों के चरणों के स्पर्श से पवित्र करने में विश्वास रखें और इस प्रकार हजरतअली तथा मुहम्मद आदि के कथनानुसार धार्मिक कर्त्तव्यों को पूरा करता रहे।

अपनी दूसरी आवश्यकता—साथियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि के लिये यह जरूरी था कि शासन अपने ही देश के मुस्लिम निवासियों पर विश्वास रखे और जो मुस्लिम न हो उनके धर्म को परिवर्तन कर मुस्लिम शासक मुसलमान बनाना चाहते थे और इस प्रकार अपने सहयोगियों की वृद्धि करना चाहते थे। इन दो प्रमुख आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये इन शासकों ने शिक्षा के जिन उद्देश्यों को निश्चित किया उनकी रूपरेखा निम्न प्रकार की थी—

१—राज्य की सेवा, सुरक्षा एवं स्थायित्व के लिये योग्य कर्मचारियों का शिक्षण एवं प्रशिक्षण।
२—मुस्लिम तथा अ-मुस्लिम जनता में इस्लाम धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार एवं प्रसार।
३—इस्लाम धर्म पर आधारित नागरिकता का विकास।

इन उद्देश्यों की प्राप्ति यहाँ की वैदिक अथवा बौद्ध *शिक्षा प्रणाली से नहीं हो सकती* थी उसके लिये तो एक नयी शिक्षा व्यवस्था की जरूरत थी। वैदिक और बौद्ध युग में शिक्षा व्यवस्था का राज्य से कोई सम्बन्ध न था किन्तु मुस्लिम शिक्षा को पूरी तरह शासकों से ही प्रेरणा मिली। वह पूर्णतया राज्याश्रित थी या यों कहिये कि वह शासकाश्रित थी। शासक की रुचि के अनुसार शिक्षा में प्रसार हुआ अन्यथा उसका विनाश हो गया। स्थान-स्थान पर अनेक मकतब मदरसे और पुस्तकालयों का आरम्भ शासकों की ओर से ही हुआ। उल्मा और मौलवियों का संरक्षण तथा पालन-पोषण भी सरकारी खजानों ने ही किया। इस प्रकार मुस्लिमकालीन शिक्षा शासकाश्रित रही।

मुस्लिम शिक्षा व्यवस्था का स्वरूप

भारतीय मुस्लिम शिक्षा व्यवस्था का रूप वही रहा जो उस समय अन्य मुस्लिम देशों में प्रचलित था। प्राथमिक शिक्षा मकतबों में दी जाती थी और उच्च शिक्षा मदरसों में। मकतब या तो किसी मस्जिद से जुड़े रहते थे। अथवा मौलवियों के घरों या अन्य स्थानों में लगते थे; मदरसों का प्रबन्ध या तो राज्य की ओर से होता था अथवा उनका प्रबन्ध प्रतिष्ठित नागरिकों और समितियों के हाथ में रहता था।

पाठ्यक्रम—प्राथमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में कुरान की आयतों और प्रार्थनाओं को याद कराना, साधारण गणित और पढ़ने-लिखने का ज्ञान देना और कहीं-कहीं हदीस, कविता और नीति शास्त्र की शिक्षा देना सम्मिलित था। और, उच्च शिक्षा का पाठ्यक्रम दो प्रकार का था—धार्मिक और सामाजिक। धार्मिक पाठ्यक्रम के अन्तर्गत कुरान शरीफ और उसका आलोचनात्मक अध्ययन, इस्लामी इतिहास और कानून पर बल दिया जाता था। सामाजिक पाठ्यक्रम में अरबी,

फिरोज तुगलक ने कई मदरसे और मकतबों की स्थापना की। जौनपुर तथा दक्षिण के बहमनी राज्य तथा अन्य प्रान्तीय राज्यो ने भी शिक्षा को प्रचारित एवं विकसित किया। सैयद तथा लोदी वंशों के राज्यो मे स्थिरता न होने के कारण शिक्षा की दशा पुनः बिगड़ने लगी।

मुगल वंश के सभी बादशाह शिक्षा प्रेमी थे। अकबर को तो शिक्षा से विशेष प्रेम था। उसने पाठ्यक्रम मे अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन एव सुधार किये। हिन्दू और मुसलमानों को साथ-साथ शिक्षा देने के लिए मदरसे और मकतब खोले गये। उसने शिक्षा के लिये पाँच मुख्य बातो पर ध्यान देने का आदेश दिया। अक्षर-ज्ञान, शब्दार्थ, काफिया पूर्ति, छन्द और पूर्णपाठ।

अबुलफजल ने जो अकबर का प्रधान मन्त्री था, आइने अकबरी मे लिखा है—

हर एक देश मे विशेष तौर पर हिन्दुस्तानी मे बच्चे को कई वर्ष तक स्कूल में केवल अक्षर ज्ञान ही कराते हैं। लडको के जीवन के कई साल पुस्तको के पढ़ाने मे ही खर्च हो जाते हैं। सम्राट की आज्ञा है कि पहले लडको को अक्षर तथा अनेक रूपो का ज्ञान कराया जाय। फिर उन्हें संयुक्ताक्षरो का ज्ञान कराना चाहिये। यह क्रम एक सप्ताह तक चलाया जा सकता है। इसके पश्चात् लड़के को कविता का ज्ञान कराना चाहिये ताकि वह ईश्वर की कुछ प्रार्थना याद करले। इस बात का विशेष ध्यान देना चाहिये कि लड़का हर एक चीज समझ लेता है। शिक्षक विद्यार्थी को थोड़ी बहुत सहायता दे सकता है। हर रोज विद्यार्थी को सुधार के लिये कुछ न कुछ लिखते रहना चाहिये। शिक्षक को पाँच चीजों का ख्याल रखना चाहिये। वे हैं—अक्षर ज्ञान, शब्दो का अर्थ, सुलेख, कविता तथा पूर्ण पाठ। अगर यह पद्धति प्रयोग मे लाई जाय तो लड़का एक महीने मे ही इतना पढ जाय जो दूसरों को पढने मे सालो लगें। हर एक विद्यार्थी को नैतिक ज्ञान, हिसाब, कृषि, खेती की नाप, भूमिति, सरकार के कानून, वैद्यक, इतिहास आदि की पुस्तकें पढ़ाई जायें। संस्कृत पढने वालो को न्याय, वेदान्त और पातञ्जलि भाष्य पढ़ाया जाय। आजकल जिन विषयो की आवश्यकता है उनका ज्ञान होना प्रत्येक विद्यार्थी के लिये आवश्यक है। इस विषय मे कोई ढिलाई नही की जा सकती। इन कानूनो से स्कूलो मे नया प्रकाश आयेगा और मदरसो मे नई ज्योति चमक उठेगी।

अकबर के उपरोक्त कानून मे नवीन शिक्षा पद्धति के आधारभूत नियम स्पष्ट झलकते हैं उसने शिक्षक के स्थान को गौण समझा तथा शिक्षा मे व्यावहारिकता लाने के लिये ही उसने कानून बनाया था कि विद्यार्थी को वही सिखाया जाय जिसकी उसको आवश्यकता है। इस प्रकार अकबर ने शिक्षा प्रणाली, पाठ्यक्रम और शिक्षा व्यवस्था में काफी परिवर्तन उपस्थित किये।

जहाँगीर ने भी शिक्षा के प्रसार में राज्य से आर्थिक सहायता देकर काफी प्रोत्साहन दिया। शाहजहाँ ने भी इस दिशा मे विशेष रुचि का प्रदर्शन किया। उसका पुत्र दारा शिकोह तो उच्चकोटि का विद्वान तथा विद्या प्रेमी था। दारा ने संस्कृत ग्रन्थो का फारसी में अनुवाद कराना आरम्भ कर दिया था। भाई औरंगजेब धार्मिक कट्टरता के कारण हिन्दुओं की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान न दे सका किन्तु मुसलमानो की शिक्षा के लिये उसने कई महत्वपूर्ण कार्य किये। अनेक मकतब और मदरसो की स्थापना कर उन्हे आर्थिक सहायता दी। शिक्षा को अधिक सरल, व्यावहारिक और लोकोपयोगी बनाने पर जोर दिया। इतना होने पर भी मुस्लिम काल मे भारतीय एव मुस्लिम प्रणालियो मे समन्वय स्थापित हो गया। पाठ्यक्रम मे बहुत से भारतीय विषय सम्मिलित हो गये। व्यावसायिक शिक्षा मे भारतीय व्यवसायो को ही प्रधानता मिली। ग्रामीण पाठशालाओं को एक नवीन परम्परा को जन्म मिला। इस सब का कारण यह था कि मुसलिम काल मे दोनो शिक्षा प्रणालियाँ साथ-साथ चलती रहीं। कुछ मुस्लिम शासको ने भारतीय शिक्षा का दमन करने का प्रयत्न किया किन्तु वह ज्यो की त्यों अबाध गति से चलती रही। गुरुगृहों मे संस्कृत भाषा तथा साहित्यिक विद्वान छात्रों को पढाते रहे। संस्कृत विद्यालयो (टोलो) अथवा मंदिरो मे जिनका संचालन धनीमानी व्यक्तियों द्वारा होता था भारतीय प्रणाली से शिक्षा दी जाती रही है।

अध्याय ३

आधुनिक कालीन शिक्षा का स्वरूप

Q. 1 Trace the development of the educational activities of Christian missionaries in India. Examine their contribution to Indian education. *(Agra B. T. 1958)*

Ans. भारतवर्ष में पश्चिमी देशों के लोगों ने पन्द्रहवीं शताब्दी से ही आना आरम्भ कर दिया था। सर्व प्रथम सन् १४६८ में प्रथम पुर्तगाली वास्कोडिगामा भारत आया। पुर्तगालियों के पश्चात् डच, फ्रांसीसी, स्पेनिश और अँग्रेज आये। इन योरपीय व्यापारियों के भारत में बस जाने का उद्देश्य न केवल व्यापारिक विकास ही था वरन् वे अपने-अपने धर्म का प्रचार भी करना चाहते थे। वे भारत में ईसाइयों और मसालों की खोज में आये थे। ईसाइयों की खोज का एक मात्र साधन था प्राथमिक शिक्षा का विकास। अत उन्होंने आते ही अपने स्कूल स्थापित कर दिये। इन स्कूलों का काम था अधगोरे ईसाई कर्मचारियों के बालकों को शिक्षा देना तथा ईसाई धर्म का इस देश में प्रचार करना। नीचे भिन्न-भिन्न देशों की मिशनरियों के शिक्षा सम्बन्धी प्रारम्भिक प्रयास का उल्लेख किया जाता है।

पुर्तगाल—पुर्तगालियों में सन्त जावियर तथा राबर्ट डी० नोवोली का नाम विशेष उल्लेखनीय है। वास्तव में पुर्तगालियों को भारत में आधुनिक शिक्षा पद्धति की नींव डालने वाला कहा जा सकता है। शिक्षा को ही धर्म प्रचार का उत्तम साधन मानने वाले इन पुर्तगालियों ने गोआ, डामन, ड्यू, लंका, हुगली, चिरगाँव आदि स्थानों पर शिक्षा संस्थायें खोली और एक नवीन शिक्षा प्रणाली को जन्म दिया। इनमे पुर्तगाली धर्म, स्थानीय भाषा, गणित, कुछ कारीगरी और पुर्तगाली [illegible]
दायक और महत्वपूर्ण थे [illegible]
लैटिन, धर्म, तर्कशास्त्र [illegible]
सोलहवीं शताब्दी के मध्यभाग में इन पुर्तगाली पादरियों ने भारत में आधुनिक शिक्षा प्रणाली का शिलान्यास कर दिया। किन्तु सत्रहवीं शताब्दी में पुर्तगालियों के पतन के साथ ही उनके शिक्षा सम्बन्धी प्रयत्नों का भी अन्त हो गया। उनके पतन के कारणों में से एक मुख्य कारण था भारतीयों का तीव्र विरोध, परिणामस्वरूप इनकी शिक्षा पनप न सकी और पुर्तगालियों के पतन के साथ साथ उनकी शिक्षा भी चली गई।

डच—इन लोगों ने [illegible] था। अन वे [illegible] व्यापार बढ़ाने के [illegible] कार्य धर्म प्रचार [illegible] मुख्य उद्देश्य [illegible]
शिक्षा देना न था अपितु [illegible] भारत में अधिक
दिनों तक न [illegible]

फ्रांसीसी—पुर्तगालियों की भाँति फ्रांसीसियों ने भी अपने उपनिवेशों में विद्यालय खोले। परन्तु इनमें स्थानीय भाषा को ही शिक्षा का माध्यम रखा और अध्यापन कार्य के स्थानीय अध्यापकों की नियुक्ति की गई। अध्यापकों के लिये ईसाई होना आवश्यक न था और न ईसाई धर्म को प्रधानता ही दी जाती थी। उच्चशिक्षा के विद्यालयों में अन्य विषयों के साथ फ्रेंच भाषा का भी अध्ययन कराया जाता था। फ्रांसीसियों के पतन के बाद इनकी बस्तियाँ अंग्रेजों के अधिकार में आ गई और वहाँ शिक्षा व्यवस्था बदल गई। परिणाम कुछ भी रहा हो, परन्तु इतना तो निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि जिन विद्यालयों में धर्म की शिक्षा दी जाती थी उनका कार्य सराहनीय रहा।

डेन—यद्यपि राजनैतिक दृष्टिकोण से इस जाति का भारत में कोई महत्व न बढ़ सका किन्तु इनके शिक्षा प्रचार के कार्य इतने महत्वपूर्ण हैं कि कुछ विद्वानों के अनुसार आधुनिक शिक्षा का मार्ग प्रदर्शन करने का श्रेय डेन लोगों को ही जाता है।

उन्होंने शिक्षा का माध्यम स्थानीय भाषाओं को ही बनाए रखा तथा जन सहयोग पाने के लिये मुसलमानों को प्राथमिकता दी। मुसलमानों के प्रारम्भिक विद्यालयों का निर्माण कराया और उनको बड़ा प्रोत्साहन दिया। धर्म प्रचार के लिये धार्मिक पुस्तकों का प्रान्तीय भाषाओं में होना आवश्यक है यह सोचकर उन्होंने बाइबिल का अनुवाद तेलगु तामिल में कराया। तामिल लिपि का एक प्रेस भी खोला गया।

अध्यापकों के प्रशिक्षण की ओर ध्यान देने वाले सबसे पहले व्यक्ति डेन ही थे। डेनों ने अध्यापकों की दीक्षा के लिये प्रशिक्षण महाविद्यालय खोले और वहाँ अध्यापकों को प्रशिक्षित किया। छोटे बच्चों को पढ़ाने-लिखाने के लिये साधारणतः इन्हीं प्रशिक्षित अध्यापकों की नियुक्ति की जाती थी।

किन्तु इनके समय में अध्यापकों की दशा अच्छी न थी। पाठ्य विषयों में धर्म का विशेष स्थान था और व्याकरण की ओर भी अधिक ध्यान दिया जाता था।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी—ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भी अन्य देशों के धर्म प्रचारकों की भाँति शिक्षा क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया। सन् १६१४ में उनने कुछ भारतवासियों को धन इत्यादि देकर धर्म की शिक्षा देने का कार्य सौंपा। कम्पनी के धर्म प्रचारक ईसाई बच्चों की शिक्षा का प्रयत्न करने लगे। इन बच्चों की शिक्षा-दीक्षा के लिये पादरियों ने दातव्य विद्यालय खोले जिनमें भारत के गरीब बच्चों को भी शिक्षा दी जाने लगी और आगे चलकर यही विद्यालय कम्पनी की शिक्षा के आधार स्तम्भ बने। ऐसे धर्म प्रचारक भी तैयार करने थे जो भारतीय जनता में से ही हों। इन सब उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उन्हें शिक्षा सम्बन्धी कार्यों को अपनाना पड़ा। उनके इस प्रयत्न के फलस्वरूप देश में शिक्षा की अटूट उन्नति हुई। उनकी प्रारम्भिक नीति देशी भाषाओं में शिक्षा देने की थी। देशी भाषाओं में उन्होंने पाठ्य पुस्तकें, शब्द-कोष और व्याकरणों की रचना की। इस प्रशंसनीय कार्य के लिये भारत उनका चिरऋणी रहेगा। जिस जोश के साथ धर्म का प्रचार वे कर रहे थे उसी जोश के साथ उन्होंने शिक्षा में उन्नति प्रारम्भ कर दी। इन मिशनरियों में जनरल बैप्टिस्ट मिशन सोसाइटी, लन्दन मिशनरी सोसाइटी, चर्च मिशनरी सोसाइटी, वैस्लियन मिशन और स्कॉच मिशनरी सोसाइटी, प्रमुख हैं। इस प्रकार धर्म प्रचार के लिये इन्होंने पाठ्य पुस्तकें छापीं, स्कूलों में घण्टे नियत किये, देशी शिक्षा पद्धति के अनुसार सम्पूर्ण विषयों और कक्षाओं के लिये एक ही शिक्षक न रखकर इन्होंने आधुनिक ढंग पर एक से अधिक शिक्षकों के रखने की व्यवस्था की इस प्रकार इस काल में एक नये शिक्षा सगठन को जन्म मिला जिसका श्रेय अधिकांश मिशनरियों को ही जाता है।

१८३५ के बाद जिस समय स्थायी रूप से भारत में शिक्षा नीति निर्धारित हो गयी और अंग्रेजी को माध्यम बना दिया गया तब इन मिशनरियों को उच्च शिक्षा देने में और भी सुगमता मिली। इन्होंने और भी अधिक अपने स्कूल खोले क्योंकि शिक्षा की मांग बढ़ रही थी और सरकारी अंग्रेजी स्कूल उनके लिये पर्याप्त न थे। यद्यपि मिशनरियों को कोई विशेष महत्त्व [illegible] काम सन् १८५४ तक [illegible] से चलाते रहे। व्यक्तिगत रूप से शिक्षा क्षेत्र [illegible] कार्य करने वाले मिशन थे। १८५३ में जब कम्पनी का चार्टर पुनः बदला गया [illegible] शिक्षालयों को शिक्षा अनुदान का प्रस्ताव रखा गया। भारतीय जनता की

शिक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये सरकारी प्रयासों के साथ साथ शिक्षित और धनी वर्गों के प्रयासों को मिला देने के लिए सहायता अनुदान प्रथा अपनाने का निश्चय किया गया। और यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि उन व्यक्तिगत स्कूलों में विशेष धर्म का पढाया जाना आवाछनीय है जिनको सरकार ग्रान्ट इन एड (Grant in aid) देना चाहती है, तब भी इस आज्ञा पत्र से मिशन स्कूलों को सहायता मिलती रही। १८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम के बाद ब्रिटिश पार्लियामेंट भारतीय मिशनरियों को शका की दृष्टि से देखने लगी अत: विक्टोरिया ने १८५८ मे भारतीय तटस्थता नीति को स्पष्ट शब्दों मे दुहरा दिया और अगले २५ वर्षों मे देश मे राजकीय विद्यालयों की बाढ़ सी आ गयी। राजकीय विद्यालयो का मिशनरी स्कूलों के साथ संघर्ष आरम्भ हो गया। परिणाम यह हुआ कि मिशनरियों ने इङ्गलैण्ड और भारत में आन्दोलन चलाना प्रारम्भ कर दिया कि भारत में शिक्षा संचालन १८५४ के घोषणा पत्र के द्वारा नहीं हो रहा है। इसलिये १८८२ मे भारतीय शिक्षा आयोग की नियुक्ति हुई। इस आयोग ने मिशनरी शिक्षालयों का भारतीय शिक्षा मे स्थान देखने के लिए खोज बीन की और ऐसी सिफारिशें पेश कीं जिनसे पादरियो की आशाओं पर तुषारापात हो गया क्योंकि उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि कुछ समय बाद कम्पनी को यह अनुभव होने लगा था कि कम्पनी की धर्म प्रचार नीति उसके राजनैतिक हितो के विरुद्ध है। इसलिये उसने पादरियो के शिक्षा प्रयत्नों की ओर उदासीनता प्रकट की और शिक्षा का कोई प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व अपने ऊपर नहीं लिया क्योंकि उसे डर था कि पादरियो के शिक्षानीति रखने से हिन्दू और मुसलमान दोनों नाराज हो सकते हैं। कम्पनी की नीति से अनुत्साहित न होकर पादरियो ने अपनी शिक्षा का प्रयत्न निरन्तर चालू रक्खा। कम्पनी भी कहने भर के लिए पादरियो को थोड़ी बहुत सहायता देती रही और कम्पनी के बहुत से कर्मचारी जो पादरियो के कार्यों से सहानुभूति रखते थे पादरियों को आर्थिक सहायता प्रदान करते रहे। परन्तु शीघ्र ही कम्पनी की धार्मिक तटस्थता की नीति के कारण कम्पनी के कर्मचारियो और पादरियो के बीच शिक्षा के प्रश्न पर लड़ाई चलने लगी। कुछ पादरियों ने अपने छापेखाने में ऐसी पुस्तकें प्रकाशित की जो हिन्दू और मुसलमान धर्म पर आक्षेप करती थीं उन्होंने अपने ढंग को शिक्षा का प्रसार करने के लिये सैकड़ों प्रारम्भिक विद्यालय भी बगाल मे खोल डाले किन्तु चूँकि उनकी नीति कम्पनी की नीति से भिन्न थी इसलिए उन्हें कम्पनी ने किसी प्रकार की सहायता न दी। कम्पनी की इस नीति से असन्तुष्ट होकर पादरियों ने उसके विरुद्ध भारत और इगलैण्ड में आन्दोलन खड़ा कर दिया। पादरियो और उनके मित्रों के आन्दोलन का परिणाम यह निकला कि सन् १८१३ के नवीन आज्ञा पत्र में पॉलियामेंट ने कम्पनी को निम्नलिखित आदेश दिया।

'यह गवर्नर जनरल के लिये न्याय संगत होगा कि बची हुई रकम में से कम से कम एक लाख रुपया अलग करा दे और उसे साहित्य के पुनरोद्धार तथा सुधार और भारतीय विद्वानो के प्रोत्साहन मे तथा भारतीय ब्रिटिश क्षेत्रों मे विज्ञानों के ज्ञान के लिए प्रारम्भ और उन्नति मे लगायें।"

ब्रिटिश भारतीय निवासियों के हितो और सुख की उन्नति इस देश का कर्त्तव्य है और इसमे उपयोगी ज्ञान तथा नैतिक सुधार के साधनों का उपयोग होना चाहिये। उपयुक्त उद्देश्यों और इन सौजन्य पूर्ण कार्यों को पूरा करने के लिए भारत आने और रहने के इच्छुक व्यक्तियों को कानून द्वारा यथेष्ट सुविधायें मिलेंगी।"

इन दोनों आदेशों का परिणाम यह हुआ कि शिक्षा प्रसार में कम्पनी का उत्तरदायित्व बढ़ गया और पादरियों को भी इस देश में कार्य करने की स्वाधीनता मिल गयी।

सन् १८१३ से १८३३ तक कई धर्म प्रचारक मण्डलियाँ भारत में आयीं। इन धर्म प्रचारकों ने अपने धार्मिक उद्देश्यों से भारत मे शिक्षा का कार्य अपने हाथ में लिया जिससे जनता की माँग भी पूरी हुई और ईसाई धर्म का प्रचार भी बढ़ा। इनका प्रत्यक्ष उद्देश्य शिक्षा प्रचार नहीं था वे तो धर्म परिवर्तन करना चाहते थे। धर्म परिवर्तित लोगों के साथ अपना सम्बन्ध बनाये रखने के लिये उनकी शिक्षा का प्रबन्ध करते था। साथ ही उन्हें शिक्षा विभाग के प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व का शिक्षा क्षेत्र मे हट जाने का भय था नहीं है कि हम इसे मिशनरियों के हाथ सौंप दें। उन्होंने यह भी कहा कि भारत जैसे देश मे जिसमें शिक्षा की आवश्यकतायें अलग-अलग हैं, सम्पूर्ण उच्च शिक्षा को एक विशेष दल के हाथ मे नहीं सौंपना चाहते जो विभिन्न भारतीय भावनाओं के साथ कोई सहानुभूति नहीं रखता। इस प्रकार पादरियों की स्थिति जनता द्वारा संचालित विद्यालयों की तुलना में बहुत गिरा दी गयी। इस प्रकार माध्यमिक और कालिजीय शिक्षा क्षेत्र से भी पादरियों को हटाने का प्रयत्न किया गया।

पाश्चात्य शिक्षावादी नीति—इस नीति के पक्षपाती अंग्रेजी के माध्यम से यूरोपीय ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा व्यवस्था करना चाहते थे। इस दल मे ग्रान्ट के अनुयायी, कम्पनी के नवयुवक अधिकारी, ईसाई पादरी तथा राममोहनराय जैसे प्रभावशाली भारतीय सम्मिलित थे। इन लोगों की राय में प्राच्यशिक्षा पद्धति ढीली और हानिप्रद है। भारत के पुराने ठूँठ पर यूरोप की नई कोपलों की कलम नहीं लगाई जा सकती। इसलिये अंग्रेजी भाषा के माध्यम द्वारा ही पाश्चात्य विज्ञानो और साहित्य का भारत वासियो मे प्रसार किया जा सकता था। इन पाश्चात्य शिक्षा वादियो का विश्वास था कि भारतीय यूरोपीय ज्ञान को सम्पादित करना चाहते हैं इसलिये अंग्रेजी के लिये ही उसकी बडी माँग है। राजा राममोहन राय जैसे विद्वान भारतीय समझते थे कि अंग्रेजी पढ़कर तथा पाश्चात्य विचारो का ज्ञान प्राप्त कर लेने से भारत का पुनरुद्धार हो सकता है। अतः वे पाश्चात्य शिक्षा एवं विचारो के प्रति जिज्ञासु थे। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी से अधिक आर्थिक लाभ भी दिखाई पड़ता था। इसलिये राजा राममोहन राय ने रसायन शास्त्र, विज्ञान, गणित, दर्शन, ज्योतिष, और शरीर विज्ञान आदि से परिपूर्ण उदार शिक्षा देने की माँग की। उन्होने यह भी कहा कि कम्पनी सरकार भारतीयो को प्राच्यज्ञान की शिक्षा देकर कूपमंडूक बनाये रखना चाहती है।

लोकभाषा वादी—इस दल के लोग देश मे पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान का प्रसार अवश्य चाहते थे परन्तु वे माध्यम के रूप मे प्रान्तीय भाषाओ का प्रयोग ही ठीक समझते थे। इस दल मे बम्बई के गवर्नर एलफिंस्टन और मद्रास के गवर्नर मुनरो थे। किन्तु यह दल अधिक प्रभावशाली न था।

सन् १८१३ में जब १ लाख रुपये के व्यय का प्रश्न उठा। तो प्राच्य शिक्षावादी व्यक्तियों ने प्राच्यशिक्षा प्रचार पर ही उसे व्यय करने का आग्रह किया। किन्तु पाश्चात्य-शिक्षावादी लोगो की राय मे प्राच्यशिक्षा मे रुपया बर्बाद करना था। कम्पनी के प्राचीन अधिकारी तो प्राच्यशिक्षा पर ही जोर दे रहे थे। इसलिये १ लाख रुपया साहित्य के पुनरुत्थान और समोन्नति के लिये व्यय करने की स्वीकृति उन्हें मिल गई। इस स्वीकृति का फल यह हुआ कि कई प्रश्नों पर संघर्ष आरम्भ हो गया। जिससे अगले २० वर्षों तक शिक्षा की नौका डगमगाती रही और वह अपना पद निर्दिष्ट न कर सकी। सन् १८२३ में शिक्षा सम्बन्धी योजनाओं के बनाने, उन्हें चालू करने और १ लाख रुपये के अनुदान का समुचित रूप से उपयोग करने के लिये लोक शिक्षा समिति की स्थापना हुई। उस समिति मे प्राच्य शिक्षावादियों का बहुमत था। फलतः संस्कृत, अरबी, और फारसी की शिक्षा के लिये छात्र वृत्तियाँ दी जाने लगीं। इन भाषाओं की पुस्तकों के लिये कलकत्ता शिक्षा प्रेस खोला गया और आगरा, कलकत्ता दिल्ली और मुर्शिदाबाद मे प्राच्य शिक्षा के लिये कालेजों की स्थापना की गई। पाश्चात्य पुस्तकों का संस्कृत, फारसी और अरबी मे अनुवाद कराया गया और अनुवादित ग्रन्थो को पाठ्यक्रम मे रखा गया। कलकत्ता मदर्सा और संस्कृत कालेज बनारस का पुनर्संगठन हुआ। इस प्रकार समिति की ये नीति पाश्चात्य शिक्षावादियो के लिये असंविधर सिद्ध हुई। वे अगले १६ वर्षों तक समिति की नीतियो और कार्यों का निरन्तर विरोध करते रहे सन् १८३३ तक प्राच्य-पाश्चात्य शिक्षा-विवाद ने उग्र रूप धारण कर लिया। समिति के सदस्यो में भी आपस मे गहरा मतभेद हो गया। अतः उन्होंने स्वयं गवर्नर जनरल से नीति निर्धारण के लिये प्रार्थना की। इस समय गवर्नर जनरल की कौंसिल मे कानून का सदस्य मैकोले (Lord [illegible] उसकी नियुक्ति [illegible] की भाषा और [illegible] विजय करना चाहता था। ऐसे बड़े विद्वान और सक्षम लेखक और धाराप्रवाहिक व्याख्यानदाता के सामने प्राच्य-वादी टिक न सके। उसने फरवरी सन् १८३५ को अपना विवरण पत्र गवर्नर जनरल की कौंसिल के समक्ष प्रस्तुत किया। इस प्रसिद्ध युग प्रवर्तक विवरण पत्र मे उसने अंग्रेजी माध्यम द्वारा पाश्चात्य साहित्य एवं विज्ञानों के शिक्षण का समर्थन और प्राच्य साहित्य के शिक्षण का खंडन किया। उसने घोषणा की कि एक अच्छे योरोपीय पुस्तकालय की एक अलमारी भारत तथा अरब के सम्पूर्ण साहित्य से कम महत्वपूर्ण नहीं है। उसके तर्कों का प्रमुख अंश नीचे दिया जाता है।

"लोक शिक्षा के, कुछ सदस्यों का मत है कि उनकी शिक्षा नीति अब तक १८१३ के आज्ञापत्र द्वारा निर्धारित हुई। मेरी राय मे कमेटी के कानून का अर्थ यह नहीं [illegible] जो कि लगाया गया है। उसमें विशेष भाषाओं तथा विज्ञानों के नाम नहीं हैं। शिक्षा अनुदान

ी साहित्य के पुनरुद्धार तथा उन्नति और भारतीय विज्ञानों के प्रोत्साहन तथा भारतीयो मे विज्ञानो का प्रचार व प्रसार" करने के लिये हैं। तर्क दिया जाता है कि 'साहित्य' से मसद का अभिप्राय संस्कृत तथा अरबी साहित्य' से ही हो सकता है तथा भारतीय विद्वान से उनका अभिप्रायः न्यूटन के भौतिक शास्त्र तथा मिल्टन के काव्य के ज्ञाताओं' से नही हो सकता ………।

इस प्रकार मैकोले ने साहित्य के पुनरुद्धार और भारतीय विद्वान शब्दों की जो व्याख्या की वह प्राच्य शिक्षा समर्थको से बिल्कुल भिन्न थी। वह संस्कृत, अरबी, और फारसी के विद्यालयों पर होने वाले व्यय को दुरुपयोग समझता था। जो शिक्षालयो को हानिप्रद, है 'उनको तोड़ देने मे वह कोई नुकसान नही समझता था। इसलिये उसने प्राच्य शिक्षालयो को बंद करने की राय प्रकट की। उसने कहा मेरे मत मे वाइसराय को, इस रुपये के अरबी और संस्कृत शिक्षा पर व्यय होने से रोकने का उतना ही अधिकार है जितना कि मैसूर मे चीते मारने वालो के पारितोषिक को कम करने का।

इसके बाद मैकोले शिक्षा के माध्यम का प्रश्न लेता है और अंग्रेजी को ही शिक्षा का माध्यम के लिये सबसे उपयुक्त भाषा घोषित करता है। देशी भाषाओं के विषय मे उसने कहा कि भारत के निवासियो मे प्रचलित भाषाओं मे एक तो साहित्यिक और वैज्ञानिक ज्ञानकोष का अभाव है। साथ ही वे इतनी अविकसित और गँवारू हैं कि जब तक उन्हे वहिर्भण्डार से सम्पन्न न किया जायगा। उनमे कोई महत्वपूर्ण ग्रन्थ अनुवादित नहीं हो सकता। अत. यह प्रतीत होता है कि उच्च स्तर की शिक्षा द्वारा उस वर्ग का बौद्धिक सुधार जिसके लिये जिनके पास इनके लिये साधन हैं किसी ऐसी भाषा मे ही सम्भव है जो उनके बोलचाल की भाषा नही है। समिति का एक भाग चाहता है भाषा अंग्रेजी हो और दूसरा संस्कृत और अरबी की वकालत करता है। मेरी समझ मे प्रश्न यह है कि कौन सी भाषा अधिक सीखने योग्य है।…… …

"भारत मे अंग्रेजी शासको की भाषा है, और राजधानियो मे उच्च वर्ग के भारतीय भी अंग्रेजी ही बोलते हैं। सम्भावना यह है कि पूर्वीय समुद्रो मे अंग्रेजी व्यापार की भाषा बन जाय। आस्ट्रेलिया और अफ्रीका मे उन्नतशील योरुपीय की भी भाषा यही है। इनका सम्बन्ध भारत से बढ़ता चला जा रहा है। अत चाहे हम भाषा के महत्व पर विचार करें अथवा देश की स्थिति पर अंग्रेजी ही भारतीयो के लिये सबसे अधिक हितकर होगी।"

उसने भारतीय विद्वानो तथा साहित्य का मजाक उड़ाते हुये कहा जब हम सच्चा इतिहास और दर्शन पढ़ा सकते हैं तो क्या सरकारी रुपये से ऐसे चिकित्सा सिद्धान्त पढायेंगे जिन पर अंग्रेजों के पशु-चिकित्सको को लजावें अथवा वह ज्योतिष पढ़ायेंगे जिस पर अंग्रेजी स्कूलो की बालिकायें हँस पड़ें। अथवा ऐसा इतिहास पढ़ायेंगे जिसमे ३० फीट लम्बे कद का वर्णन है जिनकी आयु ३० हजार वर्ष तक होती थी। अथवा ऐसा भूगोल पढायेंगे, जिसमे सीरे और मक्खन के समुद्रो का वर्णन है।

मैकोले संस्कृत और अरबी को कानून के लिये भी अध्ययन करने के पक्ष मे न था। उसने सुझाव रक्खा कि हिन्दू और मुसलमान दोनों के लिए कोर्ट बन जाय जिसमे उनके धार्मिक सिद्धान्त निहित हो। इस प्रकार मैकोले ने भारतीय शिक्षा के विषय मे अपने विचार प्रगट किए। [illegible] कर दी। वह

[illegible] ा बना रहेगा।

[illegible] पर खर्च किया

[illegible] का भारत मे

[illegible] इनमे पर्याप्त

धन व्यय किया जा चुका है। इस प्रकार जो धनराशि बचेगी वह अंग्रेजी माध्यम के द्वारा अंग्रेजी साहित्य और विज्ञान का भारतीयो मे प्रचार करने मे खर्च की जायेगी।

इस घोषणा के साथ कम्पनी की शिक्षा नीति निश्चित हो गई। इस घोषणा ने अंग्रेजी शिक्षा को स्थाई रूप दे दिया। यह पहली घोषणा थी जिसके अनुसार शिक्षा के उद्देश्य, साधन और माध्यम निश्चित किये गये थे। किन्तु इसमे यह न समझना चाहिए कि लार्ड मैकोले ने भारत मे अंग्रेजी शिक्षा को प्रारम्भ कराया। अंग्रेजी शिक्षा के अनुकूल वातावरण तो यहाँ पहले से ही बन चुका था। वास्तव मे विलियम बैंटिंग पहले से ही अंग्रेजी का पक्षपाती था। मैकोले के तर्कों से उसे अधिकृत रूप से शीघ्र निर्णय करने की प्रेरणा मिल गई। इसके अलावा शिक्षित भारतीय

भी अंग्रेजी शिक्षा प्रचार पर बल दे रहे थे। इन लोगों का विश्वास था कि अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार से देश में सामाजिक जागृति होगी, इस प्रकार बहुत सी सामाजिक कुरीतियों का अन्त हो जायेगा। मैकाले को इस बात का श्रेय प्राप्त है कि उसने कम्पनी की अस्थिर शिक्षा नीति में स्थिरता ला दी। यह दूसरी बात है कि उसकी नीति भारतीयों के हित में न होकर अंग्रेजी राज्य के हित में हुई। कम्पनी सरकार की शिक्षा नीति निश्चित हो जाने के बाद भारत में अंग्रेजी की शिक्षा की नींव जम गई। सन् १८३९ में प्राच्य वादियों ने फिर अपना सिर उठाया लेकिन उनको कोई सफलता न मिली। इस प्रकार भारतीय शिक्षा के इतिहास में प्राच्य एवं पाश्चात्य शिक्षा संघर्ष का अन्त हुआ।

इस बीच जब कि प्राच्य पाश्चात्य शिक्षा संघर्ष चल रहा था देश में लोक शिक्षा एवं उच्च शिक्षा का संघर्ष भी निरन्तर चलता रहा।

लोक शिक्षा-उच्च शिक्षा संघर्ष

लोक शिक्षा के पक्षपाती थे मुनरो, एलफिन्सटन और ऐडम जिन्हें थे उच्च शिक्षा के दुर्लभ विरोधी भी न थे। वे देशी शिक्षा के सुधार एवं प्रसार द्वारा लोक-शिक्षा का समर्थन कर रहे थे। वे शिक्षा में निस्यन्दन सिद्धान्त के समर्थकों के विरोधी भी न थे। इस सिद्धान्त को मानने वालों का कहना था कि शिक्षा समाज के उच्च वर्ग को दी जानी चाहिये क्योंकि उनसे छनकर उसका प्रभाव समाज के निम्न वर्ग तक आसानी से पहुँच सकता है। इस सिद्धान्त का समर्थन लार्ड मैकाले ने भी अपनी 'मिनट' में किया था क्योंकि उसने लिखा था कि यह उन्हीं लोगों का कार्य होगा कि वे प्रान्तीय भाषाओं को परिष्कृत एवं सम्पन्न करके उन्हें जनता तक ज्ञान पहुँचाने के योग्य बनायें। निस्यन्दन सिद्धान्त की आलोचना करते हुये ऐडम साहब ने जिनको विलियम बैंटिंग ने देशी शिक्षा व्यवस्था के अनुसन्धान की स्वीकृति दी थी कहा, "इस सिद्धान्त का सर्वप्रथम दोष यह है कि यह हिन्दुओं और मुसलमानों की शिक्षण संस्थाओं की अवहेलना करता है। ये संस्थायें अब भी हमारी शिक्षा व्यवस्था से पूर्ण स्वतन्त्र किसी न किसी प्रकार चल रही हैं और देशवासियों का चरित्र, अपने ढंग से ढाल रही हैं। इतना होने पर भी निस्यन्दन सिद्धान्त इस बात को मान्यता देता है कि यह विशाल देश अपने विद्यालयों, अध्यापकों और उन सब साधनों के लिये जो उसके निवासियों के नैतिक एवं बौद्धिक विकास के लिए आवश्यक हैं हमारे ही ऊपर आश्रित हैं किन्तु बात यह नहीं है। हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियाँ अपनी हीनावस्था में भी ऐसी शिक्षण संस्थाओं का संचालन कर रही हैं जो आदर्श मानी जा सकती हैं अतः उनकी उपेक्षा करना अपने में दूरदर्शिता का अभाव दिखलाना है। यदि यह सिद्धान्त भी मान लिया जाय कि ज्ञान उच्च-स्तर से निम्न स्तर को निस्यन्दित हुआ करता है इसलिये पहले जिला स्कूल, परगना स्कूल और फिर ग्राम-स्कूल को खोलना चाहिए तो यह तर्क इस विशाल देश के लिये असंगत प्रतीत होता है क्योंकि फिर तो हमें प्रान्तीय एवं राष्ट्रीय विद्यालय एवं अखिल विश्व के लिये सर्वाङ्गपूर्ण विश्वविद्यालय खोलना होगा। यदि यह भी मान लिया जाय कि ज्ञान का प्रसार उच्च स्तर के व्यक्ति ही करते हैं क्योंकि वे ही अपने उन्नत विचारों का प्रचार जन-समुदाय में कर सकते हैं तो भारत में उच्च स्तर के ऐसे कितने व्यक्ति हैं जो शिक्षा का प्रसार जन समुदाय में कर सकते हैं।

ऐडम महोदय ने इस प्रकार निस्यन्दन सिद्धान्त की कड़ी आलोचना करते हुये उच्च शिक्षा के विद्यालयों को सर्वप्रथम स्थान देना उपयुक्त न समझा।

[illegible]

शिक्षा का संदेश साधारण व्यक्तियों तक पहुंचाकर उन्हें भी अंग्रेजी राज्य का हितैषी बनाया जा सकता है अतः लार्ड आकलैण्ड ने शिक्षा में निस्यन्दन सिद्धान्त को सरकारी नीति [illegible]
यह निर्णय वस्तुतः उचित ही था क्योंकि अंग्रेजी राज्य अपनी जड़ें जमाने में
समय उसे ऐसे व्यक्तियों की आवश्यकता थी जो राज्य कर्मचारी

तक पहुँचा सकें। इस आवश्यकता की पूर्ति लोकशिक्षा द्वारा सम्भव न थी। सरकार के पास रुपया भी इतना न था कि वह जन शिक्षा के उत्तरदायित्व को सभाल सकती। कम्पनी शिक्षा के लिये जितना धन खर्च कर सकती थी वह उच्च वर्ग की शिक्षा के लिये भी काफी न था अतः लार्ड आकलैण्ड ने भी यह मान लिया कि धन की कमी के कारण सरकार को उच्च वर्ग को ही शिक्षित करना होगा।

लार्ड आकलैण्ड की आज्ञाओं का भारतीय शिक्षा की प्रगति पर सबसे महत्वपूर्ण प्रभाव यह पड़ा कि भारतीय शिक्षा की एक ओर अनिश्चितता दूर हो गई। सरकार का सक्रिय समर्थन पाकर उच्च शिक्षा तेजी से प्रगति पथ पर आरूढ हो गई।

लॉर्ड मैकॉले की भारतीय शिक्षा को देन

Q. 3. Trace the influence of Macaulays Minutes on the system of Indian education, *(Agra, B. T. 1956, 58)*

Give a critical appraisal of Lord Macaulay's contribution to Indian Education. Place yourself in his position and offer a defence of his policy. *(B. T. 1954)*

Ans. मैकोले के भारतीय शिक्षा के विषय मे उद्‌गारो का उल्लेख पूर्व पृष्ठो मे किया जा चुका है। भारत के शैक्षिक इतिहास मे उसके विवरण पत्र द्वारा जिस शिक्षा नीति का निर्माण हुआ वह नीति अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखती है। वास्तव मे मैकोले के विषय मे लोगो की भिन्न धारणा है। कुछ लोग उसे भारतीय शिक्षा का अग्रदूत और कुछ उसे भारत की गुलामी के लिये उत्तरदायी ठहराते हैं। दोनों मत पूर्णतया सत्य नही हैं। वह आधुनिक शिक्षा का अग्रदूत नही कहा जा सकता क्योंकि उसके भारत में आने से कई वर्ष पहले ही शिक्षा जगत मे पर्याप्त जागृति हो चुकी थी। इसाई धर्म प्रचारकों के कार्य से यहाँ की शिक्षा पाश्चात्य ढाँचो मे ढलना आरम्भ हो चुकी थी। उस समय तक देश में राजनैतिक चेतना का सचार हो चुका था और लोग अच्छी तरह समझ चुके थे कि अग्रेजी पढ़कर और पाश्चात्य विचारो का ज्ञान प्राप्त कर ही भारत का पुनरुद्धार हो सकता है। इसलिये अंग्रेजी शिक्षा की माँग पहले ही से थी। लोक शिक्षा समिति में भी अग्रेजी दल पहले से ही बुद्धिमान था। इन कारणो से मैकोले को अग्रेजी शिक्षा का अग्रदूत नही कह सकते।

कुछ लोग उसे देशी भाषाओ के साथ विश्वासघात करने का आरोप लगाते हैं। यह भी सत्य नही है। उसने देशी भाषाओं को अविकसित, अपर्याप्त और गवारू तो अवश्य बतलाया लेकिन उसके विकास मे रोड़े नहीं अटकाये। वह तो देशी भाषाओं के प्रोत्साहन और विकास मे अति रुचि रखता था। उसने लिखा था देशी भाषाओं के साहित्य का विकास हमारा अन्तिम उद्देश्य है जिसकी ओर हमारे सम्पूर्ण प्रयास जुट जाने चाहिये। इस प्रकार हम उसे देशी भाषाओ का विश्वासघाती नही कह सकते।

उसका सबसे बड़ा दोष प्राच्य सस्कृति और धर्मों का अपमान करना था। उसने भारतीय धर्म, ज्ञान, दर्शन और साहित्य का परिहास किया, यह उसकी गलती थी। वह भारतीय सभ्यता के विषय में अपने कुछ पूर्व निश्चित विचार लेकर आया था। अतः बिना अध्ययन के उसने भारतीय और अरबी साहित्य को यौरुप के पुस्तकालय की एक आलमारी के बराबर बता दिया। वह वेद, उपनिषद् और सस्कृत भाषा के अगाध साहित्य से पूर्ण अपरिचित था। भारतीय ज्योतिष और दर्शन और चिकित्सा-शास्त्र अपनी उच्चता के लिये आधे भू-मण्डल, मे विख्यात् थे। उनको वह परिहास की वस्तु समझता था। उसमे अहकार, दम्भ और अपनी सभ्यता के विषय में अधिक आशावादिता थी। वह ऐसी जाति पैदा करना चाहता था कि वह रंगरूप में तो भारतीय हो और वेशभूषा, बातचीत, चिन्तन और विचारों मे अंग्रेज हो। वह भारत पर बलात् पाश्चात्य शिक्षा को थोपना चाहता था। वह यह नही जानता था कि भारत की सस्कृति की जड़ें उखाड़कर फेंकना असम्भव है क्योंकि वे भारतीयो की आत्मा मे बहुत गहरी पहुँच चुकी हैं।

वह भारत की गुलामी के लिये उत्तरदायी है। उसकी शिक्षा नीति से एक ऐसा वर्ग उत्पन्न हो गया जो पाश्चात्य शिक्षा मे पलकर अपने देश की जनता से बिल्कुल अलग हो गया और

जिसने अंग्रेजो के साथ मिलकर भारत के साथ विश्वासघात किया। वह भारतीयो को अंग्रेज बनाना चाहता था और उसका यह स्वप्न अधूरा रह गया क्योकि वह यह नही जानता था कि भारत मे अनेक जातियाँ आयी और उसी मे विलीन हो गई। धार्मिक तटस्थता का घमण्ड करने वाला यह अंग्रेज अधिकारी अपने अतिरिक्त जीवन मे धर्म के विरुद्ध कलुषित और लज्जाजनक प्रचार कर रहा था। उसका दृढ विश्वास था कि यदि उसकी शिक्षा की यह नीति सफल हो गई, तो ३० वर्ष के भीतर बगाल के भले घरानो मे एक भी मूर्ति पूजक शेष न रह जायगा। उसने हिन्दुओ के प्रति बडी गलत धारणा बना ली थी। वह कहता था कि कोई भी हिन्दू ऐसा नही है जिसने अंग्रेजी पढकर धर्म से सच्चा लगाव रक्खा हो। इस प्रकार मैकॉले की विवरण पत्रिका का तत्कालीन शिक्षा पद्धति पर जो बुरा प्रभाव पडा। वह सक्षेप मे नीचे दिया जाता है।

(१) शिक्षा व्यवस्था भारतीयों के स्थान पर अंग्रेजी राज्य के दृष्टि को ध्यान में रख कर चलने लगी।

(२) शिक्षा पद्धति का उद्देश्य ऐसे भारतीयो को तैयार करना हो गया जो अंग्रेजी भाषा के माध्यम से पाश्चात्य साहित्य एव विज्ञानो का शिक्षण प्राप्त करके भारत मे क्रमश बढते हुए अंग्रेजी राज्य के प्रसार एव दृढीकरण मे सहायता कर सकें।

(३) शिक्षा साधारण जनता की वस्तु न होकर विशिष्ट वर्गों की सौभाग्य-वस्तु बन गई।

(४) शिक्षा पद्धति से भारतीयता, धार्मिकता, आध्यात्मिकता और भारतीय संस्कृति को पूरी तरह निकाल दिया गया।

इतना सब होते हुए भी मैकाले ने कुछ अशो मे भारत का ही हित किया। उसने भारत मे पाश्चात्य विचारों और विज्ञानो के फैलाने में सहायता की। जिन कारणो से भारत मे राजनैतिक जागृति, वैज्ञानिक चेतना और आर्थिक विचार धाराएँ फैली उनमें अंग्रेजी भाषाओं के प्रचार और मैकाले के कार्य को महत्वपूर्ण स्थान दिया जा सकता है। भारतवासियो ने अंग्रेजी पढी, उससे प्रेरणा ली, सघर्ष किया और लगभग १०० वर्ष बाद सफलता पाई। किन्तु सरकार ने भारतीय भाषाओ के विकास कार्य को सच्चे रूप से अपने हाथ मे नही लिया यदि लिया होता तो उनमे भी अच्छे साहित्य का सृजन हो सकता था। वास्तव मे उनके विकास का प्रश्न तो टाल ही दिया गया। लडाई थी केवल प्राच्य भाषाओ और अंग्रेजी भाषा के बीच। इसमे अंग्रेजी की विजय हुई। अत. लार्ड मैकॉले ने भारत को नये विचार और अंग्रेजी देकर अनजान मे भारत की भलाई भी की।

वुड का घोषणा पत्र

Q. 4. What were the main recommendations of the Education Despatch of 1854 ? Can the despatch be called an educational charter ?

(*Agra B. T. 1959, '61*)

Ans भूमिका—सन् १८५३ मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी को जो नया आज्ञापत्र मिला उसके अनुसार विधान और शासन मे महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। अब इस समय तक कम्पनी को यह अनुभव हो चुका था कि भारतीय शिक्षा की उपेक्षा नही की जा सकती। इसलिये उसने भारतीय शिक्षा की प्रगति की जाँच करने के लिये एक समिति नियुक्त की। इस समिति के आधारभूत सिद्धान्तो पर सन् १८५४ में कम्पनी के सचालको ने एक शिक्षा घोषणापत्र भेजा जो "Wood का घोषणापत्र" के नाम से प्रसिद्ध हुआ, क्योकि Charles Wood उस समिति का प्रधान था। इस घोषणापत्र मे भारतीय शिक्षा के इतिहास मे एक नया और महत्वपूर्ण अध्याय जुडा है, क्योकि घोषणापत्र ने कम्पनी का ध्यान शिक्षा सम्बन्धी महत्वपूर्ण कर्तव्य की ओर आकर्षित किया। इस घोषणापत्र ने अंग्रेजी को माध्यम बनाने के साथ ही भारतीय भाषाओ को माध्यम बनाने पर भी बल दिया। इस प्रकार यह आज्ञापत्र भारतीय शिक्षा मे विशेष स्थान ग्रहण करता है।

घोषणापत्र का महत्व एवं नीति—इस घोषणापत्र की आधारभूत शिक्षा नीति निम्नलिखित थी। १—शिक्षा द्वारा भारतीयो की बौद्धिक एव चारित्रिक उन्नति करना। २—भारतीयों को अपने देश को उन्नत एवं साधन सम्पन्न बनाने में सहायता करना ताकि अंग्रेजी कारखाने

(७) शिक्षा-अनुदान (Grant-in-Aid)—सार्वजनिक शिक्षा प्रसार की योजना को कार्यान्वित करने के लिये पर्याप्त धन की आवश्यकता थी। कम्पनी इतना धन व्यय करने के लिये तैयार नहीं थी। ऐसी अवस्था मे घोषणा पत्र ने आर्थिक अनुदान की नीति पर विशेष बल दिया। इससे व्यय भी कम होता था और वांछित उद्देश्य की पूर्ति भी हो सकती थी। सहायता अनुदान के लिये प्रान्तीय सरकारो को कुछ नियम बनाने थे और उन्हीं विद्यालयों को यह अनुदान दिया जा सकता था जो सरकार द्वारा निर्धारित नियमो का पालन करे और सरकार द्वारा नियुक्त निरीक्षकों से निरीक्षण करने के लिये तैयार थे और जिन विद्यालयों में स्थानीय व्यक्तियों द्वारा सुव्यवस्था एवं सुसचालन, असम्प्रदायिकता और विद्यार्थियों से कुछ न कुछ शुल्क लेने पर जोर दिया जाता था। सदेश पत्र के अनुसार शिक्षा अनुदान नियमावली का आदर्श इंगलैंड की शिक्षा अनुदान नियमावली थी। कालेज के अध्यापकों, छात्र वृत्तियो, विज्ञान, कला, पुस्तकालय, वाचनालय, प्रयोगशाला और भवन निर्माण आदि के लिये अलग-अलग अनुदान देने पर बल दिया गया। यह अनुदान प्रारम्भिक विद्यालयो से लेकर उच्च विद्यालयो तक सब को दिया जाने को था सहायता अनुदान प्रथा पर आज्ञा पत्र मे जो विशेष जोर दिया गया है उसका सभवत, अभिप्राय भारत में Missionary की सहायता करना था। क्योंकि उस समय भारतवर्ष मे व्यक्तिगत सस्थाओ के रूप मे अधिकांश विद्यालय धर्म प्रचारकों द्वारा ही स्थापित थे और शायद उन्हें प्रारम्भिक शिक्षा के लिए प्रोत्साहित करना यह सरकारी नीति थी।

(८) अध्यापकों के प्रशिक्षण का प्रबन्ध—इस घोषणा पत्र के द्वारा सचालकों ने यह इच्छा प्रकट की कि प्रत्येक Presidency मे शिक्षको के प्रशिक्षण के लिये स्कूल स्थापित कर दिये जायें क्योंकि यहाँ शिक्षण कार्य के लिये उचित प्रकार के प्रशिक्षित शिक्षक मिलना कठिन हो रहा था। सदेश पत्र के प्रशिक्षण कार्य मे छात्राध्यापक को छात्र वृत्तियाँ देने और अध्यापको का वेतन बढ़ाने के लिए शिफारिस की जिससे अन्य सरकारी नौकरियों की भाँति यह विभाग भी आकर्षक हो जाय। साथ ही कानून, चिकित्सा, इंजीनियरिंग का भी प्रबन्ध करने का प्रस्ताव रक्खा गया।

(९) स्त्री शिक्षा—सदेश पत्र में नारी शिक्षा पर भी बल दिया गया। स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिये सभी प्रकार के प्रयत्न करने और व्यक्तिगत सस्थाओ को जो नारी शिक्षा को प्रोत्साहन दें, सहायता देने की इच्छा प्रगट की गई।

(१०) सदेश-पत्र मे औद्योगिक शिक्षा (Vocational Education)—व्यवसाय के दृष्टिकोण से तथा भारतीयो को यह दिखाने के लिये कि अंग्रेजी सरकार सभी उनके ही हित के लिये करती है भारत मे औद्योगिक कालिजो और स्कूलो की स्थापना का सकेत किया गया जिनमें कारखाने के कार्य सिखाये जायें। इससे शिक्षित और प्रशिक्षित व्यक्तियो को नौकरी दिला कर उन्हें अधिक स्वामिभक्त बनाया जा सकता है।

(११) भारतीय भाषा में पुस्तकों का लेखन एवं प्रकाशन—उचित और उपयोगी पुस्तकें भारतीय भाषाओ मे लिखने व प्रकाशन के लिये कम्पनी के सचालको ने एलफिन्टन के सुझावो को स्वीकार कर लिया।

वुड (Wood) की घोषणा की समीक्षा

भारतीय शिक्षा के इतिहास मे वुड का घोषणा पत्र विशेष महत्व रखता है। क्योंकि अब तक बहुत दिनो से अनिश्चित मार्ग पर चलने वाली ये भारतीय शिक्षा निश्चित, सुगम, और सुव्यवस्थित, मार्ग पर चलने के लिये आरूढ़ हो गई। किन्तु कम्पनी के सचालक भारतीयो को कुछ सन्तोष देकर अपना उल्लू सीधा करना चाहते थे। इस प्रकार इस घोषणापत्र मे गुण भी थे और दोष भी।

गुण—

(१) वुड का घोषणा-पत्र भारत मे अंग्रेजी शिक्षा का Magna Charta है। क्योंकि इसने जनता को शिक्षित करने का उत्तरदायित्व सरकार पर सौंप दिया था। उसने कहा—
"Among many subjects of importance none can have as stronger a claim to our attention than that of education"

(२) भारतीय शिक्षा की नीति का निर्धारण कर उसे वैधानिक रूप देने का यही पहला प्रयत्न था। प्राच्य-पाश्चात्य शिक्षा तथा उच्च और लोक शिक्षा संघर्षों को खत्म कर इस घोषणा पत्र ने शिक्षा का विस्तृत दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।

(३) सरकार ने शिक्षा को शासन का एक महत्वपूर्ण अंग और कर्तव्य मान लिया। इस प्रकार शिक्षा को स्थायी सगठित और सुव्यवस्थित रूप मिला। शिक्षा की देख-रेख का भार निरीक्षकों की नियुक्ति द्वारा स्वीकार कर लिया गया।

(४) सदेश पत्र मे पहली बार शिक्षा के प्रत्येक पहलू पर ध्यान दिया। प्रारम्भिक पाठशाला से विश्वविद्यालय तक की शिक्षा की विवेचना की गई।

(५) शृंखलाबद्ध विद्यालयों की स्थापना करने का श्रेय इसी सदेश पत्र को है। प्रारम्भिक माध्यमिक उच्च शिक्षा को सुगठित योजना प्रस्तुत कर एवं स्त्री शिक्षा और औद्योगिक शिक्षा को प्रोत्साहन देकर घोषणा पत्र ने भारतीय शिक्षा को निश्चित मार्ग पर डाल दिया।

(६) प्रत्येक प्रान्त मे शिक्षा विभाग को स्थापित कर शिक्षा सचालक, निरीक्षकों की नियुक्ति, तथा अनेक मिडिल एवं हाईस्कूल खोलने का सुझाव देकर जन साधारण की शिक्षा की घोषणा की। निरीक्षक एवं उपनिरीक्षक बनाकर शिक्षा विभाग को सुव्यवस्थित एवं सुसंगठित कर दिया।

(७) छनने के सिद्धान्त की कड़ी आलोचना करके और सार्वजनिक शिक्षा को ग्रहण कर भारतीय जनता का बड़ा भारी कल्याण किया। देशी प्राथमिक पाठशाला को प्रोत्साहित कर उनका पुनरुत्थान कर दिया। प्रचलित भारतीय भाषाओं के प्रति सदेश पत्र ने प्रशसनीय उदारता बरती, छात्रवृत्तियों का प्रबन्ध करके निर्धन छात्रों के लिये विद्यार्जन का मार्ग खोल दिया। अध्यापकों का वेतन बढ़ाकर शिक्षा विभाग की ओर योग्य व्यक्तियों को आकर्षित करने का प्रयत्न किया। शिक्षा अनुदान की प्रथा चालू कर के अधिक से अधिक विद्यालयों को प्रोत्साहन दिया। इस प्रकार शिक्षा का विकास तीव्रगति से होने लगा। सरकारी नौकरियों में शिक्षित व्यक्तियों को वरीयता देकर शिक्षा की ओर जनसाधारण का ध्यान आकर्षित किया। अध्यापकों के प्रशिक्षण का प्रबन्ध करके योग्य और कुशल अध्यापकों को इस व्यवसाय में लाने का प्रयत्न किया। औद्योगिक शिक्षा का प्रबन्ध कर जनता को स्वावलम्बी बना कर बेकारी की समस्या को कम कर दिया। इनहीलों के कथनानुसार वुड (Wood) का घोषणा पत्र अत्यन्त विस्तृत तथा व्यापक था। James Adam के अनुसार वह भारतीय शिक्षा के इतिहास मे पूर्व और उत्तर काल को जोड़ने की कड़ी मानी जा सकती है क्योंकि भविष्य मे जितनी शिक्षा सम्बन्धी योजनायें बनी उनको यही आधार मिला है।

दोष—

(१) सदेश पत्र ने सरकारी नौकरियों में सुशिक्षित व्यक्तियों को वरीयता देकर शिक्षा के व्यापक उद्देश्य को नष्ट कर दिया और लोग केवल नौकरियों के उद्देश्य से शिक्षा प्राप्त करने लगे। (२) सरकारी नौकरियों में उन लोगों को प्राथमिकता दी जाती थी जो अंग्रेजी भली प्रकार जानते थे। इसीलिए लोगों का ध्यान अंग्रेजी की ओर बढ़ा। (३) शिक्षा विभाग के स्थापित हो जाने पर शिक्षा की प्रगति रुक गई क्योंकि अब विद्यालय का कार्य केवल शिक्षा अधिकारियों की आज्ञा पालन करना ही रह गया। इससे भारतीय शिक्षा का लचीलापन नष्ट हो गया। (४) भारतीय भाषाओं का स्थान अंग्रेजी ने ले लिया। (५) भारत की प्राचीन शिक्षा पद्धति पर उपेक्षापूर्ण दृष्टि डालकर भारतीय शिक्षा पद्धति की जड़ हिला दी। (६) औद्योगिक व्यवस्था का निर्माण भारतीयों को अधिक स्वामिभक्त बनाने के लिये ही किया गया। इससे और बड़ा स्वार्थ क्या हो सकता है क्योंकि ये संस्थाएँ भारतीयों के हित के लिये नहीं सोची गई थी। (७) विश्वविद्यालयों की रूप रेखा पाश्चात्य ढंग की होने के कारण भारत सरकार उन्हीं उपाधियों को [illegible] करती थी जो शिक्षा [illegible] नहीं होते थे। (८) अरबी, फारसी और संस्कृत की ओर उपेक्षापूर्ण व्यवहार करके और पाश्चात्य ज्ञान को ही भारतीय के लिये उचित बताकर भारतीय ज्ञान और संस्कृति की जड़ काट दी। (९) धर्म प्रचारकों के सिद्धान्तों के प्रति निरपेक्ष न रह कर वुड के घोषणा पत्र ने ईसाई धर्म को प्रोत्साहित किया। (१०) स्त्रियों इनके अधिकारों की बात तो बहुत की किन्तु कोई ऐसी व्यवस्था न की कि निर्धनता शिक्षा के मार्ग में बाधक न बने। (११) शिक्षा अनुदान प्राथमिक शिक्षा के प्रसार में निरर्थक सिद्ध

हुआ। इस प्रकार अतीत काल से निरन्तर चली आने वाली असन्तुलित शिक्षा अभी तक बनी रही। (१२) अंग्रेजी शिक्षा का माध्यम बन गई और बालकों को इतिहास, भूगोल आदि विषय अंग्रेजी में पढ़ने से कठिनाई पैदा होने लगी। (१३) अब परीक्षा का दृष्टिकोण भी बदल गया। अत रट कर परीक्षा पास होना छात्रों का मुख्य उद्देश्य बन गया।

हन्टर कमीशन

Q. 5. State and discuss the recommendation of Hunter Commission of 1882 regarding either secondary education or technical education.

(Agra B. T. 1956)

What were the main recommendation of the Hunter commission of 1882 and how did they influence education in India ? *(Agra B, T, 1954, 55, 60)*

Ans सन् १८५४ के आज्ञा पत्र के उपरान्त भारत मे ईसाई पादरियों को सहायता अनुदान प्रथा के कारण जो आशा बँधी थी वह पूरी न हो सकी। १८५४ से १८८२ तक सरकारी शिक्षा की नीति ऐसी रही, जिससे कालेज के उच्च शिक्षा और माध्यम के शिक्षा की अधिक उन्नति तथा प्राथमिक शिक्षा की अवहेलना की गई। पादरी भारत मे शिक्षा के द्वारा धार्मिक प्रचार करना चाहते थे इसलिए शिक्षा सस्थाओं पर वे पूरा अधिकार जमाना चाहते थे किन्तु सरकार तटस्थ थी। सरकार की तटस्थता की नीति उन्हें अरुचिकर प्रतीत होती थी। इसलिये उन्होंने यह आन्दोलन करना आरम्भ कर दिया था कि भारत मे शिक्षा नीति १८५४ के आज्ञापत्र के विरुद्ध जारी है जब (Lord Ripen) भारत के वाइसराय के पद पर नियुक्त हुए तो इन लोगों ने अपना एक शिष्ट मण्डल भारतीय शिक्षा की जाँच करने के लिये भेजा। ३ फरवरी १८८२ को (Lord Ripen) ने Willium Hunter की अधीनता में प्रथम भारतीय शिक्षा कमीशन की नियुक्ति की।

उद्देश्य—१८८० मे इगलैंड मे Elementary Education Act पास हो चुका था। भारत में भी इस समय प्राथमिक शिक्षा के विकास के लिये सरकार की तत्कालीन नीति कुछ असतोषजनक थी। अत. इस कमीशन ने प्राथमिक शिक्षा की जाँच को प्रधानता दी। विश्वविद्यालय शिक्षा औद्योगिक और योरुपीय शिक्षा इसकी जाँच के विषय नही थे। कमीशन की जाँच के विषय निम्नलिखित थे—

(१) प्राथमिक शिक्षा की अवस्था तथा उसके विकास के उपाय।
(२) सरकारी शिक्षालयो की अवस्था तथा आवश्यकता।
(३) मिशनरी शिक्षालयो का भारतीय शिक्षा मे स्थान।
(४) व्यक्तिगत प्रयास के प्रति सरकार की नीति।

इस भारतीय शिक्षा आयोग ने प्राथमिक शिक्षा पर ही विशेष बल दिया। क्योंकि उसकी जाँच का प्रमुख विषय यही था। उन्होंने निर्भीक होकर स्वीकार किया कि जबकि शिक्षा के प्रत्येक विभाग मे राजकीय सरक्षण का औचित्य स्वीकार किया जा सकता है तब जनसमूह की शिक्षा, उसका प्रसार और उन्नति के लिये सरकार को अधिक प्रयत्न द्वारा एक वृहत्तर पैमाने पर उन्नति करनी चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये आयोग ने प्राथमिक शिक्षा की नीति, सगठन, पाठ्यक्रम, शिक्षकों की प्रशिक्षण और आर्थिक व्यवस्था के विषय में अपनी सिफारशें प्रस्तुत की।

प्राथमिक शिक्षा की नीति—प्राथमिक शिक्षा की नीति के सम्बन्ध में कमीशन ने निम्नांकित बातें बताई :—

(१) प्रारम्भिक शिक्षा का उद्देश्य उच्च शिक्षा मे प्रवेश पाना, सदस्य तैयार करना न होकर सार्वजनिक जीवनोपयोगी होना चाहिए। उसकी शिक्षा का माध्यम प्रचलित मातृभाषायें, एवं ऐसे विषयों का समावेश होना चाहिए जो छात्रों को स्वावलम्बी बना सकें।

(२) प्रारम्भिक शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए छोटी-छोटी सरकारी नौकरियों में साधारण पढ़े लिखे व्यक्तियों को तरजीह दी जाये ।

(३) सरकार को भूतकाल की अपेक्षा प्राथमिक शिक्षा पर विशेष ध्यान, अधिक प्रोत्साहन देना चाहिए और इसके प्रसार और विकास के लिए भरसक प्रयत्न करना चाहिए ।

(४) जंगली क्षेत्रों में—आदिवासियों की शिक्षा की विशेष व्यवस्था की जाय ।

संगठन—शिक्षा आयोग ने प्राथमिक शिक्षा का भार उन स्थानीय संस्थाओं के हाथ में सौंप दिया जिनका निर्माण Lord Ripen ने इंगलैंड की Country Council के आधार पर कराया था । प्राथमिक शिक्षा का पूर्ण उत्तरदायित्व इन्हीं स्थानीय संस्थाओं को सौंपा गया । इस प्रकार सरकार को प्रारम्भिक शिक्षा के भार से छुटकारा मिल गया ।

पाठ्यक्रम—प्राथमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम के विषय में सभी बातों को प्रान्तों की इच्छा पर छोड़ दिया और जीवन के लाभदायक और व्यावहारिक ज्ञान के लिये कृषि, चिकित्सा, बही-खाता, ज्यामिति, और भौतिक ज्ञान आदि विषयों को प्राथमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर दिया ।

प्रशिक्षण विद्यालय की व्यवस्था—प्रारम्भिक पाठशालाओं के लिये दीक्षा पाये हुए अध्यापकों की आवश्यकता का अनुभव करने वाले इस आयोग ने प्रशिक्षण महाविद्यालयों की व्यवस्था के लिये अधोलिखित सुझाव दिये—

(१) दीक्षा विद्यालय ऐसे स्थानों पर स्थापित किये जायें जहां से वे स्थानीय प्रारम्भिक पाठशालाओं के लिए प्रशिक्षित अध्यापकों की मांग पूरी कर सकें । प्रान्तीय निरीक्षक के क्षेत्र में कम से कम एक नार्मल स्कूल की व्यवस्था की सिफारिश इस कमीशन ने की ।

(२) नार्मल स्कूलों को अधिक उन्नतिशील बनाने के लिए विद्यालय निरीक्षकों से रुचि लेने की प्रार्थना की जाय ।

(३) प्राथमिक विद्यालय के लिये निश्चित और स्वीकृति धन राशि पर प्रशिक्षित विद्यालयों का पूर्ण अधिकार हो ।

आर्थिक व्यवस्था—प्राथमिक शिक्षा के आय व्यय के सम्बन्ध में निम्नांकित सुझाव पेश किये गये :—

(१) स्थानीय संस्थाओं को प्राथमिक शिक्षा के लिये एक निश्चित धन राशि अलग रख देनी चाहिये । ग्रामीण और शहरी विद्यालयों के लिये अलग-अलग धनराशि हो क्योंकि ग्रामीण विद्यालयों को प्राय कम धन मिलता है ।

(२) इस शिक्षा के प्रोत्साहन के लिये प्रान्तीय सरकार भी सहायता दे । यह सहायता स्थानीय Fund की आधी अथवा एक तिहाई हो सकती है ।

(३) स्थानीय फन्ड (Fund) केवल प्राइमरी शिक्षा पर ही खर्च किया जाय ।

देशी विद्यालय

भारतीयों द्वारा भारतीय परम्परा पर सचालित विद्यालयों को आयोग ने देशी विद्यालय के नाम से पुकारा । इन विद्यालयों के विकास, सरक्षण और नये ढग से व्यवस्थित करने के लिये कमीशन ने सिफारिश की । कमीशन ने यह अनुभव किया कि अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए चले आने वाले ये देशी विद्यालय इस बात के प्रमाण हैं कि वे जनप्रिय और सजीव हैं । मद्रास और बगाल के उदाहरणों ने यह सिद्ध कर दिया था कि इन देशी विद्यालयों को इन आधुनिक आवश्यकताओं के अनुरूप ढालना सभव है । कमीशन ने कहा कि यदि सरकार इन विद्यालयों को सहायता दे तो अवश्य ही उनकी शिक्षण प्रणाली मे सुधार की आशा की जा सकती है । और वे सरकार द्वारा सचालित राष्ट्रीय शिक्षा मे एक महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण कर सकते हैं आयोग ने इन देशी विद्यालयों मे प्रवेश पाने के लिये किसी भी प्रकार का प्रतिबन्ध न रखने का सुझाव रक्खा । इनकी मान्यता, निरीक्षण और आर्थिक सहायता का उत्तरदायित्व नगरपालिका और जिला परिषदों पर हो, किन्तु उन्हे सहायता अथवा नियन्त्रण के लिये बाध्य न किया जाय । इन पाठशालाओं के पाठ्यक्रम, पाठ्य विधि और परीक्षा आदि के मापदण्ड के लिये इनको स्वतन्त्र रक्खा जाय । पाठ्यक्रम में कुछ उपयोगी विषय के सम्मिलित करने के लिये कुछ अधिक धन की आवश्यकता है अत. इस धन का प्रबन्ध किया जाय । प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों की भांति विद्यालयों के शिक्षकों को प्रशिक्षित करने की व्यवस्था की जाय ।

समीक्षा—इन सुझावो के अनुसार देशी विद्यालयो (Indiginous Education) मे पर्याप्त प्रगति हुई। यद्यपि सुझावो मे से बहुत कम सुझाव स्वीकृत हुये थे। इनकी आर्थिक सहायता उत्तीर्ण छात्रों की सख्या के अनुपात पर निश्चित की गयी। यह नीति इन विद्यालयो को नष्ट करने को काफी सहायक हुई।

माध्यमिक शिक्षा

माध्यमिक शिक्षा के विषय मे आयोग ने निम्नलिखित बातों के सम्बन्ध मे सिफारिशें पेश की।

(१) किन उपायों के द्वारा माध्यमिक शिक्षा का विस्तार किया जा सकता है।
(२) माध्यमिक शिक्षा मे आये हुए दोषो को कैसे दूर किया जा सकता है।

माध्यमिक शिक्षा के विस्तार के लिए कमीशन ने सरकार को माध्यमिक शिक्षा का भार योग्य और कुशल भारतीयों के हाथो मे सौंपने का सुझाव दिया। उनकी सहायता के लिये सहायता अनुदान पद्धति की उदारता का सुझाव दिया। आयोग ने अंग्रेजी की बढती हुई मांग को पूरा करने और शीघ्रातिशीघ्र माध्यमिक स्कूलो से प्रबन्ध हटाने के लिये सरकार को सुझाव दिया। उन्होंने सम्पूर्ण जिले की माध्यमिक शिक्षा को व्यक्तिगत सस्थाओ को सौंपने का सुझाव दिया। इन सस्थाओ को प्रोत्साहित करने के लिये प्रबन्धकों से कहा गया कि यदि वे चाहे तो बालको से कम शुल्क भी ले सकते हैं। माध्यमिक शिक्षा मे सुधार करने के लिये कमीशन ने हाईस्कूल शिक्षा को दो प्रकार के कोर्सों मे विभाजित करने की सिफारिश की। पहले प्रकार का कोर्स विश्वविद्यालयो में प्राप्त करने के लिये और दूसरे प्रकार का कोर्स व्यावसायिक, प्रायोगिक और जीवनपयोगी शिक्षा के लिये रक्खा गया। शिक्षा के माध्यम के विषय मे अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजी पर ही बल दिया। माध्यमिक विद्यालयों मे मातृभाषा के प्रयोग की उपेक्षा की गयी। मिडिल स्कूलो के माध्यम के सम्बन्ध मे निर्णय स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार उनके प्रबन्धकों पर छोड़ दिया गया।

समीक्षा—शिक्षा के माध्यम के विषय मे कमीशन की सिफारिशें असन्तोषजनक थी। माध्यमिक शिक्षा का भार व्यक्तिगत सस्थाओ पर छोड़ देने से उसकी प्रगति मे बाधा पड़ गयी क्योंकि बहुत से ऐसे स्थान थे जहाँ की जनता शिक्षा का भार अपने हाथों मे लेने के लिये असमर्थ थी।

उच्च शिक्षा

उच्च शिक्षा के सम्बन्ध मे Commission के विचार सीमित हैं। आयोग ने कहा कि कालेजों को सहायता देते समय कार्य की आवश्यकता, कार्य क्षमता, पूर्ण व्यय, स्वीकृति धनराशि, अध्यापकों की दशा और सख्या पर विशेष ध्यान देना चाहिये और समय-समय पर आवश्यकतानुसार भवन निर्माण, पुस्तकालय एव वाचनालय, विज्ञान के लिये प्रयोगशाला, पत्र और विद्यालय के लिये फर्नीचर आदि की सहायता दी जा सकती है। कालेजों मे विद्यार्थियो की रुचि के अनुसार विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रमो के समावेश करने से उनको जीवनोपार्जन में सहायता मिल सकती है। योग्य छात्रो को विदेश भेजकर उच्च शिक्षा दिलाने की सिफारिश भी इस कमीशन ने की। छात्रो के नैतिक और आध्यात्मिक स्तर को ऊँचा उठाने के लिये एक व्याख्यानमाला और एक ऐसी पाठ्यपुस्तक को पाठ्य विषयो मे रखने के लिए सिफारिश की जिसमे मानव धर्म के मूल सिद्धान्तो, प्रकृति धर्म पर विशेष बल दिया गया हो।

सरकारी विद्यालयों की अवस्था तथा आवश्यकता

इस कमीशन की नीति थी कि सरकार क्रमश इस शिक्षा के भार से मुक्त हो जाय और उसे स्वय भारतीय जनता के हाथो में सौंप दे। इस प्रकार के मत देने के निम्नाकित कारण थे।

(१) शिक्षा पर व्यय करने के लिये उसके पास धन का अभाव था और शिक्षा की मांग दिन पर दिन बढ़ती जा रही थी।

(२) राजकीय विद्यालयो के सचालन मे सरकार को अधिक धन व्यय करना पड़ता था। अगर इन विद्यालयो को वैयक्तिक सस्थाओ को दे दिया जाय तो इसमे बची हुई धन राशि

गैर सरकारी सस्थाओं के सचालन के लिये दी जा सकती है। इसलिये कमीशन ने दो सुझाव रक्खे—

(१) राजकीय विद्यालयों के विस्तार को शीघ्र रोकने का।

(२) गैर सरकारी सस्था का भार पहले अपने ऊपर लेकर बाद में सारे अधिकार उस सस्था को हस्तातरित करने का।

इन सुझावों से एक प्रश्न यह खडा हुआ कि इस प्रबन्ध को हटाने की रीति क्या हो और यह प्रबन्ध किस को दिया जाय। कमीशन धर्म प्रचारकों के विरोध में था। इसलिये उसमें प्राथमिक शिक्षा को स्थानीय परिषदों और नगरपालिकाओं के हाथ में, और उच्च माध्यमिक विद्यालयों को भारतीय गैर सरकारी सस्थाओं के हाथों में सौंप देने के लिये सुझाव रक्खा। आयोग के सुझावों के फलस्वरूप प्राथमिक शिक्षा तो स्थानीय सस्थाओं के हाथ में सौंप दी गई परन्तु उच्च और माध्यमिक शिक्षा के सम्बन्ध में सरकार स्वय रुचि लेती रही।

मिशनरी विद्यालयों का भारतीय शिक्षा में स्थान—कमीशन की सिफारिशो ने पादरियों की इस आशा पर पानी फेर दिया कि इस क्षेत्र में उन्हें एकाधिकार मिल जाय। प्राथमिक शिक्षा को स्थानीय बोर्डों के अन्तर्गत कर देने में पादरियों को अधिक आपत्ति नहीं हुई थी। किन्तु कमीशन की इस सिफारिश ने पादरियों के हृदयों में एक बुझती हुई आशा को पुन जगा दिया कि माध्यमिक और कालेजीय शिक्षा क्षेत्र से सरकार को वैयक्तिक प्रबन्धकों के हाथों में उसे सौंपकर शीघ्र हट जाना चाहिये। वैयक्तिक प्रयास से उनका अभिप्राय जनता के प्रयास से था। यदि शिक्षा की आवश्यकताओं की पूर्ति शिक्षा साधनों में करनी थी तो स्वय भारतवासी इसके सबसे महत्वपूर्ण साधन हो सकते हैं। इस मत ने उसकी आशाओं पर तुषारपात कर दिया। कमीशन ने यह स्पष्ट रूप से कहा कि शिक्षा विभाग के प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व का शिक्षा क्षेत्र में से हट जाने का अर्थ यह नहीं होता कि हम उसे मिशनरियों के हाथ में सौंप दें। शिक्षा विभाग द्वारा सचालित उच्च शिक्षालय कदापि पादरियों के प्रबन्ध में न जाने चाहिए।

भारतीय शिक्षा की उन्नति के लिए अनुदान प्रथा (Grant) के सुधार के विषय में कमीशन ने भिन्न-भिन्न प्रान्तों में चालू अनुदान प्रथा के नियमों का अध्ययन करके अनुदान नियम अधिक उदार कर दिये। उसने सरकारी और गैर सरकारी का भेद मिटा दिया। आन्तरिक प्रबन्ध में हस्तक्षेप रोककर प्रबन्धको की सहायता और पथ-प्रदर्शन के लिये शिक्षा अधिकारी नियुक्त कर दिये। स्त्री-शिक्षा, मुसलमानों की शिक्षा, राजकुमारों की शिक्षा, प्रौढ-शिक्षा तथा आदिवासियों की शिक्षा, धार्मिक शिक्षा पर भी अपने विचार प्रकट किये। लडकियों के स्कूलों को उदार सहायता, अध्यापिकाओं को वेतन अनुदान, उनके लिये नोर्मल स्कूल, निरीक्षणों के लिये निरीक्षिकाओं की नियुक्ति, लडकियों के लिये छात्रवृत्तियाँ और छात्रावास आदि विषयों पर सिफारिशें की गई। मुस्लिम शिक्षा के सम्बन्ध में मुसलमान को विशेष प्रोत्साहन, देशी मुस्लिम विद्यालयों के पाठ्यक्रमों में भौतिक विषयों का सुझाव, मुसलमानी व्यक्तियों के लिए अधिक छात्रवृत्तियाँ, मुस्लिम नोर्मल स्कूल, मुसलमान शिक्षा निरीक्षक और मुस्लिम माडल स्कूल और हाई स्कूल की स्थापना के लिये सिफारिशें की गई। धार्मिक शिक्षा के विषय में राजकीय विद्यालयों में धार्मिक तटस्थता, एव नैतिक शास्त्र पर एक पाठ्य पुस्तक रचने की सिफारिश की गई।

आलोचना—शिक्षा आयोग की सिफारिशों के अनुसार प्राथमिक शिक्षा को स्थानीय बोर्डों और नगर पालिकाओं के हाथ में दे दिया गया। माध्यमिक शिक्षा के लिये वैयक्तिक विद्यालयों को प्रोत्साहन दिया गया। सरकार ने अपनी शिक्षा संस्थाओं को खोलना बन्द कर दिया। धार्मिक विषयों के लिये की गई सिफारिशो के अलावा सभी सिफारिशें स्वीकार कर लीं। आयोग ने शिक्षा सम्बधी सभी प्रश्नों पर ध्यान दिया था और भारत की सम्पूर्ण जनता को ध्यान में रक्खा। औद्योगिक शिक्षा का सुझाव रख कर सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया कि भारतीय शिक्षा आवश्यकता से अधिक पुस्तकीय (लिपिक) होती जा रही है इसलिये उसे आर्थिक जीवनोपयोगी बनाना है। आयोग ने सरकार को शिक्षा विभाग से मुक्त और भारतीयों को प्रोत्साहित करके शिक्षा की गति में प्रगति लाने का प्रयत्न किया। माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में मातृभाषा की उपेक्षा और प्रशिक्षण विद्यालयों पर बहुत कम ध्यान देकर जनता के असन्तोष को बढा दिया। वैयक्तिक सस्थाओं को प्रोत्साहन देने के लिये गैर सरकारी सस्थाओं में शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों से कम फीस लेने की सिफारिशों का परिणाम यह हुआ कि शिक्षा का स्तर

स्वत. गिर गया, क्योकि अब निम्न कोटि की संस्थायें खुलने लगी। सरकार जब स्वयं शिक्षा के क्षेत्र से दूर हटने लगी और जनता पर शिक्षा का भार छोड दिया गया तब खर्च अधिक बढ़ जाने से शिक्षा की दशा पिछड़ती गई। शिक्षा-विभागो को निरीक्षण कार्य सौंपा गया। इससे विद्यालयो पर अनुचित प्रभाव पडा।

सैडलर कमीशन

Q. 6. **The Sadler Commission Report had far-reaching consequences upon the development of University education in India Discuss fully.**

(Agra B. T. 1960)

Ans सैडलर कमीशन ने विश्वविद्यालय की शिक्षा के विकास के लिये निम्नलिखित सुझाव दिये हैं—

(क) कलकत्ता विश्वविद्यालय सम्बन्धी सुझाव

कमीशन ने कलकत्ता विश्वविद्यालय मे पढने वाले विद्यार्थियो की सख्या को इतना अधिक पाया कि उसका विश्वास था कि विश्वविद्यालय इतने विद्यार्थियो का प्रवन्ध नही कर सकता है। अत सुझाव दिये कि—

(१) ढाका मे शीघ्र ही एक आवास-शिक्षण विश्वविद्यालय (Residential and Teaching University) की स्थापना की जाय।

(२) कलकत्ता नगर की शिक्षण सस्थाओ को इस प्रकार सगठित किया जाय कि एक शिक्षण विश्वविद्यालय का निर्माण हो सके।

(३) नगर के समीपवर्ती कालेजो का सगठन इस प्रकार किया जाय कि कुछ स्थानो पर नवीन विश्वविद्यालयों की स्थापना हो जाय।

(ख) विश्वविद्यालय के सम्बन्ध मे सामान्यसुझाव

(१) विश्वविद्यालयो को अधिक स्वतन्त्रता दी जाय।

(२) विश्वविद्यालयो के अध्यापको को अधिक अधिकार प्रदान किये जावें।

(३) 'पास कोर्स' (Pass Course) के अतिरिक्त आनर्स कोर्स (Honours Course) का भी प्रबन्ध किया जाय। बी० ए० का पाठ्यक्रम तीन वर्ष का कर दिया जाय।

(४) प्रोफेसरो और रीडरो की नियुक्ति एक समिति द्वारा की जाय उसमे शिक्षा-विशेषज्ञ भी सम्मिलित हो।

(५) विश्वविद्यालयो के आन्तरिक शासन के लिये 'सीनेट' के स्थान पर 'कोर्ट' और सिण्डीकेट के स्थान पर एक कार्यकारिणी समिति स्थापित की जाय।

(६) परीक्षा पाठ्यक्रम उपाधि वितरण और अनुसन्धान आदि शैक्षिक कार्यों को करने के लिये 'एकेडेमिक समिति' (Academic Council) की स्थापना की जाय।

(७) विश्वविद्यालयों मे विभिन्न विषयो की उच्च शिक्षा देने की व्यवस्था की जाय। विषय ये हो सकते—हैं व्यावसायिक शिक्षा, अध्यापन, इन्जीनियरिंग, डाक्टरी, कानून, कृषि आदि।

(८) विद्यार्थियों के स्वास्थ्य की देखभाल करने के लिये प्रत्येक विश्वविद्यालय में एक 'डायरेक्टर ऑफ फिजीकल ट्रेनिंग' नियुक्त किया जाय।

(९) मुस्लिम-शिक्षा की विशेष सुविधाएं देकर उच्च शिक्षा को प्रोत्साहित किया जाय।

कमीशन सिफारिशों के उपरान्त विश्वविद्यालय शिक्षा की प्रगति

(१) ढाका मे १९२१ मे आवास और शिक्षण विश्वविद्यालय की स्थापना हो गई।

(२) विश्वविद्यालयो की संख्या में वृद्धि हुई और अलीगढ़, लखनऊ आदि विश्वविद्यालय खुल गये।

(३) सभी विश्वविद्यालयो को सरकारी सहायता-अनुदान के रूप मे धन दिया जाने लगा। १९२१ ई० में यह व्यय ७४,१३,००० रु० था।

(४) विश्वविद्यालयो मे शिक्षण के विशेष विषयो का प्रबन्ध हो गया।

(५) आनर्स कोर्स तथा स्नातकोत्तर (Post-graduate) कक्षाएँ चलाई जाने लगीं।

(६) विश्वविद्यालयों में विदेशी एवं भारतीय विद्वानों के भाषणों की व्यवस्था कर दी गई।

(७) रीडर्स तथा प्रोफेसरों के चुनावों की विधि में सुधार किया गया।

(८) वैतनिक पूर्णकालिक उप-कुलपति की नियुक्ति होने लगी।

(९) विद्यार्थियों के स्वास्थ्य की देखभाल के लिये 'डायरेक्टर ऑफ फिजीकल ट्रेनिंग' नियुक्त किया जाने लगा।

(१०) मुस्लिम विद्यार्थियों को शिक्षा में प्रोत्साहन देने के लिये वजीफे आदि की सुविधाओं का प्रबन्ध किया गया।

(११) विश्वविद्यालयों के अनुशासन में सुधार हुआ और व्यावहारिक रूप में सरकार का अति कठोर नियन्त्रण भी विश्वविद्यालयों पर से कम हो गया।

इस प्रकार सैडलर कमीशन की रिपोर्ट की बहुत सी बातें कार्यान्वित कर दी गईं इससे न केवल कलकत्ता विश्वविद्यालय ही को लाभ हुआ वरन् भारत के सम्पूर्ण विश्वविद्यालयों की शिक्षा को तीव्र गति मिली।

गोखले बिल

Q 7. Discuss the importance of Gokhale Bill in the field of primary and compulsory education. *(Agra B. T. 1956)*

Ans. १९ वी शताब्दी के अन्त में जब देश में राष्ट्रीयता की लहर उठी और स्वतन्त्रता आन्दोलन ने बल पकड़ा उस समय राष्ट्र को प्रगतिशील बनाने के लिये जन शिक्षा और साक्षरता पर अधिक जोर दिया जाने लगा। प्रारम्भिक शिक्षा की प्रगति १८८२ के कमीशन के बाद काफी हो रही थी किन्तु वह भारतीय जनसंख्या की वृद्धि के अनुकूल न थी। इस समय देश के केवल २१.८% लड़के और २.७% लड़कियाँ ही शिक्षा ग्रहण कर रही थी। ऐसी परिस्थिति में राष्ट्र के कर्णधारों का ध्यान अनिवार्य तथा निःशुल्क प्रारम्भिक शिक्षा की ओर जाना अनिवार्य था। विदेशी सरकार को जन शिक्षा की परवाह न थी। वह तो अब भी अपने राज्य की नींव दृढ़ बनाने के लिये उच्च शिक्षा का ही संगठन कर रही थी। देश में कमीशनों की नियुक्ति की जाती थी। वे लोक शिक्षा सम्बन्धी सिफारिशें भी करते किन्तु उनकी सिफारिशों पर सरकार कोई सक्रिय कदम न उठाती। १८५४ के शासन पत्र में जन शिक्षा की अवहेलना की ओर कम्पनी का ध्यान आकर्षित किया गया, १८८२ के हण्टर कमीशन ने भी यही कहा कि सरकार भारतीयों की प्राथमिक शिक्षा पर अधिक जोर दे, १९०४ में लार्ड कर्जन को भी यही कहना पड़ा कि प्रारम्भिक शिक्षा पर बहुत कम ध्यान दिया गया है और उसके लिये किया गया काम भी अपर्याप्त रहा है। उसने सरकार का ध्यान प्राथमिक शिक्षा के विकास की ओर आकर्षित तो किया किन्तु शिक्षा पर अधिक कड़ा नियन्त्रण लगाकर उसकी प्रगति को अवरुद्ध कर दिया। इस प्रकार १९ वीं शताब्दी के अन्त तक सरकार भारत में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की ओर कोई ध्यान न दे सकी। ब्रिटेन में सरकार यही कहती रही कि जिस देश की राष्ट्रीय आय कम हो और जन संख्या में तीव्रगति से वृद्धि हो रही हो उस देश में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा आर्थिक दृष्टिकोण से असम्भव है।

इतना सब कुछ होते हुए भी भारतीय जनता ने जन समूह की शिक्षा की माँग के आन्दोलन को न छोड़ा, वे निरन्तर सरकार से अनुरोध करते रहे और जब देश में राष्ट्रीयता की भावना अधिक सशक्त हुई तो उन्होंने सरकार को इस बात के लिए विवश किया कि वह प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाये। यद्यपि उन्हें इस कार्य में सफलता नहीं मिली तब भी उन्होंने आन्दोलन जारी रखा। बड़ौदा के महाराज गायकवाड़ ने अपने राज्य में अनिवार्य शिक्षा लागू कर सिद्ध कर दिया कि भारतवर्ष में भी प्राथमिक अनिवार्य शिक्षा की योजना चल सकती है। भारत के राष्ट्रीय नेता श्री गोपालकृष्ण गोखले ने अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करने के लिये आन्दोलन आरंभ किया और इस ध्येय को पूरा करने के लिए कदम उठाना आरम्भ कर दिया। इस क्षेत्र में गोपालकृष्ण गोखले का नाम सदा अमर रहेगा।

गोखले को अनिवार्य शिक्षा में पूर्ण विश्वास था। अतः सन् १९१० ई० में इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्य होने के नाते उन्होंने एक वर्ष के लिए प्राथमिक शिक्षा

अनिवार्य तथा निःशुल्क करदी जाय। उन्होंने धारा सभा में यह प्रस्ताव रखा कि एक कमीशन नियुक्त किया जाय जो इस विषय की जांच करे। सरकार ने वचन दिया कि वह स्वयं उस विषय [illegible] किया जो ब्रिटिश सरकार ने अनिवार्य सिद्धान्त के सम्बन्ध में प्रगट की थीं। बिल में कहा गया—

१. यदि सरकार स्वयं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था नहीं कर सकती तो यह कार्य स्थानीय संस्थाओं पर छोड़ दिया जाय। इस प्रकार बिल में अनिवार्य शिक्षा का भार स्थानीय संस्थाओं पर डालने का सुझाव दिया गया।
२. स्थानीय संस्थायें कोई अनुचित कार्य न कर बैठे इसलिये शिक्षा को अनिवार्य घोषित करने से पूर्व सरकार की अनुमति ले ली जाय।
३. यदि देश का समाज पिछड़ा हुआ है और उसमें बहुत सी कुरीतियां तथा कुप्रथायें फैली हुई हैं जिसके कारण अनिवार्य शिक्षा का संचालन नहीं हो पाता है तो अनिवार्य शिक्षा केवल ६ वर्ष से १० वर्ष तक केवल बालकों के लिये घोषित कर कुछ समय तक अनिवार्य शिक्षा का क्षेत्र सीमित रखें फिर समय पाकर सरकार उसे व्यापक रूप दे।
४. सरकार चाहे तो किसी वर्ग विशेष या जाति विशेष के लोगों को अनिवार्य शिक्षा कानून से वंचित कर दे।
५. सरकार तथा स्थानीय संस्थायें अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा पर जो व्यय करे वह व्यय २ : ३ के अनुपात में हो।
६. एक अलग शिक्षा सचिव को नियुक्त करने तथा बजट में शिक्षा की प्रगति पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करे।

सरकार ने इस बिल का कड़ा विरोध किया। सरकारी अफसरों में से केवल ६० पक्ष में तथा १४२ विपक्ष में रहे। भारतीय रियासतों ने भी इस विधेयक का विरोध किया। इसका समर्थन करने वाले लोगों में प० मदनमोहन मालवीय और मुम्मद अली आदि राष्ट्रीय नेता भी थे परन्तु तब भी यह विधेयक पास न हो सका।

गोखले का बिल अस्वीकार तो हो गया किन्तु उसका सरकार पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। देश में प्राथमिक शिक्षा की मांग क्रमशः बढ़ने लगी क्योंकि गोखले के भाषणों तथा उनके प्रस्तावों का असर जनता तथा सरकार दोनों पर धीरे-धीरे बढ़ने लगा और फलस्वरूप सन् १९१३ में सरकार ने प्रारम्भिक शिक्षा क्षेत्र में अपनी परिवर्तित नीति घोषित की। इस नीति के मुख्य तत्व निम्नलिखित थे।

१. प्राथमिक शिक्षा में पूर्व प्राथमिक विद्यालयों का विकास और विस्तार किया जाय तथा उनके पाठ्यक्रम में व्यावहारिक विषयों की संख्या बढ़ा दी जाय।
२. उत्तर प्राथमिक विद्यालय अधिक संख्या में खोले जायें।
३. पाठशालाओं और मकतबों को उदारता पूर्वक सहायता दी जाय।
४. सरकार प्रोवीडेन्ट फण्ड का प्रबन्ध करे।
५. विद्यालयों की दशा में सुधार, एवं शिष्यों की संख्या में कमी पर सरकार ने सुझाव दिये।

सन् १९१३ में नई शिक्षा नीति की घोषणा तो हो गई परन्तु १९१४ के महायुद्ध के प्रारम्भ होने पर उपरलिखित प्रस्ताव कार्यान्वित न किये जा सके।

हर्टॉग कमेटी

Q. 8. Compare and contrast views on mass education in India expressed by the Dispatch of 1854 with those of Hortog Committee (1921)

(Agra B. T. 1954)

Ans. ब्रिटिश सत्ता वर्ग विशेष को ही शिक्षित करना चाहती थी। मद्रास-पत्र ने इस सिद्धान्त की तीव्र आलोचना की। मद्रास पत्र ने कहा कि जीवन के व्यावहारिक विषय के लिये शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है और शिक्षा का स्वरूप सार्वजनिक होना चाहिये। भारत में अधिकांश व्यक्ति निर्धन होने के कारण अपनी शिक्षा का प्रबन्ध स्वयं नहीं कर सकते। इसलिये उनकी शिक्षा पर विशेष ध्यान देना चाहिये। 'Attention should now be directed to a consideration...... that useful and practical knowledge ...... may be best conveyed to the great mass of the people who are utterly incapable of obtaining any education worthy of the name by their own unaided efforts.

समिति के सदस्य बड़े योग्य और दूरदर्शी मालूम होते थे। वे अवसर को अच्छी तरह पहचानते थे। उन्होंने समझ लिया कि अब ऐसा समय आ गया था कि जन साधारण को शिक्षा से अधिक दिनों तक उपेक्षित नहीं रखा जा सकता था। इसलिये उन्होंने इस बात का सुझाव दिया कि East India Company शिक्षा के सम्बन्ध में सिद्धान्त को छोड़कर व्यापक दृष्टिकोण को अपनाये और सार्वजनिक एवं उपयोगी शिक्षा को प्रोत्साहन दे।

ठीक ७५ वर्ष बाद हर्टाग कमिटी ने भी सार्वजनिक शिक्षा पर विशेष बल दिया। १९१९ के विधान से प्रान्तों में द्वैध शासन स्थापित हो जाने के कारण केन्द्रीय सरकार का महत्व समाप्त हो गया था। इसलिये वह कोई निश्चित भारतीय नीति स्थापित नहीं कर पा रहे थे। सन् १९२९ में जब साइमन कमीशन को भारतीय शिक्षा के विकास पर भी अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करने की आज्ञा प्रदान की गई। तब उस रिपोर्ट में बतलाया गया कि सम्पूर्ण भारत के सभी वर्गों में सर्वत्र शिक्षा के प्रति जागरूकता है। उच्च, मध्यम, निकृष्ट वर्गों, अछूतों, हरिजनों और महिलाओं के बीच सभी शिक्षा प्राप्ति के लिये लालायित हैं। ऐसी दशा में शिक्षा में सुधार और परिवर्तन की आवश्यकता है। समिति ने शिक्षा के गुणात्मक और संख्यात्मक वृद्धि की ओर ध्यान आकर्षित करते हुये बतलाया, कि शिक्षा में गुणात्मक उन्नति की आवश्यकता है, संख्यात्मक की नहीं। भारतीय विद्वान संख्यात्मक उन्नति के पक्ष में थे। उनके विचार से गुणात्मक उन्नति तो किसी भी समय की जा सकती थी। किन्तु इस समय तो अधिक से अधिक भारतीयों को शिक्षित बनाना था। समिति ने शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में जो अपने विचार प्रकट किये वे निम्नलिखित हैं :—

हर्टाग समिति और प्राथमिक शिक्षा—हर्टाग समिति ने प्राथमिक शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया, क्योंकि वह उच्च शिक्षा की अपेक्षा अधिक शोचनीय दशा में थी। प्राथमिक शिक्षा का विकास सन्तोषजनक न था उसके रास्ते में अनेक बाधाएँ थीं। अधिकांश लोग ग्रामों में रहते थे, और उनके सामने निरक्षरता, निर्धनता, आये दिनो बीमारियाँ, और यातायात के साधनों की असुविधा प्राथमिक शिक्षा में बाधक हो रही थीं। जातिभेद, अन्धविश्वास, और निर्धनता के कारण व्यक्ति शिक्षा में रुचि नहीं लेते थे। अधिकतर लोग पिछड़े हुये थे और उन्हें प्रोत्साहित करने का कम प्रयत्न किया गया था। सरकार भी उदासीन थी और प्राथमिक शिक्षा को आवश्यक नहीं समझती थी। समिति ने प्राथमिक शिक्षा को व्यर्थ ठहराया, क्योंकि उसका पाठ्यक्रम अनुपयुक्त था। प्राथमिक विद्यालयों में पढ़ाने वाले अध्यापकों में ज्ञान की कमी के कारण शिक्षा का स्तर गिरता जा रहा था। विद्यालयों की संख्या उनके निरीक्षकों की संख्या के अनुपात में थी। बहुत से विद्यालय केवल अपना अस्तित्व बचा रहे थे। पढ़ाने का ढंग बड़ा पुराना व अमनोवैज्ञानिक था। ५०० जनसंख्या वाले गाँवों में स्कूल स्थापित नहीं किये जा सकते थे। इन सब कारणों से प्रारम्भिक शिक्षा की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। समिति ने शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये कुछ सिफारिशें की। ये सिफारिशें स्कूलों के सुप्रबन्ध, अध्यापकों के लिये विशेष प्रकार प्रशिक्षण, विद्यालय के कार्यक्रम, पाठ्यक्रम में सुधार और उसे जीवनोपयोगी बनाने, काफी विषयों का समावेश, विद्यालयों के प्रगतिशील और सुव्यवस्थित बनाने के लिये निरीक्षण और नियन्त्रण, प्राथमिक विद्यालयों को स्थानीय सस्थाओं से लेकर सरकार के द्वारा उनके सगठन और उत्थान के लिये सिफारिशें की गईं। ये सिफारिशें शिक्षा की गुणात्मक वृति पर विशेष बल दे रही थीं। उसकी संख्यात्मक वृद्धि पर नहीं। भारत जैसे देश में जहाँ उस समय केवल आठ प्रतिशत जनसख्या ही शिक्षित थी, संख्यात्मक उन्नति की विशेष आवश्यकता थी।

माध्यमिक शिक्षा

माध्यमिक शिक्षा मे भी इस समय बहुत दोष पैदा हो गये। अध्यापको की दशा, योग्यता, और नौकरी आदि के सम्बन्ध में माध्यमिक शिक्षा की स्थिति भले ही कुछ अच्छी हो किन्तु मैट्रीक्यूलेशन की परीक्षा मे सैकडो विद्यार्थियों के असफल हो जाने के कारण शिक्षा मे विशेष प्रगति नही हो रही थी। विश्वविद्यालयो मे प्रवेश लेना ही छात्र का एक मात्र लक्ष्य बन गया था, क्योंकि हाईस्कूल स्तर तक उनकी आवश्यकतायें सन्तुष्ट नही हो पाती थी। इसलिये हर्टाग समिति ने मिडिल स्कूलो के पश्चात् ही पाठ्यक्रम को औद्योगिक और व्यापारिक इन दो भागो मे विभाजित करने का आदेश दिया। हाईस्कूल के पाठ्यक्रम मे कई वैकल्पिक विषयो के रखने का सुझाव रक्खा। जिससे बालको को अपनी रुचि के अनुसार विषय चुनने का पूर्ण अवसर मिल सके।

उच्च शिक्षा

हर्टाग समिति ने विश्वविद्यालय की शिक्षा के विषय मे विशेष छानबीन नही की। केवल इतना बतलाया कि विश्वविद्यालयो मे सख्यात्मक उन्नति अवश्य हुई है और वह काफी सराहनीय है, परन्तु गुणात्मक उन्नति शिथिल हो जाने के कारण विश्वविद्यालयो का वातावरण दूषित हो गया है। विश्वविद्यालय देश सेवा के योग्य, देशभक्त नेताओ को पैदा नही कर पा रहे थे। समिति की राय मे उदार, योग्य एव सहनशील व्यक्तियों का उत्पादन विश्वविद्यालयों का मुख्य उद्देश्य होना चाहिये। इसलिये वह शिक्षा सगठन मे सुधार चाहती थी।

१८५४ के घोषणा पत्र ने शिक्षा को सार्वजनिक और उपयोगी बनाने के लिये माध्यमिक एव उच्च विद्यालयो मे सुधार एवं वृद्धि की ओर सकेत किया था। हर्टाग समिति ने भी इस ओर अपना ध्यान दिया, किन्तु वह सुधार के अधिक पक्ष में थी। वृद्धि के इतने पक्ष मे न थी, इसलिये उसने विश्वविद्यालयो के सुसगठन मे सुधार के लिये कुछ सिफारिशें की। उसने सम्बन्धीय [illegible]

स्त्री शिक्षा

[illegible] ो की [illegible] मीण [illegible] पाठ्यक्रम था। समिति ने नारी शिक्षा के विषय मे अपने निम्नलिखित विचार प्रगट किये। शिक्षा प्राप्त करने का नारी पुरुष का समान अधिकार है किसी एक की शिक्षा को उपेक्षित कर प्रगति के पथ पर देश आगे नही बढ सकता। अतः नारी और पुरुष दोनों की शिक्षा का सन्तुलन आवश्यक है। अब समय आ गया है कि इस सन्तुलन को ठीक करने का प्रयत्न किया जाये। भारतीय शिक्षा के सर्वांगीण विकास के लिए देश की प्रत्येक योजना में बालिकाओ की शिक्षा की व्यवस्था की जाय, स्त्री शिक्षा के प्रचार के लिये हर्टाग समिति के लिये एक सुदृढ और उपयोगी योजना के लिये प्रत्येक प्रान्त की राजधानी मे एक योग्य महिला की नियुक्ति, प्रायमिक विद्यालयों में सहशिक्षा, बालिकाओं के लिये विशेष प्रकार की औद्योगिक शिक्षा, अध्यापिकाओं के वेतन मे वृद्धि और निरीक्षण की व्यवस्था को सुन्दर बनाने के लिये प्रयत्नो पर महत्वपूर्ण सिफारिशें कीं।

हरिजनों और मुसलमानों की शिक्षा

[illegible] ा कर रहा था। किन्तु अब [illegible] े थे। अन्य विद्यालयों से [illegible] अलग विद्यालयो [illegible] ा रही है और [illegible] होती जा रही

है। इसलिये हरिजनों को सामान्य विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा दी जाये। समिति के, मुसलमानों के लिये जो विशिष्ट विद्यालय खोले गये थे उनसे भारतीयों को जो हानि हो रही थी, इस ग्रोर जनता का ध्यान ग्राकर्षित किया। इससे मुसलमानों की शिक्षा का स्तर गिर चुका था और वे जनसाधारण से पिछड़ते जा रहे थे। समिति ने कहा कि मुसलिम विद्यालय भारत में एक ऐसा विष का बीज बो रहे हैं जो भारत के लिये एक दिन घातक सिद्ध होगा। इसलिये समिति ने सामान्य विद्यालयों में ही मुसलमानों को सारी सुविधा देने के लिये सिफारिश की।

ऊपर के विवरण से सिद्ध होता है कि हर्टाग समिति ने सार्वजनिक शिक्षा के विस्तार पर विशेष बल दिया। उसने शिक्षा को ठोस और विस्तृत बनाने का प्रयत्न किया। सरकारी क्षेत्रों में इस रिपोर्ट का बड़ा स्वागत हुआ और इसे सरकारी प्रयत्नों की दीपिका समझा गया किन्तु गैर सरकारी क्षेत्रों में शिक्षा का प्रसार रोकने के लिये इसे सरकार की एक चाल बतलाया गया। देश में राष्ट्रीय चेतना के फैलने से देश के प्रमुख नेता शिक्षा के विस्तार को अधिक प्रमुखता देते थे। इसलिये वे कहते थे कि शिक्षा का विस्तार हो जाने पर उसका स्तर उठाया जा सकता है। देश की वास्तविक आवश्यकता तो सर्वव्यापी साक्षरता थी। शिक्षा में सुधार की इतनी आवश्यकता न थी।

वुड-एबॉट कमिटी

Q. 9. What according Abbot and Wood are the real functions and *purposes of vocational education ? What are their recommendations to fulfil* them ? *(Agra B. T. 1951, (1961)*

"General and vocational education are not essentially different branches but the earlier and later phases of a continuous process." Discuss. *(Agra B. T. 1955)*

Ans भारतवर्ष में आधुनिक शिक्षा के आरम्भकाल से ही प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा को कम महत्व दिया गया है। इसका क्रमबद्ध विकास Wood को सन् १८५४ की शिक्षा घोषणा के पश्चात् आरम्भ हुआ। घोषणा ने सबसे पहले भारतीयों के लिए जीवनोपयोगी शिक्षा की आवश्यकता अनुभव की। इस घोषणा के पश्चात अनेक स्थानों पर प्राविधिक और व्यावसायिक शिक्षा की कुछ व्यवस्था आरम्भ हो गई। रुड़की, पूना और मद्रास में क्रमश. १८८४, १८५४-१८५७, १८५८, में इंजीनियरिंग कालेज खुले जिनमें Civil, Mechanical और Electrical Engineering की शिक्षा दी जाने लगी। कानून के प्रशिक्षण के लिए कलकत्ता, बम्बई और मद्रास के विश्वविद्यालयों से सम्बन्धित कुछ कालेजो में कानून (Law) की कक्षायें खोल दी गई। सन् १८७५ में लाहौर में एक School of Arts की भी स्थापना हुई। सन् १८८२ में भारतीय शिक्षा कमीशन की सिफारिशों के अनुसार विज्ञान की शिक्षा बढ़ने लगी। इंजीनियरिंग कालेज खुलने लगे और बीसवीं शताब्दी होने तक Medical School की भी संख्या बढ़ने लगी। पशु चिकित्सा शास्त्र की शिक्षा देने के लिए पशु चिकित्सा कालेज, कृषि शिक्षा देने के लिए कालेजों में कृषि विभाग, वाणिज्य की शिक्षा देने के लिए स्कूलों में विशेष प्रकार का पाठ्यक्रम रक्खा गया। सन् १९१७ में व्यावसायिक शिक्षा के लिए दी जाने वाले छात्रवृत्तियों में परिवर्तन कर दिया गया। सन् १९२०-२१ से औद्योगिक संस्थानों की माँग बढ़ने लगी। कुछ विश्वविद्यालयों में औद्योगिक विभाग खोले गये। देश में एक औद्योगिक और बहु औद्योगिक संस्थाओं की स्थापना हुई। किन्तु १९३५ तक यह अनुभव किया जाने लगा कि देश में शुद्ध साहित्यिक शिक्षा के स्थान पर व्यावसायिक और औद्योगिक शिक्षा को अधिक महत्व देना चाहिए। इसलिए केन्द्रीय शिक्षा की सलाहकार बोर्ड (Central Advisory Board) ने जिसकी स्थापना सन् १९२१ में ही हो चुकी थी प्रस्ताव रक्खा कि वर्तमान शिक्षा प्रणाली में आमूल क्रान्ति करने के लिये यह आवश्यक है कि विद्यार्थियों को केवल व्यावसायिक और विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने की योग्यता प्राप्त करने के लिए ही शिक्षा नहीं देनी चाहिये। अपितु उन्हें इस योग्य भी बना देना चाहिए कि वे किसी भी उद्योग में, अथवा किसी भी व्यावसायिक विद्यालय में प्रवेश पा सकें। इसके लिए बोर्ड ने निम्न माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा को आधार माना और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर पाँच प्रकार के विद्यालयों की स्थापना करने की सलाह दी जिनमें कृषि प्रशिक्षण और टेक्नीकल प्राविधिक विषयों में प्रशिक्षण देने के लिए अधिक ज़ोर दिया गया।

केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड के एक प्रस्ताव के अनुसार व्यावसायिक शिक्षा पर सलाह देने के लिए दूसरी वर्ष ही श्रीयुत् ऐवड वुड की अध्यक्षता में एक आयोग की नियुक्ति हुई। वुड ने भारतीय सामान्य शिक्षा एवं उसके संगठन के विषय में अपने सुझाव रखे ऐवट ने व्यावसायिक शिक्षा के विषय में भारतीय अवस्थाओं और साधनों को ध्यान में रखकर कुछ व्यावहारिक और मूल्यवान सुझाव पेश किये।

सामान्य शिक्षा के विषय में वुड ने कहा कि प्राथमिक स्कूलों के पाठ्यक्रम में विशेष परिवर्तन की आवश्यकता है। पुस्तकीय शिक्षा के स्थान पर क्रियात्मक साधनों द्वारा बालकों को शिक्षा देकर आर्ट और क्राफ्ट को प्रोत्साहित करके तथा इन विषयों को माध्यमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम में सम्मिलित करके शिक्षा में सुधार किया जा सकता है।

श्री एबॉट ने व्यावसायिक और औद्योगिक शिक्षा के पुनः संगठन के विषय में लिखते हुए सिफारिश की कि प्रत्येक प्रान्त की व्यावसायिक शिक्षा का रूप वहाँ की परिस्थितियों के अनुसार ही स्थिर किया जा सकता है। उन्होंने यह भी कहा कि व्यावसायिक शिक्षा इतनी अधिक न हो जाय विदेश में उद्योगों का तदनुकूल विकास न होने के कारण कहीं बेकारी फैल जाए। व्यावसायिक शिक्षा की सामान्य शिक्षा के समान ही मनुष्य की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक दशाओं का सुधार कर सकती है। वास्तव में सामान्य शिक्षा व्यावसायिक शिक्षा के अनुसार होती है। उसके बिना यह अपूर्ण है। क्योंकि समस्त व्यावसायिक विषयों का प्रारम्भ सामान्य विद्यालयों में ही होता है। किन्तु दोनों प्रकार की शिक्षा के लक्ष्य और साधन भिन्न-भिन्न होने के कारण दोनों के स्कूल भी अलग-अलग होने चाहिए। उनके विचार से सामान्य शिक्षा पाने के उपरान्त ही व्यावसायिक शिक्षा प्रारम्भ की जा सकती है।

व्यावसायिक शिक्षा के संगठन के लिये श्री वुड एबोट ने उद्योगपतियों से पूर्ण सहयोग की माँग की और उन्होंने देश में संगठित एवं बड़े पैमाने पर काम करने वाले उद्योगों में तीन प्रकार के श्रमिकों के प्रशिक्षण पर बल दिया। निर्देशक, निरीक्षक और यन्त्रचालक इन तीन प्रकार के श्रमिकों के लिए विद्यालयों की अलग से व्यवस्था करने पर जोर दिया। यन्त्रचालकों को प्रशिक्षण अवकाश के घण्टों में दिया जा सकता था। रिपोर्ट में सिफारिश की गई कि प्रत्येक प्रान्त में व्यावसायिक शिक्षा सलाहकार समिति की स्थापना कर दी जाय, जिनके अन्तर्गत इंजीनियरिंग, वस्त्र-व्यवसाय, कृषि, कुटीर उद्योग धन्धे, और वाणिज्य की शिक्षा सम्बन्धी उपसमितियाँ बना दी जायें। ये उपसमितियाँ प्रत्येक प्रान्त में व्यावसायिक शिक्षा के संगठन एवं पाठ्यक्रम के लिए पूरी तरह से उत्तरदायी हों।

चूँकि व्यावसायिक शिक्षा का आधार सामान्य शिक्षा था इसलिए एबोट ने कम से कम निम्न माध्यमिक स्तर की शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों को जूनियर व्यावसायिक स्कूलों में प्रवेश पाने तथा उच्चतर माध्यमिक शिक्षा प्राप्त विद्यार्थियों को सीनियर व्यावसायिक स्कूलों में प्रवेश देने की सिफारिश की। जूनियर व्यावसायिक स्कूलों के शिक्षा प्राप्त विद्यार्थी उच्चतर माध्यमिक व्यावसायिक स्कूलों के विद्यार्थियों के समकक्ष माने जा सकते थे। इस प्रकार वे या तो सीनियर स्कूल में प्रवेश ले सकते थे या किसी विशेष उद्योग में विशेष योग्यता प्राप्त कर सकते थे। सीनियर व्यावसायिक स्कूलों से उत्तीर्ण विद्यार्थी इण्टरमीडिएट की परीक्षा में उत्तीर्ण विद्यार्थियों के समकक्ष माने जा सकते थे। जो व्यक्ति पहले से ही व्यावसायों में लगे हुये थे उनके लिये अर्ध सामयिक (part-time) विद्यालय खोलने की सिफारिश की गई।

कृषि और वाणिज्य की शिक्षा को प्रोत्साहन देने के लिये प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों में इन विषयों को वैकल्पिक बनाया जा सकता है। कृषि शिक्षा के लिये एबोट ने अलग समिति के बनाने पर जोर दिया। भिन्न-भिन्न स्कूलों में अलग-अलग तरह के उद्योगों और व्यवसायों के लिए अब तक कुछ विद्यालय खोले गये थे। एबॉट ने इन विद्यालयों के स्थान पर बहु-उद्योगीय (polytechnics) स्कूल खोलने की सिफारिश की जिनमें सब प्रकार के व्यवसायों की शिक्षा दी जा सकती थी। उन्होंने दिल्ली में एक व्यावसायिक प्रशिक्षण कालेज खोलने की सिफारिश की। इस प्रकार देश की परिस्थिति और वास्तविक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए

१९०४ का विश्व विद्यालय अधिनियम

Q. 10 Discuss the changes proposed by the Indian University Act of 1904. Why was the public opinion against it ? *(Agra II, T. 1961)*

Ans. सन् १८९९ में जब लार्ड कर्जन भारत में वायसराय होकर आये तब राष्ट्रीयता की भावना सबल होकर उभर रही थी। अंग्रेजी शिक्षा से देशवासी असन्तुष्ट थे। भारत में अंग्रेजी शिक्षा की कड़ी आलोचना हो रही थी अतः १९०१ में कर्जन ने एक गुप्त कान्फ्रेंस बुलाई जिसमें भारतीय जनता के दृष्टिकोण को सामने रखने का किसी को अवसर न दिया गया। फलतः जनता कर्जन का विरोध करने लगी। इस कान्फ्रेंस के सुझावों के अनुसार १९०२ में एक कमीशन नियुक्त हुआ जिसका काम था 'ब्रिटिश भारत में स्थापित विश्वविद्यालयों की दशा तथा उनके भविष्य की जाँच करना और उनके विधान एवं कार्यप्रणाली में सुधार के प्रस्ताव प्रस्तुत करना और ऐसे प्रस्ताव रखना जिससे विश्वविद्यालय शिक्षा का स्तर ऊँचा हो। इस समय तक विश्वविद्यालयों का कार्यभार बहुत बढ़ गया था। उनके सीनेटों के सदस्यों की संख्या बढ़ती जा रही थी। सीनेटों में शिक्षकों का उचित प्रतिनिधित्व नहीं था। सम्बन्धित कालेजों पर विश्वविद्यालयों का परीक्षा के अलावा कोई नियन्त्रण न था। अतः उनकी स्तर छात्रावास, अध्यापन आदि की व्यवस्था अनुचित थी। कमीशन ने भारतीय विश्वविद्यालयों की स्थिति पर विचार कर अपने सुझाव पेश किये। ये प्रस्ताव ही सन् १९०४ के अधिनियम की आधारशिला बने। इस प्रकार कमीशन की इन सिफारिशों को लेकर लार्ड कर्जन ने १९०४ में सरकारी शिक्षानीति घोषणा की। इस नीति का गोपालकृष्ण गोखले आदि राष्ट्रीय नेताओं ने घोर विरोध किया किन्तु तब भी यह विधेयक बहुमत से पास हो गया।

इस विधेयक की मुख्य धारायें निम्नलिखित थीं।

१—सीनेट में कम से कम ५० और अधिक से अधिक १०० सदस्य हों। उनकी सदस्यता अवधि आजीवन न होकर ५ वर्ष की हो। कलकत्ता, बम्बई, मद्रास में और अन्य विश्वविद्यालयों में १५ चुने हुए सदस्य हों। पहले सरकार ही 'इन फैलोज' को मनोनीत करती थी।

२—सिन्डीकेटों को कानूनी स्वीकृति दी जावे और उनमें विश्वविद्यालयों के सदस्यों का उचित प्रतिनिधित्व हो।

३—१९०२ के कमीशन की रिपोर्टों के अनुसार कालेजो को मान्यता दी जाय। नियमों में कड़ाई करदी जाय। सम्बन्धित कालेजों में सिन्डीकेट द्वारा नियमित निरीक्षण की व्यवस्था हो ताकि शिक्षा स्तर ऊँचा उठ सके।

४—विश्वविद्यालय प्रोफेसर तथा लेक्चरार की नियुक्ति करके शिक्षण और अनुसंधान कार्य का प्रत्यक्षभार ग्रहण करें और शिक्षा का स्तर ऊँचा करें।

५—सीनेट द्वारा प्रस्तावित नियमों में सरकार स्वीकृति के अतिरिक्त संशोधन कर सकती है और आवश्यकता पड़ने पर नियम भी बना सकती है। पहले सीनेट ही जो नियम बनाना चाहती थी बना सकती थी।

६—सपरिषद गवर्नर जनरल विश्वविद्यालयों की प्रादेशिक सीमा निर्धारित करे।

भारतीय जनरल ने इस विधेयक का धारासभा के भीतर और बाहर सभी जगह विरोध किया। कर्जन की नीति से भारतवासी सशंकित थे। भारतीयों का मत था कि सरकारी नियंत्रण से शिक्षा को आघात पहुँचेगा और शिक्षा क्षेत्र में गैर सरकारी प्रयत्न हतोत्साहित हो जायेंगे। अत भारतीयों में कर्जन की इस शिक्षा नीति के प्रति असंतोष फैलने लगा।

भारतीय जनता उसे निरर्थक कानून समझने लगी। अधिनियम का सबसे बड़ा दोष यह है कि उसमें भारतीय जनता की माँगों को ठुकराया गया था। सरकार ने अपने स्वार्थ को ही प्रधानता दी। जनता के असतोष दूर करने का प्रयत्न न किया। अंग्रेजी शासन की मशीन को अधिक कुशलतापूर्वक चलाने के लिए उच्च शिक्षा जो पूर्ववत् चली आ रही थी उसी को अधिक संगठित और ठोस बनाने का प्रयत्न किया गया।

विश्वविद्यालयों के सम्बन्धित कालेजों पर नियंत्रण कठोर हो गया। इससे जनता समझने लगी कि सरकार व्यक्तिगत प्रयास को कुचलना चाहती है। इसे भारतीयों ने शिक्षा के भारतीयकरण के मार्ग में एक काँटे की तरह माना।

वह शिक्षा जो जीवनोपयोगी न थी, और नौकरशाही का ही पोषण कर रही थी इससे कोई परिवर्तन अधिनियम ने नहीं किया इसलिये वह निरर्थक था।

पहले सीनेट कानून बना सकती थी। इस अधिनियम ने इस अधिकार को सीनेट से छीनकर भारतीयों को सशंकित कर दिया कि सरकार शिक्षा पर पूरा अधिकार जमाकर उसे भारतीय प्रभाव से अछूना रखना चाहती है।

इन सब कारणों से भारतीय जनता ने इस अधिनियम का घोर विरोध किया।

वे समझने लगे कि अंग्रेजी अपनी शिक्षा मे किसी प्रकार का ऐसा परिवर्तन नही करना चाहते जिससे भारतीय संस्कृति को प्रोत्साहन मिले। जो असंतोष राजनैतिक क्षेत्र मे बल पकड रहा था वह असंतोष शिक्षा के क्षेत्र मे भी फैलने लगा। फलत इस अधिनियम ने शिक्षा में राष्ट्रीय आन्दोलन की नीव डाल दी।

इस अधिनियम ने उच्च शिक्षा के स्तर को काफी ऊँचा उठा दिया। उसने विश्वविद्यालयो के सगठन, पाठ्यक्रम प्रशासन, कार्यविधि, नियमावली आदि में महत्वपूर्ण परिवर्तन कर दिये। इस प्रकार भारतीय उच्च शिक्षा को संगठित कर दिया।

विश्वविद्यालय सम्बन्धी कालेजो को नियंत्रित करके उच्च शिक्षा को अधिक प्रभावशाली बना दिया। सीनेट का सगठन अधिक सबल बनाकर उसके अधिकारो में वृद्धि की और उसमें अधिक सक्रियता ला दी। इस प्रकार १९०४ का अधिनियम उच्चशिक्षा क्षेत्र में विशेष महत्त्व रखता है।

(अ) खाद्यान्न के मामले में आत्मनिर्भरता,
(ब) आर्थिक उन्नति तथा सब लोगों के लिये रोजगार;
(स) सामाजिक तथा राष्ट्रीय एकता,
(द) राजनैतिक विकास,
(य) देश वासियों का उन्नत चरित्र।

स्वतन्त्रता पाने के बाद भी क्या वर्तमान शिक्षा प्रणाली ने इन मांगों की पूर्ति की है?

(१) वर्तमान शिक्षापद्धति कृषि को वह महत्व नहीं देती है, जो इसे देना था। उसकी तो सभी स्तरों पर उपेक्षा ही की गई है। देश का बुद्धिमान प्रतिभा सम्पन्न वर्ग इस ओर आकृष्ट ही नहीं होता। कृषि विद्यालयों का देश में सर्वथा अभाव है। उनमें प्रवेश लेने वाले छात्रों की कमी है। कृषि विद्यालय तथा महाविद्यालयों की तुलना में कमजोर और अर्ध विकसित है। दूसरी ओर खाद्यान्न की समस्या विकराल रूप धारण कर रही है जनसंख्या में आशातीत वृद्धि ने इसको और भी भयंकर बना दिया है।

प्रति पांच वर्षों के भीतर भारत की जनसंख्या की वृद्धि उतनी हो रही जितनी कि सम्पूर्ण ग्रेट ब्रिटेन की जनसंख्या है और यदि पैदायश रोकने के सभी साधन काम में ले लिये जाय तो अगले २० वर्षों में आज की ड्योढ़ी हो जायगी। उस समय दूसरे देश भी जो हमें खाद्यान्न दे रहे हैं इस परिस्थिति में न होंगे कि वे हमें भोजन दे सकें और हमारे पास भी इतना धन न होगा कि हम स्वयं उनसे खाद्यसामग्री खरीद सकें।

(२) वर्तमान शिक्षापद्धति द्वारा आर्थिक विकास की अवहेलना—वर्तमान शिक्षा पद्धति किताबी ज्ञान पर ही जोर देती है उत्पादन की ओर उसका ध्यान भी नहीं है। राष्ट्र चाहता है कि उसका जल्दी से जल्दी आर्थिक विकास हो और इस आर्थिक विकास के लिये उसका प्रत्येक व्यक्ति उत्पादन कार्यों में लगे। इसके विपरीत शिक्षा पद्धति इतनी अधिक पुस्तकीय होती जा रही है उत्पादन कार्यों में कोई सहायता ही नहीं देती।

एक ओर तो जनता गरीबी के गड्ढे में गिरती जा रही है और बेरोजगारी की समस्या तीव्र होती जा रही है। दूसरी ओर शिक्षा प्रणाली शिक्षित बेरोजगारों की संख्या बढ़ाकर निर्धनता की मात्रा में वृद्धि करती जा रही है। राष्ट्रीय आय प्रतिवर्ष इस समय ३४८ रु० हैं जब कि १५ वर्ष पहले २५६ रु० थी इस प्रकार वार्षिक प्रतिशत वृद्धि २.२% से अधिक नहीं हुई और महँगाई कई गुनी हो ही गई। फलस्वरूप ८०% जनसंख्या ऐसी है जिसे भरपेट भोजन तक नहीं मिलता। नीचे के ४०% व्यक्ति ऐसे है जिनकी आय १५ रु० प्रति माह से भी कम है। इसका अर्थ है आय का वितरण बिल्कुल खराब है। जब तक शिक्षा पद्धति में परिवर्तन नहीं होगा जब तक उसका उद्देश्य उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि नहीं होगा तब तक अवस्था में सुधार असम्भव है।

(३) राष्ट्र के पुनर्निमाण की अवहेलना—राष्ट्र चाहता है पुनर्निमाण, जाग्रति और विकास। लेकिन शिक्षा पद्धति ऐसी है कि यह न तो अध्यापकों को ही और न छात्रों को इस ओर आकृष्ट कर पाती है। पुनर्निर्माण का कार्य होता है सरकार के विभागों द्वारा जिनका स्कूलों और महाविद्यालयों से कोई सम्बन्ध नहीं रहता फलस्वरूप छात्र और अध्यापक यह जानते ही नहीं कि किन-किन क्षेत्रों में निर्माण कार्य किये जाते हैं और पुनर्निमाण के सिद्धान्त क्या है और वे सरकारी योजनाएँ क्या हैं जिनकी पूर्ति होने पर राष्ट्र की प्रगति सम्भव है। जब इन बातों की जानकारी ही शिक्षा कार्य में लगे हुये व्यक्तियों को नहीं होगी तब वे इस कार्य से उदासीन न रहें तो और क्या करें। सरकार उन्हें इन कार्यों में भाग लेने के लिये अवसर भी नहीं देती। यदि किसी काम को कराने की जरूरत होती है तो बेगारी ली जाती है न कोई सुविधा दी जाती है और न कोई अतिरिक्त पारिश्रमिक ही।

(४) राष्ट्रीय तथा सामाजिक एकता की ओर ध्यान का न जाना—हमारी शिक्षा पद्धति ऐसी है कि राष्ट्रीय तथा सामाजिक एकता स्थापित करने के बजाय विषमता पैदा करती है। प्राइवेट शिक्षण संस्थाओं से जातिवाद को बल मिलता है। अन्य संस्थाओं में धनी तथा निर्धन वर्गों को अलग अलग शिक्षा देकर सामाजिक दूरी बढ़ाई जा रही है। धनी लोग अच्छी किस्म के प्राइवेट स्कूलों में शिक्षा पाते हैं। जबकि गरीब जनता के बच्चे निम्न कोटि के सरकारी अथवा नगर निगम के विद्यालयों में निःशुल्क तथा खराब शिक्षा पाने के लिये बाध्य किए जाते हैं। भारतीय समाज वैसे

ही धनी-निर्धन, शिक्षित-अशिक्षित, ऊँच-नीच आदि विषम वर्गों में बँटा हुआ है। शिक्षा संस्थायें इन सामाजिक विषमताओं को और भी बढ़ाकर राष्ट्रीय एकता पर कुठाराघात कर रही हैं। स्थानीय प्रादेशिक भाषायिक तथा राष्ट्रीय समस्या में पड़कर भारतीय जनता भारतीयता को भूलती जा रही है। समाज को एक सूत्र में बाँधने वाले पुराने विचार समाप्त हो चुके हैं। सभी जगह सामाजिक विघटन के चिह्न दिखाई दे रहे हैं। घेराव, हड़ताल, भ्रष्टाचार, जातिवाद, तनाव, अनुशासन हीनता आदि विघटनकारी तत्व जोर पकड़ रहे हैं। ऐसे समाज में शिक्षा संस्थायें राष्ट्रीय तथा सामाजिक एकता लाने का कोई भी प्रयास नहीं कर रही हैं।

(५) नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों की अवहेलना—जिस समय राष्ट्र को उन्नत चरित्र वाले व्यक्तियों की नितान्त आवश्यकता न हो जिस समय देश में अनैतिकता का बोलबाला हो उस समय शिक्षा संस्थाओं में नैतिक शिक्षा की अवहेलना किया जाना बड़ी भारी भूल है। वर्तमान शिक्षा पद्धति न तो चरित्र शिक्षा की ओर ही ध्यान देती है और न शिक्षितों में प्रजातान्त्रिक समाज के लिये आवश्यक गुणों, अभिवृत्तियों और रुचियों का विकास ही करती है।

अत: हमें ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की आवश्यकता है जो लोकमानस की इच्छाओं, आकांक्षाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक हो, जो राष्ट्रीय प्रगति और समृद्धि में सहायक हो, और जो राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँध सके।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में जिसका उदय विदेशियों के हितों की रक्षा के लिए किया गया था, आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। उसके उद्देश्यों में परिवर्तन लाना है, पाठ्यक्रम में परिवर्तन लाना है, छात्र समूह की प्रकृति में तबदीली उपस्थित करनी है, अध्यापकों के चयन और प्रशिक्षण के तरीकों को बदलना है, शिक्षा के संगठन का रूप परिवर्तित करना है। वास्तव में हमें शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्ति उपस्थित करनी है।

कोई सुधार इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि शिक्षा पद्धति को जनता की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाना। जब तक शिक्षा की प्रणाली में यह परिवर्तन नहीं होगा, राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं हो सकती। इस परिवर्तन की जिन दिशाओं की ओर कोठारी कमीशन ने संकेत किया है वे निम्नलिखित हैं :

(i) उत्पादन कार्यों की ओर शिक्षा को प्रवृत्त करना।
(ii) सामाजिक तथा राष्ट्रीय एकता को शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य बनाना।
(iii) देश को आधुनिकता की ओर लाने में शिक्षा व्यवस्था का सहयोग प्राप्त करना
(iv) बालकों में सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों का सृजन करके उनके चरित्र का निर्माण करना।

देश में सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक क्रान्ति लाने के लिए शिक्षा को महत्वपूर्ण यन्त्र के रूप में प्रयुक्त करना होगा अतः उसको न केवल तात्कालिक समस्याओं के हल करने के लिए प्रयोग में लाना होगा वरन् दीर्घकालीन राष्ट्रीय महत्वाकांक्षाओं से भी उसे सम्बद्ध करना होगा। राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली ही बड़े पैमाने पर क्रान्ति में सहायक हो सकती है क्योंकि वही उन मानवीय साधनों का विकास कर सकती है जिनकी इस क्रान्ति में आवश्यकता होगी। यदि देश अपनी प्रगति चाहता है तो जनता को अपने मूल्यों, रुचियों, दक्षताओं और जानकारियों में परिवर्तन लाना होगा और इस परिवर्तन की आवश्यकता भी है। क्या देश को खाद्यान्न के विषय में पूर्ण स्वतन्त्र बनाया जा सकता है जब तक उसका किसान विज्ञान पर आधारित शिक्षा को नहीं अपनाता और उन विधियों का प्रयोग नहीं करता जो उत्पादन में वृद्धि कर सकती है ? क्या देश का औद्योगीकरण किया जा सकता है जब तक उसमें व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा का पूर्ण विकास न हो ? आर्थिक उन्नति तभी सम्भव है जब सम्पूर्ण जनता का दृष्टिकोण शिक्षा के माध्यम से बदल दिया जाय।

आर्थिक विकास और शिक्षा

Q. 3. Show how education can bring about economic change in the life of the people ? Discuss the various programmes envisaged by the Education [Comm]ission (1964-66) to achieve this change.

यदि देश की गरीबी दूर करनी है, यदि राष्ट्र की आय में वृद्धि करनी है, यदि सभी

के लिए रोज़गार की व्यवस्था करनी है तो भौतिक साधनो के विकास के साथ-साथ मानवीय साधनो का विकास करना होगा। मानवीय साधनो का विकास शिक्षा के प्रसार द्वारा सम्भव है शिक्षा का प्रसार इस दृष्टि से करना होगा कि वह कुछ इने गिने व्यक्तियों का अधिकार न रहकर सामान्य जनता का अधिकार बन जाय। साथ ही उसको उत्पादन कार्यों से इस प्रकार सयोजित कर दिया जाय कि प्रत्येक व्यक्ति शिक्षा पाने के बाद राष्ट्रीय आय की वृद्धि मे सहयोग प्रदान कर सके। जब राष्ट्रीय आय मे इस प्रकार की वृद्धि हो जायगी तब शिक्षा का प्रसार और भी अधिक तीव्र गति ग्रहण कर लेगा।

शिक्षा को उत्पादन कार्यों से सम्बद्ध करने के तरीके—शिक्षा को उत्पादन कार्यों से सम्बद्ध करने के लिए निम्नलिखित कदम उठाये जा सकते हैं—

(i) शिक्षा प्रणाली मे विज्ञान की शिक्षा को अधिक महत्व देना।
(ii) कार्य-अनुभव को सामान्य शिक्षा का महत्वपूर्ण अग बना लेना।
(iii) शिक्षा को व्यावसायिक रूप देना। उच्चतर माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक तथा तकनीकी प्रशिक्षण की सुविधाएं उपलब्ध करना।
(iv) उच्च शिक्षा स्तर पर वैज्ञानिक तथा टैक्नोलोजिकल शिक्षा का प्रबन्ध करना।

विज्ञान की शिक्षा—पूर्ण विकसित देशो मे कृषि और उद्योगो के क्षेत्र मे उन्नति इस लिए हुई है कि उन्होंने विज्ञान पर आधारित टैकनोलोजी तथा नवीनतम विधियो पर आधारित कृषि को अपना रखा है। यदि हम लोग भी अपने देश की आर्थिक उन्नति चाहते है तो उद्योग और कृषि दोनो ही क्षेत्रों मे विज्ञान के महत्व को स्वीकार करना होगा। इसका आशय यह है कि विद्यालयो मे विज्ञान की शिक्षा को अनिवार्य करना होगा और महाविद्यालयो मे कला और वाणिज्य तथा अन्य सामाजिक शास्त्रो में भी वैज्ञानिक विधियो का प्रवेश कराना होगा। विज्ञान शिक्षण को प्रत्येक स्तर पर इतना उन्नत बनाना होगा कि सभी व्यक्तियो मे वैज्ञानिक अभिवृत्ति का विकास हो सके।

कार्य अनुभव—शिक्षा को जीवन तथा उत्पादनकार्य से सम्बद्ध करने के लिये कार्य-अनुभव को शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर अनिवार्य रूप से महत्वपूर्ण स्थान देना होगा। कार्य अनुभव का अर्थ है सामान्य अथवा व्यावसायिक शिक्षा मे उत्पादक कार्य पर जोर देना। सामान्य शिक्षा मे तो छात्र का बहुत सा समय किताबी ज्ञान पैदा करने मे ही व्यतीत होता रहता है। यदि इस किताबी ज्ञान के साथ-साथ बालक को कुछ न कुछ उत्पादक कार्य करने मे लगाया जा सके तो वह समाज का महत्वपूर्ण भाग बन सकता है।

कार्य-अनुभव द्वारा शिक्षा और कार्य के बीच समन्वय स्थापित करना है जब प्रत्येक व्यक्ति जो शिक्षा प्राप्त करता है शिक्षा के साथ-साथ कुछ न कुछ पैदा करने के लिए बाध्य किया जायगा तब उसमे और साधारण श्रमिक मे कोई अन्तर ही नहीं रहेगा और पढ़ने लिखने के बाद उत्पादक में लग जायगा। उत्पादन कार्यों मे सफलता उसी व्यक्ति को मिल सकती है जिसने सामान्य शिक्षा के साथ-साथ ऐसी शिक्षा भी ग्रहण की हो। सामान्य शिक्षा द्वारा न केवल उसकी मानसिक शक्तियो का ही विकास हुआ हो वरन् तक्नीकी तथा व्यावसायिक शिक्षा के द्वारा उसने उन जटिल तरीको का भी ज्ञान पैदा कर लिया हो जो उत्पादन कार्यों मे आवश्यक होते हैं।

शिक्षा का कार्य के साथ समन्वय हो जाने पर ऐसा शिक्षित वर्ग हमें मिलेगा जो उत्पादक कार्यो मे लग जाने की प्रवृति रखेगा उससे दूर हटने की नहीं, और कृषि तथा उद्योगों में कार्य अधिक सम्मान की दृष्टि से देखा जाने लगेगा।

शिक्षा का व्यावसायीकरण (Vocationalisation)—शिक्षा को कुछ अधिक व्यावसायिक रूप देकर शिक्षा को उत्पादन कार्य से सम्बद्ध किया जा सकता है। माध्यमिक शिक्षा मे अधिकतम व्यवसायो की शिक्षा देकर तथा उच्च शिक्षा मे कृषि तथा तक्नीकी शिक्षा पर महत्व देकर वर्तमान शिक्षा प्रणाली को ऐसा बनाया जा सकता है जो देश की आर्थिक प्रगति मे सहयोग दे सके। वर्तमान शिक्षा प्रणाली की उपज या तो सरकारी। नौकरियो की तलाश मे रहती है या white collared profession की खोज मे। बहुत से छात्र जो माध्यमिक स्कूलों से निकलते है आर्ट्स और वाणिज्य मे स्नातक होने की इच्छा प्रगट करते है ताकि वे प्रशासनिक, अध्यापन अथवा कानून के पेशो को अपना सकें। विश्वविद्यालीय स्तर पर केवल २३% व्यक्ति पेशेवर

पाठ्यक्रमो मे जाते है क्योकि उनको प्रारम्भ से ही व्यावसायिक शिक्षा की ओर आकृष्ट ही नही किया गया।

ग्रत शिक्षा को उत्पादन से सम्बद्ध करने के लिए तथा देश की आर्थिक दशा सुधारने के लिए विश्वविद्यालय स्तर पर इ जीनियरिंग तथा कृषि में छात्र सख्या मे वृद्धि करनी होगी और स्नातकोत्तरीय स्तर पर विज्ञान मे शोध कार्य पर जोर देना होगा।

राष्ट्रीय एवं सामाजिक एकता तथा शिक्षा

Q 4 Social and national integration is a major problem which will have to be tackled on several fronts including education.' Discuss.

इस समय देश मे सभी जगह सामाजिक तथा राष्ट्रीय विघटन के चिन्ह पैदा हो रहे हैं। धनी और निर्धनो के बीच खाई और भी चौडी होती जा रही है—धनी वर्ग अधिक धनी होता जा रहा है और निर्धन वर्ग अधिक गरीब। बहुत से लोगो को जीवन की सभी सुविधाए प्राप्त हैं दूसरो को नही। ग्रामीण और शहरी अथवा शिक्षित और अशिक्षित व्यक्तियो मे कोई तालमेल नही, सभी लोग अपने-अपने नगर, राज्य, प्रदेश, भाषा, धर्म के आधार पर परस्पर विरोधी गुटो मे बट गये हैं। लोगो के हृदयो मे समूचे राष्ट्र के प्रति वह भाव नही है जो उन्हे अपने अपने वर्ग के प्रति है। शासन द्वारा प्रत्येक नागरिक के साथ समानता का व्यवहार नही होता। लोगो मे एक दूसरे की सस्कृतियो, परम्पराओ और जीवन मूल्यो के प्रति आदर भाव नहीं रहा है जो राष्ट्र को एक राष्ट्रीयता के सूत्र में बाध सके। इस विघटन को दूर करने के कुछ लघुकालीन कार्यक्रम भी है और कुछ दीर्घकालीन।

शिक्षा ऐसा यन्त्र है जिसके द्वारा राष्ट्रीय एकता व अखण्डता का निर्माण हो सकता है। लेकिन इसके लिए सतत प्रयत्न तथा प्रयास की आवश्यकता है। यह एकता स्थापित हो सकती है जबकि राष्ट्र निम्नलिखित कार्य करे—

(१) जनदेशशिक्षा के लिए सर्वमान्य स्कूल व्यवस्था (common school system) स्थापित करे।
(२) देश के सभी विद्यालयो मे सामाजिक और राष्ट्रीय हित के कार्यों को विशेष महत्व दिया जाय।
(३) सभी आधुनिक भारतीय भाषाओ का विकास किया जाय और हिन्दी को इतना समुन्नत किया जाय कि वह सरकार की भाषा बन जाय।
(४) जनता मे राष्ट्र के प्रति प्रेम उत्पन्न किया जाय।

सर्व सामान्य स्कूलो की व्यवस्था (Establishment of common school system) वर्तमानकाल मे स्कूल व्यवस्था ऐसी खराब है कि सामाजिक विघटन (social disintegration) को बहुत अधिक बढावा दे रही है। प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र मे दो प्रकार के विद्यालय हैं—प्राइवेट फीस लेने वाला विद्यालय जिनमे पढाई का प्रबन्ध अच्छा होता है, दूसरे सरकारी अथवा नगर निगम के विद्यालय जिनमे फीस नही ली जाती और पढाई का प्रबन्ध ठीक नही है। धनी माता-पिता अपने बच्चो को ऐसे स्कूलो मे भेजते हैं जिनमे फीस ली जाती है और निर्धन माता-पिता अपने बच्चो को सरकारी नि शुल्क शिक्षा देने वाले स्कूलों मे भेजते हैं। माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र मे भी यही हालत है। सरकारी स्कूलो की सख्या इस स्तर पर बहुत कम है, प्राइवेट स्कूल जो फीस लेते हैं अधिक हैं। फलस्वरूप साधारण श्रेणी का व्यक्ति इन स्कूलों मे बालको को भेजने में कठिनाई महसूस करता है।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था का यह बहुत बडा दोष है। वह सब बच्चो को समान रूप से अच्छी शिक्षा का प्रबन्ध नहीं करती। वह तो ऐसे लोगों के बच्चो को शिक्षा का प्रबन्ध करती है जो फीस दे सकते है उनका नही जो गरीब हैं पर प्रतिभाशाली हैं। जनता के एक बडे वर्ग के बच्चों को निम्न कोटि की शिक्षा पाने के लिये बाध्य होना पड रहा है। छात्रवृत्तियाँ भी मिलती है तो प्रतिभाशाली बालकों को नहीं, उन बालकों को मिलती है जिनके माता-पिता की आर्थिक स्थिति अच्छी होने के कारण उन्हे अच्छे स्कूलो मे भरती करा लेते हैं। अच्छी शिक्षा दी नहीं जाती, वह तो खरीदी जाती है। धनी व्यक्ति जो इस प्रकार की शिक्षा को खरीद लेते हैं निकट भविष्य में मिलने वाले लाभों को प्राप्त कर लेते हैं लेकिन जनसमूह के साथ सम्पर्क न रहने के

कारण उनके बालकों का समुचित सामाजिक विकास नहीं हो पाता। इस प्रकार सामाजिक एकता नष्ट होती जाती है।

यदि हम चाहते हैं कि हमारे देश मे सामाजिक एकता की स्थापना हो तो हमे स्कूलो की सामान्य व्यवस्था स्थापित करनी होगी जिसमे सभी जाति, धर्म, आर्थिक स्थिति के बच्चे शिक्षा ग्रहण कर सकें, जिसमे अच्छी शिक्षा धन से नही खरीदी जा सकेगी वरन् प्रतिभा और बुद्धि से उसे प्राप्त किया जा सकेगा, जिसमे सभी स्कूलो मे अच्छी शिक्षा का प्रबन्ध होगा, जिसमे किसी भी प्रकार की ट्यूशन फीस नही ली जायगी, जो सामान्य माता पिता की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट कर सकेगी। ऐसी शिक्षा व्यवस्था रूस मे है, फ्रास में है, स्केन्डिनेविया मे है, अमरीका में है, किन्तु इंगलैंड मे नही है जहाँ से हमने अपनी शिक्षा व्यवस्था ली है।

सामाजिक तथा राष्ट्रीय हित के कार्य—आधुनिक शिक्षा प्रणाली ने शिक्षित और अशिक्षित वर्गों के बीच विभेद पैदाकर दिया है शिक्षित व्यक्ति जनसाधारण से अलग तरीके का जीवन बिता रहा है। वह एक प्रकार से पराश्रयी हो गया है उस वर्ग पर जिसे हम श्रमिक अथवा कृषक वर्ग कहते हैं। इन दो वर्गों के बीच सम्पर्क स्थापित हुआ था जब गाधीजी ने असहयोग आन्दोलन चलाया था अथवा स्वतन्त्रता की लडाई लडी थी। उस समय शिक्षित वर्ग ने जनता के साथ सम्पर्क स्थापित किया था लेकिन स्वतन्त्रता युद्ध मे विजयी होने के बाद शिक्षित वर्ग पुन जन साधारण से हट गया। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए इससे बडा और क्या खतरा हो सकता है कि शिक्षित वर्ग अपने को अशिक्षित वर्ग से जिसकी प्रतिशत ६० से भी अधिक है अलग रखे और राष्ट्रीय एकता को भग करे।

सम्पूर्ण राष्ट्र को एकता के सूत्र मे बाधने के लिए इस प्रकार के वर्ग विभाजन का अन्त करना होगा। यदि स्कूल व्यवस्था इस प्रकार की हो सके कि सामाजिक उत्थान एव राष्ट्रीय हित के कार्यों मे सभी उच्च तथा निम्न वर्ग के छात्र कधे से कधा मिलाकर कार्य करें तो सामाजिक एकता स्थापित हो सकती है।

राष्ट्रीय सेवा के कार्यक्रमो मे भी इसी प्रकार सभी छात्रो को भाग लेना चाहिए। इन कार्यक्रमो की अशकालिक अथवा पूर्णकालिक ढग में व्यवस्था की जा सकती है। डा० सी० डी० देशमुख की अध्यक्षता मे जिसे राष्ट्रीय सेवा कमिटी (National Service Committee) की स्थापना हुई थी उस कमेटी ने १२ महीने की पूर्णकालिक सेवा की सिफारिश की थी जो प्रत्येक उच्चतर माध्यमिक कक्षा को पास करने वाले छात्र के लिए आवश्यक समझी गई थी। लेकिन उसकी ओर न तो जनता ने ही और न सरकार ने कोई ध्यान दिया। कुछ समय बाद १९६२ मे जब राष्ट्र सकट में पडा तब विश्वविद्यालयी स्तर पर भी N C. C. को अनिवार्य बनाकर राष्ट्रीय हित के कार्यों की महत्ता को स्वीकार किया गया। उसी समय शिक्षालय ने विभिन्न देशों में राष्ट्रीय सेवा योजनाओ का अध्ययन करके एक रिपोर्ट प्रकाशित की जिसमे राष्ट्रीय सेवा कार्यों को ऐच्छिक ढग से आयोजित करने की बात कही गई जो अधिक व्यावहारिक तथा प्रयोग्य थी।

यदि सामान्य शिक्षा के साथ-साथ राष्ट्रीय सेवा कार्यों का आयोजन अशकालिक आधार पर किया जाय तो किसी को आपत्ति न होगी क्योंकि ११-१२ वर्ष की शिक्षा के बाद एक साल की राष्ट्रीय सेवा योजना मे काम करना अव्यावहारिक व अपर्याप्त प्रतीत होता है।

राष्ट्रीय सेवा के ये कार्य प्राथमिक विद्यालय मे प्रारम्भ किये जा सकते हैं और उच्च शिक्षा स्तर तक अनिवार्य किये जा सकते हैं लेकिन वे शिक्षा के साथ-साथ ही करने होंगे। इन कार्यों को दो वर्गों मे बाँटा जा सकता है—

(अ) स्कूल और कालेज में सामुदायिक जीवन सम्बन्धी कार्य
(ब) सामुदायिक विकास सम्बन्धी कार्य

विद्यालय के प्रागण मे ऐसे अनेक अवसर आते हैं जबकि बालक राष्ट्रीय हित के कार्य कर सकता है। उदाहरण के लिए जो काम नौकरो से कराये जाते हैं वे छात्र समूह द्वारा भी सम्पन्न किये जा सकते हैं। इससे पैसे की भी बचत होगी और मूल्यवान अनुभव भी छात्रों को मिलेगा। इससे बालको मे काम करने की आदत तो पड़ेगी ही उनका श्रम के प्रति मनोभाव सुष्ठु हो जायगा।

सामुदायिक विकास की योजनाएँ जो सामुदायिक विकासखण्डों को सौंपी गई हैं छात्रों द्वारा सम्पन्न की जा सकती हैं शर्त यह है कि उनका कार्यक्रम पूर्व निर्धारित होना चाहिए। उदाहरण के लिए निम्न माध्यमिक तथा उच्चतर माध्यमिक स्तर पर कक्षा VIII से XII तक छात्रों को प्रतिवर्ष १० दिन विद्यालय तथा समाज के बीच अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने के लिए योजना बद्ध कार्यक्रमो में भाग लेना चाहिए। यदि ऐसा न हो तो (Labour Service Camps) मे इन बालको को अनिवार्यत भाग लेना चाहिए। NC.C. या (Labour and social welfare Camps) मे भाग लेना चाहिए और ७० दिन तक अनिवार्य रूप से भाग लेना प्रत्येक छात्र को (स्नातकीय उपाधि ग्रहण करने से पूर्व) आवश्यक है।

(३) भाषा सम्बन्धी उचित नीति का निर्धारण—सामाजिक तथा राष्ट्रीय एकता की स्थापना मे भाषा सम्बन्धी उचित नीति का निर्धारण करना होगा। भाषा का प्रश्न अधिक जटिल है और इसका हल शीघ्र करना होगा। सभी भारतीय भाषाओं का विकास तो करना है ही क्योंकि ऐसा करने से शिक्षित उच्च वर्ग से अशिक्षित तथा विशाल निम्न वर्ग के साथ सम्पर्क स्थापित हो सकेगा साथ ही वैज्ञानिक तथा तकनीकी शिक्षा जब इन सभी भारतीय भाषाओं मे दी जाने लगेगी तब औद्योगीकरण की गति और भी तीव्र हो सकेगी।

यदि उच्च शिक्षा स्तर पर भी शिक्षा का माध्यम प्रादेशिक भाषाएँ हो जायँ तो उनका विकास बड़ा ही जल्दी होगा। अपने प्रदेश की भाषा मे प्रत्येक व्यक्ति अपने विचारों को स्पष्टता से प्रकट कर सकता है. और अपने प्रदेश की भाषा मे लिखी हुई पुस्तकों को पढ़कर वह लेखक के विचारों को शीघ्र ग्रहण कर सकता है इसलिए प्रादेशिक भाषाओं को ही विश्वविद्यालय की शिक्षा का माध्यम बनाया जाय। विदेशी भाषा के माध्यम से सीखने वाला छात्र रटता है। सीखने या समझने का कम प्रयत्न करता है। जब हमने प्रादेशिक भाषा को उच्चतर माध्यमिक स्तर तक शिक्षा का माध्यम मान लिया है तब उच्च शिक्षा के लिए भी उसको शिक्षा का माध्यम मान ले तो क्या हानि है ?

यह प्रस्ताव सामाजिक तथा राष्ट्रीय एकता की स्थापना के लिए सभी को मान्य है। Emotional Integration Committee और (National Integration Councial, 1962) ने इसी विचार को मान्यता दी है कि विषय वस्तु का मनन और चिन्तन प्रादेशिक भाषा मे व्यक्त किये जाने पर अच्छी तरह होता है, व्यक्ति की प्रतिभा को यदि नहीं कुंठित करना है तो उच्च शिक्षा का माध्यम शीघ्रातिशीघ्र हो जाना चाहिए।

कुछ लोगों के विचार हैं कि अंग्रेजी अथवा हिन्दी को उच्च शिक्षा का माध्यम बना देना चाहिए क्योंकि ऐसा करने मे निम्नलिखित लाभ होंगे—

(अ) देश के एक भाग से दूसरे भाग के छात्र और अध्यापक गतिशील हो सकेंगे।
(ब) शासको और उन्नत देशो वाले व्यक्तियो मे विचार विनिमय आसान हो जायगा।
(स) विश्वविद्यालयो मे मानसिक विचारों आदान प्रदान आसानी से हो सकेगा।

लेकिन इस हिसाब से यदि अंग्रेजी को माध्यम मान लिया तो यह विदेशी भाषा हमेशा के लिए हमारा पिन्ड छोड ही नही सकती, और यदि हिन्दी को मध्यम मान लें तो भी कठिनाई हो सकती है क्योंकि अहिन्दी भाषी क्षेत्रों मे हिन्दी को माध्यम मानने पर आपत्ति सदैव रहेगी। इस लिए अच्छा तो यही है कि प्रादेशिक भाषाओं को ही उच्च शिक्षा का माध्यम ठहराया जाय। ऐसा करने से कई लाभ होंगे—

(१) प्रादेशिक भाषाओं का विकास देश की प्रगति में विशेष सहायक होगा। उससे शिक्षा का स्तर भी ऊँचा उठेगा लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि अंग्रेजी अथवा अन्य विदेशी भाषा के लिये उच्च शिक्षा के दरवाजे बन्द किये जा रहे हैं। ये पुस्तकालय की भाषाएँ आनन्द पूर्वक बनी रह सकती हैं किन्तु शिक्षा का माध्यम नहीं रह सकती।

(२) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा किसी प्रदेश विशेष के विश्वविद्यालय अपने यहाँ १० वर्ष के भीतर प्रादेशिक भाषा के माध्यम से शिक्षा देने का प्रबन्ध करें, इस बीच में अध्यापक प्रशिक्षण और साहित्य की सुविधाओं का अर्जन कर लें।

(३) हमको शिक्षा सम्बन्धी नीति का शीघ्र ही निर्धारण कर लेना चाहिए। जो कदम उठाना हो उसको तुरन्त उठा लिया जाय अधिक सोच-विचार कभी-कभी घातक होता है।

(४) ग्रनुपयुक्त तैयारियो के कारण शिक्षा के स्तर मे गिरावट ग्रा जायगी इससे बचने के उपाय भी सोचे जा सकते हैं। लेकिन ग्रन्ततोगत्वा यह परिवर्तन लाभप्रद ही होगा।

(५) ग्रखिल भारतीय उच्च शिक्षा संस्थानो मे हिन्दी ग्रथवा ग्रंग्रेजी को शिक्षा के माध्यम के रूप मे लिया जा सकता है लेकिन तभी जबकि हिन्दी को शिक्षा के प्रभावशाली माध्यम का स्थान मिल जाय दूसरे तभी जब ग्रहिन्दी भाषी क्षेत्रो के छात्रों को बडी सुविधाएँ मिलें जो हिन्दी भाषी क्षेत्रो के छात्रो को मिलती हैं।

प्रादेशिक भाषाग्रो को उच्च शिक्षा का माध्यम बन जाने के उपरान्त उन प्रदेशो की वे राज्यभाषाएँ भी घोषित कर दी जाँय ताकि वे व्यक्ति जिन्होंने उनके माध्यम से उच्च शिक्षा प्राप्त की है किसी प्रकार की प्रशासनिक कठिनाई का ग्रनुभव न करें। प्रादेशिक भाषाग्रों के उच्च शिक्षा के माध्यम के रूप मे मान्यता प्राप्त किये जाने पर किसी को ग्रापत्ति भी नही होगी।

विचारो के ग्रन्तर्राष्ट्रीय ग्रादान-प्रदान के लिए विदेशी भाषाग्रो—ग्रंग्रेजी, जर्मन, रूसी, जापानी, फान्सीसी, स्पेनिश—का ग्रध्ययन किया जा सकता है दिल्ली के Institute of Russian Studies में रूसी सीखने का प्रबन्ध किया गया है। ऐसी ही ग्रनेक संस्थाएँ खोली जा सकती हैं।

विचारो के ग्रान्तरिक ग्रादान प्रदान के लिए हिन्दी का साहित्यिक (Literary) भाषा के रूप मे विकास किया जा सकता है। इस रूप मे विकसित हो जाने पर वह विश्व ज्ञान के भण्डार को संग्रहीत कर सकेगी।

इस समय ग्रंग्रेजी विचार विनिमय (Link language) की भाषा के रूप मे कार्य कर रही है। वह विभिन्न प्रदेशो के लोगो के बीच सम्पर्क स्थापित करने के लिए उपयुक्त होती है। ग्राशा है कि कुछ समय बाद हिन्दी को यह स्थान मिल जायगा लेकिन ग्रहिन्दी भाषी क्षेत्रो मे भी इसका उचित विकास करना होगा। यदि उन क्षेत्रो के लोगो द्वारा वह स्वेच्छापूर्वक स्वीकार कर ली गई तो इस काम मे सफलता शीघ्र मिल सकती है।

प्रत्येक प्रदेश में कुछ न कुछ ऐसे व्यक्ति ग्रवश्य होने चाहिए जो ग्रन्य प्रादेशिक भाषाग्रो को जानते हों ग्रौर उनमे साहित्य सृजन भी कर सकें। स्कूलो ग्रौर कालेजो में विभिन्न ग्राधुनिक भारतीय भाषाग्रों का ग्रध्ययन होना चाहिए। विश्वविद्यालयों मे प्रत्येक भारतीय भाषा का सशक्त विभाग खुल जाना चाहिए। ऐसा करने से भाषा की जटिल समस्या ही नही हल हो जायगी वरन् देश का विघटन होना रुक जायगा।

राष्ट्रीय चेतना की जागृति—राष्ट्रीय एकता के लिए राष्ट्र के प्रति प्रेम जाग्रत करना होगा। भारत विभिन्नता मे एकता का देश है। यद्यपि हमारा देश सैकड़ों जातियो, धर्म, भाषा का देश है फिर भी उन सब मे एकता है। ग्रपने छात्रो को ग्रनेकता मे इस एकता का ज्ञान देना प्रत्येक स्कूल ग्रौर कालेज का कर्त्तव्य है। हमारी शिक्षा व्यवस्था ने इस राष्ट्रीय चेतना को जागृत करने में न तो भूतकाल में ही कोई प्रयत्न किया था ग्रौर न ग्रब कर रही है। ग्रंग्रेजी शासन काल मे तो शिक्षा व्यवस्था ग्रंग्रेजी भाषा, ग्रंग्रेजी संस्कृति, ग्रंग्रेजी परम्पराग्रो के प्रति छात्रों मे समादर का भाव पैदा कर रही थी।

१६०० से १६४७ तक जो स्वतन्त्रता संग्राम लड़ा गया उसी ने जनता मे राष्ट्रीय प्रेम को उत्पन्न किया वह भाव भी स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद लुप्त हो गया था कि १६६२ मे चीनी ग्राक्रमण हुग्रा ग्रौर १६६५ मे पाकिस्तानी; फलत. राष्ट्रीय चेतना फिर से उदय हुई। राष्ट्र फिर एकता के सूत्र में बँध गया। ग्रत राष्ट्रीय चेतना की जागृति स्कूलों ग्रौर विद्यालयो ने किसी भी समय नही की। यह चेतना जागृत कैसे की जाय ?

अवकाश के समय आयोजित कैम्पो में भाग लेने से अपनी प्रादेशिक सीमाओं को तोड़ा जा सकता है और देश को राष्ट्रीय एकता के सूत्र में बाँधा जा सकता है।

आधुनिक शिक्षा साधनों का उपयोग

Q. "The most serious weakness of the existing education system lie not in structure but in its feebleness'—Discuss and describe how we can intensively utilise the existing facilities.

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था का मुख्य दोष उसके ढाँचे का नहीं है वरन् इस बात का है कि उससे हम उतना लाभ नही उठा पाते जितना कि उसके लिये खर्च करते हैं। शिक्षा के स्तर (Standards) के गिरने का मुख्य कारण यह नहीं है कि शिक्षा की अवधि कम है लेकिन यह है कि हम उन सुविधाओं का अधिकतम उपयोग नहीं कर पाते जो हमारे पास उपलब्ध हैं।

शिक्षा संस्थाओं मे उपलब्ध सुविधाओं का अधिकतम उपभोग कैसे हो?—शिक्षा सस्थाओ के लिये जो विशाल भवन बनाए जाते है, जिन बड़े-बड़े पुस्तकालयों और वाचनालयों का सगठन किया जाता है, जिन प्रयोगशालाओं और वर्कशॉपो का निर्माण किया जाता है, उसमें देश का रुपया खर्च होता है। इन सुविधाओ का प्रयोग करने के लिए उनका अधिकतम उपयोग किया जाय। उसका प्रयोग प्रतिदिन अधिक समय तक और प्रतिवर्ष अधिक दिनो तक किया जाय। प्रयोगशाला, और वर्कशौप और पुस्तकालय वर्ष भर खुले रहने चाहिए और प्रतिदिन कम से कम ८ घन्टे तक खुले रहने चाहिए। सामुदायिक विकास के लिये इन सुविधाओं का गर्मी की छुट्टियो मे भी प्रयोग किया जा सकता है। विद्यालय भवन का उपयोग प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों के संचालन तथा दिवस-अध्ययन केन्द्रों की स्थापना के लिए किया जा सकता है। इस प्रकार शिक्षण सस्थाओ मे उपलब्ध होने वाली सुविधाएँ को कई प्रकार से उपयोग मे लाया जा सकता है।

शिक्षण सस्थाएँ वे विद्या मन्दिर हैं जिनके द्वार चौबीसो घन्टे खुले रहने चाहिए। लेकिन उन्हे चौबीसो घन्टे खुले रखने के लिए ऐसा विद्यालयी वातावरण तैयार करना होगा जिसमे रहकर छात्र, अध्यापक तथा समाज के सभी वर्ग यहाँ दिन भर काम मे लगे रहे। ऐसा वातारण तैयार करने से पूर्व कुछ और कार्य किये जा सकते हैं जिनमे उपलब्ध सुविधाओ का प्रयोग अधिक किया जा सके। ये कार्य हैं

(अ) कार्य करने के दिनो की सख्या मे वृद्धि करना
(ब) गर्मी की छुट्टियो का उचित प्रयोग करना
(स) दिन मे काम करने के घन्टो की सख्या को बढाना।

पढाई के दिनों की सख्या मे वृद्धि—वर्तमान शिक्षा पद्धति का सबमे बड़ा दोष यह है कि शिक्षा के सभी स्तरो पर काम करने के दिनों की सख्या बहुत कम है। विद्यालयी स्तर पर यह सख्या १७२ दिनों मे लेकर ३०६ दिन तक तथा उच्च शिक्षा स्तर पर १२० से २४० दिनो तक ही है। स्कूलो मे छुट्टियाँ वर्ष भर में २० दिनो से लेकर ७५ दिनो तक तथा विश्वविद्यालयो मे ४ से ४६ तक मनाई जाती है। गर्मी की छुट्टियाँ विद्यालीय स्तर पर ३६ दिन से लेकर ८४ दिन तक तथा विश्वविद्यालीय स्तर पर ६२ दिन से लेकर १३४ दिन तक की होती हैं। परीक्षा की तैयारी तथा परीक्षा लेने का समय १० दिन से लेकर ७७ दिन तक लम्बा होता है। वार्षिक समारोहों मे भी ४० से ६० दिन तक खर्च होते हैं। इस प्रकार जितने दिन पढाई चलती है उन दिनो की सख्या बहुत ही कम होती है। यदि शिक्षा के स्तर मे सुधार लाना है तो पढाई के दिनों की सख्या मे वृद्धि करनी होगी। स्कूलों मे पढाई के दिनो की सख्या कम से कम २३४ प्रतिवर्ष होनी चाहिए और विश्वविद्यालयो मे २१६। यह कार्य दो तरीकों से सम्भव है—

(अ) छुट्टी के दिनो की सख्या में कटौती करके—बहुत सी छुट्टियाँ पढ़ाई-लिखाई के काम मे बाधा मात्र पहुँचाती है। ये छुट्टियाँ १० से अधिक न हों। किसी त्योहार अथवा किसी महानपुरुष के जन्म दिवस अथवा जयन्ती मनाने के लिए छुट्टी करना ठीक नहीं है। इन दिनो का उपयोग राष्ट्रीय विकास के कामो मे किया जा सकता है।

(ब) परीक्षा के दिनो की संख्या मे कटौती करके—

यदि ये सुझाव मान लिए जायें तो स्कूल का वार्षिक कार्यक्रम निम्न प्रकार का होगा—

१५ जुलाई—स्कूल खुलने का दिन।

१५ जुलाई से ३० नवम्बर—पहला सत्र।

१ दिसम्बर से १५ दिसम्बर तक—दो सप्ताह का ब्रेक।

१६ दिसम्बर से ३० मई तक—दूसरा सत्र, १५ अप्रैल तक पढ़ाई समाप्त, १६-३०
१० अप्रैल तक निर्देशित अध्ययन, प्रथम सप्ताह मे परीक्षा, दूसरे सप्ताह छात्रो की छुट्टी और अध्यापको द्वारा मूल्यांकन, १६ मई से ३० मई तक निर्देशित शिक्षा।

१ जून से १४ जुलाई तक—गर्मी की छुट्टियां, फेलशुदा छात्रो के लिए अतिरिक्त शिक्षण, जुलाई मे पुनः परीक्षण।

गर्मी की छुट्टियों का उचित उपयोग—हमारे देश मे जितना अधिक अपव्यय विद्यार्थी के समय का किया जाता है उतना अधिक अपव्यय किसी देश मे नहीं किया जाता। इस समय का उपयोग करने के लिए यथासम्भव सभी तरीके अपनाने चाहिए। वे अध्यापक जो शोध कार्य मे रत रहना चाहते हैं उन्हे शोधकार्य करना चाहिए। लम्बे अवकाश के सत्र मे छात्रो द्वारा निम्नलिखित क्रियाओं मे भाग लिया जा सकता है—

(i) समाज सेवा शिविरो N. C. C. और कार्य-अनुभव के कार्यों मे,
(ii) धनोपार्जन मे,
(iii) पुस्तकालयो तथा प्रयोगशालाओं की सहायता से भावी वर्ष के लिए अध्ययन।
(iv) शैक्षणिक भ्रमण,
(v) निरक्षरता निवारण।

लेकिन इन कार्यों की सफलता के लिए अध्यापको की आवश्यकता होगी। अतः अध्यापकों की नियुक्ति की जा सकती है, वर्तमान अध्यापको को यदि वे गर्मी की छुट्टियो मे छात्रों के साथ श्रम करना चाहते हो तो अतिरिक्त वेतन दिया जा सकता है, खोई हुई छुट्टियो के लिए Compensatory leave दी जा सकती है इत्यादि-इत्यादि।

पढ़ाई के घन्टों मे वृद्धि—पढाई के दिनो की संख्या मे वृद्धि के साथ-साथ पढ़ाई के घन्टो मे भी वृद्धि होनी चाहिए। पढाई के घन्टो की संख्या १००० से किसी प्रकार कम न हो। वह यदि ११०० से १२०० तक बढा दी जाय तो और भी अच्छा है। प्राइमरी स्कूलो में ४ घन्टे तथा माध्यमिक स्कूलो मे ६ घन्टे पढ़ाई के लिए ही दिये जाने चाहिए। इस समय मे पाठ्येतर क्रियाओं मे लगने वाला समय सम्मिलित न किया जाय। वह समय तो इसके अतिरिक्त है। विश्वविद्यालीय स्तर पर कृषि, चिकित्सा तथा इंजीनियरिंग के महाविद्यालयो मे पढाई के घन्टो की संख्या पर्याप्त है किन्तु कला, विज्ञान तथा वाणिज्य विभागो मे पढ़ाई के घन्टों की संख्या बहुत कम है। छात्र को स्वाध्याय करने के अवसर भी नहीं है। इन विभागों मे ३० से ४० घन्टे तक समय तो केवल स्वाध्याय के लिए जरूरी है जो महाविद्यालयो मे किया जा सकता है। स्वाध्याय करने की सभी सुविधाएँ छात्रो को मिलनी चाहिए। उदाहरण के लिए सुसज्जित विशाल पुस्तकालय भवन जिनमें सभी छात्रों के पढ़ने के लिए अलग-अलग सीटें हों, अध्यापको के पास अपने-अपने कमरे होने चाहिए यदि ऐसा न हो तो पुस्तकालय मे प्रत्येक के लिए एक-एक डेस्क होनी चाहिए; खाने-पीने के लिए कैन्टीन होनी चाहिए जहां पर अध्यापक और विद्यार्थी अल्पाहार कर सकें।

अध्याय ५

भारत में प्राथमिक शिक्षा का स्वरूप

Q. 1. What are the bases of defining the stages of education ? How can school education be treated as one unit ?

शिक्षा के आधारभूत स्तर (Defferent stages of Education)

साधारणत. विद्यालीय शिक्षा के तीन स्तर माने जाते हैं, पूर्वप्राथमिक, प्राथमिक, माध्यमिक। इन तीन स्तरो का सम्बन्ध बालक के मानसिक विकास की तीन अवस्थाओं—शैशव, बाल्यकाल और कैशोर से स्थापित किया जाता है। शिक्षा के इन तीन स्तरों का यह मनोवैज्ञानिक आधार है। स्कूली शिक्षा के सामाजिक आधार को ध्यान में रखकर यह शिक्षा दो स्तरों में विभक्त की जाती है—प्राथमिक और माध्यमिक। प्राथमिक शिक्षा जनसमूह की शिक्षा मानी जाती है और माध्यमिक शिक्षा चुने हुये व्यक्तियों की। कभी-कभी शिक्षा के इन दो स्तरो में अन्तर सास्कृतिक कारणों से भी पैदा हुआ है। प्राथमिक शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषाओं और माध्यमिक शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी मानकर इन दोनों स्तरों मे अन्तर स्थापित किया जाता है। परन्तु आधुनिक काल मे उन तीनो स्तरों के बीच विभाजन रेखायें या तो बिलकुल लुप्त हो गई हैं और या लुप्त हो रही हैं। अब इस विचार धारा को कोई मान्यता नहीं दी जाती कि प्राथमिक शिक्षा जनसमूह की शिक्षा है, और माध्यमिक शिक्षा विभिन्न रुचियों, योग्यताओं और अभियोग्यताओं वाले छात्रों के लिये ही है। रूस मे तो सम्पूर्ण विद्यालीय शिक्षा चाहे वह प्राथमिक हो अथवा माध्यमिक एक ही प्रकार के सिद्धान्तों पर आधारित है।

भारत मे भी प्राथमिक और माध्यमिक इन दोनो स्तरों के बीच जो सामाजिक अन्तर है वह क्षीण होता जा रहा है क्योकि समाज के सभी वर्ग दोनो प्रकार की शिक्षाओं के पूर्ण अधिकारी हैं। अब चूंकि माध्यमिक शिक्षा भी भारतीय माध्यम से ली जाती है, इसलिये इन दोनों स्तरों के बीच विभाजन रेखा भी लुप्त हो चुकी है। यदि शिक्षा के कई स्तर माने भी जा सकते, तो वे केवल दो हो सकते हैं विद्यालयी शिक्षा और विश्वविद्यालयी शिक्षा इस प्रकार का विभेदीकरण उपयुक्त पाठ्यक्रम के सगठन के विचार से अर्थसंगत प्रतीत होता है। स्कूली शिक्षा के वस्तुत. निम्न तीन स्तर माने जा सकते हैं :—

(१) पूर्व प्राथमिक।
(२) प्राथमिक।
(३) माध्यमिक।

प्राथमिक शिक्षा के भी दो स्तर हैं—(१) निम्न प्राथमिक, (२) और उच्च प्राथमिक। इसी प्रकार माध्यमिक शिक्षा के भी दो स्तर हैं—(१) निम्न माध्यमिक (२) तथा उच्च माध्यमिक इन स्तरो पर शिक्षा की समस्याओं मे काफी समानता है। यह समस्या निम्नलिखित हैं :

(१) शिक्षा व्यवस्था के ढाँचे सम्बन्धी समस्यायें।

(२) विद्यालयों मे कार्य करने वाले अध्यापको की शिक्षा और उनकी आर्थिक दशा सम्बन्धी समस्यायें।

(३) शिक्षा के साधनो का सभी वर्गों के लिये समान रूप से उपलब्ध करने की समस्यायें। परन्तु कुछ ऐसी समस्यायें भी हैं जिनका सम्बन्ध केवल विद्यालीय शिक्षा से ही है। उदाहरण के लिये प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा को किस प्रकार विस्तीर्ण रूप दिया जाय, यह

विद्यालीय शिक्षा की सबसे बड़ी समस्या है। इसी प्रकार स्कूली शिक्षा का पाठ्यक्रम क्या हो, पाठ्य पुस्तकों का निर्माण किस प्रकार किया जाय, पाठन विधियाँ और मापन विधियाँ किस प्रकार की हों, स्कूल में पढ़ने वाले और स्कूल छोड़ने वाले छात्रों का शैक्षणिक और व्यावसायिक निर्देशन किस प्रकार का हो, विद्यालयों का पर्यवेक्षण और प्रशासन कैसा हो आदि ऐसी समस्यायें हैं जिनका हल हमें ढूंढ़ना है।

Q. 1 Give a historical review of the attempts made for compulsory primary education in India. How far these attempts have been successful?
(*Agra B. A. 1954*)

What steps have been taken recently towards the growth of compulsory primary education? What further developments do you envisage in this field?

Ans प्राथमिक अनिवार्य शिक्षा का महत्व—प्राथमिक शिक्षा पर ही किसी राष्ट्र की शिक्षा का सगठन का आधार स्थिर रहता है। जीवन को सफलतापूर्वक बिताने के लिये जिन गुणों, दक्षताओं एव योग्यताओं की आवश्यकता होती है उनका सूत्रपात शिक्षा के इसी स्तर से प्रारम्भ हो जाता है। इसी कारण पाश्चात्य देशो मे पूर्व प्राथमिक और प्राथमिक शिक्षा का सुसगठन करके शिक्षा की नींव को पक्का किया जाता है।

समाज और देश के जीवन मे शिक्षा का जो महत्व है उसकी अवहेलना नहीं की जा सकती क्योंकि समाज मे सुख व शान्ति की व्यवस्था का एकमात्र साधन उसके नागरिकों की शिक्षा ही है। अत जो राष्ट्र ऊँचा उठने की महत्वाकांक्षा रखता है जनसमूह की शिक्षा की व्यवस्था करता है, अपने नन्हें-नन्हें भावी नागरिको के लिये पाठशालायें खोलता है, क्योंकि वह समझता है कि नागरिकता का विकास शिक्षा के अभाव मे नहीं हो सकता। उच्च शिक्षा प्रत्येक नागरिक के लिये भले ही आवश्यक न हो, परन्तु प्राथमिक शिक्षा तो सबके लिये जरूरी होती है। जरूरी ही नहीं अनिवार्य भी है।

अनिवार्य शिक्षा का इतिहास

१८ वीं एव १९ वी शताब्दियो मे जबकि भारत मे अंग्रेज शासक अपने राज्य की नीव पक्की करने मे लगे हुए थे तब देश भर मे पुरातन ढग के प्राथमिक विद्यालयो का जाल-सा बिछा हुआ था और शिक्षा वास्तव मे जनतन्त्रात्मक थी। बगाल मे शिक्षा की अवस्था का उल्लेख करते हुए विलियम एडम ने लिखा है कि इन
बालकों के लिये एक स्कूल प्रत्येक प्रान्त
शिक्षिकाओं की तरह कार्य करती थीं
दक्षिणा पर ही अपना जीवन व्यतीत कर
और उनके स्थान पर प्राथमिक शिक्षा का
के ह्रास होने के निम्नलिखित कारण पेश किय जाते हैं।

१. शिक्षा में छनने का सिद्धान्त।
२ प्राथमिक शिक्षा तथा मातृभाषा की अवहेलना।
३. पुरातन ढग के विद्यालयो की अवहेलना।
४. ग्रामीण क्षेत्रों के विकास की अवहेलना।
५. देश की निर्धनता।
६. शासन की अनुपयुक्त आर्थिक नीति।

इन सब कारणों, सरकारी अनुचित सिद्धान्तो एव नीतियो के कारण इस काल मे प्राथमिक शिक्षा बहुत पिछड़ गई साथ ही अनिवार्य शिक्षा के सिद्धान्त को प्रकाश में लाने का प्रथम प्रयास भी इसी काल मे हुआ।

ने पहले से ही तैयार कर रखी थी; उन्होंने जो बात समूचे देश के लिये कही थी उसी को श्री विट्ठल भाई पटेल ने बम्बई प्रान्त के लिये कर दिखाया। उनका विधेयक बम्बई प्राइमरी एजूकेशन ऐक्ट १६१८ के रूप मे प्रकाशित हुआ। प्राथमिक शिक्षा का यही पहला कानून था। इस कानून से भारत के दूसरे प्रान्त भी प्रभावित हुए और सभी प्रान्तो मे अनिवार्य शिक्षा के कानून पास कर दिये गये। सन् १६२१ और १६३७ के बीच इन विधेयको के पास-होने पर अनिवार्य शिक्षा मे काफी प्रगति हुई जिसके आंकड़े नीचे दिये जाते हैं।

	शहरी क्षेत्र	देहाती इलाके
१६२१-२२	८	—
१६२६-२७	११४	१५७१
१६३१-३२	१५३	३३६२
१६३६-३७	१६७	३०३४
१६४६-४७	२२६	१०,०१७
१६५५-५६	१०६३	३७२७६

इन आंकडो का अध्ययन करने से पता चलता है कि अनिवार्य शिक्षा की प्रगति १६३७ तक तो इतनी अधिक नही हुई जितनी कि स्वातन्त्र्योत्तर काल की हुई है। इसके दो कारण थे। एक तो था विश्वव्यापी मन्दी और दूसरा हर्टाग समिति की सिफारिशो के अनुसार कमजोर स्कूलो का खात्मा। किन्तु समय के परिवर्तन के साथ अनिवार्य शिक्षा मे पुन. प्रगति होने लगी।

वर्तमान स्थिति

भारतीय सविधान के ४५ वें अनुच्छेद के निर्देश को क्रियान्वित करने के लिये अखिल भारतीय प्रारम्भिक शिक्षा परिषद् की स्थापना की गई जिसके मुख्य उद्देश्य केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों को सलाह देना, प्रारम्भिक शिक्षा का सिंहावलोकन करना, प्रारम्भिक शिक्षा के विस्तार तथा सुधार के लिये योजना तैयार करना, शोध और अनुसन्धान कार्य का मार्ग निर्देशन करना, शिक्षकोचित साहित्य तैयार करना, प्रारम्भिक शिक्षा का आदर्श सर्वेक्षण एव पाठ्यक्रम निर्धारण करना आदि है।

प्राथमिक शिक्षा का प्रबन्ध तीन विभिन्न सस्थाओ के हाथो मे है—राज्य की सरकार, स्थानीय बोर्ड, स्वसंचालित सस्थायें। इनका खर्चा निम्नलिखित पाँच स्रोतो से निकलता है—केन्द्रीय तथा राज्यकीय सरकारी विधि, स्थानीय बोर्ड की निधि, फीस, दान, चन्दे आदि। समय समय पर केन्द्रीय सरकार, राज्य की सरकारो को काफी रकम अनुदान के रूप मे देती रहती है। जिन क्षेत्रो मे प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य है, वहाँ वह नि.शुल्क है। गैर सरकारी स्कूलो मे फीस ली जाती है। आज भारत के लगभग एक तिहाई शहर तथा १०% गाँव अनिवार्य शिक्षा का लाभ उठा रहे हैं। यहाँ पर ध्यान रखना चाहिये कि अनेक शहरो में सब मतों मे अनिवार्य शिक्षा सम्पूर्ण क्षेत्रो मे नही वरन् कुछ अ शो मे ही जारी है।

अनिवार्य शिक्षा की समस्याएं

Q. 3. What are the main problems of compulsory education in India? Give your suggestions for solving them. *(Agra. B. T, 1961)*

Ans. अनिवार्य शिक्षा की प्रगति के मार्ग में आज भी अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित हैं जिनके कारण उसकी प्रगति पर्याप्त नही होती। (Lack of Adequate resoures)

१. राजनैतिक कठिनाइयाँ—१६४७ के बाद देश मे इतनी राजनैतिक उथल-पुथलें हुई हैं जिनके कारण न तो जनता का ही ध्यान अनिवार्य शिक्षा की ओर उतना अधिक रहा है जितना पहले था और न सरकार का ही। देशी राज्यो की स मस्या, देश का विभाजन, शरणार्थियो की समस्या, वस्तुओ के मूल्य मे वृद्धि, खाद्यान्न की कमी आदि ऐसी घटनाओ और विषम परिस्थितियों के उत्पन्न हो जाने के कारण सरकार का ध्यान अनिवार्यशिक्षा मे हट सा गया है। यद्यपि संविधान की धारा ४५ के अनुसार १० वर्ष के भीतर ही समस्त देश के बालकों के लिये १४ वर्ष तक नि-शुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की मकस्पना की गई थी किन्तु सकल्पना अब भी कल्पना मात्र बनी हुई है।

यदि हमें संविधान मे दी गई आशा को पूरा करना है तो हमे निम्नलिखित कदम उठाने होंगे—

(१) प्रत्येक राज्य तथा प्रत्येक जिला परिषद उस लक्ष्य को पाने के लिये ऐसी योजना तैयार करे जिसमे स्थानीय दशाओ और समस्याओ को ध्यान मे रखा जाय।

(२) प्रत्येक राज्य अथवा जिलापरिषद अपनी सामर्थ्य के अनुसार प्रगति करने के लिए स्वतन्त्र छोड दिया जाय और वित्तीय कठिनाइयो के कारण उसके कार्य मे अवरोध न पैदा हो।

(३) सभी शहरी क्षेत्र १६७५-७६ तक इस लक्ष्य को पूरा करने की कोशिश करें और पश्चवर्ती क्षेत्र इस समय तक कम से कम कक्षा ५ तक अनिवार्य और नि शुल्क शिक्षा का प्रबन्ध अवश्य करें।

यह कार्य आसान नही है क्योकि १६७५-७६ तक जनसख्या मे पर्याप्त वृद्धि के कारण स्कूलो मे शिक्षा पाने योग्य बालको की सख्या आज की तुलना मे २½ गुनी अधिक हो जायगी और मिडिल स्कूलो मे प्रवेश लेने वाले छात्रो की सख्या अगले २० वर्षो मे ठीक दुगुनी हो जायगी। लेकिन यदि हम प्रत्येक बच्चे को ७ वर्ष की अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा देना चाहते हैं तो हमे अन्य देशो की तरह तीन काम करने होंगे—

(i) प्रत्येक बच्चे के घर के पास ही एक स्कूल खोलना होगा जिससे उसे आने-जाने मे कठिनाई न हो।
(ii) प्रत्येक बच्चे को कक्षा १ मे प्रवेश लेने के लिए प्रचार, और कानन द्वारा बाध्य करना।
(iii) जब तक वह १४ वर्ष का न हो जाय उसे विद्यालय मे ही रोके रखना।

पहला काम लगभग पूरा हो चुका है सभी राज्यो मे जिन गाँवो की जनसख्या ३०० या उससे अधिक है एक एक प्राइमरी स्कूल खोला जा चुका है लेकिन मिडिल स्कूलो के विषय मे यह बात सही नही है। हर ५ प्राइमरी स्कूलों पर एक मिडिल स्कूल है और कुछ पिछड़े हुए राज्यो में हर १० प्राइमरी स्कूलो के पीछे केवल एक ही मिडिल स्कूल है अत इस देश मे प्रगति अभी बाकी है। लेकिन क्या प्रत्येक गाँव मे एक-एक मिडिल स्कूल स्थापित हो सकता है? मिडिल स्कूल में कम से कम तीन अध्यापको की आवश्यकता है इसलिए प्रत्येक गाँव मे मिडिल स्कूल खोलने से खर्च अधिक बढेगा। लेकिन छात्र के घर से तीन मील के दायरे मे एक न एक मिडिल स्कूल अवश्य होना चाहिए।

कक्षा १ मे सभी उन छात्रों का प्रवेश कैसे हो जिनकी आयु ६–७ वर्ष की हो? एक आदर्श देश मे आयु वर्ग ६–७ वर्ष से ६६% से ६७% बालको का कक्षा १ मे प्रवेश होना चाहिये। १६६०–६१ मे देश को केवल ४०·३% बालक ही जो ६–७ वर्ष के हैं कक्षा १ मे प्रवेश ले पाते हैं शेष बालक अन्य आयु-वर्ग के होते हैं। इस प्रकार कक्षा १ मे प्रवेश लेने वाले छात्र कई आयु वर्गों के होते हैं। इस दशा मे सुधार लाया जा सकता है यदि देश मे पूर्व-पंजीकरण [illegible]

कक्षा ४ अथवा ५ पास कर लेने के बाद यह देखा गया है कि ८५% बालक ही कक्षा ५ अथवा ६ में प्रवेश लेते हैं। १५% बालक क्यों विद्यालय छोड देते हैं? इस स्थिति के कई कारण हैं—

(१) मिडिल स्कूल का गाँव से दूर किसी अन्य बडे गाँव मे स्थित होना।
(२) माता-पिता का लडकियो को लडको के मिडिल स्कूल मे न भेजना।

(३) निःशुल्क शिक्षा का कोई प्रबन्ध न होना।

(४) बच्चे का घर के वातावरण से माता पिता का हाथ बँटाने के लिए विवश होना।

और यदि ३ मीलों के बीच एक विद्यालय स्कूल हो यदि ठीक अच्छा सामग्री के बारे जा सके, यदि पढ़ाई छोड़ने वाले बालकों के लिए अंश कालीन (Part time) शिक्षा का प्रबन्ध किया जा सके, और यदि ४ वर्ष से बाद शिक्षा निःशुल्क कर दी जाय तो ऊपर लिखी गई कठिनाइयाँ दूर हो सकेंगी। जहाँ तक लड़कियों की शिक्षा का सवाल है उनके लिए यदि अलग विद्यालय स्कूल खोल दिए जायें तो उनके माता-पिता उन्हें घर पर बिठाने की प्रवृत्ति छोड़ देंगे। इस प्रकार कक्षा ४ से भी प्रवेश सम्भावित हो सकता है।

Q. 4. Discuss the importance and objections of pre primary education

पूर्व प्राथमिक शिक्षा की आवश्यकता—पूर्व प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना सबसे पहले समाज की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने के लिये की गई थी। क्योंकि देशों में पहले बच्चों की माताएँ फैक्टरियों अथवा दफ्तरों में काम करती उनके बच्चों की देखभाल करने के लिये उन्हें पहले से स्कूल भेजे गये। लेकिन अब इन स्कूलों का महत्व इस कारण अधिक हो गया है कि प्रयोगात्मक साधन के आधार पर इस विचार को मान्यता दी जाने लगी है कि जो बच्चे पूर्व प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करते हैं वे आगे चलकर प्राथमिक विद्यालयों में अच्छे बनते हैं। साथ ही उनका मानसिक संवेगात्मक तथा शारीरिक विकास औरों की अपेक्षा उत्तम होता है। इन उन बालकों के लिये पूर्व प्राथमिक शिक्षा का आयोजन आवश्यक हो जाता है जिनके घर की दशा ऐसी नहीं है कि इस काल में उनका शारीरिक संवेगात्मक तथा मानसिक विकास ठीक प्रकार से हो सके।

पूर्व प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य :—

(i) शिशु में स्वास्थ्य सम्बन्धी अच्छी आदतों का विकास करना।

(ii) शिशु में उत्तम सामाजिक अभिवृत्तियों का विकास करना।

(iii) अपने संवेगों तथा अनुभूतियों पर काबू रखने की आदत डालना।

(iv) जिस वातावरण में वह रह रहा है उस वातावरण को समझने की उत्कण्ठा जागृत करना

(v) आत्माभिव्यक्ति के उचित अवसर प्रदान करके शिशु में स्वतन्त्रतापूर्वक सोचने विचारने और क्रिया करने की आदत का विकास करना

(vi) शिशु में अपने विचारों को स्पष्ट भाषा में व्यक्त करने की योग्यता पैदा करना

(vii) स्वस्थ शरीर का निर्माण करना

सबसे पहले सन् १९४४ में शिक्षा के केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड (Central Advisory Board of Education) ने पूर्व प्राथमिक शिक्षा की आवश्यकता की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट किया और कहा कि यदि देश में राष्ट्रीय शिक्षा का विकास करना है तो शिक्षा के इस अंक को अछूता नहीं छोड़ा जा सकता।

पूर्व प्राथमिक शिक्षा का विकास कैसे किया जाय—यद्यपि पूर्व प्राथमिक शिक्षा का प्रसार इतना अधिक महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि प्राथमिक शिक्षा को, फिर भी इस क्षेत्र में शिक्षा का उचित विकास अपेक्षित है। कोठारी कमीशन ने इस विकास के लिये निम्नलिखित सुझाव पेश किये हैं—

(१) यद्यपि कुछ शिक्षा विशारद का मत है कि यह शिक्षा पूरी तरह से प्राइवेट संस्थाओं को सौंप देनी चाहिये फिर भी कमीशन राय की है कि उसका नियन्त्रण राज्य की सरकार द्वारा किया जाय। State institute of education में पूर्व प्राथमिक शिक्षा के विकास के लिये एक यूनिट हों जो प्रत्येक जिले में अगले बीस वर्षों में एक-एक केन्द्र खोलने का प्रयास करे। इन केन्द्रों ... अध्यापकों का प्रशिक्षण, उनके कार्य का निरीक्षण तथा उनका मार्ग दर्शन,

(२) पूर्व प्राथमिक शिक्षा ...

... सहायता दी जाय

जाय और उन्हें यथा सम्भव राजकीय सहायता दी जाय

(३) पूर्व प्राथमिक शिक्षा के कम खर्चे प्रसार के लिये प्रयोग करने की सुविधा दी जाय। उदाहरण के लिये मद्रास राज्य ने स्थानीय महिला मण्डलो की सहायता से पूर्व प्राथमिक शिक्षा मे काफी प्रसार किया है।

(४) बच्चो के खेल के केन्द्र प्राथमिक स्कूलो मे खोले जायें जहाँ पर आकर छोटे-छोटे बच्चे सामूहिक खेल, गायन, कथा वाचन मे भाग लेते हैं और धीरे-धीरे प्राथमिक विद्यालय से प्रेम पैदा कर लेते हैं। उनको एक अध्यापक के अधीन छोड दिया जाता है जिसको यथोचित वेतन भी दिया जाता है।

(५) इन बच्चो के लिये माध्यमिक पाठ्यक्रम निश्चित नहीं किया जा सकता। फिर भी उनसे ऐसी क्रियाएँ कराई जा सकती हैं जो उनका सन्तुलित विकास कर सके।

(६) शिशु कल्याण विभाग (Indian Council of child welfare) और शिक्षा विभागो के कार्यों मे सहयोग और सामजस्य होना चाहिये।

Q. 5. Discuss the present position of pre-primary & nursery education in India. What are your proposals to improve the present condition in this sphere ?

भारत में पूर्व प्राथमिक शिक्षा की प्रगति का क्रमिक विकास—

अनिवार्य शिक्षा की आयु इगलैंड मे ५+से पहले की मानी जाती है इसी प्रकार भारत मे ६+से पहले की आयु को पूर्व-प्रारम्भिक शिक्षा की आयु कह सकते हैं। अन्य प्रगतिशील देशो की देखा-देखी भारत मे भी इस आयु के बालकों की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया है किन्तु धनाभाव के कारण उचित रूप से प्रशिक्षित अध्यापको के न मिलने के कारण अभी इस दिशा मे विशेष उन्नति दिखाई नही देती।

१९४७ से पूर्व इस शिक्षा का ध्यान गया ही नही था अब भी न तो राज्य की सरकार ही और न केन्द्रीय सरकार इस आयुस्तर के बालको को शिक्षा का प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व लेने के लिए तैयार हैं, इसलिए इस रिक्त स्थान की पूर्ति कुछ व्यक्तिगत सस्थाओ के द्वारा हो रही है। ये सस्थायें एंग्लोइण्डियन, एवं योरोपीय, स्कूल तथा कुछ देशीय सस्थायें हैं। कान्वेन्ट, नर्सरी, किण्डर गार्टेन, मांटेसरी, पूर्व-बेसिक, बालमन्दिर शिशुशालायें इस अवस्था के बालकों की आवश्यकताओं की पूर्ति कर रही हैं। इन सस्थाओ में काम करने के लिये प्रशिक्षित स्त्री अध्यापिकाओं की नियुक्ति हो रही है जिनका प्रशिक्षण देश के भिन्न-भिन्न राज्यो मे स्थित प्रशिक्षण महाविद्यालयो में किया जाता है।

ये विद्यालय निम्नांकित हैं।

उत्तर प्रदेश—राजकीय महिला प्रशिक्षण कालेज इलाहाबाद
मध्य प्रदेश—मांटेसरी अध्ययन मन्दिर, यवतमाल
बम्बई—बाल-अध्यापन मन्दिर, दादर, ग्राम बाल अध्यापन मन्दिर
बोडी, बाल अध्यापन मन्दिर, विल्सी पार्ले, बम्बई
मद्रास—नर्सरी टीचर्स ट्रेनिंग स्कूल वेपरी Children garden school Melapur
Arundal Training centre Adyar

प्रत्येक राज्य की सरकार मांटेसरी स्कूलो को प्रोत्साहित करके इस क्षेत्र में सराहनीय कार्य कर रही है। पूर्व प्रारम्भिक शिक्षा की प्रगति निम्न आंकडो से मापी जा सकती है।

वर्ष	व्यय	विद्यालय	अध्यापक	छात्र
१९४९—५०	१२ लाख	३०८	८६८	२८०००
१९५५—५६	११० लाख	३५००	६५००	२५०,०००

उत्तर प्रदेश मे इस स्तर की शिक्षा का क्रमिक विकास गत २० वर्षो मे दिखाई दे रहा है। तब भी ३—६ वर्ष आयु के बालको के लिये गिने चुने नगरो के अतिरिक्त कहीं भी ऐसी शिक्षा सस्थायें दिखाई नहीं देती।

प्रथम नरेन्द्रदेव कमेटी ने शिशु शिक्षा के लिए ... [illegible] ...सस्थाओं की स्थापना के लिए सिफारिश की थी। सार्जेन्ट योजना मे ... [illegible] ...शिक्षा व्यवस्था की योजना प्रस्तुत की थी किन्तु अब भी सरकार ... [illegible] ...करने का कोई

कदम नही उठाया । केवल गैर सरकारी प्रयासो को ही प्रोत्साहन देने की कृपा की है । शिशुओं को सामाजिक अनुभव तथा साधारण बातो का ज्ञान देने के लिए राज्य में कुछ संस्थायें खोली गई हैं जिनमे माण्टेसरी, नर्सरी तथा गति विधि प्रणाली (Activity method) अथवा मिली-जुली शिक्षण पद्धतियों का प्रयोग होता है । इन विद्यालयो के कार्य करने वाली शिक्षिकाओं का प्रशिक्षण करने के लिए प्रयाग में आज से दस वर्ष पूर्व नर्सरी प्रशिक्षण महाविद्यालय खोल दिया गया है।

राज्य की सरकार अभी इस अवस्था मे नहीं है कि इन सस्थाओं का भार वहन कर सके तब भी वह इस स्तर को अपनी योजनाओं के अनुसार एक महत्वपूर्ण स्थान दे देती है । अब तक इस स्तर पर प्राय एक लाख रुपया अनुदान एव साज-सज्जा तथा भवन निर्माण के लिए दे चुकी है इससे अधिक खर्च करने का अभी अवसर नहीं आया है क्योंकि राज्य कई आर्थिक सकटों से गुजर रहा है । आशा है, राज्य में इस ओर अधिक ध्यान दिया जा सकेगा ।

पूर्व प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में निराशाजनक परिस्थिति के कारण .—पूर्व प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र मे इस निराशाजनक परिस्थिति का कारण क्या है ? पहला कारण है वित्तीय साधनो की कमी और दूसरा कारण है प्राथमिक शिक्षा को इस शिक्षा की तुलना मे अधिक महत्व देने की हमारी प्रवृत्ति । तीसरा कारण यह भी है कि सभी शिक्षाविशारद इस मत को मान्यता देते हैं कि पूर्व प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में उलटा-सीधा विस्तार करने की अपेक्षा उसको ज्यों की त्यों बनाए रखना ही लाभदायक होगा क्योंकि ऐसे विस्तार से उसकी किस्म मे ह्रास हो जायगा ।

पूर्व प्राथमिक शिक्षा मे सुधार कैसे हो ?

पूर्व प्राथमिक शिक्षा मे गुणात्मक (qualitative) तथा सख्यात्मक (quantitative) सुधार लाने के लिये कोठारी कमीशन ने निम्न सुझाव पेश किये हैं—

(अ) प्रत्येक राज्य मे जो शिक्षा की राजकीय सस्थायें (State Institutes of Education) खोली गई हैं वे इन पूर्व प्राथमिक शालाओ पर पूर्ण नियन्त्रण रखे, उनके लिये शिक्षित अध्यापकों का प्रवन्ध करें, उनको मार्ग दर्शन दें, आवश्यकताओं पर रिफ्रेशर-कोर्स चलावें, स्थानीय वस्तुओ से शिक्षणोपयोगी सहायक सामग्री का सृजन करावें इत्यादि-इत्यादि ।

(ब) इन शालाओ की स्थापना तथा सचालन का कार्य प्राइवेट सस्थायें ही करें राज्य तो केवल आवश्यक वित्तीय सहायता दें ।

(स) पूर्व प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिये कम खर्चीले तरीके को अपनाया जावे । उदाहरण के लिये यदि कोई स्थानीय पढ़ी-लिखी महिला को अपने पड़ोस के शिशुओं की देख-रेख का कार्य भार सौंप दिया जाय तो खर्च मे विशेष कटौती हो सकती है । उस महिला को २-३ महीने का प्रशिक्षण भी दिया जा सकता है । दूसरा और भी तरीका है । प्रत्येक प्राइमरी स्कूल मे एक दो अध्यापकों को २-३ घण्टे के लिये शिशुओं की देखभाल का काम सौंपा जा सकता है । इन अध्यापको को कोई एलाउएन्स दिया जा सकता है उनका काम होगा बच्चो को सामूहिक गाने की प्रैक्टिस देना, मनोरजक खेल खिलाना, कहानी किस्से सुनाना, और शिशु को उसकी काल्पनिक दुनियाँ से हटाकर स्कूली वातावरण की ओर आकृष्ट करना ।

(द) राज्य का काम होगा ऐसे शिक्षकों का प्रशिक्षण का प्रबन्ध करना, उनको मार्ग दिखाना, वित्तीय सहायता देना ।

(य) पूर्व प्राथमिक शालाओ का पाठ्यक्रम होगा कुछ क्रियाओंकन समन्वय । ये क्रियायें होंगी शारीरिक, हस्तकौशल सम्बन्धी, क्रीडामय, कलात्मक, और सेवाभावमय । लेकिन अध्यापकों को पूर्ण स्वतन्त्रता है कि वे उन क्रियाओ को किस प्रकार सगठित करें ।

Q. 6 How do you account for the wastage & stagnation in Primary Education in India ?

Ans. "प्राथमिक शिक्षा जैसा कि स्वय इसके नाम से विदित है, वह आधार है, जिस पर शिक्षा की सम्पूर्ण संरचना का निर्माण किया जाता है ।" प्राथमिक शिक्षा का महत्व विश्व के समस्त देशों ने स्वीकार कर लिया है परन्तु भारत में अपव्यय एवं अवरोधन की समस्यायें इतनी असाध्य तथा व्याप्य सिद्ध हो गई हैं कि वर्तमान और निकट भविष्य में इन समस्याओं को पूर्ण रूपेण असाध्य स्वीकार किया गया है । अब हम देखेंगे कि इन समस्याओं का रूप क्या है तथा ये समस्यायें किस कारण खड़ी हो गई हैं ।

अपव्यय—प्राथमिक शिक्षा के इतिहास मे अपव्यय एक प्राचीन समस्या है परन्तु भारतीय शिक्षा के विकास की ठेकेदारी का दावा रखने वाली विदेशी सरकार इससे भिन्न होकर भी अनभिज्ञ बनी रही। १६२६ मे हर्टाग समिति (Hartog committee) ने शिक्षा के विभिन्न अगो की निष्पक्ष रूप से जाँच करके सरकार का ध्यान अपव्यय एव अवरोधन की ओर आकर्षित किया। समिति ने अपनी रिपोर्ट मे लिखा है, "अपव्यय से होने वाली हानियाँ कुछ छात्रों के अतिरिक्त प्राय सभी की साक्षरता के मार्ग मे बाधक हैं।" शिक्षा मे 'अपव्यय' शब्द का सर्वमान्य अर्थ है उन छात्रो पर समय, धन और शक्ति का अपव्यय जो सफलतापूर्वक अपनी शिक्षा को पूर्ण नही करते हैं। 'अपव्यय' अर्थ को हर्टाग समिति की रिपोर्ट मे इन शब्दों मे स्पष्ट किया गया है, 'अपव्यय से हमारा अभिप्राय है प्राथमिक शिक्षा पूर्ण होने से पूर्व बच्चो को विद्यालय की किसी भी कक्षा से हटा लेना।"

ऐसी दशा मे साक्षरता का उद्देश्य पूरा नही हो पाता क्योकि साक्षरता के लिए कम से [illegible] के कारण बालक जो [illegible] उस पर किया गया [illegible] कम से कम स्थायी रूप से पढना-लिखना सीख जाय। स्थायी रूप से पढना-लिखना सीखने का अर्थ है आवश्यकतानुसार स्थायी रूप से उससे लाभ उठाना। जो कुछ बालक ने प्राइमरी कक्षा मे सीखा है। अत यदि बीच मे ही पढ़ना-लिखना छोड कर उस सब को भुला दे जो उसने सीखा है तो शिक्षा का दुरुपयोग माना जायगा।

अपव्यय मापने की विधि—किसी स्थान विशेष की प्राथमिक शिक्षा मे अपव्यय-मापन करने के लिये प्रारम्भिक विद्यालयो का सर्वेक्षण किया जाता है। पहले तो किसी वर्ष विशेष में समस्त प्राइमरी कक्षा के विद्यार्थियों की सख्या ज्ञात कर ली जाती है फिर चार वर्ष बाद चौथी कक्षा मे कितने विद्यार्थी हैं इसकी गणना कर ली जाती है। इन दोनों सख्याओ का अन्तर ही शिक्षा मे अपव्यय होता है। इस प्रकार सन् १६४८ मे प्रतिशत अपव्यय लगभग ४६०६ था। इस प्रकार लगभग ५०% बालक ही प्राथमिक शिक्षा से लाभ उठा पाते हैं। सत्य तो यह है कि [illegible] भाग व्यर्थ जाता है। यदि [illegible] तो प्राथमिक शिक्षा मे [illegible] मिक शिक्षा को अधिक उपयोगी बनाना चाहते हैं तो हमे इस अपव्यय को रोकना होगा। परन्तु अपव्यय को रोकने का प्रयत्न करने से पूर्व हमे उसके कारणो पर विचार करना होगा।

अपव्यय के कारण—ये कारण निम्नलिखित हैं।

१. शासन सम्बन्धी
२. शैक्षिक
३. आर्थिक
४. सामाजिक तथा पारिवारिक

शासन सम्बन्धी कारणो मे दोषपूर्ण शिक्षा प्रशासन एव दोषपूर्ण शिक्षा-व्यवस्था को सम्मिलित किया जा सकता है। शैक्षिक कारणो में दोषपूर्ण पाठ्यक्रम को विशेष स्थान दिया जा सकता है।

(१) **दोषपूर्ण पाठ्यक्रम**—पाठ्यक्रम एक मार्गीय तथा कठोर है और उसमे विषयों का आधिक्य है। नगर तथा ग्राम के समस्त बालको तथा बालिकाओ को एक ही पाठ्य-क्रम का अध्ययन करना पडता है। उनकी रुचि का ध्यान नही रखा जाता है। पाठ्य-क्रम मे पुस्तकीय ज्ञान पर अधिक बल दिया गया है। बालकों के मनोवैज्ञानिक तथ्यों को ध्यान मे नही रखा जाता। पाठ्यक्रम मे विषय इतने अधिक हैं कि अल्प आयु के बालकों के लिये उन सबका अध्ययन करना सरल तथा सम्भव नहीं होता है।

(२) **दोषपूर्ण शिक्षा-प्रशासन**—अपव्यय का बहुत कुछ उत्तरदायित्व प्राथमिक शिक्षा का दोषपूर्ण प्रशासन है। यदि प्रशासक इस बात पर जोर दे कि कोई भी विद्यार्थी बिना प्राथमिक शिक्षा समाप्त किये विद्यालय नही छोड सकता है तो किसी सीमा तक यह समस्या स्वत हल हो

जायगी। दूसरे, छात्रों के विद्यालय प्रवेश की योग्यता, आयु तथा वर्ग में उपस्थिति के नियमों के सम्बन्ध में कोई निश्चित नियम नहीं है। पर्याप्त योग्यता वाले विद्यार्थी उच्च कक्षा में प्रवेश पा जाते हैं तथा वार्षिक परीक्षा में असफल होने पर विद्यालय छोड़ देते हैं। बहुत से विद्यार्थी बहुत ही छोटी आयु में विद्यालय में प्रवेश कर लेते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि एक ही कक्षा में आयु की पर्याप्त असमानता मिलती है। विद्यार्थी वातावरण को अपने अनुकूल न पाकर विद्यालय छोड़ देता है। ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित विद्यालयों में छात्रों की अनियमित उपस्थिति विशेष रूप से पाई जाती है क्योंकि वहाँ पर बालकों को घर के काम के लिए रोक लिया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि बालक पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाता है, उसकी शिक्षा में रुचि नहीं रहती है तथा वह विद्यालय छोड़ देता है। विद्यालयों की बढ़ती हुई संख्या के अनुपात में शिक्षा निरीक्षकों की संख्या में वृद्धि न होने के कारण भी प्राथमिक शिक्षा में अधिक अपव्यय पाया जाता है।

(३) दोष पूर्ण शिक्षा व्यवस्था—अधिकांश प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा का स्तर निम्न है, प्रशिक्षित अध्यापकों का अभाव है, शिक्षा उपकरण की अनुपस्थिति एक विशेषता है और स्वस्थ वातावरण में निर्मित विद्यालय भवन की कमी है। जब शिक्षा की ऐसी व्यवस्था है तब उसमें सजीवता तथा आकर्षण की आशा करना व्यर्थ है और फलस्वरूप यह कल्पना करना भी पड़ता है कि विद्यालय में प्रवेश करने वाले छात्र अपने पाठ्यक्रम को समाप्त करके ही विद्यालय से विदा लेंगे। सरकार ने स्वयं स्वीकार किया है, "विद्यालयों में अपूर्ण शिक्षा उपकरण, अवांछनीय भवन और नीरस वातावरण तथा उत्साहीन वातावरण दुर्भाग्य से छात्रों को अध्ययन करते रहने के लिये प्रभावपूर्ण प्रेरणा न प्रदान कर सके।"

(४) अभिभावकों की अशिक्षा—अभिभावक स्वयं शिक्षित न होने के कारण वे अपने बच्चों की शिक्षा का भी सांस्कृतिक एवं सामाजिक महत्व समझने में विफल रहते हैं। अतः शिक्षा को व्यर्थ समझकर वे यदि अपने बच्चों को शिक्षा उपलब्ध करने के लिए विद्यालयों में प्रविष्ट भी करा देते हैं तो भी कुछ समय पश्चात् वे उन्हें वहाँ से हटाकर किसी काम में लगा देते हैं जिससे उन्हें आर्थिक लाभ हो सके। अतः इस प्रकार प्राथमिक शिक्षा पूर्ण न करने में अपव्यय होना स्वाभाविक है। बम्बई राज्य में किये गये एक सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि पिछड़ी हुई जातियों के बच्चों में अधिक अपव्यय है। इसकी पुष्टि इस बात से भी हो जाती है कि अभी तक भारत में लगभग ८५% व्यक्ति अशिक्षित हैं।

(५) सामाजिक कारण—अल्प आयु के बालकों तथा बालिकाओं की सह-शिक्षा को सशंकित दृष्टि से देखा जाता है। यदि सौभाग्यवश वे किसी विद्यालय में प्रवेश पा चुकी हैं तो थोड़ी सी आयु अधिक हो जाने पर ही उन्हें पढ़ाई से हटा लिया जाता है। बाल-विवाह की प्रथा भी इसमें अपना सहयोग देती है।

(६) आर्थिक कारण—प्राथमिक शिक्षा में होने वाले ६० प्रतिशत अपव्यय का कारण भारतीय जनता की हीन आर्थिक दशा ही है। हमारा देश बहुत ही निर्धन है तथा गाँव वाले अपने बालकों की पढ़ाई के लिये कापी किताबों तक का प्रबन्ध नहीं कर सकते हैं। उनके सामने हमेशा यही प्रश्न रहता है कि बालकों को विद्यालय में भेजा जाय अथवा उन्हें किसी काम पर लगाया जाय। अधिकतर व्यक्ति दूसरे रास्ते को ही पसन्द करते हैं। बालिकाओं को इसलिये शिक्षित नहीं किया जाता है क्योंकि उनको शिक्षा से किसी प्रकार का आर्थिक लाभ नहीं होता है।

अवरोधन (Stagnation)—अवरोधन का अर्थ स्पष्ट करते हुए हर्टाग समिति ने लिखा है, "अवरोधन से हमारा अभिप्राय है एक बच्चे का निम्न कक्षा में एक वर्ष से अधिक रोका जाना।" "By stagnation we mean the retention in a lower class of a child for period of more than one year" इस प्रकार जो छात्र चार अथवा पाँच वर्ष की निश्चित अवधि में प्राथमिक शिक्षा पूर्ण नहीं कर पाते हैं, उन पर भी किसी अंश तक समय, धन और शक्ति का अपव्यय होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि 'अवरोधन' में आंशिक अपव्यय सदैव निहित रहता है। समिति के अन्वेषणों से व्यक्त होता है कि 'अपव्यय' की अपेक्षा 'अवरोधन' कम शक्तिशाली कारण है। अवरोधन का प्रमुख कारण परीक्षा में अनुत्तीर्ण होना है। प्राथमिक शिक्षा

प्राप्त करने वाले छात्रो मे से लगभग ४० प्रतिशत छात्रों को परीक्षा मे अनुत्तीर्ण होने के कारण एक कक्षा मे एक से अधिक वर्ष व्यतीत करना पड़ता है।

इसका तात्पर्य यह है कि पहली कक्षा मे प्राय विद्यार्थियो को दूसरी कक्षा मे जाने से रोक दिया जाता है। भारत में अवरोधन की समस्या की गम्भीरता १९२७-२८ तथा १९४४-४५ के बीच के परीक्षा फलों का विश्लेषण करने से चल सकता है।

कक्षा	अनुत्तीर्ण होने वाले बालकों का औसत	
	१९२८-३६	१९३७-४५
१	१९२८-३६	१९३७-४५
२	४१ ९८	४८ १७
३	३० ९१	३१·०९
४	३४ ५५	३१ १३
५	३२·७०	२९·९३
	४१·५३	३४·३०

प्रारम्भिक शिक्षा गति मे इस अवरोधन से कई बुरे परिणाम उत्पन्न हो जाते हैं। अनुत्तीर्ण बालको के माता-पिता का शिक्षा के प्रति उत्साह ही समाप्त हो जाता है। फलस्वरूप बहुत से माता-पिता अपने बालको को पढ़ाने से रोक देते हैं अथवा बालक ही हतोत्साहित होकर बैठ जाते हैं। इस प्रकार देश की शक्ति, धन और समय का व्यर्थ विनाश होता है। अतएव प्राथमिक शिक्षा मे इस अवरोध को रोकने के लिये सरकार और जनता को प्रयत्नशील होना पड़ेगा। यदि वह साक्षरता का विकास चाहती है। दुर्भाग्यवश न तो कभी कोई ऐसा अनुसंधान ही हुआ है और न इस दोष को दूर करने का कोई जोरदार प्रयत्न ही किया गया है।

अवरोधन की समस्या निम्नलिखित कारणों से हो रही है

(१) दोषपूर्ण परीक्षा-प्रणाली—विद्यार्थी एक वर्ष तक कक्षा मे जो कार्य करते है उस पर किसी प्रकार का भी विचार उनको उन्नति देने के समय नही किया जाता है अपितु वार्षिक शिक्षा के आधार पर जो मुख्य रूप से छात्रो की स्मरण शक्ति की कसौटी है, उनकी कक्षा उन्नति का निर्णय किया जाता है।

(२) विद्यालय प्रवेश की अनियमितता—बालको के विद्यालय प्रवेश करने के समय के बारे में कोई नियम नही है। वे किसी भी आयु मे किसी भी कक्षा मे वर्ष मे किसी भी समय विद्यालय प्रवेश पा सकते हैं। इस कारण भी अधिकतर बालक पाठ्यक्रम को अच्छी तरह नही पढ पाता है तथा वार्षिक परीक्षा मे फेल हो जाता है।

(३) पाठ्य विषयो की अधिकता—पाठ्य विषय बालक की शक्ति को ध्यान मे रखकर निश्चित नही किये जाते हैं। बहुत से विषय ऐसे भी होते हैं जो बालक को इस अवस्था मे उस रूप मे पसन्द नही होते हैं जैसे गणित, कृषि, विज्ञान इत्यादि। पाठ्य विषयो की अधिकता का परिणाम यह होता है कि बालक कुछ विशेष विषयो मे कमजोर रह जाता है तथा इसी कारण वह उच्च कक्षा मे नहीं जा पाता है।

(४) प्रभावहीन शिक्षण पद्धति—शिक्षण पद्धति प्राचीन तथा अमनोवैज्ञानिक है। इसका कारण है अयोग्य एव अप्रशिक्षित अध्यापक, उचित शिक्षण सामग्री का अभाव, कक्षाओ मे छात्रो की अधिकता इत्यादि। ऐसी परिस्थितियो मे कुछ छात्रो का अपनी कक्षा मे स्थिर हो जाना कुछ अस्वाभाविक नहीं है। अधिकतर प्राथमिक विद्यालयों मे केवल एक ही अध्यापक होता हैं।

(५) दूषित वातावरण—कक्षा मे ऐसे बालको का अभाव नहीं होता है जिनकी आदतें, व्यवहार, बातचीत करने का ढग निन्दनीय न हो। इस प्रकार के विद्यार्थी प्रतिवर्ष कक्षा मे उत्तीर्ण होने का कभी विचार भी नहीं करते हैं। इनके सम्पर्क मे आने से अन्य बालक भी इन्ही की भाँति हो जाते हैं। विद्यालयो से बाहर का वातावरण भी इस प्रकार का होता है कि बालक पढ़ाई की ओर ध्यान नहीं दे पाते है। कुछ विद्यार्थी ऐसे भी होते हैं जिनमे विद्या अध्ययन की प्रबल इच्छा होती है परन्तु उन्हें अपनी आकांक्षा को कार्य रूप मे परिणत करने का अवसर दुर्लभ हो जाता है।

(६) छात्रों की शारीरिक दुर्बलता—विशुद्ध खाद्य-पदार्थ के विलोप, पौष्टिक भोजन के अभाव और रोगों के प्रकोप के कारण भारत में और देशों की अपेक्षा अधिक अवरोधन है। दुर्बल तथा अस्वस्थ रहने के कारण वे लगातार पढ़ाई नहीं कर पाते हैं तथा परिणामतः प्रायः एक वर्ष का पाठ्यक्रम दो या उससे भी अधिक वर्षों में समाप्त करते हैं।

(७) बाल-विवाह—छोटी ही अवस्था में विवाह हो जाने से भी बालक तथा बालिकाओं की पढ़ाई मे बाधा आ जाती है, तथा वे एक ही कक्षा में कई वर्ष तक रुक जाते हैं।

हमारी आधुनिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षा व्यवस्था में निम्न परिवर्तन होने चाहिए—

इन दोषो को दूर करने के लिये हर्टाग समिति ने निम्नलिखित सिफारशें कीं—

(१) शिक्षा को ठोस करने की नीति अपनाई जाय। जिन स्कूलों में उचित शिक्षा व्यवस्था नही है उनको समाप्त कर दिया जाय।

(२) पाठ्यक्रम को अधिक उदार एवं उपयुक्त बनाया जाय ताकि वह व्यावहारिक जीवन से सम्बन्धित हो जावे। विद्यालय का समय, छुट्टियाँ और कार्यक्रम स्थानीय ऋतु और आवश्यकताओं के अनुकूल रखे जायें।

(३) प्राइमरी शिक्षा की न्यूनतम अवधि ४ वर्ष तक की रहे।

(४) शिक्षको के लिये उचित शिक्षा, प्रशिक्षण, तथा रिफ्रेशर कोर्सों की व्यवस्था की जाय। उनको काफी वेतन दिया जाय और उनकी दशा मे सुधार किया जाय।

(५) प्रारम्भिक कक्षाओं पर अधिक ध्यान दिया जाय और उन कारणों को रोका जाय, जिससे अपव्यय और अवरोधन रोका जा सके।

(६) निरीक्षण की पर्याप्त व्यवस्था के लिये निरीक्षकों की सख्या बढ़ा दी जाय।

(७) अनिवार्य शिक्षा योजना को धीरे-धीरे सोच विचार कर लागू कर दिया गया तो हानि की सम्भावना भी है। यदि एकदम शिक्षा अनिवार्य कर दी गई तो आरम्भ की कक्षाओं में बालको की सख्या बढ जायगी साथ ही टूटी-फूटी इमारतें, अयोग्य तथा अप्रशिक्षित अध्यापको के के कारण शिक्षण इतना प्रभावशाली न हो सकेगा अत. अवरोध और भी बढ सकता है।

(१) शिक्षा प्रशासन की शिक्षा व्यवस्था में सुधार—सरकार तथा स्थानीय सस्थाएँ मिलकर एक निश्चित शिक्षा प्रशासन की नीति बनाए। छात्रो के विद्यालय-प्रवेश की योग्यता, आयु तथा वर्ष मे उपस्थिति के दिवसो पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए। शिक्षा-निरीक्षकों की सख्या मे वृद्धि की जाय। प्राथमिक विद्यालयो के शिक्षा-स्तर को ऊँचा उठाया जाय, अध्यापकों को प्रशिक्षित किया जाय, शिक्षा-उपकरणों मे वृद्धि की जाय, विद्यालयों के वातावरण को आकर्षक बनाया जाय। एक अध्यापक वाले प्राथमिक विद्यालयो को समाप्त किया जाय।

(२) पाठ्यक्रम मे सुधार—प्राथमिक विद्यालयो के पाठ्यक्रम मे स्थानीय वातावरण तथा आवश्यकताओं को ध्यान मे रखकर परिवर्तन किया जाय। नगर तथा ग्राम के छात्रों के लिए अलग-अलग पाठ्यक्रम तैयार किये जायें। बालक तथा बालिकाओं की रुचियों का ध्यान रखकर विषयो का निर्धारण किया जाय। पाठ्यक्रम को रोचक, सरल एवं व्यावहारिक बनाया जाना चाहिए। हस्तकार्य पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

(३) वातावरण में परिवर्तन—छात्रों को विद्यालयो तथा उनके बाहर जिस दूषित वातावरण मे अपना समय व्यतीत करना पडता है उसमे परिवर्तन करना आवश्यक है। इस कार्य में सरकार, जनता तथा अध्यापको का पूर्ण सहयोग होना चाहिए इसका अध्यापको का सम्बन्ध है ये अपने विद्यालयो मे छात्रो पर वातावरण का निर्माण करके अपने कर्त्तव्य का पालन कर सकते हैं।

(४) नवीन एवं मनोवैज्ञानिक शिक्षण पद्धति—इसमे सफलता प्राप्त करने के लिए प्रशिक्षित अध्यापको, इच्छित शिक्षा उपकरणो तथा उत्तम विद्यालय भवनो का होना आवश्यक है।

(५) छात्रों की स्वास्थ्य उन्नति—छात्रो के मास्तिष्क के विकास के साथ ही साथ उनके स्वास्थ्य की ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। इस ओर सरकार को अधिक ध्यान

देना चाहिए क्योंकि अधिकतर बालकों के अभिभावक इस कार्य को करने में अपने को असमर्थ पाते हैं।

(६) **अभिभावकों की शिक्षा**—अभिभावक अपने बच्चो की शिक्षा का महत्व उस समय तक नहीं समझ सकते जब तक कि वे स्वय शिक्षित न हो। इसके लिए अंशकालिक विद्यालयों (Part-Time Schools) की स्थापना की जानी चाहिए। हर्ष का विषय है कि हमारी सरकार ने द्वितीय पचवर्षीय योजना पर इस पर १५ करोड रुपये की धन राशि व्यय की है।

(७) **आर्थिक कठिनाइयों का निवारण**—देश का औद्योगीकरण होना चाहिए और कृषि की पैदावार मे वृद्धि की जानी चाहिए जिससे प्रति व्यक्ति आय बढ सके तथा लोगो की आर्थिक स्थिति सुधर सके।

(८) **सामाजिक समस्याओ का समाधान**—देश की सामाजिक आर्थिक सरचना जिसमे बालक मजदूरी करते हैं अपव्यय मे योग प्रदान करने वाला एक कारण है। 'The sound-economic structure in the country in which child labour had a place was another contributory factor." वास्तव में देखा जाय तो अपव्यय तथा अवरोधन ऐसी समस्याएं हैं जिनका सम्बन्ध हमारे देश की सामाजिक तथा आर्थिक व्यवस्था से बडा घनिष्ठ है। ये समस्याएं तभी हल की जा सकती हैं जब उनको हल करने मे सरकार, जनता तथा अध्यापक सहयोग दें।

Q. 7 Analyse the causes of present wastage and Stagnation in defferent classes of primary and middle schools What measure would you adopt to offset the wastage so caused.

प्रायमिक कक्षाओं मे अपव्यय और अवरोधन की मात्रा—पहली कक्षा मे प्रवेश लेने के बाद जब बालक प्रत्येक कक्षा को पास करता जाता है तब अवरोधन नही होता और यदि वह निश्चित आयु पर विद्यालय की शिक्षा को पूरा कर लेता है तो उसकी शिक्षा मे अपव्यय नही होता। लकिन हमारे देश मे अवरोधन भी होता है और अपव्यय भी। यह अवरो धन और अपव्यय कक्षा १ मे अधिक होता है और अगली कक्षाओं मे कम। अवरोधन मात्रा कक्षा १ मे बहुत अधिक है और कक्षा २ मे वह काफी कम हो जाती है। कक्षा ३ और ४ मे अवरोधन की मात्रा लगभग समान रहती है अगली कक्षाओ मे वह और भी कम होती जाती है। लडकियों मे लडको की अपेक्षा अवरोधन अधिक होता है तथापि इस अवरोधन की मात्रा भिन्न-भिन्न राज्यो में भिन्न-भिन्न हैं। *प्राथमिक शिक्षा में अपव्यय भी कम नहीं होता।* *यद्यपि इस दिशा में अधिक व्यापक शोध कार्य* नही किया गया फिर भी शिक्षा के विचार से उन्नत महाराष्ट्र प्रदेश की शिक्षा निदेशालय की शोध कार्यरत यूनिट ने यह देखा है कि १००० बालको में से ४१४ बालक कक्षा ४ पास करने से पहले ही स्कूल छोड जाते हैं। बहुत से बालक पहली कक्षा मे प्रवेश लेने के एक वर्ष के भीतर ही छोड देते हैं कुछ पहली कक्षा में एक बार फेल होने पर विद्यालय छोड देते हैं, कुछ दो बार फेल होने पर तथा कुछ तीन बार फेल होने पर। इसी प्रकार कुछ एक अथवा दो वर्ष में कक्षा १ पास करने के बाद एक बार कक्षा २ मे असफल होने पर छोड देते हैं। कुछ २-३ वर्ष मे कक्षा १ पास करने के बाद कक्षा २ मे आते ही बैठ जाते हैं। अन्य कक्षाओ मे भी यही क्रम चलता रहता है। सभी कक्षाओं मे इसी प्रकार अपव्यय होता ही रहता है।

अपव्यय की मात्रा जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है प्राथमिक स्तर पर अधिक है। और वह भी ५६ प्रतिशत लडको के लिये है और ६२% लडकियों के लिये है। मिडिल स्कूलों मे यह व्यय लडको के लिये २४ प्रतिशत तथा लडकियो के लिये ३४% होता है। पिछले कुछ वर्षों में यद्यपि यह अपव्यय कम होता जा रहा है लेकिन फिर भी अपव्यय की इस समस्या का हल ढूंढना जरूरी है।

प्राथमिक कक्षा १ में अपव्यय और अवरोधन के कारण—

कक्षा १ मे अपव्यय और अवरोधन के विशेष कारण निम्नलिखित हैं—

(अ) कक्षा १ मे दाखिला लेने वाले छात्रों की आयु मे विषमता

(ब) सम्पूर्ण वर्ष दाखिला करते रहने की प्रवृत्ति।

(स) गैर हाजिरी का निरन्तर होते रहना।

(द) बालकों तथा विद्यालयों के पास पाठन सामग्री का अभाव।

(घ) कक्षाओं में अधिक छात्रों का होना।
(ङ) अनुपयुक्त पाठ्यक्रम।
(च) खेल द्वारा शिक्षा देने की पाठन विधियों का अभाव।
(छ) लिखना-पढ़ना सीखने वाले बालकों के लिये अनुपयुक्त पाठन विधियाँ।
(ज) कम प्रशिक्षित अध्यापक।
(झ) परीक्षा लेने के गलत ढंग।

प्राथमिक शिक्षा की इन्हीं में कुछ कमजोरियों का आसानी से दूर किया जा सकता है और कुछ को दूर करने के लिये प्रयत्न करना पड़ेगा।

अपव्यय रोकने के उपाय—अपव्यय तथा अवरोधन रोकने के लिये निम्नलिखित कार्य किये जा सकते हैं —

(१) कक्षा १ से कक्षा ४ तक की परीक्षा प्रणाली को बदलना होगा। कक्षा १ में तो परीक्षा लेने की प्रथा को बिल्कुल खत्म करना होगा। कक्षा १ में शिक्षा विधियाँ अधिकतर खेल द्वारा देने के सिद्धान्त पर आधारित होनी चाहिये और इन कक्षा को पढ़ाने वाले अध्यापकों को विशेष प्रकार का प्रशिक्षण मिलना चाहिये।

(२) दूसरी कक्षाओं के अपव्यय और अवरोधन के कारणों को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है। आर्थिक सामाजिक और शैक्षिक। ६५% अपव्यय का कारण है माता पिता की गरीबी जब तक बच्चा ५ से ६ वर्ष तक की आयु का रहता है वह घर पर माँ बाप का तंग करता है और उनके किसी काम का नहीं होता इसलिये वह स्कूल भेज दिया जाता है लेकिन १० वर्ष का होने पर वह घर के काम-काज में हाथ बटाने योग्य हो जाता है और कोई काम धन्धा भी देख सकता है। इसलिये उसे स्कूल से हटा लिया जाता है। इस परिस्थिति में सुधार तब तक सम्भव नहीं जब तक माता-पिता की आर्थिक दशा में सुधार न हो। लेकिन यदि स्कूल छोड़ने वाले इन बालकों के लिये Partime शिक्षा का प्रबन्ध कर दिया जाय तो इस समस्या का हल निकल सकता है।

प्राथमिक कक्षाओं में अपव्यय रोकने के उपाय – जो बालक कक्षा ४ पास करने से पहले ही स्कूल छोड़ देते हैं वे स्कूल में जो कुछ सीखते हैं साल दो साल में उसे भूल जाते हैं। इस प्रकार स्थायी रूप से साक्षर नहीं हो पाते। साक्षरता में वृद्धि करने तथा निरक्षरता में वृद्धि रोकने के लिये ११ से १४ वर्ष की आयु के सभी बालकों को जो किसी स्कूल में शिक्षा प्राप्त न कर रहे हों साक्षरता के लिये आयोजित कक्षाओं में प्रवेश लेना चाहिये। ऐसे बालकों के लिये प्रतिदिन १—१½ घण्टे की शिक्षा ही काफी है इस प्रकार वर्ष भर में वे साक्षरता प्राप्त कर सकते हैं। ये कक्षाएं स्कूल के अध्यापकों द्वारा स्कूल टाइम के बाद अथवा पहले स्कूल के प्रांगण में लगाई जा सकती हैं। इन अध्यापकों को अतिरिक्त कार्य के बदले में काफी पैसा मिलना चाहिये ताकि उन्हें इस कार्य में उदासीनता न हो। यदि एक स्कूल में ऐसे २० छात्र भी शिक्षा पा सकें तो उन पर उठाया गया खर्चा ४० रु० से कम पड़ेगा और अध्यापक को भी ४० रु० प्रतिमाह के पड़ जायेंगे। लेकिन इन कक्षाओं में हाजिरी अनिवार्य होनी चाहिये।

मिडिल स्कूलों की कक्षाओं में अपव्यय रोकने के उपाय—यद्यपि मिडिल स्कूलों में भी अपव्यय और अवरोधन काफी कम मात्रा में होता है फिर भी इन कक्षाओं में अपव्यय को रोकने का एक मात्र तरीका है Part-time education। जो बच्चे कक्षा ४ या ५ के बाद में स्कूल छोड़ दें और माता-पिता की गरीबी के कारण आगे न पढ़ सकें उन बच्चों के लिये शिक्षा का केवल एक यही तरीका है। ऐसे बच्चों के लिये काफी बड़े पैमाने पर Part-time education देनी होगी। इस शिक्षा में उनकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखना होगा उन्हें अधिक से अधिक व्यवसायों की शिक्षा देनी होगी और ऐसे व्यवसायों की जिनमें उनके माता-पिता लगे हैं। इन कक्षाओं में हाजिरी व्यक्ति के इच्छानुसार होनी चाहिये, अनिवार्य नहीं।

(५) अपव्यय के सामाजिक और शैक्षणिक कारण तथा उनका निराकरण :—

अपव्यय और अवरोधन के कुछ ऐसे कारण भी हैं जिनका सम्बन्ध स्कूली शिक्षा से है। कुछ विद्यालयों में पढ़ाई का प्रबन्ध अच्छा न होने के कारण बालक असफल होते रहते हैं, इस प्रकार उन्हें विद्यालय छोड़ने के लिये निराश होना पड़ता है। बहुत से माता पिता अपने ... को स्कूली शिक्षा देने की उपयोगिता नहीं समझते इसलिये जैसा कि ऊपर कहा गया है

माता पिता और अभिभावकों को स्कूली शिक्षा के लाभ बताने का प्रयत्न करना चाहिये। कक्षा ५ पास करने के बाद बहुत सी लड़कियाँ पढ़ना बन्द कर देती हैं क्योंकि उस आयु में उनके शादी सम्बन्ध पक्के होने लगते हैं। जहाँ पर लड़कियों को लड़कों के स्कूल में शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेजना पड़ता है वहाँ पर लड़कियों की पढ़ाई का रुक जाना अस्वाभाविक नहीं है। ऐसे स्कूलों में अध्यापिकाओं के न होने के कारण लड़कियाँ उनमें प्रवेश लेना पसन्द नहीं करतीं।

अपव्यय और अवरोधन के शैक्षणिक कारणों को दूर करने की जिम्मेदारी स्कूल और शिक्षा निदेशालय पर है। प्रत्येक स्कूल का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने विद्यार्थियों पर वैयक्तिक रूप से ध्यान दे। किसी बच्चे ने स्कूल आना क्यों बन्द कर दिया है यह जानने के लिये वह उसके माता-पिता से सहानुभूति पूर्ण सम्बन्ध स्थापित करें। अपव्यय और अवरोधन स्वतन्त्र बीमारियाँ नहीं हैं वे तो इस बात के चिन्ह हैं कि हमारी स्कूली शिक्षा इतनी अच्छी नहीं है कि वह बालकों को उत्कृष्ट कर सकें और उन्हें स्कूल में बने रहने दें। दूसरी बात यह है कि स्कूली शिक्षा का जीवन व्यापारों से सम्बन्ध विच्छेद-सा हो रहा है। इसलिये यदि अपव्यय और अवरोधन को रोकना है तो स्कूली शिक्षा को इतना अधिक आकर्षण मय बनाना होगा कि कोई छात्र जब तक मिडिल स्कूल पास न कर ले तब तक स्कूल छोड़ने का नाम न लें।

Q. 8 what are the main probleme of primary Compulssory education in India ? Suggest concrete programme of action for educational reconstruction in India in this area

भारत में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की समस्यायें—यदि प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य करना है तो हमें निम्नलिखित ३ समस्याओं का निदान करना होगा —

(अ) देश के सभी भागों में अनिवार्य शिक्षा की सुविधाओं का एकीकरण (Universal provision of educational facilities)।

(ब) देश के सभी १४ वर्ष से कम आयु के बालकों का विद्यालयों में दाखिला करना (Universal enrolment)।

(स) १४ वर्ष तक प्रत्येक बालक की वांछित प्रगति का प्रबन्ध करना (Universal retention)।

तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक पहली समस्या का हल ढूँढने का पूरा-पूरा प्रयास किया जा चुका है। प्रत्येक राज्य के प्रत्येक गाँव में जिसकी जनसंख्या ३०० से अधिक है, एक प्राइमरी स्कूल है, लेकिन मिडिल स्कूलों की संख्या में वांछित वृद्धि अभी तक नहीं हुई है। यह सोचा गया था कि उस योजना के अन्त तक प्रति ३ प्राइमरी स्कूलों के पीछे एक मिडिल स्कूल होगा लेकिन अभी तक देश के कुछ राज्यों को छोड़कर सभी राज्यों में मिडिल स्कूल के पीछे १० प्राइमरी स्कूल हैं। वित्तीय कठिनाइयों के कारण हम प्रत्येक गाँव में एक मिडिल स्कूल नहीं बना सकते क्योंकि एक मिडिल स्कूल के लिये कम से कम ३ अध्यापकों की जरूरत होगी और छात्रों की संख्या होगी बहुत कम। अतः तीन चार गाँवों के बीच एक गाँव में मिडिल स्कूल खोला जा सकता है जिसमें कुछ बड़ी उम्र के बच्चे आ जा सकें।

यदि हम चाहते हैं कि प्रत्येक बालक जिसकी आयु १४ वर्ष के बीच है स्कूल में पढ़ता हो तो उसका विद्यालय में उचित आयु पर नाम दाखिल होना चाहिए। दूसरे देशों में यह आयु ६-७ वर्ष है लेकिन भारत में कई कारणों से ऐसा नहीं हो सका। उदाहरण के लिए १९११ में ६-७ वर्ष के केवल १० प्रतिशत बालक ही विद्यालयों में दाखिल थे और १९६१-६२ में यद्यपि परिस्थिति काफी सुधर गई थी क्योंकि उस समय ४०% बालक विद्यालयों में दाखिल थे लेकिन अनिवार्य शिक्षा के [illegible] शतप्रतिशत बालक

[illegible] …त्येक बालक का जो ६

[illegible] और वर्ष के प्रारम्भ

[illegible] दिया जाय वे शत-

प्रतिशत ६-७ वर्ष की आयु के ही हों।

कक्षा ५ अथवा ६ में जब बालक मिडिल स्कूल में दाखिला लेता है तो केवल ८५ प्रतिशत ही उन बालकों का जो कक्षा ४ में होते हैं दाखिला लेता है। यह सोचनीय दशा है, १९%

अध्याय ६

माध्यमिक शिक्षा

माध्यमिक शिक्षा मे पुनर्संगठन—क्यों ?

Q. 1. Secondary Education in India is said to be excessive in quantity and defective in quality. Illustrate how the past policy of the Govt. of India has contributed to this state of affairs.

(Agra B. T. 1952)

Ans. माध्यमिक शिक्षा का विस्तार १९४७ से १९५७

वर्ष	स्कूल सख्या	छात्र संख्या	खर्च (करोड़ रुपये)
१९४७ ४८	१२,६९३	२६,५३,९९५	१४
१९५२-५३	२४,०५१	५६,०६,६६६	३७
१९५६-५७	३५,८३८	९३,३०,०००	५८

[illegible] स्वतन्त्रता के पश्चात् माध्यमिक शिक्षा [illegible] प्राप्ति से पहले वर्षों के आंकड़ो [illegible] प्रगति के साथ ही साथ माध्यमिक शिक्षा का स्तर गिरता गया। यही कारण है कि भारतीय माध्यमिक शिक्षा के बारे में यह कहा जाता है कि माध्यमिक शिक्षा गुणात्मक दृष्टि से गिरी हुई है।

माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार भारत की माध्यमिक शिक्षा मे निम्नलिखित दोष हैं :—

१. शिक्षा किताबी है, रूढ़िवादी है तथा इसमें छात्रो की विभिन्न रुचियों का ध्यान नही रखा जाता है। प्रत्येक विद्यार्थी दूसरे अन्य विद्यार्थियो से भिन्न होता है, यह आज एक मनोवैज्ञानिक सत्य है। हमारी माध्यमिक शिक्षा मे अभी तक इस बात की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया है।

२. इसके द्वारा एक नागरिक के आवश्यक गुण उत्पन्न नहीं किये जा रहे हैं। इससे अनुशासन तथा सहयोग की भावना जाग्रत नही होती है। यह ऐसे भी गुण उत्पन्न करने मे असफल है जिससे विद्यार्थियों में नेतृत्व की शक्ति आ जाय।

३. माध्यमिक शिक्षा मे परीक्षा पर अधिक बल दिया जाता है। विद्यालय का समस्त जीवन इससे ही प्रभावित होता है। पाठ्यक्रम अधिक भरा हुआ है। शिक्षा सामग्री का अभाव है, पढ़ाने का ढग ठीक नही है जिससे शिक्षा रुचिकर न होकर भारस्वरूप बन जाती है।

४. सब विद्यार्थियो को एक ही प्रकार का पाठ्यक्रम पढ़ना पडता है जो उन्हें केवल [illegible]

है बल्कि ग्रध्यापक भी ग्रपने गुरण नही दिखा पाते हैं। माध्यमिक शिक्षा के पश्चात् विद्यार्थी को ग्रपना भार स्वय वहन करने की शक्ति ग्रा जानी चाहिए। यदि वह विश्वविद्यालय मे जाना चाहे तो उन्हें ग्रलग से पाठ्यक्रम पढ़ना चाहिए।

५. क्योकि माध्यमिक स्तर पर विभिन्न पाठ्यक्रमों का ग्रायोजन नही है, इस कारण माध्यमिक शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् विद्यार्थियों को रोजगार खोजने मे कठिनाई पड़ती है।

६. माध्यमिक विद्यालयो की समय-तालिका, पाठ्य-पुस्तकें तथा पाठ्यक्रम इस प्रकार के है कि ग्रध्यापक ग्रपनी क्षमता का स्वतन्त्र रूप से प्रदर्शन नही कर पाता है तथा विद्यार्थियों मे भी ग्रपने ग्राप सोचने की शक्ति नही पैदा हो पाती।

७. विद्यार्थी तथा ग्रध्यापक मे, ग्रधिक बडी कक्षायें होने के कारण सम्पर्क स्थापित नही हो पाता है। यह सम्पर्क विद्यार्थी के पूर्ण विकास के लिए बहुत ही ग्रावश्यक है।

८. ग्रध्यापन व्यवसाय ठीक प्रकार के व्यक्तियों को ग्राकर्षित नही कर पाता है जो ग्रपने कार्य को ठीक प्रकार कर सकें।

६. माध्यमिक विद्यालयो मे शारीरिक शिक्षा का ठीक प्रबन्ध नही है। खेलकूद के लिए मैदान नही हैं। इस प्रकार की क्रियाग्रो का ग्रभाव है जिससे विद्यार्थी का पूर्ण विकास हो सके।

सक्षेप मे हम कह सकते हैं कि माध्यमिक शिक्षा का वास्तविक जीवन से कुछ भी सम्बन्ध नही है। जब विद्यार्थी ग्रपनी शिक्षा समाप्त करके विद्यालयो से निकलते हैं तो उन्हें रोजगार नही मिलता है तथा वे ग्रपने ग्राप को एक नवीन वातावरण मे पाते हैं जो विद्यालयो के वातावरण से बिलकुल भिन्न है। इससे उनके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास नही हो पाता है।

ग्रब हम उन कारणों का पता लगायेंगे जिनके कारण माध्यमिक शिक्षा की इतनी ग्रधिक प्रगति हुई, परन्तु उसका स्तर गिरता गया। वुड के घोषणापत्र की सिफारिशों के कारण माध्यमिक शिक्षा को विशेष प्रोत्साहन मिला। इस पत्र मे जोरदार शब्दो मे कहा गया है, "भारतीयो को पाश्चात्य लेखकों की रचनाग्रो से पूर्णत: परिचित होना पड़ेगा ताकि उन्हें यूरोपीय ज्ञान-विज्ञान की प्रत्येक शाखा की जानकारी हो सके।" सन् १८५७ मे कलकत्ता, बम्बई तथा मद्रास मे विश्वविद्यालय स्थापित हुए जिनका माध्यमिक शिक्षा पर गहरा प्रभाव पडा। मैट्रिक परीक्षा
मे विश्वविद्यालय स्थापित हुए जिनका माध्यमिक शिक्षा पर गहरा प्रभाव पड़ा। मैट्रिक परीक्षा
द्वारा विश्वविद्यालय माध्यमिक स्कूलो का पाठ्यक्रम, शिक्षण का माध्यम, ग्रध्यापन पद्धति इत्यादि का नियन्त्रण करने लगे। वुड के घोषणा-पत्र ने स्वयचालित स्कूलो के सहायतार्थ ग्राण्ट-इन-एड पद्धति के व्यापक व्यवहार का ग्रादेश दिया था। इस सरकारी ग्रनुदान-नीति के फलस्वरूप निजी स्कूलो की सख्या बढ़ने लगी। सन् १८५४ तक केवल मिशन-सस्थाग्रो के ही स्वसचालित स्कूल थे, पर बाद मे भारतीय लोगो ने भी इस प्रकार के स्कूल खोलने ग्रारम्भ कर दिये। सन् १८८२ मे भारतीयों द्वारा परिचालित माध्यमिक विद्यालयो की सख्या १,३४१ हो गई।

इस विकास के साथ ही साथ माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र मे ग्रनेक दोष ग्रा गये जो ग्राज भी दृष्टिगोचर हो रहे हैं। शिक्षा जीवन की दृष्टि से उद्देश्य-हीन हो गई। मातृभाषा के स्थान पर ग्रंग्रेजी भाषा शिक्षा का माध्यम हो गई। शिक्षको के प्रशिक्षण की ग्रोर विशेष ध्यान नहीं दिया गया। परीक्षा का ग्रसर बढ़ने लगा। पाठ्यक्रम सकुचित हो गया। ग्रौद्योगिक शिक्षा का ग्रभाव रहा।

सन् १८८२ मे हण्टर कमीशन ने माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम के विषय मे एक महत्वपूर्ण सुझाव दिया जिससे वुड के घोषणा पत्र द्वारा ग्राये दोषों को बहुत कुछ सीमा तक दूर किया गया। ग्रायोग ने कहा, "माध्यमिक शिक्षा मे दो प्रकार के पाठ्यक्रम रखे जावें (१) ग्र-कोर्स जो साधारण रूप मे साहित्यिक हो ग्रौर जिसका उद्देश्य विश्वविद्यालय मे प्रवेश पाने वाले छात्रो को तैयार करना हो ग्रौर (२) बा-कोर्स—यह व्यावहारिक तथा ग्रौद्योगिक पाठ्यक्रम हो, जिसमें व्यावहारिक तथा व्यावसायिक विषयों का समावेश हो।" सन् १८८२ से १९०२ तक माध्यमिक शिक्षा, में एक बाढ़ सी ग्रा गयी। सन् १८८२ मे माध्यमिक स्कूलो की सख्या ३,९१६ थी तथा इनमें २,१४,६७७ विद्यार्थी शिक्षा पा रहे थे। सन् १९०२ मे स्कूलो की सख्या ५,१२४ तथा उनकी छात्र सख्या ६,२२,८६८ हो गई। इस प्रकार माध्यमिक शिक्षा का विस्तार ग्रवश्य हुग्रा परन्तु ग्रधिकार एव सगठन के ग्रभाव मे कमजोर स्कूलो की ही सख्या बढ़ी।

सन् १६०४ मे सरकारी प्रस्ताव के मनुसार सभी स्वसचालित स्कूल सहायता प्राप्त तथा बिना सहायता प्राप्त सरकारी नियन्त्रण के मधीन मा गये। सरकार ने कुछ मामूली शर्तें निर्धारित की जिसका पालन सभी विद्यालयों के लिए भावश्यक था। इस प्रकार माध्यमिक शिक्षा के स्तर मे कुछ सुधार हुआ। सन् १६०४ के सरकारी प्रस्ताव की नीति के मनुसार माध्यमिक शिक्षा की गुणात्मक उन्नति हुई। परन्तु स्कूलों की बढती सख्या मे किसी प्रकार का परिवर्तन नही हुमा। सन् १६१७ मे स्कूलो की सख्या ७,६६३ हो गई।

सन् १६१७ मे भारत सरकार ने कलकत्ता विश्वविद्यालय की जाँच करने के लिए सैडलर की मध्यक्षता मे 'कलकत्ता विश्वविद्यालय कमीशन' की नियुक्ति की। इस मायोग ने सुझाव दिया कि इण्टरमीडिएट शिक्षा का प्रबन्ध विश्वविद्यालयो से हस्तान्तरित होकर एक नये प्रकार के विद्यालय मर्थात् इण्टरमीडिएट कालेजो के हाथ मे मावे। इससे भी माध्यमिक शिक्षा की प्रगति मे काफी योग मिला।

इस प्रकार हम देखते है कि माध्यमिक शिक्षा की प्रगति उत्तरोत्तर होती रही। सन् १६४८ मे मुख्य प्रान्तो के माध्यमिक स्कूलो की सख्या १२,६६३ तक पहुँच गई। श्री हेम्पटन का कहना है, "माध्यमिक शिक्षा का एक सिंहावलोकन करते समय, हमे मानना ही पडता है कि यह शिक्षा पूर्ण विकसित न हो सकी। पाठ्यक्रम नितान्त पुस्तकीय तथा सैद्धान्तिक है, विद्यार्थियो की व्यावहारिक मावश्यकतामो की मोर कुछ ध्यान नही दिया जाता है।'

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् माध्यमिक शिक्षा मे निम्न सुधार हुए हैं—(१) पाठ्यक्रम मे विविधता तथा व्यावहारिक विषयो का समावेश (२) विज्ञान मादि विषयो के मध्यापन में सुधार (३) नये प्रकार के उत्तर प्राथमिक स्कूलो का माविर्भाव (४) क्षेत्रीय भाषामो तथा राष्ट्र-भाषा की मोर मधिक सुझाव (५) व्यायाम तथा खेलकूद को प्रोत्साहन इत्यादि।

इतने विकास के फलस्वरूप भी हमे यह स्वीकार करना होगा कि भारतीय शिक्षा के क्षेत्र मे माध्यमिक शिक्षा सबसे निकम्मी है तथा इसमे मभी बहुत सुधार की मावश्यकता है।

पुनर्गठन कैसे?

Q 2 How does the new organisational pattern of Secondary Education as arranged by the second Narendra Das Committee 1953 differ from the existing pattern in U P. and the pattern suggested by Mudalior Commission.

(L. T. 1954)

Ans. माचार्य नरेन्द्रदेव कमेटी रिपोर्ट.

सन् १६४८ मे उत्तर प्रदेश की राज्य सरकार ने उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के लिये शिक्षा योजना लागू की मौर प्रथम माचार्य नरेन्द्र देव कमेटी के सुझावो को क्रियान्वित करने का प्रयत्न किया। इस कमेटी की सिफारिशें निम्नलिखित थी :—

(१) उच्चतर माध्यमिक शिक्षा की मवधि ४ वर्षों की होगी जिसमे ६, १०, ११ मौर १२ कक्षायें सम्मिलित होगी। वर्तमान स्कूलो एव इण्टर कालेजो से ३, ४, ५ कक्षामो को हटा दिया जायगा। उच्चतर माध्यमिक विद्यालय मे एक सार्वजनिक परीक्षा जूनियर हाई स्कूल के बाद तथा दूसरी १० वी कक्षा के बाद मौर मन्तिम १२ वीं कक्षा के बाद होगी। माध्यमिक विद्यालयो का पाठ्यक्रम बहुमुखी होगा जिसके साहित्यिक, वैज्ञानिक, रचनात्मक मौर कलात्मक चार प्रकार होगे। साहित्यिक एव वैज्ञानिक नीति के लिये अंग्रेजी मनिवार्य विषय रहेगा। जूनियर हाईस्कूल मे जो विद्यार्थी मंग्रेजी नही पढे हैं उनको मंग्रेजी पढाने की व्यवस्था उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो मे की जायगी।

किन्तु इन सिफारिशो पर शक्ति के साथ ममल नही किया गया। विषयो को मनिवार्य, प्रमुख, गौण के जाल मे फांस कर मध्यापकों की कठिनाइयाँ बढ़ गईं। साहित्यिक मौर वैज्ञानिक पाठ्यक्रमो के मतिरिक्त मन्य पाठ्यक्रमो पर विशेष ध्यान नही दिया गया। इन सब कारणों से प्रेरित होकर प्रान्त की सरकार ने पुन. १६५२ मे माध्यमिक शिक्षा पुनर्संगठन समिति की नियुक्ति की। इस कमिटी की सिफारिशें निम्नांकित थी :—

(१) इण्टर की १२ वीं कक्षा को डिग्री कालेज के साथ मिलाकर तीन वर्ष का डिग्री कोर्स कर दिया जाय। इण्टर माध्यमिक कक्षाओं में ६, १०, ११ की कक्षाओं का तीन वर्ष का कोर्स रखा जाय और उसके बाद में इण्टर माध्यमिक परीक्षा हो। तीन की अवधि के लिये परीक्षा के नियमों में परिवर्तन कर दिया जाय। १६ वर्ष से कम अवस्था में इण्टर माध्यमिक परीक्षा की आज्ञा न दी जाय।

(२) संस्कृत को हिन्दी के साथ अनिवार्य कर दिया जाय। हिन्दी के अतिरिक्त एक आधुनिक भारतीय भाषा एवं एक विदेशी भाषा अनिवार्य कर दी जाय। सामान्य ज्ञान को पाठ्यक्रम से हटा दिया जाय। लड़कों के लिये गणित को ६, १० में अनिवार्य कर दिया जाय और लड़कियों के लिए गृह विज्ञान। माध्यमिक शिक्षा में सुधार लाने के लिए प्राइमरी, बेसिक तथा जूनियर हाई स्कूल के पाठ्यक्रम में सुधार कर दिया जाय।

(३) टेक्नीकल स्कूलों में टेक्नीकल शिक्षा के साथ साथ सामान्य शिक्षा दी जाय। उद्योगों और शिक्षा विभाग में समन्वय स्थापित किया जाय। कुछ टेक्नीकल स्कूलों को पोलीटेक्नीक्स बना दिया जाय। जूनियर हाई स्कूलों के बाद व्यावसायिक शिक्षा के लिये अलग-अलग स्कूल हों। यह शिक्षा निःशुल्क हो।

(४) परीक्षा में सुधार लाने के लिये नये तरीके की परखें बनाई जायें। मनोवैज्ञानिक परीक्षायें लेकर बालकों की रुचि का ज्ञान प्राप्त किया जाय और शिक्षकों को इस कार्य के लिए प्रशिक्षित किया जाय। राज्य में एक मनोवैज्ञानिक शिक्षा अनुसन्धान परिषद् की स्थापना की जाय। मनोविज्ञान शिक्षा केन्द्र इलाहाबाद में एक वर्ष का प्रशिक्षण देकर मनोवैज्ञानिक जाँच एवं पथ-प्रदर्शन के लिये तैनात किया जाय। विद्यार्थियों के कार्य, योग्यता, निष्पत्ति आदि का सम्पूर्ण लेखा रखा जाय।

(५) विद्यालय संगठन में सुधार लाने के लिए विद्यालय की २०० दिन की पढ़ाई, छुट्टियों की संख्या सीमित, स्कूल प्रारम्भ होते ही १० मिनट की प्रार्थना, विद्यार्थी और शिक्षक का पारस्परिक सम्बन्ध घनिष्ट बनाने के लिए प्रति २० या ३० बालकों पर एक शिक्षक संरक्षक, अच्छे विद्यालयों के लिए पुरस्कार, शिक्षक-अभिभावक संघ की स्थापना, शारीरिक श्रम पर बल, अनुशासन हीनता रोकने के लिए छोटे-छोटे बालकों को सिनेमा से दूर रखने के प्रयत्न आदि पर ज़ोर दिया जाय।

(६) सहायता प्राप्त स्कूलों के प्रबन्ध को सुधारने के लिये प्रधानाध्यापक और शिक्षकों के एक प्रतिनिधि को प्रबन्ध समिति में रखने, प्रबन्ध समिति का चुनाव प्रति ३ वर्ष बाद करने, अध्यापकों की नियुक्ति के लिये ५ व्यक्तियों की समिति को निश्चित करने, प्रबन्ध समिति धर्म और जाति के आधार पर न रखने, शिक्षा संहिता (education code) में समयानुकूल परिवर्तन करने की सिफारिशें की गईं।

(७) कक्षा ६ से १२ तक किसी विषय की पाठ्य पुस्तकें स्वीकृत न की जावें। प्रधानाध्यापक विषयाध्यापकों के परामर्श से स्कूल के लिए पाठ्य पुस्तकें चुनें। सहायता तथा निर्देशन के लिए शिक्षा विभाग कुछ पुस्तकों की सूची प्रकाशित करे। पाठ्य पुस्तकों का निर्माण तथा प्रकाशन विशेष समितियों और संस्थाओं के द्वारा हो। एक बार चुनी हुई पुस्तक कम से कम ३ वर्ष तक चलती रहे। सरकार-पुस्तक स्वयं प्रकाशित न करे किन्तु उच्च कोटि की पुस्तकें उपलब्ध हो सकें इसकी जिम्मेदारी उसके ऊपर ही हो।

इस कमेटी की सिफारिशों ने उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा व्यवस्था में विशेष परिवर्तन लाने का प्रयत्न किया है। कृषि, वाणिज्य और कुछ टेक्नीकल विषय पाठ्यक्रम में रख लिये गए हैं। कुछ बहु-उद्देशीय स्कूल खोले गये हैं जिनमें कम से कम एक वर्ग वैज्ञानिक, कृषि, रचनात्मक या टेकनीकल रखा गया है। कुछ उच्चतर माध्यमिक स्कूलों को बहु-उद्देशीय स्कूलों में बदला जा रहा है। किन्तु अभी ३ वर्षीय डिग्री कोर्स को रखने का प्रयत्न किया गया।

मुदालियर कमीशन रिपोर्ट

Q. 3 **Evaluate the main recommendations of the Mudaliar Commission of 1953. How far have they been implemented ?**

(Agra B. T. 1959, 60, L. T. 1956)

Comment upon the view that the present system of secondary education in the gift of the British regime and need drastic changes. What modification would you like to introduce to suit our present needs ? *(Agra B. T. 1959)*

Ans किसी भी देश को शिक्षा प्रणाली की आधार शिला उसकी माध्यमिक शिक्षा होती है। प्राथमिक शिक्षा के लिए शिक्षक और उच्च शिक्षा के लिए विद्यार्थी इस प्रकार माध्यमिक स्तर से प्राप्त होते हैं जिस प्रकार किसी भवन की नीव और गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ उसकी आधार शिला से सम्बन्धित रहती हैं। इसलिए प्रत्येक प्रगतिशील राष्ट्र अपने शिक्षा भवन को मजबूत बनाने के लिये आधार शिला को मजबूत रखता है। प्रत्येक उन्नत राष्ट्र को अपनी माध्यमिक शिक्षा से ही सुयोग्य कार्यकर्त्ता मिल सकते हैं। आधुनिक मनोवैज्ञानिक युग मे किशोरावस्था की रुचियो एव प्राकृतिक शक्तियो को विकसित करने के लिये सब उन्नतिशील देश माध्यमिक शिक्षा का समुचित सगठन एव सुधार करने मे दत्तचित हो गये हैं। भारत मे केन्द्रीय शिक्षा परामर्श परिषद् (Central Education Advisory Board) ने माध्यमिक शिक्षा सगठन पर विशेष बल दिया है और इस परिषद के सुझावो के अनुसार केन्द्रीय सरकार ने सन् १९५२ मे माध्यमिक शिक्षा कमीशन (Secondary Education Commission) की नियुक्ति की। माध्यमिक शिक्षा पर यह कमीशन सबसे पहला महत्वपूर्ण कमीशन था। जिसके अध्यक्ष डा० लक्ष्मी स्वामी मुदालियर थे। इसलिये इस कमीशन को मुदालियर आयोग भी कहते हैं। इस कमीशन को भारत मे माध्यमिक शिक्षा के पूर्ण अध्ययन एव उनके पुन. सगठन और सुधार के विषय मे अपनी रिपोर्ट देनी थी। कमीशन की जाँच के विषय निम्नांकित थे।

कमीशन द्वारा जांच के विषय

(१) भारत मे माध्यमिक शिक्षा की वर्तमान दशा की जाँच सभी दृष्टिकोणो से करने के बाद उसकी रिपोर्ट तैयार करना।

(२) उसके पुनर्संगठन और सुधार के लिये निम्नांकित बातों पर अपनी सिफारिश पेश करना—(क) माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य, सगठन और विषय वस्तु का निर्धारण।

(ख) माध्यमिक शिक्षा का प्राथमिक, बेसिक और उच्च शिक्षा से सम्बन्ध।

(ग) विभिन्न प्रकार के माध्यमिक विद्यालयों का आपसी सम्बन्ध।

(घ) माध्यमिक शिक्षा से सम्बन्धित अन्य बातों का निराकरण।

कमीशन ने एक वर्ष बाद अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट मे माध्यमिक शिक्षा के दोषो, उद्देश्यों, पुनर्संगठन, भाषा सम्बन्धी नीति, विभिन्न स्तरो के पाठ्यक्रम, पाठ्य-पुस्तको के चुनाव, शिक्षा-पद्धति और चरित्र-निर्माण के विषय मे सुझाव पेश करने थे। माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद विद्यार्थियो के लिये व्यावसायिक मार्ग निर्देशन की व्यवस्था, विद्यार्थियो के स्वास्थ्य रक्षा, परीक्षाओ के दोष और उनको सुधार लेने के उपाय, अध्यापको के चुनाव और नियुक्ति के ढग, प्रशिक्षण सस्थाओं के सगठन, विद्यालयों के निरीक्षण, विद्यालयो को मान्यता प्रदान करते समय देखने योग्य बातें, माध्यमिक विद्यालय भवन, क्रीडा क्षेत्र और उसकी साज-सज्जा, विद्यालय की व्यवस्था और सचालन आदि विषयो पर मुदालियर आयोग ने अपने प्रस्ताव प्रस्तुत किये।

माध्यमिक शिक्षा के दोष

माध्यमिक शिक्षा के दोषो पर दृष्टिपात करते हुये कमीशन ने बताया कि हमारे माध्यमिक शिक्षा जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं रखती। वह एकांगी होने के कारण विद्यार्थी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व को विकसित करने मे असमर्थ है। अब तक अँग्रेजी भाषा को ही शिक्षा एव परीक्षण माध्यम होने के कारण अन्य महत्वपूर्ण विषयों को उदासीनता की दृष्टि से देखा गया है। शिक्षा पद्धतियाँ भी माध्यमिक स्कूलों मे ऐसी हैं जिनमे विचार स्वातन्त्र्य और अपनी इच्छा से कार्य करने की प्रवृत्ति का विकास नही होने पाता। माध्यमिक कक्षाओ मे साधारणत ४०-४५ विद्यार्थी प्रत्येक विद्यालय मे मिलते हैं। फलतः अध्यापक एवं शिष्यों का सम्पर्क घनिष्ठ न होने के कारण अनुशासनहीनता एव चारित्रिक अवनति के लक्षण नजर आते हैं। परीक्षा प्रणाली भी इतनी दोषपूर्ण है कि उसने शिक्षकों, पाठ्यक्रमो और शिक्षण-प्रणालियों को बिगाड़ दिया है।

माध्यमिक विद्यालयों का पाठ्यक्रम—कमीशन ने माध्यमिक शिक्षा के भिन्न-भिन्न स्तर पर जिस प्रकार के पाठ्यक्रम रखने की सिफारिश की वह नीचे दिया जाता है—

(क) माध्यमिक मिडिल स्तर पर भाषायें, सामाजिक ज्ञान, सामान्य विज्ञान, गणित, कला एवं संगीत, क्राफ्ट, शारीरिक शिक्षा।

(ख) उच्च माध्यमिक स्तर, सामान्य विज्ञान, सामाजिक ज्ञान, क्राफ्ट और भाषा को अनिवार्य रूप से पढ़ाया जाय। सामाजिक अध्ययन, विज्ञान, औद्योगिक विषय, वाणिज्य, कृषि ललितकला, और गृहविज्ञान इन सात विषयों में से किसी एक का ऐच्छिक विषय के रूप में अध्ययन कराया जाय। इस प्रकार इस स्तर पर पाठ्यक्रम बहुमुखी रखा जाय।

पाठ्य-पुस्तकों का चुनाव पाठ्य पुस्तकों को चुनने का कार्य एक स्वतन्त्र शक्तिशाली समिति द्वारा हो जो अभीष्ट पुस्तकों का मापदण्ड स्वयं निश्चित करे। एक विषय की अनेक पुस्तकें चुनी जायें। निर्धारित पाठ्य पुस्तकों को प्रायः बदलते रहने की नीति को भी छोड़ दिया जाय।

शिक्षण-पद्धति—शिक्षा पद्धति ऐसी हो जिससे ज्ञान प्रदान करने के साथ-साथ विद्यार्थियों में वांछित गुण, स्वभाव, एवं अभिरुचि का विकास भी हो। ईमानदारी के साथ किसी कार्य को कुशलता पूर्वक और पूर्णरूपेण करने की अभिलाषा तथा उसके प्रति प्रेम का विकास प्रत्येक शिक्षण पद्धति का प्रथम उद्देश्य होना चाहिये। बालकों में स्वाध्याय की प्रवृत्ति का जागरण दूसरा उद्देश्य माना जा सकता है। यह तभी हो सकता है जब अध्यापक सोद्देश्य, ठोस एवं वास्तविक परिस्थितियों एवं क्रियात्मक सिद्धान्तों द्वारा विषय वस्तु का अध्ययन करें और अध्यापन अपने विषय का मनन करने वाली तथा लेखनी द्वारा भावाभिव्यंजन करने पर विशेष बल दे। व्यक्तिगत विशेषताओं पर ध्यान देते हुये विद्यार्थियों की योग्यता के अनुसार शिक्षण करने तथा शिक्षालयों में पुस्तकालयों का उचित प्रबन्ध करने से भी शिक्षण पद्धति के उद्देश्यों की पूर्ति हो सकती है

चरित्र-निर्माण—बालकों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास के लिये उनके चरित्र का निर्माण करना आवश्यक है। अतः विद्यालय के प्रत्येक कार्यक्रम में चरित्र-निर्माण की शिक्षा का अवसर दिया जाय। इस प्रकार शिक्षा का उत्तरदायित्व प्रत्येक अध्यापक पर हो। अपने शिष्यों से अधिक से अधिक सम्पर्क स्थापित कर वह उन्हें अपने व्यवहार, आचरण, और कार्यों से प्रभावित करता रहे।

स्वशासन (Self-government), सामूहिक संगठित खेलों (organised group games), स्काउटिंग, एन० सी० सी०, प्राथमिक-चिकित्सा (First-aid) तथा अन्य पाठ्यक्रम सहगामिनी क्रियाओं को उचित तरीके से प्रोत्साहित करके विद्यालय अपने बालकों में चारित्रिक गुणों का विकास करे। नैतिक शिक्षा और विशेष परिस्थितियों में धार्मिक शिक्षा देकर भी चरित्र निर्माण किया जा सकता है।

आलोचना

सन् १९५२-५३ का माध्यमिक शिक्षा कमीशन माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में एक महान् घटना है जिसने माध्यमिक शिक्षा को एक नया दृष्टिकोण एक नई महत्वाकांक्षा और एक नई स्फूर्ति प्रदान की है। इस कमीशन की कतिपय निजी विशेषतायें हैं जो नीचे दी जाती हैं—

(१) कमीशन ने पहली बार शिक्षा के उद्देश्यों को देश की माँग के अनुरूप निर्धारित करने का आदेश दिया है। इस प्रकार वह देश, समाज और शिक्षा के बीच सामञ्जस्य स्थापित करता है।

(२) बहुउद्देशीय विद्यालयों की स्थापना का सुझाव देकर शिक्षा का आधार अधिक मनोवैज्ञानिक बनाने का प्रयत्न किया है। बालकों की वैयक्तिक विभिन्नताओं, उनकी रुचियों, शक्तियों, क्षमताओं एवं योग्यताओं का विकास करके शिक्षा का आधार मनोवैज्ञानिक बना दिया है।

(३) टेक्नीकल शिक्षा के विद्यालयों को उद्योग केन्द्रों एवं कारखानों के समीप खोलने का सुझाव देकर टेक्नीकल शिक्षा को अधिक व्यावहारिक और जीवनोपयोगी बनाने का प्रयत्न किया है।

(४) शिक्षा में उसके कर्म प्रधान तत्व पर बल देकर शिक्षा को अनुभव के आधार पर प्राप्त करने की नई सूझ दी है। इस प्रकार ज्ञान को अधिक सक्रिय विधि से प्राप्त किया जा सकता है।

(५) बालकों के चरित्र विकास पर बल देकर कमीशन ने शिक्षक का ध्यान उसके महान उत्तरदायित्व की ओर आकर्षित किया है।

(६) कमीशन ने पहली बार शैक्षणिक एवं व्यावसायिक मार्ग निर्देश का मौलिक सुझाव देकर शिक्षा में अपव्यय को कम करने का प्रयत्न किया है।

(७) कमीशन ने पहली बार परीक्षण प्रणाली के दोषों की ओर जनता का ध्यान देकर निबन्धात्मक परीक्षाओं के स्थान पर नवीन प्रकार की परीक्षाओं को अधिक महत्व प्रदान किया है।

(८) अध्यापक जो इस समय शक्तिहीन, धनहीन और समाज में एक कमजोर व्यक्ति है उसके वेतन एव सम्मान की वृद्धि के विषय में अमूल्य सुझाव देकर फिर से उसे नवस्फूर्ति देने का प्रयत्न किया है।

वर्तमान माध्यमिक स्कूलों का ढांचा

Q. 4 What is the structure of High School and Higher Secondary education in your province ? State how is it related to University education ?

(Agra B. T. 1950)

How should secondary education be related to primary education on the one hand and university education on the other ?

(Agra B. T. 1955)

Ans. साधारणत: माध्यमिक स्कूलों की शिक्षावधि सात वर्ष होती है। इस अवधि को हम दो भागों में बाँट सकते हैं—(१) मिडिल या प्रवर बुनियादी या अवर माध्यमिक प्रकरण जहाँ ११-१३ वयोवर्ग के विद्यार्थीगण अध्ययन करते हैं और (२) हाईस्कूल जहाँ १३-१६ वयोवर्ग के छात्रगण शिक्षा पाते हैं। यह अवश्य है कि यह व्यवस्था पूरे देश में एक सी नहीं है। प्रत्येक राज्य की अपनी-अपनी विशेषता है। बहुधा मिडिल स्कूल हाई स्कूलों में ही मिले रहते हैं। हमारे प्रान्त में भी अधिकतर ऐसा ही होता है। गाँवों में अधिकतर हाई स्कूल पाये जाते हैं तथा शहरों में अधिकतर हाई स्कूल में ही मिडिल स्कूल मिले रहते हैं। परन्तु यह बात नहीं है कि शहरों में बिलकुल ही मिडिल स्कूल न हों। म्यूनिसिपैलिटी द्वारा बहुत से मिडिल स्कूल भी शहरों में चलाये जाते हैं।

माध्यमिक शिक्षा आयोग की सिफारिशों के फलस्वरूप हाल ही में कुछ नये प्रकार के माध्यमिक स्कूल खुल गये हैं। वे ये हैं—उच्चतर माध्यमिक स्कूल तथा उत्तर बुनियादी स्कूल। उच्चतर माध्यमिक स्कूल की अवधि किसी राज्य में तीन वर्ष और किसी में चार वर्ष है। इनके अतिरिक्त, अनेक स्कूलों को बहुउद्देश्यीय स्कूलों में भी बदला जा रहा है। हमारे प्रान्त में उच्चतर माध्यमिक स्कूल की अवधि अभी तक चार वर्ष ही है। मिडिल अथवा माध्यमिक विद्यालय से पास होने के पश्चात् छात्रों को उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में चार वर्ष के लिए ही पढ़ना पड़ता है। इसके पश्चात् उन्हें इस योग्य समझा जाता है कि वे विश्वविद्यालयों में जाकर शिक्षा ग्रहण कर सकें।

माध्यमिक शिक्षा आयोग की सिफारिशों पर कई समितियों तथा परिषदों ने विचार किया। अन्त में विश्व विद्यालयों के उपकुलपतियों की एक बैठक में (१२-१४ जनवरी १९५५) भारत की शिक्षा के ढाँचे के विषय में कुछ प्रस्ताव पास हुए। भारत सरकार ने इन प्रस्तावों को स्वीकार किया। इनके अनुसार भविष्य में शिक्षा का ढांचा साधारणतया इस प्रकार का होगा—

(१) आठ वर्ष की अवधि की अखंड बुनियादी शिक्षा—६—१४ वयोवर्ग के बच्चों के लिए।

(२) तीन वर्ष की अवधि की उच्चतर माध्यमिक शिक्षा, जिससे बहुमुखी पाठ्यक्रम की व्यवस्था होगी—१४-१७ वयोवर्ग के हेतु, तथा

(३) उच्चतर माध्यमिक स्तर के पश्चात् विद्यालयों का तीन वर्षीय डिग्री कोर्स।

इस प्रकार भारत सरकार अष्टवर्षीय शिक्षा की योजना बना रही है जो कि बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्तों के अनुसार दी जायगी। इस स्तर को दो भागों में विभाजित किया जायगा—(१) प्रारम्भिक ६-११ तथा (२) निम्न माध्यमिक या प्रवर बुनियादी ११-१४। इसका कारण यह है कि भारत सरकार अभी तक केवल ६-११ वर्ष तक के विद्यार्थियों को सार्वजनीन, अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध कर सकती है तथा यह बात भी हो सकती है कि इस अवधि के पश्चात् बालक बुनियादी स्कूल में पढ़ना पसन्द न करें।

प्रारम्भिक स्तर के बाद आता है निम्न माध्यमिक या प्रवर बुनियादी (११-१४ वर्ष) और इसके पश्चात् उच्च माध्यमिक (१४-१७)। यह आवश्यक है कि उच्च माध्यमिक स्कूलों में प्रवर बुनियादी विद्यार्थीगण का बिना किसी रोक-टोक के प्रवेश होना चाहिए तथा साथ ही साथ यह भी आवश्यक है कि प्रवर बुनियादी के अधिकांश विद्यार्थीगण को उत्तर बुनियादी स्कूलों में प्रवेश मिल सके। इस तरह उच्च माध्यमिक की अवधि तीन वर्ष की होगी। उच्च माध्यमिक के पाठ्यक्रम में इण्टरमीडिएट का प्रथम वर्ष सम्मिलित रहेगा।

आजकल हमारे देश के शिक्षा जगत में अनेक प्रकार के विद्यालय प्रचलित हैं। अवर तथा प्रवर बुनियादी, प्राथमिक, प्रारम्भिक, मिडिल, जूनियर माध्यमिक, हाई उच्चतर माध्यमिक, विश्व विद्यालय इत्यादि। हमें इसे देख कर आश्चर्य नहीं करना चाहिए क्योंकि अभी हमारे देश की स्थिति ही इस प्रकार की है कि कोई भी योजना एक साथ सारे देश में लागू नहीं की जा सकती है। हमें यह भली भाँति समझ लेना चाहिए कि शिक्षा के प्रमुख रूप से तीन क्रम हैं, प्रारम्भिक, माध्यमिक तथा उच्च। विश्व के समस्त देशों में इस विभाजन को स्वीकार किया जा चुका है।

इन तीनों क्रमों में एकता की बहुत आवश्यकता है। वैसे तो शिक्षा जन्म से आरम्भ होकर केवल मृत्यु के साथ ही समाप्त होनी है परन्तु सुविधा के लिए विद्यालयों में दी जाने वाली शिक्षा को तीन क्रमों में विभाजित किया गया है। पहले हम प्रारम्भिक तथा माध्यमिक शिक्षा पर विचार करें तो हमें ज्ञात होगा कि दोनों शिक्षा क्रमों की अवधि समस्त देश में एक सी नहीं है विभिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न समय की अवधि एक ही क्रम के लिए पाई जाती है। इनमें समानता लाना आवश्यक है। जबकि हमारी सरकार ने बुनियादी शिक्षा को देश की शिक्षा प्रणाली का आधार मान लिया है तो क्या कारण है कि अब भी किसी प्रान्त में प्राथमिक शिक्षा का क्रम ५ वर्ष का है तथा किसी में केवल चार वर्ष का।

इसके पश्चात् माध्यमिक शिक्षा आती है। इसकी अवधि में भी असमानता है। माध्यमिक शिक्षा आयोग ने सिफारिश की है कि चार या पाँच वर्ष की प्राथमिक अथवा अवर बुनियादी शिक्षा के बाद माध्यमिक शिक्षा आरम्भ हो तथा इस शिक्षा के दो चरण हों—(१) मिडिल अथवा अवर माध्यमिक अथवा प्रवर बुनियादी—तीन वर्ष की शिक्षा और (२) उच्चतर माध्यमिक—४ वर्ष की शिक्षा। इस विचार को कार्यान्वित करने के लिए निम्नलिखित सुझाव भी दिये हैं—

१. माध्यमिक शिक्षा की वय अवधि ११ से १७ वर्ष हो।
२. उच्चतर माध्यमिक के चार वर्ष के पाठ्यक्रम में इण्टरमीडिएट प्रथम वर्ष सम्मिलित हो।
३. द्वितीय वर्ष डिग्रीकोर्स में जोड़ दिया जाय। इस प्रकार डिग्रीकोर्स तीन वर्ष का कर दिया जाय।
४. उच्चतर माध्यमिक शिक्षा की समाप्ति के पश्चात् किसी भी व्यावसायिक शिक्षण में प्रवेश किया जा सके।
५. जब तक माध्यमिक हाई स्कूल का नया ढाँचा कार्यान्वित न हो तबतक पुराने हाई स्कूल जारी रखे जावें। इन स्कूलों से सफली भूत विद्यार्थियों के लिए कालेज में एक वर्ष का पूर्व-विश्व विद्यालय पाठ्यक्रम आयोजित किया जाय।

माध्यमिक शिक्षा का सीधा सम्बन्ध विश्वविद्यालय की शिक्षा से है। आजकल जो विश्वविद्यालय की शिक्षा का स्तर गिरता जा रहा है उसका कारण हमारे माध्यमिक विद्यालयों का निम्न स्तर है। माध्यमिक शिक्षा की अवधि में एक वर्ष जोड़ने का मुख्य उद्देश्य यही है कि माध्यमिक शिक्षा की पूरी क्षमता बढ़े तथा कालिजों में अधिक योग्य व तैयार विद्यार्थी आयें। राधाकृष्णन् आयोग का यह सुझाव था कि वर्तमान इन्टरमीडिएट का एक वर्ष का स्थान उच्चतर माध्यमिक विद्यालय ले परन्तु ऐसा करने से शिक्षा की अवधि एक वर्ष बढ़ जाती थी। इसका भार माता-पिता को सहन करना पड़ता था। इसी कारण जब कुछ सोच विचार कर माध्यमिक शिक्षा आयोग ने यह सुझाव दिया है कि इन्टरमीडिएट का एक वर्ष हाई स्कूल में मिला दिया जाये तथा दूसरा वर्ष डिग्री कोर्स के साथ मिला दिया जाय।

अन्त में हमें यह भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि शिक्षा के तीनों क्रम प्रारम्भिक, माध्यमिक तथा उच्च एक दूसरे से भली प्रकार सम्बन्धित हैं। जब तक विद्यार्थी प्रारम्भिक शिक्षा काल को अच्छी तरह नहीं व्यतीत करता वह माध्यमिक शिक्षा में सफल नहीं हो सकता है। इसके साथ ही हमारे देश की उच्च शिक्षा का स्तर हमारी माध्यमिक शिक्षा पर ही निर्भर है।

Q. 5. Can we adopt one single pattern of education for the whole country ? What have been the weaknesses of the pattern of education as suggested by Mudaliar commission.

शिक्षा का ढाँचा किस प्रकार का हो इस प्रश्न पर समय समय पर नियुक्त किये गये शिक्षा आयोगो ने सिफारिशें पेश की। फलस्वरूप भिन्न-भिन्न राज्यो मे भिन्न-भिन्न प्रकार के ढाँचो का निर्माण हुआ। सभी शिक्षा विशारदो का मत है कि शिक्षा जगत् मे इस प्रकार वैभिन्य शीघ्र ही अन्त हो जाना चाहिए। यदि हम शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाना चाहते है तो सम्पूर्ण देश के सभी राज्यो मे शिक्षा का ढाँचा एक हो। सभी राज्यो मे बालको को शिक्षा देने की अवधि एक ही हो, और विभिन्न स्तरो मे शिक्षाकाल समान हो।

मुदालियर कमीशन रिपोर्ट को कार्यान्वित किये जाने के फलस्वरूप देश के कुछ राज्यों ने उच्चतर माध्यमिक ढाँचा स्वीकार किया, कुछ ने उसे बिल्कुल स्वीकार नही किया और कुछ स्वीकार कर लेने के उपरान्त पूर्व स्थिति पर वापिस हो गये। गत दस वर्ष के भीतर देश के एक चौथाई हाईस्कूल ही उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो मे परिवर्तित हुए। इनमे से कुछ मे तो अवतर भी आवश्यक सुविधाओ का एकत्रीकरण नही हो सका है। फलत इन २५% प्रतिशत विद्यालयों मे भी समानता नही है।

यद्यपि उच्चतर माध्यमिक ढाँचे मे ५ वर्ष प्राथमिक, ३ वर्ष निम्न माध्यमिक, ३ वर्ष उच्च माध्यमिक शिक्षा के लिये नियत किये गये थे लेकिन फिर भी विभिन्न राज्यों मे वस्तुस्थिति भिन्न-भिन्न है जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट हो सकता है—

	निम्न प्राथमिक	उच्च प्राथमिक	उच्चतर माध्यमिक	प्रथम स्नातकी	योग
उत्तर प्रदेश	५	३	२	२	१२
उड़ीसा	५	२	५	३	१५
मैसूर	४	३	४	३	१४
मद्रास	५	३	४	३	१५
मध्य प्रदेश	५	३	३	३	१४
केरल	४	३	३+२	३	१५

मुदालियर कमीशन द्वारा स्वीकृत उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के ढाँचे की कमियाँ—

उच्चतर माध्यमिक शिक्षा का यह ढाँचा जिसकी सिफारिश माध्यमिक शिक्षा आयोग द्वारा की गई थी और कुछ राज्यों द्वारा जिसको अपना भी लिया गया था निम्नलिखित दोषों के कारण त्याज्य समझकर छोड भी दिया गया—

(१) उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं (९-१०-११) मे समन्वित पाठ्यक्रम अपनाये जाने पर अनावश्यक व्यय और विस्तार हुआ क्योंकि जो बालक पाचवी कक्षा के बाद किसी पेशे मे जाना चाहता था उसे ११ वी कक्षा के बाद ही उस पेशे मे जाने का मौका मिल सकता था।

(२) इस ढाँचे को अपनाये जाने पर यह आशा व्यक्त की गई थी कि शिक्षा का स्तर ऊँचा उठेगा लेकिन यह आशा निराशा मे बदल गई क्योकि योग्य अध्यापक कम वेतन क्रम के कारण या तो इन विद्यालयो मे सेवा करने से सकुचाते है और या समान वेतन मिलने पर भी उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो मे सेवा करना अपनी हीनता समझते हैं।

(३) जिन राज्यो मे यह ढाँचा स्वीकार किया गया उनमे इन्टरमीडियेट कालेजो को डिग्री कालेजो मे तथा सभी हाईस्कूलो को हायर सैकेण्डरी मे बदल दिया गया यहाँ तक कि ग्रामीण क्षेत्रो मे जो स्कूल दसवी कक्षा तक अच्छी तरह चल रहे थे उच्च माध्यमिक ढाँचे को अपनाने पर उनकी दशा बिगड हो गई, सुधरी नही।

उच्चमाध्यमिक ढाँचे की असफलता का मुख्य कारण कुछ विद्वानो के विचार से यह है कि देश ने इस ढाँचे को मन से स्वीकार नही किया। यदि देश के सभी राज्यो ने इस ढाँचे को मन से स्वीकार किया होता तो ऐसी असन्तोषजनक स्थिति पैदा न होती। राष्ट्रीय एकता बनाने तथा शिक्षास्तर को ऊँचा उठाने के उद्देश्य से तो सभी राज्यों को शिक्षा का एक सा ही ढाँचा स्वीकार करना चाहिये था लेकिन जिस देश मे विभिन्न राज्य समान रूप से विकासशील न हो उस देश मे एक से ढाँचे का स्वीकार कर लेना पिछडे हुए क्षेत्रो के लिए हानिकर भी सिद्ध हो सकता है।

Q. 6. "There is direct relationship between lengthening of the duration of schooling and standard of education" Discuss the implication of this statement

"शिक्षा की अवधि और शिक्षा के स्तर वृद्धि मे सीधा सम्बन्ध होता है शिक्षा काल जितना लम्बा होगा शिक्षा का स्तर उतना ही ऊँचा होगा।"

यदि शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाना है तो शिक्षा विशारदों के अनुसार शिक्षा की अवधि से लम्बा करना होगा इसका अर्थ यह है कि न केवल स्कूली शिक्षा की अवधि ही बढ़ानी होगी वरन् विश्वविद्यालीय शिक्षा की अवधि मे भी वृद्धि करनी होगी। विज्ञान तथा कला (Arts) की शिक्षा के स्तरो की गिरावट का मुख्य कारण उसकी अवधि का अन्य विषयो मेडीकल तथा इंजीनियरी—की शिक्षा की अपेक्षा न्यून होना है। मैडीकल तथा इजीनियर मे पहली स्नातकीय उपाधि १६ वर्ष बाद मिलती है लेकिन विज्ञान तथा कला मे यह उपाधि १४ वर्ष बाद ही मिल जाती है। अत यदि इन विषयो मे शिक्षा के स्तरो को ऊँचा उठाना है तो शिक्षा की अवधि बढानी होगी। हाईस्कूल करने के कम से कम ५ वर्ष बाद अथवा हायरसेकेण्डरी के ४ वर्ष बाद पहली डिग्री मिलनी चाहिये।

इस प्रकार का मत १९१९ के कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग, १९४८ के विश्वविद्यालय आयोग तथा १९६२ की इमोशनल इन्टीग्रेशन कमेटी ने व्यक्त किया था। १९४८ के विश्वविद्यालय आयोग ने तो यह सुझाव दिया था कि १२ वर्ष की इण्टरमीडियेट शिक्षा प्राप्त करने के ३ वर्ष बाद विद्यार्थी को पहली स्नातकीय उपाधि दी जानी चाहिये। १९६२ की इमोशनल इन्टीग्रेशन कमेटी ने तो यह स्पष्ट मत व्यक्त किया था कि हायर सेकेन्डरी की ११ वर्षीय शिक्षा के बाद ही विश्वविद्यालयीय शिक्षा आरम्भ न हो। यह शिक्षाकाल एक वर्ष और अधिक बढ़ा दिया जाय।

जिस देश की आर्थिक दशा अच्छी नही उस देश मे शिक्षा अवधि बढ़ाकर क्या शिक्षा पर व्यय और न बढ़ेगा? क्या जो ज्ञान हमे बालक को १२ वर्ष मे देना है उसे हम १० वर्ष मे नहीं दे सकते? २० वर्ष पहले जब ज्ञान राशि की मात्रा कम थी और जब व्यक्ति स्कूल के भीतर इतना नहीं सीख सकता था जितना स्कूल के बाहर सीख लेता था तब यह सोचना स्वाभाविक था कि व्यक्ति जितना ही अधिक वर्षों तक विद्यालय में रहे उतना ही अच्छा था। लेकिन अब यह स्थिति नहीं रही। अब ज्ञानक्षेत्र में इतना विस्तार हो गया है, परिपक्वता प्राप्त होनी है पूरे जीवनोपयोगी सभी ज्ञान राशि को सचित करने के लिये व्यक्ति के पास बहुत कम समय शेष रह गया है अत: कुछ विद्वानों का मत है कि स्कूली शिक्षा का पाठ्यक्रम इतना अधिक ठोस कर दिया जाय कि ९-१० वर्षों के भीतर ही आवश्यक ज्ञान सचित कर लिया जाय। लेकिन ऐसा करने के लिये बालकों की शिक्षा अल्पायु मे ही शुरू करनी होगी और उनके दिमागों पर जोर डालना

प्रदेश, बिहार, गुजरात, मद्रास, महाराष्ट्र, उड़ीसा, दादर और नागर हवेली, गोआ, डामन ड्यू और पाण्डीचेरी मे कक्षा १ को Infant class माना जाता है। लेकिन यह याद रखना चाहिये कि इन राज्यो मे विद्यालय मे प्रवेश पाने की आयु ६ वर्ष से कम होती है। कोठारी कमीशन के विचार से प्रत्येक स्कूल मे त्रिवर्षीय पूर्व प्राथमिक शिक्षा का प्रबन्ध होना चाहिये। लकिन यह तभी सम्भव है जब राज्य के पास वित्तीय सुविधाएँ उपलब्ध हो।

(ब) प्राथमिक शिक्षा और उसकी अवधि—यह शिक्षा ७ और ८ वर्ष की अवधि की हो सकती है। कोठारी कमीशन के अनुसार प्राथमिक शिक्षा के दो स्तर होगे। निम्न प्राथमिक ४ वर्ष की अवधि का, और उच्च प्राथमिक ३ वर्ष की अवधि का। प्राथमिक शिक्षा से पूर्व १—३ वर्ष की पूर्व प्राथमिक शिक्षा का आयोजन आवश्यक है। प्राथमिक शिक्षा की पहली वर्ष मे छात्र की आयु ६+होनी चाहिए।

(स) निम्न माध्यमिक शिक्षा—प्राथमिक शिक्षा के उपरान्त आशा की जाती है कि लगभग २०% छात्र किसी न किसी काम धन्धे में लग जायेगे। शेष ८०% छात्रो के लिये निम्न माध्यमिक शिक्षा दी जायगी। इनमे से २०% छात्र पेशेवर पाठ्यक्रमों को अपना लेंगे और शेष ६०% छात्र सामान्य शिक्षा ग्रहण करेंगे।

निम्न माध्यमिक शिक्षा का अन्त एक वाह्य परीक्षा (External Examination) द्वारा होगा।

दस वर्षीय यह स्कूली शिक्षा सभी राज्यो में तुलनात्मक दृष्टि से समान होगी।

(द) उच्च माध्यमिक शिक्षा का परिवर्तित रूप—अब तक IX कक्षा से ही विषयो का विशिष्टीकरण होने लगता है। कोठारी कमीशन के मत से कक्षा X के बाद ही यह विशिष्टीकरण शुरू किया जाय। फलस्वरूप, उच्च माध्यमिक विद्यालयो का पाठ्यक्रम फिर से तैयार करना होगा इस प्रकार देश में दो प्रकार के उच्चतर माध्यमिक विद्यालय होगे—एक तो वे जो कक्षा १० तक की शिक्षा देंगे और दूसरे वे जो कक्षा १२ तक की विशिष्टीकृत शिक्षा का प्रबन्ध करेंगे। किसी हाई स्कूल को हायर सेकेन्डरी मे बदलते समय उसकी उपयुक्तता पर ध्यान दिया जायगा और जो हायर सैकेन्डरी स्कूल बहुत छोटे अथवा फिजूल खर्ची करने वाले होंगे उनको हाईस्कूलो मे बदल दिया जायगा। कक्षा XI में विशिष्टीकृत शिक्षा का प्रबन्ध होगा जब तक उसमे कक्षा XII नही जायेगी तब तक कक्षा XI के बाद एक और बाह्य परीक्षा होगी और जब कक्षा XII भी उसके साथ जोड दी जायगी तब यह परीक्षा कक्षा XII के बाद होगी। पूर्व विश्वविद्यालीय पाठ्यक्रम मे (Preuniversity course) को हर हालत मे विश्वविद्यालयो मे उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो के स्तर पर लाया जायगा।

पूर्व विश्वविद्यालीय पाठ्यक्रम को उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो मे स्थानान्तरित करने के निम्नलिखित विशेष कारण हैं —

(१) जब उच्चतर माध्यमिक विद्यालय खोले गये थे तब कक्षा XII को विश्वविद्यालयों के साथ जोड दिया गया था और यह सोचा गया था कि पूर्व विश्वविद्यालीय (Preuniversity course) को पूरा कर लेने के उपरान्त विद्यार्थी उच्च शिक्षा पाने योग्य हो जायेगा। लेकिन यह प्रबन्ध न तो छात्रो के लिये ही हितकर सिद्ध हुआ और न विश्वविद्यालयो के लिये ही। चूंकि इस कक्षा मे विश्वविद्यालयों के ४०% छात्र प्रवेश पा रहे हैं इसलिये विश्वविद्यालयो से बहुत कुछ धन और शक्ति इस कक्षा को चलाने में खर्च होती है। छात्रो के लिये यह पाठ्यक्रम अनुपयुक्त सिद्ध हुआ क्योंकि उनको अल्पायु में ही विश्वविद्यालयो मे प्रवेश करना पड़ता है और ऐसी अमनोवैज्ञानिक विधियो से अध्ययन करना पड़ता है जो उनकी दिमागी शक्ति से बाहर है।

(२) उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो के लिये भी यह स्थिति नुकसानदायक है क्योकि जब से उनसे यह कक्षा छुडा ली गई है तब से अच्छे अध्यापक का उनमे अभाव हो गया है साथ ही सुविधाओ में कटौती की जा चुकी है।

Q 8 Discuss the main problems of expansion of secondary education in India at present.

माध्यमिक शिक्षा का प्रसार—यद्यपि प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि बालक के गाँव मे अथवा उसके गाँव के अति निकटवर्ती गाँव में एक प्राइमरी और थोड़ी सी दूर पर एक मिडिल स्कूल हो, परन्तु माध्यमिक शिक्षा के प्रसार के लिए यह सिद्धान्त

लागू नहीं हो सकता। उचित आकार के ऐसे माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना ही पर्याप्त है जो आर्थिक दृष्टि से कम खर्चीले और उपयोगी हों। इस समय देश में कई ऐसे माध्यमिक विद्यालय हैं जो बहुत खर्चीले और अनावश्यक हैं, किसी भी माध्यमिक विद्यालय की प्रत्येक कक्षा में जो आर्थिक दृष्टि से अच्छा हो कम से कम दो सेक्शन और प्रत्येक सेक्शन में कम से कम ४० छात्र होने चाहिए। इस प्रकार माध्यमिक कक्षाओं में कम से कम २४०-३०० के बीच छात्रों की संख्या होनी चाहिए। अतः छोटी और आर्थिक दृष्टि से हीन ऐसी संस्थाओं को तोड़ देना चाहिए। साधारणतया *५-७ गाँवों के बीच जिनकी कुल जनसंख्या १० से १५ हजार तक हो एक माध्यमिक विद्यालय* खोला जा सकता है।

इन विद्यालयों में मिडिल स्कूल पास करने के उपरान्त सभी छात्र दाखिला लें यह असम्भव है। इन स्कूलों में कितने लोग दाखिला लें यह हमारे देश जनशक्ति (manpower) की आवश्यकता पर निर्भर होगी। माध्यमिक विद्यालयों की शिक्षा का व्यावसायीकरण करने से २०% छात्र मिडिल स्कूल के और ५०% छात्र उच्चतर-माध्यमिक स्तर के व्यावसायिक शिक्षा ग्रहण करते होंगे। माध्यमिक शिक्षा का प्रसार इस प्रकार करना होगा कि लड़कियाँ, अनुसूचित तथा पिछड़ी जातियों को छात्रवृत्ति देकर उनकी संख्या में वृद्धि हो सके। माध्यमिक स्तर पर योग्यता का अर्थ संकुचित रूप में लेकर विस्तृत और व्यापक रूप में लेना होगा और योग्य छात्रों को वित्तीय सहायता देकर उनकी माध्यमिक शिक्षा को प्रसारित करना होगा।

जहाँ तक नये माध्यमिक विद्यालयों को खोलने का प्रश्न है उनको योजनाबद्ध तरीके से खोलना होगा। प्रत्येक जिले और परिषद् की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर माध्यमिक विद्यालयों की स्थिति और संख्या निश्चित करनी होगी। प्रत्येक माध्यमिक विद्यालय में उपयुक्त अध्यापकों तथा आवश्यक सुविधाओं के प्रबन्ध पर जोर देना होगा। गत वर्षों में बहुत से ऐसे माध्यमिक विद्यालय खुल गये जिनमें न तो प्रशिक्षित अध्यापक ही हैं और न शिक्षितों के लिए आवश्यक सुविधाएँ ही जुटाई जा सकी हैं। कहीं तो कक्षाओं में छात्रों की संख्या आवश्यकता से अधिक है और कहीं बहुत कम, ऐसी सभी प्रकार की विषमताओं को कम करना होगा।

माध्यमिक शिक्षा का व्यावसायीकरण—माध्यमिक शिक्षा का यदि प्रसार करना है तो व्यावसायिक शिक्षा को प्रोत्साहन देना होगा। निम्न तालिका में कक्षा ८ से १० तक और १० से १२ तक व्यावसायिक शिक्षा पाने वाले छात्रों की संख्या का प्रतिशत दिया जा रहा है—

	कक्षा ८-१०	कक्षा १०-१२
१९५०-५१	३%	४४%
५५-५६	३%	४२%
६०-६१	२·७%	४२%
६५-६६	२·२%	४०%

दोनों स्तरों पर सामान्य शिक्षा में प्रसार होने के कारण व्यावसायिक शिक्षा में ५५-५६ से ६०-६१ में ह्रास हुआ है, भविष्य में इस ह्रास की प्रवृत्ति को रोक लगानी है और देश की व्यावसायिक उन्नति को ध्यान में रखकर निम्न स्तर पर इस प्रतिशत को अगले २० वर्षों में कम से कम २०% तथा उच्चतर पर ४०% करना होगा।

जो लड़के कक्षा ७-८ के बाद सामान्य शिक्षा छोड़कर घर-गृहस्थी के काम में लग जाते हैं उनके लिए आई० टी० आई० (Industrial Training Institute) खोलने होंगे। जो लड़के घर के काम (family business) में लग जाते हैं उनके लिए अंश कालीन आधार पर व्यावसायिक शिक्षा का प्रबन्ध करना होगा। बहुत से मिडिल स्कूल पास ग्रामीण बच्चे अपने खेत-क्यारी का प्रबन्ध करने लगते हैं उनके लिए सामान्य तथा पेशेवर शिक्षा का आयोजन करना होगा। इसी प्रकार जो लड़कियाँ, मिडिल पास करके शादी-शुदा हो जाती हैं उनको गृह-विज्ञान तथा सामान्य शिक्षा का प्रबन्ध करना होगा।

माध्यमिक स्तर पर भी व्यावसायिक शिक्षा का प्रसार करना होगा। जो लड़के पूर्णकालीन आधार (Full Time basis) पर व्यावसायिक शिक्षा ग्रहण करना चाहते हैं उनके लिए पोलीटैक्नीक खोलने होंगे जो लड़के पहले से ही इन्जीनियरिंग और कृषि के क्षेत्र में प्रवेश कर चुके हों उनके लिए शॉर्ट कन्डेन्सड कोर्स (Short Condensed Courses) चलाने होंगे ताकि वे अपनी

दक्षता का विकास कर सकें। जिन ग्राई० टी० ग्राई० संस्थाओं (Industrial Technical Institutes) में प्रवेश लेने के लिए कक्षा १० पास लोगों की जरूरत होती है उनमें शिक्षण सुविधाओं का प्रसार करना होगा।

कृषि और इंजीनियरिंग के अतिरिक्त स्वास्थ्य, वाणिज्य, प्रशासन, कुटीर उद्योग आदि में भी प्रशिक्षण देने के लिए सुविधाओं का प्रसार करना होगा। इस प्रशिक्षण की अवधि ६ मास से ३ वर्ष तक की हो सकती है।

प्रत्येक राज्य के शिक्षा विभागों में एक-एक उपविभाग ऐसा खोला जाय जो व्यावसायिक शिक्षा के प्रसार में योगदान दे सके, जो अंशकालीन और पूर्णकालीन व्यावसायिक शिक्षा का संगठन कर सके, जो भावी जनशक्ति की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर छात्रों को व्यावसायिक निर्देशन दे सके और एक ओर व्यवसाय और उद्योग तथा दूसरी ओर शिक्षा से समन्वय स्थापित कर सकें।

चूँकि सभी राज्य इस स्थिति में नहीं हैं कि वे अपने-अपने क्षेत्र में माध्यमिक शिक्षा का व्यावसायीकरण कर सकें इसलिए केन्द्र को उन्हें वित्तीय सहायता देनी होगी। जब तक केन्द्र इस ओर ध्यान नहीं देगा राज्य कुछ भी कर नहीं सकेंगे। हमें अमेरिका के अनुभव से शिक्षा ग्रहण करनी होगी जहाँ पर केन्द्रीय सहायता ने राज्यों में व्यावसायिक शिक्षा के प्रसार में आशातीत उन्नति की है।

अंशकालीन शिक्षा का प्रबन्ध—माध्यमिक शिक्षा का प्रसार करने के लिए अंशकालीन शिक्षा का भी प्रसार करना होगा। अंशकालीन शिक्षा की व्यवस्था कक्षा ९-१० तथा कक्षा ११-१२ दोनों ही स्तरों पर करनी होगी। कक्षा ८ अथवा १० पास करने के बाद बहुत से छात्र पूर्वकालीन आधार पर विद्यालयों में शिक्षा पाने के लिए प्रवेश लेने में असमर्थ होते हैं। ऐसे छात्रों के लिए अंशकालीन शिक्षा का प्रबन्ध करना होगा। रात्रिपाठशाला खोलकर ऐसे छात्रों की शिक्षा का प्रबन्ध किया जा सकता है। इन छात्रों के लिए वही विद्यालय भवन और वे ही अध्यापक प्रयुक्त किये जा सकते हैं जो दिन में पढ़ने वाले छात्रों के लिए प्रयुक्त होते हैं लेकिन अध्यापकों को उचित अतिरिक्त वेतन देना होगा। ऐसे छात्रों की संख्या कम ही होगी और उनको अपनी पेशेवर दक्षता को विकसित करने के लिए शिक्षालयों की शरण लेनी होगी। गाँवों में कृषि सम्बन्धी कोर्स चलाये जा सकते हैं जिनसे छात्रों की आधुनिकतम कृषि विषयक जानकारी को प्रोत्साहन मिल सके। उनकी कक्षाओं का संचालन कृषि पोलीटेकनिकों, कृषि की शिक्षा देने वाले माध्यमिक विद्यालयों, प्रसार-सेवा खण्डों आदि में हो सकता है।

उच्च माध्यमिक स्तर पर अंशकालीन शिक्षा के प्रोग्राम में निम्नलिखित बातों पर जोर देना होगा—जो छात्र उच्च माध्यमिक शिक्षा पाना चाहें उनके लिए अंशकालीन पाठ्यक्रमों का आयोजन, जिन लड़कों ने कक्षा १० पास करके कृषि को अपना व्यवसाय मान लिया है उनके लिए अंशकालीन कृषि प्रशिक्षण और जिन लड़कों ने किसी उद्योग धन्धे में काम करना आरम्भ कर दिया है उनके लिए उद्योग विषयक शिक्षा का आयोजन।

वर्तमान माध्यमिक स्कूलों के लिये आर्थिक सहायता

Q 1. How far is it feasible to do away with the grant-in-aid system for supporting secondary and higher scondary education in our country ?

(Agra B. T.)

Ans. भारतवर्ष में सहायता अनुदान नीति चलाने का श्रेय वुड के घोषणा-पत्र को है। उस समय यह अनुभव किया गया कि अकेले सरकार इतनी अपार जनता की शिक्षा का भार नहीं वहन कर सकती है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि जनता स्वयं इस भार को वहन करे। इस बात को ध्यान में रखते हुए वुड के घोषणापत्र में एक सहायता-अनुदान नीति को अपनाने की सिफारिश की गई। निजी प्रयत्नों में लाने का केवल यही एक सरल साधन था। सरकार को उन क्षेत्रों में सरकारी स्कूल न खोलने की सलाह दी गई जहाँ पर कि निजी प्रयत्नों तथा सरकारी सहायता के सहयोग से ऐसे स्कूल सुविधापूर्वक चलाये जा सकते थे। इससे जनता के अन्दर स्वावलम्बन की भावना पैदा की जा सकती थी। सरकार ने कुछ शर्तों की एक सूची भी

बताई जिनको पूरा करने पर ही यह सहायता मिल सकती थी। सरकार इस प्रकार के विद्यालयों का निरीक्षण कर सकती थी।

इसके पश्चात् हण्टर कमीशन ने भी इस प्रकार की नीति को अपनाने की सिफारिश की। उस समय देश के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न प्रकार के नियम लागू थे। समिति ने उन सब नियम के गुणों तथा दोषों की व्याख्या की तथा इस निष्कर्ष पर पहुँची कि निजी प्रयत्न का अधिक से अधिक प्रयोग नहीं किया जा रहा है। समिति ने यह सिफारिश की कि निजी प्रयत्नों का पूरी तरह लाभ उठाने के लिए इन नियमों को प्राइवेट विद्यालयों के मैनेजरों की सलाह से दोहराना चाहिये। पिछड़ी जाति के विद्यालयों को अधिक सहायता देनी चाहिए। सहायता की राशि स्थानीय माँग के ऊपर निर्भर होनी चाहिए। समिति के विचार से परीक्षा फल के अनुसार सहायता देने की प्रथा केवल प्राथमिक शिक्षा के लिए ठीक है उसका प्रयोग माध्यमिक स्तर पर नहीं किया जाना चाहिए। प्रत्येक प्रान्त के लिए उनकी आवश्यकताओं को देखते हुए अपना अलग नियम बनाना चाहिए तभी इस प्रकार की नीति सफल हो सकती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस समिति ने भी वुड के घोषणा पत्र की भांति सहायता-अनुदान नीति का ही समर्थन किया है।

१९०४ के सरकारी प्रस्ताव में भी इस नीति का समर्थन किया गया है तथा यह सिफारिश की गई कि प्रत्येक जिले में एक सरकारी माध्यमिक विद्यालय अवश्य होना चाहिए। प्राइवेट स्कूल सरकारी स्कूलों का मुकाबला कर सकें इसके लिए उन्हें अधिक सहायता देनी चाहिए। परीक्षा-फल के अनुसार सहायता देने की प्रथा की भी निन्दा की गई है। १९१३ के सरकारी प्रस्ताव में भी इसी नीति का समर्थन किया गया तथा इस बात की भी सिफारिश की गई कि जहाँ पर इस प्रकार के प्राइवेट स्कूल नहीं खोले जा रहे हैं वहाँ सरकार को स्वयं स्कूल खोलने चाहिए।

माध्यमिक शिक्षा का स्रोतवार खर्च का विवरण निम्न तालिका में मिलता है :—

माध्यमिक शिक्षा पर स्रोतवार कुल प्रत्यक्ष खर्च १९५५-५६

स्रोत	रकम (रुपये)	कुल खर्च का %
राजकीय निधि	२४,६८,२६,६९२	४६·६
जिला मण्डली निधि	२,४६,३०,७६५	४·७
नगर पालिका	१,०७,६१,५४४	२·०
फीस	२०,०४,६२,२६७	३७·८
दान	१,५०,३७,४५५	२·८
दूसरे स्रोत	२,६६,७८,७३०	६·८

ऊपर की तालिका से स्पष्ट है कि माध्यमिक शिक्षा का आधा खर्च स्वयं सरकार चलाती है। स्वसंचालित संस्थाओं को बहुधा राजकीय अनुदान मिलता है। केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारों तथा शिक्षा-संस्थाओं को कुछ अनुमोदित विषयों के लिए अनुदान देती है। केन्द्रीय सरकार ने प्रत्येक मद में अनावर्ती खर्च का ६६ प्रतिशत तथा आवर्तक खर्च का २५% स्वयं अनुदान के रूप में दिया है।

अन्त में हम इस विषय पर माध्यमिक शिक्षा आयोग की सिफारिशों पर विचार करेंगे। एक औद्योगिक शिक्षा कर लगाने की सिफारिश की गई जिससे औद्योगिक शिक्षा का विकास किया जा सके। राष्ट्रीय सेवाओं से जैसे डाक तार तथा रेलवे आदि से प्राप्त आय का कुछ भाग तकनीकी शिक्षा के लिए प्राप्त होनी चाहिए। धार्मिक संस्थाओं से कुछ भी धन शिक्षा के प्रसार के लिए लेना चाहिए। विद्यालय के भवनों पर किसी प्रकार का कर नहीं लगाया जाना चाहिए। विद्यालयों के लिए जो उपकरण, पुस्तकें इत्यादि खरीदी जायें उसके ऊपर भी कर नहीं लगाना चाहिए। केन्द्रीय सरकार को भी कुछ प्रत्यक्ष भार माध्यमिक शिक्षा का उठाना चाहिए ताकि हाईस्कूलों को शीघ्र से शीघ्र उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में बदला जा सके।

इस इतिहास को ध्यान में रखते हुए अब हमें यह देखना है कि क्या इस समय इस सहायता अनुदान प्रणाली को समाप्त करना उचित है। यह पहले ही देखा जा चुका है कि माध्यमिक शिक्षा का आधे से अधिक व्यय स्वयं सरकार वहन करती है। अनुदान बहुत सी मदों के लिए

प्राप्त किया जा सकता है जैसे शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए वृत्ति, विद्यार्थियों के स्वास्थ्य की परीक्षा का खर्च, अनाथ बच्चों के छात्रावासों का संचालन, स्कूल तथा छात्रावास की इमारतों के निर्माण तथा प्रसार पर खर्च, स्कूल की इमारतों, छात्रावासों तथा खेलकूद के लिए जमीन खरीदने का खर्च, हस्तकला, कला तथा कौशल के शिक्षण पर व्यय तथा निर्वाह अनुदान इत्यादि। इससे स्पष्ट है कि इस समय सहायता अनुदान प्रथा को समाप्त करना उचित न होगा।

प्रथम योजना काल मे केन्द्रीय सरकार की आर्थिक सहायता के कारण माध्यमिक शिक्षा मे अनेक सुधार किये गये। ४७० स्कूल बहुउद्देशीय स्कूलों मे बदल दिये गये। १,००२ स्कूलों को समाज शास्त्र तथा २१३ स्कूलों को विज्ञान अध्यापन की ३ गति के लिए १,१४७६ स्कूल पुस्तकालयों तथा १,११६ मिडिल स्कूलों को हस्त कला प्रारम्भ करने के उद्देश्य से केन्द्रीय अनुदान की व्यवस्था की गयी। १० प्रशिक्षण केन्द्रों और १३ प्रशिक्षण महाविद्यालयों को ग्राण्ट मिला तथा २१ संस्थाओं को माध्यमिक शिक्षा के ३१ विषयों पर शोध करने के लिए आर्थिक सहायता प्राप्त हुई। इस अनुदान प्रणाली से होने वाली इस प्रगति को ध्यान मे रखते हुए भी यह कहा जा सकता है कि इस समय अनुदान प्रणाली को समाप्त करना उचित नहीं है। इस अनुदान प्रणाली को समाप्त करने के पक्ष मे एक तर्क यह भी हो सकता है कि इस सहायता प्रणाली के कारण माध्यमिक शिक्षा का स्तर गिरता जा रहा है। बहुत से कमजोर विद्यालय इसके कारण क्षेत्र में आ रहे हैं। वास्तव में यदि गहराई से देखा जाये तो यह सहायता प्रणाली का दोष नहीं है। सरकार को सहायता प्रणाली के नियमों को कठोर करना चाहिए तथा निरीक्षण विभाग मे निरीक्षकों की सख्या अधिक करनी चाहिए ताकि उनका निरीक्षण भली-भांति किया जा सके। यदि वे विद्यालय ठीक कार्य नहीं कर रहे हैं तो उनकी सहायता समाप्त कर देनी चाहिए। यदि इसमे थोड़ा सा भी परिवर्तन कर दिया जाये तो जो कुछ बुराइयाँ दिखाई दे रही हैं वे स्वय दूर हो जायेंगी।

आज देश में माध्यमिक शिक्षा का स्वरूप निश्चित है तथा उसके स्वरूप को ठीक करने के लिए धन की आवश्यकता है। हाईस्कूलों को मुख्यतर माध्यमिक विद्यालयों में बदलना है तथा बहुउद्देशीय विद्यालयों का निर्माण करना है। इस समय यदि हम अनुदान प्रणाली समाप्त करदें तो यह सब योजनाएँ सदा के लिए मिट जायेंगी। भारत की आर्थिक स्थिति को ध्यान मे रखते हुए भी इसे अभी समाप्त नहीं करना चाहिए। यहाँ के व्यक्तियों मे सामाजिक भावना का भी अभाव है। अच्छा तो यही है कि अनुदान प्रणाली समाप्त कर दी जाय परन्तु इस समय यह करना उचित नहीं है।

बहुउद्देशीय विद्यालय

Q 6 What are the special features of a Multipurpose school as proposed by the Mudalior Commission? *(L. T. 1958)*

Ans. बहुउद्देश्यीय विद्यालयों के पीछे मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षणिक विचारधारा

आधुनिक युग में शिक्षा सगठन पर मनोविज्ञान का प्रभाव बढ़ता चला जा रहा है। ५० वर्ष पूर्व किसी एक कक्षा के बालकों के लिये एक ही प्रकार के विषय और एक-सी शिक्षण-पद्धति, एक ही पाठ्यक्रम ठीक समझा जाता था और यह मान लिया जाता था कि जो कुछ कक्षा मे पढ़ाया जा रहा है सभी को उसमे रुचि है, सभी उनसे बराबर लाभ उठा सकते हैं। किन्तु मनोवैज्ञानिक खोजों के आधार पर यह धारणा गलत साबित हो चुकी है कि सब बालकों मे विशेषतायें तथा शिक्षा की सम्भावनायें एक-सी नहीं हैं क्योंकि बहुत से क्षेत्रों मे उनकी शक्तियाँ, योग्यतायें, क्षमतायें भिन्न होती हैं। अतः यह उनका पाठ्यक्रम एकसा नहीं होना चाहिये। इस विचारधारा ने शिक्षा क्षेत्र मे एक क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित कर दिया है। वैयक्तिक विभिन्नताओं के साधारणत. दो रूप हैं—एक व्यक्ति की योग्यताओं की दूसरे व्यक्ति की योग्यताओं से विभिन्नता, एक ही व्यक्ति में उसकी भिन्न-भिन्न योग्यताओं के बीच विभिन्नता। न केवल एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों से मानसिक, शारीरिक अथवा व्यक्तित्व सम्बन्धी विशेषतायें ही रखता है वरन् उसके भीतर भी सब विशेषतायें समान मात्रा मे नहीं होतीं।

इस सत्य ने शिक्षा के स्वरूप मे आमूल परिवर्तन लाने का प्रयत्न किया है। ठीक भी है कि जब एक व्यक्ति दूसरे से भिन्न है तो उसके उपयुक्त पाठ्य-वस्तु दूसरे व्यक्ति के लिये

नहीं मानी जा सकती है और न एक के लिये उपयोगी शिक्षण विधि दूसरे के लिये उपयोगी सिद्ध हो सकती है । दोनों व्यक्तियों के लिये पाठ्य विषय या शिक्षण प्रणाली का आयोजन उनकी रुचियों, बुद्धि की मात्रा, और शारीरिक विशेषताओं को ध्यान मे रखकर करना होगा । यदि हम दोनों व्यक्तियो के लिये एक ही तरह की पाठ्य वस्तु, एक ही तरह का शिक्षण पद्धति का आयोजन भी करें तो उनकी समस्त क्षमताओं और शक्तियो को विकसित होने का मौका न मिल सकने के कारण उनकी शिक्षा अधूरी रह जायगी । यदि शिक्षा का उद्देश्य बालक के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास है तो हमे उसकी व्यक्तित्व की रुचियो, शक्तियो, योग्यता और क्षमताओं को ध्यान में रखकर पाठ्य-वस्तु का संगठन करना होगा । उसे उसी के अनुरूप पाठ्यक्रम निर्धारित करना होगा । इस प्रकार विविध प्रकार के बालकों के लिए विविध पाठ्यक्रम प्रस्तुत करना होगा ।

माध्यमिक शिक्षालयों मे विविध पाठ्यक्रम प्रस्तुत करने का एक और कारण है और वह यह है कि प्राइमरी शिक्षा के प्रसार के फलस्वरूप असंख्य बालक अपनी निजी विशेषताओं से युक्त माध्यमिक विद्यालयों मे प्रवेश पा रहे हैं । अत. इस अपार जनता की मांगों को ध्यान मे रखकर शिक्षा केवल एकमार्गी ही नहीं रह सकती उसे विविध-मार्गी अथवा बहुउद्देशीय बनाना होगा । उच्चतर माध्यमिक स्तर पर भी शिक्षा को और अधिक व्यापक एवं पूर्ण बनाना होगा ताकि ये बालक अपने रुझान के अनुकूल पेशों का चयन कर सकें । किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि शिक्षा को टेकनीकल, व्यावसायिक या वाणिज्य प्रधान ही बना दिया जाय और उसके सांस्कृतिक और व्यापक तत्व को लुप्त कर दिया जाय । शिक्षा के सांस्कृतिक व व्यापक तत्व को परम्परागत पुस्तकीय शिक्षा ही महत्व नहीं देती और न उसी के द्वारा ही व्यक्ति की गुप्त शक्तियों का विवर्धन हो सकता है वरन् व्यावसायिक अथवा क्रियात्मक विषयों का अध्ययन और अध्यापन भी व्यक्तिगत शक्तियों का विकास कर सकते हैं—इस प्रकार से व्यक्ति के बौद्धिक तथा सांस्कृतिक विकास को अवरुद्ध न करते हुए भी उसकी जीविका के आधार दृढ़ हो सकते हैं । अत: विविधमार्गी शिक्षा पुस्तक प्रधान (acadamic) शिक्षा से अधिक उपयोगी साबित हो सकती है ।

पाठ्यक्रम की विविधता पर प्रयत्न—शिक्षा में वैयक्तिक विभिन्नताओं पर अनेक बार विचार किया गया है । सन् १९३९ मे आचार्य नरेन्द्रदेव कमिटी की प्रथम रिपोर्ट मे इस बात पर बल दिया गया था कि शिक्षा मे बालकों की अपनी मांगों, योजनाओं एवं रुचियों पर ध्यान देना चाहिये । पाठ्यक्रम का विश्लेषण करने के बाद उस कमेटी ने उच्च माध्यमिक शिक्षालयों के लिये साहित्यिक, वैज्ञानिक, रचनात्मक (Constructive) एवं रागात्मक इन चार प्रकार के पाठ्यक्रमों को चालू करने का आदेश दिया था । कौनसा बालक किस पाठ्यक्रम के उपयुक्त है इसके [illegible] सुझावों के फलस्वरूप, [illegible] ा को लाभ न हुआ [illegible] नियुक्ति की जिसका [illegible] में तारादेवी मे प्रधानाध्यापकों के सम्मेलन मे भी इस बात पर जोर दिया गया और कहा गया कि पाठ्यक्रम मे विविधता लानी चाहिये और उसका इस प्रकार विस्तार किया जाना चाहिए कि उससे अलग-अलग रुचि व रुझान वाले बालकों की विविध प्रकार की मांगों की पूर्ति हो सके जिससे कि वे समाज की विविध मांगों की पूर्ति कर सकें और विश्वविद्यालयों की निरुद्देश्य भीड़ कम हो सके जो शिक्षा में बेकारी का एकमात्र कारण है ।

बहुउद्देश्यीय विद्यालयों मे व्यावसायिक शिक्षा

वर्तमान माध्यमिक शिक्षा के दोषों मे से एक महत्वपूर्ण दोष यह था जिसकी ओर मुदेलियर कमीशन ने जनता का ध्यान आकर्षित किया था, कि यह शिक्षा बालक के पूर्ण व्यक्तित्व को विकसित करने मे सहायक सिद्ध नहीं होती, माध्यमिक विद्यालय आज ऐसे विद्यालय हैं, जो एकांगी संस्थायें कही जा सकती हैं क्योंकि वे कुछ इनेगिने विषयों मे ही शिक्षा देते हैं । ये विषय शिक्षार्थियों की रुचि, योग्यता, और रुझान की ओर कुछ भी ध्यान नहीं देते । इस दोष का निराकरण करने के लिये कमीशन ने बहुमुखी अथवा बहुउद्देशीय विद्यालयों की स्थापना के लिये सुझाव रखा । क्योंकि ये विद्यालय जूनियर, सेकेंडरी अथवा सीनियर बेसिक स्टेज (stage) के अन्त में प्रत्येक विद्यार्थी को उसकी योग्यताओं और रुचियों के अनुसार पाठ्यक्रम चुनने की सुविधा प्रदान कर सकते थे । हाईस्कूल तथा हायर सेकेंडरी स्टेज पर पाठ्यक्रम मे निम्नलिखित सात ऐच्छिक विषयों का समावेश किया गया था ।

विज्ञान, Technology, कामर्स, कृषि, ललित कलायें, गृहविज्ञान और Humanities। इस प्रकार प्रत्येक विद्यार्थी को अपने व्यक्तित्व को विकसित करने के लिये एक व्यापक शैक्षणिक प्रोग्राम निश्चित किया गया।

...कर दिया कि पाठ्यक्रमों का इस ...कर देने से बालकों को व्यावसा- ...लिए निम्नलिखित शैक्षणिक सिद्धान्त पर आधारित किया जा सकता है। "The intellectual and cultural development of different individuals takes place best through a variety of media. The book or the study of traditional academic subject is not only the door to the education of the personality and that in the case of many of the children practical book, intelligently organised can unlock their talents and energies much successfully than the traditional subjects which attached themselves only to the mind or worst still the memory."

इन बहु उद्देशीय विद्यालयो का प्रोग्राम पूरी तरह से व्यावसायिक नही था। इसका झुकाव अवश्य व्यवसायो की ओर था। इन विद्यालयों से निकले विद्यार्थियो से आशा की जाती थी कि वे उच्च शिक्षा के लिए न जा सकेंगे और इन विद्यालयो की शिक्षा उनको जीविका कमाने मे अधिक मदद न कर सकेगी। इसलिए बाद मे यह सोचा गया कि बहुउद्देशीय विद्यालयो मे बालको की रुझान के अनुसार जीविका कमाने मे सहायता देने योग्य व्यवसायो मे Practical कार्य किया जाय। उदाहरण स्वरूप जो विद्यार्थी मशीन सम्बन्धी अभिरुचि के चिह्न दिखलाता है वह ऐसे technical पाठ्यक्रम को अपना समझता है। वह भले ही इस स्कूली शिक्षा के बाद इंजीनियर न बन सके लेकिन इंजीनियरिंग के क्षेत्र से इतना परिचय अवश्य प्राप्त कर सके ताकि वह स्कूल छोड़ने के बाद इंजीनियरिंग को अपना व्यवसाय चुन सके। इसी प्रकार बहुउद्देशीय विद्यालयो मे वह विद्यार्थी जो कृषि अपना विषय लेकर चलता है वह कृषि को इसलिए नही अपनाता कि उसे आगे चलकर किसान बनना है लेकिन इस उद्देश्य को लेकर अवश्य चलता है कि कृषि बहुत ही महत्वपूर्ण धन्धा है। कृषि के भिन्न-भिन्न क्षेत्रो का ज्ञान उसे समाज का उपयोगी सदस्य बना सकता है भले ही वह सफल किसान न बन सके। बहुउद्देशीय विद्यालयो के अध्यापक को प्रत्येक तकनीकी ...कि बहुउद्देशीय ...लिए तैयार नहीं ...is to provide suitable scope for the development of the special interest of the people in a comprehensive scheme of education that caters to the development of a total personality." यही कारण है कि बहुउद्देशीय विद्यालयो के पाठ्यक्रम मे मातृभाषा, सामाजिक विज्ञान, सामान्य विज्ञान और क्राफ्ट पर भी विशेष जोर दिया जाता है क्योंकि इन विषयों की शैक्षणिक महत्ता और उपयोगिता है, इन विषयो को core sucject कहा जा सकता है

...courses which will train their varied aptitudes and enable them either to take up vocation pursuits at the end of the secondary course or to gain technical institutions for further training."

कमीशन का कहना है कि बहुउद्देशीय विद्यालयों से निकले हुए विद्यार्थियों का एक बहुत बड़ा समूह उपयुक्त व्यवसाय और उद्योग में लग जायगा।

बहुउद्देशीय विद्यालय और विश्वविद्यालय का तालमेल आन्ध्र, केरल, मध्यप्रदेश, मद्रास, हिमाचल और बिहार, असम, उड़ीसा, पंजाब, राजस्थान प० बंगाल, दिल्ली और त्रिपुरा इन ११ राज्यों और दो संघीय क्षेत्रों (territories) ने माध्यमिक शिक्षा के इस नये ढाँचे को स्वीकार कर लिया है। इन राज्यों में ३ साल के डिग्री कोर्स को स्वीकार कर लिया गया है। उत्तर प्रदेश में ३ साल का डिग्रीकोर्स अभी तक स्वीकार नहीं किया गया। ऊपर जिन राज्यों के नाम गिनाये गए हैं उनमें हाई स्कूलों को हायर सेकेंडरी स्कूलों में बदल दिया गया है। बहुउद्देशीय विद्यालयों से निकले हुए छात्र महाविद्यालयों की साइंस और आर्ट्स की कक्षाओं में भर्ती हो सकते हैं। बम्बई और नागपुर विश्वविद्यालयों में विद्यार्थी सीधे ३ साल के डिग्री कोर्स पा ले सकते हैं; पंजाब में वे Engineering College में सीधा दाखिला नहीं ले सकते हैं। उत्तर प्रदेश में अभी तक इन्टर और बी० ए० की लाइनें चल रही हैं।

बहुउद्देशीय विद्यालयों में पाठ्यक्रम इस प्रकार का है कि बहुत से विद्यार्थी इधर-उधर और आकर्षित होते रहते हैं। कुछ राज्यों में कृषि, कुछ में कामर्स और कुछ में Home Science और Fine arts अधिक Popular हैं लेकिन विज्ञान लगभग सभी राज्यों में Popular विषय है। विषयों के चुनाव में माता-पिता के विचार कुछ बाधा पहुँचाते हैं। मैसूर में कृषि और Home Science का जोरों से विरोध किया गया है क्योंकि ये विषय इन प्रान्तों के निवासियों के विचार से घर पर ही पढ़ाये जा सकते हैं।

बहुउद्देशीय विद्यालयों में अध्यापकों की समस्यायें—इन विद्यालयों के अध्यापकों को विशेष प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता है। पहली पंचवर्षीय योजना में आसाम, आन्ध्र, पंजाब, प० बंगाल, उड़ीसा, मद्रास और हैदराबाद में अध्यापकों को प्रशिक्षण के लिये प्रशिक्षण विद्यालय खोले गये। कुछ राज्यों में *वर्तमान प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रयोगात्मक विषयों की शिक्षा के लिये* प्रबन्ध किया गया है। तब भी शिक्षित अध्यापकों की संख्या आवश्यकता के अनुसार बहुत ही कम है। व्यावसायिक विषयों में तो कुशल अध्यापक मिलते ही नहीं। कुछ विषयों में विश्वविद्याल प्रयोगात्मक शिक्षा देते नहीं हैं। प्रशिक्षित अध्यापकों की कमी के कारण बहुउद्देशीय विद्यालय विशेष प्रगति नहीं कर पा रहे हैं। जब तक इन अध्यापकों के वेतन में बढ़ोतरी नहीं होती और जब तक उनकी शिक्षा का उचित प्रबन्ध नहीं होता तब तक अवस्था ऐसी ही बनी रहेगी। अध्यापकों को अपनी योग्यता बढ़ाने के लिये उचित अवसर प्रदान करने की जरूरत है। जो अध्यापक Inservice की Training ले रहे हैं, उनको प्रशिक्षण के बाद कुछ न कुछ वेतन में वृद्धि कर देनी चाहिये। *Craft के अध्यापकों की कमी की पूर्ति के लिये Short Term Classes* चलाये जा सकते हैं। यदि आवश्यकता समझी जाय तो विद्यालय में Part-time Teacher भी रक्खे जा सकते हैं।

बहुउद्देशीय विद्यालयों का पाठ्यक्रम

भिन्न-भिन्न राज्यों का कहना है कि इन राज्यों का पाठ्यक्रम कुछ अधिक मालूम पड़ता है। Old Subjects को यदि कक्षा ८ तक ही पढ़ाया जावे तो उत्तम होगा। कक्षा ९-१० और ११ तक वैकल्पिक विषयों को ऊँची कक्षाओं में ५०% समय भी दिया जा सकता है।

बहुउद्देशीय विद्यालयों की कुछ और समस्यायें हैं जो इतनी महत्वपूर्ण नहीं हैं। (१) इन विद्यालयों में किस विद्यार्थी को कौन-सा विषय लेना चाहिये इसके लिये कोई निर्देशन ... (२) पाठ्य पुस्तकों की कमी है ...

Q 11. Give a critical evaluation of the Multipurpose scheme of Secondary Education in India

Ans. उस मुदालियर कमीशन के सुझाव को ध्यान में रखकर सरकार ने बहुमुखी (Multilateral) अथवा बहुउद्देशीय (*Multipurpose*) स्कूल खोले जिनमें छात्रों की विभिन्न रुचियों, योग्यताओं और लक्ष्यों के अनुकूल *विभिन्न पाठ्यक्रमों* के शिक्षण की सुविधाएँ प्रदान की

जा सकें। इन बहुउद्देशीय स्कूलो मे अथवा स्वतन्त्र रूप से तकनीकी (Technical education) शिक्षण के लिए अधिक संख्या मे स्कूल खोले जायें। इस प्रकार आयोग के सुझावों का क्रियान्वयन करने के लिए सरकार ने १६५४-५५ मे ५०० बहुउद्देशीय स्कूलो की स्थापना की। जिनमें प्रायः १००० यूनिट विभिन्न पाठ्यक्रमो की सुविधा प्राप्त की गई। इन स्कूलो मे विज्ञान, तकनीकी, कृषि, वाणिज्य ललित कला और गृह विज्ञान के पाठ्यक्रम रक्खे गये। वैसे तो क्राफ्ट, कृषि कला और विज्ञान की कक्षायें अनेक विभिन्न स्कूलो मे खोली जा चुकी थी। किन्तु प्रथम पचवर्षीय योजना मे बहुउद्देशीय और बहुमुखी शिक्षा पर काफी ध्यान दिया गया। द्वितीय पचवर्षीय योजना मे माध्यमिक शिक्षा को उन्नत बनाने के उद्देश्य से और बालको को उनकी रुचियो और सुझावों के अनुसार उचित पाठ्यक्रम देने के विचार से द्वितीय योजना के अन्त (१६६०-६१ तक) ११८७ बहुउद्देशीय स्कूलों की स्थापना हुई। इस प्रकार सरकार ने अपनी दोनो गत पचवर्षीय योजना मे बहुउद्देशीय स्कूलो की स्थापना करने का प्रयत्न किया। इन स्कूलों के खुलने का मुख्य अभिप्राय विद्यार्थियों को पाठ्यक्रम की विविधता प्रदान करना है। इन विद्यालयों का मुख्य लक्ष्य अनेक प्रकार के ऐसे पाठ्यक्रमो की सुविधा प्रदान करना है। जिससे विभिन्न उद्देश्यो, रुचियो तथा [illegible] उद्देशीय संस्था प्रत्येक [illegible] अवसर प्रदान करती [illegible]

(१) शिक्षा प्रणाली को वास्तव मे प्रजातन्त्रीय बनाने के लिए ऐसी बहुउद्देशीय स्कूलों की आवश्यकता है क्योंकि भिन्न-भिन्न पाठ्यक्रमो के पढने वाले विद्यार्थियों के बीच जो खाई स्वत खुद जाया करती है। वह खाई इन बहुमुखी विद्यालयो से भरी जा सकती है।

(२) इन विद्यालयो मे विषयो के चुनने मे उचित मार्ग निर्देशन मिल सकता है जिसके अभाव मे समाज को जो हानियाँ होती हैं, उनका लुप्तीकरण किया जा सकता है। उचित शैक्षणिक एव व्यावसायिक निर्देशन के न होने पर प्रायः व्यक्ति और समाज दोनो की हानियाँ होती हैं। इस प्रकार से विद्यालय समाज और व्यक्ति दोनो के हित के लिए उचित सुविधायें प्रदान कर सकता है।

(३) बहुमुखी विद्यालयो मे एक पाठ्यक्रम से दूसरे पाठ्यक्रम का परिवर्तन आसानी से हो सकता है। इसका तात्पर्य यह नही है कि एकमुखी माध्यमिक-शालायें व्यावसायिक शिक्षा में अथवा मार्ग निर्देशन मे दक्षता प्रदान नही कर सकती। किन्तु मुदालियर कमीशन का यह विश्वास था कि देश के अधिकाश माध्यमिक विद्यालय बहुउद्देशीय हों। इसलिए कमीशन ने नागरिको की सुविधा के लिये बहुमुखी पाठ्यक्रम की व्यवस्था पर बल दिया और इन स्कूलो मे क्रियात्मक, व्यावसायिक तथा प्राविधिक पाठ्यक्रमों के समावेश को निहायत जरूरी समझा। माध्यमिक शिक्षा आयोग ने इन विद्यालयो मे जिस प्रकार के पाठ्यक्रमो की रूप-रेखा तैयार की वह इस प्रकार है।

जूनियर हाई स्कूलों के पाठ्यक्रमों मे उन्होने मातृभाषा एव राष्ट्रभाषा हिन्दी, और अंग्रेजी अथवा अन्य किसी भाषा के पठन-पाठन पर बल दिया। इनके अतिरिक्त सामाजिक विषय, सामान्य विज्ञान, गणित, कला और संगीत, शिल्प, शारीरिक शिक्षा आदि विषयो का भी समावेश [illegible]

मानवीयशास्त्र, विज्ञान, प्राविधिक विषय, वाणिज्य विषय, कृषि विषय, ललित-कलायें और गृह विज्ञान।

अब तक जितने बहुमुखी अथवा बहुउद्देशीय विद्यालय खोले जा चुके हैं उनमे तीन अथवा [illegible]

[illegible] (limitations) के होने के कारण केवल ३-४ प्रकार की धारायें ही प्रवाहित हो सकती हैं। स्वीकृत अनावर्तक व्यय का २/३ भाग केन्द्रीय सरकार वहन करती है और शेष राज्य की सरकारें और व्यक्तिगत

अध्याय ७

विद्यालीय शिक्षा के पाठ्यक्रम में सुधार

Q 1. How far is school curriculum in India inadequate and out moded What measures do you suggest for it's revision and proper development ?

परिवर्तन क्यों—विकसित अथवा अर्ध विकसित सभी देशों में पाठ्यक्रम के विष में असन्तोष व्याप्त है। अमरीका जैसे विकसित देश में, जहाँ पर प्रगतिशील शिक्षा के प्रभाव पाठ्यक्रम में बहुत पहले आमूल परिवर्तन हो चुका, पाठ्यक्रम को पुन. बदलने के लिये एक नय आंदोलन आरम्भ हो गया है। भारत जैसे अर्ध विकसित देश में पाठ्यक्रम देश काल के अनुसा अनुपयुक्त, तथा राष्ट्र की उन्नति में बाधक माना जाने लगा। पाठ्यक्रम के प्रति इस असन्तुष्टि कारण क्या है ?

जरूरी हो गई है।

साथ ही, सभी शिक्षा विशारद माध्यमिक शिक्षा की अवधि में विस्तार लाने के पक्ष है। वे चाहते हैं कि सामान्य शिक्षा का काल कम से २ वर्ष बढ़ा दिया जाय। उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में बालक की सामान्य शिक्षा इस समय कक्षा ८ पास होने पर खत्म कर दी जात है और कक्षा ९ से विषयों का विशिष्ट अध्ययन आरम्भ हो जाता है। अध्ययन में यह विशिष्टीकरण कक्षा १० के बाद होना चाहिये। इस विचार को यदि मान्यता देनी है तो पाठ्यक्रम में परिवर्तन जरूरी हो जायगा।

तीसरे, इस समय विभिन्न विषयों की पाठ्य वस्तु में अनावश्यक रूप से विस्तार हो चुक है। बहुत सी विषय वस्तु ऐसी है जिसे आसानी से निकाला जा सकता है और उसके स्थान प आवश्यक वस्तु स्थानापन्न की जा सकती है। इन सब कारणों से स्कूली पाठ्यक्रम में परिवर्त आवश्यक हो गया है।

पाठ्यक्रम में रद्दोबदल का एक और कारण यह है कि जबकि दूसरे विकासशील देशों पाठ्य वस्तु का चयन शिक्षा के निम्नलिखित तीनों प्राप्य उद्देश्यों को ध्यान में रखकर किया जात है उस समय भारत में केवल ज्ञान की प्राप्ति पर ही जोर दिया जाता है :—

(अ) ज्ञान की प्राप्ति
(ब) दक्षताओं का विकास
(स) उचित अभिवृत्ति, रुचि और जीवन मूल्यों का विकास

शिक्षा की इस त्रिविधात्मक प्रक्रिया में हमारी स्कूली तथा उच्च स्तरीय शिक्षा केवल ए

के बाद और फिर कक्षा १२ के बाद बाह्य परीक्षाएँ लेंगे । इस उद्देश्य से उन्हें कक्षा १ से १०
के लिये सामान्य पाठ्यक्रम तथा कक्षा ११-१२ के लिये उन्नत पाठ्यक्रम तैयार करना होगा । कि
विषय मे उन्नत पाठ्यक्रम का अर्थ यही नहीं है कि उस विषय मे उच्च कक्षाओं में पढ़ाई जाने व
विषय वस्तु को समाविष्ट कर देना वरन् उस विषय के गूढ़ अध्ययन के लिये सामान्य पाठ्यक्रम
विषय वस्तु की गहराई को बढ़ाना भी है ।

जिन स्कूलों मे योग्य अध्यापक तथा उपयुक्त पाठन सामग्री का अभाव न हो और जि
उन्नत पाठ्यक्रम को अपनाने के लिए यथासम्भव सभी प्रकार की सुविधाएँ हों, उन स्कूलो मे उ
पाठ्यक्रम चालू कर दिया जाय । लेकिन इस पाठ्यक्रम को चलाते समय निम्नलिखित बातो
ध्यान अवश्य रखा जाय—

(i) कोई विद्यालय उन्नत पाठ्यक्रम को उसी विषय में अपना ले जिस विषय मे उ
पास योग्य अध्यापको अथवा शिक्षण सुविधाओं का अभाव न हो ।

(ii) माध्यमिक शिक्षा परिषद उन्नत तथा सामान्य दोनो कोर्सेस मे बाह्य परी
लेने का प्रबन्ध करें ।

(iii) जो विद्यालय इस कार्य के लिये उद्यत हो उनमें विज्ञान, गणित और भाषाअ
उन्नत पाठ्यक्रम शीघ्र चालू कर दिये गये ।

(iv) इच्छुक विद्यालयों को यथासम्भव सहायता दी जाय ताकि वे धीरे-धीरे अपने
उन्नत किस्म का पाठ्यक्रम अपनाने योग्य बना सकें ।

(v) इस प्रोग्राम को चालू करने के लिये विद्यालयो मे ऐसी प्रतिस्पर्धा पैदा कर
जाय कि वे देखा देखी उन्नत किस्म के पाठ्यक्रम को सभी विषयो मे लागू
के लिये सचेष्ट हो जायें ।

विद्यालीय शिक्षा के विभिन्न स्तर तथा पाठ्यक्रम का स्वरूप

**Q. 2. What are the objectives of school education ? How should sc
curriculum be organised to achieve them ? Discuss its broad features.**

पीछे स्कूली शिक्षा के निम्न स्तरो का वर्णन किया जा चुका है—निम्न प्राय
उच्च प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च माध्यमिक । प्रत्येक स्तर पर शिक्षा के अलग-अलग उ
होते हैं और इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए अलग अलग पाठ्यक्रम निश्चित करना पड़ता है ।

निम्न प्राथमिक स्तर पर पाठ्यक्रम का स्वरूप क्या हो ? शिक्षा के उद्देश्य शिक्ष
स्तर के अनुगामी होते हैं । निम्न प्राथमिक स्तर (Lower Parimary Stage) पर हमारा उ
होता है बालकों में लिखने-पढ़ने और साधारण गणित की समस्याओं को हल करने की द
का विकास । साथ ही हम यह भी चाहते हैं कि वे अपने आपको भौतिक और साम
वातावरण के अनुकूल बनाने के लिये उनकी सामान्य जानकारी भी प्राप्त करें। हम य
चाहते हैं कि वह रचनात्मक दक्षताओं के विकास करने के लिये सर्जनात्मक क्रियाओं मे भाग
अपनी मातृभाषा को नीव का जिसके माध्यम से बालक आत्माभिव्यक्ति करता है, इसी प्र
में पढ़ना आवश्यक होना है । इन उद्देश्यों को ध्यान में रखकर निम्न प्राथमिक कक्षाओं (I—
का पाठ्यक्रम तैयार किया जाता है । अत. इस स्तर पर पाठ्यक्रम का रूप होगा—

(i) एकभाषा—मातृभाषा अथवा प्रादेशिक भाषा
(ii) गणित
(iii) वातावरण का अध्ययन (विज्ञान और समाज अध्ययन)
(iv) रचनात्मक क्रियाएँ
(v) कार्यानुभव (work experience) तथा समाज सेवा
(vi) स्वास्थ्य शिक्षा

उच्च माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम का स्वरूप कैसा हो ?—उच्च माध्यमिक स्त
मातृभाषा के साथ-साथ दूसरी अन्य भाषा का अध्ययन आवश्यक हो जाता है । अकगणितीय
ताओं के साथ-साथ यहाँ अधिक कठिन गणितीय ज्ञान की जरूरत होगी । वातावरण को स
के लिये इस स्तर पर प्राकृतिक तथा भौतिक विज्ञानों का ज्ञान प्राप्त करना, इतिहास, भूगोल
नागरिक शास्त्र की जानकारियाँ प्राप्त करना, आवश्यक हो जायगा । सर्जनात्मक क्रियाओं मे

[illegible] [illegible] पाठ्यक्रम [illegible] —

(i) दो भाषाओं का ज्ञान — मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा और हिन्दी या अंग्रेजी
(ii) गणित
(iii) विज्ञान
(iv) सामाजिक अध्ययन (इतिहास, भूगोल और नागरिक शास्त्र)
(v) चित्रकला
(vi) समाज सेवा और कार्यानुभव
(vii) शारीरिक शिक्षा
(viii) नैतिक और आध्यात्मिक शिक्षा

माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम का स्वरूप कैसा हो ? माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम [illegible] [illegible] गुणों और [illegible] का विकास करना होगा :

(i) स्पष्ट चिन्तन की क्षमता
(ii) अपने विचारों को [illegible] रूप से प्रकट करने की योग्यता
(iii) वैज्ञानिक अभिवृत्ति
(iv) [illegible]
(v) रचनात्मक कार्य का [illegible] की शक्ति

किशोर के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिये न केवल उसकी बौद्धिक क्षमता का विकास ही करना है जो सभी प्रकार के [illegible] विषयक ज्ञान प्राप्ति से हो सकता है वरन् उसके व्यक्तित्व के शारीरिक, मानसिक, कलात्मक, और नैतिक पक्षों को भी पुष्ट करना होगा। अतः उसके पाठ्यक्रम में अधिक [illegible] शारीरिक शिक्षा, नैतिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा, कला, [illegible] और गान विद्या को [illegible] बनानी होगी। इस विचार से माध्यमिक स्तर कक्षा (VIII—X) तक पाठ्यक्रम का रूप होगा—

(i) तीन भाषाएँ—अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में दे भाषाएँ होंगी मातृ अथवा प्रादेशिक भाषा, उच्च भाषा निम्न स्तर की हिन्दी भाषा, उच्च अथवा निम्न स्तर की अंग्रेजी भाषा हिन्दी भाषी क्षेत्र में तीन भाषाएँ होंगी—मातृभाषा अथवा प्रादेशिक भाषा, अंग्रेजी अथवा हिन्दी यदि अंग्रेजी मातृभाषा के रूप में ली जा चुकी है। हिन्दी के अतिरिक्त अन्य आधुनिक भारतीय भाषा।

संस्कृत, फारसी, अरबी आदि भाषाओं को ऐच्छिक भाषा के रूप में पढ़ा जा सकेगा तीन भाषा के रूप में नहीं।

(i) गणित
(ii) विज्ञान
(iii) इतिहास, भूगोल और नागरिक शास्त्र
(iv) कला
(v) समाज और कार्यानुभव
(vi) शारीरिक शिक्षा
(vii) नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा

विभिन्न स्तरों पर सुझावों के पाठ्यक्रम को कार्यान्वित करने के लिये ध्यान देने योग्य बातें—ऊपर विभिन्न स्तरों पर पाठ्यक्रम निर्धारित करने के जो सुझाव पेश किये गये हैं उनकी व्याख्या करनी होगी।

प्राथमिक स्तर पर जो पाठ्यक्रम सुझाया गया है उसमें बालक पर पड़े हुये भार की मात्रा बहुत कम है। चूँकि सीखने की क्रिया भाषा तथा गणित के ज्ञान के बिना असम्भव होती है, इसलिये इस स्तर पर भाषा तथा गणित इन दो विषयों के ही पठन-पाठन पर जोर देना है अन्य विषयों का ज्ञान तो informal तरीके से ही दिया जा सकता है। उदाहरण के लिये समाज अध्ययन

का अध्याय बच्चे को उसके सम्मुख वर्तमान वातावरण के अंशों की जानकारी देकर ही किया जा सकता है। कक्षा ३ और ४ मे विज्ञान और इतिहास भूगोल शिक्षा द्वारा समाज का अध्ययन कराया जा सकता है। लेकिन यह अध्ययन भी गूढ़ न होकर सरल और बोधगम्य होना चाहिये। रचनात्मक आत्माभिव्यंजन के लिए संगीत, चित्रकला ड्रैमेटिक्स और हस्तकला (hand work) को पाठ्यक्रम में स्थान दिया जा सकता है। कक्षा की सफाई, सजावट आदि कामों को समाज सेवा कार्यों मे स्थान दिया जा सकता है।

इस स्तर पर बालक में समझकर पढ़ने की भावना पैदा करनी होगी। यदि इस स्तर के बालक मे यह प्रवृत्ति पैदा न होगी तो उसकी भावी शिक्षा मे अवरोधन पैदा होने की सम्भावना है। चिन्ता का विषय तो यह है कि अब तक हमने इस ओर कतई ध्यान नहीं दिया है कि उस बच्चे को पढ़ने की शिक्षा कैसे दी जाय जिसने लिखना-पढ़ना आरम्भ ही किया है, भारतीय भाषाओं में अभी तक ग्रेडेड शब्द भण्डार तैयार नही किया गया। पाठन तत्परता की आय के लिए हमने अभी तक कोई परीक्षा तैयार नही की। इन विषयो मे हमने अपने प्रशिक्षण विद्यालयो मे अध्यापको को किसी प्रकार का प्रशिक्षण भी नही दिया है। यही कारण है कि प्राथमिक कक्षाओं मे इतना अधिक अवरोधन है।

उच्चतर प्राथमिक स्तर पर बालक विषयों का अधिक ज्ञान प्राप्त करना चाहता है अत. इस स्तर पर उसे कई विषयो का व्यवस्थित एवं गम्भीर ज्ञान देने की आवश्यकता होती है। अध्यापन विधियाँ भी अधिक व्यवस्थित और मूल्याकन के तरीके अधिक निश्चित हो जाते हैं।

इस स्तर पर यद्यपि दो भाषाओं के अध्ययन की ही बात कही गई है फिर भी छात्र को तीसरी भाषा सीखने की भी छूट दी जा सकती है। इस प्रकार वह प्रादेशिक, हिन्दी और अंग्रेजी तीन भाषाएँ भी सीख सकता है। गणित और विज्ञान इस स्तर पर पहले से अधिक महत्व के विषय होंगे। समाज अध्ययन के लिए यदि किसी स्कूल मे अनुभवी शिक्षको तथा आवश्यक साधनो की कमी हो तो उनमे इतिहास, भूगोल और नागरिक शास्त्र का ज्ञान अलग-अलग देने की व्यवस्था होनी चाहिए। चित्रकला के साथ-साथ क्राफ्ट का काम सिखाया जाय। अपने धर्म के अलावा अन्य धर्मों के साथ सहिष्णुता का भाव पैदा करने के लिए धार्मिक शिक्षा तथा बच्चे का चरित्र गठन करने के लिए पाठ्यक्रम मे एक दो घण्टे भी रखने होंगे। अपने गाँव अथवा मुहल्ले के नागरिक जीवन को सुखमय बनाने लिए सेवा कार्यों का भी आयोजन करना होगा।

जिन विषयो का अध्यापन कक्षा ५-७ तक किया जाता है कक्षा ८-१० तक उनका गहन अध्यापक कराना होगा। इतिहास, भूगोल, नागरिक शास्त्र तथा विज्ञान जिनका विस्तार बढ़ता ही जा रहा है उन पर विशेष जोर देना होगा। तीसरी भाषा हिन्दी अथवा कोई अन्य भारतीय भाषा अनिवार्य रूप से पढानी होगी। गाँवो मे खेतो पर तथा शहरो मे वर्कशाप पर कार्य करने का अनुभव देना होगा। प्रतिवर्ष समाज सेवा का कार्य वर्ष मे एक बार कुछ अर्से के लिए तथा नैतिक और धार्मिक शिक्षा अधिक व्यवस्थित ढग से देनी होगी।

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर पाठ्यक्रम का स्वरूप—कक्षा १० तक सामान्य शिक्षा पाने के बाद बालक की विशिष्ट योग्यतायें तथा रुचियाँ परिपक्व हो जाती हैं और इस समय उसको व्यावसायिक और शैक्षणिक निर्देशन की आवश्यकता होती है। कक्षा १० के बाद आशा की जाती है कि लगभग ५०% बालक सामान्य शिक्षा को छोड़कर १७-१८ वर्ष की आयु प्राप्त करने पर काम धन्धे मे लग जायेगा। अत: उन ५०% व्यक्तियो के लिए व्यावसायिक तथा तकनीकी शिक्षा का प्रबन्ध करना होगा। यह शिक्षा व्यावसायिक स्कूलो, पोलीटेक्निक स्कूलो मे दी जा सकती है। तकनीकी, वाणिज्य एव कृषि सम्बन्धी व्यावसायिक शिक्षा के लिये कक्षा १० के बाद ही अलग से प्रबन्ध करना होगा। कुछ ऐसे भी स्कूल खोले जाने होंगे जिनमे फाइन आर्ट्स तथा गृह-विज्ञान का शिक्षण हो सके।

शेष ५०% बालको के लिए जो हाईस्कूल पास करेंगे सामान्य शिक्षा का प्रबन्ध करना होगा जो उन्हें विश्वविद्यालीय शिक्षा के उपयुक्त बना सकेगी। सामान्य शिक्षा के इन कोर्सेस मे विशिष्ट अध्ययन के लिए बालक को कोई से ऐसे तीन विषय चुनने की छूट होगी जिनमे वह विशेष रुचि लेता हो। जिस प्रकार वर्तमान उच्चतर माध्यमिक शिक्षा का (जो कक्षा ९ से ११ तक चलती है) एकमात्र प्रयोजन है विद्यार्थियो की विशिष्ट रुचियो का विकास उसी प्रकार प्रस्तावित

उच्चतर माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य होगा दो वर्ष में उन शैक्षणिक रुचियों का विकास जो विश्वविद्यालीय शिक्षा के द्वारा खोल सकें।

उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं के पाठ्यक्रम में केवल तीन ऐच्छिक विषय होंगे जो ग्रार्ट्स ग्रौर विज्ञान इन दो वर्गो से चुने जा सकेंगे। अन्य विषय जैसे वाणिज्य, टैकनोलोजी, कृषि, गृहविज्ञान ग्रौर फाइन-ग्रार्ट्स व्यावसायिक स्कूलों मे अलग से पढ़ाये जायेंगे। व्यक्ति को निम्नांकित १४ विषयों मे से किसी तीन विषयों को चुनने का पूर्णाधिकार होगा—इतिहास, भूगोल, ग्रर्थशास्त्र, तर्कशास्त्र, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, कला, कोई तीसरी भाषा, भौतिक, रसायन विज्ञान, गणित, जीवशास्त्र, भूगर्भशास्त्र, गृहशास्त्र।

इन तीन विषयों के सामान्य छात्र को कोई दो भाषायें चुननी होंगी जो उसने हाईस्कूल स्तर पर सीखी है। इन भाषाओं में कोई एक आधुनिक भारतीय भाषा, ग्रौर एक कोई विदेशी भाषा, अथवा प्राचीन भाषा भी हो सकती है। सामान्यतया इन दो अनिवार्य भाषाओं में हिन्दी अथवा कोई प्रादेशिक भाषा ग्रौर ग्रंग्रेजी को ही स्थान मिलेगा। कुछ स्कूलों में अंग्रेजी के अलावा रूसी भाषा का अध्ययन भी हो सकता है जहाँ इसके सिखाने-पढ़ाने का समुचित प्रबन्ध हो।

चूँकि इस स्तर पर तीन ऐच्छिक विषयों का अध्यापन जोरों से होगा इसलिये कहीं सारा का सारा समय ये तीन विषय न ले जायें ग्रौर चूँकि किशोर को इस ग्रायु स्तर पर आध्यात्मिक, नैतिक ग्रौर चारित्रिक शिक्षा देना जरूरी हो जाता है इसलिये अधिक से अधिक आधा समय तीन विषयों के अध्यापन तथा एक चौथाई समय दो भाषाओं के अध्यापन ग्रौर शेष समय समाज सेवा, शारीरिक शिक्षा, कला, नैतिक तथा चारित्रिक शिक्षा को दिया जाना चाहिये।

पाठ्यक्रम में सामाजिक ग्रौर नैतिक मूल्यों का महत्व

Q."A serious defect in the school curriculum is the absence of provision for education in social, moral and spritual values." What steps would you propose to import education in these values ?

विद्यालीय पाठ्यक्रम मे एक बडी कमी यह है कि उसमे जीवन के सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक शाश्वत मूल्यों की शिक्षा का कोई आयोजन नही है। सामान्य भारतीय व्यक्ति के जीवन में धर्म एक बडी ही प्रबल ग्रौर उत्प्रेरक शक्ति है जो उसे नैतिक मूल्यों की ग्रोर आकृष्ट करती रहती है। यदि राष्ट्रीय शिक्षा उन्नत व्यवस्था में इस शक्ति का सदुपयोग होना है तो हमें व्यवस्थित ढग से धार्मिक शिक्षा देनी होगी पाठ्यक्रम मे ऐसी क्रियाओं को स्थान देना होगा जो बालक मे नैतिकता, आध्यात्मिकता ग्रौर धार्मिक भावना का विकास कर सके। साथ ही धार्मिक शिक्षा की प्रत्यक्ष ग्रौर अप्रत्यक्ष दोनो विधियाँ ही लागू करनी होगी। नैतिक मूल्यों तथा धर्म में सम्बन्ध स्थापित करना होगा।
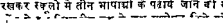
धार्मिक शिक्षा तथा अप्रत्यक्ष विधियाँ—चरित्र के निर्माण में अप्रत्यक्ष विधियों का महत्व पहले दर्शाया जा चुका है। स्कूल का वातावरण, अध्यापकों का व्यक्तित्व ग्रौर आचरण, स्कूल मे दी जाने वाली सुविधायें बालक मे श्रेष्ठ सामाजिक, नैतिक तथा आध्यात्मिक गुण पैदा करती हैं। हमारे विचार से स्कूल में की जाने वाली प्रत्येक क्रिया को इन गुणों के विकास में सहायक सिद्ध होनी चाहिये। विद्यालय के प्रत्येक अध्यापक की जिम्मेदारी है इन गुणों के विकास में योगदान देने की। जरूरत इस बात की है कि वह अप्रत्यक्ष रूप से बालकों के मस्तिष्क पर ऐसी छाप डाले कि उनसे इन गुणों का विकास स्वत होता रहे। स्कूल असेम्बली; पाठ्यक्रमीय तथा पाठ्येतर क्रियायें, सभी धर्मों के धार्मिक उत्सवों का आयोजन, कार्य-अनुभव, खेल, विभिन्न विषयों के क्लब तथा गोष्ठियाँ, समाजसेवा कार्य आदि ऐसी क्रियायें हैं जो बालकों में नैतिक, धार्मिक ग्रौर सामाजिक गुणों का विकास कर सकती हैं।

धार्मिक शिक्षा की प्रत्यक्ष विधियाँ—श्रीप्रकाश कमिटी ने धार्मिक शिक्षा के जो सुझाव पेश किये थे उनके अनुसार स्कूल टाइमटेबिल में नैतिक ग्रौर आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा के लिए प्रति सप्ताह एक दो घण्टे अवश्य दिए जायें। प्राइमरी स्कूलों मे इन घण्टों में विभिन्न धर्मों की कहानियाँ सुनाई जा सकती हैं। माध्यमिक कक्षाओं में बालकों ग्रौर अध्यापकों के बीच नैतिक आध्यात्मिक मूल्यों पर वादविवाद का आयोजन किया जा सकता है।

सभी धर्मों मे ऐसी अच्छी बातें हैं जिनका ज्ञान हमारे बालको को होना जरूरी है। सभी धर्म ईमानदारी, सचाई, उदारता, जानवरो पर कृपा, और वृद्धो के प्रति श्रद्धा भाव पर जोर देते है। अत: बालक की शिक्षा मे सभी धर्मों से ली गई कहानियाँ, धार्मिक पुरुषो की जीवनियाँ इस दृष्टि से लाभदायक होंगी।

त्रिभाषी सूत्र

Q 4 What is the three language formulae ? What difficulties have been faced in the implementation of this formulae ? What workable formulae do you suggest ?

१९५६ मे शिक्षा की केन्द्रीय सलाहकार परिषद् ने राष्ट्र की आवश्यकताओ को ध्यान मे रखकर स्कूलो मे तीन भाषाओ के पढ़ाये जाने की सलाह दी थी। १९६१ मे मुख्य मन्त्रियों की [illegible]। इस प्रकार के निर्णय पर राजनैतिक [illegible] क कारणों का कम। इस सूत्र के हिसाब से [illegible] भाषाओ का अध्ययन जरूरी है तो हिन्दी [illegible] नेवार्य होना चाहिये, जिनमें मे हिन्दी और अंग्रेजी के अलावा तीसरी भाषा दूसरी कोई भारतीय भाषा हो।

इस सूत्र को लागू करने मे कठिनाइयाँ—जिन-जिन प्रान्तो मे यह त्रिभाषीय सूत्र लागू किया गया उन्ही राज्यो मे इसे असफलता मिली। इसके कई कारण है—

(अ) एक और भाषा के शिक्षण का भार पड़ने से पाठ्य विशेष बोझील हो जाता है।

(ब) हिन्दी भाषी क्षेत्र मे तीसरी भाषा जो भारतीय हो, सीखने के लिये उत्प्रेरणा की कमी है।

(स) कुछ अहिन्दी भाषी क्षेत्रो मे हिन्दी सीखने के प्रति अनुदार भावना अथवा घृणा है।

(द) कक्षा ६ से १० अथवा ११ तक दूसरी और तीसरी भाषा को सिखाने के लिये अतिरिक्त धन की आवश्यकता पड़ती है जो स्कूलो के पास सामान्यत नही है।

(य) सूत्र को लागू करने मे अन्यमनस्कता—सूत्र को लागू तो किया गया लेकिन उसकी पहले से कोई योजना नही बनाई गई। जहाँ-जहाँ यह सूत्र लागू किया गया वहाँ-वहाँ लोगो मे इसके प्रति उत्साह की कमी थी।

संशोधित त्रिभाषी सूत्र—फल यह हुआ कि जहाँ-जहाँ यह सूत्र लागू किया गया वहाँ वहाँ छात्रो ने बहुत कम लाभ उठाया। अब समय आ चुका है कि इस नीति पर पुनर्विचार किया जाय क्योंकि अब अंग्रेजी को अनिश्चित काल के लिये सहकारी सरकारी भाषा मान लिया गया है त्रिभाषीय सूत्र मे संशोधन लाते समय हमे निम्नलिखित बातो पर विचार करना होगा—

(अ) संघीय सरकार की हिन्दी सरकारी भाषा है चूंकि सरकारी काम-काज हिन्दी मे ही किया जाता है इसलिये आशा की जाती है कि सम्पूर्ण देश की यही राष्ट्रभाषा (Lingue France)बन जायगी। अत मातृभाषा शिक्षण के बाद दूसरा नम्बर हिन्दी भाषा का होगा।

(ब) जब तक अंग्रेजी विश्वविद्यालीय शिक्षा का प्रमुख माध्यम रहेगी, जब तक केन्द्रीय प्रशासनिक कार्यवाहियाँ अंग्रेजी मे ही होगी, तब तक तो अंग्रेजी भी भारत की महत्वपूर्ण भाषा रहेगी। प्रादेशिक भाषा के उच्च शिक्षा का माध्यम होने पर भी अंग्रेजी अपने पद को छोड़ नही सकती क्योंकि इसमें योग्यता उच्च शिक्षा के लिये अत्यन्त वांछनीय है।

(स) प्रारम्भिक कक्षाओ मे ही त्रिभाषीय सूत्र का लागू करना और सभी छात्रों को अनिवार्य तीन भाषाओं को सीखना अनुपयुक्त दिखाई देता है क्योंकि इन कक्षाओं मे ही तीसरी भाषा के पढ़ाने लिये हुये योग्य अध्यापकों और उचित पाठ्य सामग्री का प्रबन्ध करना पड़ेगा साथ ही छात्रो को भी उचित प्रेरणा देनी होगी। इसलिये तीसरी भाषा अध्ययन कक्षा ८-१० मे होना चाहिये जहाँ पर छात्रों की संख्या

ऋम, पाठ्य सामग्रियों की उपयुक्तता और भाषा सम्बन्धी का मिलना सम्भव होता है। तीसरी भाषा का कामचलाऊ ज्ञान तीन वर्षों के अन्दर आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।

(घ) हिन्दी अथवा अंग्रेजी को किस स्तर पर पढ़ना अनिवार्य किया जाय इस बात का निर्णय राज्य पर छोड़ दिया जाय।

इस प्रकार संशोधित त्रिभाषीय सूत्र का रूप होगा

(i) मातृभाषा अथवा प्रादेशिक भाषा।
(ii) भारत की सरकारी भाषा अथवा सहयोगी भाषा।
(iii) आधुनिक भारतीय भाषा अथवा विदेशी भाषा जो और राज्य में न हो और शिक्षा का माध्यम भी न हो।

प्राथमिक स्तर पर भाषाओं का अध्ययन—प्राथमिक स्तर पर केवल एक भाषा का अध्ययन किया जाय। यह भाषा बालक की मातृभाषा हो अथवा प्रादेशिक भाषा, आमतौर से बालक जिस प्रदेश में रहता है उसकी प्रादेशिक भाषा ही उसको इस स्तर पर पढ़ाई जायगी लेकिन यदि वह अपनी मातृभाषा में पढ़ना-लिखना सीखना चाहता है तो मातृभाषा में शिक्षण की सुविधाएँ प्राथमिक स्कूलों को देनी होंगी लेकिन शर्त यह होगी कि एक कक्षा में कम से कम १० और एक स्कूल में कम से कम ४० ऐसे छात्र जरूर होने चाहिए जो प्रादेशिक भाषा को छोड़कर अपनी मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं। यह शर्त १९४९ की शिक्षा मंत्रियों की बैठक में स्वीकार कर ली गई है। लेकिन उनको अपने प्रदेश की भाषा का भी ज्ञान होना आवश्यक है।

प्राथमिक स्तर पर न तो प्रादेशिक भाषा को अनिवार्य बनाना चाहिये और न अंग्रेजी भाषा को दूसरी भाषा ही।

मिडिल स्कूल स्तर पर भाषाओं का अध्ययन—मिडिल स्कूल में प्रवेश लेते ही प्रादेशिक अथवा मातृभाषा के अतिरिक्त दूसरी भाषा पढ़ाने की व्यवस्था की जाय। दूसरी भाषा को संघ की सरकारी अथवा सहयोगी सरकारी भाषा होना चाहिये। इसका अर्थ यह है कि हिन्दी भाषी क्षेत्रों में तथा कई अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में अंग्रेजी को द्वितीय भाषा का स्थान मिलेगा। इस स्तर पर तीसरी भाषा को ऐच्छिक विषय के रूप में पढ़ने की छूट मिलनी चाहिये क्योंकि हिन्दी भाषी क्षेत्रों में जिन बालकों की मातृभाषा हिन्दी नहीं है अथवा अहिन्दी भाषी क्षेत्रों में जिन बालकों ने अंग्रेजी को द्वितीय भाषा के रूप में चुन लिया है संघ की सरकारी (Official) भाषा का अध्ययन कर सकें।

हाई स्कूल स्तर पर भाषाओं का अध्ययन—हाईस्कूल (निम्न माध्यमिक) स्तर पर तीन भाषाओं का पढ़ना जरूरी है। इस स्तर पर बालकों को सहयोगी सरकारी अथवा सरकारी भाषा [illegible]

बालक उड़िया, बंगाली, गुजराती, मराठी, पंजाबी आदि भाषाएँ सीख सकता है जिनके क्षेत्र हिन्दी क्षेत्र से मिले हुए हैं।

उच्च माध्यमिक स्तर पर भाषाओं का अध्ययन—हाईस्कूल तथा उच्चतर माध्यमिक स्तर पर अंग्रेजी मुख्य पुस्तकालीय भाषा है अतः इसके अध्ययन और अध्यापन पर विशेष जोर देना होगा। अर्थात् इसके दिये गये घंटों की संख्या अधिक रखनी पड़ेगी। अन्य भाषाएँ जिनमें पुस्तकालय में पुस्तकें पढ़ने को मिल सकती हैं। रूसी, जर्मन, फ्रान्सीसी, स्पेनिश, चीनी और जापानी हैं। [illegible] के अध्ययन के लिये भी इस स्तर पर सुविधाएँ देनी होंगी।

उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं (XI— XII) में, जो उच्च शिक्षा के लिये तैयारी करने अवसर प्रदान करती है, केवल दो भाषाओं का शिक्षण अनिवार्य होना चाहिए। छात्र को इस [illegible] की छूट मिलनी चाहिए कि वह या तो पहले सीखी हुई तीन भाषाओं में से किसी दो को चुने [illegible], तीन वर्गों में से किन्हीं दो को :

(अ) आधुनिक भारतीय भाषाओं का वर्ग।
(ब) आधुनिक विदेशी भाषाओं का वर्ग।
(स) भारतीय अथवा विदेशी प्राचीन भाषाओं के वर्ग।

इन दो अनिवार्य भाषाओं के अतिरिक्त वह किसी तीसरी भाषा का भी अध्ययन कर सकता है लेकिन यह ऐच्छिक विषय होगा।

त्रिभाषीय सूत्र में सरकारी भाषाओं का स्थान—हिन्दी और अंग्रेजी दोनो ही सरकारी काम-काज की भाषा है। इनमें से किसी एक का अध्ययन छात्र तीन अथवा ६ वर्ष के लिये करेगा। हाई स्कूल पास करने वाला छात्र तीन भाषाओं मे से हिन्दी और अंग्रेजी इन दोनो का अध्ययन अनिवार्य रूप से करेगा किसी को हिन्दी अथवा अंग्रेजी के सामान्य ज्ञान की जरूरत होगी तो किसी को इसके विशिष्ट ज्ञान की। यद्यपि अंग्रेजी ही सामान्य तौर से पुस्तकालयीय भाषा होगी फिर ... करने की छूट रहेगी। प्रत्येक भाषायी क्षेत्र मे ... पाए सीखेंगे। इस प्रकार आपस मे विचार ... र मे विचार विनिमय के कारण एक दूसरे के प्रति जो अभिवृत्तियां बिगड गई हैं उनमे सुधार होगा और राष्ट्रीय एकता और सास्कृतिक अखण्डता को बल मिलेगा।

संशोधित त्रिभाषीय सूत्र तथा हिन्दी का अध्ययन—इस सूत्र के अनुसार कुछ छात्र हिन्दी का अध्ययन दूसरी अथवा तीसरी भाषा के रूप मे ३ वर्ष अथवा ६ वर्ष के लिये करेंगे। हिन्दी भाषा का इसमे और अधिक अध्ययन यद्यपि अनिवार्य रूप से नही कराया जा सकता फिर भी चूँकि हिन्दी देश की राष्ट्रभाषा होने के कारण विचारो का आदान-प्रदान करने की एकमात्र भाषा है इसलिये उसका अतिरिक्त अध्ययन यदि व्यक्ति चाहे तो किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त अध्ययन के लिये हमे योजना बनानी होगी लेकिन उसका शिक्षण किसी वर्ग पर थोपना अवाछनीय है। यदि हिन्दी पूरी तरह प्रशासन की भाषा हो जाय, यदि केन्द्र हिन्दी को पूरी तरह अपनाले और हिन्दी का साहित्य और अधिक धनी और विस्तृत हो जाय तो हिन्दी का और अधिक अध्ययन कराया जा सकता है।

शिक्षा में—कार्य-अनुभव का महत्व

Q. 5. Discuss the educational social and practical values of work experience as suggested by Kothari Commission. Describe the programme for work experience at the School stage:

वर्तमान शिक्षा का कार्य प्रधान न होना—वर्तमान शिक्षा जीवन से दूर और पूरी तरह किताबी है। उसका न तो कोई उत्पादक मूल्य है और न उत्पादन कार्यों से उसका कोई सम्बन्ध ही है। स्कूल में शिक्षा पाने वाला छात्र किसी भी प्रकार का उत्पादक कार्य नही करता। उसका सारा समय भाषा, समाज अध्ययन, गणित और विज्ञान के अध्ययन में बीतता रहता है वह किसी भी ऐसे काम मे भाग नही लेता न कार्य का अनुभव प्राप्त करता है जो उसके भावी जीवन के लिये उपयोगिता रखता हो। कार्यानुभव पहले अनौपचारिक शिक्षा का अभिन्न अङ्ग था। पहले वह समाज मे रहता था और समाज मे रहकर सभी प्रकार के जीवनोपयोगी कार्यों में भाग लेता था। इस प्रकार उसकी शिक्षा-दीक्षा होती थी। जब से औपचारिक शिक्षा की व्यवस्था स्कूलों में की गई तब से बालक समाज की क्रियाओ से दूर रहने लगा। उसको अप्राकृतिक वातावरण में शिक्षा दी जाने लगी। इस प्रकार कार्य के जगत् और अध्ययन के जगत् के बीच रेखा खिचने लगी। फल-

कार्य अनुभव की परिभाषा—कार्य अनुभव (Work experience) से हमारा आशय है स्कूल मे रहकर छात्रो द्वारा उत्पादक कार्यों मे भाग लेना है। घर पर, खेतों में, फैक्टरियो अथवा मिलो मे उत्पादक कार्य करना शिक्षा का एक महत्वपूर्ण अग होगा। इस प्रकार शिक्षा का कार्य

से गठबंधन किया जा रहा है। इस प्रकार का गठबंधन आधुनिक समाज व्यवस्था के लिये नितान्त आवश्यक है।

कुछ वर्ष पूर्व समाज व्यवस्था में दो वर्ग दिखाई देते थे। एक ओर ऐसा वर्ग था जो उत्पादन के प्राचीन तथा रूढ़िगत तरीकों का उपयोग कर रहा था और इसलिये उसे औपचारिक शिक्षा की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती थी। चूंकि उनका कार्य सामान्यतः हस्तकौशल सम्बन्धी होता है और उसमें ऊंची किस्म की योग्यता की जरूरत नहीं होती थी इसलिये उस वर्ग को शिक्षा की विशेष आवश्यकता भी नहीं होती थी। दूसरी ओर समाज का ऐसा वर्ग भी था जो शिक्षा को विशेष महत्व देता था। इसलिये नहीं कि शिक्षा द्वारा उनके जीवन यापन का साधन उन्हें मिल जायगा वरन् इसलिये कि शिक्षा उनका जन्मसिद्ध अधिकार है और उसके द्वारा जीवन को अधिक सुखी और सन्तुष्ट बनाया जा सकता है। समाज का यह शिक्षित तथा सभ्य वर्ग पराश्रयी और अनुत्पादक होता जारहा था। दूसरी ओर वास्तविक उत्पादन में लगा हुआ श्रमिक और कृषक वर्ग अशिक्षित और असभ्य कहा जा रहा था लेकिन आज समाज का ढांचा बदल चुका है। उत्पादन के तरीकों में ऐसी जटिलताएं पैदा हो गई हैं कि उनमें ऊंची प्रकार की सामान्य और तकनीकी जानकारियों के बिना काम नहीं चल सकता। टैक्नोलोजी में प्रतिभा की आवश्यकता पड़ती है। निम्नस्तरीय उत्पादक कार्यों में भी अब श्रम की अपेक्षा मानसिक क्षमता की अधिक जरूरत होती है। आज का शिक्षित वर्ग भी उत्पादक कार्यों में रुचि लेता है और फार्म तथा इण्डस्ट्री में काम करने में अपनी हीनता नहीं समझता क्योंकि उसे इन जगहों में अधिक उत्पादन दिखाई देता है। इस समय शिक्षित मनुष्य समाज का उत्पादक अंग तथा अशिक्षित व्यक्ति समाज के लिये भार स्वरूप होता जारहा है। इसलिये शिक्षा के साथ कार्य अनुभवों का गठबंधन जरूरी दिखाई देता है।

बेसिक शिक्षा तथा कार्य अनुभव— महात्मा गांधी ने बेसिक शिक्षा में इसी कार्य-अनुभव को महत्व दिया था। अनुभवों द्वारा शिक्षा देने की प्रणाली बेसिक शिक्षा की अपूर्व देन थी। लेकिन [illegible]

[illegible] प्रकार कार्य-अनुभव द्वारा हाथ और दिमाग के काम का भेद दूर किया जा सकता है। जब युवक मानसिक कार्य के साथ-साथ विद्यालय के प्रांगण में श्रम भी करता रहेगा तब उसमें श्रम से दूर रहने की प्रवृत्ति कम हो जायगी। उसमें कठोर कार्य करने तथा उत्तरदायित्वपूर्वक निर्वाह करने की आदत पैदा हो जाने पर वह उत्पादन कार्य में संलग्न हो जायगा। शिक्षित व्यक्ति और समाज के बीच सम्बन्ध स्थापित होने पर सामाजिक एवं राष्ट्रीय एकता का द्वार खुल जायगा।

[illegible] उच्चतर प्राथमिक स्तर से चालू किया जा सकता [illegible] दल से स्वीकार कर लिया जायगा तो माध्यमिक [illegible] श्रम के फलस्वरूप जो कुछ मिलेगा उससे वह पूर्णरूपेण नहीं तो आंशिक रूप में ही, पढ़ाई-लिखाई का खर्च चला सकेगा। किसी भी स्तर पर बालक की शिक्षा पूरी तभी मानी जानी चाहिये जब वह कोई कार्य करके शिक्षा काल में ही कुछ न कुछ कमा सके। प्रत्येक बालक में अपने ही श्रम से कुछ न कुछ कमाने की क्षमता पैदा हो जायगी वह उत्पादक कार्य के महत्व को समझ सकेगा और भावी जीवन की किसी भी स्थिति में कठोर शारीरिक श्रम से नहीं घबरायेगा। अनुभव-प्रधान यह शिक्षा बालक के व्यक्तित्व का उचित प्रकार से विकास कर सकेगी।

कार्य-अनुभव का योजनाबद्ध प्रोग्राम—कार्य-अनुभव का स्कूली प्रोग्राम जब तक योजनाबद्ध नहीं होगा तब तक इससे सफलता नहीं मिलेगी। कोठारी कमीशन के विचार कृषि, उद्योग, टेकनोलॉजी आदि सभी क्षेत्रों से वे कार्य चुने जायें जिनको इस योजना के अन्तर्गत स्कूल में कराना है। शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर इस प्रोग्राम की रूपरेखा निम्न प्रकार की हो सकती है—

(अ) प्राइमरी स्कूलों में बालक के मानसिक तथा संवेगिक विकास में सहायता देने के लिये साधारण ढंग का हाथ का काम कराया जा सकता है। मिडिल स्कूलों में क्राफ्ट सिखाई जा सकती है जो बालकों में तकनीकी चिन्तन और रचनात्मक क्षमता का विकास कर सके। ग्रामीण क्षेत्रों में बालकों से ऐसे कार्य कराये जा सकते हैं जिनका सम्बन्ध जीवन की वास्तविक परिस्थितियों से हो। ऐसी परि-

स्थितियाँ वर्ष मे कई बार माती हैं। खेतो को बोने, जोतने, काटने और खलिहान उठाने का काम बालको को दिया जा सकता है, इसका अर्थ होगा प्रत्येक ग्रामीण विद्यालय मे थोडी बहुत जमीन खेती के लायक अवश्य होनी चाहिए। इसी प्रकार शहरी क्षेत्रों मे स्थानीय उद्योग-धन्धो से सम्बन्धित वर्कशॉप खोले जा सकते हैं।

उच्चर माध्यमिक स्तर (XI,—XII) पर जब बालक का शारीरिक तथा मानसिक विकास पर्याप्त मात्रा मे हो जाय तब उसे खेतो, मिलो, फैक्टरियो मे कार्य देने का प्रबन्ध किया जा सकता है।

उन उत्पादक क्रियाओ की सूची नीचे दी जाती है जो विभिन्न स्तरो पर इस योजना में कराई जा सकती हैं। लेकिन प्रशिक्षित शिक्षको, स्थानीय परिस्थितियों और स्कूल मे प्राप्त साधनों को ध्यान मे रखकर उनका चुनाव किया जाना चाहिए।

कक्षा १-४ तक—कागज काटना, कार्ड बोर्ड बनाना, मिट्टी के बर्तन बनाना, सूत कातना, सुई-धागे का काम करना, पौधे लगाना, साग-सब्जी उगाना।

कक्षा ५-७ तक—चमड़े का काम, बर्तन बनाने का काम, मोजे बनियाइन बुनने का काम, कपड़े बुनने का काम, बगीचा लगाना, खेत-खलियान का काम।

कक्षा ८-१० तक—बढईगीरी का काम, पीतल के बर्तन बनाने का काम, चमड़े का काम, साबुन बनाने का काम, चमडा पकाने का काम, बिजली की रिपेयरिंग, साधारण औजार बनाना, चटाई-दरी बुनना, दर्जीगीरी का काम, खिलौने बनाने का काम, लकडी पर पच्चीकारी करने का काम।

कक्षा ११-१२ तक—खेतों, वर्कशॉपों, मिलो और फैक्टरियों मे काम।

इस प्रोग्राम को चालू करने के लिये तीन बातों की निहायत जरूरत होगी।

(i) अध्यापकों का प्रशिक्षण—मिडिल स्कूलो तथा हाईस्कूलो के लिये खासतौर से शिक्षित अध्यापक चाहिए। पंजाब सरकार ने इस दिशा मे जो कार्य किया है वह सराहनीय तथा अन्य राज्यो के लिये अनुकरणीय है। कुछ देशों मे कुशल कारीगरो तथा व्यावसायिक स्कूलो के स्नातको को इस काम के लिये अंशकालीन सेवा पर लगाया जाता है।

(ii) कार्य-अनुभव देने के लिये स्कूलों के पास साधनों का जुटाना—ग्रामीण क्षेत्रो मे जो स्कूल हैं उनमें प्रत्येक स्कूल के पास एक-एक फार्म होना चाहिए। जिन स्कूलों के पास अपनी जमीन न हो उनमे गाँव के लोगो के सहयोग से खेतो-खलियानो में काम करने की सुविधाएँ उपलब्ध की जायें। ग्रामीण अथवा शहरी—सभी स्कूलो मे एक-एक वर्कशॉप बनाई जाय। आई० टी० आई०, पोलीटेकनिकों और व्यावसायिक स्कूलों मे तथा इंजीनियरिंग कालेजो मे यंत्रो के प्रमापीकृत डिजायनो और सीधे-सादे औजारो को बनाने का प्रबन्ध किया जाय।

(iii) प्रोग्राम को सफल बनाने के लिये अन्य आवश्यक बातें—इस योजना को लागू करने से पूर्व हमें कार्य-अनुभव सम्बन्धी साहित्य, अध्यापको का प्रशिक्षण, प्रधान अध्यापकों, शिक्षा विभाग के उच्च अधिकारियों, स्कूल के अध्यापको की मनोवृत्ति को इस ओर आकृष्ट करना होगा। तभी यह योजना सफल हो सकती है।

अध्याय ८

विश्वविद्यालीय शिक्षा

विश्वविद्यालीय शिक्षा—एक सिंहावलोकन

Q. 1. Give a brief account of Higher Education in India in modern times.

Ans. आधुनिक भारत में विश्वविद्यालीय शिक्षा का इतिहास निम्नलिखित कालों में विभाजित किया जा सकता है।

१. १७८१ से १८१३ तक।
२. १८१३ से १८५७ तक।
३. १८५७ से १९१७ तक।
४. १९१७ से १९४७ तक।
५. १९४७ से अब तक।

सन् १८१३ ईसवी से पूर्व ब्रिटिश कालीन भारत में दो विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। आरम्भ में तो ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी शिक्षा के प्रति उदासीन रही। किन्तु कुछ व्यक्तिगत प्रयासों के फलस्वरूप प्राच्य शिक्षा को इस देश में बढ़ाने का प्रयत्न किया जाने लगा। प्रथम गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्ज के द्वारा सन् १७८१ में कलकत्ता मदरसा की तथा १७९१ में बनारस हिन्दू कालेज की स्थापना की गई। पहले विश्वविद्यालय का उद्देश्य था प्रतिष्ठित मुसलिम सज्जनों के लड़कों को राज्य में उत्तरदायित्व के उच्चपदों पर नियुक्ति के योग्य बनाना तथा दूसरे का उद्देश्य था हिन्दू पण्डितों को इस प्रकार की योग्यता प्रदान करना कि वे अंग्रेजी जजों की सहायता कर सकें। ये दोनों उच्च शिक्षा के केन्द्र पाश्चात्य प्रणाली का ही अनुसरण करते थे। इनमें न तो दिल्ली, आगरा, रामपुर, जौनपुर, बीदर, मुर्शिदाबाद, लखनऊ आदि स्थानों के प्रख्यात मदरसों की तरह शिक्षा दी जाती थी और न बनारस, नदिया, मिथिला, पूना तथा अहमदनगर की तरह हिन्दू पद्धति पर चलने वाले विश्वविद्यालयों की तरह ही शिक्षा देने का प्रबन्ध किया गया था।

सन् १८१३ से १८५७ तक का समय विश्वविद्यालीय शिक्षा के इतिहास में कालेज काल के नाम से पुकारा जाता है क्योंकि इस काल में कई सरकारी तथा निजी महाविद्यालय खोले गये। आरम्भ में ये संस्थायें माध्यमिक स्कूल थीं, परन्तु शीघ्र ही वे महाविद्यालय के रूप में बदल गईं। इसी कारण उनके दो अंग थे—हाई स्कूल तथा कालिज। राजाराममोहनराय तथा [illegible] के प्रयासों के फलस्वरूप तथा लार्ड मेकाले के प्रसिद्ध निर्णय तथा बेंटिंग की [illegible] नीति के पाश्चात्य शिक्षा के पक्ष में घोषित हो जाने के बाद भारत में कालेजों की संख्या वृद्धि होने लगी। इस काल के कालिज थे—हिन्दू कालिज (१८१७), विलसन कालेज (१८१३), श्री राम कालेज (१८१८), स्कोटिश चर्च कालेज (१८३०), एलफिन्स्टन कालेज

बम्बई (१८३५), क्रिश्चियन कालेज मद्रास (१८३७), पर्ट्ष्या कालेज, मद्रास (१८४१), सेण्टजान्स कालेज भ्रागरा (१८५२), इसी बीच कलकत्ता (१८३५), बम्बई (१८५४) भ्रौर मद्रास में (१८५२) मेडिकल कालेज खुले तथा इंजीनियरिंग भ्रौर कानून की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया।

१७५७ से १९१७ तक का काल मूल विश्वविद्यालीय युग के नाम से पुकारा जाता है। १८५४ से पहले भारत में विश्वविद्यालय जैसा किसी संस्था की स्थापना करने का विचार जनता या सरकार के समक्ष भ्राया नहीं। सन् १८४५ में बंगाल की शिक्षा परिषद् ने कलकत्ता में एक केन्द्रीय विश्वविद्यालय खोलने का सुझाव रखा किन्तु बोर्ड भ्रॉफ डायरेक्टर्स ने इस विचार को असामयिक कहकर अस्वीकार कर दिया, किन्तु जब १८५३ में ब्रिटिश संसद ने कम्पनी का चार्टर बदलने की भ्रोर ध्यान दिया तो बोर्ड भ्राफ डायरेक्टर्स ने यह स्वीकार कर लिया कि अब समय भ्रा गया है कि भारत में विश्वविद्यालयों की स्थापना की जाय। वुड के घोषणा-पत्र में निर्दिष्ट सिफारिशों के कारण कलकत्ता बम्बई भ्रौर मद्रास में सन् १८५७ में तात्कालिक लन्दन विश्वविद्यालय के भ्रादर्श पर परीक्षक संस्थाओं के रूप में तीन विश्वविद्यालय खोले गये। तीनों विश्वविद्यालयों के नियम भ्रौर ढाँचे भ्रापस में मिलते-जुलते थे। उनको खोलने का उद्देश्य था परीक्षाओं के द्वारा उन छात्रों की योग्यताओं की जाँच करना जिन्होंने ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में क्षमता प्राप्त की हो, तथा इन क्षमताओं के भ्राधार पर उपाधियाँ प्रदान करना।"

इन विश्वविद्यालयों का शासन सीनेट को सौंपा गया। सीनेट का संगठन कुलपति, उपकुलपति तथा सदस्यों द्वारा होता था। कुलपति स्थानीय गवर्नर, उपकुलपति, गवर्नर द्वारा मनोनीत व्यक्ति तथा सीनेट के सदस्य सामान्य भ्रौर पदेन दो प्रकार के होते थे। सदस्यों की संख्या अनिश्चित तथा उनका कार्यकाल भी अनिश्चित ही रखा गया।

विश्वविद्यालयों का काम केवल परीक्षा लेना तथा प्रमाण पत्र देना ही था। उनमें अध्यापन की कोई व्यवस्था न थी। वे स्कूलों तथा कालेजों को मान्यता अवश्य दे सकते थे। इसके अतिरिक्त उनका कोई भ्रौर काम न था विश्वविद्यालयों द्वारा ली जाने वाली परीक्षाओं में पहली इन्ट्रेन्स की परीक्षा थी। उन्हें सन् १८६० में इण्टरमीडिएट की परीक्षा लेने का अधिकार मिला। जो भी विद्यालय इन परीक्षाओं के लिये विद्यार्थियों को तैयार करते उनको ये विश्वविद्यालय मान्यता देते थे अन्य कोई नहीं। इसी बीच कुछ गैर सरकारी हाई स्कूल परीक्षाओं के लिये छात्रों को तैयार करने लगे। कुछ स्कूल तो सरकारी अनुदान की भी परवाह न करने लगे। फलतः सरकारी शिक्षा विभाग भ्रौर विश्वविद्यालयों में कटुता पैदा होने लगी क्योंकि विश्वविद्यालय इन गैर-सरकारी संस्थाओं को जिन पर सरकार का उचित नियन्त्रण न हो पाता था मान्यता देने लगे थे। इन विश्वविद्यालयों की छत्रछाया में कालेजों का विस्तार भी द्रुतगति से हुआ सन् १८८२ भ्रौर १८८७ से पंजाब भ्रौर इलाहाबाद में भी विश्वविद्यालय खुल जाने पर महाविद्यालयों का प्रसार भ्रौर भी तेज वेग से होने लगा सन् १८८२ से पूर्व देश में केवल ६८ महाविद्यालय थे किन्तु २० वर्ष बाद यह संख्या १७८ हो गई।

सन् १९०२ तक विश्वविद्यालयों के संगठन भ्रौर कार्य में दोष भ्राने लगे। महाविद्यालयों की प्रगति इस वेग से हो रही थी कि विश्वविद्यालय इतने अधिक कालेजों के भार को वहन नहीं कर सकते थे। इस कारण शिक्षा के स्तर में पतन होने लगा। सीनेट का रूप भी विकृत हो गया था वे अपने बोझ को सँभालने में असमर्थ होती जा रही थी। परीक्षा संचालन के अतिरिक्त विश्वविद्यालय भ्रौर काम न करते थे अतः जनता उनसे असन्तुष्ट होती जा रही थी। इन दोषों को दूर करने के लिये सन् १९०४ में लार्ड कर्जन के शासन काल में कानून पास किया गया जो भारतीय विश्वविद्यालय कानून के नाम से प्रसिद्ध है। इसकी मुख्य धारायें निम्नांकित हैं—

१. विश्वविद्यालय के अधिकार बढ़ा दिये जायें। वे परीक्षा लेने के साथ-साथ अनुसंधान तथा शिक्षण कार्य भ्रारम्भ करें। इस कार्य के लिए उन्हें लेक्चरर तथा प्रोफेसर नियुक्त करने होंगे, पुस्तकालयों, अजायब घरों भ्रौर प्रयोगशालाओं की स्थापना करनी होगी।

२. सीनेट की संख्या कम से कम ५० भ्रौर अधिक से अधिक १०० कर दी जाय। वे ५ वर्ष तक के लिये ही सदस्य रहें। बम्बई, मद्रास भ्रौर कलकत्ता विश्वविद्यालयों में निर्वाचित सदस्यों की संख्या २० तथा अन्य विश्वविद्यालयों में १५ रखी जाय।

३. सिण्डीकेट को जो अब तक अवैधानिक संस्था थी कानूनी हक दिये जायें। वह सम्बद्ध कालेजों को मान्यता देने में सख्ती का बर्ताव करे। सरकार—का इस बात का अधिकार

रहे कि ग्रावश्यकतानुसार सिण्डीकेट द्वारा बनाये गये नियमो का संशोधन तथा परिवर्तन कर सके। यदि निश्चित तिथि तक सिण्डीकेट कानून न बनावे तो सरकार कानून बना सकती है।

४. सपरिषद् गवर्नर जनरल प्रत्येक विश्वविद्यालय की क्षेत्रीय सीमा निर्धारित कर दे।

इन कानूनो ने विश्वविद्यालीय शिक्षा मे काफी ग्रच्छे परिवर्तन भी कर दिये। विश्वविद्यालयो पर सरकारी नियत्रण दृढ हो गया। सम्बन्ध कालेजो के नियंत्रण तथा निरीक्षण के कारण उच्च-शिक्षा के स्तर मे वृद्धि हुई। सिण्डीकेट एक वैधानिक सस्था हो गई। ग्रतः ग्रब वह ग्रधिक ठोस ग्रौर प्रभावयुक्त बन गई। विश्वविद्यालयो को ग्रनुदान मिलने लगा। किन्तु इस कानून का भारतीय जनमत ने सर्वत्र विरोध किया। भारतीय मत के ग्रनुसार सरकारी नियंत्रण से कालिजीय शिक्षा को ग्रघात पहुँच सकता है ग्रौर हुग्रा भी यही। सन् १९१२ तक सख्या घटकर १७० ही रह गई। लार्ड कर्जन की नीति से देश मे शका ग्रौर ग्रसन्तोष छाने लगा। सन् १९०५ मे स्वदेशी ग्रान्दोलन शुरू हो गया। देश में ग्रनेक राष्ट्रीय सस्थायें खुलने लगी। साथ ही मुस्लिम शिक्षा, ग्रौद्योगिक तथा व्यावहारिक शिक्षा की माँग बढ गई।

ग्रत लार्ड कर्जन के सुधार के पश्चात् देश मे उच्च शिक्षा के पुनर्निरीक्षण की ग्रावश्यकता महसूस हुई। सन् १९१३ मे भारत सरकार ने ग्रपनी उच्च शिक्षा सम्बन्धी नीति प्रकाशित की। सरकार ने कहा—

१. वर्तमान विश्वविद्यालय ने ग्रच्छा कार्य किया है किन्तु उच्च शिक्षा की दशा भारत में ग्रभी सतोषजनक नही है। ग्रभी भारत मे परीक्षक विश्वविद्यालयो की ग्रावश्यकता रहेगी।

२. इनकी सख्या पर्याप्त है ग्रत प्रत्येक प्रान्त मे केवल शिक्षण कार्य करने वाले नये स्थानीय विश्वविद्यालयों की स्थापना की जायगी। सरकार ने पटना ग्रौर नागपुर मे प्रादेशिक विश्वविद्यालय तथा ढाका, ग्रलीगढ ग्रौर बनारस मे स्थानीय विश्वविद्यालय खोलने का निश्चय किया।

३. सरकार प्रत्येक विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों की मानसिक, नैतिक तथा शारीरिक उन्नति करना चाहती है।

४. विश्वविद्यालयो का कार्यभार कम करने के लिये हाईस्कूलों को स्वीकृति प्रदान करने का कार्य प्रान्तीय तथा क्षेत्रीय राज्यो को देने का निश्चय कर लिया है।

यद्यपि इन सिफारिशो के कारण नवीन विश्वविद्यालय कायम हुये, किन्तु फिर भी विश्वविद्यालयों की समस्या हल न हुई। सन् १९१७ में भारत सरकार ने कलकत्ता विश्व-विद्यालय ग्रायोग की नियुक्ति की जिसकी जाँच का क्षेत्र कलकत्ता विश्वविद्यालय तथा उससे सम्बन्धित कालेजों ग्रौर माध्यमिक स्कूलों का कार्य था। ग्रायोग ने ग्रखिल भारतीय शिक्षा का सूक्ष्म ग्रध्ययन करने के पश्चात् निम्नांकित खास-खास सिफारिशें कीं—

(१) इण्टरमीजिएट कक्षायें विश्वविद्यालयो से ग्रलग करदी जाय ग्रौर विश्वविद्यालयो में प्रवेश इण्टर परीक्षा के बाद हो। डिग्री कोर्स तीन वर्ष कर दिया जाय।

(२) इण्टरमीडिएट कक्षाग्रो के लिये इण्टरमीडिएट स्कूल खोले जायें जहाँ चिकित्सा, इञ्जीनियरिंग, कृषि, वाणिज्य, ग्रध्यापन, व्यवसाय, कला ग्रौर विज्ञान के पाठ्यक्रम रखे जायें।

(३) माध्यमिक तथा इण्टरमीडिएट कक्षाग्रों के निरीक्षण के लिये प्रान्तो मे माध्यमिक शिक्षा परिषदें स्थापित की जाय जो इन दो परीक्षाग्रो की व्यवस्था करें।

(४) विद्यालय के शिक्षण सम्बन्धी विषयों मे सरकार का नियंत्रण समाप्त कर दिया जाय।

(५) सरकारी नौकरी-प्रणाली विश्वविद्यालयो के लिये उपयुक्त नहीं है ग्रतः विश्व-विद्यालयो की नौकरी का सगठन ग्रलग से ही हो।

(६) परीक्षा प्रणाली मे क्रान्तिकारी परिवर्तन, माध्यमिक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा किन्तु उच्च शिक्षा का माध्यम ग्रंग्रेजी, स्त्रियों की शिक्षा पर बल, विश्वविद्यालयों मे ग्रध्यापन, कानून, इञ्जीनियरिंग, डाक्टरी, एव कृषि के प्रबन्ध ग्रादि विषयो पर भी कमीशन ने उत्तम सुझाव दिये।

इस आयोग की सिफारिशें मान ली गईं। इसके फलस्वरूप समस्त भारत में धड़ाधड़ विश्वविद्यालय खोले गये। ढाका और रंगून (१९२०), अलीगढ़ और लखनऊ (१९२१), दिल्ली (१९२२), नागपुर (१९२३), आंध्र (१९२६), आगरा (१९२७), अन्नामलय (१९२९), ट्रावणकोर (१९३०), उत्कल (१९४३), सागर (१९४७), सिंध और राजपूताना (१९४७), में विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई।

सन् १९४८ से अब तक की विश्वविद्यालीय शिक्षा की प्रगति

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय हमारी विश्वविद्यालीय शिक्षा मूल विश्वविद्यालय (कलकत्ता, बम्बई और मद्रास) के ढंग पर ही चल रही थी। सन् १९१९ में में सैंडलर कमीशन की सिफारिशों के आधार पर कुछ सुधार अवश्य हुए किन्तु हमारे विश्वविद्यालय राष्ट्र की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थ थे। इस कारण सन् १९४८ में भारत सरकार ने डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय आयोग नियुक्त किया जिसको भारतीय विश्व विद्यालय शिक्षा की स्थिति के सम्बन्ध में रिपोर्ट प्रस्तुत करने व इसके विस्तार तथा प्रसार के लिये परामर्श देने का काम सौंपा गया। आयोग को भारतीय विश्वविद्यालयों की शिक्षा के लक्ष्य, उद्देश्य अनुसंधान कार्य, वैज्ञानिक परिवर्तन, अधिकार नियन्त्रण, सरकार से सम्बन्ध, आय-व्यय स्तर, पाठ्यक्रम, प्रवेश, शिक्षण माध्यम, उन्नत अनुसंधान, अध्ययन की सुविधायें, नवीन विश्वविद्यालयों की स्थापना, धार्मिक शिक्षा, बनारस और अलीगढ़ विश्वविद्यालयों की स्थिति, प्राध्यापकों की नियुक्ति, वेतन, सुविधायें अनुशासन आदि विषयों पर अपने विचार प्रगट करने थे।

कमीशन ने विश्वविद्यालयों के शिक्षण के गिरे हुए स्तर पर उनके लक्ष्यों एवं शिक्षण विधियों को परिवर्तित करने की आवश्यकता पर, अपने महत्वपूर्ण विचार प्रगट किये। केन्द्रीय शिक्षा परामर्श परिषद ने सन् १९५० में अधिकतर सुझावों को स्वीकार कर लिया और भारत सरकार ने उनको क्रियान्वित करने का निश्चय कर लिया। भारत सरकार की इस नीति के कारण नवीन विश्वविद्यालय स्थापित हुए, नवीन पाठ्यक्रम और विषय बढ़ाये गये। अनुसंधान पर विशेष बल दिया गया और अनुसंधान कार्य को तीव्र गति से चलाने के लिये सुविधायें दी गईं। सन् १९५१ में विश्व-भारती को विश्व विद्यालय घोषित कर दिया गया। अलीगढ़, बनारस, दिल्ली विश्व विद्यालयों के विधानों का परिवर्तन एवं संशोधित करके प्रजातन्त्र के आदर्शों के अनुकूल बनाया। केन्द्रीय व राज्यों की सरकार की रुचि उच्चशिक्षा की ओर बढ़ने लगी। सन् १९५३ में एक विश्व-विद्यालय अनुदान आयोग की स्थापना हुई जो विश्वविद्यालयों के लिये वित्तीय अनुदान निर्धारित करने में उचित सलाह दे और उनके कार्यों एवं विकास की देख भाल कर सके।

यह जाँच करने के लिये कि विश्व विद्यालय आयोग के सुझावों के अनुसार उच्च शिक्षा में प्रगति हो रही है अथवा नहीं सन् १९५३ में, हुमायूँ कबीर की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की गई। इस समिति ने सन् १९५४ में अपने सुझाव पेश किये जो स्वीकार कर लिये गये।

इन सब प्रयत्नों के फलस्वरूप उच्चशिक्षा के क्षेत्र में काफी उन्नति हो रही है।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (University Grants Commission)

सार्जेण्ट योजना के प्रस्तावों के कारण, भारत सरकार ने एक विश्वविद्यालय अनुदान समिति की नियुक्ति सन् १९४४ में की थी। इसका सम्बन्ध केवल केन्द्रीय विद्यालयों से था। पाँच वर्ष बाद यह समिति बन्द कर दी गई। इसके बाद सन् १९५३ में राधाकृष्णन् आयोग की सिफारिशों के अनुसार विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की स्थापना की गई। इसके कार्य निम्नलिखित हैं—

१. एक विशेषज्ञ समिति के रूप में केन्द्रीय सरकार को विभिन्न विद्यालयों की सुविधाओं और उनके शिक्षा स्तर में सम्बन्धित समस्याओं पर सुझाव देना और उनके विषय में आवश्यक कार्य सम्पादित करना।
२. विश्वविद्यालयों की आर्थिक आवश्यकताओं की जाँच करके उनको अनुदान देना।
३. नवीन विश्वविद्यालयों की स्थापना के समय उनको सलाह देना एवं पुराने विश्वविद्यालयों के सुधार के मार्ग बतलाना और उनकी किसी भी समस्या को सुलझाना।

४. केन्द्र द्वारा अथवा किसी विश्वविद्यालय द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर देना।
५. केन्द्रीय व राज्यीय सरकार को किसी विश्वविद्यालयों की डिग्रियों की मान्यता के विषय में सलाह देना।
६. उच्चशिक्षा के सुधार के लिये उचित साधनों के विषय में विश्वविद्यालयों को परामर्श देना।
७. केन्द्रीय सरकार के अनुसार उच्चशिक्षा सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार करना तथा विकास योजनाओं को कार्यान्वित करना।

सन् १९५४-५५ में विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग ने कुछ भारतीय विश्वविद्यालयों में समान वेतन क्रम लागू करवा दिये हैं। प्रोफेसर के वेतन ३५०-८०० तथा लेक्चररों के वेतन २५०-५०० कर दिये गये हैं। सन् १९५५-५६ में भिन्न-भिन्न विश्वविद्यालयों के लिये १ करोड़ ३० लाख रुपये की राशि भवनों, पुस्तकालयों एवं साजसज्जा के लिये दी गई है। सन् १९५६ में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम पारित कर आयोग को वैधानिक सत्ता प्रदान करदी गई है। आयोग अब निरन्तर इस बात का प्रयत्न कर रहा है कि विश्वविद्यालीय शिक्षा में नवीन उद्देश्यों तथा दिशाओं का प्रादुर्भाव हो। वह अनुसन्धान तथा उच्चस्तरीय तकनीकी शिक्षा के प्रसार पर अधिक बल दे रहा है।

त्रिवर्षीय डिग्री पाठ्यक्रम

भारत सरकार का शिक्षामंत्रालय एवं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग इधर निरन्तर प्रयत्न कर रहे हैं कि प्रथम डिग्री कोर्स ३ वर्ष का सभी विश्वविद्यालयों में लागू कर दिया जाय। बड़ौदा, कर्नाटक, केरल, मद्रास, ओस्मानिया तथा सागर विश्वविद्यालयों ने इस पाठ्यक्रम का प्रारम्भ १९५७-५८ या उनसे पहले ही कर दिया था, अलीगढ़, अन्नामलै, मैसूर, नागपुर, आनन्द तथा वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय १९५९-६० में शुरू करने वाले थे। बचे हुए विश्वविद्यालय इस योजना पर विचार कर रहे हैं। सिद्धान्त रूप में तो सभी विश्वविद्यालय इस योजना में सहमत हैं किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से इस योजना को कार्यान्वित करने के लिये अनेक कठिनाइयाँ हैं। हायर सेकेण्डरी योजना भी सभी राज्यों में लागू नहीं हो पाई है। केवल दिल्ली, त्रिपुरा, बिहार, राजस्थान, मध्यप्रदेश केरल, आसाम, काश्मीर, तथा पश्चिमी बंगाल में ही यह संगठन चालू है। मैसूर, आन्ध्र, मद्रास, मनीपुर, हिमाचल आरम्भ कर रहे हैं तथा महाराष्ट्र, गुजरात, उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, पंजाब अभी इस योजना पर विचार कर रहे हैं। इन सब प्रान्तों में इण्टर कालेजों की बड़ी भारी संख्या है। प्राचीन ढाँचे को नवीन ढाँचे में बदलने के लिये काफी रुपये की आवश्यकता है। दूसरी पंचवर्षीय योजना में इस पाठ्यक्रम को प्रारम्भ करने के लिए पन्द्रह करोड़ रुपये का प्रबन्ध किया गया था। यह रुपया १८० इण्टर कालेजों को डिग्री कालेजों में बदलने के लिये तथा ३६० डिग्री कालेजों के पुनर्गठन के लिए उपयुक्त समझा गया। इस प्रकार देश त्रिवर्षीय डिग्री-कोर्स की योजना चालू करने के लिये प्रयत्नशील है।

वर्तमान भारतीय विश्वविद्यालयों की विशेषताएँ तथा उनकी समस्याएँ

Q. 2. Discuss the special featurs of Indian universities of the persent ?

Ans. वर्तमान भारतीय विश्वविद्यालय शिक्षा का स्वरूप ठीक प्रकार से समझने के लिये हमें *विश्वविद्यालयों के प्रसार, उनके प्रशासन, तथा अन्य संस्थाओं को उनसे सम्बन्ध* अध्ययन करना होगा।

विश्वविद्यालयों के प्रकार—भारतीय विश्वविद्यालयों को संवैधानिक दृष्टिकोण से हम तीन वर्गों में बाँट सकते हैं।

(१) एकात्मक।
(२) सम्बन्धात्मक।
(३) संघात्मक।

एकात्मक विश्वविद्यालयों की सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था उनके अपने ही विभागों में अथवा उसी नगर या स्थान में उनके कालेजों में होती है। एक ही स्थान में केन्द्रित होने के कारण ऐसे

विश्वविद्यालय सावासिक एवं शैक्षणिक होते हैं। सभी अध्यापक विश्वविद्यालय की मातहती में कार्य करते हैं। उनकी नियुक्ति तथा नियन्त्रण, शिक्षण, परीक्षण, एवं प्रशासन सारे कार्य विश्वविद्यालय स्वयं करता है। अलीगढ इलाहाबाद, अन्नामलय, बनारस, बडोदा, जादवपुर, कुरुक्षेत्र, लखनऊ, पटना, रुडकी, आनन्द तथा विश्वभारती एकात्मक ढंग के विश्वविद्यालय हैं।

सम्बन्धात्मक विद्यालयो में अनेक कालेज होते हैं। अत. उनका क्षेत्र विस्तृत रहता है। ऐसे विश्वविद्यालय का कार्य है बाहरी कालेजो को मान्यता देना, उनके विद्यार्थियों की परीक्षा का प्रबन्ध करना, तथा उनको अपनी डिग्रियाँ प्रदान करना। वह समय समय पर अपने अन्तर्गत कालेजो का निरीक्षण करता है और सम्बद्धीकरण की शर्तें तय करता है। इस प्रकार के कुछ विश्वविद्यालय शिक्षण का भी कार्य करते हैं ऐसे विश्वविद्यालयों के ये कार्य भारतीय विश्वविद्यालय अधिनियम १९०४ के अनुसार ही होते हैं। इस अधिनियम की धारा २१ और २२ में सम्बद्धीकरण की शर्तें विस्तारपूर्वक दी गई हैं। कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग की सिफारिशों के कारण अब इन विश्वविद्यालयों मे से कुछ शिक्षण कार्य भी चलाने लगे हैं। आगरा, आंध्र, केरल, मद्रास, मराठवाड, कलकत्ता, दिल्ली, गोरखपुर, गोहाटी, गुजरात, जम्मू और कश्मीर, कर्नाटक, मैसूर, नागपुर, ओसमानिया, पजाब, पूर्वी राजस्थान, सागर एम. एन. टी. टी, बम्बई, वेंकटेश्वर, उत्कल और विक्रम विश्वविद्यालय इसी प्रकार के हैं।

सघात्मक विश्वविद्यालयो में विश्वविद्यालय तथा उसके साथी अन्य महाविद्यालय एक प्रकार की शिक्षा देते हैं। प्रत्येक कालेज विश्वविद्यालय से सहयोग प्राप्त करता है और उसके नियन्त्रण में रहता है। विश्वविद्यालय के शिक्षण विभाग मार्ग प्रदर्शक का काम करते हैं। विश्वविद्यालय का क्षेत्र उसी केन्द्र में ही सीमित रहता है जहाँ उसके अधीन कालेज रहते हैं। इन कालेजों में से प्रत्येक मे उच्च शिक्षा का प्रबन्ध रहता है। विश्वविद्यालय के प्रबन्ध और प्रशासन मे प्रत्येक कालेज अपना-अपना मात्र क्षेत्र है। सघात्मक विश्वविद्यालय विभिन्न कालिजो का एक ऐसा सघ है जहाँ शैक्षणिक कार्य अधीन कालिज समुदाय मिलजुल कर करते हैं। इस प्रकार वे अपनी स्वाधीनता को कुछ न कुछ मात्रा मे विसर्जित करते हैं। बम्बई और जबलपुर के विश्वविद्यालय इसी प्रकार के हैं।

विश्वविद्यालय का प्रशासन—विश्वविद्यालय का बाह्य प्रशासन केन्द्रीय अथवा राज्यीय सरकार के हाथ मे रहता है। कुछ विश्वविद्यालय केन्द्रीय सरकार द्वारा नियन्त्रित अथवा घोषित तथा कुछ राज्य सरकारों द्वारा नियन्त्रित रहते हैं। सरकार का काम है उन्हे आर्थिक सहायता देना तथा उनके लिये अधिनियम बनाना। इसके अलावा सरकार उनकी कार्यविधि मे किसी प्रकार का हस्तक्षेप नही करती।

विश्वविद्यालय का आन्तरिक प्रशासन नाना प्रकार के निकायो द्वारा होता है। इनमें श्रेष्ठतम है सीनेट या कोर्ट। अन्य निकायो मे एकेडेमिक काउंसिल, सिण्डीकेट, बोर्ड आफ स्टडीज और फैकल्टीज को सम्मिलित किया जा सकता है। सीनेट प्रत्येक शैक्षणिक एवं दैनिक कार्य का निरीक्षण करती है। इसके सदस्य इस प्रकार के होते हैं पदेन, मनोनीत एवं निर्वाचित। प्रान्तीय शासन, विश्वविद्यालय के कुछ अधिकारी तथा कालेजो के प्रिंसीपल ही पदेन सदस्य हो सकते हैं; प्रान्तीय सरकार कुछ सदस्यो को मनोनीत करती है तथा पंजीयन स्नातक मण्डल अपने-अपने [illegible] र शैक्षणिक [illegible] । आन्तरिक [illegible] उसके बाद [illegible] व्यवस्था है। [illegible] रा मनोनीत [illegible] की नियुक्ति [illegible] ने वाले तथा [illegible]

विश्वविद्यालय के प्रशासन में अन्य संस्थाओं का सहयोग—विश्वविद्यालयो से सम्बन्ध रखने वाले अन्य निकायो मे माध्यमिक शिक्षा मण्डल, अन्तर्विश्वविद्यालय मण्डल और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को सम्मिलित किया जा सकता है।

विश्वविद्यालयों की वर्तमान प्रगति

Q. 3. What are the present developments in University Education in India? Discuss the main recommendations of the Indian University Commission for the reorganisaton of University Education

Ans. भारत में विश्वविद्यालयीय शिक्षा की वर्तमान प्रगति—यदि हम देश के विभाजन से पूर्व तथा उसके उपरान्त देश की विश्वविद्यालयीय शिक्षा पर दृष्टिपात करें तो हमें ज्ञात होता है कि विभाजन से पूर्व देश में कुल २१ विश्वविद्यालय थे और विभाजन के उपरान्त भारत में कुल १६ विश्वविद्यालय रह गये। १९५५ ई० में उनकी संख्या ३३ हो गई। कला तथा विज्ञान कॉलेज ५५१ हो गये। १९५४ में ही स्थापित किए हुए व्यावसायिक कालेज २४२ और विशिष्ट कालेज ८० थे सन् १९४७-४८ में उच्च शिक्षा पर कुल व्यय ५.६६ करोड़ था। १९५३-५४ में यह व्यय बढ़ाकर २४.७४ करोड़ कर दिया गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना में उच्च शिक्षा पर १५ करोड़ रुपये और द्वितीय पंचवर्षीय योजना में विश्वविद्यालयीय शिक्षा पर ५७ करोड़ रुपए व्यय किए गए। नवीन विश्वविद्यालय खोले गए। उनका विवरण इस प्रकार है—

१. पंजाब विश्वविद्यालय (चण्डीगढ़) १९४७ ई० शैक्षणिक तथा सम्बद्धीय।
२. गोहाटी विश्वविद्यालय (आसाम) यह शैक्षणिक तथा सम्बद्धीय है।
३. जम्मू तथा काश्मीर विश्वविद्यालय (श्रीनगर) सम्बद्धीय विश्वविद्यालय। (१९४८)।
४. रुड़की विश्वविद्यालय (१९४८)
५. पूना विश्वविद्यालय शैक्षणिक एवं सम्बद्धीय (१९४९)
६. महाराजा जयाजीराव विश्वविद्यालय (बड़ौदा) (१९४९) शैक्षणिक एवं सम्बद्धीय। गृह विज्ञान, भारतीय संगीत, ललित कलायें एवं समाज शिक्षा इसके प्रमुख विषय हैं।
७. गुजरात विश्वविद्यालय (अहमदाबाद) (१९५०) शैक्षणिक एवं सम्बद्धीय।
८. कर्नाटक विश्वविद्यालय (धारवाड़) (१९५०) शैक्षणिक एवं सम्बद्धीय।
९. बिहार विश्वविद्यालय (१९५१)
१०. एस० एन० डी० टी० महिला विश्वविद्यालय (बम्बई) (१९५१)
११. विश्वभारती विश्वविद्यालय (शान्ति निकेतन) (१९५१) आवासकीय एवं शैक्षणिक। विशिष्ट विषय संस्कृत एवं ललित कलायें।
१२. श्री वेंकटेश्वर विश्व विद्यालय (कलकत्ता) (१९५४) शैक्षणिक एवं आवासिक।
१३. जादवपुर विश्वविद्यालय (कलकत्ता) (१९५५)
१४. सरदार बल्लभभाई विद्यापीठ (विश्वविद्यालय बल्लभनगर आनन्द) (१९५५)

इसके अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार द्वारा हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस एवं मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़ के साम्प्रदायिक स्वरूप में कुछ परिवर्तन करने का प्रयत्न किया गया।

१५. [illegible]
१६. [illegible]
१७. [illegible]
१८. [illegible]
१९. [illegible] ...ीय।
२०. [illegible] सम्बद्धीय।
२१. नई दिल्ली में 'एग्रीकलचर रिसर्च इन्स्टीट्यूट' को (१९५८) में विश्वविद्यालय बना दिया गया।
२२. मराठवाड़ विश्वविद्यालय (२३ अगस्त १९५८)
२३. रुद्रपुर कृषि विद्यालय।
२४. मेरठ
२५. कानपुर
२६. विचपुरी, आगरा

इन अनेकों नये-नये विश्वविद्यालयों के खुलने से विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम एक विवादास्पद विषय बन गया। अनेकों अन्य समस्यायें उत्पन्न हो गईं। इन समस्याओं पर विचार करने के लिए १६४८ में एक उपकुलपतियों का सम्मेलन बुलाया गया था। फिर भी उच्च शिक्षा में दोष उत्पन्न होते रहे तब ४ नवम्बर सन् १६४८ ई० को राधाकृष्णन् विश्वविद्यालय आयोग की नियुक्ति की गई।

भारतीय विश्वविद्यालयों की पुनर्व्यवस्था—भारतीय विश्वविद्यालयों की पुनर्व्यवस्था के लिए आयोग ने सुझाव दिए कि—

१. शिक्षकों की समस्या—शिक्षकों को चार श्रेणियों में विभक्त किया गया। प्रोफेसर, रीडर, लैक्चरर तथा इन्स्ट्रक्टर। इसके अतिरिक्त अनुसन्धान अभिसदस्यों (Research Fellows) की नियुक्ति की जाय। उन्नति योग्यता के आधार पर हो। जूनियर तथा सीनियर पदों में २:१ का अनुपात हो। रिटायर होने की उम्र ६० वर्ष हो। ४ वर्ष केवल प्रोफेसरों के लिए और बढ़ाए जा सकते हैं। नवीन वेतन क्रम निश्चित किये गए तथा सेवा आदि की सुविधाओं की व्यवस्था की गई।

२. शिक्षण मानदण्ड—विश्वविद्यालयों में प्रवेश करने के लिए छात्र इण्टरमीडिएट पास हों। इण्टर कालेज और अधिक खोले जायें। १२ वर्ष तक की शिक्षा के उपरान्त बहुत बड़ी संख्या में छात्रों को व्यावसायिक शिक्षा की ओर आकर्षित किया जाय। शिक्षकों के लिए रिफ्रेशर कोर्स खोल जावें। विश्वविद्यालयों में कला तथा विज्ञान विभागों में ३००० तथा सम्बन्धित कालेजों में १५०० से अधिक विद्यार्थी न रखे जावें। ट्यूटोरियल पद्धति चालू हो और पुस्तकालयों तथा प्रयोगशालाओं का समुचित प्रबन्ध हो।

[illegible] परीक्षा
[illegible] र व्याव-

४. उत्तर ग्रेजुएट प्रशिक्षण तथा अनुसन्धान (Post Graduate Training and Research)—(कला व विज्ञान) : रिसर्च के लिये विद्यार्थियों का चुनाव अखिल भारतीय स्तर पर होना चाहिये। रिसर्च कार्य कम से कम दो वर्षों में हो। योग्य विद्यार्थियों को रिसर्चकाल में अभिवृत्ति (Research Fellowship) मिलनी चाहिए। एम० एस-सी० तथा पी० एच-डी० के विद्यार्थियों को शिक्षा मन्त्रालय की ओर से छात्रवृत्तियाँ तथा निःशुल्क स्थान मिलने चाहिएँ। अनुसन्धान कार्य के लिये ही कुछ योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति हो और वे शिक्षण कार्य से मुक्त हों।

५. व्यावसायिक शिक्षा—इसमें कृषि शिक्षा, वाणिज्य शिक्षा, शिक्षा विज्ञान सम्बन्धी शिक्षा, इंजीनियरिंग तथा टेक्नोलॉजी की शिक्षा तथा कानून और चिकित्सा विज्ञान की शिक्षा की व्यवस्था की गई।

६. धार्मिक शिक्षा—प्रत्येक शिक्षा संस्था में दैनिक कार्य से पूर्व कुछ मिनटों तक मौन चिन्तन हो जिसमें प्रत्येक व्यक्ति आत्मदर्शन का प्रयास करे। डिग्री कोर्स के प्रथम वर्ष में धार्मिक महापुरुषों की जीवनियाँ, द्वितीय वर्ष में विश्व के धार्मिक ग्रन्थों में सार्वजनिक महत्व के अंश और तृतीय वर्ष में धर्म-दर्शन के मूलभूत तत्वों का अध्ययन कराया जाय।

७. शिक्षा माध्यम—स्थानीय भाषाएँ और राष्ट्रीय भाषा (देवनागरी लिपि) में से किसी का भी प्रयोग किया जा सकता है। माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय स्तर पर विद्यार्थी को कम से कम तीन भाषाओं का ज्ञान होना चाहिये। वे मातृभाषा, राष्ट्रभाषा, तथा अंग्रेजी हैं। सम्पूर्ण देश के लिए भाषा विशेषज्ञों के एक बोर्ड द्वारा वैज्ञानिक शब्दावली तैयार करनी चाहिये और अखिल भारतवर्षीय महत्व की पुस्तकें भी तैयार करें। राष्ट्रभाषा हिन्दी का शिक्षण अनिवार्य कर दिया जाय।

(८) परीक्षा प्रणाली—वस्तुगत परीक्षाओं (Objective Tests) के साथ निबन्ध [illegible] Tests) को मिला देने से कुछ हल निकल सकता है। वर्ष के दौरान [illegible] किये जावें। डिग्री कालेज के तीन वर्ष के कोर्स [illegible] को [illegible] चुनाव ठीक हो और एक

समय में तीन बार तक परीक्षा रखे जावें। श्रेणियों के प्रतिशत इस प्रकार हों—७०% प्रथम श्रेणी, ५५% द्वितीय श्रेणी ४०% तृतीय श्रेणी। व्यावसायिक शिक्षाओं में मौखिक परीक्षा (Viva Voce) भी होना चाहिये।

(९) विद्यार्थी, उनके कार्य तथा कल्याण—विश्वविद्यालय में प्रवेश होने के लिये योग्य विद्यार्थियों की छाँट की जाय। योग्य और निर्धन छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दी जावें। उनकी डाक्टरी जाँच हो और उचित चिकित्सा का प्रबन्ध हो। डायरेक्टर आफ फिजीकल एजूकेशन की नियुक्ति की जाय। खेलों तथा अनिवार्य शारीरिक शिक्षा की व्यवस्था हो। N. C. C. का प्रबन्ध हो। विद्यार्थियों को समाज सेवा के कार्यों के लिये प्रोत्साहित किया जाय। एक विद्यार्थी हितकारी सलाहकार बोर्ड (Advisory Board of Student Welfare) का गठन होना चाहिये।

(१०) स्त्री शिक्षा—स्त्री और पुरुषों की शिक्षा में अनेकों बातें समान होनी चाहिये फिर भी दोनों की शिक्षा पूर्णरूप से एक सी ही नहीं होनी चाहिये। इसके लिये उनको पथ प्रदर्शन की आवश्यकता है। सह शिक्षा वाले कालेजों, उनकी आवश्यकताओं का प्रबन्ध हो और उनके साथ भारतीय सभ्यता के अनुसार शिष्टता का व्यवहार होना चाहिये। माध्यमिक स्तर पर सह-शिक्षा नहीं होनी चाहिये। किन्तु वैगिक स्तर तथा विश्वविद्यालय स्तर पर सह-शिक्षा हो सकती है।

(११) अन्य सिफारिशें—इनके अतिरिक्त कमीशन ने विश्वविद्यालय शिक्षा संगठन, नियंत्रण, वित्त, तथा ग्राम्य विश्वविद्यालयों के विषय में भी महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये हैं।

अपना मत—यह आयोग प्रथम आयोग है। जिसने उच्च शिक्षा के सम्पूर्ण पहलुओं पर विचार किया है। यदि इस आयोग की सिफारिशों को कार्यान्वित कर दिया जाय तो निश्चित ही उच्च शिक्षा राष्ट्रीय शिक्षा का स्वरूप ग्रहण कर सकती है। इसके सम्पूर्ण सुझाव व्यावहारिक हैं।

ग्रामीण विश्वविद्यालय

Q 4. In what way is the educational programme laid down by the Radhakrishnan University Commission practicable for the development of a rural system of education in India?

(Agra B. T. 1952)

Ans. भारतीय गणराज्य की बहुसंख्यक जनता ग्रामों में रहती है। शिक्षा को जन और जीवन से पृथक नहीं किया जा सकता है। अतः सच्ची शिक्षा वह है जिसे देश के सभी व्यक्ति सुविधा से प्राप्त करके और उसका जीवन में सदुपयोग करके जीवन को सुखी और सफल बना सकें। इस दृष्टिकोण से सच्ची भारतीय शिक्षा वह है जो भारत की बहुसंख्यक जनता को प्राप्त हो सके। हमारे विश्वविद्यालयों का ढाँचा शहरी है और शहर के नागरिक ही उनसे सच्चा लाभ उठा पाते हैं। बहुसंख्यक ग्रामीण निर्धनता के कारण तथा उच्च शिक्षा की सुविधाएँ शहरों में ही होने के कारण शिक्षा से लाभ नहीं उठा पाते। इस दृष्टिकोण से विश्वविद्यालय आयोग के सदस्यों ने यह आवश्यकता अनुभव की कि ग्रामीण विश्वविद्यालय स्थापित किये जावें। उनमें ग्रामीण स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर शिक्षा दी जाय।

ग्रामीण विश्वविद्यालयों के सम्बन्ध में आयोग के सुझाव :

(१) ग्रामीण विश्वविद्यालयों की योजना बहुत से छोटे-छोटे और आवासिक पूर्व-स्नातक कालेजों (Residential under graduate Universities) से प्रारम्भ हों।

(२) ये कालेज केन्द्र में स्थित एक विश्वविद्यालय के चारों ओर स्थित हों।

(३) प्रत्येक कालेज में लगभग ३०० और एक विश्वविद्यालय से सम्बद्ध सम्पूर्ण कालेजों में २५०० छात्र संख्या होनी चाहिये।

(४) प्रत्येक विषय के लिये विशेष शिक्षा प्राप्त शिक्षक पृथक-पृथक नियुक्त किये जावें, किन्तु अनिवार्य विषयों की शिक्षा में सहायक सामग्री पर्याप्त मात्रा में रहनी चाहिये।

(५) पुस्तकालय तथा प्रयोगशालाएँ समीप के सभी कालेजों के लिये एक ही स्थान पर होनी चाहिए।

(६) इन कालेजों का प्रमुख उद्देश्य सामान्य शिक्षा देना और उनकी व्यक्तिगत रुचियों का विकास करना है।

(७) स्नातक पूर्व कक्षा के विद्यार्थियों को अध्ययन काल में विश्वविद्यालय अथवा किसी व्यावसायिक स्कूल में किसी पाठ्यक्रम को पढ़ने की सुविधा होनी चाहिए।

(८) स्नातक पूर्व और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में कठोर विभाजन नहीं होना चाहिये।

(९) पूर्व स्नातकीय शिक्षा काल में ही छात्र को अपनी रुचि के विषय चुनने का अवसर होना चाहिये।

(१०) कालेजों की शिक्षा में आजीविका सम्बन्धी तैयारी कराने का प्रबन्ध भी रहे।

(११) छात्रों का आधा समय अध्ययन में और आधा समय प्रायोगिक शिक्षा में लगाया जाय।

सुझावों की व्यावहारिकता—ग्रामीण विश्वविद्यालयों की आवश्यकता की अनुभूति नितान्त सत्य है। वर्तमान विश्वविद्यालय वास्तव में भारतीय बहुसंख्यक जनता के लिये एक अप्राप्य वस्तु के समान हो रहे हैं। अतः आयोग ने सुझाव दिये किन्तु सुझावों में व्यावहारिकता कम है। यही कारण है कि अभी तक कुछ उँगलियों पर गिने जा सकने वाले ही ग्रामीण कालेज स्थापित हो सके हैं।

विश्वविद्यालय को स्थापित करने के लिये सर्व प्रथम आवश्यकता धन की है। सरकार सारा धन व्यय नहीं कर सकती और ग्रामीण जनता तो प्राथमिक विद्यालय चलाने में ही असमर्थ है अतः यह सुझाव व्यावहारिक नहीं लगता।

द्वितीय आवश्यकता ग्रामीण छात्रों की है। ग्रामीण छात्र किसी विशेष सीमित स्थान से इतनी संख्या में नहीं प्राप्त हो सकते हैं कि कालेज चलाया जा सके। इससे पूर्ण प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य करने की आवश्यकता है। जब तक वह अनिवार्य नहीं होती है तब तक ग्रामीण विश्वविद्यालयों की बात करना एक स्वप्न ही प्रतीत होता है।

तृतीय आवश्यकता ऐसे अध्यापकों की है जो ग्रामीण क्षेत्रों में रह कर आधुनिक विज्ञान के सुविधा तथा सुख के साधनों का परित्याग करके जीवन व्यतीत करने की परमार्थपूर्ण भावना से ओत-प्रोत हों। इस प्रकार की मनोवृत्ति वाले योग्य अध्यापक मिलना कठिन है।

ग्रामीण क्षेत्रों में आवागमन के सुविधापूर्ण साधन न होने से कालेजों और विश्वविद्यालयों को कुशलता से चलने में बाधा होगी। अतः हम कह सकते हैं कि आयोग ने जिस रूप में ग्रामीण विश्वविद्यालयों को स्थापित करने की सिफारिश की है वह व्यावहारिक नहीं प्रतीत होता है।

ग्रामीण संस्थान (Rural Institutes)

भारत एक कृषि प्रधान देश है क्योंकि इस देश की ८३% जनसंख्या ग्रामों में निवास [illegible] की ओर उचित [illegible] की शिक्षा पर [illegible] पाठ्यक्रम गाँव [illegible] मालूम पड़ता [illegible] भाव है। भार [illegible] सरकार ग्रामीण [illegible] ई लाभ नहीं सम- [illegible] आकर शिक्षा प्राप्त कर सकते थे। गाँवों की शिक्षणीय आवश्यकताओं की ओर सबसे पहले राधाकृष्णन् आयोग का ध्यान गया। इस विषय में आयोग ने अपना सुझाव रखा कि ग्रामीण विश्वविद्यालय की स्थापना एक केन्द्रीय स्थान में की जाय जिसका सम्बन्ध अनेक छोटे मोटे सावासिक पूर्व-स्नातक कालेजों से हो जो कि इनके चारों ओर वृत्ताकाररूप में स्थित हों। आयोग ने इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों को विकसित करने के लिये ग्रामीण कालेजों और ग्रामीण विश्वविद्यालयों की स्थापना पर विशेष जोर दिया। कमीशन ने यह भी कहा कि सामान्य शिक्षा के साथ-साथ इन महाविद्यालयों या विश्वविद्यालयों में व्यावहारिक शिक्षा पर भी विशेष ध्यान दिया जाय। उनके

ारा दी गई शिक्षा ग्रामीण वातावरण एवं ग्राम्य जीवन के निकट हो उससे परे की कोई वस्तु हो जिससे ग्रामीण जनता गाँवों में ही रहकर देश का उद्धार करे।

कमीशन के इस प्रस्ताव को ध्यान मे रखकर भारत सरकार ने जून १९५४ में १८ शिक्षाविदों का एक दल इस विषय में और खोजबीन करने के लिये डेनमार्क भेजा जिसने वहाँ के ग्रामीण संस्थानो का अध्ययन किया। उसी वर्ष अक्तूबर के महीने में एक ग्रामीण उच्चतर शिक्षा समिति की नियुक्ति की गई। समिति ने कहा कि अभी ग्रामीण विश्वविद्यालय खोलना आवश्यक नहीं है परन्तु कुछ ग्रामीण संस्थान खोले जा सकते हैं जो बाद में विश्वविद्यालय के रूप में बदले जा सकते हैं। इन संस्थानो में उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो के सफलीभूत छात्र प्रवेश पा सकते हैं उनकी शिक्षा में ग्राम्यशोध, समाज शिक्षा, समाज कल्याण प्रसार का प्रबन्ध किया जाय। ग्राम्य विषयों में उन्हे तीन साल का डिप्लोमा दिया जाय। ग्रामीण उच्चतर शिक्षा समिति के सुझाव पर ग्रामीण उच्च शिक्षा सम्बन्धी मामलो में विचार करने तथा सलाह देने के लिये सन् १९५४ ही में राष्ट्रीय ग्रामीण उच्चतर शिक्षा परिषद स्थापित की गई जिसकी सहायता से ११ केन्द्र ग्रामीण संस्थानो के लिये चुने गये। ये केन्द्र निम्नांकित हैं—श्री निकेतन, मदुरा, जामिया नगर, उदयपुर, सुरेन्द्रनगर, बिरौली (बिहार), आगरा, खानासरा (सौराष्ट्र), राजपुर (पंजाब), कोयम्बटूर, अमरावती और गार्गोटी। इन संस्थानो के लिये ४ प्रकार के पाठ्यक्रम निर्धारित किये गये हैं।

१. ग्राम्य सेवाओं का तीन वर्ष का डिप्लोमा कोर्स जिसे विश्वविद्यालय की सर्व प्रथम डिग्री के समान मान्यता प्राप्त है।
२. २ वर्ष का कृषि विज्ञान का सर्टीफिकेट कोर्स।
३. ३ वर्ष का सिविल और ग्राम्य इंजीनियरिंग का कोर्स।
४. मैट्रिक परीक्षा पास विद्यार्थियों के लिये एक वर्ष का पूर्व डिप्लोमा कोर्स।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना मे इन संस्थानो के लिये २ करोड़ रुपयो की राशि स्वीकृत की है। फोर्ड संस्थान ने इसमे उल्लेखनीय सहायता प्रदान की है। निर्धन तथा योग्य व्यक्तियों को छात्रवृत्ति देने की विशेष व्यवस्था की गई है। कुछ को शुल्क रहित शिक्षा दी जाती है प्राय: ५०% छात्र किसी न किसी प्रकार की सहायता का उपयोग कर रहे हैं।

ग्रामीण संस्थानों को खोलने मे एक विशेष उद्देश्य सामने रखा गया है। इनमें इस प्रकार की शिक्षा की कल्पना की गई है जिसे प्राप्त कर विद्यार्थी भारत के नव निर्माण और उसके सर्वांगीण विकास कार्यों में सहयोग प्रदान कर सकें। ग्रामीण जनता को विभिन्न कार्यों द्वारा विकास मार्ग पर अग्रसर करना, ग्रामीण विद्यार्थियों के लिये उच्च शिक्षा की सुविधा प्रदान करना, कृषि ग्राम्य स्वास्थ्य एवं स्वच्छता, ग्राम्य इंजीनियरिंग, सहकारिता, समाज सेवा, समाज शिक्षा जैसे उपयोगी विषय पढ़ाकर उन्हें गाँवों की सेवा करने के उपयुक्त बनाना, आदि-आदि इन संस्थानों के कर्तव्य अथवा उद्देश्य माने गये हैं। किन्तु क्या देहाती भारत की समस्या इन मुट्ठीभर साधनों से हल हो सकेगी। सन्देह का विषय है और यदि ये संस्थान ग्रामीण समस्याओं का हल निकाल सकते है तो क्या इस प्रकार उच्च शिक्षा पर खर्च किया गया धन देश के लिये हितकर हो सकता है जबकि देश के ग्रामीण क्षेत्रों में प्रारम्भिक शिक्षा का भी उचित प्रबन्ध नहीं है। आशा की गई थी कि ये संस्थान ऐसे ग्रामीण नेता तैयार करेंगे जो देश की देहाती समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न करेंगे किन्तु क्या ऐसे लोग इस कार्य को कर सकते हैं जो इन संस्थानों से शिक्षा पाकर उपयोगी और नौकरी करने के लिये दौड़ रहे हैं। इन संस्थानों की कितनी उपयोगिता थी यह तो निश्चय पूर्वक कहा नहीं जा सकता। क्या इस प्रकार के कोई कृषि कालेज भी नहीं बन सकते थे? क्या सामुदायिक विकास कार्यक्रम का क्षेत्र इस शिक्षा के विस्तार करने में साधन नहीं बन सकता था? यथासंभव कृषि कालेजों को ग्रामीण विश्वविद्यालयों के रूप में परिवर्तित करते तो अच्छा होगा।

विश्वविद्यालय और राष्ट्रीय शिक्षा

Q. 5. Indian Universities as they exist today, despite many admirable features do not fully satisfy the requirements of a national system of education. How far do you think the implementation of the recommendation of the University Commission of 1948 can fulfil the needs of the country?

Ans. भारतीय विश्वविद्यालयों के कुछ गुण .

(१) आधुनिक विश्वविद्यालयो का सचालन कुशल ढग से हो रहा है क्योंकि सिनेट के सदस्यो की सख्या निश्चित है और अध्यापकों का उचित प्रतिनिधित्व होता है।

(२) सरकार और सिनेट दोनों की सक्रिय सहमति से विश्वविद्यालय के लिये नियम और कानून बनाते हैं जो अपेक्षाकृत श्रेष्ठ हैं।

(३) विश्वविद्यालय नवीन कालेजो को मान्यता देने मे सामान्य प्राप्ति के लिये निश्चित नियमो का सख्ती से पालन करते हैं। इसके वर्तमान कॉलिज प्राय: शिक्षा-सुविधाओं का समुचित प्रबन्ध करने पर ही मान्यता प्राप्त कर पाते हैं।

(४) शिक्षा स्तर भी पहले से ऊँचा हो गया है। रिसर्च तथा आनर्स कोर्स की सुविधाएँ भी अपेक्षाकृत अधिक हो गई हैं।

(५) सरकार द्वारा पर्याप्त अनुदान दिये जाने के कारण विश्वविद्यालयों की आर्थिक स्थिति सतोषजनक है। इससे शिक्षण कुशलता की वृद्धि हुई है।

(६) C.A B. और विश्वविद्यालय-अनुदान आयोग (University Grant Commission) जैसी सस्थाएँ विश्वविद्यालयो का स्तर उठाने के लिये सतत प्रयत्नशील हैं।

(७) प्रोफेसरो और रीडरो की नियुक्ति शिक्षा विशेषज्ञो द्वारा होती हैं।

(८) एक वैतनिक उपकुलपति रखा जाता है। वह विश्वविद्यालय के हित में ही अपना सम्पूर्ण समय व्यतीत करता है।

(९) विद्यार्थियो के स्वास्थ्य आदि की देखभाल के लिये 'डायरेक्टर आफ फिजीकल ट्रेनिंग' नियुक्त है।

(१०) सभी विश्वविद्यालयो मे सैनिक शिक्षा की व्यवस्था है। यू० टी० सी० (University Training Corps) की भी व्यवस्था है। सैन्य विज्ञान का पाठ्यक्रम भी सम्मिलित किया गया।

(११) विश्वविद्यालयों मे पुस्तकालयो और प्रयोगशालाओं का अच्छा प्रबन्ध हो गया है।

भारतीय विश्वविद्यालयो की शिक्षा मे कुछ दोष हैं जिसके कारण हम यह कह सकते हैं कि वे राष्ट्रीय शिक्षा की आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर रहे हैं :

विश्वविद्यालय-शिक्षा के दोष

१. विश्वविद्यालय-शिक्षा मे अपव्यय होता है। यह अपव्यय धन, छात्रों और अभिभावकों के समय तथा उनकी शक्ति का है। तात्पर्य यह है कि प्रतिवर्ष बहुत बड़ी सख्या में विद्यार्थी अनुत्तीर्ण होते हैं।

२. दोषपूर्ण पाठ्यक्रम विद्यार्थियो की विभिन्न इच्छाओं और रुचियों की पूर्ति नहीं कर रहे हैं। विश्वविद्यालय का पाठ्यक्रम लचीला नहीं है।

३. विश्वविद्यालय शिक्षा का एक दोष यह भी है कि विभिन्न विषयों में विशिष्टी- [illegible] जानकारी भी नहीं होता है। सामान्य-शिक्षा द्वारा इस दोष का परिहार हो सकता है।

४. विश्वविद्यालयो मे छात्रो के पथप्रदर्शन के लिये कोई प्रबन्ध नहीं है। इससे पाठ्यक्रम के विषयो का छात्र ठीक और रुचि के अनुसार चयन नहीं कर पाता है और परिणामस्वरूप विद्यालयो तथा जीवन में असफलता होती है।

५. शिक्षा का स्तर निम्न है।

६. ट्यूटोरियल (Tutorial) पद्धति, विमर्श गोष्ठियाँ और पुस्तकालय में अध्ययन करने की प्रथा का अभाव है।

७. शिक्षा का उद्देश्य आधुनिक विश्वविद्यालयों में केवल इतना है कि परीक्षा में उत्तीर्ण होने के योग्य विद्यार्थी को बना दिया जाय। आदर्शवाद को कम महत्व प्राप्त है।

८. धार्मिक शिक्षा तथा नैतिक शिक्षा का विद्यालयो में पूर्ण अभाव है।

(१) अर्थाभाव की समस्या—अर्थाभाव के कारण विश्वविद्यालय अपने शिक्षको को उचित वेतन नही दे पाते। और इसी कारण उनमे उचित योग्यता तथा बौद्धिक स्तर के व्यक्ति शिक्षण कार्य के लिए आकृष्ट नही हो पाते। मान्यता प्राप्त महाविद्यालयो की दशा तो बहुत ही बिगड़ी हुई है। उनको जब पर्याप्त वित्तीय सहायता नही मिलती तब उनका स्तर गिरता ही जाता है। उनको मिलने वाली अनुदान की रकम गत वर्षों के औसत व्यय के अनुसार निश्चित की जाती है। यह प्रणाली अति दोष पूर्ण है।

(२) उच्च शिक्षा के विस्तार और प्रसार से उत्पन्न समस्यायें—१६४८ से १६५७ तक तो छात्रो की सख्या मे आशातीत वृद्धि हुई है और यह वृद्धि अभी तक उसी दर से हो रही है क्योकि देश का प्रत्येक शिक्षित नागरिक उच्च शिक्षा पाने की आकाक्षा रखता है। फलस्वरूप इस काल मे नवीन महाविद्यालयो और विश्वविद्यालयों के खोले जाने की माँग मे वृद्धि हुई है। फलस्वरूप वे न तो उच्च प्रकार की शिक्षा ही दे पा रहे हैं और न छात्रो की सुविधा का ध्यान ही रख पाते हैं।

(३) विश्वविद्यालयो की प्रशासनिक कठिनाइयाँ—प्रत्येक विश्वविद्यालय का निर्माण राज्य की विधान सभा द्वारा होता है। अत उसके अधिकारी तथा सविधानो का निर्णय राज्य की सरकार ही करती है और अनुदान भी देती है। राज्य की सरकार का दृष्टिकोण अपना होता है जो विश्वविद्यालय की स्वतन्त्रता मे बाधा पहुँचाता है। जिस सस्था को समाज ने मुक्त चिन्तन, मनन, अध्ययन, के लिए निर्मित किया हो उसके लिए इस प्रकार का नियन्त्रण उचित नहीं है।

(४) उच्चशिक्षा के उद्देश्य की अनिश्चितता—उच्चशिक्षा का उद्देश्य क्या है ? किसी उपाधि की उपलब्धि के उपरान्त व्यक्ति क्या करेगा ? यह निश्चित पूर्वक नही कहा जा सकता। उच्च शिक्षा प्राप्ति के उपरान्त भी व्यक्ति का बेकार होना असतोष और निराशा का कारण बन जाता है। गत दशक में जो अनुशासनहीनता महाविद्यालीय छात्रो मे दिखाई दी है उसका एक कारण यह भी है कि उनको अपना भविष्य अधकारमय दिखाई देता है।

(५) उच्चशिक्षा के स्तर मे गिरावट की आशका—कुछ लोगो का विचार है कि उच्च शिक्षा के प्रसार और स्तर के साथ साथ मानदण्डो मे गिरावट आगई है जैसा कि लोक-सेवा आयोग की रिपोर्टों, परीक्षाफलो, मालिकों (employers) की शिकायतो से पता चलता है। उच्च शिक्षा का स्तर असन्तोषजनक प्रतीत होता है, लेकिन जबतक मानदण्डो (standards) के [illegible]

[illegible] पमता की ओर न तो [illegible] गया है। बहुत से महा- [illegible] अशमात्र भी नही होता। [illegible] विश्वविद्यालीय शिक्षक शोध कार्य से दूर होता जा रहा है। कार्य करने की भौतिक दशायें भी सन्तोषप्रद नही है। अध्ययन और शोधकार्य की सुविधायें नही है यहाँ तक कि कुछ महाविद्यालयो मे तो आपस मे शैक्षिक चर्चा करने का कोई अवसर ही नही मिलता। सामान्य शिक्षक मे मानसिक औत्सुक्य का अन्त सा हो गया है क्योंकि वातावरण ही ठीक नही है, विश्वविद्यालय के प्रत्येक विभाग के प्रोफेसर, रीडर, लेक्चरार मे एक दूसरे के प्रति सदभाव, प्रेम, सहयोग की भावना की कमी होती है। पदो के लिये झगड़े, ईर्ष्या और जलन का वातावरण सदैव बना ही रहता है। जो कुछ शोध कार्य होता है उसमे रुकावटो और अवरोधो की कमी नही होती। ये रुकावटें या तो अपने से उच्चपदाधिकारी पैदा कर देते हैं या भौतिक साधनों (equipment) की कमी के कारण पैदा हो जाते हैं।

(६) उच्च शिक्षा के उपयुक्त छात्रों का अभाव—विश्वविद्यालयों मे प्रवेश पाने वाले छात्र भी उच्च शिक्षा के अयोग्य होते हैं फलत शिक्षा का स्तर गिरता जाता है। बहुत से छात्रो के माता-पिता तो पूर्णतः अशिक्षित होते हैं इसलिये उनको घर पर ठीक वातावरण ही नहीं

मिलता। उनकी उच्चतरमाध्यमिक शिक्षा भी निम्नकोटि की होती है। उन्हें स्वतन्त्र अध्ययन का अवसर नहीं मिलता। सीखने की क्रिया उनके लिये रटने की क्रिया होती है। अपने साथियों और अध्यापकों के साथ वाद-विवाद करने के अवसरों की कमी होने के कारण विषय का ज्ञान अधूरा रह जाता है। वे कक्षा में जो कुछ ज्ञान अध्यापकों के व्याख्यानों से ग्रहण कर पाते हैं वही उनका होता है। व्याख्यानों का माध्यम अंग्रेजी होने के कारण उन व्याख्यान को समझने की क्षमता उनमें नहीं होती। जिन विश्वविद्यालयों में प्रादेशिक भाषा में शिक्षण दिया जाता है उनमें भी पाठ्य पुस्तकों के खटकने वाले अभाव के कारण उनका शिक्षण निम्न कोटि का ही होता है। वे अंग्रेजी भाषा के लिखे हुए ग्रन्थों को समझने में अपने को असमर्थ पाते हैं इसलिये पुस्तकालयों से भी वे किसी प्रकार से लाभान्वित नहीं हो पाते। अच्छे विद्यार्थियों की क्षमताओं के उचित विकास के लिये कोई अवसर नहीं होता। ऐसी विषम परिस्थिति में मानदण्डों का गिरना स्वाभाविक ही है।

(८) यह परिस्थिति काफी समय से चली आ रही है लेकिन उसका आभास इस समय हमें तेजी से होने लगा है क्योंकि स्वातन्त्र्योत्तर काल में हम उच्च शिक्षा प्राप्त लोगों से काफी आशायें लगाने लगे हैं। स्वतन्त्र होने से पूर्व अधिक प्रभावशाली शिक्षा की आवश्यकता ही महसूस नहीं होती थी। जबसे हम स्वतन्त्र हुए हैं तब से यह आवश्यकता तेजी से अनुभव होने लगी है और जब हम शिक्षित व्यक्ति द्वारा अपनी आशाओं को पूरा होना हुआ नहीं देखते हमको निराशा हो उठती है। अब चूंकि देश की उन्नति हम पर ही निर्भर है इसलिए शिक्षा के किसी भी स्तर पर मानदण्डो मे गिरावट हम सह नहीं सकते।

अत. जब तक उच्च शिक्षा मे सुधार नही होगा न तो हमारा प्रशासन ही अच्छा हो सकता है और न तकनीकी प्रगति ही।

Q. 7. How do universities meet their financial requirements. What difficulties do they face and what are your solution to remove those difficulties.

आर्थिक समस्या का हल—विश्वविद्यालयों तथा महाविद्यालयों की वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये विश्वविद्यालीय अनुदान आयोग की स्थापना हुई थी लेकिन राज्य के सभी विश्वविद्यालय मेण्टीनेन्स ग्राट और मैचिगशेयर के लिए राज्य की सरकार पर ही निर्भर रहते हैं। जब तक यह सरकार उचित अनुदान नही देती प्रगति मे बाधा ही पड़ती है। यदि राज्य की सरकारें *विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का परामर्श लेती रहे तो यह समस्या हल हो सकती है* अनुदान देने के नियमो मे इतनी अधिक सरलता हो कि गति और शुद्धि के साथ आर्थिक समस्या का हल निकल आवे। जहाँ तक केन्द्रीय विश्वविद्यालयो का प्रश्न है ऐसी समस्याएँ उनके सामने आती ही नहीं और आती भी है तो दफ्तरों की गलतियो के कारण उपस्थित होती है।

राज्य के विश्वविद्यालयो को विकास (Development) तथा प्रबन्ध (maintenance) के लिए अनुदान यू० जी० सी० ही देती है। कुछ योजनाओं के लिए १००% अनुदान दिया जाता है लेकिन बहुत सी विकास सम्बन्धी योजनाएँ ऐसी है जिनके लिये राज्य की सरकार से मैंचिग ग्राट की जरूरत होती है जो समय पर नही दी जाती। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि जिन स्कीमो के लिए अनुदान आयोग ग्राट दे उनके लिये ग्राट की मात्रा शतप्रतिशत हो। लेकिन उच्च शिक्षा के विकास के लिये अनुदान आयोग के पास इतना पैसा कहाँ है कि सभी *विश्वविद्यालयो को शतप्रतिशत अनुदान दे सके। राज्य की सरकारो को इस कार्य में सहायता* अवश्य देनी है लेकिन कितनी यह तो विचाराधीन विषय है।

कुछ विश्वविद्यालयों के सामने उस समय समस्या आती है जिस समय अनुदान आयोग ग्राट दे देता है लेकिन राज्य की सरकार अपना मैंचिग शेयर देने से इंकार कर देती है। राज्य की सरकार कहती है कि विश्वविद्यालय द्वारा विकासात्मक कार्य के लिये उससे परामर्श नहीं लिया गया इसलिए वह किसी प्रकार की मैंचिग ग्राट देने की जिम्मेदारी नहीं ले सकती। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को ऐसे झगड़ो को तय कर देना होगा।

राज्य की सरकारें विश्वविद्यालयो को निम्न तीन प्रकार की वित्तीय सहायता देती है—

(अ) विकासात्मक योजनाओ पर मैंचिगग्राट।
(ब) विश्वविद्यालय के विकास के लिए नॉनप्लान ग्राट।
(स) पूर्व निर्णीत खर्चे के लिए अनुदान।

लेकिन इन सहायताओं को पाने का तरीका बडा जटिल है, जो ग्रांट राज्य की सरकार द्वारा स्वीकृत भी करली जाती है उसका ठीक समय पर मिलना कठिन होता है। राज्य की सरकार जो ब्लोकग्राट देती हैं वह भूतकालीन व्यय पर निर्भर रहती है अत यदि विश्वविद्यालय विकासशील है तो अगले वर्ष उसे अधिक ग्राट मिलनी चाहिए वह उसे मिल नहीं पाती। वह जो डेफीसिट ग्राट (deficit grant) देती है उसकी स्वीकृति की सूचना विश्वविद्यालय को समय पर नही मिलती। कभी-कभी बजट मे बेमौके कटौती भी कर दी जाती है। इस प्रकार विश्वविद्यालय के सामने एकदम वित्तीय समस्याएँ खडी हो जाती हैं। अत राज्य द्वारा वित्तीय सहायता देने के लिए निम्नलिखित सुझाव पेश किए जाते हैं

(i) ब्लोक ग्राट की अवधि ३ से ५ वर्ष तक की हो।
(ii) ग्राट की अवधि मे अतिरिक्त अनुदान देने का प्रबन्ध हो।
(iii) विश्वविद्यालय के पास अपनी इच्छानुसार खर्च करने के लिए काफी पैसा हो।

Q 8. What problems have arisen because of post independence expansion of higher education in India ? What do you propose to solve them ?

उच्च शिक्षा के प्रसार से उत्पन्न समस्याओं का हल—पहली तीन पचवर्षीय योजनाओ मे पेशेवर उच्चशिक्षा—इजीनियरिंग, डाक्टरी, तथा कृषि और विज्ञान—मे आशातीत प्रसार हुआ है और यह प्रसार सुविधाओ को ध्यान मे रखकर नहा किया गया। इससे शिक्षा के स्तर मे गिरावट आगई है। कामर्स और आर्टस कॉलेजो मे भी छात्रों की सख्या इतनी अधिक बढ़ गई है कि उनके लिए न तो अध्ययन के लिए स्थान ही है और न अन्य सुविधाएँ ही। छात्रो की सख्या मे यह वृद्धि निम्न एकार की है—

	आर्ट्स, साइस, कामर्स स्नातक	स्नातकोत्तर	पेशेवर
१९५०–५१	१६१०००	१८०००	५४०००
१९६५–६६	७५९०००	८६०००	२४९०००

फिर भी यह प्रसार भावी औद्योगिक विकास के लिए अपर्याप्त है जैसा कि अन्य औद्योगिक राष्ट्रो के साथ तुलना करने से पता चलता है। हमारे आर्थिक विकास की आवश्यकताओ [illegible]

निकट भविष्य मे स्नातकीय स्तर पर आर्ट्स व कामर्स की उच्च शिक्षा के विस्तार में कमी करनी पडेगी तथा उत्तम किस्म की विज्ञान शिक्षा, कृषि, इजीनियरिग तथा अध्यापिकी [illegible] होगा [illegible] . A. [illegible] होगा, उच्चतर माध्यमिक शिक्षा की अवधि १ वर्ष और अधिक बढ़ाने पर स्नातकोत्तरीय शिक्षा के प्रसार के साथ कई गुने स्नातकोत्तरीय उपाधि के शिक्षकों तथा Ph. D. की आवश्यकता होगी।

आर्ट्स तथा कामर्स कालेजो मे छात्रो के प्रवेश पर रोक लगानी होगी। यदि ऐसा न किया गया तो दस वर्षों के बाद लाखो ग्रेजुएट बेकार घूमते दिखाई देंगे ऐसा करने से उच्च शिक्षा स्तर भी बढ़ेगा और शिक्षा व्यवस्था की उपज देश की मांगो के अनुकूल होगी न ज्यादा और न [illegible] मिलेगा जो [illegible] सीटें निश्चित [illegible] मे प्रवेश पाने [illegible] करने यहाँ [illegible]

चूंकि कला तथा वाणिज्य के क्षेत्र में अत्यधिक प्रसार सम्बद्धीय महाविद्यालयो में ही अधिक हुआ है इसलिये किसी महाविद्यालय को विश्वविद्यालय से सम्बद्ध करने की पहली शर्त यह

होगी कि वह निश्चित संस्था में अपने यहाँ छात्रों को प्रवेश दे। किस छात्र को प्रवेश दिया जाय और किसको न दिया जाय यह निश्चय करने का काम प्रवेश देने वाले महाविद्यालय अथवा विश्वविद्यालय का होगा। उच्चतर माध्यमिक शिक्षा पास करने वाले छात्र द्वारा विभिन्न विषयों में प्राप्त अंकों का विवरण यह निर्णय करेगा कि वह किस विषय को ले सकता है किसको नहीं। यदि कोई छात्र उच्च माध्यमिक कक्षा XII में थोड़े से अंकों से गणित में असफल हो गया है लेकिन रसायन शास्त्र में उसके ६०% अंक हैं तो वह रसायन शास्त्र को स्नातकीय शिक्षा के लिए चुना जा सकता है। चूँकि परीक्षा में प्राप्त अंक अधिक विश्वस्त नहीं होते इसलिये उच्च शिक्षा के लिये अन्तिम प्रवेश करते समय बालक का संचयी आलेख पत्र भी देखना होगा। जो छात्र प्रतिभा सम्पन्न हों लेकिन प्रवेश के नियमों में न आता हो उसको चुनने में विश्वविद्यालय को कोई हिचक नहीं होनी चाहिये। चुनाव के उपयुक्त तरीके ढूँढने के लिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को एक केन्द्रीय परीक्षण संगठन का प्रबन्ध करना चाहिए।

अन्य देशों की तरह अंशकालिक शिक्षा का प्रबन्ध किया जा सकता है जिसमें पत्र व्यवहार द्वारा शिक्षा और सायंकालीन महाविद्यालयों का आयोजन हो सके। इनमें विज्ञान तथा टेक्नोलोजी की शिक्षा का भी प्रबन्ध होना चाहिये।

सामान्य रूप से, उच्च शिक्षा के लिये बड़ी-बड़ी संस्थाओं का अस्तित्व रहना चाहिए। छोटी संस्थाएँ प्राय: अयोग्य तथा अपव्ययी होती हैं। अत: नई संस्थाएँ खोलने के बजाय बड़ी संस्थाओं के प्रसार के लिये प्रयत्न करने चाहिए। छोटे और बड़े महाविद्यालयों की स्थिति यू० जी० सी० द्वारा निश्चित की जानी चाहिए।

कलकत्ता, बम्बई, मद्रास और दिल्ली जैसे बड़े शहरों में चौथी पंचवर्षीय योजना के अन्त तक एक-एक और विश्वविद्यालय खुल जाना चाहिए। उड़ीसा, केरल और उत्तर पूर्वी भारत में अतिरिक्त विश्वविद्यालयों को खोलने की आवश्यकता है। लेकिन नया विश्वविद्यालय खोलते समय निम्नलिखित बातों पर अवश्य ध्यान रखा जाय :—

- (i) जब तक उसके लिये सभी साधन उपलब्ध न हों और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग सहायता के लिए तैयार न हो, नया विश्वविद्यालय न खोला जाय।
- (ii) उस स्थान पर विश्वविद्यालय खोला जाय जहाँ पर अन्य स्नातकोत्तरीय शिक्षा-केन्द्रों का सहयोग मिल सके।
- (iii) यदि नवीन विश्वविद्यालय शिक्षा के मानदण्डों में सुधार नहीं ला सकता तो उसका अस्तित्व अनपेक्षित है।
- (iv) नवीन विश्वविद्यालयों में कम से कम ३० आबद्ध महाविद्यालय तथा कई अध्यापन विभाग (Teaching Departments) होने चाहिए।

Q 9 Explain your concept of university autonomy. How can an university be an autonomous body ? Discuss with reference to the levels at which it functions.

विश्वविद्यालयों की स्वतन्त्रता (University Autonomy)—प्रत्येक विश्वविद्यालय को अपने छात्रों के चुनाव, अपने अध्यापकों की नियुक्ति और उन्नति (promotion), अध्ययन-अध्यापन के विषयों के निर्णय, शोध-कार्य के क्षेत्र तथा समस्याओं के चयन, शिक्षण विधियों के अंगीकरण में पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। ऐसी स्वतन्त्रता के मिले बिना कोई भी विश्वविद्यालय अपने मुख्य कर्तव्यों का पालन पूरी तरह से नहीं कर सकता। विश्वविद्यालय के मुख्य कर्तव्य हैं—अध्यापन, शोध कार्य और समाज सेवा। जब तक कोई विश्वविद्यालय राजनैतिक दल बाजियों के दबाव से स्वतन्त्र नहीं होगा तब तक वह इन कर्तव्यों का पालन ही नहीं कर सकेगा।

विश्वविद्यालीय स्वतन्त्रता के पक्ष—विश्वविद्यालीय स्वतन्त्रता के निम्नलिखित तीन पक्ष होंगे —

- (अ) विश्वविद्यालय के भीतर स्वतन्त्रता।
- (ब) अन्तर्विश्वविद्यालय परिषद् तथा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग और अन्य विश्वविद्यालयों से स्वतन्त्रता।
- (स) विश्वविद्यालय व्यवस्था की समग्र रूप से स्वतन्त्रता अर्थात् यू० जी० सी० और अन्त विश्वविद्यालीय परिषद् का केन्द्र तथा राज्य की सरकारों से स्वतन्त्र होना।

विश्वविद्यालय विशेष की आन्तरिक स्वतन्त्रता—प्रशासनिक तथा वित्तीय शक्तियाँ विश्वविद्यालयो के विभागो मे निहित होनी चाहिए प्रत्येक विभाग मे एक-एक प्रबन्धक समिति होनी चाहिए जिसकी अध्यक्षता विभागाध्यक्ष करें। विश्वविद्यालय के प्रशासन का कार्य इन विभागो को ही सौंप दिया जाना चाहिए।

विश्वविद्यालय के समक्ष समाज के हितो को रखने का काम विश्वविद्यालीय समितियों मे समाज का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्य करें लेकिन उसके प्रशासन मे कोई हस्तक्षेप न करें।

विश्वविद्यालय अपने प्राचीन महाविद्यालयों को उतनी ही स्वतन्त्रता दे जितनी स्वतन्त्रता वह स्वय चाहता है।

विश्वविद्यालीय व्यवस्था मे विश्वविद्यालयीय स्वतन्त्रता—प्रत्येक विश्वविद्यालय को अन्तर्विश्वविद्यालीय परिषद की सदस्यता पाने का अधिकार होना चाहिये। देश के प्रत्येक विश्वविद्यालय की उपाधियो को अन्य विश्वविद्यालय मान्यता दे।

बाह्य सस्थाओ (agencies) से विश्वविद्यालय की स्वतन्त्रता—यद्यपि सिद्धान्तत: प्रत्येक विश्वविद्यालय को बाह्य सस्थाओं से स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये लेकिन राष्ट्रीय मांगो और आवश्यकताओ की पूर्ति के लिये उसे अन्य सस्थाओ का सहयोग प्राप्त करना होगा। अत विश्वविद्यालय की व्यवस्था से बाहर और भीतर रहने वाली सभी सस्थाओ के साथ विचार विमर्श करने के उपरान्त राष्ट्रीय महत्व के निर्णय लेने होंगे। उदाहरण के लिये यद्यपि छात्रों के प्रवेश के विषय मे विश्वविद्यालय पूरी तरह से स्वतन्त्र है फिर भी सामाजिक हितों की रक्षा के लिये उसे गिरे हुए वर्गों के लिये कुछ सीटें रिजर्व रखनी होंगी। इसी प्रकार यदि देश को किसी क्षेत्र विशेष मे प्रशिक्षित व्यक्तियो की आवश्यकता पडती है तो विश्वविद्यालय को केन्द्र तथा राज्य की सरकारो की बात माननी होगी लेकिन अन्तिम निर्णय विश्वविद्यालय को ही लेना होगा। राष्ट्र को कैसे प्रशिक्षित menpower की आवश्यकता है अथवा आर्थिक प्रगति के लिये कैसे शोध कार्यों की जरूरत है इस प्रकार के सलाह मशविरे के लिये विश्वविद्यालयो, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, अन्तर्विश्वविद्यालय परिषद, केन्द्रीय तथा राज्यीय सरकारो के प्रतिनिधियो की एक कमेटी तैयार की जा सकती है जो काफी सोच विचार के बाद राष्ट्रीय हित के निर्णय लें। लेकिन यहाँ पर यह ध्यान रखना चाहिए कि यदि किसी दल ने अपने निर्णय विश्वविद्यालय पर थोपने की कोशिश की तो इसको विश्वविद्यालीय स्वतन्त्रता का हनन समझा जायगा। इसी प्रकार जब किसी राज्य की सरकार किसी विश्वविद्यालय को affiliation सम्बन्धी कोई आदेश जारी करती है तो भी यह उसकी स्वतन्त्रता पर आघात माना जायगा। किसी राज्य की सरकार को विश्वविद्यालय पर ऐसे प्रतिबन्ध नही लगाने चाहिये जिनसे उनकी स्वतन्त्रता मे बाधा पड़े। किसी विश्वविद्यालय को किस योग्यता के अध्यापकों की जरूरत है, उनकी नियुक्ति किस प्रकार करनी है यह तो निर्णय करना विश्वविद्यालय का अधिकार है राज्य की सरकार को इन कार्यों मे हस्तक्षेप की कोई आवश्यकता नहीं है।

गत दशक मे जनमत इसी पक्ष मे है कि विश्वविद्यालयों को पूर्ण स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये। इसके फलस्वरूप कई अध्यादेश जो विश्वविद्यालयो के अधिकारो पर कुठाराघात कर रहे थे वापिस ले लिये गये है। इस प्रकार विश्वविद्यालीय स्वतन्त्रता के लिए देश में उपयुक्त वातावरण बनता जा रहा है लेकिन फिर भी हमें याद रखना चाहिये कि विश्वविद्यालयों को यह स्वतन्त्रता अजित करनी है अपने कर्तव्यों के ठीक-ठीक निर्वाह द्वारा। यह स्वतन्त्रता उन्हें कोई देन के रूप मे न तो मिली है और न मिलनी है।

महान विश्वविद्यालयों की स्थापना

Q. 10. "The most important reform in higher education is the development of some major universities where first class post graduate and research would be possible and whose standards would be comparable to the best institutions of the type in any part of the world" Discuss

महान विश्वविद्यालयों की स्थापना से लाभ

[illegible]

इन महान विश्वविद्यालयों की स्थापना करने से हम को [illegible]

(i) वे अपने छात्रों को उच्चकोटि की शिक्षा तथा प्रशिक्षण दे सकेंगे।

(ii) विश्वविद्यालय, महाविद्यालय तथा उच्च शिक्षा की अन्य संस्थाओं के लिए मॉडल (आदर्श) तैयार करेंगे।

(iii) ये स्नातक जो इन महान् विश्वविद्यालयों से निकलकर देश के उच्च श्रेणी के मानसिक शक्ति कार्य का काम देंगे।

(iv) देश में ही इन उच्च छात्रों की स्नातकोत्तर शिक्षा का प्रबन्ध हो सकेगा जिसकी प्राप्ति के लिए भारतीय छात्र विदेश जाने के इच्छुक रहते हैं।

(v) विश्वविद्यालय शिक्षा के राष्ट्रीयकरण में [illegible] अभी तक तो भारतीय विद्वान [illegible] उनके शिक्षा प्राप्त करने के लिये भारत की परवाह करता है। [illegible] (model) विदेश में स्पष्ट दिखाई देता है लेकिन इन विश्वविद्यालयों की स्थापना हो जाने पर यह माडल देश में ही स्थापित हो जायगा। यह इस और स्पष्ट रास्ता के लिये ही उपयुक्त होगा क्योंकि इससे हमारा राष्ट्रीय गौरव को बल मिलेगा। भारतीय विद्वान् इनके अभाव में आत्मविश्वास और आत्मसम्मान खो चुका है इसलिये वह भारतीयता के अनुकूल बौद्धिक समस्याओं का हल निकालने की कोशिश नहीं करता, शोध कार्य अथवा समस्याओं के हल के लिए अब भी वह कैम्ब्रिज, ऑक्सफोर्ड, हैरिवर्ड, मास्को का माध्यम लेता है। भारत में ही जब ऑक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज स्थापित हो जायेंगे तब उच्च शिक्षा के प्रयत्नों का केन्द्र विन्दु विदेश में न होकर देश में ही स्थिर हो जायगा।

देश में ही ६ महान विश्वविद्यालयों की स्थापना करने का यह अर्थ नहीं है कि हम अपनी उच्च शिक्षा को एकान्तवासी बनाना चाहते हैं। कोई देश ऐसा नहीं कर सकता। ऐसा करने से हम उच्चशिक्षा को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ला सकेंगे। कुछ लोगों को भ्रान्ति हो सकती है कि क्यों सिर्फ ६ विश्वविद्यालयों को यह उच्चस्तर दिया जाय ? ऐसा करना क्या प्रजातन्त्रात्मक सिद्धान्तों के विपरीत न होगा ? लेकिन चारा ही क्या है ? सभी विश्वविद्यालयों को इस स्तर पर उठाने के लिये बड़ी भारी धनराशि और अनन्त साधनों की आवश्यकता होगी। अमरीका तथा इंगलैण्ड जैसे दूसरे राष्ट्रों ने भी ऐसा ही किया है और अपने को समृद्धिशाली बना लिया है।

इन विश्वविद्यालयों के काम—जो विश्वविद्यालय इस काम के लिये चुना जायगा उसको निम्नलिखित कार्य करने होंगे—

(i) श्रेष्ठ छात्रों का प्रवेश
(ii) श्रेष्ठ अध्यापकों की नियुक्ति
(iii) उत्तम सुविधाओं का संचय
(iv) उन्नत प्रकार के अध्ययन केन्द्रों का स्थापन
(v) उच्चशिक्षा के लिये अध्यापकों की पूर्ति

श्रेष्ठ छात्रों का चुनाव—उच्च शिक्षा के लिए विश्वविद्यालयों में आजकल जो छात्र प्रवेश लेते हैं उनमें बहुत से सामान्य श्रेणी के होते हैं। उच्च कोटि छात्र उस सामान्य श्रेणी के छात्रों में पड़कर अपना सारा उत्साह खो देते हैं। इन विश्वविद्यालयों में जिनको महान विश्व- का रूप दिया जायगा ऐसे ही छात्रों को प्रवेश दिया जायगा जो प्रथम श्रेणी की क्षमता

वाले हो। लेकिन उनका चुनाव all India basis पर होना चाहिए state basis पर नहीं। उन्हे अध्ययन के लिये ऐसी छात्रवृत्तियाँ दी जाय जो उनकी शिक्षा का सम्पूर्ण खर्च वहन कर सकें। ऐसे छात्रो को चुन लेने के बाद उनको ऐसे महान विश्वविद्यालयो अथवा ऐसे विश्वविद्यालयो मे जहाँ उन्नत अध्ययन के केन्द्र विकसित हो चुके हैं। उच्च अध्ययनार्थ भेजना चाहिए।

स्नातकीय स्तर के लिए भी छात्रो को छात्रवृत्ति का प्रबन्ध किया जाय। आधी छात्र-वृत्तियाँ विश्वविद्यालय के क्षेत्रो के छात्रो को तथा आधी बाहरी बालकों को दी जाय। सभी राज्यो और यूनियन टेरिटरीज (Union Territories) से छात्रो का चुनाव करना चाहिए।

श्रेष्ठ अध्यापकों का चुनाव—महान विश्वविद्यालयो मे ऐसे अध्यापकों की नियुक्ति की जानी है जो अध्यापकी तथा शोध कार्य के लिये विशेष दक्षता रखते हो। प्रत्येक विभाग मे एक सलाह कार कमेटी होनी चाहिए जो प्रथम श्रेणी के Ph.D, M. A. और M Sc. को चुन सके ये कमेटी उन उम्मीदवारो की सूची को देखे जो भारत और भारत के बाहर है इस प्रकार प्रतिभाशाली व्यक्तियो का चुनाव न केवल देश से ही किया जाय वरन् उन भारतीय लोगो मे से भी किया जाय जो विदेश में रह रहे हैं। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ऐसे व्यक्तियों की नियुक्ति के लिये विश्व-विद्यालयों को अतिरिक्त धन राशि दें।

उन्नत अध्ययन के लिये केन्द्रों की स्थापना—इन महान विश्वविद्यालयो की स्थापना की तैयारी का प्रारम्भ उन्नत अध्ययन के केन्द्रो की सहायता से ही किया जा सकता है। जैसा कि दिल्ली विश्वविद्यालय मे किया गया है। यहाँ पर उन्नत अध्ययन के केन्द्रो के समूह अलग-अलग स्थापित हो चुके हैं। दूसरे विश्व विद्यालयो मे ऐसे एकाकी केन्द्र अथवा केन्द्र समूह स्थापित किये जा सकते हैं इनकी स्थापना का मुख्य उद्देश्य विभागो के मानदन्ड को ऊँचा उठाना है। ये केन्द्र कुछ भारतीय भाषाओ, शिक्षा, कृषि, इन्जीनियरिंग और चिकित्सा मे सम्बन्धित होगे।

उत्तम सुविधाओं का सग्रहण—प्रतिभाशाली छात्रों और उच्च कोटि के अध्यापको के लिये सभी प्रकार की उपयुक्त सुविधायें और काम करने की सन्तोषजनक परिस्थितियाँ पैदा करनी होगी बड़ी बड़ी आलीशान इमारतो के स्थान पर यदि अध्यापको और छात्रों के लिये अन्य बातो पर धन व्यय किया जाय तो अच्छा होगा।

अध्ययन के इन केन्द्रो के प्रबन्ध के विषय मे कुछ सुझाव नीचे दिये जाते हैं।

(१) केन्द्र का शासन केन्द्र के सचालक के आधीन होना चाहिये जिसकी सहायता के लिये एक कमेटी हो सकती है जिसमे विभाग के सभी प्रोफेसर और कुछ रीडर्स और लेक्चरार हो।

(२) एक बार किसी केन्द्र के स्थापित हो जाने पर उसको तोड़ा भी जा सकता है यदि उसका काम विश्वविद्यालय मे मानदन्ड के अनुरूप हुआ न दिखाई दे।

(३) किसी विश्व विद्यालय के किसी विभाग को केन्द्र के रूप मे तभी चुना जाय जब गत वर्षों में उसका काम बहुत ही अच्छा रहा हो। यदि अध्यापन कार्य के अनुसार उसने काफी यश अर्जित कर लिया हो, यदि शोध कार्य मे पर्याप्त देन दी हो और यदि भविष्य मे उसका विकास किया जा सके तो उस विभाग को केन्द्र के रूप मे अवश्य चुना जाय।

(४) प्रति तीन अथवा पाँच वर्ष बाद केन्द्र के कार्यों का मूल्यांकन चोटी की कोटि के भारतीय अथवा विदेशी विद्वानो द्वारा किया जाय।

उच्च शिक्षा के लिये अध्यापकों की पूर्ति—इन महान विश्वविद्यालयों का सबसे बड़ा कार्य और उत्तर दायित्व उच्च शिक्षा के क्षेत्र मे यह होगा कि वे अन्य विश्व विद्यालयों तथा सम्बन्धित महाविद्यालयों के लिये अच्छे से अच्छे अध्यापक तैयार करें। प्रत्येक विश्वविद्यालय से कुछ लोग इन महान विद्यालयों मे आकर शिक्षा ग्रहण करें। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग इन अध्यापको के लिये फैलोशिप का प्रबन्ध करें।

उच्च शिक्षा के शिक्षण तथा मूल्यांकन में सुधार

Q 11. "One of the most important reform needed in higher education is to improve teaching and evaluation". Discuss the programme of reform in evaluation and teaching methods

विश्वविद्यालयो में शिक्षा का स्तर नीचे गिरने का एक कारण है अध्यापन और

का हल भी समझते हैं परन्तु फिर भी इस ओर किसी का ध्यान नहीं गया। स्थिति मे सुधार कैसे किया जाय ? एक तरीका है बाह्य परीक्षाओ के स्थान पर अध्यापकों द्वारा छात्र के ज्ञान का समय पर मूल्यांकन जैसा कि कुछ कृषि विश्व विद्यालयो मे हो रहा है। दूसरा तरीका है बाह्य परीक्षाओ और आन्तरिक मूल्यांकन के आधार पर पास और फेल का निर्णय करना, ताकि अन्तिम बाह्य परीक्षा पर छात्र का भाग्य निर्णय न हो। वर्ष के सभी सत्रो मे परीक्षायें ली जायें परन्तु उनके अंक बाह्य परीक्षा के अंको मे न जोड़े जाय। दोनों प्रकार के परीक्षाओं मे छात्र का पास होना जरूरी समझा जाय और उन दानों मे प्राप्त अंको पर छात्र की श्रेणियाँ आधारित की जायें। प्रतिवर्ष प्रत्येक संस्था के लिये आन्तरिक और बाह्य परीक्षाओं के अंको के बीच सहसम्बन्ध गुणक की गणना की जाय और जो संस्था निरन्तर अपने छात्रो को आन्तरिक परीक्षण म बाह्य परीक्षण की अपेक्षा अधिक अंक दे उसे दण्डित किया जाय। परीक्षण प्रणाली मे सुधार लाने के लिये बहुत सी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, और बहुत से सुझाव पेश किये जा चुके है। फिर भी आवश्यकता इस बात की है कि उन सुझावो को कार्यान्वित किया जाय। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के लिये परीक्षा सुधार सम्बन्धी यूनिटों का निर्माण किया जाय जो विश्वविद्यालय के सहयोग से परीक्षा प्रणाली मे परिवर्तन लाने का प्रयत्न करें। कुछ विश्वविद्यालय और भविष्य मे स्थापित किये जाने वाले ६ महान विश्वविद्यालय बाह्य परीक्षा को बिलकुल बन्द करें। विश्वविद्यालय के शिक्षको के लिये परीक्षा मे सुधार लाने के उद्देश्य से work shop और गोष्ठियो का आयोजन हो।

परीक्षा फलो की घोषणा की वर्तमान पद्धति भी दोष पूर्ण है प्राय. हम विभिन्न विषयो मे प्राप्त अंको को जोड़कर परीक्षार्थी की श्रेणी घोषित करते है। यह तरीका बिलकुल गलत है। गणित मे ऊँचे अंक पाता है और अंग्रेजी मे बहुत नीचे अंक पाता है, वह भी द्वितीय श्रेणी मे पास हो जाता है। परीक्षा फलो को घोषित करने का यह तरीका न्यायपूर्ण नही है। न्यायपूर्ण तरीका तो वह होना जिसमे गणित और अंग्रेजी मे प्राप्त अंको के आधार पर परीक्षार्थी को वर्ग श्रेणी दी जाती। यह वर्ग श्रेणियाँ A, B, C, D, E, में से कुछ हो सकती हैं। उदाहरण के लिए A श्रेणी उन लोगो को दी जा सकती है जो अंको के अनुसार प्रथम २० प्रतिशत छात्र हैं।

उच्च शिक्षा मे छात्र कल्याण सेवाएँ

Q 12 "A major weakness of the existing system of higher education is the failure to provide adequately for student welfare." Discuss. What steps would you like to take to improve the situation ?

विश्वविद्यालयों मे छात्र-कल्याण की योजनाओ की ओर अधिकारियों का अभी तक कोई ध्यान नही गया है यद्यपि राधाकृष्णन् कमीशन ने इस विषय मे बहुत पहले चिन्ता व्यक्त की थी। छात्र कल्याण सम्बन्धी सुविधाएँ उन्हे केवल कल्याण के उद्देश्य से ही नही दी जाती वरन् वे शिक्षा का अभिन्न अंग है। ये सुविधाएँ निम्न वर्गों मे विभक्त की जा सकती है—

(१) प्रवेश प्राप्त छात्रो का विश्वविद्यालय जीवन से परिचय कराने वाली सेवाएँ
(२) स्वास्थ्य सेवायें
(३) निवास सम्बन्धी सेवायें
(४) शैक्षणिक तथा व्यावसायिक निर्देशन
(५) वित्तीय सहायता
(६) विद्यार्थी संघ

सामान्यतः जब कोई छात्र किसी विश्वविद्यालय मे प्रवेश लेता है तब उसकी मानसिक स्थिति मे विशेष परिवर्तन उपस्थित होता है। सामाजिक व्यवस्थापन की समस्याएँ उसके सामने उठ खड़ी होती है। अतः विश्वविद्यालय जीवन से उसका परिचय कराने के लिए कुछ प्रबन्ध किया जाना आवश्यक प्रतीत होता है। यह काम विश्वविद्यालय के पुराने छात्रों द्वारा सम्पन्न किया जा सकता है। विश्वविद्यालय के खुलते ही Get together और Campus tours का आयोजन किया जा सकता है। जिससे छात्रो का एक दूसरे से परिचय हो सके। कोई भी छात्र ऐसा न रहे जिसे यह न मालूम हो कि रहने और खाने-पीने का क्या प्रबन्ध है, विभिन्न विभागों की कक्षाएं कब और कहाँ चलती हैं, विश्वविद्यालय के नियम और परम्पराएँ क्या है इस उद्देश्य से छोटे-छोटे

छात्र समूहों मे वाद-विवाद का आयोजन किया जा सकता है। प्रत्येक छात्र को पहले से ही मालूम होना चाहिये कि अध्ययन-अध्यापन का क्या प्रोग्राम होगा।

चिकित्सा सम्बन्धी सेवाएं—इस समय बहुत कम विश्वविद्यालय और महाविद्यालय ऐसे हैं जिनमे छात्रों की चिकित्सा का प्रबन्ध किया जाता है। बहुत कम विश्वविद्यालयो मे छात्रो के स्वास्थ्य का सर्वेक्षण किया गया है। उस समय भी जब कोई छात्र विद्यालय मे प्रवेश लेता है उसका medical examination नही होता। विश्वविद्यालीय छात्रों के लिये यूनीवर्सिटी कैम्पस मे हा चिकित्सालय होना चाहिये, प्रतिवर्ष उनकी मेडीकल जांच पडताल होनी चाहिए; एमर्जेंसी के समय उनकी उचित देखभाल होनी चाहिये। उनको उचित प्रकार की स्वास्थ्य शिक्षा देने का प्रबन्ध होना चाहिए। जिस प्रकार की स्वास्थ्य सेवाओ का आयोजन भारत सरकार मे सेविवर्ग के लिये किया गया है। उसी प्रकार का आयोजन विश्वविद्यालय के सेविवर्ग तथा छात्र समूह के लिये किया जा सकता है।

आवास सम्बन्धी सेवाएं—छात्रों के आवास की समस्या भी कम जटिल नहीं है। छात्रावासो मे इस समय विश्वविद्यालयो मे प्रवेश प्राप्त छात्रों की संख्या मे १८% से कम छात्रों के लिये ही प्रबन्ध है। कम से कम २५% स्नातकीय स्तर तथा ५०% स्नातकोत्तरीय स्तर के छात्रों को आवास की सुविधा मिलनी चाहिए। कृषि इन्जीनियरिंग, चिकित्सा और शिक्षा मे यदि शत प्रतिशत छात्रों के आवास की सुविधा हो तो और भी अच्छा है। लडकियो के लिये महिला छात्रावासों का देशव्यापी अभाव है। दूर से आने वाले छात्रों का बहुत बड़ा भाग शहर में कोठरियाँ लेकर रहता है जो उच्च शिक्षा के लिये घातक है। नगर मे रहने वाले भी ऐसे अनेक छात्र मिलेंगे जिनको घर पर रहकर पढने की कोई सुविधा नहीं मिलती। ऐसे सभी छात्रो के लिए दिवस-अध्ययन-केन्द्र खोले जायें तो परिस्थिति मे सुधार हो सकता है।

निर्देशन—छात्रों के व्यावसायिक तथा शैक्षणिक निर्देशन के लिये प्रत्येक विश्वविद्यालय मे प्रति हजार छात्रों पर एक प्रशिक्षित काउन्सलर (counseller होना चाहिए। वही उनकी मनोवैज्ञानिक तथा नैतिक समस्याओं को हल करने का प्रयत्न करे। राष्ट्रीय रोजगार सेवा (National Employment Service) और विद्यार्थी सलाहकार संघ (student advisory (bureao) इस दशा मे महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। वे उनको समय-समय पर बताते रहते हैं कि रोजगार बाजार की क्या दशा है, विभिन्न careers के लिए कैसी तैयारियाँ करनी पड़ती हैं, प्रशिक्षण की सुविधाएँ कहाँ और कैसी हैं, छात्रवृत्तियाँ किस प्रकार उपलब्ध की जा सकती है। लेकिन इन सुविधाओं में प्रसार की आवश्यकता है।

पाठ्येतर क्रियाएं—छात्रों को फालतू समय मे काम पर लगाए रखने के लिये विभिन्न पाठ्येतर क्रियाओं का आयोजन होना चाहिए। इनमे से निम्नलिखित विशेष उल्लेखनीय हैं—सवाद, वाद-विवाद प्रतियोगिता लेख प्रतियोगिता, सामूहिक चर्चा, सांस्कृतिक प्रोग्राम, अध्ययन वृत्त (study circles), समाज सेवा शिविर, एन सी० सी०, स्काउट, टूर्नामेंट, पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन, शैक्षणिक फिल्मो का प्रदर्शन, कैंटीन तथा सहकारी भण्डारो का सचालन,। इन क्रियाओं का सगठन न केवल सत्र काल मे ही हो वरन् लम्बी छुट्टियो मे भी हो।

छात्र सघ—कक्षा के बाहर विश्वविद्यालीय जीवन मे भाग दिलाने छात्रों द्वारा आत्म-शासन तथा आत्म-अनुशासन मे सुधार लाने और प्रजातन्त्रात्मक शासन मे प्रशिक्षण देने के लिए छात्र संघो का निर्माण किया जाता है।

छात्र संघों के निर्माण के विषय मे निम्नलिखित सिद्धान्तो को ध्यान में रखना चाहिए—

(१) प्रत्येक छात्र सघ का सदस्य है पर उसे किसी न किसी सोसाइटी, क्लब गोष्ठी एसोसियेशन मे सक्रिय भाग लेना होगा इन समाओ के सचालन के लिये आवश्यक चन्दा देना होगा इस प्रकार प्रत्येक activity committee के पास अपना अपना फण्ड होगा जिसमें वह छात्र यूनियन को चन्दा द सकेगी।

(२) छात्र सघ के पदाधिकारी activity committees के पदाधिकारियों में से चुने जाने चाहिए।

छात्रों के समूह समुदाय मे से नव प्रवेश प्राप्त छात्रों की संख्या ही अधिक होती है।

(३) इन पदाधिकारियो के लिये कुछ (disqualifications भी होनी चाहिए।

(४) छात्र और अध्यापक दोनो वर्गों का प्रतिनिधित्व इस सघ मे होना चाहिये। प्रत्येक activity committee में शिक्षकों का होना जरूरी है।

छात्रसघो की वर्तमान दशा का विश्लेषण करने से पता चलेगा कि बहुत से छात्रसघ छात्रो और अध्यापक विश्वविद्यालय के अधिकारियो के बीच झगडे के अड्डे बन गये हैं। वे ट्रेड यूनियनो की तरह अपने अधिकारो का मांग करते हैं। खेद की विषय है कि बहुत से अनुशासन-हीनता के कार्य छात्र सघो की गलत नीतियो के कारण हुए हैं। विश्वविद्यालय तो ऐमा स्थान है जहाँ पर छात्र और अध्यापक समान स्तर पर खडे हुये है। छात्रो को अपनी कठिनाइयों का हल सहयोगी अध्यापक वर्ग के परामर्श से ढूंढना चाहिए न कि लडाई झगडे मे। स्टाफ के सदस्य, प्रधानाध्यापक, वाइसचासलर सभी को छात्रों के साथ सहानुभूति तथा सदभावपूर्ण व्यवहार करना चाहिए और छात्रो को अपने गुरुजनो का उतना ही समादर और श्रद्धा करनी चाहिये जितनी कि वे अपने माता-पिता की करते हैं। यदि दोनो वर्ग अपने अपने उत्तरदायित्वो को निभायें और ज्ञान की खोज मे सहयोग दें तो ऐसे झगडो की कोई जरूरत ही नही है।

अध्याय ६

शिक्षक प्रशिक्षण

Q 1. *Teacher training has not received the attention it deserves in the development of our educational system Explain*

(Agra B. T. 1956)

What are the recommendations of the Mudaliar Commission of 1953 with regard to this, ?

Ans. शिक्षक शिक्षा-प्रणाली का सचालक हुआ करता है । शिक्षा-प्रणाली कितनी ही उत्तम क्यों न हो सुयोग्य प्रशिक्षित शिक्षकों के अभाव में व्यर्थ सिद्ध हो सकती है । इस बात का अनुभव सबसे पहले कम्पनी के सचालकों को सन् १८५५ में हुआ । अत उस वर्ष शिक्षा घोषणा में प्रत्येक प्रान्त में प्रशिक्षण विद्यालयों की स्थापना करने की आशा प्रगट की गई । इससे पूर्व केवल इन मिशन वालों ने ही अध्यापकों के प्रशिक्षण की ओर ध्यान दिया था और उन्होंने छोटे बच्चों को पढ़ाने के लिए दीक्षित अध्यापकों की नियुक्ति पर बल दिया था ।

कम्पनी की सरकार ने अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए कोई विशेष प्रबन्ध नहीं किया । इसलिये सन् १८८२ में जब हण्टर कमीशन आया तो उसने भी शिक्षण विद्यालयों के अभाव पर दृष्टिपात किया । इस आयोग ने कहा कि प्रारम्भिक पाठशालाओं के लिए दीक्षित अध्यापकों की नितात आवश्यकता है । अत प्रशिक्षण महाविद्यालयों की व्यवस्था की जाय क्योंकि बिना इस व्यवस्था के प्राथमिक विद्यालयों के सुधार सम्भव नहीं । प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था के लिए निम्नाकित सुझाव पेश किये ।

(१) दीक्षा विद्यालयों की स्थिति ऐसी हो कि जहाँ से प्रशिक्षित अध्यापकों की माँग पूरी हो सके । इस प्रकार प्रत्येक प्रान्त में एक नार्मल स्कूल अवश्य होना चाहिये ।

(२) प्रत्येक निरीक्षक अपने अधीन सब नार्मल स्कूल की जाँच-पड़ताल करे और उसके कार्य में रुचि ले ।

१८८२ से १९०२ तक प्रशिक्षण विद्यालयों के खोलने में अंग्रेजी सरकार ने कोई विशेष रुचि न ली क्योंकि इस समय सम्पूर्ण भारतवर्ष में ४-५ प्रशिक्षण विद्यालय थे । और न प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था का कोई समुचित रूप ही था । लार्ड कर्जन ने प्रशिक्षण विद्यालयों की सख्या में वृद्धि करने की सिफारिश की और उसने कहा कि प्रशिक्षण विद्यालयों में अन्य विषयों के साथ कृषि भी एक विषय होना चाहिये । अन्यथा अध्यापक प्राथमिक विद्यालयों में जा कर छात्रों को कृषि का ज्ञान न दे सकेंगे । कर्जन ने कहा कि छात्राध्यापकों के शिक्षण की अवधि दो वर्ष की होनी चाहिये । यह एक विशेष महत्वपूर्ण सुझाव था ।

लार्ड कर्जन के चले जाने के बाद भी अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिये विशेष सुविधायें न दी गई और न अधिक Training Colleges ही खोले गये । यही कारण था कि १९१९ के शिक्षा आयोग में सैडलर कमीशन ने दीक्षित अध्यापकों की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया । अध्यापकों के प्रशिक्षण के विषय में आयोग ने निम्नलिखित सुझाव सरकार के सामने रक्खे ।

(१) जो अध्यापक मिडिल पास हों उनको एक वर्ष का प्रशिक्षण दिया जाय और जो अपर प्राइमरी पास हों उनको दो वर्ष का ।

(२) प्रशिक्षित अध्यापकों को कम से कम १२) मासिक वेतन दिया जाय और उनके लिये पेन्शन और Provident fund की भी व्यवस्था की जाये ।

(३) गर्मी की छुट्टियों मे अथवा अन्य किसी बड़ी छुट्टी मे अध्यापकों को अपने ज्ञान को ताजा बनाने के लिये अल्पकालीन प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाए ।

(४) प्रत्येक दीक्षा विद्यालय के साथ एक Practising School हो जिनमे शिक्षण

प्रशिक्षण का कोई

विद्यालयों के लिये

कुल १४०० छात्राध्यापकों को शिक्षा दी जा सकती थी। प्रशिक्षण विद्यालयों की सख्या की वृद्धि के लिये जब-जब बात कही जाती तब-तब दो एक ऐसे विद्यालय खोल दिये जाते और बाद मे व्यवस्था वैसी की वैसी ही बनी रह जाती। इस प्रकार सन् १९२१ तक कोई विशेष प्रबन्ध अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिये न था। यद्यपि सन् १९१३ की सरकारी शिक्षा नीति घोषणा में स्पष्ट कह दिया गया था कि प्रशिक्षण के बिना किसी भी शिक्षक को पढ़ाने की आज्ञा नहीं मिलनी चाहिये। कलकत्ता विश्वविद्यालय कमीशन ने भी प्रशिक्षण की आवश्यकता पर बल दिया था। किन्तु सन् १९२३ तक देश मे कुल १३ उच्च महाविद्यालयों की स्थापना हो चुकी। हर्टाग समिति ने प्राइमरी शिक्षकों की अवधि को बढाने और प्रशिक्षण की योग्यता के स्तर को ऊँचा उठाने के कई सुझाव दिये। किन्तु सन् १९४७ तक भिन्न-भिन्न आयोगों के बार-बार सुझाव देने पर केवल ३४ शिक्षण महाविद्यालय, ३३६ नार्मल स्कूल पुरुषों के लिये, १८६ नार्मल स्कूल स्त्रियों के लिये खुल पाये। इन विद्यालयों में क्रमश: २०००, ४६३, २३७५४, १०११३ छात्राध्यापक थे। इस समय तक प्राइमरी स्कूलों के शिक्षकों को प्रशिक्षण देने के लिये नारमल स्कूल और प्राथमिक शिक्षण महाविद्यालय थे जिनमें मिडिल पास लोग शिक्षित किये जाते थे। CT Training मे High School और Inter पास लोग प्रशिक्षित होकर हाईस्कूलों की निम्न कक्षाओं और मिडिल स्कूलों मे अध्यापन कार्य कर सकते थे। B. T. और L. T. पास हाई स्कूल कक्षाओं मे पढ़ा सकते थे।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के अवसर पर प्राथमिक एवं माध्यमिक क्षेत्रों में काम करने वाले अध्यापकों मे केवल ६१५ प्रतिशत अध्यापक प्रशिक्षित थे। भारत के शिक्षा के विकास मे ये सबसे बड़ा रोड़ा था क्योंकि जब तक अध्यापक के पास अपनी कला अथवा विज्ञान का ज्ञान नहीं है तब तक वह सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। आज से ५० वर्ष पहले प्रशिक्षण की समस्या भले ही जबर्दस्त न हो लेकिन अब जब कि शिक्षा मनोविज्ञान अपनी नई-नई खोजों के कारण अधिक से अधिक जटिल होता चला जा रहा है तब शिक्षक के लिये उत्तम प्रशिक्षण प्राप्त करना और अधिक आवश्यक हो गया है। प्रशिक्षित शिक्षकों की कमी को पूरा करने के लिये प्रशिक्षण सस्थाओं की सख्या बढ़ाये बिना काम नहीं चल सकता था। इसलिये १९४८ के बाद राष्ट्रीय सरकार ने देश मे कई प्रकार की प्रशिक्षण सस्थायें खोलीं। बेसिक शिक्षा लागू होने पर प्रशिक्षण केन्द्र खोले गये। प्राइमरी और मिडिल स्कूलों के शिक्षकों को Refresher course देकर प्रशिक्षित किया। माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के प्रशिक्षित करने के लिये विश्वविद्यालयों मे शिक्षा विभाग खोले गये। सरकारी और गैर सरकारी प्रशिक्षण महाविद्यालयों के इस क्षेत्र मे आने पर उनकी सख्या में कुछ वृद्धि हुई। किन्तु प्रथम पचवर्षीय योजना से पूर्व प्रशिक्षण सस्थाओं की न तो सख्या ही इतनी थी कि सब अप्रशिक्षित व्यक्ति प्रशिक्षित हो सकें।

पिछले दस वर्षों मे इस दिशा मे देश ने पर्याप्त उन्नति की है। इस समय तीन प्रकार की प्रशिक्षण सस्थायें चल रही हैं। पहली नार्मल स्कूल और ट्रेनिंग स्कूल। ये स्कूल दो प्रकार के है, साधारण और बेसिक।

दूसरी प्रकार की सस्थायें Under Gradute व्यक्तियों को प्रशिक्षित करती है और तीसरी प्रकार की सस्थायें वे है जो स्नातकों और स्नातकोत्तर विद्यार्थियों को प्रशिक्षित करती है।

ट्रेनिंग स्कूलों मे मिडिल अथवा हाईस्कूल पास व्यक्तियों को एक अथवा दो वर्ष के लिये प्रशिक्षित करके प्राथमिक कक्षाओं मे पढ़ाने के लिये तैयार किया जाता है। किन्तु ट्रेनिंग स्कूल सभी एक से पाठ्यक्रम अथवा एक से ही प्रशिक्षण देने वाले नहीं हैं। उनमें एकरूपता की कमी है। उनका नियन्त्रण सरकार अथवा स्थानीय निकाय अथवा व्यक्तिगत सस्थायें करती है। Under Graduate विद्यार्थियों को J. T. C. और C. T. स्तर की शिक्षा दी जाती है। ऐसे अध्यापक

दो वर्ष प्रशिक्षण लेने के बाद Junior High School, मिडिल तथा Senior Basic में पढ़ाने के योग्य हो जाते हैं। स्नातकोत्तर छात्रों अथवा स्नातकों को प्रशिक्षित करने के लिये एक वर्ष का पाठ्यक्रम रक्खा गया है। प्रशिक्षण के बाद Degree तथा Diploma दिया जाता है। B. T., B. Ed., L. T., Dip. Ed. ग्रादि कक्षाग्रों के पास कर लेने के बाद ये ग्रध्यापक माध्यमिक पाठशालाग्रों में ग्रध्यापन कार्य कर सकते हैं। डिगरियाँ प्रदान करने वाली संस्थायें—विश्वविद्यालय एवं Diploma देने वाली संस्थायें-राज्य की सरकारें तथा कुछ व्यक्तिगत संस्थायें होती हैं। लेकिन स्तर सबका समान होता है। विश्वविद्यालयों के प्रशिक्षण महाविद्यालयों में Ph. D. M. Ed. ग्रौर M. T. की ऊँची डिगरियाँ देने का भी प्रबन्ध किया गया है। वहाँ पर शिक्षा विषयक शोध कार्य भी किया जाता है। वैसे तो विश्वविद्यालयों की कक्षाग्रों में स्त्रियों ग्रौर पुरुषों को साथ साथ प्रशिक्षित किया जाता है किन्तु उनके प्रशिक्षण के लिये ग्रलग से भी स्त्री-प्रशिक्षण महाविद्यालय खोले गये हैं।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद बेसिक शिक्षा के स्वीकृति हो जाने पर ऊपर लिखित तीनों स्तरों पर बेसिक प्रशिक्षण संस्थाग्रों की व्यवस्था की गई। कुछ पुरानी प्रशिक्षण संस्थाग्रों के पाठ्यक्रम को बदल कर उन्हें बेसिक प्रशिक्षण संस्था बना दिया गया। इस प्रकार प्रशिक्षण के क्षेत्र में बहुमुखी उन्नति होने लगी। सामाजिक शिक्षा के विकास के लिये भी कार्यकर्त्ताग्रों को प्रशिक्षण करने की बात सरकार के सामने ग्राई। तब सरकार ने ग्रनेक जनता कालेज खोले जिनमें सामाजिक शिक्षा के भिन्न पहलुग्रों का प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की जाती है। सन् १९५० में प्रशिक्षण महाविद्यालयों के प्रथम सम्मेलन में स्नातक ग्रौर स्नातकोत्तर प्रशिक्षण के माध्यम, पारिभाषिक शब्द, मनोवैज्ञानिक मापन, शैक्षणिक एवं व्यावसायिक मार्गदर्शन, बुनियादी शिक्षा ग्रौर प्रशिक्षण महाविद्यालयों के संगठन ग्रादि विषयों पर विचार विमर्श किया गया। इस दिशा में उन्नति करने के लिये ग्रनेक Seminars, वर्कशोपों, विचार-गोष्ठियों ग्रौर सम्मेलनों का ग्रारम्भ हुग्रा। इस प्रकार देश में प्रशिक्षण के स्तर को सुधारने के लिये बहुमुखी प्रयत्न किये गये। सन् १९५३ में मुदालियर कमीशन ने प्रशिक्षण पर विचार प्रगट करते हुये कुछ सुझाव सरकार के सम्मुख रक्खे। उन्होंने दो प्रकार की प्रशिक्षण संस्थाग्रों पर ही जोर दिया।

(१) प्राथमिक, जूनियर ग्रौर मिडिल स्कूलों के ग्रध्यापकों के लिये दो वर्ष का पाठ्यक्रम ग्रौर निम्नतम प्रवेश योग्यता—Higher Secondary रखी गई।

(२) माध्यमिक विद्यालयों के लिये एक वर्ष के पाठ्यक्रम वाली शिक्षायें जिनमें प्रवेश के लिये निम्नतम योग्यता—स्नातक रक्खी गई।

कमीशन ने प्रशिक्षण महाविद्यालयों के संगठन के विषय में निम्नलिखित सुझाव पेश किये—

(१) पहले प्रकार के विद्यालयों के नियन्त्रण के लिये एक परिषद् ग्रौर दूसरी प्रकार के के विद्यालयों की देखभाल के लिये विश्वविद्यालयों को ग्रधिकार दिया जाय।

(२) प्रशिक्षण संस्थाग्रों में ग्रल्पकालीन पाठ्यक्रम, Refresher course, work shop, तथा ग्रन्य विशेष विषयों में प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की जाय।

(३) ग्रनुसन्धान कार्य करने के लिये एवं शिक्षा विषयों पर शोधकार्य (Research work) करने के लिये ग्रलग से प्रबन्ध हो।

(४) छात्राध्यापकों को कम से कम एक पाठ्यक्रम-सहगामी क्रिया का प्रशिक्षण ग्रवश्य दिया जाय। उनसे किसी प्रकार की फीस न ली जावे। यथासाध्य उन्हें सरकार की ग्रोर से छात्रवृत्तियाँ दी जावें। उनके लिये छात्रावास की व्यवस्था भी की जावे।

(५) स्त्रियों के प्रशिक्षण पर भी सरकार विशेष ध्यान दे।

(६) M. Ed. में प्रशिक्षित स्नातक जो साधारणतः ३ वर्ष ग्रध्यापन कार्य कर चुके हों प्रवेश पाने के ग्रधिकारी समझे जावें।

मुदालियर कमीशन के ये सुझाव वास्तव में महत्वपूर्ण हैं। मुदालियर कमीशन की सिफारिशों के ग्रनुसार सन् १९५८ में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद् ने शिक्षक प्रशिक्षण पर सर्वांगीण योजना तैयार की जिसकी महत्वपूर्ण बातें निम्नलिखित हैं—

(१) क्राफ्ट-शिक्षकों के लिये प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रयोगशाला रखी जा सकती है। सेवा कालीन शिक्षकों (Inservice teachers) के प्रशिक्षण के लिये प्रशिक्षण महाविद्यालयों में, अथवा उनके लिये स्थापित विशेष केन्द्रों में अथवा प्राविधिक संस्थाओं में प्रबन्ध किया जा सकता है। व्यावहारिक विषयों के लिये लघुकालीन प्रशिक्षण की व्यवस्था प्राविधिक संस्थाओं में भी की जा सकती है। प्राविधिक विषयों के विशेषज्ञों को तीन महीने शिक्षण के बाद नियुक्त किया जा सकता है।

(२) प्रशिक्षण नि:शुल्क हो। सेवाकालीन शिक्षकों को प्रशिक्षण काल में पूरा वेतन मिले और अन्य छात्राध्यापकों को छात्रवृत्तियाँ दी जा सकती हैं।

(३) प्रतिवर्ष राज्य (State) अथवा देश के स्तर पर प्रधानाध्यापकों, अध्यापकों, और निरीक्षकों के लिये रिफ्रेशर कोर्स, विचार गोष्ठियों, सम्मेलनों की व्यवस्था की जा सकती है।

(४) अध्यापकों के उत्साह और उनकी व्यावसायिक क्षमता को बढ़ाने के लिये शिक्षा विभागों एवं राज्य की सरकारों की ओर से उचित साहित्य का निर्माण किया जा सकता है केन्द्रीय स्तर पर शिक्षक प्रशिक्षण परिषद् नियुक्त की जा सकती है जो प्रशिक्षण से सम्बन्धित बातों पर परामर्श दे सके।

इस प्रकार देश ने प्रशिक्षण के क्षेत्र में पिछले दस वर्षों के भीतर काफी उन्नति कर ली है। प्रथम और द्वितीय पचवर्षीय योजना से पूर्व और बाद में देश में प्रशिक्षित अध्यापकों के प्रतिशत के आँकड़े नीचे दिये जाते हैं।

	प्राथमिक शिक्षा	माध्यमिक शिक्षा
पचवर्षीय योजना से पूर्व	५६%	५४%
बाद में	६४%	५६%
द्वितीय पचवर्षीय योजना के पश्चात्	७६%	६८%

द्वितीय पचवर्षीय योजना तक प्रशिक्षण की सुविधायें बढ़ाने के लिये केन्द्र ने १७ करोड़ रुपये खर्च किये और २३१ ट्रेनिंग स्कूल ३० ट्रेनिंग कालेज तथा ३६ बेसिक ट्रेनिंग कालेज तथा २८० बेसिक स्कूल खोले। इसके अतिरिक्त सभी राज्य की सरकारें अपने-अपने क्षेत्र में प्रशिक्षण संस्थाओं की वृद्धि एवं विकास में सक्रिय हैं और रहेंगी।

Q. 2. A sound programme of professional education of teachers is essential for the qualitaive improvement of education " Discuss.

शिक्षण प्रशिक्षण का महत्व—यदि हमें शिक्षा में गुणात्मक सुधार लाना है तो शिक्षक प्रशिक्षण की ओर विशेष ध्यान देना होगा। अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिये जो कुछ भी खर्च किया जायगा उसका अच्छा ही फल मिलेगा। शिक्षक बनने के लिये प्रशिक्षण उतना ही आवश्यक है जितना कि डाक्टर बनने के लिये डाक्टरी की शिक्षा आवश्यक है। प्रशिक्षण के अभाव में शिक्षक उसी तरह अपने छात्रों को पढ़ाने का प्रयत्न करता है जिस तरह उसके गुरुजनों ने उसे पढ़ाया था इस प्रकार वह परम्परागत पाठन विधियों का ही अनुसरण जीवन भर करता रहता है। लेकिन आज के युग में जब कि अध्यापन की नई और प्रगतिशील विधियाँ सभी उन्नत देश अपना रहे हैं तो उस समय हमारा अध्यापक यदि पुरानी और परम्परागत विधियों का ही अनुसरण करता रहे तो शिक्षा में कोई सुधार नहीं हो सकता। यदि हमें शिक्षा में आमूल परिवर्तन लाना है, तो शिक्षक को अध्यापन के लिये प्रभावशाली प्रशिक्षण की सुविधायें प्रदान करनी होंगी और देश में प्रथम श्रेणी के उन्नत प्रशिक्षण महाविद्यालयों का विकास करना होगा।

स्वातन्त्र्योत्तर काल में शिक्षक प्रशिक्षण की दशा और उसमें आमूल परिवर्तनों की आवश्यकता—यद्यपि स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद शिक्षक प्रशिक्षण की ओर सरकार का ध्यान १९४९ के विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग और १९५३ के माध्यमिक शिक्षा आयोग तथा १९५४ के अन्तर्राष्ट्रीय टीम ने जो शिक्षकों और पाठ्यक्रम की दशा सुधारने के लिये बैठाई गई थी कई अच्छी अच्छी सिफारिशें की थी, परन्तु इस काल में प्रारम्भिक और माध्यमिक स्कूलों के नियुक्त किये जाने वाले शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिये कई कमेटियाँ बैठाई गई थी परन्तु उनकी सिफारिशों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया। प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों में पढ़ाने वाले शिक्षकों को

जो जो संस्थायें प्रशिक्षण देती हैं वे सभी विश्वविद्यालयीय जीवन की प्रमुख धारा से काफी दूर चली गई हैं। यही नहीं उनका स्कूल की समस्याओं से भी सम्बन्ध विच्छेद सा हो गया है। फल स्वरूप यह संस्थायें प्रशिक्षण के हिसाब से बहुत ही निम्न कोटि की तथा निकृष्ट हो गई हैं यद्यपि इसके कुछ अपवाद हैं फिर भी प्रशिक्षण संस्थाओं की दशा ठीक नहीं है। उनमें अच्छे अध्यापकों की कमी है। उनका पाठ्यक्रम गत्यात्मक नहीं हैं। प्रैक्टिस टीचिंग (Practice teaching) में वे सडी गली विधियों का उपयोग करती हैं और इस बात की ओर कोई ध्यान नहीं देती कि राष्ट्र *की क्या आवश्यकतायें और माँगें हैं इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षक प्रशिक्षण* में आमूल परिवर्तन किया जाय। परिवर्तन की दिशायें निम्नलिखित हो सकती हैं।

(अ) प्रशिक्षण महाविद्यालयों को विश्वविद्यालय तथा स्कूल से सम्बन्धित करना।
(ब) प्रशिक्षण संस्थाओं की दशा सुधारना।
(स) प्रशिक्षण की सुविधाओं मे विस्तार करना।
(ग) सेवाकालीन प्रशिक्षण की सुविधायें और साधन जुटाना।
(य) राज्यीय और केन्द्रीय स्तर पर ऐसी एजेन्सियाँ तैयार करना जो प्रशिक्षण विद्यालयों की देख रेख कर सकें।

Q 3 Explain how teacher education is isiated at all levels, what do you suggest to break this isolation ?

शिक्षक प्रशिक्षण का एकाकीपन—वर्तमान काल मे प्राथमिक विद्यालयों के लिये जो अध्यापक नियुक्त किये जाते हैं उनका प्रशिक्षण जिन विद्यालयों मे होता है उनका विश्वविद्यालयों से कोई सम्बन्ध नहीं होता और माध्यमिक विद्यालयों के लिये तैयार किये जाने वाले अध्यापकों का प्रशिक्षण जिन महाविद्यालयों मे होता है उनके साथ विश्वविद्यालयों का सौतेले पुत्र जैसा व्यवहार होता है। ये प्रशिक्षण विद्यालय अथवा महाविद्यालय न केवल विश्वविद्यालयों से सम्बन्ध तोड सा चुके हैं वरन् उन स्कूलों से भी इनका कोई सम्बन्ध नहीं जिनके लिये वे अध्यापक तैयार कर रहे हैं। और इससे भी अधिक खेद का विषय है कि इन विद्यालयों का आपस मे एक दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं है।

शिक्षक प्रशिक्षण का विश्वविद्यालय से सम्बन्ध नियोजन—शिक्षा को विषय के रूप मे भारतीय विश्वविद्यायों मे उतना महत्व नहीं दिया जाता जितना अन्य विषयों को दिया जाता है। यदि शिक्षा देश की सामाजिक राजनैतिक और आर्थिक दशा मे परिवर्तन ला सकती है तो उसे विश्वविद्यालय मे अन्य विषयों की तरह महत्वपूर्ण मानना होगा। यद्यपि स्नातकीय कक्षाओं मे शिक्षा शास्त्र को एक विषय के रूप मे पढाया जाता है लेकिन उसका पाठ्यक्रम सूक्ष्म और अपरिपक्व है अतः उसको विस्तृत करना होगा। उसमे शिक्षा के मनोवैज्ञानिक सामाजिक और दार्शनिक आधारों देश विदेश मे शिक्षा का स्वरूप, महान शिक्षा विशारदों के विचार और शिक्षा की समस्याओं का अध्ययन कराया जाय। शिक्षा शास्त्र को सभी विषयों के साथ चुनने की छूट दी जाय ताकि शिक्षा केवल कला (Arts) कालेजों का विषय न रह जाय। उत्तर स्नातकीय स्तर पर शिक्षा शास्त्र एम० ए० की उपाधि दी जाय। इस स्तर पर शिक्षा शास्त्र के साथ साथ कोई और विषय भी पढ़ाया जाय। जो छात्र इस विषय से एम० ए० अथवा बी० ए० करे उसे थोडी बहुत टीचिंग प्रैक्टिस भी दी जाय। ग्रीष्मकालीन शिविर संस्थानों द्वारा उसे इस प्रकार की शिक्षा देकर अध्यापन कार्यके लिये प्रशिक्षित किया जाय।

विश्वविद्यालय मे शिक्षा विभाग का महत्व—शिक्षा विभाग विश्वविद्यालय का एक महत्वपूर्ण विभाग हो जिसमे शोध तथा प्रशिक्षण सम्बन्धी प्रोग्रामों का आयोजन अन्य विभागों की सहायता से किया जाय। इस विभाग के कार्य होंगे शिक्षा शास्त्र मे स्नातकीय तथा स्नातकोत्तरीय कक्षाएँ चलाना, पूर्वप्राथमिक, प्राथमिक और माध्यमिकविद्यालयों के लिये अध्यापकों का प्रशिक्षण देना, प्रशिक्षण महाविद्यालयों के लिये प्रसार सेवाओं की सुविधाएँ प्रदान करना, ग्रीष्मकालीन शिविर संस्थानों (summer institutes) का आयोजन करना, उत्तम पाठन विधियों के पाठ्यक्रमों को ज्ञात करने के लिये सभी प्रकार के स्कूलों के साथ मिलकर शोधकार्य करना, अन्तर्विषयक अभिगमन द्वारा शिक्षा के क्षेत्र मे शोधकार्य करना।

यदि विश्वविद्यालय के विभिन्न विभागों के अध्यक्ष अथवा प्रसिद्ध प्रोफेसर लोग शिक्षा

विभाग मे समय-समय पर आकर अपने क्षेत्रों मे होने वाले नवीन परिवर्तनो से उसे अवगत कराते रहें तो इस प्रकार से विद्यालयी शिक्षा स्तर ऊँचा उठ सकेगा।

विद्यालयों के साथ प्रशिक्षण संस्थानों का सम्बन्ध नियोजन—यदि प्रशिक्षण विद्यालयों का एकाकीपन खत्म करना है तो उन्हें उन विद्यालयो के साथ सम्पर्क स्थापित करना होगा जिनमे जाकर उनके स्नातको अथवा छात्रो को अध्यापको करना है। प्रत्येक प्रशिक्षण संस्थान मे चाहे वह प्राथमिक अथवा माध्यमिक विद्यालयो के लिये प्रशिक्षित अध्यापक तैयार करता है एकएक प्रसार-सेवा विभाग (Extesion Services Department) खोला जाय तो स्थानीय संस्थाओं को मार्ग निर्देशन करता रहे। इस समय देश के लगभग ५०% प्रशिक्षण महाविद्यालयो मे राष्ट्रीय शैक्षिक प्रशिक्षण अनुसंधान संस्थान (National Council of Educational Reserch and Training) द्वारा ऐसे प्रसार सेवा विभाग खोले जा चुके है। बेसिक शिक्षा के राष्ट्रीय संस्थान (National Institute of Basic Education) द्वारा इसी प्रकार के प्रसार-सेवा विभाग प्राथमिक विद्यालयों के लिये प्रशिक्षित अध्यापकों को तैयार करने वाले प्रशिक्षण विद्यालयो मे खोले गये हैं। आवश्यकता तो इस बात की है कि प्रत्येक प्रशिक्षण विद्यालय में ऐसे विभाग खोल दिये जायें जिनका नियत्रण राज्यो के हाथ मे हो।

प्रत्येक प्रशिक्षण महाविद्यालय यदि अपना सम्पर्क विद्यालयो से स्थापित करना चाहता है तो उसे अपने यहाँ पुराने छात्रो को प्रतिवर्ष आमंत्रित करना चाहिये जो सामान्य हित की समस्याओ पर विचार विमर्श करें। यदि प्रशिक्षण विद्यालयो मे कोई अयथार्थिक अथवा अनुपयुक्त प्रोग्राम चल रहा तो तो उसे परिवर्तित अथवा परिशुद्ध किया जाय। यदि प्रोग्राम की असफलता का कारण वातावरण में वर्तमान हो उस वातावरण को शुद्ध करने का प्रयास किया जाय। यदि महाविद्यालय को प्राध्यापक तथा उनके पुराने छात्र इस प्रकार का विचार विमर्श समय-समय पर करते रहे तो शिक्षण प्रशिक्षण अधिक गत्यात्मक और उन्नतिशील हो सकेगा।

प्रत्येक प्रशिक्षण महाविद्यालय के पास दो तीन विद्यालय ऐसे हो जिनमें जाकर स्वेच्छा- [illegible] करें। [illegible] प्रशिक्षण संस्थानो मे जब तक सहयोग और [illegible] ल तथा प्रशिक्षण विद्यालय दोनो ही प्रशिक्षण [illegible] मे सुधार लाना कठिन है। शिक्षा के प्रान्तीय महाविद्यालय (Regional Colleges of Education) इस प्रकार का अनुभव संचित कर रहे हैं इस अनुभव से अन्य प्रशिक्षण विद्यालय लाभ उठाने का प्रयत्न करें। सहयोगी स्कूलो से चुने हुए अध्यापकों को पर्यवेक्षण (Supervision) कार्य के लिये नियुक्त किया जाय। यही नही प्रशिक्षण विद्यालयों के प्राध्यापको के लिए स्कूलों मे जाकर पाठ्यक्रम के एक न एक अंश को प्रतिवर्ष पढाने की व्यवस्था की जाय। इस प्रकार स्कूलो के साथ प्रशिक्षण संस्थाओ का घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है।

शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं मे पारस्परिक सम्बन्ध नियोजन—प्राथमिक तथा माध्यमिक विद्यालयो के लिये प्रशिक्षित अध्यापक तैयार करने वाले विद्यालयो तथा महाविद्यालयो मे आपसी कोई सम्बन्ध नही है क्योकि दोनो का स्तर अलग-अलग हैं, दोनो के लिये नियुक्त किये गये अध्यापक वर्ग की योग्यताएँ तथा पे स्केल अलग-अलग है। शिक्षक प्रशिक्षण मे सुधार लाने के लिये यह अन्तर खत्म करना होगा। सभी जनियर ट्रेनिंग स्कूलो, नोर्मल स्कूलो, तथा बेसिक ट्रेनिंग स्कूलो से महाविद्यालयीय स्तर पर लाना होगा यदि शिक्षक प्रशिक्षण मे सुधार लाना हमारा लक्ष्य है। लेकिन इस कार्य को सम्पन्न करने के लिये १०-१५ वर्ष का समय चाहिये। इस अवधि में कुछ ऐसे महाविद्यालय स्थापित किये जा सकते हैं जिनमे दोनो स्तरो के अध्यापको के प्रशिक्षण का काम किया जाय और शिक्षा सम्बन्धी राज्यीय परिषद बनाये जायें जो शिक्षा विभाग तथा विश्व-विद्यालयो के बीच खाई पाटने का कार्य करें।

Q. 4. "The essence of programme of teacher's education is quality and in its absence teacher's education is a financial waste and a source of *overall* deterioration in educational standards". Discuss the ways and means to *improve* the quality of teacher's education

शिक्षक प्रशिक्षण में गुणात्मक सुधार (Qualitative Improvement of Teacher's Education)—जब तक शिक्षक-प्रशिक्षण में गुणात्मक सुधार नहीं होगा, शिक्षा का स्तर जैसा है वैसा

ही रहेगा। शिक्षक प्रशिक्षण के वर्तमान प्रोग्रामों मे न तो गतिशीलता है, और न उनका विद्यालयों समस्याओं के हल ढूँढने से कोई सम्बन्ध ही है। विद्यालीय जीवन की यथार्थताओं से दूर तथा रूढ़िग्रस्त प्रशिक्षण विद्यालयों की वर्तमान काल में कोई उपयोगिता नहीं। उनके द्वारा छात्रों को दिया गया पेशेवर ज्ञान निर्जीव, शिक्षण तथा मूल्याकन मे अपनाई गई विधियाँ अनुपयुक्त, और पाठ्यक्रम कठोर तथा अव्यावहारिक है। अतः प्रशिक्षण को पुनर्गठित करने की आवश्यकता है।

पुनर्गठन का यह कार्य निम्नांकित दिशाओं मे किया जाना है।

(अ) **प्रशिक्षण-काल की सीमा में वृद्धि**—प्राथमिक विद्यालयों के लिये जो अध्यापक तैयार किये जाते हैं उनका प्रशिक्षण काल तो लगभग सभी जगह दो वर्ष का है किन्तु माध्यमिक विद्यालयों के लिये तैयार किये जाने वाले शिक्षणों का प्रशिक्षण काल एक वर्ष का ही है। कुछ लोगों का विचार है कि यह अवधि कम से कम दो वर्ष की होनी चाहिये लेकिन यह सुझाव अधिक जचाऊ नहीं है क्योंकि ऐसा करने से एक ओर तो प्रशिक्षण मे व्यय की वृद्धि हो जायगी दूसरी ओर इस पेशे का अनाकर्षण पैदा हो सकता है। एल० टी० बी० टी० और बी० एड० का कोर्स यदि दो वर्ष का कर दिया जाय तो स्कूल मे पढाये जाने विषयों का अतिरिक्त ज्ञान प्राप्त करने के लिये समय तो अवश्य दिल जायगा किन्तु फिजूल खर्ची अधिक होगी। इसलिये यदि वर्ष मे पढाये जाने वाले दिनों की संख्या डेढ गुनी कर दी जाय तो आर्थिक सकट से रक्षा हो सकती है। इस समय प्रशिक्षण विद्यालयों मे वर्ष भर मे केवल १८० से १६० दिन तक पढाई होती है और इन दिनों की संख्या २४० तो आसानी से की जा सकती है।

(ब) **शिक्षा द्वारा पढ़ाये जाने वाले विषयों के ज्ञान में वृद्धि**—यह आम शिकायत है कि साधारण शिक्षक को अपने विषय का पूर्ण ज्ञान नही होता। जिस विषय को शिक्षक पढना चाहता है उस विषय का ज्ञान न तो विस्तीर्ण होता है और न गहन ही। स्कूली पाठ्यक्रम के उपयुक्त पाठ्य पुस्तकों तथा स्रोत सामग्रियों का ज्ञान भी उसे नहीं होता इसलिये यदि प्रशिक्षण काल १० माह का है तो कम से कम २ माह का समय स्कूली पाठ्यक्रम के अनुकूल पढाये जाने वाले विषयों का गहन अध्ययन, आवश्यक तत्वों और प्रत्ययों के स्पष्टीकरण, पाठ्य पुस्तकों के चयन, स्रोत सामग्री के अन्वेषण के लिये दिया जाय। कुछ शिक्षा विशारदों का मत है कि कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय की तरह प्रशिक्षण चाहने वाले छात्रों को सामान्य तथा पेशेवर ज्ञान देने के लिये समन्वित पाठ्यक्रम (Integrated Course) चालू किया जाय। लेकिन नित नये प्रयोग करने के स्थान पर पुरानी स्थिति मे सुधार करना ही अधिक श्रेयस्कर होगा।

(स) **पेशेवर ज्ञान मे गतिशीलता तथा सजीवता पैदा करना**—प्रशिक्षण संस्थाओं मे नव शिक्षार्थी को जो पेशेवर ज्ञान दिया जाता है वह निर्जीव और निकृष्ट कोटि का है निकृष्ट इसलिये है कि वह पुराना और बासा-कूसा ही नही है उसका अध्यापन कार्य से भी कोई सम्बन्ध नहीं है। इस निर्जीव ज्ञान राशि के स्थान पर हमें छात्र को ऐसा ज्ञान देना है जो उसकी पेशेवर आवश्यकताओं को सन्तुष्ट कर सके और भावी जीवन मे उसकी सहायता कर सके। पाठ्यक्रमों में जो प्रशिक्षण विद्यालयों मे संगठित किया गया है सबसे अधिक खटकने वाली कमजोरी यह है कि उसमे भारतीय परिस्थितियों में उत्पन्न समस्याओं पर शोध कार्य करने का कोई स्थान ही नहीं है। इस शोध कार्य के अभाव में इन महाविद्यालयों में पढ़ाने वाले प्राध्यापक शिक्षा सिद्धान्तों को ठीक प्रकार से समझ नहीं पाते। वे शिक्षा सम्बन्धी सामान्य जानकारियाँ तो अधिक रखते हैं लेकिन उनमे अपने देश और काल के अनुकूल परिस्थितियों का ज्ञान नाममात्र को भी नहीं है। इस क्षेत्र मे दूसरी बड़ी कमी यह है कि भारतीय लेखकों द्वारा मौलिक शिक्षा साहित्य का सृजन नहीं हुआ है इस साहित्य के अभाव में शिक्षक तथा छात्र दोनों ही विदेशी साहित्य का आश्रय लेते हैं अथवा हिन्दी में लिखी गई सस्ती पुस्तकों का।

(द) **शिक्षण विधियों और मूल्यांकन में सुधार**—यदि स्कूलों की पाठन विधियों तथा मूल्यांकन मे सुधार लाना है तो प्रशिक्षण विद्यालयों की पाठन विधियों तथा

मूल्यांकन विधियों में संशोधन करना होगा। नवशिक्षार्थी को व्याख्यान प्रणाली के स्थान पर गोष्ठियों में विचार विमर्श, पुस्तकालयों में स्वतन्त्र अध्ययन की शिक्षा देनी होगी। जब तक प्रशिक्षण महाविद्यालय अपने छात्रों में स्वतन्त्र चिन्तन, अध्ययन और मनन की प्रवृत्ति जाग्रत करने में असमर्थ रहेंगे तब तक उनका प्रशिक्षण निष्प्राण ही रहेगा।

प्रशिक्षण विद्यालयों में छात्रों की प्रगति का मापन करने के लिये बाह्य-परीक्षाओं का आयोजन किया जाता है। केवल प्रैक्टिस टीचिंग में ही उनके कार्य का मूल्यांकन अंशतः आन्तरिक होता है। उनकी प्रगति का विवरण बिल्कुल तैयार नहीं किया जाता। इन सभी दिशाओं में सुधार लाने की आवश्यकता है।

(प) प्रैक्टिस टीचिंग में सुधार—प्रत्येक नवशिक्षुक, को प्रशिक्षण काल में कुछ पाठ पढ़ाने पड़ते हैं इसलिये लगभग सभी प्रशिक्षण विद्यालय ब्लौक-टीचिंग का सहारा लेते हैं। ब्लौक टीचिंग में न तो उनको कोई लाभ होता है और न उन विद्यालयों को जिनमें इस प्रकार का शिक्षण चलता है। अतः प्रत्येक छात्र को काफी समय तक किसी न किसी स्कूल में रहकर उसकी गतिविधियों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये और कक्षा के भीतर और बाहर होने वाली सभी क्रियाओं की जानकारी प्राप्त करनी चाहिये।

(फ) प्राथमिक तथा माध्यमिक विद्यालयों में अध्यापकों की पेशेवर शिक्षा के पाठ्यक्रम में सुधार—सामान्य तौर से यह पाठ्यक्रम दो भागों में विभक्त किया गया है। सैद्धान्तिक और व्यावहारिक। पाठ्यक्रम के सैद्धान्तिक अंश में मनोविज्ञान, विद्यालय संगठन, हाईस्कूल जिन, शिक्षा सिद्धान्त आदि विषयों को तथा उसके व्यावहारिक अंग में क्राफ्ट की शिक्षा, प्रैक्टिस टीचिंग, सामुदायिक जीवन की क्रियाओं को स्थान दिया जाता है। इस पाठ्यक्रम को अधिक सजीव बनाना है।

Q 5 "Teacher's education can be improved only when the quality of training institutions is improved". Discuss.

(अ) बी. टी., बी. एड, अथवा एल. टी. की शिक्षा देने वाले प्राध्यापकों की योग्यताएँ सामान्यतः अच्छी नहीं है। प्रत्येक प्राध्यापक कम से कम दो विषयों में एम. ए तथा ट्रेनिंग डिग्री या डिप्लोमा का अधिकारी हो। कम से कम दस प्रतिशत प्राध्यापक या तो शिक्षा में डाक्टरेट की उपाधि लिये हों अथवा प्रशिक्षण के क्षेत्र के किसी अंग के विशेष ज्ञाता हों। उनके वेतन क्रम ठीक उसी प्रकार के हों जो कला तथा विज्ञान के महाविद्यालयों के प्राध्यापकों, रीडरों, और प्रोफेसरों के होते हैं।

(ब) प्रशिक्षण महाविद्यालयों के स्टाफ की दशा सुधारने के लिये विश्वविद्यालयों के शिक्षाशास्त्र में अधिक एम. ए., एम. एड. और पी. एच-डी निकालने होंगे। शिक्षा-मनोविज्ञान, समाज-शास्त्र, विज्ञान और गणित के विशेषज्ञों को बिना ट्रेनिंग डिग्री के ही स्टाफ पर लेना होगा। ट्रेनिंग कालेज स्टाफ के लिये ग्रीष्म-कालीन शिक्षा-शिविरों का आयोजन करना होगा।

(स) प्रशिक्षण विद्यालयों में प्रवेश लेने वाले छात्रों में आपको प्रायः ऐसे छात्र मिलेंगे जिन्होंने स्नातकीय उपाधि तृतीय श्रेणी में प्राप्त की है और इस प्रकार जिन्हें अपने विषय का ज्ञान बहुत कम है, अथवा ऐसे छात्र मिलेंगे जिन्होंने उस विषय का ज्ञान उच्चतर माध्यमिक स्तर तक ही प्राप्त किया है जिसको विद्यालय में वे पढ़ाना चाहते हैं, अथवा ऐसे छात्र मिलेंगे जिन्होंने एम. ए. अथवा एम.एस-सी तो किया है लेकिन तृतीय श्रेणी में पास करने के कारण विश्वविद्यालय में प्रवेश करने के द्वार जिनके लिये पहले से ही बन्द है।

जब तक छात्रो की ऐसी दशा रहेगी तब तक माध्यमिक विद्यालयो में पाठ्यक्रम के स्तर को ऊँचा उठाने का प्रश्न ही नही उठ सकता। अत. यदि हमे अच्छे अध्यापको को इस पेशे मे लाना है तो स्नातकीय स्तर पर विषयो के अध्यापन मे सुधार लाना होगा और सामान्य व्यक्ति को इस पेशे की ओर आकृष्ट करने के लिये वेतनक्रम को बढ़ाना होगा।

(द) प्रशिक्षण महाविद्यालयो को यह नियम बनाना होगा कि उनका कोई भी छात्र ऐसे विषय का अध्यापन नही कर सकेगा जिसमे उसने स्नातकीय उपाधि प्राप्त न की हो। यदि किसी को अन्य विषय पढ़ाना ही पड़े तो उसे पहले उस विषय मे विशिष्ट ज्ञान सचित करना होगा अन्यथा उसको उस विषय को पढ़ाने की अनुमति नही दी जायगी। विज्ञान, गणित, और अंग्रेजी पढाने वाले छात्रो को प्रशिक्षण काल मे छात्रवृत्ति दी जाय और इस छात्रवृत्ति की शर्त यह रखी जाय कि वे कम से कम ५ वर्ष तक किसी विद्यालय मे अध्यापको को प्रशिक्षण विद्यालयो मे प्रथम और द्वितीय श्रेणी वाले छात्रो को आकृष्ट करने के लिये इतना वजीफा दिया जाय कि प्रशिक्षण का पूरा खर्च चल सके। ऐसा करने से इन विद्यालयो मे अच्छे छात्र प्रवेश पा सकेंगे और शिक्षा का स्तर ऊँचा हो सकेगा।

(य) प्रत्येक प्रशिक्षण विद्यालय के पास एक ऐसा स्कूल होना चाहिये जिसमे वह प्रयोग कर सके। इस स्कूल मे महाविद्यालय अपने छात्रो को प्रैक्टिस टीचिंग के लिये भेज सकता है और साथ ही आदर्श पाठो का प्रदर्शन भी कर सकता है।

(फ) **प्रशिक्षण सम्बन्धी सुविधाओं का प्रसार**—वर्तमान समय मे बहुत से राज्य ऐसे है जिनमे प्रशिक्षित अध्यापको का भारी अभाव है। और बहुत कम राज्य ऐसे हैं जिनमें प्रशिक्षित अध्यापक पर्याप्त मात्रा मे है इसलिये उपयुक्त मात्रा मे प्रशिक्षण अध्यापको को पाने के लिये प्रशिक्षण सम्बन्धी कई प्रकार की सुविधायें देनी होगी। यह सुविधायें प्रकार की होगी पार्ट टाइम (Part time) और फुल टाइम फैसिलिटीज (Full time facilities)। प्रत्येक राज्य मे शिक्षा की राज्यीय सस्था State institute of Education दो प्रकार के पाठ्यक्रम चला सकती है सेवा पूर्वकालीन और सेवाकालीन। यह पाठ्यक्रम पत्र व्यवहार द्वारा अध्यापको को पढाये जा सकते हैं। *जिन राज्यो मे प्रशिक्षित अध्यापको की कमी है उनमे* मध्याकालीन पाठ्यक्रम शुरू किये जा सकते हैं। जिन अध्यापको ने ५ वर्ष से अधिक समय तक अध्यापन कार्य किया है और जिनकी आयु ४० वर्ष से अधिक हो गई है उनको दो तीन महीने का कोर्स देकर प्रशिक्षित बना दिया जाय जिन अप्रशिक्षित अध्यापको की आयु ४० वर्ष से कम है और जिन्होने ५ वर्ष से कम समय तक अध्यापन किया है वे या तो एक अथवा दो वर्ष का Full time course करें या पत्र व्यवहार द्वारा प्रशिक्षण प्राप्त करें।

प्रशिक्षण सम्बन्धी सुविधाओ मे वृद्धि लाने के लिये यह आवश्यक है कि इन सस्थाओ का आकार बड़ा दिया जाय। प्रत्येक प्रशिक्षण विद्यालय मे कम से कम २४० और प्रशिक्षण महाविद्यालय २०० छात्र होने चाहिये। इसका मतलब यह है कि एक ही शहर के दो तीन प्रशिक्षण विद्यालय अथवा महाविद्यालयो को मिलाकर एक कर दिया जाय इससे व्यय भी कम होगा और प्रशिक्षण सम्बन्धी स्थिति मे सुधार होगा। इस समय सी० टी०, जे० टी० सी० या नॉरमल की कक्षायें जो हायर सेकण्ड्री स्कूलो मे चल रही हैं एकदम बन्द कर देनी चाहियें अथवा बी० टी० और बी० एड० की कक्षायें जो आर्ट और साइन्स के कालेजो मे चल रही हैं उनको समाप्त करके प्रशिक्षण महाविद्यालय अलग से खोले जायें।

प्राइमरी स्कूलों के लिये प्रशिक्षण देने वाले विद्यालय ग्रामीण क्षेत्रों मे कुछ न कुछ मात्रा में अवश्य खोले जायें और इनको प्रैक्टिस टीचिंग पास के स्कूलो में हों।

Q. 6. "The inservice training of teachers is as important as pre-service training." Discuss. What can the school or state do to provide in service training to its teachers ?

सेवा कालीन प्रशिक्षण (Inservice training Programme)

कोई भी पेशा ऐसा नही जिसमे सफलता प्राप्त करने के लिये व्यक्ति को कुछ न कुछ नई चीज सीखनी न पडती हो, भले ही उसने उस पेशे मे प्रवेश करने से पहले कितनी ही training क्यो न ले ली हो यही बात शिक्षा क्षेत्र में भी लागू होती है शिक्षा सिद्धान्त और शिक्षा सम्बन्धी अन्य बातें जो कल थी वह आज नही रही, इसलिये सेवा कालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता पडती है । यह प्रशिक्षण विद्यालय जिसमे अध्यापक कार्य कर रहा है अथवा प्रशिक्षण महाविद्यालय जो उसके विद्यालय के समीप है और जिसमे प्रसार सेवा विभाग खुला हुआ है अथवा वह Training College जिसमे उसने शिक्षा पाई हैं, उसे सेवाकालीन प्रशिक्षण दे सकते हैं विद्यालय मे आने वाले नये शिक्षक वहाँ के प्रधान अध्यापक और अन्य अनुभवी अध्यापक अपने कार्य की योजना बनाने मे मार्ग दिखा सकते हैं । यह कार्य Staff studity circle द्वारा सम्पन्न किया जा सकता है ।

यदि प्रत्येक प्रशिक्षण महाविद्यालय मे प्रसार सेवा विभाग खोल दिया जाय जो अच्छी पाठ्य पुस्तको का निर्माण करने दृश्य, श्रव्य सामग्री जुटाने, अध्यापको को सब प्रकार की उपदेशात्मक शिक्षा देने Refresher Course seminar work shop और summur Insititutes का आयोजन कर सकें । इस प्रकार की सुविधाओ से प्रत्येक शिक्षक को लाभ मिले इसका उचित प्रबन्ध होना चाहिये । Summer Insititutes को चलाने का काम तो विश्वविद्यालय का नियमित कर्तव्य होना चाहिये ।

लम्बी अवधि की गोष्ठियो अथवा ग्रीष्म कालीन शिविरों से अध्यापको को जो लाभ हुआ है, उसका मूल्यांकन करने के लिये इनको आयोजित करने वाली सस्था और Resource Personnel उन अध्यापको से निरन्तर सम्पर्क बनाये रखे जिन्होने इनमे भाग लिया है और भाग लेने वालो को अपनी कठिनाइयो और समस्याओ से निरन्तर अवगत कराते रहना चाहिये ।

जो-जो सस्थायें अथवा विभाग सेवाकालीन प्रशिक्षण सम्बन्धी सुविधायें प्रदान करते हैं उनके कार्यों मे इस प्रकार का गठबन्धन हो कि अध्यापक को अधिक से अधिक लाभ मिल सके । [illegible] ग्रीष्म कालीन शिक्षा शिवर चलाये [illegible] पूरा-पूरा सहयोग न मिल सका । [illegible] शिक्षा सम्बन्धी सुधार के लिये सभी [illegible]

शिक्षा कक्षा मे अध्यापक के सामने जो समस्या उत्पन्न होती है उन समस्याओ का निदान करने के लिये अध्यापक के पास समय नही है और न उसके पास इतनी शक्ति होती है कि ६ घटे कक्षा मे पढ़ाने के बाद वह शिक्षा सम्बन्धी शोध कार्य कर सकें । यह कार्य State Insititute of Education उठावे और अध्यापक का मार्ग प्रदर्शन करे ।

शिक्षण प्रशिक्षण महाविद्यालयों की देखरेख करने वाली एजेन्सियाँ—प्रशिक्षण का स्तर न गिरे इसकी देखभाल करने के लिये विश्व-विद्यालय ग्राण्ट कमीशन और नेशनल काउन्सिल दोनो से मिलकर एक ऐसी कमिटी बनावें जो यह देखती रहे कि प्रशिक्षण की दशा गिर तो नही रही है, इस कमिटी का काम हो । प्रशिक्षण सस्थाओ के मान दण्डों को ऊँचा उठाना, सभी प्रकार की प्रशिक्षण सस्थाओ के स्तरो मे सुधार लाना, उनमें Staff की योग्यता पाठ्य पुस्तक और पाठ्यक्रम के विषय में सलाह देना, प्रशिक्षण विद्यालयों और महाविद्यालयों [illegible]ीय सहायता देना, उनके परिवेक्षण का प्रबन्ध करना ।

जब तक छात्रों की ऐसी दशा रहेगी तब तक माध्यमिक विद्यालयों में पाठ्यक्रम के स्तर को ऊँचा उठाने का प्रश्न ही नहीं उठ सकता। अत. यदि हमें अच्छे अध्यापकों को इस पेशे मे लाना है तो स्नातकीय स्तर पर विषयों के अध्यापन मे सुधार लाना होगा और सामान्य व्यक्ति को इस पेशे की ओर आकृष्ट करने के लिये वेतनक्रम को बढ़ाना होगा।

(द) प्रशिक्षण महाविद्यालयों को यह नियम बनाना होगा कि उनका कोई भी छात्र ऐसे विषय का अध्यापन नही कर सकेगा जिसमे उसने स्नातकीय उपाधि प्राप्त न की हो। यदि किसी को अन्य विषय पढ़ाना ही पड़े तो उसे पहले उस विषय मे विशिष्ट ज्ञान संचित करना होगा अन्यथा उसको उस विषय को पढ़ाने की अनुमति नहीं दी जायगी। विज्ञान, गणित, और अंग्रेजी पढ़ाने वाले छात्रों को प्रशिक्षण काल मे छात्रवृत्ति दी जाय और इस छात्रवृत्ति की शर्त यह रखी जाय कि वे कम से कम ५ वर्ष तक किसी विद्यालय में अध्यापकी को प्रशिक्षण विद्यालयों मे प्रथम और द्वितीय श्रेणी वाले छात्रों को आकृष्ट करने के लिये इतना वजीफा दिया जाय कि प्रशिक्षण का पूरा खर्च चल सके। ऐसा करने से इन विद्यालयों मे अच्छे छात्र प्रवेश पा सकेंगे और शिक्षा का स्तर ऊँचा हो सकेगा।

(य) प्रत्येक प्रशिक्षण विद्यालय के पास एक ऐसा स्कूल होना चाहिये जिसमे वह प्रयोग कर सके। इस स्कूल मे महाविद्यालय अपने छात्रों को प्रैक्टिस टीचिंग के लिये भेज सकता है और साथ ही आदर्श पाठों का प्रदर्शन भी कर सकता है।

(फ) प्रशिक्षण सम्बन्धी सुविधाओं का प्रसार—वर्तमान समय मे बहुत से राज्य ऐसे है जिनमे प्रशिक्षित अध्यापकों का भारी अभाव है। और बहुत कम राज्य ऐसे हैं जिनमे प्रशिक्षित अध्यापक पर्याप्त मात्रा में है इसलिये उपयुक्त मात्रा मे प्रशिक्षण अध्यापकों को पाने के लिये प्रशिक्षण सम्बन्धी कई प्रकार की सुविधायें देनी होंगी। यह सुविधायें प्रकार की होंगी पार्ट टाइम (Part time) और फुल टाइम फैसिलिटीज (Full time facilities)। प्रत्येक राज्य मे शिक्षा की राज्यीय संस्था State institute of Education दो प्रकार के पाठ्यक्रम चला सकती है सेवा पूर्वकालीन और सेवाकालीन। यह पाठ्यक्रम पत्र व्यवहार द्वारा अध्यापकों को पढ़ाये जा सकते हैं। जिन राज्यों मे प्रशिक्षित अध्यापकों की कमी है उनमे सध्याकालीन पाठ्यक्रम शुरू किये जा सकते हैं। जिन अध्यापकों ने ५ वर्ष से अधिक समय तक अध्यापन कार्य किया है और जिनकी आयु ४० वर्ष से अधिक हो गई है उनको दो तीन महीने का कोर्स देकर प्रशिक्षित बना दिया जाय जिन अप्रशिक्षित अध्यापकों की आयु ४० वर्ष से कम है और जिन्होंने ५ वर्ष से कम समय तक अध्यापन किया है वे या तो एक अथवा दो वर्ष का Full time course करें या पत्र व्यवहार द्वारा प्रशिक्षण प्राप्त करें।

प्रशिक्षण सम्बन्धी सुविधाओं में वृद्धि लाने के लिये यह आवश्यक है कि इन संस्थाओं का आकार बढ़ा दिया जाय। प्रत्येक प्रशिक्षण विद्यालय मे कम से कम २४० और प्रशिक्षण महाविद्यालय २०० छात्र होने चाहिये। इसका मतलब यह है कि एक ही शहर के दो तीन प्रशिक्षण विद्यालय अथवा महाविद्यालयों को मिलाकर एक कर दिया जाय इससे व्यय भी कम होगा और प्रशिक्षण सम्बन्धी स्थिति मे सुधार होगा। इस समय सी० टी०, जे० टी० सी० या नॉरमल की कक्षायें जो हायर सेकण्ड्री स्कूलों मे चल रही हैं एकदम बन्द कर देनी चाहिये अथवा बी० टी० और बी० एड० की कक्षायें जो आर्ट और साइंस के कालेजों मे चल रही हैं उनको समाप्त करके प्रशिक्षण महाविद्यालय अलग से खोले जायें।

प्राइमरी स्कूलों के लिये प्रशिक्षण देने वाले विद्यालय ग्रामीण क्षेत्रों में कुछ न कुछ मात्रा में अवश्य खोले जायें और उनकी प्रैक्टिस टीचिंग पास के स्कूलों मे हो।

Q. 6. "The inservice training of teachers is as important as pre-service training." Discuss. What can the school or state do to provide in service training to its teachers ?

सेवा कालीन प्रशिक्षण (Inservice training Programme)

कोई भी पेशा ऐसा नही जिसमे सफलता प्राप्त करने के लिये व्यक्ति को कुछ न कुछ नई चीज सीखनी न पड़ती हो, भले ही उसने उस पेशे मे प्रवेश करने से पहले कितनी ही training क्यो न ले ली हो यही बात शिक्षा क्षेत्र मे भी लागू होती है शिक्षा सिद्धान्त और शिक्षा सम्बन्धी अन्य बातें जो कल थी वह आज नही रही, इसलिये सेवा कालीन प्रशिक्षण की आवश्यकता पड़ती है। यह प्रशिक्षण विद्यालय जिसमे अध्यापक कार्य कर रहा है अथवा प्रशिक्षण महाविद्यालय जो उसके विद्यालय के समीप है और जिसम प्रसार सेवा विभाग खुला हुआ है अथवा वह Training College जिसमे उसने शिक्षा पाई है, उसे सेवाकालीन प्रशिक्षण दे सकते हैं विद्यालय मे आने वाले नये शिक्षक वहाँ के प्रधान अध्यापक और अन्य अनुभवी अध्यापक अपने कार्य की योजना बनाने मे मार्ग दिखा सकते हैं। यह कार्य Staff studity circle द्वारा सम्पन्न किया जा सकता है।

यदि प्रत्येक प्रशिक्षण महाविद्यालय मे प्रसार सेवा विभाग खोल दिया जाय जो अच्छी पाठ्य पुस्तको का निर्माण करने दृश्य, श्रव्य सामग्री जुटाने, अध्यापको को सब प्रकार की उपदेशात्मक शिक्षा देने Refresher Course seminar work shop और summur Institutes का आयोजन कर सकें। इस प्रकार की सुविधाओ से प्रत्येक शिक्षक को लाभ मिले इसका उचित प्रबन्ध होना चाहिये। Summer Institutes को चलाने का काम तो विश्वविद्यालय का नियमित कर्तव्य होना चाहिये।

लम्बी अवधि की गोष्ठियो अथवा ग्रीष्म कालीन शिविरो से अध्यापकों को जो लाभ हुआ है, उसका मूल्यांकन करने के लिये इनको आयोजित करने वाली सस्था और Resource Personnel उन अध्यापको से निरन्तर सम्पर्क बनाये रखे जिन्होने इनमें भाग लिया है और भाग लेने वालो को अपनी कठिनाइयो और समस्याओ से निरन्तर अवगत कराते रहना चाहिये।

जो-जो सस्थायें अथवा विभाग सेवाकालीन प्रशिक्षण सम्बन्धी सुविधायें प्रदान करते हैं उनके कार्यों मे इस प्रकार का गठबन्धन हो कि अध्यापक को अधिक से अधिक लाभ मिल सके। ऐसा देखा गया है कि विश्वविद्यालयो ने गत तीन वर्षों मे जो ग्रीष्म कालीन शिक्षा शिवर चलाये उनमे कुछ शिक्षा विभागो और माध्यमिक शिक्षा परिषदो का पूरा-पूरा सहयोग न मिल सका। इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि पाठ्यक्रम अथवा परीक्षा सम्बन्धी सुधार के लिये सभी सस्थायें अथवा विभाग इस क्षेत्र में पूर्ण सहयोग से कार्य करे।

शिक्षा कक्ष मे अध्यापक के सामने जो समस्या उत्पन्न होती है उन समस्याओ का निदान करने के लिये अध्यापक के पास समय नही है और न उसके पास इतनी शक्ति होती है कि ६ घटे कक्षा मे पढ़ाने के बाद वह शिक्षा सम्बन्धी शोध कार्य कर सकें। यह कार्य State Institute of Education उठावे और अध्यापक का मार्ग प्रदर्शन करे।

शिक्षण प्रशिक्षण महाविद्यालयों की देखरेख करने वाली एजेन्सियाँ—प्रशिक्षण का स्तर न गिरे इसकी देखभाल करने के लिये विश्व-विद्यालय ग्राण्ट कमीशन और नेशनल काउन्सिल दोनो से मिलकर एक ऐसी कमिटी बनावें जो यह देखती रहे कि प्रशिक्षण की दशा गिर तो नहीं रही है, इस कमिटी का काम हो। प्रशिक्षण सस्थाओं के मान दण्डों को ऊँचा उठाना, सभी प्रकार की प्रशिक्षण सस्थाओ के स्तरो में सुधार लाना, उनके Staff की योग्यता पाठ्य पुस्तक और पाठ्यक्रम के विषय मे सलाह देना, प्रशिक्षण विद्यालयो और महाविद्यालयों को उनकी वित्तीय सहायता देना, उनके परिवेक्षण का प्रबन्ध करना।

अध्याय १०

तकनीकी शिक्षा

शिक्षा पर तकनीकी प्रभाव

Q. 1. Explain fully what is meant by "Technological Impact upon Education" ? *(A. U. B. T. 1960)*

Ans. 'तकनीकी' शब्द अंग्रेजी के 'Technological' शब्द के आधार पर निर्मित है। दोनो के अर्थ एक ही हैं। 'Technological' का अर्थ होता है। 'The Practice, discription and terminology of all the applied sciences of Commercial Value' अत. शिक्षा पर तकनीकी प्रभाव का अर्थ यह है कि व्यापारिक महत्व के व्यावहारिक विज्ञान की उन्नति से शिक्षा पद्धति, पाठ्यक्रम, अध्यापन विधि, आदि पर क्या प्रभाव पड़ा है। इस विषय पर विस्तार से विचार करने पर हमे ज्ञात होता है कि शिक्षा तथा जीवन अभिन्न है। शिक्षा का सदैव जीवन से सम्बन्ध रहना अनिवार्य है। अत समय परिवर्तन से जो परिस्थितियाँ जीवनक्रम, उसके प्रति दृष्टिकोण तथा उसके आदर्श मे परिवर्तन लाती हैं वही तत्कालीन शिक्षा मे भी परिवर्तन उत्पन्न करने के लिये उत्तरदायी होती हैं।

अति प्राचीनकाल मे जीवन सादा था, आवश्यकताएँ सीमित थी और समाज मे श्रम-विभाजन इतना अधिक नही था जितना वर्तमान समय मे दिखाई देता है। कारण यह है कि मनुष्य ने प्रकृति पर विजय प्राप्त करके जीवन को अधिक सुरक्षित तथा सुखी बनाने का प्रयत्न किया। परिणामस्वरूप भौतिक विज्ञान का जन्म हुआ। मशीनें बनीं और बड़े-बड़े कल कारखाने बने। योरुप मे औद्योगिक-क्रान्ति उत्पन्न हुई। इससे लोगो के जीवन मे आमूल परिवर्तन आ गया। अत. इस सभी का शिक्षा पर भी प्रभाव पडा। नवीन ज्ञात सामग्री विषयो का रूप धारण करके शिक्षण सस्थाओ मे अध्ययन की सामग्री बन गई।

प्रथम महायुद्ध ने यह सिद्ध कर दिया कि उद्योग मे तथा वर्तमान तकनीकी शिक्षा मे पिछड़ा हुआ देश अपना सम्मानपूर्ण अस्तित्व रखने मे ही असमर्थ होगा। अत प्रत्येक देश मे औद्योगिक तथा तकनीकी शिक्षा को विशेष महत्व दिया जाने लगा। सामान्य शिक्षा का महत्व घटने लगा। देशों ने तीव्रता से कल कारखाने खोलने प्रारम्भ कर दिये। उनके लिये प्रशिक्षित [illegible] त माध्यमिक स्तर पर तथा पूर्व और उत्तर [illegible] सस्थाओं की आवश्यकता प्रतीत हुई। बड़ी- [illegible] शिक्षित करने तथा बेपढे लिखे और अकार्य-कुशल मजदूरो को पढ़ाने की समस्या उत्पन्न हुई। उनके लिये अल्पकालीन प्रशिक्षण केन्द्रों की आवश्यकता अनुभव हुई। उच्चकोटि की तकनीकी शिक्षा के लिये तकनीकी कालेजो की स्थापना हुई। इस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र मे तकनीकी प्रभाव प्राथमिक विद्यालय से लेकर विद्यालय स्तर तक पड़ा।

औद्योगिक क्रान्ति होने से तथा उसके परिणाम स्वरूप तकनीकी शिक्षा के विकास से देश की प्राकृतिक सम्पत्ति का उपयोग हो सका। खनिज पदार्थों तथा अन्य प्राकृतिक शक्ति के स्रोतो का उपयोग हुआ। इससे राष्ट्र की आय मे वृद्धि हुई और लोगो के रहन-सहन का स्तर ऊँचा हुआ। इससे शिक्षा पर प्रभाव पडा। समाज को और अधिक श्रेष्ठ तथा उच्च शिक्षा की आवश्यकता अनुभव होने लगी और शिक्षा का स्तर ऊँचा करने के लिये आवश्यक धन तथा अन्य आवश्यक वस्तुओ को सुविधा से जुटाया जा सका। यही कारण है कि जिन देशो मे औद्योगिक और तकनीकी शिक्षा की प्रगति जितनी जल्दी हो गई उन देशो मे शिक्षा स्तर उतनी ही जल्दी ऊँचा उठ गया। इगलैंड और अमेरिका इसके उदाहरण है। अधिक धन तथा साधन प्राप्त होने से वहाँ शिक्षा को नि शुल्क तथा अनिवार्य किया जा सका है। शिक्षा का सर्वांगीण विकास भी सम्भव हो सका।

तकनीकी प्रभाव शिक्षा पर यह भी पडा है कि बडी मात्रा मे उत्पत्ति के साधनो की वृद्धि से श्रम विभाजन अत्यन्त सूक्ष्म हो गया है। इससे विशिष्ट ज्ञान (Specialisation) की आवश्यकता पडी और शिक्षा के क्षेत्र मे विशिष्टीकरण आगया। बडे-बडे कालेजो और विश्वविद्यालयों की आवश्यकता, विज्ञान की विभिन्न शाखाओ को पूर्ण शिक्षा प्रदान करने के लिये अनुभव की गई और उनकी स्थापना भी की गई।

देश के नव निर्माण के लिये नवीन प्रकार की तकनीकी तथा औद्योगिक खोजो की आवश्यकता है अतः तकनीकी रिसर्च सस्थाओ का जन्म हुआ। सडको, नहरो, इमारतो, रेलों, हवाई जहाजो, खादो, तथा इसी प्रकार की अन्य वस्तुओ के विषय मे बिना आधुनिकतम खोजपूर्ण ज्ञान हुये देश का कल्याण नहीं हो सकता। अत तकनीकी प्रभाव से शिक्षा का क्षेत्र अत्यन्त विकसित हुआ है और अधिक होता जा रहा है।

शिक्षा पर तकनीकी प्रभाव के कारण प्रयोगशालाओ की स्थापना हुई और क्रिया द्वारा ज्ञान प्राप्त करने की विधि का विकास हुआ। पाठ्यक्रम केवल पुस्तकीय ही नही रह गया। विद्यार्थी को निर्माण तथा परीक्षण द्वारा सीखने का अवसर मिला।

भारत मे शिक्षा पर तकनीकी प्रभाव, शिक्षा पर योरुप के कुछ प्रगतिशील देशो की अपेक्षा देर से पडा। कारण स्पष्ट है कि भारत परतन्त्र था। भारत मे औद्योगिक एव तकनीकी शिक्षा की माँग १९ वी सदी के अन्तिम समय से प्रारम्भ हुई। कांग्रेस ने प्रत्येक अधिवेशन मे इस शिक्षा पर बल दिया क्योंकि अन्य देशो मे इसकी प्रगति पर्याप्त हो चुकी थी। तत्कालीन भारतीय सरकार तकनीकी शिक्षा प्राप्ति के लिए भारतीय विद्यार्थियो को पाश्चात्य देशो मे भेजा करती थी। १९०२ तक देश मे ८० टेक्नीकल कॉलिज स्थापित हो चुके थे। माँग अधिक होने के कारण अन्य कॉलेजो की भी स्थापना हुई। प्रगति इस प्रकार है —

(१) एक इजीनियरिंग व टेकनॉलॉजीकल कॉलेज की स्थापना National Council Education ने बगाल मे जादवपुर नामक स्थान पर की।

(२) १९१७ ई० में हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस मे इजीनियरिंग कालेज की स्थापना हुई।

(३) १९१९ ई० मे Indian Institute of Science की स्थापना बगलोर मे हुई।

(४) १९२१ ई० इण्डियन इन्स्टीट्यूट आफ माइनिंग (Indian Institute of Mining) की स्थापना धनबाद मे हुई।

(५) कानपुर मे Harcourt Technological Institute खुला।

(६) बम्बई मे School of Chemical Technology) खुला।

(७) सन् १९४५ मे N. R. Sarkar Committee ने चार बडी-बडी व्यावसायिक सस्थाओ को स्थापित करने की सलाह दी। परिणामस्वरूप १९५१ मे टेक्नीकल स्कूल (Technical school) खडगपुर की स्थापना हुई।

सन् १९४८ ई० में एक औद्योगिक अनुसधान विभाग का सगठन किया गया। सरकार ने एक अखिल भारतीय औद्योगिक शिक्षा समिति (All Indian Council of Technical Education) का निर्माण किया। इसने कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिये ६ बोर्डों की स्थापना की।

(२) महायुद्ध के समय तथा उसके उपरान्त नये-नये उद्योग खुल गये क्योंकि युद्धग्रस्त देशो ने अपना निर्माण शीघ्रता से करने के लिये मशीनो का सहारा लिया। भारत मे भी अनेको उद्योग खुल गये और टेक्नीकल प्रशिक्षण प्राप्त लोगो की सख्या मे वृद्धि हुई।

(३) प्रान्तीय तथा केन्द्रीय सरकार ने कई नई योजनाएँ चलाई उनके लिये टेक्नीकल प्रशिक्षण प्राप्त लोगो की आवश्यकता थी।

सन् १९४७ ई० मे देश मे कुल ४६० सस्थाएँ थी और उनमे ४६७४० विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त कर रहे थे।

सन् १९४५ मे भारत सरकार ने टेक्नीकल शिक्षा के आयोजन और पुनर्संगठन के लिये एक 'अखिल भारतीय टेक्नीकल शिक्षा समिति' की स्थापना की। इस सस्था का यह भी कार्य था कि विभिन्न टेक्नीकल शिक्षा सस्थाओं मे समन्वय स्थापित करे। इस समिति ने टेक्नीकल शिक्षा के प्रसार के लिये सरकार से सिफारिश की। सिरकार ने सफारिश मजूर करली और एक योजना बनाई गई। उसमे सरकार द्वारा १,५४,००,००० रुपये अनावर्तक Non-recurring) और ३००००० रुपये आवर्तक (Recurring) रूप मे व्यय किये जाते थे।

सन् १९४५ ई० मे सरकार ने टेक्नीकल शिक्षा के सम्बन्ध मे परामर्श देने के लिये नलिनी रजन सरकार की अध्यक्षता मे एक उच्च टेक्नालॉजीकल शिक्षा समिति की स्थापना की। इस समिति ने सन् १९४६ मे अधोलिखित सुझाव दिये—

(१) देश मे उच्च टेक्नीकल शिक्षा के लिये चार बडी सस्थाएँ स्थापित की जावें।

(२) एक सस्था कलकत्ता के पास हो और दूसरी बम्बई के पास हो।

(३) एक सस्था उत्तरी भारत मे हो। इसमे जल-विद्युत की इजीनियरिंग शिक्षा पर विशेष बल दिया गया। एक सस्था दक्षिण भारत मे भी स्थापित की जाय।

(४) इन सस्थाओं के आचार्य तथा विभाग-प्रधान शीघ्र ही नियुक्त किये जावें जिससे इनकी शिक्षा का कार्य शीघ्र प्रारम्भ हो जाय।

भारत सरकार ने इन सिफारिशो को स्वीकार कर लिया। और चार टेक्नीकल विद्यालय खोले—

सन् १९५१ मे पूर्व मे खडगपुर मे टेक्नीकल स्कूल खुला। द्वितीय पचवर्षीय योजना मे पश्चिम, उत्तर व दक्षिण मे भी टेक्नीकल विद्यालय खोल दिये गये।

सन् १९४८ मे सरकार ने एक औद्योगिक अनुसधान विभाग का सगठन किया। 'अखिल भारतीय औद्योगिक शिक्षा समिति' (All India Council of Technical Education) का निर्माण किया। इस कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिये सात बोर्डों की स्थापना की—

(१) केमिकल इजीनियरिंग एण्ड केमिकल टेक्नॉलॉजी।
(२) इजीनियरिंग और मटलर्जी।
(३) आर्कीटेक्चर और रीजनल प्लानिंग।
(४) टेक्सटायल टेक्नॉलॉजी।
(५) एप्लायड आर्ट।
(६) कॉमर्स।
(७) मैनेजमेंट स्टडीज।

वैज्ञानिक अनुसन्धान के लिये केन्द्रीय सरकार ने 'काउन्सिल ऑफ इण्डस्ट्रियल एण्ड साइण्टिफिक रिसर्च' नामक सस्था को जन्म दिया। इस संस्था ने १४ राष्ट्रीय प्रयोगशालाओ और केन्द्रीय अनुसधान सस्थाओ को खोला।

सन् १९५५ ई० मे अखिल भारतीय टेक्नीकल शिक्षा परिषद् की सिफारिश पर १५ शिक्षा सस्थाओ को २५ लाख रुपया प्रतिवर्ष दिया जा रहा है। ११ राष्ट्रीय रसायनशालाओ एवं अनुसन्धान शालाओ की स्थापना की गई है।

अखिल भारतीय टेक्नीकल शिक्षा परिषद् ने 'टेक्नीकल जनशक्ति समिति' (Technical Man Power Committee) की स्थापना की। इसका कार्य टेक्नीकल शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियो की कठिनाइयो की खोज करना और उनको दूर करने का प्रयत्न करना है। इसी प्रकार की दो समितियाँ—

(१) वैज्ञानिक जनशक्ति समिति (Scientific Man Power Committee)

(२) विदेश छात्रवृत्ति समिति (Overseas Scholarship Committee) है। विदेश छात्रवृत्ति समिति न सरकार की ओर से अनेक छात्र वृत्तियाँ दी है।

टेक्नीकल शिक्षा की पंचवर्षीय योजनाओं में प्रगति

All India Council for Technical Education ने सुझाव दिया कि प्रथम डिग्री और डिप्लोमा स्तर पर केवल समुचित सुविधाओं का प्रदान करने के प्रयत्न किये जावें—प्रयत्न दोनों प्रकार के हों—शैक्षिक और भौतिक। इनका और अधिक विस्तार न किया जाय। स्नातकोत्तर स्तर पर (At the Post-graduate Level) और विशेष शिक्षण (Specialised) पाठ्यक्रमों के सम्बन्ध में बहुत कुछ किया जाता है क्योंकि वर्तमान सुविधाएं बहुत कम हैं। विद्यार्थियों के छात्रावास के निर्माण हेतु ऋण योजना भी प्रस्तुत की गई। अन्य पंचवर्षीय योजनाओं में पहले से ही चल रही योजनाओं की पूर्ति पर ध्यान दिया गया और साइन्टिफिक मैन-पावर कमेटी (Scientific Man Cower Committee) द्वारा चलाई हुई योजनाओं की पूर्ति की गई। इसके अतिरिक्त आल इण्डिया काउन्सिल फार टेक्नीकल एजूकेशन द्वारा प्रस्तावित योजनाओं को पूरा किया गया।

स्नातकोत्तर शिक्षा के लिए प्रबन्ध—All India Council for Technical Education की एक विशेष कमेटी ने उच्च स्तरीय शिक्षा की जाँच की और इसकी उन्नति तथा विकास की आवश्यकता अनुभव करते हुये सुझाव दिये कि नवीन विषयों में विशेष शिक्षा प्राप्ति के साधन उपलब्ध किये जावें। अभी तक ३० नवीन विषयों के अध्ययन की १५ संस्थाओं में सुविधा प्रदान की जा चुकी है।

वर्तमान स्थिति—देश की आवश्यकता को देखते हुये अभी देश में टेक्नीकल शिक्षा की कमी है। इसके कई कारण है—

(१) धन का अभाव। (२) प्रशिक्षण केन्द्रों का अभाव। (३) योग्य प्रशिक्षित अध्यापकों का अभाव। (४) देश की साधारण शिक्षा से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। (५) टेक्नीकल शिक्षा और कलात्मक शिक्षा में अन्तर समझना। वास्तव में इन दोनों में किसी प्रकार का विरोध नहीं है। (६) औद्योगिक शिक्षा तथा सांस्कृतिक शिक्षा में समन्वय न होना। (७) श्रम के महत्व को न समझना। (८) न्यून स्तर पर निकृष्ट कोटि की व्यावसायिक शिक्षा।

स्थिति धीरे-धीरे बदल रही है। देश में बढ़ती हुई बेकारी निरन्तर शिक्षा में सुधार की ओर संकेत कर रही है। इसका हल यही है कि शिक्षा को ऐसा बनाया जाय कि छात्र कुशल कार्यकर्ता बनकर अपने पैरों पर खड़ा हो सकें। इसके लिए टैक्नीकल शिक्षा का अभी बहुत विस्तार करना है। इस क्षेत्र में प्रगति असन्तोषजनक है।

वर्तमान तकनीकी संस्थायें—भारत में इस समय दो प्रकार के टैक्नीकल विद्यालय हैं एक तो वे जो ग्रेजुएट तथा उत्तर ग्रेजुएट स्तर की पढ़ाई की व्यवस्था करते और डिग्रियां वितरित करते हैं, दूसरे वे जो पूर्व ग्रेजुएट स्तर पर शिक्षा देकर डिप्लोमा या सर्टीफिकेट देते हैं।

पहली प्रकार की संस्थायें संख्या में लगभग ५० हैं। इन्टरमीडियेट पास विद्यार्थी इन संस्थाओं में प्रवेश पाते हैं और इन्हें इंजीनियरिंग के क्षेत्र में सिविल इलैक्ट्रिकल तथा मैकेनिकल इन्जीनियरिंग की शिक्षा दी जाती है। टैक्नालोजी के क्षेत्र में रासायनिक टेक्नालाजी शुगर, टेक्सटाइल मैटेलर्जी, लदर, सिरमा, और माइनिंग टेक्नालाजी शिक्षण की व्यवस्था की गई है। इन तकनीकी विद्यालयों का या तो विश्वविद्यालयों से सीधा सम्बन्ध है अथवा पोलीटेकनीकल विद्यालय भी कई स्थानों में खोले गये हैं। बंगलौर की भारतीय विज्ञान संस्था ऊँचे स्तर की तकनीकी शिक्षा प्रदान करती है। इसके अतिरिक्त खड़गपुर का तकनीकी तथा इंजीनियरिंग विद्यालय धनबाद, का इण्डियन स्कूल आफ माइन्स तथा अप्लाइड ज्योलाजी, हारकोर्ट बटलर टेक्नीकल इन्स्टीट्यूट भारतीय टेक्नीकल इन्स्टीट्यूट खड़गपुर इस क्षेत्र में विशेष महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

कुछ संस्थायें इंजीनियरिंग तथा टेक्नालाजी में डिप्लोमा और सर्टीफिकेट देते हैं। इनमें अधिकतर हाई स्कूल पास विद्यार्थी प्रवेश पाते हैं। इनकी संख्या लगभग ७०० है। इनमें से कुछ वी० जे० टी० आई० बम्बई, कलाभवन बड़ौदा, एल० डी० टेक्नीकल संस्था अहमदाबाद, इलाह-

बाग टेकनीक्ल कालिज आगरा, राजकीय टेक्नीकल संस्था गोरखपुर, नीलो खेडी पोलीटेकनीक कर्नाल, दिल्ली पोली टेकनीक, दिल्ली आदि हैं।

Q. 3 "Success in industrialisation depends to a large extent upon vocational technical and engineering education" Discuss.

राष्ट्र को औद्योगीकरण में उसी समय सफलता मिल सकती है जिस समय उसके पास कुशल कारीगरों की संख्या पर्याप्त हो। किसी राष्ट्र की समृद्धि इस बात पर निर्भर रहती है कि उसने अपने औद्योगीकरण के लिये मानवीय तथा भौतिक साधनों को किस सीमा तक उन्नत बनाया है। मानवीय साधनों का उन्नत बनना तभी सम्भव है जब उनके जनशक्ति को उपयुक्त व्यावसायिक तकनीकी अथवा इंजीनियरिंग की शिक्षा दी जाय। योजना बनाने वालों तथा शिक्षकवर्ग के सामने यह समस्या है कि किस प्रकार हम इस प्रकार की शिक्षा में आशाजनक प्रगति प्राप्त कर सकें। इस समय उद्योगीकरण की सबसे बड़ी समस्याएँ हैं—स्कूली स्तर पर किस प्रकार की शिक्षण तथा प्रशिक्षण सम्बन्धी सुविधाएँ विद्यालय छोड़ने वाले बालकों को दी जाय ताकि कुशल कारीगरों और टेकनीशियनों की कमी का आभास उद्योगों को न हो, इंजीनियरों की उच्च शिक्षा किस प्रकार की हो, शिक्षण संस्थाओं का उद्योगों के साथ किस प्रकार का सहयोग स्थापित किया जाय, जो व्यक्ति शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश न ले सकें उनके लिये किस प्रकार का पत्र व्यवहारात्मक पाठ्यक्रम तैयार किया जाय आदि-आदि।

यद्यपि देश में तकनीकी शिक्षा का विकास १६४५ के उपरान्त काफी मात्रा में हुआ है फिर भी व्यावसायिक तथा इंजीनियरिंग शिक्षा अभी तक निम्न स्तर पर है। स्कूल स्तर पर तो व्यावसायिक शिक्षा का नाम भी नहीं लिया जाता।

वर्तमान काल में स्कूल स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा का प्रबन्ध केवल उन छात्रों के लिये किया जाता है जो सामान्य शिक्षा (Genral Education) में असफलता प्राप्त करते हैं। इस प्रकार की शिक्षा ग्रहण करने की न तो छात्रों में अभिरुचि होती है और न उनके अभिभावकों को ही अच्छा लगता है कि वे इस शिक्षा को ग्रहण करें। कुशल कारीगरों तथा टेक्नीशियनों की शिक्षा लोकप्रिय नहीं है इस दिशा में सरकार को तथा उद्योगपतियों को आवश्यक कदम उठाने चाहिये।

सामान्य और तकनीकी शिक्षा में अन्तर समझने की प्रवृत्ति भी तकनीकी शिक्षा की प्रगति में बाधक प्रतीत होती है। स्कूल में दी जाने वाली सामान्य शिक्षा इस प्रकार की हो कि वह सीखने वाले को विज्ञान तथा टेकनोलोजी के जगत से परिचय प्राप्त करा सके। जो व्यक्ति विज्ञान तथा सांस्कृतिक विषयों का ज्ञान प्राप्त किये बिना ही विशिष्ट प्रकार की तकनीकी शिक्षा प्राप्त करता है वह थोड़े समय बाद अपने को आधुनिक जगत की जटिलताओं के अनुपयुक्त पावेगा क्योंकि टेकनोलोजी के क्षेत्र में भी इतना अधिक परिवर्तन हो रहा है कि उसका अटूट सम्बन्ध विज्ञान तथा कला से जुड़ता जा रहा है। अतः सामान्य शिक्षा में पूर्व व्यावसायिक शिक्षा के कुछ तत्व तथा तकनीकी शिक्षा में सामान्य शिक्षा के महत्वपूर्ण तथ्यों का समावेश होना चाहिये।

इस समय शिक्षा व्यवस्था का रूप ही ऐसा नहीं है कि वह उद्योगपतियों को ऐसे व्यक्ति दे सके जो विद्यालयों अथवा महाविद्यालयों से निकलकर तुरन्त ही पेशेवर उत्तरदायित्वों को पूरा कर सकें, उच्च स्तरीय तक्नीकी शिक्षा भी इस समय ऐसी नहीं है कि उसे पाकर व्यक्ति सीधा नौकरी पर लग सके। जब तक तकनीकी शिक्षा संस्थाओं में दिये गये प्रशिक्षण का उत्पादन के साथ सीधा सम्बन्ध नहीं होगा, जब तक शिक्षा अधिकारियों तथा उद्योगपतियों में सहयोग नहीं होगा, जब तक उद्योगपति उन लोगों को शिक्षा की पूरी जिम्मेदारी नहीं लेंगे जो बाद में उनकी मिलों और फैक्ट्रियों में काम पर लगेंगे, जब तक वे ट्रेनिंग स्कीमों में भाग नहीं लेंगे, और part-time प्रशिक्षण के लिये अपने कुशल कारीगर और प्रशिक्षण सम्बन्धी अन्य सुविधाएँ नहीं देंगे तब तक तकनीकी शिक्षा में सुधार होना असम्भव है।

किसी व्यवसाय अथवा उद्योग में सफलता पाने के लिये व्यक्ति को प्रमाणपत्र, डिग्री अथवा डिप्लोमा लेना ही काफी नहीं है अर्थात् किसी प्रशिक्षण संस्था में शिक्षा प्राप्त करना ही पर्याप्त नहीं है, वरन् उसे समय-समय पर शिक्षक प्रशिक्षण की आवश्यकता है।

Q. 4. "Vocational education at school level is an inferior form of education." Discuss. What can be done to improve vocational education at school level?

[illegible]

कार्यक्रम चलावें और राज्य तथा जिले के स्तर पर कार्य करने वाली, व्यावसायिक निर्देशन से सम्बन्ध रखने वाली सस्थाएं उनको रास्ता दिखावें। व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरोज अध्यापकों, प्रधानाध्यापकों के लिये कैरियर इन्फारमेशन (Career Information) को प्रकाशित करें, व्यावसायिक निर्देशन की कक्षाएं चलावें, स्कूल और मिल मालिकों के बीच सम्बन्ध स्थापित कराने के लिये कैरियर काउन्सेलरों (Career Counsellors की व्यवस्था करें।

कुशलता के विचार से तकनीकी प्रशिक्षण निम्नलिखित चार प्रकार के व्यक्तियों के लिये होगा—

(i) अर्धकुशल और पूर्णकुशल कारीगरों के लिये।
(ii) टेकनीशियनों के लिये।
(iii) इंजीनियरों के लिये।
(iv) रिसर्च और डिजाइन इंजीनियरों के लिये।

अर्धकुशल तथा कुशल कारीगरों के लिये तकनीकी प्रशिक्षण—आजकल देश मे ३५६ तकनीकी सस्थाएं ११३००० छात्रों का इण्डस्ट्रियल कौशल सिखाने मे लगी हुई है। साथ ही १०३ जूनियर तकनीकी स्कूल तथा इतने ही तकनीकी हाईस्कूल लगभग ३६००० हजार छात्रों को प्रशिक्षण दे रहे हैं, बहुत से सरकारी और गैरसरकारी ट्रेडस्कूल और बहुद्देशीय स्कूल इस प्रकार की शिक्षा दे रहे हैं। इनके अतिरिक्त कुछ मजदूर किसी काम पर लग जाते है और उसमे धीरे-धीरे प्रशिक्षित होते रहते हैं।

चौथी पचवर्षीय योजना मे कुशल अथवा अर्धकुशल कारीगरों की तकनीकी शिक्षा के प्रसार के लिये आई आई टी की पैदावार दुगुनी करनी है उसमे दी जाने वाली शिक्षा का पाठ्यक्रम भी सशोधित कर दिया गया है। लेकिन तब भी एक बड़ी कमी उनमे यह है कि कुछ कार्यों के लिये वे अत्यधिक सख्या मे कारीगर पैदा कर रहे हैं और जिस प्रकार का वे दे रही है उसमे सैद्धान्तिकता का अश अधिक है व्यावहारिकता का कम और उसका उद्योगों से सीधा सम्बन्ध नही नही है *अर्थात् उनमे प्रशिक्षण पाया हुआ व्यक्ति सीधा किसी भी उद्योग मे नही लग सकता।*

आई. आई. टी. मे प्रवेश पाना भी आसान नही है। जिन ट्रेड्स के लिये केवल मिडिल पास योग्यता की जरूरत होती है उनमे भी हाईस्कूल पास व्यक्ति प्रवेश पाने की कोशिश करते हैं और सफल हो जाते हैं। अत. मिडिल पास बालकों के लिये उनके भी द्वार बन्द हो जाते हैं। अत. यदि कक्षा ७-८ के बाद मे हमे अपने २०% बालकों को व्यावसायिक प्रशिक्षण देना है तो प्रशिक्षण की सुविधाएं बढ़ानी होंगी। आई. आई टी की सख्या तथा उनके क्षेत्र का विस्तार करना होगा।

अर्धकुशल कारीगरों को तकनीकी प्रशिक्षण जिन जूनियर तकनीकी स्कूल और तकनीकी हाईस्कूलों द्वारा दिया जा रहा है वे सामान्य शिक्षा तथा तकनीकी शिक्षा का मिश्रण कर रहे हैं। इसमे तो कोई दोष नही है क्योंकि सामान्य तथा तकनीकी शिक्षा एक दूसरे पर आश्रित है लेकिन उनमे अपव्यय अधिक हो रहा है क्योंकि उनमे शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त छात्रों का एक बड़ा प्रतिशत या तो कालिज मे प्रवेश ले लेते हैं या किसी पौलीटेकनीक मे या पी. यू सी (Pre University Course) मे। वे उस व्यवसाय अथवा उद्योग मे नही जाते जिनका प्रशिक्षण उन्होंने पाया है। कानूनन उन्हे वर्कशाप प्रैक्टिस की वह छूट नही दी जाती जो I. I. T मे पास होने वाले व्यक्तियों को दी जाती है।

तकनीकी हाईस्कूलों, तथा आई. आई टीओं को यदि राष्ट्र के औद्योगीकरण मे सहायक सिद्ध होना है तो उन्हे ऐसे प्रशिक्षण देने की व्यवस्था करनी चाहिये जो उत्पादक अधिक हो सैद्धान्तिक कम, उन्हे विभिन्न उद्योग धन्धों से सम्बन्धित ऐसी वस्तुओं का उत्पादन कार्य स्वीकार कर लेना चाहिये जिनकी खपत आसानी से अन्य स्कूलों मे हो सके। वर्कशाप प्रैक्टिस मे इस प्रकार का सशोधन होना चाहिये कि वह अधिक आधुनिक और सजीव हो।

टेकनीशियनों का प्रशिक्षण (Technician Training)—माध्यमिक स्तर पर तकनीकी शिक्षा का सम्बन्ध टेकनीशियनों के प्रशिक्षण से है। पौलीटेकनिक विद्यालयों मे ३ वर्ष के डिप्लोमा कोर्स को लेने वाले इन टेकनीशियनों के काम का महत्व अभी तक हम लोग समझ नही पाये हैं। भारत मे तो बहुत से इंजीनियर जिन्होंने स्नातकीय स्तर की शिक्षा ली है वे भी टेकनीशियनों का

इन विद्यालयों मे जैसा पहले कहा जा चुका है ४०% अपव्यय की दर है। इस दर को कम कैसे किया जाय ? अपव्यय का एक मुख्य कारण तो यह है कि इन विद्यालयों में अध्यापक असन्तुष्ट रहते हैं। बहुत से अध्यापकों को पूरा वेतन भी नहीं मिलता। अत. यदि अपव्यय को रोकना है तो स्टाफ को सन्तुष्ट रखना होगा। इस उद्देश्य से तुरन्त ही सशोधित वेतनक्रम लागू करने होंगे। जो वेतन क्रम इ जीनियरिंग महाविद्यालयों मे स्वीकृत किये गये हैं वही वेतनक्रम इन विद्यालयों मे लागू किये जायें।

Q 5 What are the special features of technical education at the graduate level ? What measures do you suggest for the improvement of engineering education ?

स्नातकीय स्तर पर तकनीकी शिक्षा—स्नातकीय स्तर पर तकनीकी शिक्षा का सम्बन्ध इ जीनियरिंग की शिक्षा से है और स्नातकोत्तरीय स्तर पर तकनीकी शिक्षा का सम्बन्ध रिसर्च तथा डिजायन इ जीनियर्स से है। इस समय इ जीनियरिंग की शिक्षा एक ओर तो महाविद्यालयों में दी जाती है दूसरी ओर कुछ ऐसी भी सस्थाएँ हैं जो इस काम मे लगे हुए अनुभवी लोगों को अशकालिक (part time) शिक्षा दे रही हैं। सन् १६४७ के बाद इ जीनियरिंग कालेजो की सख्या मे काफी वृद्धि हुई है। सन् १६६४ मे १६४७ की अपेक्षा इस सख्या मे ३ गुनी वृद्धि हुई है। उस समय केवल ४५ कालेज थे, अब १३३ कालेज इ जीनियरिंग की शिक्षा दे रहे हैं। इ जीनियरो की शिक्षा के प्रसार ने कुछ समस्याओं को उत्पन्न कर दिया है जिनके कारण इ जीनियरो की योग्यता मे ह्रास सा आगया है। इन समस्याओ का सम्बन्ध है शिक्षा की अवधि (duration) पाठ्यक्रम, अध्यापक, साज-सज्जा, अपव्यय, जनशक्ति की आवश्यकता से।

इ जीनिरिंग कालेज मे उच्चतर माध्यमिक, इण्टर साइस तथा बी० एस-सी० पास छात्रो को प्रवेश दिया जाता है लेकिन शिक्षा की अवधि ३ वर्ष से लेकर ५ वर्ष तक है। १३३ कालेजो मे १० कालेज ऐसे है जिनमे हायर सेकण्डरी पास छात्रो को प्रवेश दिया जाता है और उन्हें ५ वर्ष तक प्रशिक्षण ग्रहण करना पड़ता है। ३१ कालेज ऐसे हैं जिनमे इण्टर साइस पास छात्र प्रवेश कर पाते तथा ४ वर्ष तक शिक्षा ग्रहण करते हैं, ७ महाविद्यालय ऐसे हैं जिनमे बी० एम-सी० प्रवेश पाते हैं और तीन साल तक का प्रशिक्षण पाते हैं। केवल ४-५ इ जीनियरिंग कालेज ही ऐसे हैं जिनमे इन्टर साइस पास करने के बाद ३ वर्ष का कोर्स करना पड़ता है। चूँकि इ जीनियरिंग ऐसा विषय है जिसमें हायर सेकेण्डरी (XI) पास करने के बाद कम से कम ५ वर्ष का शिक्षण मिलना चाहिये इसलिये अन्तिम प्रकार के इ जीनियरिंग कालेजो को या तो बन्द कर देना चाहिये या उनके कोर्स मे परिवर्तन कर देना चाहिये। बी० एस सी० पास ऐसे छात्रो को जिनका गणित और भौतिक शास्त्र मजबूत हो इजीनियरिंग कालेजों मे इलैक्ट्रोनिक्स (electronics) तथा इस्ट्रूमेण्टेशन कोर्सेज के लिए चुना जा सकता है और ये कोर्सेज ३ वर्ष के हो सकते हैं अन्यथा वर्कशाप प्रेक्टिस चाहने वाले सभी इजीनियरिंग कालेजो मे ५ वर्ष का ही प्रशिक्षण होना चाहिये।

पाठ्यवस्तु—इ जीनियरिंग कालेजो मे प्राय आधारीय विज्ञानों के शिक्षण की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। जो इ जीनियर शोध कार्य करना चाहते हो अथवा देश की तकनीकी प्रगति मे भाग लेना चाहते हो उनके लिये शोध कार्य के लिये साधन जुटाने चाहिये। इ जीनियरिंग कालेजों के विज्ञान विभागों में न केवल अध्यापकों की सख्या कम है वरन् उनको वेतन भी अपेक्षाकृत कम दिया जाता है। विज्ञान तथा टेक्नोलोजी विभागो मे इस प्रकार का अन्तर अवाछनीय है।

इ जीनियरिंग महाविद्यालयों मे व्यावहारिक अनुभव (Practical experience) तथा उद्योग का ज्ञान (Knowledge of Industry) बहुत कम दिया जाता है और वह भी उस समय दिया जाता है जिस समय न तो अध्यापक ही और न छात्र ही उस ज्ञान को सचित करने के प्रयत्नशील होते हैं, इ जीनिय-रिंग की पहली, दूसरी कक्षा मे छुट्टी के दिनो मे दिया गया यह ज्ञान थोथा और निष्प्राण होता है, इसलिए यदि प्रैक्टीकल अनुभव तीसरी वर्ष मे दिया जाय और इस अनुभव को देने के लिये उद्योगपतियो का सहयोग लिया जाय तथा इसको प्राप्त करते समय उनके अध्यापक उनका निरीक्षण अच्छी तरह से करें तो मिल मालिकों को यह शिकायत न होगी कि नया-नया इ जीनियर प्रैक्टीकल अनुभव नही रखता। किसी न किसी प्रकार का औद्योगिक उत्पादन करने की क्षमता इ जीनियर मे तब तक आना असम्भव है जब तक उसे इस प्रकार का प्रैक्टीकल अनुभव नहीं

किया जाता। जो इंजीनियरिंग कालेज स्थापित किये जायें उनमें ऐसा प्रोत्साहन दिया जा सकता है। ऐसा करने से दो लाभ होंगे—इंजीनियरिंग की समस्याओं का उद्योगों से स्पष्ट सम्पर्क स्थापित हो जायगा तथा किसी इंजीनियर के उत्पादक होने का समय कम हो जायगा। साथ ही वह इंजीनियरिंग सीखते समय धनोपार्जन कर सकेगा।

यह सर्वमान्य है कि ट्रेनिंग जो इस समय दी जाती है इस प्रकार बदल दी जाय कि उनकी प्रवृत्ति उत्पादन की ओर अधिक हो सैद्धान्तिक ज्ञान के विकास की ओर कम।

यदि हम चाहते हैं कि भावी इंजीनियर देश की औद्योगिक उन्नति में योगदान दे सकें तो हमें इंजीनियरिंग कालेजों के पाठ्यक्रम में परिवर्तन उपस्थित करना होगा। जिन क्षेत्रों में नवीन प्रकार का पाठ्यक्रम तैयार करना होगा वे ये हैं—

(अ) Electronics
(ब) Chemical Technology
(स) Metalurgy
(द) Aeronautics and Astronautics
(य) Nuclear power generation

अध्यापक (Teachers)—अच्छे इंजीनियर पैदा करने के लिए अच्छे अध्यापकों की आवश्यकता होती है। एक इंजीनियरिंग कालेज के अध्यापक को Industry में स्वयं जाकर न केवल अनुभव ही प्राप्त करना वरन् उसे शोध कार्य भी करना होगा। अध्यापकों के ज्ञान के पुनःस्मरण के लिये ग्रीष्मकालीन शिक्षा शिविरों का आयोजन भी करना होगा। जो इंजीनियर्स प्रैक्टिस कर रहे हों उनको उच्च स्नातकीय उपाधि पाने की सुविधाएँ भी देनी होंगी।

इंजीनियरिंग कालेजों में इस समय अध्यापकों की बड़ी भारी कमी है। इस कमी को दूर करने के लिये तकनीकी अध्यापकों के प्रशिक्षण का आयोजन होना चाहिये। ट्रेनिंग काल में नये-नये इंजीनियरिंग अनुभवी व्यक्तियों से मार्ग दर्शन लें और अध्यापकों का अनुभव प्राप्त करें। जो लोग B. E. कर लेते हैं उनके लिए तीन वर्ष का शिक्षक-प्रशिक्षण देश की १२ प्रशिक्षण संस्थाओं में दिया जाता है और जिन्होंने इन्जीनियरिंग में स्नातकोत्तरीय कक्षा पास की है उनको केवल एक वर्ष का ही प्रशिक्षण लेना पड़ता है। लेकिन इन १२ प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रतिवर्ष १२० से अधिक लोग प्रवेश नहीं कर पाते इस प्रकार प्रशिक्षित अध्यापकों की कमी निरन्तर बनी रहती है।

इंजीनियरिंग कालेजों की साजसज्जा—इंजीनियरिंग में सफल प्रशिक्षण के लिये वर्कशाप और प्रयोगशाला दोनों का ही आवश्यक साजसज्जा से युक्त होना जरूरी है। ऐसा देखा गया है कि कुछ आवश्यक कारणों से इनको सामान या तो मिल नहीं पाता और मिलता भी है तो देरी से। इस कमी को दूर करने का भरसक प्रयत्न किया जाना चाहिये। डिफेंस तथा उद्योग दोनों से कर्ज पर सामान लिया जा सकता है और जो सामान वर्ष में केवल एक बार ही प्रयोग में आते उसे न खरीदा जाय। उसका तो उधार लेना ही अच्छा है। मशीन के जो पुर्जे आसानी से तैयार किये जा सकें उनको बाहर से मँगाने की अपेक्षा घर पर ही तैयार कर लेना चाहिये क्योंकि बाहर से मँगाने में व्यर्थ ही समय नष्ट होता है। ऐसी मशीनें जो स्पेसीमेन के रूप में विदेश से आई हों उनकी जगह पर योग्य लोगों की देखरेख में तैयार की गई मशीन अधिक लाभप्रद होगी।

अपव्यय—पोलीटेकनीक्स तथा इंजीनियरिंग कालेजों में अपव्यय की प्रतिशत २० सामान्यतः है लेकिन कुछ वर्षों से यह प्रतिशत ४४ भी हो गई है। इस अपव्यय का रोकने के लिये इसके कारणों को दूर करना होगा। वित्तीय कठिनाइयाँ, छात्रावासों की कमी, योग्य अध्यापकों का अभाव, शिक्षण सामग्री का अभाव, शिक्षा का माध्यम आदि कुछ ऐसी बातें हैं जिनके कारण अपव्यय होता है और उसे दूर किया जा सकता है। छात्रों का उपयुक्त चुनाव, प्रवेश के लिये योग्यता सम्बन्धी नियमों का ठीक-ठीक पालन, अँग्रेजी के कम ज्ञान वाले व्यक्तियों के लिये अँग्रेजी में उपचारात्मक शिक्षा का प्रबन्ध करके इस परिस्थिति में सुधार लाया जा सकता है।

तकनीकी शिक्षा की समस्यायें

Q. 6. What are the causes of slow progress of *technical* education in India ? *(Agra B T. 1961)*

Ans यद्यपि पिछले वर्षों मे कई तकनीकी सस्थायें खोली गई हैं तथा तकनीकी शिक्षा की माँग बढ़ रही है किन्तु देश मे उनकी प्रगति आशानुकूल नही है। उसके विकास मार्ग मे कई रोडे हैं—

१—तकनीकी शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण उदासीनता पूर्ण है। लगभग २०० वर्ष तक हस्तकला, उद्योग धन्धो एव टेकनीकल शिक्षा को ब्रिटिश सत्ता ने उपेक्षा की दृष्टि से देखा था। यही दृष्टिकोण हम भारतीयों को भी उनसे पैतृक सम्पत्ति के रूप मे मिला है। अतः तकनीकी शिक्षा की प्रगति उतनी नही हो रही है, जितनी कि होनी चाहिए थी। किन्तु अन्य देशो मे यह बात नहीं है।

२—हमारे देश मे तकनीकी शिक्षा की सुविधाओं की भी कमी है। ६० से अधिक प्रतिशत विद्यार्थियो को तकनीकी सस्थाओ मे स्थान नही मिलता क्योकि उनकी सख्या देश की माँग के अनुसार नहीं है। हमे इन्जीनियरिंग एव तकनीकी विद्यालयों की सख्या में वृद्धि करनी है।

३—तकनीकी शिक्षा पाने के बाद उन कर्मचारियों के लिये किसी प्रकार की आगे की शिक्षा का प्रबन्ध नहीं है। एक टेकनीशियन की कुशलता और उन्नति तभी हो सकती है जब उसके लिए अशकालिक पाठ्यक्रमो का प्रबन्ध हो। शिक्षा तो जीवन व्यापिनी है, अतएव उनके लिये रिफ्रेशर कोर्स की व्यवस्था करनी होगी। इस व्यवस्था के लिये अभी कोई प्रबन्ध नही है।

४—राज्यो उद्योगों और तकनीकी शिक्षा मे सम्बन्ध इतना घनिष्ठ नही है जितना कि होना चाहिये था।

इन सब क्षेत्रों मे हमारा देश कदम उठा रहा है। आशा की जा सकती है कि भविष्य मे वह तकनीकी शिक्षा का सन्तुलित पर्याप्त एव समुचित विकास कर सकेगा।

अध्याय ११

शिक्षा पर अन्य प्रभाव

Q. 1. Write note on Socio-economic Impact on Education.

(A U. B. T 1959 and 1961)

Ans. शिक्षा पर सामाजिक, आर्थिक प्रभाव—समाज की धारणायें, विश्वास, क्रियायें तथा मान्यतायें आदि और उनकी आर्थिक स्थिति शिक्षा पर गहरा प्रभाव उत्पन्न करती है। शिक्षण संस्थाओं को समाज ने पैदा किया है और समाज ही उनको चलाता है। उनकी स्थिति समाज के ही हित में है। समाज शिक्षण संस्थाओं के द्वारा भविष्य के लिये ऐसे नागरिक उत्पन्न करने का प्रयत्न करता है जो समाज की पुरानी परम्पराओं तथा अनुभवों को बनावें और उनकी उन्नति करके भविष्य में सम्पूर्ण समाज को उन्नत तथा विकासशील बनायें।

शिक्षण संस्थाएँ अपनी स्थिति के लिए समाज से ही शक्ति प्राप्त करती हैं। शिक्षक समाज से प्राप्त होता है, विद्यार्थी समाज में आते हैं और जितनी भी धन की आवश्यकता होती है वह भी समाज से ही प्राप्त होता है। इस प्रकार समाज की ओर से साधनों की एक धारा शिक्षण संस्थाओं की ओर बहती है। इससे यह स्पष्ट हो गया है कि समाज में तथा समाज की आर्थिक स्थिति में परिवर्तन उत्पन्न होने से शिक्षा में परिवर्तन अवश्य उत्पन्न होने चाहिये। समाज सदैव अपने अनुरूप ही शिक्षा का रूप रखता है और शिक्षण के लिये धन संग्रह करता है। यदि समाज की आर्थिक स्थिति बिगड़ जाय, सामाजिक आदर्शों में आमूल परिवर्तन हो जायें तो शिक्षा में भी आमूल परिवर्तन को कोई नहीं रोक सकता। शिक्षा को समाज से तथा समाज की आर्थिक स्थिति से किसी प्रकार अलग नहीं किया जा सकता। शिक्षा के स्वरूप को सरकार भी तभी बदल सकती है जब वह पहले तदनुरूप समाज में परिवर्तन उपस्थित करे। अतः स्पष्ट है कि शिक्षा पर आर्थिक तथा सामाजिक प्रभाव पड़ता है।

इस सम्बन्ध में कुछ उदाहरण शिक्षा पर इन प्रभावों को और भी अधिक स्पष्ट कर देंगे। अति प्राचीन काल में भारत एक धर्म प्रधान देश था। धर्म का जनता के जीवन से अभिन्न सम्बन्ध था। यह माना जाता था कि कि इस संसार में किया हुआ प्रत्येक कार्य दूसरे जीवन पर प्रभाव उत्पन्न करता है। ऐसे समाज में शिक्षा का क्या स्वरूप हो सकता है? धर्म को शिक्षा में प्रमुख स्थान था। बालक को प्रारम्भ से ही वेद के मन्त्र रटने पड़ते थे और धार्मिक पुस्तकों में वर्णित ढंगों से जीवनयापन करने पर बल दिया जाता था। जीवन में संस्कारों का महत्व प्रबल माना जाता था अतः जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त अनेकों संस्कार होते थे। विद्यार्थी का जीवन कठोर तपस्या तथा धर्मानुकूल आचरण से युक्त था। शिक्षा में व्यावहारिक जगत के ज्ञान को स्थान प्राप्त नहीं था। सन्त तथा विचारक इसी खोज में रहते थे कि जीवन क्या है और आत्मा तथा परमात्मा का क्या स्वरूप है? जीवन में दुखों से किस प्रकार मुक्ति मिल सकती है?

समाज में चार वर्ण थे। उनमें शूद्रों को तथा स्त्रियों को वेद पढ़ने आदि का अधिकार नहीं था। क्यों? क्योंकि उस समय ऐसी ही सामाजिक मान्यता थी। अतः सामान्य जनता

तथा स्त्री शिक्षा पर प्रभाव पड़ा। सामाजिक ढाँचा उस समय अत्यन्त सरल था। जीवन-यापन करने के साधन सुलभ थे अतः व्यावसायिक तथा औद्योगिक शिक्षा की ओर लोगों का ध्यान नहीं था। शत्रु से रक्षा करना आवश्यक था। अतः धनुष-बाण की विद्या का विकास हुआ। तात्पर्य यह कि शिक्षा पर सामाजिक तथा आर्थिक प्रभाव पड़ते हैं और वे उसकी रूप-रेखा को भी प्रभावित करते हैं।

भारत में अंग्रेजी शासन काल—अंग्रेजों ने भारत में आकर अपना शासन स्थापित किया। भारत जैसे धार्मिक देश में अपनी शासन की जड़ें गहरी जमाने के लिए उन्होंने देश में सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन किये। इन परिवर्तनों से शिक्षा भी प्रभावित हुई।

अंग्रेजों के आगमन के समय भारतीय आर्थिक व्यवस्था छोटे-छोटे कुटीर उद्योग धन्धों पर आधारित थी। अंग्रेजों ने भारत से कच्चा माल विलायत ले जाकर और मशीनों से उत्पन्न पक्का माल अपेक्षाकृत सस्ते दामों में बेचना प्रारम्भ किया। मशीन का बना हुआ सामान देखने में अच्छा था और भारतीय कुटीर उद्योगधन्धों में बने माल से सस्ता था अतः जनता में स्वदेशी माल की खपत कम हो गई और कुटीर उद्योग धन्धों की समाप्ति हो गई। जनता में गरीबी फैल गई। इससे शिक्षा पर प्रभाव पड़ा। लार्ड मिण्टो ने सन् १८११ ई० में अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि भारतीय साहित्य और विज्ञान उत्तरोत्तर अवनति की ओर जा रहे हैं। तब सन् १८१३ ई० के चार्टर ऐक्ट द्वारा १ लाख रुपया प्रतिवर्ष भारतीय शिक्षा पर व्यय करने का निश्चय किया गया। भारत जैसे विशाल देश के लिये इतनी धनराशि अपर्याप्त थी अतः शिक्षा का निरन्तर ह्रास होता रहा।

सामाजिक मान्यताओं का भी शिक्षा पर प्रभाव पड़ता है। सन् १८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम ने अंग्रेजों को यह स्पष्ट कर दिया था कि बिना भारतीय सामाजिक परम्पराओं और विश्वासों को बदले हुये भारत में कोई भी नवीन सुधार नहीं हो सकता। वे समझ गये कि भारतीय जनता धार्मिक आघात नहीं सह सकती। अतः अंग्रेजों ने यह निश्चय किया कि शिक्षा में धर्म का कोई स्थान नहीं रहेगा। धार्मिक शिक्षा की स्वतन्त्रता होगी। सरकार को धार्मिक शिक्षा से कोई प्रयोजन नहीं होगा। यही कारण है कि ब्रिटिश भारत में शिक्षा सम्बन्धी जितनी रिपोर्टें हैं और जितने कमीशन हैं, उन सभी ने शिक्षा में धर्म की उपेक्षा की।

शिक्षा भी समाज को तथा उसकी आर्थिक स्थिति को प्रभावित करती है। योरुप में औद्योगिक क्रान्ति हुई। वह विज्ञान की नई-नई खोजों का परिणाम थी। विज्ञान की खोजों से प्राचीन धर्म की जड़ें हिल गईं और लोग धर्म की असम्भव बातों को शंका की दृष्टि से देखने लगे। अतः धीरे-धीरे जनता में धर्म का प्रभाव कम हुआ। शिक्षा में मानव धर्म को सिखाने की बात की जाने लगी और नवीन-नवीन विषयों द्वारा शिक्षा-क्षेत्र का विकास हुआ। औद्योगिक, व्यावसायिक तथा तकनीकी शिक्षा प्रदान की जाने लगी। क्यों? क्योंकि समाज की आवश्यकता थी।

भारत में भी इस क्रान्ति का प्रभाव पड़ा और परिणामस्वरूप सामाजिक मान्यताएँ कम हुईं और समाज में संकुचित दृष्टिकोण के कारण उत्पन्न छुआछूत आदि कम हुईं। मनुष्य सब समान हैं। इस भावना को जन्म मिला। इसका शिक्षा पर यह प्रभाव हुआ कि 'जनसाधारण की शिक्षा' (Education for the masses) का नारा लगने लगा। प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य तथा निःशुल्क करने के प्रयत्न चलने लगे। योरुप तथा अमेरिका ने सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति अच्छी होने के कारण प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य तथा निःशुल्क किया जा चुका है। किन्तु भारत के सम्मुख आर्थिक संकट उपस्थित है और यह अभी शिक्षा को निःशुल्क तथा अनिवार्य करने की स्थिति में नहीं है।

आजकल पिछड़ी हुई, अनुसूचित तथा आदिम जातियों को शिक्षित करने के प्रयत्न हो रहे हैं। यह समाज का उनके प्रति दृष्टिकोण बदल जाने से ही सम्भव हो सका है। भारत की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति से ही प्रभावित होकर गान्धी जी ने भारतीय शिक्षा में परिवर्तन करना चाहा था। उनकी बेसिक शिक्षा को ऐसा होना था जो आर्थिक बन्धनों से मुक्त हो अर्थात् वह इस प्रकार हो जाय कि स्वयं उसी से उस पर होने वाला व्यय निकाला जा सके। यह किसी उत्पादक क्राफ्ट की शिक्षा द्वारा सम्भव समझा गया था।

स्वतन्त्र भारत में शिक्षा और आर्थिक सामाजिक व्यवस्था

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त भारतीय सरकार ने देश को धर्म निरपेक्ष गणराज्य घोषित किया है। प्रजातन्त्र देश की शिक्षा उसकी आर्थिक व्यवस्था तथा उसकी सामाजिक धारणाएं अन्य प्रकार की शासन प्रणालियों से भिन्न होती है। प्रजातन्त्र देश के अनुकूल आर्थिक, सामाजिक तथा शैक्षणिक स्थिति उत्पन्न करने के लिये भारत सरकार ने पंचवर्षीय योजनाओं को प्रारम्भ किया है। प्रथम पंचवर्षीय तथा द्वितीय पंचवर्षीय योजनाएँ समाप्त हो चुकी है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना की विशेषताएँ इस प्रकार थीं।

(१) देश की औद्योगिक तथा सार्वजनिक शिक्षा का विस्तार।

(२) समाजवादी शासन की व्यवस्था।

(३) सामुदायिक विकास योजनाएँ तथा कल्याणकारी राज्य की स्थापना।

(४) रोजगार के अवसरों की वृद्धि तथा कुटीर उद्योग धन्धों का विकास।

स्वतन्त्र देश मे सामाजिक, आर्थिक तथा शिक्षा के क्षेत्र मे निम्नलिखित प्रयत्न हो रहे हैं :—

(१) तृतीय पंचवर्षीय योजना की अवधि की समाप्ति तक ६ से ११ वर्ष तक के बच्चो के लिए प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य तथा निःशुल्क हो जायगी।

(२) नवीन प्रकार के विद्यालयो की स्थापना की गई है। उनका उद्देश्य विद्यार्थी को शिक्षोपरान्त आर्थिक क्षेत्र मे स्वतन्त्रता प्रदान करना है। इन स्कूलो को प्राविधिक (Poly technic School) और बहुउद्देशीय (Multipurpose Schools) कहते हैं।

(३) स्कूलो तथा कालेजो मे उत्पादन कला पर जोर दिया जा रहा है।

(४) नवीन विषयो जैसे कृषि, वाणिज्य, कानून, चिकित्सा विज्ञान आदि में शिक्षा प्राप्ति के लिये और अधिक सुविधाएं प्रस्तुत की जा रही हैं।

(५) विद्यालय तथा समाज सेवा के कार्यों मे सम्बन्ध जोड़ने का प्रयत्न हो रहा है। विद्यार्थियो मे राष्ट्र प्रेम तथा राष्ट्रीयता उत्पन्न करने के लिये राष्ट्रीय पर्वों आदि का मानना विद्यालयो मे अनिवार्य कर दिया गया है।

(६) समाज के सम्पूर्ण सदस्यो को समान समझने की मनोवृत्ति को विकसित करने के प्रयत्न हो रहे हैं। छुआछूत को तथा हरिजनो को सार्वजनिक स्थानो के लाभ से वंचित करना कानूनी अपराध हो गया है।

(७) छोटे कुटीर उद्योग धन्धे तथा बड़ी मात्रा मे उत्पत्ति करने वाले कारखानों को स्थापित करके देश की आर्थिक स्थिति सुधारने का प्रयत्न हो रहा है।

(८) विश्व की बदलती हुई सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियो ने भारत को भी शिक्षा तथा आर्थिक क्षेत्र मे आगे बढ़ने के लिये विवश कर दिया है। समाज-शिक्षा के लिये तथा 'जनता कालेज' जैसी संस्थाओ को स्थापित करके जनजागरण के प्रयत्न हो रहे है।

(९) युवको को विकास तथा कल्याण के लिये केन्द्रीय शिक्षाविभाग ने एक युवक विभाग खोल दिया है। इसके कार्य युवको के लिये हितकारी शारीरिक शिक्षा का प्रबन्ध करना, युवको के खेलो का राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रबन्ध करना युवको मे कला, साहित्य और सामाजिक क्रिया कलापो के प्रति प्रेम उत्पन्न करना, 'युवक नेतृत्व शिक्षण शिविर' (Youth Leader Training Camp) का सगठन करना, नाटक शिविर (Dramatic Camp) का सगठन करना, पर्वतारोहण आदि के लिये योजना बनाना आदि हैं। सामुदायिक कार्यों को विशेष महत्व दिया जाता है। इस प्रकार सामाजिक, आर्थिक तथा शैक्षणिक विकास हो रहा है।

राजनैतिक प्रभाव

Q. 2 What is political impact upon education ? State clearly ?

Ans. एक स्थान पर लिखा था कि "A country does not get the Government it deserves. It gets government its teachers deserve." इससे यह बात प्रकट होती है कि शिक्षक शिक्षा द्वारा देश मे राज्य पद्धति उत्पन्न करता है। किन्तु इसका दूसरा पक्ष

भी है। राज्य भी शिक्षा को प्रभावित करता है। जिस देश मे जिस प्रकार की सरकार होगी वह उसी प्रकार की शिक्षा पद्धति को भी कार्यान्वित करेगी। इसका कारण यह है कि शिक्षा द्वारा ही राज्य दृढता प्राप्त करता है। किसी भी राज्य की पद्धति ऐसी नही है जो अपने आदर्शों तथा अपनी विचार पद्धति को शिक्षा के माध्यम से नई पीढी के विकासशील मस्तिष्क मे भरती हो। अत स्पष्ट है कि शिक्षा राज्य को और राज्य शिक्षा को प्रभावित करते हैं। इस स्थल पर हमे राज्य का शिक्षा पर प्रभाव विस्तार से देखना है।

१. **भारतीय वैदिककालीन शिक्षा और राज्य**—भारत मे वैदिक काल मे शिक्षा का सारा भार ब्राह्मणों पर ही था। वही शिक्षा देने के अधिकारी समझे जाते थे। शासन एकतन्त्र था किन्तु दृष्टिकोण व्यक्तिवादी था। राजाओ पर भी ब्राह्मणो का प्रभाव था। देश मे सम्पन्नता थी अत शिक्षा मे भी व्यक्तिवादी दृष्टिकोण था। धर्म का प्रमुख स्थान था। वेदाध्ययन शिक्षा का प्रमुख अग था। राज्य शिक्षा मे कोई हस्तक्षेप नही करता था। अत ब्राह्मणो के तपस्या के स्थल, वनो के आश्रम और पर्वतो की कन्दराएँ विद्यार्थियों के अध्ययन के स्थल थे। उदार गुणो की उत्पत्ति करना जैसे दया, क्षमा, उदारता, सासारिक क्षेत्रो मे निर्लिप्तता, अहकार रहित होना, सतोष, इन्द्रियनिग्रह समाज कल्याण आदि मे कुशलता प्राप्त करना शिक्षा का उद्देश्य था।

२ **स्पार्टा राज्य और शिक्षा**—स्पार्टा का इतिहास ईसा से ५०० वर्ष से प्रारम्भ होता है। यह एक छोटा सा राज्य केवल ९००० लोगो के निवास का देश था। इसके चारो ओर लगभग २५००० शत्रु रह रहे थे। ऐसी स्थिति मे स्पार्टा राज्य के सम्मुख एक ही उद्देश्य था और यह था कि किस प्रकार स्वतन्त्रता को तथा देश की सुरक्षा को बनाये रखा जाय। राज्य का यही उद्देश्य था अत शिक्षा का भी यही उद्देश्य निश्चित किया गया। परिणामस्वरूप देश के सम्पूर्ण नवजात शिशु राष्ट्र की सम्पत्ति माने जाने लगे। बच्चा उत्पन्न होते ही उसकी एक परीक्षा होती थी। यदि वह शक्तिशाली तथा स्वस्थ सिद्ध हुआ तो जीवित रखा जाता था अन्यथा दुर्बल बच्चों को समाप्त कर दिया जाता था। सात वर्ष से अठारह वर्ष तक बालक को राज्य अपने सरक्षण मे रखता था और इस काल मे उसे अत्यन्त कठोर, निर्मम तथा चोरी आदि मे कुशल बना दिया जाता था। लडाई तथा सघर्ष के जीवन के लिये उसे तैयार किया जाता था। कभी-कभी अचानक तथा अकारण ही कोडो आदि की वर्षा करके उसकी सहनशीलता तथा आपत्ति मे बचने की कुशलता की परीक्षा की जाती थी। अठारह वर्ष के उपरान्त उसे वास्तविक फौजी शिक्षा दी जाती थी। बालको को ललित कलाएँ और रोमाटिक साहित्य नही पढाया जाता था। होमर आदि की कविताओ के वे खड बालकों को रटा दिए जाते थे जिनमे तलवारो की खनखनाहट भरी हुई थी। बालिकाओ को भी शारीरिक शिक्षा और व्यायाम कराया जाता था। उनको केवल एक वीर नागरिक की कुशल माता बनने के लिये शिक्षा दी जाती थी विवाहोपरान्त उनकी कठोर शारीरिक शिक्षा और व्यायाम समाप्त हो जाता था। इस प्रकार हमने देखा कि राजनीति ने स्पार्टा को केवल सैनिक शिक्षा का केन्द्र बना दिया। विद्यार्थियो मे केवल आज्ञाकारिता, वीरता, साहस तथा आत्मनियन्त्रण आदि सैनिक गुण उत्पन्न किये। देश मे ललित कलाओ, दर्शन, धर्म, साहित्य तथा मानवता के उच्च गुणो का नितान्त अभाव ही रहा।

३ **एथेंस राज्य और शिक्षा पद्धति**—एथेंस और स्पार्टा लगभग समकालीन राज्य थे किन्तु दोनो की परिस्थितियो मे भिन्नता थी। एथेंस स्पार्टा की भाँति शत्रुओ से सशकित नही रहता था। अत. वहाँ का राज्य केवल सैनिक ही नहीं चाहता था वरन् सर्वतोन्मुखी विकसित प्रतिभा के ऐसे व्यक्ति चाहता था जिनका शरीर विशेषरूप से विकसित हुआ हो। वह स्वस्थ शरीर के साथ स्वस्थ मस्तिष्क भी चाहता था। अत बालक सात वर्ष की उम्र से पाठशालाओ में जाकर लिखना-पढना तथा सैनिक व्यायाम और भाला आदि चलाना १५ वर्ष तक सीखता था। इसी काल मे उसे राजनीति, धर्म तथा सामाजिक विषयो में ज्ञान प्रदान किया जाता था। १५ वर्ष के उपरान्त बच्चो को अखाडो (Gymnasia) की शिक्षा दी जाती थी। १८ वर्ष के उपरान्त

उन देशों के राजनैतिक आदर्शों से प्रभावित होने के कारण था। रूस में कुमारा सैन्य शिक्षा का निर्माण हुआ। वहाँ शासन की अधिनायक प्रणाली थी।

(४) साम्यवाद तथा शिक्षा- साम्यवादी देशों में शिक्षा राज्य का कर्तव्य समझी जाती है। शिक्षा के प्रति भौतिक उपयोगितावादी दृष्टिकोण होता है। शिक्षा द्वारा राजनैतिक आदर्शों की जड़ें गहरी की जाती हैं। विद्यालयों में पाठ्य-पुस्तकों द्वारा साम्यवाद के ही प्रति श्रद्धा उत्पन्न की जाती है। पाठ्यक्रम कठोर और अपरिवर्तनशील होता है। सम्पूर्ण देश में शिक्षा का एक केन्द्र अधिकारी द्वारा नियन्त्रण किया जाता है और वही यह निश्चित करता है कि क्या पढ़ाया जाना चाहिये और क्या नहीं। दिन के किसी भी समय शिक्षा अधिकारी अपनी मेज़ देखकर बतला सकता है कि देश के किस भाग में उस समय क्या वस्तु पढ़ाई जा रही होगी। ऐसे देशों में साहित्य का स्वतन्त्र तथा शुद्ध सौन्दर्यप्रधान स्वरूप विकसित नहीं होता है। इतिहास को नवीन रूप में प्रस्तुत किया जाता है। व्यक्तिवादी विकास को महत्व प्राप्त न होकर समष्टिवादी विकास को अधिक महत्व प्राप्त होता है। भौतिक शास्त्रों की विशेष उन्नति होती है। धर्म, आध्यात्म तथा दर्शन का समुचित विकास नहीं होता है। शिक्षा केवल भौतिक उन्नति का ही एक साधन बन जाती है। व्यक्ति समाज की उन्नति के लिये उपकरण समझा जाता है।

(५) सर्वकेन्द्रित राज्य और शिक्षा (Totalitation state and education)—सर्वकेन्द्रित राज्य में यह विश्वास किया जाता है कि विश्व में पदार्थ के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। आत्मा, परमात्मा तथा अदृश्य शक्तियाँ कुछ नहीं हैं। सम्पूर्ण सम्पत्ति राज्य की तथा सम्पूर्ण समाज की होती है और व्यक्ति सामाजिक उन्नति के लिये एक साधन है। शिक्षा सम्बन्धी उनके विचार हैं कि शिक्षा सबके लिये सुलभ होनी चाहिये। वह निःशुल्क तथा अनिवार्य हो। व्यक्ति व्यक्ति में किसी प्रकार का भेद न हो। श्रम का महत्व होना चाहिये। शिक्षा में तथा अन्य क्षेत्रों में भी स्त्री-पुरुष को समान अधिकार होने चाहिये। विद्या का मध्य देश को धनी तथा सम्पन्न बनाना है। औद्योगिक तथा तकनीकी शिक्षा पर विशेष बल दिया जाता है। इन शिक्षा में नैतिक सिद्धान्तों तथा धर्म को कोई स्थान प्राप्त नहीं है। इसमें सैनिक शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

हिटलर और मुसोलिनी ने युद्ध के लिये तैयारी करने में पूर्व शिक्षा में अनुकूल परिवर्तन कर दिये थे। इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप ही देश युद्ध के लिये तैयारी कर सके थे।

(६) प्रजातन्त्रवाद तथा शिक्षा—प्रजातन्त्र में सरकार जनता द्वारा बनाई जाती है। सब बालिगों को मताधिकार प्राप्त होते हैं। अत यह नितान्त आवश्यक समझा जाता है कि चुनाव के समय उचित व्यक्ति का चुनाव करने के लिये, सरकार के कार्यों तथा गतिविधियों को समझने के लिये तथा उसको ठीक मार्ग पर चलाने के लिए और सत्य को तथा न्याय को ठीक से समझने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक होता है कि व्यक्ति शिक्षित ही न हो वरन् उसमें इतनी विवेक बुद्धि हो कि वह ठीक से अपने कर्तव्यों तथा अधिकारों का पालन कर सके। अत. इस शासन प्रणाली में व्यक्ति प्रधान है। व्यक्तिवाद को समाजवाद से श्रेष्ठ समझा जाता है। इसीलिये व्यक्ति के विकास के लिये पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। भाषण, विचार अभिव्यक्ति, समाचार पत्रों आदि की स्वतन्त्रता होती है जिसमें व्यक्ति का अबाध विकास हो सके। व्यक्ति को अपनी रुचि के अनुसार विकास करने की सुविधा होती है। केवल ध्यान यह रखा जाता है कि व्यक्ति का विकास समाज के विकास में बाधक न बने। धार्मिक, आध्यात्मिक और विचारों की प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण स्वतन्त्रता होती है। समानता को आधार मानकर भ्रातृत्व भावना, स्वतन्त्रता और न्याय की सम्पूर्ण व्यक्तियों को पूर्ण सुविधा प्रदान की जाती है। शिक्षक का कर्तव्य है कि वह बालक के स्वास्थ्य, चरित्र, बुद्धि तथा कर्तव्यनिष्ठ भाव का विकास करे। अध्यापन में बालक की रुचि पर विशेष ध्यान दिया जाता है। बालकों में यह भावना उत्पन्न की जाती है कि वे अनेकों में से एक हैं। उनका भी उतना ही महत्व है जितना औरों का है।

इस प्रकार की मुक्त शिक्षा में धर्म, आध्यात्मिकता, सौन्दर्यशास्त्र, ललित कलाएँ, साहित्य और समीक्षा खूब विकास पाती है। व्यक्ति का विकास अधिक पूर्ण तथा चतुर्मुखी होता है। वह प्रजातन्त्र का श्रेष्ठ नागरिक बनता है।

(७) भारतीय राज्य और शिक्षा—भारतीय इतिहास इस बात को प्रकट करता है कि पुराने समय से लेकर अब तक जितनी बार देश में राजनैतिक परिवर्तन हुये उतनी ही बार शिक्षा में भी परिवर्तन हुये। भारत में मुगलों का साम्राज्य आया। शिक्षा में परिवर्तन हुये। भाषा,

कला, साहित्य आदि मे परिवर्तन आ गये। अंग्रेजो के साम्राज्य मे देश की शिक्षा पर पश्चिमी प्रभाव पडा। पाठ्यक्रम मे पश्चिमी दर्शन तथा अंग्रेजी साहित्य ने स्थान पाया। विद्यालयो का ढाँचा ही बदल गया। नवीन विषयो का अध्ययन प्रारम्भ हुआ और देश की जनता की शिक्षा मे बहुत बड़ा परिवर्तन आ गया। किन्तु इन सबका तात्पर्य यह था कि शिक्षा का परिणाम अंग्रेजी राज्य को दृढ बनाने मे सहायक हो। इंग्लैण्ड की सम्पन्नता बढ़े, अंग्रेजी शासन को शरीर से भारतीय किन्तु मन और मस्तिष्क से अंग्रेज नौकर प्राप्त होते रहे।

सन् १८८५ ई० मे कांग्रेस स्थापित हुई। देश मे राष्ट्रीयता बढ़ी। इससे शिक्षा क्षेत्र मे सुधार की आवाज लगाई जाने लगी। विदेशी विद्यालयो की स्थापित करने की आवश्यकता अनुभव की गई। अतः 'दयानन्द एंग्लो वैदिक कॉलेज, लाहौर मे, 'सेण्ट्रल हिन्दू कॉलेज' बनारस मे, और गुरुकुल हरिद्वार मे स्थापित हुये। कलकत्ता मे 'नेशनल कॉलेज' की स्थापना की गई। राष्ट्रीय शिक्षा के प्रमुख सिद्धान्त ये थे .

(१) शिक्षा पर भारतीय नियन्त्रण—शिक्षा मे भारतीय सस्कृति और साहित्य को प्रमुख स्थान प्राप्त होना चाहिये।

(२) स्वतन्त्रता और राष्ट्रीयता की भावना जागृत करना।

(३) देशभक्ति तथा देश प्रेम की शिक्षा प्रदान करना।

(४) पाश्चात्य सभ्यता और सस्कृति के समुचित अध्ययन द्वारा स्वदेशी सस्कृति को विकास मार्ग पर अग्रसर करना।

(५) शिक्षा जीवन के लिये उपयोगी तथा आत्मनिर्भरता उत्पन्न करने वाली हो अत. औद्योगिक तथा तकनीकी शिक्षा पर बल दिया गया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त पुन राजनैतिक परिवर्तन हुआ। अन शिक्षा मे भी परिवर्तन आया। भारतीय सविधान मे द्वितीय पचवर्षीय योजना की समाप्ति तक ६ वर्ष से १४ वर्ष तक के छात्रो के लिये शिक्षा नि.शुल्क तथा अनिवार्य करने का प्रस्ताव किया गया। किन्तु कुछ कारणों से वह लक्ष्य प्राप्त नही हो सका। अब विधान मे सशोधन करके आयु को घटाकर १४ के बजाये ११ वर्ष कर दिया गया है और समय तृतीय पचवर्षीय योजना की समाप्ति का निश्चित कर दिया है।

स्वतन्त्र भारत का सर्वप्रथम उच्च शिक्षा आयोग 'राधाकृष्णन् कमीशन' ने विश्वविद्यालय की शिक्षा के नवीन आदर्श उपस्थित किये। भारतीय सस्कृति के विकास के लिये और राष्ट्रीय शिक्षा विकसित करने के लिये आयोग ने सुझाव दिये। माध्यमिक शिक्षा आयोग मे मुदालियर ने माध्यमिक शिक्षा के दोषो का विस्तृत विवेचन करते हुये उसके निम्नलिखित लक्ष्य निर्धारित किये हैं :—

(१) छात्रो मे जनतन्त्रात्मक नागरिकता (Democratic Citizenship) का विकास करना।

(२) उनके व्यक्तित्व का सर्वतोन्मुखी विकास करना।

(३) उनमे जीविकोपार्जन की क्षमता उत्पन्न करना।

(४) उनमे प्रजातन्त्र देश के लिये योग्य नेता उत्पन्न करना।

(५) विद्यार्थियो को अवकाश का श्रेष्ठ उपयोग करने की शिक्षा देना।

स्वतन्त्रता के उपरान्त भारतवर्ष में यद्यपि शिक्षा के मूलभूत ढाँचे मे किसी प्रकार का परिवर्तन नही किया गया है फिर भी कुछ परिवर्तन किये गये हैं वे निम्नलिखित हैं —

(१) बहुधन्धीय विद्यालय—इनको खोलने का उद्देश्य यह है कि बालको को अपनी रुचि के अनुसार अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हो। इनका आधार व्यक्तिगत विभिन्नता (Individual differences) है।

(२) व्यापक, अनिवार्य और नि.शुल्क शिक्षा के प्रयत्न—शिक्षा को अत्यन्त व्यापक, जीवन के लिये उपयोगी तथा नि शुल्क और अनिवार्य बनाने के लिये सरकार प्रयत्नशील है।

(३) मुदालियर कमीशन ने आधुनिक पाठ्यक्रम को दोषपूर्ण बताया है और उसमें परिवर्तन करने के लिये अनेकों व्यावहारिक सुझाव दिये हैं। किन्तु अभी तक बहुत थोड़ा परिवर्तन किया जा सका है।

(४) विद्यार्थी केन्द्रित शिक्षा का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया है और कुछ विद्यालयो मे इसका प्रयोग भी हो रहा है।

(५) पाठ्य सहगामी क्रियाएँ (Co-curricular Activities) का महत्व बढ़ा दिया गया है और उनको विद्यालय के अन्तर्गत शैक्षणिक कार्य के समान ही महत्व प्रदान किया गया है।

(६) समुचित वातावरण (Proper environment) प्रस्तुत करके विद्यार्थी की प्राकृतिक शक्तियों के विकास के लिये उचित अवसर प्रदान करना विद्यालय का कर्तव्य और विद्यालय शासन प्रबन्ध का लक्ष्य मान लिया गया है।

(७) स्कूलों को समाज के एक केन्द्र के रूप में माना गया है। उसे एक लघु समाज (Miniature Society) भी माना गया है।

(८) स्कूल में सहकारी और सहयोग के जीवन पर बल दिया जाता है। सहकारिता प्रजातन्त्र के लिये नितान्त जरूरी है।

(९) विद्यालयों में विद्यार्थियों की सृजनात्मक शक्ति के विकास पर बल दिया जाता है।

(१०) सृजनात्मक अनुशासन (Creative Discipline) का विद्यार्थियों में विकसित किया जाता है। प्रजातन्त्रवाद में अनुशासन अत्यन्त आवश्यक है। बिना अनुशासित हुए कोई भी व्यक्ति प्रजातन्त्र का नागरिक नहीं हो सकता। अनुशासन का अर्थ है आत्मसंयम तथा आत्मनियम। स्वयं अपने ऊपर अधिकार तथा काबू रखना। अपनी अन्तः प्रेरणा से ही सम्पूर्ण कार्य नियमानुसार करना जिसमें किसी बाहरी दबाव की आवश्यकता न पड़े।

(११) जनसमूह की शिक्षा (Mass Education) को भी प्रजातन्त्र का अनिवार्य अंग माना गया है।

(१२) प्रौढ़ तथा समाज शिक्षा को प्रत्येक नागरिक में जागृति तथा बहुमुखी योग्यता उत्पन्न करने के लिये आवश्यक समझा गया। प्रत्येक सभ्य देश में इसकी आवश्यकता अनुभव की गई है।

(१३) जनता कॉलेज की आवश्यकता ग्रामीणों में पढ़ाई-लिखाई के प्रति रुचि उत्पन्न करने, प्रौढ़ों को शिक्षित करके उनको ग्रामों का नेतृत्व करने के योग्य बनाने का उद्देश्य है।

(१४) प्रत्येक प्रान्त को अपनी भाषा के विकास करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है। राष्ट्र-भाषा का ज्ञान आवश्यक है।

(१५) स्त्री शिक्षा को भी पुरुषों की शिक्षा के समान ही विकसित करना तथा स्त्रियों को भी सरकारी सेवाओं आदि में समान अधिकार प्रदान किये गये हैं।

इस प्रकार हमने देखा कि राजनीति का शिक्षा से बहुत बड़ा सम्बन्ध है और राजनीति का शिक्षा पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है।

अध्याय १२

समाजशिक्षा

(Social Education)

Q. 1 Explain the concept of social education How does it differ from adult literacy and adult education? Explain its significance for achieving economic development social transformation and social security.

समाजशिक्षा का महत्व, परिभाषा और उद्देश्य—"जिस प्रकार हम अपने बालक और बालिकाओं की शिक्षा-दीक्षा उनके निमित्त साहित्य की आवश्यकता एव उस साहित्य के व्यवस्थित निर्माण पर बल देते हैं, उसी प्रकार हमें अपने प्रौढ भाई बहिनो की शिक्षा-दीक्षा एव उनके लिए उपयुक्त एव व्यवस्थित विधि से साहित्य के सृजन की चिन्ता भी करनी होगी।'

—माननीय शिक्षामन्त्री कमलापति त्रिपाठी

प्रौढ शिक्षा की आवश्यकता इसलिये भी है कि यदि राज्य के भावी कल्याण के लिये बालको की शिक्षा आवश्यक है तो जनतन्त्र के वर्तमान अस्तित्व के लिये प्रौढो को शिक्षित करना होगा। अत भारतीय समाज के नवनिर्माण के मूल भारतीय जनजीवन को अनुप्राणित करना होगा। प्रत्येक व्यक्ति समाज की अभिन्न इकाई होने के कारण परिवार के विकास की आधार-शिला है। अत यदि परिवार, समाज, और राष्ट्र की उन्नति कराना है तो केवल प्रौढ मताधिकार देने से काम न चल सकेगा। साक्षरता के अभाव मे ७०% जनता मताधिकार के सदुपयोग को नहीं समझ सकती अत. ऐसी स्थिति मे भारतीय जनतन्त्र सुदृढ और सुव्यवस्थित न हो सकेगा।

यही कारण था कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त राष्ट्र ने यह अनुभव किया कि उसके [illegible]

उस समय किया जब उन्हे Provincial Autonomy मिली। केन्द्रीय सरकार ने १९४८-४९ में प्रौढ शिक्षा के स्थान पर सामाजिक शिक्षा का आरम्भ किया जिसमे प्रौढ शिक्षा का सम्पूर्ण कार्य एव ढांचा ही बदल गया। सामाजिक शिक्षा का उद्देश्य अब केवल साक्षरता का प्रचार ही नहीं रह गया, वरन् इसका उद्देश्य भारतीय प्रौढ व्यक्तियो को साक्षरता देने के साथ-साथ नागरिकता [illegible] र्माण कार्य मे सफल होना है [illegible] भारतीय जीवन, सस्कृति का [illegible] देने के लिये केन्द्रीय सरकार

प्रोफेसर हुमायूं कबीर ने समाजशिक्षा का अर्थ अपनी पुस्तक Education in India मे सामाजिक शिक्षा को समझाते हुए लिखा, "अधिक स्वतन्त्र और सम्पूर्ण जीवन बिताने के लिये किसी नागरिक को आवश्यक सूचनाएं देने के हेतु जिस शक्तिशाली यन्त्र का प्रयोग किया जाता है उसको हम सामाजिक शिक्षा कह सकते हैं।" जिसे हम पहले प्रौढ शिक्षा की संज्ञा देते थे आज हम उसी को सामाजिक शिक्षा के नाम से पुकारने लगे हैं। प्रौढ शिक्षा की सकल्पना मे भी बहुत परिवर्तन हो गया है। साक्षरता के अपने छोटे दायरे से निकल कर यह सामाजिक शिक्षा का

व्यापक रूप ग्रहण कर चुकी है। पहले उसका आयोजन औपचारिक था और व्यक्ति को साक्षर बना कर उसके लिये थोड़ा बहुत पढ़ने लिखने का प्रबन्ध कर यह अपना कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेती थी। आज उसका मक्सद प्रौढ़ों को इस प्रकार की शिक्षा देना हो गया है जिससे व्यक्ति के रूप में और समाज के एक अंग के रूप में अपनी क्षमतानुसार देश में ऊपर उठकर वे बहुत से अधिक सम्पन्न और प्रसन्न जीवन बिता सकें। अब समाज शिक्षा का आयोजन औपचारिक होते हुए भी प्रौढ़ों की आर्थिक उन्नति, सामाजिक कौशल की शिक्षा एवं मनोरंजन का आयोजन प्रदान करना हो गया है। इस प्रकार समाज शिक्षा प्रौढ़ों की शिक्षा होते हुए भी उससे भिन्न है। वह केवल प्रौढ़ों की पढ़ाई-लिखाई तक ही सीमित नहीं है वरन् उसका क्षेत्र बहुत विस्तृत एवं व्यापक हो गया है। उसने अपने परिमाण में भीतर प्रौढ़ों के सम्पूर्ण जीवन को ले लिया है। अतः समाज शिक्षा वास्तव में प्रौढ़शिक्षा का ही दूसरा रूप है। उसमें आधारभूत शिक्षा, कर्मचार लोगों की शिक्षा, ग्रामोपयोगी शिक्षा तथा जनसमूह की शिक्षा भी शामिल की जा सकती है। समाज शिक्षा का क्षेत्र व्यापक एवं विस्तृत होते हुए भी उद्देश्य केवल एक ही है। वह है—उन व्यक्तियों के जीवन का सर्वांगीण विकास जो अशिक्षित हैं। प्राचीन काल में एक मध्यम कोटि के नागरिक को इतने अधिक ज्ञान की आवश्यकता नहीं थी जितने अधिक ज्ञान की आवश्यकता आजकल पड़ती है और जितने ज्ञान की आवश्यकता उसे उस समय पड़ती थी उसे अपनी रीति रिवाज, संगीत तथा मेल आदि से प्राप्त कर लेता था। इसलिए राज्य को ही सामाजिक शिक्षा की भी कोई आवश्यकता न थी। उस समय व्यक्तियों का जीवन बहुत सरल और प्राकृतिक था। राज्य के विषय में समाज के प्रमुख व्यक्ति निर्णय कर लिया करते थे। साधारण जनता इस बात से उदासीन रहती थी कि कुछ चुने हुए व्यक्ति क्या कर रहे हैं। उनकी नीति क्या है? किन्तु व्यवसायिक क्रान्ति के बाद प्राचीन परम्परायें और विश्वासों का अन्त हो गया। राजतन्त्र के स्थान पर प्रजातन्त्र की स्थापना हुई और राज्य की बागडोर समाज के समस्त सदस्यों के हाथ में आ गई। समाज उन व्यक्तियों को समय-समय पर चुनने लगा, जिन पर शासन का भार सौंपना चाहता है। इस प्रकार वास्तविक राज्य शक्ति समाज के सदस्यों के हाथ में आ गई है।

संसार में देश-देश में राजनैतिक क्रान्तियाँ हुई उनके फलस्वरूप उन्नतिशील राष्ट्रों ने [illegible] इस प्रकार का निर्णय [illegible] ही राज्य के वास्तविक [illegible] शिक्षा को आवश्य- [illegible] ता व करना पड़ता है। [illegible] है इसलिए राष्ट्र के [illegible] मान के स्वामियों का शिक्षित करना। वर्तमानकाल के स्वामियों का शिक्षण सन् १९३७ से आरम्भ हुआ लेकिन यह योजना सफल न हुई। इस योजना के असफल होने के निम्नलिखित कारण थे :

(१) सामाजिक शिक्षा के विषय में लोगों की धारणायें गलत थीं। उस समय प्रौढ़ों की साक्षरता पर ही विशेष ध्यान दिया जाता था। इसलिये जनता का ध्यान इस ओर आकर्षित न हो सका। अशिक्षित प्रौढ़ व्यक्ति के लिये अक्षर-ज्ञान किसी प्रकार महत्वपूर्ण न था। क्योंकि वह उसके जीवन की समस्याओं को सुलझा नहीं सकता। जीवन की सबसे बड़ी समस्या थी—धनोपार्जन की और यह समय था आर्थिक संकट का। भारतीय प्रौढ़ के पास अवकाश का समय इतना न था कि वह नीरस अक्षर ज्ञान को प्राप्त करने का प्रयत्न करता।

(२) साक्षरता की समस्या बड़ी जटिल है क्योंकि एक बच्चे को लिखाना-पढ़ाना सिखाने मे उतना प्रयत्न नहीं करना पड़ता, जितना कि एक प्रौढ़ व्यक्ति को। प्रौढ़ व्यक्ति की स्मृति भी इतनी तीव्र नहीं होती जितनी कि एक बालक की। उसे अक्षर ज्ञान प्राप्त करने की उत्सुकता भी इतनी नहीं होती। इसलिये प्रौढ़ व्यक्ति का साक्षर बनाना कठिन मालूम पड़ता है।

(३) गलत पाठन विधियों के अपनाने से साक्षरता में अधिक प्रगति न हो सकी। प्रौढ़ एवं बालकों को लिखाने-पढ़ाने की विधियाँ सर्वथा भिन्न होती हैं। इस तथ्य को लोगों ने उस समय नहीं पहचाना।

(४) प्रौढ़ों को शिक्षित करने के लिये न किसी प्रकार की सहायक सामग्री का प्रयोग किया गया न उनके लिए उचित पुस्तकों की व्यवस्था ही की गई।

(५) जिन व्यक्तियो को अक्षर ज्ञान दे दिया गया, उनको अन्य प्रकार का साहित्य देने की व्यवस्था न की गई। परिणामस्वरूप उन्हे जो कुछ लिखाया-पढाया गया वह भूल गये।

(६) १६३६ मे दूसरे महायुद्ध के आरम्भ हो जाने पर प्रौढ शिक्षा की ओर प्रान्तीय सरकारो का ध्यान देना बन्द हो गया।

सन् १६४७ मे जब भारत को स्वतन्त्रता मिली तब प्रत्येक प्रौढ व्यक्ति को चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, धनी हो अथवा निधन वोट देने का अधिकार मिल गया। फलत: वोट देने की समस्या फिर से सरकार के सामने उठ खडी हुई। इस बार केन्द्रीय शिक्षा परामर्शदात्री परिषद् (Central Education Advisory Board) ने एक समिति प्रौढ शिक्षा पर नियुक्त कर दी। इस समिति ने प्रौढ शिक्षा के विचार को पूर्णतया बदल दिया। इस समिति ने सामाजिक (प्रौढ) शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य रक्खे—

(१) नागरिको को उसके कर्त्तव्यो एव अधिकारो का ज्ञान कराना जिससे उनमे समाज सेवा की भावना पैदा हो जाय।

(२) प्रजातन्त्र के प्रति प्रौढो मे प्रेम पैदा करना और उन्हें प्रजातन्त्र की कार्य प्रणालियो से परिचित कराना।

(३) अपने इतिहास, भूगोल और उसकी सस्कृति के ज्ञान द्वारा अपनी संस्कृति, परम्परा के प्रति प्रेम एव गौरव का भाव उत्पन्न करना।

(४) देश और विश्व के सामने जो मुख्य कठिनाइयाँ अथवा समस्याये समय-समय पर उठती रहती हैं, उनकी जानकारी देना।

(५) किस प्रकार स्वास्थ्य की रक्षा की जा सकती है, इसका ज्ञान देने के लिये साधारण नियमो को बतलाना।

(६) सहकारिता ही जीवन का दर्शन है—इस तथ्य को उन्हें हृदयगम कराना।

(७) भिन्न-भिन्न कौशलो की रक्षा देकर उनका आर्थिक सुधार करना।

(८) लोकनृत्य, नाटक, सगीत, कवितापाठ आदि सास्कृतिक क्रियाओ द्वारा उनका मनोरजन करना।

(९) प्रौढों को पढना, लिखना और हिसाब रखाना।

(१०) पुस्तकालयो, गोष्ठियों और जनता कालेजो द्वारा शिक्षा के विकासक्रम को जारी रखना।

(११) प्रौढों को भिन्न-भिन्न बातों का ज्ञान प्राप्त कराके आधारभूत, नैतिक मूल्यो को समझाना।

इस प्रकार सामाजिक शिक्षा मे साक्षरता स्वास्थ्य के नियमो का ज्ञान, आर्थिक अवस्था का सुधार, मनोरजनात्मक सुविधाओं का ज्ञान और नागरिको के अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान, इन पाँच मुख्य-मुख्य बातो पर विशेष बल दिया जाता है। साक्षरता सामाजिक शिक्षा का प्रमुख अग है। यदि माँ बाप साक्षर हैं तो बच्चो की शिक्षा मे राष्ट्र को काफी सहायता मिल सकती है। इसलिये सामाजिक शिक्षा मे प्रौढो की साक्षरता पर विशेष बल दिया जा रहा है।

हमारे देश मे साक्षरता के साथ ही साथ स्वास्थ्य रक्षा की दूसरी बडी समस्या है, मलेरिया, चेचक आदि बीमारियाँ देश के लोगो को अस्वस्थ बनाये रखती हैं। ऐसी दशा मे सामाजिक शिक्षा अशिक्षित प्रौढ को स्वास्थ्य एव स्वच्छता का अभ्यास कराने का प्रयत्न करती है।

भारत की तीसरी बडी सामाजिक समस्या आर्थिक पिछडापन है। जिस देश की आधी से अधिक जनसख्या अपने पेट का भी पालन नहीं कर सकती उस देश मे किसी प्रकार की सामाजिक उन्नति नहीं हो सकती। सन् १६३७ के प्रौढ शिक्षाप्रसार की असफलता का मुख्य [illegible]

कृषि मे उन्नति कर सकता है और अपने फालतू समय को कुटीर धन्धो मे लगाकर किस प्रकार अपनी आर्थिक दशा को सुधार सकता है।

भारत का नागरिक आज संसार का नागरिक है। उसके निर्णय संसार की परिस्थितियों को प्रभावित कर सकते है इसलिये उसे देश और विदेश में समुत्पन्न उपस्थित प्रमुख समस्याओं तथा कठिनाइयों की जानकारी आवश्यक है। वही आज अपने वोट के अधिकार पर देश के नेताओं को चुनता है। इसलिए उसे अपने वोट की कीमत समझनी है और इसे समझना है कि उसके क्या कर्त्तव्य और क्या अधिकार है। इसलिये सामाजिक शिक्षा में नागरिकता की भावना पैदा करने के लिये जोर दिया जाता है।

सामाजिक शिक्षा का चौथा मुख्य उद्देश्य सांस्कृतिक और मनोरंजनात्मक सुविधाएँ देने का है। ग्रामीण अथवा शहरी क्षेत्रों में रहने वाले श्रमिकों का जीवन आजकल इतना नीरस हो गया है और उनका कार्य इतना कठिन बन गया है कि उनकी सारी शक्तियाँ क्षीण हो जाती है। इसलिये उसे मनोरंजन सम्बन्धी सुविधाएँ प्रदान करना सामाजिक शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण अंग माना जा सकता है।

सामाजिक शिक्षा के लिये पाठ्यक्रम

Q. 2. What curriculum would you prescribe for the social education in India to fulfil this purpose

(Agra B T 1954)

Ans. समाज शिक्षा के जिन उद्देश्यों की विवेचना ऊपर की जा चुकी है, उनको सुविधानुसार दो वर्गों में बाँटा जा सकता है।

(१) व्यक्तिगत (२) समाजगत

व्यक्तिगत उद्देश्यों में हम व्यक्ति के सर्वांगीण विकास तथा उसके लिये उपयुक्त सुविधाओं के प्रबन्ध पर जोर देते है। यदि हम उन व्यक्तियों के जीवन-स्तर को ऊँचा उठा सकते हैं जिनको परिस्थितिवश अपने विकास के अवसर प्राप्त नहीं हुए हैं, यदि हम उनका भौतिक, नैतिक, शारीरिक, आर्थिक और सांस्कृतिक उन्नयन कर सकते हैं तो निश्चय ही समाज शिक्षा का कार्य हम सुचारु रूप से कर सकेंगे। यदि हम समाज के ढाँचे को बदलना चाहते हैं तो उसके प्रत्येक अंग को विकसित करके ऊँचे धरातल पर लाना होगा। यह तभी हो सकता है जब समाज के अशिक्षित करोड़ों व्यक्तियों के जीवन स्तर को ऊँचा उठा सकें।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये प्रौढ़ों को क्या पढ़ाया जाय ? उनको कैसी क्रियायें करायीं जायँ जिससे उनका वैयक्तिक, पारिवारिक, आर्थिक, सामुदायिक, सामाजिक, राजनैतिक और सांस्कृतिक विकास हो सके ? क्या सभी प्रकार के प्रौढ़ों को एक-सा कार्य क्रम दिया जाय ? हमें इन समस्याओं को सुलझाना होगा।

प्रौढ़ों को उनकी मानसिक प्रवृत्तियों बौद्धिक स्तरों, रुचियों और रुझानों के अनुकूल दो वर्गों में बाँटा जा सकता है—निरक्षर और नव साक्षर। जो व्यक्ति पढ़ना-लिखना बिल्कुल नहीं जानते वे निरक्षर तथा जो कुछ शब्दों या वाक्यों को पढ़ लिख सकते हैं, अथवा साधारण गद्य-पद्य के क्रमिक वर्णन वाले पाठों को पढ़ लिया करते हैं उनको नव साक्षर या अर्ध-साक्षर की संज्ञा दी जा सकती है। व्यक्ति निरक्षर अथवा अर्ध साक्षर होने हुए भी अशिक्षित नहीं कहे जा सकते। उनके अपने अनुभव हैं अपनी धारणायें हैं और अपना दर्शन है। इन बातों को ध्यान में रखकर उनका पाठ्यक्रम निश्चित करना होगा।

जो प्रौढ़ बिल्कुल निरक्षर है उनको पहले अक्षर-ज्ञान ही कराना होगा, साक्षरता ही इस क्षेत्र मे केवल एक मात्र उद्देश्य होगा। जो पढ़े लिखे अथवा अर्ध साक्षर हैं, उनमे नागरिकता का विकास करने के लिये सभ्यता, संस्कृति, इतिहास, भूगोल और नागरिकशास्त्र आदि विषयों का ज्ञान आवश्यक है। उनकी आर्थिक स्थितियाँ सबल बनाने के लिये उन्हें कुटीर उद्योगों तथा छोटी मोटी दस्तकारियों को भी सिखाना होगा। निरक्षर प्रौढ़ों को अर्ध साक्षर करना होगा।

नव साक्षरों के बहुमुखी विकास के लिये निम्न प्रकार के विषयों को उनके पाठ्यक्रम ... न दिया जा सकता है।

१. धार्मिक विषय

२. मनोरजन के विषय
३ आर्थिक एव व्यावसायिक प्रगति के विषय
४ सामाजिक विषय

अवस्था के आधार पर भी प्रौढो का वर्गीकरण किया जा सकता है। विदेशो मे तो १४ वर्ष से ऊपर आयु वाले व्यक्ति ही प्रौढो की श्रेणी मे आते हैं किन्तु भारत मे हम १२ वर्ष से ऊपर के व्यक्तियो को भी इस श्रेणी मे ला सकते हैं क्योंकि १२ वर्ष की अवस्था प्राप्त करते करते अनेक बालक विद्यालीय शिक्षा छोड दिया करते हैं। अत १२ वर्ष से ऊपर की आयु वाले अर्ध साक्षर या निरक्षर व्यक्तियो को वय क्रम से तीन भागों मे बाँटा जा सकता है।

(१) १२—१८ वर्षीय प्रौढ
(२) १६—३५ वर्षीय प्रौढ
(३) ३५ से ऊपर की आयु के प्रौढ

इन अवस्थाओ को ध्यान मे रखकर हम प्रौढ साहित्य का सृजन कर सकते हैं। इस साहित्य मे निम्नलिखित विषयो को यथावत् रखा जा सकता है।

मनोरजन, जीवनियाँ एव साहित्य वृत्त, स्वास्थ्य एव शरीर विज्ञान, सामान्य ज्ञान, कृषि उद्योग एव कला कौशल, सामाजिक विषय, नीति और धर्म।

भारत मे सामाजिक शिक्षा का इतिहास

Q 3 Trace the history of Adult education since 1931

(Agra B.T. 1958)

Ans. सामाजिक शिक्षा के जिन उद्देश्यो का उल्लेख हम ऊपर कर चुके है, उनके निश्चित करने के उपरान्त केन्द्रिय शिक्षा परामर्श परिषद् ने जो समिति नियुक्त की थी उसने निम्नलिखित प्रमुख सुझाव दिये थे। इन सुझावो के अतिरिक्त और भी सुझाव दिये जा सकते थे—

(१) अगले पाँच वर्षों मे राज्य सरकारें अपने राज्यों मे ५०% निरक्षरता दूर करने का प्रयत्न करें।

(२) सामाजिक शिक्षा की योजनाओ द्वारा जनसख्या के १२-४५ आयु वर्ग के व्यक्तियो के लिये सामाजिक शिक्षा का प्रबन्ध करें।

(३) राज्य की सरकारें नियम बना कर मिल मालिको को अपने कर्मचारियों को सामाजिक शिक्षा की सुविधाएँ प्रदान करने के लिये बाध्य करें और इसके लिये आय कर मे उन्हें कुछ छूट दी जाए।

(४) प्रत्येक प्राथमिक पाठशाला मे और प्रत्येक माध्यमिक पाठशाला मे दो सामाजिक केन्द्र स्थापित किये जायें और शिक्षको को अतिरिक्त कार्य के लिये अतिरिक्त पारिश्रमिक दिया जाए।

(५) प्रौढ़ो और सामाजिक शिक्षा के कार्यकर्त्ताओ के लिये समुचित साहित्य का निर्माण करने मे राज्य की सरकारें सहायता दें।

प्रौढ़ शिक्षा की विधियो पर अनुसधान एव खोज करने पर प्रोत्साहन दिया जाए केन्द्रिय शिक्षापरामर्श परिषद् ने इन सुझावों को स्वीकार कर लिया और इसके साथ प्रौढ़ों को दिखाने के लिये चलचित्र व्यवस्था का सुझाव और रक्खा। सरकार को उचित फिल्मो को तैयार करने का सुझाव दिया। केन्द्रिय शिक्षा मन्त्रालय ने इन सुझावो के आधार पर सामाजिक शिक्षा के लिये एक (Guide Plan) बनाया और इस योजना में कार्यकर्त्ताओ उनको अवधिकाल प्रशिक्षण, आयुवर्ग, दृश्य शिक्षा साधन, पुस्तकालय, और सरकारी विभाग आदि के विषय मे अपनी राय प्रकट की। फरवरी १९४९ मे दिल्ली मे आयोजित प्रदेशीय शिक्षा मन्त्रियों की सभा में इस योजना पर विचार किया गया। सभी ने इस योजना की प्रशसा की। केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय ने प्रत्येक राज्य को आर्थिक सहायता देने का वायदा किया। विश्वविद्यालयो को भी विद्यार्थियों द्वारा सामाजिक शिक्षा देने के लिये प्रोत्साहित किया गया। इस प्रकार समस्त देश मे सामाजिक शिक्षा के प्रति उत्साह की लहर दौड़ पड़ी।

केन्द्रीय पथ-प्रदर्शक योजना के अनुसार १९४९-५० में सामाजिक शिक्षा का कार्य बड़े जोरों से प्रारम्भ हो गया। अध्यापकों एवं स्वयं सेवकों ने सामाजिक शिक्षा की कक्षाओं में अध्यापन प्रारम्भ कर दिया। शिक्षण में दृश्य, श्रव्य साधनों का प्रयोग समुचित रूप से किया जाने लगा। सामाजिक शिक्षा शिविरों का संचालन देश के भिन्न-भागों के वर्ग में कई बार हुआ। सामाजिक शिक्षा के कार्यकर्त्ताओं का प्रशिक्षण प्रारम्भ हो गया।

केन्द्र ने ६२ लाख रुपयों का अनुदान भिन्न-भिन्न प्रान्तों को उसी वर्ष दिया और इन प्रान्तों ने लगभग उतना ही रुपया सामाजिक शिक्षा पर व्यय किया इसी वर्ष राज्य के सामाजिक शिक्षा अधिकारियों के एक सम्मेलन ने निम्नलिखित प्रस्ताव रखे कि एक उप-समिति की नियुक्ति की जाये, जो अध्यापक कार्यकर्त्ताओं के लिये एक ऐसी पुस्तक तैयार करे जिसमें प्रौढ़ शिक्षण विधियों का उल्लेख हो।

सामाजिक शिक्षा की कक्षाओं का पाठ्यक्रम १८० घन्टों का रखा जाये। प्रतिदिन दो घन्टे के हिसाब से ९० कार्य दिवसों की अवधि रखी जाये। प्रत्येक केन्द्र में तीन 3 Session चालू किये जाये।। इनमें केवल १२-४० वर्ष की आयु तक के लोगों को शिक्षा दी जाय। सामाजिक शिक्षा की कक्षा में शिक्षक और शिक्षित का अनुपात १:३० का हो। शिक्षकों का चुनाव प्रारम्भिक व माध्यमिक पाठशालाओं के शिक्षकों से किया जाय किन्तु स्वयंसेवकों को विशेष प्रोत्साहन दिया जाय। ये अध्यापक आदि स्वयंसेवक प्रशिक्षण संस्थाओं में प्रशिक्षित हों अथवा उन्हें चल दलों द्वारा प्रशिक्षित किया जाय। राज्य में सामाजिक शिक्षा का संगठन एवं देखभाल करने के लिये सामाजिक शिक्षा का उप-विभाग हो। नवम्बर १९४९ में मैसूर में प्रौढ़ शिक्षा पर एक Seminar हुआ, जिसमें एक प्रौढ़ शिक्षा प्रदर्शनी का आयोजन किया गया। इस गोष्ठी में सामाजिक शिक्षा के विषय में अनेक महत्वपूर्ण सुझाव दिये गये और केन्द्रिय तथा राज्यीय सरकारों को विशेष लाभदायक बातें बताई गई। सन् १९५१ में शिक्षा मन्त्रालय ने भारत का प्रथम जनता कालेज खोला जिसका उद्देश्य और गतिविधियों का उल्लेख आगे किया जायेगा। साक्षरता का विकास दिन पर दिन बढ़ता गया और इससे सम्बन्धित साहित्य का प्रचुर मात्रा में निर्माण हुआ। जामिया मिलिया दिल्ली ने इस दशा में बड़ा प्रशंसनीय कार्य किया है। सामाजिक शिक्षा को उपयुक्त साहित्य का सृजन करने के लिये सामाजिक शिक्षा साहित्य समिति ने अध्यापकों के लिये हस्तामलक पथ प्रदर्शक पुस्तकें, पत्र पत्रिकायें, पाठ्यपुस्तकें, Chart Poster आदि प्रचुर मात्रा में प्रकाशित किये हैं।

प्रथम पचवर्षीय योजना काल में सामाजिक शिक्षा पर बल दिया गया। बुनियादी शिक्षा के साथ सामाजिक शिक्षा का घनिष्ठ संबंध स्थापित करके सामाजिक शिक्षा का बहुत हित किया गया। चुने हुए क्षेत्रों में वैतिक प्रशिक्षण विद्यालयों की देखरेख में सामुदायिक केन्द्रों की स्थापना हुई। जिनमें समीपवर्ती जन-समुदाय के लिये सांस्कृतिक, मनोरंजनात्मक सामाजिक एवं शैक्षणिक कार्यक्रम रखे गये, जिससे प्रौढ़ों का उचित विकास हो सका। इन सामुदायिक केन्द्रों के कार्य ये बालकों एवं प्रौढ़ों के लिये खेलकूद, नाटक, भजन और नाच गान की सुविधायें देना, स्थानीय और राष्ट्रीय उत्सवों को समारोहपूर्वक मनाना ऐसे भाषणों वार्त्ताओं और तर्क वितर्कों का प्रबन्ध करना जिनकी ओर सारे समूह की रुचि हो, साक्षरता की कक्षायें चलाना, [illegible] और प्रदर्शनी की व्यवस्था [illegible] या पचायत घर, गांव की चौपाल [illegible] समुचित प्रशिक्षण प्राप्त, समाज भावना से ओतप्रोत कार्यकर्त्ताओं के हाथ मे दिया जाता है। वैसे सचालन का उत्तरदायित्व ग्राम पचायत पर भी रहता है।

नागरिकों को साक्षर बना देने के बाद आवश्यकता इस बात की रहती है कि वे साक्षर होने का लाभ भी उठा सकें। १९३७ के प्रौढ़ शिक्षा आन्दोलन के असफल होने का एक कारण यह भी था कि पुस्तकालो की व्यवस्था नही की गई थी। इसलिये प्रत्येक गांव, प्रत्येक मुहल्ले में छोटे-छोटे पुस्तकालयों स्थापित करने की आवश्यकता है। पुस्तकालय सामुदायिक केन्द्र में अथवा गांव की पाठशाला, चौपाल, पचायत घर, दूकान, अथवा किसी सर्वप्रिय नागरिक के घर में रक्खा जा सकता है। उनमें कृषि, कुटीर धन्धे सहकारिता, स्वास्थ्य, मनोरंजन, सांस्कृतिक विषय, नागरिकता, आधुनिक समाज आदि पर साहित्य होना चाहिये जिससे समाज के उद्देश्यों की पूर्ति हो सके।

जनता कालेज—सामाजिक शिक्षा के प्रसार में सामुदायिक केन्द्र और पुस्तकालय सेवा तो महत्वपूर्ण है ही, जनता कालेज द्वारा भी सामाजिक शिक्षा को विकसित बनाया जा सकता है। जनता कालेज कोई उच्च शिक्षा देने वाली संस्था नहीं है वह तो ग्रामीण मनुष्यों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिये और अन्य प्रौढों को उत्तम जीवन बिताने के लिये उपाय बतलाता है। जनता कालेज मे विभिन्न कार्यों के लिये जिन नेताओ की आवश्यकता होती है, उनका प्रशिक्षण किया जाता है।

भारत के प्राय. सभी राज्यो मे थोडे बहुत जनता कालेजो की स्थापना हो चुकी है और केन्द्रीय सरकार ने भी राज्यों को इस कार्य मे काफी सहयोग दिया है।

सामाजिक शिक्षा को अधिक व्यावहारिक बनाने के लिये इसका गठ-बन्धन प्रारम्भिक स्कूलो और पाठशालाओ से कर दिया गया है। गाँव का स्कूल सामाजिक केन्द्र माना जाने लगा है। इस केन्द्र की क्रियायें निम्नलिखित हैं—

(१) मनोरजन के कार्य।
(२) स्त्रियो के लिये सिलाई, बुनाई की कक्षायें।
(३) साक्षरता कक्षायें।
(४) पुस्तकालय एव वाचनालय की सुविधाओं की विशेषतायें।
(५) उपयोगी विषयो पर भाषण, वार्त्ता और फिल्म प्रदर्शनी।
(६) राष्ट्रीय पर्वों का मनाना।

प्रथम पचवर्षीय योजना से पहले देश की जनसख्या का केवल १६ प्रतिशत भाग साक्षर था। पुरुषो की साक्षरता का प्रतिशत २५ तथा स्त्रियों की साक्षरता का प्रतिशत ८ था। नगरो मे ५५ और देहातो मे केवल १२ प्रतिशत व्यक्ति पढे-लिखे थे। इसलिये द्वितीय पचवर्षीय योजना मे सामाजिक शिक्षा को प्रजातन्त्र की आधारशिला मान कर १५ करोड रुपये की व्यवस्था की गई। बहुत से विकास विभागों ने इनमें सहयोग दिया है। इस शिक्षा का क्षेत्र अब अत्यन्त विस्तृत और व्यापक हो गया है क्योंकि इसमे साक्षरता पर ही विशेष बल नही दिया जाता, वरन् प्रौढों एव प्रौढाओ के स्वास्थ्य, मनोरंजन, दैनिक जीवन, नागरिकता, आर्थिक क्रियाओ आदि का भी शिक्षण शामिल किया गया है। सरकारी और गैर सरकारी दोनो प्रकार की संस्थायें सामाजिक शिक्षा कार्य मे भाग ले रही हैं सरकार और जनता दोनो ही सामाजिक शिक्षा मे जुट पडे हैं। समाज की उन्नति दोनो का लक्ष्य बन गया है।

सरकार के इन प्रयासो के फलस्वरूप सन् १९४७-५३ मे भारत मे २·४ लाख सामाजिक शिक्षा कक्षाओं द्वारा ६० लाख व्यक्तियों को शिक्षित किया गया। इस दिशा मे भारतीय सेना का कार्य प्रशसनीय रहा। सेना की निरक्षरता का लोप हो गया। इस अवधि मे सामाजिक शिक्षा पर लगभग ४ करोड रुपया व्यय किया गया। राष्ट्रीय प्रसार सेवा तथा सामुदायिक विकास योजनाओ (Community Projects) का सामाजिक शिक्षा के विकास मे महत्वपूर्ण स्थान रहा। सामुदायिक विकास योजनाओ के सभी कार्य सामाजिक शिक्षा के विभिन्न अग हैं क्योंकि सामाजिक शिक्षा का अर्थ केवल जन वर्ग को साक्षर बना देना ही नही है अपितु उन्हें अपने उत्तरदायित्व एव राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्यों से परिचित करा कर राष्ट्र एव विश्व की उन्नति मे सक्रिय भाग लेने योग्य बनाना है। सामुदायिक योजना अपने कार्य मे विशेष रूप से सफल मानी जा सकती है। भारतीय सरकार ने १९४९ के यूनेस्को द्वारा सचालित अन्तर्राष्ट्रीय सेमीनार की प्रेरणा के फलस्वरूप दिल्ली में देहाती सिखलाई कालेज की स्थापना की। देहाती नेताओ को प्रशिक्षित करने के लिये दिल्ली के पास अलीपुर नगर मे जनता कालेज खोला उत्तर प्रदेश मे मुजफ्फर नगर लखनऊ तथा इलाहाबाद के समीप क्रमश बघरा, निगोह तथा मऊ इन तीनो गाँवों में जनता कालेज की स्थापना की गई। सामाजिक शिक्षा के अनुकूल साहित्य की रचना करने के लिये नई दिल्ली मे जामिया

प्रौढ़ शिक्षा का वास्तविक अर्थ—प्रौढ़ शिक्षा का अर्थ केवल साक्षरता की शिक्षा ही नहीं है, इसका उद्देश्य लोगों को साक्षर ही बनाना नहीं है वरन् साक्षर अथवा शिक्षित लोगों को सुन्दर और सुखमय जीवन बिताने के लिए आवश्यक जानकारियाँ देना, आराम तथा मनोरंजन के कार्यों में भाग लेने योग्य बनाना, अवकाश के समय में व्यावसायिक शिक्षा देना आदि है। इसलिये प्रौढ़ शिक्षा का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है वह इतना व्यापक है जितना कि जीवन। निरक्षरता के निवारण अर्थात् साक्षरता और सच्ची प्रौढ़ शिक्षा में अन्तर है। निरक्षरता का अन्त हो सकता है और स्कूली शिक्षा सभी को पूर्ण साक्षर बना सकती है लेकिन प्रौढ़ शिक्षा व्यक्ति के जीवन भर साथ चलती है। ऐसे समय जबकि ज्ञानराशि में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है मनुष्य को इस नवीन ज्ञान को प्राप्त करना अनिवार्य हो जाता है नहीं तो वह अज्ञान के अन्धकार में पड़ सकता है। लेकिन क्या इस ज्ञान की प्राप्ति के लिए उसे पुन विद्यालय में जाना होगा ?

विभिन्न स्तरों की पूर्ण कालीन शिक्षा जो विद्यालयों में अथवा महाविद्यालयों में दी जाती है उस शिक्षा से भिन्न होगी जो एक प्रौढ़ व्यक्ति को नवीन ज्ञान प्राप्त करने के लिये दी जायगी। यह शिक्षा व्यक्ति की न केवल पेशेवर आवश्यकताओं और रुचियों का अनुसरण करेगी वरन् उसकी वैयक्तिक, सामाजिक तथा अन्य रुचियों का भी समादर करेगी। स्कूली शिक्षा में जिस पौधे को लगाया जाता है प्रौढ़ शिक्षा में उसका फल प्राप्त किया जाता है। इंगलैण्ड में इस शिक्षा को अग्रिम शिक्षा (Further education) कहते हैं।

अग्रिम शिक्षा किसके लिए ?—अग्रिम शिक्षा के हिसाब से जनता को दो वर्गों में विभाजित करना होगा—

(अ) वे लोग जो अंशकालिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए शैक्षणिक संस्थाओं में जाने का समय निकाल सकते हैं अथवा उन कक्षाओं में भाग ले सकते हैं जो विकास खण्डों, विश्वविद्यालयों, शिक्षापरिषदों, तकनीकी, कृषि अथवा व्यावसायिक प्रशिक्षण सम्बन्धी संस्थाओं द्वारा लगाई जाती हैं।

(ब) वे लोग जिन्हें यदि घर पर ही कुछ शैक्षणिक सहायता मिल सके तो उसे ले सकते हैं किन्तु जिनके पास इतना समय नहीं है कि कहीं किसी संस्था में जाकर घंटे दो घंटे का शिक्षण प्राप्त कर सकें।

अग्रिम शिक्षा का प्रबन्ध न केवल इन दो प्रकार के व्यक्तियों के लिए अलग-अलग करना होगा। वरन् उसकी व्यवस्था करते समय उनकी आकांक्षाओं और व्यावसायिक रुचियों को भी ध्यान में रखना होगा। सभी जगह ऐसे व्यक्ति मिलेंगे जिनकी आकांक्षा ऊँचे उठने की होती है चाहे वे किसी भी धन्धे में लगे हों। खेत, वर्कशाप, फैक्टरी, मिल, विद्यालय, महाविद्यालय कोई भी जगह ऐसी नहीं है जिसमें काम करने वाला व्यक्ति ऊँचा उठना नहीं चाहता। उसकी इस आकांक्षा की पूर्ति के लिए उसे वे सारी जानकारियाँ अपेक्षित हैं जिनकी उसे आगे बढ़ने में सहायता मिलेगी। यहाँ तक कि वकीलों, डाक्टरों, मैनेजरों, मिल मालिकों, उद्योगपतियों को भी नये ज्ञान की जरूरत होती है। इसके अतिरिक्त व्यक्ति को कुछ ऐसे कार्यों में भी दिलचस्पी होती है जिनकी जानकारी का उसकी जीविका से कोई सम्बन्ध नहीं होता लेकिन जो उसके जीवन को अधिक आनन्दमय और सुखी बना सकती है। उदाहरण के लिए व्यक्ति विदेशी भाषा का ज्ञान प्राप्त करना चाहता है, पेण्टिंग, गान-विद्या, पाकशास्त्र में दक्ष होना चाहता है। अग्रिम शिक्षा व्यक्ति की ऐसी सभी आकांक्षाओं और रुचियों की पूर्ति करने का प्रयत्न करती है जो उसके जीवन को सुखी बना सके।

शिक्षण संस्थाओं का सहयोग—पहले प्रकार के लोगों के लिये सभी शिक्षा संस्थाओं के द्वार सदैव खुले रहने चाहिए। उनको सब प्रकार की आवश्यक जानकारियाँ देने के सभी साधन उन [illegible] में तो [illegible] प्रकार [illegible] । महा-विद्यालय में अंशकालिक प्रशिक्षण पाने के आतुर हो जाते हैं। अतः किसी डिप्लोमा, डिग्री अथवा सर्टीफिकेट की प्राप्ति के लिये आतुर इन व्यक्तियों के लिये सध्याकालीन महाविद्यालयों में शिक्षण की व्यवस्था की जा सकती है अथवा अंशकालिक शिक्षा का प्रबन्ध किया जा सकता है।

शिक्षण संस्थाओं में शॉर्ट कोर्सों (Short Courses) की भी व्यवस्था की जा सकती है जिनको पाकर अपने काम में व्यक्ति अधिक दक्ष और अपनी समस्याओं को हल करने में अधिक

योग्य हो जाता है। ऐसे लघु पाठ्यक्रम सभी क्षेत्रों में, तथा सभी पेशों में दिये जा सकते हैं उदाहरण के लिये मुर्गी पालना, बाग लगाना, नर्सिंग, बालकों का पालन-पोषण, आदि को सीखने के लिये ऐसी अल्पकालिक कक्षाएं लगाई जा सकती हैं। लेकिन इसके लिये विभिन्न विभागों, विश्वविद्यालयों, तकनीकी संस्थाओं, कृषि और व्यावसायिक स्कूलों का सहयोग अपेक्षित है।

उद्योगों में काम करने वाले कर्मचारियों के लिए अग्रिम शिक्षा—उत्पादन-वृद्धि में योगदान देने वाले मिल कर्मचारियों की अग्रिम शिक्षा का विशेष महत्व है। इस शिक्षा से न केवल ... पैदा होगा। जो पाठ्यक्रम ... वही पाठ्यक्रम इन लोगों को ... उन करना पड़ेगा अथवा पत्र व्यवहार द्वारा प्रशिक्षण देना होगा। यह प्रशिक्षण आयु में बड़े, गम्भीर प्रकृतिवाले, ज्ञान के पिपासुओं के लिये अधिक उपयोगी होगा।

Public Sector में जो मिल अथवा फैक्ट्रियाँ काम कर रही हैं उनको अपने कर्मचारियों की अग्रिम शिक्षा के लिये ऐसी कक्षाएं चलानी चाहिए और परीक्षाएं पास करके के लिये प्रोत्साहन ... गई तो ... । इन ... है। श्रम ... , आदि का प्रबन्ध करे और आवश्यकता पड़ने पर उनको छुट्टी की सुविधा दे। शिक्षा मंत्रालय उनके लिये शैक्षणिक योजनाएं बनावे, पाठ्यक्रम संगठित करे, और इस कार्य में श्रम तथा रोजगार मंत्रालय, मिलमालिक, विश्वविद्यालय, माध्यमिक शिक्षापरिषद तथा तकनीकी शिक्षा के केन्द्रों का सहयोग प्राप्त करे।

इस योजनाबद्ध कार्यक्रम का एकमात्र उद्देश्य हो—कर्मचारियों की तकनीकी योग्यता का विकास ताकि वे उत्पादन में अत्यन्त सहायक सिद्ध हो सकें और भविष्य में ऊँचे पदों को ग्रहण करने के समर्थ हो सकें।

ग्रामीण विद्यापीठ और अग्रिम शिक्षा—ग्रामीण जनता के उद्धार के लिये कुछ ग्रामीण विद्यापीठों की स्थापना हुई है जो ग्रामीण जनता को सामान्य तथा विशिष्ट दोनों प्रकार की शिक्षा देते हैं यह प्रशिक्षण ग्राम पंचायत के प्रधान, उपप्रधान, ग्राम सेवकों के लिये दिया जाता है। लेकिन इनका अध्यापक वर्ग प्रशिक्षित और उत्तम प्रकार का होना चाहिए।

इस प्रकार जीवन के सभी क्षेत्रों में उन्नति करने के लिये व्यक्ति को अग्रिम शिक्षा की आवश्यकता है और राष्ट्र का कर्तव्य है इस शिक्षा के लिये उपयुक्त साधन जुटाना।

निरक्षरता निवारण

Q. 7. "In normal conditions, programmes of adult education presumes universal literacy. How can we achieve universal literacy ? Discuss the ways and means.

... की अपेक्षा अधिक निर- ... हुआ ? क्या प्राथमिक ... ६३० से चालू किए गए ...

कि निरक्षरता के लिये राष्ट्र को भीषण दण्ड भुगतना पड़ेगा क्योंकि एक निरक्षर व्यक्ति का जीवन पशुओं का जीवन है। वह न तो प्रजातन्त्रात्मक के मोलों को भोग सकता है। न जीविका का उपार्जन ही ठीक प्रकार से कर सकता है, जिस देश की जनता का एक बड़ा प्रतिशत निरक्षर हो उसकी सामाजिक तथा आर्थिक उन्नति कैसे होगी, उत्पादन की मात्रा कैसे बढ़ेगी, जनसंख्या पर प्रतिरोध कैसे लगेगा, राष्ट्रीय एकता कैसे स्थापित होगी, उसके सदस्यों का स्वास्थ्य कैसे सुधरेगा ? स्वतन्त्रता प्राप्त करने पर राष्ट्र ने १९६० तक १४ वर्ष के बालकों को अनिवार्य तथा निःशुल्क शिक्षा का बीड़ा उठाया था लेकिन वह १९८६ तक भी पूरा नहीं हो सकता। यदि १९६० तक

स्तर तक बनाये रखने की क्षमता में विकास हो जाय जिस स्तर तक वे आसानी से पहुँच सकते हैं तो और भी अच्छा होगा ।

निरक्षरता को दूर करने के उपाय—निरक्षरता दूर करने के लिये दो प्रकार से अभियान चलाने होंगे :—

(अ) चयनात्मक अभिगमन—जिन निरक्षर व्यक्तियों के समूहों को आसानी से खोजा जा सके उनको साक्षर बनाने का प्रयत्न किया जाय । उदाहरण के लिये मिलों और फैक्टरियों में लगभग ८०% कर्मचारी अशिक्षित हैं अत. मिल मालिकों को कानूनन इस बात का जिम्मेदार ठहराया जाय कि तीन साल के भीतर वे अपने कर्मचारियों को साक्षर बना देंगे । लेकिन यह जिम्मेदारी तो उनको पढ़ने के लिये छुट्टी देने तक ही सीमित है शेष काम सरकार का है जो उनकी पढ़ाई-लिखाई का स्वयं प्रबन्ध करेगी । पब्लिक सैक्टर (public sector) में तो यह काम सरकार को तुरन्त हाथ में ले लेना चाहिये और निरक्षरता को शीघ्र दूर कर देना चाहिये । सामाजिक कल्याण के जो कार्य सरकार [illegible] दी जा सकती है । जो पैसा एप्लाइड [illegible] आजकल खर्च किया जाता है । वही [illegible] सकता है ।

(ब) सामूहिक अभिगमन—देश के सभी शिक्षित स्त्री-पुरुषों को निरक्षरता निवारण [illegible] व्यापी [illegible] पुरीम [illegible] को निरक्षरता निवारण में सक्रिय भाग लेना पड़ा था । ऐसा ही कार्य रूस में हुआ जिसके फलस्वरूप उस महान राष्ट्र ने ५ वर्ष के भीतर रूसी लोगों को साक्षर बना दिया ।

यह पुनीत कार्य प्रशासन तथा शिक्षा व्यवस्था द्वारा सम्पन्न नहीं हो सकता। इसके लिये उत्साही समाज सेवियों, राजनैतिक नेताओं द्वारा सम्पन्न हो सकता है । लेकिन इसके लि[illegible] दृढ निश्चय, अपूर्व उत्साह, अप्रत्याशित लगन, तथा नि.स्वार्थ सेवाभाव की आवश्यकता है।

(स) विद्यालय का उत्तरदायित्व—यद्यपि निरक्षरता-निवारण अभियान में [illegible] तथा स्त्रियो के सहयोग की अपेक्षा की जाती है । फिर भी विद्यालयों का इस दिशा में [illegible] उत्तरदायित्व है । निरक्षरता निवारण की जिम्मेदारी अन्ततोगत्वा विद्यालयों पर [illegible] इसलिये विद्यालय के छात्र तथा अध्यापकों का परम कर्तव्य है कि जैसे ही यह [illegible] हो तन-मन-धन से इस कार्य में लग जायें प्राथमिक माध्यमिक, उच्चतर माध्यमिक [illegible] के स्नातकीय कक्षाओ के छात्र राष्ट्रीय सेवा के रूप में निरक्षरता निवारण के [illegible] में लें । इस अभियान का नेतृत्व अध्यापक लोग करें जिनको यदि अतिरिक्त [illegible] स्कूल के काम से छुट्टी अथवा कार्य के बदले में द्रव्य दिया जाय । प्रत्येक [illegible] निरक्षरता निवारण का कार्य अपने हाथ में ले और इस क्षेत्र का [illegible] अध्यापकों की सख्या पर निर्भर रहे ।

इसका अर्थ है विद्यालय का उस [illegible] करना जिसकी वह सेवा करता है । [illegible] पुस्तकालय, पेंटर्स, मॉडेल और प्रौढ़ शिक्षा [illegible]

निरक्षरता निवारण के [illegible] अभियान को इतने बड़े [illegible] के उपयुक्त [illegible] निम्नलिखित [illegible]

[illegible] Go[illegible] [illegible] सबसे [illegible] न तो इस [illegible] मिने वाली सर[illegible]

[illegible] (ts) पर सामा[illegible] Board of Sc[illegible] और शिक्षा [illegible] राष्ट्रीय परिषद बना[illegible] का सुझाव दिया [illegible]

(iii) रेडियो, टेलीविजन, फिल्म, व्याख्यान आदि सभी साधनों को प्रयोग में लाकर ऐसा वातावरण तैयार करना है जो इस कार्य में सहायक हों।

(iv) इस अभियान के उपयुक्त उपकरण—पाठ्यपुस्तकें, चार्ट, मोडेल, ड्राइंगबुक्स आदि सभी चीजें—पहले ही तैयार करनी हैं।

(v) साक्षरता का प्रोग्राम स्थानीय विशेषताओं, निरक्षर व्यक्तियों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया जाय।

(vi) योजना बद्ध फॉलोअप प्रोग्राम भी कम आवश्यक नहीं है।

(vii) विश्वविद्यालयों के प्रसार सेवा विभाग कृषि, स्वास्थ्य, सहकारिता, सामुदायिक विकास सम्बन्धी विभाग, तथा आकाशवाणी साक्षरता अभियान में शिक्षकों को पूरी-पूरी सहायता दें।

(viii) नव साक्षर व्यक्तियों के लिये पुस्तकालयों का उचित प्रबन्ध हो।

(ix) जो छात्र अथवा शिक्षित व्यक्ति इस काम मे हाथ बँटाना चाहते हों उनको उचित प्रशिक्षण दिया जाय।

(x) जनता, पत्र-पत्रिकाओं, नेताओं, समाज सेवियों की पूर्ण सहायता ली जाय।

अग्रिम शिक्षा (Further Education)

Q. 8 What methods of giving education to the millions do you suggest, who depend upon their own effort to study whenever they can find time to do so ?

अग्रिम शिक्षा दो प्रकार से दी जा सकती है—पत्र व्यवहार द्वारा तथा आकाशवाणी द्वारा।

पत्र व्यवहार शिक्षा का मनोवैज्ञानिक आधार—आन्तरिक प्रेरणा—पत्र व्यवहार (Correspondence) द्वारा शिक्षा देने की प्रणाली शिक्षा की उत्तम प्रणालियों से एक है। इस विधि का उपयोग अमरीका, स्वीडेन, रूस, जापान, आस्ट्रेलिया मे कई वर्षों तक सफलता पूर्वक किया [illegible] मित और अल्प- [illegible]। यह कहना कि [illegible] रा दी जाती है गलत साबित हो चुका है। विद्यालय के भीतर अध्यापक द्वारा दी गई शिक्षा प्रेरणादायिनी अवश्य होनी हैं फिर भी प्रेरणा देने वाले अध्यापक होते कितने हैं ? पत्र व्यवहार द्वारा दी गई शिक्षा प्रौढ के लिये स्वत प्रेरणा देने वाली होती है क्योकि प्रौढ व्यक्ति उस अध्यापक के साथ व्यक्तिगत और प्राइवेट सम्बन्ध स्थापित कर लेता है जो उसके लिये पत्रव्यवहार द्वारा शिक्षा की पाठ्यवस्तु तैयार करता है। बहुत से महाविद्यालय और विद्यालय ऐसे हैं जहाँ पर शिक्षा कार्य मशीनवत् होता रहता है और शिक्षक तथा छात्र के बीच किसी प्रकार का सम्पर्क नहीं होता। जब छात्र यह समझ लेता है कि उसे ही स्वय अध्ययन करना है तो पत्र व्यवहार द्वारा दी गई शिक्षा का अधिकतम लाभ उठाने का मानसिक प्रयास करता है। सीखने वाले की आन्तरिक प्रेरणा ही सीखने मे विशेष सहायक होती है।

शिक्षित व्यक्तियो तथा शिक्षकों मे सम्पर्क स्थापित करने के उपाय—पत्र व्यवहार द्वारा शिक्षा का यह अर्थ भी नही है कि समूची शिक्षा पत्र व्यवहार द्वारा ही दी जाती है। लिखित आदेशो और अभ्यासों का आदान प्रदान ही इस शिक्षा का आवश्यक अग नहीं है। शिक्षक तथा शिक्षित के बीच व्याख्यान, गोष्ठी, और सामूहिक वाद-विवाद द्वारा (थोडे समय के लिये ही) सम्पर्क स्थापित करना पडता है। विज्ञान, शिक्षा, कृषि अथवा अन्य तकनीकी विषयो मे प्रशिक्षण लेने वालों को तो सप्ताह मे एक दिन अवश्य वर्कशॉप या प्रयोगशाला मे जाकर अध्ययन करना पडता है। एक ही स्थान मे रहने वाले ऐसे अनेक छात्र सामूहिक वाद-विवाद मे भाग ले सकते हैं। यदि इन छात्रो को किसी विद्यालय अथवा महाविद्यालय से सम्बद्ध कर दिया जाय और उन्हे नियमित छात्रो (regular students) का दर्जा दे दिया जाय तो वे बिना किसी हिचकिचाहट के महाविद्यालय के पुस्तकालयो मे भी अध्ययन कर सकते हैं और अन्य शैक्षणिक कार्यक्रमो मे भाग भी ले सकते हैं।

आकाशवाणी का योगदान—इन पाठ्यक्रमो का आकाशवाणी तथा टेलीविजन के साथ उचित सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। यद्यपि अभी देश में आकाशवाणी पर आधारित विश्वविद्यालयों की स्थापना असम्भव है फिर भी आकाशवाणी अध्ययन के विभिन्न क्षेत्रो मे शिक्ष- [illegible] शिक्षा तक उपयोगी विषयो [illegible] वर्ष भर करता है जो पत्र [illegible] हो सकते हैं।

[illegible]

पत्र व्यवहार द्वारा ऐसे विषयो का भी अध्ययन किया जा सकता है जिनसे जीविका उपार्जन करने मे कोई सहायता नही मिल सकती लेकिन जीवन को सुखमय बनाने के लिये अध्ययन जरूरी है उदाहरण के लिये विभिन्न भाषायो, दर्शन, इतिहास, अर्थशास्त्र, कला, साहित्य समालोचना, मनोविज्ञान आदि ऐसे विषय हैं जिनका ज्ञान जीवन के प्रति दृष्टिकोण बदलने मे विशेष सहायक सिद्ध हो सकता है।

प्रशिक्षण विद्यालय तथा प्रसार सेवा विभागो का योगदान—ज्ञान के प्रसार के साथ साथ जब तक शिक्षक की जानकारियो के क्षेत्र मे विस्तार नहीं होगा तब तक शिक्षा का स्तर ऊँचा नहीं हो सकता। प्रत्येक विषय मे नया ज्ञान दिन पर दिन बढता जा रहा है अन प्रसार सेवा विभागो का कर्तव्य है कि वे अध्यापको को इस ज्ञान से अवगत करावें। अध्यापक जिस वातावरण मे अध्यापन कार्य करता है वह इतना अच्छा नहीं कि उसके ज्ञान की वृद्धि हो सके। बहुत से विद्यालयो के पुस्तकालयो मे शिक्षको के लिये पुस्तकों की कमी है बहुत कम विद्यालयो मे study circles का कोई आयोजन नही होता। ऐसी परिस्थिति मे प्रसार सेवा विभागो का काम है अध्यापको के लिये विषयो और नयी शिक्षण विधियो के ज्ञान मे वृद्धि कराने के लिये गोष्ठियो का आयोजन करना।

पत्र व्यवहार द्वारा शिक्षा और व्यय—कुछ लोगो का विचार है कि पत्र व्यवहार द्वारा शिक्षा मे शिक्षा लेने वालो का खर्च अधिक होता है। लेकिन वस्तु स्थिति इसके विपरीत है। पत्र व्यवहार द्वारा जब बहुत से लोगो को शिक्षा दी जाती है तब शिक्षा का व्यय प्रति व्यक्ति बहुत कम हो जाता है दूसरे इस शिक्षा से व्यक्ति तथा समाज दोनो का ही लाभ होता है। व्यक्ति सीखने के साथ-साथ जीविकोपार्जन भी करता है और यदि वह उत्पादन कार्य मे लगा है तो उत्पादन वृद्धि मे विशेष सहयोग भी देता है। इस प्रकार व्यक्ति और समाज दोनो ही लाभान्वित होते हैं। समाज को उसकी शिक्षा के लिये न तो विद्यालय भवन तैयार करने पडते हैं, न छात्रावासो का प्रबन्ध करना होता है और न विशेष पुस्तकालयो और शिक्षा का ही इन्तजाम करना पडता है। पत्र व्यवहार द्वारा शिक्षा देने से इन वस्तुओ पर समाज को कोई खर्च नही करना पडता।

Q. 9 Would you wish social education to be organised by the Government only ?

प्रौढ़ शिक्षा का संगठन तथा प्रशासन—प्रौढ़ शिक्षा के विकास मे हमारी सबसे बडी कमजोरी यह रही है कि इस शिक्षा के संगठन और प्रशासन का ढग ठीक नही रहा। न तो इस शिक्षा के लिये अभी तक कोई योजनाबद्ध कार्यक्रम निर्मित किया गया और इसमे भाग लेने वाली संस्थाओ के कार्यों मे किसी प्रकार का सामंजस्य ही स्थापित हो सका।

इन दोषो का परिहार करने के लिये प्लान प्रोजेक्ट्स (Plan Projects) पर सामाजिक शिक्षा की जो कमेटी बैठी उसने समाज शिक्षा के केन्द्रीय परिषद् (Central Board of Social [illegible]

अध्याय १३

शैक्षणिक अवसरों की समानता

(Equality of Opportunity)

Q. 1. "If democracy is really something worthwhile, it means that the state and society should give, as far as possible The same chances to the sons of the poor labourer and peasant as to those of the capitalist and the prince."

What have been done to provide equal chances to all in India at present ?

शिक्षा का सामाजिक उद्देश्य—शिक्षा का एक विशेष महत्वपूर्ण सामाजिक उद्देश्य यह है यह है कि समाज के सभी वर्गों के लिये शैक्षणिक अवसरों को प्रदान करने में समानता हो। सामाजिक न्याय भी यही कहता है कि शिक्षा के जो अवसर पूंजीपति को मिलते हैं वही अवसर निर्धन किसान को मिलने चाहिए। यदि समाज के कमजोर वर्गों का शोषण समाप्त करना है, यदि गांधीजी के सर्वोदयी सिद्धान्त को कार्यान्वित करना है तो सभी को अपना विकास करने, अपनी दशा में सुधार लाने का समान अधिकार मिलना चाहिए।

शैक्षणिक अवसरों की असमानता के कारण—

शैक्षणिक अवसरो की समानता समाज के विभिन्न वर्गों को मिली क्यों नहीं ? इसके निम्नांकित कारण हैं :—

(१) देश के विभिन्न भागों में शिक्षा सुविधाओं की उपलब्धि में वैषम्य—प्राथमिक माध्यमिक और उच्च शिक्षा के साधन देश में सभी जगह समान रूप से फैलाए नहीं गये इसलिये जो सुविधाएं एक क्षेत्र को मिल सकीं उनसे दूसरा क्षेत्र वंचित रह गया। इस कठिनाई को दूर करने के लिये शिक्षा का प्रसार किया जा रहा है, जगह-जगह स्कूल खोले जा रहे हैं उपयुक्त मात्रा में छात्रवृत्तियां दी जाती हैं, दूर से आने वाले छात्रों के लिये छात्रावासों का प्रबन्ध किया जाता है, छात्रों को परिवहन की सभी सुविधाएं दी जाती हैं। लेकिन फिर भी एक जिले से दूसरे जिले में एक स्थान से दूसरे स्थान में एक राज्य से दूसरे राज्य में शैक्षणिक अवसरो की असमानता स्पष्ट दिखाई देती है।

(२) धनी तथा निर्धन वर्गों के लिए शैक्षणिक अवसरों में विभिन्नता—शैक्षणिक अवसरों की असमानता का दूसरा कारण है, धनी और निर्धन वर्गों का साथ-साथ रहना। समाज का एक बड़ा वर्ग निर्धन व्यक्तियों का है और धनी व्यक्ति अल्प संख्या में है इसलिये कैसी भी सरकार क्यों न हो धनी वर्ग के बच्चों को भी सुविधाएं मिलती हैं वे निर्धन वर्ग के बच्चों को नहीं। इस कठिनाई को दूर करने के लिये उन्हें छात्रवृत्तियां दी जाती हैं, फीस माफ करदी जाती है, या कोई फीस नहीं ली जाती। बिना मूल्य लिये पुस्तकें और कागज पेन्सिल दी जाती है, कुछ जगह निःशुल्क भोजन और यूनीफार्म भी दी जाती है।

(३) विद्यालयों और महाविद्यालयों के विभिन्न मापदण्ड (Standards)—ये मापदण्ड उनसे निकले हुए छात्रों को शिक्षा के समान अवसरों का लाभ उठाने में रोकते हैं। उदाहरण के लिये वह छात्र जो एक ग्रामीण उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में शिक्षा पा चुका है विश्वविद्यालय में प्रवेश नहीं पा सकता क्योंकि प्रवेश के लिए ऊंचे कट आउट अच्छा डिवीजन होना चाहिए। क्या ग्रामीण छात्र द्वारा नीचे कम पाना उसका दोष है ? इसके विपरीत किसी शहरी विद्यालय का

छात्र जहाँ पढ़ाई का स्तर ऊँचा है ऊँचे अंक पाने के कारण विश्वविद्यालय में सुगम प्रवेश पा लेता है। इस कमी को दूर करने के लिए प्रवेश के अन्य तरीके अपनाने होंगे।

(४) स्थितियों का पर्यावरण—शैक्षणिक अवसरों की असमानताएँ घर के वातावरण में उपस्थित असमानताओं के कारण भी पैदा हो जाती है। ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाला बालक शहरी क्षेत्र में रहने वाले बालक की बराबरी कैसे कर सकता है क्योंकि उसके घर का वातावरण पढ़ने-लिखने के लिये उसकी सहायता ही नहीं करता। इस तरह की विषमता को तो दूर करना ही कठिन है। लेकिन फिर भी विद्यालय में उनकी ओर विशिष्ट प्रकार का ध्यान देने से काम चल सकता है। उनके लिए दिवस अध्ययन केन्द्र अथवा बोर्डिंग हाउस का प्रबन्ध करना होगा।

(५) लिंगीय वैषम्य—शैक्षणिक अवसरों की असमानता इसलिये भी पैदा हो जाती है कि बालक लड़का है या लड़की। भारतीय समाज लड़कियों की शिक्षा के प्रति पहले से ही उदासीन रहा है और अब भी है यद्यपि स्वातन्त्र्योत्तर काल में स्त्री शिक्षा का विकास और प्रसार पर्याप्त मात्रा में हो गया है। यह विषमता सभी स्तरों और सभी वर्गों में विद्यमान है और रहेगी जब तक जनता में आमूल परिवर्तन नहीं होता।

(६) शैक्षणिक अवसरों की असमानता समाज के पिछड़े वर्गों तथा उन्नत वर्गों में विद्यमान है। अनुसूचित तथा पिछड़ी जातियों के बच्चों के लिए वे सुविधाएँ नहीं हैं जो ऊँची जाति के बच्चों के लिए हैं।

यदि सामाजिक न्याय का पालन और प्रजातन्त्र की रक्षा करनी है तो सभी वर्गों, और जातियों के लोगों को समान रूप से शिक्षा देने के अवसर देने होंगे। यद्यपि हमारी शिक्षा का आदर्श है फिर भी आदर्श तो आदर्श ही होता है और आदर्श कभी पूरी तरह से प्राप्य नहीं होता।

शैक्षणिक अवसरों की समानता देने के उपाय—

यदि सभी को शैक्षणिक अवसरों की समानता देनी है तो हमें निम्नलिखित कार्य करने होंगे :—

(१) ट्यूशन फीस में कमी अथवा नि:शुल्क शिक्षा।
(२) छात्रवृत्तियों का उचित संगठन।
(३) हैण्डीकैप्ड (Handicapped) बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध।
(४) प्रादेशिक विषमताओं का दूरीकरण।
(५) स्त्री शिक्षा।
(६) अनुसूचित जातियों की शिक्षा।
(७) ट्राइबल जातियों की शिक्षा।

Q. 2. Discuss the principles of charging fees at different stages of schooling. Do you advocate the abolition of fees at all stages of education?

निर्धन और धनी वर्गों के बच्चों को शिक्षा के समान अवसर देने के दो उपाय हैं—फीस में कमी अथवा फीस का माफ करना, छात्रवृत्तियों का उपयुक्त वितरण।

शिक्षा में शुल्क लेने की प्रथा—१८५४ में वुड के घोषणापत्र में कहा गया था कि जब तक विद्यार्थी शुल्क नहीं देगा तब तक वह गम्भीरतापूर्वक अध्ययन नहीं करेगा और उसके माता-पिता भी उसको शिक्षा की ओर ध्यान नहीं देंगे। इस विचार से विद्यालयों में शुल्क लिये जाने की प्रथा पड़ी और शुल्क द्वारा शिक्षा का बड़ा भारी खर्च वहन किया जाने लगा। लेकिन अब सरकार इस आय पर अधिक निर्भर नहीं रहती और धीरे-धीरे शुल्क द्वारा प्राप्त सरकार की आय कम होती जा रही है।

पूर्व प्राथमिक शिक्षा—जो अभी तक कुछ वर्ग विशेष के बच्चों को ही दी जाती है पूरी [illegible] में नि:शुल्क हो गई है और कुछ [illegible] मिक शिक्षा नि:शुल्क नहीं है। [illegible] फीस को आमदनी का साधन मानना अवांछनीय है। फीस एक प्रकार का कर है जो धनी और निर्धन सभी से समान रूप लिया जाता है। इस कमी को दूर करने के लिये यह सिफारिश की गई है कि फीस को माता-पिता की

आय से सम्बद्ध कर देना चाहिए। अधिक आय वालो को अधिक फीस तथा कम आय वालो को कम फीस देनी चाहिए लेकिन ऐसे देश मे जहाँ ६०% व्यक्तियों की आय २० रु० प्रति माह से अधिक न हो ऐसा करना बेकार होगा। अत. नि शुल्क माध्यमिक शिक्षा की सिफारिश की जाती है।

उच्चतर माध्यमिक स्तर पर शुल्क लेने की सगतता के विषय में कहा जाता है कि चूंकि माध्यमिक शिक्षा का प्रसार मध्यम तथा उच्च वर्ग के लोगो के लिए किया जा रहा है और वे ही मुख्यतः इस प्रकार से लाभान्वित हो रहे हैं इसलिए इस स्तर पर फीस अवश्य ली जानी चाहिये। इस स्तर पर जो फीस ली जाती है उससे आय इतनी होती है कि शिक्षा के निःशुल्क कर देने पर विद्यालयों को वित्तीय कठिनाइयों का सामना करना पडेगा। लेकिन इन दोनों विचारो से कोठारी कमीशन सहमत नहीं है। यदि माध्यमिक स्तर पर शिक्षा नि शुल्क कर दी जाय तो उन निर्धन परिवारों को राहत मिलेगी जो अपने बच्चो को माध्यमिक शिक्षा देने मे असमर्थ हैंऔर उन्हें शिक्षा देना चाहते हैं। देश के कई राज्यो ने माध्यमिक शिक्षा को नि शुल्क बनाने का प्रयत्न किया है उदाहरण के लिये मद्रास ने उच्चतर माध्यमिक तथा लडके लडकियो की शिक्षा को, उडीसा तथा उत्तर प्रदेश ने लडकियों की शिक्षा को, महाराष्ट्र और गुजरात ने ४५ प्रतिशत माध्यमिक शिक्षा पाने वाले बालको को, पजाब, मध्यप्रदेश, और राजस्थान ने राजकीय विद्यालयो मे,लडकियो की शिक्षा को नि.शुल्क बना दिया है। इस प्रकार नि शुल्क माध्यमिक शिक्षा की ओर सभी राज्य निरन्तर बढ रहे हैं, लेकिन यदि मिडिल स्कूली शिक्षा अनिवार्यत. सभी राज्यो मे पाँचवी पचवर्षीय योजना के अन्त तक नि·शुल्क हो जाय तो अच्छा होगा

विश्वविद्यालय स्तर पर शिक्षा के लिए शुल्क लेने का औचित्य निम्नलिखित कारणो से मान्य है—

(१) समाज का केवल ५% प्रतिशत उच्चवर्ग ही उच्च शिक्षा लेना चाहता है।

(२) वे छात्र जो उच्च शिक्षा के लिये जाते हैं या तो फीस माफी के अधिकारी होते हैं या उन्हें कोई न कोई छात्रवृत्ति मिल जाती है।

(३) कुछ राज्यो ने अनुसूचित जातियों के लडके-लडकियो, लड़कियों, कम आय के माता-पिता वाले लड़को के लिये नि शुल्क उच्च शिक्षा की व्यवस्था की जा चुकी है।

Q. 3. "The method of selecting awardees for scholarships are defective". Discuss the ways in which scholarship programmes in the country may be reorientated and expanded.

छात्रवृत्तियो के वितरण में दोष और उनको दूर करने के सुझाव—यद्यपि छात्रवृत्तियों के वितरण मे गत १५ वर्षों में आशातीत वृद्धि हुई है फिर भी वर्तमान छात्रवृत्ति योजना को पुनर्गठित करना है ; जैसा कि नीचे दी गई तालिका से स्पष्ट होता है।

वर्ष	व्यय	कुल खर्चे का प्रतिशत
१९५०-५१	३·४५ करोड	३%
१९६५-६६	४२ करोड	७%

पुनर्गठन के कारण हैं—

(अ) यद्यपि उच्च शिक्षा के लिए छात्रवृत्तियों की भरमार है किन्तु माध्यमिक तथा प्राथमिक शिक्षा के लिये छात्रवृत्तियाँ बहुत कम दी जाती हैं। जब तक प्रतिभाशील बालक इन स्तरो को पार करता है तब तक प्रोत्साहन के अभाव मे वह स्कूल छोड़ देता है। इसलिए इस स्तर पर भी छात्रवृत्तियाँ देना आवश्यक है।

(ब) अभी तक छात्रवृत्ति देने का कोई उत्तम तरीका अपनाया नहीं गया है सामान्यतः उस बालक को छात्रवृत्ति दी जाती है जो किसी परीक्षा मे ऊँचे अकों मे पास होता है। चूँकि परीक्षा मे अच्छे अक या तो ऊँचे धनी घराने के छात्र पाते हैं या शहरी विद्यालयो के छात्र इसलिए वे बालक जिन्होने तैयारी तो खूब की थी और जो छात्रवृत्ति पाने के अधिकारी भी थे इन छात्रवृत्तियों को पाने मे असमर्थ रहते हैं। अत छात्रवृत्ति देने का कोई अन्य उपयुक्त तरीका ज्ञात करना होगा जो न्यायोचित हो।

(ग) छात्रवृत्ति जिन बालकों को दी जाती है उनको किस विद्यालय में प्रवेश लेना है किस में नहीं इस बात का निर्णय छात्र पर ही छोड़ दिया जाता है। यदि छात्रवृत्ति देने के प्रोग्राम को सफल बनाना है तो यह भी निश्चित करना होगा कि उस छात्र को कहाँ प्रवेश दिया जाय जिसको छात्रवृत्ति मिली है।

(घ) छात्रवृत्ति के प्रोग्राम का प्रशासन उचित नहीं है। कुछ छात्रवृत्तियाँ छात्रों को उस समय दी जाती है जब वे शिक्षा का भार वहन न करने के कारण पढ़ना-लिखना छोड़ देते हैं। इसलिये छात्रवृत्ति प्रदान करने में किसी प्रकार का विलम्ब न होना चाहिए।

इन दोनों का परिहार करने के लिये निम्नलिखित सुझाव पेश किये जाते हैं।

(१) प्राथमिक विद्यालयों में उन योग्य छात्रों को छात्रवृत्ति दी जाय जो अच्छे विद्यालय के पास न होने अथवा आर्थिक कठिनाइयों के कारण उच्चतर प्राथमिक शालाओं में प्रवेश नहीं कर पाते। अच्छे लड़कों को अच्छे विद्यालयों में रखने की योजना तैयार करनी चाहिए।

(i) कक्षा ७-८ पास करने पर जिन छात्रों को छात्रवृत्ति मिलती है उनमें से बहुत कम ऐसे होते हैं जिन्होंने निम्नकोटि के विद्यालयों में शिक्षा पाई हो। अतः कक्षा ७-८ के बाद कोई योग्य छात्र शिक्षा लेना बन्द न कर दे इस उद्देश्य से श्रेष्ठतम ५% या १०% छात्रों को छात्रवृत्ति का आयोजन होना चाहिए।

(ii) प्रत्येक ब्लोक में एक बहुत अच्छा माध्यमिक विद्यालय तैयार किया जाय और इस स्कूल में उन्हीं छात्रों को प्रवेश दिया जाय जिनका निष्पादन सर्वश्रेष्ठ हो। इस स्कूल में छात्रावास की सुविधा भी हो।

(iii) मिडिल तथा हाईस्कूल स्तर पर प्रतिभा सम्पन्न छात्रों की छँटनी करने के लिये परीक्षण सेवा का संगठन किया जाय जिसके संचालक का काम राज्य के मूल्यांकन संगठन को सौंपा जाय।

(iv) प्रत्येक शिक्षा संस्था को ऐसे बच्चे छाँटने में सहायता दी जाय और उनकी आवश्यकताओं के अनुकूल उनकी पढ़ाई-लिखाई का प्रबन्ध हो।

(v) विश्वविद्यालीय-स्तर पर छात्रवृत्तियों की संख्या में वृद्धि की जाय छात्रवृत्ति देने में देर न की जाय, छात्रवृत्ति पाने वाले विद्यार्थियों की छँटनी करने के तरीकों में सुधार किया जाय, कर्ज के रूप में दी जाने वाली छात्रवृत्तियों की संख्या बढ़ाई जाय, विदेशों में शिक्षा पाने के योग्य छात्रों को छात्रवृत्तियाँ देने का समुचित प्रबन्ध किया जाय।

(vi) एक ही स्तर पर अलग-अलग छात्रों के लिये छात्रवृत्ति की मात्रा अलग-अलग हो। उदाहरण के लिये जो छात्र शहर में अपने माता-पिता के पास रहते हैं उनको उन छात्रों की तुलना में कम छात्रवृत्ति दी जाय जो छात्रावास में रहते हैं। छात्रवृत्ति पढ़ाई लिखाई के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष खर्च को बर्दाश्त करने योग्य होनी चाहिए।

(vii) राष्ट्रीय छात्रवृत्तियाँ जो केन्द्रीय सरकार द्वारा दी जाती हैं उनकी संख्या में वृद्धि की जाय और उनको छात्रों तक पहुँचने के तरीके में अधिक सरलता लाई जाय। छात्रवृत्ति के अधिकार पत्र (entitlement cards) जिनको शिक्षा मन्त्रालय छात्रों को देता है अब संस्थाओं के द्वारा दिये जायें जो परीक्षा लेती हैं। परीक्षा फल के साथ साथ विद्यार्थी को आवश्यक अधिकारपत्र भी दे दिये जायें तो छात्रवृत्ति मिलने में विलम्ब न होगा।

(viii) चूँकि राष्ट्रीय छात्रवृत्तियाँ (national scholarships) उन छात्रों को दी जाती है जो बाह्य परीक्षा में सम्पूर्ण राज्य में उच्चतम अंक पाते हैं लेकिन जैसा कि पहले कहा जा चुका है अच्छे स्कूलों में पढ़ने वाले छात्र ही इस स्कीम से लाभान्वित होते हैं अतः छात्रवृत्ति देने के तरीके में निम्नलिखित परिवर्तन करना होगा। सम्पूर्ण राज्य के स्कूलों को कुछ झुण्डों (clusters) में बाँट देना चाहिये। एक झुण्ड के सभी स्कूल छात्रों की सामाजिक आर्थिक, पृष्ठभूमि

(ix) विश्वविद्यालयों द्वारा दिये वजीफों की सख्या इस समय बहुत कम है। इस सख्या में वृद्धि की जानी चाहिए। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को विश्वविद्यालयों के पास काफी मात्रा में धनराशि इस काम के लिये दी जानी चाहिए।

स्नातकोत्तरीय स्तर पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, कृषि अनुसधान की भारतीय परिषद (Indian Council of Agricultural Research), अणुशक्ति आयोग (Atomic Energy Commission) ये तीन सस्थाएँ छात्रवृत्तियाँ प्रदान करती है लेकिन छात्रवृत्ति दी जाने वाले छात्रों की योग्यता, छात्रवृत्ति की मात्रा आदि मामलो पर कुछ विषमताएँ दिखाई देती हैं यदि शिक्षा मन्त्रालय के अधीन स्नातकोत्तरीय और शोध छात्रवृत्ति कमेटी बना दी जाय तो तीनो सस्थाओ के कार्यों मे सामजस्य पैदा किया जा सकता है।

विकलाग बालकों की शिक्षा

Q. 4. What has been done to improved the lot of the handicapped children in India ?

अधे, लूले, लंगडे, गूँगे, बहरे, हीन बुद्धि वाले बालको को विकलाग (handicapped) बच्चे कहते हैं। विकलाग (handicapped) बच्चो की शिक्षा का प्रबन्ध राज्य की उतनी ही बड़ी जिम्मेदारी है जितनी कि अन्य बच्चो की शिक्षा की। शिक्षा के माध्यम से ही ऐसा बच्चा अपने (handicap) पर विजय प्राप्त करता और समाज का उपयोगी सदस्य बनता है। सामाजिक न्याय भी यही चाहता है कि राज्य द्वारा समाज के सभी वर्गों के साथ समानता का व्यवहार किया जाय। इस दिशा में राज्य ने बहुत कम कार्य किया है और भविष्य मे भी उनसे आशाएँ कम ही हैं। लेकिन शिक्षा के इस क्षेत्र में सरकार को गम्भीर कदम उठाने हैं। हमें अन्य विकासशील तथा उन्नत देशों से बहुत कुछ सीखना है कि किस प्रकार उन्होंने अपने देश में इस समस्या का समाधान किया है।

इन बालको की शिक्षा व्यवस्था सामान्य बालकों की शिक्षा व्यवस्था से भिन्न होती है क्योंकि उनके लिए अध्यापन विधियाँ अपनाई जाती हैं वे सामान्यत· अपनाई गई अध्यापन विधियों से भिन्न होती हैं। लेकिन उनकी शिक्षा के सामान्य उद्देश्य वही होते हैं जो सामान्य बालक की शिक्षा के होते हैं। उनकी शिक्षा का मुख्य उद्देश्य होता है, सामाजिक-सास्कृतिक वातावरण के साथ उनका समायोजन स्थापित करना।

इस समय देश में स्कूली शिक्षा पाने योग्य २५ लाख बालक इस श्रेणी मे आते हैं: ४ लाख अधे, ३ लाख बहरे, ४ लाख लूले-लगडे, १४ लाख हीन बुद्धि के। नीचे दी गई तालिका से इन बालकों की शिक्षा व्यवस्था का अन्दाज लगाया जा सकता है।

छात्र	छात्र-सख्या	प्रतिशत	विद्यालय संख्या	प्रशिक्षण केन्द्र	प्रशिक्षित प्रतिवर्ष अध्यापक
अन्धे	५०००	१%	११५	३	३०—४०
बहरे	४०००	१%	७०	६	५०—६०
लूले-लगड़े	१०००	·३%	२५	—	—
हीनबुद्धि	२०००	·१%	२७	२	२०

इन विद्यालयो मे प्राथमिक शिक्षा के साथ-साथ गृहकार्य शिक्षा भी दी जाती है ताकि बालक बड़ा होकर समाज का उपयोगी अग बन सके। अन्धों की शिक्षा में सगीत, बहरों की शिक्षा

मे पूर्व व्यावसायिक शिक्षा पर जोर दिया जाता है। शिक्षा दी जाने वाले बालको का प्रतिशत देखने से पता चलता है कि हम लोग इस ग्रोर कितने उदासीन हैं।

विकलाग (handicapped) बच्चो की शिक्षा मे इतनी उदासीनता का सबसे बड़ा कारण है—प्रशिक्षित ग्रध्यापको ग्रौर धन की कमी। ग्रगली बीस वर्षो मे ग्राशा है कि सरकार १० प्रतिशत ऐसे बालको की शिक्षा का प्रबन्ध कर सकेगी। लेकिन इस शिक्षा के दो रूप होंगे विशिष्ट ग्रौर समान्वित। विशिष्ट शिक्षा उन बालकों को दी जाती है जिनको सामान्य बालकों से ग्रलग कर लिया जाता है। समान्वित शिक्षा से यद्यपि लाभ ग्रधिक है फिर भी उसकी ग्रोर ध्यान कम दिया गया है।

यदि सामान्य तथा ग्रसामान्य बच्चो की शिक्षा का प्रबन्ध एक ही स्कूल मे हो तो खर्च मे कमी ग्रा जायगी तथा इन दोनो वर्गों के बच्चो मे सदभाव पैदा हो जायगा। विद्यालय मे ऐसे बालक भी मिलते हैं जो ग्राशिक रूप से ग्रन्धे, तुतले, मस्तिष्क मे चोट खाये हुए तथा सांवेगिक ढग से विक्षुब्ध हों। इनकी विशिष्ट शिक्षा की ग्रोर न तो हमारा ध्यान ही गया है ग्रौर न हमने उनको ढूंढ निकालने का प्रयत्न ही किया है।

विकलाग बालको (handicapped children) की शिक्षा की उचित व्यवस्था के लिए कम से कम हमे १६५०० ग्रध्यापको की जरूरत है ग्रत प्रशिक्षण विद्यालयो की सख्या तथा उनमें प्रशिक्षण पाने वाले ग्रध्यापको की सख्या मे वृद्धि करनी होगी। केन्द्रीय तथा राज्यीय स्तर पर उन सभी सस्याग्रो के काम मे समन्वय पैदा करना होगा जो इस विशिष्ट शिक्षा मे हाथ बंटा रही हैं। ये संस्थायें हैं—शिक्षा मन्त्रालय, केन्द्रीय समाज कल्याण परिषद (central social welfare Board), स्वास्थ्य मन्त्रालय। इस क्षेत्र मे शोधकार्य करने के लिये राष्ट्रीय ग्रनुसधान तथा प्रशिक्षण परिषद (NCERT) को एक विभाग खोल देना चाहिए।

ग्रनुसूचित जातियों की शिक्षा

Q. 5. "The education of the backward class in general and of the tribal people in particular is a major programme of equalisation and social and national integration." Discuss.

यदि समाज के सभी ग्रगो को शिक्षा के समान ग्रवसर देने हैं तो पिछड़ी जातियों, ग्रनुसूचित जातियो (tribes) तथा खानाबदोशो की शिक्षा की उचित व्यवस्था करनी होगी। जहाँ तक ग्रनुसूचित जातियो का प्रश्न है, शिक्षा की समस्या काफी मात्रा मे हल हो चुकी है क्योकि ग्रस्पृश्यता का निवारण सभी राज्यों मे पर्याप्त मात्रा मे हो चुका है। इन जातियो के बालको की शिक्षा ठीक प्रकार से चल रही है। देश मे कुछ खानाबदोश ऐसे लोग हैं जो एक स्थान पर जमकर नही रहते। उनकी शिक्षा सम्बन्धी ग्रावश्यकताएं पूरी तरह उपेक्षित दृष्टि से देखी जारही हैं। उनकी शिक्षा का काम भी ग्रासान नही है। उनकी शिक्षा की उचित व्यवस्था तभी सम्भव है जब उनको एक स्थान पर बसाया जा सके। लेकिन यह काम कई वर्षों मे पूरा हो सकेगा इस बीच में उनके बच्चो की शिक्षा के लिए चलायमान उपकरण तैयार करने होंगे।

ग्रनुसूचित (tribes) ग्रधिकतर जगलो मे रहते हैं जिनमे घुसना ग्रसम्भव होता है ग्रौर जीवन ग्रत्यन्त कठिन। कुछ लोग दूसरे लोगो के साथ भी रहते हैं। लेकिन tribal people ग्रपने साथियो के साथ ही रहना ग्रधिक पसन्द करते हैं ऐसी परिस्थिति मे जबकि सभी tribals ग्रप्रवेश्य जंगलों में घुसने के लिए परिवहन के साधन जुटाने होंगे, जगलों मे शिकार करने की ग्रपेक्षा उनकी कृषि के उपयुक्त जमीन तैयार करानी होगी, उनके सामाजिक तथा ग्रार्थिक विकास के ग्रनुकूल शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी।

उनकी शिक्षा की समस्या की गम्भीरता उनकी जनसख्या के ग्रांकडो को देखकर लगाई जा सकती है प्रत्येक राज्य की जनसख्या के प्रतिशत ग्रांकड़े नीचे दिये गये हैं—

	मध्यप्रदेश	ग्रासाम	गुजरात	राजस्थान	बिहार	महाराष्ट्र	दक्षिणीबगाल	ग्रांध्र प्रदेश
राज्य की कुल जनसख्या का प्रतिशत—	२०·६%	१७·४%	१३·३%	११·५%	९·१%	६%	६%	३·७
कुल छात्रों का प्रतिशत—	९%	२०·९%	८·१%	१·९%	७·६%	३·४%	३·४%	१·९%

इस तालिका को देखने से पता चलता है कि विभिन्न राज्यों में राज्य की कुल जनसंख्या की तुलना मे tribals की जनसंख्या का प्रतिशत भिन्न-भिन्न है और उनके बच्चों की संख्या का प्रतिशत भी जो विद्यालयो में शिक्षा पा रहे हैं भिन्न है। उदाहरण के लिए मध्य प्रदेश मे आसाम की अपेक्षा tribal लोगो को शिक्षा के कम अवसर हैं अन्य राज्यो मे इन जातियो के बच्चो का राज्य के कुल बच्चों की प्रतिशत संख्या बहुत ही नगण्य है। इसका अर्थ है यह tribals शिक्षा की दृष्टि से बहुत पीछे हैं। उच्च शिक्षा तो इनके बच्चे बहुत कम संख्या में प्राप्त कर पाते हैं। जहाँ तक व्यावसायिक शिक्षा की बात है उनको ऐसी शिक्षा के अवसर सभी राज्यो मे काफी मात्रा मे दिये जा रहे हैं।

शिक्षा के सभी स्तरो पर इन लोगो की शिक्षा व्यवस्था मे प्रसार तथा सुधार लाना जरूरी है। प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र मे निम्नलिखित सुधार लाये जा सकते हैं—माता-पिता की शिक्षा पर पहले जोर दिया जाय। स्त्री शिक्षा को विशेष महत्व दिया जाय। क्योंकि स्त्रियाँ ही इस जाति के जीवन का महत्वपूर्ण अंग होती हैं। स्कूलों के अध्यापकों को इन लोगो की भाषा मे ही शिक्षा दें और प्रादेशिक भाषा की लिपि स्वीकार की जाय। तीसरी कक्षा मे प्रादेशिक भाषा ही शिक्षा का माध्यम हो। बहुत ही कम अपवाद क्षेत्रों मे आश्रम स्कूल खोले जायें जहाँ पर प्रवेश पाने के लिए छात्रो को आकर्षित किया जाय। स्कूल का प्रोग्राम वातावरण के प्रोग्राम से भिन्न न हो। छुट्टियाँ तथा लम्बी छुट्टियाँ कृषि और जगल मे काम के साथ बँधी हो। स्कूल चलने का समय वह हो जो बच्चे का फालतू समय होता है।

माध्यमिक शिक्षा के लिए छात्रावासो की विशेष जरूरत होगी। बुद्धिमान बालकों को प्राथमिक शालाओ से चुनकर इन छात्रावासो मे जगह दी जाय। उनकी अतिरिक्त पढाई का प्रबन्ध किया जाय ताकि वे non tribal बच्चो के साथ-साथ कक्षा मे चल सकें। इस स्तर पर भी आश्रम स्कूलों की व्यवस्था की जाय। इन बच्चो को मिडिल तथा उच्चतर माध्यमिक विद्यालयो मे प्रवेश पाने की कठिनाई हो तो शिक्षा विभाग उस कठिनाई को दूर करे। इन स्कूलो मे प्रवेश पाने के लिए जरूरत हो तो उन्हें अतिरिक्त शिक्षण दिया जाय। चूँकि इन बच्चो को व्यावसायिक विद्यालयों मे अधिक सफलता मिलती है इसलिए उनके लिए अधिक से अधिक इस स्तर पर ऐसे स्कूलो की व्यवस्था की जाय।

उच्च शिक्षा के लिए इन बच्चो को छात्रवृत्तियाँ निहायत जरूरी हैं। ये छात्रवृत्तियाँ महाविद्यालयो के प्रधान अध्यापको द्वारा निश्चित की जायें और बाँटी जायें।

इस समय Tribal people मे जागृति लाने की जरूरत है। इस जागृति के लिए उनमे से ही कुछ नेता तैयार करने होगे। यद्यपि उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद ये लोग शहर की ओर आकृष्ट होते हैं। फिर भी हमे उनके भीतर अपनी जाति का उत्थान करने का जोश पैदा करना होगा। Tribal uplift के लिए ये लोग ही अधिक सहायक हो सकते हैं।

Tribal education की समस्याओ का हल निकालने के लिए यह जरूरी है कि केन्द्र तथा उस राज्य की सरकार जिसमे Tribal population का प्रतिशत ऊँचा है ऐसे विभाग खोले जो इन जातियो की आवश्यकताओं का अध्ययन करे और उनके कल्याण हेतु उचित शिक्षा व्यवस्था का विकास कर सकें।

सरकार ने उसका समर्थन किया। इस प्रकार सन् १८५४ से पहले कम्पनी की सरकार ने कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया। इस वर्ष जिस शिक्षा सम्बधी घोषणापत्र का प्रकाशन हुआ उसमें स्त्रीशिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिये उसे राज्य शिक्षा व्यवस्था का एक अंग मान लिया। सन्देश पत्र मे यह इच्छा प्रकट की गई कि नारी शिक्षा को प्रोत्साहित करने लिये सभी प्रकार के प्रयत्न किये जांय और व्यक्तिगत चेष्टाओं को जो कि नारी शिक्षण मे व्यस्त हैं, प्रोत्साहन दिया जाय। इस प्रकार घोषणापत्र मे गैर-सरकारी शिक्षालयो को उदारतापूर्वक अनुदान देने की बात कही गई। फलस्वरूप अनुदान भी दिया गया किन्तु कम्पनी की सरकार का इस ओर विशेष ध्यान न होने के कारण स्त्रीशिक्षा मे उन्नति मन्द गति मे हुई। १८५६ मे लार्ड स्टेनले ने इस बात का समर्थन किया कि भारत मे स्त्रीशिक्षा की प्रगति अत्यन्त नगण्य है। सरकारी नव निर्मित शिक्षा विभाग ने स्त्रीशिक्षा की ओर कोई विशेष सक्रिय कदम नहीं उठाया है। सन् १८८२ तक स्त्रीशिक्षा की प्रगति में कोई विशेष उन्नति न होने के कई कारण थे। स्त्रीशिक्षा के उपेक्षित रहने, और उसकी उन्नति के मार्ग में बाधायें पैदा करने वाली बातें निम्न लिखित थी —

(१) भारतीय जनता स्त्रियो के लिये किसी प्रकार की शिक्षा के पक्ष मे न थी और उच्च शिक्षा से तो वह पूरी तरह घृणा ही करती थी।

(२) सरकार ने न कोई सीधा उत्तरदायित्व लिया था और न लड़कियो के लिये शिक्षालय ही खोले थे।

(२) उस समय बाल-विवाह की प्रथा अत्यन्त जोरो से प्रचलित थी। लड़कियों को अल्पायु मे ही विवाह करके उनके घर भेज दिया जाता था। पर्दा प्रथा लड़कियो के प्रति माता-पिता की ओर से उदासीनता का भाव स्त्री-शिक्षा मे रोड़े का कार्य कर रहा था।

(४) स्त्रियों के लिये नौकरी की कोई आशा न थी। ऐसी दशा मे उनके सामने अन्य कोई प्रेरक साधन प्रस्तुत न था।

(५) लड़कियों के स्कूल के अभाव उनके लिये विशेष पाठ्यक्रम की अव्यवस्था, भारतीय सामाजिक दृष्टिकोण आदि अन्य ऐसे कारण थे जो स्त्रीशिक्षा को विकसित न होने देते थे।

इतनी बाधाओ के होने पर भी कुछ उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्तियो ने तथा मिशनरियो ने सोचा कि बालिकाओ को शिक्षित करने मे कोई हानि नही। उनके प्रयत्नो के फलस्वरूप कलकत्ता, ढाका, हुगली, मथुरा, मैनपुरी, आगरा, बम्बई और अहमदाबाद मे विद्यालय खोले गये।

इस प्रकार लड़कियो के स्कूल खोलने मे नगर के रहने वालों का विशेष सहयोग था। कुछ बालिकायें उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये अग्रसर होने लगी। किन्तु उनकी संख्या अँगुलियों पर गिनी जा सकती थी। उदाहरण के लिये बेथून कालेज मे सन् १८७८ में केवल ६ छात्रायें थी। इस समय तक समस्त भारत मे १३४ माध्यमिक और १७६० प्राथमिक विद्यालय लड़कियो के लिये खोले गये। बेथून कालेज के अलावा कुछ और कालेज लड़कियो के लिये खोले किन्तु उनकी परीक्षा की कोई व्यवस्था न थी और उन्हे परीक्षा की अनुमति ही दी जाती थी। १८८१ और १८८३ मे मद्रास और बम्बई मे उन्हें उच्चतर परीक्षा देने की अनुमति सबमे पहले मिली। माध्यमिक एव प्राथमिक विद्यालयो मे भी स्त्रीशिक्षा का बुरा हाल था। लड़कियो के इन स्कूलों मे ऐंग्लोइण्डियन और पारसी छात्रायें ही प्रवेश लेती थी। हण्टर कमीशन के आने से पूर्व प्रशिक्षण विद्यालयो मे छात्राध्यापिकायें काफी सख्या मे थी-क्योकि-धर्म प्रचारक पादरियो ने प्रशिक्षित अध्यापिकाओं का महत्व स्वीकार कर लिया था। इसलिये केवल इसी क्षेत्र मे स्त्री शिक्षा कुछ अच्छी दशा मे थी। किन्तु प्रशिक्षण विद्यालयों का निर्माण भारतीय महिलाओं के हित को ध्यान

(२) धर्म परिवर्तित ईसाई स्त्रियों को अच्छा वेतन और सुन्दर जीवन प्रदान करने के लिये।

इन प्रशिक्षण संस्थाओं में कुलीन भारतीय महिलायें प्रवेश लेना अनुचित समझती थीं? क्योंकि इनमें बाइबिल का अध्ययन मुख्य था। धर्म प्रचारकों के इन प्रशिक्षण विद्यालयों को छोड़ कर देश में अन्य किसी सम्प्रदाय या वर्ग द्वारा ऐसे विद्यालय स्थापित नहीं किये। यहाँ तक कि सन् १८७० तक अंग्रेजी सरकार ने भी इस ओर कोई ध्यान न दिया। इस समय गैर सरकारी भारतीय प्रशिक्षण संस्थालय न खोले जाने का एक कारण और था। उस समय उच्च योग्यता वाले प्रधानाचार्य और अध्यापिकाओं का मिलना कठिन था। नारी प्रशिक्षण की व्यवस्था करने के लिये सरकार का ध्यान आकर्षित करने का श्रेय मिस मैरी कार्पेन्टर को जाता है। इस प्रसिद्ध समाज सेविका के प्रस्तावों पर ध्यान देकर गवर्नर जनरल Sir John Lorens ने स्त्रियों के लिये प्रशिक्षण विद्यालयों के निर्माण हेतु एक निश्चित धनराशि स्वीकृत कर दी। Miss Carpenter ने सुयोग्य महिला प्रधान अध्यापक के प्रभाव को दूर करने के लिये एक महिला विद्यालय के कार्य का संचालन अपने ऊपर ले लिया और व्यापक दृष्टिकोण वाले सभ्रांत व्यक्तियों की सहायता से इन विद्यालयों में लड़कियों को प्रवेश दिलाया। इस प्रकार स्त्रियों को प्रशिक्षित करने में Miss Carpenter को पथ प्रदर्शक समझना चाहिये।

इस समय सामान्य घराने के माता-पिता भी अपनी बालिकाओं का प्राथमिक कक्षाओं में भी सहशिक्षा दिलाने के पक्ष में न थे और वे यह भी बर्दाश्त नहीं कर सकते थे कि कन्या पाठशालाओं में पुरुष अध्यापक नियुक्त किये जायं। शिक्षिकाओं के अभाव में केवल वयोवृद्ध व्यक्तियों को ही नियुक्त किया जा सकता था।

१८५४ से १८८२ तक बालिकाओं के लिये बालकों के भिन्न पाठ्यक्रमों की माँग रही। बालिकायें विद्यालयों में लड़कों से कम समय तक शिक्षा ग्रहण करती हैं इसलिये उनका पाठ्यक्रम लड़कों से भिन्न होना चाहिये। साथ ही सीना-पिरोना लड़कियों के लिये आवश्यक है इसलिये इसे पाठ्यक्रम में विशेष स्थान दिया जाये। इन माँगों के होने पर भी कोई विशेष अन्तर पाठ्यक्रम में न किया जाये।

सन् १८८२ में हण्टर कमीशन ने स्त्री शिक्षा के विकास पर अधिक ध्यान दिया और कन्या पाठशालाओं को अधिक अनुदान देने का प्रस्ताव रक्खा। इस आयोग ने कहा कि सार्वजनिक कोष के उपयोग में बालक और बालिकाओं के लिये जो विद्यालय खोले गये हैं उनको समान रूप से सहायता दी जाय। सहायता अनुदान देने के नियम कन्या पाठशालाओं के लिये अत्यन्त सरल हों। बालिकाओं का पाठ्यक्रम बालकों से भिन्न रखा जाये। साहित्यिक विषयों का ज्ञान बालिकाओं के लिये इतना उपयोगी नहीं जितना बालकों के लिये। इसलिये साहित्यिक विषयों के स्थान पर लड़कियों के लिये प्रायोगिक ज्ञान देने की व्यवस्था की जाये। स्त्री-शिक्षा के प्रति लोग वैसे ही उदासीन हैं। ऐसी अवस्था में यदि लड़कियों से फीस ली गई तो उदासीनता और भी बढ़ जायेगी। अतः उन्हें अधिक छात्रवृत्तियाँ दी जायें और अनुदान का दर फीस पर आधारित न हो। माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में स्त्रियों की दशा अत्यन्त शोचनीय है। अतः उन्हें प्रोत्साहित करने के लिये विशेष सुविधायें दी जायें। महिला विद्यालयों का प्रबन्ध स्थानीय संस्थाओं को सौंपा जाए और जहाँ स्थानीय संस्थायें यह कार्य-भार लेने को तैयार न हों वहाँ सरकार ही उनका प्रबन्ध करे यदि समाज यह नहीं चाहता कि लड़कियों का अध्यापन पुरुषों से कराया जाये तो धीरे-धीरे पुरुषों के स्थान पर स्त्री शिक्षिकायें नियुक्त की जायें। स्त्रीशिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिये जनता का पूरा-पूरा सहयोग प्राप्त करने का प्रबन्ध किया जाये। बालिका विद्यालयों के निरीक्षण और प्रोत्साहन के लिये योग्यतम निरीक्षिकाओं की नियुक्ति की जाय। इस प्रकार भारतीय शिक्षा आयोग ने स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में व्यापक सुझाव दिये परन्तु दुर्भाग्यवश इन सुझावों में बहुत कम प्रस्ताव ही कार्यान्वित किये गए। सरकार ने शिक्षा आयोग के प्रस्तावों के आधार पर कन्या पाठशालाओं के लिये स्त्री निरीक्षिकाओं की नियुक्ति की और कुछ प्रशिक्षण विद्यालय भी स्त्रियों के लिये खोले। १८८२ से १९०२ की अवधि में प्राथमिक शिक्षा की प्रगति करने में कुछ कमी हुई। १९०२ में इन संस्थाओं में ३,४८,५१० छात्रायें थीं और १८८२ में यह संख्या केवल १२६,६२१ थी। सन् १९०२ में लगभग ७६ हजार लड़कियाँ बालकों के विद्यालयों में भी शिक्षा ग्रहण कर रही थीं। इस प्रकार प्राथमिक विद्यालयों में सहशिक्षा का प्रचलन भी प्रारम्भ हो गया। माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में सन् १९०२ में ४६१ माध्यमिक विद्यालय काम कर रहे थे और सन् ८२ में केवल ८१ ऐसे विद्यालय थे। लड़कियों की संख्या इस बीच में २०५४ से बढ़कर ४१,५८२ हो गई तथा मालूम पड़ता था कि अब

भारतीय लोग माध्यमिक शिक्षा को भी आवश्यक और उपयोगी समझने लगे । यही कारण था कि कन्या पाठशालाओं के निर्माण में सरकारी प्रयासों की तुलना में गैर सरकारी प्रयास अधिक थे । उच्च शिक्षा क्षेत्र में यद्यपि भारतीय शिक्षा आयोग ने स्त्रियों की शिक्षा के लिये काफी महत्वपूर्ण सुझाव रखे थे, किन्तु उनका कोई प्रभाव इस क्षेत्र में न पड़ा । सन् १६०२ तक कालेज में पढ़ने वाली केवल २६४ लड़कियाँ ही थी । उनमें भी केवल २८ हिन्दू लड़कियाँ थी और मुसलमान लड़की एक भी न थी ।

इस प्रकार १६ वी शताब्दी के अन्त तक स्त्री शिक्षा में कोई विशेष उन्नति किसी भी क्षेत्र में दिखाई न दी , इसका कारण था सरकार की उदासीनता का भाव । शिक्षा में जो कुछ प्रगति इस समय तक हुई उसका श्रेय Mission, आर्यसमाज, ब्रह्मसमाज, पारसी और अन्य गैर सरकारी प्रयत्नों को ही है ।

आधुनिक काल में स्त्री शिक्षा

Q 2. Trace the development of women's Education in India during the 20th century *(Agra B.T. 1959)*

स्वतन्त्रता से पूर्व स्त्री शिक्षा

Ans बीसवीं शताब्दी में स्त्री शिक्षा के इतिहास को दो कालों में विभाजित किया जा सकता है

(१) स्वतन्त्रता से पूर्व ।
(२) स्वतन्त्रता के बाद ।

२० वी शताब्दी के प्रारम्भ से ही स्त्रीशिक्षा की माँग बढ़ चली उदासीनता के स्थान पर जनता भी स्त्रीशिक्षा में अधिक रुचि लेने लगी और उसके मार्ग की बाधायें दूर होने लगीं । सरकारी शिक्षा विभाग ने भी स्त्री शिक्षा के लिये विशेष सान्त्वना देना प्रारम्भ किया । और लड़कियों के लिये अलग से स्कूल खोले जाने लगे । स्त्री शिक्षिकाओं और निरीक्षिकाओं की अधिक से अधिक नियुक्ति की । घर से स्कूल लाने और पहुँचाने के लिये सवारियों का प्रबन्ध

पर भी जोर दिया ।

राष्ट्रीय भावना के विकास के साथ-साथ स्त्री शिक्षा पर अधिक ध्यान दिया गया । महात्मा गाधी ने स्त्रीशिक्षा की आवश्यकता पर विशेष रूप से ध्यान दिलाया । इधर समाज में भी स्त्रियों की दशा में काफी सुधार हुआ । बाल-विवाह की प्रथा काफी मात्रा में रुक गई । इसलिये लड़कियों को अधिक दिनों तक शिक्षा प्राप्त करने का मौका मिलने लगा । परदा प्रथा का विरोध

आगे नही बढ सकता ग्रत दोनों की शिक्षा ग्रावश्यक है। इस सन्तुलन को स्थापित करने के लिये हर्टाग समिति ने १९२९ मे निम्नांकित उपायों का उल्लेख किया ·

(१) प्राथमिक शिक्षा मे लडकियों को पढाने की व्यवस्था लडकों के साथ की जाय।

(२) लडकियों को गृह विज्ञान, सगीत स्वास्थ्य ग्रौर, सफाई की शिक्षा का प्रबन्ध माध्यमिक कक्षाग्रो में ग्रलग कर दिया जाय।

(३) उच्च शिक्षा में लडकियो का पाठ्यक्रम लडकों से भिन्न रक्खा जाय। लड़कियों को विशेष ग्रौद्योगिक शिक्षा की ग्रावश्यकता थी।

(४) लडकियो की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाय ग्रौर उनकी शिक्षा का महत्व लडको की शिक्षा से कम न समझा जाये।

(५) लडकियो के लिये शिक्षा धीरे-धीरे ग्रनिवार्य कर दी जाय।

(६) स्त्री शिक्षा प्रसार के लिये एक सुन्दर, सुदृढ योजना बनाई जाये ग्रौर प्रत्येक प्रान्त में एक योग्य महिला के हाथों मे यह कार्य भार सौंपा जाये।

(७) निरीक्षिकाग्रो की सख्या बढा दी जाये।

(८) ग्रध्यापिकाग्रों को ग्रधिक वेतन दे कर उन्हे इस क्षेत्र मे ग्राकर्षित किया जाए। देहात मे जाने वाली ग्रध्यापिकाग्रो को ग्रधिक सुविधा दी जाय। यदि उन्हे ग्रधिक सुविधा न दी जायेगी तो ये देहात मे रहना पसन्द न करेंगी।

(९) स्थानीय सस्थाग्रो ग्रौर स्त्रीशिक्षा समितियो मे स्त्रियों का प्रतिनिधित्व हो।

हर्टाग समिति की इस रिपोर्ट के बाद स्त्री शिक्षा क्रमश उन्नति करती रही। धीरे-धीरे स्त्रियाँ भी स्वय ग्रधिक सचेत ग्रौर जागृत होने लगी। उनकी बैठको ग्रौर परिषदों की सख्या दिन पर दिन बढने लगी। सन् १९२७ में ग्रखिल भारतीय महिला परिषद् की पहली बैठक हुई। ग्रध्यक्ष पद से भाषण देते हुए रानी साहिबा साग्ली ने कहा—"एक ऐसा समय था जब भारत मे स्त्रीशिक्षा के न केवल कोई समर्थक ही थे वरन् उसके शत्रु भी थ। भारत में स्त्रीशिक्षा पूरी तरह से घृणा, उदासीनता, व्यग्य, ग्रालोचना ग्रौर स्वीकृति इन सभी स्तरो से गुजरी है।" इस प्रकार महिला परिषदें स्त्री शिक्षा के क्षेत्र मे उन्नति के लिये प्रयत्नशील हैं। भारत को स्वतन्त्रता मिलने के पूर्व स्त्री शिक्षा का विकास काफी तीव्र गति से हुग्रा। सन् १९४५-४६ मे ब्रिटिश भारत मे ६४ कला ग्रौर विज्ञान कालेज, १९ व्यावसायिक कालेज, १४५५ माध्यमिक स्कूल, २१५६७ प्राथमिक स्कूल केवल लडकियो के लिये खोले हुए थे जिनमे कुल मिलाकर ४० लाख से ऊपर लडकियाँ शिक्षा पा रही थी। इनके ग्रतिरिक्त लडको के शिक्षालयों मे भी बहुत सी लडकियाँ शिक्षा प्राप्त कर रही थी। परन्तु लडको ग्रौर लडकियो की शिक्षा मे जिस वैषम्य की ग्रोर हर्टाग समिति का ध्यान था वह वैषम्य बना ही रहा ग्रौर ग्राज भी है। इसके कई कारण हैं

(१) यद्यपि भारत के विधान मे स्त्री ग्रौर पुरुष दोनो को समान ग्रधिकार दिया है किन्तु सामाजिक परिस्थितियों के कारण स्त्री शिक्षा के मार्ग मे ग्रनेक बाधायें हैं।

(२) ग्रामीण क्षेत्रो मे शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं है। ग्रामीण क्षेत्रों से शहरों मे जाकर पढ सकती हैं।

(३) उनका पाठ्यक्रम ग्रभी पाश्चात्य रग मे रगा हुग्रा है। भारतीय परम्परा के ग्रनुसार ग्रादर्श गृहिणी बनाने मे यह पाठ्यक्रम उनकी सहायता नहीं करता।

(४) राष्ट्रीय सरकार ने स्त्री शिक्षा के लिये कोई स्तुत्य प्रयत्न ग्रारम्भ नहीं किया है ग्राशा है निकट भविष्य मे वह इस ग्रोर ग्रधिक ध्यान देगी।

स्वातन्त्र्योत्तर स्त्रीशिक्षा का इतिहास

स्वतन्त्रता पाने के बाद स्त्री शिक्षा की ग्रोर देश ने विशेष ध्यान देना ग्रारम्भ कर दिया पिछले दस वर्षों मे इस दिशा में सन्तोषजनक प्रगति दो प्रकार से हुई। स्त्रियों के लिये शिक्षण हेतु सस्थाग्रो की सख्या में वृद्धि, ग्रौर सहशिक्षा के प्रचलन के कारण स्त्रीशिक्षा काफी प्रगति कर रही है। इस समय लडकियों के लिये एक विश्वविद्यालय ११५ महाविद्यालय, ३४ व्यावसायिक कालेज, ७१० ग्रौद्योगिक विद्यालय ग्रलग से स्थापित हो चुके हैं। प्राथमिक एव उच्च शिक्षा मे सहशिक्षा का प्रचलन है। प्रथम पचवर्षीय योजना मे नियोजन ग्रायोग (Planning Commission) ने स्त्रीशिक्षा की ग्रोर विशेष ध्यान दिया। स्त्रीशिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिये कई तरह की सुविधायें प्रदान की गई। सन् १९५८ मे श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख की

दुर्गाबाई देशमुख की अध्यक्षता में जो समिति स्त्रीशिक्षा पर आयोजित की गई थी, उसने स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिये इसके लिये अलग व्यवस्था करने, स्त्री शिक्षा को देश की विशेष समस्या समझ कर तदनुसार कार्य करने और दूसरी और तीसरी पंचवर्षीय योजनाओं में स्त्री शिक्षा के लिये अधिक आर्थिक सहायता देने की सिफारिश की है। भारतीय सरकार ने भी इन सिफारिशों को स्वीकार कर लिया है एवं स्वतन्त्र और शक्तिशाली परिषद् की नियुक्ति कर दी गई है जो सम्पूर्ण भारत की स्त्री शिक्षा की देखरेख कर सके। इस परिषद् को विशेष अधिकार व धनराशि सौंप दिये गये। सामान्य शिक्षा के अतिरिक्त व्यावसायिक और Technical, प्रारम्भिक और उच्च सैनिक शिक्षा देने की सुविधाएं आरम्भ कर दी गई। श्रीमती नाथीबाई दामोदर थैकर से महिला विश्वविद्यालय भारतीय महिलाओं के लिये उपयोगी एवं योग्य शिक्षा का प्रबन्ध कर रहे हैं। बड़ौदा विश्वविद्यालय ४ वर्ष के पाठ्यक्रम के पश्चात् गृह विज्ञान की डिग्री प्रदान कर रहा है। Lady Irwin College Delhi यह तीन वर्ष का विज्ञान का पाठ्यक्रम प्रस्तुत करता है। इस प्रकार भारतीय महिलाओं के लिये उपयोगी उच्च शिक्षा का प्रबन्ध भी किया जा रहा है।

आज जिन संस्थाओं में स्त्रियों को शिक्षा मिल रही है वह शिक्षा कई प्रकार की है और उसमें कई प्रकार के विषय पढ़ाये जाते हैं। स्कूल स्तर पर सामान्य, व्यावसायिक, औद्योगिक और विशेष शिक्षा का प्रबन्ध किया गया है। पूर्व प्राइमरी, माध्यमिक विद्यालयों में सामान्य शिक्षा का प्रबन्ध है। इसके साथ ही साथ कृषि, वाणिज्य, इन्जीनियरिंग, चिकित्सा, शारीरिक शिक्षा शिक्षक प्रशिक्षण आदि विषयों का शिक्षण व्यावसायिक और मौलिक विद्यालयों में होता है। इसके अलावा संगीत, नृत्य, एवं अन्य ललित कलाओं के अध्ययन, अपाहिजों की तीमारदारी, सामाजिक शिक्षा, सुधार कार्य, गृहविज्ञान प्राच्य भाषा अध्ययन, सामाजिक कार्यों के अध्ययन के लिये अलग से स्कूल स्तर पर शिक्षा दी जाती है। कालेज स्तर पर इण्टरमीडिएट, डिग्री, पोस्ट डिग्री अनुसंधान कार्य (Research) में स्त्रियाँ शिक्षा पा रही हैं। कृषि, वाणिज्य, इजीनियरिंग, कानून, पशु-चिकित्सा, आदि विषयों की शिक्षा देने का कालेजों में भी लड़कियों के लिये प्रबन्ध किया जा चुका है। कालेज स्तर पर गृह विज्ञान, और सिलाई, संगीत, नृत्य तथा अन्य ललित कलाओं, प्राच्य भाषा तथा सामाजिक शास्त्र के अध्ययन के लिये विशेष प्रबन्ध किया गया है।

निरक्षर स्त्रियों को साक्षर बनाने और इनमें नागरिकता के प्रति प्रेम पैदा करने के लिये सामाजिक शिक्षा का प्रबन्ध किया गया है। इस प्रकार राष्ट्रीय सरकार स्त्रीशिक्षा के विकास के लिये यथासाध्य प्रयास कर रही है।

स्त्री शिक्षा की समस्यायें

Q 3 What are the major problems of women's education in India? Give your suggestions for solving them

(Agra B. T. 1956, 1960)

Enumerate the causes for the backwardness of women's education in India, what measures should the government and people take to remove them?

(B.T. 1954)

Ans. स्त्री शिक्षा का महत्व—भारत में स्त्री शिक्षा का महत्व इतना अधिक है कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। देश की मानवीय शक्तियों का पूर्ण विकास, घर गृहस्थी का वांछित विकास तथा शैशवावस्था में बालचरित्र का विकास तभी सम्भव है जबकि देश की मातायें सुशिक्षित तथा सर्वगुण सम्पन्न हों। वर्तमान प्रगतिशील देशों में स्त्री समाज का महत्व न केवल घर गृहस्थी की देखभाल करने और बच्चों के पालन पोषण करने में ही माना जाता वरन् आज का शिक्षित स्त्री समाज पुरुष वर्ग के साथ कन्धा भिड़ाकर चलने के लिये उद्यत हो रहा है। समाज का विकास सम्भव है जब स्त्री वर्ग अपनी जिम्मेदारियों और उत्तरदायित्व को समझने लगें और यह तभी सम्भव है जब हमारा स्त्री समाज पूर्ण रूप से सुशिक्षित हो।

स्वतन्त्रता संग्राम में भारतीय महिलाओं ने जो योगदान दिया है उसके लिये भारत राष्ट्र उनका चिर ऋणी रहेगा राष्ट्र इस ऋण को तभी चुका सकता है जब वह अपने स्त्री समाज को उसी मात्रा तक की सुविधायें प्रदान करे जिस मात्रा तक वह पुरुष वर्ग को प्रदान कर रहा है। हमें आशा है कि, जिस प्रकार स्त्री वर्ग ने स्वतन्त्रता संग्राम में पुरुष वर्ग का हाथ बटाया है उसी प्रकार समाज का यह अंग देश में अज्ञानता गरीबी भूख और बीमारी के विरुद्ध लड़ी जाने वाली

लडकियों मे पूर्ण सहयोग देगा ; परन्तु यह तभी सम्भव है जब हमारी लडकी और माताओ को शिक्षा की सभी सुविधायें उपलब्ध हो ।

भारत मे स्त्री शिक्षा के इतिहास का अध्ययन करने से पता चलता है कि उसमे स्त्री शिक्षा की सदियो से अवहेलना की गई है । ब्रिटिश काल मे न तो बालिकाओ की शिक्षा की उचित व्यवस्था ही की गई और न उनके लिये किसी प्रकार की उचित सुविधायें ही प्रदान की गई । इतना होने पर भी स्त्री शिक्षा की मांग दिन पर दिन बढ़ती गई पर उसकी अपनी समस्याओ की उपस्थिति के कारण विशेष उन्नति न हो सकी । ये समस्यायें निम्नलिखित हैं—

१. आर्थिक—स्त्री शिक्षा प्रसार की सबसे बडी समस्या आर्थिक है । यदि स्त्रियो के लिये विद्यालयों की संख्या मे वृद्धि की जा जाती है तो धन चाहिये । अब तक भारत मे स्त्री शिक्षा पर जो धनराशि खर्च की जाती है अत्यन्त ही अल्प है क्योकि भारत मे स्त्री शिक्षा पर कोई महत्व नही दिया जाता । बालको की शिक्षा को बालिकाओ की शिक्षा से अधिक महत्व दिया जाता है । ब्रिटिश काल मे तो स्त्री शिक्षा की यही दशा रही । स्वातन्त्र्योत्तर-काल मे इस स्थिति मे विशेष परिवर्तन नही हुआ । यद्यपि प्रजातन्त्रात्मक शासन मे स्त्री शिक्षा को विशेष महत्व दिया जाने लगा है पर उसके प्रसार की ओर अब तक विशेष ध्यान नही दिया गया । प्रत्येक दशा मे रुपये का अभाव व उत्साह की कमी दिखाई देती है । हमे बदलती हुई परिस्थितियो के अनुसार स्त्री शिक्षा की ओर उतना ही ध्यान देना होगा जितना कि पुरुषो की शिक्षा की ओर देते है । हटांग कमेटी ने भी इस सत्य की पुष्टि करते हुए इस बात पर बल दिया है कि भारत मे शिक्षा प्रसार की प्रत्येक योजना मे आने वाले वर्षों मे स्त्री शिक्षा को प्राथमिकता देनी होगी ।

२. विद्यालयों की व्यवस्था—स्त्रीशिक्षा के लिये वर्तमान स्कूलो की कमी तथा उनकी असंतोषजनक स्थिति खलने वाली बात है । प्राथमिक शिक्षा के लिये भी बालिकाओ के विद्यालय बहुत कम है और प्राय सभी प्रदेशो मे बालिकाओ को बालको के विद्यालयो मे विद्या प्राप्त करने के लिये जाना पडता है । प्राथमिक विद्यालयो की स्थिति तो बहुत ही असंतोषजनक है । बालिकाओ के ३८% प्राथमिक विद्यालयो मे एक ही अध्यापिका काम करती है साथ ही इन विद्यालयो मे अपव्यय तथा स्थिरता की मात्रा बहुत अधिक है । बालिकायें विद्यालय मे बहुत कम समय के लिये रह सकती हैं क्योकि घर के कामकाजो मे उन्हे लगा रहना पड़ता है । माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र मे भी ४०% बालिकाओ को ऐसे विद्यालयों मे शिक्षा ग्रहण करनी पडती है जहां बालको की प्रधानता रहती है । फलत उनका व्यक्तित्व संकुचित रह जाता है ।

इस प्रकार स्त्रीशिक्षा की पुनर्व्यवस्था होनी चाहिये । यह तभी हो सकता है जब प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च शिक्षा स्तर तक समुचित संगठन हो और शिक्षा मे अपव्यय तथा स्थिरता को कम करने का प्रयत्न किया जाय ।

३. पाठ्यक्रम—बालिकाओ के पाठ्यक्रम की समस्या गम्भीर समस्या है । अब तक बालक और बालिकाओं की शिक्षा का क्रम एक सा ही रहा । अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली ने भारतीय नारी शिक्षा को भारतीय संस्कृति से दूर हटाकर पाश्चात्य देशो की संस्कृति को अपनाने के लिये बाध्य कर दिया है । वर्तमान नारी शिक्षा पुस्तकप्रधान, ज्ञान प्रधान तथा अव्यावहारिक है । यह बालिकाओ का समाज की मांग के अनुकूल अपने को बनाने की क्षमता प्रदान नहीं करती । जीवन की वास्तविकताओं से दूर हटा कर उन्हें जीवन के अनुपयुक्त बनाती है । जिस प्रकार के दोष बालको की शिक्षा मे आने लगे हैं उसी प्रकार के दोषों से नारी शिक्षा भी आकुल हो गई है । यह भी भारतीय नारी के पारिवारिक जीवन को छिन्न-भिन्न करके उसे बेकार बना रही है । यह सब दोष केवल इसलिये आ गये हैं कि नारीशिक्षा का पाठ्यक्रम उनके उपयुक्त नहीं है ।

पाठ्यक्रम का उचित संगठन तभी हो सकता है जब पाठ्यक्रम निर्मित करने वाला समुदाय बदलती हुई सामाजिक आर्थिक परिस्थितियो का ध्यान मे रखकर नारी शिक्षा के उद्देश्यों के अनुसार पाठ्यक्रम का संगठन करे । नारी शिक्षा का उद्देश्य उनके [illegible] बनाने की योग्यता पैदा करना नहीं है । उनकी शिक्षा तो इस प्रकार की हो कि मानवजीवन अधिक सुखी, सुन्दर और उन्नत बन सके । स्त्री और पुरुषों की समानता का यह अर्थ [illegible] । [illegible] नारी शिक्षा के [illegible] रहा है । [illegible] समाज मे नारी [illegible] गृह है । नारी इस गृह की स्वामिनी है । गृह अथवा परिवार का [illegible]

सकता यदि उसकी सचालिका उससे बाहर चली जाय। यह जरूरी नहीं कि नारी और पुरुष दोनो ही एक-सा कार्य करें। नारी को अपने गौरवपूर्ण उत्तरदायित्व को सँभालना होगा। वह है मनुष्य का सृजन। यह सृजन कार्य सन्तानोत्पत्ति के साथ समाप्त नही होता। जब तक नारी जीवित है तब तक मानव का उन्नत बनाने का दायित्व उसी पर है। इसके पश्चात् वह और कार्य कर सकती है। इस दृष्टिकोण को सामने रखकर हमें स्त्री शिक्षा के पाठ्यक्रम का पुनर्गठन करना है।

द्वितीय खेर कमेटी और सार्जेण्ट रिपोर्ट मे स्त्री शिक्षा के पाठ्यक्रम मे गृहविज्ञान की शिक्षा पर जोर दिया गया है। इसी दृष्टिकोण के पक्षपाती डी० के० कर्वे ने अखिल भारतीय महिला विश्वविद्यालय की और अखिल भारतीय महिला परिषद ने लेडी इरविन कालेज की स्थापना की है। गृह विज्ञान के अतिरिक्त भारतीय कला जैसे नाटक, ड्रामा, सगीत, चित्रकला आदि का भी पाठ्यक्रम मे समावेश किया जा सकता है।

४. प्रशिक्षित स्त्री-अध्यापकों का अभाव—स्त्रीशिक्षा के प्रसार मे प्रशिक्षित स्त्री अध्यापको की विशेष कमी है। इसके निम्नलिखित कारण हैं।

(१) स्त्री शिक्षिकाओ के प्रशिक्षण के लिये प्रशिक्षण सस्थाओं की कमी है। ऐसी दशा मे केवल उन्हीं नगरों मे वे प्रशिक्षण प्राप्त कर सकती हैं, जिनमे वे रहती अथवा उनके सम्बन्धी रहते हैं नगरो मे स्त्री छात्रावासो की व्यवस्था ठीक न होने के कारण अपने शहर या स्थान से वे दूर जाना नही चाहती।

(२) प्रशिक्षण हो जाने पर बहुत सी शिक्षिकायें विवाहित होने पर पारिवारिक जीवन व्यतीत करती हैं।

यदि प्रशिक्षित स्त्री शिक्षिकाओ के अभाव को कम करना है तो उन्हें ट्रेनिंग की सुविधायें देनी होंगी। महिला शिक्षिकाओ के लिये अथवा प्रशिक्षण महाविद्यालय खोलने होंगे जिनमे गृह विज्ञान सगीत और चित्रकला का प्रशिक्षण किया जा सके। समाज मे इस समय यह धारणा कि अध्यापन कार्य निन्दनीय है, कम किया जाय, ताकि प्रशिक्षित नारियाँ शिक्षक बनने मे अपना गौरव समझें। विवाहित अध्यापिकाओं को आवश्यक और विशेष सुविधायें दी जायें। उनको अपने स्थान से दूर न भेजा जाय।

५. स्त्री शिक्षाक्षेत्र में आदर्श नारी नेतृत्व का अभाव—स्त्री शिक्षा प्रसार की जिम्मेदारी इस समय पुरुषो पर है। व्यक्ति प्रशासन कार्य मे महिला अधिकारी वर्ग की विशेष कमी है। यह तभी हो सकता है जब योग्य महिलाओ की अधिकारी वर्ग के रूप मे नियुक्ति की जाय।

स्त्री शिक्षा को अन्य समस्यायें—स्त्री शिक्षा की समस्या पर अब तक कई बार विमर्श हो चुका है। इस प्रसग में तीन कमेटियो के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

(अ) स्त्री शिक्षा पर राष्ट्रीय कमेटी जिसकी अध्यक्षा श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख थी।

(ब) लडके और लडकियो की शिक्षा के लिये पाठ्यक्रम के विभेदीकरण के लिये नियुक्त की गई कमेटी जिसकी अध्यक्षता थी श्रीमती हसा मेहता।

(स) श्री भक्तवत्सलम् की अध्यक्षता मे नियुक्त कमेटी जिसने देश मे सहशिक्षा के अनुसार कम विकसित राज्यो की स्त्री शिक्षा सम्बन्धी शिक्षा का विश्लेषण किया था।

इन तीनो कमेटियो ने स्त्री शिक्षा को जिन समस्याओं का विश्लेषण किया था और उन समस्याओ के निदान के लिये जो सुझाव दिये थे उनमे से कुछ का उल्लेख नीचे किया जाता है।

(१) आगे आने वाले कुछ वर्षों मे ऊपर जिन समस्याओं का उल्लेख किया है उनका सामना करने के लिये राष्ट्र को ठोस कदम उठाने चाहिये तभी समाज के दोनों वर्गों के बीच शिक्षा सम्बन्धी असमानता दूर की जा सकती है।

(२) एतदर्थ ऐसी योजनायें तैयार की जानी चाहिये जिनमे यह वैषम्य शीघ्र ही दूर किया जा सके। यदि इन योजनाओ की पूर्ति के लिये जितने भी धन की आवश्यकता हो केन्द्र और राज्य की सरकारें उसे जुटाने का प्रयत्न करें।

(३) केन्द्रीय तथा राज्यीय दोनो स्तरो पर ऐसी मशीनरी का निर्माण हो जो लड़कियो

(२) लड़कियों के लिये छात्रावासों का प्रबन्ध होना चाहिये और उनको एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाने के लिये परिवहन के सस्ते अथवा निःशुल्क साधनों का प्रबन्ध होना चाहिये।

(३) छात्रवृत्ति देने समय लड़कियों का विशेष ध्यान रखना चाहिये।

(४) चूंकि इस आयु की लड़कियाँ घर-गृहस्थी के कार्यों में बड़ा हिस्सा लेती हैं इसलिये उनको स्कूल जाने से रोक दिया जाता है, अतः ऐसी लड़कियों के लिये Part time Education प्रारम्भ कर देना चाहिये, उनके लिये भिन्न-भिन्न पेशों की शिक्षा देनी चाहिये। इस आयु में गृह विज्ञान की शिक्षा उनके लिये बहुत लाभप्रद होगी।

उत्तर प्रदेश की पुनर्व्यवस्था योजना तथा उसका स्त्री शिक्षा पर प्रभाव

Q 4 Describe the orientation scheme of education recently introduced in Uttar Pradesh and its impact on girls education

(L. T. 1955)

Ans उत्तर प्रदेश की सरकार ने जुलाई १९५४ में एक नई योजना चालू की थी, जिसको शिक्षा पुनर्व्यवस्था योजना (Reorientation of Education scheme) कहते हैं। इस योजना के मूल में महात्मा गांधी का यह विचार निहित है कि शिक्षा ही सच्ची स्वतन्त्रता प्रदान करने वाला साधन है। यह स्वतन्त्रता आर्थिक सामाजिक और आध्यात्मिक हो सकती है, अतः राज्य की शिक्षा को अधिक सामर्थ्यवान् बनाने के लिए, एक राज्य की आर्थिक दशा सुधारने के लिए शिक्षा का केन्द्र कृषि मान लिया गया। इस योजना के अनुसार प्रत्येक जूनियर हाईस्कूल अथवा सेकेण्डरी हाईस्कूल को ५ से १० एकड़ तक का फार्म रखने का आदेश दिया गया। यह भूमि गाँव वालों से दान स्वरूप ली जाती थी। जिन क्षेत्रों में भूमि मिलना असम्भव था उन में हस्तकौशल अथवा कुटीर उद्योगों को अधिक महत्व दिया गया।

विद्यालय के फार्म की बात को एवं शिक्षकों के श्रम पर आश्रित करके उन्नत करने का आदेश दिया गया। प्रत्येक बालक इस फार्म में दो घण्टे कार्य कर पशुपालन, उद्यानकला एवं वनविज्ञान की शिक्षा पा सकता था। पहाड़ी भागों में उद्यानकला और मधुमक्खी पालन तथा मैदानी भागों में कृषि विज्ञान पर अधिक जोर दिया गया। विद्यालय को ग्राम विकास का केन्द्र मान लिया गया जहाँ पर आधुनिक कृषि विधियों का शिक्षा एवं प्रदर्शन सम्भव हो सकता था।

प्रत्येक जूनियर हाईस्कूल सामाजिक केन्द्र में बदला जाने को था। उस पर अपने अधीनस्थ सामाजिक क्षेत्र को आर्थिक, सामाजिक एवं कृषि सम्बन्धी उन्नति का कार्य करने का भार सौंप दिया गया। यह मान लिया गया कि प्रत्येक विद्यालय अपने फार्म को सहकारिता के सिद्धान्तों पर चलाकर सामाजिक जीवन के एक व्यवहार की तरह कार्य करेगा। वाचनालय, पुस्तकालय और अन्य मनोरंजन के साधनों द्वारा स्कूल का समाज से घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित कर वह ग्रामीण विकास सेवा का केन्द्र बन सकेगा यह मान लिया।

विद्यार्थियों में नेतृत्व के गुणों का विकास करने के लिये प्रत्येक गाँव में एक युवक दल की स्थापना की गई। इस प्रकार बालक के सम्पूर्ण जीवन को शिक्षा के अन्तर्गत लाने का प्रयास किया गया। युवक दल का नेता विद्यार्थियों का प्रतिनिधि और प्रसार शिक्षक उनका सलाहकार माना गया। दल के प्रत्येक सदस्य को कुछ न कुछ वैयक्तिक उत्पादन का कार्य करना अनिवार्य रखा गया। युवक दलों के सामाजिक कार्यों में आग बुझाना, टिड्डियों को नष्ट करना, फसलों को कीड़ों से बचाना, कृषि प्रदर्शनी का प्रबन्ध करना आदि सम्मिलित किये गये।

इस योजना की सफलता का अधिकांश उत्तरदायित्व प्रसार-शिक्षक पर रखा गया। वह सम्पूर्ण योजना की धुरी मान लिया गया। उसका सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन को ग्रामों के अनुकूल ढालने, कार्य-भार अच्छी तरह सम्पादित करने तथा संगठन एवं नेतृत्व करने की शक्तियों का होना अनिवार्य माना गया। सन् १९५४ में २४०० ऐसे प्रसार शिक्षक नियुक्त किये गये। प्रति १० प्रसार शिक्षकों का कार्य निरीक्षण करने के लिए एक प्रसार निरीक्षक रखा गया। प्रसार निरीक्षक का कार्य कृषि सम्बन्धी ज्ञान को विभिन्न विभाग विशेषज्ञों से लेकर प्रसार शिक्षकों तक पहुँचाना था।

अध्याय १५

भारत में धार्मिक शिक्षा

Q 1. Give a historical Review of religious Education in India.

(Agra B. T. 1954)

Ans. धार्मिक शिक्षा धार्मिक चेतना का आधार है । मनुष्य की प्राकृतिक भावनाओं से धार्मिक भावना प्रमुख होती है । अतः यदि उसका पूर्ण विकास करना है तो शारीरिक एवं मानसिक शिक्षा के साथ-साथ धार्मिक शिक्षा भी उतनी ही आवश्यक है । वर्तमान युग में शारीरिक सुख की सामग्रियों की बहुलता के कारण मनुष्य का सारा कार्य कलाप सामाजिक एवं स्वार्थमय बन गया है, उसमें धार्मिक चेतना कुण्ठित हो गई है उसे पुन. जीवित करने का एक मात्र उपाय यह है कि धार्मिक प्रवृत्ति फिर से जाग्रत की जाय ।

प्राचीन काल में धर्म सामाजिक एवं सास्कृतिक सगठन का स्रोत था । विश्व-बधुत्व का पाठ पढाने में धर्म ही अग्रणी था किन्तु आजकल सामाजिक सगठन ही बदल चुका है । नवीन विचारधाराएँ उसे प्रभावित कर रही हैं । सामाजिक अनुशासनहीनता प्राचीन बधनों को खोल रही है । प्राचीन सास्कृतिक तत्वों में परिवर्तन आ रहा है । विद्यार्थियों में नैतिक विचारों की कमी हो रही है जिस पर वे अपने चरित्र का निर्माण कर सकें । इसका प्रमुख कारण यह है कि उनको किसी प्रकार की नैतिक या धार्मिक शिक्षा नहीं दी जाती ।

प्राचीन भारत मे शिक्षा और धर्म का घनिष्ट सम्बन्ध था । वास्तव मे शिक्षा धर्म पर ही आधारित थी । वैदिक और बौद्धिक काल मे तो धर्म-प्रचारक ही शिक्षक थे । उन्ही के आश्रमों अथवा मठो मे रहकर छात्र विद्याध्ययन करते थे। उन आश्रमो का सारा वातावरण धार्मिक भावना से ओत-प्रोत था । शिक्षण विधि और पाठ्यक्रम दोनों धर्म पर आधारित थे । धार्मिक क्रियाएँ जो शिक्षा के प्रारम्भ से की जाती थी, शिक्षण काल में जो व्रत लिये जाते थे, प्रातः एव सायकाल मे जो प्रार्थनाएँ की जाती थीं, गुरु गृहों में जो हवन या यज्ञ होते रहते थे उन सबका विद्यार्थी के मस्तिष्क पर एक सम्मिलित प्रभाव पड़ता था । फलस्वरूप उसके मन मे धार्मिक भावना घर कर लेती थी ।

मुस्लिम काल में भी शिक्षा का आधार धर्म ही रहा । शिक्षा का केन्द्र मन्दिर एव मस्जिदो की पवित्र भूमि ही रही । पाठशालाओं और मकतबों का सम्बन्ध भी मन्दिरो एव मस्जिदों से ही रहा । राजा-महाराजा और धनी-मानी व्यक्ति मन्दिरों के माध्यम से, तथा मुसलमान शासक मस्जिदो के माध्यम से शिक्षा-प्रचार मे आर्थिक सहायता देते रहे । शिक्षा का प्रमुख विषय धर्म ही था । इस प्रकार १६वी शताब्दी के प्रारम्भ होने तक शिक्षा धर्म पर आश्रित रही ।

१६ वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही धर्म का शिक्षा से सम्बन्ध विच्छेद होने लगा । इसका कारण था राजनैतिक । जब कम्पनी ने भारत मे राजनैतिक सत्ता प्राप्त की तब उन्होंने ईसाई पादरियों को आर्थिक सहायता देना बन्द कर दिया क्योंकि उनका विश्वास था कि ईसाई धर्म के परिवर्तन के कारण जनता मे क्षोभ उत्पन्न होगा जो कम्पनी के राजनैतिक हित के प्रतिकूल है । अतएव कम्पनी ने धार्मिक निरपेक्षता की ऐसी नीति अपनाई जिसके अनुसार पादरियों को कोई

कार्यक्रम नैतिक नियमों पर आश्रित रह सकते हैं। विद्यालय के आचार्य अपने कार्यों एवं व्यवहारों में धार्मिक आचरणों का पुट रखकर बालकों से अनुकरण की प्रवृत्ति के सहारे उनके चारित्रिक व नैतिक गुणों का विकास कर सकते हैं। धर्म के सिद्धान्तों का अध्ययन धार्मिक पुस्तकों के पठन-पाठन द्वारा इतनी आसानी से नहीं हो सकता जितनी आसानी से अनुकरण एवं उदाहरण द्वारा हो सकता है। धार्मिक निष्ठा मनुष्य के आचरण से सम्बन्ध रखती है उसके मस्तिष्क से नहीं। अतः अध्यापकों का सगठित प्रयत्न उनका उत्तम व्यक्तित्व, बालकों को धर्माचरण की ओर प्रवृत्त कर सकता है।* प्राथमिक कक्षाओं में महापुरुषों, और धर्म प्रवर्तकों की जीवनियाँ – बुद्ध, जोरोस्टर सुकरात, ईसा, शंकर, रामानुज माधव, मुहम्मद, कबीर, नानक, और गांधी आदि धर्म सुधारकों के जीवन वृत्त बालकों के लिये उत्साह वर्धक सिद्ध हो सकते हैं। उच्च कक्षाओं में धार्मिक सिद्धान्तों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है क्योंकि उस समय तक बालकों की बुद्धि और तार्किक शक्ति प्रौढ़ हो जाया करती है इसलिये वे धर्मों के मूल सिद्धान्तों का अध्ययन कर सकते हैं। वास्तव में इस प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन से धर्मों की वास्तविक एकता का पता चल सकता है। इसीलिये राधाकृष्णन् आयोग ने धार्मिक शिक्षा देने की सिफारिश की थी।

स्पैन्स कमेटी ने इंग्लैण्ड के विषय में बात कही है वह कुछ समय बाद भारत में भी लागू हो सकती है। धार्मिक शिक्षा के महत्व को सभी स्वीकार करने लगे हैं और अब ऐसा समय आ गया है जब धार्मिक शिक्षा को माध्यमिक शिक्षा में उचित स्थान दिया जा सकता है। इस कार्य के लिये हम धर्म की शिक्षा देने वाले योग्य अध्यापकों की आवश्यकता पड़ेगी। धार्मिक शिक्षा का कार्यक्रम उन्हीं अध्यापकों को सौंपना पड़ेगा जिनकी धर्म में स्वाभाविक रुचि हो।

Q 2. What should be the special features of religious education in a secular state ?

भारतीय समाज अनेक धर्म और विश्वासों का समाज है। धर्मों और विश्वासों की इस अनेकता में एकता लाने वाला यह राष्ट्र धर्म के प्रति एक विशेष अभिवृत्ति रखता है। जब से इस राष्ट्र को स्वतन्त्रता प्राप्त हुई है तभी से इसने धर्म निरपेक्षता को ही सभी राजनैतिक, सामाजिक आर्थिक विषयों में प्रमुखता दी है। भारतीय संविधान के अनुसार सभी भारतीय नागरिक चाहे वे किसी धर्म अथवा विश्वास के मानने वाले हों, समान अधिकारों का भोगने वाले होंगे। कोई भी धार्मिक संस्था राज्य की ओर से न तो विशेष अधिकारों को भोग सकेगी न उसके साथ किसी प्रकार का पक्षपात किया जायेगा। राज्य के सभी विद्यालयों में किसी विशेष प्रकार से शिक्षा नहीं दी जायेगी। भारत सरकार की यह नीति धर्म निरपेक्ष मात्र है। धर्म विरोधी अथवा अधार्मिक नहीं है क्योंकि वह किसी भी धर्म के महत्व को कम नहीं करना चाहती वह प्रत्येक नागरिक को किसी भी धर्म को स्वीकार करने अथवा छोड़ने की पूर्ण स्वतन्त्रता देती है। वह न केवल धार्मिक सहिष्णुता पर बल देती है वरन् सभी धर्मों हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख ईसाई, जैन, पारसी, बौद्ध आदि के प्रति समादर भाव का प्रदर्शन करती है।

ऐसी अवस्था में धार्मिक शिक्षा का अर्थ विशेष धर्म की शिक्षा से न लेकर धर्म अथवा कर्तव्य सम्बन्धी शिक्षा से लिया जा सकता है। किसी विशेष धर्म की शिक्षा देते समय हम उस विशेष धर्म के सिद्धान्तों का विवेचन करते हैं। परन्तु धार्मिक शिक्षा देते समय सभी धर्मों के सामान्य सिद्धान्तों को महत्व देते हैं। भारत जैसे धर्म निरपेक्ष राज्य में जहाँ पर विभिन्न सम्प्रदायों के सदस्य रहते हों एक ही विशेष धर्म की शिक्षा राष्ट्रीय एकता के लिए हानिकारक सिद्ध हो सकती है। इसलिये शिक्षाविदों ने सभी धर्मों के सिद्धान्तों का अध्ययन श्रेयस्कर माना है। यही कारण है कि सरकार ने शिक्षा संस्थाओं में धर्म विशेष की शिक्षा की मनाही कर दी है।

इस धार्मिक निरपेक्षता का प्रभाव, कुछ लोगों का मत है, बालक पर ठीक नहीं पड़ा। उनमें धार्मिक और नैतिक मूल्यों के प्रति श्रद्धा कम होती जा रही है। यह बात कुछ सीमा तक ठीक है। धर्म के प्रति नई पीढ़ी की यह उदासीनता विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा के अभाव के कारण नहीं हुई बल्कि नई पीढ़ी स्वयं भी स्वयं अपने धर्म के विषय में कोई जानकारी नहीं रखती,

---

* "नैतिक शिक्षा के लिये शिक्षक के व्यक्तित्व से अधिक प्रभावशाली साधन और दूसरा नहीं है"—माइकेल सैडलर।

इसके और भी कारण हैं—स्कूल मे पढ़ने वाले लड़के और लड़कियाँ जो अपने धर्म के विषय मे कुछ नहीं जानती, दूसरे धर्मों के विषय मे गलत धारणाएं बना सकती हैं। इसलिये यह आवश्यक समझा गया है कि उन्हें सभी धर्मों के प्रमुख सिद्धान्तो की सूचनायें और जानकारी दी जाय। विभिन्न धर्म विषयक यह ज्ञान समाजशास्त्र अथवा नागरिकशास्त्र की विषय वस्तु का भाग हो सकता है। संसार के बड़े-बड़े धर्मों के सामान्य सिद्धान्तो की जानकारी से बालक और बालिकाओ मे उन नैतिक और आध्यात्मिक गुणो का विकास हो सकेगा जिनकी आज उनमे कमी दिखाई दे रही है। इस विषय वस्तु मे संचित की जाने वाली सामग्री राष्ट्रीय स्तर पर योग्य और अनुभवी लेखकों द्वारा तैयार की जाय और पाठ्य पुस्तकें सम्पूर्ण राष्ट्र के लिये एकसी हों। विभिन्न धर्मों को मानने वाले समझदार व्यक्तियो द्वारा इन पाठ्य पुस्तको की समीक्षा की जाय और उनमे से ऐसी सामग्री का बहिष्कार कर दिया जाय जिस पर किसी धर्म विशेष के मानने की बातो को आपत्ति हो।

धर्म निरपेक्षता का यह उद्देश्य उस समय ही प्राप्त हो सकता है जिस समय देश का शिक्षित वर्ग वैज्ञानिक अभिवृत्ति (scientific attitude) की ओर अभिमुख होकर सहिष्णुता और उदारतापूर्वक दूसरे धर्मों का सम्मान करें।

अध्याय १६

भारत में राष्ट्रीय शिक्षा

Q 1. Do you agree with the view that the principal charge against British educational administration in India is that it failed to create a national system of education for the country? Why?

(*Agra. B. T. 1961*)

Ans. प्रत्येक राष्ट्र जिन मूल्यो एव ग्रादर्शों पर ग्रास्था रखता है, जिन प्रमापदण्डो के ग्रनुकूल ग्रपने भावी नागरिको का जीवन निर्माण करना चाहता है, वह उनका प्रचार एव प्रसार शिक्षालयो के माध्यम से किया करता है। वास्तव मे यही ऐसा स्थान है जहाँ राष्ट्र की सस्कृति का सक्रमण होता है उसे परिमार्जित ग्रौर परिवृद्ध करके भावी नागरिको को सौंपा जाता है।

पिछले १५० वर्षों मे ग्रग्रेजी शासन ने भारतीय राष्ट्र की इन ग्रावश्यकताग्रो की पूर्ति नहीं की। ग्रग्रेजी शासन काल मे शिक्षा को कभी भी प्राथमिकता नहीं दी गई। इसकी पुष्टि एक शिक्षण पदाधिकारी ने की है जिसका नाम था ग्रार्थर-मेहू (Arthur Mayhew) उन्होने कहा था 'शिक्षा विभाग की ग्रोर कोई ध्यान नही देता, ग्रौर योग्य सचिव दिन भर राजस्व एव वित्त-विभाग की फाइलो पर काम करने के पश्चात् दिन के ग्रन्त मे ग्रध्यापको के चरित्र निर्माण ग्रौर सन्तोष का सदुपदेश लिखा करते हैं।" भारतीयो की शिक्षा की ग्रोर उनका इतना ध्यान न था यद्यपि वे ग्रपने शासन की नीवों को पक्का बनाने का सदैव प्रयत्न करते रहते थे।

ग्रग्रेजी शिक्षा नीति का यही मूलमत्र था कि ऐसे समाज का निर्माण किया जाय जो ग्रग्रेजी शासन का भक्त हो। वे समाज के कुछ सदस्यो को शिक्षित कर ग्रपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझते थे। फलत वे सार्वजनिक शिक्षा की ग्रोर से पूर्णत उदासीन रहे। शिक्षा केवल मध्य एव उच्च वर्ग को विशेषाधिकार थी। प्राथमिक शिक्षा का विरोध तो वे १६२० तक करते रहे। इस प्रकार उन्होने उच्च वर्ग ग्रौर निम्न वर्ग के बीच एक खाई खोद दी जिसको पाटना ग्रब भी कठिन मालूम पडता है।

ग्रग्रेजो ने भारत मे ग्रौद्योगिक शिक्षा पर भी कोई ध्यान नहीं दिया। देते भी कैसे? वे तो भारत मे ग्रपना पक्का माल बेचना चाहते थे। भारत तो केवल कच्चा माल ही पैदा कर सकता था इसलिये उसे ग्रौद्योगिक बनाने का प्रयत्न करना ग्रपने पैरो कुल्हाडी मारना था। यद्यपि ग्रन्य देश जो इस क्षेत्र मे भारत से पीछे थे वे ग्रागे निकल गये परन्तु ग्रग्रेजी शासको के किसी भी शिक्षा ग्रायोग ने भारत मे ग्रौद्योगीकरण पर बल नही दिया।

मैकॉले ने ग्रग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाकर राष्ट्रीयता की भावना को कुचल दिया। दुनिया मे किसी भी देश मे शिक्षा का माध्यम विदेशी भाषा नही है किन्तु इन ग्रभागे देश को विदेशी भाषा द्वारा ही शिक्षा ग्रहण करने को बाध्य किया गया।

ग्रग्रेजी शासन ने उन भारतीय शिक्षा सस्थाग्रो को समूल नष्ट कर दिया जो भारतीय ग्रावश्यकताग्रो को सन्तुष्ट करती ग्रा रही थीं ग्रत उनके स्थान पर नई विदेशी शिक्षा पद्धतियाँ

प्रचलित थी। आदर्श सभ्यता और संस्कृति से बिल्कुल भिन्न अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली भारत पर लाद दी गई। मैकाले और [illegible] का मत था कि भारतीय शिक्षा प्रणाली दोषित शिक्षा प्रणाली है। इसी प्रणाली का इस देश से [illegible] किन्तु भारत में [illegible] अंग्रेजी शासन की यह सबसे बड़ी गलती थी कि उन्होंने भारतीय शिक्षा संस्थाओं को विकसित ही नहीं किया [illegible] भी नष्ट किया।

इस १५० वर्ष के अंग्रेजी शासन का दुष्परिणाम यह हुआ कि हम अपनी प्राचीन शिक्षा शैली को भूल गए, अपने आदर्श संस्कृति को भूल गए। [illegible] आधुनिक युग में अंग्रेजी शिक्षा के फलस्वरूप हम [illegible] हो गई है कि हम सब कुछ पाश्चात्य की दृष्टि से ही देखना चाहते हैं।" इस आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा नीति एक इस तरह से बनाई जाय कि हम अपनी सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें तथा प्राचीन आदर्शों को पुनः जीवित कर सकें। यह आवश्यकता और भी गम्भीर इसलिए हो गई है कि देश ने अंग्रेजी शासन को हटाकर प्रजातन्त्रात्मक शासन को अपना लिया है। अतः भारत में राष्ट्रीय शिक्षा की नितान्त आवश्यकता है। आवश्यकता है इस बात की कि इस प्रकार नागरिकों की शिक्षा [illegible] और निःशुल्क हो। प्रजातन्त्रीय राष्ट्र में शिक्षित नागरिक राष्ट्र के लिए ही लाभदायक नहीं है उसकी आधार शिला है। यही नहीं विश्वशान्ति के लिए भी नागरिक की शिक्षा [illegible] होती है।

राष्ट्रीय शिक्षा की परिभाषा देते हुए I. L. Kardel ने कहा है। "A national system of education is one in which free and equal opportunities are afforded to all according to their abilities and in which education is actuated by certain common purpose."

इस प्रकार की शिक्षा में एक केन्द्रीय शासन व्यवस्था होती है जो सम्पूर्ण राष्ट्र में शिक्षा का संगठन, पाठ्यक्रम, शिक्षा पद्धति और परीक्षा स्तर आदि की नीति को निर्धारित करती है। वह राष्ट्र के आदर्शों और भावनाओं पर निर्भर रहती है।

इस प्रकार की शिक्षा की मांग १६०४—२१ तक राष्ट्र के नेताओं ने अंग्रेजी सरकार के सम्मुख रखी। १६०६ में कांग्रेस ने प्रस्ताव रखा 'ऐसा समय आ गया है कि देश के बालक-बालिकाओं के लिये राष्ट्रीय शिक्षा योजना की व्यवस्था की जाय और देश की आवश्यकतानुसार साहित्यिक, वैज्ञानिक और औद्योगिक शिक्षा का संगठन किया जाय। ऐसी शिक्षा राष्ट्रीय आदर्शों पर राष्ट्रीय नियन्त्रण में राष्ट्र के भाग्य निर्माण के लिये संगठित की जानी चाहिए।

राष्ट्रीय कांग्रेस ने इस प्रकार से कई प्रस्ताव पास किये किन्तु अंग्रेजी सरकार ने उस की एक न सुनी। हार कर राष्ट्रीय नेताओं ने राष्ट्रीय विद्यापीठों को जन्म दिया जिनमें काशी विद्यापीठ, बिहार विद्यापीठ, तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, शान्ति निकेतन, गुरुकुल कांगड़ी आदि की स्थापना हुई। अंग्रेजों के भारत से चले जाने के उपरान्त ही (स्वातन्त्र्योत्तर काल में) राष्ट्रीय शिक्षा के क्षेत्र में उन्नति हो सकी। इस काल में जिन राष्ट्रीय विद्यापीठों की स्थापना हुई उनका उल्लेख अगले अध्याय में किया जायगा।

* राष्ट्रपति का भाषण—गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का समावर्तन समारोह १६२८

अध्याय १७

भारतीय शिक्षा में प्रयोग

[अ] विश्व भारती

Q. 1. Give an account of Vishwa Bharati. Why it is called an experiment in education? (*Agra B. T. 1958, 60*)

Ans. शैक्षणिक प्रयोग।

वर्तमान स्थिति के प्रति असन्तोष के रूप में ही राष्ट्रीय सस्थाओ का जन्म हुआ है। इस असन्तोष के दो कारण हैं।

१. वर्तमान युग की सारी शिक्षा-दीक्षा यूरोपीय ढाँचे मे ढली हुई है जो भारतीय अन्त करण एव उसकी आत्मा के सर्वथा विपरीत है।

२. वर्तमान प्रचलित प्रणाली हमारे बाह्य जीवन, हमारी परिस्थितियो एव शुद्ध सासारिक आवश्यकताओ के भी सर्वथा प्रतिकूल है।

इन द्विविध दोषो को दूर करने के लिये भारतीय शिक्षा के क्षेत्र मे १६ एवं २० वीं शताब्दी में बहुत से भारतीय प्रयोग हुए। अनेक शिक्षा शास्त्रियो ने शिक्षा को नया आधार देने का प्रयत्न किया। इन प्रयोगो मे निम्नलिखित प्रयोग मुख्य हैं—

(क) बेसिक शिक्षा।
(ख) विश्व भारती।
(ग) अरविन्द आश्रम।
(घ) गुरुकुल।
(ङ) वनस्थली।

जिन दो मनीषियों ने प्रथम दो शिक्षा प्रणालियो को जन्म दिया उन्होने शिक्षा को हृदय परिवर्तन और जीवन के उन्नयन का एक साधन समझा, उन्होने ऐसे प्रयोग किये जो उनके विचारो के प्रतिरूप थे। उनके पीछे उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व छुपा हुआ था। इन मनीषियो के नाम थे गाँधी और टैगोर।

विश्व भारती के पीछे शैक्षणिक विचारधारा :—

टैगोर की दार्शनिक एव शैक्षणिक विचार धाराओ ने उनके शिक्षा जगत को आप्लावित किया। जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण स्वतन्त्रतावादी या व्यक्तिवादी एव प्रकृतिवादी था। वे कहा करते थे कि जन्म से ही बालक के विकास के मार्ग में बाह्य हस्तक्षेप न्यूनतम हों क्योंकि उसका विकास ठीक उस कली के विकास की तरह कुण्ठित हो जायगा जिसको उसके माली ने समय से पूर्व अपनी भावनाओ एव प्रयासो के द्वारा खिलाकर पुष्प के रूप मे लाने का प्रयत्न किया है। वे सत्यं शिव सुन्दरं की खोज को ही जीवन का एकमात्र ध्येय समझा करते थे। इसी दार्शनिक

सत्य ही यह स्थान व्यक्तियों के प्राणों का आराम है, मन का आनन्द और आत्मा की शान्ति है जहाँ पहुँचते ही हृदय पुकार कर कह उठता है —

तिनि आमार प्राणेर आराम,
मनेर आनन्द आत्मारशान्ति

यह ऐसा स्थान है, जहाँ पर शहरों तथा बड़े-बड़े नगरों की धूम-धाम और उनके आकर्षण से दूर शान्त वातावरण के बीच एशिया और यूरोप व अन्य सुदूर देशो के विद्यार्थी पढ़ने के लिए आते है।

दैनिक कार्यक्रम—लगभग छः बजे प्रातःकाल बड़े से भोजन कक्ष मे नाश्ते मे कॉफी के साथ ताजा मक्खन लगी रोटियां या पूरियाँ और हरी सब्जी। नाश्ते के बाद सुचारु एक गायन प्रार्थना। तदुपरान्त प्रातःकाल मे दो कक्षायें। साढ़े ग्यारह बजे भोजन। आराम और पढ़ने का समय। तीसरे पहर पुनः कक्षायें और खेल। शाम को सात बजे हाजिरी और अध्ययन, नृत्य तथा वाद्य-वादन का अभ्यास। लगभग ८.३० पर भोजन। बुधवार को साप्ताहिक छुट्टी।

विद्यार्थी संस्थाये —

१ शिक्षाभवन—उच्चशिक्षा की व्यवस्था के लिये कलकत्ता विश्वविद्यालय से सम्बद्ध यह महाविद्यालय बी. ए., एम. ए. आदि की शिक्षा देता है।

२ पथभवन—एक प्रगतिशील विद्यालय जिसमे प्राथमिक कक्षाओ से लेकर माध्यमिक कक्षाओ तक के बालको को शिक्षा दी जाती है। शिक्षा का उद्देश्य बालको का ज्ञान-विस्तार न होकर उनका पूर्ण विकास अध्यापक और बालकों का निकटतम सम्पर्क, स्वतन्त्रता, आनन्दानुभूति सहकारिता, स्वशासन, सामूहिक जीवन का विकास, आत्मप्रकाशन एवं आत्माभिव्यक्ति के लिये सामाजिक साहित्यिक, कलात्मक, संगीत तथा हस्त कौशल सम्बन्धी कार्यक्रम विद्यालय की विशेषतायें हैं।

३ कलाभवन—काढने, पिरोने, बुनाई, चमड़े का काम, बागवानी, संगीत तथा नृत्य सिखाने के लिये।

४ शिल्पभवन—उद्योगो एव हस्तकौशलो की शिक्षा के लिये।

५ विद्याभवन—अनुसधान एव शोध कार्यों के लिये। कई विषयों का पोस्ट ग्रेजुएट स्तर पर शिक्षण।

६. विनय भवन—टीचर्स-ट्रेनिंग कालेज।

७. चाइना भवन—हिन्दी भवन तथा इस्लामिक रिसर्च सैक्शन।

८. पुस्तकालय—डेढ लाख हस्तलिखित पुस्तको से सुसज्जित।

९. श्री निकेतन—ग्रामीण पुर्नव्यवस्था तथा निर्माण सम्बन्धी शिक्षा के लिये।

इस संस्था के उद्देश्य —

१—ग्रामीण जीवन की समस्याओ का अध्ययन तथा उनके प्रति देश को जागरुक बनाना।

२—ग्रामीणो की प्रत्येक प्रकार की मदद करके उनके साथ सहानुभूति, मित्रता और स्नेह प्रस्थापन करना।

३—ग्रामीण कृषको एवं श्रमिको मे नव जीवन एव नवस्फूर्ति का सचरण।

४—विद्यालय के विद्यार्थियो मे गाँव के प्रति सहानुभूति और सेवाभाव का जागरण तथा उन्हें कृषि, डेरी फार्मिग, पशुपालन, मुर्गीपालन, बढई के काम, लुहार के काम, चमड़े के काम और कताई बुनाई आदि का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करना आदि इस कार्य के लिए विद्यालय ने निम्न विभागों का आयोजन भी किया है।

(अ) कृषि विभाग (ब) डेरी विभाग (स) कुटीर उद्योग धन्धे और (द) ग्राम कल्याण विभाग।

विश्व भारती की सफलता—विश्व भारती जिन उद्देश्यों को लेकर चली थी उन की प्राप्ति में विश्व भारती ने काफी प्रयत्न किया है। वे उद्देश्य निम्नलिखित है।[1]

---

1. विश्व भारती का प्रोस्पेक्टस पृष्ठ. १.

(१) प्राच्य तथा पाश्चात्य संस्कृति के बीच सामंजस्य स्थापित करके सम्पूर्ण मानवता को एकता के सत्य की अनुभूति कराना। पूर्व की विभिन्न प्राचीन संस्कृतियों को पुनः जागृत कर पाश्चात्य और पूर्वी संस्कृति का मिलन करना।

(२) प्रकृति एवं मानव के बीच ऐक्य स्थापित कर मानव को पूर्णता की ओर अग्रसर कराना।

(३) विश्व-बन्धुत्व की भावना जागृत कर विश्वशान्ति की स्थापना करना तथा संस्कृतियों के भ्रमात्मक मौलिक मतभेदों को दूर कर विश्वशान्ति का स्थायी वातावरण उत्पन्न करना।

(४) मानव मस्तिष्क द्वारा विभिन्न दृष्टिकोणों से अनुभव किये हुए सत्य के अलग-अलग रूपों के सम्बन्ध में मानव मस्तिष्क का अध्ययन करना।

(५) विद्यार्थियों को स्वतन्त्रता, पारस्परिक विश्वास तथा उल्लास के साथ अध्ययन करने का अवसर प्रदान करना।

(६) सम्पूर्ण भावना को एक ऊँचे स्थल पर स्थापित करके परब्रह्म परमात्मा के दर्शन करना तथा टुकड़ों में बँटी हुई भावना को एक धागे में बाँधकर सत्य शिव सुन्दरम् को पृथ्वी पर उतारना।

आज विश्व भारती भारतीय संस्कृति का प्रतीक माना जाता है क्योंकि उसने भारतीय पुनर्जागरण में विशेष सहयोग प्रदान किया है। साथ ही यह प्राच्य एवं पाश्चात्य संस्कृतिक सम्मिस्थल भी है। यह प्रकृति के प्रांगण में स्थित तपोवन भी है और आधुनिकतम अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय भी जहाँ का स्नातक विश्वबन्धुत्व की भावना लेकर जीवन जगत में प्रवेश करता है। नगरों के वातावरण में स्थित विश्वविद्यालयों का विद्यार्थी जीवन से दूर हटकर ज्ञान प्राप्ति में खो जाया करता है किन्तु विश्व भारती का शिष्य जीवन के प्रति समीप आता जा रहा है। वह समाज सेवा की भावना से ओत-प्रोत होकर दलितों एवं पतितों की उन्नति की ओर सदैव लक्ष्य बनाये रखता है।

कविवर के देहावसान को आज बीस वर्ष हो रहे हैं तब भी संस्था के वातावरण में कवित्व जैसे फूट उठता है—गाँव की सादगी कोपई नदी का कलकल रव, वाटिकाओं की सुरम्य हरीतिमा, शुष्क पत्रों की मर्मर ध्वनि, पक्षियों का अजस्र संगीत निरन्तर चलता रहता है किन्तु दूसरी ओर खेद के साथ कहना पड़ता है कि सरकार द्वारा समर्थन ग्रहण करने के बाद शिक्षण एवं पाठ्यक्रम में जो परिवर्तन उपस्थित हो गया है उसने विश्व भारती की स्वतन्त्र आत्मा को ठेस पहुँचाई है। सरकार का समर्थन विश्वभारती के लिये अभिशाप सा बन रहा है।

[ब] अरविन्द आश्रम

Q. 1. Give an account of Arbindo Ashram of system of education.
(Agra, B T. 1958,60)

Ans. भूमिका—अपने ढंग की निराली उस भारतीय प्राचीन शिक्षण शैली को आज हम भूल गये हैं जिसका मर्म वही है जो हमारी सभ्यता का मूल मन्त्र है। आज हम पश्चिम के पीछे पड़े हुए हैं। हमारे प्राचीन भारतीय शिक्षा शास्त्री अथवा मनीषी अपनी शिक्षा द्वारा ऐसे मानवों का सृजन करना चाहते थे जो यम नियमादि को मानते हुए सर्वभूत-हित में रत रह सकें। वह भौतिक और आध्यात्मिक साधना के बीच सामंजस्य स्थापित कर इस जगत् को 'ईशावस्य' ही देखता था। इसीलिये प्राचीन भारतीय शिक्षा भारतीय ऋषि-मुनियों के आश्रमों में पनपी, बढ़ी और फली फूली। भारतीय शिक्षा की यह लता मध्यकाल तक हरी भरी रही किन्तु अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् उसकी ओर उपेक्षा पूर्ण दृष्टि रहने के कारण उसके पत्ते सूखने लगे, कलियाँ मुरझा उठीं, फूल सूख-सूख कर गिरने लगे। युग धर्म के परिवर्तन के साथ शिक्षा का जीवन उन्नयन सम्बन्धी उद्देश्य लुप्त हो गया। तो भी भारत भूमि पर ऐसे मनीषियों का प्रादुर्भाव होता रहा जो उसमें समय-समय पर रस संचार कर प्राचीन शिक्षा के आदर्शों का पुनर्जागरण करते रहे। इनमें से दो महानुभावों तथा उनकी कृतियों का उल्लेख पहले किया जा चुका है। अरविन्द आश्रम भी एक ऐसे ही मनीषी के प्रयत्नों का फल है जो भारतीय सांस्कृतिक गौरव और भारतीय जीवन की बृहत्तर चेतना के संदेश से विश्व को सुरभि प्रदान कर रहा है। इस आश्रम में महात्मा

अरविन्द के जीवन की कहानी, उनकी आत्मा की पुकार, उनके विचारो और साधना का प्रतिरूप व्याप्त है। उनके संदेश, उनका जीवन दर्शन आज भी पाडिचेरी के इस आश्रम में विश्व का मार्ग दर्शन कर रहे हैं।

अरविन्द आश्रम के पीछे जीवन-दर्शन—जीवन का ध्येय केवल ऐन्द्रिक सुख, आर्थिक समृद्धि और बौद्धिक सौन्दर्यानुभूति ही नही है वरन् आध्यामिक विकास भी करना है। आत्मा की शक्ति को भौतिक साँचे में ढाल कर मनुष्य को मानव से विकसित कर अतिमानवता की ओर अग्रसर करना है। वानर से नर को वर्तमान स्थिति मे लाने का जो स्वाभाविक विकास अब तक चला आ रहा है वह विकास क्रम निरन्तर चलता रहे और नर देवत्व को प्राप्त कर सके यही जीवन का उच्चतम लक्ष्य माना जा सकता है। जीवन का चरम लक्ष्य अपने आपको समवेदना अनुभूति विचार, भावना और मन के अन्य विचारो से अलग करके उस सत्य से परिचय पाना था जो सही पदार्थों का आधार है। जीवन तथा मानवीय चेतना का व्यक्तिगत और सामूहिक रूप मे दैवी करण मानवता के विकास का लक्ष्य है। यदि वह दैवत्य चाहता है तो अब व्यक्ति को न केवल अपने व्यक्तिगत विकास और मुक्ति के लिए ही प्रयास करना होगा वरन् समस्त मानव जाति के लिये एक नवयुग निर्माण हेतु अतिमानव की जाति पैदा करने का प्रयत्न करना होगा। यह नवीन मानव विकास-क्रम की रूप रेखा होगी। इस प्रकार इस आश्रम के जीवन-दर्शन मे समस्त मानव जाति के कल्याण की भावना परिलक्षित होती है। उसका जीवन समाज और विश्व के प्रति विरक्ति पैदा नही करता वरन् राष्ट्र एव विश्व के कल्याण की ओर उन्मुख होकर चलता है। सक्षेप मे, इस दर्शन मे प्रेरित विकासक्रम की रूपरेखा निम्न प्रकार की है—

व्यक्ति का विकास
|
राष्ट्र का विकास
|
मानवता का विकास

अरविन्द आश्रम और उसकी शैक्षणिक विचारधारा—अरविन्द आश्रम की शिक्षा का मुख्य उद्देश्य ऊँचे दर्जे की आध्यात्मिक साधना, ब्रह्मचर्य तथा योगमार्ग के द्वारा भारतीय सस्कृति की रक्षा करना है। भारतीय शिक्षा की आधार-शिला भारतीय सस्कृति होनी चाहिए और इसकी सस्कृति के आश्रय मे रहकर राजनीति, व्यापार, समाज, काव्य, वास्तु अथवा मूर्तिकला आदि की वृद्धि होनी चाहिए। इस प्रकार उनकी शिक्षा व्यवस्था मे मानव का सर्वांगीण विकास परिलक्षित होता है। वे मानव का व्यक्तिगत विकास करके राष्ट्रों एव सम्पूर्ण मानवता का विकास करना चाहते थे। 'A true national Education' मे अरविन्द आश्रम के इन शैक्षणिक उद्देश्यो को सक्षिप्त रूप से इस प्रकार प्रकट किया है—

(अ) मानव का व्यक्तिगत विकास करके तथा उसका आध्यात्मिक विकास करके नये मानव को जन्म देना।

(ब) इस प्रकार प्रत्येक राष्ट्र की सम्पूर्ण मानवता का विकास कर आध्यात्मिक आधारो पर विश्व के राष्ट्रो का सगठन करना।

(स) तत्पश्चात् सम्पूर्ण मानवता को एक समतल धरातल पर लाकर मानवता की एकता को जन्म देना।

योगीराज अरविन्द के अनुसार सच्ची शिक्षा वही है जो व्यक्ति, राष्ट्र और विश्व के शरीर और मनुष्य के माध्यम से उनमे आत्मा का विकास करती है। शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य है जीवन तथा मानवीय चेतना का व्यक्तिगत और सामूहिक रूप मे दैवीकरण तथा दिव्यीकरण।

अरविन्द आश्रम की शिक्षा व्यवस्था के मनोवैज्ञानिक आधार—उन्होने सच्ची शिक्षा का आधार मानव मस्तिष्क का अध्ययन माना है और इस विषय मे जिन मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तो का निरूपण किया है वे निम्नलिखित हैं—

(१) शिक्षा बाल-प्रधान होनी चाहिए। बालक का विकास उसके स्वभाव अथवा धर्म की विशेषताओ के अनुकूल हो। यदि बालक के माता, पिता, समाज, अथवा अभिभावक उनके गुणो, विशेषताओ, मान्यताओ तथा आदर्शों की सूची बनाकर केवल उन्ही का विकास करते

है तो वे उसके साथ स्वार्थपूर्ण अन्याय करते हैं, क्योंकि प्रत्येक बालक में कुछ न कुछ दैवी विलक्षणता और पूर्णत्व प्राप्त करने की सम्भावना तथा शक्ति होती है। इन शक्तियों की खोज और उनका पूर्ण विकास ही शिक्षा का उद्देश्य है।

(२) शिक्षा का प्रमुख माध्यम अन्तःकरण है। यह अन्तःकरण (Mind) चार स्तरों पर कार्य करता है—चित्त, मानस, बुद्धि तथा विलक्षण प्रतिभा। चित्त में मानव जीवन के पिछले सारे अनुभव संचित रहते हैं। मानस का कार्य संवेदना का ज्ञान देना है वहीं मानस विचार और चिन्तन का आश्रयदाता है। बुद्धि अन्तःकरण का वह भाग है, जिसके सहारे बोध, स्वतः स्पष्टता, आलोचना व्याख्या, निर्णय, कल्पना, स्मृति, निरीक्षण, तर्क, समानता, सामान्यीकरण, आदि मानसिक क्रियायें होती हैं। शिक्षा का उद्देश्य अन्तःकरण की चित्त सम्बन्धी क्रियाशीलता का विकास मानस एवं बुद्धि का विकास करना है।

(३) व्यक्ति के स्वभाव (Nature), संस्कार (Habits) और मनोवेगों (Emotions) का रूपान्तर करके उसका हृदय परिवर्तन किया जा सकता है। यह हृदय-परिवर्तन केवल निर्देश द्वारा ही सम्भव है और यह निर्देश अध्यापक द्वारा ही किया जा सकता है। यदि अध्यापक का जीवन एक आदर्श है जिससे विद्यार्थी प्रशिक्षण अनजाने ही प्रेरणा ग्रहण करते रहते हैं तो शिक्षा के लक्ष्य की पूर्ति स्वतः हो जाती है। संयम एवं धार्मिक शिक्षा का आयोजन, नैतिकता विकास के लिये सत्संग का प्रबन्ध होने पर मानवीय नैतिकता विकसित हो सकती है।

(४) रुचि अवधान का आधार है अतः जब तक कोई पाठ्य वस्तु रोचक नहीं होगी बालक उसमें तल्लीन नहीं हो सकता। अतः उसमें जीवन तथा जीवन की क्रियाओं के प्रति रुचि उत्पन्न कर विश्व ज्ञान में रुचि पैदा की जाय।

(५) मान्तेसरी की तरह ज्ञानेन्द्रियों की शिक्षा पर भी अरविन्द विशेष बल देते थे। ज्ञानेन्द्रियों का विकास अभ्यास योग साधना नाड़ी शुद्धि, चित्त एवं मनस शुद्धि के सहारे हो सकता है ऐसी उनकी धारणा थी। यदि शिक्षा को वास्तविक रूप में आत्म शिक्षा बनाना है तो ज्ञानेन्द्रिय के विकास के उपरान्त रुचि के आधार पर निरीक्षण तर्क, चिन्तन, कल्पना आदि मानसिक शक्तियों का विकास किया जाना चाहिए।

इस प्रकार अरविन्द आश्रम की शिक्षा प्रणाली पूर्ण मनोवैज्ञानिक है।

अरविन्द आश्रम का संक्षिप्त इतिहास—सन् १६१० में योगी अरविन्द ने एक आध्यात्मिक पुनर्जन्म केन्द्र की स्थापना की। प्रारम्भ में यह केन्द्र कुछ ही व्यक्तियों को लेकर चला था किन्तु १६२६ ई० तक आश्रम वासियों की संख्या ८०० हो गई। १६४० के बाद आश्रम वासियों के बच्चे भी वहीं भरती किये जाने लगे और उनके सर्वांगीण विकास की ओर विशेष ध्यान दिया जाने लगा। योगी अरविन्द तथा उनकी सहयोगी मीरा रिचर्ड ने इस प्रकार आश्रम की स्थापना की। अरविन्द ने अन्तर्राष्ट्रीय विद्यालय को जन्म दिया तथा उसे विकसित किया। सन् १६५१ में यह अरविन्द आश्रम अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय के रूप में संसार के सम्मुख आया। आज यह विश्वविद्यालय विभिन्न राष्ट्रों के रीति रिवाजों रहन सहन, कला जैसे चित्रकारी, मूर्तिकला, संगीत सजावट, पोशाक, खेलकूद, भोजन और उत्सव के माध्यम से अपनी है विभिन्न प्रदेशों की संस्कृति का प्रतिनिधित्व कर रहा है। इस प्रकार आश्रम की अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा केवल सैद्धान्तिक तथा लेखों तक सीमित ही नहीं है बल्कि उसको पूर्ण रूप से जीवन में उतार कर व्यावहारिक बना दिया गया है।

अरविन्द आश्रम का संक्षिप्त परिचय—इस अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय में शिशु शिक्षा से लेकर अनुसंधान स्तर तक की शिक्षा का आयोजन किया गया है। शिशु कक्षाओं में अध्यापक को पूर्ण स्वतन्त्रता दी जाती है। सायंकाल में तीन घण्टे का एक ऐसा कार्यक्रम होता है जिसमें खेल, ध्यान तथा मौन, सिनेमा, और समाज सम्पर्क की व्यवस्था की जाती है। छोटे-छोटे बच्चों को ६, ७ भाषाओं का ज्ञान कराया जाता है। रिक्त समय में वे संगीत, प्रदर्शनी तथा पुस्तकालय से लाभ उठाते हैं। कक्षा में विद्यार्थियों की संख्या २० से कम ही रखी जाती है। विश्वविद्यालय कक्षाओं में दर्शन, मनोविज्ञान, समाज-शास्त्र, गणित, साइंस, संस्कृति का इतिहास जीवविज्ञान, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, अंग्रेजी और फ्रांसीसी भाषायें, अंग्रेजी साहित्य का इतिहास आदि विषयों का अध्ययन कराया जाता है। स्कूली कक्षाओं में अंग्रेजी और फ्रांसीसी भाषायें, गणित साइंस, इतिहास, भूगोल, ड्राइंग, भारतीय भाषायें, संगीत नाटक चित्रकारी और नृत्य की शिक्षा दी जाती है।

विश्वविद्यालय के अन्तर्गत भवन

(१) विज्ञान भवन में रासायनिक तथा भौतिक शास्त्र की प्रयोगशालाएँ।
(२) जीवन विज्ञान विभाग।
(३) शरीर शिक्षा विभाग।
(४) अस्पताल और नर्सिंग होम।
(५) छात्रालय।

विश्वविद्यालय की अन्य विशेषतायें

(१) विश्वविद्यालय में सहशिक्षा पर जोर दिया गया है।

(२) विद्यार्थियों को किसी प्रकार की डिग्रियाँ या उपाधियाँ नहीं दी जाती। इस प्रकार यह सम्पूर्ण शिक्षा का एक स्वतन्त्र शैक्षणिक प्रयोग माना जा सकता है। एक कक्षा से दूसरी कक्षा में उन्नति देते समय विद्यार्थी का कार्य और अध्यापकों का निर्णय ही देखा जाता है।

(३) विश्वविद्यालय पूरी तरह एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है क्योंकि उसमें ३८ अभारतीय जो १४ राष्ट्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं, अध्यापक पद पर कार्य कर रहे हैं।

(४) विद्यालय सम्पूर्ण जीवन की शिक्षा देता है, केवल रोटी की ही शिक्षा नहीं देता।

(५) विद्यालय में अनुशासन की कोई समस्या ही नहीं रहती क्योंकि उसके विद्यार्थी अधिकतर आश्रम वासियों के हैं जो योगी अरविन्द तथा माता मीरा रिचर्ड के आदर्शों पर चलकर उच्च जीवन का अनुसरण कर रहे हैं।

(६) विद्यालय में प्रशासन की उचित व्यवस्था है। कार्यालय की कार्यवाहियों के लिये एक रजिस्ट्रार तथा विद्यालय की सारी जिम्मेदारियों के लिये एक प्रधान की नियुक्ति होती है। प्रतिमाह होने वाली अध्यापकों की सभा अनुशासन, उन्नति, पाठ्यक्रम आदि समस्यापूर्ण प्रश्नों को सुलझाया करती है। इसी प्रकार कई समितियाँ विद्यालय के कार्य को सुचारु रूप से चलाने में सहायक सिद्ध हो रही हैं।

आश्रम की सफलता—आश्रम अपने विद्यार्थियों को एक ऐसी शिक्षा, ऐसा उपदेश, ऐसा जीवन आदर्श और ऐसी साधना प्रदान कर रहा है जो संसार में अशान्ति को कम कर सकते हैं क्योंकि इस आश्रम में दीक्षित व्यक्तियों में अन्धविश्वास, मानसिक संकीर्णता और धार्मिक मतभेद द्वारा उत्पन्न मानव में अन्तर देखने का दोष समाप्त हो जाता है। वे विश्व-बन्धुत्व में विश्वास करने लगे हैं।

[स] गुरुकुल प्रणाली

Q. 1. Discuss Gurukul system of Education, why are they called rational ?
What principles of abiding value do we find in the ancient Hindu system of education ? In what way can we recapture the spirit of these systems in modern times? *(B.T. 1953 L.T. 1957)*

Ans. भूमिका—प्राचीन भारत वैदिक सभ्यता की नींव निवृत्ति में रही है, प्रवृत्ति में नहीं। हम यदि किसी विषय में विशेष प्रवृत्ति भी रखते हैं तो निवृत्ति के भाव से ही, हम कर्म भी करते हैं तो भी उसी भाव से ही करते हैं।

त्यक्त्वा कर्म फलासंग नित्यतृप्तो निराश्रय।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित् करोति स।

हमारे सम्पूर्ण कार्य कामना और संकल्प से रहित हो, भोगों की सामग्री को त्यागकर अन्त करण पर विजय प्राप्त करें, द्वन्द्वों से छूटकर अपने आप में जो कुछ प्राप्त हो उसी में सन्तुष्ट रहें और सिद्धि के बन्धन से दूर रहते हुए हर अवस्था और हर काल में अपने आपको समबुद्धि बनाये रखें, बस यही हमारा आदर्श रहा है। इसके ठीक विपरीत पाश्चात्य सभ्यता का मूलमन्त्र

रहा है प्रवृत्ति। पाश्चात्य सभ्यता की माप उसकी अधिकाधिक बढ़ती हुई प्रवृत्ति है। इसी से अपनी जरूरतो को बढाने तथा उन्हे दिनो दिन पूरा करने पर तुले हुए पश्चिमी राष्ट्र आपस मे द्वन्द्व, वैमनस्य और सकट के शिकार बन रहे हैं। भारतीय शिक्षा का मूलमन्त्र निवृत्ति मे ही रहा है प्रवृत्ति में इतना अधिक नहीं। इसके विपरीत विदेशी शिक्षा-शैली प्रवृत्ति की ओर अधिक बल देती है निवृत्ति की ओर कम। भारत और पश्चिम के सामने सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यही है कि प्राचीन निवृत्ति और आधुनिक प्रवृत्ति का समन्वय किस प्रकार किया जाय। आधुनिक गुरुकुल शिक्षा शैली का उदय इस समन्वय को प्राप्त करने के लिए ही हुआ है।

प्राचीन गुरुकुल—हमारे देश की प्राचीन शिक्षण शैली अपने ढग की निराली थी और आज की प्रचलित शैली से सर्वथा भिन्न थी। उस शैली द्वारा शिक्षित पुरुषो और नारियों के रचित ग्रन्थरत्न आज भी ससार को चकित कर रहे हैं। उस काल मे उच्च शिक्षा के ऐसे विश्वविद्यालय नहीं थे जैसे कि आजकल पाए जाते हैं तो भी उच्च शिक्षा के बहुत से केन्द्र घने-घने जगलो के बीच अथवा पर्वतों की गुफाओ मे ऋषि-मुनियो के आश्रमो मे पाए जाते थे। ये आश्रम या गुरुकुल भारतीय सस्कृति और विचारो के केन्द्र थे। वैदिक और बौद्धिक युग मे भारतीय सस्कृति इन्ही वनो के बीच स्थित गुरुकुलों एव मठो मे विकसित हुई।

आज हम उसी शैली को भूल गए हैं क्योकि हमारी मनोवृत्ति अँग्रेजी शिक्षा के फलस्वरूप ऐसी बन गई है कि हम सब कुछ पश्चिमी रोशनी मे ही देखते है। हमारे आदर्श इगलैण्ड और अमरीका मे स्थित है भारत मे नही और यदि भारत मे हैं भी तो उन्हें उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं क्योकि इस प्रवृत्ति मे ही विश्वास करने लगे है। आत्म ज्ञान तथा आत्मा की परिपूर्णता को भुला रहे हैं जो गुरुकुल शिक्षा प्रणाली की जान थी। प्राचीन गुरुकुल विश्व मे जो कुछ अक्षुण्ण है उसको पहचानने तथा पाने की कोशिश करता था। वह वाह्य ज्ञान के विषयों पर अधिक महत्व न देकर आत्मज्ञान पर विशेष बल देता था। इस प्रकार व्यक्ति का पूर्ण विकास पर उसे शाश्वत सत्य का साक्षात्कार कराना ही प्राचीन गुरुकुल अपनी शिक्षा का उद्देश्य मानते थे। सक्षेप मे, हम कहते हैं कि गुरुकुल शिक्षण-शैली पूर्णरूपेण व्यक्तिवादी थी।

प्राचीन गुरुकुल शिक्षा ऋषि-मुनियो के आश्रमो मे निर्जन वनो के शान्त वातावरण मे, शहरों के कोलाहल से बहुत दूर निवास करती थी। उसमे ब्रह्मचर्य पर बहुत महत्व दिया जाता था। इन्द्रिय-निग्रह, भक्ति, पाठ-पूजा, गुरु सेवा आदि पर बल दिया जाता था। शिक्षा का प्रधान उद्देश्य इस प्रकार व्यक्ति का चरित्र-गठन, उसकी दैहिक-आत्मिक शुद्धि, तथा उसका मानसिक विकास माना जाता था। योग-मार्ग, तप और ध्यान शिक्षा के प्रमुख साधन थे। ऋग्वेद की प्रार्थनाओ को पढाना तथा उनकी व्याख्या करना, शिष्यो द्वारा प्रश्नो को पूछना तथा गुरुओं द्वारा उनका समाधान करना शिक्षण की मूल विधियाँ थी। ऋग्वेद के साथ ६ वेदागो तथा तत्कालीन साहित्य और अन्य विषयो का ज्ञान दिया जाता था।

आधुनिक गुरुकुलों का उदय—भारत मे मुस्लिम राज्य की स्थापना के बाद यह प्राचीन भारतीय शिक्षण शैली धीरे-धीरे लुप्त होने लगी और अँग्रेजी राज्य की स्थापना ने तो उसे सदा के लिए समाप्त ही कर दिया। जब से अँग्रेजी शिक्षा-प्रणाली की नीव इस देश मे पडी तब से शिक्षा का लक्ष्य सरकारी कर्मचारी तैयार करना हो गया। शिक्षा व्यक्तिगत जीवन के उन्नयन तथा मानवता के विकास के उद्देश्य को छोडकर रोटी का प्रश्न हल करने लगी। भारतीय संस्कृति से उसका सम्बन्ध टूट गया। वह वास्तविक जीवन केन्द्रो से हटकर नगर की ओर बढने लगी। पिछले १४० वर्षों की शिक्षा से हम क्या बने हैं ? वकील, इजीनियर, डाक्टर और सबसे बढकर सरकारी दफ्तरो के नौकर। जैसे-जैसे इस प्रणाली का वेग बढ़ता गया हम इस प्रवाह मे इच्छा से या अनिच्छा से, समझ या नासमझी से खिचते गये, वैसे-वैसे ग्रामो से विमुख होकर शहरों की ओर चल पड़े। चारों ओर असन्तोष के बादल छाने लगे। ऐसे समय मे राष्ट्र के नेताओ ने शिक्षा स्थिति में जो दोष आ गए थे, देखा और वे प्राचीन शिक्षा को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न करने लगे। शिक्षा की प्राचीन रूपरेखा को तो उस ढाँचे में भरकर फिर से लाना असम्भव था किन्तु शिक्षा की आत्मा को भारतीय अवश्य बनाया जा सकता था। इन नेताओ मे अग्रणी थे स्वामी दयानन्द सरस्वती जिनके ज्ञान के प्रकाश के फलस्वरूप आधुनिक गुरुकुल सस्थाओ का जन्म हुआ। स्वामी दयानन्द ने घोषणा की 'हमे वेदों का पुनरुद्धार करना है'। इस कार्य के लिए प्राचीन गुरुकुल शिक्षा प्रणाली का प्रचार ही आवश्यक समझा गया। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही अनेक गुरुकुलों की स्थापना

हुई जिनमे गुरुकुल कागडी तथा वृन्दावन गुरुकुल मुख्य हैं। वृन्दावन गुरुकुल सन् १६०२ मे सबसे पहले सिकन्दराबाद मे खोला गया, बाद मे वह वृन्दावन लाया गया। गुरुकुल कागडी का जन्म १६०२ मे श्रद्धानन्द के प्रयत्नो के परिणाम स्वरूप हुआ। वृन्दावन गुरुकुल का सचालन उत्तर प्रदेश की आर्य प्रतिनिधि सभा तथा गुरुकुल कागडी का सचालन पजाब की आर्य प्रतिनिधि सभा करती हैं।

गुरुकुल सस्थाओं का सक्षिप्त परिचय—इन सस्थाओ मे ६ से ८ वर्ष के बालको का प्रवेश होता है और १४ वर्ष शिक्षा ग्रहण करने के बाद उसे स्नातक (Graduate) की उपाधि दी जाती है। इसके दो वर्ष पश्चात् वह वाचस्पति (Doctorate) की उपाधि ग्रहण करता है।

गुरुकुलो मे शिक्षा का माध्यम हिन्दी है। हिन्दी के माध्यम से ही हिन्दू सस्कृति और सस्कृत साहित्य का अध्ययन कराया जाता है। हिन्दू धर्म के आदर्शों तथा उनकी मान्यताओं को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। प्राचीन सस्कृति के गौरव, औषधि विज्ञान तथा शल्य शास्त्र को पुनर्जीवित करने के लिए आयुर्वेदिक शिक्षा पर विशेष बल दिया है। गुरुकुल कागडी की आयुर्वेदिक डिग्रियो को सरकारी मान्यता दी जा चुकी है।

गुरुकुल शिक्षा मे ब्रह्मचर्य पर अधिक ओर देने के कारण लडको और लडकियो के लिए अलग-अलग गुरुकुलो की स्थापना की गई है। वृन्दावन गुरुकुल तथा गुरुकुल कागडी मे केवल लडको को तथा देहरादून तथा बडौदा मे केवल कन्याओं को ही भरती किया जाता है।

[illegible] ीन भारत के [illegible] प्रेरणा का [illegible]

(अ) व्यक्ति का सास्कृतिक एव आध्यात्मिक विकास करके उसमे भारतीय सस्कृति के गौरव का सचार करना।

(ब) उसे भारतीय सस्कृति तथा हिन्दू धर्म की विशेषताओ का ज्ञान देकर व्यावहारिक रूप से उसके जीवन मे चरितार्थ करना।

(स) ब्रह्मचर्य, इन्द्रिय निग्रह एव आत्म-सयम द्वारा चरित्रगठन।

(द) विभिन्न विषयो के अध्यापन द्वारा उसका मानसिक विकास और समाज के अनुकूल जीवन बिताने की शिक्षा का आयोजन।

(य) अर्थ और काम से हटाकर उसमे मानवता की चेतना को भरना।

(फ) कठोर जीवन बिताने का अभ्यास दिलाकर उसमे जीवन की कठिनाइयो और समस्याओ को सुलझाने का प्रयत्न करना।

राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद ने सन् १६२८ मे गुरुकुल विश्वविद्यालय कॉगडी के समावर्तन समारोह मे भाषण देते हुए गुरुकुलो के वाछित उद्देश्यो की ओर जनता का ध्यान आकर्षित करते हुए कहा था "[illegible]
हमारे विद्यालयो का मूल है तो [illegible]
विस्तार उनका पत्र मधुरफल [illegible]
का उद्देश्य होना चाहिये न केवल आवश्यक ज्ञान-विज्ञान की चर्चा कर विद्यार्थियों को आत्म निग्रह, त्याग, तथा सेवा की दीक्षा देना वरन् उनको भारत की वर्तमान स्थिति का उसके अभावो और आवश्यकताओ का बोध कराना, भारतीयों की हीनता, दीनता, कष्टो, कठिनाइयो, दुख-दरिद्रता का अनुभव कराना, उन्हें वेर्णों से मुक्त कराने की कमियो को पूरा करने, दुर्बलता को दूर करने, उनमे उमग और उत्साह भरने, बिखरी शक्ति का सचय करने, नवजीवन का मार्ग बताने, उस मार्ग का सकल्प, साहस, अध्यवसाय, एकाग्रता के साथ चलने की अभिरुचि और योग्यता पैदा करना भी उनका उद्देश्य होना चाहिये।

[द] वनस्थली विद्यापीठ

Q. 1. Discuss the part played by various Vidyapiths inculcating national education in India with special reference to Vanasthali Vidyapith.

Ans. भूमिका—बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही अंग्रेजी सरकार की नीति की

विरोधी राष्ट्रीय चेतना ने [illegible] शिक्षा प्रणाली के प्रति असन्तोष प्रकट करना आरम्भ कर दिया था। इस असन्तोष के [illegible] डा० [illegible] प्रसार के विचार के मूल कारण थे।

(१) जहाँ तक भारतवर्ष का प्रश्न है अंग्रेजी युग की सारी शिक्षा-दीक्षा पूर्णतया होने से हानि हुई है। यह भारतवर्ष की परिस्थितियों [illegible] के, उसके [illegible] के, उसकी [illegible] के सर्वथा विपरीत है।

(२) वर्तमान प्रचलित प्रणाली हमारे भारत जीवन, हमारी परिस्थितियों तथा शुद्ध सामाजिक आवश्यकताओं के अनुकूल नहीं है।[1] अतः भारतीय राष्ट्रीय नेता भारतीय शिक्षा को भारतीय आधार देना चाहते थे। उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप शिक्षा जगत् में भिन्न-भिन्न स्थानों पर नये-नये प्रयोग किये गये। इन प्रयत्नों को प्रेरित करने वाली सामाजिक राजनीतिक परिस्थितियाँ भी थीं। इन परिस्थितियों की [illegible] और [illegible] में संघर्षों [illegible] का विरोध करने वाले [illegible] का निर्माण। दूसरी परिस्थितियों की [illegible] तथा राष्ट्रीय नेताओं में रचनात्मक कार्य करने की प्रवृत्ति। इन परिस्थितियों ने भारत में ऐसे विद्यापीठों को जन्म दिया जिनका एक उद्देश्य यह था कि देश के नौजवानों को ऐसी शिक्षा दी जाए कि उनके हृदयों में राष्ट्रीय भाव प्रस्फुटित हो उठें और वे स्वतन्त्रता के संग्राम में कूद पड़ें। सरकारी कालेजों तथा विश्वविद्यालयों में यह शिक्षा सम्भव न थी।

इन विद्यापीठों में वनस्थली विद्यापीठ का स्थान महत्त्वपूर्ण है।

इतिहास—वनस्थली विद्यापीठ का जन्म सन् १९२९ ई० में हुआ जब कुछ गांधीवादी कार्यकर्ताओं ने जीवन कुटीर नाम का आश्रम बनाकर, राजस्थान के वनस्थली नामक ग्राम में रचनात्मक कार्य आरम्भ किया। ग्राम में [illegible] और शिक्षा आदि रचनात्मक कार्य उनके प्रमुख लक्ष्य थे। इन कार्यकर्ताओं में श्री हीरालाल शास्त्री तथा उनकी पत्नी श्रीमती रतन शास्त्री का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सन् १९३५ में इस आश्रम की एकमात्र पुत्री के निधन के बाद शास्त्री दम्पति ने अपने ५-६ मित्रों की लड़कियों को बुलाकर उन्हें उसी प्रकार का शिक्षण देना आरम्भ कर दिया जिस प्रकार का प्रशिक्षण अपनी पुत्री को वे दे रहे थे। इस प्रकार लड़कियों की शिक्षा का कार्य इसी वर्ष आरम्भ हो गया और जीवन कुटीर शिक्षा कुटीर में बदल गया। दूसरे ही वर्ष शिक्षा कुटीर का नाम राजस्थान बालिका विद्यालय हो गया। १९४३ में यही विद्यालय वनस्थली विद्यापीठ में बदल दिया गया।

वनस्थली विद्यापीठ का परिचय

लक्ष्य तथा उद्देश्य—ग्रामीण शिक्षा क्षेत्र में वनस्थली विद्यापीठ एक महत्त्वपूर्ण शैक्षणिक प्रयोग है। यह स्त्री शिक्षा का अखिल भारतीय केन्द्र है जहाँ शिशु कक्षा से लेकर एम० ए० तक की शिक्षा-दीक्षा की आयोजना की गई है। इसकी शिक्षा को राजस्थान सेकेण्डरी एजूकेशन बोर्ड तथा राजस्थान विश्वविद्यालय से मान्यता प्राप्त है। इसके लक्ष्य निम्नलिखित हैं—

१. बालिकाओं का सर्वांगीण विकास। पुस्तकीय ज्ञान के साथ-साथ भोजन बनाना, सिलाई आदि गृहशास्त्र की बातों का व्यावहारिक ज्ञान दिया जाता है।

२. इस सर्वतोमुखी विकास में चरित्र के विकास की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है। छात्राओं को निडर, साहसी व चुस्त बनाने का प्रयत्न किया जाता है।

३. मर्यादापूर्ण स्त्रीस्वातन्त्र्य भावना का विकास—भारतीय नारी को पर्दा-प्रथा तथा अन्य रूढ़िगत बन्धनों से मुक्त कर अपनी मर्यादा के भीतर ही नारी को स्वतन्त्रता की चेतना जाग्रत करना विद्यापीठ अपना लक्ष्य समझती है, किन्तु स्त्री-स्वच्छन्दता को घृणा की दृष्टि से देखती है।

४. वनस्थली की शिक्षा योजना और विचारधारा, देशप्रेम तथा राष्ट्रीयता की भावना का विकास करने, भारतीय सभ्यता तथा देश की उत्तम परम्पराओं की रक्षा करने, सामाजिक सेवा-भाव का विकास करने, अपने हाथ से काम करने की आदत डालने पर विशेष बल देती है।

५. इस शिक्षा योजना में बाह्य परीक्षाओं तथा बन्धनों से मुक्ति तथा शिक्षा कार्यक्रम में स्वातन्त्र्य पर विशेष जोर दिया जाता है। आरम्भ की आठ कक्षाओं में विद्यापीठ अपनी स्वतन्त्र

---

1. भाषण - गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी का समावर्तन समारोह १९२८

नीति रखता है। शेष स्तरों पर व्यावहारिक दृष्टिकोण रखने वाला यह विद्यापीठ बाह्य परीक्षाओं को अपनाने में भी हिचकता नहीं।

६—सहयोग और सामूहिकता की भावनायें बालिकाओं में जागृत करने के लिये विद्यापीठ को पूरा घर का सा रूप दिया गया है। बालिकाओं की आवश्यकताओं की पूर्ति सबकी एकत्रित धनराशि से की जाती है इस प्रकार सामूहिक जीवन पर विद्यापीठ विशेष बल देता है।

७—बालिकाओं के अभिभावकों से सीधा सम्पर्क रखने का पूरा प्रयत्न किया जाता है।

वनस्थली विद्यापीठ ने अपने कार्य विवरण (१९५८ ई०) में अपनी शिक्षा के उद्देश्य को स्थिर करते हुए कहा है

विद्यापीठ का उद्देश्य भारतीय संस्कृति की पृष्ठभूमि में विज्ञान के आधार पर व्यक्तित्व का सर्वतोमुखी, शारीरिक, नैतिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक विकास करने वाली ऐसी सर्वांग पूर्ण शिक्षा की व्यवस्था करना है जिसके परिणामस्वरूप गतिशील जीवन के अनुरूप सुसस्कृत और कार्य कुशल नागरिकों का निर्माण हो सके। छात्रायें सफल नागरिक तथा सफल गृहिणी दोनों बन सकें, इस उद्देश्य को लेकर वनस्थली विद्यापीठ आगे आया है।'

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये विद्यापीठ पांच प्रकार की शिक्षा पर बल देता है—शारीरिक, व्यावहारिक, कलात्मक, नैतिक तथा बौद्धिक। शारीरिक शिक्षा का उद्देश्य बालिकाओं को साहसी, चुस्त, और स्वस्थ बनाना है। शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रम में निम्न प्रकार के खेलों और क्रियाओं का समायोजन किया गया है—ड्रिल, लाठी, लेजिम, गदका, डम्बल, तलवार, भाला चलाना सैनिक कवायद, योग के आसन, कबड्डी, खो, बास्केट बाल, बालीबाल, रिंगबाल बैडमिण्टन, हाकी, थ्रोबौल, हैंडबोल, डोजबाल, हाईजम्प लोंगजम्प, तैरना, साइकिल चलाना और घुड़सवारी आदि। व्यावहारिक शिक्षा का उद्देश्य छात्राओं को घर के और हाथ के कामों को करने की योग्यता और काम के प्रति प्रेम व श्रद्धा की भावना पैदा करना है। व्यावहारिक तथा प्रायोगिक शिक्षा में उद्योगों की शिक्षा पर बल दिया जाता है। मोजा, बनियान, चाक तथा स्लेट पेंसिल बनाना, मत्री तथा कार्ड बोर्ड का काम, खजूर आदि की टोकरी, दियासलाई बनाना, दन्तमंजन तथा बालकों का पाउडर, हथकरघे की बुनाई, कपड़े की छपाई, पेपरमेशी, सलवा सितारे और गोटे किनारी का काम आदि दस्तकारियों की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया है। छात्राओं के जीवन को सुरुचि, सौन्दर्य तथा माधुर्यमय बनाने के लिये तथा उनकी रागात्मक वृत्ति का विकास करने के लिये संगीत (गायन एवं वाद्य) नृत्य एवं चित्रकला का शिक्षण किया जाता है। छात्राओं के चरित्र का गठन करने के लिये उपदेशों, सामूहिक प्रार्थना, सामूहिक जीवन तथा विभिन्न धर्मों के विषय में समझ पैदा करने वाली धार्मिक शिक्षा के सहारे उनका नैतिक विकास किया जाता है। छात्राओं के मानसिक बौद्धिक तथा ज्ञानात्मक विकास के लिये विभिन्न कक्षाओं में पढ़ाये जाने वाले विषयों, उनको दिये जाने वाले समय तथा शिक्षा-प्रणालियों का निर्णय इस प्रकार किया गया है कि छात्राओं का विकास एकांगी और संकीर्ण न होकर उनका मानसिक क्षितिज विशाल और व्यापक बन सके। उनमें सोचने की शक्ति का समुचित विकास हो। जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण वैज्ञानिक हो। इस लक्ष्य से विज्ञान तथा सामाजिक शास्त्रों की शिक्षा प्रारम्भ से ही दी जाती है। शिक्षा-प्रणाली में छात्राओं के प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण, भ्रमण और यात्रा पर्व समारोह (वार्षिक जल मेला) तथा नाटक पर बल दिया जाता है। परीक्षण प्रणाली में दैनिक कार्य को विशेष महत्व दिया गया है। समयचक्र इस प्रकार तैयार किया गया है कि प्रत्येक छात्रा ४ घण्टे बौद्धिक कार्यक्रम में, २ घण्टे प्रायोगिक शिक्षा में, १ घण्टा शारीरिक तथा १ घण्टा कला और नैतिक शिक्षा में व्यतीत करे।

विद्यापीठ के विभिन्न विभाग

(१) प्रारम्भिक तथा संस्कृत विभाग—इसमें कुल ८ कक्षायें आती हैं—५ प्रायमरी की तथा ३ संस्कृत विभाग की।

(२) हाई स्कूल—आठवीं कक्षा के बाद छात्रायें दो प्रकार के पाठ्यक्रम चुन सकती हैं (अ) उच्च माध्यमिक बहुउद्देशीय पाठ्यक्रम तथा (ब) बोर्ड की हाई स्कूल परीक्षा के पाठ्यक्रम को।

(३) इण्टर, बी० ए०, एम० ए०।

(४) डिप्लोमा परीक्षायें—संगीत, चित्रकला और शारीरिक शिक्षायें।

अभी अन्य विभागों को खोलने की बात चल रही है। जिनमें क्रम से प्रौढ़ नारी के लिये विद्यालय, शिक्षक विद्यालय, शारीरिक शिक्षा विद्यालय, गृहस्थ शिक्षा विद्यालय एवं चिकित्सा प्रशिक्षण विद्यालयों की स्थापना की जायेगी।

वनस्थली विद्यापीठ की सफलता - महिला शिक्षा क्षेत्र में वास्तव में विद्यापीठ एक अनूठा प्रयोग है। भारतीय नारी बाहर से प्रगतिशील हो और [illegible] नारी के किसी रूप में [illegible] और भीतर से उसकी आत्मा भारतीय संस्कृति में रंगी हो इस रूप का प्रयास करना ही विद्यापीठ का मुख्य उद्देश्य रहा है। यह भारतीय नारी के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास का सफल पूर्ण प्रयास समझता है। उसका मानसिक, शारीरिक, [illegible] सामाजिक, व्यावहारिक तथा नैतिक विकास करने के लिये उपयुक्त कार्यक्रम तैयार किया गया है। वनस्थली की परीक्षा प्रणाली तथा शिक्षण विधियाँ आधुनिकतम एवं प्रगतिशील हैं। आज की विषम परिस्थितियों के बीच वनस्थली भारतीय नारी जीवन का पुनर्निर्माण एवं पुनर्संस्थापन का महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न कर रही है क्योंकि वह नारी को कुल एवं घर समाज के जीवन का आधार बनाकर इस योग्य बनाने का प्रयास कर रही है कि वह मानव जीवन को सफल एवं सुन्दर बना सके।

[घ] बेसिक शिक्षा

Q. 1. "There is nothing new in Basic Education". Do you agree or disagree with this statement? Give reasons

(Agra B. T. 1960)

Q. 2. "Basic Education should not be thought as a revolution in the field of education, but as a means of bringing about a revolution in social economic and psychological structure of the Indian society itself" To what extent has Basic education helped the realisation of this objective?

(Agra B. T. 1955)

Q. 3. Do you agree with the view that the Basic Education will bring about a radical and important revolution in the social economical and phychological structure of Indian society? Give reasons for your answer.

(Agra B. T. 1961)

Ans. ब्रिटिशकालीन शिक्षा देश की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक माँगों को पूरा करने में असमर्थ थी। वह व्यक्ति और समाज के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध न स्थापित कर सकी। व्यक्ति में समाज की परम्पराओं एवं माँगों के अनुकूल क्या-क्या परिवर्तन होने चाहिये थे, वे परिवर्तन पैदा करना यह शिक्षा प्रणाली का लक्ष्य तथा भारतीय समाज का हित भी उसमें न हो सका। धीरे-धीरे उसमें निम्नांकित दोष उत्पन्न हो गये :—

१. यह केवल ज्ञानप्रधान तथा पुस्तक-प्रधान थी। शिक्षा का वास्तविक मुख्य उद्देश्य क्या होना चाहिये, इसकी ओर अंग्रेजी सरकार का ध्यान बिल्कुल न था।

२. जो कुछ ज्ञान का संचार उस प्रणाली से सम्भव था, वह जीवनोपयोगी सिद्ध न हुआ। भारतीय जीवन एवं भारतीय परिस्थितियों से असम्बन्ध होने के कारण व्यक्तियों के विकास में भी अधिक सहायक सिद्ध न हो सकी।

३. इस ज्ञान का स्वरूप एवं उसको प्रदान करने का ढंग अस्वाभाविक था क्योंकि वह भिन्न विषयों के अन्तर्गत विभाजित कर दिया जाता था।

४. उसमें व्यावहारिक तथा क्रियात्मक कुशलता की अवहेलना द्वारा बालकों की सामाजिक योग्यता के विकास को कुण्ठित कर दिया जाता था।

५. बालकों में प्रतिस्पर्धा एवं प्रतिद्वन्द्विता की भावनाओं को जागृत कर सहयोग एवं सहकारिता की भावनाओं को क्षीण कर दिया जाता था।

६. उसमें अपव्यय तथा स्थिरता जैसी बुराइयाँ उत्पन्न हो गई थीं।

७. उस पर व्यय बहुत अधिक होता था।

८. वह अंग्रेजी भाषा को महत्व देकर भारतीय भाषाओं की अवहेलना कर रही थी।

९. उसमे लोकशिक्षा का समावेश ग्रशमात्र भी न था क्योकि वह विशिष्ट वर्ग के व्यक्तियों का ही शिक्षण करती थी ।

१०. वह भारतीय सस्कृति से परे थी ।

जब राष्ट्रीय ग्रान्दोलन ने देश मे बल पकडा तो राष्ट्र के नेताग्रो के भारतीय शिक्षा की ग्रालोचना भी करना ग्रारम्भ कर दिया ग्रौर राष्ट्र के नवनिर्माण मे सहायक राष्ट्रीय शिक्षा के स्वरूप पर विचार करना प्रारम्भ किया । महात्मा गांधी की विचारधारा सर्वप्रथम इस क्षेत्र में जनता के सम्मुख 'हरिजन' के माध्यम से ग्राई । शिक्षा के विषय मे ग्रपने विचार प्रकट करते हुए उन्होंने लिखा—

"By education I mean an allround drawing out of the best in child and man – body, mind and spirt Literacy itself is no education. I would therefore begin the child education by teaching it an useful handicraft and enabling it to produce from the moment it begins its training. Thus every school can be made self-supporting, the condition being that the state takes over the manufacture of these schools" *Harijan*—July, 1937.

२३. ग्रक्टूबर १६३७ की मारवाडी शिक्षा समिति द्वारा सचालित मारवाडी स्कूल की रजत जयती, वर्षा के ग्रवसर पर गान्धीजी ने ग्रपने शिक्षा सम्बन्धी विचारों को निम्न ४ *प्रस्तावो के रूप में शिक्षाविदो के सम्मुख रखा*

१. *राष्ट्र के प्रत्येक बच्चे के लिये ग्रनिवार्य नि शुल्क ७ वर्ष तक की शिक्षा की व्यवस्था* की जाय ।

२ शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो ।

३. बालको के सर्वांगीण विकास के लिये शिक्षा किसी उत्पादक व्यवसाय के माध्यम से दी जाय । ग्रन्य विषय इस केन्द्रीय व्यवसाय से सम्बन्धित कर दिये जायें ।

४. इस प्रकार शिक्षा का खर्चा निकाल लिया जाय ।

इस शिक्षा योजना ने भारत के शिक्षा जगत् मे एक प्रकार की हलचल मचादी । इसका जन्म नये समाज एव नये मानव की रचना के लिये हुग्रा था । यदि भारत की उन्नति के लिये बिलकुल नये समाज, नई वृत्ति, बुद्धि, भावना ग्रौर शक्ति को ग्रावश्यकता है तो यह समाज तभी निर्मित हो सकता है जब उसकी शिक्षा मे ग्रामूल परिवर्तन किया जाय ।

[illegible]

विशेपता इस योजना की यह भी थी कि वह व्यक्ति के जीवन के साथ-साथ चलने वाली शिक्षा को ध्यान मे लेकर चल रही थी । प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के तीन क्षेत्र होते है, प्राकृतिक वातावरण, सामाजिक वातावरण ग्रौर उसका काम इस योजना मे इन तीन क्षेत्रो को विशेप महत्व दिया गया है ।

यद्यपि बुनियादी शिक्षा मे कोई ऐसी नई बात नहीं है जो ग्रन्य पूर्ववर्ती शिक्षा दार्शनिको को ज्ञात न हो या जिसका प्रतिपादन पहले कभी न हुग्रा हो जैसा कि निम्नलिखित विवेचना से प्रकट होगा, किन्तु तब भी शिक्षा के क्षेत्र मे बुनियादी शिक्षा ने काफी हलचल मचादी है ।

[illegible] ग्रहण [illegible] की [illegible] । वह [illegible] द्य न कुछ करके शिक्षा ग्रहण करने के साथ-साथ थोडा बहुत धनोपार्जन कर सकता है । यह शिक्षा कार्य की महत्ता को स्वीकार करती है ग्रत वर्ग विहीन समाज की स्थापना करने का प्रयन्न करती है । वह इस बात का भी प्रयत्न करती है कि शोपण रहित वर्गहीन समाज की भी स्थापना हो । शक्ति तथा धन के विकेन्द्रीकरण से समाज मे शान्ति एव सुख का सचार हो सकता है, ऐसा इसका विश्वास है ।

[illegible]

[illegible]

[illegible]

(१) [illegible]

(२) [illegible]

(३) [illegible] विचार की क्षमता पैदा कर सकता है।

(४) यह बालक की आधारभूत आवश्यकताओं [illegible] के अनुकूल रहती है। इन सब कारणों से इस शिक्षा को बुनियादी अथवा आधारभूत माना गया है।

बेसिक शिक्षा की विशेषताएं —

यह शिक्षा प्रणाली राष्ट्रीय है क्योंकि इसका आधार राष्ट्रीयता में है। उसके मूल में भारतीय संस्कृति की छाप है एवं उसमें भारतीयता है। उसमें समाज के ढांचे में परिवर्तन करने तथा आर्थिक क्रान्ति पैदा करने की क्षमता है किन्तु वह कहाँ तक प्रचलित अन्य शिक्षा प्रणालियों से श्रेष्ठतर है, कहाँ तक उसमें विभिन्नता एवं नूतनता है, यह तो उसकी विशेषताओं की विवेचना करने से ही मालूम हो सकता है। संक्षेप में, बुनियादी शिक्षा की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं :

(१) इस शिक्षा का केन्द्र बालक है। शिक्षा उसके वर्तमान एवं भावी जीवन से सम्बन्धित होती। वह अपने घर, स्कूल गाँव, नगर, प्रान्त तथा देश के प्राकृतिक एवं सामाजिक वातावरण का निरीक्षण एवं अध्ययन कर अपने को उसके अनुकूल बना सके। पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों एवं शिक्षा शास्त्रियों ने भी इस शिक्षा को बाल-केन्द्रित माना है और शिक्षा-प्रणालियों और पाठ्य-वस्तु के विषय में अपने विचार प्रकट किये हैं। शिक्षा बालक की प्रवृत्तियों रुचियों के अनुकूल हो उसके कार्यक्रम में बालक की क्रियाशीलताये ही प्रधान हों, अपने अनुभवों के आधार पर ही नई-नई बातों को सीखे इस प्रकार के विचार रूसो, पेस्टालाजी, फ्रोबेल, मोन्टेसरी तथा डेवी आदि सभी शिक्षाविशारदों ने प्रकट किये हैं। गांधीजी की बुनियादी शिक्षा भी इन विचारों के अनुकूल ही है। उसमें बालक की वाह्यि प्रधानता दी गई। बालक क्रियाशील होता है, इस तथ्य को सत्य मानकर ही बेसिक शिक्षा में आधारभूत दस्तकारी या कौशल पर बल दिया गया है। बालक अपनी रुचि के अनुसार उस कौशल को चुन लेता है और अपने अनुभवों द्वारा ही ज्ञानोपार्जन करता है साथ ही कौशल के माध्यम से उसकी रचनात्मक, रचनात्मक वृत्तियों को चिन्तन व कल्पना शक्तियों का विकास होता रहता है। इस प्रकार बालक का सर्वांगीण विकास सम्भव होता है।

(२) बुनियादी शिक्षा सम्पूर्ण ज्ञान को इकाई के रूप में मान कर चलती है। विश्व का जितना भी ज्ञान है वह केवल मानव जीवन की ही व्याख्या करता है। उसे भूगोल, इतिहास, गणित आदि विषयों के अन्तर्गत अलग-अलग रखना असंगत प्रतीत होता है। बुनियादी शिक्षा में सारे ज्ञान का केन्द्र कोई एक कौशल मान लिया जाता है क्योंकि उसी के माध्यम से बालक सारे अनुभव प्राप्त करता है।

इस ज्ञान की प्राप्ति निराकार मानसिक क्रिया द्वारा ही नहीं होती वरन् साकार वास्तविक क्रियाकलापों से होती है। बुनियादी शिक्षा सम्पूर्ण ज्ञान को क्रिया-प्रधान अथवा अनुभव प्रधान मानकर चलती है। वह कृषि विज्ञान को खेतीबाड़ी के काम में, गणित को कताई से, भूगोल को कृषि के सम्बन्धित मौसमों, वर्षा एवं दूसरे देशों के वर्णनों के पढ़ने से सीख लेता है। यह भी कोई नई विशेषता इस शिक्षा प्रणाली की नहीं है।

(३) क्रिया प्रधान शिक्षा प्रणालियों में बुनियादी शिक्षा भी महत्वपूर्ण स्थान रखती है। सभी पाश्चात्य देशों में इस सिद्धान्त के महत्व को स्वीकार कर लिया गया है कि अनुभव जन्य ज्ञान ही सच्चा ज्ञान है। अमरीका के दार्शनिक डीवी ने इस सिद्धान्त की महत्ता को ध्यान में रखकर क्रिया प्रधान विद्यालयों की कल्पना की थी। किण्डर गार्टेन, फ्रोबेल तथा माण्टेसरी स्कूल का भी यही आधारभूत सिद्धान्त है। बुनियादी शिक्षा प्रणाली भी इसी सिद्धान्त को लेकर चलती है। वह 'करो और सीखो' को उतना ही महत्व देती है जितना कि अन्य शिक्षा प्रणालियाँ। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी बालक के लिये यही अनुकूल बात मालूम पड़ती है कि किसी केन्द्रभूत हस्तकला के माध्यम से वह गणित, भूगोल, इतिहास आदि का ज्ञान प्राप्त करे। उसका स्वभाव क्रियाशील होता है, अतः किसी एक कौशल का अनुगमन करने से उसके स्वभाव की यह महत्वपूर्ण माँग पूरी हो जाती है। उसे अपनी रुचि के अनुसार कार्य करके सीखने का अवसर मिल जाता है। अनुभव के आधार पर जो उसे ज्ञान प्राप्त होता है वह उसके जीवन में घुलमिल कर सक्रिय अंग बन जाता है जिसका उपयोग वह कभी भी आवश्यकतानुसार कर सकता है। वह केवल ज्ञान ही प्राप्त नहीं करता वरन् जीने की कला भी सीखता है। चूंकि शिक्षा के तथ्यों एवं निष्कर्षों को बालक के मस्तिष्क में उड़ेला नहीं जाता अतः यह शिक्षा मनोवैज्ञानिक एवं बालक की वृत्तियों के अनुकूल मानी जा सकती है।

(४) बुनियादी शिक्षा मनोवैज्ञानिक इसलिये भी है कि वह एक प्रयोजन को लेकर चलती है। यह प्रयोजन उसे निरन्तर प्रेरित करता रहता है। अपने ज्ञान एवं प्रयास को वह मूर्तरूप में, स्थूल रूप में साकार देखकर प्रसन्न होता है। यह उत्साह उसे अधिक काम करने, ज्ञान प्राप्त करने तथा उन्नति करने की प्रेरणा देता है। शिक्षा सप्रयोजन होने के कारण कभी भी भार स्वरूप प्रतीत नहीं होती। वर्तमान प्रचलित प्रणाली का एक बहुत बड़ा दोष यह है कि वह सोद्देश्य न होने के कारण बालक के लिये भारस्वरूप प्रतीत होती है। वह भय और नियंत्रणों के बीच अपना दुःखमय जीवन बिताता है। अतः उसकी शिक्षा कभी भी प्रभावपूर्ण एवं वास्तविक नहीं होती। बुनियादी शिक्षा से यह दोष हट जाता है।

(५) जहाँ तक नियन्त्रण का प्रश्न है, वर्तमान शिक्षा प्रणाली बालक के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं कर पाती, किन्तु बुनियादी शिक्षा में बालक को पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली में परीक्षा, विषयों को रटना, निश्चित कार्यक्रम, अनुशासन, नियन्त्रित व्यवस्था आत्माभिव्यक्ति को कुण्ठित कर दिया करती हैं। किन्तु बुनियादी शिक्षा में बाह्य अनुशासन की कठोरता हट जाती है न तो उसे पुस्तकों की निश्चित पाठ संख्या को समाप्त करना होता है, और न पाठ्यक्रम की कठोर नियमितता उसके विकास को सीमाबद्ध कर पाती है। वास्तव में शिक्षा की सारी प्रक्रियायें—पाठ्यक्रम व कार्यक्रम का सगठन, अनुशासन एवं परीक्षण की व्यवस्था तथा शिक्षण विधियाँ—बालक को ही केन्द्र मानकर इस प्रकार संगठित की जाती है कि बालक के ऊपर किसी प्रकार का नियंत्रण न रह सके।

(६) बुनियादी शिक्षा अनुबंधित शिक्षण (Correlated Teaching) पर जोर देती है क्योंकि वह अन्य क्रियाओं के माध्यम से गणित, भाषा, भूगोल और विज्ञान आदि की शिक्षा देता है। अनुबंधित शिक्षण का आधार केवल कला-कौशल ही नहीं है वरन् बालक के सामाजिक एवं भौतिक वातावरण से भी शिक्षण का समवाय स्थापित किया जाता है। इस प्रकार शिक्षा केवल स्कूल की चहारदीवारी तक ही सीमित नहीं रहती है बल्कि विद्यालय के बाहर के सामाजिक एवं प्राकृतिक वातावरण से भी सम्बन्धित हो जाती है। इस प्रकार यह शिक्षा मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित है।

(७) बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य है व्यक्ति का सम्पूर्ण विकास। उसका सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, मानसिक विकास करके इस योग्य बनाना कि वह अपने वातावरण के अनुकूल अपने जीवन को ढाल सके।

(८) बुनियादी शिक्षा शारीरिक श्रम के महत्व पर जोर देती है। इस शिक्षा को प्राप्त करने के उपरान्त यह आशा की जाती है कि बालक अपनी जीविका कमाने के योग्य हो जायगा और इस प्रकार वह समाज की एक उत्पादक एवं लाभकारी इकाई बन सकेगा।

(९) यह शिक्षा अहिंसा पर आधारित है। प्रत्येक व्यक्ति में अपने परिश्रम से अपनी जीविका कमाने की क्षमता जिस समय पैदा हो जायगी तब वह दूसरों की जीविका छीनने वाले

यन्त्रों का प्रयोग न कर सकेगा। इस प्रकार बुनियादी शिक्षा बालक को शोषणशून्य परिश्रम पर आस्थावान् बना कर उसमें स्वावलम्बन एवं सहकारिता की भावनायें पैदा कर सकेगी।

(१०) बुनियादी शिक्षा के समर्थकों का मत है कि यह शिक्षा आर्थिक दृष्टिकोण से स्वावलम्बी होगी। इसमें बालक के श्रम से ही शिक्षकों का वेतन निकल आयगा। इस प्रकार भारत जैसा निर्धन देश बिना सरकारी सहायता के प्राथमिक शिक्षा का भार वहन कर सकेगा। स्वयं स्वावलम्बी होने के साथ-साथ यह शिक्षा बालक को भी स्वावलम्बी बना सकेगी।

इस प्रकार बुनियादी शिक्षा मे कुछ ऐसी विशेषतायें हैं जिनके कारण वह देश में आर्थिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक उथल-पुथल तो मचा सकती है किन्तु शैक्षणिक दृष्टिकोण से उसमे कोई ऐसी नूतनता नही है जो शिक्षा जगत् मे क्रान्ति उपस्थित कर सके।

बुनियादी शिक्षा की समीक्षा

बुनियादी शिक्षा की विशेषताओं और देश के लिये उसकी उपयोगिताओं का उल्लेख पीछे किया जा चुका है। उसमे कुछ ऐसे दोष भी हैं जिनके कारण उसमे इतनी प्रगति नहीं हुई जितनी सम्भव थी। उसके आलोचकों का कहना कि—

(१) शिक्षा को स्वावलम्बी बनाने की योजना हानिकारक एवं अव्यावहारिक है, उसमे विद्यालयों का फैक्टरियों मे परिणत हो जाने की आशा की है जिनमे बालकों का श्रमिकों के रूप में शोषण किया जा सकता है। साथ ही उनके द्वारा तैयार किया हुआ माल कुशल कारीगरों द्वारा तैयार किये हुए माल की तुलना मे ठहर न सकेगा और उसकी खपत भी बिलकुल न हो सकेगी।

पहले आक्षेप का उत्तर देते हुए गांधी जी ने अक्टूबर ३० सन् १९३७ के हरिजन मे लिखा है कि काम करने से कोई दास नही हो सकता। जिस प्रकार घर पर अपना काम करने से कोई लड़का 'दास' नही हो जाता उसी प्रकार विद्यालय मे भी काम करने से गुलाम नहीं हो जायगा। दूसरे आक्षेप के विषय मे यह कहा जा सकता है कि यदि सामाजिक चेतना को बालकों के उत्पादन की ओर आकृष्ट कर दी जाय तो कोई कारण नही कि उनके उत्पादन के लिये बाजार न मिले। कांग्रेस के प्रयास के फलस्वरूप थोड़े ही दिनों मे मोटा खद्दर उच्च समाज का पहिनावा हो गया है तब यदि अपने घरेलू उद्योग का विकास करना है तो सामाजिक चेतना पैदा कर यह पुनीत कार्य किया जा सकता है।

(२) बुनियादी शिक्षा प्रत्येक विषय को आधारभूत कौशल के माध्यम से पढ़ाकर साहित्यिक शिक्षा मे नीरसता पैदा कर देगी। वह संस्कृति और कलाओं की उपेक्षा कर अन्य विषयों की पूरी तरह अवहेलना करेगी। यह शिक्षा व्यवस्था केवल जुलाहों, बढ़इयों, और कुम्हारों के लिये है, सभ्य और संस्कृत नागरिकों के लिये नही है।

जाकिर हुसेन कमेटी की रिपोर्ट ने इस आक्षेप का उत्तर देते हुए कहा कि बुनियादी शिक्षा का उद्देश्य केवल उद्योग का उत्पादन ही नहीं है वरन् उद्योग के प्रच्छन्न साधनों का शिक्षा के गुणात्मक विकास के लिये उपयोग करना है। इस प्रकार बुनियादी शिक्षा का साध्य औद्योगिक शिक्षा ही नही है वरन् शिक्षा गुणात्मक विकास का साधन भी है। यही इसकी सांस्कृतिक महत्ता है।

(३) बुनियादी शिक्षा मे आधारभूत कौशल को इतना महत्व दिया गया है कि इसके द्वारा बालक की एकांगी उन्नति हो सकती है। उसके सर्वांगीण विकास की कल्पना भ्रम मात्र है।

जाकिर हुसेन कमेटी ने ५ घण्टे तीस मिनट के कार्यक्रम ३ घण्टे २० मिनट हस्तकला कौशल को दिये हैं और ड्राइंग, संगीत एवं गणित को ३० मिनट, मातृभाषा को ४० मिनट, समाजशास्त्र और साधारण विज्ञान को ३० मिनट, शारीरिक शिक्षा और अवकाश को १० मिनट दिये हैं। इसमे भी प्रयोगात्मक एवं साहित्योपार्जन शिक्षा में कोई भिन्नता नहीं मानी जायगी। मूल हस्तकौशल के लिये जो समय निर्धारित किया गया है। उसका बहुत बड़ा भाग उससे सम्बन्धित मौखिक शिक्षा, कला, आदि मे बालकों की अभिव्यक्ति को प्रोत्साहित करने के लिये किया जायेगा। इसी समय मे बच्चे हस्तकौशल का वैज्ञानिक विवेचन भी करेंगे, उसके

कार्यक्रम से बौद्धिक ज्ञान भी प्राप्त करेंगे। इस प्रकार उसकी सृजनात्मक शक्ति का विकास किया जायगा।

(४) यह योजना केवल गाँवों की आवश्यकता को ध्यान में रखकर तैयार की गई है और साथ ही उसमें बालिकाओं की शिक्षा पर भी उचित ध्यान नहीं दिया गया। इस प्रकार बुनियादी शिक्षा का क्षेत्र सीमित है।

(५) यह योजना वर्तमान शिक्षा प्रणाली से बिलकुल मेल नहीं खाती अत: इसमें व्यावहारोपयोगिता की कमी है।

(६) इस शिक्षा में अंग्रेजी भाषा की शिक्षा की उपेक्षा की गई है। यह अवश्य खटकने वाली बात थी किन्तु अब जब हिन्दी का प्रचार काफी हो गया है। यह बात भी खटकने वाली नहीं रही।

बेसिक शिक्षा की उत्पत्ति एवं विकास

Q 6. *Trace the growth of Basic Education and describe the distinctive features of this system in the light of the present needs of the country*

(*Agra B. T. 1950*)

बेसिक शिक्षा का जन्म :

Ans भारत में बेसिक शिक्षा के इतिहास को हम तीन कालों में बाँट सकते हैं— (१) सन् १९३७ से १९३९ तक (२) १९३९ से १९४७ तक (३) १९४८ से अब तक। ब्रिटिश कालीन शिक्षा के दोषों के दुष्परिणाम को ध्यान में रखकर गांधीजी ने २२, २३ अक्टूबर १९३७ को अखिलभारतीय राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन देश के शिक्षा विशारदों के सुझाव शिक्षा सम्बन्धी अपने निम्न विचार प्रस्तुत किये—

१—राष्ट्र के प्रत्येक बालक के लिये अनिवार्य तथा नि:शुल्क शिक्षा ७ वर्ष तक दी जाय।

२—शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो।

३—बालक के सर्वांगीण विकास के लिये उनको किसी उत्पादक व्यवसाय के माध्यम से शिक्षा दी जाय और अन्य विषय इस केन्द्रीय व्यवसाय से सम्बन्धित कर दिये जायें। व्यवसाय अथवा हस्तकौशल बालक के वातावरण से चुना जाय।

४—शिक्षा को आत्मनिर्भर बनाया जाय।

इन विचारों को क्रियात्मक रूप देने के लिये अखिलभारतीय राष्ट्रीय शिक्षा सम्मेलन ने डा० जाकिर हुसेन की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की जिसके प्रथम प्रतिवेदन में बुनियादी शिक्षा के मूल सिद्धान्तों, उद्देश्यों, अध्यापकों के प्रशिक्षण, निरीक्षण एवं संगठन तथा प्रशासन और कताई से सम्बन्धित पाठ्यक्रम पर प्रकाश डाला गया। दूसरे प्रतिवेदन में सभी विषय के पाठ्यक्रम तथा उसको आधारभूत कौशल से सम्बन्धित करने के तरीकों का वर्णन किया गया। दूसरे वर्ष ही वर्धा योजना को अधिकृत रूप में स्वीकार कर लिया गया इस प्रकार बुनियादी शिक्षा का जन्म हुआ।

इस योजना की रूपरेखा, उसकी विशेषताओं और दोषों का उल्लेख पहले अनुच्छेद में किया जा चुका है।

जाकिर हुसेन समिति के दोनों प्रतिवेदनों के प्रकाशित हो जाने पर सन् १९३८ में बुनियादी शिक्षा-योजना प्रमुख कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल वाले प्रान्तों में सरकारी तौर पर लागू कर दी गई। बम्बई, मध्यप्रान्त, उड़ीसा, बिहार और उत्तर प्रदेश में अनेक बेसिक स्कूल खोले गये। बेसिक स्कूलों के अध्यापकों के लिये प्रशिक्षण केन्द्र खोले गये, रिफ्रेशर कोर्स की व्यवस्था की गई, तथा बेसिक शिक्षा के लिये विशेष अफसरों की नियुक्ति की गई। उत्तर प्रदेश ने बेसिक शिक्षा को सरकारी नीति घोषित कर दिया। प्रारम्भिक कक्षाओं में बेसिक पाठ्यक्रम लागू कर दिया गया। कई स्थानों पर बेसिक प्रशिक्षण महाविद्यालयों की स्थापना कर दी गई। किन्तु द्वितीय

महायुद्ध के प्रारम्भ होते ही कांग्रेस मन्त्रिमण्डल के त्यागपत्र देने के साथ ही बेसिक शिक्षा की प्रगति रुक गई।

बेसिक शिक्षा का बचपन और उसकी डगमगाती चाल :

इसी बीच केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने वुडएवट रिपोर्ट के साथ-साथ बेसिक शिक्षा योजना की जाँच-पड़ताल प्रारम्भ कर दी। १९३८ में बम्बई के मुख्य मन्त्री श्री बी० जी० खेर की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की गई जिसने बेसिक शिक्षा के विकास के लिये निम्न सुझाव पेश किये :

१—बेसिक शिक्षा योजना को सबसे पहले ग्रामीण क्षेत्रों में लागू किया जाय।

२—शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो—भारत के लिये एक ही सार्वभाषा की आवश्यकता है और इसका स्थान हिन्दी को दिया जा सकता है।

३—उन सांस्कृतिक विषयों को जो प्रधान कौशल से सम्बन्धित न किये जा सकें, स्वतन्त्र रूप से पढ़ाया जाय।

४—किसी बेसिक शिक्षक को २० रु० प्रति माह से कम वेतन न दिया जाय। उसको प्रशिक्षण की काफी सुविधायें दी जायें। स्त्री शिक्षिकाओं को भर्ती करने का प्रयत्न किया जाय और तब तक बेसिक स्कूल न खोले जायें जब तक उन्हें उचित प्रकार का प्रशिक्षण न मिल जाय।

५—अनुभव के आधार पर पाठ्यक्रम का पुनर्गठन किया जाय।

६—किसी वाह्य परीक्षा (*External examination*) की कोई आवश्यकता न होने के कारण आन्तरिक परीक्षण के आधार पर प्रमाण पत्र दिया जाय।

सन् १९४० में केन्द्रीय शिक्षा बोर्ड ने पुनः दूसरी खेर समिति की नियुक्ति की जिनका उद्देश्य बेसिक योजना के पाठ्यक्रम, उच्च शिक्षा से इसका सम्बन्ध आदि समस्याओं का निदान था। इस द्वितीय खेर समिति ने कई महत्वपूर्ण सिफारिशें कीं—

१—प्रान्तीय सरकार कुछ प्रमुख केन्द्रों में आदर्श शिशु विद्यालय तथा नर्सरी स्कूल खोले, उन विद्यालयों के लिये उचित ढंग के प्रशिक्षित शिक्षकों की संख्या में वृद्धि करे क्योंकि केन्द्रीय सरकार प्रशिक्षित स्त्री शिक्षिकाओं के अभाव के कारण और आर्थिक साधनों की कमी के कारण इस अवस्था में नहीं है कि बेसिक पूर्ववर्ती शिक्षालयों की व्यवस्था कर सके।

२—बेसिक स्कूलों का पाठ्यक्रम निम्न बेसिक स्तर पर ५ वर्षीय (६-११ वर्ष के *बालकों के लिये) तथा उच्च स्तर पर ३ वर्षीय हो। उच्च बेसिक स्कूलों के अतिरिक्त अन्य उच्च विद्यालयों में भी निम्न बेसिक स्कूलों से उत्तीर्ण छात्र प्रवेश पा सकें। सांस्कृतिक पक्ष को* सुरक्षित रखते हुये भी ये विद्यालय विभिन्न उद्योगों एवं व्यवसायों तथा विश्वविद्यालयों के लिये बालकों को तैयार करें। इन विद्यालयों में इस बात की भी उचित व्यवस्था हो कि उच्च बेसिक पाठ्यक्रम समाप्त कर बालक उनमें प्रवेश पा सकें।

३—उच्च, बेसिक पाठ्यक्रम में लड़कियों के लिये उपयोगी पाठ्यक्रम रखा जाय और उन्हें गृहविज्ञान की शिक्षा देकर शिक्षा जीवनोपयोगी बनाई जाय।

४—बेसिक विद्यालयों में बनाई गई वस्तुओं के क्रय-विक्रय का भार एक केन्द्रीय संस्था को सौंपा जाय।

५—केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद बेसिक शिक्षा के प्रयोगों तथा उसकी उन्नति की जाँच करती रहे तथा केन्द्रीय सरकार प्रत्येक प्रान्त को बेसिक शिक्षा पर खर्च होने वाली राशि का आधा भाग देती रहे।

इन सिफारिशों को केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड ने अधिकांशतः मान लिया। फलस्वरूप युद्ध-काल में भी बेसिक शिक्षा के विकास के प्रयास जारी रहे। सन् १९४४ में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने सार्जेण्ट योजना प्रकाशित की जिसमें बेसिक शिक्षा की प्रगति के लिये भी काफी सिफारिशें की गईं किन्तु राष्ट्रीय *नेता सरकारी क्रियाओं से सन्तुष्ट न थे।* अतः उन्होंने सन् १९४५ में हिन्दुस्तानी तालीमी संघ में बेसिक शिक्षा की प्रगति पर विचार किया और बेसिक शिक्षा का नाम नई तालीम रख दिया। इस नई तालीम में बेसिक पूर्ववर्ती, बेसिक, बेसिकोत्तरवर्ती और प्रौढ़ शिक्षा में चार भाग कर दिये गये। सन् १९४७ में हिन्दुस्तानी तालीमी संघ, वर्धा ने बेसिक शिक्षा का एक विस्तृत पाठ्यक्रम प्रस्तुत किया। स्वतन्त्रता मिलने के बाद

सभी प्रान्तों मे प्राय: यही पाठ्यक्रम लागू कर दिया गया। इस प्रकार भारत की वर्तमान प्राथमिक शिक्षा की आधारशिला बेसिक शिक्षा हो गई।

सन् १९४९ मे केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने समस्त देश मे बेसिक शिक्षा मे एकरूपता लाने के लिये निम्नलिखित सुझाव रखे—

१—जूनियर बेसिक स्कूलों का पाठ्यक्रम ५ वर्षीय हो।

२—प्रधानाध्यापक या प्रधानाध्यपिकायें बेसिक प्रशिक्षण महाविद्यालयो मे १ वर्ष का प्रशिक्षण प्राप्त किये हुए हो, जूनियर स्कूलो के ५०% अध्यापक कम से कम ६ माह का प्रशिक्षण पाये हुए हो। जब तक कक्षा १ और २ के लिये प्रशिक्षित अध्यापक न मिल सकें तब तक नये बेसिक स्कूल खोले ही न जायें।

३—प्रत्येक बेसिक स्कूल मे कौशल शिक्षण के लिये समुचित साधन हो।

इस प्रकार सन् १९५० से पूर्व बेसिक शिक्षा के प्रसार के लिये कई अमूल्य परामर्श दिये गये और उन पर अमल किया गया। तब से भारत मे नये नये बेसिक स्कूलो की स्थापना एव वर्तमान विद्यालयो को बेसिक पद्धति पर लाने का प्रयत्न निरन्तर चल रहा है। दोनो पचवर्षीय योजनाओ मे बेसिक शिक्षा के प्रसार के लिये काफी प्रयास किये गये हैं।

बेसिक शिक्षा की स्वातन्त्र्योत्तर प्रगति

प्रथम पचवर्षीय योजना और बेसिक शिक्षा—केन्द्रीय सरकार ने प्रत्येक राज्य के एक चुने हुए क्षेत्र मे प्रयोगात्मक एव सम्बन्धित बेसिक सस्थाओ के समूह की स्थापना पर बल दिया और जूनियर बेसिक स्कूलो से लेकर स्नातकोत्तर प्रशिक्षण सस्थाओ के घनिष्ठ सम्बन्ध और सहयोग की महत्ता पर प्रकाश डाला। शीर्ष पर एक स्नातकोत्तर बेसिक प्रशिक्षण महाविद्यालय की स्थापना करके अध्यापको, सीनियर बेसिक तथा बेसिकोत्तर विद्यालयो के लिये अध्यापकों को प्रशिक्षित किया। सीनियर बेसिक स्कूलो का प्रयोजन प्रयोगात्मक शिक्षण और बेसिक शिक्षा में नवीन प्रयोगों का विकास माना गया। उसी क्षेत्र मे एक बेसिक प्रशिक्षण विद्यालय की स्थापना की गई जिसका उद्देश्य जूनियर बेसिक स्कूलो के अध्यापको का प्रशिक्षण था। इन अध्यापको को बेसिक शिक्षा का व्यावहारिक ज्ञान देना एव बेसिक शिक्षा प्रणाली के प्रति उनमे श्रद्धा की भावना पैदा करना इन विद्यालयों का काम माना गया। इस प्रशिक्षण विद्यालय से सम्बद्ध दो प्रयोगात्मक जूनियर बेसिक स्कूलों की स्थापना की योजना की गई जिनमे बेसिक प्रशिक्षण विद्यालयों के अध्यापक बेसिक शिक्षा के विभिन्न अंगो पर अनुसधान कार्य कर सकते हैं।

बेसिक शिक्षा को जनता की वस्तु बनाने के लिये और उनका जनता से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने के लिये चुने हुये क्षेत्रो मे बेसिक शिक्षण सस्थाओं के साथ पाँच सामुदायिक क्षेत्र, पुस्तकालय सेवा, और जनता कालेज स्थापित कर दिये गये हैं।

यदि बेसिक शिक्षा को राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली बनाना है तो यह आवश्यक था कि उसे अधिक व्यापक बनाया जाय। अतएव प्रथम पचवर्षीय योजना में शहरी क्षेत्रों मे भी सरकार ने कताई, बुनाई, जिल्दसाजी, लकडी का काम, धातु का काम, चमडे का काम, सिलाई का काम आदि हस्तकलाओ एव कौशलों को शिक्षा का माध्यम मान लिया। केन्द्रीय सरकार ने राज्य सरकारो को आर्थिक सहायता प्रदान कर बेसिक शिक्षा की प्रगति को दूना चौगुना कर दिया।

सन् १९५४-५५ मे केन्द्रीय सरकार ने विभिन्न राज्यो की सरकार को जो अनुदान स्वीकृत किया उसको लाखो मे इस प्रकार दिखाया जा सकता है :

१.	स्नातकोत्तर बुनियादी प्रशिक्षण महाविद्यालय	१८.१ लाख
२.	बुनियादी प्रशिक्षण विद्यालय	१२.७ ,,
३.	प्राइमरी विद्यालयो का सुधार	८.४ ,,
४.	पूर्व प्रारम्भिक शिक्षा विकास	१.५ ,,
५.	शहरी क्षेत्रों मे बेसिक स्कूलो की स्थापना	४.४ ,,
६.	बेसिक शिक्षा-प्रसार	१९.९ ,,

द्वितीय पंचवर्षीय योजना तथा बेसिक शिक्षा—इस योजना में प्रारम्भिक शिक्षा प्रणाली को बेसिक शिक्षा प्रणाली में बदलने का भरसक प्रयत्न किया गया है। साथ ही ५३०० प्रारम्भिक जूनियर तथा ३५०० मिडिल सीनियर बेसिक स्कूल खोलकर बेसिक शिक्षा की प्रगति को तीव्र कर दिया गया है जैसा कि नीचे दिये गये आंकडो से सष्ट होता है—

	१९५०-५१	१९५५-५६	१९६०-६१
प्रशिक्षण संस्थायें सैकड़ा में	१'१	८'५	७'३
बेसिक स्कूल (हजारों में)	१७	१००	३८'६
विद्यार्थी (हजारों में)	१८५०	११०००	४२२८'०

केन्द्रीय तथा राज्य की ये सरकारें शिक्षा के क्षेत्र में बेसिक शिक्षा का विकास करने में निरन्तर क्रियाशील हैं। अखिल भारतीय एंग्लो-इण्डियन शिक्षा मण्डल ने भी अपने अधीन सब कन्वेंट तथा दूसरे विद्यालयों में बेसिक शिक्षा प्रणाली को अपना लिया है। पब्लिक स्कूल भी अब वहाँ की प्रारम्भिक कक्षाओं में बेसिक शिक्षा शुरू कर रहे हैं। यह आशा है कि द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक देश में लगभग ८० हजार बेसिक स्कूल तथा उनमें ६० लाख बच्चे पढ़ने लगेंगे। प्रारम्भिक स्कूलों को बुनियादी स्कूलों में बदलने का कार्यक्रम आरम्भ हो गया है। बुनियादी और गैर बुनियादी सभी प्रारम्भिक स्कूलों में एक साथ मिलाजुला पाठ्यक्रम शुरू कर दिया गया है। इस प्रकार केन्द्रीय एवं राजकीय सरकारें अपने सतत प्रयत्नों द्वारा देश में बेसिक शिक्षा की प्रगति कर रही है—किन्तु इतना होते हुए भी बेसिक शिक्षा की प्रगति सन्तोषप्रद प्रतीत नहीं होती।

बेसिक शिक्षा के मार्ग में बाधाएँ

Q 7 What have been the main difficulties in the way of the expansion of Basic Education ? What steps have been taken by the Central Government and the Government of Uttar Pradesh to overcome them ?

(L. T. 1957)

Ans १९५६-५७ की सरकारी विज्ञप्ति के अनुसार "बुनियादी शिक्षा एक नवीन प्रयोग है। उसे पद-पद पर बाधाओं का सामना करना पड़ रहा है—ये बाधायें हैं उपयुक्त प्रशिक्षित शिक्षकों का अभाव, अर्थाभाव तथा शिक्षा साधनों की कमी।"[1]

१. आर्थिक कठिनाइयाँ—११ वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों के लिये निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था अगले १५ या २० वर्षों में भी हो जाय तो बहुत आश्चर्य की बात होगी क्योंकि न तो केन्द्र के पास ही इतना धन है और न राज्यीय सरकारों के पास ही कि वे प्राथमिक शिक्षा में खर्च कर सकें। दोनों सरकारें नवराष्ट्र के निर्माण के अन्य कार्यों में लगी हुई हैं। शिक्षा की ओर अभी उदासीनता बरती जा रही है। धनाभाव के कारण शिक्षा की प्रगति रुकी पड़ी है। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में तो पहली पंचवर्षीय योजना से भी कम धन प्रारम्भिक शिक्षा में व्यय किया गया।

२. बेसिक शिक्षा के प्रति भ्रमात्मक विचार—राज्यीय सरकार धनाभाव का कारण बतलाते हुए अब भी बेसिक शिक्षा के क्षेत्र में गम्भीरता से कार्य नहीं कर रही है। वे सामान्य एवं बेसिक विद्यालयों के आधारभूत सिद्धान्तों को बिना समझे ही सामान्य विद्यालयों में किसी हस्तकला या कौशल का प्रबन्ध करके अपने उत्तरदायित्व की इतिश्री समझ बैठती हैं। फलतः सामान्य एवं बेसिक शिक्षा के मेल से एक वर्णसंकर जाति की शिक्षा का भरण-पोषण हो रहा है। सन्देह और दुविधा के इस वातावरण में बेसिक शिक्षा का समुचित विकास अवरुद्ध हो रहा है।

केन्द्रीय सरकार ने सिद्धान्ततः तो बेसिक शिक्षा को स्वीकार कर लिया है, किन्तु ऐसा कोई सक्रिय कदम नहीं उठाया जिससे उस आलोचना का अन्त हो जाय जो समय समय शिक्षा-विशारद बेसिक शिक्षा की किया करते हैं। न तो वह नवीन विद्यालय को खोलने का निषेध ही करती है और न उन्हें बेसिक विद्यालयों में परिवर्तित करने की निश्चित अवधि तय करती है। केन्द्रीय और राज्यीय सरकारों के बीच फैले हुए भ्रमात्मक विचार बेसिक शिक्षा के वांछनीय प्रसार के पथ में रोड़े का कार्य कर रहे हैं।

अनुमान निर्धारण समिति ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि यद्यपि नई तालीम को चलते हुए अभी २४ वर्ष हो गये हैं किन्तु बुनियादी शिक्षा के विषय में सही धारणा का अभाव है

1. 'Ten Years of Freedom'

और अभी तक अधिकतर लोगो मे इस सम्बन्ध मे ठीक ज्ञान नही है। उसकी अलग अलग रीति से व्याख्या की जाती है। अब सवाल यह उठता है कि २५ वर्षों के बाद भी बुनियादी शिक्षा के विषय मे लोगो की सही धारणा क्यो नहीं बन पाई। इसका कारण है कि प्रत्येक राज्य मे बुनियादी शिक्षा के भिन्न-भिन्न रूप हैं। कही प्राथमिक चरण मे ४ वर्ष की पढाई होती है, कही ५ वर्ष की और कही ६ वर्ष की। कुछ विद्यालयो मे एक केन्द्रीय दस्तकारी के द्वारा शिक्षा दी जा रही है तो कुछ विद्यालयो में दूसरे विषयो के साथ एक उद्योग सिखाया जा रहा है। इस प्रकार केन्द्रीय सरकार ही बेसिक शिक्षा सम्बन्धी अपनी नीति को स्पष्ट नही कर पा रही है।

३. **बेसिक शिक्षा के अनुयायियो मे मतभेद**—बेसिक शिक्षा के अनुयायियों मे गृहयुद्ध शुरू हो गया है। गान्धीजी के कट्टर अनुयायी नई तालीम के मूलरूप मे कोई परिवर्तन करना नही चाहते, उदारपन्थी मेर समितियो एव सार्जेण्ट रिपोर्टों के द्वारा निरूपित मार्गों की अनुसरण करना चाहते हैं। इन उदारपन्थियों मे भी दो समुदाय बन गये हैं। पहला दल बुनियाद शिक्षा की अवधि को दो भागो मे बाँटने का पक्षपाती है दूसरा दल इस प्रकार का बँटवारा पसन्द नही करता क्योंकि इस बँटवारे से उद्योग द्वारा शिक्षा ठीक प्रकार प्रतिफलित नही हो सकेगी। इन सब मतभेदो के कारण नयी तालीम के विषय में लोगो की धारणायें अभी धुँधली बनी हुई हैं, फलस्वरूप उसकी प्रगति भी मन्थर गति से हो रही है।

४. **बेसिक शिक्षा मे रूढिवादिता की वृद्धि**—बुनियादी शिक्षा मे भी वैसी ही नियम-निष्ठा आ गई है जैसी कि सामान्य शिक्षा मे विद्यमान है। किसी भी कार्यक्रम के तामील करने से यदि कोई चूक हुई तो शिक्षक वर्ग एव निरीक्षको को आडे हाथ लिया जाता है अत उसमे स्वतन्त्रता का अश लुप्त होता जा रहा है। शिक्षकगण अपनी प्रेरणा को खोता जा रहा है क्यो कि उन्हे कतिपय नियमो का पालन न करने पर दण्डित किया जाता है।

५ **वर्तमान शिक्षा प्रणाली का सबल विरोध**—बेसिक शिक्षा की सबसे बडी कमजोरी यह है कि वह वर्तमान शिक्षा प्रणाली से बिल्कुल मेल नही खाती। सरकार ने प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र मे बुनियादी शिक्षा को अपना लिया है और कई जूनियर और सीनियर बेसिक स्कूल खोल भी रही है, किन्तु इसके बाद के चरणो का कुछ पता नही चलता। इसके विपरीत पूरे देश मे १२००० से भी अधिक माध्यमिक स्कूल तथा १००० से भी अधिक महाविद्यालय हैं और उनकी सख्या दिन पर दिन बढती ही जा रही है क्योंकि पुराने ढर्रे के शिक्षालयों की ही माँग मे वृद्धि हो रही है बेसिक शिक्षालयो की माँग अभी स्थिर ही बनी हुई है। पुराने माध्यमिक विद्यालय अधिक लोकप्रिय हैं क्योंकि लोगों मे मैट्रिक सर्टीफिकेट की चाह बढती ही जा रही है।

६. बेसिक शिक्षा का प्रसार अभी तक केवल ग्रामीण क्षेत्रो मे ही किया गया है। नगरो में उसका प्रचार नगण्य है।

इन कारणो से बेसिक शिक्षा की प्रगति आशानुकूल नही हैं।

भाग ५ (अ)

इंगलैण्ड और अमेरिका में जनशिक्षा का स्वरूप

अध्याय १८

आंग्ल शिक्षा की समस्याएँ

वर्तमान आंग्ल शिक्षा व्यवस्था के महत्वपूर्ण अधिनियम

Q 1 The Education Act of 1944 lays unprecedented obligations both upon public authorities and private citizens, Discuss *(L. T 1958)*

or

Explain fully how the Education Act of 1944 is based on the principle of distribution of power. *(L. T. 1955)*

or

Q. 2. Discuss the main changes brought about by the Education Act of 1944. *(L T. 1955)*

or

Q 3. Mention the chief defects that the Education Act of 1944 sought to remedy outline the main provision. *(L. T. 1955)*

Ans. १६४४ के शिक्षा अधिनियम के अनुसार इंगलैंड मे शिक्षा व्यवस्था, शिक्षा सम्बन्धी क्रियाओ और सेवाओ मे जो परिवर्तन उपस्थित हुए उनकी रूपरेखा नीचे दी जाती है—

(१) इस अधिनियम ने केन्द्रीय तथा स्थानीय प्रशासन मे परिवर्तन उपस्थित किये हैं। पहले शिक्षा का भार शिक्षा मडल के हाथ मे था। १६४४ के बाद शिक्षा मन्त्रालय और शिक्षा मन्त्री इसके उत्तरदायी माने गये हैं। शिक्षा मन्त्रालय देश भर की शिक्षा का मुख्य प्रशासन माना जाने लगा है। स्थानीय प्रशासन का अधिकार स्थानीय शिक्षा अधिकारी (LEA) को दे दिया गया है। काउण्टी काउ सिल और का उटीवरो काउ सिलो के हाथ मे यह उत्तरदायित्व सौंप दिया गया है। शिक्षा मन्त्री यद्यपि शिक्षा क्षेत्र मे सर्वोपरि माना गया है किन्तु उसके अधिकार कुछ प्रतिबन्धो द्वारा सीमित कर दिये गये हैं। उसके विभाग के काम के लिए समद से कोई भी सदस्य प्रश्न पूछ सकता है, उसको अनिवार्य, वार्षिक रिपोर्ट ससद मे पेश करनी पडती है, वह अपनी सलाहकार समिति की सलाह के बिना कार्य नही कर सकता। शिक्षामन्त्री को अधिनियम ने विशेष अधिकार भी दिए हैं। वह शिक्षा सम्बन्धी खर्चों पर भुगतान कर सकता है, आवश्यकतानुसार पूरी या आधा फीस, वस्त्र, आय की व्यवस्था के लिए धन दे सकता है जो उसकी दृष्टि मे किसी छात्र या छात्रा की शिक्षा प्राप्ति मे सहायक दिखाई पडता है।

(२) अनिवार्य शिक्षा की अवधि ५ से १५ वर्ष तक करदी गई और पाठशाला छोड़ने की आयु भविष्य में १६ वर्ष तक बढ़ाई जाने की सम्भावना भी रखी। जो अभिभावक इस काल मे अपने बच्चो को सार्वजनिक स्कूलो मे नही पढ़ाना चाहते, उनको शिक्षा मन्त्री की अनुमति से अन्यत्र भेजने की आज्ञा मिल गई।

(३) शिक्षा की तीन क्रमिक अवस्थाएं मान ली गई—प्राथमिक, माध्यमिक और अग्रिम शिक्षा। प्राथमिक शिक्षा ५ से १५ तक, माध्यमिक ११+ से १५+ या ऊपर और अग्रिम

शिक्षा १५ से १७ या १८ वर्ष तक कर दी गई। २ वर्ष से कम आयु वाले बच्चों तथा अपंग तथा शारीरिक विकलांगों के लिए शिक्षा की व्यवस्था करने की जिम्मेदारी स्थानीय प्राधिकरणों को सौंप दी गई।

(४) अधिनियम ने काउन्टी और वॉलन्टरी स्कूलों को अपने भवनों की निर्मिति निर्माण, भवनों के निर्माण, मैदान आदि के सुधार के लिए शिक्षा मंत्री की आज्ञाओं का पालन करने के लिए बाध्य कर दिया।

(५) स्कूलों के संचालन का स्थानीय शिक्षा प्राधिकरणों को विशेष अधिकार दिए गए क्योंकि प्राथमिक स्कूलों की प्रबन्धक सभाओं (managing bodies) और माध्यमिक स्कूलों के शासन निकायों (Governing bodies) के प्रतिनिधि रखे जाते थे। इन स्कूलों का प्रबन्ध नियमों तथा प्रमाणपत्रों की धाराओं के अनुसार होने लगा।

(६) धार्मिक शिक्षा—सामूहिक प्रार्थना प्रत्येक स्कूल के लिए अनिवार्य करने की इस अधिनियम ने अभिभावकों को अपने धर्म मानने में कोई रुकावट पैदा नहीं की है क्योंकि वह अपने छात्र को इससे मुक्त किया जा सकता है। धार्मिक शिक्षा मान्य पाठ्य विवरण के अनुसार तथा विशेष अध्यापकों द्वारा दी जाती है। ऐच्छिक संस्थाओं द्वारा संचालित स्कूलों में इनके स्कूलों द्वारा ही दी जाती है।

(७) अध्यापक संरक्षण एवं वेतन निर्धारण—कोई स्कूल अधिकारी धर्म के लिए किसी अध्यापक को निकाल नहीं सकता। विवाहित स्त्रियों को भी शिक्षा देने की आज्ञा दे दी गई। बर्नहम समिति द्वारा प्राथमिक, माध्यमिक तथा अग्रिम पाठशालाओं के अध्यापकों के वेतनक्रम तथा तकनीकी समिति द्वारा तकनीकी स्कूलों के अध्यापकों की वेतन श्रेणी निश्चित करदी गई।

(८) शारीरिक दोष वालों, मानसिक रूप से पिछड़े हुए छात्रों की उचित शिक्षा व्यवस्था की।

(९) छात्रों के लिए आवश्यक और कम खर्चीली सेवाओं और सुविधाओं का निर्माण करने की उचित व्यवस्था की। इन सेवाओं में चिकित्सा, स्वास्थ्य निरीक्षण, मध्याह्नकालीन भोजन, और दूध की व्यवस्था को उचित महत्त्व दिया गया।

(१०) इस अधिनियम ने राजकीय सहायता एवं प्रशासन के आधार पर राज्य के स्कूलों को दो वर्गों में बाँट दिया—(अ) स्थानीय कर एवं केन्द्रीय सहायता पर आधित और शिक्षा विभाग की प्राथमिक, माध्यमिक और अग्रिम पाठशालाएं (ब) स्वतन्त्र और ऐच्छिक संस्थाओं द्वारा संचालित पब्लिक स्कूल, प्रिपेरेटरी स्कूल, प्रोप्राइटरी और प्राइवेट स्कूल जिनका नाम पंजीकृत कर लिया गया है और इनके द्वार राज्य द्वारा निरीक्षण के लिए सर्वदा खुले रखे जाते हैं।

(११) स्थानीय शिक्षा प्राधिकारों को १२ से अधिक आयु वाले युवक और युवतियों के लिए जिन्होंने अनिवार्य शिक्षा राज्य के स्कूलों में पा ली है, अग्रिम शिक्षा और मनोरंजन एवं सांस्कृतिक क्रियाकलापों के लिए बाध्य कर दिया है।

(१२) अनिवार्य शिक्षा आयु के बाद प्रत्येक अधिकार काउण्टी कालेज खोलने का अधिकार है, छात्रों को मानसिक, शारीरिक तथा व्यावहारिक या औद्योगिक शिक्षा देकर उसे सफल नागरिक बना सके।

(१३) प्राथमिक शिक्षा तो अनिवार्य एवं नि:शुल्क करदी गई है किन्तु माध्यमिक शिक्षा बिलकुल नि:शुल्क न हो सकी क्योंकि प्रत्यक्ष अनुदान लेने वाले स्कूलों को शुल्क लेने की अनुमति दे दी गई किन्तु राजकीय स्कूलों में माध्यमिक शिक्षा नि:शुल्क ही रही।

(१४) ऐच्छिक स्कूल तीन प्रकार के कर दिये गये हैं—सहायता प्राप्त स्कूल, विशिष्ट समझौते वाले स्कूल और नियन्त्रित स्कूल।

अधिनियम की समीक्षा

गुण :

(१) इस अधिनियम द्वारा माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के द्वार सब लोगों के लिए खुल गये हैं। सबको अपनी आयु, योग्यता और रुचि के अनुसार शिक्षा पाने का अधिकार है।

(२) इस अधिनियम ने प्राचीन परम्पराओं की रक्षा तथा भविष्य के नये समाज के लिये तैयारी का प्रबन्ध किया है।

(३) इस अधिनियम द्वारा शिक्षा विकास, विस्तार और संगठन आदि की सुव्यवस्था की गई है।

दोष (१) इस अधिनियम से माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में अनावश्यक जटिलता उत्पन्न हो गई है विभिन्न प्रकार के स्कूलों का विभिन्न प्रकार की संस्थाओं द्वारा सचालन जटिलता का विषय बन गया है। सभी माध्यमिक स्कूलों को समान स्तर देने का असफल प्रयत्न किया गया है।

(२) ११+वास्तव मे प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा का संधि स्थल नहीं माना जा सकता क्योंकि इस समय बालकों को अपनी रुचि और योग्यता का ज्ञान नहीं होता और न ये रुचियाँ इस आयु पर स्पष्ट ही हो पाती है।

(३) सामूहिक उपासना को अनिवार्य बना देना आज के धर्म निरपेक्ष समाज मे उचित नहीं मालूम होता।

(४) सभी माध्यमिक स्कूलो मे शुल्क व्यवस्था समाप्त नही की जा सकी है।

(५) स्वतन्त्र स्कूलों के सम्बन्ध मे यह अधिनियम कुछ भी नहीं कर सका पब्लिक स्कूल अब भी १३ वर्ष की अवस्था पर छात्रों को प्रवेश देते और उन्हें विश्वविद्यालयों के लिये तैयार करते हैं।

The Education Act 1946

१९४६ का शिक्षा अधिनियम १९४४ के अधिनियम की धाराओं को स्पष्ट करने और उसमें संशोधन करने के लिये पास किया गया इसकी मुख्य धारायें निम्नलिखित हैं :

(१) नियत्रित स्कूलों की सीमाओं और क्षेत्र में वृद्धि की जा सकती है।

(२) ऐच्छिक स्कूलों के सम्बन्ध मे अस्थायी स्थल की व्यवस्था करने का अधिकार शिक्षा अधिकारी के पास है।

(३) किसी विशेष अवसर के १४ दिन पहले सूचना देने पर सामूहिक प्रार्थना स्कूल के बाहर की जा सकती है।

(४) [illegible] सकती है।

(५) [illegible]

(६) [illegible] मिति का सदस्य बन सकता है।

१९४८ का शिक्षा अधिनियम

इसकी धारायें निम्नांकित हैं—

(१) मेधावी छात्र की माध्यमिक शिक्षा १०३+पर आरम्भ की जा सकती है।

(२) एक स्थानीय शिक्षा प्राधिकार दूसरे स्थानीय शिक्षा प्राधिकार के क्षेत्र के बच्चों की शिक्षा व्यवस्था कर सकती है।

(३) दान आयुक्तों के अधिकार पुन उनको लौटा दिये गये।

१९५३ का शिक्षा अधिनियम

(१) दन्त चिकित्सा आरम्भ करनी होगी।

(२) अध्यापक बाल समितियों के सदस्य हो सकते हैं।

(३) स्थानीय शिक्षा प्राधिकार अन्य क्षेत्रो के छात्र-छात्राओं की अग्रिम शिक्षा के लिये धन प्राप्त कर सकती है।

अंग्रेजी शिक्षा-प्रशासन

Q. 4 Explain the importance of the following in the educational administration of the Britain (a) The Education ministry (b) The Local Educational Authorities (c) Her Majestys Inspection.

Ans शिक्षामन्त्री—१९४४ के अधिनियम के अनुसार शिक्षा सम्बन्धी सब अधिकार और कर्तव्य शिक्षामन्त्री को दिये गये है। यह अधिनियम या अन्य अधिनियम जो १९४६, ४८

संगठन और परिणाम भिन्न-भिन्न होते हैं अतः इनको सलाह और सुझाव देने के लिये राष्ट्रीय स्तर पर अनेक संगठनों की स्थापना की गई है। शिक्षा समितियों के भी राष्ट्रीय स्तर पर एसोसियेशन स्थापित किये जाते हैं। मुख्य बड़े-बड़े एसोशियेशन्स जिनका सम्बन्ध प्राधिकारों से है, ये हैं—

(अ) County Council Association

(ब) Association of Municipal Corporation

शिक्षा समितियों का मुख्य संघ A. E. C. (Association of Educational Committee) के नाम से प्रसिद्ध है।

A. E. C. के कार्यों को हम चार प्रकार में बाँट सकते हैं

(१) शिक्षा प्राधिकारों को सलाह देना।
(२) National Union of Teachers से अध्यापकों सम्बन्धी विषयों पर बात करना।
(३) शिक्षा मन्त्रालय से स्थानीय शिक्षा प्राधिकारों सम्बन्धी बातचीत करना।
(४) स्थानीय शिक्षा प्रधिकारों को राष्ट्रीय समितियों में प्रतिनिधित्व का अधिकार देना।

शिक्षक वर्ग के संघ—राष्ट्रीय शिक्षा कार्य में सहयोग देने के लिये कई शिक्षक संघों की स्थापना की जा चुकी है ये संघ निम्नांकित हैं

(i) माध्यमिक स्कूलों के मुख्याध्यापकों का संघ
(ii) मुख्याध्यापिकाओं का संघ
(iii) असिस्टेण्ट मास्टर्स के संघ
(iv) असिस्टेण्ट मिस्ट्रेसेज के संघ
(v) इन चारों संघों की संयुक्त समिति
(vi) तकनीकी शिक्षा से सम्बन्ध रखने वाले अध्यापकों एवं अध्यापिकाओं के संघ
(vii) Nationl Union of Teachers
(viii) अध्यापकों की वेतन सम्बन्धी बर्नहम समितियाँ जिनके सदस्य और ७ संघों के सदस्य होते हैं।

National Union of Teachers में राष्ट्र के लगभग ८०% अध्यापक सदस्य हैं। इस संस्था के निम्नलिखित कार्य हैं

(i) अपने सदस्यों को सलाह देना या उनके लिये स्थानीय शिक्षा अधिकारी से बात करना।
(ii) शिक्षा समितियों के ऐसोशियेशन से शिक्षा प्राधिकारों और शिक्षकों के हित की बात करना।
(iii) शिक्षा मन्त्रालय से मिलकर अध्यापकों के हित की बात करना।

Her Majesty's Inspectors

निरीक्षक गण

शिक्षा के क्षेत्र में काम करने वाले उच्च योग्यता वाले व्यक्ति एक ओर शिक्षा मन्त्रालय से और दूसरी ओर स्थानीय शिक्षा प्राधिकारों से सम्पर्क रखते हैं इंगलैंड की शिक्षा के संगठन के आवश्यक तत्व हैं। इनको शिक्षा विभाग की आँख और कान की संज्ञा दी गई है क्योंकि शिक्षा व्यवस्था का निरीक्षण करते हैं। उनकी नियुक्ति शिक्षा के निमित्त धन का उचित प्रयोग करने के लिये भी की गई है इसलिये उन्हें धन द्रव्य का संरक्षक (Watch dogs of finance) भी कहा जाता है।

शिक्षा मन्त्रालय से सीधा सम्बन्ध रखने वाला सीनियर चीफ निरीक्षक होता है। उसका सम्बन्ध ७ सीनियर निरीक्षकों से होता है। इन सात सीनियर निरीक्षकों का संगठन इस प्रकार का है।

(१) वेल्स के लिए १ सीनियर ७ स्टाफ, और २२ अन्य निरीक्षक होते हैं।
(२) प्राथमिक शिक्षा के लिए १ सीनियर निरीक्षक
(३) माध्यमिक ,, १ ,, ,,

(४) अधिक शिक्षा (माध्यमिक) ।
(५) . औद्योगिक तथा व्यावसायिक के लिये १ सीनियर निरीक्षक
(६) अध्यापक प्रशिक्षण के लिए
(७) शिक्षा के विकास के लिए

इस प्रकार चीफ सीनियर इन्स्पेक्टर अपना इन्स्पेक्टरों का काम बांट देते हैं। कुछ निरीक्षक साधारण निरीक्षक कहलाते हैं जो स्कूलों का निरीक्षण करते हैं, कुछ जिला निरीक्षक कहलाते हैं जो शिक्षा मन्त्रालय तथा एक या स्थानीय अधिकारी से सम्बन्ध रखते हैं। ये नर्सरी, शिशु, प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करते हैं। दो प्रकार के और निरीक्षक होते हैं जिन्हें क्षेत्रीय विशेषज्ञ तथा क्षेत्रीय सलाहकार कहते हैं। सलाहकार निरीक्षकों से किसी भी समय सलाह ली जा सकती है। यह सलाह शिक्षा कार्य, शिक्षा संगठन तथा प्रबन्ध से सम्बन्धित हो सकती है। क्षेत्रीय (Divisional) निरीक्षक संख्या में १० होते हैं।

कुछ स्थानीय अधिकारी भी निरीक्षकों को नियुक्त कर सकते हैं। स्थानीय अधिकारों एवं मन्त्रालय से सम्पर्क इन निरीक्षकों द्वारा ही स्थापित किया जाता है, स्थानीय अधिकारों की आवश्यकताओं की सूचना से निरीक्षक Territorial Principals के पास पहुँचते हैं या सीनियर चीफ द्वारा विद्यालय तक पहुँचाई जाती है। शिक्षा मन्त्रालय में शिक्षा मन्त्री की सहायता उपसचिव और सहायक सचिव करते हैं। उपसचिव के अधीन शिक्षा के सभी विभाग और कार्य रहते हैं।

इंगलैंड में पूर्व माध्यमिक शिक्षा

Q 5 Explain in detail the organisation of primary education in England and describe the methods of selection of children for secondary education *(L. T. 1955)*

Or

Describe the organisation of primary education in England and compare it with that of India

Or

Discuss the provision made for nursery and infant education in England *(L. T. 1956)*

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

Ans. १८ वी शताब्दी में डेम स्कूल ७ वर्ष के बालकों को शिक्षा देते थे। उनमें फीस नही के बराबर ली जाती थी और निर्धनो के बच्चों को वर्णाक्षर तथा प्रारम्भिक गणित की शिक्षा दे दी जाती थी। इसके अतिरिक्त चैरिटी स्कूल और सन्डे स्कूल भी प्राथमिक शिक्षा मे सहयोग प्रदान कर रहे थे। प्राथमिक शिक्षा का इतिहास मानव के विशेष अधिकारों पर आक्रमण का दिग्दर्शन करता है। एक समय वह था जब शिक्षा दानस्वरूप बाँटी जाती थी एक समय आज का है जब नि.शुल्क प्राथमिक शिक्षा पाना मानव का अधिकार बन गया है। इन दो विषम विचार-धाराओं के बीच का इतिहास एक लम्बा इतिहास है।

१९वीं शताब्दी में डा० बैल और लकास्टर के स्कूल जो कम खर्च पर ही चल सकते थे, बहुत पनपे। एक अध्यापक कुछ अच्छे छात्रों को पढ़ा देता, वे छात्र अन्य छात्रों को वही विषय पढ़ा दिया करते थे। १९ वीं शताब्दी के मध्य तक राज्य ने प्रारम्भिक शिक्षा मे न तो कोई ठोस कदम ही उठाया न इस क्षेत्र में कार्य करने वाली संस्थाओं को ही कोई विशेष सहायता दी। प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में जो कुछ कार्य हुए वे १८३२ से प्रारम्भ हुए जब कि देश में शिक्षा समिति की स्थापना हुई। आधुनिक प्रारम्भिक शिक्षा का स्वरूप गत ११२ वर्षों के प्रयासो का फल है। इस क्षेत्र में अन्तिम अधिनियम जिसे प्राथमिक शिक्षा को संगठित रूप दिया है, १९४४ का है।

प्राथमिक शिक्षा की वर्तमान अवस्था

स्कूलों के प्रकार—१९४४ के शिक्षा अधिनियम के अनुसार प्राथमिक विद्यालय दो भागो मे बाँट दिये गये है, पूर्व प्राथमिक और प्राथमिक। पूर्व प्राथमिक विद्यालयो के तीन प्रकार

है—नर्सरी, इन्फैण्ट और किण्डरगार्टेन। प्राथमिक शिक्षा पहले प्रारम्भिक शिक्षा कहलाती थी। प्रारम्भिक शिक्षा तो केवल निम्न वर्ग के लिये थी किन्तु प्राथमिक शिक्षा सबके लिये हो गई है। प्रारम्भिक शिक्षा १४ वर्ष की आयु पर अपने आप समाप्त हो जाती थी। किन्तु प्राथमिक शिक्षा माध्यमिक शिक्षा की पहली सीढ़ी बन गई है। प्रारम्भिक शिक्षालयो की तरह प्राथमिक स्कूलो का सगठन भी दो तरह का है—ऐच्छिक और काउण्टी स्कूल। ऐच्छिक स्कूलो का एकमात्र लक्ष्य होता है किसी चर्च के आदर्शो का पालन और धर्म की रक्षा। काउण्टी स्कूलो मे इस प्रकार की धार्मिक शिक्षा पर कोई विशेष बल नही दिया जाता। ऐच्छिक स्कूल दो प्रकार के होते हैं सहायता प्राप्त और नियत्रित स्कूल। सहायता प्राप्त (Aided Schools) स्कूलो के भवनो को प्रबन्धक लोग उचित अवस्था मे रखने का प्रयत्न करते हैं किन्तु नियत्रित स्कूलो (Controlled School) की सारी व्यवस्था प्राधिकारो (Authorities) के हाथ मे सौंप दी गई है उनको चलाने वाले व्यक्तियो मे से कुछ को ही प्रबन्ध समिति मे ले लिया गया है।

नर्सरी स्कूल चार प्रकार के होते हैं। इन स्कूलो मे ३+से ५+ तक नर्सरी शिक्षा, ५+ से ७+ तक किण्डरगार्टेन ७+ से ११+ तक प्राथमिक शिक्षा दी जाती है। ५+ से ११+ तक प्राथमिक शिक्षा निशुल्क तथा अनिवार्य किन्तु ५ वर्ष के पूर्व की नर्सरी शिक्षा अनिवार्य नही रखी गई है। नर्सरी शिक्षा का प्रबन्ध प्राधिकारो के अधीन है और अन्य सस्थाओ को भी अधिकार है। उनको चलाने का १६४४ के अधिनियम ने अनिवार्य-सा कर दिया है क्योकि उसकी एक धारा से इस बात का उल्लेख किया गया है कि प्राधिकारो को उन बच्चो की शिक्षा का भी प्रबन्ध करना होगा जो अभी ५ वर्ष के नही हुए हैं।

नर्सरी स्कूल माता-पिताओ के घर के निकट रखे जाते हैं। नर्सरी कक्षाओ मे घर का सा वातावरण रखा जाता है। पाठ्यक्रम मे खेल, कला, सगीत, विश्राम आदि पर जोर दिया जाता है। नर्सरी शिक्षा का उद्देश्य है—बालको के स्वास्थ्य की रक्षा, अच्छे आचार-विचार और अच्छी आदतो का सचार और ऐसे वातावरण की उत्पत्ति जिसमे बालक लिख-पढ सकें। इनमे शिक्षा कार्य शिक्षिकाओ द्वारा ही होता है। आज के नर्सरी स्कूल केवल उन बालको के लिये ही नही हैं जिनके माता-पिता उनकी देखभाल न कर सकते हो वरन् देश के सब प्रकार के बालको के लिये उनकी आयोजना की गई है। उनका उद्देश्य समाज का उद्देश्य है। प्रत्येक नर्सरी स्कूल मे ४० विद्यार्थी होते हैं। अत प्रत्येक बालक की ओर व्यक्तिगत रूप से ध्यान दिया जा सकता है।

शिक्षा के उपर्युक्त उद्देश्यो को ध्यान मे रखकर उनका पाठ्यक्रम निश्चित किया जाता है। इन नर्सरी स्कूलो मे शिक्षा पाने वाले छात्र लाखो की सख्या मे हैं। स्मरण रहे कि ये स्कूल घर का स्थान कभी नही ले सकते।

इन्फैण्ट स्कूल—इन्फैण्ट स्कूलो का काम ५ से ७ साल तक के बच्चो की शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक तथा नैतिक शक्तियो का विकास करना है। इनका पाठ्यक्रम खेल, कूद और अनुभवो पर आधारित रहता है। इस अवस्था की क्रियाएँ खेल, शारीरिक व्यायाम, नाचना, गाना, खेलना, हाथ से काम करना, ड्राइग, लिखना, पढ़ना, हिसाब आदि है।

कुछ इन्फैण्ट स्कूल जूनियर स्कूलो के साथ जुडे हुए हैं कुछ बिलकुल अलग हैं।

जूनियर स्कूल—कुछ जूनियर स्कूलो मे ५+११+ तक के बालको की शिक्षा व्यवस्था की जाती है कुछ जूनियर स्कूल ७+ पर इन्फैण्ट स्कूलो से बालको को लेकर ११+ पर माध्यमिक स्कूलो मे भेज देते हैं।

बालक बालिकाओं के सर्वांगीण विकास का उद्देश्य लेकर इन जूनियर स्कूलो की स्थापना की गई है। इन स्कूलो का कार्य बालको को ११+ की परीक्षा दिलाकर और उन्हे ग्रामर स्कूलो मे भेजना है इसलिए उनका पाठ्यक्रम शिक्षा मत्रालय ही निश्चित करता है। प्रत्येक जूनियर स्कूल का प्रबन्ध वहाँ के प्रधान अध्यापक के हाथो मे रहता है। वह पाठ्यक्रम निश्चित करता है। अन्य अध्यापको के कार्य का निरीक्षण करता है और छात्रो को विभिन्न कक्षाओ मे भेजने का प्रबन्ध करता है।

इन जूनियर स्कूलो मे प्राय छात्र सख्या ४० से अधिक नही होती। उनमे दी गई प्राथमिक शिक्षा का उद्देश्य छात्रो को ज्ञान देना ही नही वरन् क्रिया और अनुभवो द्वारा उनका

सकती। कुछ लोगो का विचार है कि ११+ की परीक्षा व्यर्थ ही छात्रों के माता-पिता या अभिभावको को चिन्ताग्रस्त कर देती है। जब छात्र इस प्रकार बँट जाते हैं तब उनमे एक दूसरे से भिन्नता की भावना उत्पन्न हो जाती है जो प्रजातन्त्रात्मक शासन के लिये अनुपयुक्त प्रतीत होती है।

इन आलोचनाओ के उत्तर देने वालो का कहना है ११+ पर छात्रो की रुचि और योग्यता का पता लगाना सम्भव है और जहाँ तक रुचियो का प्रश्न है सभी रुचियाँ इन्ही तीन वर्गों मे बाँटी जा सकती हैं। तीन प्रकार के स्कूलो का होना वर्ग भेद पर कोई महत्व नही देता क्योकि आधुनिक काल मे वर्ग भेद तो मिटता ही जा रहा है। इस प्रकार की व्यवस्था से एक लाभ और भी हो सकता है वह यह कि निर्धन छात्रो को अच्छे स्कूलो में पहुँचना पहले की अपेक्षा अधिक सम्भव हो गया है। इन तीनो प्रकारो के स्कूलो मे अन्तर आवश्यक है किन्तु वे एक दूसरे के इतने निकट आ गये हैं कि यह अन्तर इतना स्पष्ट नही मालूम पडता क्योकि ग्रामर स्कूलो मे कुछ तकनीकी विषयों का पढाया जाना आरम्भ हो गया है। तकनीकी स्कूलो मे आधुनिक भाषाओं का ज्ञान दिया जाने लगा है और तीनो प्रकार के स्कूल जनरल सर्टीफिकेट की परीक्षा के लिये अपने छात्रो को तैयार करते हैं। इसलिये जहाँ तक स्तर और सम्मान का प्रश्न है वह तीनों प्रकार के विद्यालयो का एकसा ही है। तीनो प्रकार की सस्थाओ को शिक्षा के क्षेत्र से अनवरत प्रयत्न करने होंगे ताकि उनकी माध्यमिक शिक्षा का स्तर ऊँचा बना रहे।

Secondary School Entrance Examination.

(L. T. 1956)

सन् १९३८ की स्पैन्स रिपोर्ट (Spens Report) और १९४३ की नौरवुड रिपोर्ट (Norwurd Report) ने सबसे पहले माध्यमिक शिक्षा के लिए आयु, योग्यता और अभिरुचि के अनुकूल विद्यार्थियो की चुनने की सलाह दी थी। नौरवुड रिपोर्ट ने इस आयु को ११+के लगभग तक की आयु पर जोर दिया था। रिपोर्ट ने स्कूल रिकार्डों की महत्ता पर भी बल दिया था। यदि लडको को भिन्न-भिन्न प्रकार की सस्थाओ मे भेजने मे गलती हो जाय तो १३+ उस गलती को सुधारने का प्रयत्न भी किया जा सकता है। [illegible] —नियम के पास होने के कुछ समय

[illegible] कि उपयुक्त और व्यापक हैं ?

[illegible] ?

[illegible] ?

[illegible] तनी है ?

भिन्न-भिन्न स्थानीय प्राधिकार (LEA'S) अब इन दोषो को सुधार कर बालको के विषय में प्राप्त सूचनाएँ निम्नलिखित स्रोतो से इकट्ठी करती हैं।

(१) वस्तुनिष्ठ परीक्षाएँ जो बालको की बुद्धि और निष्पत्ति का माप करती हैं।
(२) सचयी आलेख पत्र।
(३) व्यक्तित्व परीक्षाएँ।

तकनीकी शिक्षा के लिए रचनात्मक कार्यों और रुचियों की परीक्षा ली जाती है। बोर्डर लाइन केसैज (Border line cases) के लिए समक्ष भेंट की जाती है। आजकल माध्यमिक शिक्षा के लिए भिन्न-भिन्न L. E. A.; निम्नांकित तरीको का प्रयोग करते हैं -

(A) (i) अंग्रेजी, गणित, शाब्दिक और अशाब्दिक बुद्धि परीक्षाएँ।
　(ii) प्राथमिक स्कूलों के रिकार्ड।
　(iii) Special individual tests.

(B) गणित और अँग्रेजी में साधारण परीक्षाएँ ११+बुद्धि परीक्षा।

(C) अंग्रेजी, अकगणित और बुद्धिमापी परीक्षाएँ, अंग्रेजी के निबन्ध, १०-११ पर मूल रिकार्ड।

(D) प्राथमिक-विद्यालयों में बुद्धि परीक्षा लेकर उनके प्रधान अध्यापकों की सम्मति मे ग्रामर स्कूल के लिये बालक चुन लेते हैं।

ये परीक्षाएँ जो ११+ पर दी जाती हैं पूर्ण विश्वस्त नहीं होती और न उनमे भविष्य कथन करने वाली वैधता (predictive validity) ही अधिक होती है। भिन्न-भिन्न समयो पर जो

अंक एक बालक को इन परीक्षाओं में मिल सकते हैं वे सर्दैव सहचारी नहीं होते। प्रश्नों में संदिग्धता होने और वस्तु निरपेक्ष (objectives) न होने के कारण अविश्वास पैदा हो जाता है ये परीक्षाएं इतनी लचीली भी नहीं हैं और न माता-पिताओं को अधिक न्याय ही मालूम होता है ? ११+ की यह परीक्षा ग्रामर स्कूलों में सफलता पाने की भविष्यवाणी तो कुछ हद तक करती है। *West Riding Education Authority ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि प्राचीन निबंधात्मक* परीक्षाएं जिनसे छात्रवृत्ति पाने वाले विद्यार्थियों का चुनाव किया जाता था अधिक उत्तम थी। ऐमेट (Emmett) और रटर (Rutter) ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि बुद्धि परीक्षाएं ग्रामर स्कूलों में सफलता पाने की आम घोषणा करती हैं।

यह परीक्षा माता-पिता और बच्चों पर बुरा प्रभाव डालती है। माता-पिता से चिन्ता बालक तक सक्रामित हो जाती है। बच्चे के व्यवहार में असामान्यता पैदा हो जाती है। मिडिल क्लास के व्यक्तियों में यह चिन्ता अधिक दिखाई देती है।

Secondary School Leaving Examinations. १८५० में ग्रामर और पब्लिक स्कूलों में कम्पटीटिव परीक्षाएं करदी गई थी और फलस्वरूप १६०० तक तीन समस्याएं दृष्टिगोचर होने लगी।

(१) विश्वविद्यालयों द्वारा किसी बाह्य परीक्षा का आयोजन जो भिन्न-भिन्न देशों, व्यवसायों और उद्योगों की मांग पूरी कर सके।

(२) विश्वविद्यालयों में प्रवेश पाने के लिए एक परीक्षा का प्रबन्ध।

(३) १६ वर्ष के बालक को स्कूल लीविंग सर्टीफिकेट देने का प्रबन्ध।

स्कूल सर्टीफिकेट दो प्रयोजनों की सिद्धि कर सकता था। एक ओर वह विश्वविद्यालयों में प्रवेश दिलाने के लिए प्रमाणपत्र का कार्य करता था दूसरी ओर १६+ तक की शिक्षा का प्रगति लेखा प्रस्तुत करता था। हायर स्कूल सर्टीफिकेट (Higher School Certificate) जो स्कूल सर्टीफिकेट के दो वर्ष बाद मिल सकता था, विश्वविद्यालय में प्रवेश पाते समय छात्रवृत्तियों के प्रदान के लिए उपयुक्त होने लगा।

अब माध्यमिक शिक्षा पाने के बाद General Certificate Examination लिया जाता है।

पब्लिक स्कूल

Q 7. *How does a Grammar school differ from the* **Public school ?** *(L. T. 1954)*

Write short notes on Public school. *(L. T. 1955)*

Or

Grammar schools are a necessity in England and bring out the chief characteristics of these schools. *(L. T. 1958)*

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

Ans पब्लिक स्कूलों की स्थापना १३ वीं शताब्दी में भी धनी वर्ग के लोगों के लिये हुई थी। सन् १३८७ में विंचेस्टर, १४४१ में ईटन की नींव पड़ी। इन्हें राज्यकोष से सहायता मिलती तथा इनके स्नातक विश्वविद्यालयों में अपनी शिक्षा समाप्त करते। इन स्कूलों में क्लासिकल विषयों की शिक्षा पर बल दिया जाता था। इन दो स्कूलों के अनुकरण के आधार पर सेन्टपाल श्रूजबरी, वेस्टमिनिस्टर, मरचेण्ट टेलर्स, रग्बी, हैरो और चार्टर हाउस की स्थापना हुई। १८ वीं शताब्दी तक इन स्कूलों की संख्या में काफी वृद्धि हुई। यह वृद्धि उस समय अधिक बढ़ गई जिस समय सम्राट हैनरी के मठों में सम्बन्धित स्कूल बन्द कर दिये गये।

इन स्कूलों में समय के साथ कोई परिवर्तन न हुआ और परिवर्तन भी वे नहीं कर सकते थे, उनमें स्थापना धाराएं (Foundation statues) के अनुसार नवीन विषयों की शिक्षा देना अनैतिक कार्य समझा जाता था। १९ वीं शताब्दी में विश्वविद्यालयों का स्तर गिरने लगा तब भी ये पब्लिक स्कूल अपने उच्च आदर्शों पर स्थिर रहे। विद्वानों का मत है कि पब्लिक स्कूलों की शिक्षा पर उस समय विश्वविद्यालयों से भी उत्तम प्रकार की थी। पाठ्यक्रम में यह परिवर्तन यदि हो सका तो १९ वीं शताब्दी में ही अर्नाल्ड, टूर्मेन और बटलर जैसे प्रतिभाशाली हेडमास्टरों ने अनुशासन और चरित्र पर बल देकर इसका रूप बदल दिया।

पब्लिक स्कूलो के दोषो की चर्चा उन्नीसवीं शताब्दी के मध्यकाल से ही जोर पकड़ने लगी। उनके पाठ्यक्रमो को रूढ़िग्रस्त उनके शिक्षण को अत्यव्ययी, छात्रो को आलसी, बताया जाता है। उनमें आधुनिक भाषाओं गणित, भूगोल, इतिहास जैसे विषयों पर महत्व न देने और शास्त्रीय विषयो मे भी अधूरी सफलता पाने के दोष निकाले जाने लगे। किन्तु उनमे कुछ गुण भी थे। उनकी अध्यापन विधियाँ अन्य स्कूलों की अपेक्षा अधिक उन्नत थीं, अध्यापक-छात्र अनुपात उचित तथा, नैतिक और धार्मिक शिक्षण से छात्रो के चरित्र का निर्माण होता था पाठ्यक्रम के विषयो मे उचित सामग्री का चयन किया जाता था। उनसे शास्त्रीय विषयो के पठन-पाठन की विशेष उन्नति प्रतिलक्षित हो रही थी। इन गुणो के कारण वे अपनी सत्ता बनाये रखे।

१९४४ के अधिनियम के बाद इंगलैंड की शिक्षा व्यवस्था मे जो परिवर्तन हुये उनके बावजूद भी इन पब्लिक स्कूलो को अछूता छोड दिया गया। अब ये पूर्णतया या आंशिक रूप से सरकारी प्रतिबन्ध से मुक्त हैं। इन स्कूलो को खुले रहने देने की आज्ञा देकर इग्लैंड ने अपनी उदार प्रजातान्त्रिक विचारधारा को प्रकट किया है और जनता के इस अधिकार का सम्मान किया है कि उसे अपने बच्चो को अपनी इच्छा से पढाने-लिखाने का पूरा-पूरा अधिकार है।

इन पब्लिक स्कूलो के प्रति अब अधिक विरोध प्रगट किया जाने लगा है। जनता के बहुत से विद्वानो ने उन्हें खत्म करने की माँग की, किन्तु फ्लेमिंग समिति ने उनको खतम न करने की सिफारिश की। इस समिति ने कहा कि पब्लिक स्कूलो को उनके कार्य एवं प्रवेश की दशाओं के हिसाब से दो वर्गों मे बाँटा जाय। 'अ' वर्ग मे वे पब्लिक स्कूल रखे जायें जिन्हें शिक्षा मण्डल से सीधा अनुदान मिलता था और जिनमे या तो निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी या शुल्क सहित शिक्षा दी जाती है। दूसरे वर्ग 'ब' मे वे स्कूल रखे गये जो सावाम स्वतन्त्र स्कूल थे और उन्हें शिक्षामण्डल द्वारा स्वीकृत होना था।

इन स्कूलो के प्रति आजकल जो विरोध प्रकट किया जाने लगा है इसके कई कारण हैं। जब वे किसी विशेष प्रकार की शिक्षा देने मे असमर्थ हैं तो उन्हें इस प्रजातन्त्रीय युग मे क्यो पनपने दिया जो वर्ग भेद पैदा करने में निरन्तर लगे हुए हैं। उनमें शिक्षा पाने वाले छात्र यदि विश्वविद्यालयो मे प्रवेश पा सकते हैं तो ग्रामर स्कूलो मे शिक्षा पाने वाले छात्रो के लिये भी तो विश्वविद्यालयो का द्वारा खुला हुआ है। माध्यमिक शिक्षा के ये सुन्दर स्थान आम जनता के लिये खुले रहने चाहिये ऐसी धारणा प्रबल होती जा रही है। दूसरी बात यह है कि उनसे केवल धनी माता-पिता के लडके और लडकियाँ ही शिक्षा पाते हैं। यदि कुछ निर्धन वर्ग के बालक उनमे प्रवेश कर भी पाते हैं तो बहुत थोडी सख्या मे। इनसे अधिकांश छात्र और छात्राओ के धनी होने के कारण वर्ग भेद बढता ही जाता है कम नहीं होता। तीसरे इन स्कूलो मे पढे हुये लोगो मे प्रान्तीयता (provincialism) की भावना घर कर जाती है।

यदि ये पब्लिक स्कूल इस प्रकार की विषम परिस्थितियाँ उत्पन्न कर रहे हैं तो उनको राज्य से आर्थिक सहायता क्यो दी जाय? इनकी शिक्षा भी इतने ऊँचे स्तर की नहीं है कि उन र अधिक खर्च किया जाय। उनसे फीस अधिक ली जाती है और फीस में वृद्धि भी दिन पर दिन होती जा रही है। १९५५ से १९६० तक होने वाली वृद्धि निम्न तालिका मे दी गई है—

अध्यापकों का वेतन	१४६%
खानपान	१३०%
सुधार प्रबन्ध	१२५%
मजदूरी	१६०%
खेल मैदान	११४%
प्रकाश और गैस	१४५%
पुस्तकें	१५०%

परन्तु सवाल यह है कि क्यो ऐसा होने पर भी लोग अपने लडको को इन पब्लिक स्कूलो में भेजना पसन्द करते हैं। इस शिक्षा के कारण लोगो को ऊँचे पद पर जिनने की अधिक सम्भावनाएँ है, दूसरे यहाँ पर छात्रो को ऐसे समाज के छात्रो से मिलने का अवसर मिलता है, जो अन्यत्र दुर्लभ हैं। पार्लियामेंट मे ४५% व्यक्ति इन्हीं पब्लिक स्कूलो के ही स्नातक रहे हैं।

देश की बड़ी बड़ी कम्पनियाँ जैसे बर्मा शैल, बार्कले बैंक, इम्पीरियल कैमिकल्स अपने कर्मचारियों के बच्चों को इन पब्लिक स्कूलों में भेजने के लिए प्रोत्साहन देती हैं। ये सब बातें दिखलाती हैं कि पब्लिक स्कूलों के प्रति जनता में सम्मान की भावना बाकी है।

Q 8. Describe the various types of Schools which impart secondry education in England?

Comprehensive schools. (1958)

Ans. १९४४ के शिक्षा अधिनियम ने माध्यमिक शिक्षा सबके लिये हो, इस सिद्धान्त के अनुसार बालकों की योग्यता आयु और अभिरुचि के अनुसार स्कूलों की संख्या और प्रकार निश्चित करने का आदेश दिया था। किन्तु अभिरुचि के आधार पर ही विद्यालय कई प्रकार के हो सकते थे किन्तु शिक्षा मन्त्रालय ने केवल तीन प्रकार के माध्यमिक स्कूलों की स्थापना पर ही जोर दिया। ये स्कूल हैं—ग्रामर स्कूल, माडर्न स्कूल और टेक्निकल स्कूल। ये तीनों प्रकार के स्कूल एक ही भवन में हो सकते हैं या अलग-अलग भवनों में जब वे एक भवन में ही स्थित होते हैं तब उनको मिलाकर बहुमुखीय स्कूल कहने लगते हैं। कभी-कभी दो प्रकार के स्कूल एक ही भवन में चलते हैं ऐसे स्कूलों को द्विमुखीय (Bilateral) स्कूल कहते हैं। इन तीनों प्रकार के स्कूलों के दोषों से घबराकर कुछ काउंसिलों ने व्यापक (Comprehensive) स्कूल खोले हैं जिनमें सब तरह की सुविधाओं और रुचियों की सन्तुष्टि की जाती है।

ग्रामर स्कूल—ग्रामर स्कूल का शिक्षा काल प्रायः ७ वर्ष का होता है। छात्र ११+पर प्रवेश होकर १८ वर्ष की अवस्था तक इन में रहता है, किन्तु वह १६ वर्ष की आयु पर सी० ई० G. C. E. (General Certificate of Education) की परीक्षा पास कर उसे छोड़ भी सकता है। इस प्रकार साधारणतः ग्रामर स्कूल में ५ वर्ष की अवधि तक ही शिक्षाक्रम चलता है। यह शिक्षा सामान्य प्रकार की होती है जिसमे आधुनिक तथा प्राचीन भाषाओं, विज्ञान तथा गणित आदि का गूढ़ अध्ययन कराया जाता है। ग्रामर स्कूलों और विश्वविद्यालयों की शिक्षा में अन्तर केवल इस बात का है कि विश्वविद्यालयो मे जब कि लम्बे अर्से तक किसी विशेष क्षेत्र में विशेष योग्यता देने के लिये पढ़ाई होती है किन्तु ग्रामर स्कूलो में माध्यमिक स्तर तक ही इस योग्यता के लिये शिक्षा दी जाती है। इन स्कूलो की लोकप्रियता इस बात मे है कि वे छात्रों को विश्वविद्यालयों के लिये तैयार कराने, जनरल सर्टीफिकेट आफ एजुकेशन दिलाने मध्यम श्रेणी के व्यवसायों के लिये कुशल व्यक्ति तैयार करने मे लगे हुये हैं। इन स्कूलो मे पुस्तकालय, प्रयोगशालाएँ खेलने के मैदान सामान आदि प्राय अन्य माध्यमिक स्कूलों से अच्छी किस्म के हैं। इन स्कूलों में भाषाओं, विज्ञान तथा गणित के अध्यापक के अतिरिक्त हाथ-कौशल इंजीनियरों और अन्य व्यावसायिक काम भी सिखाये जाने लगे हैं। इसका कारण समाज का बदलता हुआ दृष्टिकोण ही हो सकता है।

इन स्कूलों मे अन्तिम वर्ष जिसे Sixth form कहते हैं पढाई का स्तर बहुत ऊँचा हो जाता है। इस कक्षा मे छात्र से विशेष योग्यता प्राप्त कराई जाती है। इसी कक्षा में छात्र में चरित्र निर्माण, आत्मनिर्भरता आदि उत्तम गुण पैदा किये जाते हैं। इस कक्षा की पढ़ाई से ही स्कूल के स्तर का मापन या मूल्याकन किया जाता है।

इन स्कूलो मे देश के अच्छे-अच्छे अध्यापक और अध्यापिकाएँ काम करती हैं। उनमे से ८% अध्यापक प्रशिक्षित हैं। केवल गणित और विज्ञान प्रशिक्षित अध्यापकों की कमी है, तब भी इनका स्तर अन्य माध्यमिक विद्यालयों से ऊँचा रहता है। इसके और भी कारण हैं। इन में साधारणतः एक कक्षा मे ३० से अधिक छात्र नही रखे जाते। दूसरे इनमे प्रवेश पाने के लिये छात्रों को काफी छँटि का सामना करना पड़ता है। जो छात्र इनमे प्रवेश कर पाते हैं उन के लिये विश्व विद्यालय के लिए द्वार खुल सा जाता है क्योंकि विश्वविद्यालयो मे इन्ही के उत्तीर्ण छात्रों को प्रवेश मिलता है।

१९४० से पहले इन स्कूलो में सुरक्षित स्थान थे किन्तु १९४४ के बाद केवल योग्य छात्रों को ही (११० से अधिक बुद्धि धक वालो को) इनमे प्रवेश मिलता है।

सेकेण्डरी मॉडर्न स्कूल (The Secondary Mondern School) ११+ की परीक्षा के बाद प्रति १०० छात्रों मे से ५७ ऐसे छात्र जिन की बुद्धिलब्धि ८० से ११० तक होती है उनको

रुचि के अनुसार इनमें प्रवेश मिलता है। इन स्कूलों के नाम, उद्देश्य और कार्य भारतीय माध्यमिक स्कूलों की तरह का ही है। कुछ स्कूलों में भवन सुन्दर परन्तु बहुतों के भवन गन्दे भी हैं। इनमें अध्यापकों का बहुत बड़ा भाग विश्वविद्यालयों से डिग्री प्राप्त लोगों का है अथवा उन अध्यापकों का है जो विदेशी हों। ग्रामर स्कूलों की अपेक्षा इन स्कूलों की प्रत्येक कक्षा में छात्र संख्या ४५ से ५० तक रहती है। इन छात्रों में से अनिवार्य शिक्षा आयु तक (१५+) शिक्षा प्राप्त करते हैं और बहुत कम छात्र जनरल सर्टीफिकेट ऑव एजूकेशन की परीक्षा में बैठ पाते हैं।

इन स्कूलों की शिक्षा का उद्देश्य है छात्रों को पूर्ण माध्यमिक शिक्षा देना, जिसका आधार अभिरुचियों द्वारा विकसित विषय समूह माना जा सकता है न कि परम्परागत विषय। इन अभिरुचियों के आधार पर चुने गये विषयों से छात्रों में पढ़ने में योग्यता, चिन्तन, आत्माभिव्यक्ति और हस्तकौशल आदि गुणों का विकास किया जा सकता है। इन स्कूलों में व्यावसायिक शिक्षा नहीं दी जाती। कहीं-कहीं पर एक विदेशी भाषा भी पढ़ाई जाती है। साधारणतः अंग्रेजी, भूगोल इतिहास, गणित, कला, गायन शारीरिक शिक्षा आदि विषयों को पाठ्यक्रम में स्थान दिया गया है। इन स्कूलों में ऐसे छात्रों को प्रवेश मिलता है जिन के माता पिता की दशा अच्छी नहीं होती। अच्छी आर्थिक दशा वाले माता-पिता अपने बच्चों को जिनका बुद्धि अंक ११० से कम होता है पब्लिक स्कूलों में भेज दिया करते हैं।

इन स्कूलों में प्रयोगात्मक विधि से शिक्षा दी जाती है। छात्रों को सामग्री इकट्ठी करने, उसे खोजने आदि का कार्य दिया जाता है।

इन स्कूलों की सफलता इस बात में है कि यहाँ पर बाद की परीक्षाओं में जो छात्र मेधावी सिद्ध होते हैं उन्हें ग्रामर स्कूलों में भेज दिया जाता है। इन स्कूलों का प्रमुख कार्य है जनता के हृदय को जीतना।

सेकेण्डरी टेक्नीकल स्कूल (Secondary Technical School)—ये स्कूल पुराने तकनीकी स्कूलों के वंशज हैं, जिनका पाठ्यक्रम उसी स्तर का है जो कि अन्य माध्यमिक पाठशालाओं का। उनमें ११+ से १३+ तक पढ़ाई ग्रामर स्कूलों की तरह की होती है १३+ के बाद उन की अभिरुचि के अनुकूल विषयों का अध्ययन किया जाता है। १५+ के पश्चात् उनकी अभिरुचि का ठीक-ठीक पता लगाया जा सकता है तभी इन छात्रों को या तो प्रशिक्षण के लिये भेज दिया जाता है या तकनीकी कॉलिज में भरती कर दिया जाता है। इन कॉलिजों में जाकर इंजीनियरिंग, रसायनिक, टेक्नीकल आदि विषयों का अध्ययन करते हैं। इस प्रकार इन स्कूलों की मुख्य विशेषता है शिक्षा का रुचि के अनुकूल दिया जाना।

पब्लिक स्कूल माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में पब्लिक स्कूल कई सदियों से कार्य कर रहे हैं। उनमें प्रवेश १३+ पर होता है पर ११+ से १३+ उन बालकों की जो कभी पब्लिक [illegible]

[illegible]

किया जाता है। इन स्कूलों से उत्तीर्ण छात्र विश्वविद्यालयों में प्रवेश पाते हैं। पब्लिक स्कूल न केवल लड़कों के लिये ही है लड़कियों के लिये है। (North Collegiate School) चेल्टनहम कॉलिज, गर्टन, वनिंग, न्यूहम कालिज, लेडी मार्गरेट हॉल आदि पब्लिक स्कूल लड़कियों के लिये है।

इन स्कूलों के विषय में विषय वर्णन तथा उनकी आलोचना पर अगले अनुच्छेद में प्रकाश डाला गया जायगा।

व्यापक स्कूल (Comprehensive Schools)—माध्यमिक शिक्षा में ऐसे स्कूलों का जन्म अमरीकी प्रयत्न के फलस्वरूप हुआ है। ये स्कूल प्रजातांत्रिक व्यवस्था के अनुरूप है क्योंकि उनमें वर्ग भेद की कोई सम्भावना नहीं क्योंकि टो टाव का ग्रामर का मोडर्न स्कूल जैसे [illegible] लेकर चल रहे हैं उन में एक दूसरे से बड़े या छोटे होने की भावना ही उत्पन्न नहीं हो पाती। इस प्रकार के स्कूलों की एक बड़ी विशेषता या उपयोगिता इस बात में है कि ११+ या १३+ पर भी बालक की रुचि का पता अच्छी तरह नहीं लग पाता, इसलिये वह कभी उनकी रुचि का पता लग जाता है तभी उसकी रुचि के अनुकूल विषय की शिक्षा दी जाने लगती है। इस प्रकार जो असुविधा या कठिनाई पहले होती थी वह बड़ी मात्रा तक इन स्कूलों द्वारा हल की जा सकती

[illegible]

सीधे अनुदान स्कूल (Direct Grant Schools)—माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में [illegible] (L.E.A.) [illegible]

इंगलैंड में प्रौढ़ शिक्षा

Q. 9. Describe fully the arrangements for the education of adults in England. (*L.T. 1955-1956*)

Further Education (*L.T. 1951*)

What is the meaning of Further Education ? Describe its scope organisation & working (*L.T. 1957*)

इंगलैण्ड में प्रौढ़ शिक्षा :

Ans. यह शिक्षा अनिवार्य शिक्षा आयु १५ + से अधिक आयु वाले व्यक्तियों के लिए है किन्तु जिस अर्थ में प्रौढ़ शिक्षा शब्द का प्रयोग भारत में होता है, वास्तव में उस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग इंगलैण्ड में नहीं होता। भारत में प्रौढ़ शिक्षा का एक उद्देश्य प्रौढ़ों को साक्षर बनाना होता है किन्तु इंगलैंड में साक्षरता अथवा निरक्षरता की समस्या नहीं है। इंगलैंड में इसलिए प्रौढ़ों को शिक्षा दी जाती है उस अग्रिम शिक्षा (Further education) के नाम से भी पुकारा जाता है अग्रिम शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य उन्हें व्यावसायिक ज्ञान देना भी नहीं है। आज प्रौढ़ शिक्षा में इस देश के शिक्षकों का ध्यान प्रौढ़ों को सुन्दर सुन्दर और सुखमय जीवन की सुविधाओं से लाभ उठाने, आराम और मनोरंजन के कार्यों में भाग लेने पर बल दिया जाता है। प्रौढ़ शिक्षा की सबसे मुख्य विशेषता है प्रौढ़ों को उनके अवकाश के समय रुचि तथा समय के अनुसार शिक्षित करना और व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करना।

प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने वाली संस्थाएँ—इंगलैण्ड की शिक्षा व्यवस्था की प्रमुख विशेषता है उनकी अपनी ऐच्छिक संस्थाओं को किसी भी शैक्षणिक विकास के क्षेत्र में कार्य करने की स्वतन्त्रता देना। आंग्ल शिक्षा की यह विशेषता प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में विशेष रूप से दृष्टिगोचर होती है। इस क्षेत्र में न केवल देश की सरकार ही भाग लेती है वरन् उसमें सब प्रकार की संस्थाओं का सहयोग प्राप्त किया जाता है जो इस प्रकार की सहायता या सहयोग देना चाहती हैं। ये संस्थाएँ हैं—

(१) *विश्वविद्यालयों द्वारा* स्थापित Extra mural Board जो विश्वविद्यालय की चार दीवारी से बाहर व्यक्तियों की शिक्षा की व्यवस्था करता है।

इस बोर्ड सदस्य हैं—

(अ) वरकर्स एजूकेशन एसोसियेशन (W.E.A.)

(ब) स्थानीय शिक्षा अधिकार (L.E.A.)

(२) वरकर्स एजूकेशन ऐसोसियेशन—इस संगठन का जन्म सन् १९०२ में हुआ और अब तक प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में सराहनीय कार्य कर रहा है। यद्यपि इस संघ का नाम मजदूर शब्द से होता है किन्तु इन मजदूरों में राष्ट्र के वे सेविजन भी सम्मिलित हैं जिसका पेशा मजदूरों से काफी उन्नत है। इस संघ के अधिकांश छात्र और छात्राएँ आफिस में काम करने वाले क्लर्क आदि सेविजन हैं। इस संघ की लगभग ९०० शाखाएँ देश भर में फैली हुई हैं, जिनका प्रबंध २१ क्षेत्रों द्वारा होता है।

इन सबो मे ६ महीने के छोटे-छोटे काल के शिक्षण तो होते ही हैं, विश्वविद्यालीय ट्यूटोरियल कक्षा की तीन वर्ष की पढाई की भी योजना की गई है। इन कक्षाओ मे इतिहास, अर्थशास्त्र, दर्शन साहित्य, मनोविज्ञान आदि विषयो की शिक्षा दी जाती है। कभी-कभी विज्ञान का भी अध्ययन कराया जाता है। ट्यूटोरियल कक्षाएं वर्ष मे २४ बार लगती हैं जिनमे लगभग १२ हजार प्रौढ़ व्यक्ति शिक्षा ग्रहण करते हैं। कभी-कभी छात्रो को बी० ए० आनर्स के कोर्स के लिये भी तैयार किया जाता है।

इस एसोसियेशन को राज्य से सीधी सहायता मिलती है। स्थानीय प्राधिकार भी इन्हें आर्थिक सहायता देने का प्रबन्ध करते हैं।

स्थानीय शिक्षा प्राधिकार भी विश्वविद्यालयो और वर्कर्स एसोसियेशन को सहयोग देते हुए इस क्षेत्र मे कार्य करते हैं। स्थानीय शिक्षा प्राधिकार की अपनी एक अलग शिक्षा समिति होती है जो प्रौढ शिक्षा का ही कार्य करती है। स्थानीय और केन्द्रीय दोनो स्तरो पर प्रौढ शिक्षा के लिए प्रबन्ध किया गया है। राष्ट्रीर स्तर पर प्रौढ़ शिक्षा के लिये राष्ट्रीय सस्थान की स्थापना की जा चुकी है। यह National Institute of Adult Education अपने सदस्य सस्थाओ के चन्दे के बल पर चलता है और सलाह देने का कार्य करता है। इसकी एक पत्रिका चलती है। इस राष्ट्रीय सस्था का सदस्यता या तो सस्थाओं को प्राप्त है या कुछ व्यक्तियों को भी।

(२) प्रौढ़ शिक्षा महाविद्यालय (Adult Colleges)—ग्रामीणों के लिये प्रौढ कालेजो की स्थापना की जा चुकी है। प्रत्येक ४०० से ऊपर की जनसख्या वाले गाँव मे एक हौल होता है। इन ग्रामीणो के लिये जिन कालेजों की स्थापना हुई है उनमे तथा हौलो में सभी प्रकार की पढाई तथा मनोरजन के लिये सास्कृतिक कार्य होते हैं। गाँवों से प्रौढ स्त्रियो के लिये अलग सस्थान (Institution) हैं जिनमे वे विदेशो के विषय मे बातचीत करती हैं, भोजन बनाने के तरीके सीखती हैं। प्लास्टिक, कपडा आदि का काम सीखती हैं।

(३) प्रौढ शिक्षा कार्य मे बी० बी० सी० भी विशेष कार्य कर रहा है। वह गीत, सगीत वार्ता आदि प्रोग्रामो के आयोजन से प्रौढो को शिक्षित करता है। प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र मे इंगलैण्ड मे बहुत सी राज्यीय एव ऐच्छिक सस्थाएं कार्य कर रही हैं। ऐच्छिक सस्थाओं मे कुछ धार्मिक सस्था भी है जिनको राज्य तथा प्राधिकारो से सहायता और मार्ग निर्देशन मिलता रहता है। ऐसी कुछ सस्थाएं अपने लिये धन स्वय इकट्ठा करती हैं कुछ अनदान के सहारे चलती हैं।

प्रौढ शिक्षा के क्षेत्र मे कार्य करने वाली इन सभी सस्थाओं का पढाई-लिखाई का स्तर निश्चित रूप से बताया नहीं जा सकता। कुछ स्थानों मे प्रौढ केवल एक साथ बैठकर आधुनिक समस्याओ पर वाद-विवाद करते हैं। कुछ स्थानो पर अर्थशास्त्र और मनोविज्ञान का अध्ययन कराया जाता है। आक्सफोर्ड मे स्थित रास्किन कालेज मे पढ़ाई-लिखाई का स्तर अन्य कॉलेजो जैसा ऊँचा है।

प्रौढ़ शिक्षा मे भाग लेने वाले अन्य सगठन

युवा सर्विस (Youth Service Movement)—इस आन्दोलन का मुख्य लक्ष्य है व्यक्ति को अपनी योग्यताओं का विकास करने का अवसर प्रदान करना तथा उन्हें व्यक्तियों की सेवा करना। इस कार्य में कई संस्थाएँ लगी हुई हैं। बायज़क्लब, गर्ल्सक्लब, [illegible] ट्रेनिंग और बॉय स्काउट और इसी प्रकार की अन्य संस्थाएँ युवा सर्विस मूवमेंट में कार्य कर रही हैं। स्कूल छोड़ने के बाद भी ये संस्थाएँ अपनी कार्यवाहियों द्वारा उनका और समाज का मनोरंजन और शिक्षा कार्य करती हैं। Area Training Corps युवक और युवतियों को सेवा सम्बन्धी प्रशिक्षण देता है। कुछ क्लबों का संचालन स्थानीय शिक्षा अधिकारी द्वारा किया गया है जो युवक और युवतियों के लिए अलग-अलग या मिले जुले हैं और उनका मनोरंजन करते हैं, लड़के और लड़कियों के क्लबों व कुछ राष्ट्रीय संगठन जैसे YMCA और YWCA राष्ट्रीय स्तर पर कार्य कर रहे हैं। युवक और युवतियों की सहायता करने एवं समाज की सेवा करने के लिए बनाई गई इन संस्थाओं को राज्य और स्थानीय शिक्षा अधिकारी सहायता दे रहे हैं।

खेलकूद को प्रोत्साहन देने के लिए कई क्लब स्थापित किए जा चुके हैं। राष्ट्रीय स्तर पर Central Council of Recreation and Physical Education कार्य कर रही है।

Q. 10. 'Technical training for those whose education ceased completely after the compulsory leaving age is equally urgent." How has England met this need?

Ans. १५+ की अनिवार्य शिक्षा के बाद व्यक्ति को तकनीकी शिक्षा देने के लिए इगलैंड में कई प्रकार की व्यवस्था चालू है। कुछ तरीके प्राचीन और कुछ १९४४ के बाद लागू किए गये हैं।

सन् १८८९ में एक तकनीकी शिक्षा अधिनियम पास हुआ था जिसके अनुसार प्रौढ़ों को तकनीकी शिक्षा देने का आयोजन किया गया। लार्ड गोशेन ने एक कर 'व्हिस्कीमनी' के नाम से चालू करवाया जिसके मिलने पर तकनीकी शिक्षा में विशेष प्रगति हुई। सान्ध्यकालीन स्कूलों में (Evening schools) में ऐसे विषय पढ़ाए जाने लगे। बोर्ड ग्राफ एजुकेशन (Board of Education) ने 'ग्रुप सिस्टम' जारी किया जिसके अनुसार इंजीनियरिंग कोर्स लेने वाले तत्सम्बन्धित विषयों को पढ़ाना आवश्यक हो गया। यह तरीका अब भी देश में चल रहा है, किन्तु समय के परिवर्तन के साथ उसमें कुछ सान्ध्यकालीन स्कूलों में परिवर्तन प्रारम्भ हुए। उन्हें अपने पाठ्यक्रम में परिवर्तन करना पड़ा। उनमें पाठ्यक्रम की स्वतन्त्रता १९१८ तक बिल्कुल समाप्त हो गया। उनको City and Guilds of London Institute की परीक्षाओं के अनुरूप पाठ्यक्रम तय करना पड़ा।

बोर्ड ऑफ एजुकेशन ने १९२१-२६ के बीच के काल में नेशनल सर्टीफिकेट देना आरम्भ कर दिया। देश में यह प्रथा भी अभी जारी है। ये सर्टीफिकेट बाह्य परीक्षा द्वारा दिए जाते हैं। तीन वर्ष के पार्टटाइम कोर्स के बाद साधारण सर्टीफिकेट (General National Certificate) और दो वर्ष की अतिरिक्त पढ़ाई के बाद उच्च सर्टीफिकेट दिया जाता है। पूरे समय पढ़ने वाले छात्र ३ वर्ष बाद (General National Diploma) और ५ वर्ष की पढ़ाई के बाद उच्च नेशनल डिप्लोमा पाने के अधिकारी हो जाते हैं। इन कोर्सों को १५+ के बाद अख्तियार किया जाता है। ये छात्र सेकेण्डरी मोडर्न या ग्रामर स्कूल दोनों से आ सकते हैं। इन डिप्लोमा और सर्टीफिकेट देने के नियमों में अन्तर हो सकता है। परीक्षाफल में बाह्य परीक्षा में प्राप्त अंकों के साथ-साथ छात्र का पूरे समय का पढ़ाई के कार्य का कोर्स भी ध्यान में रखा जाता है, तब छात्र को सर्टीफिकेट या डिप्लोमा दिया जाता है। ये सर्टीफिकेट भिन्न-भिन्न विषयों में दिए जाते हैं। ४ इंजीनियरिंग ४ केमिस्ट्री से सम्बन्धित विषय और गृह निर्माण (architecture), खानों का काम, उद्योग, कपड़े Textile Architecture, Organisation, Retail Distribution आदि हैं।

ये सर्टीफिकेट या डिप्लोमा विश्वविद्यालय से प्राप्त डिग्री के बराबर माने जाते हैं।

इगलैण्ड में इन डिप्लोमा और सर्टीफिकेट कोर्सेज के अतिरिक्त एक कोर्स और चल रहा है वह है सैंडविच कोर्स। सैंडविच कोर्स लेने वाला छात्र १ वर्ष किसी मिल या फैक्टरी या अन्यत्र [illegible] करता है फिर ६ माह की छुट्टी लेकर इस कोर्स को पूरा करता है और पुनः काम पर चला है।

तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र मे १९४५ मे प्रकाशित हुई पर्सी की रिपोर्ट का काफी प्रभाव पड़ा है, इस रिपोर्ट की सारी सिफारिशें मान ली गई हैं। गिने-चुने तकनीकी कॉलिजों को छांटकर उनमें ऐसे कोर्सों को विकसित किया गया है जो विश्वविद्यालयों की डिग्री कोर्स के बराबर हों किन्तु प्रबन्ध उन्हीं के हाथ मे रखा गया है। इस प्रकार के देश मे ७ नेशनल कॉलेज चल रहे हैं। इस समय जो कॉलिज कार्य कर रहे थे उनमे से कुछ को नेशनल स्कूल ग्राफ टैक्नोलोजी मे बदल दिया गया है। सैंडविच कोर्स को और भी विकसित कर दिया गया है। उन्नत टेक्नोलोजी के विषयों में अनुसंधान की सुविधाएँ उत्पन्न की गई हैं और क्षेत्रीय सलाहकार काउन्सिल और एक राष्ट्रीय सलाहकार काउन्सिल की स्थापना कर दी गई है। इस प्रकार टेक्नोलोजी को उन्नत बनाने का भरसक प्रयत्न किया जा रहा है।

संक्षेप मे, इस समय इंगलैण्ड निम्नलिखित तरीकों से टेक्नोलोजिस्ट तैयार कर रहा है।

(१) १५+ की अवस्था पर स्कूल छोड़कर १ वर्ष की प्रारम्भिक शिक्षा लेना और २ से ५ वर्ष तक सिटी एण्ड गिल्डस कोर्स मे जाना या उसके १ या २ वर्ष पश्चात् नेशनल सर्टीफिकेट के लिए जाना।

(२) १६+ पर सीधे इस सर्टीफिकेट के लिए पढ़ना। २ वर्ष पढ़ने के बाद सेण्डविच कोर्स के लिए जाना।

(३) १८+ की आयु पर सीधे ३ वर्ष की पूरे समय वाली पढ़ाई पढ़ना।

तकनीकी शिक्षा का उत्तरदायित्व बड़ी-बड़ी फर्मों, मिलों, स्थानीय प्राधिकारों तथा राज्य, सभी पर है। शिक्षा मंत्रालय और उद्योग-विभाग लगभग इस व्यय का ७५% भार उठाते हैं। शेष अन्य संस्थाएँ। फलस्वरूप छात्रों को नाममात्र की फीस देनी पड़ती है।

शिक्षक प्रशिक्षण

Q. 11. What is the provision for teacher's education in England? Bring out its main features. In what ways has England reorganised the training of teachers and in service education of teachers after world war II?

(L. T. 1956-1957)

द्वितीय महायुद्ध से पूर्व शिक्षण-प्रशिक्षण के विषय में दो मत थे। कुछ विद्वान इस प्रशिक्षण को महत्वहीन और व्यर्थ समझते थे और कहते थे कि विषय का ज्ञान अध्यापन के लिये पर्याप्त है। दूसरी ओर समझदार व्यक्तियों की राय थी कि जिस प्रकार बिना प्रशिक्षण के डाक्टर या इंजीनियर से कुशलता की आशा नहीं की जा सकती उसी प्रकार अध्यापक भी अपने काम में दक्ष नहीं हो सकता, यदि उसको प्रशिक्षण न दिया जाय। सन् १९०२ से ही प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों के लिये प्रशिक्षित अध्यापकों की आवश्यकता महसूस होने लगी थी इसलिये प्राधिकारों (L.E.A's) को प्रशिक्षण विद्यालय खोलने की अनुमति मिल गई। कुछ विश्वविद्यालयों मे भी प्रारम्भिक कक्षाओं के लिये अध्यापकों का प्रशिक्षण प्रारम्भ हो गया। किन्तु १९४४ के शिक्षा अधिनियम ने इस प्रकार के प्रशिक्षण को अनिवार्य कर दिया। १५+ तक की आयु तक बालकों की शिक्षा अनिवार्य कर दिये जाने पर प्रशिक्षित अध्यापकों की विशेष आवश्यकता महसूस होने लगी।

कैंब्रिज विश्वविद्यालय को छोड़कर देश के १६ विश्वविद्यालयों ने अपने-अपने संस्थान [illegible]

दूसरी योजना के अनुसार संयुक्त बोर्ड द्वारा।

मैकनायर समिति की सिफारिशों के फलस्वरूप प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों का प्रशिक्षण अनिवार्य होने के कारण दोनों स्तरों मे अनुभव और शिक्षा का ही अन्तर है, अन्यथा किसी और प्रकार से दोनों प्रकार के अध्यापक एक ही स्तर और एक से ही वेतन के अधिकारी हैं। वेतन मे अन्तर इसलिये होता है कि माध्यमिक स्कूलों के अध्यापक विश्वविद्यालय

वाणी-दोष विशेषज्ञों की सहायता से उनके दोषों को दूर किया जाता है और अलग से या साधारण स्कूलों में उनकी शिक्षा का प्रबन्ध किया जाता है। अन्धे, बहरे और भयंकर रोग (chronic) से पीड़ित व्यक्तियों के लिये इस प्रकार अलग ही प्रबन्ध किये गये हैं।

जिन छात्रों के माता-पिता इन विकलांग बच्चों के शिक्षा व्यय का भार वहन नहीं कर सकते उस भार को स्थानीय शिक्षा प्राधिकार वहन करते हैं। यह जिम्मेदारी अब राष्ट्र की है।

अधिक मानसिक कमजोरी वाले छात्रों के लिये व्यवसाय केन्द्र Occupation center) या उद्योग स्कूल (*Industrial School*) खोल दिये हैं जिनमें उन्हें स्वावलम्बी बनने, अपने को किसी व्यवसाय के योग्य बनाने और अपना मानसिक सन्तुलन बनाये रखने की शिक्षा दी जाती है। इन लोगों की शिक्षा का उत्तरदायित्व स्थानीय स्वास्थ्य प्राधिकारों पर है।

कम मानसिक दुर्बलता वाले छात्रों के सामने एक समस्या अवश्य है। उन्हें न तो साधारण स्कूलों में ही पढ़ाया जा सकता है न उनके लिये अलग से ही स्कूल खोले जा सकते हैं क्योंकि वे अल्पसंख्यक हैं। इन लोगों की शिक्षा की सारी जिम्मेदारी स्थानीय शिक्षा प्राधिकारों पर है। इन विद्यार्थियों को प्राथमिक स्कूलों में ५+ की अपेक्षा ७+ पर भरती किया जाता है और सुविधाएँ न होने पर कभी-कभी ६+ पर भी भरती किया जाता है। इनके लिये अनिवार्य शिक्षा १६ वर्ष है। इस प्रकार सामान्य बालकों की अपेक्षा उनको स्कूलों में कम समय तक ही रहना पड़ता है। इस अवस्था पर वे इसलिए इतने परिपक्व नहीं हो पाते कि किसी व्यवसाय में अधिक दिनों तक टिक सकें। इस कार्य में उद्योग धन्धों एवं व्यवसायों के चलाने वालों का सहयोग माँगा जा रहा है ताकि इन व्यक्तियों को उचित प्रकार का काम मिल सके।

स्कूल में भोजन व्यवस्था (School Meal Service)

इगलैंड के कुछ स्कूलों में भोजन की व्यवस्था का प्रबन्ध १९०६ से ही किया गया था किन्तु यह प्रबन्ध केवल उन बालकों के लिए था जो दूर से स्कूल आया करते थे। द्वितीय महायुद्ध के बीच इस प्रकार की व्यवस्था भी आवश्यक पड़ी। अतः तभी से सभी प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों में उसको अनिवार्य कर दिया है। देश में लगभग ५०% विद्यालय इस व्यवस्था से लाभान्वित हो रहे हैं।

प्रत्येक प्राधिकार स्कूल में भोजन प्रबन्ध करने के लिए एक अधिकारी की नियुक्ति करता [illegible] होता है। भिन्न-भिन्न स्कूलों में भोजन [illegible] है, किन्तु सिद्धान्तः उनमें विशेष अन्तर नहीं [illegible] ार करने वाले लोग और भोजन देने या

सारे विद्यालय के भोजन में खर्च होने वाले वित्त का प्रबन्ध राज्य की सरकार करती है। किन्तु विश्वविद्यालय में इस भोजन का खर्च छात्र और छात्राओं को अंशतः या पूर्णतः देना पड़ता है। बाजार में भोजन का अधिक खर्च होने के कारण विश्वविद्यालीय छात्र भी दोपहर का भोजन वहीं पर करते हैं।

शारीरिक स्वास्थ्य और दन्त सेवा (School Medical Service) (*L. T. 1956*)

स्कूल के विद्यार्थियों को जिस प्रकार नि:शुल्क देने की व्यवस्था १९४४ के अधिनियम ने की है उसी प्रकार यह सेवा भी बिना मूल्य या फीस के सभी बालकों को दी जाने लगी है। किन्तु इसका आयोजन भिन्न-भिन्न विभागों द्वारा होता है।

१९४८ के स्वास्थ्य अधिनियम द्वारा राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा का भी आयोजन किया गया है जिसका उपयोग राष्ट्र के सभी बालकों और वयस्कों के लिए होता है, *किन्तु स्कूलों की स्वास्थ्य* सेवा राष्ट्रीय सेवा से भिन्न है। इस सेवा का प्रबन्ध स्थानीय प्राधिकारों द्वारा और राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा का आयोजन राष्ट्र की केन्द्रीय सरकार द्वारा होता है। प्रत्येक प्राधिकार स्थानीय स्वास्थ्य अधिकारी को ही स्कूलों का स्वास्थ्य अधिकारी नियुक्त कर स्थानीय स्वास्थ्य एवं शिक्षा विभागों को संयुक्त कर देता है। किन्हीं-किन्हीं प्राधिकारों ने इन दो पर अलग-अलग व्यक्तियों की नियुक्ति की है किन्तु उस दशा में भी दोनों का सहयोग अपेक्षित रहता है।

क्षेत्र के बड़े होने पर स्कूल स्वास्थ्य सेवा अधिकारियों की नियुक्ति की जाती है। कुछ नर्सों का भी प्रबन्ध किया जाता है। स्कूल स्वास्थ्य सेवा शिक्षा विभाग का एक महत्वपूर्ण अंग मानी जाती है। दोनों विभागों में परस्पर सहयोग प्रत्येक पद पर रहता है। यहाँ तक कि स्कूल के

भवन निर्माण मे भी स्वास्थ्य अधिकारी के सुझावो को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। निश्चित अवधि पर बालको के स्वास्थ्य की परीक्षा ली जाती है और बालको के स्वास्थ्य का विशेष ध्यान रखा जाता है प्रत्येक स्कूल मे स्वास्थ्य सेवा का एक कमरा होता है और स्कूल स्वास्थ्य अधिकारी अपनी नर्सों की सहायता से इस कार्य को सम्पादित करता रहता है। स्वास्थ्य रक्षा मे एक प्रकार की और सेवा पर जोर दिया जाता है वह है दन्तसेवा का। साधारणत अंग्रेज अपने दांतो की सफाई पर विशेष ध्यान नही देते। चाय, काफी सिगरेट पीने से उनके दांत कमजोर हो जाते हैं इसलिये १९५३ के शिक्षा अधिनियम ने 'दन्त चिकित्सा' नाम की सेवा प्रारम्भ करदी है। तबसे स्कूल दन्तसेवा और स्कूलस्वास्थ्य सेवायें दोनो ही सहयोगी सेवायें बन गई है।

मानसिक स्वास्थ्य सम्बन्धी सेवायें (L. T. 1950)

राष्ट्र इस बात को भली प्रकार समझता है कि जिस तरह बालक और बालिकाओ के मानसिक विकास के लिये उसे शिक्षालयो की व्यवस्था करनी है, उसी प्रकार उनके शारीरिक विकास और स्वास्थ्य के लिये स्वास्थ्य सेवाओ की आयोजना भी करनी है। किन्तु शरीर तो अस्वस्थ रह सकता है। बालको का मन भी अस्वस्थ रह सकता है, मस्तिष्क मे भी कई प्रकार के विकार उत्पन्न हो सकते हैं। अत. राष्ट्र ने मनोवैज्ञानिक सेवाओ का आयोजन किया है और इसलिए मनश्चिकित्सको की नियुक्ति की है। ये मनश्चिकित्सक स्कूलो से भी सम्बन्ध होते हैं और Approved schools से भी।

मान्य विद्यालय (Approved Schools)

इगलैंड मे बालापराधियो को न्यायालय से आदेश पाने के बाद घर से अलग एक सुन्दर वातावरण मे रखने का आयोजन किया जाता है ताकि उसकी शिक्षादीक्षा, समायोजन और पुनर्व्यवस्था ठीक ढग से हो सके। १० वर्ष से कम आयु वाले अपराधी बालक इन मान्य विद्यालयों मे नही भेजे जाते। LEA अपने अधिकार वाले क्षेत्र मे एक ऐसे मान्य विद्यालय की स्थापना करती है और १७ वर्ष से कम आयु वाले सभी बाल-अपराधियों को इन स्कूलो मे शिक्षित करती है।

मान्य विद्यालयों मे बालको के साथ मनोवैज्ञानिक ढग से व्यवहार किया जाता है। उन पर शासन नहीं किया जाता। सस्था का प्रत्येक अध्यापक उनकी समस्याओ को समझने का प्रयत्न करता है। उनका काम बालक को पढाने लिखाने के अतिरिक्त उसका समजन (adjustment) पैदा करना होता है। अध्यापक एव अध्यक्षो का दृष्टिकोण पूरी पूरी तरह मनोवैज्ञानिक होता है। कुछ अध्यापक तो माता-पिता जैसा व्यवहार इन बालको के साथ करते हैं और कुछ ही समय मे बालक समझने लगता है कि उसका अध्यापक उसका हितैषी है, उसकी कठिनाई को समझता है और आवश्यकता पडने पर उसकी सहायता करेगा।

बाल-अपराध के उपचार कार्य मे मान्य स्कूलो के अध्यापक तथा मनश्चिकित्सक दोनो एक दूसरे को सहयोग देते हैं। मनश्चिकित्सक बाल-अपराधियो के मानसिक अन्तर्द्वन्द्वों को समझने का प्रयत्न करता है उनकी अवरोधित इच्छाओ को प्रकाश मे लाता है। मान्य स्कूलों के अध्यापक उनके साथ पूर्ण सहानुभूति से व्यवहार करके उत्तम से उत्तम वातावरण पैदा करते हैं।

जब बालको को इन स्कूलो मे रखने से हानि मालूम पड़ती है तब उन्हे गोद लेने वाले घरो मे रखा जाता है।

Youth Employment Service—जब १५+की आयु पर किशोर या किशोरी अनिवार्य शिक्षा पाने के बाद स्कूल छोडते हैं तब उनको नौकरी दिलाने का काम श्रम मन्त्रालय करता है। श्रम मन्त्रालय के सरक्षण मे स्थान-स्थान पर (Employment Service) की व्यवस्था की है। रोजगार दिलाने के कार्य ठीक तरह से करने के लिये केन्द्र में Central youth employment Executive की स्थापना की गई है जो देश भर की सहायक सस्थाओं के बीच सम्बन्ध स्थापित रखती है।

[illegible] स्थानीय अधिकारो ने अपने किशोर और किशोरियो को [illegible] दिलाने के लिये [illegible] तक आर्थिक [illegible] ओ अध्यापक [illegible] के बीच पुल का काम करता है।

अध्याय १६

अमरीकी शिक्षा की विशेषताएँ

Q. 1. Explain how American Education is education of 5 D's (Democracy, decentralisation deversity, dynamism and discussion)

Ans. (१) अमरीकी शिक्षा प्रजातन्त्रीय है और सुनागरिक निर्माण पर बल देती है। अमरीका एक प्रजातन्त्र देश है अत उसकी शिक्षा का आधार पूर्णत. प्रजातन्त्रीय है। वह प्रत्येक सदस्य को अवसर की समानता देकर व्यक्तित्व का विकास करना है। प्रजातन्त्र का विकास इस बात पर निर्भर रहता है कि उस देश के नागरिक किस प्रकार के हैं। अच्छे नागरिक में आत्मविकास, उचित मानव सम्बन्ध (human relations) आर्थिक सामर्थ्य (economic efficiency) और नागरिक उत्तरदायित्व पालन करने की क्षमता होनी चाहिये। अमरीकी शिक्षा अपने बालकों मे इन्ही उद्देश्यों को लेकर चली है। प्राथमिक या माध्यमिक स्कूलो की शिक्षा के उद्देश्य भी इन्हीं बातो पर जोर देते हैं। अमरीका के प्राथमिक स्कूल चाहते हैं कि देश के भावी नागरिक अपनी समस्याओं का सामना स्वय आत्मनिर्भर होकर करें। उन्हें अपने जीवन यापन के लिए किसी का मुँह न ताकना पडे। अत प्राथमिक स्कूली शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक सभी प्रकार की शिक्षायें छात्रो में आत्मनिर्भरता और आधारभूत कुशलता का विकास करती है। उनमें समस्याओं का स्वय निदान करके भविष्य मे उनसे कठिन समस्याओं के समाधान के लिए पूर्ण उत्साह और अनुभव से अग्रसर होने की क्षमता पैदा करती हैं। प्रजातन्त्र मे प्रत्येक नागरिक जनकल्याण के लिये प्रयत्नशील रहता है। वह सामाजिक नियमो और सम्बन्धों के प्रति सम्मान प्रगट करता है। अपने और दूसरों के अधिकारों की रक्षा करता है। इस प्रकार सब लोगो से उचित मानव सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करता है। अमरीकी शिक्षा इसी उद्देश्य में अन्य व्यक्तियो को आदर करने, नैतिक सिद्धान्तों के अनुसार जीवनयापन करने तथा समाज में सहयोग के साथ जीवन बिताने पर जोर देती है। यदि प्रजातन्त्रात्मक शासन को विकसित करना है तो उसके नागरिकों मे ऐसे कौशलों की वृद्धि और विकास होना आवश्यक है जिनका प्रयोग करके वे समाज के आर्थिक जीवन के लिये अपने को उपयोगी बना सकें। अत: अमरीकी माध्यमिक शिक्षा छात्रों को सफल गृहस्थ जीवन का ज्ञान देती है। उन्हें भिन्न-भिन्न प्रकार की व्यावसायिक शिक्षा देकर आर्थिक ढग से सामर्थ्यवान बनाती है। उनको अच्छी वस्तुओ के प्रयोग और खरीदने की शिक्षा देती है।

व्यक्तिगत विकास के लिये उसकी कलात्मक, रचनात्मक तथा सामाजिक चेतनाओं को विकसित करने का प्रयत्न करती है। यह शिक्षा अवकाश का सदुपयोग करने, कला साहित्य आदि से आनन्द प्राप्त करने, विज्ञान का मनुष्य पर प्रभाव समझाने, तर्क पूर्ण चिन्तन और अपने विचारों को स्पष्ट रूप से कहने और समझ कर दूसरों की बातों को सुनने या पढ़ने की शक्ति पैदा करती है। इस प्रकार वह भावी नागरिकों के जीवन के प्रत्येक पहलू को छूती हुई चलती है।

अच्छे नागरिक के लिए यह भी जरूरी है कि वह अपने में विश्वबन्धुत्व की भावना पैदा करे। 'रहो और रहने दो' का सिद्धान्त प्रजातन्त्रीय तो है ही अन्तर्राष्ट्रीय भी है। इसलिए अमरीकी शिक्षा यूनेस्को आदि संस्थाओं के माध्यम से विश्व शिक्षा पर जोर देती है।

(२) शिक्षा मे स्थानीय प्रबन्ध पर जोर दिया जाता है—यद्यपि सघ सरकार और राज्य की सरकारें राष्ट्रीय शिक्षा का मार्ग निर्देशन करने के लिये अधिक से अधिक अधिकार प्राप्त करती जा रही हैं किन्तु प्रादेशिक या स्थानीय सस्थाओं का अमरीकी शिक्षा मे विशेष हाथ रहता है। शिक्षा का नियन्त्रण जनता के हाथ मे अधिक है, सरकार के हाथ मे कम। शिक्षा मे स्थानीय प्रशासन के तीन रूप दृष्टिगोचर होते हैं।

(१) स्थानीय विद्यालय नगर (Local school District)
(२) कस्बा प्रणाली (Town system)
(३) काउण्टी प्रणाली (County System)

स्थानीय विद्यालय नगर शिक्षा मे स्थानीय प्रशासन की सबसे प्राचीन सस्था है। इसका नियन्त्रण उच्च अधिकारी वर्ग द्वारा नही के बराबर होता है। इलीनोइस तथा अर्कनसास में यह विधि प्रचार मे हैं।

टाउन प्रणाली मे शासन कार्य एक केन्द्रीय सस्था के हाथ मे होता है यह संस्था शहर और ग्राम दोनो की शिक्षा व्यवस्था का नियत्रण करती है। टाउन प्रणाली न्यूइगलैण्ड मे प्रचलित है।

प्रादेशिक प्रशासन की सबसे बडी इकाई काउण्टी प्रणाली है। एक काउण्टी का क्षेत्रफल ५०० से १००० वर्गमील तक होता है। इतने बडे क्षेत्र की शिक्षा के लिये काउण्टी बोर्ड का चुनाव किया जाता है जो उसकी शिक्षा व्यवस्था पर नियन्त्रण रखती है।

यद्यपि शिक्षा के क्षेत्र मे व्यक्तिगत प्रयासो पर ही अधिक जोर दिया जाता हैं, किन्तु सघीय या राज्यीय सरकार का मार्ग निर्देशन भी साथ-साथ चलता रहता है। उच्च शिक्षा में भी व्यक्तिगत उत्साह और सहयोग पर बल दिया जाता है। सरकार व्यक्तिगत प्रयासो के कार्य मे बाधा नहीं डालती है। सरकार और व्यक्तिगत सस्थाएँ दोनो एक दूसरे के प्रति सहनशीलता का भाव रखती हैं।

जहाँ तक शिक्षा के सगठन, प्रशासन और विकास का सवाल है, अमरीका की जनता Home Rule मे पूर्ण विश्वास रखती है अत शिक्षा मे विकेन्द्रीकरण पर जोर दिया गया है। शिक्षा का विकास भी अपनी आवश्यकताओ और साधनो के अनुसार हुआ है। शिक्षा नीति विधि सगठन और प्रशासन सब में भिन्नता है।

(३) अमरीकी शिक्षा उपयोगितावाद और मानवतावाद पर आधारित है—शिक्षा ही नही, अमरीका का सम्पूर्ण जीवन दर्शन उपयोगितावाद पर ही आधारित है। वह इगलैण्ड और फ्रास की तरह सास्कृतिक परम्पराओ के लिये बिना ही आशातीत उन्नति कर सका है। इसका मुख्य कारण है उसका उपयोगितावाद। अमरीका विचार की अपेक्षा कार्य को अधिक उत्तम मानता है। साथ ही यह मानकर चलता है कि शिशु का स्वभाव और उसका विकासोन्मुख मस्तिष्क निर्दय अनुशासन और शिक्षा की जड विधियों से आक्रान्त नही करना है। सूखे धर्म के आदर्शों के लिये मानव के स्वभाव और रुचियो का दमन करना पाप है।

(४) शिक्षा गतिशील और जीवनपर्यन्त चलने वाली है—प्रजातन्त्रात्मक राज्यों में शिक्षा का उद्देश्य सुनागरिक उत्पन्न करना और व्यक्ति का परम विकास करना होता है इसलिये पठन पाठन और लेखन की अपेक्षा वह जीवनपर्यन्त चलने वाली शिक्षा पर जोर देता है।

(५) महती विभिन्नता मे एकता—इस भिन्नता के कई कारण है—अमरीका की जनसख्या इगलैंड स्काटलैंड, आयरलैण्ड, जर्मनी, स्केडीनेविया, आस्ट्रिया, इटली, हगरी, रूस, फ्रांस आदि देश के निवासियो से मिलकर बनी है। इन लोगो ने अपने-अपने देशों की शिक्षा व्यवस्थाओ को अमरीका मे लागू किया किन्तु अंग्रेजी भाषा, और प्रोटेस्टेण्ट धर्म, की देश में प्रधानता होने के कारण यह कहा जा सकता है कि अंग्रेजी परम्पराओ मे मैत्री, एकता स्थापित की गई है। इन लोगो ने इस देश मे आकर बसे अपने देश की परम्पराओ को बनाये रखने का प्रयत्न किया उदाहरणस्वरूप मे सेचूसेटस मे छोटे-छोटे समुदायों को शिक्षा का कार्य सौंपा और 'टाउन' को प्रधानता दी, इसी प्रकार वर्जीनिया मे काउण्टी को प्रधानता मिली। किन्तु इनके होते हुए भी अब स्थानीय सस्थाओं की अपेक्षा केन्द्र और राज्य को प्रधानता दी जा रही है। पहले राज्य सरकार मतदान पर अधिक बल नहीं देती थी किन्तु अब बहुत से राज्यो के सरकारी मामलों में आदमियों को तो क्या औरतों को भी मतदान देने का अधिकार मिल गया है।

इस प्रकार देश में अनेक तरह की शिक्षाएँ होते हुए भी धीरे धीरे केन्द्रित शिक्षा प्रणाली का उदय हो रहा है।

अम. शिक्षा और संघीय एवं राज्यीय सरकार

Q. 2. How do the Federal and State governments function in the field of education in the United States? (*L. T. 1955*)

Or

Examine the general relationship of the Federal Govt. to education in the U. S. and outline the programmes recently carried out by it. (*L. T. 1956*)

Or

Outline the general organisation of the Department of Education in the U. S. A. with special reference to the State Staff and the State wide programmes. (*L. T. 1955*)

Ans. शिक्षा में संयुक्त राज्य का प्रशासन दो मनोवृत्तियों का प्रदर्शन है। एक ओर तो जनता चाहती है अपना काम अपने हाथ में लेना। यह पूर्ण प्रान्त अधिकारों की रक्षा और समर्थन करती है। दूसरी ओर राष्ट्र चाहता है जनता के विकास के लिये उचित शिक्षा की व्यवस्था। जनता की आवाज राष्ट्र की आवाज से अधिक तेज होने के कारण संयुक्त राज्य की शिक्षा का प्रबन्ध संघ सरकार के हाथ में न होकर देश के छोटे छोटे १,५०,००० स्थानीय विद्यालय बोर्डों के हाथ में है। संयुक्त राज्य के ४८ राज्यों में से केवल एक ही राज्य (डेला वेयर) ऐसा है जिसमें शिक्षा का प्रबन्ध और आर्थिक सहायता प्रत्यक्ष रूप में राज्य सरकार के हाथ में है। किन्तु यदि राष्ट्र अपने उद्देश्यों की प्राप्ति करना चाहता है तो उसे शिक्षा का केन्द्रीयकरण करना होगा। राष्ट्र के संगठन और विकास के लिये अलग अलग राज्यों की अलग-अलग योजनाएँ अधिक उपादेयता नहीं रखतीं। इस बात को अमरीका अच्छी तरह समझता है। वह केन्द्रीय प्रशासन और योजनाओं को शिक्षा के पाठ्यक्रम में रखना चाहता है और आज उसकी इच्छा इस दिशा में और भी बल पकड़ रही है क्योंकि वह अन्तर्राष्ट्रीय जगत में शिक्षा के माध्यम से दूसरे देशों को समझने *और अपना परिचय देने, विश्व के नवनिर्माण में उचित सहयोग देने का इच्छुक है।* अमरीकी सरकार केन्द्रीयकरण चाहती है जनता सरकार से शासित रहने के कारण विकेन्द्रीयकरण पर ही तुली हुई है। तब भी संघ की सरकार शिक्षा योजनाओं एवं शिक्षा विभाग में अपना सहयोग दे रही है।

संघ सरकार का एक विभाग जिसे संघ सुरक्षा संस्था कहते हैं, शिक्षा कार्यालय का संचालन करती है। शिक्षा कमिश्नर इस कार्यालय का प्रधान होता है। वह शिक्षा की राष्ट्रीय योजना बनाता है जिसमें कोलम्बिया, हवाई द्वीप समूह और अलास्का आदि विशेष क्षेत्रों, अमेरिकन इण्डियन नीग्रो आदि विशिष्ट जातियों, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को पक्का करने की शिक्षा की योजनाएँ सम्मिलित रहती हैं।

संयुक्त राज्य में शिक्षा विभाग की स्थापना काफी कठिनाइयों के बाद हुई हारेसमन हेनरीबनार्ड, और जेम्स. ए. गारफील्ड के प्रशंसनीय प्रयासों के फलस्वरूप शिक्षा विभाग को खोला गया। इस विभाग के उद्देश्य हैं।

(१) विभिन्न राज्यों की शिक्षा में उन्नति के विषय में आँकड़े इकट्ठे करना।

(२) जनता के कल्याण के लिये प्रशिक्षण विधियों, विद्यालय संगठन नियंत्रण आदि से सम्बन्धित सूचनाओं का वितरण। यह कार्य रेडियो प्रदर्शनी, प्रकाशन, सभाओं द्वारा सम्पादित होता है।

(३) देश भर में शिक्षा की प्रगति के लिये सराहनीय कार्य करना। पुस्तकालयों, राष्ट्रीय सूचना केन्द्रों का सचालन कर तथा विद्यालयों की प्रमुख समस्याओं पर लिखी गई थीसिस से उधार देकर प्रसार किया जाता है।

शिक्षा विभाग या शिक्षा कार्यालय आन्तरिक विभाग से हटाकर संघीय सुरक्षा संस्था में मिला दिया गया है। शिक्षा कार्यालय के पास इस समय दो प्रकार का वित्त रहता है (i) उसके प्रशासन एवं परिचालन के लिये नियमित व्यय और (ii) सहायतार्थ अनुदान जो भूमि अनुदान, महाविद्यालयों, औद्योगिक शिक्षा, औद्योगिक पुनर्वास, सुरक्षा शिक्षा आदि पर खर्च किया जाता है।

संयुक्त राज्य के शिक्षा कमिश्नर की नियुक्ति यहाँ का राष्ट्रपति करता है इस नियुक्ति की कोई विशेष अवधि नहीं होती। वह शिक्षा कार्यालय का प्रमुख होता है उसका काम होता है शिक्षा संस्थाओं से सम्पर्क रखना तथा वार्षिक तथा द्विवार्षिक रिपोर्ट को तैयार कर प्रसारित करना।

संघ सरकार के आधीन कोलम्बिया नगर D. C वाशिंगटन, अमरीकी उपनिवेश, गिरवी रखे प्रदेश, संघ के अन्य सुरक्षित प्रदेश हैं जिनमे संघ अपनी इच्छानुसार शिक्षा व्यवस्था कर सकता है। इनके अतिरिक्त संघ सरकार अमेरिकन इण्डियनो के प्रदेशों (ओकलाहामा, अरीजोना, न्यूमोन्तिको, साउथ डकोटा, आदि राज्य) और नीग्रो लोगो के क्षेत्र (१७ दक्षिणी राज्य तथा हावर्ड विश्वविद्यालय) पर भी शिक्षा विषयक नियन्त्रण रखती हैं।

शिक्षा तथा राज्य की सरकार

संयुक्त राज्य अमरीका की जन शिक्षा का भार हमेशा से राज्य की सरकारो ने वहन किया है। सन् १७८९ ई० मे जब राष्ट्र का विधान लागू हुआ तब भी विधान बनाने वालो ने राज्यो को ही शिक्षा का जिम्मेदार माना। प्रारम्भ से ही इस देश मे शिक्षा व्यवस्था संस्थाओ के हाथ में रही और राज्य की सरकारों ने उनको अपने कार्य मे पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी। वैसे तो केन्द्रीय तथा राज्यीय सरकारें शिक्षा के विषय मे सहयोग देती रहती हैं किन्तु प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र मे सबसे अधिक दिलचस्पी इन संस्थाओं को ही है। मुक्त वातावरण मे राष्ट्र को अपनी अनेक संस्थाओं को स्वतन्त्रता देनी पडती है और राज्य का स्थायित्व भी इसी बात पर निर्भर रहता है कि कितनी मात्रा मे उस राज्य की शिक्षा व्यवस्था राज्य के हित मे है। अत अमरीकी शिक्षा के विषय मे महत्वपूर्ण बात यह है कि वह स्वतन्त्र होते हुए भी राज्य द्वारा अनुशासित है किन्तु अनुशासन इतना कठोर नहीं होता कि प्रजातन्त्र की आत्मा का हनन हो। सम्पूर्ण राष्ट्र मे केवल एक राज्य ही ऐसा है जिसमे शिक्षा राज्य द्वारा नियंत्रित रहती है किन्तु यहाँ पर भी प्रजातन्त्र की पूरी तरह रक्षा की जाती है।

यदि स्थानीय संस्थाओ के सामने भिन्न-भिन्न प्रकार की समस्यायें उत्पन्न होती तो शायद शिक्षा के क्षेत्र मे राज्य की सरकारें हस्तक्षेप न करतीं राज्यो ने पहले तो उन्हें कानूनी मान्यता देकर शक्तिशाली बना दिया फिर जब उन्हे नई-नई समस्याओं का सामना करना पडा तब राज्य ने उनकी सहायता की। ये समस्यायें थीं छात्रो की संख्या मे वृद्धि, ऊँची शिक्षा की नई-नई माँगें, सामाजिक चेतना की नई लहर। अत' सन् १८५० तक आते-आते राज्य की सरकारो को शिक्षा के क्षेत्र मे वास्तविक जिम्मेदारी लेनी पडी। संविधान का भी यही आशय था कि जो शक्तियाँ संविधान द्वारा केन्द्र को नही दी गई हैं या जिन पर केन्द्र ने रोक नहीं लगाई है वे जनता द्वारा या राज्य द्वारा उपयोग करने के लिये सुरक्षित हैं। इन दो में से जिसके पास धन इकट्ठे करने के अधिक साधन हैं वही उन शक्तियों का प्रयोग आसानी से कर सकता था। अत राज्य की सरकारें स्थानीय संस्थाओ के कार्य मे हस्तक्षेप करने लगी।

सन् १७८४ मे सबसे पहले न्यूयार्क राज्य ने शिक्षा मे हस्तक्षेप किया। उसने बोर्ड ऑफ रीजेण्ट्स नामक संस्था की स्थापना की जिसका काम शिक्षा सम्बन्धी कानूनो का निर्माण था। १८१२ मे सुपरिन्टेन्डेन्ट ऑफ ऐजूकेशन की नियुक्ति की गई जिसका काम राज्य के धन की व्यवस्था करना तथा स्कूलों को धन वितरण करना था। सन् १८५० तक स्थानीय संस्थाओ का शिक्षा-विषयक धन का उत्तरदायित्व खत्म हो गया और राज्य की सरकारें स्थानीय संस्थाओं के बराबर धन देने लगी। अब शिक्षा सुपरिण्टेण्डेण्ट का महत्वपूर्ण पद तथा राज्य का कार्य भी अत्यंत जटिल हो गये हैं। शिक्षा के प्रति अब राज्य के निम्नांकित कार्य माने जाते हैं :

(१) स्कूलो की स्थापना के नियमो तथा शिक्षा-स्तर का निर्धारण
(२) राज्य के प्रत्येक बालक के लिये स्कूल का द्वार खोलना
(३) स्कूलों को धार्मिक और संकुचित विचारों से बचाना
(४) अधिकारो और कर्त्तव्यो को मानने वाले स्कूलों की स्थापना करना
(५) स्थानीय संस्थाओं को उनकी दशा बिगडने पर उनकी सहायता करना

इन कार्यों के अतिरिक्त राज्य जनता को यह भी बताना है कि स्कूल भिखारियो के लिये नहीं है उन नागरिकों के लिये है जो अपने कर्त्तव्यो को समझते है वह यह भी बतलाता है

कि शिक्षा के विषय में उसका सर्वप्रथम अधिकार है। सुपरिण्टेण्डेण्ट ऑफ स्कूल्स को जनता की इच्छा के विरुद्ध भी स्कूल खोलने तथा पाठ्य-पुस्तकों की ऐसी सूची प्रकाशित करने का अधिकार है जिनको राज्य के स्कूलों में पढ़ाना है। इस प्रकार हम देखते हैं कि राज्य के पास दो स्पष्ट अधिकार हैं (अ) स्थानीय संस्थाओं की सहायता करना, (ब) स्थानीय शिक्षा केन्द्रों का निरीक्षण तथा नियम बनाने का काम करना।

संयुक्त राज्य अमरीका में लगभग सभी राज्य जनता को शिक्षित करना, शिक्षा सम्बन्धी नियम बनाना अपना कार्य समझते हैं। इस उत्तरदायित्व को सफलतापूर्वक निभाने का काम शिक्षा सम्बन्धी व्यवस्था द्वारा हो सकता है, इस व्यवस्था का रूप निम्न प्रकार का है :—

(१) शिक्षा का संचालन शिक्षा बोर्ड करता है।
(२) शिक्षा बोर्ड का मुख्य पदाधिकारी राज्य शिक्षा सुपरिण्टेण्डेण्ट होता है।
(३) बोर्ड द्वारा बनाये गये नियमों को क्रियान्वित करने के लिये राज्य शिक्षा विभाग की स्थापना की गई है।

राज्य शिक्षा बोर्ड का संगठन तथा कार्य—केवल दो तीन राज्यों को छोड़कर सभी राज्यों में शिक्षा बोर्ड की स्थापना हो चुकी है। इस शिक्षा परिषद् के सदस्य तीन प्रकार के होते हैं एक तो वे जो अपने पद के कारण ही बोर्ड की सदस्यता प्राप्त कर लिया करते हैं जैसे राज्य का गवर्नर। किन्तु कुछ राज्यों में राज्यपाल को शिक्षा बोर्ड से अलग रखा जाने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। कुछ सदस्य चुनाव द्वारा शिक्षा बोर्ड में स्थान ग्रहण करते हैं सदस्यों की योग्यता के विषय में भिन्न-भिन्न राज्यों में भिन्न-भिन्न प्रणालियाँ प्रचलित हैं। कुछ राज्यों में शिक्षा विशेषज्ञों को ही शिक्षा परिषद् के लिये चुना जाता है। कुछ राज्यों में परिषद् में जनता के प्रतिनिधि रखे जाते हैं जो राज्य के प्रत्येक क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करते हैं। एक राज्य में शिक्षा बोर्ड तो होता ही है अन्य बोर्ड भी उसको कार्य में सहायता देने के लिये बनाये जा सकते हैं।

राज्य शिक्षा सुपरिण्टेण्डेण्ट या कमिश्नर उसकी योग्यता तथा कार्य—राज्य शिक्षा बोर्ड का मन्त्री या अध्यक्ष मुख्य शिक्षा पदाधिकारी होता है। कुछ राज्यों में उसकी नियुक्ति अलग से भी होती है। कुछ राज्यों में दोनों ही प्रकार के व्यक्ति राज्य शिक्षा के मुख्य पदाधिकारी होते हैं। इनका निर्वाचन राज्य का राज्यपाल करता है अथवा राज्य शिक्षा बोर्ड करता है। इसकी योग्यता का मापदण्ड भी भिन्न-भिन्न राज्यों में अलग-अलग प्रकार का है। वह प्राय किसी प्रतिष्ठित कालेज का स्नातक होता है। उसका कार्यकाल १ वर्ष से लेकर ६ वर्ष तक कुछ भी हो सकता है। जहाँ तक उसके कर्त्तव्यों का सम्बन्ध है वह स्कूल बोर्ड तथा काउण्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट से सलाह मशवरा कर नीति निर्धारण करता है। स्कूलों और शिक्षा के स्तर का निरीक्षण करता है। राज्य के विभिन्न स्कूलों में धन वितरण करता है। राज्य की बहुत सी संस्थाओं को एक सूत्र में बाँधने का प्रयत्न करता है। राज्य की अनेक बैठकों, तथा राष्ट्रीय स्तर पर होने वाली अन्य बैठकों में जाकर राष्ट्र सम्बन्धी शिक्षा में योग देता है। इस प्रकार राज्य, राष्ट्र और स्थानीय संस्थाओं को एक सूत्र में बाँधने का प्रयत्न करना पड़ता है।

राज्य का शिक्षा विभाग—राज्य शिक्षा बोर्ड द्वारा बनाये गये कानूनों का पालन कराने के लिये इस विभाग को खोला गया है। शिक्षा सुपरिण्टेण्डेण्ट या कमिश्नर की सहायता के लिये इस विभाग के अन्य कर्मचारी-सहायक कमिश्नर, सुपरवाइजर आदि की नियुक्ति की गई है, शिक्षा सम्बन्धी नेतृत्व, शिक्षा का निरीक्षण आदि इसके विभिन्न कार्य हैं।

अमरिका में प्रारम्भिक शिक्षा

Q 3. Describe the features of elementary education in U S A. for children for 6 to 14. *(L. T. 1955)*

Or

Discuss the main problems faced at present by America in the field of primary education. What efforts are being made to solve them ? *(L. T. 1958)*

Ans प्रारम्भिक शिक्षा को प्राय दो नामों से सम्बोधित किया जाता है—एलीमेण्टरी (Elementary) और प्राइमरी (Primary)। अमरीका में नई योजना के अनुसार प्रारम्भिक

शिक्षा ६ वर्ष की आयु से १२ वर्ष की आयु तक तथा एलीमेण्टरी शिक्षा ६ वर्ष की आयु से १४ वर्ष की आयु तक चलती है। दोनो योजनाएँ अमरीका मे चालू हैं।

प्रारम्भिक शिक्षा के साधारण तथा तीन भाग किए गए हैं। प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च। कही-कही किण्डर गार्टन को भी प्राथमिक विभाग मे सम्मिलित कर लिया जाता है और ७, ८ वी कक्षा को जूनियर हाई स्कूल मे मिला दिया जाता है। इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र अमरीका मे इस समय प्राथमिक शिक्षा का सगठन ४ प्रकार से किया है—

(१) पुरानी आठ कक्षा वाली योजना ८
(२) तीन विभागो वाली योजना ३-३-२
(३) दो पुनर्गठित विभागो वाली योजना ३-३
(४) एक सगठित प्रन्विति (२-६)

ये चारो प्रकार के सगठन एक ही वस्तु के विभिन्न स्वरूप है। इस प्रकार की विभिन्नताएँ केवल व्यक्ति के विकास को ध्यान मे रखकर की गई है और कोई कारण नही है।

प्राथमिक विद्यालयो के कई प्रकार समस्त राष्ट्र मे दिखलाई देते हैं। कुछ विद्यालय एक या दो शिक्षक वाले हैं कुछ विद्यालय सरकारी या व्यक्तिगत है; कुछ पुरानी, अथवा प्रगतिशील या बीच की शिक्षण पद्धति को अपना कर चल रहे हैं, कुछ प्लाटून ढग के और कुछ आन्तरिक सगठन वाले हैं और कुछ विद्यालय असाधारण बालको के लिए विशिष्ट शिक्षा (Special Education) देने के लिए बनाए गए है। इस प्रकार प्राथमिक शिक्षा देने वाले इन विद्यालयों को निम्नांकित पाँच प्रकारो मे विभाजित किया जा सकता है।

(१) आकार तथा स्थिति के अनुसार।
(२) आर्थिक सहायता के साधनो के अनुसार।
(३) शिक्षण पद्धति के अनुसार।
(४) सगठन के अनुसार।
(५) विशिष्ट या सामान्य बालको के अनुसार।

आकार और स्थिति के अनुसार छोटे विद्यालय अधिक प्रचलित हैं। बीच के आकार वाले प्राथमिक विद्यालय गाँवो तथा छोटे-छोटे नगरो में स्थित हैं। बड़े-बड़े प्राथमिक विद्यालय बड़ी जनसख्या के लिए बड़े-बड़े नगरो मे स्थित है। अधिकाशत: इन विद्यालयो को सरकारी आर्थिक सहायता मिलती है। केवल १०% प्राथमिक विद्यालय ही ऐसे है जिनको आर्थिक सहायता धार्मिक या अन्य किसी प्रकार की सस्थाओ से मिलती है। शिक्षण विधि के अनुसार कुछ विद्यालय बिल्कुल पुराने ढर्रे पर चल रहे है कुछ पूर्ण प्रगतिशील हो गए है।

पहले आठ कक्षा वाले प्राथमिक विद्यालयो का प्रचलन देश मे था किन्तु अब प्राथमिक विद्यालयो मे ६ कक्षाएँ तथा किण्डर गार्टन की २ कक्षाएँ सम्मिलित की जाती है। प्रथम तीन कक्षाओं मे किण्डर गार्टन की शिक्षा पद्धति चलती है, चौथी, पाँचवी और छठी कक्षाओ मे पठन पर ही बल दिया जाता है। सातवीं और आठवीं कक्षाएँ जूनियर हाई स्कूल में शामिल कर दी गई है।

दूसरे महायुद्ध के बाद प्राथमिक विद्यालयो के सगठन और प्रशासन मे अधिक लचीलापन और सरलता विद्यालय की इमारत और उसके सगठन में अधिक उपयोगिता पाठ्यक्रम मे अधिक व्यापकता विद्यालय की शिक्षा मे जनता का सहयोग शिशुओ की ओर व्यक्तिगत ध्यान की वृद्धि, सामाजिक कार्यों मे भाग लेने की बढ़ती हुई प्रवृत्ति आदि आदि बातें दृष्टिगोचर हो रही है।

देश मे बालकों के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और नैतिक तथा सौन्दर्यानुभूत्यात्मक विकास को ध्यान मे रखकर प्राथमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम मे पाँच मुख्य वस्तुओ को प्रधानता दी है—

(१) पठन।
(२) लेखन।
(३) हिसाब।
(४) मनोरजन।
(५) सम्बन्धो की स्थापना।

उसका पाठ्यक्रम भी भिन्न नही रखा जाता। माध्यमिक शिक्षा मे लिबरल ग्रार्ट्स कालेजो से २ वर्ष काटकर ग्रौर जोड दिए हैं। इस प्रकार १३ ग्रौर १४ वी कक्षाग्रो को मिलाकर जूनियर कालेज स्थापित किए जा चुके हैं। इस प्रकार माध्यमिक शिक्षा ६-६-२ ग्रथवा ६-३-३ वर्षो मे विभाजित की गई है। ६-६-२ का ग्रर्थ है ३ वर्ष प्रारम्भिक, ६ वर्ष जूनियर ग्रौर सीनियर हाई-स्कूलो तथा २ वर्ष जूनियर कालेज की शिक्षा। इसी प्रकार ६-३-३-२ की व्याख्या की जा सकती है।

इस व्यवस्था के ग्रतिरिक्त शिक्षा का सघठन ग्रब ग्रौर प्रकार से किया गया है। इसमे ६ वर्ष प्रारम्भिक, ४ वर्ष जूनियर माध्यमिक, ४ सीनियर माध्यमिक शिक्षा का समावेश किया गया है किन्तु इस व्यवस्था ने एक ग्रोर उचित सकलन एव परिवर्तन की समस्या को सुलझाया है तो दूसरी ग्रोर सैकडो समस्यायें उलझा दी हैं।

ग्रमरीका मे ग्रनिवार्य शिक्षण की ग्रायु १८+है। ग्रनिवार्य शिक्षा की ग्रायु को इतना ग्रधिक बढा देने के दो कारण हैं। १ सयुक्तराज्य का धन २. बेकारी की समस्या ग्रत्याधिक धन होने के कारण राष्ट्र इस ग्रायु तक नि शुल्क शिक्षा की धन व्यवस्था करता है ग्रौर उसके नौजवानो को बेकारी की समस्या का सामना न करना पडे इसलिए ग्रधिक समय तक छात्रों को स्कूलो मे रखना है। १२+से १८ तक की ग्रायु वाले छात्रो को जिस प्रकार के विद्यालय माध्यमिक शिक्षा प्रदान कर रहे हैं, उनका सक्षिप्त दिग्दर्शन निम्न तालिका से किया जा सकता है —

आयु	१	२	३
१२+	जूनियर हाई स्कूल	निम्न माध्यमिक स्कूल	जूनियर कालेज
१३+ १४+			हाईस्कूल
१५+	सीनियर हाईस्कूल		
१६+ १७+		उच्च माध्यमिक स्कूल	
१८+	जूनियर कालेज		

उक्त माध्यमिक स्कूलो के ग्रतिरिक्त पाठ्यक्रम के ग्राधार पर जिन स्कूलो की व्यवस्था की गई है वे निम्नांकित हैं।

१. सामान्य समिति ग्रौर विशेष हाईस्कूल—इन हाई स्कूलो का प्रोग्राम एक सीमा के ग्रन्दर बालको की रुचि पर ग्राधारित रहता है किन्तु सीमा का विस्तार धन, स्कूल का ग्राकार ग्रौर जनता से ग्रार्थिक सहायता की मात्रा पर निर्भर रहता है, इनमें विशेष क्षेत्रो के लिए शिक्षा की व्यवस्था न होने के कारण इनको सामान्य समिति हाई स्कूल के नाम से पुकारा जाता है। ग्रधिकाश हाईस्कूल इसी प्रकार के हैं।

[illegible] र की शिक्षा [illegible] विशेष वन [illegible] ग्रौर टेक्नी-कल हाईस्कूल ग्रोहम विशेष उल्लेखनीय है।

(२) व्यापक स्कूल (Comprehensive school)—व्यापक स्कूलों मे दो सौ विषय तक एक साथ पढाने की व्यवस्था की गई है। इन विषयो को समूहों मे बाँटकर विभिन्न विभागो की व्यवस्था की गई है। इन विभागो में कला (Arts) व्यापार (Commerce) ग्रौर कृषि (agriculture) मुख्य हैं। विद्यार्थियो को ग्रपनी रुचि के ग्रनुसार विषय चुन लेने की पूरी-पूरी स्वतन्त्रता होती है। इस स्कूल में सभी प्रकार की शिक्षा का ग्रायोजन किया जाता है। सामान्य

अमरीका मे अध्यापन से पूर्वकालीन प्रशिक्षण (preservice) के लिये तीन प्रकार के प्रशिक्षण केन्द्रो की स्थापना की गई है—

(१) नार्मल स्कूल—प्राथमिक विद्यालयों के लिये।
(२) टीचर्स कालेज—माध्यमिक विद्यालयों के लिये।
(३) शिक्षाविभाग　　　　„

नार्मल स्कूलो मे प्रारम्भिक शिक्षा के लिये अध्यापक तैयार किये जाते हैं। पहले इन स्कूलो का पाठ्यक्रम केवल १ वर्ष का ही था किन्तु अब उसे ४ वर्ष का कर दिया गया है। देश मे से धीरे-धीरे ऐसे नार्मल स्कूल खतम होते जा रहे हैं। टीचर्स कालेज में प्रशिक्षण की अवधि ४ या ५ वर्ष की है। इन प्रशिक्षण महाविद्यालयो मे से बहुत से विश्वविदित हो चुके हैं। बहुत से पी० एच० डी० तक की शिक्षा या डिग्री प्रदान करते हैं। लिबरल आर्ट्स कालेजो में अध्यापक प्रशिक्षण के लिये शिक्षा विभाग खोले गये हैं जिनमे अध्यापकों को प्रशिक्षण दिया जाता है किन्तु टीचर्स कालेजो की अपेक्षा उनमे अध्यापक प्रशिक्षण कम समय के लिये ही होता है।

जिन संस्थाओ मे ४ या ५ वर्ष का प्रशिक्षण काल है उनमे सामान्य और व्यावसायिक दोनो विषयो की शिक्षा दी जाती है। टीचर्स कालेज मे कालेज की दो वर्ष की शिक्षा के उपरान्त प्रवेश मिलता है। पहले दो वर्ष में सामान्य शिक्षा और अन्तिम २ या ३ वर्षों मे शिक्षण कला के विषयों पर बल दिया जाता है।

इस प्रशिक्षण अवधि के बीतने के उपरान्त छात्राध्यापक को पढ़ाने का लाइसेंस या प्रमाणपत्र दिया जाता है। ऐसे प्रमाणपत्र प्राप्त शिक्षक एक राज्य से दूसरे राज्य मे भी आ जा सकते हैं किन्तु भिन्न-भिन्न राज्यो मे भिन्न-भिन्न योग्यता के अध्यापको की आवश्यकता होती है इसलिये एक राज्य से दूसरे राज्य मे जाना अधिक सम्भव नहीं है।

प्रशिक्षण केन्द्रो मे अधिकाश प्रशिक्षण केन्द्र जनता के हाथ मे हैं कुछ राज्यों के कुछ काउन्टी या टाउनशिप के कुछ म्यूनिसिपल और कुछ डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के अधीन हैं। इन प्रशिक्षण विद्यालयो मे प्रवेश पाने के लिये १२ वर्ष की शिक्षा अनिवार्य है।

विद्यार्थियों की परीक्षाएं

Q. 7. Describe the methods of appraisal of pupils achievement generally adopted in the U. S. A. Compare these methods with those followed in Indian schools.　　　　　　　　　　　　(*L. T. 1958*)

Ans. गत वर्षों मे सयुक्त राज्य अमेरिका ने परीक्षा प्रणालियो के ऊपर अनेक खोजें की हैं और उन्हें अधिक से अधिक वैज्ञानिक बनाने का प्रयत्न किया है। परीक्षा को अधिक वैज्ञानिक बनाने के लिए निम्नलिखित तीन महत्वपूर्ण तथ्यो को प्रधानता दी गई है—

(१) विद्यार्थियों के अनुभवों और प्रगति का मूल्याकन करने के लिए परीक्षा का सीधा सम्बन्ध विद्यालय के विशिष्ट उद्देश्यो से स्थापित करना होगा।

(२) मूल्याकन की सारी योजनाएं व्यापक होनी चाहिए।

(३) मूल्याकन के उपादानो का निर्माण अध्यापक स्वय करें।

परीक्षण एव मूल्याकन का यह गठबन्धन Educational Records Bureau, Co-operative Testing service, और College Entrance Examination के प्रयासों का परिणाम माना जा सकता है। इन तीन संस्थाओ ने देश की परीक्षा प्रणाली को उत्तम बनाने मे विशेष सहयोग प्रदान किया है। छात्रो के निष्पादन (achievement) एव उनके कार्यों के मूल्याकन के बाद उनका श्रेणी विभाजन (grading), वर्गीकरण (classification) कक्षा मे चढ़ाना (promotion) तथा आलेख पत्रो का निर्माण (recording) कार्य तो किया ही जाता है साथ ही मूल्याकन के अन्तर्गत निर्देशन (guidance) को भी उचित स्थान और महत्व दिया जाता है।

राष्ट्र ने अपने प्रयोगो के आधार पर यह अच्छी तरह समझ लिया है कि बालक को उत्कृष्ट नागरिक बनाने के लिये, उसको समय-समय पर उचित सहायता एव कार्य निर्देशन देने के लिये, समय-समय उसकी प्रगति का अनुमान लगाने के लिये उसकी सर्वांगीण परीक्षा लेना ही

भी होता है। अध्यापन के उपकरणों में चार्ट, फिल्म, भाषण, वाद-विवाद आदि को प्रमुख स्थान दिया जाता है। टेलीविजन आजकल लोकप्रिय उपकरण बन गया है। प्रौढ़ शिक्षा देने के लिये अध्यापकों की नियुक्ति भी की जाती है। ये अध्यापक कोलम्बिया, शिकागो, मिशीगन, और कैलीफोर्निया में प्रशिक्षण पाते हैं।

यद्यपि भिन्न-भिन्न संस्थायें प्रौढ़ शिक्षा में भिन्न-भिन्न कार्यक्रमों को समाविष्ट करती हैं किन्तु साधारणतः निम्नलिखित क्रियाओं पर जोर दिया जाता है :—

(१) आधारभूत विषयों की कमी दूर करना।
(२) सामान्य शिक्षा (General education) विज्ञान, मानवीय विषय।
(३) व्यावसायिक दक्षता।
(४) गान, चित्र, हस्त आदि कलाएँ।
(५) माता के लिए गृहस्थशास्त्र।
(६) स्वास्थ्य शिक्षा।
(७) नागरिकता की शिक्षा।
(८) अन्तर्राष्ट्रीय विवेक की शिक्षा।

अमरीका में प्रौढ़ों को शिक्षा की माँग दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। इसके कई कारण हैं।

(१) जन-शिक्षा के स्तर के ऊँचे होने के साथ-साथ प्रौढ़ शिक्षा का स्तर भी ऊँचा करना है।

(२) आर्थिक, और तकनीकी प्रगति के कारण देशवासियों के पास अधिक समय फालतू बचता रहता है इसलिये देश का प्रत्येक प्रौढ़ नई-नई बातें सीखना चाहता है।

(३) जिन व्यक्तियों ने आर्थिक समस्याओं और युद्ध के कारण लिखना-पढ़ना छोड़ दिया था उन व्यक्तियों में उच्च शिक्षा के प्रति आकर्षण बढ़ रहा है।

(४) प्रजातन्त्र के लिये योग्यतम नागरिकों की आवश्यकता है अतः प्रौढ़ों को शिक्षित करने की आवश्यकता है।

(५) विश्व शान्ति के लिये एवं अन्तर्राष्ट्रीय भावना की जागृति के लिए इस प्रकार की शिक्षा की विशेष उपादेयता महसूस हो रही है।

(६) ग्रामवासी अब अधिक धनी हो गये हैं अतः वे शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं।

(७) देश में गृह सम्बन्धी समस्यायें जटिल होती जा रही हैं उनको सुलझाने के लिये प्रौढ़ों को शिक्षित करना आवश्यक है।

इन सब कारणों से प्रौढ़ शिक्षा अमरीका के लिए समस्या बन गई है।

शिक्षक प्रशिक्षण

Q. 6. Describe the programmes of the preservice and in service education of teachers initiated in the U. S. A. *(L. T. 1956)*

Ans. अध्यापकों के प्रशिक्षण को प्रायः दो भागों में बाँटा जाता है।

(१) अध्ययन से पूर्व-कालीन प्रशिक्षण।
(२) अध्ययन के साथ-साथ प्रशिक्षण।

अध्यापन से पूर्व प्रशिक्षण की महत्ता सभी स्वीकार करते हैं। अध्यापन एक प्रकार का उच्च व्यवसाय है और इस व्यवसाय के लिये छाँट की वैसी ही आवश्यकता है जैसी कि अन्य पेशों में हुआ करती है। छाँट के तरीके में मन की अध्यापक की रुचि, उसके शिक्षाकाल के रिकार्ड, स्वास्थ्य परीक्षा, बुद्धि और अन्य प्रकार की परीक्षाओं के फल पर विचार किया जाता है। १९ वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक किसी विषय का ज्ञान तथा उस विषय का अध्यापन एक ही बात मानी जाती थी। अध्यापन कला जैसी वस्तु का अस्तित्व ही न था। किन्तु हरबार्ट, हान जौन डीवी के लेखों के फलस्वरूप अध्यापन कला को टेक्नीकल मान लिया गया और अब अध्यापक का प्रशिक्षण उतना ही आवश्यक माना जाता है जितना कि अन्य व्यवसायों का प्रशिक्षण।

अमरीका मे अध्यापन से पूर्वकालीन प्रशिक्षण (preservice) के लिये तीन प्रकार के प्रशिक्षण केन्द्रो की स्थापना की गई है—

(१) नार्मल स्कूल—प्राथमिक विद्यालयो के लिये।
(२) टीचर्स कालेज—माध्यमिक विद्यालयो के लिये।
(३) शिक्षाविभाग ,,

नार्मल स्कूलो मे प्रारम्भिक शिक्षा के लिये अध्यापक तैयार किये जाते हैं। पहले इन स्कूलो का पाठ्यक्रम केवल १ वर्ष का ही था किन्तु अब उसे ४ वर्ष का कर दिया गया है। देश मे से धीरे-धीरे ऐसे नार्मल स्कूल खतम होते जा रहे हैं। टीचर्स कालेज मे प्रशिक्षण की अवधि ४ या ५ वर्ष की है। इन प्रशिक्षण महाविद्यालयों में से बहुत से विश्वविद्यालय हो चुके हैं। बहुत से पी० एच० डी० तक की शिक्षा या डिग्री प्रदान करते हैं। लिबरल आर्ट्स कालेजो में अध्यापक प्रशिक्षण के लिये शिक्षा विभाग खोले गये हैं जिनमे अध्यापको को प्रशिक्षण दिया जाता है किन्तु टीचर्स कालेजो की अपेक्षा उनमे अध्यापक प्रशिक्षण कम समय के लिये ही होता है।

जिन सस्थाओ मे ४ या ५ वर्ष का प्रशिक्षण काल है उनमे सामान्य और व्यावसायिक दोनो विषयो की शिक्षा दी जाती है। टीचर्स कालेज मे कालेज की दो वर्ष की शिक्षा के उपरान्त प्रवेश मिलता है। पहले दो वर्ष मे सामान्य शिक्षा और अन्तिम २ या ३ वर्षों मे शिक्षण कला के विषयो पर बल दिया जाता है।

इस प्रशिक्षण अवधि के बीतने के उपरान्त छात्राध्यापक को पढ़ाने का लाइसेंस या प्रमाणपत्र दिया जाता है। ऐसे प्रमाणपत्र प्राप्त शिक्षक एक राज्य से दूसरे राज्य मे भी जा सकते हैं किन्तु भिन्न-भिन्न राज्यो मे भिन्न-भिन्न योग्यता के अध्यापको की आवश्यकता होती है इसलिये एक राज्य से दूसरे राज्य मे जाना अधिक सम्भव नहीं है।

प्रशिक्षण केन्द्रो मे अधिकांश प्रशिक्षण केन्द्र जनता के हाथ मे हैं कुछ राज्यों के कुछ काउन्टी या टाउनशिप के कुछ म्यूनिसिपल और कुछ डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के अधीन हैं। इन प्रशिक्षण विद्यालयो मे प्रवेश पाने के लिये १२ वर्ष की शिक्षा अनिवार्य है।

विद्यार्थियों की परीक्षाएँ

Q. 7. Describe the methods of appraisal of pupils achievement generally adopted in the U. S. A Compare these methods with those followed in Indian schools. *(L. T. 1958)*

Ans. गत वर्षों मे संयुक्त राज्य अमेरिका ने परीक्षा प्रणालियो के ऊपर अनेक खोजें की हैं और उन्हे अधिक से अधिक वैज्ञानिक बनाने का प्रयत्न किया है। परीक्षा को अधिक वैज्ञानिक बनाने के लिए निम्नलिखित तीन महत्वपूर्ण तथ्यों को प्रधानता दी गई है—

(१) विद्यार्थियो के अनुभवों और प्रगति का मूल्यांकन करने के लिए परीक्षा का सीधा सम्बन्ध विद्यालय के विशिष्ट उद्देश्यो से स्थापित करना होगा।

(२) मूल्यांकन की सारी योजनाएँ व्यापक होनी चाहिए।

(३) मूल्यांकन के उपादानों का निर्माण अध्यापक स्वयं करे।

परीक्षण एव मूल्यांकन का यह दृष्टिकोण Educational Records Bureau, Co-operative Testing service, और College Entrance Examination के प्रयासों का परिणाम माना जा सकता है। इन तीन संस्थाओ ने देश की परीक्षा प्रणाली को उन्नत बनाने में विशेष सहयोग प्रदान किया है। छात्रो के निष्पादन (achievement) एव उनके कार्यों के मूल्यांकन के बाद उनका श्रेणी विभाजन (grading), वर्गीकरण (classification) कक्षा मे कक्षान्नति (promotion) तथा व्यक्तिगत पत्रो का निर्माण (recording) कार्य भी किया ही जाता है साथ ही मूल्यांकन के अन्तर्गत निर्देशन (guidance) को भी उचित स्थान और महत्व दिया जाता है।

राष्ट्र ने अपने प्रयोगो के आधार पर यह अच्छी तरह समझ लिया है कि बालक को उत्कृष्ट नागरिक बनाने के लिये, उनको समय-समय पर उचित मार्गदर्शन एव कार्य निर्देशन देने के लिये, समय-समय उसकी प्रगति का अनुमान लगाने के लिये उसकी व्यक्तिगत परीक्षा लेना ही

निरीक्षण आवश्यक है। U.S.A. में प्रत्येक विद्यालय बालक के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त करने के लिये उसे सब तरह से परखता है। यह काम मनोवैज्ञानिक करते हैं।

निरीक्षक यह देखता है कि राष्ट्र का प्रत्येक भावी नागरिक जो आज किसी विद्यालय में शिक्षा पा रहा है वहाँ सब तथ्यों का पर्यवेक्षण, वैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रयोग, वैज्ञानिक ढंग से नई बातों की खोज और प्रयोग के स्वभाव को समझने की योग्यता रखता है। वह यह भी देखता है कि बालक के सामाजिक विचार, सामाजिक दृष्टिकोण, सामाजिक व्यवहार, सामाजिक जानकारी और रुचियों का रूप कैसा है। वह यह भी देखना चाहता है कि कहाँ तक बालक में रुचियों का विकास हो गया है उसकी औद्योगिक योग्यता का रूप क्या है। निरीक्षक यह भी देखता है कि व्यक्ति समाज के साथ किस प्रकार का समायोजन (Adjustment) स्थापित कर सकता है।

इस प्रकार अमरीका का निरीक्षक बालक के सर्वांगीण विकास की परीक्षा करता है न कि भारत की तरह उसके मानसिक विकास का ही। वह भिन्न-भिन्न विधियों का सहारा बालक के मूल्यांकन में लेता है वे निम्नलिखित हैं—

(१) बालक दैनिक परीक्षा
(२) कक्षा गोष्ठी
(३) स्वतन्त्र चुनाव व प्राप्त कार्यों का रिकार्ड
(४) प्रश्नावली (Questionaries)
(५) साक्षात्कार (Interview)
(६) विद्यालय परीक्षा

परीक्षा मात्र विषयों तक ही सीमित नहीं है वह अत्यन्त व्यापक बन गई है। पुस्तक परीक्षा ही सब कुछ नहीं समझी जाती। कक्षा में उत्तीर्ण या अनुत्तीर्ण होना कोई अर्थ नहीं रखता। विद्यालय में १८ विषयों का पठन-पाठन होता है, किन्तु निष्पत्ति परीक्षा (Achievement test) केवल ३ विषयों में ही ली जाती है। साथ ही उनका स्तर ही ऊँचा होता है।

शिक्षा स्तरांकन संस्थाएँ

Q. 8. Explain briefly the functions and methods of work of the Accrediting Agencies in the field of Secondary Education.

Why should the problem of maintenance of educational standards be more difficult in the U S A. than in India ?

(L. T. 1953)

Ans. अमरीका के प्रत्येक हाईस्कूल, जूनियर कालेज, और लिबरल आर्ट्स कालेज अपने अपने छात्रों को अपने-अपने ढंग की डिग्रियाँ प्रदान करता है। इन सब संस्थाओं के शिक्षा स्तरों में काफी भिन्नता होने के कारण देश में एक प्रकार की अव्यवस्था उत्पन्न होगई है। देश का शासन अपनी संस्थाओं को किसी प्रकार के प्रभाव द्वारा नियंत्रित नहीं बना सकता। वह विकेन्द्रीकरण एवं प्रजातन्त्र में इतना अधिक विश्वास करता है कि अध्यापन को प्रभावित करना अपने सिद्धान्तों के विरुद्ध समझता है।

कुछ भी हो फौजी स्कूल इस प्रकार के अव्यवस्थित अध्यापन को सही नहीं समझते थे क्योंकि उनमें उन्हीं विद्यार्थियों का प्रवेश सम्भव था जिनकी शैक्षणिक योग्यता समान थी। विदेशी विश्वविद्यालय भी इस प्रकार की अव्यवस्था को पसन्द नहीं करते थे। इसलिये स्तरांकन अभिकरण की आवश्यकता इस देश को पड़ी।

मिशीगन विश्वविद्यालय ने सबसे पहली बार सन् १८७२ में माध्यमिक स्कूलों का स्तरांकन शुरू किया। सन् १८७३ में इण्डियाना राज्य ने सबसे पहली बार राज्य की ओर से सार्वजनिक स्कूलों का स्तरांकन प्रारम्भ किया। सन् १९११ में केन्द्रीय सरकार की ओर से भी स्तरांकन का असफल कदम उठाया गया। ब्यूरो ऑफ एजूकेशन ने अमरीकन विश्वविद्यालयों के ऐसोसियेशन की सहायता से कालेजों के वर्गीकरण की सूची तैयार की, किन्तु उस पर राष्ट्रपति के हस्ताक्षर न हो सके। National Education Association ने सन् १९०८ तथा Association of American Universities ने १९१४ में स्तरांकन की ओर विशेष कार्य किये। उच्च

शिक्षा के क्षेत्र मे Regional Association ने १६०८ मे स्तराकन कार्य करना प्रारम्भ किया, १६१८ तक जूनियर तथा प्रशिक्षण कालेजो की सूची तैयार कर दी गई। North-West Association, Middle States Association और Southern Association ने भी इस दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किये, New England Association ने भी स्तराकन के नियम बनाये हैं।

स्तराकन की परिभाषा—स्तराकन एक प्रकार की मान्यता है। यह मान्यता किसी अभिकरण, सगठन या सस्था द्वारा उस शिक्षा सस्था को दी जाती है जो मान्यता प्राप्त करने के उचित प्रमाणो या मापदण्डो या भागो की पूर्ति करते है। इन प्रमाणो का निर्धारण यह अभिकरण या सगठन या सस्था करती है।[1]

अमरीका के विद्यालयों मे स्तराकन की समस्या—अमरीका मे इस समय हाई स्कूलो और व्यापक स्कूलो (Comprehensive Schools) का क्षेत्र इतना अधिक बढता जा रहा है कि उनके लिये निश्चित प्रमाप (Standards) स्थिर करना आवश्यक हो गया है। इस समय तीन सगठन इन माध्यमिक स्कूलो का स्तराकन करने मे दत्तचित्त हैं। अब यह मान लिया गया है कि इन माध्यमिक स्कूलो के ६ निम्नलिखित प्रयोगो पर विशेष बल दिया जायगा। प्रत्येक माध्यमिक स्कूल को इन प्रयोगो के अनुसार कार्य करना होगा।

(१) स्कूल का दर्शन (Philosophy of the School)
(२) पढाई का प्रोग्राम (Programme of Instruction)
(३) पुस्तकालय
(४) स्कूल की इमारत
(५) स्कूल का कर्मचारी और अध्यापक वर्ग
(६) व्यवस्था
(७) स्कूल और समाज का सम्बन्ध

स्तराकन के क्षेत्र मे कई प्रकार के अन्वेषण किए जा रहे हैं और उचित प्रमाणो की प्रकृति निश्चित की जा रही है।

स्तराकन की जो समस्या माध्यमिक स्कूलो मे है वही लगभग उसी रूप मे उच्च शिक्षा के क्षेत्र मे भी वर्तमान है। यद्यपि उच्च शिक्षा सस्थाओ का स्थापन राज्य के नियमो पर ही आधारित होता है तब भी कोई-कोई इतनी स्वतन्त्रता दे देते हैं कि उनका स्तर अलग-अलग हो जाता है।

स्तराकन प्राय. मात्रा का होता है गुण का नहीं। जब हम किसी स्कूल या उच्च शिक्षा संस्था को उत्तम बतलाते है तब हमारा अभिप्राय उसके योग्य शिक्षक वर्ग, या छात्रो की सख्या की अधिकता, या स्कूल की अच्छी इमारत से होता है, किन्तु उसकी अच्छाई की वास्तविक परख जीवन के लिए योग्य विद्यार्थियो से होती है।

---

1. Accreditment is the recognition of an instit... [illegible]

अध्याय २०

रूस में साम्यवादी शिक्षा की पृष्ठभूमि

Q 1. Discuss how elementary, secondary and backward education was organized in Czarian days.

रूस की वर्तमान कालीन साम्यवादी शिक्षा का स्वरूप समझने के लिए उसकी ऐति-हासिक पृष्ठभूमि का विश्लेषण द्वारा उल्लेख करना होगा। आज की रूसी शिक्षा प्रणालियों का अध्ययन रूस की शिक्षा प्रणालियों की ही दृष्टि से स्पष्ट किया जा सकता है। रूस की जार-कालीन शिक्षा व्यवस्था ही *आधुनिक साम्यवादी शिक्षा की प्रतिक्रिया मानी जा सकती है जिसका* ढांचा तैयार करने में मार्क्स और लेनिन की विचारधारा का विशेष हाथ रहा है।

१६वीं और १७वीं शताब्दी से ही रूस का शासन जार के हाथ में था जिसे दुनिया 'एब्सोल्यूट स्वेच्छाचारी' कहा करती थी। ऐसा निरंकुश शासक दुनिया के किसी भी पर्दे पर न था जैसा कि जार हुआ करता था, किन्तु इसका यह आशय नहीं है कि सभी जार स्वेच्छाचारी निरंकुश शासक होते थे। यद्यपि देश की शिक्षा व्यवस्था उनकी इच्छा पर आधारित रहती थी फिर भी कुछ जार शिक्षा व्यवस्था में रुचि लेते और उसमें सुधार करने में प्रयत्नशील रहते थे। सबसे पहला जार जिसने शिक्षा में विशेष रुचि का प्रदर्शन किया था 'पीटर द ग्रेट' था। उसने अपने देश में भी यूरोप के अन्य राज्यों की तरह प्रत्येक शहर में जन साधारण के लिये एक प्रारम्भिक पाठशाला और *सभी पुरुषों के लिये एक-एक माध्यमिक स्कूल खोलने की व्यवस्था की। मास्को विश्वविद्यालय* उस समय भी (१६८६-१७२५) उच्च शिक्षा का केन्द्र था लेकिन उसकी मृत्यु के बाद शिक्षा पर अगले ३०-३५ वर्ष तक कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। जो प्रारम्भिक पाठशालाएँ उसके शासनकाल में खुल चुकी थी उनकी भी देखभाल करने वाला कोई पैदा न हुआ। लेकिन वे माध्यमिक विद्यालय जो प्रतिष्ठित पुरुषों के लिए खोले गये थे अगले ३५ वर्षों में शासन की देखभाल में खूब पनपे। धार्मिक संस्थाओं ने भी माध्यमिक विद्यालय खोलने में रुचि ली किन्तु उनके द्वार सर्वसाधारण के लिये बन्द ही रहे।

सन् १७६२ में जब कैथरीन द्वितीय ने शासन की बागडोर अपने हाथ में ली तब फिर से जनसाधारण की शिक्षा की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट हुआ।

स्त्री शिक्षा में रानी की विशेष रुचि थी। इसलिए उसने लड़कियों के लिए छात्रावासों की व्यवस्था की, लेकिन ये छात्रावास इतने मँहगे थे कि धनीमानी पुरुषों की लड़कियाँ ही उनमें प्रवेश पा सकती थी। सामान्य जनता की पहुँच से छात्रावास बाहर ही रहे। रानी ने जनसाधारण की शिक्षा के लिए विशेष प्रयत्न किये। सन् १७८३ में एक शिक्षा सम्बन्धी कानून पास किया गया जिसके अनुसार निम्न दो प्रकार के स्कूलों को खोलने की व्यवस्था की गई :

(अ) नि:शुल्क धर्मनिरपेक्ष पब्लिक स्कूल
(आ) छोटे पब्लिक स्कूल

पहली प्रकार की संस्थाएँ बड़े-बड़े शहरों में स्थापित की गई जिनमें ६ वर्ष तक शिक्षा का प्रबन्ध किया गया, दूसरी प्रकार की संस्थाएँ छोटे-छोटे कस्बों और बड़े-बड़े गाँवों में स्थापित की गईं। दोनों संस्थाओं के द्वार सभी लोगों के लिए खुले थे यहाँ तक कि निम्न वर्ग का व्यक्ति जिसे सर्फ (Serf) कहते थे उनमें शिक्षा प्राप्त कर सकता था। ये संस्थाएँ निम्न, उच्च और मध्यम सभी वर्गों के लोगों के लिए थी। उनमें सहशिक्षा पर जोर दिया जाता था।

कैथरीन की मृत्यु के बाद नेपोलियन का युद्ध शुरू हुआ। देश के भीतर कुछ ऐसे विप्लवों ने जन्म लिया जिनके कारण कैथरीन के करे धरे पर पानी फिर गया। सन् १७९६ से १८०१ तक शिक्षा क्षेत्र में कोई काम न हुआ लेकिन एलेक्जेण्डर प्रथम के गद्दी पर बैठते ही पुन. जनसाधारण की शिक्षा पर जोर देने की व्यवस्था की गई। उसने सर्वसाधारण के लिये प्राथमिक शिक्षा का आयोजन किया, उसने प्रज्ञावान् बालको के लिए छात्रवृत्ति देने की व्यवस्था की और इस प्रकार उनके लिए भी माध्यमिक तथा उच्च शिक्षण सस्थाओ के द्वार खोल दिये गये। लेकिन उसके उत्तराधिकारी निकोलस प्रथम ने गद्दी पर बैठते ही सर्वसाधारण की शिक्षा की इतनी अधिक उपेक्षा की कि गरीब लोगो के बच्चो के लिए सभी तरह की शिक्षण सस्थाओ में प्रवेश वर्जित कर दिया गया।

निकोलस प्रथम का उत्तराधिकारी अलेक्जेंण्डर द्वितीय विद्वान और शिक्षाप्रेमी शासक निकला। उसने विश्वविद्यालयों को यह स्वतन्त्रता दे दी जो उसके पूर्व शासक ने छीन ली थी, स्त्री शिक्षिकाओ के प्रशिक्षण का प्रबन्ध किया, स्त्रियो के लिए मैडीकल स्कूल खोले गये। धीरे-धीरे

लोगों की आँखें खुली और एक आवाज से सभी लोग oligarchic शासन व्यवस्था का विरोध करने लगे। १९०५ मे देश के भीतर जो लहर दौडी वह यद्यपि शिक्षा के क्षेत्र मे कुछ न कर सकी किन्तु उसने वह उथल-पुथल मचा दी जिसके कारण १९१७ की क्रान्ति सफल हो सकी।

१९०५ से १९१७ तक शिक्षा का स्वरूप—राज्य की शिक्षा व्यवस्था पर केन्द्रीय सरकार का पूरी तरह से नियन्त्रण था। यद्यपि शिक्षा का सचालन केन्द्रीय शासन के अधीन न था प्रत्येक राज्य अपने-अपने स्कूलो को अनुदान देता था लेकिन अधिकतर अनुदान जैमेस्टोव्म (Zemestoves) से मिला करता था। जैमेस्टोव्स जिला परिषद् नगरपालिका जैसी सस्थाएँ थी जो सभी विद्यालयो को आर्थिक सहायता देती थी। ये नगरनिगम और जिला परिषदें उन सस्थाओं को भी आर्थिक सहायता देती थीं जिनको यूनान की धार्मिक संस्थाएँ चला रही थीं। अनिवार्य शिक्षा की बात तो की जाती थी किन्तु व्यवहार मे अनिवार्य शिक्षा का कोई नाम भी न लेता था।

मे ६ वर्ष तक शिक्षा देने का प्रबन्ध था। निम्न प्राथमिक विद्यालय मे सहशिक्षा का प्रचलन था। पढना-लिखना, हिसाब-किताब और धर्म की बातें सिखाना ही इन विद्यालयो का मुख्य उद्देश्य था। शहरी क्षेत्रो मे निम्न प्राथमिक विद्यालयों मे कुछ भूगोल और इतिहास भी पढाया जाता था। उच्च प्राथमिक विद्यालयों में अन्तिम दो वर्षो मे ज्यामिति, इतिहास, भूगोल और सामान्य विज्ञान के साधारण तत्वो पर भी प्रकाश डाला जाता था।

(i) जिमनेशियम (Gymnasium)
(ii) रीयल स्कूल (Real School)

यद्यपि दोनों मे पाठ्यक्रम मिलता-जुलता था, यद्यपि दोनो रूसी और स्लैवानिक, भाषा ... चित्रकला और तर्कशास्त्र का अध्ययन-अध्यापन करते थे,
भाषा पढाई जाती थी जब कि रीयल स्कूल
गई थी। जिमनेशियम मे शिक्षा पाने
थे, किन्तु रीयल स्कूल में शिक्षा पाने

जनता के सभी सदस्यों को समान शैक्षिक अवसर देने के लिये रूसी शिक्षाविदों ने कई प्रयोग किये। उन्होंने अनिवार्य शिक्षा के साथ-साथ ऐच्छिक शिक्षा का भी प्रबन्ध किया। डाल्टन प्लान और प्रोजेक्ट मेथड का शिक्षा पद्धतियों के रूप में प्रयोग किया गया। लेकिन बाद में इन शिक्षा पद्धतियों को छोड़ दिया गया लेकिन छोड़ा भी इसलिये गया कि वे व्यक्ति को ही प्रधानता देते थे और सामूहिक चेतना का विनाश करते थे। इन शिक्षण पद्धतियों का प्रारम्भ इसलिये किया गया कि रूसी शिक्षाविद् जनता की पुकार को मान्यता देते थे इसलिये उन्होंने परीक्षा के भार से लदी हुई जिमनेशियम प्रणाली को छोड़कर आधुनिकतम शिक्षा प्रणालियों का प्रयोग किया किन्तु बाद में यह देखा कि वे उनके दार्शनिक सिद्धान्तों की जड़ को ही खोखला करने का साहस करती हैं तब उनको तिलांजलि भी दे दी। शायद इसका एक कारण यह भी था कि ये आधुनिक पाश्चात्य शिक्षण पद्धतियाँ बुद्धि को प्रधानता देती थीं। यदि बुद्धि जन्मजात शक्ति है और उसे बदला नहीं जा सकता तो ऐसी पद्धतियों को रूसी शिक्षा दार्शनिक क्योंकर अपना सकता था जो शिक्षितों में वर्ग भेद पैदा कर दें?

रूस में दूसरा महत्वपूर्ण प्रयोग जो इस परिवर्तन काल में किया गया वह था कि विश्वविद्यालीय शिक्षा के विषय में। १९१९ में ही विश्वविद्यालयों में प्रवेश पाने के लिए जो परीक्षा ली जाती थी उसको खत्म (abolish) कर दिया गया। इस प्रकार कोई भी छात्र जिसने हाईस्कूल शिक्षा में दस वर्ष पूरे कर लिये हों वह विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने का अधिकारी माना जाने लगा। ऐसा करने से यद्यपि विश्वविद्यालय की शिक्षा तो गिर अवश्य गयी लेकिन विश्वविद्यालीय शिक्षा लोकप्रिय बन गई। लेकिन इसी बीच देश में एक लहर उठी। लोग स्नातकीय शिक्षा को भोग-विलास की वस्तु समझने लगे जो रूस जैसे देश के लिए अनुपयुक्त मानी गई। १९२२ में यूक्रेन ने विश्वविद्यालयों को बन्द कर दिया और केवल उन विषयों में उच्च शिक्षा देने की व्यवस्था की जिनकी देश की आर्थिक, औद्योगिक और सामाजिक उन्नति के लिए आवश्यकता थी। १९२२ से १९३० तक संघ के कई राज्यों में विश्वविद्यालयों को खत्म किया गया। १९३०-३३ के बीच रूस [illegible] में शिक्षा देने वाला न रहा। [illegible] ये। लेकिन यह प्रयोग ही तो [illegible]

१९३४ के बाद पुन. मैट्रिकुलेशन परीक्षा शुरू की गई और उपयुक्त विशेषता वाले छात्रों को ही विश्वविद्यालयों में प्रवेश दिया जाने लगा। बहुत से विश्वविद्यालय सामान्य शिक्षा (general education) को महत्व देने लगे।

सन् १९३० के बाद रूस में एक और विशेष दिशा में परिवर्तन दिखाई देने लगा। देश में औद्योगिक क्रान्ति उपस्थित हो गई थी। अत तकनीकी शिक्षा पर लोग जोर देने लगे। इसी कारण से अन्य दिशाओं में उच्च शिक्षा के दरवाजे बन्द कर दिये गये। मार्क्स और लेनिन द्वारा [illegible] गया कि कुछ विशिष्ट पेशा के लिये ही पालीटेकनिक खोले जायें, बजाय इसके कि प्रत्येक व्यक्ति को कुछ न कुछ उद्योग सिखाने का प्रयत्न किया जाय।

प्रौढ़ शिक्षा के विकास के लिए भी सोवियत संयुक्त-राष्ट्र ने विशेष सराहनीय कदम उठाये। संध्या समय में फुर्सत के वक्त प्रौढ़ लोगों को शिक्षा देने के लिए रात्रि पाठशालाओं की व्यवस्था की गई। इन पाठशालाओं में प्रौढ़ों को सप्ताह के चार दिनों में उपस्थित होने का आदेश दिया गया। इस प्रकार अर्ध-शिक्षित या अशिक्षित प्रौढ़ों की शिक्षा की व्यवस्था की गई।

रात्रि पाठशालाओं की व्यवस्था करना शहरी क्षेत्रों में तो आसान काम था, ग्रामीण क्षेत्रों में ये पाठशालायें कैसे खोली जा सकती थीं? इस कठिनाई को ध्यान में रखकर चल-पाठशालाओं (Travelling Squads) का प्रबन्ध किया गया। (अर्धशिक्षित कहीं अशिक्षित न हो जायें इसलिए उनको शिक्षित बनाये रखने के लिए करेस्पोण्डेन्स (correspondence) कोर्स चालू किए गये और स्टाफ का एक सदस्य निश्चित समय पर इन प्रौढ़ व्यक्तियों से भेंट करने के लिये भेजा जाने लगा। रूसी शिक्षाविदों ने वास्तव में इस दिशा में तो विशेष सराहनीय कार्य किया जिस

कार्य को हम लोग १६२७ से अब तक अपने देश मे नहीं कर पा रहे है उस कार्य को रूस ने केवल २०-२२ वर्ष मे ही पूरा कर लिया।

रूस मे इस परिवर्तन काल में एक विशेष प्रयोग और हुआ और वह था—बाल-अपराधों की रोकथाम के लिए। १६१७ में बाल-अपराध बड़े जोर पर थे। जब इस समस्या का विश्लेषण किया गया तो यह देखा गया कि बालकों मे अपराध की प्रवृत्ति के बढ़ने के एकमात्र कारण है उनके पास फालतू समय की अधिकता। इसलिये पार्टी के सदस्यों ने फालतू समय को नियमित करने की व्यवस्था पर जोर दिया। प्रत्येक विद्यालय में क्लबों और गोष्ठियों का प्रबन्ध किया गया। बालकों को ऐसे कार्य करने को प्रोत्साहित किया गया जिनके करने से उन्हें कला कार्य मे रुचि उत्पन्न होती, प्रत्येक शहर मे खेल, संगीत, ड्रामा, नृत्य और चित्रकला के सस्थान खोले गये जिनमे बालक अपने फालतू समय का सदुपयोग कर सकते थे। आज सोवियत संघ का दावा है कि देश में बाल-अपराध की प्रवृत्ति मूलतः नष्ट हो चुकी है।

इस प्रकार रूस ने १६१७-१६४० के परिवर्तन काल मे शिक्षा क्षेत्र में सराहनीय प्रयत्न और प्रयोग किये। इन प्रयोगों से देश ने बहुत सीखा और यही कारण है कि वह आज संसार का नेतृत्व कर रहा है।

रूसी शिक्षा प्रणाली के मूलतत्व

Q. 4. Discuss the main features of Russian system of Education.

सोवियत संघ मे लोक शिक्षा का आधार साम्यवाद है। साम्यवाद के दार्शनिक सिद्धान्तों के अनुकूल उसका विकास और उद्भव हुआ है। सोवियत संघ की सार्वजनिक शिक्षा का प्रधान उद्देश्य है समाज के सभी सदस्यों के लिये उनकी शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों का चौमुखी विकास ताकि वे सामाजिक विकास में सक्रिय कार्यकर्ता बन सकें अपनी इच्छानुसार और ऐसा पेशा चुन सकें कि उनका पूर्ण विकास हो सके। शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों के चौमुखी विकास के लिये कम्यूनिज्म मानसिक, नैतिक, ललित, शारीरिक और पोलीटेकनिक सभी प्रकार के शैक्षणिक विकास पर जोर देती है।

जनता के मानसिक विकास के लिये संघ इस प्रकार की शिक्षा प्रदान करता है कि उसका दृष्टिकोण वैज्ञानिक और व्यापक बने, स्मृति, चित्त की एकाग्रता, कल्पना और विचार शक्ति का विकास हो। जनता के नैतिक विकास के लिये संघ ऐसी शिक्षा की व्यवस्था करता है जिससे समाजवादी राष्ट्र के लिये उपयुक्त नागरिकता का प्रशिक्षण हो सके, ऐसी नागरिकता जिससे स्वदेश के प्रति अनन्य प्रेम, अनुशासनबद्धता और विश्व सम्पन्नता का समन्वय हो। ललित कलाओं की उदार शिक्षा द्वारा संघ शिक्षितों में कला के प्रति रुचि तथा कलात्मक प्रतिभा का विकास करने का प्रयत्न करता है। शारीरिक शिक्षा द्वारा स्वस्थ स्त्री और पुरुषों की अपार सेना तैयार करना चाहता है जिसमे न केवल शक्ति, स्फूर्ति, सहनशक्ति और आन्तरिक बल ही हो, वरन् जो खेत मे और खलिहान मे, मिल मे, और स्कूल मे, वन में और खान मे जी-तोड़ मेहनत कर देश को समृद्ध बना सकें।

लेकिन क्या यह शिक्षा को बिना तकनीकी रूप दिये सम्भव हो सकता है ? संघ ने अपनी पाँचवीं पंचवर्षीय योजना मे (१६५१-५५) जो आदेश जारी किये हैं उनमे तकनीकी शिक्षा पर विशेष बल देकर शिक्षा के इस अंग को परिपक्व बनाने का प्रयत्न किया है। प्रत्येक माध्यमिक स्कूल ने पोलीटेकनिक शिक्षा की व्यवस्था करके सार्वजनिक 'बहुकौशलीय शिक्षा' से महत्व की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट किया है।

सोवियत संघ मे इस प्रकार व्यक्ति की चौमुखी शिक्षा पर जोर दिया जाता है लेकिन इस शिक्षा की सबसे बड़ी विशेषता है उसका जनवादी सैद्धान्तिक पक्ष। संघ का विधान धारा १२१ के अनुसार संघ के प्रत्येक नागरिक को, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, धनी हो या गरीब, मुसलमान हो या ईसाई, बालक हो या प्रौढ़ उपयुक्त शिक्षा पाने का पूर्ण अवसर मिलना चाहिए। पहले सात वर्षों मे बालक शिक्षा अनिवार्य और निःशुल्क करके सामान्य प्रगति करने वाले, बुद्धिमान वाले बालकों को उदार छात्रवृत्ति देकर, कारखानों, सरकारी फर्मों, स्टेशनों, सामूहिक फर्मों और टेक्नीकल संस्थाओं में मुफ्त शिक्षा देकर समान अवसर प्रदान करने की इस बात को क्रियान्वित करने का प्रयत्न किया गया है।

रूसी शिक्षा के सिद्धान्त संक्षेप में नीचे दिये जाते हैं—

(१) सम्पूर्ण जातियों को पूर्ण समानता का सिद्धान्त—संघ में सभी शिक्षा संस्थाएँ सभी जातियों, सभी वर्गों के लिये समानता के आधार पर खोली गई हैं। सभी जाति और सभी भाषा-भाषी प्रान्तों के बच्चे प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा अपनी मातृभाषा के माध्यम से प्राप्त करते हैं। मालूम ऐसा पड़ता है कि संघ जार के अत्याचारों से पीड़ित जनता को ऐसा करके राहत दे रहा है।

(२) स्त्री-पुरुष को शिक्षा में समानता देने का सिद्धान्त—संघ में ६८% विद्यालय सह-शिक्षा पर बल देते हैं, स्त्री और पुरुष शिक्षकों को समान वेतन, समान पन्शन, समान पदोन्नति आदि पाने का अधिकार है।

(३) समान अवसरों को प्रदान करने के लिये सरकारी व्यवस्था का सिद्धान्त—संघ के

प्रणाली उन दोषों से सर्वथा मुक्त रहती है जो द्विविधात्मक शासन प्रणाली में पैदा हो जाते हैं।

(४) विद्यालीय शिक्षा की एक रूपता का सिद्धान्त—रूसी क्रान्ति से पूर्व रूस में दर्जनों प्रकार के स्कूल चल रहे थे। लेकिन अब शिक्षा एकरूप (one track system) हो गई है। शिक्षा

(६) स्कूल और जनता के बीच सम्पर्क—विद्यालयों में अभिभावक-अध्यापक-सहयोग, युवक साम्यवादी लीग तथा अन्य सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा विद्यालय के क्रियाकलापों में रुचि इस बात का प्रतीक है कि सोवियत संघ के विद्यालय और समाज आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध रखते हैं।

रूस में पूर्व प्राथमिक शिक्षा

Q 5. What have been the main changes in the field of pre-primary education in U. S. S. R. since 1940 ?

यदि राष्ट्र अपनी उन्नति और उत्कर्ष चाहता है तो उसे अपने सदस्यों के उचित विकास की ओर पहले ध्यान देना होगा। मानव का सम्पूर्ण और सर्वांगीण विकास तभी सम्भव है जब जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त राष्ट्र उसकी देखभाल करे। रूस ने अपने देश के सभी सदस्यों की शिक्षा के लिए जो कदम उठाए हैं वे प्रशंसनीय हैं। क्रान्ति से पूर्व इस विशाल भूखण्ड में कुल ३०० किण्डरगार्टेन स्कूल थे जिनका संचालन व्यावसायिक उद्देश्य से मनोपार्जन के लिए किया जाता था। इनमें शुल्क इतना अधिक लिया जाता था कि केवल धनी वर्ग ही उनमें अपने शिशुओं को भेज सकता था लेकिन अब परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं। ३० हजार से अधिक स्थायी किण्डरगार्टेन स्कूलों में तथा हजारों की संख्या में ग्रीष्मकालीन किण्डरगार्टेन स्कूलों में देश का विशाल शिशु समुदाय (१३ करोड़ से अधिक) शिक्षा ग्रहण कर रहा है।

नर्सरी—यद्यपि यह शिक्षा व्यवस्था ३ वर्ष से ७ वर्ष के बालकों के लिए की गई है फिर भी देश ने ३ वर्ष से कम आयु वाले शिशुओं की देखभाल का प्रबन्ध किया है, इस आयु वर्ग के शिशुओं का शारीरिक विकास शिक्षा से अधिक महत्वपूर्ण है। इसलिए उनकी देखभाल का काम शिक्षा मंत्रालयों की अपेक्षा स्वास्थ्य मंत्रालय करता है। जब उनकी माताएँ देश की विकास योजनाओं और शासन सम्बन्धी कार्यों में भाग लेने के लिए घर से बाहर चली जाती हैं तब उनकी देखभाल नर्सरी स्कूलों में की जाती है। इन नर्सरी स्कूलों की विशेषता है शिशुओं की बढ़ती मानसिक रुचि और मनोवैज्ञानिक विशेषताओं को ध्यान में रखकर उनका पालन-पोषण। प्रत्येक नर्सरी,

[illegible] की व्यवस्था करता [illegible] और नैतिक विकास

इन नर्सरी स्कूलों का संचालन वह मंत्रालय करता है जिसके अधीन वह फैक्ट्री, कृषि फार्म अथवा संस्था होती है जिसमें शिशु की माता कार्य करती है। माता-पिता अपने शिशुओं के भोजन के लिए व्यय वहन करते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में भी इसी प्रकार नर्सरी स्कूल हैं जो शिशुओं की देखभाल करते और उनकी शिक्षा का समुचित प्रबन्ध करते हैं, सभी क्षेत्रों में ये विद्यालय माताओं की सुविधा को ध्यान में रखकर उनके कार्य स्थलों के पास ही स्थापित किये जाते हैं। प्रत्येक नर्सरी में एक अध्यक्ष, एक डाक्टर, एक या दो मेडीकल नर्सें, दो नर्सरी नर्सें और नर्सरी अध्यापिकाएं होती हैं। इनके अतिरिक्त कई नौकर-चाकरों की भी व्यवस्था होती है।

इन नर्सरी विद्यालयों में जैसा कि पहले कहा जा चुका है शिशु के स्वास्थ्य पर ही विशेष ध्यान रखा जाता है। चार महीने की अवस्था से ही बच्चों को शारीरिक शिक्षा दी जाने लगती है फलस्वरूप रूस का बालक हृष्ट-पुष्ट और सुन्दर हो जाता है।

किण्डरगार्टेन स्कूल—३ वर्ष से अधिक आयु के बालकों को किण्डरगार्टेन स्कूलों में भेजने का प्रबन्ध किया जाता है। जिन शिशुओं को नर्सरी में प्रशिक्षण मिला था उन्हीं शिशुओं को किण्डरगार्टन स्कूलों में भेजा जा सके इस उद्देश्य से लगभग वही संस्थाएं जो नर्सरी स्कूलों का संगठन और संचालन करती हैं किण्डरगार्टेन स्कूलों का भी संगठन करती हैं। इन संस्थाओं के अतिरिक्त शिक्षा मंत्रालय ने भी किण्डरगार्टेन स्कूलों का प्रबन्ध किया है। इन विद्यालयों में अध्यापक और प्रधानाध्यापकों की नियुक्ति स्थानीय शासन के हाथ में है। प्रति २० छात्रों के पीछे एक अध्यापक की नियुक्ति की जाती है। एक डाक्टर, एक नर्स और संगीत अध्यापक की भी व्यवस्था अनिवार्यतः की जाती है। डाक्टर बालमनोविज्ञान और बाल चिकित्सा में प्रवीण होता है वह सेण्ट्रल इन्स्टीट्यूट ऑफ पैड्रियटिकल का स्नातक होता है। यह संस्था ही बालकों के विकास सम्बन्धी बातों की जानकारियां देती तथा किण्डरगार्टेन स्कूलों का मार्ग निर्देशन करती है।

किण्डरगार्टेन स्कूलों में शिक्षा के व्यापक उद्देश्य हैं—

(अ) बालकों का शारीरिक विकास करना।

(ब) प्राकृतिक वातावरण और मानव समाज के वर्तमान सम्बन्धों से बालकों को परिचित कराना।

बालकों के उचित शारीरिक विकास के लिये शिक्षा का माध्यम खेल ही रखा गया है। उनकी शिक्षा में निश्चित नियमों के अनुसार चलने वाले खेलों के अतिरिक्त रचनात्मक खेलों का भी महत्व दिया जाता है जिनमें बालक अपनी कल्पना शक्ति और सूझ का भी परिचय देते हैं। चित्रों, खिलौनों, मोडलों तथा अन्य साधनों का उपयोग करते हुए अध्यापक खेल ही खेल में बालकों को सभी विषयों की शिक्षा देता है, संगीत की शिक्षा भी संगीतमय व्यायामों द्वारा दी जाती है, इसी समय स्वच्छता, नियमित जीवन, अपनी देखभाल अपने आप करने का प्रशिक्षण भी दिया जाता है। पाठग्रहण के बाद बच्चों को खेलने के मैदान में भेजा जाता है। कभी कभी सैर के लिये उनके पास के पार्क में ले जाया जाता है। भ्रमण के समय उनको वनस्पति और पशुओं के जीवन का सूक्ष्म निरीक्षण कराके प्राकृतिक वातावरण का ज्ञान दिया जाता है। इसी समय वयस्कों के साथ व्यवहार, बड़ों के प्रति आदर और सम्मान, माता-पिता के प्रति प्रेम और श्रद्धा का अंकुर जमा कर मानव-समाज के वर्तमान सम्बन्धों की जानकारी भी बालकों को दी जाती है। सामूहिक गायन तथा अन्य सामूहिक कार्यों के द्वारा बंधुत्व की भावना का संचार किया जाता है। इस प्रकार उनमें दूसरों के साथ सह-अस्तित्व तथा सहजीवन का प्रशिक्षण दिया जाता है। उनको ऐसे कार्य करने की प्रेरणा दी जाती है जिनमें वे आत्म-निर्भर होने, अपनी देखभाल आप करने, अपनी वस्तुओं का उचित प्रयोग करने और उन्हें संभाल कर रखने के आदी बन सकें। संक्षेप में रूस में शारीरिक और मानसिक विकास के साथ-साथ चारित्रिक विकास पर भी जोर दिया जाता है।[1]

---

1 Character and habit training receive continuous attention in the Kindergarten Independence is encouraged by all methods which make a *child* able to do things for himself and desirous of doing so. Responsibility is given early. One may see such three and four years olds gravely discharging such momentous duties as waiting at table, acting as *monitors* for clockrooms and for nature corners and so on —Beatrice King.

इन किण्डरगार्टेन स्कूलो मे शिक्षा देने के लिये प्रशिक्षित अध्यापको की आवश्यकता को स्वीकार कर सन् १६४३ मे त्रिवर्षीय पाठ्यक्रम का निर्माण किया गया है। शिक्षा सिद्धान्त, शिक्षा का इतिहास, बाल-मनोविज्ञान, स्वास्थ्य रक्षा आदि विषयो को अनिवार्य कर दिया है। प्रकृति निरीक्षण, कला, मौडल, बनाने की कला, सगीत, गायन, शारीरिक शिक्षा आदि के लिये विशिष्ट शिक्षण विधियो की शिक्षा दी जाती है। अब अन्य प्रशिक्षण विद्यालयो की तरह किण्डरगार्टेन तथा नर्सरी स्कूलो के शिक्षको का प्रशिक्षण भी २ वर्ष का हो गया है किन्तु पाठ्यक्रम में विशेष परिवर्तन नहीं किया गया।

रूस की प्राथमिक शिक्षा का स्वरूप

Q 6 How is compulsory education administerd in U. S S R. and to what limits has it been extended ?

रूस का प्रत्येक बालक अपनी सातवी वर्षगाँठ के बाद सितम्बर मे प्राथमिक स्कूल मे प्रवेश करता है। यदि वह शहर मे रहता है तो उसका नाम विद्यालय के रजिस्टर मे पहले से ही दर्ज कर लिया जाता है। प्रत्येक विद्यालय एक निश्चित क्षेत्र के बालको को ही प्रवेश देता है। स प्रकार प्रत्येक मुहल्ले मे एक स्कूल रहता है। यदि वह गाँव मे रहता है तो उसको अपने गाँव के स्कूल मे सात वर्ष की अवस्था होते ही जाना पडता है। इस प्रकार प्राथमिक शिक्षा सात वर्ष की अवस्था से ही अनिवार्य रूप से सभी को दी जाती है।

प्राथमिक शिक्षा की अवधि ४ वर्ष की निश्चित की गई है जिसका पाठ्यक्रम रिपब्लिक तय करता है। रिपब्लिक यूनियन ही पाठ्यपुस्तकों का प्रकाशन करता है और वही प्राथमिक शिक्षा के लिए उत्तरदायी होता है। इस तरह रूसी प्राथमिक शिक्षा से केन्द्रीकरण पर ही जोर दिया जाता है। व्यवस्था के केन्द्रीकरण के कारण बालक एक प्राथमिक विद्यालय से दूसरे प्राथमिक विद्यालय को अथवा रिपब्लिक के प्राथमिक विद्यालय मे दूसरे रिपब्लिक के माध्यमिक विद्यालय मे प्रवेश पा सकता है।

प्राथमिक विद्यालयो के पाठ्यक्रम मे कक्षा १ से ३ तक रूसी भाषा, अंकगणित, शारीरिक शिक्षा, कला और सगीत को स्थान दिया गया है। चौथी कक्षा मे इतिहास, भूगोल और प्रकृति [illegible] की दक्षता पैदा [illegible] रूसी व्याकरण के [illegible] है। गणित की [illegible] का प्राप्य उद्देश्य स्थिर किया गया है। इस स्तर पर ज्यामिति के कुछ मूल सिद्धान्तो की भी जानकारी दी जाती है। सन् १६४६ मे तीसरी कक्षा मे एक विदेशी भाषा सिखाने की योजना बनाई गई लेकिन उस योजना के असफल होने पर उसे छोड दिया गया। अब विदेशी भाषा का अध्ययन कक्षा ५ मे ही होता है। यही बात इस समय उत्तर प्रदेश मे लागू हो रही है। ग्रामीण क्षेत्रों मे विदेशी भाषा अँग्रेजी का कोई अध्यापक नहीं मिलता इसलिए अँग्रेजी को छोडना पड रहा है और पड़ेगा।

[illegible] नहीं [illegible] दी [illegible] अच्छे [illegible] ने ३ अंक प्राप्त किए हैं, बिना परीक्षा लिए ही कक्षा में बढ़ा दिया जाता है। कक्षा ४ मे एक परीक्षा होती है जिसको पास करने पर ही वे ऊपरी श्रेणी मे प्रवेश पा सकते हैं।

माध्यमिक शिक्षा व्यवस्था

रूस की माध्यमिक शिक्षा सातवर्षीय और दस-वर्षीय विद्यालयो द्वारा दी जाती है। सातवर्षीय विद्यालयो मे कक्षा १ से ७ तक और दसवर्षीय विद्यालयों में कक्षा १ से १० तक शिक्षा

* "A Soviet child must go to school in the September after his seventh birthday. If he is a city child he goes to the school round the corner where his parents must register him and where name is already on the head's list."
—Deana Levin.

की व्यवस्था की गई है। सातवर्षीय विद्यालयों की अन्तिम तीन कक्षाओं ५, ६ और ७ और दस-वर्षीय विद्यालयों की अन्तिम तीन कक्षाओं का ८, ९, १० का पाठ्यक्रम देखने से पता चलेगा कि यह पाठ्यक्रम हमारे देश में माध्यमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम से कहीं अधिक विस्तृत है। निम्न माध्यमिक स्तर पर पाये जाने वाले विषय हैं

(i) रूसी भाषा और साहित्य
(ii) अंकगणित बीजगणित
(iii) प्राकृतिक विज्ञान, भौतिक और रसायन विज्ञान
(iv) इतिहास और भूगोल
(v) विदेशी भाषा
(vi) ड्राइंग, मैकेनिकल ड्राइंग
(vii) शारीरिक शिक्षा
(viii) गायन

उच्चमाध्यमिक स्तर पर पढ़ाये जाने वाले विषय हैं :

(i) रूसी साहित्य
(ii) बीजगणित, ज्यामिति, त्रिकोणमिति
(iii) प्राकृतिक विज्ञान, भौतिकी, रसायन नक्षत्र-विज्ञान
(iv) मनोविज्ञान, तर्कशास्त्र
(v) विदेशी भाषा
(iv) मेकैनीकल ड्राइंग
(vii) इतिहास और भूगोल

कक्षा पांच से कक्षा सात तक रूसी भाषा, व्याकरण, वर्ण विन्यास उच्चारण, और विराम चिन्ह आदि पर और कक्षा ८ से १० तक रूसी साहित्य के अध्ययन पर ही विशेष जोर दिया जाता है। कक्षा ५ से ७ तक गणित में सरल भिन्न, दशमलव भिन्न, प्रतिशत और अनुपात, बीजगणित में साधारण सिद्धान्त और ज्यामिति में दैनिक जीवन से सम्बन्धित सिद्धान्तों की व्याख्या की जाती है। किन्तु माध्यमिक कक्षाओं में बीजगणित, ज्यामिति और त्रिकोणमिति का ही विशेष अध्ययन किया जाता है। निम्नमाध्यमिक स्तर पर विज्ञान में जन्तु और वनस्पति विज्ञान प्रयोगशालाओं में प्रयोग करके अथवा बागवानी का कार्य करके अथवा प्रतिनिरीक्षण करके प्राप्त किया जाता है। विज्ञान में अपने राष्ट्र के प्रसिद्ध वैज्ञानिक इवान मिचूरिन के कार्यों का अध्ययन कराया जाता है, माध्यमिक कक्षाओं में भौतिक विज्ञान पर अच्छा जोर दिया जाता है। फिजिकल मेकैनिक्स हाइड्रोमेकैनिक्स, एअरोमेकैनिक्स आदि का विशेष अध्ययन किया जाता है।

निम्नमाध्यमिक स्तर पर इतिहास का पाठ्यक्रम इस प्रकार से विभाजित है : सोवियत संघ के इतिहास का संक्षिप्त विवरण, प्राचीन यूनान और रोम का इतिहास मध्य युग का इतिहास, आधुनिक युग का इतिहास, माध्यमिक स्तर पर आदिम काल से लेकर वर्तमानकालीन समाज की व्यवस्था का इतिहास, रूस की प्रगति, वर्ग संघर्ष, समाजवाद क्रान्ति, सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व मार्क्सवाद, लेनिनवाद, आदि का दिग्दर्शन कराया जाता है। भूगोल में भौतिक भूगोल, संसार के भौतिक भूगोल का सिंहावलोकन, सोवियत संघ का भौतिक भूगोल तो निम्नमाध्यमिक स्तर पर तथा माध्यमिक स्तर पर सोवियत संघ के आर्थिक भूगोल का अध्ययन कराया जाता है। इतिहास और भूगोल के शिक्षण का उद्देश्य है समाजवादी जन्मभूमि के प्रति प्रेम का संचार करना।

विदेशी भाषाओं का अध्ययन कक्षा ५ से आरम्भ होता है इसके पहले नहीं। ये विदेशी भाषा हैं अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन और स्पेनिश।

रूसी माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य है अपने बालकों में भौतिकवादी दृष्टिकोण का सृजन। इसके साथ-साथ रूसी शिक्षा अपने तरुण वर्ग के चरित्र के विकास का भी विशेष ध्यान रखती है। चरित्र का निर्माण किया जाता है, पाठ्येतर कार्यक्रमों से प्रत्येक माध्यमिक विद्यालय में विभिन्न प्रकार की मण्डलियों की स्थापना की जा चुकी है। उदाहरण के लिये है कला और शारीरिक व्यायाम मण्डल। कलामण्डल में नृत्य, गायन वादन, नाटक, चित्रकारी और मूर्तिकला का शिक्षण होता है और शारीरिक व्यायाम मण्डल में शारीरिक प्रशिक्षण का।

सन् १९६० तक कक्षा ७ के बाद एक परीक्षा होती थी जिसमें पास होने पर छात्र माध्यमिक स्कूलों मे प्रवेश पा सकता था। इसी स्तर पर वह अन्य देशों मे जाने योग्य होता था। सन् १९६० के बाद दसवर्षीय स्कूलों के खुल जाने पर कक्षा दस के बाद ही परीक्षा ली जाने लगी है।

रूस में उच्च शिक्षा की व्यवस्था

Q. 7 How is higher education in U. S. S. R. organised partly in tho universities and partly in the instiotes

Discuss ' Russia has been opened the doors of higher education for all Not only the high school students, but a middle grade specialist and an adult who has missed education can learn while they earn "

रूस मे उच्च शिक्षा का विकास सन् १९४४ के बाद हुआ वह भी इतनी तेजी के साथ कि अगले १० वर्षों में उच्च शिक्षा सस्थाओ की सख्या मे १० गुनी वृद्धि हो गई। गत महायुद्ध के बाद रूस को विश्वविद्यालयो और तकनीकी विद्यालयों की आवश्यकता का अनुभव हुआ। फलस्वरूप एक विभागीय सस्थाओ का बडी तेजी से उदय हुआ। उसके बाद बहुविभागीय सस्थाएँ खुली और इस समय रूस मे उच्च शिक्षा सस्थाएँ दो प्रकार की हैं —

(अ) विश्वविद्यालय
(आ) तकनीकी सस्थाएँ।

विश्वविद्यालय भी दो प्रकार के हैं—

(अ) एक विभागीय।
(आ) बहुविभागीय।

१९४४ मे सम्पूर्ण देश मे कुल ९५ उच्च शिक्षा देने वाली सस्थाएँ थी लेकिन आज उनकी सख्या ९०० से भी अधिक है।

१६ रिपब्लिको मे से प्रत्येक रिपब्लिक की राजधानी मे एक एक विश्वविद्यालय है लगभग सभी महत्वपूर्ण शहरों मे भी विश्वविद्यालय स्थापित हो गये हैं।

रूस मे उच्च शिक्षा के विकास से सम्बन्धित एक और आश्चर्यजनक बात दिखाई देती है वह यह कि १९४४ से पूर्व ऊँची शिक्षा पाने वाले छात्रो मे स्त्रियों की सख्या बहुत कम थी। उस समय विश्वविद्यालयो और तकनीकी स्कूलों मे स्त्रियो का प्रवेश वर्जित सा था और आज विश्वविद्यालयो मे स्त्रियों की सख्या लगभग ५०% तथा तकनीकी महाविद्यालयों मे स्त्रियो की सख्या क्रमश ६७% और ८५% हो गई है।

अब उच्च शिक्षा का प्रबन्ध रिपब्लिकन मिनिस्ट्री आव हायर एजूकेशन के अधीन है। १९५४ से पहले यह प्रबन्ध मिनिस्ट्री आव हायर ऐडूकेशन के हाथो मे था। औद्योगिक तथा कृषि सस्थाओ के लिये जिन यत्र विशेषज्ञो की आवश्यकता पडती है उनके प्रशिक्षण के लिए तैनात टेकनिकल सस्थाएँ अब भी विभिन्न विभागो एव मन्त्रालयों के अधीन हैं। विश्व और राष्ट्र की सस्कृति का प्रसार करने के लिये सास्कृतिक मन्त्रालय की स्थापना की जा चुकी है। उच्चशिक्षा के क्षेत्र मे इस प्रकार के नियन्त्रण ने देश को समृद्धि और विकास मे विशेष योगदान दिया है किसी भी क्षेत्र मे आवश्यकता से अधिक विशेषज्ञ न हो जायँ इस उद्देश्य से राष्ट्र का प्रत्येक मन्त्रालय इन सस्थाओ की शिक्षा नीति पर नियन्त्रण रखता है।[1]

विश्वविद्यालीय छात्रसमूह का रूप—उच्चशिक्षा का रूस में अर्थ होता है। माध्यमिक शिक्षालयो से निकलकर किसी विशेष क्षेत्र मे विशेष ज्ञान प्राप्त करना। ज्ञान के किसी क्षेत्र मे विशेषज्ञ बनने से पूर्व छात्र अच्छी तरह सोच समझ कर आगे बढता है, मान लीजिए छात्र अगर रसायनशास्त्र मे विशिष्ट ज्ञान की प्राप्ति करना चाहता है तो उसे यह निश्चय कर लेना पडता है कि वह विश्वविद्यालय मे जाकर आयन केमिस्ट्री लेगा या बायो केमिस्ट्री, वह रूसी साहित्य लेगा या योरुपियन, वह बालमनोविज्ञान लेगा या पशु मनोविज्ञान।

---

1. "It is claimed that this centralised control makes it possible to regulate the training of specialists according to the country's needs "—Beatrice King : *Soviet Russia Goes to School*, p. 123.

उच्च शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश जैसा कि ऊपर कहा गया है माध्यमिक शिक्षा के बाद होता है। अतः विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने के लिए स्कूल मैट्रीकुलेशन डिप्लोमा आवश्यक होता है या विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने के लिए ली गई परीक्षा में उत्तीर्ण होना। अतः विश्वविद्यालय में १७ वर्ष से लेकर ३५ वर्ष तक के लोग प्रवेश पा सकते हैं। विश्वविद्यालयों में शिक्षा पाने के लिए या तो छात्र सीधे सीनियर सेकेण्डरी स्कूलों से आते हैं या किसी उद्योग और कृषि में या उच्च शिक्षा के लिए तैयार करने वाले सन्ध्याकालीन विद्यालयों से कुछ छात्र टेक्नीकम से भी आते हैं।

चूंकि विद्यालयों में प्रवेश करने वाले छात्र कई दिशाओं से आते हैं अतः उनकी आयु में बड़ी भिन्नता होती है आपको १७-१८ वर्ष से लेकर ३५-४० वर्ष के आयु के व्यक्ति एक ही कक्षा में दिखाई देंगे। इनमें से कुछ विवाहित स्त्रियाँ भी होंगी जो छोटे-छोटे बच्चों को विश्वविद्यालय के मकान नर्सरी में अभी छोड़कर आई हैं।

कुछ विभागों में तो स्त्री-छात्रों की संख्या पुरुष-छात्रों से काफी अधिक है।

विश्वविद्यालयीय शिक्षा का पाठ्यक्रम—यद्यपि विश्वविद्यालयों में वह लोग ही प्रवेश पाते हैं जो किसी विषय विशेष को लेकर विद्या ग्रहण करना चाहते हैं फिर भी उस विषय के अतिरिक्त उनको कुछ विषय अनिवार्य रूप से पढ़ाए जाते हैं। ये विषय हैं—

(i) मार्क्स और लेनिनवाद के आधारभूत सिद्धान्त
(ii) अर्थशास्त्र
(iii) ऐतिहासिक भौतिकवाद
(iv) एक विदेशी भाषा—अंग्रेजी, जर्मन और फ्रेंच
(v) शारीरिक और सैनिक शिक्षा

जिस विषय का छात्र विशेष रूप से अध्ययन करना चाहता है उस विषय का पहले तीन वर्ष तक वह सामान्य रूप से अध्ययन करता है किन्तु चौथे वर्ष ही उसका अध्ययन विशेष रूप से किया जाता है।

छात्र की अन्तिम परीक्षा मौखिक या लिखित भी हो सकती है। चौथे वर्ष के अन्त में उसी विषय में उसकी परीक्षा ली जाती है जिसको उसने विशेष अध्ययन के लिए चुना था। इस परीक्षा के परिणामस्वरूप उसे या तो डिप्लोमा मिलता है या डिग्री। डिप्लोमा पाने वाला छात्र विशेषज्ञ की तरह कार्य कर सकता है लेकिन डिग्री दो प्रकार की होती है—

(अ) कैण्डीडेट की
(ब) डाक्टर की

डाक्टर की उपाधि के लिये विद्यार्थी को बड़ा परिश्रम करना पड़ता है और अपनी थीसिस सरकारी विपक्षी, जनता, और जूरी के सामने रखनी पड़ती है यदि सब लोग उसकी थीसिस मान लेते हैं तो उसे डाक्टर की उपाधि मिल जाती है।

स्नातकीय और उच्च स्नातकीय शिक्षा का रूप—रूस के सभी विश्वविद्यालयों में स्नातकीय, स्नातकोत्तरीय और डाक्टरेट शिक्षा का प्रबन्ध है। दो वर्ष स्नातकीय शिक्षा व स्नातकोत्तरीय शिक्षा के लिये नियत किए गए हैं। प्रत्येक विश्वविद्यालय में कुछ स्नातकोत्तरों को शोध कार्यों के लिये अथवा उच्चशिक्षा संस्थाओं में कार्य करने के लिये प्रशिक्षण दिया जाता है। इनको एस्पायरेण्ट कहते हैं। जब कोई एस्पायरेण्ट किसी विभाग में दो-तीन वर्ष तक काम कर लेता है तब उसकी परीक्षा ली जाती है और अपने विशिष्ट क्षेत्र से सम्बन्धित थीसिस लिखने के बाद उसको उच्च शिक्षा संस्थाओं में कार्य करने की अनुमति मिल जाती है। स्नातकोत्तर शिक्षा पाने वाले ये छात्र ३ वर्ष की नि:शुल्क शिक्षा प्राप्त करते हैं।

विश्वविद्यालयों का संगठन और प्रशासन—विश्वविद्यालय का अध्यक्ष रेक्टर कहलाता है। उसके दो सहायक होते हैं। एक तो उसकी सहायता करता है शैक्षणिक कार्यों में और दूसरा विश्वविद्यालय के प्रशासन में। विश्वविद्यालय के शिक्षक वर्ग में विभिन्न विभागों के डीन्स, प्रोफेसर और असिस्टेंट प्रोफेसर, रीडर और लेक्चरर्स होते हैं। प्रत्येक विभाग का डीन अपने सहायकों की नियुक्ति, विभाग का संगठन और अनुशासन का उत्तरदायी होता है। प्रोफेसर लोग शोध कार्यों के लिए जिम्मेदार होते हैं।

प्रत्येक विश्वविद्यालय का प्रशासन उसके सीनेट के हाथ में होता है। सीनेट के सदस्य होते हैं—रेक्टर, उसके दोनों सहायक, विभागों के डीन, रीडर, छात्र संघों के प्रतिनिधि।

रूसी विश्वविद्यालय और शोधकार्य—रूस के प्रत्येक विश्वविद्यालय में शोधकार्यों पर जोर दिया जाता है। उच्चशिक्षा की प्रत्येक संस्था में शोधकार्य करने की सभी सुविधाएँ उपलब्ध होती हैं। बहुत-सी संस्थाओं में शोधकार्य ही होता है।

यह शोधकार्य अधिकतर व्यवहृत विज्ञानों में ही किया जाता है। रूस में शुद्ध शोधकार्य (Pure research) को कोई महत्व नहीं दिया जाता।

शोध कार्यों की महत्ता को स्वीकार करने वाला देश प्रतिवर्ष अपने विश्वविद्यालयों में विभागों का विस्तार करता रहता है। साधारण से साधारण विश्वविद्यालय में भी ६-७ विभाग आपको मिलेंगे। मास्को विश्वविद्यालय में तो १३ विभाग हैं। देश-विदेश के पर्यटक इसकी अनन्त प्रयोगशालाओं, और विभिन्न क्षेत्रीय शोधकार्य की सुविधाओं, पुस्तकालयों और वाचनालयों तथा थियेटरों छात्रों के व्यक्तिगत अध्ययन के कक्षों, शिक्षकों के लिये निवासगृहों को देखकर आत्मविभोर हो जाते हैं।

उच्चस्तरीय तकनीकी शिक्षा की व्यवस्था—विश्वविद्यालयों में तो ऐसे विशेषज्ञों को प्रशिक्षण दिया ही जाता है जो व्यावहारिक कार्यों को कुशलतापूर्वक सम्पादित कर सकें लेकिन विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त अन्य तकनीकी संस्थाएँ भी स्थापित की जा चुकी हैं जिनसे राष्ट्र की बढ़ती हुई माँग को पूरा कर सकें। निर्माण, अध्ययन, कृषि, खनन, यातायात, चिकित्सा, अर्थशास्त्र भवननिर्माण, सिनेमा, थियेटर्स आदि से सम्बन्ध रखने वाले अनेक व्यावहारिक कार्यों के लिये उच्च स्तर के तकनीकी कालेज खोले जा चुके हैं। सोवियत नागरिक को उद्योग और कृषि में दक्ष बनाने के लिये इस्पात, लोहे, तेल, सूती कपड़ा, सिचाई और मशीनरी से सम्बन्धित कई विश्व-विद्यालयी-विभाग खोले गये हैं। साथ ही कई टैक्नीकल इन्स्टीट्यूट भी विश्वविद्यालयी स्तर के स्थापित हो चुके हैं जिनमें मौद्योगिक इन्स्टीट्यूट आव लेनिनग्रैड प्रमुख है।

सोवियत संघ में प्रौढ़ शिक्षा

Q. 8. **Discuss spread of adult education in U.S.S.R. between 1917 and 1960.**

Or

Discuss that organisation of adult education in U.S.S.R. is more systematic that in other countries

समस्या—आज से ६० वर्ष पूर्व रूस में ७६% निरक्षर थे और स्त्रियों में निरक्षरता का प्रतिशत और भी अधिक था। सन् १९१९ में शिक्षा अभियान के अनुसार देश में ८ से ५० वर्ष के सभी स्त्री पुरुषों और को शिक्षित अथवा साक्षर करने का बीड़ा उठाया। उसी वर्ष से अनेक शिक्षा संस्थाओं ने इस कार्य में हाथ बँटाना आरम्भ किया। अनेक सरकारी और गैर सरकारी प्रयास आरम्भ हुये। प्रौढ़ लोगों के लिये प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षालय खोले गये युवक कार्यकर्ताओं और किसानों के लिये स्कूलों की व्यवस्था की गई। सांस्कृतिक और शिक्षा सम्बन्धी संस्थायें चालू की गईं। कई पत्र-व्यावहारिक संस्थाओं का उदय हुआ। श्रमिकों के लिये सन्ध्या-कालीन विश्वविद्यालयों की व्यवस्था हुई। गत ४० वर्षों के सतत प्रयत्नों के फलस्वरूप आज राष्ट्र में शत प्रतिशत व्यक्ति साक्षर हैं।

यह आशातीत प्रगति हुई कैसे? इस प्रगति का कारण है देश का बहुमुखी प्रयत्न।

प्रौढ़ प्राथमिक स्कूल—ग्रामीण क्षेत्रों में प्रौढ़ प्राथमिक और शहरी क्षेत्रों में प्रौढ़ माध्यमिक विद्यालय खोलकर लगभग वैसा ही पाठ्यक्रम प्रौढ़ों के लिये भी निर्धारित किया गया जैसा कि बालकों के लिये निश्चित किया गया था। लेकिन प्रौढ़ों के लिये ये विद्यालय सन्ध्या समय लगते हैं और सप्ताह में केवल ४ दिन ही पढ़ाई होती है।

पत्र-व्यवहार द्वारा शिक्षण—जो व्यक्ति इन प्राथमिक और माध्यमिक संस्थाओं से दूर रहते हैं और दूर रहने के कारण इन स्कूलों में शिक्षा प्राप्त करने के लिये स्वयं आ जा नहीं सकते, उनके पत्रों द्वारा शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की गई है। [illegible] कॉरेस्पोन्डेन्स स्कूल (Correspondence School) कहलाते हैं। इनके [illegible] पर अपने शिक्षकों से सम्पर्क कर के [illegible] रहते हैं। [illegible]

हुई यह झोपड़ी एक स्त्री संचालिका के द्वारा सध्या समय ज्ञान पिपासुओं से ठसाठस भर जाती है। कुछ पुस्तकालय में पुस्तकें पढ़ते कुछ काउण्टर पर आकर कई प्रकार से प्रश्न पूछते, कुछ विभिन्न विषयों पर दिये गये व्याख्यान सुनते, कुछ समाचार-पत्रों से समाचार सुनते, कुछ यत्र-तत्र वाद-विवाद करते दिखाई देते हैं।

इसी प्रकार कार्य सांस्कृतिक भवन (Houses of Culture) भी करते हैं जिनमे प्रतिष्ठित और प्रसिद्ध विद्वानों के भाषण, विभिन्न विषयक पुस्तकों की प्रदर्शिनी, नाट्यशाला और संगीत समारोह के लिए उचित प्रबन्ध होता है।

शहरी क्षेत्रों मे सांस्कृतिक भवनों के स्थान पर सांस्कृतिक प्रासादों का प्रबन्ध किया गया है। इनका संचालन और संगठन ट्रेड यूनियनों के हाथ मे है। ऐसे प्रासाद प्रत्येक प्रसिद्ध नगर मे बनाये गये हैं। अकेले मास्को मे २७ से अधिक सांस्कृतिक प्रासाद हैं।

प्रौढ़ शिक्षा के अन्य साधन—प्रौढ़ शिक्षा की प्रगति मे सहायता पहुँचाने वाले प्रत्येक प्रकार के पुस्तकालयों की व्यवस्था की जा चुकी है। स्थान-स्थान पर व्याख्यान केन्द्रों और संग्रहालयों का निर्माण किया जा चुका है। स्कूल पुस्तकालय, बच्चों के पुस्तकालय, संस्था के पुस्तकालय, सार्वजनिक सरकारी और गैर सरकारी पुस्तकालय, सरकारी और गैर सरकारी वैज्ञानिक पुस्तकालय, प्रौढ़ों के लिए पढ़ने की सामग्री का प्रबन्ध करते हैं।

सोवियत संघ मे शिक्षक प्रशिक्षण

Q. 9. How has U. S S. R solved the problem of teachers education ?

शिक्षक प्रशिक्षण की समस्या—शिक्षा के प्रसार को समुचित वेग से चलाने के लिये रूस को प्रशिक्षित अध्यापकों की आवश्यकता का अनुभव क्रान्ति के बाद मे ही होने लगा था। द्वितीय महायुद्ध के बाद तो शिक्षण प्रशिक्षण की समस्या ने और भी उग्ररूप धारण कर लिया फलस्वरूप सोवियत संघ ने हर प्रकार का प्रयास इस क्षेत्र में किया। प्रशिक्षित अध्यापकों की बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिये विशिष्ट प्रकार का एक वर्षीय पाठ्यक्रम चालू किया गया जिसमे कोई भी व्यक्ति जिसने सीनियर सेकेण्डरी एजूकेशन प्राप्त कर ली हो प्रवेश पा सकता था। यह माँग जब अधिक बढ़ी तो उन व्यक्तियों को जिन्होंने जूनियर स्कूल एजूकेशन प्राप्त कर ली उनको भी प्रशिक्षित किया जाने लगा। इस प्रशिक्षण काल मे ही उनके लिये सीनियर सेकेण्डरी एजूकेशन का प्रबन्ध किया गया। पाठ्यक्रम मे शिक्षा, सिद्धान्त, शिक्षण-विधियों, मनोविज्ञान और स्कूल प्रैक्टिस पर ही जोर दिया गया। लड़कियों के विद्यालयों मे एक अतिरिक्त कक्षा जोड़ दी गई जिसमे इसी प्रकार के हल का पाठ्यक्रम निर्धारित किया गया। इस प्रकार देश ने असामान्य स्थिति का सामना किया।

प्रशिक्षित अध्यापकों की माँग की पूर्ति के लिये और भी उपाय किये। वे हैं —

(१) अनुभवी अध्यापकों को विशिष्ट पाठों की व्यवस्था।
(२) पत्र-व्यावहारिक शिक्षण प्रशिक्षण की व्यवस्था।

लेकिन ये प्रयास सामाजिक थे। देश ने स्थायी रूप से शिक्षण प्रशिक्षण की समस्या को सुलझाने का सराहनीय प्रयास किया है।

प्रशिक्षण संस्थाओं के प्रकार—इस समय शिक्षण प्रशिक्षण के लिये जो-जो संस्थाएँ कार्य कर रही हैं वे निम्नलिखित हैं —

(१) अध्यापक प्रशिक्षण विद्यालय (Teachers' Training School)
(२) अध्ययन संस्थाएँ (Teaching Institutes)
(३) शिक्षा संस्थाएँ (Educational Institutes)

अध्यापक प्रशिक्षण विद्यालयों मे ३ साल के लिए प्रशिक्षण अवधि रखी गई है, अध्ययन संस्थाओं मे २ वर्ष और शिक्षा संस्थाओं मे ४ साल की।

अध्यापक प्रशिक्षण विद्यालय ऐसे अध्यापकों को प्रशिक्षित करता है जिनको अमूमन प्राथमिक विद्यालयों मे शिक्षण करना होता है। ये अध्यापक १० वर्षीय विद्यालयों मे शिक्षा पाकर प्रशिक्षण विद्यालयों मे प्रवेश पाते हैं। लेकिन ७ वर्षीय विद्यालयों मे शिक्षा प्राप्त व्यक्ति भी इनमे

प्रवेश पा सकते हैं। लेकिन उन्हें २ वर्ष और अध्ययन करना पड़ता है। किण्डरगार्टेन विद्यालयों के लिये प्रशिक्षण अलग संस्थाओं में किया जाता है।

अध्यापन संस्थाओं (Teaching Institutes) में वे लोग प्रवेश ले पाते हैं जिन्होंने हायर सेकेण्डरी स्कूलों में उच्चतम शिक्षा प्राप्त कर ली है अथवा ट्रेनिंग स्कूलों में शिक्षा पाकर ३ वर्ष अध्यापकी की है और जिनको निम्नमाध्यमिक विद्यालयों में शिक्षण करना है अर्थात् कक्षा ५ से ७ तक के बालकों को पढ़ाना सिखाना है। जिन लोगों ने ६ वर्षीय माध्यमिक शिक्षा प्राप्त की है उन्हें पूर्व प्रारम्भिक तैयारी के लिये एक विशेष पाठ्यक्रम निश्चित किया गया है जो २ वर्ष का है और जिसमें इतिहास और भाषा, भूगोल और विज्ञान, भौतिकी और गणित का अध्ययन किया जाता है।

जो प्यूपिल टीचर (Pupil teacher) इतिहास तथा भाषा को चुनते हैं उनको इसी भाषा तथा इतिहास शिक्षक के रूप में नियुक्त किया जाता है, जो प्रशिक्षणार्थी भूगोल और विज्ञान को अपना ऐच्छिक विषय चुनते हैं उनको जीवविज्ञान, रसायनशास्त्र, भूगोल और विज्ञान पढ़ाने के लिये नियुक्त किया जाता है और जिन्होंने गणित और भौतिकी का अध्ययन किया है वे गणित तथा भौतिकी के अध्यापक नियुक्त किये जाते हैं। इन केन्द्रीय विषयों के अतिरिक्त प्रत्येक प्रशिक्षणार्थी को मनोवैज्ञानिक, अध्यापन विधि, पाठशाला, स्वास्थ्य विज्ञान और शारीरिक शिक्षा का भी उचित ज्ञान दिया जाता है।

अध्यापन विद्या और शिक्षा संस्थाओं (Pedagogical or Educational Institutes) में उन अध्यापकों को प्रशिक्षित किया जाता है जिनको कक्षा ८, ९ और १० में पढ़ाना होता है। इन कक्षाओं में पढ़ाये जाने वाले प्रत्येक विषय के लिये विशेषज्ञ तैयार किये जाते हैं। लेकिन प्रत्येक ट्रेनी (Trainee) को एक अन्य गौण विषय का भी अध्ययन करना पड़ता है। कुछ शिक्षा संस्थाओं में केवल तीन ही विभाग होते हैं—इतिहास, भाषा और साहित्य, भौतिकशास्त्र और गणित। कुछ शिक्षा संस्थाएँ सामाजिक शारीरिक विषयों में विशेषज्ञ तैयार करती हैं और कुछ विविध विषयों के विशेषज्ञ तैयार करती हैं।

इन पैडागॉजिकल इन्स्टीट्यूट्स में ४ साल का समय रखा गया है। पहले दो वर्षों में सैद्धान्तिक जानकारियाँ दी जाती हैं और अगले दो वर्षों में व्यावहारिक कार्य पर जोर दिया जाता है। [illegible] प्रशिक्षण कार्य लगातार चलता रहता है। प्रत्येक पैडागोजीकल इन्स्टिट्यूट के साथ शिक्षा सम्बन्धी अन्य समस्याओं के समाधान के लिये अन्य शिक्षा केन्द्र भी [illegible] हैं।

प्रशिक्षण संस्थाओं [illegible] भी है जो प्रशिक्षण व अनुसंधान कार्य में लगी हुई है। वह है [illegible] प्रशिक्षण अकादमी। इस प्रकार हम देखते हैं कि [illegible] प्रशिक्षण की व्यवस्था को सुलझाने के लिए हर तरह के कदम उठाये हैं।

[illegible] प्रशिक्षण विद्यालयों का संगठन और संचालन—प्रत्येक टीचर ट्रेनिंग स्कूल [illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

सेवाकालीन प्रशिक्षण—रूस ने न केवल अपने विद्यालयों में शिक्षण करने वाले अध्यापकों को प्रशिक्षित करने का सराहनीय कार्य किया है वरन् सेवाकाल में भी उनकी योग्यताओं में वृद्धि करने के लिये अनेक कार्य किये हैं। मास्को और अन्य सभी प्रसिद्ध शहरों में शिक्षकों की योग्यताओं में वृद्धि करने के लिए शिक्षण संस्थाएँ खोली जा चुकी हैं।

इन संस्थाओं में द्विवर्षीय सन्ध्याकालीन पाठ्यक्रम रखा गया है। ये संस्थाएँ विषय [illegible] उनका सम्बन्ध [illegible] यं बाद में सभी [illegible] के हेतु भेज दिया जाता है।

अध्यापकों की योग्यताओं में वृद्धि करने के लिए इन संस्थाओं के अतिरिक्त समय-समय पर सेमीनार कान्फ्रेंस, वादविवाद, प्रदर्शनी आदि का आयोजन होता रहता है। यह आयोजन प्रत्येक जिले की एजूकेशन आथोरिटी (District Education Authority) करती रहती है। प्रत्येक डिस्ट्रिक्ट एजूकेशन आथोरिटी के साथ एक एक एजूकेशन ब्यूरो होता है जिसमें एक सचालक तथा उसके दो तीन सहायक कार्य करते हैं। यह ब्यूरो अपने क्षेत्र में स्थित विद्यालयों के प्रधान और सहायक अध्यापकों को आवश्यक जानकारियाँ देता रहता है। समय-समय पर अध्यापकों द्वारा निर्मित सहायक सामग्री का प्रदर्शन करने के लिए प्रदर्शनियों का भी आयोजन होता है जिससे अध्यापकों का दृष्टिकोण व्यापक होता है। ये ब्यूरो पाठ पढ़ाने की विधियों का भी प्रदर्शन करते हैं।

शिक्षक संघ भी अपने सदस्यों की योग्यताओं में वृद्धि करने के लिए ऐसे ही कार्यों का आयोजन करते हैं। बहुत-सी ग्रामीण पाठशालाओं के अध्यापकों ने एक संघ कायम किया है जिसे मेथड्स संघ (Methods Associations) कहते हैं। ये संघ डिस्ट्रिक्ट एजूकेशन ब्यूरो और निरीक्षकों की सहायता से शिक्षण विधियों में सुधार करने का प्रयत्न करते हैं।

प्रत्येक विद्यालय के प्रधान का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह अपनी संस्था के सभी सदस्यों के स्तर को ऊँचा करें।[1]

तकनीकी शिक्षा का स्वरूप

Q 10 Explain the meaning of the term polytechnisation How far has polytechnisation been successful in Russia

मार्क्सवाद के अन्तर्गत शिक्षा के तीन पहलू स्वीकार किये गये हैं। अपने सदस्यों के बौद्धिक और शारीरिक विकास के अतिरिक्त भौतिकवाद में विश्वास रखने वाला राष्ट्र चाहता है ऐसी शिक्षा की व्यवस्था करना जिससे प्रत्येक व्यक्ति में विद्यालयी शिक्षा के बाद उत्पादन कार्य में लग जाने की क्षमता पैदा हो जाय। सोवियत संघ का प्रत्येक शिक्षा विशारद विद्यालय और [illegible] सामाजिक दक्षता का भी विकास हो सके।[2]

पोलिटेकनाइजेशन—इसका अभिप्राय यह है कि रूस के विद्यालयों में बौद्धिक शिक्षा के साथ-साथ पोलीटेकनिक शिक्षा का प्रबन्ध इस प्रकार किया जाता है कि उसमें टेक्नीकल

1. [illegible]

2 "Soviet educationists are convinced that school must be geared to life [illegible]

ट्रेनिंग की नीरसता नहीं होती। इस प्रवृत्ति को 'पोलीटेक्नाइजेशन' का नाम दिया गया है। यह प्रवृत्ति विद्यालय के जीवन से साथ सहसम्बन्ध स्थापित करती है। सन् १९५४ में पोलीटेक्नाइजेशन की जो योजना बनाई गई थी उसके फलस्वरूप सोवियत स्कूलों से निकला हुग्रा छात्र न केवल शिक्षित ही होता है वरन् किसी एक न एक क्राफ्ट में निपुण भी होता है। वह उन आर्थिक शक्तियों का सैद्धान्तिक ज्ञान भी रखता है जिन्होंने उसके राष्ट्र को उन्नत बनाने में योगदान दिया है और उनका प्रयोग करना भी जानता है। वह न केवल श्रेष्ठ उत्पादक ही है वरन् उत्पादन की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि को भी अच्छी तरह समझता है। उनकी शिक्षा में थ्योरी और प्रैक्टिस का अपूर्व सम्मेलन दिखाई देता है। इसका यह अभिप्राय नहीं कि रूस में शिक्षा का स्तर नीचा कर दिया गया है और उसे श्रमिक की शिक्षा अथवा तकनीकी शिक्षा पर ला दिया गया है। प्रत्युत रूस के युवक और युवती को न केवल अणुशक्ति का ज्ञान ही रखना है वरन् कृषि के मशीनों के महत्व को भी स्वीकार करना है।

पोलीटेक्नाइजेशन का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए लेनिन की विधवा पत्नी क्रुप्सकाया ने कहा था "पोलीटेक्नाइजेशन से हमारा आशय उस शिक्षा से जिसे प्राप्त कर युवक-युवती न केवल उद्योग में कुशल कार्यकर्ता ही बनें वरन् वे उद्योग के संचालन में भी पूरा-पूरा हाथ बंटा सकें।"*

विद्यालय में पोलीटेक्नाइजेशन की योजना—कक्षा १ से लेकर ४ तक हाथ का काम कक्षा ५ से ७ तक वर्कशोप और विद्यालय में खेत के काम, कक्षा ८ से १० तक कृषि, इंजीनियरिंग और इलैक्ट्रिक इंजीनियरिंग की शिक्षा का प्रबन्ध किया गया है। कक्षा ८ से १० तक व्यावहारिक कार्य वर्कशोप और प्रयोगशालाओं में किया जाता है, स्थानीय मिलों और फैक्टरियों, मशीन ट्रैक्टर स्टेशनों पर सामूहिक कृषि फार्मों पर प्रैक्टीकल कराये जाते हैं। स्थानीय वातावरण के निरीक्षण के लिए छात्रों को कक्षा-कक्ष से बाहर भी ले जाया जाता है।

कक्षा १ से ४ तक के छात्र कागज, कार्डबोर्ड से वस्तुएँ बनाने, मिट्टी के मोडेल तैयार करने, पुस्तकों की जिल्दसाजी करते हैं। कक्षा ५ से ७ तक के छात्र वर्कशोप में दर्जीगीरी, बढ़ईगीरी और लुहारगीरी का काम सीखते हैं। कक्षा १० तक के छात्र इंजीनियरिंग की वर्कशोप में काम करते हैं। इस प्रकार कक्षा १० के बाद वह दक्ष टर्नर और ओपरेटर हो जाते हैं।

प्रत्येक विद्यालय में निम्नांकित आधार भूत कार्यों पर जोर दिया जाता है।

(१) आधुनिक आर्थिक व्यवस्था की माँग को पूरा करने वाली विषय वस्तु पाठ्यक्रम में रखी जाती है। जिस किसी विषय का अध्ययन किया जाता है उसकी व्यावहारिक उपयोगिता ही *ध्यान में रखी जाती है, उसकी सैद्धान्तिक उपयोगिताओं पर कम महत्त्व दिया जाता है।*

(२) प्रयोगशालाओं में सभी प्रकार के प्रयोग कराये जाते हैं अथवा प्रयोग प्रदर्शित किए जाते हैं।

(३) वर्तमान विषय वस्तु को फिर से सभी सामग्रियों से सुसज्जित किया जाता है और विषय वस्तु की मात्रा सोच समझ कर निश्चित की जाती है।

(४) विद्यालय को आधुनिक कृषि फार्मों तथा फैक्टरियों से सम्बन्धित कर दिया जाता है। विद्यालय के छात्र उन सभी कार्यों में सक्रिय भाग लेते हैं जो [illegible] किए जाते हैं।

(५) सब [illegible] और कृषि साहित्य और [illegible] का [illegible] किया जाता है।

(६) उद्योग, कृषि और यातायात के क्षेत्र में दक्ष पुरुषों, अनुभवी व्यक्तियों के साथ [illegible] का [illegible] किया जाता है।

(७) छात्रों [illegible], सप्ताह या दिन की कृषि औद्योगिक संस्थाओं में [illegible] कराया जाता है।

[illegible]

* [illegible] education [illegible] at the same time for [illegible] [illegible]

कृषि अथवा सरकारी दफ्तरो मे होता है । प्रतिशत, ग्राफ, अनुपात, क्षेत्रफल आदि के प्रश्नो का सीधा सम्बन्ध दैनिक जीवन की समस्याओ से होता है ताकि छात्र समझ सकें कि जो कुछ उन्हे पढाया जा रहा है, उसकी व्यावहारिक उपयोगिता है ।

ज्यामिति पढाते समय वह साध्य और प्रयोगो पर इतना जोर नही देता जितना कि सर्वेक्षण कार्य पर । उसके छात्र सर्वेक्षण के लिये उचित मापन यत्रो का निर्माण करते है विभिन्न ज्यामितीय क्षेत्रो का क्षेत्रफल निकालते हैं । गेहूँ, चावल, गन्ना और मक्का के खेतो के क्षेत्रफल की गणना करते हैं । औसत उपज, बीज, खाद और अन्य खर्चों का अनुमान लगाते हैं ।

गणित के अच्छे शिक्षक अपने छात्रो को शुद्ध और लगभग शुद्ध मापगणन करने वाली मशीनो, और मापन यन्त्रो के प्रयोग मे बालको को दक्षता पैदा करते हैं । वे पाठ्य-पुस्तको की गुलामी नही करते और न अपने को जीवन की वास्तविकता से भिन्न ही करते हैं ।

प्रत्येक विद्यालय मे यथासम्भव सभी प्रकार के शिक्षोपकरणो और सहायक सामग्रियो का प्रयोग किया जाता है । प्रत्येक स्कूल मे रेडियो और फिल्म प्रोजेक्टर्स का प्रबन्ध है ।

इसी प्रकार भौतिकी पढ़ाने वाला अध्यापक अपनी कक्षाओं को ट्रैक्टर इजिन, औटोमेटिक इजिन, इलैक्ट्रिक मीटर डायनमो, आदि मशीनो से सुसज्जित रखता है ताकि आवश्यकता पड़ने पर प्रयोग-प्रदर्शन किया जा सके । उसके कमरे मे फिल्म प्रोजेक्टर भी आपको एक कोने मे रखा दिखाई देगा जिसकी सहायता से न केवल फिल्मो का प्रदर्शन किया जा सके वरन् छात्रो को प्रोजेक्टर की वकिंग भी समझाई जा सके । भौतिकी के शिक्षक की तरह रसायन शास्त्र का शिक्षक भी बालको को रसायन शास्त्र के उपयोगी तत्वो का बोध कराता है । अध्यापक प्रत्येक रसायन सूत्र को उनकी उपयोगिता से सम्बद्ध करता है । फलस्वरूप रसायनशास्त्र विद्यालय की वस्तु न होकर जीवन की उपयोगी वस्तु बन जाती है ।

इस प्रकार सभी विषयो का व्यावहारिक ज्ञान प्राकृतिक वातावरण मे दिया जाता है, छात्र भी सामाजिक लाभ की क्रियाओ मे रुचि लेते हैं और सभी प्रकार के श्रम को दिल लगाकर करने को उत्सुक रहते हैं ।

रूस में व्यावसायिक प्रशिक्षण

Q 11. What type of vocational training is given in U. S. S. R.?

सामान्य शिक्षा के साथ-साथ रूस अपने नवयुवको और नवयुवतियो मे तकनीकी शिक्षा की ओर उनकी रुचि पैदा ही नही करता वरन् कुछ लोगों को विशिष्ट प्रकार की व्यावसायिक [illegible]

[illegible]

मे बाँटा जा सकता है—

(अ) प्रारम्भिक वोकेशनल ट्रेनिंग स्कूल ।

(आ) माध्यमिक वोकेशनल ट्रेनिंग स्कूल ।

प्रारम्भिक वोकेशनल स्कूलो मे ट्रेड स्कूल, रेलवे स्कूल, इडस्ट्रियल ट्रेनिंग स्कूल सम्मिलित है । ट्रेड और रेलवे स्कूल यान्त्रिक पेचीदे धन्धो के लिये कुशल कारीगर तैयार करते हैं । इनमे प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त विद्यार्थी जिनकी आयु १४-१५ वर्ष की होती है प्रवेश पा सकते है । इन स्कूलों का कोर्स २ वर्ष का होता है । इडस्ट्रियल ट्रेनिंग स्कूलो मे बढ़ईगीरी आदि कम जटिल पेशो के लिये कारीगर तैयार किये जाते है । इन स्कूलों का पाठ्यक्रम एक वर्ष से अधिक नही होता ।

छात्रो को इन स्कूलो मे शिक्षा प्राप्त करने की सभी प्रकार की सुविधाएँ दी जाती है । जो स्कूल श्रम विभाग से सचालित होते है उनमे छात्रो को स्कूल की फीस माफ होती है साथ ही उन्हे कपड़े, भोजन और रहने की जगह भी मुफ्त दी जाती है । ट्रेनिंग समाप्त करके वे किसी भी उद्योग मे जा सकते है ।

यद्यपि शिक्षा वोकेशनल है फिर भी सामान्य शिक्षा से उन्हे वंचित नहीं किया जाता । सामान्य शिक्षा के विषय है—रूसी भाषा, गणित, भौतिक विज्ञान और मैकेनिक्स

स्कूल में । सामान्य शिक्षा के लिये दिया गया समय व्यावसायिक शिक्षा के लिये दिए गए समय [illegible] कम होता है ।

माध्यमिक व्यावसायिक प्रशिक्षण — इस प्रकार का प्रशिक्षण माध्यमिक विद्यालयों में दिया जाता है । इस समय देश में लगभग ४००० माध्यमिक व्यावसायिक प्रशिक्षण विद्यालय हैं जिनमें लगभग १० लाख छात्र प्रशिक्षण पा रहे हैं । इन स्कूलों में १४ वर्ष से लेकर ३० वर्ष तक के ऐसे व्यक्ति प्रवेश पा सकते हैं जिन्होंने अनिवार्य सामान्य शिक्षा प्राप्त कर ली है । इन संस्थाओं में प्रवेश पाने वालों को एक प्रवेश परीक्षा देनी पड़ती है जिसके परिणामस्वरूप उनको प्रवेश मिलता है । इन संस्थाओं में साहित्य, गणित, भौतिकी, रसायन आदि विषय की सामान्य शिक्षा दी जाती है और छात्र के द्वारा चुने गये क्षेत्र की व्यावसायिक शिक्षा से सम्बन्धित विषयों की शिक्षा का प्रबन्ध है । शिक्षण विधियों में वार्तालाप, व्याख्यान और प्रयोगों को महत्व दिया जाता है । चार वर्ष बाद छात्र या तो सरकार द्वारा आयोजित अन्तिम परीक्षा में बैठ सकता है या उसको डिप्लोमा मिलता है । इसके बाद या तो वह अपने काम धन्धे में लग जाता है या उच्चशिक्षा के लिये विश्वविद्यालय में प्रवेश लेता है ।

टेक्नीकम

Q 12. "Technicums are not merely training centres of middle grade specialists, they represent the worker's dream to receive higher education without necessary training in general education." Discuss

टेक्नीकम विशिष्टों को कम कुशल ट स्कूलों में तैयार करता ही है, बीच के दर्जे के टेक्नीकल विशिष्टों को टेक्नीकमों में प्रशिक्षित करता है । टेक्नीकमों में न केवल टेक्नीकल विषयों का ही प्रशिक्षण दिया जाता है वरन् न्याय और संगीत जैसे विषयों का भी प्रशिक्षण दिया जाता है । इन संस्थाओं में लड़के और लड़कियाँ दोनों ही निम्नमाध्यमिक कोर्स पूरा करने के बाद प्रवेश पा सकते हैं ।

इन टेक्नीकमों में ३ या ४ साल का कोर्स रखा गया है, जो छात्र इन टेक्नीकमों में से शिक्षा ग्रहण करके निकलते हैं वे या तो सीधे किसी व्यवसाय में लग जाते हैं या सर्वश्रेष्ठ छात्र होने के कारण उच्च शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश पा लेते हैं । उनको सीनियर माध्यमिक कोर्स पूरा करने की कोई आवश्यकता नहीं होती या विश्वविद्यालयों में भी उन्हें प्रवेश मिल जाता है। जिनको कक्षा में अच्छे अंक नहीं मिले हैं वे भी उच्च शिक्षा के अधिकारी हो सकते हैं यदि वे ४ वर्ष किसी व्यवसाय में कार्य कर लें और उसका अनुभव प्राप्त कर लें तो विश्वविद्यालय में प्रवेश पा सकते हैं । चूँकि टेक्नीकमों में न केवल व्यावसायिक प्रशिक्षण ही दिया जाता है वरन् माध्यमिक कक्षाओं के समान शिक्षा के मूल तत्वों की भी शिक्षा दी जाती है इसलिये ये छात्र किसी प्रकार अन्य छात्रों की तुलना में हेय नहीं समझे जाते । चूँकि टेक्नीकमों में निःशुल्क शिक्षा प्रदान की जाती है इसलिये बहुत से छात्र टेक्नीकमों में शिक्षा ग्रहण करने के बाद विश्वविद्यालय में जाना पसंद करते हैं । वे उच्च माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करना ठीक नहीं समझते क्योंकि उनमें उनको फीस देनी पड़ती है ।

टेक्नीकम वास्तव में उन सभी व्यवसायों और पेशों के लिए मध्यम वर्ग के विशिष्टों को तैयार करते हैं जिनकी देश को आवश्यकता है । ऐसे प्रशिक्षित व्यक्तियों की माँग उद्योग धन्धों, मन्त्रालयों, और अन्य प्रशासनिक संस्थाओं को होती है अत ये उद्योग, मन्त्रालय या प्रशासनिक संस्थाएँ टेकनीकम स्थापित कर लेती हैं । सभी संस्थाओं को टेक्नीकम स्थापित करने की छूट है उदाहरण के लिये यदि किसी संस्था को संगीतज्ञों या कलाकारों की आवश्यकता है तो ऐसे लोगों के लिए टेकनीकम खोल लेगी । किन्तु शिक्षा सम्बन्धी नियन्त्रण शिक्षा मन्त्रालय के अधीन ही होता है ।

प्रत्येक टेकनीकम में सामान्य शिक्षा का वही पाठ्यक्रम है जो सीनियर सेकेण्डरी स्कूलों की कक्षा ८, ९, १० के लिए हैं । जिस पेशे या उद्योग से सम्बन्धित टेक्नीकम है उनको सामान्य शिक्षा में ही उस पेशे या उद्योग से सम्बन्धित सैद्धान्तिक ज्ञान की जानकारी दे दी जाती है। उदाहरण के लिए यदि नर्सिंग का कोई टेकनीकम है तो नर्सिंग से सम्बन्धित शरीर विज्ञान की सैद्धान्तिक जानकारियाँ सामान्य विज्ञान के अन्तर्गत दे दी जायँगी । और यदि [illegible]

जीनियरिंग से सम्बन्धित है तो भौतिकी और गणित की सैद्धान्तिक जानकारियाँ सामान्य शिक्षा के अन्तर्गत दे दी जायेंगी। इस प्रकार एक टेकनीकम का पाठ्यक्रम दूसरे टेकनीकम से भिन्न होता है।

प्रैक्टीकल कार्य प्रयोगशाला या टेकनीकल वर्कशॉप मे किया जाता है जो विद्यालय मे होती हैं। यह कार्य तीसरे वर्ष प्रारम्भ होता है कभी-कभी छात्रों को अस्पतालो, इंजीनियरिंग वर्क्स या मिलो मे भी प्रैक्टीकल काम करना पड़ता है।

प्रत्येक टेकनीकम मे शिक्षक वर्ग ऊँची-ऊँची योग्यताओ के नियुक्त किए जाते हैं। किसी भी टेकनीकम मे अनुशासन की समस्या उपस्थित नही होती क्योंकि छात्र स्वयं ही अपना उत्तरदायित्व समझते हैं। आखिर मे टेकनीकम मे शिक्षा लेने के बाद उनको ससार मे उतरना ही है अतः वे किसी प्रकार की समस्या उत्पन्न नहीं करते।

पिछले ६-७ वर्षो से देश मे टेकनीकल स्कूल खोले जा रहे हैं ये टेकनीकल स्कूल ६-७ विभिन्न पेशो के लिए लोगो को तैयार कर रहे हैं।

अवकाश का सदुपयोग

Q 13. Discuss various leisure time activities for children conducted in Russia.

रूसी शिक्षा व्यवस्था अपने स्कूल की चहार दीवारी मे ही सीमित नही रहती। वह बालक की विद्यालय मे देखभाल करती है और उसके घर पर भी। अवकाश के समय का दुरुपयोग न हो इस उद्देश्य से रूस ने आज से ४० वर्ष पूर्व ही निश्चित कर लिया था कि बालक की शिक्षा की जिम्मेदारी राष्ट्र की एकमात्र जिम्मेदारी नही है वरन् बालक के अवकाश का भी सदुपयोग होना चाहिए। अतः सरकार ऐसी क्रियाओ का सचालन और निर्देशन करती है जो बालको के समय का सदुपयोग कर सकती हैं। विद्यालयो मे होबी सर्किल्स, पायनीयर पैलेसज और सेण्ट्रल आर्ट सेण्टर्स इस कार्य मे सहयोग प्रदान करते हैं।

प्रत्येक रिपब्लिक का शिक्षा विभाग और स्थानीय शिक्षा अधिकारी बालको के लिए लाभप्रद क्रियाओ की योजना बनाते हैं। बड़े बड़े शहरो मे सेण्ट्रल हाउस इन क्रियाओ पर शोध कार्य [illegible] का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाता [illegible] उन लोगो को प्रशिक्षित किया [illegible] गृहो के अतिरिक्त कुछ ऐसी और सस्थाएं भी है जो बालको की क्रियाओ के विषय मे अध्यापको को परामर्श देती हैं।

इन क्रियाओ के लिये वित्तीय सहायता या तो शिक्षा विभाग से मिलती है या ट्रेड यूनियनो, फैक्ट्रियो और सामूहिक फार्मों के मिले-जुले प्रयोगो से। इन क्रियाओ का सचालन होता है—

(i) स्कूलो के होबीज सर्किल मे
(ii) पायनीयर पैलेसेज मे
(iii) सेण्ट्रल आर्ट सेण्टर्स मे

प्रत्येक स्कूल मे सर्किल स्थापित किये गये हैं जिस विद्यालय का शिक्षक वर्ग जितनी अधिक रुचि इन क्रियाओ मे लेता है उस विद्यालय में उतने ही अधिक सर्किल खुल जाते हैं। ये सर्किल्स क्लब जैसी सस्थाएँ है जिनका सगठन सगीत, ड्रामा, और नृत्य आदि मनोरंजनात्मक क्रियाओ के लिए किया जाता है। कुछ होबी सर्किल्स (Hobby Circles) मे पुस्तको की जिल्द साजी, सैनिको के लिये पोशाक, बच्चो के लिये खिलौने आदि बनाने का उत्पादक काम भी होता है। प्रत्येक स्कूल मे इस प्रकार के कई वर्कशॉप खोले गये है जहाँ पर बालक अवकाश के समय का सदुपयोग करते हैं।

इन होबी सर्किल्स मे केवल मनोरंजनात्मक क्रियाएँ ही सम्पन्न नहीं होती वरन् उन क्रियाओ का सम्बन्ध कक्षा कार्य से भी स्थापित किया जाता है। उदाहरण के लिए ये सर्किल्स भौतिकी की कक्षा मे काम आने योग्य विक्षोपकरण तैयार करते हैं। कला सर्किल, इतिहास और [illegible] के लिये सहायक सामग्री तैयार करते हैं।

साहित्य और कला आदि विषयों के विकास के लिए सहायक सामग्रियों को तैयार करते हैं।

विद्यालय के प्रांगण के बाहर पायनीयर पैलेस अवकाशकालीन क्रियाओं का संगठन करते हैं। इनका नाम पायनीयर पैलेस क्यों रखा गया है? पहले इनका स्थान प्रधान पायनीयरों से था और न संस्थाएं युवक और युवतियों की संस्थाएं थीं। ८-१८ वर्ष के सभी युवक और युवतियां इनकी सदस्यता ग्रहण कर सकते हैं। कुछ नगरों में पायनीयर स्टेशन भी स्थापित किये गए हैं। पायनीयर पैलेस दो वर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं—कला और विज्ञान। प्रत्येक पायनीयर पैलेस एक सुन्दर विशाल भवन होता है जिसके कमरे सभी प्रकार की श्रेष्ठ साज-सज्जा से सुसज्जित होते हैं। आधुनिक सभ्यता के सभी उपादानों से सजा हुआ यह भवन बालकों के मनोरंजन तथा खेल क्रीड़ा का स्थान होता है। प्रत्येक पायनीयर पैलेस की क्रियाओं का संचालन करने के लिये एक स्टाफ की नियुक्ति की जाती है जो पायनीयर पैलेस की क्रियाओं की योजना बनाता और उसका पालन करता है।

लड़के और लड़कियों के अन्य क्लब और गोष्ठियां जिनका शैक्षणिक महत्व प्रशंसनीय है निम्नलिखित हैं,—

(१) टेक्नीकल स्टेशन्स
(२) यंग नैचुरलिस्ट स्टेशन्स
(३) बालकों की रेलें
(४) बालकों के जहाज
(५) स्कूल स्पोर्ट्स असोसियेशन
(६) बालकों के पुस्तकालय
(७) बालकों के थियेटर्स और सिनेमा

बालकों के टेक्नीकल स्टेशन एक प्रकार के क्लब है जिनके सदस्य वे लड़के या लड़किया[illegible] होती हैं जिनका रुझान रचनात्मक होता है। इन क्लबों में रहकर बालक सदैव तकनीकी प्रग[illegible] की सोचता रहता है। इन क्लबों के स्थानीय और केन्द्रीय संगठन स्थापित हो चुके हैं। केन्द्रीय टेक्नीकल स्टेशन्स स्थानीय टेक्नीकल स्टेशन्स की गतिविधियों का रूप निश्चित करते हैं। [illegible] स्टेशन बालकों में मौलिक रूप से चिन्तन करने की शक्ति का विकास करते हैं।

यंग नैचुरलिस्ट स्टेशनों का संगठन बालकों में प्रकृति के प्रति प्रेम पैदा करने के लि[illegible] किया गया है। वनस्पति विज्ञान में रुचि उत्पन्न करने के लिये ये अपूर्व साधन हैं। इन स्टेशनों प[illegible] पशुपालन, पक्षी-अध्ययन, कुक्कुट विकास, आदि कार्यों पर प्रयोग किये जाते हैं। प्रत्येक शहर औ[illegible] गाँव में ऐसे स्टेशन कायम किये गये हैं। केन्द्रीय यंग नैचुरलिस्ट स्टेशन संचालन एक संचालक [illegible] हाथ में होता है जिसकी सहायता करने के लिये पौधे पैदा करने वाले स्थायी विशेषज्ञ होते हैं औ[illegible] वनस्पति वैज्ञानिक, जीव वैज्ञानिक तथा रासायनिक उसकी समय समय पर सहायता करते रह[illegible] हैं। केन्द्रीय स्टेशन स्थानीय स्टेशनों का मार्ग निर्देशन करते, उनके लिये उपयुक्त पाठन सामग्[illegible] तैयार करते तथा उसका वितरण करते हैं। इन स्टेशनों में कई जगह जुऑलोजिक गार्डन तैया[illegible] किये गये हैं जिनमें तरह-तरह की चिड़ियाँ और पशु पाले जाते हैं उनकी आदतों का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार यंग नैचुरलिस्ट स्टेशनों पर प्रकृति-निरीक्षण प्रकृति प्रेम की भावना[illegible] का संचार किया जाता है।

बालकों की रेलें और बालकों के जहाज भी ऐसी संस्थाएँ हैं जिनमें बालक बहुत कु[illegible] सीखते हैं। सन् १९४० में एक रेलवे इंजीनियर के मार्ग निर्देशन में १२ रेलें युवक और युवति[illegible] द्वारा चलाई जा रही थीं, जिनमें सभी कर्मचारी युवक और युवती ही थे। ११ से १७ वर्ष की आ[illegible] के ये युवक और युवती १२ रेलवे लाइनों का संचालन बहुत ही प्रशंसनीय ढंग से कर रहे थे। ऐसी ही अनेक रेलें अब भी लड़कों और लड़कियों द्वारा चलाई जाती हैं। किसी नदी अथवा समु[illegible] के किनारे लड़कों का जहाजी बेड़ा भी दिखाई देता है। रेलगाड़ियों और जहाजी बेड़ों का उपयो[illegible] छुट्टी के दिनों में अधिक होता है।

संगठित खेलों में भाग लेने की प्रवृत्ति पैदा करने के लिये विद्यालय क्रीड़ा संघों क[illegible] निर्माण हुआ है जिसकी सदस्यता शुल्क बहुत कम है। जो युवक अथवा युवती किसी खेल [illegible]

विशेष रुचि का प्रदर्शन करते हैं उनके प्रशिक्षण के लिये विशिष्ट प्रकार के स्पोर्ट्स स्कूल स्थापित किये गये हैं जिनमें वे अवकाश के समय प्रशिक्षण प्राप्त कर सकते हैं। बड़े-बड़े नगरों में बालकों के स्पोर्ट स्टेडियम भी बनाए गये हैं।

बालकों में पढ़ने की प्रवृत्ति सबल रहे इस उद्देश्य से बालोपयोगी अनन्त साहित्य की रचना की गई है। बालकों की पुस्तकें कैसी हों इस पर साम्यवादी पार्टी सदैव अपने विचार प्रकट करती रहती है और बालोपयोगी साहित्य का सृजन करने वाले लेखकों का मार्ग निर्देशन करती रहती है। बच्चों की सर्वांगीण शिक्षा के लिये स्थानीय पुस्तकालयों की व्यवस्था की गई है जिनमें पुस्तकों का चयन बालकों की रुचियों को ध्यान में रखकर किया जाता है।

सोवियत संघ में १६ वर्ष से कम आयु वाले बालकों को सिनेमा जाने से सख्त मुमानियत है। इस कानून का अक्षरशः पालन हो इस उद्देश्य से बालकों के लिये अलग से सिनेमा गृह की व्यवस्था की गई है। देश में १०० से अधिक ऐसे थियेटर्स कायम हो गये हैं। कुछ थियेटर्स चल भी हैं। इन थियेटरों को चलाने वाली कम्पनियाँ बालकों की रुचि के अनुकूल ड्रामा तैयार करती हैं। उनमें एक शिक्षा शास्त्री भी होता है जो कम्पनी की नीति का निर्देशन करता है। लड़के और लड़कियाँ इन फैक्ट्री की आलोचना कर सकते हैं, लेखकों और पात्रों के सामने अपनी सम्मति प्रकट कर सकते हैं ७ वर्ष से कम आयु के बच्चों के लिये पिपेट-थियेटर्स भी हैं। बालकों के सिनेमा गृहों में विभिन्न आयु स्तरों के बालकों के लिये फिल्में दिखाई जाती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि रूसी शासन अपने बालकों के अवकाश के समय का सदुपयोग करने के लिये तरह तरह की सुविधाएं प्रस्तुत करता है। इन सुविधाओं का उद्देश्य बालकों का मनोरंजन करना ही नहीं है और न उनको गलियों में घूमने रहने से बचाना ही है वरन् उनका उचित शैक्षणिक विकास भी करना है।[1]

विद्यालय प्रशासन और संगठन

अध्याय १

शिक्षालय प्रशासन के मूलभूत सिद्धान्त

Q 1. Discuss the guiding principles of Educational Administration in a democracy

शैक्षिक प्रशासन का अर्थ—साधारण भाषा में शैक्षणिक प्रशासन का अर्थ है विद्यालयों का प्रबन्ध, अनुशासन का पालन कराना, समय विभाग का निर्माण, अध्यापकों को आदेश देना, शिक्षा विभाग के पत्रों का उत्तर देना, विद्यालय के रजिस्टरों और अन्य रिकार्डों को ठीक प्रकार [illegible] दिखाई देता है। [illegible] पाठशाला प्रबन्ध [illegible] सम्बन्ध न केवल [illegible] पक, अभिभावक, [illegible] एक ओर तो वह [illegible] वह दीर्घकालीन [illegible] उद्देश्यों की पूर्ति करने के लिए समाज के विभिन्न वर्गों का—छात्रों, अध्यापकों, और अभिभावकों का सहयोग प्राप्त करना है।

शिक्षा-सिद्धान्त जिन आदर्शों और उद्देश्यों का निर्णय करता है, शैक्षिक मनोविज्ञान जिन शिक्षण विधियों का प्रतिपादन करता है, शैक्षिक प्रशासन उचित शिक्षण विधियों द्वारा उन उद्देश्यों की प्राप्ति का प्रयत्न करता है और इस प्रयोजन की सिद्धि के लिए भौतिक और मानवीय साधनों के संगठन और संचालन की व्यवस्था करता है। शैक्षिक प्रशासन साधन मात्र है, साध्य है शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति। सफल शैक्षिक प्रशासन वही है जो शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति आसानी से कर सके। शैक्षिक प्रक्रिया का उचित आयोजन, निर्देशन, नियन्त्रण, कार्यान्वयन और मूल्यांकन करना ही शैक्षणिक प्रशासन है।[1]

शैक्षिक प्रशासन का पहला कर्तव्य है उन शैक्षिक उद्देश्यों की पूर्ति करना जो समाज ने निर्धारित किए हैं। विद्यालयीय अथवा उच्च शिक्षा के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर शैक्षणिक प्रशासन उनकी पूर्ति की योजना बनाता है। यदि समाज का ढांचा प्रजातान्त्रिक है तो योजना बनाते समय समाज के सभी अंगों का सहयोग लिया जाता है, यदि यह ढांचा autocratic है तो प्रशासक वर्ग अपनी आकांक्षाओं के अनुकूल योजना तैयार करता है।

योजना का कार्यान्वयन करते समय भी प्रजातन्त्र में सभी के सहयोग की अपेक्षा की जाती है। समाज के सभी वर्गों को अपनी-अपनी जिम्मेदारियों का आभास होता है और सभी लगन से कार्य करते हुए निर्दिष्ट उद्देश्यों तक पहुँचने का प्रयत्न करते हैं। प्रशासक उनके कार्यों में किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुँचाता वरन् उनको अपना-अपना फर्ज अदा करने के लिए उदार हृदय से उचित प्रोत्साहन देता है।

क्रियान्वयन के बाद वह मूल्यांकन करता है। सम्पूर्ण निष्पादन की जाँच करके वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि भौतिक और मानवीय साधनों का कैसा समन्वय हो कि सभी

---

1. Educational administration is planning, directing, controlling, executing and evaluating the educative process

उद्देश्यो की पूर्ति ग्रासानी से हो सके।[1] कैन्डिल (Kandel) का भी यही मत है। उनका कहना है कि शैक्षणिक प्रशासन का प्रमुख प्रयोजन है छात्रो ग्रौर ग्रध्यापको को ऐसी भौतिक परिस्थितियों के ग्रन्दर सगठित करना कि शिक्षा के उद्देश्यो की पूर्ति हो सके।

शैक्षणिक प्रशासन के उद्देश्य—डाक्टर सैय्यदन ने शैक्षणिक प्रशासन के प्राप्य उद्देश्यों का सकेत करते हुए कहा है, "प्रशासक को ग्रब समझ लेना चाहिए कि उसका कार्य फाइलो का निबटारा करने, शिक्षण विधियो का पालने करने, तथा मानवीय सम्बन्धों को स्वस्थ बनाने तक ही सीमित नही है, उसको तो शैक्षिक विचारधाराग्रो को कार्य रूप मे परिणत करना है। उसका कार्य शैक्षणिक क्रिया ग्रौर शैक्षणिक सिद्धान्तो के बीच ग्रटूट सम्बन्ध नियोजन का है।"

शैक्षणिक प्रशासन का क्षेत्र—शैक्षणिक प्रशासन मे निम्नलिखित क्रियाग्रो का समावेश रहता है।

(१) समाज के उद्देश्यों, उसकी ग्रावश्यकताग्रो, जीवन दर्शन, परम्पराग्रो के ग्रनुकूल शिक्षा के उद्देश्यो को निर्णय करना।
(२) समाज के सभी सदस्यो के बच्चो के लिए कार्यक्रम की योजना तैयार करना।
(३) उपलब्ध होने वाले सभी साधनो को प्रयोग मे लाना।
(४) इन साधनो का समन्वय ग्रौर नियन्त्रण इस प्रकार करना कि सघर्ष ग्रौर ग्रप व्यय न हो।
(५) सम्पूर्ण शैक्षणिक प्रक्रिया की सफलता का मूल्याकन करना।

प्रजातन्त्र में शैक्षणिक प्रशासन के ग्राधारभूत सिद्धान्त—प्रजातन्त्र की सफलता उसके सदस्यो की क्षमताग्रो ग्रौर शक्तियो मे विश्वास कर, उसकी बुद्धि तथा मानसिक बल का ग्राश्रय लेकर कार्य की योजना बनाने ग्रौर उसको उन सबके सहयोग से उसे क्रियान्वित करने मे निहित रहती है। ग्रत प्रजातात्रिक शैक्षणिक प्रशासन की प्रक्रिया मे सभी को उसकी विफलता ग्रथवा सफलता के लिए उत्तरदायी समझा जाता है, सभी को समान ग्रधिकार मिलते हैं ग्रपनी शक्ति के ग्रनुसार कार्य करने के; सभी को पूर्ण स्वतन्त्रता होती है उद्देश्य तक पहुँचने की; सभी ग्रापसी भेदभावो को छोडकर सहयोग से कार्य करते है, सभी के साथ न्याय होता है, सभी की वैयक्तिक प्रतिभा को पूर्ण सम्मान मिलता है। ग्रत शैक्षणिक प्रशासन के ग्राधारभूत सिद्धान्त हैं:—

(१) उत्तरदायित्वो के विभाजन का सिद्धान्त
(२) समानता का सिद्धान्त
(३) स्वतन्त्रता का सिद्धान्त
(४) सहयोग का सिद्धान्त
(५) न्याय का सिद्धान्त
(६) वैयक्तिक प्रतिभा को मान्यता देने का सिद्धान्त

इन सिद्धान्तों के ग्रनुसार, प्रजातन्त्र मे ग्रास्था रखने वाला प्रधानाचार्य सारी शक्तियाँ ग्रपने मे ही केन्द्रित नहीं करता, वह उत्तरदायित्वो को ग्रौर नियन्त्रण को सभी मे विभक्त कर देता है। कुछ शक्तियो को ग्रपने साथियों को सौंप देता है ग्रौर यथासम्भव सभी क्रियाग्रो मे ग्रपने को पर्दे के पीछे रखता हुग्रा ग्रपने सहधर्मियो ग्रौर छात्रो को ग्रागे बढ़ने का प्रोत्साहन देता है।

वह ग्रपने साथियो को साथी समझता है ग्रपना दास नहीं मानता, वह किसी भी निर्णय को स्वय नहीं लेता, वह उनको समान ग्रधिकार देकर प्रशासन मे समान रूप से उत्तरदायी मानता है। वह बौस (Boss) नहीं होता बल्कि साथी होता है। उसके ग्रधीन ग्रध्यापक उसके सहयोगी होते हैं उसके नौकर नहीं होते।

ऐसे वातावरण मे रहने वाले व्यक्ति ग्रपनी शक्तियों ग्रौर प्रतिभाग्रो का उचित उपयोग करने के लिए स्वतन्त्र होते हैं। कोई प्रधानाचार्य ग्रपने साथियों के काम में बाधा नहीं डालता इस

---

1. Planning executing and appraising the educative process are cycle aspects of functional activity and provision must be made for their logical organisation, orientation, and coordination at local, state and national levels. —School Administration, Moehlman Arthur, B

भय से कि कही उनका साहस क्षीए न हो जाय । नियन्त्रित वातावरए मे रहने वाले अध्यापको में आत्मविश्वास की भी कमी हो जाती है और वे किसी निर्णय पर नहीं पहुँच पाते । स्वतन्त्रता के वातावरए मे रहने वाला प्रधानाध्यापक अथवा अध्यापक वर्ग विद्यालय की स्वस्थ शैक्षणिक नीतियो का स्वरूप स्थिर करने मे समर्थ होता है । इस वातावरए मे अध्यापको को प्रश्न पूछने, समालोचना करने, तथा अपने-अपने मत प्रगट करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है । शिक्षए विधि के अपनाने मे और उसके प्रयोग करने में अध्यापक को कोई बाधा नही पहुँचाई जाती है । इसी प्रकार छात्रों को भी उनके समुचित विकास के लिए यथासम्भव स्वतन्त्र वातावरए प्रस्तुत किया जाता है।

लेकिन कार्य करने की स्वतन्त्रता का अर्थ यह नहीं है कि सभी अपनी ढपली अपना राग अलापने की चेष्टा करते हो । यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति को अपने-अपने विचार प्रगट करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होती है फिर भी सभी मिलकर एक निर्णय पर पहुँचने का प्रयत्न करते हैं । आपसी सहायता तथा सहयोग से कार्य करते हुए वे शिक्षा के उद्द श्यों की पूर्ति करते हैं । जितना सहयोग अध्यापको और प्रधानाचार्य के मध्य होता है उतना सहयोग ही अध्यापको और छात्रो, अध्यापको तथा समाज के सदस्यों, स्कूल के सेवीवर्ग तथा निरीक्षको के बीच होता है ।

शिक्षए प्रक्रिया मे लगे सभी व्यक्तियो की व्यक्तिगत विशेषताओं को सम्मानित किया जाता है । प्रधानाचार्य अपने साथियो के घर की दशा तथा उनकी सास्कृतिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक विशेषताओं की जानकारी हासिल करके उनके व्यक्तित्व के अनुरूप कार्य देता है और उनकी सफलताओं पर उनको सम्मानित करता है ।[1]

Q 2. Keeping in view the guiding principles administration in a democracy, discuss the functions of the head of an institution

प्रजातन्त्र मे शैक्षिक प्रशासन के मूलभूत सिद्धान्तो को ध्यान मे रखकर किसी शैक्षणिक सस्था के प्रधान के कार्यों और जिम्मेदारियो को निम्नलिखित श्रेणियो मे विभक्त कर सकते हैं—

(अ) शैक्षिक नीतियों के निर्धारए मे अध्यापकों, छात्रों और समाज के अन्य सदस्यो, अभिभावको को भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करना ।

(ब) इन नीतियो के कार्यान्वियन में सभी के सहयोग को प्राप्त करना ।

(स) प्रशिक्षए विधियों में सुधार लाने के लिए अध्यापको को प्रेरएा देना ।

(द) छात्रो और अध्यापको के लिए शिक्षए सामग्री तथा अन्य साधनो की व्यवस्था करना ।

(य) प्रशिक्षए के परिएामो का मूल्याकन करके अपनी सफलता का अनुमान लगाना ।

(र) अध्यापक वर्ग के लिए कल्याएकारी सेवाओं का आयोजन करना ।

(अ) प्रजातान्त्रिक समाज व्यवस्था मे नीति निर्धारए की जिम्मेदारी समूह की होनी है, एक [illegible] मरो का [illegible] लाकर [illegible] प्रत्येक [illegible] यो का [illegible] न करें [illegible] निर्णय लेने मे उसका सहायता व । समूह पर निर्णय सत समय शासन न करे, वह सामूहिक निर्णय को मानने और उस पर कार्य करने के लिए प्रस्तुत रहे ।

(ब) नीतियों का कार्यान्वयन—प्रशासक की दूसरी जिम्मेदारी है निर्धारित नीतियो के अनुसार कार्य करने व कराने की । वह अध्यापको को सभी प्रकार की ऐसी सुविधाएं दे जिससे उनके कार्य मे कोई रुकावट न पड़े । शिक्षा के कार्यक्रम को वे सुचारु रूप से चला सकें इसके लिए

[illegible] ing on the administra- [illegible] with them to do their [illegible] recognition of all that

यह उचित वातावरण तैयार करे कोई कार्यक्रम तब तक सफलतापूर्वक संचालित नहीं किया जा सकता जब तक वह व्यक्ति जिसके हाथ मे बागडोर है कार्य करने की पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं देता। जब सब व्यक्ति अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार कार्य करने में लग जाते हैं, तब उस प्रशासक अथवा संचालक का काम तो उनके कार्यों का संगठित अथवा समन्वित करना मात्र रह जाता है।

शैक्षिक नीतियो का कार्यान्वियन सफलता से हो सकता है यदि प्रशासक सभी व्यक्तियों की कार्यप्रणाली का पर्यवेक्षण करने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले ले; निर्धारित नीति के अनुसार उचित समय पर कार्यवाही शुरू कर दे; जनता को अपनी नीति से अवगत कराके उससे भी पूर्ण सहयोग ले, सभी लोगो को उन नीतियो के अनुसार कार्य करने के लिए संगठित करले; और आवश्यकता पड़ने पर उनकी कार्यान्वियन मे पथप्रदर्शन एव सहायता भी करें।

(स) शिक्षण विधियों में संशोधन लाना—कौन सी शिक्षा विधि किस जगह छात्रों के लिए अधिक उपयोगी होती है इसका निर्णय बिना प्रयोग किए सम्भव नहीं है। अतः प्रशासन का शिक्षण विधियो मे सुधार लाने के उद्देश्य से अपने अध्यापको मे प्रयोगात्मक दृष्टिकोण विकसित करना होगा। उसे विद्यालय में ऐसा वातावरण तैयार करना होगा कि अध्यापक लोग मिल-जुल कर शिक्षा परिस्थितियो (teaching-learning situation) मे सुधार लाने का प्रयत्न करें।

(द) शिक्षणोपयोगी सामग्री का संगठन करना—विद्यालय के प्रधान को शिक्षण कार्य मे प्रयुक्त होने वाली सभी सामग्री का अपने साथियों के सहयोग से संचय करना चाहिए। पुस्तकालय हो या प्रयोगशाला, विद्यालय का फर्नीचर हो या विद्यालय चिकित्सालय का सामान, सभी के क्रय का उत्तरदायित्व सहयोगी अध्यापको पर होना चाहिए। उस सामान के क्रय का ही नहीं उसकी देखभाल और उचित उपयोग की जिम्मेदारी भी अध्यापकों पर ही होनी चाहिए।

(य) परीक्षा तथा मूल्यांकन का कार्य—प्रधानाचार्य को विद्यालय की विभिन्न श्रेणियो (Classes) मे पढ़ने वाले बालको की शैक्षणिक प्रगति का ज्ञान प्राप्त करने के लिए एक ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि सभी सहकर्मियो का सहयोग प्राप्त हो सके। मूल्याकन करते समय उसे परीक्षाफलो अथवा प्राप्ताको का ऐसा विश्लेषण करना चाहिए कि उसे यह पता चल जाय कि उसके छात्रो की शक्ताएं और अशक्तताएं क्या हैं, उन्होने पाठ्यवस्तु को किस सीमा तक सीखा है; पाठ्यवस्तु के किन-किन अशो को सीखने मे उनको कठिनाई रही है और उस कठिनाई को कैसे दूर किया जा सकता है। परीक्षण और मूल्यांकन का यह कार्य सभी के सहयोग से होना है।

अध्यापकों तथा अन्य कर्मचारियो के लिए कल्याण कार्य—चूँकि प्रधानाचार्य अपने साथियो का नेता होता है और नेतृत्व की सफलता उसके अनुगामियो अथवा सहकर्मियो की सन्तुष्टि और प्रसन्नता पर निर्भर रहती है इसलिए उसे उनके हितो की यथासम्भव रक्षा करनी चाहिए। उनकी अपनी वैयक्तिक समस्याओ को हल करने में सहायता करनी चाहिए।

Q. 3 How do you differentlation between school organisation and School administration ? What is the scope of educational administration ?

शिक्षालय प्रशासन और संगठन—शिक्षालय प्रशासन का अर्थ है विद्यालय के उद्देश्यो एव नीतियो के अनुकूल विद्यालय में शिक्षा की व्यवस्था करना। लेकिन विद्यालय मे शिक्षा की व्यवस्था क्या सगठन के बिना सम्भव है ? इसलिए प्रशासन का एक महत्वपूर्ण अग सगठन है। विद्यालय प्रशासन से हमारा प्रयोजन विद्यालय मे की जाने वाली शैक्षणिक प्रक्रिया के सचालन से होता है। विद्यालय सगठन से हमारा अभिप्राय होता है शैक्षणिक प्रक्रिया के संचालन मे सहायक साधनो का इकट्ठा करना और इन सभी भौतिक तथा मानवीय साधनो के बीच समन्वय स्थापित करना। इस प्रकार विद्यालय सगठन, विद्यालय प्रशासन का एक महत्वपूर्ण अग है, उससे पृथक कोई और तत्व नहीं है। शैक्षणिक प्रशासन की प्रक्रिया के दो पक्ष हैं—सगठन, तथा सचालन सम्बन्धी। उदाहरण के लिए किसी विद्यालय के लिए सुन्दर विशाल भवन का निर्माण कराना, उसमे उपयुक्त फर्नीचर का प्रबन्ध करना, विद्यालय के लिए अध्यापको की नियुक्ति करना, समय चक्र का निर्माण करना, क्रियाओं के लिए आवश्यक सामग्री तथा साजसज्जा का एकत्र करना सगठन के भौतिक तथा मानवीय साधनो का शिक्षण कार्य के लिए उचित प्रयोग करना, 1, उनको मार्गदर्शन देना, और बालक की शिक्षा का प्रबन्ध करना प्रशासन

उत्तम प्रशासन वही है जो सगठित किये हुये साधनो का उचित प्रयोग कर सके। अतः सगठन और प्रशासन दोनों ही सम्बन्धित क्रियाएँ हैं, दोनों की सफलता के लिए प्रशासक मे उच्च-कोटि की योग्यता होनी चाहिए। उच्चकोटि का प्रशासक भी असफल हो सकता है यदि उसे उचित प्रकार के मानवी और भौतिक साधन उपलब्ध न हो, साथ ही निकृष्ट कोटि के प्रशासक के अधीन अच्छे से अच्छे साधन नष्ट हो जाते हैं।

Q 4. Reorientation of educational administration has become of prime importance today."—Discuss.

भारतीय विद्यालयो मे प्रशासन की दशा—यद्यपि हमने राजनीति के क्षेत्र मे प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली को अपना लिया है फिर भी शिक्षा के क्षेत्र मे हमारे तौर-तरीके अ—प्रजातान्त्रिक हैं। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि हम सिद्धान्त मे कुछ कहते हैं और व्यवहार में कुछ करते हैं, शिक्षा के क्षेत्र मे 'हाथी के दाँत दिखाने के और खाने के और' वाली कहावत चरितार्थ हो रही है। हमारी प्रशासनिक व्यवस्था प्रजातन्त्र सिद्धान्तो—स्वतन्त्रता, लचीलेपन और समायोजनाशीलता—के विरुद्ध जा रही है। उसमे नियन्त्रण, कठोरता और केन्द्रीयता का अश अधिक है। न तो शिक्षा मे राष्ट्रीयता ही है और न आज का पढ़ा-लिखा व्यक्ति प्रजातन्त्र का अच्छा नागरिक ही बन पाता है।

शैक्षणिक पुनर्निमाण की योजनाएँ बनाई जाती हैं, केन्द्रीय तथा राज्यीय दोनो ही स्तरो पर, लेकिन वित्तीय कठिनाई अथवा उनके अनुचित कार्यान्वियन के कारण वे असफल हो जाती हैं। शैक्षणिक प्रशासन मे दूरदर्शिता की कमी के कारण हम अपने उद्देश्यों की पूर्ति नहीं कर पाते। कहा यह जाता है कि अमुक योजना के लिए धन की कमी है लेकिन हमे शैक्षिक कार्यक्रमो का उचित ढग से सचालित करना ही नही आता। यह काम तो तभी सम्भव है जब उच्च अधिकारियो के पास चिन्तन करने का समय हो। वे तो दैनिक कार्यों (routine) मे इतने लगे रहते हैं कि शिक्षा के क्षेत्र मे जो नई-नई समस्याएँ उठ खडी होती हैं उनकी ओर उनका ध्यान ही नही जाता। उनका हल ढूढने और उनका विश्लेषण करके निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने का अवकाश भी उन्हे नही है।

शैक्षणिक प्रशासन की समस्याओ (Problems of Educational Administration) की व्याख्या करते हुए डा० के० जी सैय्यदन कहते हैं कि हमारा शैक्षणिक प्रशासन अब भी मानसिक दासता के बधनो मे जकड़ा हुआ है उनमे स्वतन्त्र चिन्तन की क्षमता नहीं है उसका दृष्टिकोण भी गत्यात्मक नही है। यह गुण उसे ब्रिटिश शासनकाल से ही प्राप्त हुए हैं।[1]

यही कारण है कि शिक्षा के क्षेत्र मे अपव्यय की मात्रा बढ़ रही है। हम प्रजातान्त्रिक उद्देश्यो को स्थिर करते हैं। प्रायोग बिठाकर लाखो रुपया खर्च करके, लेकिन शिक्षा व्यवस्था में आमूल परिवर्तन लाने की हममे क्षमता नही है। हमारी शिक्षण सस्थाओं मे पुरानी प्रथाओ का पालन किया जाता है उनकी तर्क सगतता पर विचार किये बिना ही हममे प्रजातांत्रिक विधि से जीवन यापन करने की शक्ति अभी आई नही। प्रजातन्त्र की शिक्षा तो हमे मिली है किन्तु प्रजातान्त्रिक जीवन हमे नहीं मिल सका। हमने प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली को व्यवहार मे लाने का प्रयत्न ही नहीं किया। शायद उसके लिए वातावरण अभी तैयार ही नहीं हुआ।

जब तक हम प्रजातांत्रिक ढग से विद्यालयो का संगठन और सचालन नही करेंगे तब तक हम राष्ट्रीय उद्देश्यो की पूर्ति नही कर सकेंगे यदि हमारे बच्चे अपने विद्यार्थी जीवन मे प्रजातन्त्र को सफल बनाने के लिए आवश्यक गुण पैदा कर सकें जिनका विकास विद्यालय प्रशासक और सगठन के प्रजातान्त्रिक हुए बिना असम्भव है तो हमे स्मरण रखना चाहिए कि प्रजातन्त्र की रक्षा न हो सकेगी। यही कारण है कि शैक्षणिक प्रशासन के ढाँचे को बदले बिना काम नहीं चल सकता।

---

1. "During the British rule the foreign government was not interested in ... our people the qualities of free men ... [illegible]

supercimposed [illegible]

Q 5. Discuss the importance & need of school organisation in the new democratic set up of the Country.

Ans. भारत में विद्यालय संगठन और संचालन का कार्य १८४३ से अंग्रेजी शासकों को विद्यालय निरीक्षण की आवश्यकता का अनुभव होने पर आरम्भ हुआ। १२ वर्ष बाद १८५५ में सबसे पहला शिक्षा विभाग इस देश में स्थापित किया गया। इसके बाद ही व्यक्तिगत संस्थाओं का उदय हुआ और धीरे-धीरे उन्हें विश्वविद्यालयों या शिक्षा परिषदों के नियन्त्रण में लाने का प्रयत्न किया गया। यह अवस्था १९४७ तक बनी रही। अंग्रेजी शासन के अन्तिम दिनों में ६-११ वर्ष की आयु वाले केवल ३०% बालकों के शिक्षा की व्यवस्था थी और ११ वर्ष के बाद की आयु वाले व्यक्तियों के लिये तो शिक्षा का और भी कम प्रबन्ध था। पाठ्यक्रम में सकीर्णता और पाठ्य-सहगामिनी क्रियाओं का सर्वथा अभाव था। किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ही गत २० वर्षों में स्कूल और कालेजों की संख्या में आशातीत वृद्धि हो गई है। अब नये-नये विद्यालय भवनों का निर्माण हो चुका है; प्रत्येक स्तर पर पाठ्यक्रम को विस्तृत और व्यापक बना दिया गया है, प्रति वर्ष हजारों अध्यापकों के प्रशिक्षण करने की सुविधाएँ पैदा कर दी गई हैं। इस समय देश में लगभग ३७०,००० स्कूल और कालेज, ३,५०,००,००० विद्यार्थी, २,००,००० अध्यापक और अन्य सेवि शिक्षा कार्य कर रहे हैं। विधान ने ६-१४ वर्ष के बालकों की शिक्षा का बीड़ा अपने ऊपर ले लिया है। स्कूलों की व्यवस्था को कुशलतापूर्वक चलाने और उनके प्रबन्ध को अच्छी तरह निभाने की आवश्यकता सभी को अनुभव होने लगी है।

देश में प्रजातन्त्र के स्थापित हो जाने पर प्रशासक का महत्व और भी बढ़ गया है। राष्ट्र को योग्य शैक्षणिक प्रशासकों की जरूरत है। जनतन्त्रात्मक नियन्त्रण में वैसे ही योग्य, अनुभवी एवं सदाचारयुक्त प्रशासकों की आवश्यकता होती है जैसे कि अन्य विभागों में। शैक्षणिक और सार्वजनिक अनुशासन में साम्य अधिक है अन्तर कम।

शैक्षणिक प्रशासक का सम्बन्ध एक ओर होता है शिक्षा-कार्य में भाग लेने वाले मानव से, दूसरी ओर भौतिक सामग्री से। वस्तुत. उसका सम्बन्ध मनुष्य से अधिक है पदार्थों से कम। अत शैक्षणिक प्रशासन सामाजिक कार्य माना जाता है क्योंकि उसका सम्बन्ध समाज की भिन्न-भिन्न इकाइयों शिशु, बालक, किशोर, प्रौढ़ व्यक्तियों की शिक्षा से रहता है। उदाहरण के लिए अध्यापक, प्रधान अध्यापक या शिक्षा निरीक्षक को एक ओर तो बालकों और उनके अभिभावकों, अध्यापकों तथा अन्य सेवियों, स्थानीय संस्थाओं के कर्मचारियों और अफसरों और राज्यीय और केन्द्रीय कर्मचारियों से सम्बन्ध रखना पड़ता है दूसरी ओर धनराशि, भवन, विद्यालय भूमि, साज-सज्जा आदि की उचित व्यवस्था करनी पड़ती है। यदि राष्ट्र चाहता है कि मानव और भौतिक पदार्थों का विनाश और अपव्यय न हो, तो उसे अपने स्कूलों की व्यवस्था और प्रबन्ध उचित प्रकार से करना होगा। इसके अलावा उसे शिक्षा नीति का निर्धारण भी करना होगा। उसे यह देखना होगा कि किस दर्शन का सहारा लेकर किस प्रकार का पाठ्यक्रम निश्चित करें, शिक्षण की कैसी पद्धतियाँ अपनावें, जिससे समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति होकर उसकी उन्नति और विकास हो सके।

आधुनिक स्कूलों के प्रधान अध्यापकों का प्रशासन सम्बन्धी कार्य पहले से बहुत जटिल हो गया है क्योंकि माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्यों में परिवर्तन और केन्द्रीय सरकार की ओर से नई-नई योजनाओं के प्रसारित होने के फलस्वरूप माध्यमिक शिक्षा का स्वरूप ही बदल चुका है। माध्यमिक स्कूलों की संख्या में आशातीत वृद्धि का अर्थ है स्कूलों में भिन्न भिन्न सामाजिक और आर्थिक अवस्था वाले व्यक्तियों का उनमें प्रवेश। अब इन स्कूलों में जो जनसमुदाय उमड़ कर आ रहा है उसकी रुचियों, अभिवृत्तियों, मानसिक स्थितियों में आश्चर्य पैदा करने वाली विभिन्नताएँ दिखाई देती हैं। माध्यमिक शिक्षा का उद्देश्य विश्वविद्यालयीय शिक्षा की तैयारी करना इतना अधिक नहीं रहा जितना कि १९४७ से पूर्व था, वह अब अपने विद्यार्थियों में सामाजिक कौशल (Social efficiency), आत्मनिर्भरता, भावी जीवन में व्यवसाय लिये जाने वाले क्षेत्र में निपुणता पैदा करने में लग गई है। बालकों की वैयक्तिक विभिन्नताओं को ध्यान में रखकर उनके पाठ्यक्रम में व्यापकता और विभिन्नता उत्पन्न करना चाहती है। १९५२-५३ के माध्यमिक शिक्षा आयोग ने बहुत से विद्यालयों को बहुद्देशीय स्कूलों में बदलने की सिफारिश कर दी है और द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त तक १९६१-६२ में ६१७ ऐसे विद्यालयों की स्थापना हो चुकी है।

हाईस्कूल स्तर पर भिन्न-भिन्न प्रकार के पाठ्यक्रमों के प्रदान करने की सुविधा के साथ-साथ शैक्षणिक और व्यावसायिक मार्ग निर्देशन की आवश्यकता अनुभव होने लगी है। अब यह महसूस किया जाने लगा है कि अध्यापक के मार्ग निर्देशन में कौशल पर बहुत से बालकों के जीवन का सुख-दुःख निर्भर रहता है। यदि उन्हें उचित मार्ग निर्देशन (Guidance) मिल गया तो उनका जीवन सदैव के लिये सुखी हो जायगा अन्यथा उनका जीवन भार स्वरूप बन सकता है।

वर्तमान शिक्षण पद्धतियों की कमियों को भी दूर करना है। यह कहा जाता है कि वे बालकों में स्वतन्त्र रूप से सोचने की योग्यता पैदा नहीं करती अतः ऐसी प्रगतिशील शिक्षण प्रणालियाँ अपनानी हैं जो बालकों में कार्य करने की अच्छी आदतों का निर्माण कर सकें। शिक्षण प्रणालियों से सम्बद्ध परीक्षा प्रणाली में भी परिवर्तन उपस्थित करने हैं। अन्य उन्नतिशील देशों में प्रचलित नवीन विचारधाराओं को भी शिक्षालय व्यवस्था में स्थान देना है। विद्यार्थियों की डाक्टरी परीक्षा (medical inspection), उनके घर के वातावरण का निरीक्षण, लूले, लगड़े, पगु एव विकलाग बालकों की विशेष शिक्षा की सुविधा की ओर भी प्रधान अध्यापक का ध्यान जाना है।

संक्षेप में आज के शिक्षा प्रशासक का कार्य आज से ६५ वर्ष पहले के शिक्षा प्रशासक से अधिक बढ़ गया है।

उसे मानव सामग्री को स्कूलों, कक्षाओं, समितियों और अध्यापकों के रूप में संगठित करना है, भौतिक सामग्री को शिक्षालय भवनों, साज-सज्जाओं, पुस्तकालयों आदि के रूप में एकत्र करना है, नवीनतम शैक्षणिक विचारों और सिद्धान्तों को पाठ्यक्रमों, समय-चक्रों, परीक्षा प्रणालियों में समाविष्ट करना है। इस प्रकार शिक्षालय व्यवस्था और सगठन का कार्य पहले से अधिक कठिन और दुरूह हो गया है।

आज विद्यालय प्रबन्ध की समस्या जटिल होने के कई कारण उपस्थित हो गए हैं—

(१) विद्यार्थियों की संख्या में वृद्धि।
(२) स्कूल के कार्यक्षेत्र में विस्तार, नये नये विषयों का पाठ्यक्रम में स्थान, पाठान्तर-क्रियाओं की महत्ता, नई-नई शिक्षण प्रणालियों का प्रयोग।
(३) माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्यों की वृद्धि।
(४) तकनीकी, कृषि सम्बन्धी तथा इंजीनीयरिंग से सम्बन्ध रखने वाले पाठ्यक्रम के माध्यमिक शिक्षा में आ जाने से उनके लिये जगह, कक्षा, लेबोरेटरीज, फर्नीचर आदि की व्यवस्था।
(५) आधुनिकतम मनोवैज्ञानिक खोजों, बुद्धि परीक्षाओं, योग्यता परीक्षाओं का प्रयोग।
(६) विद्यालय की समाज के प्रति उत्तरदायित्वों में वृद्धि।

अतएव शिक्षालयों का सगठन और सचालन अत्यन्त कठिन कार्य हो गया है। विद्यालय व्यवस्था और सचालन अब तभी सफल माना जा सकता है जब वह न केवल अपने विद्यार्थियों के शरीर अथवा मस्तिष्क का ही विकास करे वरन् उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन, व्यवहार में कौशल, आदतों में स्वच्छता, चरित्र में निर्मलता भी उत्पन्न कर सके।

विद्यालयों के संगठन और सचालन का क्षेत्र[1]

यदि हमें विद्यालयों का सगठन और सचालन ठीक प्रकार से करना है तो निम्नलिखित विषयों पर ध्यानपूर्वक विचार करना होगा :—

(१) भिन्न भिन्न-स्तरों के विद्यालयों का वर्गीकरण, उन पर केन्द्र, राज्य और स्थानीय निकायों का अधिकार, उनके पाठ्यक्रम तथा उद्देश्य।
(२) शिक्षण सम्बन्धी सुविधायें, इमारत, फर्नीचर, कक्षा का आकार।
(३) शिक्षक वर्ग—उनकी योग्यता, चुनाव, कर्तव्य और जिम्मेदारियाँ, प्रधानाध्यापक, उसके कर्त्तव्य और जिम्मेदारियाँ, उनके और अध्यापकों के बीच सम्बन्ध, शिक्षकों के कार्य का विवरण।

---

1. See Agra University ordinances, statutes and regulations B. T. Exam. 1962-63

(४) उनके कार्यों का समायोजन।

(५) समय चक्र—विषयों का प्रबन्ध और सन्तुलन, स्थानीय आवश्यकताओं और माँगो की पूर्ति।

(६) विद्यार्थियों का वर्गीकरण तथा उन्नति—भिन्न-भिन्न विषयों में भिन्नात्मक समय पर उन्नति मापन करने की विधियाँ, कक्षोन्नति के आलेखपत्र, परीक्षाओं का सचालन।

(७) अनुशासन—अर्थ, सच्चा और झूठा अनुशासन, स्वशासन, दण्ड और पारितोषिक।

(८) छात्रावास—शारीरिक और नैतिक विकास, पर्यवेक्षण, छात्राओं के छात्रावासों की समस्याएँ।

(९) खेल—लड़के और लड़कियों के खेलों की व्यवस्था, टूर्नामेंट आदि के लाभ और हानियाँ, खेल का मैदान, शारीरिक व्यायाम, स्कूल के समय के भीतर ही उनका प्रबन्ध।

(१०) पाठ्यक्रम सहगामिनी क्रियाएँ—इन क्रियाओं का सचालन तथा उपयोगिता, स्वशासन, सहकारी उपभोक्ता भण्डार, स्काउटिंग और गर्ल गाइडिंग, समाज सेवा आदि विधियाँ जो विद्यालय के सामूहिक जीवन के लिये आवश्यक हैं।

(११) पुस्तकालय और सग्रहालय।

(१२) अभिभावक सहयोग—विद्यालय, घर और समुदाय के बीच सम्बन्ध, अभिभावकों का सहयोग प्राप्त करने की विधियाँ, भूतपूर्व विद्यार्थियों के साथ सम्पर्क, समाजसेवा कार्य।

(१३) निरीक्षण—निरीक्षण में साधारण कमियाँ, निरीक्षण के गुण, स्कूल के रजिस्टर और चिट्ठे।

विद्यालय की सफलता और समाज हेतु उसकी उपयोगिता के लिये प्रथम आवश्यक वस्तु कुशल संचालन और सगठन है। इसके बिना विद्यालय जनतन्त्र की उचित सेवा नहीं कर सकता। प्रस्तुत भाग में उपरिलिखित इन १३ विषयों का विवेचन किया जायगा।

"Without efficient organisation a huge plant may become a splendid mausoleum of the hopes and opportunities of youth With efficient administration a tumble-down brikery may become a temple of culture, service and democracy."

अध्याय २

शैक्षिक प्रशासन-विभिन्न स्तर

(Different Levels of Educational Adminisration)

Q 1 Discuss the relative importance of the centre, the state and the local bodies in the administration of country's schools.

Ans भारतीय शिक्षा सचालन तीन स्तरो पर होता है—केन्द्रीय, राज्यीय और स्थानीय। यद्यपि सन् १९२१ से ही शिक्षा को राज्य का विषय मान लिया गया है तब भी उच्च स्तर पर मानदण्डो को स्थिर रखने और शिक्षा सुविधाओ को समन्वित करने के लिए राष्ट्र ने केन्द्रीय सरकार को कुछ कार्य सौंप दिये हैं। स्थानीय सस्थाओ जैसे म्युनिसिपल बोर्ड और जिला बोर्डों को भी प्राथमिक शिक्षा के नियन्त्रण का भार सौंपा गया है। इस प्रकार भारतीय शिक्षा तीन स्तरो पर नियन्त्रित की जाती है।

केन्द्रीय सरकार—१९४७ से केन्द्र मे शिक्षा मत्रालय की स्थापना हो चुकी है। केन्द्र के शिक्षा मन्त्री का कथन है राष्ट्रीय शिक्षा नीति का निर्धारण और भिन्न-भिन्न राज्यो मे शिक्षा के ढाँचे मे सादृश्यता लाना। आवश्यकता पडने पर उसकी सहायता के लिये १ या २ उपसचिवो की नियुक्ति करली जाती है। शिक्षामन्त्री की प्रशासकीय कामो मे सहायता पहुँचाने के लिए अथवा शिक्षा सम्बन्धी मन्त्रणा देने के लिये ऐजूकेशनल एडवाइजर की नियुक्ति की जाती है। मत्रालय के इस समय निम्नलिखित विभाग हैं—

(१) प्रारम्भिक और बेसिक शिक्षा
(२) माध्यमिक शिक्षा
(३) उच्च शिक्षा और यूनेस्को
(४) हिन्दी
(५) समाज शिक्षा और समाज कल्याण
(६) शारीरिक शिक्षा और मनोरंजन
(७) छात्रवृत्तियाँ
(८) प्रशासन

केन्द्रीय शिक्षा परामर्श परिषद् (Gentral Advisory Board of Education), अखिल भारतीय माध्यमिक शिक्षा परिषद् (All India Council for Secondary Education), विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, केन्द्रीय सामाजिक कल्याण परिषद्, और प्रारम्भिक शिक्षा के लिये अखिल भारतीय परिषद्, शिक्षा मत्रालय को परामर्श देते हैं।

शिक्षा के क्षेत्र मे केन्द्रीय सरकार के निम्नलिखित कार्य हैं—

(१) अखिल भारतवर्षीय दृष्टिकोण से शिक्षा-पुनर्संगठन की साधारण नीति का निर्धारण, यूनेस्को और विदेशी राष्ट्रो के साथ सास्कृतिक सम्बन्धो की रक्षा, पहाडी जातियो, अनुसूचित वर्ग वालो के लिये छात्रवृत्तियाँ प्रदान करना, विदेश में अध्ययन करने वाले भारतीय विद्यार्थियो के हित की रक्षा करना आदि कार्य केन्द्रीय सरकार को करने पड़ते हैं।

(२) वह राज्य की सरकारो के कार्यों को समन्वित करने, उनको उचित परामर्श देने, और राष्ट्र की शिक्षा सम्बन्धी प्रगति का उन्हें ज्ञान कराने का कार्य भी करती है।

(३) सघीय उपनिवेशो की शिक्षा व्यवस्था, केन्द्रीय विश्वविद्यालयो की शिक्षा क सचालन भी केन्द्र के हाथ मे है।

(४) जल, थल और वायु सेना की शिक्षा का उत्तरदायित्व भी केन्द्र पर है।

(५) राज्यीय सरकारो एव विश्वविद्यालयों के लिए उचित अनुदान देने का कार्य भ इसी को करना है।

राज्यीय सरकार—सन् १६२१ से राज्य की शिक्षा राज्य के द्वारा ही सचालित होत है। प्रत्येक राज्य मे एक शिक्षामन्त्री रहता है जो राज्य की शिक्षा नीति का निर्धारण करता है वह राज्य के शिक्षा विभाग का प्रधान व्यक्ति होता है। शिक्षा विभाग के निम्नलिखित काय होते हैं—

(१) राज्य की शिक्षा का नेतृत्व करना।
(२) राज्यीय विधान सभा को शिक्षा सम्बन्धी विधान पर परामर्श करना।
(३) शिक्षा सम्बन्धी क्रियाओ का समन्वय।
(४) राज्य की शिक्षा सम्बन्धी योजनाओं का मूल्याकन।
(५) व्यक्तिगत सस्थाओ एव स्थानीय निकायो को शिक्षा के लिये आर्थिक सहायता देना
(६) शैक्षणिक समस्याओ को हल करने के लिये शोध कार्य करवाना।

शिक्षा विभाग के दो उपविभाग इन कार्यों को सम्पादित कराने के लिये नियत किये गये हैं।

(i) Secretariate of Education.
(ii) Directorate of Education.

शिक्षा उपसचिव पहले का और शिक्षा सचालक दूसरे विभाग का प्रधान होता है। प्रत्येक राज्य कई division मे विभाजित रहती है जिनके प्रधान सहायक उप शिक्षा सचालक होते है। प्रत्येक डिवीजन के कई जिले होते हैं। प्रत्येक जिले की शिक्षा की प्रगति उसका शिक्षा निरीक्षण (District Inspector of Schools) करता है। वह सब प्राइमरी विद्यालयो और समाज शिक्षा केन्द्रो का पर्यवेक्षण करता है। सब प्राइमरी और माध्यमिक स्कूलो का निरीक्षण करता है।

राज्य की सरकार अपने राज्य की माध्यमिक शिक्षा को पूरी तरह नियन्त्रण मे रखती है। स्कूलो को मान्यता देना, स्कूलो के सचालन एव सगठन सम्बन्धी नियमो की सूची तैयार करना, व्यक्तिगत सस्थाओ के लिये अनुदान निश्चित करना, पाठ्यक्रम और पाठ्य-पुस्तको को निश्चित करना आदि कार्य राज्य के हाथ मे रहते हैं। कुछ राज्यो को छोडकर सभी राज्यो में हाईस्कूल परीक्षा का सचालन राज्य के सरकारी कर्मचारियो के हाथ मे रहता है। इसके लिए एक परिषद् रहती है जो परीक्षा व्यवस्था के अतिरिक्त पाठ्यक्रम, पाठ्य-पुस्तकें, आदि को भी निश्चित करती है।

२२% माध्यमिक स्कूलो का प्रबन्ध राज्य की सरकार द्वारा, २३% स्थानीय बोर्डों द्वारा और ४५% व्यक्तिगत सस्थाओ द्वारा होता है। व्यक्तिगत सस्था भी दो प्रकार की हैं। अनुदान प्राप्त और स्वतन्त्र।

राज्य मे शिक्षा विभाग के कर्मचारियों का स्पष्टीकरण निम्न चार्ट द्वारा किया जा सकता है :—
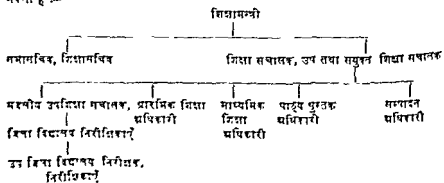
शिक्षा संचालक—शिक्षा विभाग का यह स्थायी कर्मचारी शिक्षा सचिव और शिक्षामंत्री को परामर्श देता है। इस विभाग के बजट, नियुक्ति एवं स्थानान्तरण सम्बन्धी प्रस्ताव इसी अधिकारी द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं। यह स्थायी रूप से लखनऊ में निवास करता है। यद्यपि उसका प्रधान कार्यालय प्रयाग में है। प्रयाग में उसका सहायक संयुक्त शिक्षा संचालक रहता है, इसके अतिरिक्त ४ उप शिक्षा संचालक और होते हैं। उपशिक्षा संचालक (सर्विसेज) शिक्षा विभाग के Non gazetted कर्मचारियों की अस्थायी नियुक्ति, पदोन्नति और स्थानान्तरण करने में संयुक्त शिक्षा संचालक की मदद करता है। उपशिक्षा संचालक (अर्थ विभाग) विभाग सम्बन्धी आय-व्यय का विवरण प्रस्तुत करता है और शिक्षण संस्थाओं को वार्षिक अनुदान देता है। उपशिक्षा संचालक (सामान्य विभाग) लोकल बोर्ड और प्रारम्भिक शिक्षा की देखभाल करता है। उपशिक्षा संचालिका बालिकाओं की शिक्षा की सुविधा की व्यवस्था करती है। उपशिक्षा संचालक (प्रशिक्षण) के शिक्षण केन्द्रों में सुधार लाने का प्रयत्न करता है।

उत्तर प्रदेश को ७ मन्डलों में विभक्त कर दिया गया है। प्रत्येक मण्डल की देख-रेख और नियन्त्रण के लिए एक मण्डलीय उपशिक्षा संचालक की नियुक्ति की गई है। मेरठ, आगरा, बरेली, इलाहाबाद, वाराणसी, गोरखपुर और लखनऊ इन उपशिक्षा संचालकों के केन्द्र हैं। ये उपशिक्षा संचालक अपने अपने अधीन कर्मचारियों, जिला, मण्डलीय, एवं नगरपालिका के शिक्षा सम्बन्धी कार्यों का निरीक्षण, मण्डल के विद्यालयों का निरीक्षण, अपने अधीनस्थ कर्मचारियों की नियुक्ति और स्थानान्तरण, अपीलों की सुनवाई, शिक्षकों एवं व्यवस्थापकों के झगड़ों का निबटारा नार्मल स्कूलों में अध्यापकों का चुनाव, विद्यालयों के आवर्तक अनुदान की व्यवस्था करते हैं।

स्थानीय निकाय (Local bodies)

स्थानीय निकायों का सम्बन्ध उच्च शिक्षा से बिलकुल नहीं है और माध्यमिक शिक्षा में उनका हाथ २५% ही है किन्तु प्राथमिक शिक्षा का सबसे अधिक भार उन्हीं पर है, जैसा कि नीचे की अंकित सामग्री से पता चल सकता है।

(१) राज्य २२%
(२) जिला परिषद् ४६%
(३) म्यूनिसिपल बोर्ड ४०%
(४) व्यक्तिगत संस्थायें २६%
(५) स्वतन्त्र व्यक्तिगत संस्थायें २%

स्थानीय निकाय अपने school boards के माध्यम से अपने स्कूलों का प्रबन्ध करते हैं। वे व्यक्तिगत संस्थाओं से स्कूलों को मान्यता और यथासम्भव आर्थिक सहायता भी देते हैं। उनकी अपनी योजनायें होती हैं। कुछ राज्यों में प्राथमिक शिक्षा स्थानीय निकायों और राज्यीय सरकार की संयुक्त जिम्मेदारी है।

प्रत्येक डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में एक स्कूल बोर्ड होता है जिसके सदस्यों का चुनाव जिले से होता है। इसके दो सदस्य सरकार के नोमिनी होते हैं। बोर्ड का प्रशासन करने वाला प्रमुख अधिकारी सरकार द्वारा नियुक्त होता है।

म्यूनिसिपल बोर्ड दो तरह के हैं--एक तो वे जिनका प्राथमिक शिक्षा पर वार्षिक व्यय १ लाख रुपये से कम नहीं होता दूसरे जिनका व्यय इससे कम होता है। पहली प्रकार की म्यूनिसपैल्टियाँ अधिकृत और दूसरी अनधिकृत कहलाती हैं। डिस्ट्रिक्ट स्कूल बोर्ड की अपेक्षा अधिकृत म्यूनिसपैल्टियों के अधिकार विस्तृत होते हैं। वह अपने बजट को स्वयं सैंक्शन करती हैं, अपने उच्चपदीय अधिकारी भी स्वयं ही नियुक्त करती हैं। अधिकृत म्यूनिसिपैल्टी के भीतर प्राथमिक शिक्षा की जिम्मेदारी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की होती है।

Q 2 Discuss the place of different grades of schools in national system of Education

१९४७ के बाद उत्तर प्रदेश के सभी प्रारम्भिक स्कूल बेसिक स्कूल बना दिए गए हैं। प्रबन्ध और संचालन की दृष्टि से सब बेसिक विद्यालय ४ प्रकार के हैं—

(१) सरकारी बेसिक पाठशालायें
(२) म्यूनिसिपल बोर्ड की बेसिक पाठशालाएँ

(३) जिलाबोर्ड की बेसिक पाठशालायें
(४) जनता द्वारा संचालित बेसिक पाठशालायें

१९४७ से पहले नार्मल स्कूलो से सम्बद्ध माडल पाठशालायें ही सरकार द्वारा संचालित होती थी किन्तु जब सरकार ने सभी प्राथमिक पाठशालाओं को बेसिक पाठ्यक्रम अपनाने और प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य तथा निःशुल्क करने का इरादा किया तब उसने सन् १९५० तक ११,५५० बेसिक पाठशालायें खोलकर अपनी इस उदार नीति का परिचय दिया। वह तो प्रत्येक मील पर एक बेसिक पाठशाला खोलना चाहती थी किन्तु धनाभाव के कारण ऐसा न कर सकी। सन् १९५० में यह भार म्यूनिसिपैल्टियो पर डाल दिया गया। गाँवों मे बेसिक पाठशालाओं के प्रबन्ध और सचालन की जिम्मेदारी जिलाबोर्डों को सौंप दी गई। अब इस समय दो प्रकार की पाठशालायें हैं।

(१) म्यूनिसिपल बोर्ड की बेसिक पाठशालायें
(२) जिलाबोर्ड की बेसिक पाठशालायें

म्यूनिसिपल बोर्डों की बेसिक पाठशालायें शिक्षा विभाग के सभी नियमो का पालन करती हैं और उनके सचालन के लिये म्यूनिसपैल्टी स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार नियम भी चलाती है। अपने ही निरीक्षको द्वारा निरीक्षण कार्य कराती है। शिक्षा विभाग के जिला निरीक्षक तथा उपनिरीक्षक भी समय-समय पर इन स्कूलो का निरीक्षण कर सकते हैं।

जिस प्रकार म्यूनिसिपल बोर्ड की स्थापित बेसिक पाठशालाओं का सचालन और उत्तरदायित्व म्यूनिसिपल बोर्ड पर ही रहता है उसी प्रकार जिलाबोर्ड की पाठशालाओं का सचालन जिलाबोर्ड के चेयरमैन पर रहता है। उसकी सहायता के लिए एक शिक्षा समिति होती है जिसका एक सभापति होता है। यह समिति जिला बोर्ड को अपने अधीन सब स्कूलों के सम्बन्ध में शिक्षा सम्बन्धी परामर्श देती है। जनता द्वारा सचालित बेसिक पाठशालायें—सन् १९४७ से पूर्व शहरों तथा गाँवो को जनता द्वारा सचालित सभी प्राथमिक पाठशाला भी बेसिक पाठशालाओ में बदल दी गई हैं। व्यक्तिगत हाईस्कूलो की प्राथमिक कक्षायें उनसे अलग कर दी गई हैं। इन पाठशालाओ का सचालन प्रत्येक पाठशाला की कार्यसमिति करती है। इस कार्य समिति पर अध्यापको की नियुक्ति, आय-व्यय क[illegible] रहता है। पूरे व्यय का ५०% [illegible] या अन्य साधनो से होता है [illegible] विभाग नियन्त्रण करता है। अध्यापको की नियुक्ति, वेतन-क्रम तथा छुट्टियाँ, पाठ्यक्रम तथा पुस्तकों का चुनाव, विद्यार्थियो के शुल्क की दर तथा विभिन्न मदो मे व्यय आदि सभी बातों मे शिक्षा विभाग के नियमों का सहारा लेना पडता है।

जूनियर हाईस्कूल—बेसिक प्राइमरी स्कूलो की पाँचवी कक्षा पास करने के बाद विद्यार्थी जूनियर हाईस्कूल की छटवी कक्षा मे प्रवेश करते हैं। इन विद्यालयो मे ८ विषयो की शिक्षा देने की व्यवस्था की गई है—हिन्दी, गणित, सामाजिक विषय, सामान्य विज्ञान, शारीरिक शिक्षा, तथा शिल्प अनिवार्य है। अंग्रेजी और हिन्दी को छोड़कर एक आधुनिक भाषा प्राचीन भाषा, सगीत, कामर्स तथा आर्ट मे से कोई २ विषय पढने पडते हैं। पाठ्य विषयो मे कृषि और शिल्प का विशेष स्थान है। ८ वी कक्षा पास करने के बाद विद्यार्थियो को प्रमाणपत्र दिया जाता है।

जूनियर हाईस्कूलो का प्रबन्ध राज्य, स्थानीय बोर्ड, अथवा जनता द्वारा किया जाता है। इनकी मान्यता जिला विद्यालय निरीक्षक से प्राप्त की जाती है और पाठ्यक्रम शिक्षा विभाग से निर्धारित होता है। बालक और बालिकाओं के लिये पाठ्यक्रम लगभग एक सा ही है। बालिकाओं के लिये गृह विज्ञान का प्रबन्ध गणित के स्थान पर किया गया है। १९५६ से छटवी कक्षा तक शिक्षा निःशुल्क कर दी गई है।

माध्यमिक शिक्षालय—

माध्यमिक विद्यालय दो प्रकार के हैं—हाई स्कूल और इन्टरमीडियेट कालेज। ये ४ [illegible] की शिक्षा देते हैं—साहित्यिक, कलात्मक, रचनात्मक, वैज्ञानिक। विद्यार्थी इन चार वर्गों में किसी एक वर्ग को इच्छानुसार चुन सकता है। विषयो के इस चुनाव मे सहायता देने के लिये [illegible] जिला मनोविज्ञान शिक्षक District Psychologist नियुक्त किया गया है।

व्यवस्था के अनुसार माध्यमिक विद्यालयो को दो भागो मे बाँटा जा सकता है—राजकीय और जनता द्वारा सचालित। हाईस्कूलो की छठी, सातवी और आठवीं कक्षाओ का पाठ्यक्रम जूनियर हाई स्कूलो की तरह होना है। नवीं से लेकर १२ वी कक्षा तक का पाठ्यक्रम माध्यमिक शिक्षा परिषद द्वारा निर्धारित किया गया है। हमारी सरकार कुछ दिनो से ११ वी कक्षा हाईस्कूल मे मिलाकर उसे हायर सैकण्डरी स्कूल तथा १२ वी कक्षा को कालेज में मिलाकर त्रिवर्षीय डिग्री कोर्स मे रखना चाहती है किन्तु अभी यह व्यवस्था कार्यान्वित नही हो पा रही है।

Q 3. Discuss the role of the Central Government in the administration of education

वर्तमान स्थिति—भारतीय सविधान ने केन्द्र को निम्नलिखित सभाओ के सचालन और प्रशासन की जिम्मेदारी सौंपी है।

सघ सूची—(१) लोक सभा द्वारा घोषित राष्ट्रीय महत्व की सस्थाएं, हिन्दू विश्वविद्यालय बनारस, दिल्ली विश्वविद्यालय तथा अलीगढ मुस्लिम विद्यालय।

(२) भारतीय सरकार द्वारा सचालित वैज्ञानिक तथा तकनीकी शिक्षा की सस्थाएं जिनका भारत सरकार आशिक अथा पूर्णरूपेण व्यय वहन करती है।

(३) सघ की वे सस्थायें जिनको पेशेवर व्यावसायिक तथा तकनीकी प्रशिक्षण के लिए स्थापित किया गया है, अथवा विशिष्ट अध्ययन और शोधकार्य के लिए स्थापित किया है अथवा अभियोग के अन्वेषण में सहायक तकनीकी और वैज्ञानिक सहायक सस्थाओं का सचालन केन्द्र पर।

तीसरी सूची—श्रमिकों की व्यावसायिक तथा तकनीकी शिक्षा।

केन्द्र को सौंपी जा सकने वाली अन्य जिम्मेदारियाँ :—

इन सब जिम्मेदारियो के अतिरिक्त केन्द्र की अन्य जिम्मेदारियाँ नीचे दी जाती हैं :—

(क) अध्यापको का दर्जा ऊँचा उठाना तथा उनके प्रशिक्षण का कार्य करना।
(ख) कृषि, इन्जीनियरिंग और चिकित्सा के क्षेत्र में आवश्यक जनशक्ति की योजना तैयार करना।
(ग) छात्रवृत्तियो के वितरण का कार्यक्रम तैयार करना।
(घ) अन्तर्राष्ट्रीय विभेदो को दूर करते हुए जनता के लिए समान शैक्षिक अवसरों की आयोजना बनाना।
(ङ) सविधान द्वारा निर्णीत अनिवार्य और नि शुल्क शिक्षा का प्रबन्ध करना।
(च) माध्यमिक शिक्षा का व्यवसायीकरण।
(छ) शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाना।
(ज) उच्च शिक्षा तथा शोध कार्य की प्रगति मे सहयोग देना।
(झ) कृषि और उद्योगो मे पेशेवर शिक्षा का विकास करना।
(ञ) वैज्ञानिक शोध तथा शैक्षिक कार्यों मे सहायता देना।

केन्द्रीय नेतृत्व—जब तक केन्द्रीय सरकार शिक्षा के विकास के लिए उचित नेतृत्व, [illegible]

क्षेत्र मे अतुलनीय सहयोग प्रदान कर सकता है।

केन्द्रीय शैक्षिक प्रशासन—केन्द्रीय तथा राज्यीय स्तरों पर शिक्षा के प्रशासन की बागडोर लेने का अर्थ होगा। अखिल भारतीय स्तर पर ऐसी सेवाओ का निर्माण जो इण्डियन एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विसेज के समकक्षी हों। राज्य के उच्चतम शिक्षा अधिकारियो के प्रशिक्षण के लिए

में पनप न सकेगी। शिक्षा जैसे क्षेत्र में जहाँ प्रयोग—त्रुटि और प्रयास से सीखने की सम्भावना है जहाँ व्यवस्था का लचीलापन ही सफलता प्राप्त कर सके, केन्द्र द्वारा स्थापित कठोरता शोभा नहीं देगी।

यदि शिक्षा के क्षेत्र में उन्नति करनी है तो केन्द्र और राज्य दोनों की साझीदारी सफल हो सकती है, केन्द्र का एकाधिकार नहीं। यदि केन्द्र और राज्य दोनों मिलकर काम न कर सकें तो कुछ समय बाद संविधान में संशोधन किया जा सकता है।

Q. 5 Describe the special features of educational Administration at state lavel What suggestions have you to make adminstration at the lavel ?

राज्यीय स्तर पर शैक्षिक प्रशासन की वर्तमान व्यवस्था—राज्य के शिक्षा विभाग (State Education Departments) अपने-अपने राज्य के लिए शैक्षणिक योजनाएँ बनाते हैं और उनको कार्यान्वित करने का प्रयत्न करते हैं। उनका जो ढाँचा अंग्रेजी शासन काल में था वही अब भी दिखाई देता है। शिक्षा विभाग के अफसरों का दृष्टिकोण अब भी परम्परागत, कठोर और अप्रगतिशील है। उनकी कार्य प्रणाली और विधियों में कोई अन्तर नहीं आया है। यद्यपि शिक्षा के क्षेत्र में काफी प्रकट हुआ है। फिर भी शिक्षा विभागों में प्रसार उस अनुपात में नहीं हुआ। कुछ राज्यों में तो इस प्रसार के बदले उसके आकार में कटौती की गई है। कुछ राज्यों में राज्य का शिक्षा विभाग राज्य की समूची शिक्षा का उत्तरदायी नहीं है। शैक्षणिक कार्यक्रमों को कई विभागों को सौंप दिया जाता है जिनमें आपस में कोई तालमेल नहीं होता। उदाहरण के लिए कुछ राज्यों में सामान्य शिक्षा की जिम्मेदारी एक विभाग पर है जिसका उच्चाधिकारी शिक्षा सचालक कहलाता है। कुछ राज्यों में सामान्य शिक्षा के भी दो भाग कर दिए गए हैं—विद्यालयीय शिक्षा तथा विश्वविद्यालयीय शिक्षा। दोनों को अलग-अलग शिक्षा सचालकों के अधीन किया गया है। तीन राज्यों में tribal education को अलग सचालक के अधीन रखा गया है। कृषि शिक्षा आमतौर से कृषि विभाग के अधीन होती है और डाक्टरी शिक्षा medical and health services department के अधीन। इसी प्रकार प्रौढ़ शिक्षा का कार्य सामुदायिक विकास प्रशासन के अधीन रखा गया है।

विभिन्न विभागों में समन्वय कैसे—शिक्षा के विभिन्न स्वरूपों को एक ही विभाग के अन्तर्गत रखना भी असम्भव है लेकिन सब विभागों में समन्वय पैदा करने के लिए राज्य स्तर पर एक ऐसी मशीनरी तैयार करनी पड़ेगी जो शिक्षा के सभी क्षेत्रों में होने वाली प्रगति के बीच सामंजस्य स्थापित कर सके। यह मशीनरी राज्यीय शिक्षा परिषद् (Council of Education) के नाम से पुकारी जा सकती है। इस परिषद के कार्य क्षेत्र [illegible]
का विकास केन्द्र और राज्य की सम्मिति
इस परिषद के सदस्य सभी निदेशालयों
और कुछ प्रसिद्ध शिक्षा विशारद होंगे।

(i) विद्यालयीय शिक्षा सम्बन्धी सभी मामलों में राज्य की सरकार को सलाह देना।
(ii) राज्य में शिक्षा के विकास का मूल्यांकन करना।
(iii) शिक्षा के कार्यक्रमों का समय-समय पर मूल्यांकन करना।

यह परिषद राज्य की शिक्षा सलाहकार परिषद की तरह कार्य करेगी और राज्य के विधान मण्डल को उत्तरदायी होगी।

शिक्षा सचिव और शिक्षा संचालक—लगभग सभी राज्यों में शिक्षा सेक्रेटरी I A S. [illegible]

ऐड्यूकेशन सेक्रेटरी का काम है शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं को प्रशासनिक तथा आर्थिक दृष्टिकोण से हल करना, शिक्षा संचालक का काम है तकनीकी मामलों में अपनी राय देना।

[illegible] का उचित ढंग से नहीं कर पाता। उसका एक [illegible] rate) के कार्यों का प्रसार इतना अधिक [illegible] भी उसे करने पड़ते हैं। उदाहरण के

लिए जो काम जिला विद्यालय निरीक्षक को सौंप दिया जाए तो काम हल्का हो जायगा। साथ ही जिला विद्यालय निरीक्षक के दफ्तर का भी विस्तार करना होगा। ऐसा करने से जिला विद्यालय परिषदों और जिला विद्यालय निरीक्षकों के कार्यों का ठीक प्रकार से पर्यवेक्षण (supervision) हो सकेगा।

राजकीय शिक्षा विभागों की एक बड़ी कमजोरी और है। वह यह कि शिक्षा का संचालन करने वाले बड़े बड़े प्रशासक शिक्षा विशेषज्ञ नहीं हैं। वे या तो I. A. S के दल से लिए जाते हैं या पदोन्नति द्वारा ऊपर उठते हैं। विभिन्न शिक्षा निदेशालयों के लिए विशिष्ट प्रशिक्षण युक्त लोगों का मिलना कठिन होता है, उनका वेतन कम है, उनकी नियुक्ति के तरीकों में सुधार की जरूरत है। इन प्रशासकों के लिए सेवाकालीन प्रशिक्षण का कोई प्रबन्ध नहीं है।

Q. 6 Describe the role of local authorities in the administration and organisation of the schools.

स्थानीय निकायों का शिक्षा व्यवस्था में स्थान—स्थानीय निकायों द्वारा संचालित स्कूलों की दशा का विश्लेषण करने से पता चलता है कि उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में यदि योगदान नहीं दिया तो यह श्रम कम भी नहीं है। कुछ नगरों के निगमों ने (जैसे दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता आदि) शिक्षा के क्षेत्र में राज्य को विशेष प्राधिक सहयोग दिया है। उन्होंने स्थानीय शिक्षा की समस्याओं को काफी हद तक सुलझाने का प्रशंसनीय कार्य किया है। उनके गुणों और दोषों की व्याख्या से पता चलता है कि उनके स्कूल उतने ही अच्छे या बुरे हैं जितने कि अन्य राजकीय विद्यालय। अध्यापकों के मोटे ये मोटे स्थानान्तरण अथवा नियुक्ति से जो उन्हें परेशानियाँ होती हैं अथवा जिस प्रकार की गदी राजनीति के पचड़ों में कभी-कभी उनको पड़ना पड़ता है वह भी सभी को ज्ञात है। इसीलिए अध्यापक गण स्थानीय निकायों को प्रशासनिक उत्तरदायित्व देने का विरोध करते हैं। स्थानीय निकायों द्वारा स्कूलों के प्रशासन में और भी गड़बड़ी उस समय पैदा हो जाती है जिस समय स्कूलों का प्रशासन मेंबरों को दे दिया जाता है।

स्थानीय निकायों का शिक्षा के क्षेत्र में क्या महत्व होना चाहिए इस प्रकार स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद में दो बार विचार किया गया है। लेकिन उन दोनों कमेटियों के विचार एक दूसरे के इतने विरोधी हैं कि किसी की सिफारिशें मानने के लिए सरकार तैयार नहीं। ये कमेटियाँ थीं—

(i) खेर (Kher) कमेटी
(ii) COPP Team on Community Development.

खेर कमेटी ने सुझाव दिया कि स्थानीय निकायों द्वारा प्राथमिक शिक्षा का प्रशासन सदैव हितकारी नहीं होता। लोक शिक्षा (mass education) के हितों को ध्यान में रखकर ही यह निश्चित करना चाहिए कि प्रायमरी स्कूलों का संचालन एवं प्रशासन किस सीमा तक स्थानीय निकायों के हाथ में सौंपा जा सकता है। यदि स्थानीय निकाय अध्यापकों के हितों की रक्षा कर सके तो प्राथमिक शिक्षा के संचालन तथा प्रशासन की जिम्मेदारी उनको दी जा सकती है अथवा नहीं। दूसरी कमेटी ने (COPP Team on Community Development) जो कि बलवन्तराय मेहता की अध्यक्षता में बैठाई गई, सुझाव दिया कि जब तक स्थानीय संस्थाओं को, जो पूर्णरूपेण प्रतिनिधात्मक और सशक्त हों, स्थान विशेष की शिक्षा का उत्तरदायित्व नहीं सौंपा जाय तब तक सामुदायिक विकास असम्भव है। इस संस्था को सरकारी नियन्त्रण से स्वतन्त्र करना होगा, सरकार उसे मार्ग दर्शन तो दे सकती है लेकिन उसके कार्यों पर अत्यधिक नियन्त्रण नहीं कर सकती।

इन दोनों कमेटियों के सुझाव विरोधी थे। जब राज्यों का पुनर्गठन हुआ तो कुछ राज्यों में खेर कमेटी के सुझावों पर अमल हुआ और कुछ में दूसरी की बात मानी गई, लेकिन स्थानीय निकायों का शिक्षा के क्षेत्र में क्या स्थान है इस पर किसी राष्ट्रीय नीति का निर्धारण नहीं हुआ। कुछ राज्यों में प्राथमिक शिक्षा को ही स्थानीय निकायों के हाथ में सौंपा गया और कुछ में समूची स्कूली शिक्षा उनको सौंप दी गई, किसी-किसी राज्य में दोनों प्रणालियों को स्वीकार किया गया है।

मैसूर, उडीसा, आन्ध्र प्रदेश, बिहार, गुजरात, मध्य प्रदेश, मद्रास, महाराष्ट्र में नगर निगमों को शिक्षा का भार सौंपा गया है। पंचायती राज्य की सशक्त संस्थाएँ केरल, जम्मू कश्मीर, पंजाब, मध्यप्रदेश, मैसूर, नागालैण्ड को छोड़कर प्राथमिक शिक्षा का संचालन करती हैं। नगर निगमों को प्राथमिक शिक्षा के संचालन का भार सौंपा गया है किन्तु वे चाहें तो माध्यमिक स्कूल भी खोल सकती हैं। कुछ राज्यों में (जैसे पश्चिमी बंगाल) केवल लोग्रर प्राइमरी स्कूलों का प्रशासन पंचायतें करती हैं कुछ में (जैसे मद्रास) वे मिडिल स्कूलों का भी संगठन करती हैं। और कुछ राज्यों में प्राथमिक तथा माध्यमिक दोनों प्रकार के विद्यालयों का प्रशासन एवं संचालन करती हैं। राजस्थान और मद्रास में शैक्षिक प्रशासन की जिम्मेदारी विकास खण्डों (Blocks) को दी जा चुकी है।

स्थानीय निकायों को समझ लेना चाहिए कि यदि शिक्षा के क्षेत्र में उन्हें उन्नति करनी है तो उन्हें अपनी जिम्मेदारियों को स्वीकार करना होगा। किस जगह किस प्रकार का शैक्षिक प्रशासन हो यह तो इस बात पर निर्भर रहेगा कि उस स्थान की माँगें क्या हैं। शिक्षण संस्थाओं का प्रशासन यदि किसी स्थानीय निकाय को सौंपा जाता है तो राष्ट्र की यह नीति होनी चाहिए कि वह निकाय अनिवार्य शिक्षा के क्षेत्र में योगदान देगा, उसकी प्रगति के अवरोधन का कारण न बनेगा। यदि कोई निकाय सुन्दर प्रशासन चलाने में असमर्थ हो और यदि वह शिक्षा के क्षेत्र में कोई प्रगति न कर सके तो प्रशासन की जिम्मेदारी उससे छीन ली जाय।

संक्षेप में,

(i) शिक्षा के कार्य में शिक्षण संस्थाओं और स्थानीय समुदायों के बीच घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित करके शिक्षा के विकास के लिए स्थानीय व्यक्तियों के ज्ञान, उत्साह और रुचि का लाभ उठाया जाय। इन निकायों को शिक्षा संस्थाओं पर होने वाले सम्पूर्ण व्यय को वहन करने के लिए प्रेरणा दी जाय।

(ii) ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायतों तथा शहरी क्षेत्रों में नगरपालिकाओं को उनसे सम्बद्ध विद्यालयों की कुल non teacher costs का इन्तजाम करने का भार सौंपा जाय।

(iii) जिला स्तर पर जिला विद्यालय परिषद की स्थापना की जाय जो जिले की प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा की देखभाल करे। जिन नगरों की जनसंख्या एक लाख से अधिक हो उन नगरों में ऐसी ही परिषद अलग से स्थापित की जाय।

(iv) जहाँ जहाँ स्थानीय संस्थायें शिक्षा को अपने हाथ में रखती हैं वहाँ वहाँ यह आवश्यक देखा जाय कि अध्यापकों के हितों की रक्षा करती हैं अथवा नहीं। अध्यापकों पर नियन्त्रण रखने की जिम्मेदारी जिला विद्यालय निरीक्षक को सौंपी जाय।

Q 7 What part of the education is controlled by District Boards ? How can the newly proposed District School Boards improve the situation ?

शिक्षा के विकास में स्थानीय संस्थाओं का बड़ा ही योगदान होता है इसलिए जिला परिषदों को शिक्षा के संचालन में विशेष स्थान दिया जाना चाहिये। लेकिन यदि जिला परिषदों की स्थापना हो जाय तो और भी अच्छा होगा। प्रत्येक राज्य के एक-एक जिले में जिला विद्यालय परिषद् के कायम होने पर उच्चशिक्षा के अतिरिक्त समूची स्कूली शिक्षा व्यवस्था का संचालन उसी के हाथ में आ जाएगा। इस परिषद के अधीन होंगे सरकारी और गैर सरकारी सभी विद्यालय जो उच्चतर माध्यमिक स्तर तक शिक्षा देते हैं। यही परिषद अनुदान देगा प्राइवेट और सहायता प्राप्त स्कूलों को लेकिन इस अनुदान के लिए आवश्यक होगी जिला विद्यालय निरीक्षक की अनुमति। राज्यीय सरकार जो जो आदेश देगी उन आदेशों को पालन करता हुआ यह परिषद जिले में शिक्षा का प्रसार अथवा उन्नति करेगा। ऐसा करने में एक जिले और दूसरे जिले में शिक्षा की प्रगति सम्बन्धी जो विषमताएँ पैदा हो गई हैं वे लुप्त हो जायेंगी।

प्रत्येक जिला विद्यालय परिषद् के पास शैक्षिक फण्ड होगा। जिला परिषद् इस जिला विद्यालय परिषद् के बजट को स्वीकृति देगा। वह आवश्यक धनराशि का संचय करेगा। जिसे विद्यालय परिषद् को सौंप दिया जायेगा।

दिन प्रतिदिन की कार्यवाहियों में जिला विद्यालय परिषद् स्वतन्त्र होगा। जिला परिषद उस कार्य में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेगा। शिक्षा सम्बन्धी आवश्यक मार्ग निर्देशन राज्य की सरकार अथवा राज्य शिक्षा विभाग देगा।

बड़े-बड़े नगरो मे जिनकी जनसख्या एक लाख से अधिक हो म्यूनिसिपल विद्यालय परिषद् कायम किये जा सकते हैं जिनके कार्य और उत्तरदायित्व लगभग वही होंगे जो जिला विद्यालय परिषदो के होंगे।

जिला विद्यालय परिषद को ही अध्यापको की नियुक्ति तथा उसके स्थानान्तरण करने का अधिकार होगा। यह काम एक कमेटी करेगी जिसकी अध्यक्षता जिला विद्यालय परिषद करेगा। इस कमेटी के अन्य सदस्य होंगे इसका मन्त्री और जिला विद्यालय निरीक्षक। लेकिन अध्यापको की नियुक्तियां और स्थानान्तरण राज्य की सरकार द्वारा आदेशो के अनुकूल ही होंगे। इस क्षेत्र मे सर्वमान्य नीति होगी स्थानान्तरण को कम से कम करना ताकि अध्यापक एक ही सस्था मे कार्य करता हुआ उसके प्रति वफादारी की भावना पैदा कर सके। प्रस्तावित जिला विद्यालय परिषदो को प्रशासनिक जिम्मेदारियाँ धीरे-धीरे दी जाएँ। जैसे-जैसे वे अनुभव प्राप्त करते जायें उनकी जिम्मेदारियो की संख्या मे वृद्धि की जाय।

Q 8 Discuss the role of State Education Departments in the School education.

विद्यालयीय शिक्षा स्थानीय निकायो तथा राज्य की सरकारों के अधीन होती है। इस क्षेत्र मे राज्य की सरकारें तथा स्थानीय निकायें साझादारो की तरह कार्य कर रही हैं। फिर भी विद्यालयीय शिक्षा की पूरी जिम्मेदारी राज्य की सरकारो पर ही है। स्थानीय निकायो को तो ये सरकारें प्रोत्साहन स्वरूप सहायता मात्र दे सकती हैं और निकायो को राज्य की सरकारो का एजेण्ट माना जा सकता है जो उनकी आज्ञा के अनुसार कार्यक्रम चाहती रहती हैं। राज्य की सरकारें सभी शिक्षा सम्बन्धी मामलो को राज्य के शिक्षा विभागों को सौंप देती है जो शिक्षा की व्यवस्था, सगठन, सचालन और प्रशासन के उत्तरदायी होती हैं। इन विभागो के कार्य हैं :—

(i) विद्यालयो के सुधार के लिये कार्यक्रम बनाना : पाठ्यपुस्तिका संशोधन, पाठ्यपुस्तिकाओ का प्रशासन, अध्यापको के लिये गाइड्स, और अन्य अध्यापक तथा शिक्षण सामग्री निर्माण, मूल्याकन और शिक्षण विधियो मे सुधार।

(ii) विद्यालयो मे आवश्यक शिक्षा के प्राप्य मानदण्डो का निर्धारण।

(iii) अध्यापको की पूर्ति, उनके वेतन क्रम और सेवा दशायें का निर्णय, पूर्व सेवाकालीन एव सेवा कालीन प्रशिक्षण का प्रबन्ध, प्रशिक्षण सस्थाओ की स्थापना, सचालन, और सहायता कार्य करना।

(iv) शिक्षा विभाग के अधिकारियो द्वारा निरीक्षण तथा पर्यवेक्षण की व्यवस्था करना।

(v) राज्यीय मूल्याकन सगठन (State Evaluation Organisation) द्वारा राज्य के विभिन्न जिलो मे शिक्षा स्तर को समान रखना, कक्षा ३, कक्षा ७, कक्षा १०, कक्षा १२ के बाद ली जाने वाली परीक्षाओ के स्तरो को समान रखना।

(vi) एक S. I. E. (State Institute of Education) की स्थापना करना जो स्थानीय, निकायों, जिला विद्यालय निरीक्षको को शिक्षा के स्तरो में सुधार लाने मे सहायता दे और वह शोध कार्य, प्रशिक्षण और प्रसार के कार्यक्रमो का आयोजन करे।

(vii) सभी व्यावसायिक तथा तकनीकी शिक्षण सस्थाओ के संचालन का उत्तरदायित्व ले।

Q. 9. Discuss the functions of the agencies involved in the education administration at the national level

राष्ट्रीय स्तर पर शैक्षिक प्रशासनिक संस्थाएँ—राष्ट्रीय स्तर पर प्रशासनिक कार्य करने वाली निम्न तीन मुख्य सस्थाएँ हैं :

(i) शिक्षा मन्त्रालय (Ministry of Education)

(ii) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (U. G. C.)

(iii) राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान व प्रशिक्षण परिषद (N. C. E. R. T.)

शिक्षा-मन्त्रालय—१९६१ मे जिन दो मन्त्रालयों को मिलाकर वर्तमान शिक्षा मन्त्रालय बनाया गया था वे थे—वैज्ञानिक शोध और सांस्कृतिक मामले मन्त्रालय तथा शिक्षा मन्त्रालय।

प्रत. शिक्षा मन्त्रालय के दो विभाग हुए—शिक्षा विभाग और विज्ञान विभाग। १९६४ मे ये दोनों विभाग मिला दिए गए। शिक्षा मन्त्रालय का प्रधान शिक्षामन्त्री होता है और उसकी सहायता के लिये दो उपशिक्षा मन्त्री तथा एक Minister of State होता है।

शिक्षा मन्त्रालय अपनी जिम्मेदारियों को एक ओर तो स्वयं अदा करता है दूसरी ओर निम्नलिखित संस्थाओं का सहयोग प्राप्त करता है :—

1 U. G. C.
2. Council of Industrial and Scientific Research
3 Central Hindi Directorate
4 Indian Council of Cultural Relations

मन्त्रालय के खुद के १२ डिवीजन हैं। इस डिवीजन के अधिकारी उपसचिव अथवा उप-शिक्षा परामर्शदायक (Deputy Education Advisers) हैं। शिक्षा मन्त्रालय से अलग कुछ संगठन शिक्षा मन्त्रालय के अधीन है और कुछ उससे स्वतन्त्र। उसकी अधिक जिम्मेदारियाँ निम्नलिखित हैं.

(१) शिक्षा मन्त्रालय यूनियन Territories मे शिक्षा व्यवस्था के लिये पूरी तरह जिम्मेदार है।

(२) अलीगढ़, बनारस, दिल्ली, विश्वभारती विश्वविद्यालयो की देखभाल उसी के हाथ मे है।

(३) उच्चशिक्षा के क्षेत्र मे समन्वय और मान दण्ड को ऊँचा रखने का काम उसका ही है।

(४) वह U. G. C के माध्यम से १००% अनुदान केन्द्रीय विश्वविद्यालयो को देती है और राज्यीय विश्वविद्यालयों को विशेष अनुपात में।

शिक्षा मन्त्रालय में प्रस्तावित सुधार—शिक्षा मन्त्रालय का सचिव I. C. S. से नही लिया जाता। वह प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री होता है। यह Selection Post है इसलिए पदोन्नति द्वारा कोई व्यक्ति इस पद का अधिकारी नहीं हो सकता। इस पद के लिये चुनाव सभी श्रेष्ठ शिक्षा विशारदों में से किया जाना चाहिए।

शिक्षा मन्त्रालय का सम्बन्ध सभी प्रसिद्ध शिक्षा विशारदो, राज्य के शिक्षा विभाग के उच्चाधिकारियो, विद्यालयो तथा विश्वविद्यालयो के प्रमुख यशस्वी अध्यापकों के साथ होना चाहिये।

शिक्षा मन्त्रालय मे उपसचिवो, अतिरिक्त सचिवो का चुनाव भी ठीक प्रकार से होना चाहिए। ५०% पदाधिकारियों का चुनाव I.E.S. cadre अथवा राज्य के शिक्षा विभागो से होना चाहिए और शेष ५०% पदाधिकारियो का चुनाव प्रसिद्ध शिक्षा विशारदो और अध्यापकों मे से होना चाहिए।

शिक्षा मन्त्रालय मे शिक्षामन्त्री के अतिरिक्त Educational Adviser, Secretary to the Govt of India, Additional and Joint Secretaries होंगे।

इस समय शिक्षा मन्त्रालय को विशेष उपयोगी काम करने पडते हैं जिनमे, सुधार की [illegible] ल्यिकी सेवा (Educatio- [illegible] अच्छाई के साथ कर रहा [illegible] पेवि वर्ग की कमी न हो। [illegible] मुख्य कामों—आँकडो के एकत्रीकरण, विश्लेषण और [illegible] लेती है। वह भी पर्याप्त विलम्ब के साथ शेष दो कार्य जो बहुत ही जरूरी हैं जो अधूरे ही रह जाते हैं। यदि इस काम को सुचारु रूप से चलाना है तो शिक्षा मन्त्रालय के इस अंग को सबल बनाना होगा।

शिक्षा मन्त्रालय तथा केन्द्रीय सलाहकार परिषद—शिक्षा मन्त्रालय को सलाह देने वाली प्रमुख संस्था केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद (Central Advisery Board of Education) है। शिक्षामन्त्री इसका प्रधान होता है और राज्य के शिक्षामन्त्री इसके सदस्य। भारत सरकार विभिन्न राष्ट्रीय हितो की रक्षा के लिये कुछ प्रतिनिधि इस परिषद मे भेजती है। विश्वविद्यालय

अनुदान आयोग, अन्तर्विश्वविद्यालय परिषद और योजना आयोग के कुछ प्रतिनिधि भी केन्द्रीय सलाहकार परिषद के सदस्य होते हैं।

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान शोध परिषद (*National Council of* Educational Research and Training)—इस परिषद की स्थापना से शिक्षा के विकास में विशेष सहायता मिली है और फिर भी उसकी भावी प्रगति कुछ बातों पर निर्भर है जो नीचे दी जाती है :—

(१) कार्य—विद्यालयीय शिक्षा में सुधार लाने के उद्देश्य से उसने राज्य की सरकारों के *शिक्षा विभागों की सहायता के लिए प्रसार कार्य हाथ में लिया है।* यह कार्य बहुत अच्छी तरह से हो रहा है क्योंकि संघ का शिक्षामन्त्री इसका प्रधान है और राज्य के शिक्षा मन्त्री इसके सदस्य हैं। NCERT को मुख्य रूप से राज्यों को तकनीकी सहायता देने वाली संस्था ही बनना चाहिये ताकि उनकी विद्यालयीय स्तर की शिक्षा का स्तर ऊँचा उठे। इस कार्य से वह शिक्षा के राज्यीय संस्थानों (State Institutes of Education) और राज्य के शिक्षा विभागों की उचित सहायता ले सकती है।

(ii) संचालक तथा उपसंचालक—इस समय इस परिषद् का संचालक शिक्षा मन्त्रालय का सचिव होता है और उपसंचालक शिक्षा मन्त्रालय का एक पदाधिकारी है जो अंशकालिक (Part time) कार्य करता है। परिषद की जिम्मेदारियाँ इस समय इतनी अधिक बढ़ गई हैं कि *उसका नेतृत्व अंशकालिक पदाधिकारियों के हाथ से छोड़ना उचित नहीं है।* अतः परिषद का संचालक ५ वर्ष के लिए चुना गया ऐसा अधिकारी हो जो पूरी तरह परिषद की प्रशासनिक कार्यवाही करे।

(iii) NCERT इस समय कुछ प्रादेशिक महाविद्यालयों (Regional College) का संचालन कर रही है और केन्द्रीय शिक्षा प्रतिष्ठान (Central Institute of Education) का भी कामकाज देखती-भालती है। ये कार्य वह छोड़ दे। दिल्ली विश्वविद्यालय की एक शाखा के रूप में CIE काम करे।

(iv) NCERT में राज्यों के शिक्षा विभागों के अधिकारियों की कुछ समय के लिए नियुक्ति की जाय और NCERT के लोग राज्य के शिक्षा विभागों में जाकर कार्य करें। ऐसा करने *से राज्य को तकनीकी समस्याओं को हल करने में विशेष मदद मिलेगी।*

(v) इस समय NCERT के विभिन्न विभाग इधर-उधर बिखरे हुए हैं जैसे CIE, DEPSE, NFEC, NIBE, D.S.E., D. C. M. T. D. P. F., D. E. A., E. S. U., P. U. सभी एक दूसरे से अलग-अलग भवनों में और अलग-अलग स्थानों में है। इन सब विभागों को एक स्थान पर लाने के उद्देश्य से NCERT का Campus शीघ्र ही विकसित होना चाहिए।

Q. 10. What are the weaknesses of the management of the Government and local body schools ? How can we best overcome them ?

राज्यीय विद्यालय (Government Schools)—कुछ विद्यालय सरकार के द्वारा संचालित होते हैं। इन विद्यालयों की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

(अ) उनको पर्याप्त सरकारी सहायता मिलती है।

(ब) अध्यापकों तथा अन्य कर्मचारियों को अच्छा वेतन और भत्ता मिलता है।

(स) अध्यापकों की नौकरी को किसी प्रकार की आँच नहीं आ सकती जब तक वे नियमित ढंग से शिक्षण कार्य करते हैं।

(द) सभी प्रकार की अन्य भौतिक सुविधाएँ मिलती रहती हैं।

लेकिन फिर भी उनके परीक्षाफल सामान्यतः निम्न कोटि के होते हैं। इसके निम्नलिखित कारण हैं :—

(अ) सामान्यतः सरकारी स्कूल का समाज के साथ सम्पर्क की मात्रा बहुत कम होती है। कभी-कभी तो उनके प्रति उदासीनता भी रहता है।

(ब) चूँकि नौकरी पूरी तरह से सुरक्षित होती है इसलिए अध्यापक में सुस्ती और प्रमाद प्रवृत्ति की भावना पैदा हो जाती है। अतः उनके काम में ढीलापन आ जाता है। ऐसा है

नियम तथा आचरण संहिता ऐसी है कि सरकारी स्कूल में काम करने वाले अच्छे से अच्छे अध्यापक को न तो आप दण्ड ही दे सकते हैं तथा उनके काम की प्रशंसा तो बहुत कम होती है।

(स) अध्यापकों की नियुक्ति किसी वर्ग में होती है जैसे प्रशिक्षित स्नातक अध्यापक (Trained Graduate Teacher) अथवा स्नातकोत्तर अध्यापक (Post graduate Teacher) अथवा भाषा-अध्यापक (Language Teacher) अथवा कला अध्यापक (Drawing teacher)। उसकी नियुक्ति किसी विशेष विद्यालय में नहीं होती। अत किसी विशेष संस्था से उनका कोई प्रेम नहीं होता। जब साल दो साल एक स्कूल में कार्य करने पर उसके साथ कुछ मोह भी पैदा हो जाता है तो स्थानान्तरण होते ही विद्यालय से सारा सम्बन्ध टूट जाता है।

(द) राजकीय विद्यालयों में काम करने वाले अध्यापकों को कोई स्वतन्त्रता नहीं होती और शिक्षा विभागीय नियमों से वे इतने बँधे और जकड़े रहते हैं कि कोई काम स्वतन्त्रतापूर्वक कर ही नहीं सकते।

स्थानीय निकायों के स्कूल—स्थानीय निकायों (Local Body) में विद्यालयों में भी लगभग ये ही विशेषताएँ और कमियाँ पाई जाती हैं लेकिन उनमें एक लाभ आवश्यक है। उनका सम्बन्ध स्थान विशेष से होता है। लेकिन उनके अध्यापक स्थानीय राजनीति के पचड़ों में पड़ जाते हैं।

(१) स्कूल कमेटी का निर्माण—प्रत्येक राजकीय अथवा स्थानीय निकाय के विद्यालय के प्रबन्ध के लिए एक स्कूल कमेटी होनी चाहिए। यह कमेटी इन सूत्रों को समाज के अधिक निकट ला सकेगी। ग्राम सभा अथवा नगर निगम को अधिकार होगा कि इस कमेटी के आधे सदस्य वह चुने। शेष आधे व्यक्ति जिला विद्यालय परिषदों द्वारा चुने जायें। ये सदस्य ऐसे हों जिनको शिक्षा से प्रेम हो।

इस स्कूल कमेटी के कार्य होंगे

(i) विद्यालय के लिये बगीचे, पार्क, खेल के मैदान, स्कूल भवन और भूमि का प्रबन्ध करना।

(ii) विद्यालय की साजसज्जा का प्रबन्ध करना।

(iii) बच्चों को पुस्तकें तथा लिखने-पढ़ने की सामग्री का वितरण करना।

(iv) यूनीफोर्म, इनाम और वजीफों का वितरण।

(v) क्षेत्र में अनिवार्य शिक्षा के नियमों का पालन करना।

(vi) पाठ्येतर क्रियाओं का संगठन करके समाज और विद्यालय के बीच सम्पर्क स्थापित करना।

(vii) अपराह्न में भोजन की व्यवस्था करना।

(viii) अध्यापकों के लिए आवास की समस्या को हल करना।

(ix) स्कूली शिक्षा का विकास करने के लिए अन्य कदम उठाना।

इन कार्यों का सफलतापूर्वक सम्पादन करने के लिए स्कूल कमेटी को पैसे की आवश्यकता होगी। यह धनराशि वह पंचायत या नगर निगम से, माता पिता से, जिला स्कूल परिषद से प्राप्त कर सकेगी।

(२) स्थानान्तरण सम्बन्धी नीति—किसी भी अध्यापक का उसकी इच्छा के विरुद्ध विद्यालय में तबादला न किया जाय। इस प्रकार के तबादले अध्यापकों को तंग करने के लिए किये जाते हैं। यदि किसी अध्यापक को दण्ड देने के लिए तबादले किये जाते हैं तो यह नीति ठीक नहीं है क्योंकि जो अध्यापक एक स्थान पर गन्दा वातावरण पैदा कर रहा है वह दूसरे स्थान पर भी ऐसा ही करेगा। इसलिए जहाँ तक सम्भव हो स्थानान्तरण न किये जायें।

(३) राजकीय तथा नगर निगम के विद्यालयों के अध्यापकों को स्वतन्त्र रूप से कार्य करने के लिए अवसर नहीं दिए जाते। प्राइवेट स्कूलों में यह स्वतन्त्रता इतनी अधिक है इसीलिए उनके परीक्षाफल अच्छे होते हैं। सरकारी स्कूलों में तो शैक्षिक स्वतन्त्रता (academic freedom) का लाभ होगा, हानि नहीं।

Q. 11. Describe the assets and weaknesses of the privately managed schools. How can these weaknesses be removed?

प्राइवेट संस्थाएँ कई प्रकार की हैं—

(अ) मान्यता प्राप्त और राजकीय अनुदान पर आधारित।
(ब) मान्यता प्राप्त किन्तु राजकीय अनुदान से स्वतन्त्र।
(स) अमान्यता प्राप्त।

अन्तिम दो प्रकार की शिक्षा संस्थाएँ संख्या में कम हैं। मान्यता प्राप्त तथा राजकीय अनुदान लेने वाली संस्थाएँ ही शिक्षा के क्षेत्र में विशेष कार्य कर रही हैं। उनका खर्च फीस आदि राजकीय अनुदान से चलता है और जिन राज्यों में शिक्षा नि.शुल्क करदी गई है उनमें उनका खर्च राज्य वर्दाश्त करता है। उनकी विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(i) स्थानीय समाज से उनका घनिष्ठ सम्बन्ध है और यह समुदाय उनकी सदैव सहायता करता है।

(ii) उनको अपना विकास करने की स्वतन्त्रता है लेकिन शिक्षा विभाग के बढ़ते हुए नियन्त्रणों के कारण यह स्वतन्त्रता कम होती जा रही है।

(iii) अध्यापकों को अपने-अपने विद्यालय से प्रेम है। जिन विद्यालयों में अध्यापक अपनी-अपनी संस्थाओं से प्रेम करते हैं तथा निस्वार्थ भाव से काम करते हैं उनके परीक्षाफल बहुत ऊँचे होते हैं और वे अच्छी किस्म की संस्थाएँ बन जाती हैं।

लेकिन उनको कुछ कठिनाइयों का भी अनुभव होता है। कठिनाइयाँ प्रगति में उनकी बाधक होती हैं—

(i) कभी-कभी उनका प्रबन्ध खराब लोगों के हाथ में चला जाता है। प्रबन्धक समिति के आपसी झगड़ों से विद्यालय की प्रगति में बाधा उपस्थित हो जाती है।

(ii) उनको चूँकि खर्चे के लिए सरकारी सहायता पर निर्भर रहना पड़ता है इसलिए कभी-कभी इस सहायता के न मिलने पर उनको कठिनाइयाँ होती हैं।

(iii) कुछ संस्थाओं में अध्यापकों की नियुक्ति धर्म और जाति के आधार पर होती है इससे उनमें संघर्ष सा बना रहता है।

(iv) कुछ संस्थाएँ व्यापारिक प्रतिष्ठानों की तरह लाभ कमाने की दृष्टि से खोली जाती हैं जो अध्यापकों का शोषण करती हैं। सेवा भाव के स्थान पर स्वार्थ सिद्धि के लिए खोली गई इन संस्थाओं में शिक्षा का स्तर निम्न कोटि का रहता है क्योंकि इन संस्थाओं में अध्यापकों की दशा असन्तोषजनक होती है। उनकी नौकरी कब छूट जाय इसका उन्हें सदैव डर रहता है। उनको न तो पेंसन मिलती है न प्रोविडेण्ट फण्ड की ही सुविधा है। सरकार की ओर से नगर निगम के विद्यालयों में अध्यापकों को जो वेतन मिलता है उससे बहुत कम वेतन इन संस्थाओं में काम करने वाले अध्यापकों को दिया जाता है। कभी-कभी तो उनको उतना ही पैसा नहीं मिलता जितने पर वे हस्ताक्षर करते हैं। वेतन में इस प्रकार की कटौती इसलिए होती है कि इन संस्थाओं को सरकारी सहायता कम मिलती है और खर्च अधिक है और वे स्वयं अतिरिक्त धनराशि इकट्ठी करने में अपने को असमर्थ पाती हैं।

ऐसे प्राइवेट स्कूल वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में समस्याएँ पैदा करते रहते हैं। इन संस्थाओं को भी लोक शिक्षा की सामान्य विद्यालय व्यवस्था (Common School System of Public education) के अधीन लाना आवश्यक है। सरकार का काम है इन संस्थाओं की दशा सुधारने का और यह दशा तभी सुधर सकती है जब इनका प्रबन्ध अच्छे लोगों के हाथों में हो और सरकार भी उन्हें पर्याप्त मात्रा में सहायता दे। सरकार का उत्तरदायित्व इसलिए और भी बढ़ जाता है कि केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा संस्थाओं का बहुत बड़ा अंश इन संस्थाओं द्वारा ही निर्मित है। विभिन्न राज्यों के शिक्षा विभागों ने इनकी दशा को सुधारने के लिए जो प्रयास किये हैं उनको सफलता बहुत कम मिली है। इस विफलता के निम्नलिखित कारण हैं :—

(१) वित्तीय सहायता देने की दृष्टि से सभी प्राइवेट संस्थाओं को समदृष्टि से देखा जाता है। फल यह होता है कि अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के विद्यालयों को एक सी ही वित्तीय

सहायता मिलती है अच्छे स्कूलो को उनकी आवश्यकता के अनुसार सहायता न मिलने पर काम मे बाधा पड़ती है और जो पैसे इन स्कूलों पर खर्च करना चाहिए या वह बुरे स्कूलों पर बर्बाद किया जाता है।

(२) बुरे स्कूलो मे गन्दी बातो को रोकने के लिए प्रबन्धकारिणी समिति पर जो नियन्त्रण लगाए जाते हैं वे नियन्त्रण ही अच्छे स्कूलो पर लगा दिये जाते हैं फलस्वरूप उनकी प्रगति पर अनावश्यक रूप से रोक लग जाती है। उनको जरूरत होती है अधिक स्वतन्त्रता की, मिलता है अधिक सरकारी नियन्त्रण।

(३) राजकीय अनुदान की मात्रा कभी-कभी इतनी कम होती है कि अच्छे विद्यालयो की दशा भी बिगड़ने लगती है।

प्राइवेट सस्थाओ की दशा सुधारने के लिए सरकार को अच्छे और बुरे स्कूलो मे विभेद करना होगा। जिन स्कूलो का परीक्षाफल अच्छा रहता है और जिन स्कूलों मे निस्वार्थ भाव से सेवा करने वाले अध्यापको की सख्या अधिक है उन स्कूलो को पर्याप्त मात्रा मे सरकारी सहायता मिलती है और उनकी स्वतन्त्रता पर किसी प्रकार की बाधा नही डालती है।

इसके विपरीत जो खराब स्कूल हैं, जिनके परीक्षाफल सदैव खराब रहते हैं उन पर पर्याप्त मात्रा मे प्रतिबन्ध लगाकर उन्हे ठीक करना है। यदि ऐसा करने पर भी उनकी दशा न सुधरे तो उन्हे बन्द किया जा सकता है।

यदि हाईस्कूल स्तर तक सम्पूर्ण देश मे शिक्षा नि.शुल्क करदी जाय तो इन प्राइवेट स्कूलों के समक्ष दो रास्ते होंगे—या तो वे फीस लें और स्वतन्त्र हो जायें या फीस न लें और सामान्य स्कूल व्यवस्था के अग बन जायें। बहुत कम प्राइवेट स्कूल स्वतन्त्र होना पसन्द करेंगे क्योंकि फीस से तो उनकी आय बहुत कम होती है शेष खर्चा कैसे चलेगा।

प्राइवेट स्कूलो की दशा सुधारने के लिये सरकार को दो कार्य करने होंगे—

(अ) आवश्यक मात्रा मे सरकारी सहायता देनी होगी,

(ब) बुरे स्कूलो का प्रबन्ध सुधारना होगा।

स्कूलो का प्रबन्ध सुधारने के लिये विद्यालय का प्रबन्धकारिणी समिति मे अन्य लोगों के साथ शिक्षा विभाग के कुछ नुमाइन्दे तथा अध्यापको के नुमाइन्दे होने चाहिये। इस कमेटी की जिम्मेदारियाँ तथा उसकी शक्तियों का स्पष्ट उल्लेख अनुदान-सहिता में होना चाहिये। बुरे स्कूलो की प्रबन्ध कारिणी समिति में सरकारी नुमाइन्दों की सख्या अधिक होनी चाहिए और अच्छे स्कूलो में बहुत कम।

Q. 12 What improvements should be made in the grant-in aid system for privately managed School.

इस समय प्राइवेट स्कूलों को सरकारी सहायता देने के तरीके बड़े जटिल हैं। उसकी गणना विधि भी सन्तोषजनक नहीं है। फलस्वरूप प्राइवेट स्कूलों को उपयुक्त मात्रा मे सरकारी सहायता नहीं मिलती और मिलती भी है तो ठीक समय पर नहीं मिलती।

सरकारी सहायता दो प्रकार की होती है स्थिर (non-recurring) तथा आवर्त (recurring)। आवर्त अनुदान की गणना करते समय विद्यालय के पूर्ण व्यय को दो भागो मे बाँट लेना चाहिए, एक भाग तो अध्यापकों के वेतन तथा भत्ते से सम्बन्धित हो; इसको teacher costs कहा जा सकता है। अनुदान का दूसरा भाग अन्य सभी खर्चों का योग होगा; इसे non teacher costs कह सकते हैं। non teacher costs की न्यूनतम तथा अधिकतम मात्रा निश्चित करनी होगी। प्रबन्धकारिणी समिति अनुदान के इस भाग में से जितना वह चाहे खर्च करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिये।

किसी विद्यालय को मिलनेवाली अनुदान की मात्रा की गणना करते समय उस राशि की मात्रा को भी ध्यान मे रखना होगा जो फीस के रूप मे वसूल की जाती है साथ ही उस राशि की मात्रा को भी ध्यान मे रखना होगा जो प्रबन्ध कारिणी समिति को आवर्त व्यय के लिये देनी होगी। अत: आवर्त अनुदान (recurring grant) बराबर होगी।

(अ) teacher costs

अध्याय १

अध्यापक वर्ग

(Staff)

Q. 1. Discuss the qualities of an Ideal Teacher. *(Agra B. T. 1954)*

समाज के प्रतिनिधि स्वरूप जब समाज की शिक्षा विषयक आवश्यकताओं और आदर्शों की पूर्ति के लिए विद्यालयों की स्थापना करते हैं तब समाज के रूप में वे अध्यापकों की नियुक्ति करते हैं। समाज के क्षेत्र में इन महत्वपूर्ण अध्यापकों का महत्व बहुत है क्योंकि वे नवीन पीढ़ी के निर्माता, शिक्षा व्यवस्था की धुरी और विद्यालय के प्राण हैं। विद्यालय का भवन, पाठ्य-पुस्तकें, क्रीड़ा-क्षेत्र आदि तो आवश्यक हैं ही किन्तु इन सबके बिना वह निष्प्राण शरीर के समान रहता है। इनको पाने के लिए समाज को अधिक विचार्य... विचार की आवश्यकता है, अच्छे से अच्छे विचार की जरूरत है, अधिक से अधिक धन व्यय की आवश्यकता है।

आधुनिक शिक्षा में तो उनका पद और भी महत्वपूर्ण हो गया है। मनोविज्ञानिक अध्ययनों और शोधों ने उनके कार्यों को विशिष्ट बना दिया है। उनके विषय में जोड (Mr Joad) का निम्नलिखित कथन सत्य बैठता है—

'Teaching is not everybody's cup of tea'

समाज को उनसे नवीन आशायें हैं क्योंकि वे ही उसके बालकों के सर्वांगीण विकास के लिए सचमुच वातावरण उपस्थित कर सकते हैं, वे ही उनका यथार्थ पथ-प्रदर्शन एवं निर्देशन कर सकते हैं। यदि समाज चाहता है कि उसके बालकों की शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, संवेगात्मक तथा रागात्मक शक्तियों का उचित ढंग से विकास हो सके और बाद में उनको मार्ग-निर्देशन मिल सके तो उसे योग्य अध्यापकों की नियुक्ति करनी पड़ेगी।

अध्यापकों की योग्यता—अध्यापन कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए कुछ शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, रागात्मक गुणों की आवश्यकता है जिनका वर्गीकरण निम्न प्रकार किया जा सकता है।

(१) अध्यापक का व्यक्तित्व।

(२) व्यावसायिक प्रशिक्षण—शिक्षा के उद्देश्यों और विधियों का ज्ञान, अध्यापन में रुचि और कौशल।

(३) सांस्कृतिक पृष्ठभूमि और विषय का ज्ञान—शैक्षणिक योग्यतायें।

(४) शारीरिक स्वास्थ्य।

(५) मानसिक योग्यता—बुद्धि, मानसिक चुस्ती, साधारण बुद्धि।

(६) संवेगात्मक सन्तुलन—स्व-शासन, मानसिक सन्तुलन, सहिष्णुता, अन्धविश्वासों से मुक्ति।

(७) सामाजिक समझन—समाज के लोगों से मिलने-जुलने की क्षमता, अच्छा नैतिक आचरण, सामाजिक रीतियों का ज्ञान।

व्यक्तित्व—अध्यापक का व्यक्तित्व उन बाह्य एवं आन्तरिक विशिष्टताओं से युक्त होता है जो उसे अन्य व्यक्तियों से अलग सिद्ध कर देती हैं। उसके बाह्य व्यक्तित्व में उसके शरीर की गठन, आकृति, स्वास्थ्य, वेशभूषा, शारीरिक क्रियायें इत्यादि प्रमुख हैं। उसके आन्तरिक व्यक्तित्व में उसकी काम की लगन, विचारों की मौलिकता, हृदय की उदारता सम्मिलित की जा सकती है।

अध्यापक का प्रमुख कार्य है अध्यापन। अध्यापन कार्य में कौशल के लिए अध्यापक को अपने विषय पर तो पूर्ण अधिकार होना ही चाहिये, साथ ही उसमें अध्यापन कार्य के लिए रुचि और प्रेम होने की आवश्यकता है।

शिक्षक के लिये यह भी आवश्यक है कि उसकी बुद्धि प्रखर हो। कुशल शिक्षण एवं प्रखर बुद्धि में घनिष्ठ सम्बन्ध हुआ करता है।

अध्यापक को मस्तिष्क एवं बुद्धि रखने वाले प्राणियों से सदैव काम लेना पड़ता है और सदैव ऐसी परिस्थितियों में होकर गुजरना पड़ता है जहाँ पर उसे अपनी बुद्धि का परिचय देना पड़े।

अध्यापक को समाज के कुशल नागरिकों का निर्माण करना है, अतः उसको स्वयं भी एक कुशल नागरिक बनना होगा। इसका अभिप्राय यह है कि उसमें वे सब सामाजिक गुण हों जिनके आधार पर वह समाज के लोगों से मिल-जुल सके, उनको समझने, उनके आचार व्यवहार को जानने व तौलने की क्षमता भी पैदा कर सके। जो व्यक्ति समाज से दूर भागता है, समाज के साथ सहानुभूति नहीं रखता, वह अच्छा शिक्षक नहीं बन सकता।

[illegible]

सकता है, अपने मन में उनके मन को देख सकता है"। कहने का तात्पर्य यह है कि अध्यापक में अपने कार्य के लिये उत्साह होना चाहिये और शिक्षण व्यवसाय के लिये प्रेम। जिन व्यक्तियों को पाठन से प्रेम न हो वे अध्ययन कार्य को अंगीकार न करें क्योंकि वे विद्यालय का हित करने की अपेक्षा अहित अधिक करते हैं। स्टाफ में उनके रहने से विद्यालय का moral नीचा होता है। कभी कभी वे विद्यालय के लिये अभिशाप भी बन जाया करते हैं।

अच्छे अध्यापक में स्वस्थ जीवन दर्शन की आवश्यकता है। बालक अनुकरणशील एवं [illegible] लिए अध्या-
[illegible] द्धान्तों से
[illegible] नागरिकों
[illegible] उदारमना

अध्यापक का चरित्र अनुकरणीय हो क्योंकि विद्यार्थी समूह उसके चारित्रिक गुणों को अपनाने का निरन्तर प्रयत्न करता है। इनके लिये उससे प्रेरणा ग्रहण करता है। यह चरित्र बल ही वह महान् ताकत है जिसके कारण अध्यापक ने अति प्राचीनकाल से ही समाज के सदस्यों को आकर्षित किया है। यह चरित्र बल ही वह महान् सत्ता है जिसके कारण अध्यापक अब तक समाज का मार्ग निर्देशन करता चला आ रहा है। अध्यापक में सच्चरित्रता के लिये अच्छी-अच्छी आदतों और सुन्दर स्थायीभावों का निर्माण, मूल प्रवृत्तियों का शोधन, आत्मशक्ति और आत्मनियन्त्रण का विकास होना जरूरी है।

अध्यापन सेवि वर्ग का चुनाव

[illegible]

एकपदेन सदस्य के रूप में प्रधानाचार्य एवं शिक्षा विभाग का एक मनोनीत व्यक्ति हो। नगर-

Q. 2 The financial prospects offered by the profession are still so poor that persons with ambitions and intelligence are not attracted to it barring perhaps a few who have a genuine call for it." What will you like to do for the betterment of the prospects of the teaching profession ?

यदि अध्यापक वर्ग की योग्यता और अध्यापिकी के लिये उपयुक्तता का अध्ययन किया जाय तो इस वर्ग का एक बड़ा भाग ऐसा मिलेगा जिसने शिक्षण कार्य को इसलिये स्वीकार किया है कि उसे अन्यत्र स्थान नहीं मिल सका क्योंकि जो व्यक्ति भावी उन्नति चाहता है उसे उन्नति का कोई आशा न होने के कारण इस व्यवसाय से अपकर्षण होना है । घृणा होती है इसलिए कि इनमें न तो उसे वेतन ही ठीक मिलता है न इस धन्धे में कार्य करने की परिस्थितियां (Service Candition) ही अच्छी हैं और न समाज में ही उसे आन्दर और सम्मान मिलता है । हमारे २० लाख अध्यापक ही जिनके हाथ में राष्ट्र की बागडोर है और जो राष्ट्र के निर्माता है, आत्म बलि वेदी पर चढ़ाए जा रहे हैं । यदि राष्ट्र अपना पुनर्निमाण चाहता है, यदि वह विकासशील बनना चाहता है तो उसे विचार करना होगा कि जब तक वह शिक्षक वर्ग की दशा न सुधरेगी उसके सारे प्रयत्न निष्फल हो जायेंगे । १९६४-६६ के शिक्षा आयोग का कहना सत्य है[1] कि यदि इस पेशे में आदर्श अध्यापकों को आकर्षित करना है तो अध्यापकों की आर्थिक दशा सुधारनी होगी और उनकी सेवा की दशाएं उन्नत बनानी होगी । इस शिक्षा आयोग ने अध्यापकों का स्तर उठाने के लिये निम्नलिखित सुझाव पेश किए हैं

(अ) वेतनक्रमो का परिवर्तन ।
(ब) कार्यकाल में उन्नति की सुविधाओं का आयोजन ।
(स) कार्य-भार से मुक्त होने पर सुविधाओं का आयोजन ।
(द) कार्य करने की दशाओं में सुधार ।

(अ) **वेतनक्रम में परिवर्तन**—यद्यपि स्वातन्त्र्योत्तरकाल में अध्यापकों की आर्थिक दशा को सुधारने के लिए कई प्रयत्न किये गये हैं लेकिन उनका प्रभाव अध्यापक के आर्थिक स्तर पर विशेष हितकर नही पड़ा । प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों का वेतनक्रम तो अब भी निराशाजनक है । यद्यपि विश्वविद्यालय विज्ञान और टकनोलोजी के शिक्षा संस्थानों में अध्यापकों के वेतन काफी

तो कीमतें इतनी अधिक बढ़ गई हैं कि भर पेट भोजन भी मिलना कठिन हो रहा है । अतः वेतन-क्रमो में परिवर्तन करना बहुत ही आवश्यक हो गया है ।

वेतनक्रमों में परिवर्तन के सामान्य सिद्धान्त—विश्वविद्यालय स्तर पर अध्यापकों का वेतन राजकीय सेवाओं में उच्चतम पदाधिकारियों के बराबर होना चाहिये । उदाहरण के लिये उपकुलपति का वेतन संघीय सरकार के सचिव के बराबर और प्रोफेसर का वेतन सीनियर I. A. S के बराबर होना चाहिए । प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों का वेतन कम से कम उतना अवश्य होना चाहिये जितना कि उसी योग्यता के व्यक्ति को सरकारी नौकरी में मिलता है । नही तो दो वर्ष के पेशेवर प्रशिक्षण के कारण उसे तो और भी अधिक आधारीय वेतन (basic pay) मिलनी चाहिए प्राथमिक, माध्यमिक और विश्वविद्यालयीय स्तरों पर अध्यापकों के वेतन में अनुपात १ : २ . ३ से अधिक नही होना चाहिये क्योंकि सभी स्तरों के अध्यापकों को एक से उत्तरदायित्वों को वहन करना पड़ता है । उच्चकोटि के व्यक्तियों को प्राथमिक शालाओं में आकर्षित करने के लिये उन्हें उनकी योग्यता के आधार पर वेतन दिया जाना चाहिए । ऐसा करने से शिक्षा का स्तर ही ऊँचा

---

1. "Nothing is more important than securing a sufficient supply of high quality recruits to the teaching profession, creating satisfactory condition of work in which they can be fully effective"

अध्यापक वर्ग का आर्थिक स्तर

Q. 2 The financial prospects offered by the profession are still so poor that persons with ambitions and intelligence are not attracted to it barring perhaps a few who have a genuine call for it" What will you like to do for the betterment of the prospects of the teaching profession ?

यदि अध्यापक वर्ग की योग्यता और अध्यापिकी के लिये उपयुक्तता का अध्ययन किया जाय तो इस वर्ग का एक बड़ा भाग ऐसा मिलेगा जिसने शिक्षण कार्य को इसलिये स्वीकार किया है कि उसे अन्यत्र स्थान नहीं मिल सका क्योंकि जो व्यक्ति भावी उन्नति चाहता है उसे उन्नति का कोई आशा न होने के कारण इस व्यवसाय से अपकर्षण होता है । घृणा होती है इसलिए कि इसमें न तो उसे वेतन ही ठीक मिलता है न इस धन्धे में कार्य करने की परिस्थितियाँ (Service Candition) ही अच्छी हैं और न समाज में ही उसे आदर और सम्मान मिलता है । हमारे २० लाख अध्यापक ही जिनके हाथ में राष्ट्र की बागडोर है और जो राष्ट्र के निर्माता हैं, आत्म बलि वेदी पर चढ़ाए जा रहे हैं । यदि राष्ट्र अपना पुनर्निर्माण चाहता है, यदि वह विकासशील बनना चाहता है तो उसे विचार करना होगा कि जब तक वह शिक्षक वर्ग की दशा न सुधरेगी उसके सारे प्रयत्न निष्फल हो जायेंगे । १९६४-६६ के शिक्षा आयोग का कहना सत्य है[1] कि यदि इस पेशे में आदर्श अध्यापकों को आकर्षित करना है तो अध्यापकों की आर्थिक दशा सुधारनी होगी और उनकी सेवा की दशाएँ उन्नत बनानी होंगी । इस शिक्षा आयोग ने अध्यापकों का स्तर उठाने के लिये निम्नलिखित सुझाव पेश किए हैं

(अ) वेतनक्रमों का परिवर्तन ।
(ब) कार्यकाल में उन्नति की सुविधाओं का आयोजन ।
(स) कार्य-भार से मुक्त होने पर सुविधाओं का आयोजन ।
(द) कार्य करने की दशाओं में सुधार ।

(अ) **वेतनक्रम में परिवर्तन**—यद्यपि स्वातन्त्र्योत्तरकाल में अध्यापकों की आर्थिक दशा को सुधारने के लिए कई प्रयत्न किये गये हैं लेकिन उनका प्रभाव अध्यापक के आर्थिक स्तर पर विशेष हितकर नहीं पड़ा । प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों का वेतनक्रम तो अब भी निराशाजनक है । यद्यपि विश्वविद्यालय विज्ञान और टकनोलोजी के शिक्षा संस्थानों में अध्यापकों के वेतन काफी [illegible] के अध्यापकों [illegible] वह वृद्धि हुई [illegible] न तो १८% [illegible] दो वर्षों में तो कीमतें इतनी अधिक बढ़ गई हैं कि भर पेट भोजन भी मिलना कठिन हो रहा है । अतः वेतन-क्रमों में परिवर्तन करना बहुत ही आवश्यक हो गया है ।

वेतनक्रमों में परिवर्तन के सामान्य सिद्धान्त—विश्वविद्यालय स्तर पर अध्यापकों का वेतन राजकीय सेवाओं में उच्चतम पदाधिकारियों के बराबर होना चाहिए । उदाहरण के लिए उपकुलपति का वेतन संघीय सरकार के सचिव के बराबर और प्रोफेसर का वेतन सीनियर I. A. S के बराबर होना चाहिए । प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों का वेतन कम से कम उतना अवश्य होना चाहिये जितना कि उसी योग्यता के व्यक्ति को सरकारी नौकरी में मिलता है । नहीं तो दो वर्ष के पेशेवर प्रशिक्षण के कारण उसे तो और भी अधिक आधारीय वेतन (basic pay) मिलना चाहिए प्राथमिक, माध्यमिक और विश्वविद्यालयीय स्तरों पर अध्यापकों के वेतन में अनुपात १ . २ · ३ से अधिक नहीं होना चाहिये क्योंकि सभी स्तरों के अध्यापकों को एक से उत्तरदायित्व का वहन करना पड़ता है । उच्चकोटि के व्यक्तियों को शैक्षिक संस्थाओं में आकर्षित करने के लिये उन्हें उनकी योग्यता के आधार पर वेतन दिया जाना चाहिए । एवं अरन न शिक्षा का स्तर ही ऊँचा

---

1. "Nothing is more important than securing a sufficient supply of high quality recruits to the teaching profession creating satisfactory condition of work in which they can be fully effective"

जाय। उसे अन्य कर्मचारियो की तरह सस्ते अथवा नि शुल्क मकान, उनके बच्चो को नि शुल्क शिक्षा, निःशुल्क चिकित्सा की सुविधायें दी जायें।

अध्यापकों के वेतन की वृद्धि अत्यन्त आवश्यक है, पहले तो इसलिए कि चीजो की कीमतें बहुत अधिक बढ़ गई हैं और दूसरे इसलिये कि बिना वेतन वृद्धि के शैक्षिक सुधार का कार्यक्रम सफल नही हो सकता।

Work
धाजनक
पेशे मे
? कक्षा
य और
है अपने
कार्यक्रम को आयोजित करने की स्वतन्त्रता की, अपनी शिक्षण विधियो को अपनाने की, स्वतन्त्रता पूर्वक कक्षा मे पढाने, शोधकार्य करने, और रचनात्मक कार्य करने की। उसे आवश्यकता होती है अपनी पेशेवर उन्नति के लिए ग्रीष्म कालीन शिविर सस्थाओ (Summer Institutes), गोष्ठियो (Seminars) मे भाग लेने को वह चाहता है उतने ही घण्टे काम करना जितने घण्टे अन्य कर्मचारी काम करते हैं। काम करने का यह समय अधिक होने पर उसको दुख होता है। इसी प्रकार उसे दुख होता है उस समय जब कि उसकी नागरिक तथा शैक्षिक स्वतन्त्रता पर आघात पहुँचता है।

काम करने की
चरण तथा अनु-
ैय कर्मचारियो के
लिये होते हैं। ये नियम विदेशी शासको ने बनाये थे और उन्हे डर था कि यदि राजकीय कर्मचारी राजनीति मे भाग लेने लगे तो शासन न चल सकेगा लेकिन अब तो विदेशी शासक नहीं हैं इसलिए अध्यापकों को राजनीति से अलग रखने की बात समझ मे नहीं आती।

प्राइवेट स्कूलों मे कार्य करने की दशायें अधिक सन्तोषजनक नही हैं क्योकि उनमे सेवा करने की शर्तों को कोई निश्चित रूप नही दिया गया है। अध्यापको को नौकरी के खत्म हो जाने का सदैव भय रहता है। अध्यापक को नौकरी से तभी हटाया जाय जब उसे अपने बचाव के लिये काफी अवसर दिये जायें।

ग्रामीण क्षेत्रो मे स्थित विद्यालयो मे आवास की कठिनाई होती है। अध्यापको को
मे जाकर रहना पड़ता है। दूर से रोज
। वह अभिभावको के साथ कोई सम्पर्क
आता है कि बहुधा लेट हो जाता है और फिर घर जाने की जल्दी रहती है। इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि गांवो के स्कूलो के साथ अध्यापको के रहने के लिये क्वार्टर्स बनाये जायें और सस्ते किराये पर उनको मकान दिए जायें। शहरो मे स्थित स्कूलो मे अध्यापन करने वाले अध्यापको के लिए House rent allowance दिया जाय, उन्हें गृह सहकारी-समितियो से घर बनाने के लिये जमीन और ऋण दिये जायें। विश्वविद्यालयो मे सभी अध्यापको को रहने के लिये आवासगृह दिये जायें ताकि वे ठहर सकें।

हो जाती है लेकिन
वर्ग अथवा प्रतिभावान
रत होती है। इसका
प्रबन्ध विद्यालय को स्वय करना है और जिन अध्यापको को इस काम के लिये नियत किया जाय उनको उचित पारश्रमिक दिया जाय। यह पारश्रमिक लडका से अतिरिक्त शुल्क लेकर अथवा छात्रनिधि से दिया जाय। विश्वविद्यालयीय स्तर पर अध्यापकों को अतिरिक्त आय अतिरिक्त कार्य से होती है। उदाहरण के लिये परीक्षको उत्तर पुस्तिकाओ का मूल्यांकन, विभागीय शोधकार्य का सम्पादन, और सरकार अथवा अन्य उद्योगो को परामर्श दादन आदि ऐसे अतिरिक्त कार्य हैं

वह तर्क से, ज्ञान से, उत्साह से दूसरो पर शासन करता है। प्रधानाचार्य की शक्ति इसी मे निहित है। उसका काम न केवल प्रधान अध्यापकी करना है वरन् सभी अध्यापको के कार्य का सयोजन करना भी है, अपने अध्यापको के कार्यों मे समन्वय स्थापित करता हुआ प्रधानाचार्य शिक्षा के चरम लक्ष्यो की प्राप्ति की साधना करता है। वह शिक्षा की गतिशीलता तथा रचनात्मकता मे विश्वास रखता हुआ विद्यालय के कार्यक्रम को इस प्रकार सचालित करता है कि कही भी कोई त्रुटि नही दिखाई देती।

उसका शासन प्रजातन्त्रात्मक होता है, स्वेच्छाचारी नही। सभी अध्यापक और छात्र उसके जीवन से शिक्षा ग्रहण करते हैं। उसकी आज्ञा का पालन करते हैं। उसके आचरण का अनुसरण करते है। परामर्श, शिक्षा, मार्गदर्शन के लिए उसका आश्रय लेते हैं, वे उससे भय नही खाते वरन एक शिक्षक और साथी की हैसियत से उससे सलाह लेते हैं, अध्यापक लोग इस सौर-[illegible]

([illegible]

[illegible]

का फ्लाईह्वील है।[1]

जैसा कि पहले कहा जा चुका है प्रशासनिक क्रिया मे निम्नलिखित पद होते हैं .—

(अ) योजना तैयार करना।
(ब) सगठन करना।
(स) निर्देशन देना।
(द) समन्वय स्थापित करना।
(य) नियन्त्रण करना।

प्रधानाचार्य को प्रशासन करते समय ये सभी क्रियाएँ करनी पडती हैं। वह शिक्षण के प्राय उद्देश्यो को ध्यान मे रखकर समाज की आवश्यकताओ का विश्लेषण करता है और शिक्षा की ऐसी योजना बनाता है कि शिक्षण के चरम उद्देश्यो की पूर्ति हो सके। इस प्रयोजन से व्यक्तियो और वस्तुओ का सगठन करता है; वह अध्यापको का सगठन इस प्रकार करता है कि प्रत्येक व्यक्ति योजनाबद्ध कार्यक्रम मे यथाशक्ति पार्ट अदा करे, और प्रत्येक व्यक्ति की शक्ति और प्रतिभा का यथासम्भव सदुपयोग हो सके। प्रधानाचार्य न केवल अध्यापको का ही सगठन करता है वरन् अभिभावको और समाज के प्रतिष्ठित सदस्यो का इस प्रकार सहयोग प्राप्त करता है कि शिक्षितो का सर्वांगीण विकास हो सके।

शैक्षिक प्रशासक का तीसरा महत्त्वपूर्ण कार्य है निर्देशन। निर्देशक सकेत देता है कि क्या और कैसे कार्य करना है, कब उसे आरम्भ करना है और कब उसे खत्म करना है। निर्देशन पर नियोजन और कार्यान्वियन तथा मूल्याकन तीनों क्रियाओ का प्रभाव पडता है। निर्देशन का आरम्भ नियोजन से होता है और अन्त मूल्याकन में। निर्देशन के लिए उच्चकोटि की बुद्धि, प्रतिभा और नेतृत्व की जरूरत होती है। सफल निर्देशक मे मानव-प्रकृति को समझाने की तीव्रतम अन्तर्दृष्टि होती है, वह इसी सूझबूझ के सहारे अपने सहयोगियो के साथ अच्छे मानवीय सम्बन्ध कायम रखता है।

शैक्षणिक प्रशासन का चौथा भाग है समन्वय। समन्वय का अर्थ है वस्तुओ एव व्यक्तियो मे इस प्रकार का मह सम्बन्ध स्थापित करना कि शिक्षा के उद्देश्यो की पूर्ति प्रभावपूर्ण ढग से सम्भव हो सके।[2] शिक्षासस्थाओ मे कार्य करने वालो मे आपसी वैमनस्य, द्वेषभाव और ईर्ष्या हो सकती है। एक वर्ग दूसरे वर्ग को सशकित दृष्टि से देख सकता है। ऐसी दशा मे प्रधानाचार्य उनके बीच सम्बन्ध पैदाकर शैक्षणिक योजनाओ को सफल बनाने का प्रयत्न करता है, उत्तम प्रशासक के अधीन रहकर प्रत्येक वर्ग अपने-अपने उत्तरदायित्व को समझने लगता है।

1 What is mainspring to the watch the flywheel or engine to the steamship, the headmaster is to the school'—Indian School Organisation, *P.C. Wren*, 1920.

2. "Coordination in administration means bringing things together in harmonious relationship to the end that they would functioned together effectively."

अच्छा प्रधानाचार्य सामाजिक संस्थाओं और अपने विद्यालय के कार्यों के बीच सम्बन्ध स्थापित करता है। वह समाज की आवश्यकताओं का विश्लेषण कर उन्हीं समाज की सी संस्थाओं से सम्पर्क स्थापित करता है। इस प्रकार न केवल शाला के भीतर कार्य करने वाले अध्यापकों अथवा अभिभावकों वरन् समाज के अन्दर समाज हित के कार्य करने वाले उन्हीं संस्थाओं का सहयोग लेकर समाज को उन्नत बनाता है।

प्रशासन की प्रक्रिया का अन्तिम और सबसे अधिक महत्वपूर्ण पद है नियन्त्रण। प्रधानाचार्य नियन्त्रण रखता है पाठ्यक्रम के निर्धारण पर, पाठ्य पुस्तकों के चयन पर, कक्षा में शिक्षण पर, पाठ्येतर क्रियाओं के क्रम पर, छात्रवृत्ति के वितरण पर, और अनुशासन के क्रम पर। वह अपनी इस शक्ति का दुरुपयोग नहीं करता। प्रजातांत्रिक प्रधान तानाशाह नहीं होता। वह वैयक्तिक अभिधारणाओं (Prejudices) का शिकार नहीं होता जो कुछ कार्य करता है वह प्रजातान्त्रिक ढंग से करता है। उसकी शक्ति उसके अध्यापकों, छात्रों और अभिभावकों में होती है; व्यक्तिगत रूप से उसी में नहीं होती। वह प्रजातांत्रिक नियन्त्रण के आदर्शों का पालन करता हुआ अध्यापकों के कार्य पर नियन्त्रण रखता है, इस कार्य के लिए वह शिक्षा विभागीय नियमावलियाँ (Code), सम्पर्क, पैकबुक, लॉगबुक, पर्यवेक्षण आदि का साधन लेता है, कक्षा शिक्षण पर नियन्त्रण करता है, कक्षा में उपस्थित रहकर और त्रुटि होने पर उनको सुधार कर। विद्यालय की साजसज्जा और सामग्री पर नियंत्रण रखता है। सामान स्टाक रजिस्टर आदि को सुरक्षित करके।

इस प्रकार जहाज के कप्तान की तरह वह प्रशासन तथा नियन्त्रण करता है। सभी शैक्षणिक क्रिया पर इस उद्देश्य से कि शिक्षा का क्रम सुचारु रूप से चलता रहे। एक आदर्श प्रधानाचार्य कप्तान की तरह विद्यालय रूपी जहाज का नेता होता है। शिक्षा के उद्देश्य उसे स्पष्ट दिखाई देते हैं और उन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सभी का सहयोग प्राप्त करता है, उसकी सफलता ही इस बात पर निर्भर रहती है कि इस तरह के सहयोग से वह किस सीमा तक शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति कर रहा है।

प्रधान अध्यापक के कार्य और योग्यताएँ

Q. 4. Discuss the duties and responsibilities of the Head of an institution. How can he get full co-operation from the parents & pupils ? *(L. S. 1955)*

[illegible]

प्रकार वह समस्त आन्तरिक और बाह्य प्रशासकीय अधिकारियों की आज्ञा का पालन करता है और उन दोनों के बीच सहयोग स्थापित करने वाली कड़ी की तरह कार्य करता है। उसकी सफलता इस बात पर निर्भर रहती है कि इन अनेकों दिशाओं से आने वाले घात और प्रतिघातों को सहन करता हुआ किस प्रकार सबको सन्तुष्ट करने का प्रयत्न कर सकता है। इसलिये केवल वही व्यक्ति किसी माध्यमिक संस्था का सफल प्रधान हो सकता है जिसमें असमान्य गुण, योग्यताएँ और दक्षताएँ हों। उसकी जिम्मेदारियाँ दिन पर दिन बढ़ती चली जा रही हैं। सामुदायिक केन्द्रों की क्रियाकलापों का भार, समाज शिक्षा, युवक कल्याण सेवा, मार्ग निर्देशन और पाठ्योत्तर-क्रियाओं की समस्याएँ उसके लिये सिर दर्द बनती जा रही हैं। इस प्रकार उसके कार्य, उत्तरदायित्व और कर्तव्य जटिल होते जा रहे हैं।

अतएव एक आदर्श अध्यापक में जो गुण होने चाहिये, प्रधान-अध्यापक में सम्पूर्ण के संचालन के कार्य का आधिक्य होने के कारण उनके गुणों के अतिरिक्त निम्नलिखित विशेषताएँ और होनी चाहिये—

(१) प्रेम और सहानुभूति से दूसरों का सहयोग पाने की योग्यता।
(२) कर्तव्यनिष्ठा तथा उत्तरदायित्व समझने की भावना।

कार्य करने के गुण ।

उन्नत ढग से चलाने के लिये विचारों की मौलिकता ।

वास की भावना ।

नेर्णय देने की शक्ति ।

रण ।

ी दृढ़ता और पवित्रता ।

ा अपनी वाक्शक्ति से प्रभावित करने की शक्ति ।

(१०) ...द का शिक्षादर्शन ।

(११) अपने सहयोगियो से सम्मान पाने और उनका नेता बनने की योग्यता ।

(१२) विद्यालय को धनराशि, पुस्तकालय, खेल आदि का उचित प्रबन्ध करने की योग्यता ।

देश के सभी राज्यो ने प्रधान-अध्यापक की नियुक्ति के विषय मे शिक्षा-संहिता मे इन्ही योग्यताओ का उल्लेख किया है। उसका सबसे अधिक अनुभवी और योग्य होना जरूरी होता है।

प्रधान-अध्यापक के कर्त्तव्य—कोई स्कूल जितना ही अधिक बड़ा होता है प्रधान-अध्यापक के कर्तव्य उतने ही अधिक हो जाते है। किसी विद्यालय को आरम्भ से चलाने के लिये [illegible] ही करने पड़ते। [illegible] भार वहन करने [illegible] चालू संस्था के [illegible]

(१) प्रशासन सम्बन्धी—अध्यापन और परीक्षण, स्कूल के भीतर होने वाले समारोहों का सचालन, स्कूल के कार्यालय, बजट, भवन की देखभाल ।

(२) शिक्षण का सगठन—अध्यापक वर्ग का नेता होने के कारण उसे वर्ष भर का शिक्षण प्रोग्राम निश्चित करना पड़ता है।

(३) विद्यालयों की प्रगति और क्रियाओ की देखभाल उनके प्रवेश और वर्गीकरण और कक्षोन्नति का कार्य अनुशासन, शारीरिक, नैतिक और चारित्रिक विकास ।

(४) समाज और समुदाय से सम्बन्ध स्थापित करने के लिये भिन्न-भिन्न क्रियाओ मे सहयोग ।

प्रधान-अध्यापक की जिम्मेदारियाँ—विद्यालय के प्रधान की जिम्मेदारियाँ दो प्रकार की हैं - आन्तरिक एव बाह्य । आन्तरिक जिम्मेदारियाँ होती हैं विद्यालय के विद्यार्थियो, अध्यापको, कार्यालय, बजट, भवन से सम्बन्ध रखने वाली । बाह्य होती हैं केन्द्रीय, राज्य और शिक्षापरिषद् तथा प्रबन्धकारिणी समिति से सम्बन्ध रखने वाली ।

प्रधान को केन्द्रीय तथा राज्यीय सरकारो के आदेशो, विज्ञप्तियो, राजाज्ञाओ का पालन करना होता है अत उसे उनकी शिक्षानीति, अनुदानप्रथा, अध्यापक विषयक विषयो का ज्ञान होना चाहिये । उसे निम्नाकित बातो की जानकारी आवश्यक है—

(अ) माध्यमिक शिक्षा से सम्बन्ध रखने वाली प्रशासन सम्बन्धी उन सूचनाओं का ज्ञान होना चाहिए जिनको शिक्षा विभाग प्रकाशित करता रहता है और जिनका सम्बन्ध विद्यार्थियो के प्रवेश, निष्कासन, उपस्थिति, विद्यालय के खोलने और बन्द करने के समय, दण्ड और उन्नति देने के नियम, समय चक्र, कक्षा का आकार, डाक्टरी जाँच, शारीरिक शिक्षा, गृहकार्य आदि से होता है।

(ब) पाठ्यक्रम, पाठ्यपटल (syllabus), पाठ्यपुस्तक जो भिन्न-भिन्न स्तरो के बालको के लिये निर्धारित की गई है।

राजकीय विद्यालयो मे तो उनकी दशा बड़ी ही चिन्ताजनक है। उनको अपने स्टाफ

का स्तर गिर जाता है उनको रिक्त स्थानो को भरने का कोई अधिकार नही होता। यदि कोई अध्यापक गलत आचरण करता है तो उसके विरुद्ध वे कोई कार्यवाही नहीं कर सकते। वे तो केवल शिक्षा विभाग को रिपोर्ट ही कर सकते है। यदि रिपोर्ट करते हैं तो उन्हे अपनी रिपोर्ट के लिए सबूत पेश करने पडते हैं। यदि शिक्षा विभाग ने अध्यापक के साथ पक्षपात कर दिया तो उनको अनादर और हीनभाव का सामना करना पड़ता है।

यदि विद्यालयो के प्रशासन मे सुधार ही लाना है तो प्रधानाचार्यों को अधिकार देने होगे। यदि शिक्षा विभागो को वर्तमान प्रधानाचार्यों की योग्यता और क्षमताओ मे विश्वास नहीं है तो उसे ऐसे प्रधानाचार्यों का चुनाव करना होगा जो योग्य हो। शिक्षा आयोग (१९६४-६६) का मत है —

"The general principle should be to select headmaster's carefully to train them properly to trust them fully and to vest them with necessary authority".

प्रधानाचार्य मे विश्वास—जब तक शिक्षा विभाग उन पर विश्वास नही करेगा तबतक शिक्षा मे सुधार तो आ नही सकता। वे गलती कर सकते हैं। उन्हे गलती करने दीजिए। गलती करके ही तो सीखेगे। प्रधानाचार्य जरा सी गलती कर देता है उसके खिलाफ बखेडा खडा कर दिया जाता है। यह शिक्षा विभागीय नीति ठीक नहो है। उसे स्वतन्त्रता दीजिए गलती करके सीखने की और जब उसे ऐसी स्वतन्त्रता मिल जायेगी तब उसे अपना अधिकार मानकर विद्यालय के कार्य मे रुचि लेगा।

प्राइवेट स्कूलो मे शिक्षा विभाग को प्रबन्धकारिणी समितियो पर यह दबाव डालना चाहिये कि वे अपने प्रधानाचार्यों को ऐसे ही अधिकार सौंपें और उनको सशक्त बनायें ताकि वे विद्यालयो का सचालन सगठन उचित प्रकार से कर सकें।

प्रधानाचार्य का प्रशिक्षण—विद्यालय का प्रधानाचार्य शैक्षणिक प्रशासन की महत्वपूर्ण इकाई है। वर्तमान समय में इन प्रशासको के प्रशिक्षण की सुविधाएँ सतोषप्रद नही हैं। प्रशासक की सेवा पूर्व प्रशिक्षा न तो आवश्यक ही है और न सम्भव ही। यद्यपि M. Ed. मे शैक्षणिक प्रशासन एक विषय के रूप मे पढाया जाता है लेकिन यह विषय उन लोगो के द्वारा पढ़ाया जाता है जो प्रशासन मे कोई भी व्यावहारिक ज्ञान नही रखते। भारतीय विद्यालयो मे प्रशासन की क्या दशा है? भारतीय स्कूलो मे प्रशासन को कैसी-कैसी समस्याएँ हैं। इसका ज्ञान उन्हें नही होता अतः शैक्षणिक प्रशासको के लिये तो सेवाकालीन प्रशिक्षण ही लाभदायक हो सकता है। दुर्भाग्यवश किसी भी राज्य के शिक्षाविभाग ने प्रधानाचार्य अथवा अन्य शिक्षा अधिकारियो के प्रशिक्षण के लिये कोई सुविधा नही दी है। शैक्षिक प्रशासको को तो प्रशासन सम्बन्धी प्रशिक्षण अत्यन्त आवश्यक है, एक तो इसलिये कि उनका कार्य बड़ा जटिल और कठिन होता है, दूसरे यदि शिक्षा का प्रसार करना है तो वह प्रसार अप्रशिक्षित प्रशासको द्वारा असम्भव है।

अतः उनके प्रशिक्षण के लिये निम्न सुझाव पेश किये जाते हैं:—

(अ) प्रत्येक राज्य की State Institute of Education का यह कर्तव्य है कि वह प्रधानाचार्यों व शिक्षा अधिकारियों के लिये कान्फ्रेन्स, सेमीनार, वर्कशोपों का आयोजन करे। प्रत्येक [illegible] व्यवस्था करें। प्रत्येक [illegible] जो उन्हें प्रशिक्षण [illegible] रहता है कि उसके पास [illegible]नेक शैक्षिक विचारधाराओ का गहन अध्ययन करने का समय ही नहीं होता अतः प्रति ५ [illegible] सेवा के बाद प्रधानाचार्य को ३ महीने मे सेवाकालीन प्रशिक्षण हेतु अवकाश मिल जाना [illegible] ताकि वह इस समय मे शैक्षणिक समस्याओ का अध्ययन कर सके। उसको अपनी [illegible] level की भी इसी छुट्टी मे मिलाने का अधिकार होना चाहिये। अध्ययन के उपरान्त

उससे प्रतिवेदन मांगा जाय। जो अधिकारी अथवा प्रधानाचार्य अपनी योग्यता सेवाकालीन प्रशिक्षण द्वारा बढ़ाले उनको विशेष प्रकार की उत्प्रेरणा दी जानी चाहिए।

अध्यापकों का संगठन

Q. 6 With what group of persons should the head of a school be in constant touch ? Haw can he secure coordination of their efforts in the interest of the child ? (*Agra B. T. 1957*)

(१) विद्यालय के शैक्षणिक प्रोग्राम का रूप किस प्रकार निश्चित किया जाय और

[illegible] ा जाय और अध्यापकों को किस प्रकार उनको सम्पादित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाय।

(४) पाठशाला के इन भिन्न-भिन्न विभागों के कार्यों का समन्वय किस प्रकार स्थापित किया जाय।

शैक्षणिक प्रोग्राम का निर्धारण

प्रत्येक राज्य का शिक्षा विभाग उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के लिये पाठ्यचर्याओं का निर्धारण कर दिया करता है। ऐसी अवस्था में प्रधानाध्यापक का कार्य उन विषयों में से उपयुक्त विषयों का चुनाव मात्र रह जाता है। किन्तु उसके उत्तरदायित्व का अन्त यहीं नहीं हो जाता। उन विषयों का समुचित ढंग से शिक्षण करने के लिए योग्य अध्यापकों की नियुक्ति करनी पड़ती है, वर्ष भर का कार्य निश्चित करना पड़ता है। समय चक्र तैयार करना पड़ता है और अनेक ऐसी क्रियाओं का विद्यालय में समावेश करना पड़ता है जो उसके छात्रों के मानसिक, शारीरिक, आध्यात्मिक एवं नैतिक विकास के लिये नितान्त आवश्यक होती हैं। इस समस्त क्रियाओं को वह अकेला नहीं कर सकता, उसे अपने साथियों के सहयोग की आवश्यकता निरन्तर बनी रहती है।

पाठचर्याओं का निर्धारण भी समूह की जिम्मेदारी है। प्रधानाध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह इन कार्य को भिन्न-भिन्न विभागाध्यक्षों को सौंप दे। प्रत्येक विभाग विद्यालय के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर पाठचर्या को निश्चित करे। उन परिस्थितियों को मान्यता दे जो उन उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक सिद्ध हो सकती हैं; उन समस्त स्थानीय साधनों की खोज करे जो उनके शिक्षण कार्य को सुगम बना सकते हैं। प्रत्येक विभाग वर्ष भर के प्रोग्राम को इस प्रकार बाँट ले कि साल भर काम समान गति से चलता रहे। विद्यालय की शैक्षणिक प्रगति का इच्छुक प्रधानाचार्य विभागाध्यक्षों को जिम्मेदारी सौंप सकता है। प्रत्येक विभाग का अध्यक्ष अपने सहगामियों की सहायता से अपने विषय की देखरेख कर सकता है। यह विद्यालय अधिक बड़ा नहीं है तो प्रधानाध्यापक हैड टीचर्स को यह काम सौंप सकता है, यह हैड टीचर दो या दो से अधिक विषयों की प्रगति की देखभाल कर सकता है। नेतृत्व के इस प्रकार विकेन्द्रीकृत हो जाने पर संस्था के कार्य ठीक ढंग से चलते रहते हैं।

प्रत्येक अध्यक्ष निम्नलिखित बातों के लिये उत्तरदायी हो सकता है :—

(१) अपने विभाग की मीटिंगों का आयोजन।
(२) पाठचर्या की योजना का निर्माण एवं विभाग के समस्त कार्यों का समन्वय।
(३) पाठ्यपुस्तकों का चुनाव।
(४) विद्यार्थियों की अधिगम का मूल्यांकन।
(५) शैक्षणिक सामग्री एवं उपकरणों का एकत्रीकरण।

शिक्षा सम्बन्धी प्रगति के उत्तरदायी इन विभागों के अतिरिक्त विद्यालय में अन्य सेवा कार्यों के लिये सेवा विभागों का आयोजन किया जा सकता है। उदाहरणस्वरूप प्रत्येक बालक

को मार्ग प्रदर्शन की आवश्यकता होती है; उसके पर ग्रौर समाज से विद्यालय का सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता है, उसकी शारीरिक वृद्धि एवं विकास के लिए पाठ्य बाह्य क्रियाग्रों का आयोजन करना होता है। इन सब क्रियाग्रों के लिए जो विभाग स्थापित किये जाते हैं उन्हें हम सेवा विभाग (Service departments) कह सकते हैं। इनकी जिम्मेदारी एक व्यक्ति ग्रथवा व्यक्तियों के एक समूह को सौंपी जा सकती है।

विद्यालय के प्रांगण में होने वाले इन विविध क्रिया कलापों के बीच सम्बन्ध स्थापित करने के लिए एक मन्त्रणालय की स्थापना की जा सकती है जिसके सदस्यों की सख्या ५ से लेकर १० तक हो सकती है। यह समिति जिसका सभापति प्रधानाचार्य हुग्रा करता है शिक्षा सचालन एवं प्रशासन सम्बन्धी सब समस्याग्रों पर ग्रपनी सच्ची सलाह भिन्न-भिन्न विभागों एवं सेवाकार्य के ग्रध्यक्षों को देकर विद्यालय को सफल बना सकती है।

प्रधानाध्यापक ग्रौर ग्रध्यापकों का सम्बन्ध

Q. 7. In what ways should the head of a school secure the cooperation of his staff in promoting the moral tone of his school? *(Agra B. T. 1950)*

विद्यालय का सचालन (administration) दो प्रकार से हो सकता है—स्वेच्छाचारी ढग से ग्रथवा लोकतन्त्रात्मक विधि से। पहली विधि से विद्यालय का सचालन करने वाला प्रधानाध्यापक तानाशाह बन जाया करता है। वही प्रधान शास्त्रकार (lawgiver) होता है ग्रौर उसकी ग्राज्ञायें कानून की तरह मानी जाती हैं। उसका ग्रध्यापक वर्ग से कोई सम्बन्ध नहीं होता क्योंकि पहले तो वह ग्रध्यापकों से सम्पर्क ही नहीं स्थापित करता ग्रौर यदि कभी ग्रध्यापकों की गोस्टी (Staff meeting) का ग्रायोजन भी करता है तो उनके निर्देश ग्रहण करने की क्षमता उसमें नहीं होती। दूसरी विधि से विद्यालय का सचालनकर्त्ता जनतन्त्रीय शिक्षा के इस मूलमन्त्र को ग्रच्छी तरह समझता है कि शिक्षा किसी व्यक्ति विशेष द्वारा निर्धारित या सचालित नहीं हो सकती क्योंकि वह सामूहिक जिम्मेदारी (Collective responsibility) है। वह ग्रपने को समूह का नेता मानकर चलता है, तानाशाह नहीं। ग्रन्य ग्रध्यापकों को ग्रपने भाई के समान समझता है नौकर नहीं।

जनतन्त्रात्मक संचालन के आदर्श

जनतन्त्र में विश्वास रखने वाला यह प्रधानाध्यापक निम्नलिखित ग्रादर्शों को लेकर सचालन कार्य ग्रारम्भ करता है—

(१) प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व ग्रादरणीय है।

(२) प्रत्येक मानव को उन समस्त विषयों पर जो उसके जीवन को प्रभावित करते हैं, ग्रपनी राय देने का ग्रधिकार है।

(३) उसे समानता व स्वतन्त्रता का ग्रधिकार है।

(४) उसे सहयोग, न्याय, सामाजिक क्षमता ग्रौर ग्रनुशासन के द्वारा ग्रपना विकास करके समाज का हित करना है ग्रौर वातावरण के निर्माण में ग्रपना ग्रश दान देना है।

(५) कट्टरता, सकीर्णता, साम्प्रदायिकता, ग्रसहिष्णुता ग्रादि जैसी सामाजिक बुराइयों को जनतन्त्र में कोई स्थान नहीं है।

सक्षेप में जनतन्त्रीय विचारधारा, स्वतन्त्र विचार, सौहार्द, खुला हुग्रा मस्तिष्क, निष्पक्ष भावना, स्वार्थ रहित सेवा, व्यक्ति के ग्रादर एवं सामाजिक कल्याण से सम्बन्ध रखती है। जिस सस्था में प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व का ग्रादर नहीं किया जाता, वह सस्था फलफूल नहीं सकती। ग्रतएव प्रधानाध्यापक का कर्तव्य है कि वह ग्रपने प्रत्येक ग्रध्यापक को—उसकी कमजोरियों एवं शक्तियों को जाने। जितना ही ग्रधिक गहरा सम्पर्क वह ग्रध्यापक के साथ स्थापित कर सकेगा, उतनी ही ग्रधिक सफलता प्राप्त कर सकेगा। वह देखे कि प्रत्येक ग्रध्यापक को उसकी योग्यता, रुचि ग्रौर इच्छा के ग्रनुकूल कार्यभार सौंपा गया है। प्रत्येक ग्रध्यापक की रुचियाँ निजी रुचियाँ होती हैं, उसकी योग्यतायें उन्हीं से सीमित होती हैं। ग्रतएव जो प्रधानाध्यापक ग्रपने ग्रध्यापक की योग्यता या महत्व (worth) को ग्रच्छी तरह समझता ग्रौर उसके लिये उसका सम्मान करता है, विद्यालय में स्वस्थ वातावरण पैदा कर दिया करता है।

लोकतन्त्रात्मक शासन का दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धान्त है प्रत्येक व्यक्ति को अपनी राय देने का पूर्ण अधिकार। प्रधानाध्यापक यह मानकर चले कि प्रत्येक अध्यापक, चाहे वह अधिक अनुभवी ... वह विद्यालय के प्रति भवि ... उसके जीवन को प्रभावित कर ... के निर्माण में अपनी सामर्थ्य के अनुसार योगदान दे सकता है। यदि शिक्षा-संचालन का कार्य सामूहिक जिम्मेदारी मानी जाती है तो अध्यापक वर्ग में निम्न गुण होने चाहिए

(१) प्रत्येक सदस्य के अंश का महत्त्व स्वीकार करने की इच्छा
(२) „ „ की विचारधारा को सम्मान देने की इच्छा
(३) „ „ को समान स्तर पर मानकर उनके साथ व्यवहार करना
(४) अपने दृष्टिकोण को नवीन अनुभवों के प्रकाश में परिवर्तित करने की क्षमता
(५) अपने दृष्टिकोण की आलोचना किये जाने पर बुरा न मानने की योग्यता।

मनोविज्ञान एवं अध्यापक वर्ग की

यदि विद्यालय का संचालन सामूहिक क्रिया है तो प्रत्येक सदस्य को समूह की सफलता को अपनी सफलता मानकर सर्वोत्तम सहयोग या सहकारिता देनी होगी और दूसरे व्यक्तियों के सहयोग को सम्भावना के साथ स्वीकार करना होगा चाहे वे व्यक्ति अनुयायी या सहगामी हों या समूह के नेता हों। समूह के नेता को अपने अनुगामियों या सहगामियों का सहयोग सदैव मिल सकता है यदि उसमें सहयोग प्राप्त करने की क्षमता हो। इस सहयोग के लिये निम्नलिखित बातें आवश्यक हैं।

(१) अपने समाज के प्रत्येक व्यक्ति के साथ गहरा आत्मसद्भाव—जनतन्त्रीय शिक्षा ...

सहयोग तो उसे बरबस प्राप्त होगा।[1]

(२) प्रधानाध्यापक का प्रत्येक अध्यापक के साथ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार—उसे अपने को उनका हितैषी, बन्धु, परामर्शदाता और मार्ग प्रदर्शक मानकर चलना चाहिए। उनके अच्छे कार्य ... ायता करना, उन्हें अपने ... तत्परता पैदा कर देते हैं। ... र उसे समझा दे। दूसरों ... व्यवहार में इतना मिठा ... के लिये रखें और सलाह लें। अध्यापकों की कठिनाइयों को समझने की उसमें शक्ति हो और उन्हें यथाशक्ति दूर करने की सामर्थ्य भी। यदि ऐसा हो सका तो वह अध्यापकों का सहयोग स्वतः प्राप्त कर लेगा।

(३) अन्याय एवं दलबन्दी का अभाव—वांछित मात्रा में सहयोग प्राप्त हो सके इसके लिए प्रधानाध्यापक विद्यालय में किसी प्रकार की दलबन्दी को पनपने न दे और न स्वयं ही किसी

---

1. It is ... on and oversight of an organisation which assures that ... are ... that working policies are agreed to those invol- ... both free and eager to contribute their best

गुट का सदस्य रहे। उसकी दृष्टि में सब अध्यापक समान हों, सबको अच्छे कार्यों के लिए प्रोत्साहित और त्रुटियों के लिए सबको सावधान करता हुआ वह सबसे सहयोग प्राप्त कर सकता है। किसी के साथ पक्षपात न हो और न किसी के साथ अन्याय। अध्यापन कार्य एवं पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं का वितरण अध्यापकों की योग्यता, रुचि एवं अनुभव के आधार पर इस प्रकार किया जाय कि कोई असन्तुष्ट न रहे।

(४) अध्यापक के ऊपर विश्वास—प्राय. प्रधानाध्यापक अपने अनुगामियों एवं सहगामियों के कार्य में दखल दिया करते हैं। यह आदत बहुत बुरी है क्योंकि यदि अध्यापक के कार्य में समय-समय पर दखल दिया जाता है तो उसके आत्म-सम्मान को ठेस पहुँचती है। उनके अन्दर जो मानसिक तनाव पैदा हो जाता है वह सफलतापूर्वक कार्य करने में बाधा पहुँचाया करता है। जब आवश्यकता पड़े तभी वह उसके कार्य का निरीक्षण या मूल्यांकन करे। यदि आवश्यकता समझे तो अपने दृष्टिकोण को समझाते हुए आवश्यक निर्देश दें अथवा अध्यापक के आत्मसम्मान की रक्षा होने दें।

(५) अध्यापकों में असन्तोष न पैदा होने दिया जाय—अध्यापकों में असंतोष पैदा होने के कारण अनेक हैं। कभी-कभी प्रधानाध्यापक शिक्षक के अच्छे कार्य करने पर भलाई अपने सिर लेते हैं और कार्य के बिगड़ जाने पर बुराई अध्यापक के सिर मढ़ दिया करते हैं। प्रधानाध्यापक की इस अस्वस्थ मनोवृत्ति का फल यह होता है कि उसे भविष्य में सहयोग मिलना बन्द हो जाता है। अत असन्तोष पैदा करने वाली परिस्थितियों को बिल्कुल पनपने न दिया जाय। अध्यापकों में असन्तोष बहुधा निम्नलिखित तीन बातों पर हुआ करता है :—

(१) प्रधानाध्यापक की असन्तोषजनक नीति।
(२) अध्यापकों के आपसी झगड़े।
(३) अध्यापकों एवं प्रधानाचार्य के बीच सम्बन्धों का बिगड़खाता।

इन दशाओं में यदि प्रधानाचार्य उनकी शिकायतों को कान खोलकर सुने, उनकी समस्याओं एवं कठिनाइयों में हार्दिक रुचि का प्रदर्शन करे तो वह समूह में पुनः एकता स्थापित कर सकता है।

(६) नवीन अध्यापकों की नियुक्ति के विषय में सतर्कता एवं विवेकशीलता—प्रधानाचार्य ऐसे अध्यापकों की नियुक्ति पर बल दे जो उसकी राय में विद्यालय के वातावरण के योग्य हो और उसे वांछित सहयोग दे सके।

(७) अध्यापक गोष्ठियाँ (Staff meetings)—अन्त में, अध्यापकों का सहयोग प्राप्त करने के लिये प्रधानाचार्य को अध्यापक-गोष्ठियों पर भी बल देना चाहिये। कभी कभी तानाशाह प्रधानाचार्य विद्यालय की नीति का निर्धारण अपने सहगामी अध्यापकों की सहायता के बिना कर लिया करता है। फल यह होता है कि उसके सहगामी पूरे मन से काम नहीं करते। अनुभव बतलाता है कि जब प्रधानाचार्य विद्यालय की नीति का निर्धारण अपने साथियों की सहायता से करता है तब उसे वांछित सहयोग मिल जाया करता है।

स्टाफ मीटिंग में निम्नलिखित समस्याओं पर विचार विमर्श किया जा सकता है—(१) पाठ्यक्रम, (२) अध्यापन कार्य का वितरण, (३) समय चक्र, (४) विद्यालय की साजसज्जा (५) शिक्षण प्रणाली में उन्नति, (६) बजट की नीति, (७) नियमों का पालन, (८) प्रयोगात्मक अध्ययन, (९) प्रसार कार्य और अन्य समस्यायें।

इन मीटिंगों को सफल बनाने के लिये निम्नलिखित आदेश प्रस्तुत किये जा सकते हैं :—

(अ) प्रत्येक स्टाफ मीटिंग का एजेन्डा पहले ही घुमा दिया जाय ताकि अध्यापक मीटिंग में सक्रिय भाग ले सकें।

(आ) मीटिंगों की संख्या अधिक न हो किन्तु जब कोई मीटिंग बुलाई जाय तब उसकी सूचना काफी पहले से दे दी जाय।

(इ) मीटिंग में इस बात पर जोर दिया जाय कि कम से कम समय में हाथ में ली गई समस्या का हल ढूंढा जा सके।

(ई) प्रधानाध्यापक अध्यापकों को बहस करने का उचित अवसर दे, उन्हें विषय से दूर न जाने दे, और बड़ी शान्ति से मीटिंग का कार्य सम्पादन करे।

(उ) मीटिंग का ब्यौरा भविष्य के लिये तैयार रखे।

(८) उत्तम पर्यवेक्षण की सहायता से भी प्रधानाचार्य अपने अध्यापकों का सहयोग प्राप्त कर सकता है। यदि वह अपने सहयोगियों का विश्वास करता है तो पर्यवेक्षण का कार्य वह सीनियर सदस्यों को सौंप सकता है। इस प्रकार विद्यालय में सहकारिता के तत्वों का विकास हो सकेगा।

अध्यापकों का कार्य वितरण

Q. 8 What principles should be followed by the head of the institution in the distribution of work? Discuss the merits and demerits of class and subject teacher system

प्रधान अध्यापक विद्यालय की व्यवस्था का सफल निर्वाह भी कर सकता है, जब वह कार्य का वितरण ठीक तरह से करे। कार्य का वितरण करते समय उसे इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि योग्यता के अनुसार वैयक्तिक विभिन्नताएँ होती हैं। कोई व्यक्ति किसी कार्य को उत्तम ढंग से कर सकता है तो अन्य व्यक्ति अन्य कार्यों को। प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक कार्य को सफलतापूर्वक सम्पादित कर सके यह बात असम्भव है। इसलिये कार्य को वितरण करने समय प्रधानाध्यापक को व्यक्ति की योग्यता और रुचि का ध्यान रखना होगा।

अध्यापक की योग्यता—यदि योग्यता से तात्पर्य व्यक्ति की qualification से है तो उसे उसकी qualifications के अनुसार कक्षाएं पढ़ाने को दी जा सकती हैं। शिक्षा संहिता भी प्राय: यही आदेश देती है कि ट्रेन्ड ग्रेजुएट को नवीं और दसवीं, ट्रेन्ड अण्डर ग्रेजुएट को छठी सातवीं, आठवीं, और पोस्ट ग्रेजुएट को ११ वीं और १२ वीं कक्षाएं पढ़ाने को दी जावें। परीक्षा सम्बन्धी योग्यता होने पर भी बहुत से अध्यापक कुशल शिक्षक नहीं हो पाते इसलिये यह भी देख लेना चाहिये कि अध्यापक में किसी विषय को पढ़ा लेने के लिये अपेक्षित योग्यता है या नहीं। यहाँ योग्यता का अर्थ है ability से। यदि हाईस्कूल या इण्टर पास व्यक्ति हाईस्कूल की कक्षाओं को अच्छी तरह पढ़ा सकता है तो उसे उन कक्षाओं को पढ़ाने की आज्ञा दे देनी चाहिये।

अध्यापक की रुचि—प्रधानाध्यापक को अध्यापकों की व्यक्तिगत रुचि के अनुकूल कार्य भार सौंपना चाहिये। साहित्य गोष्ठियों का कार्य साहित्यिक रुचि वाले को, खेल कूद का काम खिलाड़ी को, समाज सेवा, स्काउटिंग का कार्य समाज सेवा में रुचि लेने वाले को, पुस्तकालय, वाचनालय का काम अधिक अध्ययन करने वाले को सौंपना ठीक रहता है, नहीं तो अध्यापक उस कार्य में पूर्ण योगदान नहीं कर पावेगा।

अध्यापक का स्वभाव, विचार और आयु—इन बातों को भी ध्यान में रखकर अध्यापकों को कार्य सौंपना चाहिये।

कार्य वितरण करते समय सभी अध्यापकों को विचार प्रकट करने की स्वतन्त्रता दे दी जाय जिससे कार्यक्रम ऐसा बने कि अध्यापक वर्ग उसे स्वनिर्मित समझ कर पूरा सहयोग देने का प्रयत्न करे। उनकी कार्यक्षमता में विश्वास रखकर कार्य का सारा भार उन्हीं पर छोड़ दिया जाय। उनके कार्य में बार-बार टोकना प्रधानाध्यापक को शोभा नहीं देता। यदि वह यह समझता है कि उसके अलावा और कोई कुछ नहीं जानता तो यह भी उसकी सबसे बड़ी भूल होगी। जनतन्त्रात्मक व्यवस्था की माँग भी यही है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपना कार्य करने की पूर्ण स्वतन्त्रता दी जाय।

कार्य वितरण करते समय अध्यापक सबके साथ न्यायपूर्ण व्यवहार करे। किसी अध्यापक पर कार्यभार अधिक लाद देना, और किसी पर कम, असन्तोष पैदा करने वाला होता है। इसलिये सभी अध्यापकों पर उसे समान दृष्टि रखनी चाहिये। कार्य वितरण करने के बाद सब को समान रूप से सुविधाएं देनी चाहिये।

कार्य वितरण के बाद अध्यापकों के कार्य का पर्यवेक्षण समय-समय पर होता रहना चाहिये और उनकी बैठकें करके कार्य वितरण व्यवस्था का मूल्यांकन करते रहना चाहिये। इससे

साथ से जो कार्य किया जाता है वही उत्तम होता है इसलिए अध्यापकों को इन बैठकों में सबको परामर्श देने का अधिकार मिलना चाहिये।

अध्यापन कार्य का वितरण करते समय दो प्रकार की प्रणालियाँ प्रचलित हैं: एक प्रणाली के अनुसार एक कक्षा के सभी विषय एक ही अध्यापक को पढ़ाने को दिये जाते हैं। दूसरी प्रणाली के अनुसार प्रत्येक कक्षा के भिन्न-भिन्न विषय भिन्न-भिन्न अध्यापकों द्वारा पढ़ाये जाते हैं। ये अध्यापक अपने-अपने विषयों में विशेषज्ञ (specialist) होते हैं। छोटी कक्षाओं में १ से लेकर ८ तक कक्षा अध्यापक प्रणाली ही उपयुक्त रहती है क्योंकि इनमें व्यक्तिगत सम्पर्क और विषयों में पारस्परिक सम्बन्ध और समन्वय का अधिक महत्व रहता है। एक अध्यापक पूरी कक्षा के लिए उत्तरदायी होकर छात्रों की देखभाल भी ठीक तरह से कर सकता है क्योंकि इन कक्षाओं के बालकों की देखभाल जरूरी मानी जाती है। नवीं कक्षा से १२ वीं कक्षा तक के विद्यार्थियों को विषय चुनने का अधिकार होता है अत: इस स्तर पर विशेषज्ञों की आवश्यकता पड़ सकती है।

क्योंकि
ध्यापक
अवश्य [illegible]
भी यदि वह किसी अन्य विषय में रुचि रखता है तो उसे उस विषय को पढ़ाने का अवसर दिया जाय। माध्यमिक विद्यालयों में दोनों प्रकार के अध्यापकों की जरूरत है किन्तु महाविद्यालयों में विशेषज्ञ ही रखे जा सकते हैं। माध्यमिक विद्यालयों में यदि विशेषज्ञों की जरूरत होती है तो इने-गिने विषयों के लिये ही हुआ करती है जैसे कृषि, विज्ञान, वाणिज्य और संगीत।

कक्षाध्यापक-पद्धति के गुण—(१) अध्यापक बालकों के सम्पर्क में अधिक आता है अत वह अपने व्यक्तित्व की छाप उन पर अच्छी तरह से डाल सकता है, (२) विभिन्न विषयों को पढ़ाने के कारण वह विषयों में सह-सम्बन्ध और समन्वय पर जोर दे सकता है। (३) सभी विषयों को एक अध्यापक के द्वारा पढ़ाये जाने पर उनका एवं उसके विद्यार्थियों का दृष्टिकोण विस्तृत हो जाता है। (४) अध्यापक आदर्श मनोवैज्ञानिक सारणी बनाकर उसे सफलतापूर्वक चला सकता है क्योंकि वह यह अच्छी तरह से निर्णय कर सकता है कि किस विषय को कितने समय तक पढ़ाना है। (५) वह लिखित गृहकार्य का वितरण ठीक तरह से कर सकता है। (६) प्रत्येक विद्यार्थी के गुण, अवगुण, योग्यता, निर्योग्यता से परिचय पा लेने पर उनकी कमजोरियों को दूर करने की व्यवस्था कर सकता है। (७) सम्पूर्ण कक्षा को प्रोत्साहित कर उसमें एक सी भावना जाग्रत कर सकता है।

दोष—(१) एक ही अध्यापक दो या से अधिक विषयों में पारगत नहीं हो सकता क्योंकि न तो वह सभी विषयों का विशेषज्ञ हो सकता है और न सभी विषयों को समान रुचि से पढा ही सकता है।

(२) एक ही अध्यापक सभी विषयों की अध्यापन-प्रणालियों का ज्ञाता नहीं हो सकता। ऐसी दशा में उसका शिक्षण प्रभावशाली नहीं हो पाता। आजकल तो विभिन्न विषयों की शिक्षण प्रणालियों में पर्याप्त विकास और परिवर्तन हो रहे हैं।

(३) एक अध्यापक के सम्पूर्ण विषयों को पढ़ाने से विद्यार्थियों में अरुचि उत्पन्न हो जाती है और अध्यापक भी ऊब जाता है।

(४) यदि अध्यापक चरित्रवान् हुआ तो समस्त कक्षा पर उनके गुणों की उत्तम छाप पडेगी किन्तु उसमें कोई दुर्गुण होने पर कक्षा के विद्यार्थी उससे दुर्गुणों को अपना लेंगे।

(५) अत्यन्त सुयोग्य अध्यापक ही कक्षाध्यापक प्रणाली में सफलता पा सकता है किन्तु ऐसे अत्यन्त सुयोग्य, सच्चरित्र, सम्पूर्ण विषयों के ज्ञाता और सभी नवीनतम शिक्षण पद्धतियों के अपनाने वाले अध्यापक कितने मिल सकते हैं।

विषयाध्यापक प्रणाली

गुण —(१) विषय-विशेषज्ञ निरन्तर स्वाध्याय द्वारा उस विषय में और भी अधिक पारगत हो जाता है जिसका शिक्षण वह सभी कक्षाओं में नित्य करता है। वह अपने विषय की शिक्षण पद्धतियों से भी परिचित हो जाता है

(२) ऐसे विषय-विशेषज्ञ के साथ छात्रों का सम्पर्क कई वर्षों तक रहता है अत वे उसके व्यक्तित्व से प्रभावित होते रहते हैं।

(३) अध्यापक प्रत्येक विद्यार्थी की योग्यता को जान लेता है और अपने शिक्षण की व्यवस्था तदनुकूल बनाने का प्रयत्न करता रहता है।

(४) उसको अपने विषय के पढाने मे जितना उत्साह आता है उतना कक्षाध्यापक को नही, छात्र भी उसी विषय मे उत्साह और रुचि ग्रहण करते हैं जिसे अध्यापक उन्हे रुचि के साथ पढ़ाते हो।

दोष—(१) शिक्षक अपने विषय तक ही सीमित रहने के कारण अन्य विषयो के साथ समन्वय और सहसम्बन्ध स्थापित नही कर सकता। अपने विषय को ही सब कुछ समझाने लगना, दूसरे विषयो को तुच्छ समझना उसके लिये साधारण सी बात हो जाती है।

(२) वह अपने विषय मे जितनी रुचि रखता है उतनी रुचि बालको मे नही रखता अत उसके व्यक्तित्व की छाप उन पर नही पड पाती।

(३) प्रत्येक अध्यापक अपने गृहकार्य या कक्षाकार्य पर ही महत्त्व देता है अत छात्र कुछ विषयो मे रुचि लेने लगते हैं, कुछ को उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगते हैं।

अध्याय ८

विद्यालय भवन और उसकी साज-सज्जा

विद्यालय भवन का निर्माण

Q 1 What principles govern the construction of School building ?

विद्यालय भवन-निर्माण के आधारभूत सिद्धान्त—विद्यालय भवनों का निर्माण ज
तक योजनाबद्ध नहीं होता तब तक वह समाज की भावी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पात
और निश्चित सिद्धान्तों के अभाव में योजनाएँ भी विफल हो जाती हैं। अत. किसी भी विद्याल
का निर्माण करने से पूर्व निम्नलिखित बातों पर विचार करना होगा।

(अ) छात्रों के स्वास्थ्य की सुरक्षा।
(ब) भवन की समाज के लिए उपयोगिता।
(स) उसकी कलात्मक विशेषता।
(द) भवन निर्माण में व्यय का कम होना।

प्रोफेसर के० जी० सैय्यदन (K. G. Saiyidain) ने भवन-निर्माण के विषय में चच
करते हुए कहा था कि विद्यालय भवन में उपयुक्त खुले हुए स्थान और प्रकाश की तो आवश्यकत
है ही सबसे अधिक जरूरत तो इस बात की है कि भवन के तैयार करने में व्यावहारिक उपयो
गिता, कलात्मक सौंदर्य और कम खर्चीलापन हो।[1]

(अ) छात्रों के स्वास्थ्य की सुरक्षा— विद्यालय भवन तैयार करते समय पहली बात
जिसका ध्यान रखना अति आवश्यक है वह है छात्रों के स्वास्थ्य की सुरक्षा, विद्यालय का भौतिक
पर्यावरण कैसा है ? उसकी स्थिति कहाँ है ? विद्यालय के पास कितनी खुली हुई जगह है
उसकी मिट्टी (Soil) किस प्रकार की है ? वर्षा के पानी के बह जाने की क्या व्यवस्था है
इन बातों का बच्चों के स्वास्
छायादार वृक्षों के बीच घिरे
विद्यालय में ही बीत सकता है
के मैदान बनाये और बगीचे लगाये जा सकें। ऐसे स्थान जहाँ पर वर्षा का पानी भर जाता हो

ऊँची-ऊँची इमारतें न हों।

(ब) विद्यालय भवन का छात्र, अध्यापक तथा समाज के लिए उपयोगी होना—जिन
विद्यालयों में छात्रों और अध्यापकों को आवास की सुविधा देनी है उनके पास काफी भूमि होनी
चाहिए जिस विद्यालय भवन के अतिरिक्त छात्रावास तथा अध्यापकों के लिए क्वार्टर्स बनाये जा
सकें। जिन विद्यालयों में कृषि का अध्ययन होता है अथवा जो बहुउद्देशीय (Multipurpose)

—K. G. Saiyidain

विद्यालय हैं उनके पास तो और भी अधिक भूमि होनी चाहिए। विद्यालय मे कम से कम निम्नलिखित सुविधाएँ और कक्ष तो अवश्य होने चाहिए अध्यापक कक्ष, वाचनालय और पुस्तकालय, अतिथि कक्ष, प्रधानाध्यापक कक्ष, प्रयोगशालाएँ और वर्कशॉप, शौचालय, मूत्रालय, कैन्टीन।

मन्दिर होता है
[illegible] अधिक सुन्दर
[illegible] है वही प्रभाव
सुन्दर डिजायन के विद्यालय भवनो का छात्रों पर पडता है। विद्यालय का मनोहर वातावरण और भवनो की साजसज्जा छात्रो के लिए विशेष शैक्षिक महत्व रखती है। लेकिन फिर भी ध्यान इस बात का रखना होगा कि विद्यालय भवन फिजूलखर्ची का नमूना न बने।[1]

(द) विद्यालय भवन का कम खर्चीला होना—विद्यालय भवनो के निर्माण मे जहाँ-जहाँ खर्च मे कमी हो सके करनी चाहिए। यदि सम्भव हो तो खुली हवा वाले विद्यालय (Open air School) खोले जायँ और विद्यालय भवनों पर अधिक खर्च न किया जाय।

Q 2 If you are entrusted with the work of starting a new Junior school in a small town what considerations would you keep in your mind in the selection and the construction of the building ? *(Agra B. T. 1951, 1961)*

Or

Draw up the plan of the building of a higher secondary school and locate on it the position of the hall, the school office, special subject rooms and classrooms Make a list of the articles of furniture and equipment that would be required for it. *(Agra B T. 1956)*

Or

Draw up a plan of the building of secondary school with an enrolment of 500 students and providing instruction in commerce and science besides the usual subjects. Draw up a list of essential furniture and equipment.

(Agra B. T. 1957)

अध्यापको को विद्यालय का चेतन साधन माना जाता है। किन्तु उनका जितना महत्व है उतना ही महत्व विद्यालय के अचेतन साधनो का भी है। इन अचेतन साधनो मे विद्यालय [illegible] शौचालय, मूत्रा- [illegible] प्रधान-अध्यापक [illegible] रखता है, उसे इस अचेतन साधन के महत्व एव जैसे निर्माण करने का ज्ञान होना चाहिये।

विद्यालय भवन तैयार करने से पूर्व ध्यान मे रखने योग्य बातें

विद्यालय भवन के निर्माण करने से पूर्व निम्नलिखित छ बातों पर ध्यान देना चाहिये—

(१) Master planning, (२) स्थिति, (३) शैक्षणिक आवश्यकतायें, (४) कक्षा कक्ष, (५) विषय कक्ष अथवा विशेष आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने वाले कक्ष, (६) सफाई और प्रकाश।

[illegible] प्रबन्ध [illegible] शैक्षणिक [illegible] की आव- [illegible] उद्योगो के भावी विकास, सडकें और रेलवे लाइनो के निर्माण एव उस Community की आवश्यकताओं

1. 'I have the feeling that while the elimination of ugliness should not involve any expense, the creation of effects can be combined with functional efficiency without necessarily involving extravagance". —K. G. Saiyidain

को ध्यान में रखें, जिसकी सन्तुष्टि के लिये विद्यालय का निर्माण किया जा रहा है। अतएव नव विद्यालय भवन के बनाने या पुराने विद्यालय में पुनर्निर्माण करने के पूर्व इन बातों पर अवश्य ध्यान देना चाहिए।

(२) स्थिति और प्रतिवेश—आधुनिक समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर हम वही कर सकते हैं जो सम्भव है। यह आवश्यक नहीं है कि विद्यालय का प्रांगण ऐसा हो जहाँ शान्तिमय और स्वास्थ्यप्रद वातावरण और स्वच्छता हो। गाँवों में इस प्रकार के स्थान तो अवश्य मिल सकते हैं, लेकिन शहरों में खुले मैदानों की कमी होने के कारण विद्यालयों के लिये उचित स्थान मिलना असम्भव हो जाता है किन्तु जहाँ तक हो सके विद्यालय सिनेमाघरों, factories, कारखानों और कोलाहलपूर्ण बाजारों से दूर होने चाहिये।

विद्यालय स्थापित करने का आयोजन होने पर उसके लिये स्थान का चुनाव अत्यन्त सावधानी से करना चाहिये। विद्यालय के लिए उपयुक्त स्थान चुनने की जिम्मेदारी विद्यालय के प्रशासक वर्ग पर रहती है। इसलिये भले ही उस स्थान के लिये अधिक खर्च करना पड़े, उन्हें इस बात की चिन्ता न करनी चाहिए। यदि कम खर्च पर अनुपयुक्त स्थान पर विद्यालय भवन का निर्माण कर दिया जाता है, तो आगे चलकर परेशानियाँ पैदा हो जाती हैं। विद्यालय के लिये [illegible], समतल हो, [illegible] श्यकताओं को [illegible] क हो जिसमें [illegible], बगीचे लगाने की सुविधा हो। स्थान पूरी तरह से स्वास्थ्यप्रद हो। पास में गन्दे नाले व गड्ढे न हों जिनमें मच्छर, बीमारियों के कीटाणु, धूल, धुआँ आदि पैदा होने की आशंका न हो। यह स्थान स्वास्थ्य-प्रद होने के साथ-साथ सौंदर्यपूर्ण और आकर्षक भी हो। भविष्य में विद्यालय जिस प्रकार की शैक्षणिक व्यवस्था करना चाहता है उसको ध्यान में रखकर विद्यालय के लिये भूमिखण्ड का आकार निश्चित किया जाये। यद्यपि हम विदेशों की बराबरी नहीं कर सकते तब भी प्रत्येक विद्यालय के पास कम से कम ५० बीघा जमीन हो और प्रत्येक सौ विद्यार्थियों के लिये ५ बीघे जमीन फालतू हो। इस प्रकार यदि किसी विद्यालय में १००० विद्यार्थियों के होने की सम्भावना है तो विद्यालय के पास कम से कम १०० बीघे जमीन की जरूरत है। अमेरिका की विद्यालय भवन निर्माण के विषय में सलाह देने वाली National Council ने भूमिखण्ड के इसी आकार का सुझाव दिया है।

(३) शैक्षणिक आवश्यकतायें—विद्यालय भवन समाज की शैक्षणिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करने को बनाया जाता है। अत: वह अधिक सजावट न हो लेकिन उनकी सब प्रकार की जरूरतों को अवश्य पूरा करे। S. N. Mukerji ने अपनी पुस्तक Secondary School Administration में लिखा है: "School buildings need not be ornate. They have to be built from the inside out instead of from the outside in." इसका आशय यह है कि विद्यालय के प्रशासकों को यह निश्चित कर लेना चाहिये कि स्कूल की इमारत में किस प्रकार [illegible]

[illegible] जाने की क्षमता।

(४) कक्षाकक्ष—वैसे तो विद्यालय में जितनी कक्षाएँ होती हैं या भविष्य में हो सकती हैं उतने ही कक्षाकक्ष बनाये जाते हैं। किन्तु आजकल नई विचारधारा वाले प्रधान अध्यापक, विद्यालय के अधिकारी वर्ग, कक्षा-कक्षों के आकार, रूप के विषय में नई धारणायें लेकर चलते

है। पुराने विचार वाले व्यक्ति कक्षाकक्ष को अधिक से अधिक २४'×३०' आकार वाला बनाने के पक्ष मे है और कम से कम २०'×२०' का जो ३५-४० छात्रो के लिए उपयुक्त हो सके। और शिक्षा विभाग भी इसी बात का आदेश देता है कि प्रत्येक छात्र के लिये कम से कम ८ या १० वर्ग फीट स्थान कक्षा मे होना चाहिये। किन्तु यदि हमे नवीनतम प्रगतिशील पाठनविधियो को अपनाना है तो कक्षाकक्षो का आकार बढाना होगा। क्योकि हमे उस दशा मे कक्षा के भीतर ही Project teaching laboratories work, वाद-विवाद, दृश्य-श्रव्य, उपकरणो से शिक्षण, व्यक्तिगत शिक्षण (individualised instructions) और Dramatization की सुविधा देनी होगी।

प्रत्येक कक्षाकक्ष की छत की ऊँचाई १५' हो सकती है। उसमे दो या दो से अधिक दरवाजे ७' ऊँचे, ४' चौडे, चार खिडकियाँ ३'×३½' और कई रोशनदान होने चाहिये। कक्षा मे आगे या पीछे से प्रकाश न आना चाहिये। जहाँ तक हो सके प्रकाश बाँयी ओर से आना चाहिये। सामने या पीछे से प्रकाश आने पर छात्रो की आँखो पर जोर पडता है, और आँखें खराब हो जाती हैं। इसके अतिरिक्त कक्ष सुन्दर और शोभपूर्ण होना चाहिये किन्तु इसका मतलब यह नही कि कक्षाकक्ष की दीवारें चटकीले भडकीले चित्रो से ढकी हो। दीवारो पर चित्रकारी कलात्मक ढग से की जाये। दीवालें यदि तूतिया से पुती हुई हो तो और भी अच्छा है।

(५) अन्य विशेष कक्ष—विषय कक्षो के विषय मे विशद् रूप से आगे विचार किया जायेगा। यहाँ पर केवल सक्षेप मे उनकी विशेषताओ के विषय मे उल्लेख किये देते हैं। प्रत्येक विद्यालय मे विज्ञान, कृषि, भूगोल, इतिहास, कलाकौशल, सगीत और गृह विज्ञान आदि विषयो के लिये अलग-अलग कमरे होने चाहिये। विषय कक्ष का आकार और बनावट विषय की आवश्य-

यह है कि उनमे इतना स्थान

विद्यार्थी या अध्यापक अच्छी

सकते हैं। ये कमरे किसी

क्षा मे सुविधा मिल सकती

है, यदि उनका प्रयोग ठीक ढग से किया जाये।

वें, उत्सव, सभा,

उसमे कक्षा भी

और Community

मे यह सभा भवन

जा सकें। इसका

क्षेत्रफल भी विद्यालय के विद्यार्थियो की सख्या को ध्यान मे रखकर निश्चित किया जाये। विद्यालय के अनेक गतिविधियो का केन्द्र होने के कारण उसका सभा भवन अपना विशेष महत्त्व रखता है क्योकि इनको अनेक कार्यो मे प्रयोग किया जा सकता है।

(ब) विज्ञान प्रयोगशाला—आधुनिक वैज्ञानिक युग मे प्रत्येक नागरिक को आधारभूत सामान्य विज्ञान की बातो का ज्ञान होना आवश्यक है। इसी बात को ध्यान मे रखकर जूनियर हाईस्कूलो मे विज्ञान को अनिवार्य बना दिया गया है और माध्यमिक स्तर पर विज्ञान ऐसा विषय हो गया है जिसको लेने वाले छात्रो की सख्या दिन प्रतिदिन बढती चली जा रही है। ऐसी अवस्था मे प्रत्येक विद्यालय मे सुनियोजित समस्त साजसज्जा से सुसज्जित प्रयोगशालाओं की आवश्यकता है। विज्ञान के शिक्षण के लिये आमतौर से तीन प्रकार के कमरो की आवश्यकता होती है। (i) लैक्चर (Lecture) और प्रदर्शन (Demonstration) के लिये, (ii) प्रयोग करने के लिये, (iii) स्टोर। बडे बडे विद्यालयो मे ये तीनों प्रकार के कमरे तैयार कराये जा सकते हैं लेकिन छोटे विद्यालयो मे एक कमरे से काम चलाया जा सकता है।

(स) पुस्तकालय और वाचनालय—पुस्तकालय के महत्त्व, पुस्तको के चयन और पुस्तकालय की व्यवस्था पर अगली धारा मे विशद रूप से विचार किया जायगा। आधुनिक युग मे यदि विद्यालय स्वाध्याय की प्रेरणा और प्रोत्साहन न दे सका तो शिक्षा का उद्देश्य अधूरा माना जायेगा। अत: पुस्तकालय कक्ष की योजना भवन निर्माण मे अवश्य सम्मिलित होनी चाहिये।

(द) विद्यालय मे अन्य कक्ष जिनकी प्राय आवश्यकता होती है—भण्डारगृह, म्यूजियम, शिक्षक कक्ष, व्यायामशाला, शौचालय एव मूत्रालय, कार्यालय, प्रधान अध्यापक कक्ष और क्रीडा कक्ष आदि।

(५) सफाई ग्रौर प्रकाश—भारत जैसे देश मे प्रकाश की समस्या किसी भी शहर मे पैदा नही होती, क्योंकि हमारे देश मे ताजी हवा ग्रौर धूप की रोशनी काफी मात्रा मे मिल जाया करती है। ग्रत विद्यालय भवन निर्माणकर्त्ताग्रो को केवल इस बात का ध्यान रखना पडता है कि विद्यालय मे ग्रधिक से ग्रधिक दरवाजे व खिड़कियाँ हों ग्रौर विद्यालय के बाहर पेड़ लगे हो।

इसके दो लाभ होते है—(१) कमरे के भीतर जाने वाली हवा ठण्डी हो जाती है। (२) सूर्य की किरणो का चकाचौंधपन पत्तो की हरियाली मे छिप जाता है।

सफाई ग्रौर स्वच्छता के लिये शौचालय ग्रौर मूत्रालय छात्रों की सख्या के ग्रनुपात मे भिन्न-भिन्न स्तरो के बालकों के लिये बनाये जायँ। यदि यह विद्यालय के मुख्य भवन से कुछ दूर किसी कोने मे हो तो ग्रच्छा है। नगरो मे ग्राधुनिक प्रकार के Flush Latrines की व्यवस्था की जाती है ग्रौर यदि ऐसी व्यवस्था न हो सके तो शौचालय का मुख ढका रहे। प्रति सौ छात्रो पर एक शौचालय व एक मूत्रालय की ग्रावश्यकता होती है। ग्रभी हमारे देश के विद्यालयों मे सफाई की ग्रोर कम ध्यान दिया जाता है। फलस्वरूप विद्यालय की Boundary ग्रौर दीवालो के पीछे का भाग सदैव गन्दा बना रहता है क्योकि छात्र किसी भी स्थान से मूत्रालय का काम चला सकते हैं। इस प्रकार गन्दगी बढती जाती है। ग्रामीण क्षेत्रों मे कम्पोस्ट शौचालय ग्रौ मूत्रालय का प्रबन्ध किया जा सकता है। विद्यालय भवन व कक्षाकक्षो की सफाई के लिये महीने मे कम से कम एक स्वच्छता दिवस का ग्रायोजन किया जा सकता है।

प्रत्येक विद्यालय मे साफ पानी की जरूरत पडती है। शहरी क्षेत्रो मे यह पानी नलो मे मिल सकता है। लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों मे साफ पानी मिलने की सुविधा कम है। उस स्थान पर चूषक पम्प से काम चलाया जा सकता है। भारत की वर्तमान ग्रवस्था मे जबकि न तो राज्य की सरकार ग्रौर न केन्द्रीय सरकार ही शिक्षा पर ग्रधिक खर्च कर सकती है, हम इस प्रकार के ग्रादर्श विद्यालय स्थापित नही कर सकते जिस प्रकार के विद्यालय विदेशो मे हैं। हमे कम खर्च मे ही ग्रच्छे से ग्रच्छे भवन का निर्माण करना है।

विद्यालय भवन के निर्माण मे खर्च को कमी करने के उपाय

ग्रक्टूबर १९५७ मे बडौदा मे विद्यालय भवनो के निर्माण पर जो गोष्ठी हुई थी उसके निर्देशों को ध्यान मे रखकर यदि भवनो का निर्माण किया जाये तो खर्च भी कम होगा ग्रौर भवन भी ग्रच्छा बनेगा। इसी गोष्ठी के सुझाव बड़ौदा के शिक्षा एव मनोविज्ञान विभाग द्वारा प्रकाशित News Letters मे इस प्रकार दिये गये हैं :—

Q. 3. The planning of a big school building is well nigh impossible in the present economic condition of the country. What alterations would you suggest? Discuss their merits and demerits.

—स्वतन्त्रता की प्राप्ति के बाद शिक्षा पर की गई व्यय मे वृद्धि

प्रथम पंचवर्षीय योजना के प्रारम्भ में
प्रति छात्र व्यय ३·२ रु०
प्रथम पंचवर्षीय योजना के बाद का व्यय ४·८ रु०
द्वितीय „ ७·८ रु०
तृतीय „ १२·१ रु०

यद्यपि राष्ट्रीय आय का कुल ३% अंश ही हम शिक्षा पर खर्च करते हैं फिर भी यह अंश बहुत अधिक है क्योंकि देश के साधारण व्यक्ति की आय ४०० रु० से अधिक नहीं है। सबसे महत्वपूर्ण तथ्य तो यह है कि शिक्षा पर किये गये खर्चे में वृद्धि देश के आर्थिक विकास से अधिक अनुपात में हुई है। गत दो युद्धों के फलस्वरूप राष्ट्रीय आय में इसकी कमी हो रही है। ऐसी दशा में विद्यालय के खर्चे की मदों पर धनराशि कैसे खर्च की जाय? शिक्षा पर जो कुछ देश खर्च कर रहा है उसका ११% विद्यालय भवनों पर खर्च होता है। यदि किसी प्रकार यह खर्च कम हो सके तो आर्थिक संकट से बचाव हो सकता है। खर्च में यह कटौती प्रत्यक्ष खर्चे की मदों पर आसानी से की जा सकती है।

इस विचार से देश सभी बालकों के लिये विद्यालय भवनों की व्यवस्था नहीं कर सकता। यदि हम विद्यालय भवनों के निर्माण में ही काफी खर्च कर डालें जैसा कि गत वर्षों से करते आ रहे हैं तो फल यह होगा कि हमारे पास शिक्षा के सुधार के लिये अत्यन्त आवश्यक मदों पर खर्च करने के लिये कुछ भी शेष न रहेगा। हम किस प्रकार अध्यापकों के स्तर (status) को ऊँचा कर सकेंगे? किस प्रकार विद्यालयों और महाविद्यालयों में उत्तम प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था कर सकेंगे?

पंडित नेहरू ने एक बार कहा था "हम प्राथमिक शिक्षा में सुधार ला नहीं सकते क्योंकि हमारे पास पैसा नहीं है। प्राइमरी स्कूलों की इमारतों को बनवाना क्यों नहीं बन्द कर कर देते? क्या नहीं इस बचे हुए धन को अध्यापकों और विद्यालय की साजसज्जा पर खर्च कर देते? क्या हम ग्रामीण क्षेत्रों में बिना विद्यालय भवन के काम नहीं चला सकते क्योंकि हमारी पुरानी शिक्षा [illegible] पर जोर देती थी तब [illegible] बची हुई धन राशि को [illegible] इस प्रकार पंडित नेहरू कम से कम ग्रामीण क्षेत्रों में तो अवश्य ही विद्यालय भवनों के निर्माण के विरोधी थे। लेकिन अध्यापकों के लिये आवास गृह अवश्य बनवाना चाहते थे।[1]

[illegible] छोड़कर अपनी कक्षाएँ पेड़ों के नीचे स्वच्छ हवा में लगा सकते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में कौन ऐसा व्यक्ति है जो पक्के मकानों को पसन्द करता हो। हम लोग सदियों से कच्चे मकानों में रहते आये हैं। क्या हम अपने बच्चों को कच्चे विद्यालय भवनों में शिक्षा नहीं दे सकते।

प्रोफेसर सैयदन ने भी इसी मत की पुष्टि की है। उनका कहना है कि वर्तमान आर्थिक अवस्था को शिक्षा की प्रकृति के समीप रखना है ताकि उनका सम्पर्क भूमि, आकाश, वृक्ष, पक्षी और मन्द-मन्द गति से चलने वाली वायु से स्थापित किया जा सके। जिन स्थानों में जलवायु, खुली हवा, खुले प्रकाश वाले विद्यालयों के सचालन में कठिनाई पैदा करे वहाँ भवन निर्माण किये जायें। किन्तु जहाँ जलवायु अच्छी हो और खुली हवा में पेड़ों के नीचे शिक्षा देने में कठिनाई न हो वहाँ पर विद्यालय का सामान, फर्नीचर, पुस्तकें आदि सुरक्षित रखने के लिए कुछ कमरे तैयार कर दिये जायें। उनका कहना है कि गाँवों में मिलने वाले सामान से ही सुन्दर और आकर्षक विद्यालय भवन तैयार किये जा सकते हैं।

[illegible]
bute in some [illegible]

के पास जमीन कितनी है। विद्यालय के भूमिखण्ड की लम्बाई चौड़ाई और उसके आकार के
ार भी कलात्मक और आकर्षक भवन बनाये जा सकते हैं।

प्राचीन शैली पर बने हुए विद्यालय भवन का नमूना नीचे दिया जाता है। इसमे १२
ओ, पुस्तकालय, सग्रहालय, कलाकक्ष, विज्ञान भवन, विज्ञान भण्डार, कार्यालय, प्रधान अध्यापक
शिक्षक कक्ष, कलाकक्ष और सभाभवन का आयोजन किया गया है। सभा भवन केन्द्र मे
गया है। इस प्रकार बीच मे दो प्रागरग है।

नवीन प्रकार की खुली शैली के भवनों में E Plan या इसका सशोधन अधिक प्रचार
। इसका नक्शा नीचे दिया जाता है। सभा भवन विद्यालय के बीचोंबीच मे स्थित है।
कक्षों में प्रकाश का समुचित प्रबन्ध किया गया है। सभा भवन की स्थिति ऐसी है कि कक्षा
म हवा का किसी प्रकार का अवरोध नही हो सकता है।

E प्रकार का विद्यालय भवन

कभी कभी सयुक्त E और H अक्षरों के आकार के विद्यालय भवन भी बनाए
हैं।

ं बातों पर निर्भर रहता है। उसमे
ने विषय हो सकती है? अधिक से अधिक
ने कक्षा आवश्यकतायें क्या हैं? भवन
िए साम... र कहाँ से उपलब्ध हो सकते हैं।
प्रश्नों के उत्तर पा लेने के बाद ही भवन का आकार और रूप निश्चित किया जा सकता है।
ार निश्चित होने पर भवन की उपयोगिता पर विशेष बल देना होगा। विद्यालय भवन एक
ल का बनाया जाएगा या दो मजिल का इसका निर्णय भी विद्यालय के लिए उपलब्ध स्थल
आकार पर निर्भर रहेगा। एक मजिल के भवन मे प्रकाश और वायु के लिए विशेष सुविधा रहती
प्रकाश और वायु का समुचित प्रबन्ध प्रत्येक शिक्षा सस्था के लिए आवश्यक है। इसके लिए
ा है कि विद्यालय भवन एक मजिल के ही बनाए जाये। यदि जमीन अधिक कीमती है या
न का अभाव है तो एक मजिल के स्थान पर दो मजिल भी बनाई जा सकती है। यदि भवन
मजिला है तो सीढ़ियाँ खूब चौड़ी और कम ऊँची होनी चाहिए। दो मजिले भवनो मे कभी-
छात्रावास का प्रबन्ध कर दिया जाता है। यह नीति ठीक नही है। छात्रावास के लिए तो
ालय भवन से अलग स्थान होना चाहिए। दो मजिले भवनो मे सर्व प्रबन्ध कम हो जाता है
ल कठिनाई अधिक होती है। ऊपरी मजिल पर अधिक कोलाहल होने से निचली मजिल मे
ध्ययन कार्य मे बाधा पड सकती है। सफाई और मरम्मत की दृष्टि से भी दो मजिले मकान ठीक
माने जा सकते। सीढ़ियों पर बालकों के बार बार आने-जाने से बाधा पड़ सकती है।

भारतवर्ष के बहुत से भागों मे जहाँ पर हवा का रुख वर्ष भर प्रायः उत्तर दक्षिण
ता है वहाँ पर विद्यालय का मुख दक्षिण की ओर रखा जा सकता है किन्तु कुछ भागों में
ी पर हवा का रुख प्रायः पूर्व पश्चिम रहता है वहाँ भवन का मुख पूर्व की ओर रखा जा
ता है।

Bad discipline, irritation, discontent and comfort may result in moral injury; and inability to sustain attention and concentration owing to the lack of bodily ease may result in mental injury"

अच्छी डैस्कों के आवश्यक गुण

विद्यालय भवन के महत्त्व पर अधिक जोर देते हैं और फर्नीचर पर बहुत कम।

माध्यमिक और उच्चतर विद्यालयों में बालक और बालिकाओं के बैठने के लिये बेंचें ... कक्षाओं में चौरस ... प्रयोग में आती हैं।

(१) डैस्क का आकार छात्रों की आयु और कद के अनुसार होना चाहिए।

प्राय यह देखा जाता है कि एक ही कक्षा में भिन्न-भिन्न कद के विद्यार्थी होते हुए भी डैस्कों का आकार एक सा होता है। फलस्वरूप छोटे बच्चों को लिखने और पढ़ने में असुविधा होती है। बड़े लड़कों को झुकने की आदत पड़ जाती है।

... चाहिए जिससे कि बालकों को ... भीतरी तल छात्र के घुटनों की ... के बाद घुटने डैस्क के भीतरी किनारे की सीध में रहें।

(३) प्रत्येक डैस्क अलग-अलग होनी चाहिए क्योंकि यदि डैस्क अलग-अलग है तो उसको आसानी से एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जा सकता है और बालकों को भी ऐसी डैस्क पर बैठने में सुविधा रहती है। किन्तु यदि अलग-अलग डैस्क रखने से विद्यालय के खर्च में वृद्धि होती दिखाई पड़े तो जुड़वां डैस्कों का प्रयोग किया जा सकता है किन्तु ऐसी डैस्कों पर दो से अधिक विद्यार्थियों को स्थान न होना चाहिये। कहीं कहीं ऐसी डैस्कें आ ही जाती हैं जिन पर ४ से ६ विद्यार्थियों के लिखने पढ़ने का इन्तजाम होता है और उनके पीछे बैठने के लिये बड़ी-बड़ी बेंच डाल दी जाती हैं। ऐसी बेंच-डैस्कें बालकों के लिए अत्यन्त असुविधाजनक होती हैं। डैस्क और बैठने की सीट का जुड़ा हुआ होना भी ठीक नहीं है क्योंकि ऐसी दशा में सीट को आवश्यकतानुसार आगे-पीछे नहीं किया जा सकता है। संक्षेप में अलग-अलग बेंचें जुड़वां डैस्कों से अच्छी होती हैं और जुड़वां डैस्कें संयुक्त डैस्कों से सुविधाजनक होती हैं। Single desk बालक के लिए सुविधाजनक ही नहीं उसके स्वास्थ्य की दृष्टि से भी लाभदायक होती है।

(४) जिन विषयों में प्रयोगात्मक कार्य किए जाते हैं, उन विषयों के लिए चौरस मेजों का प्रबन्ध किया जा सकता है। जिन विषयों में एक से अधिक पुस्तकों व References की आवश्यकता पड़ती है उन विषयों में भी मेज ही अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकती है। लेकिन नीची कक्षाओं (Junior classes) में जहाँ पर तो अधिक पुस्तकों से References ढूंढने पड़ते हैं और न Dalton plan से शिक्षा दी जाती है वहाँ चौरस मेजों की जरूरत नहीं है।

(५) पढ़ने-लिखने की सुविधा को ध्यान में रखकर डैस्क का निर्माण इस प्रकार का हो ताकि उनके ऊपर के तल आगे-पीछे तथा ऊपर-नीचे किये जा सकें। लिखने और पढ़ने के लिए डैस्क और सीट के बीच की दूरी अलग अलग होती है जैसा कि नीचे चित्र में दिखाया गया है।

डैस्क के प्रकार
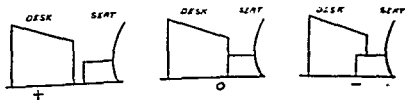
नं० (ii) की स्थिति में सीट डैस्क से बाहर है। ऐसी स्थिति को हम Plus position कहते हैं। यह स्थिति पढ़ने व खड़े होने के लिए उपयुक्त मानी जा सकती है। नं० (iii) तीसरी स्थिति में सीट थोड़ी सी डैस्क के नीचे है ऐसी स्थिति लिखने के लिए सुविधाजनक होती है। प्रत्येक सीट की Back बालक की पीठ की बनावट के अनुसार होनी चाहिए।

(५) अध्यापक की डैस्क ऊँचे Platform पर होना चाहिए जिससे कि अध्यापक कक्षा के सब बालकों को आसानी से देख सकें और यह भी देख सकें कि बालक लिख रहे हैं अथवा नहीं लिख रहे हैं।

बैठने का फर्नीचर

प्रत्येक कक्षा कक्ष में छात्रों के बैठने का उपयुक्त सामान होना चाहिये। प्राइमरी विद्यालयों में धन की कमी के कारण टाट, पट्टियों का प्रबन्ध होता है और उच्चतर विद्यालयों में बेंचों और कुर्सियों का। स्वास्थ्य की दृष्टि से टाट पट्टियों का प्रबन्ध उचित नहीं, इन पर बैठकर लिखने में कठिनाई होती है और अधिक झुककर बैठने से रीढ़ की हड्डी मुड़ जाती है। अतएव प्राइमरी विद्यालयों में यदि धन की कमी के कारण टाट पट्टियों का इन्तजाम करना है तो बालकों के लिए डेस्कें चौकियाँ होनी चाहिए। बेंचों और कुर्सियों में पीठ की ओर सहारे के लिए पट्टियाँ होनी चाहिये। ये पट्टियाँ इस प्रकार की होनी चाहिये कि छात्र उन पर पीठ टेक कर सीधे बैठ सकें। रीढ़ की हड्डी का झुकाव पट्टियों का सहारा लेने पर १५०° से अधिक नहीं होना चाहिये। जो बात डैस्कों और मेजों के विषय में कही गई थी वही बात बालकों के कद को ध्यान में रखकर बालकों के लिए कुर्सियों और बेंचों के विषय में कहनी चाहिये। इनकी ऊँचाई इतनी ही होनी चाहिये कि बैठने वाले बालक के पैर जमीन तक पहुँच सकें। बीच में न लटके रहें।

बैठने का प्रबन्ध

डैस्कें और मेजें कक्षा कक्ष में इस प्रकार सजा कर लगाई जावें कि प्रकाश बाईं ओर से आवे। प्रत्येक सीट के बीच में कम से कम १८″ का अन्तर हो प्रत्येक दो पंक्तियों के बीच में कम से कम २′ का। ऐसा करने से अध्यापक आसानी से प्रत्येक बालक के पास निरीक्षण कार्य के लिए आ जा सकता है। सीट अथवा डैस्कों की पंक्तियाँ किसी कक्षा में ६ या ७ से अधिक न हों।

बालकों के बैठने का प्रबन्ध करने का काम अध्यापक का है। सीटों और डैस्कों के उपयुक्त होने पर भी छात्रों में सीधे बैठने और सीधे खड़े होने का अभ्यास अध्यापक ही डाल सकता है।

अलमारियाँ

कक्षा कक्ष में अलमारियों का होना आवश्यक है। कम से कम एक अलमारी कक्षा ... के लिए। इन अलमारियों में अध्यापक अपनी ... सकता है अथवा छात्रों के लिखने की समस्त ... रखते समय निकाल ली जाती है। कम से कम एक अलमारी ऐसी भी हो जिसमें शीशे लगे हों। ऐसी अलमारी में कक्षा के बालकों द्वारा जीते हुए पदक, शील्ड, मैडल आदि रखे जा सकते हैं। कक्षा में प्रयोग में आने वाली अलमारियाँ दो प्रकार की होती हैं। (१) दीवार में लगी हुई अलमारियाँ, (२) हटाई जाने वाली लकड़ी व लोहे की अलमारियाँ। लकड़ी की अलमारियों को दीमक से बचाने का प्रयत्न किया जाना चाहिये। यदि कक्षा में Atlas encyclopedia कोष और चित्रों से भरी पुस्तकों के रखने के लिए खुली हुई अलमारियाँ हों तो और भी अच्छा है।

इतिहास, विज्ञान, समाजशास्त्र और भूगोल आदि विषय कक्षों में कई अलमारियों की ... होती है।

(Black boards)

श्यामपट्ट अध्यापक का पक्का साथी है क्योंकि बिना श्यामपट्ट के अध्यापक कोई कार्य नहीं कर सकता। श्यामपट्ट की स्थिति ऐसे स्थान में होनी चाहिये जहाँ पर श्यामपट्ट का लेख

अध्याय ५

समय विभाग

Q 1. Indicate and illustrate the *principles* that should guide us in the framing of a school time table. (*Agra B. T. 1954*)

(b) What considerations would you bear in mind in drawing up the time table of a higher secondary school ? How would you provide *for flexibility in order to meet the special needs* of children backward in certain subjects and of *gifted* children ? (*Agra B. T. 1956*)

(c) Outline the principles governing the construction of a secondary school time table. Examine the important variations to suit special needs. (*Agra B. T. 1957*)

(d) Explain clearly the guiding principles in framing school time table what practical difficulties are usually met in following them. (*L. T. 1953*)

(e) Discuss the necessity of recess in the time table. (*B T. 1950*)

अर्थ और महत्त्व

विद्यालयों के उद्देश्यों की अपनी पूर्ति एवं पाठ्य-क्रम के सफल संचालन तथा पाठ्य-क्रम सह-गामिनी क्रियाओं के सुसम्पादन हेतु प्रत्येक विद्यालय में एक सुनियोजित सुव्यवस्थित मनोवैज्ञानिक एवं स्वास्थ्य विज्ञान के सिद्धान्तों के अनुकूल समय विभाग (Time table) की आवश्यकता पड़ती है। अव्यवस्थित समय विभाग न तो विद्यालय के उद्देश्यों की पूर्ति में सफल हो सकता है और न अध्यापकों एवं छात्रों के समय एवं श्रम का फल पूरी पूरी तरह दे सकता है। इस प्रकार समय विभाग प्रत्येक विद्यालय की आधारभूत आवश्यकता है।

एक सुनियोजित सुव्यवस्थित एवं प्रगतिशील समय विभाग बनाने की जिम्मेदारी खास-तौर पर प्रधान अध्यापक पर पड़ती है। जब तक वह निम्नलिखित साधारण सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर समय तालिका का निर्माण नहीं करता तब तक वह अपने कार्य को पूरा नहीं कर सकता है।

समय विभाग निर्माण करने के सामान्य सिद्धान्त

(१) समय विभाग बालकों को अपनी रुचि एवं योग्यता के अनुसार विषय चुनने व पढ़ने का अवसर दे। संक्षेप में समय विभाग बाल केन्द्रित होना चाहिये। आधुनिक शिक्षा न तो पाठ्य-क्रम पर ही जोर देती है और न शिक्षक पर ही। वह शिक्षा पूरी तरह से बालकेन्द्रित शिक्षा है अतः समय तालिका भी पूर्णरूपेण बालकेन्द्रित होनी चाहिए। बालक की आयु, योग्यता और रुचि (Age, Aptitude and Ability) के अनुसार यदि समय तालिका न बनाई गई तो वह अपने उद्देश्यों की पूर्ति भली-भांति नहीं कर सकती। कम आयु के बच्चे अधिक आयु वाले बच्चों से [illegible]
आवश्यक [illegible]
को पाठ्य [illegible]
देनी है [illegible]

में लाना अत्यन्त कठिन है। इसका पालन केवल उन विद्यालयों में हो सकता है जिनमें बहुत से विषय पढ़ाने की सुविधायें हैं तथा उनको पढाने के लिये अलग-अलग कमरे और उचित मात्रा में शिक्षकों का प्रबन्ध है। परन्तु ये तीनों बातें आसानी से नहीं मिल सकतीं। सब बालकों की रुचि के अनुसार उनको विषयों के चुनाव की सुविधा देना असम्भव सा है।

बालकों में कार्य करने की योग्यता भिन्न होती है। समय-तालिका बनाते समय उनकी योग्यता का भी ध्यान रखना चाहिये। बालक लगातार एक ही कार्य देर तक नहीं कर सकते उनमें शारीरिक एवं मानसिक थकान उत्पन्न हो जाती है थकान से अरुचि होती है और अरुचि से सीखने के कार्य में बाधा पड़ती है। शिक्षा मनोविज्ञान बतलाता है कि विभिन्न आयु के बच्चे किसी काम को कितने समय तक एकाग्र होकर कर सकते हैं। चतुर अध्यापक और प्रधान अध्यापक जो मनोविज्ञान के सिद्धान्तों को अच्छी तरह समझते हैं वे समय तालिका बनाते समय इस बात का ध्यान रखते हैं कि बच्चों में थकान पैदा न होने पावे।

(२) समय का सदुपयोग हो। छात्र जीवन का प्रत्येक क्षण महत्त्वपूर्ण है। अत. विद्यालय का कर्त्तव्य है कि वह उन्हें इस प्रकार क्रियाओं में व्यस्त रखे कि उनका अमूल्य समय नष्ट न हो पावे। प्रत्येक प्रान्त का शिक्षा विभाग और राज्य की सरकारें वर्ष में कार्य करने की दिनों की संख्या और छुट्टियों के दिनों की संख्या निश्चित करती है। मुदालियर Commission Report के अनुसार शिक्षण कार्य में कम से कम २०० दिन होने चाहिये। प्रतिदिन कम से कम छः घण्टे और प्रत्येक घण्टा कम से कम ४५ मिनट का अवश्य हो। विद्यालय कार्य नियमित रूप से सप्ताह में छः दिन अवश्य चले। इन छः दिनों में से अर्द्ध दिवस (Half day) हो सकता है। विद्यालय में दो महीने की गर्मी की छुट्टी और १०-१५ दिन के २ लम्बे अवकाश दिये जा सकते हैं। शेष छुट्टियाँ कम से कम होनी चाहियें।

(३) समय तालिका में पाठ्य-वस्तु का मनोवैज्ञानिक वितरण हो—सभी विषय कठिनाई के अनुसार एक से नहीं होते। कुछ विषयों में मानसिक श्रम अधिक करना पड़ता है, कुछ में कम। गणित भाषा में कठिन विषय है और भाषा कला कौशल से कठिन विषय माना जा सकता है। अतः समय तालिका में इन विषयों का स्थान उचित ढंग से रखा जाये। कठिनाई के अनुसार विषयों के क्रम इस प्रकार है—गणित, भाषायें, भौतिक विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, ड्राफ्ट आदि। जो विषय अधिक मानसिक श्रम चाहते हैं उनको ऐसे समय रखना चाहिये जबकि छात्रों का दिमाग ताजा हो। यदि कठिन विषय के बाद सरल विषय तालिका में रखा जावे तो थकावट का असर बालकों पर कम पड़ता है। इसी तरह लिखित और पठित कार्य बारी-बारी से आने चाहियें।

दूसरा मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त यह है कि किसी कार्य को करते समय व्यक्ति इतने ध्यान और रुचि से नहीं करता जितने ध्यान और रुचि से कुछ समय बाद कर सकता है। अंग्रेजी में यह warm-up phenomenon कहलाता है। इसके अनुसार पहले दो घण्टों में ऐसे विषय नहीं रखने चाहिए जिनमें अधिक ध्यान लगाने की आवश्यकता पड़ती हो। दूसरे और तीसरे घण्टे में बालकों की शक्तियाँ खुल जाती हैं अतः यह अन्तर (Periods) कठिन विषयों के लिये उपयुक्त माने जा सकते हैं। अन्तिम घण्टे में थकावट के अधिक हो जाने से कार्यशक्ति उतनी नहीं रहती जितनी आरम्भ के घण्टों में रहती है। इसलिए अन्त के घण्टों में कठिन विषय नहीं रखे जाते।

छुट्टियों के बाद में भी बालकों की शक्ति पूरी नहीं खुल पाती इसलिए सोमवार का दिन कठिन कार्य के लिए उत्तम नहीं माना जाता है। दिन के अनुसार मंगल और बुधवार उत्तम होते हैं। गुरुवार और शुक्रवार साधारण।

..., योग्यता और सुविधा का ध्यान
... कार्य में रुचि मालूम हो। उन्हें कार्य
... में ... यथासाध्य समान
... नु और
... घण्टे में आठवें
... आ जायेगी।
... सुविधा है।
... घण्टे भी दिए

... घण्टे तक विभिन्न कक्षाओं में गणित हो
अतएव उसे दूसरे सरल विषय भी
जहाँ तक हो सके प्रत्येक

जायें। भाषा-ग्रध्यापक के पास प्रायः त्रुटि संशोधन (correction) कार्य ग्रधिक रहता है। इसलिए उसे संशोधन कार्य के लिए रिक्त समय मिलना चाहिए। ग्रध्यापकों की नियुक्ति करते समय यदि इस बात का ध्यान रखा जाये कि नियुक्त ग्रध्यापक कम से कम दो विषय ग्रच्छी तरह पढ़ा सकें तो समय तालिका उनके लिए सुविधाजनक बनाई जा सकती है।

कार्यभार एक सा हो इसका तात्पर्य यह है कि किसी भी ग्रध्यापक को कार्य ग्रधिक होने पर भी उसे वह भारस्वरूप न मालूम हो। प्रायः यह देखा जाता है कि समय तालिका बनाते समय प्रधान ग्रध्यापक विषयों के ग्रन्तर पर ध्यान नहीं देते। दो कक्षाग्रों को ग्रंग्रेजी या गणित पढ़ाने वाले शिक्षक का भार उन्हीं दो कक्षाग्रों को हिन्दी या क्राफ्ट पढ़ाने वाले ग्रध्यापक की ग्रपेक्षा ग्रधिक मालूम पड़ता है, क्योंकि विषयों में ग्रन्तर है।

(५) समय तालिका सरल एवं स्पष्ट हो—समय विभाग इतना सरल होना चाहिये कि छात्र एवं ग्रध्यापक उसे ग्रासानी से समझ सकें, तथा ग्रासानी से ग्राचरण कर सकें। समय तालिका के झमेलापूर्ण होने पर बालकों व शिक्षकों का समय ग्रधिक नष्ट होता है। यदि प्रत्येक घण्टे में बालक इस कमरे से उस कमरे में ग्रौर इस जगह से उस जगह घूमते रहें, ग्रथवा प्रतिदिन उन्हें ग्रलग-ग्रलग कमरों में जाना पड़े तो समय की बर्बादी होती है। यदि एक ही घण्टे में ग्रलग

प्रार्थना का समय, उपस्थिति लेने का समय, शिक्षण का समय, ग्रन्तराल (Recess) का समय, पाठ्यक्रम सहगामिनी क्रियाग्रों का समय निश्चित होना चाहिये। इससे कार्य नियमित रूप से चलता रहता है ग्रौर ग्रनुशासन भंग नहीं होता है।

(६) समय तालिका व्यावहारिक हो—केवल ग्रादर्श सिद्धान्तों के ग्राधार पर बनाई गई समय तालिकायें भी उपयोगी नहीं होतीं। समय तालिका निर्माण में इसलिये ग्रौर सिद्धान्तों के स्थान पर ग्रनुभव ग्रधिक कार्य करता है। ग्रनुभव के ग्राधार पर ही वह निश्चय कर सकता है कि ग्रीष्म ग्रौर शीत ऋतुग्रों में घण्टों की लम्बाई कितनी होनी चाहिए। ग्रनुभव के ग्राधार पर ही वह निश्चय कर सकता है कि सरल व कठिन विषयों का वितरण किस प्रकार किया जाये ताकि छात्रों की रुचि ग्रध्ययन में लगी रहे ग्रौर ग्रध्यापकों की कार्यक्षमता में भी किसी प्रकार की कमी न ग्रावे।

ग्रधिक से ग्रधिक एक दूसरे के
...ल सकें। हमारे देश में तो यह
... ग्रौर इसी कारण ग्रनुशासनहीनता बढ़ती जाती है। यदि हम वास्तव में बालकों को शिक्षित करना है, यदि हम चाहते हैं कि उनकी मानसिक ग्रौर शारीरिक शक्तियों का ग्रधिक से ग्रधिक विकास हो तो ग्रध्यापकों को बालकों के सम्पर्क में ग्रधिक से ग्रधिक ग्राना पड़ेगा। बड़े दुख के साथ कहना पड़ता है कि हाई स्कूल के ग्रध्यापक ग्रपने बालकों के विषय में उस ज्ञान का चौथाई ज्ञान भी नहीं रखते जो ज्ञान उन्हें एक शिक्षक, मनोवैज्ञानिक ग्रौर निर्देशक के रूप में रखना चाहिये। समय तालिका बनाते समय इस बात का ग्रवश्य ध्यान रखा जाये कि शिक्षक ग्रौर बालक एक दूसरे के सम्पर्क में ग्रधिक से ग्रधिक ग्रा सकें।

(८) समय तालिका ऐसी हो कि बालक विद्यालय की समस्त सेवाग्रों का लाभ उठा सकें—हमारे देश के उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में ग्रधिक बल इस बात पर दिया जाता है कि बालक पुस्तकीय ज्ञान को सीख सकें। हम उसे पूर्ण मानव बनाने का प्रयत्न नहीं करते। प्रायः हम भूल जाते हैं कि पाठ्यक्रम केवल पुस्तकों तक ही सीमित नहीं है वरन् उसके ग्रन्तर्गत विद्यालय की समस्त क्रियायें ग्राती हैं। यदि हम चाहते हैं कि बालक विद्यालय में प्रस्तुत पूरे लाभ उठा सकें तो समय तालिका में खेल के मैदान, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, वाचनालय, सभाभवन ग्रादि में जाने ग्रौर उनकी सेवाग्रों से लाभ उठाने का समय भी निश्चित होना चाहिये।

समय-चक्र निर्माण के विशिष्ट सिद्धान्त

इन ग्राठ सामान्य सिद्धान्तों के ग्रतिरिक्त समय तालिका बनाते समय व्यावहारिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर निम्नलिखित विशिष्ट सिद्धान्तों पर भी ध्यान देना होगा।

होती है— मानसिक और शारीरिक छात्र थके हैं या नहीं यह तो उनकी मनोवृत्ति पर निर्भर रहता है। जब किसी कार्य को करने अथवा कोई पाठ पढने मे हमारी रुचि नही होती हमे थकावट सी महसूस होती है। जैसे ही कार्य मे कोई परिवर्तन उपस्थित होता है, कार्य रोचक और उत्साहवर्धक दिखाई देने लगता है। अत जैसे ही छात्रो मे थकान के लक्षण दिखाई देते हैं वैसे ही कार्य मे परिवर्तन उपस्थित कर दिया जाय।

अन्तराल की आवश्यकता

समय तालिका बनाने मे सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात बालको की थकावट की है। थकावट पैदा करने मे निम्नलिखित बातें सहायक होती हैं :—

(१) मौसम—ग्रीष्मकाल मे बालक जल्दी थक जाते हैं और शैथिल्य बढ़ जाया करता है। जाड़े के दिनो मे थकावट इतनी जल्दी नहीं होती और कार्य भी अधिक होता है।

(२) विषयों का क्रम—कठिन विषय लगातार पढ़ने अथवा एक साथ कार्य लगातार करने से थकावट शीघ्र आ जाती है।

(३) बालको की आयु और अवधि—बालको की आयु और अन्तरो की अवधि पर भी थकावट निर्भर रहती है। मनोवैज्ञानिक अन्वेषणो के आधार पर कहा जा सकता है कि छ से नौ वर्ष के बच्चे दस पन्द्रह मिनट तक एकाग्र चित्त होकर कार्य कर सकते हैं। नौ से बारह वर्ष तक के बच्चे २५ मिनट, बारह से चौदह वर्ष तक के बच्चे चालीस पैंतालीस मिनट तक। अत. एक विषय को इतने समय तक ही समय विभाग मे स्थान दिया जाना चाहिये जितना कि आवश्यक हो।

दो तीन घंटे के अध्ययन के बाद बालक मे मानसिक शिथिलता आने लगती है। जब स्कूल १० बजे से लगता है तो लगभग १२ बजे के निकट कुछ अवकाश दे देना आवश्यक हो जाता है, क्योंकि अवकाश के बाद बालक पुन पढ़ने के लिये तैयार हो जाते हैं। इस अवकाश के मिल जाने से कार्य की गति बढ़ जाती है। नीचे के चित्र मे समय और कार्य के बीच सम्बन्ध दिखाया गया है। १० बजे से जब विद्यालय प्रारम्भ होता है ११-३० बजे तक मन के अत्यन्त स्वस्थ और सावधान होने के कारण शिक्षण कार्य अच्छा होता है किन्तु ११-३० पर इसके परिणाम मे गिरावट

अन्तराल का छात्रों की कार्य क्षमता पर प्रभाव

आ जाती है अत इस समय ५ मिनट का अवकाश दिया जा सकता है। थकावट के कारण १२-३० के लगभग कार्य मे गिरावट अधिक आने से अवकाश का समय १० मिनट तक रखा जा सकता है। इस प्रकार उस समय अवकाश (rest) देकर जबकि शारीरिक या मानसिक थकावट के कारण कार्यक्रम (work curve) मे गिरावट आने लगती है कार्य की प्रगति को तीव्र किया जा सकता है।

कक्षा-समय चक्र और अध्यापक समयचक्र—प्रत्येक विद्यालय मे समयचक्र दो क्रम से बनाये जाते हैं एक समयचक्र कक्षाक्रम से, दूसरा अध्यापक क्रम से। प्रत्येक अन्तर मे प्रत्येक कक्षा मे होने वाले कार्य का उल्लेख पहले प्रकार के समयचक्र मे तथा प्रत्येक अध्यापक का प्रत्येक घ-टे

पहले समय विभाग से पता

दूसरे से यह पता चलता है

इस प्रकार दोनों प्रकार के

एक पूरी इकाई माना जा सकता है जिसका मानसिक विकास करने के लिये सीखने के अनुभवों को एक मुट्ठी में बांध देता है।

आधुनिक समय विभाग की तीसरी कमी यह भी मानी जाती है कि वह प्रभावशाली निर्देशन कार्य में बाधा पहुँचाता है। एक अध्यापक किसी कक्षा के चालीस से पचास विद्यार्थियों के पास अधिक से अधिक पैंतालीस मिनट के लिये आता है। फलस्वरूप विद्यार्थी और शिक्षक के बीच सम्पर्क स्थापित नहीं हो पाता है। समय विभाग के भिन्न अन्तरों में बँट जाने से सहकारी शिक्षण के लिये कोई स्थान नहीं रह जाता है। सहकारी शिक्षण से हमारा तात्पर्य दो से अधिक विद्यार्थियों का एक साथ काफी समय तक कार्य करने से है। इस प्रकार की समय तालिका नवीन प्रकार की शिक्षण विधियों—डाल्टन विधि, प्रोजेक्ट विधि, श्रव्य-दृश्य शिक्षण विधि—के अनुकूल नहीं है।

समय तालिका में इन तीन कमियों के होने के कारण उसको हम आदर्श नहीं कह सकते हैं। समय तालिका लचीली होनी चाहिये और इतनी लचीली हो कि किसी भी तरह के रचनात्मक कार्य या आवश्यकता के लिये यथासमय परिवर्तन किया जा सके। अन्तरों की अवधि आवश्यकतानुसार घटाई-बढ़ाई जा सके यद्यपि पैंतालीस मिनट का घण्टा कक्षा की आवश्यकता की सन्तुष्टि कर सकता है तब भी अन्तर की अवधि तीस मिनट की जा सकती है यदि अध्यापक दुहराने का कार्य कर रहा है। अन्तरों की अवधि दो घण्टे और तीन घण्टे की जा सकती है यदि विद्यालय में सहकारी शिक्षण (Cooperative teaching), पर्यवेक्षित अध्ययन (Supervised study), पाठ्य सहगामी क्रियायें (Cocurricular activities), दृश्य-श्रव्य शिक्षण (audio visual aids), पर्यटन (excursion) और field trips का आयोजन किया जाता है। कभी-कभी एक ही कक्षा के विद्यार्थियों को लगातार दो तीन अन्तरों (periods) तक हिन्दी और अन्य मातृभाषा का शिक्षण दिया जाता है। प्रारम्भ में भिन्न-भिन्न अध्यापकों को मिलकर यह देखना चाहिये कि कौन-कौन से पाठ या पाठ्य वस्तुओं में मिलाकर पढ़ाई की जा सकती है। इसके बाद कक्षाओं को वर्गों में बाँटा जा सकता है। भिन्न-भिन्न वर्गों ने अपने-अपने अध्यापकों के साथ जो कुछ सीखा है उस पर एक सयुक्त कक्षा में बहस की जा सकती है। इस प्रकार के सयुक्त अन्तर (periods) के आयोजन से कई लाभ होंगे। सहकारी शिक्षण को प्रोत्साहन मिलेगा और अध्यापकों में आपस में साथ साथ कार्य करने की भावना पैदा होगी।

समय-विभाग में एक और परिवर्तन किया जा सकता है और वह यह है कि ऊँची कक्षाओं के समस्त विद्यार्थियों को जो एक ही विषय का अध्ययन कर रहे हैं, एक सयुक्त कक्षा में मिला दिया जाय। इस प्रकार का प्रबन्ध सप्ताह में एक बार और सध्या समय किया जा सकता है।

सी. बी. मेनली (C. B. Manley) का कहना है कि उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के समय विभाग में निम्नलिखित चार गुण होने चाहिये :—

(१) लचीलापन (flexibility)।
(२) अध्यापकों के द्वारा विद्यालय बनाने की सुविधा (Guidance)।
(३) निर्देशन कार्य की सुविधा।
(४) समन्वित शिक्षण (Integrated learning) की सुविधा।

पाश्चात्य देशों में आजकल वर्ष के शिक्षण कार्य को बढ़ाने की ओर प्रवृत्ति दिखाई दे रही है। इन देशों में पाँच या छः घन्टे के स्थान पर स्कूल कार्य आठ-दस घन्टे तक चलता है।

Q 3. Explain the factors cuasing fatigue. Why is it necessary to have recess in the time table ?

थकान की समस्या समय विभाग-निर्माण की जटिलतम समस्या होती है। छात्र उसी समय रुचिपूर्वक कार्य करते हैं जिस समय उनको थकान नहीं होती। यह थकान दो प्रकार की

होती है—मानसिक और शारीरिक छात्र थके हैं या नही यह तो उनकी मनोवृत्ति पर निर्भर रहता है। जब किसी कार्य को करने अथवा कोई पाठ पढने मे हमारी रुचि नही होती हमे थकावट सी महसूस होती है। जैसे ही कार्य मे कोई परिवर्तन उपस्थित होता है, कार्य रोचक और उत्साहवर्धक दिखाई देने लगता है। अत जैसे ही छात्रो मे थकान के लक्षण दिखाई देते है वैसे ही कार्य मे परिवर्तन उपस्थित कर दिया जाय।

अन्तराल की आवश्यकता

समय तालिका बनाने मे सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात बालको की थकावट की है। थकावट पैदा करने मे निम्नलिखित बातें सहायक होती हैं —

(१) मौसम—ग्रीष्मकाल मे बालक जल्दी थक जाते हैं और शैथिल्य बढ जाया करता है। जाडे के दिनो मे थकावट इतनी जल्दी नही होती और कार्य भी अधिक होता है।

(२) विषयो का क्रम—कठिन विषय लगातार पढने अथवा एक साथ कार्य लगातार करने से थकावट शीघ्र आ जाती है।

(३) बालको की आयु और अवधि—बालको की आयु और अन्तरो की अवधि पर भी थकावट निर्भर रहती है। मनोवैज्ञानिक अन्वेषणो के आधार पर कहा जा सकता है कि छ से नौ वर्ष के बच्चे दस पन्द्रह मिनट तक एकाग्र चित्त होकर कार्य कर सकते हैं। नौ से बारह वर्ष तक के बच्चे २५ मिनट, बारह से चौदह वर्ष तक के बच्चे चालीस पैंतालीस मिनट तक। अत. एक विषय को इतने समय तक ही समय विभाग में स्थान दिया जाना चाहिये जितना कि आवश्यक हो।

दो तीन घंटे के अध्ययन के बाद बालक मे मानसिक शिथिलता आने लगती है। जब स्कूल १० बजे से लगता है तो लगभग १२ बजे के निकट कुछ अवकाश दे देना आवश्यक हो जाता है, क्योंकि अवकाश के बाद बालक पुन पढने के लिये तैयार हो जाते हैं। इस अवकाश के मिल जाने से कार्य की गति बढ जाती है। नीचे के चित्र मे समय और कार्य के बीच सम्बन्ध दिखाया गया है। १० बजे से जब विद्यालय आरम्भ होता है ११-३० बजे तक मन के अत्यन्त स्वस्थ और सावधान होने के कारण शिक्षण कार्य अच्छा होता है किन्तु ११-३० पर इसके परिणाम मे गिरावट

अन्तराल का छात्रों की कार्य क्षमता पर प्रभाव

आ जाती है अत इस समय ५ मिनट का अवकाश दिया जा सकता है। थकावट के कारण १२-३० के लगभग कार्य मे गिरावट अधिक आने से अवकाश का समय ३० मिनट तक रखा जा सकता है। इस प्रकार उस समय अवकाश (rest) देकर जबकि शारीरिक या मानसिक थकावट के कारण कार्यक्रम (work curve) मे गिरावट आने लगती है कार्य की प्रगति को तीव्र किया जा सकता है।

कक्षा-समय चक्र और अध्यापक समयचक्र—प्रत्येक विद्यालय मे समयचक्र दो क्रम मे बनाये जाते हैं एक समयचक्र कक्षाक्रम से, दूसरा अध्यापक क्रम से। प्रत्येक ... प्रत्येक कक्षा मे होने वाले कार्य का उल्लेख पहले प्रकार के समयचक्र मे तथा प्रत्येक ... अन्तर का विद्यालय कार्य दूसरे प्रकार के समयचक्र मे दिखलाया जाता है। ... से पता चल सकता है कि कौन सी कक्षा किस घण्टे में क्या ... है कि कौन सा अध्यापक किस घण्टे मे किस कक्षा ... के

पाठ्यक्रम उपयोगी हैं। दोनो प्रकार के पाठ्यक्रमों की प्रतिलिपियाँ प्रधानाध्यापक, कक्षा, कार्यालय, अध्यापक कक्ष और सूचना पट पर रहनी चाहिये।

यदि अलग-अलग विषयो के अपने अपने कमरे अलग-अलग हो तो अलग-अलग कक्षाओ के हिसाब से एक कक्ष-समय-विभाग तैयार कर लेना पड़ेगा।

समयचक्र और नवीन पद्धतियाँ—आजकल शिक्षा क्षेत्र में कई नई नई पद्धतियो का प्रादुर्भाव हो गया है। डाल्टन पद्धति, प्रोजेक्ट पद्धति, क्रियात्मक पद्धति आदि पद्धतियाँ ऐसी हैं जिनमें समय विभाग को अति लचीला बनाना पडता है। क्रियाप्रधान होने के कारण इनमें बच्चे को उतना समय दिया जाता है जितना समय उसे किसी क्रिया विशेष को पूरा करने में लग सकता है। ध्यान केवल इस बात का रखना पड़ता है कि समय का दुरुपयोग न हो।

डाल्टन प्रणाली मे विद्यार्थी एक कमरे मे रुक कर ही विषय पर जितनी भी देर चाहे काम कर सकता है। आम तौर से जोर इस बात पर दिया जाता है कि एक विषय पर काम करने के लिये कम से कम समय दिया जाय ताकि गड़बड़ी बहुत ज्यादा न हो। विद्यार्थी अपनी आवश्यकतानुसार समयचक्र बनाता है और उसका पालन करता है। उन सभी विषयो के अध्यापक जिनका सम्बन्ध उन विषयो से होता है जिनको विद्यार्थी पढ़ना चाहता है, सारे समय अपने कमरे मे उपस्थित रहते हैं। विभिन्न विषयो के लिये निर्धारित घण्टो का पालन कठोरता के साथ नहीं किया जाता।

अध्याय ९

छात्रों का वर्गीकरण तथा कक्षोन्नति

Q 1. What considerations should be kept in view while classifying students into various groups ? How far is classification useful ?

विद्यालय के छात्रों की विभिन्न कक्षाओं और उप-कक्षाओं में विभाजित करने की क्रिया को वर्गीकरण कहते हैं। यदि एक बालक के लिए एक शिक्षक हो तो उसका उचित विकास हो सकता है अन्यथा उसकी मौलिकता (individuality) नष्ट हो सकती है; किन्तु एक अध्यापक एक ही छात्र को पढावे यह सम्भव न होने के कारण कक्षाप्रणालियाँ ही उपयुक्त मालूम पडती हैं। यदि हम वर्तमान जनतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था में किसी को भी शिक्षाप्राप्ति से वंचित नहीं रखना चाहते और सभी बालकों को समान अधिकार देना चाहते हैं तो हमें उनको कक्षाओं में रखना ही पड़ेगा। अब प्रश्न यह है कि उनका वर्गीकरण करते समय किन-किन बातों का ध्यान रखा जाय कि बालकों का पूर्ण विकास सम्भव हो सके।

वर्गीकरण के सामान्य सिद्धान्त—आज की शिक्षा समानता की भावना से अनुप्राणित है इसलिए विद्यालय-व्यवस्थापक छात्रों का वर्गीकरण करते समय भी समानता के सिद्धान्त को ध्यान में रखकर कार्य करता है किन्तु व्यावहारिक दृष्टिकोण से उसे अन्य बातों का भी ध्यान रखना पडता है। प्रत्येक कक्षा में उसे निश्चित संख्या में विद्यार्थी रखने हैं। शारीरिक और मानसिक दुर्बलताओं वाले बालकों को सामान्य कक्षाओं में रखा नहीं जा सकता क्योंकि वहाँ उनका विकास उचित रूप से नहीं हो सकता, कभी आर्थिक व सांस्कृतिक स्तरों के बालकों को भी एक ही कक्षा या एक ही स्कूल में प्रवेश नहीं दिलाया जा सकता। इस प्रकार वर्गीकरण करते समय वह निम्नलिखित सिद्धान्तों अथवा आधारों का पालन कर सकता है।

(१) **समान शारीरिक अवस्था**—शारीरिक और मानसिक दुर्बलताओं से पीड़ित बालकों के लिये विशेष कक्षाओं या विशेष विद्यालयों का प्रबन्ध किया जाता है। अन्धे, बहरे, कमजोर शरीर वाले, मृगी रोग या मधुमेह या वाणीदोष से पीड़ित, अपने वातावरण से मेल न खाने वाले अपचारी या अन्य प्रकार के बालकों के लिए अलग-अलग स्कूलों या अलग-अलग कक्षाओं की आवश्यकता पड़ती है।

(२) **समान सामाजिक अवस्था**—वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में बालकों के पारिवारिक स्तर भिन्न-भिन्न होने के कारण उनके लिये अलग-अलग स्कूलों की व्यवस्था की जाती है। लेकिन जनतन्त्रात्मक राज्य व्यवस्था में दूसरे प्रकार का वर्गीकरण मान्य प्रतीत नहीं होता अतः बालकों का वर्गीकरण अन्य बातों को ध्यान में रखकर किया जाता है। इंग्लैंड के पब्लिक स्कूल इसी व्यवस्था पर आधारित हैं।

(३) **समान बुद्धि**—समान बुद्धि के आधार पर भी वर्गीकरण किया जाता है। कुछ बौद्धिक शक्ति बालकों को जन्म से प्राप्त होती है जिसका मापन बुद्धि परीक्षाओं द्वारा किया जा सकता है। बालकों की बुद्धिलब्धि या बुद्धि-अंक (I. Q.) ज्ञात कर उन्हें एक ही कक्षा में भर्ती किया जा सकता है। अमरीका के कुछ प्रगतिशील विद्यालय उन बालकों को एक ही वर्ग में प्रवेश देते हैं जिनकी मानसिक आयु ६ वर्ष होती है। इसी प्रकार इंग्लैंड में ग्रामर स्कूल, टैक्नीकल स्कूल और माडर्न स्कूलों में बालकों को प्रवेश देते समय उनकी बुद्धि परीक्षाएँ ली जाती हैं।

बुद्धि परीक्षा के अतिरिक्त हम ज्ञान परीक्षा (achievement tests) और क्रियात्मक परीक्षा (performance test) देकर बालकों का वर्गीकरण किया करते है। हमारे देश में अभी इस प्रकार बुद्धिमापन नहीं किया जा सकता है पर बुद्धिमापन आसानी से नहीं किया जा सकता।

(४) स्कूली विषयों में सफलता—पूर्व परीक्षाओं के आधार पर भी बालकों का वर्गीकरण किया जाता है इनसे उनकी योग्यता और शक्ति का पता चल सकता है। अध्यापकों की दी हुई रिपोर्ट, मासिक, अर्धमासिक, वार्षिक, अर्धवार्षिक परीक्षाएं वर्गीकरण में विशेष सहायता पहुँचाते है।

(५) समान आयु—समान आयु के बालकों को एक ही कक्षा में रखकर उनका शिक्षण करने की प्रथा हमारे देश में अपनाई गई है। उदाहरण के लिये प्रारम्भी कक्षा में प्रवेश की न्यूनतम आयु ५ वर्ष रखी गई है किन्तु समान आयु के बालकों में सहजबुद्धि (intelligence), योग्यता (capacity to learn), रुचि (interest), लिंग (sex) की भिन्नता हो सकती है। उनका शारीरिक और मानसिक विकास भिन्न-भिन्न प्रकार का हो सकता है। पर समान आयु के बालकों को एक कक्षा में रखने से भी कोई लाभ नहीं होगा, किन्तु समान योग्यता के छात्रों को एक ही कक्षा में रखने से कोई लाभ नहीं होगा क्योंकि एक ही कक्षा के उसी आयु के बालक शारीरिक दृष्टि से अधिक विकसित होते है समान योग्यता वाले किन्तु आयु में छोटे बालक साथ दुर्व्यवहार करने लग जाते है। इसलिये उनकी अन्य विशेषताओं को भी ध्यान में जाता है।

(६) समान रुचि—समान रुचि वाले बालकों को एक ही कक्षा या एक ही स्कूल में जाता है। रुचि के अनुसार विषयों का चुनाव और अध्ययन बालकों के भावी जीवन के लिये उपयोगी हो सकता है किन्तु कठिनाई इस प्रकार के वर्गीकरण मे भी कम नही है। साधारण सब किस प्रकार भिन्न-भिन्न रुचियों के अनुसार बालकों की शिक्षा व्यवस्था कर सकता कार्य के लिये बहु-उद्देशीय विद्यालयों का जाल सा समस्त देश में बिछाना होगा, किन्तु इस मे भी कठिनाइयाँ हैं।

(७)

जाता है। ११

जा सकती है।

अन्तर होने के कारण दोनों को एक ही कक्षा मे एक साथ पढ़ाना उचित नही लगता। कारण उच्च माध्यमिक स्तर पर बालक और बालिकाओं को अलग-अलग कक्षाओं या अलग स्कूलो मे शिक्षा दी जाती है। दोनों को विश्वविद्यालयीय स्तर पर पुन एक साथ जा सकता है क्योंकि लड़कियों का विकास १८ वर्ष के बाद और लड़कों का २० वर्ष के विकास एक सा आता है। इस प्रकार शिक्षा के भिन्न-भिन्न स्तरों पर लिंग का भी ध्यान जाता है।

(८) समान शारीरिक सम्बन्ध—शारीरिक स्वास्थ्य, कद और भार का भी वर्गीकरण करते समय किया जा सकता है। यदि शिक्षा से हमारा तात्पर्य सर्वांगीण विकास तब हमे बालको का वर्गीकरण करते समय उनके स्वास्थ्य का ध्यान रखना पड़ेगा। अस्वस्थ बालक स्वस्थ बालको के साथ न तो लिख-पढ़ ही सकता है और न खेलो में ही भाग सकता है। नाटे कद के बालको के बीच एक ऊँचे कद के बालक को बिठा देना भी अच्छा लगता। इस प्रकार का बालक उनके बीच समायोजन (adjustment) स्थापित नही सकता।

प्रधानाध्यापक को वर्गीकरण करते समय इस प्रकार कई बातो का ध्यान रखना हो यदि समान आयु, योग्यता, रुचि, लिंग, शारीरिक स्वास्थ्य रखने वाले एक ही साथ रखे जा तो अध्ययन-कार्य अत्यन्त सुविधाजनक हो जायगा। आज भी समान रूप से शिक्षण का ग्रहण कर सकेंगे अत उनकी शैक्षणिक प्रगति समान दर से हो सकेगी। कक्षा के सभी छात्रों एक से स्तर होने कारण उनमे हीनता, निराशा, भय आदि मानसिक ग्रन्थियाँ न पनप सकेंगी। शिक्षा के उद्देश्यो को सरलता से प्राप्त कर सकेंगे। सिद्धान्त रूप से वर्गीकरण के ये प्रा हो सकते हैं किन्तु वे व्यवहारगम्य नही हो सकते। वास्तव मे आदर्श वर्गीकरण दु वर्तमान परिस्थितियो मे हमारे लिए यही काफी होगा कि हम छात्रो की आयु, योग्यता,

शारीरिक अवस्था आदि का अधिक से अधिक ध्यान रखें। यदि आवश्यकता पड़े तो प्रत्येक कक्षा या उसके विभाग का वर्गीकरण फिर से करदें। यदि पूरी कक्षा मे समानता नही हो सकती तो उसे तीन या तीन से अधिक उपविभागो मे बाँट दिया जाय।

कक्षा शिक्षण से लाभ—वर्गीकरण से शिक्षक और शिक्षित दोनो को विशेष लाभ हो सकते हैं।

(१) समूह मे रख कर पढ़ाने से सामूहिक जीवन की शिक्षा मिलती है। बालक एक दूसरे के प्रति सहानुभूति और प्रेम पैदा कर लेते है।

(२) कक्षा मे एक साथ बालको को पढाने से समय और हानि की बचत होती है क्यो कि एक शिक्षक बहुत से बालकों को एक साथ पढा सकता है। बालक बहुत सी गलतियाँ ऐसी करते हैं जो समान होती हैं अत उनका निवारण एक साथ आसानी से हो जाता है।

(३) सामूहिक ढग से पढ़ाये जाने पर बालको मे ऐसे बहुत से गुण पैदा हो जाते हैं जो उनके जीवन मे लाभदायक भी सिद्ध होते हैं। उनकी लज्जा छूट जाती है, वे सकोच करना छोड देते हैं। साथ-साथ रहकर काम करने से उन्हें उत्साह मिलता है।

(४) कुछ विषयों को समूह मे पढाया जाना ही लाभप्रद होता है। साहित्य, सगीत तथा कला कक्षा म अच्छी तरह पढ़ाये जा सकते हैं क्योकि इन विषयो मे रसानुभूति तभी सम्भव है जब बालक समूह में बैठे हों। एक को देखकर दूसरे के मन मे भी भाव उदय होने लगते हैं।

कक्षा शिक्षण से हानियाँ—इस प्रकार कक्षा मे एक साथ बालको को पढाने से विद्यालय और विद्यार्थी दोनों को लाभ होता है। किन्तु समूह मे पढाने से कुछ हानियाँ भी होती हैं :—

(१) वैयक्तिक भेदों को हम दूर नही कर सकते हैं। समान योग्यता, समान आयु और समान रुचि वाले बालक मिलना बहुत कठिन है। बालको के वर्गीकरण इन तीन विशेषताओ के अनुसार कितना ही बढ़िया बनाने का प्रयत्न क्यो न किया जाये व्यक्तिगत विभिन्नताएँ सदैव बनी रहेंगी। हम देश, जाति, वर्ग, वश, व्यक्तित्व, कुटुम्ब, समाज आदि के अन्तरो को कम नही कर सकते। इस प्रकार समानता का सिद्धान्त, जिस पर वर्गीकरण आधारित है, खोखला है। मानसिक योग्यता के आधार पर भी उचित वर्गीकरण नही किया जा सकता। क्योकि कोई बालक समझने मे तीव्र होता है और कोई कमजोर। समान बुद्धिलब्धि वाले बालक कठिनाई से मिलते हैं, इस प्रकार उचित वर्गीकरण असम्भव और अव्यावहारिक है।

(२) कक्षा मे तीस, चालीस विद्यार्थियो को पढ़ाते समय अध्यापक सब के लिए एक सा ही भोजन प्रस्तुत करता है। एक सी ही पाठ्यवस्तु, एक सी ही पाठ्यविधि, एक सा ही पाठ्यकार्य और एक सा ही ग्रहकार्य, वैयक्तिक भिन्नता वाले समुदाय के लिए उचित नही मालूम पडती।

(३) वर्गीकरण के द्वारा छात्रो को कक्षाओ और विभागो मे बाँट देने से अध्यापक और छात्रो का सम्बन्ध अधिक घनिष्ट हो जाता है। उन्हे एक दूसरे के सम्पर्क मे आने के अनेक अवसर मिलते रहते हैं, बालक अध्यापको के आदर्शों से प्रभावित होते रहते हैं और अनुकरण द्वारा उन आदर्शों के अनुसार अपने जीवन को बनाने का प्रयत्न करते रहते हैं। सुयोग्य अध्यापक भी उनके सामने उत्तम से उत्तम आदर्श प्रस्तुत कर उन्हे योग्य नागरिक बनाने का प्रयत्न करते हैं।

[illegible] पर व्यक्तिगत ध्यान दिया [illegible] या जा सकता है। सामूहिक [illegible] है। यदि वर्गीकरण उचित [illegible] प्रकार से नही किया गया है तो यह कठिनाई और भी बढ़ जाती है।

(५) शिक्षा की व्यवस्था करने मे समाज एव समाज के प्रतिनिधि को अधिक सरलता व सुविधा प्राप्त होती है। विद्यालय के कार्य, विद्यार्थियो के ज्ञान और अध्यापक की योग्यता और कुशलता का मूल्याकन करने के लिये यह प्रणाली विशेष उपयोगी सिद्ध होती है। इसमे सार्वजनिक परीक्षाओ द्वारा छात्रो की योग्यता का सामूहिक मूल्याकन किया जा सकता है।

(६) छात्रो को अपनी स्वाभाविक शक्तियो और परिस्थितियो के अनुसार अपने व्यक्तित्व के विकास के लिये अवसर मिलते रहते हैं और अच्छी आवश्यकताओ को ध्यान मे रख कर अनेक पाठ्यक्रम की व्यवस्था की जाती है।

ऐसी अवस्था मे जब कि हम न तो वर्गीकरण को छोड सकते हैं और न हम उसी पर पूरी तरह निर्भर रह सकते हैं क्योकि उसमे हानि और लाभ दोनो ही हैं। इसलिये हमारा वर्गी-

बुद्धि परीक्षा के अतिरिक्त हम ज्ञान परीक्षा (achievement tests) और क्रियात्मक परीक्षा (performance test) देकर बालकों का वर्गीकरण किया करते हैं। हमारे देश में अभी इस प्रकार बुद्धिमापन नहीं किया जा सकता है अतः बुद्धिमापन आसानी से नहीं किया जा सकता।

(४) स्कूली विषयों में सफलता—पूर्व परीक्षाओं के आधार पर भी बालकों का वर्गीकरण किया जाता है इसमें उनकी योग्यता और शक्ति का पता चल सकता है। अध्यापकों की दी हुई रिपोर्ट, मासिक, अर्धमासिक, वार्षिक, अर्धवार्षिक परीक्षाफल वर्गीकरण में विशेष सहायता पहुँचाते हैं। ... उनका

(५) समान आयु— ... प्रवेश

शिक्षण करने की प्रथा हमारे देश ... ence),

की न्यूनतम आयु ५ वर्ष रखी ग' ... उनकी

योग्यता (capacity to learn), ... शारीरिक और मानसिक विकास भिन्न-भिन्न प्रकार का हो सकता है। अतः समान आयु के सभी बालकों को एक कक्षा में रखने से भी कोई लाभ नहीं होगा, किन्तु समान योग्यता के छात्रों को भी एक ही कक्षा में रखने से कोई लाभ नहीं होता क्योंकि एक ही कक्षा के उसी आयु के बालक जो शारीरिक दृष्टि से अधिक विकसित होते हैं समान योग्यता वाले किन्तु आयु में छोटे बालकों के साथ दुर्व्यवहार करने लग जाते हैं। इसलिये उनकी अन्य विशेषताओं को भी ध्यान में रखा जाता है।

... एक ही कक्षा या एक ही स्कूल में रखा

...

लय किस प्रकार भिन्न-भिन्न रुचियों के अनुसार बालकों की शिक्षा व्यवस्था कर सकते ... कार्य के लिये बहु-उद्देशीय विद्यालयों का जाल सा समस्त देश में बिछाना होगा, किन्तु इस कार्य में भी कठिनाइयाँ हैं।

(७) समान लिंग—समान लिंग के अनुसार तो प्रायः विद्यालयों का संगठन किया जाता है। ११ वर्ष की अवस्था तक तो बालक और बालिकाओं को एक ही विद्यालय में शिक्षा दी जा सकती है। किन्तु ११ वर्ष के बाद दोनों के मानसिक, शारीरिक और संवेदनात्मक विकास में अन्तर होने के कारण दोनों को एक ही कक्षा में एक साथ पढ़ाना उचित नहीं लगता। इसी कारण उच्च माध्यमिक स्तर पर बालक और बालिकाओं को अलग-अलग कक्षाओं या अलग-अलग स्कूलों में शिक्षा दी जाती है। दोनों को विश्वविद्यालयीय स्तर पर पुनः एक साथ पढ़ाया जा सकता है क्योंकि लड़कियों का विकास १८ वर्ष के बाद और लड़कों का २० वर्ष के बाद विकास एक सा आता है। इस प्रकार शिक्षा के भिन्न-भिन्न स्तरों पर लिंग का भी ध्यान रखा जाता है।

(८) समान शारीरिक सम्बन्ध—शारीरिक स्वास्थ्य, कद और भार का भी ध्यान वर्गीकरण करते समय किया जा सकता है। यदि शिक्षा से हमारा तात्पर्य सर्वांगीण विकास से है तब हमें बालकों का वर्गीकरण करते समय उनके स्वास्थ्य का ध्यान रखना पड़ेगा। क्योंकि अस्वस्थ बालक स्वस्थ बालकों के साथ न तो लिख-पढ़ ही सकता है और न खेलों में ही भाग ले सकता है। नाटे कद के बालकों के बीच एक ऊँचे कद के बालक को बिठा देना भी अच्छा नहीं लगता। इस प्रकार का बालक उनके बीच समायोजन (adjustment) स्थापित नहीं कर सकता।

प्रधानाध्यापक को वर्गीकरण करते समय इस प्रकार कई बातों का ध्यान रखना होगा। यदि समान आयु, योग्यता, रुचि, लिंग, शारीरिक स्वास्थ्य रखने वाले एक ही साथ रखे जा सकें तो अध्ययन-कार्य अत्यन्त सुविधाजनक हो जायगा। आज भी समान रूप से शिक्षण का लाभ ग्रहण कर सकेंगे अतः उनकी शैक्षणिक प्रगति समान दर से हो सकेगी। कक्षा के सभी छात्रों के एक से स्तर होने कारण उनमें हीनता, निराशा, भय आदि मानसिक ग्रन्थियाँ न पनप सकेंगी। वे शिक्षा के उद्देश्यों को सरलता से प्राप्त कर सकेंगे। सिद्धान्त रूप से वर्गीकरण के ये आधार सर्वमान्य हो सकते हैं किन्तु वे व्यवहारगम्य नहीं हो सकते। वास्तव में आदर्श वर्गीकरण

अध्यापक को भी अपने परिश्रम का मनोवांछित फल नहीं मिलता। कमजोर बालक सदैव किसी न किसी बात में पिछड़ा ही रहता है। कक्षा में जो कुछ पढ़ाया जाता है उसे वह पचा नहीं पाता।

शिक्षक कक्षा शिक्षण में बाल स्वभाव की उपेक्षा कर जाता है। चाहे जितना ही योग्य एवं महान् व्यक्तित्व वाला अध्यापक क्यों न हो कक्षा शिक्षण में उसके व्यक्तित्व की छाप छात्रों पर पूर्णतः नहीं पड़ पाती क्योंकि वह उनके सम्पर्क में इतना अधिक नहीं आता कि उनका समुचित रूप से विकास नहीं कर पाता। कभी-कभी कुछ बालकों की शक्ति, आवश्यकताएँ और समस्याएँ दूसरों से इतनी भिन्न होती हैं कि उन्हें कक्षा-शिक्षण विधि से पढ़ाना उनके विकास में रोड़े अटकाना है।

कक्षा शिक्षण में उपर्युक्त दोष होने के कारण ही कुछ शिक्षा विशारद वर्गीकरण के महत्व में विश्वास नहीं करते। तब भी इस प्रणाली में कुछ ऐसे गुण भी हैं जो व्यक्तिगत शिक्षण में उपलब्ध नहीं हो सकते। इसलिये कक्षा शिक्षण सर्वदा त्याज्य नहीं है। यदि वैयक्तिक शिक्षण व्यवहार्य होता तो कक्षा-शिक्षण को इतना महत्त्व न मिलता। वैयक्तिक शिक्षण के लिये इतने अध्यापकों की व्यवस्था किस प्रकार की जा सकती है जो प्रत्येक बालक को अलग-अलग लिखा-पढ़ा सके। कक्षा शिक्षण से बालकों में सामूहिकता की प्रवृत्ति को विकसित करने का अवसर मिलता है। बालक अपनी उम्र और कोटि के बालकों के साथ रहना चाहता है। वह अपने समाज में रह कर नैतिकता तथा आचरण सम्बन्धी अनेक पाठ सीखता है। उसका सामाजिक विकास भी अपनी कोटि के बालकों में रहकर ही अधिक होता है क्योंकि स्पर्धा, अनुकरण और सहानुभूति आदि सामान्य प्रवृत्तियों के जाग्रत होने पर वह अधिक सामाजिक बन सकता है। वैयक्तिक शिक्षण में इस प्रकार सामाजिक विकास असम्भव है।

अकेले सीखने में प्रेरणा की कमी होने के कारण वैयक्तिक शिक्षण में बालक अधिक सीख नहीं पाता। जिन विषयों में सहानुभूति, संकेत और अनुकरण की आवश्यकता होती है उन विषयों को शीघ्र ही सीखने के लिए कक्षा शिक्षण ही अधिक उपयोगी पद्धति मानी जा सकती है। ये विषय साहित्य, कला, संगीत, इतिहास, भूगोल, समाज अध्ययन आदि हैं।

कक्षा शिक्षण में कमजोर विद्यार्थियों के कारण एक ही बात को जब शिक्षक बार-बार दुहराता है तब वह बात तेज छात्रों के दिमाग में अच्छी तरह बैठ जाती है। वैयक्तिक शिक्षण में कुशाग्र बुद्धि वाले बालक को इस प्रकार की सुविधा मिल नहीं सकती।

यही कारण है कि मान्टेसरी, प्रोजेक्ट, और डाल्टन शिक्षण प्रणालियों में जो वैयक्तिक भिन्नताओं पर विशेष बल देती है, कक्षा शिक्षण को भी विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है। अच्छा तो यही है कि वैयक्तिक शिक्षण-विधि के अन्तर्गत ही कोई ऐसा उपाय निकाला जाय जिससे कक्षा-शिक्षण वाले छात्र वंचित न रह सकें। कक्षा शिक्षण व्यवस्था के अन्तर्गत ही छात्रों पर वैयक्तिक ध्यान देने का प्रबन्ध किया जा सकता है। आजकल की तरह कक्षाओं में बालकों की संख्या अधिक न रखकर कम की जा सकती है और स्कूल में अध्यापकों की संख्या में वृद्धि की जा सकती है।

मैकमन (Mac Munn), हॉलक्वेस्ट (Hall Quest), वर्ट (W. A. Wirt) और मिस मैसन ने कक्षा-शिक्षण पद्धति में ही वैयक्तिक पद्धति के गुणों का समन्वय करने के लिए कुछ सुझाव दिये हैं।

मैकमन का कहना है कि यदि सम्पूर्ण कक्षा को दो-दो बालकों की टोली में विभाजित कर पढ़ाया जाय तो यह बात कक्षा शिक्षण से कहीं अधिक उपयोगी होगी क्योंकि इसमें वैयक्तिक और कक्षा-शिक्षण दोनों पद्धतियों के गुण आ जावेंगे। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी बालक पर इसका स्वस्थ प्रभाव पड़ सकता है, क्योंकि इसमें उसे वैयक्तिक स्वतन्त्रता अधिक होगी और आवश्यकता पड़ने पर अध्यापक की सहायता भी मिल जायगी। इस पद्धति को अपनाने वाला शिक्षक बालकों को दो-दो की टोलियों में विभाजित कर देता है। कुछ देर के बाद सभी एकत्र होते हैं और शिक्षक उनकी गलतियों को सुधारता है।

हॉलक्वेस्ट भी इसी प्रकार की शिक्षण पद्धति पर जोर देता है। इस विधि को हम निरीक्षित स्वाध्याय विधि (Supervised Study) कहते हैं। शिक्षक बालकों को अपनी शिक्षा के

करण ऐसा होना चाहिये कि उससे अधिक से अधिक लाभ उठाया जा सके। यदि हम वर्गीकरण प्रणाली को अधिकाधिक वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक बनायें और व्यक्तिगत अन्तरों को न्यूनतम

लिये समान अवसर मिल सकता है।

कुछ शिक्षा विशारदों का मत है कि किसी व्यक्ति की योग्यता, रुचि, और भावी शक्तियों का पता किसी प्रकार की परीक्षा से पूर्णतः नहीं लगाया जा सकता इसलिये उनके विचार से वर्गीकरण होना ही नहीं चाहिये और प्रत्येक व्यक्ति की व्यक्तिगत विकास की सुविधाओं का प्रबन्ध किया जाना चाहिये।

वर्गीकरण करने का व्यावहारिक दृष्टिकोण

यद्यपि बालकों का समस्त कक्षाओं में उचित वर्गीकरण शैक्षिक दृष्टिकोण से है क्योंकि ऐसे समुचित वर्गीकरण पर ही शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति निर्भर रहती है यह मानना पड़ेगा कि समरस (Homogeneous) वर्गीकरण प्रवचना मात्र है, प्रधान कर्तव्य है कि वह जहाँ तक हो सके कक्षा को समरस बनाने का प्रयत्न करे और छा कक्षा में रखने का प्रयत्न करे जिसके योग्य वह है, ऊँची कक्षाओं में बालकों को दिया जाय जिसके लिए योग्यता रखते हों, नहीं तो अपव्यय और अवरोधन की खड़ी होगी। पढ़ाई आरम्भ होने के बाद कभी भी नए छात्रों को प्रवेश न उनके कक्षा में पिछड़ जाने की अधिक सम्भावना रहेगी। पहली कक्षा तथा को प्रवेश देते समय उनकी आयु का ध्यान अवश्य रखा जाय क्योंकि ऐसा न वैषम्य (heterogeneity) पैदा हो जायगी। ऊँची कक्षाओं में छात्रों का कक्षाओं में सफलता के आधार पर करना चाहिए। विद्यालयों में शैक्षि tional Guidence) का कार्य आरम्भ हो जाना चाहिए इससे मात्रा तक हल हो सकेगी।

प्राथमिक कक्षाओं के वर्गीकरण का आधार बुद्धि स्कूल पास करने पर जब बालक की रुचियाँ और अभिरुचि का आधार अभिरुचि परीक्षण माना जा सकता है। अन्तर दिखाई दे तो उनका पुनः वर्गीकरण कर दिया सर्वदा मान्य नहीं है। जहाँ तक सम्भव हो वर्गीकरण

एक ही कक्षा में छात्रों की अधिकतम संख्या निर्धारित करने के सिद्धान्त—अब प्रश्न उठ सकता है कि एक ही कक्षा में अधिक से अधिक कितने छात्र रखे जा सकते हैं।

(१) कक्षा के बालकों की मानसिक वृद्धि—सामान्य तौर से छोटी कक्षाओं में, जिनके बालकों की मानसिक वृद्धि अधिक नहीं होती और जिन पर अधिक व्यक्तिगत ध्यान देना जरूरी होता है छात्रों की संख्या कम ही रखी जाती है। इसके विपरीत जब छात्र अपनी जिम्मेदारी समझने लगते हैं और मानसिक वृद्धि भी काफी हो जाती है तब उनकी कक्षा में छात्रों की संख्या अधिक भी रखी जा सकती है। साधारणतः नीची कक्षाओं में छात्रों की संख्या ३० और ऊँची कक्षाओं में ४०-४५ रखी जा सकती है।

(२) पाठ्य विषय की कठिनाई तथा लिखित कार्य की मात्रा—जो पाठ्यविषय कठिन होते हैं अथवा जिन विषयों में लिखित कार्य अधिक करना पड़ता है उनमें छात्रों की संख्या कम ही रखी जा सकती है। उदाहरण के लिये विज्ञान और गणित ऐसे विषय हैं जिनमें छात्रों के पास व्यक्तिगत ध्यान (Individual attention) अधिक देना पड़ता है। इसलिए उनमें छात्रों की संख्या कम होनी चाहिए। इसके विपरीत इतिहास, भूगोल, समाज अध्ययन, कला, संस्कृत आदि विषयों की कक्षा में छात्रों की संख्या अधिक हो सकती है। भाषा शिक्षण के लिये कक्षा में छात्रों की संख्या अपेक्षाकृत कम होनी चाहिए क्योंकि इसके विपरीत कार्य की मात्रा अधिक होती है। लेकिन यह सम्भव कैसे हो सकता है कि एक ही कक्षा में अंग्रेजी पढ़ाने के लिये छात्रों की संख्या कम और इतिहास पढ़ाने के लिए छात्रों की संख्या अधिक रख दी जाय।

(३) विद्यालय भवन और फर्नीचर—विद्यालय में कक्षाकक्षों की संख्या, कक्षाकक्ष का आकार, अध्यापकों की संख्या आदि कुछ ऐसे तत्व हैं जो कक्षा के बालकों की संख्या निर्धारित करते समय ध्यान में रखने पड़ते हैं। कभी-कभी अध्यापक विशेष का व्यक्तित्व भी कक्षा के आकार को निश्चित करने में सहायक होता है। कुछ अध्यापक बड़ी से बड़ी कक्षा पर भी नियन्त्रण कर लेते हैं और कुछ ऐसे अध्यापक होते हैं जिनको छोटी आकार की कक्षाएँ पढ़ाने में भी कठिनाई होती है।

(४) विशिष्ट बालकों की कक्षाएँ—जो कक्षाएँ विशिष्ट बालकों के लिये बनाई जाती हैं वे प्रायः आकार में छोटी होती हैं। उदाहरण के लिये कक्षा में पिछड़े हुए बालकों के लिए जो विशिष्ट प्रकार की कक्षायें चलाई जाती हैं वे आकार में बहुत छोटी होती जाती है ताकि सभी छात्रों पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान दिया जा सके।

इन कारणों से विद्यालय में छात्रों का वर्गीकरण करना पड़ता है। वर्गीकरण करते समय प्रशासक का उद्देश्य यही रहता है कि वह यथासम्भव एक सी योग्यता, अभिरुचि और दक्षता के छात्रों को एक ही कक्षा में रखे। आदर्श कक्षा में उसके सभी सदस्य समान उद्देश्य, समान योग्यता के सूत्र में बंधे रहते हैं। वे साथ-साथ काम और साथ-साथ प्रगति करते रहते हैं[1]।

इसका अर्थ यह है कि अध्यापकों तथा प्रधानाचार्य दोनों ही को प्रत्येक छात्र की व्यक्तिगत विशेषताओं का अध्ययन करना चाहिए। यद्यपि यह काम कठिन है फिर भी यदि यह सावधानी से किया गया तो बालकों की शैक्षणिक प्रगति पर उसका बुरा प्रभाव पड सकता है। विद्यालय प्रशासन का सबसे महत्वपूर्ण अंग छात्र-वर्गीकरण है।[2] भारतीय विद्यालयों में जितना कम महत्व प्रशासन के इस अंग को दिया जाता है उतना कम महत्व शायद किसी और अंग को नहीं दिया जाता है। फल यह होता है कि अपव्यय और अवरोधन की मात्रा बढ जाती है। बालकों में अवांछनीय मानसिक जटिलताएँ पैदा हो जाती हैं। विद्यालय में अनुशासनहीनता, भगोड़ेपन की आदत, पिछड़ापन (backwardness) आदि-आदि का एक मात्र कारण यह है कि कक्षा में सभी बालकों की प्रगति एक साथ नहीं होती।

---

ogether
o work
possible

... Management 1944.

2. The nucleus of school organisation is sound classification."

—*Bray*
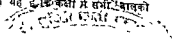
Q. 4 "Formation of an ideal homogeneous class in Indian schools is a myth". Discuss the statement with reference to the problems involved in classification

ग्रायु, योग्यता, ग्रभिरुचि ग्रौर रुचियो के ग्रनुकूल बालकों का ग्रलग-ग्रलग समूह बनाना कठिन ही नही ग्रसम्भव भी है । जब हम छात्रों को समरस समूहों में विभक्त करना चाहते हैं तब केवल यही देखना नही चाहते कि उनकी योग्यता कैसी है वरन् हम यह भी देखते हैं कि उनका शारीरिक, सामाजिक, सार्वजनिक विकास किस सीमा तक हुग्रा है । हम कभी भी दो ऐसे व्यक्तियों को कही भी खोज नही सकते जो विकास के इन दृष्टिकोणों को ध्यान में रखकर समान हों।

[illegible]

दीली नही होगी ? यदि व्यक्तित्व को [illegible]
of traits) मानलें तो व्यक्तित्व को इन [illegible]
होगा ? परीस्थितियों की विभिन्नता ग्राने पर विभिन्न व्यक्ति भिन्न-भिन्न ग्राचरण करते हैं। इसलिए वर्तमान परिस्थिति में एक व्यक्ति जैसा आचरण करता है कल परिस्थिति के परिवर्तित होते ही ग्रन्तर ग्रा जायगा ।

वातावरण ग्रौर वशानुक्रम दोनो ही वैयक्तिक विभिन्नताग्रों की मात्रा को बढ़ाते रहते हैं ? इसी कारण उनका शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, सावेगिक ग्रौर नैतिक विकास भिन्न भिन्न मात्रा मे होता है । उदाहरण के लिए किसी भी कक्षा में ग्रापको एक बालक तो ऐसा मिलेगा जो ग्रंग्रेजी मे बहुत ग्रच्छा है लेकिन गणित मे ग्रर्द्ध शामान्य है, जो हिन्दी मे सामान्य है परन्तु विज्ञान में ग्रर्द्ध सामान्य है वह पाठ्येत्तर क्रियाग्रों मे भाग लेता है लेकिन गैर जिम्मेदार है ? वह समूह मे ग्रनुकूलन स्थापित तो कर लेता है किन्तु कभी-कभी दूसरे से लड़-झगड़ बैठता है। क्या ऐसे ही ग्रन्य दो चार बालक कक्षा मे मिल सकते हैं ? यदि दो चार बालक भी ऐसे नहीं मिल सकते तो समरस वर्गीकरण (homogeneous grouping) की बात करना ही व्यर्थ है। वशानुक्रम ग्रौर वातावरण से उत्पन्न हुए विभेदो को दूर नही किया जा सकता । ग्रत. वर्गीकरण करते समय निम्नलिखित कटु सत्यो को हमें ध्यान मे रखना होगा—

(१) चूंकि प्रत्येक छात्र दूसरे छात्रो से शारीरिक, मानसिक तथा सावेगिक विकास के ग्रनुसार भिन्न होता है इसलिए यह कहना कि वह ग्रन्य बालकों जैसी ही सफलता कक्षा-कार्य में पा सकेगा गलत है । वातावरण की भिन्नता के कारण भिन्न-भिन्न विषयो मे सफलता की मात्रा एक ही बालक के लिए ग्रलग-ग्रलग होगी ग्रत समरस वर्गीकरण के बाद फिर वैषम्य पैदा हो जायगा ।

(२) किसी बालक की सभी विशेषताग्रो (Traits) को निश्चयपूर्वक परीक्षणों द्वारा ज्ञात करना ग्रत्यन्त कठिन होता है । हम किसी बालक की बुद्धि, ग्रभिरुचि, पाठनयोग्यता ग्रादि का ग्रनुमान लगा सकते है लेकिन पाठ्य वस्तु को सीखने मे सफलता तो निर्धारित करने वाले ये ही तत्व नहीं हैं । कक्षा मे छात्र की सफलता उसके सामाजिक एव ग्रार्थिक पर्यावरण पर भी निर्भर रहती है जिसको ग्रध्यापक ग्रौर विद्यालय नियन्त्रित कर ही नही सकत । यदि शैक्षणिक प्रशासन उनको नियन्त्रित करने का प्रयास भी करे तो उसको इस मार्ग मे ग्रसाध्य कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा ।

ग्रध्यापक वशानुक्रम के प्रभावो को तो नियन्त्रित कैसे भी नही कर सकता । वातावरण के प्रभाव को काबू मे लाना भी विद्यालय के वश मे नही है ।

सह-शिक्षा

Q. 5. Shall we have separate schools for boys and girls or shall we teach them together ? Discuss the merits and demerits of classification on the basis of sex.

एक ही विद्यालय मे लड़के ग्रौर लड़कियो को साथ-साथ शिक्षा देने की व्यवस्था के विषय मे लोगों में मतभेद है । दृष्टिकोणो से सह शिक्षा व्यक्ति के लिए भी हितकर ग्रथवा ग्रहितकर हो सकती है ग्रौर समाज के लिए भी । ग्रमरीका मे सहशिक्षा द्वारा ही बालक ग्रौर बालिकाग्रो

दोनो को ही शैक्षिक अवसरों की समानता है, दोनो ही स्वतन्त्रता के वातावरण मे रहते हुए प्रजातन्त्रा-त्मिक व्यवस्था में लाभान्वित हो रहे हैं। हालैण्ड, इगलैण्ड, स्विटजरलैण्ड, जर्मनी और हगरी मे
[illegible] के और
[illegible] सम्मान
[illegible] बालि-
[illegible] करते हैं,
[illegible] कामो
की शिक्षा अलग-अलग विद्यालयो मे देना पसन्द करते हैं।

कुछ विद्यालयो मे जो लड़को के लिये स्थापित किए गए हैं लडकियो को भी प्रवेश दिया जाता है और कुछ बालिका विद्यालयो मे भी बालको को प्रवेश मिल जाता है। लेकिन ऐसे विद्यालयों को सहशिक्षा देने वाले विद्यालय नही माना जा सकता। जिन विद्यालयो मे प्रत्येक
[illegible] नमे दोनों वर्गों के लिए समान
[illegible] स्वतन्त्रतापूर्वक मिलते-जुलते हो,
[illegible], ऐसे विद्यालयो म सहशिक्षा की व्यवस्था का होना माना जा सकता है। सहशिक्षा का अर्थ यह कदापि नही है कि बालक और बालिकाओ को साथ ही पाठ्यक्रम दिया जाता है। सह शिक्षा होते हुए भी दोनो को उनकी रुचि के अनुसार पाठ्य वस्तु दी जाती है।

[illegible] दोषो की व्याख्या करने के उपरान्त ही
[illegible] तक उपयोगी सिद्ध हो सकती है। सह-
[illegible]

(१) भारत एक निर्धन देश है और वह अपने सभी बच्चो को अनिवार्य रूप से शिक्षा [illegible]ना चाहता है। ऐसी दशा मे यदि बालिकाओ की शिक्षा के लिए अलग से वह कोई व्यवस्था [illegible]ही कर सकता तो उसे उन्हें बालको के साथ पढ़ाने मे कोई सकोच नहीं होना चाहिए। यदि [illegible]क ही गाँव मे बालक और बालिकाओ के लिए दो अलग-अलग विद्यालय चलाए जायें तो अप-[illegible]यय हो सकता है। यदि बालिकाओ के लिए अलग स्कूल खोले जायें तो उनमे लडकियो की [illegible]ख्या कम होने के कारण कम अध्यापिकाओ की आवश्यकता होगी, कम फर्नीचर की जरूरत होगी
[illegible] ना कि ऐसे छोटे
[illegible] सकता है। एक
[illegible] के विपरीत यदि [illegible]डके और लड़कियो को एक ही साथ शिक्षा दी जाय तो छात्रों की सख्या अधिक होने पर अध्या-[illegible]को की सख्या अधिक होगी और छात्रो को उनकी योग्यता के अनुसार अच्छी तरह से वर्गीकृत [illegible]कया जा सकता है।

(२) सहशिक्षा देने वाले विद्यालयो मे अनुशासन सम्बन्धी कोई समस्या पैदा नही [illegible]ती। बालक और बालिकाएँ साथ-साथ रहकर एक दूसरे के प्रति पारस्परिक आदर भाव पैदा [illegible]र लेते हैं। बचपन से ही साथ-साथ रहने के कारण भविष्य मे उनका गार्हस्थ्य जीवन सुखमय बन [illegible]कता है। विद्यालय के आँगन मे साथ-साथ रहकर, साथ-साथ खेलकर, साथ-साथ पढकर एक वर्ग [illegible]सरे वर्ग को समझने लगता है।[1]

(३) बालको मे असभ्यपन तथा उजड्डता तथा बालिकाओं में अति लज्जाशीलता और [illegible]र्मिन्दगी इसलिए पैदा हो जाती है कि ये दोनो वर्ग बचपन से ही अलग-अलग रहते हैं, आचरण [illegible]म्बन्धी कई असमान्यताएं इसलिए पैदा हो जाती हैं कि ये दोनो असम लिंगीय वर्ग अलग-अलग रहते, [illegible]हते, लिखते-पढ़ते, खेलते-कूदते हैं। बालक अनावश्यक रूप से अपने को बलिष्ठ और बहादुर

---

1. Only by living together, by sharing the same interests and working at
[illegible] experience affect them
[illegible] ences, by meeting the
[illegible] government to which
[illegible] and confidence

—*J. H. Bradley*

तथा बालिका ग्रनावश्यक रूप से ग्रपने को कमजोर समझने लगती है। सहशिक्षा प्राप्त करने वाले बालक और बालिकाओं में ऐसी ग्रसामान्यताएँ दिखाई नहीं देतीं।

(४) सहशिक्षा बालक और बालिकाओं के बीच ग्रप्राकृतिक ग्रौर समाज विरोधी भावनाओं को विकसित होने से रोकती है। ग्रलग-ग्रलग रहने से बालकों में जो लिंगीय दुर्व्यसन पैदा हो जाते हैं वे साथ-साथ रहने से पैदा नहीं हो सकते। साथ-साथ रहने से काम भावना सम्बन्धी मूल प्रवृत्तियाँ शोधित होती रहती हैं।

(५) कुछ विषयों में लड़कियाँ लड़कों की ग्रपेक्षा ग्रधिक योग्य होती हैं जैसे संगीत, चित्रकारी, भाषा ग्रादि ग्रौर ग्रन्य विषयों में लड़के लड़कियों से ग्रधिक चतुर होते हैं जैसे गणित, कला, विज्ञान। यदि लड़के ग्रौर लड़कियाँ साथ-साथ पढ़ें तो दोनों को ही लाभ होता है क्योंकि दोनों को एक दूसरे से प्रोत्साहन मिलता रहता है।

(६) सहशिक्षा देने वाले विद्यालयों में ग्रध्यापक ग्रौर ग्रध्यापिकाओं के एक साथ रहने से विद्यालय में पाठ्य सहगामिनी क्रियाओं का संगठन ग्रौर संचालन ठीक प्रकार से होता है क्योंकि बहुत सी ऐसी पाठ्येतर क्रियाएँ हैं जिनका संचालन स्त्रियाँ ग्रधिक चतुराई से कर सकती हैं।

संस्था में स्त्री ग्रौर पुरुषों क
करता है। सम्पूर्ण विद्यालय ऐसा मालूम
का जैसा समुचित विकास हो सकता है

सहशिक्षा से हानियाँ— (१) जिन
पाकशास्त्र, सीने पिरोने के काम, कातना-बुन
दिया जाता। इन कामों में लड़कियों की रुचि भी होती है ...
सफलता के लिए भी ग्रावश्यक होते हैं। यदि हमें ग्रपनी बालिकाओं को ग्रादर्श गृहिणी बनाना है तो उनकी शिक्षा में इन कामों को महत्व देना ही पड़ेगा।

(२) यदि किसी सहशिक्षा देने वाले विद्यालय में लड़कियों की संख्या लड़कों की तुलना में कम हुई तो उनके व्यक्तित्व का समुचित विकास न हो सकेगा। वे ग्रौर भी ग्रधिक लज्जाशील ग्रौर भावुक बन जायेंगी। देश में जितने भी ऐसे विद्यालय हैं उन सभी में लड़कियों की संख्या लड़कों की तुलना में कम ही होती है। कक्षा में उनको ग्रलग सीटों पर बैठाया जाता है। पुस्तकालय में उनके लिए पढ़ने का ग्रलग प्रबन्ध होता है ग्रौर पाठ्येतर क्रियाओं खेलकूद, ग्रभिनय, ग्रादि में उनको समान रूप से भाग लेने में हिचकिचाहट होती है।

(३) सहशिक्षा देने वाले विद्यालयों में प्रशासनिक कठिनाइयाँ होती हैं। ग्रनुशासन स्थापित करने के लिये कठोर नियमों का पालन बालिकाओं से नहीं कराया जा सकता। बालकों को विद्यालय के नियमों का पालन कराने के लिए शारीरिक दण्ड भी दिया जा सकता है। लेकिन बालिकाओं को शारीरिक दण्ड देना ग्रनुचित है। परीक्षाफल घोषित करते समय भी बालिकाओं का ध्यान रखना पड़ता है क्योंकि उनको नौकरी तो करनी नहीं होती ग्रतः उनको कक्षोन्नति देनी ही पड़ती है। इस प्रकार प्रधानाचार्य को प्रशासनिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

(४) माध्यमिक स्तर पर सहशिक्षा के विरोध में दो तर्क दिये जाते हैं पहला यह कि इस ग्रायु के बालक ग्रौर बालिकाएँ किशोर होने के कारण साथ-साथ रहने पर समाज विरोधी कार्य कर सकते हैं। किशोरावस्था में बालक ग्रौर बालिकाएँ प्राय समाज के नियमों का उल्लंघन करते हुए पाये जाते हैं। १४-१७ वर्ष की ग्रायु तक उनके ग्राचरण में न तो गम्भीरता ही होती है ग्रौर न परिपक्वता ही। ग्रत १३-१४ वर्ष से पूर्व ग्रथवा १८-१९ वर्ष की ग्रायु के उपरान्त सहशिक्षा की व्यवस्था हानिकर सिद्ध नहीं होती। लेकिन माध्यमिक स्तर पर जबकि बालक ग्रौर ... हानिकर

...

सहशिक्षा दी जाय ग्रथवा न दी जाय इसका निर्णय करने से पूर्व हमें न केवल उसके गुण-दोषों की ही विवेचना करनी चाहिए वरन् उस समाज की परम्पराओं, ग्रादर्शों, सवठनों, रूढ़ियों ग्रौर उसकी सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का ग्रध्ययन भी करना होगा जिससे सहशिक्षा का

प्रचार करना है। रूढ़िवादी समाज मे हम प्रगतिशील सहशिक्षा प्रारम्भ नही कर सकते। हटॉग कमीशन ने भी यही सुझाव दिया था कि किसी जगह सहशिक्षा देने वाले विद्यालय खोलने से पूर्व हमे उस स्थान की परम्पराओ का अध्ययन करना होगा और वहाँ के लोगों की सामाजिक रीति-रिवाजो को ध्यान मे रखना होगा। यदि ऐसा किए बिना ही बालिकाओ को बालको के विद्यालय मे पढ़ने के लिए भेजा गया तो यह कदम स्त्री शिक्षा के लिए घातक सिद्ध हो सकता है। माध्यमिक शिक्षा आयोग ने यद्यपि सहशिक्षा के विषय मे कोई निश्चित मत नही दिया किन्तु इतना आवश्यक है कि जिन राज्यो मे सहशिक्षा का प्रबन्ध हो सके किया जाय। लेकिन जिस देश मे सहशिक्षा सम्बन्धी विचार धाराएँ हो, उस देश को प्रादेश मे मध्यम मार्ग का ही अनुसरण करना चाहिए।

कक्षोन्नति--सिद्धान्त और प्रकार

Q 6. Discuss the principles which the head of the institution should follow in making class promotions How far do you agree with the principle of double promotion in lower classes ?

भारतवर्ष के सभी विद्यालयो मे एक वर्ष के बाद बालक को कक्षोन्नति देने की प्रथा-सी है। साधारणत वार्षिक परीक्षा मे सफल होने पर बालक को तरक्की दी जाती है। असफल होने पर उसे कक्षा मे रोक लिया जाता है। कक्षा मे रोक लेने से शिक्षा मे अवरोध (stagnation) की समस्या उत्पन्न हो जाती है साथ ही बालक पर भी उसका बुरा मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है, उसी कक्षा मे दूसरे वर्ष रहने से बालक कार्य मे रुचि खो बैठता है। उसके आत्मसम्मान को चोट लगती है, और उसका दिल टूट जाता है। बालक को दाखिले के समय ठीक जाँच न करने, उसे उचित कक्षा मे न रखने, ठीक प्रकार से उसका अध्यापन न होने से इस प्रकार की समस्या उत्पन्न हो जाया करती है। अतएव कक्षोन्नति देते समय हमे किसी निश्चित नीति का निर्धारण करना होगा। कभी-कभी ऐसे बालक भी मिलते हैं जिनको साल-भर कक्षा मे अनिवार्यत. रखना अमनोवैज्ञानिक प्रतीत होता है, क्योकि वे इतने तेज होते हैं कि एक साल का कार्य ४ या ६ महीने मे ही पूरा कर लिया करते हैं। छोटी कक्षाओ मे तो अनेक बालक ऐसे मिल सकते हैं जिनको एक साल मे दो तरक्कियाँ दी जा सकती हैं। अब प्रश्न यह है कि तरक्की देने के सम्बन्ध मे विद्यालय कैसी नीति अपनावे कि न तो वर्गीकरण मे ही कोई गडबड हो और न शिक्षण अमनोवैज्ञानिक ही बन जाये। अतएव बालको को कक्षोन्नति देते समय निम्नलिखित सिद्धान्तो पर ध्यान दिया जा सकता है—

बालको को तरक्की के सिद्धान्त

(१) बालको की तरक्की उनके व्यक्तिगत कार्य पर निर्भर है, उदाहरणार्थ कुशाग्र बुद्धि बालको को जो किसी स्तर के पाठ्यक्रम को २ वर्ष की अपेक्षा १ वर्ष मे ही पूरी तरह अधिगम कर लेते हैं उन्हे दुगुनी तरक्की दी जा सकती है।

। पहले ४ या ६ महीनो ही
शेष समय मे पूरी तरह सीख लें

(३) तरक्की की नीति बालक का पाठ्यवस्तु को पूरी तरह अधिगम करने पर ही निर्भर न हो उसके सर्वांगीण विकास का भी ध्यान रखा जाय। यदि बालक का स्वास्थ्य ठीक है, यदि वह स्कूल की अन्य क्रियाओं मे सक्रिय भाग लेता रहा है तो उसे तरक्की दी जा सकती है।

प्रतिदिन के
कार्य र हो नहीं
तो [illegible] समय रखा
जाता है।

(५) बालको और उसके अभिभावको को उसकी प्रगति की समय समय पर सूचना देते रहने, उनकी कमजोरियों का ज्ञान उन्हे देते रहने से तरक्की की नीति मे सुधार किया जा सकता है। यदि ऐसा किया जाता है तो वर्ष के बाद सभी बालको को तरक्की दी जानी चाहिये। एक वर्ष मे साल भर के काम को पूरा करा देने की जिम्मेदारी विद्यालय की है, अभिभावकों की नहीं अत. उन्नति देते समय इस बात को ध्यान मे अवश्य रखना चाहिये।

मानसिक, अध्यात्मिक एव व्यक्तिगत सम्बन्धी सभी प्रकार के विकासो की जाँच नहीं की जायगी तब तक उसकी परीक्षा नहीं की जा सकती। यदि बालक के ज्ञान की जाँच पर ही अधिक बल दिया जाता है तो वह ऐसा ही जिसे बालक ने अपने व्यक्तित्व का अग बना लिया हो, और जिसका प्रयोग उसके व्यवहार मे सदैव प्रतिबिम्बित रहता हो। इसके आत्मसात् कर लेने पर ही छात्र की विचारधारा मे यह ज्ञान समा जाया करता है।

परीक्षा छात्र की प्रगति के मापन का साधन मात्र है साध्य नहीं है। बालक के व्यवहार शिक्षण के फलस्वरूप जो परिवर्तन होते रहते है उनको समय-समय पर विधिपूर्वक जाँच करना परम आवश्यक है।

(२) शिक्षण कार्य को अधिक उपयोगी बनाना—परीक्षा का दूसरा उद्देश्य शिक्षण कार्य को अधिक उपयोगी बनाना है। परीक्षा के बिना शिक्षक के लिये यह असम्भव है कि वह

करता है कि कौन बालक

विशे परीक्षा इस कार्य मे

एव बुद्धि की परीक्षा ली

प्रसार विभाग तथा जिला

मनोवैज्ञानिक आदि की सहायता ली जा सकती है। जो छात्र इन तीनो परीक्षाओ मे उत्तीर्ण होते हैं उन्ही को उपर्युक्त कक्षा मे प्रवेश दिया जाता है। यदि कोई छात्र भाषा और गणित मे अनुप-

जा सकता

विद्यार्थी ने

। अनेक लाभ

पिछड़ने के

इस विषय मे

रना चाहिये,

करने पर मिल सकता है। जब तक उनका मूल्याकन नहीं किया जाता तब तक उनकी कोई उपयोगिता नहीं होती।

प्रयोजन शि

मे कौशल

उनके तर्क, चिन्तन एव कल्पना की समुचित वृद्धि हो सकती है, यदि वह छात्रो के व्यक्तित्व को विकसित करने मे अध्यापकों की मदद कर सकती है तो निश्चय ही वह अध्यापक के लिये सार्थक

है, साध्य न बन जावे। खेद के साथ

बन चुकी हैं, साधन नहीं रही हैं।

ऊपर की विवेचना से स्पष्ट प्रतीत होता है कि परीक्षा एव अध्यापन मे चोली-दामन का साथ है। शिक्षण एव परीक्षण दोनो क्रियाएँ साथ-साथ चलने वाली प्रक्रियायें मानी जा सकती हैं। परीक्षण से विदित हो सकता है कि शिक्षण कहाँ तक और किस मात्रा तक अपने उद्देश्य मे सफल हो रहा है अथवा नहीं और यदि नहीं हो पा रहा है तो दोष कहाँ पर है। इस कारण

परीक्षण को इसीलिये शिक्षण

उद्देश्यो को ध्यान मे रख

(६) किसी विषय की कमजोरी के कारण पहली कक्षा में बालकों को रोक देना ठीक नहीं क्योंकि उस विषय की कमजोरी वे धीरे-धीरे अगले वर्ष तक दूर कर सकते हैं।

(७) वार्षिक परीक्षा को भी तरक्की का आधार कुछ दशाओं में माना जा सकता है यदि बालक ने परीक्षा के दिनों में परिश्रम करके अपनी कमी को पूरा कर लिया है। इस सिद्धान्त को निभाने के लिए हमें अपनी वार्षिक परीक्षा में यथायोग्य परिवर्तन करना होगा क्योंकि उसमें कभी कभी भाग्य भी काम करता है। वे बालक की वास्तविक योग्यता की जाँच नहीं कर पाती। इस प्रकार विशेष परिस्थितियों में सालाना परीक्षा को ही कक्षोन्नति का आधार बनाया जा सकता है। यदि बालक साल-भर अस्वस्थ रहा है किन्तु सालाना परीक्षा तक उसने अपने कार्य को पूरा कर लिया है तो उसे तरक्की दी जा सकती है।

कक्षोन्नति दो प्रकार की होती है:—

(अ) वार्षिक उन्नति (Annual Promotion)

(ब) मत्रीय उन्नति (Term Promotion)

सत्रीय उन्नति एक कक्षा में ४ या ६ महीने बाद दी जा सकती है। यह तभी होता है जब बालक कुशाग्रबुद्धि, परिश्रमी, सामान्य बालकों से अधिक तीव्र गति से आगे बढ़ सकने वाला होता है। ऐसे बालकों को अपनी अतिरिक्त शक्ति का पूरा पूरा लाभ उठाने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। किन्तु सत्रीय तरक्की देने में कक्षाओं में अच्छे-अच्छे बालकों के अगली कक्षा में निकल जाने पर दो प्रकार की आपत्तियाँ उठ खड़ी हो सकती हैं।

(१) पहली कक्षा में सामान्य बुद्धि के बालक रह जाने से अध्यापक का उत्साह कम हो सकता है।

(२) जिन जिन विद्यार्थियों को कक्षोन्नति दी गई है वे अगली कक्षा में रुक सकते हैं। इस प्रकार की स्कूल की व्यवस्था में ही गड़बड़ पैदा हो सकती है।

अमरीका में कक्षोन्नति देने की एक अजीब व्यवस्था है। भिन्न-भिन्न ग्रेडों से बालकों के लिए अलग अलग विषयों में अलग अलग पाठ्यवस्तु निर्धारित की जाती है और बालकों को इस बात की स्वतन्त्रता दी जाती है कि वह अपनी शक्ति और रुचि के अनुसार पाठ्यवस्तु को पूर्ण कर और प्रत्येक विषय में अपनी शक्ति के अनुसार ग्रेड पावें। स्कूल छोड़ने पर उसके प्रमाण-पत्र में यह उल्लेख कर दिया जाता है कि उसने अमुक विषय में अमुक ग्रेड पा लिया है। ऐसी व्यवस्था में एक ही वर्ष में सब विषयों का पूरा कार्य अधिगम करने की उसे कोई आवश्यकता नहीं होती। किन्तु अधिक व्यय होने के कारण यह व्यवस्था हमारे देश में अपनाई नहीं जा सकती।

कक्षोन्नति और परीक्षाएँ

Q. [illegible] The examination system is a good servant and a bad master. Discuss the statement and give your suggestions for improvement if any.

(Agra B. T. 1953)

Or

What are the shortcoming of the existing school examinations as instrument for the measurement of student's progress? Describe the most modern techniques of (a) measuring and (b) recording progress.

(Agra B. T. 1955)

परीक्षा का अर्थ [illegible] शब्द का अर्थ है [illegible] वस्तु को [illegible] [illegible] किन्तु विद्यालय में परीक्षा से [illegible] [illegible] परीक्षा के उद्देश्य [illegible]

(१) [illegible]

(७) शिक्षकों, प्रधान अध्यापकों, छात्रों के अभिभावकों, शिक्षा अधिकारियों, आदि सबकी ऐसी अभिवृत्ति बन गई है कि वे अच्छे परीक्षाफल को ही सब कुछ समझते हैं। जिस शिक्षक के पढ़ाये हुये विषय मे परीक्षाफल अच्छा होता है उसकी प्रशंसा की जाती है; जिस शिक्षक का परीक्षाफल खराब होता है उसकी उन्नति रोक दी जाती है। उसी विद्यालय को प्रशंसा का पात्र माना जाता है जिसका परीक्षाफल उत्तम होता है। इस प्रकार आधुनिक परीक्षा-प्रणाली मे अनेक दोष होते हुए भी समाज और विद्यालय ने उसको जकड़ कर पकड़ लिया है। Government of India Report का कथन विशेष उल्लेखनीय है—

"All circumstances have conspired today to put an undue and unnatural emphasis on examinations, specially the external examinations and they have come to exercise a restricting influnce over the entire field of Indian education to such an extent as almost to nullify its real purpose."

परीक्षा-प्रणाली मे सुधार के सुझाव

मुदालियर कमीशन ने परीक्षा के सुधार मे निम्नलिखित सुझाव पेश किये—

रूप मे दिये जाते हैं जिनका उत्तर ... धात्मक प्रश्नों की बहुत उपयोगिता है ... द्वारों की व्यवस्था का परिचय कराती हैं किन्तु ये परीक्षायें जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है व्यापक नहीं होतीं। बालको की समस्त योग्यता की जांच वे कर सकती हैं। इसलिये वे निबन्धात्मक प्रश्नो के साथ-साथ नवीन प्रकार के ऐसे प्रश्न भी दिये जायें जिनके द्वारा बालको की अधिक से अधिक योग्यता की जांच हो सके।

(२) इन परीक्षाओ मे ऐसे प्रश्न रखे जाएँ जो विद्यार्थियो के अवबोधन की जांच करें। छात्रों ने कितना समझ लिया है, यह ज्ञात करने के लिए उन्हे नवीन प्रकार के प्रश्नपत्र दिये जा सकते हैं।

(३) परीक्षाओ मे विद्यार्थियो के कार्य की प्रगति जांचने के लिए कुछ सचयी आलेख पत्र भी तैयार किये जायें और कक्षोन्नति देते समय बालक के विषय में अन्य रचनाओं पर भी ध्यान दिया जाए। उन सूचनाओ पर ध्यान दिया जाये जो आलेख पत्र मे दी गई हैं।

(४) परीक्षा-प्रणाली मे आन्तरिक परीक्षाओ पर अधिक जोर दिया जाए, बाह्य परीक्षाओ पर कम। वे परीक्षाएँ बाह्य परीक्षाएँ कहलाती हैं जिनके प्रश्नपत्रों का निर्माण तथा उत्तर पुस्तको की जांच विद्यालय से बाहर किसी अभिकरण के नियत्रण मे बाहरी परीक्षको द्वारा की जाती है। जूनियर हाईस्कूल, हाई स्कूल तथा इण्टरमीडिएट की परीक्षाएँ बाह्य परीक्षाएँ हैं, जिनका सचालन जिला विद्यालय निरीक्षक तथा माध्यमिक परिषद करते हैं। आन्तरिक परीक्षाओ मे मासिक, त्रैमासिक, षाण्मासिक परीक्षाएँ सम्मिलित की जाती हैं।

(५) जिन स्तरो पर नवीन प्रकार की परीक्षायें उपयोगी सिद्ध होती हैं, उन स्तरो पर इसी प्रकार के प्रश्न पूछे जाएँ।

परीक्षक, परीक्षण और शिक्षण दोनो मे चोली-दामन के सम्बन्ध का उल्लेख हमने अभी किया है। परीक्षा-पद्धति मे सुधार करने के लिए केन्द्रिय शिक्षा मत्रणालय के माध्यमिक शिक्षा विभाग की ओर से स्थान स्थान पर परीक्षा एवं मूल्याकन सम्बन्धी जो गोष्ठियाँ (Seminars) होती हैं उनमे प्रत्येक विद्यालय को अपने अध्यापक भेज कर लाभ उठना चाहिए। इन गोष्ठियो का सार निम्नलिखित है—

प्रत्येक विषय का अध्यापन आरम्भ करने से पूर्व अध्यापक यह निश्चय कर ले कि किन-किन उद्देश्यो की प्राप्ति के लिए वह उस विषय का अध्यापन कर रहा है इसके बाद यह निश्चित करले कि छात्रों मे उसके शिक्षा के फलस्वरूप क्या क्या व्यवहार परिवर्तन होने चाहिए। जब कभी उसे छात्रों की परीक्षा लेनी हो तब अध्यापक यह देखे कि उन सभी उद्देश्यो की प्राप्ति हो सकी है या नहीं, बिना निश्चित उद्देश्यो को ध्यान में रखे मन चाहे ढग से प्रश्न-पत्र का बना डालना, और फिर मनमाने ढग से किसी को उत्तीर्ण और अनुत्तीर्ण कर डालना उचित नहीं मालूम पड़ता। परीक्षक का स्वेच्छाचार या भ्रष्टाचार आधुनिक परीक्षा प्रणाली के लिये उत्तरदायी है। अत: इस प्रकार की स्वेच्छाचारिता को छोड़ना होगा।

परीक्षा-प्रणाली मे ग्राजकल इतने दोष ग्रा गये है कि उसकी सर्वत्र तीव्र ग्रालोचना हो रही है। उसके निम्नलिखित कारण है :—

(१) ग्राजकल परीक्षा शिक्षा का उद्देश्य बन गई है। ग्रध्यापक पढ़ाते हैं बालकों को परीक्षा मे पास करने के लिये। विद्यार्थी पढ़ते हैं परीक्षा मे पास होने के लिए। इस प्रकार परीक्षा ही साध्य बन गई है। विद्यार्थियों एव ग्रध्यापकों की सारी शक्ति परीक्षा पास करने मे लगी रहती है। दोनों शिक्षा के वास्तविक उद्देश्यों को भूल जाते हैं ग्रौर परीक्षा मे पास हो जाना उनका मुख्य उद्देश्य हो जाता है।

(२) परीक्षा शब्द का ग्रर्थ उस क्रिया-कलाप से लिया जाता है जिसका प्रयोजन किसी परीक्षार्थी के ज्ञान एव कौशल की जाँच कर किसी पद पर ग्रधिकार के लिये उसकी उपयुक्तता या ग्रनुपयुक्तता का निर्धारण करना होता है। परीक्षा का मूल ग्रर्थ ग्रब बिल्कुल भुला दिया गया है। ग्राधुनिक परीक्षा छात्र के पुस्तकीय ज्ञान की जाँच करती है। उसकी शारीरिक, मानसिक ग्रथवा ग्रात्मिक विकास की जाँच नही करती। यदि परीक्षा को उपयोगी सिद्ध होना है तो इन सबकी जाँच करनी होगी। ग्राज का विद्यालय बालक के बौद्धिक विकास पर ही जोर नही देता। वरन् उसके सामाजिक एव सवेगात्मक विकास पर भी बल देता है। ग्राज का शिक्षक बालक का सर्वांगीण विकास चाहता है केवल बौद्धिक विकास ही नही। ऐसी ग्रवस्था मे यदि परीक्षा को शिक्षा का मापन बनाना है तो उसे बालक के सर्वांगीण विकास का परीक्षण करना होगा।

(३) ग्राधुनिक परीक्षाएँ बालक के ज्ञान की भी ग्रच्छी तरह से जाँच नही कर पाती। विद्यार्थी कुछ चुने हुए प्रश्नों को रट लेता है ग्रौर यदि वे प्रश्न प्रश्नपत्र मे ग्राये, तो वह ग्रच्छे ग्रक प्राप्त कर लेता है ग्रौर यदि न ग्राए तो वह परीक्षा मे ग्रसफल हो सकता है, भले ही उसने समस्त पाठ्यवस्तु को पूरी तरह से हृदयगम क्यों न कर लिया हो। परीक्षाएँ न तो इतनी व्यापक है कि समस्त पाठ्यवस्तु को प्रश्नपत्र मे स्थान दे सकें ग्रौर न इतनी विश्वस्त (reliable) ही होती है कि एक परीक्षार्थी को भिन्न-भिन्न परीक्षकों के द्वारा जाँचे जाने पर समान ग्रक मिलें। यह परीक्षाएँ उस बात का मापन नही करती जिसके मापन के लिए उनका निर्माण किया जाता है। परीक्षार्थी की किसी विषय सम्बन्धी योग्यता की वास्तविक जाँच तो तभी हो सकती है जब परीक्षा विश्वसनीय हो ग्रर्थात् भिन्न-भिन्न परीक्षकों द्वारा उसकी उत्तर प्रतति के जाँचे जाने पर उसे समान ग्रक मिलें। भाषा, इतिहास भूगोल ग्रर्थशास्त्र ग्रादि कुछ ऐसे विषय है जिनमें उत्तरों का मूल्याकन करते समय परीक्षक के व्यक्तिगत विचार ग्रौर भावनाएँ उत्तरों के साथ खिलवाड़ किया करती है। एक ही प्रश्न के उत्तर पर भिन्न-भिन्न परीक्षक भिन्न-भिन्न ग्रक दिया करते है। इस प्रकार ग्राधुनिक निबन्ध परीक्षायें विश्वसनीय नही है।

(४) ग्राधुनिक परीक्षा प्रणाली छात्रों को केवल इस बात की प्रेरणा देती है कि वे किसी विषय सम्बन्धी पाठ्यवस्तु को येन केन प्रकारेण परीक्षा मे उगल दें। परीक्षार्थियों में किसी प्रकार की तर्क शक्ति विचार शक्ति ग्रथवा कल्पना का विकास नहीं होता। परीक्षा पास करने के लिए रटा हुआ ज्ञान न तो जीवन में किसी काम ग्राता है ग्रौर न उससे बालक का बौद्धिक विकास होता है। विद्यार्थी परीक्षा पास करने के लिये मौलिक पुस्तकों का ग्रध्ययन नहीं करता। बल्कि वह guess papers कुंजियाँ ग्रथवा Notes रट रटा कर पास हो जाया करता है। वह किसी भी मौलिक पुस्तक का सम्यक् रूप से ग्रध्ययन नहीं करता है। फलतः उसकी ज्ञानवृद्धि नहीं होती।

(५) ग्राधुनिक परीक्षा प्रणाली का सबसे बड़ा दुष्परिणाम यह होता है कि परीक्षा विद्यालय के पाठ्यक्रम सहगामिनी क्रियाग्रों ग्रौर ग्रनुशासन पर बुरा प्रभाव डालती है। पाठ्यक्रम के केवल उतना ही ग्रंश पढ़ाया जाता है जो परीक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण होता है. शिक्षक भी केवल उतना ही पढ़ाते हैं जितना परीक्षा में ग्राने की ग्राशा की जाती है। इसके ग्रलावा विद्यालय की ग्रन्य क्रियाग्रों का बहिष्कार कर दिया जाता है, विद्यालय का सारा समय पुस्तकीय ज्ञान को रटने में लगाया जाता है। ग्रनुशासन पर भी परीक्षा का बुरा प्रभाव पड़ता है। विद्यार्थी ग्रनुचित साधनों का प्रयोग कर परीक्षा पास करने में लगे रहते हैं। उनसे विद्यालय का ग्रनुशासन नष्ट होता है।

(६) परीक्षा के डर [illegible] में विद्यार्थियों का सारा स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। परीक्षा के दिनों में लगातार पढ़ना या जागरण करना, [illegible] छोड़ दिया जाता है। परीक्षा के बाद [illegible] हो सकते हैं इस प्रकार इनका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है।

कक्षाओं को एक वर्ष में ही आसानी से पार कर सकता है। इस प्रकार की कक्षोन्नति देते समय यह भी ध्यान रखना चाहिये कि वह अगली कक्षा के कार्य को सीमित समय में पूरा कर सकता है अथवा नहीं।

(२) कक्षोन्नति का आधार बालक का सर्वांगीण विकास होना चाहिये। यदि कोई बालक पाठ्यवस्तु को तो छः महीने में अधिगम कर लेता है किन्तु उसका शारीरिक विकास अगली कक्षा के योग्य नहीं है अथवा उसने विद्यालय की अन्य क्रियाओं में भाग नहीं लिया है, ऐसे बालक को भी तरक्की देना ठीक नहीं है।

(३) कक्षोन्नति केवल मासिक, त्रैमासिक अथवा वार्षिक परीक्षाओं के आधार पर हो न हो। उसमें बालकों के दिन प्रतिदिन के कार्य के मूल्यांकन पर भी बल दिया जावे। ऐसा करने से बालकों को नियमपूर्वक प्रतिदिन कार्य करने के लिये प्रोत्साहन मिलता रहेगा। त्रैमासिक, षटमासिक और वार्षिक परीक्षाओं को तरक्की का एकमात्र आधार मान लेने पर सबसे बड़ी बुराई यह हो जाती है कि बालक केवल परीक्षा के समय ही कठिन परिश्रम करते हैं और बाकी समय में नहीं। बालक

समझते रहते कि

उन्नति की है। . . .

व्यवस्था की जा सकती है। इस प्रकार उसे वर्ष के बाद में कक्षोन्नति न मिले तो यह विद्यालय के लिये खेद का विषय है।

(४) कुछ लोग वार्षिक परीक्षा को ही कक्षोन्नति का पर्याप्त आधार मानते हैं, क्योंकि जिस बालक ने वर्ष के बहुत बड़े भाग में किसी प्रकार की प्रगति का प्रदर्शन नहीं किया है वह परिश्रम करके वार्षिक परीक्षा के समय में अपनी कमी को पूरा कर सकता है। परन्तु अन्य विद्वानों का यह भी कहना है कि परीक्षा में भाग्य बहुत कार्य करता है। आज की परीक्षा-प्रणाली पर्याप्त दोषपूर्ण है। आज की परीक्षाएँ बालकों की वास्तविक योग्यता की जाँच नहीं करतीं। अक्सर विद्यार्थी चुने हुए प्रश्नों को रटकर पास हो जाते हैं। दूसरे परीक्षा के दिनों में किया गया परिश्रम उन्हें परीक्षा में भले ही मदद कर दे, उससे उनके वास्तविक ज्ञान की वृद्धि नहीं होती। परीक्षा देने के बाद वे सीखी हुई पाठ्यवस्तु को बहुत ही शीघ्र भूल जाया करते हैं।

परीर हो जाता है। इस प्रकार

वार्षि विशेष हानियाँ होती हैं।

किन्तु र माना जा सकता है।

उदाहरणस्वरूप यदि कोई बालक वर्ष-भर अस्वस्थ रहा हो और परीक्षा के दिनों में अपनी कमी को पूरा करे तो उसे कक्षा में उन्नति देने में व्यवस्थापकों को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये।

ऊपर प्रतिभाशाली बालकों के लिये सक्रिय कक्षोन्नति देने की बात कही गई। इस प्रकार की कक्षोन्नति का मुख्य उद्देश्य यही है कि तेज और परिश्रमी बालक की जो औसत बालक की अपेक्षा अधिक गति से आगे बढ़ रहा है, प्रोत्साहन देकर उसे अपनी शक्ति का पूरा लाभ उठाने का अवसर दिया जा सकता है। किन्तु इस प्रकार की तरक्की देने से कक्षा से अच्छे-अच्छे विद्यार्थी तो निकल जाते हैं और शिक्षक उस कक्षा को पढ़ाता है। वह उसमें रुचि नहीं लेता। इस प्रकार की कक्षोन्नति से विद्यालय की व्यवस्था में बाधा पड़ती है। इस प्रकार की कक्षोन्नति के स्थान पर बालकों को विषयों की योग्यता के आधार पर तरक्की दी जा सकती है। अलग-अलग विषयों में अलग-अलग पाठ्यवस्तु भिन्न भिन्न कक्षाओं के लिए निश्चित कर दी जाती है और विद्यार्थी

को इस बात

चाहता है,

में अमुक क

कार्य करने

यह है कि

की व्यवस्था को अस्वीकार नहीं कर सकता।

कक्षोन्नति व वर्गीकरण इन दोनों क्रियाओं में घनिष्ट सम्बन्ध है। यदि कक्षा में प्रवेश देने के बाद बालकों का वर्गीकरण उचित ढंग से नहीं किया गया है अथवा उसे ठीक ढंग से नहीं पढ़ाया गया है तो वह कक्षा में असफल हो सकता है।

कक्षोन्नति और मासिक परीक्षाएँ

Q. 8. What is your idea of monthly test and their utility fo promotion ? How do you justify on the face of the modern cri examination ? (L. T
Or

class to another ? (Agra B. T

साधारणतया विद्यालयों में अपने विद्यार्थियों की प्रगति का मूल्यांकन करने निम्नलिखित परीक्षाएँ दी जाती हैं —

(१) मासिक परीक्षा (Monthly test)—यह परीक्षा प्रत्येक मास के अन्तिम ली जाती है। किन्हीं-किन्हीं विद्यालयों में इसका आयोजन नियमित ढंग से होता है और किन्हीं में अनियमित ढंग से, इसमें परीक्षक विषय अध्यापक ही होता है।

(२) त्रैमासिक परीक्षा—यह परीक्षा मासिक परीक्षाओं की भाँति ही चलती इसका आयोजन भी ठीक मासिक परीक्षा की तरह होता है।

(३) षाण्मासिक परीक्षा—यह परीक्षा अधिकतर सभी विद्यालयों में होती परीक्षक कक्षा के उस विषय के अध्यापक नहीं होते, जिस विषय की परीक्षा होती है। इसका जन लगभग वार्षिक परीक्षा की तरह होता है। इससे छात्रों को वार्षिक परीक्षा का पूर्व मिल जाता है और वे इसकी तैयारी से वार्षिक परीक्षा की तैयारी आरम्भ कर देते हैं।

(४) वार्षिक परीक्षा—यह परीक्षा प्रत्येक विद्यालय में होती है और इसका होता है जो षाण्मासिक परीक्षा का।

इन परीक्षाओं के अतिरिक्त कमजोर विद्यार्थियों की प्रगति का मापन करने साप्ताहिक रिपोर्ट तैयार की जाती है जिसमें यह अंकित किया जाता है कि विद्यार्थी प्रति किस प्रकार प्रगति कर रहा है। कुछ प्रगतिशील विद्यालयों में बालकों की प्रगति का करने के लिये नवीन प्रकार की परीक्षाएँ ली जाती हैं, जिससे इनके निष्पादन का थोड़े से समय में ही बड़ी आसानी से किया जा सकता है। ये परीक्षाएँ विद्यार्थियों को एक से दूसरी कक्षा में प्रगति देने के लिये विशेष सहायक सिद्ध होती हैं। इससे यह अच्छी तरह लग सकता है कि छात्र में पाठ्यवस्तु के अध्ययन और अनुच्छेद कार्य के सम्पादन की कार्य-क्षमता है या नहीं। इनसे इस बात की भी जाँच हो जाती है कि छात्र सिखाई जाने वस्तु को ग्रहण करने में मन से प्रयत्नशील हैं या नहीं। ये परीक्षाएँ इस बात की भी सूचना हैं कि विभिन्न ज्ञान-क्षेत्रों में बालकों की प्रगति कैसी है। इस प्रकार की परीक्षाएँ बालकों कक्षोन्नति में सहायता करती हैं, जो छात्र इन परीक्षाओं में स्पष्टतया उत्तीर्ण हो जाते हैं तो कक्षोन्नति कर ही दिया जाता है, किन्तु जो छात्र एक या अनेक विषयों में अनुत्तीर्ण हो हैं उनके मामलों पर विचार करने के लिये निम्नलिखित साधारण सुझाव पेश किये जाते हैं

(१) जो छात्र वार्षिक परीक्षा में अनुत्तीर्ण हों, परन्तु वर्ष में होने वाली परीक्षाओं में प्राप्तांकों के आधार पर उत्तीर्ण हों, उसे कक्षा में उन्नति दे देनी चाहिये। (२) विषयों के बारे में यह निर्णय कर लिया जाए कि दुबारा परीक्षा लेकर छात्रों को उन्नत किया जाएगा। ऐसे छात्रों को दो विषय के लिये विशेष प्रबन्ध किया जा सकता है, और अभिभावकों से अतिरिक्त शुल्क भी लिया जा सकता है। (३) अभिभावकों के कहने पर उन को कक्षा में उन्नति न दी जाये। उन्हें प्रत्येक परीक्षा का परिणाम परीक्षापत्र तैयार हो जाने तुरन्त भेज दिया जाए, जिससे वे अपने बालकों की प्रगति के विषय में अनभिज्ञ न रहें। में अध्यापकों एवं प्रधान अध्यापकों को निष्पक्ष रहना चाहिये।

बालकों के तरक्की देने के निम्नलिखित सिद्धान्त हैं :—

(१) उसकी तरक्की ...

यह कि इन रिपोर्टस को तैयार करते समय इस कार्य को भार न समझें। यह कार्य विद्यालय और विद्यार्थी दोनों के लिये लाभदायक सिद्ध हो सकता है। ये रिपोर्ट बालको को दूसरी कक्षा में तरक्की मे भी मदद कर सकती है।

प्रगति का विवरण पत्र (Progress Report)—यह ऐसा आलेख पत्र है जो स्थायी रूप से विद्यालय मे रखा जा सक[illegible]
है। 'Progress report' मे प्रत्ये[illegible]
लेखा रहता है। शिक्षाफलो के प्रा[illegible]
सम्बन्धी सूचना भी अंकित की जा[illegible]
म अन्य सूचनाएँ भी दर्ज कर दी ज[illegible]
छात्रावास के अध्यक्ष की सम्म[illegible]
Progress report बालक के विद्यालय जीवन का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करती है। इस रिपोर्ट की कई उपयोगितायें है। यह बालक को तरक्की देने मे मदद करती है। जब विद्यार्थी विद्यालय छोड़ता है तब प्रधानाध्यापक को विद्यार्थी के विषय मे अपनी सम्मति देने में सहायता देती है। विद्यार्थी को भविष्य मे नौकरी देने वाले व्यक्ति अथवा संस्था को उसके चरित्र और योग्यता के विषय मे अन्य सूचनायें देती है।

Health Record

किसी बालक के स्वास्थ्य के विषय मे पूरी सूचनायें देने के लिए निम्न प्रकार का Record Card प्रयोग मे आता है :—

विद्यार्थी का नाम...............

विद्यार्थी के विषय मे सामान्य सूचनाएँ	19...	19...	19...	19...	19...
आयु					
कक्षा					
विद्यालय का नाम					
उपस्थिति					
ऊँचाई					
सीना					
भार					
सफाई					
टीका लगने की तिथि					
आँखो की दशा					
कानो की दशा					
दिल					
नाड़ी					
रक्त दबाव					
मूत्र					
पेट					
यकृत					
आँतें					
अन्य बीमारियाँ					
डाक्टर के हस्ताक्षर					

इस प्रकार की स्वास्थ्य सम्बन्धी रिपोर्ट मे प्रत्येक बालक के विषय मे उपयोगी जानकारी प्राप्त हो सकती है। तरक्की देते समय इस स्वास्थ्य सम्बन्धी रिपोर्ट को भी देखा जा सकता है।

कक्षोन्नति और आलेखपत्र

Q. 9. In what form should records of progress of individual pu[illegible] maintained ? What weight should be given to these records in determinin[illegible] promotions ? *Or* (*Agra BT.*

How would you maintain a comperehensive record of students p[illegible] in the school ? What use should you make of its in deciding the promot[illegible] individual student ? *Or* (*Agra BT.*

Examine the methods adopted by progressive schools *to* [illegible] progress of students in various subjects. What help can be got *from* [illegible] deciding promotion ? *Or* (*Agra BT.*

प्रत्येक विद्यार्थी विद्यालय में प्रवेश पाने के बाद कितनी प्रगति कर सका है यह के लिये और उसको शैक्षणिक पथ प्रदर्शन करने के लिये हमें उसके विषय में व्यापक पत्र रखने की आवश्यकता पड़ती है। जिन आलेख पत्रों में बालक की प्रगति अंकित की उनमें से निम्नलिखित आलेखपत्र मुख्य हैं।

(१) साप्ताहिक रिपोर्ट (Weekly report).
(२) Progress report.
(३) Health record.
(४) संचयी आलेख पत्र (Cumulative records).

Weekly report—साप्ताहिक रिपोर्ट की एक प्रतिलिपि नीचे दी जाती है :—

नाम ....कक्षा..................

विषय	लिखित कार्य के लिए अंक	मौखिक कार्य के लिए अंक	अध्यापक के [illegible]
अंग्रेजी			
गणित			
विज्ञान			
इतिहास			
भूगोल			
हिन्दी			

इस प्रकार की साप्ताहिक रिपोर्ट से प्रधान अध्यापक प्रत्येक विद्यार्थी के विषय [illegible] जान सकता है कि यह क्या प्रयत्न कर रहा है। और अध्यापक महोदय भी बालक की [illegible] लिये किस प्रकार प्रयत्नशील है। इस प्रकार की साप्ताहिक रिपोर्ट कमजोर विद्यार्थी को [illegible] है। कमजोर विद्यार्थी वह माना जाता है जिसको पढ़ाने वाले अध्यापक कमजोर [illegible] जिसके अंक वार्षिक परीक्षा में न्यूनतम अंको से कम रह गये हों। इन बच्चों को प्रति [illegible] साप्ताहिक रिपोर्ट की प्रतिलिपि दे दी जाती है जिस पर उसके अध्यापक की रिपोर्ट [illegible] है। इस रिपोर्टस का प्रधान अध्यापक द्वारा प्रत्येक सोमवार को निरीक्षण होता है। [illegible] हिक रिपोर्टस [illegible]

अध्याय ७

विद्यालय और अनुशासन

अनुशासन का अर्थ

Q. 1 Distinguish between the modern and traditional concept of school discipline. What place has the principle of free discipline in our schools ? *(Agra B.T.,1961)*

Q. 2. 'Discipline is a culture' Explain this and indicate how best you may have it in your school *(Agra B.T., 1953)*

Q 3. What is your idea on discipline in schools ? *(L.T, 1954)*

अनशासन शब्द आजकल एक नवीन अर्थ मे प्रयोग होने लगा है। वैसे अनुशासन [illegible] प्रयोग आता
का [illegible] ल के नियम का
है। ए [illegible] ता है, बालक
पालन [illegible] आत्मालोचन के
शरीर [illegible] कहलाती है।
परिए [illegible] Discipline, Disciples से बना है। जिस प्रकार शिष्य नियमों का पालन
अंग्रेजी का शब्द
करता है, गुरु के उपदेशो को नम्रतापूर्वक मानकर जीवन बिताता है उसी प्रकार एक अनुशासित
व्यक्ति शिक्षा अथवा आत्मालोचन के फलस्वरूप व्यवहार मे परिवर्तन उत्पन्न करके अपना जीवन
व्यतीत करता है। इस प्रकार अनुशासन संस्कृत के विनय शब्द का पर्यायवाची माना जा
सकता है।

अनुशासन का दूसरा अर्थ व्यवस्था से सम्बन्ध रखता है। यदि स्कूल में बालक स्कूल
के नियमो का पालन करता हुआ विद्यालय के नियन्त्रण मे शान्तिपूर्वक विद्यार्थी जीवन बिताता है
तो हम कहते हैं कि वह अनुशासित है। इस अनुशासन का अर्थ है व्यवस्था। जब कक्षा में अध्यापक
अनुशासन स्थापित करता है तो वह व्यवस्था ही स्थापित करता है। व्यवस्था का जन्म व्यवस्थापक
के रौब, दड के भय, और पुरस्कार के लोभ के कारण होता है लेकिन अनुशासन स्थापित करने
वाले घटक और ही होते हैं जहाँ व्यवस्था रहती है वहाँ अनुशासन निश्चयपूर्वक नहीं रहता।
परन्तु जहाँ अनुशासन रहता है वहाँ व्यवस्था अवश्य रहती है क्योंकि अनुशासित व्यक्ति आत्म-
नियन्त्रित होने के कारण अपने व्यवहारों को जानबूझकर या स्वभाववश नियन्त्रण मे रखता है।
व्यवस्थापक के रौब, दण्ड के भय और पुरस्कार के लोभ की अनुपस्थिति मे व्यवस्था भग हो जाती
है और व्यक्ति अनुशासनहीन हो जाता है। अतः वास्तविक अनुशासन और व्यवस्था मे विशेष
अन्तर है।

वास्तविक अनुशासन केवल विद्यालय से ही नहीं वरन् उसका सम्बन्ध व्यक्ति के
सम्पूर्ण जीवन से होता है। उसका उद्देश्य विद्यार्थियो को थोड़े समय के लिये नियन्त्रण मे रखना ही
नहीं होता वरन् अनुशासन स्थापित करने वाले का उद्देश्य विद्यार्थियों मे उन आदर्शों को डाल
देना होता है जो उनके सम्पूर्ण जीवन से सम्बन्ध रखते हैं और जो उनके कार्यों को सफलता

संचयी आलेख पत्र (Cumulative records)—प्रगतिशील विद्यालयों में संचयी आलेख पत्रों को तैयार करने पर जोर दिया जाने लगा है। इन आलेख पत्रों में निम्नांकित बातें सूचनायें अंकित की जाती है।

(१) विद्यार्थी के स्वास्थ्य सम्बन्धी सूचनायें, (२) उसके शैक्षिक सम्बन्ध की विशेषतायें, (३) पारिवारिक पृष्ठभूमि बालक की योग्यतायें, अभिरुचियाँ की अभिवृत्तियाँ।

इस आलेख पत्र में अंकित विद्यार्थी की शिक्षा सम्बन्धी प्रगति का विवरण इनको उसको देने में मदद करता है।

विशेष अध्ययन के लिए देखिए शैक्षणिक मापन भाग २ म अध्याय ८।

Q. 10. What rules would you like to prepare for giving promotion

(a) Middle classes

(b) Higher secondary classes ?

कक्षोन्नति के सामान्य सिद्धान्त

(१) निम्न माध्यमिक कक्षाओं ६ से ८ तक उन्नति देने के नियम कुछ कुछ ढीले चाहिए ताकि बालकों को परिश्रम करने का अवसर मिल सके।

(२) उन्नति देते समय अर्द्ध मासिक और मासिक परीक्षाओं के अंकों का कुछ अंश वार्षिक परीक्षा के अंकों में जोड़ा जाना चाहिए ताकि बालक की वार्षिक प्रगति का पता लगाया जा सके।

(४) किसी छात्र को कक्षा में उत्तीर्ण घोषित करने के लिए प्रत्येक विषय में ३३ अंकों का आना अनिवार्य है।

(५) यदि किसी एक विषय में ३३% अंक से ५ अंक कम मिले हों तो उसे P with grace घोषित किया जाय।

(६) यदि बालक एक या एक से अधिक विषयों में ३३% नहीं प्राप्त कर सका है उसे कक्षोन्नति (Promoted) घोषित किया जा सकता है। यदि वह कुल मिलाकर २० से फेल है। वे २० अंक एक विषय में अथवा उन सभी विषयों में जिनमें वह फेल है बांटे सकते हैं।

(७) उच्चतर माध्यमिक कक्षा के छात्र को कक्षोन्नति (Promoted) घोषित करने के लिए २० अंकों के स्थान पर १० अंकों का ही लाभ दिया जाय।

(८) उच्च अथवा उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं में यदि कोई पास होने वाले विषयों में कुल मिलाकर बालक ४५% से अधिक अंक प्राप्त करता है तो उसे किसी एक विषय में किसे अंकों से फेल होने पर कम्पार्टमेन्टल दिया जा सकता है। लेकिन यदि उसे पास होने वाले विषयों में कुल मिलाकर ४५% से कम अंक प्राप्त हुए हैं तो एक अथवा दो विषयों में २५% का अधिक अंक पाने पर कम्पार्टमेन्ट घोषित किया जा सकता है।

(८) मासिक, अर्द्धवार्षिक और वार्षिक परीक्षाओं में अंकों का वितरण किस प्रकार का हो यह भी विचारणीय विषय है। परीक्षाफल घोषित करते समय मासिक परीक्षाओं को महत्व देने के लिए निम्नलिखित प्रतिशत प्रयोग में आते हैं :—

वार्षिक परीक्षा ८०%
अर्द्धवार्षिक १०%
अगस्त, सितम्बर ५%
फरवरी ५%

अध्याय ७

विद्यालय और अनुशासन

अनुशासन का अर्थ

Q. 1 Distinguish between the modern and traditional concept of school discipline. What place has the principle of free discipline in our schools? (*Agra B.T.,1961*)

Q. 2. 'Discipline is a culture' Explain this and indicate how best you may have it in your school. (*Agra B.T, 1953*)

Q 3. What is your idea on discipline in schools? (*L.T, 1954*)

अनुशासन शब्द आजकल एक नवीन अर्थ में प्रयोग होने लगा है। वैसे अनुशासन का अर्थ है, उपदेश। परन्तु अंग्रेजी का शब्द 'Discipline' दो अर्थों मे प्रयोग आता है। एक प्रयोग मे हम उसे अर्थ देते हैं। दूसरे प्रयोग मे हम उसके अर्थ को स्कूल के नियम का पालन करने तक सीमित करते हैं। पहले अर्थ मे जो अधिक विस्तृत माना जा सकता है, बालक शरीर, मस्तिष्क और आत्मा की ट्रेनिंग कहा जा सकता है। शिक्षा अथवा आत्मालोचन के परिणामस्वरूप व्यवहार मे स्वय उत्पन्न हो जाने वाली नियमानुत्यवर्तिता अनुशासन कहलाती है। अंग्रेजी का शब्द Discipline, Disciples से बना है। जिस प्रकार शिष्य नियमो का पालन करता है, गुरु के उपदेशो को नम्रतापूर्वक मानकर जीवन बिताता है उसी प्रकार एक अनुशासित व्यक्ति शिक्षा अथवा आत्मालोचन के फलस्वरूप व्यवहार मे परिवर्तन उत्पन्न करके अपना जीवन व्यतीत करता है। इस प्रकार अनुशासन सस्कृत के विनय शब्द का पर्यायवाची माना जा सकता है।

अनुशासन का दूसरा अर्थ व्यवस्था से सम्बन्ध रखता है। यदि स्कूल में बालक स्कूल के नियमो का पालन करता हुआ विद्यालय के नियन्त्रण में शान्तिपूर्वक विद्यार्थी जीवन बिताता है तो हम कहते हैं कि वह अनुशासित है। इस अनुशासन का अर्थ है व्यवस्था। जब कक्षा में अध्यापक अनुशासन स्थापित करता है तो वह व्यवस्था ही स्थापित करता है। व्यवस्था का जन्म व्यवस्थापक के रोब, दड के भय, और पुरस्कार के लोभ के कारण होता है लेकिन अनुशासन स्थापित करने वाले घटक और ही होते हैं
परन्तु जहाँ अनुशासन रहता है
नियन्त्रित होने के कारण अपने
व्यवस्थापक के रोब, दण्ड के भय और पुरस्कार के
है और व्यक्ति अनुशासनहीन हो जाता है। अतः वास्तविक अनुशासन और व्यवस्था में विशेष अन्तर है।

वास्तविक अनुशासन केवल विद्यालय से ही नही वरन् उसका सम्बन्ध व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन से होता है। उसका उद्देश्य विद्यार्थियो को थोड़े समय के लिये नियन्त्रण में रखना ही नहीं होता वरन् अनुशासन स्थापित करने वाले का उद्देश्य विद्यार्थियो में उन आदर्शों को डाल देना होता है जो उसके सम्पूर्ण जीवन से सम्बन्ध रखते हैं और जो उसके कार्यों को सफलता

प्रदान कर सकती हैं। आत्मसचयक आत्मनियन्त्रण और आत्मालोचन ये तीन अनुशासन के महत्वपूर्ण अग हैं। जिस व्यक्ति का जीवन आत्मनियन्त्रित है, जो व्यक्ति अपनी वर्तमान की आवश्यकताओं व लालसाओं को न देख कर भविष्य का अधिक ध्यान रखता है, जिस व्यक्ति ने वर्तमान के उद्वेगों का शान्त करना अपनी इच्छाओं पर नियन्त्रण करना सीख लिया है वही व्यक्ति अनुशासित माना जा सकता है। 'Discipline involves the restraint of the impulse the moment, the regulation of desire, the postponment of satisfaction, the sacrifice of the immediate comfort and pleasures, the choice of the harder way when the easier one is open."

अनुशासन का अर्थ सक्षेप मे शिक्षा और आत्मालोचन के फलस्वरूप व्यवहार में स्वय उत्पन्न हो जाने वाली नियमानुवर्तिता से लिया गया है। किन्तु अनुशासन की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करना पड़ेगा, क्योंकि व्यक्ति को समाज के नियमो का पालन करना है। जनतन्त्रिय व्यवस्था मे प्रत्येक व्यक्ति को जनतन्त्र के नियमो के अनुसार चलना पड़ता है। जनतन्त्र में दमन, दण्ड आदि नकारात्मक साधनों के लिये कोई स्थान नही होता, इस शासन व्यवस्था मे आत्मसचय, आत्म-नियन्त्रण द्वारा स्वय बुरी-बुरी प्रवृत्तियो पर अधिकार करना और धीरे-धीरे उन गुणो को विकसित करना जो व्यक्ति और समाज दोनो को हितकर हो। वास्तविक अनुशासन का उद्देश्य है आत्मा का शिक्षण और इस प्रकार के प्रशिक्षण से ही व्यक्ति को महान शक्ति मिल सकती है। नीचे हम तीन महान् व्यक्तियो के अनुशासन सम्बन्धी विचारो को उद्धृत करेंगे।

(1) T.P. Nunn का कहना है कि अनुशासन का अभिप्राय अपनी प्रवृतियों को रोक कर उन्हे इस प्रकार नियन्त्रित करना है कि व्यक्ति विफलता और अपव्ययता से बच सके। "Discipline consists in the submission of one's impulses and powers."

(2) Dewey का कहना है कि अनुशासन का अर्थ है आवेगों और उद्योगो का नियन्त्रण और शक्तियो का ऐसा प्रयोग जिससे समाज और अपना कल्याण हो।

(3) Pestalozzi का कहना है कि विनय के अनुशासन प्रेम पर आधारित रहने चाहिये।

अनुशासन के सम्बन्ध में प्राचीन विचारधारा

कुछ वर्ष पहले अनुशासन का अर्थ विद्यार्थियो को दण्ड के भय से काबू में रखने से लिया जाता था। यदि कोई विद्यार्थी किसी प्रकार से आज्ञा का उल्लघन करता तो उसको बुरी तरह से दण्डित किया जाता था। King Solaman का कहना था "Spare the rod and spoil the child" यदि बच्चों को सुधारना चाहते हैं तो डण्डे के बल पर ही सुधार सकते हो। इस विचारधारा के मानने वाले अध्यापक और प्रधान अध्यापक अब भी देश में पाये जाते हैं। १८३५ में विलियम एडम ने बगाल और बिहार की शिक्षा व्यवस्था की आलोचना करते हुए जो बात लिखी थी, वह आज भी बहुत से विद्यालयो मे दिखाई देती है। बच्चो को मुर्गा बना दिया जाना, उनको किसी पेड़ की शाखा से लटका देना, उन्हें बिल्ली के बच्चे अथवा पिल्ले के साथ बोरे मे बन्द करके जमीन पर लुढ़काना, Black board पर नाक रगड़वाना, आदि आदि कुछ ऐसी बातें हैं जिनका उल्लेख William Adam ने ७५० वर्ष पहले किया था, आज भी दिखाई देती हैं। इस विचारधारा पर उस समय के राजनैतिक और ऐथिकल (Ethical) विचारो का प्रभाव था। यह माना जा सकता था कि प्रत्येक बच्चा स्वभाव से पापी है और यदि उसमें कोई सुधार करना है तो दमनात्मक डण्डे के बल पर आ सकता है। वे दिन थे निरकुश शासकों के और विद्यालय के शिक्षक भी स्वेच्छाचारी और निरकुश हुआ करते थे। प्रधान अध्यापक अपने विद्यालय का मोनार्क माना जाता था और वह देश के राजा के सामने सलाम भुकाना अपने अपमान की वस्तु समझता था।

अनुशासन सम्बन्धी इस विचारधारा की प्लेटो, पैस्टालाजी, रूसो तथा आधुनिक युग मे डी. वी ने बड़ु आलोचना की है। फलस्वरूप अनुशासन सम्बन्धी विचारधारा बदल गई है। आज के युग में स्वरूप शिक्षा, विद्यालय व्यवस्था, पाठ्यक्रम, शिक्षाप्रणाली आदि सभी के सम्बन्ध में नवीन विचार प्रकट किए जा रहे हैं। और पुराने आदर्शों, परम्परा और रूढ़ियों को उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाने लगा है। अब हम डण्डे के जोर से कायम किए गये अनुशासन को वास्तविक अनुशासन नहीं मानते क्योंकि वह क्षणिक होता है। उससे बालकों में वे गुण पैदा

नहीं होते जो उन्हे जीवन मे सफल बना सकते हैं। यह अनुशासन व्यक्ति का विकास नही करता वरन् विभाजन करता है और विकारात्मक होने के कारण हानिकारक है। इस प्रकार के अनुशासन से स्वतन्त्र विकास रुक जाया करता है। वह अनुशासन अन्दर से उत्पन्न नही होता, ऊपर से थोपा जाता है। वह मस्तिष्क और आत्मा को शिक्षित नही करता बल्कि उनके विकास को रोकता है।

अनुशासन के सम्बन्ध मे आधुनिक विचारधारा

आज के जनतन्त्रिय युग मे व्यवस्थापक या अनुशासन स्थापित करने वाले अध्यापक या प्रधान अध्यापक सकारात्मक साधनो पर जोर देते है। जैसे—स्वशासन, सगठित खेल विद्यालय के स्तर, परम्परा और नियमावली, नैतिक शिक्षा, बाह्य वातावरण का नियन्त्रण, पुरस्कार

और आत्मनियन्त्रण सीखता है और

आधुनिक विचारधारा सभ्य समाज

देकर चलती है। Bagley का कहना है कि आधुनिक विचारधारा मे ऐसे तरीको पर जोर दिया जा सकता है जिन तरीको से व्यक्ति अपने को शासित समझे। इसलिये नही कि उस पर कोई बाहरी दबाव है, वरन् इसलिये कि सामाजिक समूह की आवश्यकतायें और भलाई एव शासन आत्मनियन्त्रण और आत्मसयम मे

and practice of the ideals of democratic
d an inner control and an earnest

शब्द का प्रयोग इन दो अर्थों मे होता है—एक तो
व्याख्या की मान्यता मे है दूसरा अर्थ व्यापक है

जिसमे हम बालक की आत्मा, चरित्र, और मनोवृत्ति की प्रशिक्षा को सम्मिलित करते हैं। इस दूसरे प्रकार के अनुशासन से बालक मे धीरे-धीरे वे गुण, आदत और चारित्रिक विशेषतायें उत्पन्न होती जाती हैं जिनके द्वारा वह समाज स्वीकृत आदर्शों का परिचय देता है। यही सच्चा अनुशासन है और जनतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था मे इसी प्रकार से अनुशासन की जरूरत भी है।

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से युग-युग का अनुशासन भिन्न-भिन्न रहा है। वैदिककाल मे अनशासन की कोई समस्या न होने के कारण उसकी ओर किसी का ध्यान नही गया। मध्यकाल मे

अनियन्त्रित उच्छृखलता। वास्तविक स्वतन्त्रता अपने ऊपर अनुशासन करने मे है। स्वतन्त्रता साधन है, उद्देश्य नहीं है। यदि स्वतन्त्रता का अनुभव करके मानव उससे लाभ न उठाकर अपने को पतित करता है अथवा समाज का अहित करता है तो वह उसकी स्वतन्त्रता नही है, उसका विकृत रूप है।

प्राय की !
मीखे। स
means t
life in the light of understanding

ves the subordination of the near to the remote, of the present to the future, of the lesser to the greater good. It involves the restraint of the impulses of the moment, the regulation of desire, the postponement of satisfaction, the sacrifice of immediate comforts and pleasures, the choice of the harder way when the easier one is open".

यदि अनुशासन का वास्तविक स्वरूप शिक्षा एवं पालनपोषण के परिणामस्वरूप व्यवहार में उत्पन्न होने वाली नियमानुवर्तिता से लिया जाता है, तो हमें अनुशासन स्थापित करने के लिये प्रयत्न करना पड़ेगा। यह प्रयत्न निम्नलिखित साधारण सिद्धांतों को ध्यान में रखकर किया जा सकता है—

(१) अनुशासन का आधार प्रेम हो जैसे कि Pestalozzi ने कहा था। भय न हो, बालक और शिक्षक के सम्बन्ध प्रेम पर निर्भर हों। बालक अध्यापक की आज्ञा का पालन भय के कारण न करें, प्रेम अनुशासन के कारण करें। आत्म-अनुशासन की जड़ प्रेम है।

(२) बालक अनुशासन स्थापित करने की जिम्मेदारी महसूस करें और अपने ऊपर शासन करना सीखें, ऐसा तभी हो सकता है जब उन्हें स्वशासन की सुविधा दी जावे।

(३) अनुशासन स्थापित करने की जिम्मेदारी केवल विद्यालय की ही न हो। इस कार्य में बालकों के माता पिता और अभिभावकों का सहयोग भी प्राप्त किया जाय।

(४) Dewey के विचारों के अनुसार अनुशासन को विद्यालय के सामूहिक जीवन की आवश्यकता समझा जावे और यदि स्कूल के सामूहिक जीवन को बनाये रखना है तो अनुशासन आवश्यक है, अनुशासन को भंग करना अध्यापक अथवा विद्यालय की व्यवस्था के प्रति विद्रोह न समझा जावे, वरन् सामूहिक जीवन के ऊपर आघात माना जावे। यदि किसी प्रकार बालकों में विद्यालय के सामूहिक जीवन से प्रेम उत्पन्न कर दिया जावे तो वे आत्म-अनुशासन सीखेंगे और अनुशासन को जीवन में महत्व देंगे।

(५) अनुशासन कायम रखने के लिये विद्यालय में शिक्षण एवं पाठन कार्य के लिये पर्याप्त सुविधाएं हों। पुस्तकालय, वाचनालय, खेल-कूद के मैदान आदि की समुचित व्यवस्था हो जिससे अवकाश के समय बालक अपने को व्यस्त रक्खें।

(६) अनुशासन का तात्पर्य केवल विद्यालय के नियमों का पालन करना ही नहीं समाज के नियमों का पालन करना भी है। इस प्रकार की धारणा बालकों में पैदा की जाय, वे सामाजिक आदर्शों, आदतों एवं रुचियों के प्रति प्रेम पैदा करना सीखें।

उपर्युक्त इन सामान्य सिद्धांतों को ध्यान में रखकर हम विद्यालय में अनुशासन स्थापित कर सकते हैं।

अनुशासन स्थापित करने के यथासम्भव साधनों का उल्लेख अगले अनुच्छेद में किया जायेगा।

विद्यालयों में अनुशासनहीनता का साधारण रूप

Q. 4 What are the common types of indiscipline in the class room? How would you as a teacher, deal with each of them? *(Agra B.T. 1959)*

अनुशासनहीनता दो प्रकार की होती है, सामूहिक और व्यक्तिगत। कक्षा में या कक्षा के बाहर इसके यही दो रूप मिलते हैं। लेकिन सामूहिक अनुशासनहीनता सबसे बुरी होती है। अमरीका में अनुशासनहीनता की खोज के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अनुशासनहीनता के १० % cases व्यक्तिगत हुआ करते हैं और ७० % cases ऐसे होते हैं जिनमें समूह और समूह मनोविज्ञान कार्य करता है।

सामूहिक अनुशासनहीनता

सामूहिक अनुशासनहीनता कभी-कभी राजनैतिक समस्यायें पैदा कर देती हैं, जब कभी किसी विश्वविद्यालय को बन्द होते हुए सुनते हैं क्योंकि उसके विद्यार्थियों ने हड़ताल की है उन्होंने अपने अध्यापक के प्रति दुर्व्यवहार किया है। तो इसके मूल में किसी न किसी

राजनैतिक दल का सहयोग दृष्टिगोचर होने लगता है। सामूहिक अनुशासनहीनता के कई कारण हो सकते हैं जिनमे से कुछ नीचे दिये जाते हैं और कुछ का उल्लेख आगे किया जायेगा।

(१) गलत पाठन विधियाँ अथवा अध्यापन प्रणालियाँ (२) अनुपयुक्त एव अन्यायपूर्ण दड विधान (३) समूह को अपने लक्ष्यो का ज्ञान न होना (४) विद्यालय मे आकस्मिक परिवर्तनो के कारण समूह मे असन्तोष जैसे प्रधान अध्यापक अथवा किसी प्रसिद्ध अध्यापक का तबादला (५) समूह मे उपयुक्त नेता की कमी।

कभी-कभी ऐसा मालूम पडता है कि विद्यार्थियो का एक समूह विद्यालय एव प्रधान अध्यापक की प्रत्येक बात का विरोध करता है। किन्तु वास्तव मे विद्यालय मे एक प्रधान अध्यापक के प्रति इस विद्वेष भावना की जड बहुत पहले से जम जाया करती है। यदि उसमे इस विद्वेष को कम करना है तो हमे उनकी गलतफहमियो को कम करना है। १७ साल से कम आयु वाले विद्यार्थियो को इस प्रकार के अनुशासनहीनता के कामो मे भाग लेने से रोकने के लिए एक प्रस्ताव पेश किया है, और वह यह है कि ऐसे अल्पवयस्क बच्चो को जो व्यक्ति या राजनैतिक दल, चुनाव कार्य या राजनैतिक प्रचारकार्य के लिये प्रयोग मे लाये उचित दड दिया जाये।

व्यक्तिगत अनुशासनहीनता

हमारे देश मे सामूहिक अनुशासनहीनता बहुत कम मिलती है। व्यक्तिगत अनुशासन हीनता के कुछ प्रकार नीचे दिये जाते हैं—

(१) विद्यालय से भाग जाना, अनुपस्थित होना, देर मे आना, (२) झूठ बोलना, धोखा देना या चोरी करना, (३) बात-बात मे विरुद्ध जाना और विद्यालय के कार्य पर ध्यान न देना (४) धृष्टता, घमण्ड तथा स्वार्थ और लड़ाई झगडे (५) आवश्यकता से अधिक लज्जित अथवा तुनकमिजाजी होना (६) विद्यालय की दीवारो को गन्दा करना और फर्नीचर को तोडना (७) लडकियो के साथ दुर्व्यवहार (८) परीक्षा मे नकल करना।

ऊपर दिये गये दुर्व्यवहार या दुराचरणो से बालको को बचाने का प्रयत्न अध्यापक का कर्त्तव्य है। इस प्रकार के दुराचरण बालक उस समय नही कर सकता जब वह अपने उद्वेगो एव सवेगो पर अधिकार प्राप्त कर लेता है। विद्यालय के वातावरण को अनुकूल बनाने से भी बालकों की अनुशासनहीनता की प्रवृत्ति को भी रोका जा सकता है और समाज विरोधी आचरणो को [illegible] नुशासन भग करने का [illegible] साथ सहानुभूतिपूर्ण [illegible] ने मार्ग दिखलाने की [illegible] को कोई कार्य भार [illegible] मे बहुत से दुराचरण [illegible] उनके घर की दुर्व्यवस्था के कारण हो जाते है। स्कूल से भाग जाना, अक्सर देर से आना या अनुपस्थित रहना, घर मे माता-पिता के कलह अथवा उनमे से किसी एक के अनुपस्थिति, बीमार आदि के कारण पैदा हो जाते हैं। ऐसी परिस्थिति मे अध्यापक को विद्यार्थी के घर जाकर उसकी अवस्था का अध्ययन करना चाहिये। बहुत सी अनुशासनहीनता की क्रियायें बालको की भावनाओ, घर मे प्रेम की कमी, वास्तविकता का सामना करने की योग्यता आदि कारणों से पैदा हो जाती हैं। इस प्रकार की अनुशासन सम्बन्धी समस्याओ का समाधान या तो Clinical psychologist कर सकता है या Guidance Councellor। अध्यापक केवल इन व्यक्ति की उसके कार्य मे सहायता कर सकता है।

जनतन्त्रीय व्यवस्था मे विनय स्वनियन्त्रित हो। विद्यालय मे स्वनियन्त्रित विनय की स्थापना के लिये हमे निम्नलिखित बातो पर ध्यान देना होगा।

कक्षा मे विनय स्थापन के सिद्धान्त

(१) कक्षा मे विनय का अर्थ यह है कि पढ़ाई के समय लडके आपस मे बातचीत न करें परन्तु इसका यह मतलब कभी नहीं कि कक्षा मे वे एकदम मूर्ति बन बैठे रहे। चचलता का नाम अविनय नहीं है। जब कक्षा मे कोई विशेष कार्य नही होता तो चचलता आ ही जाती है। छोटे-छोटे बच्चे हर समय कुछ करना चाहते हैं। जब उनकी स्वाभाविक क्रियाशीलता को जारी

रखने मे शिक्षक की पढ़ाई योग नही देती तो वे इधर-उधर किया करते हैं ग्रतः शिक्षक को ग्रपने कार्य में चुस्त रहना चाहिये ।

(२) बालकों को विनय स्थापना विषयक ग्रादेश न दिये जायें—क्योंकि बालको मे सकेत योग्यता इतनी ग्रधिक होती है कि जरा सी कड़ाई के बर्ते जाने पर वे शान्त ग्रौर शिक्षक की मुद्रा मे तनिक सा शैथिल्य झलकने पर ग्रविनयशील हो जाते हैं। ऐसी दशा मे बार-बार चिल्लाकर चुप रहने का ग्रादेश देने मे विनय स्थापन में सफलता नही मिल सकती। किन्तु बालको को यह ग्रवश्य समझा दिया जाय कि विनय भग ग्रध्यापक या विद्यालय व्यवस्था के प्रति विद्रोह न होकर सामूहिक जीवन पर ग्राघात मात्र है।

(३) पाठ का ग्रारम्भ तथा पाठ का ग्रन्त रुचिकर होना चाहिये—यदि पाठ का ग्रारम्भ रुचिकर नही है ग्रौर उससे भी ग्रधिक उसका ग्रन्त रुचिकर न हुग्रा तो थकान के कारण बालक ग्रधीर हो सकते हैं। इसलिये पाठ मे रोचकता बराबर बनाये रखने से कक्षा सम्बन्धी ग्रविनय की समस्या पैदा नही होती।

(४) ग्रविनयशील बालकों के साथ शान्ति ग्रौर धैर्य से काम लिया जाय—प्राय. ऐसे बालक जिनकी घर पर ग्रवहेलना होती है ग्रौर मार पड़ती है, ग्रथवा वे बालक जिनको ग्रत्यधिक लाड प्यार से रखा जाता है, प्रायः कक्षा मे ग्रौर ग्रधिक मचाते हैं। ऐसे बालकों पर शान्ति से काम लेकर ग्रध्यापक नियन्त्रण स्थापित कर सकता है।

(५) ग्रध्यापक का व्यक्तित्व ग्राकर्षक हो—शिक्षक की मुद्रा, व्यवहार, वाणी की प्रियता, सौम्यता ग्रादि कुछ ऐसी बातें हैं जो बालकों को स्वत. ग्राकर्षित कर लेती है। पढ़ाने मे ग्रात्मविश्वास, निर्भीकतापूर्वक शिक्षण ग्रादि कुछ ऐसी बातें हैं जिनसे बालक कक्षा मे मनमानी नही कर पाते।

(६) विनय का ग्राधार ग्रध्यापक ग्रौर छात्र का पारस्परिक प्रेम हो, भय ग्रौर दण्ड नही क्योंकि भय पर स्थापित विनय झूठी होती है। पारस्परिक प्रेम पारस्परिक विश्वास की भावना पैदा करता है जिस पर नियन्त्रित विनय ग्राधारित रहती है।

(७) शिक्षक को ग्रपने हाव-भाव पर नियन्त्रण रखना चाहिये। प्रायः ऐसे शिक्षकों की कक्षा मे ग्रधिक ग्रविनयशीलता दिखाई देती है जो हाथ इधर-उधर नचाते हैं या विचित्र भाव भंगिमाएं दिखलाते हैं।

(८) शिक्षक की शिक्षण प्रणाली ग्रमनोवैज्ञानिक न हो। ऐसा होने पर कक्षा मे बालक शरारत करने लगते हैं, दूसरों को चिढ़ाना, कुछ खटपट करना, दूसरो से बातचीत करना, दूसरों की गलती पर हँस देना, कान मे फुसफुस कहना—ग्रादि ऐसी बातें हैं जिनका उत्तरदायित्व शिक्षक की ग्रमनोवैज्ञानिक प्रणाली पर रहता है।

(९) विनय समस्या की ग्रवहेलना न की जाय। ग्रवसर के ग्रनुसार उचित साधन का सहारा लेना चाहिये। इसमे तनिक भी देरी ग्रौर ग्रवहेलना भविष्य मे हानिकार सिद्ध हो सकती है।

(१०) विनय स्थापन के लिये छात्रों को उत्तरदायी बना दिया जाय जिससे वे स्वनियन्त्रित हो जायं।

(११) विनय स्थापन के लिए विद्यालय मे ग्रध्ययन ग्रौर ग्रध्यापन की पर्याप्त सुविधा, कक्षा में उनके बैठने के लिए उचित स्थान, उचित फर्नीचर, उनके शारीरिक एव मानसिक विकास के लिए ग्रावश्यक साधन, घर मे शान्त वातावरण ग्रावश्यक हैं।

(१२) बालक विनय भग न करे इसलिये उसे यह बता दिया जाय कि विनय केवल विद्यालय तक ही सीमित नहीं है वह तो उसके पूरे जीवन से सम्बन्धित है।

विनय स्थापन के कुछ साधन नीचे दिये जाते है। कक्षा में से निकाल देना, ग्रविनयशील बालक को किसी काम से बाहर भेज देना, उसकी सुविधा छीन लेना, कक्षा के ग्रन्य बालकों मे पृथक कर देना, बैठने का स्थान बदल देना, ग्रभिभावक ग्रौर बालक से एकान्त में बात करना, व्यक्तिगत रूप मे उसे एकान्त मे समझाना, ग्रादि साधनों का प्रयोग साधारणतः किया जाता है। कभी-कभी ऐसे बालक को सारी कक्षा के सामने लज्जित, या दण्डित, या निष्कासित,

या कक्षा के बाद रोक लिया जाता है। कुछ ऐसे भी साधन प्रयोग में लाये जाते हैं जो अवाञ्छनीय हैं—जैसे अपराध के लिए सारी कक्षा को दण्ड देना, हठात क्षमा याचना के लिये बालक को बाध्य करना, धमकी देना, कार्य करने से रोकना, व्यंग्य करना, बालक का मजाक उड़ाना, अपशब्द कहना आदि आदि किन्तु इन साधनों का प्रयोग कभी न किया जाय तो अच्छा है।

(१०) विनय स्थापन के लिये विद्यालय में अध्ययन और अध्यापन भी पर्याप्त सुविधा से हो। कक्षा में उनके बैठने के लिये उचित स्थान, उचित फर्नीचर, उनके शारीरिक एवं मानसिक विकास के लिए आवश्यक साधन, घर में शान्त वातावरण आवश्यक है।

(११) बालक विनय भंग न करे इसलिए उसे यह बता दिया जाय कि विनय केवल विद्यालय तक ही सीमित नहीं है वह तो उसके पूरे जीवन से सम्बन्धित है।

विनय स्थापन और अध्यापक

Q 5. 'The discipline of the school is solely headmaster's responsibility.' Discuss this statement, giving your reasons for or against this view.

(Agra 1950)

विद्यालय में अनुशासन प्रधान अध्यापक का उत्तरदायित्व है। यह पूरी तरह से सत्य है क्योंकि अनुशासन विद्यालय की गतिविधियों और कक्षा में शिक्षण पर निर्भर रहता है। प्रधान अध्यापक जो सदैव अपने स्कूल में उत्तम से उत्तम व्यवस्था स्थापित करना चाहता है निम्नलिखित दो बातों पर सदैव जोर देता है दो बातें ऐसी हैं जिनको कि शिक्षा की आधार-शिला कहा जा सकता है:—

(१) विद्यालय का प्रोग्राम, और (२) कक्षा का शिक्षण

[illegible] अथवा अनुशासन सम्बन्धी ऐसा दर्शन निश्चित करले जो उसको दिन प्रतिदिन के कार्य में सहायता करता रहे। इस नीति अथवा दर्शन में उसका मार्ग प्रदर्शन करने वाले उन आधारभूत सिद्धान्तों का समुच्चय हो सकता है, जो अनुशासन सम्बन्धी किसी भी समस्या का समाधान करने में उसकी मदद कर सकें। सुझाव के रूप में ही केवल कुछ तरीके नीचे पेश किए जाते हैं। इन सिद्धान्तों की रूपरेखा तो वास्तव में प्रधान अध्यापक की सम्मति से ही तैयार हो सकेगी।

(१) एक उत्तम विद्यालय का कलैण्डर—इस कलैण्डर में विद्यालय के लक्ष्य, उसमें पढ़ाये जाने वाले पाठ्यक्रम और प्रशासन सम्बन्धी नियमों का संग्रह होना चाहिये। यह कलैण्डर अभिभावकों को अपने सरक्षकों के लिये उपयुक्त पाठ्यक्रम चुनने और उत्तम विद्यालय में प्रवेश प्राप्त करने में सहायक सिद्ध हो सकता है।

(२) विद्यालय कार्य की योजना का सावधानीपूर्वक निर्माण—वर्ष भर में कितना कार्य विद्यालय कर सकता है। इसकी रूपरेखा विद्यालय प्रारम्भ होने से पूर्व ही अध्यापक की सहायता से तैयार की जा सकती है। जिस दिन विद्यालय खुलता है उस दिन गड़बड़ी का होना [illegible] यह योजना वर्ष के प्रारम्भ से पूर्व ही [illegible] इस योजना को यथासाध्य कार्यान्वित [illegible] किसी अन्य अध्यापक के पद ग्रहण करने पर भी इस योजना के किसी कार्य में बाधा न पड़े।

(३) विद्यालय के नियम निश्चित और स्पष्ट हों प्रत्येक विद्यालय में तीन प्रकार के नियम लागू किये जाते हैं—(i) शिक्षा विभाग द्वारा निर्धारित (ii) प्रधान अध्यापक अथवा अध्यापक द्वारा निश्चित नियम (iii) विद्यालय समिति द्वारा सुझाव गये नियम।

नियम किसी भी प्रकार के क्यों न हों चाहे किसी समिति ने क्यों न बनाये हों उनका अक्षरशः पालन करवाना प्रत्येक विद्यालय का कार्य है। जितने भी प्रशासन सम्बन्धी नियम प्रधान अध्यापक तथा उसके सहायक व्यक्ति निश्चित करते हैं उनके मध्य विद्यालय एवं अध्यापकवर्ग की रक्षा करने और विद्यार्थियों के ऊपर शासन करने के लिये होते हैं। ये नियम प्रशासन, संगठन एवं

सचालन, अनुपस्थिति शुल्क और व्यवस्था सम्बन्धी हुआ करते हैं। इन नियमो की आवश्यकता एव उपयोगिता विद्यालय मे प्रवेश पाने वाले समस्त विद्यार्थियो को पहले से ही बतलानी चाहिए। उनको यह भी समझा दिया जाये कि व्यक्तिगत इच्छाओं, उद्वेगो एव प्रवृत्तियों का दमन समाज के हित मे ही होता है। अत ये नियम जो व्यक्तिगत इच्छाओं का दमन करते हैं उनके हित के लिये ही हैं। प्रधान अध्यापक को समझ लेना चाहिये कि ये नियम सख्या मे कम से कम हो: क्योंकि जिन व्यक्तियो को इन नियमो का पालन करना है वे व्यक्ति किशोर होने के कारण विद्रोही हुआ करते हैं। जिस घर अथवा विद्यालय मे नियम जितने ही कठोर और अधिक होंगे, उस घर अथवा विद्यालय के सदस्यो मे विद्रोह की भावना उतनी ही अधिक जागृत होगी। किशोरो के व्यवहार और आचरण का विरोध पद-पद पर किये जाने पर उनमे धृष्टता और अधिकारी वर्ग के प्रति द्वेष की भावना का उदय होने लगता है। अत यह सुझाव दिया जा सकता है कि किशोर और किशोरियो को अपने दैनिक जीवन के कार्यक्रम मे अधिक से अधिक जिम्मेदारी दी जाय। अनुशासन स्थिर रखने और उसे दृढ बनाने का यही सर्वोत्तम मार्ग है। छोटे से छोटे बच्चे से लेकर बड़े से बड़े लड़के जिम्मेदारी लेना चाहते हैं इसलिये विद्यालय व्यवस्था मे उनको हाथ बँटाने दिया जाये। इस साधारण तथ्य को ध्यान मे रखकर प्रधान अध्यापक तथा अध्यापक वर्ग का कर्तव्य है कि वे अपने बच्चों को स्वशासन की शिक्षा दें। विद्यार्थियो को ऐसी समितियाँ बनाने मे उनकी मदद करें, जो विद्यालय सचालन मे ... विद्यार्थियो
को इस बात का भी अधिकार दिया जाये कि ...
करते हैं। विद्यार्थियो द्वारा विधान का इस प्र...
कर सकता है। साथ ही उनमे उत्तम नागरि...
भर सकता है। विद्यार्थी उन नियमो का अच्छी तरह पालन कर सकते हैं जिनको वह स्वय बना सकते हैं, ऐसे नियमो से अध्यापक वर्ग अथवा विद्यार्थी वर्ग के बीच न तो किसी प्रकार का मन-मुटाव पैदा हो सकता है और न किसी प्रकार का सहयोग ही। जैसा पहले कहा जा चुका है स्वशासन सम्बन्धी ऐसी क्रियाओ को विद्यालय मे धीरे-धीरे लागू करना चाहिये और अध्यापको का कर्तव्य है कि जब कभी ऐसी सुविधायें बालको को दी जायें तब उनको पूरे मन से दी जाएँ और इस बात का ध्यान रखा जाये कि नेतृत्व करने वाले विद्यार्थी स्वनिर्मित नियमो का पालन सदैव करते है अथवा नही।

(४) पाठ्यक्रम सहगामिनी क्रियाओ का समुचित आयोजन इन क्रियाओ की उपयोगिता एव महत्व विशद रूप से आगे दिया जायेगा। परन्तु यहाँ इतना कह देना काफी है कि वे बालको मे आत्म-सयम आत्मनिर्देश के गुणों को पैदा करने मे मदद करती हैं। बालक उत्तरदायित्वपूर्ण आचरण करने लगते हैं। उनमें नियमों को पालन करने की इच्छा पैदा हो जाती है। इस प्रकार विद्यालय का tone ऊँचा उठता है।

(५) सुसचालित विद्यालय-समितियो का आयोजन हो। विद्यालय का कार्य प्रार्थना से प्रारम्भ किया जा सकता है जिसमे समस्त विद्यार्थियो तथा अध्यापको की उपस्थिति अनिवार्य है। प्रार्थना के बाद प्रधान अध्यापक या अध्यापक द्वारा छोटा सा सम्भाषण प्रतिदिन दे दिया जावे
यदि ...
दी ...
शि...
है ...

अनुशासन कायम करने के लिये यह जरूरी है कि अध्यापको और प्रधान अध्यापक, अध्यापको और विद्यार्थियो, अध्यापक और अभिभावको के बीच सहयोग होना आवश्यक है। तभी विद्यालय-सचालन एव सगठन सम्बन्धी समस्याओ को आसानी से सुलझाया जा सकता है। विद्यालय उत्तम कोटि का समूह माना जाता है। उसका एक ही मन होना चाहिए जिसे हम समूह मन कह सकते हैं। इस समूह के सब सदस्य वही कार्य करें, उसी प्रकार सोचें और वैसे ही अनुभव करें, जैसा कि सम्पूर्ण समूह कार्य करता है, सोचता है और अनुभव करता है। प्रत्येक वर्ग अपनी-अपनी जिम्मेदारी को समझे और विद्यालय के लक्ष्य को प्राप्त करने मे उसी प्रकार सचेत रहें जिस प्रकार किसी अच्छी टीम के खिलाड़ी मैच बनाने मे सचेत रहते हैं। प्रधान अध्यापक का कर्तव्य है कि इन भिन्न-भिन्न वर्गों की क्रियाओ का समन्वय करना। उसका कर्तव्य है इन वर्गों को अथवा

उनके नेताओं को निश्चित कार्य-भार का सौंपना। कोई भी Principal अकेला विद्यालय का सगठन या सचालन नहीं कर सकता। इस कार्य को उसे बाँटना होगा। कार्यभार या बँटवारा अनुशासन सम्बन्धी समस्यायें पैदा कर सकता है। किन्तु ऐसी समस्यायें कम अनुभवी प्रधान अध्यापकों के सामने ही अधिक काम करती हैं। अनुभवी प्रधान-अध्यापक तो ऐसी समस्याओं को उठने ही नहीं देते।

(७) विद्यालय म एक निश्चित परम्परा का निर्माण विद्यालय का अनुशासन विद्यालय की परम्परा से सम्बन्ध रखता है। कुछ विद्यालय अनुशासन के लिये जिले भर मे प्रसिद्धि प्राप्त होते हैं और कुछ अनुशासनहीनता के लिये। इस प्रकार उत्तम या निकृष्ट अनुशासन विद्यालय की परम्परा बन जाता है। जिस विद्यालय मे अनुशासनहीनता के चिन्ह दिखाई देते हैं, उस विद्यालय मे कार्य करना कठिन हो जाता है और फिर से उसमे अनुशासन स्थापित करना कठिन हो जाता है। ऐसे विद्यालय मे कार्य ग्रहण करने वाले प्रधान अध्यापक को निराश न होना चाहिये। 'कर्मण्येव अधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' गीता के इस उपदेश को ध्यान मे रख कर उसे कार्य करते रहना चाहिये। तभी उसके विद्यालय का अनुशासन उत्तम बन सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विद्यालय मे अच्छे अनुशासन कायम करने अथवा उनको मजबूत बनाने की जिम्मेदारी प्रधान अध्यापक पर बहुत है। कक्षा मे शिक्षण सम्बन्धी समस्याओं का समाधान प्रधान अध्यापक को उतना अधिक नहीं करना पडता जितना कि कक्षा मे पढ़ाने वाले ... दॅशक का काम करता है। कक्षा मे अनु- ... रका हल ढूढ़ना अध्यापक का ही कर्त्तव्य ... । इतना अवश्य माना जा सकता है कि ... से सहानुभूति रखने वाला है तो कक्षा मे अनुशासन... शिक्षण के अतिरिक्त कुछ और भी बातें ... देती। जैसे विद्यालय का वातावरण ... पक ही बनाता है। यदि ... प्रेम करने वाला नहीं है तो अनुशासन भग वि... मे अनुशासन स्थापित करने के लिये हम हो... किसी प्रकार ... यापि कुछ सुझाव अवश्य दे सकते हैं। ये सुझाव निम्नलिखित हैं —

(क) घण्टा बजते ही विद्यार्थी अपना कार्य आरम्भ कर दें क्योंकि यदि ऐसा नहीं किया गया तो ... समस्यायें उठ खड़ी होंगी। (ख) प्र... पडने पर पुकारा जा सके। (ग) ज... पडे उसे पहचान लिया जाय और उसके व्यवहार या आचरण को अकित कर लिया जाये। (घ) कक्षा में कभी भी क्रोध प्रकट न किया जाये। प्रारम्भिक अवस्था मे बालकों पर उचित नियन्त्रण रखा जाये जिससे वे समझ लें कि प्राप क्या हैं। कक्षा मे किसी भी स्वेच्छाचारिता को सहन न किया जाए 'दुर्व्यवहार' के लिये उचित दण्ड दिया जाये। कक्षा मे सहयोग और सहकारिता पर बल दिया जाये। पाठन विधियों के विषय मे हमको केवल इतना कहना है कि ये बालकों के स्तर, आयु और योग्यता के अनुकूल हों। अनुशासन भग करने वाले विद्यार्थियों के साथ ऐसी विधि अपनाई जाये कि वे सुधर सकें और दूसरे विद्यार्थियों मे अच्छे अनुशासन के गुण पैदा हो सकें। अन्त मे विद्यालय का वातावरण भी सुन्दर होना चाहिये। जिन स्कूलों मे विद्यार्थियों की अधिक भीड़-भाड़ रहती है तथा जिनमे प्रकाश एवं स्वच्छता पर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता उनमे अनुशासनहीनता के लक्षण पैदा हो जाते हैं। Churchill ने एक बार कहा था कि हम अपने भवन बनाते हैं और भवन हमको बनाते हैं। और यही बातें विद्यार्थियों के विषय मे हैं कि हम अपने विद्यालय भवनों को जैसा बनाते हैं वैसा ही वे बालकों को बनाते हैं। विद्यालय भवन कैसा होना चाहिये। उसमे वाचनालय या पुस्तकालय वैसा हो, कला, समाजशास्त्र विज्ञान के लिये किस प्रकार के कार्य किये जायें, इनका उल्लेख पहले हो चुका है। अच्छा विद्यालय भवन अच्छा वातावरण प्रकट करता है। साथ ही बालकों मे अच्छा अनुशासन भी पैदा करता है।

(७) ग्रनुशासनहीनता के कुछ ग्रौर भी कारण हैं जैसे—शिक्षक विद्यार्थी सम्पर्क का भाव, घर का दूषित वातावरण, विद्यार्थियो की सख्या मे वृद्धि तथा विद्यालयो की कमी एव द्यार्थियो की समस्या को उपेक्षा की दृष्टि से देखना।

ग्रन्तिम दो दशको मे जो ग्रनुशासनहीनता छात्र वर्ग मे व्याप्त हुई है उसके विषय मे माचार पत्रो एव पुस्तको मे काफी चर्चा हुई है। यह ग्रनुशासनहीनता कई रूपो मे प्रगट हुई । बिना किसी कारण ही छात्रो की हडतालें होती हैं, जुलूस निकलते हैं, हिंसात्मक घटनाएँ घटित ती हैं, छात्र कक्षा छोडकर भाग उठते हैं, परीक्षाग्रो मे बैठने से इन्कार कर देते हैं, बिना टिकट मूह मे रेलयात्रा करते हैं, पुलिस से झगड़ा कर बैठते हैं, बसें, सिनेमागृह जला डालते हैं, ध्यापको ग्रौर विश्वविद्यालय के ग्रधिकारियो के साथ मारपीट कर डालते हैं।

ऐसा ग्रसभ्य ग्राचरण वे क्यो करते हैं ? इसके कारणो का विश्लेषण करते हुए शिक्षा
नी
कमीशन १९६४-६
शा
स विषम परिस्थि
का
का सचार करता ह
ही
पाठ्यक्रम ग्ररुचिकर
करता। बहुत सी सस्थाग्रो मे ग्रच्छी शिक्षा ग्रहण करने की सुविधाग्रो की कमी है। ग्रध्यापक ग्रपने छात्रो के साथ सम्पर्क स्थापित नही कर पाते। कभी कभी तो बरसो बीत जाते हैं ग्रौर ग्रध्यापक तथा शिष्य के बीच विचारो का ग्रादान-प्रदान नही होता। कई शिक्षक भी इतने ग्रयोग्य ग्रौर ग्रपने शिष्यो के हित से इतने ग्रधिक उदासीन होते हैं कि छात्रों मे उनके प्रति सम्मान भाव के स्थान पर घृणा भाव पैदा हो जाता है। कुछ प्रधानाचार्यों मे नीति निपुणता का इतना ग्रभाव होता है कि वे जरा सी छात्र समस्या का हल नही निकाल पाते। कुछ महाविद्यालयो में ग्रध्यापक लोग गन्दी राजनीति खेलते हैं ग्रौर छात्रो को ग्रान्दोलन के लिए उकसाते रहते है। राजनीतिक दलबन्दियाँ इस परिस्थिति का लाभ उठाकर छात्रो को भडकाती रहती हैं। सबसे ग्रधिक दुख की बात तो यह है कि देश मे महाविद्यालय राजनीति के ग्रड्डे बन गये हैं ग्रौर प्रौढ़ व्यक्तियो मे जितनी ग्रधिक ग्रनुशासनहीनता है उतनी ग्रधिक ग्रनुशासनहीनता छात्र वर्ग मे नही है जो ग्रभी किशोरावस्था पार कर रहा है।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र मे ही इस ग्रनुशासनहीनता के लक्षण ग्रधिक दिखाई देते हैं ग्रौर यह जानकर ग्रौर ग्रधिक चिन्ता होती है कि यह ग्रनुशासनहीनता कम होने के स्थान पर द्रुतगति से बढती ही जा रही है। जरा-जरा सी बातो पर छात्र ग्रनुशासन भग कर बैठता है, वह भी ऐसे समय जबकि देश सकट के दौर से गुजर रहा हो, जबकि जगह जगह ग्रकाल पड रहा हो, जबकि दुश्मन ग्राक्रमण की ताक लगाये बैठा हो। बडी ही लज्जा की बात तो यह है कि स्वतन्त्रता के बाद राष्ट्र द्वारा छात्र वर्ग के हित के लिये ग्रधिक से ग्रधिक शिक्षा का प्रसार किया जाने पर भी इस वर्ग मे निरन्तर बढता हुग्रा ग्रसन्तोष व्याप्त हो रहा है।

ग्रन

जिसका उपचा

शिक्षा प्राप्त व्य

यह कहना कि एस यह कहना भी उतना ही गलत है कि ग्रध्यापक ही इस दोष के भागी हैं। यह दोष गलत है ग्रौर यह कहना भी उतना ही गलत है। एक पार्श्वी नही है बहु पार्श्वी है। छात्र, ग्रध्यापक, ग्रभिभावक, राज्य सभी को ग्रपनी जिम्मेदारी माननी होगी, नहीं तो इस समस्या का कोई स्थायी हल नही निकल सकता। ग्रत. इस रोग की चिकित्सा सभी को करनी है केवल शिक्षा व्यवस्था मे सुधार लाने मे काम बनने का नही है, जहाँ तक विद्यालय का सम्बन्ध है इस रोग की चिकित्सा दो प्रकार से की जा सकती है —

(i) शिक्षा व्यवस्था मे वर्तमान कमियो को दूर करके।
(ii) ग्रनुशासन भग न होवे इसलिए प्रशासनिक ग्रौर परामर्शदात्री योजना तैयार की जावे।

यदि शिक्षा व्यवस्था मे वर्तमान कमियो को दूर कर दिया जाय तो छात्रो में ग्रसन्तोष होगा ही नही। उच्च शिक्षा का तो यही लक्ष्य होना चाहिए कि वह छात्रो मे ग्रान्तरिक स्व-ग्रनुशासन की जड़ें पक्की करे, बाह्य ग्रनुशासन को वह कोई मान्यता न दे। शिक्षा मे जो लगन ग्रौर

रुचि अपेक्षित है यह लगन और रुचि जिस समय छात्रों में पैदा हो जायगी उस समय वे ऐसे कार्यों में अपना समय नष्ट ही न करेंगे। प्रत्येक संस्था छात्रों के समक्ष उत्तम अवसर प्रदान करे। शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने, छात्रों के लिये कल्याण सभाओं का आयोजन करे। छात्रों के बीच व्याप्त असन्तोष को दूर करने का दूसरा उपाय यह है कि छात्रों, अध्यापकों तथा अधिकारियों तीनों को विश्वविद्यालय जीवन का अभिन्न अंग बना देना। यदि महाविद्यालयों में छात्रों और अध्यापकों की संयुक्त कमेटियाँ बन जायें, यदि उपकुलपति के प्रधान छात्र और अध्यापकों की एक केन्द्रीय कमेटी का सृजन हो जाय, एकेडमिक काउन्सिल और कोर्ट के साथ छात्रों के प्रतिनिधियों का सम्पर्क स्थापित हो जाय तो अनुशासनहीनता के लक्षणों को तुरन्त दबाया जा सकता है।

विनय स्थापन के सकारात्मक एवं नकारात्मक साधन

Q. 7. What part is played by reward & punishment in creating discipline in schools?

(L. T. 1944, 1954)

बालकों को विनयी बनाने के लिये हम उत्तम वातावरण का सृजन करना होगा। अतः विद्यालय का संगठन, आदर्श तथा उसकी सब क्रियाएँ और व्यवस्थाएँ जनतन्त्रीय विचारधारा पर आधारित होनी चाहियें। अतएव हमें विनय स्थापित करने के लिये स्कूल, घर एवं समाज का वातावरण नियन्त्रित और शुद्ध करना होगा। इस नियन्त्रण के लिए सकारात्मक साधनों की सभी आवश्यकता अनुभव करते हैं और विशेष परिस्थितियों में ही नकारात्मक साधनों का अवलम्बन किया जा सकता है।

सकारात्मक साधनों में छात्रों का स्वशासन (Pupil self-government), अध्यापक अभिभावक सहयोग (Teacher parent Cooperation), नैतिक शिक्षा, स्कूल का स्तर और परम्पराएँ (Tone & Tradition of the School), विद्यालय के अध्ययन की पर्याप्त सुविधाएँ, संगठित खेलकूद, विद्यालय की पाठ्य सहगामिनी क्रियाएँ, पारितोषिक, विद्यालय का संगठित (सामूहिक) जीवन (Corporate life of the school) को सम्मिलित किया जा सकता है। नकारात्मक साधनों में दण्डव्यवस्था महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण करती है। विनयस्थापना में पारितोषिक और दण्ड का क्या महत्व है यही समझाने का प्रयत्न प्रस्तुत अनुच्छेद में किया जायगा।

पुरस्कार का महत्व—जिस प्रकार दण्ड और भय एक ही कोटि में आते हैं उसी प्रकार पुरस्कार और लोभ समकक्षीय हैं। दण्ड के भय से बालक बुरे कार्य से बचने का प्रयत्न करते हैं। पुरस्कार के लोभ से वे अच्छे कार्य में संलग्न कराये जा सकते हैं। दण्ड जिस प्रकार अपराध को ... रता रहता है। ... है उसी प्रकार ... कि आशा की ... के लिये विशेष ... रस्कार पाने के ... र चापलूसी एवं जी हुजूरी ... ष्ट होने लगता है। किन्तु ... पारस्परिक कार्य न समझा जाय तो शायद इसका प्रयोजन सिद्ध हो सकता है।

यदि पुरस्कार व्यवस्था से वास्तविक लाभ प्राप्त करना ही है तो ऐसी पुरस्करणीय स्थिति बनानी पड़ेगी कि उसके लिये गम्भीर प्रयत्न करना पड़े। आदर्श जिनकी प्राप्ति बालकों को करनी है न तो ऐसे ही हो जिनको प्राप्त ही न किया जा सके, क्योंकि असम्भव आदर्श रखने से बालक हतोत्साह हो सकते हैं। बालकों की योग्यता के आधार पर पुरस्कार अलग-अलग रखे जा सकते हैं। इससे एक लाभ यह हो सकता है कि सभी योग्यता वाले बालक पुरस्कार पाने के ...न कर सकते हैं। यदि निर्णायक निष्पक्ष हो और समाज के अन्य मान्य व्यक्तियों और ...का सहयोग मिल सके तो और भी अच्छा है।

कुछ विद्वान पुरस्कार व्यवस्था को अनुचित समझते हैं। उनका कहना है कि पुरस्कार विद्यार्थियों में लोभ-वृत्ति को जगाने में सहायक होता है। लोभ के कारण अच्छे कार्य करना

प्रशंसा की बात नहीं है, इससे बालकों में स्वार्थपरता का विकास हो सकता है। विद्यालय में जहाँ पर सामाजिक गुणों को पैदा करने के लिये प्रयत्न किया जाता है वहाँ पर ऐसे दुर्गुणों के पैदा होने से समाज की ही हानि होती है। पुरस्कार पाने के लोभ में कभी-कभी छात्र दूसरों का अहित करने में नहीं चूकते, और यह बात कुछ हद तक ठीक ही है। छात्रों को व्यक्तिगत सुख जो पुरस्कार से मिल सकता है उसे अनियन्त्रित अथवा उत्साहित नहीं होना चाहिये। किन्तु यह आदर्श अधिक कठिन है, क्योंकि विद्यालय में सब प्रकार के बालक आते हैं और उन सबकी आवश्यकता की सन्तुष्टि करनी पड़ती है। इसलिये पुरस्कार व्यवस्था को उचित स्थान दिया जा सकता है। बालक पुरस्कारों के बुरे प्रभाव से अपने को बचाये रक्खे। इस उद्देश्य से निम्नलिखित बातों पर जोर दिया जा सकता है।

(१) छोटी कक्षाओं में शिक्षाप्रद वस्तुयें दी जा सकती हैं और ऊँची कक्षाओं में प्रमाण पत्र इत्यादि, प्रशंसासूचक वस्तुयें रक्खी जा सकती हैं।

(२) जो विद्यार्थी अपने साथियों के मार्ग में बाधा बन कर पुरस्कार पाने का दोषी पाया जाय, उसे निन्दित किया जाना चाहिये।

(३) हमारे यहाँ शारीरिक एवं शैक्षणिक योग्यता के लिये पुरस्कार की प्रथा है।

चाहि [illegible] र

व्यक्ति [illegible] ती

टोलिय [illegible]

पैदा हो सकती है ज [illegible]

दिया जाये उन छात्र [illegible]

में मिलकर सबसे ऊँचा हो [illegible]

ऊपर जिन युक्तियों का उल्लेख किया गया है वे विद्यालय के वातावरण को सुन्दर [illegible] सकती है। विद्यालय के वातावरण के सुन्दर हो जाने पर उसमें शिक्षा पाने वाले छात्र स्वतः [illegible] विद्यालय के [illegible] जाता है। [illegible] शासनहीनता

का [illegible]

दण्ड—विधान और विनय

Q. 8 What are the various types of punishment used in schools? Discuss their relative merits and demerits *(Agra B. T. 1951)*

What part is played by rewards & punishments in creating discipline in the school. *(Agra B. T. 1954)*

जिस समय राजतन्त्र का युग था और जनता को एक व्यक्ति की आज्ञा माननी पड़ती थी उस स [illegible] विशेष स्थान दिय [illegible] जाता था [illegible] आज उसी प्रकार [illegible] राजतन्त्र का पृथ्वी से लोप हो रहा है और जनसमूह जनतन्त्र की ओर झुक रहा है उस समय न तो राजनैतिक क्षेत्र में और न शिक्षा क्षेत्र में ही 'बिनु भय होत न प्रीति' वाले सिद्धान्त का पालन किया जा सकता है। आज का शिक्षा-शास्त्री भय अथवा दंड के स्थान पर प्रेम को अधिक महत्व देता है। वह बालकों पर बाहर से अनुशासन थोपना नहीं चाहता वह उनको स्वयं अनुशासन में रखना सिखाना चाहता है।

दण्ड का अर्थ—दण्ड देने का अर्थ है, शारीरिक अथवा मानसिक पीड़ा पहुँचाना। दण्ड देकर दण्ड देने वाला व्यक्ति यह समझता है कि दण्डित व्यक्ति पीड़ा अथवा अपमान के डर से अनुचित कार्य नहीं करेगा और दूसरे व्यक्ति भी दण्डित व्यक्ति के दुःख को देख कर उस प्रकार के कार्य करने का साहस न करेंगे।

दण्ड का स्वरूप—दण्ड देने की आवश्यकता क्यों पड़ती है—इस प्रश्न का उत्तर देने के लिये और दण्ड का स्वरूप समझाने के लिये कुछ सिद्धान्तों का निर्धारण किया गया है। ये सिद्धान्त निम्नलिखित हैं :—

(१) बदला लेने का सिद्धान्त (Retributive Theory)—यह सिद्धान्त यह मान कर चलता है कि दण्ड देने वाले व्यक्ति ने कोई अपराध किया है और उस अपराध के लिए समाज को उससे बदला लेना चाहिये। आधुनिक काल मे इस प्रकार के क्षेत्र के सिद्धान्त को कोई महत्व नही दिया जाता क्योकि इस सिद्धान्त को मानने वाला अध्यापक आवेश में आकर बालक की हड्डी-पसली तोड सकता है।

(२) दण्ड का न्याय आधार (Vindication of Law)—इस सिद्धान्त के आधार पर कानून को सब कुछ माना जाता है और जो व्यक्ति कानून का भग करता है वह दण्ड का अधिकारी है। इस प्रकार का सिद्धान्त विद्यालय व्यवस्था मे लागू नहीं हो सकता है क्योंकि बालक कानून के महत्त्व को इतना अधिक नही समझ सकता जितना कि उसकी न्याय मगतिता को।

(३) भय द्वारा रोकने का सिद्धान्त (Preventive Theory)—दण्ड देने का लक्ष्य दडित व्यक्ति को पुन ऐसे कार्य न करने से रोकने का होता है जिस कार्य के करने पर उसे दड दिया जाता है। लेकिन इस प्रकार के सिद्धान्त से बालक को अपना सुधार करने के लिए कोई अवसर नही दिया जाता है। अपराधो की प्रवृत्ति दण्ड के भय से नही रोकी जा सकती।

(४) उदाहरण प्रस्तुत करने का सिद्धान्त (Examplary theory)—जब हम किसी व्यक्ति को दडित करते हैं तब यह भी आशा करते है कि दूसरे व्यक्ति भी उसको देख कर ऐसा कार्य न करें, जिसके लिए वह व्यक्ति दडित किया जा रहा है। किन्तु यह सिद्धान्त भी अधिक उपयुक्त नही जचता, क्योंकि दण्डित व्यक्ति दिल मे यह समझ सकता है कि उसको व्यर्थ मे दड दिया जा रहा है और देखने वाले भी उसके प्रति सहानुभूति रख सकते हैं। इस प्रकार दड न तो दडित व्यक्ति और न दर्शको के लिए ही उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

(५) प्राकृतिक परिणामों का सिद्धान्त (Theory of natural consequences)—Harbart Spencer इस सिद्धान्त के प्रतिपादक थे। उनका कहना था कि यदि बालक ने कोई अपराध किया है तो उस अपराध का परिणाम उसे भोगना चाहिए, यदि उसने अपनी कमीज फाड़ दी है तो उसे जाड़े मे नंगे रहने की आज्ञा दे दी जाये। इस प्रकार प्राकृतिक परिणाम बालक के व्यवहार मे परिवर्तन ला सकता है। लेकिन बालक का इससे अहित भी हो सकता है। इसलिए यह सिद्धान्त भी ठीक नही है।

(६) सुधारवादी सिद्धान्त (Reformative theory)—इस सिद्धान्त के अनुसार अपराधी व्यक्ति मे सुधार लाने का प्रयत्न किया जाता है। विद्यालय मे बालक को दडित करने का अभिप्राय यही रहता है कि बालक यह समझे कि उसने अपराध किया है और उसका हित उसी मे है कि वह अपना सुधार करे।

इन सिद्धान्तो मे अन्तिम सिद्धान्त ठीक जचता है। जब छात्र यह अनुभव करने लगे कि उसने जो कुछ किया है दड उसका स्वाभाविक परिणाम है और दड देने वाला व्यक्ति उसके साथ अन्याय नही कर रहा है और न द्वेषभाववश दड दे रहा है, तब दण्डित व्यक्ति का सुधार स्वतः होने लगता है। दडित व्यक्ति के मन मे यह विश्वास अवश्य उत्पन्न हो जाना चाहिए कि दड देने वाला व्यक्ति उसके साथ कृपा कर रहा है। जब तक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न नहो होती तब तक दड विधान असफल रहता है। देश के विद्यालयो मे सभी प्रकार के दण्ड चल रहे हैं फिर भी अनुशासनहीनता की शिकायत निरन्तर बनी रहती है। दवा की जाती है मगर मर्ज बढ़ता ही जाता है। इसका कारण क्या है? कारण स्पष्ट है और वह यह है कि दंड के लिए उपयुक्त परिस्थिति पैदा नही की जाती है। दड भी गलत प्रकार के होते हैं और गलत प्रकार से दिये जाते हैं।

दड के प्रकार (Types of Punishment)

अपराधी बालक को कठोर वाक्य कहने से लेकर विद्यालय से पृथक कर देने तक दड प्रसरित है। विद्यालय-समाज से किसी को पृथक कर देना समाज की दृष्टि मे एक प्रकार का मृत्यु-दड है। इस सीमा के भीतर विद्यालय मे बालक को एकान्त मे या सभी के सामने डाँटना फटकारना, एकान्त मे या सभी के सामने शारीरिक दड देना, विद्यालय के बाद छुट्टी के पश्चात् रोक लेना, कक्षा में अपनी सीट पर या एक कोने मे खड़ा कर देना, बालक को उसके अधिकारों वंचित कर देना अथवा किसी प्रकार का अपराध या गलती करने पर जुर्माना कर देना इस प्रकार के दड प्रचलित रहते हैं।

(१) एकान्त में या सभी के सामने डाटना या फटकारना—किसी शीलवान् छात्र को अकेले में बुला कर किंचित कठोर बात कहने से ही सुधारा जा सकता है। अपराध जितना ही बड़ा होता है निन्दा उतनी ही कठोर होनी चाहिये, लेकिन निन्दा इतनी कठोर न होनी चाहिये कि बालक में आत्मसम्मान का भाव जग जाये। निन्दा सुनते समय बालक के मन में यह बात आनी चाहिये कि अध्यापक द्वारा जो निन्दा की जा रही है, उचित है। निन्दा करते समय अध्यापक को एक और बात ध्यान रखना चाहिये और वह यह है कि जो अपराध बालक ने अपराधवश किये हैं उनको वह बार-बार याद न दिलाये क्योंकि ऐसा करने से बालक के मन में अध्यापक के प्रति द्वेष-भाव उत्पन्न हो जाया करता है। यदि बालक अपने व्यवहार पर दुःख प्रकट करने लगे तो उसे छोड़ देना चाहिये।

जब एकान्त में निन्दा करने से बालक न सम्हले तो उसकी सार्वजनिक निन्दा की जा सकती है। लेकिन सार्वजनिक निन्दा करने से पूर्व इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि छात्रों का कोई भी समूह निन्दित छात्र के प्रति सहानुभूति न रखे क्योंकि यदि अध्यापक कक्षा में या विद्यालय में अनुशासन बनाये रखना चाहता है तो दंडित बालक के प्रति किसी विद्यार्थी की सहानुभूति न होनी चाहिये। सार्वजनिक निन्दा किसी को अच्छी नहीं लगती है और इस प्रकार की निन्दा जहाँ तक हो कम की जाये।

(२) शारीरिक दंड—शारीरिक दंडों में कान पकड़ने से लेकर सार्वजनिक रूप में बेंत लगाने तक के दंड सम्मिलित हैं। इस प्रकार का दंड उस समय दिया जाता है, जिस समय अन्य प्रकार के दंड विफल हो जाते हैं, और जब छात्र शारीरिक दंड से भी नहीं सम्हलता तो उसे विद्यालय से बाहर निकाल दिया जाता है। लेकिन शारीरिक दंड के पक्ष में कोई शिक्षाशास्त्र विशारद नहीं क्योंकि दंड अपने स्वरूप में पाशविक होता है। उसके प्रयोग से उद्दंड प्रकृति का छात्र निर्लज्ज और विद्रोही हो जाता है और कोमल प्रकृति के छात्र को मानसिक रोग भी हो जाया करते [illegible] चला सकते। उनका कहना है [illegible] अभ्यासी बालक तब तक नहीं [illegible] एक दलील और है और वह कुछ संगत सी प्रतीत होती है। वह यह है कि छात्र को विद्यालय से निकालने के पूर्व यदि उसे शारीरिक दंड द्वारा सुधारने का प्रयत्न किया जाये तो कोई हानि नहीं है।

दंड देते समय प्रधान अध्यापक को यह ध्यान रखना चाहिये कि दंड का प्रयोग अंतिम है। जब मधुर उपाय काम न दें तभी दंड का प्रयोग किया जा सकता है। क्रोध के आवेश में आकर किसी बालक को दंडित कर देना लाभ के स्थान पर हानि होती है। जिस समय कोई बालक अपराध करता है यदि उसे उसी समय दंडित किया जाता है तब तो उसमें कुछ सुधार हो सकता है। दंड क्रमशः कठोर हो। किसी भी अपराध के लिये एक दम कठोर दंड देना उचित और न्याय्य नहीं माना जा सकता। दंड की मात्रा अपराध की मात्रा के अनुपात में होनी चाहिये। दंड देने के बाद भी सुधार के मधुर उपायों का प्रयोग किया जाये।

(३) विद्यालय के बाद छुट्टी के पश्चात् छात्रों को रोक लेना—जब छात्र गृह कार्य करके नहीं आते हैं तब उनको छुट्टी के पश्चात् रोक लिया जाता है। यह दंड विधान अमनोवैज्ञानिक है, क्योंकि जिन छात्रों ने निर्धारित गृह कार्य को घर पर नहीं किया है वह छात्र छुट्टी के पश्चात् भी क्या करेगा। यदि कार्य रुचिकर नहीं है तो उस कार्य में उसका मन भी नहीं लग सकता और यदि वह घर की किसी बुरी परिस्थिति के कारण गृह-कार्य नहीं कर पाया है तो छुट्टी के बाद में उसका रोकना न्यायसंगत नहीं मालूम पड़ता।

(४) कक्षा में अपनी सीट पर या कोने में खड़ा कर देना—छात्र को अपने कान पकड़ कर खड़े होने की आज्ञा देना या उन्हें बेंच पर खड़ा कर देना अत्यन्त अपमानजनक है। एकान्त में समझा देने पर भी अगर बालक न माने तो उस दंड का विधान किया जा सकता है। यदि बालक को एकान्त में बिना समझाये इस प्रकार का अपमानजनक दंड दिया जायेगा तो वह अवश्य निर्लज्ज हो जायेगा। उसके निर्लज्ज होने पर उसमें सुधार लाना कठिन होगा।

(५) बालक को उसके अधिकारों से वंचित कर देना—विद्यालयों में बालकों को कई प्रकार के अधिकार दिये जाते हैं जैसे कुछ बालक विद्यालय समितियों अथवा उप समितियों के पदाधिकारी होते हैं और कुछ मानीटर्स होते हैं। यदि ऐसा कोई बालक अनुशासनहीनता का प्रदर्शन

करता है तो उसके अधिकार छीने जा सकते हैं। इससे पूर्व आवश्यक पृष्ठभूमि बना लेनी चाहिये जिससे किसी को यह कहने का अवसर न मिले कि अमुक छात्र को बिना किसी कारण पदच्युत कर दिया गया है।

(६) जुर्माना कर देना—छात्रों पर जुर्माना करने की एक परम्परा सी चली आ रही है। लेकिन यह ठीक नहीं है क्योंकि दुर्भाग्यवश इसका प्रभाव जो होना चाहिये वह नहीं हो रहा है, क्योंकि यह दण्ड वास्तव में छात्रों पर नहीं होता बल्कि उनके अभिभावकों पर होता है। और बहुत से अभिभावक अपने को अर्थ दण्ड देने में असमर्थ पाते हैं। अतः ऐसा दण्ड देने के पूर्व उनको अवश्य सूचित कर देना चाहिये क्योंकि वे स्वयं अपने बालकों में सुधार लाने का प्रयत्न कर सकते हैं और यदि अभिभावक सूचित किये जाने पर भी कोई ध्यान न दें तो बालक पर भारी अर्थ दण्ड (जुर्माना) लगा देना चाहिये। इस अर्थ दण्ड की सूचना अभिभावकों को अवश्य दे देनी चाहिए।

(७) निष्कासन—यह दो प्रकार का होता है। कक्षा से निकाल देना अथवा विद्यालय से निकाल देना। कक्षा से उसी छात्र को निकाला जाये जिसकी विद्यमानता कक्षा में असह्य हो जाये और अन्य दण्ड बिलकुल व्यर्थ सिद्ध हो चुके हों। निष्कासन का निर्णय घोषित करने के बा[illegible] उसको वापिस नहीं लेना चाहिए।

विनय स्थापन में दण्ड की विफलता का सभी को अनुभव होने लगा है। यद्यपि विद्[illegible] लयों में सभी प्रकार के दण्ड प्रचलित हैं फिर भी देश में अनुशासनहीनता बढ़ती ही चली जा र[illegible] है। इस विषम परिस्थिति को देखकर यही कहना पड़ता है कि देश में उन दशाओं का अभी सृज[illegible]

[illegible]

(१) दण्ड अपराधी का सुधार करे।
(२) दण्ड कम से कम दिया जाय।
(३) दण्ड अपराध के अनुकूल हो।
(४) दण्ड क्षति पूर्ति कर सके।
(५) दण्ड उसी स्थान पर उसी समय दिया जाय जिस पर और जब अपराध किय[illegible] गया हो।
(६) दण्ड सर्वप्रिय हो, अनुचित न हो।

अनुशासन में अन्य निर्णायक तत्व

Q. 8. Discipline in a school depends mostly on factors other tha[illegible] the existence of a strict code of rules and punishment. What are these factors?
(Agra B. T. 1952)

पहले अनुच्छेद में दण्ड को अनुशासन के कायम करने का साधन माना गया है। दण्ड का अभिप्राय अपराधी को उचित मार्ग पर लाना और दूसरों के लिये उदाहरण प्रस्तुत करना है। अपराध करने वाला दंड प्राप्त होने पर अपने को सुधारने की कोशिश करता है तथा अन्य बालक उसके उदाहरण को देखकर अपराध करने से पीछे हटते हैं। किन्तु वास्तविक अनुशासन को स्थापित करने का यह नकारात्मक साधन इतना लाभप्रद नहीं होता जितना कि अन्य सकारात्मक साधन हो सकते हैं दण्ड बुरी वस्तु है और ऐसी वस्तु है जिससे हमको बचना चाहिए। [illegible] विद्यालय में कभी-कभी ऐसी परिस्थितियाँ आ जाती हैं जब विद्यालय में दण्ड देना अनि-[illegible] हो जाता है। व्यावहारिक दृष्टि से दण्ड का समर्थन करना ही होगा। एक आदर्श समाज या [illegible] में भले ही दण्ड की आवश्यकता महसूस न होती हो, परन्तु आज के विकृत समाज में [illegible] आवश्यकता है। P. C. Wren का कहना है कि :—

'Punishment is an evil thing and a thing to be avoided. So is the surgeon's knife. Both are necessary, however .. It is unfortunate but true

that in the fallen state of human nature there is no discipline without punishment or the deterrent fear of punishment."

ऐसे अवसर प्राय आते रहते हैं जब दण्ड के अतिरिक्त कोई और विधान नजर नहीं आता ऐसे समय दण्ड न देने से बालको के ऊपर विरोधी प्रभाव पड सकता है और दण्ड देने से उनमे अपने को सुधारने की प्रवृत्ति जागृत हो सकती है। दण्ड बुरी वस्तु अवश्य है परन्तु सर्वथा त्याज्य नही है। सिद्धान्त भले ही कोई इनका समर्थन न करे किन्तु व्यावहारिक ढग से कभी-कभी इसकी आवश्यकता पड ही जाती है।

अनुशासन के इस नकारात्मक साधन के अतिरिक्त और भी ऐसे साधन हैं जिनसे अनुशासन की रक्षा हो सकती है, अनुशासन कायम करने के लिये विद्यालय के अन्दर और बाहर ऐसे वातावरण का निर्माण करना होगा जो बालको मे अनुशासन के प्रति प्रेम जागृत कर सकें। यदि विद्यालय अथवा विद्यालय के बाहर समस्त क्रियायें अथवा आदर्श जनतन्त्रीय सूत्रो पर आधारित हैं तो बालको मे शनै शनै आत्मसयम, आत्म नियंत्रण और स्वशासन की भावना पैदा हो जायगी। अनुशासन का वास्तविक शासन तो भावात्मक ही है। ये भावात्मक साधन निम्नलिखित हैं :—

(१) विद्यालय का सामूहिक जीवन
(२) बालको का स्वशासन
(३) शिक्षको और अभिभावको का सहयोग
(४) सगठित खेल कूद
(५) पाठ्यक्रम सहगामिनी क्रियायें
(६) विद्यालय मे पठन पाठन की सामान्य सुविधायें
(७) क्रमिक नैतिक शिक्षायें
(८) वाह्य वातावरण पर नियन्त्रण
(९) पुरस्कार
(१०) स्कूल की परम्परायें और tone

(१) विद्यालय का सामूहिक जीवन—अनुशासन कायम रखने या उसे दृढ बनाने के लिए विद्यालय मे सामूहिक जीवन पर बल देना चाहिए। कक्षा के बाहर, पुस्तकालय मे, वाचनालय मे, खेल कूद के मैदानो, मे स्काउटिंग मे और विद्यालय की अन्य समस्त क्रियाओ मे सामाजिक गुणो का अभ्यास कराया जाय। अनुशासन, प्रेम, सहयोग, सार्वजनिक हित, निस्वार्थता आदि सामूहिक जीवन के अग माने जा सकते हैं। इन अगो का पोषण ... मे काफी मात्रा मे हो सकता है। जिन विद्यालयो में समस्त छात्र छात्रालय ... जिन विद्यालयो मे ... से आना पडता है, ... के लिए विद्यालय ... बाहरी समाज ... प्रकार के व्यवहार ... के आदर्श या तो ... के आदर्श ... प्रस्तुत नहीं होते या कम से कम प्रस्तुत होते हैं।

(२) बालको का स्वशासन (Self-discipline)—विद्यालयो मे बालको पर नियन्त्रण रखने और अनुशासन का भाव पैदा करने का उत्तरदायित्व शिक्षको अथवा व्यवस्थापको पर आधारित माना जाता था किन्तु अब विद्यालय मे अनुशासन कायम रखने की जिम्मेदारी बालको पर भी सौंपी जा सकती है। आज की विद्यालय व्यवस्था भी जनतन्त्रीय होनी चाहिए। अनुशासन के ... उत्तरदायित्व, शिक्षण के लि... सच्चा समझ ... समाज-हित ... पहले अनुच्छेद ... कर किस प्रका... मे दिया जा चुका है। ... पर बल देना

पड़ेगा। स्वशासन आधुनिक विचारधारा की माँग है इसलिए इस पर हमें जोर देना होगा। स्वशासन से अनुशासन का स्तर ऊँचा उठता है। जिन विद्यालयों में बालकों पर ही अनुशासन भंग न करने का भार रहता है उन विद्यालयों के बालक शिक्षकों द्वारा प्रदर्शित मार्ग पर चलने के उपयुक्त हो जाते हैं। ये अनुशासन विरोधी प्रवृत्तियों को नष्ट करने की स्वयं कोशिश करते हैं। वास्तव में शिक्षकों को इस बात का भय लगा रहता है कि बालकों को इस प्रकार की जिम्मेदारी दे देना अनुचित होगा किन्तु सत्य इसके विरोध में है। स्वशासन का प्रशिक्षण देने से बालकों में सहयोग से काम करने की भावना दृढ़ हो सकती है। ये समूह में रह कर सामूहिक जीवन की क्रियाओं में भाग लेना सीख सकते हैं।

स्वशासन का प्रशिक्षण पाये हुये विद्यार्थी विद्यालय में होने वाली विभिन्न प्रकार की क्रियाओं का सगठन करने के योग्य हो जाते हैं। वे विद्यालय के वाद-विवाद प्रतियोगिता, अन्त्याक्षरी, नाटक, खेल-कूद, सभा समिति आदि का सगठन बात की बात में कर लेते हैं। स्वशासन से विद्यार्थियों और अध्यापकों के बीच सम्पर्क पक्का हो जाता है। विद्यार्थी अध्यापकों को अपने परामर्शदाता या निर्देशक के रूप में मानकर विद्यालय की समस्त क्रियाओं के सगठन में सहायता देते हैं। स्वशासन विद्यालय के tone को ऊँचा करता है। विद्यार्थियों में विद्यालय के प्रति अपनेपन की भावना जागृत हो जाती है। स्वशासन से बालकों में काम करके सीखने की इच्छा जागृत हो जाती है। इस प्रकार स्वशासन बालकों को अनुशासित बनाने में विशेष सहायता करता है।

बालकों के स्वशासन (self-government) को सफल बनाने के लिये अध्यापक एवं प्रधान अध्यापकों को निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिये :—

वे स्वशासन का महत्व समझें और उसे सफल बनाने का यथासाध्य प्रयत्न करें। स्वशासन की योजना विचारपूर्वक तैयार की जाय और धीरे-धीरे लागू किया जाय। कार्यकर्त्ताओं को बहुत सोच विचार कर चुना जाय और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें परामर्श एवं सहायता दी जाय। उनको एक बार जिम्मेदारी देकर उन पर पूरा विश्वास किया जाय। कार्यकर्त्ताओं के चुनाव के समय शिक्षक इस बात का प्रयत्न करें कि बालक गलत लड़कों को न चुनें क्योंकि स्वशासन तभी सफल हो सकता है जब उसके प्रमुख कार्यकर्त्ता कुशल हो। उन्हीं के ऊपर स्वशासन की सफलता निर्भर रहती है। ये कार्यकर्त्ता मॉनीटर या Prefect हो सकते हैं। कार्यकर्त्ताओं के चुने जाने के पश्चात् उन्हें कार्य-भार सौंपा जाय। उनका एक मिलने का कमरा हो, जिसे वे अपने कार्यालय के रूप में प्रयोग कर सकें। इन कार्यकर्त्ताओं में समस्त कक्षाओं के प्रतिनिधियों का होना जरूरी है। अध्यापकों एवं प्रधान अध्यापक को उनके स्वशासन सम्बन्धी कार्य में विशेष रुचि लेनी चाहिये नहीं तो स्वशासन असफल हो सकता है।

स्वशासन की क्रियाओं में हम निम्नलिखित बातों को सम्मिलित कर सकते हैं :—

(१) विद्यालय में उत्सवों का प्रबन्ध जैसे पुरस्कार-वितरण, अभिभावक-दिवस, संगीत-सम्मेलन, नाटकीय प्रदर्शन, आदि।

(२) विद्यालय में सगठित खेल-कूदों का सगठन।

(३) अनुशासन को कायम रखने और दृढ़ बनाने के लिए एक कमेटी।

(४) विद्यालय के वातावरण को शुद्ध रखने के लिये प्रबन्ध करना।

(५) पुस्तकालय, वाचनालय, संग्रहालय आदि का प्रबन्ध करना।

यदि विद्यालय के कार्य को जनतन्त्रीय ढंग से चलाना है तो हमें बालकों को भी प्रशासन में अधिकार देना होगा। जनतन्त्रीय आदर्श की पूर्ति करने के लिये कक्षा-प्रबन्ध, शिक्षण, और खेलकूद की व्यवस्था में विद्यार्थियों का सहयोग भी अपेक्षित है। प्राय देखा जाता है कि ...वर्ग विद्यार्थियों को प्रशासन में छोटे से छोटे अधिकार देने में भी हिचकिचाते हैं और ... कार्यों को करने के लिये अवसर ही नहीं देते। जनतन्त्रीय शिक्षा का सिद्धान्त ही यही ... अध्यापक शिक्षण और कक्षा प्रबन्ध दोनों को जनतन्त्रीय ढंग से चलावें नहीं तो सफलता मिल सकती। कुछ विद्यालयों में बालकों को स्वशासन सम्बन्धी क्रियाओं का सचालन करने ... मौका दिया जाता है लेकिन आधे मन से। फल यह होता है कि ये क्रियायें अन्त में विफल हो जाती हैं। यदि धैर्य और सहनशीलता से कार्य लिया जाय तो प्रारम्भिक विफलतायें भी हमारे मार्ग में बाधा नहीं डाल सकती।

(३) शिक्षक-अभिभावक सहयोग—अनुशासन को दृढ बनाने मे अध्यापको और विद्यार्थियो के माता-पिता अथवा अन्य अभिभावको के बीच सहयोग की बहुत आवश्यकता है। इस प्रकार का सहयोग कई प्रकार से महत्वपूर्ण है। यदि शिक्षको बालक को भली प्रकार समझना चाहते हैं तो उन्हे उनके अभिभावको से सम्बन्ध रखना पडेगा। शिक्षक लडको के पिता अथवा अभिभावको के स समय सम्पर्क मे आते हैं जब लडके कोई अपराध कर बैठते हैं और फलस्वरूप उन्हे अपराध का दण्ड मिलने वाला होता है। शिक्षक और अभिभावको के बीच सहयोग होने से दोनो एक एक दूसरे के प्रति रुचि दिखलाते है। अभिभावक विद्यालय की क्रियाओ से पूर्णतया परिचित रहते है और जो काम विद्यालय नही कर पाता उसको पूरा करने का प्रयत्न करने मे अपना गौरव समझते हैं। इस प्रकार बालक का सर्वांगीण विकास न केवल विद्यालय की ही जिम्मेदारी होती है वरन् घर भी इस कार्य मे सहयोग देता है। जिन बालको के माता-पिता उनके अध्यापको स प्रायः मिलते रहते हैं उन बालको मे विद्यालय और अपने गुरुओ के प्रति विशेष प्रेम और श्रद्धा का भाव जागृत हो जाता है। अत अनुशासनहीनता की समस्या उत्पन्न नही हो पाती।

अब प्रश्न यह है शिक्षक-अभिभावक सहयोग कैसे दृढ किया जाय। प्रधानाध्यापक का कर्त्तव्य है कि प्रत्येक विद्यार्थी के माता-पिता से सम्पर्क स्थापित करना उसी समय से आरम्भ कर ... ध्यापक अपने विद्यालय के गरीब-अमी ... और उनके साथ शील, सहानुभूति और [illegible] ... कि विद्यालय मे प्रवेश दिलाने के इच्छुक अभिभावक की पहली मुलाकात भविष्य के सम्बन्धो की जड को पक्का करती है। इसलिये प्रधानाध्यापक एव अन्य अध्यापको को आरम्भ से ही अभिभावको के साथ सम्पर्क स्थापित करना चाहिये। इसके बाद अपने सम्बन्धो को पक्का करने के लिये विद्यालय मे समय-समय पर ऐसे सम्मेलन किये जा सकते हैं जिनमे अभिभावको की उपस्थिति आवश्यक प्रतीत होती हो, उदाहरण के लिये वार्षिक दिवस (Annual day), पुरस्कार वितरण दिवस (Prize distribution day), टूर्नामिण्ट, नाट्य प्रदर्शन Drill, parade और match आदि के आयोजन किये जाने पर अभिभावको को अवश्य आमन्त्रित करना चाहिये। साथ ही समय समय पर उनको बालको के विषय मे आवश्यक सूचनायें भेजकर उनकी प्रगति से अवगत कराते रहना चाहिये।

अभिभावको का भी यह परम कर्त्तव्य है कि विद्यालय मे आमन्त्रित किये जाते पर स्कूल की कार्यवाहियो को देखें और उनके सम्बन्ध मे अपने विचार प्रकट करें। वे यह भी देखें कि उनके बालक ठीक समय पर विद्यालय जाते हैं और बिना किसी विशेष कारण के अनुपस्थित नही होते हैं। उनका यह भी कर्त्तव्य है कि अपने बालको को बुरी सगति और बुरे कार्यों से बचावें। अध्यापक और अभिभावको का यह सहयोग उस समय सफल एव सार्थक हो सकता है जब दोनो पक्ष अपने अपने कार्यो मे रुचि रक्खे।

बालको मे बहुत से अनुशासनहीनता के लक्षण घर की दुर्व्यवस्था के कारण पैदा हो जाते हैं। घर के गन्दे वातावरण अथवा अभिभावको की उदासीनतापूर्ण-दृष्टि से बालक अनेक दुर्व्यवहार करने लगता है। ऐसी दशा मे बालक के घर पर जाकर उसके माता-पिता मे सम्बन्ध स्थापित करने मे वह अनुशासित हो सकता है।

(४ ... दृढ करने मे विस ... वल मनोवैज्ञानिक ... पूर्ण शक्ति व्यय नही होती इसलिये यदि उनको खेलकूद मे व्यस्त नहीं रक्खा जाता तो वे अन्य समाज विरोधी कार्यों मे सलग्न हो सकते हैं। इस प्रकार वे अनुशासनपूर्ण जीवन बिताने का प्रयत्न कर सकते हैं।

(५) पाठ्यक्रम सहगामिनी क्रियायें—पाठ्यक्रम सम्बन्धी क्रियाओ का अनुशासन की दृष्टि से विशेष महत्व है। इन क्रियाओ द्वारा बालको मे उन गुणो का सचार होता है जो उन्हें कुशल नागरिक बनाने मे मदद करते हैं। यह क्रियायें उन्हें सामूहिक जीवन का अभ्यास कराती हैं और उनमे स्व-अनुशासन की मात्रा का विकास होता है। इस प्रकार पाठ्यक्रम सहगामी क्रियायें अनुशासन को दृढ बनाने मे मदद करती हैं। इन क्रियाओं की उपयोगिता और सार्थकता के विषय मे विस्तारपूर्वक आगे उल्लेख किया जायगा, सक्षेप मे क्रियायें निम्नलिखित हैं—

(२) छात्रों की कमेटियाँ उनके सदस्यों के कम अनुभवों होने के कारण गलत निर्णय ले लेती हैं जिससे विद्यालय के प्रशासन में कठिनाई आ जाती है।

(३) यदि कमेटी का प्रधान अयोग्य व्यक्ति हुआ तो कमेटी का कार्य चौपट हो जाता है। यदि उसका चुनाव छात्रों द्वारा ही हुआ है तो उसको हटाने की समस्या पैदा हो जाती है। इस कठिनाई को दूर करने के लिये अध्यक्ष का चुनाव छमाही हो सकता है।

(४) योग्य छात्र इन समितियों और सभाओं में सक्रिय भाग नहीं लेते क्योंकि वे समझते हैं कि ऐसा करने से उनकी लिखाई पढ़ाई का नुकसान होगा। लेकिन उनको यह पता चल जाय कि ऐसी सभाओं में सक्रिय भाग लिये बिना शिक्षा अधूरी रह जायगी तो वे अवश्य उ... भाग लेने लगेंगे।

(५) कभी-कभी स्वशासन समितियाँ मुख्यत. दण्ड विधायक बन जाया करती है। स... कठिनाई को दूर करने के लिए उनको सभी प्रकार के कार्य सौंपे जाने चाहिए।

(६) कभी-कभी बाल सभाओं में प्रधानाचार्य अथवा प्रधानाध्यापक अपनी सम्मति इ... पर थोपने का प्रयत्न करते हैं। फल यह होता है कि बालकों को उससे अरुचि हो जाती है। छात्र... को जब तक कोई अधिकार अथवा शक्ति (authority) नहीं मिलती तब तक वे उसमें आनन्द नहीं लेते।

मेक कोन (Mc Kown H. C.) का कहना है कि स्वशासन विद्यालय में स्थापित हो ही नहीं सकता क्योंकि

(१) छात्रों में निर्णय लेने की परिपक्वता नहीं होती।

(२) प्रधानाध्यापक ही विद्यालय के कार्यकलापों का जिम्मेदार होता है। अतः जब तक इस उत्तरदायित्व से छात्रों को वंचित रखा जायगा, जब तक अकेले प्रधानाध्यापक को ही गलतियों के लिए दोषी ठहराया जायगा तब तक बाल सभाएँ सफल हो ही नहीं सकती।

बाल सभा की सफलता के निर्णायक तत्व—बाल सभा का कार्य विद्यालय में जीवन (Corporate life) की स्थापना है। केवल अनुशासन हीनता को रोकना ही उसका कार्य नहीं है। यदि विद्यालय के सभी कार्यों में बाल सभा भाग लेती है और विद्यालय का अभिन्न अंग बन जाती है तो वह निश्चय ही सफल होगी। इसका अर्थ यह होगा कि विद्यालय का प्रत्येक छात्र उसमें भाग लेगा। विद्यालय के सचालन में प्रत्येक छात्र को हाथ बंटाना होगा। अध्यापकों को अपने शिष्यों की योग्यता तथा ईमानदारी में विश्वास रखना होगा। अध्यापकों को सयम से काम लेना होगा। यदि प्रधानाध्यापक ने [illegible] और अध्यापकों का उत्साह क्षीण हो सकता है। [illegible] अपने सारे कार्य प्रजातांत्रिक ढंग से करने होंगे। [illegible] परिपक्वता चाहता है तो उसको धीरे-धीरे बाल सभा को सौंपा जाय। [illegible] योग्यता और मानसिक उनका निरन्तर पर्यवेक्षण होता रहना चाहिए। इसका मतलब यह है कि अध्यापकों की जिम्मे-दारियाँ छात्र-अनुशासन के स्थापित होने पर अन्त नहीं हो जातीं।[2]

[illegible] it in name only i. e. to call self [illegible] or her view when the prefects [illegible] students Nor is it of any value to have a system of self government with the master or mistress always just round the corner to exercise authority.

—H. G. Steed

2. A School, city state, student council or any other form of student management requires a constant and intelligent supervision in which neither dictation nor aloofness is conspicuous."

—W. R. Smith

अध्याय ८

छात्रावास

आवश्यकता और लाभ

Q. 1 Discuss the importance of a hostel for a school What advantages can the pupils derive from it ?

छात्रावास की आवश्यकता—जिन छात्रों के माता-पिता का स्थानान्तर होता रहता है उनको छात्रावास में ही रहना पड़ता है क्योंकि स्थानान्तर से छात्रों की लिखाई-पढाई में बाधा उपस्थित हो जाती है। जिन अभिभावकों को अपने बच्चों की शिक्षा के लिये पड़ोस में कोई अच्छा स्कूल दिखाई नहीं देता वे अपने बच्चों को ऐसे स्कूलों में दाखिल करते हैं जिनमें छात्रावास की सुविधा मिल सके। घर का वातावरण खराब होने के कारण कुछ विद्यार्थियों को छात्रावासों की शरण लेनी पड़ती है। इस प्रकार छात्रावास कुछ छात्रों के लिये नितांत आवश्यक हो जाता है।

छात्रावास में रहने से लाभ

बालकों में सामूहिकता, सहयोगिता और आत्म-निर्भरता की भावनाएँ उत्पन्न करने के लिये विद्यालय में छात्रावास का जितना अधिक महत्वपूर्ण स्थान रहता है उतना विद्यालय के अन्य किसी अचेतन साधन का नहीं रहता। बालक विद्यालय में जिन बातों को सीखता है, उनका अभ्यास छात्रावास में कर सकता है। एक आदर्श छात्रालय में विनय स्थापन में भी सहायता मिलती है क्योंकि यहीं पर रहकर बालक स्वशासन की व्यावहारिक शिक्षा ग्रहण करता है। उसके जीवन पर छात्रावास के अध्यक्ष के व्यक्तित्व का प्रभाव इतना अधिक पड़ता है कि जीवन भर उसे वह भूलता नहीं। छात्रावास में यह अध्यक्ष आवश्यक नियन्त्रण द्वारा उपयुक्त वातावरण देकर शारीरिक तथा मानसिक विकास की गति को तीव्रतम कर देता है। छात्रावास से बालक को जो लाभ हो सकते हैं वे नीचे दिये जाते हैं—

(१) छात्रावास में रहकर बालकों में सहयोग से रहने की प्रवृत्ति जाग्रत हो जाती है। छात्रावास में स्वशासन प्रणाली इस प्रकार सगठित होती है कि उसमें विनय और आत्म निर्भरता की भावनायें पैदा हो जाती हैं।

(२) एक कुटुम्ब के सदस्य की भाँति रहकर बालक छात्रावास में वही सुरक्षा, सहानुभूति, वात्सल्य का अनुभव करता है जो उसे घर पर मिल सकती है। यहीं रहकर वह सीख लेता है कि उसे अपनी सुविधाओं और रुचियों को दूसरों की रुचि और सुविधाओं के लिये निछावर कर देना है।

(३) छात्रावास के अनुशासित जीवन बिताने के कारण बालक में विनयशीलता स्वतः आ जाती है और उसके आलसी, विनयहीन और उद्दण्ड होने की सम्भावना कम रहती है क्योंकि वह छात्रावास के नियमों का पालन करने का सदैव प्रयत्न करता रहता है।

(४) प्रत्येक कार्य में अपनी जिम्मेदारी समझने वाला यह बालक आमदनी को उचित ढग से खर्च करना सीख लेता है।

इन सब कारणों से छात्रालय के उद्देश्यों की पूर्ति करता है। वस्तुतः छात्रावास रहित विद्यालय को पूर्ण विद्यालय नहीं कहा जा सकता क्योंकि वह विद्यालय के मुख्य उद्देश्य सम्पूर्ण व्यक्तित्व के समन्वित विकास को किसी प्रकार भी पूरा नहीं कर सकता। इसके बिना विद्यालय समाज का लघुरूप नहीं बन सकता।

इसीलिये विद्यालयों से सम्बन्धित छात्रावास रखने की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। गुरुकुल पद्धति में छात्र आश्रम में निवास करते थे। मध्ययुग में भी पाठशालाओं, मठों, बिहारों

मन्दिरों तथा मसजिदों के साथ विद्यार्थियों के ग्रावास की व्यवस्था भी होती थी। ग्राधुनिक युग में भी विद्यालयों में छात्रावास की व्यवस्था ग्रवश्य रहती है। ग्राश्रम पद्धति में तो प्रत्येक छात्र को छात्रवास में रहना ग्रनिवार्य होता है किन्तु शिक्षा के व्यापक प्रसार के साथ-साथ छात्रावास की परम्परा भग्न होती जा रही है। इन विषम परिस्थितियों के कारण छात्रावास का महत्व कम नहीं हो जाता है। वह विद्यालय का ग्रभिन्न ग्रङ्ग ग्रौर विद्यालय के उद्देश्यों की पूर्ति करने का ग्रत्युत्तम साधन है।

छात्रावास में रहने से हानियाँ—यदि छात्रावास में बालकों पर उचित नियन्त्रण न रखा जाय तो वे लाभदायक होने के स्थान पर हानिकर साबित हो सकते हैं। यदि छात्रावास का ग्रध्यक्ष उदासीन, लापरवाह ग्रौर ग्रयोग्य है तो उसके छात्र भी बिगड़ जाते हैं। ऐसी दशा में छात्रावास हानिकारक हो जाता है क्योंकि उसमें पढ़ाई-लिखाई के वातावरण का ग्रन्त हो जाता है। छात्र ग्रपना समय व्यर्थ की गपशप में बिताते रहते हैं। जब छात्र पर किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं होता तब उनमें बुरी ग्रादतों का उदय होने लगता है। वे ग्रवाछनीय क्रियाग्रों में भाग लेने लगते हैं ग्रौर ग्रपने जीवन को बिगाड़ डालते हैं। कुछ छात्र जिनमें स्वाभिमान ग्रौर दर्द की मात्रा ग्रधिक होती है गुटबन्दी करके लड़ाई-झगड़ों में ग्रपना ग्रमूल्य छात्र-जीवन नष्ट कर डालते हैं। छात्रावास में रहने वाला छात्र ग्रधिकतर ग्रपव्ययी हो जाता है। लेकिन ये सब दोष उसके ऊपर नियन्त्रण के ग्रभाव में पैदा हो जाते हैं।

छात्रालयाध्यक्ष ग्रौर उसका उत्तरदायित्व

Q. 2. Discuss the duties and responsibilities of superintendent of a hostel How can he attend to the physical and moral health of the boarders?
(B.T. 1957)

स्कूल में छात्रावास का ग्रध्यक्ष एक महत्वपूर्ण पदाधिकारी होता है। इस पद के लिए चुनाव करते समय प्रधानाध्यापक को उसकी योग्यता, ग्रनुभव ग्रौर प्रतिष्ठा का ध्यान रखना चाहिये क्योंकि उसके उत्तरदायित्व गृहपति के समान होते हैं जो छात्रावास के छात्रों को ग्रपने बच्चों की तरह समझ कर उनका शारीरिक, मानसिक ग्रौर नैतिक स्वास्थ्य का ध्यान रख सके ग्रौर उनके सुख ग्रौर सुविधा का ध्यान रखकर उनके साथ पितृवत् ग्राचरण करे। छात्रावास के प्रबन्धकर्ता का काम बड़ा ही जटिल है, उसके लिए बड़े कौशल, धैर्य ग्रौर वैज्ञानिक ज्ञान ग्रौर चतुराई की ग्रावश्यकता है।

उसके कर्त्तव्य—छात्रालय के ग्रध्यक्ष का मुख्य कर्त्तव्य है बालकों के शारीरिक, मानसिक ग्रौर नैतिक विकास में पूर्ण सहयोग। इस कार्य के लिए उसे निरीक्षण (Superintendence) करना पड़ता है निम्नलिखित बातों का :—

(१) भोजन
(२) रहन सहन
(३) स्वास्थ्य ग्रौर खेल
(४) छात्रावास के संगठन, ग्रौर
(५) ग्रान्तरिक व्यवस्था

निरीक्षण का कार्य नियमित रूप से तथा एक व्यावहारिक प्रणाली के ग्रनुसार होना चाहिए। विद्यार्थी ग्रपने खाली समय का किस प्रकार उपयोग करता है? उसके मानसिक विकास के साथ साथ नैतिक विकास लाने के क्या उपाय ग्रौर साधन प्रस्तुत किए जा सकते हैं? किस प्रकार वह ग्रभिभावकों की तरह उनके साथ व्यवहार प्रदर्शन कर सकता है? किस प्रकार छात्रावास में घर जैसा वातावरण उत्पन्न किया जा सकता है? इन समस्याओं ग्रौर प्रश्नों पर छात्रालय ग्रध्यक्ष ध्यानपूर्वक विचार करता है ग्रौर उन्हें उसी प्रकार से व्यवस्थित करने का प्रयत्न करता है।

ग्रध्यक्ष के शारीरिक स्वास्थ्य विषयक कर्त्तव्य—ग्रध्यक्ष को सभी छात्रों के स्वास्थ्य के विषय में सतर्क रहना है। उसे नियमित भोजन ग्रौर संतुलित भोजन, सफाई, व्यायाम ग्रौर [illegible] की उचित व्यवस्था करनी होती है। नियमित भोजन की [illegible] के लिए [illegible] करके दी जा सकती है। [illegible]

सभी कार्यों के लिए समय विभाजन तैयार कर दिया जाय और बालकों को उसका पालन करने का आदेश दे दिया जाय। ऐसा होने से समय का अपव्यय और दुरुपयोग नहीं हो सकेगा।

सन्तुलित भोजन—सन्तुलित भोजन में प्राय: हम निम्नलिखित पदार्थों को सम्मिलित करते हैं। आटा १२ औंस, चावल ६ औंस, दूध २० औंस, घी १ औंस, तेल १ औंस, जमीन के अन्दर होने वाली तरकारियाँ ८ औंस, बन्दगोभी ८ औंस, दाल १ औंस और फल ४ औंस। इन पदार्थों में बालक के लिए आवश्यक प्रोटीन, चर्बी, कार्बोहाइड्रेट, लवण और विटामिन मिल सकते हैं। अध्यक्ष को यह ज्ञात होना चाहिए कि जिस भाग में उसका छात्रावास स्थित है उसके भोज्य पदार्थ क्या-क्या हैं, और उनमें से भी विद्यार्थियों के लिए उत्तम भोजन क्या है, भिन्न प्रकार के भोज्य-
पदार्थों का मूल्य [illegible] प भोज्यपदार्थ में
कौन-सा विटामिन [illegible] चर्बी की मात्रा
क्या है। अध्यापक [illegible] तार पकाया जाता
है और विटामिन [illegible]

इस सम्बन्ध में अध्यक्ष को यह भी देखना होगा कि छात्रावासियों को स्वच्छ और शुद्ध पानी मिल रहा है या नहीं। छात्रावास के प्रयोग में आने वाले कुएँ नियमित ढंग से साफ किये जाते हैं या नहीं?

सफाई—स्वच्छ वायु और प्रकाश स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त आवश्यक है। अध्यक्ष का कर्त्तव्य है कि बालकों के कमरों में स्वच्छ वायु और प्रकाश के प्रबन्ध की व्यवस्था करे। वह नियमित ढंग से यह देखता रहे कि छात्रावास के निवासकक्ष प्रतिदिन साफ किये जाते हैं, उनकी खिड़कियाँ, दरवाजे और अलमारियाँ साफ हैं, रसोई-घर, भोजनालय, भण्डार गृह की सफाई, शौचालयों, स्नानागारों, नालियों की सफाई नियमित रूप से देखी जाय। अस्वच्छता रोगों का कारण है इसलिए सम्पूर्ण भवन की सफाई की ओर छात्रालयाध्यक्ष का ध्यान रहना चाहिए। अभ्यास से सभी सफाई से रहना सीख सकते हैं। यदि सभी छात्रावासी स्वच्छता के अभ्यासी हो जायँ तो कोई कारण नहीं कि छात्रावास में किसी प्रकार की गन्दगी भीतर या बाहर मिले।

व्यायाम और खेल—व्यायाम और खेल की व्यवस्था स्वास्थ्य को सुधारने के लिए की जाती है। शारीरिक विकास के लिये ये क्रियायें आवश्यक हैं ही उनका सम्बन्ध बालकों की मानसिक एवं नैतिक उन्नति में भी है। खेलों में भाग लेने से बालकों की विभिन्न माँसपेशियाँ विशेष काम करती हैं। रक्त सञ्चालन की गति बढ़ने, फेफड़ों के अधिक शुद्ध वायु ग्रहण करने, शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों के क्रियाशील रहने से उचित शारीरिक विकास होता है। खेल में मानसिक शक्तियों को विश्राम मिलता है अत: उनका भी विकास होता है। खेलों द्वारा बालकों में ऐसे गुणों की वृद्धि होती है जो उनके जीवन के लिये और उसे आदर्श नागरिक बनाने के लिये आवश्यक होते हैं। उनसे बालकों में सहयोगिता, लक्ष्य की एकाग्रता, आत्मनिर्भरता, कर्त्तव्यपरायणता, ईमानदारी की भावनायें आती हैं। इस प्रकार खेल और व्यायाम की व्यवस्था करके छात्रालय अध्यक्ष अपने लड़कों के शारीरिक, मानसिक और नैतिक विकास में सहयोग दे सकता है।

अध्यक्ष का कर्त्तव्य है कि अपने बालकों के लिये खेल के मैदान और खेल की सामग्री का उचित प्रबन्ध करे और प्रत्येक बालक को नियमित रूप से खेलों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करे। विभिन्न खेलों के कप्तान और नायक नियुक्त कर उनका नियमित रूप से निरीक्षण करता रहे। इनके अतिरिक्त कमरे के अन्दर खेले जाने वाले खेलों का भी प्रबन्ध किया जा सकता है। खेलों की उचित व्यवस्था और संगठन का कार्य एक समिति को सौंपा जा सकता है।

चिकित्सा—छात्रावास के पास एक छोटा सा चिकित्सालय अवश्य होना चाहिए। समय-समय पर संक्रामक रोगों से बचने के लिए छात्रालय में दवाइयाँ छिड़की जानी चाहिए। बालकों को रोगों से दूर रखने के लिए टीके लगवाये जायँ।

छात्रावास में एक कमरा रोगियों के लिए रखा जा सकता है जो छात्रावास से कुछ दूर पर हो। चिकित्सालय के अध्यक्ष को भत्ता दिया जा सकता है। यदि ऐसा न हो सके तो उसकी देखभाल रेडक्रास सोसाइटी के सदस्यों या छात्रालय के बड़े-बड़े विद्यार्थियों द्वारा की जा सकती है। इसमें मामूली दवाइयाँ जैसे रेंडी का तेल, आयोडीन, ऐस्पिरीन, बोरिक ऐसिड, प्लास्टर आदि रखी जा सकती हैं।

नैतिक विकास सम्बन्धी कर्त्तव्य

शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य का चरित्र से घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है। सदाचार ही स्वास्थ्य की कुंजी है और दुराचार स्वास्थ्य का शत्रु। यदि छात्रावासियों में सदाचार की भावनाएँ जाग्रत करनी हैं तो हमें उनको बुरी आदतों से बचाना होगा। चोरी से बाहर निकलकर सिनेमा देखना, अध्ययन काल में विद्यालय से भाग कर कमरे में पड़े गप्प लड़ाते रहना, धूम्रपान करना, चोरी, आलस्य आदि दुर्गुणों से हमें उन्हें बचाना होगा। इसमें हमें अभिभावकों के सहयोग की आवश्यकता है। बालकों के पास आवश्यकता से अधिक रुपया आने पर वे फिजूलखर्ची और अन्य दुर्गुणों में फँस सकते हैं अतएव हमें ऐसे नियम बनाने पड़ेंगे जिनको पालन करने से वे दुर्गुणों से अपने आपको बचा सकें। छात्रों में नैतिकता का अभाव होता जा रहा है इसलिये छात्रालयों को नैतिक शिक्षा का प्रशिक्षण केन्द्र बनाना होगा।

छात्रों में उत्तरदायित्व, स्वावलम्बन, सहानुभूति, समता, एवं संयम आदि गुणों का विकास करने के लिये उनको उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यों में संलग्न रखना होगा। यह तभी हो सकता है जब छात्रालयाध्यक्ष छात्रावास की सभी क्रियाओं के लिये समितियाँ बना दें और फिर उनके ऊपर अपना नियन्त्रण रखें। ऐसी समितियाँ सफाई, भोजन, खेलकूद, अनुशासन, वाचनालय, पुस्तकालय, आदि की व्यवस्था के लिए बनाई जा सकती है। इस प्रकार छात्रों को भावी जीवन के लिये तैयार किया जा सकता है। अनुशासित और नियमित जीवन की व्यवस्था करके ही छात्रों का नैतिक विकास किया जा सकता है।

छात्राओं के छात्रावासों की समस्यायें (Problems connected with girls' hostels)

भारत में छात्राओं के छात्रावासों का अभी बहुत अभाव है। इन छात्रावासों की अपनी खुद की समस्यायें हैं जिनका निराकरण अभी नहीं हो सकता जब तक समाज के ढाँचे में परिवर्तन हो न हो जाय। ये समस्यायें निम्नलिखित है —

(१) अधिकांश अभिभावक अपनी लड़कियों को अपने से दूर रखने में हिचकते हैं। सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ इस अवस्था के लिये उत्तरदायी हैं।

(२) छात्रावासों की प्रमुख समस्या सुरक्षा है। अभी समाज में अवांछनीय तत्वों की कमी नहीं है। समाज में अभी ऐसे भेड़िये मौजूद हैं जिनका भय प्रतिष्ठित व्यक्तियों को सदैव बना रहता है। अतः छात्राओं का निवास स्थान चहार-दीवारी से घिरा हुआ होने पर भी अभी तक सुरक्षित नहीं है।

(३) छात्रावासों के अध्यक्ष और कर्मचारियों में महिलाओं की ही नियुक्ति की जा सकती है। किन्तु ऐसे स्त्री कर्मचारी और अध्यक्षों की कमी देश में होने के कारण महिला छात्रावास ठीक प्रकार से चल नहीं पाते।

स्वतन्त्र भारत में लड़कियों की शिक्षा पर विशेष जोर दिया जा रहा है। फलस्वरूप उनके लिये छात्रावासों की आवश्यकता बढ़ती जा रही है। इसलिये हमें महिला छात्रावासों का उचित प्रकार से संगठन करना होगा। उनके भीतर आने-जाने वालों पर प्रतिबन्ध लगाने होंगे, और नियमों का पालन सख्ती से करना होगा। उनके वातावरण को शुद्ध बनाये रखने से ही उनका जीवित रहना सम्भव है।

छात्रालय का आन्तरिक संगठन

1. How would you regulate the life of a boarder during his stay in the **hostel? Give a detailed plan.** *(Agra B. T. 1954)*

कुछ विद्वानों की राय में छात्रावास-व्यवस्था कार्य विद्यालय-व्यवस्था कार्य से अधिक कठिन है, क्योंकि छात्रावास में छात्र विद्यालय की अपेक्षा अधिक समय तक रहते हैं इसलिये छात्रावास अध्यक्ष को अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। अध्यक्ष का पद अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस पद के लिये ऐसे अध्यापक की नियुक्ति की जा सकती है जो छात्रावास के उत्तरदायित्व को अच्छी तरह से निभा सके। उसे सुयोग्य, अनुभवी और प्रतिष्ठित होना चाहिये क्योंकि उसके कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व गृहपति के समान होते हैं। जिस प्रकार गृहपति अपने बालकों के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य, चारित्रिक एवं नैतिक विकास का ध्यान रखता है उसी प्रकार छात्रावास के अध्यक्ष के भी छात्रावास के छात्रों के प्रति निम्नलिखित कर्त्तव्य हैं—

(१) छात्रावास के सभी छात्रों के विषय मे अध्यक्ष को सचेत रहना चाहिये। स्वास्थ्य के लिये नियमित जीवन, संतुलित आहार, व्यायाम और चिकित्सा की व्यवस्था छात्रावास के जीवन को सुखमय बनाने के लिये आवश्यक होती है इसलिये बालको मे नियमित जीवन की प्रेरणा पैदा करना छात्रावास अध्यक्ष का प्रथम कर्त्तव्य है। छात्रावास मे प्रत्येक कार्य का समय निश्चित होना चाहिये और एक समय विभाग (time table) बनाकर नियमित जीवन व्यतीत करने के लिये बालको को प्रोत्साहित करते रहना चाहिये। उठने सोने, भोजन करने, पढ़ने-लिखने खेलने-कूदने आदि सभी कार्यों का समय निश्चित रहना चाहिये। प्रात काल उठने के बाद शौचादि के पश्चात् शारीरिक व्यायाम के लिये एक समय निश्चित रहना चाहिये जिसमे समस्त छात्रावास के विद्यार्थी इकट्ठे होकर ड्रिल या पी० टी० कर सकें। अध्ययन या विद्यालय की तैयारी के लिये एक विशेष अन्तर (period) होना चाहिये जिसमे सब विद्यार्थी अनिवार्य रूप से अध्ययन कार्य करें। यदि विद्यालय में वाचनालय अथवा एक विशाल अध्ययन कक्ष का प्रबन्ध किया जा सकता है तो विद्यार्थियो को इसमे आकर अध्ययन करने की सुविधा दी जाय लेकिन अध्यक्ष की उपस्थिति उसमे अनिवार्य है। छात्रावासियो के अध्ययन कार्य का पर्यवेक्षण करने के लिये विद्यालय के अन्य अध्यापकों की सहायता ली जा सकती है। किन्तु अध्यक्ष का कर्त्तव्य है कि वह देखे कि प्रत्येक छात्रावासी उस विशेष अध्ययन-कक्ष मे आकर अध्ययन करता है या नहीं। ग्रीष्म ऋतु मे अध्ययन कार्य दोपहर के बाद और शीत ऋतु मे सध्या समय किया जा सकता है।

छात्रावास के अध्यक्ष को इस प्रकार का समय विभाग तैयार करके नोटिस बोर्ड पर टाँग देना चाहिये और उसे इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि छात्रावासी नियमित ढग से कार्य करते हैं। अध्यक्ष को स्वय आदर्श नियमित जीवन व्यतीत करना चाहिए और धैर्यपूर्वक निरन्तर इस बात का प्रयत्न करना चाहिये कि उसके छात्र नियमित जीवन बिताने का अभ्यास कर रहे हैं।

इस समय-तालिका के साथ छात्रावास के नियमों की सूची भी टाँग देनी चाहिये। ये नियम छात्रावास के पारिवारिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाले हों। नियमो का बाहुल्य अथवा नियमों की कठोरता एक परिवार मे असह्य होती है इसलिये नियम ऐसे ही बनाये जायें जिनका पालन आसानी से किया जा सके। रायबर्न ने ऐसे कुछ नियमो का वर्णन विद्यालय के सगठन के सुझाव मे किया है। उनमे से कुछ नियम निम्नलिखित हैं।

(१) यदि किसी छात्रावासी के पास किसी प्रकार का रुपया अथवा कोई अमूल्य वस्तु है तो वह उसको अध्यक्ष के पास रख दे।

(२) यदि कोई छात्र छात्रावास की किसी वस्तु को नष्ट करता है तो उसे उस वस्तु के स्थान पर वैसी ही दूसरी वस्तु रखनी पड़ेगी।

(३) प्रत्येक छात्र का यह कर्त्तव्य है कि वे बिस्तर, अलमारी, कपडे आदि अन्य वस्तुओं को स्वच्छ रक्खें। गन्दे वस्त्रो के लिये प्रत्येक छात्र के पास एक बक्स होना चाहिये। किसी कमरे, अलमारी या सदूक मे भोजन न रक्खें।

(४) धूम्रपान अथवा नशीली वस्तुओ का प्रयोग वर्जित है।

(५) अध्यक्ष की आज्ञा के बिना छात्रावासियो को छात्रावास नही छोड़ना है और न अपने कमरो को बदलना ही है। प्रत्येक दिन प्रात काल पन्द्रह मिनट P.T. आवश्यक है। उससे छुट्टी पाने के लिये अध्यक्ष की आज्ञा ली जानी चाहिये। अध्यक्ष की आज्ञा के बिना कोई भी छात्रावासी अपने कमरे मे अतिथि को ठहरा नही सकता।

(६) प्रत्येक छात्रावासी का कर्त्तव्य है कि उस कमेटी को सब प्रकार का सहयोग प्रदान करे जो छात्रावास की व्यवस्था के लिये नियुक्त की गई है। इस कमेटी के सदस्य केवल वही छात्रावासी हो सकते हैं जो छात्रावास मे कम से कम छ महीने रह चुके हैं।

कोई भी छात्रावासी विद्यालय मे पढाई के समय छात्रावास मे प्रधान अध्यापक की आज्ञा के बिना नही रह सकता।

इस प्रकार के नियमो से छात्रावासी अपने जीवन को नियमित बना सकते हैं। ये नियम यथासम्भव एव सरल होने चाहिये जिससे उनके पालन मे किसी प्रकार की ढिलाई न आ सके। अनुशासन और नियमो के भीतर रह कर ही छात्रों को सुनागरिकता की शिक्षा मिल सकती है।

छात्रावास नागरिकता की शिक्षा के लिये महत्वपूर्ण स्थान है और प्रत्येक छात्रावास अध्यक्ष को अपने छात्रावास के संचालन के लिए प्रजातंत्रीय प्रणाली का प्रयोग करना चाहिये। इस छात्रों का सहयोग प्राप्त कर छात्रावास की विभिन्न क्रियाओं के लिये अलग-अलग समितियाँ बना देनी चाहिए। छात्रावास के प्रत्येक ब्लॉक (block) के लिए एक मानीटर का चुनाव किया जा सकता है जिस पर उस ब्लॉक की सारी व्यवस्था की जिम्मेदारी हो। जिस प्रकार स्वशासन विद्यालय जीवन के लिए महत्वपूर्ण है उसी प्रकार छात्रावास के लिए भी स्वशासन बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। प्रत्येक छात्रावास में एक समिति का चुनाव किया जा सकता है जिस पर छात्रावास के संगठन, अनुशासन और साधारण प्रबन्ध की जिम्मेदारी हो। सफाई, भोजन, खेलकूद, अनुशासन, वाचनालय और पुस्तकालय आदि की व्यवस्था के लिए छात्रावासियों की अलग-अलग समितियाँ चालू की जा सकती हैं। इन समितियों में भाग लेने से बालकों में उत्तरदायित्व, स्वावलम्बन, सहानुभूति, संयम आदि गुणों का उदय और विकास हो सकता है। छात्र सामाजिक जीवन के लिए प्रस्तुत हो सकते हैं और भविष्य में अच्छे नागरिक बन सकते हैं।

छात्रावास के अध्यक्ष का कर्तव्य है कि इन समितियों और मुख्य समिति के कार्यों की देखभाल करना। छात्रावास की सफाई और उसके सुन्दर बनाने का कार्य, प्रत्येक मानीटर के कार्य की देखभाल, हिसाब का ब्योरा तैयार करना, विशिष्ट प्रकार की मीटिंग का प्रबन्ध, अध्ययन एवं ड्रिल में छात्रों की उपस्थिति लेना और अनुशासन सम्बन्धी साधारण समस्याओं को सुलझाने का कार्य उस मुख्य समिति को सौंपा जा सकता है। अध्यक्ष का कर्तव्य है जब वह किसी भी समिति के कार्य का पर्यवेक्षण करे तब वह इस दृष्टि से करे कि उस समिति के सदस्यों में उत्तरदायित्व की भावना पैदा करती है।

स्कूल में स्वास्थ्य रक्षा

Q. 3 As a newly appointed headmaster or headmistress of a high school you discover that no provision exists in your school for the health of the vast majority of boys and girls. Give in outline a programme that would cater for the health needs of the maximum number of boys and girls without imposing impossible demands upon the financial resources of the school.

(Agra B. T. 1958)

प्रत्येक पाठशाला में स्वास्थ्य रक्षा का प्रबन्ध होना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है बालकों का शारीरिक विकास। इस उद्देश्य की पूर्ति उत्तम स्वास्थ्य के बिना नहीं हो सकती। यदि छात्रावासियों की तरह विद्यालय का प्रत्येक सदस्य सफाई से रहने का अभ्यासी हो जाय तो देश में से अनेक रोगों के कारणों को नष्ट किया जा सकता है।

गाँव के बच्चों में पाखानों को स्तेमाल करने की आदत नहीं होती। वे हर जगह थूकने, नाक साफ करने के आदी हो जाते हैं। यदि बालकों को इन गन्दी आदतों के दोष समझा दिए जायँ तो स्वास्थ्य रक्षा हो सकती है। पाठशाला में दो तीन जगह थूकदान-कूड़ादान रखकर बालकों में इधर-उधर ऊटपटांग चीजों, फटे पुराने कागजों, फलों के छिलकों, के फेंकने की बुरी आदत को छुड़वाया जा सकता है। मैदान की सफाई का काम कक्षाओं को बारी-बारी से सौंपा जा सकता है।

विद्यार्थियों के कपड़े, उनके नाखून और दाँत साफ हैं या नहीं यह देख के लिये स्वायत्त शासन प्रणाली का प्रयोग किया जा सकता है जिसमें एक स्वच्छता समिति का चुनाव किया जा सकता है। समिति का सदस्य जो कक्षा की ओर से प्रतिनिधि के रूप में चुन लिया गया है सब विद्यार्थियों की शारीरिक स्वच्छता की कठोर देखभाल कर सकता है और अस्वच्छ विद्यार्थियों को उनके घर या पाठशाला के धुलाई घर में भेज सकता है। व्यक्तिगत स्वच्छता के अतिरिक्त कमरों और भवनों की सफाई भी स्वच्छता समिति को सौंपी जा सकती है।

शिक्षा का एक उद्देश्य यह भी है कि बालकों का शारीरिक विकास किया जाय इसलिये स्वास्थ्य शिक्षा के उद्देश्य शिक्षा के उद्देश्य से भिन्न नहीं है। स्वास्थ्य शिक्षा का उद्देश्य है बालकों को स्वस्थ बनाना, उन्हे स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों से परिचित कराना ताकि वे अपने को

भी स्वस्थ बना सकें तथा अन्य लोगो को स्वस्थ रहने मे सहायता दें।' संक्षेप में स्वास्थ्य शिक्षा द्वारा हम बालको के स्वास्थ्य की रक्षा करने का प्रयत्न करते हैं। उन्हें व्यक्तिगत जीवन को स्वस्थ बनाने से परिचित कराते हैं। उनको स्वास्थ्य विरोधी आदतो के दुष्परिणामो से परिचित करा कर दूर रखने का प्रयत्न करते हैं और विद्यालय और समाज दोनो मे उनके स्वास्थ्य और रक्षा की वृद्धि के लिये उचित वातावरण और सामग्री उपस्थित करते हैं।

स्वास्थ्य शिक्षा के इन उद्देश्यो को ध्यान मे रखकर स्वास्थ्य रक्षा अथवा स्वास्थ्य वृद्धि के सम्बन्ध मे किस प्रकार का प्रोग्राम तैयार किया जाय यह विचारणीय विषय है। स्वास्थ्य रक्षा के विषय मे प्रत्येक प्रधान अध्यापक और अध्यापको को निम्नलिखित बात पर ध्यान रखना चाहिये —

(१) विद्यालय भवन ऐसे भूमिखण्ड पर बनाया जाय जहाँ का वातावरण शुद्ध हो। विद्यालय के पास यथासम्भव मिल, फैक्टरी, दलदल, कब्रिस्तान आदि न हो।

(२) विद्यालय भवन की सफाई प्रतिदिन होनी चाहिये और उसमे कीटाणु नाशक द्रव छिड़का जाय।

(३) विद्यालय का बगीचा, क्रीड़ा स्थल, वाचनालय एव पुस्तकालय प्रतिदिन साफ किये जायँ और उन्हे सब प्रकार से आकर्षक बनाया जाय।

(४) विद्यालय की साजसज्जा और फर्नीचर साफ हो। फर्नीचर ऐसा हो जिस पर बालक आराम से बैठ सकें और बिना थकान के घण्टो कार्य कर सकें।

(५) विद्यालय मे वायु और प्रकाश का समुचित प्रबन्ध हो।

(६) विद्यालय का कार्यक्रम ऐसा हो जिससे बालक जल्दी ही ऊब न जायँ वरन् उसे रुचि और प्रेम के साथ करते रहें।

(७) एक वर्ष मे कम से कम एक बार बालको के स्वास्थ्य की परीक्षा की जाय और विद्यालय का चिकित्सक बालको के विषय मे जैसी सम्मति दे उसका पालन किया जाय।

खेद का विषय है कि स्वास्थ्य परीक्षा उचित ढग से नहीं की जाती और न डाक्टर की सम्मतियो पर अमल ही किया जाता है यह कार्य तभी हो सकता है जब शिक्षक और अभिभावको के बीच सहयोग हो।

विद्यालय के समस्त बालको की स्वास्थ्य परीक्षा के सम्बन्ध मे प्रधान अध्यापक या शिक्षको को यह समझ लेना चाहिये कि बालको की स्वास्थ्य रक्षा उनकी ही जिम्मेदारी है, क्योंकि शिक्षा शरीर और मन दोनो से ही सम्बन्ध रखती है। अतः उन्हें बालको के स्वास्थ्य की जाँच के बाद की कार्यवाही मे विशेष रुचि लेनी चाहिए। स्वास्थ्य की जाँच के विषय मे निम्नलिखित बातो पर उन्हे विशेष जोर देना चाहिये :—

(१) स्वास्थ्य की जाँच पूरी-पूरी की जाय। सबसे पहली जाँच उस समय की जा सकती है जब बालक का स्कूल मे दाखिला कराया जाता है। उसके बाद त्रैमासिक, छः मासिक जाँच की जा सकती है। प्रत्येक बालक की स्वास्थ्य परीक्षा पूरी-पूरी की जाय और स्वास्थ्य में किसी प्रकार की कमी होने पर उस कमी को दूर करने का प्रयत्न किया जाय नहीं तो उससे किसी प्रयोजन की सिद्धि नहीं हो सकती है। जिन बालको के स्वास्थ्य मे कोई कमी पायी जाय या जिनको कोई बीमारी हो उनके अभिभावको को उस बीमारी को दूर करने के लिए बार-बार सचेत किया जाय और उनके इलाज की उचित व्यवस्था की जाय। प्रायः देखा जाता है कि हमारे यहाँ न तो शिक्षक न अभिभावक और न विद्यालय के चिकित्सक छोटी-छोटी बीमारियो पर विशेष ध्यान देते हैं। उदाहरण के लिए आँखों की कमजोरी, दाँतों का खराब होना, बदहजमी, स्वास का फूलना आदि कुछ ऐसी बातें हैं जिन पर हम ध्यान नहीं देते।

(२) समय-समय पर बालको के स्वास्थ्य की जाँच विशेषज्ञो से कराई जाय। इसके लिए जिन शहरो के बड़े-बड़े अस्पतालो में आँख, गला, कान, सीना, हृदय आदि के रोगो को जानने वाले विशेषज्ञ हुआ करते हैं उन अस्पतालो मे थोड़े-थोड़े बच्चो को ले जाकर उनकी जाँच की व्यवस्था की जाय ऐसा करने से उनके सूक्ष्म से सूक्ष्म रोगो का पता चल सकता है। जिन बालको को रोज दवा लेने की आवश्यकता है उनको रोज दवा लेने के लिए अस्पताल भेजा जाय।

(३) चूँकि हमारे देश में ग्रभिभावक प्रायः ग्रशिक्षित ग्रौर स्वास्थ्य के नियमों से ग्रपरिचित रहते हैं इसलिए बालकों की स्वास्थ्य रक्षा का सारा भार विद्यालय पर ही पड़ता है। ऐसी दशा में बालकों के ग्रभिभावकों को भी प्रशिक्षित करने की ग्रावश्यकता है। उनको यह समझाया जाय कि स्वास्थ्य के नियम क्या हैं, बालकों को कौन-कौन से रोग हो सकते हैं उन्हें दूर करने के क्या-क्या उपाय हैं ?

(४) छूत की बीमारियों से बालकों को बचाने के लिए ग्रनिवार्य चेचक, मोतीझरा, ग्रौर हैजे के टीके लगवा देने चाहिए। यदि किसी बालक को ऐसा रोग लग जाय तो जब तक वह पूर्ण स्वस्थ न हो जाय विद्यालय में नहीं ग्राने देना चाहिये। जिन बालकों को दाद, खाज, खुजली हो गयी है उन्हें दूसरे बच्चों से ग्रलग रक्खा जाय ग्रौर उनके इलाज की उचित व्यवस्था की जाय।

(४) बालक दूसरे बच्चों से बीड़ी सिगरेट पीने के बुरे शौकों को झट ग्रहण कर लेते हैं। विद्यालय की सबसे बड़ी जिम्मेदारी यह है कि ऐसे बुरे शौक जिनसे स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है बालकों में न ग्राने दिये जायें।

(५) स्कूल के ग्रास-पास जो फल या मिठाई बेचने वाले रहते हों वे किसी प्रकार की सड़ी गली वस्तु न बेचने न पावें।

यदि उपर्लिखित बातों पर ठीक-ठीक ध्यान दिया जाय तो बालकों के स्वास्थ्य की रक्षा की जा सकती है। स्वास्थ्य रक्षा के बाद स्वस्थ्य वृद्धि पर भी विद्यालय के प्रशासकों को ध्यान देना चाहिए। खेल कूद, व्यायाम, पीटी, सामूहिक ड्रिल, ग्रादि का ग्रायोजन स्वास्थ्य वृद्धि के लिये किया जा सकता है।

खेल कूद

[illegible]

llel bars पर कई तरह की कसरतें कर सकते हैं। विद्यालय की समय तालिका में प्रतिदिन P. T. ग्रौर मास खेल के लिये समय निश्चित होना चाहिए। गर्मी के दिनो मे यह सामूहिक ड्रिल विद्यालय का कार्य प्रारम्भ होने से पहले कराई जा सकती है ग्रौर जाड़े के दिनो मे बीच के ग्रन्तरकाल मे इसकी ग्रालोचना की जा सकती है। ऐसा करने से बालको की मानसिक थकान दूर हो सकती है। दूसरे कार्यक्रम मे परिवर्तन ग्रा जाने से काम मे जी ग्रधिक लगता है।

विद्यालय के बालको की स्वास्थ्य रक्षा ग्रौर वृद्धि के लिये शारीरिक स्वास्थ्य रक्षा का भी ग्रायोजन किया जा सकता है। स्वास्थ्य-शिक्षा के ग्रन्तर्गत हम निम्नलिखित विषय बालको को पढ़ा सकते हैं।

(१) स्वास्थ्य सम्बन्धी सामान्य नियम—सोने, उठने, कार्य करने, खेलने ग्रादि के समयो का निर्धारण।

(२) भोजन का प्रकार उसको तैयार करने ग्रौर खाने के विषय में ग्रावश्यक सावधानियाँ—

(३) जल की ग्रावश्यकता ग्रौर शुद्धता।

(४) शरीर विज्ञान—शरीर का ढाँचा, पाचन क्रिया ग्रादि।

(५) सक्रामक बीमारियो के होने के कारण, उनके लक्षण तथा रोकने के उपाय।

छोटी-छोटी कक्षाग्रो मे शिक्षको को ऊपर दिये गये विषयो का केवल सैद्धान्तिक ज्ञान देना ही पर्याप्त नहीं है। उन्हें व्यावहारिक ज्ञान भी देना चाहिए। इन कक्षाग्रो को प्रतिदिन यह देख लेना चाहिए कि उनके बालक साफ-सुथरे हैं या नहीं, उनके नाखुन कटे हैं या नहीं, दांत ग्रौर वस्त्र साफ हैं या नही। छोटी-छोटी कक्षाग्रो मे ध्यान देने से ग्रागे चलकर बालक [illegible] बातें स्वयं सीख जाते हैं। ऊँची कक्षाग्रो मे बालको को भी स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमो का

पुस्तकीय ज्ञान का भाषण इतना अधिक लाभदायक नहीं होता जितना कि सामने व्यवहार मे रक्खा हुआ आदर्श हुआ करता है। यह व्यावहारिक ज्ञान उन्हे विद्यालय मे स्वच्छ वातावरण उपस्थित करके अथवा स्वास्थ्य सम्बन्धी फिल्मों को दिखा कर किया जा सकता है इस प्रकार की फिल्मो मे स्वास्थ्य सम्बन्धी कई उपयोगी बातें बालकों के सामने रखी जा सकती हैं जैसे,—खराब भोजन से क्या हानि होती है, मक्खी या मच्छर क्या क्या बीमारी फैलाते हैं, रोशनी और हवा की रुकावट के कारण किस प्रकार के रोग फैलने लगते हैं। सन्तुलित भोजन मे कौन-कौन सी वस्तुएं सम्मिलित की जा सकती हैं। इस प्रकार की फिल्मे भारत सरकार के स्वास्थ्य मंत्रणालय द्वारा तैयार की जाती हैं, प्रत्येक प्रधान अध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह ऐसी फिल्मों को बालकों को दिखाने का प्रयत्न करें।

प्रत्येक विद्यालय मे जूनियर रेड क्रास सोसाइटी होनी चाहिए। साथ ही साथ प्राथमिक चिकित्सा सम्बन्धी भाषणो का भी आयोजन किया जा सकता है। वर्ष मे एक बार नियमित ढग से पाठशाला के प्रत्येक विद्यार्थी की पूरी तरह डाक्टरी परीक्षा होनी चाहिए। परीक्षा का परिणाम एक आलेख पत्र (record sheet) पर दर्ज किया जा सकता है जिसे बालक या उसके अभिभावक आवश्यकता पड़ने पर देख सकें। वैसे तो अधिकाश पाठशालाएं डाक्टरो की पहुँच के अन्दर होती हैं। किन्तु यदि कई विद्यालय मिलकर सहकारी भावना के आधार पर किसी एक डाक्टर की सेवाओ का प्रबन्ध कर सकें तो और भी अच्छा है।

इसमें निपुणता प्राप्त करना चाहते हैं। प्रत्येक बालक को क्रिकेट खेलने की सुविधा नहीं दी जा सकती इसलिये जो बालक इसमें विशेष रुचि लेते हैं उनका एक वर्ग बनाया जा सकता है। वॉलीबॉल भी अच्छा खेल है क्योंकि यह कम जगह घेरता है इसलिये थोड़ी सी जगह में ही काफी टीमें खेल सकती हैं।

खिलाड़ियों के समूह बनाते समय कुछ सावधानियाँ बरतनी पड़ती हैं। एक समूह में साधारणतः उन बालकों को रखा जा सकता है जो समान योग्यता के हों। आयु अथवा कद के अनुसार बालकों को वर्गों में बाँटने की आवश्यकता नहीं है। समान योग्यता या निपुणता ही वर्ग विभाजन की कसौटी होनी चाहिये। कहने का तात्पर्य यह है कि जो कद या आयु में छोटा है लेकिन खेल में निपुण है वह बड़े लड़कों के साथ रखा जा सकता है किन्तु फुटबॉल में बहुत छोटे लड़के को बहुत बड़े लड़के के साथ नहीं रखना चाहिये। हॉकी में कद को ध्यान में रखकर वर्ग विभाजन करने की आवश्यकता नहीं है। प्रत्येक वर्ग का नेतृत्व करने वाला एक अध्यापक हो और ऊँची कक्षा के विद्यार्थियों के लिये जिस अध्यापक की नियुक्ति की जाय वह अच्छा खिलाड़ी हो चाहे भले ही वह seniority के अनुसार बहुत ही नीचे पद पर हो। प्रत्येक वर्ग का एक नेता होना चाहिए। इस नेता का चुनाव प्रजातान्त्रिक तरीके से किया जाय। इस नेता को खेल की सारी सामग्री की व्यवस्था करने की जिम्मेदारी सौंप दी जाय। अध्यापक और यह नेता दोनों मिलकर खेलों की समय तालिका अपने वर्ग के लिये बनायें। खिलाड़ियों के दोनों वर्ग एक साथ दो खेल के मैदानों में खेल खेल सकते हैं और आपस में बदल सकते हैं। भिन्न-भिन्न वर्गों के खेल सम्बन्धी समय विभाग को नोटिस बोर्ड पर टाँग देना चाहिए। इस प्रकार का समय विभाग (time-table) नीचे दिया जाता है।

वर्ग	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
१	हाकी (क)	फुटबाल (घ)	वालीबाल	बागवानी	बास्केट बाल	स्काउटिंग
२	हाकी (ख)	बास्केट बाल (ङ)	फुटबॉल	स्काउटिंग	वालीबाल	बागवानी
३	वालीबाल (ग)	हाकी (क)	बास्केट बाल	बागवानी	स्काउटिंग	फुटबाल
४	फुटबाल (घ)	वालीबाल (ग)	हाकी	स्काउटिंग	वालीबाल	क्रिकेट
५	बास्केट बाल (ङ)	बागवानी (च)	स्काउटिंग	क्रिकेट	हाकी	वालीबाल
६	बागवानी (च)	वालीबाल (छ)	क्रिकेट	हाकी	फुटबाल	स्काउटिंग
७	वालीबाल (छ)	हाकी (ख)	वालीबाल	फुटबाल	बास्केट बाल	क्रिकेट

प्रत्येक वर्ग के पास यदि खेलने का सारा सामान मौजूद है तो किसी प्रकार की असुविधा नहीं हो सकती है। यदि खेल का सामान इकट्ठा करने में अधिक व्यय होता है तो दो या दो से अधिक वर्ग सहयोग पूर्वक थोड़े सामान से ही लाभ उठा सकते हैं। वर्ष के आरम्भ में प्रत्येक वर्ग को अधिक से अधिक जितना धन वह खर्च कर सकता है, दिया जा सकता है। प्रत्येक वर्ग को खेल का धन खर्च करने की जिम्मेदारी सौंपी जा सकती है। रायबर्न ने धन को खर्च करने का एक सुन्दर सुझाव पेश किया है उनका कहना है कि प्रत्येक वर्ग को खेल के Fund में धन खर्च करने का अधिकार होना चाहिये। यह वर्ग खेल की आवश्यक सामग्री सहकारी समिति अथवा उस अध्यापक से खरीद सकता है जिसके पास खेल का सामान रक्खा है। बाजार से सामग्री खरीदने की आवश्यकता वर्ग को नहीं बल्कि अध्यापक को पड़ती है। प्रत्येक वर्ग इस प्रकार धन को उचित रूप से खर्च करना सीख लेता है।

भिन्न-भिन्न वर्गों के Incharge अध्यापकों का कर्तव्य है कि वे उनके साथ खेल-खेलें। अध्यापक का क्रीडा क्षेत्र में एक किनारे पर खड़े रहना ठीक नहीं है। उसे भी अपने बच्चों के साथ सक्रिय भाग लेना चाहिए। वह बच्चों के साथ खेल भी खेल सकता है और Refree का भी काम कर सकता है और तभी हो सकता है जब वह खेल एवं उसके नियमों को भली-भाँति जानता हो। यदि खेल का निरीक्षण सुस्ती से किया जाता है तो खेल में आनन्द नहीं आ सकता है।

होता रहता है। ब्रे (Bray) महोदय का कहना है—

"Play is preparatory school for what has to be done later in the form of work It teaches reverence for law, exercises imagination and gives opportunities for frequent change in which every child delights and creates little difficulties to be mastered"

(३) सगठित खेलकूदो से बालको की शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास—आधुनिक शिक्षा-शास्त्री शिक्षा का उद्देश्य बालको को पुस्तकीय ज्ञान को प्रदान करना ही नहीं मानता वरन् उनके शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास पर भी बल देता है। खेलकूदो से उनका शरीर तो पुष्ट बनता ही है, वे चुस्त एव निरालसी बनते हैं, उनको अपने उद्वेगों पर अधिकार पाने का अवसर मिलता है, उनमे शील एव सदाचार के गुणो का विकास होता है। इस प्रकार खेलकूद उनके शरीर को स्वस्थ, मस्तिष्क को ताजा और आत्मा को विकारहीन बनाने का प्रयत्न करते हैं।

Dr. Clement Dukes ने आध्यात्मिक शक्तियो के विकास मे खेलकूदो का महत्व दिखाते हुये लिखा है—

"Consider how boy's games develop a well balanced mind and character how they instil into his nature as nothing olse can, glowing *spirits*, from the robustness of his health ; quick response to the call of duty instead of lethargic habits, good temper often under trying *circumstances : love* of justice and fairplay which lasts with life self reliance, endurance, confidence ...mrades desire to excel which ultimately becomes a noble *ambition*; ...r selfishness; courage ... the check in *morbid* ... superfluous energy, ... which ensures purity of life In short these games produce true *manliness* of character with a just ambition to excel in every phase of the battle of life.

(४) उचित अनुशासन की शिक्षा देने मे खेलो से बहुत बड़ी सहायता मिलती है, फिर भी इस दिशा मे मिलने वाली सफलता बहुत कुछ स्वयं खेल-समुदाय के भीतर की उचित व्यवस्था पर निर्भर रहा करती है। यदि क्रीडाध्यक्ष किसी खेल मे पालन किये जाने वाले नियमो से अनभिज्ञ है अथवा यदि उनको जानता हुआ भी इस बात की चिन्ता नही करता कि उनका पालन किया जा रहा है अथवा नही तो खेल अनुशासन के विकास मे सहायक नही हो सकते।

शारीरिक व्यायाम

Q. 2. What is the utility of conducting formal physical exercises during school hours. Discuss the principles underlying it.

शारीरिक व्यायाम का महत्व—जिन विद्यालयो के पास सगठित खेलो के लिये काफी खेल का मैदान नही होता और जिनके पास खेल की सामग्री भी इतनी अधिक मात्रा मे उपलब्ध नहीं होती कि विद्यालय के सभी बालको को खेलने का अवसर उनकी रुचि के अनुसार मिल सकें, उन विद्यालयो मे शारीरिक व्यायाम या ड्रिल का प्रबन्ध होना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। व्यायाम और ड्रिल द्वारा शारीरिक विकास मे पर्याप्त सहायता मिलती है। उनसे शरीर के प्रत्येक अंग को पुष्ट बनाया जा सकता है। यदि व्यायाम उचित और नियमित ढग से कराया जाय तो उससे बालकों को विशेष लाभ मिल सकते हैं। शरीर की बहुत सी वक्रताएँ व्यायाम द्वारा कम की जा सकती है। व्यायाम द्वारा शारीरिक चिकित्सा भी सम्भव है। अतएव विद्यालय में ही सभी बालको के लिये व्यायाम करने के घण्टे नियुक्त होने चाहिये।

विद्यालय मे व्यायाम करने का प्रबन्ध—सबेरे पाठशाला के मध्य मे और दिन की पाठशाला के आरम्भ मे या दोपहर बाद सामूहिक ड्रिल के लिये एक छोटा सा अन्तर (Period)

जो १५ मिनट से अधिक न हो, रखा जा सकता है। यह अन्तर अवकाश का भी काम दे सकता है और रोचक व्यायाम करने के लिये भी अवसर प्रदान कर सकता है। इस अन्तर के लिये समस्त विद्यार्थियों को उनके कद के अनुसार वर्गों में बाँट दिया जाय। प्रत्येक वर्ग में १५ से लेकर २० विद्यार्थी रखे जा सकते हैं। प्रत्येक वर्ग का एक विद्यार्थी-नेता (Student leader) नियुक्त किया जा सकता है। प्रत्येक वर्ग में यदि बालकों को कद के अनुसार ही रखा जाय तो उत्तम होगा। कक्षा या आयु के अनुसार उनका वर्गीकरण दूषित हो जाता है। कवायद भी ढंग से नहीं होती। इसका अर्थ यह है कि सम्पूर्ण पाठशाला के विद्यार्थियों के पहले कद के अनुसार विभाजित करना होगा।

विद्यार्थी नेताओं का चुनाव कर लेने के बाद उनको विभिन्न समुदायों के लिये व्यायामों की तालिकाओं का अध्ययन करना चाहिये। उन अध्यापकों को जिन्हें वर्गों के कार्य का निरीक्षण करना है किसी शारीरिक प्रशिक्षण विशेषज्ञ के साथ व्यायाम सम्बन्धी सामग्री का अध्ययन कर अपने-अपने वर्गों के लिये तालिकायें (Tables of Physical Exercise) निश्चित कर लेनी चाहिये। जब अध्यापक और विद्यार्थी नेता उन तालिकाओं से पूर्ण परिचित हो जायें तब शारीरिक व्यायाम का कार्यक्रम आरम्भ कर दिया जाय। यदि विद्यालय में ड्रिल-अध्यापक या फिजिकल इन्स्ट्रक्टर की नियुक्ति हो गई है तो शारीरिक व्यायाम का संचालन एवं संगठन आसानी से हो सकता है। *किन्तु उस अवस्था में भी ड्रिल एक ही समय में होनी चाहिये। यदि ऐसा नहीं* किया जाता तो दिन के भिन्न-भिन्न भागों में ड्रिल के घण्टे नियत करने होंगे। इस प्रकार कुछ कक्षाओं के लिये ड्रिल का समय अनुचित और असुविधाजनक सिद्ध हो सकता है। यदि पूरी पाठशाला की ड्रिल एक ही समय में नहीं होनी तो समुदायों को कद के अनुसार व्यवस्थित करना असम्भव हो जायगा।

प्रशिक्षित विद्यार्थी नेताओं की सहायता से अध्यापक वर्ग समस्त पाठशाला के विद्यार्थियों के शारीरिक व्यायाम की व्यवस्था कर सकता है। ड्रिल अध्यापक या फिजीकल इन्स्ट्रक्टर निरीक्षण कार्य में उनकी मदद कर सकता है।

व्यायाम कराते समय ध्यान देने योग्य बातें—यदि व्यायाम उचित ढंग से नहीं हो सकता तो उससे लाभ होने की अपेक्षा हानि होने की सम्भावना अधिक होती है, अतः उन विद्यार्थियों का जो शारीरिक व्यायाम में भाग ले रहे हैं निरीक्षण होना आवश्यक है। रोगी विद्यार्थियों पर व्यायाम का कभी-कभी उल्टा असर पड़ते हुये देखा गया है। इसलिये उन्हें शारीरिक व्यायाम कराने से पूर्व उनका चिकित्सीय निरीक्षण (Medical inspection) होना चाहिये। शारीरिक व्यायामों का रूप ऐसा हो कि उनके शरीर पर पड़े कुप्रभावों का निराकरण हो सके। जिन अंगों के विकास की आवश्यकता है उनका उचित विकास करना शारीरिक व्यायाम का उद्देश्य हो सकता है। आरम्भ में सरल फिर कठिन शारीरिक व्यायाम रखे जा सकते हैं। आयु के अनुसार भी प्रत्येक आयु के वर्ग के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के व्यायामों की व्यवस्था की जा सकती है।

अध्याय १०

पाठ्यक्रम-सहगामी विविध क्रियाएँ

Q. 1 'The extra-curricular activities are the very sole of school life.' Discuss Explain the effect of everyone of them on the social and moral education of children. (*Agra B T. 1951*)

Indicate the importance of extra-curricular activities. What activities would develop character and discipline (*Agra B T. 1950, L. T. 1954*)

पाठ्य सहगामिनी क्रियाएँ—खेल कूद, अभिनय वाद-विवाद प्रतियोगिता आदि क्रियाओ को पाठ्य सहगामिनी क्रियाएँ कहा जाता है पाठ्येतर (Extra curricular) नही। विद्यालय प्रागण के भीतर अथवा बाहर के समस्त अनुभव जो बालको को दिये जाते हैं और वे सम्पूर्ण क्रियायें जो बालको से कराई जाती हैं पाठ्यक्रम के अन्तर्गत आती है। इस विचार से पाठ्यक्रम सम्बन्धी और पाठ्येतर क्रियाओ मे कोई अन्तर ही नहीं रहता। इस अर्थ मे स्काउटिंग कैम्प, खेल-कूद, वाद-विवाद प्रतियोगिता उतनी ही पाठ्यक्रम सम्बन्धी क्रियाएँ हैं जितनी कि ज्यामिति और भगोल के शिक्षण सम्बन्धी क्रियाएँ होती हैं।

पाठ्यक्रम सहगामिनी क्रियाओ का महत्व—मुदालियर कमीशन ने इन क्रियाओ के विषय मे लिखा है कि ये क्रियायें विद्यालय के कार्यक्रम का अभिन्न अग हैं अत उनकी व्यवस्था और सगठन विद्यालय का पुनीत कर्तव्य है।

"They (co-curricular activities) are as integral a part of the activities of a school as its curricular work and their *proper* organisation needs just as much care and fore-thought"

[illegible] का ज्ञान मात्र [illegible] है जो विद्या- [illegible] न मे प्रत्येक पग [illegible] नागरिक की शिक्षा मे इन क्रियाओ को उचित स्थान दिया जाता है। इसीलिये वे क्रियायें पाठ्यक्रम की सहगामिनी मानी जाने लगी हैं। एक समय था जब विद्यालय मे इन पर कोई महत्व नहीं दिया जाता था और स्कूल के व्यवस्थापक इनके लिये अधिक समय नही लगाते थे। परन्तु आज हमारे सामने विद्यालय और उसकी शिक्षा का आदर्श प्रतिष्ठित है उसके आधार पर इन क्रियाओ को विशेष महत्व दिया जाने लगा है। इन क्रियाओ मे निम्नलिखित लाभ हो सकते हैं।—

पाठ्यक्रम सहगामिनी क्रियाओ से लाभ

[illegible] नानते हैं। इसलिये उनमे होने वाली भि [illegible] गुणो का विकास होता है। छात्र सा [illegible] प्राप्त करते हैं। उनमे सहनशीलता, नेतृत्व, सहयोग, उदारता, [illegible] विकास होता है। इन गुणों की उत्पत्ति और विकास पाठ्यक्रम-सहगामिनी क्रियाओं द्वारा ही होता है।

(२) इन क्रियाओं में भाग लेकर बालकों में नेतृत्व की शक्ति आती है। वे प्रत्येक कार्य को करने में अपनी जिम्मेदारी समझने लगते हैं। इसके साथ ही साथ उन्हें इन क्रियाओं में भाग लेकर स्वावलम्बन, स्वचिन्तन, एवं तर्क का प्रशिक्षण मिलता है।

(३) इन क्रियाओं के द्वारा बालकों का चरित्र दृढ़ होता है और किस प्रकार बालक स्व अनुशासन सीखते हैं इस पर पहले ही लिखा जा चुका है। मुदालियर कमीशन रिपोर्ट के अनुसार शिक्षा का महानतम उद्देश्य चरित्र का निर्माण और व्यक्तित्व का विकास है। ये सहगामिनी क्रियायें ही चरित्र के निर्माण और व्यक्तित्व के विकास में सहायक सिद्ध हो सकती हैं। इन क्रियाओं में भाग लेने वाले विद्यार्थियों की शारीरिक शक्तियों का भी विकास होता है। खेलकूद, स्काउटिंग, पिकनिक और Excursion आदि कुछ ऐसी ही क्रियायें हैं।

(४) मानव स्वभाव किसी भी कार्य में सदैव लगे रहने के अनुकूल नहीं होता। वह परिवर्तन चाहता है। परिवर्तन ही जीवन का रस है। छात्र सदैव अध्ययन में लीन नहीं रह सकता; उसे परिवर्तन चाहिये। यह परिवर्तन पाठ्यक्रम सहगामिनी क्रियाओं द्वारा उसे मिल सकता है। इससे उनका मस्तिष्क स्वच्छ रह सकता है और उनके समय का भी ठीक उपयोग हो सकता है।

(५) इन क्रियाओं द्वारा छात्रों में मिलकर काम करने की (Esprit de corps) भावना पैदा हो जाती है वे अपनी संस्था से प्रेम करने लगते हैं और संस्था के नाम को बनाये रखने का प्रयत्न करते है।

(६) पाठ्यक्रम सहगामिनी क्रियाओं में कुछ क्रियायें ऐसी भी हैं जो बालकों के लिये जीवनोपयोगी सिद्ध हो सकती हैं जैसे नाटकीय प्रदर्शन, कवि-सम्मेलन, विद्यालय पत्रिका का सम्पादन आदि आदि। ऐसी क्रियाओं के द्वारा उन्हें जीवन के व्यवसायों की शिक्षा मिलती है।

(७) इन क्रियाओं के द्वारा बालकों को नैतिक शिक्षा मिलती है और वे सहनशीलता, ईमानदारी, निस्वार्थता, शुद्धता आदि गुणों को सीखते हैं। इन क्रियाओं में भाग लेकर उन्हें आत्मसंयम और आत्मनियन्त्रण की शिक्षा मिलती है।

(८) पाठ्यक्रम सहगामिनी क्रियाओं के द्वारा बालकों की अतिशय शक्ति (Surplus energy) का सदुपयोग होने लगता है और वे अनुशासन में रहना सीख जाते हैं।

(९) ये क्रियायें बालकों की रुचि के अनुकूल होने के कारण उनके लिये अत्यन्त आकर्षक होती हैं।

पाठ्यक्रम सहगामिनी क्रियाओं का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है·

(अ) साहित्यिक क्रियायें—साहित्यिक गोष्ठी, वाद-विवाद, व्याख्यान, कवि सम्मेलन, लेख प्रतियोगिता, वाचनालय-अध्ययन, भाषण प्रतियोगिता विद्यालय पत्रिका, अन्त्याक्षरी एवं शैक्षणिक पर्यटन।

(ब) *सामाजिक—श्रमदान, समाज सेवा, स्वशासन, पर्वोत्सव, वार्षिक दिवस, विद्यालय* सप्ताह, अभिनय, फिल्म प्रदर्शन, बालसमारोह, नाटकीय प्रदर्शन अभिभावक दिवस।

(स) शारीरिक क्रियायें—खेल-कूद, क्रीड़ा प्रतियोगिता, शारीरिक व्यायाम।

(द) मनोरंजनात्मक क्रियायें—प्रिय व्यापार (hobbies), उल्लास यात्रायें (picnics), *वन विहार, और अभिनय।*

(य) प्रशिक्षणात्मक क्रियायें—N.C.C., A.C.C., Scouting और रेडक्रोस।

पाठ्यक्रम सहगामिनी क्रियाओं द्वारा नैतिक और सामाजिक शिक्षा एवं चरित्र और अनुशासन का विकास किस प्रकार होता है इसका उल्लेख उपरिलिखित क्रियाओं को लेकर किया जायगा।

सामाजिक क्रियायें—

गाँवो मे होने वाले रोगो की रोकथाम से ग्रामीण जनता को परिचित कराते हैं और औषधियो का वितरण करते हैं उस समय उनमे समाज के कल्याण और समाज-सेवा की भावना जागृत हो जाती है। सामूहिक उत्सवो, मेलों और विपत्तियो से ग्रस्त क्षेत्रो मे जाकर छात्र समूह, समाज की सेवा कई प्रकार से करता है। उसमे परोपकार भावना की वृद्धि होती है। छात्र समितियाँ छात्रों मे स्वशासन की भावना का विकास करती हैं। इन समितियो का चुनाव प्रजातन्त्र प्रणाली पर होने ... समितियाँ उन्हे अच्छे नाग ... आयोजन पुस्तकालय, वाच ... मतियाँ बनाई जाती हैं वे ... विद्यालय उत्सवो के आयोजन का भार यदि अधिकांशत छात्रो के ऊपर ही रहता है तो उन्हे सामाजिक उत्सवो के सगठन की योग्यता देने मे सहायक सिद्ध होते हैं। वार्षिक दिवस, बाल दिवस, विद्यालय सप्ताह, नाटक, चलचित्र प्रदर्शन, आदि के अवसरो पर बालक समाज के व्यक्तियो के सम्पर्क मे आते हैं और उनसे व्यावहारिक ज्ञान की अनेक बातें सीखते हैं।

शारीरिक क्रियायें

... उनमे ... नीवाल, ... ता है। ये गुण आगे चलकर बालका के चरित्र के अग बन जाया करते है। क्रीडा प्रतियोगितायें जय और पराजय की चिन्ता छुडवाकर बालको से अपना कर्त्तव्य करते रहने पर जोर देती हैं। इन प्रतियोगिताओ मे भाग लेने वाले अच्छे खिलाडियो मे आत्म-विश्वास के साथ प्रतिपक्षियों से मुकाबला करने के लिये विशेष प्रकार की भावना पैदा हो जाती है।

मनोरंजनात्मक क्रियायें

उल्लास यात्राओ, वन विहार और नाटकीय अभिनयो के आयोजन से विद्यार्थियो की थकान और नीरसता तो दूर होती ही है उनमे सहयोग आदि सामाजिक गुणों का विकास होने लगता है।

प्रशिक्षणात्मक क्रियायें

स्काउटिंग, N C.C. A C.C. आदि क्रियाओ से चारित्रिक शिक्षा अच्छी तरह से दी जा सकती है। इन क्रियाओ मे भाग लेने वाले विद्यार्थियो को ऐसे अनेक अवसर मिलते है जिनमे ... उटिंग ... का ... अच्छे नागरिक हुआ करते हैं। N C C और A.C C मे बालको को जिस प्रकार की शिक्षा दी जाती है उससे बालको का शारीरिक, चारित्रिक और मानसिक विकास होता है। छात्रो मे अनुशासन कायम करने के लिए ये संस्थायें विशेष उल्लेखनीय हैं। इन संस्थाओ ने श्रमदान द्वारा अनेक ऐसे देशहित के कार्य किये हैं जिनकी हार्दिक प्रशंसा की जानी चाहिये।

द्वार ... हो सकते हैं। इस प्रकार ये क्रियायें उन्हे सामाजिक शिक्षा देने मे सहायक हो सकती है।

सहकारी समितियाँ (Cooperative store and clubs)—पाठशाला का एक महत्वपूर्ण कार्य है बालको मे सहयोग, और सहकारिता की भावना पैदा करना। सहकारी समितियाँ इस प्रक ... का कर्त्तव्य ... अनुभव ... ज्ञान की व्यवहारिक शिक्षा भी दे। प्रत्येक विद्यालय मे क्रय-विक्रय सहकारी समितियों का निर्माण

किया जा सकता है क्योंकि ऐसी ही बहुत सी दैनिक जीवन की आवश्यकताएँ हैं जिनकी पूर्ति ये समितियाँ कर सकती हैं।

इन समितियों के सदस्य विद्यालय के विद्यार्थी और अध्यापक होंगे जिनको अपना-अपना हिस्सा (share) इच्छानुसार खरीदने की अनुमति होगी। सदस्यों में से प्रत्येक सदस्य को बारी-बारी से क्रय या विक्रय का कार्य करना होगा। एक निश्चित समय में एक निश्चित स्थान पर किताबें, लिखने-पढ़ने की सामग्री बेची जायेंगी। सामग्री खरीदने, बेचने और समिति को ठीक ढंग से चलाने के लिये हिस्सेदारों की बैठक नियमित रूप से होती होगी।

समिति को सुचारु रूप से चलाने के लिये यह आवश्यक है कि अध्यापक मण्डल का एक सदस्य जो सहकारिता में विशेष रुचि लेता हो और उसके प्रति विशेष अनुराग रखता हो समिति का निरीक्षण करे। यदि समिति का आकार बढ़ जाय तो उसे रजिस्टर करा लेना चाहिये। इससे सबसे बड़ा लाभ यह होगा कि सहकारी विभाग की ओर से आवश्यक सहायता भी मिल सकेगी। समिति का हिसाब-किताब ठीक प्रकार से जांचा जा सकेगा और वर्ष के अन्त में लाभ का धन हिस्सेदारों में उनके हिस्सों के अनुसार विभाजित किया जा सकेगा। बहुत से विद्यालयों में समितियाँ चालू की जाती हैं किन्तु वे समय से पूर्व ही बेमौत मर जाती हैं। इसके मुख्य कारणों में उनके प्रति अनुराग की कमी, दुर्व्यवस्था ही हो सकती है।

रायबर्न ने अपनी पुस्तक Scool Organisation में सहकारी निर्णायक समिति (cooperative arbitration society) को निर्माण करने का भी आदेश दिया है। ग्रामीण जनता में मुकद्दमेबाजी की प्रवृत्ति को रोकने, उनके आपसी झगड़ों का निबटारा करने के लिये इन समितियों का सगठन किया जा सकता है। यही काम बालकों में अनुशासन स्थापित करने उनके आपसी झगड़ों का निबटारा करने के लिये विद्यालयों की सहकारी निर्णायक समिति द्वारा किया जा सकता है। विद्यालय के प्रत्येक छात्र को इस समिति का सदस्य होना चाहिये। जो बालक इस समिति का सदस्य बनता है उसे एक समझौते पर हस्ताक्षर करना पड़ता है कि यदि वह समिति द्वारा दिये गये निर्णय को नहीं मानता तो दण्ड का भागी होगा। जब कोई बालक किसी अन्य बालक से पीड़ित होता है तब वह इस समिति के अध्यक्ष के पास आवेदन पत्र भेजता है। समिति मित्रभाव से उनके झगड़े को तय करने का प्रयत्न करती है। इस प्रकार की समितियों से एक लाभ तो यह हो सकता है कि विद्यार्थी दण्ड के भय से किसी प्रकार के झगड़ो या अनुशासनहीनता के कार्य नहीं करेंगे। दूसरे वे आगे चल कर इसी प्रकार की समितियाँ गावों में स्थापित कर देश और राष्ट्र की उन्नति में समुचित योगदान कर सकेंगे और उस द्रव्य को जो वकीलों और न्यायालयों को फीस देने में ग्रामीण जनता खर्च करती रहती है बचा कर उनके जीवन को उन्नत बना सकेंगे। इनसे विद्यार्थियों को सहयोग और पञ्चायत दोनों में मूल्यवान् प्रशिक्षण दिया जा सकेगा।

इन समितियों का सगठन और कार्य-सचालन भी अध्यापकों के निरीक्षण के बिना चल नहीं सकता। उनका पथ प्रदर्शन समिति सदस्यों के निर्वाचन करते समय या झगड़ों का निबटारा करते समय आवश्यक हो जाता है।

स्काउटिंग और गर्ल गाइडिंग (scouting and girl-guiding) का महत्व—ये दोनों क्रियाएँ ऐसी पाठ्यसहगामी क्रियाएँ हैं जिनके द्वारा बच्चों को स्वावलम्बन तथा परोपकार की शिक्षा देकर उनके भावी जीवन को सुखमय बनाया जा सकता है। ये क्रियाएँ बालकों को नागरिकता की शिक्षा देने तथा उनकी मूल प्रवृत्तियों को शोधित करने में विशेष सहायक सिद्ध होती हैं। वे स्वाभाविक रूप में अनुशासन का पाठ सीखते हैं अतः ये क्रियाएँ स्वशासन के साधन रूप में कार्य कर सकती हैं।

सगठन—यदि स्काउटिंग और गाइडिंग खेल के रूप में लिये जावें तो उनसे बालकों को [illegible] की सामान्य प्रवृत्ति को प्रकाशित होने में सहायता मिलती है। जो कार्य खेल की तरह (Playing spirit) में किया जाता है वह भारस्वरूप नहीं होता। अतः स्काउटिंग और गाइडिंग का सगठन खेलों की तरह ही करना चाहिये।

है। वे ही बालक इसमें भाग लें जिनको इन क्रियाओ से रुचि है। सबको इन क्रियाओ मे भाग लेने के लिये बाध्य न किया जाय।

प्राय यह देखा जाता है कि बालचर, गर्ल गाइड्स और वीर-बच्चो के इन सगठनों मे ड्रिल को विशेष महत्व दिया जाता है। बुरे स्काउट मास्टर को पहिचान तो यही है। इन क्रियाओ के लिये ड्रिल उपयोगी नही है जितनी कि अन्य बातें। अच्छे बालचर अध्यापक साल भर मे ५ मिनट तक भी ड्रिल कराना भी अनुपयुक्त समझते हैं। ड्रिल और कवायदो से सच्चे अनुशासन का पाठ सिखाया नहीं जा सकता।

इन सगठनो रैलियो का अधिक प्रयोग करने से भी इनके प्रति जनता की अरुचि हो जाया करती है। अधिक रैलियो और प्रदर्शन के खर्च से अभिभावक रुष्ट होकर अपने बालको को इन सगठनो मे हटा लिया करते हैं। स्काउट रैली का उद्देश्य केवल यही है कि उनके सचालन करने से बालको को यह पता चल जाता है कि इस सगठन का क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। आवश्यकतानुसार जब कभी इन रैलियो का मित्रवत् आयोजन करना हो तो अच्छा है किन्तु प्रदर्शन मात्र के लिये उनका आयोजन हानिकारक सिद्ध हो सकता है।

इन सगठनो की शक्ति कम करने मे उनके कठोर नियम भी प्रायः उत्तरदायी होते हैं। सभी बालको के लिये वर्दी (uniform) का प्रश्न एक महत्वपूर्ण समस्या का रूप धारण कर लेता है। बहुत से निर्धन किन्तु सच्चे स्काउट होने योग्य बालक स्काउटिंग के सगठन की सदस्यता से वंचित रह [illegible] इस बात पर भी ध्यान [illegible] पर उसका प्रदर्शन अच्छा [illegible] दे सकता है जिनसे उसके निर्धन बालक वर्दी के लिये उपयुक्त धनराशि इकट्ठी कर सकें।

यदि इन सगठनो का प्रबन्ध पाठशाला की कक्षाओ की तरह से न किया जाय तो बालचर या गाइडिंग सस्था के प्रति छात्रो और छात्राओ की अरुचि जाग्रत नही हो सकेगी। जब [illegible] यह देखता है कि उसे अपनी टोली मे रहकर कक्षा की तरह ही तमाम चीजें सीखनी पड़ती [illegible]

[illegible] व्यक्ति इनमे [illegible] इच्छा है, जिस [illegible] कास के लिये [illegible] र शिक्षक के [illegible] प्रतिष्ठा मिल सकेगी। श्रेष्ठ पद प्राप्ति के अवसर उनको प्राप्त हो सकेंगे इस इच्छा से स्काउटिंग मे भाग लेने वाले व्यक्तियो से बालचर सस्था का विशेष लाभ नहीं हो सकता। इसलिये इनका सगठन करने से पूर्व इनके सदस्यो की उपयुक्तता पर विचार कर लेना होगा।

सक्षेप मे बालचर सस्था का सगठन खेल की भावना से किया जाना चाहिये। कार्य (work) की भावना से नहीं। उनका उद्देश्य बालको मे सामुदायिक जीवन, सहयोग और सहकारिता की भावना जाग्रत करना ही हो, प्रदर्शन मात्र न हो।

रेडक्रास समितियाँ

[illegible]

शारीरिक विकास के लिये बालकों के लिए चिकित्सीय निरीक्षण का प्रबन्ध भी किया ही जाता है, उनकी प्राथमिक चिकित्सा के प्रत्युत्पन्न साधन भी प्रस्तुत करना प्रत्येक विद्यालय का कर्तव्य बन जाता है। विद्यालयों में स्काउटिंग, रेड क्रॉस सोसाइटी की स्थापना का यह कर्तव्य आसानी से निभाया जा सकता है।

प्रधानाध्यापक का कर्तव्य है कि वह अपने विद्यालय में ऐसी समिति की स्थापना करे और अधिक से अधिक बालकों को इसका सदस्य बनने के लिये प्रोत्साहित करे। सदस्यता शुल्क इतना कम हो कि निर्धन विद्यार्थी भी उसे दे सकें। समिति के पथ प्रदर्शन तथा प्रबन्ध के लिये दो एक अध्यापकों की नियुक्ति की जाय। यदि विद्यालय का अपना चिकित्सालय विद्यालय के निकट ही नहीं स्थित हो तो उसमें अथवा स्थानीय चिकित्सालय से सम्बद्ध एक [illegible] रेड क्रॉस सोसाइटी का चिकित्सालय रखा जा सकता है। इस चिकित्सालय में प्रतिदिन के प्रयोग की वस्तुएँ, प्राथमिक चिकित्सा में काम आने वाली चीजें रखी जा सकती हैं।

रेड क्रॉस समिति का पहला काम अपने सदस्यों को स्वास्थ्य और रक्षा का ज्ञान कराना है। इसके अतिरिक्त यह अपने सदस्यों को प्राथमिक चिकित्सा (First aid) में प्रशिक्षित भी कर सकती है जिससे वे आगे चलकर जनता, देश और राष्ट्र का हित कर सकें। प्राथमिक चिकित्सा या सहायता की शिक्षा देने के लिये स्थानीय डाक्टर की सेवायें ली जा सकती हैं। समिति के स्वास्थ्य सम्बन्धी नाटकों, प्रसिद्ध डाक्टरों के भाषणों का आयोजन करके ग्रामीण जनता में, स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारियाँ प्रसारित कर सकते हैं। ग्रामवासियों को प्राथमिक चिकित्सा, रोग की उत्पत्ति के कारण और उनके उपचारों से अवगत किया जा सकता है। पाठशाला तथा पास-पड़ोस की बस्ती के स्वास्थ्य की रक्षा करके समितियाँ राष्ट्र की विशेष सहायता कर सकती हैं।

स्वशासन तथा विद्यार्थी परिषद् (Pupil Self-government)

महत्व—अनुशासित जीवन बिताने के लिये सबसे बड़ी जिम्मेदारी बालकों पर ही है। आधुनिक जनतन्त्रीय विचारधारा के अनुसार विद्यालय-जीवन का आधार भी जनतन्त्रीय है। उसकी विशेषता है बालकों में सहयोग, अनुशासन, उत्तरदायित्व और समाज-हित की भावनाओं का संचार। स्कूल एक सामाजिक संस्था है अतः बालकों को जनतन्त्रीय जीवन दर्शन के योग्य बनाने के लिए उन्हें सामाजिक दायित्व सौंपना होगा, उनकी नेतृत्व शक्ति जागरूक करनी होगी। यदि हम चाहते हैं कि वे अपने अधिकार और कर्तव्यों के प्रति उत्तरदायित्व का अनुभव करें और परस्पर सहयोग के आधार पर कार्य करके सामाजिक जीवन के लिये पूरी तरह समर्थक बनें, तो छात्र जीवन में क्रियाओं द्वारा स्वशासन का अवसर देना होगा।

स्वशासन प्रणाली का स्वरूप

प्रजातन्त्रीय प्रणाली पर सगठित विद्यालय में विभिन्न क्रियाओं के लिये निम्नांकित समितियाँ बनाकर स्वशासन में प्रशिक्षण दिया जा सकता है।

(१) अनुशासन समिति—स्कूल के अनुशासन को स्थिर और सुरक्षित बनाये रखने के लिये विनय भंग करने वाले विद्यार्थियों को दण्ड देने और उनके आचरण में परिवर्तन लाने के लिये अनुशासन समिति स्थापित की जा सकती है।

(२) क्रीड़ा समिति—स्कूल में होने वाले खेलकूद शारीरिक व्यायाम आदि से सम्बन्धित क्रियाओं का सफलतापूर्वक निर्वाह करने के लिये अलग-अलग कमेटियाँ निर्मित की जा सकती हैं जिनके सदस्य स्कूल के बालक और परामर्शदाता या सहायक के रूप में कार्य करने वाले शिक्षक हो सकते हैं।

(३) साहित्यिक परिषद्—साहित्यिक रुचि को जाग्रत करने, कवि सम्मेलन, वाद-विवाद प्रतियोगिताओं को आयोजित करने के लिए साहित्यिक परिषदों की स्थापना की जा सकती है।

(४) सांस्कृतिक समिति—स्कूलों में संगीत सम्मेलन, नाटकीय प्रदर्शन, अभिभावक दिवस, पुरस्कार वितरण आदि क्रियाओं का आयोजन करने के लिए इन समितियों का बालकों द्वारा संचालन किया जाता है।

ठन कर सकता है। विद्यार्थी-संघ के साथ-साथ अन्य परिषदें और समितियाँ भी बनाई जा सकती हैं। इनका उल्लेख पिछले अनुच्छेद में किया जा चुका है।

(३) गृहपद्धति (Home System)—विद्यालय की सभी कक्षाओं और विभागों को कुछ गृहों (Houses) में विभाजित कर दिया जाता है। प्रत्येक गृह को विद्यार्थी संघ में प्रतिनिधि भेजने का अधिकार होता है। गृह की प्रतिष्ठा और गौरव का उत्तरदायित्व गृह के सभी सदस्यों पर निर्भर रहता है इसलिए वे कभी ऐसा कार्य नहीं करते जिसमें गृह की प्रतिष्ठा को धक्का लगे। जब कोई बालक विनय भंग का दोषी होता है तब उसका 'गृह' उसको दण्डित करता है। इस प्रकार गृहपद्धति द्वारा बालकों में स्वशासन और सहयोगिता की भावना जाग्रत की जाती है।

(४) विद्यालय सभा (School Assembly)—जब सभी विद्यार्थी पढ़ाई प्रारम्भ होने से पूर्व एक निश्चित स्थान पर एकत्र होते और सामूहिक गीत या भजन गाते हैं, उस समय उनमें एकता की भावना का उदय होता है, एक स्वर में की गई प्रार्थना सामूहिकता की भावना को पुष्ट करती है।

(५) प्रार्थना, आदर्श वाक्य, झण्डावर्दी आदि—विद्यालय को एक सूत्र में पिरोने के लिए और बालकों के सात्विक जीवन को पक्का बनाने के लिए विद्यालय के आदर्शवाक्य (Motto), वर्दी (Uniform) आदि का उन पर स्वस्थ प्रभाव पड़ता है। एक झण्डे के नीचे रहकर एक सी वर्दी पहनकर वे अपने को एक समुदाय का अंग मानने लगते हैं।

(६) विद्यालय द्वारा सांस्कृतिक सुधार की योजनायें—प्रत्येक विद्यालय समाज से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए कुछ योजनायें चालू करता है। उदाहरण के लिये प्रौढ़ शिक्षा जिसे आजकल समाज शिक्षा का नाम दिया गया है, समाज-सेवा के अन्य कार्य ऐसे हैं जिनमें भाग लेकर विद्यार्थी सहयोग और परोपकारिता की शिक्षा ग्रहण करते हैं।

(७) खेल, टूर्नामेन्ट और अन्य प्रकार की प्रतियोगिताओं का संगठन—बालकों में अपने विद्यालय के प्रति प्रेम जाग्रत करने के लिये कुछ प्रतियोगिताएँ संचालित की जाती हैं जो प्रायः एक दूसरे विद्यालय के बीच हुआ करती हैं। प्रतियोगिता की भावना को यदि उचित ढंग से विकसित किया जाय तो वह विद्यालय के संघीय जीवन में सहायता पहुँचा सकती है। अन्य पाठशाला के साथ होने वाले मैचों और दंगलों का प्रयोग सावधानी से करने पर पाठशाला के संसृष्ट जीवन की रक्षा हो सकती है।

विद्यालयों को सामाजिक एवं सामुदायिक जीवन का केन्द्र किस प्रकार बनाया जा सकता है, इसके पीछे क्या दर्शन निहित है, इन प्रश्नों का उत्तर अगले अनुच्छेदों में दिया जायगा।

अध्याय ११

विद्यालय का पुस्तकालय और संग्रहालय

Q 1 Discuss fully the importance of a library in the educational system of higher secondary schools. How should the head of a school ensure that children of all ages are taking full advantage from it ?

(Agra B T, 1951, 57)

2. What are the criteria of satisfactory school library ? *(B. T 1961)*

How would you promote its utility for students ? What are classrooms and sectional libraries ? Discuss their utility. *(L T. 1950)*

पुस्तकालय का स्कूल मे महत्व—पुस्तकालय एक ऐसा स्थान है जहां पर बैठ कर पुस्तको एव पत्र-पत्रिकाओ का अध्ययन कर सब अवस्थाओ के बालक उन आदतो को पैदा कर लेते हैं जो उनके जीवन के लिये उपयोगी सिद्ध होती है। पुस्तको का उचित प्रयोग स्वाध्याय, मस्तिष्क का समुचित विकास एव सामान्य ज्ञान के भण्डार मे वृद्धि, पुस्तकालय के प्रयोग से आती है। एक प्रकार से पुस्तकालय विद्यालयो की समस्त क्रियाओ का केन्द्र माना जा सकता है, क्योकि यह ऐसा स्थान है जहां पर बालको एव वयस्को की समस्त इच्छायें एव आकाक्षायें पूरी हो सकती हैं। पुस्तकालय उन प्रिय लेखको, कवियो एव विद्वानो मे उनका सम्पर्क स्थापित करता है ... आधुनिक शिक्षा शास्त्री केवल उस ... ता, बालक की शिक्षा का आयोजन ... न्त को मानने वाला शिक्षा-शास्त्री पुस्तकालय को विद्यालय के वातावरण मे महत्वपूर्ण स्थान देता है।

"The library may be regarded as the essential instrument for putting progressive methods into practice."—

मुदालियर प्रतिवेदन के इस कथन मे-पुस्तकालय के महत्व पर काफी प्रकाश डाला गया है। अध्यापन कला की प्रगतिशील विधियों मे पुस्तकालय के उपयोग पर विशेष जोर दिया जाता है क्योकि पुस्तकालय कक्षा की पढ़ाई की पूर्ति करता है एव सामूहिक पढाई के दोषो का निवारण करता है।

ज्ञान ही ...
मे पढने ... विकास करना है तो पाठ्य-पुस्तको के अलावा उन्हें अन्य पुस्तकें भी देनी होगी। यह अवसर उनको पुस्तकालय मे ही उपलब्ध हो सकता है। कक्षा की पढाई एक प्रकार से अधूरी रह जाती है और यह पूर्ण उसी समय होती है, जिस समय प्रत्येक अवस्था का बालक पुस्तकालय से और अधिक पुस्तकें लेकर अपने ज्ञान की वृद्धि करता है और उसे स्वाध्याय द्वारा दृढ बना लेता है। प्रत्येक बालक सब पुस्तकें नही खरीद सकता। इस प्रकार पुस्तकालय उसे उसकी अध्ययन पिपासा को शान्त करने मे सहायक होता है।

ठन कर सकता है। विद्यार्थी-संघ के साथ-साथ अन्य परिषदें और समितियाँ भी बनाई जा सकती हैं। इनका उल्लेख पिछले अनुच्छेद में किया जा चुका है।

(३) गृहपद्धति (Home System)—विद्यालय की सभी कक्षाओं और विभागों को कुछ गृहों (Houses) में विभाजित कर दिया जाता है। प्रत्येक गृह को विद्यार्थी सभ में प्रतिनिधि भेजने का अधिकार होता है। गृह की प्रतिष्ठा और गौरव का उत्तरदायित्व गृह के सभी सदस्यों पर निर्भर रहता है इसलिए वे कभी ऐसा कार्य नहीं करते जिससे गृह की प्रतिष्ठा का धक्का लगे। जब कोई बालक विनय भंग का दोषी होता है तब उसका 'गृह' उसको दण्डित करता है। इस प्रकार गृहपद्धति द्वारा बालकों में स्वशासन और सहयोगिता की भावना जाग्रत की जाती है।

(४) विद्यालय सभा (School Assembly)—जब सभी विद्यार्थी पढ़ाई प्रारम्भ होने से पूर्व एक निश्चित स्थान पर एकत्र होते और सामूहिक गीत या भजन गाते हैं, उस समय उनमें एकता की भावना का उदय होता है, एक स्वर में की गई प्रार्थना सामूहिकता की भावना को पुष्ट करती है।

(५) प्रार्थना, आदर्श वाक्य, झण्डा, वर्दी आदि—विद्यालय को एक सूत्र में पिरोने के लिए और बालकों के सात्विक जीवन को पक्का बनाने के लिए विद्यालय के आदर्शवाक्य (Motto), वर्दी (Uniform) आदि का उन पर स्वस्थ प्रभाव पड़ता है। एक झण्डे के नीचे रहकर एक सी वर्दी पहनकर वे अपने को एक समुदाय का अंग मानने लगते हैं।

(६) विद्यालय द्वारा सांस्कृतिक सुधार की योजनायें—प्रत्येक विद्यालय समाज से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए कुछ योजनायें चालू करता है। उदाहरण के लिये प्रौढ़ शिक्षा जिसे आजकल समाज शिक्षा का नाम दिया गया है, समाज-सेवा के अन्य कार्य ऐसे हैं जिनमें भाग लेकर विद्यार्थी सहयोग और परोपकारिता की शिक्षा ग्रहण करते हैं।

[illegible]

विद्यालय [illegible]
एक दूसरे विद्यालय के बीच हुआ करती हैं। प्रतियोगिता की भावना को यदि उचित [illegible] मित किया जाय तो वह विद्यालय के सघीय जीवन में सहायता पहुँचा सकती हैं। अन्य पाठशाला के साथ होने वाले मैचों और दगलों का प्रयोग सावधानी से करने पर पाठशाला के संसृष्ट जीवन की रक्षा हो सकती है।

विद्यालयों को सामाजिक एवं सामुदायिक जीवन का केन्द्र किस प्रकार बनाया जा सकता है, इसके पीछे क्या दर्शन निहित है, इन प्रश्नों का उत्तर अगले अनुच्छेदों में दिया जायगा।

अध्याय ११

विद्यालय का पुस्तकालय और संग्रहालय

Q. 1 Discuss fully the importance of a library in the educational system of higher secondary schools. How should the head of a school ensure that children of all ages are taking full advantage from it ?

(*Agra B T. 1951, 57*)

2. What are the criteria of satisfactory school library ? (*B T. 1961*)

How would you promote its utility for students ? What are classrooms and sectional libraries ? Discuss their utility. (*L T. 1950*)

पुस्तकालय का स्कूल मे महत्व—पुस्तकालय एक ऐसा स्थान है जहाँ पर बैठ कर पुस्तको एव पत्र-पत्रिकाओ का अध्ययन कर सब अवस्थाओ के बालक उन आदतो को पैदा कर लेते है जो उनके जीवन के लिये उपयोगी सिद्ध होती है। पुस्तको का उचित प्रयोग स्वाध्याय, मस्तिष्क का समुचित विकास एव सामान्य ज्ञान के भण्डार मे वृद्धि, पुस्तकालय के प्रयोग से आती है। एक प्रकार से पुस्तकालय विद्यालयो की समस्त क्रियाओ का केन्द्र माना जा सकता है, क्योकि यह ऐसा स्थान है जहाँ पर बालको एव वयस्को की समस्त इच्छायें एव आकाक्षायें पूरी हो सकती है। पुस्तकालय उन प्रिय लेखको, कवियो एव विद्वानो से उनका सम्पर्क स्थापित करता है। उनके अनुभव की वृद्धि एव बुद्धि का विकास करता है। आधुनिक शिक्षा शास्त्री केवल उस के अन्दर ही बालक की शिक्षा का अन्त मानकर नही चलता, बालक की शिक्षा का आयोजन विद्यालय के समस्त वातावरण मे किया जाना चाहिये। इस मत को मानने वाला शिक्षाशास्त्री पुस्तकालय को विद्यालय के वातावरण मे महत्वपूर्ण स्थान देता है।

"The library may be regarded as the essential instrument for putting progressive methods into practice."—

मुदालियर प्रतिवेदन के इस कथन मे–पुस्तकालय के महत्व पर काफी प्रकाश डाला गया है। अध्यापन कला की प्रगतिशील विधियो मे पुस्तकालय के उपयोग पर विशेष जोर दिया जाता है क्योकि पुस्तकालय कक्षा की पढाई की पूर्ति करता है एव सामूहिक पढ़ाई के दोषो का निवारण करता है।

(कक्षा मे जो पाठ्य पुस्तकें पढाई जाती है, वे विद्यार्थियो को विभिन्न विषयक सीमित ज्ञान ही देती हैं। ये पुस्तकें केवल इतना ही बताती हैं कि विद्यार्थी को क्या-क्या पढना है। बालक [illegible] स्वाध्याय की प्रवृत्ति का
मे पढने का अ[illegible] देनी होगी। यह अवसर
विकास करना [illegible] प्रकार से अधूरी रह जाती
उनको पुस्तका[illegible] उसी समय होती है, जिस समय प्रत्येक अवस्था का बालक पुस्तकालय से और है और यह पूर्ण [illegible] लेकर अपने ज्ञान की वृद्धि करता है और उसे स्वाध्याय द्वारा दृढ़ बना लेता है। प्रत्येक बालक सब पुस्तकें नही खरीद सकता। इस प्रकार पुस्तकालय उसे उसकी अध्ययन पिपासा को शान्त करने मे सहायक होता है)

कक्षा मे बालक को इतना अवसर नही मिलता कि वह अपनी कमजोरियों एवं शंकाओं को अध्यापक से समाधान कर सके, क्योंकि सामूहिक पढाई मे अध्यापक कक्षा के प्रत्येक बालक पर उतना ध्यान नही दे सकता जितना उसे देना चाहिये। ऐसी शिक्षा व्यवस्था से पुस्तकालय अध्यापको एवं बालको की मदद करता है। क्योंकि अध्यापक बालको को ऐसी काफी पुस्तको के पढ़ने का संदेश दे सकता है जो उनके औत्सुक्य को शान्त कर सकती हैं, एव पढ़े हुये पाठ को पक्का बना सकती हैं।

आधुनिक काल मे पुस्तकालय विद्यालय का महत्त्वपूर्ण अंग बन गया है। क्योंकि वह सब स्तर के बालकों एव बालिकाओं के अवकाश—फुर्सत के समय पठन एव पाठन का केन्द्र माना जा सकता है। अध्यापन कला की प्रगतिशील विधियो मे प्रोबलेम मेथड (Problem Method), . . . ए, तथा अनुभव पाठ्यक्रम . . . यकता होती है। यदि हमे . . . लिये सुगम्य स्थान होना चाहिये।

पुस्तकालय के महत्व के विषय मे अमरीका के पुस्तकालय संघ (American Library Association, 1945) ने निम्नलिखित कार्यों पर प्रकाश डाला है —

(१) अध्यापक, बालक एव उनके माता-पिता की आवश्यकताओ को सन्तुष्ट करने के लिये विद्यालय को सहयोग देना।

(२) बालक और बालिकाओं को ऐसी उपयुक्त एवं सर्वोत्तम पुस्तकालय सम्बन्धी सेवाओं को प्रदान करना जो उनके विकास एव रुचि मे सहायक हो।

(३) विद्यार्थियों को अध्ययन के लिये इस प्रकार प्रोत्साहित करना कि वे अध्ययन मे आनन्द एव सन्तोष प्राप्त कर सकें।

(४) बालक और बालिकाओं मे श्रव्य एव दृश्य उपकरणों (*Audio-visual aids*) के प्रयोग करने की क्षमता पैदा करना।

(५) विद्यार्थियों के लिये उपयोगी पुस्तको के चुनाव और अन्य साधनो के एकत्रीकरण के लिये अध्यापकों का सहयोग प्राप्त करना।

उपर दिये हुये इन पांच प्रयोजनो की सिद्धि पुस्तकालय तभी कर सकता है जब विद्यालय के प्रशासक उसकी व्यवस्था इस प्रकार करें कि वह विद्यालय की समस्त क्रियाओ का केन्द्र बन सके। उसके कार्य के लिये विद्यालय के अध्यक्ष को पुस्तकालय के स्थान, पुस्तकों के समुचित सकलन एव प्रशिक्षित पुस्तकाध्यक्ष की नियुक्ति पर ध्यान देना होगा।

. . .

पुरानी एव . . .
है। इन का . . .
जाता है। . . .
वह या तो शिक्षक (Teacher librarian) होता है या ऐसा पुस्तकाध्यक्ष होता है जिसे दफ्तर के अन्य कार्य करने पड़ते है। ऐसी अवस्था मे पुस्तकाध्यक्ष अपने कर्त्तव्यों का पालन नहीं कर सकता। आजकल भारत के उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों मे पुस्तकालयों की जो दशा है वह प्रायः ठीक वैसी ही है जैसे कि अमेरिका के विद्यालयों मे ५० वर्ष पहले थी। मुदेलियर प्रतिवेदन (रिपोर्ट) मे पुस्तकालयों की इस दुर्व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है—

"In a large majority of schools there are at present no libraries worth the name. The books are usually old, out dated, unsuitable, usually selected without reference to the students tastes and interests".

पी० सी० रेन (P. C. Wren) ने भी इस बिगड़ी हुई दशा को देख कर अपनी पुस्तक Suggestions for the organisation of schools in India मे लिखा था—

"A large proportion of the Indian high school libraries are fit only for the bonefire."

यदि हम पुस्तकालय व्यवस्था मे सुधार करना है और उन वास्तव मे अपने सामने

के मानसिक विकास और भौतिक अनुशासन को आधारशिला बनाना है तो हमें निम्नलिखित
... विचार करना होगा—

देता है—

It i... provide quarters that are
(i) Large c... and to alter expenses as
the programme ... onveniently located with
respect to planned use

इसका अभि...
आसानी से हो सके।
हॉल में होना चाहिए ...
हो, जिसका फर्श और ...
से कम विद्यालय के १० ...
की दीवारें सजी-बजी एवं आकर्षक हों। पुस्तकालय के पास ही वाचनालय (Reading Room)
जिसमें लम्बी-लम्बी मेजें, पत्र एवं पत्रिकाओं के रखने की अलमारियाँ एवं अन्य आवश्यक सामग्री
आसानी से रखी जा सके।

(ख) पुस्तकों का संचय एवं संकलन—प्रत्येक पुस्तकालय की उपयोगिता उसकी पुस्तकों के संचय एवं संकलन पर निर्भर करती है। यदि पुस्तकें विद्यालय को बालक एवं बालिकाओं की रुचि को सन्तुष्ट नहीं करतीं तो उनको पुस्तकालय में स्थान देना व्यर्थ है। यदि पुस्तकें आकर्षक नहीं हैं, तब भी उनको पढ़ने वाले पैदा नहीं होंगे और यदि पुस्तकालय की व्यवस्था उचित नहीं है तो अच्छी से अच्छी पुस्तकें भी बालक एवं बालिकाओं की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि नहीं कर पातीं। पुस्तकालय में केवल बालकों के लिए उपयोगी साहित्य का होना ही आवश्यक नहीं है परन्तु उसमें ऐसा भी साहित्य होना चाहिए जो शिक्षकों के लिए भी उपयोगी हो और जिसे पढ़ कर अपने ज्ञान की वृद्धि कर सकें। पुस्तकों के अध्ययन करते समय इस बात का ध्यान रखना
चाहिए ...
पुस्तकों ...
लाभ उ...
पुस्तकें ...

(ग) पुस्तकालय की व्यवस्था—यदि किसी पुस्तकालय का स्थान आकर्षक है और पुस्तकों का चुनाव भी अच्छे ढंग से किया गया है, किन्तु उसकी व्यवस्था दोषपूर्ण है तब वह पुस्तकालय शिक्षा व्यवस्था का उत्तम साधन नहीं बन सकता। वैसे तो प्रत्येक पुस्तकालय में प्रशिक्षित अध्यक्ष का होना जरूरी है लेकिन हमारे देश के सब उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की आर्थिक दशा ऐसी ... भी ऐसा
किया जा सकता है ... या जाये,
जिसे उस कार्य ... प्रोत्साहन
दे सके। मुदालियर ... अध्यक्ष को
पुस्तकालय व्यवस्था के अतिरिक्त शिक्षण सम्बन्धी अन्य लिपिकीय कार्य दिया जाय। उनका
कहना है :

the
it is
proj...
surely ...

(घ) पुस्तकालय का संगठन—पुस्तकालय के साधारण तौर से तीन भाग किये जा सकते हैं। केन्द्रीय पुस्तकालय, कक्षा पुस्तकालय और विषय पुस्तकालय। केन्द्रीय पुस्तकालय के अतिरिक्त प्रत्येक विद्यालय में बालकों को अधिक से अधिक लाभ पहुँचाने के लिये कक्षा पुस्तकालय एवं विषय पुस्तकालयों की व्यवस्था की जाती है। कक्षा पुस्तकालय का अध्यक्ष कक्षा अध्यापक

भी हो और स्वच्छ हो। Study hall मे विद्यार्थियो को बातचीत करने, एक दूसरे से परामर्श लेने की सुविधा होनी चाहिये। छोटे-छोटे विद्यालयो मे ऐसे Study hall की आवश्यकता नहीं।

पुस्तकालय का प्रयोग अधिक से अधिक उसी समय हो सकता है जब पुस्तकालय का अध्यक्ष सजग और सचेत रहता है। यदि वह नई आई हुई पुस्तको को वडे बडे कमरो मे पुस्तकालय मे अथवा विद्यालय के अन्य कक्षो मे प्रदर्शन करता रहता है। यदि वह समय-समय पर Buletin board और Display cases का उचित प्रयोग करता रहता है।

सग्रहालय

Q 2 Discuss the value of a school museum for students. How would you promote its utility for students? *(Agra B T, 1950, 1953, 1961)*

यदि विद्यालय मे सग्रहालय (Museum) के लिये एक जगह अलग रक्खी जाय तो इसमें विद्यार्थियो को विशेष लाभ होता है। इस कक्ष का निर्माण इस प्रकार होना चाहिये कि इसमे अनेक प्रकार की वस्तुयें सग्रहीत करके रक्खी जा सकें। इसमें कुछ अल्मारियाँ दीवाल मे बनाई जा सकती हैं तथा कुछ अलग से रक्खी जा सकती हैं लेकिन इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि लकडी मे किसी प्रकार भी दीमक व सीलन न लगे जिससे सग्रहीत वस्तुयें सुरक्षित रह सकें। यदि अल्मारियों मे शीशे लगा दिये जायें तो सर्वोत्तम होगा। इस कमरे की बनावट ऐसी होनी चाहिये कि देखने वाले विद्यार्थी आसानी से सग्रहीत वस्तुओ को देख सकें। तरह-तरह की वस्तुओ का स्थान निश्चित होना चाहिये और उनकी सुरक्षा का पूरा प्रबन्ध किया जाय।

प्रत्येक विद्यालय मे सग्रहालय का होना आवश्यक है क्योकि यह विशेष शैक्षणिक महत्व रखता है। छोटे-छोटे बच्चो का व्यवहार मूलप्रवृत्यात्मक (Instinctive) हुआ करता है। उनमे सग्रह की प्रवृत्ति प्रबल रहती है इस प्रवृत्ति का उचित मार्गान्तीकरण अथवा शोधन तभी किया जा सकता है ज[illegible]
सग्रहीत की [illegible]
करने के लि[illegible]
पर काम क[illegible]
प्रत्यक्षीकरण [illegible]
करने के लि[illegible]
है। यदि व[illegible]
रचना कर सकते हैं [illegible]
और भौगोलिक नक्शे, चार्ट और मोडिल (Model) तैयार करने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है। देश की बेसिक सस्थाओ मे इस रचनात्मक प्रवृत्ति के उचित विकास पर काफी बल दिया जा रहा है। बच्चो के द्वारा तैयार की गयी सुन्दर-सुन्दर वस्तुयें सग्रहालयो मे सग्रहीत की जा सकती हैं।

विद्यालय के सग्रहालय मे बालको की ही वस्तुयें होती हैं और चूंकि इसका निर्माण बालको के प्रयास के फलस्वरूप होता है इसलिए इसकी तुलना किसी राष्ट्रीय सग्रहालय से नही की जा सकती। इसमे सग्रहीत वस्तुयें किसी बाह्य दर्शक को आकर्षित नही कर सकती तब भी उनका शैक्षणिक महत्व होता है क्योकि वे बालको मे रचनात्मक रुचि का विकास करती हैं। बच्चो के हिसाब से ये वस्तुये बडा महत्व रखती हैं। कुछ वस्तुयें तो शिक्षण मे विशेष सहायक होती हैं क्योकि वे दृश्य सहायक सामग्री के रूप मे प्रयुक्त होती हैं।

यद्यपि प्रत्ये[illegible]
भी उसरे लिए एक अ[illegible]
लय मे रक्खी जायें उ[illegible]
का नाम अकित रहे जिसके द्वारा [illegible]

अध्याय १२

विद्यालय और समाज

Q. 1. School is not merely a place of study. Discuss fully.

(Agra B. T. 1962)

Or

"There has been too great a tendency to regard the school as an isolated unit and education as something apart from the main stream of life". Suggest steps by which the gulf between the school and society can be bridged and education made real and bring to the child.

विद्यालय समाज की एक सस्था है जिसके द्वारा समाज स्वय सम्बन्धी ज्ञान बालकों को देता है। समाज से भिन्न विद्यालय का कोई अस्तित्व नहीं है। समाज की विचारधारा, उसकी प्रवृत्ति, उसका मस्तिष्क—सब की छाप विद्यालय पर पड़ती है। जैसा समाज होता है वैसा विद्यालय होता है। जैसा विद्यालय वैसे विद्यार्थी होते हैं। कहने का आशय यह है कि विद्यालय समाज का केन्द्र है और उसकी सार्थकता इसी मे है कि वह समाज के और अपने सम्बन्धों को दृढ़ करे और समाज की मांगो को पूरा करता रहे। पुस्तकीय ज्ञान का देना ही विद्यालय का कर्त्तव्य नहीं है बल्कि उसका कर्त्तव्य एक ऐसा वातावरण उपस्थित करना है जिसमे रहकर बालक और बालिकाओं मे समाजोपयोगी गुणों का सचार हो सके।

[illegible] द-
[illegible] के
[illegible] मा
समाज एव स्कूल के सम्बन्धों को फिर से जोडने का।

"The starting point of educational reform must be the relinking of the school to life and the restoring of the intimate relationship between them which has broken down with the development of the formal tradition of education."

—Govt. of India Report

शिक्षा के सुधार मे सबसे पहला दृष्टिकोण अब यही होगा कि विद्यालय केवल पुस्तकीय ज्ञान तक ही सीमित न रहे बल्कि उन समस्त गुणों एव आदतों को सम्मिलित करे जिनके द्वारा वे शक्तियों का उचित उपयोग करके अपने मे सामाजिक क्षमता पैदा कर सकें। जिस प्रकार कुटुम्ब एव समाज मे रहकर सम्भ्रान्त युवक समाजोपयोगी गुणों एव आदतों को सीखता है उसी प्रकार वह विद्यालय मे रहकर सफल नागरिक बन सकता है। ऐसे विद्यालय को हम समाज का प्रमुख केन्द्र कह सकते हैं जिसके अध्यापक, छात्र एव उनके अभिभावक समाज के आदर्शों की रक्षा मे लीन रहते हैं और उसके आदर्शों को इन तत: निरन्तर प्रसारित करते हैं। उनके प्रयत्नों के फलस्वरूप समाज का जीवन विद्यालय की क्रियाओं का अभिन्न अग बन जाते हैं। समाज के सदस्य भी विद्यालय के विकास मे अशदान देने का प्रयत्न करते रहते हैं। विद्यालय और समाज के बीच जो गहरी रेखा खिची हुई है वह तभी लुप्त हो सकती है जब वे दोनों एक दिल होकर कार्य करें। जब तक समाज और विद्यालय दोनों की जीवन-धारायें एक होकर न बह सकेंगी तब तक उनके बीच स्थित अभेद्य दीवार टूट नहीं सकेगी। यह तभी हो सकता है जब विद्यालय के व्यव-स्थापक एव सचालक उसे समाज का लघु रूप मानकर चलें जो बालकों मे पुस्तकीय ज्ञान का

सचार करने के साथ-साथ उन्हे समाजोपयोगी गुण सिखाकर, सामाजिक प्रवृत्तियो को प्रोत्साहित कर सामाजिक क्रियाओं की क्षमता प्रदान कर उन्हे सफल नागरिक बना सकें।

किन्तु विद्यालय मे उन समस्त सामाजिक क्रियाओं को स्थान भी नही दिया जा सकता जो समाज मे निरन्तर होती रहती है इसीलिये विद्यालय को एक लघु समाज (miniature society) की सज्ञा दी गई है। इस लघु समाज मे समाज की क्रियाओं का सक्षिप्त रूप ही उपस्थित किया जा सकता है, विशद रूप नही। साथ ही विद्यालय के वातावरण से समाज का कलुषित अंश दूर रखा जा सकता है जिससे कि वह सरल, स्वच्छ और सन्तुलित बना रह सके। विद्यालय के वातावरण मे विभिन्न तत्वों का सन्तुलित रूप से उपस्थित होने का आभास डीवी के निम्न कथन मे हमे मिल सकता है—

" . . environment are three : simplifying
. it is wished to develop : purifying
. creating a wider and better envir-
. uld be likely, if left to themfelves to
de influenced "
—*Democracy & Education*

. . न सबसे बडी समस्या हमारे सामने यह है कि हमारे जो विद्यालय केवल पुस्तकीय

. . .

(सातत्य) (continuity) को सुरक्षित रखना है, यदि हम अतीत की सफलताओं की रक्षा एव भविष्य को शाश्वत रखना है तो हमे उनके वातावरण को सरल, स्वच्छ एव सन्तुलित बनाना होगा। हमारे विद्यालय तभी समाजोपयोगी वातावरण उपस्थित कर सकते हैं—

(१) जब उनका पाठ्यक्रम जीवन-केन्द्रित (life centered) है।

(२) जब उनकी सम्पूर्ण जीवनचर्या समाज के जीवन दर्शन से अनुप्राणित है।

(३) जब वे छात्रो की जीवन सम्बन्धी सभी उचित आवश्यकताओं को स्वतन्त्र रूप से पूरा कर सके।

. . . जत सास्कृतिक

गतिविधि . . . क महत्व दें।

. . . सहयोगी हो।

और . . .

(१) पाठ्यक्रम का जीवन केन्द्रित होना—विद्यालय का बाह्य वातावरण से सामजस्य स्थापित करने के लिये सबसे पहला कदम होगा पाठ्यक्रम को जीवन-सम्बद्ध करने का। विद्यालय की एक जिम्मेदारी यह भी है कि वह जीवन-यापन, शिक्षा-प्रदान, धार्मिक, आर्थिक एव राजनैतिक समस्याओं के हल करने की क्षमता अपने छात्रो मे पैदा करे। यह तभी हो सकता है जब इन प्रक्रियाओं, समस्याओं एव अनुभवों को पाठ्यक्रम मे स्थान दिया जाय। यह पाठ्यक्रम ऐसा हो जो सामान्य ज्ञान अथवा पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा समाज के ढाँचे, उसके आदर्श, उसकी गति, उसकी क्रियाओं और उसकी आवश्यकताओं को आधार मानकर वास्तविक अनुभव प्रदान कर स . . यदि पाठ्यक्रम जीवन केन्द्रित हुआ तो विद्यालय-जीवन की समाप्ति के बाद छात्र समाज

. . .

स्थापित करने . . .
विज्ञान एव कला का अध्ययन कर सके।

प्रारम्भ मे पुस्तकीय ज्ञान पर भी जोर दिया जा सकता है, किन्तु यह पुस्तकीय ज्ञान समाज ज्ञान से भिन्न न होना चाहिये। गणित, वाणिज्य, कृषि, गृहविज्ञान, आदि ऐसे विषय हैं जिनका पुस्तकीय ज्ञान भी बालक मे जीवन की समस्याओं को समझने या हल करने की क्षमता

ा कर सकता है किन्तु पाठ्यक्रम में ऐसे विषय रखे जावें जो समाज के प्रति और उसके आदर्शों र उसके अतीत एवं वर्तमान के स्वरूप से बालक को परिचित कराते रहें। ये विषय हैं नागरिक स्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास एवं भूगोल। किन्तु समाज का वास्तविक ज्ञान तभी बच्चों को दिया सकता है जब वे निम्न तरीकों से समाज से सम्पर्क स्थापित कर सकें—

(१) समाज के सदस्यों द्वारा बालकों के लिये भाषणों का आयोजन,
(२) भ्रमण पर्यटन,
(३) समाज सेवा शिविरों का आयोजन,
(४) समाज के प्रौढ़ व्यक्तियों की अवकाश की कार्यवाहियों का आयोजन,
(५) चार्ट, नक्शे, तस्वीरों, रेडियो आदि के माध्यम से समाज का ज्ञान।

(२) समाज का जीवन दर्शन और विद्यालय की जीवनचर्या—विद्यालय के प्रांगण में ध्यापक या छात्र सुबह से लेकर शाम तक जो कुछ भी क्रिया-कलाप करते हैं वह सब उनकी जीवनचर्या का अंग होता है। ये क्रियायें दो प्रकार की होती हैं—पाठ्यक्रमीय और पाठ्यक्रम-सहगामिनी (cocurricular)। ये सब क्रियायें समाज के जीवन दर्शन से अनुप्राणित होनी चाहिये। भी विद्यालय अपने छात्रों को समाज के अभीष्ट गुणों से सुसज्जित कर सकेगा। यदि ... अनुप्राणित हुई तो एक ... छात्र न रह सकेगा। ... उनका कोई सदस्य ... समय का विनाश नहीं करता तो यह आदत वातावरण के माध्यम से विद्यालय के सब छात्रों में ... ैल जायगी।

(३) छात्रों की जीवन सम्बन्धी उचित आवश्यकताओं की सन्तुष्टि—विद्यालय का र्तव्य है अपने ... यह तभी हो सकता है जब ... आवश्यकताओं की सन्तुष्ट ... sion) पैदा हो जाता है। यह तनाव जब कम नहीं होता तो व्यक्तित्व में कुसमजन (mal-adjustment) पैदा हो जाता है। यदि कुटुम्ब एवं समाज में कुछ ऐसी कमियाँ हैं जिनके कारण व्यक्ति की आवश्यकतायें असन्तुष्ट ही रह जाती हैं तब विद्यालय का कर्तव्य हो जाता है उन आवश्यकताओं को असन्तुष्टि से पैदा हुए तनाव को कम करने का। विद्यालय यह कार्य तभी कर सकता है जब वह समाज का संक्षिप्त रूप बन जाय। छात्रों की भौतिक आवश्यकताओं—भोजन, वस्त्र, खेल-कूद, निवास स्थान आदि के साथ साथ व्यक्तित्व (personality needs) सम्बन्धी आवश्यकताओं को भी सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करे। बहुत से छात्रों को गरीबी के कारण उनको उचित भोजन नहीं मिलता। बहुत से घर ऐसे होते हैं जिनमें एकान्त में बैठकर बालक पढ़ नहीं सकता। बहुत से छात्रों को माता-पिता का प्रेम अप्राप्य हो जाता है। यदि छात्रों की ऐसी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि विद्यालय कर सका तो निश्चय ही वह समाज का लघु रूप बन सकता है।

छात्रों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये विद्यालय के पास काफी धन होना चाहिए साथ ही बाह्य हस्तक्षेप का अभाव भी। यह आदर्श परिस्थिति तब पैदा हो सकती है जब विद्यालयों का सम्पूर्ण भार राज्य या समाज वहन करे। इस प्रकार विद्यालय को समाज का आदर्श लघुरूप बनाने का उत्तरदायित्व समाज पर ही अधिक है।

(४) छात्रों के अभिभावकों का सहयोग—यदि समाज यह चाहता है कि उसके बालक और बालिकायें ... के सम्मान की रक्षा कर सकें तो उसे विद्यालय का सहयोगी बन कर चलना होगा। यदि ... हुआ तो वह अपने कार्य में इत ... है। हम क्यों आये दिन छात्रों के ... या समाज अपने बच्चों के व्यवहार के प्रति उदा ... उनके बालकों के मन पर विरोधी संस्कार ... र अपने बालकों के व्यवहार की चिकित्सात्मक व्यवस्था ... समाज का ऐसा आदर्श लघुरूप बनाना है जिसमें कलुष्य का प्रवेश ही न हो तो समाज एवं अभिभावकों का कर्तव्य है कि अपने अन्दर जो कलुषता भरी हुई है वह छात्रों के द्वारा विद्यालय में छनकर न पहुँचे।

(५) विद्यालय समाज की सांस्कृतिक गतिविधियों के केन्द्र के रूप में—विद्यालय के प्रांगण में नित्य विभिन्न उपयोगी विषयों पर अधिकारी विद्वानों के प्रवचन होते रहते हैं, अनेक प्रकार के सांस्कृतिक एवं शिक्षाप्रद कार्यक्रम आये दिन होते रहते हैं। पाठशाला ही एक ऐसी संस्था है जो अनेक सामाजिक कार्यक्रमों को अच्छे ढंग से चला सकती है क्योंकि उसमें अध्यापकों के रूप में उत्तम कार्यकर्त्ताओं एवं छात्रों के रूप में उत्साही स्वयं सेवकों का दल सदैव तैयार रहता है। विद्यालय का विशाल भवन अथवा विस्तृत क्रीड़ा क्षेत्र ऐसी सांस्कृतिक गतिविधियों के उपयुक्त होते हैं अतएव विद्यालय इन क्रियाकलापों का केन्द्र बन जाया करता है।

(६) समाज सेवा शिविरों का आयोजन—यदि इसके साथ ही साथ विद्यालय अपने स्वयं सेवकों को मेलों, प्रदर्शनियों, रामलीला के मैदानों में भेजकर समाज सेवा कार्यों में अपने को लगा सका तो उसे जनता से यश और श्रद्धा मिलती तथा उसके छात्रों को सामाजिक अनुभव प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त हो सकेंगे। ऐसे अवसरों पर जल पिलाने की व्यवस्था, भूले भटकों को यथा स्थान पहुँचाने का प्रबन्ध, रोगियों एवं पीड़ितों की प्राथमिक चिकित्सा, आगन्तुकों को यथास्थान बैठाना और शान्ति स्थापित करना आदि आदि कुछ ऐसे कार्य हैं जिनकी सामाजिक उपयोगिता है और जिनमें भाग लेकर विद्यालय समाज का अभिन्न अंग बन सकता है।

(७) शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन—अब तक हमने विद्यालय को सार्थक एवं समाजोपयोगी बनाने के लिए समाज और विद्यालय के बीच सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया है। पाठ्य-क्रम को जीवन केन्द्रित बनाने, अपनी जीवन चर्या को समाज के जीवन दर्शन में ढालने, छात्रों की भौतिक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करने, समाज सेवा शिविरों, सांस्कृतिक गतिविधियों का उपक्रम रखने और छात्रों के अभिभावकों का पूर्ण सहयोग प्राप्त करने से विद्यालय समाज का आदर्श लघुरूप बन सकता है। किन्तु जरूरत इस बात की भी है कि वह अपने पाठ्य-क्रम के पुनर्गठन के साथ अपनी शिक्षा प्रणाली में संशोधन उपस्थित करे।

बालक को भौतिक वातावरण तथा सांस्कृतिक परम्पराओं की जानकारी देने के लिए अध्यापक निम्नलिखित शैक्षणिक क्रियाओं का सहारा लेता है।

(१) चार्ट, मॉडल, चित्र, आदि के माध्यम से बालकों को अपने समाज का ज्ञान देना गा। सभी प्रकार की दृश्य श्रव्य सामग्री का उपयोग करके हम अपने बच्चों को उस समाज की [illegible]षताओं से अवगत करा सकते हैं जिसमें उनका पालन-पोषण होता है।

(२) समाज के उन व्यक्तियों को जो अपने भौतिक पर्यावरण की जानकारी रखते हैं [illegible]मुदाय की विशेषताओं पर प्रकाश डालने के लिए आमन्त्रित किया जा सकता है।

(३) आस-पड़ोस का भौगोलिक अथवा ऐतिहासिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए भ्रमण [illegible]ने की योजना तैयार की जा सकती है।

(४) समाज सेवा के कार्य का आयोजन किया जा सकता है जिसका सम्बन्ध समुदाय [illegible] जीवन से हो।

(५) गाँव अथवा [illegible] के प्रौढ़ व्यक्तियों को उनके अवकाश के समय को व्यतीत [illegible]ने के लिए आमन्त्रित किया जा सकता है।

(६) पाठ्यक्रम सम्बन्धी अथवा पाठ्येतर क्रियाओं की योजना बनाते समय समाज का [illegible]धारण किया जा सकता है।

अच्छी शिक्षण विधि वही है जो ज्ञान के देने के साथ-साथ उस ज्ञान के प्रयोग करने की क्षमता भी पैदा कर सकती है। ऐसी पद्धति बालक के मानसिक विकास में ही सहायक नहीं [illegible]ती उसके व्यक्तित्व का विकास भी करने में समर्थ होती है क्योंकि वह विद्यार्थी के व्यवहार [illegible] आचरण का आधार बन जाया करती है। कोई भी शिक्षा प्रणाली चाहे वह केवल [illegible] [illegible] अध्यापकों एवं बालकों को एक साथ सूत्र में बाँध दिया करती है। वह बालकों के [illegible] [illegible] विकास को ही प्रभावित नहीं करती उनके [illegible], उनकी [illegible] [illegible] एवं [illegible] [illegible], उनके भौतिक एवं मानसिक व्यवहारों, उनकी अभिरुचियों एवं [illegible] (values) [illegible] भी प्रभावित करती है। किन्तु [illegible] शिक्षा की [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]निक होता है क्योंकि [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] रखती है, [illegible] [illegible] जीवन पर [illegible] [illegible] है और उस [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]ती है।

की क्रियाओं, समस्याओं और ढांचे को समझना शिक्षालय का पुनीत कर्तव्य माना जा ता है।

स्कूल समाज की मांगों को कैसे पूरा करे—समाज की मांगों को पूरा करने के लिये ल सामाजिक शिक्षा (social education) का केन्द्र बन सकता है जिसके उद्देश्य हैं—

(अ) नागरिकों को अधिकारों एवं कर्तव्यों से अवगत कराना, देश में समाज-सेवा की वना उत्पन्न करना।

(ब) प्रजातन्त्र के प्रति अनुराग विकसित करना और प्रजातन्त्र की कार्य प्रणालियों परिचित कराना।

(स) विश्व और देश के सम्मुख उपस्थित प्रमुख समस्याओं और कठिनाइयों की जान- री प्रदान करना।

(य) अपने इतिहास, भूगोल और संस्कृति के ज्ञान द्वारा अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं प्रति प्रेम और गौरव भाव उत्पन्न कराना।

(द) *व्यक्तिगत एवं सामुदायिक स्वास्थ्य के लिये आवश्यक साधारण नियमों का ज्ञान* राना। स्वास्थ्य एवं स्वच्छता का अभ्यास विकसित करना।

(फ) जीवन में सहकारिता की भावना को बनाना और उसे दृढ़ करना।

(य) आर्थिक सुधार अथवा मानसिक व्यस्तता के लिये भिन्न-भिन्न कौशलों की शिक्षा सुविधा प्रदान करना।

(ल) लोकनृत्य, नाटक, संगीत, कविता पाठ तथा आत्म अभिव्यंजना के अन्य कार्यों रा सांस्कृतिक एवं मनोरंजनात्मक सुविधाएँ प्रदान करना।

(व) ज्ञान प्राप्ति में अनुराग उत्पन्न करना और पढ़ाना, लिखाना, हिसाब रखना, खाना।

वेसिक प्रशिक्षण विद्यालयों की देख-रेख में सामुदायिक केन्द्रों का स्थापना की जा कती है जो समीपवर्ती जनसमुदाय के लिये सांस्कृतिक केन्द्र बन सकते हैं और उस समुदाय को क्षणिक, सामाजिक और मनोरंजन सम्बन्धी सुविधाएँ दे सकते हैं। इनका उद्देश्य प्रौढ़ों को ना किसी भेदभाव के लाभान्वित करना हो सकता है। वे गांवों के स्कूलों से सहायता लेकर म्नांकित कार्य कर सकते हैं—

(१) मनोविनोदात्मक कार्य—बालकों एवं प्रौढ़ों के लिये खेलकूद, नाटक, भजन, नाच- ना आदि की सुविधाएँ देना।

(२) स्थानीय और राष्ट्रीय उत्सव उत्साहपूर्वक मनाना।

(३) सामूहिक रुचि के भाषणों, वार्ताओं एवं तर्क-वितर्कों का प्रबन्ध करना।

(४) साक्षरता की कक्षाएँ चलाना।

(५) रेडियो, फिल्म तथा प्रदर्शनियों की व्यवस्था करना।

(६) क्राफ्ट की कक्षाएँ चलाना।

स्थानीय अध्यापक इस सामुदायिक केन्द्र को चलाने में सहायता दे सकते हैं।

स्थानीय अध्यापक और उस केन्द्र का विद्यालय सह-सम्बन्धित पुस्तकालय सेवा का बन्ध भी कर सकता है। राष्ट्रोत्थान तथा समाज शिक्षा में पुस्तकालयों का विशेष महत्व रहता । प्रत्येक नागरिक के लिये समुचित साहित्य को एकत्र करना तथा उनमें वितरित करना वद्यालय को सौंपा जा सकता है। यदि कार्य-भार में वृद्धि होती है तो कम से कम इस कार्य में वह सामुदायिक केन्द्र के संचालन की सहायता भी कर सकता है।

पुस्तकालय खुलने का समय विद्यालय चलने के समय के उपरान्त हो सकता है। पुस्तकालय में पुस्तकों की सूची, नई आने वाली पुस्तकों की सूची तथा सदस्यों की सूची रहनी चाहिये। वाचन मण्डल, अध्ययन मण्डल, सेवा समिति, युवक दल, विद्यालय और समारोह आदि माध्यमों द्वारा पुस्तकों का उपयोग बढ़ाया जा सकता है।

सामाजिक शिक्षा के लिये जो जनता कालेज खोले जा रहे हैं उनमें भी विद्यालय अपना हाथ बटा सकता है। जनता कालेज की व्यवस्था के लिये स्थानीय लोगों में से जिला शिक्षा ..., कालेज का प्रधान अध्यापक प्रभावशाली सदस्य हो सकते हैं।

शिक्षा प्रणाली को सामाजिक शिक्षा के घनिष्ठ सम्पर्क मे लाकर दोनो का समन्वय किया जा सकता है। कुछ चुने हुए प्रारम्भिक स्कूलो को सामुदायिक केन्द्र बनाने की योजना देश मे चालू हो गई है। वे देश की निरक्षरता को कम करने का प्रयत्न कर रही हैं।

शिक्षा जीवन का क्रम है

Q 3 'A school is a comprehensive scheme of life' Amplify

(Agra B. T. 1953)

शिक्षा जीवनव्यापनी प्रक्रिया है। मनुष्य जीवन भर सीखता रहता है। इस तथ्य को ध्यान मे रखकर विद्यालय व्यवस्था एव सचालन का कार्य किया जाय।

विद्यालय छोडने के बाद भी समाज के प्रत्येक सदस्य को शिक्षा की आवश्यकता रहती है अत ... दारी लेनी होगी क्योकि यदि हम विद ... के सदस्यो के साथ निरन्तर सम्पर्क स्थापित ... नके विशिष्ट कार्यों की शिक्षा देनी होगी। दूसरे देशो के प्रगतिशील विद्यालयो ने उत्तरदायित्व सभाल लिया है। हमारे देश की शिक्षण सस्थाओ को भी यही काम करना होगा यदि वे समाजोपयोगी बनना चाहती है। इससे उनको अनेक लाभ होगे—

(१) छात्रो के निर्माण मे अभिभावको एव समाज के लोगो का अधिक सहयोग प्राप्त हो सकेगा। यदि वे समाज से निरन्तर सम्पर्क स्थापित रख सकें तो विद्यालय और अभिभावको के बीच गलतफहमियो का अन्त हो सकेगा। अभिभावक तथा समाज के अन्य सदस्य शिक्षा सम्बन्धी अपने उत्तरदायित्व को समझ सकेंगे।

(२) यदि विद्यालय समाज के प्रत्येक व्यक्ति को निरन्तर शिक्षित करते रहने की जिम्मेदारी ले लेता है तो समाज के लोगो की दृष्टि मे विद्यालय की उपयोगिता बढ़ेगी तथा अध्यापको की ओर श्रद्धा का भाव जाग्रत होगा।

(३) समाज के लोगो को विद्यालय से नवीन प्रेरणायें मिलती रहेंगी और विद्यालय को अपनी जानकारी को निखारने का अवसर मिलता रहेगा।

(४) यदि विद्यालय उन निरक्षर प्रौढ़ व्यक्तियो की शिक्षा की व्यवस्था कर सका जिनके बच्चे विद्यालय मे पठन-पाठन कर रहे हैं तो वे शिक्षा के स्वरूप मे परिचित होकर अपने बालको की शिक्षा मे उचित रुचि लेने लगेगे और विद्यालय का कार्य अत्यधिक सरल हो जायगा।

जो विद्यालय प्रत्येक स्तर पर छात्रो को अध्येय वस्तु चुनने तथा शिक्षण-काल समाप्ति के उपरान्त भी उपर्युक्त कार्य करने मे समुचित सहायता प्रदान करते हैं वे उनके जीवन के अभिन्न अग बन जाया करते हैं। विद्यालय जीवन मे छात्रो के सम्मुख अध्येय, विषय चुनने की समस्या उन्हे तग किया करती है क्योकि उनके अभिभावक कुछ चाहते हैं, उनके अध्यापक कुछ और इस द्विविधा मे पडे हुए बालको का उद्धार विद्यालय के विशेषज्ञ ही कर सकते हैं जिनमे पथ-प्रदर्शन करने की योग्यता है।

छात्र के स्नातक हो जाने पर उसे जीविका कमाने की समस्या का सामना करना पडता है। यदि विद्यालय चाहता है कि उसके स्नातक सामाजिक जीवन मे उचित स्थान ग्रहण कर सकें तो उसे व्यवसायपतियो, कामदिलाऊ कार्यालयो और औद्योगिक सगठनो से सम्पर्क स्थापित करना होगा।

विद्यालय की एक जिम्मेदारी यह भी है कि बालको के लिये भिन्न-भिन्न पाठ-चर्याओ का प्रबन्ध करे और छात्रो को जीविकार्जन के चुनाव मे समुचित प्रदर्शन भी करता रहे। वह म ... और ... उन्हे इस ... बन ... तक प्राप्त कर ... को लेती के काम पर भेजा जाय और दूसरे को यानशाला के प्रबन्ध के लिये। मार्ग प्रदर्शन से हमारा अभिप्राय उस कला से है जिसका सहारा लेकर विद्यालय अपने लडके और लडकियो को बुद्धिमत्ता या अपने भविष्य को प्रयोजित करने के लिये सहायता प्रदान करता है। इस अर्थ

अभिभावकों के साथ सहयोग

(१) वंशानुक्रम (२)
उसके विकास की
वातावर र पर मिलता है
दिशा में करना है किन्तु
और समाज विद्यार्थी जीवन का २५% भाग ही विद्यालय म व्यतीत कर पाता है। अतः जिस
बालक अपने
वातावरण मे वह ७५% समय तक रहता है उस मे भी सुधार लाना अत्यावश्यक है। यह तभी
सम्भव है जब अध्यापक और अभिभावक वर्ग के बीच सम्पर्क हो और अध्यापक अभिभावको को
की आवश्यकता समझा कर वैसा ही वातावरण घरो मे

है। घर पर पाठ का दुहराना, स्कूल म ठीक समय
आचरण की बातो को पालन कराने की कुछ ऐसी बातें हैं जिनमे अभिभावक ही सहायक सिद्ध हो
सकते हैं।

अभिभावको से सम्पर्क स्थापित करके उनका सहयोग प्राप्त करने के लिये निम्नलिखित
उपाय हैं—

(१) **बालकों के प्रवेश का दिवस**—अभिभावको को अनिवार्यतः स्कूल आने और अध्यापको से मिलने की सुविधा और अध्यापक तथा अभिभावको का प्रथम परिचय उस दिन होता है जिस दिन बालक प्रवेश के लिये पाठशाला मे आता है अतः प्रधान अध्यापक को यह नियम बना देना चाहिए कि प्रवेश के समय अभिभावक ही प्रवेश कराने के लिये विद्यालय मे उपस्थित हो।

(२) **विद्यालय मे उत्सवो के समय**—उनको निमन्त्रण देना, वार्षिक पारितोपिक वितरण,
खेल-सप्ताह, एकांकी नाटक या संगीत के कार्यक्रम के अवसर पर अभिभावको को निमन्त्रण देना
चाहिए ताकि बाल
सम्मुख किसी कार्य
होती है और उन
प्रदर्शनी से अभिभ
कार्य होता है। इन
और योग्यताओ का परिचय प्राप्त हो जाता है। अध्यापक इन कमियो को दूर और योग्यताओ का
विकसित कर सकता है।

(३) **अभिभावक-दिवस**—पाठशाला के अन्य उत्सवो के अतिरिक्त अलग से वर्ष मे एक बार अभिभावक-दिवस मनाने से भी अभिभावको के साथ सम्पर्क बढ़ाया जा सकता है। इस अवसर पर केवल अभिभावको को ही निमन्त्रित किया जाता है जिससे वे इस उत्सव को अधिक महत्व देते हैं। इस दिन भी मनोरंजन का कार्यक्रम रखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त विद्यालय के कार्य, शिक्षण प्रणाली आदि के सम्बन्ध मे अध्यापको और अभिभावको को विचार विनिमय करने का मौका मिलता है। इस विचार विनिमय से अभिभावको को पाठशाला की कठिनाइयो तथा अध्यापको को अभिभावकों के दृष्टिकोण का ज्ञान होता है। दोनो के सम्मिलित सुझावों से विद्यालय की उन्नति मे सहायता मिलती है।

(४) **अभिभावक समितियो का निर्माण**—समस्त छात्रो के अभिभावक जब अभिभावक दिवस पर पाठशाला मे एकत्र हो तब उनके कुछ प्रतिनिधि चुन लिये जायें। इन प्रतिनिधियो की एक समिति बना दी जाय जो परामर्शदात्री समिति का कार्य करे। इस परामर्श देने वाली समिति की विचारधाराओ का विद्यालय के कार्यक्रम मे समन्वय स्थापित किया जाय। इस प्रकार शिक्षण कार्य एवं अनुशासन दोनो मे ही सहायता प्राप्त हो सकती है।

(५) **पाठशाला के पुराने छात्रों का सम्मेलन (Old Boy's Association)**—पाठशालाओ के पुराने छात्रो के सम्मेलन प्रायः बडी संस्थाओ मे होते हैं। इनसे छात्रो मे अपने विद्यालय के साथ स्वाभाविक स्नेह स्थापित करने मे मदद मिलती है। वे पाठशाला के हित और उन्नति की बात ही सोचते हैं। अतः यदि पाठशाला अपने पुराने छात्रो को एक वार्षिक सम्मेलन मे बुलाती है तो उन्हें

ता में मिलने व विचार विनिमय करने का अवसर मिलता है, उनके विचारों और परामर्श से ालय के अधिकारी लाभ उठा सकते हैं।

(६) अध्यापकों को अभिभावकों से निमन्त्रण मिलने पर अवश्य उनके घर जाना हिए। वैसे भी अपने आप ही समय-समय पर छात्रों के घर जाकर कक्षा अध्यापकों को उनके माता ता से बालकों के विषय में जानकारियाँ इकट्ठी करनी चाहिए। ऐसा करने से अध्यापकों को लकों के घर के वातावरण का सच्चा ज्ञान मिल सकता है और बालकों के अभिभावकों को ायुक्त सुझाव दिया जा सकता है।

(७) पिता और अध्यापक परिषद (Parent Teacher Association)—विद्यालय एक ऐसा परिषद बनाया जा सकता है जिसके सदस्य अध्यापकगण और अभिभावक हों। सभा- ति के स्थान में किसी अभिभावक को ही रखना उत्तम होगा। इस परिषद् की बैठक प्रति दो या ीन माह के पश्चात् होनी चाहिए। इसकी बैठकों में विद्यालय और बालकों की समस्यायें ौर उनके हल करने के सुझाव रखे जा सकते हैं, विद्यालय-व्यवस्था, शिक्षा और शिक्षण सम्बन्धी िषयों पर अभिभावकों से बातचीत की जा सकती है। प्रधान अध्यापक इन बैठकों में विद्यालय ारा की गई उन्नति, नई योजनाओं और अन्य परिस्थितियों पर प्रकाश डाल सकता है। भिभावक भी विद्यालय की समस्याओं को सुलझाने के लिए अमूल्य सम्मतियाँ दे सकते हैं। इस कार विद्यालय और अभिभावकों के बीच अच्छा सम्बन्ध स्थापित हो सकता है। अभिभावक इस ात का प्रयत्न करेंगे कि घर पर उनके बालकों को वही वातावरण मिले जैसा कि विद्यालय प्रस्तुत रता है।

(८) उन्नति रिपोर्ट (Progress Report)—माता-पिता का सहयोग पाने के लिये वेद्यालय उनके बच्चों की उन्नति के विषय में पूरी जानकारी भेजता रहे। बालक के शारीरिक, ानसिक, सामाजिक और नैतिक विकास का पूरा चित्र अभिभावकों के सामने प्रस्तुत किया जाय। प्रत्येक बालक की डाक्टरी परीक्षा का परिणाम अभिभावकों को सूचित कर दिया जाय ताकि वे अपने बच्चों की देखभाल घर पर उचित प्रकार से कर सकें। यदि किसी बालक को कठोर दण्ड देने की आवश्यकता मालूम पड़े तो उसकी सूचना उसके अभिभावक को अवश्य दी जाय।

(९) प्रबन्ध समिति में अभिभावकों का निर्वाचन—यदि अभिभावकों के एक दो प्रति- निधि, जिनका चुनाव अभिभावक समिति द्वारा किया गया है, प्रबन्धकारिणी समिति में रखे जायँ तो बहुत ही अच्छा होगा। इस प्रकार विद्यालय के कार्यों में अभिभावकों की रुचि उत्पन्न हो जायगी।

विधियों का उल्लेख ऊपर किया ' । बालक के सर्वांगीण विकास कार्य द्यालय का। अत विद्यालय और होगा।

Q. 5. Discuss the handicaps that the present system of Indian education has to face while establishing better Community relationships.

विद्यालय के समक्ष समाज का सहयोग प्राप्त करने में कठिनाइयाँ—आधुनिक भारतीय विद्यालय समाज से विच्छिन्न एकाकी जीवन बिता रहा है। यह एकाकीपन जितना राजकीय विद्यालयों को महसूस होता है उतना प्राइवेट संस्थाओं को नहीं। लेकिन उन विद्यालयों का भी उस समाज से सिद्धान्ततः कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है जिसमें उनका पोषण होता है। विद्यालय उस समाज के आदर्शों की रक्षा नहीं करता, उसके जीवन को पुष्ट बनाने का प्रयत्न नहीं करता, जिसने उस निर्माण किया है। इसके निम्नलिखित कारण हैं :—

१. ... का पाठ्यक्रम संकीर्ण है। अध्यय ... उतना अधिक महत्व जीवन की ... केन्द्रित हो गई है, पाठ्यक्रम। ... ओं के अनुकूल विषय वस्तु का चयन ... ही आवश्यकताओं को

सन्तुष्ट करती है और न व्यक्ति की ही। पाठ्यतर क्रियाएँ जिनका जीवन से विशेष सम्बन्ध होता है पीछे छोड़ दी जाती हैं। विद्यालय समय चक्र मे कोई लचीलापन नही है। स्वीकृत पाठ्यक्रम पुस्तको के अतिरिक्त अन्य पुस्तको का अध्ययन वर्जित सा है अत बालक उस पुस्तकीय ज्ञान को महत्व देता है जो उसकी पाठ्यपुस्तको मे है। फलस्वरूप हमारा छात्र जब उच्चतर माध्यमिक शिक्षा पूरी कर लेता है तब भी उसके अपने पैरो पर खडे होने की क्षमता नही होती। समाज मे मिलने वाली सुविधाओ और उत्तम अवसरो से वे लाभ नही उठा पाते। ऐसी दशा मे समाज और विद्यालय भिन्न भिन्न मार्गो पर चलते नजर आते हैं।

को अधि

आये थे। ... स्वरूप उन्हे आधारभूत प्रत्ययो का ज्ञान भी नही होता। उनमे इस प्रकार के शिक्षण के कारण वे गुण उत्पन्न नही हो पाते जिनके विकसित होने पर वे समाज के जीवन मे सक्रिय भाग ले सकें। अध्यापको मे यह योग्यता नही है जो छात्रो के ऐसे गुणो को विकसित करने के लिये आवश्यक होती है। समाज मे उपलब्ध साधनो का उचित प्रयोग समाजअध्ययन, इतिहास, भूगोल और नागरिकशास्त्र के अध्यापक भी नही कर पाते। शिक्षण पूरी तरह सैद्धान्तिक और पूर्व सैद्धान्तिक होने के कारण जीवन धारा से विलग हो जाता है।

... प्रधानाचार्य बहुधा दकियानूसी
... वतन्त्रता देते हैं कि वे सामु-
... विद्यालय के कार्यक्रम की
... मे रहकर विकास हो सके।
... कम विद्यालयो मे अध्यापक

का ...

(द) उच्च स्तरीय शैक्षिक प्रशासन का केन्द्रीयकरण—विद्यालयों का वास्तविक प्रशासन राज्य के हाथो मे है। राज्य ही उनका पाठ्यक्रम निश्चित करता है। राज्य ही शिक्षा नीतियो को निर्धारित करता है। स्थानीय समाज को पाठ्यवस्तु के सचय और सगठन का अधिकार नहीं है। फलस्वरूप समाज और विद्यालय एक दूसरे से अलग होते जाते हैं।

(य) समाज के सदस्यों का विद्यालय के कार्यक्रम में उपेक्षित भाव—विद्यालय और समाज मे घनिष्ट सम्बन्ध तभी स्थापित हो सकता है जब समाज शिक्षित, और विद्यालय के प्रति अपने कर्तव्यो का जागरूक हो। सामाजिक चेतना के अभाव मे समाज और विद्यालय का मिलना कैसा ? लोग अपनी जिम्मेदारियो को नही समझते। शहरी क्षेत्रो मे विद्यालय जिस समाज का पोषण करता है वह समाज अस्थिर और चलायमान रहता है इसलिए उस समाज का विद्यालय से कोई प्रेम नही होता। ऐसा समाज विद्यालय को दे नही सकता। सहयोग आदान एव प्रदान मे निहित रहता है।

इसलिए यदि हमे शिक्षा मे सुधार करना ही है तो पहला काम जो हमे करना है वह है स्कूल और समाज के बीच वैसा ही सम्बन्ध स्थापित करना जैसा कि पहले था और जो सम्बन्ध टूटा इसलिए है कि हमने शिक्षा की गलत पद्धतियो को अपना लिया है।[1]

जिस समय औपचारिक शिक्षा (Formal Education) का महत्व था उस समय बालक की शिक्षा मे घर को विशेष महत्व दिया जाता था। पर अथवा समाज मे रहकर बालक सब कुछ सीखता था। जब समाज मे जटिलताएँ आई शिक्षा का यह कार्य गुरुगृहो को सौपा गया। वहाँ रह करके भी बालक का समाज से सम्पर्क न टूटा। लेकिन पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव मे आकर

1. "The starting point of educational reform must be the re-linking of the school to the life and restoring of the ultimate relationship between them which has been broken down with the developing of the formal traditions of education". *The Secondry Education Commission*, 1953.

हमने गुरुकुलों और मदरसो की उत्तम शिक्षा प्रणाली को छोड दिया। ब्रिटिश काल मे वह शिक्षा प्रणाली अपनाई गई जिसमे बालक का समाज मे सम्बन्ध बिल्कुल टूट गया। शिक्षालय ज्ञान बेचने की दुकानें बन गई और अध्यापक ज्ञान रूपी सामान बेचने के मालिक बन गये। शिक्षण क्रियाएँ जीवन से दूर और अति दूर होती गई। ज्ञान प्राप्ति ही शिक्षा का उद्देश्य बन गया। ऐसी शिक्षा पद्धतियों की असफलताओं को देखकर आधुनिक शिक्षा शास्त्री शिक्षा मे पुनः उसी सिद्धान्त को लाने की फिक्र मे हैं जिसके अनुसार समाज और विद्यालय मे घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित किया जा सके। विद्यालय को समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति और समस्याओं के हल करने मे समर्थ बनाना चाहता है। वह चाहता है कि विद्यालय का पाठ्यक्रम जीवन से पूर्णतः सम्बद्ध हो। विद्यालय की क्रिया मे जीवन की क्रियाएँ प्रतिबिम्बित हो। विद्यालय की शिक्षण विधियाँ वास्तविक जीवन की कार्य विधियो की अनुगामी हो और जीवन मे जो कुछ होता हो वही विद्यालय मे भी स्पष्ट दिखाई दे।[1]

लेकिन यह कैसे सम्भव है? हमें शुष्क आदर्शों की बात जँचती नहीं। जब तक शिक्षा का कार्यक्रम ठोस यथार्थता को साथ लेकर न चलेगा तब तक आदर्श आदर्श मात्र ही रहेंगे। समाज को विद्यालय के और विद्यालय को समाज के पास लाने के लिए हमारे दो सुझाव हैं—

(१) विद्यालय और महाविद्यालय में सामुदायिक जीवन का विकास करना।

(२) सामुदायिक विकास की योजनाओ मे विद्यालय और महाविद्यालयों को सक्रिय भाग लेना।

यदि हमे बालक मे आत्मनिर्भरता की भावना पैदा करना है तो समस्त शिक्षण संस्थाओं मे प्राचीन आश्रम और अकादमी (academics) का वातावरण प्रस्तुत करना होगा। नौकर रखने के स्थान पर बालको को अपना काम अपने हाथ से करने का आदेश देना होगा: इस उद्देश्य से नही कि पैसे की बचत हो भी लेकिन इस उद्देश्य कि उसको वास्तविक जीवन के अमूल्य अनुभव प्राप्त होंगे। कक्षा कक्ष हो या विद्यालय-उद्यान, क्रीडा क्षेत्र हो या पुस्तकालय भवन, सभी जगह जिस काम के लिए नौकर रखे जाते हैं उस काम को छात्र स्वय कर सकते हैं। इन कामो को करने से शैक्षणिक परिणाम अच्छे ही निकलेंगे, बुरे नही।[2]

यदि इन शिक्षण संस्थाओ मे सामुदायिक जीवन के इन कार्यक्रमो के साथ-साथ उन सार्थक सामुदायिक योजनाओ को भी हाथ [illegible] जिनको राज्य ने सामुदायिक विकासखण्डो (Block Developments) को सोप रख [illegible] समाज के बीच सम्बन्धो मे दृढ़ता ही आवे [illegible] अपूर्व समन्वय और सामजस्य स्थापित हो [illegible] की आवश्यकता है उदाहरण के लिए प्राथ[illegible] पीड़ितो की देखभाल, अशिक्षितों को साक्षर बनाने का काम सोपा जा सकता है। माध्यमिक शालाओं के छात्रों के लिए एक माह के श्रम सेवा शिविरों (Social Service Camps) की योजना की जा सकती है। महाविद्यालयो के छात्रों के लिए २०-३० दिन के वर्ष मे तीन तीन श्रम तथा समाज सेवा शिविरो का कार्यक्रम बनाया जा सकता है।[3]

[illegible] on the peoples need and problet[illegible] heir life. Its methods of work [illegible] ll that is significant and characteristic in the life community [illegible] ng". —K. E. Saiyidain

2. "The practice of making self help and manual work a part of daily life and training in all types of educational institutions would yield good [illegible] Education Commission 1964-66 p. 12.

[illegible] of service to the community

अध्याय १३

निरीक्षण और पर्यवेक्षण

(Inspection and Supervision)

Q. 1. What should be the qualities of a district Inspector of schools and how should he proceed in discharge his duties. (*Agra B T. 1952*)

Discuss common defects in the inspection of schools.

(*Agra B T. 1956*)

What is the importance of effective and enlightened supervision in the progress of educational institutions ? What steps would you take to give teachers and students the maximum benefit of your inspection ?

(*Agra B. T. 1960*)

निरीक्षण सम्बन्धी आधुनिक विचारधारा—"निरीक्षक शब्द से ही उस भया-
नक व्यक्ति का स्वरूप आंखो के सामने आ जाता है, जो एक विद्यालय मे जाकर उनके दोषो की
छान बीन करता, अध्यापको की पाठन विधि में कमजोरियाँ बताता और शिक्षा विभाग के आदेशो
को विद्यालय मे थोपता हुआ आता था किन्तु आधुनिक जनतन्त्रीय युग मे उसका पद उस स्वेच्छा-
चारी शासक जैसा नही रहता है जिसकी इच्छा और मुँह से निकले शब्द कानून का रूप ले लेते
थे । स्वतन्त्रता पाने के बाद विद्यालय प्रशासन का स्वरूप बिल्कुल बदल चुका है और देश मे एक
भीषण परिवर्तन उपस्थित हो रहा है । आज का प्रशासक जनता के साथ और जनता के हित के
लिये ही कार्य कर सकता है । आज का विद्यालय-निरीक्षक अपने साथियो के साथ शिक्षा-व्यवस्था
के नेता के रूप मे कार्य कर सकता है, तानाशाह के रूप मे नही । वह अध्यापको व प्रधान अध्या-
पको का साथी हो सकता है, मालिक नही ।"

निरीक्षक के कर्त्तव्य

... इत्व रखता है ।
... ो अपने जिले
वह राज्य ... ा है । इसलिए
मे सफल ... का पद विशेष
उनको म... क्योंकि निरीक्षक ही राज्य के आदेशो को भिन्न-भिन्न विद्यालयो तक लाता है,
महत्व रखता है क्योंकि निरीक्षक ही राज्य के आदेशो को भिन्न-भिन्न विद्यालयो तक लाता है,
और उन पर नियन्त्रण रखता है । यद्यपि वह निरकुश शासक के रूप मे अपने जिले के कार्य नही
... प्रकार
कर सकता, तब ... उसका
कानून के नियम ... मेदार
पूरा नियन्त्रण ... पद
होता है । इसी ... उसका
इसलिये और महत्वपूर्ण है ...
पालन करने के लिए उत्तरदायी होता है । व्यक्तिगत संस्थाओ मे लाभदायक प्रयोगो का संचालन
विद्यालय निरीक्षक से स्वतन्त्र होकर ही किया जा सकता है लेकिन सारे जनपद की शिक्षा सम्बन्धी
नीति और प्रगति की देखभाल उसी के ऊपर रहती है । वह उन विद्यालयो को जो अन्य विद्या-
लयो से पिछड रहे हैं सुधारने का प्रयत्न करता है और उन कमजोरियो को दूर करता है जो

उनको और उनके अध्यापकों को पीछे ढकेल रही है। तीसरे विद्यालय का निरीक्षक समस्त जि के विद्यालयों के कार्यों के बीच समन्वय स्थापित करता है। यदि जिले में उसकी नियुक्ति नहीं जाती तो भिन्न-भिन्न विद्यालय अपने प्रयोग स्वतन्त्र रूप से करते हैं और दूसरे विद्यालय उन प्रगति के विषय में कुछ नहीं जानते हैं। विद्यालय निरीक्षक का कार्य है कि वह देखे कि भि ... है कि दू विद्यालय किस प्रकार के प्रयोगों में ... उसका यह अन्य विद्यालयों को उन सफलता ... विधियों काम है कि वे भिन्न-भिन्न विद्याल ... विद्यालय शिक्षण पद्धतियों का परिचय दें। ... है कि वह अपने जिले के नये- दूसरे विद्यालय में जावे। अन्त में उसका पद इसलिये महत्वपूर्ण है कि वह अपने जिले के नये- शैक्षणिक प्रयोगों को प्रोत्साहन दे सकता है। उसको इस बात का पता है कि जिले के कौन- से विद्यालय इन प्रयोगों को करने के लिये तैयार हैं। ये विद्यालय शैक्षणिक प्रगति को नर्सरी रूप में कार्य कर सकते हैं, और उनके अध्यापक तथा प्रधान अध्यापक विद्यालय निरीक्षण (Nursery man) के रूप में कार्य कर सकते हैं। यह कार्य केवल विद्यालय निरीक्षक का ही सकता है। एक प्रकार से शैक्षणिक प्रगति का नेता वही है। निरीक्षकों के कर्तव्यों को हम भागों में बाँट सकते है—

(१) प्रशासन सम्बन्धी कार्य।
(२) अध्यापक और प्रधानाध्यापक का नेता के रूप में कार्य।
(३) सामाजिक हित के कार्य।

(१) **प्रशासन सम्बन्धी कर्त्तव्य**—निरीक्षकों के प्रशासन सम्बन्धी कर्त्तव्यों को कुछ वर्गों में बाँट सकते हैं। कुछ कार्य विद्यालयों के निरीक्षण करने और राजकीय gran बँटवारे सम्बन्धी होते हैं। कुछ काम अपने जिले के भिन्न-भिन्न शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं के के समन्वय करने से सम्बन्धित रहते हैं और कुछ कर्त्तव्य, शिक्षा विभागीय होते हैं। उदाहर सरकारी अध्यापकों और लिपिकों की नियुक्तियाँ, उनके तबादिले आदि बातों से सम्ब रहते हैं।

प्रत्येक निरीक्षक अपने जिले के विद्यालय का कम से कम एक बार निरीक्षण करता है। ये निरीक्षण दो प्रकार के होते हैं, (१) आकस्मिक और (२) पूर्व निश्चित। नि करते समय वह देखना है कि विद्यालय के रजिस्टर ठीक तरह से रखे जा रहे हैं या नहीं, वि के Accounts में कोई गड़बड़ी तो नहीं। उसके पास उचित मात्रा में अध्यापक वर्ग और वि भवन विद्यार्थियों की माँगों को पूरी तरह से पूरा कर सकता है या नहीं; वह यह भी देख कि विद्यालय में पाठ्यक्रम राजकीय अध्यादेशों के अनुसार चलाया जा रहा है या नहीं, रा नियमों का पालन ठीक ढंग से माध्यमिक विद्यालय कर रहे हैं या नहीं यह उसका पहला कर्त नियमों का पालन ठीक ढंग से माध्यमिक विद्यालय कर रहे हैं या नहीं यह उसका पहला कर्त यह ... राज्यों में निरीक्षण के निश्चित प्रपत्र हुआ करते हैं। जिनमें नि ... के दर्शन, शासन, विद्यालय भवन, पुस्त या ... गामी पाठ्यक्रम, सहगामी क्रियाओं आदि के ... इस प्रपत्र से विद्यालय की समस्याओं में ... हो जाया करता है और वह अपनी रिपो आवश्यकताओं का ज्ञान विद्यालय ... सूचना के आधार पर तैयार कर सकता है।

निरीक्षण के निम्नलिखित तीन मुख्य सिद्धान्त हैं जिनको ध्यान में रखकर निरीक्षक को कार्य करना चाहिए :—

(अ) कुशल निरीक्षक वह है जो अपने को और दूसरों को स्वतन्त्रता दे सकत ... समय अपनी शक्ति का अनुचित प्रयोग नहीं।
(ब) प्रधान अध्यापक से व्यवहार करते समय अपनी शक्ति का अनुचित प्रयोग नहीं ... नहीं मानता और उसे तैयार क
(स) Inspection Report को एक गोपनीय वस्तु नहीं मानता और उसे तैयार क अध्यापकों व प्रधान अध्यापक की राय लेता है।

किसी विद्यालय का निरीक्षण करते समय निरीक्षक को प्रधान अध्यापक से ... कर लेना चाहिए। तभी निरीक्षण ठीक ढंग से हो सकता है क्योंकि ... होता है। खेद का विषय है कि भारत

निरीक्षक वर्ग राजकीय नियमो के पालन करने और विद्यालय के Cash Register का Audit करने के अतिरिक्त और कोई काम नही कर पाते। राजकीय नियमो पर स्थानीय समस्याओ को बिना सोचे विचारे अधिक जोर देते है। किन्तु इस कार्य मे उनको अपने तर्क एव बुद्धि से काम लेना चाहिए।

निरीक्षक का दूसरा मुख्य कर्त्तव्य विद्यालय के अध्यापको की पाठन विधि एव कार्यों का निरीक्षण करना है। जिस समय हमारे अध्यापक कम शिक्षित अथवा प्रशिक्षित थे उस समय उनके कार्य का मूल्याकन अध्यापन के स्तर को ऊँचा उठाने के लिये और अध्यापन के मापदण्ड को बनाए रखने के लिए होता था। लेकिन आजकल जबकि निरीक्षक महोदय अपने अध्यापको से न तो इतने अधिक विद्वान न इतने अधिक प्रतिभावान होते हैं, और न इतने अधिक विषयो के पण्डित हो पाते है। इसलिए वे अध्यापको के कार्य का मूल्याकन ठीक प्रकार से नही कर सकते। जनतन्त्रीय युग मे निरीक्षण का प्रधान लक्ष्य शिक्षण का सुधार होना चाहिये। इस कार्य मे अध्यापको का भी सहयोग अपेक्षित है और निरीक्षक का कार्य उनको प्रोत्साहन देना, उसका मार्ग प्रदर्शन करने का है। ऐसी अवस्था मे निरीक्षक कटु आलोचक नहीं हो सकता। लेकिन वह अपने सहायको का पथ प्रदर्शक, मित्र और दार्शनिक ही माना जा सकता है। इस प्रकार निरीक्षक का कर्तव्य बड़ा विचित्र है। उसे अपने अध्यापको के कार्यो का निरीक्षण भी करना फिर उनकी आलोचना भी करनी है और फिर मित्र के रूप मे सहायता भी करनी है। इस कार्य के लिए अमरीका मे दो व्यक्तियों की नियुक्ति हुआ करती है। Superintendent निरीक्षण का कार्य करता है और Supervisor पथ प्रदर्शक एव मित्र का। England मे निरीक्षको के पास कोई पथ-प्रदर्शन सम्बन्धी कार्य नही होता। ये पथप्रदर्शन करते हैं लेकिन उनका पथ प्रदर्शन कानून के रूप मे नही माना जाता है। जापान मे Supervisor's की नियुक्ति अनुभवी शिक्षको मे से होती है जो प्रधान अध्यापकों एव अध्यापको का पथप्रदर्शन करते रहते हैं। हमारे देश मे इस समय Supervisor Superintendent जैसे दो व्यक्तियों की नियुक्ति नहीं की जा सकती। किन्तु प्रशिक्षण महाविद्यालयो के प्रोफेसर्स की सहायता और सहयोग मार्ग प्रदर्शन के कार्य मे लिया जा सकता है।

यदि शिक्षा मे सुधार करना है तो समाज का प्रत्येक सदस्य यह समझ ले कि विद्यालय उसके लिए क्या कर रहे हैं। यह तभी हो सकता है जबकि प्रत्येक जिले का विद्यालय निरीक्षक अपने विद्यालयो के कार्यों के विषय मे जनता को सूचित करता रहे। अपने जिले के विद्यालय की दशा मे सुधार एव परिवर्तन के लिये सब प्रकार की संस्थाओ से सहयोग प्राप्त करें। चीन मे वहाँ के विद्यालय-निरीक्षक जनता मे सम्पर्क स्थापित करने मे सदैव लगे रहते हैं। संक्षेप मे निरीक्षक के कर्त्तव्य हैं विद्यालय के अध्यापको और समाज से घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित करने का। आज कल वह विद्यालय निरीक्षक सफल नहीं हो सकता जो दूसरे मे दोष निकालता हो, उनकी कटु आलोचना करता हो और जिससे दूसरे लोग भयभीत रहते हो। वह अपने जनपद का शिक्षा सम्बन्धी नेता माना जा सकता है अथवा उसे हम अध्यापको का अध्यापक कह सकते हैं और अपनी Community का निर्माता माना जा सकता है। इन बातो को विचार मे रख कर उसके गुणो एव विशेषताओ को निश्चित किया जा सकता है। एक विद्यालय निरीक्षक मे निम्नलिखित १२ गुण होने चाहिए: —

(१) चरित्र (२) कार्यक्षमता (३) प्रशासकीय योग्यता (४) व्यक्तित्व (५) शिक्षा सम्बन्धी नेतृत्व (६) सामाजिक गुण (७) समाज का नेतृत्व (८) भाषण-योग्यता (९) संस्कृति (१०) लेखन योग्यता (११) मृदुस्थीपन (१२) धर्म।

इनके अलावा उसमे निम्नलिखित अन्य विशेषताएँ होनी चाहिये—(१) शैक्षणिक सुधारो से परिचित हो, (२ भिन्न-भिन्न परिस्थितियों मे नये सिद्धान्तो को कैसे लागू किया जाये, इसका उसे ज्ञान हो। (३) शिक्षा सम्बन्धी विकास मे वह अपना उत्तरदायित्व महसूस करता हो। (४) इन विकास योजनाओ को कार्यान्वित करने के लिये वह अध्यापको और प्रधान अध्यापकों से सहयोग प्राप्त कर सकता हो। (५) बालको के अभिभावको एव माता-पिता को विद्यालयो मे होने वाले विकास कार्यों से परिचित कर सकता हो और करा सकते हो और उनका सहयोग व सुझाव प्राप्त कर सके। (६) सामान्य समस्याओ पर अपने साथियो से वादविवाद करके, विचार विनिमय करके योजना बना सके। अध्यापको के साथ सहानुभूति-पूर्ण व्यवहार रखते हुये उन्हें रचनात्मक सुझाव दे सके।

Ryburn ने निरीक्षकों की विशेषताओं का उल्लेख करते हुये निम्न बातों पर जोर दिया है—

(ग्र) प्रत्येक निरीक्षक का दृष्टिकोण शैक्षणिक हो और उसका शिक्षा-दर्शन उच्च कोटि का हो। ग्राजकल भी ऐसे निरीक्षक हमको मिलते हैं जो किसी विद्यालय की उन्नति को उसके परीक्षा फलों से ग्रांका करते हैं। ऐसे निरीक्षकों से शिक्षा सम्बन्धी किसी प्रकार की प्रगति की ग्राशा नहीं की जा सकती। सबसे उत्तम निरीक्षक वह हो सकता है, जो ग्रपने को Office के कार्यों Returns को एकत्र करने, ग्रौर Returns ग्रौर ग्रांकड़ों को इकट्ठा करने में लगाने के बजाय शिक्षा सम्बन्धी नवीनतम विचारों से पूर्ण परिचित रहे।

(ब) उत्तम विद्यालय निरीक्षक वही होता है जिसका दृष्टिकोण उदार हो। ऐसा [illegible] कोशिश में लगे [illegible] के सुझाव ग्रध्या- [illegible] है यदि ग्रध्यापक [illegible] हैं तो निरीक्षक को ग्रपनी बात पर डट नहीं जाना चाहिये। उसका दृष्टिकोण उदार होना चाहिये। यदि वह देखे कि उनकी विधियाँ ग्रच्छी हैं, तो उन्हें ग्रपना भी लेना चाहिये। लेकिन किसी भी ग्रवस्था में वह ग्रपने विचारों को उनके ऊपर न थोपे। पर कम से कम इस बात का ग्राभास उनको न होने दें कि वह उससे ग्रधिक जानता है।

(स) उसका दृष्टिकोण रचनात्मक होना चाहिये। ध्वंसात्मक नहीं, वह ग्रालोचना करें लेकिन ऐसी ग्रालोचना न करे जिसके विरोध में ग्रध्यापक ग्रावाज न उठा सकें। यदि ग्रालोचना करनी ही है तो Right Spirit में की जाये। किसी विद्यालय में जाकर ग्रध्यापकों ग्रथवा विद्यालय के व्यवस्था एवं संचालन के विषय में दोष ग्रथवा कमियाँ निकालना ग्रासान काम है। लेकिन ये काम निरीक्षक का नहीं उसका काम है, ग्रध्यापक के ग्रसन्तोषजनक शिक्षण में सुधार लाने का, यदि वह रचनात्मक ढंग से निरीक्षण करता है तो कोई भी उससे भयभीत नहीं हो सकता—इसका तात्पर्य यह नहीं है निरीक्षक कटु ग्रालोचना करने के ग्रवसर पर ऐसा काम न करे। कभी-कभी विद्यालय निरीक्षक किसी विद्यालय के कार्य के ग्रच्छे ढंग से चलते हुये भी उसकी प्रशंसा नहीं करते क्योंकि ऐसा करने से राजकीय Grant बढ़ानी पड़ती है। लेकिन जिस ग्रध्यापक या विद्यालय की प्रशंसा की जानी चाहिये उसकी प्रशंसा न करना भी ठीक नहीं है।

(द) ग्रन्त में, निरीक्षक को बहुत ही सहानुभूति-पूर्ण होना चाहिये। इस का मतलब यह नहीं है कि निरीक्षक ग्रध्यापकों के दोषों को न देखे। सहानुभूति का ग्रर्थ है ग्रध्यापक ग्रौर प्रधान ग्रध्यापकों के प्रति मैत्रीपूर्ण ग्रभिवृत्ति का रखना। उनके प्रशंसनीय कार्य की प्रशंसा करना एवं मित्र के रूप में उस कार्य की निन्दा करना, जो निन्दनीय है। जो निरीक्षक ग्रध्यापकों या प्रधान ग्रध्यापकों से खरी कड़ी बातें करता है ग्रथवा ग्रशिष्ट व्यवहार करता है वह ग्रपने कार्य को ग्रच्छी तरह से नहीं निभाता। उसे प्रत्येक ग्रध्यापक से निरीक्षण के बाद बात करनी चाहिये ग्रौर सुझाव देना चाहिये। ऐसा करने से वे सुधार कर सकते हैं। ग्रध्यापक के समक्ष भेंट विद्यालय के स्तर को ऊँचा उठाने में विशेष सहायक होती है।

स्कूल के रजिस्टर

Q. 2 *Good supervision* is *always concerned with the development* of the teacher, the *growth* of the pupil, did the *improvement* of the teaching—learning process – *Barthy John A.*

Discuss the above statement and explain the principles on which good supervision is based.

ग्रर्थ एवं महत्व—पर्यवेक्षण का ग्रर्थ है किसी ऐसे ऊँचे स्थान से देखना जहाँ से नीचे के स्थान का सारा दृश्य ग्रच्छी तरह दिखाई पड़े ग्रौर उस स्थान के प्रत्येक व्यक्ति की कमियों एवं शक्तियों पर स्पष्ट रूप से दृष्टि पड़ सके। पर्यवेक्षण ग्रौर निरीक्षण में ग्रन्तर है। [illegible] की जिम्मेदारी प्रधानाध्यापक पर होती है, निरीक्षण की जिम्मेदारी प्रबन्धक ग्रथवा

शिक्षा विभाग के कर्मचारियों पर । पर्यवेक्षण का उद्देश्य होता है कार्य का सुसंचालन, निरीक्षण का उद्देश्य होता है मूल्यांकन (Valuation) । विद्यालय का काय सुसंचालित रूप से उस समय चल सकता है जब उसके अंग प्रत्यंग निर्धारित ढंग से काम करने में संलग्न रहें और उन्हें समय-समय पर प्रोत्साहन मिलता रहे उनकी कमियाँ और बाधायें हटाई जाती रहें । यह काम प्रधानाध्यापक का है जिसका सम्पादन वह सफल पर्यवेक्षण द्वारा कर सकता है ।

पर्यवेक्षण का अर्थ छिद्रान्वेषण नहीं है । इसका अर्थ है विद्यालय की समस्त क्रियाओं का निरीक्षण करके यह निश्चय करना कि विद्यालय अपने उद्देश्यों में कहाँ तक सफल हो सका है और यदि सफल नहीं हो सका है तो किस प्रकार उन बाधाओं एवं कमियों को दूर किया जा सकता है जो इसे असफल बनाने में प्रयत्नशील रही हैं । छिद्रान्वेषण सीधी-सादी सरल क्रिया है क्योंकि आप किसी में भी दोष निकाल सकते हैं किन्तु पर्यवेक्षण एक व्यापक, रचनात्मक, नियमित, निष्पक्ष एवं न्यायसंगत क्रिया है जिसका सम्बन्ध शिक्षा व्यवस्था के उन तीन अंगों—योजना बनाना, उसे कार्य रूप में परिणत करना, और मूल्यांकन करने—से है, जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है । पर्यवेक्षण में हम परिणाम को प्राप्त करने की समस्त प्रक्रिया को देखते हैं, उसमें संशोधन करते हैं, सुझाव देते हैं, अन्त में परिणामों की माप भी करते हैं । पर्यवेक्षण का कार्य इस प्रकार उतना ही महत्वपूर्ण है जितना योजना बनाने तथा उसे कार्य रूप में परिणत करने का कार्य हो सकता है । कुछ विद्वान् शिक्षा-शास्त्री प्रधानाध्यापक द्वारा कक्षा कार्य में पर्यवेक्षण को घृणा की दृष्टि से देखते हैं । शायद पर्यवेक्षण और छिद्रान्वेषण को समकक्षी मान कर ही ऐसा करते हैं नहीं तो वास्तविक पर्यवेक्षण का प्रयोजन शिक्षण की उन्नति है, इसका ह्रास नहीं ।

Supervision, like teaching, is guiding learning aud must be concerned with the learning as well as with the guiding —*Owings & Hammock*

पर्यवेक्षण के सिद्धान्त

पर्यवेक्षण एक रचनात्मक क्रिया है जिसमें किसी कार्य की समीक्षा करते हुये उसके सुधार एवं संशोधन के लिये ठोस परामर्श एवं सुझाव देना पर्यवेक्षण का अंग माना जा सकता है, अतः ऐसे कार्य के लिये उन सिद्धान्तों में जानकारी होना आवश्यक है जिनके आधार पर पर्यवेक्षण उपयोगी एवं सार्थक हो सकता है । ये सिद्धान्त निम्नलिखित हैं —

(१) **पर्यवेक्षण एक रचनात्मक क्रिया है**—किसी भी क्रिया के दो पक्ष होते हैं अच्छे और बुरे । अनुदार व्यक्ति उसमें बुराई देखता है, उदार व्यक्ति उसमें केवल अच्छाई को ही पहचान पाता है । अनुदार व्यक्ति उसे देखकर अपना रोष और असन्तोष प्रकट करता है, उदार व्यक्ति उसकी प्रशंसा कर उत्साहवर्धन करता है। इस प्रकार सच्चा पर्यवेक्षक रचनात्मक परामर्श एवं निर्देश देता है । व्यवि[illegible]
समझ जाय । यदि प[illegible]
अध्यापकों के लिये द[illegible]
कार्यों की प्रशंसा कर[illegible]
का प्रयत्न करता है । [illegible] की हैसियत से तभी उसके निर्देशन और परामर्श का आदर होता है और और निर्देशक (guide) की हैसियत से तभी उसके निर्देशन और परामर्श का आदर होता है और विद्यालय की ठोस उन्नति होती है ।

(२) **पर्यवेक्षण एक व्यापक क्रिया है**—इसके अन्तर्गत अध्यापन, खेलकूद, पाठ्यक्रम, सहगामी क्रियाओं, छात्रावास, अनुशासन, वाचनालय आदि सभी क्रियाओं का निरीक्षण आ जाता है । पर्यवेक्षण विद्यालय के सभी अंगों का होना चाहिये । शीघ्रतावश विद्यालय किसी अंश को देखकर उसके विषय में धारणा बना लेने से निरीक्षण कार्य अधूरा और अपूर्ण रह जाता है ।

(३) **पर्यवेक्षण के उद्देश्य और सीमाओं का ज्ञान पर्यवेक्षण** [illegible] को हो—प्रधानाचार्य या अन्य किसी पर्यवेक्षक की इस क्रिया [illegible]
इसका लक्ष्य है कि विद्यालय के कार्यकर्ताओं का [illegible] का
ज्ञान हो कि पर्यवेक्षक उनके छिद्रान्वेषण [illegible] का
लिये है । वह उनकी कार्य [illegible] में
पर्यवेक्षण कराने के [illegible] होता
संयुक्त हो [illegible]

बन सकता है। वह अध्यापक की परिसीमाओं (limitations) को समझे, कोरे आदर्श और सिद्धान्त को न बघारे तभी उसकी सम्मतियाँ मान्य हो सकती हैं।

(४) पर्यवेक्षण एक नियमित निष्पक्ष एवं न्यायसंगत क्रिया है—पर्यवेक्षण में नियमितता होती है। कभी ढिलाई कभी कड़ाई नियम भंग कर दिया करती है। सम्बन्धित व्यक्तियों को इस बात का सदैव ज्ञान हो कि उनके कार्य का पर्यवेक्षण होना है वह पर्यवेक्षण किस आधार पर होता है, उससे क्या-क्या आशायें की जाती है यदि इन बातों का ज्ञान पहले से ही उन्हें हुआ तो पर्यवेक्षण का स्वागत करेंगे। पर्यवेक्षक के सामने एक निश्चित नियमावली हो। सभी के लिये नियमों की समानता हो। निरीक्षित व्यक्तियों के कार्यों की जाँच निष्पक्ष भाव से की जाय। किसी के साथ अन्याय न हो। सबको अपना-अपना दृष्टिकोण उपस्थित करने का अवसर दिया जाय जिससे वे यह महसूस न करें कि पर्यवेक्षक उनके साथ अन्याय कर रहा है।

(५) पर्यवेक्षण का अन्त निर्देशन में होता है, आदेश में नहीं। जनतन्त्रीय व्यवस्था में पर्यवेक्षक आदेशक नहीं माना जा सकता अत. उसकी सम्मतियाँ केवल निर्देश के रूप में मान्यता प्राप्त कर सकती हैं। यदि उसका निर्देश गलत है तो हानि की उतनी सम्भावना नहीं जितनी कि उसके गलत आदेश से हो सकती है उसके निर्देश भी गलत न हों इसके लिये उसे बहुत सतर्क, संयमित, स्थिर बुद्धि, शीलवान एवं दृढ़ होने की आवश्यकता है।

पर्यवेक्षण के उद्देश्यों का उल्लेख करते हुये हैमोक और ओविग्स (Hammock and Owigs) ने लिखा है कि पर्यवेक्षण का मुख्य लक्ष्य है अध्यापकों में शिक्षा के उद्देश्यों के समुचित ज्ञान का संचार। पर्यवेक्षण के परिणामस्वरूप वे शिक्षा के महान् उद्देश्यों की व्याख्या कर सकें, पाठ्यचर्या और प्रक्रम में अन्वेषण कर सकें। विद्यालय के समस्त अंग शिक्षा के उद्देश्यों की ओर अभिप्रेरित हो जायें और अध्यापक वर्ग समाज की माँगों को पूरा करने में अंशदान दे सके।

पर्यवेक्षण की जिम्मेदारी किस पर हो ?

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट हो गया होगा कि वास्तविक पर्यवेक्षण का कार्य अति कठिन है। विद्यालयों के प्रधानाचार्य जिस प्रकार का पर्यवेक्षण करते हैं वह नितान्त त्रुटिपूर्ण है। कारण स्पष्ट है। वे विद्यालय के संचालन कार्य के बोझ में इतने दबे रहते हैं कि पर्यवेक्षण के लिए उचित समय नहीं दे पाते। वे इतने योग्य नहीं होते कि सब विषय एवं विद्यालय के सब अंगों का पर्यवेक्षण कुशलतापूर्वक कर सकें। अत यदि यह कार्य विद्यालय के विभिन्न विभागाध्यक्षों को सौंपा जा सके तो उत्तम होगा। हमारे देश के कुछ राज्यों में ऐसे पर्यवेक्षकों की नियुक्ति सरकार की ओर से की गई है। बम्बई राज्य में प्रति दस कक्षाओं के ऊपर एक पर्यवेक्षक की नियुक्ति की व्यवस्था की गई है। किन्तु राज्य की नीति कुछ भी हो पर्यवेक्षण की सारी जिम्मेदारी प्रधानाचार्य की ही है। वह भिन्न-भिन्न पर्यवेक्षकों के कार्यों में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न कर सकता है जिससे वे सब एक ही उद्देश्य की पूर्ति कर सकें।

पर्यवेक्षण किस विधि से किया जाय ?

विद्यालय के भिन्न-भिन्न अंगों का पर्यवेक्षण करने के लिये निम्नलिखित तीन टेकनीकों का सुझाव दिया जा सकता है—

(१) कक्षा में या खेल के मैदान में जाकर क्रियाओं का परिवर्तन करना (२) अध्यापकों के साथ समक्ष भेंट द्वारा विद्यालय की गतिविधियों का ज्ञान प्राप्त करना (३) स्टाफ मीटिंगों में बहस और वाद-विवाद करके विद्यालय की नीति का निर्धारण करना।

(२) शिक्षण कार्य का निरीक्षण करते समय वह निम्नलिखित बातों पर ध्यान दे, (अ) पाठ्यवस्तु की उपयुक्तता (ब) शिक्षण प्रणाली की विविधता (स) अध्यापक एवं छात्रों के सम्बन्धों की मधुरता (द) गृह कार्य कक्षा कार्य की सफलता (य) और अन्य सामान्य बातें जैसे कक्षा व्यवस्था, उठने बैठने का ढंग, प्रश्नों के पूछने और उत्तर देने का ढंग, कक्षानुसार श्यामपट-कार्य, वेशभूषा, समय की पाबन्दी, आदि आदि।

बहुत से अध्यापक प्रधानाचार्य के उनकी कक्षा में आने पर प्रसन्न होते हैं किन्तु सौनियर अध्यापकों में ढींगढिंग के पर्यवेक्षण अधिकतर हुआ करता है। कक्षा में दो बार के बाद अध्यापक

से उसके उत्तम गुणों की प्रशंसा की जाय और यदि उससे कोई कमी प्रधानाचार्य को दिखाई दे तो बड़े नम्र शब्दों में वह उसे समझा दे। उसे जो कुछ निर्देश देने हों वे अध्यापक से ही निकलवा लिये जायें तो उत्तम होगा। हमारी समझ में निर्देश देने के लिये अध्यापक को कभी भी दफ्तर में न बुलाया जाय। अध्यापक का कमरा ही इस काम के लिए उत्तम स्थान हो सकता है, किन्तु किसी विद्यार्थी के सम्मुख किसी प्रकार की बात न की जाय क्योंकि इससे अध्यापक के आत्म-सम्मान को धक्का पहुँचता है। स्टाफ मीटिंगों में इस प्रकार की समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

Q. 3. Define the functions of an Ideal Supervisor (or an Inspector) in the present system of education.

उत्तम पर्यवेक्षक की विशेषताएँ (Functions of Ideal Supervisor)

उत्तम पर्यवेक्षक का मिलना उतना ही कठिन है जितना कि आदर्श प्रधानाचार्य और उसके कार्य हैं—

शिक्षण में सुधार—उत्तम पर्यवेक्षक इस उद्देश्य से पर्यवेक्षण करता है कि शिक्षण विधियों में सुधार हो। यदि शिक्षण विधियों में सुधार होता है तो सीखने में प्रगति होगी इस विचार से पर्यवेक्षक अध्यापकों को उत्तम शिक्षा विधियाँ अपनाने, नई-नई शिक्षण विधियों पर प्रयोग (experiment) करने के लिए प्रेरणा देता है।

अच्छा पर्यवेक्षण वही है जिसका उद्देश्य हो अध्ययन का विकास, छात्र की मानसिक प्रगति, सीखने की प्रक्रिया में उन्नति हो। इस उद्देश्य से पर्यवेक्षक अपने अनुभव के आधार पर अध्यापकों को ऐसा परामर्श देता है कि सीखने की क्रिया सरल हो जाती है। पर्यवेक्षण इस प्रकार वह आधार शिला है जिस पर शिक्षण में प्रगति की नींव रखी जाती है।

(ii) पाठ्यक्रम में सुधार—उत्तम पर्यवेक्षक जब देखता है कि एक विशेष प्रकार की पाठ्य वस्तु छात्रों को क्यों अधिगम नहीं हो पाती, तब वह उसकी अनुपयुक्तता का अनुमान लाभ का पाठ्यक्रम से उसे निकालने का प्रयास करता है। जब वह देखता है कि अमुक पाठ्यवस्तु छात्रों की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है, अथवा उनकी मानसिक वृद्धि और विकास के अनुकूल है तब वह उसे पाठ्यक्रम में उचित स्थान देता है। इस प्रकार वह पाठ्यक्रम निर्माण और विकास में विशेष योगदान दे सकता है। यही नहीं शैक्षिक कार्यक्रम के जितने भी पक्ष हो सकते हैं उन सब पक्षों का सुधार पर्यवेक्षक का उद्देश्य होता है। वह न केवल शिक्षण विधियों और पाठ्यक्रम में ही सुधार लाने की चेष्टा करता है वह तो सभी शैक्षणिक, पाठ्यक्रम सम्बन्धी अथवा पाठ्येत्तर क्रियाओं के उत्तम व्यवस्थापन को ध्यान में रखकर अध्यापकों का मार्ग दर्शन करता है।[1]

अध्यापक का पेशेवर विकास—उत्तम पर्यवेक्षक के प्रयासों के फलस्वरूप अध्यापक की पेशेवर तथा सामान्य ज्ञान की वृद्धि होती है। वह अध्यापकों को इस बात में सहायता देता है कि वे किस प्रकार शैक्षिक उद्देश्यों को शिक्षा द्वारा प्राप्त कर सकें। वह उन्हें समयोचित निर्देशन और सहायता देकर उनकी मानसिक वृद्धि में सहायक होता है। वह जैसी जरूरत होती है जैसे ही व्यक्तिगत अथवा सामूहिक सहायता अथवा निर्देशन देता है।

अध्यापकों को पेशेवर ज्ञान की वृद्धि करके वह शिक्षण की प्रक्रिया को उन्नत बनाने का प्रयत्न करता है। वह एक प्रकार से अध्यापकों को सेवा-कालीन प्रशिक्षण देता है उनकी कमियों की ओर अत्यधिक सहानुभूति पूर्ण दृष्टि डालकर।

वह उस resource personnel की तरह कार्य करता है जो किसी शैक्षिक गोष्ठी का आयोजन करते हैं। वह उनके अनुभवों में वृद्धि करता है, नवीनतम ज्ञान देकर। वह नये अध्यापक के ज्ञान में वृद्धि करके उनको शैक्षिक परिपक्वता को प्राप्त करने में सहायक होता है।

---

1. The modern view point calls for a supervisor who looks his role as one of helping teachers better to accomplish their common objectives. His prime function is to provide friendly and professional guidance and help to teachers in service.

यह वर्कशॉप, फैकल्टी मीटिंग, स्टडी ग्रुप्स का ग्रायोजन करके काफी वाद-विवाद के उपरान्त कुछ शैक्षिक निष्कर्षो की ग्रोर ग्रपने ग्रध्यापकों को ले जाता है। जो बात उसे बतलानी होती है, ग्रथवा जो ग्रादेश उसे देना होता है, ग्रथवा जिस शिक्षा विधि का उसे प्रदर्शन करना होता है उन बातो का ज्ञान सामूहिक ग्रथवा व्यक्तिगत विचार विनिमय के बाद देता है।

यही कारण है कि ग्राधुनिक युग मे पर्यवेक्षक (ग्रथवा निरीक्षक) को निम्नलिखित नामो से सम्बोधित करने लगे हैं—सयोजक (Coordinator), ग्रध्यापक परामर्शदाता (Staff consultant), Resource worker, Specialist, क्योंकि उसका कार्य है ग्रध्यापक की सेवा न कि ग्रध्यापक के कार्यों का मूल्याकन। वह ग्रध्यापक का सच्चा मित्र होता है उसकी उपस्थिति मे ग्रध्यापक ग्रनुभव करता है कि उसके समक्ष एक ऐसा साथी है जो उसकी प्रत्येक कठिनाई मे मदद करेगा। वह ग्रध्यापक के लिए भ्रातृ तुल्य होता है उसके लिए शासक नही होता।

वह ग्रध्यापक का कटु ग्रालोचक नहीं होता जो समय-समय पर छिद्रान्वेषण ही करता रहे। लेकिन मित्र, दार्शनिक, ग्रौर मार्ग दर्शक होता है। वह मित्र होता है उनकी शैक्षणिक समस्याग्रो के सुलझाने मे, दार्शनिक होता है उनके जीवन दर्शन को रूपरेखा का निर्माण करने मे, मार्गदर्शक होता है उनको ग्रपना शैक्षणिक कार्यक्रम बनाने मे। वह मित्र की तरह सहायता करता है। उसकी कमजोरियों मे दुश्मन की तरह उसकी कमजोरियो को देखकर लाभ नही उठाता।

निरीक्षण का नवीनतम दृष्टिकोण

(१) मध्यस्थ के रूप मे निरीक्षक के कार्य—कुछ राज्यो मे निरीक्षक (Inspector) की जगह शिक्षा ग्रधिकारी शब्द का प्रयोग किया जाने लगा है क्योकि शिक्षा विभाग के ग्रधिकारी का बहुत से कामो मे से एक काम निरीक्षण है। निरीक्षण द्वारा ये ग्रधिकारी विद्यालय व्यवस्था के समुचित विकास मे सहयोग देते हैं, सरकार की शैक्षणिक नीतियाँ क्या है ग्रौर उनको किस *प्रकार कार्यान्वित किया जा सकता है,* ग्राधुनिक शैक्षणिक विचारधारा *क्या* है ग्रौर उन पर किस प्रकार ग्रमल किया जा सकता है, इसका ज्ञान निरीक्षक एक ग्रोर तो ग्रध्यापक वर्ग को देता है दूसरी ग्रोर वह ग्रध्यापको तथा समाज की शैक्षणिक ग्रावश्यकताग्रो, ग्राशाग्रो ग्रौर महत्वाकाक्षाग्रो को सरकार तक ले जाता है।[1] इस प्रकार वह मध्यस्थ का कार्य करता है।

(२) मानवीय इंजीनियर के रूप मे—वह मध्यस्थता का ही कार्य नही करता वह तो मानवीय इंजीनियर का भी कार्य करता है। वह प्रधानाचार्य, ग्रध्यापक ग्रौर उच्च शिक्षा ग्रधिकारियो को इस प्रकार सयोजित करता है कि वे देश के शैक्षणिक विकास कार्य मे सहयोगियो की तरह कार्य करने के लिये उद्यत हो जाते हैं। एक इंजीनियर तो भौतिक ग्रौर मानवीय दोनो प्रकार के साधनो (resources) को एकत्र करके किसी कार्य विशेष को सम्पन्न करता है लेकिन निरीक्षक केवल मानवीय साधनो (human resources) को समान्वित करके शैक्षिक प्रगति के कार्य को पूरा करता है।

(३) प्रजातान्त्रिक नेता के रूप मे—निरीक्षण की प्रजातान्त्रिक विचारधारा के ग्रनुसार यह शिक्षा ग्रधिकारी इस बात का प्रयत्न करता है कि विद्यालय के ग्रध्यापको की पेशेवर [illegible] ...ग के विभिन्न [illegible] सके कि वह [illegible] इस दृष्टि से सहकारी क्रियायें बन जाती हैं जिनमे ग्रध्यापक वर्ग तथा निरीक्षक दोनो ही को सक्रिय भाग लेना पड़ता है। लेकिन इस सहकारी क्रिया मे नेतृत्व रहता है निरीक्षक का ही क्योकि उसके पास तकनीकी ज्ञान होता है। बालक के विकास ग्रौर उन्नति सम्बन्धी समस्याग्रो का हल ढूँढने का; क्योकि उसे शिक्षा सम्बन्धी योजनाग्रो के निर्माण ग्रौर कार्यान्वयन की दक्षता होती है; क्योकि

---

1. Inspection should be considered as a service to interpret to teachers and the public the educational policies of the authorities and modern educational ideas and methods and also to interpret to the competent authorities the ...ces, needs and aspirations of teachers and local communities. ...*ternational conference on Public Education Geneva Resolution 9-7-56.*

इसमें रचनात्मक कौशल होता है प्रयोगों के निष्फलों को फैलाकर, नये विचारों और नवीनतम शिक्षण विधियों का ज्ञान देकर, वह नई सृष्टि करता है।

(४) परामर्शदाता के रूप में—माध्यमिक शिक्षा आयोग (Secondary Education Commission 1953) के विचार से निरीक्षक शिक्षक का सच्चा मित्र होता है क्योंकि वह उसे परामर्श देता है कि किस प्रकार शैक्षणिक समस्याओं का अध्ययन किया जाता है और किस प्रकार विद्यालय अपने आदर्शों की प्राप्ति कर सकता है।[1] वह अध्यापकों को ही परामर्श नहीं देता वह स्थानीय संस्थाओं को अनेक शैक्षिक मामलों में सलाह देता है। वह स्थानीय निकायों की कठिनाइयों को शिक्षा विभाग के ऊँचे अधिकारियों के समक्ष रखकर उनका हल ढूढ़ता है।

विद्यालय निरीक्षक के कार्य (Duties of an Educational Officer)

उपर्युक्त व्याख्या के आधार पर विद्यालय निरीक्षक अथवा शिक्षा-अधिकारी के निम्नलिखित कर्तव्य हैं—

(i) प्रशासनिक—जिले के भीतर अध्यापकों का स्थानान्तरण, दफ्तर का कार्य, शिकायतों की जाँच पड़ताल।

(ii) निर्माण और कार्यान्वयन।

(iii) शैक्षिक पर्यवेक्षण—अध्यापकों तथा प्रधानाचार्यों को मार्गनिर्देशन, नियमित तथा अनियमित (आकस्मिक) निरीक्षण।

(iv) पाठ्येतर क्रियाओं का पर्यवेक्षण।

(v) विद्यालय के हिसाब-किताब की जाँच।

(vi) शैक्षिक आँकड़ों का एकत्रीकरण।

(vii) सहायता प्राप्त विद्यालयों तथा उनकी प्रबन्धकारिणी समितियों के कामकाज की देखभाल।

(viii) अध्यापकों तथा प्रधानाध्यापकों से विचार विनिमय (Conferences)।

(ix) शोधकार्य।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में निरीक्षक का ४५% समय उन कामों में बरबाद होता है जिनका उससे कोई सम्बन्ध नहीं होता। प्रशासनिक कार्य भार उसका इतना अधिक है कि वह पर्यवेक्षण की ओर कोई ध्यान ही नहीं दे पाता। शोधकार्य तो वह करता ही नहीं है।

Q. 4. Discuss the suggestions made by Educational Commisson (1964-66) as regards improvement in administration and supervision at the district level.

जिले के स्तर पर प्रशासन कार्य में सुधार (Improvement in administration at the district level)

जिला स्तर पर जिला विद्यालय निरीक्षक का महत्व विशेष उल्लेखनीय होता है। जिस प्रकार राज्यीय स्तर पर शिक्षा सचालक पर शिक्षा की बागडोर होती है उसी प्रकार जिले के स्तर पर जिला विद्यालय निरीक्षक के हाथ में शिक्षा की बागडोर होती है। वह जिले की सारी शिक्षण संस्थाओं का पर्यवेक्षण करता है। उसकी सहायता के लिये एक या एक से अधिक उपविद्यालय निरीक्षक तथा कई सहायक निरीक्षक होते हैं जो जिले की प्राथमिक शालाओं का निरीक्षण करते हैं। कुछ राज्यों में वह प्रथम श्रेणी का अधिकारी होता है और कुछ में वह अब भी द्वितीय श्रेणी का अधिकारी है उसकी प्रशासनिक जिम्मेदारियों में एक राज्य से दूसरे राज्य में अन्तर है। कुछ राज्यों में वह माध्यमिक विद्यालयों के अनुपात की स्वीकृति देता है। वह स्कूलों की मान्यता प्राप्ति के लिये सिफारिश मात्र करता है, स्थानीय निकायों के लिये अध्यापकों का चुनाव करता है। लेकिन उसका मुख्य कार्य निरीक्षण और पर्यवेक्षण है।

---

the t[illegible] prefer
com[illegible] take a
advice and [illegible] out his

आजकल एक जिले में औसतन १५ लाख की जनसंख्या है, २ लाख बच्चे उसके स्कूलों में शिक्षा ग्रहण करते हैं और ७ हजार अध्यापक शिक्षा कार्य करते हैं। शिक्षा का व्यय लगभग २ करोड़ रुपया है, बीस वर्ष बाद जनसंख्या लगभग २५ लाख, बच्चों की संख्या ५ लाख, अध्यापकों की संख्या, २० हजार और खर्चा १२'५ करोड़ हो जायगा। इसका आशय यह है कि भविष्य में जिला विद्यालय निरीक्षण के कार्यालय को अधिक सशक्त करना होगा। जिला विद्यालय निरीक्षक के कार्यालय का प्रसार किये बिना विभागीय प्रशासन सुधर नहीं सकता।

जिले के स्तर पर शिक्षा विभागीय प्रशासन को मजबूत बनाने के लिये कोठारी कमीशन ने जो सिफारिशें पेश की है वे नीचे दी जाती हैं :

(१) जिला विद्यालय निरीक्षक को प्रशासन में उचित स्थान दिया जाय। उनकी नियुक्ति I E S. से की जाय।

(२) शिक्षा संचालक अब भी बहुत सी जिम्मेदारियों को जिला विद्यालय निरीक्षक को सौंप दें। विद्यालयों की सारी प्रशासनिक समस्याओं का हल जिला विद्यालय निरीक्षक के यहाँ ही हो जाय उन्हें शिक्षा संचालक के पास न जाना पड़े।

(३) जहाँ तक निरीक्षण के काम का प्रश्न है जिले के स्तर पर तीन दोष दिखाई देते हैं। स्कूलों *का निरीक्षण बहुत कम होता है क्योंकि निरीक्षकों की संख्या बहुत कम है; निरीक्षकों* की योग्यता संदेहास्पद है क्योंकि उनका वेतनक्रम नीचा है, वे निरीक्षण करते समय कोई विशेष प्रकार की तकनीकी सलाह नहीं दे सकते क्योंकि उनको शैक्षिक विषयों का तकनीकी ज्ञान नहीं होता। जिले के स्तर पर इसलिये विशिष्ट प्रशिक्षण युक्त लोगों की जरूरत है जो विद्यालयों को मूल्यांकन, पाठ्यक्रम, शैक्षिक निर्देशन में सुधार लाने के लिये आवश्यक सलाह दे सकें।

(४) जिला विद्यालय निरीक्षक के दफ्तर में एक सांख्यिकीय यूनिट भी होना चाहिए जो ठीक समय पर शिक्षा सम्बन्धी आवश्यक आंकड़ों को एकत्र कर सके, उसका विश्लेषण करके व्याख्या कर सके। शैक्षिक सामग्री के एकत्रित करने, और प्रकाशित करने में जो अनावश्यक विलम्ब होता है उसका एक मात्र कारण यही है कि जिले के स्तर पर कोई ऐसा प्रबन्ध ही नहीं है।

पर्यवेक्षण (Supervision) में सुधार—यदि विद्यालयीय शिक्षा में सुधार लाना है तो पर्यवेक्षण को विशेष महत्व देना होगा। दुर्भाग्यवश सभी राज्यों में पर्यवेक्षण का स्तर बहुत गिरा हुआ है इसके निम्नलिखित कारण हैं :

(१) देश में *शिक्षा के प्रसार के साथ स्कूलों की संख्या में जिस अनुपात से वृद्धि हुई है* उस अनुपात से पर्यवेक्षकों तथा निरीक्षकों की संख्या में वृद्धि नहीं हुई।

(२) एक ही व्यक्ति को पर्यवेक्षण और निरीक्षण दोनों कार्य करने पड़ते हैं और चूंकि निरीक्षण कार्य की मात्रा इस समय बहुत अधिक बढ़ गई है इसलिये विद्यालयों का पर्यवेक्षण हो ही नहीं पाता।

(३) पर्यवेक्षण करने के पुराने तरीकों को अब भी अपनाया जा रहा है फलस्वरूप शिक्षण संस्थाओं पर नियन्त्रण तो स्थापित होता है लेकिन उनका उचित विकास नहीं हो पाता।

(४) निरीक्षकों की योग्यता संदेहास्पद है।

यदि इन दोषों का परिहार करना है तो सबसे पहले निरीक्षण को पर्यवेक्षण से अलग करना होगा। इसके लिये कमीशन का सुझाव है कि जिला विद्यालय निरीक्षण तथा उसका स्टाफ केवल पर्यवेक्षण का कार्य करें। आगे जहाँ तक निरीक्षण का प्रश्न है उसकी जिम्मेदारी जिला विद्यालय परिषद को सौंपी जाय। प्रशासन सम्बन्धी सभी मामलों का निबटारा इन दोनों के सहयोग से हो और जहाँ विवादग्रस्त प्रश्न उठ खड़ा हो वहाँ पर अन्तिम निर्णय विद्यालय निरीक्षक ही लें। लेकिन उसके प्रमुख कार्य हों—

(i) शिक्षण पद्धति में सुधार।
(ii) शिक्षालयों का मार्ग निर्देशन।
(iii) सेवाकालीन प्रशिक्षण का प्रबन्ध।
(iv) विद्यालयों में प्रसार सेवा कार्यों (Extension Services) का प्रबन्ध।

निरीक्षण में सुधार (Inspection) – इस समय विद्यालयों का पर्यवेक्षण करते समय निरीक्षण की परम्परागत विधि अपनाई जाती है। एक वर्ष के बाद जो निरीक्षण होता है वह बहुत ही सूक्ष्म होता है, या यों कहिये नाम मात्र को होता है। प्रत्येक स्कूल में दो प्रकार के निरीक्षण होने चाहिये—वार्षिक और त्रिवर्षीय (Triennial)। जिला विद्यालय परिषद (District School Board) के अधिकारियों द्वारा प्राथमिक तथा शिक्षा संचालक के लोगों द्वारा माध्यमिक विद्यालयों का निरीक्षण किया जाय। प्रत्येक विद्यालय का त्रिवर्षीय निरीक्षण जिला विद्यालय द्वारा हो। प्राथमिक अथवा माध्यमिक विद्यालयों के निरीक्षण के लिये एक एक पैनल (panel) हो जिसके सदस्य निरीक्षण कार्य के लिये चुने गये शिक्षक अथवा प्रधानाध्यापक हों। प्राथमिक शालाओं के निरीक्षण के लिये जो पैनल नियुक्त किया जाय इस शिक्षा विभाग का एक पदाधिकारी, अथवा माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षक अथवा प्रधानाध्यापक नियुक्त किये जायें। माध्यमिक विद्यालयों के लिए नियुक्त किये गये पैनल में शिक्षा विभाग एक पदाधिकारी, कुछ चुने हुए प्रधानाध्यापक अथवा शिक्षा विशारद हों।

Q. 5 How can better human relationships be established in instructional supervision?

प्रधानाध्यापक तथा विद्यालय निरीक्षक का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है शैक्षिक क्रिया का पर्यवेक्षण। सामान्यतः एक प्रधानाध्यापक अथवा विद्यालय निरीक्षक के पास समय का इतना अधिक अभाव रहता है कि वह विद्यालय में चलने वाली शिक्षण क्रिया का निरीक्षण ही नहीं कर पाता। प्रधानाचार्य यदि अधिक चुस्त हुआ तो छात्रों के कार्य का लिखित अर्धमासिक अथवा मासिक पर्यवेक्षण करता है। इस पर्यवेक्षण के आधार पर वह कक्षा में होने वाली प्रगति का अन्दाज लगाता है। पर्यवेक्षण का यह क्रम सन्तोषजनक तो है लेकिन वर्तमान अवस्था के अनुकूल नहीं है। सन्तोषप्रद इसलिए है कि लिखित कार्य पर महत्व देने से छात्र कुछ न कुछ सीखते ही हैं, लिखितकार्य को देखकर निरीक्षक अथवा अभिभावक गण भी प्रसन्न ही होते हैं। यह क्रम वर्तमान [illegible] न करनी है तो इस प्रकार [illegible] । दूसरे शब्दों में, यदि [illegible] रीक्षक महोदय को उस [illegible] में स्वयं शिक्षण प्रक्रिया में लगा हुआ है। यदि वह सप्ताह में कुछ घन्टों के लिए अध्यापक विशेष की कक्षा में जाकर उसके अध्ययन कार्य का अवलोकन कर सके तो पर्यवेक्षण के वास्तविक प्रयोजन की सिद्धि हो सकेगी। ऐसा करने में वह अध्यापक के प्रतिदिन के कार्य का मूल्यांकन कर उसे अधिक सजग और सतर्क बना सकेगा।

लेकिन प्रधानाचार्य तथा शिक्षक का इस प्रकार के पर्यवेक्षण की ओर अभिवृत्ति स्वस्थ होनी चाहिए। प्रधानाचार्य की ओर से छिद्रान्वेषण और घृणा की मानसिक प्रवृत्ति तथा अध्यापकों की ओर से भय और सांवेगिक विक्षोभ की भावनाएं इस पर्यवेक्षण के गुणों को नष्ट कर देंगी। कहने का आशय यह है कि जब तक पर्यवेक्षण के लिए अनुकूल वातावरण तैयार नहीं होगा तब तक उसमें सफलता नहीं मिलेगी।

[illegible] ए अध्यापकों तथा प्रधानाचार्य के [illegible] न्धों के अच्छे अथवा बुरे होने पर पर्य- [illegible] चार्य को अपना हितैषी मानकर चलते हैं अथवा यदि प्रधानाचार्य उनके साथ सहयोगी छोटे भाई जैसा व्यवहार करता है तो सम्बन्ध अच्छे हो जाते हैं। उस परिस्थिति में पर्यवेक्षण अध्यापकों के अन्दर असन्तोष और भय पैदा नहीं करता।

अच्छे पर्यवेक्षण के गुण हैं इसका रचनात्मक, प्रजातान्त्रिक, उत्साह वर्धक, व्यक्तित्व का समादर करने वाला होना। बुरे पर्यवेक्षण के अवगुण हैं—उसका छिद्रान्वेषण करने वाला, अधिकार बताने वाला, और ममत्व पर जोर देने वाला होना।

छिद्रान्वेषी पर्यवेक्षण (Correction supervision) जब कोई विद्यालय निरीक्षक विद्यालय व्यवस्था में दोष निकालने पर उतारू होकर सारी कमियाँ निकालने का प्रयत्न करता है

तब उसके प्रति अध्यापक तथा प्रधानाध्यापक दोनों ही रोष प्रगट करते हैं। इसी प्रकार जब कोई प्रधानाचार्य अपने अध्यापक के शिक्षण कार्य में दोष ढूंढता है तब अध्यापक विरोध की दृष्टता उसके व्यवहार में प्रतिलक्षित होने लगती है। अध्यापक का जोश ठंडा हो जाता है वह कक्षा के प्रति उदासीन हो जाता है। इसलिए प्रधानाचार्य को इस प्रकार के छिद्रान्वेषी पर्यवेक्षण से अपने को बचाना चाहिए जो विद्यालय के वातावरण को दूषित बना देता है। बजाय यह कहने कि 'तुम्हारे कक्षा में बालक पाठ में रुचि नहीं ले रहे हैं, वह यह कह सकता है मुझे आपकी कक्षा को देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। बच्चे आपके पाठ में रुचि ले रहे थे लेकिन मेरे दिमाग में कुछ विचार आ रहे हैं जिनको मैं आपके समक्ष रखना चाहता हूँ जिनको यदि कार्य का रूप दिया जा सका तो कदाचित् बच्चे पाठ में अधिक रुचि ले सकेंगे।"

रचनात्मक पर्यवेक्षण (Creative Supervision) वह पर्यवेक्षक जो अध्यापकों को उन सीखने तथा सिखाने के सभी तरीकों को खोज निकालने के लिए प्रेरित करे, जो शिक्षण प्रक्रिया में शोधकार्य करने के लिए उनको रास्ता दिखावे जो आत्माभिव्यक्ति तथा समस्या निराकरण के लिए उनमें जोश पैदा करे ऐसा पर्यवेक्षण रचनात्मक कहलाता है।

विद्यालय का प्रधानाचार्य अथवा शिक्षा अधिकारी यदि उत्तम कोटि का पर्यवेक्षक हुआ तो वह अध्यापकों के साथ ऐसा मेल भाव पैदा कर लेगा कि वे सभी शिक्षा के क्षेत्र में शोधकार्य करने में संलग्न हो जायेंगे। वह उन्हें अपनी क्षमता और प्रतिभा के अनुसार प्रयोग करने और नवीन ज्ञान की खोज करने के अवसर देगा। आवश्यकता पड़ने पर उनका मार्ग निर्देशन भी करेगा। इस प्रकार अध्यापकों का वह सच्चा पथ प्रदर्शक होगा और अध्यापक गण उसके सच्चे अनुगामी होंगे।

(३) प्रजातान्त्रिक पर्यवेक्षण (Democratic Supervision)—दो व्यक्तियों के बीच मानवीय सम्बन्ध उस समय बिगड़ते हैं जिस समय एक व्यक्ति दूसरे को अपना मातहत समझता है लेकिन यदि दोनों व्यक्ति एक दूसरे को सहयोगी समझ कर कार्य करें तो सम्बन्धों के बिगड़ने की नौबत नहीं आती। प्रजातन्त्र में ऐसे पर्यवेक्षण की आवश्यकता है जिसमें अध्यापक और पर्यवेक्षक दोनों ही एक दूसरे पर विश्वास करें और शिक्षा की उन्नति को ध्यान में रखकर अधिकतम सहयोग और सम्मान के साथ कार्य करें। प्रधानाचार्य भी अध्यापकों की क्षमता में विश्वास रखकर उन्हें प्रजातान्त्रिक नेतृत्व प्रदान करे। सभी लोग सामूहिक चिन्तन द्वारा शिक्षा के कार्यक्रमों की योजना तैयार करें और उनका कार्यान्वियन करें। अध्यापकों को कार्य करने की पूर्ण स्वतन्त्रता हो और प्रधानाचार्य की ओर से निर्देश, परामर्श, और मार्ग दर्शन की कमी न रहे।

प्रजातांत्रिक पर्यवेक्षक तथा सत्ताधारी पर्यवेक्षक के दृष्टिकोणों में अन्तर नीचे तालिका में दर्शाया गया है—

प्रजातांत्रिक पर्यवेक्षण	सत्ताधारी पर्यवेक्षण
(१) तीस चालीस व्यक्तियों की शक्ति में विश्वास रखता है।	(१) समझता है कि जो कुछ कर सकता है वह वही कर सकता है।
(२) वह उस शक्ति को प्रयोग में लाना जानता है।	(२) नहीं जानता कि दूसरों के अनुभवों का कैसे लाभ उठाया जाय।
(३) दूसरों को जिम्मेदारियाँ सौंपना जानता है।	(३) दूसरों में विश्वास नहीं करता
(४) समूह में रचनात्मक नेतृत्व देने के लिए छोटी-मोटी बातों में उलझता नहीं।	(४) छोटी मोटी बातों में उलझा रहता है।
(५) दूसरों के विचारों का आदर करता है।	(५) अच्छे विचारों के आने पर ईर्ष्या प्रगट करता है और दूसरों के सुझावों को मान्यता नहीं देता।
(६) समूह से सम्बन्ध रखने वाले सभी मामलों का समूह में ही निबटारा कर सकता है।	(६) जो निर्णय समूह को लेने होते हैं उसको स्वयं ले लेता है।

(७) मित्र भाव रखता है।

(८) जैसा वह दूसरो के साथ व्यवहार रखता है, वैसा ही व्यवहार उनसे पाना चाहता है।

(९) प्रजातान्त्रिक प्रयासो का प्रयोग करता है।

(१०) दूसरो को सामने लाने की कोशिश करता है।

(७) 'मैं ही सब कुछ जानता हूँ' इस प्रकार के मनोभाव से युक्त रहता है।

(८) अपना सम्मान चाहता है भले ही वह दूसरो के साथ कैसा ही व्यवहार क्यो न करे।

(९) यह कभी मानने के लिए तैयार ही नहीं होता कि वह स्वेच्छाचारी है।

(१०) अपने को सामने लाना चाहता है।

(४) **समूह का समाधान करने वाला पर्यवेक्षण**—पर्यवेक्षक अपने अध्यापको के व्यक्तित्व का आदर करते हैं। वे उसके द्वारा दिए गये सुझावो को मान्यता देते हैं। वह समूह के हित के लिए अपने स्वार्थ छोडने के लिए तैयार रहता है। समूह भी उनके नेतृत्व मे विश्वास करता है, और उसको अपना नेता मानकर उसका आदर करता है। ऐसा पर्यवेक्षक समूह मे अहम् भाव के स्थान पर वय-भाव पैदा करता है।

गृह-कार्य का पर्यवेक्षण

Q. 6. Write notes on Home work. *(Agra B.T. 1953)*

विद्यार्थियों के गृहकार्य का निरीक्षण करे

पर्यवेक्षण करते समय प्रधानाध्यापक विद्यार्थियों के गृहकार्य का निरीक्षण करे इस बात का सकेत पिछली धारा मे किया जा चुका है। प्रस्तुत धारा मे गृहकार्य का अर्थ एव महत्व, उसके विपक्ष मे विद्वानो की सम्मतियाँ उसके सदुपयोग अथवा दुरुपयोग के परिणाम, और गृहकार्य देने की सावधानियो पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करे।

गृहकार्य का अर्थ, महत्व एव उपयोगिता

जो पाठ कक्षा मे पढ़ाया जाता है उसको पूरी तरह हृदयगम करने के लिए गृहकार्य का आयोजन किया जाता है। अतएव गृहकार्य देने का पहला उद्देश्य है बालको को पढ़े हुए पाठ को भली प्रकार आत्मसात् करने के लिए क्षमता प्रदान करना जिससे वे नवीन ज्ञान को अच्छी तरह अपने मस्तिष्क मे व्यवस्थित कर सकें। गृहकार्य देने का, दूसरा उद्देश्य यह है बालको को अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार अधिक से अधिक पठन पाठन कर सकने की प्रेरणा देना। यदि गृहकार्य के प्रश्न ठीक प्रकार से दिये जायें तो अवश्य ही बालक अपनी अपनी सामर्थ्य के अनुसार पाठ्यपुस्तको के अतिरिक्त अन्य पुस्तको का अध्ययन करेंगे। गृहकार्य से निम्नलिखित लाभ बालको को होते हैं—

(१) गृहकार्य कक्षाकार्य का पूरक होने के कारण सम्पूर्ण पाठ्यचर्या को समय के अन्दर पूरा कराने मे समर्थ होते हैं। उच्च कक्षाओं का पाठ्यक्रम इतना विशद् होता है कि यदि विद्यार्थी गृहकार्य स्वय न करें तो कक्षा मे पिछड़ सकते हैं।

(२) गृहकार्य करने से स्वाध्याय को प्रोत्साहन मिलता है। वे अध्यापको द्वारा दिये गये प्रश्नो पर स्वय विचार करते हैं। इस प्रकार उनमे स्वयं अध्ययन करने की आदत पड़ जाती है।

(३) गृहकार्य विद्यालय के कार्य को ठोस और विकसित बनाता है क्योंकि बालक जिन जिन बातो को कक्षा मे अच्छी तरह सीख नहीं पाते उनको घर के स्वच्छन्द वातावरण मे समझने की चेष्टा करते हैं। इस प्रकार विद्यालय मे दिया ज्ञान घर पर पक्का होकर छात्र के जीवन का अभिन्न अग बन जाया करता है।

(४) गृहकार्य के सम्पादन से बालको मे निम्न गुणो का विकास होता है—आत्माभिव्यजन की प्रवृत्ति, पुस्तकालय का प्रयोग करने की आदत, अपनी रुचि के अनुसार यथाशक्ति काम करने की इच्छा और स्वावलम्बन।

(५) गृह कार्य को देखकर बालको की प्रगति का पता उनके अभिभावकों एवं अध्यापकों

गृहकार्य देते समय बरती जाने वाली सावधानियाँ

गृहकार्य के ये लाभ उसी समय बालकों को मिल सकते हैं जब उसके देने में निम्न-लिखित सावधानियाँ बरती गई हों अन्यथा गृहकार्य भार हो जाया करता है।

(१) गृहकार्य ऐसे विषयों पर दिया जाय जिनमें बालक आनन्द की अनुभूति कर सकें।
(२) कक्षा के विभिन्न बालकों का या बालकों के भिन्न-भिन्न समूहों को उनकी रुचि या शक्ति के अनुसार गृहकार्य दिया जाय।
(३) गृहकार्य देते समय यह देख लिया जाय कि वह कहाँ तक बालकों में ऊपर दिये गए गुणों का विकास करते हैं।
(४) गृहकार्य केवल कक्षाकार्य की सहायता करने के लिये ही दिया जाय।
(५) गृहकार्य के प्रश्नों में कुछ ऐसे भी प्रश्न दिये जायें जिनके हल करने में बालकों को कक्षा की पढाई ही सहायता न करे वरन् उन्हें कुछ और भी पढ़ना पड़े। इस कार्य के शिक्षकों को अपने विषयों की सूची बना लेनी चाहिए और बालकों को निर्देश कर देना चाहिये कि वे अमुक अमुक पृष्ठ पढ़कर अमुक अमुक प्रश्नों का उत्तर दे सकते हैं।
(६) गृहकार्य लिखित रूप मे हो ताकि उससे बालक की प्रगति का पता चल सके।
(७) गृहकार्य देने के बाद उसकी जाँच अवश्य की जाय। यदि गृहकार्य का मूल्यांकन न किया जा सके तो उसको दिया भी न जाय।
(८) गृहकार्य को सफल बनाने के लिये बालकों के माता-पिता या अन्य अभिभावकों का सहयोग प्राप्त किया जाय।
(९) गृहकार्य देते समय यह देख लिया जाय कि कहीं बालको पर पहले ही अधिक बोझ तो नहीं पड़ा हुआ है। सामर्थ्य से अधिक और अरोचक गृहकार्य स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव अवश्य डालता है। अधिक मानसिक कार्य करने से उनका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है।

गृहकार्य दिया जाय या नहीं ?

गृहकार्य देने या न देने के विषय मे विद्वानो मे मतभेद है किन्तु हमारी राय मे गृहकार्य के विषय मे मतभेद होने की गुंजाइश ही नहीं है। विपक्षी विद्वानों का कहना है कि विद्यालय का सम्पूर्ण कार्य समय के ही अन्दर हो जाना चाहिए क्योंकि छात्रों की घरेलू परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं कि उन्हे घर पर कार्य करने की सुविधा नही मिल पाती। कार्य उचित ढग से न कर पाने पर उन्हे मानसिक क्षोभ एवं चिन्ता उत्पन्न हो जाती है। इससे उनमे मानसिक एव शारीरिक दुर्बलताओं का विकास होने लगता है। उनमे निरन्तर एक ऐसा तनाव (Tension) पैदा हो जाता है जो उन्हे नई चीज सीखने में बाधा पहुँचाता है। विपक्षी विद्वानों की राय मे सत्य का अंश अवश्य है किन्तु गृहकार्य देते समय कुछ प्रमुख उद्देश्यो को ध्यान मे रखा जाय तो गृहकार्य से लाभ अवश्य होगा। आधुनिक शिक्षा-प्रणाली पर आधारित होने के कारण कक्षा मे यह सम्भव नहीं होता कि अध्यापक प्रत्येक छात्र को व्यक्तिगत सहायता दे सके। ऐसी दशा मे यदि गृहकार्य भी न हो तो कुछ छात्र अवश्य पिछड़े रह जायँगे। अच्छी तरह संगठित किया हुआ गृहकार्य बालको के लिये लाभदायक ही होता है।

गृहकार्य कितना और किस प्रकार का दिया जाय

गृहकार्य के महत्व और उपयोगिताओं को देखकर यह मानना पड़ेगा कि गृहकार्य अवश्य दिया जाय किन्तु कितना और किस प्रकार का हो। छोटी कक्षाओं मे नियमित रूप से प्रतिदिन गृहकार्य देने की आवश्यकता नहीं है। जैसे-जैसे छात्र उच्चतर कक्षाओं मे बढता जाय गृहकार्य की मात्रा घटाई जा सकती है। उच्चतर माध्यमिक स्तर पर ३-४ घण्टे का गृहकार्य पर्याप्त है। ऊँची कक्षाओं मे आकर छात्र की रुचि और झुकाव स्वतः गृहकार्य की ओर हो जाते हैं। किसी कक्षा मे भी गृहकार्य देते समय यह देख लिया जाय कि औसतन कितना कार्य बालक कर सकते हैं, उससे अधिक गृहकार्य न दिया जाय।

खेद के साथ कहना पड़ता है कि हमारे देश मे शिक्षा-प्रणालियाँ इतनी अधिक मनोविज्ञान-सम्मत नही हो पायी हैं जितनी कि अन्य प्रगतिशील देशों मे हो गई हैं। हम प्रायः एक ही प्रकार का गृहकार्य कक्षा के सब विद्यार्थियो को देकर अपने कर्तव्य की इतिश्री समझने लगते हैं। विद्यार्थियों की विभिन्न रुचियो शक्तियो, घर की अवस्थाओं को ध्यान मे रखकर गृहकार्य नही देते। हमारी कोई योजना नही होती। अत. इस प्रथा मे दोष आ जाते हैं।

विद्यालय के आलेख पत्रों का पर्यवेक्षण

Q. 7 Discuss the importance of school records

विद्यालय मे जितने भी रजिस्टर अथवा अन्य आलेख (record) रखे जाते है

उन

रा

हो

school ... कक्षा कक्ष मे बनता है। राष्ट्र अपनी शैक्षणिक योजनाओं

शि

व

पर्यवेक्षण

विद्यालय ऐसी संस्था है जिसकी स्थापना समाज ने अपने आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक-विकास के लिए की है। अतः समाज चाहता है कि विद्यालय उसके आदर्शों की प्रतिष्ठा करे और उसकी आवश्यकताओं तथा मांगो की पूर्ति करे। विद्यालय ने इस उद्देश्य की पूर्ति कहाँ तक की है उसे अपने कार्य मे कहाँ तक सफलता मिली है यह तो तभी ज्ञात हो सकता है जब वह अपनी कार्यवाहियो को record करता रहे। सावधानी से रखे गये school records विद्यालय की सफलता के द्योतक होते हैं।[2]

विद्यालय को बालक के सर्वांगीण विकास की जिम्मेदारी सौंपी जाती है। उससे आशा की जाती है कि वह अभिभावकों को यह दिखा सके कि बालक ने विद्यालय के प्रांगण मे रहकर कितनी शारीरिक, सामाजिक, आध्यात्मिक अथवा शैक्षणिक उन्नति की है। बाल-विकास के बहुपक्षी रूप का प्रदर्शन तभी हो सकता है जब इसी विकास का सावधानी से समय-समय पर अंकन किया जाय। बालविकास के बहुपक्षी अंकन के लिये सभी प्रकार के record की आवश्यकता होगी।

विद्यालय अपने संचालन और संगठन के लिए राजकीय सहायता चाहता है। बहुत कम विद्यालय राज्य से स्वतन्त्र रहकर शिक्षण कार्य करने में समर्थ होते हैं। राज्य इस वित्तीय सहायता को कुछ शर्तों पर देने के लिए तैयार होता है। विद्यालय मे छात्रों की दैनिक उपस्थिति क्या है? अथवा उसका enrolment कितना है? उसमे कितने अध्यापकों की जरूरत होगी? अध्यापको पर खर्च होने वाली कितनी धनराशि (Teacher costs) चाहिए? कितनी धनराशि अन्य सुविधाओं संगठन के लिए आवश्यक है? इन सब बातों की जानकारी के लिए आंकड़े चाहिए। आंकडे तभी मिल सकते हैं जब हम उनका समय-समय पर अंकन करते रहें और रिकार्ड तैयार करते हैं।

records,

व्यवस्था के

की आवश्य

किन-किन पक्षो का ...

यदि हमे स्थानीय समाज (समुदाय) का विकास करना है तो हमे वे सभी प्रकार की

समाज से है। उस समाज की आवश्यकता

कहाँ तक कर रहा है या कर सकता है इन

सब ...

"The destiny of India is now being shaped in her classrooms"
—*Education Commission.*

रिकार्ड अध्यापकों को भी अपने कार्य मे विशेष सहायता देते हैं। उदाहरण के लिए वे प्रत्येक बालक के विषय मे महत्वपूर्ण जानकारियाँ देते हैं। वे हमें बताते हैं कि हमे अपनी पाठन-विधियों, पाठ्यक्रमो अथवा परीक्षण विधियों में किस प्रकार का परिवर्तन अथवा संशोधन लाना है। वे बताते हैं कि किस प्रकार हम बालकों की असफलताओं की सख्या में कमी कर सकते हैं। बालक विशेष क्या क्या कार्य कर सकता है उसकी क्षमताएँ और योग्यताएँ क्या हैं और उसका शिक्षण किस प्रकार आयोजित किया जाय कि वह उनका सफलतापूर्वक उपयोग कर सके। बालकों को किस प्रकार का व्यावसायिक अथवा शैक्षिक मार्ग दर्शन दिया जा सकता है। प्रतिभाशाली छात्रों को किस प्रकार का विशिष्ट पाठ्यक्रम दिया जा सकता है। पश्चवर्ती छात्रो को किस प्रकार उनकी कक्षास्तर के अनुकूल बनाया जा सकता है, ताकि कक्षा शिक्षण प्रवाह रूप से चलता रहे? इन सभी प्रश्नों के उत्तर बिना रिकार्ड के देखे नही दिया जा सकता।

ये रिकार्ड छात्रो के लिए भी उपयोगी होते है परीक्षाफल को देखकर बालक को पता चल सकता है कि उसको ठीक कक्षा में प्रवेश मिला है या नही। मासिक, पाक्षिक अथवा वार्षिक प्रगति विवरण से वह पता चला सकता है कि उसकी प्रगति विद्यालय में ठीक ढंग से हो रही है या नही, कि वह किन विषयो मे कमजोर है और किन मे सशक्त, कि वह किस प्रकार अध्ययन करे कि उसे वांछित सफलता मिल सके।

Q. 8. What are the main school records about which *the headmaster* should be very careful? How can the staff help him in their maintenance?

विद्यालय मे जिन-जिन आलेखों अथवा पंजिकाओं को सुरक्षित रखा जाता है उनको निम्नलिखित ७ वर्गों मे विभक्त किया जा सकता है—

(i) साधारण आलेख (Genreral records)
(ii) वित्तीय आलेख (Financial)
(iii) शैक्षणिक आलेख (Educational)
(iv) साजसज्जा सम्बन्धी आलेख (Equipment)
(vi) पत्र व्यवहार सम्बन्धी आलेख (Cerrespondence)
(vii) हिसाब-किताब सम्बन्धी आलेख (Cash Books)
(viii) दैनिक शालाओं के रजिस्टर

साधारण आलेखो मे विद्यालय का कलेण्डर, निरीक्षक पुस्तिका, प्रवेश तथा निष्कासन पुस्तिका (attendance and withdrawl), स्थानान्तरण प्रमाण-पत्र (Transfer certificates), आदेश पुस्तिका (general order Book) सम्मिलित की जाती है।

वित्तीय आलेखो मे वे पत्रिकाएँ सम्मिलित की जाती हैं जिनका सम्बन्ध शुल्क तथा वेतन से रहता है। ये रजिस्टर निम्नलिखित हैं—Fee collection Register, Abstract Register of Fees, Register of Scholarships, Boys Fund Register, Contingent Register, Acquintance Roll.

शैक्षणिक पत्रिकाओं मे पत्रिका शामिल की जाती हैं वे जिनका सम्बन्ध बालको की शिक्षा से होता है। उदाहरण के लिए छात्र उपस्थिति रजिस्टर, अध्यापक उपस्थिति रजिस्टर, समय चक्र आलेख, परीक्षाफल रजिस्टर, मासिक प्रगति विवरण, वाह्य परीक्षाफल रजिस्टर, अध्यापक की डायरी, सचयी आलेख पत्र-पत्रिका, शारीरिक दण्ड पत्रिका।

विद्यालय साज-सज्जा का हिसाब-किताब रखने के लिए कई प्रकार की पत्रिकाओं का प्रयोग होता है। उनमे से कुछ नीचे दी जाती हैं—Stock Book of Furniture, Library catalogue, Accession Register, Issue Books, Register of Newspapers and Magazines, Stock and Issue Register of Sports Material

विद्यालय की आय-व्यय का ब्योरा जिन रजिस्टरो में रखा जाता है। उन्हें Cash Books कहते हैं। ये कैश बुक्स निम्नलिखित हैं—Cash Books for daily receipts and expenditure, General Ledger, Remittance Book, Register of Pay Bills.

उनके अतिरिक्त और भी
प्रधानाध्यापक को विशेष

(i) प्रवेश तथा निष्कासन पंजिका (Admission and Withdrawal Register)
(ii) छात्रों की उपस्थिति का रजिस्टर
(iii) कैश बुक्स
(iv) छात्रनिधि रजिस्टर
(v) सर्विस बुक (Service Books)
(vi) प्रोपर्टी रजिस्टर (Property Register)
(vii) अध्यापक उपस्थिति रजिस्टर
(viii) अध्यापक की डायरी

इन सभी आलेखों और पंजिकाओं में सही प्रविष्टियाँ करने तथा उनको सुरक्षित रखने की जिम्मेदारी प्रधानाध्यापक की होती है। लेकिन फिर भी अध्यापकों का वह तथा लिपिकों की सहायता के बिना कर नहीं सकता। उनको तो यदि दफ्तर में इस काम से पूरी तरह बरी रखा जाय तो वह विद्यालय की अधिक सेवा कर सकता है। उसका कार्य पर्यवेक्षण और मार्ग दर्शन का है, विद्यालय में क्लर्की करना उसका कार्य नहीं है। अत. विद्यालय के प्रत्येक अध्यापक को इस कार्य में पूरी जिम्मेदारी से हाथ बँटाना होगा।

आलेखों को सुरक्षित रखने के नियम—बच्चों के विषय में जो जो जानकारियाँ इन आलेखों में भरी जायें वे सभी शुद्ध होनी चाहिए। प्रविष्टियों के गलत होने पर छात्रों के विषय में गलत धारणाएँ बन सकती हैं इसलिए उनको सही-सही भरने का प्रयत्न करना चाहिए। इन प्रविष्टियों को भरने में अध्यापक का न्यूनतम समय लगना चाहिए। उनको रखने का प्रबन्ध ऐसा हो कि अध्यापकों को उन्हें ढूढने में कम से कम समय लगे और कोई परेशानी न हो। वे आलेख अथवा रजिस्टर विद्यालय से कहीं भी बाहर न ले जाये जायें।

कुछ महत्वपूर्ण रजिस्टरों को रखने के विषय में बरती जाने वाली सावधानियाँ—प्रवेश और निष्कासन रजिस्टर—इस रजिस्टर की सारी जिम्मेदारी प्रधान के ऊपर रहती है क्योंकि इस रजिस्टर में छात्रों के विषय में काफी महत्वपूर्ण जानकारियाँ रहती हैं। छात्र के प्रवेश लेने की तिथि, उसका जन्म दिनाक, पिता का नाम, जाति, पेशा, कक्षा जिसमें उसने प्रवेश लिया और कक्षा जिससे उसका नाम कटा इन सभी बातों की जानकारी इस रजिस्टर से मिल सकती है। बालक के जन्म दिनाक को भरते समय प्रधानाचार्य को विशेष सावधानी बरतनी चाहिए। जन्म दिनाक सम्बन्धी प्रविष्टियाँ शब्दों एवं अकों दोनों में ही भरनी पड़ती हैं। जो प्रविष्टियाँ एक बार करदी जायें वे फिर न बदली जायें।

छात्र उपस्थिति रजिस्टर—छात्र की उपस्थिति प्रात काल तथा विद्यालय के बन्द होते समय दो बार ली जाय। इस रजिस्टर में कोई स्थान रिक्त न छोड़ा जाय। जब छात्र की छुट्टी की अर्जी स्वीकृति हो जाय तब उसको Leave या Sick लगाया जाय। यदि छात्र कई दिनों के लिए बीमार हो जाय, तो उसकी अर्जी डाक्टरी सार्टीफिकेट के साथ ली जाय, छुट्टियाँ लाल स्याही से अकित की जायें। मास के अन्त में रजिस्टर पूरा कर दिया जाय। फीस तथा निधि जिस दिन ली जाय उसी दिन उसकी रसीद काटकर रजिस्टर में प्रविष्टियाँ भरदी जायें।

स्कूल कलेण्डर—स्कूल का वार्षिक कार्यक्रम किस प्रकार का हो, यह तो वर्ष के आरम्भ में ही निश्चित कर लेना चाहिए और इस निश्चय के आधार पर कलेण्डर तैयार करना चाहिए। इस कलेण्डर को देखते ही निम्नलिखित बातों की जानकारी मिल जानी चाहिए—

(१) गजेटड, लोकल, विशिष्ट छुट्टियाँ कब-कब होगी।
(२) मासिक, वार्षिक रिपोर्टों की तिथियाँ।
(३) मासिक, अर्ध वार्षिक और वार्षिक परीक्षाओं की तिथियाँ।
(४) स्कूल कमेटी, स्टाफ मीटिंग, अध्यापक—अभिभावक सम्बन्धी मीटिंग, स्कूल टूर्नामेन्ट आदि की तिथियाँ

कैश बुक—प्रत्येक कैश बुक जिल्द बंधी होनी चाहिए और उसके पृष्ठों की संख्या लाल स्याही से अथवा छापे के अंकों में अंकित होनी चाहिए उसमें प्रविष्टियाँ प्रतिदिन लिखी जायें। दिन के अन्त होते ही बची हुई धन राशि (Cash balance) डाकखाने या बैंक में जमा कर दी जानी चाहिए।

छात्रनिधि रजिस्टर—चूँकि छात्रनिधि को रखने की जिम्मेदारी प्रधानाचार्य पर रहती है इसलिए उसे इन रजिस्टरों में उस छात्रनिधि का लेखाजोखा प्रतिदिन अंकित कर देना चाहिए। कोई भी छात्रनिधि शिक्षा विभागीय नियमों के प्रतिकूल न लेनी चाहिए। उसका गलत ढंग से खर्च करना या उससे चोरी करने से अध्यापक की प्रतिष्ठा नष्ट होती है। छात्रनिधि में से व्यय करने के लिए एक कमेटी बना दी जाय जिसमें अध्यापक और छात्र दोनों ही हों।

भाग ७

स्वास्थ्य शिक्षा

अध्याय १

स्वास्थ्य शिक्षा तथा उसके प्राप्य उद्देश्य

(Aims and Objectives of School Health Education)

Q. 1. What is the broad concept of Health? What should in your opinion be the aims and objectives of Health Education in Schools?

स्वास्थ्य शिक्षा के स्वरूप तथा उसके उद्देश्यों की विवेचना करने से पूर्व हमें स्वास्थ्य (Health) क्या है इसका ज्ञान प्राप्त होना आवश्यक है। हम उस व्यक्ति को स्वस्थ मानते हैं जो आन्तरिक रूप से अपने शरीर के सभी अंगों का उचित प्रकार से संचालन कर सकता है और बाह्य रूप से अपने पर्यावरण के साथ सुन्दर समन्वय स्थापित कर सकता है। अतः स्वास्थ्य से व्यक्ति की उस दशा का सम्बन्ध है जिसमें वह शारीरिक तथा मानसिक रूप से प्रसन्न है। इस स्थिति में न केवल उसके सभी शारीरिक संस्थान पुष्ट होते हैं वरन् उसका मस्तिष्क भी स्वस्थ होता है। उसमें न कोई सावेगिक तनाव दिखाई देते हैं और न किसी प्रकार का व्यक्तित्व विघटन ही।

स्वास्थ्य शिक्षा का स्वरूप—आधुनिक शिक्षाशास्त्री बालक के मानसिक विकास तथा युवक के भावी निर्माण को ही शिक्षा का लक्ष्य नहीं मानता। वह तो जितना महत्व मानसिक शक्तियों के विकास को देता है उतना ही महत्व स्वास्थ्य शिक्षा को, बालक के स्वास्थ्य की रक्षा का दायित्व बाधक अथवा उसके कुटुम्ब पर छोड़ देने से बालक के मानसिक विकास में बाधा उपस्थित हो सकती है इस भय से वह उसके स्वास्थ्य की रक्षा का भार स्कूल को सौंप देता है। बिना सुन्दर स्वास्थ्य के न तो बालक कुछ सीख हो पाता है, न जीवन के आनन्द ही भोग सकता है; न प्रभावशाली नागरिकता ही प्राप्त कर सकता है और न उपयुक्त जीवन ही व्यतीत कर सकता है। इस प्रकार शिक्षा के सभी उद्देश्यों की पूर्ति तभी हो सकती है जब बालक के स्वास्थ्य की रक्षा हो सके। वह समाज का प्रभावशाली अंग तब तक नहीं बन सकता जब तक उसका स्वास्थ्य ठीक न हो।

लेकिन यह स्वास्थ्य क्या है? जब शिक्षा शास्त्रियों ने स्वास्थ्य-रक्षा को पाठ्यक्रम में स्थान दिया तब उनका विचार था कि वही व्यक्ति स्वस्थ है जिसका शरीर हृष्ट पुष्ट हो। अतः शिक्षा संस्थाओं में शरीर के विभिन्न संस्थानों के संचालन और उनको स्वस्थ रखने पर जोर दिया गया। वह बालक जो बीमारी के कारण चारपाई में जा पड़े अस्वस्थ माना जाता था अतः स्कूल में बीमारियों की रोकथाम की शिक्षा दी जाने लगी। शारीरिक दोषों और बीमारियों से व्यक्ति की रक्षा ही स्वास्थ्य शिक्षा का उद्देश्य माना गया। लेकिन जैसे-जैसे समय बीतता गया स्वास्थ्य के अर्थ में व्यापकत्व आने लगा। जितना अधिक दुखद किसी अंग का टूटना था उतना ही अधिक शोचनीय मानसिक पीड़ा को माना जाने लगा। अब इस प्रकार स्वास्थ्य के दोनों ही पहलुओं शारीरिक तथा मानसिक पर जोर दिया जाता है। अब स्वास्थ्य का अर्थ उस दशा से लिया जाता है जिसमें व्यक्ति शरीर और मन दोनों से स्वस्थ होता है।

इस अर्थ में स्वास्थ्य शिक्षा का सम्बन्ध व्यक्ति के शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य दोनों से होता है। स्वास्थ्य शिक्षा न केवल बालक से ही जो विद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर रहा है सम्बन्ध रखती है वरन् शिक्षक से भी सम्बन्ध रखती है जो शिक्षा किया का प्रमुख मानवीय साधन है।

आवश्यक मात्रा में शौचालय तथा मूत्रालय होते हैं ; साफ सुथरे कैण्टीन तथा पीने योग्य जल के भण्डार होते हैं।

प्रत्येक राज्य का शिक्षा विभाग स्कूल भवनों के उचित आकार-प्रकार और आवश्यक ... के आयोजन पर कानून द्वारा नियन्त्रण रखता है। शिक्षा राज्यपत्रों (education codes)

से स्वास्थ्य की रक्षा न हो सके।

दैनिक कार्यक्रम—विद्यालय का प्रधानाध्यापक विद्यालय के पर्यावरण को स्वास्थ्यपूर्ण बना सके या न बना सके लेकिन वह दैनिक कार्यक्रम ऐसा अवश्य तैयार कर सकता है जिसका अनुसरण करता हुआ बालक और अध्यापक दोनों ही सुखी और स्वस्थ विद्यालीय जीवन बिता सकते हैं। यदि स्कूल का कार्यक्रम बालक में आवश्यकता से अधिक थकावट पैदा कर दे। चाहे वह थकावट मानसिक हो या शारीरिक तो उसके कार्यक्रम गठन करने वाले का ही दोष माना जायगा।

अतः स्कूल का दैनिक कार्यक्रम बनाते समय निम्नांकित बातों पर विशेष ध्यान देना होगा—

(i) विद्यालय के दिन की लम्बाई का निर्णय
(ii) अन्तरालों की संख्या तथा उनकी लम्बाई का निर्णय।
(iii) टाइमटेबिल में पाठन-क्रियाओं का संयोजन।
(iv) गृहकार्य की मात्रा तथा प्रकार का निर्णय।
(v) अवकाश के अन्तरालों की संख्या तथा लम्बाई का निर्णय।
(vi) पाठ्येतर क्रियाओं का संयोजन।

किसी विद्यालय का भौतिक वातावरण सन्तोषजनक न होने पर भी यदि उसका दैनिक कार्यक्रम ठीक प्रकार से तैयार किया गया है तो उसके बालकों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ सकता। यदि उसके टाइम टेबिल में बालकों द्वारा किये गये कार्य का नियमित कार्यक्रम तैयार किया गया है यदि उसमें उनके अवकाश, आराम व्यायाम, और मनोरंजन की ठीक व्यवस्था की गई है तो कोई कारण नहीं कि उसका बालकों के स्वास्थ्य पर ठीक प्रभाव न पड़े।

छात्र और अध्यापक का सम्बन्ध—बालक के स्वास्थ्य को ठीक बनाये रखने के लिए प्रत्येक अध्यापक कुछ न कुछ अवश्य कर सकता है। एक ओर तो वह अपनी शिक्षण प्रणालियों से बालक के मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा कर सकता है और दूसरी ओर बालकों को शारीरिक स्वास्थ्य रक्षा के नियमों का ज्ञान देकर उनके स्वास्थ्य को बिगड़ने से बचा सकता है। यदि वह अनुशासन की रक्षा करने के लिए बिना सोचे समझे कुछ दण्ड दे बैठता है तो उनका बुरा प्रभाव बालक के मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ सकता है। यदि वह सत्र के अन्त में ली जाने वाली परीक्षाओं पर विशेष जोर देता है तो बालक में परीक्षाओं के प्रति भय अथवा घृणा की भावनाएँ उत्पन्न हो सकती हैं। यदि बालक दो तीन बार बराबर किसी कक्षा में असफलता प्राप्त करे तो उसका मानसिक सन्तुलन बिगड़ जायगा—यह भयावह तथ्य है। जो अध्यापक मानसिक स्वास्थ्य रक्षा के नियमों को ध्यान में रखकर शिक्षण कार्य करते हैं वे बच्चों को स्वास्थ्य शिक्षा में महत्वपूर्ण योग दान देते हैं।

Q. 3. What services do you think necessary for a school to take up to conserve and improve the health of its children?

विद्यालय में स्वास्थ्य सेवाओं का महत्व—प्रत्येक विद्यालय का बालकों को केवल पुस्तकीय ज्ञान का देना ही लक्ष्य नहीं है वरन् उसका लक्ष्य यह भी है कि उसके छात्र शरीर और मन से स्वस्थ हों और उनमें किसी प्रकार का मानसिक असन्तुलन पैदा न हो। इस उद्देश्य से वह अपने छात्रों के स्वास्थ्य की रक्षा हेतु कुछ सेवाएँ आयोजित करता है। वह उनके स्वास्थ्य का डाक्टरी निरीक्षण कराता है, इस नि ... की ... परिचर्या का प्रबन्ध ... करता है, बालकों ... में स्वास्थ्य सेवाओं में की जाने वाली कुछ क्रियाएँ निम्नांकित हैं—

पाठशाला पर इसकी कितनी जिम्मेदारी है ? वह वातावरण को स्वास्थ्यकर, श्रेष्ठतर बनाने के
लिये क्या कर सकता है ? प्रस्तुत पुस्तक में इन प्रश्नों का हल करने का प्रयत्न किया जायगा।

पाठशाला के समय (School hours) का बालक की भूख और पोषण पर प्रभाव :—
प्रत्येक विद्यार्थी को चाहे वह कक्षा १ का विद्यार्थी है चाहे कक्षा १० का पाठशाला में ६, ५ घण्टे
रहना पड़ता है। ग्रीष्म ऋतु में ६½ बजे से लेकर १२ बजे तक, शीत ऋतु में ६½ बजे से ४
बजे तक का समय पाठशाला में ही बीतता है। ग्रीष्म ऋतु में प्रातःकाल न तो भलीभाँति नाश्ता ही
कर पाता है और न पाठशाला लौटने के बाद ठीक प्रकार से भोजन ही। पाठशाला में प्रायः
मध्यकालीन भोजन (Midday meal) की व्यवस्था न होने के कारण भूख से पीड़ित इस विद्यार्थी
को ५ घन्टे अध्ययनकार्य करना पड़ता है। भूख लगने के समय भोजन न मिलने पर उनकी भूख
मारी जाती है।

शीतऋतु में भी पाठशाला के समय का उसकी भूख और पोषण पर बुरा प्रभाव पड़ता
है। ६½ बजे उल्टा सीधा भोजन प्राप्त कर विद्यार्थी को १० बजे ही अध्ययन कार्य में लग जाना
पड़ता है। भोजन पचने के लिये यथेष्ट मात्रा में रक्त न मिलने से शरीर का यथेष्ट पोषण (nutr-
ition) नहीं हो पाता और न मानसिक कार्य (mental exertion) के लिये ही उसे यथेष्ट मात्रा में
रक्त मिल पाता है क्योंकि कुछ रक्त पाचन क्रिया में भाग लेने में लग जाता है। फलस्वरूप भोजन
पाचन और अध्ययन दोनों ही पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इस ऋतु में भी इसलिये मध्यकालीन
भोजन की आवश्यकता है क्योंकि शिक्षालय-भोजन-व्यवस्था के अभाव में उन्हें छुट्टी के बाद लगभग
५ बजे शाम को ही भोजन मिल सकता है उससे पूर्व नहीं। इस प्रकार दोनों समय के भोजन में ८
घण्टों का अन्तर हो जाने पर पाचन क्रिया में दोष उत्पन्न हो जाते हैं। अतः इस पुस्तक के अन्तिम
अध्याय ६ में मध्यकालीन भोजन व्यवस्था का वर्णन किया जायगा।

आहार दुर्व्यवस्था के अतिरिक्त कुछ और भी ऐसे कारण हैं जो भूख और पोषण पर
प्रभाव डाला करते हैं। कक्षागृह में अपर्याप्त स्थान अशुद्ध वायु, सूर्य के प्रकाश की कमी, कार्य में
अरुचि, थकान, अनुपयुक्त फर्नीचर और अनुचित आसन आदि ऐसे तत्व हैं जो सभी पाठशालाओं
में थोड़ी बहुत मात्राओं में मिला करते हैं, जो पाचन क्रिया में बाधा डालकर बालकों के रक्त को
विषाक्त और उनको रोगों का शिकार बना देते हैं। इन सब घटकों का विशुद्ध विवेचन आगे किया
जायगा।

अनुचित आसनों का श्वसन क्रिया एवं रक्त परिभ्रमण पर प्रभाव—कक्षा में बालकों
... फर्नीचर बैठने के लिये मिलता है। फलस्वरूप अनुचित ढंग से उठने-बैठने लिखने

... एक बार श्वास लेने में अनुचित वक्ष केवल ५/० वायु ...
है। एक बार श्वास लेने में ... इस दोष को दूर करने के लिये पाठशाला में ही उचित शारीरिक व्यायाम,
शुद्ध नहीं हो पाता। इस दोष को दूर करने के लिये पाठशाला में ही उचित शारीरिक व्यायाम,
खेल-कूद आदि की व्यवस्था करनी होगी जिनका विवेचन इस पुस्तक के प्रथम भाग में किया
जा चुका है।

अनुपयुक्त पाठ्यक्रम और अध्यापक द्वारा भय का बालक पर मनोदैहिक प्रभाव :—
कभी-कभी विद्यार्थियों में हकलाने की बुरी आदत स्कूल में प्रवेश लेने के बाद पड़ जाया करती है।
... पाठ्यक्रम में प्राप्त नहीं होता क्योंकि उसे पैदा करने में संवेगों (emotions)
... के प्रश्न का उत्तर
... तभी उसकी बात
... ह वह डर पढ़ने

स्कूल की परिस्थिति का असर भी बालक के शारीरिक विकास पर बुरा प्रभाव डाला करता है। बालकों में [illegible], [illegible] के [illegible] उत्पन्न हो जाते हैं। [illegible] शारीरिक विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

इस प्रकार स्कूल का प्रतिकूल वातावरण बालक के स्वास्थ्य को बिगाड़ने में विशेष सहायक हुआ करता है। यह बालक [illegible] किया है [illegible] अव- [illegible] है इसलिये [illegible] पर किसी भी अनुकूल और प्रतिकूल [illegible] का बुरा प्रभाव पड़ सकता है। अतः अध्यापक तथा विद्यालय का ऐसा वातावरण प्रस्तुत करना होगा जिससे उनके शारीरिक विकास में किसी प्रकार की बाधा न पड़े। विद्यालय और उनके कक्षा-भवन स्वच्छ और हवादार हों, [illegible] न हों, विद्यालय के आसपास गन्दगी न [illegible] हो, उसकी स्थिति शान्तिमय वातावरण में हो। कक्षाओं की [illegible] उपयुक्त हों, बालक के कद के अनुसार डेस्क और कुर्सियों की व्यवस्था हो। विद्यालय का कार्यक्रम ऐसा हो कि उनके [illegible] और [illegible] न होने पायें, [illegible] विद्यार्थियों के [illegible] और [illegible] और सब दुर्बल विद्यार्थियों के लिये चिकित्सा और शारीरिक [illegible] का प्रबन्ध हो। [illegible] विद्यार्थियों के [illegible] का उचित प्रबन्ध हो। [illegible] यह कहा जा सकता है कि विद्यार्थियों के वातावरण, विद्यालय की स्वच्छता, उनके रहन सहन, भोजन आदि और स्वास्थ्य पर पूरा-पूरा ध्यान दिया जाय तभी विद्यालय अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सकेगा।

स्वास्थ्य और शारीरिक विकास पर प्रभाव डालने वाले तत्व

Q. 5. Discuss the various factors that affect physical growth and health of the child. What is the importance of school environment here?

Ans. शारीरिक वृद्धि का अर्थ— ६ से १८ वर्ष तक की आयु के भीतर व्यक्ति के जीवन में असाधारण शारीरिक परिवर्तन उपस्थित होते हैं। यही वह समय है जो व्यक्ति विद्यालय में व्यतीत करता है। इस काल में उसके आकार, रूप, अंगों की बनावट, और शक्ति और दक्षताओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित हो जाते हैं। इन परिवर्तनों का सामूहिक रूप में शारीरिक विकास की संज्ञा दी जाती है। इस अवस्था में प्रत्येक विद्यार्थी औसतन ४०% कद में ५१% भार में वृद्धि प्राप्त करता है। भार और कद की वृद्धि को कम हम शारीरिक वृद्धि के नाम से पुकारते हैं। कभी-कभी वृद्धि और विकास इन दोनों पदों को पर्यायवाची मान लिया जाता है उस समय हमारा प्रयोजन शारीरिक परिपक्वता (maturation) से होता है।

शारीरिक वृद्धि और विकास का बालक की शिक्षा में विशेष महत्व रहता है। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण, सबसे अधिक उपकारी, सबसे अधिक प्रवचना पैदा करने वाला, सबसे अधिक उपेक्षित विषय, जब तक बालक की शिक्षा में उसका शारीरिक विकास हो रहा है। यह विषय शिक्षक के लिये सबसे अधिक महत्वपूर्ण इसलिये है कि बालक का मानसिक, चारित्रिक और व्यक्तित्व सम्बन्धी विकास शारीरिक विकास और वृद्धि का परिणाम हुआ करता है। शिक्षक के लिये यह विषय सबसे अधिक उपयोगी इसलिये है कि शारीरिक विकास का अध्ययन कर वह मनोवैज्ञानिक विकास की पृष्ठभूमि तैयार कर सकता है, और उन कठिन मनोवैज्ञानिक समस्याओं का अधिक अध्ययन कर सकता है जिनके मूल में शारीरिक परिवर्तन हुआ करते हैं। अब तक यह विषय उपेक्षित ही रहा है इसमें संदेह क्या है।

व्यक्ति के जीवन के पहले बीस वर्ष जिन्हें वह विद्यालय के प्रांगण में व्यतीत करता है आकार और भार में वृद्धि, आन्तरिक अंगों के परिवर्तन, शारीरिक शक्ति और दक्षता के विकास के होते हैं। अतएव अध्यापक का कर्त्तव्य है कि वह उन सभी घटकों (Factors) का अध्ययन करे जो बालक की वृद्धि और विकास को प्रभावित करते हैं, उन परिस्थितियों का आयोजन करे जो उसके स्वस्थ विकास में सहायक होती है, उन कठिनाइयों और बाधाओं को दूर करे जो इस विकास में रोड़ा अटकाया करती हैं।

शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले तत्व—बालक के शारीरिक विकास को प्रभावित करने वाले तत्व तीन हैं—

(१) वंशानुक्रम (आनुवंशिकता)
(२) वातावरण
(३) मनोवैज्ञानिक बातें

(१) वंशानुक्रम—वंशानुक्रम निश्चित करता है कि सब व्यक्ति सामान्य अवस्थाओं में क्रमिक समन्वित और समान रूप से वृद्धि प्राप्त करते हैं। वृद्धि के आधारभूत सिद्धान्तों के अनुसार उनके भार और कद में परिवर्तन, शक्ति और योग्यता का विकास होता है। शिक्षा की योजनाएँ इन्हीं आधारभूत सिद्धान्तों के अनुसार बनाई जाती हैं क्योंकि ऐसा न करने पर योजनायें विफल हो सकती हैं। उदाहरणार्थ किसी शिशु को चलना सिखाना उस समय तक हानिकारक होता है जब तक उसकी माँस पेशियाँ और नाड़ी मण्डल इस प्रकार की शिक्षा उपयुक्त न बन सके। आवश्यकता से अधिक भोजन और व्यायाम उसे पुष्ट और स्वस्थ भले ही बना दे किन्तु उसके शरीर के आकार, और कद में अन्तर पैदा नहीं कर सकता।

शरीर की लम्बाई व बनावट तथा शारीरिक विकास की गति विशेषतः वंश-परम्परा से प्रभावित होती है। यद्यपि लम्बे कद के माता पिता के बच्चे लम्बे कद वाले, नाटे कद के माता पिता के बच्चे नाटे कद वाले होते हैं तब भी इस नियम में कुछ अन्तर आ ही जाता है। आँख और बालों का रंग ठोडी सिर और नाक की बनावट और रूप, शारीरिक शक्ति और दम, पैतृक सम्पत्ति के रूप में प्रत्येक बालक को उसके माता, पिता से मिला करती हैं। कुछ विद्वानों का कहना है कि कुछ रोग भी वंश परम्परा से प्राप्त होते हैं। उनके विचार से गर्मी और रतिरोग (Syphilis) गुर्दे की रुग्णता (Nephritis) और शीतला का संक्रमण भी माता पिता से बालकों में होता है। किन्तु लेखक का कहना है कि ये बीमारियाँ आनुवंशिक नहीं होती वे भी उस वातावरण से मिलती हैं जो बालक को गर्भ में प्राप्त होता है। ये बीमारियाँ आगे चल कर उसके विकास को रोक दिया करती हैं।

(२) वातावरण—वातावरण से हमारा अभिप्राय उन सब उद्‌बोधकों से है जो फर्टीलाइज्ड सेल को प्रभावित किया करते हैं। ये उद्‌बोधक जन्म से पहले, जन्म के समय, और जन्म के पश्चात् उस प्राणी को प्रभावित किया करते हैं जो जीवकोष का विकसित रूप माना जाता है। बालक के जन्म लेने से पहले गर्भवती माँ का बुरा स्वास्थ्य, छोटी आयु, चोट, अपौष्टिक भोजन और अनुपयुक्त औषधियाँ बालक के विकास को अवरुद्ध कर सकती हैं। जन्म के समय बालक के शरीर में लगी हुई चोटें उसके शरीर और दिमाग पर बुरा प्रभाव डालती हैं। जन्म के पश्चात् घर की अवस्था, पौष्टिक भोजन, माता-पिता की आदतें, परिवार में सदस्यों की संख्या उसकी वृद्धि और विकास को प्रभावित कर दिया करती है। स्कूल में प्रवेश लेने के बाद विद्यालय की स्थिति, क्रीडास्थल, कक्षा के कमरों में प्रकाश और वायु का प्रबंध, विद्यालय की आन्तरिक व्यवस्था आदि बातें उसके स्वास्थ्य और विकास को प्रभावित करती रहती हैं।

बच्चे के जन्म से पहले यदि उसकी माँ को पौष्टिक भोजन नहीं मिलता तो उसका भावी विकास रुक जाता है। लवण तथा विटामिन जच्चा और बच्चा दोनों को ही आवश्यक होते हैं। अशुद्ध वायु और अन्धकारमय स्थान गर्भ-स्थित बच्चे पर बुरा प्रभाव डालते हैं। गर्भवती स्त्री को भीषण चोट लगने पर गर्भ-स्थित बच्चे की मृत्यु हो जाती है और साधारण चोट पर उसके शरीर में कुरूपता आ जाने का भय रहता है। समय से पहले अविकसित बच्चे का जन्म हो सकता है जिससे उसमें शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार की दुर्बलताएँ घर कर सकती हैं। छोटी आयु के माता-पिता के बच्चे प्रायः अस्वस्थ पैदा होते हैं। गर्भावस्था में कुनीन और आयोडीन खा लेने पर गर्भपात होने डर रहता है कभी-कभी गर्भ में ही बालक की मृत्यु भी हो सकती है।

जन्म के समय कभी कभी ऐसी चोटें लग जाती हैं जिनसे मस्तिष्क की नाड़ियों में रक्तस्राव (Bleeding) होने लगता है। सुषुम्ना और मस्तिष्क में लकवा मार जाता है[1] मांस-पेशियाँ आवश्यकता से अधिक खिंच जाती हैं। इस प्रकार अनेक शारीरिक विकार उत्पन्न हो जाते हैं। कभी-कभी इस समय से ही कुछ रोग बालक को लग जाते हैं। जिससे उसका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। जन्म के पश्चात् पौष्टिक भोजन और निवास स्थान बालक के शरीर के विकास पर विशेष प्रभाव डालते हैं। प्रथम महायुद्ध के बाद फ्रांस में जब उस देश की आर्थिक दशा खराब हो गई तब उसके बालकों के शरीर का विकास १-२ साल के लिये रुक गया और किशोरों का विकास ३-४ वर्ष तक थम गया। जर्मनी की आर्थिक अवस्था १९१८-३५ के बीच में इतनी

1 स्वास्थ्य शिक्षा—जी० पी० शेरी, पृष्ठ ११

सुधर गई कि उस देश के लगभग २०,००० बच्चों के कद में ग्रौसतन ४" की वृद्धि हो गई। उन
भारभी २४ पौण्ड से ग्रधिक बढ़ गया क्योंकि ग्राथिक ग्रवस्था के सुधरने पर उनको पौष्टि
भोजन मिलने लगा। स्लम्स (Slums) में रहने वाले बच्चों का भार साधारण बच्चों की ग्रपे
८ से १३ पौण्ड तक कम पाया गया है ग्रौर कद ३" से ५" तक कम। १ कमरे वाले मकानों
रहने वाले बच्चों का कद ग्रौर भार तीन या तीन से ग्रधिक कमरों में रहने वालों की ग्रपेक्षा क
पाया गया है। संक्षेपतः यह कहा जा सकता है कि पौष्टिक भोजन ग्रौर निवास स्थान की उ
व्यवस्था शारीरिक वृद्धि ग्रौर विकास में सहायक तथा उनका ग्रभाव वृद्धि में बाधक होता
पौष्टिक भोजन पाने वाले ग्रौर साफ मकानों में रहने वाले बच्चों के बाल चिकने ग्रौर चमक
ग्राँखें चमकती हुई, मसूड़े ग्रौर होंठ लाल, दाँत सफेद मोती जैसे चमकते हुए, भूख ग्रच्छी,
गहरी, रंग सफेद ग्रौर शरीर स्वस्थ दिखाई देता है, गन्दे, सीलनयुक्त ग्रस्वास्थ्यकर मकानों
जन्म लेने ग्रौर रहने वाले बच्चे गठिया, गले की खराबी, ग्रौर साँस रोग से पीड़ित रहते
उनके गलसुए बढ़ जाते हैं। मलेरिया ग्रौर पीत ज्वर से पीड़ित इन बालकों के शरीर का वि
रुक जाया करता है।

माता पिता की आदतें भी बालक के विकास को प्रभावित किया करती हैं।
माताएँ ग्रनियमित ढंग से बालकों को दूध पिलाती हैं। उचित समय पर भोजन करने, शौच
जाने, स्नान करने ग्रौर सोने की ग्रच्छी ग्रादतें बाल्यावस्था से ही पड़ा करती हैं इन ग्रादत
डालने में घर का प्रमुख हाथ रहता है।

जिस प्रकार घर के वातावरण का बालक के शारीरिक विकास पर प्रभाव पड़ता
है उसी प्रकार स्कूल का वातावरण भी उसके शारीरिक विकास ग्रौर वृद्धि को प्रभावित
करता है। स्कूल के वातावरण से हमारा तात्पर्य विद्यालय के पास पड़ोस, भवन के ग्रा
प्रकार, क्रीडा स्थल, स्वच्छ वायु जल, ग्रौर प्रकाश की व्यवस्था, उठने बैठने के लिये प्र
ग्रौर कार्य करने की ग्रनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितयों से है। यदि स्कूल का वातावरण
स्वस्थ—स्नेहमय एवं ग्राकर्षक है तो बालको का शारीरिक विकास भी उत्तम ढंग से
रहेगा।

घर ग्रौर स्कूल के वातावरण में हम भौगोलिक नियन्त्रण को भी सम्मिलित कर
हैं। यदि घर ग्रौर स्कूल पर्वतीय ग्रौर ठण्डे प्रदेशों में स्थित हैं तो बालक बलवान, गठीले
वाले परिश्रमी ग्रौर धैर्यवान होंगे। यदि उनके प्रदेश का जलवायु गर्म ग्रौर नम है तो वे मले
पीत ज्वर ग्रादि रोगों से ग्रसित मिलेंगे। ये रोग उनके स्वास्थ्य को बिगाड़ देते हैं तथा शा
विकास को ग्रवरुद्ध कर देते हैं।

(३) मनोवैज्ञानिक तत्व (Psychological factors)—शारीरिक विकास ग्रौ
को प्रभावित करने में ग्रानुवांशिक ग्रौर वातावरणीय घटकों का प्रभाव तो सभी स्वीकार क
किन्तु मनोवैज्ञानिक तत्वों की ग्रोर बहुत कम शिक्षाविदों का ध्यान ग्रभी तक ग
हुग्रा है।

चिन्तायें, क्रोध ग्रौर संवेगात्मक संघर्ष पाचन क्रिया को क्षुब्ध कर देते हैं। उनसे नी
हो जाती है। रक्त संचरण में विकार उत्पन्न होने लगते हैं। यदि ये बातें बालक के जीव
चलती रहती है तो उसके शरीर की वृद्धि ग्रौर विकास सामान्य दर से नहीं होता। पहली
के बाद फ्रांस या जर्मनी के बच्चों की शारीरिक वृद्धि के रुकने का एक कारण यह भी हो
है कि उनको संवेगात्मक संघर्ष का सामना सम्पूर्ण युद्ध काल में करना पड़ा था। इंग
विद्यालयों में १६ वीं शताब्दी में ग्रवदमन पर जोर देने वाली विद्यालय-व्यवस्था का प
यह हुग्रा कि उस समय विद्यार्थी वर्ग के भय से पीड़ित रहने से कारण उनके शरीर की वृ
दर से नहीं हुई जिस दर से ग्राज के स्वतन्त्र ग्रौर निर्भय वातावरण में हो रही है।[1] ग्र
देश के घरों ग्रौर विद्यालयों में बच्चों का न तो किसी प्रकार का ग्रवदमन ही प्रयोग में
न किसी प्रकार का शारीरिक दण्ड ही दिया जाता है फलस्वरूप उनकी शारीरिक वृद्धि
। में होने लगी है।

1. School Health Problem—*Chenoweth & Selkirk*

विद्यालय मे स्वास्थ्य शिक्षा का महत्व

Q. 3. Discuss the various measures which the headmaster of a school should adopt to promote the formation of habits of healthy living.

(*Agra B. T. 1955*)

Ans. स्कूलो मे स्वास्थ्य शिक्षा का उत्तरदायित्व पूरी तरह से विद्यालय के सचालको पर ही रहता है। इस प्रकार की शिक्षा-व्यवस्था से विद्यालय छात्रो की स्वास्थ्य सम्बन्धी उत्तम आदतो का निर्माण करता है और उनके दृष्टिकोणो मे अन्तर लाने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार की शिक्षा से छात्रो के स्वास्थ्य को उत्तम बनाने का प्रयत्न किया जाता है। बालको को स्वास्थ्य-रक्षा सम्बन्धी ज्ञान दो प्रकार से दिया जाता है

(अ) विद्यालय मे स्वास्थ्य सेवाओ का आयोजन करके।
(ब) सगठित स्वास्थ्य निर्देशन से।

स्वास्थ्य सेवाओ मे विद्यालय की उन क्रियाओ को सम्मिलित किया जाता है जिनका उद्देश्य बालक के स्वास्थ्य का स्तर निश्चित करना, स्वास्थ्य-रक्षा और उसको बनाये रखने मे बालक का सहयोग प्राप्त करना, बालक के स्वास्थ्य सम्बन्धी दोषो का उसके अभिभावको से परिचित करना, रोगो की रोकथाम करना, रोगो का उपचार एव शारीरिक दोषों का निवारण करना है।

कभी-कभी बालको को स्वास्थ्य-रक्षा के लिये उनको प्रत्यक्ष रूप से निर्देश देने की व्यवस्था भी की जाती है। उनको विशेष विषयो की शिक्षा देकर स्वस्थ आदतो को बनाने का उपक्रम किया जाता है। इन विषयो मे हाइजीन, और प्राथमिक सहायता आदि सम्मिलित किये जा सकते हैं। कभी-कभी अन्य विषयो के अगो के रूप मे स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धी निर्देश भी दिये जाते हैं। उदाहरणस्वरूप नागरिक शास्त्र, समाज-अध्ययन, गृह विज्ञान मे स्वास्थ्य-रक्षा सम्बन्धी ज्ञान दिया जाता है। किन्तु स्वास्थ्य सम्बन्धी कोरा ज्ञान देने की अपेक्षा विद्यालय का कर्तव्य यह भी है कि वह अपने छात्रों मे स्वस्थ आदतो एव स्वस्थ दृष्टिकोण का सचार भी करे और यथासम्भव क्रियात्मक रूप से ज्ञान का प्रसार करे।

प्राथमिक कक्षाओ मे अध्यापक छात्रो को स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धी सीधा निर्देश नही दे सकते। उन्हे तो उत्तम वातावरण प्रस्तुत करके अनुकरण की प्रक्रिया द्वारा उनमे स्वस्थ आदतो का निर्माण करना है। माध्यमिक स्तर पर बालको के बौद्धिक स्तर के अनुरूप निर्देश देकर उनका दृष्टिकोण उत्तम बनाया जा सकता है। इस स्तर पर भी निर्देशन की सफलता अध्यापको के स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धी विस्तृत ज्ञान, चार्ट, चलचित्र, मोडल और साहित्य की प्रचुरता, व्यावहारिक जीवन मे ज्ञान को उपयोग मे लाने की क्षमता पर निर्भर रहती है।

के लिए प्रभिवृत्ति परीक्षण, सामाजिक समझन सम्बन्धी जाँच आदि का होना आवश्यक है। असामान्य अथवा अर्धसामान्य बालका की प्रवृत्तियों का ज्ञान तो अध्यापक निरीक्षण द्वारा ही प्राप्त कर सकता है लेकिन बालकों के मानसिक तथा सावेगिक स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारियों का ज्ञान मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के आधार पर ही प्राप्त किया जा सकता है।

इन परीक्षणों की सहायता से बालक की मानसिक तथा सावेगिक कठिनाइयां और

उचित सावेगिक विकास मे बाधा पड सकती है इसका ज्ञान प्रत्येक अध्यापक को होना चाहिए। वह बालक जो विद्यालय मे निरन्तर फेल होता रहता है विद्यालय के प्रति घृणा और भय की भावनाओं से ग्रसित रहता है।

बीमारियों के

क्या-क्या लक्षण है तो अवश्य ही वह डाक्टर की विशेष सहायता कर सकता है। उसे मालूम होना चाहिये कि खाँसी, नाक बहना, सिरदर्द, पिथी, आँख आना, आदि बीमारियों के क्या लक्षण हैं। उसे यह भी ज्ञात होना चाहिये कि बालको मे अधिकतर पाये जाने वाली अन्य साधारण बीमारियो के क्या लक्षण होते है।

जैसे ही अध्यापक को पता चले कि किसी बालक को कोई बीमारी है वैसे ही वह उसकी सूचना प्रधानाध्यापक अथवा स्कूल डाक्टर को दे। अध्यापक के अतिरिक्त विद्यालय में कोई न कोई एक व्यक्ति ऐसा अवश्य हो जो यह तुरन्त निर्णय करे कि बालक को बीमारी होने पर घर भेजना है अथवा स्कूल मे रखना है।

जब-जब किसी बालक को घर भेजा जाय तब अभिभावकों को उसका कारण अवश्य सूचित किया जाय और उनसे बालक की डाक्टरी चिकित्सा के लिए प्रार्थना की जाय। जब बालक चिकित्सा के बाद विद्यालय आवे तब उसका फिटनैस सर्टीफिकेट अवश्य देख लिया जाय।

Q. 3. 'The value of medical examination depends upon the follow up programme'. Discuss.

फौलो-अप स्टडी—बहुत से विद्यालयो मे बालको के स्वास्थ्य का डाक्टरी निरीक्षण होता है; उस निरीक्षण से प्राप्त जानकारियों को आलेख पत्र पर अंकित भी कर लिया जाता है लेकिन निरीक्षण के तुरन्त बाद ही उनको विस्मृत भी कर दिया जाता है। डाक्टरी जाँच के फलस्वरूप प्राप्त सूचनायें इतना अधिक महत्व नही रखती जितना कि उनका निराकरण। बालक के स्वास्थ्य के विषय मे भले ही कम दोष ढूढे जांय लेकिन जो जो दोष मालूम पड़े उनका निराकरण अवश्य होना चाहिए। शारीरिक स्वास्थ्य सम्बन्धी दोषों के निराकरण करते समय निम्नलिखित दो बातो को अवश्य ध्यान मे रखा जाय

(i) कोई भी विद्यालय बालक की बीमारी की चिकित्सा का वह उत्तरदायित्व अपने ऊपर नही ले सकता जो उसके मातापिता और अभिभावकों का है।

(ii) प्रत्येक चिकित्सा का उद्देश्य शैक्षणिक हो —प्रत्येक शारीरिक दोष के निवारण मे शैक्षणिक महत्व पर ही बल दिया जाय।

विद्यालय केवल शैक्षणिक सस्था है अस्पताल अथवा क्लीनिक (Clinic) नही। अत वह बालक की चिकित्सा का उत्तरदायी नही हो सकता। बीमारियो की चिकित्सा की जिम्मेदारी बालक के मातापिता पर है विद्यालय पर नहीं। विद्यालय का सेविवर्ग बालक को प्राथमिक चिकित्सा तो दे सकता है किन्तु पूर्ण चिकित्सा का प्रबन्ध नही कर सकता। उसका उत्तरदायित्व तो केवल इतना है कि डाक्टरी निरीक्षण के निष्कर्षों को अभिभावकों तक पहुँचा सके।

अथवा अभिभावक उपस्थित न
निष्कर्षों, डाक्टर के सुझावों जो
वाली चिकित्सा तथा देखभाल के
विषय मे आवश्यक जानकारियों को उन तक पहुँचा देवें। यदि विद्यालय उन्हे अपने डाक्टर से सलाह मशविरा करना हो तो उसके लिये भी सुविधायें प्रदान करें। बच्चो को भी डाक्टरी निरीक्षण के निष्कर्षों को समझा दिया जाय।

प्रत्येक अध्यापक को अपने बालको के स्वास्थ्य का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। इसलिए डाक्टरी निरीक्षण के निष्कर्षों का ज्ञान न केवल मातापिता को ही होना चाहिए वरन् उन
का अर्थ यह है कि अध्यापको तथा
चिकित्सा चाहने वाले छात्रों की
...में अध्यापक अपने कक्षा-शिक्षण को बालको की आवश्यकताओ के अनुरूप बना सकेगा और वह उनके अभिभावको को शारीरिक दोषों के निवारण के लिए ठोस सुझाव भी दे सकेगा।

फोलो-अप-प्रोग्राम का मुख्य लक्ष्य यही है कि उन सभी शारीरिक दोषो का निवारण हो सके जो डाक्टरी परीक्षण के फलस्वरूप ज्ञात हो सके हैं। यदि किसी बालक के मातापिता इस योग्य नही कि वे उस बीमारी की चिकित्सा अपने खर्चे पर नही कर सकें तो ऐसे छात्रों को खण्ड के स्वास्थ्य केन्द्रो (health centres) में भेजा जा सकता है जहाँ वे निःशुल्क चिकित्सा की सुविधा पा सकें।

Q. 4. What do you mean by school health service? What is the utility of such a service in school to its members? *(B. T. 1950)*

Ans. विद्यालीय स्वास्थ्य सेवा—उन्नत विद्यालयो के सभी छात्रो के स्वास्थ्य एव शरीर की अवस्था का पूर्ण निरीक्षण करने का उत्तरदायित्व विद्यालय के अध्यापको, स्थानीय चिकित्सक एव विशेषज्ञो पर रहता है। ये व्यक्ति प्रत्येक छात्र के नाक, कान, आँख और दाँतो की सावधानी पूर्वक परीक्षा करते हैं उनके कद, भार और वक्ष के प्रसार सम्बन्धी प्रदत्त एकत्र करते है। उसके शरीर वालो और वस्त्रो की सफाई का सावधानी से निरीक्षण करते हैं। इस प्रकार प्रगतिशील राष्ट्रों मे अपने छात्र और छात्राओं को स्वस्थ रखने के लिए डाक्टरी निरीक्षण विद्यालय के कार्यक्रम का आवश्यक अग बन गया है।

विद्यालीय स्वास्थ्य सेवा का प्रमुख अग स्वास्थ्य निरीक्षण है।

स्वास्थ्य निरीक्षण की उपयोगिता—रोग, रिपु, और ऋण को पैदा होते ही जड से काट देना चाहिए नही तो उनकी उपेक्षा करने पर बाद मे वे बहुत बढ जाते हैं और व्यक्ति का विनाश कर दिया करते हैं। यदि आरम्भ मे ही उनकी खोज कर ली जाय तो उनका उपचार आसानी से हो जाता है। प्रत्येक विद्यालय मे ऐसे अनेक बालक मिलेंगे जो दाँतो की खराबी, आँख के दोष, रक्त की कमी से पीडित हो, किन्तु उनको ढूँढने की आवश्यकता है। यह कार्य स्वास्थ्य निरीक्षण द्वारा ही सम्भव है।

प्रत्येक राष्ट्र अपने नागरिको को स्वस्थ रखने के लिए अतुल धनराशि व्यय करता है। क्योंकि स्वस्थ नागरिक देश का धन हैं। इस कार्य के लिये वह जन-स्वास्थ्य विभाग की स्थापना करता है, अस्पताल खोलता है, हजारों डाक्टरो और नर्सों का प्रशिक्षण और नियुक्ति करता है। विद्यालयी स्वास्थ्य सेवा जन-स्वास्थ्य विभाग का अग मानी जाती है। इस प्रकार उसका उद्देश्य वही है जो जन स्वास्थ्य विभाग का होता है।

यदि विद्यालय में चिकित्सालय का प्रबन्ध है तो कुछ रोगी बालको का वहीं उपचार किया जा सकता है किन्तु विद्यालय मे यदि ऐसा कोई प्रबन्ध नही होता तो अध्यापक और स्कूल के डाक्टर बालको मे सक्रामक रोगो का पता लगाकर, उनका उपचार कर, रोगी बालक को अन्य बालकों से अलग रखकर रोगो को रोकने मे सहायक होते हैं। वे बालको के शारीरिक दोषो की खोज तथा उनके उपचार के साथ-साथ स्वास्थ्य सम्बन्धी शिक्षा अप्रत्यक्ष रूप से देते रहते हैं।

बालकों के रोगो की सूचना उनके माता-पिता को देकर उन्हे भी स्वस्थ जीवन की आवश्यकताओ से परिचित किया जाता है। इस प्रकार स्वास्थ्य निरीक्षण का काम केवल रोगों

(३) फौलो अप-स्टडी—चिकित्सा सम्बन्धी परीक्षण के परिणामों और विकारों के सुधार का फोलो अप करना भी डाक्टरी निरीक्षण का एक महत्वपूर्ण कार्य है।

(४) सक्रामक रोगों पर नियन्त्रण—यह निरीक्षण बालकों में सक्रामक रोगों के फैलने को रोकता है, विसूचिका, चेचक, और मोतीज्वर ऐसे रोग हैं जो एक छात्र से दूसरे में सक्रामित हो जाते हैं। उनका पता लगाकर इन पर नियन्त्रण किया जा सकता है।

(५) दाँतों की रक्षा—इग्लैण्ड में दाँतों की रक्षा के लिए वहाँ की सरकार ने प्रत्येक बालक के लिये दाँत सेवा (Dental service) का अनिवार्य रूप से आयोजन कर दिया है। इस प्रकार हमारे देश में भी डाक्टरी निरीक्षण का एक उद्देश्य दाँतों की सुरक्षा का प्रबन्ध और देखभाल करना हो सकता है।

(६) स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धी मार्ग निर्देशन—स्वास्थ्य निर्देशन एवं चिकित्सा सम्बन्धी परामर्श द्वारा छात्रों के स्वास्थ्य की रक्षा करना।

(७) मानसिक स्वास्थ्य की समस्या का निदान—छात्रों के शारीरिक स्वास्थ्य के अतिरिक्त मानसिक स्वास्थ्य का भी परीक्षण मानसिक बीमारियों का उपचार, तथा मानसिक विकारों को दूर करने के लिए उनके अभिभावकों को निर्देशन (guidance) देना।

(८) विद्यालय के वातावरण को स्वस्थ्य रखने में सहयोग प्रदान करना।

इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये स्कूल के अध्यापक, अभिभावक, प्रबन्धकारिणी समिति और स्वास्थ्य विशेषज्ञों के बीच सहयोग की आवश्यकता है। स्वास्थ्य निरीक्षण का कार्य चिकित्सक या चिकित्सा विशेषज्ञों का ही नहीं है, इस कार्य की जिम्मेदारी समान रूप से सभी पर है। कारण स्पष्ट है। चिकित्सक या स्वास्थ्य विशेषज्ञ स्कूल के सभी छात्रों को प्रतिदिन नहीं देख सकते। स्वास्थ्य निरीक्षण का कार्य तो वही अच्छी तरह से कर सकता है जो छात्रों के सम्पर्क में

[illegible]

ले सकते हैं, अभिभावकों को बालकों के रोगों की सूचना दे सकते हैं। उनके स्वास्थ्य का अभिलेख (record) रखकर उनके विकास की दशा का अनुमान लगा सकते हैं। जो कार्य घायल होने वाले छात्र की जीवन रक्षा के लिए प्रथम सहायक का होता है लगभग वैसा ही कार्य अध्यापक वर्ग का होता है। विद्यालय के अध्यापकों, व्यायाम शिक्षकों, क्रीडाध्यक्षों और छात्रावास के अध्यक्षों का यह कार्य स्वास्थ्य निरीक्षण (medical inspection) का महत्वपूर्ण अंग माना जाना चाहिये क्योंकि उनकी रिपोर्ट पर ही विद्यालयों के चिकित्सक और स्वास्थ्य विशेषज्ञों का निरीक्षण आधारित रहता है।

विशेष डाक्टरी जाँच—बालक के स्वास्थ्य के सामान्य निरीक्षण में ढूँढे गये दोष और व्याधाएँ चिकित्सालय द्वारा ही दूर की जा सकती हैं। इसलिये प्रत्येक विद्यालय में चिकित्सालय (School clinics) की जरूरत पड़ सकती है। यदि हम चाहते हैं कि डाक्टरी निरीक्षण से विद्यार्थियों को पूरा-पूरा लाभ हो तो साधारण रोगों की चिकित्सा का प्रबन्ध विद्यालय के चिकित्सालय में होना चाहिये। सार्वजनिक अस्पतालों में अधिक भीड़ होने के कारण विद्यार्थियों को विशेष लाभ नहीं होता क्योंकि समयाभाव के कारण वे उनमें जाना पसन्द नहीं करते। उन्हें प्राइवेट डाक्टरों की शरण लेनी पड़ती है। निर्धन छात्रों के माता पिता के पास धनाभाव के कारण उनके रोगों को दूर करने का कोई अन्य साधन नहीं मिलता। इसलिये विद्यालय में चिकित्सालय न होने पर डाक्टरी निरीक्षण का उद्देश्य ही विफल हो जाता है। उस पर व्यय किया गया धन श्रम और शक्ति व्यर्थ की जाती है।

जिन स्कूलों में धनाभाव के कारण चिकित्सालयों की व्यवस्था नहीं की जा सकती उनमें कुछ पारिश्रमिक देकर बाहर के चिकित्सक और चिकित्सालय में रोगों से पीड़ित छात्रों के उपचार की व्यवस्था की जाती है। ये चिकित्सक बालकों के साधारण रोगों का उपचार तो कर दिया करते हैं किन्तु आँख, कान, नाक, पेट और हृदय के विशेष रोगों के उपचार के लिये विशेषज्ञों से परामर्श लेने के आदेश दे देते हैं। इन विशेषज्ञों की सहायता बालकों के प्रवेश के समय और प्रति तीन महीने बाद ली जा सकती है।

डाक्टरी जाँच के नियम :

(१) विद्यालय जीवन मे कम से कम तीन बार प्रत्येक विद्यार्थी की डाक्टरी जाँच अवश्य होनी चाहिये। प्रथम डाक्टरी जाँच प्रवेश के समय, द्वितीय विद्यालय जीवन मे एक बार और तीसरी विद्यालय छोड़ते समय को जा सकती है।

(२) डाक्टरी निरीक्षण की रिपोर्ट विद्यालय मे रहनी चाहिये और उसकी प्रतिलिपि अभिभावको के पास भेज देनी चाहिये।

(३) विद्यालय-परिवर्तन के समय यह रिपोर्ट दूसरे विद्यालय या छात्र के भावी ऐम्पलोयर (employer) के पास भेजी जा सकती हैं।

(४) डाक्टरी निरीक्षण पाठशाला के भीतर ही होना चाहिये और जहाँ तक हो वह कक्षा अध्यापक, अध्यक्ष और छात्रावासाध्यक्ष की उपस्थिति मे की जाय।

स्कूल डाक्टर के कार्य :

(१) स्कूल के सभी छात्रों का डाक्टरी निरीक्षण।
(२) रोगग्रस्त छात्रो का पुनः निरीक्षण।
(३) अध्यापको और विद्यालय के अन्य अधिकारियो द्वारा उनके पास भेजे गये छात्रो का गहरा निरीक्षण।
(४) सक्रामक रोगो से पीडित छात्रो को अवकाश दिलाने के लिये विद्यालय के अध्यक्ष को सूचना देना।
(५) विकलांग छात्रो को विशेष शिक्षा के लिये छाट करना।
(६) विद्यालय मे स्कूल के रोगो की रोक थाम।
(७) स्कूल चिकित्सालय और परिचारिका के कार्यों का निरीक्षण।
(८) विद्यालय को निर्धन और कमजोर बालको के लिये पौष्टिक भोजन देने की सलाह देना।
(९) विद्यालय को सफाई रखने के लिये परामर्श देना।

छात्रो के शारीरिक दोषो, बीमारियो का उपचार चिकित्सक द्वारा हो सकता है किन्तु कभी-कभी विद्यालयो मे मानसिक रोगो से पीडित छात्र भी प्रवेश ले लेते हैं। ऐसे छात्रो के मानसिक स्वास्थ्य को ठीक बनाये रखने के लिये हमे बाल-शिक्षण चिकित्सालयो (Child guidance clinics) की आवश्यकता पड़ती है।

बाल शिक्षण चिकित्सालय—इन चिकित्सालयो को हम एक प्रकार से पथ प्रदर्शक संस्था भी कह सकते हैं क्योकि वे समाज सेवक (social worker) और मनश्चिकित्सक (Psychritrist) सहायता से समस्या पूर्ण (Problem) बालको के मन मे स्थित संघर्षों, भावना ग्रंथियो, और मानसिक रोगो का पता लगा कर उनका उपचार भी करते हैं और पीड़ित छात्रो के माता पिता का मार्ग निर्देशन भी।

उत्तर प्रदेश में स्वास्थ्य निरीक्षण

Q. 6. What is the Present system of medical inspection of school children in Uttar Pradesh? What measures would you suggest to make it really effecture? *(Agra B T 1950, L. T 1947, 50, 51, 55)*

Ans. उत्तर प्रदेश मे स्कूलो की स्वय की व्यवस्था बडी भिन्न है, इस प्रदेश मे कुछ स्कूल तो ऐसे हैं जिनकी पूर्ण व्यवस्था राज्य सरकार के हाथ मे होती है। कुछ स्कूल जिनकी सख्या बहुत अधिक है वे स्कूल कुछ लोगो की संस्था द्वारा चलते हैं। इनमे सरकार द्वारा नियन्त्रण अवश्य होता है जिसके बदले मे सरकार उनको आर्थिक सहायता देती है। इसके अतिरिक्त कुछ स्कूल ऐसे हैं जिनका पूरा खर्च स्वय एक सगठन करता है। हमारे प्रदेश के अधिकतर बालक दूसरे प्रकार के स्कूलो मे पढ़ते हैं जो कि प्राइवेट स्कूलो के नाम से पुकारे जाते हैं।

अब प्रश्न यह पैदा होता है कि बालकों के स्वास्थ्य का क्या प्रबन्ध है। जिस प्रकार मस्तिष्क के विकास के लिये कक्षा में भिन्न-भिन्न विषयों का अध्यापन होता है उसी प्रकार स्वास्थ्य के विकास के लिये शरीर की शिक्षा होना भी अनिवार्य है। हमारे प्रदेश की अधिकतर जनता शिक्षित न होने के कारण घरों पर माता पिता अपने बच्चो के स्वास्थ्य की ओर अधिक ध्यान

नहीं दे पाते है। इसलिये स्कूलो की जिम्मेदारी इस ओर और भी अधिक हो जाती है। जिन देशो मे माता-पिता शिक्षित है वहां तो स्कूलो की इतनी जिम्मेदारी नही होती है परन्तु अपने प्रदेश मे स्थिति बिलकुल विपरीत है।

ो दो या तीन बार डाक्टरी
आकर बालको का भार,
रते हैं। कही-कही तो साल
के स्वास्थ्य सम्बन्धी पूर्ण
ज्ञान नही हो पाता है। जो राजकीय स्कूल गांवो में स्थित हैं उनकी हालत साधारण रूप क उन विद्यालयो की भांति होती है जो कि सामान्य लोगो के द्वारा नियन्त्रित होते हैं।

इस प्रकार स्वास्थ्य सम्बन्धी निरीक्षण तो उन विद्यालयों मे होता है जो कि राजकीय ... य है। इनमे से कुछ तो शहरो मे होते
न स्कूलो मे से कुछ मे साल मे एक बार
इस प्रकार की कोई व्यवस्था नही होती
है। इस तरह के जो स्कूल ग्रामो में स्थित हैं उनमे किसी मे कुछ स्वास्थ्य के बारे मे परीक्षण होता है और कुछ बिना परीक्षा के रह जाते हैं।

परन्तु हमारे प्रदेश का शिक्षा विभाग इस ओर अब कुछ ध्यान देने लगा है जिसके फलस्वरूप वर्ष मे एक या दो बार स्कूल मे जाने वाले सम्पूर्ण बालकों की स्वास्थ्य परीक्षा की जाती है। इस परीक्षा की सूचना माता पिता तथा अभिभावको को दे दी जाती है, इस तरह उन लोगो का बालक की स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारी हो जाती है। जो कोई बालक सामान्य स्वास्थ्य नहीं रखता है उसकी ओर माता-पिता का ध्यान खीचा जाता है ताकि उनका बालक आगे चल कर किसी रोग का शिकार न हो जाय।

स्कूल मे जाने वाले बालक ही देश के नवीन पथप्रदर्शक होंगे, इसलिये सरकार का यह परम कर्तव्य हो जाता है कि वह इन बालको की ओर विशेष ध्यान दे। नाना प्रकार के दोष हमारी लापरवाही के कारण पैदा हो जाते है। यदि स्वास्थ्य की परीक्षा समय-समय पर होती रहती है तो बालको को इस प्रकार के दोषो मे बचाया जा सकता है। इसलिये यह उपयुक्त समझा जाता है कि कम से कम त्रैमासिक साफल्य परीक्षा के साथ बालको के स्वास्थ्य की परीक्षा का प्रबन्ध विद्यालय मे होना आवश्यक ही नही बल्कि अनिवार्य होना चाहिए, इसके आधार पर हम अपने बालको का स्वास्थ्य ठीक रख सकते हैं।

उपरोक्त निरीक्षण को लाभप्रद बनाने हेतु निम्न बातो की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए—

निरीक्षण बहुत आवश्यक है क्योकि
, कान बहते हैं, आंखो मे दोष होता
स्कूल ... डाक्टरी निरीक्षण बडा ही आवश्यक है तथा ... अगर आरम्भ मे ही उनकी खोज कर ली जाय तो उनका उपचार हो सकता है और होता है। अगर आरम्भ मे ही उनकी खोज कर ली जाय तो उनका उपचार हो सकता है और बच्चे नीरोग तथा स्वस्थ हो सकते है। इस तरह से डाक्टरी निरीक्षण से आसानी से इन रोगो का पता चल सकता है और उसके आधार पर आवश्यक उपचार भी किया जा सकता है।

इस प्रकार से डाक्टरी निरीक्षण से दोनो जन स्वास्थ्य विभाग तथा स्कूल के अध्यापक को लाभ पहुंच सकता है। इस निरीक्षण की रिपोर्ट के आधार पर स्वास्थ्य विभाग को यह सूचना मिल जाती है कि कहाँ सफाई की कमी है, हवा दूषित है तथा प्रकाश का उचित प्रबन्ध नहीं है। अध्यापक को यह जानकारी हो जाती है कि विद्यमान पास पडोस का किस प्रकार समुचित उपयोग किया जा सकता है। स्कूल मे संक्रामक रोगो की खोज कर वह माता पिता को सूचित कर सकता है। यदि विद्यालय मे चिकित्सा गृह का प्रबन्ध हो तो उसमे रोगी बच्चो को भर्ती किया जा सकता है जिसमे उनकी चिकित्सा का प्रबन्ध हो सके।

इस तरह के प्रबन्ध से शिक्षा मे भी लाभ होता है। जो बच्चे विशेष रोग से ग्रस्त हो उनके लिये विशेष स्कूलो का प्रबन्ध करने से उनको लाभ हो सकता है। यह तभी सम्भव है

डाक्टरी जाँच के नियम :

(१) विद्यालय जीवन में कम से कम तीन बार प्रत्येक विद्यार्थी की डाक्टरी जाँच अवश्य होनी चाहिये। प्रथम डाक्टरी जाँच प्रवेश के समय, द्वितीय विद्यालय जीवन में एक बार और तीसरी विद्यालय छोड़ते समय की जा सकती है।

(२) डाक्टरी निरीक्षण की रिपोर्ट विद्यालय में रहनी चाहिये और उसकी प्रतिलिपि अभिभावकों के पास भेज देनी चाहिये।

(३) विद्यालय-परिवर्तन के समय यह रिपोर्ट दूसरे विद्यालय या छात्र के भावी ऐम्प्लोयर (employer) के पास भेजी जा सकती है।

(४) डाक्टरी निरीक्षण पाठशाला के भीतर ही होना चाहिये और जहाँ तक हो वह कक्षा अध्यापक, अध्यक्ष और छात्रावासाध्यक्ष की उपस्थिति में की जाय।

स्कूल डाक्टर के कार्य :

(१) स्कूल के सभी छात्रों का डाक्टरी निरीक्षण।
(२) रोगग्रस्त छात्रों का पुनः निरीक्षण।
(३) अध्यापकों और विद्यालय के अन्य अधिकारियों द्वारा उनके पास भेजे गये छात्रों का गहरा निरीक्षण।
(४) संक्रामक रोगों से पीड़ित छात्रों को अवकाश दिलाने के लिये विद्यालय के अध्यक्ष को सूचना देना।
(५) विकलांग छात्रों को विशेष शिक्षा के लिये छांट करना।
(६) विद्यालय में छूत के रोगों की रोक थाम।
(७) स्कूल चिकित्सालय और परिचारिका के कार्यों का निरीक्षण।
(८) विद्यालय को निर्धन और कमजोर बालकों के लिये पौष्टिक भोजन देने की सलाह देना।
(९) विद्यालय को सफाई रखने के लिये परामर्श देना।

छात्रों के शारीरिक दोषों, बीमारियों का उपचार चिकित्सक द्वारा हो सकता है किन्तु कभी-कभी विद्यालयों में मानसिक रोगों से पीड़ित छात्र भी प्रवेश ले लेते हैं। ऐसे छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य को ठीक बनाये रखने के लिये हमें बाल-शिक्षण चिकित्सालयों (Child guidance clinics) की आवश्यकता पड़ती है।

बाल शिक्षण चिकित्सालय—इन चिकित्सालयों को हम एक प्रकार से पथ प्रदर्शक संस्था भी कह सकते हैं क्योंकि वे समाज सेवक (social worker) और मनश्चिकित्सक (Psychritrist) सहायता से समस्या पूर्ण (Problem) बालकों के मन में स्थित सवर्षों, भावना ग्रंथियों, और मानसिक रोगों का पता लगा कर उनका उपचार भी करते हैं और पीड़ित छात्रों के माता पिता का मार्ग निर्देशन भी।

उत्तर प्रदेश में स्वास्थ्य निरीक्षण

Q. 6. What is the Present system of medical inspection of school in Uttar Pradesh? What measures would you suggest to make it effective? *(Agra B T 1950, L. T. 1947, 50, 51, 55)*

Ans. उत्तर प्रदेश में स्कूलों की स्वय की व्यवस्था बड़ी भिन्न है, इस प्रदेश में कुछ तो ऐसे हैं जिनकी पूर्ण व्यवस्था राज्य सरकार के हाथ में होती है। कुछ स्कूल जिनकी बहुत अधिक है वे स्कूल कुछ लोगों की संस्था द्वारा चलते हैं। इनमें सरकार द्वारा नियन्त्रण होता है जिसके बदले में सरकार उनको आर्थिक सहायता देती है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे हैं जिनका पूरा खर्चा स्वय एक संगठन करता है। हमारे प्रदेश के अधिकतर बालक प्रकार के स्कूलों में पढ़ते हैं जो कि प्राइवेट स्कूलों के नाम से पुकारे जाते हैं।

... पैदा होता है कि बालकों के स्वास्थ्य का क्या प्रबन्ध है। जिस प्रकार कक्षा में भिन्न-भिन्न विषयों का अध्यापन होता है उसी प्रकार स्वास्थ्य की शिक्षा होना भी अनिवार्य है। हमारे प्रदेश की अधिकतर जनता ... घरों पर माता पिता अपने बच्चों के स्वास्थ्य की ओर अधिक ध्यान

नही दे पाते हैं। इसलिये स्कूलो की जिम्मेदारी इस ओर ओर भी अधिक हो जाती है। जिन देशो मे माता-पिता शिक्षित है वहाँ तो स्कूलो की इतनी जिम्मेदारी नही होती है परन्तु अपने प्रदेश मे स्थिति बिल्कुल विपरीत है।

अपने स्कूलो मे जो कि राजकीय हैं उनमे साल भर मे दो या तीन बार डाक्टरी निरीक्षण की व्यवस्था होती है। इस निरीक्षण मे डाक्टर स्कूल मे आकर बालको का भार, लम्बाई तथा सामान्य रोगो को ध्यान मे रखकर बालक का परीक्षण करते हैं। कहीं-कहीं तो साल मे एक बार ही इस तरह की व्यवस्था होती है। इस तरह बालको के स्वास्थ्य सम्बन्धी पूर्ण जानकारी नही हो पाती है। इससे माता-पिता को बालक का सही ज्ञान नही हो पाता है। जो राजकीय स्कूल गाँवो मे स्थित हैं उनकी हालत साधारण रूप के उन विद्यालयो की भाँति होती है जो कि सामान्य लोगो के द्वारा नियन्त्रित होते हैं।

इस प्रकार स्वास्थ्य सम्बन्धी निरीक्षण तो उन विद्यालयो मे होता है जो कि राजकीय है। परन्तु प्राइवेट स्कूलो की हालत तो बडी ही शोचनीय है। इनमे से कुछ तो शहरो मे होते है जहाँ कि डाक्टरी सहायता पर्याप्त रूप से होती है। उन स्कूलों मे से कुछ मे साल मे एक बार स्वास्थ्य परीक्षा आवश्यक रूप से होती है। परन्तु कुछ मे इस प्रकार की कोई व्यवस्था नही होती है। इस तरह के जो स्कूल ग्रामो मे स्थित हैं उनमे किसी मे कुछ स्वास्थ्य के बारे मे परीक्षण होता है और कुछ बिना परीक्षा के रह जाते हैं।

परन्तु हमारे प्रदेश का शिक्षा विभाग इस ओर अब कुछ ध्यान देने लगा है जिसके फलस्वरूप वर्ष मे एक या दो बार स्कूल मे जाने वाले सम्पूर्ण बालको की स्वास्थ्य परीक्षा की जाती है। इस परीक्षा की सूचना माता पिता तथा अभिभावको को दे दी जाती है, इस तरह उन लोगो का बालक की स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारी हो जाती है। जो कोई बालक सामान्य स्वास्थ्य नही रखता है उसकी ओर माता-पिता का ध्यान खीचा जाता है ताकि उनका बालक आगे चल कर किसी रोग का शिकार न हो जाय।

स्कूल मे जाने वाले बालक ही देश के नवीन पथप्रदर्शक होगे, इसलिये सरकार का यह परम कर्तव्य हो जाता है कि वह इन बालको की ओर विशेष ध्यान दे। नाना प्रकार के दोष हमारी लापरवाही के कारण पैदा हो जाते है। यदि स्वास्थ्य की परीक्षा समय-समय पर होती रहती है तो बालको को इस प्रकार के दोषो से बचाया जा सकता है। इसलिये यह उपयुक्त समझा जाता है कि कम से कम त्रैमासिक साफल्य परीक्षा के साथ बालको के स्वास्थ्य की परीक्षा का प्रबन्ध विद्यालय मे होना आवश्यक ही नही बल्कि अनिवार्य होना चाहिए, इसके आधार पर हम अपने बालको का स्वास्थ्य ठीक रख सकते हैं।

उपरोक्त निरीक्षण को लाभप्रद बनाने हेतु निम्न बातों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए—

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि स्कूल मे डाक्टरी निरीक्षण बहुत आवश्यक है क्योंकि स्कूल मे बहुत से ऐसे बच्चे होते हैं जिनके दाँत खराब होते हैं, कान बहते है, आँखो मे दोष होता है तथा और कुछ रोग होते हैं। ऐसे रोगग्रस्त बालको का डाक्टरी निरीक्षण बडा ही आवश्यक होता है। अगर आरम्भ मे ही उनकी खोज कर ली जाय तो उनका उपचार हो सकता है और बच्चे नीरोग तथा स्वस्थ हो सकते हैं। इस तरह से डाक्टरी निरीक्षण से आसानी से इन रोगो का पता चल सकता है और उसके आधार पर आवश्यक उपचार भी किया जा सकता है।

इस

को लाभ पहुँच

मिल जाती है नि

अध्यापक को यह

माता पिता को सूचित कर सकता

भी बच्चो को भर्ती किया जा सकता

है।

इस तरह के प्रबन्ध से शिक्षा मे भी लाभ होता है। जो बच्चे विशेष रोग से ग्रस्त हो उनके लिये विशेष स्कूलो का प्रबन्ध करने से उनको लाभ हो सकता है। यह तभी सम्भव है

जब स्कूल मे डाक्टरी का परीक्षा का उचित प्रबन्ध हो। बच्चों के बारे में स्वास्थ्य सम्बन्धी सूचना माता-पिता को देने से उनको स्वास्थ्य की दृष्टि से आवश्यक ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

प्रत्येक बालक के स्कूल मे भर्ती होने के पूर्व डाक्टरी परीक्षा होनी जरूरी है, प्रत्येक बालक की भिन्न-भिन्न आयु मे परीक्षा आवश्यक है। ये परीक्षायें निम्न हैं—

(१) प्रथम परीक्षा—यह परीक्षा तब होती है जब कि बालक प्रथम बार स्कूल मे ५-६ साल की आयु मे प्रवेश करता है। इस परीक्षा को माता-पिता के सम्मुख होना चाहिए। जिससे कि बालक का ज्ञान माता-पिता को प्रारम्भ से हो जाय। इस परीक्षा मे प्रमुख शारीरिक दोषो तथा अस्वच्छता सम्बन्धी बातो की ओर ध्यान देना चाहिए।

(२) दूसरी परीक्षा—यह परीक्षा उस समय होनी चाहिये जब बालक शिशु-कक्षा से निकलकर उच्च कक्षा मे प्रवेश करता है। यह परीक्षा पहली परीक्षा से अधिक सतर्कता से होनी चाहिए। इसके साथ ही साथ यह परीक्षा अध्यापक की उपस्थिति मे होनी चाहिये ताकि बालक का सही रूप डाक्टर को भी ज्ञात हो जाय। इस परीक्षा मे बालक की आंख, कान, नाक, मुंह, फेफड़ा तथा मानसिक क्षमता आदि की ओर विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए।

(३) तीसरी परीक्षा—इस परीक्षा का अभिप्राय यह है कि बालक के स्वास्थ्य मे जो भी परिवर्तन हुआ हो उसका सही ज्ञान हो सके। कभी-कभी शरीर मे परिवर्तन विशेष अवसरो तथा आयु मे हो जाया करता है। इस तरह की परीक्षा का होना भी आवश्यक होता है।

(४) चौथी परीक्षा—इस परीक्षा का यह महत्व है कि स्कूल जीवन से बालक के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा है उसका ज्ञान हो जाय। बालक के स्कूल कार्य के प्रति रुचि का ज्ञान इसी परीक्षा से किया जाता है। यदि बालक को स्कूल का जीवन तथा जिन विषयो का वह अध्ययन कर रहा है वे उसे प्रिय हैं तो उसकी स्वास्थ्य सम्बन्धी रिपोर्ट उसके पक्ष मे होगी वरना वह उसके प्रतिकूल होगी।

बालक की आयु के साथ ही साथ उसके शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार के विकास हेतु उसका समय-समय पर वजन, लम्बाई, वक्ष तथा विषय सम्बन्धी परीक्षा ली जानी चाहिए। इनके साथ ही उसके दैनिक वस्त्र, भोजन तथा शरीर की स्वच्छता की ओर भी ध्यान देना चाहिये।

स्कूल मे डाक्टरी परीक्षा मे निम्न बातो को ध्यान में रखने से बडा लाभ हो सकता है—

(१) स्कूल के सभी बालको की नियमित परीक्षा—इस परीक्षा से बालक के स्वास्थ्य की जानकारी अध्यापक तथा माता-पिता को होती रहती है। इसकी सहायता से यह भी ज्ञात हो जाता है कि किस विशेष अवसर पर बालक का स्वास्थ्य बिगडा है। अवसर जान लेने पर कारण का पता चल सकता है और कारण के आधार पर उसकी चिकित्सा की जा सकती है।

(२) उपचार की आवश्यकता वाले बच्चो की पुन. परीक्षा—ये वे हैं बालक हैं जिनको उपचार के लिये भेजा जाता है। ऐसे बालको को दुबारा परीक्षा की आवश्यकता होती है क्योंकि जिस रोग के निवारण हेतु उनको समझा गया था उस रोग का भली प्रकार से निवारण हुआ है या नहीं, इस बात का ज्ञान तभी हो सकता है जब कि पुनः परीक्षा से रोग के चिन्ह प्रकट न हो रहे हो।

(३) स्कूल तथा माता-पिता द्वारा भेजे गये बच्चों की विशेष परीक्षा का प्रबन्ध—इस स्थिति मे वे स्कूल के बच्चे आते हैं जो कि छोटी कक्षाओं तथा विभिन्न स्कूलो मे प्रवेश करते हैं उनकी विशेष परीक्षा ली जानी चाहिए क्योंकि इस प्रकार के बालको मे किसी प्रकार का रोग हो सकता है। इस रोग की पूर्ण जानकारी होनी आवश्यक है। इसके साथ ही साथ घरो से जो बालक स्कूल मे प्रवेश करते हैं उनमे भी किसी प्रकार का रोग हो सकता है। क्योंकि इन बालको की घर पर किसी तरह की परीक्षा नहीं होती है। इसलिये स्कूल के लोगों का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वे इन बालकों की विशेष परीक्षा ले लें ताकि स्कूल मे पढने वाले और बालकों को उनका भय न रहे।

(४) स्कूल मे से विशेष स्कूलो मे भेजे जाने के लिये बच्चों का छांटना—यह कार्य बडा ही आवश्यक है क्योंकि कुछ बालक स्कूल मे इस प्रकार के रोग से किसी भी समय ग्रस्त हो सकते

है जिनको विशेष चिकित्सा की आवश्यकता होती है। इस प्रकार के विशेष रोगियों के लिये अलग स्कूलों की व्यवस्था होती है, क्योंकि ये रोग साधारण स्कूलों में भली-भांति दूर नहीं किये जा सकते हैं। इसलिये विशेष प्रकार के स्कूलों का होना अति आवश्यक होता है। इस प्रकार के स्कूलों की हमारे प्रदेश में बहुत कमी है। परन्तु अब सरकार का ध्यान इस ओर पहिले से काफी बढ़ता जा रहा है।

(५) शारीरिक या मानसिक दोष होने के कारण, सक्रामक रोग ग्रस्त बच्चों का पृथक्करण—इस प्रकार के ग्रस्त बच्चों को साधारण स्कूलों से अलग रखना लाभप्रद होता है। इसके दो मुख्य कारण होते हैं। पहला यह कि इन बालकों के लिये विशेष प्रबन्ध की आवश्यकता होती है और दूसरा यह कि और बालकों को किसी प्रकार के सामान्य रोग होने का भय नहीं होता है।

(६) स्कूल में सक्रामक रोगों की खोज करना तथा उनके उपचार हेतु प्रबन्ध करना—स्कूल के डाक्टर का यह कार्य भी होना है कि समय-समय पर वह स्कूल के सक्रामक रोगों की खोज करता रहे जिससे कि उनका उपचार किया जा सके। इस तरह से स्कूल के अन्य बालक इस प्रकार के सक्रामक रोगों से बच सकते हैं।

(७) इसके अतिरिक्त डाक्टरी निरीक्षण में स्कूल में काम करने वाली नर्स के कार्य की ओर भी ध्यान देना होता है। कभी-कभी नर्स का कार्य का सुचारु रूप से नहीं चल पाता है। इस तरह उसके कार्य का निरीक्षण होना जरूरी होता है।

(८) स्कूल के बालकों की स्वास्थ्य सम्बन्धी रिपोर्ट रखना—इसकी सूचना माता-पिता तथा अभिभावकों को देते रहना चाहिए।

(९) स्कूल में स्वास्थ्य सम्बन्धी परिस्थितियों का निरीक्षण करना—प्रत्येक स्कूल के वातावरण का प्रभाव भी बालकों के स्वास्थ्य पर होता है, इसमें प्रकाश, स्वच्छ हवा तथा सफाई आते हैं। इन बातों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त स्कूल के पास-पडोस की ओर भी ध्यान चाहिए।

स्कूल में प्रतिदिन निरीक्षण हेतु एक नर्स का होना बड़ा ही आवश्यक होता है। उसको प्रति दिन बालकों की देख-रेख रखनी पड़ती है। परीक्षा के समय स्कूल के डाक्टर को बच्चों के बारे में सहायता देने का कार्य भी उसी का होता है।

परन्तु हमारे देश में इसका बड़ा ही अभाव है जिसके कारण बच्चों की स्वास्थ्य सम्बन्धी परीक्षा नहीं हो पाती है। फिर भी स्कूल का यह कर्तव्य होना चाहिए कि प्रति मास प्रत्येक बालक की डाक्टरी परीक्षा हो जाय ताकि आवश्यक उपचार समयानुसार किया जा सके।

स्वास्थ्य निर्देश (Health Instruction) का कार्य कहाँ तक स्वास्थ्य अध्यापक
मे
कि
दि
की जानकारी रखता है। यदि उसका शरीरविज्ञान, शरीरशास्त्र, स्वास्थ्य रक्षा का भी प्रशिक्षण दे दिया जाय तो वही उपयुक्त व्यक्ति होगा जो बालको को स्वास्थ्य शिक्षा दे सके।

कुछ स्कूलो मे स्वास्थ्य शिक्षा का भार स्कूल डाक्टर, फिजीकल एजूकेशन टीचर अथवा विज्ञान अध्यापक पर छोड़ दिया जाता है। लेकिन आवश्यकता इस बात की है कि स्वास्थ्य शिक्षण के लिए ऐसे व्यक्ति का चुनाव किया जाय जो इस शिक्षा मे विशेष रुचि और उत्साह का प्रदर्शन कर सके। स्वास्थ्य शिक्षक को अपने विषय तो अन्य विषयो के साथ समन्वय स्थापित करना चाहिए।

प्राइमरी कक्षाओ मे स्वास्थ्य शिक्षा का समन्वय अन्य विषयो के साथ किया जाता है। उदाहरण के लिए स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमो का ज्ञान भाषा पाठो मे अथवा समाज अध्ययन मे दिया जाता है। लेकिन
न्यूनतम मात्रा मे दी जा
का अग बन जाती है।
जाय तो उसके लिए योग

स्वास्थ्य शिक्षा के सिद्धान्त—स्वास्थ्य शिक्षक को यह जानना जरूरी है कि स्वास्थ्य शिक्षा के मूलभूत सिद्धान्त क्या हैं। उसको अपने शिक्षण मे निम्नलिखित बातो पर ध्यान देना चाहिए

(i) वह बालको के स्वास्थ्य के भावात्मक पक्ष पर बल दे अभावात्मक पक्ष पर नही अर्थात् प्रत्येक बच्चे को अधिकतम स्वस्थ बनाने का प्रयत्न करे
(ii) स्वास्थ्य की शिक्षा विषयो की शिक्षा की तरह न दी जाय, अच्छा स्वास्थ्य बनाना ही उसका उद्देश्य हो।
(iii) सामान्य बच्चो मे स्वस्थ आदतो का निर्माण किया जाय और अन्य बच्चे उनके उदाहरण से शिक्षा लें।
(iv) स्वास्थ्य सम्बन्धी जो-जो जानकारियाँ बच्चो को दी जायें उनका सीधा सम्बन्ध बच्चो के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक विकास स्तर से हो।
(v) स्वास्थ्य शिक्षा मे कार्य द्वारा सीखने पर ही बल दिया जाय। अनुभव जन्य ज्ञान ही स्थाई होता है पुस्तकीय ज्ञान मे अस्थाईपन ही रहता है।
(vi) स्वास्थ्य विषय ऐसी समस्याएँ बालको के समक्ष प्रस्तुत की जायें जो उनके लिए सार्थक और प्रभावपूर्ण हो।
(vii) सीखने वालो को जो-जो सीखने के अनुभव दिए जायें उन अनुभवो से बालक स्वय सामान्यीकरण करे और सामान्य नियमो का प्रतिपादन करने मे समर्थ हो।
(viii) स्कूल मे स्वास्थ्य सम्बन्धी जो अनुभव दिये जाय उनका सम्बन्ध घर तथा समुदाय से भी हो।

Q. 2 Analyse the health needs and interests of school children How would you develop health instruction programme based on these needs and interests ?

बालकों की स्वास्थ्य रुचियाँ और आवश्यकताएँ—बालको की स्वास्थ्य रुचियों का अध्ययन करने के लिए जो प्रयास किये गये हैं उनके फलस्वरूप प्राइमरी स्कूलो के छात्रो की निम्नलिखित स्वास्थ्य विषयक आवश्यकताएँ ज्ञात हो सकी हैं—

(अ) आँख, कान, नाक और दाँतो की देखभाल
(ब) भोजन सम्बन्धी उपयुक्त आदतो का निर्माण और भोज्य पदार्थों का चुनाव
(स) दाँत तथा शारीरिक परीक्षण के प्रति उत्तम अभिवृत्ति
(द) खाँसी, जुकाम, त्वचा रोग आदि से बचाव

(i) अध्यापकों, प्रधानाध्यापकों का स्वास्थ्य शिक्षा के प्रति उदासीन दृष्टिकोण अब भी अध्यापक समझते हैं कि स्वास्थ्य शिक्षा में भोजन करने के पूर्व दाँतों की स्वच्छता भोजन जल और वायु की स्वच्छता के अतिरिक्त और है ही क्या।

(ii) स्वास्थ्य शिक्षा की पाठ्यवस्तु का प्रति संकुचित और बालकों की आवश्यकताओं के अनुकूल न होना। स्वास्थ्य शिक्षा में जो पाठ्यवस्तु रखी जाती है उसका सम्बन्ध प्रौढ़ों की स्वास्थ्य विषयक आवश्यकताओं से होता है।

(iii) स्वास्थ्य शिक्षकों की शुष्क पाठन विधियाँ प्रायः सभी स्वास्थ्य शिक्षक पुस्तक प्रणाली का ही समर्थन करते हैं। यदि स्वास्थ्य शिक्षा को रोचकता प्रदान करनी है तो उसमें मुख्य श्रव्य उपकरणों का प्रयोग करना होगा। स्वास्थ्य सम्बन्धी फिल्में और स्लाइड्स पाठन प्रणाली में रोचकता उत्पन्न कर सकते हैं।

(य) मौसम के उपयुक्त वस्त्रो का निर्माण
(र) सुरक्षा की आदतो का निर्माण

मिडिल स्कूल के छात्रो की स्वास्थ्य सम्बन्धी रुचियाँ और आवश्यकताएँ नि लिखित हैं :—

(i) सक्रामक रोगो की रोकथाम
(ii) पोषण और कुपोषण का उपचार
(iii) अग्नि से रक्षा
(iv) यातायात से सुरक्षा
(v) घर विद्यालय तथा क्रीडा क्षेत्र मे सुरक्षा
(vi) विश्राम
(vii) प्राथमिक चिकित्सा
(viii) पानी तथा दूध का शुद्धीकरण

माध्यमिक विद्यालयो की स्वास्थ्य सम्बन्धी आवश्यकताएँ और रुचियाँ निम्न लिखित हैं—

(i) तम्बाकू और मानवीय स्वास्थ्य पर उसका प्रभाव
(ii) दुर्घटनाएँ तथा प्राथमिक चिकित्सा
(iii) दाँतक्षय
(iv) आँखों की रक्षा
(v) मानसिक बीमारियाँ और उनकी चिकित्सा
(vi) विटामिन्स का ज्ञान
(vii) बीमारो की देखभाल

बालको की स्वास्थ्य सम्बन्धी इन रुचियो और आवश्यकताओ को दृष्टिगत रखकर ... विद्यालयो मे स्वास्थ्य ... रक्षा के नियमो का शिक्षण ... विद्यालयो मे स्वास्थ्य ... गृहविज्ञान के साथ-साथ स्वास्थ्य विज्ञान की शिक्षा की आयोजना की जाती है ।

प्राथमिक कक्षाओ मे बालको मे स्वस्थ आदतो के निर्माण पर बल दिया जाता है तो माध्यमिक कक्षाओ मे स्वास्थ्य विषयक नियमो के शिक्षण पर जोर दिया जाता है । लेकिन अनुभव यह कहता है कि जिन बालको को स्वास्थ्य विषयक नियमो की जानकारी अधिक होती है उनमे स्वस्थ जीवन की आदतो का भी निर्माण ठीक तरह से हो जाता है अतः बालको को स्वास्थ्य शिक्षा देने के उद्देश्य हैं—

(i) स्वास्थ्य के नियमो का ज्ञान ।
(ii) स्वास्थ्य सम्बन्धी अभिवृत्तियों का विकास ।
(iii) स्वस्थ आदतो का विकास ।

... व्यक्ति में ... भावनाओ और मनता का भी उदय होना चाहिए ।

स्वास्थ्य शिक्षा की पाठ्यवस्तु निरन्तर परिवर्तित होती रहती ... स्वास्थ्य सम्बन्धी आवश्यकताएँ और रुचियाँ समय के साथ बदलती ... शिक्षा का पाठ्यक्रम बालको के लिए सार्थक होता है तो उसमे इन ... का समावेश करते है ।

स्वास्थ्य शिक्षा की विषयवस्तु इतनी अधिक ... अध्ययन मे कोई रुचि नहीं लेते इसके निम्न कारण है

गया। केवल १२% का स्वास्थ्य जैसा का तैसा ही रहा और २८% का स्वास्थ्य ही सुधर पाया। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि शिक्षण कार्य स्वय ही ऐसा है जिससे व्यक्ति का स्वास्थ्य बिगडने का भय अधिक है सुधरने की आशा कम है।

अध्यापको का बहुत बडा वर्ग अपने आवास प्रबन्ध से सन्तुष्ट नही है; वह अपने छात्रो से नाराज रहता है, वह अध्यापिकी को रोचक नही समझता, प्रधानाध्यापक के निरीक्षण से घृणा करता है, साथी अध्यापको की आदतों से रुष्ट हो जाता है, जलवायु के अच्छे होने पर भी सोचता है कि उसका स्वास्थ्य बिगड रहा है, सदैव चिन्तित रहता है। सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि अध्यापन के कारण उसका व्यक्तित्व विघटन पर्याप्त मात्रा मे हो जाता है। उसका स्वास्थ्य बिगड जाता है और जीवन के प्रति दृष्टिकोण निराशाजनक बन जाता है।

इस नैराश्य का कारण क्या है ?—अध्यापक का जीवन इतना निराशाजनक क्यो है ? उसका पेशा ही ऐसा है जो निराशा पैदा करता है। कक्षा मे उसे बडी-बडी समस्याओ का सामना करना पडता है। समाज उस पर कई प्रकार के बोझ डालता रहता है। उसको सामान्य जीवन से अलग रखा जाता है।

कुछ अध्यापक तो इन समस्याओ के आने पर उनको उत्साहपूर्वक सामना करते हैं किन्तु अध्यापको का बहुत बडा वर्ग इन समस्याओ आगे आते ही हथियार डाल देता है। वह अपनी आवेगिक समस्याओ मे उलझ जाता है। दूसरो से जरा जरा सी बात पर लड बैठता

ciency) के तीन कारण तीव्रता के क्रम से निम्नलिखित पाये गये हैं—मानसिक स्थिरता का अभाव, सामाजिक समजन की अयोग्यता, शरीर के रोग और शारीरिक दोष।

Q. 3. How can a teacher maintain his physical and mental health ? What can school do to improve his health ?

अध्यापको की वर्तमान स्वास्थ्य सम्बन्धी क्रियाएँ—यदि अध्यापक इतना अधिक मानसिक तथा शारीरिक रोग से पीडित है तो वह इस रोग का क्या उपचार कर रहा है ? क्या वह अपने को मानसिक तथा शारीरिक रूप से स्वस्थ रखने का प्रयत्नशील है ? क्या उसकी कोई विशेष मनोरजन (hobbies) है ? क्या वह सामाजिक क्रियाओ मे भाग लेता रहता है ? क्या वह किसी धर्म विशेष को मानता है ? क्या वह पेशेवर सगठनो का सदस्य है ? क्या वह नियमित रूप से व्यायाम करता है ? एक अध्यापक मे यह देखा गया है कि २८% अध्यापको के पास मनोरजन का कोई भी साधन नही है, ३५% अ
अध्यापक कोई व्यायाम नही करते। यद
भाग लेने का समय कम होता जाता है
प्रभावपूर्ण अध्यापन कर सकेगा ?

अध्यापक के स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिये आवश्यक बातें

(१) अध्यापिकी क्षेत्र मे आने वाले सभी व्यक्तियां का मानसिक और शारीरिक रूप से स्वस्थ होना आवश्यक है। जो व्यक्ति पहले से ही कुसमायोजित, जीवन से निराश और दुखी हो उनको अध्यापिकी के क्षेत्र मे प्रवेश नहीं लेना चाहिए।

(२) अध्यापिकी की दशाओ मे सुधार होना चाहिए। यदि विद्यालय मे स्वास्थ्य सेवाओं का आयोजन है और अध्यापकों को उनसे लाभान्वित होने की सुविधा दी जाती है तो उनको अध्यापिकी मे आनन्द आ सकता है। जिस समय भी उनमे कोई शारीरिक अथवा मानसिक दोष दिखाई दे उस दोष का निवारण विद्यालय स्वय करे तो उनका स्वास्थ्य सुधर सकता है।

विद्यालय मे कार्य की सुविधाओ मे सुधार उतना ही आवश्यक है जितना कि सफल शिक्षण के लिए उत्तम भवन। यदि प्रधानाध्यापक की अभिवृत्ति ऐसे

अध्याय ४

अध्यापक के स्वास्थ्य की समस्या

(The Problem of Teacher's Health)

Q. 1 "Teacher's condition and personality unquestionably affects her pupils". Discuss

अध्यापक के स्वास्थ्य का महत्व – अध्यापक शिक्षा का प्रमुख माध्यम है। उसके स्वास्थ्य पर शिक्षा का अच्छा या बुरा होना निर्भर रहता है। वह अपनी कक्षा में ऐसा वातावरण उत्पन्न कर सकता है जिसमें रहकर बालक का विकास निर्दिष्ट दिशाओं में हो सके। लेकिन यदि वह शरीर से अस्वस्थ है, मानसिक दुर्बलता से पीड़ित है और नैराश्यपूर्ण जीवन बिता रहा है तो इसका दुष्प्रभाव उसके छात्रों के विकास पर अवश्य पड़ेगा। एक बीमार बना हुआ, निराशाग्रस्त अध्यापक अपने बच्चों को बीमार बना हुआ निराशाग्रस्त बना देता है। खेद का विषय तो यह है कि अध्यापकों में निराशाजनक स्थिति में रहने वाले व्यक्तियों की औसत संख्या सम्पूर्ण जनसंख्या में पाये जाने वाले दुःखी व्यक्तियों के प्रतिशत से अधिक है। लगभग १६% अध्यापक तो हमको ऐसे मिलेंगे जो पूर्ण निराशामय जीवन व्यतीत कर रहे हों।

अध्यापक की ऐसी स्थिति न केवल उसकी प्रसन्नता को ही दुष्प्रभावित करती है वरन् उसकी अध्यापिकी को निष्प्राण बना देती है। वह बात-बात पर झकझोरने का प्रदर्शन करता है बात बात पर उसमें असन्तोष दिखाई देता है। अध्यापन कार्य की कठोरता उसके न्यूरोसिस को और भी तीव्र कर देती है। फलस्वरूप न केवल वह अपना ही कल्याण कर पाता है वरन् अपने शिष्यों का भी कल्याण उसके वश की बात नहीं।

Q. 2. What do you think about the occupation hazards of teaching ! What are the causes of mal adjustment and frustration among teaching staff !

अध्यापकों में निराशा का उदय—एक अन्वेषण के आधार पर यह देखा गया है कि अध्यापकों के अत्यन्त गम्भीर चिन्ताओं का उदय हो जाता है; वे रात में इन चिन्ताओं के कारण सो नहीं पाते। उनको जरा-जरा सी बातों पर चिन्ता पैदा हो जाती है, सोते समय इतने अधिक विचार उठते रहते हैं कि उन्हें नींद नहीं आती, वह सदैव ऐसा महसूस करता है कि वह थका हुआ है; उसका दिमाग इतना व्यस्त रहता है कि उसे ज्ञात नहीं रहता कि वह क्या कर रहा है और क्या कह रहा है। अकारण वह सुख अथवा दुःख की भावनाओं का बोध करने लगता है। कभी-कभी वह आत्महत्या करने की भी सोचने लगता है। उसका शरीर अस्वस्थ, पाचन-शक्ति खराब और शक्तिहीन दिखाई देता है। उसके अस्वस्थ शरीर का दुष्प्रभाव कार्य के प्रति अभिवृत्ति पर पड़ता है। वह प्रत्येक बात से असन्तुष्ट रहता है अपने प्रधानाध्यापक में बात-बात पर दोष देखता है। दूसरे अध्यापक उसके बालक तथा स्कूल का वातावरण उसको काटने को दौड़ते हैं। यह शारीरिक अस्वस्थता उसकी मानसिक थकान, प्रधानाध्यापक के साथ संघर्ष, संवेगिक निराशा, पेशेवर असन्तुष्टि से भी पैदा हो जाती है।

जैसे-जैसे वह अध्यापिकी में समय बिताता जाता है वैसे-वैसे उसका शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य बिगड़ता जाता है। एक प्रयोगात्मक साक्ष्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जो अध्यापक शिक्षण के क्षेत्र में स्वस्थ शरीर लेकर आये थे उनकी हालत पाँच वर्ष बाद औसतन ३% की बहुत खराब, ८०% की समान और १७% की अच्छी हो गई और दूसरी ओर जो अध्यापक बहुत ही खराब स्वास्थ्य लेकर आए उनमें से ६०% का स्वास्थ्य और भी खराब हो

गया । केवल १२% का स्वास्थ्य जैसा का तैसा ही रहा और २८% का स्वास्थ्य ही सुधर पाया। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि शिक्षण कार्य स्वय ही ऐसा है जिसमे व्यक्ति का स्वास्थ्य बिगडने का भय अधिक है सुधरने की आशा कम है ।

अध्यापको का बहुत बडा वर्ग अपने आवास प्रबन्ध से सन्तुष्ट नही है, वह अपने छात्रो से नाराज रहता है , वह अध्यापिकी को रोचक नही समझता, प्रधानाध्यापक के निरीक्षण से घृणा करता है, साथी अध्यापको की आदतो से रुष्ट हो जाता है; जलवायु के अच्छे होने पर भी सोचता है कि उसका स्वास्थ्य बिगड रहा है, सदैव चिन्तित रहता है । सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि अध्यापन के कारण उसका व्यक्तित्व विघटन पर्याप्त मात्रा मे हो जाता है । उसका स्वास्थ्य बिगड जाता है और जीवन के प्रति दृष्टिकोण निराशाजनक बन जाता है ।

इस नैराश्य का कारण क्या है ?—अध्यापक का जीवन इतना निराशाजनक क्यो है ? उसका पेशा ही ऐसा है जो निराशा पैदा करता है । कक्षा मे उसे बडी-बडी समस्याओ का सामना करना पडता है । समाज उस पर कई प्रकार के बोझ डालता रहता है । उसको सामान्य जीवन से अलग रखा जाता है ।

कुछ अध्यापक तो इन समस्याओ के आने पर उनको उत्साहपूर्वक सामना करते हैं किन्तु अध्यापको का बहुत बडा वर्ग इन समस्याओ आगे आते ही हथियार डाल देता है । वह अपनी [illegible]

[illegible] सम्बन्धो मे कटुता होती है । ऐसा चिकित्सको का विचार है । जब उनसे स्वय पूछताछ की जाती है तो इस पूछताछ के फलस्वरूप भी यही पता चलता है कि उनका स्वास्थ्य बिगडने का एकमात्र [illegible] साथियो का अभाव । [illegible] अकुशलता (Ineffi-[illegible] -मानसिक स्थिरता का अभाव, सामाजिक समजन की अयोग्यता, शरीर के रोग और शारीरिक दोष ।

Q. 3. How can a teacher maintain his physical and mental health ? What can school do to improve his health ?

अध्यापकों की वर्तमान स्वास्थ्य सम्बन्धी क्रियाएँ—यदि अध्यापक इतना अधिक मानसिक तथा शारीरिक रोग से पीडित है तो वह इस रोग का क्या उपचार कर रहा है ? क्या वह अपने को मानसिक तथा शारीरिक रूप से स्वस्थ रखने का प्रयत्नशील है ? क्या उसकी कोई विशेष मनोरजन (hobbies) है ? क्या वह सामाजिक क्रियाओ मे भाग लेता रहता है ? क्या वह किसी धर्म विशेष को मानता है ? क्या वह पेशेवर सगठनो का सदस्य है ? क्या वह नियमित रूप से व्यायाम करता है ? एक अध्यापक मे यह देखा गया है कि २८% अध्यापको के पास मनोरजन का कोई भी साधन नहीं है, ३५% अध्यापक किसी भी सघ या सगठन के सदस्य नहीं हैं, ६२% अध्यापक कोई व्यायाम नही करते । यह भी देखा गया है कि आयु के साथ मनोरजन के कार्यों में भाग लेने का समय कम होता जाता है । यदि ऐसा है तो हम कैसे आशा कर सकते हैं कि अध्यापक प्रभावपूर्ण अध्यापन कर सकेगा ?

अध्यापक के स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिये आवश्यक बातें

(१) अध्यापिकी क्षेत्र मे आने वाले सभी व्यक्तियो का मानसिक और शारीरिक रूप से स्वस्थ होना आवश्यक है । जो व्यक्ति पहले से ही कुसमायोजित, जीवन से निराश और दुखी हो उनको अध्यापिकी के क्षेत्र मे प्रवेश नही लेना चाहिए ।

(२) अध्यापिकी की दशाओ मे सुधार होना चाहिए । यदि विद्यालय मे स्वास्थ्य सेवाओ का आयोजन है और अध्यापको को उनमे लाभान्वित होने की सुविधा दी जाती है तो उनको अध्यापिकी मे आनन्द आ सकता है । जिस समय भी उनमे कोई शारीरिक अथवा मानसिक दोष दिखाई दे उस दोष का निवारण विद्यालय स्वय करे तो उनका स्वास्थ्य सुधर सकता है ।

विद्यालय मे कार्य की सुविधाओ मे सुधार उतना ही आवश्यक है जितना कि सफल शिक्षण के लिए उत्तम भवन । यदि प्रधानाध्यापक की अभिवृत्ति ऐसं

ग्रध्यापकों के प्रति उदार है यदि वह उनके साथ हार्दिक सहानुभूति रखता है ग्रौर सदैव उनकी सहायता करने पर तत्पर रहता है तो उनका शारीरिक ग्रौर मानसिक स्वास्थ्य ठीक रह सकता है।

(३) ग्रध्यापकों को इस बात का प्रशिक्षण देना चाहिए कि वे ग्रध्यापिकी के भार को किस प्रकार ग्रानन्दपूर्वक वहन कर सकते हैं ग्रौर किस प्रकार ग्रपने को शरीर तथा मन से स्वस्थ रख सकते हैं।

(४) उसे ग्रपने शरीर के स्वास्थ्य की विशेष चिन्ता रखनी चाहिये ग्रतः वह व्यायाम ग्रौर मनोरंजन को किसी भी समय उपेक्षित न करे। ग्रपनी ग्रायु के ग्रनुकूल व्यायाम तथा भोजन की व्यवस्था करे।

(५) समाज के साथ सुखद सम्बन्ध स्थापित करने के लिए तथा समाज से पूर्ण ग्रादर भाव प्राप्त करने के उद्देश्य से उसे समाज की गतिविधियों में भाग लेना होगा। यदि किसी व्यक्ति को जिस समाज में वह रह रहा है उस समाज से सुरक्षा ग्रौर प्रेम मिल रहा है तो किसी प्रकार का मानसिक धक्का पीड़ा नहीं पहुँच सकता। समाज के साथ सम्बन्ध स्थापित करने के लिए ग्रध्यापक के पास कई ग्रवसर हैं, ऐसे सम्बन्ध वह ग्रध्यापक-ग्रभिभावक संघ में, धार्मिक संस्थाग्रों में तथा उस समुदाय में जिसमें वह रहता है स्थापित कर सकता है।

(६) ग्रध्यापक को वृद्धावस्था में सुरक्षित रखने के लिए उसकी नौकरी स्थायी होनी चाहिए। उसको ग्रवकाश ग्रहण करने के बाद पेंशन मिलनी चाहिए।

(७) कुसमायोजित ग्रध्यापकों की सबसे बड़ी विशेषता यह होती है कि वे किसी भी प्रकार की बात में रुचि नहीं लेते। इसलिए ग्रध्यापकों को शारीरिक तथा मानसिक रूप से स्वस्थ रखने के लिए उनकी रुचियों का दायरा बढ़ाना होगा। रुचियों का यह ढाँचा धर्म, रेडक्रौस, गायन, वादन, ड्रामा, कला ग्रादि से सम्बन्धित होना चाहिए। ऐसी रुचियों के होने पर उनकी ग्रात्म सम्मान की भावना पुष्ट होगी। यदि वे इन कार्यों में चमक जाते हैं तो शिक्षण कार्य में ग्रसफल होने पर भी उनका जीवन सुखमय हो सकता है।

(८) प्रत्येक शिक्षक को जब शिक्षक प्रशिक्षण पावे, तब निराशाजनक परिस्थितियों से लड़ने के योग्य बनाना चाहिए। वह कौनसी बातें हैं जिनके कारण कोई वैज्ञानिक निरन्तर ग्रसफलताग्रों के मिलने पर भी प्रसन्न चित्त रहता है? क्या वजह है कि कोई राजनीतिज्ञ किसी विषम परिस्थिति में पड़कर भी सफलता प्राप्त कर लेता है? ऐसे कारणों की जानकारी शिक्षक को देनी चाहिए ताकि निराशा-जनक परिस्थिति पैदा होने पर भी वह सुखी रह सके।

नैराश्यपूर्ण स्थिति में पड़कर ग्रध्यापक किस प्रकार मानसिक सन्तुलन प्राप्त करें?

मानसिक स्वास्थ्य मानसिक सन्तुलन पर निर्भर रहता है। यदि ग्रध्यापक किसी नैराश्य-पूर्ण परिस्थिति में पड़कर उस परिस्थिति का विश्लेषण करता है तो वह परिस्थिति उसके लिए नैराश्यपूर्ण नहीं रह जाती। उदाहरण के लिए एक ग्रध्यापक को पदोन्नति नहीं मिली। यदि वह कहता है कि पदोन्नतियाँ चापलूसी के कारण मिलती हैं तो वह प्रशासन को गाली दे रहा है। ऐसा करने से वह ग्रपनी निराशा को थोड़े समय के लिए कम ग्रवश्य कर लेता है लेकिन मानसिक स्वास्थ्य पर इस तरीके का कोई ग्रच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। प्रशासन कहता है कि पदोन्नति योग्यता पर दी जाती है इसको भी यदि ग्रध्यापक लीपा-पोती समझता है तो भी वह मानसिक सन्तुलन को सम्भाल नहीं सकता। ग्रतः ऐसी परिस्थिति में उसे समस्या का विश्लेषण करना होगा। उसे मानना होगा कि वह ग्रधिक पैसा चाहता है। उसको पदोन्नति की नीतियों ग्रौर ग्रपने प्रवरता (seniority) की ग्रोर भी ध्यान देना होगा। उसे ग्रपनी योग्यताग्रों का विश्लेषण करना होगा उसे मानना होगा कि वह ग्रधिक पैसा चाहता है। उसको पदोन्नति की नीतियों ग्रौर ग्रपने प्रवरता (Seniority) की ग्रोर भी ध्यान देना होगा। उसे ग्रब भी योग्यताग्रों का विश्लेषण करना होगा उसे देखना होगा कि क्या उसके साथी उसे नेता के रूप में स्वीकार कर सकते हैं? क्या उसके छात्र कार्य से सन्तुष्ट हैं? क्या उसने कोई मौलिक लेख लिखे हैं? यदि नहीं तो पदोन्नति चापलूसी से मिलती योग्यता से मिलती है। इस प्रकार का विश्लेषण उसके मानसिक सन्तुलन को बना है।

यदि अध्यापक समस्या का विश्लेषण करने मे अपने को असमर्थ पावे तो उसे तुरन्त ही 'भाप निकाल देनी चाहिए' तनाव को दूर करने के जो-जो उपाय उसे सूझते हो कर डालें । जैसे ही तनाव कम होगा व्यक्ति अधिक रचनात्मक कार्यों मे लग जायगा । इसलिए किसी समस्या का विश्लेषण करने से पूर्व उसको लिख डालना चाहिए। जितना ही अधिक उस पर चिन्तन किया जायगा निराशा उतनी ही अधिक बढेगी । उस समस्या को किसी न किसी से कह डालो, लिख डालो । यदि निराशामय परिस्थिति ने आपके आत्म सम्मान को धक्का पहुंचाया है तो कोई काम ऐसा कर डालो जिससे आत्म सम्मान की रक्षा हो। इस प्रकार निराशामय स्थिति से आप अपना बचाव कर सकोगे ।

यदि समस्या का समाधान किसी एक तरीके से होता न दिखाई दे तो दूसरे तरीको से भी मानसिक सन्तुलन स्थापित हो सकता है ये दूसरे तरीके आप अपने किसी अनुभवी साथी के साथ परामर्श द्वारा प्राप्त कर सकते है क्योकि वह तो आप जैसा व्यग्र न होगा और व्यग्रता के अभाव मे ऐसे उपायो का सुझाव दे सकेगा जो आपकी समस्या का हल ढूंढ सकेंगे ।

जाता है और कार्य करने में जी लगता है। साबुन जिसे स्नान करते समय प्रयोग में लाया जाय ऐसा हो जिससे चमड़ा खुरदरा और विकृत न हो जाय।

नाक की सफाई—नाक द्वारा जिस समय सांस ली जाती है उस वायु में उपस्थित धूल के कण नाक में स्थित बालों में चिपट जाते हैं। नाक के परत पर एक गाढ़ा द्रव भी निकलता रहता है जो धूल के कणों को फेफड़ों में जाने से रोकता है। इस प्रकार नाक में काफी गन्दगी इकट्ठी हो जाती है। नाक में गन्दगी भरी रहने पर बच्चे नाक से सांस लेने की अपेक्षा मुँह से सांस लेने लगते हैं। यह बात उनके स्वास्थ्य के लिये और भी हानिकारक होती है। अतः सुबह शाम नाक को खूब साफ करना चाहिये। हर बच्चे के कपड़ों में एक जेबी रूमाल अवश्य होने चाहिये जो रोजाना धुलवाये जा सकें। नाक छिनकने के बाद इन रूमालों की आवश्यकता पड़ती है।

गले की सफाई—गले में इकट्ठी हुई बलगम खांसी द्वारा निकलती है। कभी-कभी गले में खरास पड़ जाती है। जुकाम, खांसी, इन्फ्लूएआ आदि रोगों में गला बिगड़ जाता है। साधारणतः गले में भी उसी प्रकार गन्दगी इकट्ठी हो जाती है जिस प्रकार शरीर के अन्य भागों में। इसलिये प्रातःकाल उठते ही गले को नमक के गुनगुने पानी से कुल्ले (gargles) करने चाहिये। गले की दीवारों में एकत्र बलगम नमक और चाय के पानी से घुलकर बाहर निकल जाती है और गला साफ हो जाता है। दाँत साफ करने के बाद अँगुली से जीभ और गले दोनों को साफ कर लेना चाहिये।

अध्यापकों का कर्तव्य है कि जब विद्यार्थी विद्यालय आवें तब उनकी आँख, नाक, कान, नाखून, बाल, त्वचा आदि की सफाई पर उचित ध्यान दिया जाय। जो विद्यार्थी घर पर इन अंगों की सफाई करके न आ सकें उनके लिए स्कूल में सफाई करने का प्रबन्ध होना चाहिये। बार-बार कहने पर भी जो विद्यार्थी गन्दे रहते हों उनके अभिभावकों से पत्र व्यवहार द्वारा शरीर की स्वच्छता और स्वास्थ्य के महत्व को समझाया जाय। तभी इस दिशा में उन्नति सम्भव है।

***Q*. 2. What should the head of an institution do to form habits of healthy living in his school children?**

स्वस्थ जीवन के लिए अच्छी आदतों का निर्माण भोजन—अच्छी आदतों का स्वास्थ्य रक्षा से घनिष्ट सम्बन्ध है। जिस बालक में अच्छी आदतें पड़ चुकी हैं वह बालक बड़ा होकर सुखमय जीवन बिताता है अतः बाल्यकाल से ही बच्चों में अच्छी आदतें डालने का प्रयास करना चाहिए। इसका उत्तरदायित्व न केवल मातापिता पर ही है वरन् स्कूल के अध्यापकों पर भी है। मातापिता तथा शिक्षकों का कर्तव्य है कि वे बालकों में निम्नलिखित अच्छी आदतें डालने का प्रयत्न करें साथ ही बुरी आदतों को छुड़ाने में भी कोई कमी न छोड़ें। बुरी आदतें शारीरिक, मानसिक, सामाजिक और आध्यात्मिक उन्नति में बाधक होती हैं उदाहरण के लिये अस्वच्छ रहना, बीड़ी सिगरेट पीना, अनियमित जीवन व्यतीत करना आदि ऐसी बातें हैं जिनसे छुटकारा पाना कठिन हो जाता है।

अच्छी आदतों में उन आदतों को सम्मिलित किया जा सकता है जिनका सम्बन्ध भोजन, निद्रा, शौच, व्यायाम और शारीरिक स्वच्छता से होता है।

भोजन—भोजन सम्बन्धी अच्छी आदतें स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव डालती हैं। भोजन का बारबार करना, भोजन करने से पूर्व हाथ-पैर की सफाई की ओर ध्यान देना, भोज्यपदार्थ की सफाई और स्वच्छता की उपेक्षा करना स्वास्थ्य को बिगाड़ दिया करता है। भोजन सम्बन्धी कुछ अच्छी आदतें नीचे दी जाती हैं—

(i) कभी भी बिना भूख के भोजन नहीं करना चाहिए।
(ii) स्वच्छ स्थान पर बैठकर स्वच्छ हाथों से भोजन करना चाहिए।
(iii) भोजन के साथ अत्यधिक पानी का सेवन करना चाहिए।
(iv) भोजन के बाद मुख की सफाई कर लेनी चाहिए।
(v) भोजन प्रतिदिन नियमित समय पर ही करना चाहिए।

शौच—प्रत्येक बालक को प्रतिदिन नियमित समय पर शौच जाना चाहिये। सामान्यतः शौच की क्रिया सहज क्रिया है लेकिन फिर भी शौच जाने की आदत का इस क्रिया पर विशेष

प्रभाव पड़ता है। नियमित रूप से शौच न जाने पर कब्ज रहने लगता है। कब्ज रहने पर मल बड़ी आँत में सड़ने लगता है और इस कारण विषैले पदार्थों का जन्म होने लगता है। ये विषैले पदार्थ रक्त को दूषित कर देते है। कब्ज के फलस्वरूप बवासीर और मंदाग्नि के रोग हो

विषैले पदार्थ
न। शरीर को
पुनः स्वस्थ हो

निद्रावस्था मे ही पूर्ण विश्राम मिल

जाता है।

पूर्ण विश्राम के लिये हवादार कमरा, शान्त वातावरण, उपयुक्त, कोमल और हल्का बिस्तर और सोने का निश्चित समय जरूरी है।

सोने का समय मनुष्य की आवश्यकताओं पर निर्भर रहता है कोई कम समय मे ही अपनी नींद पूरी कर लेता है कोई सोने के लिए लम्बा समय लेता है। साधारणतः निद्रा की निम्नांकित मात्रा काफी मानी जाती है—

	१६—२२ घण्टे
शिशु—	१४
२—३ वर्ष के बच्चे	१२
४—८	११
८—१२	१०
१२—१४	९
१४—१६	८½
१७—२०	८
२०—४०	

सोते समय निम्नलिखित बातों की ओर ध्यान रखना चाहिए

(१) मुँह को ढँक कर न सोना।
(२) बिस्तर का स्वच्छ होना।
(३) सोने से पूर्व हाथ पैर ठण्डे पानी मे धो लेना।
(४) भोजन के २—३ घण्टे बाद सोना।
(५) सोते समय ढीले कपड़े पहिनना।
(६) सोने से पहले कठिन परिश्रम न करना।
(७) सीलन वाली भूमि पर न सोना।

व्यायाम—शरीर को स्वस्थ रखने के लिये नियमित रूप से व्यायाम करने से मांसपेशियाँ क्रियाशील रहती हैं।

मांसपेशियों के क्रियाशील होने से शारीरिक शक्ति की वृद्धि होती है। शरीर मे स्फूर्ति मानसिक विकास मे सहायक होती है। इस प्रकार व्यायाम से शरीर पर निम्नलिखित प्रभाव पड़ते हैं—पुष्टिकर, सुधारात्मक, और विकासात्मक।

नियमित व्यायाम करने से न केवल शरीर के अंग ही पुष्ट होते है शरीर में ऊष्मा उत्पन्न होती है और हृदय की गति तीव्र होने से वह पुष्ट हो जाता है। रक्त प्रवाह के तीव्र होने पर शरीर के अंगो मे अधिक मात्रा मे ऑक्सीजन और आवश्यक पहुँचता रहता है। व्यायाम करने से श्वास की गति तीव्र हो जाती है फलस्वरूप फेफड़े अधिक स्वस्थ हो जाते है। व्यायाम से पाचन शक्ति बढ़ जाती है और मल निष्कासन ठीक तरह से होता रहता है। उससे संस्थान शक्तिशाली हो जाता है।

व्यायाम से मानसिक तनाव कम हो जाती है और शारीरिक विकृतियाँ कम हो जाती है। झुके कन्धे, रीढ़ का झुकाव, चपटे पैर आदि विकार नियमित व्यायाम से दूर हो जाते है।

व्यायाम के नियम—

(i) व्यायाम शरीर के सभी अंगों को समान रूप से प्रभावित करे।
(ii) व्यायाम की मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाई जाय।
(iii) व्यायाम करने के घण्टे भर बाद स्नान अवश्य किया जाय।
(iv) शारीरिक व्यायाम स्वच्छ वस्त्र में किया जाय।
(v) मानसिक कार्य करने वालों को हल्के व्यायाम करने चाहिये।
(vi) प्रातःकाल व्यायाम करना तथा शाम के समय खेलकूद में भाग लेना चाहिए।
(vii) व्यायाम से पूर्व भोजन नहीं करना चाहिये।
(viii) व्यायाम के बाद आराम करना जरूरी है।

अध्याय ६

थकान

Q. 1 How is fatigue in school chidren caused ? What are its symptoms Describe the measure which you would adopt to prevent fatigue and to remove its harmful effects

(Agra B. T. 1955)

Ans

थकान का अनुभव है

थकान का अनुभव अ

थकान का कारण दोनों मानसिक

स्कूल मे जाने वाले बालकों मे थकान के निम्न कारण होते हैं—

जैसा ऊपर कहा गया है कि बालको मे दोनो मानसिक तथा शारीरिक थकान होती हैं क्योंकि उनको दोनो प्रकार के कार्य करने पडते हैं। मानसिक थकान मांस पेशियो वाली शारीरिक थकान से अधिक शीघ्रता मे होती हैं क्योंकि प्रत्येक शारीरिक कार्य करने मे मस्तिष्क स्वयं कार्य करता है। इस तरह से मस्तिष्क के कार्य करने के कारण मानसिक थकान पैदा हो जाती है मस्तिष्क पर प्रभाव शरीर की अपेक्षा अधिक शीघ्र तथा अधिक होता है जिससे वह अपनी नियन्त्रित शक्ति खो बैठता है। इसके खोने से व्यक्ति थकान का अनुभव करने लगता है। इस तरह थकान के निम्न कारण होते हैं—

(१) शरीर में उपस्थित ग्लाइकोजन का अभाव—जब शरीर का सभी ग्लाइकोजन जिससे शक्ति पैदा होती है समाप्त हो जाता है तो थकान पैदा हो जाती है। जितना ग्लाइकोजन शरीर को चाहिए उतनी मात्रा मे उसकी उत्पत्ति नही हो पाती है। इस तरह से शरीर मे उपस्थित ग्लाइकोजन की कमी होने पर शरीर को थकान अनुभव होती है।

(२) शरीर मे रासायनिक परिवर्तन होने के कारण—शरीर के विभिन्न अवयवो के सक्रिय होने पर उसमे एक रासायनिक परिवर्तन होता है। जिस परिवर्तन के कारण एक प्रकार का अम्ल जिसको लेकटिक अम्ल कहते हैं, पैदा होता है। इसके साथ ही साथ कार्बन-डाइ ग्राक्साइड आदि विषैले पदार्थों की उत्पत्ति होती है। इन सभी विषैले पदार्थों के पैदा होने से शरीर मे थकान उत्पन्न हो जाती है।

इस क्रिया मे शरीर की शक्ति पर प्रभाव पडता है जो कि धीरे-धीरे कम होने लगती है। इस शक्ति के कम होने के निम्न कारण होते हैं—

मस्तिष्क तथा सुषुम्ना नाडी की प्रेरणा उत्पन्न करने की शक्ति कम हो जाती है। इसके अतिरिक्त नाडियाँ माँस-पेशियों में सूचना भेजने में असमर्थ हो जाती हैं। इसके अलावा माँस-पेशियो में स्वयं दूषित पदार्थ के कारण कार्य करने की क्षमता कम हो जाती है।

कभी-कभी बालक साधारण रूप से अधिक थकान का अनुभव करने लगते हैं। इस प्रकार की अवस्था शारीरिक तथा मानसिक व्यवस्था के कारण उत्पन्न हो जाती है। इसके कारण बहुत से हैं जो कि निम्न रूप मे प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

शारीरिक थकान के कारण :

(अ) **पौष्टिक भोजन की कमी मासपेशियो की निर्बलता तथा उनका अनुचित उपयोग**—जब बालको को सामान्य रूप से पौष्टिक भोजन प्राप्त नही हो पाता है तो शरीर के कार्य के लिये जितनी खुराक की आवश्यकता पडती है वह खुराक उस भोजन से प्राप्त नही हो पाती है। इस कमी के कारण शरीर की मास-पेशियाँ सुचारु रूप से कार्य करने मे समर्थ नही हो पाती हैं।

(ब) **गठिया तथा गले सम्बन्धी रोग**—कभी कभी गठिया तथा गले सम्बन्धी रोग हो जाने के कारण भी थकान लग जाती है। इन रोगो के कारण कुछ जहरीले पदार्थ पैदा हो जाते हैं जो कि रक्त मे पहुँच कर शरीर के प्रत्येक भाग मे जाकर थकान पैदा कर देते हैं।

(स) **रक्त मे आक्सीजन की कमी का होना**—इसके कारण शरीर के भागो मे पर्याप्त आक्सीजन न पहुँचने के कारण स्नायुओ मे अस्वस्थता का अनुभव होने लगता है। इससे वे कमजोर तथा शिथिल पड जाते है और शरीर मे थकान का अनुभव होने लगता है।

(द) **शारीरिक कार्य के बाद उसी समय मानसिक कार्य करना**—कभी कभी शारीरिक कार्य के पश्चात् समय न देकर मानसिक कार्य प्रारम्भ किया जाता है। इसके कारण मानसिक कार्य करने मे कठिनाई प्रतीत होती है। सदैव शारीरिक तथा मानसिक कार्यों के पश्चात् कुछ समय के लिये आराम मिलना अति आवश्यक है क्योंकि इन कार्यों से उत्पन्न जो विषैले पदार्थ *जमा हो जाते हैं उनके निवारण हेतु आक्सीजन की आवश्यकता पडती है। यह आक्सीजन समय* मिलने पर उत्पन्न पदार्थ का नाश करती है।

(य) **असफलता के कारण मानसिक व्यग्रता**—कभी-कभी बालक परीक्षा सम्बन्धी कार्य मे असफल रहते हैं। इसके कारण मस्तिष्क मे एक प्रकार का विकार पैदा हो जाता है जिसके कारण मानसिक थकान पैदा हो जाने की सम्भावना होती है।

(र) **अत्यधिक जागरण, मनोरंजन तथा कोलाहल**—कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि बालको मे अत्यधिक जागरण, मनोरजन तथा कोलाहल के कारण भी थकान पैदा हो जाती है। इन कार्यों मे शरीर की सामान्य शक्ति से अधिक कार्य करना पडता है जिसके कारण भी स्नायु कार्य करने मे शिथिल हो जाते हैं, इस शिथिलता के कारण थकान का अनुभव होता है।

(ल) **स्वच्छ वायु एवं प्रकाश का अभाव**—इन दोनो वस्तुओ के अभाव के कारण शरीर अस्वस्थ हो जाता है, स्वच्छ वायु मे आक्सीजन की मात्रा अधिक होती है। इस आक्सीजन के कारण विषैले पदार्थों का नाश होता है। इसलिये यदि इसकी कमी हो तो उस अवस्था मे थकान शीघ्रता से हो जाती है।

(व) **अनुचित आसन**—कक्षा में ठीक से न बैठने, चलने, खड़े होने तथा लिखने के कारण शरीर के किसी विशेष भाग पर आवश्यकता से अधिक जोर पड़ता है। इस विशेष स्थान पर जोर पड़ने से शीघ्र ही विषैले पदार्थ जमा हो जाते हैं जिनके कारण थकान का अनुभव होता है।

मानसिक थकान के कारण—जिन कारणों का उल्लेख ऊपर किया गया है उनमे से किसी एक घटक के होने पर बालकों मे शारीरिक थकान उत्पन्न होती है। उसका प्रभाव उनकी मानसिक क्रियाओं पर भी पड़ता है। कुछ और भी ऐसे कारण हैं जिनसे स्वतन्त्र रूप मे मानसिक थकान पैदा हो जाया करती है। ये कारण निम्नलिखित हैं—

(१) अपनी इच्छाओं की पूर्ति करने का प्रयत्न करने वाले बालक को बीच मे ही टाल देने पर मानसिक थकान उत्पन्न हो जाती है।

(२) यदि कोई बालक किसी कार्य को करता है किन्तु साथ प्रयत्न करने पर भी उसमें उसको सफलता नही दिखाई देती तब वह मानसिक थकान का अनुभव करता है।

ते ही न हो किन्तु
रुचि के प्रभाव में कार्य का परिवर्तन अवश्य ही विश्राम का ... सकता है पूर्ण पुनर्लाभ तो विश्राम ... सकता अतः विद्यालय में अन्तर के बीच विश्राम देने के लिए कम से कम ५,
की व्यवस्था करने से
ही में सोने की व्यवस्था ...
पहर कुछ देर विश्राम करके पुनः कार्य आरम्भ करें तो परिणाम लाभप्रद होता है।

थकान के लक्षण—असाधारण थकान के कारण बालक अस्वस्थ, बेचैन, सुस्त, श्वास ठीक न लेना, चर्म रोग, सर पर पीड़ा होना आदि साधारण रोग पैदा हो जाते हैं। परन्तु अध्यापक निम्न लक्षणों से यह जान सकता है कि बालकों में थकान पैदा हो गई है—

(१) थकान में साधारणतया कार्य करने की इच्छा नहीं होती है। यदि बालक कार्य करने में टालमटोल कर रहा हो तो समझ लेना चाहिए कि इसका एक कारण थकान भी हो सकता है।

(२) थका हुआ बालक अपने कूल्हे लटकाए हुए रहता है। बालक के अनुचित आसन भी थकान का एक कारण हो सकता है।

(३) थके बालक के हाथ शिथिलता से लटके हुए, कन्धे झुके हुए पिंडलियाँ झुकी होंगी और पैर भीतर की ओर फिरे होंगे।

(४) आँखों से सुस्ती और निर्जीविता टपकेगी तथा चेहरा प्रायः पीला होगा और मुद्रा शून्य होगी।

(५) बालक माथे पर हाथ रखेगा, जम्हाई लेगा तथा उसे झपकी आवेगी।

(६) बालक में एकाग्रता की कमी तथा कार्य में गलती होगी।

(७) थकान अधिक होने पर बालक रात्रि को ठीक से न सो सकेगा।

थकान को दूर करने के नियम -

(१) थकान दूर करने हेतु प्रत्येक कार्य के बाद आराम की आवश्यकता पड़ती है चाहे वह कार्य मानसिक हो या शारीरिक। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि प्रत्येक कार्य में शरीर की शक्ति लगती है। इसके कारण शक्ति में कमी आ जाती है या शरीर में विषैले पदार्थ पैदा हो जाते हैं। इन पदार्थों के निवारण हेतु कुछ अवकाश की जरूरत होती है इसी अवकाश के समय को हम आराम कह सकते हैं। इस समय में शुद्ध हवा उस भाग में पहुँच कर विषैले पदार्थ का नाश कर ... है। इस आराम ... जाय। चाहे कार्य ... बड़ा ही आवश्यक
का
आरामदायक ...
होता है।

(२) कक्षा में बड़े पाठ न पढ़ा कर छोटे और विभिन्न प्रकार के पाठों का परिणाम भी उत्तम होता है। इसलिये पाठ आध घण्टे से अधिक का न होना चाहिए। इस प्रकार घण्टे की अवधि भिन्न-भिन्न स्तरों पर भिन्न-भिन्न होनी चाहिये। इसके लिये प्रत्येक बालक की आयु को ध्यान में रखना चाहिए। कभी-कभी माँ-बाप या अध्यापक बालक को पढ़ाते समय इस बात को ध्यान में नहीं रखते हैं कि उनका बालक पाठ में रुचि ले रहा है या नहीं। पाठ के अन्त में परिणाम सोचने के प्रतिकूल होता है। इसलिये यह बात ध्यान में रखने की है कि बालक अधिक समय तक एक वस्तु में अपना ध्यान नहीं रख सकता है।

(४) कक्षा में बालकों के बैठने का प्रबन्ध अच्छा होना चाहिए तथा कमरे में स्वच्छ वायु के आने तथा दूषित वायु के निकलने का प्रबन्ध भी हो। यदि कक्षा में बालकों के बैठने का प्रबन्ध अच्छा न हो तो उनके आसन अनुचित हो जावेंगे, और एक बार अनुचित आसन पड़ जाने

से बालकों को बार-बार अधिक थकान का अनुभव होगा। अनुचित आसन का थकान से गहरा सम्बन्ध होता है। इसके कमरे में बैठने का प्रबन्ध उचित होना चाहिये। बैठने के उचित प्रबन्ध होने के साथ ही साथ हवा के आने की व्यवस्था भी उचित होनी चाहिए जिससे कि शुद्ध वायु जिसमें आक्सीजन की मात्रा अधिक हो उसका बालकों को मिलना आवश्यक होता है। इसके साथ ही शरीर से निकली हुई दूषित वायु के निकलने के लिए कमरों में रोशनदान होने चाहिए। दूषित वायु गरम और हल्की होती है जिसके कारण वह ऊपर के स्थान से बाहर निकल जाती है।

(५) स्कूल की स्थिति ऐसे स्थान पर हो जिससे किसी प्रकार का कोलाहल न हो। कोलाहल से भी बालकों की कार्य क्षमता पर प्रभाव पड़ता है और उनको थकान का अनुभव होता है।

(६) अध्यापक को प्रत्येक स्कूल में पढ़ने वाले बालक को ध्यान से देखना चाहिए जिससे बालक के कक्षा में ध्यान न देने के कारण का पता लग जाय। हो सकता है कि बालक को किसी विशेष कारण से कक्षा के कार्य में अरुचि हो। इसका एक कारण थकान भी हो सकता है।

(७) माता-पिता तथा संरक्षक को अपने बच्चे से अनावश्यक अधिक कार्य न कराना चाहिए। बच्चों को प्रत्येक कार्य के पश्चात् पूर्ण विश्राम या आराम देते रहना चाहिए। मानसिक थकान निवारण हेतु नींद आवश्यक होती है।

(८) थकान दूर करने के लिये कार्य के पश्चात् स्वच्छ जल से स्नान कराना अति आवश्यक है।

इस तरह दोनों मानसिक तथा शारीरिक थकान दूर करने लिये उपरोक्त बातों को अवश्य ध्यान में रखा जाय। इन बातों को ध्यान में रख कर थकान को काफी मात्रा में कम किया जा सकता है।

अध्याय ७

कुपोषण
(Malnutrition)

Q. 1 Malnutrition among children is one of the basic causes of their backwardness in the class How would you locate such cases and what remedial measures would you take?

(Agra, B. T. 1962, 1956, 1957)

Or

What evil effects of unbalanced diet are usually noticeable in children? How can they be eliminated?

(B. T. 1953)

Or

What is malnutrition? In what ways would you help the students to over come it?

Ans. आवश्यकता से कम भोजन मिलना या भोजन का सन्तुलित न होना बालकों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालता है। उनके शरीर की वृद्धि रुक जाती है। शारीरिक अंगों में परिवर्तन या विकास सामान्य गति से न होने के कारण मानसिक विकास भी अन्य बालकों की अपेक्षा कम रफ्तार से होता है। फलस्वरूप बालक कक्षा कार्य में पिछड़ जाया करता है। बालकों का कक्षा में पिछड़ापन विद्यालय के लिए चेतावनी है इस बात की कि उसकी व्यवस्था में कहीं दोष है। यह कमी है उसके बालकों के पोषण की।

पोषण की कमी या उसका विकार युक्त होना कुपोषण (malnutrition) कहलाता है। कुपोषण या दोषपूर्ण पोषण का कारण आवश्यकता से कम भोजन ही नहीं है। उसके अन्य कारण भी हो सकते हैं। बालक को अच्छा पर्याप्त मात्रा में मिलने पर भी उसकी परिस्थिति में ऐसी कोई वस्तु के होने से कुपोषण की समस्या उत्पन्न हो सकती है जिनके कारण पथ्य की पौष्टिकता में बाधा उपस्थित हो जाय। यह परिस्थितियाँ सन्तोषजनक है तो उसके पथ्य में ही कुछ दोष हो सकता है। इस प्रकार कुपोषण के सामान्य कारण निम्नांकित माने जा सकते है —

(१) अस्वास्थ्यकर वातावरण—बालक का पोषण ताजी वायु की न्यूनता, सूर्य के कारण अपर्याप्त प्रकाश, व्यायाम के अभाव के कारण दोषपूर्ण हो सकता है। अस्वास्थ्य कर अत्यधिक भीड़ और असन्तोषजनक वायुप्रवाह वाले विद्यालय के भवन पोषण में बाधक हो सकते हैं।

(२) अत्यधिक कार्य करने की दशा में भी पोषण में दोष आ जाता है। ८ या ९ बजे भोजन करके ५ या ६ मील की दूरी पर स्थित विद्यालय पहुँचने से भी पोषण में दोष आ सकते हैं। जो भोजन एक दिन के औसत कार्य के लिये पर्याप्त होता है वही पोषण उस औसत से अधिक कार्य करने की दशा में अपर्याप्त हो जाता है।

(३) सोने के कुप्रबन्ध, सोते समय खुली हवा की कमी, सोने के कमरे में अधिक भीड़ या घर के कार्य की अधिकता के कारण भी कुपोषण की समस्या उत्पन्न हो जाती है।

(४) बीमारियों के कारण शरीर में अशक्तता आ जाती है। फलतः उत्तम पथ्य को भी शरीर अपने उपयोग में नहीं ला सकता। दोषपूर्ण दाँत, बढ़े एडिनायड्स, गलसुए और क्षय रोग कुपोषण के कारण बन जाते हैं।

(५) घर पर या विद्यालय में बालक की भोजन व्यवस्था की ग्रोर उचित ध्यान न देने पर पोषण में दोष ग्रा जाता है।

(६) कुपोषण का एक प्रमुख कारण ग्रच्छे भोजन का ग्रभाव है, निर्धनता या ग्रज्ञानता वश बालकों के माता-पिता उनके भोजन में ऐसे तत्वों की कमी कर देते हैं जो शारीरिक वृद्धि ग्रौर विकास के लिए ग्रावश्यक होते हैं। विटेमिन या प्रोटीन की कमी होने पर शरीर में शक्तिहीनता के लक्षण दिखाई पड़ने लगते हैं जिसका कारण ग्रपौष्टिक भोजन या ग्रसन्तुलित भोजन में ढूंढा जा सकता है।

(७) भोजन सम्बन्धी ग्रावश्यकतायें ग्रायु ग्रौर व्यवसाय के ग्रनुसार भिन्न भिन्न होती हैं। यदि व्यक्ति को ग्रपनी ग्रायु के ग्रनुसार भोजन नहीं मिलता तब पोषण दोषपूर्ण हो जाया करता है।

(८) कुछ भोज्य पदार्थ ग्रपचनीय होते हैं। यदि भोजन में ऐसे पदार्थों की बहुलता हुई तो भी पोषण दोषयुक्त हो जायगा।

(९) यदि सन्तुलित पथ्य भी समय कुसमय पर पर किया जाता है कभी शीघ्रता से कभी बहुत देर पीछे तो ग्रन्नमार्ग को विश्राम ग्रौर कार्य की समुचित ग्रादत न होने के कारण ग्रपच, कोष्ठबद्धता ग्रौर ग्रातिसार ग्रादि रोग पैदा हो जाते हैं।

कुपोषण के लक्षण

ग्रविकसित ग्रौर ढीली-ढाली, बैठना दोषपूर्ण, कन्धे गोल, दाँतों का देर से निकलना, दाँतों का जल्दी दोषयुक्त हो जाना, सूखा रोग, शीघ्र ही काम करने से थकावट, नींद का बीच-बीच में टूट जाना, सोते समय बालक को भयभीत हो जाना ग्रौर फिर उसे सभालने में कठिनाई, कक्षा में चिन्ता, चित्त का पढ़ने के कार्य से ग्रलगाव, ग्रादि कुपोषण के लक्षण हैं।

उपचार

यदि ऐसे लक्षण बालकों में दिखाई दें तो उनके स्वास्थ्य को सुधारने के लिये विद्यालय क्या करे ? इस विषय में कोई निश्चित नियमावली तो पेश नहीं की जा सकती किन्तु ग्रध्यापक को बहुमुखी प्रयत्न करना होगा।

दोषपूर्ण पोषण वाले बालकों को महीने में दो बार ग्रवश्य तोलना होगा। यदि उसके भार या नाप में वृद्धि होती न दिखाई दे तो उसकी चिकित्सीय परीक्षा करवाई जाय ग्रौर बालक के माता-पिता या ग्रन्य सम्बन्धी जनों से बालक के विषय में जानकारी प्राप्त की जाय। यदि डाक्टरी परीक्षण से बालक में कोई शारीरिक दोष या रोग के लक्षण मिलें जो उसके पोषण को दोषयुक्त बना रहे हैं तो पहले उनका उपचार किया जाय।

विद्यालय के ग्रध्यापक या परिचारिकायें (यदि विद्यालय में इनका प्रबन्ध हो तो) बालकों के घर जाकर उसके दिये जाने वाले भोजन का परीक्षण करें ग्रौर देखें कि भोजन कहाँ तक पर्याप्त है ? कहाँ तक वह उनकी ग्रायु ग्रौर ग्रवस्था ग्रौर काम के ग्रनुकूल है ? क्या उसमें सन्तुलित भोजन के सभी गुण ग्रौर तत्व मौजूद हैं ? उसको पकाया किस प्रकार जाता है, चौके की सफाई कैसी रखी जाती है ? इन बातों को देखने के बाद ग्रभिभावकों को उचित सुझाव दिए जा सकते हैं। ग्रध्यापकों को बालकों की सोने की व्यवस्था का भी ग्रध्ययन करना चाहिये। ग्रभिभावकों को यदि यह बता दिया जाय कि चिकित्सीय ग्रादेशों को जो बालकों के भोजन, निद्रा ग्रादि के विषय में दिए जाते हैं किस प्रकार पालन किया जा सकता है।

विद्यालय के प्रारम्भ में ही लड़कों ग्रौर लड़कियों के भोजन सम्बन्धी खाना पकाने बातें व्यवहार रूप में समझाई जा सकती हैं।

यदि कुछ बालकों को दोषपूर्ण पोषण की शिकायत है तो विद्यालय को तुरन्त ही उन

बालकों के लिए विश्राम, भोजन, आदि सभी बातों का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लेना चाहिए। माता-पिता के ऊपर इन बातों को छोड़ देने पर आशानुकूल फल नहीं मिल सकता।

नीचे भोजन की अपर्याप्त और उससे होने वाले दोषों के लक्षण तथा उन दोषों के रोकथाम की व्यवस्था संक्षेप में प्रस्तुत की जाती है।

(१) यदि समय-समय पर भार लेने पर भार में वृद्धि होती न दिखाई दे तो इसका सम्भावित कारण प्रोटीन और कैलोरी की पूरी तरह कमी तथा भोजन में असन्तुलन हो सकता है। ऐसी दशा में आहार का गुण और मात्रा बढ़ाना चाहिए। भोजन, में दाल, चीनी, सूखे मेवे, तेल, घी, मक्खन, दूध, अण्डा, हरी पत्तीदार तरकारियाँ, और फल मिलाने चाहिये।

(२) यदि बालक थका हुआ, निकला पेट वाला, पेशियाँ ढीली-ढाली, बेडौल, चिन्तित, निर्जीव और आलस्य पूर्ण तुनुक स्वभाव और चिड़चिड़ा दिखाई दे तो उसका भोजन अपर्याप्त भी हो सकती है। साथ ही वह किसी रोग में पीड़ित होगा, जैसे तीव्र जीर्ण रोग या दीर्घकालीन चिन्ता, भाव उद्वेक से। ऐसी दशा में उसके रोग का उपचार करना चाहिये और यथासम्भव उसकी चिन्ताओं का अन्त करना होगा।

(३) यदि बालक के बाल सूखे, मोटे और गिरने वाले और खाल पर छोटे-छोटे दाने या परत उखड़ती हुई दिखाई दे तो उसके भोजन में विटामिन 'ए' की कमी मानी जाय। इस दशा में उसे हरी पीली सब्जी, बन्दगोभी, धनिया, साग, गाजर, पपीता, और आम, अण्डा और कलेजी दी जा सकती है।

(४) यदि ...

पटन या दाग दिखा ...

के स्वच्छ मण्डल के ... इस विद्यार्थी को चने मटर चोकर सहित अन्न गरी और काजू, धनिया, सोया की कमी मानी जाए। इस विद्यार्थी को चने मटर चोकर सहित अन्न गरा और काजू, धनिया, बथुआ, गाजर की पत्तियाँ हरी मिर्च, केला पीता अनार और कलेजी दी जा सकती है।

(५) यदि बालक की पलकें लाल और सूजी हुई दिखाई दे तो समझना चाहिये कि उसके भोजन में A विटामिन की कमी है।

(६) यदि उसके मसूड़े सूजे हुए छूने से रक्त निकलने वाले स्पञ्ज से पिलपिले, असामान्य रंग के नीले पीले दिखाई दे तो भोजन में विटामिन 'सी' की कमी माननी चाहिए। इस दशा में आँवला, अमरूद, नीबू, शलजम धनियाँ अंकुरित चने, टमाटर, मटर, मनरा, पपीता और अनानास दिया जा सकता है।

(७) यदि जिह्वा लाल दानों से भरी हो तो विटामिन 'बी' की कमी होनी चाहिए। इस बालक को चोकर युक्त अनाज चने और मटर मूँगफली, काजू, राई, चौलाई, बन्द गोभी, चुकन्दर, प्याज, आलू, ककड़ी, टमाटर, केला, मेव, खजूर और खमीर दिया जा सकता है।

इस प्रकार कुपोषण की समस्या घर और स्कूल के वातावरण को सुधारने, उसके पथ्य को सन्तुलित करने पर हल की जा सकती है। इसके अतिरिक्त बालकों में शौच, जाने की आदत में सुधार, दाँतों की सफाई और रक्षा के विषय में ध्यान देने से उनका पोषण ठीक हो सकता है।

मध्य कालीन भोजन व्यवस्था

Q. 2. Discuss the importance of mid-day meals in school. How would you provide a balanced diet without heavy cost?

(B. T. 1954, 1957)

Ans. एक स्वस्थ शरीर के निर्माण के लिये अच्छे तथा पौष्टिक भोजन का होना अति आवश्यक होता है। दिन के भोजन की व्यवस्था भिन्न-भिन्न विद्यालयों में भिन्न भिन्न प्रकार की होती है। कुछ विद्यालय तो ऐसे होते हैं जहाँ कि पूर्ण रूप से सुबह का भोजन स्कूल में ही मिलता है। परन्तु हमारे देश में इस प्रकार के स्कूलों की व्यवस्था बहुत कम है। हमारे देश में सुबह और शाम का भोजन बालक घर पर ही करते हैं परन्तु दोपहर के समय स्कूल का में स्कूल में भोजन करते हैं।

भोजन की आवश्यकता तभी पड़ती है जब शरीर कार्य करने में समर्थ नहीं रहता है। यदि भोजन समय पर नहीं मिलता है तो शरीर की वृद्धि कम हो जाती है। इसलिये सुबह

रूप से शरीर की वृद्धि के लिये दिन के समय बालको को कुछ न कुछ भोजन अवश्य मिलना चाहिए।

बालक सुबह घर से खाना खा कर विद्यालय मे ग्राते हैं। भोजन कुछ घण्टो के पश्चात् पच जाता है। विद्यालय मे पढने का समय इतना अधिक होता है कि सुबह का खाया हुग्रा भोजन इतने अधिक समय के लिये पर्याप्त नही होता है। इसलिए स्कूल के बीच के अवकाश मे बालको को कुछ न कुछ खाने को अवश्य मिलना चाहिए।

दिन मे अवकाश के समय बालको को भिन्न-भिन्न प्रकार की चीजें खाने को दी जानी चाहिये। बालको को जब भूख लगती है तो उनकी इच्छा मानसिक कार्य करने की नही होती है। इसलिये मानसिक कार्य को चलाने के लिये बालको को दिन मे भोजन अवश्य कराना चाहिए।

स्कूल के बालको के भोजन मे प्रोटीन की मात्रा अधिक होनी चाहिये। प्रोटीन के लिये दूध, फल, चना मटर ग्रादि वस्तुग्रो को बालको को देना चाहिये। प्रोटीन के अतिरिक्त उनके भोजन मे कैल्शियम तत्व की मात्रा अधिक होनी चाहिये क्योकि कैल्शियम तत्व के द्वारा बालको की हड्डियो का विकास सही ढग से हो सकता है। प्रोटीन के अतिरिक्त बालको को वे वस्तुएँ भी खाने को दी जानी चाहिये जो कि शारीरिक कार्य करने मे जो थकान पैदा हो जाती है उसकी पूर्ति हो सके। इस तरह के पदार्थ कार्बोहाइड्रेट कहलाते हैं। इसके साथ ही साथ उनके भोजन मे विटामिन की मात्रा भी पर्याप्त रूप मे होनी चाहिए विटामिन मुख्य रूप से फलो तथा तरकारियो मे विशेष रूप से पाया जाता है। भिन्न-भिन्न प्रकार के विटामिन अलग-अलग खाद्य पदार्थो मे पाया जाता है, ये विटामिन शरीर की वृद्धि मे विशेष रूप से भाग लेते हैं। किसी विटेमिन मे रक्त बनता है तथा किसी से उसकी सफाई होती है। इसलिये दोपहर के खाने का प्रबन्ध करने से पहले इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि बालको के भोजन मे प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट तथा विटामिन का विशेष स्थान होना चाहिए।

इस प्रकार के भोजन के प्रबन्ध करने से बालको मे शक्ति बनती रहती है जिसका उपयोग विशेष ग्रावश्यकता मे किया जा सकता है। जैसे ही बालक को भोजन मिलता है उसके द्वारा जो शक्ति पैदा होती है उसके बालक अपने स्कूल के ग्राखिरी घण्टो मे सही रूप से कार्य कर सकते हैं। इस तरह चाहे बालक शारीरिक कार्य करें तथा मानसिक कार्य करें दोनो के लिये शक्ति की ग्रावश्यकता पडती है। इस शक्ति को बनाने वाली वस्तु दोपहर का भोजन होता है। इस प्रकार बालको को अपना कार्य सही ढग से करने के लिए तथा शक्ति बने रहने के लिए दिन के समय भोजन की कुछ व्यवस्था अवश्य होनी चाहिये।

दूसरी बात एक सन्तुलित भोजन की है। वैसे कम खर्च मे एक सन्तुलित भोजन का प्रबन्ध किया जा सकता है। इस भाग का उत्तर लिखने से पहले एक सन्तुलित भोजन किसे कहते हैं उसको जानना ग्रावश्यक होता है।

भोजन उसी समय करना चाहिए जब कि हमको भूख का अनुभव हो। प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन तीन या चार बार खाना अवश्य खाना चाहिए। प्रत्येक बार भोजन करने के बीच मे चार या पाँच घण्टे का समय देना ग्रावश्यक होता है जिससे खाना ग्रासानी से हजम हो जाय। प्रत्येक व्यक्ति को अपने कार्य की प्रकृति के अनुसार भोजन करना चाहिए। इसी से उसको लाभ हो सकता है। भोजन करने के बारे मे यह मालूम होना चाहिए कि हमको भोजन कब करना चाहिए, क्या भोजन करना चाहिए, भोजन कैसे करना चाहिए तथा भोजन कितनी मात्रा मे करना चाहिए, यदि हमको ये सभी बातें भली प्रकार ज्ञात हों तो हम एक स्वस्थ जीवन निर्वाह कर सकते है।

भिन्न-भिन्न परिस्थितियो मे भोजन मे भिन्नता ग्रावश्यक होती है। यदि व्यवसाय को सम्मुख रखा जाय तो यह कहा जा सकता है कि एक शारीरिक परिश्रम अधिक करने वाले व्यक्ति को हल्के कार्य करने वाले की अपेक्षा अधिक भोजन की ग्रावश्यकता पडती है। इस तरह शारीरिक परिश्रम करने वाले लोगो के भोजन मे कार्बोहाइड्रेट अधिक मात्रा मे होना चाहिये। इसके विपरीत मानसिक कार्य करने वाले लोगो के भोजन मे प्रोटीन की मात्रा अधिक होनी ग्रावश्यक है। व्यवसाय के अतिरिक्त शारीरिक बनावट के अनुसार भी भोजन के प्रकार मे भिन्नता होती है। लम्बे और मोटे शरीर के लोगो को छोटे तथा दुबले लोगो की अपेक्षा अधिक भोजन की ग्रावश्यकता होती है।

इसी तरह स्त्रियों व
बालक उनका भार तथा ग
में स्त्री को कैल्शियम तत्व का
होता है। इसलिये उनके , परन्तु १४ वर्ष के आयु से पहिले तथा ६० वप बाद भोजन
बसा की अधिक आवश्यक होनी है।
की मात्रा कम हो तो अच्छा है क्योंकि इन अवस्थाओं मे पाचन शक्ति कमजोर रहती है।

इसके साथ ही साथ ठण्डे प्रदेशो मे रहने वाले व्यक्तियो को गरम प्रदेश मे रहने वाले लोगो की अपेक्षा अधिक आवश्यकता पडती है। इन्हे प्रोटीन एव वसा युक्त भोजन की अधिक आवश्यकता पड़ती है क्योंकि ठण्डे देशो मे शरीर को गरम रखने के लिये ताप की अधिक मात्रा चाहिए।

एक साधारण सन्तुलित भोजन वह भोजन है जिसमे भोजन के वे सभी प्रकार पाये जायें जो कि शरीर को स्वस्थ्य रखने मे सहायता देते हैं। प्राय. एक सन्तुलित भोजन मे निम्न पदार्थों की दी हुई मात्रा की जरूरत पडती है—

रोटी —१५ औंस
दूध —१६ औंस
सब्जी—४० औंस
मस या और पदार्थ जिसमे उसी प्रकार के तत्व हों—६ औंस
मक्खन—१ औंस
अन्न —२ औस
शक्कर—१½ औस
फल —४ औस
तरल पदार्थ—३ पाइन्ट।

उपरोक्त पदार्थों की दी हुई मात्रा वास्तव मे एक सन्तुलित भोजन बनाती है। परन्तु इस प्रकार की मात्रा का व्यय काफी अधिक होता है। उसको सस्ता बनाने के लिये जो वस्तुएं अधिक कीमती हैं उनका प्रयोग सप्ताह में
उनकी मात्रा अधिक की जा सकती है।
जाना चाहिये। मौसम की वस्तुएँ प्राय कम ... इस तरह से एक सस्ती सन्तुलित भोजन की वस्तुओं की मात्रा अधिक की जानी चाहिये। व्यवस्था की जा सकती है।

शरीर की वृद्धि ... भोजन बहुत आवश्यक होता है। वास्तविक भोजन वह भोजन होता है जिसमे सभी पदार्थों
उसी के अनुसार भोजन के
आवश्यकता है तो उसको इ
जाय, इस तरह से भोज
मात्रा के स्थान पर शरीर ... भोजन बालक को दिया ... चाहिए। इस तरह मे एक लाभदायक और सस्ता भोजन बालक को ... उसके अवयवों का ज्ञान सही रूप से हो। भोजन की व्यवस्था करने से पहिले उसके अवयवों का ज्ञान होना अनिवार्य है।

के अतिरिक्त समय-समय पर इसमें समय व्यतीत करना पड़ता है। इसका प्रभाव भी बालकों के स्वास्थ्य पर पड़ता है। इसलिये इस ओर भी ध्यान रखना अनिवार्य होता है।

स्कूल भवन के पास ही एक बड़ा खेल का मैदान होना चाहिए। जहाँ बच्चे संगठित रूप से खेल कूद कर सकें। उसमें खुली हवा की बयारें लग सकें तथा स्कूल का बगीचा भी लग सके। खेल का मैदान समतल होना चाहिए तथा उस पर किसी प्रकार के पत्थर न होने चाहिए, यदि सम्भव हो सके तो मैदान का कुछ भाग ऊपर से ढका हो जिससे बरसात तथा अधिक धूप में खेलने हेतु समय-समय पर उसका प्रयोग किया जा सके।

विद्यालय भवन की रचना में मजबूती तथा स्थायी बनाने के लिए उसकी नींव पर विशेष ध्यान देना चाहिए। विद्यालय भवन की नींव काफी गहरी होनी चाहिए जिसमें कम से कम डेढ़ फुट कंकरीट बिछी होनी चाहिए। इसके ऊपर दीवार उठानी चाहिए। इससे भूमि की सीलन तथा भूमि स्थित वायु भवन में प्रवेश न करने पावे।

भवन निर्माण करने से पहिले भवन की दीवारें, भवन की छतें, भवन का फर्श, भवन की मंजिलें, भवन के दरवाजे तथा खिड़कियाँ, विद्यालय के कमरे, अध्यापक कक्ष, शौचालय एवं मूत्रालय तथा डाक्टरी परीक्षण कक्ष का एक चित्र तैयार कर लेना आवश्यक होता है, इनमें से प्रत्येक कक्ष का अपना-अपना महत्व होता है। एक भी बात के खराब होने से सम्पूर्ण भवन पर प्रभाव पड़ता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि हमारे देश में विद्यालय भवन के निर्माण करने में कितना ध्यान उपरोक्त बातों पर दिया जाता है। इसी कारण हमारे देश में बहुत थोड़े विद्यालय भवन उपरोक्त सिद्धान्तों के आधार पर तैयार किये गये हैं। इस देश में कमरे आदि का निर्माण करने के पश्चात् उनको चाहे जिस प्रकार के नाम से पुकार लें। यह बिलकुल भी सम्भव नहीं है कि भवन के किसी भी कमरे को अध्यापक कक्ष के रूप में बदला जा सके। प्रत्येक तरह के कक्ष की अपनी विशेषता होती है। इसके हेतु प्रथम रूप में भवन का एक नक्शा तैयार करके तब उसका निर्माण किया जाय तो भवन हमारी आवश्यकतानुसार तैयार हो सकेगा। इस तरह भवन के निर्माण में स्थान का सिद्धान्त, वातावरण का सिद्धान्त, प्रकाश तथा हवा की व्यवस्था के सिद्धान्त आदि को सदैव ध्यान में रखना चाहिए।

स्वास्थ्य की दृष्टि से भवन निर्माण में बहुत सी बातों को ध्यान में रखना पड़ता है। विद्यालय भवन का आकार इस तरह का होना चाहिए कि आसानी से एक निश्चित स्थान से निरीक्षण तथा नियन्त्रण हो सके। साधारण रूप से निम्न प्रकार से भवन का निर्माण किया जाता है। प्रत्येक में कुछ गुण तथा दोष होते हैं। इन भवनों के आकार निम्न हैं:—

(१) बरामदों द्वारा घिरे भवन—इनके बीच में एक बड़ा कमरा होता है। इस प्रकार के विद्यालय के लिए अधिक स्थान की आवश्यकता नहीं होती है, इस तरह की योजना उन स्थानों

के लिये उपयुक्त है जहाँ जगह की कमी हो। इनमें वायु आने की व्यवस्था भी ठीक ढंग से नहीं होती है, इसके साथ ही साथ प्रकाश की भी कमी होती है। इसके अतिरिक्त स्कूल के समय हाल का प्रयोग करना कठिन होता है।

(२) मण्डपाकार भवन—इस प्रकार के भवनों का हमारे देश में बड़ा ही अभाव है। आधुनिक समय में इस प्रकार के भवनों का निर्माण हमारे देश में होने लगा है। इस प्रकार के भवन का चित्र पृष्ठ ४६ पर दिया हुआ है।

इस प्रकार के भवनों में स्वच्छ वायु तथा प्रकाश सामान्य रूप से आता है। इस तरह का भवन स्वास्थ्य की दृष्टि से प्रथम प्रकार के भवन से उत्तम और उपयुक्त होता है। इस तरह का भवन शिक्षा की दृष्टि से भी काफी उत्तम होता है। इस तरह के भवन में एक ही मंजिल होता है क्योंकि दो मंजिले भवन में बालकों को ऊपर नीचे आने जाने में थकान का अनुभव होता है।

(३) भीतरी मैदान वाले भवन—ये तीसरे प्रकार के भवन होते हैं जिनमें खेल के मैदान भवन के भीतर स्थित होते हैं। इस तरह का भवन स्वास्थ्य और नियन्त्रण दोनों की दृष्टि से अच्छा होता है।

स्कूल भवन के निर्माण करने के पश्चात् बहुत सी और भी वस्तुएँ बालकों के स्वास्थ्य पर प्रभाव डाल सकती हैं। इनमें से कक्षा में प्रकाश के आने का प्रबन्ध इस तरह का होना चाहिए प्रकाश सदा बाँयी ओर से पुस्तक या कापी पर पड़ना चाहिए। प्रकाश सामने से न पड़ना चाहिए, श्यामपट्ट पर भी प्रकाश इस तरह से पड़े कि बालकों को असर या चित्र ठीक तथा सही तौर पर दिखलाई दे।

कक्षा में कुर्सी तथा डेस्क का विद्यार्थी के स्वास्थ्य पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। इसलिए इनका भी अपना ही महत्व है। डेस्क की ऊँचाई बच्चों की लम्बाई पर आधारित होनी चाहिए, जिससे सुविधापूर्वक उसमें कार्य कर सकें, डेस्कों के उपयुक्त न होने से बच्चों के मेरुदण्ड पर इनका बुरा प्रभाव पड़ता है, इससे उनके वक्ष का उचित विकास नहीं हो पाता, हृदय पर अधिक जोर पड़ता है तथा आमाशय की दीवारों पर भी आवश्यक बल पड़ता है। इसके कारण शरीर के सामान्य विकास पर बड़ा असर पड़ता है।

[illegible] फुट चौड़ा तथा फर्श से २ से [illegible]। श्यामपट्ट स्लेट का बना [illegible]

स्कूल में डाक्टरी निरीक्षण बहुत आवश्यक है। इसके लिये एक विशेष कमरे का प्रबन्ध भवन में होना चाहिए। बालकों के शरीर, दाँत, आँख तथा कानों की समय-समय पर परीक्षा होनी चाहिए। अगर आरम्भ में ही बालकों के रोग का पता नहीं चल पाता तो उनका जीवन सदैव के लिये खराब हो जाता है।

इस तरह भवन के निर्माण करते समय उपरोक्त सभी बातों पर ध्यान देना चाहिये, जिससे बालकों का स्वास्थ्य बना रहे और वे मानसिक तथा शारीरिक कार्य सुचारु रूप से कर सकें।

सवातन (Ventilation)

Q. 3. Discuss the purpose of ventilation in school buildings. What can the head of an institution do to secure ventilation and light in his schools?

Ans. आजकल विद्यालयों में छात्रों की संख्या अधिक हो जाने से प्रत्येक कक्षा में विद्यार्थियों की संख्या बढ़ गई है। कक्षा में भीड़-भाड़ हो जाने से सवातन की समस्या उत्पन्न हो गई है।

शुद्ध वायु का महत्व—शुद्ध वायु जीवन के लिये अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि आक्सी-जन युक्त शुद्ध वायु रक्त के शोधन, भोजन के पाचन, शरीर के विकास में सहायक होती है। अशुद्ध वायु शारीरिक और मानसिक थकान, निद्रा, शरीर में भारीपन, जम्हाई, सिरदर्द, घबराहट, बेचैनी, हृदय की क्रिया में धीमापन, और श्वास में तेजीपन पैदा करती है। बन्द कमरा में निरन्तर

रहने से शरीर में शक्ति और भूख की कमी, अपच, मन्दगति लगने का भय, ऐनीमिया, शारीरिक कुरूपता आदि पैदा हो जाते हैं। बन्द कमरों में या ऐसे कमरों में जिनमें वायु के आवागमन के साधन नहीं होते उनमें श्वास से निकली हुई वायु की प्रधानता होने के कारण आक्सीजन का अभाव, कार्बन-डाइ-आक्साइड की मात्रा ४% तक की वृद्धि हो जाती है जैसा कि शुद्ध और अशुद्ध का निम्नांकित सगठन प्रदर्शित करता है—

	शुद्ध वायु	अशुद्ध वायु
नाइट्रोजन	७९%	७९%
आक्सीजन	२०.९६%	१६%
कार्बन डाइआक्साइड	०·०४%	०·४%

संवातन की आवश्यकता (Need of ventilation)

स्वास्थ्य के लिये शुद्ध और अशुद्ध वायु का रासायनिक मिश्रण तो महत्वपूर्ण है ही वायु के निम्न भौतिक गुण भी स्वास्थ्य को प्रभावित करते हैं :

(अ) वायु का अत्यन्त ऊँचा तापमान।
(ब) वायु मे अत्यन्त आर्द्रता।
(स) वायु मे गति का अभाव।
(द) वायु मे बीमारियो के जीवाणुओं का अत्यधिक मात्रा मे विद्यमान होना।

वायु के ये भौतिक गुण हमारे चर्म को प्रभावित करते हैं। साधारणतः शरीर का तापमान ९८·४° फारेनहाइट होता है और आसपास की वायु जो कमरे में रहती है उसका तापमान ५०° से ६०° तक रहता है। अपने आसपास की वायु की अपेक्षा शरीर के अधिक गर्म होने के कारण शरीर दो प्रकार से गर्मी बाहर निकालता रहता है—पसीना निकालकर और पास की वायु को गर्म करके। यदि पास की वायु अत्यन्त गर्म हुई तो शरीर के इस काम में बाधा उपस्थित हो जाती है, हवा गर्म होकर ऊपर नही उठ पाती, और ताजी हवा उसका स्थान नहीं ले पाती। इसी प्रकार पास की वायु अत्यन्त आर्द्र होने पर पसीना कम सूखता है और शरीर से कम गर्मी बाहर निकलती है।

[illegible] हवा की गति नहीं होती तो [illegible] उत्पन्न कर देने से वायु के [illegible] च्छे सवात (ventilation) [illegible] सना। यदि वायु का तापमान किसी प्रकार नीचा रखा जा सकता है, वायु में नमी की अधिकता रोकी जा सकती है और वायु के आवागमन का उचित प्रबन्ध किया जा सकता है तो कमरे में अधिक छात्रों के बैठने से उत्पन्न वायु की अशुद्धि के प्रभाव को कुछ सीमा तक रोका जा सकता है।

संवातन के साधन—(Means of proper ventilation) विद्यालय मे सवातन (ventilation) की जितनी भी विधियाँ उपयोग में आती हैं उन सबका उद्देश्य हवा की गन्दगी दूर करना और ताजी हवा को कमरे के अन्दर लाने का प्रयत्न करना है। सवातन की विधियाँ दो वर्गों में बाँटी जा सकती हैं—प्राकृतिक और अप्राकृतिक।
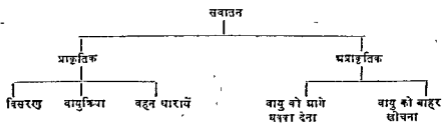
प्राकृतिक सवातन

विद्यालय मे अप्राकृतिक सवातन की अपेक्षा प्राकृतिक सवातन उत्तम रहता [illegible] ... अनेक प्रकार के रोशनदान और खिड़कियो का उपयोग [illegible] बनाये जाते हैं ताकि अशुद्ध [illegible] और खिडकियाँ फर्श से [illegible] अशुद्ध वायु से भारी होती लगभग ५ फीट ऊपर बनाई जाती है ताकि बाहर का [illegible] है कमरे में नीचे ही रहे।

प्राकृतिक सवातन के लिये विद्यालयो के कमरो मे चिमनियाँ, खिडकियाँ और द्वार बनाये जाते हैं। कहीं-कहीं पर दीवारो और छतो मे खुलाव छोड़ दिये जाते हैं। शीतकाल की ऋतु में कमरो मे यदि चिमनी जलाई जाती है तो चिमनी के मार्ग से वायु गरम होकर तेजी से कमरे से बाहर निकल जाती है ताजी वायु चिमनी मे से बाहर निकली हुई वायु का स्थान घेर लेने के लिये कमरे मे प्रवेश कर जाती है।

अप्राकृतिक सवातन

आधुनि[illegible] मे ऐसे कई वैज्ञानिक आविष्कार किये जा चुके है जिनसे कमरो की अशुद्ध हवा बाहर [illegible] सकती है किन्तु ये साधन अति खर्च[illegible] ते। सिनेमा हॉल और बडे-बडे सभा भवनो [illegible]।

बिजली के पखो द्वारा कमरे या भवन से अशुद्ध वायु बाहर निकाल कर और शुद्ध वायु प्राकृतिक ढग से पखे की विपरीत दिशा मे बने द्वार से कमरे मे प्रवेश करायी जाती है। किन्तु इन पखो से शोर अधिक होता है और वायु के आगमन की मात्रा पर भी किसी प्रकार का नियन्त्रण नही किया जा सकता। वायु आगमन के लिये जो खुलाव नीचे होते हैं ठड पैदा करते हैं। इससे अनेक हृदयरोग, खाँसी और जुकाम पैदा हो सकते हैं। इन कारणो से प्राकृतिक सवातन का विद्यालयो मे प्रयोग वर्जित माना जाता है।

जिन साधनो से प्राकृतिक सवातन किया जा सकता है, उन्हीं साधनो से कक्ष मे प्रकाश समस्या भी हल की जा सकती है।

सूर्य का प्रकाश

सूर्य का प्रकाश भी वायु के समान ही जीवन के लिये अत्यन्त आवश्यक वस्तु है। जीवनदान के अतिरिक्त सूर्य का प्रकाश बीमारी के जीवाणुओं को नष्ट करता है, शरीर मे जीवाणु नाशक शक्ति की वृद्धि करता है, रक्त मे श्वेत कणो को शक्ति प्रदान कर उनकी रोग शोषक शक्ति की वृद्धि करता है। सूर्य का प्रकाश पाचन क्रिया और रक्त परिभ्रमण मे सहायता पहुँचाता है इससे मॉसपेशियाँ समुचित रूप से विकसित होने लगती हैं, वह बालको मे सूखा रोग खतम करता है क्योकि उससे विटेमिन 'डी' उत्पन्न होता है जो दाँत और हड्डियो के निर्माण के लिये शरीर मे कैल्शियम और फास्फोरस की वृद्धि करता है। वह क्षय और गठिया के रोगो का भी उपचार करता है।

सूर्य के प्रकाश की कमी से बच्चो मे निकट दृष्टिदोष और ऐनीमिया के लक्षण पैदा होने लगते हैं। सूखा रोग, गर्दन की ग्रन्थियो की सूजन, कोढ, फुफ्फुस के क्षयरोग और सामान्य अस्वस्थता की वृद्धि मे कमरे का अन्धकार सहायक होता है।

अतएव विद्यालय की सभी कक्षाओ मे सूर्य के प्रकाश की आवश्यकता है। कमरो मे प्रकाश आने के लिये पर्याप्त सख्या मे द्वार और खिडकियाँ और रोशनदान होने चाहिये। किन्तु खिडकियो की व्यवस्था इस प्रकार की होनी चाहिये कि प्रत्येक बालक की डैस्क पर पर्याप्त मात्रा मे समान रूप से प्रकाश पहुँच सके। फर्श से खिड़कियो की ऊँचाई इतनी हो कि प्रकाश की किरणे बच्चो की आँखो मे सीधी न पडे। जहाँ तक हो प्रकाश सामने से न आवे क्योकि एकदम सामने से आने वाला प्रकाश आँखो मे चौंध पैदा कर देता है और आँखो के लिये हानिकारक भी

होता है क्योंकि ऐसे आने वाला प्रकाश विद्यार्थी की आँखों के सामने सीधा उपस्थित कर देता है। इसलिये कमरे में खिड़कियाँ और दरवाजे बच्चों के यथासम्भव बायीं ओर हों।

विद्यालय में जल की व्यवस्था

Q. 4. What is the importance of pure water in the maintenance of health ? What steps should the school take to ensure the supply of pure water to its pupils ?

Ans. शरीर को स्वस्थ रखने के लिए पौष्टिक भोजन, शुद्ध वायु, जल तथा सूर्य का प्रकाश आवश्यक होता है। मनुष्य शुद्ध वायु के अभाव में बहुत कम समय तक जीवित रह सकता है। वायु के बाद दूसरा नम्बर जल का होता है। बिना जल के व्यक्ति तीन दिन से अधिक जीवित नहीं रह सकता है। शरीर के भिन्न भिन्न कार्यों के सुचारु रूप से होने के लिए जल की आवश्यकता पड़ती है। शरीर में जल की मात्रा भार के अनुसार ७० प्रतिशत होती है। इसलिये शरीर को स्वस्थ रखने में इतनी अधिक मात्रा वाली वस्तु की ओर ध्यान देना विशेष रूप से आवश्यक होता है।

जल भिन्न-भिन्न मात्राओं में नाना प्रकार के खाद्य पदार्थों में पाया जाता है। इन पदार्थों में सब्जी, फल मुख्य हैं। प्रत्येक प्रकार के फल तथा सब्जी में जल की मात्रा किसी न किसी प्रतिशत में पायी जाती है। किसी में २० प्रतिशत तथा किसी में इसकी मात्रा ६० प्रतिशत तक होती है। शरीर को जल सामान्य रूप से ही इन्हीं खाद्य पदार्थों से मिलता है। इनके अतिरिक्त स्वयं जल को पीने से भी शरीर को जल प्राप्ति होती है।

अब प्रश्न यह उठता है कि शरीर को जल मिले वह शुद्ध हो। शुद्ध जल से शरीर को निम्न लाभ हैं जिनके आधार पर उसको स्वस्थ रखा जा सकता है।

(१) भोजन के पचने में—भोजन शरीर के नये कोषाणों के बनाने में विशेष रूप से लाभदायक होता है। इसलिये इसका भली प्रकार पचना आवश्यक होता है, भोजन के पचने में जल एक विशेष स्थान रखता है। यदि भोजन में जल की मात्रा पर्याप्त नहीं होती है तो भोजन भली-भाँति पच नहीं सकता है। भोजन का भाग जो हमारे रक्त में जाता है द्रव के रूप में ही जा पाता है। इस द्रव पदार्थ का बनना जल की मात्रा पर ही निर्भर होता है। यदि जल पर्याप्त मात्रा में नहीं होता तो अँतड़ियों से भोजन का शोषण नहीं हो पाता है। इस तरह भोजन के साथ ही साथ उसमें जल का होना आवश्यक होता है। जो व्यक्ति जल का प्रयोग कम करते हैं उनका मेदा खुश्क हो जाता है और जल के अभाव में नाना प्रकार के अजीर्ण रोग पैदा हो जाते हैं।

(२) शरीर की अनेक रासायनिक क्रियाओं में—शरीर एक पेचीदा मशीन है जिसमें बहुत सी रासायनिक क्रियायें होती रहती हैं। इन क्रियाओं में रुधिर से विषैले पदार्थों का अलग होना, त्वचा के छिद्रों से पसीने का निकलना तथा रुधिर का बहना आदि मुख्य हैं। इन सभी क्रियाओं में जल की विशेष आवश्यकता होती है और जल सभी क्रियाओं में भाग लेता है। यदि शरीर में जल की कमी होती है तो इन क्रियाओं में बाधा पड़ जाती है और शरीर अस्वस्थ हो जाता है।

यदि रक्त का विश्लेषण किया जाय तो यह ज्ञात होता है कि रक्त में लगभग ६० प्रतिशत मात्रा जल की होती है। जल के होने से रक्तकण आसानी से उसमें तैर सकते हैं तथा एक भाग से दूसरे भाग तक जा सकते हैं। इसके अभाव में रक्त संचार सुचारु रूप से नहीं हो सकता है। इसलिये रक्त में जल की मात्रा पर्याप्त होनी अत्यन्त आवश्यक होती है। इसी तरह रक्त में नाना प्रकार के विषैले पदार्थ शरीर में जमा हो जाते हैं। इन पदार्थों का शरीर से बाहर निकलना स्वास्थ्य के लिये आवश्यक होता है। इसमें से एक अंग तो गुर्दा होता है। जिसके कोषाओं द्वारा पदार्थ अलग किये जाते हैं। यदि ये पदार्थ ठोस के रूप में ही हों तो उनका मूत्र प्रणाली में बहना असम्भव हो, परन्तु जल की उपस्थिति में जल इन लवणों को अपने में घोल लेता है। इस तरह से ये विषैले पदार्थ द्रव अवस्था में मूत्र प्रणाली में प्रवेश करते हैं जहाँ से मूत्राशय में जमा होकर वे बाहर निकल जाते हैं। इसके अतिरिक्त त्वचा द्वारा रक्त के बेकार

पदार्थ पसीने के रूप मे त्वचा के छिद्रों से बाहर निकल आता है। इसके निकलने के लिये भी जल की आवश्यकता होती है। शरीर मे एक कोषा से दूसरे मे जो द्रव पदार्थ पहुँचता है उसका माध्यम भी जल ही होता है। इस तरह शरीर म नाना प्रकार की रासायनिक क्रियाये होती हैं जिनमे जल मुख्य रूप से भाग लेता है।

(३) शरीर का तापक्रम एक सम बनाये रखने मे—जल शरीर के तापक्रम को एक सा बनाये रखता है। जिस स्थान पर अधिक गर्मी लगती है या गर्मी प्रतीत होती है जल उस स्थान पर पहुँच कर तापक्रम कम कर देता है। शरीर मे जल निकल जाने पर शरीर को जल की [illegible] किसी भाग पर पहुँच जाता [illegible]

है। [illegible]

[illegible] उसकी पूर्ति के लिये शरीर अधिक जल [illegible]

आदा करता है। उसकी पूर्ति के लिये शरीर अधिक जल [illegible] रक्त द्वारा पहुँचने पर शरीर का तापक्रम सम बना रहता है। इसी तरह शरीर के प्रत्येक भाग मे रक्त द्वारा जल पहुँचता रहता है। इस जल के पहुँचने से शरीर का तापक्रम एक सा रहता है।

अतएव विद्यालय भवन मे शुद्ध वायु अथवा प्रकाश की व्यवस्था जितनी महत्वपूर्ण होती है उतनी ही महत्वपूर्ण शुद्ध जल की व्यवस्था भी है। बालको के उत्तम स्वास्थ्य के लिये शुद्ध जल उतना ही आवश्यक है जितना कि पौष्टिक भोजन। पाचन क्रिया के सुसचालन के लिये रक्त को तरल बनाए रखने के लिये, शरीर के दूषित पदार्थों को मूत्र और पसीने के माध्यम से बाहर निकाल देने के लिये जल की आवश्यकता पड़ती है। शरीर का ६६% भाग जल का ही बना हुआ है अतएव शुद्ध जल ही मानव जीवन के लिये अत्यन्त आवश्यक द्रव है। शुद्ध जल निर्मल, स्वच्छ, पारदर्शी, स्वादरहित, गधरहित, वर्णरहित, लवणरहित चमकदार, और जीवाणुरहित होता है। दूषित जल मे रग, लवण, गध, स्वाद आदि होते है। इस जल के प्रयोग करने से रोगों के जीवाणु शरीर के भीतर प्रवेश कर जाते हैं जो मोतीझरा, विसूचिका, अतिसार, दस्त आदि रोग उत्पन्न कर बालको के शरीर के विकास को अवरुद्ध कर दिया करते हैं। अशुद्ध जल से अनेक धातुएँ भी मिलती हैं। इन धातुओं मे से सल्फेट लवण, मैगनेशियम और कैल्शियम सल्फेट आदि धातुएँ विशेष उल्लेखनीय हैं। इन धातुओं से अतिसार और अन्य पाचन सम्बन्धी रोग पैदा हो जाते हैं। जल मे मिले हुये लोहकण मदाग्नि तथा अभ्रकण स्नायु और अतिसार पैदा कर देते हैं। इसलिये बालको के स्वास्थ्य की रक्षा करने के लिये शुद्ध जल का प्रयोग किया जाना चाहिये।

विद्यालय का [illegible]

उसके अध्यापकगण जल [illegible]

रोगों से परिचित हो। व यह [illegible] जल का सग्रह और सभरण किस प्रकार किया जाना चाहिये? जाता है, और शुद्ध जल का सग्रह और सभरण किस प्रकार किया जाना चाहिये?

जल का सग्रहण—विद्यालयो मे प्राय लोहे या सीमेन्ट की टकियो, पीतल या ताँबे के कलशो मे पीने का जल इकट्ठा किया जाता है। जस्तेदार लोहे और ताँबे की टकियाँ गर्म हो जाने पर जल पीने योग्य नही रहता। इसलिए मिट्टी के बर्तनो मे जल रखने की जरूरत होती है।

जल किसी भी प्रकार सग्रह क्यो न किया जाय विद्यालय के अधिकारियो का कर्तव्य है कि जल के बर्तनो को उत्तम प्रकार से सुरक्षित स्थान मे रखने की व्यवस्था करें। पीने के जल को रखने के लिये स्थान स्वच्छ एव हवादार हो जहाँ पर धूल और गन्दगी न पहुँचने पावे। जल के बर्तनो को सदैव ढक कर रखा जाय। यदि हो सके तो उनमे नल की टोटियाँ लगी हो। बर्तन प्रतिदिन स्वच्छ करके ताजे और स्वच्छ जल से भरे जायें।

विद्यालयों मे प्रयुक्त होने वाले जल के स्रोत—हमारे प्रान्त के सभी विद्यालयो मे कुओं से जल लिया जाता है। ये कुएँ उथले और गहरे होते हैं। उथले कुओं का जल शुद्ध नही होता क्योकि इनमे अध स्थल जल प्रवेश क[illegible] गहरे कुए का जल अधिक विश्वस्त होता है [illegible] इन कुओं मे चूने और मैगनेशियम के लव[illegible] कुओं कैसा भी हो वह जल को दूषित करने वाले स्थानो से दूर ही बनाया जाय। उसका मुँह ढकने से

ढका हुआ हो और जल निकालने के लिये हाथ के पम्प की व्यवस्था हो। जिन विद्यालयों में खुजली की बाधाएँ चलती हों उनके कुआ पर जाना पानी या नहाना वर्जित कर देना चाहिए।

विद्यालयों में पीने के काम के लिये नहरों, नदियों और झीलों का जल कभी भी उपयोग में नहीं लाना चाहिये। यदि जल में किसी प्रकार की अशुद्धि की सम्भावना हो तो उसे निम्नलिखित क्रियाओं द्वारा शुद्ध कर लिया जाय :—

(१) भौतिक—जल का उबालना, वाष्प बना कर उसे पुनः जल में बदलना।

(२) रासायनिक—फिटकरी, चूना, निर्मली डाल कर घुली हुई अशुद्धियों को दूर करना।

(३) यान्त्रिक—निस्यन्दकों द्वारा।

अध्याय ९

अनुचित आसन और स्वास्थ्य पर उनका प्रभाव

Q. 1. What are the causes of incorrect postures and what bodily deformities result from them ? What measures would you adopt to present and remedy them. *(Agra B. T. 1951, 1958, L. T 1945, 1947, 1951, 1954)*

Ans. शरीर का एक सामान्य अवस्था मे रखना आसन कहलाता है। बालक का शरीर बडा ही कोमल होता है जिससे आसन की और विशेष ध्यान देने की आवश्यकता पड़ती है। एक अच्छे आसन का मतलब केवल सीधे खडे होने से ही नही है बल्कि शरीर के सभी भागो मे आसन मे एक दूसरे उपयुक्त समन्वय रखने से होता है जिससे किसी तरह से उठने-बैठने चलने-फिरने मे सुगमता से कठिनाई प्रतीत न हो।

शरीर के तीन मुख्य भाग शरीर का भार ग्रहण करते हैं; सिर, छाती और नितम्ब अस्थि। सिर का सम्पूर्ण भार रीढ की हड्डी पर तथा छाती और नितम्ब-अस्थि का भार जाँघ की हड्डियों पर पडता है। एक अच्छे आसन का अभिप्राय यह है कि समस्त शरीर का भार पाँवों की हड्डियो पर बिना किसी रुकावट के पडे ताकि वे बिलकुल सीधे रहे। यदि शरीर के किसी विशेष भाग पर अनावश्यक भार पडता है तो उनका रूप अनुचित हो जाता है।

बालक की भिन्न-भिन्न स्थितियो का आसन पर प्रभाव पडता है इन स्थितियों मे मे [illegible]

[illegible] साथ

हो साथ सिर सीधा हो जिससे गर्दन के सामने तथा पीछे की माँसपेशियो को आराम मिले, दोनो बाहे सीधी हो और जाँघें सीधी हो।

इसके अतिरिक्त पढते समय के आसन मे निम्न बातो पर ध्यान देना चाहिए :—

(१) पढते समय बालको को सीधा बैठना चाहिये।
(२) पुस्तक आँख से करीब १२ इच दूरी पर हो।
(३) पुस्तक को ४५° के कोण पर पकडना चाहिये।
(४) वस्ति प्रदेश सीट पर पूरा टिका होना चाहिये।

अनुचित आसन के भिन्न-भिन्न कारण होते हैं। ये कारण मुख्यतया दो रूप से बन जाते हैं। इन कारणो मे एक कारण तो घरेलू कारण तथा दूसरे स्कूल सम्बन्धी कारण होते हैं। अनुचित आसन के घरेलू कारण निम्न हैं—

[illegible] कमजोर पड़ [illegible] होती है। [illegible] विकास होता है। जिन [illegible] के आसन अनुचित हो जाया करते हैं। अस्थि विकास के लिये कैल्शियम तत्व का होना अनिवार्य होता है।

(२) अनुचित व्यायाम तथा बुरी आदतो के पड़ने से छात्रों के शारीरिक विकास पर बुरा प्रभाव पडता है। व्यायाम करने के भी अपने ढग होते हैं। व्यायाम करने मे यह

विशेष ध्यान देने की बात है कि शरीर के किस भाग पर विशेष बल पड़ना चाहिए। कभी-कभी भूल से दूसरे भाग पर अधिक जोर पड़ जाता है। इस जोर के कारण वह भाग और अंगों की अपेक्षा अधिक मोटा तथा भारी हो जाता है। इस तरह जब बालक खड़ा होकर आराम करते हों तो माता-पिता तथा अध्यापकों को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए कि किसी विशेष भाग पर अनावश्यक जोर न पड़े। इससे जीवनपर्यन्त बालकों के आसन खराब हो जाते हैं। कभी-कभी बैठने की अकड़ की तथा जेब में हाथ डाले खड़े होने की आदत खराब पड़ जाती है। इस तरह की बुरी आदत के पड़ने से बालक आदत का सेवक हो जाता है और शरीर के लिए अनुचित आसन बन जाते हैं।

(३) स्वच्छ वायु, पर्याप्त प्रकाश, विश्राम आदि के अभाव के कारण भी आसनों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए ये सभी अनिवार्य हैं। यदि स्वच्छ वायु का अभाव हो तो हमारे शरीर की मांसपेशियों का विकास नहीं हो पाता है। इससे शरीर की सामान्य वृद्धि रुक जाती है। इसी तरह बहुत से शारीरिक रोग प्रकाश के बिना पैदा होते हैं। इसके साथ ही साथ कार्य करने के पश्चात् आराम अनिवार्य होता है। इन सभी के अभाव में वृद्धि रुक कुबड़ापन पड़ने के कारण आसन अनुचित हो जाते हैं।

(४) दूसरे की नकल करने में बालकों में अनुकरण करने की बड़ी आदत होती है। अक्सर वे अपने से बड़ों की सभी चीजों में नकल करते हैं। वे उनके परिणाम को न समझ कर उन कार्यों को दोहराते हैं। जिस तरह बातचीत करने में बालक नकल करते हैं उसी तरह से दूसरे के चलने, उठने बैठने खड़े होने की विधि का भी वे अनुकरण करते हैं। धीरे-धीरे अनुचित आसन की आदत बालकों में पड़ जाती है और वे स्वयं भी अनुचित ढंग से कार्य करने लगते हैं और उचित आसन को खो बैठते हैं। माता-पिता कभी भी बालक को दूसरे के बुरे आसन का अनुकरण न करने दें।

(५) शारीरिक वस्त्रों के ठीक से न सिले होने के कारण भी आसन अनुचित हो जाते हैं। अक्सर हमारे माता-पिता इस बात को ध्यान में नहीं रखते हैं कि उनके बालक दिन प्रतिदिन शरीर में बढ़ते हैं। उनके वस्त्र कभी भी चुस्त न सिले होने चाहिये। बजाय कपड़े को शरीर के अनुसार चलायें कभी-कभी चुस्त कपड़ों के अनुसार शरीर को अनुचित करना पड़ता है। इसलिये यह बात विशेष ध्यान देने की है कि बालकों के कपड़े ढीले-ढाले हों और जैसे ही वे चुस्त होने लगें उनके प्रयोग न किये जायें।

उपरोक्त कुछ घरेलू कारणों के अतिरिक्त अनुचित आसन के कुछ स्कूल सम्बन्धी कारण भी होते हैं। वे स्कूल के कारण निम्न होते हैं—

(१) स्कूल के फर्नीचर का बालक के अनुकूल न होने से अनुचित आसन हो जाने की आशंका बनी रहती है। हमारे स्कूल में कक्षा के फर्नीचर पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है। वह सभी रूप से समान ऊँचाई का होता है। भिन्न-भिन्न ऊँचाई वाले बालकों को एक ही ऊँचाई के डेस्क तथा कुर्सी का प्रयोग करना पड़ता है। इस कारण कुछ बालकों के लिए ये डेस्क ऊँचे हो जाते हैं तथा कुछ के लिये नीचे रह जाते हैं। इसलिये बालकों को उन पर कार्य करने के लिये या तो झुकना या उचकना पड़ता है। इससे उनके शरीर पर बल पड़ता है और उनके आसन बिगड़ जाते हैं। इसलिये विद्यालयों में अध्यापकों का यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि वे यह ध्यान में रखें कि बालक को अपने शरीर के अनुसार उपयुक्त मेज कुर्सी उपलब्ध हो।

(२) स्कूल में बालक की थकान एवं मनोरंजन की ओर ध्यान न देने से भी आसन अनुचित हो जाते हैं। बालकों को अधिक समय तक न तो शारीरिक कार्य ही कराया जावे और न मानसिक हो, उसमें उनकी थकान का अनुभव होता है। एक बार थक जाने से वे अपने शरीर के किसी विशेष अंग पर अधिक जोर देते हैं जिससे उनके शरीर की आकृति बदल जाती है। थकान को दूर करने के लिये बीच-बीच में मनोरंजन की व्यवस्था अवश्य होनी चाहिए। थकान को दूर करने के लिये आराम की आवश्यकता होती है। स्कूल में अध्यापकों का इस ओर भी ध्यान देना आवश्यक होता है वरना बालकों के आसन अनुचित होने की [illegible] बनी रहेगी।

(३) बालकों के बैठने तथा खड़े होने के ढंग पर ध्यान न देने से भी आसन बिगड़ जाते हैं। कभी-कभी फर्नीचर उपयुक्त होने पर भी बालक कक्षा में उचित रूप से नहीं बैठते हैं

तथा प्रश्नो के जवाब देने मे भी भली-भाँति खडे नही होते है। इसके कारण बहुत से हो सकते हैं। इनमे मुख्य कारण उनकी वे आदतें हैं जो कि आरम्भ से ही पड जाती हैं। इसलिये कक्षा मे अध्यापक को प्रत्येक बालक के बैठने तथा खडे होने के ढग पर ध्यान देना चाहिए तथा अनुचित रूप से बैठने वाले बालको को उसी समय ताडना देनी चाहिए जिससे वे अपनी आदतो में सुधार कर सकें।

(४) बालको को सदैव एक ही कन्धे पर पर बस्ता लटकाने से आसन बिगड जाते हैं। उन्हें घर से काफी सख्या मे पुस्तकें स्कूल मे लानी पडती हैं। ये एक थैले मे सभी प्रकार के सामान को रखते हैं तथा उसको एक कन्धे पर लटकाते हैं। इसके कारण उस कन्धे पर अनावश्यक जोर पडता है। उस जोर की पूर्ति करने के लिये बालक को दूसरा कन्धा ऊपर की ओर झुकाना पडता है। इससे भी आसन बिगड जाता है। इसलिये बालको को बदल-बदल कर बस्ते को कभी इस ओर कभी दूसरे पर लटकाना चाहिए ताकि उन पर सामान्य रूप से बराबर जोर पडता रहे।

(५) शारीरिक दोष जैसे आँख तथा कान का सुचारु रूप से कार्य न करने से भी आसन बिगड जाते हैं। एक आँख से कम देखने पर दूसरी पर जोर देने या गर्दन झुका देने पर जोर पडता है। इसी जोर के कारण शरीर की प्राकृतिक बनावट पर प्रभाव पडता है। इसके अतिरिक्त एक ही प्रकृति के कार्य करने से एक विशेष भाग पर बल पडता है और शरीर मे आसन सम्बन्धी दोष पैदा हो जाते हैं।

अनुचित आसन के कारण शरीर मे बहुत दोष उत्पन्न हो जाते हैं। ये दोष निम्न हैं—

(१) रीढ की हड्डी का टेढापन (Spinal curvature)—यह दोष अधिकतर बालको मे पाया जाता है, इसके साथ ही साथ बालको के बडे होने पर भी यह स्पष्ट रहता है। इसका कारण बचपन मे रीढ खभ पर अत्यधिक भार पडना माना जाता है। इस रोग मे निम्न प्रकार के दोष पैदा हो जाते है—

(अ) कूबड निकल आना (Kyphosis)
(ब) कटि प्रदेश मे रीढ के मोड का आगे निकल आना Lordosis)
(स) रीढ की हड्डी का एक ओर झुक जाना (Scoliosis)

उपरोक्त दोष बीमारी, असन्तुलित भोजन, स्वच्छ वायु का अभाव, अपर्याप्त व्यायाम, डेस्क पर बैठने आदि के कारण भी हो जाते है। प्रथम दोष का प्रभाव पसलियो पर पडने से होता है। इससे श्वासोच्छ्वास क्रिया मे बडी कठिनाई होती है। इससे आक्सीजन पर्याप्त मात्रा मे तन्तुओ को नही मिल पाती है। इस कारण शरीर मे दोष उत्पन्न हो जाते हैं।

कटि प्रदेश मे रीढ के मोड का आगे निकलने पर अथवा पीठ के मोड के पीछे बढ जाने पर कटि प्रदेश का अगला मोड अधिक बढ जाता है। यह विकार रीढ के क्षय रोग और कूल्हें के रोग तथा जिन कारणो से कूबड निकल जाती है उन्ही कारणो से हो जाता है।

रीढ की हड्डी के एक ओर झुकने का कारण टाँगो का अविकसित होना, अस्थिसधियो की बीमारी, कूल्हे के उतर जाने, बालपक्षाघात, आदि के कारण उत्पन्न हो जाते हैं। उपरोक्त रोग दूर करने के हेतु बच्चे को ठीक आसन से खडे होने के लिये बाध्य करना चाहिए। इस रोग (scoliosis) के प्रमुख कारण अस्थि सन्धियो के रोग, अविकसित रोग, बालको का पक्षाघात (infantile paralysis), कूल्हे का उतरना आदि हैं। खडे होने पर दोनो पैरो पर शरीर का एक समान भार न पडने से या कक्षाकक्ष मे अपर्याप्त प्रकाश और अनुचित डेस्को के द्वारा भी यह रोग हो जाता है। इस रोग के गम्भीर रूप धारण करने पर आपरेशन की सहायता लेनी पडती है इसलिये पहले ही इसकी ओर ध्यान देना चाहिए।

(२) दूसरा मुख्य रोग चपटे पैरो का होना (Flat foot)होता है। यह स्थिति अधिक-[illegible] की आयु के कमजोर बच्चो मे पायी जाती है। ये वे बच्चे होते हैं जिनको भारी [illegible] कम- [illegible] ता है। [illegible] से भी [illegible] न होने

[illegible]

अनुचित ग्रासनो का उपचार निम्न रूप मे किया जाता है :—

(१) उचित ग्रासन के लिये बालकों को पौष्टिक भोजन देना चाहिए। इस प्रकार के भोजन से उनमे ग्रासनों से थकान का अनुभव नहीं होगा।

(२) बालकों के रहने का स्थान ऐसा हो जहाँ कि स्वच्छ हवा तथा सूर्य का प्रकाश सुविधा पूर्वक मिल सके।

(३) उनमे उचित व्यायाम करने तथा स्वच्छ ग्रादतों के पालन करने का ग्रवसर प्राप्त हो सके।

(४) शरीर के वस्त्र इस तरह के सिले हों जिसमे शरीर को किसी तरह की असुविधा न हो।

(५) स्कूल का फर्नीचर बालक के शरीर के उपयुक्त होना चाहिए।

(६) बालकों के व्यायाम ऐसे हो जिससे वे अपने ग्रासन ठीक रख तथा कर सकें।

(७) ग्रावश्यकता समझने पर उनको डाक्टर की सलाह के ग्राधार पर उपचार करना चाहिए।

उचित ग्रासन

Q. 5. What do you mean by correct postures of standing, writing and sitting? How can a school help the child in forming these correct habits? Explain clearly.

(L. T. 1956)

Ans. उचित ग्रासनों का महत्व—उचित ग्रासन से हमारा ग्रभिप्राय ग्रपने शरीर को ठीक ढग से साधने से है। इस प्रकार के ग्रसान मे समस्त शरीर इस प्रकार सधा रहता है कि उसे कम से कम थकान होती है क्योंकि शरीर को साधने मे व्यक्ति को किसी प्रकार के प्रयत्न (exertion) की अनुभूति नहीं होती। शरीर का भार दोनों पैरो पर समान रूप से पड़ने के कारण शरीर के समस्त ग्रग सुचारु रूप से एकलय होकर किसी प्रयत्न ग्रौर थकान के बिना सचालित होते रहते हैं। सिर, गर्दन ग्रौर मेरुदण्ड एक रेखा मे ग्रपनी स्वाभाविक स्थिति मे स्थित रहते हैं। दोनो कन्धे एक ही सीध मे तने रहते हैं। पीठ का स्वाभाविक मोड ग्रधिक गहरा नहीं होता। पेडू ग्रपनी स्थिति पर ठीक तरह से सधा रहता है।

ग्रनुचित ग्रासनो मे शरीर के भिन्न-भिन्न अगो की स्थिति ठीक इससे विपरीत हुग्रा करती है। उठने, बैठने, पढ़ने, लिखने तथा खड़े होने के ग्रनुचित तरीकों से शरीर शीघ्र ही थकित *हो जाता है। शरीर के भिन्न-भिन्न ग्रग ग्रौर ग्रवयव सुचारु रूप से कार्य नहीं कर पाते।* ग्रनुचित ग्रासनो से शरीर के ग्रग विकृत हो जाते हैं। धँसी कमर (Hollow Back) झुके कन्धे (round shoulders) चपटे पैर (Flat foot) सिकुडा सीना (Pigeon chest) दूषित ग्राँखें ग्रादि विकार उत्पन्न हो जाते हैं। मेरुदण्ड टेढ़ा पड जाता है या कूबड निकल ग्राता है।

उचित ग्रासनो से शरीर स्वस्थ रहता है, ग्रात्मविश्वास, फुर्ती एव निरालस्य ग्राता है। ग्रनुचित ग्रासनो से व्यक्ति ग्रस्वस्थ, ग्रालसी, उदासी, व्यग्र ग्रौर निराशावादी हो जाता है। ग्रतः यदि ग्रध्यापक बालक के शारीरिक विकास को ठीक ढग से करने मे सहायक-सिद्ध होना चाहता है तो उसको विद्यालय ग्राने के समय से ही उचित ग्रासनो द्वारा शरीर को साधने की शिक्षा देनी होगी। बालक उठते, खड़े होते, बैठते समय ग्रपने शरीर को किस प्रकार साधता है, लिखते पढ़ते समय शरीर के भार को किस प्रकार वितरित करता है, उसे इन बातो पर ध्यान देना होगा।

खड़े होने के उचित आसन—जिस समय कक्षा मे बालक ग्रध्यापक के प्रश्नो का उत्तर देता है उस समय उसे प्राय: खडा होना पडता है ग्रथवा प्रार्थना के समय उसे खड़े होकर प्रार्थना करनी पड़ती है। ऐसी ग्रवस्थाग्रों मे जब थोडी देर के लिये खड़े होने की ही ग्रावश्यकता पडती है तब ग्रध्यापको को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि उनके छात्रो के शरीर का भार समान रूप से दोनो पैरो पर हो, पैरो की एडियाँ समतल भूमि पर सही ढग से टिकी हो, जिससे खड़े होने पर बालकों को किसी प्रकार का प्रयत्न न करना पड़े। दोनो पैरों के बीच लगभग ३-४ इच [illegible] हुई, गर्दन सीधी, सीना ग्रागे की ग्रोर निकला [illegible] ाया हो; दोनो कधे एक सीध मे तने हो। [illegible] है तो उसे ग्राराम की ग्रवस्था मे खड़ा रखा

जा सकता है क्योंकि खड़े होने का पहला आदर्श तरीका दोनो पैरो को शीघ्र ही थका देता है। देर तक खड़े रहने के लिये दूसरे प्रकार का आसन काम मे लाया जा सकता है। एक पैर का थोडा आगे करके रखा जा सकता है जिससे शरीर का भार केवल पीछे का पैर संभाल सके। आगे आने वाले पैर की पेशियाँ जब आराम कर ले तब पीछे वाला पैर आगे किया जा सकता है। इस प्रकार देर तक खड़े रहने मे दोनो पैर बारी बारी से आराम कर लिया करते हैं। विनय भग हो जाने पर अध्यापक प्राय बालको को सीधे खड़े रहने की सजा देते हैं। यह दण्ड अनुचित प्रतीत होता है क्योकि बालक अधिक देर तक सीधा खड़ा नही रह सकता। वह एक पैर थक जाने पर आराम देने के लिए शरीर का भार दूसरे पैर पर डाल देता है। इस प्रकार उसके शरीर मे अनेक विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

बैठने का उचित आसन—कुर्सी पर अनुचित तरीके से बैठने पर शीघ्र थकान पैदा हो जाती है, स्वास्थ्य बिगड जाता है, अग विकृत हो जाते हैं। कुर्सी पर बैठने के अनुचित आसन मे जांघो का भाग कुर्सी के बाहर रहता है। कमर कुर्सी की कमर से दूर, पैर टेढे, गर्दन और सिर
कार
ोडो
ये।
को
और
स्वास्थ्य ठीक रहता है।

यदि सीट पर पीठ के लिये कोई सहारा न हो तो बालक अधिक देर तक बैठ नही सकता। अत. सीट बैठने की आवश्यकता को दृष्टि मे रखकर बनाई जानी चाहिये। कुर्सी की कमर की ऊँचाई इतनी होनी चाहिये कि वह बैठने पर बालक के कधों तक आ जाय। विद्यालयो मे छोटे-छोटे बच्चो के लिये इसी प्रकार की सीटें हो तो अच्छा है। टाट पट्टी पर बैठने या बैंचो पर बैठने से मेरुदण्ड के झुक जाने का भय रहता है। मेरुदण्ड से जुडे हुए अस्थि बन्धन ढीले पड जाते हैं। फलत आन्तरिक अगो (internal organs) पर अनावश्यक दबाव पडने से उनके कार्यों मे बाधा पडती है। बालक अस्वस्थ हो जाता है। इसलिये विद्यालय की प्रबन्धकारिणी समितियो से निवेदन है कि वे विद्यालय मे भवन तैयार करते समय फर्नीचर की भी उचित व्यवस्था करें।

पढ़ने के उचित व अनुचित आसन—पढने के अनुचित आसन मे विद्यार्थी पुस्तक को आँख के अधिक पास रख लेता है। उसका शरीर कुर्सी पर भली प्रकार सधा नही रहता। कमर गर्दन और सिर आगे की ओर झुक जाते हैं। इस प्रकार नेत्रदोष, वक्षस्थल मे सिकुड़न, और मेरुदण्ड मे पेशियो के खिंचाव के कारण विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

पढने के उचित आसन मे आँखे पुस्तक से ११"-१२" की दूरी पर रहती हैं। क्षैतिज से पुस्तक का ४५° का कोण बनाते हुए रखी जाती हैं। पुस्तक आँखो की लगभग सीध मे ही रहनी है। कमर, गर्दन और सिर आगे की ओर झुके नही होते। हाथ डेस्क पर सीधे, डेस्क कुर्सी से धन दूरी पर रहनी चाहिये।

लिखने के उचित व अनुचित आसन—बालक प्राय. एक हाथ मेज पर रखकर दूसरा
उससे अलग वि
रहता है, सीना
अपच, निर्बलता

लिखने के उचित आसन मे कुर्सी का भीतरी किनारा डेस्क के भीतरी किनारे के कुछ अन्दर तक घुसा रहता है। कुर्सी और डेस्क के बीच की दूरी ऋणात्मक होनी है। जांघ कुर्सी पर सीधी थमी रहती है। मेरुदण्ड का निचला भाग कुर्सी की कमर से मिला रहता है। पैर जमीन पर लगे रहते हैं, आँखें काफी एक फुट की दूरी पर स्थित रहती है।

को कलम पकड़ने, लिखने
से उपयोग करने पर भी

कलम पकड़ते समय बालक पूरा हाथ छिगुनी अँगुली पर एक बगल की ग्रोर टिका होना चाहिये ताकि लिखने वाले की हथेली दिखाई दे सके। लेखनी को अँगूठे और पहली अँगुली के बीच में स्थित गड्ढे में रखना चाहिये। लेखनी का झुकाव दायें कन्धे के बाहर की ग्रोर होना चाहिये। इस प्रकार लिखते समय हाथ को किसी प्रकार का प्रयत्न नहीं करना पड़ेगा।

जब इस प्रकार बालक कलम पकड़ना सीख ले तब उसे लिखने का अभ्यास कराया जाय। प्रारम्भ में बच्चों को श्यामपट पर चाक से सीधी आकृतियाँ, चित्र, रेखाएँ खींचने की आज्ञा देनी चाहिये। मांस पेशियों के परिपक्व हो जाने पर श्यामपट पर अक्षर और शब्द सिखाये जायँ। श्यामपट के बाद स्लेट पर फिर कागज पर पैंसिल से लिखने का प्रयोग कराया जा सकता है। छोटे बच्चों को कापी पर फाउण्टेनपैन से नहीं लिखवाना चाहिये क्योंकि उनकी लिखावट में विकार उत्पन्न हो सकता है।

कापी को ठीक प्रकार से डेस्क पर रखने की आदत भी बच्चों में प्रारम्भ से ही डाली जाती है। बहुत से छात्र कापी को डेस्क के किनारों के समानान्तर नहीं रखते। लिखते समय कागज का डेस्क पर रखने का ढंग अनुचित है क्योंकि ऐसा करने से लिखावट टेढ़ी हो जाती है और अक्षर भी आकर्षक नहीं बन पाते।

बालक लिखते समय बायें हाथ का प्रयोग ठीक ढंग से नहीं करते। अतः उनको यह बता देना चाहिये कि दायें हाथ से लिखते समय समय बायें हाथ से मेज पर रखे हुए लिखने वाले कागज को सीधी करते रहना चाहिये क्योंकि बायें हाथ का यह काम बालक को आराम पहुँचाता है। यदि कागज अपनी उपयुक्त स्थिति में नहीं रहता तो लिखावट में तिरछापन और बायें हाथ में वक्रता आ जाने का भय रहता है।

लिखने के उचित आसन से लिखावट सीधी आती है। वस्तुतः लिखावट दो प्रकार की होती है—*सीधी और तिरछी। सीधी लिखावट में अक्षर सुडौल, स्पष्ट और सरलता से पढ़ने योग्य* बनते हैं। कापी डेस्क के किनारों के समानान्तर और दोनों आँखों से समान दूरी पर रहती है। सीधी लिखावट से बालक का आसन ठीक रहता है किन्तु तिरछी लिखावट में उसके लिखने का आसन बिगड़ जाता है क्योंकि कापी शरीर के दायीं ओर कुछ तिरछी रखनी पड़ती है। दायाँ कंधा अधिक प्रमुख, मेरुदण्ड बायीं ओर घुमाव, दोनों नेत्र कापी से असमान दूरी पर स्थित हो जाने से थकावट शीघ्र उत्पन्न हो जाती है।

बैठने और लिखने के उचित आसनों के चित्र नीचे दिये जाते हैं।

बैठने का आसन लिखने का आसन

अध्याय १०

प्राथमिक सहायता

(First Aid)

Q. 1 What is First Aid ? Discuss its main principles What can a school do to first aid treatment in emergency situations ?

Ans. प्राथमिक चिकित्सा का अर्थ और आधारभूत सिद्धान्त

पाठशालाओ मे आकस्मिक घटनायें प्राय होती रहती है। रसायनशाला मे अम्ल का
क्षार गिर जाने पर विद्यार्थियो के अग जल या झुलस जाते हैं। कभी-कभी कपडो मे आग भी लग
जाती है। कक्षा मे बैठे-बैठे नाक से रक्त स्राव होने लगता है। प्रार्थना के मैदान मे मूर्छा आ जाती
है। बिजली का प्लग लगाते समय बिजली का धक्का लग जाता है। खेल के मैदान मे फिसल
जाने पर हाथ, पैर और जांघ की हड्डियां टूट जाती है। इस प्रकार को अनेक दुर्घटनायें कक्षा या
कक्षा के बाहर प्रतिदिन होती रहती है। यदि उनका समय पर ठीक प्रकार उपचार नही किया जाता
तो विपम परिस्थितियाँ उत्पन्न हो जाती है। अत अध्यापक और विद्यार्थियो को घायलो और
बीमारो की प्रथम सहायता के विषय मे कुछ जानकारी अवश्य होनी चाहिये।

घायलो और बीमारो की प्राथमिक सहायता (First Aid) का ज्ञान प्रयोगात्मक
चिकित्सा के मूल सिद्धान्तो पर आधारित रहता है। इसका उद्देश्य है शिक्षित व्यक्तियो को इस
योग्य बना देना कि वे आकस्मिक घटना और बीमारी के अवसर पर, डाक्टर के आने तक या
रोगी के एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने तक, उसके जीवन को बचाने, रोग निवृत्ति मे
सहायक होने या घायल की दशा बिगडने से रोकने मे उपयुक्त सहायता कर सकें। प्राथमिक सहायता
उन्ही वस्तुओ से दी जाती है जो उस समय पर उपलब्ध होती है। प्राथमिक सहायक (First-
Aider) डाक्टर का स्थान नही ले सकता। उसका उत्तरदायित्व उसी समय समाप्त हो जाता
है जिस समय डाक्टर रोगी का उपचार करने के लिये आ जाता है।

प्रथम सहायक (First Aider) डाक्टर के आने तक रोगी की दशा को बिगडने न
देने की जिम्मेदारी होने के कारण उसमे कुछ गुणो की आवश्यकता है—

(१) सचेत (Ovservant) प्रथम सहायक प्रत्येक बात को सावधानी से देखे ताकि
वह दुर्घटना के कारण या चिन्ह पहचाने सके।

(२) चतुर (Tactful)—वह बिना अधिक पूछताछ किये घटना के लक्षण और
वृतान्त ठीक तरह समझ सके और दर्शको एव रोगी का विश्वास प्राप्त
कर सके।

(३) साधन कुशल (Resourceful)—उपलब्ध वस्तुओ का समुचित प्रयोग कर
सकना जिससे रोगी की अवस्था अधिक बिगडने न पावे साधन-कौशल
कहलाता है।

(४) दक्ष (Dexterous)—प्रथम सहायक रोगी को इस प्रकार उठावे या छुए कि

उसे किसी प्रकार का दुःख न पहुँचे और सफाई तथा दक्षता के साथ वस्तुओं का प्रयोग करे।

(५) स्पष्ट (Explicit)—रोगी और आसपास खड़े हुए लोगों को स्पष्ट आज्ञायें दे सके।
(६) विवेकशील (Discriminating)—घातक चोटों को पहिचान सके।
(७) धैर्यवान् (Persevering)—यदि तत्काल सफलता न मिले तो भी उसमें निराशा उत्पन्न न हो और चिकित्सा में लगा रहे।
(८) सहानुभूतिपूर्ण (Sympathetic)—पीड़ित व्यक्ति के दुःख को अपना दुःख समझे और आराम और धैर्य बँधा सके।

प्राथमिक सहायता के मूल सिद्धान्त—प्राथमिक सहायक को घायल व्यक्तियों और रोगी की सहायता करते समय निम्नलिखित सिद्धान्तो को ध्यान मे रखना चाहिये :—

(१) रोगी की दशा तथा उसके रोग को अच्छी तरह से पहचान प्रथम सहायता का पहला मूल सिद्धान्त है।
(२) इसके बाद यह निश्चय कर लेना कि रोगी को कितनी, कैसी और कहाँ तक सहायता दी जा सकती है।
(३) डाक्टर के आने तक आवश्यकतानुसार रोगी या घायल व्यक्ति को उपयुक्त सहायता या चिकित्सा किस प्रकार करनी है ?

प्रत्येक प्राथमिक चिकित्सक को रोगी को अपने हाथ मे लेते समय निम्न बातो पर ध्यान देना चाहिये :—

(१) आवश्यकता के समय तुरन्त सहायता देना।
(२) प्रथम सहायता का सभी सामान एक साथ ले लेना।
(३) घटना स्थल का सावधानी से निरीक्षण करना।
(४) रोगी से चुपचाप लेटे रहने का आदेश और उसे इस बात का धैर्य बँधाना कि वह योग्य उपचारक के हाथ मे है।

रोगी की परीक्षा

रोगी की परीक्षा करते समय प्रथम सहायक को गहरी घातक चोटो की ओर ध्यान देना चाहिये। किसी रोग को पहचानने मे (diagnosis) के लिये रोगी के लक्षणो, चिन्हों और पूर्व वृन्तात पर विचार करना चाहिये। पूर्व वृत्तान्त का ज्ञान रोगी से उसके सचेत होने पर और उसके साथियो से प्राप्त किया जा सकता है। सचेत और समझदार रोगी रोग के लक्षणो (signs) को अपनी बातचीत में स्वय प्रकट कर देता है। वह ठंडा लगना, कपकपी आना, जी मचलाना, बेहोशी, प्यास और पीडा आदि लक्षणों की ओर प्रथम सहायक का ध्यान स्वत: आकर्षित कर लेता है। प्रथम सहायक को इन लक्षणो और चिन्हों की ओर ध्यान देना चाहिये। यदि रोगी अचेत है या ठीक-ठीक हाल बताने मे असमर्थ है तो प्रथम सहायक को यह ज्ञात करना चाहिये कि

कृत्रिम रूप से सास लाने

गाकर उसे तुरन्त रोकना

न की जाय:—

(अ) सांस लेने का ढग।
(ब) नाडी की गति।
(स) सिर की चोट, कान, आँख, आँख, नाक और मुँह का रक्तस्राव।
(द) आँख की पुतलियों का फैलना और सिकुड़ना।

चोट का ठीक पता लगाने के लिये रोगी के कपडे हटाये जा सकते हैं किन्तु रोगी को गर्म रखने की आवश्यकता होने के कारण उसके कपडों को शीघ्र बदल देना चाहिये। अनावश्यक

रूप से कपड़ो को न फाड़ना चाहिए किन्तु उनको हटाने के उद्देश्य से कपड़ो को काटने मे भी हिचकिचाना नही चाहिये।

उपचार -

किसी भी दशा का कारण मौजूद होने पर उस कारण को अलग कर देना चाहिये। उदाहरणस्वरूप यदि गले मे फाँसी लगी हुई है तो उस फाँसी को तुरन्त काट देना चाहिए। रोगी के जीवन की रक्षा करने, उसकी बिगडी दशा को सुधारने डाक्टर के आने तक रोग का उपचार करने का काम प्रथम सहायक होता है। साँस न आने पर, अधिक रक्त बहने पर और सदमा लग जाने पर तुरन्त उपचार करना चाहिए। रोगी को उसके घर, अस्पताल या किसी सुरक्षित स्थान पर ले जाने की व्यवस्था की जाय।

विद्यालय और प्राथमिक चिकित्सा—विद्यालय प्रागरण मे खेल-कूद के मैदान मे बहुधा ऐसी दुर्घटनाएं हो जाती है जिनका शीघ्र उपचार आवश्यक हो जाता है। और ऐसे समय स्कूल डाक्टर का स्कूल में उपस्थित न होने पर बालको की मृत्यु तक हो जाती है। अत प्रत्येक स्कूल डाक्टर को अध्यापकों के लिये ऐसे डिटेल्ड इन्स्ट्रक्शन्स दे देने चाहिए कि वे आवश्यकता पड़ने पर बालको को प्राथमिक चिकित्सा दे सकें। प्रत्येक अध्यापक प्राथमिक चिकित्सा मे प्रशिक्षण ले यह [illegible]

[illegible] पते, टेलीफून नम्बर आदि का विवरण पत्र प्रधानाध्यापक के दफ्तर मे सदैव टगा होना चाहिए जिनको दुर्घटना होते ही बुलावा भेजा जा सके।

बालक को प्राथमिक चिकित्सा देने के बाद बच्चे की दुर्घटना के विषय मे उसके माता पिता को अथवा अभिभावको को अत्यन्त सावधानी से सूचना देनी चाहिए। बीमार और चोट खाए हुए बालक को कभी भी उसके घर अकेला न भेजा जाय। उस बालक के साथ किसी न किसी व्यक्ति को अवश्य कर दिया जावे।

यदि बालक का घरेलू डाक्टर है तो उस डाक्टर को तुरन्त सूचना दी जाय और बालक को उसके हवाले कर दिया जाय। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक बालक के family physician का नाम पता विद्यालय के आलेख पत्रो मे दर्ज होना चाहिए। यदि ऐसा न हो तो बालक के माता-पिता को परामर्श देने वाले सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति मे सम्पर्क स्थापित किया जाय जो बालक को घर पर देखभाल कर सके।

विद्यालय को ऐसी स्थिति मे केवल प्राथमिक चिकित्सा ही देनी है। पूर्ण उपचार का काम उसका डाक्टर करेगा विद्यालय नहीं।

प्राथमिक सहायता के लिए आवश्यक वस्तुयें

Q. 3. What necessary things would you keep in the First Aid Box and why ? *(L. T. 1948)*

Ans. प्राथमिक सहायता देने के लिए प्रथम सहायक को कुछ सामग्री की आवश्यकता पड़ती है [illegible]
लिया [illegible]
चिकित्स [illegible]
रहना च [illegible]
मे, प्राथमि [illegible]
सकती हैं—

(१) [illegible]
(२) [illegible]
(३) [illegible]
(४) [illegible]

को ही टूटे अंग का सहारा देने के लिये प्रयुक्त किया जाता है। खपच सदैव टूटे अंग से कुछ बड़ी होनी चाहिए नहीं तो हड्डी का एक सिरा निकला हुआ रह जायगा और टूटा हुआ अंग अपनी ठीक स्थिति मे नहीं रह सकेगा।

टूरनीकेट—रक्तस्राव को रोकने के लिये रक्त धमनी के कटने के पर रक्तस्राव के स्थान से हृदय की ओर तथा शिरा के कटने पर हृदय के विपरीत दिशा की ओर टूरनीकेट (Tourniquet) बाँधी जाती है। एक रूमाल के दोनों सिरों पर दुहरी गाँठ लगाकर एक एक लकड़ी, या पेंसिल या पैन उस गाँठ में डाल दिया जाता है। इसको उस स्थान पर इस प्रकार मोड़ते जाते हैं कि खून का बहना बन्द हो जाय।

विद्यालय में होने वाली दुर्घटनायें और उनकी प्राथमिक चिकित्सा

Q 4. What first aid will you give in the following cases? *(B T 1957)*

(a) Electric shock *(L T 1956)*
(b) Snake bite
(c) Insect Stings
(d) Mad dog-bite
(e) A boy whose clothes have caught fire
(f) Bleeding
(g) Nose bleeding *(L T 1957)*
(h) Disclocation of the elbow *(B T 1955)*
(i) Fracture of the lower jaw
(j) Fracture of ribs *(L. T 1957)*
(k) Fracture of thigh bone and collar bone *(L T 1955)*
(l) Fracture of shin bone on football field
(m) Sprains *(L T 1957)*
(n) Fainting
(o) Drowning *(L. T. 1955)*
(p) Foriegn bodies in eare, eye, throat and nose *(B. T. 1957)*

(अ) बिजली का धक्का —इस दुर्घटना के समय बड़ी शीघ्रता एवं बुद्धिमानी से कार्य करने से मनुष्य की जान बच सकती है, विशेषकर जबकि पीड़ित मनुष्य बिजली के खम्भे आदि से चिपका गया हो और कहीं बचाने वाला भी अज्ञानता से न चिपक जावे। ये दुर्घटनाएँ प्राय घरों मे या कार्यालयों मे (जहाँ बिजली का वोल्टेज २५० से कम होता है) या कारखानों में जहाँ वोल्टेज ५०० तक होता है अधिक होती हैं।

चिपके हुए मनुष्य को छुड़ाने से पहले बिजली का प्रवाह (Current) को मूल स्थान से बन्द कर देना चाहिये। बिजली का प्रवाह (Current) बन्द करना यदि किसी कारण सम्भव न हो तो निम्न प्रकार से कार्य करना चाहिये।

(अ) ५०० वोल्टेज की बिजली :—बचाने वालों को सूखी बिजली अवरोधक वस्तु जैसे सूखे रबर के दस्ताने रबड़ की टोपी, रबर का कोट या वस्त्र पहन लेना चाहिये। पीड़ित मनुष्य के शरीर या भीगे कपड़ों को न छूना चाहिये। किसी सूखे हुए लकड़ी के डण्डे, जैसे हाकी या सूखी रस्सी बीच मे डाल कर उसे छुड़ाना चाहिये। छतरी में लोहा होने के कारण उसे प्रयोग में नहीं लाना चाहिये। छुड़ाते समय रबर की चटाई बरसाती, कम्बल या सूखी दरी, कालीन या तख्ते पर खड़े रहना चाहिये। जहाँ बिजली तार द्वारा आती हो तो प्लग (Plug) को निकाल देना चाहिये या तार को खींचकर तोड़ देना चाहिये। किन्तु यह तार चाकू या कैंची से न तोड़ा जाय।

(ब) ५०० से अधिक वोल्टेज की बिजली की घटनाएँ बहुत भयकर होती है। ऐसी दशा में पीड़ित मनुष्य चिपका हुआ नहीं मिलता वरन् कन्डक्टर के पास गिरा हुआ मिलता है। ऐसी अवस्था मे बिजली के काम को जानने वालों की ही सहायता लेनी चाहिये लेकिन बिजली प्रवाह को तोड़ देने के बाद कोई भय नहीं रहता। लेकिन अज्ञानी पुरुष नहीं जान सकता कि बिजली प्रवाह टूटा है या नहीं। पीड़ित पुरुष से दूर रहकर ऊपर लिखी रीति से ही उसे बचाने का प्रयत्न करना चाहिये।

मामूली घरेलू रबर के दस्ताने बिल्कुल बेकार होते हैं अतः उनका उपयोग न किया जाय और न बिजली के काम न जानने वाले को पीड़ित व्यक्ति को बचाने का प्रयत्न किया जाय क्योंकि बचाने वाले की भी जान जाने का डर रहता है।

बिजली का मारा हुआ व्यक्ति बेहोश रहता है उसकी सास बद हो जाती है कभी-कभी वह जल भी जाता है, इस प्रकार के रोगी का उपचार नीचे दिये हुए तरीका से किया जाय। यदि रोगी की सास बद हो गई है तो निम्न प्रकार से सास दिलाने का प्रयत्न करना चाहिये क्योंकि बिजली का मारा हुआ व्यक्ति बेहोश होता है और उसकी सांस भी बद हो जाती है। बड़ी बिजली की दुर्घटना से रोगी बहुत जल भी जाता है।

हर प्रकार के बिजली से पीडित रोगियो का उपचार निम्न प्रकार से किया जा सकता है।

(१) साँस बन्द रोगी को तत्काल बनावटी साँस देनी चाहिये।
(२) साँस आ जाने पर जले हुए अग का उपचार कीजिये।

बनावटी साँस देने की दो रीतियाँ काम मे आती है। जहाँ पर शेफर की रीति का उल्लेख करना पर्याप्त है।

(अ) शेफर की रीति।
(ब) सिलवेस्ट की रीति।

पहली रीति मे रोगी को औंधा करके इस प्रकार लिटा दिया जाता है कि पीठ ऊपर रहती है, हाथ सिर के ऊपर की ओर फैले रहते है और सिर एक ओर घमा रहता है ताकि मुख और नासिक पृथ्वी से अलग रहे। रोगी के कपडे ढीले करके जीभ बाहर निकाल दी जाती है। प्राथमिक चिकित्सा (First Aider) रोगी के सिर की ओर अपना चेहरा करके अपने घुटने के बल रोगी की कमर के कुछ नीचे उसके एक ओर बैठ जाता है। वह अपनी ऐडियो पर बैठकर रोगी की पीठ रप रीढ़ की हड्डी को दोनो तरफ अपने दोनो हाथ उसकी कमर पर इस प्रकार रखता है कि दोनो कलाइयाँ मिल जाती है और दोनो अगूठे ऊपर की ओर अगुलिया बाहर की ओर जमीन की तरह रहती हैं। इसके बाद वह अपनी कोहनी को बिना मोडे हुए अपने शरीर को इस प्रकार आगे उठाता है कि उसकी जाँघे व टाँगे घुटनो पर एक सीध मे हो जाता है और हाथ भी कुहनियो पर एक सीध मे होते हैं। इस प्रकार उसके शरीर का सारा बोझा रोगी की कमर पर पड़ता है। इस दबाव मे कारण फेफड़ो की वायु बाहर निकलती है और उच्छ्वास-क्रिया आरम्भ होती है।

इसके बाद वह अपने शरीर को धीरे-धीरे इस प्रकार उठाता है कि उसका भार रोगी के ऊपर नही पडता। ऐसा करने से पेट के सारे अग फिर से अपनी जगह पर जाकर मासशिरा को ढीला करते हुए अन्दर साँस लेने मे सहायक होते हैं। ये दोनो क्रियाएँ बडी सावधानी मे १ मिनट मे १२ बार की जाती है। यह क्रिया धैर्यपूर्वक तब तक की जाती है जब तक स्वाभाविक क्रिया प्रारम्भ न हो जाय।

(ब) सदमा : सदमे मे नाडी सस्थान पर प्रभाव पडता है। इसमे नाडी जाल-क्रम की दशा शिथिल पड जाती है। इसके कारण अचानक दुर्घटना, बिजली के शरीर मे प्रवेश करने तथा भीषण बीमारी के कारण उत्पन्न हो जाती है।

लक्षण—(१) सदमा लगने से शरीर एक दम शिथिल पड जाता है।
(२) मांस-पेशियाँ तथा स्नायु निर्जीव-से हो जाते हैं।
(३) रोगी काँपता है और ठण्ड का अनुभव करता है।
(४) रक्त का दबाव कम हो जाता है।
(५) नाड़ी की गति और श्वास कमजोर और हल्की पड़ जाती है।

उपचार :

(१) इसके निराकरण हेतु रोगी को निरन्तर बिस्तर मे कम्बल तथा गरम पानी की थैली के प्रयोग से गरम रखना चाहिए।
(२) यदि रोगी बचेत है तो उसे फर्श पर आराम की स्थिति मे लिटा देना चाहिए।

(३) यदि सचेत हो तो उसे पीने के लिये गरम चाय, दूध या काफी देनी चाहिए।

(४) तुरन्त डाक्टर को सूचित करना चाहिए।

(स) 'सांप के काटने पर'

को सांप ने काट लिया है तो निम्न उपचार किया जाना चाहिए—

(१) सांप ने शरीर के जिस भाग को काटा हो सबसे प्रथम उस भाग से हृदय की ओर को एक मजबूत पट्टी बांध देनी चाहिए क्योंकि रक्त का बहाव हृदय की ओर को जाकर सारे शरीर को दूषित कर देता है। बांध बांधने से रक्त संचार रुक जावेगा।

(२) घाव के स्थान को तेज तथा नये ब्लेड से काट देना चाहिये जिससे जहरीला पदार्थ रक्त के साथ बाहर निकल जाय। काटने मे यह ध्यान रखना चाहिए कि नाडियो पर किसी तरह का घाव न हो जाय। इसलिये काटने मे ब्लेड को सीधा चलाना चाहिए।

(३) यदि मुँह मे कोई कटा हुआ भाग न हो तो होठो से घाव को चूस कर रक्त बाहर फेंक देना चाहिए, जहां तक हो सके घाव से सभी रक्त बाहर निकल जाना आवश्यक होता है।

(४) घाव को पोटाश के चूर्ण से साफ कर लेना चाहिये जिससे उसके आस-पास कोई विकार न फैल सके।

(५) घाव को किसी गरम वस्तु जैसे गरम लोहा तीव्र अम्ल जैसे शोरे का अम्ल आदि जैसे जला देने से भी लाभ होता है।

(६) उत्तेजक के रूप मे साल वोलेटायल रोगी को देना लाभ दायक होता है। इसके स्थान पर ब्रांडी का प्रयोग भी किया जा सकता है।

(७) जिस व्यक्ति को सांप ने काटा हो उसको सोने नही देना चाहिए क्योकि सोई अवस्था मे जहर का प्रभाव अधिक पडता है।

(८) घायल व्यक्ति का जहर की विपरीत जहर का इन्जेक्शन दे दो।

(९) डाक्टर को खबर कर दो।

विषैले सांप का काटना (Snake Bite)

लक्षण—विषैले सांप कई प्रकार के होते हैं किन्तु इसकी खास दो जिरमे हैं। वाइपराइन (Viperine) और कोलूब्राइन (Colubrine)। पहले वश मे रसल, पिट, ऐविस वैरीनाटा तथा दूसरे वश में कोबरा, कोमन कोबरा और क्रेट होते हैं। दोनो प्रकार के सांपो का विष भिन्न प्रभाव डालता है।

र होता है इसलिये
खून को जमने नही
, कमजोरी होनी है
को खाल गलकर
गिर जाती है, गोश्त सडने लगता है, शरीर का भाग सुन्न नही होता।

कालूब्राइन के काटने पर दर्द बहुत होता है तबीयत घबराती और कै हो जाती है। टाँगें थोड़ी देर मे सुन्न हो जाती है। सुन्नपन जल्दी मे मस्तिष्क की ओर चलने लगता है। मुँह के पट्टे सुन्न हो जाते हैं। बूँद बूँद कर मुँह से लार गिरने लगती है आंखो की पुतलियाँ सिकुड़ जाती हैं। सांस का आना-जाना शीघ्र बन्द हो जाता है। यदि आराम होता है तो पूर्ण आराम होता है।

उपचार :

(१) डाक्टर को बुला भेजो। तुरन्त सांप को पहिचानो यदि सांप जहरीला है तो

जहर को शरीर मे प्रवेश करने से रोकने का उपाय करो और जहाँ तक हो सके जहर को मार दो।

(२) यदि बाँह या टाँग मे काटा है तो तुरन्त धमनी और शिराओं मे बन्धन के द्वारा खून का बहना बन्द कर दो। यह बन्धन आवश्यकतानुसार बाँह के ऊपरी भाग मे बाँधो। बधन घाव और हृदय के बीच मे रहे।

२० मिनट तक बधन को अपनी जगह पर रखना चाहिये। एक मिनट के लिये उसे ढीला करके फिर कस दो। डाक्टर के आने तक बार-बार यही करते रहो।

(३) बधन बाँध चुकने पर खाल पर लगे हुए जहर को छुटाने के लिये घाव को फौरन पोटेशियम परमैंगनेट (Potassium Per Manganete) के घोल से धो डालो। काटे हुए स्थान पर $\frac{1}{2}$" गहरा घाव किसी चाकू या उस्तरे से कर डालो फिर इस घाव में P. P. के दाने जहर को मारने के लिए मलो। यदि खून अधिक निकलने लगे तो उसे रोक दो।

(४) रोगी को गर्म रखो और पूरा आराम पहुँचाओ।

(५) यदि वह निगल सके तो तेज कहवा, गर्म चाय या दूध पिलाओ।

(६) रोगी की हिम्मत बाँधे रहो क्योंकि डर के कारण वह घबरा उठता है और उसकी हालत और खराब हो सकती है।

(७) यदि साँस का आना-जाना बद हो जाय तो कृत्रिम रीति से साँस दिलाओ।

(प) बर्र, ततैया और बिच्छू का काटना (Insect stings)

बर्र, ततैया और बिच्छू के काटने पर उनके डको को निकाल देना चाहिये। उसके बाद उस स्थान पर स्पिरिट या पानी मे घुला हुआ नौसादर (Ammonium Sulphate) या कपड़े धोने के शोरे को पानी मे घोलकर लगाना चाहिये।

(फ) पागल जानवरों का काटना—कभी-कभी पागल जानवर जैसे कुत्ते, लोमड़ी, सियार रास्ता चलते हुए बालको को काट लिया करते हैं और इस प्रकार अपना रोग उनमे फैला देते हैं। पागल कुत्ते की सीधी-साधी पहचान है उसका पानी से डरना। उसको पानी पीने मे भी कष्ट होता है। उसके काटते ही उसके रोग के जीवाणु (Virus) नाड़ियों द्वारा रोगी के केन्द्रीय नाड़ी मडल (Central Nervous System) मे प्रवेश कर जाते हैं और रोगी की उचित चिकित्सा न होने पर उसकी मृत्यु भी हो जाती है। इस रोग की चिकित्सा के लिये रोगी को तुरन्त किसी अस्पताल मे ले जाना चाहिये।

कुत्ते द्वारा काटे हुए घाव को तेज चाकू से खुरचकर विषाक्त रक्त को निकाल देना चाहिये। उसमे पोटेशियम परमैंगनेट भरकर घाव के ऊपर हृदय की ओर बाँध देना चाहिये। रोगी को शीघ्र ही डाक्टर के पास ले जाकर इन्जेक्शन लगवा देना चाहिये। उसे थोड़ी सी शराब भी पीने के लिये दी जा सकती है।

(ज) लड़के या लड़की के कपड़े पर आग लग जाने पर—प्रायः आग लगने से बालको मे दुर्घटनायें हो जाया करती हैं। इससे शुष्क गर्मी के कारण त्वचा जल जाती है। जलने पर शरीर मे निम्न लक्षण दिखलाई पड़ते हैं—

(१) त्वचा लाल पड जाती है।
(२) शरीर पर फफोले पड़ जाते हैं।
(३) तन्तु नष्ट हो जाते हैं।
(४) शरीर में असह्य पीडा होती है।
(५) कपड़े जिनमे आग लग जाती है अकसर शरीर मे चिपक जाते हैं।

उपचार :

(१) यदि कपड़ों पर आग लग जाय तो रोगी को कम्बल मे लपेट देना चाहिये। यदि तुरन्त ही कम्बल लपेटा जाता है तो रोगी पर अधिक असर नहीं होता है।

(२) यदि हाथ, पैर, मुख आदि जल जावें तो तुरन्त दवा लगाई जा सकती है। यदि कपड़े त्वचा पर चिपक गये हो तो सर्वप्रथम कपड़े को अलग करने की चेष्टा करनी

चाहिये। जले स्थान के आस-पास के कपड़ों को सावधानी से कैंची से काट देना चाहिये। घाव पर चिपके वस्त्रों को नारियल या तिल के तेल से भली प्रकार भिगो कर सुगमता से अलग किया जा सकता है।

(३) यदि छाले पड गये हों तो उनको फोड़ना न चाहिये।

(४) घाव पर बरनाल या साधारण बोरिक मल्हम लगाना चाहिये।

(५) उक्त मल्हम के अभाव मे तेल जैतून या नारियल का तेल लगाना चाहिये। नारियल का तेल और चूने के पानी का बराबर मात्राओ मे लेकर तथा भली प्रकार फेंट कर लगाने से जले हुए भाग मे ठडक पहुँचती है तथा इससे लाभ भी शीघ्र होता है।

(६) इसके अतिरिक्त उबला हुआ आलू महीन पीस कर लगाने से जले हुए स्थान पर ठडक पहुँचती है। यदि हाथ पैर जल गये हो तो इसी लोशन मे लिंट के टुकड़े डुबो कर रखने चाहिये।

(७) कार्बोलिक लोशन या सोडा घुले गर्म पानी मे कपडा रख कर जले स्थान पर लगाने से भी ठडक पहुँचती है।

(८) जलने का हृदय पर बुरा प्रभाव पडता है। हृदय के सदमे को कम करने का उपाय किया जाता है। सदमे को दूर करने के लिये रोगी को गरम दूध पिलाना चाहिए। अधिक गहरे सदमे मे ब्रांडी का प्रयोग किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त जले बालक के शरीर को सदा गर्म रखना चाहिये। कपडो पर आग लगने पर दरी या कम्बल से लपेट कर रोगी को जमीन पर लिटा देना लाभदायक होता है।

(ह) 'अत्यधिक रक्त स्राव'

इस *स्थिति* मे किसी प्रकार की कोई रक्त नलिका घायल हो जाती है। इस नलिका के घायल होने से रक्त बहने लगता है। इसका उपचार इस बात पर निर्भर करता है कि कौन सी नली केशिका, शिरा या धमनी कट गयी है।

केशकीय रक्त स्राव—इसमे शुद्ध तथा अशुद्ध दोनो प्रकार का रक्त होता है। यह अत्यन्त साधारण और *सामान्य* रक्तस्राव है। इनमे रक्त धीरे-धीरे बहता है। इसके अतिरिक्त शिरा का बहने *वाला* रक्त अशुद्ध तथा नीलापन लिये गहरा लाल रग होता है। यह रक्त लगातार तेजी से बँधी हुई धार मे घाव से हृदय की ओर को निकलता है। धमनी का रक्त चमकीला लाल, शुद्ध और उछलता हुआ बाहर निकलता है। इसके उछलने की गति दिल की धड़कन के बराबर होती है। रक्त घाव के दिल के पास वाले भाग की ओर न निकलता है। इसके उपचार निम्न हैं—

(१) रुधिर बहने वाले अग को ठण्डे पानी मे डुबाना चाहिए। इसके प्रभाव से रुधिर का बहना कम होता है।

(२) घाव के ऊपर एक स्वच्छ कपड़े को ठण्डे पानी मे भिगो कर शीघ्र बांध देना चाहिये।

(३) घाव के दिल के परे की ओर वाले भाग मे टूर्नीकेट बाँध देना चाहिए।

(४) शिरा के रक्तस्राव मे घायल भाग को नीचे की ओर करना चाहिए और धमनी के रक्तस्राव मे हृदय की ओर टूर्नीकेट बांधना चाहिए।

[illegible] या

र [illegible] नो

दोनो से। अ [illegible] दि

ही एक साथ [illegible] है तो हृदय की धड़कन के साथ झटके के साथ बाहर निकलता है। यह धमनी त्वचा के पास होती है तो हृदय की धड़कन के साथ झटके के साथ बाहर निकलता है। शिरा से निकला हुआ रक्त गहरे लाल रग का होता है और लगातार बहती हुई धार मे बहता है। धमनी अथवा शिरा का मिला-जुला रक्त घाव की तली से उमड़ता हुआ निकलता है। इस रक्त-स्राव को विषम रक्तस्राव कहते हैं।

कभी-कभी पुर्टल केशिकाओ से लगातार वेग से खून निकलता रहता है या धीरे-धीरे रिसता है।

विषम रक्त—स्राव के रोकने के साधारण नियम—

(१) रोगी को अनुकूल आसन में बैठा लिया जाय बैठी या लेटी दशा में रक्त-स्राव कम होता है। अतः उसे लिटा दिया जाय।

(२) खून बहते हुए अंग को जरा ऊपर उठा दिया जाय।

(३) घाव को खोलिये और जरूरी कपड़े हटा दीजिये।

(४) यदि घाव के ऊपर थक्का बन गया है तो उसे न छेड़ा जाय।

(५) घाव के खून निकलते हुए स्थान पर एक गद्दी रखकर उसके ऊपर एक या दोनों हाथों के अंगूठे से सीधा दबाव डाला जाय। यदि रक्तस्राव वाली जगह न दिखाई दे तो यदि घाव में कांच आदि न होने पर घाव वाले सारे अंग को ही दबा देना चाहिए। ऐसा करने से थोड़े समय के लिये खून बहना बन्द हो सकता है। फिर धीरे-धीरे दबाव ढीला करके रक्तस्राव के स्थान दिखाई पड़ने पर फिर अंगूठे का दबाव डाला जा सकता है।

(६) कृमिनाशक दवा लगाई जाय।

(७) यदि अंगूठे से रक्तस्राव न बन्द हो तो घाव के ऊपर २ या ३ इंच हटकर एक कड़ी पट्टी बांध दी जाय। इस काम के लिये रबड़ की पट्टी ४ फीट लम्बी, २॥ फीट चौड़ी बहुत उपयोगी होती है। हर २० मिनट के बाद इसे ढीला करते रहना चाहिए। पट्टी बांधने का समय लिख लिया जाय।

(८) यदि धमनीय रक्तस्राव उपयुक्त साधनों से भी न रुक सके और न रबड़ की पट्टी लग ही सके तो ऐसी दशा में साधारणत दबाव स्थानों (Pressure points) पर दबाव डालकर रक्त स्राव रोका जा सकता है।

जब रक्तस्राव बन्द हो जाय तब रोगी को गरम रखिये और उसको गरम चाय, या काफी मक्कर डालकर पिला दीजिए।

दबाव के स्थान निम्नलिखित हैं—

(१) वायु नली के दोनो ओर उस गड्ढे मे (Cartoid pressure point) है जहाँ स्वर यन्त्र (Larynx) के निचले भाग और स्टरनो मेस्टोइड (Sterno Masterd) मांस-पेशी है।

(२) हानली की हड्डी के ऊपर गड्ढे मे (Subclabrion pressure point)।

(३) बाँह की धमनी का दबाव बिन्दु (Brachial pressure point)।

(४) जाँघ की धमनी का दबाव बिन्दु (Femoral pressure point)।

सूक्ष्म रक्तस्राव मे घाव को खोलकर जरूरी कपड़ों को हटा देना चाहिये। घाव पर दवा लगा दीजिये। गद्दी या पट्टी लगाकर जोर से दबा दीजिये।

(ख) नाक से रक्तस्राव (Bleeding from the nose)—को रोकने के नियम—

(१) किसी खुली खिड़की के सामने वायु के बहाव की ओर करके घायल को इस प्रकार बैठाओ कि उसका सिर कुछ पीछे की तरफ झुका रहे और हाथ सिर के ऊपर उठे रहें।

(२) गर्दन और छाती के चारो ओर के कपड़े खोल दीजिये।

(३) घायल का मुँह खुलवा दीजिये जिससे वह नाक से सांस न ले।

(४) पैरो को गर्म पानी मे रखकर नाक पर और कालर के पास की रीढ़ पर ठण्डक पहुँचाइये।

(५) घायल को नाक मत छिनकने दीजिये।

भीतरी अंगो का रक्तस्राव—भीतरी अंगो से चोट, पेड़ू या पसली की हड्डी के टूट जाने, गोली लग जाने से रक्तस्राव होने लगता है। वह ऐसे रोग से भी होने लगता है जिसका कारण मालूम नहीं होता।

फेफड़ों से खांसी के साथ लाल चमकदार और झागदार रक्त निकलता है। आमाशय से खून कै के साथ निकलता है। ऊपरी आंतों से मैले मे खून मिला हुआ कोलतार के रंग का पाखाने के साथ होता है। नीचे की आंतो से खून बिलकुल ताजा रंग का लाल होता है वृक्कों से खून मूत्र

के साथ निकलता है। पेडू में चोट लग जाने पर मूत्र निकलता नहीं है और निकलता भी है तो मूत्र से मिला हुआ होता है। यकृत प्लीहा और पैन्क्रीयाज से रक्त बाहर नहीं निकलता है भीतर ही भीतर रहता है किन्तु यह रक्त-स्राव अत्यन्त भयानक होता है।

भीतरी अंगों से रक्त प्रवाह के उपचार—

(१) जल्दी से जल्दी रोगी को अस्पताल पहुँचाओ।
(२) रोगी को कुछ भी खाने को न दो।
(३) यदि रक्त प्रवाह का स्थान मालूम हो तो बरफ की थैली या ठण्डे पानी की गद्दी रख दो।
(४) सदमे का इलाज करो।

(ट) कोहनी की हड्डी का हट जाना (Dislocation of the Elbow)

लक्षण—जोड़ मे या उसके पास निरन्तर पीडा होना, अंग का बेकार हो जाना, जोड़ का अचल होना, जोड का कुरूप हो जाना, जोड में सूजन, हड्डी का हटना, और हड्डी का टूट जाना ये दोनों प्रकार की चोटो का भेद नीचे दिया जाता है।

[illegible] जोड़ चलाया नहीं [illegible]। हड्डी टूटने पर [illegible]। टूटने पर हड्डी [illegible]।

उपचार—टूटी हुई हड्डी को ठीक करने का प्रबन्ध करो।

[illegible] को आरम्भ से अस्पताल [illegible] राम से चारपाई पर लेटने [illegible]

(ठ) नीचे के जबडे की हड्डी का टूटना (Fracture of the Lower Jaw)

कारण—यह चोट सदैव सीधी चोट लगने से होती है। प्राय यह फैक्चर ऐसा होता है कि मुँह के अन्दर भी घाव हो जाता है। बहुधा एक ओर की ही हड्डी टूटती है किन्तु दोनो ओर की हड्डियाँ भी टूटा करती हैं।

चिन्ह—इस टूट के निम्नलिखित चिन्ह हैं—

बोलने, जबडे हिलने से या निगलने से पीडा बढ जाया करती है। दाँत टेढे-मेढे हो जाते हैं। जबडे को सीधा करने या सम्भालते समय रोगी को हड्डियो के टूटने की किरकिराहट मालूम पड़ती है। राल में रक्त मिला होता है।

उपचार

(१) रोगी को बोलने मत दो।
(२) रोगी को आगे झुकाकर अपनी हथेली को टूटी हुई हड्डी के ऊपरी जबडे पर धीरे से दबाओ।
(३) जबडे की पट्टी (Barrel bandage for Jaw) बाँधिये।
(४) रोगी को कै आने पर पट्टी खोल दीजिये, उसका सिर एक ओर घुमा दीजिये लेकिन अपनी हथेली का सहारा टूटे जबडे को देते रहिये, कै के बाद पट्टी फिर बाँधिये।

(ड) पसलियों की टूट (Fracture of ribs) छटी, सातवीं, आठवी, और नवी पसलियाँ बहुत टूटती है और टूट भी प्रायः सीने की हड्डी (Breast bone) कशेरुक दण्ड (Spine) के बीच ही हुआ करती है।

पसलियों की टूट निम्न प्रकार की होती है—(क) सीधी चोट—इस चोट मे हड्डी के टूटे हुए सिरे भीतर चले जाते हैं और यह पेचीदा टूट होती है जिससे फेफडे आदि भीतरी अंगों में भी कभी-कभी चोट आ सकती है और बाईं ओर की पसलियो के टूटने से प्लीहा (Spleen) मे घाव हो सकता है। (ख) अप्रत्यक्ष चोट।

टूट के चिह्न :

टूट की जगह एक विशेष चुभने वाली पीड़ा होती है जो खांसने और गहरी सांस लेने पर बढ़ जाती है पीड़ा के कारण रोगी छोटी-छोटी सांस लेता है। कभी-कभी हाथ रखने पर टूट के स्थान पर किरकिराहट मालूम होती है।

उपचार —(१) सादी टूट में दो चौड़ी पट्टियों को सीने के चारों ओर सहारा देने के लिये मजबूती से इस प्रकार बांध दिया जाय कि पहली पट्टी का बीच का भाग चोट के ठीक ऊपर और दूसरी पट्टी का टूट के ठीक नीचे रहे। नीचे की पट्टी ऊपर की पट्टी को लगभग आधी ढांक रहे। गाठें तो सामने शरीर की दूसरी तरफ से पड़नी चाहिए।

(२) रोगी को बाहर सांस निकालने दीजिये।

(३) एक लम्बी झोल (Sling) में बांह को चोट की ओर लटका दीजिये।

(ड) जांघ की या पिछली हड्डी की टूट (Fracture of the thigh bone shin bone) जांघ की हड्डी नितम्बास्थि (Hip bone) में चलकर घुटने के जोड़ तक पहुंचती है। इसकी मूठ, गोल और आगे की ओर झुकी होती है। इसके ऊपर का सिरा गोल होता है। यह हड्डी नितम्बास्थि (Hip bone) में ठीक बैठ जाती है और नीचे का सिरा चौड़ा होकर घुटने की हड्डी के जोड़ को बनाता है। लक्षण— यह हड्डी किसी भी स्थान में टूट सकती है। इसकी गर्दन बूढ़े लोगों में तनिक सी चोट में ही टूट जाती है। अग की लम्बाई २" से ३" तक बढ़ जाती है। अग बाहर की ओर गिर जाता है। चोट लगने पर सदमा (Shock) कभी-कभी लग जाता है। अतः यह चोट गम्भीर चोट मानी जाती है।

उपचार ·

(१) रोगी के पैर और टखने को सावधानी से पकड़ो।
(२) चुटैले अग को धीरे-धीरे अच्छे अग के बराबर लाने की कोशिश करो।
(३) पैर और टखने के बचाव या जांघ और टांग के बचाव के लिये गद्दी लगाओ। जांघ की हड्डी की टूट ४ पट्टियां तीन जगह जांघ में और एक पट्टी दोनो पैरो को एकसा बांधे रखने के लिए लगादो।
(४) रोगी को दूर ले जाने के लिये Splints का प्रयोग करो।

दोनो जांघ के टूटने पर सात पट्टियां सीने के नीचे बांधिये, नितम्ब के नीचे, टखनो और पैरो के नीचे, दोनों जांघ टूट के ऊपर, दोनो जांघें टूट के नीचे, दोनों टांगो के नीचे, दोनों घुटनो के नीचे—बांध दी जाय रोगी के दोनो ओर बगल से पट्टी लगाई जाय।

(त) टांग की हड्डी की टूट—टांग मे दो हड्डी होती हैं एक टिबिया (Shin bone) और दूसरी अनुजघास्थि (Fibula) टिबिया घुटने से पैर के टखने तक होता है दोनो सिरों के जोड़ा के लिये बड़ी काम की है।

। तभी टूट के साधारण होती। टखने से २ या ३" रते है।

इस हड्डी के टूटने पर वही उपचार करना है जो जघास्थि के टूटने पर किया जाता है।

(थ) मोच आना (Sprain)—विद्यार्थियो के खेलते-कूदते समय जरा सा ध्यान चूक जाने पर कभी-कभी उनकी कुहनी, कलाई और टखने मे मोच आ जाती है। मोच आ जाने पर उस अंग का हिलना डुलना बन्द हो जाता है अत. सूजन और नीलापन आ जाता है बड़ा दर्द होता है। कभी-कभी भयकर मोच आने पर मूर्छा भी आ जाती है। मोच आने का कारण है ...र का झटका या अचानक घुमाव, ऐसे समय जोड़ के बन्धन फट जाते हैं या खिंच ...ते हैं।

...:

(१) अग को अचल दशा मे उठा हुआ आराम से रखिये।

(२) जोड खोलकर उस पर कसकर पट्टी बाँधिये ।
(३) उस अग पर बर्फ रखिये ।
(४) यदि हड्डी टूट का पता न लगे तो भी हड्डी टूट का ही उपचार कीजिये ।

मूर्च्छा (Fainting) .

कारण—वातसंस्थान (Cerebro spinal system) के सामान्य कार्यक्रम में बाधा पडने पर मूर्च्छा या संज्ञाहीनता (insensibility) की अवस्था हो जाती है । यह बाधा मस्तिष्क (brain) के रोग या चोट या शरीर के अन्य अंगो की चोट और अन्य कारणों से उत्पन्न हो सकती है ।

मूर्च्छा दो प्रकार की होती है अपूर्ण मूर्च्छा (Stupor) व पूर्ण मूर्च्छा (coma) । अपूर्ण मूर्च्छा मे जागने से व्यक्ति चेतन और पूर्ण मे अचेत रहता है। अपूर्ण मूर्च्छा मे रोगी आँख का गोला छूने पर पलक मारता है पूर्ण मूर्छा में नही । अपूर्ण मूर्छा मे टोर्च लाइट आँखो पर डालने से रोगी की आँख की पुतली सिकुडती है पूर्ण मे नही ।

उपचार

(१) दम घुट गई हो तो बनावटी श्वास दीजिए ।
(२) यदि साँस चलती हो तो रोगी को चित्त लिटाकर सिर एक ओर घुमा दिया जाय । ठोडी को नीचे दबा दो ताकि जीभ के पीछे गिरने से सास बन्द न हो । सामान्य रूप से मूर्च्छा की दशा मे चेहरे के पीलेपन पर रोगी के सिर और कन्धे को नीचा और नीचे के धड को ऊँचा रखो ।
यदि चेहरा सुर्ख या नीला हो तो सिर और कन्धों को ऊँचा रखो ।
(३) गर्दन सीने, और कमर के तंग वस्त्रो का निकाल दो ।
(४) दरवाजे, खिडकियां खोलकर भीड हटाकर स्वच्छ वायु आने दो ।
(५) मूर्छा के मूल कारण का उपचार करो ।
(६)
(७)
(८) ... रम
चाय और रक्त-स्राव होने पर कुछ न दो ।
(९) रोगी को सुलाने का प्रयत्न करो ।

अधिक गर्मी के कारण मूर्छा मे .

रोगी बेहोश हो जाता है उसका चेहरा, होठ और खाल सूख जाती है नाडी तेज चलने लगती है । साँस गडबड चलती है, शरीर का ताप ११०° तक चला जाता है ऐसी दशा मे यथा सम्भव बेहोशी के उपचार के नियमो को अपनाना चाहिये । रोगी को शीतल छाया मे ले जाकर पखा करना चाहिये । उसके सिर और मेरुदण्ड पर बर्फ की थैली लगाना चाहिये जब तक उसका ताप ९८·४° तक न आ जाय । उसके शरीर को ठंडे पानी मे अगोछा भिगोकर पोछते रहना चाहिये जब रोगी चेत मे आ जावे तब ठंडा पानी पिलाना चाहिये तब उसे अस्पताल भिजवा देना चाहिये ।

बेहोशी हो जाने पर

बेहोशी अचेतना का एक कारण है और इसका कारण मस्तिष्क मे दिल के ठीक से काम न करने से रक्त की कमी हो जाती है । रक्त के बहने के कारण पीडा, रक्त-स्राव आकस्मिक सदमा आदि रोग हो जाते हैं ।

लक्षण

(१) व्यक्ति का चेहरा पीला पड जाता है ।
(२) सिर मे रक्त-प्रवाह का अभाव हो जाता है ।
(३) बेहोश होने से पहले बेचैनी और घबराहट का अनुभव होता है ।
(४) माथे पर पसीना आ जाता है ।

(५) श्वासोच्छ्वास हलका पड जाता है ।
(६) नाड़ी की गति अशक्त और धीमी हो जाती है ।

उपचार :

(१) रोगी को भूमि पर चित्त लिटा कर उसके पैर ऊपर की ओर उठा देने से सुगमता पूर्वक रक्त सिर की ओर फिर से तेजी से दौड़ने लगता है ।
(२) शुद्ध और ताजी वायु देनी चाहिए ।
(३) कमरे की खिडकियाँ तथा दरवाजे खुले रखने चाहिये ।
(४) गर्दन तथा सीने पर के चुस्त कपडे ढीले कर देना चाहिये ।
(५) हाथ और पैरो मे गर्मी पहुँचनी चाहिये ।
(६) होश मे आने पर उसको उत्तेजक पदार्थ का सेवन कराना चाहिये ।
(७) नमक का घोल उपयुक्त और हितकर पेय है । इसके अतिरिक्त गरम दूध, काफी, रस आदि लाभप्रद हो सकता है ।

बालक का खेल के मैदान मे अचेतन होना

अकसर बालको मे इस तरह की शिकायत सुनने मे आती है । खेलते-खेलते बालक गर्मी के कारण अचेत हो जाते हैं, मुख्य रूप से गर्मी के मौसम मे अधिक गर्मी के कारण इस तरह की अवस्था प्राय देखने मे आती है । प्रत्येक अध्यापक को ऐसे बालको की चिकित्सा की ओर ध्यान देना चाहिये । इस स्थिति मे बालक के मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ता है जिससे वह चेतना खो बैठता है । इसके लिये निम्न उपचार किये जा सकते हैं—

(१) रोगी को जमीन पर चित्त लिटा कर उसके पैर ऊपर की ओर उठा देने से सुगमता पूर्वक रक्त सिर की ओर फिर से तेजी से दौडने लगता है । रक्त के दौड़ने से मस्तिष्क मे फिर से चेतना आ जाती है ।

(२) अचेतन बालक को साफ और खुली ताजी हवा दी जानी चाहिये ।

(३) यदि बालक को कमरे मे लिटाना हो तो कमरे की खिडकियाँ तथा दरवाजे खुले होने चाहिये ।

(४) गर्दन तथा सीने पर के चुस्त कपड़ो को ढीले कर देना चाहिये इससे शरीर को ताजगी मिलती है ।

(५) खेल के मैदान मे बालक को उसी स्थान पर लिटा कर और बालको को अलग करा देना चाहिये ताकि अचेतन बालक को शुद्ध वायु मिलती रहे ।

(६) हाथ पैरो पर गर्मी पहुँचानी चाहिए ।

(७) अचेतन बालक को नौसादर और चूना मिला कर सुँघाना चाहिए और मुँह पर ठण्डे पानी के छीटे मारने से रोगी को लाभ होता है ।

(८) अचेतना दूर होने पर कोई उत्तेजक द्रव पिलाना चाहिये । इन पदार्थों मे गरम दूध, काफी या गोश्त का रस प्रयोग किया जा सकता है ।

(९) तुरन्त ही डाक्टर को सूचित करना चाहिए ।

हंसली को हड्डी का टूट जाना :

खेल के मैदान मे अकसर हड्डी टूट जाती है । इनमे मुख्यतया हसली की हड्डी टूट जाती है । यह हड्डी अकसर धक्के की चोट से टूट जाती है । धक्का लगने पर बालक हाथ के सहारे जमीन पर शरीर का बोझ सँभालते हैं । शरीर का समस्त बोझ हाथ न सभाल सकने के कारण हसली की हड्डी टूट जाया करती है । निम्न पहिचान से यह ज्ञात हो जाता है कि हसली की हड्डी टूट गई है ।

पहिचान :

(१) जिस ओर हसली की हड्डी टूटती है उस ओर की बाहु बेकार हो जाती है तथा उसके द्वारा किसी प्रकार का कार्य नहीं हो पाता है ।

(२) घायल व्यक्ति इस ओर की बाहु का उठाने के लिये दूसरे हाथ का सहारा लेना है।
(३) टूटे हुए भाग पर अनावश्यक खिंचाव पडता है। [illegible] उपरोक्त रूप की हो
[illegible] यह सूचना मिल जाती
ाती है। [illegible] चार करना चाहिए।
[illegible] कि अमुक बालक की हसली की हड्डी टूट गई है। [illegible]

उपचार

(१) रोगी का कोट उतार कर वक्षस्थल के सभी ओर वस्त्र उतार देने से रोगी को आराम मिलता है।

(२) कपड़े की चौड़ी पट्टी बनाने के पश्चात् सीधी बिछाकर इसे एक ओर से लपेटना चाहिए। अच्छी तरह कड़ी लपेट कर एक छोटी गोल गद्दी तैयार की जानी चाहिये। जिस ओर हसली की हड्डी टूटी हो उसी ओर की बगल मे लगा देनी चाहिए।

(३) इसके बाद हसली की ओर वाली बाहु को कोहनी के स्थान पर मोड़ कर वक्षस्थल पर चिपटा कर रखा जाता है और इस स्थिति मे रखने के लिए सेंट जॉन पट्टी द्वारा गले से लटका दिया जाता है।

(४) इसके अतिरिक्त कोहनी के ऊपर चौड़ी पट्टी लाकर शरीर के दूसरी ओर बाँध दी जाती है।

कभी कभी दोनो ओर की हसली टूट जाती है तो इस स्थिति मे तीन तिकोना पट्टियो की आवश्यकता पडती है। तीसरी पट्टी बगल से निकाल कर दूसरे कन्धे के ऊपर बांध दी जाती है, घायल बालक को कुछ पेय उत्तेजक के रूप मे दिया जाना चाहिए।

बालक के पानी मे डूबने पर

तैरते समय या कुछ समय के लिये बालक के पानी के अन्दर रहने मे वह अचेत ही नही वरन् उसकी श्वास क्रिया तक अवरुद्ध हो जाती है, ऐसी स्थिति को डूबना कहते हैं। डूबने की स्थिति मे शरीर को ठण्ड लग जाती है और जल तथा जल मे पाये जाने वाले पदार्थ वायु नली मे चल जाते हैं।

उपचार—बालक के पानी मे डूब जाने पर उसका निम्न उपचार किया जाता है—

(१) डूबे हुए बालक के समस्त चुस्त कपड़ो को सावधानी से उतार लेना चाहिये।

(२) इस सम्बन्ध मे पूरी जानकारी कर लेनी चाहिये कि पानी मे निहित पदार्थ के द्वारा कही सास मार्ग अवरुद्ध न हो गया हो।

(३) इसके पश्चात् बालक के शरीर के ऊपरी भाग को नीचे की ओर झुकाना चाहिए और फिर कमर तक उठा कर कुछ क्षण तक उस स्थिति मे रहने देना चाहिए ताकि पानी पेट से बाहर निकल सके, श्वास क्रिया को सयत करने के लिये कृत्रिम श्वास का प्रबन्ध करना चाहिये।

इस कृत्रिम विधि मे पहिले वस्त्र उतार दिये जाते हैं, यदि वस्त्र उतार देने मे कठिनाई हो तो उनका ढीला कर दिया जाता है जिससे गर्दन तथा वक्षस्थल पर किसी प्रकार के कपड़े का दबाव न रहे, रोगी को पेट के बल लिटा दिया जाता है। फिर सिर पर करवट रखा जाता है, उसके हाथो को सिर की ओर फैला दिया जाता है। रोगी के नाक या मुँह मे मिट्टी या बालू आदि सांस रोकने वाली कोई वस्तु होती है उसे निकाल कर नाक और मुँह की सफाई करदी जाती है।

फिर चिकित्सक रोगी की कमर के समीप एक बगल घुटनो के सहारे बैठ जाता है। इसके बाद वह अपने हाथो को रोगी के पीठ पर निचली पसलियों के पास इस प्रकार रखता है कि उसके दोनो अगूठे पीठ के बीच मे रीढ के ऊपर मिलते हैं और अगुलियां फैली हुई तथा कुछ-कुछ कन्धो की ओर झुकी हुई रहती हैं, इसके बाद वह दोनों हाथों को कड़ा रखते हुये आगे की ओर झुकाता है जिससे रोगी की पीठ पर दबाव पडे, पीठ पर दबाव पडने से उसके फेफड़ो पर [illegible] पड़ता है जिससे फेफडो की हवा बाहर निकल जाती है।

अब चिकित्सक धीरे-धीरे ऊपर उठता है जिससे रोगी के ऊपर से उसके हाथों का दबाव हट जाता है किन्तु वह अपने हाथ उठा नही सकता है। इस प्रकार दबाव डालने और हटाने की क्रिया को एक भी गति से एक मिनट मे १४ या १५ बार किया जाता है। इस प्रकार धीरे-धीरे रोगी का श्वास चलने लगता है। उपरोक्त कृत्रिम श्वास क्रिया के अतिरिक्त और भी विधियाँ होती हैं जिनसे कि श्वास क्रिया पुनः चलने लगती है।

(४) जब श्वास आने लगे तो बालक को कम्बल मे लपेट कर गर्म पानी की थैलियो का उपयोग करना चाहिए, यदि रोगी पी सके तो उसे गरम चाय या काफी या गोश्त का शोरवा पीने को देना चाहिए।

(५) इस बात का मुख्य रूप मे ध्यान रखना चाहिए कि कही रोगी की सास फिर से बन्द न हो जाय, पुन श्वास अवरुद्ध होने की दशा मे फिर से कृत्रिम श्वास देना चाहिए।

(६) उपरोक्त उपचार करते समय ही डाक्टर की सहायता प्राप्ति के लिये उसको सूचना भेज देनी चाहिए।

आंख मे विजातीय पदार्थ (Foreign bodies in the eye) .

आंख मे कीडा, ककड, मिट्टी आदि के पड़ जाने पर उसे मलना नही चाहिए। जो कुछ पदार्थ आंख मे पड़ता है वह साधारणत. आंख के ऊपरी भाग मे ही रहता है इसलिए ऊपर के पलक को आगे खीचकर नीचे के पलक को उसके अन्दर करने की कोशिश करनी चाहिए ताकि आंख के बालो द्वारा वह वस्तु बाहर निकल जाय। यदि कई बार ऐसा करने पर वह वस्तु न निकले तो ऊपर के पलक को सावधानी से पलट कर साफ रुई या रूमाल की सहायता से उसे हटा दिया जाय यदि वह वस्तु अक्ष गोलक पर चिपक गई है तो उसे निकालने की चेष्टा नही करनी चाहिए। ऐसी दशा मे तुरन्त डाक्टर के पास रोगी को ले जाना चाहिए।

कान मे विजातीय पदार्थ

बालको के कान मे कभी-कभी अनाज के दाने, ककड आदि पड़ जाते हैं। कान मे सूजन आ जाती है अधिक बढ़ने पर यह सूजन मस्तिष्क पर प्रभाव डालने लगती है।

कान से विजातीय पदार्थ को निकालने के लिए महुए का तेल डालने से कान मे धंसी हुई वस्तु बाहर निकल आती है।

नाक मे विजातीय पदार्थ .

नाक मे विजातीय पदार्थ घुस जाने से नासिका मार्ग रुक जाता है। ऐसी दशा मे बच्चे को मुँह से श्वास लेने के लिये आदेश देना चाहिए। कभी-कभी दूसरे नथने को बन्द कर नाक छिनकने से भी नाक मे धसी हुई चीज बाहर निकल आती है।

गले में विजातीय पदार्थ

बच्चे मुँह मे पैसे, इकन्नी, चवन्नी आदि रख लेते हैं और जरा भी असावधानी पर ये वस्तुयें गले मे भीतर चली जाती हैं इससे उनका दम घुटने लगता है। ऐसी दशा मे बच्चे के मुँह को खोलकर उँगली से उस वस्तु को बाहर निकाल लेना चाहिए। यदि ऐसा करने पर भी वस्तु न निकले तो बालक के मुँह को नीचे झुका कर उसके दोनो कन्धो और पीठ के ऊपरी भाग पर थपथपाना चाहिए। यदि अब भी वस्तु न निकले तो बच्चे को पैर पकड़ कर उलटा कर देना चाहिए और पीठ थपथपाना चाहिए बेहोश होने पर उसे कृत्रिम श्वास देनी होगा।

कृत्रिम श्वास क्रिया (Artificial Respiration)

साधारण रूप मे जीवित रहने के लिए व्यक्ति अपने फेफड़ों द्वारा सांस लेता है परन्तु जब व्यक्ति पानी मे डूब जाता है तो उसके फेफड़ो तथा पेट मे पानी भर जाता है। ऐसी स्थिति मे फेफड़ो से सांस लेना कठिन हो जाता है। ऐसी हालत मे व्यक्ति को कृत्रिम श्वास दी जाती है जिससे व्यक्ति के शरीर से जल निकल जाय और वह फिर सामान्य रूप से श्वास ले सके।

मनुष्य के जीवन मे सांस लेने की क्रिया सदैव होती रहती है। सास के रोकने का अर्थ है मृत्यु, फिर भी हमारे जीवन मे कुछ ऐसी दुर्घटनाएँ हो जाती हैं जिनसे मनुष्य की श्वास क्रिया मे बाधा पड़ जाती है अथवा एकदम रुक जाती है। ऐसी अवस्था मे यदि रोगी को डाक्टरी सहायता

मिल जाय तो पुन उसका जीवन बच सकता है। यदि उसकी सास कुछ मिनट भी रुक जाय तो उसको मृत्यु हो जाने का भय होता है। सास रुकने की दुर्घटना में कृत्रिम विधि से फेफड़ों को फैलाकर तथा दबा कर उनमें वायु के भरने और निकालने की क्रिया करवाने की चेष्टा की जाती है। यही दो क्रियायें हमारे सांस लेने में भी होती हैं।

डाक्टरी सहायता प्राप्त करने में जितना समय लगता है उस बीच में सांसें बन्द रहने से मनुष्य की मृत्यु हो जाने की सम्भावना रहती है। अत ऐसे रोगी के पास पहुँचते ही कृत्रिम विधि से सास दिलाने का कार्य प्रारम्भिक चिकित्सक को स्वय प्रारम्भ कर देना चाहिये। इसलिए प्रत्येक प्रारम्भिक चिकित्सक को इस विधि का जानना आवश्यक होता है।

कृत्रिम श्वास विधि—कृत्रिम विधि से सास दिलाने की तीन निम्न विधियाँ होती है—

(१) शेफर विधि—इस विधि में पहिले वस्त्र उतार दिये जाते हैं। यदि वस्त्र उतारने में कठिनाई प्रतीत हो तो उनको ढीला कर दिया जाता है। जिससे गर्दन और वक्षस्थल पर किसी प्रकार के कपड़े का दबाव न रहे।

इसके बाद रोगी को पेट के बल लिटा दिया जाता है। सिर एक करवट रखा जाता है। उसके हाथों को सिर की ओर सीधा फैला दिया जाता है। रोगी के नाक या मुँह में मिट्टी या बालू आदि सास रोकने वाली कोई चीज हो तो उसे निकाल कर नाक और मुँह की सफाई कर दी जाती है।

अब प्रारम्भिक चिकित्सक रोगी की कमर के समीप एक बगल घुटनो के सहारे बैठ जाता है। फिर वह अपने दोनों हाथो को रोगी की पीठ पर निचली पसलियो के पास इस प्रकार रखता है कि उसके दोनो अंगूठे पीठ के बीच में रीढ के ऊपर मिलते है और अंगुलियाँ फैली हुई तथा कुछ कुछ कन्धो की ओर झुकी रहती हैं।

इसके बाद वह दोनो हाथो को कड़ा रखते हुए आगे की ओर झुकता है जिससे रोगी की पीठ पर दबाव पड़े। पीठ पर दबाव पडने से उसके फेफडों पर दबाव पड़ता है जिससे फेफड़े की हवा बाहर निकलती है।

अब प्रारम्भिक चिकित्सक धीरे-धीरे ऊपर उठता है जिससे रोगी के ऊपर से उसके हाथो का दबाव हट जाता है किन्तु वह अपने हाथ नहीं उठाता। इस प्रकार दबाव डालने और हटाने की क्रिया को एक-सी गति से एक मिनट में १४ या १५ बार किया जाता है।

(२) सिलवेस्टर विधि (Silvestar's Method)—इस विधि में रोगी को जमीन पर चित्त लिटा दिया जाता है और उसके कन्धो के नीचे तकिया या कोई वस्त्र रख दिया जाता है।

रोगी की जीभ बाहर निकाल कर मुँह की सफाई करली जाती है। रोगी के हाथों को कोहनियों के कुछ नीचे पकड कर इस प्रकार अपनी ओर खींचता है कि उसकी कोहनियाँ उसके सिर के पीछे पृथ्वी से छू जायें। ऐसा करने से फेफड़े फैलते है और वायु उनमें आसानी से स्वय प्रवेश करती है। फिर रोगी की बाँह को ऊपर उठाकर कोहिनी पर मोड़कर सामने की ओर वक्षस्थल पर लाकर दबाया जाता है। ऐसा करने से फेफड़ों पर दबाव पड़ता है और उनकी हवा बाहर निकल जाती है और इस खाली स्थान पर बाहर से शुद्ध वायु प्रवेश करती है। इस प्रकार बार-बार इस क्रिया को दोहराने से श्वास क्रिया फिर से प्रारम्भ हो जाती है।

(३) लाबोर्ड विधि (Labord's method)—इस विधि में भी कपड़े ढीले करके रोगी को चित या एक करवट लिटा दिया जाता है। अब चिकित्सक रोगी के समीप एक ओर घुटनो के सहारे बैठ कर रोगी के मुँह को साफ करता है। फिर रोगी की जीभ को पकड़कर बाहर खींच लेता है।

इस विधि से कृत्रिम श्वास दिलाने की चेष्टा तभी करनी चाहिए जब पहली दोनों विधियों से सास दिलवाना सम्भव न हो सके। पसलियो की हड्डी के टूटने पर केवल इसी विधि द्वारा सांस दिलवाना चाहिये।

साधारणतया एक घण्टे के लगभग कृत्रिम श्वास दिलाने पर रोगी के फेफड़े काम करने लगते है। जब तक डाक्टर हृदय की परीक्षा न करले कृत्रिम श्वास देते रहना चाहिए। कम से कम दो घण्टे प्रयत्न अवश्य करना चाहिये। इस विधि में जटिल से जटिल केस का निवारण किया जा सकता है। इस तरह चिकित्सक को कृत्रिम विधियों द्वारा श्वास दिलाने की पूरी जानकारी का होना आवश्यक होता है।

अध्याय ११

सामान्य रोग : नियंत्रण और उपचार

Q. 1. How do you differentiate between Contagious and Infectious diseases ? *(L. T. 1943, 57)*

Ans. सक्रामक और ससर्गज रोग—बीमारियाँ प्राय: एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक चली जाती हैं। यदि विद्यालय मे एक छात्र चेचक से पीडित होता है तो कई छात्र जो उसके पास उठते बैठते है चेचक से पीडित हो जाते हैं। यदि एक बालक को खाज या खुजली हो जाती है तो दूसरे बालक को भी खाज हो जाया करती है जो उसके संसर्ग मे आता है। इस प्रकार रोगो का सक्रमण हुआ करता है। किन्तु यह सक्रमण प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष तरीको से हुआ करता है। जब सक्रमण प्रत्यक्ष तरीके से होता है तब वह ससर्गज रोग (Contagiou's disease) का कारण बन जाता है। दाद, खाज, खुजली आदि चर्म रोग ससर्ग से फैलते हैं, किन्तु जब सक्रमण अप्रत्यक्ष रूप से अर्थात् किसी माध्यम से—जैसे जल, वायु, कीट और सम्पर्क द्वारा—फैलता है तब वह रोग सक्रामक रोग कहलाता है।

सक्रामक और ससर्गज दोनो प्रकार के रोगो का कारण एक न एक अति सूक्ष्म जीवाणु होता है जिसको सूक्ष्म दर्शक यंत्र द्वारा ही देखा जा सकता है और जो अवसर पाकर शरीर मे प्रवेश कर जाता है। भिन्न-भिन्न रोगो के जीवाणु भिन्न-भिन्न आकार के होते हैं। हैजा फैलाने वाला जीवाणु कोमा के आकार का, राजयक्ष्मा का जीवाणु एक छोटे मुडे हुए डडे के समान और कुछ जीवाणु बिन्दु के समान आकार वाले होते हैं, आकार के अनुसार वे Spirila Bacilic, या Cocoi कहलाते हैं। शरीर मे पहुँचकर उनकी वृद्धि गुणोत्तर श्रेणी मे होती है और निश्चित समय के बाद शरीर को अस्वस्थ बना देते हैं।

सक्रामक रोगो के फैलने के कारण

Q. 2. What is meant by infectious diseases and how are they caused? What are the symptoms and incubation period of small pox, Chicken pox and measels ? *(Agra B. T. 1954)*

Ans. सक्रामक रोग वे रोग होते हैं जो कि एक स्थान से दूसरे स्थान को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से पहुँच सकें, इन रोगो के कारण बालकों के स्वास्थ्य पर बडा प्रभाव पडता है जिससे वे कक्षा मे अनुपस्थित रहते हैं। ये रोग या तो आपस के ससर्ग तथा किसी कीटाणु द्वारा एक व्यक्ति से दूसरे मे पहुँचते हैं। इनके फैलने का कारण वायु, जल, भोजन तथा कीडे होना है।

इस रोग के कारण सूक्ष्म जीवाणु हैं जो कि शक्तिशाली सूक्ष्म-दर्शक-यन्त्र की सहायता से देखे जाते हैं, ये जीवाणु उपयुक्त अवसर पाकर शरीर मे प्रवेश करते हैं और बडी शीघ्रता से एक से अनेक होकर शरीर मे रोग फैलाते हैं।

वायु द्वारा फैलने वाले रोग—रोग के यह कीटाणु वायु मे मिलकर स्वस्थ व्यक्तियों के शरीर मे श्वास द्वारा प्रवेश कर जाते हैं, सक्रमण की इस विधि का कारण मुँह या नाक से निकाली गयी हवा के साथ उड़कर बाहर आते हुए कीटाणु मय कण होते हैं। इस प्रकार के सक्रमण को कण प्रसरित सक्रमण कहते हैं। इसके द्वारा फैलने वाले रोगो मे इन्फ्लुएंजा, छोटी चेचक, बडी चेचक, खसरा, जर्मन खसरा, कुकुर खाँसी, कर्ण फेर, तपेदिक आदि मुख्य रूप से बालकों मे पायी जाती हैं।

सम्पर्क द्वारा—रोगी के साथ निकट सम्पर्क रखने से छूत लग जाती है। व्यक्ति के व्यक्ति से सम्पर्क के अतिरिक्त रोगी के कपड़े, किताबें, कुर्सी, मेज से सम्पर्क भी रोग का कारण बन जाता है, इस विधि से फैलने वाले रोग खसरा, लाल बुखार, माता, खुजली और दाद आदि मुख्य हैं।

जल तथा भोजन द्वारा—इस विधि द्वारा रोगी के कीटाणु जल तथा भोजन के सम्पर्क से एक स्थान से दूसरे को जाते हैं। इसमे मोतीझरा, हैजा और पेचिश प्रमुख हैं।

कीड़ों द्वारा—इनके द्वारा अनेकों रोग फैलते हैं। इनको फैलाने वाले कीड़े, मक्खी, मच्छर, पिस्सू, खटमल आदि मुख्य है। ये रोगी के शरीर से रक्त चूस कर अपने शरीर में रोग के कीटाणु रक्त के साथ ले लेते हैं, फिर किसी स्वस्थ व्यक्ति को काटने मे अपने डंक के साथ रोग के कीटाणुओं को स्वस्थ व्यक्ति के रक्त मे छोड देते हैं। मलेरिया, पीला बुखार, प्लेग आदि रोग विशेष प्रकार के कीडो के काटने से फैलते हैं।

[illegible]—से शरीर में प्रवेश पा जाते हैं [illegible] कीटाणु इसी प्रकार से फैलते

और वहाँ [illegible]

है। सक्राम[illegible]

(१) सभी प्रकार के कीटाणु जो कि रोग फैलाते हैं आपस मे समान नहीं होते हैं। उनके अपने विशेष प्रकार के सूक्ष्म-जीवाणु होते हैं जिनके कारण विशेष प्रकार के रोग होते हैं। शरीर मे प्रवेश करने के बाद ये जीवाणु एक प्रकार का विशेष विष उत्पन्न करता है। ये विष रक्त के साथ मिलकर शरीर के प्रत्येक भाग मे चला जाता है और शरीर मे एक विशेष प्रकार के लक्षण प्रकट करता है।

(२) सक्रामक रोगो का यह विशेष गुण होता है कि वे आसानी से एक व्यक्ति से दूसरे पर लग जाते हैं।

(३) प्रत्येक सक्रामक रोग की प्रथम स्थिति सप्राप्ति काल कहलाती है, भिन्न-भिन्न रोगो के लिये यह सप्राप्ति काल भिन्न-भिन्न होता है। सप्राप्ति काल उस बीच के समय को कहते है जो कि रोग के जीवाणु के शरीर मे पहुँचने तथा रोग के लक्षण प्रकट होने मे होता है। यदि सप्राप्ति काल में रोगी की छूत दूसरे व्यक्ति को लग जाय तो भी रोग फैल जाता है।

[illegible]

पुन [illegible] प्रत्येक रोग की एक विशेष अवधि होती है।

(४) प्रत्येक रोग की एक विशेष अवधि होती है।

(५) साधारणतया सक्रामक रोग व्यक्ति को जीवन मे एक ही बार होता है। इसका कारण रोग-क्षमता होती है।

सक्रामक रोगों के सामान्य लक्षण

(१) इन रोगो में शरीर का तापक्रम बढ़ जाता है। इस तापक्रम का बढ़ना एक प्रकार के विष के कारण होता है। यह विष रक्त मे पहुँच कर शरीर के प्रत्येक भाग में पहुँच जाता है जिससे सामान्य रूप से शरीर का तापक्रम बढ़ जाता है।

(२) इस रोग में अधिकतर शरीर में कँपकँपी भी प्रारम्भ हो जाती है।

(३) कुछ संक्रामक रोगों में शरीर पर छोटे-छोटे दाने निकल आते हैं। इन दानों के निकलने पर शरीर में ज्वर फैल जाता है।

(४) बालकों में अस्वस्थता, गले में खराशी, सिर पैरों पर दर्द आदि के लक्षण भी संक्रामक रोग के चिन्ह होते हैं।

इस प्रकार के संक्रामक रोगों की रोकथाम निम्न रूप में की जाती है —

(१) अलग करना—रोग दूषित मकान के सभी बच्चों को स्कूल में आने को मना कर देना चाहिए। इसके साथ साथ पड़ोस के बच्चों को भी दूर रखना चाहियें।

(२) विसंक्रमण—रोगी के सभी सामान का विसंक्रमण करना चाहिये। कमरे की दीवाल, फर्श तथा और सामान जिसमें कीटाण होने की सम्भावना है उनको कीटाणु नाशक ग्रोषधि द्वारा नष्ट कर देना चाहिए।

(३) पृथक्करण—रोगी को तुरन्त स्वस्थ बालकों से दूर कर देना चाहिए ताकि बीमारी के कीटाणु दूसरों तक न पहुँच सकें।

(४) सूचना—रोग की सूचना स्कूल सम्बन्धी डाक्टर को तुरन्त दे देनी चाहिए ताकि समय पर रोग से और बालकों की रक्षा की जा सके।

(५) रोग क्षमता उत्पत्ति—इसके लिए रोग सम्बन्धी टीका तथा सुई लगवाने से शरीर की रोग क्षमता में वृद्धि हो जाती है और रोग के कीटाणु आसानी से अपना प्रभाव नहीं दिखला सकते हैं।

(६) क्वारेण्टाईन समय—जो लोग किसी संक्रामक वातावरण में रह चुके हैं और उनको छूत लगने का अन्देशा है उन्हें उस रोग के संप्राप्ति काल में अलग रख कर निरीक्षण करते रहना चाहिए।

चेचक

यह अत्यन्त तीव्र संक्रामक व्याधि है। पहिले इस रोग से बहुत लोगों की मृत्यु हो जाया करती थी परन्तु टीके के प्रयोग से इसको पर्याप्त रूप से रोक लिया गया है। इसी रोग को शीतला या बड़ी माता भी कहते हैं। इस रोग का संप्राप्ति काल (Incubation period) १० से १४ दिन है।

रोग के लक्षण

(१) पहिले इस रोग में कपकपी, बदन, सिर और पीठ में तीव्र पीड़ा, ज्वर की तीव्रता और मुँह पर लाली होती है।

(२) तीसरे दिन से माथे और कलाई पर लाल दाने हो जाते हैं।

(३) बाद में धड़ और हाथ पैरों पर दाने फैल जाते हैं।

(४) पाँच या छः दिन के बाद दानों में एक प्रकार का द्रव भर जाता है। प्रत्येक दाना उठा हुआ, पारदर्शी, चमकदार श्वेत रंग के छाले के समान हो जाता है परन्तु उसके सिर पर एक गढ्ढा सा होता है।

(५) आठ या नौ दिन के पश्चात् इन दानों में एक प्रकार का पस पड़ जाता है। तब ज्वर की स्थिति बड़ी तीव्र होती है।

(६) आँखें और पलकें फूलने के कारण बन्द हो जाती हैं।

(७) यह स्थिति १० या ११ दिन तक चलती है। फिर ज्वर घटने लगता है और दानों का सूखना तथा खुरंटों का गिरना प्रारम्भ हो जाता है।

(८) रोगी के स्वस्थ होने पर दानों के स्थान पर कुछ निशान बने रह जाते हैं।

(९) कभी-कभी आँखों पर फफोले निकलने पर रोगी की आँखें खराब होने का भय होता है।

रोग से बचने के उपाय :

(१) रोग से बचने के लिए टीका सबसे उत्तम होता है। इस रोग से फैलने की सूचना मिलने पर स्कूल में छुट्टी करा देनी चाहिए। इस रोग से ग्रस्त बच्चे को मकान में अलग स्थान पर

लिटाना चाहिए तथा और बच्चो को उसके समीप न आने देना चाहिए। इस तरह से रोग के पहिले उपचार करा लेने से रोग फैलने की सम्भावना कम हो जाती है।

(२) रोगी के परिचारको को भी टीका लगवा देना चाहिये यदि उनके हाल मे ही टीका नही लगाया गया है। यदि सक्रमण काल (Incubation period) मे भी टीका लग जाता है तो भी कोई हानि नही है। यदि सक्रमण काल मे दो तीन दिन पहले टीका लग जाता है तो उनके रोग होने का कोई भय नही रहता। रोग होने से पूर्व टीका लग जाने पर रोग की भयकरता कम हो जाती है।

(३) रोगी के कमरे, कपडे, बिस्तर, बर्तन आदि का पूर्ण रूप से विसक्रमण कर देना चाहिये जिससे उन वस्तुओ मे रोगी के जीवाणु शेष न रह जायें जो रोगी के सम्पर्क मे आई हैं।

(४) रोगी के मल, मूत्र, थूक और खखार (बलगम) को जलवा देना चाहिये।

(५) खुरंण्टो को तो निश्चय रूप से प्रतिदिन जला देना चाहिये। इनसे रोग फैलने की सम्भावना रहती है।

छोटी माता (Chicken Pox)

रोग परिचय—इस रोग मे शरीर पर दाने निकल आते हैं। इस रोग का आक्रमण बच्चो पर अधिक होता है किन्तु इससे मृत्यु अधिक सख्या मे नहीं होती।

रोग के लक्षण—रोगी को ज्वर हो जाता है और शरीर पर छोटे दाने निकल आते हैं। तीन चार दिन मे ये दाने सूख जाते हैं और उन पर पपडी पड जाती है जो तीन दिन बाद झड जाती है। बालक ५-६ दिन मे स्वस्थ हो जाता है।

छूत का प्रसार और रोग से बचने के उपाय—छोटी माता की छूत रोगी के थूक या खुरंटो द्वारा होती है। इसलिये रोग के प्रथम लक्षण प्रगट होने के समय से जब तक रोगी के खुरंट साफ नही हो जाते रोग की छूत लगने की सम्भावना बनी रहती है। रोग की सूचना सार्वजनिक स्वास्थ्य विभाग को दे दी जाय। रोगी को तीन सप्ताह तक छुट्टी देकर स्कूल न आने दिया जाय। रोगी के अन्य सम्बन्धियो को भी जिनका रोगी बालक से सम्पर्क रहता है स्कूल से छुट्टी दिलवा देनी चाहिये। उसके खुरंटो को जला देना चाहिये।

खसरा (Measles)

चेचक की तरह खसरा भी छोटे बच्चो को अधिक सताता है। २ से ५ वर्ष के बच्चो की मृत्यु भी हो जाती है यदि उनकी परिचर्या ठीक तरह नही की जाती। अतः यह साधारण रोग नही है जिसको उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाय।

लक्षण—रोग के प्रारम्भ मे ४ दिन खूब नाक बहती है। इस काल मे छूत लगने का डर रहता है। ४ दिन बाद लाल-लाल दाने छाती पर प्रगट होने लगते है और फिर सारे शरीर मे फैल जाते हैं। बुखार के तेज होने पर सिर दर्द, गले और नाक में सूजन दिखाई देने लगती हैं। सारा शरीर लाल दिखाई देता है।

रोगी बहुत दुर्बल हो जाता है। परिचर्या न होने पर उसे निमोनिया भी हो सकता है। निमोनिया मे साँस हल्की, और तीव्र गति से चलती है तथा कफ घड़-घड़ करने लगता है। ऐसे लक्षण प्रकट होते ही डाक्टर को बुलाना चाहिए नहीं तो बालक की स्थिति खतरे में रहती है। कभी-कभी आँख और कान पर भी सूजन आ जाती है जिससे बच्चे अन्धे और बहरे हो जाते हैं।

बचने के उपाय यह रोग चेचक की तरह सम्पर्क से फैलता है अतः अध्यापको को इससे अधिक सचेत रहना चाहिये। किसी विद्यार्थी के रोग ग्रसित हो जाने पर जिन दूसरे विद्यार्थियो को जुकाम हो रहा हो उन्हें सम्पूर्ण काल के समाप्त होने तक स्कूल से छुट्टी दे देनी चाहिए। रोग ग्रस्त परिवार के सभी बालको को विद्यालय नहीं आने देना चाहिए। अन्य अभिभावको को भी सूचना दे देनी चाहिये कि उनके बच्चो को भी इसके होने का भय है। यदि हो सके तो विद्यालय कुछ दिनो के लिये बद किया जा सकता है।

पचार :

(१) बालक को स्वच्छ और हवादार कमरे में काफी कपड़े पहनाकर रखना चाहिये ।
(२) खांसी, जुकाम और ब्रोन्काइटिस के लक्षण पैदा होने पर छाती को दो तीन बार सेंक देना चाहिये फिर कपूर के तेल से मालिश कर देनी चाहिये ।
(३) त्वचा पर खुजली मालूम होने पर कार्बोलिटेड वैसलीन मलनी चाहिये ।
(४) आँखों की पीड़ा दूर करने के लिये बोरिक ऐसिड के घोल की ३-४ बूँदें ४-४ घण्टों के बाद डालनी चाहिये ।

Q. 3. what health services can the school provide for the control of communicable diseases and how ?

संसर्ग अथवा संक्रामक रोगों की रोकथाम—प्रत्येक जिला परषद में मेडीकल हेल्थ अधिकारी की नियुक्ति इसलिए की जाती है कि वह अपने जिले में संक्रामक रोगों को फैलने से रोके । जब किसी खण्ड में कोई ऐसी बीमारी फैलने लगती है जिससे अनेक व्यक्तियों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड सकता है तब वह अधिकारी उस बीमारी पर नियन्त्रण लाने के लिये सचेष्ट हो जाता है । वह उस बीमारी पर नियन्त्रण करने के लिये आवश्यक नीतियों का निर्धारण करता है। वह तुरन्त ही प्रत्येक विद्यालय में बीमारी के रोकथाम के नियमों से सम्बन्धित पोस्टर भेज देता है । अपने सहायक डाक्टरों को उस बीमारी के फैलाव को रोकने के उद्देश्य से टीका लगाने के लिए स्कूल-स्कूल में भेज दिया करता है । वह विद्यालय को तथा उसके अधिकारियों को विद्यालय में उन रोगियों को आने से रोकने के लिए परामर्श भी देता है जो उस संक्रामक रोग के शिकार हो चुके हैं । इस प्रकार वह रोगों की रोकथाम करने का प्रयत्न करता है ।

लेकिन जिला स्वास्थ्य-अधिकारी (District Health Officer) के अतिरिक्त प्रत्येक स्कूल की भी रोग के रोकथाम में कम जिम्मेदारी नहीं है । प्रत्येक विद्यालय के प्रधानाचार्य का कर्त्तव्य है कि जैसे ही उसके क्षेत्र में किसी संक्रामक रोग का प्रकोप दृष्टिगोचर होवे वैसे ही वह उस रोग से सम्बन्धित सभी प्रकार की जानकारियों को अध्यापकों, छात्रों एवं अभिभावकों तक पहुँचाने का प्रयत्न करे । वह प्रत्येक अध्यापक को उसकी जिम्मेदारी से अवगत करादे जो उसे रोकथाम में वहन करती है । विद्यालय के डाक्टर, प्रधानाचार्य तथा जिले के स्वास्थ्य अधिकारी तीनों मिलकर स्कूल विषयक ऐसा प्रोग्राम तैयार कर सकते हैं जिसके कार्यान्वित किये जाने पर रोग का फैलाव रोका जा सके ।

बहुत से संक्रामक रोगों की रोकथाम के लिए टीका लगाया जाना नितान्त आवश्यक है। उदाहरण के लिए चेचक, हैजा, डिफ्थीरिया, टीटेनिस, कुकुरखांसी, पीलिया आदि रोगों के लिये टीके लग जाने पर व्यक्ति में रोग क्षमता आ जाती है । यद्यपि हम सभी टीकों के इस उपयोग को अच्छी तरह से जानते हैं फिर भी इन बीमारियों से बचने के लिए हमने कितने बच्चों को टीके लगाए हैं ? टीके लगा देने पर बालक में अवाप्त रोक क्षमता पैदा हो जाती है । रोग क्षमता के दो रूप हैं एक स्वाभाविक और दूसरी अवाप्त । कुछ व्यक्ति तो ऐसे होते हैं जिनके शरीर में रोग जीवाणु विरोधी तत्व (anti toxins) होते हैं जो उन जीवाणुओं को पनपने से रोकते हैं । रोग जीवाणुओं से संघर्ष करने की इस शक्ति को स्वाभाविक रोग क्षमता कहते हैं । लेकिन ऐसी स्वाभाविक रोग क्षमता कितने बालकों में होती है ? अतः आवश्यकता इस बात की है कि जैसे ही कोई संक्रामक रोग फैले बालकों में सामान्य रूप से अवाप्त रोग क्षमता पैदा की जाय । यह अवाप्त रोग क्षमता (acquired immunity) दो प्रकार से होती है । एक तो उस रोग के शिकार होने पर और दूसरे रक्षात्मक टीकों के लगाये जाने पर ।

अतः विद्यालय को चाहिये कि वह संक्रामक बीमारियों के रोकथाम के लिए उपयुक्त समय पर बालकों को टीके लगवाने का प्रबन्ध करे । यदि वह अभिभावकों को येनकेन प्रकारेण उनके बच्चों को स्कूल भेजने से पूर्व ही टीके लगवाने के लिये उत्प्रेरित कर सके यह उसके ही हित में होगा । चेचक का टीका तो प्रत्येक बच्चे के जन्म के १ वर्ष के भीतर ही लग जाना चाहिए । डिफ्थीरिया, कुकुरखांसी, इन्फ्लुएन्जा, टिटेनस का टीका ३-६ माह की आयु तक लगाया जा सकता है ।

लेकिन प्रायः ऐसा देखा जाता है कि बच्चा के अभिभावक उन्हें इस तरह की रोग क्षमता दिलाने के लिये आनाकानी भी करते रहते हैं । अतः अभिभावकों को इस प्रकार की

शिक्षा देना भी स्कूल का कर्तव्य है ताकि वे अपने बच्चो को अल्पायु में ही टीके लगाने के लिए प्रेरित किये जा सकें। ... शरीर मे रोग-जीवाणुओ के साथ संघर्ष करने की शक्ति पैदा हो सके। शरीर मे रोग पय ... संक्रामक रोगो से बच ... सेवन कराना होगा तभी ... नियमो का उनमे पार ... पनपते है इसलिए वायु ... रोग के फैलते ही सू... (Immunisation) और निसक्रमण (Disinfection) rantine Period), रोग क्षमता उत्पत्ति (Immunisation) और निसक्रमण (Disinfection) आदि उपायो का सहारा भी लेना होगा।

सूचना—संक्रामक रोग के फैलते ही अथवा फैलने की सम्भावना दिखाई देते ही निकट के चिकित्सालय के डाक्टरो को सूचित कर देना होगा। यह पहला कर्तव्य है।

पृथक्करण—डाक्टर की सहायता से रोग ग्रस्त बालक अथवा अध्यापक को उसके परिवार तथा स्वस्थ व्यक्तियो से अलग कर देना होगा। परिचर्या करने वाले व्यक्तियो के अतिरिक्त ... उनके पास न जाने देना चाहिए।
और वि ... गया
हो उनक ...

रोग क्षमता उत्पत्ति (Immunisation)—स्वस्थ बालको मे क्षमता पैदा करने के लिए टीके तुरन्त लगवा देने चाहिए।

विसक्रमण (Disinfection)—हैजा, पेचिश, मोतीझरा, प्लेग, आदि ऐसे संक्रमण रोग है जो शरीर मे किसी न किसी साधन द्वारा पहुँच जाते हैं और रोग फैला देते हैं। लेकिन यदि इन रोगो के जीवाणुओ को पूर्णत नष्ट कर दिया जाय तो रोग का संक्रमण नही होगा अत. कीटाणु नाशक की सहायता से उनको नष्ट करने का उपाय किया जा सकता है। कीटाणु नाशक वस्तुओ के कुछ रासायनिक हैं कुछ भौतिक तथा प्राकृतिक। साधारणत निम्नलिखित रासायनिक पदार्थों का प्रयोग निसक्रमण के लिए किया जा सकता है रस कपूर (Per chloride mercury) कार्बोलिक एसिड (Carbolic Acid) क्रिसोल फिनाइल (Phenol) चूना, डी. डी. टी. क्लोरीन, सल्फर डाई आक्साइड, फार्मेल्डीहाइड (Formeldehyde)।

राजयक्ष्मा
(Tuberclosis)

Q 4 How does tuberclosis spread ? How can the school children be protected from catching this disease ?

(L. T. 1943, 57)

Ans तपेदिक राजयक्ष्मा अत्यन्त तीव्र संक्रामक रोग होता है जिसका कारण एक जीवाणु होता है। इस जीवाणु की खोज सन् १८८२ मे राबर्ट कोच ने की थी। यह जीवाणु शरीर के किसी भाग मे आक्रमण कर सकता है। कभी-कभी मनुष्य का सारा शरीर अस्वस्थ हो जाता है और कभी-कभी इस रोग का प्रभाव शरीर के एक अंग तक ही सीमित रहता है। यह जीवाणु (Tubercula Bacil us) आकार मे मुड़े हुए डंडे की तरह होता है। इसके दो प्रकार होते हैं मनकी (human) और पाशविक (bovine)।

तपेदिक दो प्रकार का होता है फुफ्फुसीय (pulmonary) और अफुफ्फुसीय (Non-Pulmonary)। पहला रोग केवल प्रौढ़ व्यक्तियों को होता है बालको को कम। अफुफ्फुसीय तपेदिक रोग कई प्रकार का होता है जैसे लसिका ग्रन्थियो मे स्क्रोफूला (Scrofula), अस्थियों मे स्ट्रमा (struma), मस्तिष्क मे मेनिंजाइटिस (meningitis) और चमडे में ल्यूपस (lupus)। फुफ्फुसीय तपेदिक को राजयक्ष्मा भी कहते हैं।

कारण—इस रोग को पैदा करने का कारण जीवाणु तो है ही, कुछ ऐसे भी कारण है जिनसे यह रोग शीघ्रता से फैलने लगता है। पौष्टिक भोजन का अभाव, पर्याप्त भोजन का न मिलना, बन्द, गन्दे और छोटे-छोटे मकानो मे बड़े-बड़े परिवारो का रहना ... पुष्टोप-

...ाह ग्रौर शरीर
...कुकर खाँसी
...ल, क्षय-पीड़ित
... का जीवाणु
...रीर मे पनपने लगता है।

...र जाता है ग्रौर दूसरे व्यक्तियो को रुग्ण बना देता है। इस प्रकार यह रोग हवा द्वारा फैलता है। ...स रोग के जीवाणु का नाश सूर्य के तेज प्रकाश से हो सकता है ग्रत वह ग्रंधकारमय सील वाले ...ानों में पनपता रहता है।

लक्षण—सामान्य रोग का पहला ग्रौर महत्वपूर्ण लक्षण खाँसी है। खाँसते समय थूक ...ा बलगम में खून भी ग्राने लगता है लेकिन यह तभी होता है जब रक्त वाहिनियाँ रोगग्रस्त हो ...ाती हैं। वजन घट जाना, भूख कम होना, श्वास जल्दी-जल्दी लेना, खेलकूद से ग्रनिच्छा होना, ...ोपहर के बाद बुखार ग्रा जाना, रात्रि मे सोते समय पसीना ग्रा जाना, गले ग्रौर छाती में दर्द ...ादि क्षय रोग के लक्षण हैं।

उपचार—जब तक रोग ग्रपनी प्रारम्भिक ग्रवस्था मे है तब तक तो उसका उपचार ...ासानी से हो सकता है किन्तु रोग के जटिलता प्राप्त लेने पर उसके उपचार के लिये रोगी को ...नीटोरियम (Sanitorium) भेजना पड़ता है। इसका उपचार है उत्तम वातावरण की ...पस्थिति। विश्राम, उपयुक्त, पौष्टिक ग्रौर पर्याप्त भोजन, स्वच्छ वायु, सूर्य का प्रकाश, नियमित ...यायाम, मनोरंजन, ग्रौर नियमित जीवन रोग को धीरे-धीरे कम कर देते हैं।

...चने के उपाय :

(१) रोग क्षमता प्रदान करने वाले इ जेक्शन B. C. G. का प्रयोग।
(२) ग्रस्वस्थ, रक्त-क्षीण बालकों को ताजी स्वच्छ वायु ग्रौर प्रकाश का स्वच्छन्द सेवन।
(३) बालकों को खसरा कुकुर खाँसी ब्रौन्काइटिस, बिगड़े हुए जुकाम, ग्रादि रोगों से पीड़ित न होने देना क्योंकि ये क्षय-रोग के जीवाणुग्रों की प्रतिरोधक शक्ति को समाप्त कर देते हैं।
(४) ग्रंधकारमय सीलन वाली जगहों मे रहने वाले बालको को छात्रावास की सुविधा।
(५) दूध को उबालकर पीना।
(६) क्षय रोग से पीड़ित व्यक्तियों से बालकों को दूर रखना ताकि उनसे रोग का सक्रमण नही हो सके।
(७) बालकों की डाक्टरी परीक्षा ग्रौर एक्स-रे।
(८) रक्त-हीनता (anaemia) से पीड़ित बालको के लिये खुले हवादार स्कूलों (open air schools) का प्रबन्ध।
(९) छात्रों का शारीरिक स्वच्छता, पौष्टिक भोजन, नियमित व्यायाम, मनोरंजन का महत्व समझाना।

डिप्थीरिया

Q. 5. How does diphtheria spread? How will you prevent its infection among other school children?

(L. T. 1942)

Ans. डिप्थीरिया ग्रत्यन्त भयानक, प्राणघातक, ग्रौर तीव्र सक्रामक रोग है। इसका ग्राक्रमण विशेषत २ ग्रौर ३ वर्ष के बालकों पर ग्रधिक होता है। यह रोग वायु द्वारा फैलता है। इसकी उत्पत्ति का कारण डिप्थीरिया का जीवाणु होता है। रोगियों या रोग सवाहकों (Carriers of disease) के बोलते समय, खाँसते या नाक छिनकते समय हवा मे फैले हुए कणों के द्वारा ये जीवाणु एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के शरीर मे प्रवेश कर जाते हैं। कभी-कभी रोगी के सम्पर्क में ग्राने वाली वस्तुग्रों—जैसे पेंसिल ग्रादि के मुँह मे रखने से छोटे-छोटे बालक रोग

मित हो जाया करते हैं। यद्यपि तपेदिक की तरह यह रोग गाय के दूध मे स्वभावतः नही होता तब भी दूध से भी सक्रमण हो सकता है।

लक्षण—डिप्थीरिया का जीवाणु नाक, गले, कण्ठ नली और वायु नली पर असर [illegible] जाता है नकसये और तालू पर सफेद झिल्ली पड जाती

क [illegible]
है [illegible]
स [illegible]
हृदय [illegible]
हो जाने [illegible]
है। नाक [illegible]

उपचार :

(१) चूंकि डिप्थीरिया रोग का मुख्य कारण जीवाणुओ द्वारा उत्पन्न विष है जो रक्त के द्वारा समस्त शरीर मे फैल जाता है इसलिये इस रोग के इन्जैक्शन के तुरन्त लग जाने से रोग की भयकरता कम की जा सकती है और हृदय की माँसपेशियो को लकवे से बचाया जा सकता है। यदि Anti Diptheric Injection रोग के प्रारम्भ होने के तीन दिन के भीतर ही लगवा दिया जाता है तो रोग रुक सकता है अथवा नही।

(२) रोग की निवृत्ति हो जाने तक रोगी को शय्या नही छोडने देनी चाहिये।

(३) रोगी को तरल और हल्का भोजन दिया जाय।

(४) यदि हृदय की गति साधारण से अधिक तेज प्रतीत होती हो तो उसे बर्फ की थैली से ठडक पहुँचानी चाहिये।

(५) यदि बुखार तेज हो जाय तो सिर और गर्दन पर बर्फ की थैली रखनी चाहिये।

रोग के फैलने न देने और उससे बचने के उपाय :

(१) समस्त पाठशाला के बालको को शिक टेस्ट (Shick Test) देकर यह देख लिया जाय कि कौन-सा बालक डिप्थीरिया से पीडित हो सकता है जिस बालक के रोग ग्रस्त होने की आशका होती है उसकी बाँह के चमडे मे इन्जेक्शन लगा देने के दो तीन दिन मे लाल चकत्ता सा पड जाता है किन्तु जिन व्यक्तियो के ऐसा चकत्ता नही पडता वे व्यक्ति इस रोग से पीडित नही हो सकते। जिन बालको इस रोग के होने का सदेह होता है उनको Anti Diptheric का Injection लगा देना चाहिये।

(२) चूंकि यह रोग हवा के माध्यम से फैलता है इसलिये उन सब बच्चो को विद्यालय से हटा देना चाहिये जो इस रोग से पीडित हो सकते हैं।

(३) गले के लिये जितनी भी परिस्थितियाँ अस्वस्थकारी होती है उन सबका शीघ्र निवारण करना चाहिये। कक्षा-कक्ष मे हवा का कुप्रबन्ध, अधिक गर्मी, दूषित गैस, पृथ्वी मे स्थित वायु का कमरे मे प्रवेश, नालियो की गदगी आदि बातें इस रोग को फैलाने मे सहायक होती है।

(४) जो बच्चे डिप्थीरिया के रोगी के सम्पर्क मे आ गये हैं उनके गले तथा नाक की सूजन, ज्वर, ग्रथियो आदि के सूजन परीक्षा कर उनको तुरन्त डिप्थीरिया का निरोधक इजैक्शन दिला देना चाहिये।

(५) उस घर के अन्य बालको को स्कूल आने की अनुमति नही देनी चाहिये। उसकी चिकित्सीय परीक्षा हो जानी चाहिये इस बात को निश्चय पूर्वक जानने के लिये कि वे रोग से मुक्त हैं या नही।

(६) प्राइमरी स्कूलो या इन्फेण्ट स्कूलो मे इस रोग के फैलते ही उस विद्यालय को बन्द कर देना चाहिये।

गर्दन तोड़ बुखार

Q. 6 How would you identify a case of cerebrospinal fever in a school hostel? What precautions would you take to prevent its spread and what directions would you give the attendants about the nursing of the patient. (*Agra B. T. 1955*)

Ans. रोग परिचय—वात सम्बन्धी छूत के रोगों में निद्रा रोग, मस्तिष्क, सुषुम्ना की झिल्ली में सूजन, गर्दन तोड़ बुखार और शिशु लकवा मुख्य हैं। इन रोगों के जीवाणु नाक या मुँह के द्वारा घुसकर बाल संस्थान पर आक्रमण करते हैं। रोग सवाहक भी इन रोगों को फैलाने में सहायता देते है।

गर्दन तोड़ बुखार में मस्तिष्क और सुषुम्ना पर चढ़ी झिल्ली रोग ग्रस्त हो जाती है। यह रोग ५ से कम आयु वाले बच्चों को ही होता है। ४० वर्ष से अधिक व्यक्तियों को शायद ही होता है।

लक्षण—चूँकि यह रोग मस्तिष्क और सुषुम्ना पर चढ़ी झिल्ली का रोग है इसलिये रोगी के सिर में पीड़ा और गर्दन में कड़ापन आ जाता है। बुखार का चढ़ना, अस्वस्थता का अनुभव, बाद में सारे शरीर में कड़ापन आ जाता है। मस्तिष्क सुस्त और सज्ञाहीन हो जाता है। रोगी उन्माद की दशा में प्रलाप करने लगता है। जब यह रोग महामारी के रूप में फैलता है। तब शरीर पर किसी रोगी के थोड़े और किसी के अधिक दाने दिखलाई देते हैं। इसलिये इस रोग को spotted fever भी कहते हैं।

इस रोग का उद्‌भवन २ से ५ दिन तक है। रोग की अवधि कुछ घण्टे, दो सप्ताह और कभी-कभी एक महीने की होती है साधारणत: यह रोग २ सप्ताह तक चलता है। जब रोग की अवधि कुछ घटों ही होती है तब इससे ग्रस्त व्यक्ति की मृत्यु हो जाती है। रोगी के रोग मुक्त हो जाने पर भी अगों की निष्क्रियता बनी रहती है। यह निष्क्रियता स्थायी रूप से मस्तिष्क को प्रभावित करती रहती है। भिन्न-भिन्न अगों को या मस्तिष्क को लकवा मार जाना साधारण सी बात है।

उपचार—रोगी को घर पर या चिकित्सालय में चिकित्सक की उचित सलाह से उपचार कराना चाहिये।

रोग की छूत और बचने के उपाय—यह रोग रोगी की छींक, खाँसी और बातचीत में मुँह से निकली थूक की बूँदों द्वारा स्वस्थ मनुष्यों में फैलता है। कुछ बच्चों को रोग के सवाहकों द्वारा लग जाता है। यद्यपि यह रोग धीरे-धीरे फैलता है फिर भी एक रोगी बालक बहुत से स्वस्थ बालकों को छूत लगा सकता है।

इस रोग से बचने के लिये निम्नलिखित उपाय किये जाने चाहिये—

(१) रोगी को अलग कमरे में रखना चाहिये ताकि उससे छूत न फैले।

(२) रोग मुक्त होने पर रोगी के कपड़े, बर्तन, बिस्तर आदि का विसंक्रमण होना चाहिये।

(३) रोगी के घर के अन्य सदस्यों को यह रोग न हो जाय इसलिये सार्वजनिक स्वास्थ्य विभाग को उनसे छूत फैलने पर कड़ी नजर रखनी चाहिये।

(४) विद्यालय में किसी बालक को इस रोग के हो जाने पर उसको और उसके पास बैठने वाले सभी छात्रों को ३ सप्ताह की छुट्टी दे देनी चाहिये और उपचार की व्यवस्था करनी चाहिये।

(५) रोगी को खाँसते, छींकते या नाक छिनकते समय रूमाल का प्रयोग करना चाहिये प्रयोग के बाद उस को जला देना चाहिये।

(६) रोग से बचने के लिये स्वच्छ और खुली हवा में रहना चाहिये। सिनेमा, थियेटर तथा अन्य सार्वजनिक स्थानों में जहाँ भीड़ अधिक हो रोग के महामारी के रूप में फैलने पर कभी नहीं जाना चाहिए।

विशूचिका

Q. 7. A village is in the grip of a cholera epidemic. Being the Head of the village school what measures would you take to eradicate the disease in the village and prevent its spread among your students ?

Ans. हैजा एक बहुत ही भयानक छूत का रोग है इस रोग के फैलने का मुख्य कारण अशुद्ध जल है। यह रोग प्रायः गरमी के मौसम में गन्दी बस्तियों में रहने वाले लोगों को होता है। कच्चे या कटे हुए तथा खुले रखे सड़े फलों को खाने, बासी भोजन करने तथा

ार की सड़ी-गली मिठाइयो, जिन पर मक्खी बैठी रहती है उनके खाने से यह रोग हो जाता
बिना किसी वस्तु के खाये यह रोग नही फैलता है । यह रोग अत्यन्त ही तीव्र रोग है जिसमे
ही घण्टो मे मृत्यु हो जाती है । इस रोग का कारण एक जीवाणु होता है जिसको कालरा
ो कहते हैं ।

गाँव मे स्कूल के प्रधान अध्यापक होने के नाते गाँव के लोगो तथा स्कूल के बालको
पूर्ण जिम्मेदारी उसके ऊपर होती है । उसको प्रत्येक फैलने वाली बीमारी के लक्षण तथा
ार का ज्ञान होना आवश्यक होता है । इस रोग में लोगो की मृत्यु बडी शीघ्रता से होती है
लिए प्रधान आचार्य की हैसियत मे उसके निवारण मे बहुत सतर्क रहना आवश्यक होता है ।
रोग के लक्षणो पर ध्यान देना चाहिए । इनसे यह ज्ञात हो जाता है कि वास्तविक रूप से यह
ही है या कोई और रोग है ।

रोग के लक्षण—इस रोग के रोगी को चावल के धोवन के समान सफेद और पतले
, बार-बार उल्टी होती है । कुछ ही समय पश्चात् रोगी का पेशाब बन्द हो जाता है । इसके
ही साथ उसको प्यास अधिक लगती है । हाथ पैरो मे ऐंठन होने लगती है, शरीर में निर्ब-
आ जाती है तथा रोगी का रंग पीला पड जाता है । कभी-कभी रोगी को ज्वर आ जाता है
रोग मे रोगी २४ घण्टे या उससे भी कम समय मे मर जाता है । अत. रोग के लक्षण का
चलते ही तुरन्त उचित उपचार की व्यवस्था करनी चाहिये । यदि गाँव मे प्रधानाचार्य
उपरोक्त लक्षणो की सूचना लगती है तो उसको तुरन्त ही निम्न उपचार करने चाहिए । गाँव
एक पढ़ा-लिखा व्यक्ति होता है इसलिए लोग उसकी बात मानने मे किसी प्रकार का हठ
करते हैं । इस प्रकार के रोग ग्रस्त के लिए उसको निम्न उपचार की ओर ध्यान भी देना
ये ।

उपचार—ऐसे रोगी को तुरन्त पास के संक्रामक अस्पताल मे ले जाना ही लाभप्रद
के कारण इस प्रकार की व्यव-
ास-पडोस मे रोग फैलने को कम
धारा जो कि आसानी से गाँव मे
सत्त और पीपरमेंट को बराबर
इसकी १०-१५ बूँदें आध-आध
ाद रोगी को पानी मे मिलाकर पिलाना चाहिए ।

गाँव मे बचाव के हेतु प्रधान अध्यापक को निम्न बातो पर विशेष रूप से ध्यान देना
।

और थूकदानो मे तथा
ना चाहिए, इस पदार्थ
आग लगाने से हैजे के
नष्ट हो जाते हैं । प्रधानाध्यापक को चाहिये कि वह स्वयं गाँव मे इस प्रकार के स्थानो को
ाँव वालो को समझा कर इस बात को चेतावनी दे दे कि उन्हे रोगी की छुई हुई वस्तुओ से
ना चाहिए ।

(२) रोगी के वस्त्रों को उबलते हुए पानी में धोकर धोबी को देना चाहिए । इस
तालाब या कुएँ का पानी दूषित नही हो पाता है । यदि गाँव मे धोबी न हो तो गाँव से
कर उसके वस्त्रों को साफ करके हाथो को किसी कीटाणुनाशक दवा से धो देने चाहिए ।
ह का प्रबन्ध गाँव म प्रधान की सरपरस्ती मे होना चाहिए ।

(३) प्रधान अध्यापक को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि तालाब के किनारे
के पास रोगी के वस्त्रो को धोने की आज्ञा नही हो । इसके वस्त्रो से रोग के कीटाणु
र प्रभाव डाल सकते हैं और इस तरह बीमारी फैला सकते हैं ।

(४) उसको यह बात भी ध्यान मे रखनी चाहिये कि गाँव के सभी लोगों के हैजे का
ग जाय । इसके अतिरिक्त गाँव मे मेले आदि मे जाने वाले लोगो के टीके लगे हों । इसके
रोग होने का भय नही रहता है । बीमारी के कीटाणु आसानी से शरीर पर प्रभाव नही
कते हैं ।

(५) प्रधान को इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि गाँव मे यदि कोई दूकान हो तो वहाँ पदार्थ खुला न हो बल्कि अच्छी तरह से ढका होना चाहिए। दुकानदार को किसी प्रकार की बासी तथा सडी गली वस्तु रखने की ताड़ना दे देनी चाहिए। घर के लोगो को यह चेतावनी दे दी जाय कि घर का बचा हुआ भोजन सदैव जाली दार अलमारियो या कटोरदान मे बन्द करके अलग रखना चाहिए जिससे यह भोजन मक्खियो के सम्पर्क मे न आ सके। मक्खियाँ रोगी के मल या वमन पर बैठने के बाद रोग के कीटाणुओ को अपनी बालदार टाँगो मे चिपकाये जब खुले रखे भोजन पर जा बैठती हैं तो रोग के कीटाणु उसमे पहुँचकर उसे दूषित बना देते हैं।

(६) प्रधान को गाँव के लोगो को पानी उबालकर पीने का आदेश देना चाहिए। उबले पानी मे बीमारी के कीटा ओ का नाश हो जाता है।

(७) इसके अतिरिक्त समय-समय पर कुओं की सफाई करवा देनी चाहिए। कुएँ की सफाई के लिये उसमे लाल दवा, बुझा हुआ चूना तथा फिटकरी डलवाने का प्रबन्ध कर लेना चाहिए। ये पदार्थ बीमारी के कीटाणुओ का नाश करते हैं तथा नये कीटाणुओ को पैदा नही होने देते हैं। प्राय. बीमारी खाने तथा पीने के द्वारा फैलती है। इसलिए गाँव के सभी कुओ की सफाई का ध्यान रखना प्रधान आचार्य के लिये परम आवश्यक होता है।

(८) गाँव मे प्रत्येक व्यक्ति को यह सूचना दे देनी चाहिए कि जिस स्थान पर बीमार व्यक्ति उलटी या वमन करता है वहाँ चूना डाल दिया जाय ताकि कीटाणुओं का नाश हो जाय।

(९) यदि स्वास्थ्य सम्बन्धी कोई सरकारी कर्मचारी गाँव से सम्बन्धित हो तो उसको गाँव की स्थिति की सूचना शीघ्र ही दे देनी चाहिए इससे बीमारी को आसानी से रोका जा सकता है। गाँव मे जो स्थान सार्वजनिक हो उनकी देख-रेख सरकारी कर्मचारी स्वय कर सकता है।

(१०) इस बीमारी से बचने के लिये बहुत से साधारण पदार्थ होते हैं उनके प्रयोग करने का आदेश दिया जाना चाहिये। इन पदार्थों मे कागजी नीबू का रस, प्याज का अर्क, सिरका इत्यादि मुख्य हैं।

उपरोक्त सावधानी तथा उपचार को ध्यान मे रखकर प्रधान आचार्य को एक स्थान पर गाँव के सभी व्यक्तियों को सूचित करने से रोग को कम भयानक बनाया जा सकता है। प्रत्येक व्यक्ति को न समझा कर सामूहिक रूप से सभी व्यक्तियो को उपरोक्त ज्ञान दे देना चाहिए। इस तरह से गाँव के निवासियो की हैजा रोग से रक्षा की जा सकती है।

इसके अतिरिक्त स्कूल मे बालको को सफाई की बातों को बतला देने से भी रोग से बचा [illegible]

या पेय पदार्थों का प्रयोग नही किया जाना चाहिये जो कि खुली स्थिति मे रखी हो।

साथ ही साथ यह सूचना मिलते ही कि गाँव मे हैजे के लक्षण प्रतीत होते हैं गाँव के सभी व्यक्तियो को हैजा का इन्जेक्शन लगवा देना चाहिये। गाँव मे कुछ लोग इन्जेक्शन से डरते हैं। प्रधान अध्यापक का यह परम कर्त्तव्य है कि वह इस बात की ओर विशेष ध्यान रखे कि गाँव के सभी व्यक्तियो ने इसके टीके को ले लिया है।

इस प्रकार गाँव के प्रधान अध्यापक होने के नाते ऊपर लिखी बातों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए जिससे इस प्रकार के सक्रामक रोग से गाँव की रक्षा की जा सके।

मोतीझरा (आंत्रज्वर)

Q 8 How would you identify a case of typhoid in a school hostel? What precaution would you take to prevent its spread and what directions would you give the attendants abut the nursing of patent?

(Agra B. T. 1955)

Ans. रोग परिचय—आंत्रज्वर एक जीवाणु के कारण उत्पन्न होता है जिसे हम Bacillus Typhus कहते हैं। प्रायः इस रोग के तीन रूप मिलते हैं जैसे टाइफोइड ए, जैसे

टाइफोइड बी, पैरा टाइफोइड सी । इन तीनो प्रकार के रोगो को फैलाने के लिये तीन अलग-अलग जीवाणु काम करते हैं ।

लक्षण—इस रोग का लक्षण है तीव्र ज्वर जो साधारणत २१ दिन तक बना रहता है। इसलिये इसे मियादी बुखार भी कहते हैं । पहले सात दिनो मे यह ज्वर धीरे-धीरे बढ़ता है प्रात. काल थोडा सा हल्का होकर शाम को १०३°—१०४° तक पहुँच जा सकता है । दूसरे सप्ताह यह बुखार लगभग एकसा ही रहता है । किन्तु शाम को १०६° तक भी हो जाता है ।

यह रोग आन्त्रज्वर इसलिये कहलाता है कि वह छोटी आंतो को प्रभावित करता है । कभी-कभी इन आंतो मे खून बहने लगता है । खून बहने पर रोगी दुर्बल हो जाता है और कभी-कभी उसकी मृत्यु तक हो जाती है ।

उपचार—(१) रोगी को बिस्तर पर लिटा देना चाहिये । इधर उधर हिलाने-डुलाने से रोग भयकर हो जाता है ।

(२) ज्वर के १०३° के ऊपर जाने पर ठण्डे पानी की थैली सिर पर रख देनी चाहिये ।

(३) गर्म पानी की थैली से पेट पर १० दिन तक दिन मे ३ बार सिकाई करते रहना चाहिये ।

(४) पाखाने के साथ खून आने पर पेट पर ठण्डे पानी की थैली रखनी चाहिये और खाना देना बन्द कर देना चाहिये ।

(५) रोगी को तरल भोजन देना चाहिये ।

(६) रोगी को अपाचन न होने देना चाहिये अपाचन होने पर चिकित्सक की सलाह मे ग्लिसरीन का ऐनामा दिया जा सकता है ।

(७) इस रोग मे ऐक्रोमाइसीन (achromycin) दी जा सकती है ।

रोग के प्रसार होने के कारण तथा उससे बचने के उपाय

मोतीझरा का जीवाणु रोगी के मल द्वारा शरीर से बाहर निकलता है और मक्खियो तथा दूषित भोजन द्वारा शरीर में प्रवेश कर जाता है । कभी-कभी वस्त्रो मे वमन, मल आदि द्वारा भी जीवाणु लग जाते हैं और वे फिर दूसरे व्यक्तियों को उसी प्रकार प्रभावित कर सकते हैं। इसलिये इस रोग से बचने के लिये निम्नांकित बातो पर ध्यान देना होगा .—

आन्त्रज्वर के रोकने का टीका लगवाना चाहिये ।

(१) अन्य सभी बालको को आन्त्रज्वर के रोकने का टीका लगवाना चाहिये ।

(२) रोगी के वमन, दस्त, थूक, स्वेद आदि को निसक्रमण कर जला देना चाहिये ।

(३) रोगी को पृथक कमरे मे रखना चाहिये और रोगी के परिचायको का विशेष ध्यान रखना चाहिये ।

(४) रोगी बालक के रोग मुक्त हो जाने पर उसके मल-मूत्र का चिकित्सीय परीक्षण करवाना चाहिये ताकि यह पता लग जावे कि उसमे रोग के जीवाणु तो नहीं हैं ।

(५) रोगी के प्रयोग मे आने वाली सभी वस्तुओ को दूसरे लोगो के प्रयोग मे तब तक नहीं लाना चाहिये जब तक उनका विसक्रमण न हो जाय ।

मलेरिया

Q 9 How is malaria caused and what are its symptoms ? Illustrate the life history of malarial parasite by the help of diagrams ?

Ans. मलेरिया बुखार से सभी लोग परिचित हैं । यह बुखार एक प्रकार के विशेष जाति के मच्छरो के काटने से होता है । इस प्रकार के मच्छर को एनाफलीज मच्छर कहते हैं, इस मच्छर के मादा जाति के काटने से ही यह बुखार आता है ।

हमारे देश मे प्रतिवर्ष लाखो मनुष्य इस रोग के शिकार होते हैं । मच्छर अधिकतर बरसात ऋतु के पश्चात् पैदा होते हैं । मच्छर अपने अण्डे रुके हुए पानी मे देती हैं जिससे उसको बरसात मे रुका हुआ पानी भिन्न-भिन्न स्थानो पर मिलने के कारण अण्डे देने मे सुभीता होता है । एक बार मे मच्छर कई अण्डे देती है ।

जब कोई मादा एनाफलीज मच्छर किसी बीमार व्यक्ति को काटता है तो उसके रक्त के

साथ ही साथ मलेरिया के कीटाणु मच्छर के शरीर में प्रवेश करते हैं। ये कीटाणु मच्छर को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाते हैं। इसके अतिरिक्त ये कीटाणु मच्छर के शरीर में एक अनुकूल वातावरण पाते हैं। इस वातावरण में ये विशेष कीटाणु कुछ दिनों के पश्चात् एक विशेष प्रकार के कीटाणुओं में बदल जाते हैं। अब यह मच्छर जिसके अन्दर विशेष प्रकार के कीटाणु होते हैं किसी स्वस्थ व्यक्ति को काटता है तो उसके डंक के साथ ही साथ उसके लार में से ये कीटाणु स्वस्थ व्यक्ति के रक्त में पहुँच जाते हैं। इन कीटाणुओं के शरीर में पहुँचने पर इनमें फिर कुछ परिवर्तन होता है और इस तरह कुछ दिनों के पश्चात् स्वस्थ व्यक्ति का रक्त जहरीला हो जाता है और वह रोग का शिकार हो जाता है। इस प्रकार यह रोगी बुखार फैलाने में स्वयं हाथ लेता है और इस प्रकार मच्छरों के द्वारा यह रोग एक व्यक्ति से दूसरे में जाता है। वास्तव में रोग का गृह स्थान एक रोगी व्यक्ति ही होता है और रोग को एक व्यक्ति से दूसरे में ले जाने वाला मादा मच्छर होता है।

इस रोग को आसानी से पहिचाना जाता है। इस रोग के लक्षण निम्न होते हैं :—

(१) इस रोग में पहिले हलका बुखार आता है।
(२) धीरे-धीरे शरीर का तापक्रम बढ़ने लगता है।
(३) शरीर बुखार के वेग से काँपने लगता है।
(४) रोगी को बुखार के तीव्र वेग में जाड़े का अनुभव होता है।
(५) जोड़ों पर दर्द का अनुभव होता है।
(६) रोगी को प्यास अधिक लगती है। खाना खाने की इच्छा कम हो जाती है।

मलेरिया के पैरेसाइट का जीवन चक्र

प्रत्येक जीवधारी को सम्पूर्ण जीवन में एक चक्र चलता है जिसकी दो अवस्थायें होती हैं। बिना एक के दूसरे का चलना कठिन होता है। इस तरह से एक भाग या अवस्था दूसरे पर निर्भर होती है यदि इनमें एक समाप्त कर दिया जाय तो दूसरा भी समाप्त हो जाता है।

इसी प्रकार मलेरिया के पैरेसाइट के जीवन चक्र की भी दो अवस्थायें होती हैं। ये दोनों चक्र भिन्न-भिन्न जीवों में चलते हैं। एक अवस्था इस जीवन चक्र की वह है जो कि मनुष्य में चलती है और दूसरी वह अवस्था है जो कि मादा एनाफ्लीज में चलती है। जो अवस्था मनुष्य में चलती है वह अमैथुनिक (Asexul cycle) कहलाती है और जो मच्छर के शरीर में चलती है

का वर्णन नीचे किया गया है।

अमैथुनिक चक्र (Asexual cycle)—जैसा ऊपर कहा गया है यह चक्र मनुष्य के शरीर में चलता है। इस चक्र को अमैथुनिक चक्र इसलिए कहते हैं कि इस चक्र में किसी प्रकार की नई उत्पत्ति नहीं होती है जो कुछ भी नवीन परिवर्तन होना है वह बिना गर्भाधान के ही हो सकता है। इस चक्र की अवधि १० से १४ दिन की होती है।

जब कोई मादा एनाफलीज मच्छर जिसके शरीर में मलेरिया के कीटाणु हो किसी स्वस्थ व्यक्ति को काटता है तो उसके खून को चूसते समय डंक से कुछ द्रव पदार्थ मनुष्य के रक्त में छूट जाता है। इस छूटे हुए द्रव में एक प्रकार के कीटाणु जिनको स्पोरोज्वाइट (*sporozuis*) कहते हैं गिर जाते हैं। ये स्पोरोज्वाइट मच्छर के शरीर में जन्म लेते हैं जिसका विवरण नीचे दिया गया है, ये स्पोरोज्वाइट एक बूँद में बहुत होते हैं। प्रत्येक स्पोरोज्वाइट का आकार तीक्ष्ण होता है और ये प्रत्येक एक लाल रक्त कण पर हमला करते हैं।

...जन होना आरम्भ हो जाता है। इस विभाजित रूप को ट्रोफोज्वाइट (Trophozoite) कहते हैं। इनकी सख्या एक से कई हो जाती है और इनमे कुछ रूप नर और मादा गुण

पैदा कर लेते हैं। कुछ समय पश्चात् ये ट्रोफोज्वाइट फिर विभाजित होते हैं और नया रूप धारण कर लेते हैं। इस नये रूप के कणों को मीरोज्वाइट कहते हैं। इनके जन्म के साथ ही साथ कुछ जहरीले कण भी पैदा होते हैं जिनको मैलनिन ग्रेन्यूल्स कहते हैं। अधिक दबाव के कारण लाल

रक्त कण की दीवाल फट जाती है ... कण रक्त मे पहुंच जाते हैं। इनमे कोई भी
मनुष्य के लिए हानिकारक नहीं होते ...
बड़े जोर का जाडा लगता है और प्र...
करते हैं और इसी प्रकार का चक्र फिर से प्रारम्भ ... इस बुखार मे कभी तापक्रम कम तथा कभी अधिक
फिर बुखार प्रारम्भ हो जाता है। इसी कारण
हो जाता है।

मैथुनिक चक्र (Sexual cycle)—जैसा ऊपर कहा गया है यह चक्र मच्छर के शरीर में चलता है। इस चक्र का समय ७ से १४ दिन का होता है।

जब कोई मच्छर (मादा एनाफ्लीज) किसी ऐसे व्यक्ति को काटती है जिसके शरीर में मलेरिया का कीटाणु हो तो मच्छर डंक से खून खींचता है। इस रक्त में जो भी कण होते हैं वे मच्छर के आमाशय में आ जाते हैं। ये सभी कण तो पच जाते हैं केवल युग्मजनक इसी स्थिति मे आमाशय में रहते हैं। इनमे कुछ मादा तथा कुछ नर युग्मजनक होते हैं। ये दोनों युग्मजनक कुछ समय पश्चात् नवीन रूपों में बदल जाते हैं।

मादा का रूप कुछ गोल हो जाता है और नर युग्मजनक एक से छ: शाखाओं में बंटकर विभक्त हो जाता है। इनमें से प्रत्येक एक शुक्र कीट का काम करता है। जब ये शुक्र कीट अलग-अलग हो जाते हैं तो प्रत्येक एक-एक मादा सेल के साथ मिलकर गर्भाधान करते हैं। इस गर्भाधान से एक पिंड (Zygote) बनता है। यह पिंड बड़ा ही तीव्र तथा नुकीला होता है। ये पिंड आमाशय की दीवाल को भेद कर आमाशय की दीवार के मांस पेशियों में पहुंच जाता है।

यहाँ पहुँच कर यह पिंड विभाजित होना आरम्भ करता है और बहुत से भागों में विभाजित हो जाता है। ये विभाजित भाग पहले गोल आकार के होते हैं फिर धीरे धीरे इनका आकार नुकीला
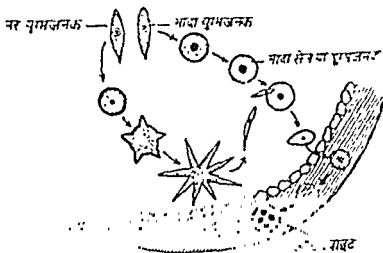
मैथुनिकचक्र—मच्छर के पेट में तथा आमाशय में

हो जाता है। कुछ काल के पश्चात् ये नुकीले भागों के दबाव के कारण इस पिंड की दीवार टूट जाती है और ये बाहर निकल आते हैं। इन आकारों को ही स्पोरोज्वाइट कहते हैं। पिंड से बाहर निकलकर रक्त की छोटी-छोटी कोशिकाओं में बह कर ये स्पोरोज्वाइट शरीर के प्रत्येक भाग में पहुँच जाते हैं।

जब इस प्रकार का मादा मच्छर किसी स्वास्थ्य व्यक्ति को काटता है तो लार में पहुँचे ये स्पोरोज्वाइट स्वस्थ व्यक्ति के रक्त में गिर जाते हैं और फिर वहाँ अमैथुनिक चक्र आरम्भ हो जाता है और १० से १४ दिन के पश्चात् व्यक्ति रोगग्रस्त हो जाता है। इस प्रकार ये दोनों चक्र पूरे होने पर ही यह कीटाणु अपने जीवन इतिहास को पूरा करता है।

मच्छर और मक्खी

Q. 10. Give the life history of mosquitoes or flies and suggest safeguards against the diseases the spread.

Ans. मच्छर और मक्खी दोनों कीटाणु प्रत्येक स्थान में पाये जाते हैं। इनके द्वारा भिन्न-भिन्न रोग फैलते हैं। इनके नाश करने से बहुत सी बीमारियाँ रोकी जा सकती हैं। इनमें से प्रत्येक के जीवन इतिहास का वर्णन नीचे अलग-अलग दिया है।

मच्छर का जीवन इतिहास

मच्छर वर्षा ऋतु के आरम्भ से जाड़ा आरम्भ होने तक पाये जाते हैं। इसके जीवन इतिहास में चार स्थितियाँ होती हैं। वे स्थितियाँ इस प्रकार हैं—

(१) अण्डा।
(२) लारवा।
(३) प्यूपा।
(४) मच्छर।

मुख्यतया दो प्रकार के मच्छर हमारे देश मे पाए जाते हैं। ये दोनो एनोफिलीज और दूसरा क्यूलेक्स। इन दोनो के जीवन मे उपरोक्त चारो स्थितियां पायी जाती हैं। परन्तु इनमे कोई भी स्थिति एक दूसरे से मिलती-जुलती नही है। इसका मतलब यह है कि हम इन स्थितियो को देख कर यह कह सकते हैं कि इनमे कौन सी स्थिति किस प्रकार के मच्छर की है। नीचे केवल एनोफिलीज मच्छर की जीवन स्थितियाँ चित्र द्वारा दिखलाई गई हैं।
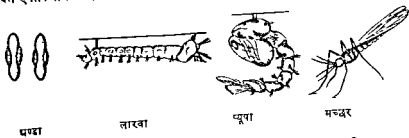
अण्डा—ऐनोफिलीज अपने अण्डे पानी के ऊपर देती है। यह पानी एक स्थिर अवस्था मे होना चाहिए। इनके अण्डे छोटे-छोटे होते हैं और इनका नुकीला आकार होता है। इनके मध्य मे तैरने का प्रबन्ध होना है। अण्डो का जीवन बहुत कम समय याने दो या तीन दिन का होता है। . . . के समानान्तर मे बदल जाते इनकी अवस्था होता है। . . . हैं और इस स्थिति मे लारवा ८ या १० दिन तक . . . कुछ लम्बी होती है।

प्यूपा—लारवा गर्म प्रदेशो मे ८ या १० दिन तथा ठण्डे प्रदेशो मे १४ से २० के बाद एक कीड़े के आकार मे बदल जाता है। यह जल में शीघ्रता से तैरता तथा दौडता है।

मच्छर—प्यूपा २ या तीन दिन के पश्चात् मच्छर मे बदल जाता है। प्यूपा का बाहरी आवरण फट जाता है और उसके भीतर से पूर्ण मच्छर निकल आता है। इस मच्छर का सर, वक्ष तथा उदर एक सीधी रेखा मे होता है जब कि यह किसी स्थान पर बैठता है।

मच्छरो के काटने से मलेरिया, फाइलेरिया आदि बुखार फैलते हैं। इन रोगो से बचने के लिये निम्न उपाय किए जाते हैं—

(१) स्वस्थ मनुष्य को मच्छर के काटने से बचाया जाय। चूंकि मच्छर से डक मे एक प्रकार के बैक्टीरिया होते हैं जो किसी बीमार व्यक्ति के शरीर मे आते हैं। जैसे ही मच्छर किसी स्वस्थ व्यक्ति को काटता है तो उसके रक्त को चूसने के साथ ही साथ उसके लार के साथ बीमारी के कीटाणु स्वस्थ व्यक्ति के रक्त मे पहुँच जाते हैं और वह बीमार पड जाता है।

(२) रहने के स्थान के पास गड्ढो मे पानी न हो जाय तथा घास-फूस घरो से दूर रखा जाय। क्योंकि मच्छर अपने अण्डे स्थाई जल मे ही देते हैं इसलिए घर के पास इस प्रकार के कोई गड्ढे न हो जहाँ जल ठहर जाय। साथ ही घर का इकट्ठा कूडा करकट जमा करके जलवा दिया जाय।

(३) मसहरी का प्रयोग तथा मच्छरो से सुरक्षित मकान तैयार किये जायें। मसहरी के प्रयोग से मच्छर शरीर के पास तक नही आ सकते हैं तथा मकान के चारो ओर जाली लगाने से भी मकान मे किसी प्रकार मच्छर प्रवेश नही कर पाते हैं।

(४) रोगी को क्यूनीन, पैल्यूड्रीन, माइपोक्रीन आदि दवायें देनी चाहिये। इन दवाओ के रक्त मे पहुँचने पर बीमारी के कीटाणुओ का नाश हो जाता है।

(५) मकान के पास के तालाबो मे मिट्टी का तेल तथा डी० डी० टी० का प्रयोग करने से मच्छर के अण्डो का नाश किया जा सकता है।

(५) रात या सोने से पहिले शरीर पर तेल मलने से भी मच्छर नहीं काट पाते हैं। इन तेलों में यूकेलिप्टस, चन्दन, सिट्रनेला, सिरका आदि प्रमुख हैं। इनके प्रयोग से मच्छर के काटने पर उनके दांत फिसल जाते हैं।

मक्खी का जीवन इतिहास

मक्खी से सभी लोग परिचित हैं। यह प्रत्येक घर में अपना निवास करती है। इसलिये इसका अध्ययन बड़ा ही आवश्यक होता है। यह अपने गन्दे स्वभाव के कारण अनेक रोग जैसे हैजा, पेचिस, घाव, खून के दस्त, अतिसार फैलाने में विशेष कार्य करती है। मक्खी से छुटकारा पाने के लिये उसके जीवन इतिहास, तथा उसको मारने के ढंग का अध्ययन करना आवश्यक होता है। भिन्न-भिन्न महामारियों में अधिकतर व्यक्ति इसी के द्वारा बीमारी के शिकार होते हैं।

मक्खियाँ गन्दगी की सूचक हैं और उन्हीं स्थानों में अधिक होती हैं जो अधिकतर गन्दे होते हैं। स्वच्छ स्थानों में मक्खियाँ नहीं होती हैं। मक्खियाँ अन्य प्रदेशों की अपेक्षा उष्ण प्रदेशों में अधिक पायी जाती हैं। वर्षा ऋतु में इनकी संख्या और ऋतुओं की अपेक्षा अधिक बढ़ती है।

मक्खी ग्रीष्म ऋतु में दिन में ५ या ६ बार अण्डे देती है और एक बार में १०० से १५० अण्डों से कम नहीं देती है, अण्डे से मक्खी बनने की चार अवस्थायें होती हैं।

अण्ड लारवा प्यूपा मक्खी

(अ) अण्डा—यह मक्खी की प्रथम अवस्था होती है। मक्खी प्रायः गोबर या सड़े-गले कार्बनिक पदार्थ में अण्डे रखती है। अण्डे श्वेत तथा कुछ चमकीले रंग के होते हैं। भिन्न-भिन्न समय में यह अण्डा दूसरी स्थिति में बदलता है। दशाओं के अनुकूल होने पर ८ घण्टे में अण्डों से लारवा बन जाते हैं। कभी-कभी समय इससे अधिक लग जाता है।

(ब) लारवा—ये श्वेत मटमैले रंग के रेंगने वाले कीड़े से होते हैं। इनके शरीर के छोटे-छोटे भाग सेगमेन्ट होते हैं। ये लगभग १/२ इंच लम्बे होते हैं। इनका शरीर एक ओर नुकीला और दूसरी ओर चपटा होता है। इसमें खाने तथा खोदने की शक्ति होती है। ये अपने जीवन काल में कई बार अपना आवरण बदलता है। यह अवस्था ३ से ६ दिन तक चलती है।

(स) प्यूपा—करीब ६ दिन के पश्चात् लारवा प्यूपा में बदल जाता है। इसका आकार पीपे के समान होता है। इसका रंग पीला, फिर लाल, फिर भूरा तथा अन्त में काला पड़ जाता है, इसकी अवस्था ३ दिन से ५ दिन तक की होती है।

(द) सूक्ष्म मक्खी—५ दिन के पश्चात् प्यूपा का आवरण फटने लगता है और उसमें से पूर्ण किन्तु छोटी कोमल मक्खी निकलती है। इसका बाहरी आवरण धीरे-धीरे कड़ा होता जाता है। इसके पश्चात् पर फैलने लगते हैं और मक्खी उड़ने लगती है। वह मक्खी ७ या ८ दिन में ... देने लगती है।

मक्खी अधिक दूरी तक नहीं उड सकती है। पारकर नामक व्यक्ति ने यह ज्ञात किया था कि मक्खी १ से १½ मील तक एक समय मे जा सकती है। दूसरे व्यक्ति हैवेट ने यह ज्ञात किया था कि मक्खी केवल ८० फीट की ऊँचाई तक उड सकती है। मक्खी प्रकाश की ओर आकर्षित होती है। यह बहुत लालची होती है और प्रत्येक खाद्य पदार्थ तथा सड़े गले कार्बनिक पदार्थ पर बैठती है।

मक्खियों से बचने के उपाय

(१) **मक्खी को अन्डे देने से रोका जाय**—मकान के आस पास किसी प्रकार का कूडा-करकट जमा न रखा जाय, घर के सभी बेकार पदार्थ को अलग जमा करके जला देने तथा जमीन के अन्दर बन्द कर देने से मक्खी अण्डे नही दे पाती है।

(२) *रासायनिक बचाव*—इस तरह के बचाव के हेतु रासायनिक पदार्थों का प्रयोग किया जाता है। इसमे से बोरक्स, पोटाश, सोडियम फ्लुओसिलीकेट, सोडियम आर्सेनेट, क्रीसोलिक अम्ल आदि रासायनिक पदार्थ मुख्यतया प्रयोग मे लाये जाते हैं।

(३) जीव विज्ञान पर आधारित बचाव—कूडे तथा मल पदार्थ को गड्ढों मे बन्द रखने से अन्दर का तापक्रम करीब १२०° फा० पहुँच जाता है। इसके कारण मक्खियाँ अण्डे *नहीं दे* पाती हैं।

(४) रसोई घरो, पाखानों तथा कूडे-करकट वाले स्थानो मे डी० डी० टी० छिड़क देने से मक्खी मर जाती है। इसके साथ ही साथ मक्खियो को पकडने के जाल का भी प्रयोग लाभ *दायक होता है।*

(५) रसोई घरो तथा खाने के कमरो के किवाड स्वय बन्द होने वाले होने चाहिए, खाना सर्दैव बन्द अलमारियो मे सुरक्षित रखना चाहिए।

प्लेग

Q. 11. How does plague spread? How can you check its infection?
(L. T. 1954)

Ans. प्लेग दो प्रकार का होता है। एक प्रकार के प्लेग मे रोग के जीवाणु फुफ्फुस पर आक्रमण करते हैं और निमोनिया जैसे लक्षण पैदा कर देते हैं इसलिये इसे Pneumonic Plague कहते हैं। ऐसी दशा मे रोगी के पास बैठना उसे छूना, और उसके थूक को छूना अत्यन्त खतर-*नाक होता है क्योंकि यह रोग सांस द्वारा फैलता है।*

दूसरे प्रकार का प्लेग बैसीलस पेस्टिस नामक कीटाणु चूहे की मक्खी को रुग्ण बना देते हैं। यह मक्खी जमीन के लगभग ९"—१०" तक ऊपर उड सकती है और स्वस्थ मनुष्य को काट कर रोग के जीवाणु को उसके शरीर मे प्रविष्ट कर देती है। रोग के जीवाणु के शरीर मे घुसते ही ज्वर आने लगता है, हृदय दुर्बल हो जाता है, दाहिनी जाँघ मे गिल्टी निकल आती है। प्यास अधिक लगती है। रोगी उन्मादित होकर बेहोश हो जाता है। रोग की भयकरता मे आँखें बैठ जाती है।

[illegible] न्दर से पैदा [illegible] करती हैं। [illegible] का खून चूस [illegible] हैं। जब एक [illegible] तो वे मनुष्यों [illegible] द्वारा भीतर पहुँचा दिये जाते हैं। इसलिये इस रोग से बचने के लिये इन सावधानियों से बचना होगा।

रोग से बचने के उपाय.

(१) प्लेग के दिनों मे पूरा मोजा और जूता पहिने रहना चाहिये। क्योंकि यह मक्खी फुदक कर फर्श से ७"—८" तक ही ऊपर उठ सकती है।

(२) चूहों की अधिक संख्या के मरने पर घर छोड़ देना चाहिए।

(३) मरे हुए चूहों को मिट्टी का तेल डाल कर जला देना चाहिए या शहर से बाहर किसी निर्जन स्थान में दवा देना चाहिए, चूहे फेंकने वाले व्यक्ति को हाथ साफ करके आग पर सेंक लेना चाहिए।

(४) बिलों को बन्द कर देना चाहिये ताकि चूहे भाग जायें। इनको विषों द्वारा मारा भी जा सकता है।

(५) जिन घरों में सील हो उनमें नीम की पत्ती जला कर, या आग जला कर गर्म किया जा सकता है।

(६) प्लेग फैलते ही प्लेग का टीका लगवा देना चाहिए।

(७) मकान तथा अन्य स्थानों को स्वच्छ रखना चाहिये। पाखाने और पशाब घरों को फिनाइल से साफ करा देना चाहिए। नालियाँ भी साफ रहनी चाहिए। ऐसा करने से चूहे उनमें आश्रय न पा सकेंगे।

अन्य सामान्य रोग

Q. 12 What are the common diseases among Primary School children? What precautionary and remedical measures should be taken to eliminate these?

Ans. प्राइमरी स्कूल के बालकों में अधिकतर वे बीमारियाँ होती हैं जिनका प्रसार हवा के द्वारा तथा साधारण खाद्य पदार्थों के द्वारा होता है। इस स्तर पर जाने वाले बालकों की आयु करीब ५ या ६ वर्ष से ११ या १२ वर्ष होती है। इस आयु में बालक कम सावधान होते हैं इसलिए बीमारी आसानी से फैलने का भय होता है। बच्चे साधारण खाद्य पदार्थों को खाने में किसी प्रकार का परहेज नहीं करते हैं। उनको मक्खी आदि बीमारी फैलने वाले कीड़ों से किसी प्रकार का परहेज नहीं होता है वे जहाँ कहीं भी खाने की वस्तुयें उपलब्ध होती हैं उनका बिना परहेज सेवन करने में किसी तरह की कठिनाई नहीं होती है। वे यह नहीं समझते कि कैसी वस्तुओं के प्रयोग से उनको हानि होती है। इस स्तर के बालकों में सामान्यतया निम्न बीमारियाँ फैलती हैं—

(१) छोटी चेचक—यह रोग स्कूल के बच्चों में अक्सर फैलता है। इस रोग में शरीर में छोटे-छोटे दाने निकल आते हैं। प्राय थोड़ी सी सावधानी से इस रोग से पीड़ित बालक ठीक हो जाते हैं।

(२) खसरा—यह चेचक की भाँति संक्रामक रोग है। यह रोग भी छोटे बच्चों को अत्याधिक रूप में होता है। यदि इस रोग में सावधानी न बरती जाय तो मृत्यु होने का भय होता है।

(३) कण्ठ रोहिणी—यह रोग अधिकतर २ से ५ वर्ष के बच्चों को सामान्य रूप में होता है। यह भी बड़ा ही भयकर संक्रामक रोग होता है।

(४) कुकुर खाँसी—यह रोग भी बालकों में सामान्य रूप से अधिक होता है। इस रोग का मुख्य कारण भी एक विशेष प्रकार के कीटाणु होते हैं। ये कीटाणु वायु द्वारा एक स्थान से दूसरी जगह वायु के मार्ग से चलते हैं।

(५) कर्ण-फेर—यह रोग भी बच्चों को अधिक मात्रा में होता है। यह रोग अधिक भयकर नहीं होता है। इस रोग में कान के सामने वाले ग्रिल्टियों पर प्रभाव पड़ता है। उस स्थान पर सूजन आ जाती है। इस रोग का असर कभी-कभी हन्वधर (submaxillary) और जिह्वा ग्रन्थियों पर भी हो जाता है।

(६) लाल बुखार (scarlet fever)—यह बुखार एक प्रकार के विशेष कीटाणु द्वारा फैलता है। इस रोग में प्रायः ५ से १० वर्ष तक के बालक अधिक पीड़ित होते हैं। इसके कीटाणु श्वास-नली द्वारा शरीर में प्रवेश करते हैं।

छोटी चेचक

लक्षण– (१) सबसे पहिले इस रोग मे हलका ज्वर १००° या १०१° फा० के साथ दाने निकलते है।

(२) दाने सबसे पहिले धड़ पर निकलते हैं जो पहिले बारीक तथा कुछ समय पश्चात् फफोलों में बदल जाते हैं।

(३) धीरे-धीरे इन दानों में पानी भर जाता है।

(४) एक या दो दिन के पश्चात् ये दाने सिर, हाथ, और पैरो पर भी फैल जाते हैं।

(५) तीन या चार दिन मे फफोले सूख जाते हैं और उनके स्थान पर पपडी पड़ जाती है। कुछ समय बाद वह पपड़ी सूख कर गिरने लगती है।

उपचार तथा सावधानी

(१) रोग ग्रस्त बच्चो की पपड़ी सूख कर जब तक गिर न जाय स्कूल मे नही भेजना चाहिये।

(२) रोग दूषित घरो के बच्चो को भी तीन सप्ताह तक अलग कर देना चाहिए।

(३) जिस बच्चे पर इस तरह के दाने निकलते दिखाई दे उसको स्कूल नही भेजना चाहिये।

(४) रोग-ग्रस्तो की सूचना तुरन्त डाक्टर को दे देनी चाहिए क्योंकि कभी-कभी भ्रम मे बड़ी माता को छोटी माता समझ लिया जाता है।

(५) रोगी के शरीर पर वैसलीन मलना तथा खुरटों को जला देना उचित है। रोग मुक्त होने पर रोगी को निसक्रमक द्रव से स्नान कराना चाहिये।

खसरा

लक्षण—(१) सबसे प्रथम इस रोग मे ज्वर आता है तथा छीकें आती है।

(२) इसके बाद ही गले और नाक मे सूजन हो जाती है तथा नाक और मुँह से पानी बहने लगता है।

(३) चौथे या पांचवे दिन मे लाल रंग के दाने निकलने लगते है जो कुछ समय बाद आपस मे मिल जाते है।

(४) इसके पश्चात् सारी त्वचा लाल नजर आती है।

(५) २४ से ४८ घण्टे पश्चात् ये दाने शात हो जाते हैं और शरीर की लाली जाती रहती है।

उपचार और सावधानी :

(१) बच्चे को गरम तथा हवादार कमरे मे अलग लिटाना चाहिये और ठंड से बचना चाहिए, वरना ब्रोंकाइटस और निमोनिया होने का भय रहता है।

(२) यदि सांस तेज चल रहा हो तो समझ लेना चाहिये कि *निमोनिया आरम्भ* हो रहा है। ऐसी स्थिति में तुरन्त डाक्टर को सूचना देनी चाहिये।

(३) आंख और कान की ओर भी ध्यान रखना चाहिये क्योंकि *खसरे का* प्रभाव इन अंगो पर पड़ने का भय होता है।

(४) इस [illegible] जाता है। इसके प्रयोग करने मे बच्चो [illegible] घर भेज देना

(५) कक्षा [illegible] चाहिए [illegible] डाक्टर को सूचना देनी चाहिए।

कर्ण-फेर

लक्षण :

(१) जबड़े के कोण मे कान से नीचे पीड़ा होती है।
(२) इसके साथ ही साथ इस भाग मे तनाव और कोमलता भी उत्पन्न होती है।
(३) तनाव का प्रसर गर्दन तक पहुँचने पर भोजन निगलने म कठिनाई होती है।

उपचार तथा सावधानी

(१) रोगी को अलग गरम रखना चाहिये।
(२) सूजन पूर्ण रूप से समाप्त हो जाने पर ही रोगी को भोजन दिया जा सकता है।
(३) रोग ग्रस्त बच्चे को स्कूल से तीन सप्ताह के लिए अवकाश दे देना चाहिये। छूत-दूषित घर-घर के बच्चो को छूत लगने के दिन से एक माह के लिये पृथक कर देना आवश्यक है।

लाल-बुखार

लक्षण :

(१) इस रोग मे प्रथम पीलापन, कँपकँपी, वमन और गले मे पीड़ा होती है।
(२) चहरे का रग लाल तथा त्वचा गरम हो जाती है।
(३) इसके साथ ही साथ गर्दन मे तथा शरीर पर छोटे-छोटे दाने दिखाई देते हैं।
(३) आरम्भ मे जीभ पर सफ़ेद तह सी जम जाती है। कुछ समय पश्चात् वह लाल और चमकदार हो जाती है।
(५) टान्सिल लाल हो जाते हैं और उनमे सूजन आ जाती है।
(६) ४ से ८ वें दिन भूसी उतरना आरम्भ होता है।

उपचार तथा सावधानी :

(१) इस महामारी के आरम्भ मे विष निवारक सूई लगाने से रोग के आक्रमण की कम सम्भावना होती है।

(२) जिस घर मे इस रोग की शिकायत हो वहाँ के बच्चो को रोग समाप्त होने के एक सप्ताह तक स्कूल न आने देना चाहिये।

(३) रोग ग्रस्त बच्चो को जब तक त्वचा साफ न हो जाय स्कूल से छुट्टी दे देनी चाहिए।

(४) जिस बच्चे मे इस रोग के लक्षण अध्यापक को दिखाई दे उसे तुरन्त डाक्टरी परीक्षा के लिये भेज देना चाहिये।

(५) रोग फैलने के दौरान मे रोग सन्देह निवारण के लिये डिक टेस्ट प्रणाली से बच्चो की परीक्षा होनी चाहिए। इस परीक्षा से बालक म लाल ज्वर के कीटाणु का बोध होता है।

विसन्क्रमण (Disinfection)

सावधानी से रोग विशेष के रोगी की थूक, नाके बर्तनो म

चिपट सकते है। वे कुर्सी, मेज, किताब, पेंसिल सभी मे पहुँच जाते है। इसलिये उनको नष्ट करने के लिये कई प्रकार के विसक्रामक तत्वो का प्रयोग किया जाता है—

ये तत्व निम्नलिखित है।

(१) आग या तीव्र ताप या भाप—संक्रामक रोग से पीड़ित व्यक्ति के मल मूत्र, थूक बलगम, और जलाने योग्य वस्त्रों को आग में जला देना चाहिये। जिन वस्त्रों को जलाया न जा सके उनमें वाष्प प्रविष्ट कराके जीवाणुओं का नाश किया जा सकता है। यदि कपड़े ऐसे हैं कि जिनको भाप लग जाने से नुकसान पहुँचाया जा सकता है तो उन्हें धूप में डाल देना चाहिये अथवा अन्य विसंक्रामक तत्वों से धो डालना चाहिये।

(२) सूर्य का प्रकाश – इस प्रकार बड़ा तीव्र विसंक्रामक तत्व है। वस्त्र, शैया, पुस्तक शीशा, कुर्सी, मेज, सभी चीजें जो रोगी के कमरे में रही हैं धूप में डालकर विसंक्रमित की जा सकती हैं।

(३) घोल—कार्बोलिक ऐसिड, फोरमोलिन पोटाश, कोरोसिव सबलीमेट के घोल विशेषकर इस काम में लाये जाते हैं।

(४) विसंक्रामक गैस—कमरों में गन्धक या नीम की पत्ती जलाकर रोग के जीवाणुओं को मारा जा सकता है। क्लोरीन फौरमैल्डीहाइड और सल्फर-डाइ-ग्राक्साइड गैसें इसमें विशेष मदद करती है। सल्फर डाइ ग्राक्साइड गैस तीव्र उत्तेजक गन्ध पैदा करती है इसलिये इसका प्रयोग सावधानी से करना चाहिये।

अध्याय १२

कर्णेन्द्रिय की रचना

Q. 1 Describe with the help of a diagram how the human ear functions. What should be done to keep the ear in a healthy condition?

Ans. मनुष्य के शरीर में बहुत सी ज्ञानेन्द्रियाँ होती हैं। इनका भिन्न-भिन्न कार्य होता है। इन्हों ज्ञानेन्द्रियों में कान भी एक ज्ञानेन्द्रिय है जो कि श्रवण का कार्य करती है। बोलने पर शब्दों की जो ध्वनि पैदा होती है वह ध्वनि लहरों में चलती है और ये ध्वनि लहरें वायु के माध्यम से चलकर हमारे कान में प्रवेश करती हैं और तब हमको ध्वनि का अनुभव होता है। यह ज्ञानेन्द्रिय बड़े महत्व की है क्योंकि इसके द्वारा हम बाह्य ध्वनि का अनुभव करते हैं। यह ध्वनि हमारे मस्तिष्क में पहुँचकर हमको ध्वनि का ज्ञान कराती है। शिक्षा के क्षेत्र में इस इन्द्रिय का बड़ा महत्व है क्योंकि बिना कान के हम दूसरे के विचारों को न सुन सकते हैं और न समझ सकते हैं।

ध्वनि का अनुभव हमको किस प्रकार होता है इसको समझने के लिये हमको कान की बनावट समझनी आवश्यक होती है। निम्न चित्र से कान के भिन्न-भिन्न भागों का ज्ञान हो जाता है।
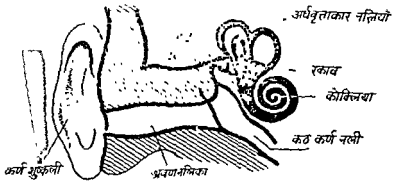
(कान का चित्र)

कान को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है—

(१) बाह्य कर्ण।
(२) मध्य कर्ण।
(३) अन्त कर्ण।

बाह्य कर्ण—यह भाग कान का सबसे बाहरी भाग होता है। इसके तीन भाग होते हैं—

(ग्र) कर्ण शुष्कली—यह कार्टीलेज का बना हुग्रा होता है। इसका कार्य ध्वनियों की तरंगों को एकत्र करना होता है। इसका ग्राकार इस प्रकार का होता है कि वह ध्वनि की लहरों को ग्रासानी से एकत्र कर सके।

(ब) श्रवण नलिका—कर्ण शुष्कली एक नली से जुड़ा रहता है जिसकी लम्बाई करीब सवा इंच होती है। इस पर एक पतली झिल्ली का ग्रावरण होता है जिसमें छोटे-छोटे रोयें होते हैं। इस झिल्ली में कुछ ग्रन्थियाँ होती हैं जिनके द्वारा मोम तैयार होता है। इस भाग का कार्य धूल के कणों से कान के पर्दे की रक्षा करना होता है।

(स) कर्ण पटल—श्रवण नलिका का भीतरी सिरा एक पतली वृत्ताकार झिल्ली से बन्द होता है। उसे कर्ण पटल कहते हैं। जब ध्वनि तरंगें ग्रन्दर प्रवेश करती हैं तो वे इस भाग पर कम्पन पैदा कर देती हैं। मध्य कर्ण—इस भाग की स्थिति कर्ण पटल के परे खोपड़ी की ग्रस्थि के एक गर्त में होती है। यह भाग पहले भाग के समान तीन ग्रस्थि बन्धनों का बना होता है। ग्राकृति के ग्राधार पर इनको निम्न नामों से पुकारा जाता है—

(ग्र) मुग्दर—यह भाग मजबूती से कर्ण पटल से जुड़ा होता है।

(ब) नहाई—मुग्दर का दूसरा भाग इससे जुड़ा रहता है।

(स) रकाब—ऊपर की ग्रोर नहाई तथा नीचे की ग्रोर ग्रन्त: कर्ण से जुड़ा होता है।

इन तीनों ग्रस्थियों का कार्य कम्पन को ग्रन्त कर्ण में प्रवेश कराना है। इसी भाग में एक नली मुँह कण्ठ से ग्राकर खुलती है। इस नली को कण्ठ कर्ण नली कहते हैं। इसका कार्य इस भाग में दबाव को सम ग्रवस्था में रखना है जिससे कम्पन का प्रभाव सुचारु रूप से हो सके। इस नली तथा मुख या गले में किसी प्रकार की खराबी जुकाम, एडिनाएड्ज ग्रादि के होने से कम्पन ठीक रूप से नहीं हो पाता ग्रौर सुनने में कठिनाई होती है।

(३) ग्रन्त कर्ण—इसकी स्थिति कनपटी के भीतर होती है। ग्रधिक पेचीदा होने के कारण इसको घूम-घुमैया कहते हैं। इस ग्रस्थि गहन के भीतर एक झिल्ली की थैली झिल्लीय गहन होती है। इसके ग्रन्दर एक द्रव भरा रहता है जो कि एण्डोलिम्फ कहलाता है। झिल्लीय गहन के तीन भाग होते हैं एक कर्णकुटी—जो कि इसके केन्द्र में स्थित होता है। ग्रागे की ग्रोर यह कोक्लिया तथा पीछे की ग्रोर ग्रर्धवृत्ताकार नलियों से ध्वनि ग्रहण करती है। इसके बाहरी भाग से रकावस्थि का चौड़ा भाग जुड़ा रहता है। गहन का दूसरा भाग घोंघे के सदृश होता है। इसकी तलों में बहुत से छिद्र होते हैं जिनसे होकर नाड़ियाँ ग्रन्दर प्रवेश करती हैं। गहन का तीसरा भाग ग्रर्धवृत्ताकार नलियाँ होती हैं। इनकी सख्या केवल तीन होती है, ये ग्रापस में समकोण बनाती हैं तथा पाँच छिद्रों द्वारा कर्ण-कुटी से सम्बन्धित रहती हैं। प्रत्येक नली का सिरा कुछ फूला हुग्रा होता है। इसके ग्रन्दर श्रवण-नाड़ी की शाखाग्रों के सूत्र फैले हुये हैं। इनका कार्य सन्तुलन को बनाये रखना है।

उपरोक्त कर्ण के भिन्न-भिन्न भागों का ग्रध्ययन करने के पश्चात् यह ग्रावश्यक हो जाता है कि उसकी क्रिया को समझा जाय, तभी प्रत्येक ग्रंग की क्रिया स्पष्ट भी हो सकती है। श्रवण क्रिया कर्ण में निम्न प्रकार से होती है।

जब हम कुछ शब्द बोलते हैं तो उन शब्दों के द्वारा वायु में प्रभाव पड़ता है। इन शब्दों के द्वारा वायु में लहरें पैदा होती हैं, इनको ध्वनि लहरें कहते हैं। ये ध्वनि लहरें सबसे प्रथम बाह्य कर्ण पर टकराती हैं तथा बाह्य कर्ण के कर्ण शुष्कली के द्वारा जमा होकर कर्ण की श्रवण नलिका में प्रवेश करती है। ये लहरें फिर एक साथ जमा होकर उसका प्रभाव कर्ण पटल पर पड़ता है। जैसे ही ये लहरें कर्ण पटल में टकराती हैं तो उस पटल में कम्पन पैदा हो जाता है। यह कर्ण पटल इतना कोमल तथा हलका होता है कि थोड़ी सी हवा की लहरों से इसमें काफी मात्रा में कम्पन पैदा हो जाता है।

बाह्य कर्ण से यह कम्पन मध्य कर्ण में प्रवेश करता है। मध्य कर्ण में स्थित तीन हड्डियाँ होती हैं जिनमें ध्वनि कम्पन द्वारा प्रभाव पड़ता है। इस तरह कम्पन ग्रन्दर की तीसरी ग्रस्थि पर पहुँचता है। मध्य कर्ण में स्थित कण्ठ-कर्ण नली भी होती है। यदि कभी ध्वनि की लहरें वेग से चलती हैं तो उनके प्रभाव को कम करने के लिये यह रास्ता खुला होता है। ग्रधिक

तीव्र लहरें इस मार्ग से कंठ मे प्रवेश करती हैं इस तरह के मध्य कर्ण के अन्दर का दबाव एक सन्तुलित अवस्था मे रहता है। यदि दबाव अधिक होता है तो इसका प्रभाव अन्दर के कर्ण के भाग पर चला जाता है जिससे सुनने की क्रिया पर प्रभाव पड़ सकता है।

अस्थियो के कम्पन का प्रभाव अत. कर्ण पर पड़ता है। अतः कर्ण के भीतर एक तरल द्रव होता है जिसमे ध्वनि की लहरो का प्रभाव पड़ता है। इस तरह द्रव मे कम्पन पैदा हो जाता है इसी तरल पदार्थ मे नाड़ी के सिर होते हैं। जैसे ही द्रव मे कम्पन पैदा होता है उसका असर नाड़ी के सिरो पर पड़ता है। इन सिरो से कम्पन नाड़ियो मे प्रवेश करता है जिनके द्वारा कम्पन का प्रभाव मस्तिष्क के श्रवण केन्द्र पर पड़ता है। जैसे ही कम्पन का प्रभाव श्रवण केन्द्र पर पड़ता है वैसे ही हमको ध्वनि का अनुभव होता है और हम शब्दो को सुन लेते हैं। इस प्रकार ध्वनि एक स्थान से दूसरे स्थान को जाती है।

प्रत्येक इन्द्रिय को स्वस्थ अवस्था मे रखने के लिये हमको विशेष ध्यान देना अनिवार्य है। कर्ण को स्वस्थ अवस्था मे रखने के लिये निम्न बातो पर ध्यान रखना चाहिये—

(१) कान के बाह्य भाग मे मैल न जमने देना चाहिए—वायु मे धूल के कण तैयार रहते हैं तथा कर्ण नली मे ध्वनि की लहरो के साथ प्रवेश करते हैं। इसलिये समय समय पर यह मैल बाहर निकाल देना चाहिए। इस नली से धूल निकालने मे एक सावधानी यह रखनी चाहिये कि किसी सख्त वस्तु जैसे पिन आदि से न कुरेदना चाहिए वरना कर्ण पटल पर प्रभाव पड़ सकता है। इसके लिए समय-समय पर हलका गरम करके तेल डाल देना चाहिए। इस तरह बाह्य कर्ण को सदैव स्वच्छ रखने से कान स्वस्थ रह सकता है।

(२) गले के पास टान्सिल तथा एडिनाइड्ज के हो जाने से कान मे दोष पैदा हो जाता है। इनके पैदा होने से कंठ-कर्ण नली मे विकार पैदा हो जाता है। इस विकार से सुनने मे कठिनाई पड़ती है और मध्य कर्ण पर प्रभाव पड़ता है। इस तरह कर्ण को स्वस्थ रखा जा सकता है। इस तरह कान को स्वस्थ रखने के लिये गले सम्बन्धी रोग न होने देना चाहिए।

[illegible] के श्रवण केन्द्र के दोष-पूर्ण ढग मे [illegible]। यदि इस तरह के किसी दोष को [illegible] इन रोगो से कान मे बहरेपन के दोष [illegible]

(४) कभी कभी मस्तिष्क की झिल्ली की सूजन से भी कान मे दोष हो जाता है और कान अस्वस्थ हो जाता है। इसका इलाज भी चिकित्सक ही कर सकता है।

इसके अतिरिक्त स्कूल मे सुनने की परीक्षा पर भी जोर देना चाहिए। बालकों मे कान से ठीक से न सुनने का रोग किसी भी अवस्था पर पैदा हो सकता है। इस परीक्षा से यह ज्ञात हो जावेगा कि किस विशेष परिस्थिति मे तथा समय पर कर्ण अस्वस्थ हो गया है। इसके ज्ञात होने पर उसका भली प्रकार उपचार भी किया जा सकता है। कान की समय-समय पर डाक्टर के द्वारा परीक्षा भी ली जानी चाहिए। इस प्रकार से कानो को स्वस्थ रखा जा सकता है।

कर्णेन्द्रिय के दोष एवं रोग

Q 2. What are the possible causes of defective hearing? How will you identify a boy who has defective hearing?

(B. T. 1953)

Ans. बालक का बहरा होना उसकी शिक्षा मे बाधा पहुँचाता है क्योंकि वह अध्यापक द्वारा कही हुई किसी बात को सुन नही पाता। उसके बोलने मे भी विकार उत्पन्न हो जाता है। यह बहरापन दो प्रकार का होता है आंशिक और पूर्ण। पूर्ण बहरेपन मे तो बालक की पहचान तुरन्त हो जाती है किन्तु आंशिक बधिरता मुश्किल से पहचानी जाती है।

बधिरता कैसी ही क्यों न हो जन्मजात अथवा उपार्जित हो सकती है। यह बहरापन बाहरी, बीच के और अन्तस्थ कान मे कही भी हो सकता है। इसके निम्नलिखित कारण हैं:—

(अ) कर्ण शुष्कली—यह कार्टीलेज का बना हुआ होता है। इसका कार्य ध्वनियों की तरंगों को एकत्र करना होता है। इसका आकार इस प्रकार का होता है कि वह ध्वनि की लहरों को आसानी से एकत्र कर सके।

(ब) श्रवण नलिका—कर्ण शुष्कली एक नली से जुड़ा रहता है जिसकी लम्बाई करीब सवा इंच होती है। इस पर एक पतली झिल्ली का आवरण होता है जिसमें छोटे-छोटे रोयें होते हैं। इस झिल्ली में कुछ ग्रन्थियाँ होती हैं जिनके द्वारा मोम तैयार होता है। इस भाग का कार्य धूल के कणों से कान के पर्दे की रक्षा करना होता है।

(स) कर्ण पटल—श्रवण नलिका का भीतरी सिरा एक पतली वृत्ताकार झिल्ली से बन्द होता है। उसे कर्ण पटल कहते हैं। जब ध्वनि तरंगें अन्दर प्रवेश करती हैं तो वे इस भाग पर कम्पन पैदा कर देती हैं। मध्य कर्ण—इस भाग की स्थिति कर्ण पटल के परे खोपड़ी की अस्थि के एक गर्त में होती है। यह भाग पहले भाग के समान तीन अस्थि बन्धनों का बना होता है। आकृति के आधार पर इनको निम्न नामों से पुकारा जाता है—

(अ) मुग्दर—यह भाग मजबूती से कर्ण पटल से जुड़ा होता है।

(ब) नहाई—मुग्दर का दूसरा भाग इससे जुड़ा रहता है।

(स) रकाब—ऊपर की ओर नहाई तथा नीचे की ओर अन्त. कर्ण से जुड़ा होता है।

इन तीनों अस्थियों का कार्य कम्पन को अन्त.कर्ण में प्रवेश कराना है। इसी भाग में एक नली मुँह कण्ठ से आकर खुलती है। इस नली को कण्ठ कर्ण नली कहते हैं। इसका कार्य इस भाग में दबाव को सम अवस्था में रखना है जिससे कम्पन का प्रभाव सुचारु रूप से हो सके। इस नली तथा मुख या गले में किसी प्रकार की खराबी जुकाम, एडिनाएड्ज आदि के होने से कम्पन ठीक रूप से नहीं हो पाता और सुनने में कठिनाई होती है।

(२) अन्त.कर्ण—इसकी स्थिति कनपटी के भीतर होती है। अधिक पेचीदा होने के कारण इसको घुम-घुमैया कहते हैं। इस अस्थि गहन के भीतर एक झिल्ली की थैली झिल्लीय गहन होती है। इसके अन्दर एक द्रव भरा रहता है जो कि एण्डोलिम्फ कहलाता है। झिल्लीय गहन के तीन भाग होते हैं एक कर्णकुटी—जो कि इसके केन्द्र में स्थित होता है। आगे की ओर यह कोक्लिया तथा पीछे की ओर अर्धवृत्ताकार नलियों से ध्वनि ग्रहण करती है। इसके बाहरी भाग से रकावस्थि का चौड़ा भाग जुड़ा रहता है। गहन का दूसरा भाग घोंघे के सदृश होता है। इसकी तला में बहुत से छिद्र होते हैं जिनमें होकर नाड़ियाँ अन्दर प्रवेश करती हैं। गहन का तीसरा भाग अर्धवृत्ताकार नलियाँ होती हैं। इनकी संख्या केवल तीन होती है, ये आपस में समकोण बनाती हैं तथा पाँच छिद्रों द्वारा कर्ण-कुटी से सम्बन्धित रहती हैं। प्रत्येक नली का सिरा कुछ फूला हुआ होता है। इसके अन्दर श्रवण-नाड़ी की शाखाओं के सूत्र फैले हुये हैं। इनका कार्य सन्तुलन को बनाये रखना है।

उपरोक्त कर्ण के भिन्न-भिन्न भागों का अध्ययन करने के पश्चात् यह आवश्यक हो जाता है कि उसकी क्रिया को समझा जाय, तभी प्रत्येक अंग की क्रिया स्पष्ट भी हो सकती है। श्रवण क्रिया कर्ण में निम्न प्रकार से होती है।

जब हम कुछ शब्द बोलते हैं तो उन शब्दों के द्वारा वायु में प्रभाव पड़ता है। इन शब्दों के द्वारा वायु में लहरें पैदा होती हैं, इनको ध्वनि लहरें कहते हैं। ये ध्वनि लहरें सबसे प्रथम बाह्य कर्ण पर टकराती हैं तथा बाह्य कर्ण के कर्ण शुष्कली के द्वारा जमा होकर कर्ण की श्रवण नलिका में प्रवेश करती हैं। ये लहरें फिर एक साथ जमा होकर उनका प्रभाव कर्ण पटल पर पड़ता है। जैसे ही ये लहरें कर्ण पटल से टकराती हैं तो उस पटल में कम्पन पैदा हो जाता है। यह कर्ण पटल इतना कोमल तथा हल्का होता है कि थोड़ी सी हवा की लहरों से इसमें काफी मात्रा में कम्पन पैदा हो जाता है।

बाह्य कर्ण से यह कम्पन मध्य कर्ण में प्रवेश करता है। मध्य कर्ण में स्थित तीन हड्डियाँ होती हैं जिनके द्वारा कम्पन आगे बढ़ता है। इस तरह कम्पन अन्दर की [illegible] [illegible] पर पहुँचता है। मध्य कर्ण में स्थित [illegible] नली भी होती है। जोर की ध्वनि का लहरें जब ये [illegible] [illegible] [illegible] कम करने के लिए यह रास्ता खुला होता है। [illegible]

दृश्येन्द्रिय की रचना

आंख का आकार एक गेंद की तरह का होता है। आंख की हरकत का नियन्त्रण छ मास पेशियों द्वारा होता है। इन पेशियों की हरकत से आंख का गोला अपने स्थान पर इधर-उधर घूमता है।

'आंख का कटा सेक्शन'

आंख को सामान्य रूप से तीन तहों में बांटा जा सकता है—

(१) श्वेत पटल और कार्निया—यह भाग सबसे बाहरी भाग होता है।
(२) मध्य पटल और उपतारा—यह भाग आंख का मध्य भाग होता है।
(३) अंत पटल—यह सबसे भीतरी भाग होता है।

(१) श्वेत पटल और कार्निया—श्वेत पटल सफेद रंग की बाहरी कड़ी पर्त होती है। बिलकुल सामने की ओर इसका भाग पारदर्शक होता है। इसी पारदर्शक भाग को कार्निया कहते हैं। इसी भाग से प्रकाश की किरणें अन्दर प्रवेश करती हैं। इस भाग की रक्षा के लिये एक दूसरी पारदर्शक झिल्ली कार्निया के बाहर की ओर होती है।

श्वेत पटल का कार्य आंख को गोल बनाये रखना तथा बाहरी आघातों से भीतर के भाग की रक्षा करना होता है। पीछे की ओर यह भाग छिद्र रहता है। इसी भाग से दृष्टि नाड़ी मस्तिष्क को जाती है। इसी भाग में छ पेशियां जुड़ी रहती हैं जो कि गोलक को विभिन्न दिशाओं में घुमाती हैं।

(२) मध्य पटल और उपतारा—मध्य पटल वाला भाग गहरे भूरे रंग का होता है जो कि श्वेत पटल के भीतर स्थित होता है। यह आंख के भीतरी भाग को अन्धकारमय बनाता है। पीछे की ओर वह दृष्टि नाड़ी से जुड़ा रहता है।

कार्निया के पीछे की ओर गोलाकार काले परदे होते हैं इन्हीं परदों को उपतारा कहते हैं। इनके अन्दर फैलने और सिकुड़ने वाले रेशे होते हैं। इनके बिलकुल मध्य भाग में एक छोटा छिद्र होता है जिसको तारा कहते हैं। इसी से प्रकाश भीतर प्रवेश करता है। अधिक प्रकाश में यह छिद्र छोटा तथा कम प्रकाश में बड़ा हो जाता है।

तारे के अन्दर ताल होता है। ताल और कार्निया के बीच के खाली स्थान में एक द्रव भरा होता है जो कि जल कोष कहलाता है। ताल के ऊपर और नीचे अस्थिबन्धन होते हैं जिनका सम्बन्ध सीलियरी मांस-पेशियों से होता है। ताल के भीतरी भाग में एक गाढ़ा द्रव भरा होता है जिसको जेली कोष कहते हैं।

(३) अन्त. पटल—यह भाग आंख के सबसे भीतर की ओर होता है। यह भाग पीले सफेद रंग का होता है। इसी के पिछली ओर दृष्टि नाड़ी निकल कर मस्तिष्क में प्रवेश करती है। अन्त पटल में दो बिन्दु होते हैं—एक तो पीत बिन्दु और दूसरा अन्ध बिन्दु जब किसी वस्तु का बिम्ब पीत बिन्दु पर पड़ता है तभी वस्तु का वास्तविक ज्ञान होता है और जब बिम्ब अन्ध बिन्दु पर पड़ता है तो वस्तु नहीं दिखलाई पड़ती है।

(१) श्रवण नलिका में मोम के अधिक जमा हो जाने पर या नाक के पीछे ऐडीनाइड्स या गलसुये बढ़ जाने पर या कंठ-कर्ण नलिका के बीच का स्थान बन्द हो जाने पर मध्यकर्ण में हवा नहीं पहुँच पाती और बालक बहरा हो जाता है।

(२) किसी बाहरी वस्तु द्वारा कर्ण पटल पर चोट पहुँचने के कारण भी बधिरता पैदा हो जाती है।

(३) प्रासिक रूप से बहरेपन का कारण मध्यकर्ण या अन्तःस्थ कर्ण का रोगग्रस्त होना होता है। खसरा, स्कारलेट, ज्वर, निमोनियाँ, इन्फ्लुएन्ज़ा, कुकर खाँसी आदि से गला दूषित हो जाता है। इन रोगों के जीवाणु कंठ कर्ण नली द्वारा मध्य कर्ण में प्रवेश कर जाते हैं। वहाँ पर सूजन आने पर मवाद पड़ जाता है। यह मवाद कर्णपटल के छेद पर गिरता है और सूक्ष्म अस्थियों की शृंखला को नष्ट कर देता है। इस प्रकार बालक बहरा हो जाता है।

(४) मस्तिष्क का श्रवण-केन्द्र दोषपूर्ण हो जाने पर व्यक्ति पूर्णतः बधिर हो जाता है।

जो बालक कर्णेन्द्रिय दोष से ग्रसित रहता है वह सुनने का प्रयत्न करने के लिये अपना सिर एक ओर झुका लेता है। सुनने में जब वह पाठ पर अधिक ध्यान लगाता है तब उसको थकान महसूस होने लगती है और पाठ के बीच से ही उसको पाठ के प्रति उदासीनता सी दिखाई देती है। वह मुँह से सांस लेता है उसको कान में पीड़ा और झनझनाहट मालूम पड़ती है। सिर में दर्द रहता है। थकान और सुस्ती उसके चेहरे से झलकती रहती है। वह मानसिक रोगों से पीड़ित होने लगता है। बात-बात पर चिड़चिड़ाहट, क्रोध और जोर जोर से बोलना उसके स्वभाव में आ जाता है।

ऐसे लक्षण मिलते ही अध्यापकों को उसकी श्रवण परीक्षा करवा देनी चाहिये। श्रवण परीक्षा के लिये ऑडियोमीटर (audiometer) काम में लाया जाता है। इस यन्त्र से एक साथ कई बालकों के श्रवणेन्द्रिय के दोषों को ज्ञात किया जा सकता है। किन्तु अधिक महँगा होने के कारण साधारण आर्थिक दशा वाले विद्यालय इसे खरीद नहीं सकते। इसलिये उन्हें श्रवण परीक्षा के अन्य उपायों का प्रयोग करना पड़ता है। श्रवण शक्ति की परीक्षा करने के लिये घड़ी को प्रयोग में लाया जा सकता है। यदि सामान्य व्यक्ति घड़ी की टिक टिक को २२ इंच की दूरी तक सुन सकता है तो श्रवणेन्द्रिय के दूषित होने पर दूसरा बालक उससे आधी दूरी पर टिक टिक की ध्वनि को नहीं सुन पावेगा।

दृश्येन्द्रिय की रचना

Q. 3 Describe with a diagram the structure of the human eye. How does the eye of a short sighted child differ from that of a normal child? What care would you take of a short-sighted child in the class room?

Ans. मनुष्य के शरीर में बहुत से ज्ञान सम्बन्धी अंग होते हैं जिनके द्वारा बाह्य ज्ञान का अनुभव होता है। इन ज्ञान अंगों में नेत्रों का स्थान सबसे उच्च कोटि का होता है क्योंकि इनके द्वारा व्यक्ति को सबसे अधिक ज्ञान होता है।

आँखों की स्थिति मनुष्य के चेहरे पर गहरे गड्ढों में होती है, इनके चारों ओर हड्डियों की दीवार होती है जिसमें यह कोमल अंग स्थित होता है। बाहर की ओर पलकों के द्वारा इनकी रक्षा होती है। आँख की वास्तविक बनावट समझने के लिये उसका एक भाग तैयार किया जाता है। इस चित्र के द्वारा उसके सभी भागों का स्पष्ट ज्ञान हो जाता है।

आँख का आकार एक गेंद की तरह का होता है। आँख की हरकत का नियन्त्रण छः मास पेशियों द्वारा होता है। इन पेशियों की हरकत से आँख का गोला अपने स्थान पर इधर-उधर घूमता है।

'आँख का कटा सेक्शन'
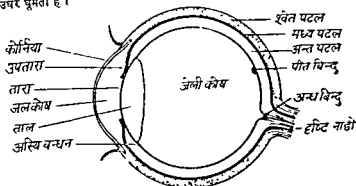
आँख को सामान्य रूप में तीन तहों में बाँटा जा सकता है—

(१) श्वेत पटल और कार्निया—यह भाग सबसे बाहरी भाग होता है।
(२) मध्य पटल और उपतारा—यह भाग आँख का मध्य भाग होता है।
(३) अंत पटल—यह सबसे भीतरी भाग होता है।

(१) श्वेत पटल और कार्निया—श्वेत पटल सफेद रंग की बाहरी कड़ी पर्त होती है। बिलकुल सामने की ओर इसका भाग पारदर्शक होता है। इसी पारदर्शक भाग को कार्निया कहते हैं। इसी भाग से प्रकाश की किरणें अन्दर प्रवेश करती हैं। इस भाग की रक्षा के लिये एक दूसरी पारदर्शक झिल्ली कार्निया के बाहर की ओर होती है।

श्वेत पटल का कार्य आँख को गोल बनाये रखना तथा बाहरी आघातों से भीतर के भाग की रक्षा करना होता है। पीछे की ओर यह भाग छिद्र रहता है। इसी भाग से दृष्टि नाड़ी मस्तिष्क को जाती है। इसी भाग से छः पेशियाँ जुड़ी रहती हैं जो कि गोलक को विभिन्न दिशाओं में घुमाती हैं।

(२) मध्य पटल और उपतारा—मध्य पटल वाला भाग गहरे भूरे रंग का होता है जो कि श्वेत पटल के भीतर स्थित होता है। यह आँख के भीतरी भाग को अन्धकारमय बनाता है। पीछे की ओर वह दृष्टि नाड़ी से जुड़ा रहता है।

कार्निया के पीछे की ओर गोलाकार काले परदे होते हैं इन्हीं परदों को उपतारा कहते हैं। इनके अन्दर फैलने और सिकुड़ने वाले रेशे होते हैं। इनके बिल्कुल मध्य भाग में एक छोटा छिद्र होता है जिसको तारा कहते हैं। इसी से प्रकाश भीतर प्रवेश करता है। अधिक प्रकाश में यह छिद्र छोटा तथा कम प्रकाश में बड़ा हो जाता है।

तारे के अन्दर ताल होता है। ताल और कार्निया के बीच के खाली स्थान में एक द्रव भरा होता है जो कि जल कोष कहलाता है। ताल के ऊपर और नीचे अस्थिबन्धन होते हैं जिनका सम्बन्ध सीलियरी मांस-पेशियों से होता है। ताल के भीतरी भाग में एक गाढ़ा द्रव भरा होता है जिसको जैली कोष कहते हैं।

(३) अन्त पटल—यह भाग आँख के सबसे भीतर की ओर होता है। यह भाग पीले सफेद रंग का होता है। इसी के पिछली ओर दृष्टि नाड़ी निकल कर मस्तिष्क में प्रवेश करती है। अन्त. पटल में दो बिन्दु होते हैं—एक तो पीत बिन्दु और दूसरा अन्ध बिन्दु, जब किसी वस्तु का बिम्ब पीत बिन्दु पर पड़ता है तभी वस्तु का वास्तविक ज्ञान होता है और जब बिम्ब अन्ध बिन्दु पर पड़ता है तो वस्तु नहीं दिखाई पड़ती है।

साधारण रूप से एक सामान्य आँख और निकट-दृष्टि बालक की आँखों मे अन्तर होता है। सामान्य आँख मे ताल वस्तु की दूरी के अनुसार ताल को छोटा और बडा कर देता है जिससे वस्तु का बिम्ब ठीक पीत बिन्दु पर पड़ सके। परन्तु निकट-दृष्टि वाले बालक में यह बिम्ब बजाय अत. पटल मे पडने के उससे कुछ आगे की ओर पडता है। इस रोग में श्वेत पटल का आकार कुछ लम्बा हो जाता है। इसके बहुत से कारण होते हैं। इनमे से निम्न मुख्य हैं—

(१) श्वेत पटल की तह फैल जाने से वस्तु नही दिखलाई पडती है।

(२) नेत्र गोलक के अधिक लम्बे हो जाने के कारण भी यह दोष हो जाता है।

(३) नेत्रों पर आवश्यक दबाव पडने तथा उनके अस्वच्छता के कारण यह दोष हो जाता है।

(४) अपौष्टिक एव असन्तुलित भोजन के कारण।

(५) शारीरिक रोग के कारण भी यह रोग हो जाया करता है।

सामान्य बालक पढते समय पुस्तक को एक आवश्यक दूरी तक रखते हैं परन्तु इस प्रकार के बालको मे पुस्तक को आँखो के समीप ला कर पढने की आदत पड जाती है। उनके सर मे अक्सर मानसिक कार्य करने मे पीडा का अनुभव होता है। उनके नेत्रो और पलको में बहुधा सूजन आ जाती है। इसके अतिरिक्त उनके नेत्रो से पानी बहने की शिकायत होती है। देखने पर इन बच्चो के नेत्र निस्तेज और सुस्त दिखाई पड़ते हैं।

वास्तविक रूप से इस रोग को दूर करने का सबसे उत्तम उपाय चश्मो का प्रयोग करना होता है। जैसा ऊपर कहा गया है कि इस प्रकार के दोष मे किसी वस्तु का बिम्ब अतः पटल पर पडने की बजाय उससे कुछ आगे की ओर पड़ता है जिसके कारण प्रकाश की पूर्ण किरणें दृष्टि नाडी पर प्रभाव नही डाल पाती हैं, ऐसी स्थिति मे एक, नतोदर ताल (concave lens) का प्रयोग किया जाता है। इस ताल का कार्य नीचे चित्रो द्वारा दिखलाया गया है। प्रथम चित्र मे निकट दृष्टि दोषी आँख तथा दूसरे मे उसके निवारण हेतु नतोदर ताल का प्रयोग दिखलाया गया है।
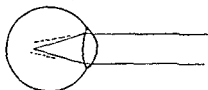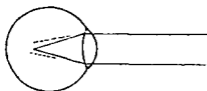
(प्रथम चित्र)
निकट दृष्टि दोष
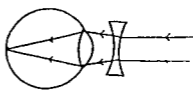
(द्वितीय चित्र)
निकट दृष्टि दोष का निवारण

नतोदर ताल के प्रयोग करने से वस्तु से आने वाली किरण बजाय सीधी जाने के ताल पर पडने से पहिले फैल जाती हैं। इन फैली हुई किरणो के द्वारा वास्तविक बिम्ब अतः पटल के अग्र भाग मे न पड़ के वास्तविक स्थान पर पडती हैं। वहाँ से उनका प्रभाव दृष्टि नाड़ी पर पडता है जिससे वह प्रभाव मस्तिष्क मे पहुँच जाता है।

स्कूल मे इस तरह के बालको के लिये निम्न बातें ध्यान मे रखी जाती हैं—

(१) नेत्रो पर बल पडने के कारणों को दूर करना चाहिए। इस तरह के कार्यों में बालकों को अधिक समय के लिये अपनी आँखों का प्रयोग न करने देना चाहिए। कभी-कभी बालक आवश्यकता से अधिक समय तक एक ही वस्तु की ओर देखते हैं जिससे नेत्रो पर आवश्यकता से अधिक जोर पडता है।

(२) आँखो के दोषी होने का एक कारण उचित ढग से न बैठने द्वारा भी होता है। इसमें बालक कक्षा मे झुक कर बैठने तथा पुस्तक को पढने तथा खड़े होने की बुरी आदत डालते हैं। झुक कर बैठने मे आँखों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है और बालकों मे उपरोक्त दोष के होने का भय होता है। अध्यापकों को चाहिये कि वह बालकों के आसन पर विशेष ध्यान रखें तथा आवश्यकता पड़ने पर ताड़ना भी देते रहें जिससे बालक अनुचित आसनों का प्रयोग न कर सकें।

(३) समय-समय पर नेत्रों की परीक्षा कराना भी आवश्यक होता है जिससे यह मालूम रहता रहे कि नेत्रों में किसी प्रकार का दोष तो पैदा नहीं हो गया है। इस तरह साधारण नेत्र दोष का पता चलने पर उसका निवारण आसानी से किया जा सकता है। केवल थोड़ी कसरतों के करने से ही आँखों का उपचार किया जा सकता है। बाद में केवल नतोदर ताल के चश्मे के प्रयोग करने से इस दोष को दूर किया जा सकता है।

इनके अतिरिक्त आँखों की रक्षा हेतु ऐसे बालकों को कक्षा में आगे बैठना चाहिए ताकि उनको श्यामपट पर लिखे अक्षर भली प्रकार से दिखाई दें, कक्षा में प्रकाश का प्रबन्ध एक सुचारु रूप से होना चाहिए। प्रकाश आँखों के सामने से न आना चाहिए बल्कि बायीं ओर प्रकाश पुस्तक या कापी पर पड़ना चाहिए। ऐसे बालक जिनकी आँखें कुछ कमजोर हों उनसे बारीक तथा सुई आदि का कार्य कक्षा में न कराया जाय। इस तरह के कार्य करने पर आँखों पर अधिक बल पड़ता है और आँखें सदैव के लिए कमजोर पड़ जाती हैं।

कक्षा में उपरोक्त सभी बातों का ध्यान में रखने से आँखें खराब होने का भय नहीं रहता है। यदि अध्यापक अधिक चतुर है तो वह डाक्टर के अतिरिक्त माँ बाप को भी बालक की हालत की सूचना देता रहे ताकि घर पर बालक के ऊपर नियन्त्रण रखा जा सके। इस रोग के कारण जीवन भर दुःख उठाना पड़ता है। इसलिये प्रारम्भ में ही बालक की चिकित्सा का ध्यान रखा जाय ताकि भविष्य में किसी प्रकार की हानि न हो।

दृष्टि दोष

Q 4 Explain with sketches how defects in eyesight are produced and how the image of an object is formed in the retina ?

Ans इस प्रश्न का उत्तर कि आँख में देखने के दोष कैसे दूर किये जा सकते हैं यह समझना अति आवश्यक है कि किसी वस्तु का बिम्ब आँख पर कैसे पड़ता है और हमको उसका अनुभव कैसे होता है। आँख के आकार को भली प्रकार समझने के लिये यह बात आवश्यक होती है कि उसका एक सेक्शन काटा जाय। इस सेक्शन को देखने पर यह सही प्रतीत होता है कि आँख के अग्र भाग में एक पारदर्शक झिल्ली होती है जिसको कार्निया कहते हैं। इस झिल्ली से होकर वस्तु की किरणें आँख के अन्दर आती हैं। इसके पश्चात् किरणें एक ताल पर पड़ती हैं। अन्त में यह किरणें [illegible] से चलकर रेटिना पर पड़ती हैं। वास्तव में वस्तु का बिम्ब इस ताल के ही द्वारा रेटिना पर पड़ता है। यह बिम्ब वास्तविक तथा उलटा पड़ता है। ताल में यह शक्ति होती है कि जिससे पास तथा दूर की वस्तु का वास्तविक बिम्ब रेटिना पर पड़ सके। एक स्वस्थ [illegible] जाता है। यदि बिम्ब रेटिना के [illegible] केन्द्र को होता है। जब यह अनु- [illegible] तु का बिम्ब रेटिना के आगे तथा पीछे पड़ता है तो वस्तु दिखलाई नहीं पड़ती है। इस प्रकार की आँख को दोषी आँख कहा जा सकता है।

आँख में दो प्रकार के दोष मुख्य रूप से होते हैं। ये दोनों इस प्रकार के है—

(१) निकट-दृष्टि दोष (Myopia)।
(२) दूर-दृष्टि दोष (Hypermetropia)।

(१) निकट-दृष्टि दोष—इस प्रकार के दोष में व्यक्ति दूर की वस्तु ठीक से नहीं देख सकता है। इस दशा में वस्तु का बिम्ब अक्ष पटल या रेटिना पर न पड़ कर उसके कुछ आगे पड़ना

साधारण रूप से एक सामान्य ग्रांख ग्रौर निकट-दृष्टि बालक की ग्रांखों मे ग्रन्तर होता है। सामान्य ग्रांख मे ताल वस्तु की दूरी के ग्रनुसार ताल को छोटा ग्रौर बडा कर देता है जिससे वस्तु का बिम्ब ठीक पीत बिन्दु पर पड़ सके। परन्तु निकट-दृष्टि वाले बालक में यह बिम्ब बजाय ग्रत पटल मे पड़ने के उससे कुछ ग्रागे की ग्रोर पडता है। इस रोग मे श्वेत पटल का ग्राकार कुछ लम्बा हो जाता है। इसके बहुत से कारण होते हैं। इनमें से निम्न मुख्य हैं—

(१) श्वेत पटल की तह फैल जाने से वस्तु नही दिखलाई पडती है।

(२) नेत्र गोलक के ग्रधिक लम्बे हो जाने के कारण भी यह दोष हो जाता है।

(३) नेत्रो पर ग्रावश्यक दबाव पडने तथा उनके ग्रस्वच्छता के कारण यह दोष हो जाता है।

(४) ग्रपौष्टिक एव ग्रसन्तुलित भोजन के कारण।

(५) शारीरिक रोग के कारण भी यह रोग हो जाया करता है।

सामान्य बालक पढ़ते समय पुस्तक को एक ग्रावश्यक दूरी तक रखते हैं परन्तु इस प्रकार के बालको मे पुस्तक को ग्रांखो के समीप ला कर पढ़ने की ग्रादत पड जाती है। उनके सर मे ग्रक्सर मानसिक कार्य करने मे पीडा का ग्रनुभव होता है। उनके नेत्रो ग्रौर पलको मे बहुधा सूजन ग्रा जाती है। इसके ग्रतिरिक्त उनके नेत्रों से पानी बहने की शिकायत होती है। देखने पर इन बच्चो के नेत्र निस्तेज ग्रौर सुस्त दिखाई पड़ते हैं।

वास्तविक रूप से इस रोग को दूर करने का सबसे उत्तम उपाय चश्मो का प्रयोग करना होता है। जैसा ऊपर कहा गया है कि इस प्रकार के दोष मे किसी वस्तु का बिम्ब ग्रत: पटल पर पड़ने की बजाय उससे कुछ ग्रागे की ग्रोर पडता है जिसके कारण प्रकाश की पूर्ण किरणें दृष्टि नाडी पर प्रभाव नही डाल पाती हैं, ऐसी स्थिति मे एक नतोदर ताल (concave lens) का प्रयोग किया जाता है। इस ताल का कार्य नीचे चित्रो द्वारा दिखलाया गया है। प्रथम चित्र मे निकट दृष्टि दोषी ग्रांख तथा दूसरे में उसके निवारण हेतु नतोदर ताल का प्रयोग दिखलाया गया है।

(प्रथम चित्र)
निकट दृष्टि दोष

(द्वितीय चित्र)
निकट दृष्टि दोष का निवारण

नतोदर ताल के प्रयोग करने से वस्तु से ग्राने वाली किरण बजाय सीधी जाने के ताल पर पडने से पहिले फैल जाती हैं। इन फैली हुई किरणो के द्वारा वास्तविक बिम्ब ग्रत: पटल के ग्रग्र भाग मे न पड़ के वास्तविक स्थान पर पड़ती हैं। वहाँ से उनका प्रभाव दृष्टि नाडी पर पड़ता है जिससे वह प्रभाव मस्तिष्क मे पहुँच जाता है।

स्कूल में इस तरह के बालकों के लिये निम्न बातें ध्यान मे रखी जाती हैं—

(१) नेत्रो पर बल पड़ने के कारणो को दूर करना चाहिए। इस तरह के कार्यों में बालको को ग्रधिक समय के लिये ग्रपनी ग्रांखो का प्रयोग न करने देना चाहिए। कभी-कभी बालक ग्रावश्यकता से ग्रधिक समय तक एक ही वस्तु की ग्रोर देखते हैं जिससे नेत्रो पर ग्राव-श्यकता से ग्रधिक जोर पड़ता है।

(२) ग्रांखो के दोषी होने का एक कारण उचित ढग से न बैठने द्वारा भी होता है। इसमे बालक कक्षा मे झुक कर बैठने तथा पुस्तक को पढ़ने तथा खड़े होने की बुरी ग्रादत डालते हैं। झुक कर बैठने मे ग्रांखो पर बडा प्रभाव पडता है ग्रौर बालको में उपरोक्त दोष के का भय होता है। ग्रध्यापकों को चाहिये कि वह बालको के ग्रासन पर विशेष ध्यान ग्रावश्यकता पड़ने पर ताड़ना भी देते रहे जिससे बालक ग्रनुचित ग्रासनों का प्रयोग

वाली किरणें ठीक अन्त. पटल पर मिलती हैं परन्तु पास से आने वाली किरणें यहाँ नहीं मिल पाती है। नीचे चित्र में बिम्ब बनने की स्थिति बनने की स्थिति दिखलाई गई है।

"वस्तु का बिम्ब अन्त: पटल से पीछे पड़ता है।" "उन्नतोदर ताल द्वारा दृष्टि दोष ठीक किया गया है।"

उपरोक्त दोष को दूर करने के लिये आंख के आगे एक उन्नतोदर ताल के चश्मे का प्रयोग किया जाता है। यह ताल किरणों को झुका कर आंख के ताल पर डालता है। इसके फलस्वरूप वस्तु का बिम्ब ठीक अन्तः पटल पर पडता है। इस तरह से बिम्ब का अनुभव हमारे मस्तिष्क पर पड़ता है और हमको वस्तु दिखलाई देती है। इसका चित्र ऊपर बनाया गया है।

इस रोग के लक्षण निम्न होते हैं—

(१) इस रोग मे बालक पुस्तक को आंख से दूर रख कर पढता है।

(२) ऐसी आंखे छोटी और गड्ढो मे बैठी होती हैं और उनकी पुतलियाँ सिकुड़ी होती हैं।

(३) सिर मे दर्द, आंखो मे चिमचिमाहट, लाली, पानी आदि लक्षण प्रकट होते हैं।

यह दोष प्राय. प्रत्येक व्यक्ति को लगभग ४० वर्ष के करीब हो जाया करता है। इसका मुख्य कारण जन्म-जात होता है। इसमें पुस्तक पढने तथा बारीक कार्य करने मे कठिनाई पडती है। इस दोष को दूर करने मे प्राय: चश्मे का प्रयोग किया जाता है। आंखो की परीक्षा करने के बाद ही चश्मे का प्रयोग किया जाना चाहिए। इसकी आंख के ताल से दूरी निश्चित होनी चाहिए। उपरोक्त विधियों द्वारा दृष्टि दोष को दूर किया जा सकता है।

निकट-दृष्टि तथा दूर-दृष्टि दोषो के अतिरिक्त आंखो मे और भी दोष पैदा हो जाते हैं। ये दोष हैं—

(अ) असम दृष्टि (astigmatism)
(ब) ऐंची आंख (Squint)
(स) दृष्टिहीनता (Blindedness)

असम दृष्टि—यह दोष भी जन्मजात होता है जो ताल पर स्वच्छ मण्डल को असम तल व[illegible]
जाती है [illegible]
मे दूर [illegible]
आगे या पीछे बिम्बित होता है।

ऐसा व्यक्ति को क्रौस (X) एक रेखा जैसा दिखाई पडता है। वस्तुएँ अस्पष्ट दिखाई देती हैं। जब वह उन्हें गौर से देखने का प्रयत्न करता है तब नेत्र गोलक को उचित आकार मे लाने के लिए उसकी सिलियरी पेशी को अधिक काम करना पड़ता है इसलिए वह नेत्र मलता है, घूरता है, और सिर को तिरछा करके वस्तुओ को देखने का प्रयास करता है। उसके सिर मे दर्द होने लगता है।

असम दृष्टि वाले को ऐसा चश्मा लेना होगा जिसका तल विभिन्न दिशाओ मे एक सा नही है।

ऐंची आंख (Squint) :—ऐसी आंख मे व्यक्ति नाक की ओर या नाक से विपरीत दिशा मे या ऊपर नीचे की ओर देखता है। प्रत्येक आंख का नियन्त्रण ६ पेशियों द्वारा होता है।

है। इस स्थिति में श्वेत पटल का आकार साधारण रूप से कुछ अधिक लम्बा हो जाता है। इसका चित्र नीचे दिखाया गया है।

निकट दृष्टि में बिम्ब अन्तः पटल के आगे बनता है। इस रोग को दूर करने के लिये आंख के सामने एक नतोदर ताल का प्रयोग करने से वस्तु का बिम्ब अन्तः पटल या रेटिना पर पड़ता है। इस ताल के द्वारा समानान्तर किरणें आंख पर पड़ने से पहिले फैल जाती हैं, इससे वह अन्त. पटल पर केन्द्रित हो जाती है।

नतोदर ताल से निकट-दृष्टि दोष ठीक किया गया।

निकट दृष्टि दोष के कारण

(१) इस दोष का मुख्य कारण श्वेत पटल की तह के फैल जाने के कारण होता कभी-कभी बालक अनावश्यक रूप से आंखों पर आवश्यकता से अधिक जोर देते हैं जिसके का श्वेत पटल पर प्रभाव पड़ता है।

(२) नेत्र गोलक के अधिक लम्बे हो जाने के कारण भी आंखों में यह दोष पैदा जाता है।

(३) नेत्रों में अस्वच्छता के कारण भी यह दोष उत्पन्न हो जाता है।

(४) बालकों को अपौष्टिक भोजन तथा असन्तुलित भोजन के कारण भी यह दृ दोष हो जाया करता है।

(५) वंश-परम्परा से भी यह दोष बच्चों में हो जाता है।

इस रोग से ग्रस्त बालक पुस्तक को आंख के निकट रखता है। बारीक कार्य करने सर पर पीड़ा का अनुभव होता है। इससे नेत्रों तथा पलकों पर कुछ सूजन आ जाती है। इस अतिरिक्त इस दोष में नेत्रों से द्रव बहता है। कभी-कभी इस रोग में नेत्र निस्तेज और सुर दिखलाई पड़ते हैं।

रोग दूर करने के उपाय—नतोदर ताल वाले चश्मे के प्रयोग के अतिरिक्त निम्न उपा भी दोष दूर करने के काम में लाये जाते हैं।

(१) नेत्रों पर बल पड़ने के कारणों को दूर करना चाहिये।

(२) बालकों को उचित ढंग से पढ़ने की आदत डालनी चाहिए। अकसर बाल उचित ढंग से न लिखते हैं और न पुस्तक पढ़ पाते हैं। या तो वे आंखों को पुस्तक के समीप रखं हैं या आवश्यकता से अधिक दूर। पुस्तक पर आवश्यक प्रकाश पड़ना चाहिये। आंखों को प्रका की ओर न रखना चाहिये।

(३) समय-समय पर नेत्रों की परीक्षा कराकर उसका उपचार कराना चाहिए इससे आंखों की ज्योति का ज्ञान रहता है और साधारण उपचार से उनकी चिकित्सा की ज सकती है।

(४) बालक के बैठने पर ध्यान देना चाहिये। उचित आसन पर विशेष ध्यान रखना चाहिये।

(५) अगर आंख में दोष आ जाय तो नतोदर शीशे का प्रयोग अवश्य कराना चाहिए। इससे यह दोष अधिक बढ़ने नहीं पाता है।

(६) इसके अतिरिक्त ऐसे बालकों के लिए विशेष प्रकार के स्कूलों का प्रबन्ध करना चाहिये।

२. दूर-दृष्टि दोष (Hypermetropia)—आंख का दूसरा दोष दूर दृष्टि दोष होता है। इस रोग में व्यक्ति पास की वस्तु को ठीक से नहीं देख सकता है। इस दोष में नेत्र गोलक अत्यन्त छोटा अथवा चपटा हो जाता है। इसमें वस्तु का बिम्ब अन्त. पटल से पीछे बनता है। इसका तात्पर्य यह है कि वस्तु से आने वाली किरणें रेटिना या अन्त. पटल पर नहीं मिलने पाती हैं जिससे बिम्ब नहीं बन पाता है और वस्तु दिखलाई नहीं पड़ती है। इसके अतिरिक्त दूर से आने

वाली किरणें ठीक अन्त पटल पर मिलती हैं परन्तु पास से आने वाली किरणें यहाँ नही मिल पाती हैं। नीचे चित्र मे बिम्ब बनने की स्थिति बनने की स्थिति दिखलाई गई है।

"वस्तु का बिम्ब अंत पटल मे पीछे पडता है।" "उन्नतोदर ताल द्वारा दृष्टि दोष ठीक किया गया है।"

उपरोक्त दोष को दूर करने के लिये आंख के आगे एक उन्नतोदर ताल के चश्मे का प्रयोग किया जाता है। यह ताल किरणों को झुका कर आंख के ताल पर डालता है। इसके फलस्वरूप वस्तु का बिम्ब ठीक अन्त पटल पर पडता है। इस तरह से बिम्ब का अनुभव हमारे मस्तिष्क पर पडता है और हमको वस्तु दिखलाई देती है। इसका चित्र ऊपर बनाया गया है।

इस रोग के लक्षण निम्न होते हैं—

(१) इस रोग मे बालक पुस्तक को आंख से दूर रख कर पढता है।

(२) ऐसी आंखे छोटी और गड्ढो मे बैठी होती हैं और उनकी पुतलियां सिकुडी होती हैं।

(३) सिर मे दर्द, आंखो मे चिमचिमाहट, लाली, पानी आदि लक्षण प्रकट होते हैं।

यह दोष प्राय प्रत्येक व्यक्ति को लगभग ४० वर्ष के करीब हो जाया करता है। इसका मुख्य कारण जन्म-जात होता है। इसमे पुस्तक पढने तथा बारीक कार्य करने मे कठिनाई पडती है। इस दोष को दूर करने मे प्राय. चश्मे का प्रयोग किया जाता है। आंखो की परीक्षा करने के बाद ही चश्मे का प्रयोग किया जाना चाहिए। इसकी आंख के ताल से दूरी निश्चित होनी चाहिए। उपरोक्त विधियो द्वारा दृष्टि दोष को दूर किया जा सकता है।

निकट-दृष्टि तथा दूर-दृष्टि दोषो के अतिरिक्त आंखो मे और भी दोष पैदा हो जाते हैं। ये दोष हैं—

(अ) असम दृष्टि (astigmatism)
(ब) ऐंची आंख (Squint)
(स) दृष्टिहोनता (Blindedness)

[illegible] दोष भी जन्मजात होता है जो ताल पर स्वच्छ मण्डल की असम [illegible] बन [illegible] नेत्र तल [illegible] न के जाते [illegible] मे दू[illegible] आगे या पाछे [illegible] दिखाई

ऐसा व्यक्ति को क्रौस (X) एक रेखा जैसा दिखाई पडता है। वस्तुएं [illegible] दिखाई देती हैं। जब वह उन्हे गौर से देखने का प्रयत्न करता है तब नेत्र गोलक को उचित आकार मे लाने के लिए उसकी सिलियरी पेशी को अधिक काम करना पडता है इसलिए वह नेत्र मलता है, घूरता है, और सिर को तिरछा करके वस्तुओ को देखने का प्रयास करता है। उसके सिर में दर्द होने लगता है।

असम दृष्टि वाले को ऐसा चश्मा लेना होगा जिसका तल विभिन्न दिशाओं मे एक सा नही है।

ऐंची आंख (Squint)—ऐसी आंख मे व्यक्ति नाक की ओर या नाक से विपरीत दिशा मे या ऊपर नीचे की ओर देखता है। प्रत्येक आंख का नियन्त्रण ६ पेशियों द्वारा होता है।

ये सभी पेशियाँ इस प्रकार सहयोग से कार्य करती हैं कि जिस वस्तु को व्यक्ति देखता है उस वस्तु का बिम्ब ठीक पीत बिन्दु पर केन्द्रित हो जाता है। यदि ये पेशियाँ किसी व्यक्ति की आँखों में सहयोग से कार्य नहीं करतीं तो उसकी आँख में ऐंचापन आ जाता है। यदि इन पेशियों में से किसी पेशी को लकवा मार जाता है या मस्तिष्क का नियन्त्रण दोष युक्त हो जाता है तो पेशियाँ पूर्ण सहयोग से काम नहीं कर पातीं। बड़ी आयु के बालकों में कभी-कभी मेनिन्जाइटिस के कारण भी ऐंचापन पैदा हो जाया करता है।

दोष पूर्ण नेत्र में शक्ति पैदा करने के लिए बालक अच्छे नेत्र को बन्द करवा करवा कर दोषपूर्ण नेत्र से देखने का व्यायाम करना चाहिए। शल्य चिकित्सा (operation) करवाकर ऐंची हुई आँख सीधी छोटी की जा सकती है। चश्मा सम्बन्धी त्रुटि चश्मे से भी ठीक हो जाती है।

दृष्टिहीनता (Blindedness)—कभी-कभी एक या दोनों आँखों से धीरे-धीरे कम दिखाई देने लगता है। इस दोष को दृष्टिहीनता कहते हैं।

नेत्र गोलक को किसी प्रकार की चोट पहुँचने या मोतिया बिन्दु के बढ़ के जाने, या निकट दृष्टि का उपचार न करने से आँखों से दिखाई देना बन्द हो जाया करता है। कभी-कभी नेत्र के गड्ढे में ट्यूमर हो जाता है या नेत्र के किसी भाग में सूजन आ जाती है ऐसी दशा में भी दृष्टिहीनता पैदा हो सकती है। आँखों का यह अन्धापन जन्म से एक वर्ष के भीतर २०% बालकों में दस वर्ष के भीतर १०% और दस से बीस वर्ष के भीतर १०% बालकों में हो जाता है। अतः विद्यालय को बालकों के नेत्र परीक्षण पर विशेष ध्यान देना चाहिये और विशेषज्ञों की सहायता से नेत्र के दोषों को दूर करवा देना चाहिए।

अध्यापकों को पहले तो कक्षा में उन सभी बालकों की खोज कर लेनी चाहिये जिनके नेत्र दुखते हैं
होता है, जि
पुस्तकों को

निकट दृष्टि दोष वाले, या अन्धे, या अर्ध-अन्धे बालकों की शिक्षा व्यवस्था उचित
तो अच्छा है।
वाली पुस्तकों
निकट दृष्टि
कम कराया
जाना चाहिये। उनके नेत्रों की दशा के बारे में समय-समय पर चिकित्सीय परीक्षा करवाकर जानकारी हासिल करनी चाहिये और यह देखते रहना चाहिये कि बालक में दृष्टिहीनता बढ़ तो नहीं रही है।

हकलाना

Q. 5. **What are the causes of stammering in school children ? What would you do about such cases ?**

Ans. स्कूल में पढ़ने वाले बालकों में भिन्न-भिन्न रोग पाये जाते हैं। इन रोगों में बहुत से मानसिक रोग होते हैं। इन मानसिक रोगों में एक रोग हकलाना भी होता है। इस रोग से ग्रस्त बालकों को आरम्भ में ही देख लेना चाहिए ताकि उनका उपचार किया जा सके। छोटे बालकों का शरीर कोमल होता है। उनके बोलने सम्बन्धी अंग भी धीरे-धीरे मजबूत होते रहते हैं। यदि शुरू से इन अंगों की कमजोरी का ज्ञान हो जाता है तो उनको ठीक किया जा सकता है।

हकलाना वास्तविक रूप से शारीरिक दोष न होने के बजाय मानसिक विकार होता है। मुख्य कारण मुँह, जीभ, तथा होठों की माँस-पेशियों पर विशेष ध्यान तथा श्वासेन्द्रिय पर ध्यान देना होता है। इसलिये उच्चारण सम्बन्धी माँस-पेशियों की अपेक्षा अन्य माँस-पेशियों के संचालन में उसकी अधिक शक्ति व्यय होती है। इस तरह उच्चारण में प्रायः दोष आ जाता है।

हकलाना

हकलाहट के प्राय दो भेद होते हैं—

(१) प्रारम्भिक हकलाहट—इसमे बालक के प्रारम्भिक शब्द या अक्षर के बोलने मे ही दोष आ जाता है।

(२) तुतलाहट—इस प्रकार के भेद मे शब्दोच्चारण के प्रारम्भ मे या मध्य मे व्यजन ध्वनि उत्पन्न करने म रुकावट होती है।

हव

से

[illegible]

[illegible] विशेष सावधाना रखना [illegible]
भयकर रोग ग्रस्त हो जाने पर विशेष सावधाना रखना [illegible] वे बिना

(२) अनुकरण—बालको मे अनुकरण की प्रवृति जन्मजात ही होती है। इस दृष्टि से अध्यापक तथा
समझे बूझे अपने से बड़ो की बात का अनुकरण करते हैं। इस दृष्टि से अध्यापक तथा
सरक्षको का यह कर्तव्य होना चाहिये कि उनके बालक किसी व्यक्ति की नकल या अनुकरण
न करें जो कि हकलाता है। प्राय बालक ऐसे व्यक्ति का अनुकरण करने मे खुश होते है। धीरे
धीरे उनके इस तरह अनुकरण करने स बालको की बोलने की मांसपेशियां प्रभावित हो जाती है
और वे भी रोग के शिकार हो जाते हैं।

(३) आकस्मिक दुर्घटना—अचानक भी कभी कभी बालको मे इस प्रकार की शिका-
यत हो जाया करती है। इस दुर्घटना से बालको के मस्तिष्क पर प्रभाव पड जाता है। मस्तिष्क
के प्रभाव से बालको म वह दोष पैदा हो जाता है।

(४) टौंसिल तथा एडिनवायड्स का बढ़ जाना—ये अग गले के पास होते है। इनके बढ़
जाने से बोलन के अगो पर प्रभाव पडता है। इन अगो से एक प्रकार का विषैला पदार्थ द्रव के
रूप मे निकलता रहता है। इस विषैले पदार्थ के असर से बोलने के अगो पर प्रभाव पडता है। इस
तरह से शरीरिक दोष उत्पन्न हो जाने के कारण बालक हकलाने लगते है।

(५) घबराहट—कभी कभी बालक किसी विशेष परिस्थिति मे अपना कार्य
सामान्य रूप स नही कर पाता है और उसमे घबराहट पैदा हो जाती है। इस घबराहट का असर
बालक के मस्तिष्क पर पडता है। अचानक इस घबराहट के कारण बालक बोलने म कठिनाई
प्रतीत करता है जिससे उसमे हकलाने का दोष पैदा हो जाता है।

(६) सकोच—बालको मे इस प्रकार की आदत घर म ही पड जाती है। बालको को
कभी इस तरह की आदत न पडने देना चाहिए। इसका कारण उनका दूसरे बालको तथा बडो के
सम्पर्क मे आने से रोक देना होता है। बालक को प्रारम्भ स ही अपनी बात को व्यक्त करने का
अवसर अवश्य देना चाहिए।

(७) चिन्ता एव व्यग्रता—बालक मे किसी बात की चिन्ता करने की इच्छा को विकसित
नही होने देना चाहिये। चिन्ता करने से उसमे मानसिक विकार उत्पन्न हो जाते है। इन विकारो
के कारण बालक कभी कभी हकलाने लगते है। इसका बोझ भार अधिक रूप से माता पिता पर
ही होता है।

(८) वशानुगत स्नायु व्याधि—कभी कभी यह दोष माता पिता से बालको मे आ
जाता है। इस रोग से ग्रस्त बालको का उपचार करना कठिन होता है। फिर भी धीरे धीरे
उपचार करने से काफी अश तक ऐसे बालको का उपचार किया जा सकता है।

उपचार—इस रोग मे निम्न उपचार करने से हकलाने का दोष कम किया जा सकता
या दूर किया जा सकता है।

(१) बालक की साधारण तन्दुरुस्ती जैसे भोजन, रक्त न्यूनता, दांतो की खराबी
एडिनवायड्स, अधिक परिश्रम, ताजी हवा आदि की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। बालक की
साधारण तन्दुरुस्ती की ओर ध्यान देना चाहिये। शारीरिक विकार के कारण भी बालक हक-

लाने लगते हैं। भोजन जो बालक खावें उनमे सभी विटामिन तथा आवश्यक खाद्य वस्तुएं जैसे प्रोटीन, चर्बी, कार्बोहाइड्रेट, लवण आदि सभी पदार्थों का होना आवश्यक होता है। इनकी उपयुक्त मात्रा न होने से शरीर मे रक्त की न्यूनता हो जाती है। दाँतो की रक्षा करना भी शरीर को स्वस्थ रखने के लिये आवश्यक होता है। दांतो से गरम या ठण्डी वस्तुग्रों को न खाना चाहिए। सोते समय दांत साफ करके सोने से खाद्य वस्तु दांतो के बीच मे नही रहने पाती है। खाद्य वस्तु के टुकड़ो के दांतो के बीच मे छूट जाना हानिकारक होता है। इसमे कीड़े पड जाते हैं और दांत अन्त मे सड जाते हैं। इसलिये इनकी रक्षा करना आवश्यक होता है। कभी कभी टॉन्सिल तथा एडिनवायड्स के कारण भी स्वास्थ्य खराब हो जाता है। इनसे जहरीले रस बन कर पोषण सस्थान को खराब कर देते हैं। इनसे शरीर मे शक्ति उत्पन्न नहीं हो पाती है और बालक कमजोर पड़ जाते हैं।

अधिक शारीरिक परिश्रम से भी शरीर पर प्रभाव पड़ता है। परिश्रम उतना ही करना चाहिए जितना कि शरीर कर सकता है। अधिक परिश्रम से थकान लगती है और शरीर के कोष कमजोर पड़ जाते है। इसलिये माँ-बाप तथा स्कूल के अध्यापको का यह कर्तव्य होना चाहिये कि वे अपने बच्चों से अनावश्यक परिश्रम न करावें। शरीर की सामान्य वृद्धि के लिए ताजी स्वच्छ हवा तथा सूर्य का प्रकाश आवश्यक होता है। इसलिये इनकी मात्रा इतनी अवश्य हो कि शरीर स्वस्थ रह सके।

(२) बालक की मानसिक स्थिति पर विशेष ध्यान देना चाहिए। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि हकलाने के कारण शारीरिक तथा मानसिक दोनों हो होते हैं : इसलिए जिस प्रकार शारीरिक रक्षा अनिवार्य है उसी प्रकार मानसिक रक्षा की भी आवश्यकता पड़ती है। बालक की मानसिक रक्षा हेतु कोई भी मस्तिष्क सम्बन्धी कार्य नही करवाना चाहिये जिससे उसके मस्तिष्क पर असर पड़े। कम बुद्धि वाले बालक या मन्द बुद्धि वाले बालक से कठिन कार्य न करवाना चाहिये। बालक को उसकी बुद्धि के अनुसार कार्य दिया जाना चाहिए। बालक के मस्तिष्क पर कभी भी आवश्यकता से अधिक भार न लादना चाहिए। इस प्रकार मानसिक कार्य के कारण बालको मे हकलाने की आदत पड़ जाती है। शरीर से अधिक प्रभाव मस्तिष्क का होता है। इसलिये बालको को मानसिक कार्य उनकी क्षमता के अनुसार दिया जाना चाहिये।

(३) वास्तविक शारीरिक खराबियों पर ध्यान देना चाहिए—बालकों के शरीर मे अकसर कुछ दोष हो जाते हैं। इन शारीरिक दोषो के कारण बालको मे हकलाने का दोष पैदा हो जाता है। इन दोषो मे मस्तिष्क के दोष पैदा होना तथा बोलने के सम्बन्धित अगो के अन्दर दोष पैदा हो जाने से होता है। जब कभी बालक किसी रोग से ग्रस्त हो उनका तुरन्त इलाज करवाना चाहिए। रोग की समय पर चिकित्सा न होने से उसका प्रभाव शरीर के अन्य अगो पर पड़ता है जिससे बालक हकलाना प्रारम्भ करता है। इसलिये किसी भी शारीरिक रोग की चिकित्सा का ध्यान शीघ्र रखना चाहिये।

(४) बालक को एक दक्ष अध्यापक ही देख रेख मे रखना लाभप्रद होता है। इस अध्यापक को कक्षा मे निम्न बातों पर विशेष रूप मे ध्यान रखना चाहिये—

(अ) बालक जो कि हकलाता है उससे धीरे धीरे बात चीत करे, इसके साथ ही साथ अध्यापक को ऐसे बालक को उसके प्रश्न का उत्तर देने के लिये पर्याप्त समय दे। बालक स्वयं अध्यापक के धीरे धीरे बोलने की आदत को ग्रहण करेंगे और इस तरह धीरे धीरे बोलने से उनके बोलने तथा सोचने का सामाञ्जस्य हो गा।

(ब) बालक को बोलने से पहिले ठीक रूप से सोचने को कहे। इसके साथ ही बोलने से पहिले ठीक तौर से सांस लेने को तथा भरने को कहे।

(स) बालक का ध्यान उसकी उन्नति की ओर को बंटावे ताकि वह यह समझे कि वह अच्छी तरह बोल रहा है। इस कार्य में माता पिता तथा सरक्षक का हाथ बड़ा ही है।

अध्याय १३

पाचन संस्थान

Q. 1. Explain with diagrams the functioning of the digestive system in man and indicate the diseases caused by its derangement

Ans मनुष्य के शरीर चलाने मे पाचन संस्थान का स्थान प्रमुख होता है। शरीर रूपी मशीन को चलाने के लिये भोजन की आवश्यकता पडती है। जिस रूप मे भोजन प्रकृति मे पाया जाता है उसी रूप मे शरीर भी पहुँचने पर वह किसी प्रकार का लाभ नही करता है : प्रकृति मे पाये जाने वाला भोजन जटिल यौगिकों के रूप मे पाया जाता है। यह जटिल यौगिक शरीर मे बिना परिवर्तित हुए किसी कार्य का नही होता है। शरीर का वह संस्थान जो कि इन जटिल पदार्थों को साधारण घुलनशील पदार्थों मे बदलता है पोषण या पाचन संस्थान कहलाता है। इस प्रकार यह साधारण घुलनशील पदार्थ हमारे रक्त के अन्दर पहुँचता है। यह घुलनशील पदार्थ ही पचा हुआ भोजन कहलाता है। इस तरह पोषण क्रिया मे भोजन पच कर हमारे शरीर मे पहुँचता है और शरीर की वृद्धि के लिये आवश्यक होता है।

पाचन क्रिया मे भाग लेने वाले अंग निम्न हैं—

(१) मुँह (२) आमाशय (३) पक्वाशय (४) छोटी आंत (५) वृहत आंत
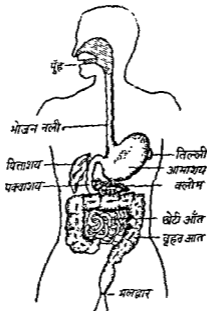
पाचन क्रिया तथा शोषण—पाचन क्रिया एक लम्बी नली के द्वारा होती है जिसकी

नावट प्रत्येक स्थान पर भिन्न-भिन्न होती है। इसकी सम्पूर्ण लम्बाई लगभग २२ फीट के करीब होती है। इस नली में खाद्य पदार्थ बहुत से पाचन रसों के प्रवाह से साधारण पदार्थों में बदलता है तथा पानी में घुल जाता है। पानी में घुलने के पश्चात् ये अणु रुधिर में जाते हैं जिनके द्वारा ये शरीर के प्रत्येक कोष में चले जाते हैं। भोजन नली में पाये जाने वाले रस तथा उनकी क्रिया का वर्णन नीचे दिया गया है।

पाचन क्रिया दो मुख्य विधियों द्वारा होती है—

(१) यान्त्रिक विधि—इस विधि में खाद्य पदार्थों पर रासायनिक क्रिया होने से पहिले उसका छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त होना है तथा जल से मिलना है। इस विधि में निम्न परिवर्तन होते हैं—

(अ) दांतों द्वारा खाद्य पदार्थ का छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त होना जिससे वह आसानी से भोजन नली में होता हुआ आमाशय में पहुँच जाय।

(ब) खाद्य पदार्थ के इन बारीक टुकड़ों का आमाशय, मुँह तथा अंतड़ियों में पाचक रसों में मिल जाना।

(स) खाने का मुँह से मलद्वार की ओर सरकना

(२) रासायनिक विधि—रासायनिक विधि में खाद्य पदार्थ के छोटे-छोटे टुकड़ों पर पाचक रसों के खमीरों का प्रभाव पड़ता है। इस प्रभाव से वह घुलनशील पदार्थ में बदल जाता है जिससे ओसमोसिस की क्रिया द्वारा वह रक्त में पहुँच जाता है।

भिन्न-भिन्न अंगों में पाचन क्रिया :

मुँह—सबसे प्रथम भोजन मुँह के अन्दर पहुँचता है जहाँ कि दाँतों के द्वारा वह चबाया जाता है। मुँह की इस क्रिया में जो गति होती है उससे मुँह के अन्दर स्थित तीन जोड़े लार ग्रन्थियों से लार निकलता है। यह लार भोजन में मिलता है।

इस लार में दो विभिन्न प्रकार के खमीर पाये जाते हैं जिनकी क्रिया से भोजन में परिवर्तन होता है। एक खमीर टायलिन होता है जो कि भोजन में उपस्थित माड को शक्कर में बदलता है और दूसरा खमीर म्यूसिन होता है जो कि भोजन को लसलसेदार बनाता है ताकि वह आसानी से गले से होकर भोजन नली में होता हुआ आमाशय में पहुँचाया जाय। इसके पश्चात् भोजन में परिवर्तन आमाशय के अन्दर होता है।

आमाशय—आमाशय की भीतरी दीवार एक झिल्ली की बनी होती है जिसमें बहुत सी ग्रन्थियाँ होती हैं। इन ग्रन्थियों को आमाशयिक ग्रन्थियाँ कहते हैं। इन ग्रन्थियों से एक प्रकार का रस निकलता है। इस रस को लार की भाँति आमाशयिक रस कहते हैं। इस रस में दो मुख्य खमीर तथा हल्के नमक का अम्ल होता है।

इस नमक के हल्के अम्ल के द्वारा आमाशय में माध्यम अम्लीय हो जाता है। इस रस में पाये जाने वाले खमीर केवल अम्लीय माध्यम में ही भोजन पर प्रभाव डालते हैं। इनके द्वारा भोजन में निम्न परिवर्तन होते हैं। इनमें एक खमीर तो पेपसिन होता है जो कि भोजन के अन्दर प्रोटीन नामक खाद्य पदार्थ को पेपटोन में बदल देता है। दूसरा खमीर रेनिन होता है जो कि भोजन में पाये जाने वाले दूध को फाड़ कर दही के आकार में बदल देता है।

इस तरह भोजन के परिवर्तन में कुछ समय लगता है। भोजन आमाशय के अन्दर लगभग चार घण्टे तक रहता है। इसके पश्चात् यह पक्वाशय में पहुँचता है। इस भाग में खाने को दो विशेष रस मिलते हैं। एक तो पित्त रस होता है जो कि यकृत में तैयार होकर पित्ताशय में जमा होता है। पित्ताशय से एक नली जो कि पित्त नली कहलाती है उसके द्वारा पित्त रस पक्वाशय में पहुँच जाता है। दूसरा रस जो कि भोजन को इस भाग में मिलता है क्लोम रस कहलाता है। क्लोम रस भी पित्त रस की भाँति क्लोम में तैयार होकर क्लोम नली द्वारा पक्वाशय में आता है। दोनों नलियाँ आपस में खुलने के स्थान पर मिल जाती हैं।

पित्त रस का रंग हरा पीला होता है। इसके अन्दर खनिज लवण और बाइल पिगमेन्ट होते हैं। इसका कार्य वसा को पचाने तथा कीटाणुओं के मारने का होता है। इसके अतिरिक्त इस रस का मुख्य कार्य आमाशय में मिले अम्ल को उदासीन करके क्षारीय माध्यम बनाना है।

बलोम रस—इस रस मे चार खमीर होते हैं जा कि भोजन को परिवर्तन करने मे विशेष कार्य करते हैं। ये खमीर इस प्रकार से है—

(१) ट्रिप्सिन—यह खमीर खाद्य पदार्थ के प्रोटीन वाले भाग को पचाने मे सहायता देता है।

(२) एमीयलोप्सिन—जो माडी मुँह मे शक्कर मे नही बदलती है उसको शक्कर मे बदलता है।

(३) लाइपेज—यह खमीर वसा को ग्रम्लो मे बदलता है।

(४) मालटेज—यह खमीर साधारण शक्कर को अधिक घलनशील शक्कर मे बदलता है।

छोटी ग्रांत—पक्वाशय के पश्चात् खाना ग्रब द्रव रूप मे बदल कर छोटी ग्रांत के ग्रन्दर
[illegible] के भीतर की ग्रोर
[illegible] जो कि मुख्यतया
[illegible] रस कहते हैं।
इसका कार्य बचे हुए भोजन मे ग्रपरिवर्तित भाग को पाचक बनाना होता है।

भोजन प्रणाली के इसी भाग मे भोजन के तरल रूप का शोषण होता है। यह क्रिया ग्रोसमौसिम की क्रिया कहलाती है। इसी क्रिया के द्वारा यह तरल पचा भोजन ग्रांत की दीवाल से होकर रक्त केशिकाग्रो मे प्रवेश करता है। भोजन मे जो जल होता है उसका शोषण वृहत् ग्रांत मे होता है। इस तरह भोजन का बेकार भाग मलाशय मे होता हुग्रा मलद्वार से बाहर निकल जाता है। मल पदार्थ की मलाशय मे पहुँचने पर शौच की इच्छा होती है। पचा हुग्रा भोजन रक्त प्रवाह के साथ ही साथ शरीर के प्रत्येक कोष मे पहुँच जाता है। इस तरह के जटिल खाद्य पदार्थों का परिवर्तन भोजन प्रणाली मे पाये जाने वाले खमीरो द्वारा साधारण घुलनशील पदार्थों मे होता है जो कि ग्रासानी से रक्त नलियो मे जाकर शरीर के प्रत्येक कोष मे पहुँच जाता है।

सामान्य रूप से भोजन के भली प्रकार न पचने से बालको मे भिन्न-भिन्न रोग पैदा हो जाते है। ये रोग निम्न है—

(१) ग्रजीर्ण रोग—इस रोग के कारण निम्न हैं—

(ग्र) सदैव चर्बी तथा कार्बोहाइड्रेट युक्त भोजन के प्रयोग से यह रोग हो जाता है। इसलिये भोजन करने मे सभी ग्रावश्यक तत्वो की ग्रावश्यकता होती है।

(ब) भोजन ग्रावश्यकता से ग्रधिक करने से भी यह रोग हो जाता है।

(स) इसके साथ ही साथ दाँतो मे रोग हो जाने से भी ग्रजीर्ण रोग हो जाता है।

इस रोग मे पेट मे दर्द होता है। इस रोग का मुख्य कारण पेट मे ग्रपच भोजन के खमीर बनने से होता है। इसमे कभी-कभी कै तथा दस्त भी होते हैं। इस रोग से खट्टी डकारें भी ग्राने लगती हैं।

(२) ग्रतिसार—इस रोग का कारण भी पाचन क्रिया से सम्बन्धित होता है। इसके कारण तथा लक्षण निम्न है—

(ग्र) पेट मे ठण्ड लगने से यह रोग हो जाता है।
(ब) कच्चे-पक्के फल खाने से भी यह रोग हो जाता है।
(स) दूषित भोजन के प्रयोग से भी यह रोग हो जाता है।

इस रोग मे कई बार मल त्याग होने लगता है। कुछ समय पश्चात् यह रोग पेचिश मे बदल जाता है, तथा मल मे कुछ लाल रग का ग्राँव ग्राने लगता है। इसके साथ ही साथ पेट मे दर्द भी होने लगता है।

(३) कब्ज—इस रोग के निम्न कारण तथा लक्षण हैं—
(ग्र) ऐसा भोजन करना जिसमे ग्रवशेष कम बनता है।
(ब) मल विसर्जन की इच्छा को रोकने से भी यह रोग हो जाता है।

(स) मल विसर्जन की नियमित ग्रादत न डालने पर।
(द) दांतों के खराब तथा रोग ग्रस्त होने से भी यह रोग हो जाता है।

इस रोग मे सिर पर दर्द, थकान, भोजन की ग्रनिच्छा, ग्रपच ग्रादि परिणाम हो जाते हैं। इसके ग्रतिरिक्त गुर्दे मे एक प्रकार का विष उत्पन्न हो जाता है। यदि कब्ज बहुत पुराना हो तो ग्रामाशय तथा ग्राँतो मे रोग पैदा हो जाते हैं।

इसलिये शरीर को स्वस्थ रखने के लिये हमको सदैव सन्तुलित भोजन का प्रयोग करना चाहिये। जितने भी रोग शरीर में पैदा हो जाते है उन सभी का वास्तविक कारण भोजन सुचारु रूप से न करना होता है।

दांत—रचना ग्रौर कार्य

Q. 2. Discuss the functions of teeth in the digestive system of the human body. *(Agra B. T. 1952)*

Ans. भोजन के पाचन का कार्य दांतो से ही शुरू होने लगता है। दांत शरीर के महत्वपूर्ण अग हैं उनके स्वस्थ विकास ग्रौर स्वच्छता पर शारीरिक विकास ग्रौर मनुष्य का स्वास्थ्य निर्भर रहता है।

दांतो का प्रयोग व्यक्ति भोजन चबाने मे करता है जिससे वह इस योग्य हो जाता है कि उसके पेट मे जाने पर पेट के रसों की क्रिया होने लगे ग्रौर भोजन ठीक-ठीक पच जाय। भोजन का कुछ भाग चबाना, कुछ कुचलना, कुछ काटना ग्रौर कुछ फाड़ना पड़ता है। इसलिये दांत भी ग्रपने कार्यों के ग्रनुसार ४ प्रकार के होते हैं—

(१) छेदक दांत (Incisors)—ये दांत छेनी की तरह तेज धार वाले होते हैं ग्रौ भोजन के टुकड़े कर देते हैं।

(२) भेदक दांत (Canine)—ये दांत छेदक दांतो की ग्रपेक्षा ग्रधिक लम्बे ग्रौर नुकी होते हैं ग्रौर भोजन को फाड़ने का काम करते हैं।

(३) कुचलने वाले दांत (Premolars)—इसके सिरों पर दो नोकें होती हैं व भोजन को कुचल देती हैं।

(४) चबाने वाले दांत (molars) या डाढ़—इसका सिरा चौरस होता है किनारो प तेज धार होती है। ये भोजन को चबाते ग्रौर कुचलते भी हैं।

[illegible]

के चारों ग्रोर मसूड़ा रहता है।

[illegible] एक पदार्थ [illegible] (dentine) [illegible] कठोर होता है। भीतर से दांत खोखला होता है उस खोखले भाग मे दन्तमज्जा भरी रहती है। इसमें छोटी-छोटी रक्त वाहिनियाँ, तन्त्रिका जाल, तन्तु ग्रौर कई तरह के कोष रहते हैं। यदि यह भाग दूषित हो जाता है तो दांतों में पीड़ा होने लगती है।

६ वर्ष की ग्रायु तक बालक के दूध के दांत गिर जाते हैं ग्रतः उन्हें ग्रस्थायी दन्त कहते हैं उस समय प्रत्येक जबड़े मे ४ छेदक, २ भेदक, ४ चर्वणक दांत हुग्रा करते हैं। ६ वर्ष के बाद जब दूध के सभी दांत गिर जाते हैं। तब स्थायी दांत निकल ग्राते हैं। इन दांतो मे ४ छेदक, २ भेदक, ४ ग्रग्रचर्वणक (premolar), ६ चर्वणक होते हैं। १२ वर्ष की ग्रायु

तक सभी स्थायी दांत निकल आते हैं। २० वर्ष की आयु के बाद ४ चर्वणक दांत निकल आते हैं।

मुँह में पहुँचा हुआ भोजन इन दांतों द्वारा लुदी जैसा बना दिया दिया जाता है। इस कार्य में लार ग्रन्थियाँ विशेष सहायता पहुँचाती हैं।

दांतों का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य स्वर उच्चारण में सहायता पहुँचाना है। कुछ अक्षर जैसे "त" दांतों की सहायता से ही उच्चरित हो सकते हैं अन्यत्र नहीं। दांतों के बिना स्वर उच्चारण में विकृति आ सकती है।

दांतों के साधारण रोग

Q 3 What are the causes of dental caries ? How can you save your children from catching such a disease ?

(Sager B. T. 1957)

Ans. दन्त क्षय के कारण—मुँह में श्वेतासारी भोजन के बने रहने पर वह लार-(saliva) और टाइलिन (Ptylin) की सहायता से शकर में बदल जाता है। यह शक्कर मुँह में विद्यमान जीवाणुओं के प्रभाव से लेक्टिक अम्ल (lactic acid) में बदल जाती है। यह ऐसिड दन्तवेष्ट (enamel) को घुला देती है। दन्तग्रीवा (neck) पर से यह दन्तवेष्ट (enamel) शीघ्र हट जाता है। फिर रदिन (dentine) दूषित होने लगता है। यह दन्तवेष्ट की अपेक्षा अधिक कोमल होता है इसलिये एसिड के प्रभाव में आकर शीघ्र ही घुलने लगता है। यदि रदिन के क्षय होने पर भी उसकी उपेक्षा की जाती है तो इसका प्रभाव दन्तमज्जा पर पड़ने लगता है जिससे दांतों में पीड़ा होने लगती है। इसके बाद दांतों में सड़ान फलने लगती है जो दांतों की जड़ों को खोखला कर देती है। एक दांत से रोग दूसरे दांत में फैलने लगता है और रोग के नियन्त्रित न किये जाने पर एक-एक करके दांत खराब होने लगते हैं। मवाद आसपास के तन्तुओं में फैल जाता है और मसूड़ों में घाव और फोड़े हो जाते हैं।

इस प्रकार दन्तक्षय का प्रमुख कारण श्वेतासारी भोजन के टुकड़ों का मुँह में बना रहना है किन्तु दांतों की कमजोरी और इस रोग की वृद्धि में अन्य तत्व भी सहायता पहुँचाते हैं—

(१) अपौष्टिक भोजन।
(२) भोजन में कड़े पदार्थों का अभाव।
(३) सामान्य अस्वस्थता।

दांतों में क्षय सबसे पहले दन्तवेष्ट (enamel) का होता है अतएव उसको कमजोर बनाने में जो-जो बातें सहायक होती हैं वे सब दन्तक्षय का कारण बन जाती हैं। दन्तवेष्ट कैल्शियम से बनता है। इसलिये यदि भोजन में पर्याप्त मात्रा में कैल्शियम नहीं होता, या उससे कैल्शियम को पचाने वाले डी विटामिन की कमी होती है, तब दन्तक्षय आसानी से हो सकता है। कैल्शियम दूध, मक्खन, हरी सब्जी, सलाद, मछली, अण्डा और पनीर में अधिक मात्रा में होता है। यदि भोजन में इन पदार्थों की कमी हो तो भी दांत क्षय हो सकते हैं। यदि बालक की माँ को गर्भावस्था में अधिक दूध या अण्डा खाने के लिये नहीं मिला है जिनसे उसे कैल्शियम फौसफोरस और ए और डी विटामिन मिल सकते हैं, अथवा कौडलिवर आयल या मछली के तेल नहीं मिले हैं जिनमें विटामिन ए या डी मिल सकते है, या नारंगी, अमरूद, पपीता केला, या हरी सब्जी खाने को नहीं मिली है तो उसके दांतों में क्षय से बचने की शक्ति अधिक नहीं होगी।

कुछ बालकों को भोजन में कड़े पदार्थ खाने के लिये नहीं मिलते जैसे सेव, गाजर, चुकन्दर, सिंकाटोस्ट आदि जो दांतों को उचित व्यायाम नहीं मिलता फलतः उनमें रोग रोधक शक्ति अधिक नहीं होती।

दांतों की सामान्य अस्वस्थता, कम निद्रा, व्यायाम की कमी, ताजी वायु की कमी, मुँह से सांस लेने की आदतें दांतों को कमजोर बना देती हैं। इसलिये दांतों को स्वस्थ अवस्था में रखने के लिये हमें नीचे लिखी बातों पर ध्यान देना चाहिये।

(१) भोजन के प्रकार।
(२) भोजन का उपयुक्त चबाना।
(३) भोजन कर लेने के बाद मुख की स्वच्छता।
(४) दांतो की नियमित सफाई।
(५) बालकों को अन्य व्यावहारिक ग्रादेश।

दांतों की सफाई

Q. 4. What steps would you take to keep the teeth of school children healthy? Explain the evil effects of neglect of teeth.

Or

How would you ensure proper development of healthy teeth among school children?

(Agra B.T., 1962)

Ans. हमारे शरीर मे बहुत से ग्रग हैं, इन ग्रगो मे दांतो का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। दांतो की स्थिति ऐसे अग के ग्रन्दर होती है कि जिसके द्वारा हमारे शरीर में सभी खाद्य पदार्थों का प्रवेश होता है। दांतो का सम्पर्क उन सभी भोजन से होता है जो कि हमारी भोजन प्रणाली मे जाता है, ग्रौर इसी पदार्थ से हमारे शरीर की वृद्धि होती है।

जो कुछ भोजन हम करते हैं वह सबसे प्रथम हमारे मुख मे जाता है। दांतो की स्थिति मुंह के ग्रन्दर स्थित दोनों जबडो मे होती है। दांतो का कार्य भोजन को चबाना होता है। खाना दांतो द्वारा बारीक तथा छोटे-छोटे कणो मे बदलता है जिससे कि ये कण ग्रामाशय मे पहुँच कर भली भांति परिवर्तित होकर भोजन प्रणाली के ग्रन्य ग्रगो मे चला जाय। यदि भोजन को सही रूप से दांतो द्वारा न चबाया जायगा तो उसके पचने मे कठिनाई हो जायगी ग्रौर नाना प्रकार के ग्रजीर्ण रोग हो जावेंगे इसलिए प्रारम्भ से स्कूल जाने वाले बच्चो के दांतो को स्वस्थ रखने के लिए माता-पिता तथा ग्रध्यापक दोनों को ग्रारम्भ से ही सतर्क रहना ग्रावश्यक होता है।

ग्रब प्रश्न यह उठता है कि स्कूल के बालको के दांत कैसे स्वस्थ रखे जा सकते हैं। बालको के दांतो को स्वस्थ रखने हेतु निम्न बातों की ग्रोर ध्यान देना चाहिए :—

(१) पीने के पानी मे सोडियम क्लोराइड होना चाहिये। यह एक रासायनिक यौगिक है जो कि दांतो को मजबूती प्रदान करता है। इसकी व्यवस्था स्कूल मे तथा उन स्थानो पर की सकती है जहां से पानी स्कूल मे पहुँचाया जाता है।

(२) भोजन मे कैल्शियम, फासफोरस तथा विटामिन 'ए' 'डी' तथा 'सी' होने चाहिए। बालको के लिये दूध तथा फल एव तरकारी ग्रादि की व्यवस्था होनी चाहिये ताकि उनके भोजन मे उपरोक्त सभी वस्तुएं पूर्ण रूप से मिल सकें। ये वस्तुएं दांतो की हड्डी वाले भाग तथा मसूड़ो को स्वस्थ रखती हैं। ग्रध्यापक को चाहिये कि बालको के भोजन मे उपरोक्त तत्व तथा विटामिन काफी मात्रा मे पाये जायें।

(३) *कीटाणु रहित दूध का प्रयोग किया जाय—बालकों की हड्डियो की सामान्य* रूप मे वृद्धि के लिये दूध बहुत ग्रावश्यक होता है। परन्तु दूध ऐसा होना चाहिये जिसमे कीटाणु पैदा न हों। इस प्रकार का दूध तैयार करने के लिये पहिले दूध को उबाल लिया जाता है। उसके बाद उस उबले दूध को मशीन की सहायता से इतना ठण्डा किया जाता है कि उसमे किसी प्रकार के कीटाणु पैदा न हो सकें तथा जो पैदा हो गये हो वे शीघ्र समाप्त हो जावें। इसके ग्रतिरिक्त दूध पर किसी प्रकार की मक्खी न बैठने दी जाय।

(४) कड़े भोजन जैसे गाजर, सेब ग्रमरूद ग्रादि के प्रयोग करने से दांतो मे रक्त प्रभाव उपयुक्त होता है दांतो को स्वस्थ रखने के लिये शरीर के ग्रौर अगों की भांति भोजन का ग्रावश्यकता पडती है। भोजन के पचने के पश्चात् वह रक्त मे मिल जाता है। रक्त परिभ्रमण द्वारा यह भोजन शरीर के प्रत्येक कोष मे पहुँच जाता है। उपरोक्त वस्तुग्रो को दांतो द्वारा चबाने से उनमे हरकत होती है ग्रौर व्यायाम करने से रक्त सचार शीघ्रता से होता है उसी प्रकार दांतो की हरकत से भी रक्त सचार तीव्र हो जाता है। इस तरह तरह मसूडो से होता हुग्रा रक्त केशिकाग्रो द्वारा दांतो के कोष मे पहुँच जाता है।

अध्याय १४

रक्त परिभ्रमण संस्थान

(Circulatory System)

Q. 6. Discribe the various organs that are involved in the circulation of blood Explain the process of blood circulation in the body. *(Raj. B. Ed. 1949)*

Ans. रक्त परिवहन का सम्बन्ध निम्नलिखित अगो मे रहता है।

(१) हृदय (Heart) ।
(२) धमनियाँ (Arteries) ।
(३) केशिकाएं (Capillaries)
(४) शिरायें (veins)

हृदय—माँस पेशियो से बना हुआ, दुतरफे पम्प की तरह कार्य करता हुआ शरीर का यह अग अत्यन्त महत्वपूर्ण है। छाती मे छाती की हड्डी और पसली के पीछे मासशिरा (Diaphragm) से ठीक ऊपर दोनो फेफड़ो के ठीक बीच मे स्थित है। आकार मे मनुष्य की बँधी हुई मुट्ठी की तरह चौड़ा सिरा ऊपर की ओर तथा पतला सिरा नीचे की ओर होता है। इसका भार लगभग ५ छटाक होता है। जिस तन्तुमय थैली मे पडा हुआ अपना कार्य करता रहता है उसे पैरीकार्डियम (Pericardium) कहते हैं। इस थैली मे एक रस निकलता रहता है जो हृदय को तरल बनाये रखता है।

भीतर से यह दो भागो मे बँटा हुआ है—प्रत्येक भाग मे दो उपभाग हैं ऊपरी भाग को ग्राहक कोष्ठ (auricle) और नीचे के भाग को क्षेपक कोष्ठ (Ventricle) कहते हैं।
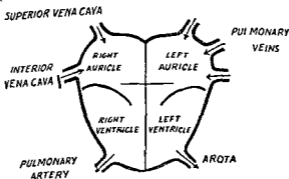
जिस पर्दे से हृदय के दो भाग दायें और बायें ओर किये गये हैं वह सशक्त तन्तुओं से बना हुआ है। ग्राहक कोष्ठो मे रक्त हृदय मे इकट्ठा होता है क्षेपक कोष्ठो से रक्त हृदय से बाहर

(२) दांतों में मवाद पड़ना—दांतों की रक्षा न करने से कीड़ा लगने के अतिरिक्त उनमें मवाद पड़ना भी होता है। इस मवाद पड़ने को पायरिया भी कहते हैं। यह रोग बालकों में प्रौढ़ों की अपेक्षा कम होता है। इसमें मसूड़ों से रक्त निकलता है। दांत के पास सूक्ष्म नलिकायें बन जाती हैं जिनमें बैक्टीरिया प्रचुर मात्रा में रहने लगते हैं। मुख से एक प्रकार की दुर्गन्ध आने लगती है। इसके अलावा दांत हिलने लगते हैं। इस रोग के कारण दांतों की अस्वच्छ अवस्था तथा मसूड़ों की कमजोरी उत्पन्न हो जाती है।

सड़े दांतों के होने से मुँह तथा मसूड़ों में दर्द होने लगता है। रात्रि को भली प्रकार नींद नहीं आती है। मुँह से बोलते समय गन्दी वायु आती है तथा सिर दर्द होने लगता है। सबसे अधिक हानि भोजन के पचने में होती है जिससे कि शरीर की बनावट तथा वृद्धि में कमी हो जाती है।

इसलिये अध्यापक वर्ग का यह कर्तव्य है कि बालकों के दांतों की रक्षा का सदैव उपाय सोचना रहे और समय-समय पर उनको आदेश देते रहें कि उनको दांतों की स्वच्छता के लिए क्या-क्या कार्य करते रहना चाहिए, शरीर के अन्य अंगों की भांति भी दांतों का स्थान बड़ा ही महत्वशाली होता है। इसलिए उनकी स्वच्छता की ओर सदैव ध्यान होना चाहिये।

अध्याय १४

रक्त परिभ्रमण संस्थान

(Circulatory System)

Q. 6. Discribe the various organs that are involved in the circulation of blood. Explain the process of blood circulation in the body

(Raj. B. Ed. 1949)

Ans. रक्त परिवहन का सम्बन्ध निम्नलिखित अंगो से रहता है।

(१) हृदय (Heart)।
(२) धमनियाँ (Arteries)।
(३) केशिकाएं (Capillaries)
(४) शिरायें (veins)

हृदय—

यह अंग अत्यन्त मह
phragm) से ठीक
मुट्ठी की तरह चोड़... लगभग ५ छटाक होता है। जिस तन्तुमय थैली में पड़ा हुआ अपना कार्य करता रहता है उसे पैरीकार्डियम (Pericardium) कहते हैं। इस थैली मे एक रस निकलता रहता है जो हृदय को तरल बनाये रखता है।

भीतर से यह दो भागों मे बँटा हुआ है—प्रत्येक भाग मे दो उपभाग हैं ऊपरी भाग को ग्राहक कोष्ठ (auricle) और नीचे के भाग को क्षेपक कोष्ठ (Ventricle) कहते हैं।

SUPERIOR VENA CAVA
PULMONARY VEINS
RIGHT AURICLE
LEFT AURICLE
INTERIOR VENA CAVA
RIGHT VENTRICLE
LEFT VENTRICLE
PULMONARY ARTERY
AROTA

जिस पर्दे से हृदय के दो भाग दायें और बायें ओर किये गये हैं वह इसका तन्तुओं से बना हुआ है। ग्राहक कोष्ठों में रक्त हृदय मे इकट्ठा होता है क्षेपक कोष्ठों से रक्त हृदय से बाहर

जाता है ग्राहक और क्षेपक कोष्ठों के बीच एक वाल्व होता है जिन्हें ऑरिकुलो वेन्ट्रिकुलर वाल्व कहते हैं। इस वाल्व में ऐसे कपाट लगे रहते हैं जो खून को ग्राहक कोष्ठ से क्षेपक कोष्ठ में जाने तो देते हैं किन्तु वापिस लौटने नहीं देते।

धमनियाँ (Arteries)—वे रक्त वाहिनियाँ जिनके द्वारा रक्त शरीर के भिन्न भिन्न भागों में हृदय से जाता है धमनियाँ कहलाती हैं। ये मोटे रबर की भांति तह से बनी लचकीली रबड़ जैसी नलियाँ होती हैं। इस तह में तीन अलग-अलग पर्तें होती हैं। बाहरी तह सफ़ेद रेशों, बीच की तह अनैच्छिक मांस पेशी की बनी हुई, और भीतरी तह इतनी चिकनी होती है कि रक्त प्रवाह में बाधा न पड़े। बड़ी धमनियाँ छोटी-छोटी धमनियों में बँट जाती हैं और अन्त में जाकर उनका आकार सूक्ष्म रूप हो रह जाता है। इन्हें हम केशिकाएँ कहते हैं। जिनकी मोटाई इंच के दो हजारवें भाग के बराबर होती है। जब रक्त इन केशिकाओं द्वारा शरीर के भागों में पहुँचता है तो छन-छन कर यह कोशिकाओं का पोषण करता रहता है। बायें क्षेपक कोष्ठ से शुद्ध रक्त प्रधान धमनी (Aorta) से शरीर के भागों में जाता है और अशुद्ध रक्त दायें क्षेपक कोष्ठ से फेफड़ों में फुफ्फुसीय धमनी द्वारा पहुँचता है।

शिरायें (Veins)—केशिकाएँ मिलकर बड़ी होने लगती हैं। जब शरीर के भागों में होता हुआ खून आगे बढ़ता है तो शरीर से कार्बन-डाई-ऑक्साइड लेकर उसमें अशुद्धि आ जाती है। यह अशुद्धि युक्त खून हृदय की ओर लौटता है। जो वाहिनियाँ खून को हृदय की ओर ले जाती हैं शिरायें (Veins) कहलाती हैं। शिराओं की दीवारें धमनियों की अपेक्षा पतली होती हैं और उनमें खून धीरे-धीरे समान गति से बहता रहता है। इन शिराओं में थोड़ी-थोड़ी दूर पर थैले के आकार (Pocketlike) कपाट लगे रहते हैं जो खून को हृदय की ओर तो जाने देते हैं किन्तु उसे पीछे लौटने से रोक देते हैं क्योंकि जब रक्त विपरीत दिशा में बहने लगता है तब ये कपाट बन्द हो जाते हैं।

शरीर के विभिन्न भागों से आया हुआ अशुद्ध रक्त ऊपरी और नीचे की शिराओं (Upper and lower vena cavae) से हृदय के दाहिने ग्राहक कोष्ठ में प्रवेश करता है। फेफड़ों से शुद्ध होकर आया हुआ खून फुफ्फुसीय धमनियों से बायें क्षेपक कोष्ठ में आता है।

रक्त परिभ्रमण की क्रिया (Mechanism of circulation)

हृदय के दायें भाग का सम्बन्ध फुफ्फुसीय नलियों से रक्त की सफाई के लिये है और बायें भाग का सम्बन्ध शरीर के अन्य भागों में रक्त भेजने के लिये साधारण धमनियों से है। प्रत्येक बार की हृदय की धड़कन से रक्त क्षेपक कोष्ठों (Ventricles) से ऊपर बताई गई वाहिनियों से बाहर निकल जाता है और उसके ढील पड़ने पर दोनों ग्राहक कोष्ठों (Auricles) में भर जाया करता है।

इस प्रकार रक्त परिवहन (Blood circulation) दो प्रकार का है —

(अ) साधारण रक्त परिभ्रमण (Systematic circulation)।

(ब) फेफड़ों में रक्त परिभ्रमण (Pulmonary circulation)।

साधारण रक्त परिभ्रमण (Systematic circulation)

बायें ग्राहक कोष्ठ से रक्त एक द्वार में होकर बायें क्षेपक कोष्ठ में जमा होता है। और धड़कन के समय यह रक्त प्रधान धमनी द्वारा अन्य धमनियों और केशिकाओं में होता हुआ

[illegible]

[illegible] (Superior vena cave) और निम्न महाशिरा (Inferior vena cave) द्वारा [illegible] करता है। यहाँ से खून दाहिने क्षेपक कोष्ठ में जाता है दाहिना क्षेपक कोष्ठ इस खून को [illegible] धमनी द्वारा फुफ्फुस में भेजता है।

[illegible] रक्त परिभ्रमण (Pulmonary Circulation)—फुप्फुसीय धमनी (Pulmo-
nary [illegible] फेफडो मे चले जाते हैं। फुप्फुस मे
जाक[illegible] हैं जिस प्रकार शरीर के भिन्न-भिन्न भागो
मे प्र[illegible]
सूक्ष्मदशक यन्त्र [illegible]
वाष्प के कण फेफडो से बाहर निक[illegible]
हवा से आक्सीजन ले लेती है। ज[illegible]
हृदय की ओर [illegible] जाकर शरीर के
Veins) द्वारा
अन्य अगो मे [illegible]

श्वसन संस्थान

Q. 10 Explain with the help of a diagram the process of respiration in man.

Describe the mechanism of respiration How would you ensure that children get plenty of air during school hours ? *(Agra B. T. 1953)*

Ans शरीर की वृद्धि के लिये शक्ति का होना अति आवश्यक होता है। शक्ति भिन्न-भिन्न प्रकार की होनी है। जैसे गर्मी, बिजली, चुम्बक आदि। हमारे शरीर की वृद्धि मे गर्मी रूपी शक्ति का प्रयोग होता है। गर्मी एक शक्ति है जो कि आक्सीडेशन का क्रिया से पैदा होती है। इस रासायनिक क्रिया के होने के लिए आक्सीजन का होना अति आवश्यक है। इस तरह से शरीर मे आक्सीजन के पहुँचने तथा शरीर से कार्बन-डाई-आक्साइड निकलने की क्रिया को ही श्वास क्रिया कहते हैं। इस आक्सीजन की उपस्थिति मे बेकार तन्तु जल कर खत्म हो जाते हैं और उनके स्थान पर नवीन तन्तु पैदा हो जाते हैं, इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मनुष्य के शरीर की सुचारु रूप से वृद्धि के लिए श्वासोच्छ्वास क्रिया का होना अति आवश्यक होता है।

श्वासोच्छ्वास क्रिया मे भाग लेने वाले अग

नासिका रध्र—ये दो नाक के छिद्र ह[illegible] धूल के कण छन कर शुद्ध वायु अन्दर जाती है। वायु अकसर गरम हो जाती है। इसके म[illegible] करती है। इसके कारण धूल के कण तथा कीटाणु अन्दर प्रवेश नहीं कर पाते हैं।

कण्ठ—यह भाग गले के पास होता है जिसमे एक छिद्र वायु जाने के लिये होता है। इसी छिद्र द्वारा वायु टेंटुआ मे जाती है। मनुष्य को सदैव नाक से ही सांस लेनी चाहिए ताकि कठ से होकर भीतर प्रवेश कर सके।

स्वर यन्त्र—इस भाग मे दो पर्दे से होते हैं जिनके द्वारा स्वर पैदा होता है। नासिका द्वारा वायु एक घाटी से प्रवेश करती है जहाँ पर स्वर यत्र रहता है। इसके मध्य मे एक छिद्र होता है, जोर से बोलने पर यह छिद्र छोटा हो जाता है और हवा पर्दे पर टकराती है। धीमा स्वर करने पर यह छिद्र कुछ बडा हो जाता है। इसके ऊपरी भाग मे वायु जाने का मार्ग होता है उसे कठ पिधान कहते हैं। सास लेते समय यह खुल जाता है। स्वर यत्र के पर्दो को जिनसे स्वर पैदा होता है स्वर रज्जु कहलाते हैं।

टेंटुआ—स्वर यत्र के नीचे एक नली सी होती है। इसी नली को टेंटुआ कहते हैं, इसकी लम्बाई लगभग ५ इच तथा गोलाई एक इच से कुछ कम होती है। इस नली के अन्दर कोमलास्थि के छल्ले पड़े होते हैं जो कि नली को मुकडने नहीं देते हैं। इस भाग के भीतरी परत पर छोटे-छोटे बाल हैं जो कि हवा मे आये धूल के कणो को आगे जाने से रोकते है। फेफड़े के समीप वक्षस्थल के भाग में यह दो भागो मे विभाजित हो जाता है। इनमे प्रत्येक मुख्य वायु नली बनाती है। ये दोनो दाँये और बाँये फेफडे मे प्रवेश करती हैं।

यदि उपरोक्त बातों को ध्यान मे रखा जाय तो श्वासोच्छ्वास क्रिया सुचारु रूप से चलती रहती है। इस प्रकार साँस लेने मे प्रारम्भ से ही आदत डालना सदैव लाभप्रद होता है। और शरीर मे रक्त की शुद्धि होती रहती है।

निष्क्रमण संस्थान

Q 7 Describe the human ex[illegible]
with sketches ? What would you do [illegible]
excretary organs What symptoms would [illegible]
processes were proceeding normally ?

(B. T. 1955)

Ans. मनुष्य शरीर मे विकार बाहर निकालने के कई प्रबन्ध हैं और ये प्रबन्ध भिन्न-भिन्न अगो से होते हैं। जब खून चक्कर लगाता हुआ उन अगो में पहुँचता है तो वे खून के अन्दर से विकारो को ले लेते हैं और उन्हे या तो पेशाब या पसीने के साथ शरीर के बाहर निकाल देते हैं। साँस के साथ विकार निकालने का प्रबन्ध फेफड़ो के सहारे होता है और यह तभी होता है जबकि खून फेफडो मे पहुँचता है। इसी तरह पेशाब के साथ विकार निकालने का काम गुर्दे (Kidney) से और पसीनो के साथ विकार निकालने का काम खाल के सहारे होता है।

शरीर के अन्दर जितनी भी हरकतें होती हैं उन सबों के कारण सेल टूटते-फूटते रहते हैं और तन्तुओं तथा सेलो मे कई तरह की रासायनिक क्रियायें होती हैं। इनसे बहुत से पदार्थ शरीर के अन्दर बनते हैं, जो हानिकारक होते हैं और जिनका शरीर के बाहर निकल जाना ही अच्छा है। कार्बन-डाइ-आक्साइड शरीर मे बहुतायत से बनता है। इसके बाहर निकालने का कार्य रक्त परिभ्रमण से होता है। जब केशिकाओं की पतली दीवारो से छन-छनकर खून सेलों से मिलता है तो खून की आक्सीजन सेलो को मिल जाती है और सेलो की कार्बन-डाइ-आक्साइड खून मे पहुँच जाती है। शरीर का चक्कर लगाकर और इस विकार के कारण मैला होकर खून दिल के दाहिने ग्राहक कोष्ट मे आता है वहाँ से दाहिने क्षेपक कोष्ट में उतरकर वह साफ होने के लिए फेफड़ो मे जाता है। फेफड़ो मे ही आक्सीजन भरी साफ हवा आती है और उसके सम्पर्क से खून साफ हो जाता है। हवा के साथ आई हुई आक्सीजन खून को मिल जाती है और खून के साथ आई हुई कार्बन-डाइ-आक्साइड बाहर जाने वाली हवा के साथ शरीर के बाहर निकल जाती है।

श्वसन क्रिया किस प्रकार होती है यह पूर्व परिच्छेद मे बताया ही जा चुका है। अतः उसके पिष्टपेषण करने की आवश्यकता नही है।

इस संस्थान को स्वस्थ अवस्था मे रखने के लिये साफ हवा मे उचित व्यायाम की जरूरत है।

किसी भी प्रकार के परिश्रम के समय साँस की प्रक्रिया तेज हो जाती है। बढ़ी हुई हरकत के कारण पेशियाँ ज्यादा आक्सीजन ग्रहण करती हैं और साथ ही उनमें ज्यादा कार्बन-डाइ-आक्साइड पैदा हो जाती है। इस तरह खून मे कार्बन-डाइ-आक्साइड की ज्यादा मात्रा हो जाने से दिमाग में साँस सम्बन्धी केन्द्र पर एक खास प्रभाव यह पड़ता है कि उससे खास-खास पेशियों मे गति तीव्र हो जाती है। इस तेजी से ज्यादा आक्सीजन भीतर जाती है और खून का दौरा बढ़ जाता है।

गुर्दे—सेलो के नष्ट होने की क्रिया से कई तरह के हानिकारक पदार्थ बनते हैं। इन्हे धो—बहाकर नलिका शिराओ मे होकर बहने वाले खून में पहुँचा देता है। ये हानिकारक पदार्थ गुर्दों के रास्ते से भी बाहर निकल सकते [illegible]। जिस अग मे पेशाब बनता है वह अग गुर्दा कहलाता है [illegible] हैं—दाहिना और बाँया गुर्दा। रीढ़ की दाहिनी और [illegible] और सबसे आखिर वाली पसलियो के सामने रहता है [illegible] रग भूरा, उसके पीछे चर्बी, और उसके ऊपर उप-

बुक्क होता है। इसका आकार सेम या लोबिये के बीज की तरह का, लम्बाई ४ इंच, चौड़ाई २½ इंच, मोटाई १ इंच होती है।
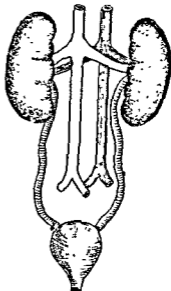
दोनों गुर्दों से दो नालियाँ निकलकर मूत्राशय मे जाती हैं इन्हे हम ureter और पेशाब की थैली को bladder कहते है यह पेशाब urethra से बाहर निकल जाती है।

गुर्दों मे खून की सफाई—बड़ी धमनी की शाखाओं से खून गुर्दों मे पहुँचता है, भीतर पहुँचकर इस धमनी की अनेक शाखायें हो जाती हैं एक शाखा हरेक नली के फूले हुए भाग मे जाती है। इसी से होकर खून केशिकाओं के भुण्ड मे पहुँचता है। यूरिया; यूरिक ऐसिड आदि पदार्थ खून से चूकर उस नली में चले जाते हैं जिसे हमने ureter कहा था। गुर्दों मे धमनियों से खून आता है उसमे यूरिया, यूरिक ऐसिड आदि व्यर्थ के पदार्थ अधिक होते हैं पर गुर्दों से शिराओं के रास्ते जो खून वापिस जाता है उसमे ये पदार्थ कम होते हैं। इसका मतलब यह है कि गुर्दों में खून की सफाई होती है उसके अन्दर का बहुत सा हानिकारक पदार्थ पेशाब के रूप मे बाहर निकल जाता है।

खाल—खाल का काम भी गुर्दों की तरह बेकार के पदार्थों को शरीर से बाहर निकालना है। खाल की दो तहें होती हैं एक बाहरी और दूसरी भीतरी (epidermis and dermis) बाहरी खाल की मोटाई शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में अलग-अलग है जैसे तलवे मे १/६" चेहरे पर १/१००"। बाहरी खाल सख्त होती है और सेलो की कई तहो से मिलने से बनती है। ऊपरी सेलो के घिस जाने पर दूसरे सेल आते है बाहरी खाल मे खून की नलियाँ नही होतीं। इसके सेल अपनी खुराक लसिका से पाते हैं जो सच्ची खाल को सेल से धीरे-धीरे निकाला करती है। बाहरी खाल मे बहुत ही कम एक प्रमद से नही के बराबर स्नायुसूत्र होते हैं। इस बाहरी खाल की सतह पर बहुत ही छोटे-छोटे छेद (pores) होते हैं इन्ही छेदों से शरीर के अन्दर का कुछ विकार पसीना के रूप मे बाहर निकला करता है।

Connective
Tissu [illegible] है। सच्ची
खाल [illegible] करती है और
गर्मी क [illegible] लसीका की
नलियाँ होती हैं। इसकी ऊपरी सतह Papillae होते हैं जिनसे केशिकाओं का एक गुच्छा होता है और एक अण्डाकार स्नायुसमूह भी रहता है जिसका सम्बन्ध स्पर्श से होता है। शरीर के ऐसे भागो मे जहाँ पैपिले अधिक होते हैं ऊपरी खाल बहुत पतली होती है अत. वहाँ पर स्पर्श का अनुभव तीव्रतम होता है।

खाल मे दो प्रकार की गिल्टियाँ होती हैं—Sebaceous and Sweat glands एक तेल जैसी चिकनाई निकालती है दूसरी पसीना निकालती है।

नाखून और बाल बाहरी खाल के बढ़े हुए हिस्से हैं। बाहरी सेलों की शक्ल बदल जाती है और वे कड़े हो जाते है। प्रत्येक बाल की जड़ मे एक तेल निकालने वाली गिल्टी होती है। हर एक बाल की जड़ मे एक स्वाधीन मांस पेशी भी लगी रहती है जिसके सिकुड़ने पर हमारे रोंगटे खड़े होने लगते हैं।

खाल को स्वस्थ रखने का तरीका—खाल को स्वस्थ रखने का सबसे सीधा तरीका है उसकी सफाई। उसकी सफाई न होने पर गर्द, पसीना और नष्ट सेल जम जाते हैं इस गन्दगी के कारण 'कीटाणु' पैदा हो जाते हैं जो कई चर्म रोगों को पैदा कर देते हैं। ऐसी दशा मे खाल ठीक-ठीक काम नहीं कर पाती और गुर्दों को ज्यादा काम करना पड़ता है। गुर्दा यदि इस बेगार का सहन न कर सका तो वही बीमार हो जाता है। अतः शरीर को नीरोग रखने के लिये खाल की सफाई पर विशेष ध्यान देना चाहिए।